



प्रकाशक—

पंडित लालारामजी जैन

जैनग्रंथप्रकाशककार्यालय

मल्हारगंज, इंदौर

— ० : —

मुद्रक—

श्रीलाल जैन,

जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस

८ महेन्द्रवोसलेन इयामवालाट

कलकत्ता ।



स्यादादग्रंथमाला ।

८

श्रीमद्गुणभद्राचार्यविरचित

महापुराणांतर्गत

उत्तरपुराण



अनुवादक श्रीर प्रकाशक

नावली ( आगरा) निवासी पंडित लालाराम जैन,

मालिक जैनग्रंथप्रकाशक कार्यालय इंदौर ।



प्रथमावृत्ति ७५० ]

वीर निर्वाण संवत् २४४५ विक्रमान्द १९७५

[ ज्योत्सावर १० रूपये

## उत्तरपुराणकी विषयसूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अजितनाथका चरित	१	अनंतनाथका चरित	१५७
सगर चक्रवर्तीका चरित	७	सुप्रभ, पुरुषोत्तम और मधुसूदन बलभद्र नारायण तथा प्रति-	
संभवनाथका चरित	१७	नारायणका चरित	१६२
अभिनन्दनका चरित	२४	वर्मनाथका चरित	१६६
सुमतिनाथका "	३२	सुदर्शन बलभद्र, पुरुषसिंह नारायण मधुक्कीढ प्रति-	
पद्मप्रभका "	४२	नारायणका चरित	१७२
सुपाईनाथका "	५१	मधवान चक्रवर्तीका "	१७५
चंद्रप्रभका "	५६	सनकुमार चक्रवर्तीका "	१७६
पुष्पदंत ( सुविधि ) का "	८५	शांतिनाथके पूर्वभवमें अपराजित बलभद्र और अनंतवीर्य	
शीतलनाथका "	९२	नारायणका चरित	१८०
श्रेयासनाथका "	१०३	शांतिनाथके अन्यभवोंका वर्णन	२३०
अश्वमेध प्रतिनारायणका त्रिपृष्ठ	१०९	मेघरथके जीव अहमिंद्रका जन्मले शांतिनाथ होना	२६८
नारायण, विजयबलभद्रका "	"	शांतिनाथ चक्रवर्ती और तीर्थ करके पंचकस्याणकोंका वर्णन	२६९
वासुपूज्यका चरित	११३	कुंयुनाथका चरित	२८१
द्विपृष्ठ प्रतिनारायणका "	११९	अरनाथका "	२८६
अचल नारायण, तारक बलभद्रका "	"	सुभौम चक्रवर्तीका "	२९१
विमलनाथका चरित	१२६	नंदिधेण बलभद्र और पुंडरीक नारायणका वर्णन	३०३
मधु प्रतिनारायण, वर्मबलभद्र, स्वयंभू नारायणका चरित	१३२	निशुंभ प्रतिनारायणका चरित	३०४
मेरु और मंदर गणधरोंका और संबन्धतका चरित	१३७	मक्तिनाथका चरित	३०५

पद्म चक्रवर्तीका ॥  
 नंदिमित्र बलदेव, दूष नारायण और बर्हीद प्रतिनारायणका  
 मुनिसुव्रतनाथका चरित  
 हरिवेण चक्रवर्तीका  
 रामचंद्र बलभद्र, लक्ष्मण नारायण तथा रावण प्रतिनारायणका  
 पर्वत और नारदका शास्त्रार्थ तथा वेदोंकी उत्पत्ति  
 यज्ञोंका प्रारंभ  
 वसुका पृथ्वीमें घसना  
 सीताकी उत्पत्ति  
 रामके साथ सीताका विवाह  
 नारदका रावणसे सीताकी जुगली करना  
 रावण द्वारा मंत्रीके समझानेपर भी सीताको हरना  
 रामचंद्रका सीताके वियोगमें व्याकुल होना  
 सुग्रीव और हनुमानका रामसे मिलना  
 सीताको रावणका समझाना  
 हनुमानका लंकामें जा सीतासे रामका संदेश कहना  
 हनुमानका विभीषणके साथ रावणसे मिलना  
 रामका रावणके पास दूत भेजना  
 बालिके दूतका रामके पास आना  
 कुम्भकर्ण आदिका रावणको समझाना  
 रावणका विभीषणको देशनिकाला देना

३१३  
 ३१६  
 ३१८  
 ३२४  
 ३२७  
 ३४४  
 ३५३  
 ३६०  
 ३६५  
 ३६८  
 ३७३  
 ३७६  
 ३८९  
 ३९१  
 ३९५  
 ४००  
 ४०३  
 ४०५  
 ४०८  
 ४११  
 ४१४

रामका रावणसे युद्ध  
 सीताका रामकी विजयसे हर्षमनाना  
 राम सीताका मिलाप  
 लक्ष्मणकी मृत्यु और रामका तप तपना तथा मोक्ष जाना  
 नेमिनाथका चरित  
 जयसेन चक्रवर्तीका वर्णन  
 युधिष्ठिरादिकी उत्पत्ति  
 अधकवृष्टिका सुप्रतिष्ठमुनिसे अपने तथा पुत्रोंके भव पूछना  
 वसुदेवका अतःपुरमें रत्ना जाना और विरक्त हो बाहिर जाना  
 बलिका मुनियोंको उपसर्ग करना और उसका निवारण  
 रोहिणीका स्वयवर  
 कंसका जन्म  
 देवकीका वसुदेवके साथ विवाह  
 श्रीकृष्णका जन्म  
 श्रीकृष्णकी बालक्रीडा  
 कंसका वध  
 जरासंधके पुत्रोंके साथ श्रीकृष्णका युद्ध  
 नेमिनाथका जन्म  
 मत्स्यमामा और नेमिनाथका संवाद  
 राजमतीका नेमिनाथके साथ वाग्दान तथा विवाहारंभ  
 नेमिनाथका वैराग्य

४१६  
 ४२७  
 ४२९  
 ४३६  
 ४३७  
 ४४५  
 ४५७  
 ४५८  
 ४६७  
 ४७३  
 ४७५  
 ४७९  
 ४८१  
 ४८३  
 ४८७  
 ४९३  
 ४९५  
 ४९६  
 ५०६  
 ५०८  
 ५०९

देवकीका अपने पुत्रोंके पूर्वभव पूछना  
सत्यभामा आदि कृष्णकी पटरानियोंके पूर्वभव  
प्रद्युम्नका चरित्र तथा पूर्वभव  
बलदेवकानेमिनाथ स्वामीसे कृष्णके राज्यकी स्थिरता पूछना  
पाडवोंका चरित्र  
ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीका चरित्र  
पार्श्वनाथके पूर्वभव  
पार्श्वनाथ पर कमठका उपसर्ग करना  
पार्श्वनाथकी मुक्ति  
महावीरस्वामीके पूर्वभव  
सिद्धार्थकी पटरानी-प्रियकारिणीका सोलह स्वप्न देखना  
महावीर स्वामीका जन्म  
भुंजगके साथ महावीर प्रभुका क्रीडा करना  
महावीरका वैराग्य  
भगवानके प्रभावसे चंदनाके बंधन टूटना  
भगवानका धर्मोपदेश  
श्रेणिकके तीनमवोंका वर्णन  
राजगृह नगरवासियोंमें कालसौकरी और भाक्षणपुत्री शुभाका  
नरकमें जानेका कारण  
अभयकुमारके पूर्वभव  
चंदनाका चरित्र

५१२ चेलिनीका श्रेणिकके साथ विवाह  
५२२ चंदनाकी विपत्तियां और उनका नाश  
५३७ चंदनाके पूर्वभव  
५५३ जीवधर स्वामीका चरित्र  
५५५ सत्यधरका काष्ठांगरके हाथसे मरना  
५६४ जीवधरका जन्म और गवोत्कटका उन्हें पालना  
५६५ जीवधरका विद्याभ्यास  
५७६ गर्भवत्ताका स्वयंवर  
५८० गुणमाला और सुरसंजरीका चूर्णविषयक विवाद  
५८२ कुत्तेको जीवधर स्वामीका पंच नमस्कार मंत्र देना और  
६०५ उससे उसका यक्ष होना  
६०६ गंधवारण हाथीको वाधा पहुंचानेसे काष्ठांगरका क्रुद्ध हो  
६०९ जीवधरको मारनेकी आज्ञा देना  
६१० जीवधरका यक्षद्वारा अंतर्धान  
६१३ जीवधरका अमण और वहां अनेक स्त्रियोंसे विवाह  
६१५ नंदाद्वय आदिसे जीवधरका मिलाप  
६१७ मातासे जीवधरका मिलाप और उसको आश्वासन देना  
काष्ठांगरकी सभामें जीवधरका परिवाजके नेषमें जाना  
गुणमालाके साथ जीवधरका समागम  
काष्ठांगरका युद्धमें मारा जाना  
जीवधरका राज्याभिषेक

६३६  
६३७  
६४०  
६५१  
६५४  
६५५  
६५८  
६६२  
६६६  
६६७  
६६८  
६६९  
६७०  
६८६  
६८७  
६८८  
६९१  
६९५  
६९६

धर्मशास्त्रिका वर्णन	६९९ कल्कि का वृत्त	७३६
जबकुमार का चरित्र	७०२ कल्कि के पुत्र अजितजय का वर्णन	७३८
चौर द्वारा जबकुमार का कथा सुनना और सुनाना	७०४ अंतिम ब्रानियों का वर्णन	७३९
कुणिक द्वारा जबकुमार का दीक्षाभिषेक	७०९ अतिदुष्कमल का और उसके अंत का वर्णन	७४१
महावीर स्वामी के वाद के केवलियों का वर्णन	७१० उत्सर्पिणी के प्राग्भक्ता वर्णन	७४२
सुव्रतागणिनी का कथाये कहना	७१४ महावीर स्वामी के वाद के कुछ मुनियों का वर्णन	७४५
भौतिक मुनिका वर्णन	७१८ महावीर स्तुति	७०
उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का कुछ वृत्त	७३५ प्रशस्ति	७५४
	इति संक्षिप्त विषय सूची ॥	

## प्रेम का निवेदन ।

महाशय !

आपसे यह बात छिपी नहीं है कि नवीन आविष्कार कर सफल प्रयत्न होने में कितना परिश्रम और ध्यस्त उठाना पड़ता है । इसलिये कलकत्ते की भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाने भी इस वीसवीं शताब्दी में भी जब कि अपवित्रता का प्रवाह घटने की जगह दिन पर दिन दूना बढ़ता ही आ रहा है तब एक पवित्र आविष्कार कर कितना परिश्रम और व्यय किया होगा इसका अनुमान करना कठिन नहीं है । पुस्तक मुद्रण में आज तक जो जो अपवित्र पदार्थ काम में लाये जाते थे और जिसके कारण समाज में एक छापे और दूसरी बेछापे की स्वीकार करने वाली दलबंदी बंध गई थी वे सब अस्पृश्य हिंसाजनक पदार्थ उनकी जगह पवित्र पदार्थों को खोज कर दूर कर दिये गये । प्रथम ही प्रयत्न पेना करने से और कई एक पदार्थों की परीक्षा करने से संस्था के कई एक प्रभु असुंदर भी छपगये जिससे कि बहुत से भाइयों ने हमसे शिकायतें भी कीं पर हमने उनको पत्र डाग समाधान कर संतुष्ट कर दिया । यह महापुरुष का उत्तर भाग ( उत्तर पुगण ) भी उन्हीं प्रथमों में से एक है जो मुद्रण कला के प्रगट होने से आज तक न आविष्कृत हुये पवित्र पदार्थों से इस संस्था द्वारा मुद्रित हुये हैं । यद्यपि प्राग्भ में जब कि संस्था अपने आविष्कार में पूर्ण सफल न हुई थी तब तक का छपने वाला इस [ पुगण ] का कुछ भाग उतनी सुंदरता से नहीं छपा है जितना कि चाहिये परंतु अंतिम भाग में वह शुद्धि बहुत कुछ दूर कर दी गई है । आशा है हमारे पाठक इस प्रेम संबंधी बुद्धि को [ जो कि अनिवार्य थी ] क्षमा करेंगे ।



स्याद्वादग्रंथमाला ।

८

## श्रीमहापुराण ।

तदंतर्गत श्रीमद्-गुणभद्रविरचित

श्रीउत्तरपुराण ।

श्रीमान् जिनोऽजितो जीयाद् यद्वाचांस्यमलान्यलं ।  
क्षालयति जलानीव विनयानां मनोमलं ॥ १ ॥

पुराणं तस्य वक्ष्येहं मोक्षलक्ष्मीसमागमः । श्रुतेन येन भव्यानामव्याहृतमहोदयः ॥ २ ॥ इह जङ्गमति द्वीपे विदेहे प्राचि विभुते । सीतासरि-  
द्वेष आदिरूपी मलको घोडालते है वे अजितनाथ जिनेंद्र सर्वदा जयवंते रहो ॥ १ ॥  
मैं उन्हीं अजितनाथ भगवानके पवित्र चरितको कहूंगा । जिसके सुननेसे भव्योंको विना किसी विघ्न बाधावाली  
मोक्ष लक्ष्मीका समागम हो जाता है ॥ २ ॥

दुपागमगे वत्साख्यो विपयो महान् ॥३॥ सुमीमा नगरं तस्मिन् विभूत्या विस्मयावहं । नागनास्य रुपतिः प्राश्रुत्यमुर्विलवाहनः ॥ ४ ॥ गुणा गुणार्थिभिः प्राश्रुत्य न्यायोय चित्रमत्र तत् । गुणा. प्रणयिन सर्वे स्य तं वृण्वते स्म यत् ॥५॥ शक्तिसिद्धिश्चोपेतो यथा न्याययमतद्वितः । प्रजा. स पालयामास विधाय स्वप्रजासमा ॥ ६ ॥ धर्मादयस्ततोर्थोर्वाकामोऽयं निष्ठिने, न तौ । इति स्मरन् बभूवासौ जैनधर्मेण धार्मिकः ॥ ७ ॥ स कदाचित्समुत्पन्नवोधि संज्वलनोदयी । स्वगत जातसेवदो रहस्येवमर्चितयत् ॥ ८ ॥ आयुषो वसति काये काय-स्वस्य ममाप्यलं । आयुर्जलं गलत्याशु मितकालघटीधृतं ॥ ९ ॥ ततो गलति निःशेषं न यावत्तावदेव हि । वत्स्योऽभ्युत्सन्न समार्गे जैन-स्वर्गापवर्गयो. ॥ १० ॥ इत्याशापाशमाच्छिद्य बहुभिः सह निस्पृहः । राज्यलक्ष्यो स्वतंत्रोपि दीक्षालक्ष्या वशीकृत ॥ ११ ॥ त-पस्यन्सुचिरं तीव्र विस्पष्टकादशागक । 'नाम्नोऽत्यमेव पुण्यात्मा स्वकार्पावनापरः ॥ १२ ॥ आयुर्भते समाधान विधाय परमेष्ठिषु ।

इस जवूद्रीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तटपर वत्सनामका विद्याल देख है ॥ ३ ॥ उसमें धन धान्य आ-दिसे समृद्ध सुसीमा नामका नगर है और उसका किसीसमय विमलवाहन नामका राजा पालन करता था ॥ ४ ॥ सं-सारमें लोग गुणोंकी चाहसे उनका उपाजैन किया करते हैं यह नियम है परंतु उस राजामें यह विलक्षण बात थी कि उसके विना चाहे ही गुण उसमें आ आकर स्वयं वास करने लगगये थे ॥ ५ ॥ वह राजा शक्ति और सिद्धिसे युक्त हो अपनी संतानके समान प्रजाका न्यायपूर्वक प्रेमसे निगलस हो पालन करता था ॥ ६ ॥ धर्मसे पुण्यकी प्राप्ति होती है, पुण्यसे धन मिलता है और धनसे यथेष्ट पदार्थोंका संग्रह कीया जासक्ता है । यही सोचकर वह राजा निर्दोष जिनध-र्मका पालक हो गया था ॥ ७ ॥ एक समय संज्वलन कथायवाले ज्ञानवान उस राजाके कारण वस्य वैराग्य हो गया और वह इस तरह अपने मनमें विचारने लगा ॥ ८ ॥

“इस शरीरमें जीवका निवास आयुर्कर्मकी परिमित अवधितक होता है और वह मेरा जलंयंत्र की बहीके समान एक एक समय करके वीतता जा रहा है । इसलिये जबतक वह आयुर्जल मेरा समस्त संपूर्ण नहीं हो पाता तबतक मैं स्वर्ग मोक्षके सच्चे मार्गभूत जिनधर्ममें प्रवृत्ति करूंगा ॥ ९-१० ॥

वम हमप्रकार सोचकर वह राजा आशारूपी पाशको छेदकर समस्त पदार्थोंमें निस्पृह हो बहुतसे राजाओंके साथ जिन दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ ११ ॥ बहुत दिनोंतक तीव्र तपको तपते हुए ग्यारह अंगके पाठी उस विमलवाहनने अपनी शुभ भावनाके बलसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध बांधा ॥ १२ ॥ और आयुके अंतमें समाधिभरणपूर्वक प्राण

अथ शिशुसमुद्रायुरथात्स विजयं जयी ॥ १३ ॥ तत्रादायायसंस्थानं शुक्लेष्याद्व्यान्वितः । हस्तोच्छ्रायं शुभं देहं सद्गुणोदितचतुष्टयं ॥ १४ ॥  
मासैः षोडशभिः पंचदशभिश्चोच्छ्रवसन् दिनैः । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दमनसाहारमाह्वरन् ॥ १५ ॥ निजतेजोवधिव्याप्तलोकनालिनिजा-  
बधिः । क्षेत्रोत्थापिबलस्तत्पूरकक्रायजविक्रियः ॥ १६ ॥ सातपचशुभैः सौख्यममवीचारमन्वभूत् । सप्रवीचारसत्सौख्यात्तदनुगुणाधिक ॥ १७ ॥  
तस्मान्महीं महाभागो स्वर्गाद्रोरागमिव्यति । प्रागेव भावगोपाततीर्थकृष्णामपुण्यतः ॥ १८ ॥ द्वीपस्मिन् भारते वर्षे साकंतनगराधिप ।  
इक्ष्वाकुर्जितशञ्जाल्यः ख्यतो गोत्रेण काश्यपः ॥ १९ ॥ तस्य शक्राज्यां गेहे षण्णामान्प्रत्यहं मुहुः । रत्नान्यैल्लिलिस्तप्तः कोटी-  
सार्द्धं न्यपीपन्त् ॥ २० ॥ ज्येष्ठे मासि कलाशेषशशिरोहणुपागमे । मुहूर्ताद्ब्रह्मणः पूर्वं दरनिद्राविलेक्षणा ॥ २१ ॥ देवी विजयमे-  
नाख्या षाडशचन्द्रपूर्वकं । प्रविशन्तं विलोक्यात्मवक्त्राब्जं गर्धसिंधुर ॥ २२ ॥ प्रातः पृष्टवतीं स्वप्नान् देशावधिमिलोचन । जितशत्रुर्म-  
हाराजः फलान्येषामवबुधत् ॥ २३ ॥ विजयादागत देवं तद्दर्भं स्फटिकामल । विमलानुगसंज्ञानेनैव त्रितयभास्वर ॥ २४ ॥ दशम्या मा-  
छाडनेसे तेनीम मागरकी आयुता धारक विजयनामक विमानमें जा अहंभिद्र हुआ ॥ १३ ॥ वहां उसके द्रव्य और  
भावदोनों शुक्लेण्या हुई, एक हाथका ऊंचा शुभ वर्ण गंधर्ग और रस्यत्राला मनोहारी शरीर प्राप्त हुआ । सोलह म-  
हीने और पंद्रह दिनवाद उच्छ्वास लेता था, तेनीस हजार वर्षमें एरुवार मानसिक आहार करता था और लोक  
नाडी पर्यंतके रूपी पदार्थ अपने अवधिज्ञान द्वाग देख सकता था । उसमें लोकनाडीको उखाडकर दूगरी जगह रख दे-  
नेकी सामर्थ्य थी । वह उतनी ही अपने शरीरकी विक्रिया भी करसक्ता था और प्रवीचारजन्य सुखसं अनंत गुणा अ-  
धिक अप्रवीचार सुखका भोगी था ॥ १४-१७ ॥ उस महाभागके इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके पूर्व ही छहमास तक प्रति  
दिन तीर्थंकर पुण्य प्रकृतिके प्रभावसे जंबूद्वीपके भरतक्षेत्र ही अयोध्या नगरीके अधिगति इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्री राजा  
जितशत्रुके घरमें इद्रकी आज्ञासे साठे तीनरुगेड रत्नोंकी कुबरेने दृष्टि की ॥ १८-२० ॥ इसके बाद जेठ महीनेकी अ-  
मावस्याके दिन रात्रिके अंतभागमें जब कि रोहिणी नक्षत्रका उदय था उससमय ब्राह्म मूर्हतसे कुछ पहिले विजयसेना  
महागानीने सोलह शुभस्वप्न देखे और उनके बाद अपने सुखकमलमें गंधर्गजको प्रवेश करता देखा । जब प्रातः ऋतु  
हुआ तो महारानीने उनका फल महाराज जितशत्रुसे पूछा और उन्होंने भी अपने देशावधिसे तीर्थंकर पुत्रका होना  
फल बतलाया ॥ २१-२३ ॥ स्फटिकके समान निर्मल अपने गर्भमें विजय विमानसे आये हुए मति श्रुति और अनु-  
गामी अवधिज्ञानरूप तीन नेत्रोंसे श्रूयित, समस्त संसारके भावी पति जितेंद्रको उस विजयसंज्ञानं माष मासके सुहृदकी



प्रमामस्य शुक्रपक्षे प्रवेशं । प्रवेशयोगे नीतिर्वा महोदयमसूत सा ॥ २५ ॥ सागरोपमकोटीनां लक्षाः पंचाशदुचरे । मुक्तिमावे विने  
 भाते तद्व्यतरजीविनः ॥ २६ ॥ तदा विधाय देवद्रा मदरे सुंदराकृतेः । जन्माभिषेककल्याणमजितास्यामकुर्वत ॥ २७ ॥ द्वाप्तसति-  
 गुणा लक्षाः पूर्वाणामस्य ज्ञावित । चतुःशतानि पंचाशदुत्सो धनुषा मतः ॥ २८ ॥ भर्तुः सुवर्णवर्णस्य पादे स्वस्यायुषो गते । अ-  
 जितस्य जिताशेषवाचाभ्यतरविद्विषः ॥ २९ ॥ पूर्वाणा लक्ष्या हीन भागव्रितयमायुषः । पूर्वागमपि नार्यस्य निर्जितादित्यतेजसः ॥ ३० ॥  
 त्वया संभोगसौख्यस्य पर्यंतोय ममंति वा । राज्यलक्ष्या परिप्लव्क्त भ्रूध्यान् भोगानमुक्त सः ॥ ३१ ॥ स कदाचित्सुखासीनः सौष-  
 पृष्ठ विशापति । उल्कामलोकतानरुगं जल्पतीवाध्रुवा श्रियं ॥ ३२ ॥ विषयेषु तदैवासौ विदां निर्विविदे भर । लक्ष्माम्भ्यर्णमो-  
 क्षाणा क्षेपुं किं वा न कारण ॥ ३३ ॥ ब्रह्मलोकतदाभ्येत्य मुगः सारस्वतादयः । मुनीश्वराः प्रशस्योच्चैस्तत्तदेवान्वादिपुः ॥ ३४ ॥  
 तेषा तदुदित तस्य लोकस्वेवाधुमालिनः । सचक्षुषो यथार्थवलोकैज्जात्सहकारिता ॥ ३५ ॥ सुतायाजितसेनाय राज्याभिषेकपूर्वकं ।  
 दशमीको जन्मदान दिया ॥ ३६-२५ ॥ आदिनाथको मुक्त हुये पचासलाख करोड़ सागरोपमकालके वीत जानेपर उत्पन्न हुये  
 सुंदराकार इन भगवानका देवोंने सुमेरुपर लेजाकर जन्माभिषेक किया और क्षुम अजितनाथ नाम रक्खा ॥ २६-२७ ॥  
 अजितनाथका जीवनकाल बाहसर लाख पूर्वका था और शरीरकी ऊँचाई चारसौ पचास धनुषकी थी ॥ २८ ॥ सुव-  
 र्णके समान रंगवाले शरीरके धारक, वाद्य अभ्यंतर शत्रुओंके जीतनेवाले इन भगवानका अठारह लाख पूर्वकाल तो  
 कुमारवत्सामें बीता, और त्रेपन लाख पूर्वतक राजलक्ष्मीका भोगकर नाना इंद्रियसुख भोगे ॥ २९-३१ ॥

एकदिन ये अजितनाथ अपने महलकी छतपर सुखसे विराजमान थे कि अचानक ही अपने समान लक्ष्मीको अ-  
 नित्य बतलाती हुई बही भारी विजलीको इन्होंने नष्ट होने देखा और उसको देख एकदम इन्हें विषयोंसे विरक्ति हो  
 गई सो ठीक ही है जिनकी संसारसे शीघ्र ही मुक्ति होनेवाली होती है उन्हें लक्ष्मी छोड़नेमें क्या निमित्त नहीं हो  
 जाता अर्थात् अल्प कारणसे भी उनके परिग्रह छोड़नेके भाव हो जाते हैं ॥ ३२-३३ ॥ ज्योंही भगवानको संसारसे  
 बेराग्य हुआ सारस्वत आदि लौकिक देव शीघ्र ही आये और उनके विचारोंकी प्रशंसा करते हुये पुष्टि करने लगे  
 ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार लोग देखते तो अपने नेत्रोंसे हैं परंतु सूर्य उसमें निमिष कारण हो जाता है उसीप्रकार भगवान  
 यद्यपि स्वयंपुष्ट थे तौमी लौकिकोंका साधुवाद उनके बेराग्यमें सहकारी कारण हो गया ॥ ३५ ॥ अभिषेकपूर्वक  
 अजितसेन नामके अपने पुत्रको विवेकियों द्वारा त्यागे जाने योग्य समस्त राज्य प्रदानकर उन्होंने उसे जूठनके समान

दत्त्वा विवेकिनां त्याज्यं राज्यं भोज्यमिवोच्छिस्तं ॥ ३६ ॥ लब्धनिष्क्रान्तिकल्याणमहाभिपयसंगदः । सुप्रभाषिकारूढो व्यूढो न-  
 रत्नगामरैः ॥ ३७ ॥ माघे मासि सिते पक्षे रोहिण्या नवमीदिने । सहेतुके वने ससर्पणदरुमसभीषणः ॥ ३८ ॥ अपराहे सहस्रेण  
 राज्ञामाज्ञाविधायिना । सार्द्धं पष्टोपवारेन समारिथत स संयमे ॥ ३९ ॥ चतुर्थज्ञानसंगच्छो द्वितीयेहि प्रविष्टवान् । साक्रेत दानिनां  
 तोषमर्पमुपपादयन् ॥ ४० ॥ तत्र ब्रह्मा मर्हिपालत्समै दान यथाकृमात् । दत्त्वा सातादिभिः पुण्यैः सहाणश्चर्यपंचकः ॥ ४१ ॥ छा-  
 न्दस्येन नन्दनद्वारोपे द्वादश शुद्धधीः । दुष्टैकादश्यहः प्राते रोहिण्यामाप्सतामगात् ॥ ४२ ॥ सिंहमेनाद्रयत्तन्य नदतिः स्तु-  
 र्गणार्थिनाः । स्वप्नसुप्तवन्द्योपे द्वादश शुद्धधीः । शिक्षकाः लङ्घयत्वेकद्विप्रभाणनाः क्रमात् । शून्यद्वयचतुर्गणितार्थि-  
 ज्ञानलोचनाः ॥ ४४ ॥ केवलवागमारतत्र ते सहस्राणि विशतिः । चतुःशतैः सदसाणा विशतिविद्वत्तदयः ॥ ४५ ॥ शून्यचि-  
 चतुर्थैकमनःपर्ययवीक्षणाः । शून्यद्वयचतुर्लोकैस्तयानुत्तरवादिनः ॥ ४६ ॥ सर्वे ते विडिताः सतो लक्षमेक तपोधनाः । प्रमुञ्जवाद्यादिकाः  
 शून्यचतुष्कच्यग्निसम्भिताः ॥ ४७ ॥ श्रावकास्त्राणि लक्षाणि श्राविकाः पच लक्षिकाः । देवा देवत्वसंख्याताः संख्यातो द्वादशो गणः  
 निर्मोक्त हो छेदु दिया और स्वयं मनुष्य देव और च्छिधरों द्वारा खेई गई सुप्रभा नामकी पालकीयें मवार हो सहेतुक  
 वनमें जा माघ मासके शुक्ल पक्षकी नवमीके दिन सांमके समय रोहिणी नक्षत्रमें सप्तपर्ण वृक्षके नीचे एक हजार राजा-  
 ओंके साथ पष्टोपवास धारण करके दीक्षित हो गये ॥ ३६-३९ ॥ दूसरे दिन जब कि भगवानका योग समाप्त होगया  
 तो मति श्रुत अवधि और मनःपर्यय नामक चारज्ञानके धारक वे दानियोंको परमानंद उपजाते हुए अवोध्य नगरीमें  
 आहारके लिये पधारें ॥ ४० ॥ और वहां ब्रह्मा नामक महीपालने उन्हें नवधा भक्तिसं योग्य आहार दे असीम पुण्य उपा-  
 र्जन किया तथा पंचाश्वयोरकी दृष्टि हुई ॥ ४१ ॥ चारह वर्षतक तो प्रभु छद्मस्थ रहे और उसके बाद पोषणामके शुक्ल  
 पक्षकी एकादशीके दिन सायं कालमें रोहिणी नक्षत्रके समय दानिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञानी सर्वज्ञ हो गये ॥ ४२ ॥  
 भगवान्के सिद्धिसेन आदि नन्दे तो गणधर थे, तीन हजार सातसौ पचास पूर्वधारी, द्वासीय हजार छहसौ शिक्षक, नौ  
 हजार चारसौ अवधिज्ञानी, बीसहजार केवल ज्ञानी बीसहजार चारसौ चिक्रिया क्रद्विवाले, चारह हजार चारसौ पचास  
 मनः पर्यय ज्ञानी और चारह हजार चारसौ अनुत्तरवादी थे । एवं सब मिलाकर एकलाल तपस्वी थे, तीनलाल वीरह-  
 जार प्रह्वजा आदि आदि ॥ ४३ ॥ श्री, तीनलाल श्रावक, पाचलाल श्राविकाएँ, और देव देवियों असंख्यात थीं ॥ ४३-४८ ॥  
 इसप्रकार गणधर आदि चारह गणोंसे देष्टि हो भगवान अजितनाथ संसार तथा मोक्षका स्वरूप और उनके हेतु

॥ ४८ ॥ एव दृढशभिर्देवो गणैरभिः परिष्कृतः । संसारमोक्षतद्वेदफलेभ्योदानंप्रचयन् ॥ ४९ ॥ समवसरणलक्ष्म्या वीक्ष्यमाणः  
 कटाक्षः सुकृतविकृताचिन्हैरष्टभिः प्रातिहार्यैः । अविहितविहितारिः प्राज्यवैराग्यभावः स्वपरगुरुकृतार्थप्राथम्यकृत्प्रसिद्धः ॥ ५० ॥  
 पापैः अपि न जीयतेयमिति वा दुर्वादिभिश्चाखिलैर्नामान्वर्थमवाप्तवानिति विदा स्तोत्रस्य पात्र भवन् । आर्यक्षेत्रमशेषेण विहरन् स-  
 प्राप्य सम्मेदकं स्थित्वा दिव्यनिनादयोगरहितस्तत्रैव पश्यद्वयं ॥ ५१ ॥ कुर्वाणः समयं प्रति प्रकृतिषु स्नाव गुणासल्यया स्थित्यादि  
 च विधातयन् स्वमिदिक दंडादिक वर्तयन् । सूक्ष्मध्याननिरुद्धयोगविभवो विश्रुत्येदहत्रयस्तुयध्यानसमाश्रयास्मसुपयश्चाष्टौ गुणान् शुद्धि-  
 माक् ॥ ५२ ॥ चैत्रज्योत्स्नापक्षे पंचम्या रोहिणीगते चंद्रे । प्रतिमायोग विभ्रत्यवृद्धिज्वाप मुक्तिपद ॥ ५३ ॥ विमलबाहनमाहवदुद्धर दुरितदू-  
 रतपश्चरणोद्यत । सुखनिधिं विजये सुरसत्तम नमत भक्तिभरादजितं जिन ॥ ५४ ॥ इत्थ षोडशभावनाहितमहापुण्योदयपादकः सद्गया-  
 आदि तन्त्रोंका विशद रीतिसे वर्णन करने लगे ॥ ४९ ॥ समवसरण लक्ष्मीसे भूपित वे भगवान् असीम पुण्यसे उत्पन्न  
 हुए आठ प्रातिहार्योंसे युक्त थे, शत्रु मित्रको समान जानते थे, और तीव्र वैराग्य भावसे भूपित स्वपरके गुरु प्रार्थनीय  
 सर्वत्र प्रसिद्ध थे ॥ ५० ॥ यह महात्मा न तौ पापोंसे कभी जीते जाते हैं और न इन्हें कोई वादी ही जीत सकता है इ-  
 सलिये इनका अजित नाम उचित ही है इसप्रकार विद्वानोंकी स्तुतिके पात्रभूत ये भगवान् समस्त भरतक्षेत्रमें विहार  
 करते हुए समेदाचलपर पहुंचे और वहां एक माहका योग धारणकर मॉनसे स्थित होगये ॥ ५१ ॥ उमसमय प्रभुने प्र-  
 तिसमय कर्म प्रकृतियोंकी असंख्यात गुणी निर्जराकी -उनके स्थिति आदिका सर्वथा नाश किया । दंडप्रतर आदि स-  
 मुद्रात किये सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातीनामक तृतीय शुरुध्यानके बलसे मन वचन कायकी प्रवृत्तिका सर्वथा निरोध किया  
 और चतुर्थ ध्युरतक्रियानिश्रुति नामक शुरुध्यानका आश्रयले प्रतिमा योगसे विनश्वर देहका नाशकर अविनाशी सि-  
 द्धोंके आठो गुणोंको प्राप्त किया । जिस दिन अजित भगवानने मुक्तिपद पाया उसदिन चैत्र मासके शुरुपक्षकी पंचमी  
 थी । रोहिणी नक्षत्रका उदय था और प्रातःकालका समय था ॥ ५२-५३ ॥

जो विमलबाहनके भवमें पहिले तो शत्रुओंकेलिये दुर्धर राजा हुआ और फिर पापनाशक तपका आराधक हुआ  
 उसके बाद विजय विमानमें उचम सुखका भोगी भेष्ट देव हुआ उस अजितनाथकेलिये भक्तिभावसे नमस्कार है ॥ ५४ ॥

इसप्रकार जो दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंसे महापुण्य-तीर्थकर प्रकृतिको उत्पन्न करता है, श्रेष्ठध्यानके  
 बलसे समस्त कर्मोंका नाश करदेता है, अनेक कल्याणकी परंपराओंका प्रदान करनेवाला है और नित्य मोक्षसुख देता

नात्सलकर्मजालमखिलं निर्मूल्यमिर्मलं । धर्मः शर्मणंपरां प्रविदधद्वत्ते शिवे शाश्वते तस्माद्धर्ममुपाद्भवमुज्झितमदाः शुद्धाप्तबुद्धं बुधाः ॥ ५५ ॥ तथिहकुत्सु द्वितीयोपि योऽद्वितीयपथस्तुतः । स विधेयात्पराणोरुमार्गोनिर्वहण कवेः ॥ ५६ ॥

विषये वत्सकावत्या धृषिद्वीनगराधिपः । अमृत्युगणमेतस्य शृणु श्रेणिक धीधन ॥ ५७ ॥ द्विषेत्र प्राप्तिदेहस्य सीतापाम्नागभूषणे । सूर्याचंद्रमसौ जित्वा सदा भातः कृतोद्गो । पितरौ च मरुत्मारगं पृथिव्यौ वा ततः पृथक् ॥ ६० ॥ कदाचिद्व्रतिषणो भूकृता तमुखग्रहो । केनापि हेतुना किं वा न मृत्योर्हेतुतां ब्रजेत् ॥ ६१ ॥ सजानि जयसेनास्य सलत चामरद्वज्रम् । शोकाशनिरवाधिप तन्मृत्युघननिर्गतः ॥ ६२ ॥ प्रलयः प्राप्यकालस्तावालिङ्ग यमाग्रगः । लब्धरथा न तिष्ठेयुरकृत्वापकृतिं द्विषः ॥ ६३ ॥ भिषक्प्रायो जितोपायैः शनैः संलब्धचेतनौ । गुरुणा गुरुणैव तेन दुःसेन बोधितः ॥ ६४ ॥ विग्रहं तद्गृहं मत्वा निगृहीतु कृताग्रहः । हंतुं यम समुद्रयुक्तस्ताद्धि युक्त मनसिना है उस निर्दोष आत्मसे निर्दोष्ट धर्मका है भव्यो ! निर्मद हो पालन करो ॥ ५५ ॥ जो भगवान् तीर्थंकरोंमें द्वितीय तीर्थंकर होनेपर भी अद्वितीय अनुपम है वह इस पुराण वर्णनके कठिन विस्तृत मार्गका निर्वहण करें ॥ ५६ ॥

द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथके तीर्थमें जो दूसरा चक्रवर्ती सगर हुआ उसका अब चरित वर्णन किया जाता है सो हे बुद्धिमान् श्रेणिक ! तू सावधान हो सुन ॥ ५७ ॥

इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीतानदीके दक्षिण तटपर वत्सकावती नामका देश है उसमें पृथ्वीनगरका अधिपति जनोसे सेवनीय जयमेन नामका राजा था और उसकी पटरानीका नाम जयसेना था उन दोनोंके रतिपेण और धृतिपेण नामके दो पुत्र थे ॥ ५८-५९ ॥ भाग्यशाली ये दोनों पुत्र अपने तेजसे सूर्य और चंद्रमाको भी जीतते थे । एक दिन किसी कारण वश रतिपेणकी मृत्यु हो गई । सो ठीक ही है जब मरण होना होता है तब क्या नहीं उसका कारण हो जाता अर्थात् अवधि समाप्त होनेपर अल्प कारण से भी मृत्यु हो जाती है ॥ ५०-६१ ॥ जिसप्रकार वज्रके टूटनेसे बल्यदृक्ष और लता दोनों जल जाते हैं उसीप्रकार रतिपेणकी मृत्युसे जयसन और जयसेना दोनोंको शोकने महादुःख दिया उन्हें मृत्युसे पहिले होनेवाली मूर्छानि घर दबाया सो ठीक ही है क्योंकि शत्रु अपना समय पाकर अपकार किये बिना कभी नहीं रहते हैं ॥ ६२-६३ ॥ वंशाने अनेक उपायोंसे धीरे धीरे सावधान किया तब कहीं आचार्योंके समान बड़े बड़े गुरुजनोंने उस महाराज जयसेनको बड़ी कठिनातासे समझाया ॥ ६४ ॥

॥ ६५ ॥ जीर्णोर्णवदागम्य प्राणप्राप्तान् परिहृत्वा । राज्यभोज्ये नियुज्यार्थं धृतिषेण धृतायति ॥ ६६ ॥ यशोधरगुरुद्विष्ट शुद्धमन्त्रान-  
भापं सः । नृपमहस्ताल्येन बहुभिर्भयुनेन च ॥ ६७ ॥ कालान्ते कृतमन्यासविधिः कल्प्येति मेऽच्युते । देवो महाबलो नाम जयसेनो-  
न्नतिष्ठ सः ६८ ॥ महारुतोऽपि तत्रैव मणिकेतुः सुरोजनि । आवयोर्योऽवतीर्णं प्राक् तन्मन्यो बोधको भवेत् ॥ ६९ ॥ इति तत्र तयोरासी-  
दन्योन्यं सप्रधारण । तत्र द्वाविंशतिसागरोपमाण्यामरं सुखं ॥ ७० ॥ अनुसूयात्र साकेतनगरे कौशले नृप । सयुद्रविजयस्तस्य सुबाला-  
रमणी तयोः ॥ ७१ ॥ महाबलोऽभवत्सूरिक्ष्वाकुकुः सगराद्वयः । पूर्वाणा सप्ततिलक्षाः तस्यायुः परमावधिः ॥ ७२ ॥ चतुःशतानि  
पचाशदुत्तरेण धनूषि सः । सर्वलक्षणसंपूर्णः श्रीमाश्रामीकरच्छविः ॥ ७३ ॥ कुमारत्वे दगाष्टौ च लक्षाः पूर्वाण्ययुःततः । महामण्डलि-

तदनन्तरं वह इस शरीरको दुःखोंका घर मानने लगा, उसका निग्रह करनेकेलिये आग्रह करने लगा और यमराज-  
को मारनेके लिये तैयार हुआ सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंको ऐसा करना ही योग्य है ॥ ६५ ॥ प्राणोंको नाश  
करनेवाले पट्टिहोंको वह पुरानेपत्तोंके समान झारने लगा और अपने राज्यपर अपने छोटे पुत्र आर्य धृतिषेणको स्था-  
पन किया ॥ ६६ ॥ यशोधर गुरुके समीप जाकर उसने कहे हुये शुद्ध मोक्षमार्गको ( दीक्षा ) प्रद्वन किया और माले  
महार्कत आदि अनेक राजाओंने भी उसके साथ साथ दीक्षा धारण की ॥ ६७ ॥ आयुके अन्तमें वह जयसेन मुनि  
समाधि मरण धारण कर अंतके सोलहवें अच्युत स्वर्गमें महाबल नामका देव उत्पन्न हुआ ॥ ६८ ॥ महार्कत नामका  
राजा भी तपश्चरणकर समाधि मरण धारणकर उसी अच्युत स्वर्गमें मणिकेतु नामका देव हुआ, इन दोनोंमें बड़ा प्रेम  
था इसलिये इन दोनोंने परस्पर प्रतिज्ञाकी कि “ यहासे हम दोनोंमेंसे जो कोई पहिले च्युन होगा उसको यहां रहा  
हुआ दूसरा देव अवश्य समझीवेगा । भावार्थ—उसे समझाकर विरक्त करेगा ” अनुक्रमसे काल वीतजानेपर महाबल  
नामका देव वाईस सागर तक स्वर्गोंके सुखोंका अनुभवकर कौशल देशक अयोध्या नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुये  
राजा समुद्रविजय रानी सुबालाके सगर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, उसकी आयु सत्तर लाख पूर्वकी थी ॥ ६९—७२ ॥  
उसका शरीर चारसी पचास धनुष ऊंचा था, उसमें सत्तरहके पूर्ण लक्षण थे, सुवर्णकीसी उसकी कांति थी और वह  
बड़ा ही लक्ष्मीवान था ॥ ७३ ॥ कुमार कालके अठारह लाख पूर्व वीत जानेपर उसे महामंडलेश्वरका पद मिला था  
और फिर अठारह लाख पूर्व वीत जानेपर छोड़े खट्ठ पृथ्वीके समूहपर आक्रमण करनेवाले चक्रकी प्राप्ति हुई थी, तथा  
उत्ससमय पराक्रमको धारण करनेवाली और दिशाओंके समूहपर आक्रमण करती हुई अर्थात् सब दिशाओंमें फैलती

कव च तस्य तावत्प्रमापितं ॥ ७४ ॥ तदोदपादि षट्संख्यभूचक्राक्रमणक्षमं । चक्र कीर्तिश्च विक्रमक्रममंत्याचविक्रमा ॥ ७५ ॥ आद्य-  
चक्रावेवोऽपि कृत्वा दिग्विजय चिर । गृह्णन् तत्सारवस्तूनि सर्वान् स्वाज्ञामजिग्रहत ॥ ७६ ॥ ततो निवृत्य साकेत साम्राज्यश्रीनिर्के-  
तन । भोगान् दशागान् निर्भग निर्विशन्नावसत्सुखं ॥ ७७ ॥ तस्य पष्ठिसहस्राणि पुत्राणां कृतिनोऽभवन् । तद्वाक्येण वा तस्य वेधसा व्य-  
जिता गुणाः ॥ ७८ ॥ तस्मिन् सिद्धिवने श्रीनान्दश्चतुर्मुखयोगिनः । अन्यद्राखिलमास्यासीत्केवलाधिगमस्तदा ॥ ७९ ॥ तत्कल्या-  
णस्य देवैर्दम्यनिर्भेतुः सहागतः । महाबलोऽजनि क्वेति सोपयोगोवधित्विषा ॥ ८० ॥ सगर्श्वक्रवर्त्यप औपैः पुण्यरभूदसां । इति बुद्ध्वा  
विद्यानाथमुपगम्यदमवर्षीत् ॥ ८१ ॥ स्मरस्यावा वदित्वावस्तत्त्व कल्पेच्युताह्वये । प्राग्महीगतमन्त्राणां बोधयित्वावयंगिति ॥ ८२ ॥ म-  
नुष्यजन्मनः सार साम्राज्य चिरमन्वभूत् । किं भोगैर्भोगिभोगैर्भोगैर्भव्यैर्भिरभ्यावहैः ॥ ८३ ॥ उत्तिष्ठ स्वविभो मुक्तावित्यस्य विमुक्तो-  
हुई कीर्तिं प्रकट हुई थी ॥ ७४-७५ ॥ प्रथम चक्रवर्ती भरतके समान इसने भी बहुत दिनतक दिग्विजय किया, सब  
जगहकी उत्तम उत्तम वस्तुयें ग्रहणकीं और सबको अपनी आबामें रखवा ॥ ७६ ॥ दिग्विजयसे लोटकर वह साम्राज्य  
और शोभाके स्थान ऐसे अयोध्या नगरमें आया और पूर्ण रीतिसे दशतर्गहके भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे  
रहने लगा ॥ ७७ ॥ उस पुण्यवानके माठ हजार पुत्र थे, गुणवान होनेसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों ब्रह्मने गुण  
ही उन पुत्रोंके आकारमें प्रगट किये हों ॥ ७८ ॥ किसी एक दिन सिद्धवनमें श्रीचतुर्मुख नामके मुनिराज पधारें थे  
और उन्हें वहींपर लोकालोकको प्रकाश करनेवाला कंबलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ७९ ॥ उनके कल्याणोत्सवमें सब  
देव आये थे उनमें मणिकेतु भी आया था उसने वहाँपर यह जानना चाहा कि महाबल नामका देव कहाँ उत्पन्न  
हुआ है तब उसने अपना अवाधिज्ञानरूपी प्रकाश प्रगट किया और उससे उसे मालूम होगया कि वह अपने वाकी  
बचे हुये पुण्यके उदयसे सगर चक्रवर्ती हुआ है । जब उसे यह बात मालूम हो गई तब वह राजा सगरके पास आया  
और कहने लगा कि ॥ ८०-८१ ॥ “क्यों याद है ? जब हम तुम दोनों अच्युत स्वर्गमें थे तब हम दोनोंने प्रतिज्ञाकी  
थी कि जो कोई पहिले आकर जन्म लेगा उसे वहाँ रहा हुआ देव समझाकर तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप दिखावेगा ॥ ८२ ॥  
मनुष्य जन्मका सारभूत यह साम्राज्य तूने बहुत दिनतक अनुभव किया है, हे मव्य ! सर्वकी कृपाके समान अत्यंत  
भय देनेवाले इन भोगोंसे क्या लाभ है ॥ ८३ ॥ इसलिये हे राजन् अब मोक्ष जानेकी तैयारी करो ।” मणिकेतुके इतना  
कहनेपर भी वह चक्रवर्ती इससे विमुख रहा सो ठीक ही है क्योंकि काललक्षिके विना मोक्षमार्ग कहाँसे मिल सकता

भवत् । चक्रवर्ती स सिद्ध्यध्वा काललब्ध्या विना कुतः ॥ ८४ ॥ श्रुत्वा तत्त्वस्य वै मुख्यमन्यात्पर्यन्तयत् । हितेनापि न कुर्वति वि-  
 प्रिय क्रमेवदिनः ॥ ८५ ॥ विभोगादीदृशान्स्वोक्तेरेव च्यावयतोऽघदान् । दुन्यजानिति निर्विण्णो मणिकेतुरगादिवं ॥ ८६ ॥ उपायमेक-  
 मालोच्य तपो ग्राहयितुं पुनः । मणिकेतुर्महीपालमवतीर्य महीतल ॥ ८७ ॥ आलंघ्य लक्ष्णेर्लक्ष्य कात्येदु भानुमाभया । वामेन वपुषा  
 काम निर्जित्य विजितेंद्रियः ॥ ८८ ॥ चारणत्व समासाद्य भावयन् सयम परं । तस्मै जिनेन्द्रान् वंदित्वा सगरस्य जिनालये ॥ ८९ ॥ दृष्ट्वा  
 त विसर्पापन्नो वयस्यसिन्निद कुतः । तपस्त्रेवति पटुच्छ नृपः सोप्यन्याब्रवीत् ॥ ९० ॥ यौवन जरसा ग्रास्य गलत्यायुः प्रतिक्षण ।  
 हेयः कायोऽशुचिः पापी दुस्सरो दुःसमाजनं ॥ ९१ ॥ सर्वदानिष्टमयोगो वियोगश्चेष्टवस्तुभिः । गतोनादिर्भवावतः पुनश्चानत  
 है ॥ ८४ ॥ “सगर चक्रवर्ती मोक्षमार्गसे विमुख हो रहा है” यह बात जानकर भी मणिकेतु दूसरी कुछ बात चीतकर  
 लौट गया, सो ठीक ही है क्योंकि जो अनुक्रमको जाननेवाले हैं ये किसी हित वा प्रेमसे भी कोई विपरीत काम  
 नहीं करते हैं ॥ ८५ ॥ “जो ये भोग अपने कहे हुये वचनोंसे भी इमतरह च्युत करा देते हैं, जो अनेक तरहके  
 पाप उत्पन्न करनेवाले हैं और बड़ी कठिनतासे छोड़ जाते हैं ऐसे इन भोगोपभोगोंको धिक्कार हो” इस तरह  
 विरक्त होकर वह मणिकेतु देव स्वर्गको चला गया ॥ ८६ ॥ फिर कुछ दिन बाद मणिकेतुने राजाको दीक्षा ग्रहण  
 करानेकेलिये एक और उपाय सोचा और वह उसीसमय पृथ्वीपर आया ॥ ८७ ॥ उसने अपना बहुत सुंदर शरीर  
 बनाया, उस शरीरमें सब लक्षण प्रगट दिखाई दे रहे थे, चंद्रमाके समान उसकी कांति थी और सूर्यके समान उसकी  
 प्रभा थी, उसके सुंदर शरीरसे कामदेव भी जीता गया था, ऐसा शरीर बनाकर और जितेंद्रिय होकर उसने चारण  
 मुनिका रूप धारण कीया, उससमय वह उत्तम संयमका चितवनकर रहा था और जिनेंद्र देवकी बंदनाकर वह सगरके  
 चैत्यालयमें जा विराजमान हुआ ॥ ८८-८९ ॥ उस चारण मुनिको देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह  
 पूछनेलगा कि आपने इस सुंदर यौवन अवस्थामें यह तपश्चरण क्यों धारण किया ? तब उस चारण मुनिने भी बात  
 बनाकर कहा कि “इस यौवनको तो बुढापा खा ही डालेगा, आयु प्रत्येक क्षणमें नष्ट होती ही जाती है, यह शरीर  
 छोड़ने ही योग्य है क्योंकि यह अपवित्र है, अनेक तरहके पाप करनेवाला है, दुर्देर है अर्थात् बड़ी कठिनतासे सं-  
 भाला जाता है और अनेक दुःखोंका पात्र है ॥ ९०-९१ ॥ इस जीवको सदा अनिष्ट वस्तुओंका संयोग और इष्ट  
 वस्तुओंका वियोग बना ही रहता है यह जीव अनादिकालसे संसाररूपी ( जन्ममरणरूपी ) भंवरोंमें पड़ा हुआ है



एव सः ॥ ९२ ॥ कर्मोर्भिभिर्दिं सर्वं दृष्ट्वा तानि तपोनिना । यास्याम्यनभरीं शुद्धिं यथाऽहं कनकोपलः ॥ ९३ ॥ इत्युक्तः संसृते भूयो वेपमानोऽपि नापतत् । पंथान निर्द्वैतेर्बद्धः पुत्रशृङ्खलया दृढ ॥ ९४ ॥ नाति ह्रस्वोऽस्य संसार इत्ययात्स विषादवान् । उपायो निष्फलः कस्य न विषादाय धीमतः ॥ ९५ ॥ वशीकृतेन साम्राज्यतुच्छलक्ष्म्या निर्धीशिना । विस्तृतोऽच्युतलक्ष्मीश्च कामिनां क्रात- रज्ञता ॥ ९६ ॥ लाभो लोभेषु पुत्राणा लाभः स्वर्गापवर्गयोः । लक्ष्म्योर्नासाविति स्मृत्वा मन्येस्यां सोनुषक्तवान् ॥ ९७ ॥ कदा- चित्ते सुता दृप्ताः सिंहपोता इवोद्धताः । इति विज्ञापयामासुः समास्य चक्रवर्तिनं ॥ ९८ ॥ यदि क्षत्रियपुत्राणा शौर्यसाहसशा- और अनत कालतक पड़ा रहेगा ॥ ९२ ॥ इस सब दुखको देनेवाले कर्मरूप शत्रु हैं इसलिये जिततरह सुवर्ण पाषाण को जलाजलाकर शुद्ध सुवर्ण निकाल लेते हैं उसीतरह मैं तपश्चरणरूपी अग्निसे इन कर्मोंको जलाकर कमी नाश न होनेवाली विशुद्धताको धारण करूंगा ” ॥ ९३ ॥

मणिकेतुके इसप्रकार कहनेपर वह सगर चक्रवर्ती संसारके दुखोंसे डरा तो सही परंतु मोक्षमार्गमें प्रवृत्त नहीं हुआ क्योंकि वह पुत्ररूपी सांकलोंसे खूब जकड़ा हुआ था ॥ ९४ ॥ यह देखकर मणिकेतु बड़ा ही खेदस्विन्न हुआ, वह सोचने लगा कि इसका संसार अभी बहुत बड़ा है छोटा नहीं है अर्थात् शीघ्र समाप्त होनेवाला नहीं है, मो ठीक ही है क्योंकि यदि किया हुआ उपाय निष्फल चला जाय तो किस बुद्धिमानको खेद नहीं होता है ? ॥ ९५ ॥ वह देव यह भी सोचने लगा कि ” साम्राज्यकी तुच्छ लक्ष्मीके वशीभूत हुआ यह चक्रवर्ती अच्युत स्वर्गकी लक्ष्मी- को अथवा मोक्षलक्ष्मीको भी भूल गया है सो ठीक ही है क्योंकि कामी लोगोंके विचार करनेकी शक्ति कहां होती है ? ॥ ९६ ॥ मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि पुत्र होनेको ही यह अपना लाभ समझता है स्वर्ग मोक्षकी लक्ष्मी प्राप्त होनेको यह अपना लाभ नहीं समझता यही समझकर यह भोगोंमें लीन हो उठा है ” इत्यादि विचार करता हुआ वह देव चला गया ॥ ९७ ॥

इस बातके कितने ही दिन पीछे भिहके वच्चोंके समान उद्धत हुये राजपुत्रोंको कुछ कुछ अहंकर हुआ और वे समांमें बैठे हुये चक्रवर्तिसि जाकर निवेदन करनेलगे कि शूरवीरता और साहसको धारण करनेवाले क्षत्रियपुत्रोंका धौवन तबतक नहीं जान पड़ता जब तक कि किसी दुःसाध्य वस्तुको इच्छानुसार सिद्ध करनेकेलिये पिता न भेजे । यदि पिता ऐसे फठिन कामकेलिये न भेजे तो संसारी जीवोंके जन्म लेने और जीवित रहनेसे क्या लाभ है ?



लिनां । यौनं न सिधुः प्रेरे दुःसाध्यं साधितेतिवर्त ॥ १९ ॥ किं नेन बन्धने तेन नमिनो अभितेन वा । ननु सार्वमानान्यं  
 जगज्जीवितयोद्भव ॥ १०० ॥ तदादिना विगर्भायां परं नः साध्यायतु । पश्येन्मिलनेन्यं येनो वा निरस्यते ॥ १०१ ॥  
 तदाकर्ण्य मुना युतः सर्वं चोद्ये साधिव । गो किं नयन मे पितुं नये द्विजमुद्रुते ॥ १०२ ॥ एष एव मन पेषं रास्य-  
 लक्ष्मीनिर्मा नम । तन्मय ग्रथभी यवन्मुग्धं यथोचिनं ॥ १०३ ॥ इति गव्यो नोद्दिन तेन ने सुनिवारिभाः । जेषमान्युपिरेषा  
 दि भिक्षुणा मुद्रुध्वज्जाः ॥ १०४ ॥ तन्मेषुः पुनरात्मयानुं अजगत्प्रतिनिधं । न मुग्धे न चोपेय इत्यन्तरादिनमुद्रुध ॥ १०५ ॥  
 नज्जुध्वजा म नः प्रेय इति विनयना मनात् । नन्वनि सार्वभौतं पमं इत्यालक्ष्यतेना ॥ १०६ ॥ राज्ञाज्जगतिना यूरे केभासे  
 गतेक्षिना । गुप्त कृता गद्गार्ध्वप्रसूयितातिरेतां ॥ १०७ ॥ तेषां गंगां प्रार्थयितुं परिगता पतिगो पित्र । इति लेपि तथा कुर्वन्  
 बयौकि जन्न लेना आर जीवित रहना ये दोनांदी सर्वमाधारण है मर तर्षिके दोते है ॥ १०८-१०९ ॥ इसलिये  
 है गवन् । कोई माहसका काम करनेकेलिये हमें अवश्य आज्ञा दीजिये जिससे कि हमारी यह काल पेट भरकर  
 पड़े रहनेसे उत्पन्न हुई दीनता और प्रथम दोनों ही नष्ट हो जाय ॥ १०९ ॥ यह सुनकर चक्रवर्तिने प्रसन्न  
 होकर कहा कि—“हे पुत्रो ! चक्रते सब कुछ निद हो चुका है दिववान पर्वत और समुद्रके बीचें ऐसी कीन-  
 ती बस्तु है जो पुत्रो सिद्ध न हो चुकी हो ॥ १०९ ॥ इसलिये तुम लोगोंको मैं यही काम देता हू कि तुम लोग सब  
 मिलकर यथायोग्य रीतिसे मेरी इन राज्यलक्ष्मीका उपयोग करो” ॥ १०९ ॥ इसतरह राजा मगाने बार बार उन्हें  
 निवारण किया तब वे चुप हो गये मो टीक ही है क्योंकि जो अद्वयमें उत्पन्न हुये हैं वे नीपाकी आज्ञा मानने  
 ही हैं ॥ ११० ॥ वे राजपुत्र फिर किसी एक दिन राजाके पास पहुँचे और निवेदन करने लगे कि यदि आप कोई  
 काम नहीं बताते हैं तो हम आपके राज्यका उपयोग भी नहीं करते ॥ ११० ॥ तब राजाको कुछ निता हुई बह  
 सोचने लगा कि क्या कानमा काम है जो इनकी बताया जाय, ब्रह्मप्राप्तुं उने याद आ गई उमने अपनेमनमें यह इसके  
 माध कहा कि एक धर्मकार्य करना बाकी है ॥ ११० ॥ इसके बाद राजाने उन सब राजपुत्रोंको आज्ञा दी कि “महा-  
 राज भरतने कैलास पर्वतपर महारत्नोंके अरहत देवके चौबीस विनालय बनवाये हैं उम पर्वतके चारोंओर मार्द्रि रूप  
 में गंगाका प्रवाह करो ।” यह सुनकर उन राजपुत्रोंने भी देहरास लेकर धीमे धीमे यह काम कर दिया ॥ ११०-११०८ ॥  
 मणिकेतु देवको फिर भी प्रेम और सज्जनताने प्रेयणाको और बह सगरको समझानेके उपायके साथ साथ इसव-

दहरत्नेन सत्वर ॥ १०८ ॥ मणिकेतुः पुनश्चास्य स्नेहसौजन्यचोदितः । सचिवैर्बोधनोपायं स सहैव व्यञ्चितयत् ॥ १०९ ॥ किञ्चिद्विप्रं चोक्त किञ्चिच्च हितमप्रियं । किञ्चिदप्रियं सदाहितं परं चाहितमप्रियं ॥ ११० ॥ अत्यद्वयं परित्यज्य शेषाभ्या भाषता हित । इति निश्चित्य कैलाश तदैवागम्य दूषिणः ॥ १११ ॥ कुमारान् भस्मराशिं वा व्यात्कूरोरगाकृतिः । कुर्वति सुहृदोऽगत्या हित चेदप्रियं च तत् ॥ ११२ ॥ ज्ञात्वापि तन्मूर्तिं मूयमाकर्णयितुमधुमाः । तस्नेहं तेषु जानानाः संवृत्य सचिवाः स्थिताः ॥ ११३ ॥ तदा ब्राह्मणरूपेण मणिकेतुरेतेषु त । महाशोकसमाक्रान्तो वावेदयदिदं वच ॥ ११४ ॥ देव देवे धराचक्र रक्षति क्षेममत्र नः । किञ्चित्केन मत्सुत्रो ब्रह्मार्थो जीवितावधेः ॥ ११५ ॥ प्रेयान् ममैव एवासौ नायुषा तेन जीवित । नानीतश्चेत्त्वया सोद्य तेन मामपि पश्यत ॥ ११६ ॥ तब विद्वद्यग्रतो नीत किं कुर्वति न गर्विताः । शलाढुमक्षणे लोलः किं पक्व तस्यजेदिति ॥ ११७ ॥ तदाकर्ण्यहिं स गृहं चितवन करने लगा कि ॥ १०९ ॥ कोई बात चार तरहसे कही जाती है एक तो जो हितरूप होकर भी प्रिय हो, दूसरी हितरूप होकर भी जो अप्रिय हो, तीसरी जो हितरूप तो न हो परंतु प्रिय हो और चौथी जो हितरूप भी न हो और प्रिय भी न हो ॥ ११० ॥ इन चारोंमेंसे अंतके दो उपायोंको छोड़कर बाकीके हितरूप दो उपाय कहने चाहिये ऐसा कह निश्चयकर वह कैलास पर्वतपर आया और अपना क्रूर सर्पका आकार बनाकर अहंकार करनेवाले उन कुमारोंको मूर्छित कर भस्मकी राशिके समान कर दिया । सो ठीक ही है क्योंकि जो मित्रकेलिये अप्रिय होकर भी यदि किसी दूसरी तरहसे हितरूप हो तो भी मित्रलोग करते ही हैं ॥ १११-११२ ॥ यद्यपि उन राजपुत्रोंके मरनेकी बात मंत्रियोंको मालूम हो गई थी तथापि उन पुत्रोंमें राजाका अत्यंत स्नेह जानकर मंत्री लोग इस बातको सुना नहीं सके और वे इस बातको छिपाकर चुपचाप बने रहे ॥ ११३ ॥ तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप धारणकर सगरके पास आया और अत्यंत शोक करता हुआ नीचे लिखे अनुसार वचन निवेदन करने लगा ॥ ११४ ॥ कि-हे राजन् ! जब आप इस पृथ्वीके समूहका पालन कर रहे हैं तब इस क्षेत्रमें सब जगह क्षेम कुशल है किंतु यमराजने जीवनकी अवधि ( आयु ) रहते हुये भी मेरा पुत्र लेलिया है ॥ ११५ ॥ यह पुत्र बहुत ही प्यारा था, अपनी पूरी आयुतक भी जीवित नहीं रह सका बिना उसकी इच्छासे यमराज आज उसे उठाकर ले गया, यदि आप आजही उसे यमराजसे वापिस नहीं लावेंगे तो समाप्तिये कि आपको देखते देखते रक्षा करते करते आपके सामने हा वह मुझे भी ले जायगा, क्योंकि अभिमानी लोग क्या क्या नहीं करते हैं ? जो कच्चे फलोंके रसनिमें ही लोलुपी है क्या वह पके फलोंको छोड़ सकता है ? कभी

दात्रा द्विज ! किं येत्सि नातकः । सिद्धदेव स वार्योऽन्येनैत्यागोपालविभुतः ॥ ११८ ॥ अपवर्त्योयुषः केचिद्ब्रह्मायुर्जीविनः चरे ।  
 तान् सर्वान् संहत्येष यमो मृत्योरोचरः ॥ ११९ ॥ तस्मिन् वहसि चैद्वैर जीर्णो माभूत्ते वृथा । मोक्षदीक्षां गृह्णाणांशु शोक हि-  
 त्वेयुवाच त ॥ १२० ॥ इत्युक्ते देव किं सत्यमेतच्चान्तकात्परः । बलीति तन्न भेतव्यं मया किञ्चिदुद्विष्यता ॥ १२१ ॥ तेनातकेन  
 ते नीताः सर्वेऽपि स्वातिक सुताः । तस्मात्तुक्तमार्गेण बहुवरं स्वर्लुप्तके ॥ १२२ ॥ इत्याह सोपि तद्वाक्यवज्रनिर्मिन्नमानसः । गता-  
 सुरिव निःस्वन्दो बभूव नृपतिः क्षणं ॥ १२३ ॥ चन्दनोशीरसंमिश्रसलिलैः सुहृत्किभिः । लक्ष्म्यैश्च मृदूक्ष्यै पुनरागत्य चेतना ।  
 मा मायामा वृथायामा भीम कामो यमोऽव्ययः । भंगुरः संगम प्रेप्लः कायोऽश्रयोऽयुचिः क्षयी ॥ १२५ ॥ वार्युक्तासुक्तनिर्भासि बौ-  
 नहीं ॥ ११६-११७ ॥ ब्राह्मणकी इस बातको सुनकर राजा हुआ और कहने लगा कि ! हे ब्राह्मण क्या तू नहीं जा-  
 नता है कि इस यमराजको सिद्ध भगवान ही दूर भगा देते हैं सिद्धोंके सिवाय अन्य किसीसे यह निवारण नहीं हो स-  
 कता इस बातको बाल गोपाल समी जानते हैं ॥ ११८ ॥ इस संसारमें कितने ही ऐसे जीव हैं जिनकी आयु बीचमें  
 ही छिड़ सकती है और कितने ही ऐसे हैं जिनकी आयु कमी बीचमें छिड़ती नहीं जो पूरी आयुको भोगकर ही म-  
 रते हैं परंतु जिसकी कमी मृत्यु नहीं हो सकती ऐसा यह यमराज उन सबका संहार कर डालता है परंतु वह स्वयं  
 कमी मृत्युके गोचर नहीं होता-सदा अमर ही बना रहता है ॥ ११९ ॥ यदि तू उस यमराजके साथ वैर करना चाहता  
 है तो तू घरमें रहकर ब्यर्थ ही जीर्ण मत हो शीघ्र ही शोकको छोटकर मोक्ष जानेकेलिये दीक्षा ग्रहण कर ॥ १२० ॥  
 राजाके इसप्रकार कहनेपर ब्राह्मण बोला कि-“हे देव ! क्या यह सब है कि यमराजके सिवाय और कोई बलवान नहीं  
 है तब तो हुस्से भय नहीं करना चाहिये परंतु आप जो यह बात कह रहे हैं सो वही यमराज आपके सव पुत्रोंको अपने  
 पास लेगया है इसलिये आपने जो मार्ग हुस्से बतलाया है उसी दीक्षाग्रहण करनेरूप मार्गसे आपको भी उस दुष्ट यम-  
 राजके साथ बड़ा मारी वैर करना चाहिये ।” ब्राह्मणके इसतरह कह चुकनेपर उसके वचनरूपी वज्रसे राजाके हृदयके  
 भी टुकड़े टुकड़े हो गये और वह क्षणभरकेलिये पाणरहितके समान चेष्टारहित ( मूर्छित ) होगया ॥ १२१-१२३ ॥ चं-  
 दन और उशीर मिले हुये जलसे, मित्रोंके वचनोंसे, छिड़काव और मिट्टीके लेप आदिसे फिर वह सचेत हुआ तथा सोचने  
 लगा-यह मायास्वरूप लक्ष्मी ब्यर्थ ही इतनी लंबी है अर्थात् यह असार है, काम भयानक है, यम नीच है, समागम  
 सब क्षणभंगुर है यह ऊपर अकल्याण करनेवाला, अपवित्र, क्षय होनेवाला और घिनावना है ॥ १२४-१२५ ॥ यह

वनं तथ्यौ वन । जानत् जिनेहमप्यापि मूढोत्रैवेति चिंतयन् ॥ १२६ ॥ भव्ये भगालेदेशोसिंहविक्रमराट्पुत्रः । विदर्भायाः सुते राज्यं नियोजयत्सौ भगीरथे ॥ १२७ ॥ राजते स तपोराज्ये दृढधर्मजिनातिके । तावदेव गृहे सतो न हेतुर्वावर्तयिष्यते ॥ १२८ ॥ सोपि गत्वा भवद्वार्तां मदीयातिमब्रुवधत् । अनाकपर्यामसां श्रुत्वा गाढं शोकाग्निदीपितः ॥ १२९ ॥ कृत्वा भगीरथे राज्यं तपोऽयातहमप्यतः । दृढान्वेषुं समायातः शोकाद्युष्मत्कुलद्विजः ॥ ३० ॥ इति देवः समभ्येत्य मायाभस्मावगुंठितान् । कुमारान् बोधया मास मायापि सुहृदा हिता ॥ १३१ ॥ तेषि तद्वचनात्प्रापन्तपस्ताज्जिनसश्रयात् । चरमागधरा युक्तं तदेवौचित्यवेदिना ॥ १३२ ॥ भगीरथोऽपि तान् गत्वा कृत्वा भक्त्या नमोभक्त्या । धर्ममाकर्ष्य जैनेन्द्रमादत्त श्रावकव्रत ॥ १३३ ॥ प्रकटीकृततन्मायो मणिकेतुश्च तान् मुनीन् । क्षेत्तय्यभिभुवौचैतान्स्मरादादीन् सुहृदरः १३४ ॥ कोपराधस्तवेद नस्तव्या प्रियमनुष्ठित । हितं चेति पंसन्नोक्तया ते यौवनं दंष्ट्रयुगले समानं है इसलिये ही लोग संसारकी इस मय दशाको जानते हुये वनमें जाकर तपश्चरण करते हैं, मैं मूर्ख हूँ जो आज भी इसीमें लुभा रहा हूँ ।" यही सब सोच विचार करते हुये उसने भगालिदेशके स्वामी राजा सिंहविक्रमको पुत्री विदर्भाके पुत्र भव्य भगीरथको राज्यदीपार विठायी ॥ १२६-१२७ ॥ तथा आप दृढधर्म नामके केशवली भगवानके समीप दीक्षा धारणकर तपश्चरणरूपी राज्यमं श्रुत्यांभित होने लगा सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुत्र्य धरमें तबतक ही रहते हैं जबतक कि वे विरक्त होनेके किसी हेतुको नहीं देखते । तदनंतर वह मणिकेतु देव उन पुत्रोंके पास आया और मायासे मूर्छित हुये उन्हें सचेत कर कहने लगा कि मैंने आपके समाचार महाराजसे कहे । महाराज इस कमी न सुनने योग्य बातको सुनकर शोकरूपी अग्निसे खुर ही जलने लगे । तदनंतर उन्होंने भगीरथका राज्यदेकर तपश्चरण धारण करलिया । मैं आपके कुलका ब्राह्मण हूँ इसलिये शोक करता हुआ आपको दूँदनेकेलिये यहां आया हूँ ॥ १२८-१३० ॥ इसप्रकार वह मणिकेतु देव वहांसे आकर उन राजपुत्रोंके पास आया और मायासे मूर्छित हुये उन सबको सचेत किया । इसलिये देखो छल कपट करना भी कभी कभी मित्रोंकेलिये हितकारी हो जाता है ॥ १३१ ॥ पिताकी दीक्षाके समाचार सुनकर चरमशरीरी उन राजकुमारोंने भी उन्हीं दृढधर्म केवलीके समीप जाकर नमस्कार किया और दीक्षा धारण की, सो ठीक ही है क्योंकि उचित बातको जाननेवालोंकेलिये ऐसा ही करना योग्य है ॥ १३२ ॥ भगीरथ भी उन सब मुनियोंके समीप गया, भक्तिपूर्वक नमस्कार किया, धर्मका स्वरूप सुना और त्रिनेन्द्रदेवका कहा हुआ भावकोंका प्रवर्तकीकार किया ॥ १३३ ॥ तदनंतर प्रियवर मणिकेतु देवने उन सगर आदि सब मुनियोंके समीप जाकर अपनी की

हृदा समस्तं च यत् ॥ १३५ ॥ सोऽपि सत्तु च सिद्धांशं देवो द्विप्रपाणमत् । परांशभाजनं प्राप्नो ज्यायसां पटितुये ॥ १३६ ॥ सर्वे  
 ते सुचिरं वृक्षा सत्तपो विधिष्व्, नृपाः । शुक्रभानेन समये समापन्त्यम पद ॥ १३७ ॥ निर्वाणगमनं धृत्वा निष्ठा निर्निष्णयानसः ।  
 वरदाय दत्तामश्राप्यतदभी भगीरथः ॥ १३८ ॥ कैलाशपर्वते रक्षिा निवसुसमष्टमुनेः । आराधय प्रतिभायोगार्थात्सर्ववर्तुनीतटे  
 ॥ १३९ ॥ सुन्द्रेणास्य दुःखान्निपत्यचमिभिर्जिन्ननाय । कन्धोस्तनवाः स्नान् गंगायाः समये सति ॥ १४० ॥ तदापभुतिं तीर्थं ग  
 यात्यभिन्नुभाता । वृत्तोऽहम् तपो गंगातटेऽग्रे निर्वृते गतः ॥ १४१ ॥ अश्वामुत्र च मित्रवत् हितकृत्कोर्पास्तं भुः परो गुह्याद् गु-  
 षतरं गुरोऽपि न सद्वाप्य वरयोच्यते । दुःखाभ्यान्त्यौप साधयत्तयाण्यः प्राणान् तत्र भृष्टो दृष्टातो मयि भृष्टोऽव कुलता तन्मित्रभीह-  
 दुरं प्राया प्रणट करदौ और सवसे भामा भोगी ॥ १३४ ॥ तत्र सवने उमसे कहा कि आई हममें तुम्हारा क्या अपराध  
 है तुमने तो यह हमारे लिये प्रिय और हितकर कार्य किया है” हमारा प्रमथ वचनोसे उन मुनियोंने उम देवको उ-  
 त्तममय धीरज दिलाया ॥ १३५ ॥ अथना कार्य सिद्ध हुआ जानकर वह देव भी संतुष्ट होकर अपने स्वर्गको चला गया  
 सो टीक हा है क्योंकि परोपकार करनेसे ही भाग्य बढ आदमी संतुष्ट हुआ करते है ॥ १३६ ॥ उन बुद्धिमान सब  
 मुनियोंने बहुत दिनतक विधिपूर्वक उन्नम तपश्चरण किया और फिर मन्मोदतिलकपर पहुंचकर नृपलक्ष्यानके द्वारा वे वही-  
 से मोक्ष पधारे ॥ १३७ ॥ उन सबके मोक्ष जातेके समयात् मुनिकार भगीरथके चिसमें भी बड़ा योग्य उत्पन्न हुआ, उसने  
 अपनी सब राज्य लक्ष्मी चरदणको दे बाली बंलास पर्वतपर आकर निवसुस महाभुक्तिके समीप दीया भाग्यकी और  
 गंगाके किनारे ही प्रतिभायोग प्राप्तकर विराजमान हुआ ॥ १३८-१३९ ॥ इदने आकर धीरमाणके जलसे इस भगी-  
 रथके दोनों अस्त्रकमलाका अभिषेक किया, उस अभिषेकके जलका प्रभाव गंगामें जा मिला तभीसे लेकर यह गंगा भी  
 इस संसारमें तीर्थस्वरूप प्रान्ती जाती है । भगीरथने गंगाके किनारे ही उत्कृष्ट तपश्चरण किया और वह वहीसे मुक्त हुआ  
 ॥ १४०-१४१ ॥ गीतमस्त्राभी कहने लगे कि भेषिक ! मित्रके समान इस लोक और परलोक दोनों जगह हितकर-  
 नेवाला और कोई नहीं है, न कोई मित्रके समान आई है, जो बात गुप्तसे गुप्त होती है जिसें माता पिताके सामने  
 भी नहीं कह सकते यह बात भी निजसे कही जाती है, मित्र अपने प्राणोंको न गिनकर भी कटितस कटित वस्तुको  
 भी छिद्र कालाता है मजिसेतु देव ही हमका प्रणट उदाहरण है हमलिये समारामें ऐसा ही सज्जन मित्र बनाना चा-  
 हिये ॥ १४२ ॥ ओ मुमुक्षुकी अनेक संताको जीवनेवाले अपसेन हुए थे जो अत्युत स्वर्गमें जाकर महाबल नाभके

निधं ॥ १४२ ॥ स जयति जयसेनो यो जितारतिसेनः भुत इति महादादियो बलः प्रातकल्पे । सगरसकलचक्री योजितो यश्च यश्च पहतचरमदेहो देहमात्रात्मदेहः ॥ १४३ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्रार्चार्थप्रणीते त्रिपटितलक्षणमहापुराणप्रह्मे अजिततीर्थकसगरचक्रधरपुराण परिसमाप्तिमित्याद्यत्राचारिज्ञातम पर्व ॥ ४८ ॥

देव हृषे ये तथा वहासे आकर जो सगर नामके चक्रवर्ती हुये थे जो चरम शरीरी थे और अंतमें जो शरीररहित हो कर देवल आत्मस्वरूप रह गये थे ऐसे वे ( सगर ) भगवान सदा जयशील हैं ॥ १४३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्रार्चार्थप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अजितनाथ तीर्थंकर और सगर चक्रवर्तीका पुराण पूर्ण करनेवाला यह अडतालीसवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

### अथ एकोनपंचाशत्तमं पर्व ॥ ४९ ॥

अथ क्रियात्स मे निभन्त सभगो दंभजृम्भणं । संपुत्थिनायते यस्य सद्बोधः सन्मुखेऽखिले ॥ १ ॥ द्वीपेऽस्मिन्नादिमे पूर्वविदेहे नन्दशुद्रकृते । कच्छास्थे विषये क्षेमपुरे विमलवाहनः ॥ २ ॥ नाम्ना नरपतिस्तस्य सद्यः केनापि हेतुना । सति त्रिभेदे निर्वेदे स मासन्निर्वृतिः ॥ ३ ॥ अंतुरतकदंतस्यो हंत ज्वितमीदृते । मोहाचनिर्गमोपायं न विंतयति धिक् तमः ॥ ४ ॥ आद्यः परमस

### अथ उनचासवां पर्व ।

अथानंतर-जितका सम्यग्ज्ञान ( केवल ज्ञान ) साम्हनेकी समस्त वस्तुओंकी साफ प्रगट करदेता है अर्थात् जिनके ज्ञानमें संसारके समस्त पदार्थ दिखलाई पड़ते हैं तथा जो सब तरहके पाखंडोंका नाश करनेवाले हैं ऐसे भगवान संभवनाथ मेरा कल्याण करें ॥ १ ॥ इसी पहिले जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीतानदीके उत्तर किनारे परवच्छा नामका देश है, उसके क्षेमपुर नामके नगरमें राजा विमलवाहन राज्य करता था । किसी कारणसे वह शीघ्र ही चिरक हुआ और विचार करने लगा कि इस संसारमें वैराग्यके तीन कारण उपस्थित हैं एक तो यह जीव यमगात्रके दांतोंके बीचमें रहकर भी मोहधर्मके उदयसे जीवित रहनेकी ही इच्छा करता है उससे निकलनेके उपाय नहीं सोचता इसलिये इस जंघारारो भी प्रकार हो ॥ २-४ ॥ दूसरे हम जीवकी आयु बहुत ही इने गिने समर्थोंकी है

स्याताः क्षणारते शरणीवृताः । प्रणिभिर्दितये नैमानर्धदंतप्रभयोः ॥ ५ ॥ अभिलाषातया तसाश्चक्षयां योग्यस्य सञ्चिताः । जी-  
 र्णकूलस्य वासोऽमृतादि क्षेमेषु पात्रयेत् ॥ ६ ॥ इत्यादि चितवत् राज्यं दत्त्वा विमलकीर्तिषु । स्वयंप्रभञ्जनस्मात्तेवासित्व प्रतिपन्नवान्  
 ॥ ७ ॥ एकदशागंधारी सन् ब्रूलोक्यक्षेमप्रकारण । भावनाभिर्निवृत्त्यात्यन्तमतीर्षकादय ॥ ८ ॥ सन्मासविधिना त्यक्तेहो ब्रवेयका-  
 दिभे । सुदशने विमानेऽभ्युदयमिदो महद्विक ॥ ९ ॥ त्रयोविंशतिवार्ध्यायुः स षष्ठ्यगुलमानमाह् । शरीरो लेख्यवा शुक्रः श्वस-  
 न्मक्षेनवस्तरे ॥ १० ॥ स्वध्यायिनिद्विधार्थे भोजनं मनसा स्मान् । निःप्रवीचारभोगोत्सवक्रातगतावधिः ॥ ११ ॥ स्वावाधिशेषसं-  
 चारसमर्भरतस्वप्रभ । प्राग्दोषतत्त्वतनुत्थाप्या स्वावाधिशेषपूरकः ॥ १२ ॥ अणिमादिगुणोपेत पञ्चगुण्योदयार्पित । ब्रह्मिन्द्रमुख श्री-  
 मानन्वभ्युदयरोधयः ॥ १३ ॥ द्विपेऽभिपन्नारते वर्षे श्रावस्तिनगरोशिनः । राज्ञः काश्यपयोग्यस्य दहराजस्य सद्युतः ॥ १४ ॥ बल्लभेन्द्रा-  
 यश्च जीव उत्तने ही समयोको अपवना श्राप्य मानता है परंतु बेही समय वासोच्छ्वास आदि प्राणोंके द्वारा इसकी हानि  
 करते रहते हैं और अंतमें इस जीवको यमराजके समीप पहुंचा देते हैं ॥ ५ ॥ तीसरे आश्वारूपी धूपसे दुखी हुये ये  
 जीव किसी विषयभोगरूपी नदीके दूरे पुराने किनारेपर खड़े हुये क्लेशवृक्षकी छायाका आश्रय लेते हैं परंतु वह उनका  
 निवास क्षेमकुशलपूर्वक उनकी रक्षा नहीं कर सकती ॥ ६ ॥ इत्यादि विचारकर विमलकीर्तिको अपना राज्य दिया और स्वयं-  
 प्रभञ्जितसे दीक्षा लेकर उनका छिप्य बन गया ॥ ७ ॥ ग्याह अंगोका जानकार होकर उसने मोलह कारण भावना  
 ओका चितवन किया और अंतमें तीनों लोकोंको क्षेम उत्पन्न करनेवाले तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया ॥ ८ ॥  
 अंतमें सम्राट्स्वर्णपूर्वक अपने शरीरका त्याग किया और पहिले ब्रवेयकके सुदर्शन नामके विमानमें बही आदिका  
 शरीर अहमिन्द्र हुआ ॥ ९ ॥ तैर्दस सागरकी उसकी आयु थी, साठ अंगुल उसका शरीर था, झुक लेइया थी, साइ  
 रयाह महीने बाद भास आता था ॥ १० ॥ तैर्दस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था, प्रवीचारहित भोग थे, सा-  
 तवें नरकतक अवधिज्ञान था ॥ ११ ॥ जितना अवधिज्ञानका क्षेत्र था उत्तनेही क्षेत्रमें गमन करनेकी शक्ति थी, उत्तनी  
 ही शरीरकी काति थी और उत्तने ही क्षेत्रमें फलनेवाली पहिले कहे हुये शरीरकी विक्रया थी ॥ १२ ॥ इसतरह  
 वह भीमान उत्तम अहमिन्द्र जो अभिमा महिमा आदि गुणोंसे सुशोभित थे और पुण्योदयसे प्राप्त हुये थे ऐसे अह-  
 मिन्द्रके सुखोंका अनुभव करता था ॥ १३ ॥

अथानंतर—इसी जंबूदीपके भारतक्षेत्रमें श्रावस्ती नगरका राजा दहराज्य था उसकी काति बही ही उत्तम थी और



कुबंजस्य सुषेणा तत्सुरागमे । षण्मासान् वसुधाराधिमाहारम्यपदवीं गता ॥ १५ ॥ शुक्लफाल्गुनजाग्रन्मा स्वप्नान् पीडय पंचमे । प्र-  
भातसमयेऽपश्यन्नक्षत्रे सुकृतोदयात् ॥ १६ ॥ ततोऽनु चंदनस्यातःस्वप्ने प्राविशदग्निमे । गिरिंद्रशिखराकारे वारणश्चारुलक्षणः ॥ १७ ॥  
सा तेषा फलमाकर्ष्य स्वपतेर्मुदभागता । नवमे मासि नक्षत्रे पंचमे सौम्ययांगमे ॥ १८ ॥ पौर्णमास्यामवापान्त्व्यमहर्भिद्र त्रिविद्युतं ।  
सज्जन्मेतस्यवक्ष्यन् प्राते संभव इत्यभूत् ॥ १९ ॥ संभवे तव लोकानां शः भवत्यव्य शंभव । विनापि परिपाकेन तीर्थकृन्नामकर्माण-  
॥ २० ॥ तवागम्ये प्रीणीति लक्षणव्यंजनोद्गमे । प्रलब्धाहुविट्पे सुरदग्भ्रमराश्चर ॥ २१ ॥ परतेजासि ते तेजो भाति देव तिशेद-  
धत् । मतानि कर्षिलार्दीनां स्याद्वादस्येव निर्मल ॥ २२ ॥ समस्ताह्लादकेनासीदामोदेनैव चंदनः । बोधेन सहजातेन त्रिविधेन जग-  
द्वितः ॥ २३ ॥ त्वा लोकः स्नेहसदृहो निर्हेतुहितकारण । प्रदीपवन्मनस्येप निधानमिव भास्वरः ॥ २४ ॥ इति स्तुत्वादिकल्पेशो  
वह इक्ष्वाकुवंश तथा काश्यप गोप्रभे उत्पन्न हुआ था उसकी रानीका नाम सुषेणा था । जब उस अहर्भिद्रकी आयु छह  
महान्तकी यह गई थी तभीसे उस राजाके घरमें रत्नोंकी वर्षा होने लगी थी और उसका माहात्म्य सब जगह फैल  
गया था ॥ १४-१५ ॥ फागुन सुदी अष्टमीके दिन मृगशिर नक्षत्रमे सबरेक समय पुण्यकर्मके उदयसे रानी सुषेणाने  
सोलह स्वप्न देखे ॥ १६ ॥ पहिले कहे हुये सोलह स्वप्न देखनेके बाद उसने अपने सुहर्मे सुंदर लक्ष्मणोंसे सुशोभित  
और मेरु पर्वतके झिखरके समान एक हाथी अपने सुहर्मे प्रवेश करते देखा ॥ १७ ॥ अपने पतिसे उन स्वप्नोंका  
फल सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई उसी दिन वह अहर्भिद्र अपनी आयु पूर्णकर उसके गर्भमें आयी । नवमे महीनेमें  
कार्तिक शुक्ल पौर्णमासीके दिन चंद्रमाके योगमें मृगशिर नक्षत्र रहनपर भगवानका जन्म हुआ और जन्म  
कल्याणके अंतमें इंद्राने स्तुतिकी कि हे सम्भवनाथ ! तीर्थकर नाम कर्मके उदयके विना ही केवल आपके जन्म लेनेसे ही  
जीवोंको सुख मिला है ॥ २० ॥ हे देव ! लक्षण और व्यंजनोस ( छोटे २ चिन्होंने ) प्रगट हुआ और लबीलंबी  
शुभारूपी शाय्याओंसे सुशोभित ऐसे आपके शरीररूपी कल्पवृक्षपर देवताओंकी दृष्टिरूपी अन्न बहुत देरतक दस  
रहते हैं ॥ २१ ॥ हे देव ! जिसप्रकार निर्मल स्याद्वाद वाणीका तेज कपिल आदिके मर्तोंका तिरस्कारकर सुशोभित  
होता है उसीप्रकार आपका तेज भी सबके तेजको तिरस्कार करता हुआ सुशोभित हो रहा है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार  
चंदन सबको प्रसन्न करनेवाली सुगंधसे सुशोभित होता है उसीप्रकार साथ साथ उत्पन्न हुये मलिनान भुतजान और  
अवधिज्ञानसे आप भी जगतका हित कर रहे हैं ॥ २३ ॥ हे नाथ ! आपके भ्रमसे बड़ा हुआ यह लोक दीपकके समान



विदितानंदनाटकः । पित्रोस्समर्पयित्वा मा स्सर्लोकमागच्छतुः ॥ २५ ॥ द्वितीयतीर्थसंताने समये सागरीपथैः । त्रिस्रच्छत्रसह-  
स्राकक्रोदिभिः प्रातमीयुधि ॥ २६ ॥ सप्रभारुणोऽभवत्तर्वाभी तदभ्यतरजीवितः । स पूर्वषष्ठिलक्षाद्युः चतुःशतधनुःप्रमः ॥ २७ ॥  
आयुषीते चतुर्भागे प्राप्तराज्यमहेतव्यः । सुखान्मन्त्रमवदेवैरुपनीतान्यनुक्षण ॥ २८ ॥ चत्वारिंशच्चतुर्लक्षा पूर्वाणा समर्तिक्रमे । चतुः  
पूर्वाण्युक्तानामप्रविभ्रमदर्शनात् ॥ २९ ॥ क्लृब्धबोधिः समुत्पन्नैवैराभ्यो जीवितादिक । स्वगत स्मृति स्मृति शभवः सप्रवातक ॥ ३० ॥  
आयुरवातकोत्स्र भ्रात्याक्तोऽन्योत्तक परं । जतवस्तदजानतो भ्रियते जनतशोतकात् ॥ ३१ ॥ अध्यास्य कायमेवायमतकेनाभिभूयते ।  
३० यो जतुरिद जाडयमव्रव वसतीति यत् ॥ ३२ ॥ विरसात्सरसाम्मत्वा विषयान् विषयनिमान् । सुकं रागरसाविद्धो भिष् विषो-  
नादिदिह्य ॥ ३३ ॥ आत्मोद्दिग्यायुरिष्टार्थसाक्षिधि रसुता सुख । स्वसन्निधिरिद स्थेयान किं न वेति न तर्क्यते ॥ ३४ ॥  
विना ही कारण हित करनेवाले और कर्तात्तिके खजाने ऐसे आपकी नमस्कार करता है इमप्रकार प्रथम स्वर्गके इंद्रने  
भगवानकी स्तुतिकी, आनंद नाटक क्रिया और भगवानकी माता पिताके समीप सोंपकर सब देवोंके साथ स्वर्गको  
चला गया ॥ २५ ॥ दूसरे तीर्थकारकी संतानके समयमें जब तीसंलाख करोड़ सागर वीत चुके थे तब संभवनाथ भग-  
वान उत्पन्न हुये थे, इनकी आयु साठ लाख पूर्वकी थी और शरीरकी उचाई चारसौ धनुष थी ॥ २६-२७ ॥ जब आयुका  
चौथाई भाग अथात् पंद्रहलाख पूर्व वीत गये थे तब उन्हें राज्यकी विभूति प्राप्त हुई थी चवालीस लाख पूर्व और चार  
पूर्वांग तक मन्त्रके क्षणमें देवोंके द्वारा प्राप्त हुये सुखोंका अनुभव किया था । तदनंतर बादलके नष्ट होनेको देखकर उन्हें  
आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ था उसीसमय वे विभक्त हुये थे और सृष्टिको नाश करनेवाले वे संभवनाथ अपने जीवन आदिको  
इसतरह रमण करने लगे थे ॥ २८-३० ॥ कि इस संसारी जीवके भीतर रहता हुआ आयु कर्म ही यमराज है अन्य मतवाले  
लोग भूलकर वि सी दूसरेको यमराज बतलाते हैं, ये संसारी जीव इस बातको नहीं जानते हुये ही अनंत ही बार उस यमराजसे  
भारे जाते हैं । यमराज इस शरीरमें रहकर इस शरीरका तिरस्कार करता है परंतु यह जीव इस संसारमें फिर भी इसी शरीरमें  
ही निवास करता है ॥ ३२ ॥ रागरूपी रसमें तल्लीन होकर यह जीव विषके समान नीरस विषयोंको भी सरस मानकर  
संवन करता है इसलिये अनादिकालसे चले आये इसकी बुद्धिके इस उपद्रवको भी बार बार धिक्कार दो ॥ ३३ ॥  
आत्मा इन्द्रिय आयु और इष्ट पदार्थोंका समाग्रम ही संसारमें सुख माना जाता है परंतु सदा रहनेवाला जो अपने

१-उनकी यह आयु तीस लाख करोड़ों ही काफी है अर्थात् अक्षितनाथ है तीस लाख करोड़ वर्षवाढ़ समवनाथ मोक्ष पथे थे ।

विदुष्टदुष्टविवलक्ष्मीर्नयं स्वेमानमुच्छति । व्युच्छिन्नेच्छः श्रियं स्यात् स्वच्छसद्बोधधीधितिं ॥ ३५ ॥ इत्याप्ततत्त्वसारं तं स्तुत्वा लौकांतिका गताः । दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय प्राप्तान्कमणोत्सवः ॥ ३६ ॥ सिद्धार्थशिविकामृदा देवैररुह्य निर्गतः । सहेतुकवने राज्ञा सहस्रेणाप संयम ॥ ३७ ॥ मनःपर्ययसंज्ञानः सार्वस्तिनगरं प्रति । भिक्षाहेतोर्द्वितीयेहि प्रार्थयत्कनकप्रभः ॥ ३८ ॥ नृपः सुरेन्द्र-  
दत्ताख्यः सुवर्णप्रभः प्रतीक्ष्य त । दत्त्वा दानं भुरद्रत्नमापदाश्रयर्पचक ॥ ३९ ॥ अथ सौमव्रतेनायं छद्मस्थोऽद्भेष्टु शुद्धधीः । द्विसप्तसु गते दीक्षान्वने शालतरोरधः ॥ ४० ॥ जन्मार्धे कार्तिके कृष्णचतुर्थ्यामपराह्णगः । षष्ठोपवासो हत्वाषान्पायानतचतुष्टय ॥ ४१ ॥ कल्पा-  
मरैः सम सर्वैस्त्रिवैज्योत्तिषादिभिः । व्याघातकैवल्यकल्याण तद्वैत्यामराधिपाः ॥ ४२ ॥ पचोत्तरशतोद्दिष्टैर्गणैः परिवारितः । चारुधेणा-  
आत्माका समागम है उसे जीव चर्यो नहीं जानता है चर्यो नहीं तर्क वितर्क करता है । भावार्थ-आत्माका समागम ही नित्य है और वही सुख है वाकी तो सब अनित्य और दुःख देनेवाला है यह लक्ष्मी विजलीकी कार्तिके समान चंचल है, यह कभी स्थिर नहीं रहती है जो जीव इसकी इच्छा छोड़ देता है वही सदा रहनेवाली स्वच्छ सम्यग्ज्ञानरूपी कार्तिकी प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वे भगवान् तर्कोंके यथार्थ स्वरूपका विचारकर ही रहे थे कि इतनेमें ही लौकांतिकदेव आये और भगवानकी स्तुति कर चले गये । भगवान् संभवनाथने अपने पुत्रको राज्य दिया, इत्यादि देवोंने आकर उनका दीक्षाकल्याणका उत्सव किया, तदनंतर वे सिद्धार्थ नामकी पालकीमें विराजमान हुये उस पालकीको देव लोग ले चले और इसतरह निकलकर भगवान् संभवनाथने हजार राजाओंके साथ साथ सहेतुक नामके वनमें संयम धारण किया ॥ ३६-३७ ॥ दूसरे ही दिन उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ और सुवर्णके समान कांतिवाले उन्होंने पारणाके दिन भिक्षा लेनेकेलिये श्रावस्तिनगरीमें प्रवेष्ट किया ॥ ३८ ॥ सुवर्णके समान कांतिकी धारण करनेवाले राजा सुरेन्द्रदत्तने देखते ही उन्हें पढ़गाहन किया और विधिपूर्वक दान दिया । उसीमय उमके घर जिसमें रत्न दैदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे पंचाश्रयोंकी वर्षा हुई ॥ ३९ ॥ तदनंतर शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवानने छद्मावरणार्थ ही सौम व्रत धारणकर तपश्चरण किया, इसतरह चौदह वर्ष वीत जानेपर कार्तिक वदि चतुर्थीके दिन मृगसिर नक्षत्रमें शामकेसमय उसी महेतुक वनमें शालमलि वृक्षके नीचे बेलाकी प्रतिज्ञाकर भगवान् विराजमान हुये, और उसी दिन उन्होंने ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय चारों घातिया कर्मोंका नाश किया ॥ ४०-४१ ॥ सब देवोंके इंद्र ऋक्षवासी भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क सब देवोंके साथ साथ उसीसमय आये और आकर ज्ञानकल्या-

निभिः सोमादिन्द्रो गिरिभिर्धमा ॥ ४३ ॥ शून्यपूजैकपक्षो कचारतृधराहतः । अन्यद्वयत्रिरद्व्येवैकाशेष फलश्रितः ॥ ४४ ॥ शून्यतृतीयपङ्कशमितवधिविलोचनः । शून्यत्रयोद्वैको केवलवागमान्वितः ॥ ४५ ॥ शून्यद्रयाष्टर्धैकज्ञातवैकिकयानुग । शून्यगवैकपक्षैकज्ञानतुर्यावबोधकः ॥ ४६ ॥ शून्यत्रितयपक्षैकमलयावादि विभूषितः । विडिताशेषादिभवासो लक्ष्यद्वयपरिष्कृतः ॥ ४७ ॥ सच्चतुष्कद्विवहृत्तु चर्नार्थाधार्यं मागणः । त्रिलक्षोपासकोपेतः श्राविकापचलक्षणः ॥ ४८ ॥ असंख्यदेवदेवैर्द्व्यस्त्रिर्गुप्तसंख्यातसंभुतः । एव द्वादशभेदोक्तधर्मशुद्धणनायकः ॥ ४९ ॥ चतुस्त्रिजदतीशेषमातिहार्याष्टकप्रभुः । दिव्यवाग्ज्योत्सलः । अकलमालाश्रयानमिताशुभान् ॥ ५० ॥ शुद्ध एव चरन्पक्षे मोक्षलक्ष्म्या सहोद्भूतः । निष्कलको निरातको निर्दूतरिः कुपक्षहृत् ॥ ५१ ॥ मुनितारागणकीर्णः कामदेवी महाम्पहृत् । सद्भूतः सर्वदापूर्णः सदाभ्यर्णशुचोदयः ॥ ५२ ॥ सदा त्रिभुवनोत्प्लवो भव्यपद्मावबोधनः । नित्यज्वलतो भयञ्चालो लोणका उत्सव क्रिया ॥ ५३ ॥ त्रिसप्तकार छोटे छोटे पर्वतोसे मेरु पर्वत सुशोभित होता है उसीप्रकार वे भगवान् भी भारो ओर बैठे हुये चारुषेण आदि एकसौ पांच गणधरोसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ५३ ॥ उनके दो हजार एकसौ पचास ग्यारह अंग चांदह पूर्वके जाननेवाले थे, एकलाख उन्तीस हजार तीनसौ त्रिंशक वा उपाध्याय थे ॥ ५४ ॥ नौ हजार छहसौ अर्धविज्ञानी थे, पंद्रह हजार केवली थे ॥ ५५ ॥ उनीस हजार आठसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, बारह हजार एकसौ पचास मनःपर्यवज्ञानी थे ॥ ५६ ॥ तथा सब प्रतिवादिर्गोको जीतनेवाले बारह हजार बादी थे इसतरह सब दो लाख मुनि थे उनसे वे भगवान् बैठे ही सुशोभित हो रहे थे ॥ ५७ ॥ तीनलाख बीस हजार धर्मार्था आदि अनेकार्थे थी, तीन लाख श्रावक थे और पांच लाख श्राविकार्ये थी ॥ ५८ ॥ इनके सिवाय देव देवी और तिर्यचोकी संख्या असंख्यात थी । हमतरह वे भगवान् ऊपर कहे हुये धर्मोत्तमा लोगोसे भी हुई बारह सभाओंके स्वामी थे ॥ ५९ ॥ चौतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्योके वे प्रभु थे तथा दिव्यच्वनिरूपी चांदनीसे सबको प्रसन्न करते थे और नमस्कार करनेवालोंको सर्वोके समान प्रफुल्लित करनेवाले थे ॥ ६० ॥ मोक्षलक्ष्मीके साथ उदय होकर वे सदा शुद्ध पक्षमें ही (शुक्लपक्षमें अथवा अपने शब्द आत्मार्थ) विहार करते थे, वे कलंकरहित थे, रोगादि दोषोसे रहित थे, सब शत्रु उन्हेंने नाश करदिये थे और कुपथ (अधेरी रात अथवा मिथ्यामत) को दूर करनेवाले थे ॥ ६१ ॥ मुनिरूपी तारागणोसे वे घिरे हुये थे, कामदेवके शत्रु थे, ज्ञानरूपी बड़े भारी प्रकाशको धारण करनेवाले थे, सद्भव अर्थात् गोल वा भस्मकचारित्र्यको धारण करनेवाले थे ध्रुवतारेके समीप ही सदा उदय होते थे अथवा उनका

कालाकौ प्रकाशयन् ॥ ५३ ॥ विधुं सोऽथो विधायैवं विहरन् धर्मवृष्टये । पर्जन्यवत्पतां चेष्टा विश्वलोकसुखप्रदा ॥ ५४ ॥ सम्भेदं प-  
र्वतं प्राप्य त्यक्तमासविहारकः । सहस्रमुनिशिशिभिः सार्द्धं प्रतिभयोगमागतः ॥ ५५ ॥ चैत्रे मासि सिते पक्षे षष्ठयामकेस्तसम्मुखे । स्व-  
कीयजन्मनक्षत्रे मोक्षलक्ष्मीं समायामत् ॥ ५६ ॥ पंचमावगमेयं त पचमीं गतिमास्थित । पंचमेऽप्यर्च्य कल्याणं संचितायै ययुः सुराः  
॥ ५७ ॥ अष्टौ शिष्टतमाति संयमगुणस्थानान्यतीत्य क्रमादष्टौ दुष्टतमानुपयानिपुणो निर्मेय्य कर्मद्विषः । अष्टाविष्टतमान् गुणानवि-  
कलान् वृत्त्वा तनुं शाश्वतीमष्टम्यामवर्तौ स्वं संभवविधुं शुभसुखः शोभते ॥ ५८ ॥ विपुलविमललक्ष्मीर्वीक्षितानंगलक्ष्मीरिह सुवि-  
विमलादिर्वाहिनो देहदीप्त्या । हतरविरहमिंद्रोरुदकल्याणलक्ष्मीप्रकटितपरिरंभः संभवः श क्रियाद्भः ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपाठिलक्षणमहापुराणसप्तमे सप्तवतीर्थकस्तुर ण परिसमाप्तमेकोनपञ्चाशत्तमं पर्व ॥ ४९ ॥

उदय सदा बना रहता था, तीनों ही लोक उनकी सेवा किया करता था, भव्य रूपी कमलोंको वे प्रफुल्लित करते थे,  
और लोकांतिक सबको प्रकाश करते हुये अंतरंग बाह्य दोनों तरहके अंधकारको मदा नष्ट करते रहते थे ॥ ५२-५३ ॥  
इसतरह चंद्रमाको भी नीचा दिखाकर धर्मकी वर्षा करनेकेलिये वे विहार करने लगे सो टीक ही है क्योंकि स-  
ज्जन लोगोंकी क्रियायें बादलके समान सब लोगोंको सुख देनेवाली होती हैं ॥ ५४ ॥ अंतमें जब आयुका एक स-  
हीना रह गया तब अपना विहार बंदकर सम्भेदशिवरपर जा विराजमान हुये और हजार सुनेयोंके साथ सहोदने  
प्रतिमायोग धारण किया ॥ ५५ ॥ चैत्र शुक्ल षष्ठीके दिन अपने जन्मके मृगशिर नक्षत्रमें सूर्य अस्त होनेके समय मोक्ष  
लक्ष्मीके साथ उनका समागम हुआ ॥ ५६ ॥ पांचवें केवलक्ष्मणके स्वामी और पांचवीं सिद्धगतिमें विराजमान ऐसे म-  
नवान संभवनाथके पांचवें पूज्य मोक्ष कल्याणमें सब देव मिलकर आये और पूजाकर चले गये ॥ ५७ ॥ उपार्योंके  
जाननेमें चतुर ऐसे भगवान संभवनाथने छोटेस लेकर चादहवें तक संयमके आठों उत्तम गुणस्थानोंको उलंघन किया  
तथा अनुक्रमसे आठों अत्यंत दुष्ट कर्मरूपी शत्रुओंको नाश किया, तदनंतर अत्यंत इष्ट ऐसे सम्यक्त्व अदि आठों पूर्ण  
गुणोंको शरीर बनाया, सदा रहनेवाली आठवीं पृथ्वीकी रक्षा करते हुये और सदा अनंत सुखोंका अनुभव करते हुये  
वे वहीं सुशोभित होने लगे ॥ ५८ ॥ जो निर्मल अनंत लक्ष्मीके द्वारा देखे गये थे, जिन्हें शरीररहित सिद्धलक्ष्मी  
प्राप्त हुई, जो अपने शरीरकी कातिस सूर्यकी कातिको भी जीतते थे, जो इस ससारमें पहिले विमलबाहन हुये थे  
फिर अहमिंद्र हुये थे और फिर जिन्हें बड़े भारी पांचों कल्याणोंकी लक्ष्मीकी भूति प्रगट हुई थी ऐसे वे संभवनाथ  
भगवान तुम लोगोंका सदा कल्याण करें ॥ ५९ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीनहिंदीभाषानुवाचमें संभवनाथका पुराण पूर्णकरनेवाला उनचासवां पर्व पूर्ण हुआ ४९

## अथ पंचाशत्तमं पर्व ।

अथ सत्ये वचः सत्य सद्गुरुर्नाक सत्यता । वंसासी पादु बंशरुज्ज्वलयमानिन्दनः ॥ १ ॥ जंबूफलश्रिते द्वीपे विदेहे प्राचि  
दक्षिणे । सीताया विषयो भागे व्यथसीन्मगलवती ॥ २ ॥ राजा महाबलस्तत्र नगरे रत्नसंचये । स्वाभिममस्तमेतोयूषातुर्वर्णाश्रमा-  
श्रयः ॥ ३ ॥ पाति तस्मिन् मही नासीद् इतिरन्याय इत्ययः । प्रवर्तते प्रजाः स्वेयु स्वेयु भोग्यवर्नालः ॥ ४ ॥ पाद्गुण्य तत्र नैर्गु-  
प्यमगाद्विगतवद्विधिः । निर्गुणोपि गुणंत्यागसत्यादिभिरसं गुणी ॥ ५ ॥ निःसफलः श्रियः सोऽभूत्यतिसत्त्वाः सरस्वती । कीर्तिं वीर-  
श्रियोमृदन् सपत्न्यः प्रीतचतसः ॥ ६ ॥ अन्यथाश्चोन्नयोः कीर्तितस्य बाचि सरस्वती । वीरक्ष्मीरसो वक्षस्तद्विमित्युपद्रवा ॥ ७ ॥  
कालाकरवल्लारयोः निम्नक्रयामरद्वयम् । फलति स्म सुप्ते तस्य यद्येतानभिवाञ्छितं ॥ ८ ॥ रम्यरामामुलाभोजसेवालोलशिषट्पदः ।

## अथ पचासत्तमं पर्व ।

अथानंतर पदार्थोका यथार्थं स्वल्प ज्ञात होनेसे ही जिनके वचनोंकी सत्यता प्रगट होती है और वे सत्य वचन ही  
जिनके यथार्थ वक्तृपनेकी सत्यताको प्रगट करते हैं ऐसे वे अभिनेदनस्यामी बदना करनेवाले लोगोंको आनंद देने हुये  
इम लोपोंकी रक्षा करें ॥ १ ॥ जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक मंगलावती नामका  
दंडा दोभासमान है ॥ २ ॥ वहांक रत्नसंचयनगरमें राजा महाबल राज्य करता था वह बहुतसी विभूतिका स्वामी था  
और चारों वर्णाश्रमोंका आश्रय था ॥ ३ ॥ उसके आसनकालमें अन्याय यह शब्द ही सुनाई नहीं पड़ता था, सब प्रजा  
विना किसी रुकावटक अपने अपने भागोंमें चर रही थी ॥ ४ ॥ शत्रुओंको नाश करनेवाले उम राजामें छह गुणोंका  
समूह भी निर्गुणताको प्राप्त होगया था और दमनरह निर्गुणी होकर भी वह दान सत्य आदि गुणोंसे गुणवान था ॥ ५ ॥  
वह समस्त लक्ष्मीका एक ही पति था यद्यपि सरस्वती कीर्ति और वीरलक्ष्मी ये सब उस लक्ष्मीकी सात थीं राजा उन  
सबपर प्रेम रखता था तो भी कीर्ति तो दूसरे लोगोंके वचन और कानोंमें रहती है, सरस्वती राजाके वचनोंमें रहती  
वीरलक्ष्मी उसके वक्षःस्थलपर रहती है और मैं इसके मर्माणमें रहती हूं यह सोचकर ही लक्ष्मी उममें संतुष्ट हो रहती थी ।  
॥ ६-७ ॥ उम राजाका दरीरुर्षा कल्पवृक्ष स्त्रीरूपी फललतासे दोभासमान था और वह जिन जिनकी इच्छा की जाती है ऐसे  
समस्त सुखरूप फलोंको फलता था ॥ ८ ॥ सुंदर २ अनेक शिष्योंके मुखरूपी कमलोंकी सेवा करनेमें जिसके नेत्ररूपी प्रभर वह

सुखेन सोऽन्यदीर्घं कालं कालकलाभिः ॥ ९ ॥ कदाचिज्जातवैराग्यः कामभोगोप्यतर्पणात् । सुनवे धनपालाय दत्त्वा राज्यं महामनाः ॥ १० ॥ अथात्म्यममासाद्य गुरुं विमलवाहनं । एकादशगार्थार्यो भवितव्यष्टाकारणः ॥ ११ ॥ तीर्थकृन्नाम सप्रापफलकल्याणपंचक । येन तीर्थकरोयं स्यात्किं नाप्स्यति मनस्विनः ॥ १२ ॥ आयुषोति स संन्यस्य विजयेऽनुत्तरादिभे । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रागुरहमिन्द्रत्वमाययो ॥ १३ ॥ तत्रोक्तदेहलेश्याविदगुण्योच्छ्वासादिसमुतः । पचशतसुखास्वादी भवति शान्तमानसः ॥ १४ ॥ भ्यान्वैराग्यसंपत्त्या तत्रास्थाद्वक्तितोऽहंत । कृत्स्नकर्मक्षय कर्तुं तस्मिन्त्रागमिष्यति ॥ १५ ॥ द्रोणिस्मिन् भारते वर्षे साकेतनगराधिपः । इक्ष्वाकुः काश्यपो वंशाखस्य सिते पक्षे षष्ठ्या भे सप्तमे शुभे । स्वनेक्षानतर दक्त्र विंशत वीक्ष्य सा गज ॥ १६ ॥ नृपात्पवन्नफलेस्तुष्टा दिष्ट्यास्तु त- ही चंचल है ऐसे उस राजाका लंबा समय मी कालके एक क्षणके समान सुखसे व्यतीत हो गया ॥ १५ ॥ किसी एक समय इच्छानुसार भोगोपभोग मिलनेपर मी संतोष न होनेसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और उस उदार राजाने अपने पुत्र धनपालकेलिये सब राज्य दे दिया ॥ १० ॥ विमलवाहन गुरुके समीप जाकर उसने दीक्षा धारण की वह ग्यारह अंगका पाठी हुआ और उसने सोलह कारण भावनाओंका चितवन किया ॥ ११ ॥ भावनाओंके चितवन करनेसे उसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हुआ जिसपर पाँचों कल्याणरूप फल लगेंगे और जिसके उदयसे यह तीर्थंकर होगा सो ठीकही है क्योंकि विद्वान लोगोंको क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ॥ १२ ॥ आयुके अंतमें उसने संन्यास धारण किया और शरीर छोड़कर विजय नामके पहिले अनुत्तम तेतीस सागरकी आयु पाकर अहमिंद्र हुआ ॥ १३ ॥ विजय नामके विमानमें जो शरीरकी ऊंचाई है जो लेख्या है जो अत्रिध्यानका क्षेत्र है जितने दिन पीछे श्राम लेना पड़ता है वह सब इसके था और वह शुद्ध सुवर्णके समान आत्मसुखका अनुभव करता था आयुके अंतमयमें उसका चित्त शान था, वैराग्यरूप संपत्तिका ध्यान करता था अरहंतदेवकी भक्ति करता हुआ वहीं विराजमान था और समस्त कर्मोंका नाश करनेकेलिये इप भरतक्षेत्रमें अवतार लेगा ॥ १४-१५ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अयोध्यानगरका स्वामी इक्ष्वाकुवज और कश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ अद्भुत विभूतिको धारण करनेवाला राजा स्वयंवर राज्य करता था और उसकी पट्ट- गानीका नाम सिद्धार्था था । जब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई थी तभीसे उस रानीके वगमें ग्नोंकी वर्षा होने लगी थी और इमतरह वह सती रानी बड़ी ही पूज्य मानी गई थी ॥ १६-१७ ॥ वैसाख शुक्ल षष्ठीके दिन

मुत्तमं । माघमास्यद्वितीये योगे ध्रुवलोद्भादगोचिने ॥ १९ ॥ तत्प्राभावाविशेषेण प्रकृतिनिजासनः । त्रैलोक्येशसमुद्भूतिमवधुच्यावधेः  
 सुधीः ॥ २० ॥ तं तदावाप्य देवेन्द्र स्वदेव्या दिव्यमानव । देवावृत्तो द्रुतद्रावी देवाद्री दिव्यविष्टरे ॥ २१ ॥ नालार्कसन्निभ वाल  
 जलैः क्षीरगगापते । स्नापयित्वा विभूष्याख्यां प्रत्याध्याग्याभिनन्दनं ॥ २२ ॥ बहुबाहु सहस्राक्षो बहुभावरसान्वित । विचित्र-  
 करणारब्धैरङ्गरैर्नर्मोग्णे ॥ २३ ॥ उद्यताभिनयप्रायं भक्त्यानृत्यत्सताडवं । गतो रागः परा कोटिं धीरोदाचांश्च नाटयन् ॥  
 २४ ॥ निवृत्त्यागत्य साकेतं निष्कृत्य कृतकार्भकं । पित्रोः पुरो निधायैतं सुरेखारामं पदं ॥ २५ ॥ संभवस्यातरे जाते दशलक्षाब्धि-  
 कोटिभिः ॥ तदभ्यतरवर्त्यायुरावभासे विदा त्रिभि ॥ २६ ॥ पंचाशलक्षपूर्वायुः सार्द्धत्रिशतचापम । बालेदुरिव सज्ज्योत्तन पुण्यौघो  
 हुनर्वसु नामके शुभ नक्षत्रमें रातके पिछिले पहरमें रानीने सोलह स्वप्न देखे और अंतमें एक हाथीको अपने मुखमें प्रे-  
 वेष्ट करते हुये देखा ॥ १८ ॥ सवेरे ही महाराजसे उन स्वर्णोंका फल पूछा । फल सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई । अपने पु-  
 ष्यकर्मके उदयसे उसने माघशुक्ल द्वादशीके दिन आदित्य योग और पुनर्वसु नक्षत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न किया ॥ १९ ॥  
 उस पुत्रके विशेष प्रभावसे इंद्रका आसन कंपायमान हुआ तब उस बुद्धिमानने अपने अवाधिज्ञानसे तीनों लोकोंके  
 स्वामी तीर्थंकरका जन्म होना जाना ॥ २० ॥ अपनी देवी और अनेक देवोंके साथ साथ वह इंद्र उसीसमय बहुत ही  
 स्त्रीघ आया और उदय होते हुये सूर्यके समान दिव्य मनुष्यरूप उन बालक भगवानको मेरुपर्वतपर लेजाकर दिव्य सिं-  
 हासनपर विराजमान किया । वहाँपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया, सबतरहके आभूषण पहनाये और  
 अभिनन्दन नाम रक्खा ॥ २१-२२ ॥ बड़ी भक्तिसे अनेक तरहके भाव और रस दिखलाते हुये तथा प्रायः अनेक उत्तम  
 अभिनय (खेल) दिखलाते हुये हजार नेत्र और अनेक भुजाओंको घाटन कर्नेवाले इंद्रने अनेक आध्यात्मिको उत्पन्न क-  
 रनेवाली अपने शरीरकी बनाई हुई मनोहरतासे आकाशरूपी आंगनमें तोंडव नृत्य किया । तथा घीर और उदात्त रसोंका  
 नृत्य करते हुये उसका प्रेम बड़ी ही ऊँची कोटिको पहुँच गया था ॥ २३-२४ ॥ तदनंतर वे सब देव लौटकर अयोध्या  
 आये, मायाभरणी पुत्रको हटाकर माता पिताके मामने भगवानको विराजमान किया और इंद्रादि देव सब अपने अपने  
 स्थानको चले गये ॥ २५ ॥ संभवनाथके बाद दशलाख करोड़ सागर वीत जानेपर अभिनन्दनस्वामी हुये थे, इनकी आयु  
 इसी समयमें क्षमिल है ॥ २६ ॥ पचास लाख पूर्वकी उनकी आयु थी और तीनसौ पचास धनुष ऊँचा क्षीर था,  
 उदय होते हुये चंद्रमाके समान उनकी कांति थी, वे पुण्यके समूह थे और सूर्यके समान दैदीप्यमान थे ॥ २७ ॥ अ-



का स्फुटद्रविः ॥ २७ ॥ स श्रीवृद्धिं च संप्रापस्त्वानाहृदयन् गुणैः । त्वीभौकरच्छवियति कौमारेः कामसारभौ ॥ २८ ॥ पूर्ववृद्धिः । शलक्षेषु सार्द्धेषु प्राप्तवान् स तत् । राज्यं नियोज्य सुखेति पितर्योसे तपोवन ॥ २९ ॥ इन्द्रः कामयते काति दीप्तिमिच्छत्यहर्षतिः । तस्य पुण्याणवः सर्वे फलति स प्रतिक्षणं वाच्छत्यैश्वर्यमस्येन्द्रः शममाशासते स्पृहा ॥ ३० ॥ निजोच्छ्रानुभागानामनंतगुणवृद्धितः । तस्य पुण्याणवः सर्वे फलति स प्रतिक्षणं वाच्छत्यैश्वर्यमस्येन्द्रः शममाशासते स्पृहा ॥ ३१ ॥ निजोच्छ्रानुभागानामनंतगुणवृद्धितः । तस्य पुण्याणवः सर्वे फलति स प्रतिक्षणं वाच्छत्यैश्वर्यमस्येन्द्रः शममाशासते स्पृहा ॥ ३२ ॥ नमिताखिलमूलमौलिरित्यत्र ॥ ३३ ॥ अभिभूयान्यतेजासि सर्वप्रकृतिरंजनात् । तारेशमशुमतं च जित्वाराजस्य तेजसा ॥ ३४ ॥ नमिताखिलमूलमौलिरित्यत्र ॥ ३५ ॥ पुण्यात्मा जन्मतोयं चेदामरेन्द्रार्चिन्तकमः ॥ ३६ ॥ नेया श्रीरागिणी सास्यामूदक्ता कोत्र विमयः । मोक्षलक्ष्म्या च चे-  
का स्तुतिः । पुण्यात्मा जन्मतोयं चेदामरेन्द्रार्चिन्तकमः ॥ ३७ ॥ नेया श्रीरागिणी सास्यामूदक्ता कोत्र विमयः । मोक्षलक्ष्म्या च चे-  
देश कटाक्षैर्गोचरीकृतः ॥ ३८ ॥ शुद्धश्रद्धानमक्षयमयस्तीर्थकराह्वयः । आत्मसपदित कान्या जगत्त्रितयज्यपिणः ॥ ३९ ॥ स धीरल-  
लितः पूर्व गज्ये धीरोद्धतो यमी । धीर प्रशतं पर्यते धीरोदात्तत्वधैर्यविवान् ॥ ४० ॥ अफलन् शक्त्यस्तिस्र सिद्धिं धर्मानुबन्धिनी ।  
पने गुणोंसे सबको प्रसन्न करते हुये वे भगवान शोभा वा लक्ष्मीकी बड़ी वृद्धिको प्राप्त होगये । सुवर्णके समान इ-  
नकी कांति थी, कामदेवके सारथिके समान कुमार अवस्थाके साड़े बारह लाख पूर्व जीत जाः पर 'तुम इस उत्तम रा-  
ज्यका उपभोग करो' इसतरह कहकर इन्हें राज्य सौंपकर इनके पिताने दीक्षा धारणकी थी ॥ २९ ॥ उससमय चंद्रमा  
इनकी कांतिको चाहता था, सूर्य इनकी दीप्तिको चाहता था, इंद्र इनके ऐश्वर्यको चाहता था और स्पृहा इनकी शां-  
तताको चाहती थी ॥ ३० ॥ अपने उत्कृष्ट अनुभागबंधकी अनंतगुणी वृद्धि होनेसे उनके सब ही पुण्यके परमाणु प्र-  
त्येक क्षणमें अपना फल देते थे ॥ ३१ ॥ उन्होंने अन्य मन्वके तेजको जीतकर तथा सब प्रकृतिको प्रसन्नकर सूर्य और  
चंद्रमाको भी जीत लिया था और इसतरह वे अपने ही तेजसे सुशोभित होते थे ॥ ३२ ॥ सब राजा लोग उनकेलिये अ-  
पना मस्तक नवाते थे इसमें तो उनकी कुछ स्तुति ही नहीं है क्योंकि जन्मसे ही ये ऐसे पुण्यवान थे कि इंद्र भी आ-  
कर उनके चरणकमलोंकी पूजा करता था ॥ ३३ ॥ जब मोक्ष लक्ष्मी ही इन्हें सदा कटाक्षपूर्वक देखती थी तब प्राप्त  
होने योग्य राजलक्ष्मी अलुगागिणी होकर इनमें आसक्ता हुई इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है ॥ ३४ ॥ उनके  
कमी न नाश होनेवाला शुद्ध सम्यग्दर्शन था, तीर्थंकर नामका पुण्य था और आत्मस्वरूप संपत्ति प्राप्त हुई थी, तीनों  
जगतको जीतनेकी इच्छा करनेवाले उनके इनके सिवाय और कौनसी संपत्ति रह गई थी ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ३५ ॥  
वे भगवान कुमार अवस्थामें धीर और मनोहर थे, राज्य अवस्थामें धीर और उद्धत थे, तपश्चरण अवस्थामें धीर और  
ज्ञांत थे तथा अंतिम अवस्थामें धीर होकर उदात्तताको प्राप्त हुये थे ॥ ३६ ॥ उनकी तीन शक्तियां थीं और उनपर व-



ता एव शक्त्यो या हि लोकद्वयहिनावहाः ॥ ३७ ॥ कीर्तौ श्रुति स्तुतौ तस्य गीतिर्वर्णश्रक्तिः । प्रीतिर्द्विष्टो जनस्यासीत्स्मृतिश्च  
 गुणगोचरा ॥ ३८ ॥ गुणः प्रागेव संपूर्णः, स सर्वराशिरागमिकः । न चेत् किं सेवितुं गर्भे निर्लिपा कं पितासना ॥ ३९ ॥ पुष्कल  
 प्राग्भावात् न बोधिव्रित्तयमुत्तमं । तस्य प्रज्ञागुणाः केऽन्ये वर्णनीयाः मनीषिभिः ॥ ४० ॥ न वाच्यः पृथगुत्साहो यद्ययं हंतुमीहते ।  
 मोदुशब्दु मशेषाय खल त्रैलोक्यकटकं ॥ ४१ ॥ उद्गमोऽपि प्रतापोऽन्यः माध्यादिनदिनाधिपं । नि प्रतापं करोत्यद्य तमन्यः सहते नु क  
 ॥ ४२ ॥ लिलभेऽपि योऽन्योन्यं वदन्तेऽस्याखिला गुणाः । समानं वर्द्धमानानां स्पृद्धां केन निषिध्यते ॥ ४३ ॥ एव ससारसारोऽविमर-  
 द्भोगभागिनः । प्राप्ते बोधदिनाधीशोऽद्गमोऽदयममृतः ॥ ४४ ॥ स्वचतुष्कैर्द्रियैर्त्वंगिनिमित्तपूर्वेषु निष्ठितं । राज्यकाले जगद्भर्तुर्गृहपूर्वा-  
 गशेषतः ॥ ४५ ॥ प्रादुर्भूतक्षणाप्राप्तविनश्यत्सौधविभ्रमे । गर्भवन्नगरे साध्याद्यते संजातबोधिकः ॥ ४६ ॥ अवश्यं भगुरा भोगा भ-  
 र्मको बढानेवालीं तीनों सिद्धियां रूप फल लगे थे सो ठीक ही है क्योंकि शक्ति उन्हींको कहते हैं जो दोनों लोकोंमें हित  
 करनेवालीं हों ॥ ३७ ॥ उनकी कीर्तिमें शास्त्र भरे पड़े थे, स्तुतिमें वर्ण और अक्षरोंसे लिखे हुए अनेक गीत थे, लोगोंकी  
 दृष्टिमें प्रेम भरा था और उनका स्मरण सदा गुणोंकी विवेचनाके समय होता था ॥ ३८ ॥ बड़ी उम्रमें आनेपर विचार  
 आदि जो गुण होते हैं वे सब पूर्ण रीतिसे पहिलेसे ही उनमें आचुके थे, यदि वे गुण पहिलेहीसे न आते तो इद्रोंके आसन ही  
 क्यों कंपायमान होते और वे क्यों गर्भमें ही उनकी सेवा करनेकेलिये आते ? ॥ ३९ ॥ पहिले भर्त्रोंमें माथ साथ आये  
 इये उत्तम रत्नत्रय उनमें बहुतायतसे थे तथा उनके अन्य गुणोंकी तो बात ही क्या है उनकी बुद्धिका वर्णन भी बड़े  
 बड़े विद्वान लोग करते थे ॥ ४० ॥ उनके उत्साहका वर्णन तो अलग करना ही नहीं चाहिये क्योंकि वे तीनों लो-  
 कोंको बटिके समान दुखदेनेवाले, दुष्ट मोहरूपी शत्रुको शेष पापोंके साथ साथ मारना ही चाहते थे ॥ ४१ ॥ उनका  
 प्रताप तो जन्म लेनेपर ही ऐसा था कि दोपहरके सूर्यके प्रतापको भी मंद करदेता था फिर भला अन्य कौन उनके  
 प्रतापको सह सकता था ॥ ४२ ॥ उनके सब गुण परस्पर एक दूसरेको उल्लंघन करनेकी इच्छासे ही बढ रहे थे सो  
 ठीक ही है क्योंकि जिनकी एकसी बुद्धि हो रही है उनकी स्पृद्धाको भला कान रोक सकता है ॥ ४३ ॥ इतनाही स-  
 भीप ही ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेकेलिये उदयाचल पर्वतके समान उन भगवानने संसारके सारभूत और बड़े बड़े  
 भोगोंका उभोग किया ॥ ४४ ॥ तथा साहे छसीम लाख पूर्व और आठ पूर्वोर्गतक राज्य किया ॥ ४५ ॥ इतना य-  
 मय वीरजानेपर एक दिन वे राज महलकी छतपर विराजमान थे और आकाशकी शोभा देख रहे थे उसीसमय उन्होंने

जयन्त्यत्र मा स्थितं । न वातयति किं स्वस्थं भृगुरो विटपः स्फुटं ॥ ४७ ॥ तनुमैर्योऽसतैः सर्वैः स्त्रीकृतापि त्यजेद् ध्रुवं । प्रायः प-  
 ण्यागनेवेति विरक्तः स तनावभूत् ॥ ४८ ॥ सत्यायुषि द्युतिस्तस्मिन्नसत्यत्वास्ति सापि न । विभेति चेन्मृतेस्तेन भेतव्यं पूर्वमायुषः  
 ॥ ४९ ॥ गंधर्वनगरेणैव संवादः सर्वसंपदा । विधाय्यभ्रविलायित्वविधेरपधियामपि ॥ ५० ॥ इत्यपश्यत्तद्वैनमानचुरमरद्विजाः ।  
 सुरैः संप्राप्तनिष्क्रांतिकल्याणः शर्मितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥ हस्तचित्राख्ययानाधिरूढोद्योधानमागतः । माघे सिते स्वगर्भेक्षे द्वादश्यामपगह्णगाः  
 ॥ ५२ ॥ दीक्षां षष्ठोपवासेन जैर्नी जग्राह राजभिः । सहस्रसत्त्वैर्विख्यातैस्तदाप्तज्ञानतुर्यकः ॥ ५३ ॥ द्वितीयेऽहनि साक्रेतं बुभुक्षुः प्रा-  
 विशन् नृपः । त प्रवीक्ष्येन्द्रदत्तोऽन्नं दत्त्वापाश्चर्यपचक्रं ॥ ५४ ॥ अथ मौनव्रतेनेते छात्राथ्येष्टादशाऽब्दके । दीक्षावनेसनक्ष्माजमूले षष्ठोप-  
 एक बादलोंका बना हुआ नगर देखा परंतु वह नगर उनके देखते ही देखते नष्ट हो गया उसीसमय उन्हें आत्मज्ञान  
 प्रगट हुआ और वे विचार करने लगे कि ये भोग अवश्य ही नष्ट होनेवाले हैं इस संसारमें रहते हुये मुझे अवश्य ही  
 ये नष्ट कर देंगे जो वृक्ष उखड़कर गिरनेवाला है वह अपनी शाखा आदिपर बैठे हुये मनुष्यको अथवा उसपर रखी  
 हुई किसी चीजको अवश्य ही गिरा देगा ॥ ४६-४७ ॥ यद्यपि यह शरीर सब तरहके दृष्ट पदार्थोंसे बढ़ाया गया है  
 तथापि वेश्याके समान यह मुझे अवश्य ही छोड़ देगा यही समझकर वे इस शरीरसे विरक्त हुये थे ॥ ४८ ॥ उस  
 समय वे यह भी विचार करने लगे कि इस शरीरमें आयुके रहने से ही मरण हो सकता है यदि आयु न हो तो मरण  
 भी नहीं हो सकता, इसलिये जो मरनेसे डरते हैं उन्हें सबसे पहिले आयुसे डरना चाहिये ॥ ४९ ॥ इस संसारकी  
 संपदाएं इस बादलोंके बने हुए नगरके ही समान हैं जिसतरह यह बादलोंका नगर देखते देखते नष्ट हो गया है  
 उसीतरह सब नाशमान् हैं मृख लोग भी इस बातको बहुत अच्छीतरह समझ सकते हैं ॥ ५० ॥ उसीसमय लौका-  
 तिक देवोंने आकर उनकी पूजाकी और सब देवोंने मिलकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया । इसप्रकार जि-  
 नकी सब इन्द्रियां शान्त हो गई हैं ऐसे वे अभिनंदन स्वामी हस्तचित्रा नामकी पालकीपर सवार होकर माघ शुक्ला  
 द्वादशीके दिन गर्भके नक्षत्रमें अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्रमें शामके समय उग्रोद्यान नामके वनमें आये ॥ ५१-५२ ॥ वहाँपर  
 प्रसिद्ध प्रसिद्ध हजार राजाओंके साथ साथ श्रीजैवेधरी दीक्षा धारणकी और बेला करनेका नियम लिया उसी  
 समय उनके चौथा मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥ पाण्डाके दिन भिक्षाकी इच्छासे उन्होंने अयोध्या नगरमें  
 प्रवेश किया उन्हें देखकर महाराज इंद्रदत्तने उनका पङ्गाहन किया, निरंतराय पारणा समाप्त हुई इसलिये राजा

वासिनः ॥ ५५ ॥ सिते पौषे चतुर्दश्यां सायहो मेऽयं सप्तमे । केवलवर्गमो जज्ञे विश्वामरसमर्चितः ॥ ५६ ॥ त्रिस्वकोक्तगणाधीशैर्वज्र-  
नाभ्यादिनामभिः । खट्वयैर्द्विपक्षौक्तित्यक्तगैः पूर्वधारिभिः ॥ ५७ ॥ साश्चक्षुद्वयवह्निद्विप्रमालक्षितशिक्षैः । स्वद्वयाष्टनवज्ञैः प्रा-  
क्षैस्त्रिज्ञानलोचनैः ॥ ५८ ॥ स्वत्रयैस्त्रैकसंख्यानैः । केवलज्ञानमानिभिः । शून्यत्रितयैर्धैकमितवैक्रियकर्षभिः ॥ ५९ ॥ शून्यपंचतुरैरुक्तमनः-  
पर्ययबोधनैः । एकादशसहस्रोद्यद्वादभिः । वदितक्रमः ॥ ६० ॥ लक्षत्रितयसंनिहितशेषयतिनायकः । स्वद्वयतुल्यवन्द्याग्निसंख्याभि-  
रभितो युतः ॥ ६१ ॥ मेरुणयार्थिकाद्याटयार्थिकाभिजगदधीश्वरः । लक्षत्रयोदितोपासकाभ्यर्चितपदद्वयः ॥ ६२ ॥ लक्षपंचप्रमाणोक्तश्राविका-  
लोकसंयुतः । असंख्यदेवदेवीद्व्यस्तैर्यक्पुण्यात्सेवितः ॥ ६३ ॥ इति द्वादशनिर्दिष्टशिष्टमव्यगणाप्रणीः । धर्मगृष्टिं किरत्तं हूं विहृ-  
त्यार्यावनीतल ॥ ६४ ॥ यहच्छ्रयाप्य सम्भेद स्थित्वा मांसं विना ध्वनेः । तात्कालिकक्रियायुक्तो ध्यानद्वयमयोऽमलः ॥ ६५ ॥ सु-  
हृद्रक्षकैः घर पंचाश्वर्योकी वर्षा हुई ॥ ५४ ॥ तदनंतर मौनव्रत धारणकर अठारह वर्षतक उन्होंने तपश्चरण किया । अठारह वर्ष वीतजानेपर वेला धारण कर वेकालिबृक्षके नीचे विराजमान थे उसी दिन अर्थात् पौष शुक्ला चतुर्दशीके दिन ॥ ५५-५६ ॥ उनके समोसरणमें वज्रनामिको आदि लेकर एकसौ तीन गणधर थे, अपने शरीरसे ममत्त्व छोड़नेवाले और ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जाननेवाले दो हजार पंचसौ मुनिराज थे ॥ ५७ ॥ दोलाख तीस हजार पचास शिक्षक मुनि थे तथा नौ हजार आठसौ अबधिज्ञानी विद्वान् मुनि थे ॥ ५८ ॥ सोलह हजार केवलज्ञानी थे और उनईस हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे ॥ ५९ ॥ ग्यारह हजार छःसौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे और ग्यारह हजार वाद मतिवाद करनेवाले उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे ॥ ६० ॥ इसतरह सब मुनियोंकी संख्या तीन लाख थी इनके सिवाय मेरुणाको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार छहसौ अर्जिकार्ये थीं और तीन लाख श्रावक उन तीनों लोकोंके स्वामी अभिनंदनके चरण कमलोंकी पूजा करते थे ॥ ६१-६२ ॥ इसीतरह पांच लाख श्राविकार्ये थीं तथा असंख्यात देवी देवी और संख्यात तिर्यंच ( पशु पक्षी ) उनकी सेवा करते थे ॥ ६३ ॥ इसतरह ऊपर कहे हुये शिष्ट और मध्य जीवोंकी बारह सभाओंके नायक ऐसे उन भगवानने धर्मकी वर्षा करते हुये इस आर्यवर्तकी पृथ्वीपर दूर तक विहार किया ॥ ६४ ॥ विहार करते हुये अनायास ही सम्भेद शिषपर आ विराजमान हुये, वहांपर उन्होंने एक महीनेका प्रतिभायोग धारण किया, उसमय उनकी दिव्यध्वनि बंद होगई थी, वे उससमयकी क्रियाओंमें

निर्भिर्बहुभिः प्राहे प्रतिमायोगवानगात् । भेसिते ससभे षष्ठ्या वैशालेऽद्यातरं पद ॥ ६६ ॥ तदा भक्त्या नताष्टागाः सुरेंद्राः कृतपू-  
जनाः । नुत्वा तमगमस्माकं त्रैलोक्येशं यथायथ ॥ ६७ ॥ येनात्मानिमिषेधरयमयी श्रीः पचकल्याणजां यस्यानतचतुष्टयोज्ज्वलतरा श्री-  
रक्षया क्षायिकी । यो रूपेण विनापि निर्मलगुणः सिद्धिश्रियालिंगितः स त्रिश्रीराभिनदनो जिनपतिर्जीयादनस्तोदयः ॥ ६८ ॥ यो र-  
त्नसचयपुरेशमहाबालरूपो योऽनुत्तरेषु विजयी विजयेहर्मिन्द्रः । यश्चाभिनन्दनद्वयो वृषभेशवशो सार्कतपतनपतिः स जिनोऽवताद् ॥ ६९ ॥  
उभयनयभेदाभ्या विश्व विभज्य विभावयन्, स्वभावविभवप्रष्टव्यं भक्त्या द्युभूमिभिरभिश्रुतः । त्रिभुवनविभुर्भूयो भव्या भवाद्भवतां भवद्  
भयमभिभवन् भूत्यै भूयादभीराभिनन्दनः ॥ ७० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसप्रष्टे पुराणसिद्धं समाप्तमभिनन्दनस्वामिन पंचाशत्तम पर्व ॥ ५० ॥

लिप्त थे और अंतके दोनों निर्मल ध्यान उनके थे ॥ ६५ ॥ वैशाल शुक्ला पट्टीके दिन सातवें पुनर्वसु नक्षत्रमें म-  
वेरेके समय प्रतिमा योगमें ही वे अनेक मुनियोंके साथ मोक्ष स्थान जा विराजमान हुये थे ॥ ६६ ॥ उसी  
ममय भक्तिपूर्वक आठों अंगोंसे नमस्कार करते हुये इंद्रोंने आकर तीनों लोकोंके स्वामी ऐसे उन भगवानकी पूजन  
की नमस्कार किया और फिर वे यथायोग्य अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ६७ ॥ जिन्हें इंद्रोंके द्वारा पांचों क-  
ल्याणोंमें प्राप्त हुई रत्नोंकी धारारूपी लक्ष्मी प्राप्त हुई थी तथा जिन्हें कभी नाश न होनेवाली और कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न  
हुई अनंत चतुष्टयरूप अत्यंत निर्मल लक्ष्मी प्राप्त हुई थी और रूपके विना भी निर्मल गुणोंको धारण करनेवाले जिन्हें  
मोक्षरूपी लक्ष्मीने आलिंगन किया था ऐस कभी अस्त न होकर उदय होनेवाले और ऊपर कही हुई तीनों तरहकी  
लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान अभिनंदन जिन्हें देव सदा जयशील रहें ॥ ६८ ॥ जो पहिले भवमें रत्नसंचयपुर  
नगरमें महाबल नामके राजा थे, तदनंतर जो अनुत्तरेमें विजय नामक विमानमें विजयी अहभिद्र हुये थे और फिर  
जो श्री वृषभदेवके इक्ष्वाकुवंशमें अयोध्या नगरके स्वामी राजा अभिनंदन हुये ऐसे ये अभिनंदन जिन्हें देव तुम लोगोंकी  
सदा रक्षा करते रहें ॥ ६९ ॥ जिन्होंने निश्चय और व्यवहार दोनों नयोंसे समस्त संसारका विभागकर विचार किया था,  
इंद्र लोग अपने भवकी विभूतिको ( भवपरंपराको ) नाश करनेकेलिये भक्तिपूर्वक जिनकी स्तुति करते हैं, जो तीनों  
लोकोंके स्वामी हैं भव्योंकी जन्ममरणरूप संसार परंपराको नाश करनेवाले हैं और जो भयका तिरस्कारकर सर्वथा  
निर्भय हो गये हैं ऐसे श्री अभिनंदनस्वामी हम लोगोंका विभूति देनेवाले हों ॥ ७० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणक नवीनहिंदीभाषानुवादमें संभवनाथका पुराण पूर्णकरनेवाला उनचासवा पर्व पूर्ण हुआ ५०

## अथ एकपंचाशत्तमं पर्व ।

लक्ष्मीरनन्तरं तेषां येषां तस्य मते मतिः । देयादादेयवाक् सद्भिः सोऽसाध्यं सुमतिमिति ॥ १ ॥ अखंडे धातकीखडे मंदरे प्राचि-  
पूर्वो । विदेहे नङ्गुदवङ्गले सुराष्ट पुष्कलावती ॥ २ ॥ पुरेऽस्मिन्दुरीकिण्या रतिषणो महीपतिः । प्राग्जम्भोगार्जितोदीर्णपुण्यकण्या-  
त्मसाकृतं ॥ ३ ॥ राज्यं विनिर्जितारातिनिःकोपं नित्यवृद्धिं । स्वामिसपत्नमेतः सत्रीत्या निर्व्यसनन्वभूत् ॥ ४ ॥ यो स्वस्यैवाम्य  
सा विद्या चतुर्थी न प्रयोगिणी । यदेकस्यापि देडेपु वर्तते न पथि प्रजाः ॥ ५ ॥ रक्तस्य मनसा वृत्तिः काम करणगोचरे । भवे-  
ष्टाशेषार्थसपत्नेः कामस्तस्य न दुर्लभः ॥ ६ ॥ अर्थे चतुष्टयी वृत्तिर्जनादि यथागम । देवोऽर्हन्वर्धमौ च तदनीपल्लभौ मैत्रौ ॥ ७ ॥

## अथ इक्यावनवां पर्व ।

अथानंतरं जो लोग एक सुमतिनाथकी बुद्धिको ही बुद्धि मानते हैं अर्थात् उन्हींके ज्ञान वा वचनोंको प्रमाण मानते हैं उनके कमी न नाश होनवाली लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है । इसके सिवाय सज्जन लोग जिनके वचनोंको सदा ग्राह्य समझते हैं ऐसे सुमतिनाथ भगवान हम लोगोंको सबुद्धि दें ॥ १ ॥ अखंड धातकी खंड नामके द्वीपमें मंदाचल पर्वतकी पूर्व दिशाकी ओरके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीतानदीके उत्तर किनारेपर पुष्कलावती नामक देश है, इसके पुडरी-  
किणी नगरमें रतिषेण नामका राजा राज्य करता था, उसने पूर्व जन्ममें जो बड़ा भारी पुण्य उपाजैन किया था उससे उसे बहुत बड़ा राज्य मिला था । वह राज्य सदा बढ़ता जाता था और उस राज्यके करते समय सब शत्रुओंके जीत लेनेसे उसे कमी क्रीच नहीं हुआ था । इसतरह ऐश्वर्य और संपत्ति करके सहित और सब तरहके व्यसनोसे रहित वह राजा उत्तम नीतिपूर्वक उस राज्यका अनुभव करता था ॥ २-४ ॥ जो राजा रतिषेणकी राजविद्या थी वह उसी में थी ऐसी विद्या किसी दूसरेमें नहीं थी उन आन्वर्षकी त्रयी वार्ता और दंड चारों विद्याओंमेंसे चौथी दंड विद्या का कमी प्रयोग नहीं किया जाता था क्योंकि प्रजा बघ आदि अनेक दंडोंमेंसे किसी एक दंडके मार्गमें मी नहीं जाती थी ॥ ५ ॥ इन्द्रियोंके सब विषय उपस्थित रहनेपर अनुरक्त पुरुषका मन तुम हो जाना ही काम कहलाता है । वह काम अपने समस्त इष्ट पदार्थोंकी संपत्ति रहनेसे राजा रतिषेणको कुछ मी दुर्लभ नहीं था ॥ ६ ॥ वह राजा अर्जन (कमाना) रथेण (रक्षा करना) वर्देन (वढ़ाना) और ध्यय (खर्च करना) इन चारों उपायोंसे धन संचय

गच्छेयं चिरं काले हे लया पालिस्थितेः । परम्परानुसृत्येन वर्गव्रितयवर्द्धिनः ॥ ८ ॥ जंतोः किं कुशलं कस्मात्सुखमेषो धितिष्ठति । पर्यायावर्तदुर्जन्मदुर्मृत्युगद्गुगः ॥ ९ ॥ न तावदर्धकामाभ्यां सुखं संसारवर्द्धनात् । नामुष्मादपि भेधमात् यस्मात्सावयमभवं ॥ १० ॥ निःसावद्योस्ति धर्मोन्यस्ततः सुखमनुत्तमं । इत्युदर्को वितर्कोऽस्य विरक्ताया भवत्ततः ॥ ११ ॥ राज्यस्य दुर्भारं भारं निवेद्यातिरथे बुजि । निःसावद्योस्ति धर्मोन्यस्ततः सुखमनुत्तमं । जिनाहंबदनाभ्यामे विदितकादशागकः । उद्यसीनः स्वदेहेऽपि मोहारातिजयेच्छया सुभारं तपसो भारं वभारं स भवात्कृत् ॥ १२ ॥ जिनाहंबदनाभ्यामे विदितकादशागकः । उद्यसीनः स्वदेहेऽपि मोहारातिजयेच्छया सुभारं तपसो भारं वभारं स भवात्कृत् ॥ १३ ॥ यतोभीष्टार्थसंसिद्धिस्तच्छरति सुमेधसः । श्रद्धानिविनयाद्युक्तकारणोपात्ततीर्थकृत् ॥ १४ ॥ प्राप्ते सन्यस्य बद्धायुस्त्वष्टमं करता था तथा शस्त्रानुसारं अरहंत ही देव हैं इसप्रकार श्रद्धानकर धर्मका सेवन करता था इसतरह अर्थ और धर्म-का भी वह कामसे अधिक सेवन करता था ॥ ७ ॥ इसतरह लीलापूर्वक पृथ्वीका पालन करनेवाले और परस्पर एक दूसरेकी अनुकूलताके साथ धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करनेवाले उस राजाका बहुतसा समय व्यतीत हो गया था ॥ ८ ॥ किसी एक दिन अकस्मात् वह विचारकरने लगा कि इस संसारमें जीवको कल्याण करनेवाला क्या है ? और जो पर्यायरूपी भंवरोमें पड़े हुये दुर्मरण तथा दुर्जन्म अर्थात् दुर्गति देनेवाले जन्म मरणरूपी सर्पोंसे ब-हुत दूर रहनेवाला सुख इस संसारमें किससे मिल सकता है ॥ ९ ॥ अर्थ और काम अर्थात् धन और इच्छाओंकी पूर्तिसे तो कुछ सुख मिल ही नहीं सकता क्योंकि इन दोनोंसे संसारका परिभ्रमण बढ़ता है तथा में जो यह गृहस्थ पनेमें रहकर धर्म सेवन करता हूं इससे भी वास्तविक सुख नहीं मिल सकता क्योंकि इससे भी कुछ न कुछ पापरूप क्रियायें होती ही हैं ॥ १० ॥ इसलिये जिसमें पापोंका अंश बिस्कुल नहीं है ऐसा धर्म कोई दूसरा ही है और उसीसे सबसे उत्तम सुख मिल सकता है । इसतरह विरक्त होनेवाले उसराजाके आगेके समयमें उत्तम फल देनेवाला विचार उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ संसारको नाश करनेवाले उस राजाने कठिनतासे धारण करनेयोग्य राज्यका भार तो अपने पुत्र अतिरथको सौंप दिया और सुलभतासे धारण करने योग्य ऐसा तपश्चरणका भार स्वयं धारण किया ॥ १२ ॥ भगवान् अहंबदनेके समीप उसने दीक्षा धारणकी, ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और मोहरूपी शत्रुको जीतनेकी इच्छासे अपने शरीरसेमी समत्व छोड़ दिया ॥ १३ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे बुद्धिमान् पुरुष उसी कामको करते हैं जिससे उन्हें अभीष्ट पदार्थकी सिद्धि होती है । उसने दर्शनविशुद्धि विनयसंपन्नता आदि तीर्थंकर प्रकृति-की सोलह कारण भावनाओंका चिंतन किया अंतमें सन्यास धारणकर उत्कृष्ट अहंभित्तकी आयुका बंध किया और

हर्मिद्रतां । वैजयंते तु संप्रापेकारलिङ्गीरकः ॥ १५ ॥ मायैः षोडशभिः पञ्चजामिथ दिनैः श्वसन् । त्रयस्त्रयस्तहस्रब्दैर्येषो मानस-  
माहरत् ॥ १६ ॥ शुक्लेऽस्य स्वतेजोवशीतविष्णुनालिक । तत्क्षेत्रविक्रियद्वाशस्तदुद्धारिवलान्वितः ॥ १७ ॥ आहर्मिद्रं सुखं मुख्य-  
मग्निमाजवञ्चये । निर्द्वन्द्वं नि प्रवीचर चिर नीरागमागमत् ॥ १८ ॥ आयुरते समधानाजस्रित्रागामेभ्यति । द्वापेऽस्मन्मरते वर्षे साक्रेते  
वृषभान्वये ॥ १९ ॥ तद्गोत्रे क्षत्रियोऽन्तारि श्लघ्यो मन्त्रथोऽभवत् । मंगलास्य महादेवी वसुधारादिपूजिता ॥ २० ॥ मथायां श्रावणे  
मासि दृष्ट्वा स्वप्नान् गजादिकान् । आस्य भित्तिद्वितीयायामेक्षिष्टागमुकं द्विप ॥ २१ ॥ तत्कलान्यवनु-यास्यपते संप्राप्य संमद । नवमे  
मासि चित्राया सज्ज्योत्तैकादशीदिने ॥ २२ ॥ त्रिज्ञानधारिण दिव्य पितृयोगे सता पति । जगत्त्रयस्य भर्तारमहर्मिद्रमलब्ध सा ॥ २३ ॥  
वैजयंत विमानमें एक अरबिका शरीर पाकर अहर्मिद्र हुआ ॥ १५ ॥ बर्षापर वह सोलह महीने और पंद्रह दिनकेबाद  
भास लेता था और तेरीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करता था ॥ १६ ॥ उसके शुक्ल लेख्या थी अपने तेजमें  
सब लोकनाडीको प्रकाशित करता था और अविज्ञानसे सबको जानता था उतने ही क्षेत्रक उमकी विक्रिया ऋद्धि  
थी और उतने ही क्षेत्रको वह उठा सकता था ॥ १७ ॥ इस संसारमें अहर्मिद्रोंका सुख ही मुख्य सुख है जीवोंकेलिये  
वही उपद्रवरहित प्रवीचाररहित और चिरकालतक वीतरागता उत्पन्न करनेवाला है ॥ १८ ॥ वह अहर्मिद्र आयुके  
अंतमें बही मावधानतासे इसी मध्वलोकमें आबेगा ।

अथानंतर-इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें त्रयोध्या नगर है उसी नगरमें भीष्टयभदेवके वंशमें उत्सीगोत्रमें उत्पन्न  
हुआ, सब शत्रुओंको जीतनेवाला और प्रश्रयनीय ऐला मेघरथ नामका राजा राज्य करता था और उसकी महा-  
देवीका नाम मंगला था । जब उस अहर्मिद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई थी, तभीसे देवीने रत्नोंकी भारा वर्षा-  
कर उस महादेवीकी पूजाकी थी ॥ १९ २० ॥ श्रावण शुक्ल द्वितीयाके दिन मघा नक्षत्रमें उस रानीने हाथी आदि  
सोलह स्वप्न देखे थे और फिर अपने मुखमें प्रदेश करता हुआ एक हाथी देखा था । भावार्थ-उसी दिन भगवान्  
सुमतिनाथ उनके गर्भमें आये थे ॥ २१ ॥ सबेरे ही उठकर उसने अपने पतिसं उन स्वप्नोंका फल पूछा, उनका  
फल सुनकर वह बहुतही प्रमन्न हुई । नौवें महीनेमें चंद्र शुक्ल एकादशीके दिन मघा नक्षत्र और पितृ योगमें मति-  
ज्ञान भुतज्ञान अविज्ञान इन तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले, दिव्यस्वरूप, सज्जनोंके पति और तीनों जगतके  
स्वामी ऐसे उस अहर्मिद्रके जीवको उसने उत्पन्न किया ॥ २२-२३ ॥ इंद्र लोग उत्सीसमय आकर उन भगवानको



देवद्रास्तं तदा नीत्वा मेरो जन्महोत्सवं । कृत्वा सुमतिं संज्ञां च पुनस्तद्रेहमनयन् ॥ २४ ॥ नव लक्षाब्धिः कोटीषु प्रयतनेन तरेऽस्तरे । तदभ्यन्तर-  
वर्त्यायुर्लुदपायुदितोदयः ॥ २५ ॥ शून्यवद्वाधिपूर्वायुः शरासन्निशतोच्च्रितः । सतसतपर्नीयामः स्वभावसुभगाकृतिः ॥ २६ ॥  
शैशवोचितसर्वार्थदेवानीतैः सर्वैर्भितुः । अंशवो वा शिशोरिंदोर्व्यक्त्यास्यावयवा वसु ॥ २७ ॥ तनवः कुचिताः सिग्धा मूर्धजा-  
जांववन्निवः । मुखपंकजमाशक्य मिलिता वास्य षट्पदाः ॥ २८ ॥ मया त्रैलोक्यराज्यस्य रूपनाते सुरोत्तमैः । पट्टोऽलभीति  
वास्याधाह्लाततमुन्नतिं ॥ २९ ॥ कर्णौ लक्षणसंपूर्णौ नास्य त्रिज्ञानधारिणः । पचवर्णध्वंशिशिष्यत्वपरिभृतिं प्रतेनतुः ॥ ३० ॥  
सुभ्रुवो न शुवोर्वोच्यो विभ्रमोऽस्य पृथग्भिदा । भ्रूक्षेपमात्रदत्तार्थसाधसंतर्पितार्थिनः ॥ ३१ ॥ नेत्रे विलासिनी क्षिग्धे त्रिवर्णे तस्य  
रेजतुः । दृष्टास्त्रिलार्थप्रेक्षादुस्त्वपर्यंतगामिनी ॥ ३२ ॥ मया विगाह्य शोभा स्यान्नैत्यमौ नासिका स्मयं । उन्नता दधतीवाभाद्र-  
मेरु पर्वतपर ले गये वहांपर उन्हींने बड़े ठाट बाटसे जन्मोत्सव मनाया और फिर उनका सुमतिनाथ नाम रखकर  
पिताके घर वापिस ले आये ॥ २४ ॥ अभिनंदनके बाद नौ लाख करोड़ सागर वीतजानेपर अद्भुत पुण्यकी धारण  
करनेवाले भगवान सुमतिनाथ उत्पन्न हुये थे, इनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है ॥ २५ ॥ इनकी आयु चालीस  
लाख पूर्व थी और शरीरकी ऊंचाई तीन सौ धनुष थी, उनके शरीरकी कति तपाये हुये सुवर्णके समान थी और  
आकार स्वभावसे ही सुंदर था ॥ २६ ॥ उनके बालकपनके योग्य सब सामग्री देव लोग लाते थे और उनके अवयव  
( अंग वा उपांग ) ऐसे सुशोभित होते थे मानों सूर्य वा चंद्रमाकी किरणें ही हों ॥ २७ ॥ उनके मस्तक परके बाल  
छोटे, घूंघरवाले, चिकने और जामुनके समान काले थे तथा उनके मुखको कमल समझकर बहुतसे भौरे आकर इकट्ठे  
होते थे ॥ २८ ॥ उनका ललाट तट ऐसा ऊंचा और ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों वह यही समझ रहा हो कि  
मैंने अपने जन्माभिषेकके अंतमें सब देव और इंद्रोंसे तीनों लोकोंके राज्यका पट्टा ही प्राप्त किया हो ॥ २९ ॥ उनके  
दोनों कान पूर्ण लक्षणवाले थे और उन्हींने तीनों ज्ञानको धारण करनेवाले भगवानके पांच वर्षके बाद भी किसीके शिष्य बन-  
नेका तिरस्कार नहीं सुना था ॥ ३० ॥ अच्छी मोहवाले उन भगवानकी दोनों मोह निंद नहीं थी परंतु ज्ञानियोंके लिये उनका  
विलास अलग ही था । क्योंकि उन मोहोंके चलाने मात्रसे दिये हुये धन समूहसे सब याचक लोग संतुष्ट हो जाते थे ॥ ३१ ॥  
उनके नेत्र अनेक तरहके विलास करनेवाले स्निग्ध और स्वेत इयाम रक्त इन वर्णोंके थे तथा समस्त दृष्ट पदार्थोंका देखने  
से ही मुखकी हर तक पटुं करनेवाले थे इसलिये वे नेत्र बहुत ही अच्छे जान पड़ते थे ॥ ३२ ॥ मेरे बिना तो इनके शरीरकी



ब्रम्हाजामोदपायिनी ॥ ३३ ॥ लक्ष्म्यौ कपोलबालेक्ष्म्या वक्षःस्थलसमाश्रितः । उन्मगाग्राश्रयाद् द्वित्वात् जित्वर्यौ वास्य रेजतुः ॥  
 जित्वास्य कुन्दमौदर्यं द्विजराजिन्यराजत । वक्राब्जवासस्तुष्टा सहोसेव सरस्वती ॥ ३५ ॥ नाघरस्याघरास्या स्यात्सुसमास्ताद-  
 शालिनः । अघरीकृतविश्रामराघरस्याद्रिशोभिनः ॥ ३६ ॥ नालप्यते लपस्यास्य शोभा बाग्वल्लभोज्वला । यदि दिव्यो ध्वनि-  
 विधवाचकोस्माद्विनिःसृतः ॥ ३७ ॥ हावो वक्राब्जस्यास्य किं पुनर्वर्ण्यतेतरा । यदि लोलालिता जग्मुर्निलिपेक्षाः सवल्लभा ॥  
 ३८ ॥ कंठस्य कः स्तवोस्य स्याद्यदि त्रैलोक्यकठिका । वदामरेशो स्याद्वादकुठितास्त्रिलवादिनः ॥ ३९ ॥ तद्वाहिशिखरे मन्ये  
 शिरसोप्यतिलधिनी । वक्षःस्थलनिवासिन्या लक्ष्म्याः क्रीडाचलायते ॥ ४० ॥ धरालक्ष्मीं समाहर्त्तुं वीरलक्ष्मीप्रसारितौ । भ्राजते  
 जयिनस्तस्य मुजावाजानुलधिनी ॥ ४१ ॥ पृथक्पृथक्त्वं नारुयेयं रम्यत्व वास्य वक्षसः । मोक्षाम्युदयलक्ष्म्यौ चेत्तदेवावसतः  
 शोभा ही नहीं होगी यही समझकर मानो घमंडसे ही ऊंची उठी हुई और उनके मुखरूपी कमलकी सुगंधकी सूघती  
 हुई नाक बहुत ही अच्छी शोभा घारण करती थी ॥ ३३ ॥ उनके दोनों कपोलोंकी शोभा उत्तम अगका आश्रय  
 लेनेके कारण तथा दो होनेके कारण वच्छस्थलपर रहनेवाली लक्ष्मीको भी जीत रही थी और इसीलिये वह बहुत ही  
 सुशोभित हो रही थी ॥ ३४ ॥ उनके दांतोंकी पंक्ति कुंदके फूलोंकी शोभाको जीतकर ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों  
 उनके मुखरूपी कमलकीसुगंधसे संतुष्ट होकर हंसती हुई सरस्वती ही हो ॥ ३५ ॥ जिन्होंने समस्त देवोंके अधर तु-  
 च्छकर दिये हैं सुमेरु पर्वतकी शोभा बढाई है और जो छह रसोंके सिवाय सातवें अलौकिक रसका आस्वाद लेने-  
 वाले हैं ऐसे सुमतिनाथके अधरोंकी ( ओठोंकी ) अधर ( तुच्छ ) संज्ञा नहीं थी । भावार्थ-उनके ओठ मन्त्रसे उत्तम  
 थे ॥ ३६ ॥ उनकी जिस प्रिय और उज्ज्वल भाषासे संसारकी समस्त भाषाओंको प्रगट करनेवाली दिव्यध्वनि प्रगट  
 हुई उसका तो यहां कथन ही नहीं किया जा सका है ॥ ३७ ॥ जिसे देखकर अपनी इंद्राणीके माथ इंद्र भी चंचल हो  
 जाता था ऐसे उनके मुखकमलके हावका क्या वर्णन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ अपनी स्याद्वादवाणीसे समस्त वादि-  
 योंको जीतनेवाले ऐसे सुमतिनाथके जिस कंठमें इंदोंने तीनों लोकोंकी कंठी बांधी थी फिर भला ऐसे उनके कंठकी क्या  
 स्तुति करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ मस्तकको भी उल्लंघन करनेवाले उनके दोनों भुजाओंके शिखर अर्थात् कंधोंको तो ऐसा  
 मानना पड़ता था मानों वक्षःस्थलपर निवास करनेवाली लक्ष्मीके खेलनेके दो पर्वत ही हों ॥ ४० ॥ सबको  
 जीतनेवाले उन सुमतिनाथकी घुटनोंतक लंबी भुजायें ऐसी अच्छी जान पड़ती थीं मानों पृथ्वीकी लक्ष्मीको हरण कर-

समं ॥ ४२ ॥ कृष्णमप्यकृष्णं मध्यं लक्ष्मीद्वयसमाश्रितं । ऊर्ध्वदेहा महामारं बहदेतस्य हेतुया ॥ ४३ ॥ नाभिः प्रदक्षिणावर्तो गभीरेति न कथ्यते । सा चेन्न तादृशी तस्मिन्न स्यादेवं सुलक्षणा ॥ ४४ ॥ रूपशोभां विना नेमः स्वाश्रयादिति वाणव । सतः सर्वेपि तत्रासन् रम्यस्तत्र कटीतटः ॥ ४५ ॥ रंभास्तंभाद्योन्येषामूर्ध्वोर्ध्वतूपमानतां । उपमेयास्तदूर्ध्व्या ते वृष्टत्वादभिभिर्गुणैः ॥ ४६ ॥ कुतो जानुक्रियेत्यं त्वं बोद्धि नान्येषु वेधसः । चेदस्मिन्नलजधाना शोभास्पदोर्ध्वनिषिद्धये ॥ ४७ ॥ वज्रं घटिते जंघं वेधसाऽस्यान्यथा कथं । जगत्त्रयगुरोर्भारं विभ्राते ते तनोस्तनु ॥ ४८ ॥ धरेयं सर्वभावेन लग्नासत्पलयोरिति । तत्क्रमौ प्रमदेनैव नेकेलिये वीरलक्ष्मीने ही अपनी भुजायें फैलाई हों ॥ ४९ ॥ उनके वक्षःस्थलपर जब मोक्ष और स्वर्गादि अभ्युदयकी लक्ष्मियां साथ साथ निवास करती थीं तब फिर उस वक्षःस्थलकी शोभा और वडपन अलग अलग वर्णन नहीं करना चाहिये ॥ ४२ ॥ यद्यपि उनका मध्यभाग ( कमर ) कृश ( पतला ) था तथापि वह मोक्ष और अभ्युदय दोनों लक्ष्मियोंसे सुशोभित ऐसे उनके ऊपरके शरीरके भारी बोझको लीलामात्रसे ही धारण करता था ॥ ४३ ॥ यह कहना ही नहीं चाहिये कि उनकी गोल नाभि गहरी थी क्योंकि यदि वह गहरी न होती तो वह उनके शरीरमें अच्छी ही नहीं जान पड़ती ॥ ४४ ॥ संसारके अच्छे परमाणुओंने विचार किया कि इनका आभय किये विना हम लोगोंको न तो रूप मिल सकता है और न हमारी कुछ शोभा हो सकती है यही सोचकर वे सब परमाणु एक जगह आकर उनके सामरपर इकट्ठे हो गये थे और इसलिये ही उनकी कमर बहुत सुंदर होगई थी ॥ ४५ ॥ अन्य लोगोंकी जंघाओंके सामने केलेके थंभ उपमान माने जाते थे परंतु उनके जंघाओंमें गुलाई आदि ऐसे गुण थे जिनसे वे उपमेय ही बने रहते थे । भावार्थ—जंघाओंके लिये केलेके थंभोंकी उपमा देते हैं परंतु सुमतिनाथकी जंघाएँ ऐसी अच्छी थीं कि कवि लोग उनकी उपमा केलेके थंभोंकेलिये देते थे ॥ ४६ ॥ नाम कर्मरूपी विधाताने अन्य लोगोंमें ऐसी जंघायें क्यों नहीं बनाई ? इस बातको केवल मैं ही जानता हूँ और वह बात यह है कि ऊरु ( जंघाके ऊपरी भाग ) और जंघाएँ इन दोनोंकी शोभामें परस्पर ईर्ष्या न हो । भावार्थ—इन दोनोंकी उत्तमता इन्हींमें रहे दूसरी जगह न रहे इसलिये ही विधाताने ऐसा किया है ॥ ४७ ॥ विधाताने उनकी जंघायें वज्रकी बनाई थीं यदि वह वज्रकी न बनाता तो वे पतली जंघायें तीनों जगतमें गुरु ( भारी ) ऐसे उनके शरीरका बोझ कैसे धारण करतीं ? ॥ ४८ ॥ यह पृथ्वी अपने पूर्ण भावोंसे हमारे तलवोंके नीचे आकर लग गई है यही समझकर उनके पैरोंने प्रसन्न होकर अच्छी कांतिको धारण करनेवाली

कर्मपूषो शुभच्छवी ॥ ४९ ॥ इत्यतोऽस्मिन् भविष्यति धर्माः कर्मनिर्वहणोः । इत्याख्यातुमिवाभाति विधिनागुल्यः कृताः ॥ ५० ॥  
 विधाय दशधात्मान विधुरही नियेवते । कातिमाभ्या पर प्राप्नुमित्याशकावहा नखाः ॥ ५१ ॥ एवं सर्वांगशोभास्य लक्षण-  
 र्वजनैः शुभा । स्वीकरिष्यति मुक्त्यगनां वेल्यत्र न सशयः ॥ ५२ ॥ कौमारमिति रूपेण संघचे रामणीयक । अनासतयौवनस्यास्य त-  
 दिनापि मनोभवात् ॥ ५३ ॥ ततो यौवनमालज्य कामोप्यस्मिन् कृतास्पदः । सप्राप्य साधवः स्नान नाविधिष्ठिति के स्वयं ॥ ५४ ॥  
 कुमारकाले पूर्वाणा दशलक्षेषु निष्ठिते । भुजन्वल्लोकसाम्राज्यं नुराल्य चाप स क्रमात् ॥ ५५ ॥ न हिंसा न मृषा तस्य स्तयसंरक्षणे  
 न च । स्वर्णेपि तद्दानदः शुक्लेश्यस्य केन सः ॥ ५६ ॥ तथा नानिष्टमयोगो वियोगो नेष्टवस्तुभिः । नासात न निदानं च त-  
 स्तंक्लेशो न तद्वत् ॥ ५७ ॥ गुणाना दृढिमातन्वन् सचय पुण्यकर्मणा । विपाकं विश्वपुण्यानां गुणपुण्यसुखात्मक ॥ ५८ ॥ से-  
 कछुएकी पीठका रूप धारण कर लिया था ॥ ४९ ॥ इस संसारमें कर्मोंकी नाश करनेवाले उत्तम क्षमा आदि धर्म इतने  
 ही ( दश ) होंगे यही प्रगट करनेके लिये मानों नाम कर्म रूपी विधाताके द्वारा बुई उनके पैरोंकी उंगलियां सु-  
 शोभित हो रही थीं ॥ ५० ॥ उनके पैरोंके नखोंको देखकर यही शंका होती थी कि चद्रमा मोक्ष स्थान पानेके लिये  
 अपने दशरूप बनाकर अपनी कांति और लक्ष्मीसे उनके चरणोंकी सेवा कर रहा है ॥ ५१ ॥ इसतरह लक्षण और  
 चिन्होंसे सुशोभित हुई उनके सब शरीरकी शोभा मुक्तिरूपी स्त्रीको स्वीकार करेगी इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता  
 था ॥ ५२ ॥ उनका वह कुमार अवस्था स्वभावसे ही मनोहर थी यद्यपि उनको यौवन अवस्था प्राप्त नहीं हुई थी  
 तथापि ( मधुरिमा प्राप्त करनेवाले ) यौवनके बिना भी कामदेवसे भी अधिक मनोहरता उनमें आगई थी ॥ ५३ ॥  
 तदनंतर यौवन अवस्थाको पाकर कामदेव भी उनके शरीरमें प्रस गया था सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे कौन सज्जन  
 हैं जो जगह पाकर स्वयं न ठहर जाते हों ॥ ५४ ॥ इसप्रकार जब उनके कुमार कालके दश लाख पूर्व निकल गये  
 तब उन्होंने अनुक्रमसे स्वर्ग लोकको तिरस्कार करनेवाला मनुष्योंका साम्राज्य पाया था ॥ ५५ ॥ शुक्लेश्याको धा-  
 रण करनेवाले वे भगवान न कमी हिंसा करते थे और न कमी मूठ बोलते थे तथा किसी भी चोरी वा परिग्रहसे उ-  
 त्यक्त होनेवाला आनंद स्वप्न भी उन्हें नहीं आता था ॥ ५६ ॥ उन्हें न कमी अनिष्ट वस्तुओंका संयोग होता था  
 न इष्ट वस्तुओंका वियोग होता था, न कभी रोग होता था और न वे कमी निदान ही करते थे तथा इन चारोंसे हो-  
 नेवाले संक्लेश परिणाम भी उनके कमी नहीं होते थे ॥ ५७ ॥ सुख पुण्य और गुणोंको धारण करनेवाले वे भग-

व्यमान सदा रक्तैः सुरसेचरमूर्चैः । निराकृतैर्हिकांगमः संभृतः सर्वसंपदां ॥ ५९ ॥ निश्चितं कामभोगेषु नित्यं नृपुरमाविषु ।  
न्याय्यार्थपथ्यधर्मेषु शर्मसारं समाप सः ॥ ६० ॥ कताभिः कमनीयाभिः सवयोभिः समीप्सुभिः । दिव्यांगरागसुखबलभूमी रम-  
ते स्म सः ॥ ६१ ॥ दिव्यश्रीमानुषी च श्रीः समप्रेमप्रतोषिते । सुख विदधातुस्तस्य मध्यस्थः कस्य न प्रियः ॥ ६२ ॥ सुखं नाम  
तेदेवात्र यदस्यैन्द्रियगोचरं । सर्वसंसारभोग्यं चेत्सुरेशस्यैव रक्षितं ॥ ६३ ॥ एव सगमयन्कालं दिव्यराज्याश्रयोर्द्वये । व्यरंसीत्समृतेः  
सा हि प्रत्यासन्नाविनेयता ॥ ६४ ॥ सुधीः कथं सुखाशेषु विषयाभिषण्डिमान् । न पापबलिशं पश्येन्न चेदनिमिषयते ॥ ६५ ॥ मूढः  
प्राणी परा प्रौढिमप्राप्तो स्वाहिताहितः । अहितेनाहितोऽहं च कथं बोधव्रयाहितः ॥ ६६ ॥ निरंकुशं न वैराग्य यावद् ज्ञानं च तादृश ।  
वान गुणोंकी वृद्धि करते रहते थे, पुण्य कर्मोंका संचय करते रहते थे और उनके सबतरहके पुण्य कर्मोंका उदय होता  
रहता था ॥ ५८ ॥ जिन्होंने सांसारिक आरंभ सब नष्ट कर दिये हैं और सब तरहकी संपदाओंसे भरपूर हैं ऐसे उन  
भगवानकी सेवा भक्तिमें सदा तल्लीन रहनेवाले देव विद्याधर और मनुष्य सब सेवा करते रहते थे ॥ ५९ ॥ सदा म-  
नुष्य और देवोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले काम भोगोंमेंसे तथा न्यायसे प्राप्त हुए अर्थ और परलोकके हित करनेवाले  
धर्मोंमेंसे वे भगवान निश्चित सारभूत धर्मको प्राप्त हुए थे अर्थात् वे धर्मको सबसे अधिक सेवन करते थे ॥ ६० ॥  
दिव्य उवटन माला वस्त्र आदिकोंसे सुशोभित, समान अवस्थाकी सुंदर और अपनी इच्छानुसार प्राप्त हुई स्त्रियोंके  
साथ वे क्रीडा किया करते थे ॥ ६१ ॥ दिव्य लक्ष्मी और मनुष्य लोककी लक्ष्मी इन दोनोंको उन्होंने समान प्रेमसे  
संतुष्ट किया था इसलिये वे दोनों ही उन्हें सदा सुखी रखती थीं सो ठीक ही है क्योंकि ( समान प्रेम करनेवाला )  
मध्यस्थ भला किसको प्यारा नहीं होता ॥ ६२ ॥ संसारमें वही सुख कहलता था जो इनके इन्द्रिय गोचर था क्योंकि  
स्वर्गमें भी जो सारभूत वस्तु थी उसे इंद्र इन्हींकेलिये सुरश्रित रखता था ॥ ६३ ॥ इसप्रकार दिव्य लक्ष्मी और राज्य-  
लक्ष्मी इन दोनोंमें समय व्यतीत करते हुये वे संसारसे विरक्त हुये सो ठीक ही है क्योंकि निकट भव्यपना इसीका  
नाम है ॥ ६४ ॥ बुद्धिमान् लोग सुखकी इच्छा करते हुए पियरूपी मांसके लिये क्यों लोभ करते हैं यदि वे इसप्र-  
कार मछलीके मगान आचरण न करें तो पापरूपी मछलीके जालमें भी न पड़े ॥ ६५ ॥ जो प्राणी मूर्ख हैं वे अधिक  
ज्ञानी नहीं हैं, आत्मासे भिन्न विषयसुखोंमें लीन हैं और अपना अहित कर रहे हैं, परंतु मैं ऐसा क्यों हो रहा हूं सु-  
क्षम तो तीन ज्ञान विद्यमान हैं ॥ ६६ ॥ जबतक यथेष्ट वैराग्य नहीं होता और यथेष्ट ज्ञान नहीं होता तबतक आत्मा

कृतः स्यादात्मनः स्वोऽस्य सस्वस्य कुनः सुख ॥ ६७ ॥ खपचक्रनवद्वयैः पूर्वेराज्येऽवसाधिते । सह द्वादश पूर्वगैः खस्त्रिवैव-  
 चितयत् ॥ ६८ ॥ स्तुतस्तदैव संतोत्रैः मर्वैः सारस्वतादिभि । अभिषेक सुरैराप्य देवाढ्यायानकः ॥ ६९ ॥ दीक्षां पक्षोपवासेन स-  
 हेतुकवनेऽगृहीत् । सिंते राज्ञा सहेक्षण सुमर्तिनवमीदिने ॥ ७० ॥ मघाशशिनि वैसाखे पूर्वाह्णे सयमाश्रयं । तदैवाविरभूदस्य म-  
 नःपर्ययसंज्ञकः ॥ ७१ ॥ पुरं सौमनसं नाम भिक्षायै पश्चिमे दिने । प्रास प्रतीक्ष्य पद्मोगोपूजं द्युमन्मद्युनिर्गम्य ॥ ७२ ॥ सामायिकं  
 समादाय समौनः शातकरुमघः । तपस्तेषु समाधानात्सहिष्णुर्दुःस्सहं परैः ॥ ७३ ॥ विशतिर्वत्सरातीत्या छद्मस्यो ग्राहने वने ।  
 प्रियंगुमुखो ऽधस्तादुपवासद्वयं श्रितः ॥ ७४ ॥ मघाया चैत्रमासस्य धवलैकादशीदिने । पश्चिमाभिमुखं मानौ कैवल्यमुपपादिवान् ७५  
 सुरैः संमासततूजो गणेशैश्चामरादिभिः । स सप्तर्द्धिभिरम्यर्च्यः सषोडशशतोन्मितैः ॥ ७६ ॥ शून्यद्वयचतुःपक्षमितपूर्वरात्राणुगः ।  
 स्वस्थ कैसे हो सकता है और आत्माके स्वस्थ हुए विना सुख कैसे मिल सकता है ॥ ६७ ॥ राज्य करते हुये जब  
 उनके उन्तीम लाख पूर्व और बारह पूर्वीग बीत चुके थे तब उन्हें यह ऊपर लिखा हुआ वैराग्य उत्पन्न हुआ था ॥  
 ६८ ॥ उसीसमय सारस्वत आदि सब लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की थी और इंद्रोंने आकर उनका  
 अभिषेक किया था तदनंतर अभया नामकी पालकी पर सवार होकर वे सुमतिनाथ भगवान सहैतु नामके वनमें  
 गये थे और वैसाख शुक्ला नौमीके दिन दो पहरके पहिले मघा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ साथ  
 तैलाके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर दीक्षा धारण की थी और उसीसमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया था ॥ ६९-७१ ॥  
 पारणाके दिन वे भिक्षाकेलिये सौमनस नामके नगरमें गये थे वहांपर पद्मद्युति नामके राजाने उनका प्रतिग्रहण किया  
 था निर्विघ्न आहार दिया था इसलिये देवोंने पंचाध्वर्यकी वर्षा की थी और उनकी पूजा की थी ॥ ७२ ॥ इसके बाद वे भ-  
 गवान वनमें जाकर मौनसहित सामायिक धारणकर पापोंको नाश करते हुये बड़ी सावधानतासे कठिन तपश्चरण करने  
 लगे ॥ ७३ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुये उनके बीस वर्ष बीत चुके तब एकदिन उसी सहैतु वनमें प्रियंगु मुखके नीचे  
 तैलाके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हुये ॥ ७४ ॥ चेत सुदी एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें जब सूर्य पश्चिमकी  
 ओर जा रहा था उससमय उन्हें कैवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ७५ ॥ उसीसमय इंद्रोंने आकर उनकी पूजा की और सम-  
 वसणकी रचना की । उनकी मधामें सातों ऋद्धिओंको धारण करनेवाले एकसौ सोलह अमर आदि गणधरथे ॥ ७६ ॥  
 दो हजार चारसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे, और दो लाख चौवन हजार तीनसौ पचास शिक्षक थे ॥ ७७ ॥

संपंचत्रिचतुःपंचपक्षोत्तरैः शिक्षकैर्युतः ॥७७॥ एकादशसहस्रावधीन्द्रनोयविदीहितः । त्रयोदशसहस्रात्मसमानज्ञानसंस्तुतः ॥७८॥  
 शून्यद्वययुगाष्टकमित्तैवैकियकारतुतः । शून्यद्वयचतुःसैकप्रमितोपातविद्वृतः ॥ ७९ ॥ शून्यपचचतुःसकमितवाद्यभिवंदितः ।  
 पिदितैः सचतुष्काद्वित्रिमित्तैस्तैर्विमुषितः ॥ ८० ॥ सचतुष्कात्रिवह्न्युक्तानंतार्थाचार्यिकानुग । त्रिलक्षश्रावकाभ्यर्चः श्राविकापंचलक्ष-  
 वान् ॥ ८१ ॥ स देवदेव्यसस्याततिर्यक्संख्यातवेधितः । विहत्याष्टदशक्षेत्रविशेषप्वमराचितः ॥ ८२ ॥ प्रशस्तोशस्तभा-  
 धातु मय्यानां दिव्यमक्षिपत् । ध्वनिं वीजाविशेष वा सुम्भिषु महाफलं ॥८३॥ विमुक्ताविकृतिर्मास सहस्रसुनिभिः सह । प्रतिमायोग-  
 मास्थाय सम्येदे निर्द्वैति ययौ ॥ ८४ ॥ एकादश्या सिते चैत्रे मधायामपराहणगः । अमरैरत्यकल्याणमवाप सुमतीश्वरः ॥ ८५ ॥  
 रिपुनृपयमदंडः पुडरीविष्ण्वधीशो हरिश्चि रत्तिषेणो वैजयतेजहमिद्रः । सुमतिरमितलक्ष्मीस्तार्थिकृद्यः कृतार्थः सकलगुणसमुद्धो वः स  
 ग्यारह हजार अवधिज्ञानी उनकी पूजा करते थे और तेरह हजार चारसौ मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ७८ ॥ अठारह हजार चारसौ वि-  
 क्रिया ऋद्धिके धारण करनेवाले उनकी स्तुति करते थे और दश हजार केवलज्ञानी थे ॥ ७९ ॥ दश ह-  
 जार चारसौ पचास वादी उनको सेवा करते थे । इस तरह सब मिलकर तीन लाख वीसहजार सुनियौसे वे भगवान  
 सुशोभित हो रहे थे ॥ ८० ॥ अनंतमतीको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार अर्जिकार्ये थीं, तीन लाख श्रावक उ-  
 नकी सेवा करते थे और पांच लाख श्राविकार्ये थी ॥ ८१ ॥ इनके सिवाय असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात  
 ही तिर्यंच थे । इसतरह इंद्रोंके द्वारा पूजित हुये उन भगवानने अठारह क्षेत्रोंमें विहारकर सदुपदेश दिया था ॥ ८२ ॥  
 जिसप्रकार अच्छी भूमिमें मोक्षरूपी महाफल देनेवाले अच्छे वीज बोधे जाते हैं उसीतरह भगवानने भव्य जीवोंको प्रशस्त अम-  
 शस्त सब भाषाओंमें मोक्षरूपी महाफल देनेवाली दिव्यध्वनिका वीज बोया था ॥ ८३ ॥ जब उनकी आयुक्ता एक महीना  
 वाकी रह गया था तब उन्होंने सब विकारोंको छोडकर सम्येदशिखरपर जाकर प्रतिमायोग धारण किया था और आ-  
 युके अंतमें वे वहींसे मुक्त हुये थे ॥ ८४ ॥ चैत सुदी एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें शामके समय वे सुमतिनाथ भग-  
 वान मुक्त हुये थे और उसीसमय इंद्रोंने आकर उनके मोक्षकल्याणकी पूजा की थी ॥ ८५ ॥ जो शत्रुरूप राजाओंको  
 यमराजके दंडके समान अथवा इंद्रके समान पुंडरीकिणी नगरीका स्वामी राजा रतिषेण हुआ था फिर वैजयंत विमा-  
 नमें अहमिंद्र हुआ और फिर समस्त गुणोंके समुद्र, अनंत लक्ष्मीको धारण करनेवाले कृतकृत्य तीर्थंकर भगवान सुम-  
 तिनाथ हुये वे भगवान तुम लोगोंको सवतरहकी सिद्धि प्रदान करें ॥ ८६ ॥ जो भगवान स्वर्गावतरणके समय गर्भ

सिद्धि विदध्यात् ॥ ८६ ॥ सबो ज्ञातं जिनंदं स्वरतरणसंप्राप्तकल्याणकार्ये वामं जन्माभिवेके सुरपविरचितैर्भूषणैरिदशोभं ।  
स निष्कातावधोरं सुमतिमतिमतिं केवलज्ञानसिद्धावीज्ञानं निर्दूतो तत्पुरुषमपरुषं ज्ञातये संश्रयध्वं ॥ ८७ ॥  
इत्यार्षे भगवद्गुणभद्रार्चाप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुमतितीर्थकरपुराणं नाम संभासमेकपञ्चासप्तमं पर्व ।

## द्रिपंचाशत्तमं पर्व ।

पदेऽस्यास्तुर्न मातीव प्रभासिन्निति वाश्रिता । त्यक्त्वा तं यं स पद्मासान्पातु पद्मप्रभः प्रभुः ॥ १ ॥ द्वितीये धातक्रींखंडे  
द्वीपे प्राग्भाणपूर्वजे । विदेहे दक्षिणे कूले सीताया वस्तुदेशं ॥ २ ॥ सुसीमानगरं तस्मिन्महाराजोऽपराजितः । न परैर्जीयते जेता  
स वासाभ्यतरद्विषाः ॥ ३ ॥ विक्रमेणैव वक्राणा जेतुर्वासापरिच्छदः । सप्तांगपूर्णं तस्य बलं दोर्बलशालिनः ॥ ४ ॥ तस्य सत्येन  
कल्याणके उत्सवमें 'सुयोजात' कहलाये ये जन्माभिवेकके समय इंद्रोंके द्वारा बनेहुये आभूषणोंसे सुशोभित होकर 'वाम'  
(सुंदर) कहलाये थे, दीक्षाकल्याणके समय 'अधोर' कहलाये थे, केवलज्ञानकी प्राप्ति होते समय 'ईशान' कहलाये थे  
और मुक्त होते समय सत्पुरुष वा तत्पुरुष कहावेये ऐसे रागद्वेषरहित अतिशय पूज्य भगवान सुमतिनाथ जिनेंद्रदेवका  
ज्ञातिकैलिये आश्रय लो, भावार्थ-ज्ञातिकैलिये उनकी सेवा करो ॥ ८७ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्रार्चाप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें सुमतिनाथ तीर्थंकरका  
पुराण कहेनेवाला यह इक्यावनवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

## बावनवां पर्व ॥ ५२ ॥

जो लक्ष्मी इस कमलमें स्थिर न रहनेके कारण सुशोभित नहीं रहती इसलिये ही जिसने कमलको छोड़कर जि-  
नका आश्रय लिया है ऐसे वे पद्मप्रभस्वामी हम लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ १ ॥ दूसरे धातकी खंडनामके द्वीपके पूर्व  
विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर वत्स नामके देशमें एक सुसीमा नामका नगर है । उसमें अपराजित ना-  
मका राजा राज्य करता था वह बास अभ्यंतर सब मनुष्योंको जीतनेवाला था परंतु उसे कोई नहीं जीत सकता था  
॥ २-३ ॥ वह अपने पराक्रमसे ही कुटिल मनुष्योंको जीतता था, उसकी मृजाओंमें बड़ा ही बल था सब तरहका  
बास परिग्रह था और सात तरहकी पूरी सेना थी ॥ ४ ॥ उसके सत्वसे बादल किसानोंकी इच्छानुसार गरपते थे तथा



वर्षति जीमूताः कर्षकेच्छया । आदिमध्यांतवापाश्च धान्यमेदाः फलप्रदाः ॥ ५ ॥ त्यागेन तस्य दारिद्र्यशब्दः स्वहृदुमायते । सुवि-  
प्रायेषु द्रारिद्र्यं तैरस्य घनदायितं ॥ ६ ॥ राज्ञां महागुणास्तासिन्मुखेश्वरोसुवीजवत् । त्रयोप्येते फलंति स्म सजातीयान्गणं गुणान्  
॥ ७ ॥ परेषां वास्य रूपादिसंपन्नोन्मार्गवृत्तये । तरुत्पाटी मरुन्मेषमं कंपयितुं च किं ॥ ८ ॥ स षट्प्रकृतिभिर्मव्यस्ताश्च तेन  
ततोऽभवत् । तद्राज्यं न परैर्दृष्ट्यं परेषा वर्षकं स्वयं ॥ ९ ॥ एवं भवातरावर्जितोऽजितायोदयापितं । नार्पत्यं सुचिरं मुक्त्वा संवि-  
भक्तं सुहृदयैः ॥ १० ॥ क्षणिकाः सर्वपर्यायाः पर्यायैश्चानुमृयते । सुखं कारणविध्वंसे कार्ये कौतस्कुती स्थितिः ॥ ११ ॥  
इत्यर्जुनसूत्रभावेन स सर्वं भृगुरं सारत् । दत्त्वा राज्यं सुमित्राय सुताय विजितात्मने ॥ १२ ॥ गत्वा तपोगुरुं कृत्वा जिनेन्द्रं पिहिता-  
सूत्रं । एकादशांगविद्वद्वा नाम तीर्थकराहवयं ॥ १३ ॥ संन्यसांतपरित्यक्ते देहोयादहमिन्द्रतां । ऊर्ध्वम्रैवेयके रम्ये प्रीतिकर-  
आदि मध्यं अंतमें वोये हुए और फल देनेवाले अनेक तरहके धान पैदा होते थे ॥ ५ ॥ उसके त्याग वा दानसे द-  
रिद्रता आकाशका फूल बन गई थी, पृथ्वीपर जो पहिले दरिद्री था वह आज उस राजाके दानसे कुबेर बन गया था  
॥ ६ ॥ जिसप्रकार अच्छे खेतमें बीज बोया हुआ अच्छा बीज फलता है उसीप्रकार राजाओंके सब गुण उसमें थे । इसलिये ऊ-  
पर कहे हुए सत्य, दान और गुण अन्य सजतीय उत्तम गुणोंको उत्पन्न करते थे । दूसरोंके समान रूप आदि संप-  
त्तियां उस अपराजितको कुमार्गमें नहीं ले जासकती थीं सो ठीक ही है क्योंकि वृक्षोंको उखाडनेवाला वायु क्या सुमेरु  
पर्वतको कंपा सकता है ? कमी नहीं ॥ ८ ॥ वह राजाओंके छह गुणोंसे सुशोभित था और वे छह गुण उससे सुशो-  
भित थे । इसतरह वह राज्य दूसरोंसे धारण नहीं किया जा सकता था । हां वह दूसरोंको धारण कर सकता था ॥ ९ ॥  
इसप्रकार अनेकभवोंमें उपार्जन किये हुए उत्तम पुण्यके उदयसे प्राप्त हुए तथा अपने भाई बंधु और मित्रोंमें बटे हुए ग-  
त्यका उसने बहुतदिनतक उपभोग किया ॥ १० ॥ तदनंतर वह विचार करने लगा कि इस संसारमें पर्याय सब क्ष-  
णिक हैं और सुख सब पर्यायोंसे ही अनुभव किया जाता है इसलिये कारणके नाश होनेपर कार्यकी स्थिति किसतरह  
रह सकती है । भावार्थ—पर्यायोंके क्षणिक होनेसे सुख भी क्षणिक ही है ॥ ११ ॥ इसप्रकार कजुसूत्रनयसे सब पदा-  
योंको क्षणभंगुर मानते हुए उसने अपने आत्माको वश करनेवाले पुत्र सुमित्रकेलिये राज्य दे दिया ॥ १२ ॥ ननमें  
जम्बर पिहितासव नामके जिनेन्द्रदेवको अपना दीक्षागुरु बनाया और ग्यारह अंगोंको पढकर तीर्थंकर नामकर्मका  
बंध किया ॥ १३ ॥ अंतमें समाधिभरणसे शरीरको छोडकर सुंदर ऊर्ध्व म्रैवेयकके प्रीतिकर नामके विमानमें अहमिन्द्र



विमानजः ॥ १४ ॥ एकत्रिंशत्समुद्रार्थस्तद्वन्नरीरकः । शुक्लेद्यो दिनैः पचषट्चतुःसम्मितैः श्वसन् ॥ १५ ॥ एकत्रिंश-  
 त्सहस्राब्देर्मौनसाहारतीर्षितः । तेजोबलबधिविज्ञानव्याप्तासप्तमर्गतलः ॥ १६ ॥ तत्क्षेत्रविक्रियर्द्विशः सुखपायाहर्मिद्रजं । स्वायुरते तत-  
 स्तस्मिन्नवनीमागमिष्यति ॥ १७ ॥ जबृद्धीपे च कौशल्या पतिरिक्ष्वाकुव्रजः । गोत्रेण काश्यपो राजा धरणाख्यो महानभूत् ॥  
 तत्स देवी सुसीमाख्या रत्नवृष्ट्यादिमानिता । प्रभते माघकृष्णाय षष्ठ्या चित्रेदुसंगे ॥ १९ ॥ गजादिषोडश स्वप्नवीक्षणा-  
 नतरास्यग । निरीक्ष्य वारण ज्यैष्ठस्तल्लैः प्रमदाव्विता ॥ २० ॥ कृष्णपक्षे त्रयोदश्या त्वष्टृयोगोऽपराजित । कार्तिके मास्यसूतेषा  
 रक्षांभोजदलच्छवि ॥ २१ ॥ अस्मोत्पत्तौ समुत्पत्तिर्गुणाना दोषसंतते । ध्वंसो जातः शमः शोकः प्रमोदात्सर्वदेहिना ॥ २२ ॥  
 मोहशुभ्रुतच्छायो नष्टोहं वेति कपते । स्वर्गोपवर्गयोर्मणिं बाहकैस्सिन्दभिव्यति ॥ २३ ॥ मोहनिद्रा विहास्यति बहवोस्मिन्प्रबोधके ।  
 उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ वहांपर उसकी इकतीस सागरकी आयु थी दो हाथका शरीर था, शुक्ल लेझ्या थी और ४६५  
 दिन अर्थात् इकतीस पक्ष वा साडे मद्रह महीने पीछे श्वास लेता था ॥ १५ ॥ इकतीस हजार वर्ष पीछे मानसिक आ-  
 हार लेकर सतृष्ट होता था तथा सातवीं पृथ्वीतक उसका तेज बल और अविविज्ञान था ॥ १६ ॥ सातवीं पृथ्वीतक ही  
 वह अपनी विक्रिया ऋद्धिको काममें लासकता था । इस्तरह वह अहर्भित्तोके सुखोंका उपभोग करता था जब उसकी व-  
 हाकी आयु पूर्ण होने आई और पृथ्वीपर जन्म लेनेके दिन आए तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रकी कौशांबी नगरीमें इस्वा-  
 कुवंशमें उत्पन्न हुआ और काश्यप गोत्रका धरण नामका बड़ा राजा राज्य करता था ॥ १७—१८ ॥ उसकी सुसीमा  
 समय चंद्रमाके साथ चित्रा नक्षत्रका समागम होते हुए उसने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे और फिर अपने मुहमें  
 पुसता हुआ हाथी देखा । सबेरे ही उठकर अपने पतिसे उनके फल पूछे और उनका फल जानकर वह बहुत ही प्रसन्न  
 हुई ॥ १९-२० ॥ कार्तिक महीनेकी कृष्णपक्षकी त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें लालकमलके दलकी क्रांतिके समान  
 भगवान् अपराजित उस सुसीमा देवीसे उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ उन भगवान्में उत्पन्न होते ही सब गुण उत्पन्न हुए थे  
 और दोषोंका समूह सब नष्ट होगया था आनंदसे सब जीवोंका शोक भी नष्ट हो गया था ॥ २२ ॥ स्वर्ग और मोक्षके  
 मार्गको चलानेवाले उन भगवान्के उत्पन्न होते ही मोहरूपी शत्रुकी क्रांति नष्ट होगई थी और मैं अब नष्ट हुआ यही  
 समझकर वह कंप रहा था ॥ २३ ॥ उससमय विद्वान् लोग परस्पर इसप्रकार बात चीत करते थे कि सबको मनुज

जन्मिनां जातसबधविरोधश्च विनश्यति ॥ २४ ॥ लक्ष्मीर्विकाराशमस्यायात्यायात्कीर्तिर्जगत्त्रयं । अमृदित्यादिसंलग्नो विदुषामि-  
तेतरं ॥ २५ ॥ तदानीमेव देवैर्द्रास्तं मेरौ क्षीरवारिभिः । सापयित्वा विधायानुमुदा पद्मप्रभाभिर्भां ॥ २६ ॥ अभिष्टुत्य पुनर्नीत्वा  
भाग्य वर्द्धमाने परान्मुखः ॥ २८ ॥ न कामनीयकं कामेऽतिक्रामे अन्यत्र चेष्टां । तत्कामनीयकं तस्य न केनाप्युपनीयते ॥ २९ ॥  
तथैव रूपमप्यस्य कथ्यते किं पृथक् पृथक् । यद्यत्तस्मिन् तत्त्वज्ञैरन्यस्यैरुपनीयते ॥ ३० ॥ कामयते स्त्रियः पुंसः पुमांसस्ता इमं  
पुनः । ताभ्यस्ते चास्य सौभाग्य नाल्पभाग्यैरवाप्यते ॥ ३१ ॥ ततनावेव सर्वेषां दृष्टिर्दृष्टिं परामिता । संततं चूतमंजरीं मत्वा-  
लीनामिवावल्लो ॥ ३२ ॥ सर्वेन्द्रियसमाहोदस्तस्मिन् चैव मृशयते । परत्रापूर्णपुण्येषु न कापीति वयं स्थिताः ॥ ३३ ॥ सचतु-  
र्विरोध मी नष्ट हो जायगा, लक्ष्मी प्रफुल्लित होगी और कीर्ति तीनों लोकमें फैल जायगी ॥ २४--२५ ॥ उसीसमय  
देव और इंद्रोंने आकर मेरु पर्वतपर क्षीर सागरके जलसे उनका अभिषेक किया और प्रसन्न होकर पद्मप्रभ नाम रक्खा  
॥ २६ ॥ तदनंतर उनकी स्तुति की फिर अत्यंत कांतिको धारण करनेवाले उनको लेजाकर माताके गोदमें जा विरा-  
जमान किया, प्रसन्न होकर नृत्य किया और फिर सब स्वर्गको चले गये ॥ २७ ॥ सब लोग जिनको नमस्कार करते  
ऐसे उन भगवानका बालकपन चंद्रमाके समान सबको प्रमत्त करता हुआ बढ रहा था इसलिये ऐसा कौन मनुष्य था  
जो उनकी बुद्धिसे विमुख हो ? भावार्थ-ऐसा कोई नहीं था ॥ २८ ॥ जैसी सुंदरता उन पद्मप्रभमें थी वैसी सुंदरता  
साथ नहीं दी जासकती थी ॥ २९ ॥ इसीतरह उनके रूपका वर्णन मी अलग अलग नहीं करना चाहिये क्योंकि जो  
जो गुण उनमें थे विद्वान् लोग उनकी उपमा मी दूसरी जगह नहीं देते थे ॥ ३० ॥ स्त्रियां पुरुषकी इच्छा क-  
रती हैं और पुरुष स्त्रियोंकी इच्छा करते हैं परंतु उन पद्मप्रभकी स्त्री पुरुष दोनों ही इच्छा करते थे सो ठीक ही है  
क्योंकि जिनका भाग्य थोडा है ऐसे पुरुष उनके सौभाग्यको कभी नहीं पासकते हैं ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार मत्त हुए अ-  
मरोंकी पंक्ति सदा आमकी मंजरमें ही वृत्त रहती है उसीप्रकार सब लोगोंकी दृष्टि उनके शरीरमें ही उत्तम वस्तिको प्राप्त  
होती थी ॥ ३२ ॥ हम लोग दूसरी जगह थोडेसे पुण्यवदनोंमें कहीं नहीं ठहरते हैं यही समझकर मानो सब इंद्रियोंके

केप कोटीनां नवभिश्चोक्तवादिभिः । भित्ते सुमतिस्ताने पद्मप्रभजिनस्त्रितिः ॥ ३४ ॥ षट्शून्यबन्दिपूर्वायुः शून्यपंचद्विचापभाक् ।  
 जीवितस्य चतुर्भाणकुमारत्वेन निष्ठिते ॥ ३५ ॥ अलव्य राज्यं प्राप्तमेल्यो द्वैराज्यवार्धितं । क्रमायातं न दीच्छति संततज्ञान्यभा-  
 गतं ॥ ३६ ॥ पट्वेधेस्य सर्वस्य स्वस्य स्वस्येव संमदः । महामयानि तद्देते नष्टान्यष्टौ निरन्वयं ॥ ३७ ॥ दारिद्र्यं विद्रुतं दूरं स्वरं स्व  
 संप्रवर्तते । सर्वाणि मंगलान्यसन् सममः सर्वसंपदां ॥ ३८ ॥ कस्य कस्मिन्समीप्येति वदान्येव्यमवद्वचः । कस्यचिन्नैव कस्मिन्निद-  
 र्धित्यवदजनः ॥ ३९ ॥ इत्यन्य राज्यसंप्राप्तौ जगत्सुप्तविबोधितं । तदेव राज्यं राज्येण प्रजातां यत्सुखावह ॥ ४० ॥ इति पाठ-  
 शर्पूर्वगैः पूर्व लक्ष्मायुषि स्त्रिते । कदाचिद् दारिद्र्यस्यगजप्रकृतिसंयुतेः ॥ ४१ ॥ ज्ञातास्मान्भवो धिक् धिक् संसारमिति तत्त्ववित् ।  
 विरक्तः कामभोगेषु पापदुःखप्रदायिषु ॥ ४२ ॥ अष्ट किं किमष्टष्टमनाघातं किमथुतं । किं किमस्वादितं येन पुनर्नवभिव्यस्यते ॥  
 आल्हादं वारं वारं उन्हींमें आकर क्या नहीं रहते थे अर्थात् अवश्य रहते थे ॥ ३३ ॥ सुमतिनाथके बंद नब्बे हजार करोड़  
 सागर वीत जानेपर उन्हींकी संतानमें पद्मप्रभ हुये थे ॥ ३४ ॥ तीम लाख पूर्वकी उनकी आयु थी, ठाईसी चतुषका  
 शरीर था, और देव लोग सदा उनकी पूजा किया करते थे जब आयुका चौथाई भाग कुमारकालमें व्यतीत हो गया  
 था तब उन्हें जिसका कोई मृत नहीं है और जो तपस्वान्पूर्वक है अथवा संतान दरसंतानसे बला आया है ऐसे रा-  
 ज्यकी प्राप्ति हुई थी । सो ठीक ही है क्योंकि जो तपस्वान्पूर्वक नहीं होता वा विपरीत होता है उसकी सज्जन लोग  
 कमी इच्छा नहीं करते ॥ ३५-३६ ॥ उनके राज्याभियेके समय सबको ऐसा आनंद हुआ था मानों हमारा ही  
 राज्याभियेक हो रहा हो । उस देखमेंसे आठों तरहके महाभय सदाकेलिये नष्ट हो गये थे ॥ ३७ ॥ दरिद्रता दूर भाग  
 गई थी, धन अपनी इच्छानुसार फैल रहा था सब तरहके मंगल और सवतरहकी संपदाओंका समागम सदा बना रहता  
 था ॥ ३८ ॥ जब कोई किसीसे कुछ नहीं मांगता था तब लोग परस्पर इसप्रकार बात चीत करते थे दानी लोग सदा  
 यही पूछा करते हैं कि किस पुरुषको किस वस्तुकी इच्छा है भावार्थ—दानी बहुत थे और शाचक नहीं थे ॥ ३९ ॥  
 इसप्रकार उनके राज्य संपालनेपर मानों यह संसार सोतेसे उठ पड़ा था सो ठीक ही है क्योंकि राज्योंमें राज्य बही है  
 जो प्रजाको सुख देनेवाला हो ॥ ४० ॥ जब उनकी आयु सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्वकी रह गई थी तब किसी-  
 से अपने दरवाजेपर बंधे हुए हाथीकी दशा सुनकर उन्हें अपने पहिले भवोंका ज्ञान हुआ था और उसीसमय त-  
 थोंको जाननेवाले दे भगवान् संसारको धिक्कार देनेलगे थे तथा पाप और दुःख देनेवाले काम भागोंसे वे विरक्त हो

४३ ॥ सुकृमेवं पुनर्मुक्तं जंतुनानंतरो भवे । मध्यमय्यभिलाषाब्धेरितं वक्तुं किं ततः ॥ ४४ ॥ नैन्द्रियैरात्मनस्तृप्तिर्मिथ्यात्वादिवि-  
दूषितैः । धीतषाद्युपयोगेस्य विधं यावन्नगोचरं ॥ ४५ ॥ रोगोरेगाणां तु ज्ञेयं शरीरं वामल्लरकं । दष्टान् दृष्ट्वा तैरेव किमिष्टान्नाष्ट-  
जीवितान् ॥ ४६ ॥ अहितो देहिनो देहे मोहोनेनावितथारः । सहवासकृतं क्वापि केनाप्यस्यायुषा किमु ॥ ४७ ॥ हिंसादिपंचकं  
धर्मः सुखं यथैन्द्रियार्थजं । संसृती रोचते तस्मै विपरीतार्थदर्शने ॥ ४८ ॥ पापापापोपेलेपापक्षेपो येनोपपद्यते ॥ तदध्ययं तदनुष्ठेयं  
तदध्ययं सदा बुधैः ॥ ४९ ॥ इति त्रिविधनिर्वेदमूलबोधिः सुरोत्तमैः । प्रोत्साहितः सुरैः प्राप्तावन्किंतिस्नानसंमदः ॥ ५० ॥ निवृ-  
त्त्याख्यं समारुहं शिविकां स मनोहरे । वने षष्ठोपवासेन दीक्षां शिक्षाभिवाम्रहीत् ॥ ५१ ॥ कार्तिके कालपक्षस्य त्रयोदश्यपराह्णगः ।  
गये ये ॥ ४१-४२ ये विचार रहे थे कि इससंसारमें विना देखा हुआ क्या विना स्पर्श किया हुआ क्या है, विना संसा-  
हुआ, विना सुना हुआ और विना खाया हुआ क्या है अर्थात् कुछ भी नहीं है तथापि यह जीव नयेके समान  
सबकी इच्छा करता है ॥ ४३ ॥ यह जंतु इस संसारमें भोगी हुई चीजोंको ही फिर अनंतवार भोगता है क्या यह  
अभिलाषारूपी सागरका मध्यभाग परिमित है ? इसलिये कहो इससे क्या लाभ है ॥ ४४ ॥ मिथ्यात्व आदिसे दू-  
षित हुई इंद्रियोंसे आत्माकी वृत्ति नहीं होती, धातियां कर्मोंके नाश होनेपर जबतक यह जीव समस्त संसारको नहीं  
जान लेता तबतक इसे कमी वृत्ति नहीं हो सकती ॥ ४५ ॥ इस शरीरको रोगरूपी सर्पोंकी वामी समझना चाहिये ।  
वे रोगरूपी सर्प इष्ट वस्तुओंको काटकर वार वार नष्ट करते हैं और यह जीव उन्हें देखता है तथापि न जाने क्यों उ-  
न्हेंकी इच्छा करता है ॥ ४६ ॥ जीवोंके इस शरीरसे सदा अहित ही होता है, इस शरीरने ही मोहको स्थायी बना  
रक्खा है क्या किसीने आजतक कहीं भी इसके साथ समागम किया है । फिर भला इसके जीवित रहनेसे क्या लाभ  
है ॥ ४७ जो हिंसादि पांचों पापोंको धर्म मानता है इंद्रिय और पदार्थोंके संयोगको सुख मानता है वही संसार पदा-  
र्थोंको विपरीत रीतसे श्रद्धान करनेवाले संसारी लोगोंको पसंद आता है ॥ ४८ ॥ इसलिये जिससे पाप और पुण्य दो-  
नोंका नाश हो जाता है विद्वान् लोगोंको सदा उसीका ध्यान करना चाहिये उसीका अनुष्ठान करना चाहिये और उ-  
सीका अध्ययन (पठन पाठन) करना चाहिये ॥ ४९ ॥ इसप्रकार भोग शरीर और संसार इन तीनोंसे वैराग्य उत्पन्न  
होकर आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उत्साहित किया और देवोंने आकर दीक्षाकल्याणका  
अभिषेककर उन्हें प्रसन्न किया ॥ ५० ॥ निवृत्ति नामकी पालकीपर सवार होकर वे मनोहर नामके वनमें गये और शि-

चित्रायां मृमुञ्जा साह्वं सहस्रेणाहितादरः ॥ ५२ ॥ चतुर्थज्ञानसंपन्नश्चर्यायै पश्चिमे दिने । नगरं वर्द्धमानाख्यं प्राविशद्विदुषां वरः ॥ ५३ ॥ सोमदत्तो नृपस्तस्य दानादापार्जुनच्छत्रिः । आश्चर्यपंचकं किंवा पात्रदानान्न जायते ॥ ५४ ॥ चिन्वन्शुभासवैः पुण्य संवरः कर्मसंहतेः । कुर्वन्पुण्यदिषट्केन तपसा निर्जरां च सः ॥ ५५ ॥ षण्मासैर्मैनामास्थाय छात्राख्यमपनीतवान् । क्षुपकश्चेणिमारुह्य नष्टर्षातिचतुष्टयः ॥ ५६ ॥ पौर्णमास्यां सिते चैत्रे मय्यादहा खौ गते । चित्रायां केवलज्ञान प्रतिपेदे परार्थकृत् ॥ ५७ ॥ समर्चितो महादेवैः शतेनेतो गणेशिनां । स वज्रचापमरार्दीनां दशभिश्च जगद्धितः ॥ ५८ ॥ शून्यद्वयानिपक्षोक्तसर्वपूर्वधरान्वितः । शून्यात्रिक-नवर्तुद्भिप्रोक्तशिक्षकलक्षितः ॥ ५९ ॥ शून्यत्रिदशज्ञेयविविधावधिर्वाक्षणः । स्वत्रयद्वादशाक्ष्यकेवलावगममाश्रितः ॥ ६० ॥ सह-याष्टषट्कांकविक्रियद्विसहस्रदिमान् । शून्यद्वयत्रिशून्यैकप्रोक्तस्तुर्यावोधनः ॥ ६१ ॥ शून्यद्वयतुरप्रोक्तल्यातानुत्तरवादिकः । स्वचतुष्काग्निवन्द्युक्तसपिडितयतीश्वरः ॥ ६२ ॥ स्वचतुष्कद्विवाराशिप्रथिताभिरभिप्युतः । रतिषेणाल्यमुल्याभिरार्यकाभिः समंततः ६३ ॥ स्वाके समान वला धारणकर दीक्षा स्वीकार की ॥ ५१ ॥ उन्होंने कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन शामके समय चित्रा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ आदर्शपूर्वक दीक्षा धारण की थी ॥ ५२ ॥ उसीदिन उन्हें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था, पातराणके दिन बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उन मुनिराजने वर्द्धमान नामके नगरमें प्रवेश किया था ॥ ५३ ॥ चांदीके समान सफेद कार्तिकी धारण करनेवाले महाराज सोमदत्तने उन्हें आहारदान दिया जिससे उसके घर पंचाश्वर्योंकी वर्षा हुई सो ठीक ही है क्योंकि पात्रदानसे क्या क्या नहीं प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ उन्होंने शुभासवोंके द्वाग पुण्य संग-दन किया कर्मोंके समूहका संवर किया, गुप्ति आदिका पालन किया और छह प्रकारके तपश्चरणसे कर्मोंकी निर्जरा की ॥ ५५ ॥ इसतरह छह महीनेतक मौन धारणकर उन्होंने छत्रस्थपना व्यतीत किया और फिर क्षुपकश्चेणी चटकर चारों घातिया कर्मोंका नाश किया ॥ ५६ ॥ चैत्र शुक्ला पौर्णमासीके दिन दोपहरके समय चित्रा नक्षत्रमें दूसरेका उपकार क-रनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ५७ ॥ उसीसमय इंद्रोंने आकर उनकी पूजाकी तथा संमारका हित करनेवाले वे भ-गवान् वज्रचापर आदि एकसौ दश गणधरोंसे पूजित हुए ॥ ५८ ॥ उनके समग्रसरणमें दोहजार तीनसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जाननेवाले थे, दो लाख उनहत्तर हजार शिक्षक थे ॥ ५९ ॥ दशहजार अवधिज्ञानको धारण करनेवाले थे और बारह हजार केवलज्ञानी थे ॥ ६० ॥ सोलह हजार आठसौ विक्रिया श्रद्धिको धारण करनेवाले थे और दश हजार तीनसौ मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ६१ ॥ नौहजार छहसौ उत्तरवादी (उत्तर देनेवाले वादी) थे इसतरह सब मिलकर

त्रिलोकश्रावकोपेतः श्राविकापंचलसुवान् । सदेवदेव्यसंख्यातास्यैकसंख्यातसंयुतः ॥ ६४ ॥ कुर्वन्धर्मोपदेशेन सोऽसुमायैः तन्प्रभृतः । भ-  
गवान् पुण्योदयेनैव धर्मसत्त्वानुसौदये ॥ ६५ ॥ सम्पदपर्वते मासं स्थित्वा योगीरिद्धवान् । सार्द्धं यतिसहस्रेण प्रतिमायोगमास्थितः ॥ ६६ ॥  
फाल्गुने मासि चित्रायां चतुर्थ्यामपराहणगः । कृष्णपक्षे चतुर्थेन समुच्छिन्नक्रियात्मना ॥ ६७ ॥ शुक्लच्युतेन कर्माणि  
हत्वा निर्वाणमापिवान् । तदैव चक्रुः शक्राद्याः परिनिर्वाणपूजनं ॥ ६८ ॥ किं सेव्यं क्रमयुग्ममब्जविजयादस्यैव लक्ष्म्यास्पदं किं  
श्रव्यं सकलप्रतीतिजननादस्यैव सत्यं वचः । किं ध्येयं गुणसंततिश्च्युतमलस्यास्यैव काष्ठाश्रयादिस्तुतिगोचरः स भगवान् पद्मप्रभः  
पांडु वः ॥ ६९ ॥ राजा-प्रागपराजितो जितगिषुः श्रीमान् सुसोमेश्वरः, पश्चादाप्य तपोत्यनामसहितो प्रवेयकस्येऽमरः । कौशांब्या क-  
क्तितो गुणैरगणितैरिश्वाकुवंशाप्रणीः पद्मस्तीर्थकरः परात्माहितकृत् पद्मप्रभः शं क्रियात् ॥ ७० ॥

तीन लाख तीस हजार मुनिराज रहते थे ॥ ६२ ॥ रतिपेणाको आदि लेकर चार लाख बीस हजार आर्जेकायें सब  
ओरसे उनकी पूजा करती थीं ॥ ६३ ॥ तीन लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकायें थीं इनके सिवाय असेख्यात  
देव देवी थे और संख्यात तिर्यक थे ॥ ६४ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे वे भगवान् उपदेश देकर भव्य जीवोंको मोक्ष  
मार्गमें लगाते थे और धर्मात्मा जीवोंको सुखके स्थानमें पहुंचाते थे ॥ ६५ ॥ अंतमें सम्पद शिखरपर जाकर एक  
महीने तक योगनिरोध किया, एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमायोग धारण किया, तथा फाल्गुन महीनेकी कृष्ण  
पक्षकी चतुर्थीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय व्युपरतक्रियानिष्ठति नामके चौथे शुक्लध्यानसे कर्मोंको नाश कर मोक्ष-  
पद प्राप्त कर लिया उसीसमय ह्मद्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकी पूजनकी ॥ ६६-६८ ॥ सेवा किसकी करनी  
चाहिये ? कमलको जीत लेनेसे लक्ष्मीने भी जिन्हें अपना स्थान बनाया है ऐसे भगवान् पद्मप्रभके दोनों चरणकमलों  
की सेवा करनी चाहिये । सुनना क्या चाहिये ? सबको विश्वास वा श्रद्धान उत्पन्न करनेसे इन्हीं भगवान् के सत्य  
गुणोंके समूहका ध्यान करना चाहिये । क्योंकि उनके गुण अंतकी सीमाको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सबसे अधिक हैं ।  
इसप्रकार जिनकी स्तुति की जाती है ऐसे वे पद्मप्रभ भगवान् तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ जो पहिले सुसीमा नगरी-  
के राजा शत्रुओंको जीतनेवाले श्रीमान् अफगजित हुए थे । पीछे जो तपश्चरण धारणकर तीर्थकर नामकर्मका बंधकर  
अंतिम प्रवेयकमें अहमिंद्र हुए । तदनंतर जो कौशांबी नगरीमें अनंत गुणोंसे सुशोभित, इश्वाकुवंशके शिरोमणि अपना  
और दूसरोंका हित करनेवाले छठवें तीर्थकर हुए थे ऐसे श्रीपद्मप्रभ सब लोगोंका कल्याण करें ॥ ७० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणमद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीनहिंदीभाषानुवादमें पद्मप्रभका पुराण पूर्णकरनेवाला वाचनवां पर्व पूर्ण हुआ ॥ ५२ ॥

## अथ त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ।

तत्त्वं सत्त्वादिना येन नैकेनाप्यवधारितं । तद्विच्छाद्यसावेव स सुपाश्वस्तु मे गुरुः ॥ १ ॥ विदेहे धातकीखंडे प्राच्या सी-  
तोत्तरे तटे । सुकच्छविष्ये नन्दिष्येणः क्षेमपुराधिपः ॥ २ ॥ प्रज्ञाधिक्रमयुक्तस्य स्वानुरक्तानुजीविन । तस्यानुगुणदैवस्य राज्यश्रीः  
सुखदायिनी ॥ ३ ॥ शरीर न भिषग्रध्य न राज्यमपि भन्निभि । तथापि तद्द्वयं तस्य क्षेमवत्सुकृतोदयात् ॥ ४ ॥ पुरुषार्थत्रय त-  
स्मिन्नेकस्मिन्नेव सुस्थित । परस्परौपकारेण तस्मात्तस्योपकारिता ॥ ५ ॥ जितारियमृजुस्यस्य विजिगीषैहलौकिकी । मामूनन्वस्ति  
सन्मार्गं रक्षत पारलौकिकी ॥ ६ ॥ एवं राज्यसुखं श्रीमान् बंधुमित्रानुजीविभिः । सहसानुभवजातवैराग्यातिशयः सुधीः ॥ ७ ॥  
माहोभयोर्दयाविद्वकायवाक्चित्तवृत्तिभिः । बद्ध्वा कर्माणि तैर्नीतो जातो गतिचतुष्टये ॥ ८ ॥ संसारे चक्रक्रांत्या दुस्तरे दुःखदूषितः ।

## अथ त्रिरेपनवां पर्व ।

जिन्होंने जीवादि तत्त्वोंको सत्त्व असत्त्व आदि किसी एकसे निश्चित नहीं किया है तथापि वे उन तत्त्वोंके जान-  
कार कहलाते हैं ऐसे श्रीसुपाश्वनाथ भगवान मेरे गुरु हों ॥ १ ॥ धातकी खंडके पूर्वविदेह क्षेत्रमें सीता नदीके  
उत्तर किनारेपर सुकच्छा देशके क्षेमपुर नगरमें नन्दिष्येण नामका राजा राज्य करता था ॥ २ ॥ वह राजा बुद्धिमान  
और पराक्रमी था, अपने अनुचर वा प्रेम करनेवालोंको योग्य जीविका देकर संतुष्ट करता था इसलिये देव भी  
उसके गुणोंके अनुसार ही चलता था इन सब गुणोंके होनेसे उसकी राज्यलक्ष्मी बड़ी ही सुख देनेवाली थी ॥ ३ ॥  
न तो वैद्य लोग उसके शरीरकी रक्षा करते थे और न मंत्री लोग राज्यकी ही रक्षा करते थे तथापि उसके पुण्यकर्मके  
उदयसे शरीर और राज्य दोनों ही सुखी थे ॥ ४ ॥ धर्म अर्थ काम ये तीनों ही पुरुषार्थ परस्पर एक दूसरेका  
उपकार करते हुए उस एकमें ही अच्छीतरह ठहर गये थे इसलिये यह एकतरहेसे उस राजाका उपकारपना  
ही था ॥ ५ ॥ शत्रु राजाओंको जीतनेवाले उसकी जीतनेकी इच्छा केवल इस लोकसंबंधी ही नहीं थी किंतु  
अष्ट मोक्षमार्गकी रक्षा करनेवाले उसके परलोकके जीतनेकी भी इच्छा थी ॥ ६ ॥ इसप्रकार वह श्रीमान् बंधु  
मित्र और अनुचरोंके साथ साथ राज्यसुखका अनुभव कर रहा था इतनेमें ही उस बुद्धिमानको वैराग्यका अतिशय  
उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ वह विचार करने लगा कि रागादिव रूप दोनों प्रकारके मोहकर्मके उदयसे मिली हुई मन बचन  
कावकी प्रवृत्तिसे कर्मोंका बांधकर फिर उन्हीं कर्मोंके उदयसे यह जीव चारों गतिधर्मोंमें प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ अत्यं-



वीतायै सुचिं आम्यमय मय्यो यदृच्छया ॥९॥ लब्धकालादिरासोपि मुक्तिमार्गं सुदुर्गमं। रमे रामादिभिर्मुखो विविधमां कायुक्तामिमं ॥ १० ॥ निर्मुल्याखिलकर्माणि निर्मलो लोकमूर्खगः। किल नाप्नोमि निर्वाणं सार्वं सर्वज्ञमापितं ॥ ११ ॥ इत्याविष्कृतसंघितः सु-  
त्वांतः स्वस्य संततो। सुखायात्मजमालीयं पतिं धनपतिं सतां ॥ १२ ॥ नरेन्द्रेणुभिः सार्वं निर्धूतानो रजो मुदा। अहर्नन्दनपू-  
ज्यावेवासित्वं प्रत्यपयत ॥ १३ ॥ एकादशागधारी सन्तुक्तयोग्यकारणैः। स्वीकृत्य तीर्थकृताम सत्यत्यागैः समाधिमान् ॥ १४ ॥ शुक्ललेख्यो द्विहस्ता-  
मको प्रवेयकमध्यमे। अहमिदं शुभदाख्ये विमाने मध्यमेऽजनि ॥ १५ ॥ चतुःशतेषु पञ्चोत्तरेष्वहं स्वेषु निधसन्। शून्यत्रितयसप्तद्विप्रमिताख्येषु विध-  
गन् ॥ १६ ॥ विक्रियावधिवीथित्विदुयातासप्तमभूमिकः। सप्तविंशतिवार्धयुय शुक्लाखिलं सुख ॥ १७ ॥ आधुरते ततस्तस्मिन्नागमिव्यति मूलं।  
त कठिनतासे तरने योग्य इतसंसारमें अरहटकी घडीके समान भ्रमण करता हुआ यह जीव दुःखसे दूषित हो रहा है।  
अनादि कालसे बहुत दिनतक भ्रमण करता हुआ आज यह मय्य अपनी इच्छानुसार काल आदि लब्धिको पाकर  
अत्यंत कठिन ऐसे इस मोक्षमार्गको प्राप्त हुआ है तथापि यह पूर्व स्त्री आदिकोंके साथ ही क्रीडा करता है इसलिये  
कामियोंमें भी मुख्य ऐसे मुझे बारवार धिक्कार हो ॥ १-१० ॥ इसलिये समस्त कर्मोंका नाशकर निर्मल होकर तथा  
लोकके ऊपर विराजमान होकर सर्वज्ञदेवके कहे हुए और सबका हित करनेवाले निर्वाणको अवश्य ही प्राप्त होऊंगा  
॥ ११ ॥ इसप्रकार विचारकर और मनमें शांत होकर अपनी प्रजाकेलिये संजनोंके स्वामी धनपति नामके अपने  
पुत्रको स्थापन किया और आप अनेक राजाओंके साथ वनमें जाकर प्रसन्न होकर मोहनीय कर्मका नाश करता हुआ  
पूज्य अहर्नंदन मुनिका शिष्य बन गया ॥ १२-१३ ॥ ग्यारह अंगोंको पढ़कर सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया तीर्थ  
कर नाम कर्मका बंध किया और अंतमें समाधि मरणकर मध्यम प्रवेयकके सुभद्र नामके मध्यम विमानमें अहमिद उत्पन्न  
हुआ, वहांपर उसकी शुक्ल लेख्या थी दो हाथका शरीर था ॥ १४-१५ ॥ चारसौ पांच दिन वा साडे तेरह महीने बाद  
वह श्वास लेता था, सचाईस हजार वर्षवाद मानसिक आहार करता था ॥ १६ ॥ उसकी विक्रिया ऋद्धि अवधि ज्ञान चल कांति  
आदि सातवीं पृथ्वी तक थे और सचाईस सागरकी उसकी आयु थी। वहके पूर्ण सुखोंका उपभोगकर आयुके अंतमें जब  
उसके पृथ्वीपर अवतार लेनेके दिन आए तब इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें श्रीवृषभदेवके वंशमें  
उत्पन्न हुए सुप्रतिष्ठ नामके महाराज राज्य करते थे, उनकी रानीका नाम पृथ्वीविणा था, उनके घरके आगनमें छह  
महीने पहिलेसे ही देवरूपी बादल उचम रत्नोंकी वर्षा करने लगे थे। भादों सुदी छठके दिन विशाला नक्षत्रमें उसने



दोपैसिन् भारते काशिविषये वृषभान्वये ॥ १८ ॥ अथलक्ष्मिहाराजो वाराणस्या महीपतिः । तत्सर्वास्त्वृथिवीषेणा देवो तस्या युद्धान्गणे ॥ १९ ॥ वष्मा-  
सात् सारत्नानि बभूवुः सुरवारिदाः । स्तितपष्टपा विषाज्जात्रां मासि आश्वपदे शुभान् ॥ २० ॥ स्वप्नान् षोडश संवीक्ष्य वारणं चाननागत । आत्वा पत्यु  
फल तेषां परितुष्टाग्निमित्रके ॥ २१ ॥ अथयोगे स्तितपष्टपादस्मां त सुरोत्तम । सोदपीपदुदुतुगुयैरावतमिर्वितं ॥ २२ ॥ सुरैर्दमैर्दरस्यात्ते कृतजन्म-  
होत्सवैः । तस्माकारि सुगर्भाख्या तत्पादानतमसिभि ॥ २३ ॥ कोटीनवसहस्रेषु पद्मप्रभजिनातरे । सागरोपमसह्येषु गते तद्गतजीवितः ॥ २४ ॥ अ-  
न्यष्टमुत्पक्षोः कर्णपूर्वजीवी धनुःशतद्वयोत्सेयो विंशुः कात्या ह्येपयप्राप यौवन ॥ २५ ॥ कक्षा पञ्च सुपूर्वाणां कामार्थे गतवत्यत । धन लब्धुं वदान्यो वा साम्राज्यं  
स्वीचकार सः ॥ २६ ॥ सुश्रूषाद्यष्टीधुर्यान् सर्वशस्त्रविशारदान् । नटान्सपेटकान् प्रेक्ष्यामर्तकान्त्वलयकोविदान् ॥ २७ ॥ सुकठान् गायकान् श्रव्यान् दृष्टान्  
यातोद्यवादान् । वनर्मन्त्रिवानन्याभानाविद्याकलगुणान् ॥ २८ ॥ स्त्रीश्च तादृगुणोपेता गंधर्वाङ्गीकृतसत्त्वा । आनीय तस्य देवैर्दो विनोदैर्करोतुस्तु २९

शुभ सोलह स्वप्न देखे तथा अंतमें सुइमें घुपता हुआ हाथी देखा अर्थात् उस दिन भगवान् सुपार्श्वनाथ पृथ्वीषेणा  
के गर्भमें आए । पृथिवीषेणा पतिसे उन स्वप्नोंका फल सुनकर बहुत संतुष्ट हुई । जेठ सुदी द्वादशीके दिन अग्निमित्र  
योगमें ऐरावतके समान ऊंचे और पुण्यवान् उम अहमिंद्रके जीवको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया ॥ १७-२२ ॥ इन्द्रादि  
देवोंने आकर मेरु पर्वतपर उनका अभिषेक कर जन्मोन्मव मनाया सुपार्श्वनाथ उनका नाम रखवा और चारचार उनके  
चरण कमलोंमें अपना मस्तक नवाया ॥ २३ ॥ पद्मप्रभके मोक्ष जानेके वाद नौ हजार करोड़ सागर घीत जानेपर  
भी सुपार्श्वनाथ हुए थे, उनकी आयु भी इसी समयमें समाप्त है ॥ २४ ॥ उनकी आयु बीम लाख पूर्वकी थी और  
शरीरकी ऊंचाई दो सौ धनुष थी, अपनी कान्तिसे वे चंद्रमाको लज्जित करते थे, इस तरह उन्होंने यौवन अवस्था  
प्राप्त की ॥ २५ ॥ जब पांच लाख पूर्व उनके कुमार कालके व्यतीत हो गये तब केवल त्याग करनेकेलिये दूसरे  
कुवेरके वा दानीके समान उन्होंने राज्यपद स्वीकार किया ॥ २६ ॥ उन दिनोंमें इंद्र सुश्रूषा आदि आठ  
प्रकारकी बुद्धिको अच्छी तरह धारण करनेवाले, सब साधकोंमें निपुण, नृत्य करनेमें पंडित, देखने योग्य सुंदर और  
झुंडके झुंड ऐसे नृत्य करनेवालोंको बुलाकर, सुनने योग्य साठे सात तरहके वाजोंको बजानेवाले तथा जिनके अच्छे  
कंठ हैं ऐसे गानेवालोंको बुलाकर, विनय करनेवाले मंत्री तथा अन्य अनेक विद्या कला आदि गुणोंको जाननेवाली  
अनेक स्त्रियोंको बुलाकर, गंधर्व आदिकोंकी उत्तम सेना बुलाकर तथा सबसे अनेक तरहके विनोद कराकर भगवान्  
को प्रसन्न करता था ॥ २७-२९ ॥ बाकी स्पष्टन रसना ब्राह्मण इन तीनों इक्षियोंके उत्कृष्ट पदाधीसे वे निरंतर सुखोंका

शेषेन्द्रियत्रयार्थेषु तत्रोक्तैर्निर्तरं । सुखं तदेव ससारे यदनेनानुभूयते ॥ ३० ॥ निःस्वेदत्वादिसमासंभूतातिशयाष्टकः । सर्वप्रियहितालापी निर्वाणपा-  
 रोचनीयक ॥ ३१ ॥ प्रसन्नोऽनन्यवल्यायुर्गुण्युष्णशुक्लात्मक । कल्याणकाय विज्ञान प्रियंगुप्रसवच्छवि ॥ ३२ ॥ मंदाशुभानुभागोयं शुभोक्त्याशुभाव-  
 भाक् । निर्वाणाभ्युदयैर्धर्म्यकंठिकाकातकंठक ॥ ३३ ॥ स्वपादनखसंकातनिखिलेद्रमुखांबुज । एषते श्रीबरोणाघटुप्यंभोधा प्रमुदमान् ॥ ३४ ॥ स्वायुरा-  
 नुणनिर्जरा ॥ ३५ ॥ पूर्वांगविभासिन्मूललक्षपूर्वायुषि स्थिते । विलोक्यर्जुनपरावर्तं सर्वं भावयतोऽधुवं ॥ ३६ ॥ कदाचित्काललक्ष्यास्य विशुद्धोद्भव-  
 पेक्षे । छायाकीडेव सा सर्वा समाज्यश्रीरभासत ॥ ३७ ॥ ईदृशी नक्षरी ज्ञाता नेय मायासमी मया । विनिघर्मा के न मुह्यति भोगरागाद्यचेतसः ॥ ३८ ॥  
 अनुभव करते थे, संसारमें सुख ही वही है जिसे सुशार्श्वनाथ अनुभव करते थे ॥ ३० ॥ शुभनाम कर्मके उदयसे  
 निःस्वेदत्व (पसीनाका न होना) आदि आठ गुणोंसे वे विभूषित थे, सबको प्रिय थे, हितरूप वचन कहते थे । उनका  
 व्यापारग्रहित अनंत चीर्य था, वे मदा प्रमत्त रहते थे, उनकी आयुका घात नहीं हो सकता था, गुण, पुण्य और  
 सुखरूप थे, उनका शरीर कल्याणस्वरूप था, मति शुभ अवधि तीनोंको वे धारण करनेवाले थे, प्रियंगुके फूलके  
 समान उनकी कांति थी ॥ ३१-३२ ॥ उनके अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग मंद था और शुभप्रकृतिगोंका अनुभाग  
 उच्छृष्ट था तथा मोक्षका अभ्युदय और ऐश्वर्यकी कड़ीसे कंठ बहुत ही सुंदर था ॥ ३३ ॥ उनके चरकर्मोंके नखों  
 की कांति सब इंद्रोंके सुखकमलोंका तिरस्कार करती थी और लक्ष्मीको धारण करनेवाले वे सुवक्षी अगाध समुद्रमें  
 जगते हुए बढ़ रहे थे ॥ ३४ ॥ सब तीर्थंकरोंके अपनी आयुके प्रारंभके आठ वर्ष बाद ही प्रत्यात्मान और संज-  
 लनकपायका उदय रहता है अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कपायका उपशम होजाता है इसलिये आठ वर्षके बाद ही  
 सब तीर्थंकरोंके देशसंयम हो जाता है ॥ ३५ ॥ यद्यपि इनके भोगोपभोगकी वस्तुएं सब थीं तथापि आत्माको वश  
 करनेवाले उनके देश संयम होनेसे सब प्रवृत्ति नियमितरूप थी इसलिये उनके असंख्यातगुणी निर्जरा होती थी ॥  
 ३६ ॥ जब उनकी आयु बीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्वकी रह गई थी तब ऋतुकी पलटनको देखकर संसारके सब  
 पदार्थोंको अनित्य समझने लगे थे ॥ ३७ ॥ उसी किसी एक समय काललब्धिके निमित्तसे उनके निर्मल ज्ञानरूपी  
 दर्पणमें समस्त राज्यलक्ष्मी छायाकी कीड़ाके समान अस्थिर जान पड़ी थी ॥ ३८ ॥ वे विचारने लगे थे कि मैं इस  
 अनित्य राजलक्ष्मीको इसतरहकी नहीं समझ रहा था वास्तवमें यह नित्य नहीं है यह तो मायारूप है इसतरह मिथ्या-  
 रूप समझनेवाले हमने बार बार विकार हो अथवा जिनकेविच भोगोंके प्रेमसे अंधे हो जाते हैं वे सब मोहित  
 हो ही जाते हैं ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उनके उदार मनरूपी समुद्रमें चंद्रमाके समान ज्ञानका उदय हुआ और उसीसमय

इत्युदात्तो मनोभोवी बोधिर्विभुरिवोदगत । देवपर्यस्तदेवीनं प्रस्तुतायै समस्तुभ्य ॥ ४० ॥ सुरैस्त्वां समारुह्य शिविका स मनोगति । सहेतुकवने शुक्ले  
ज्येष्ठे षष्ठोपवासशृत् ॥ ४१ ॥ मर्माणमर्धे द्वादश्यां सायाह्ने संयमं प्रित- । दृष्टे षष्ठ सहरण तदापोपात्यबोधनं ॥ ४२ ॥ पत्रिमे दिवसे सोमसेटे त  
कनकशुति । दृष्टो महेन्द्रतारुण्य प्रतीस्यापामराचनं ॥ ४३ ॥ सुपार्थो मीनामास्याय छात्रास्यै नववर्षक । सहेतुकवने मूले शिरीषस्य द्यूयुणोयित ४४  
गर्भोवतारक्षेत्रं कृष्णपष्ठपरारुह्य । समुपश्रातद्वक्षणं मंत्रासामरपूजनः ॥ ४५ ॥ बलाह्यसुहृत्पंचातरंगोक्तगणयुद्धत । अन्यत्रिशयपक्षीकसर्वपूर्वच-  
राधिप ॥ ४६ ॥ अन्यद्विरेत्रवार्यनिधयपक्षमानोक्तशिक्षक । अन्यत्रयनवद्वाततृतीयावगमश्रित ॥ ४७ ॥ स्वयैकैकानिरेट्टकैवलावगमान्वित । अन्यद्वयत्रि-  
पंचकसह्यवैकिमकान्वित ॥ ४८ ॥ अन्यपंचैकरंगोक्तमनःपर्ययबोधन । पदुशानाटसहस्रैकैकत्रादिवंदित्वा रूपति ॥ ४९ ॥ विभीकृतत्रिलक्षोक्तमुनिवृत्तारका-  
प्रियः । मीनार्थायिकात्रिशतसहस्रतत्रिलक्षक ॥ ५० ॥ त्रिलक्षत्रायक

लौकांतिक देवोंने आकर समयानुसार पदार्थोंका स्वरूप चतलाकर उनकी स्तुतिकी ॥ ४० ॥ देवोंके द्वारा उठाई  
गई समनोगति नामकी पालकी पर सवार होकर सहेतुक नामके वनमें गये और ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन गर्भके  
विशाखा नक्षत्रमें शामके समय बेलाका नियम लेकर एक हजार राजाओंके साथ साथ संयम धारण किया । दीक्षा  
लेनेके बाद ही उनके मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ४१-४२ ॥ पारणाके दिन सोमसेट नामके नगरमें सुवर्ण-  
कीसी कांतिवाले राजा महेन्द्रदत्तने पटगाहनकर उन्हें आहार दिया था और देवोंके द्वारा पंचाश्रयोंकी वर्षासे वह  
पूजित हुआ था ॥ ४३ ॥ तदनंतर नौ वर्ष तक वे सुपार्थनाथ भगवान मान धारणकर छद्मस्थ अवस्थामें रहे थे और  
फिर सहेतुक वनमें शिरीषके वृक्षके नीचे बेलाका नियम लेकर विराजमान हुए थे ॥ ४४ ॥ वहींपर उन्हें फाल्गुन  
कृष्णा षष्ठीके दिन शामके समय गर्भके विशाखा नक्षत्रमें केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ था और उसी-  
समय इंद्रादि देवोंने आकर समवसरणकी रचनाकर उनकी पूजा की ॥ ४५ ॥ उनके समवसरणमें बलको आदि लेकर  
पिचानवे गणधर थे, दो हजार तीस ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार थे ॥ ४६ ॥ दो लाख चत्तलीस हजार नौ  
सौ बीस शिक्षक थे, नौ हजार अवधिज्ञानी थे ॥ ४७ ॥ ग्यारह हजार केवलज्ञानी थे, पंद्रह हजार तीन सौ विक्रिया  
श्रद्धिको वारण करनेवाले थे ॥ ४८ ॥ नौ हजार एक सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे और दिव्यध्वनिके स्वामी उन  
भगवानकी आठ हजार छह सौ बादी वंदना करते थे ॥ ४९ ॥ इसतरह सब मिलकर तीन लाख मुनियोंके वे नायक  
थे । इनके सिवाय मीनार्थको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार अजिकार्ये थीं, तीन लाख श्रावक और पाँच लाख

धर्मास्तृतीयं वाणीं ब्राह्मणं विहरन्त्यही । पश्चात्तं ह्येव सम्मेदे विहारं मासमुद्वहन् ॥ ५२ ॥ प्रतिमायोगेन त्र्यं सहस्रमुनिभिः समं । फाल्गुने कृष्णसप्तम्या राधाया दिनोदये ॥ ५३ ॥ कृतयुगमकल्याणा कल्पयुगा-सुरोत्तमा । निर्वाणक्षेत्रमत्रेति परिकल्प्यागमन्त्सिद्धं ॥ ५४ ॥ दुर्बारा दुरितोरुणजुस-मिति निष्पन्ना नीचिभ्यन् तूर्णा युद्धमविधित कतिपया काष्ठा प्रतिष्ठा गतः । निष्ठां दुष्टतमां निनाय निपुणे निर्वाणकाष्ठामित ओष्ठो दाम्बुक्ताचिरं परि-तिलमोच्चदु तीर्थरुद्धः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुपार्श्वस्वामिन पुराणं परिसमाप्तं त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥ ५३ ॥

आविकार्ये उनकी पूजा करती थीं, तथा असंख्यात देव देवी और संख्यात तिर्यंच उनकी सेवा करते थे ॥ ५०-५१ ॥ इसतरह धर्मास्तृतीय वाणीका उपदेश देते हुये उन्होंने आर्य क्षेत्रकी सब पृथ्वीपर विहार किया । अंतमें विहार करनेका संकोचकर सम्मेद शिखरपर जा विराजमान हुए एक महीनेतक योग निरोधकर प्रतिमायोग धारण किया और फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन राधा अर्थात् विशाखा नक्षत्रमें सूर्योदयके समय एक हजार मुनियोंके साथ साथ मोक्ष पधारे ॥ ५२-५३ ॥ तदनंतर पुण्यवान कल्पवासी उत्तम देवोंने ( इंद्रादिकोंने ) उसीमय निर्वाण कल्याणकी पूजा की, सम्मेद शिखरको निर्वाण क्षेत्र ठहराया और फिर सब अपने अपने स्वर्गको चले गये ॥ ५४ ॥ अत्यंत बुद्धिमान और निपुण ऐसे जिन सुपार्श्वनाथ भगवानने अत्यंत कठिनतासे निवारण करनेयोग्य ऐसे पाप्मरूपी बड़े भारी शत्रुओंके समूहको क्रियारहित कर दिया, जिन्होंने द्रष्ट वासनाओंको दूर किया, जो मोक्षके समीप जा पहुंचे और जो प्रतिष्ठाओंकी परम सीमातक जा पहुंचे जिन्होंने द्रष्ट वासनाओंको दूर किया, जो मोक्षके समीप जा पहुंचे और जो सबमें श्रेष्ठ हैं ऐसे श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामी बहुत दिनसे परिचय रखनेवाले हम लोगोंको शीघ्र ही अपने समीप करें । ॥ ५५ ॥ जो पहिले भवमें क्षेमपुर नगरके स्वामी तथा सबके द्वारा बंदना करने योग्य ऐसे नंदिपेण राजा थे, फिर जो तपश्चरणकर मध्यके नवग्रैवेयकमें अहर्निद्र हुए और फिर जो बनारस नगरमें भगवन्त शत्रुओंको जीतनेवाले और इक्ष्वाकु वंशके तिलक ऐसे महाराज सुपार्श्वनाथ हुए ऐसे वे सातवें तीर्थकर भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें सुपार्श्वनाथ स्वामीके पुराणको समाप्त करनेवाला तिरपनवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

## अथ चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ।

नीलैकवर्णता सर्वा सभा य प्रमया स्वया । झुद्धितामनयच्छुद्ध शुद्धै चंद्रप्रभोऽस्तु न ॥ १ ॥ देहप्रभैव वाग्यस्याह्मलिन्मपि च बोधिनी । तत्रमामि नभोभागे सुरतारापरिष्कृत ॥ २ ॥ नामप्रदोपि यस्याघं निहल्यखिलमंगिनां । न हन्यात्किं नु तस्यार्च्यं चरितं श्रुतिगोचर ॥ ३ ॥ तत्पुराण ततो वक्ष्ये भवदा-ससमादहं । श्रोतव्यं भव्य ते श्रद्धा निधाय मगधाधिप ॥ ४ ॥ दान पूजा तथान्धन मुक्तये ह्यनैन ससृक्तं । तत्पुराणश्रुते श्रव्यं तत्तदेव हितेतिभि ॥ ५ ॥ अहं हिर्भोषित सूक्तमनुयोग्यदुष्टय । तेषु ह्यं पुराणाणि तस्मात्प्रोक्तः श्रुतिक्रम ॥ ६ ॥ सा जिह्वा तां मन कर्णौ यंबक्तिश्रुतिचिंतना । पूर्वावीनां पुरा-णाणां पुरुषार्थोपदेशिना ॥ ७ ॥ अस्त्यत्र पुष्करद्वीप तन्मध्ये मानुषोत्तर । तृसंसारस्य सीमासौ सर्वतो बलयाकृति ॥ ८ ॥ तदभ्यंतरभागे स्तो मदरी पू-

## अथ चौवनवां पर्व ।

जिन्होंने अपनी कांतिसे सब सभाके एक रंगकी बनाकर अत्यंत शुद्ध कर दी ऐसे वे शुद्ध चंद्रप्रभ भगवान हम लोगोंकी शुद्धिके लिये ही अर्थात् हम लोगोंकी शुद्ध करें ॥ १ ॥ जो आकाशमें देवोंके समूहरूपी तारा मंडलसे बिरे रहते हैं और शरीरकी कांतिके समान जिनकी वाणी प्रसन्न करनेवाली मी है ऐसे उन चंद्रप्रभ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ जिनका नाम लेना ही जीवोंके समस्त पापोंको नाश कर देता है फिर भला उनका सुना हुआ पुण्य चरित्र क्यों न सब पापोंको दूर कर देगा ? ॥ ३ ॥ इसलिये मैं पहिलेके सात भवोंसे लेकर उनका पुराण कहता हूं । गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कह रहे हैं कि हे भव्य श्रेणिक तू श्रद्धा रखकर सुन ॥ ४ ॥ दान पूजा तथा और मी चारित्र आदि यदि ज्ञानसे भिन्ने ही ज्ञान सहित ही तो मोक्षके कारण होते हैं तथा वह ज्ञान इस पुराणके सुननेसे होता है इसलिये अपना हित चाहनेवालोंको यह पुराण अवश्य सुनना चाहिये ॥ ५ ॥ अरुहत देवने जो, अनुयोगोंके द्वारा चारप्रकारके सूक्त बतलाये हैं उनमें सबसे पहिले पुराण है । भगवानने इन पुराणोंसे ही सुनने का क्रम बतलाया है ॥ ६ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका कहनेवाले श्रीशृषभदेव आदि तीर्थंकरोंके पुराणोंको जो जीम कहती है जो कान सुनते हैं और जो मन इनका विचार करता है संसारमें वही जीम वही मन और वही कान समझना चाहिये शेष नहीं ॥ ७ ॥ इस मध्यलोकमें एक पुष्कर द्वीप है उसके बीचमें मानुषोत्तर पर्वत है यह मानुषोत्तर पर्वत उस द्वीपमें चारो ओर कंकणके आकारका पड़ा हुआ है और यही पर्वत संसारकी वा मनुष्य लोककी सीमा है ॥ ८ ॥ उसके भीतर दो मंदराचल हैं एक पूर्व मंदर और दूसरा

वपथिमौ । पूर्वस्मिन्मंदरे देशो विदेहे पथिमे महान् ॥ ९ ॥ सीतोदोदत्तटे दुर्गजनयन्यावरचितै । अकृष्टपच्यसस्याद्यै सुगंधिर्भृगुरभात् ॥ १० ॥  
 तस्मिन्देसो जना सर्वे वर्णत्रयविकल्पिता । स्निग्धा सुस्मेक्षणा प्रेक्ष्या । विलोचनविशेषवत् ॥ ११ ॥ ऋजवो धार्मिका वीतदोषा क्लेशसहिष्णव ।  
 कर्मका सफलारभा तप स्याद्व्यतिशेरेते ॥ १२ ॥ जलाशयाश्च सुस्वच्छा सुखभोग्याः सपद्मका । संतापच्छेदयोगाधा मनोनयनहारिणः ॥ १३ ॥ क्षे-  
 त्राणि सर्वधान्यानि सर्वतर्पणि सर्वदा । संपन्नानि महीभूतं कोष्ठगाराणि वा वयुः ॥ १४ ॥ ग्रामा कुक्कुटसपात्या सारा बहुकृपीबला । पशुधान्यघना-  
 पूर्णा नित्यारभा निराकुला १५ ॥ सीतदहादिवायवाश्रितमा सर्वसंपदः । वर्णाश्रमममाकीर्णस्ते स्थानीयाऽनुकारिण ॥ १६ ॥ असवारिपयोपेत सफ-  
 लार्दवद्वल्म । अदृष्टाष्टभयं प्रातर्वीयितन्वीवनाश्रयः ॥ १७ ॥ यद्यज्जनपदस्योक्त नीतिशास्त्रविचारदै । लक्षणे तस्य तस्याय देशो लक्षत्वमीयिवाङ् १८-

पथिम मंदर । पूर्व मंदराचलके पथिमकी ओर एक बड़ा भारी विदेह क्षेत्र है उसकी सीता नदीके उत्तर किनारेपर  
 एक सुगंधि देश है वह देश योग्य किला-वन खाई, खानें और विना बोये हुए धान्य आदि गुणोंसे बहुत ही सुशो-  
 भित था ॥ ९-१० ॥ उस देशमें सब लोग तीन वर्णोंमें विभक्त थे, और विशेष नेत्रोंके समान कोई स्निग्ध (कुछ  
 चिकने) थे, कोई सूक्ष्म देखने योग्य अर्थात् बुद्धिमान थे और कोई देखने योग्य थे ॥ ११ ॥ वहाँके धर्मात्मा दोष-  
 रहित सरल परिणामी थे तथा सब तरहके क्लेशोंको सहन करनेवाले थे, किसान लोग जो कुछ करते थे वह सब  
 सफल होता था और तपस्वियोंको जो तपश्चरणका फल मिलता है उससे भी अधिक फल उन्हें मिलता था ॥ १२ ॥  
 वहाँके जलशय अत्यंत स्वच्छ थे, सब कोई सुखसे उनका उपयोग करसकता था, उनमें कमल फूल रहे थे, वे संताप  
 को दूर करनेवाले थे, अगाध थे और मन तथा नेत्रोंको हरण करनेवाले थे ॥ १३ ॥ वहाँके खेत सवतरहके धान्योंसे  
 भरे रहते थे वे सदा सबको तृप्त करनेवाले थे और राजाके भरे हुए धानके कोठोंके समान सुशोभित होते थे ॥ १४ ॥  
 गांव सब इतने समीप थे कि सुर्गा भी उड़कर एकसे दूसरे पर जा सकता था, वे सब उत्तम थे, उनमें बहुतसे कि-  
 सान रहते थे, पशु धन धान्य आदिसे भरपूर थे और सदा कामकाज करनेवाले तथा निराकुल थे ॥ १५ ॥ वे गांव  
 दंड आदिकी बाधासे रहित थे इसलिये वे सब तरहकी संपदाओंसे भरे हुए थे, वर्णाश्रमसे भरपूर थे और वहींके  
 लोगोंका तथा शहरोंका अनुकरण करते थे ॥ १६ ॥ मार्गमें जगह जगहपर कंधेतक जलभरा हुआ था, फल सहित  
 विना काटोंके वृक्ष थे, वहाँपर आठप्रकारके मधुमेसे कोई भी भय दिखाई नहीं पडता था और समीपवर्ती मधु गलियां  
 रूषी स्त्रियां वनोंके आश्रय थीं ॥ १७ ॥ नातिशास्त्रके पंडित लोगोंने देशके जो जो लक्षण कहे हैं वे सब इस देशमें

हार्तिर्धनस्य संस्वाने सक्तियायाः फलावधौ । उन्नतेर्विनयस्याने प्राणस्य परमायुषि ॥ १९ ॥ तुरेणु कुचगोरेव काठिन्यमति वर्तते । गजेज्वेव प्रपातो ऽपि तरुज्वेव दरीषु च (दरीसिपु) ॥ २० ॥ दडच्छन्ने तुलया च नागरादिषु तीक्ष्णता । रोधन सेतुवधेषु शब्दशालेऽपवादावाक् ॥ २१ ॥ निखिंशशब्द खट्वेणु द्विश्रित्त्वं हुताशने । तापकत्व खगभीषौ मारकत्व यमाह्वये ॥ २२ ॥ घर्मे जैनैर्द्र एवास्मिन् दिवसे वा दिवाकरः । ततो नैरातवादानामुल्लूकानामिवोद्गम ॥ २३ ॥ दुर्गाण्यष्ट यथास्थानमातयेनानुमस्थितं । धृतानि यत्रशब्दावुयवसंघवरक्षकैः ॥ २४ ॥ तस्य मध्ये शुभस्थाने ललाटे वा विशेषकः । विशेषैः सर्वभ्रमणां श्रीपुं बामरं पुरं ॥ २५ ॥ विकसनीलीनेत्रसरोजालिविलोचनं । स्वच्छवारिसरोर्वर्द्धसत्परपुराश्रयि ॥ २६ ॥ नानाप्रसूनसुखादकेसरासवपायिनः । तत्रालिने

आकर मिलते थे ॥ १८ ॥ उस देशमें धनकी हानि केवल सत्पात्रोंको देते समय होती थी, क्रियाकी हानि उसका फल प्राप्त होनेपर होती थी, उन्नतिकी हानि विनयकी जगहपर होती थी और प्राणोंकी हानि उत्कृष्ट आयुके वीत जानेपर होती थी ॥ १९ ॥ यदि ऊंची चीजोंमें कठिनता थी तो कुचोंमें ही थी दूसरी जगह नहीं इसीतरह प्रपात अर्थात् पड़ना भी केवल हाथियोंमें या अर्थात् हाथियोंसे मद बहता था, अथवा तराईके नीचे उत्पन्न होनेवाले वृक्षों का भी पतन होता था ॥ २० ॥ दंड छत्रोंमें अथवा तराजूमें था, तीक्ष्णता सोंठ मिरच आदिमें ही थी, रोकना केवल पुलोंमें ही था और अपवाद केवल व्याकरणशास्त्रमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २१ ॥ निखिंश अर्थात् निर्दयता यह शब्द केवल तलवारमें था विश्वासित्व अर्थात् सब चीजें खा जाना यह शब्द केवल अग्निमें ही था दूसरी जगह नहीं तापकत्व अर्थात् संताप देनेवाला यह शब्द केवल सूर्यमें था और मारकत्व अर्थात् मारनेवाला यह शब्द केवल यमराजमें था दूसरी जगह नहीं ॥ २२ ॥ जिसप्रकार सूर्य दिनमेंही रहता है उसीप्रकार उमदेशमें घर्म शब्द केवल जिनें द्रुदेवके कहे हुए घर्ममें ही था दूसरी जगह नहीं इसलिये ही वहां उल्लूओंके समान एकांतवादियोंका उदय नहीं था ॥ २३ ॥ उस देशमें सदा अपने अपने स्थानपर रखे हुए यत्र शस्त्र जल जौ नमक और रक्षक इनसे भरे हुए किले थे ॥ २४ ॥ उस देशके मध्यभागमें ललाटेके समान शुभस्थानमें सवतरहकी मनोहर वस्तुओंसे भरा हुआ स्वर्गके नगरके समान श्रीपुर नगर था ॥ २५ ॥ उस नगरमें जो खिले हुए नील कमलोंके दलोंपर जो भ्रमर बैठे थे वे उसके नेत्रके समान थे और स्वच्छ जलसे भरे हुए सरोवर ही मुंहके समान थे, अतः उन नेत्र और मुहसे वह नगर ऐसा जान पड़ता था मानों दूसरे नगरोंकी शोभाकी ओर इस रहा ही हो ॥ २६ ॥ वहांपर अनेक तरहके फूलोंके स्वादिष्ट केसरके रसकी पीनेवाले भ्रमर भ्रमरियोंके समूहके साथ इसप्रकार जा रहे थे मानो पानक (जिसमें कुछ स्वादिष्ट और पौष्टिक



लिनीवृद्धे प्रयात्यापानकोत्सव ॥ २७ ॥ तदुत्तुंगमहासौवर्गहं समुज्जगारवै । विश्रामं भवतोत्रेत्याह्वयदा घनापनान् ॥ २८ ॥ तदेव सर्ववस्तूनामाकरीभूत-  
मन्यथा । तानि निष्ठा न किं याति तथा भोगैर्निरतरं ॥ २९ ॥ अयदादोक्न्यते तत्तत् स्वप्रयोगेषु सत्तम । ध्यातिः स्वगोचमेवेति करोति मस्तमपि ॥ ३० ॥  
सत्कुलेषु समुद्भूता तत्र सर्वेपि सत्रता । उत्पद्यते यत् प्रेत्य स्वर्गजा शुद्धदृष्टय ॥ ३१ ॥ स्वर्गं त्रिभीदशो वेति तत्रस्थाश्चावर्दशना । मुक्त्यर्थमेव  
कुर्वति धर्मं न स्वर्गमेधया ॥ ३२ ॥ तत्रोत्सवे जना पूजा मंगलार्थं प्रकुर्वते । शोके तदपनोदार्थमेते जनी विवेकिन ॥ ३३ ॥ साध्याश्चैव साध्यते  
जैनवादैः सहैव । धर्मार्थकामास्तज्जातरमेयमुल्लासयिनः ॥ ३४ ॥ द्वीपार्द्धचक्रवालौ वा प्राकारो यन्मरीतवान् । मियेव रविस्तापाक्षीनोऽभून्मणिरदिम-  
यु ॥ ३५ ॥ श्रीपेणो नाम तस्यासीत् पतिः क्षुरपतिवृत्तिः । नतारैर्मन्त्रिभिराशुवाक्विकसिकमायुज ॥ ३६ ॥ पाति यस्मिन् भुव जिह्वा दुष्टा विगतवि-  
रस पीया जाय ) उत्सवमें ही जा रहे हों ॥ २७ ॥ वहाँके ऊँचे राजभवनोपर जो नगाडे वज्र रहे थे वे ऐसे जान पडते थे मानों  
“ आप यहां ठहरिये विश्राम कीजिये ” इसप्रकार गर्जते हुए वादलोंको ही बुला रहे हों ॥ २८ ॥ ऐसा जान पडता  
था मानों वह नगर सब वस्तुओंका खजाना था । यदि वह खजाना न होता तो इसतरह सब वस्तुओंका उपभोग करते  
हुए भी वे समाप्त क्यों नहीं होता ॥ २९ ॥ वहाँपर जो जो चीज दिखाई पडती थी वह सब स्वर्गसे भी अच्छी  
जान पडती थी इसलिये यही नगर स्वर्ग है ऐसा देवोंका भी भ्रम हो जाता था ॥ ३० ॥ वहाँके लोग सब अच्छे कुलों  
में उत्पन्न हुए थे और सभी व्रती थे क्योंकि प्रायः स्वर्गके रहनेवाले शुद्ध सम्यग्दृष्टि ही आकर वहाँ उत्पन्न होते थे ॥ ३१ ॥  
क्या ऐसे ही सुंदर हैं ? इसलिये वहाँके लोग यही कहते थे कि क्या स्वर्ग ऐसा ही है अथवा स्वर्गके रहनेवाले  
नहीं ॥ ३२ ॥ वहाँके बुद्धिमान् लोग किसी उत्सवमें मंगल कामनाकेलिये श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा करते थे और किसी  
शोकमें उसे दूर करनेकेलिये भी जिनराजकी ही पूजा करते थे ॥ ३३ ॥ वहाँके जैन वादी लोग अनेक तरहके सुख  
देनेवाले धर्म अर्थ कामोंको साध्य ( सिद्ध करने योग्य ) पदार्थोंके समान उन्हींसे उत्पन्न हुए हेतुओंसे सिद्ध  
करते थे ॥ ३४ ॥ उस नगरके चारों ओर जो कोट था वह ऐसा जान पडता था मानों आधे पुरुष द्वीपमें  
मानुषोत्तर पर्वत ही आ पडा हो । वहापर लगे हुए मणियोंमें जो प्रतिविम्ब पडता था उससे ऐसा जान पडता था  
धारण करनेवाला श्रीपेण नामका राजा राज्य करता था, जो शत्रु आकर उसे नमस्कार करते थे उनके मस्तकमें लगे  
हुए रत्नोंकी कांतिरूपी जलमें प्रफुल्लित हुए उसके दोनों चरण कमल बहुत ही अच्छे जान पडते थे ॥ ३६ ॥ जिस-



क्रिया । अपूर्वशक्तित्वमंत्रसंश्लेषो वा मुजगमा ॥ ३७ ॥ उपगया येन सवित्य यथास्थानप्रयोजिता । ददु फलमतिस्तीतं समाहृतुवदपितं ॥ ३८ ॥ श्रीकृता, नाम तस्यासीद्विदिता विनयान्विता । सती मृदुपदन्यासा सत्कवेरिह भारती ॥ ३९ ॥ रूपाया क्रीगुणास्तस्या समुपश्रा' सुखावहाः । सुता इव सदा पाल्या वयाश्च गुरुवस्तर्ता ॥ ४० ॥ अरिरमन्मन पत्युस्तस्या रूपादशो गुणा' । स्यादेवकारस्युक्ता नया इव मनीषिण ॥ ४१ ॥ प्रतिच्छद परस्त्रीणा वैधर्म्या विनिर्मिता । गुणनामिव मंजूया स्वयतिप्रतिस्तये ॥ ४२ ॥ अथारं मुखमच्छिन्न सस्नेह समवृसिद । मिथुन सत्समायौर्धर्मिथुन वामरं परं ॥ ४३ ॥ स कदचिन्महीनाथो निष्पुत्रव्यान्धुनाहित । इति खगतमेकाकी सतत्यर्थमर्चितयत् ॥ ४४ ॥ त्रिय ससारवल्लर्य ससुत्रास्तफला- धिता । न चेत्ते तस्य रामाभिः पापाभि किं कृपाणिन ॥ ४५ ॥ य पुत्रवदनाभोज नापरयद्वदयोगत । पदुदंष्ट्रीमुक्ताब्जेन दृष्टेनाव्यस्य तेन किं प्रकार शक्तिवाले मंत्रके समीप मर्प मध क्रियारहित हो जाते हैं उसीप्रकार जब सबको जीतनेवाला वह पृथ्वी- का पालन करने लगा था तब द्रुष्ट लोग सब क्रियारहित हो गये थे ॥ ३७ ॥ उसने अच्छे उपाय सोच सोचकर यथायोग्य स्थानोंमें लगाये थे और उनसे बहुत ही अच्छे फल उत्पन्न हुए थे मानो सब मांगकर ही इकट्ठे किये हों ॥ ३८ ॥ उसके बड़ी विनय करने वाली श्रीकांता नामकी रानी थी जोकि ठीक किसी अच्छे कविकी वाणीके समान थी क्योंकि वाणी जिसप्रकार सती अर्थात् अच्छी और मृदुपदन्यासा अर्थात् सरल पदोंवाली होती है उसीप्रकार वह रानी भी सती थी और मृदुपदन्यासा अर्थात् कोमल चरण रखनेवाली अच्छी चाल चलनेवाली थी ॥ ३९ ॥ रूप आदि स्त्रियोंके जो जो गुण हैं वे सब उसमें सुख देनेवाले उत्पन्न हुए थे वे पुत्रके समान सदा पालन करने योग्य थे और गुरुके समान सज्जनोंके द्वारा नमस्कार करने योग्य थे ॥ ४० ॥ जिसप्रकार स्यात् और एव इन शब्दोंसे मिले हुए नय बुद्धिमानोंके मनको प्रसन्न करते हैं उसीप्रकार उमके रूप आदि गुण पतिके मनको प्रसन्न करते थे ॥ ४१ ॥ नाम कर्म रूमी विधाताने मानों अपनी बुद्धि प्रगट करनेके लिये गुणोंकी पेट्टीके समान अन्य सब स्त्रियोंके नमूनाके समान ही वह बनाई थी ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार देव देवांगनाओंका जोड़ा होता है उसीप्रकार एक साथ वृत्त करनेवाले, स्नेह महित, और कमी न नाश होनेवाले अपार सुखको अनुभव करनेवाले वे दोनों ही स्त्री पुरुष आ मिले थे ॥ ४३ ॥ किसी एक दिन वह राजा पुत्र न होनेका कुछ शोक करने लगा और एकांतमें बैठकर पुत्रकेलिये अपने मनमें ही इसप्रकार सोचने लगा कि ॥ ४४ ॥ स्त्रियां संसारकी बेल हैं और अच्छे पुत्र उनके फल हैं । यदि पुत्र न हुए तो उस पापी मनुष्यकेलिये उन पापिनी स्त्रियोंसे क्या लाभ है ॥ ४५ ॥ जिस मनुष्यने अपने भाग्यके उदयसे पुत्रके

॥ ४६ ॥ तत पुोषस श्रान्तुं श्रुतं स्रुपदेयात् । अनद्यैर्मणिमि पंचवर्णरत्नितकाचने ॥ ४७ ॥ विधाय जिनविमानि प्रातिवर्त्यै सहाष्टमि । भृंगारादिविनि-  
दिष्टैः समतान्यष्टमंगलैः ॥ ४८ ॥ प्रतिष्ठाकल्पसंग्रहैः प्रतिष्ठाप्य क्रियाक्रमैः । कृत्वा महाभियेकं च जिनसंगममंगलैः ॥ ४९ ॥ गंधोदकैः स्नयं देव्या सहैवा-  
॥ ५१ ॥ तदैव गर्भसंक्रान्तिरभूत्स्यास्ततः क्रमात् । आलस्यसंरुचिस्तत्रा जुगुप्सा वा निमित्तिका ॥ ५२ ॥ अशक्तयोः शिवान्योन्यं विजेतुं शुचिरान्युत्तं ।  
कुजयोरादधौ तस्या कालिमानं दिने दिने ॥ ५३ ॥ योपिता भूषणं लब्धा स्नानं नान्यद्विभूषणं । इति स्पष्टयितुं देवा सर्वचेष्टा स्थिता हिया ॥ ५४ ॥  
तस्या भाराक्षमत्वेन भूषणान्युचितान्यपि । दिवस्ताराकुलानीव निशाते स्तप्यता ययुः ॥ ५५ ॥ वाच परिमिता सत्यवित्तत्वेव विभूतयः । विरं वि-  
भूतरूपी कमलको नहीं देखा उसे छह खंडकी लक्ष्मीके मुखकमलको देखनेसे भी क्या लाम है ॥ ५६ ॥ तदनंतर  
पुत्र प्राप्त होनेकेलिये उसने पुरोहितके उपदेशसे बहुमूल्य पांचों रंगोंके मणियोंसे मिले हुए सुवर्णकी जिनप्रतिमाएं  
वनवाह, उनके साथ साथ आठ प्रातिहार्य और भृंगार आदि आठों तरहके मंगल द्रव्य बनवाये प्रतिष्ठाकल्पमें कही  
हुई विधिके अनुसार प्रतिष्ठा कराई और फिर उनका महाभियेक स्नान किया । भगवानकी स्तुति करते हुए उसने भगवानके  
समागमसे मंगल रूप हुए गंधोदकसे स्नान किया अर्थात् वह गंधोदक सब शरीरसे लगाया और रानी  
श्रीकांतके सब शरीरसे भी लगाया, उसके बाद उसने इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें सुख देनेवाली अष्टा-  
क्षिककी पूजाकी ॥ ५७ ॥ इसतरह थोड़ेसे दिन बीत जानेपर किसी एक दिन कुछ जगती हुई उस रानीने  
हाथी सिंह चंद्रमा और लक्ष्मीका अभियेक ये चार स्वप्न देखे ॥ ५८ ॥ उसीसमय उसके गर्भ रहा तथा अनुक्रमसे  
आलस्य और अरुचि होने लगी तंद्रा आने लगी और विना ही कारणके ग्लानि होने लगी ॥ ५९ ॥ उसके दोनों  
कुच मानों एक दूसरेको जीतनेमें अशक्त थे इसलिये ही मानों बहुत दिनवाद दिनपर दिन उन दोनोंके मुख काले  
पडते जाते थे ॥ ६० ॥ स्त्रियोंके लिये एक लज्जा ही प्रशंसनीय आभूषण है इसके सिवाय और कोई अच्छा  
आभूषण नहीं है इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये मानों उसकी सब चेष्टाये लज्जासहित हो गई थी ॥ ६१ ॥  
जिसप्रकार सवरेके समय ताराओंका समूह नहीं रहता उसीप्रकार उससमय मानों भार धारण करनेकी शक्ति न  
होनेसे ही उसके उचित आभूषण भी निकल पड़े थे वे उसके शरीरपर बहुत ही थोड़े रहगये थे ॥ ६२ ॥ अच्छ हृदयवाले  
मनुष्यकी विभूतिके समान उसके वचन भी परिमित ही निकलते थे और बहुत तेर पीछे विश्राम लेलेकर सुनाई पड-

धर्म यथोचितं ॥ ७५ ॥ भोगतृष्णामपास्याशु धर्मेतृष्णात्मानस । दत्त्वा श्रीवर्मणे राज्यं प्रायूजीतज्जिनातिके ॥ ७६ ॥ श्रीवर्मोपि जिह्मोक्त्या धून-  
मिथ्यामहातमा । आस्थातुर्यगुणस्थानमादृशं सोपानमुच्यते ॥ ७७ ॥ सन्निधाने च तस्याय सनिधापयति स्वयं । यथाकाममशेषार्थास्तैः स प्रापेत्सित-  
मुख ॥ ७८ ॥ असौ कदाचिदासाढ्यौगमासीदिने जिनान् । लोघ्याम्यर्च्यं सत्त्वांसंरात्रां हर्म्यतेले स्थित ॥ ७९ ॥ विजोन्म्यापातमुल्काया भोगसारे  
विरक्तवान् । प्राग्विभ्रान्तिमाम्राज्यं श्रीकाताग्रसूने ॥ ८० ॥ अभ्यासे श्रीप्रवेशस्य दीक्षित्वा सुचिरं तपः । विधाय विधिवत्प्राते सन्यस्य श्रीप्रमे गिरौ  
॥ ८१ ॥ श्रीप्रमे प्रथमे कल्पे विमाने सागरोपम-द्विवायुं श्रीधरो नाम्ना देव समुत्पद्यत ॥ ८२ ॥ अणिमादिगुणं सप्तहस्तो वैक्रियकागभाक् । चतु-  
धैलेदयो मासेन निश्चसन् मनसाहरत् ॥ ८३ ॥ वर्षद्वयसहस्रेण पुद्गलानमृतात्मकान् । तप्तं कायप्रवीचाराद्व्यासाद्यद्मानलवधि ॥ ८४ ॥ बलतेजो  
महाविक्रियामि स्वावधिसमित । सुस्थितोनुभवन्तोऽख्यं स्वपुण्यपरिपाकं ॥ ८५ ॥ दक्षिणे धातकीराडे प्राचीञ्चाकारपर्वतात् । भारते विपये श्रीमदल-

किये और यथायोग्य धर्मका स्वरूप सुना ॥ ७५ ॥ उसने शीघ्र ही भोगोंकी तृष्णा छोडदी और धर्मकी तृष्णामें चित्त  
लगाया, राजकुमार श्रीवर्माको राज्य दिया और उन्होंने जिनराजके समीप दीक्षा धारण करली ॥ ७६ ॥ श्रीवर्माने भी  
श्रीजिनेन्द्रदेवकी आज्ञानुसार मिथ्यास्वरूपी महा अधकारको दूर किया और मोक्षमार्गकी प्रथम सीढीरूप चौथा गुण-  
स्थान ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ उस चौथेगुणस्थान वा सम्यग्दर्शनके होते हुए ऐसे पुण्य कर्मोंका बंध वा उदय होता है कि  
जो इच्छानुसार सब पदार्थोंको अपने समीप करलेते हैं और उन पदार्थोंसे फिर इच्छालुभार सुख प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥  
किसी एक समय असाढ़ शुक्ला पौर्णमासीके दिन भगवान् जिनेन्द्रदेवकी उपासनाकर पूजा की और गतकी अपने बड़े  
लोगोंके साथ मंजानकी ऊपरकी गच्चीपर जा बैठा ॥ ७९ ॥ वहाँपर उमने उल्लापात देखा, देखते ही वह साररूप भो-  
गोंसे भी विरक्त हुआ और श्रीकांत नामके बड़े पुत्रको राज्य देकर श्रीप्रभ नामके सुनिराजके समीप दीक्षा धारणकर  
तपश्चरण करने लगा, बहुतदिन तक तपश्चरण किया और अंतमें श्रीप्रभ नामके पर्वतपर विधिपूर्वक संन्यास धारणकर  
शरीर छोडकर पहिले स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें दो सागरकी आयु पाकर श्रीधर नामका देव हुआ ॥ ८०-८२ ॥ उ-  
सके अणिमा महिमा आदि सब गुण थे, सात हाथकका वैक्रियक शरीर था पीत लेभ्या थी, एक महीने बाद श्वास लेता  
था, दो हजार वर्ष बाद अमृतरूप पुद्गलोंका मानसिक आहार लेता था, कायप्रवीचारसे तृप्त होता था और पहिली पृथ्वी-  
तक उमका अवधिज्ञान व्याप्त था ॥ ८३-८४ ॥ अवधिज्ञानके क्षेत्रके समान ही उमका बल तेज और विक्रिया क्रद्धि  
थी तथा वह स्वस्थ होकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए सुखोंका अनुभव करता था ॥ ८५ ॥ तदनंतर धातकी

काश्ये पुरोत्तमं ॥ ८६ ॥ अयोध्यां नृपत्तस्मिन्नायं वज्रितं जयः । आसीदजितसेनास्य देवी सुतसुखप्रदा ॥ ८७ ॥ सा कदाचित् नृजालस्य परिप्लव्य जि-  
नेष्वरन् । असा तर्जितया स्वप्नान्वितोक्ताष्टौ शुभानिमान् ॥ ८८ ॥ गजैश्चक्षुषसिर्हृदुवीन् पद्मसरोवरं । शंखं पूर्णघटं चैतत् फलानप्यजितजयात् ॥ ८९ ॥  
हुमाद् भ्राता मिथीमिनि ॥ ९० ॥ दृष्ट्वा च त्रिपुण्यसिंस्तं श्रीधरमजीजनत् । व्यधादजितसेनाख्या राजास्य जितविद्विषः ॥ ९१ ॥ तेन तेजस्विना राजा  
सदमाङ्गास्करेण वा । दिवसो मिरजास्तादृक् तन्मूलः कुलभूषणं ॥ ९२ ॥ स्वयंप्रभाख्यतीर्थेशमशोकवनमागुत् । परेतु सपरीवारः संप्राप्याभ्युच्यं सं-  
नत ॥ ९३ ॥ श्रुत्वा धर्मं सतां लाज्यं राज्यं निजितश्चक्रवे । प्रदद्याजितसेनाय स्यम्यासीन्न केवली ॥ ९४ ॥ राजलक्ष्या कुमारोपि रक्षया स वशीकृतः ।  
रुद्धद्वीपमें दक्षिणकी ओर इष्वाकार पर्वतके पूर्व भरतक्षेत्रके अलका नामके देशमें अयोध्या नामका उत्तम नगर है । उ-  
समें अजितंजय नामका राजा राज्य करता हुआ सुशोभित था उसके पुत्र और सुखदेनेवाली अजितसेना नामकी रानी  
थी ॥ ८६-८७ ॥ किसी एक दिन पुत्र प्राप्तिकेलिये उसने श्रीजिनदेवकी पूजा की, रातको पुत्रकी चिंता करती  
हुई सो गई और प्रभातके समय नीचे लिखे हुए आठ स्वप्न देखे ॥ ८८ ॥ हाथी, बैल, सिंह, चंद्रमा, सूर्य, पद्मसरोवर,  
शंख और पूर्ण घट ये स्वप्न देखे और महाराज अजितंजयसे उनके फल भी सुने ॥ ८९ ॥ महाराजने कहा कि हा-  
थीके देखनेसे पुत्र गंभीर होगा बैल और सिंहके देखनेसे अनेक वीर्यवाला होगा, चंद्रमाके देखनेसे शंख चक्र आदि उसके वस्त्रों में लक्षण  
करनेवाला होगा, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी और प्रतापी होगा सरोवर देखनेसे शंख चक्र आदि उसके वस्त्रों में लक्षण  
होंगे, शंख देखनेसे चक्रवर्ती और पूर्ण घट देखनेसे निधियोंका स्वामी होगा ॥ ९०-९१ ॥ स्वप्नोंके इन फलोंको  
सुनकर रानी बहुत ही संतुष्ट हुई और थोड़े महीने पीछे उसने श्रीधर देवके जीवको उत्पन्न किया और राजाने शत्रुओंको  
जीतनेवाले इसका नाम अजितसेन रक्खा ॥ ९२ ॥ जिसप्रकार सूर्यसे दिवस सुशोभित होता है उसीप्रकार वह राजा  
उस तेजस्वी पुत्रसे सुशोभित होता था, सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा निर्दोष पुत्र होना कुलका भूषण होता है ॥  
९३ ॥ किसी दूसरे दिन अशोक नामके वनमें स्वयंप्रभ नामके तीर्थंकर पधारें थे राजा अजितंजयने परिवारसहित  
जाकर उनकी पूजाकी, नमस्कार किया, धर्मका स्वरूप सुना तथा सज्जनोंको त्याग करनेयोग्य ऐसे राज्यको शत्रुओं  
को जीतनेवाले अपने पुत्रको देकर समय धारण किया और अंतमें केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ९४-९५ ॥ इधर उस  
कुमारको अपने आप आसक्त हुई राज्यलक्ष्मीने आकर अपने वश कर लिया और वह युवावस्थामें ही प्रौढके समान

श्रीऽ एव युवा नां मुख्य सोऽन्यमुनेयिवान् ॥ ९६ ॥ तत्पुण्यपरिपाकेन चारवादिचक्रिणः । यद्यत्तत्तत्समुत्पन्न चेतनेतरमेदक ॥ ९७ ॥ चक्रमाकातं दे-  
वचक्रमस्या तत्सोऽद्भवे भवत् । पुनर्दिग्वज्रगो जेतुं पुरवाद्याविहारवत् ॥ ९८ ॥ नासु गोऽनेन कोऽर्थादीन् परिग्रहमृच्छता । पट्टखट्वाधीशिनोऽप्यस्य पुण्य  
पुण्यानुबन्धि यत् ॥ ९९ ॥ दुःखं स्वकर्मपापेन सुखं नदनुपालनात् । प्रजानां तस्य साम्राज्ये तत्तामि सोऽग्निनयते ॥ १०० ॥ देवविद्याधराधीशमुकुटा-  
श्रेणु संयुतीन् । विच्छायाकृत्वा रत्नांस्तदाज्ञौष्ठिउवाच ॥ १०१ ॥ निलोदयस्य चैनं स्यात्सद्धानंदकृतो बल । चडदुयुते कथं पाति शकोऽप्यक्ष स्वयं  
दिशं ॥ १०२ ॥ निर्विक्रया नयेदग्निं स्वायं यद्विषु दिशः । स्वयोनिराहिना कोऽपि क्वचिर्कनोऽपि रक्षित ॥ १०३ ॥ पालको मारको वेति नातक सर्वं  
भक्षिण । किं वेति वैधास्तं पातुं पापिनं परिकल्पयन् ॥ १०४ ॥ शुनं स्थाने स्थितो वीरो नित्यं यमसमीपम् । स्वजीवितोऽपि सदेहो नं कृतं वस्य

इच्छानुसारं मुख्य सुखोंका अनुभव करने लगा ॥ ९६ ॥ उसके पुण्य कर्मके उदयसे चक्रवर्तीके चक्ररत्न आदि चेतन  
अचेतनके भेदसे जो सामग्री होती है वह सब आ उत्पन्न हुई थी ॥ ९७ ॥ उसके मव दिशाओंके समूहको जीतने-  
वाला चक्र उत्पन्न हुआ था और फिर नगरके बाहर विहार करनेके ममान उस विजयी राजाके दिग्विजय हुआ था  
॥ ९८ ॥ न तो उसके किसी प्रकारका दुख था और न परिग्रहोंमें मूर्च्छा वा समत्व परिणाम ही था । यद्यपि वह

छद्मों खंडोंका स्वामी था तथापि उसके पुण्य कर्मोंका बंध करनेवाला ही पुण्यकर्मोंका उदय था ॥ ९९ ॥ उसके  
राज्यमें प्रजाको जो दुःख होता था वह अपने अपने कर्मके उदयसे होता था (राजाकी ओरसे नहीं) और सुख उसके  
पालन करनेसे होता था इसलिये वह प्रजा भी उसे बहुत कुछ मानती थी ॥ १०० ॥ देव और विद्याधरोंके मुकुटोंके  
ऊपर जो बड़ी कतिवाले रत्न लगे थे उनकी किरणोंको तो वह कांतिरहित कर देता था और अपनी आज्ञारूपी  
ऊंची शिक्षाको कायमकर वह बहुत ही सुशोभित होता था ॥ १०१ ॥ यदि कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले और नित्य  
उदय होनेवाले ऐसे सूर्यका बल न होता तो इन्द्र स्वामी होकर भी स्वयं पूर्वदिशाका पालन कैसे करता ॥ १०२ ॥  
विधाता अवश्य ही बुद्धिहीन है क्योंकि यदि वह बुद्धिहीन न होता तो भला अग्रेय दिशाकी रक्षा करनेकेलिये अ-  
ग्निको क्यों स्थापना करता ? इसका कारण यह है कि अग्नि लकड़ीसे उत्पन्न होती है और वह फिर उसी लकड़ीको  
जला देती है जो अपने उत्पन्न करनेवालेको ही जला देता है वह भला किसी तरह भी क्या दूसरेकी रक्षा कर सकता  
है ? कभी नहीं ॥ १०३ ॥ क्या कभी मारनेवाला भी रक्षा करनेवाला होता है क्या विधाताको यह बात मालूम नहीं  
है कि यमराज सबको भक्षण करता है फिर भी उसने दक्षिण दिशाकी रक्षा करनेकेलिये उसी पापीको नियत किया

पालक ॥ १०५ ॥ कालील्लं विलब्धं पाण्डुहस्तो जलधिम् । स नदीनाश्रयः पानी प्रजाना केन पालक ॥ १०६ ॥ धूम्रवज्रसखोऽस्मास्तु स्वय-  
मन्याश्च चालयन् । पालक स्वपितस्तादृक् स किमेकत्र तिष्ठति ॥ १०७ ॥ छन्दो न लभते पुण्यं विपुण्य केन पालक । धनेन चेददाता तत् गुणकोपि  
न पालक ॥ १०८ ॥ ईशानोऽन्या दशा यातो गणने सर्वपथिम् । पिशाचोऽवेष्टितो दुष्ट कथमेष दिशः पतिः ॥ १०९ ॥ कृत्वैतान् बुद्धिकल्याणतत्प्रमाणैः  
प्रजापतिः । व्यधार्देकमिमं मन्ये विश्वदिक्पालनसम ॥ ११० ॥ इत्युदात्तवचोमाला विरचय्याभिसस्तुत । विक्रमाक्रातदिकृच्चक शक्रादीन् सोतिलंघते  
॥ १११ ॥ घन दाने मतिधर्मे शौर्य भूताभिरक्षणे । आयु सुखे तनुर्भोजे तस्य वृद्धिमयाच्चिरं ॥ ११२ ॥ अपरायणसमच्छिन्नमवाधमयवर्द्धन । गुणाद् पु-  
ण्यन् दितुष्य सन् सुखेन सुखमीयिवान् ॥ ११३ ॥ कृतं वाचि दया चित्ते धर्मकर्मणि निर्मल । स्वानुगान् वा प्रजाः पति रात्रिं केन नास्तु स ॥

हैं ॥ १०४ ॥ जो कुचेके स्थानपर अर्थात् नीची जगह वा वाहर रहता है, जो दीन है सदा यमराजके समीप रहता  
है और अपने जीवनमें भी जिसे संदेह है ऐसा नैकृत भला किसकी रक्षा कर सकता है ॥ १०५ ॥ जिसे जल ही  
प्रिय है और जो नदीनाश्रय अर्थात् दीन दुखियोंको कमी आश्रय नहीं देता अथवा नदीनाश्रय अर्थात् समुद्रोंके आ-  
श्रय रहता है ऐसा वरुण प्रजाकी रक्षा किसतरह कर सकता है ॥ १०६ ॥ जो अग्निका तो भित्र है खुद चंचल है  
कभी एक जगह नहीं रहता, दूसरोंको चलाता रहता है ऐसा वायु रक्षा करनेकेलिये नियत किया है सो क्या वह कभी  
एक जगह ठहर सकता है ? कभी नहीं ॥ १०७ ॥ जो लोभी है वह कभी पुण्य संचय नहीं कर सकता और जो पुण्य  
हीन है वह किस धनसे रक्षा करसकता है इसलिये कभी दान न देनेवाला कुवेर भी रक्षक नहीं हो सकता ॥ १०८ ॥  
ईशान भी अंतिम दशाको प्राप्त हुआ है अर्थात् सब दिशाओंके अंतमें उमका निवास है गिनतीमें भी वह सबके पीछे  
है पिशाचोंसे घिरा हुआ है और दुष्ट है इसलिये वह दिशाओंका स्वामी किमतरह हो सकता है ॥ १०९ ॥ इमतरह  
सुझे मानना पड़ता है कि इन दिक्पालोंकेलिये इसप्रकार बुद्धिकी कल्पनाकर और अपने-उस दोषको दूर करनेकेलिये ही  
विधाताने मानों इस अजितसेनको सब दिशाओंको पालन करनेमें ममथे बनाया था ॥ ११० ॥ इसप्रकार जो उदार  
वचनोंके समूहोंको उत्पन्नकर सबके द्वारा स्तवन किया जाता अर्थात् ऐसेवचनोंके द्वारा सब जिसकी प्रशंसा करते हैं  
और जिसने अपने पराक्रमसे सब दिशाओंके समूहको आक्रमण किया है ऐसा वह अजितसेन इंद्रादिकोंको भी उलं-  
घन करता था ॥ १११ ॥ उसका धन दानमें खर्च होता था, बुद्धि धर्ममें लगती थी, पराक्रम जीवोंकी रक्षा करनेमें,  
आयु सुखमें और सरीर भोगमें काम आता था तथा उसकी वृद्धि सदा होती रहती थी ॥ ११२ ॥ उसके पुण्यकी

११४ ॥ मन्त्रे नैसर्गिकं तत्सं सौजन्यं कथमन्यथा । प्राणद्वारिणि पापेपि रिपौ नोपैति विक्रियां ॥ ११५ ॥ नहि मूलहर कोपि नापि कोपि कदर्यक ॥ तादात्म्यिकोपि तद्राज्ये सर्वे सद्बुध्यकाणिनः ॥ ११६ ॥ इति तस्मिन् महीं पाति सौराज्ये सति भूपतां । प्रजाः प्रजापतिं मत्वा तमेतत् सुमेवसं ॥ ११७ ॥ राजानि निधयथास्य चतुर्दश नवामभवन । नवयौवनसत्राप्तौ प्राप्तपुण्योदयस्य प्रभो ॥ ११८ ॥ भाजन भोजन शय्या चमूवाहनमासन । निधीरुल पुरं ना-  
ट्यमिति भोगान्दशान्वभूत ॥ ११९ ॥ श्रद्धादिगुणसंपन्न स कदाचिन्महीपति । अरिदमाय दत्त्वाञ्च सते मासोपवासिने ॥ १२० ॥ गृहीतनवपुण्यात्मा वसुधाराधिपचक्र । प्रापाधर्मनाप्य किं सदनुष्ठानतत्पर ॥ १२१ ॥ असौ मनोहरोवाने गुणप्रभञ्जिनेधिन । परेक्षु प्राप्य तत्रोक्त धर्मसारं रसायन ॥

बुद्धि दूसरेके आधीन नहीं थी, कमी नष्ट नहीं होती थी और न कमी उसमें किसी तरहकी बाधा आती थी, वह तु-  
ष्पारहित होकर गुणोंका पालन करता हुआ बड़े सुखसे सुखको प्राप्त होता था ॥ ११३ ॥ वचनोंमें सत्यता थी, हृद-  
यमें दया थी धर्म कर्ममें वह निर्मल था तथा अपने गुण और प्रजाकी वह रक्षा करता था इसलिये उसे कौन राजपि  
नहीं कहता था ॥ ११४ ॥ मुझे तो ऐसा विश्वास है कि सुजनता उसका स्वाभाविक गुण था यदि वह स्वाभाविक  
न होता तो प्राण हरण करनेवाले पापी शत्रुपर भी वह क्यों विरुद्ध नहीं होता था ॥ ११५ ॥ उसके राज्यमें न तो  
कोई मूलहर-पूर्वजोंके कमाये हुए धनको अन्यायमार्गसे केवल खाने पीनेमें उड़ादेनेवाला था, न कोई कदर्यक वा  
कृपण कुटुंब सेवक आदि जो दुखदेकर धन वचानेवाला था और न तादात्म्यिक-आगेका विचार न कर मिले हुए धनको  
केवल अयोग्य कार्योंमें खर्च करनेवाला था, उमक्रे राज्यमें सब लोग अच्छे कामोंमें ही खर्च करनेवाले थे ॥ ११६ ॥  
इसप्रकार जब उसका सुराज्य हो रहा था वह पृथ्वीका पालन कर रहा था उससमय सब प्रजा उस बुद्धिमानको ब्रह्मा  
मानकर बढाती थी ॥ ११७ ॥ उस प्रभुके पहिलेके पुण्यकर्मोंके उदयसे नव यौवनकी प्राप्ति होते ही नौ निधि और चां-  
दह रत्न उत्पन्न हुए थे ॥ ११८ ॥ भाजन ( वर्तन ) भोजन, शय्या, सेना, सवारी, बैठनेके आसन, निधि, रत्न,  
नगर और नाट्य ( गाना बजाना ) इन दशोंप्रकारके भोगोंका वह अनुभव करता था ॥ ११९ ॥ किसी एक समय  
उस अजितसेन महाराजने एक महीनेके उपासे और सज्जन ऐसे अरिदम नामके मुनिराजको श्रद्धा आदि गुणोंसे वि-  
भूषित होकर आहारदान दिया ॥ १२० ॥ उस आहारदानसे उसने नये पुण्यकर्मोंका बंध किया और उसके घर र-  
त्नोंकी वर्षा आदि पांचों आश्चर्य हुए सो ठीक ही है क्योंकि जो श्रेष्ठ अनुष्ठान करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें क्या प्राप्त  
नहीं होता है ? अभीष्ट उन्हें सब कुछ प्राप्त हो सकता है ॥ १२१ ॥ वह अजितसेन राजा किसी दूसरे दिन मनोहर



पीत्वा स्वमवसंधयुतिबुधप्रचोदितः । सद्यो निर्विघ्नं माम्राज्यं विधीयं जितशत्रवे ॥ १२३ ॥ त्रैलोक्यजयिन् जेतुं मोहराजं कृतोद्यमः । रामनिर्विहृभि सांदं गृहीत्वा साधनं तप ॥ १२४ ॥ चरित्वा निरतीचारं तनुं त्यक्त्वा युगेवर्धं । नभस्तिलकगिर्यग्रे शांतकारविमानग ॥ १२५ ॥ अच्युतैर्देजनिष्ठासदाब्दिद्वारा विनातिस्थितिः । हस्तत्रयप्रमाणान्निधातुतनुमात्करः ॥ १२६ ॥ शुक्लैर्द्वयं श्वसन्मासैरेकादशमिराहरन् । द्वाविंशतिसहस्रवर्द्धैर्मनसादाहमामरं ॥ १२७ ॥ तम प्रभावधिव्याप्तदेशावधिविलोचनः । तत्संक्रव्यापि ससेजोबलोत्ताररीभारुः ॥ १२८ ॥ दिव्यभोगाधिरं भुज्ज्वा स्वायुरते विशुद्धकः । प्राग्भागे धातुं तन्नीलवर्णे सीतादक्षिणकूलगे ॥ १२९ ॥ विषये मंगलावल्यां रत्नसचग्रूपः पतिः । देव्यां कनकमालायां वल्लभं कनकप्रभं ॥ ३० ॥ गदूमनाभः सुतो आनतस्तयो मुस्तप्रपूर्वकं । बालानुकूलपथुंश्चिद्विशेषं सौम्यवर्दितं ॥ १३१ ॥ उपयोगक्षमाशेषपश्यासिपरिनिष्ठितः । आरोप्य तं व्रतं राजा विद्यागृहमवीविशत् ॥ १३२ ॥ अभिजातपरीवारो दासहस्तिनपकादिकान् । दूरीकृत्य स नि शेषा विद्या शिक्षितुमुद्युग्री ॥ १३३ ॥ तथैद्रियततिस्त्वेन पराजीयत सा यथा ।

नामके उद्यानमें गुणप्रभ नामके तीर्थंकरकी वंदना करनेकेलिये गया । वहांपर उनके कहेहुए उत्तम धर्मरूपी रसायनका पान किया, अपने पहिले भक्के संबंध सुने और उन्होंनेसे प्रेरित होकर वह शीघ्र ही चिरकत हुआ तथा उसने अपना राज्य जितझुकेलिये समर्पण करदिया ॥ १२२-१२३ ॥ वह राजा तीनों लोकोंको जीतनेवाले मोहराजको जीतनेका प्रयत्न करने लगा और अनेक राजाओंके साथ मोहको जीतनेका माधन तपश्चरण धारण किया ॥ १२४ ॥

उमने अतिचार रहित तपश्चरण किया और आयुके अंतमें नभस्तिलक नामके पर्वतपर शरीरको छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गमें शांतिकार नामके विमानमें इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांपर उमकी बाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था और धातु उपधातुरहित सूर्यके समान उमका शरीर था ॥ १२५-१२६ ॥ उसके शुक्ल लेख्या थी, वह भगवद् महीने पीछे श्वास लेता था और बाह्य हजार वर्ष बाद देवोंका मानसिक आहार लेता था ॥ १२७ ॥ तमप्रभा नाम की छठी पृथ्वीतक उमका अवधिज्ञानरूपी नेत्र पंहुंचता था, और वहीं तक उसका तेज बल और शरीरकी विक्रि या पहुंच सकती थी ॥ १२८ ॥ उसने बहुत दिनतक दिव्य भोगोंका अनुभव किया और फिर आयुके अंतमें शुद्ध सम्पगृष्टी वह पूर्व घातकीखंडमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर मंगलावती देशके रत्नसंचयपुरमें राजा कनकप्रभ और रानी कनकमालाके शुभ स्वप्नोंके द्वारा सूचना देकर पद्मनाभ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ तथा बालकोंके योग्य विशेष विशेष आदरसत्कारोंके द्वारा वह बढ़ने लगा ॥ १२९-१३१ ॥ उपयोग क्षमा आदि सब पर्याप्तियोंके ( योग्य गुणोंके) पूर्ण हो जानेपर राजाने उसे व्रत देकर विद्यागृहमें प्रवेश कराया ॥ १३२ ॥ कुलीन विद्वानोंके साथ रहनेवाला वह

निजार्थं सर्वभावेन तनोति प्रीतिमात्मन ॥ १३४ ॥ स धीमान् उदमंयोगं व्ययाद् विनययुद्धये । विनय शालनिर्णति कृत्रिम सहोऽपर ॥ १३५ ॥  
त सपूर्णकलं प्राप्य कातं सहजकृत्रिमौ । राजानं गुरुशुक्रा वा रेजतुर्विनयो भुञ्ज ॥ १३६ ॥ न धीमान् पोटशे वयं निरेजे प्राप्य शौचा । वनं मुञ्चु वि-  
नीतात्मा सयतो वा जितद्विय ॥ १३७ ॥ रूपान्वयवय शिक्षामपय तमविक्रियः । भद्र गज विनीतात्मा समालोम्य मुदा पिता ॥ १३८ ॥ विद्या-  
पूजा विद्यायास्य पितृपूजापुरःसरं । सत्कृतयेव रमस्य व्ययाद् बुद्धि क्रियातरे ॥ १३९ ॥ कलाभिरिव वल्लेः शुद्रपक्षसमाश्रयात् । रम्यं राजा तमूजो वा  
प्रमदाभिरपूरयत् ॥ १४० ॥ तस्य सोमप्रभाचीना देवीनामभवन् मुता । शुभा सुवर्णनाभाया भास्करस्यैव भानव ॥ १४१ ॥ पुत्रोऽप्रादिभिः श्रीमान्  
परीत कनकप्रभ । स्वराज्य पालयन्नेन सुखेनान्येदुयुक्त्वयभी ॥ १४२ ॥ मनोहरवने धर्मं श्रीधराच्चिन्तयुगवात् । अत्रा मयोज्य साम्राज्य सूनौ संयम्य  
राजकुमार दास महावत आदि सबको दूरकर सब विद्याओंको सीखनेकेलिये उद्यम करने लगा ॥ १३३ ॥ उसने इंद्रि-  
योंके समूहको इसतरह जीत रक्वा था कि वे इंद्रियां सबरूपसे अपने विषयोंके द्वारा केवल आत्माके साथ ही प्रेम  
करती थीं ॥ १३४ ॥ वह बुद्धिमान् केवल विनयको बढ़ानेके लिये दृढ़ लोगोंकी संगति करता था । श्राद्धोंसे निर्णयकर  
विनय करना कृत्रिम विनय है और स्वभावसे ही विनयकरना अकृत्रिम है ॥ १३५ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाके समीप गुरु  
और शुक्र सुशोभित होते हैं उसीप्रकार सब कलाओंको जाननेवाले और मनोहर ऐसे, उस राजकुमारके समीप कृत्रिम  
और अकृत्रिम दोनों प्रकारके विनय बहुत ही अच्छे सुशोभित होते थे ॥ १३६ ॥ जिसप्रकार विनयी और जितेंद्रिय  
संयमी वनको पाकर सुशोभित होता है उसीप्रकार वह बुद्धिमान् राजकुमार भी सोलहवें वर्षमें यावनको पाकर सुशो-  
भित हुआ था ॥ १३७ ॥ उसके विनयी पिताने रूपके समान ही अवस्था और शिक्षामें सुशोभित, तथा विकार रहित  
भद्र जातिके हाथीके समान उसे देखकर वडी प्रसन्नतासे उसकी विद्याकी पूजाकी अर्थात् विद्या समाप्तकी और श्रीजिनेन्द्र  
देवकी पूजाकर संस्कार किये हुये रत्नके समान उसकी बुद्धि दूसरी क्रियामें लगाई ॥ १३८-१३९ ॥ जिसप्रकार सुक्लपक्षके  
संयोगसे कलाओंके द्वारा बाल चंद्रमाकी पूर्ति की जाती है उसीप्रकार उस तेजस्वी राजाने अनेक स्त्रियोंके द्वारा उस  
मनोहर राजकुमारकी पूर्तिकी भावार्थ-अनेक कन्याओंके साथ उसका विवाह किया ॥ १४० ॥ जिसप्रकार सूर्यसे कि-  
रण उत्पन्न होती हैं उसीप्रकार उसके सोमप्रभा आदि देवियोंसे सुवर्णनाभि आदि अच्छे पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥  
१४१ ॥ इसप्रकार पुत्र पौत्र आदिसे सुशोभित वह श्रीमान् राजा कनकप्रभ सुखसे अपना राज्य पालन करता था ।  
किसी दूसरे दिन जिसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे उस राजाने मनोहर नामके वनमें श्रीधर नामके जिनेन्द्र देवसे

निर्वृतः ॥ १४३ ॥ पद्मनाभश्च तत्रैव गृहीतोपासकप्रसन्नः । तत्रावापगतव्यासिसमाल्लैः सप्रवर्तयन् ॥ १४४ ॥ विश्वमहासंस्तर्षाविनोदरतिशयैः । कामिनीनां कलाशयैः सविलोलेर्विलोकनैः ॥ १४५ ॥ अनंगपूर्वरस्य पुण्याजलिनिभः शुभैः । समप्रेमसमुत्पन्नैः प्रसन्नं प्राप्तं चेतसः ॥ १४६ ॥ कामकल्प-  
द्रुमोद्भूत परिपक्व फलोत्तमं । रामाप्रेमोपगन्तं सा सीमासीत्सत्य निर्वृतेः ॥ ४७ ॥ प्राक्तनोपासपुण्यस्य फलमेतदिति स्फुटं । प्रबोधयन्नसौ मृगान्दरीसि-  
रासुखी ॥ १४८ ॥ सोऽपि श्रीधरसाक्षिभ्यो बुद्ध्या धर्मं बुधोत्तमः । संज्ञातमोक्षयाथात्म्यात्मन्येवमचितयत् ॥ १४९ ॥ यावदौदयिको भावस्तावत्संस्थिति  
रासनः । सा च कर्मणि तत्कर्म तावदावत्संस्कारण ॥ १५० ॥ कारणान्यपि पञ्चैव मिथ्यात्वादीनि कर्मणः । मिथ्यात्वे सत्यवश्यं स्यात्तत्र शेषं चतुष्टयं ॥ १५१ ॥ असंयमे त्रयं द्वे स्ताः प्रमादो योगसंज्ञके । कषाये निःकषायस्य योग एव हि बंधकृत् ॥ १५२ ॥ स्वस्मिन् स्वस्मिन् गुणस्थाने मिथ्यात्वादेर्विनाश-  
धर्मका स्वरूप सुना और अपना राज्य पुत्रको देकर संयम धारणकर मुक्त हुआ ॥ १४२-१४३ ॥ राजा पद्मनाभने मी-  
उन्हीं जिनराजसे श्रावकके व्रत स्वीकार किये तथा अपने मंत्रियोंके साथ स्वराज्य और परराज्य की नीतियोंका विचार  
करता हुआ निवास करने लगा ॥ १४४ ॥ परस्परके समान प्रेमसे उत्पन्न हुए और कामदेवके पूर्वगङ्गीकी शुभ पुण्या-  
जलिके समान अत्यंत कोमल वियोंकी विनय, हंसी, स्पर्श विनोद मनोहर बात चीत और चंचल चित्तवनोंके द्वारा  
वह अपने चित्तको प्रसन्न करता था ॥ १४५-१४६ ॥ कामदेवरूपी कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुए स्त्रियोंके प्रेमसे प्राप्त हुए  
तथा पके हुए भोगोपभोगरूपी उत्तम फल ही उसके वैराग्यकी सीमाको प्राप्त हुए थे अर्थात् उन्हीं भोगोंसे उसे  
वैराग्य उत्पन्न हुआ था ॥ १४७ ॥ ये सब भोगोपभोग पहिले किये पुण्यकर्मके फल हैं इसी बातको मानों मूर्ख लोगों  
को स्पष्ट रीतिसे बतलाता हुआ वह तेजस्वी सुखी हुआ था ॥ ४८ ॥ उस उत्तम बुद्धिमानने श्रीधरमुनिके समीप ही  
धर्मका स्वरूप सुना तथा संसार और मोक्षके यथार्थ स्वरूपको अपने ही आत्मामें इसप्रकार चितवन करने लगा ॥  
१४९ ॥ कि जवतक आत्माके औदयिक भाव हैं तवतक इसको संसारमें परिभ्रमण करना पड़ता है तथा वे भाव तब  
तक रहते हैं जवतक कि कर्म रहते हैं और कर्म तवतक रहते हैं जवतक कि उनके कारण रहते हैं ॥ १५० ॥  
कर्मोंके कारण मिथ्यात्वादिक पांच हैं तथा जहां मिथ्यात्व रहता है वहां वाक्की चार कारण अवश्य रहते  
हैं ॥ १५१ ॥ असंयममें असंयम रहता है और वाक्की के प्रमाद कषाय योग वे तीन रहते हैं । प्रमादमें प्रमत्तगुणस्थान  
में प्रमाद रहता है और वाक्की के कषाय योग ये दो रहते हैं । कषाय अर्थात् सात आठ नौ दश गुणस्थानोंमें कषाय  
रहता है और वाक्की एक योग रहता है और कषायरहित स्यारह बारह तेरहवें गुणस्थानमें एक योगसे ही

नात् । त्वहेतोस्तत्कृतो बधस्तत्र तत्र विनश्यति ॥ १५३ ॥ सदादिद्वित्रितय नश्यत्वात्तय स्वकालतः । आपर्यतगुणस्थानात्तदव्यातिष्ठतेः क्षयः ॥ १५४ ॥  
 ससारे प्रलय याते पापे जन्मादिलक्षणे । क्षायिकैरात्मना भावे रात्मन्यात्मा समेधते ॥ १५५ ॥ इति तत्त्व विनोदियमजानानोऽधवधिर । प्रातः संचारको-  
 तारे दुर्गे दुःस्त्री दुर्लभे ॥ १५६ ॥ अयं यमादिक सर्वमुज्जिन्वा कर्मकारण । शुद्धश्रद्धादिशुभागपक्व समुपैम्यह ॥ १५७ ॥ इत्यतस्तत्त्वतो ज्ञात्वा पदम्  
 नामां हिताहितेन दत्त्वा सुवर्णनामाय प्राभव वाण्यसपदः ॥ १५८ ॥ राजनिबहुभिः सार्द्धं सयम प्रतिषेध सः । समाचरधनुर्भेदं प्रसिद्धे कृतिसारानि  
 ॥ १५९ ॥ द्वयष्टकारणसप्राप्तभावो नामतीर्थकृत् । स्त्रीकुलकादद्यागाधियपरागः परम तपः ॥ १६० ॥ सिंहनि कीडिताबुधुप विधवाबुधुदुलरं । क-  
 लते सप्यगाराध्य सट्टष्टशरीरकः ॥ १६१ ॥ वेजयते त्रयस्त्रिजन्मापरायुरजायत । पूर्वोपदेहेद्वेद्यादिदिशेपो र्विव्यमौहम्माक् ॥ १६२ ॥ तस्मिन्  
 बध होता है ॥ १५२ ॥ अपने अपने गुणस्थानमें कारणरूप मिथ्यात्वादिके नाश होनेसे वहांपर उनसे होनेवाला  
 बंध भी नष्ट हो जाता है । भावार्थ-असंयममें मिथ्यात्वका नाश होनेसे मिथ्यात्वसे होनेवाला बंध भी नहीं  
 होता है । इसीतरह प्रमादमें असंयम नष्ट होनेसे असंयमसे होनेवाला बंध नहीं होता है इसीप्रकार आगे  
 ममज्ञानेना चाहिये ॥ १५३ ॥ पहिले सत्ता बध और उदय नष्ट होते हैं उनके नाश होनेसे चौदहवें गुणस्थाननरु  
 अपने अपने कालके अनुसार कर्म नष्ट होते हैं तथा कर्मोंके नाश होनेसे संसारका नाश हो जाता है ॥ १५४ ॥  
 जो पापस्वरूप है और जन्ममरण ही जिसका लक्षण है ऐसे संसारके नाश होनेपर आत्माके क्षायिक भाव  
 रह जाते हैं और फिर यह आत्मा उन्हीं क्षायिक भावोंसे अपने ही आन्तर्मा में सदा बढना रहता है ॥ १५५ ॥ इसप्रकार  
 जिनेंद्रदेवके कहे हुए तन्वोंको नहीं जानता हुआ यह जीव जिसका अंत मिलना अत्यंत कठिन है ऐसे किलेके समान  
 संसाररूपी वनमें दुखी होकर अंधेके समान बहुत दिनतक परिभ्रमण किया करता है ॥ १५६ ॥ इसलिये मैं कर्मोंके  
 कारण ऐसे असंयम आदि सबको छोडकर शुद्ध श्रद्धा आदि जो मोक्षके पांचों अंग हैं उन्हें धारण करूंगा ॥ १५७ ॥  
 इसप्रकार पद्मनाभने अंतःकरणमें हिताहितका यथार्थ स्वरूप जाना और राज्य आदि बाह्य संवदाओंकी प्रभुता मत्र  
 सुवर्णनाभिके लिये समर्पण कर दी ॥ १५८ ॥ तदनंतर उसने अनेक राजाओंके साथ साथ दीक्षा धारणकी और मोक्षके  
 कारण जो चारों आराधनायें हैं उनका पालन करने लगा ॥ १५९ ॥ ग्यारह अंगरूपी महासागरके पार होकर उसने प-  
 रम तपश्चरण धारण किया और तीर्थंकर नामकर्मका बंध करनेवालीं सोलह कारण भावनाओंका चिंतन किया ॥ १६० ॥  
 जो अज्ञानियोंकेलिये बहुत कठिन है ऐसे सिंहनिष्फीडित आदि कठिन तपश्चरणोंको करके आयुके अंतमें अच्छीतरह

षा.म.सूक्तोपायुष्यागुमिष्याति भूतले । द्वीयेस्मिन् भारते वर्षे उपस्थितपुराधिपः ॥ १६३ ॥ इक्ष्वाकु काश्यपो वंशगोत्राभ्यामसुतोदय । महासेनो महादेवी लक्ष्मणा स्वयंहांगणे ॥ १६४ ॥ वसुधारा डुरै प्रासा देवीभि प्रवि.रिता । विष्वक्खट्वागालेयशयनादिभूषिता ॥ १६५ ॥ चैत्रस्य कृष्णपचम्या स्नानं याममनोहरे । इष्ट्वा षोडश संतुष्य समुच्छाद्योदिते रवौ ॥ १६६ ॥ पुण्यप्रसाधनोपेतो स्ववक्त्रार्पितसमदा । स्वप्नान् सिंहासनादीन् स्नानवानी भाग्यसंपदं । श्रीश्रीधृत्यादिदेवीषु वर्धयतीषु संतत ॥ १६७ ॥ गौपारितिकादर्गां सा शक्योगे सुरार्चितं । अहमिन्द्रमतक्याम त्रिवोधमुदपादयत् ॥ १७० ॥ तदेवाभ्येत्य नाकीशो महामंदरमस्तके । सिंहासन समारोप्य सुभाष्य क्षीरवारिभि ॥ १७१ ॥ विष्णुस्य भूषणं सर्वविष्णुं त्रिलोक्यकंठिका । मुदा वीक्ष्य समाधिमरणं धारण किया और शरीर छोडकर जयंत विमानमें अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ । वहांपर उसकी तेतीस सा-  
गरकी आयु थी वज्रयंत विमानमें देह लेझ्या आदि जो पहिले कह आये हैं वह सब उसके थीं । इसतरह वह दिव्य सुखोंका अनुभव करता था ॥ १६१-१६२ ॥

जब उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और पृथ्वीपर आनेके उसके दिन समीप आगये तब इसी जंबूद्वीपके भ-  
रतक्षेत्रमें चंद्रपुर नगरमें राजा महासेन राज्य करता था वह इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ था काश्यप उसका गोत्र था  
और उसकी विभूति बहुत बड़ी थी । उसकी महादेवीका नाम लक्ष्मणा था उसके घरके आंगनमें देवोंने रत्नोंकी वर्षा  
की, अनेक देवियां उसकी सेवा करनेको आईं और दिव्य वस्त्र माला लेप शयन आदि सुखकी सामग्रीसे उनकी सेवा  
करने लगीं ॥ १६३-१६५ ॥ चैत्र कृष्णा पंचमीके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें उसने संतुष्ट होकर सोलह स्वप्न देखे, सूर्य  
उदय होते ही वह उठी स्नानकर वस्त्रालंकार पहिनकर अपने मुखसे ही अनंदित करती हुई राजाके समीप पहुंची और  
सिंहासनपर विराजमान महाराजको अपने देखे हुए सोलह स्वप्न कह सुनाये ॥ १६६-१६७ ॥ महाराजने अवधि-  
ज्ञानसे जानकर रानीसे उन सबके फल अलग अलग कहे सुनकर वह बहुत संतुष्ट हुई । श्री, ह्री, धृति, आदि दे-  
वियां उसकी कांति लज्जा धैर्य, कीर्ति, बुद्धि और सौभाग्य संपदाको बढा रही थीं । इसतरह कितने ही दिन बीच  
जानेपर पौष कृष्णा एकादशीके दिन अचुराधा नक्षत्रमें जिसकी कांतिको कोई तर्क वितर्क भी नहीं करसकता, अनेक  
देव जिसकी पूजा करते हैं और जो मति श्रुति-अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाला है ऐसे उस अहमिन्द्रके जी-  
वको उस देवीने उत्पन्न किया ॥ १६८-१७० ॥ उसीसमय इंद्र आया और मेरुपर्वतके मस्तकपर सिंहासनपर विरा-

सर्वभक्षो व्यनहोऽग्रनिन्द्ये ॥ १७२ ॥ इन्द्र कुवलयस्य स्य गंधर्वे व्यकृततरा । यतस्तत्तत्कारणव्या साँ चंद्रप्रभ प्रभो ॥ १७३ ॥ आनन्दनाटक चात्य निर्वैद्योऽग्रे शचीपति । पुनरानीय तद्विपन्नोरप्येवा जगत्पति ॥ १७४ ॥ भोगोपभोगयोग्योऽहवन्तुभि परिवर्धता । भगवानिति सदित्य यक्षेश स्वाश्रय ययौ ॥ १७५ ॥ प्रबोधमहता स्त्रीवमपि निंद्य जगत्पते । लोकरोपकारिण, प्राप्ते सपुण्या लक्ष्मणमिमां ॥ १७६ ॥ पावनीं स्तुलता नीत्वा देवाश्चापन् म-  
हाफलं । स्त्रीदेवरी वरिष्ठेति मेनिरेडनिमिगना ॥ १७७ ॥ गतेनतरसताने सागरोपमकोटिभिः । शतंनवभिरेपोभूतचान्यंतरजीवित ॥ १७८ ॥ शून्य-  
पृथ्वीकपूर्वायु सार्द्धचापशतोच्चिह्ति । अवद्वतेव शीताशु कलाक्षोपो जगन्नुत ॥ १७९ ॥ इत स्वामिस्त्वमेहीति कुवहलविलासिनी । प्रसारितकरन्य-  
स्तलभोजसमाश्रय ॥ १८० ॥ अकारणसमुद्भूतस्मितकातमुखादुज । कदाचिन्मस्वल्पादविन्यासो मणिकुहिने ॥ १८१ ॥ इत्यादि तद्वयोयोग्यमुग्य-

जमानकर क्षीरसागरके जलसे उम बालकका अभिषेक किया ॥ १७१ ॥ उन्हें सबतरहके आभूषणों से विभूषित किया, तीनों लोकोंकी कंठी उनके गलमें बांधी और फिर प्रसन्न होकर हजार नेत्र बनाकर उन्हें देखा । उनके उत्पन्न होते ही यह कु-वलय अर्थात् पृथ्वी मंडलका समूह अथवा कुवलय अर्थात् कर्मोदिनियोंका समूह प्रफुल्लित होगया था इसलिये इंद्रने व्यवहारमें प्रसिद्ध होनेकेलिये उन प्रभूका चंद्रप्रभ ऐसा यथार्थ नाम रक्खा ॥ १७२-१७३ ॥ तदनंतर इंद्रने उन भगवानके सामने आनंद नाटक किया और फिर तीनों लोकोंके स्वामी उन भगवानको वापिस लाकर मा-  
तापिताको मर्मर्पण किया ॥ १७४ ॥ फिर “भगवानको उपभोग करनेकेलिये भोगोपभोगके योग्य ऐसी उत्तम वस्तु ओंका संयोग कराते रहो” इसतरह यक्षोंको आज्ञा देकर वह इंद्र अपने स्थानपर चला गया ॥ १७५ ॥ विद्वान लोग स्त्रीपर्यायको निंद्य बतलाते हैं तथापि संसारभरका उपकार करनेवाले और तीनों लोकोंके स्वामी ऐसे भगवानको धारण करनेसे यज्ञ लक्ष्मणां देवी बड़ीही पुण्यवती है बड़ी ही पवित्र है इसप्रकार स्तुतिकर देव लोग बड़ेभारी पुण्य फलको प्राप्त होते थे तथा “इसप्रकारकी स्त्रीपर्याय भी सबसे उत्तम है” इस बातको सब देवांगनार्य मानने लगी थीं ॥ १७६-  
१७७ ॥ श्रीसुपाख्यानार्थके मोक्ष जानेके बाद नौसौ करोड़ सागर वीत जानेपर उन्होंनेकी संतानमें चंद्रप्रभ स्वामी हुए थे उनकी आयु भी इसीसमयमें समाप्तिले ॥ १७८ ॥ दश लाख पूर्वकी उनकी आयु थी और डेढसौ धनुष ऊंचा उनका शरीर था । संसारमें जिसतरह द्वितीयाका चंद्रमा बढता है उसतरह बढते लगे ॥ १७९ ॥ कौतूहल करनेवालीं देवियां उन्हें खिलाती थीं कभी कहती थीं ‘हे स्वामी आप हथकी हथेलीरूप कमलोंको फैलाकर बैठते थे, कभी बिना ही कारणके उत्पन्न हुई थोड़ीसी हंसीसे उनका मुखकमल बहुत ही सुंदर दिखता था और कभी

शुद्धविचेष्टितं । नीत्वा नार्त्यं स कैमारयाप आर्थं सुखार्थमि ॥ १८२ ॥ अधिक्याद्वावलेयेव निर्गतेवैक्षणप्रिया । द्रव्यलेया व्यभसिष्ट जित्वा पूर्णवुद्धतिं ॥ १८४ ॥ यथासा लेयया भास्य ज्योतिषां छाद्रिता युति । भोगभूमिनिवृत्तेति प्रतोषमकरोज्जनं ॥ १८५ ॥ युतिस्तस्य युतिवैभान्मिश्रिता रविचंद्रयोः । तत्सदा व्यकसन्मन्ये पद्मानि कुमुदास्यपि ॥ १८६ ॥ वृद्धासा गुणास्तस्य चंद्रस्येवाशोऽमला । विभाषयति भव्यानां मन कुवल्याबलिं ॥ १८७ ॥ सहोत्पत्तेः द्वियोनेन सोदयंदोरिति ध्रुति । अजानदभिर्जनेरेतदन्यथा परिकल्पित ॥ १८८ ॥ चंद्रस्येवौदयस्यापि सर्वसतापहरिणः । ह्लादते भासते वर्द्धते स लोको निराकुल ॥ १८९ ॥ एत-  
दे मणियोंके बने हुए आंगनमें गिरते पड़ते पैरोंसे चलते थे ॥ १८०-१८१ ॥ इसप्रकार उस बालक अवस्थाके योग्य कुछ कुछ अज्ञानतासे भरी हुई शुद्ध चेष्टाओंसे सुख चाहनेवाले लोग जिसकेलिये प्रार्थना करते हैं ऐसी बालक अवस्था व्य-  
तीत की और कुमार अवस्थामें पैर रक्खा ॥ १८२ ॥ उससमय वहाँके लोग परस्पर कौतूहलसे इसप्रकार बात चीत क-  
रते थे कि हम लोगोंको विश्वास है कि इनका शरीर नामकर्मरूपी ब्रह्माने अमृतसे ही बनाया है ॥ १८३ ॥ उनकी कर्धेवाली भावलेया ही (शुद्धपरिणाम ही) अधिक होनेसे बाहर निकल आई हो ॥ १८४ ॥ उनके यश और शरीरकी जातिसे ज्योतिषियोंकी जाति मंद पड़ गई थी इसलिये अब भोगभूमि आगई यही समझकर लोग संतुष्ट होनेलगे थे १८५  
यह मानना ही पड़ता है कि उनकी जाति मूर्ख और चंद्रमा दोनोंकी मिली हुई जातिके समान सुशोभित होती थी क्योंकि उनके समीप कमल और कमोदनी दोनों ही एक साथ प्रफुल्लित होते थे ॥ १८६ ॥ कुंदके फूलोंकी ओर हंसने-  
वाले उनके गुण चंद्रमाकी किरणोंके समान निर्मल थे और वे मैन्य जीवोंके मन्तरूपी कमोदिनियोंके समूहकी सदा प्र-  
फुल्लित करते थे ॥ १८७ ॥ वास्तवमें लक्ष्मी इन्हींके साथ उत्पन्न हुई थी, लक्ष्मी चंद्रमाकी वहिन है अर्थात् चंद्रमा  
और लक्ष्मी दोनों ही समुद्रमैसे उत्पन्न होनेके कारण भाई वहिन हैं यह जो कहावत है सो अज्ञानी लोगोंने झूठ मूठ  
ही बनाकर कल्पना करली है सत्य नहीं है ॥ १८८ ॥ क्योंकि चंद्रमाके समान सवतरहके संतापोंको दूर करनेवाले इन भगवानके उदय वा प्रगट होनेपर भी यह ममस्तलोक निराकुल होकर मसन्न होता था दैदीप्यमान होता था और ब-  
ढता था ॥ १८९ ॥ “कारण जैसा होता है कार्य भी वैसा ही हुआ करता है” यदि यह बात सत्य है तो कहना चा-



कदाचिदनयत्कृती ॥ १९१ ॥ वीणावायेन हृयेन गतिर्मुरजवादिभि । कदाचिद्वनदानीतभृषाव्रजालोकनै-  
परीक्षणं । कुतहलेक्षणयातभव्यलोकात्मदर्शनैः ॥ १९३ ॥ धर्मादयो व्यबर्हत गुणाः पापशयाश्चर्य । रंभारिभिरिभ्यः स्थितेयव किं वाच्य सयमे मति  
॥ १९४ ॥ इति हिल्लक्षपंचाशत्सहस्रप्रसिर्गतै । पूर्णं राज्याभियेकाप्या परमाणदमुंदर ॥ १९५ ॥ नवतो मडल रात्रौ स्वहस्ततलसम्मित । किं ते-  
जोर्कस्य तेजोस्य तेजस्त्वलोक्यरक्षिणः ॥ १९६ ॥ शकादयोरपि कैर्कर्म जन्मन प्राग्वहति चेत् । ऐश्वर्यादिरेपोन्यवृत्त कैरुपमीयता ॥ १९७ ॥ तले कपो-  
लयो वीणा छेदे वा दतिदतयो । स विलोक्य स्मरस्मेर स्वमुग्य सुखमेयिवान् ॥ १९८ ॥ विलोकि नीनां कातानामुत्सुमाना विलासवद् । त्यागीव स  
सुखी जात स्ववद्वसतर्पणात् ॥ १९९ ॥ नातराय पर तस्य कातावयवञ्जवैक्षणे । जातपेरुहशर्कभ्रूमद्रिभूमरैविना ॥ २०० ॥ मधुपैश्वर्यपले

हिये कि लक्ष्मी इन्हींके गुणोंसे संसारमें मान्य हुई है और कीर्ति भी इन्हींके गुणोंसे निर्मल हुई है ॥ १९० ॥ जिनकी  
विभूति सबसे बड़ी है जो स्नान वस्त्र आदिसे सजे रहते हैं और अलंकारसे सुशोभित रहते हैं ऐसे वे भगवान् कभी  
तो मनोहर वीणा बजाना, कभी गीत गाना, कभी मृदंग आदि वाजे बजाना कभी कुबेरके लाये हुए वस्त्रालंकार दे-  
खना, कभी वादी प्रतिवादी दोनोंके प्रतिपादन किये हुए पक्षोंकी परीक्षा करना और कभी कौतूहलसे आये हुए भव्य-  
जीवोंको अपने दर्शन देना आदि कार्योंसे अपना समय व्यतीत करते थे ॥ १९१-१९३ ॥ इनके कुमार अवस्थामें र-  
हते हुए भी धर्म आदि गुण बढ़ते रहते थे और पाप आदि दोष नष्ट होते रहते थे तब फिर संयम धारण करनेपर तो  
कहना ही क्या है ॥ १९४ ॥ इसप्रकार दोलास्व पंचाम हजार पूर्व वीत जानेपर उन्हें राज्याभियेककी प्राप्ति हुई थी  
और उससे वे बहुत ही आनंदित और सुदर जान पड़ते थे ॥ १९५ ॥ सूर्य अपने हस्ततलके समान मंडलकी रक्षा राहुसे  
भी नहीं कर सकता इसलिये तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले भगवानके तेजके सामने उस सूर्यका तेज किस गिनतीमें  
है ॥ १९६ ॥ जिनके जन्मके पहिले ही इंद्रादि देव सेवक बन जाते हैं फिर भला चारो ओरसे घिरे हुए उनके इस ऐ-  
श्वर्यकी उपमा किसके साथ दी जासकती है ? अर्थात् किसीके साथ नहीं ॥ १९७ ॥ वे भगवान स्त्रियोंके कपोलतलमें  
अथवा हाथीदांतके टुकड़ोंमें कामदेवसे विकसित हुए अपने सुखको देखकर बहुत ही सुखी होते थे ॥ १९८ ॥ जिस-  
प्रकार वे उत्कठित हुई ऐसी सुदर नेत्रवाली स्त्रियोंके विलासोंसे सुखी होते थे अथवा जिसप्रकार कोई दाता दानदेकर  
सुखी होता है उसीप्रकार वे अपने सुखका रस समर्पणकर स्त्रियोंको दत्त करनेसे सुखी होते थे ॥ १९९ ॥  
जिनमें कमलकी शका उत्पन्न हुई है और जो चारो ओर फिर रहे हैं ऐसे अमरोंको छोडकर स्त्रियोंके सुखकमल देखने

लैल्युक्त्याविचारकैः । मलिनैः किमकर्तव्यं प्रवेशो यदि कथ्यते ॥ २०१ ॥ स्वचतुष्केन्द्रियतूकैः पूर्वैः साम्राज्यमपद । चतुर्विधतिपूर्वानी संमिलौ क्षणवत्सुखं ॥ २०२ ॥ मलां प्रयाति कालेऽसावलंकारग्रहेऽन्यदा । प्रपश्यन्वदनाभोजं दर्पणागतमात्मनः ॥ २०३ ॥ तदावधार्यनिर्वदहेतुं कंचिन्मुखे स्थितौ ॥ २०४ ॥ संवधो बहुभिः कोत्तो चेद्वियोगपुरस्तरः । स एवाहं तं एवार्थस्तान्येव करेणान्यपि ॥ २०५ ॥ प्रीतिं सेवाजुभूतिश्च वृत्तिश्चास्या भवावलो । परिवृत्तमिदं सर्वं पुन पुनरन्तरं ॥ २०६ ॥ तत्र किं जातमन्येव्यत्काले किं वा भविष्यति । इति जानन्नह चास्मिन्मोसुहीमि मुहुर्मुहुः ॥ २०७ ॥ अ-  
नित्यं नित्यबुद्धिर्मे दुःखे सुखमिति स्थिति । अशुभां शुचिरित्याथा परात्मास्मतिर्दृष्ट्या ॥ २०८ ॥ अविवर्त्यवमाकांतो दुरते भववारिधौ । चतुर्विधोऽस्तु खो-  
में उन्हें और कोई किसी तरहका विषय नहीं होता था । भावार्थ-यदि ये तो अमर ही विद्यारूप थे ॥ २०० ॥ चपल, चंचल, योग्य अयोग्यके विचारसे रहित और मलिन ऐसे अमर भी जब वहाँ तक पहुंच जाते हैं तब फिर कहना पड़ता है कि संसारमें न कर सकने योग्य कुछ भी नहीं है । भावार्थ-प्रयत्न करनेपर यह जीव सब कुछ कर सकता है ॥ २०१ ॥ इसतरह पचास हजार पूर्व और चौबीस पूर्वांगका लगा समय क्षण भरके समान व्यतीत हो गया । तब किसी एक दिन लाख पचास हजार पूर्व और चौबीस पूर्वांगका सुख अनुभव करते हुए उनका छद्म वस्त्राभूषण पहिननेके वस्त्रों में वे दर्पणमें पड़े हुए अपने मुख कमलको देखने लगे ॥ २०२-२०३ ॥ वहाँपर उन्होंने सुखपरकी किसी वस्तुको वैराग्यका कारण निश्चय किया और उसीमग्य वे विचार करने लगे कि यह शरीर अवश्य नाश होनेवाला है और यह प्रेम सब भय उत्पन्न करनेवाला है ॥ २०४ ॥ वह सुख ही क्या ? जो अपने आत्मासे उत्पन्न न हो । वह लक्ष्मी भी किसी जो सदा चंचल रहती है । जो नाश होनेवाला है वह जीवन भी किस कामका ? जो दूसरेके वाद बदलते रहते हैं ॥ २०५ ॥ जिसके सामने ही वियोग होनेवाला है ऐसा भाई बंधुओंका संबंध भी किस कामका ? मैं वही हूँ, ये पदार्थ भी वे ही हैं इन्द्रियां भी वे ही हैं प्रेम और अनुभव भी वही है तथा प्रवृत्ति भी वही है किंतु संसारचक्रमें परिभ्रमण करते हुए इस जीवको वे सब वाग वार एक दूसरेके वाद बदलते रहते हैं ॥ २०६-२०७ ॥ इस संसारमें अबतक क्या हुआ और आगामी कालमें क्या होने-  
वाला है इस सब बातको जानता हुआ भी मैं फिर इस संसारमें बार बार मोहित होता हूँ ॥ २०८ ॥ मैंने आजतक अनित्य पदार्थोंका नित्य समझा, दुःखमें सुखका स्मरण किया, अपवित्र वस्तुको पवित्र माना और शरीर आदि दूसरी

प्रदुर्गद्वैराहित्यदि ॥ २१० ॥ इत्येनायतेनैवमायासित इव कुल । काललब्धि परिप्राप्य धुण्णमार्गजिहासया ॥ २११ ॥ गुणाढ्यं मातुको भाविकेवल-  
 वगमादिभि । स्मरतिव्याप सन्मत्या सकल्येव समागमे ॥ २१२ ॥ दीक्षालक्ष्या स्वय प्राप्ता सद्बुद्धि सिद्धिदायिनी । इति प्रबुद्धतत्त्व तं प्रपद्य सुरत-  
 यताः ॥ २१३ ॥ यथोचितमभिप्रेत्य ब्रह्मलोक पुनर्ययु । दृष्टोपि भरचद्रस्य कृत्वा राज्याभिमैचन ॥ २१४ ॥ निनि क्रमणकल्याणपूर्वा प्राप्य सुरेश्वर ।  
 अरुण सुरसपार्थी सिधिका विमलार्ह्या ॥ २१५ ॥ दिनद्वयोपवासित्वा वने सर्वतुकाहये । पौषमास्थनुराधायायेकादश्या महीभुजा ॥ २१६ ॥ महयोग-  
 प्य नैऋत्यं मन पर्ययमाप्तवान् । द्वितीयदिवसे तस्मै पुरे नलिननामनि ॥ २१७ ॥ सोमदत्तो नृपो गौर प्रदायाहारदुत्तमं । पुण्यानि नव मंप्राप्य व-  
 सुधारादि पंचक ॥ २१८ ॥ मुरस्तद्दानसदुद्वेगपितं स्वीचकार स । धृत्वा व्रताति संपाल्य समितीस्त्यक्तदङ्कः ॥ २१९ ॥ निरुहीतकथायागिविदमाननि  
 चीजोंको व्यर्थ ही अपना समझा ॥ २०९ ॥ इसप्रकार अज्ञानसे विग हुआ यह जीव जिमका अंत अत्यंत कठिन है-  
 ऐसे संसाररूपी मयुद्रमें न जाने कितने दिनसे चारों गतियोंके अनेक दुःख और बड़े बड़े रोगोंसे पीडित हो रहा है  
 ॥ २१० ॥ इसप्रकार काललब्धि को पाकर संसार मार्गका पार करनेकी इच्छासे बड़े लंबे अर्थात् बड़े भारी पुण्य  
 कर्मसे खेद खिल होकर मानो वे धधडा गये थे ॥ २११ ॥ होनहार केवलज्ञान आदि गुणोंके द्वारा मुझे गुणोंसे  
 समृद्धशाली होना चाहिये यही स्मरण करते हुए वे दूतीके ममान सद्बुद्धिके समागमको प्राप्त हुए थे ॥ २१२ ॥  
 मोक्ष प्राप्त करानेवाली उनकी सद्बुद्धि अपने आप दीक्षा लक्ष्मीको प्राप्त हो गई थी, इसप्रकार जिन्हें आत्मतत्त्वका  
 ज्ञान हुआ है ऐसे उन चंद्रप्रभके ममीप लोकांतिक देव आए और यथायोग्य स्तुति करके अपने ब्रह्मलोकमें चले  
 गये । तदनंतर महाराज चंद्रप्रभने अपने पुत्र वरचंद्रका राज्याभियेक किया ॥ २१३-२१४ ॥ उसीमय इंद्र आदि  
 देवोंने आकर तप कल्याणकी पूजाकी, भगवान देवोंके द्वारा उठाई हुई विमला नामकी पालकीपर सवार हुए और  
 सर्वतुक्त नामके वनमें जाकर पाँच कृष्णा एकादशीके दिन अनुगवा नक्षत्रमें दो दिनका उपवाम धारणकर एक हजार  
 राजाओंके साथ साथ उन्होंने निर्ग्रथ दीक्षा धारणकी । उसीमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे पारणाके  
 दिन नलिनपुर नामके नगरमें गौर वर्ण महाराज सोमदत्तने उन्हें पडगाहन किया और नौ प्रकारकी भक्तिपूर्वक  
 उत्तम आहार दिया । उसके दानसे संतुष्ट हुए देवोंने उसीमय सोमदत्तके घर रत्नवृष्टि आदि पंचाशचर्य किये । आहार  
 लेकर उन भगवानने ब्रह्मोंकी धारणकर अतिचारगदित पालन किया । और पाँचों समितियोंका पालन किया ॥ २१५-२१९ ॥  
 गुणोंको धारण करनेवाले उन्होंने कषायरूपी शत्रुका दमन किया, आत्मोंके परिणामोंको स्व विशुद्ध किया,

शुद्धिमाकं । त्रिपुल शीलसंपन्नो गुणी प्रोक्ततपोद्वय ॥ २२० ॥ वस्तुद्वयसिबचोमेदाधैरतरेण भावयन् । दशप्रकारधर्मस्य षोडशोपपरीयह ॥ २२१ ॥ अनित्याशुचिदु खल्वं सरन्कायादिकं सुदु । गत्वा सर्वत्र माध्यस्थ्य परमं योगमाश्रित ॥ २३२ ॥ त्रीन्मासान् जिनकल्पेन नीत्वा दीक्षावनतरे । अधस्तान्नागवृक्षस्य स्थित्वा षष्ठोपवासधत् ॥ २२३ ॥ फाल्गुने कृष्णसप्तम्यामनुराधापरार्द्धके । प्रागेव निहितोपश्रद्धानप्रतिपक्षक ॥ २२४ ॥ करणत्रय-मंयोगात्क्षपकश्रेणिमश्रित । स्फुरत्तुरीयचारित्रो द्रव्यभावविकल्पत ॥ २२५ ॥ धर्मध्यानैकसद्बुद्ध्यात्मा मोहहारीति निहृत्य स । सावगाढहृत्कालेयौ विबभूवुः कालास्कर ॥ २२६ ॥ द्वितीयशुक्ल-शनेन घातिश्रितयघातक । जीवत्यैवोपयोगाख्यो गुण शेषैकसंभवात् ॥ २२७ ॥ घातीति नाम तद्बुद्ध्यातादभूदघचतुष्टये । अघातिष्वपि केषाचिदेव तत्र विलोपनात् ॥ २२८ ॥ परावगाढं सम्यक्त्व चर्यात्मा ज्ञानदर्शने । दानादिपंचक प्राप्य सयोग सकलो जिन

मन वचन काय तीनों गुप्तियोंका पालन किया वाह्य अंतरंग दोनों तपश्चरणोंका पालन किया, वस्तु दृष्टि और वचनके भेदसे अर्थात् द्रव्य पर्याय और स्याद्वाद्से सदा भावनाओंका चिंतवन किया, दशप्रकारके धर्म धारण किये, सब परिपक्वोंको सहन किया, शरीर और संसारको अनित्य अपवित्र और दुःखस्वरूप समझा तथा ऐसा ही बार बार स्मरण किया, इसीतरह सब जगह मध्यस्थ परिणाम रखे और उत्तम ध्यान धारण किया ॥ २२०-२२२ ॥ इसप्रकार उन्होंने जिनकल्प अवस्थामें तीन महीने व्यतीत किये कि उसी सर्वसुख नामके दीक्षा वनमें नाग वृक्षके नीचे बेलाका नियम लेकर विराजमान हुए । सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेवाली प्रकृतियोंको उन्होंने पहिले ही नाश कर दिया था । तदनंतर अधःकरण आदि तीनों करणोंके द्वारा क्षपकश्रेणीका आश्रय लिया, और उसमय उनके द्रव्य भाव दोनों तरहका स्वरूपसंग्रह नामका ज्ञाया चारित्र्य दैदीप्यमान हुआ ॥ २२३-२२५ ॥ उसके बाद धर्मध्यानके उत्तम ध्यानसे मोहहृत्पी शत्रुका नाश किया और अवगाढ सम्यग्दर्शनको पाकर चारो जानोंसे वे बहुत ही दैदीप्यमान होनेलगे २२८ तदनंतर दूसरे शुक्लध्यानसे वाकीके तीनों घातिया कर्मोंका नाश किया । जीवका उपयोग नामका गुणही सबसे मुख्य है क्योंकि वह जीवके सिवाय किसी दूसरेमें नहीं पाया जाता । ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय ये चारों ही कर्म उस उपयोगका घात करते हैं इसलिये इन चारोंको घातिया कर्म कहते हैं । उन भगवान चंद्रपमके चारों घातिया कर्मोंका नाश हुआ और अघातिया कर्मोंसे भी कितनी ही प्रकृतियोंका नाश हुआ इसलिये उनके परमावगाढ सम्यक्त्व हुआ, यथाख्यात चारित्र्य हुआ, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट हुए तथा दानादिक पांचों धार्मिक लब्धिया प्राप्त हुई । इपतराह वे गरीरसहित मयोपी जिनराज हुए ॥ २२७-२२९ ॥ उगलवय वे सर्वज्ञ, जगत्स लो-

॥ २२९ ॥ सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्व संवत्सरकृष्ण । सर्वदत्त सर्वदेववत् सर्वार्थदेशक ॥ २३० ॥ चतुर्विंशदतीशेषविशेषविभयोदय । प्रातिहायिक-  
कव्यकीकृततीर्थकोट्यम् ॥ २३१ ॥ देवदेव समस्तैश्वर्यसुखदोहाद्रिपंकज । स्वप्रभाह्लादिताशेषविधिलोकविभूषण ॥ २३२ ॥ गतिजीवगुणस्थाननय-  
मानादिविस्तृते । प्रबोधक स्थितो ज्योतिर्मन् श्रीमान् चद्रप्रभो जिन ॥ २३३ ॥ कौण्डेयुथेण शौर्येण यदह सञ्चित पर । सिंहैर्हनु स्वजातेर्वा व्यूढ त-  
स्यामनं व्यभक्त ॥ २३४ ॥ केवलद्युतिरेवैव मूर्तिजातेव भास्वरा । देहप्रभा दिवो विद्या भासयत्यस्य शोभते ॥ २३५ ॥ चमैरामरैरेपप्रभाप्रकाटि-  
तायति । ह्यमसधवलैर्गगतरौचि सेव्यते ॥ २३६ ॥ ध्वनिरेकोपि दिव्योत्प प्रकाशो वायुमालिन । नरणा सर्वभावानां सश्रोण्णा प्रकाशक ॥ २३७ ॥  
त्रिभि विव पदं प्राप्यमस्माभिरिति चावदत् । मोक्षमार्गं पृथग्भूतो भाति छत्रत्रय विभो ॥ २३८ ॥ भाति पिंडीद्रुमो भर्तुरग्नोक सश्रयादह । इत्या-  
कके स्वामी, सवका हित करनेवाले, सबके एक रक्षक, और सर्वदर्शी थे, सब देवोंके इंद्र उनकी वंदना करते थे और वे सब पदार्थोंका उपदेश देनेवाले थे ॥ २३० ॥ चौतीस अतिशयोंसे उनकी विशेष विभूतिका उदय प्रगट हो रहा था और आठ प्रातिहायोंसे उनके तीर्थंकर नामकर्मका उदय स्पष्ट दिखाई दे रहा था ॥ २३१ ॥ वे सब देवोंके देव थे, सब इंद्र उनके चरणकमलोंको अपने मुकुटपर धारण करते थे, वे अपनी कान्तिसे ही सब संसारको प्रसन्न करते थे और तीनों लोकोंके आभूषणरूप थे ॥ २३२ ॥ गति जीव गुणस्थान और नय प्रमाण आदिके विस्तारका ज्ञान उत्पन्न क-  
रते हुए वे श्रीमान् चद्रप्रभ जिनराज आकाशमें विराजमान थे ॥ २३३ ॥ सिंहोंके द्वारा धारण किया हुआ उनका आसन ( सिंहासन ) ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों करता ही जिममें मुख्य है ऐसी शूर वीरतासे बहुतसा पाप इकट्ठा किया है उसे दूर करनेकेलिये ही वे सिंह उनके चरणकमलोंके नीचे आलगे हों ॥ २३४ ॥ सब दिशाओंको प्र-  
काशित करती हुई उनके शरीरकी कान्ति ( प्रभामंडल ) ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों केवलज्ञानकी ही कान्ति हो अथवा मानों ऐसी दीदीप्यमान उनकी मूर्ति ही हो ॥ २३५ ॥ देवोंके द्वारा दुराये हुए और हंसोंके पखोंके समान म-  
फेद ऐसे चमरोंसे जिनकी कान्ति द्रुतक फैल रही है ऐसे वे भगवान ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों गंगाकी लहरें ही आकर उनकी सेवा कर रही हों ॥ २३६ ॥ जिमप्रकार सूर्यका एक प्रकाश मनुष्योंको सर्व पदार्थोंका प्रकाश करता है उसीप्रकार यद्यपि उनकी दिव्यध्वनि एक थी तथापि वह सुननेवाले सब जीवोंको सब पदार्थोंका प्रकाश करती थी ॥ २३७ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनोंसे ही मोक्षपद प्राप्त करेंगे इसी बातको मानों कहते हुए और एक अलग मोक्षमार्गके समान उन भगवानके तीनों छत्र बहुत सुशोभित हो रहे थे ॥ २३८ ॥ भगवानके आश्र-

विष्णुतरांगो वा पल्लव प्रसवैरपि ॥ २३९ ॥ अभात्सुमनसा वृष्टिः पतती नमसो विभु । तारावलिनिवायाती सेविषु भक्तिनिभरा ॥ २४० ॥ देवदंभयो नाढं दम्भदुस्तर्जितात्पथय । दिश आवयितु वास्य मोहारातिजयं विभोः ॥ २४१ ॥ अभादस्य प्रभामध्ये प्रसन्न वर्कत्रयमडल । नाकनयामिवाभोजमिव वा विभयैर्दत्तं ॥ २४२ ॥ श्रीमद्गणधकुटीमय्ये चतुर्भक्तिगुण्येण । तारागणे शरब्द इव सेव्यो व्यराजत ॥ २४३ ॥ दत्तादित्रिनवतुल्यगणेश स्तत्रय द्वि सप्तोक्तपूर्वधर शून्यविकाशवर्धिलोचनः ॥ २४४ ॥ शून्यद्वयचतु शून्यद्विक्रपक्षोक्तशिक्षकः । स्वचतुष्पैकनिदिष्टकेयलावगमाग्रणीः ॥ २४५ ॥ चतुर्दश-महसूक्तविक्रियादिविभूयितः । यत्रयाश्चतुर्गोशोनपरिपत्यसिधारितः ॥ २४६ ॥ स्वद्वयत्वेद्विवादीश सर्वसाद्विलक्षकः । स्वचतुष्काष्टमन्दयुक्तरूपाया-दिक्कानुत ॥ २४७ ॥ त्रिलक्षभावकाभ्युच्चर्य श्राविकापचलक्षकः । अमल्यदेवदेवीड्यस्तिर्गकसख्यातसंनतः ॥ २४८ ॥ प्रादक्षिण्येन भव्येशं परीत्यते

यसे ही मुझमें इतनी लालिमा वा राग उत्पन्न हुआ है इसीसे मानों फूल और पत्तोंसे सुशोभित हुआ उनके समीपका अंगो कष्ट बहुत ही अच्छा जान पड़त था ॥ २३९ ॥ आकाशने जो झूलों की वर्षा पड़ रही थी वह ऐसी जानपड़ती थी मानों भक्तिसे भरीहुई ताराओंकी पंक्ति ही भगवानकी सेवा करनेकेलिये आरही हो ॥ २४० ॥ समुद्रकी गर्जनाको भी वर्जित करनेवाले जो देवोंके हुंदुभी वज्रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों भगवानने जो मोहरूपी शत्रुका नाश कर विजय पाया है इसी बातको सब दिशाओंमें सुना रहे हों ॥ २४१ ॥ उनकी प्रलाके मंथमें प्रफुल्लित हुआ सुखमंडल ऐसा सुशोभित होता था मानों स्वर्गकी नदीमें कमल ही खिला हो अथवा चंद्रमाका विंब ही हो ॥ २४२ ॥ जिस प्रकार तारागणोंसे सुशोभित शरद ऋतुका चंद्रमा सुशोभित होता है उसीप्रकार बारह सभाओंके द्वारा सेवा किये हुए वे भगवान बहुत ही सुंदर गंधकुटीके मध्यभागमें सुशोभित हो रहे थे ॥ २४३ ॥ उनके दक्ष आदि तिरानवे गणधर थे, दो हजार ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे और आठ हजार अवधिज्ञानी थे ॥ २४४ ॥ दो लाख चारसौ शिक्षक थे और दश हजार केवलज्ञानी थे ॥ २४५ ॥ चौदह हजार मुनिराज विक्रिया श्रद्धिको धारण करनेवाले उनकी शोभा बढ़ा रहे थे और आठ हजार मनःपर्यय ज्ञानको धारण करनेवाले उनकी सेवा करते थे ॥ २४६ ॥ तथा सात हजार छह सौ वादियोंके स्वामी थे इस तरह सब मुनिराजोंकी संख्या दो लाख पचास हजार थी । वरुणाको आदि लेकर तीन लाख अस्सी हजार अर्जिकाएं उनको नमस्कार करती थीं ॥ २४७ ॥ तीन लाख श्रावक उनकी पूजा करते थे और पांच लाख श्राविकाएं उनकी आज्ञामें थीं ॥ २४८ ॥ इनके सिवाय असंख्यात देव देवी उनकी पूजा करते थे और संख्यात तिर्यंच उन्हें नमस्कार करते थे ॥ २४९ ॥ ये सब जीव प्रदक्षिणा

गणा ग्रथम् । स्वयंष्टववर्तप्रवृत्ते निहितजलिकुम्भला ॥ ४९ ॥ तत्राकृतिमसभूतभक्तिभारानत स्फुरत् । मुकुटाग्रमणिः । स्तोत्र द्वितीयोऽभ्यवा-  
 दिदं ॥ २५० ॥ रत्नत्रयेन येनाप्तं रत्नत्रयमनुत्तर । त्वं देहस्मभ्यमव्युच्चैः स रत्नत्रयसपदं ॥ २५१ ॥ स्वार्थं सागरमेरुणां पंगार्थं कल्पमृगदा ।  
 देव स्वार्थं परार्थश्च महिमा महत्स्वव ॥ २५२ ॥ ददाति परम सौख्यमित्यस्तु भवत स्ववं । नद नदेति देवस्य साधितात्मार्थसपद ॥ २५३ ॥  
 त्वद्भक्तो व चि धर्मस्ते हृदि वृत्तिस्तेनौ भवेत् । यस्य स त्वाद्यो भूवा परमानन्दमश्नुते ॥ २५४ ॥ त्वयैवकेन कर्मरीन् भुवनत्रयविद्विष । शुक्रध्या-  
 नासिनाः हत्वा मुक्तिसाम्राज्यमर्जित ॥ २५५ ॥ हत्वाद्गादगोदूतसाम्राज्याया समाधिताः । पद्मार्करीगधर्माः प्रदुःखसतापदूरागाः ॥ २५६ ॥ सागरोऽ-  
 नन्तकातार ससारः सर्वदेहिना । त्वन्मत्ताधितमव्याना गोपद नदन मन ॥ २५७ ॥ फल त्रैलोक्यसाम्राज्य हेतुः कृत्वरणरमृतिः । लोकस्तत्रापि मेदेच्छो

रूपसे भव्योंके स्वामी भगवान चंद्रप्रभंका घेरे हुए अपने अपने अलग अलग कोंठों में बैठे हुए थे और सबहीं हाथकी  
 अंजलि रूपी कमलकी कलीको बंद किए हुए थे अर्थात् सब ही हाथ जोड़े थे । इसीसमय जो उत्पन्न हुई अकृत्रिम  
 भक्तिके भारसे नभीभूत हो रहा है और जिसके मुकुटमें लगे हुए मणि चमक रहे हैं ऐसे दूसरे ऐशान इंद्रने मृति  
 करना प्रारंभ किया २५० ॥ वह कहने लगा कि हे प्रभो ! जिस रत्नत्रयसे आपको उत्तम रत्नत्रय प्राप्त हुआ है वही  
 रत्नत्रयरूपी संपत्ति आप मुझे दीजिये ॥ २५१ ॥ हे देव ! समुद्र और मेरुपर्वतकी महिमा केवल अपने प्रयोजनके  
 लिये है और कल्प वृक्षोंकी महिमा केवल दूसरोंके लिये है परंतु सबसे बड़े ऐसे आपकी महिमा अपने और  
 दूसरे दोनोंके प्रयोजनके लिये है ॥ २५२ ॥ हे देव ! आप मोक्षरूप परम सुखके देनेवाले हैं ऐसी आपकी मृत्ति तो  
 दूर ही रहो, अपने आत्मतत्त्वरूपी संपदाको सिद्ध करनेवाले आप सदा बढते रहे वढते रहो यही मैं मृत्ति करता हूं  
 ॥ २५३ ॥ जो जीव अपने वचनोंमें आपके वचनोंको धारण करता है हृदयमें आपके धर्मको धारण करता है और  
 शरीरसे आपकी प्रवृत्तिका पालन करता है वह आप सरीखा होकर मोक्षरूप परमानंदको प्राप्त होता है ॥ २५४ ॥ हे प्रभो  
 आप अकेलेने ही शुक्रभ्यान रूपी तलवारसे तीनों लोकोंसे द्वेष करनेवाले कर्मरूप शत्रुओंको नाश कर मोक्षरूपी मा-  
 म्राज्य प्राप्त किया है ॥ २५५ ॥ हे देव ! जो आपके चरणरूपी हृषसे उत्पन्न हुई धनी छायाका आश्रय लेता है वह  
 पापरूपी खर्यसे जो रोगरूपी पसीना उत्पन्न होता है उससे बड़े हुए बड़े दुःख और संतापोंसे बहुत दूर रहता है ॥ २५६ ॥  
 यह संसार सब जीवोंके लिये तो महासागर है अथवा अनंत वन है परंतु जो आपका आश्रय लेनेवाले भव्य हैं उनके  
 लिये या तो कीचडमें बने हुए गायके खुरके समान दिखता है या नंदन वनके समान ज्ञान पडता है ॥ २५७ ॥



न वेति हितमास्ते ॥ २५८ ॥ आधाराधेयभावोयमनन्यसदृशस्तव । अधस्य जगदाधेयमाधारस्त्वं तदेततः ॥ २५९ ॥ वैरकोसि न वैवोसि न पा-  
त्योत्पत्तिं पालकः । कर्तृसि नासि कार्यस्त्वं न पोष्योत्पत्तिं पोषक ॥ २६० ॥ त्वा नमन्नुत्तम स्तोता गुरुषु गुणगौरवात् । अतमये तप्यते पापैरनु-  
वर्त नान्यते सदा ॥ २६१ ॥ नास्तिकाः पापिन केचिद् द्वैष्टिकाश्च हतोयमा । त्वयीयास्त्वास्तिका धर्माः परत्र विहितोयमाः ॥ २६२ ॥ सर्वत्र सर्वथा  
सर्वं सर्वस्त्वं सर्वसर्ववित् । प्रकाशयति नैवेदुर्भानुर्वान्येषु का कथा ॥ २६३ ॥ न स्थिर क्षणिकं ज्ञानमात्रं शून्यमनीक्षणं । वस्तु प्रतिक्षणं तत्त्वान्यत्व-  
रूपं तवेक्षणात् ॥ २६४ ॥ अस्यास्या बोधसद्भावात्परजन्मास्ति तत्सृते । सर्वविद्यास्ति धीदृष्टस्त्वदुपपन्नमिदं त्रयं ॥ २६५ ॥ द्रव्याद् द्रव्यस्य वा भेदे  
गुणस्याप्यवदद्विधीः । गुणः परिणतिं द्रव्यस्यावासीस्त्वं यथायदृक् ॥ २६६ ॥ अप्रतीया प्रभा भाति देव देहस्य वेऽनिरा । चंद्रप्रभेति नामेदमपरीक्ष्य दूरि-  
आपके चरणोंका स्मरण करना कुछ बलेशजनक है परंतु उसका फल तीनों लोकोंका साम्राज्य है तथापि इन दोनोंमें  
मी अग्रंत मंद इच्छा करनेवाला यह लोक अपने आत्माके हितको नहीं जानता है ॥ २५८ ॥ जिसके समान संसारमें  
कोई नहीं है ऐसे आपका और इस संसारका आधार है ॥ २५९ ॥ आप सबको जाननेवाले हैं परंतु आप जिसीके द्वारा यह जगत तो आधेय है और  
उस जगतके ऊपर रहनेवाले आप आधार हैं ॥ २६० ॥ आप सबको जाननेवाले हैं परंतु आप किसीके द्वारा पालन नहीं किये जाते, आप कर्ता हैं परंतु कार्य नहीं  
जाने जाते, आप सबका पालन करते हैं परंतु किसीके द्वारा पालन नहीं किये जाते ॥ २६१ ॥ जो आपको नमस्कार  
और सबका पोषण करनेवाले हैं परंतु आप किसीके द्वारा पोषण नहीं किये जाते ॥ २६२ ॥ जो आपको नमस्कार  
करता है वह सबसे उत्तम हो जाता है तथा जो आपकी स्तुति करता है वह गुणोंसे भग्भूर होकर गुरु वा सबसे  
बड़ा हो जाता है । इसीतरह जो आपको नमस्कार नहीं करता वह सदा पापोंसे पीडित रहता है और जो स्तुति नहीं  
करता वह भी सदा दुःखी रहा करता है ॥ २६३ ॥ संसारमें जो आपके वचनोंमें श्रद्धा रखते हैं वे वास्तविक धर्ममें तल्लीन और परलोकके  
और धर्महीन गिने जाते हैं तथा जो आपके वचनोंमें श्रद्धा रखते हैं वे वास्तविक धर्ममें तल्लीन और परलोकके  
लिये उद्यम करनेवाले होते हैं ॥ २६४ ॥ सबका हित करनेवाले और सबको जाननेवाले आप सदा सब जगह सब-  
को प्रकाशित करते हैं ऐसा प्रकाश न चंद्रमा कर सकता है और न सूर्य, तब और की तो बात ही क्या है ॥ २६५ ॥  
वस्तु न नित्य है न क्षणिक हैं न ज्ञानमात्र है और अदृश्य होनेसे शून्य भी नहीं है किंतु जीवादिक वस्तु प्रतिक्षण  
अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व आदि रूप हैं क्योंकि इसी तरह आपने देखी है ॥ २६६ ॥ इस संसारमें आत्मा  
कोई अलग द्रव्य है क्योंकि उससे अभिन्नरूप ज्ञान दिखाई पड़ता है तथा परलोक भी है क्योंकि उसका स्मरण

र्माधात् ॥ २६७ ॥ इति शब्दार्थगंभीरस्त्वनेन सुराधिप । चिरं सपुण्यमात्मानं बहुनेने<sup>१</sup> स दृष्टी- ॥ २६८ ॥ अथ चद्रप्रभ स्वामी धर्मतीर्थं प्रवर्तयन् ।  
 सर्वान् देशान् विद्वत्पार्यान् सम्मेदतलमासवान् ॥ २६९ ॥ विहारमुष्मद्वल्य मासं सिद्धयित्तले । प्रतिमायोगमास्थाय सहस्रमुनिनि सह ॥ २७० ॥  
 फाल्गुने शुक्रसप्तम्या ज्येष्ठाचन्द्रोपरारुके । तृतीयशुक्लध्यानेन कृतयोगनिरोधकः ॥ २७१ ॥ अयोगपदमासाय तुर्यशुक्लेन निर्हरन् । शेषकर्मणि निर्दु-  
 ससारीरो परमोऽभवत् ॥ २७२ ॥ सुरा निर्वाणकल्याणपूजाविधिविधायिन । पुण्यपण्यं समादाय तद्वेद्युः स्वस्वमास्पद ॥ २७३ ॥ सपूर्णं किमय शर-  
 च्छसाधरं किं वार्पितो दर्पणं मर्वाशीवगते किमेव विलसत्पीयूषपिण्डः पृथु । किं पुण्याणुमयध्वययोगमिति यद्वक्त्रादुज शक्यते सोयं चंद्रजिनस्तमोव्यपहरन्-  
 होमयाप्रक्षतात् ॥ २७४ ॥ लेख्या यस्य मृणालनालधवला क्वाच्योभया शोभते यस्यास्यैदुरहर्दिव कुवल्याह्लादं विधत्ते शुभ । यदुद्योयोज्ज्वलदर्पणे त्रिसमय  
 होता है । इसीतरह कोई सर्वज्ञ भी है क्योंकि ज्ञानकी सदा वृद्धि होती रहती है । हे देव ! ये तीनों ही आपके कहे  
 हुए हैं ॥ २६५ ॥ बुद्धिहीन पुरुष द्रव्यसे द्रव्य और गुण को भिन्न मानते हैं परंतु आपने गुणोंके परिणामको ही द्रव्य  
 कहा है इसलिये तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप देखनेवाले आप ही हैं ॥ २६६ ॥ हे देव ! चंद्रमाकी प्रभां तो राहुसे ढकी जा  
 सकती है तथा घटती वढती भी रहती है परंतु आपके शरीरकी प्रभा न तो किसीसे ढकी जाती है और न घटती  
 वढती है संसारमें उसका कोई रोकनेवाला नहीं है वह सदा सुशोभित रहती है इसलिये कहना पडता है कि इंद्रे  
 जो आपका चद्रप्रभ नाम रक्खा है वह विना परीक्षा किये ही रक्खा है ॥ २६७ ॥ इसप्रकार जिसमें शब्द और अर्थ  
 दोनों ही गंभीर हैं ऐसे स्तोत्रसे स्तुतिकर प्रसन्न बुद्धिवाले इंद्रेने अपने आत्माको बहुत ही पुण्यवान् माना ॥ २६८ ॥  
 तदनंतर चद्रप्रभ स्वामीने सब आर्य देशोंमें विहार कर धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की और अंतमें सम्मेदशिलरपर आ  
 विराजमान हुए ॥ २६९ ॥ वहांपर एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारणकर एक महीने तक योग  
 निरोध किया तथा फाल्गुन शुक्ल सप्तमीके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें शामके समय तीसरे शुक्लध्यानसे योग निरोध  
 किया, अयोग केवली नामके चौदहवें गुणस्थानका पद प्राप्तकर चौथे शुक्लध्यानसे बाकीके सब कर्मोंका नाश किया  
 और उसीसमय शरीररहित परम सिद्ध भगवान् हुए ॥ २७०-२७२ ॥ देवोंने उसीसमय आकर निर्वाण कल्याणकी  
 पूजाकी सब विधिकी और फिर पुण्यका ढेर ले लेकर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७३ ॥ क्या यह  
 शब्द श्रुतका पूर्ण चंद्रमा है, अथवा सब पदार्थोंको जाननेकेलिये दर्पण रक्खा गया है अथवा क्या बड़ा भारी देवी-  
 ध्यमान अमृतका पिण्ड है, अथवा पुण्यके परमाणुओंका बना हुआ एक पिण्ड है इसप्रकार जिनके मुखरूपी कमलको

जीवादि लभत स श्रीमान् दिशताच्छिन्नं जिनपतिर्नष्टकर्मष्टकं ॥ २७६ ॥  
पाण्डु चंद्रप्रभं प्रभु ॥ २७६ ॥

इलायें भगवद्गुणमद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणमंत्रहे चंद्रप्रभपुराणं परिसमाप्तं चतु पंचाशतमं पर्व ।  
देखकर लोगोंको संका होती है ऐसे वे श्रीचंद्रप्रभ स्वामी अज्ञानाधिकारका नाश करते हुए पापरूपी भयसे हम लोगों की रक्षा करें ॥ २७४ ॥ जिनकी द्रव्य और भाव दोनों ही लेख्यायें कमलके तंतुके समान सफेद तथा प्रशंसनीय सुशोभित हैं, जिनका मुखरूपी चंद्रमा रातदिन कुवलय (-कमोदिनी) अर्थात् पृथ्वी मंडलको सदा एकमा प्रफुल्लित करता रहता है, जिनके ज्ञानरूपी निर्मल दर्पणमें भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों समयके जवादिक पदार्थ देखे जाते हैं और जिन्होंने आठों कर्मोंका समूह नष्ट कर दिया है ऐसे वे बाह्य अभ्यंतर दोनों तरफकी लक्ष्मीको धारण करने वाले श्रीचंद्रप्रभ जितेंद्रदेव हम लोगोंका सदा कल्याण करनेवाले हों ॥ २७५ ॥ जो पाहिजे श्रीवर्मा थे फिर श्रीधर देव हुए, तदनंतर अजितसेन, फिर सोलहवें अच्युत स्वर्गके इंद्र, पद्मनाभ और फिर अहमिंद्र होकर तीर्थंकर हुए ऐसे श्रीचंद्रप्रभ भगवान हम लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ २७६ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणमद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें चंद्रप्रभके पुराणको समाप्त करनेवाला यह होसप्रकार भगवद्गुणमद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें चंद्रप्रभके पुराणको समाप्त करनेवाला यह चौपनवां पर्व पूर्ण हुआ ॥ ५४ ॥

## अथ पंचपंचाशत्तमं पर्व ।

विधाय विपुलेभाने विनयाश्रमले स्वयं । स्वयं च सुविधियोंऽभूद् विधेयान्न स तं विधि ॥ १ ॥ पुष्कराब्देदिग्भाने मंदप्राग्विदेहमाक ।  
जिन्होंने बड़े भारी निर्मल मोक्षमार्गमें अनेक शिष्योंको लगाया तथा स्वयं लगे और जो स्वयं सुविधि अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेवाली विधिको करनेवाले हैं ऐसे श्री सुविधिनाराय वा पुष्पदंत उस मोक्ष प्राप्त करनेवाली विधि हमलों गोंको भी दें ॥ १ ॥ पुष्कराब्द द्वीपके पूर्व मंदराचल पर्वतकी ओर पूर्वविदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारेपर एक

सीतासिद्धदस्कूले विषय पुष्कलावती ॥ २ ॥ तत्राभूंपुंडरीकिण्या महापद्मो महापतिः । दोर्दंडखडितारामिंदलचंडविक्रम ॥ ३ ॥ पुराणमपि स-  
न्मार्गं स स्वध्यायःकरोत्तु । पाश्चात्थाना तु तद्व्या पुराणः मोभवत्पुनः ॥ ४ ॥ मपोव्य पालयामास गा स्वा साच स्वयं मुदा । प्रसृता निजसारेण  
तं सदा समतर्पयत् ॥ ५ ॥ स्वादुरक्ता जगान् सर्वान् स्वगुणैः स व्यधात्पुनः । ते च त ग्रीणयति स्म प्रत्यह सर्वभावत ॥ ६ ॥ शेषा प्रकृतयस्तेन वि-  
हिता वदित्वाथ या । स्वेन स्वेनोपकारेण त इत्थं वृद्धिमानयन् ॥ ७ ॥ अवर्द्धत गुणास्तस्मिन् सद्वृत्ते शास्त्रशालिनि । मुनेवल्लब्धसंस्कारा वसुध मण्यो  
यथा ॥ ८ ॥ विमज्ज राज्यलक्ष्मीं स्वां यथा स्वं स्वसमाश्रित । सोन्व भूचिचरमच्छिन्न सतः साधारणश्रियं ॥ ९ ॥ वदतींद्रियमस्थान राजान नीतिवेदिनः ।  
कूर्तीद्रस्थान एवायं दंष्ट्राभावात्तंजागुणं ह ॥ १० ॥ रतिरच्छिन्नसत्ताना तस्य भोग्याश्च तादृशः । तस्मात्स्वसुखविच्छेद नावदत्तुणपुण्यक ॥ ११ ॥

पुष्कलावती देश है उसकी पुंडरीकिणी नगरीमें महापद्म नामका राजा राज्य करता था वह राजा अपनी भुजाओंसे  
शुभ्रओंके समूहको जीतनेवाला था, उसका पराक्रम बहुत ही बड़ा था, वह किसी पुराने श्रेष्ठमार्गको अपने आचरणोंसे  
नया कर दिखाता था और फिर वही मार्ग आगेके समयमें होनेवाले लोगोंकेलिये उनकी प्रवृत्तिके अनुसार पुराना  
गिना जाता था ॥ २-४ ॥ वह राजा अपनी पृथ्वीको अच्छी तरह पालन पोषणकर रक्षा करता था तथा वह पृथ्वी  
की स्थायं प्रसन्न होकर अपनेमें उत्पन्न हुई सार वस्तुएं भेंट देकर सदा उसे संतुष्ट किया करती थी ॥ ५ ॥ वह अपने  
गुणोंसे अपनेमें अनुरक्त हुए भक्ति सेवा आदि करनेवाले सब लोगोंको बुद्धिमान बनाता था तथा वे लोग भी प्रति-  
दिन सबतरहसे उसे प्रसन्न रखते थे ॥ ६ ॥ उसने अपने अपने उपकारसे पृथ्वी की और सब शोभा भी फैलाई तथा  
वढाई थी एवं वह फैली और बढी हुई शोभा उस राजाकी भी वृद्धि कर रही थी ॥ ७ ॥ जिसप्रकार संस्कार पाकर  
मणि सब सुशोभित हो जाते हैं उसीप्रकार सदाचारको धारण करनेवाले और अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले उस राजामें  
मुनियोंके समान सब गुण बढ़ते जाते थे ॥ ८ ॥ उसने अपनी राज्यलक्ष्मीका यथायोग्य रीतिसे विभागकर अपने आश्रित  
रहनेवाले अनेक लोगोंके साथ साथ बहुत दिनतक व्यवधानरहित सुखोंका अनुभव किया सो ठीक ही है क्योंकि म-  
उज्जैन लोगोंकी लक्ष्मी साधारण होती है उसका सब कोई उपभोग कर सकता है नीतिको जाननेवाले लोग राजाको  
इंद्र और यमके समान बतलाते हैं परंतु वह पुण्यवान् इंद्रके ही समान था क्योंकि प्रजा सब गुणवती थी इसलिये दंड  
देनेका कमी काम ही नहीं पडता था ॥ ९-१० ॥ उसके सुखकी परंपरा सदा बनी रहती थी और उसके भोगोपभो-  
गके पदार्थ भी सदा उपस्थित रहते थे इसलिये वह पुण्यवान् अपने सुखके विरहको कभी नहीं जानता था ॥ ११ ॥

इति स्वप्नमाद्यत्सपत्न्यादेतमहोदयः । स कदाचित्महोदयः भूत्वा स्वप्नपालकात् ॥ १२ ॥ जिन मनोहरोयाने स्थित भूतविताहय । गत्वा विभूत्या भूतेषां नि परित्य कृतचिन्तः ॥ १३ ॥ वदित्वा स्तोत्रितस्थाने स्थित्वा मुकुलितचिन्तः । आकर्ण्य धर्ममुत्पन्नवीधिरिवमचितयत् ॥ १४ ॥ आत्मायमात्म-नात्मायमात्मन्या विकृतासुख । विधायानादिकालीनमिथ्यात्वोदयदूषितः ॥ १५ ॥ उन्मादीव मदीर्वाधो-वावेसी वाविचारकः । यद्यदात्माहितं मोहात्तत्तदेवाचर-धिरः ॥ १६ ॥ अमित्रत्वा भवकातारे प्रपन्नो निर्वृतेः पथः । इत्यतोनुभवाद्भूत्वा मुक्तिमार्गप्रपित्तया ॥ १७ ॥ सूनवे धनदाह्याय वितीर्थैर्धन्यमात्मन-प्रावाजीद्व बहुभि सार्द्धं राजभिर्गोबर्भीक्ष्भिः ॥ १८ ॥ क्रमादेकादशांगविषयारणो भावनापरः । बुद्ध्या तीर्थकरं नाम प्राप्ते स्वाराधनाविधि ॥ १९ ॥ विश-लब्धुपमात्तायुः सार्द्धहस्तत्रयोच्छ्रितः । शुक्ललेदयः श्वसन्मासैर्दशभिर्दशभिर्वली ॥ २० ॥ स्मरन् सहस्रविक्षाया वत्सराणा तनुस्थिति । मानसोर्ध्व-इसप्रकार उसके पुण्यके माहात्म्यसे उसका महोदय सूत्र ही बढ रहा था । किसी एकदिन उसके मनोहर नामके उद्या-नमें भूतहित नामके तीर्थकर आए, वनपालने आकर राजाको वहाँका ऐश्वर्य सुनाया सुनते ही वह अपनी विभूतिके साथ वहाँ गया भगवानकी तीन प्रदक्षिणायें दीं और उनका पूजन किया ॥ १२-१३ ॥ वंदनाकर हाथ जोड़कर अपने योग्य स्थानपर जा बैठा तथा धर्मका स्वरूप सुनकर आत्मज्ञान उत्पन्न होनेसे वह इसप्रकार चितवन करने लगा कि ॥ १४ ॥ मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दूषित हुआ यह आत्मा अपने ही आत्मामें अपने ही आत्मके द्वारा अपने ही आत्माको अनेक प्रगट दुखोंको उत्पन्नकर उन्मत्त अथवा मतवालेके समान अंधा हो रहा है तथा किसी आवेशवाले पुरुषके समान अविचारी हो रहा है । जो जो आत्माका अहित है मोहकर्मके उदयसे बहुत दिनसे उसीका आचरण करता हुआ संसाररूपी वनमें परिभ्रमण कर रहा है तथा मोक्षके मार्गसे भ्रष्ट हो रहा है । इसप्रकार चितवनकर तथा संसारसे डरकर मोक्षमार्ग प्राप्त होनेकी इच्छासे ही उसने अपने पुत्र धनदकेलिये अपना राज्य समर्पण किया और स्वयं संसारके दुखोंसे डरे हुए अनेक राजाओंके साथ साथ दीक्षा धारण की ॥ १५-१८ ॥ अनुक्रमसे ग्यारह अंगरूपी सद्युद्रके पार होकर सोलह कारण भावनाओंका चितवन किया और तीर्थकर नामकर्म का वंशकर अंतमें समाधिमरण धारण किया ॥ १९ ॥ शरीर छोड़कर चौदहवें प्राणत स्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ वहाँ उसकी वीस सागरकी आयु थी, साडे तीन हाथका शरीर था, शुक्ललेख्या थी, दश महीने वाद श्वास लेता था, वीस हजार वर्ष वाद मानसिक आहार लेता था, उसके मानसिक प्रवीचर था, पाँचवीं पृथ्वीतक अधिज्ञान था और विक्रिय बल तेज आदि भी अधिज्ञान-नके क्षेत्रके समान था बहुत बलवान था तथा अणिमा महिमा आदि उत्कृष्ट आठों गुणों और ऐश्वर्यसे भरपूर था

प्रवीचारः प्राप्तमममावधि ॥ २१ ॥ निश्चिन्त्याबलतेओमि त्वावधिध्वजसमिमत । उत्कृष्टाष्टगुणैर्भयः प्राणतेंद्रोजनिष्ट मः ॥ २२ ॥ वीर्यं तत्र सुखं भुक्त्वा तस्मिन्नागमिष्यति । द्वीपेस्मिन्मारते क्षेत्रे फाकशीनगराधिप ॥ २३ ॥ इक्ष्वाकु काश्यपो वंशगोत्राभ्या धात्रिप्राप्तिम । सुधीवोस्य महादेवी जय-  
रमेति रम्यमा ॥ २४ ॥ सा देवैर्वसुधारादिपूजां प्राप्य परादिकीं फाल्गुने मूलतदक्षेत्रे तामरे नवमीं दिते ॥ २५ ॥ प्रभाते पोटङ्ग स्वप्नान् दारनिद्राबिलेक्षणा ।  
विलोक्य तत्फलान्यात्मपदेर्ज्ञात्वा प्रमोदिनी ॥ २६ ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे जैत्रयोगे तसुप्तम् । प्राप्तुं प्रतिपद्याद्यु तदैवेन्द्रा सहामरे ॥ २७ ॥ क्षीरा-  
मिवैकं भूयति पुण्यदाह्यमभुवनम् । कुदपुण्यप्रभासासिद्धेददीत्या विराजित ॥ २८ ॥ सागरोपमकोटानां नवत्यामतरं गते । एष चक्रपभंस्याभूतदभ्यंतर-  
जीवितः ॥ २९ ॥ पूर्वलक्षद्वयात्मायु घतचापयुच्चिह्निते । लक्षादूर्ध्वकालेऽस्य कैमारमगमस्तुख ॥ ३० ॥ अथाप्य पूज्य साप्राज्यमच्युतेन्द्रादिभिर्विभु ।  
अन्नभूखुखमिलिङ्गमिष्टे शिष्टैरपीभुत ॥ ३१ ॥ कात्राभि करणे सर्वरमुष्मादपि यस्तुत्वं । ताम्भोगेन तयो कस्य बहुत्वं कथ्यता बुधः ॥ ३२ ॥

॥ २०-२२ ॥ वहांपर उसने बहुत दिनतक सुखका अनुभव किया । जब उसकी आयु थोड़ी रह गई और उस मध्य-  
लोकमें जन्मलेनेके दिन समीप आगये तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काकंधी नगरमें राजा सुग्रीव राज्य करता था  
वह क्षत्रियोंमें सुख्य था तथा इक्ष्वाकुवंश और काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ था उसकी महादेवी का नाम जयरामा था,  
और उसकी कांति बहुत ही अच्छी थी ॥ २३-२४ ॥ उसके घर देवोंने रत्नोंकी वर्षाकर उसकी बड़ी भारी पूजाकी  
थी । फाल्गुनकृष्णा नौमीके दिन मूल नक्षत्रमें सवरेके समय कुछ कुछ जगते हुए उसने सोलह स्वप्न देखे और अपने  
पतिसे उनके फल सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई ॥ २५-२६ ॥ मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन जैत्र योगमें इम महादेवीने  
वह उत्तम पुत्र उत्पन्न किया, उसीममय इंद्रादि देवोंने आकर मेरुपर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया  
आशूषण पहिनाये तथा कुंदके फूलकी कांतिके समान शरीरकी कांतिके आकर मेरुपर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया  
रक्त्वा ॥ २७-२८ ॥ श्रीचंद्रप्रभके मोक्ष जानेके बाद नव्वे करोड सागर वीत जानेपर पुण्यदंत हुए थे इनकी आयु  
भी इसीसमयमें सामिल है ॥ २९ ॥ उनकी दो लाख पूर्वकी आयु थी और सौ धनुषका शरीर था । इसतरह उनके  
कुमार अवस्थाके पचास हजार पूर्व सुखसे व्यतीत हो गये थे ॥ ३० ॥ तदनंतर सोलहवें स्वर्गके इंद्रादि देव भी जिसे  
पूज्य समझते हैं ऐसे राज्यको पाकर वे भगवान् इष्ट पदार्थोंसे सुखका अनुभव करने लगे । उसममय बड़े बड़े पूज्य  
पुरुष भी उनकी स्तुति करते थे ॥ ३१ ॥ सब स्त्रियोंसे इन्द्रियोंसे और इस राज्यसे जो सुविधिनाथको सुख मिलता था  
तथा सुविधिनाथसे जो उन स्त्रियोंको सुख मिलता था उन दोनोंमें बुद्धिमान् लोग किसको बड़ा वा बहुत कहें ॥ ३२ ॥

पुण्यवानस्त्वयं किंतु मन्ये ता बहुपुण्यका । या समभ्यर्णनिर्धेण सुखमेनमरीरमन् ॥ ३३ ॥ य खर्गसारसौख्याव्यिमनः सन् सुवभागत । तान्येव  
मोग्यवस्तुनि यानि त चाभ्यलाषयन् ॥ ३४ ॥ अनतशोहमिदं त्वं प्राप्य तेनाप्यनुतेवान् । सुखेनानेन चेदेव त्वं सौख्येनैव च सुखं ॥ ३५ ॥ अष्टाविं  
महामोहतमोपहा ॥ ३७ ॥ इति तदेतुसभूतविमलावगमात्मक । स्वः सुहो विबुद्ध सन् तत्त्वमेव विभावयन् ॥ ३८ ॥ स्पष्टमग्न मया दृष्ट विश्वमेत-  
द्विदुषन् । कर्मद्वजालिकेनैव विपर्यस्य प्रदर्शित ॥ ३९ ॥ कामरोगभयोन्मादस्वप्नचैराबुपडुता । असत्सदिति पश्यति पुततो धा व्यवस्थित ॥ ४० ॥  
न स्यात्सु न शुभ किंचित् सुख मे न किंचन । ममाहमेव मतोन्यदन्यदेवास्त्रिज जगत् ॥ ४१ ॥ अहमन्यदिति द्वाभ्यां शब्दाभ्यां सत्यमर्पित । तथापि को-  
वयोंकि भगवान्, तो पुण्यवान् थे ही किंतु मैं तो उन ब्रिषोंको अधिक पुण्यवाली मानता हूं क्योंकि मोक्षका सुख जि-  
नके समीप है ऐसे भगवानको भी वे प्रसन्न करती थीं ॥ ३३ ॥ जो स्वर्गोंके गुरुगुरु मुख्य मुख्य सुखस्वप्नी समुद्रमें मग्न हो-  
कर पृथ्वीपर आए थे उनकेलिये भोगोपभोग करने योग्य उन्होंने वस्तुओंको ममझना चाहिये कि जिनकेलिये उनकी  
इच्छा उत्पन्न हो ॥ ३४ ॥ जो अनंतवार अहमिदं पद पाकर उन सुखोंसे तृप्त नहीं हुए वे भगवान इन सुखोंसे तृप्त  
हुए इसलिये कहना चाहिये कि सब सुखोंमें सबसे उत्तम यही सुख है ॥ ३५ ॥ इसतरह प्रेमपूर्वक राज्य करते हुए  
उनके पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वांग भीत गये । तब किसी एक दिन वे दिशाएँ देख रहे थे कि इतनेमें ही एक  
उल्कापात देखकर ही उनके ऐसे विचार हो गये । वे सोचने लगे कि यह बहुत छोटसा दीपक ( उल्कापात ) ही मेरे  
अनादि कालसे लगे हुए महामोहरूपी अंधकारको नाश करनेवाला है ॥ ३६-३७ ॥ इसप्रकार उस उल्कापातसे  
ही उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ, स्वयंबुद्ध हुए और स्वयंबुद्ध होकर तत्त्वोंको इसप्रकार विचारने लगे कि  
आज मैंने स्पष्ट रीतिसे देख लिया कि यह संसार विडंबनारूप है कर्मरूपी इंद्र जालिया ही इसे विपरीतकर  
दिखला रहा है ॥ ३८-३९ ॥ काम, शोक, भय, उन्माद, स्वप्न और चोरी आदि विकारोंसे विह्वल हुए जीव सामने  
रखे हुए असत् पदार्थको भी सत् ( सच्चा ) मान लेते हैं ॥ ४० ॥ इस जंगलमें न तो कोई वस्तु स्थिर रहनेवाली  
है न शुभ है न कुछ सुख देनेवाली है और न कुछ भरी है मेरा यह आत्मा ही है मेरे आत्मासे ( मुझसे ) भिन्न  
यह सब जगत् भिन्न ही है, तथा मैं उस जगत्से भिन्न हूं इन दो ही शब्दोंसे जो कुछ कहा जाता है वही सत्य है ।  
यद्यपि वास्तविक स्वरूप ऐसा ही है तथापि मोहकर्मके उदयके शरीरादिको यह अपना मान रहा है ॥ ४१-४२ ॥



पुन्यं नोदशमरो नियगृह्यु ॥ ५२ ॥ अत्र मन शुभ निःशुन ये यथात्मनु । अस्मादेव निपयताद् भववारिधौ ॥ ५३ ॥ जन्मदु खजग-  
 म्दुमदमनरमीकरे । इति साम उग्रलक्ष्मीं स तितिक्षुमभवत्तदा ॥ ५४ ॥ क्षिप्या लोकानिवासापूज्यो राज्यमरं सुते । सुमती प्रासकल्याण सुरेन्द्रे  
 परिवारित ॥ ५५ ॥ आरुघ्य विविता सूर्यप्रभाह्वया पुणके बने । मार्गशीर्षे तिते पक्षे प्रतिपद्यराहके ॥ ५६ ॥ दीक्षा पद्योपवासेन सप्तदशमृद्वोऽगृ-  
 हीत् । मन पर्ययत्ज्ञानो द्वितीयेहि प्रविष्टवान् ॥ ५७ ॥ चर्या शैलपुरे पुण्यमित्रधामीकरच्छविः । तत्र त भोजयित्वाप पचाध्वर्याणि पार्थिव ॥ ५८ ॥  
 एव तपस्यतो याता छात्रस्येन चतु समा । मूलक्षे कर्तिके शुद्धद्वितीयाया दिनक्षये ॥ ५९ ॥ दिनद्वयोपवात सप्तयस्तात्रागमूह । दीक्षावने विधू-  
 ताथ प्रासन्नतयुष्टय- ॥ ६० ॥ चतुर्विधामराधीशविहिततत्सर्वैभ्यः । सुनिरूपितविश्वार्थदिव्यध्वनिविराजित ॥ ६१ ॥ विदर्शनानामुख्या-

आत्मासे भिन्न जो शरीरादिक है वही मैं हूँ मेरे सुख सब शुभ हैं और नित्य हैं ऐसा जो विपरीत ज्ञान हो रहा है  
 इसी विपरीत ज्ञानसे जन्म मरण बुढ़ापा और दुस्तरूपी महामगर मच्छोंसे भयानक ऐसे संसाररूपी समुद्रमें मे  
 परिभ्रमण कर रहा हूँ । इसप्रकार त्रिचार कर उन्होंने राज्य लक्ष्मीके त्याग करनेकी इच्छाकी और सुमति नामके पुत्र  
 को राज्यका सत्र भार समर्पण किया । उसीसमय लौकिक देवोंने आकर दीक्षा कल्याणकी पूजाकी और वे उनके  
 चारों ओर आकर खंड हो गये ॥ ४३-४५ ॥ सूर्यप्रभा-नामकी पालकीपर सवार होकर वे भगवान पुष्पक बनमें गये  
 और मार्ग शीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन आमके समय हजार राजाओंके साथ वेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण  
 की । उसीसमय उनके मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे पारणाके दिन वे चर्याके लिये निकले और शैलपुर नगर  
 में गये । सुवर्णकी कान्तिकी धारण करनेवाले वहाँके राजा पुण्यमित्रने उन्हें आहार दिया और वह देवोंके द्वारा किये  
 हुए पंचाश्रयों को प्राप्त हुआ ॥ ४६-४८ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए उनके छद्मस्थ अवस्थामें चार वर्ष व्यतीत हो  
 गये तब वे दो दिनका उपवास कर पुष्पक नामके दीक्षावनमें ही नागवृक्षके नीचे विराजमान हुए उन्हें वहीं का-  
 र्तिक शुक्ला द्वितीयाके दिन मूल नक्षत्रमें आमके समय वातिया कर्मोंका नाश होकर अनंत चतुष्टय प्राप्त हुए ॥ ४९-  
 ५० ॥ चारों प्रकारके देवोंके इद्रोंने आकर जिसे कोई विचारमें मी नहीं ला सकता ऐसी समोसरण आदि विभूतिकी  
 रचनाकी और दिव्यध्वनिके द्वारा सब पदार्थोंका निरूपण करते हुए वे भगवान उम समोसरणमें विराजमान हुए ॥  
 ५१ ॥ उनके समोसरणमें विदर्भको आदि लेकर सात ऋद्धियोंको धारण करनेवाले अठारसी गणधर थे और पंद्रहसौ  
 शुकदेवली थे ॥ ५२ ॥ एक लाख पचपन हजार पंचसौ शिक्षक उनके रक्षक थे और आठ हजार चारसौ अबधिशानी

धासीतिसाद्धिसुत । शन्यद्वयद्वितीयको भुक्तकेवलिनयक ॥ ५३ ॥ खद्वेदियपचैद्वितीयकभिक्षकरक्षक ! शन्यद्वयाध्विकमोक्षविज्ञानवरसेवित ॥ ५३ ॥  
 शन्यत्रयमुनिभोक्तकेवलज्ञानलोचन । सत्रयत्र्यकनिर्णतविक्रियाद्धिविचेष्टित ॥ ५४ ॥ शन्यद्वयेदियद्वयुक्तमन पर्ययोयन । शन्यद्वयतुपद-  
 प्रोक्तनादिवयाधिमगल ॥ ५५ ॥ मिडितापिद्विलोचन खचतुष्काष्टवन्दिमान् । घोषार्यावाप्यकोपेतो द्विलक्षथावकावित ॥ ५६ ॥ श्राविकापचलक्षाय्य  
 सख्यातीतमग्रहण । तिर्यक्सव्यातसम्प्रभो गणरीलेभिरावित ॥ ५७ ॥ निद्रुल विषयान् प्राप्य सम्मेदं रुद्धयोगक । मासे भाद्रपदेऽष्टव्या शुक्ले मूले  
 त्वत्स्य शुद्ध व्यषाद्य । प्रपुष्ट स्वर्गपवर्गौ सुविधिरुशमं चेतसा विभ्रतां त । भक्ताना मोक्षलक्ष्मीयतिमतिविक्रसतुप्यदत श्रद्धत, भास्वत दत्तकोला-  
 प्रहसितवदन पुष्पदंत नमाम् ॥ ६० ॥ शात वपु भ्रवणहारि वचश्चरित्र सर्वोपकारि तव देव ततो भवतं । समारमारम्भमहात्स्यलक्षदद्यात्मात्रीरुहमिमे  
 मुनि उनकी सेवा करते थे ॥ ५३ ॥ सात हजार पांचसौ केवलज्ञानी और तेरह हजार विक्रिया कृद्धिको धारण करने-  
 वाले मुनि उनके चारों ओर विराजमान थे ॥ ५४ ॥ सातहजार पांचसौ मनःपर्ययज्ञानी और छह हजार छहसौ वादी  
 उनके चरणकमलोंकी चंदना करते हुए मंगलस्वरूप हो रहे थे ॥ ५५ ॥ इसतरह सब मुनिराजोंकी संख्या दो लाख  
 थी । घोषार्याको आदि लेकर तीन लाख अस्सीहजार अर्जिहोयें उनके साथ थीं, दो लाख श्रावक और पांच लाख  
 श्राविकाएं उनकी पूजा करती थीं । इनके सिवाय असंख्यात देव देवी और संख्याततिर्यच उनके साथ थे । इसतरह  
 इन बारह समाओंसे वे भगवान् पूज्य हो रहे थे ॥ ५६ ॥ सब देशोंमें विहारकर अंतमें वे सम्पदशिखरपर जा  
 विराजमान हुए, वहांपर उन्होंने योग निरोध किया और एकहजार मुनियोंके साथ भाद्रपद ( भादों ) शुक्ला अष्टमीके  
 दिन मूलनक्षत्रमें शामके समय वे पुष्पदंत भगवान् मोक्ष पधारे । इंद्रादि देवोंने आकर उमीममय निवीण कल्याणकी  
 पूजाकी और फिर वे अपने २ स्वर्गको चले गये ॥ ५८-५९ ॥ जिन्होंने अपने ज्ञानसे दूसरोंके कठिनसे कठिन मार्ग-  
 को भी सुगम और शुद्ध कर दिया, जो पुरुष अपने चित्तमें शांतता वा उपशम धारण करते हैं ऐसे भव्योंकेलिये  
 जिन्होंने स्वर्ग मोक्ष प्राप्त होनेकी विधि बतलाई, जो मोक्षलक्ष्मीके स्वामी हैं अत्यंत खिले हुए फूलके समान जिनके  
 दांत हैं जो अत्यंत दीप्यमान हैं दांतोंकी कांतिसे सुशोभित हैं और जिनका मुखकमल सदा प्रफुल्लित रहता है ऐसे  
 पुष्पदंतको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६० ॥ हे सुविधिनाथ देव ! आपका शरीर शान्त है, वचन कानोंको हरण कर-  
 नेवाले ( सुख देनेवाले ) हैं और चारित्र्य सबका उपकार करनेवाला है संसाररूपी मरुस्थलमें आप बड़ी भारी घनी

मुनिर्धि श्रयाम ॥ ६१ ॥ योऽजायत दितियुद्धं पथादभुद्विवि चतुर्दशकल्पनाय । प्राप्ते चमूज भरते सुविधिर्नृपेन्द्र-स्तीर्थेश्वर म नवम-  
कुरुताञ्छिय व ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्रान्वयप्रणीति त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणमग्रहे पुण्यदंतपुराणवसति पंचपचाशत्तम पर्व ।

## अथ षट्पंचाशत्तमं पर्व ।

शीतलो यस्य सद्धर्मं कर्मघमोच्छमीरुभि ॥ सतप्ताना शशीवासौ शीतल शीतलोऽस्तु नः ॥ १ ॥ पुष्करद्वीपपूर्वाक्षेमदरप्राग्विवेदभाक् । सीता  
वावृतवत्सस्थसुसीमानगराधिप ॥ २ ॥ भूपति पद्मगुल्मास्थो दृष्टोपायचतुष्टय । पंचांगमन्ननिर्नातसधिविप्रहतचवित् ॥ ३ ॥ प्रज्ञावारिपरीषेक

छायावाले, वृथके समान हैं इसलिये ही ये हम सब लोग आपका आश्रय लेते हैं ॥ ६१ ॥ जो पहिले इसी मध्यलोकमें  
महापद्म राजा हुए थे, फिर जो चौदहवें प्राणत स्वर्गके इंद्र हुए और अंतमें वहांसे आकर जो इसी भरतक्षेत्रमें  
सुविधिनाथ राजाधिगज होकर नौवें तीर्थंकर हुए ऐसे पुण्यदंत वा सुविधिनाथ तुम लोगोंका कल्याण करो ॥ ६२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्रार्चयप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवानं पुण्यदंतका पुराण समाप्त-

करनेवाला यह पंचपनवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

## अथ छप्पनवां पर्व ।

जिनका कहा हुआ धर्म मी सबके लिये शीतल है और कर्मरूपी धूपकी किरणोंके डरसे संतप्त हुए लोगोंको जो  
चंद्रमाके समान शीतल हैं ऐसे श्री शीतलनाथ भगवान् हम लोगोंको शीतल हों । १ ॥ पुष्कराक्ष द्वीपके पूर्वमंदराचल-  
की ओर पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके पश्चिम किनारे वत्स नामका देश है उसके सुसीमा नगरमें पद्मगुल्म नामका  
राजा राज्य करता था वह ज्ञान दामदह भेद इन चारों उपायोंको जाननेवाला था, पंचांग मंत्रसे निर्णय किये हुए संधि  
विग्रह आदि तस्वोंका जानकार था, बुद्धिरूपी डलके सींचनेसे उसका राज्यरूपी वृक्ष बहुत ही बढ गया था तथा स्वामी  
मंत्री किला खजाना मित्र देश और सेना ये सात प्रकृतिरूपी आखाओंके द्वारा धर्म अर्ब काम तीनों फल खूब फलते  
थे ॥ ३-४ ॥ वह प्रतापरूपी बडवानलकी बंचल उवालाओंकी पंक्तिओंसे खूब ही दीर्घ्यमान था तथा उसके तलवार

इदमद्रोण्यभूह । सप्तमकृतिशास्त्राणि फलत्रयं ॥ ४ ॥ प्रतापवाढवालोल्लङ्घवालालापरिस्फुरत् । चंद्रसिंघारावावादिमन्मारासिमहीधर  
 ॥ ५ ॥ स्वयमुपाय दैवेन लक्ष्मी बुद्धयोद्यमेन च । विधाय सर्वसंभोग्या मोक्षापि गुणवानसौ ॥ ६ ॥ न्यायार्जितार्थसंतर्पितार्थसार्यो निराकुलं ।  
 पाति तस्मिन् धराचक्र सर्वतुमुखाशालिनि ॥ ७ ॥ कोकिलालिकलालापा विलसत्तल्लवोधरा सौगंध्यान्वितमत्तल्लिकलितोद्गमलोचना ॥ ८ ॥ भाभिनीहार-  
 सस्योत्साहासा स्वाच्छावरावरा । संपूर्णचंद्रविवास्या वकुलामोदवासिता ॥ ९ ॥ मलयानिलनि श्वासा कर्णिकारतनुच्छवि । वसतश्रीरिवायाता तत्संगम-  
 समुत्सुका ॥ १० ॥ अनगस्तद्वलेन पंचवणोपि निष्ठुरं ॥ अविध्यदुदुषणो वा को न कालवले वली ॥ ११ ॥ मुसुलेप्सुर्वसंतश्रीविवशीकृतमानसः ।  
 तया विद्वत्संजीविराक्रीडति निरंतर ॥ १२ ॥ सापि कालानिलोद्धूता घनाली वा व्यलीयत । तदपायसमुद्भूतशोकव्याकुलतावय  
 रूपी चंद्रमाकी धारारूपी समुद्रके जलमें सब शत्रुरूप राजा मग्न हो रहे थे इब रहे थे ॥ ५ ॥ उसने देव बुद्धि और उद्यम  
 तीनों तरहसे स्वयं लक्ष्मीका उपार्जन किया था और उसे सबके उपयोग गिना जाता था ॥ ६ ॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे सब याचकोंको  
 उसका उपयोग करता था तथापि वह गुणवान गिना जाता था ॥ ७ ॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे सब याचकोंको  
 संतुष्ट करनेवाला और सब ऋतुओंके सुख भोगनेवाला ऐसा वह राजा जिससमय निराकुल हो पृथ्वीका पालन कर रहा  
 था उससमय जो कोयल और भ्रमरोंके द्वारा मनोहर वचन कह रही है, सुदूर नवीन पत्ते ही जिसके अधर हैं, सुगंधिसे आए  
 हुए उन्मत्त भ्रमरोंसे सुशोभित नई कलियां ही जिसके नेत्र हैं, स्त्रियोंके हाथ, मनोहर चांदनी और हंसीरूपी स्वच्छ वस्त्रोंसे  
 जो विभूषित हैं चंद्रमाका पूर्णविंव ही जिसका मुख है, वकुलकी सुगंधसे जो सुगंधित हो रही है, मलयाचलकी सुगंधित  
 वायु ही जिसका निवास है और कर्णिकार हृदके समान जिमके शरीरकी शोभा है ऐसी वसंत ऋतुकी शोभा उस राजा-  
 के साथ समागम करनेकी इच्छासे ही क्या मानो आई ॥ ७-१० ॥ उससमय जिसके पाप पांच ही बाण हैं ऐसा  
 शरीर रहित कामदेव उम वसंतकी सहायतासे निर्दय होकर सताने लगा सो ठीक ही है क्योंकि समयके चल-  
 वान होनेपर बहुतेरे बाणवाला कौन चलवान नहीं होता है ॥ ११ ॥ जिसका मन वसंतकी शोभाके वश हो गया  
 है और जो अच्छे सुख भोगना चाहता है ऐसा वह राजा भी उस वसंतकी शोभाके साथ प्रेम बढ़ाता हुआ निरंतर  
 कीड़ा करने लगा ॥ १२ ॥ परंतु जिमप्रकार वायुसे मेघ सब नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार समयरूपी वायुसे वह वसंत-  
 की शोभा भी नष्ट होगई । उस वसंतकी शोभाके नाश होनेसे उसे बहुत ही शोक हुआ और उस शोकसे उसका  
 चित्त बहुत ही व्याकुल हुआ ॥ १३ ॥ वह विचार करने लगा कि यह काम बढ़ा ही दुष्ट है यह पापी समस्त सं-

॥ १३ ॥ कामो नाम बल कोपि तापयत्यखिलं जगत् । पापी सर्कलचित्तस्यो विप्रदो विप्रशुद्धिना ॥ १४ ॥ तं ध्यानानलनिर्गन्धमयैव विदधाम्यहं । इत्यविभूतवैराग्यद्वन्द्वे निजन्दने ॥ १५ ॥ राज्यभारं समारोप्य मुनिमानदनामकं । संप्राप्य सर्वसमोर्गवसुह्वयं स समीपिवान् ॥ १६ ॥ विपाक-सूत्रपथतत्त्वकलागंधरं शमी । स्वीकृत्य तीर्थकुन्नाम विधाय सुचिरं तप ॥ १७ ॥ संप्राप्य जीधिनस्याति त्रिधाराधनसाधन । आरणाख्योऽभवत्कल्पे सुरंदो लवबभूव ॥ १८ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानानयु हस्तत्रितयविग्रहः । शुक्रलेखाद्वयो मांसं संदंकादशभिं यत्नन् ॥ १९ ॥ द्वाविंशतिमहसूक्ष्मसहस्र-तर्पित । श्रीमान्मन प्रवीचारः प्राकाम्याद्यष्टीगुण ॥ २० ॥ प्रायश्चरणात् व्यासतृतीयज्ञानभास्वर । तत्प्रमाणबलस्तावत्प्रकाशतनुविक्रियः ॥ २१ ॥ वीतवाहविकारोऽखरोऽब्धिसागराग । कलामिव कलासंख्यामयमययुरजीगमत् ॥ २२ ॥ तस्मिन्मुक्त्वा समायाति पण्यासास्थितिजीविते । द्वीपेस्मिन् सारको दुःख देता है और मक्के चित्तमें रहता है यह विग्रह अर्थात् शरीरके विना ही विग्रह अर्थात् उपद्रव करनेवाला है ॥ १४ ॥ इमलिये ध्यानरूपी अग्निमें इसे आज ही जलाऊंगा, इस प्रकार उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने चंदन नामके अपने पुत्रको राज्यका भार समर्पण किया और आनन्द नामके मुनिके समीप जाकर वह सब भोगोपभोगोंसे उदास हुआ अर्थात् सबका त्यागकर उसने दीक्षा धारण की ॥ १५-१६ ॥ शांत मुद्राको धारण करनेवाले उमने वि-पाकसूत्रतक सब अंगोंका अध्ययन किया, और बहुत दिन तपश्चरणकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया ॥ १७ ॥ आयुके अंतमें मन वचन कायसे समाधिभ्रम धारण किया और शरीर छोड़कर पंद्रहवें आरण स्वर्गमें भारी विभूति-को धारण करनेवाला इंद्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ वहाँपर उसकी वाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था, द्रव्य और भाव दोनों ही शुक्ल लेश्यायें थीं, वह ग्यारह महीने वाद इवास लेता था, वाईसहजार वर्ष बाद मानसिक आहारसे संतुष्ट होता था, उस श्रीमान्के मानसिक प्रवीचार था, प्राकाम्य आदि आठ क्रूरियां थीं, छठवीं पृथ्वीसे पहिले पहिले उमका अविज्ञानरूपी प्रकाश पहुंचता था, वहीं तक बल था, वहीं तक प्रकाश था और वहाँ तक शरीरकी विक्रिया थी ॥ १९-२१ ॥ उसके कोई बाह्य विकार नहीं था बड़े भागी सुखरूपी समुद्रका पारगामी था और कलाओंके समान कला-ओंकी संख्याओंसे भरी हुई आयुको व्यतीत करता था ॥ २२ ॥ जब उसकी आयुके छह महीने रह गये और वह इस पृथ्वीपर जन्म लेनेके सन्मुख हुआ तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मलयदेशके मद्रपुर नगरमें इस्वाकुबंधमें उत्पन्न हुआ दृढरथ नामका राजा राज्य करता था । उसकी महादेवीका नाम सुनदा था उसके घर कुवेरकी आज्ञासे गुप्तक नामके देवोंने छह महीने पहिलेसे ही रत्नोंकी वर्षों करना प्रारंभ किया था । उस मालिनीने भी सबेरेके समय सोलह स्वप्न

भारते वयं विषये मलयाह्वये ॥ २३ ॥ राजा ॥ २३९ वश पुरोहिदरथोऽभवत् । महादेवी मुनदास्य तदृष्टं धनदाक्षया ॥ २४ ॥ रत्नरूपयन्देवा गुणकाक्षया । सापि स्वप्नाक्षिणामाते वोढपालोक्य मानिनी ॥ २५ ॥ प्रविशन्ते गजं चास्य भूपतेस्तस्मालान्यवात् । नदाद्यायादनक्षेत्रे कृष्णाष्टम्या दिव्य-  
द्व्युत ॥ २६ ॥ चैत्रे स देव स्वर्गायात् गुणे सद्गुणस्तदादिभि । भावी शुक्तिपुटे तस्या वाविदुर्बोदरेऽभवत् ॥ २७ ॥ आदिकल्याणसत्तूजा ग्रीत्यैत्य विदधु सुरा । द्वादश्यामासिते माघे विश्वयोगेजानि क्रमात् ॥ २८ ॥ तदैवागत्य त नीत्वा, महामेशमहोत्सवा । देवा महाभिवेकांते व्याहरति स्म  
शीतल ॥ २९ ॥ नव क्रोडयन्धियानोक्तपुष्पदत्तातरांतिमे । पत्योपमचतुर्भागे व्युच्छिन्ने धर्मकर्मणि ॥ ३० ॥ तदभ्यन्तरवर्त्योत्सृज्य कनकच्छवि ।  
खपचकैकपर्णयुधनुर्नवतिविग्रहः ॥ ३१ ॥ गते स्वायुधनुर्भागे कौमारै स्वपितु पदं । प्राप्य प्रथानसिद्धिं च पालयामास स प्रजा ॥ ३२ ॥ गत्यादिशु-  
भनामानि सदैव गोत्रभूतम् । आयुस्तीर्थकरोपेतमपवर्तविवर्जितं ॥ ३३ ॥ सर्वोपेतानि संभूय स्तोत्रैश्चतुर्भुवोदयात् । सुतदानि ततस्तस्य सुत केनोप-  
भियते ॥ ३४ ॥ स्वायुधनुर्धभागवशेषे हासितस्रस्ततिः । प्रत्याह्वयानकपायोदयावसाने प्रतिष्ठितं ॥ ३५ ॥ त कदाचिद्दिहाराधे वन यातं महोजस । हि-  
देवै तथा अंतर्मे अपने सुखमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा राजासे उनका फल सुना और चैत्रकृष्णा अष्टमीके दिन  
पूर्वाष्ठ नक्षत्रमें वह इंद्र स्वर्गसे च्युत हुआ तथा जिसप्रकार जलकी बूंद गुलाई आदि गुणोंसे सीपमें रहती है उसी-  
प्रकार वह माताके उदरमें आ विराजमान हुए ॥ २३-२७ ॥ देवोंने आकर बड़े प्रेमसे गर्भकल्याणकी पूजा की ।  
माघकृष्णा द्वादशीके दिन पूर्वषाढ नक्षत्रमें उनका जन्म हुआ, उससमय इंद्रादि देव आए, उन्हें मेरुपर्वतपर ले गये  
वहांपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया उत्सव मनाया और शीतलनाथ और शीतलनाथ हुए थे, इनकी आयु भी इसी समयमें शामि-  
तस्वामीके मोक्ष जानेके बाद नौ करोड सागर भीत जानेपर शीतलनाथ हुए थे, इनकी आयु भी इसी समयमें शामि-  
ल है, इनके जन्म लेनेके पहिले पल्यके चौथाई भाग तक धर्म कर्मका विच्छेद रहा था । इनकी आयु एक लाख पू-  
र्वकी थी और नव्वे धनुष ऊंचा शरीर था ॥ ३०-३१ ॥ उनकी आयुका चौथाई भाग कुमार अवस्थामें व्यतीत हुआ  
था फिर पिताका राज्य और प्रधान सिद्धि पाकर उन्होंने प्रजाका पालन किया था ॥ ३२ ॥ गत्यादि शुभ नाम, सा-  
ता वेदनीय, ऊंच गोत्र तथा अपवर्तरहित और तीर्थहरनामकर्मसहित उत्तम आयु ये सब कर्म मिलकर उत्कृष्ट अ-  
नुभवके उदय होनेसे सुख देनेवाले थे, इसलिये उनके सुखकी उपमा भला किसके साथ दी जा सकती है ॥ ३३-३४ ॥  
इसतरह जब उनकी आयुका चौथाई भाग वाकी रह गया और संसारका अंत नजदीक आगया तब उनके प्रत्याख्यान  
कृपायके उदयका अंत हुआ । इसीसमय वे महातेजस्वी भगवान विहार करनेकेलिये किसी वनमें गये थे वहांपर

मानीपटलं मय प्रच्छाद्य प्रलय गत ॥ ३६ ॥ स तदेतुसमुद्भूतबोधिरियमन्वितयत् । क्षण प्रत्यर्थयार्थीरिदं विश्वं विनश्यत् ॥ ३७ ॥ दुःखं दुःखिनिमि-  
साद्ययन्त्रितय निश्चितं मया । सुखादित्रयविज्ञानमेतस्मोद्दामुबध्नात् ॥ ३८ ॥ अहं किल दुःखी सौन्दर्यमेतत्किल पुन सुखं । पुण्यात्किलमहामोहः काललब्ध्या  
विनाऽभवत् ॥ ३९ ॥ कर्म स्यात्किं न वा पुण्यं कर्म चेत् कर्मणा कुत । सुखं रतिविकाराभिलाषोद्यवतो गिनः ॥ ४० ॥ विपर्ययेव चेत्यौख्यं तेषां पर्यन्तो-  
त्स्यह । तत् कुतो न मे वृत्तिः सिध्या वैपयिकं सुखं ॥ ४१ ॥ औदासीन्यं सुखं तत्र सति मोहे कुतस्तत् । मोहारिमेव निर्भूल विलय प्रापये द्रुतं ॥ ४२ ॥  
इत्याकुल्य याथात्म्यहेयपक्षे निवेधित । दत्त्वा पुत्राय साम्राज्यं मोहिनामादरावह ॥ ४३ ॥ लब्धलौकातिकस्तोत्रं प्राप्तत्कालपूजनं । शुक्रप्रभा स-  
माख्या सहेतुकवन्तरे ॥ ४४ ॥ पूर्वपाठे माघमासे कृष्णद्वादश्याक्षये । उपवासहो राजसहस्रैर्गैर्य सयमं ॥ ४५ ॥ चतुर्दशी द्वितीयेति स चर्यायं

पालेका समूह सकल ठक रहा था और देखते देखते ही वह नष्ट होगया था ॥ ३५-३६ ॥ इसी हेतुसे उन्हें आत्म-  
ज्ञान उत्पन्न हुआ और वे इसप्रकार विचार करने लगे कि प्रत्येक पदार्थके पर्याय क्षणक्षणमें बदलते रहते हैं उन्होंने  
यह संसार विनश्यत् ॥ ३७ ॥ आज मुझे दुःख दुःखी और इनका निमित्त इन तीनोंका निश्चय होगया । मोह कर्मके  
उदयसे दुःखादि तीनोंमें ही यह सुख सुखी आदिका ज्ञान होता है ॥ ३८ ॥ मैं सुखी हूं ये सब सुख हैं पुण्यकर्मके उ-  
दयसे आगे भी सुख मिलेगा यह सब महामोह है जो कि काललब्धिके विना हो रहा है ॥ ३९ ॥ कर्म पुण्यरूप हों  
अथवा न हों जो कर्म विद्यमान हैं तो फिर उन कर्मोंसे सुख कैसे मिल सकता है क्योंकि संसारी जीवोंके अनेक तर-  
हके विकार होते हैं वे सदा अभिलाषा करते रहते हैं और सभी सदापी हैं ॥ ४० ॥ यदि संसारमें विषयोंसे ही सुख  
मिलता हो तो मुझे सबसे अधिक विषय प्राप्त हैं फिर मुझे वृत्ति क्यों नहीं होती इसलिये यह निश्चय है कि यह विष-  
योंसे उत्पन्न हुआ सुख सर्वथा मिथ्या है ॥ ४१ ॥ सच्चा सुख उदासीनतामें है और वह मोहनीय कर्मके रहते हो नहीं  
सकता इसलिये मुझे शीघ्र ही यह मोहनीय कर्मरूपशुद्ध समूल नाश करना चाहिये ॥ ४२ ॥ इसप्रकार वस्तुका यथा-  
र्थ स्वरूप समझकर जिसे मोही लोग ही आदर दे सकते हैं और जो त्याग करने योग्य है ऐसा राज्य पुत्रके लिये स-  
मर्पण किया ॥ ४३ ॥ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की, इन्द्रादि देवोंने आकर दीक्षाकल्याणकी  
पूजाकी, शुक्रप्रभा नामकी पालकीपर सवार होकर वे भगवान सहेतुक वनमें पहुंचे और माघ कृष्ण द्वादशीके दिन  
पूर्वीपाठ नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर दीक्षा धारण की ॥  
४४-४५ ॥ उसीसमय उन्हें मनःपर्यन्त ज्ञान उत्पन्न हुआ, दूसरे पारणाके दिन चर्याकेलिये वे अरिष्ट नगरमें गये,



प्रतिष्ठान् । अरिष्टनगरं तस्मै नवपुण्य- ५० ॥ ४६ ॥ नात्रा नरपतिर्वा परमात्र प्रमोदवान् । वितीर्णमरसुष्टे  
 खाद्यसंयेन समारितो नीत्वा त्विदमाश्रय । षोडशपञ्चदश्या पूर्वापादेऽपराह्णे ॥ ४८ ॥ दिनद्वयोपवासेन वैवत्यं कनकशुति । आपदाप्य तदा देवाः  
 तस्य पूजामनुवर्त ॥ ४९ ॥ अनगरास्यमुद्देशे कीर्तिसार्द्धसप्तमः । शून्यद्वययुगैकाकापुज्यपूर्ववराण्यतः ॥ ५० ॥ शून्यद्वयद्विर्द्वययोक्तु  
 शिक्षकलक्षितः । शून्यद्वयद्विसप्तमज्ञानत्रयविलोचन ॥ ५१ ॥ शून्यद्वितयसोक्तपञ्चमायमगन्विता । शून्यत्रितयपक्षविक्रियद्वितीयोक्तु  
 राद्विक्रियसप्तोक्तमनं पर्ययसंयत । शून्यद्वयद्विपञ्चोक्तवादिमुख्याचितक्रमाः ॥ ५२ ॥ एकीकृतयतिवातलघसमुपलक्षितः । सचतुष्काष्टव-  
 न्मुक्तधारणयार्दिकांनवित ॥ ५३ ॥ उपासकद्विद्वयार्थो द्विगुणश्राविकाश्रुत । असंख्यदेवदेवीउद्युक्तिव्यसंख्यातसेवित ॥ ५४ ॥ विद्वल्य विवि-  
 धान् देशान् भव्यमिथाहशो बहून् । सम्यक्कदिगणस्थानान्याजो जन् भग्नेक्षणात् ॥ ५५ ॥ सम्मैदृशैलमासायमासमात्रोऽप्युक्तक्रिय । प्रतिमायोग-  
 वहांपर पुनर्वसु नामके राजाने बड़ी प्रसन्नतासे नवधा भक्तिपूर्वक उन्हें आहार दिया और देवोंने संतुष्ट होकर उसके  
 घर पंचाश्व्याकी वर्षा की ॥ ४६-४७ ॥ इस तरह तपश्चरण करते हुए उन्होंने छत्रस्थ अवस्थामें तीन वर्ष विताये तब  
 षोष कृष्णा चतुर्दशीके दिन शामके समय पूर्वापाठ नक्षत्रमें तिलके इक्षुके नीचे दो दिनका उपवासकर आ विराजमान  
 हुए । सुवर्णकीसी कान्तिवाले उने भगवानके उसीसमय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और इंद्रादिदेवोंने आकर समवसरण  
 आदिकी रचनाकर उसीसमय उनकी पूजाकी ॥ ४८-४९ ॥ उनकी सभामें मुनियोंमें मुख्य और सात ऋद्धियोंको धा-  
 रण करनेवाले इवयासी गणधर थे, चौदहसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोक्तें जानकार थे ॥ ५० ॥ उनसठहजार दोसौ श्रि-  
 रण करनेवाले मुनि उनकी पूजा करते थे ॥ ५१ ॥ सातहजार केवलज्ञानी और वारहहजार विक्रिया ऋद्धिको धा-  
 मुनि उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे ॥ ५२ ॥ सातहजार पंचसौ मनःपर्ययज्ञानी और पंचहजार सातसौ वादी  
 तीन लाख अरसी हजार अर्बिकाएं थीं, दो लाख श्रावक उनकी पूजा, चार लाख श्राविकाएं उनको नमस्कार करते  
 थे, असंख्यात देवदेवी उनकी पूजा करते थे और संख्यात त्रिच सेवा करते थे ॥ ५३-५५ ॥ इस तरह उन्होंने अ-  
 नेक देशोंमें विहार किया, अनेक भव्य मिथ्यादृष्टियोंको सम्यक्त्व आदि देकर तथा धर्मोपदेश देकर उनके गुणस्था-  
 नोंमें चढाया ॥ ५६ ॥ अंतमें सम्मैदृ शिखरपर आ विराजमान हुए, एक महीनेका योग निरोध किया, और प्रतिमा-  
 योग धारणकर एक हजार मुनियोंके साथ साथ आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन पूर्वापाठ नक्षत्रमें शामके समय समस्त

मासाद्य सहस्रमुत्तिरुदृतः ॥ ५७ ॥ धदलश्वधुजाष्टया पूर्वापाटिउत्तरद्वग । नक्षिताशेषकर्मोपरि मंत्रपात्परमं पदं ॥ ५८ ॥ कृत्वा पंचमकल्याण देवेन्द्रा-  
शोहिताखिला । रवेरुद्दधुर्हि मि खुचा शीतल रस्ता दिव ॥ ५९ ॥ यस्तोयदमनुप्रसादमगमचंद्रोदयाद्वा जगत् अधूना व्यक्तसन्मुखानि निखिलान्य-  
भ्यानि वोष्णयुते । अधीनप्राप्य समीपितान् बहुदा सन्नयंवतोऽर्थितः त वदे त्रिदशार्चित रतिपुत्रानिःशेषिणं शीतल ॥ ६० ॥ दिग्मातृगकपोलमूल  
गलितेदानैस्तामोदवैद्वन्वाद्धुनिभोजवलोलोत्तिलिकास्तदंति पर्यंकके । दिक्क्याः कलकाठिकाश्च रन्वितेगार्थेति वर्णोत्तरैर्यस्यात्युद्धत मोहवीरविजय त  
शीतलं संखुवे ॥ ६१ ॥ पद्मगुल्मखिलै स्तुत गुणैरारण्यैर्द्रममरार्चितं तत । तीर्थकृत्युदशनं दयामयं शीतलं नमत सर्वशीतलं ॥ ६२ ॥ शीतलेशस्य  
तीर्थाने सदमो नाशमेखिवान् । वक्तव्योवृचरिष्णुनाममवात्कालोपतः ॥ ६३ ॥ तदा मलयदेशो निवसन् भद्रिले पुरे । राजा मेघरथस्तस्य सन्निव

कर्म रूप शत्रुओंको नाशकर परम मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ५७-५८ ॥ अपने शरीरकी कांतिसे सब दिशाओंको प्रका-  
शित करते हुए इंद्रादिदेव आए, निर्वाणकल्याणकी पूजाकी और स्तुतिकर अपने अपने स्वर्गको चले गये ॥ ५९ ॥  
जिनका जन्म चंद्रमाके उदयके समान सब ससारको प्रसन्न करनेवाला था, जिसप्रकार सूर्य कमलोंको प्रफुल्लित करता  
है उसीप्रकार जिन्होंने अपने भाई वंशुओंके मुखकमल सब प्रफुल्लित कर दिये थे, जिनसे प्रार्थना करनेवाले वा याचक  
लोग इष्ट पदार्थोंको पाकर बहुत प्रसन्न होते हुए अर्थवाले हो जाते हैं, देव लोग भी जिनकी पूजा करते हैं और जो  
संसारकी वही हुई तृष्णाको नाश करनेवाले हैं ऐसे शीतल नाथको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६० ॥ दिग्गजोंके कपो-  
लमूलसे गलते हुए तथा सबको सुगंधित और आनंदित करनेवाले दानसे जिन्होंने आधे चंद्रमाके समान  
निर्मल और लंबा तिलक दिया है और जिनके कंठ मधुर हैं ऐसी दिक्क्याएँ अपने बनाये हुए पक्षोंसे जिनके उद्धत  
हुए मोहरूपी शूरवीरके विजयका गान करती हैं ऐसे शीतलनाथ भगवानकी भे स्तुति करता हूं ॥ ६१ ॥ जो पहिले  
सब तरहके गुणोंसे पूज्य पद्मगुल्म राजा हुए थे, फिर देवोंके द्वारा पूज्य पद्मरत्न आणस्वर्गमें ईंद्र हुए और फिर जो  
दशवें तीर्थकर दयामय और सबको शीतल करनेवाले शीतलनाथ हुए उनके लिये तुम सब लोग नमस्कार करो ॥ ६२ ॥

अथानंतर—शीतलनाथ तीर्थकरके अंतिम समयमें काल दोषसे वक्ता भोवा और धर्मात्मा लोगोंके अभाव होनेसे  
इस उत्तम जैनधर्मका नाश होगया था ॥ ६३ ॥ उससमय भद्रिलपुरमें मलयदेशका स्वामी राजा मेघरथ राज्य करता  
था उसके भंत्रीका नाम सत्यकीर्ति था ॥ ६४ ॥ किसी एक समय सभामें सिंहासनपर बैठे हुए उस राजाने धर्ममें द्रव्य-  
लयानेकी इच्छासे सब सभासदोंसे पूजा कि दानोंमें ऐसा कौनसा दान है जिसके देनेसे बहुतसा फल हो ? इसके उत्तर-

सत्यकीर्तिवाक् ॥ ६४ ॥ स कदाचित्समागेहे सिंहासनमभिष्टित । आपृच्छत मभासीनान् धर्मार्थं द्रव्यवित्तया ॥ ६५ ॥ दानेषु कतमदानं दत्तं बहुफलं भवेत् । इत्यतो मतिवाक्सारं सचिवो दानतत्त्ववित् ॥ ६६ ॥ शास्त्राभ्यान्नदानानि श्रोक्तानि मुनिसत्तमैः । पूर्वपूर्ववह्नुपाप्तफलानीमानि धीमतां ॥ ६७ ॥ शास्त्रदानं तदुच्यते ॥ ६९ ॥ सुसुशोध्यतत्त्वस्य बधहेतुजिह्वाभ्या । प्राणिपीडापरित्यागस्तदानमभयाह्वयं ॥ ७० ॥ हिंसादिदोषदूरेभ्यो ज्ञानिभ्यो न ज्ञानात्सति दानानि विना ज्ञानं च शास्त्रतः । हेयोपेयादितत्त्वावभासनं परमं हि तत् ॥ ७१ ॥ तद्व्याख्यातं श्रुतं सम्यक् भाषितं शुद्धबुद्धये ॥ ७२ ॥ ह्येयं परित्यज्य हितमादाय सत्रता ॥ ७४ ॥ मुक्तिमार्गं समाश्रित्य कृमाच्छतैर्द्विधाशयाः । शुक्लध्यानमभिधाय प्राप्नुवत्यष्टत पदं ॥ ७५ ॥ तस्मादानेषु रगं दानतत्त्वको जाननेवाला मंत्री कहने लगा कि ॥ ६५-६६ ॥ उत्तम मुनियोंने शास्त्र अभय और अन्न ये तीन तरहके दान कहे हैं और बुद्धिमानोंको ये दान पहिले पहिले बहुत फल देनेवाले हैं । भावार्थ--अन्नदानसे अभयदानमें अधिक फल है और अभयदानसे शास्त्रदानमें अधिक फल है ॥ ६७ ॥ सर्वज्ञदेवका कहा हुआ हो, जिसमें पूर्वपर कोई शस्त्रदान कहते हैं ॥ ६९ ॥ जो मोक्षकी इच्छा करनेवाला हो और प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों प्रमाणोंसे सिद्ध हो उसे शास्त्र कहते हैं ॥ ७० ॥ इसीतरह हिंसादि दोषोंसे दूर रहनेवाले ज्ञानियोंकेलिये जो शुद्ध आहार देना है वह आहारदान कहलाता है दिया जासकता है और ज्ञान शास्त्रसे होता है और पुण्यास्रव भी होता है दोनों ही निर्जरा होती है और अभयदानसे ही हो सकता है ॥ ७३ ॥ शास्त्रोंके व्याख्यान करने सुनने और अच्छीतरह चिंतन करनेसे बुद्धि शुद्ध हो जाती है और बुद्धि शुद्ध हो जानेसे त्याग करनेयोग्य वस्तुओंका त्यागकर जीव ग्रहण करने योग्य वस्तुओंको ग्रहण करती हो जाती है ॥ ७४ ॥ तथा मोक्षमार्गका आश्रय पाकर अनुक्रमसे इन्द्रिय और हृदयको शांत कर तथा शुक्लध्यानका ध्यान कर

तच्छ्रेष्ठ प्रदातृकृतामपि । निरवय निजानन्दनिर्वाणपदसाधन ॥७६॥ अत्यादृष्यल्पसावदादभयाद्व्यमसिद्धत । त्रिभिरेभिर्मदानेनः प्राप्नोति परमपद ॥७७॥ इति श्रीवैष्णवसुक्तोपि राक्षा तद्वाचनमन्यत । कपोतलेद्वयाम्बाह्वान्मयादन्यदानप्रदिरसया ॥७८॥ तत्रैव नगरे भूतिशर्मरयो ब्रह्मणेऽभवत् । प्रणीय दुष्टुती राक्षो रंजयस्त्वमनीपया ॥७९॥ तस्मिन्नुपरते तस्य तनयः सर्वशास्त्रवित् । मुंडशालाधनो जातस्त्वासीनोऽब्रवीदसौ ॥८०॥ मुनीनां दुर्विधाना च दानत्रयमिदं मतं । महेच्छाना महीशाना दानमस्तद्वन्द्युत्तमं ॥८१॥ भूखुवर्णादिभूतिश्रमाच्चद्रव्यशरकरं । शामाद्ग्रहशालिभ्यो ब्रह्मणेभ्य प्रयच्छत ॥८२॥ आर्यमन्त्र श्रुत चास्ति दानस्याप्योपदेशक । इत्यानीये गृहात्तवोक्त तत्पुस्तकमवाचयत् ॥८३॥ इत्येव तेनैतिहसेन लब्धवावसरमुत्पथ । मुंडशालार्यनेनेक्त राजा तद्ब्रह्मन्यत ॥८४॥ पापामीरो रमदस्य विषयांघस्य दुर्मते । रंजितः स महीपाल परलोकाग्रहाशया ॥८५॥ कदाचित्कार्तिके मासि पौर्णमास्या शुचीभवत् । मुंडशालायनं

मोक्षपद पाते है ॥ ७५ ॥ इसलिये सब दानोंमें शास्त्रदान ही श्रेष्ठ है क्योंकि वही देने और लेनेवाले दोनोंकेलिये पा परहित और आत्मानन्द स्वरूप मोक्षपदका कारण है ॥ ७६ ॥ अंतिमे आहारदानमें थोड़ा पाप करना पड़ता है इसलिये अभयदान उससे अच्छा माना गया है इन तीनोंही महादानोंसे मोक्षपद प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ मंत्रीके इसप्रकार कहनेपर भी रूपोत लेइयांक माहात्म्यसे और किसी दूसरे दानके देनेकी इच्छासे राजाने उसकी बात नहीं मानी ॥ ७८ ॥ उसी नगरमें एक भूतिशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था वह अपनी बुद्धिके अनुसार मिथ्याशास्त्रोंकी रचनाकर राजाको प्रसन्न करता रहता था ॥ ७९ ॥ उसके मरनेपर सब शास्त्रोंका जानकार मुंडशालायन नामक उसका पुत्र हुआ था वह उसी समयमें बैठता था इसलिये वह मंत्रीके सुप रहनेपर कहने लगा कि ये तीनों तरहके दान या तो मुनियोंकेलिये हैं या दरिद्रोंकेलिये हैं बड़ी बड़ी इच्छा रखनेवाले राजा महाराजाओंकेलिये और उत्तम दान हैं ॥ ८०-८१ ॥ बुरा मला आदि करनेकी शक्ति रखनेवाले ब्राह्मणोंकेलिये चंद्र सूर्यके स्थिर रहनेतक यश उत्पन्न करनेवाला पृथ्वी सुवर्ण आदिका बहुतसा दान देना चाहिये ॥ ८२ ॥ इसी दानके उपदेश देनेवाले ऋषियोंके कहे हुए शास्त्र हैं यह कहकर वह घरसे अपनी बनाई हुई पुस्तक ले आया और नाचकर राजाको सुना दी ॥ ८३ ॥ इसतरह इसारोंको जाननेवाले मुंडशालायनने समय पाकर राजाको उन्मार्ग (बुग मार्ग) बतलाया और राजा भी उसे बहुत अच्छा मानने लगा ॥ ८४ ॥ देखो ! पापोंसे न डरनेवाले, अभद्र, निषेधोंमें अंधे और खोटी बुद्धिवाले मुंडशालायनसे परलोकके होनेकी इच्छासे वह राजा प्रसन्न हुआ ॥ ८५ ॥ किसीमय कार्तिक शुक्ला पौर्णमासीके दिन दुर्मति राजाने पवित्र होकर बड़ी भक्तिके मुंडशालायनको अश्वतादिसे पूजाकर उसके कहे अनुसार पृथ्वी सुवर्ण आदिका दान उसे दिया

भक्त्या पूजयित्वा स्ववादिभिः ॥ ८६ ॥ भूखण्डोदितलोकादानान्यदितं दुर्मतिं । स्वस्थातिसर्गो दानं जिनेर्मते । स्वपरोपकृतिं प्रादुरत्र तज्जगत्सुग्रहं ॥ ८८ ॥ स्वोपकारोयस्यद्वि परस्य गुणवद्धने । स्वशब्दो धनपर्यायवाची पात्रेति सज्जनं ८९  
 क्लेशं वीजनाशं फलादिना ॥ ९१ ॥ कुपात्रेभ्य विस्फुट्यैवं त्रयाणा विहाति कृता ॥ ९० ॥ सुवीजं सुमधूतं च प्रक्षिप्तं किं तद्वपरे । फलं भवति स-  
 णकोटिभिः । धीमता तन्महीभर्तुर्यकाराय नामवत् ॥ ९३ ॥ कालदृष्टस्य वा मंत्री भूपत्यं वा गतादुपः । आजन्माधस्य वादशौ विपरीतस्य सद्भवः ॥ ९४ ॥ विहायादिक्रमायातं दानमार्गं कुमार्यगः । पूर्वप्रलपितं दानमारातीयमवीकृतत् ॥ ९५ ॥ कन्याहरित्तुवर्णवाजिकपिलादासीतिलस्यदनक्षमा-  
 यह देखकर भक्तिमान् मंत्री राजासे कहने लगा कि ॥ ८६-८७ ॥ अनुग्रहकेलिये अपना धन का और कोई वस्तु देना  
 श्रीजिनेन्द्रदेवने दान बतलाया है तथा शास्त्रज्ञानियोंने इसप्रकरणमें अनुग्रहका अर्थ अपना और दूसरेका उपकार करना  
 ही बतलाया है ॥ ८८ ॥ पुण्यकी वृद्धि होना अपना उपकार है और गुणोंकी वृद्धि होना दूसरेका उपकार है । स्व श-  
 ब्दका अर्थ धन है जो धन पात्रको दिया जाता है वहीं दान प्रशमनीय गिना जाता है । हे राजन् ! इस बातको जानते  
 हुए भी आपने क्यों व्यर्थ ही कुपात्रोंको दान दिया और इसतरह तीनों दानोंका नाश किया ॥ ८९-९० ॥ अच्छा ।  
 वीज चाहे कितना भी अधिक हो यदि वह ऊपरमें बोया जायगा तो उसके फल केवल क्लेश ही होगा और बिना  
 फलके वह बीज नष्ट हो जायगा ॥ ९१ ॥ इसीतरह यदि अच्छा बीज थोड़ा भी अच्छे खेतमें समयपर बोया जायगा  
 तो वह हजारगुणा होकर बानेवालेकेलिये फल देगा ॥ ९२ ॥ इसप्रकार उस बुद्धिमान और भक्तिमान् मंत्रीने करोड़ों  
 उदाहरण देकर समझाया परंतु राजाको वह कुछ भी उपकारी नहीं हुआ ॥ ९३ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि कालके का-  
 टेको मंत्र कुछ काम नहीं देता, आयु पूरी होनेपर औपध कुछ काम नहीं देती, जन्मके अघेको दर्पण कुछ काम नहीं  
 चली आरही दानकी बुद्धिवालेको अच्छे वचन कुछ नहीं कर सकते ॥ ९४ ॥ कुमार्यगमें जानेवाले उस राजाने प्रारंभसे  
 शीतलनाथ भगवानके अंतिम समयमें वस्तुओंके लोभी और भूतिशर्माके पुत्र सुडशालायनने दरिद्रियोंको अच्छा लगने-

नेहप्रतिबद्धमत्र दशाथा दान दरिद्रेप्सिन । तीर्थानि विनशीतलस्य मुतरामाविश्वकार स्वयं लुब्धो वस्तुषु भूतिशर्मितनगोऽसौ गुंडयालयनः ॥ ९६ ॥

इत्यार्ये भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणमंत्रग्रे शीतलपुराण नामे परिसमाप्त षट्पचाशत्तम पर्व ।

## अथ सप्तपंचाशत्तमं पर्व ।

श्रेय श्रेषु नास्त्वन्यः श्रेयमः श्रेयसे नुर्व । इति श्रेयोर्धर्मि श्रेय श्रेयासः श्रेयसेस्तु नः ॥ १ ॥ पुष्काराद्धिद्विगमेवप्राग्विदेहे सुकच्छके । सीतानद्यु-  
त्तरे देशे नृपः क्षेमपुराधिप ॥ २ ॥ नलिनप्रमनामभूत्रमितांशेषविद्विष । प्रजापुरांगसपादिताचित्यमहिमाश्रय ॥ ३ ॥ पृथ रुद्रिमेदनिर्गतशक्तिर्षिः शु-  
दयोदितः । शमव्यायामसप्राप्तक्षेमयोग्यमघत ॥ ४ ॥ भूक्तवर्मयत्तरिस्मन्यस्मान्ध्यायेन पालनः । स्थिते मुख्याय सुस्मिन्वा धरामधित सप्रजाः  
वाला कन्याका दान, हाथीका दान, सोनेका दान, घोडोंका दान, गायका दान, दासीका दान, तिल, पृथ्वी, रथ,  
और घरका दान, इन दसप्रकारके दानोंका अपने आप बड़ी सरलतासे आविष्कार किया अर्थात् ये दश दान चलाये ९६.

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें शीतलनाथ के पुराणको समाप्त करनेवाला यह  
छप्पनवा पर्व पूर्ण हुआ ॥ ५६ ॥

## अथ सत्तावनवां पर्व ।

जो आश्रय लेने योग्य हैं उन सबमें श्रेयांस नाथ तीर्थंकरको छोड़कर कल्याण करनेके लिये और कोई कल्याण-  
कारी नहीं है । हमलिये मोक्ष प्राप्त करनेवाले बुद्धिमानोंको श्रेयांसनाथका ही आश्रय लेना चाहिये ऐसे श्रेयांसनाथ  
हम लोगोंके भी कल्याणकर्ता हों ॥ १ ॥ पुष्कराद्वीपके पूर्व मंदराचलकी ओर पूर्वविदेहके सुकच्छ देशमें सीतानदीके  
उत्तर किनारेपर एक क्षेमपुर नगर है उसमें प्रजाके अनुरागसे उत्पन्न हुई अचिंत्य महिमाओंका आश्रय और समस्त  
शुश्रूषोंको नवानेवाला नलिनप्रम नामका राजा राज्य करता था ॥ २-३ ॥ अलग २ तीन तरहसे उसकी शक्ति  
सिद्धि और उदयकी प्राप्तिका निश्चय होता था तथा शांतता और परिश्रमसे वह क्षेम और योगको प्राप्त होता था इस-  
तरह वह सदा बढता ही रहता था ॥ ४ ॥ जो पृथ्वीका पालन करे वह भूपुत्र वा राजा कहलाता है वह न्यायपूर्वक  
पृथ्वीका पालन करता था इसलिये वह मार्थक राजा था । अपने रहते हुए उसने पृथ्वी बहुत अच्छी बना दी थी

॥ ५ ॥ धर्म एवापरे धर्मस्तस्मिन्सर्वावर्तन्ति । अर्थकामो च धर्म्यो यत्तत्सधर्ममयोऽभवत् ॥ ६ ॥ एवं स्वरुतपुण्यानुभावोदितसुखाकर । लोकपालो-  
पमो वीर्यं पालयन्निखिलामिता ॥ ७ ॥ सहस्रात्मवनेनतजिन तद्वनपालभात । अवतीर्णं विदित्वात्मपरिवारपरिष्कृत ॥ ८ ॥ गत्वाभ्यर्च्यं चिरं स्तुत्वा  
तेनानंतजन्मसु ॥ १० ॥ आहितो बहुधा मोहान्मर्यादेष परिग्रहः । तन्वागाद्यदि निर्वाण कस्मात्कालविलंबनं ॥ ११ ॥ इति नाम्ना सुपुत्राय सुपुत्रगुण-  
शालिने । इत्वा राज्य सम भूषणं दुर्मि संयम ययुः ॥ १२ ॥ शिक्षितैकादशागोसौ तीर्थकुत्रामधाम मन् । सन्यस्याजनि कल्पेऽन्ते सुराधीशोऽप्युताह्वयः  
॥ १३ ॥ पुष्पोत्तरविमानेसौ द्वाविंशत्यधिष्ठीवित । हस्तत्रयप्रमाणग प्रोक्तलेख्यादिभिर्मुत ॥ १४ ॥ देवीभिर्दिव्यभावाभि कर्मनीयाभिरत्त्वहं ।  
और वह बहुत अच्छी तरह प्रजाका पालन करता था ॥ ५ ॥ श्रेष्ठ मार्गमें चलनेवाला वह उत्तम धर्मकार्योंमें भी धर्म  
करता था और अर्थ काम भी उसके धर्मरूप थे इसतरह वह पूर्णरूपसे धर्ममय था ॥ ६ ॥ इसप्रकार अपने पुण्यकर्मके  
उदयसे सुखके खजाने उसने लोकपालके समान बहुत दिनतक इस समस्त पृथ्वीका पालन किया था ॥ ७ ॥ किसी  
एक दिन सहस्रात्रयनमें अनंत नामके जिनेंद्र देव आए, मालीने आकर राजाको खबर दी, सुनते ही कुंडुच सहित वह  
गया, पूजाकी, बहुत देरतक स्तुतिकी नमस्कार किया और फिर अपनी योग्य जगहपर जाकर बैठ गया । धर्मका स्व-  
रूप सुनकर उसे आश्चर्यजनक उत्पन्न हुआ और वह इसप्रकार विचार करने लगा कि किमको किम जगह किमसे कि-  
किया ॥ ८-१० ॥ मोह कर्मके उदयसे मैंने ही इस अनेक तरहके परिग्रहको हकूट किया है, यदि इसके त्याग कर-  
नेसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है तो फिर इसके छोड़नेमें देर क्यों करनी चाहिये ॥ ११ ॥ इस तरह सोच विचारकर  
सुपुत्रके गुणोंसे सुशोभित ऐसे सुपुत्र नामके पुत्रको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ उमने संयम धारण किया ॥  
१२ ॥ ग्यारह अंगोंका अभ्यासकर तथा सोलह कारण भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नामकर्मका वंध किया और  
अंतमें समाधिमरण धारणकर, सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें अच्युत नामका इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांपर  
उसकी चाईस सागर की आयु थी, तीन हाथका शरीर था और लेख्या अत्रि आदि ऊपर लिखे अनुमार थी ॥ १३-  
१४ ॥ दिव्य भावोंको धारण करनेवाली सुंदर देवियोंके साथ उसने बड़े प्रेमसे बहुत दिनतक उत्तमसे उत्तम सुखोंका  
अनुभव किया ॥ १५ ॥ कल्पातीतके अहर्निद्र विरागी है और दूसरे देवोंके सुखकी मात्रा कम है इसलिये संसारके



मावसाराणि संख्यानि तत्र ग्रीहान्तर्गुणानि ॥ २० ॥ कृन्नातीता विरागस्ते परे चात्तरुनास्ततः । समारसोऽख्यपर्यंतस्ततोपात्सप्ततीर्थिवान् ॥ १६ ॥  
 अनुभूय सु तस्मिन् तस्मिन्मन्त्रागमिण्यति । द्वौवेस्मिन्गारते मिहपुण्यी मे नरेदरः ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुगणितगतो विष्णुनाभास्य बह्वभा । नदा पद्मासरी-  
 प्रासवसुधारादिपूजना ॥ १८ ॥ ज्येष्ठे मास्यसिते षष्ठ्या श्रवणे रात्रिनिर्मले । स्ववक्त्रावेक्षिनागैर्वास्वप्नानैस्त्रिषु पोडश ॥ १९ ॥ तत्फलान्यवबुध्यतासौ पत्युः  
 मन्त्रान्न सनद् । तैर्वात्रातदेवैर्ब्रह्मिस्तोक्तोक्तोऽस्य ॥ २० ॥ नव मासाव्ययौक्तेन नीत्वा सतोष्य सुप्रजाः । फाल्गुने मासि कृष्णैकादश्या विज्ञानधारिण  
 ॥ २१ ॥ विष्णुभोगे महाभागमसूताव्युत्तनायकं । मेवावजीव सद्युष्टिविशेष विवदुष्टये ॥ २२ ॥ तदुद्भवे प्रसन्नानि मनसि सकलाणिनां । जल-  
 स्थलानि वा सद्य सर्वत्र शरदगमे ॥ २३ ॥ अग्निं घनगच्छन् घनिना दीनतपेजं । ते च ते चैष्टसमोगात्मोद्भवाः सुस्तुदुर्भवा ॥ २४ ॥ तदा  
 सर्वतैवस्तत्र सौ स्तैर्भवैर्नोदरैः । प्रादुर्बभूवुः सभूय सर्वगिमुबहेनचः ॥ २५ ॥ सरोगा प्रापुरारोग्यं शोकेनो वीतशोक्ताः धर्मिष्ठता च पापिष्ठाधिभ-

सबसे अधिक सुखोंसे संतुष्ट होकर वह अपनी आयु व्यतीत करता था ॥ १६ ॥ जब वह सुखोंका अनुभवकर इस  
 लोकमें जन्म लेनेके सन्मुख हुआ तब इसी जवृद्धीपके भरतक्षेत्रमें मिहपुर नगरका स्वामी इक्ष्वाकु वंशमें प्रसिद्ध ऐसा  
 विष्णु नामका राजा राज्य करता था उसकी महाराणीका नाम नदा था वह छह महीनेसे रत्नोंकी वर्षा होना आदि  
 कई तरहसे पूजी गई थी ॥ १७-१८ ॥ ज्येष्ठ कृष्ण पक्षके दिन श्रवण नक्षत्रमें सबरेके समय उसने सोलह स्वप्न  
 देखे और अंतमें अपने मुंहमें घुसता हुआ हाथी देखा ॥ १९ ॥ पतिसे उनके फल सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई और  
 उसीसमय इन्द्रादि देवोंमें आकर गर्भ कल्याणका उत्सव मनाया ॥ २० ॥ इसीतरह प्रजाको संतुष्ट करते हुए नौ महीने  
 व्यतीत हुए, फाल्गुनकृष्ण एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें महाभागशाली, और तीन ज्ञानको धारण करनेवाले अ-  
 च्युतेंद्रको उस महादेवीने उत्पन्न किया ॥ जिसप्रकार मेघमाला अच्छी वर्षाकर संसार भरको संतुष्ट करती है, उसीप्र-  
 कार उससमय मन लोग संतुष्ट हुए ॥ २१-२२ ॥ जिसप्रकार शरद ऋतुके आते ही सब जलाशय निर्मल हो जाते हैं  
 उसीप्रकार उनके जन्म लेते ही सब लोगोंके मन प्रसन्न होगये थे ॥ २३ ॥ उनके जन्म लेते ही याचक लोग धनसे  
 संतुष्ट होगये थे धनी लोग दीन गरीबोंको संतुष्टकर प्रमन्न हुए थे और दीन गरीब लोग अपने २ इष्ट भोगोंकी प्राप्ति  
 होनेसे संतुष्ट होगये थे ॥ २४ ॥ उससमय सब जीवोंको सुख देनेवाली सकलतुल्य मिलकर अपने अपने मनोहर भा-  
 वोंसे प्रगट हुई थीं ॥ २५ ॥ आश्चर्य है कि उन भगवानके उत्पन्न होते ही रोगी सब नीरोग होगये थे शोकवालों-  
 के सब शोक दूर होगये थे और पापी सब धर्मात्मा बन गये थे ॥ २६ ॥ उससमय जब साधारण लोगोंको इतना

भीषासमुद्भवे ॥ २६ ॥ जनस्य चेदयं तोषस्तदानीमतिमात्रया । मित्रोत्तस्य प्रमोदस्य प्रमां केन विधीयते ॥ २७ ॥ सख्यवृत्तिं देवाः कृत्वा तेजो-  
मयं जगत् । स्वांगमरणभारिण्यपतत्सि सर्वत ॥ २८ ॥ नेदुर्दुमयो हृया पेतु कुसुममृष्ट्यः । नेदुरामरनर्तक्यो जगु स्वाहु दुगायनो ॥ २९ ॥  
लोकोय देवलोको वा ततश्चाल्यद्भुतोदयः । अपूर्वं कोप्यभूदेति तदा मन् युसर्दा गिर ॥ ३० ॥ पितरौ तस्य सौधर्म स्वयं सद्रक्षणदिभि । शची  
देवी च संतोष्य माययादाय बालकं ॥ ३१ ॥ ऐरावतगजस्कंधमारोप्यामरसेनया । सहलील स संप्राप्य महामेहं महोजस ॥ ३२ ॥ पचमावारपारा-  
सक्षीरवासिष्टोत्कर्ः । अभिमिच्य विभूष्येण श्रेयानिलवदमुदा ॥ ३३ ॥ तत पुरं समानीय मातुरं के निधाय तं । सुराधीशः सुरै सार्द्धं प्रमुखां सुरा-  
लये ॥ ३४ ॥ गुणैः सार्द्धमवर्द्धत तदास्यावयवा शुभाः । कमात्कारि प्रपुण्यतो बालचन्द्रस्य वांशुभि ॥ ३५ ॥ स स्रजयंतुपक्षतुपट्वत्सराताचिचभि ।  
बड़ा भारी संतोष हुआ था तब फिर माता पिताके संतोषका प्रमाण तो कौन कह सकता है ॥ २७ ॥ उसीसमय  
अपने शरीरके आभूषणोंकी कांतिसे सब संसारको प्रकाशरूप करते हुए चारो प्रकारके देव सब ओरसे आ कूदे ॥  
२८ ॥ मनोहर दुदुमी वजने लगी, फूलोंकी वर्षा होने लगी नृत्य करनेवाली देवांगनाएं नृत्य करने लगीं और स्वर्गके  
गानेवाले देव मनोहर गान करने लगे ॥ २९ ॥ यह लोक देवलोक है अथवा उससे भी अधिक विभूतिको धारण  
करनेवाला कोई और अपूर्व लोक है इसप्रकार उससमय देवोंके वचन निकल रहे थे ॥ ३० ॥ स्वयं सौधर्म इंद्रने  
उत्तम आभूषणोंदिकोंके द्वारा माता पिताको संतुष्ट किया अर्थात् उनकी पूजाकी और इंद्रानीने मायासे माताको  
मोहितकर बालक उठा लिया ॥ ३१ ॥ सौधर्म इंद्रने उस बालकको लेकर ऐरावत हाथीके कंधेपर विराजमान किया  
और देवोंकी सेनाके साथ लीलापूर्वक महातेजस्वी महामेरु पर्वतपर जा पहुंचा ॥ ३२ ॥ वहांपर विराजमानकर पां-  
चवें क्षीरसागरके जलसे अनेक घड़े भरकर उनका अभियेक किया आभूषण पहिनाए और बड़ी प्रसन्नतासे श्रेयान् नाम  
रक्खा ॥ ३३ ॥ तदनंतर नगरमें फिर वापिस लाए, माताकी गोदमें विराजमान किया और फिर सब इंद्र दे-  
वोंके साथ २ उत्सव मनाकर अपने २ स्वर्गमें चले गये ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार किरणोंसे बालचंद्रमाकी कांति बढ़ती  
जाती है उसीप्रकार उन भगवानके शुभ अवयव भी गुणोंके साथ २ बढ़ रहे थे तथा अनुक्रमसे उनमें कांति बढ़  
रही थी ॥ ३५ ॥ श्रीशीतलनाथके मोक्ष जानेके बाद जब सौ सागर छयासठ लाख छव्वीस हजार वर्ष कम एक  
सागर बीत गये थे और आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद रहा था तब श्रीश्रेयांसनाथ उत्पन्न हुए थे इनकी आयु  
इसी समयमें शामिल है । भावार्थ-इतने समय बाद वे मोक्ष गये थे । उनकी आयु चौरासी लाख वर्षकी थी और

कनसागरकोटथंने पल्याद्वै धीसन्तो ॥ ३६ ॥ व्युच्छिन्नाया तदभ्यन्तरानु श्रेय मयुद्मन् । पंचश्यामुगाग्राब्दजीवित कनकप्रभम् ॥ ३७ ॥ चापा-  
शीतिसमुत्सेधो बलो जस्तेजसा निधि । एक वैश तेलक्षान्द मैमारे सुखसागर ॥ ३८ ॥ प्राप्य राज्यं सुरै पूज्य सर्वलोकमस्मृत । तर्पयश्चद्रवत्सर्वान्  
दर्पितान् भानुवत्तपन् ॥ ३९ ॥ तेजोमहामणिर्गिर्दिगामी मल गोद्रव । शैल्य धर्म इव श्रेय सुख स्वष्ट्याकरोक्षिर ॥ ४० ॥ प्रागजन्मसुकृता येन कृ-  
ताया सर्वसपदि । बुद्धिर्पोष्य ज्वर्गोरास्तत्याभूद्धर्म काम मे ॥ ४१ ॥ तत्रा शुभविनोदेषु देवै पुण्यानुवधिषु । सपादितेषु कान्ताभिर्देवान्यामसतोऽग-  
मन् ॥ ४२ ॥ एव पंचखण्डपक्षाब्धिभित्तसप्तसरारव मे । राज्यकाले ड्यमन्युर्वसतपरिवर्तन ॥ ४३ ॥ विलोक्य किल कालेन सर्वं प्रासीकृत जगत् । सोपि  
कालो व्यय याति क्षणादिपरिवर्तनः ॥ ४४ ॥ कस्यान्यस्य िथरीभावो विश्वनेताहिनधर । शाश्वत न पद यावत् प्राप्यते सुस्थिति कुत ॥ ४५ ॥ इति

उनके शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी ॥ ३६-३७ ॥ उनका शरीर अगसी धनुष ऊंचा था और वे बल पराक्रम  
तथा तेजके भंडार थे । उनके इर्कईस लाख वर्ष कुमार अवस्थाके सुखसागरमें व्यतीत हुए थे ॥ ३८ तदनंतर उन्हें  
देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे राज्यकी प्राप्ति हुई थी और सब लोग उन्हें नमस्कार करते थे । वे भगवान् चंद्रमाके समान  
सबको संतुष्ट करते थे और अभिमानी लोगोंको सूर्यके समान संतप्त करते थे ॥ ३९ ॥ वे भगवान् महामणिके समान  
तेजस्वी थे, समुद्रके समान गंभीर थे मलयाचलकी वायुके सामन शीतल थे और धर्मके समान । कल्याण करनेवाले  
थे इसतरह वे बहुत दिनतक सबको सुख देते रहे थे ॥ ४० ॥ धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंमेंसे पहिले जन्ममें  
किये हुए पुण्यकर्मके उदयसे उनके संपदा तो सब तरहकी अपने आप आभई थी इसलिये उनकी बुद्धि और पौरुष-  
की व्याप्ति केवल धर्म और काममें लगती थी ॥ ४१ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे देवोंके द्वारा किये हुए अनेक विनोदोंमें  
क्रीड़ा करते हुए उनके दिन व्यतीत हो रहे थे ॥ ४२ ॥ इसतरह उन्होंने व्यालीसलाख वर्षतक राज्य किया । दूसरे  
किसी दिन वसंत ऋतुका परिवर्तन देखकर वे विचार करने लगे कि जिम कालने इस समस्त जगतको अपना शाय  
बना रक्खा है वह काल भी क्षण घड़ी घंटा आदिके परिवर्तनसे नष्ट होता जा रहा है ॥ ४३-४४ ॥ जब कालका ही  
यह हाल है तब और कौन स्थिर रह सकता है हमसे सिद्ध है कि यह सब जगत विनश्वर है, जयतक इस जीवको  
शास्त्रत मोक्ष पद प्राप्त नहीं होता तबतक यह जीव कहीं एक जगह स्थिर भी कैसे रह सकता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार  
चिंतवन करते ही सारस्वत आदि लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकी, भगवानने श्रेयस्कर नामके पुत्रको अपना राज्य  
समर्पण किया, इंद्रादि देवोंने उसीसमय आकर निर्वाण कल्याणका अभियेक किया और वे भगवान् देवोंके द्वारा उ-

स चित्तियन् लब्धसुति सारस्वतादिभि । श्रेयस्करे ममारोप्य मुते राज्य सुराधिपै ॥ ४६ ॥ प्राप्य निष्क्रमणज्ञानमारुह्य विमलप्रभा । शिविका  
देवसवाद्या त्याकाहरो दिनद्वय ॥ ४७ ॥ मनोहरमहोयाने फाल्गुनकादशीदिने । कृष्णपक्षे सहस्रेण पूर्वाहणे भृशुजा सम ॥ ४८ ॥ श्रवणे सयमं प्राप्य  
चतुर्थ्यवगमेन स । दिने द्वितीये सिद्धार्थनगरं भुक्तयेऽवस्थित ॥ ४९ ॥ तस्मै हेमयुतिर्नन्दभूपतिर्भक्तिपूर्वक । दत्त्वाप्त प्राप्य सत्पुण्य पवाश्रयार्थ्यण्यजयंवी  
॥ ५० ॥ द्विसवत्सरमनेन छात्रस्ये गतवत्यसौ । मुनिर्मनोहरोयाने तुषुरडुमसत्रय ॥ ५१ ॥ दिनद्वयोपवासेन माघे मास्यपराह्वगः । श्रवणे कृष्णपक्षाने  
केवल्यसुदपादयत् ॥ ५२ ॥ तदा चतुर्थकल्याणपूजा देवाश्चतुर्विधा । तस्य निर्वर्तयामासुर्विधार्दिसमन्विताः ॥ ५३ ॥ सप्तसप्ततिरुध्यादिगणयद्बुद्धदेवेष्टित । शून्य-  
स्कर । शून्यत्रिकैर्कैकाल्येयविक्रियादिविमुपित ॥ ५४ ॥ पट्सहस्रप्रमाणोक्तमनःपर्ययवीक्षण । शून्यत्रितयपञ्चोक्तवादिसुख्यसमाश्रित ॥ ५५ ॥ शून्यद्वयैद्वियूक्तपञ्चमज्ञानमा-  
ठाई जानेवाली विमलप्रभा नामकी पालकीपर सवार हो कर मनोहर नामके महोद्यानमें पहुँचे । दो दिनके उपवास-  
का नियम लेकर फाल्गुण कृष्णा एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें सवेरेके समय एक हजार राजाओंके साथ साथ उ-  
न्होंने दीक्षा कारण की । उसीदिन उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे पारणके दिन चर्याकेलिधे वे सिद्धार्थ  
नगरमें गये । वहाँपर सुवर्णकी कांतिवाले राजा नन्दने बड़ी भक्तिसे उन्हें आहार दिया और अटल बुद्धिवाले उसे उ-  
त्तम पुण्य तथा पंचाश्रयोंकी प्राप्ति हुई ॥ ४६-५० ॥ जब उनके तपश्चरण करते हुए छद्मस्थ अवस्थामें दो वर्ष बीत गये  
तब वे दो दिनका उपवास लेकर मनोहर नामके उद्यानमें तुंग नामके वृक्षके नीचे आ विराजमान हुए और वहींपर  
उन्हें माघकृष्ण अमावास्याके दिन श्रवण नक्षत्रमें शामके समय केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ५१-५२ ॥ उसीसमय चारों  
प्रकारके देवोंने आकर केवलज्ञान कल्याणकी पूजाकी उनके समवसरणमें अनेक ऋद्धिओंको धारण करनेवाले कुंशु  
आदि सतहत्तरि गणधरोंका समूह था और तेरहसौ ग्यारह चौदह पूर्वोंके जानकर श्रुतकेवली वहाँ विगजमान थे ॥  
५३-५४ ॥ अडवालीस हजार दौसौ उत्तम शिक्षक मुनि उनकी पूजा करते थे और छह हजार अवधिज्ञानी सेवा  
करते थे ॥ ५५ ॥ छह हजार पांचसौ केवलज्ञानीरूपी सूर्य और ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले  
उनकी शोभा बढा रहे थे ॥ ५६ ॥ छह हजार मनःपर्ययज्ञानी और पांच हजार मुख्यवादी उनके आश्रयमें थे ॥  
इसतरह सब मिलकर चौरासी हजार मुनि उनकी सेवा करते थे । इनके सिवाय एक लाख बीस हजार धरणा आदि  
अर्जिकाणं उनकी सेवा करती थीं ॥ ५७-५८ ॥ दो लाख श्रावक उन्हें पूजते थे चार लाख श्राविकाएं उनकी पूजा करती

छोकापिचिताखिललक्षितः । सचतुष्टयपक्षैकधारणार्थार्थिकार्चित ॥ ५८ ॥ ह्रिलक्षोपासकोपेतो द्विगुणभ्राविकार्चित १, पूर्वोक्तदेवतियुक्तो विहरन् धर्ममा-  
 र्क्षेत् ॥ ५९ ॥ सम्मेदगिरिमात्रित्व निष्क्रियो मासमास्थित । सहस्रसुनिभि सादं प्रतिमायोगधारक ॥ ६० ॥ पौर्णमास्या घनिष्ठया दिनाते भ्रावणे  
 सतां । असह्यतागुणश्रेण्या निर्जरा व्यदधन्मुहु ॥ ६१ ॥ विधस्य विश्वकर्मणि ध्यानाभ्यां स्थानपचके । पंचमीगतिमध्यास्य सिद्ध श्रेयान् सुनिर्वृत ॥ ६२ ॥  
 विफलनिमिषरवा स्मो विनास्मादिति वा सुरा । कृतनिर्वर्णकल्याणस्तदेव त्रिदिव ययु ॥ ६३ ॥

निर्द्वय यस्य निजजन्मनि-सत्समास्तमाध्य चराचरमशेषमवेक्षमाण । ज्ञान प्रतीपविरहाभिजरूपस्य श्रेयान् जिनः स दिशतादशिविच्युति व ॥  
 ६४ ॥ सत्य सार्वदयामय तब इव सर्वं मुहुर्मुह्यो हिन चारित्र च विभोस्तदे तदुग्र्य ब्रूते विशुद्धि परां तस्मादेव समाश्रयति विबुधास्त्वामेव  
 शकादयो भवत्येति स्तुतिगीचरो स विदुषां श्रेयान् स व धेयसे ॥ ६५ ॥ राजाभूयलिनप्रम प्रभुतमः प्रचस्तपापप्रम कल्याते सकलामराधिपपति

थीं तथा पहिले कहे हुए असंख्यात देव देवी और संख्यात त्रियंच उनकी सेवा करते थे । इसतरह धर्मका उपदेश  
 देते हुए उन्होंने सब देशोंमें विहार किया ॥ ५९ ॥ अंतमें वे सम्मेदशिखरपर आ विराजमान हुए, एक महीने तक  
 योग निरोध किया और एक हजार मुनियोंके साथ २ प्रतिमा योग धारण किया ॥ ६० ॥ भ्रावण शुक्ला पौर्णमासी-  
 के दिन घनिष्ठा नक्षत्रमें शामके समय बार २ असख्यात गुण श्रणी निर्जरा करने लगे और अ इ उ ऋ लृ इन पांचों  
 स्थानोंमें अर्थात् जितनी देरमें इनका उच्चारण होता है उतने समयमें अंतके दोनों शुक्लध्यानोसे समस्त कर्मोंको  
 नाशकर तथा पांचवीं गतिको पाकर वे श्रेयांसनाथ भगवान् मुक्त होकर सिद्ध हुए ॥ ६१-६२ ॥ मोक्षकल्याण किये  
 विना हम लोगोंका टिमिकाररहितपना व्यर्थ है यही समझकर मानो सब देव निर्वाणकल्याणका उत्सव मनाकर अ-  
 पने अपने स्वर्गको चले गये ॥ ६३ ॥

जिनके ज्ञानने उत्पन्न होते ही समस्त अंधकारको नष्टकर चराचर सब जगत देख लिया था और कोई प्रतिपक्षी  
 न होनेसे जो अपने ही स्वरूपमें तछीन था ऐसे श्रीश्रेयांसनाथ भगवान् तुम लोगोंको सदा कल्याण करते रहें ॥ ६४ ॥  
 हे प्रभो ! आपके वचन सत्य सबका भला करनेवाले और दयामय हैं तथा आपका चारित्र सब जीवोंका हित करने-  
 वाला है ये दोनों ही आपकी परम विशुद्धिको सूचित करनेवाले हैं । हे देव ! इसीलिये इंद्रादि देव बड़ी भक्तिसे आ-  
 कर आपका ही आश्रय लेते हैं इसके सिवाय बड़े बड़े विद्वान् लोग आपकी सदा स्तुति करते हैं ऐसे आप श्रीश्रेयांस-  
 नाथ भगवान् तुम लोगोंका सदा कल्याण करते रहें ॥ ६५ ॥ जो पहिले पापकी सब प्रभाको नाश करनेवाले सबके  
 स्वामी राजा नलिनप्रभ हुए थे, फिर सब देवोंके स्वामी और संकल्पमात्रसे ही उत्पन्न हुए सब सुखोंके भंडार सोलहवें

संकल्पसांख्याकर' । यस्तीर्थोधिपतिखिलोक्तमहित श्रीमान् श्रियं श्रायसं स्यादादं प्रतिपाद्य सिद्धिमगमत् श्रेयान् जिन' सोऽस्तु व ॥ जिनसेनानुगायास्ते पुराणकवये नमः । गुणभद्रभद्रताय लोकसेनार्चिताग्रये ॥ ६७ ॥ तीर्थेस्मिन् केशव' श्रीमान्भूदाय' समुयमी । भरतधकिर्णां वासो त्रिलोकपर्वपाणिनां ६८ पुरोपमं ॥ ७० ॥ स्वर्गादेत्यात्र भूज्ज्वालां राक्षां यदृष्टहयेकं तत् । भोगोपभोगसंपत्त्या नाम तस्यार्थवत्तत् ॥ ७१ ॥ विश्वयूति पतिस्तस्य जैनी देव्यनयो विश्वभूतिस्तप प्रायःकृत्वा राज्ये निजानुजं । प्रजा' प्रपालयत्यस्मिन्प्रणताखिलभूपती ॥ ७४ ॥ नाना वीरुलतावृक्षविराजन्तं नृनं । यद्विधनं दिनस्तत्र प्रागेभ्योपि श्रियं पदं ॥ ७५ ॥ विशाखभूतिपुत्रेण निर्भरस्य बनगलकान् । स्तीकृतं तद्वृक्षलोतेन तेनासीत्संयुगस्तयो' ॥ ७६ ॥ संयामासहनातत्र हृष्ट्वा स्वर्गके इंद्र हुए और फिर जो तीनों लोकोंमें पूज्य तीर्थकर होकर तथा मक्का कल्याण करनेवाली स्याद्वाद् विधाका प्रचारकर सिद्ध हुए ऐसे श्रीमान् श्रीश्रियांसनाथ जिनेन्द्रदेव तुम लोगोंके कल्याण कर्ता हों ॥ ६६ ॥

अथानंतर-जो श्रीजिनसेनके अनुयायी हैं जिनके चरणकमल लोकसेनके द्वारा पूज्य हैं और पुराणकवि हैं ऐसे पूज्य श्रीगुणभद्रकेलिये नमस्कार हो ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार चक्रवर्तियोंमें भरत हुआ था उसीप्रकार श्रीश्रियांसनाथके समयमें तीन खंडको पालन करनेवाले अर्द्धचक्रियोंमें उद्यमी और श्रीमान् ऐसा पहिला नारायण हुआ था ॥ ६८ ॥ उसीका चारित्र तीसरे भवसे लेकर कहता हूं उद्यम और अस्त होनेवाले राजाओंका यह एक अच्छा उदाहरण है ॥ ६९ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगधदेशमें इंद्रके नगरके समान एक राजगृह नामका नगर था ॥ ७० ॥ स्वर्गसे आकर उत्पन्न होनेवाले राजाओंका वह घर था इसीलिये भोगोपभोग संपत्तिसे वह 'राजगृह' इस यथार्थ नामको धारण कर्ता था ॥ ७१ ॥ विश्वभूतिके छोटे-मार्ईका नाम विशाखभूति था, उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मणा था और उन दोनोंके विशाख-नंदी नामका पुत्र था ॥ ७३ ॥ विश्वभूतिने अपने छोटे-मार्ई विशाखभूतिको राज्य देकर दीक्षा धारण करली इसलिये सवराजाओंको नमस्कार करता हुआ विशाखभूति प्रजाका पालन कर रहा था ॥ ७४ ॥ विश्वनंदीने छोटे छोटे पाँधे लता और वृक्षोंसे सुशोभित एक नंदन नामका बाग बनवाया था और वह उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था ॥ ७५ ॥ किसी एक दिन विशाखभूतिके पुत्र विशाखनंदीने उस बागके मालियोंको ललकार कर जवर्दस्ती वह बाग अपने स्वाधीन

तस्य पलायनं । विश्वनदी विरक्त सन् विमोहमिति चिंतयन् ॥७७॥ लक्ष्मणं मयं ममागल्य संग्रहणसंनिधौ । पितृव्यमप्रगीकृत्य संयमं प्रत्यपद्यन् ७८  
स शील्युणसंपन्नं कुर्वन्तश्च तप । विहरयेकदा भोक्तुं प्राविशन्मथुरापुरं ॥ ७९ ॥ स बालवत्सया धेन्वां कृथा प्रतिहतोऽपतत् । दांष्ट्रयातिवैरिणो दे-  
शान् आभ्यस्तत्रागतो विधी ॥ ८० ॥ विशाखनदी त दृष्ट्वा वैद्यासांघतले स्थित । व्यहसद्विक्रमस्तेषु क्व यात स इति कृथा ॥ ८१ ॥ सशल्य सो-  
पि तच्छ्रुत्वा मतिदानोऽसुसक्षये । महाशुकेऽभवदेवो यत्रासीदनुज पितु ॥ ८२ ॥ पोटशान्धिसमायुर्दिव्यभोगानप्यारोग्यै । ईरिसताननुभूयामीं तत  
प्रच्युत भूतले ॥ ८३ ॥ द्वीपेस्मिन् भारतेवर्षे सुरम्यविषये पुरे । प्रजापतिमहाराज पोदनाख्येऽभवत्यति ॥ ८४ ॥ प्राणप्रिया महादेवी तस्याजनि  
मृगावती । तस्यां सुस्यप्रवीक्षति त्रिष्टयल्यः कुतोऽभवत् ॥ ८५ ॥ पितृव्योपि च्युतस्तस्मात्तोकोऽभूत्तन्महीपतेः । जयाबलां परैर्वैल्य विक्रमी विजया-

कर लिया, इसलिये विश्वनदी और विशाखनदी दोनों ही आपसमें लड़ पड़े ॥७६॥ युद्ध न कर सकनेके कारण विशाख-  
नदी भाग गया उसे भागा हुआ देखकर विश्वनदीको वैराग्य हुआ और वह सोचने लगा कि इस मोहको मी विककार  
है ॥ ७७ ॥ सबको छोड़कर वह संभूत गुरुके समीप आया आग विशाखभूति काकाके साथ संयम धारण किया ७८  
शील और गुणोंको धारण करता हुआ वह उपवास आदि अनेक तरहके तपश्चरण करने लगा । सब देशोंमें विहार क-  
रता हुआ वह किसी एक दिन आहारकेलिये मथुरापुरीमें गया ॥ ७९ ॥ वहाँपर एक छोटे बच्चेवाली गायने क्रोधमें  
आकर उसके धक्का दिया जिससे वह वहीं पड़ गया । इधर दृष्टाने कारण विशाखनदीको लोगोंने निकाल दिया था  
इसलिये वह बुद्धिहीन घूमता हुआ वहीं आ निकला विश्वनदी मुनिके निरनेके समय वह एक वैद्याके मकानकी गच्ची-  
पर खड़ा था, मुनिको पड़ते हुए देखकर वह क्रोधसे हसकर कहने लगा कि क्यों आज तेरा पराक्रम ( बल ) कहाँ  
चला गया ॥ ८०-८१ ॥ उसे सुनकर उसके निदान नामकी शल्य बनी रही और उम निदानके साथ ही उमने प्राण  
छोड़े । भरकर वह महाशुक नामके स्वर्गमें देव हुआ, वहींपर उसका काका विशाखभूति पहिले उत्पन्न हो चुका था  
॥ ८२ ॥ वहाँपर सोलह सागरकी आयु पाकर अनेक अपराओंके साथ साथ अपनी इच्छानुसार अनेक दिग्ग्य भो-  
गोंका अनुभव किया और आयुके अंतमें वहाँसे च्युत हुआ, इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्यशके पोदनपुर नगरमें म-  
हाराज प्रजापति राज्य करते थे उनकी प्राणप्रिय महादेवीका नाम मृगावती था उसीके वह अच्छे स्वप्न देखनेके बाद  
त्रिष्टय नामका पुत्र हुआ ॥ ८३-८५ ॥ इसके काका विशाखभूतिका जीव वइसे च्युत होकर इन्हीं महाराज प्रजाप-  
तिके जयवती नामकी रानीसे विजय नामका पराक्रमी पुत्र पहिलेहीसे आकर उत्पन्न हो चुका था ॥ ८६ ॥ विशाख-



हय ॥ ८६ ॥ अमन् विद्यावन्ती च चिरं संसारचक्रे । विजयाद्धौतरथेष्वा मलकाल्यपुरेक्षित ॥ ८७ ॥ मयूरीवसंक्षय स्वपुण्यपरिपाकत । हय-  
मीवाहय सुदुरजायते जितारिराट् ॥ ८८ ॥ अशीतिचापदेहै तावादिमै रामकेशवौ । पंचशन्ययुगाष्टाब्दनिर्भगपरमायुषौ ॥ ८९ ॥ शंखेदनीलसंकाशौ  
हत्वाश्वमीवमुद्धत । त्रिखंडमडितायास्ताविहाभूला पत्नी क्षितेः ॥ ९० ॥ द्विगुणष्टसहस्राणां सुकुट्याकमहीमुजा । खगव्यंतरदेवानामाधिपत्यं समीयितु  
॥ ९१ ॥ त्रिपृष्ठस्य धनुः शखचक्रदंडासिक्तयः । गदा च सप्त रत्नानि रक्षितान्यभ्रवत्सुरै ॥ ९२ ॥ रामस्यपि गदा रत्नमाला सुसुशालं हलः । श्रद्धान-  
ज्ञानचारित्रतपासीवाभ्रवच्छिन्ने ॥ ९३ ॥ देव्यः स्वयंप्रभामुख्या सुकुटेशप्रभा नभु । केशवस्य तदद्वैतास्ता रामस्यापि मन प्रियाः ॥ ९४ ॥ स सरस्य  
चिरं तामिर्वहारंभपरिग्रहः । सप्तमीं प्रथिवीं प्राप केशवशायकंधर ॥ ९५ ॥ सीरपाणिध तद्वृद्धः ख्यातदैवादाय सयमं । छवर्णकुम्भयोगीन्द्रादभ्युदयकेवली  
नंदीने बहुत दिनतक संसारचक्रमें परिभ्रमण किया और फिर वह अपने पुण्यकर्मके उदयसे विजयाद्धौपर्यंत की उत्तर  
श्रेणीमें अलका नामकी नगरीके राजा मयूरीवके अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ । उसने सब बड़े २ शत्रु राजा जीतलिये  
थे ॥ ८७-८८ ॥ इधर विजय और त्रिपृष्ठ ने दोनों ही भाई पहिले बलभद्र नारायण थे उनका अस्सी धनुष ऊंचा  
शरीर था और चौरासी लाख वर्षकी आयु थी ॥ ८९ ॥ शख और इदनील मणिके समान उनका शरीर था और उ-  
द्धत अश्वग्रीवको मारकर वे दोनों ही तीनों खंडोंसे सुशोभित हथ पृथ्वीके स्वामी हुए थे ॥ ९० ॥ वे दोनों ही भाई  
सोलह हजार सुकुटवद्ध राजा तथा अनेक विद्याधर और व्यतर देवोंके स्वामी हुए थे ॥ ९१ ॥ त्रिपृष्ठ नारायणके व-  
नुशल ये चार रत्न थे ॥ ९२ ॥ नारायणके स्वयंप्रभाको आदिलेकर सोलह हजार रत्नियां थीं और बलभद्रके मनको  
हरण करनेवालीं उनसे आधी आठ हजार थीं ॥ ९३ ॥ त्रिपृष्ठ उन स्त्रियोंके साथ बहुत दिनतक क्रीडाकर बहुत  
आरंभी और बहुत परिग्रही होनेसे मरकर सातवें नरक गया तथा अश्वग्रीव भी मरकर उसी सातवें नरकमें गया ॥ ९४ ॥  
धारण किया और वह अगृह कैवली हुआ अर्थात् अनगर कैवली हुआ ॥ ९५ ॥ देसो त्रिपृष्ठ और विजय दोनोंने  
साथ ही साथ राज्य किया और बहुत दिनतक साथ ही साथ सबसे अधिक सुखोंका अनुभव किया परंतु त्रिपृष्ठ सब  
तरहके बड़े २ दुखोंसे भरे हुए सातवें नरकमें पहुंचा और विजय बलभद्र सुखके समसे उत्तम स्थान ऐसे जगत्के म-

॥ ९६ ॥ कृत्वा राज्यममू सदैव मुचिर मुम्त्वा सुख तादृश पृथ्वीमूलमगातिरलाखिलमहद्गु ब्वालनं केशव । रात्रौ वाम परं मुखस्य जगता मूर्धानम-  
ध्यास्त विष्णु क सुखभागिवलोमगविविं यावन्न हन्यादपु ॥ ९७ ॥ प्राप्तिवधनदीतिविशामयीदास्ततो महाशुकमधिष्ठितोऽमरः । पुनस्त्रिष्टुभे भरताब्देचक्रो  
वितायक सप्तममूस्मिमाश्रयत् ॥ ९८ ॥ विशाखभूतिर्धरणीपतिर्यमी मरुमहद्गुगुगतस्ततश्च्युत । हलायुधोऽसौ विजयाह्वय क्षय भव स नीत्वापरमात्म-  
तामितिः ९९ ॥ विशाखनंभी विदहतप्रतापो व्यमु पुरिचम्य भवे विर तत । स्वगाधिनाथो ह्य ऋधराह्वयो रिपुस्त्रिष्टुष्टस्य ययावयोगति ॥ १०० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणमद्वाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे श्रेयस्तीर्थकः त्रिष्टुष्टविजयाश्रमीवपुराणं परिसमाप्त सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ।

स्तकपर अर्थात् मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ । इसलिये प्रतिकूल हुए इस दुष्ट कर्मको भी धिक्कार है जबतक इस-  
का नाश न किया जायगा तबतक भला इस संसारमें कौन जीव सुखी रह सकता है ॥ ९७ ॥ त्रिष्टुष्टका जीव पहिले  
विश्वनंदी राजा हुआ था फिर महाशुक विमानमें देव हुआ, तदनंतर भरतक्षेत्रमें त्रिष्टुष्ट नामका अर्धचक्रवर्ती पहिला  
नारायण हुआ और फिर मरकर पाप संचय करनेके कारण सातवें नरक गया ॥ ९८ ॥ विजयका जीव पहिले वि-  
शाखभूति राजा था, फिर मुनि होकर महाशुक विमानमें देव हुआ, वहांसे आकर विजय नामका बलभद्र हुआ और  
फिर संसारको नाशकर परमात्मपदको ( सिद्धपदको ) प्राप्त हुआ ॥ ९९ ॥ अश्वघ्रीवका जीव पहिले विशाखनंदी  
नामका बड़ा प्रतापी राजा था फिर मरकर उसने बहुत दिन तक संसारमें परिभ्रमण किया तदनंतर विद्याव-  
रीका स्वामी अश्वघ्रीव नामका प्रतिनारायण हुआ वहांपर उसने त्रिष्टुष्ट नारायणसे शत्रुताकी और मरकर सातवें  
नरकमें पहुँचा ॥ १०० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान पुष्पदंतका पुराण समाप्त-  
करनेवाला यह सत्रावनवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

## अथ अष्टपंचाशत्तमं पर्व ।

वासोदित्रस्य पृथ्वीय वसुपृथ्व्यस्य वा सुत । वासुपृथ्व्यः सता पृथ्व्य स ज्ञानेन पुनातु न ॥१॥ पुष्कराद्वेदिभ्योरुसीताभ्यामवत्सकावती । निषये ह्य्यात-  
रकादिपुरे पद्मोत्तरः पतिः ॥ २ ॥ कीर्तिगुणमयी वाचि मूर्ति पुण्यमयीक्षणे । द्युतिर्धर्ममयी चित्ते सर्वेषामस्य भूजगः ॥ ३ ॥ साम वाचि दया चित्ते  
यथा ॥ ५ ॥ गुणस्तस्य धन वक्ष्मीस्तद्वायापि गुणप्रिया । तथा सह ततो दीर्घ निर्द्वंद्वं सुखमाप्नुवत् ॥ ६ ॥ स कदाचिद् समावीनं मनोहरानिरौ जिनं ।  
शुगंधराह्वं स्तोत्रैरपात्य खलु भक्तिमान् ॥ ७ ॥ धृत्वा सप्रश्रयो धर्ममनुप्रेक्षावुचिततान् । जातविभेदनिर्वेदः पुनश्चैत्यप्युचिततान् ॥ ८ ॥ श्रियो माया

सम इद्र जिनकी पूजा करते हैं जो महाराज वसुपृथ्व्यके पुत्र हैं और मज्जनलोग सदा जिनकी पूजा किया करते हैं

## अथ अष्टावनवां पर्व ।

ऐसे वासुपृथ्व्य भगवान् अपने ज्ञानके द्वारा हम लोगोंको पवित्र करें ॥१॥ पूर्वकराद्वयं दीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीके  
पश्चिम किनारेपर एक वत्सकावती नामका देश है उसके रत्नपुर नामके मसिद्ध नगरमें पञ्चोत्तर नामका राजा राज्य करता  
था ॥२॥ उसकी कीर्ति गुणरूप थी और वह सबके वचनोंमें रहती थी, उसकी मूर्ति पुण्यरूप थी और वह सबके नेत्रोंमें  
रहती थी तथा उसके आजीविका धर्मरूप थी और वह सबके चित्तमें रहती थी, उसके धन दानमें खर्च होता था, भक्ति निर्नेद्र दे-  
वमें थी और मत्तप शत्रुओंमें था ॥३॥ जिसप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेसे मुनियोंमें समितिियां बढती रहती हैं  
उसके गुण ही धन था और गुणोंसे प्रेम करनेवाली लक्ष्मी वा रानी थी उसके साथ वह बहुत दिनतक बिना किसी  
विषम और रूकावटके सुखोंका अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर युगंधर जिन-  
राज पधारे, राजा पञ्चोत्तरने वहां जाकर भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे उनकी उपासनाकी ॥ ७ ॥ विनयपूर्वक उसने ध-  
र्मका स्वरूप सुना और बारह अनुप्रेक्षाओंका चितवन किया, अनुप्रेक्षाओंके चितवन करनेसे उसे तीनोंतरहका वैराग्य  
उत्पन्न हुआ और फिर वह इसप्रकार चितवन करने लगा कि ॥ ८ ॥ लक्ष्मी मायाकृप है सुख दुःखसे मिला हुआ है,

॥ ९६ ॥ कृत्वा राज्यममू सहैव सुचिर मुक्त्वा सुखं तादृश पृथ्वीमूलमगातिरलाल्पमहद्दु खालं केशम् । रात्रौ वाम परं मुखस्य जगता मूर्धानम-  
ध्यास्त धिक् दुष्ट क सुखभाग्विलोभगविधिं यावन्न हन्यादपुं ॥ ९७ ॥ प्राग्विध्वनतीतिविशामर्थीरास्ततो महाशुकमधिष्ठितोऽमरः । पुनर्विष्टयो भरताद्वचकी  
चितावक सप्तमभूमिमाश्रयत् ॥ ९८ ॥ विशाखनदीधर्णीपतिर्यमी मरुमहाशुकगतस्ततश्च्युत । हलायुधौसौ विजयाह्वय क्षय भव स नीत्वापरमात्म-  
तामिति ॥ ९९ ॥ विशाखनदी विहृतप्रतापो व्यमु परिश्रम्य भवे चिर तत । खगाधिनाथो हय ऋधराहसो रिपुर्विष्टस्य ययावधोगतिं ॥ १०० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसमूहे श्रेयस्तीर्थंकरत्रिपटुविजयाश्वघ्रीवपुराणं परिसमाप्तं सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ।

स्तकपर अर्थात् मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ । इसलिये प्रतिकूल हुए इस दुष्ट कर्मको भी धिक्कार है जबतक इस-  
का नाश न किया जायगा तबतक भला इस संसारमें कौन जीव सुखी रह सकता है ॥ ९७ ॥ त्रिपटुका जीव पहिले  
विश्वनंदी राजा हुआ था फिर महाशुक विमानमें देव हुआ, तदनंतर भरतक्षेत्रमें त्रिपटु नामका अर्धचक्रवर्ती पहिला  
नारायण हुआ और फिर मरकर पाप संचय करनेके कारण सातवें नरक गया ॥ ९८ ॥ विजयका जीव पहिले वि-  
शाखभूति राजा था, फिर मुनि होकर महाशुक विमानमें देव हुआ, वहांसे आकर विजय नामका बलमद्र हुआ और  
फिर संसारको नाशकर परमात्मपदको ( सिद्धपदको ) प्राप्त हुआ ॥ ९९ ॥ अश्वघ्रीवका जीव पहिले विशाखनंदी  
नामका बड़ा प्रतापी राजा था फिर मरकर उसने बहुत दिन तक संसारमें परिश्रमण किया तदनंतर विद्याच-  
रौका स्वामी अश्वघ्रीव नामका प्रतिनारायण हुआ वहांपर उसने त्रिपटु नारायणसे शत्रुताकी और मरकर सातवें  
नरकमें पहुचा ॥ १०० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान् पुष्पदंतका पुराण समाप्त-  
करनेवाला यह सचावनवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

सम्पत्पात्यत ॥ २० ॥ अष्टादशममा लक्षा केमारे प्राप्य संवृतेः । निर्विद्यात्मगत धीमान् याथात्म्य समावृत्तयत् ॥ ३० ॥ विधीविषयसञ्चको ब्रह्म-  
ज्ञात्मानमात्मना । वर्षश्चतुर्विर्धुस्तु भुजानश्च चतुर्विध ॥ ३१ ॥ अनादौ जन्मकालारे आत्मा कालादिलब्धित । सन्मार्ग प्राप्तवारतेन प्रगुणं याभि स-  
सुख । रागी ब्रह्माति कर्मणि बंध ससारकारण ॥ ३४ ॥ चतुर्गतिमयः सोऽपि ताश्च दुःखसुखावहा । तत किमनुलेखतत्प्राज्यमेव विचक्षणैः ॥ ३५ ॥  
इति त्रितयतरात्स्य स्तवो लोकान्तिकैः कृतः । सुरा निष्कर्मणान्नभूषणशुत्सव व्यथु ॥ ३६ ॥ शिविका देवसल्लभमाख्य दृष्टिवीर्यतिः । वने मनोहरो-  
याने चतुर्थोपेक्षित वदन् ॥ ३७ ॥ विद्याखर्षे चतुर्दश्या सायाधे कृष्णफाल्गुने । सामाधिक समादाय तुर्यज्ञानोप्यभूदनु ॥ ३८ ॥ सह तेन महीपाला-  
किया था ॥ २९ ॥ जब उनके कुमार कालके अठारह लाख वर्ष वीत चुके थे तभी उन बुद्धिमानको अपने आप इस संसा-  
रसे वैराग्य उत्पन्न हुआ था और वे इसप्रकार आत्माका यथार्थ स्वरूप चितवन करने लगे थे ॥ ३० ॥ कि यह अ-  
ज्ञानी जीव विषयोंमें आसक्त होकर आत्माके ही द्वारा अपने आत्माको बांध लेता है और फिर चार प्रकारके बंधसे  
काल आदि लब्धियोंके संयोगसे उत्तम गुण प्रगट कर देनेवाला श्रेष्ठमार्ग मिला है इसलिये अब मुझे श्रेष्ठ मोक्षगतिको  
बहुत हो, सुखके साधन सदा मिलते रहें तथापि यह निश्चय है कि एक दिन इसका वियोग अवश्य होगा, यह सब  
सुख रागरूप है इससे रागी जीव कर्मोंका बंध करता है और बंध संसारका कारण है ॥ ३३-३४ ॥ वह चारों गति-  
योंको इसका त्याग कर देना ही चाहिये ॥ ३५ ॥ इसप्रकार इनके चितवन करते ही लौकांतिक देवोंने आकर इनकी  
पालकीपर सवार हुये उस पालकीको देव और इंद्र कंधेपर रखकर मनोहर नामके वनमें लेगये वहांपर प्रागुन कृष्णा चतुर्द-  
श्यायज्ञान उत्पन्न होगया ॥ ३६-३८ ॥ उनके साथ साथ परमार्थको जाननेवाले छहसौ छिहचारि राजाओंने प्रसन्न  
होकर दीक्षा धारण की थी ॥ ३९ ॥

ईश्वरसिन्धवे ॥ १८ ॥ इन्द्रा स्वप्नान् फल तेषां पशुशैल्यतितीक्ष्णिणी । अर्धं मासान् क्रमाशीत्या प्राप्तफलगुणमासिका ॥ १३ ॥ कृष्णार्थं वरुणे योने चतु-  
 रंशया सुतोत्तमा । सर्वप्राणिहित पुत्र सुखेनेयमजीजनत् ॥ २० ॥ सुरा सौधर्मसुख्यास्तं सुरादौ क्षीरसागरात् । षट्पराणीय पानीय ज्ञापयित्वा प्रसाधन  
 ॥ २१ ॥ विधाय बासुपूज्य च नामादाय पुनर्ग्रहं । नीत्वा वासान् स्वकीयास्ते जन्मजन्तमतमहोत्सवाः ॥ २२ ॥ श्रेयस्तीर्थान्तरे पञ्चाशेषुःसागरोपमे ।  
 प्रातपत्यत्रिपादोस्मिन् नृन्निष्ठसौ धर्मसतते ॥ २३ ॥ तदभ्यन्तरवर्त्यान् सोऽभवत्प्रापससति । पचद्भन्यद्विसाब्दजीवितं क्लृप्तमन्त्रवि ॥ २४ ॥ इष्टा-  
 द्वादशधात्यानां पीजानां दृष्टिकारण । मेकलेखमिव क्षेत्र गुणानामेव भूपति ॥ २५ ॥ धियमस्य गुणा, प्राप्य सर्वे सत्फलदायिन । समा दृष्टिर्निबन्धी-  
 द्या वास्तुभेदा जगद्धिता ॥ २६ ॥ न्नय सासाहिका मेधा अशीति कणशीकरा । पठितरातपमेयानामेवा दृष्टि, समा मता ॥ २७ ॥ अगुर्गुणा गुणीभाव-  
 मन्त्येवस्मिन्सु मुख्यता । आश्रय कस्य वैशिष्ट्यं विविधो न प्रकल्पते ॥ २८ ॥ गुणी गुणमयस्तस्य नाशास्तन्नाश इष्यते । इति बुद्ध्या ह्यधी सर्वान् गुणान्  
 वरुण योगमें सब प्राणियोंका दित करनेवाले उस इंद्रके जीव पुत्रको उपने सुखपूर्वक उत्पन्न किया ॥ १७-२० ॥  
 उसीसमय सौधर्म आदि इंद्र और सब देवोंने आकर सुमेरु पर्वतपर लेजाकर और वडोंसे क्षीर सागरका जल लाकर  
 उनका अभिवेक किया था, सब तरहके आभूषण पहिनाये थे, बासुपूज्य नाम रक्खा था और फिर घर लाकर बड़ा  
 भारी उत्सव मनाकर वे सब देव अपने अपने स्थानको चले गये थे ॥ २१-२२ ॥ श्रीश्रेयांसनाथ तीर्थकरके चौअन  
 सागर व्यतीत होनेपर और अंतके तीन पल्यतक धर्मकी विछित्ति होनेपर बासुपूज्य हुए थे । इनकी आयु इसीसमयमें  
 शामिल है उनके शरीरकी ऊंचाई सचरि धनुष थी आयु बहचरि लाख वर्षकी थी और शरीरकी कान्ति कुंकुमके स-  
 मान लाल थी २३-२४ ॥ जिसप्रकार जलसहित प्रदेश इष्ट अठारह प्रकारके बीजोंको बढ़ानेवाला होता है उसीप्रकार  
 वे राजा बासुपूज्य सब गुणोंको बढ़ानेवाले थे ॥ २५ ॥ जिसप्रकार संसारका दित करनेवाले मम धान्य अभीष्टसमा-  
 नामकी वर्षाको पकर अच्छे फल देते हैं उसीप्रकार गुण सब बासुपूज्यकी बुद्धिको पाकर श्रेष्ठ फल देनेवाले हो गये थे  
 ॥ २६ ॥ सात दिनतक मेधोंका वरसना न्नय कहलाता है, अस्सी दिन वरसना कणशीकर और संतप्तमेधोंका साठ दिन  
 तक वरसना समा कहलाता है ॥ २७ ॥ गुण अन्य हरि हरादिकोंमें जाकर गौण हो गये थे और इन बासुपूज्यमें आ-  
 कर मुख्य होगये थे सो टीक ही है क्योंकि विशेष आश्रय किसको विविष्ट ( विशेष सहित वा मुख्य ) नहीं बना  
 देता है अर्थात् सबको मुख्य बना देता है ॥ २८ ॥ पदार्थ सब गुणस्वरूप हैं अर्थात् गुण समुदायरूप हैं इसलिये गु-  
 णोंके नाश होनेसे पदार्थका नाश अवश्य हो जाता है वही समस्तकर उन बुद्धिमानने सब गुणोंका पालन अच्छीतरहसे

सुखं दुःखं विश्रसावधि जीवित । सद्योगो विप्रयोगात्, कायेऽथ सामय खल ॥ ९ ॥ कात्र श्रीतिरह जन्मपंचावर्तन्महाभयात् । निर्गच्छान्मवलम्ब्यना कालविधिसुप्रस्थिता ॥ १० ॥ ततो राज्यभरं पुत्रे धनभिन्ने नियोज्य सः । महीशर्वदुर्भिक्षाद्वैतस्य विनियोगवलेजसा ॥ ११ ॥ तत्राजरीकलापगीतवाद्यादिमोदिते । चोदिते कालपर्यायैस्तस्मिन्नगणमिष्यति ॥ १२ ॥ पौडशाब्धिप्रमाणायुश्चतुर्हस्तशरीरनाम्न चोर्जोमं कैसे भ्रमे करना चाहिये इसलिये अब मुझे प्राप्त हुई इस काललवधिका सहारा लेकर अत्यंत भयानक ऐसे इन दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिंतनकर तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया और आयुके अंतर्गते संन्यास धारण कर शुद्धबुद्धिको धारण करनेवाला वह महाशुक नामके विमानमें महाशुक नामका इंद्र हुआ, वहांपर सोलह सागरकी उनकी आयु थी और चार हाथका शरीर था ॥ १२-१३ ॥ वहांपर उसके पद्म लेख्या थी आठ महीने बाद धासो-केवल शब्द मात्रसे था, नरककी चौथी भूमितक अवधिज्ञान था और चौथी भूमितक ही बल और तेजकी विनियोग थी ॥ १५ ॥ वहांपर देवियोंके मधुर वचन, गीत, वाजे आदिसे मोहित हुआ वह काल व्यतीत करता था उस पर्याय-वैपरी होनेपर वह इसी जगह आकर जन्म लेगा तब ॥ १६ ॥

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक चपानगर है वहांपर इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ काश्यपगोत्री बसुपुत्र्य नामका राजा राज्य करता था, उसकी प्यारी रानीका नाम जयावती थी, इंद्रकी आज्ञासे कुबेरने छह महीने पहिलेसे ही रत्नोंकी वर्षाकर उसका आदर सत्कार किया था । असाढ़ कृष्णा छठकेदिन रातभिया नक्षत्रमें उसने सोलह स्वप्न देखे थे और पतिसे उनका फल सुनकर वह बड़ी ही संतुष्ट हुई थी । अनुक्रमसे आठ महीने विताकर फागुन कृष्णा चतुर्दशिकेदिन



## अथ अष्टपंचाशत्तमं पर्व ।

नासोऽिद्वय पृथोय वसुपुत्रय वा सुत । वासुपुत्र्य, सती पृथ्य स भानेन पुनान् ॥१॥ पुष्कराद्भूमिमेवसीताप्रागवत्सकावती । विषये ख्यात-  
रणास्त्रिपुरे पद्मोत्तरः पतिः ॥ २ ॥ कीर्तिगुणमयी वसि मूर्ति गुण्यमयीसणे । द्युतिधर्ममयी चित् सर्वेयामस्य भृशुजः ॥ ३ ॥ साम वाचि द्या चित  
धाम देहे नयो मर्ता । धन दाते जिने भक्ति प्रागपस्तस्य द्युपु ॥ ४ ॥ पाति तस्मिन् भुव भूमे न्यायमार्गानुवर्तिनि । द्युतिमेव प्रजा प्राप्नुयुनी समितयो  
वया ॥ ५ ॥ गुणस्तस्य धन दर्शनात्सदृश्यापि गुणप्रिया । तथा यद् ततो दीर्घ निर्द्वंद्वं सुखमाप्नुवत् ॥ ६ ॥ स कदाचित् समाधीन मनोहरगिरौ जिन ।  
युगधराद्वय स्तोत्रंरक्षस्य सद्य भक्तिमान् ॥ ७ ॥ ध्रुवा सप्रथयो धर्ममनुश्रेष्ठानुचितनात् । जातत्रिभेदनिर्वेदः पुनश्चैत्यचित्तमत् ॥ ८ ॥ त्रिव्यो माया

## अथ अष्टावनवां पर्व ।

सत्र इद जिनकी पूजा करते हैं जो महारात्र वसुपुत्र्यके पुत्र हैं और सञ्जनलोग सदा जिनकी पूजा किया करते हैं  
ऐसे वासुपुत्र्य भगवान अपने ज्ञानके द्वारा हम लोगोंको पवित्र करें ॥१॥ पूर्वकराद्वय द्वीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीके  
पश्चिम किनारेपर एक वरसकावती नामका देश है उसके रत्नपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पद्मोत्तर नामका राजा राज्य करता  
था ॥२॥ उसकी कीर्ति गुणरूप थी और वह सबके वचनोंमें रहती थी, उसकी मूर्ति पुण्यरूप थी और वह सबके नेत्रोंमें  
रहती थी तथा उसकी आजीविका धर्मरूप थी और वह सबके चिचमें रहती थी, उसके वचनोंमें मेल मिलाप भरा था,  
चिचमें दया थी, शरीरमें तेज भरा था, बुद्धिमें नय भरे हुए थे, उसका धन दानमें खर्च होता था, भक्ति जिनेन्द्र दे-  
वमें थी और भवाप ऋतुओंमें था ॥३॥ जिसप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेसे सुनियोंमें समितियां बढती रहती हैं  
उसीप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेवाले उस राजाके पृथ्वीका पालन करते समय प्रजा खूब बढ रही थी ॥ ५ ॥  
उसके गुण ही धन था और गुणोंसे प्रेम करनेवाली लक्ष्मी वा रानी थी उसके साथ वह बहुत दिनतक बिना किसी  
विषम और रूकावटके सुखोंका अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर युगंधर जिन-  
राज पधारे, राजा पद्मोत्तरने वहां जाकर भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे उनकी उपासनाकी ॥ ७ ॥ वितयपूर्वक उमने ध-  
र्मका स्वरूप सुना और बारह अनुश्रेष्ठार्थोंका चिंतवन करनेसे उसे तीनोंतरहका वैराग्य  
उत्पन्न हुआ और फिर वह हमप्रकार चिंतवन करने लगा ॥ ८ ॥ लक्ष्मी मायाकृप है सुख दुःखसे मिला हुआ है,

पद्मसप्तमिम् ॥ हताः । प्रकृत्या प्रत्ययं परमाधिपति मुदा ॥ ३९ ॥ द्वितीये ॥ वसः उक्लिप्तमहानगरमपसे । सुंदराक्यो नृपस्तस्मै सुवर्णमोडिताशनं ॥ ४० ॥ आश्चर्यपन्नक चापि तेन छाद्यस्थवत्सरे । गते श्रीबाणपुत्रेण स्वदीक्षानमगातः ॥ ४१ ॥ कदंबदक्षमूल्य सोपवासोऽपराहके । माषज्यो-  
त्स्नाद्वितीयायां विशाखसेऽभवच्चिन, ॥ ४२ ॥ सौधर्मसुर्यदेवेशस्तदेनमपूजयन् । तत्कल्याण न विस्तार्य नान्नोत्सयोदये यत ॥ ४३ ॥ पद्मपुत्रि-  
मितधर्मादिगणधृद्वंद्वदित । खद्यदन्वोकेविशातपूर्वधरावत ॥ ४४ ॥ खद्यदिनवान्युकाशिक्षकाभिष्ठुतकम । धृत्यद्वयचतुःत्रयोकावधिबुधस्य-  
त्रोक्तादिसाधितवच्छ्रुति ॥ ४५ ॥ शून्यत्रयद्विसप्तोकाभिडिताखिलमहित ॥ ४६ ॥ पद्मसहस्रचतुर्लोकानामितकमपंकज । खद्यद्विच-  
तुर्ध्वलक्षकः । पूर्वोक्तदेवदेव्यास्तियैः स्वस्थ्यातसंस्तुतः ॥ ४९ ॥ स तं सह विहृत्वाखिलार्थक्षेत्राणि तर्पयन् । धर्मदृष्ट्या क्रमात्प्राप्य चयामद्वसहस्रकं  
पारणाके दिन आहारके लिये उन्होंने महानगरमें प्रवेश किया वहांपर सुंदर नामके महाराजने आहारदान दिया जिससे  
उसके घर सुवर्ण आदि पांचों आश्चर्योंकी वर्षा हुई । इस तरह तपश्चरण करते हुए जब उनके छद्मस्य अवस्थाके दिन  
बीत गये तब भगवान वासुपूज्य मनोहर नामके दीक्षावनमें आ विराजमान हुए, वे उपवास धारण कर कदंब दृक्षके नीचे  
साथ शुक्ला द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय केवलज्ञानको पाकर जिन हुए ॥ ४०-४२ ॥ सौ-  
धर्मादि इंद्रोने आकर पूजाकी और केवलज्ञानोत्सव मनाया उस उत्सवके विस्तारको यहांपर लिखनेकी आवश्यकता  
नहि है क्योंकि नाम कर्मकी अंतिम तीर्थकर प्रकृतिके उदयसे ही वह सब उत्सव मनाया जाता है ॥ ४३ ॥ धर्मादि  
छयासठ गणधरोका समूह उनकी वंदना करता था और बारहसौ नगरह अंग चौदह पूर्वोके जाननेवाले मुनि उनकी सेवा  
करते थे ॥ ४४ ॥ उन्वालीस हजार दोसौ शिक्षक उनके चरणकमलोंकी स्तुति करते थे और पांच हजार चारसौ अवधि-  
ज्ञानी मुनि उनका स्मरण करते थे ॥ ४५ ॥ उनकी समामें छह हजार केवलज्ञानी थे और दशहजार विक्रिया ऋद्धिको धारण  
चारहजार दोसौ बादी उनकी उत्तम कीर्तिको बढ़ाते थे ॥ ४६ ॥ इस तरह वह चारि हजार मुनि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे,  
इसके सिवाय एक लाख छह हजार सेना आदि अनेकार्थ थी ॥ ४८ ॥ दो लाख आबक और चार लाख आवि-  
कार्य थी इनके सिवाय संख्यात तिर्यच और अनेक देव देवियां उनकी स्तुति करते थे ॥ ४९ ॥ उन वासुपूज्य भग-  
वानने धीरे धीरे सब आर्यक्षेत्रमें विहार किया धर्मकी वर्षाकर संतुष्ट किया और अंतमें एक हजार वर्षतक आकर

## अथ अष्टपंचाशत्तमं पर्व ।

वासोहिन्द्रस्य पूज्योय वसुपूज्यस्य वा सुत । वासुपूज्यः सता पूज्य स ज्ञानेन पुनात न ॥१॥ पुष्कराद्दिग्दिग्मेरुसीताग्रागवत्सकावती । विषये ह्यात-  
रकादिपुरे पद्मोत्तरः पतिः ॥ २ ॥ कीर्तिगुणमयी वाचि मूर्ति पुण्यमयीक्षणे । श्रुतिधर्ममयी चित्ते सर्वेषामस्य भूभुजः ॥ ३ ॥ साम वाचि दया चित्ते  
धाम देहे नयो मैता । धन दाने जिने भक्ति प्रतापस्तस्य शत्रुषु ॥ ४ ॥ पाति तस्मिन् भुव भूये न्यायमार्गानुवर्तिनि । वृद्धिसेव प्रजा प्राप्नुंनो समितयो  
मया ॥ ५ ॥ गुणस्तस्य धन लक्ष्मीस्तद्व्यापि गुणप्रिया । तथा सह ततो दीर्घ निर्द्वंद्व सुखमानुवत् ॥ ६ ॥ स कदाचित् समासीन मनोहरनिरौ जिन ।  
शुंगधराख्य स्तोत्रैरुपास्य खलु भक्तिमान् ॥ ७ ॥ भुत्वा सप्रभयो धर्ममनुप्रेक्षालुचितनात् । जातत्रिमेदतिर्वेदः पुनरेत्यथचित्तपत् ॥ ८ ॥ त्रियो माया

## अथ अष्टावनवां पर्व ।

सब इद्र जिनकी पूजा करते हैं जो महाराज वसुपूज्यके पुत्र हैं और मज्जनलोग सदा जिनकी पूजा किया करते हैं  
ऐसे वासुपूज्य भगवान अपने ज्ञानके द्वारा हम लोगोंको पवित्र करें ॥१॥ पूष्कराद्दीर्घ द्वीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीके  
पश्चिम किनारेपर एकवत्सकावती नामका देश है उसके रत्नपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पञ्चोत्तर नामका राजा राज्य करता  
था ॥२॥ उसकी कीर्ति गुणरूप थी और वह सबके वचनोंमें रहती थी, उसकी मूर्ति पुण्यरूप थी और वह सबके नेत्रोंमें  
रहती थी तथा उसकी आजीविका धर्मरूप थी और वह सबके चिचमें रहती थी, उसके वचनोंमें मेल मिलाप भरा था,  
चिचमें दया थी, शरीरमें तेज मरा था, बुद्धिमें नय भरे हुए थे, उसका धन दानमें खर्च होता था, भक्ति जिनेंद्र दे-  
वमें थी और मताप शत्रुओंमें था ॥३॥ जिसप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेवाले उस राजाके पृथ्वीका पालन करते समय प्रजा खूब बढ़ रही थी ॥ ५ ॥  
उसीप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेवाले उस राजाके पृथ्वीका पालन करते समय प्रजा खूब बढ़ बहुत दिनतक बिना किसी  
उसके गुण ही धन था और गुणोंसे प्रेम करनेवाली लक्ष्मी वा रानी थी उसके साथ वह बहुत दिनतक बिना किसी  
विघ्न और रुकावटके सुखोंका अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर शुंगेश्वर जिन-  
राज पधारे, राजा पञ्चोत्तरने वहां जाकर भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे उनकी उपासनाकी ॥ ७ ॥ विनयपूर्वक उमने ध-  
र्मका स्वरूप सुना और बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन किया, अनुप्रेक्षाओंके चिंतवन करनेसे उसे तीनोंतरहका वैराग्य  
उत्पन्न हुआ और फिर वह इसप्रकार चिंतवन करने लगा कि ॥ ८ ॥ लक्ष्मी मायारूप है सुख दुखसे मिला हुआ है,

षट्सप्तसिताहिताः । प्रख्यां प्रत्यपद्य परमार्थविदो मुखा ॥ ३९ ॥ द्वितीये दिवसे ऽविश्वन्महानगरमघसे । सुंदराख्यो नृपस्तस्मै सुवर्णमोऽद्विताशन  
॥ ४० ॥ आश्चर्यपचकं चापि तेन छात्रस्यवत्सरे । गते श्रीवाङ्मूलस्य स्वदीक्षावन्मगतः ॥ ४१ ॥ कदंबशृङ्गमूलस्य सोमवासोऽपराहके । माघज्यो-  
तितधर्मोदिरगणभृद्वृद्धवदित । खट्वयद्व्येकविंशतपूर्वधरावृत्त ॥ ४२ ॥ सौधर्मसुख्यदेवैर्द्रास्तादेवनमपूजयन् । तत्कल्याण न विस्तार्य नाम्नोऽस्त्योदये यतः ॥ ४३ ॥ षट्पाष्टि-  
प्रोक्तवादिमाधितसञ्चरति ॥ ४४ ॥ खट्वयद्व्येकविंशतपूर्वधरावृत्त ॥ ४५ ॥ षट्सहस्रचतुर्धरावृत्त । शत्रोकावधिषुधस्य-  
दुर्यलक्षकः । पूर्वोक्तदेवदेवीव्यस्त्यैरुसंख्यातसंस्तुतः ॥ ४६ ॥ षट्सहस्रचतुर्धरावृत्त । शत्रोकावधिषुधस्य-  
पारणाके दिन आहारके लिये उन्होंने महानगरमें प्रवेश किया वहाँपर सुंदर नामके महाराजने आहारदान दिया जिससे  
उसके घर सुवर्ण आदि पाँचों आश्चर्योंकी वर्षा हुई । इस तरह तपश्चरण करते हुए जब उनके छट्सहस्र अवस्थाके दिन  
माघ शुक्ला द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय केवलज्ञानको पाकर जिन हुए ॥ ४०-४२ ॥ सौ  
धर्मोदिरागेन्द्रोंने आकर पूजाकी और केवलज्ञानोत्सव मनाया उस उत्सवके विस्तारको यहाँपर लिखनेकी आवश्यकता  
नहीं है क्योंकि नाम कर्मकी अंतिम तीर्थंकर मकृतिके उदयसे ही वह सब उत्सव मनाया जाता है ॥ ४३ ॥ धर्मोदि-  
छयासठ गणधरोंका समूह उनकी वंदना करता था और बारहसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोक्तके जाननेवाले मुनि उनकी सेवा  
करते थे ॥ ४४ ॥ उन्तालीस हजार दोसौ शिक्षक उनके चरणकमलोंकी स्तुति करते थे और पाँच हजार चारसौ अवधि-  
रानी मुनि उनका स्मरण करते थे ॥ ४५ ॥ उनकी सभामें छह हजार केवलज्ञानी थे और दशहजार विक्रिया ऋद्धिको धारण  
करनेवाले मुनि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ४६ ॥ छहहजार मनःपर्ययज्ञानी उनके चरणकमलोंकी पूजा करते थे और  
चारहजार दोसौ वादी उनकी उत्तम कीर्तिको बढ़ाते थे ॥ ४७ ॥ इसतरह वहचरि हजार मुनि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे,  
इसके सिवाय एक लाख छह हजार सेना आदि अजिंकार्ये थी ॥ ४८ ॥ दो लाख श्रावक और चार लाख श्रावि-  
कार्ये थी इनके सिवाय संख्यात तीर्थंकर और अनेक देव देवियां उनकी स्तुति करते थे ॥ ४९ ॥ उन वासुपूज्य भग-  
वानने धीरे धीरे सब आर्यक्षेत्रमें विहार किया धर्मकी वर्षाकर संतुष्ट किया और अंतमें एक हजार वर्षवत्क आकर

॥ ५० ॥ स्थित्वात्र निष्क्रियो मास नया राजतनोलिका—मन्त्रायाधित्वादिपरिण्या पर्यन्तावनिवर्तन्ति ॥ ५१ ॥ अग्रयंदरौजम्ब सासुस्थानविभूयणे । वने मनो-  
हरोष्णाने पत्यकासनमाधित ॥ ५२ ॥ मासे भाद्रपदे ज्योत्स्ने चतुर्दश्यापराह्णके । विशाखाया ययौ मुक्तिं चतुर्नवतिसंयते ॥ ५३ ॥ परिनिर्वाणकल्याण-  
पूजाप्राप्ते महोत्सवैः । अवधिपत ते देव देवा सेवाविवक्षणा ॥ ५४ ॥ विजिगीषोर्गुणैः षड्भिः सिद्धिद्विसुप्रयोजितै । सुमुखोः किं न सामीभि लक्ष्म-  
चतुरशीर्तिगं ॥ ५५ ॥ सदसदुभयमेतैर्नैकशब्देन वाच्ये त्रितयमग्निपृथक्पुण्ड्रयभोगेन युज्यात् । इति सकलपदार्थसप्तमगी त्वयोका कथमवितथवाक्त्वं  
वासुपूज्यो न पूज्यः ॥ ५६ ॥ धर्मो दया कथमग्नौ सपरिग्रहस्य दृष्टिर्धरातलहिता किमवग्रहेस्ति । तस्मात्त्वया द्रव्यपरीग्रहसुक्किरुका 'तद्वसनासुमहितो  
जिन वासुपूज्य ॥ ५७ ॥ पद्मोत्तरः प्रथमजन्ममिति पार्थिवेश शुक्रे महत्समरपट्टपदसपादः । यो वासुपूज्यंयुक्त्वाद् विजगत्पूज्यः राज्यं जित न दिश-  
चंपा नगरमें रहे ॥ ५० ॥ जब आयुमें एक महीना रह गया तब उन्होंने योग निरोध किया, राजतमौली नामकी  
नदीके किनारेकी भूमिपर जो मदारगिरि पर्वत है उसके शिखरपर सुंदर मनोहर नामके वनमें पर्यकासनसे विराजमान  
हुए और भादों सुदी चौदसके दिन शामके समय विशखा नक्षत्रमें चौरानवे मुनियोंके साथ साथ मोक्ष पधारे ॥  
५१-५३ ॥ सेवा करनेमें अत्यंत चतुर ऐसे देवोंने, आकर उसीसमय उन भगवानकी वंदनाकी, पूजाकी और बड़े ठाठ  
बाटसे मोक्षकल्याणका महोत्सव मनाया ॥ ५४ ॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले और कर्मोंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले  
उन भगवानके जब अच्छी तरह धारण किये हुये छह ही गुणोंसे सिद्धि हो गई थी तब भला भगवानके धारण किये  
हुए चौरासी लाख गुणोंसे क्यों न होगी ॥ ५५ ॥ कथंचित् है, कथंचित् नहीं है, कथंचित् दोनों रूप है कथंचित्  
अवक्तव्य है कथंचित् होकर भी अवक्तव्य है कथंचित् नहीं होकर भी अवक्तव्य है और कथंचित् दोनोंरूप होकर  
भी अवक्तव्य है । इसप्रकार सब पदार्थोंको जिन्होंने समझंगीरूप कथन किया है जो कि वास्तवमें सत्यस्वरूप है ऐसे  
वे भगवान वासुपूज्य भला किमतरह पूज्य नहीं हो सकते ? भावार्थ—वे सबके पूज्य हैं ॥ ५६ ॥ धर्म दयारूप है  
परंतु वह दयारूप धर्म परिग्रहवालेके कैसे हो सकता है पृथ्वीका हित पानी वरसनेसे होता है परंतु वर्षाके रुकावटके  
कारण होते हुये भला वह वर्षा कैसे हो सकती है ? इसलिये ही आपने अंतरंग चहिरंग दोनों तरहके परिग्रहोंके त्याग  
का उपदेश दिया है और हे प्रभो ! उसी त्यागकी वासनासे आप पूज्य हैं ॥ ५७ ॥ जो पहिले जन्ममें पद्मोत्तर नाम-  
के राजाधिराज थे फिर अनेक देवतारूपी अमर, जिनके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं ऐसे महाशुभ विमानमें इद्र  
हुये और फिर जो संसार जिनकी पूजा करता है ऐसे युवराज ( बालब्रह्मचारी ) जिनराज भगवान वासुपूज्य हुए  
ऐसे वे भगवान तुम लोगोंको अतुल सुख दें ॥ ५८ ॥

तादृश सुखं व ॥ ५८ ॥ तीर्थ श्रीवासुपूज्यस्य द्विष्टो न म भूपति । त्रिखडाधिपतिर्ज्ञातो द्वितीयः मोक्षचक्रिणः ॥ ५९ ॥ श्रुतं तस्य वदयामो ज-  
नत्रयसमाश्रित । श्रुतेन येन भव्यान्तां भवेद्भूयो भवाद्वय ॥ ६० ॥ द्विषेस्मिन् भारतेवैर्यं कनकादिपुराधिप । सुषेणो नाम तस्यासीर्भर्ता की गुणमंजरी ॥ ६१ ॥  
रूपिणी मुभगागीतनृत्यवाद्यादिविधुता । सरस्वती द्वितीयेव सर्वभूषाभिवाच्छिता ॥ ६२ ॥ अस्ति तत्रैव देशो न्यो मलयादयो मनोहर । विध्यशक्तिप-  
तिस्तस्य द्रुगे विध्यपुरे वसन् ॥ ६३ ॥ य रक्तौ गुणमजयां प्रेक्षया मिव पट्टमद । चूतप्रसवमजयां माधुर्यसरजित ॥ ६४ ॥ रत्नाद्युपायनोपेतमितांश्च  
नित्तहारिण । सुषेण प्रतिमन्मान्य प्राहिणोन्नतकीट्यया ॥ ६५ ॥ द्रुतोपि मय्यं गत्वा य सुषेणमहीपति । दृष्ट्वा यथोचित तस्मै दत्त्वोपायनमवचीत ॥ ६६ ॥  
गुणमद्वये महारत्न नर्तकी त्रिल विधुता । विध्यशक्तिर्भवद्बुधस्तां दृष्टुमभिलषुक ॥ ६७ ॥ ताप्रयोजनमुद्दिश्य प्रहितोहं महीपते । त्वयापि सा प्रहेत-

अथानंतर-श्रीवासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें ही तीन खंडका स्वामी और दूसरा अर्धचकी ( दूसरा नारायण )  
ऐसा द्विष्ट नामका राजा हुआ है उसीका तीन जन्मसे मिला हुआ अर्धाव तीन जन्मका जीवनचरित्र कहता हूं ।  
इस जीवनचरित्रके सुननेसे भव्य जीवोंको फिर भी संपारसे भय ना वैगम्य उत्पन्न होगा ॥ ५९-६० ॥ इसी जंबूद्वीप-  
के भरतक्षेत्रमें एक कनकपुर नगर है वहां सुषेण नामका राजा राज्य करता था उसके एक गुणमंजरी नामकी नृत्य  
करनेवाली थी ॥ ६१ ॥ वह नृत्यकारिणी रूपवती थी, सुंदर थी गाने बजाने और नृत्य करने आदि कलाओंमें प्रसिद्ध थी  
तथा दूसरी सरस्वतीके समान जान पड़ती थी इसीलिये ही सब राजा लोग उसकी इच्छा किया करते थे ॥ ६२ ॥  
उसी भरतक्षेत्रमें एक मनोहर मलय देश है उसके विध्यपुर नगरमें राजा विध्यशक्ति राज्य करता था ॥ ६३ ॥ जिस-  
प्रकार भ्रमर मधुरताके रससे उन्मत्त होकर आमकी खिली हुई मंजरीमें आसक्त होजाता है उसीप्रकार वह राजा विध्य-  
शक्ति उस गुणमंजरीके देखनेकेलिये आसक्त हो रहा था ॥ ६४ ॥ उसने राजा सुषेणका आदर सत्कारकर उससे  
नृत्यकारिणीको बुलानेकी इच्छासे उसके समीप बहुत शीघ्र जाकर महाराज सुषेणके दर्शन किये और यथायोग्य रीतिसे भेट देकर  
भेजा ॥ ६५ ॥ उस दूतने भी बहुत शीघ्र जाकर महाराज सुषेणके दर्शन किये और यथायोग्य रीतिसे भेट देकर  
कहने लगा कि आपके घरमें एक प्रसिद्ध नृत्यकारिणीरूपी महारत्न सुना है, राजा विध्यशक्ति न आपके भाई हैं वह  
उस नृत्यकारिणीको देखना चाहते हैं ॥ ६६-६७ ॥ हे महाराज ! इसी अभिप्रायसे उन्होंने सुने आपके पास भेजा  
है आपको भी उसे भेज देना चाहिये, मैं वापिस लाकर आपको सौंप जाऊंगा ॥ ६८ ॥ दूतके इन वचनोंको सुनकर  
राजा सुषेण क्रोधसे कांपने लगा और कहने लगा कि जा, जा ! न सुनने योग्य ऐसे इन वचनोंसे कुछ लाभ

व्या प्रत्यानीय मर्मपत्रे ॥ ६८ ॥ इत्यतस्तद्वचः श्रुत्वा सुतग कोपवर्षिणः । याहि याहि किञ्चिदंशालिभिः ॥ ६९ ॥ इति निर्भर्त्सितो भृगु सुपेणेन दुरक्षिभिः । दूत प्रत्येय तत्सर्वं विध्यशक्तिं प्रजिज्ञापत् ॥ ७० ॥ मोषि क्रोपग्रहाविष्टस्तद्वच श्रवणाद् भृगु । अस्तु को दीप इत्यतस्तमालोच्य मन्त्रिभिः ॥ ७१ ॥ शूरो लघु समुत्थानं कृद्व्युद्धविशारदः । अन्तस्केदेन संप्राप्य सारनाग्रामिकाग्रामिणी ॥ ७२ ॥ विधाय सगरे भग तत्कीर्तिमिव नर्तकी । ततोद्वहद् गते पुण्ये कस्य किं कोत्र नाहरत् ॥ ७३ ॥ दत्तभगो गजदस्य दग्धभगो गजद्विपः । नानभगो महोर्द्धुं हिमानमपयन्तुते ॥ ७४ ॥ स तेन मान भगेन स्वष्ट्याङ्गनमानसः । पृष्ठभगेन नागो वा न प्रतस्थे पदात्पद ॥ ७५ ॥ स कदाचित्सन्निवेदः सुव्रताख्यजिनाधिपात् । अनगारात्पद्मिनातधर्मोद्विभे- लचेतसा ॥ ७६ ॥ स कोपि पापपक्वो मे येन तेनाप्यह जित । इति सचित्य पापारिं निरुं नतिमातनोत् ॥ ७७ ॥ तपस्तनूनपात्तापतमृदुततनुधिर ।

नहीं है ॥ ६९ ॥ इसके बाद राजा सुपेणे ने बुरे वचन कह फिर भी दूत का तिरस्कार किया, जिससे दूत लौटकर अपने नगर में आया और राजा विध्यशक्ति से सब समाचार कह सुनाये ॥ ७० ॥ दूत के वचनों को सुनकर राजा विध्यशक्ति को घसे बावला होगया और कहने लगा—कि अच्छा क्या डर है ? तदनंतर उसने मंत्रियों के साथ कुछ विचार किया ७१ कृद्व्युद्ध करने में चतुर युद्ध की सार बातों में निपुण और शूरीर वह राजा अपनी सेना लेकर बहुत शीघ्र चला ॥ ७२ ॥ वहां पहुंचकर उसने युद्ध किया, राजा सुपेण को हराया और उसकी कीर्ति के समान नृत्यकारिणी भी हरण करली, सो ठीक ही है क्योंकि पुण्य नष्ट होजाने पर इस संसार में फिर कौन किसकी क्या चीज नहीं ले सकता है ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार हाथी के हांत टूटने से उसकी महिमा नष्ट हो जाती है इसी प्रकार राजाओं का मान भंग होने से उनकी सब महिमा नष्ट हो जाती है ७४ ॥ जिस प्रकार राजाओं का मान भंग होने से उनकी सब महिमा नष्ट हो जाती है ७५ ॥ किसी एक दिन उसने विरक्त होकर निर्मल चित्त से सु-व्रत नाम के निर्ग्रन्थ जिनेंद्रदेव से धर्म का स्वरूप सुना और सोचने लगा कि—मेरे किसी पाप का उदय है इसलिये ही मैं विध्यशक्ति से हार गया हूँ ऐसा विचार कर उसने पापरूप शत्रु को नाश करने के लिये अपना दृढ निश्चय किया ॥ ७६-७७ ॥ उन्हीं सुनिराज से दीक्षाली बहुत दिन तक तपश्चरणरूपी अभि के संताप से शरीर को कृश किया अंत में अश्रुय को धी रखता हुआ संन्यास धारण कर और निदान बांधकर चौदहवें प्राणत स्वर्ग के अनुपम विमान में देव हुआ । वहां पर उसे वीस सागर की आयु मिली और आठ ऋद्धियों के मिलने से वह बहुत ही अभिमानी होकर रहने लगा ॥ ७८-७९ ॥



सारिकोप स संन्यस्य सन्निदान इरोऽभवत् ॥ ७८ ॥ विष्णुपुत्रो नाम भुक्त्वा राज्यत्रिगं विरं ॥ ८० ॥ भ्रुवा सुव्रतनाभाईत्याश्रं धर्मं स तत्त्ववित् ॥ ७९ ॥  
अत्रैव भरते श्रीमान्महापुरमधिष्ठित । नृपो वायुरथो नाम भुक्त्वा राज्यत्रिगं विरं ॥ ८० ॥ भ्रुवा सुव्रतनाभाईत्याश्रं धर्मं स तत्त्ववित् ॥ ७९ ॥  
राज्ये स्थापयित्वागमत्तप ॥ ८१ ॥ अधीत्य सर्वशास्त्राणि विधाय परम तप । तत्रैवैवैभवत्कन्ये विमानेनताराङ्ग्ये ॥ ८२ ॥ ततोवर्तीयं वशेस्मिन् पुरोद्वा-  
रावतीपतेः । ब्रह्माह्वस्याचलस्तोक सुभद्रायामभूद्विभु ॥ ८३ ॥ तस्यैवासौ सुपेणाख्योपुयायामात्मजोऽजनि । द्विष्टाल्यस्तुलस्तस्य चापसतिसम्भिता  
॥ ८४ ॥ द्वासप्ततिसमालक्षा परमायुर्निरंतरं । राजभोगानसुखोच्चरिक्ष्वाकूणा कुलाग्रणी ॥ ८५ ॥ कुन्देदनीलसुकाशावभातां बलकेशयो । संगमेन प्र-  
वाहो वा गगायसुनयोरमू ॥ ८६ ॥ अविभक्ता महीमेतावधुक्ता पुण्यनायकौ । सख्यतीं गुरुहिंसा समानभावकाविव ॥ ८७ ॥ अविवेकस्तयोरासीदधीता-  
शेषशास्त्रयो । अपि श्रीकामिनीयोगे स एव किल शस्यते ॥ ८८ ॥ स्थिरावत्युन्नतां शुक्रीलौ भात स भूयतौ । कैलासाजनसङ्गं वा संगतौ तौ मनो-

अथानंतरं- इसी भरतक्षेत्रके महापुर नगरमें श्रीमान् राज- वायुरथ राज्य करता था उसने बहुतदिन राज्यलक्ष्मीका  
उपभोग किया । तत्त्वोंके जानने वाले उस राजाने एकदिन सुव्रत जिनेन्द्रदेवके समीप जाकर धर्मोपदेश सुना और वि-  
रक्त होकर अपने पुत्र घनरथको राज्य सौंपकर उसने उसी प्राणत स्वर्गके अनुत्तर विमानमें इद्र हुआ ॥ ८०-८१ ॥ समस्त आस्रोंका अभ्यास  
किया उत्तम तपश्चरण किया और आयुके अतमें उसी सुभद्रा रानीके अचलस्तोक नामका पुत्र हुआ ॥ ८२ ॥ वहांसे च-  
यकर वह द्वारावती नगरके राजा ब्रह्मके उनकी सुभद्रा रानीके अचलस्तोक नामका पुत्र हुआ ॥ ८३ ॥ तथा राजा  
रानीर सत्तरि धनुष ऊंचा था और आयु बहचर लाख वर्षकी थी इसतरह इक्ष्वाकुवंशमें अग्रेसर वह राजा द्विष्टका  
च्छीतरह राज्यके भोगोपभोगोंका अनुभव करता था ॥ ८४-८५ ॥ कुंद और इंदनीलके समान वे दोनों ही भाई बल-  
भद्र और नारायणका पदपाकर बड़े ही सुशोभित होते थे अथवा जहां गंगा यमुनाका प्रवाह मिलता है उस सफेद  
और श्याम जगहके समान अच्छे जान पड़ते थे ॥ ८६ ॥ जिसप्रकार समान दो श्रावक गुरुकी दी हुई सरस्वतीको  
विभागरहित उपभोग करते हैं उसीप्रकार पुण्यके स्वामी वे दोनों ही भाई विभागरहित इस पृथ्वीका उपभोग करते  
थे ॥ ८७ ॥ समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले उन दोनोंके किसी तरहका भी जुदापन नहीं था सो ठीक है क्योंकि वही  
मेल मिलाप प्रशंसा करनेयोग्य है जो लक्ष्मी और त्वीके संयोग होनेपर मी बराबर बना रहे ॥ ८८ ॥ सफेद और नी-  
लेवर्णके स्थिर और बहुत ऊंचे वे भाई ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो कैलास और अंजन दोनों पर्वत ही एक जगह  
इकट्ठेहोगये हों ॥ ८९ ॥

हूँ ॥ ८९ ॥ इत स विंध्यशकाहो घटीयंत्रममधिरे । आत्मा संताप्याराधावगीय पुण्यसाधन ॥ ९० ॥ इहैव श्रीभराह्यस्य भोगवर्द्धनं पते । अ-  
भूद्विहलविष्टयातस्तुनृजस्ताकादय्या ॥ ९१ ॥ नभार मास्वरा लक्ष्मी भरतादं निवासिनी । स्वच्छाक्रांतिसिन्धुसदासीभूतभूवर ॥ ९२ ॥ आत्मान्यत्र  
तद्गीत्या मंदमंदप्रभे रवी । मन्ये विक्रमरा पद्मा पद्मेवपि न जातुचित् ॥ ९३ ॥ पुराणभूतमार्गस्य सोभवत्पारिपयिक । सिद्धिकानंदनो वोप्र- पूर्णमा-  
स्यमृतयुते ॥ ९४ ॥ गलति गर्भास्तमात्रा गोमिणीं भयोद्धवात् । घनाघनावलीना वा कूर्मप्रदविकारन ॥ ९५ ॥ अन्विष्य प्रतियोदात्मलब्ध्या कृद्-  
मानस । स्वप्रतापाग्निधूनेन दूषितो वा मयीनिभः ॥ ९६ ॥ संतपतसर्वमूर्धन्य धर्मयमीशुस्तह । सपातासिमुख किं स्युः स्यावरास्तादृशो प्रिय  
॥ ९७ ॥ अस्वदस्य त्रिस्तब्धस्याधिपलं समुद्रहन् । जन्मातरागतात्पुत्रविरोधाराप्यचोदित ॥ ९८ ॥ द्विष्टयाचल्योर्वृद्धिं प्रहृष्टां सोढुमक्षम । करणी-

अथानंतर-इधर राजा विन्ध्यशक्तिने संसाररूपी समुद्रमें घटीयंत्रके समान बहुत दिनतक परिभ्रमण किया और फिर  
थोड़ेसे पुण्य प्राप्त होनेके कारण इसी भरतक्षेत्रके भोगवर्द्धन नगरके राजा श्रीधरके सब लोगोंमें प्रसिद्ध ऐसा तारक ना-  
मका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९०-९१ ॥ युवा होनेपर उसने आधे भरतक्षेत्रमें अर्थात् तीन खंडमें रहनेवाली देदीप्यमान  
लक्ष्मी धारण की थी और अपने चक्रके आक्रमणसे दुखी हुये सब दियाधर और भूमिगोचरी राजा अपने दास बना  
लिये थे ॥ ९२ ॥ औरोंकी बात तो जाने दीजिये मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि उसके डरसे सूर्यकी प्रभा भी मंद  
पड़ गई थी और इसलिये ही लक्ष्मी कमलोंमें भी कमी प्रफुल्लित नहीं होती थी ॥ ९३ ॥ जिसप्रकार उग्र राहु पूर्ण-  
मासीके चंद्रमाका शत्रु है उसीप्रकार वह तारक भी पुराने मार्गका अथवा पुराणोंमें कहे हुये मार्गका शत्रु था ॥ ९४ ॥  
जिसप्रकार किसी क्रूर ग्रहके विकारसे घने बादलोंकी पंक्तियां नष्ट हो जाती हैं उसीप्रकार उस तारकका नाम लेनेसे  
ही स्त्रियोंको ऐसा भय उत्पन्न होता था जो उस भयसे उनके गर्भ तक गिर जाते थे ॥ ९५ ॥ लिखनेकी शाहीके स-  
मान श्याम वर्ण वह तारक सदा शत्रुओंको दंडता रहता था, जब वह शत्रुओंको नहीं पाता था तब क्रोधित हुआ वह-  
ऐसा जान पड़ता था मानों अपने प्रतापरूपी अग्निके धूमसे ही काला पड़ गया हो ॥ ९६ ॥ संतप्त सूर्यके समान वह  
सबके मस्तकपर था ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान असह्य था और नीचेकी ओर गिरनेवाला ही था सो ठीक ही है क्योंकि  
बया ऐसे मनुष्योंकी लक्ष्मी स्थिर रह सकती है ? ॥ ९७ ॥ वह राजा तारक पूर्ण तीनों खंडोंके स्वामीपनेको धारण करता था,  
किसी एक समय पूर्व जन्मके तीव्र विरोधके कारण उसके चित्तमें कुछ व्याकुलता हुई ॥ ९८ ॥ ऊपर कही हुई राजा  
द्विष्ट और अचलकी दृष्टिको वह सह नहीं सका और सोचने लगा कि मैं सब राजारूपी किसानोंसे कर वसूल कर

कृतनि शेषमहीपालकृषीबल ॥ १९ ॥ प्रभावत्करदौ नैतौ दुर्मदेनापि दर्पितौ । दृष्टवासीविष गेहे वर्द्धमान सहेत क ॥ १०० ॥ उच्छेयकोटिमारुढा म-  
 मेमौ येन केनचित् । सद्रूप्याह दनिष्यामि निजप्रकृतिभूयितौ ॥ १०१ ॥ इत्युपाय विचिन्त्यकूटदुर्वाक्यं कलहप्रिय । प्राहिणोस्तोपि तौ प्राप्य सहसैवाह दु-  
 मुख ॥ १०२ ॥ इत्यादिशति वा देवस्तारको मारको द्विषा । युष्मद्वृहे किलैकोस्ति ख्यातो गंधगजौ महान् ॥ १०३ ॥ आश्रयौ मे प्रहेतव्यो नो चेष्टु-  
 ष्यच्छिरोद्वयं । खडीकृत्यादृष्यामि गज मज्जयसेनया ॥ १०४ ॥ इत्यसम्यमसोढव्य तेनोक्त कलहार्थिना । श्रुत्वाचलोऽचलो बोक्थारोदासोवकीदिद ॥  
 १०५ ॥ गजो नाम वियान् शीघ्रमेतवसावेव सेनया । तस्मै ददामहेत्यन्व येनासौ स्वास्थ्यमाप्नुयात् ॥ १०६ ॥ इत्यादि तेन गभीरमभ्युद्य स विसर्जित ।  
 पशुमान इव प्राप्य तत्त्वोपाग्निमसीपयत् ॥ १०७ ॥ तच्छ्रुत्वा सोपि कोपाग्निप्रसीप्त पावकप्रभ । तौ पतंगायितावित्थ मत्कोधागनेरवोचता ॥ १०८ ॥

इत्यनालोच्य कार्याग सगत सन्निवे' सम । स्वयमभ्युत्थित मत्वा प्रस्थित-प्राप्तुमंतकं ॥ १०९ ॥ दुर्गंयामिसुखो मूर्खश्चालयित्वास्त्रिभामिला । बह-  
नेन बलैनासौ प्राप्य ताबुदयोन्मुखं ॥ ११० ॥ समुद्रावितमर्याद-कालोतजलार्धि जयन् । अरुणद्वारगत्तूर्णं पुरं स्वबलवेलया ॥ १११ ॥ कालबलेल्या  
वेला तत्सेना निजसेनया । न्यरांत्सीज्जलनि सारामचलोप्यचलस्थिति ॥ ११२ ॥ द्विष्टो मत्समागत सिंहोत इवोदत । पराक्रमकसाम्राज्यादाक्रमह-  
लिनं द्विप ॥ ११३ ॥ तारकोपि चिरं युद्ध्या त निराकर्तुमसम । ग्रामयित्वाऽक्षिपच्चक्र यमचक्रमिवात्मनः ॥ ११४ ॥ तत्सरीत्य स्थित बाँहा दक्षिणे दे-  
धितथ्रिय । तस्यासौ तेन चक्राग नरक तमजीगमत् ॥ ११५ ॥ द्विष्ट सप्तसद्वक्रस्त्रिदशैस्तदाभवत् । अचलो बलदेवोऽभूत्यातरजवत्तुष्टयः ॥ ११६ ॥  
हत्वा दिग्विजय जित्वा प्रतीपाख्यातमूत । नत्वा श्रीवासुपूज्येका प्रविश्य पुरमात्मन ॥ ११७ ॥ चिरं त्रिखण्डसाम्राज्य विधाय विविधं सुखं । द्विष्ट-

क्रिया और आपको सबसे बड़ा मानकर यमराजके समीप जानेकेलिये ही मानों वह वहाँसे चल पड़ा ॥ १०९ ॥ दु-  
र्णय नामके मूर्ख सेनापतिके द्वारा छोड़ी तरहकी सेना लेकर और समस्त पृथ्वीको उल्लंघनकर वह राजा तारक उदय  
होनेके समुद्र हुये उन दोनों भाइयोंके समीप जा पहुँचा ॥ ११० ॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले तथा प्रलय का-  
लके समुद्रको जीतनेवाले अत्यंत भयानक महाराज तारकने अपनी सेनारूपी समुद्रकी ज्वारकी लहरके द्वारा बहुत  
शीघ्र ही महाराज द्विपृष्ठाका नगर घेर लिया ॥ १११ ॥ निश्चल स्थितिको धारण करनेवाले महाराज अचलसेनने मी प्र-  
लयकालके लहरकी समान अपनी सेनाके द्वारा जलसे रहित ऐसी उनकी सेनारूपी लहर वहीं रोक दी ॥ ११२ ॥  
सिंहके बच्चेके समान उद्धत हुये महाराज द्विष्टने मदोन्मत्त हाथीके समान अपने बलवान शत्रुपर अप-  
नेपराक्रमकी पूर्ण विश्रुतिके साथ आक्रमण किया ॥ ११३ ॥ महाराज तारक मी बहुत देर तक द्विष्टके साथ  
लड़ा, जब उसे नहीं हटा सका तब अपने यमके चक्रके समान चक्रात्मको फिराकर फेंका ॥ ११४ ॥ राज्यलक्ष्मीको  
दासी बनानेवाला वह चक्र मी महाराज द्विष्टकी परिक्रमा देकर उसके दाहिने हाथपर आ गया, द्विष्टने फिराकर  
वही चक्र चलाया और तारकको मारकर नरक पहुँचाया ॥ ११५ ॥ उसीमय महाराज द्विष्टको सात रत्नोंकी प्राप्ति  
हुई और वे तीन खंडके स्वामी हुए, बड़े अचल बलदेव हुए और उन्हें चार रत्नोंकी प्राप्ति हुई ॥ ११६ ॥ उन दोनों  
भाइयोंने दिग्विजयकर तीनों खंड जीते, विजयकर प्रतीप नामके पर्वतपर श्रीवासुपूज्य स्वामीको नमस्कार किया,  
तदनंतर अपने नगरमें प्रवेश किया, बहुत दिनतक तीनों खंडोंका साम्राज्य किया और देवताओंकेसे सुख भोगे । द्वि-  
पृष्ठ आयु पूर्ण होनेपर मरकर सातवें नरक गया, अचलको द्विष्टके मरनेका बहुत शोक हुआ, अंतमें श्रीवासुपूज्य

ष्टः कालनिष्ठायामवधिगानमाश्रित ॥ ११८ ॥ अचलोपि तदुद्वेगाद्वासुपुञ्जिनाश्रयात् । संग्राप्य समयं मोक्षलक्ष्म्या संगममीयिवान् ॥ ११९ ॥ पुण्य-  
कवीजमवलम्ब्य महीमिहाप्य लब्धोद्दगौ सममुपार्जितसत्स्वरूपां । एतोगमत्फलिनमुत्कुरवत्किलोद्धर्त्तुं पापी परो विफलमूलसमस्त्वधस्तात् ॥ १२० ॥ इद-  
मिति विधिपाकाद् दृष्टमस्मिन् द्विष्टये परिणतमचले च प्रत्यह चिन्तयित्वा । विपुल्यमतिभिरार्यैः कार्यमुत्सृज्य पापं सकलसुखविधानं पुण्यमेव प्रतीप ॥  
१२१ ॥ पुरेन कनकादिके प्रथितवानुषेणो वृष ततोऽनु तपसि स्थितोऽजनि चतुर्दशस्वर्गभाक् । त्रिषष्टपरिपालकोभवदतो द्विष्ट्याख्यया परिग्रहमहाभरा-  
दुपगतः क्षितिं सप्तमी ॥ १२२ ॥ महापुरे वायुरथो महीपतिः प्रपद्य चारित्र्यमनुत्तरं ययौ । ततो बलो द्वारवतीपुरेचलत्रिलोकपूज्यत्वमवाप्य निर्वृत ।  
॥ १२३ ॥ विद्वयातविध्यनगरे ऽजनि विध्यशक्तिर्भावा चिरं भववने चित्तपुण्यलेशः । श्रीभोगवर्द्धनपुराधिपतारकाख्य प्राप द्विष्ट्यरिपुरं त्यमहीं महाहाः ॥ १२४ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्रार्च्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे वासुपुञ्जजनिपतिद्विष्ट्याचलतारकपुराण परिसमाप्त अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥ ५८ ॥

स्वामीके पास जाकर उनसे दीक्षा धारण की और संयम पालनकर मोक्षलक्ष्मीका समागम प्राप्त किया भावार्थ—सिद्ध हुआ  
॥ ११७-११९ ॥ उन दोनों भाइयोंने कोई पुण्यका एक बीज पाकर इस लोकमें बहुतसी पृथ्वी पाई, बहुतसी वि-  
भूति पाई, और बहुत ही ऊंचा पद प्राप्त किया, परंतु उनमेंसे एक तो अंकुरके समान फलीभूत होनेकेलिये ऊपरको  
गया और दूसरा पापी फल और जड़रहित बृक्षके समान नीचे नरकमें गया ॥ १२० ॥ इसप्रकार कर्मके उदयसे जो  
कुछ द्विष्ट और अचलकी कथा संघटित हुई थी वह इस अध्यायमें निरूपण की है । बड़ी बुद्धिको धारण करनेवाले  
आर्य लोगोंको उचित है कि वे प्रतिदिन इसको वितवनकर पापकार्योंको छोड़कर पापसे विपरीत जो सब तरहके  
सुखोंका खजाना पुण्य है उसे संपादन करें ॥ १२१ ॥ राजा द्विष्ट पहिले इसी भरतक्षेत्रके कनकपुर नगरमें प्रसिद्ध  
राजा सुयेण हुआ था, तपश्चरणकर चौदहवें स्वर्गमें देव हुआ फिर वहांसे आकर तीन खडको पालन करनेवाला द्विष्ट  
नामका अर्द्धचक्री हुआ और फिर परिग्रहके बड़े भारी बोझसे दबकर अर्थात् अधिक ममत्व रखनेके कारण सातवें नर-  
कमें पहुंचा था ॥ १२२ ॥ राजा अचल पहिले जन्ममें महापुर नगरका वायुरथ राजा था, तपश्चरणकर उसी प्राणत  
स्वर्गके अनुचर विमानमें इंद्र हुआ, फिर द्वारावती नगरमें अचल नामका बलदेव हुआ और फिर तीनों लोकोंमें पूज्य  
मुक्त हुआ था ॥ १२३ ॥ राजा तारक पहिले प्रसिद्ध विध्यनगरमें विध्यशक्ति नामका राजा था, बहुत दिनतक संसार-  
रूपी वनमें परिभ्रमणकर किसी थोड़ेसे पुण्यके उदयसे श्रीभोगवर्द्धन नगरका राजा तारक ( प्रतिनारायण ) हुआ,  
और राजा द्विष्टके हाथसे मरकर बड़े भारी पापके उदयसे सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ था ॥ १२४ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्रार्च्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें वासुपुञ्ज तीर्थंकर द्विष्ट अचल  
और तारकका पुराण समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

## अथैकोनषष्ठितमं पर्व ।

विमलेन्द्रसे नो धे दृश्यते विमल जगत् । विमल यस्य मे सोय विमल' क्रियात् ॥ १ ॥ प्रतीनीपातकीसखे देवायपरभागभाक् । नदी-  
दक्षिणकुलस्थो विषयो रम्यकावती ॥ २ ॥ पद्मसेनो महीयोत्र महानगरमास्थित । प्रजान्य इव कल्याण समीप्सितफलप्रद ॥ ३ ॥ तत्राबाप विभागोऽपि  
नीतिशास्त्रसमुच्चये । उदाहरणमित्याहुस्तद्वृत्त शास्त्रवेदिन ॥ ४ ॥ अर्जुनाभुवावर्ते प्रजानामात्मवृत्तिभि । व्यापारो गङ्गेके तस्मिन्महीधो मर्दितद्विपि  
॥ ५ ॥ नाक्रामति प्रजा, न्याय तानाक्रमति भूपति । त विवर्गं विवर्गस्य नान्योन्यातिक्रम क्वचिद् ॥ ६ ॥ श्रीतिकरने सर्वतसेवलिचक्षिधो । धर्म-  
स्व परिश्राय स्वेव्यजन्मद्वय, न सः ॥ ७ ॥ तदेव तीर्थकृत्वात इव जातमहोत्सव । पद्मनाभाय दत्त्वेदय प्रारब्ध परम तप ॥ ८ ॥ प्रतीतेकादर्शागार्थो

## उनसठवां पर्व ।

अथानंतर-जिनके निर्मल केवलज्ञानमें यह समस्त संसार माफ दिखाई देता है वे श्रीविमलनाथ स्वामी आज  
मेरे सब कर्ममलोंको दूरकर निर्मल ज्ञानके देनेवाले हों ॥ १ ॥ धातकीखडके मेरुपर्वतके पडिचमकी ओर सीता नदीके  
दाहिने किनारेपर एक रम्यकावती नामका देश है ॥ २ ॥ किसी एक समय महाराज पद्मसेन इस महानगरका आ-  
सन करते थे, वे महाराज प्रजाकेलिये कल्यणशुभं समान इच्छानुसार सामग्री देनेवाले थे ॥ ३ ॥ शास्त्रके जानकार  
लोग उनके चारित्रिकी इस्तरी कहते हैं कि-विभागकेलिये कहीं हुई नीतिशास्त्रके निश्चय करनेमें सब जगह उनका  
ही उदाहरण दिया जाता था ॥ ४ ॥ शत्रुओंको नाश करनेवाले उन महाराजके राज्य करते समय सब प्रजा अपनी  
अपनी जीविकाके अनुसार धनका संचय करती थी और उसका उपभोग करती थी ॥ ५ ॥ प्रजा कभी न्यायका उल्लं-  
घन नहीं करती थी जो न्यायका उल्लंघन करता था उसीपर राजाका आक्रमण होता था वहाँके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य  
तीनों ही वर्ण धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंको परस्पर विरुद्ध रीतसे कभी सेवन नहीं करते थे ॥ ६ ॥ किसी  
एक दिन महाराज पद्मसेनने प्रीतिकर वनमें सर्वगुण केवलीके समीप धर्म तत्त्वोंका स्वरूप समझा और मेरे दो ही  
भव वाकी रहे हैं यह बात मी जानी ॥ ७ ॥ उसीममथ उन्होंने तीर्थंकर होनेके समान ही महोत्सव मनाया और अ-  
पने पुत्र पद्मनाभके लिये राज्य देकर परम तपश्चरण करना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ ग्यारह अंगोंका अर्घ्य पढ़कर उनपर  
विश्वास किया, दर्शनविशुद्धि आदि तीर्थंकर प्राकृतिकी कारण सोलह भावनाओंका चिंतवन किया और वाकीके पु-

भावनाहिततीर्थकृत् । जेषपुण्यसमगोऽयमाराध्याते चतुष्टयं ॥ ९ ॥ सहस्रारविमोक्षेवास्त्वामर्थो ज निष्ठ स । अष्टादशविधमानासुरैकचापतनूच्छ्रिति ॥ १० ॥  
जघन्यशुद्धयभाग् नवमासेषु निश्चसन् । अष्टादशमहस्रहर्षराहर्ष मनसाहरन् ॥ ११ ॥ तसो रूपप्रवीचारात् प्राक्चतुर्थधरावधि । तावन्मात्रप्रका-  
शादिरणमादिगुणोन्नत ॥ १२ ॥ स्नेहामृतसप्तपृक्तमुखं वृद्धं दर्शनात् । मन्तर्पितामरीचेताः सुखिरे सुखमन्वभूत ॥ १३ ॥ सुरलोकादिम लोकभिक्षिद्विस्मन्नाग-  
मिष्यति । क्षेत्रेण पुरि कापिल्ये पुरुदेवान्वयो नृपः ॥ १४ ॥ कृतवर्मः महादेवी जयश्यामास्य विश्रुता । देवैर्दृष्टतपूजार्हा वसुधारादिवस्तुभिः ॥ १५ ॥  
शुचौ कृष्णदशम्यतरजन्मामुत्तरदिमे । ऋक्षे भाद्रपदे दृष्ट्वा स्वप्नान् पौडश सत्कलान् ॥ १६ ॥ तदानीमेव हस्तौर्ध्वं विशत वक्त्रवारिजे । व्यलोकित फला-  
न्येषामवबुध्य महीपते ॥ १७ ॥ तत् स्वविष्टराक्रमनिविवेक्षिततदुत्सवं । गुरे स्वर्गात्समायातैराप कल्याणमादिमं ॥ १८ ॥ वर्द्धमानेन गर्भेण तेनाव-  
र्द्धत संम्मद । हृदये बंधुवर्गस्य दुर्गतस्य धनेन वा ॥ १९ ॥ प्रमोदाय सुतस्येह सामान्यस्यापि सभव । किमुच्यते पुनः सूते- प्रागानमसुरेशिन ॥ २० ॥  
ण्यको पूराकर तथा आयुके अंतमें चारों आराधनाओंको आगधनकर चारहवें महस्रारस्वर्गमें वहाँका स्वामी सहस्रार  
नामका इंद्र उत्पन्न हुआ । वहाँपर उसकी अठारह सागरकी आयु थी और एक धनुष ऊँचा शरीर था ॥ ९-१० ॥  
द्रव्य और भाव दोनों ही जघन्य शुक्ल लेझयें थी नौ महीने बाद श्वासोच्छ्वासमलेता था और अठारह हजार वर्ष बाद  
मानसिक आहार लेता था ॥ ११ ॥ केवल रूप देखनेरूप प्रवीचार ( मैथुन ) से ही संतुष्ट रहता था, चौथी भूमि  
अवधिज्ञान था, चौथी भूमि तकही अणिना आदि ऋद्धियोंसे बड़ा हुआ प्रकाश आदि पड़ता था ॥ १२ ॥ स्नेहरूपी  
अमृतसे सींचे हुये मुख कमलोंको देखकर देवांगनाओंके चित्तको संतुष्ट करनेवाले उस इंद्रने बहुत दिनतक सुखका  
अनुभव किया था ॥ १३ ॥ जब यही इंद्र स्वर्गलोकसे च्युत होकर इस मनुष्य लोकमें आनेवाला था तभी इंद्रादि  
देवीने इसी भरतक्षेत्रके कपिला नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए राजा कृतवर्माकी जगत्प्रसिद्ध महादेवी जयश्यामाकी  
रत्नोंकी वर्षाकर तथा और अनेक तरहसे पूजा की थी ॥ १४-१५ ॥ उस महादेवीने ज्येष्ठ कृष्ण दशमीके दिन  
रात्रिके अंत समयमें उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें उत्तम सोलह स्वप्न देखे थे ॥ १६ ॥ उसीसमय उसने अपने मुखरूपी  
कमलमें घुसता हुआ एक उत्तम हाथी देखा था । सवेरे ही महाराज कृतवर्मासे उन स्वप्नोंके फल सुने थे ॥ १७ ॥  
उसीसमय इंद्रादि देवोंके आमन कंणयमान हुए थे उन्होंने तुरंत ही स्वर्गसे आकर बड़े ठाठ बाटते गर्भकल्याणका  
उत्सव मनाया था ॥ १८ ॥ तदनंतर ज्यों ज्यों वह गर्भ बढ़ता जाता था त्यों त्यों कुटुंबी लोगोंके हृदयमें उस गर्भसे  
ही आनंद बढ़ता जाता था तथा दरिद्री लोगोंको धनकी प्राप्तिने आनंद बढ़ता जाता था ॥ १९ ॥ साधारण पुत्रका



मायशुक्लचुम्ब्यां मा तमहिर्गुप्रयोगतः । त्रिविधं त्रिपदाय प्राप्तं विमलप्रभं ॥ २१ ॥ जन्मनिर्मुक्त्याग्राने त्रिपदानं । नमःपुरमा ॥ त्रि  
मर्तसुस्तिगोचरं ॥ २० ॥ वायुपूज्यगतने त्रिगतसगरचिन्मते । तमाम्बोधमे मर्तसमे तपुगाभीतिः ॥ २१ ॥ यन्मिन्मिन्मिन्नु पतिनापम  
प्रम । अष्टापटप्रभ सोऽष्टसर्वपुण्यमुखाय ॥ २४ ॥ तपचक्रेर्द्विहास्त्रदोमामनिरता कुन्ती । राज्यभिषेकतुलाना पावनीप्रतापिणः ॥ २५ ॥ स्त्री  
महन्वी तस्य कीर्तिर्निर्मातरागता । सरस्वती सहोपमा नीलगङ्गा स्वर्गता ॥ २६ ॥ गुणा मन्यारस्त्यग्निमद् मर्दनेन गता तथा । गुर्नीरसि म-  
प्राप्यो वर्णना तेषु का परा ॥ २७ ॥ मुगल्य तम्य को वेति प्रमो मुक्तिमुन्मुख्य नेत् । भक्तगनितांतादानव्यादितिश्रुतिः ॥ २८ ॥ देवदेवस्तन्त्रासा-

उत्पन्न होता ही आनंद देनेवाला है फिर भला जिनने पहिलेसे ही इंद्रको नमा दिया है ऐसे पुत्रके उत्पन्न होनेसे होनेवाले आनंदका क्या पूछना है ॥ २० ॥

माय शुक्ला चतुर्दशीके दिन उचराभाद्र नक्षत्रमें उम जयश्यामा देवीने तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले और तीनों जगतके स्वामी ऐसे विमलप्रभको उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ इंद्रादि सब देवोंने आकर उनके जन्मकल्याणका उत्सव किया और सबतरहकी स्तुतिके योग्य ऐसे उन भगवानका विमलवाहन नाम रक्खा ॥ २२ ॥ श्रीवासुपुत्रके मोक्ष जानेके तीस सागर बाद श्रीविमलवाहन हुये थे, अंतके एक पत्यतक धर्मका विच्छेद रहा था जो कि उनके उत्पन्न होते ही फिर प्रचलित हो गया था ॥ २३ ॥ श्रीविमलवाहनकी आयु साठ लाख वर्ष की थी, शरीरकी उंचाई साठ बज्रुष थी सुवर्णके समान उनका वर्ण था और वे सबतरहके पुण्यके समूहके समान जान पड़ते थे ॥ २४ ॥ समस्त संसारको पवित्र करनेवाले भगवान विमलवाहनके कुमार कालके पंद्रह लाख वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्यभिषेकका ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था ॥ २५ ॥ लक्ष्मी सदा उनके साथ रहती थी, कीर्ति जन्म जन्ममें साथ थी, सरस्वती जन्मके साथ ही प्रगट हुई थी और वीर लक्ष्मीने उन्हें स्वयं स्वीकार किया था ॥ २६ ॥ बड़े बड़े मुनिराज भी जिनकेलिये प्रार्थना करते हैं ऐसे मलय आदि गुण जिसतिस तरह बढ़ रहे थे फिर इनसे बढकर और क्या वर्णन करना चाहिये ॥ २७ ॥ उनके सुखका प्रमाण तो भला कौन जान सकता है क्योंकि थोड़ेदिन बाद अनंत चतुष्टय प्राप्त होनेसे अत्यंत विशुद्ध होनेसे और ऊंचा पद प्राप्त होनेसे उन्हें मोक्षका सुख प्राप्त होनेवाला था ॥ २८ ॥ सब इंद्रोंने उसमय आकर भी देवाधिदेवके चरणोंकी पूजा की थी, इसका कारण यह था कि उन्हें आगे केवल आत्माके द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न होनेवाला था ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके स्वामी थे भगवान कुंदके फूल अथवा चंद्रमाके समान निर्मल यश पैला रहे

वासीद्विष्वसुरेभरे । अभ्यर्चिताहिरागत्री केवलं केवलात्मता ॥ २९ ॥ यश प्रकाशयत्याशा श्रीशः कुन्देदुर्निर्मल । कासप्रसवनीकाशमाकाशा चाकरो-  
दद ॥ ३० ॥ त्रिशच्छतसहस्रान्द्राज्यकालावसानग । भोगान् विभज्य भुजानो भूय षड्भुजसम्भवा ॥ ३१ ॥ हिमानीपटलच्छन्दनदिग्भूषणभूषण-  
हेमते हैमनी लक्ष्मी विलीनः वीक्ष्य तत्क्षणान् ॥ ३२ ॥ विरक्तः ससृतेः पूर्वनिजजन्मोपयोगवान् । रोगीव नितरां खिन्नो मानभगविमर्शनात् ॥ ३३ ॥  
सन्नान्निभिरित्येभि किं इत्ययमवधौ स्थिते । वीर्येण च क्षिमेतेन यद्युत्कर्षमनासवान् ॥ ३४ ॥ चारित्रस्य न वंशोपि प्रत्याख्यानोदयो यत । बधश्चतुर्वि-  
धोऽप्यस्ति बहुमोहपरिग्रह ॥ ३५ ॥ प्रमादा सति सर्वेपि निर्जराप्यरिपकेव सा । अहो मोहस्य माहात्म्यमायाम्यहमिहैव हि ॥ ३६ ॥ साहस परिभुजेऽमू-  
न् भोगान्भोगानिवैरगान् । पुण्यस्य कर्मणः पाकादेतन्मे संभवते ॥ ३७ ॥ तस्य यावन्न याम्यतमनन्तं तदुल्ल कुत । इतीवचित्तो विमलो विमलावगमो-  
द्गुमात् ॥ ३८ ॥ तदवायातसारस्वतादिभि कृतमल्लव । सुरैस्तृतीयकल्याणे विहिताभिप्रवोत्सव ॥ ३९ ॥ देवदत्ता समासृष्ट क्रियाकाममैरैवृतः ।  
थे अथवा इस आकाशको कासके फूलोंके समान बना रहे थे ॥ ३० ॥ इसप्रकार छहों ऋतुओंसे उत्पन्न हुये भोगोंका  
अनुभव करते हुये उनके तीस लाख वर्ष बीत गये थे ॥ ३१ ॥ किसी एक दिन बरफके पटलोंसे ढके हुये और सब-  
तरहके वृक्षोंसे सुशोभित ऐसे किसी पर्वतपर हेमन्तऋतुमें उन्होंने ओसकी ओभाको क्षणभरमें ही नष्ट होते हुये देखा  
॥ ३२ ॥ वे उसीसमय संसारसे विरक्त हुये, उन्हें पहिले जन्मकी सब बातें याद आई और अपना मानभंगका वि-  
चारकर वे एक रोगीके समान खेद खिन्न हुये ॥ ३३ ॥ वे सोचने लगे कि जबतक संसारकी अवधि है तबतक इन  
उत्तम तीनों ज्ञानोंसे भी क्या काम निकलता है और इस वीर्यसे ( शक्तिसे ) भी क्या लाभ है क्योंकि जो सबसे उ-  
त्तम मोक्ष है वह मुझे अबतक प्राप्त नहीं हुई है ॥ ३४ ॥ प्रत्याख्यानानवरण कर्मके उदयसे मेरे चारित्रकी गंधतक नहीं  
है और बहुतसे मोह तथा परिग्रहको बढानेवाला चारों प्रकारका बंध अबतक विद्यमान है ॥ ३५ ॥ प्रमाद भी  
सब विद्यमान है और निर्जरा भी बहुत ही थोड़ी है ओह ! मोहक्री भी कितनी बड़ी महिमा है कि जिससे अब तक  
मैं इस ससारमें बैठा हुआ हूं ॥ ३६ ॥ मेरा साहस भी तो देखो सर्पके फणाके समान इन भोगोंको मैं अबतक  
भोग रहा हूं । मुझे पुण्य कर्मके उदयसे ही यह सब सामग्री प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ इसलिये जबतक मैं इन कर्मोंको  
नष्ट न करूं तब तक मुझे वह अनन्त सुख कहां मिल सकता है । इस प्रकार निर्मल ज्ञानके प्रगट होनेसे भगवान  
विमलवाहन चित्तवन करने लगे ॥ ३८ ॥ उसीसमय सारस्वत आदि लौकांकित देवोंने आकर उनकी स्तुति की  
और इंद्रादि देवोंने आकर तीसरे दीक्षाकल्याणका अभिषेक किया और उत्सव मनाया ॥ ३९ ॥ सब देवोंसे धिरे

विशु सहेतुकोयाने प्रात्राजीद् द्रव्यपवासमाक् ॥ ४० ॥ माघशुक्लचतुर्थ्याहःप्राते षड्विंशकक्षके । सहस्रनरै साई प्राप्य तुर्यावबोधनं ॥ ४१ ॥ द्वितीयेति पुरे नंदनाभिध भुक्तये डविशत् । ज्यो नाम वृषस्तस्मै दत्तात्र कनकप्रभः ॥ ४२ ॥ पचाश्रयं समापाप्य किंववा पात्रदानतः । सामागिकं समा-  
दायः संयम शुद्धचेतसा ॥ ४३ ॥ त्रिवत्सरमिते याते तपस्वेष महासुनिः । निजरीश्याने जवृडुनमूले ब्रूयुगोपित ॥ ४४ ॥ माघे मासि सिते पक्षे ष-  
ष्ठ्या प्रथोपराहणके । स्वरीक्षादाननक्षत्रे घातिकर्मविनाशनात् ॥ ४५ ॥ केवलवगम प्रापत्सद्यो व्याप्तचराचरः । तदेवापन्न देवेन्द्रा स्नानमन्मुकुटानना  
॥ ४६ ॥ देवदुंदुभिसुख्याष्टप्रातिहार्यादिवैभवं । प्राप्य तैर्गंधकुट्यंतर्गतसिंहासने स्थितः ॥ ४७ ॥ मदरादिगणाधीशपचपचाशदाहृत । क्षतोत्तरसहस्रो-  
कफूज्यपूर्वधैरवृत्त ॥ ४८ ॥ खत्रिपंचतुर्वन्युकाशिक्षैरुपलक्षित । खट्वाष्टचतुर्मेयत्रिषिषावधिवदित ॥ ४९ ॥ खट्वयेद्रियपचाभिषेयकेवललोचन ।

हुये वे भगवान देवोंके द्वारा बनाई हुई पालकीपर-सवार हुए और सहेतुक नामके उद्यानमें जाकर वेलाका नियम ले-  
दीक्षित हुये ॥ ४० ॥ माघ शुक्ला चतुर्थीके दिन उत्तरा भाद्र नक्षत्रमें शामके समय हजार राजाओंके साथ २ वे दीक्षित  
हुए थे और उसीसमय उन्हें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ४१ ॥ पारणाके दिन उन्होंने पारणा करनेकेलिये नंदन-  
पुरमें प्रवेश किया और सुवर्णके समान कांतिको धारण करनेवाले महाराज जयकुमारने उन्हें आहारदान दिया ॥ ४२ ॥  
महाराज जयकुमारके घर पंचाश्रयोंकी वर्षा हुई मो ठीक ही है क्योंकि पात्रदानसे भला क्या २ नहीं होता है । इधर  
भगवान विमलवाहन सामायिकको स्वीकारकर शुद्धचित्तसे संयम पालन करने लगे ॥ ४३ ॥ इसतरह तपश्चरण करते  
हुए इन महासुनिराजको जब तीन वर्ष बीतगये तब एक दिन उसी दीक्षावाले सहेतुक वनमें जंबूद्वक्षके ( जासुनके )  
नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुये ॥ ४४ ॥ माघ शुक्ला षष्ठीके दिन शामके समय अपनी दीक्षावाले उत्तरा  
भाद्र नक्षत्रमें घातिया कर्मोंके नाश होनेसे चर अचर सब पदार्थोंको एक साथ जाननेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।  
उसीसमय अपने छकुट और मस्तकको नचाते हुए सब इंद्रादि देव आ उपस्थित हुये ॥ ४५-४६ ॥ देव दुंदुभियोंको  
सुरूप लेकर आठ प्रातिहार्योंकी विभूति उन्हें प्राप्त हुई और समवसरणमें गंधकुटीके भीतर वे सिंहासनपर विराजमान  
हुये ॥ ४७ ॥ वे भगवान मंदरको आदि लेकर पचपन गणधरोसे सुशोभित थे और ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जान-  
नेवाले ग्यारह सौ मुनि उनके समवसरणमें थे ॥ ४८ ॥ उनके समवसरणमें छत्तीस हजार पांचमौ तीस शिक्षक थे  
और चार हजार आठसौ तीनों प्रकारके अवधिज्ञानको धारण करनेवाले उन्हें नमस्कार करते थे ॥ ४९ ॥ इसीतरह  
पांच हजार पांचसौ केवलज्ञानी थे और नौ हजार विक्रिया क्रद्धिको धारण करनेवाले थे ॥ ५० ॥ पांच हजार पांच-

शून्यत्रयनवज्ञातविक्रियदूर्युपवृंहितः ॥ ५० ॥ खट्वयैन्द्रियंपचाधियम्यदुर्गोबोधन । खट्वयत्तर्च्यन्निनिर्गतादिंसंयतस्युतः ॥ ५१ ॥ अष्टयष्टिसदृशोक्त-  
सर्वसयमिससुत । त्रिसहस्रकलक्षोक्तपद्मार्थाद्यर्थिकार्चित ॥ ५२ ॥ द्विलक्षश्रावकोपेतो द्विगुणप्राविकाचितः । पूर्वोक्तद्विगुणोपेतो धर्मक्षेत्रेयनरत ॥  
५३ ॥ भवातपपरिप्लानमव्यमस्याभितर्पक । सम्मेदपर्वत प्राप्य मासमेक गतक्रियः ॥ ५४ ॥ खट्वयैष्टनप्रोक्तयतिभि प्रतिमा गतः । आपाढस्यो-  
त्तराषाढे कृष्णाष्टम्या निशामुखे ॥ ५५ ॥ सद्यः कृत्वा समुद्धात सूक्ष्मं शुक्रं ममाश्रितः । सम्पद्ययोगादोग सन् स्वास्थ्य रोगीव सोऽगमत् ॥ ५६ ॥  
तदाप्रपृष्टि लोकेस्मिन् पूज्या कालाष्टमी बुधैः । तदेवावबन कृत्वा मिथ्याहमिभ्रम पूज्यते ॥ ५७ ॥ कुत्वालोष्टि तदाम्नेत्य सौधर्मप्रसूयाः सुराः । सि-  
द्धस्त्वितिभिर्योभिरवंदित्यत विवृत ॥ ५८ ॥ सतत्यमलसंचय परिणतो हिसादिभि सतत ससारं सुकृतात्ततो निजगुणा नेयुर्विशुद्धि क्वचित् । तानया-  
सौ मनःपर्ययज्ञानी थे और तीन हजार छहसौ सबसे वाद करनेवाले मुनिराज थे ॥ ५१ ॥ इसतरह अडसठ हजार  
मुनियों सहित वे भगवान विराजमान थे, तथा एक लाख तीन हजार पद्मा आदि अर्जिज्ञायें उनकी पूजा करती थीं  
॥ ५२ ॥ दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकायें भी उनकी सेवा पूजा करती थीं, इनके सिवाय पहिले कहे हुए  
दो गण अर्थात् असंख्यात देव और संख्यात तिर्यच भी उनकी सेवा करते थे, इसतरह उन्होंने निरंतर धर्म क्षेत्रमें  
( अर्थक्षेत्रमें ) विहार किया और संसाररूपी आतापसे मलिन हुए भव्यरूपी धान्योंको संतुष्ट किया अंतमें वे सम्मे-  
दशिखरपर जा विराजमान हुए, और वहाँपर उन्होंने एक महीनेतक योगनिरोध किया ॥ ५३-५४ ॥ आठ हजार  
छहसौ मुनियोंके साथ उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया, आसाढ कृष्णा अष्टमीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें सदेरेके  
समय उन्होंने बहुत शीघ्र समुद्धात किया सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युत्पत्तिक्रियानिश्चि दोनों शुक्ल ध्यानोका ध्यान  
किया, और जिसप्रकार कोई रोगी रोगसे छूटकर स्वस्थ हो जाता है उसीप्रकार वे भगवान योगादिकोका त्यागकर  
मोक्ष पधारे ॥ ५५-५६ ॥ उसीदिनसे लेकर अषाढ कृष्ण अष्टमीको विद्वान लोग कालाष्टमीके नामसे पूजते हैं और  
इसीको मानकर मिथ्यत्वी लोग भी इसे पूजते हैं ॥ ५७ ॥ उसीसमय सौधर्म इंद्रको आदि लेकर सब देवोंने आकर उ-  
नकी अंतिम पूजाकी और मुक्त हुए उन भगवानकी अर्थसे भरी हुई सिद्धस्तुतियोंसे वदनाकी ॥ ५८ ॥ यह जीव  
इस संसारमें निरंतर हिंसादि पापोंसे परिणत होकर सदा पापोंका संचय करता रहता है इसलिये अपने आत्माके गु-  
णोंको विशुद्धकर आज ही उन्हें प्राप्त करना चाहिये और अपनी बुद्धिको निर्मल तथा शुद्ध करना चाहिये यही समझ-  
कर जिन्होंने शुक्लध्यानका आश्रय लिया था ऐसे वे विमलवाहन स्वामी विमल अर्थात् निर्मल कर्म मलसे रहित ऐसे

हमवाप्य बुद्धिमलां शुद्धिं नयामीत्ययं शुद्ध्यान्मुपाश्रितोतिविमलस्तस्याथार्थीक्षयः ॥ ५९ ॥ अश्वानाघरदनं गुणपुण्यमूर्तिमाराधनां चरणमायतधर्म-  
हस्तं । सन्मार्गवारणमुपासिभिप्रचोष विध्वंसनाद्रिमलवाहनमादुरेन ॥ ६० ॥ विनिहतपरसेनः पद्मसेनो महीश सुरसमितिसमर्थ- स्पष्टसी-  
स्व्योद्यमैः । विपुलविमलकीर्तिर्विश्वश्रितशो विमलजिनपतिस्ताच्छुतस्तुष्टये व ॥ ६१ ॥ स्तिमितमसमाधिचिह्नं स्तिनं शेषदोषं क्रमगमकरणातर्दान-  
नदीनावबोध । विमलमलमूर्तिं कीर्तिभाजं धुमाजा नमत निमलताप्यं भक्तिभारेण भव्या ॥ ६२ ॥ तीर्थं विमलनाथस्य सजातो रामकेशवौ ।  
धर्मस्वयम्भूनामानौ तयोधरितमुच्यते ॥ ६३ ॥ विदेहेऽस्मिन् अतीत्यासीन्मित्रनदीति भूभुज । स्ववसीकृतनि शेषनिजमोग्यमहीतल ॥ ६४ ॥  
प्रजानामेष रक्षावाक्यजात्यास्य प्रपालनात् । सर्वदा दृढयेऽभूत् भवेत्स्वार्थं परार्थता ॥ ६५ ॥ स्वचक्रमिव तस्यासीत्परचक्रं च धीमत । चक्रबुद्धेः

अपने यथार्थ नामको धारण करते थे ॥ ५९ ॥ वे भगवान् श्रेष्ठ मोक्षमार्गके लिये एक हाथी थे, अश्वान और ज्ञान अ-  
र्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ही दो दांत थे, गुण ही उनकी पूण्यमूर्ति थी, चारों आराधना ही चार पैर थे, धर्म  
ही लंबी संड थी और पापरूपी शत्रुको ललकारकर नाश करनेवाले थे, इसलिये ही लोग उन्हें विमलवाहन कहते थे  
॥ ६० ॥ जो पहिले शत्रुओं की सेना की नाश करनेवाले पद्मसेन राजा हुए थे, तदनंतर जो देवताओं के समूहों से पूज्य  
ऐसे बारहवें स्वर्ग के इंद्र हुए थे जिनकी बहुतसी निर्मल कीर्ति फैली हुई है और जो समस्त संसारी जीवों के स्वामी  
हैं ऐसे श्रीविमलनाथ जिनेंद्र अच्छी तरह हम लोगों को संतुष्ट करनेवाले हों ॥ ६१ ॥ मो भव्यों ! जिन्होंने अपनी  
अत्यंत शांत समाधि से समस्त दोषों को नाश लिया है, जिनका ज्ञान अलोकमण्डित और इन्द्रिय तथा मन से रहित है  
जिनकी मूर्ति अत्यंत निर्मल है और इंद्रादि देव भी जिनकी कीर्ति गाया करते हैं ऐसे विमलनाथको अपने आत्मा-  
की निर्मलता प्राप्त होने के लिये बड़ी भारी भक्ति से नमस्कार करो ॥ ६२ ॥

अथानंतर—श्रीविमलनाथ तीर्थंकर के समयमें ही धर्म और स्वयंभू नाम के बलभद्र और नागधन हुये इसलिये  
अब उनकी कथा कहते हैं ॥ ६३ ॥ इसी भरतक्षेत्र के पश्चिम विदेह क्षेत्रमें एक मित्रनंदी नामका राजा था उसने उप-  
भोग करने योग्य समस्त पृथ्वी अपने वश करली थी ॥ ६४ ॥ वह राजाको बहुत ही प्रिय था तथा बहुत अच्छी  
तरह प्रजाका पालन करता था इसलिये वह सदा वृद्धि के लिये ही माना जाता था सो ठीक ही है क्योंकि अपना हित  
करने से दूसरे का हित होता ही है ॥ ६५ ॥ उस बुद्धिमान के शत्रुकी सेना भी अपनी सेना के समान हो जाती थी  
तथा जिनकी बुद्धि चक्र के समान फिरा करती है स्थिर नहीं रहती उनके अनुक्रमका उल्लंघन होने से अपनी सेना भी

स्वचक्रं च परचक्रमपक्रमात् ॥ ६६ ॥ अतृप्यदेशं भूपालस्तर्पयित्वाशिलाः प्रजा । परोपकारवृत्तीनां परवृत्तिं स्ववृत्तये ॥ ६७ ॥ स कदाचिरसमासाद्य  
 वृत्तं जिनपुण्ड्रं । श्रुत्वा धर्मं सुधीर्मत्वा स्वागमोपादिभृगुरं ॥ ६८ ॥ अन्तिं वत सीदंति सगमादाहिताहव । नि सगता न गच्छति किं गत न विद-  
 लमी ॥ ६९ ॥ इति निर्विण्य संसाराद् गृहीत्वा सयम परं । संन्यस्तागात्रयस्त्रिंशद्वाधिस्थितिनुत्तरं ॥ ७० ॥ ततो द्वावतीपुर्यां वृत्तो भद्रमदीपते ।  
 सुभद्रायाश्च धर्माख्य सोभूत्सुखपूर्वक ॥ ७१ ॥ अमुस्मिन्भारते वर्षे कुणालविषये पुरं । श्रावस्ती तत्र राजाभूत्सुकैतुभोगतत्पर ॥ ७२ ॥ कामजे  
 व्यसने शूते ससक्तः कर्मचोदितः । निषिद्धो मन्त्रिभिर्धुवैश्च बहुशो हितं ॥ ७३ ॥ चोदितो वासतैर्भूयो दीव्यदैवधिलोमतः । राज्ञं वित्त बल देवी  
 सर्वमस्यापहरितं ॥ ७४ ॥ क्रोधजेषु विषूकेषु कामजेषु चतुर्षु न । नापरं व्यसन शूतात्रिष्टं प्राहुरगमा ॥ ७५ ॥ महायुगेषु यत्सल्यमुक्तं प्रादायिते  
 शत्रुकी सेना वन जाती है ॥ ६६ ॥ वह राजा समस्त प्रजाको संतुष्ट कर स्वयं संतुष्ट होता था सो ठीक ही है क्यों-  
 कि परोपकार करनेवालोंके दूसरोंको संतुष्ट करनेसे ही अपना संतोष होता है ॥ ६७ ॥ किसी एक दिन वह बुद्धि-  
 मान सुव्रतनाथ जिनेंद्रदेवके दर्शन करनेके लिये गया वहाँपर उसने धर्मका स्वरूप सुना और शरीर तथा भोग उप-  
 भोग आदि सबको क्षणभंगुर समझा ॥ ६८ ॥ वह विचार करने लगा कि ये संसारी प्राणी अहित करनेवाले पापके  
 संबंधसे व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं सब परिग्रह छोड़कर दिगंबर नहीं होते हैं न जाने क्यों वे लोग इस बातको नहीं  
 समझते ॥ ६९ ॥ इसप्रकार संसारसे विरक्त होकर उसने उत्कृष्ट संयम धारण किया और अंतमें संन्यास धारण कर  
 ते तीस सागरकी आयु पाकर अनुत्तर विमानमें ( सर्वार्थसिद्धिमें ) अहर्भिद्र हुआ ॥ ७० ॥ वहाँकी आयु पूर्णकर  
 द्वावतीपुरीमें राजा रुद्रकी रानी सुभद्राके शुभस्वप्न देखनेके बाद धर्म नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७१ ॥

अथानंतर-इसी भरतक्षेत्रके कुणालदेशमें एक श्रावस्ती नगर है वहाँपर भोगोंमें तल्लीन हुआ राजा सुकेतु राज्य  
 करता था ॥ ७२ ॥ अशुभ कर्मके उदयसे वह बहुत कामी था और जूआ खेलनेमें बहुत ही आसक्त था, हितैषी  
 कुटुंबियोंने तथा मंत्रियोंने इसे बहुत ही रोक परंतु प्रबल कर्मोंके विपरीत होनेसे वह अपना राज्य, धन, बल, और  
 रानी सबको हार गया ॥ ७३-७४ ॥ क्रोधसे मद्य मांस और शिकार तीन न्यसन उत्पन्न होते हैं और कामसे जूआ,  
 चोरी, वेश्या और परस्त्री ये चार होते हैं परंतु इन सबमें जूआ खेलनेके समान कोई नीच व्यसन नहीं है ऐसा सब  
 शास्त्रकारोंका मत है ॥ ७५ ॥ पांच महागुणोंमें जो सबसे पहिले सत्य कहा है वह जूआ खेलनेवाले के सबसे पहिले  
 नष्ट हो जाता है इसके बाद लज्जा अभिमान कुल सुख आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ जूआके संबंधसे सज्जनता, भाई

हि तत् । श्रुतासक्तौ न लज्जानिमानं पश्चात्कुलं सुखं ॥ ७६ ॥ सौजन्यं बधवो धर्मो द्रव्यं क्षेत्र गृहं यशः । पितरौ दारका दाराः स्वयं चातिप्रसगतः ७७  
 न स्नान भोजन स्वापो निरोषादोग्मच्छति । नत्वर्थान्ध्या क्लेशी बहुदोष विनोष्य ॥ ७८ ॥ करोति कुरिसत कर्म आयेते पारिपंथिकः । याचतेन्येषु  
 वार्थार्थमकार्येषु प्रवर्तते ॥ ७९ ॥ बधुभिः स परित्यक्तो राजभिर्गतिं यातना । इति ब्रूतस्य को दोषानुरेष्टमपि शक्नुयात् ॥ ८० ॥ सुकेतुरेव दृष्टतो  
 येन राज्यं च हारित । तस्माल्लोकद्वयं वाचञ्छू दूरतो ब्रूतमुत्प्रेजेत् ॥ ८१ ॥ सुकेतुरिति सर्वस्वहायोगिकाकुलीकृतः । गत्वा सुदर्शनाचार्यं पादमूल  
 श्रुतागमः ॥ ८२ ॥ सद्यो निर्विद्य ससारात्प्रज्याप्यशुभागय । शोकादत्र समुत्प्लुज्य तपोभिरतिदुष्करैः ॥ ८३ ॥ दीपकालमल तत्त्वा कलागुणविदग्ध-  
 ता । बल चैतेन मे भूयात्तपसेत्याहुष धये ॥ ८४ ॥ कृत्वा निदानं सन्यस्य लातवकल्पमास्थित । तत्र दिव्यमुखं प्राप्तम् चतुर्दशसागरं ॥ ८५ ॥ तत  
 सोप्यवतीर्थात्र भद्रदैव महीभुज । बभूव पृथिवीदेव्यां स्वयम् सूर्यसु प्रिय ॥ ८६ ॥ धर्मो बल स्वयम्भू केशवस्तौ परस्पर । अमृता प्रीतिरसंपन्नाव-

बन्धु, धर्म, धन, भूमि, यश, पिता, पुत्र, स्त्री आदि सब अलग हो जाते हैं ॥ ७७ ॥ जूआ खेलनेवाला न स्नान कर स-  
 कता है न भोजन कर सकता है और न सो सकता है ऐसा करनेसे वह रोगी हो जाता है कुछ धन मिलता नहीं व्यर्थ ही  
 दुःख सहा करता है, अनेक तरह के दोष किया करता है जिससे वह बहुतसे पाप इकट्ठे किया करता है ॥ ७८ ॥ वह नीच  
 कर्म करता है सबका शत्रु बन जाता है धन के लिये याचना करता है और सबतरह के बुरे काम करने लग जाता है ॥ ७९ ॥  
 कुटुंबी लोग उसे छोड़ देते हैं और राजा की ओरसे उसे अनेक तरह के कष्ट पहुंचाये जाते हैं । 'इसतरह जूआ के दोषों को  
 कहनेकेलिये भी कोई समर्थ नहीं है ॥ ८० ॥ इसका सबसे अच्छा उदाहरण राजा सुकेतु ही है क्योंकि यह अपना  
 सब ही राज्य हार गया था इसलिये जो लोग अपने दोनों लोक सुधारना चाहते हैं उन्हें जूआ खेलना दूरसे ही  
 छोड़ देना चाहिये ॥ ८१ ॥ इसतरह राजा सुकेतुने सब कुछ खो दिया तब वह शोकसे व्याकुल हुआ और श्रीसुद-  
 र्शनाचार्य के चरण कमलों के ममीप जाकर उसने धर्मोपदेश सुना ॥ ८२ ॥ वह संसारसे विरक्त हुआ, दीक्षा धारण कर  
 मुनि हुआ तथापि उसका अंतरंग उसका अंतर्गुण चतुरता और बल' हे ' ऐसा निदान किया और आयु  
 के अंतमें संन्यास धारण कर लांतव स्वर्गमें देव हुआ । वहां उसने चौदह सागरतक देवों के सुखों का अनुभव किया  
 ॥ ८३-८४-८५ ॥ वहांसे चयकर इसी भगवत्क्षेत्र की द्वारावती नगरी के राजा रुद्र के उनकी पृथ्वी रानीसे स्वयम्भू  
 नामका पुत्र हुआ, राजा के वह सब पुत्रोंमें प्रिय था ॥ ८६ ॥ धर्म बलदेव था और स्वयंभू नारायण था, दोनोंमें



न्वभूता प्रिय चिर ॥ ८७ ॥ सुकेतुजातौ द्यूतेन निर्जिल्य बलिना दृढात् । स्वीकृतं येन तद्राज्य सोऽभूद्रत्नपुरे मधु ॥ ८८ ॥ तज्जन्मवैरस्कारसमेतेना-  
 धुनामुना । तन्नामधुतिमात्रेण स्वकीयेन स्वयमुवा ॥ ८९ ॥ मघो केनापि भूयेन प्रहितं प्रागृत्तं स्वयं । घातयित्वोभयोर्दूतौ साधिक्षेपमश्रुत ॥ ९० ॥  
 श्रीत्यग्रीतिसमुत्पन्नः संस्कारो जायते स्थिर । तस्मादग्रीतिमात्सज्जो न कुर्गात्तवापि कस्यनित् ॥ ९१ ॥ आकर्णं नारदाद् दूतमृत्युमावेशितः क्रुधा । यया-  
 मभिमुख योशु, रामकेशवयोर्मधुः ॥ ९२ ॥ तौ च सभ्राममंगदो मृदो यद्धविशारदो । प्रापतु सहसा हंतुं त यमानलसभिर्भौ ॥ ९३ ॥ सैन्ययोरुभयो-  
 रासीत्संप्राम सहराश्विव । परस्पर चिर घोरः शूरयो नीरुमीप्रद ॥ ९४ ॥ स्वयंभुवं सद्दृष्टिय तदा सोढा मधु कुधा । ज्वलच्चक्र विवल्याद्य न्यक्षिपत्त-  
 जिघांसया ॥ ९५ ॥ तद्गत्याशु परीत्यैन भुजाग्रं दक्षिणे स्थित । अवतीर्य मरुमांगद्वस्करस्येव मंडल ॥ ९६ ॥ तदेवादाय सक्लोथ स्वयंभूवंद्विप-  
 परस्पर बहुत ही प्रेम था और दोनों ही बहुत दिनतक राज्य लक्ष्मीका सुख अनुभव करते रहे थे ॥ ८७ ॥  
 राजा सुकेतुके समय जिम चलवान राजाने जूआमें राजा, सुकेतुका, सब राज्य जीतकर जवर्दस्ती ले लिया था  
 वह इस जन्ममें रत्नपुरका राजा मधु हुआ था ॥ ८८ ॥ पूर्व जन्मके वैरका संबंध होनेसे मधुका नाम सुननेसे ही राजा  
 स्वयंभूको क्रोध हो जाता था । किसी एक दिन किमी राजाने राजा मधुके पास कुल भेट भेजी थी, राजा स्वयंभूने  
 भेट ले जानेवाले दोनो दूतोंको मारकर वह भेट जवर्दस्ती छीन ली ॥ ८९-९० ॥ प्रेम और द्वेषसे उत्पन्न हुआ सं-  
 स्कार स्थिर हो जाता है इसलिये आत्माके स्वरूपको जाननेवालोंको कमी किसीके साथ द्वेष नहीं करना चाहिये ॥  
 ९१ ॥ राजा मधुने नारदके द्वारा उन दोनों दूतोंके मरनेके समाचार सुने इसलिये वह क्रोधके आवेशमें आकर युद्ध  
 करनेकेलिये नारायण और बलभद्रके सामने चला ॥ ९२ ॥ यम और अग्निके समान तथा युद्ध करनेमें चतुर ऐसे  
 वे दोनों भाई भी क्रोधित होकर मधुको मारनेकेलिये बहुत शीघ्र युद्ध करनेकेलिये तैयार हुये ॥ ९३ ॥ परस्पर एक  
 दूसरेका नाश करनेवाली उन दोनों सेनाओंका बहुत दिनतक शूरवीरोंको भी भय उत्पन्न करनेवाला भारी युद्ध हुआ  
 ॥ ९४ ॥ अंतमें राजा मधुने क्रोधमें आकर स्वयंभूको मारनेके लिये उसपर जलजा हुआ चक्र फिराकर फेंका ॥ ९५ ॥  
 वह चक्र शीघ्रताके साथ जाकर और स्वयंभू भी प्रदक्षिणा देकर उसके दाहिने हाथपर ठहर गया, उससमय वह चक्र  
 ऐसा जान पड़ता था मानों सूर्यका मंडल ही आकाशसे उतरकर आगया हो ॥ ९६ ॥ उसीसमय स्वयंभूने भी क्रो-  
 धित होकर वह चक्र अपने शत्रु मधुपर चलाया । उस चक्रने जाकर तुरंत ही मधुके प्राण अलग कर दिये सो ठीक  
 ही है क्योंकि जब पुण्यका उदय होता है तब क्या नहीं हो सकता ॥ ९७ ॥ उससमय नारायण स्वयंभूने आधे य-

प्रति । ग्रहत्यादादसूतस्य किं न स्यात्पुण्यतोदयात् ॥ ९७ ॥ आधिपत्य तदावाप्य भरतादस्य केशव । वासवो वोन्वभूद्भोगान्निर्विज स्वप्नजातिवत् ॥ ९८ ॥ मधु सत्त्व समुःसृज्य भूय सृष्टिबीजज । वद्ध्याथुंनारक प्राणपरिय य, तमस्तम ॥ ९९ ॥ केशवोपि तमन्वेष्टुमिव वैराग्यबधनात् । तदेव नरकं पथांधाविक्ष्णुपपायत् ॥ १०० ॥ बलोपि तद्वियोगोत्थशोकतनसमानस । निर्विज संसृते प्राप्य जिन विमलवाहन ॥ १०१ ॥ सामायिक समादाय संयमं सयताग्रणी । विप्रदे विप्रही वोप्र निर्व्यग्रमकरोत्तपः ॥ १०२ ॥ सद्दृष्टतन्तेजो मूर्तिगुणवन्मृदितस्तम । असवाधमगाद्भवं भास्वानिव बलोल ॥ १०३ ॥ शूतेन मोहविहितेन विधीः स्वयंभू यातो मधुध नरक दुरिनी दुरंत । धर्मोदिक त्रितयमेव कुमारगृह्या हेतु श्रित भवति दु खपरंपराया ॥ १०४ ॥ क्रोधादिभि सुतपनोपिभवेन्निदानं तत्स्याद्दुर्दंतदुरितोजितदु खहेतु । तेनाप मुक्तिपथगोप्यधर्मं सुकेतुस्त्वाज्यं सुकेतुस्त्वामगवन्निदान ॥ १०५ ॥ द्युति

रतक्षेत्रका साम्राज्य पाया था और अपने बड़े भाई धर्मके साथ बहुत दिन तक इंद्रके समान निर्विज भोगोंका अनुभव किया था ॥ ९८ ॥ राजा मधु प्राणोंको त्यागकर फिर भी संसारमें परिभ्रमण करनेके कारण नरककी आयु बांधकर सातवें नरकमें गया था ॥ ९९ ॥ तथा नारायण स्वयंभू भी उसीका पीछा करनेके लिये क्या मानों परस्पर वैरके संस्कारसे और पाप कर्मके उदयसे आयुके अंतमें मरकर उसी सातवें नरकमें पहुंचा था ॥ १०० ॥ स्वयंभूके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकसे बलदेव धर्मका हृदय बहुत ही संतप्त हुआ था और संसारसे विरक्त होकर उसने विमलवाहन जिनेन्द्रदेवके समीप जाकर धीक्षा धारण कर ली थी, सब मुनियों में मुख्य होकर संयम धारण किया था और जिसप्रकार युद्धमें कोई युद्ध करनेवाला धीरताके साथ लड़ता है उसीप्रकार उसने निराकुल होकर उग्र तपश्चरण किया था ॥ सत्चारित्र्यको धारण करनेवाले और तेजकी मूर्ति भगवान धर्म अंतरणका मोहांधकार दूरकर तथा कर्मोंका नष्टकर निर्मल होकर सूर्यके समान ऊपर वायारहित मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुए ॥ १०३ ॥ मोहके उदयसे उत्पन्न होनेवाले जूथासे बुद्धिहीन और पापी ऐसे राजा स्वयंभू तथा राजा मधु दोनों ही घोर नरकमें जा पहुंचे सो ठीक ही है क्योंकि धर्म अर्थ काम ये तीनों यदि कुमारगं रीतिसे सेवन किये जायं तो फिर ये ही दुःख परंपराके (अनेक दुखोंके) कारण हो जाते हैं ॥ १०४ ॥ क्रोधादिके कारण यदि श्रेष्ठ तपश्चरण करके भी यदि क्रोधादिके कारण कुछ निदान किया जाय तो वह अत्यंत पापसे उत्पन्न हुये दुःखका कारण बन जाता है । इसी निदानके कारण तपश्चरण रूप मोक्षमार्गमें प्रवृत्त हुआ राजा सुकेतु कुमारगंमें जा पड़ा इसलिये दुष्ट पुरुषके समागमके समान इस निदानका अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए ॥ १०५ ॥ धर्म पहिले अपनी कांतिसे सूर्यको भी जीतनेवाला भिन्ननंदी राजा हुआ था फिर पूर्ण महाव्रत समिति आदिको धारणकर अनु-

विनितहितमित्रो मित्रनदी क्षितीशो यमसमितिसमोनुत्तराधीश्वरोयूत । अनुधरणिमित सन् द्वारक्यां मुवर्मे परमपदमवापत्सोधितात्मस्वरूप ॥ १०६ ॥  
कुणालविषये सुकेतुरधिराष्ट्रदुर्मतिस्ततः कृततपा सुरोऽजनि सुखालये लातवे । कृतातसदृशो मधोरनुभवभू चक्रेभरस्ततश्च दुरितोदयारिक्षितिमगात्स्वयंभू-  
रध ॥ १०७ ॥ जिनस्यास्त्यं च तीर्थेय्यौ गणेशौ मेरुमदरौ । तुर्गां स्थिरौ सुरैः सेव्यौ वक्ष्यामश्चरित तयो ॥ १०८ ॥ द्वीपेपरविदेहेस्मिन्सीतोदानदयुदक्-  
तटे । विषये गधमालिन्यां वीतशोकपुराधिप ॥ १०९ ॥ वैजयन्तो नृपस्तस्य देव्या सर्वप्रिय सुतो । संजयंतजयताह्व्यौ राजपुत्रगुणान्वितौ ॥ ११० ॥  
तावन्त्येष्टुरशोकाह्वयने तीर्थकृतौतिके । धर्मं स्वयंभुव श्रुत्वा भोगनिर्वेदचोदितौ ॥ १११ ॥ संजयतनूजाय वैजयन्ताय धीमते । दत्त्वा राज्यं सम पित्रा  
संयम समवापतु ॥ ११२ ॥ सप्तमे संयमस्याने क्षीणाशेषकपायक । सामरस्यं समाप्याप वैजयन्तो जिनेशिता ॥ ११३ ॥ पिबु कैवल्यसप्राप्तिकल्याणे

चर विमानमें अहमिंद्र हुआ, वहांसे पृथ्वीपर आकर द्वारावती नगरीमें बलभद्र हुआ और फिर अपने आत्माके स्वरूपको सिद्धकर परमपद मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ था ॥ १०६ ॥ इसीतरह राजा स्वयंभू पहिले कुणाल देशमें मूर्ख राजा सुकेतु हुआ था, तदनंतर तपश्चरणकर सुखके स्थान लांतव स्वर्गमें देव हुआ, उसके बाद यमराजके समान राजा मभुके पीछे अर्धचक्री नारायण हुआ फिर पापकर्मके उदयसे सबसे नीचे सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ था ॥ १०७ ॥

अथानंतर-इन्हीं विमलवाहन तीर्थकरके समयमें मेरु और मंदर नामके दो मुख्य गणधर हुये हैं जोकि बड़े ऊंचे थे, स्थिर थे और देव भी उनकी सेवा करते थे इसलिये अब उन दोनोंके चरित्र कहते हैं-॥ १०८ ॥ इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर गंधमालिनी देशके वीतशोकपुर नगरमें राजा वैजयंत राज्य करता था, उसकी सर्वश्री देवीसे संजयंत और जयंत नामके दो पुत्र थे, वे दोनों ही पुत्र राजपुत्रोंके सब गुणोंसे विभूषित थे ॥ १०९-११० ॥ किसी दूसरे दिन अशोक नामके वनमें स्वयंभू तीर्थकर पधारे उनके समीप जाकर दोनों भाइयोंने धर्मका स्वरूप सुना और दोनों ही भोगोपभोगोंसे विरक्त हुये ॥ १११ ॥ संजयंतके पुत्र बुद्धिमान वैजयंत को राज्य दिया और स्वयं दोनों भाइयोंने पिताके साथ दीक्षा धारण की ॥ ११२ ॥ संयमके सातवें स्थानमें अर्थात् वागहर्वे गुणस्थानमें सब कथाओंको नष्टकर और पूर्ण समता रसको पाकर राजा वैजयंत अरहंत केवली हुआ ॥ ११३ ॥ उनके केवल ज्ञानका उत्सव मनानेकेलिये सब लोग आये धरणेंद्र आया और वैजयंतका पुत्र जयंत सुनि भी आया, उन सुनिराज जयंतने धरणेंद्रकी सुंदरता और ऐश्वर्य देखकर धरणेंद्र होनेका निदान किया और वह मूर्ख उस निदानके कारण मरकर धरणेंद्र हुआ, सो ठीक ही है क्योंकि बहुतेरे मूल्यसे छोटीसी वस्तु लेना कुछ कठिन नहीं है ॥ ११४-

धरणीशिनः । जयंतो वीक्ष्य सौंदर्यमिच्छन् च महन्मुनि ॥११४॥ धरणेद्रोभवन्मृत्वा दुर्मतिः स निदानतः । अत्यल्प बहुमौल्येन शुद्धतो न हि दुर्लभः ॥११५॥ अन्येद्युः संजयंताख्यं प्रतिमायोगधारिण । मनोहरपुराण्यर्णनीमारण्यातरे यति ॥ ११६ ॥ विद्युद्युष्ट्राङ्गयो विद्यायरो वीक्ष्याक्षमो रूपा । पूर्वविराजुर्नृषाजु- स्तुद्युद्भूतातिवेगया ॥ ११७ ॥ उड्डुह्येत्वाह्ययाप्यदेभरेतेऽप्राग्दिग्गधिना । नदी कुसुमवत्याख्या हरवत्यामिया परा ॥ ११८ ॥ सुवर्णगजवत्यो च चडवेगा च पंचमी । न्यक्षिपस्तगमे तासामगाधे सलिले खलः ॥ ११९ ॥ अय पापी महाकायो दानवो मानवान् । सर्वानस्मान्मथ्यगृह्ण्वा स्नादितुं निश्चत स्थित ॥ १२० ॥ शरकुंटादिशस्त्रैर्धनैर्घुणं सर्वमक्षिण । वय सर्वेपि संभूय हुनामोऽखिलविद्विष ॥ १२१ ॥ उपेक्षितोयमयव भुग्नकुक्षितुमुक्षितः । भक्षयेच्छक्षितोवर्ध निनाया बी क्षिप्रगध्न ॥ १२२ ॥ तस्मान्मद्वचन यूय प्रतीत किमह वृथा । मृषा भावे किमेतेन वैरमस्त्यत्र मे पृथक् ॥ १२३ ॥ इति तेन खगा मुग्धा पुन सर्वेपि नोदिता । तपेति मृत्युसंघत्ता समस्ता शस्त्रसंहती ॥ १२४ ॥ आदाय साधुमूर्द्धन्यं समाहितमहाधिगं । समताद्वदुमारब्धा विश्रब्ध छन्ध

११५ ॥ किसी दूसरे दिन संजयंत मुनि मनोहरपुरके समीप भीम नामके वनमें प्रतिमायोग धारणकर विराजमान थे, वहींसे विद्युदंष्ट्र नामका विद्याधर निकला उन्हें देखकर पूर्व भवके वैरका स्मरण हो आनेके कारण उसे बहुत शीघ्र क्रोध हो आया उस क्रोधको वह संभाल न सका, उस दुष्टने उन मुनिराजको उठाया तथा भरतक्षेत्रके ख्यय पर्वतके पूर्व दिशाकी ओर जहां कुसुमवती, हरिवती, सुवर्णवती, गजवती और चंडवेगा ये पांचो नदियां मिलती हैं वहांके अगाध पानीमें डाल दिया ॥ ११६-११९ ॥ उन्हें पानीमें डालकर वह दुष्ट और लोगोंसे कहने लगा कि यह कोई पापी है, बडे शरीरका गश्म है, यह मनुष्योंको खा जाता है, हम सबको अलग अलग देतकर खानेके लिये ही निश्चल होकर ठहरा है ॥ १२० ॥ इसलिये हमसब लोगोंको मिलकर घृणारहित वाण, भाले आदि शस्त्रोंके समूहसे सबको खानेवाले इस शत्रुको अवश्य मारना चाहिये ॥ १२१ ॥ यदि हमलोग इसकी उपेक्षा करेंगे तो पीठमें घुसे हुये पेटका यह भूखा राक्षस आज ही रातको देखते ही स्त्री वच्चे पशु आदि सबको अवश्य खा जायगा ॥ १२२ ॥ इसलिये मेरे वचनोंपर तुमलोगोंको विश्वास करना चाहिये, क्या मैं झूठ कहता हूं क्या इसके साथ मेरा कुछ अलग वैर है ॥ १२३ ॥ इसतरह कहकर उसने सब विद्याधर लुभालिये, प्रेरणा करनेपर सबने उसकी बात मान ली सभी मृत्युसे डर गये और जिस प्रकार किसी विश्वास पात्रको ठगलोग मिलकर मारते हैं उसी प्रकार उन सब लोगोंने शस्त्रोंका समूह लेकर अतिशय बुद्धिमान और शांतचित्त महामुनिराजको मारना प्रारंभ किया ॥ १२४-१२५ ॥ वज्रवृषभनाराच संहननवाले उन मुनिराज ने भी निश्चल होकर सब उपद्रव सहन किये और शुद्ध केवल ज्ञानको पाकर शुक्लध्यानके द्वारा निश्चल होकर मोक्ष

कोपमा ॥ १२५ ॥ सोपि सर्वसहिष्णु सन् वज्रकायोऽचलाकृति । निश्चलो निर्वृतिं यातः शुक्रध्यानेन शुद्धधी ॥ १२६ ॥ सर्वे निर्वोणकल्याणपूजा कर्तुं सुराधिपा । चतुर्विधाः सप्त प्रापस्तदा तद्भक्तिकोदिताः ॥ १२७ ॥ स्वप्नजागृक्षेणोद्भूततृतीयवगम क्रुधा । नागद्वी नागपाशेन तान्बन्धयान्ति खगान् ॥ १२८ ॥ नास्माकं देव दोषोस्ति विद्युद्दृष्टेण पापिना । विदेहादमुमान्तीय भय चास्मात्स्वचारिणां ॥ १२९ ॥ प्रतिपाद्य जनेरेभिरकारि विविधो मुधा । मदीपसर्ग इत्याहुस्तेषु केचिद्विचक्षणा ॥ १३० ॥ श्रुत्वा तन्नागराजोपि तेषु काष्ठव्यमुत्सृजन् । विषददंष्ट्रं पयोराशां सर्वं कुंक्षुमुद्यत ॥ १३१ ॥ आदित्या-भस्तदा देवो गुणहेतुस्तयोरभूत् । मध्ये ज्ञातानुबधो वा धातुप्रत्यययो पर ॥ १३२ ॥ कृतदोगोस्त्ययं नागनाथ कित्त्वदुरोधत । ममास्य क्षम्यता धुद्रे क-कोपस्त्वाद्दशा पशौ ॥ १३३ ॥ पुरादितीर्थकृत्काले भवद्वंशसमुद्भवै । वक्षोस्य निर्मितो दत्त्वा विद्या विद्याघरेशिना ॥ १३४ ॥ सवर्धं विषवृक्षं च छेतुं स्व-यमर्चतु क । इत्याबालप्रसिद्ध किं न वेत्ति विषवृक्षते ॥ १३५ ॥ इत्युक्तस्तेन नागैः प्रभुवाच तपोधनं । मदप्रजमर्थं दुष्टो निर्हेतुकमनीमरत् ॥ १३६ ॥ त-पधारे ॥ १२६ ॥ उसी समय भक्तिके द्वारा प्रेरणा किये हुए चारों प्रकारके सब देव और इंद्र उनकी निर्वाणकल्याणकी पूजा करनेके लिये आए ॥ १२७ ॥ उनमें वह धरणींद्र भी आया था, अपने बड़े भाईके शरीरको देखकर ही उसे अव-धिज्ञान स्फुरायमान हो आया था और क्रोधमें आकर उसने उन सब विद्याधरोंको नागपाशसे बांध लिया था ॥ १२८ ॥ उन विद्याधरोंमें जो थोड़ेसे चतुर थे वे धरणींद्रसे कहने लगे कि हे देव ! इसमें हमारा कुछ दोष नहीं है यह पापी वि-द्युद्दंष्ट्र ही विदेहक्षेत्रसे इन मुनिराजको लाया है और हम विद्याधरोंको इनसे भय दिलाया है इसलिये ही हम लोगोंने यह व्यर्थ ही अनेक तरहका उपद्रव किया है ॥ १२९-१३० ॥ यह सब सुनकर उस धरणींद्रने भी उन लोगोंसे अपना द्वेष छोड़ दिया और अकेले विद्युद्दंष्ट्रको समुद्रमें डालनेके लिये तैयार हुआ ॥ १३१ ॥ परंतु इतनेमें ही आदित्य नामका कोई देव आकर विद्युद्दंष्ट्रका इसप्रकार सहायक हुआ मानों धातु और प्रत्ययको जाननेवाला कोई अनुबंध ही हो ॥ १३२ ॥ वह कहने लगा कि हे धरणींद्र ! यद्यपि इसने अपराध किया है तथापि मेरे अनुरोधसे इस गरीबको क्षमा कर दीजिये भला आप जैसे आदिमियोंको पशुओंपर क्या क्रोध करना चाहिये ॥ १३३ ॥ पहिले श्रीवृषभदेव तीर्थंकरके समय तेरे वंशमें उत्पन्न हुये धरणींद्रने ही इनका वंश निर्माणकर इन्हें विद्याधरोंकी विद्यायें दी थीं ॥ १३४ ॥ विषवृक्षको भी बड़ाकर फिर भला उसे स्वयं कौन काटना चाहता है हे धरणींद्र ! क्या आप इस बाल गोपाल प्रसिद्ध कहावतको नहीं जानते ? ॥ १३५ ॥ देवके इस प्रकार कह चुकनेपर वह धरणींद्र फिर कहने लगा कि मेरे बड़े भाई मुनिराजको इस दुष्टने विना किसी कारणके मारा है-॥ १३६ ॥ इसलिये इसे मारना ही चाहिये मैं प्रार्थना करता हूं आप इसमें कुछ निषेध न करें, यह

दुःख मम हृतव्यो न निषेधं त्वयार्थितं । मयेति सहसा देवस्तमाह मतिमान् वृथा ॥१३७॥ वैरं वहसि ते भ्राता जातो जातोयमेव किं । निबुद्धो न किं भ्राता संजात संसृतो भ्रमन् ॥ १३८ ॥ बभूव क को न वा बभूव बभूवावधुताढ्य । ससारं परिवर्तितं विदामताग्रहं कुत ॥ १३९ ॥ कृतापराधे भ्राता ते विदुर्दुष्टमदंडयत् । ततोयं स्पृहतज्जन्मा मुनेरस्यापकारकः ॥१४०॥ अग्रज तव पाणोयं प्राक्तजन्मचतुष्टये । महावरानुबन्धेन लोकोत्तरमर्जमगतं १४१ अस्मिन् जन्मन्यसुं मन्ये मुनेरस्योपकारकं । खगमेतत्कृतं लोबायन्मुक्तिमयमेयिवान् ॥ १४२ ॥ आस्ता तावदिदं भद्रं भद्रं निर्दुतिकारणं । प्राक्तनस्यापकारस्य वद केन प्रतिक्रिया ॥१४३॥ इत्याकर्ण्य फणीद्रस्तत्कथ्यता सा कथा मम । कथमित्यन्वयुक्तासावादित्याभ सगुत्सुक ॥१४४॥ शृणु वैरं विस्ज्यास्मिन् बुद्धिमान् शुद्धचेतसा । तत्प्रपञ्चं वदामीति देवो विस्पष्टमभ्यधात् ॥१४५॥ द्वीपेस्मिन् भारते सिंधपुराधीशो महीपति । सिंहसेनः प्रिया तस्य रामदत्ताभवत्सती ॥ १४६ ॥ श्रीभूति सत्यघोषाको मंत्री तस्य महीपते । श्रुतिस्मृतिपुराणादिशास्त्राविद् ब्राह्मणोत्तम ॥ १४७ ॥ पद्मखड्गपुरे श्रेष्ठिदुष्टसाख्यसुमित्रयोः ।

सुनकर वह बुद्धिमान देव शीघ्रताके साथ फिर बोल उठा कि आप व्यर्थ ही क्यों वैर विसाते हैं क्या इस संसारमें आपका यही भाई है क्या संसारमें परिभ्रमण करते समय यह विबुद्धदू आपका कमी भाई नहीं हुआ है ॥१३७-१३८॥ इस संसारमें कौन भाई है और कौन भाई नहीं है । भाई होना और भाई नहीं होना ये दोनों संसारमें बदलते रहते हैं इसलिये विद्वान लोगोंको इसमें कुछ आग्रह नहीं करना चाहिये ॥ १३९ ॥ पहिले इस आपके भाईने भी इस अपराध करनेवाले विबुद्धदूको दंड दिया था इसलिये ही पहिले जन्मका स्मरणकर इसने इस मुनिराजका अपकार किया है ॥ १४० ॥ इस पापीने महा वैरके संबंधसे ही आपके भाईको चार जन्म तक मारकर परलोक पठाया था ॥१४१॥ तथा इस जन्ममें तो मैं इस विद्याधरको इन मुनिराजका उपकारी मानता हूँ क्योंकि इसका किया हुआ उपसर्ग सहकर ही ये मोक्ष पधारे हैं ॥ १४२ ॥ हे भद्र ! इस कल्याण करनेवाले मोक्षके कारणको जाने दीजिये, आप यही कहिये कि पहिले जन्ममें किये हुये अपराधोंका भला क्या उपाय है ॥ १४३ ॥ यह सुनकर वह धरणींद्र भी उत्कंठित होकर आदित्यप्रभ देवसे कहने लगा कि वह कथा किसतरह है सब श्रुतसे कहिये ॥ १४४ ॥ तब वह देव कहने लगा कि हे बुद्धिमान् ! इस विद्याधरके साथ अपना वैर छोड़ दो और मैं सब कथा विस्तारसे कहता हूँ उसे शुद्ध चित्तसे सुनो यह कहकर वह पहिलेकी कथा कहने लगा- ॥ १४५ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें सिंहपुर नगरमें राजा सिंहसेन राज्य करता था उसकी सती रानीका नाम रामदत्ता था ॥ १४६ ॥ उस राजाके श्रीभूति नामका मंत्री था वह वेद पुराण स्मृति आदि सब शास्त्रोंका जानकार उत्तम ब्राह्मण था तथा उसने अपना दमग नाम मन्त्रलोचन / यन्त्र मन्त्र लोचने-

भद्रमित्र सुतो रत्नद्वीपे पुण्योदयात्स्वय ॥ १४८ ॥ उपार्जितपराद्भ्योऽश्वत्थ सिंहपुरे स्थिरं । तिष्ठसुर्मित्रिणं दृष्ट्वा सर्वमापवेद्य तन्मतात् ॥ १४९ ॥ तस्य हस्ते स्वस्त्राणि स्थापयित्वा स बाधवान् । आनेतुं पद्मखडाख्यं गत्वा तस्माद्विवर्त्य स ॥ १५० ॥ पुनरभ्येत्य रत्नानि सत्प्रबोधमयाचत । सोऽपि तद्वन्न-  
मोहेन न जानामीत्यपाद्रुत ॥ १५१ ॥ भद्रमित्रोऽपि पुनरारंभं सर्वतो नगरेऽकरोत् । सत्यबोधोऽपि पापिष्ठैरेव चौरैरभिद्रुत ॥ १५२ ॥ सर्वस्वस्वहरजोऽमृत-  
शोकव्याकुलिताश्रय । प्रलापीति जनानेतत्स्वप्रमाण्यादजिग्रहत ॥ १५३ ॥ समक्ष भूपतेरात्मशुद्ध्यर्थं शपथं न स । धर्माधिकतानिदिष्टं चकागचार-  
यूग ॥ १५४ ॥ भद्रमित्रोऽपि पापेन बन्धितोऽहं विजातिना । द्विजातिं नेत्यनाथोऽपि नासुंचत्पृच्छति मुहु ॥ १५५ ॥ चतुर्विधोपधा शृद्धं युक्तं जात्यादिभि-  
र्गुणैः । त्वां सत्य सत्यबोधायकं मत्वा मन्त्रिगुणोत्तम ॥ १५६ ॥ यथान्यासीकृतं हस्ते तन्न रत्नकरडकं । किमेवमपलापेन हेतुं तद्वृद्धिं शुज्यते ॥ १५७ ॥

वाला ) रत्न छोडा था ॥ १४७ ॥ उसी देशके पद्मखंड नगरमें एक सुदृढ नामका श्रेष्ठ रहता था, उसकी सुमित्रा स्त्रीसे भद्रमित्र नामका एक पुत्र था, वह पुण्यकर्मके उदयसे स्वयं रत्नद्वीपमें गया था, वहाँपर उसने बहुतसे बहुमूल्य रत्न कमाये, वापिस घर आते समय उसने सिंहपुर नगर देखा, और सदा वहीं रहनेका विचार किया । उसने अपने रत्न रखनेके लिये बहुतसे लोगोंसे सलाह पूछी, सबकी सलाहसे मंत्रीको ही इस योग्य समझा, उसने उस मंत्रीके ही हाथमें सब रत्न सौंप दिये और आप अपने भाई बहुओंको लेनेके लिये पद्मखंड नगरमें गया वहाँसे आकर वह फिर सिंहपुरमें आया और सत्यबोधसे अपने रत्न मागने लगा, परंतु रत्नोंसे मोहित होकर वह मंत्री बदल गया और कहने लगा कि मैं कुछ नहीं जानता ॥ १४८-१५१ ॥ तब भद्रमित्रने नगरमें सब जगह रोना चिखाना प्रारंभ किया तथा सत्यबोधने भी अपनी प्रमाणता वनाये रखनेके लिये सब लोगोंपर यही प्रगट किया कि पापी चोरोने इसका धन लूट लिया है, अपना सब धन चले जानेसे इसे भारी शोक हुआ है इसीसे इसका हृदय व्याकुल हो रहा है और इसीलिये ही यह वक्तता फिरता है” ॥ १५२-१५३ ॥ इसके सिवाय उस मंत्रीने अपनी शुद्धता दिखलानेके लिये राजाके सामने भी सौगंध खाई, इसतरह यद्यपि वह सत्याचरणोंसे दूर था तथापि सबने उसे धर्माधिकारी ही मान लिया था ॥ १५४ ॥ भद्रमित्र यद्यपि अनाथ रह गया था अर्थात् राजा प्रजामेंसे कोई उसका सहायक नहीं था तथापि उसने अपना चारबारका रोना चिल्लाना बंद नहीं किया था और वह यही कहता फिरता था कि मुझे इस पापी विजाति ब्राह्मणने ठग लिया है ॥ १५५ ॥ “हे सत्यबोध ! मैंने तुझे चारों तरहसे शुद्ध, जाति आदि गुणोंसे तथा उत्तम मंत्रियोंके गुणोंसे विभूषित और सबकुछ ही सत्यबोध समझा था इसलिये ही मैंने तेरे हाथमें रत्नोंका पिढारा सौंप दिया था अब तू बदलता है इसका



सिंहेसेमहाराजप्रसादेन न तेस्ति किं । छत्रसिंहासने सुक्त्वा ननु राज्यमिदं तव ॥ १५८ ॥ धर्मं यशो महत्त्वं च किं धृष्टैव विधातये । न्यासापह्नव-  
दोष किं न वेतिसि स्मृतिरूपित ॥ १५९ ॥ एतदेवार्थशास्त्रस्य नित्यमन्ययने फलं । यत्पराननिसधते नातिसधीयते परं ॥ १६० ॥ इत्यत्र परा-  
ब्दार्थे विपर्ययेऽपि परो मतः । तत्र शत्रुरहं किं भो सत्यबोधेऽपि पुस्तक ॥ १६१ ॥ सद्भावप्रतिपत्त्याना वचने का विदग्धता । अकमारुह्य मुप्तानां हेतु किं  
नाप पौरुषं ॥ १६२ ॥ महामोहग्रस्तं श्रीगुते माविजन्मना । त्वं तन्मानीनवो देहि मण्य रत्नकरंडकं ॥ १६३ ॥ इंद्रयेतत्प्रमाणानि जातिस्वामियं स्वयं ।  
जानन्न मम रत्नानि किमित्येवमपह्नुषे ॥ १६४ ॥ एवं नित्ये निशाप्राते रोरोत्प्रास्य भूः । कृत्ये कुच्छ्रेयि सत्त्वाद्या न त्यजंति समुद्यम ॥ १६५ ॥ मुहुर्मुहुस्त-  
दाकर्ण्य महादेव्या मनस्वभूतः । जानंहं नायमुन्मत्तः सर्वदातुगतं वदन् ॥ १६६ ॥ इति सावेद्य भूयालं श्रुतोपायेन मन्त्रिणं । जित्वा यज्ञोपवीतेन सार्द्ध-  
तन्नाभ्यमुद्रिका ॥ १६७ ॥ दत्त्वा निपुणमत्याह्वयधार्त्रीकृतले मिथ । ग्रहितं मन्त्रिणा देहि भद्रमिन्नकरंडकं ॥ १६८ ॥ अभिज्ञानं च तस्यैतदित्युक्त्वा

क्या कारण है क्या तुझे यह ऐसा करना शोभा देता है? ॥ १५६-१५७ ॥ महाराज सिंहासेनके प्रसादसे तेरे क्या नहीं है, छत्र और सिंहासनको छोड़कर यह सब राज्य ही तेरा है ॥ १५८ ॥ क्या यह तेरा धर्म यश और बड़बपन व्यर्थ है? दूसरोंका नाश करनेके लिये ही है क्या तू जिसकी स्मृतिशास्त्रमें भी निंदाकी है ऐसे ईम धरोहरके मारनेके दोष-  
को नहीं समझता है ॥ १५९ ॥ क्या प्रतिदिन अर्थशास्त्रके पढ़नेका यही फल है कि दूसरोंको खूब दुःख देना और स्वयं दूसरोंके द्वारा कभी दुखी नहीं होना ॥ १६० ॥ अथवा इस देशमें विपर्ययरूप पर शब्दका अर्थ कुछ दूसरा ही माना जाता है? हे शत्रु सत्यबोध! क्या मैं तेरा शत्रु हूँ ॥ १६१ ॥ जिनके विचार सरल हैं अर्थात् जो छल कपट नहीं जानते उनके ठगनेमें क्या बुद्धिमानी है जो अपनी गोदमें आकर सोया है उसके मारनेमें भला क्या शूरवीरता है ॥ १६२ ॥ हे श्रीभूति! महामोहरूपी पिशाचने तुझे पकड़ रक्खा है, आगामी समयमें तेरा नाश होनेवाला है, देख तू मेरा रत्नोंका पिढारा मुझे दे दे ॥ १६३ ॥ देख! मेरे रत्न इतने २ बड़े हैं इस २ जातिके हैं तू उन सबको जानता है तथापि इसतरह उन्हें क्यों छिपाता है? ॥ १६४ ॥ इसतरह वह प्रतिदिन किसी पेड़पर चढ़कर सबेरे समय खूब रोया करता था सो ठीक ही है क्योंकि कठिन कार्य होनेपर भी शक्तिशाली पुरुष अपना उद्यम करना नहीं छोड़ते ॥ १६५ ॥ उसके इसतरहका बारबारका रोना सुनकर एकदिन महादेवी रामदत्ताके मनमें आया कि यह सदा एक ही बात कहा करता है इसलिये मैं जानती हूँ यह उन्मत्त तो नहीं है ॥ १६६ ॥ उसने राजासे निवेदन किया तथा मंत्रीसे जूआ खेलाकर उसका जनेऊ तथा उसके नाम की खुदी हुई अंगूठी जीतकर ले ली ॥ १६७ ॥ वे दोनों

सानिधानृत । तदानयेति संदिश्य धात्रीमानीधात्तदा ॥ १६९ ॥ तत्रान्यानि च रत्नानि धिप्त्वा धितिभुजा स्वये । भद्रमित्रं समाहूय रहस्येतद्भवेत्तव ॥ १७० ॥ इत्युक्तं समवेदेव ममैव तत्कर्तृकं । किंतु रत्नान्यनर्थ्याणि मिथितान्यत्र कानिचित् ॥ १७१ ॥ एतानि सति मे नैव ममैतानीति शुद्धी । स्वर-  
त्रोन्नेयव सत्योक्तिर्जग्राहोत्काश्रणीः सता ॥ १७२ ॥ संतुष्य भूपतिस्तस्मै सत्यघोषाकसंगतं । ज्येष्ठ श्रेष्ठिपदं भद्रमित्रायादित वेदिता ॥ १७३ ॥ सत्याघोषो  
मृगबादी पापी पाप समावरन् । धर्माधिकरणोक्तेन दक्षातामिति भूभुजा ॥ १७४ ॥ त्रेपितास्तेन मारुणं सार्वभरुण तथा । चपेटा वज्रमुद्राह्वयमहस्य  
विशद्वृजिता ॥ १७५ ॥ कास्यपात्रत्रयापूर्णनवगोमयभक्षणं । इति त्रिविधदंष्ट्रेन निगृह्यनुरक्षका ॥ १७६ ॥ नृपेन्द्रदैवैः सन् मृत्वातिथ्यानूयित ।  
द्विविद्धो गधनो नाम भाडागरेऽजनिष्ठ सः ॥ १७७ ॥ अन्यायेनान्यवित्तस्य स्वीकारश्चैर्यमुच्यते । देसर्गक भिमिदो य तदेव द्विविधं स्मृत ॥ १७८ ॥

चीजें लेकर निगुणमती धायको सोंपी और कहा कि तू मंत्रीके घर जा, वहां जाकर ब्राह्मणीसे कहना कि मुझे मंत्रीने मेजा है मुझे भद्रमित्रका रत्नोंका पिटारा दे दो विश्वासके लिये ही ये दो निशानी लाई हूं इसतरह कहकर उस धायको मेजा और समझा दिया कि जिस तिसतरह पिटारा ले आना, धाय गई और उस पिटारेको ले आई ॥ १६८-१६९ ॥ राजाने उनमें और अनेक रत्न मिलाकर तथा भद्रमित्रको बुलाकर पूछा कि क्या यह पिटारा तेरा है ? भद्र-  
मित्रने उत्तरमें कहा कि हे देव यह पिटारा तो मेरा ही है किंतु इसमें थोड़ेसे बहुमूल्य रत्न और मिला दिये गये हैं इनमें ये रत्न मेरे हैं और ये मेरे नहीं हैं इसतरह कहकर उस सच बोलनेवाले शुद्ध बुद्धिवाले और सज्जनोंमें श्रेष्ठ भ-  
द्रमित्रने अपने रत्न ले लिये ॥ १७०-७२ ॥ यह देखकर राजा भद्रमित्रसे बहुत संतुष्ट हुआ और सत्यघोषके पास जो उत्तम शेटका पद था वह भद्रमित्रको दे दिया ॥ १७३ ॥ तथा पापी सत्यघोष बहुत झूठ बोलनेवाला है, इसने बहुत पाप किये हैं धर्माधिकारीके कहे अनुसार राजाने उसे दंड देनेकी आज्ञा दी ॥ १७४ ॥ चोरी करनेवालोंको जो दंड मिलता है वही दंड उसे दिया गया उसका सब धन लूट लिया गया, वज्रगुष्टि नामके मछके हाथसे तीस मुके दि-  
लाये और कांसेकी तीन थाली भरकर ताजा गोबर खिलाया गया इसतरह कोतवालने तीन तरहके दंडसे उसे दंडित किया ॥ १७५-१७६ ॥ वह मंत्री राजाके साथ बैर बांधकर और आर्तध्यानसे कलुषित होकर मरा और राजाके खजानेमें अंगंधन नामका सर्प उत्पन्न हुआ ॥ १७७ ॥ अन्यायसे दूसरेका धन ले लेना चोरी है, वह चोरी दो तरहसे की जाती है एक चोरी करनेका स्वभाव होनेसे और दूसरी किसी कारणसे ॥ १७८ ॥ जिसका चोरी करनेका स्वभाव है उसके जन्मसे लेकर लोभके निकृष्ट स्पर्द्धाकोका उदय होनेसे घरमें बहुतसा धन होनेपर करोड़ों ही संगति होनेपर तथा बहुत

आयामजन्मनो होमनिरुष्टसद्वन्देदयात् । सत्यप्यर्मे गृहे स्वस्य कोटी नेत्याऽभ्यव्यया ॥ १७९ ॥ न चोद्येण विना तोपः सत्याये सति च व्यये । तद्रत्नाद्दशो भावः सर्वेषां वा धुधार्किक ॥ १८० ॥ स्त्रीपुतादिव्ययागचोर्विनायोदितरद्रवेत् । तच्च लोभोदयेनैव दुर्विपदेन केनचित् ॥ १८१ ॥ द्वयेन तेन वप्राति दुरागुदृष्टचेष्टया । दुर्गता तच्चिरं दुःखं दुरंतं खलुभावेत् ॥ १८२ ॥ सोजान्य इत्यते अशो विप्रमस्य धनादिषु । विपतिं प्राणपर्यंता मित्रवञ्चादिभिः सह ॥ १८३ ॥ गुणप्रसवसदृश्या कीर्तिरग्लानमालिका । लतेव दावसंसिलया सयश्चोद्येण हन्यते ॥ १८४ ॥ इतीदं जानता सर्वं सत्यधो-  
वेण दुर्धिया । आयाशनेन चोद्येण साहसं तदनुष्ठित ॥ १८५ ॥ सद्यो मन्त्रिपददृष्टो निप्रद तादृश गत । दुर्गतिं च पुनः प्राप्तो महापापानुबन्धिनी ॥ १८६ ॥ इत्यमालस्य दुर्वृतं राजात्मनि भिक्षितयन् । धर्मिलाख्याय विप्राय तत्सन्धिव्यपदं ददौ ॥ १८७ ॥ कालेगच्छति सत्येव मन्येशुरुसनाटवी । पर्यंत विमला-  
धुषिकातारस्मादृति स्थित ॥ वर धर्मयतिं प्राप्य भद्रमित्रवणिग्वरः । श्रुत्वा धर्मं धनं दाने त्यजंतमतिमात्रया ॥ १८८ ॥ तस्य माता सुमित्राख्यासहमानाति

सा आय और व्यय होनेपर भी विना चोरी करनेके संतोष नहीं होता है, जैसे भूख सबको लगती ही है उसीप्रकार ऐसी चोरी करना उसका स्वभावसा पड़ जाता है ॥ १७९-१८० ॥ जब घरमें स्त्री पुत्र आदिका सर्व अधिक होता है और घरमें धन नहीं होता तब दूसरी तरहकी चोरी करनी पड़ती है यह चोरी भी किसी लोभ और अशुभ कर्मके उदयसे होती है ॥ १८१ ॥ यह जीव दोनों तरहकी चोरीसे अशुभ आयुका बंध करता है और दुष्ट चेष्टाओंसे बहुत दिनतक दुर्गतिमें भारी दुःख सहन करता रहता है ॥ १८२ ॥ जो इस धनका विश्वास करता है उसकी सज्जनता सब नष्ट हो जाती है और जबतक वह जीता है तबतक मित्र भाई बंधुओंके साथ साथ उसपर अनेक आपत्तियां आती रहती हैं ॥ १८३ ॥ जिमप्रकार दावानल अग्निके छनेसे लताएं नष्ट हो जाती हैं उसीप्रकार चोरी करनेसे गुणोंका उत्पन्न करनेवाली और बढ़ानेवाली कीर्तिरूपी निर्मल लता भी नष्ट हो जाती है ॥ १८४ ॥ यह सब जानते हुये भी मूर्ख सत्यघोषने पहिले प्रकारकी ( धन रहते हुये भी चोरी करनेका स्वभाव हो जाना ) चोरीकर यह इतना बड़ा साहम कर डाला ॥ १८५ ॥ शीघ्र ही यह मंत्रीके पदसे अष्ट कर दिया गया, इतना दंड दिया गया और फिर मरकर महापाप बांधनेवाली दुर्गतिमें जा पहुँचा ॥ १८६ ॥ इस प्रकार राजाने अपने मनमें ही मंत्रीके दुराचरणोंका चिन्तन किया और धर्मिल नामके ब्राह्मणको मंत्रीका पद दिया ॥ १८७ ॥ इसतरह कितना ही काल व्यतीत हो जानेपर किसी एक दिन असना नामके वनमें विमलकांतार नामके पर्वतपर वरधर्म नामके मुनिराज पधारे, श्रेष्ठ भद्रमित्र यह बात सुनकर वहाँ गया, उसने धर्मका स्वरूप सुना और अपना बहुतसा धन दान कर दिया ॥ १८८-१८९ ॥ उसकी माता

कोपिनी । काले श्रुत्वासानाटव्यां सा व्यालीभूयमागता ॥ १९० ॥ यहच्छया वनं यातमवलोक्य दुराशया । साऽस्वादस्त्वसुत कोपाच्चित्रं किं नाशयमग्निं ॥ १९१ ॥ स स्नेहाद्रामदलाया सिंहचंद्र सुतोऽऽवत् । पूर्णचंद्रोऽनुजस्तस्य भूपतेस्तावतिश्रियां ॥ १९२ ॥ भांडागारावलोकार्थं कदाचिन्वृपतिं गतं । दशतिस्म निजकोचाबध्नुतिरंगधन ॥ १९३ ॥ तदा गरुडद्वेन सर्पानाहूय मंत्रत । निर्दोषोऽमुं प्रविश्याग्निं निर्गतं द्रुद्धिमाप्नुयात् ॥ १९४ ॥ अन्यथा निप्रहीष्यामीत्युक्त्वा विषधरा परे । जलाशयादिव क्लेशाश्रित्यतिस्म हुताशनात् ॥ १९५ ॥ अंगंधनस्तु तद्वन्धौ भस्मित कोपमानवान् । कालकाह्वये बने जहो सलोमश्चमरो युग ॥ १९६ ॥ सिंहसेनोपि कालांते सामज सखीवने । संभूयाशनिघोषाख्या समवाप मदोऽधुर ॥ १९७ ॥ सिंहचंद्रोऽम्बवद्राजा यौवराज्येऽजनीतर । भुंजानयोस्तयोर्लक्ष्मीं काले क्षण इवायति ॥ १९८ ॥ कदाचिस्सिंहसेनोपरतवातोऽयुतेरिति । दृष्ट्वा दातहिरेण्यादिमती सयमसंयुते ॥ १९९ ॥ समीपे उसके इतने दान देनेको सहन न कर सकी इसलिये वह बहुत क्रोधित हुई और समयपर मरकर उसी आसना वनमें वाधिन उरपन हुई ॥ १९० ॥ किसी एक दिन वह भद्रमित्र अपनी इच्छानुसार उस वनमें गया था, उसे देखकर दुष्ट हृदयवाली उस वाधिनने अपने पहिले जन्मके पुत्र भद्रमित्रको खा डाला, देखो! क्रोधसे जीवोंका क्या भक्ष्य नहीं हो जाता है? ॥ १९१ ॥ रानी रामदत्ताके साथ उसका पूज्य प्रेम था इसलिये वह उसीके सिंहचंद्र नामका पुत्र हुआ तथा पूर्णचंद्र नामका उसका एक छोटा भाई भी हुआ, राजा सिंहसेनको वे दोनों ही पुत्र बहुत ही प्यारे थे ॥ १९२ ॥ किसी एक दिन राजा अपना खजाना देखने गया था वहांपर मंत्रीके जीव अगधन नामके सर्पने क्रोधमें आकर उसे काट लिया ॥ १९३ ॥ तब गरुडदंड नामके गारुडीने आकर मंत्रके बलसे सब सर्पोंको बुलाया और एक अभिष्टुंड बनाकर सब सर्पोंसे कहा कि 'जो जो सर्प निर्दोष हैं वे सब इस अग्निकुंडमेंसे निकलकर अपनी शुद्धता दिखाओ, नहीं तो मैं सबको दड दूंगा' यह सुनकर और सब सर्प विना किसी क्लेशके तालावके समान उस अग्निमेंसे निकल गये ॥ १९४ ॥ परंतु क्रोध और मान करनेवाला अंगंधन नामका सर्प उसी अग्निमें जाकर जल गया तथा लोभके वशीभूत होकर काल नामके वनमें चमर जातिका शिरण हुआ ॥ १९५-१९६ ॥ राजा सिंहसेन भी मरकर सल्लकी नामके वनमें अशुनिघोष नामका मदोन्मत्त हाथी हुआ ॥ १९७ ॥ इधर सिंहचंद्रको राज्य मिला और पूर्णचंद्रको युवराजपद । राज्यलक्ष्मीका उपभोग करते हुए उन दोनोंका लड़ा समय क्षणमरके समान बीत गया था ॥ १९८ ॥ किसी एक दिन दांतमती और शिरण्यमती नामकी संश्रम धारण करनेवाली अजिकाये सिंहसेन के परलोककी बात सुनकर रानी रामदत्ताके घर आई ॥ १९९ ॥ रानी रामदत्ताने भी उन दोनोंके समीप संश्रम धारण कर लिया । इधर माता पित्तके

रामदत्तापि तयो सयममाददौ । तच्छोकात्सिंहचंद्रोपि पूर्णचंद्रयति धित ॥२००॥ भुत्वा धर्ममिदं जन्म यदि याति कृपा दृणा । कुत- पुनरिहोत्पत्तिर्भूति-  
देवेति चिंतयन् ॥ २०१ ॥ कृत्वा राज्येभुजन्मान द्वितीयं प्राप्य सयमे । गुणस्थान विशुद्धयन् स प्रमादपरिवर्जनात् ॥ २०२ ॥ स्वचारणत्वं युवावगमोत्कषे  
च रुच्यवान् । रामदत्ता कदाचित् दृष्ट्वा सजातसमदा ॥ २०३ ॥ मनोहरवनीयाने वंदित्वा विधिपूर्वक । तत्तपोविभ्रमंप्रत्यनयते पुत्रवत्सला ॥ २०४ ॥  
पूर्णचंद्रः परित्यज्य धर्मं भोगे कृतादर । प्रत्येतुत नवा धर्ममसादित्यन्ययुक्त सा ॥२०५॥ प्रत्याह सिंहचंद्रोपि शुभ्यधर्मं प्रहीष्यति । माभूत्खेद कदा चात्य  
शुणुतःन्यमवाधिति ॥ २०६ ॥ कौशले विपये दृढप्राप्ते नाम्ना मृगायणः । विप्रस्तस्यामवदमैपत्नी च मधुराह्वया ॥२०७॥ वत्सुता वारुणी सखा जीवितति  
मृगायण । साकेताधीनोत्पादि बलस्य सुमतेध स ॥२०८॥ सुता हिरण्यवत्यासीत्सुरम्यविषये गुरे । पोदनेऽधीनिने पूर्णचंद्रायादयि सा सती ॥२०९॥

शोकसे राजा सिंहचंद्र मी दुखी हुआ और पूर्णचंद्र मुनिराजके समीप जाकर धर्मका स्वरूप सुना, धर्मका स्वरूप सुनकर वह  
विचार करने लगा कि मनुष्योंका यह जन्म यदि व्यर्थ चला जाय तो फिर मी मनुष्य जन्म मिलेगा ; यह केवल भ्रम  
है । भावार्थ-द्वारा मनुष्य जन्म मिलना अत्यंत कठिन है ॥ २००-२०१ ॥ यही समझकर उसने अपने छोटे भाईको  
राज्य दे दिया ; और स्वयं दीक्षा धारण करली । संयमको धारणकर, सब प्रमादोंका त्यागकर गुणस्थानोंमें चढकर विशुद्धता  
प्राप्त की ॥ २०२ ॥ इस तपके प्रभावसे उसे आकाशचारण श्रद्धि और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । किसी एकदिन  
रामदत्ता अर्जिकाने मनोहर नामके वनमें अपने पुत्र सिंहचंद्र मुनिको देला, देकर वह बहुत प्रसन्न हुई, उसने विधि-  
पूर्वक वंदना की । तपके निर्दिष्ट होनेका समाचार पूछा और पुत्रके प्रेमसे पूछने लगी कि राजा पूर्णचंद्र धर्मको छोड-  
कर भोगोंमें आसक्त हो रहा है सो वह फिर धर्मको ग्रहण करेगा वा नहीं ? ॥ २०३-२०५ ॥ इसके उत्तरमें मुनिराज  
सिंहचंद्र कहने लगे कि तुम किसी तरहका खेद मत करो, वह अवश्य ही तुम्हारे धर्मको स्वीकार करेगा, मैं उसके  
पूर्वभाव कहता हूं उससे सब बातें मालूम हो जायगी तुम ध्यान देकर सुनो-॥२०६॥ कौशल देशके दृढ नामके गांव  
में एक मृगायण ब्राह्मण रहता था उसकी धर्मपत्नीका नाम मधुरा था ॥२०७॥ उसकी एक वारुणी नामकी पुत्री थी,  
मृगायण ब्राह्मण मरकर साकेत नगरके राजा आदित्यबल ; रानी सुमतिसे हिरण्यवती नामकी पुत्री हुई, वह हिरण्यव-  
ती सुरम्य देशके पोदनपुर नगरके राजा पूर्णचंद्रको व्याही गई ॥ २०८-२०९ ॥ मृगायणकी स्त्री मधुरा मरकर हिग-  
ण्यवतीके तू रामदत्ता नामकी पुत्री हुई थी, श्रेष्ठ भद्रमित्र तेरे प्रेमसे सिंहचंद्र नामका तेरा पुत्र हुआ था और वारुणी  
का जीव यह पूर्णचंद्र हुआ है, तेरे पिताने भद्रवाहुसे दीक्षा धारण की थी और फिर उनसे (तेरे पितासे) हमने दीक्षा

मधुगपि तयोर्जाता रामदत्ता त्वमुत्तमा । मद्रोग्रवणिक् सिंहचरते स्नेहोऽभवत् ॥ २१० ॥ बारुणी पूर्णचन्द्रोयं त्वरिपता मद्रवाहुत । शुहीतमयमोद्यात्र संश्रुतो गुरुरावयो ॥ २११ ॥ माता ते दातमत्यते दीक्षिता क्षातिरय ते । सिंहसेनोहिना दृष्ट कर्दीशोन्मिषोषकः ॥ २१२ ॥ भूत्वा वने भ्रमन्मत्सो मामलोक्य विधासया । श्रवतिस्म मयाकाशे स्थित्वा स प्रतिबोधितः ॥ २१३ ॥ पूर्वसबधमाख्याय सर्वं सम्यक् प्रबुद्धवान् । संयमासयमं भव्य स्वयं सव्य समग्रहीत् ॥ २१४ ॥ शांतचित्त स निर्वेदो व्यायन् कायधसारतां । कृत्वा मातोपवासादीन् शुक्लपत्राणि पारयन् ॥ २१५ ॥ कुर्वन्नेवं महासत्त्वधिरं घोरतरं तपः । यूपकेसरिणी नाम सरित्तीर्थं कुशोबल ॥ २१६ ॥ पातुं प्रविष्टस्तं वीक्ष्य स सर्पधरः पुर । जात कुक्कुटसर्पोत्र तदास्याख्य मस्तक ॥ २१७ ॥ दशतिस्म गजोव्येतद्विषेण विगतायुक्तः । समाधिमरणज्ज्ञे सहसारे रविप्रसे ॥ २१८ ॥ विमाने श्रीधरो देवो धर्मिलश्चायुष क्षये । तत्रैव वानरः सोभ-  
धारण की है ॥ २१०-२११ ॥ तेरी माताने दांतमतीके समीप दीक्षा धारण की थी; और फिर हिरण्यवती मातासे तुने दीक्षा धारणकी है, राजा सिंहसेनको सर्पने काटा था वह मरकर अश्विनियोध हाथी हुआ था । एक दिन वह वनमें फिर रहा था, धुझे देखते ही वह मारनेके लिये दौड़ा परंतु मैंने आकाशमें उड़कर उसे ममझाया, अपना उसका सब संबंध कहा जिससे वह बहुत अच्छीतरह समझगया और उस भव्यने शीघ्र ही संयमासंयम स्वीकार कर लिया ॥ २१२-२१४ ॥ उसका चित्त शांत होगया था, उसे अच्छा वैराग्य उत्पन्न हुआ था, वह शरीर आदि सबकी असारताका चिंतन करता था, महीनोंका उपवास करता था और सूके पत्तोंको खाता था ॥ २१५ ॥ इसतरह उस बड़े प्राणीने बहुत दिन तक कठिन तपश्चरण किया था जिससे उसका शरीर बहुत ही थक गया था । किसी एक दिन वह यूपकेसरिणी नदीके किनारे पानी पीनेके लिये उतरा था; परंतु कीचड़ होनेसे वह उसमें फँस गया । इधर सत्ययोषका जीव जो सर्प हुआ था तथा वहाँसे मरकर चमर हिरण हुआ था, वह मरकर इसी नदीके किनारे कुक्कुटसर्प ( उड़नेवाला सर्प ) हुआ था, उसने हाथीको कीचड़में फसा देखा और पहिले भवका बैर यादकर उसने मस्तकपर चढ़कर उसे काट खाया । हाथी उसके विषसे मरगया और समाधिमरण धारणकर सहस्रार स्वर्गके रविप्रभ विमानमें श्रीधर नामका देव हुआ । सत्ययोषके बाद जो धर्मिल ब्राह्मण मंत्री बना था वह मरकर उसी नदीके किनारे बंदर हुआ था, उस हाथीके साथ उसकी मित्रता थी, उस बंदरने उस कुक्कुटसर्पको मारा जिससे वह मरकर तीसरे नरकमें जाकर नारकी हुआ । इधर शृगालवत नामके व्याधने उस हाथीके दांत तोड़े और मस्तकसे चड़े प्रकाशमान मोती निकाले तथा वे सब चीजें धनमित्र नामके राजश्रेष्ठीको दीं, धनमित्रने वे सब चीजें महाराज पूर्णचंद्रको दे दीं, पूर्णचंद्रने उन

त्सह्या तेन गजेद्विन ॥ २११ ॥ इत कुक्कुटसर्पोपि, वृत्तीयनकेऽभवत् । गजस्य रदनी मुष्णाद्यादप्याधिकतेजसः ॥ २२० ॥ व्याध- भृगालवज्रा-  
घनमित्राय दत्तवान् । राजश्रेष्ठी च तौ ताव पूर्णचंद्रमहीभुजे ॥ २२१ ॥ दयौ दत्तद्वयेनासा व्यधात्पादचतुष्टय । पत्यंकस्यात्मनो मुष्काभिश्च हार-  
मघाव त ॥ २२२ ॥ ईदृश ससृतेर्भावं भावयन् को विधिर्न चेत् । रतिं तनोति भोगेषु भवाभावमभावयन् ॥ २२३ ॥ इत्यसौ सिंहचंद्रो रामदत्ता-  
वबुध्य तत् । पुत्रक्रेहात्सय गत्वा पूर्णचंद्रमजिज्ञासत् ॥ २२४ ॥ गृहीतयर्मतत्त्वोत्तौ चिरं राज्यमपालयत् । रामदत्तापि तत्स्नेहात्सनिदानायुषोऽवधौ ।  
महाशुके विमानेऽभूद्रास्करे भास्कराह्वय । पूर्णचंद्रोपि तत्रैव वैदूर्यं तर्कताह्वय ॥ २२५ ॥ सिंहचंद्रो मुनीन्द्रोपि सम्यगाराध्य शुद्धधीः । प्रीतिकरविमानेभू-  
द्वैर्धर्मवैद्यकोदूर्वके ॥ २२७ ॥ रामदत्ता तत्तद्व्युत्था घरणीतिलके पुरे । अत्रैव दक्षिणश्रेण्यामतिवेगस्नेहिनः ॥ २२८ ॥ श्रीपराह्वया मुता जाता माता-  
स्या स्यात्सुलक्षणा । दत्तयमलकाधीशो दर्शकाय खगेदिने ॥ २२९ ॥ वैदूर्याधिपतिध्यास्य दुहित्ताभूयशोधरा । पुष्कराह्वयपुरे सूर्योवतोयादाव्यस्यवपि ॥

दांतोंके तो अपनी चारपाईके चार पाये बनाये और उन मोतियोंकी माला बनाकर पहिनी ॥ २१६-२२२ ॥ इस संसारका  
ऐसा ही स्वभाव है इसका चितवन करनेसे मालूम होता है कि इसमें क्या नहीं हो सकता ? जो इस संसारको नाश  
करना चाहता है, ऐसा कौन बुद्धिमान इन भोगोंमें प्रेम करता है ? ॥ २२३ ॥ इसतरह सिंहचंद्रके समझानेपर रामदत्ताको बोध  
हुआ, वह पुत्रके स्नेहसे पूर्णचंद्रके पास गई और उसे सब बातें कहकर समझाया ॥ २२४ ॥ पूर्णचंद्रने धर्मतत्त्वको  
ग्रहण किया और बहुत दिन तक राज्यका पालन किया । रामदत्ताने पुत्रके स्नेहसे निदान किया और देवायुका बंध-  
क महाशुक विमानमें भास्कर नामका देदीप्यमान देव हुआ पूर्णचंद्र भी उसी स्वर्गमें वैदूर्य नामका देव हुआ ॥  
२२५-२२६ ॥ मुनिगज सिंहचंद्रने शुद्धचित्तसे चारों आराधनाओंका आराधन किया और उपरिमंके उत्तम श्रेयस्कके  
प्रीतिकरविमानमें अहमिंद्र हुआ ॥ २२७ ॥ रामदत्ताका जीव वहांसे च्युत होकर इसी विजयार्द्रकी दक्षिण श्रेणीमें  
घरणीतिलक नगरके राजा मतिवेग विद्याधरके श्रीधरा नामकी पुत्री हुई, उसकी माताका नाम सुलक्षणा था, वह  
श्रीधरा कन्या अलका नगरीके राजा दर्शक नामके विद्याधरको दी गई ॥ २२८-२२९ ॥ पूर्णचंद्रका जीव जो वैदूर्य  
देव हुआ था वह वहांसे चयकर इसी श्रीधराके यक्षोधरा नामकी कन्या हुई और वह पुष्कर नगरके सूर्यवर्तको दी  
गई ॥ २३० ॥ हाथीका जीव जो श्रीधर देव हुआ था वह वहांसे चयकर सूर्यवर्त और यक्षोधराके रश्मिवेग नामका  
पुत्र हुआ । किसी समय सूर्यवर्तने मुनिचंद्र नामके मुनिराजसे मुनियोंके धर्मका स्वरूप सुनकर दीक्षा चरण की, उ  
सके बाद ही श्रीधरा और यक्षोधराने गुणवती नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा चरण करली ॥ २३१-२३२ ॥ इसके

२३० ॥ राजा श्रीधरदेवोपि रश्मिवेगस्तगोरभूत् । कदाचिन्मुनिचन्द्राख्यमुनिधर्ममुशासनात् ॥ २३१ ॥ सूश्रूषते तपोयते श्रीधरा च यशोधरा-  
 श्रीसां समग्रप्रीषतां गुणवत्यर्थिकातिके ॥ २३२ ॥ कदाचिद्रश्मिवेगोऽतिसद्वृद्धजिनालयं । हरिचन्द्राङ्ग्य तत्र दृष्ट्वा चारणसंयत ॥ २३३ ॥ श्रुत्वा  
 धर्मं स सम्यक्त्वं संयमं प्रतिपद्य सः । चारणत्व च संप्राप्तः सयोगमनगोचरं ॥ २३४ ॥ काचनाख्यगुहाया तं कदाचिदवलोक्य ते । वंदित्वा तिष्ठता  
 तत्र श्रीधरा च यशोधरा ॥ २३५ ॥ प्राक्तनो नारकस्तस्मात्प्रच्युत्याद्यविपाकृत । चिरं भ्रमिता ससारे महानजगरोभवत् ॥ २३६ ॥ ते च त च निरी-  
 क्ष्यैष स सूर्यप्रतिमं क्रुधा । सहस्रिलसमारग्य ते कामिष्ठे बभूवुः ॥ २३७ ॥ रुचकाख्ये विमानेयं मुनिथार्कप्रभाह्वये । देव पंकप्रभा प्रापत्यापाद-  
 जगरोपि सः ॥ २३८ ॥ सिंहचंद्रो दिवोभ्येत्य द्वीपेस्मिन् चक्रुः पते । अपराजितराजस्य सुदंयाद्य सुतोऽभवत् ॥ २३९ ॥ चक्रायुधस्ततोभ्यैव रश्मिवेग-  
 द्रच्युतो दिव । सजातध्विजमालायां सुतो वज्रायुषाह्वय ॥ २४० ॥ श्रीधरा चागता नाकायुगिणीतिलके पुरे । सुताभूतिप्रयक्रारिण्यामतिवेगमहीपतेः

बाद किसी एक दिन रश्मिवेग विद्याधर सिद्धकूट जिनालयके दर्शन करनेकेलिये गया, वहाँपर उमने हरिचंद्र नाम-  
 के चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनिगजके दर्शन किये, उनसे धर्मका स्वरूप सुना और सम्यग्दर्शन सहित संयम  
 धारण किया तथा शीघ्रताके साथ ले जानेवाली चारणऋद्धि प्राप्त की ॥ २३३-२३४ ॥ किसी दूसरे दिन श्रीधरा और  
 यशोधरा दोनों अजिंकार्योंने रश्मिवेग मुनिराजको कांचन नामकी गुफामें विराजमान देखा, उन्हें देखकर बंदनाकर  
 वे दोनों ही अजिंकार्यें वहाँ बैठ गई ॥ २३५ ॥ इधर सत्यघोषका जीव जो तीसरे नरक गया था वह वहाँसे निकलकर  
 कर्मके उदयसे बहुत दिन तक संसारमें फिर और फिर उसी वनमें बड़ा भारी अजगर हुआ ॥ २३६ ॥ वह उन दोनों  
 अजिंकार्योंको तथा सूर्यके समान तेजस्वी मुनिराजको देखकर क्रोधसे तीनोंको निगल गया । वे दोनों अजिंकार्यें तो  
 आराधनाओंका आराधनकर आठवें कापिष्ठ स्वर्गमें देवी हुई, तथा मुनिराज रुक्क नामके विमानमें अर्कप्रभ नामका  
 देव हुआ और वह अजगर अपने पापकर्मके उदयसे चौथी पंकप्रभा भूमिमें नारकी हुआ ॥ २३७-२३८ ॥ सिंह-  
 चंद्रका जीव जो त्रैवेयकमें अहमिंद्र हुआ था वह वहाँसे चयकर इसी द्वीपके चक्रपुर नगरके राजा अपराजितके उसकी  
 रानी सुंदरीसे चक्रायुध नामका पुत्र हुआ । हाथी का जीव जो रश्मिवेग होकर अर्कप्रभ देव हुआ था वह वहाँसे चय-  
 कर इसी चक्रायुधके उसकी चित्रमाला स्त्रीसे वज्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥ २३९ ॥ श्रीधराका जीव जो स्वर्गमें गया  
 था वह वहाँसे चयकर पृथ्वीतिलक नगरके राजा मतिवेगके उसकी रानी प्रियकारिणीसे रत्नमाला नामकी पुत्री हुई  
 थी, उस पुत्रीमें सब लक्षण पूर्ण थे, वह वज्रायुधको व्याही गई थी इसलिये वह सदा उसे प्रसन्न रखती थी ॥ २४०-



॥ २४१ ॥ सर्वलक्षणसपूर्णं भ्रमालातिविश्रुता । वज्रायुधस्य सा देवी ममजायत ममुदं ॥ २४२ ॥ यशोधरा तयो रत्नायुधं सुखजायत । एवमेते  
स्वपूर्वाय फलमत्रापुरन्धं ॥ २४३ ॥ धृत्वापराजितो धर्ममन्येयुः पिहिताग्रवात् । चक्रायुधाय साम्राज्यं दत्वादीक्षिष्ट धीरधी ॥ २४४ ॥ वज्रायुधे  
समारोप्य राज्यं चक्रायुधो वृषः । प्राव्रजतीत्यपि तु पाशे स तज्जन्मनि मुक्तिमाह ॥ २४५ ॥ अथिरत्नायुधं राज्यं कृत्वा चक्रायुधतिके । वज्रायुधो-  
प्यगदीक्षां किं न कुर्वति सात्विकाः ॥ २४६ ॥ सक्तो रत्नायुधो भोगे, त्यक्त्वा धर्मकथामपि । सोऽन्यमुदतिं शुभ्रत्वात्सुखानि विरम्यदा ॥ २४७ ॥  
मनोरममहोद्याने वज्रदत्तमहामुनिः । व्यावर्ण्यमानलोकानुयोगश्रवणदृग्धी ॥ २४८ ॥ पूर्वजन्मस्पृतेर्मधविजयो योगधारणः । मासादिकवलं नादाद्  
व्यायन्त्यसृष्टिदु स्थिति ॥ २४९ ॥ राजा तु व्याकुलीभूय मन्त्रिवैद्यवरान् स्वयं । पप्रच्छ को विकारोऽस्य गजस्येत्याहितादरः ॥ २५० ॥ विचार्य ते त्रिदो-

॥ २४२ ॥ यशोधराका जीव भी स्वर्गसे चयकर इन वज्रायुध और रत्नमालाके रत्नायुध नामका पुत्र हुआ । इसप्रकार ये  
सब जीव अपने पूर्व कर्मोंका फल प्रतिदिन भोगने लगे ॥ २४३ ॥ किसी एक दिन राजा अपराजितने पिहितास्रव  
मुनिसे धर्मका स्वरूप सुना और निश्चित बुद्धिवाले उत्तने चक्रायुधको राज्य देकर दीक्षा धारण करली ॥ २४४ ॥  
राजा चक्रायुधने भी वज्रायुधको राज्य देकर अपने पिताके समीप ही दीक्षा धारण कर ली और वह उसी जन्ममें  
मुक्त होगया ॥ २४५ ॥ वज्रायुध भी रत्नायुधको राज्य देकर चक्रायुधके समीप दीक्षित हो गया, सो ठीक ही है  
क्योंकि जिनमें शक्ति है ऐसे पुरुष क्या नहीं करते ? ॥ २४६ ॥ राजा रत्नायुध धर्मकथाको छोड़कर भोगोंमें आसक्त  
गया और बड़ी लालसके साथ प्रतिदिन सुखोंका अनुभव करने लगा ॥ २४७ ॥ किसी एक दिन महामुनिराज  
वज्रदंत मनोरम नामके उद्यानमें लोकानुयोगका ( लोककेस्वरूपका ) वर्णन कर रहे थे उसे सुनकर बड़ी बुद्धिवाले  
मेघविजय नामके राजाके मुख्य हाथीको पहिले जन्मका स्मरण हो आया इसलिये वह संसारके दुखोंका चिंतन क-  
रने लगा और मांम आदिका खाना भी उसने छोड़ दिया ॥ २४८-२४९ ॥ हाथीका यह हाल देखकर राजा रत्नायुध  
भी बहुत व्याकुल हुआ उसने अच्छे २ मंत्री और वैद्योंको बुलाकर बड़े आदरके साथ स्वयं पूछा कि इस हाथीको  
क्या विकार हुआ है ॥ २५० ॥ उन्होंने बात पित्त कफ इनसे उत्पन्न हुए कोई विकार उस हाथीमें न देखे तब वि-  
चारके साथ कहा कि अनुमानसे ऐसा मालूम होता है कि धर्मका स्वरूप सुननेसे इसे पहिले जन्मका स्मरण हो आया है ॥  
इस प्रकारका अनुमानकर उन लोगोंने धी आदिसे मिला हुआ और किसी अच्छे वर्तनमें बना हुआ शुद्ध आहार  
उसके सामने रखवा, उसे रखते ही वह उत्तम हाथी उसे खा गया ॥ २५१-२५२ ॥ यह देख कर राजाको भी बड़ा आ-

पोत्यविक्रानवलोकनात् । अनुमानादयमर्थमुत्तेजति स्मरोऽभवत् ॥ २५१ ॥ इति सत्यात्रनिष्पन्नशुद्धाहारं घृतादिभिः । मिथितं न्यक्षिपिक्षप्तं तमभुङ्क्त द्विपोत्तन ॥ २५२ ॥ तदा सविस्मयो राजा गन्धर्वविश्लोचन । वज्रदत्तं तदाख्याय तद्देहं पृच्छति स्म स ॥ २५३ ॥ मुनिर्बभावे भो भूप शृणु तत्संविधानं । भरतेस्मिन्नुपः प्रीतिभद्रः छत्रपुराधिप ॥ २५४ ॥ सुंदर्यो मम वत्सस्तु भूत प्रीतिकराह्वय । मंत्री विचित्रमतिस्तस्य कमला कमलोपमा ॥ २५५ ॥ गृहिण्डिगम्भूषाया विचित्रमतिराह्वयया । शृणु मंत्रिभूतौ भूत्वा धर्मं धर्मरुच्यतेः ॥ २५६ ॥ तदैव भोगनिर्विण्णो द्वावप्यादददुस्तारः । क्षीरास्रवर्द्धितस्तथा प्रीतिकरमहामुने ॥ २५७ ॥ सत्वे तत्पुण्ययुजैर्मनुस्ती यथाक्रमं । विहरतावुपोध्यास्त तत्र मंत्रिभूतौ यतिः ॥ २५८ ॥ प्रीतिकरपुरे चर्या यात स्वगृहसन्निधौ । गणिका बुद्धियेणाहगा प्रणम्य विनयान्विता ॥ २५९ ॥ दानयोग्यकुलान् दृष्टस्मीत्यात्मानमुच्छुचा । निंदती वाढमप्राक्षीन्मुने कथय जन्मिता ॥ २६० ॥ कुलरूपादय केन जायते संस्तुता इति । मयमासादिकलागादिभ्युदीर्य मुनिश्च स ॥ २६१ ॥ तत प्रत्यागत कस्मान् श्रयं हुआ, वह अवधिज्ञानी मुनिराज वज्रदत्तके समीप गया और हाथीके सब समाचार कहकर उसका कारण पूछा ॥ २५३ ॥ उत्तरमें मुनिराज कहने लगे कि हे राजन् मैं इसका सब कारण कहता हूँ तू सुन-इसी भरतक्षेत्रके छत्रपुर नगरमें राजा प्रीतिभद्र राज्य करता था उस ही सुंदरी नाम की रानीसे प्रीतिकर नाम का पुत्र हुआ था । उस राजाके मंत्रीका नाम विचित्रमति था और लक्ष्मीके समान उसकी स्त्रीका नाम कमला था उसके विचित्रमति नाम का पुत्र हुआ था । किसी एक दिन मंत्री और राजा दोनोंके पुत्रोंने धर्मरुचि मुनिसे धर्मका स्वरूप सुना ॥ २५४-२५६ ॥ उसी समय वे भोगोंसे विरक्त हुये और दोनोंने दीक्षा धारण कर ली, उन दोनोंमेंसे महामुनि प्रीतिकरको ( राजाके पुत्र को ) क्षीरास्रव नामकी ऋद्धि उत्पन्न हुई ॥ २५७ ॥ किसी एकदिन विहार करते हुए वे दोनों ही मुनि अयोध्या नगरके बनमें जा विराजमान हुए । उनमेंसे मुनि मंत्रीका पुत्र तो उपवास कर वहीं रहा और प्रीतिकर मुनि आहार लेने के लिये नगरमें गये, वे जा रहे थे इतनेमें बुद्धियेणा वेश्या अपने घरके समीपसे निकलते देख आई, उसने बड़ी विनयसे प्रणाम किया और कहा कि हे प्रभो मेरा कुल दान देने योग्य नहीं है, यह कहकर उसने अपनी बड़ी निंदा की और पूछा कि हे मुनिराज ! इस संसारमें जीवोंको उत्तमकुल और अच्छा रूप किस कारणसे होता है ? मुनिराजने कहा कि 'मद्य मांसका त्याग कर देनेसे ही उत्तम कुल और अच्छा रूप मिलता है' ॥ २५८-२६१ ॥ यह कहकर मुनिराज बनमें लौट गये, वे कुछ देरसे पहुँचे थे इसलिये मुनि विचित्रमतिने बड़े आदरसे पूछा कि आज आपको शहरमें इतनी देर क्यों लगी ? ॥ २६२ ॥ इसके उत्तरमें प्रीतिकरने उस वेश्याकी सब कथा ज्यों की त्यों सुना दी । दूसरे दिन मंत्रीका

रिच्यतो हेतोश्चिरं पुरे । भवानिति तमप्राप्तीद्विविचित्रमतिरादत् ॥ २६२ ॥ मोने तरुणिकावाता यथावृत्तं न्यवेदयत् । परेशुर्मन्त्रितुर्गिमक्षविलाया गणिका गृह ॥ २६३ ॥ प्राविश सापि तं दृष्ट्वा स तुल्याय समग्रं । वदित्वा पूर्ववद्धर्ममन्त्रं कृतादरा ॥ २६४ ॥ कामरागकथामेव व्याजहार स दुर्मति । तर्दिगतिज्ञयावत्ता तया तस्मिन्मयीयत् ॥ २६५ ॥ प्राप्तापमानेन रया सुपशालोकि पट्टतात् । मासात्तत्रग्राधीश गंधमित्रमहीपति ॥ २६६ ॥ वक्षी-  
कृत्य ततो बुद्धिपेणा चतुस्रकृतामुना । स विविचित्रमतिं मत्वा तवायमभवदूज- ॥ २६७ ॥ अस्मिन् त्रिलोकप्रहस्तिश्रवणज्वातिसृष्टेः । निर्विण्णोयं समासत्रविनेयो नामहीद्विधा ॥ २६८ ॥ त्यागो भोगाय धर्मस्य काचायैव महामणे । जनन्या इव दास्यर्थं तस्मात्तादृक् सजेद् बुधः ॥ २६९ ॥ इति तद्बभूवुगाकर्ण्य धिकारं धर्मदूषक । धर्म एव पर सिच्रमिति धर्मरतोऽभवत् ॥ २७० ॥ तदैव दत्त्वा स्वं राज्यं स्वपुत्रायैव सयमं । मात्रा सहायुषः प्राप्ते

पुत्र विविचित्रमति भोजनके समय उसी वेश्याके घर गया, वेश्या मुनिको देखकर एकदम उठी, नतस्कार किया, और पहिलेके समान बड़े आदरके साथ धर्मका स्वरूप पूछने लगी ॥ २६३-२६४ ॥ परंतु वह मूर्ख विचित्रमति काम और राग की कथार्यें कहने लगा, इसलिये इस्राएँसे ही समझनेवाली उस वेश्याने उस मुनिका बड़ा तिरस्कार किया ॥ २६५ ॥ उस अपमानसे उसे बड़ा क्रोध आया, वह रसोई बनाना बहुत अच्छी तरह जानता था सब रसोई स्नातृमें लिखे अनुसार ही बनाता था, इसलिये वह मुनिपना छोड़कर वहाँ के राजाका रसोइया होगया वहाँके राजाका नाम गंध-  
मित्र था उसे उसने विधिके अनुसार बनाया हुआ मांस खिलाकर अपने वश कर लिया और इस तरह राजाको वश कर उस बुद्धिपेणा वेश्याको अपनी बनायी । इमतरह इतने पाप करनेवाला वह विचित्रमति मरकर यह तेश हाथी हुआ है ॥ २६६-२६७ ॥ मैं यहाँ त्रिलोक प्रज्ञप्तिका पाठ कर रहा था उसे सुनकर इसे पूर्व भवका स्मरण हो आया है, यह निकटभव्य है और अब संसारसे विरक्त हुआ है इसलिये ही इमने भोजन नहीं किया है ॥ २६८ ॥ भोगोंके लिये धर्मका त्याग करना, काचके लिये महामणिके त्याग करनेके समान है अथवा किसी दासीके लिये माताका त्याग करने के सामान है इसलिये बुद्धिमानोंको ऐसे करनेका त्याग कर देना चाहिये ॥ २६९ ॥ यह सब कथा सुनकर राजा र-  
त्तायुध कहने लगा कि इस धर्मको दूषित करनेवाले कामको धिकार हो, इस संसारमें धर्म ही मित्र है, इसतरह वह धर्म में तल्लीन हुआ ॥ २७० ॥ उसने उसी समय अपना राज्य अपने पुत्रके लिये दिया, मुनिके समीप आकर माताके साथ संयम धारण किया और आयु पूरी होनेपर स्वर्गमें देव हुआ ॥ २७१ ॥ सत्यघोषका जीव जो चौथे नरकमें गया था उसने नरकसे निकलकर अनेक तरहके दुख भोगते हुए अनेक योनियोंमें परिभ्रमण

कर्मोत्पत्तिमिबोभवत् ॥ २७१ ॥ प्राक्तनो नारकः पकप्रभाया निर्गन्तधिर । नानायोगिषु संश्रम्य नानादुःखानि निर्विघ्नम् ॥ २७२ ॥ इह क्षत्रपुरे शरणाध्य-  
स्य तनयोऽभवत् । मयं व्याधस्य पापेन प्राक्तनेनातिदारुण ॥ २७३ ॥ वने प्रियंगुबुडाल्यै प्रतिमायोगधारिणं । वज्रायुधं खलस्तस्मिन्नोकांतरमजीगमत् ॥  
२७४ ॥ सोढवा व्याधकृत तीव्रमुपगमसौ मुनि । धर्मध्यानेन सर्वार्थसिद्धिं प्रापदिदधीः ॥ २७५ ॥ सप्तमीं शुचिर्नीं पापाद्युबासातिदारुणः । प्राग्भागे  
चातकील्लहे विदेहे पश्चिमे महात् ॥ २७६ ॥ देशोक्तिं गधिलस्तस्मिन्नयोध्यानगरे वृष । अर्धशोभभवसत्य सुव्रता सुखदायिनी ॥ २७७ ॥ रत्नमाला तथोरावीत्सू-  
नुर्वतभयाह्वयः । तस्यैव जिनदत्तायामभूद्रायायुष सुत ॥ २७८ ॥ नाम्ना विभीषणे जातो तावुभौ रामकेशवौ । अविभज्य श्रिय रीर्धकाल भुक्त्वा ययो-  
चितं ॥ २७९ ॥ कालांतै केशवोऽयासीद्वद्वायु शर्कराप्रभा । स हत्यपि निवृत्त्यंतेवास्तित्वा लातवं ययौ ॥ २८० ॥ आदित्या स एवाहं द्वितीयपृथिवीस्थित ।  
प्रविश्य नरक केहादिभीषणमबोधयम् ॥ २८१ ॥ बुद्ध्वा तत् स नियांतो द्वीपेस्मिन् विजयेपुरे । ऐरावते महत्यासीदयोध्या तदर्धभीर ॥ २८२ ॥ श्रीव-

किया ॥ २७२ ॥ परिभ्रमण कर वह इसी देशके छत्रपुर नगरमें दारुण नामके भीलके उसकी मंगी स्त्रीसे  
अतिदारुण नामका पुत्र हुआ ॥ २७३ ॥ किसी एक दिन प्रियंगुखड नामके वनमें वज्रायुध मुनि प्रतिमायोग धारण  
किये विराजमान थे, वहींपर उस दुष्ट भीलके लडकेने उन्हें दुःख देकर मारहाला ॥ २७४ ॥ भीलके किये हुए कटिन  
उपसर्गको सहनकर वे विशाल बुद्धिवाले छुनिराज धर्मध्यानके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धिमें जा पहुँचे ॥ २७५ ॥ वह भीलका  
लडका अपने पापके उदयसे सातवें नरकमें गया । पूर्वधातकी खंडके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें एक गंधिल नामका बड़ा  
देश है उसके अयोध्या नगरमें राजा अर्धहास राज्यकरता था उसकी सुख देनेवाली रानीका नाम सुव्रता था, रत्नमाला  
का जीव इन्हीं दोनोंके वीरभय नामका पुत्र हुआ । उसी राजाके जिनदत्ता रानीसे रत्नायुधका जीव भी विभीषण नाम  
का पुत्र हुआ । येदोनों ही बलभद्र और नारायण थे दोनोंने ही बहुत दिनतक विना बाँटे ही राज्यलक्ष्मीका उपभोग  
किया था ॥ २७६-२७९ ॥ आयुके अंतमें नारायण तो मरकर नरक आयुका बंधकर दूसरे नरकमें गया और बलभद्रका  
जीव दीक्षा धारण कर लांतवस्वर्गमें देव हुआ ॥ २८० ॥ मैं वही आदित्याभ नामका देव हूँ । मैंने भाईके प्रेमसे दूसरे नरकमें  
जाकर विभीषणके जीवको समझाया था, वहाँपर उसने धर्मका स्वरूप समझ लिया था इसलिये वह वहाँसे निकलकर  
इसी जंबूद्वीपके उत्तर ऐरावत क्षेत्रके अयोध्या नगरमें राजा श्रीवर्मिके सुसीमा रानीसे श्रीधाम नामका पुत्र हुआ, वह  
अनंत मुनिसे दीक्षा लेकर पांचवें ब्रह्म स्वर्गमें दिव्य आठ गुणोंसे विभूषित देव हुआ । वज्रायुधका जीव जो सर्वार्थसिद्धि  
में अहमिंद्र हुआ था वह इहाँ आकर संजयंत हुआ है ॥ २८१-२८४ ॥ श्रीधामका जीव ब्रह्म स्वर्गसे आकर दू जयंत हुआ

भीत्यं शुभीमाह्वा देवी तस्या सुतोऽभवत् । श्रीधामासावन्ताह्यमुनेरादाय संवम ॥ २८३ ॥ ब्रह्महन्तेऽभवद्देवो दिव्याष्टगुणभूषितः । सर्वार्थसिद्धिं स-  
ज्यंतो वज्रायुधोऽभवत् ॥ २८४ ॥ ब्रह्मकल्पादिहागत्य त्व जयंतो निदानत । मोहादिद्विषसप्तम्यन्त्योऽजनिष्ट नागनायक ॥ २८५ ॥ प्राक्को नारकः प्रात-  
शुषिबीतो भिर्निर्गतः । जघन्याशुरहिर्भूत्वा घृतीया घृषीर्वा गत ॥ २८६ ॥ ततो निर्गत्य तिर्यक्षु त्र्येषु स्वावरेषु त्र । आत्वास्मिन् भरते भूतरमनात्यवना-  
तरे ॥ २८७ ॥ ऐरावती नदीतीरे मृगशृंगसुतोऽभवत् । गोशृंगस्तापसाधीश शक्तिकाया विरक्तधीः ॥ २८८ ॥ स पञ्चम्रितपः कुर्वन् दिव्यादितिलकाधिप ।  
खगं वीर्याशुमालाह्यं निदानमकरोत्कुधी ॥ २८९ ॥ मृत्वात्र खगशंलोदकप्रेया गगनवल्लभे । वज्रदंष्ट्रखगेशस्य प्रिया विद्युत्प्रभा तयो ॥ २९० ॥ वि-  
गुहंष्ट्रः सुतो जात सोय बैरावुबधत । बहूधा कर्म निर दु खमापदाप्स्यति चापर ॥ २९१ ॥ एव कर्मवशाज्जु ससारे परिवर्तते । पिता पुत्रः सुतो माता  
माता आता से च स्वसा ॥ २९२ ॥ स्वसा नत्ता भ वेत्तावा बंधुसंबन्धसंस्थितिः । कस्य को नापकर्तात्र नोपकर्ता च कस्य कः ॥ २९३ ॥ तस्माद्बैरावबधेन

था वहां निदान बांधकर मोह कर्मके उदयसे सम्यक्त्वका नाशकर धरणीद्र हुआ है ॥ २८५ ॥ पहिला नारकी सत्य-  
वोषका जीव दूसरे नरकसे निकलकर थोड़ीसी आयु पाकर सर्प हुआ था, वहांसे फिर तीसरे नरक गया, वहांसे निक-  
लकर त्रस स्थावर आदि अनेकतरहकी तिर्यंच योनियोंमें घूमा । फिर इसी भरतक्षेत्रके भूतरमन नामके वनमें ऐरावती  
नदीके तपसियोंके स्वामी गोशृंगके उसकी संखिया नामकी स्त्रीसे मृगशृंग नामका पुत्र हुआ । उसने विरक्त होकर पं-  
चाग्नि तपश्चरण किया और उस मूर्खने दिव्यतिलक नगरके राजा अंशुमाल विद्याधरको देसकर निदान किया ॥ २८६-  
२८९ ॥ वहांसे मरकर उसी विजयादं पर्वतकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभ नगरमें राजा वज्रदंष्ट्र विद्याधरकी विद्युत्प्रभा  
रानीसे यह विगुहंष्ट्र नामका पुत्र हुआ है । पहिले भवके बैर होनेके कारण बहुत दिनतक इसने पापकर्मोंका बंध  
किया है और अनेकतरहके दुःख और आपत्तियां पाई हैं ॥ २९०-२९१ ॥ इसतरह कर्मके बन्ध होकर यह जीव संसारमें  
परिभ्रमण करता है पिता पुत्र होता है पुत्र माता होता है, माताका जीव भाई हो जाता है, भाई बहिन हो जाता है  
और बहिनका जीव नाती हो जाता है, इसतरह हम संसारमें भाई बंधु आदि संबंधकी स्थिति किसतरह रह सकती है  
इस संसारमें कौन किसका बुरा करनेवाला नहीं है और कौन किसका भला करनेवाला नहीं है ॥ २९२-२९३ ॥ इ-  
सलिये हे धरणीद्र बैर बांधकर तू व्यर्थ ही पापका बंध मत कर तू अपना बैर छोड़ और इस विगुहंष्ट्रको भी छोड़ ॥  
२९४ ॥ इसप्रकार उस देवके बचनरूपी अमृतकी वर्षासे उस धरणीद्रका हृदय बहुत ही संतुष्ट हुआ, वह कहने लगा  
कि हे देव मैं आपके प्रसादसे सद्धर्मका भ्रदान करता हूं, एक बात है इस विगुहंष्ट्रने विद्याके बलसे पाप किया है इ-

मा कृपा- पापबधन । मुंच वरं महानाग ! विद्युद्वृक्ष मुच्यता ॥ २९५ ॥ इति तत्त्वदेववाक्यसौषधश्छा संतापितोद्दिष्टात् । देवाहं स्वात्प्रसादेन सदमं श्रद्धास्व-  
भो ॥ २९५ ॥ किंतु विद्याबलादेव विद्युद्वदंष्ट्रोष्मावर्तत । तस्मादस्यान्वयस्यैव महाविद्यां छिनत्स्यद् ॥ २९६ ॥ इत्याहैतद्वच भुत्वा देवो मधुनरोषत ।  
त्वया नैतद्विघातव्यमित्याह्यरफणिता पति ॥ २९७ ॥ सोपि यथेवमेतस्य वशानां भस्मिधन् महाविद्या- पुसा स्त्रिय- संजयंतभट्टारकाक्षिके ॥ २९८ ॥  
साधयंतव्यया दर्पाक्षिने दुष्टा कुचेष्टिता । भविष्यतां च साधूनां पापा कुर्वन्पुत्रवं ॥ २९९ ॥ एवोपि पर्वतो विद्याधरहीकीर्षित पर । हीमभामेत्यु-  
रीयांस्मिन् भ्रातृप्रतिनिधिं व्यधात् ॥ ३०० ॥ विद्युद्वदंष्ट्र च सामौक्येर्मन्यायानुगामिभि । कृत्वा प्रयातकलुष्य देवं चान्यर्च्य जातवान् ॥ ३०१ ॥  
देवोपि स्वायुरतेस्मिन्नुत्तरे मधुरापुरे । अनंतवीर्यरात्रेरुमास्त्रिण्यां मेरुनामभाक् ॥ ३०२ ॥ तस्येवामितवत्या स धरणीक्षोपि मंदर । समभूतां कृतावेताविव  
शुकद्वहस्वती ॥ ३०३ ॥ तावत्सप्तविनेयत्वात् श्रित्वा विमलवाहनं । धृत्वा स्वभवंसंभजयायेता गणेशिनौ ॥ ३०४ ॥ इह प्रत्येकमेतेषां नामग्रहण-

लिये मैं इसकी वंशपरंपरातककेलिये महाविद्याओंका उच्छेद कर देता हूं ॥ २९५-२९६ ॥ धरणींद्रकी यह बात सुन-  
कर देव कहने लगा कि हे धरणींद्र ! मेरे अनुरोधसे तुझे ऐसा नहीं करना चाहिये ॥ २९७ ॥ वह सुनकर धरणींद्र क-  
हने लगा कि यद्यपि इसके वंशमें पुरुषोंको महा विद्या सिद्ध नहीं होगी तथापि संजयंत भट्टारकके समीप सिद्ध करनेसे  
स्त्रियोंको सिद्ध हो जायगी । यदि ऐसा न किया जायगा तो ये दुष्ट पापी कुचेष्टा करने लगेंगे और साधुओंको अनेक-  
तरहके उपद्रव करेंगे २९८-२९९ ॥ उग्र पर्वतके विद्याधर लज्जित हुए थे इसलिये ही उस धरणींद्रने उस पर्वतका  
नाम हीमान रख दिया था तथा अपने भाई संजयंतकी प्रतिमा स्थापन की थी ॥ ३०० ॥ धर्म और न्यायके अनु-  
सार कहे हुए शांत बचनोंसे विद्युद्वंष्ट्रको शांत किया और उस देवकी पूजाकर अपने स्थानपर चला गया ॥ ३०१ ॥  
वह देव आयुके अंतमें उच्चरमथुरा नगरके राजा अनंतवीर्यके उसकी रानी मेरुमालिनीसे मेरु नामका पुत्र हुआ और  
वह धरणींद्रका जीव उसी राजाके अमितमती रानीसे मंदर नामका पुत्र हुआ । ये दोनों ही भाई शुक और द्वहस्वतिके  
समान हुए थे ॥ ३०२-३०३ ॥ वे दोनों ही भाई निकट भव्य थे इसलिये उन्होंने विमलवाहनके समीप जाकर अ-  
पने पहिले भव सुने और दीक्षा लेकर वे दोनों ही गणधर हो गये ॥ ३०४ ॥ इनमेंसे एक एकका अलग अलग नाम  
लेकर गति और भवावली कही अब इनके शृंखलावद्ध भव कहते हैं ॥ ३०५ ॥ सिंहसेनका जीव अश्वनिघोष हाथी  
हुआ फिर श्रीधर देव, रश्मिमेव, अर्कप्रभदेव महाराज वज्रायुध और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुआ वहांसे चयकर स-  
जयंत होकर मुक्त हुआ । इसतरह सिंहसेनने आठ भवमें मोक्षपद पाया ॥ ३०६-३०७ ॥ मधुराका जीव रामदत्ता

वैष्णवः । गतिर्भावावली व्याख्या संक्षेपव्याप्तिधीयते ॥ ३०५ ॥ सिंहसेनोऽशानिषोऽप्रातः शीघ्रसंज्ञकः । रक्षितवेग प्रभलाको बभ्रायुधमहादूतः ॥ ३०६ ॥ सर्वोऽसिद्धो देवद्व संजयतस्तदभ्युत । इत्यष्टजन्मभि प्रापत्सिंहेन श्रियः पदः ॥ ३०७ ॥ मधुरा रामदत्तानु भास्कर श्रीधरा सुरः । रत्नमानाऽच्युते देवस्ततो वीतभयाद्वय ॥ ३०८ ॥ आदित्याभस्ततो मेरुगेणेशो विमलेभिनः । मत्तर्दिसमवेतः सन् प्रायासीत्परम पदं ॥ ३०९ ॥ वारुणी पूर्णचाराख्यो वैद्योऽस्माथशोधरा । कापिष्ठकल्पेनल्लक्ष्मिदेवोभूच्छुचकप्रभ ॥ ३१० ॥ रत्नायुधौल्यकलोत्पस्ततर्दित्युत्सा विभीषणः । द्वितीये नरके पापी श्रीधामा ब्रह्मकल्पजः ॥ ३११ ॥ जयतो धरणाधीशो मंदरो गणनायकः । चतुर्भोजनधर पारमबापव्यन्यवासिधे ॥ ३१२ ॥ श्रीभूतिसचिवो नागधर कुक्कुटाहिकः । तृतीयनरके दुःखी शत्रु पंकप्रभोजकः ॥ ३१३ ॥ असस्यावरसंभ्रातः पद्मज्वातोऽतिदारुणः । ततस्तमस्तमस्यासीत्संपत्तस्याच्च नारकः ॥ ३१४ ॥ बहुयोजि परिभ्रातो मृगशृंगो मृतस्ततः । विषुदुदंष्ट्र खगाधीशः पापी पश्चात्सप्तवान् ॥ ३१५ ॥ भद्रमित्रवर्णिक् सिंहचद्र प्रीतिकरः सुरः । चक्रायुजो विभूताष्टकर्मो निर्वाणमापिवान् ॥ ३१६ ॥ एव चतुर्गतिषु ते विरुद्धनीचस्थानानि कर्मपरिपाकवशात्प्रपद्य । सौख्यं स्वचित्स्वचिद्व्याप्तिमुग्रमु खमापयोज्य परमात्सपद

भास्कर देव श्रीधरा, देव, रत्नमाला, अच्युतदेव, वीतभय, और आदित्यप्रभदेव होकर मेव हुआ वह मेव विमलबाहनका गणधर हुआ था, मातङ्गद्वियां उसे प्राप्त हुई थीं और वह उसी भवसे मोक्ष गया था ॥ ३०८-३०९ ॥ वारुणीका जीव पूर्णचंद्र, वैद्य देव, यशोधरा, कापिष्ठ स्वर्गमें थोड़ीसी ऋद्धिको धारण करनेवाला रुचकप्रभ देव, रत्नायुध, देव, विभीषण, पापके कारण दूसरे नरकमें नारकी, श्रीधाम, ब्रह्म स्वर्गमें देव, जयंत धरणींद्र और विमलनाथका मंदर नामका गणधर हुआ था, वह गणधर चार ज्ञानको धारण करनेवाला था और उसी भवसे संसाररूपी समुद्रसे पार हो गया था ॥ ३१०-३१२ ॥ श्रीभूति मंत्रीका जीव सर्प, चमर, कुक्कुटसर्प तीसरे नरकमें दुखी नारकी, अजगर, चौथे नरकमें नारकी, त्रस और स्थावरोंमें बहुतसे भव, अतिदारुण, सातवें नरकमें नारकी, सर्प, नारकी, अनेक योनियोंमें परिभ्रमणकर मृगशृंग और फिर मरकर पापी विषुदुदंष्ट्र विद्याधर हुआ था तथा पीछेसे वह पापरहित भी हो गया था ॥ ३१३-३१५ ॥ भद्रमित्र शेटका जीव सिंहचंद्र, प्रीतिकर देव और चक्रायुधका भव धारणकर आठों कर्मोंको नष्टकर मुक्त हो गया था ॥ ३१६ ॥ इसतरह ऊपर कहे हुये तीनों ही जीव अपने अपने कर्मके उदयसे बहुत दिन-तक चारों भतियोंके ऊंच नीच अनेक स्थानोंको पाकर कहीं तो सुखका अनुभव करते रहे और कहीं विना मांगे हुये घोर दुःखका अनुभव करते रहे परंतु अंतमें वे तीनों ही मुक्त हो गये थे ॥ ३१७ ॥ जिन्होंने समता रसके कारण दुष्ट विद्याधरके किये हुये घोर उपद्रवोंको बहुत अच्छा मानकर सहन किया और अत्यंत निर्मल शुद्धयानका ध्यान कर

प्रपन्नाः ॥ ३१७ ॥ अथ स्वर्गमहाप्रोपद्रवं कस्मच्चिद्वा मनसि शमरसत्त्वान्मन्यमानो महेच्छ । शुचिस्वरवदुक्लृप्तान्मन्यमानास्तु हि समगमदमलो यः संजयंतः स कोऽध्यात् ॥ ३१८ ॥ मेरुमंदरसहाभिधानकां स्तामिनेंदुविजयावृद्धनोजैसा । पृथिवीं मुनिगणाधिनायकौ नायकौ नयनयागमस्य व ॥ ३१९ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंप्रदेहि विमलतीर्थकार-धर्म-स्वयंभू-मधु-संजयंत-मेरुमंदरपुराणं

परिसमाप्तं एकोनपष्ठितमं पर्व ॥ ५३ ॥

## अथ षष्ठितमं पर्व ।

अनतोत्तदोषाणां हतानंतगुणाकर । हत्वतर्ध्वातसंतानमंतातीतं जिनं स न ॥ १ ॥ धातकीखंडप्राग्भागमेरुदशिवषये महत् । रम्यं पुरसरिष्टा-ख्यमैक्यमिवसंपदा ॥ २ ॥ पति पद्मस्यस्तस्य पद्मासन्नं स्वयं गुणै । यस्मिन् महीं विरं पाति प्रापश्रीतिं परां प्रजाः ॥ ३ ॥ पुण्योदयास्तु रूपदिसामग्री परमं शुद्धता ( मोक्ष ) पाई वे अत्यंत निर्मल आत्माको धारण करनेवाले संजयंत मुनिराज तुम लोगोंकी रक्षा करें ३१८ स्वर्ग चंद्रमाके समान तेजको धारण करनेवाले, सबको पूज्य सुनि और गणधरोमें श्रेष्ठ और नयोंसे भरे हुये आगमके स्वामी ऐसे श्रीमेरु और मंदर नामके पूज्य गणधरकी आप लोग सदा सेवा करते रहें ॥ ३१९ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य विरचित महापुराणके नवीन हिंदीभाषानुवादमें विमलनाथ तीर्थंकर, धर्म स्वयंभू बलभद्रनारायण और मेरुमंदर गणधर तथा संजयतका चारित्र कहनेवाला यह उनसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

## अथ साठवां पर्व ।

अथानंतर—अनंतानंत दोषोंका नाश करनेवाले और अनंत गुणोंको धारण करनेवाले श्री अनंतनाथ भगवान हम लोगोंके हृदयमें रहनेवाले मोहरूपी अनंत अंधकारकी संतानको नष्ट करें ॥ १ ॥ धातकी द्वीपके पूर्वमेरुकी ओर उत्तरदेशमें एक अरिष्ट नामका बहुत सुंदर नगर है वह ऐसा जान पड़ता है मानों सब संपदार्थें एक जगह ही आकर इकट्ठी होगई हों ॥ २ ॥ उस नगरमें राजा पद्मराय राज्य करता था वह पद्मराय अपने गुणोंसे लक्ष्मीका स्थान था, जब तक वह पृथ्वीका पालन करता रहा तबतक प्रजा उससे बहुत ही संतुष्ट रही ॥ ३ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे उसे



सुखसाधिनी । जतोत्सुदयस्तरस्मिन्मुक्तेऽस्ति निरर्गलः ॥ ४ ॥ तद्विद्विर्यार्थसात्प्रियसमुद्भूतमुत्तेन स । शक्नुवत्सुष्ठु संतुष्यन्तं सारमुत्तमन्वभूत् ॥ ५ ॥  
 अयान्बन्दा समासाद्य स्वयंप्रभञ्जिनाश्रियं । सप्रश्रयसमिष्टस्य भुत्वा धर्मं सुनिर्मलं ॥ ६ ॥ संयोगो देहिना देहैरक्षणां च स्वर्गोत्तरं । अतियोऽन्यतरा-  
 भावे सर्वेषामाश्रयवे ॥ ७ ॥ आहिताभ्यमता मनु देहिनो मोहिताशया । अहं निहतमोहारिमाहात्म्यार्हत्कमाश्रयः ॥ ८ ॥ करुणाणि कथकारं  
 मतिमेतेषु निधला । इति मोहमहाप्रथियमुद्रियास्त्योयैषा मति ॥ ९ ॥ ततः परितदावागिनिश्वसास्रसिर्तणवत् । विरोधिता च ससारस्थलीं हातुं कृतो-  
 यमः ॥ १० ॥ सैनौ घनरथे राज्यं नियोज्यादाय सयमं । एकादशलग्नवाराशिपारगो बद्धतीर्थकृत् ॥ ११ ॥ प्रांते स्वाराधना प्राप्य परित्यक्तशरीरकः ।  
 अधूतस्यतकल्पेन्द्रः पुण्योत्तरविमानजः ॥ १२ ॥ द्वाविंशत्यन्विधमानायुर्हस्ताद्धौनधनुस्तनु । शुक्रलेख्यः श्रमनेकादशमासंस्तु सख्यया ॥ १३ ॥ लनयायन-

सुख देनेवाली रूपादि सब सामग्री प्राप्त थी सो ठीक ही है क्योंकि जीवोंको पुण्य कर्मके उदयसे निर्विघ्न बहुवत्सी  
 सामग्री प्राप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ इंद्रियोंके विषयोंकी प्राप्ति होनेसे उत्पन्न हुए सुखोंसे वह बहुत ही संतुष्ट था और  
 इंद्रके समान संसारका फल अनुभव कर रहा था ॥ ५ ॥ किसी एकदिन वह स्वयंप्रभ विनेंद्रदेवके दर्शन करनेके  
 लिये गया, वहाँपर उसने विनयसहित स्तुति की और धर्मका निर्मल स्वरूप सुना ॥ ६ ॥ तदनंतर वह चिंतवन करने लगा  
 कि जीवोंका शरीरके साथ संयोग होना और इंद्रियका अपने अपने विषयोंके साथ संयोग होना दोनों ही अनित्य हैं  
 क्योंकि इस संसारमें शरीरका नाश होता ही है अथवा इंद्रिय और विषयोंमें से किसी एकका अभाव होता ही है ॥ ७ ॥  
 मोहकर्मके उदयसे जिनका आश्रय कल्पित हो रहा है वेसे अन्यमती लोग यदि इसमें मोहित हो तो हो सकते हैं परंतु  
 मैंने तो मोहरूपी शत्रु नष्ट कर दिया है और इसी माहात्म्यसे अरहंतदेवके चरणकमलोंका आश्रय पाया है इसलिये मैं अपनी  
 बुद्धि इनमें निश्चल क्यों करूं । इसतरह उसकी बुद्धि मोहरूपी महा गांठ को तोड़कर उद्यम करनेकेलिये तैयार हुई  
 थी ॥ ८-९ ॥ तदनंतर जिसप्रकार हिरण चारों ओर लगी हुई दवानल अग्निकी शिखासे घबड़ाकर अपनी जगह  
 छोड़ता है उसी प्रकार वह राजा भी चिरकाल काममें लाई हुई संसार स्थलीको छोड़नेकेलिये उद्यम करने लगा ॥ १० ॥  
 उसने अपने पुत्र घनरथको राज्य देकर संयम चरण किया और ग्यारह अंगरूपी महासागरके पार जाकर तीर्थंकर  
 प्रकृतिका वंदन किया ॥ ११ ॥ अंत में आराधनाओंका आराधनकर शरीर छोड़कर सोलहवें स्वर्गके पुण्योत्तर विमानमें  
 देव हुआ ॥ १२ ॥ वहाँपर उसकी बाईस सागरकी आयु थी साठे तीन हाथका शरीर था, शुद्ध लेख्या थी, वह ग्यारह  
 महीने पीछे आसौच्छवास लेता था, बाईस हजार वर्ष पीछे मानसिक आहार लेता था मनके प्रवीचरसे ही सुखी था,

पक्षीकवर्षाद्वारमाहरत् । सुखी मन प्रवीचारात्तमस प्रागतावधिः ॥ १४ ॥ तत्रमाणबलस्तेजोविक्रियाभ्यां च तत्रम । निरं तत्र सुख भुक्त्वा तस्मिन्नात्रागमिष्यति ॥ १५ ॥ द्वीपेस्मिन् दक्षिणे भागे साकेतनगरेश्वरः । इक्ष्वाकु काश्यप सिंहसेनो नाम महायुध ॥ १६ ॥ जयश्यामा महादेवो तस्यास्या वैरमन- पुर । वसुधारा सुराः सारं मासषट्कीमपीपतन् ॥ १७ ॥ कार्तिके मासि रेवत्या प्रभातेहि तदादिमे । निरीक्ष्य बोरुश स्वप्नान् विनात वाननं गज ॥ १८ ॥ अवगम्य फलं तेषां भुञ्जोवधिलोचनात् । गर्भस्थिताच्युतैर्दासां परितोषमगात्परं ॥ १९ ॥ ततः स्वर्गानरणकल्याणमिषव सुरा । सपाव वक्रमाल्योरुभूषणैस्तैवपूजयन् ॥ २० ॥ सुखगर्भा जयश्यामा ज्येष्ठमास्यसिते सुतं । द्वादश्या पुण्ययोगेसौ सपुण्यमुदादयत् ॥ २१ ॥ तदागत्य मरुमुख्या मुख्यदोलेमिषिच्य तं । अनंजिनमन्वर्थनामानं विदधुर्मुदा ॥ २२ ॥ नवाब्ध्युपमसंताने पत्यपादत्रये स्थिते । धर्मेतीताहंतो ध्वस्ते तदभ्यन्तरजीवित ॥ २३ ॥ त्रिशलक्षणमात्मायु पंचाशच्चापसम्भितः । कनक्तनकसकाश सर्वलक्षणलक्षित ॥ २४ ॥ सचतुर्लोकैर्द्रियार्थदेवैस्त्वतीतेष्वभिषेचनं ।

उसका अविज्ञान सातवें नरक तक था बल, तेज और विक्रिया भी वहीं तक थी इसतरह उसने बहुत दिनतक सुखों का अनुभव किया जब उसकी आयु छह महीनेकी रह गई इस क्षेत्रमें आनेके दिन निकट आगये तब इसी जब्द्रीयके दक्षिण मरतक्षेत्रमें अशोद्ध्या नगरके स्वामी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए कश्यप गोत्रीय महाराज सिंहसेन राज्य करते थे ॥ १-१६ ॥ उनकी महादेवीका नाम जयश्यामा था उसके राजभवनके सामने देवोंने छह महीने तक रत्नोंकी वर्षाकी थी ॥ १७ ॥ कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा (पडिवा) के दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर माता जयश्यामाने सोलह स्वप्न देखे और अंतमें मुहमें घुसता हुआ हाथी देखा ॥ १३-१८ ॥ अविज्ञानको जाननेवाले राजसे उन स्वप्नोंके फल सुने तथा उसी दिन सोलहवें स्वर्गका इंद्र अपनी आयु पूरी कर माताके गर्भमें आ विराजमान हुआ जिससे माताको बहुत ही संतोष हुआ ॥ १९ ॥ तदनंतर देवोंने आकर गर्भकल्याणका उत्सव मनाया माता पिताका अभिषेक किया और वस्त्र माला आभूषण आदिसे उनकी पूजा की ॥ २० ॥ सुखपूर्वक गर्भधारण करती हुई माता जयश्यामाने ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशीके दिन पुण्ययोगमें पुण्यवान भगवान अनंतको उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ उसी समय इंद्रादिदेव आये उन्होने मेरु पर्वतपर लेजाकर उनका अभिषेक किया और प्रसन्न होकर सार्थक अनंतनाथ नाम रखवा ॥ २२ ॥ विमलनाथ अरहंतके बाद नौसागर और पौनपत्य वीत जानेपर अनंतनाथ हुए थे इनकी आयु भी इसी समयके मीतर समझनी चाहिये ॥ २३ ॥ इनकी आयु तीस लाख वर्षकी थी, पचास धनुष ऊंचा शरीर था, दैदीप्यमान सुवर्णके समान शरीरकी कांति थी और उनके शरीरमें सर्व शुभ लक्षण थे ॥ २४ ॥ सात लाख पचास हजार वर्ष वीत जानेपर



अथ यदादयो पते कैवल्यमुदीरयन्त ॥ ३५ ॥ चैत्रेमावास्याह प्रति देवतां सुरसत्ता । तदैव दुर्गकल्याणपूजां च निरवर्तयन् ॥ ३६ ॥ जयाख्या-  
मुखपचनाशाङ्गणधृष्टितात्मावाक् । सहस्रपूर्वधृष्ट- सहस्रव्यामिनावाधीट् ॥ ३७ ॥ सद्यैरिष्यैरग्निसंख्याकक्षितशिक्षक । अन्यद्वयप्रियायुक्त-  
तीव्रज्ञानपूजित ॥ ३८ ॥ शून्यत्रयैरिष्यप्रोक्तकैवलाङ्गमान्वित । शून्यत्रयवसुष्टिद्विविक्त्यद्विबिभूषित ॥ ३९ ॥ शून्यत्रयैरिष्यप्रोक्तमन पर्ययबोधन ।  
पिंडीकृतोकावट्पष्ठिसहस्रमुनिमानित ॥ ४० ॥ सत्साष्टसहस्रोक्तसर्वश्रयाथार्थिकागण । द्विलक्षश्रावकाभ्यर्च्यो द्विगुणभ्राविकास्तुत ॥ ४१ ॥ अस-  
ह्यबेवदेवी व्यास्तियैर्दृष्टं तसेवित । इति द्वावशक्त्यातभ्यवृद्धास्काग्रणी ॥ ४२ ॥ सदसद्वादसद्भावमाविर्बुध्नततजित । विदुष्य विश्रुतान्  
देवान् विनेकायोजयन् पथि ॥ ४३ ॥ सम्मेदगिरिमासाद्य विहाय विद्वति स्थितः । मासं शताधिकै पडसि सहस्रेभुनिभि सह ॥ ४४ ॥  
प्रतिमायोगधारी सन्नमावस्याप्रान्निभाक् । दुरीयव्यानयोगेन सप्रापत्यरं पद ॥ ४५ ॥ सद्यो घुसत्समूहोपि सप्राप्यात्येष्टिमादरात् । विधाय विधिव-

मनाया और पूजा की ॥ ३५-३६ ॥ उनके समवसर्गमें अपनी चाणी को बढानेवाले अर्थात् खूब उपदेश देनेवाले प-  
चास गणधर थे, ग्यारह अंग चौदह पूर्वोक्तो जाननेवाले हजार मुनि उन की बढना करते थे, तीन हजार दोसां मुनि  
बादियों के स्वामी थे, उन्तालीस हजार पांचसौ शिक्षक थे, चार हजार तीसरा अवधिज्ञानी मुनि उनकी पूजा करते  
थे, पांचहजार कैवलज्ञानी उन्हें मानते थे, आठ हजार मुनि विक्रिया क्रद्धिको धारण करनेवाले थे और पांचहजार मु-  
नि मनःपर्यय ज्ञानी थे । इसतरह सब मिलाकर छयासठ हजार मुनि उनकी पूजा करते थे ॥ ३७-४० ॥ सर्वश्रीको  
आदि लेकर एक लाख आठ हजार अर्जिकाओं का समूह था, दो लाख श्रावक थे और चार लाख श्राविकार्ये थीं ।  
इनके सिवा असंख्यात देव और देवियां तथा संख्यात तिर्यंच उनकी सेवा करते थे । इसतरह बारह प्रकारकी प्रसिद्ध सभा-  
ओंमें वे भगवान बैठे हुए भव्य जीवोंमें मुख्य थे ॥ ४१-४२ ॥ शुभ अशुभ भावोंको प्रगट करनेवाले उन अनंत भ-  
गवाने प्रसिद्ध देशोंमें विहारकर अनेक भव्योंको मोक्षमार्गमें लगाया था ॥ ४३ ॥ अंतमें विहार करना बंद-  
कर सभ्येदक्षिणपर आ विगजमान हुए थे और छह हजार एकसौ मुनियोंके साथ एक महीनेतक प्रतिमायोग  
धारणकर चैतकृष्णा अमावस्याके दिन सबरेके समय चौथे शुक्लध्यानके प्रभावसे परममोक्ष पदमें जा विराजमान  
हुए ॥ ४४-४५ ॥ उसी समय इद्रादि देवोंने आकर बड़े आदरसे अंतिम क्रियाकी और विधिके अनुसार मोक्षकल्याण-  
का उत्सव मनाकर सब देव अपने अपने स्वर्गके विमानोंमें चले गये ॥ ४६ ॥ जिसमें कुनयरूपी अंधकार भरा हुआ  
है और मिथ्याशास्त्र रूपी उल्लू बोल रहे हैं ऐसे संसारको उत्तम नयरूपी किरणोंसे प्रकाशकर जिनकी उत्तम कांति प्र-

रस्त्रोक रत्नोक सर्वतो ययौ ॥ ४६ ॥ कुनयवन्तमोघं कुशोद्धकविद्विष्टं नयमयमयूखै विश्वमाशु प्रकाश्य । अकटपरमशीतिबोधयन् भव्यपद्मान् प्रद-  
हत् स जिनेनोन्तजिदुद्रुक्तम् ॥ ४७ ॥ प्राक्पालक प्रथितपद्मरथ धृतिव्यां पश्चाद्विनिश्चितमस्तिपसाव्युत्तेन्द्र । तस्माज्ज्युतोऽमवदन्तजिदत्तकालो-  
य सोऽवताद् द्रुतमन्तमवातकाद् ॥ ४८ ॥ तत्रैव वसुप्रभो राम केशव पुरुषोत्तम । व्यावर्ण्यते भवैर्धुम्; त्रिपु वृत्तकमेतयो ॥ ४९ ॥ एतस्मिन्भारते  
वैयं पोदनाधिपति नृप । वसुषेणो महादेवी तस्य नदेत्यदिता ॥ ५० ॥ देवीपंचशतेव्यस्या स राजा भेमनिर्भरः । रेमे वसंतमज्या चंचरीकमिवो-  
रसुक ॥ ५१ ॥ मलयः शीतलो नाम्ना कदाचिच्चण्डासनः । आजगाम नृप हृष्टं तत्पुंरं मित्रता गत ॥ ५२ ॥ नदासदर्शनेनसौ मोहित पापपाकवान् ।  
आहूय तामुपायेन स्वदेशमगमकुर्वी ॥ ५३ ॥ वसुषेणोऽप्यशक्वात्तरामवदुःखित । चितातकसमाक्रुव्यमाणप्राण स्यतेर्बलात् ॥ ५४ ॥ श्रेयो गण-  
काशमान हो रही हैं और जो भव्यस्त्री कमलोंको प्रफुल्लित करते रहते हैं ऐसे श्री अनंतनाथ जिनेन्द्रदेव तुम लोगोंके  
पापोंका नाश करो ॥ ४७ ॥ जो पहिले इस पृथ्वीपर पद्मरथ नामके प्रसिद्ध राजा थे फिर निश्चल बुद्धिवाले थे ही अ-  
च्युत स्वर्गमें इंद्र हुए फिर वहांसे आकर जो मृत्युका मी अंत करनेवाले अनंतनाथ हुए ऐसे अनंतनाथ भगवान् अनंत  
भवोंमें होनेवाले मरणसे तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ ४८ ॥

अबानंतर-इन्ही अनंतनाथ भगवानके समयमें सुप्रभ और पुरुषोत्तम नामके बलभद्र और नारायण हुए हैं इस-  
लिये इन दोनोंके तीन भवके चरित्र कहते हैं ॥ ४९ ॥ इसी मरतक्षेत्रके पोदनपुर नगमें राजा वसुसेन राज्य करता  
था उस की महादेवीका नाम नंदा था, वह रानी बही ही पवित्र थी, पाचसौ रानियां होते हुए भी वह उसीपर सबसे  
अधिक प्रेम करता था और जिसप्रकार मद्य हुआ भोग वसंत मंजरीमें (आमकी मंजरीमें) क्रीडा करता है उसीप्र-  
कार वह राजा उसके साथ क्रीडा करता था ॥ ५०-५१ ॥ बंडसासन नामका मलय देशका राजा वसुसेनका मित्र  
था इसलिये वह किसी एक समय उससे मिलनेलिये उसके नगरमें आया ॥ ५२ ॥ महाराणी नंदाको देखकर वह  
पापी मुख मोहित हो गया और किसी उपायसे हरणकर अपने देशमें ले गया ॥ ५३ ॥ राजा वसुसेन असमर्थ था  
इसलिये इस तिरस्कारसे वह बहुत दुखी हुआ तथा चितारूपी मृत्यु उसका प्राण खींचने लगी । किसी एकदिन स्म-  
रण हो आनेसे उसने भय नामके गणधरके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली, उस राजाने सिंहनिःक्रीडित आदि अ-  
नेकतराहके कठिन तपश्चरण किये और निदान किया कि यदि दूसरे जन्ममें तपश्चरणका फल मिलता हो तो मैं इस  
तपके प्रभावसे सुंदर और अलंघ्य सासन करनेवाला होऊं ॥ ५३-९६ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारणकर बारहवें सह-  
स्रार स्वर्गमें देव हुआ और अठारह सागरकी आयु पाई ॥ ५७ ॥

धरं प्राप्य प्रवृत्तां प्रसिपय सः । सिद्धिनि कीदृशानुग्रं तपस्तप्त्वा महाबलः ॥ ५५ ॥ यत्नि विधेयं चर्यायाः फलमन्यत्र जन्मति । अलंघ्यशामनः का-  
तो भवामीत्युक्तमिति ॥ ५६ ॥ ततो विहितसन्ध्यासः सहस्रारं अगम सः । अष्टादशसमग्रयुद्धादश कल्पमुत्तमं ॥ ५७ ॥ अथ जंबूमिति द्वीपे प्राग्विदेहे  
महर्षिके । नंदनाह्ये पुरे प्राभूजराधीशो महाबलः ॥ ५८ ॥ प्रजानां पालको भोक्ता सुखानामतिधार्मिकः । श्रीमान् दिवप्रातर्विश्रातकीतिरातिहरो  
विना ॥ ५९ ॥ स कदाचिच्छरीरादियाथाख्यावगमोदयात् । विरक्तस्तेषु निर्वाणपदवीप्रापणोत्सुकः ॥ ६० ॥ दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय प्रजपात्ताईदतिके ।  
यहीतस्यमः सिद्धिनिःकीदृशतपः प्रितः ॥ ६१ ॥ सन्यास्यति सहस्रारं प्राप्याष्टादशसागरां । स्थितिं भोगाद्विरं मुंक्त्वा तदते शांतमानसः ॥ ६२ ॥ अथेह  
भारते द्वारवत्यां सोमप्रभप्रभोः । जयवत्यामभूत्सुतः सुरूपः सुप्रभाह्वयः ॥ ६३ ॥ महावतिः समुत्तुगः दुरविद्याधाराश्रयः । श्वेतिमान दधत्सोभाद्रिज  
नार्दे इवापरः ॥ ६४ ॥ कलंकविकलः कांतः सततं सर्वचित्तहृत् । पद्मानंदविधायीत्यमतिशेते विधुः च सः ॥ ६५ ॥ तस्यैव च सुषेणाह्वयसीतायां

अथाननर—इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें बड़ी क्रद्धिवाला एक नंदनपुर नगर है उसमें राजा महाबल राज्य क-  
रता था ॥ ५८ ॥ वह राजा प्रजाका पालन करनेवाला, सुखोंका अनुभव करनेवाला और बड़ा ही धार्मिक था, वह  
श्रीमान् था दिशाओंके अंततक उसकी कीर्तिक फैल रही थी तथा वह याचकोंके सब दुःख दूर करनेवाला था ॥ ५९ ॥  
किसी एक समय उसे शरीर संसार आदिका यथार्थज्ञान हुआ और इसलिये ही मोक्षपदके प्राप्त होनेकी इच्छा करता  
हुआ उन शरीर और संसारसे विरक्त हुआ ॥ ६० ॥ अपने पुत्रको राज्य देकर प्रजापाल तीर्थकरके समीप वह दीक्षि-  
त होगया और सिद्धिनिःकीदृश आदि कठिन तपश्चरण करने लगा ॥ ६१ ॥ अंतमें सन्यास धारणकर वारहवें सहस्रार  
स्वर्गमें देव हुआ वहांपर उसकी अठारह सागरकी आयु थी, वहांपर उसने बहुत दिनतक भोगोंका अनुभव किया  
अंतमें शांत चित्तसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रकी द्वारावती नगरीमें राजा सोमप्रभके उसकी जयावती रानीसे सुप्रभ  
नामका बहुत सुंदर पुत्र हुआ ॥ ६३ ॥ वह सुप्रभ दूसरे विजयार्द पर्वतके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार  
विजयार्द पर्वत बहुत लंबा है बहुत ऊंचा है देव तथा विद्याधर उसके आश्रय रहते हैं और आकाशमें वह अपनी बहुत  
ऊंचाई धारण करता है उसीप्रकार वह सुप्रभभी लंबा था, गुणोंमें सबसे ऊंचा था, देव और विद्याधर उसके आश्रय  
रहते थे और आकाशतक अपना अस्मिमान धारण करता था ॥ ६४ ॥ वह सुप्रभ चंद्रमाको तिरस्कार करता था क्योंकि चंद्रमा क-  
लंक सहित होता है वह कलंकरहित था, चंद्रमा सदा मनोहर नहीं रहता परंतु वह सदा मनोहर रहता था चंद्रमा सबके चि-  
त्तको हरण नहीं कर सकता परंतु वह सबके चित्तको हरण करता था, और चंद्रमा पद्मानंदविधायी अर्थात् कमलोंको प्रफु-

पुरुषोत्तमः । तोकोजनि जनानंदविधायी विविधैर्गुणैः ॥ ६६ ॥ सेव्यस्तेजस्विभिः सर्वैर्विलंब्यमहोभ्रतिः । महारजसमुद्रासी सुमेसरिव सुंदरः ॥ ६७ ॥ शुक्रकृष्णत्वित्थौ लोकव्यवहारप्रवर्तकौ । पक्षामिव विभातः स्म युक्तौ तौ रामकेशवौ ॥ ६८ ॥ पंचाशद्वरुणश्रुतौ त्रिशलक्षसमायुक्तौ । सम समसुखौ कालं समजीगमर्ता विरं ॥ ६९ ॥ अथ भ्रात्रा भवे दीर्घ प्राक्तनश्चंद्रशासनः । चंडाशुरिव चंडोभृद्भित्तिरातिमंडलः ॥ ७० ॥ कानिदेशे द्रुपो वारोणसी-नगरनायकः । मधुसूदनश्चाष्टो विख्यातबलविक्रमः ॥ ७१ ॥ तौ तदोदयिनौ श्रुत्वा नारदादसहिष्णुक । तव मे प्रेषयत्पार्श्वगर्जादिक कंठं ॥ ७२ ॥ तदाकर्णनभालातवातोऽकृतमनोबुधिः । युगांतातबहु प्रेषयच्छुकोप पुरुषोत्तम ॥ ७३ ॥ सुप्रभोपि प्रभाजाल विकरन् दिक्षु चक्षुषोः । उवालावलिमिव क्रोधपातकान्विस्ताधाय ॥ ७४ ॥ न ज्ञात कं करो नाम किं करो येन मुज्यते । त दास्यामः स्फुरत्स्वङ्गं विरसात् प्रतीच्छतु ॥ ७५ ॥ एतु गृह्णतु को

हित करनेवाला नहीं है परंतु वह पद्मानंदविधायी अर्थात् लक्ष्मीको आनंददेनेवाला था, ॥ ६५ ॥ उसी राजा सोमप्रभ के सीता रानीसे वसुसेनका जीव पुरुषोत्तम नामका पुत्र हुआ वह अपने अनेक गुणोंसे लोगोंको खूब आनंद देनेवाला था ॥ ६६ ॥ सब तेजस्वी पुरुष उसकी सेवा करते थे, उसकी मारी उषतिको कोई रोक नहीं सकता था वह महारत्नोंके समान देदीप्यमान था और सुमेरु पर्वतके समान सुंदर था ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार शुक और कृष्णपथ लोकमें व्यवहारकी प्रवृत्ति करते हैं उसीप्रकार शुक और कृष्ण कानिवाले वे दोनों ही राम और केशव लोकमें व्यवहारकी प्रवृत्ति करनेवाले थे ॥ ६८ ॥ उनके शरीरकी ऊंचाई पंचास धनुष थी, आयु तीस लाख वर्षकी थी । वे दोनों ही बहुत दिनतक समान सुख भोगते हुए काल व्यतीत करते थे ॥ ६९ ॥

अथानंतर-पहिलेका राजा चंद्रशासन बहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमणकर काशी देशकी वाराणसी नगरीमें मधुसूदन नामका राजा हुआ था, वह सूर्यके समान तेजस्वी था, सब शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला था और उसका बल पराक्रम बहुत ही प्रसिद्ध था ॥ ७०-७१ ॥ उसने नारदके द्वारा सुना कि सुप्रभ और पुरुषोत्तमका उदय बहुत बढ़ा जा रहा है यह बात उसे सहन नहीं हुई इसलिये उमने छाथी रत्न आदि कर बसूल करनेकेलिये नारदको ही उनके पास भेजा ॥ ७२ ॥ नारदने उनसे जाकर कहा सुनते ही पुरुषोत्तम बहुत क्रोधित हुआ, जिसप्रकार कटांगत कालका समुद्र देखा नहीं जाता उसी प्रकार वह भी देखा नहीं जाता था और जिस प्रकार वायुसे समुद्र उछलता है उसी प्रकार उसका मनरूपी समुद्र उछलने लगा था ॥ ७३ ॥ जिसका हृदय क्रोधरूपी अग्निसे जल रहा है ऐसा सुप्रभ भी अग्निकी ज्वालाके समान सब दिशाओंमें दोनों नेत्रोंसे प्रभाका समूह फैलने लगा ॥ ७४ ॥ तथा कहने लगा कि कर

दोष इत्यादिभूतते नैव । उभावबोचतामुर्ध्वनारयं पुरुषोक्तिम् ॥ ७६ ॥ तत्सद्वदगम्यायात् संकुशो मधुसूदनः । इतुं तो है च इतुं त रोपादगमतां प्रति ॥ ७७ ॥ तेनयोक्तव्योरासीत्संप्राम संहरमिव । सर्वानहस्तादरिस्तं चक्रेण पुरुषोत्तमः ॥ ७८ ॥ त्रिकंढाभिपतित्वं तो चतुर्धौ रामकेशवौ । उपोति-  
ल्लोकाचिनाचलमन्वभूतासिर्वैदेही ॥ ७९ ॥ केशवो जीवितांतेगादवबिस्थानमाशुषा । सुप्रमस्तद्वियोगोत्पशोकानलसमन्वितः ॥ ८० ॥ प्रबोधितः प्रसन्नात्मा  
सोमप्रभचिह्नकेविना । वीक्षित्वा श्रेणियारुण्य स मोक्षमगमस्तुवी ॥ ८१ ॥ संभूय पोदनपुरे बहुषेणनामा कृत्वा तपो सुखरोजनि शुक्लैश्वर्य । तस्मात्स्थितो-  
र्दंभरताधिगतिर्हतादिः प्रापतिमा क्षितिमथ पुरुषोत्तमाख्यः ॥ ८२ ॥ मलयविपचंडशासनो दृष्टति पापमतिभ्रमंभिर । भववशिनिषावभूदथ खलु गता

क्या बीज है हम जानते नहीं क्या कर हाथको कहते हैं ? जिससे खाया जाता है अच्छा तो जिसमें तलवार चमचमा रही है ऐसा हाथ हम देंगे वह शिरपर आकर रोके ॥ ७५ ॥ वह आवे और लेवे हममें दोष ही क्या है इसप्रकार वे दोनों अपना तेज प्रगट करते हुए नारदके लिये कठोर वचनोंसे कहने लगे ॥ ७६ ॥ नारदने जाकर मधुसूदनको ख-  
बर दी वह सुनकर क्रोधित हुआ और दोनों भाइयोंके मारनेके लिये निकला तथा वे दोनों भाई भी मधुसूदनको मार-  
नेकेलिये निकले ॥ ७७ ॥ दोनों सेनाओंका भारी युद्ध हुआ मानों सबका नाश ही करना चाहता हो अंतमें मधुसू-  
दनने चक्र चलाया वह चक्र पुरुषोत्तमके पाप आगया और उसने उसी चक्रसे अपने शत्रु मधुसूदनको मारडाला ॥  
७८ ॥ वे दोनों ही भाई तीन खंडके स्वामी हुए चौथे बलभद्र नारायण हुए और बहुत दिनतक सूर्य चंद्रमाकेसे  
सुखोंका अनुभव किया ॥ ७९ ॥ आयुके अंतमें पुरुषोत्तम मरकर सातवें नरक गया, तथा सुप्रभको उसको वियोग का  
बड़ा भारी दुःख हुआ ॥ ८० ॥ अंतमें लोगोंने उसे समझाया तब उस बुद्धिमानने अपनी आत्माको निर्मलकर सोम-  
प्रभ जिनेंद्रके समीप दीक्षा धारण की और श्रेणी चढकर मुक्त हुआ ॥ ८१ ॥ पुरुषोत्तम नामका चौथा नारायण पहिले  
पोदनपुरमें वसुसेन नामका राजा था, फिर तपश्चरणकर शुक्ल लेशवाला उत्तम देव हुआ, वहांमे चक्कर भरतक्षेत्रके  
तीन खंडोंका स्वामी हुआ था और वहां की आयु पूरीकर सातवें नरकमें नारकी हुआ था, ॥ ८२ ॥ मधुसूदन नाम-  
का प्रतिनारायण पहिले मलय देशमें चंडशासन नामका राजा था, फिर उसने बहुत दिनतक पापोंका उपार्जनकर सं-  
साररूपी समुद्रमें परिभ्रमण किया फिर मधुसूदन मतिनारायण हुआ और नारायणके हाथसे मरकर नरक गया ॥ ८३ ॥  
इसीतरह सुप्रभ पहिले नंदनपुर नगरमें महाबल राजा था फिर तपश्चरणकर बारहवें स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर  
सुप्रभ नामका बलभद्र हुआ और अंतमें समस्त कर्मोंका नाशकर मुक्त हुआ ॥ ८४ ॥ इस संसारमें परिणामोंकी गति



मधुसूदनमित्र ॥ ८३ ॥ महाबलाह्वयः पुरि नदने द्रुपः महातपा द्वादशकल्पज सुर । पुनर्बल सुप्रभयं ब्रह्मगमत्परं पदं प्रास्तव्यमस्तथांगक ॥ ८४ ॥  
साक्षात्पुनःसारैसाह्य सुप्रभपुरुषोत्तमो सम भुक्त्वा । प्रथमो निर्वाणमागदपरोथो दृष्टिविचित्र्य ॥ ८५ ॥

इत्यार्ये भगवद्गुणमन्त्रार्थप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अनन्ततीर्थकर-सुप्रभपुरुषोत्तममधुसूदनपुराणं समाप्तं षष्ठितमं पर्वं ॥ ६० ॥

## अथैकषष्ठितमं पर्वं ।

धर्मे यस्मिन् समुद्रभूता धर्मो दत्ता मुनिर्मला । स धर्मेः गर्भं मे दद्यादधर्ममपहृत्य न ॥ १ ॥ धातस्त्रीसप्तप्राग्भागे प्रातिबिदेहे सरित्तटे । दक्षिणे व-  
त्सविपये कुसीमा नगरं महद् ॥ २ ॥ पतिर्दशरथस्तस्य प्रक्षविक्रमदेववान् । स्ववशीकृतसर्वारि निर्व्यायाम समे स्थितः ॥ ३ ॥ सुखानि धर्मसाराणि  
प्रजापालनलाकस । बंधुनिब सुहृद्भिश्च सह विश्रब्धमन्त्रभूत ॥ ४ ॥ मापवे शुक्रपक्षाते संप्रवृत्तजनोत्सवे । चंद्रोपरगमालोक्य सद्यो निर्विण्णमानसः

बड़ीही विचित्र है देखो सुप्रभ और पुरुषोत्तम दोनों भाइयोंने समान रीतिसे राज्यके उत्तम सुबोका अनुभव किया  
था तथापि सुप्रभ तो मुक्त हुआ पुरुषोत्तमको नरक जाना पड़ा ॥ ८५ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणमन्त्रार्थ विरचित महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अनन्तनाथ तीर्थकर सुप्रभ पुरुषोत्तम और  
मधुसूदनका चरित्र कहनेवाला यह साठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

## अथ इकसठवां पर्व ।

जिन धर्मनाथके उत्पन्न होनेसे निर्मल दश धर्म उत्पन्न हुए थे ऐसे श्रीधर्मनाथ स्वामी हम लोगोंके अधर्मका  
नाशकर कल्याणके देनेवाले हों ॥ १ ॥ धातकी खंडके पूर्व मेरुकी ओर पूर्व विदेह क्षेत्रमें नदीके दाहिनी ओर वत्स  
देशमें एक बड़ा भारी सुसीमा नगर है उसमें राजा दशरथ राज्य करता था, उसकी बुद्धि पराक्रम और भाग्य बड़ा  
ही बलवान था, उसने सब शत्रु विना किसी परिश्रमके वश कर लिये थे, प्रजाके पालन करनेमें उसकी बड़ी ही इच्छा  
थी वह सबका मध्यस्थ था और यदि बंधु मित्र आदिकोंके साथ निबल रीतिसे धर्म और सुखोंका अनुभव करता था  
॥ २-४ ॥ चैत्र शुक्ल पूर्णिमाके दिन सब लोग उत्सव मना रहे थे परंतु चंद्रप्रहणको देखकर उसका चित्त विरक्त

॥ ५ ॥ कात कुवलयवाङ्मयी कलाभिः परिपूर्णवान् । ईदृशस्यापि चेरीदृगवस्थान्यस्य कां गति ॥ ६ ॥ इति मत्वा सुते राज्यभारं कृत्वा महारथे । नै-  
 संयग्राचनोपेतमंगीकृत्य च संयम ॥ ७ ॥ एकदशानिघारी सन् भावितव्यष्टकारणः । निबद्धतीर्थकृत्युष्य स्वाराध्याते विशुद्धयी ॥ ८ ॥ त्रयमसिस्स-  
 मुद्रायु- एकहस्ततनुच्छिद्रति । पंचरत्नप्रवर्तमानदिदैकलब्धवासवान् मनाक् ॥ ९ ॥ लोकनात्यंतरव्यापिविमलवचिबोचनः । तत्क्षेत्रविक्रियातेजोबलसंपत्सम-  
 न्वित ॥ १० ॥ त्रिसहस्राधिकत्रिंशत्सहस्रान्दै समाहरन् । मुहूर्ते मानसाहारं शुक्लैर्ययाद्वयश्चिद्रे ॥ ११ ॥ सर्वार्थसिद्धौ सत्सौख्यं नि प्रवीचरमन्वभूत ।  
 ततो श्लोकनेतस्मिन् पुण्यभाज्यागमिष्यति ॥ १२ ॥ द्विपेस्मिन्भारते रत्नपुराधीशो महीपते- । कुलवंशस्य गोत्रेण काश्यपस्य महोजस- ॥ १३ ॥ देव्या  
 भानुमहाराजवंशस्य विपुलश्रिय । सुप्रभाया सुरानीतबसुधारादिसपद ॥ १४ ॥ सितपक्षप्रयोद्धया वंशाब्जे रेवतीविभौ । निशंति षोडशस्रा सम-  
 हुआ, वह विचार करने लगा कि देखो यह चंद्रमा मनोहर है कमोदिनियोंको प्रफुल्लित करनेवाला है और कलाओं-  
 से पूर्ण है जब ऐसे चंद्रमाकी मी यह दशा है तब फिर भला और लोगोंका क्या कहना है ॥ ५-६ ॥ यही समझकर  
 उसने अपने पुत्र महीरथको राज्य दिया, तथा परिग्रहरहित होकर लघुतापूर्वक संयम धारण किया ॥ ७ ॥ ग्यारह  
 अंगोंका अभ्यास किया, सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया, पुण्यस्वरूप तीर्थंकर नामकर्मका वंध किया और  
 आयुके अंतमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रसे शुद्ध होकर आराधनाओंका आराधनकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुआ, वहां-  
 पर उसकी तेतीस सागरकी आयु थी, एक हाथका शरीर था, चारसौ नित्यानवे दिन अथवा साठे सोलह महीने वीत  
 जानेपर श्वासोच्छ्वास लेता था, लोकनाडी तक निर्मल अवधिज्ञान था और उतने ही क्षेत्रतक उसकी विक्रिया बल  
 और तेज रूपी संपदाएं फैली हुई थीं ॥ ८-१० ॥ तेतीस हजार वर्षवाद मानसिक आहार लेता था और उसके  
 शुक्ल लेश्या थी, इसतरह बहुत दिन तक उसने सर्वार्थसिद्धिके प्रविचाररहित सुखोंका अनुभव किया, और वहां की  
 आयु पूरी होनेपर उस पुण्यवानके मनुष्य लोकमें आनेके दिन समीप आये ॥ ११-१२ ॥ इसी जंघूडीपके भरतक्षेत्र  
 में एक रत्नपुर नगर था उसमें उत्पन्न हुए बड़ी भारी विभूतिको धारण करनेवाले कश्यप गोत्रीय महाराज भानु राज्य  
 करते थे उनके सुप्रभा नामकी रानी थी । जब उस अहमिंद्रकी आयुके छह महीने रह गये थे तभीसे देवोंने रत्नोंकी  
 वर्षाकर उस रानी सुप्रभाकी पूजाकी थी ॥ १३-१४ ॥ वैशाख शुक्ल त्रयोदशीके दिन रेवती नक्षत्रमें रातके पिछिले  
 पहर रानी सुप्रभाने सोलह स्वप्न देखे सवेरे ही उठकर उसने अवधिज्ञानी अपने पतिसे निवेदन किया उनका फल  
 सुना और पुत्र उत्पन्न होनेके समान प्रसन्न हुई ॥ १५-१६ ॥ उसी दिन वह अहमिंद्र अपनी आयु पूरीकर सर्वार्थ-

भूवन दशोः स्फुटा ॥ १५ ॥ सा प्रबुद्धा फलेन्यात्मपतेर्घृथिलोचनात् । तेषा विज्ञाय, संभूतभुतेवासीत्ससम्मदा ॥ १६ ॥ तदैन्यानुसंगदंत्यादस्या गर्भे भवद्विमु । सुरैर्द्राध्यादिकल्याणमकुर्वत समगताः ॥ १७ ॥ थवले नवमासते गुरुयोगे त्रयोदशी । दिने माघे सुत मासे सामूनावधिोचन ॥ १८ ॥ तदै-  
वानिमिषाधीशास्त नीत्वामभ्यु ररे । क्षीराब्धिचारिभिर्गुरुकार्तस्वरघटोद्धृतैः ॥ १९ ॥ अभिषिच्य विभूयोर्यर्धमीस्थ्यामगदन्मुदा । सर्वभूतहित्थीमत्स-  
र्र्मपथदेशनात् ॥ २० ॥ अनतजिनमताने चतु सागरसम्मिते । काले पर्यंतपत्योपमाद्वै धर्मेस्तमेगुपि ॥ २१ ॥ तदभ्यंतवर्त्ययुधैर्मनामोदपदि सः ।  
दश लक्षा समाजीवी तप्तकाचनसच्छविः ॥ २२ ॥ स्रष्टुकृहस्तसंशे स्वयं कौमारसुहृदन् । सार्द्धलसद्व्यादते लब्धराज्यमहोदय ॥ २३ ॥ गुणत्वादिति-  
शुद्धत्वाग्निश्वात्स्वाश्रवत्त्वत् । अक्षोपयोग्यत्वाच्च मेघातजलदोपम ॥ २४ ॥ भद्रवाद् बहुदानत्वात्सौलक्षण्यान्महत्त्वत । सुकरत्वात्पुरेभत्वादपरो वा

सिद्धिसे आकर उसके गर्भमें आ विराजमान हुआ और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर गर्भकल्याणका उत्सव मनाया ॥ १७ ॥ ना महीने बीत जानेपर माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन पुण्य नक्षत्रमें उम महाराजीने अन्नधिज्ञानको धारण करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया उसीसमय इंद्रादि देव आये उस बालकको मेरु पर्वतपर ले गये वहांपर सुवर्णके घड़ोंमें भरे हुए क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया, आभूषण पहिनाये और यह बालक आगे सब जीवोंका हित करनेवाले तथा अनुपम विभूति देनेवाले सद्धर्मके मार्गका ( मोक्षमार्गका ) उपदेश देगा इसलिये ही प्रसन्न होकर बड़े ऊंचे शब्दोंसे उसका धर्मनाथ नाम रक्खा था ॥ १८-२० ॥ श्री अनंतनाथ तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद जब चार सागर बीत गये थे तथा उसके बाद भी आधे पत्यतक धर्मका विच्छेद रह चुका था तब धर्मनाथ उत्पन्न हुए थे इनकी आयु भी इसीमें शामिल है । इनकी आयु दश लाख वर्षकी थी, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्ति थी और एक सौ अस्ती हाथ ऊंचा क्षीर था । तथा कुमारकालके ढाई लाख वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्यकी विभूति मिली थी ॥ २१-२३ ॥ वे भगवान बड़े ऊंचे थे, दर्शनीय थे, सब जगह वर्षा करनेवाले थे और सबके पालन पोषण करनेवाले थे इसलिये वे श्राद्ध ऋतुके बादलोंके समान जान पड़ते थे ॥ २४ ॥ अथवा ये दूसरे हाथीके समान जान पड़ते थे क्योंकि हाथी जिसप्रकार भद्र जातिका होता है उसीप्रकार वे भी भद्र थे । हाथीसे जिसप्रकार बहुतमा दान ( मद्र ) वहता रहता है उसीप्रकार वे भी बहुतसा दान करते रहते थे, जिसप्रकार हाथीमें बहुतसे अच्छे लक्षण रहते हैं वहा होता है उसी प्रकार उनमें ही अच्छे लक्षण थे और वे सबमें बड़े थे तथा जिसप्रकार हाथीका कर अर्थात् सूंड अच्छी होती है उसी प्रकार उनका कर अर्थात् हाथ अच्छा था अथवा कर अर्थात् प्रभासे का बहल करना अच्छा सुलभ था और हाथी

गजोत्तमः ॥ २५ ॥ निग्रहायुग्रहौ तस्य न द्वेच्छाप्रवर्तिता । गुणदोषकृतौ तत्प्रापिपृहभपि पूज्यते ॥ २६ ॥ कीर्तिस्तस्य कृता सत्वं नो चेद्विभक्ति-  
विणी । कवं कपिवचोबासिदोदद्यापि वर्दते ॥ २७ ॥ भरित्री सुखसंभोग्या तस्य रगुणरजिता । नाभिकेवोत्तमा कामममीष्टफलदायिनी ॥ २८ ॥ धर्मा-  
दस्मादवाप्स्यन्ति कर्मोपरातिनिवर्हणात् । शर्म चेन्निर्मलं भव्या शर्मास्य किमुबर्ण्यते ॥ २९ ॥ पंचलंक्षासमा राज्यकालेवीते कदाप्यसौ । उल्कापातसमुद्भू-  
तवैराग्याश्लिखन्तियत् ॥ ३० ॥ कथं क्व कस्माज्जातो मे किमय कस्य भाजनं । किं भविष्यति कायोरयमिति चिन्तामकुर्वता ॥ ३१ ॥ दुर्विदग्धेन सांग  
त्यमेन सुचिरं कृतं । अश्रुतादु क्कमावर्ज्य पापं पापविपाकतः ॥ ३२ ॥ दुःखमेव सुखं मत्वा दुर्मति कर्मचोदित । शर्म शाश्वतमप्राप्य श्रातोहं अन्म-  
संततौ ॥ ३३ ॥ बोधादयो गुणाः स्वमी ममैतदविकल्पयन् । रागादिकान् गुणान्मत्वा धिम्मां मतिविपर्ययात् ॥ ३४ ॥ केहमोटप्रहप्रस्तो मुहुर्बधुधनायलं ।

जैसे देवोंकी मी प्रिय होता है उसीप्रकार वे भी देवोंको प्रिय थे ॥ २५ ॥ प्रजाका निग्रह करना अथवा अनु-  
ग्रह करना उनके द्वेष और इच्छापर निर्भर नहीं था किंतु गुण और दोषसे किया जाता था इसलिये निग्रह  
करते हुए भी लोग उनकी पूजा करते थे ॥ २६ ॥ यह सब है कि उनकी कीर्ति एक लताके समान थी यदि वह  
लताके समान नहीं होती तो वह समस्त संसारमें कैसे फैल जाती और कवियोंके वचनरूपी जलके सींचनेसे  
आज तक कैसे बढ़ती रहती ॥ २७ ॥ उससमय वह पृथ्वी एक उसम नायिकाके समान जान पड़ती थी क्यों-  
कि नायिका जिसप्रकार गुणोंसे मोहित होजाती है उसीप्रकार वह पृथ्वीधर्मनाथके गुणोंसे मोहित हो गई थी अर्थात्  
उनके वश हो गई थी तथा जिसप्रकार नायिकाका सुखपूर्वक उपभोग किया जाता है उसीप्रकार उस पृथ्वीका भी सुख  
पूर्वक उपभोग किया जाता था और नायिका जिसप्रकार अमीष्ट फल देनेवाली है उसीप्रकार वह पृथ्वी भी अमीष्ट फल  
देनेवाली थी ॥ २८ ॥ कर्म रूपी शत्रुओंको नाश करनेवाले उन धर्मनाथसे ही भव्य जीवोंको निर्मल कल्याणकी प्राप्ति होगी  
फिर भला उनके कल्याणका क्या वर्णन करना चाहिये ॥ २९ ॥ इसतरह राज्य करते हुए जब उनके पांच लाख वर्ष  
गये तब किसी एक दिन उल्कापात देखकर वे विरक्त हुए और विचार करने लगे कि यह शरीर कदा किसतर-  
उत्पन्न हुआ है, इसका स्वरूप क्या है यह किसका पात्र है और आगे इसकी क्या दशा होगी यह सब विचा-  
ही इस मूर्ख जीवने अनादिकालसे इसका संग किया है इसके संगसे अनेक पापोंका उपार्जन किया है उन पा-  
वसे अनेक दुःख भोगे हैं और कर्मोंकी प्रेरणासे इस मूर्ख जीवने उन दुखोंको ही सुख मान लिया है । सदा र-  
त्वरूप सुखके न मिलनेसे अब मैं इस जन्म मरणरूपी संसारमें दुखी होगया हूं ॥ ३०-३३ ॥ अबतक

पोषयन्नर्ज्यन्यापसंचयाद् दुर्गतीः गतः ॥ ३५ ॥ एवमेव स्वयमुद मत्वा लौकांतिकाः सुराः । दुष्टदुर्निष्ठितार्थस्त्व देवावेत्यातिभक्तिः ॥ १८ ॥ तदै-  
र्मिं स ज्येष्ठे पुत्रे निहितराज्यकः । प्राप्तः निष्कमणारंभकल्याणाभिषवोत्सव ॥ ३७ ॥ विविक्तां नागदत्ताख्यामारुह्य सुरसत्तमैः । सह<sup>३</sup> हितश्रीमत्स-  
वष्टोपवासवान् ॥ ३८ ॥ माघज्योत्मात्रयोदश्यामपराह्णे द्वैः समः । सहस्रेण स पुण्यक्षं वीक्षां मौलीं समग्रहीत् ॥ ३९ ॥ चतुर्थज्ञानसपत्नं<sup>४</sup> पादि सः ।  
दुर्गुरी<sup>५</sup> । भोक्तुं पाटलिपुत्राख्या समुद्रपदताकिं ॥ ४० ॥ धन्ययेणमहीपालो दत्त्वास्मै कनकमुतिः । दानमुत्तमपात्राय प्राणदाश्रयपंचकं<sup>६</sup> गत्वदति-  
कवर्षष्टमर्यकास्तेति पुरातने । वने सप्तच्छदत्वाघः कृतघष्टोपवासक ॥ ४१ ॥ पूर्णमास्या स पुण्यक्षं सायाहि प्राप केवलं । आससाद च स ने वा  
ल्याणसूनिनीं ॥ ४३ ॥ अरिष्टसेनाशनकृत्युगमानगणधिपः । शून्यद्वयनवप्रोक्तसर्वपराश्रित ॥ ४४ ॥ शून्यद्वयद्विंशत्यान्विधिमितिशिक्षकलक्षितं<sup>७</sup> ।

पर्यय हो रही थी इसलिये मैं आत्माके ज्ञानादि गुणोंको भूल गया था और कर्मसे उत्पन्न हुए रागादि भावोंको अपनी मानने लगा था इसतरह विपरीत माननेवाले मुझको धिक्कार हो ॥ ३४ ॥ लेह और मोह रुपी पिशाचके जालमें फंस कर मैंने बार बार कुटंबी धन आदिका पालन पोषण किया । जिससे अनेकतरहके पाप संचय किये और उन पापकर्मों के उदयसे अनेक दुर्गतियोंमें घूसा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार अपने आप जाग्रत हुए ( आत्मज्ञानी हुए ) भगवानको देखकर उसीसमय बहुतसी भक्ति करनेवाले लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकी और कहा कि हे भगवन् ! आप आज ही कृत-  
कृत्य हुए हो ॥ ३६ ॥ धर्मनाथने सुधर्म नामके अपने बड़े पुत्रको राज्य दिया उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया, और भगवानका अभियेक किया । भगवान नागदत्ता नामकी पालकीपर सवार होकर शाल-  
वन नामके वनमें गये । वहाँपर उन्होंने माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन पुष्यनक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओं-  
के साथ साथ तेला धारणकर मोक्ष देनेवाली दीक्षा धारण की ॥ ३७-३९ ॥ उसीसमय उन्हें मनपर्ययज्ञान हुआ, पा-  
रणाके दिन उन्होंने ऊंची फहराती हुई ध्वजाओंसे सुशोभित पाटलीपुत्र वा पटना नागरीमें प्रवेश किया, वहाँपर सुव-  
र्णकी कांतिवाले महाराज धन्यसेनने उन उत्तम पात्रको आहारदान दिया तथा देवोंने उसीसमय पंचाचर्य्योंकी वर्षा-  
की ॥ ४०-४१ ॥ तदनंतर एक वर्षतक वे तपश्चरण करते रहे बाद उसी शालवनमें सप्तच्छद वृक्षके नीचे तेला धार-  
णकर विराजमान हुए ॥ ४२ ॥ गौष शुक्ला पूर्णिमासीके दिन पुष्य नक्षत्रमें शामके समय वहीं पर उन्हें केवलज्ञान  
उत्पन्न हुआ, उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर केवलज्ञान कल्याणको सूचित करनेवाली उनकी पूजाकी ॥ ४३ ॥ उनके  
समवसरणमें अरिष्टसेनको आदि लेकर तेवालीस गणधर थे नौसौ ग्यारह अंग बौद्ध पूर्वको जाननेवाले थे चालीस

शतत्रिसहस्रोक्तत्रिविधावधिलोचनः ॥ ४५ ॥ शून्यद्वयैरिष्योन्मेषोक्तकेवलधीक्षणः । शून्यत्रिकमुनिज्ञातविक्रियार्द्धिविभूषित ॥ ४६ ॥ केवलज्ञानिमानो-  
क्तमनःपर्ययविभूषितः । लब्धयाष्टद्विविज्ञातवः दिव्यैर्वाभिबलितः ॥ ४७ ॥ पिंडीकृतचतुर्बुद्धिसहस्रमुनिसाधनः । सत्त्वाभ्युपगच्छप्रोक्तमुद्रावाविक्रियार्द्धिविभूषितः ॥  
४८ ॥ द्विलक्षभावावकोपेत्तो द्विगुणग्राहिकादृतः । पूर्वोक्तदेवसंदोहस्तिर्यक्सख्यातसंश्रितः ॥ ४९ ॥ इति द्वादशमेवोक्तगणसंपत्समन्वित । धर्मोचर्ममुपा-  
द्विषद्वर्त्मजविराजितः ॥ ५० ॥ विहारमते सद्रूप्य सम्भवे निरिसतमे । मासमेकयोगः सप्तवाष्टशतसंयनः ॥ ५१ ॥ शुचिशुद्धचतुर्धृत्ये रात्रौ ध्याति दृष्ट-  
मृदुधौ । आपूर्य पुष्पनक्षत्रे मोक्षलक्ष्मीमुपागमत् ॥ ५२ ॥ तदारुद्राशानाधीशाः सहस्रागल्य सर्वतः । कृत्वा निर्वाणकल्याणमवधिष्यत तं जिन ॥ ५३ ॥ नि-  
र्विलय दशरथः स रिपुन्दुर्योत्साहसिद्धतां गत्वा । धर्मः स पातु पापैर्धर्मोद्युधि यस्य दशरथायते ॥ ५४ ॥ निहतसकलषाती तिष्ठत्याश्रयबोधो गदितपरमबोधो  
हजार सातसौ शिक्षक थे, तीन हजार छह सौ देशावधि परमावधि सर्वावधि को धारण करनेवाले तीनों तरह के अवधिज्ञानी  
थे ॥ ४४-४५ ॥ चार हजार पांचसौ केवलज्ञानी थे, सात हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले शोभा बढ़ा रहे थे, चार  
हजार पांच सौ मन पर्ययज्ञानी थे और दो हजार आठसौ चांदियों के समूह उनकी वंदना करते थे ॥ ४६-४७ ॥ इस तरह सब  
चाँसठ हजार मुनि उनकी सेवा करते थे । सुमत्ता आदि वासठ हजार चारसौ अर्जिकाएँ थीं दो लाख भ्रावक थे, चार लाख  
भ्राविकाएँ थीं पहिले कहा हुआ सब देवों का समूह था और संख्यात तिर्यच थे ॥ ४८-४९ ॥ इस तरह चारह सभाओं की संपदा-  
के साथ वे भगवान विराजमान थे धर्मकी ध्वजा से सुशोभित उन धर्मनाथ भगवान ने बहुत जगह धर्मका उपदेश दिया और  
अंत में विहार कराना बंद कर समेदशिशिरपर जा विराजमान हुए, आठसौ नौ मुनियों के साथ एक महीने तक योगों का  
निरोध किया और जेष्ठ शुक्ला चतुर्थी के दिन पुष्प नक्षत्र में रात्रि के समय अंतिम दोनों शुक्लध्यानो का ध्यान कर मोक्ष  
लक्ष्मी में जा विराजमान हुए ॥ ५०-५२ ॥ उसी समय बड़ी शीघ्रता से सब जगह के इंद्रादि देव आये और निर्वाण कल्याण का  
उत्सव मना कर उन जिनेंद्रदेव की वंदना की ॥ ५३ ॥ जो पहिले भव में सब शत्रुओं को जीतनेवाले राजा दशरथ हुए  
थे, फिर अहमिंद्र हुए और फिर वहाँ से आकर धर्मनाथ तीर्थंकर हुए जिनके युद्ध में दश धर्म ही रथका काम देते थे  
ऐसे श्रीधर्मनाथ स्वामी मुझे पापों से बचावें ॥ ५४ ॥ जिसने समस्त घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं जिनके मुख्य और  
निश्चल केवलज्ञान है, जिन्होंने धर्मका स्वरूप निरूपण किया है, तीनों शरीर नष्ट होने से जो निर्मल हुए हैं जो सब-  
की आत्मा को शांति देनेवाले हैं और जिन्हें वास्तविक सुख प्राप्त हुआ है ऐसे श्रीधर्मनाथ जिनेंद्र देव तुम लोगों को  
अनंत सुख दें ॥ ५५ ॥

धर्मनामा खिनेद्रः । त्रितयतनुमिनाशाभिर्मलः शर्मसारो दिशदु सुखमयतं शान्तसर्वोत्पदो वः ॥ ५५ ॥ अस्मिन्नेवाभवती धं बलः श्रीमान् सुदर्शनः ।  
 के शबः सिंहशब्दात्पुरुषः परिषद्वलः ॥ ५६ ॥ तयोराट्यानक वक्ष्ये भवत्रयसमाश्रय । इह राजगृहे राजा सुमित्रो नाम गर्वितः ॥ ५७ ॥ महामल्लो ब-  
 हून् क्षित्वा दम्भपूजः परीक्षकैः । तुणाय रम्यमानोन्मानमायदुष्टदृष्टिवत् ॥ ५८ ॥ कदाचिद्राजसिंहस्थः महीनाथो मदीदृत । तदपेक्षातनायागाता  
 पुरी मल्लयुद्धवित् ॥ ५९ ॥ सुमित्रस्तेन रंगस्थो निर्जितः सुचिरायथा । उत्खातदतदेतीव तदास्यादतिदुःखितः ॥ ६० ॥ मानभगेन भग्नः समस्तौ रा-  
 ज्यभ्राक्षमः । निटुफवान् द्रुत राज्ये मानप्राप्ता हि मानिनः ॥ ६१ ॥ कृष्णाचार्य समासाय श्रुत्वा धर्मं यथोचित । प्रववाजतिनिर्विण्णस्तद्धि योग्य  
 मनरिवना ॥ ६२ ॥ क्रमेणैव तप कुर्वन् सिंहनिःक्रीडितादिकं । स्वपराजयसंशयविति प्रापे व्यक्तियत् ॥ ६३ ॥ फलं चेदस्ति चर्यायास्तपसोऽन्यत्र ज-

अथानंतर-इन्हीं धर्मनाथ तीर्थकरके समयमें श्रीमान् सुदर्शन बलभद्र और सब समयमें बलवान् पुरुषसिंह नाम-  
 का नारायण हुआ है, इसलिये तीन भव दिखलाकर इन दोनोंका जीवन चरित्र कहते हैं । इसी राजगृह नगरमें राजा  
 सुमित्र राज्य करता था वह बड़ा ही अभिमानी था, सबसे बड़ा मछ था उसने बहुतसे मछ जीत लिये थे इसलिये  
 मछोंकी परीक्षा करनेवाले सब लोग उसे पूज्य मानते थे, वह अन्य सबको तुणके समान मानता था और कुछ हाथीके  
 समान उन्मत्त हो रहा था ॥ ५६-५८ ॥ किसी एक समय मछपुद्गको जाननेवाला और उन्मत्त ऐसा राजसिंह नाम-  
 का राजा सुमित्रका अभिमान दूर करनेके लिये राजगृही नगरीमें आया ॥ ५९ ॥ दोनोंका बहुत देरतक युद्ध हुआ  
 परंतु अंतमें सुमित्र हार गया और जिसप्रकार दांत उल्टाह लेनेपर हाथी दुखी होता है उसीप्रकार वह बहुत दुखी  
 हुआ ॥ ६० ॥ मान भंगसे दुखी होकर वह राजा सुमित्र राज्य संभालने में भी असमर्थ हो गया इसलिये उसने अपने  
 पुत्रको राज्यासिंहासनपर विठाया तो ठीक ही है क्योंकि अभिमानी पुरुषोंके अभिमान ही प्राण होते हैं ॥ ६१ ॥  
 कृष्णाचार्यके समीप जाकर उसने यथायोग्य धर्मका स्वरूप सुना और अत्यंत विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली तो  
 ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोगोंको ऐसा ही करना चाहिये ॥ ६२ ॥ उसने सिंहनिःक्रीडित आदि उग्र तपश्चरण  
 किये परंतु अपना तिरस्कार होनेसे जो संक्लेश हुआ था इसलिये वह अंतमें चितवन करने लगा कि यदि दूसरे जन्म  
 में चर्या और तपश्चरणका फल मिलता है तो मैं अगिले जन्ममें समस्त शत्रुओंको जीतनेवाला महाबलवान् और परा  
 क्रमशाली होऊँ ॥ ६३-६४ ॥ इसतरह निदान कर संन्यास धारणकर प्राण छोड़े और चाँधे स्वर्गमें सात सागरकी  
 आयु पाकर देव हुआ तथा बहुत दिन तक भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे रहने लगा ॥ ६५ ॥

न्मति । समस्तान् विद्विषो जेतुं महाबलपराक्रमे ॥ ६४ ॥ तथैव संन्यस्याभूच्च माहेन्द्रे सप्तसागर-स्थितिदेवशिरे भोगान् भुञ्जान् सुखमास्थितः ॥ ६५ ॥  
 द्वीपेस्मिन्महदप्राप्तिं वीतशोकापुरीपतिः । नरादिदृष्टमो राजाजनि जातमहोदयः ॥ ६६ ॥ भुक्त्वा कोषदयापेतं राज्यमूर्जितमौहयभाक् । सद्यः संजात-  
 निर्वेदोऽल्यजदमवरांतिके ॥ ६७ ॥ स घोरतपसा दीर्घं गमयित्वायुरात्मन । सहस्रार्जुनामाष्टादशसागरवस्थिति ॥ ६८ ॥ फलं स्वनिमित्तवत्सव्य-  
 नारतलोकनात् । प्राणप्रियाणां पर्यते शान्तचेता निजायुषः ॥ ६९ ॥ अस्मिन् खगपुग्वीशसिंहसेनमहीपते । इक्ष्वाकोर्विजयायाश्च तनूजोभूस्तु-  
 शनः ॥ ७० ॥ अंबिकायां कुतोऽस्य सुमित्रः केशवोऽभवत् । पञ्चान्विधधनुस्तेषो दशलक्षासमायुषा ॥ ७१ ॥ परस्परानुकूल्येन मतिरूपबलादिबलौ ।  
 परानाक्रम्य सर्वान्स्वान् रंजयामासवृणौ ॥ ७२ ॥ अविभक्तपि दोषाय भुञ्जमाना तयोरभूत् । न लक्ष्मीं शुद्धचित्तानां शुद्ध्यै निखिलमयलं ॥ ७३ ॥  
 अयामुद्गारते क्षेत्रे विजये कुरुजांगले । हस्तिनाह्यपुराभीशो मधुक्कीडो महीपति ॥ ७४ ॥ राजसिंहचग्रे ऋषिताखिलारतिर्सहसि । अवहंतौ समु-

अथानंतर-इसी द्वीपमें मेरु पर्वतके पूर्वकी ओर वीतशोकापुरी नगरमें राजा नरद्वयभ राज्य करता था वह राजा बड़ा ही ऐश्वर्यशाली था उसने बहुत दिन तक राज्य किया बड़े भारी सुख भोगे और अंतमें विरक्त होकर दमवर मुनिके समीप दीक्षा धारणकी ॥ ६६-६७ ॥ उसने बहुत दिन तक घोर तपश्चरणकर आयु पूर्णकी और सहस्रार स्वर्गमें अठारह सागरकी आयु पाकर देव हुआ ॥ ६८ ॥ टिमिकार रहित नेत्रोंका फल निरंतर प्राणप्रिय देवांगनाओंका देखना आदिका अनुभवकर अंतमें शान्तचित्तमे आयु पूर्णकी और इसी खगपुर नगरके स्वामी इक्ष्वाकुवंशीय राजा सिंहसेनके उनकी विजया रानीसे सुदर्शन नामका पुत्र हुआ ॥ ६९-७० ॥ उन्हीं राजाके अंबिका रानीसे राजा सुमित्रका जीव नरायण हुआ । उन दोनों माइयोंका पैंतालीस धनुषका शरीर था और दश लाख वर्षकी आयु थी ॥ ७१ ॥ उनकी बुद्धि रूप बल आदि सब परस्पर एक दूसरेके अनुकूल थे, वे दोनों ही सत्रपर आक्रमणकर अपने गुणों से सबको प्रसन्न करते थे ॥ ७२ ॥ वे दोनों भाई विना बांटे ही लक्ष्मीका उपभोग करते थे तथापि वह लक्ष्मी उनके लिये कोई दोष उत्पन्न नहीं करती थी सो ठीक ही है क्योंकि शुद्धचित्तवालोंका सब कुछ शुद्धताकेलिये ही होता है ॥ ७३ ॥ अथानंतर-इसी भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनापुर नगर है उसमें राजा मधुक्कीड राज्य करता था, वह सुमित्रको जीतनेवाले राजसिंहका जीव था उसने सब शुश्रूषोंके समूह जीत लिये थे, इसलिये बलभद्र और नारायण जो अपने तेजसे बढ रहे थे वे उसे सहन नहीं हुए ॥ ७४-७५ ॥ उस बलवानने काममें बहुमूल्य रत्न माग्ने केलिये दंडगर्भ नामके बलवान और मुख्य मंत्रीको भेजा ॥ ७६ ॥ जिसप्रकार हाथीकी चिंवार सुनकर सिंह क्रोधित होता है,



बंती तेवसा बलकेसवै ॥ ७५ ॥ करं परादूर्पररत्नानि याप्त्वा प्राक्षिणोद्वली । दंडगर्भमिषानामिषाक्षिणं सन्निवाप्रिमं ॥ ७६ ॥ तद्वचश्रवणत्वा च  
 गवकंठीरबभुते । कंठीरवो वा संक्रुद्धौ रघाहर्गतिरैकौ ॥ ७७ ॥ क्रीडितुं याचते मूढो गर्भग्यालं जड करं । समीपवर्तां चेत्तस्य सप्तवर्ते तु रीयते ॥ ७८ ॥  
 इक्षुपुवर्ता तत्क्रोपकठोरोक्या स सत्वरं । गत्वा तत्कार्यं यायमधुमकीटमजिह्मपट्ट ॥ ७९ ॥ तोषि नद्धुवंच थुला कोपारुणितविग्रहः । निप्रहाय सहे-  
 ताग्यां प्रतस्ये बहुधावन ॥ ८० ॥ अभिगम्य तमाक्रम्य युधुवा युद्धविशारद । अछिनतस्य चक्रेण शिर सद्य स कैशव ॥ ८१ ॥ तौ त्रिलङ्काविप-  
 ल्येन स्समीमनुबभूवतु । अवधिस्थानमापन्न. केशयो जीवितावयी ॥ ८२ ॥ हलाबुधोपि तच्छोकादर्मतीर्यकरं श्रित । प्रवज्य प्रोदुताबोध प्राप्नोति स्म परं  
 पदं ॥ ८३ ॥ प्रतिहतपरसेन्यां मानशोडो प्रचढौ फलितसुकुतसारौ तावत्सदृश्रिखंडौ । किञ्च खलविक्षिंतवं परम विदोषिणो विग् इतिपरवसत्त कैशवस्यैव  
 मोहात् ॥ ८४ ॥ प्राग्भुज प्रथितराजगटे सुमित्रो महेंद्रकल्पजमुदर्युतवांस्ततोहिमन् । भूयोऽभ्रवरखगपुरे पुरुषादिसिंह पश्चात्स सप्तममर्हौ च जगाम नीमौ  
 उत्सीप्रकार उस मंत्रीकी बात सुनकर वे प्रताप आली दोनों ही भाई बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि वह मूर्ख  
 खेलनेके लिये सापोंसे मरा हुआ कर मागता है मो ठीक है यदि वह समीप आवेगा तो ऐसा कर उसे दिया जायगा  
 ॥ ७७-७८ ॥ इसप्रकार क्रोधसे कठोर वाक्य कहे । वह दूत शीघ्र ही लौटकर घर पहुंचा और सब बातें मधुकीडसे  
 जाकर कहीं ॥ ७९ ॥ जिसका शरीर क्रोधसे लाल हो रहा है ऐसा वह मधुकीड भी उन कठोर वचनोंको सुनकर  
 बहुतसी सेना लेकर उन दोनोंमें युद्ध करनेके लिये निकला ॥ ८० ॥ युद्ध करनेमें चतुर ऐसा नारायण भी उसके सा-  
 मने आया उमपर आक्रमण किया बहुत देरतक युद्ध किया और अंतमें उसीके आये हुए चक्रसे उसका शिर काट  
 डाला । १ ॥ वे दोनों भाई तीन खंडके स्वामी होकर लक्ष्मीका अनुभव करने लगे नारायण आयु पूरीकर मरकर  
 सातवें नरक गया तथा बलभद्रने नारायणके मरनेका शोक किया, अंतमें धर्मनाथ तीर्थंकरके समीप जाकर दीया  
 धारणकी और सप्त कर्मोंको नाशकर मोक्षपद पाया ॥ ८३ ॥ देखो दोनों ही भाई शत्रुओंको नाश करनेवाले थे,  
 बड़े अभिमानी थे, बड़े प्रतापी थे, दोनोंको ही पुण्यकर्म खूब फला था और दोनों ही तीन खंडके स्वामी थे परंतु  
 दुष्ट कर्मोंके उदयसे दोनों ही अलग अलग हुए और मोहकर्मके उदयसे पापोंका फल केवल नारायणको ही मिला  
 इसलिये पापकर्मोंको मी बार बार विवकार हो ॥ ८४ ॥ पुरुषसिंह नारायण पहिले राजगृह नगरमें सुमित्र राजा था,  
 फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे चयकर खगपुरमें पुरुषसिंह राजा हुआ और फिर मरकर भयानक सातवें नरकमें  
 नारकी हुआ ॥ ८५ ॥ मधुकीड प्रतिनारायण पहिले मदोन्मत्त हाथीको मी बध करनेवाला सिंह नामक राजा हुआ

॥ ८५ ॥ प्रोर्पदंतिदमनोजनि राजसिंहो भ्रातृत्वा सिरे भवनेषु विनष्टमार्गः । दृष्टानुमार्गमजनिष्ट स ह्रस्तिनाह्वये क्रीडाधरांतमधुराप गतिं दुरता ॥ ८६ ॥  
नरासिद्धवन् पुरे विदितवीतशोके महीद तपस्विचरुणस्य घोरमभवत्सहस्रारके । तत स्नगपुरे बल क्षयितशत्रुपक्षोगमत् क्षेमकनिलयो विलीनविलय सुलं  
क्षायिकं ॥ ८७ ॥ तर्तीयस्मांतरे चक्री वृतीयो मघवानभूत् । आतृतीयभवात्तस्य पुराणं प्रणिगद्यते ॥ ८८ ॥ वासुपुत्रयजिनेशस्य तीर्थेभून्तृणतिर्महान् ।  
नाम्ना नरपत्तिभूक्त्वा भोगान् भोग्यसमर्पितान् ॥ ८९ ॥ वैराग्यकाष्ठामादृत्य कृतोत्कृष्टतपा व्यसु । प्रवेयकेऽभवत्पुण्यादहमिदेषु मध्यमे ॥ ९० ॥ सप्त-  
विंशतिवार्युर्ध्वयुर्विष्यभोगान्मनोहरान् । अनुभूय ततस्त्वनुत्वा धर्मतीर्थकारांतरे ॥ ९१ ॥ कोशले विषये रम्ये साकेतनगरीपते । इक्ष्वाको स सुमित्रस्य  
भद्रायाश्च सुतोऽभवत् ॥ ९२ ॥ मघवाक्राम पुण्यात्मा भविष्यन् भरताधिप । पंचलक्षसमाजीवी कल्याणपरमायुषा ॥ ९३ ॥ सार्द्धद्विवारिंशच्चपो-  
च्छिष्टि कनकधुति । षट्खंडमहिता पृथ्वीं प्रतिपाल्य प्रतापवान् ॥ ९४ ॥ चतुर्दशमहारजभूषणो निधिनयक । श्लेचरसुरार्थीशाप्रमयन् क्रमयोर्युग

था फिर धर्ममार्गको छोड़कर बहुत दिनतक संसाररूपी बनमें परिभ्रमण किया, तदनंतर धर्ममार्गको ग्रहण कर हस्ति-  
नापुरमें मधुक्कीड नामका प्रतिनारायण राजा हुआ और अंतमें मरकरदुर्गेति में पहुंचा ॥ ८६ ॥ सुदर्शन बलभद्र पहिले  
प्रसिद्ध वीतशोक नगरमें नरद्वयभ राजा था, बहुत दिनतक घोर तपश्चरण कर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ वहांसे आकर  
खगपुर नगरमें समस्त शत्रुओंको जीतनेवाला बलभद्र हुआ और फिर उचम क्षमा धारणकर और समस्त कर्मोंको नष्ट-  
कर क्षायिक सुल अर्थात् मोक्षसुख जा प्राप्त किया ॥ ८७ ॥  
अथानंतर—इन्हीं तीर्थंकरके समयमें तीसरा मघवान् चक्रवर्ती हुआ है इसलिये तीन भव दिखलाकर उसका भी  
पुराण कहते हैं । ॥ ८८ ॥ वासुपुत्र्य तीर्थंकरके समयमें एक नरपति नामका बड़ा भारी राजा हुआ था उसने भाग्यके  
उदयसे प्राप्त हुए अनेक तरहके भोग भोगे थे ॥ ८९ ॥ किसी एकदिन अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ इसलिये दीक्षा ले-  
कर उसने उत्कृष्ट तपश्चरण किया और आयु पूरीकर पुण्य कर्मके उदयसे मध्वम त्रैवेयकमें अहमिंद्र हुआ ॥ ९० ॥  
वहांपर उसने सच्चाईस सागरकी आयु पाकर मनोहर दिव्य भोगोंका उपभोग किया और वहांसे चयकर धर्मनाथ ती-  
र्थंकरके समय मनोहर कौशल देशके अयोध्या नगरके इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुमित्रके उनकी भद्रा रानीसे मघवान ना-  
मका पुत्र हुआ, वह बड़ा ही पुण्यवान् था, समस्त भरतक्षेत्रका होनहार स्वामी था, सदा कल्याण देनेवाली पांच  
लाख वर्षकी उसकी आयु थी साढे व्यालीस धनुष ऊंचा शरीर था और सुवर्णके समान शरीरका वर्ण था । उस म-  
तापी मघवानने राज्य पाकर छह खंडोंसे सुशोभित ऐसी भरतकी पृथ्वीका पालन किया ॥ ९१-९४ ॥ चौदह महा-

॥ ९५ ॥ स्वोक्तप्रमाणदेवीभिरनुभूय यथेष्टितं । दशगमोगान् भूयिष्ठान् सुनिष्ठितमनोरय ॥ ९६ ॥ सुधीर्मनोहरोयाने स कदन्निचट्टञ्जया । विलोक्यभयघोषाढ्यं केवलावगमयुतिं ॥ ९७ ॥ त्रि परीत्याभिजड्यैर्न युत्वा वर्म तदतिके । विदित्वा तत्त्वसद्भाव विरज्य विप्रयेष्वलं ॥ ९८ ॥ त्रियमित्राय पुत्राय दत्त्वा साम्राज्यसपद । न चाप्याभ्यतरग्रथास्त्वक्त्वा संयममाददौ ॥ ९९ ॥ शुद्धश्रद्धानचारित्रः श्रुतसप्तसमन्वितः । द्वितीयशुक्लध्याननेन धातित्रयविधातकृत ॥ १०० ॥ नवकेवललङ्घनीशो धर्मवद्धर्मदेशनात् । विनयेनायकाधीत्वा निर्घणपदवीं परा ॥ १०१ ॥ ध्यानद्रव्यसमुन्मूलितायातिक्त्वपुष्करः । पुण्यापुण्यविनिर्मोक्षदक्षयं मोक्षमाक्षिपत् ॥ १०२ ॥ नरपतिरिदं नाम्ना बाहुपुण्यस्य तीर्थं सयामयुक्चरित्रेणाहमिदो महर्द्धि । अमवद्विलपुण्यश्रक्वर्त्तपुनीयस्तदनु च मधवाढ्यो मुख्यसौख्यं समापत् ॥ १०३ ॥ समनतरमेवास्य विनीतानगरेजिनः । नृपस्यानतवीर्यस्य सूर्यवशशिखामणे रत्न ही उसके आभूषण थे वह निधियोंका स्वामी था, मनुष्य विद्याधर और देव सबके राजाओंको उसने अपने अपने दोनों चरणोंमें नवाया था । १०५ ॥ ऊपर कहे हुए प्रमाणके समान अर्थात् छ्यानवे हजार रानियोंके साथ इच्छानुसार दश तरहके अनेक भोगोंभोगोंका अनुभव करता था और सबतरह अपने मनोरथोंको पूर्ण करता था ॥ १०६ ॥ किसी एक दिन वह बुद्धिमान् अपनी इच्छानुसार मनोहर नामके उद्यानमें गया, वहाँपर उसने केवलज्ञान रूपी कान्तितसे सुशोभित अमयघोष, नामके जिनेंद्रके दर्शन किये ॥ १०७ ॥ तीन प्रदक्षिणा दीं, बंदनाकी, समीप बैठ कर धर्मका स्वरूप सुना और तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जानकर विषयोंसे विरक्त हुआ ॥ १०८ ॥ उसने अपने पुत्र त्रियमित्रके लिये राज्यकी विभूति दी और बाह्य अभ्यंतर परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारण किया ॥ १०९ ॥ शुद्ध मम्यदर्शन और शुद्ध चारित्र धारण किया सम्यग्ज्ञानरूपी संपदा धारणकी और दूसरे शुक्लध्यानसे धातियां वाकीके तीन धातियां कर्मोंका नाश किया ॥ ११० ॥ तदनंतर नौ धायिक लब्धियोंका स्वामी हुआ, धर्मनाथके समान धर्मका उपदेश दिया और अनेक अच्छेअच्छे शिष्योंको उत्तम मोक्षस्थानमें पहुंचाया ॥ ११०१ ॥ अंतके दोनो शुक्लध्यानसे चारों अधातियां कर्म नष्ट किये और पुण्य पापरूप सब कर्मोंको नष्टकर अविनाशीक मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ११०२ ॥ तीसरा चक्रवर्ती मधवान् पहिले बाहुपूज्य तीर्थकारके समयमें नरपति राजा था फिर शान्तता और उत्तम चारित्र धारणकर ऋद्धिको धारण करनेवाला अहमिंद्र हुआ, वहाँसे आकर बडाभारी पुण्यवान मधवान नामका तीसरा चक्रवर्ती हुआ और फिर सदाके लिये मोक्षरूप सुखका अनुभव करने लगा ॥ ११०३ ॥

अथानतर—मधवान चक्रवर्तीके बाद ही सनत्कुमार चक्रवर्ती हुए हैं वे अयोध्यानगरके राजा सूर्यवंशके त्रिरो-

॥ १०४ ॥ सहदेव्याश्च समूत कल्यादागत्य षोडशात् । सन्तु सनत्कुमाराल्य त्रियम्बकान्कितत्रियः ॥ १०५ ॥ लक्षत्रयायु पूर्वोक्तचक्रवर्तिसमुत्तिष्ठतिः । वागीश्वरछविः स्वेच्छावशीकृतवसुधर ॥ १०६ ॥ दशांगभोगसंभोगयोगसतर्पितैत्रियः । समधितार्थिसंकल्पानल्पकल्पमहीहृह ॥ १०७ ॥ हिमवत्सागरा-  
वातमहीमध्यमहीभुजा । आशिपत्यं संमातन्वमन्वगूदधिकं श्रिय ॥ १०८ ॥ प्रयात्येवं मुखेनात्य काले सौधर्मसमिद । सनत्कुमारदेवेंद्ररुपस्यास्त्यत्र वि-  
त्वर ॥ १०९ ॥ नेपीति देवैः संपृष्ट सौधर्मोऽवधीदिद । सनत्कुमारश्चक्षेओ बाह सर्वांगसुंदरः ॥ ११० ॥ स्वप्नेपि केनचित्तादृष्टपूर्वं कदाचन । ना-  
स्तीति तद्वच श्रुत्वा सद्यः सजातकोतुको ॥ १११ ॥ हौ देवै भुवमागल्य तद्रूपालोकेनेच्छया । दृष्ट्वा त शक्यं प्रोक्त सत्यमित्यात्मसमदो ॥ ११२ ॥ सन-  
त्कुमारश्चक्षेः निजागमनकारण । बोधयित्वा सुधीश्चक्रिन् शृणु चित्तं समादधत् ॥ ११३ ॥ यदि गेजरादु लभ्यत्वो न स्युरत्र ते । सौंदर्येण त्वमत्रै-

मणि महाराज अनंतवीर्य और रानी सहदेवीके पुत्र थे, सोलहवें स्वर्गसे आकर यहां उत्पन्न हुए थे, वे सबको प्रिय थे और उनकी लक्ष्मीके चक्रका चिन्ह था अर्थात् चक्रवर्ती थे ॥ १०४-१०५ ॥ इनकी आयु तीन लाख वर्षकी थी और शरीरकी ऊंचाई साठे व्यालीस धनुष थी, शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी और सब पृथ्वी अपने आप ही उनके चश हो गई थी ॥ १०६ ॥ दशमकार भोगोंका उपभोगकर वे इन्द्रियोंको तृप्त करते थे और मांगनेवालोंको संकल्पसे भी बहुत अधिक धन देनेसे कल्पवृक्षसे भी बढकर जान पड़ते थे ॥ १०७ ॥ हिमवान् पर्वतसे लेकर समुद्रपर्यंतकी सब पृथ्वीके राजाओंपर अपना स्वामीपना नियत करते हुए वे बड़ी भारी लक्ष्मीका उपभोग करते थे ॥ १०८ ॥ इसतरह सुखपूर्वक उनका समय व्यतीत हो रहा था । किसी एक दिन सौधर्म इंद्रकी सभामें देवोंने पूछा कि क्या कोई सनत्कुमार इंद्रके रूपको जीतनेवाला किसीका रूप है ? तब सौधर्म इंद्रने कहा कि सनत्कुमार चक्रवर्ती सबसे अधिक रूपवान है उसका प्रत्येक अंग सुंदर है ॥ १०९-११० ॥ ऐसा रूप पहिले स्वर्गमें भी कमी किसीने नहीं देखा है । सौधर्म इंद्रकी यह बात सुनकर दो देवोंको बडा ही कौतुक हुआ और चक्रवर्तीका रूप देखनेकी इच्छाकर वे दोनों ही देव पृथ्वी पर आये, सनत्कुमारको देखकर सौधर्म इंद्रके कहेको उन्होंने सच समझा और वे बडे ही प्रसन्न हुए ॥ १११-११२ ॥ चक्रवर्तीसे अपने आनेका कारण कहा और ममझाकर कहने लगे कि हे बुद्धिमान चक्रवर्ती ! चित्त देकर सुनो ! ॥ ११३ ॥ इस संसारमें यदि रोग, बुढापा, दुःख और मृत्यु न हों तो आप अपनी सुंदरतासे इस संसारमें लिनेंद्र देवको भी उल्लघन करादेते ॥ ११४ ॥ इसतरह सुंदर वचन कहकर वे दोनों ही देव अकस्मात् अपने स्थानको चले गये और काललब्धिके समान ही मानो उन वचनोंसे उन महाराजाधिराजको आत्मज्ञान हुआ ॥

वमतिशेधे विजानपि ॥ ११४ ॥ इत्युवत्ता तौ सुरौ सूर्यं स्वधाम सहसा गतौ । काललब्धेव तद्वा प्रबुद्धौ भूभुजा पति ॥ ११५ ॥ रूपयौवनसौद-  
र्यसंपत्सौख्यादयो वृणां । विद्युलताधितानाच्च मन्ये प्रागेव नमराः ॥ ११६ ॥ इत्वरौ संपदस्त्वक्त्वा जित्वरोहिमिदैनसा । सत्वरं तनुमुज्जिज्वा गात्रो-  
स्मीलकायता ॥ ११७ ॥ सरम् देवकुमाराख्ये सुते राज्यं नियोज्य सः । शिवगुप्तजिनोपाते बीषा बहुमिराददे ॥ ११८ ॥ पञ्चभिः सद्भवैः पूज्य पा  
त्रितैर्यक्षिर्पञ्च । षड्बादयकवद्व्यात्मनिरुद्धेन्द्रियसंतति ॥ ११९ ॥ निथेल कृतभूवासो दंतथावनवर्जित । उषार्यैर्वैकदाभोजी सुकुन्मूलगुणैरलं ।  
त्रिकालयोगवीरासनैकपाशैर्दिमामितं । उत्तरैश्च गुणैर्नित्यं यथायोग्यं समान्वरन् ॥ १२० ॥ क्षमावान् क्षमाविभागो वां वारि वा श्रितातापवुर । निरीश  
इव नि कंयो नि सगः परमाणुवत् ॥ १२१ ॥ निलैर्गोबुद्धभागो वा गंभीरो वापगपति । शशीव सर्वसहायौ भाउमानिव भास्कर ॥ १२२ ॥ बाह्याभ्य-  
तरसशुद्धः सुधौतकलयौतवत् । आदर्शवत्समादर्शो सकोची कुर्मसन्निभ ॥ १२३ ॥ अर्हिर्वास्त्वकृतावास करीवाशब्दयानक । शृगालवत्सुरालोकी म-

११५॥ वे सोचने लगे कि मनुष्योंका रूप, यौवन, सुंदरता, संपदा आदि सब विजलीकी लताके समूहके समान विन-  
म्र हैं ऐसा मैं पहले ही से मानता हूं इसलिये मैं इस सब संपदाको छोड़कर इस संसारके पापोंको जीतंगा और क्षीघ्र  
ही क्षीरको छोड़कर क्षीररहित मुक्त हो जाऊंगा । ऐसा विचार करते हुये उन्होंने अपने पुत्र देवकुमारको राज्य  
दिया और अनेक राजाओंके साथ शिवगुप्त जिनराजके समीप दीक्षा धारणकी ॥ ११६-११८ ॥ वे पांचो महाव्रतोंसे  
पूज्य हुए, ईशसमिति आदि पांचों समितियोंका पालन करने लगे, छह आवश्यकोंसे अपना आत्मा बन्ध किया, इंद्रि-  
योंका समूह मन्त्र बन्ध किया और, सब तरहके परिग्रहोंका त्याग कर दिया । वे पृथ्वीपर ज्ञयनआसन करते थे दंतौन करनेके  
त्यागी थे, खड़े होकर एकबार भोजन करते थे इसतरह वे मन्त्र मूलगुणोंसे अच्छीतरह सुशोभित थे ॥ ११९-१२० ॥  
वे तीनों समय योग धारण करते थे, वीरासन, एक करवटसे सोना आदि शास्त्रोंमें कहे हुए अनेक तरहके तपश्चरण  
करते थे और यथायोग्य रीतिसे उषरगुणोंको भी सदा पालन करते थे ॥ १२१ ॥ वे इसप्रकार क्षमाको धारण करते  
थे मानों पृथ्वीका एक टुकड़ा ही हो, जल अथवा अमृतके समान संतापको दूर करनेवाले थे, सुमेरु पर्वतके समान  
अचल थे और परमाणुके समान परिग्रहरहित थे ॥ १२२ ॥ वे आकाशके समान निर्लेप थे, समुद्रके समान गंभीर  
थे, चंद्रमाके समान सबको प्रसन्न करनेवाले थे और सूर्यके समान तेजस्वी, वा हैदीप्यमान थे ॥ १२३ ॥ शुद्ध किये  
हुए सुवर्णके समान वे बाह्य अभ्यंतर सब तरहसे शुद्ध थे, दर्पणके समान सबको समान देखनेवाले थे और कछवाके  
समान संकोची वा इद्रियोंको संकुचित करनेवाले थे ॥ १२४ ॥ वे सर्पके समान चाहे जहाँ निवास करते थे, हाथी

शूरो राजसिंहवत् ॥ ११५ ॥ सदा- विनिद्रो मृगवत्तोऽशोषपरीषह । उपसर्गसहो विक्रियायुक्ताविवर्द्धिकः । १२६ ॥ क्षपकत्रेणिमार्शय ध्यानद्वयसुसा-  
धनः । घातिकर्मणि निवृत्तयुक्तं कल्पमुद्रपादयन् ॥ १२७ ॥ पुनर्विद्वत् सद्धर्मदेशनाद्विषयान् बहून् । विनेयान् मुक्तिसम्भोगदुर्गं दुर्मार्गवर्तिन ॥ १२८ ॥  
पश्चादतमुद्धृतायुर्गो रघुश्चा त्रिमेदकः । सर्वकर्मक्षयात्राप्यमावापन्मोक्षमक्षय ॥ १२९ ॥ जित्वा विचित्रवपुषं प्रसन्नकुमारमाक्रम्य विक्रमबलेन दिशां च चक्रं ।  
चक्रेण धर्मविहितेन हताघचक्रो दिश्यात्स व त्रियमिहाशु सनत्कुमारः ॥ १३० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसमूहे धर्मतीर्थकर-मुद्रांशेन-पुरुषसिंहमधुक्रीडमधववत्-

सनत्कुमारपुराणः परिसमाप्तं एकषष्टितमं पर्व ॥ ६१ ॥

के समान शुद्धरहित गमन करते थे मृगालके समान आगेके मार्गको देखनेवाले थे और राजसिंहके समान शूरवीर  
थे ॥ १२५ ॥ वे हिंरणोंके समान सदा जगते रहते थे, समस्त परिषद्को सहन करनेवाले थे अनेक तरहके उपसर्ग  
सहते थे और विक्रिया आदि शास्त्रोंमें कहीं हुई अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित थे ॥ १२६ ॥ उन्होंने क्षपक श्रेणी चढ  
कर शुकृध्यानके पहिले दो ध्यानसे घातिया कर्मोंको नष्ट किया और केवलज्ञान उत्पन्न किया ॥ १२७ ॥ तदनंतर  
बहुत देशोंमें विहारकर धर्मोपदेश दिया और सोटे मार्गमें चलनेवाले लोगोंकी रक्षा करनेके लिये किलेके समान मोक्ष  
के उत्तम मार्गको अनेक शिष्योंके लिये बतलाया ॥ १२८ ॥ अंतमें जब आयु अंतर्पुर्णकी रह गई तब तीनों प्रकारके  
योगोंका निरोधकर तथा समस्त कर्मोंको नष्टकर अविनाशीक मोक्ष प्राप्त की ॥ १२९ ॥ जिन्होंने अपने विचित्र शरीरसे  
सनत्कुमार इंद्रको भी जीता, अपने पराक्रम और बलसे सब दिशाओंपर आक्रमण किया और धर्मचक्रसे समस्त कर्म  
समूहोंको नाश किया ऐसे सनत्कुमार इस संसारमें तुम लोगोंको शीघ्र ही लक्ष्मीके देनेवाले हों ॥ १३० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें धर्मनाथ तीर्थकर सुदर्शन बलभद्र पुरुषसिंह नारायण  
मधुक्रीड प्रतिनारायण और मधवा सनत्कुमार चक्रवर्तीके पुराणको कहनेवाला यह इकसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

## अथद्विषष्टितमं पर्व ।

बुद्ध्या सपर्ययं सर्वं बोध्याभावाद्भवच्छिद्धः । यस्यावबोधो विभ्रात स शांतिः शांतयेऽस्तु वः ॥ १ ॥ वक्तुश्रोतृकथामेदानं वर्णयित्वा पुरा बुधः । पञ्चाद्धर्मकथां ब्रूयाद् गभीरार्यं यथार्थदत्क ॥ २ ॥ विद्वत्स्व सन्निरत्रत्वं दयालुत्वं प्रगल्भता । वाक्सांभार्यगित्तत्त्वे प्रदनकोदसहिष्णुता ॥ ३ ॥ सांमुख्यं लो-  
कविज्ञानं स्यात्पूजाधर्मीक्षण । मिताभिधानमित्यादि गुणा धर्मोपदेष्टरि ॥ ४ ॥ तत्त्वज्ञेय्यपचारित्रे वक्तव्ये तत्कथं स्वयः । न चरेदिति तत्प्रोक्तं न गृह्णीत  
पृथग्जनः ॥ ५ ॥ सन्नारित्रेय्यशास्त्रज्ञे वक्तव्ये लपथुतोदता । सहासयुक्तं सन्मार्गे विदधत्सवधरिषा ॥ ६ ॥ विद्वत्स्वसन्निरत्रत्वे मुख्यं वक्तुं लक्षण ।  
अवाधितस्वरूपं वा जीवस्य ज्ञानदर्शने ॥ ७ ॥ शुक्लमेतदयुक्तं चैत्युक्तं सम्यग्निवचारयन् । स्थाने कुर्वन्नुपांलभं भक्तामूक्तं समावदत् ॥ ८ ॥ असारप्रागप्रहीता-

## अथ वासठ्ठावं पर्व ।

अथानंतर-संसारको नाश करनेवाले जिन शांतिनाथ भगवानने पर्यायसहित सब पदार्थोंको जान लिया और ज्ञानने योग्य पदार्थोंके अभाव होनेसे जिनका ज्ञान विश्रांतरूप है ऐसे शांतिनाथ तुम लोगोंको शांति दें ॥ १ ॥ वस्तुओंको यथार्थरीतिसे देखनेवाले बुद्धिमानको पहिले वक्ता श्रोता और कथाके मेदोंको कहकर पीछे गभीर अर्थसे भरी हुई धर्मकथा कहना चाहिये ॥ २ ॥ विद्वान होना, श्रेष्ठ चारित्र धारण करना, दयालु होना, बुद्धिमान होना, नीलनेमें चतुर होना, दूसरोंके दशारोंको समझलेना अनेक तरहके प्रश्नोंके उपद्रवको सहन करना, सुद सुंदर होना, व्यवहार चतुर होना, प्रसिद्ध तथा पूज्य होना, और परिमित वचन कहना इत्यादि धर्मोपदेश देनेवालेके गुण हैं ॥ ३-४ ॥ यदि वक्ता तत्त्वोंका जानकार होकर भी दुराचारी होगा तो भी वह अपना काम नहीं कर सकेगा क्योंकि जब वह स्वयं मदाचरण पालन नहीं करेगा तो अन्य लोग भी उसके कहे हुएको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ यदि वक्ता सदाचारी होकर भी शास्त्रोंका जानकार न होगा तो वह थोड़ेसे शास्त्रज्ञानसे उद्वत हुए लोगोंसे ऊपर कहे हुए मोक्षमार्गमें हंसीके साथ तिरस्कार करावेगा ॥ ६ ॥ इसलिये जिसप्रकार जीवके ज्ञान और दर्शन ये दो अवाधित लक्षण हैं उसीप्रकार विद्वान होना और सदाचारी वा सम्यक्चारित्रवान होना ये दो वक्ताके मुख्य लक्षण हैं ॥ ७ ॥ शिष्य ऐसा होना चाहिये जो यह योग्य है अथवा अयोग्य है ऐसा विचार करे, योग्यको ग्रहण करे, असारका त्याग करे, विशेष बातको आदरके साथ ग्रहण करे, यदि वदाम्बित वक्ता मूलजाय तो तो इसे नहीं, गुरुका भक्त हो, धर्मावान हो, जिसे संसारसे डर लगता

धर्मविशेषाविहितादरः । अहसन्स्खलितस्थाने गुरुभक्त क्षमापर ॥ ८ ॥ मसारभीराप्रोक्तवाग्धारणपरायण । शुक्रयुद्धसंप्रोक्तगुण श्रोता निगद्यते ॥ १० ॥ जीवाजीवाधितत्त्वार्थो यत्र सम्यग्गिरिरूप्यते । तनुसंयुतिभोगेषु निर्वेदश्च हितैषिणां ॥ ११ ॥ दानपूजातपःशीलविशेषाश्च विशेषतः । बधमोक्षौ तयोर्द्वैतफले बाधुयुता, पुण्यम् ॥ १२ ॥ घटामटति युक्त्यैव सदेवत्वाधिकल्पना । ह्याता प्राणिदया यत्र मातेव हितकारिणी ॥ १३ ॥ सर्वसगपरित्यागयत्र यात्यग्निः शिव । तत्त्वधर्मकथा सा स्यान्नात्रा धर्मकथापरा ॥ १४ ॥ एव, पृथग्विनिर्दिश्य वक्तव्यविशयलक्षण 'अत परं प्रवक्ष्यामि शोतीशचरित महत् ॥ १५ ॥ अथस्य द्वीपनाथस्य जंबूद्वीपमहीपतेः । लवणांभोधिनीलामो लसद्द्विपलवामस ॥ १६ ॥ बभ्रव्रीलां दधद्राष्ट्रमभीष्ट भरताह्वय । पट्टलदमडित वार्द्धिहिम- वन्मध्यस्थित ॥ १७ ॥ भोगभूतभोगादिदशागश्चकिणामपि । तत्र तीर्थकृता वैश्य सिद्धिधायातिसंक्षयात् ॥ १८ ॥ तस्मात्तन्नाकलोकाच्च वरिय वर्यते बुधै । ऐरावतसम दृढिहान्भिर्यो परिवर्तनात् ॥ १९ ॥ मज्जे तस्य गिरिर्भीति भरतादेविभागकृत् । पूर्वापरायतस्तुंगो यशोरःशिरिविज्वलः ॥ २० ॥

हो, और जो वचनोंको धारण करनेमें तत्पर हो अर्थात् जिसकी स्मरणशक्ति अच्छी हो तथा तोता मिट्टी और हंसके गुण जिसमें हों वह श्रोता गिना जाता है ॥ ८-१ ॥ इसी तरह जिसमें जीव अजीव आदि तत्त्वोंका निरूपण अच्छी तरह किया गया हो, हित चाहनेवालोंकेलिये शरीर संसार और भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाला हो, जिसमें दान पूजा तप और शील आदिके विशेष सब विशेष रीतिसे वर्णन किये गये हों, जीवोंके बंध मोक्ष तथा बंध मोक्षके कारण और फल अलग अलग निरूपण किये गये हों जिसमें अच्छे और बुरे वादियोंकी कल्पना युक्तिसे ही संघटित होती हो, जिसमें माताके समान हित करनेवाली जीवोंकी दयाका निरूपण किया गया हो, और जिसमें जीव सब त- रहका परिग्रह छोड़कर ही मोक्ष जा सकते हैं ऐसा निरूपण किया गया हो वह तत्त्वधर्मकथा कहलाती है इसका दू- सरा नाम धर्मकथा भी है ॥ ११-१४ ॥ इसतरह वक्ता श्रोता और कथाका अलग अलग लक्षण कहकर आगे श्रीशां- तिनाथका विस्तृत चरित्र कहते हैं ॥ १५ ॥

अथानंतर-लवणमहासागरका नीला जल ही जिसके बड़े वस्त्रोंकी शोभा बढ़ा रहा है और जो सब द्वीपोंका स्वा- मी है ऐसे इस जंबूद्वीपमहाराजके मुखकी शोभाको धारण करता हुआ, सब तरहके अभीष्ट देनेवाला, छह खंडोंसे सु- ओमित और हिमवान् पर्वत तथा समुद्रके बीचमें भरत नामका एक क्षेत्र है ॥ १६-१७ ॥ उसमें भोगभूमि, राजाओंके भोग, दस तरहके चक्रवर्तीके भोग तीर्थकरोंका ऐश्वर्य और अघातिया कर्मोंका नाशकर मोक्षकी प्राप्ति भी होती है ॥ १८ ॥ इसलिये ही विद्वान् लोग उसे स्वर्ग लोकसे भी अच्छा बतलाते हैं, उसमें ऐरावत क्षेत्रके समान हानि और बुद्धि होती रहती है ॥ १९ ॥ उस भरतक्षेत्रके बीचमें एक पर्वत है जो कि भरतक्षेत्रके दो बराबर भाग करता है, जो



स्वर्गलोकजयाजातातोषाया बसुधाभियः । पुंजीभूत प्रहासो वा राजते राक्षसावल् ॥ २१ ॥ सफलं सर्वदा वृष्टिमोपरि न जातुषित । शुष्माकमिति-  
 शैलान्-हसतीव स्वतेजसा ॥ २२ ॥ चकलभावे कुटिले जलादये जलविप्रिये । प्रहास्यादिति नद्यो योऽवमीदिति कुण्डल्या ॥ २३ ॥ देवविद्याधरः सेव्यः  
 सदा स्वाश्रयवर्तिभिः । सर्वत्रियसुखस्थानमेव चक्रिणमन्वगात् ॥ २४ ॥ अपाच्यां चक्रवालात् पूः श्रेण्यां रथनुरे । स्वर्गलोकमिव श्योम कुर्वती तत्र  
 केतुभिः ॥ २५ ॥ वेष्टिता रशालेन या पयोधरवृविता । रत्नवेदिकेवेय जवृद्धीपवसुधरा ॥ २६ ॥ वन्दते यत्र धर्मार्थकामा संहर्यणादिव । यस्याः द-  
 रिद्राशब्दस्य नहिरिगार्थनिद्रुतिः ॥ २७ ॥ प्रमाणनयनिक्षेपासुयोगैरन्यदुर्गमैः । पदार्थानां परीक्षेव गोपुर्योगप्रसस्ते ॥ २८ ॥ अशीलभूषणा यत्र न सति  
 कुल्योपितः । बाचो जिनेन्द्रविद्यामिव चारित्रदेक्षिकाः ॥ २९ ॥ ज्वलनादिजटी तस्या पति खगपतिः कृती । मणीनामिव बाराशिगुणिनामाकरोमवत्  
 पूर्व पश्चिम बहुत लबा है बहुत ऊंचा है और यशके समूहके समान उज्ज्वल है ॥ २० ॥ वह पर्वत रजतमय है और ऐसा अच्छा  
 जान पड़ता है मानों स्वर्गलोकको जीत लेनेसे पृथ्वीरूपी स्त्रीको जो संतोष हुआ है और उससे जो उसकी हंसी निकली है  
 वही एक जगह इकट्ठी हो गई हो ॥ २१ ॥ अथवा वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानों 'सुखण' जो वर्षा होती है वह सदा सफल  
 होजाती है परंतु तुम्हारे ऊपरकी वर्षा कभी सफल नहीं होती है' यही कहकर अपने तेजसे सुमेरु पर्वतकी ओर इस रहा हो ॥  
 २२ ॥ उसकी गुफाओंमेंसे जो दो (गंगासिंधु) नदियां निकली थीं उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो इन दोनों नदि-  
 योंका स्वभाव चंचल है, दोनों कुटिल है जलरूप हैं अथवा जड़ हैं और समुद्रकी प्रिया हैं इसलिये ही ग्लानि करके  
 अपने गुफारूपी मुखसे उसने वमन कर दीं ॥ २३ ॥ उसके आश्रय रहनेवाले देव विद्याधर सदा उसकी सेवा  
 किया करते थे तथा वह सब इंद्रियोंको सुख देनेका स्थान था इसलिये वह चक्रवर्तीका भी अनुकरण करता था ॥ २४ ॥  
 उसके पश्चिमकी ओर चक्रवालांत रथनुर नामका मुख्य नगर था वह नगर अपनी ध्वजाओंसे आकाशको भी स्वर्ग  
 लोक बना रहा था ॥ २५ ॥ बादलोंको चुंबन करनेवाले रत्नोंके शालसे घिरी हुई यह जंबूद्वीपकी पृथ्वी ऐसी जान  
 पड़ती थी मानों रत्नोंकी बनी हुई वेदीसे ही घिरी हो ॥ २६ ॥ वहाँपर धर्म, अर्थ, काम ये तीनों ही पुरुषार्थ एक  
 दूसरेको धक्का देकर बढ रहे थे, और दरिद्र शब्द बाहरसे भी कहीं नहीं दिखाई पड़ता था ॥ २७ ॥ जिसप्रकार  
 अन्यमतोंमें अत्यंत कठिन ऐसे प्रमाण, नय निक्षेप और अनुयोगोंके द्वारा पदार्थोंकी परीक्षा अच्छी लगती है उसीप्र-  
 कार वह नगर भी बड़े २ चार दरवाजोंसे बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥ २८ ॥ जिसप्रकार जिनेन्द्र देवकी विद्या-  
 में चारित्रका उपदेश देनेवाले ही वचन होते हैं उसीप्रकार उस नगरमें वे ही कुलीन स्त्रिया थीं जो शीलरूप आशुष्यों-

॥ ३० ॥ प्रतापाद्विषो यस्य मन्त्रुर्वीरस्य पक्ष्वाः । वृष्टयाऽवर्द्धत वल्गवो वा नीत्या सफला प्रजा ॥ ३१ ॥ तेन स्थाने यथाकालं शाख्यो वा सुयो-  
खिता । सामादय सदोपायाः प्राफलन् बहुभोगदा ॥ ३२ ॥ अतीतान् विषयभूयेवान् संख्याभेदानिवोचत । गुणस्थानकृद्दिभ्यां विजित्य स महा-  
नभूत ॥ ३३ ॥ उभयाप्यसंसिद्धित्वाद् दैवपौरुषयोगतः । कोपेदयव्यपेतत्वात्तत्रावापयविमर्शनात् ॥ ३४ ॥ शक्तिसिद्धयनुगामित्वायोगक्षेपसमागमात् ।  
षडगुणानुगुणत्वाच्च तद्राज्यमुदितोदित ॥ ३५ ॥ तिलकांतदिवीत्यासीत्युरं तत्र महीपतिः । चद्रामस्तद्विप्रया नाम्ना सुभेदेति तयो सुता ॥ ३६ ॥ बायु-  
वेगाजितशेषवेगविद्याधराबिषा । स्ववेगविद्याया प्रोद्यद्विशुद्धयोजातजिद्विद्युतिः ॥ ३७ ॥ तस्य त्रिवर्गेनिष्पत्यै सा विषगुणभूषणा । भूता पुरुषकारस्य सदैव-  
से सुशोभित थी ॥ २९ ॥ उस नगरका राजा उवलनजटी विद्याधर था, जिसप्रकार मणियोंका खजाना समुद्र है, उसी  
प्रकार वह विद्याधर मी गुणी लोगोंका खजाना था ॥ ३० ॥ जिसप्रकार सूर्यसे पत्ते सुझा जाते हैं उसीप्रकार उस  
के प्रतापसे सब शत्रु मुझा गये थे तथा जिसप्रकार वर्षासे लतायें जड़नी हैं उसीप्रकार उसकी नीतिसे सब प्रजा फली  
भूत हो रही थी ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार योग्य स्थानमें यथासमयपर बोये हुए चावल बहुत फलते हैं उसीप्रकार उस-  
विद्याधरने जो साम दाम दंड भेद आदि अच्छे उपाय योजना किये थे वे बहुत ही भोगोपभोग देनेवाले फलीभूत हुए  
थे ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार संख्यामें ऊपरकी संख्या अच्छी होती है उसीप्रकार वह पहिले समयमें हुए सब राजाओंमें  
श्रेष्ठ था तथा गुण और स्थान दोनोंकी दृष्टिसे सबको जीतकर सबसे बड़ा हुआ था ॥ ३३ ॥ उस राजाकी सब सिद्धियां  
दैव और पौरुषके आधीन थीं वह क्रोधसे बहुत दूर था, किसी कामके आ जानेपर वह विचार करता था, शक्ति तथा  
सिद्धिके अनुसार चलता था, योग और क्षेमकी प्राप्ति करता रहता था और राजाओंके माने हुए छह गुणोंके अनुसार  
ही वह चलता था इसलिये उसका राज्य बहुत ही बढ गया था ॥ ३४-३५ ॥ अथानंतर-इसी विजयाद्व पर्वतपर  
तिलकांतदिवि नामका एक नगर है उसमें चंद्राम नामका राजा राज्य करता था, उसकी रानीका नाम सुमद्रा था,  
उन दोनोंके वायुवेगा नामकी पुत्री थी । उसने अपने वेगसे सब वेग वाले (जल्दी दौडनेवाले) विद्याधरोंके राजा  
जीत लिये थे तथा उसकी कांति चमकती हुई विजलीकी कांतिको मी जीतती थी ॥ ३६-३७ ॥ जिसप्रकार भाग्य-  
शाली पुरुषके बुद्धि होती है उसीप्रकार सब गुणोंसे विभूषित वह वायुवेगा उस उवलनजटीके धर्म अर्थ काम इन  
तीनोंके उत्पन्न करनेवाली हुई थी । भावार्थ-वह उवलनजटीको ब्याही गई थी ॥ ३८ ॥ सब लोग पडिवाके चंद्रमाकी  
रेखाके समान उसकी स्तुति करते थे और वह उवलनजटी अपने पौरुषसे (वेगमें उसे जीतलेनेसे) दूसरी पृथ्वीके

स्वेव येमुषी ॥ ३८ ॥ प्रतिपच्चद्रेलेव मा सर्वजनमस्तुता । द्वितीयेव धराक्ता भोग्या तेन स्वयोरुपाय ॥ ३९ ॥ लक्ष्मी परिकरस्तस्या व्यधापि वि-  
 विधदिका । तत्प्रेमप्रेरणत्वेन वा लभ्य न करोति किं ॥ ४० ॥ कैलीन्यादुदुरक्तत्वादभूत्सकपति सती । भूपतेश्चैकमार्थत्व प्रेमाधिक्याजगुर्जना ॥ ४१ ॥  
 रूपादिगुणसंपत्तिस्तस्या किं कथ्यते पृथक् । तस्य चेच्छकवच्छब्दस्या तस्या प्रीतिरमानुषी ॥ ४२ ॥ दयावबोधयोर्भोक्ष इव सुसुखयोरभूत् । अर्ककीर्तिं  
 स्वकीयाभाप्रभासितदिगंतरः ॥ ४३ ॥ नीतिविक्रमयोर्लक्ष्मीरिव सर्वमनोहरा ! स्वयंप्रभाभिधानासीत्यमेव विधुना सह ॥ ४४ ॥ मुखेनाभोजमक्षिभ्या-  
 मुत्पलं मृणुदण्डं । त्विषा कात्या विधुं जित्वा वभौ साश्रूयताकया ॥ ४५ ॥ उत्पन्नं यौवन तस्यां लतिकाया प्रसूनवत् । खगकामिपुण्येषु ज्वरश्रोत्या-  
 पितस्तया ॥ ४६ ॥ आपादुगंडभाभासिवक्त्रलोलविलोचना । मध्यागकादग्निर्मभूतसंभ्रात्येव स्वयंप्रभा ॥ ४७ ॥ तन्व्या रोमावली तन्वी हरिनीलश्विर्वर्ण-  
 समान तल्लीन होकर उसका उपभोग करता था ॥ ३९ ॥ अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाली लक्ष्मी ही उसकी सं-  
 बंधिनी थी, उसके प्रेमकी प्रेरणासे ज्वलनजटीको भी उससे बहुत प्रेम था ॥ ४० ॥ बड़े कुलमें उत्पन्न होनेसे और  
 पतिसे प्रेम करनेसे उस पतिव्रताके एक पतिका व्रत था और अधिक प्रेम होनेसे राजाके भी एक पत्नीका व्रत था यह  
 बात सब लोग कहते थे ॥ ४१ ॥ उसकी रूप आदि गुणोंकी संपदाओंका वर्णन अलग क्या करना चाहिये, जिस-  
 प्रकार शचीमें इंद्रका प्रेम होता है उसीप्रकार उस ज्वलनजटीका उस वायुवेगमें अमानुषिक प्रेम था ॥ ४२ ॥ जिस-  
 प्रकार दया और ज्ञानसे मोक्ष होता है उसीप्रकार उन दोनोंके अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ था, उसने अपनी कीर्ति-  
 की कातिसे सब दिशाओंके समूह प्रकाशित कर दिये थे ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार नीति और पराक्रमके लक्ष्मी होती है  
 उसीप्रकार उन दोनोंके स्वयंप्रभा नामकी बड़ी सुंदर पुत्री थी, जिसप्रकार चंद्रमाके साथ प्रभा होती है उसीप्रकार  
 अर्ककीर्तिके साथ वह स्वयंप्रभा भी सुशोभित होती थी ॥ ४४ ॥ वह स्वयंप्रभा मुखसे कमलको जीतती थी, नेत्रोंसे  
 कमलके दलको जीतती थी, प्रभासे मणियोंके दर्पणको जीतती थी और कांतिसे चंद्रमाको जीतती थी इस तरह वह  
 मोहरूपी पताकाओंसे बहुत ही सुशोभित होती थी ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार लतामें फूल होते हैं उसीप्रकार उसमें यौवन  
 उत्पन्न हुआ था और उसने विद्याधररूपी कामी पुष्पोंमें उकर उत्पन्न कर दिया था ॥ ४६ ॥ उसका मुख कुछ पीले  
 सफेद कपोलोंसे सुशोभित था, नेत्र उसके चंचल थे और कमर इतनी पतली थी कि लोगोंको भ्रम हो जाता था ॥  
 ४७ ॥ उस सुंदरीकी रोमराजी पतली थी और काली नीली ( इंद्रनीलमणिके समान ) ऐसी अच्छी जान पड़ती थी  
 मानों निकलकर ऊंचे कठिन और घने ऐसे दोनों कुबोपर ही चढ़ना चाहती हो ॥ ४८ ॥ यद्यपि कामदेवने उसे स्वयं

भात् । अरुक्षुमिषोषुत्वा तुंगपीनवनस्तनौ ॥ ४८ ॥ अनालीढमनोजातिं व्यक्ततद्विक्रियेव सा । संपत्तयौवनैवेव जनानामग्रग्रह ॥ ४९ ॥ अथा-  
न्येषुजगमनासिनदनकारणैः । स्थितौ मनोहरोयाने ज्ञात्वा यतिनिवेदकात् ॥ ५० ॥ चतुरंगबलोपेत सपुत्रोत्त पुराभूत । गत्वाभिबन्ध सद्धर्मभ्रमणानंतरं  
परं ॥ ५१ ॥ सम्यग्दर्शनमादाय दानशीलादि कारणात् । प्रणम्य चारणौ भक्त्या प्रत्येव्य प्राविशदुरं ॥ ५२ ॥ स्वयंप्रभापि सद्धर्मं तत्रादायैकदा मुदा ।  
पर्वोपवासप्रसन्नानतनुरभ्यर्च्यै बार्हते ॥ ५३ ॥ तत्प्रादपकजलेष्वपवित्रा पापहा स्रज । चित्रा पित्रेऽर्पित द्वाभ्या हस्ताभ्या विनयानता ॥ ५४ ॥ तामा-  
दाय महीनाथो भक्त्यापददत्तं स्वयंप्रभा । उपवासपददत्तं स्वयंप्रभा । उपवासपददत्तं स्वयंप्रभा । उपवासपददत्तं स्वयंप्रभा । उपवासपददत्तं स्वयंप्रभा ।  
न्येव वितर्कयन् ॥ ५५ ॥ मन्त्रिवर्गं समाहूय प्रस्तुतार्थं व्यवेदयत् । धृत्वा तत्सुश्रुत ग्राह परीक्षयात्मनि निर्धित ॥ ५६ ॥ अमुष्मिन्नुत्तरेश्वर्यामलका-

नही किया था तथापि वह कामदेवकी विक्रियाके समान ही जान पडती थी और प्राप्त हुये यौवनसे ही लोगोंको कामकी दशा बतलाती थी ॥ ४९ ॥

अथानंतर—किसी एक दिन मनोहर नामके उद्यानमें जगनंदन और अभिनंदन नामके दो चारण मुनि पधारे, मालीने आकर राजाको सूचना दी, खर पाकर राजा ज्वलनजटी चारों तरहकी सेना लेकर पुत्र और अंतःपुरके साथ मुनिराजके समीप गया मुनिराजकी बदनाकी, धर्मका स्वरूप सुना, तदनंतर आदरपूर्वक सम्यग्दर्शन स्वीकार किया दान देना तथा शील पालन करना स्वीकार किया और भक्तिपूर्वक मुनिराजके चरण कमलोंको नमस्कार कर लौटकर अपने नगरमें आया ॥ ५०-५२ ॥ वहांपर स्वयंप्रभाने भी सद्धर्म पालन करना स्वीकार किया । किसी एक दिन उसने बड़ी प्रसन्नतासे उपवास किया था जिमसे उसका शरीर कुछ शिथिल हो गया था, ऐसी ही अवस्थामें उसने अरहंतदेवकी पूजाकी थी तथा भगवानके चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र हुई तथा पापोंको नाश करनेवाली विचित्र माला लेकर विनयसे कुछ झुककर दोनों हाथोंसे पित्तके लिये समर्पणकी ॥ ५३-५४ ॥ राजाने भवितपूर्वक वह माला ली और उपवाससे शिथिल हुई उस स्वयंप्रभाको देखकर पारणा करनेके लिये उसे विदा किया ॥ ५५ ॥ तदनंतर वह अपने मनमें ही सोचने लगा कि यह सब शरीरसे सुंदरी मेरी प्यारी पुत्री अग पूर्ण यौवनवती होगई है अब यह किसे देनी चाहिये ॥ ५६ ॥ यही सोच समझकर उसने सब मंत्रियोंको बुलाया और अपने मनको बात कही । यह सुनकर सुश्रुत नामका मंत्री परीक्षाकर और अपने मनमें निश्चयकर कहने लगा कि इसी विजयाद्वै पर्वतकी उत्तर श्रेणीके अलकापुर नगरमें राजा मयूरग्रीव राज्य करता है उसकी रानीका नाम नीलांजना है उन दोनोंके अश्वग्रीव

ह्यापुरेबिदु । मयूरीवचनस्य प्रिया नीलंजना तयो ॥ ५८ ॥ अश्वप्रीवोप्रियो नीलरथ कठातनीलसु—ब्राह्म्यतास्त्रय सर्वेष्वभूत्पुत्रं च स्मृत्य ॥ ५९ ॥  
 अश्वप्रीवस्य कनकचित्रादेवी सुतास्तयो । ते प्रीवागदच्छातरा रत्नरथादिभि ॥ ६० ॥ यताति पंच मय्यस्य हरिस्मृत्य श्रुतांबुधि । शतविंदुष्व नैमि-  
 सिक्कोष्ठांगनिपुणौ महान् ॥ ६१ ॥ इति सपूर्णराज्याय खगश्रेणोद्देशिने । अश्वप्रीवाय दातव्या कन्येत्येतद्विचारयन् ॥ ६२ ॥ अस्त्येव सुदुताह्यता सर्व-  
 मिलवनीपति । इदं बहुश्रुतोबोचदुत्तरं खमनोगत ॥ ६३ ॥ स्वाभिजात्यमरोगत्व वय शील भूतं वपुः । लक्ष्मी पक्ष परिवारो वरे नव गुणाः सृता  
 ॥ ६४ ॥ अश्वप्रीये त एतेपि संति किंतु वयोक्षिक । तस्मात्कोपि वरोन्योऽस्तु सवयास्तद्व्युगुणान्वितः ॥ ६५ ॥ राजा सिंहरथ ख्यात पुरे गगनवल्लभे ।  
 परः पद्मरथो मेघपुरे चित्रपुराधिराट् ॥ ६६ ॥ अरिजयाह्यक्षिपुरे खगेशो ललितागद । कनकादिरथो विद्याकुशलोऽश्वपुरेश्वरः ॥ ६७ ॥ महारथपुरे  
 विश्वदग्गावीशो घनजय । कन्यैवैकतमायेय दातव्येति विनिश्चित ॥ ६८ ॥ अबधाय वचस्तस्य विचार्यं श्रुतसागर । स्यतिचक्षुरिमा वाच व्याजहार

नीलरथ, नीलकंठ सुवज्र आदि पांच पुत्र हैं ॥ ५७-५९ ॥ उनमें अश्वप्रीव सबसे बड़ा है उसके कनकचित्रा देवीसे  
 प्रीवांगद, रत्नचूर, रत्नरथ आदि पांचसौ पुत्र हैं तथा नैमित्तिक कोष्ठांग आदि विद्याओंमें सबसे चतुर ऐसे हरिस्मृत्य  
 श्रुतांबुधि और शतविंदु आदि मंत्री हैं ॥ ६०-६१ ॥ इसतरह अश्वप्रीवका राज्य पूर्ण है और वह दोनों श्रेणियोंका  
 स्वामी है इसलिये विचारकर कन्या उसीको देनी चाहिये ॥ ६२ ॥ इसतरह सुश्रुतके बाद बहुश्रुत मंत्री अपने मनमें  
 निश्चय किया हुआ उत्तर देने लगा कि सुश्रुतने कहा है वह सब ठीक है ॥ ६३ ॥ अपनी जातिका होना, नीरोग  
 होना, वय, ( उम्र ) शील, शास्त्रोंका जानना, शरीर, लक्ष्मी, पक्ष और परिवार ये वरके नां गुण माने गये हैं ॥ ६४ ॥  
 अश्वप्रीवमें ये सब हैं परंतु वह आयुमें बहुत बड़ा है, इसलिये जिसमें वरके गुण हों और वरावरकी आयुका हो ऐसा  
 कोई दूसरा वर ढूंढना चाहिये ॥ ६५ ॥ गगनवल्लभ नगरका राजा सिंहरथ प्रसिद्ध है, मेघपुरका राजा पद्मरथ है,  
 चित्रपुरका स्वामी अरिजय है, त्रिपुरमें विद्याधरोंका स्वामी ललितांगद है, अनेक विद्याओंमें निपुण और अश्वपुर नग-  
 रका स्वामी राजा कनकरथ है और महारथपुरमें सब विद्याधरोंका स्वामी राजा घनंजय है इनमेंसे निश्चयकर किसी  
 एकको यह कन्या देनी चाहिये ॥ ६६-६८ ॥ बहुश्रुतकी कहीं हुई इन सब बातोंका निश्चयकर और विचारकर जिस-  
 के स्मरण ही आंख है अर्थात् स्मरण शक्तिसे काम लेनेवाला श्रुतसागर नामका मंत्री नीचे लिखे हुए मनोहर वचन  
 कहने लगा ॥ ६९ ॥ कि यदि जो कुल, आरोग्यता, वय, और रूप आदि गुणोंसे सुशोभित है उसीके लिये वह कन्या  
 देना चाहते हो तो मैं भी कुछ कहता हूँ उसे भी थोड़ा सुनिये ॥ ७० ॥ इसी विजयार्दकी उत्तरश्रेणीमें एक सुरेंद्र-

मनोहरा ॥ ६९ ॥ कुलारोग्यबयोरुपाधुपेताय यदीच्यते । दत्तुं कन्या मया किंचिदुच्यते श्रूयता मनाक् ॥ ७० ॥ पुनः दुर्दैवकातारमुदकश्रेण्यां तदीश्वर ।  
मेघवाहननामास्य श्रियाभुन्मेघमालिनी ॥ ७१ ॥ तयोर्विद्युत्प्रभ स्रुज्योतिर्मालाम्ना सुता । स्वगाधीशो ननदाभ्यामिवायेन प्रिया च सः ॥ ७२ ॥ सि-  
द्धकृतमगात्स्तोतुं कदाचिन्मेघवाहनः । तत्र दृष्ट्वावधिज्ञान वरधर्मोत्पचारण ॥ ७३ ॥ वदित्वा धर्ममाकर्ण्य स्वसूनो प्राक्तन भव । पप्रच्छ भ्यु विद्याभ-  
त्प्रणिधायैति सोब्रवीत् ॥ ७४ ॥ द्वीपेस्मिन् प्राग्विदेहेस्ति विषयो वत्सकावती । पुरी प्रभाकरी राजा नन्दन सुंदराकृति ॥ ७५ ॥ स्रुजिब्रज्यभद्रोस्य  
जयसेनोदरोदितः । सोम्यदा फलित चूत वने वीक्ष्य मनोहरे ॥ ७६ ॥ विफल तत्समुद्भूतवैराग्य-पिहिताश्रवात् । गुरो सहस्रैर्भूपार्थधनुर्भि संयमं  
ययौ ॥ ७७ ॥ प्राते माहेन्द्रवत्येभूद्विमाने चक्रकाङ्क्षये । सप्ताब्धिजीवितो दिव्यभोगस्त आन्वभूचिरं ॥ ७८ ॥ तत्र प्रच्युत्य स्रुजतेऽजायतायं प्रयाति च  
निर्वाणमिति सत्तोतुं मयायातेन तच्छ्रुत ॥ ७९ ॥ तस्मै वरगुणं सर्वैः पूर्णायैयं प्रवीयता । ज्योतिर्मालां च गृह्णीमं सपुष्पासंकीर्तये ॥ ८० ॥ इति

कांतार नामका नगर हे उसमें मेघवाहन नामका राजा राज्य करता है, उसकी रानीका नाम मेघमालिनी है, उन दोनोंके विद्युत्प्रभ नामका पुत्र है और ज्योतिर्माला नामकी निर्मल कन्या है, आय (आमदनी) और बुद्धिके समान उन दोनोंसे वह विद्याधरोंका स्वामी बहुत ही प्रमत्त रहता है ॥ ७१-७२ ॥ किसी एक दिन वह मेघवाहन सिद्ध-  
कृत ईत्यालयमें दर्शन करनेके लिये गया, वहाँपर उमने वरधर्म नामके अवधिज्ञानी चारण मुनिके दर्शन किये ॥ ७३ ॥  
उनकी बदनाकी, धर्मका स्वरूप सुना और अपने पुत्रके पहिले भव पूछे, उत्तरमें मुनिराजने कहा कि विद्याधर ! चित्त  
लगाकर सुन ॥ ७४ ॥ इसी जबूद्धीयके पूर्व विदेह क्षेत्रमें वत्सकावती नामका देश है उसमें प्रभाकरी नामकी नगरी  
है उसमें अत्यंत मनोहर नंदन नामका राजा राज्य करता था, उसके जयसेना नामकी रानी थी, उसके उदरसे उत्पन्न  
हुआ विजयभद्र नामका पुत्र था । उस विजयभद्रने किसी एक दिन मनोहर वनमें एक फला हुआ उसीसमय उसने चार हजार  
था, थोड़े दिन बाद उसी वृक्षको फल रहित देखा जिससे उसे बहुत वैराग्य हुआ और उसीसमय उसने चार हजार  
राजाओंके साथ साथ पिहितास्रव गुरुसे दीक्षा धारण कर ली ॥ ७५-७७ ॥ अंतमें चौथे माहेन्द्र स्वर्गके चक्रक नाम-  
के विमानमें देव हुआ, वहाँपर उमने सातसागरकी आयु पाई और बहुत दिन तक दिव्य भोगोंका अनुभव किया ॥  
७८ ॥ वहाँसे चयकर यह तेरा पुत्र हुआ है और इसी भवसे मुक्त होगा । मैं भी वहीं दर्शन करनेके लिये गया था  
इसलिये वहीं मैंने ये सब बातें सुनी हैं ॥ ७९ ॥ इसलिये वरके सब गुणोंसे सुशोभित ऐसे उस विद्युत्प्रभको यह क-  
न्या देनी चाहिये और पुण्यवंती ज्योतिर्माला नामकी उसीकी बहिन अपने राजपुत्र अर्ककीर्तिकलिये ले

तद्वचन धृत्वा सुमतिमैतिसप्तमः । कन्यां संप्रार्थयतेमीश्वराधीशः पृषक् पृथक् ॥ ८१ ॥ तस्मात्मास्मै प्रदत्तव्या बहुवरं भवेत्ततः । स्वयवरविधि-  
श्रेयानियुक्त्या विराम स ॥ ८२ ॥ तदेवानुमतं सर्वस्ततः संपूज्य मन्त्रिण । विसर्ज्य खेचराधीशः सन्निध्नोऽनुसङ्गः ॥ ८३ ॥ स्वयंप्रभाया ऋधेतोब-  
हो भवतेति त । अष्टच्छस्तः पुराणविधीष्य प्रत्युवाच त ॥ ८४ ॥ गुरुः प्रथमचक्रेशः प्राक्पुराणनिरूपणे । आदिकेशवसद्वन्द्वमिलवोचत्कथंभारं ॥ ८५ ॥  
द्वीपेस्मिन् पुष्कलावल्यां विषये प्राग्विदेहजे । समीपे पुंडरीक्षण्या नगर्या मधुके वने ॥ ८६ ॥ पुरूरवा वनाधीशो मार्गभ्रष्टस्य दर्शनात् । मुने मागर-  
सेनस्य पथः सन्निध्नपुण्यक ॥ ८७ ॥ मथर्मासनिवृत्तेश्च कृतसौभाग्यसंभव । ततः प्रच्युत्य तेऽनंतसेनायाश्च झुतोऽभवत् ॥ ८८ ॥ मरीचिरेषदुर्मार्गदिशाना-  
नित्तिरिः । भ्रात्राः सप्ताचक्रैस्मिन् सुरम्यविषये पुरं ॥ ८९ ॥ पौदनाक्ष्यः पतिस्तस्य प्रजापतिमहानृपः । सतनूजो युगावल्यां त्रिष्टोशस्य भविष्यति

लेनी चाहिये ॥ ८० ॥ इसतरह श्रुतसागरकी बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाला सुमति नामका मंत्री कहने लगा कि ये सब विद्याधर अलग अलग इस कन्याको मांग रहे हैं इसलिये इसे मी देना ठीक नहीं है क्योंकि इसे देनेसे अनेकोंके साथ बर बांधना पड़ेगा इसकी अपेक्षा स्वयवर कर देना सबसे अच्छा है इतनी बात कहकर वह चुप हो गया ॥ ८१-८२ ॥ सुमतिकी यह सलाह सबको पसंद आई, उस विद्याधरोंके स्वामीने उन मंत्रियोंको आदर सत्कारकर वि-  
दा किया तथा सन्निध्नोऽनुसङ्ग नामके निमित्तज्ञानीसे पूछा कि इस स्वयंप्रभाका पति कौन होनेवाला है ? यह सुनकर पुराणोंके अर्थको जाननेवाला वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि भगवान् शृषभदेवने प्रथम चक्रवर्ती भरतसे जब पहिले पुराणोंका निरूपण किया था तब पहिले नारायणके संबंधकी एक कथा इस तरह कही थी ॥ ८३-८५ ॥ कि इसी जंबू-  
द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके पुंडरीक्षणी नगरीके समीपवाले मधु नामके वनमें उस वनका स्वामी पुरूरवा नामका मील रहता था, किसी एक दिन उसे मार्ग भूलनेसे, घूमते हुए सागरसेन मुनिके दर्शन हुए, मुनि-  
राजसे उसने मधुमांसका त्यागकर पुण्य उपार्जन किया, मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ और वहांसे च्युत होकर तेरे ( भरतके ) अनंतसेना रानीसे मरीचि नामका पुत्र हुआ है ॥ ८६-८८ ॥ यह मरीचि निरंतर छोटे मार्गके उपदेश देनेमें तल्लीन रहता है इस-  
लिये यह संसारमें परिभ्रमणकर सुरम्य देशके पौदनपुर नगरके महाराजा प्रजापतिके उनकी सुगावती नामकी रानीसे त्रिष्ट नामका पुत्र होगा ॥ ८९-९० ॥ उन्हीं महाराज प्रजापतिके उनकी भद्रा रानीसे विजय नामका बड़ा पुत्र होगा, ये दोनों ही भाई भैयांसनाथ तीर्थकरके समयमें होंगे तथा अश्वघ्रीव प्रतिनारायणको मारकर पहिले बलभद्र नारायण होंगे और तीन खंडके राज्यके सुख भोगेंगे । इनमेंसे त्रिष्ट संसारमें परिभ्रमणकर अंतिम तीर्थंकर होगा ॥ ९१-९२ ॥

॥ १० ॥ अग्रजोऽयैव भद्राया विजयो भविता सुतः । तावैतो श्रेयसस्तीर्थे हृत्वाश्वप्रीतिविद्विषं ॥ ९१ ॥ त्रिंशदराज्यभोगोऽसौ प्रथमौ बलकेयवौ । त्रि-  
ष्टु संस्तौ श्रांत्वा भावी तीर्थकरोत्सिमः ॥ ९२ ॥ भवतोऽपि नमे कच्छमुतस्यान्वयवर्धनवत् । वशजेनास्ति संकंपस्तेन बाहुबलीभिदुः ॥ ९३ ॥ त्रिष्टु-  
ष्टाय प्रदातव्या त्रिलङ्कश्रीमुखेक्षिने । अस्तु तस्य मनोदन्त्रां कन्या कल्याणभामिनी ॥ ९४ ॥ तेनैव भवतो भाविबिधविद्याधरेभिता । निश्चित्येतदनुष्ठेयमा-  
दित्तीर्थकरोदित ॥ ९५ ॥ इति तद्वचनं चित्ते विधाय तमसौ मुदा । नैमित्तिक समापूज्य रथनूपुरभूषति ॥ ९६ ॥ सुदुतमिदुनामानं मुखेलोपायनान्वितं ।  
प्रजापतिमहाराजं प्रति संप्राहिणोत्तदा ॥ ९७ ॥ स्वयंप्रभापतिर्भावी त्रिष्टुष्ट इति भूषति । नैमित्तिकाद्विद्वित्वैतज्यगुप्तासुरैव स ॥ ९८ ॥ स्रजराधिपदूतं  
स्नाद्वतीर्णं महोत्सवः । प्रतिष्टुष्ट ससन्मान वने पुष्पकरंदके ॥ ९९ ॥ स दूतो राजगेहं स्व सप्रविश्य समागृहे । निजासने समासीन प्राश्रुतं सम्बिवा-  
पितं ॥ १०० ॥ विलोक्य रागाद्भूयेन स्वानुराग समर्पित । प्राश्रुतेनैव गुष्टास्स इति दूत प्रतोषयन् ॥ १०१ ॥ श्रीत्रिष्टुष्टः कुमारानां वरिष्ठः कन्याया-  
आप मी कच्छके पुत्र नमिके वंशमें उत्पन्न हुए हैं इसलिये उस वंशमें उत्पन्न हुए लोगोंसे भुजाओंसे बलवानोंमें श्रेष्ठ ऐसे  
आपका संबंध है ही ॥ ९३ ॥ इसलिये तीन खंडकी लक्ष्मी और मुखके स्वामी त्रिष्टुष्टकेलिये यह कन्या देनी चाहिये, यह  
कल्याण करनेवाली कन्या उसीके मनको हरण करनेवाली हो ॥ ९४ ॥ त्रिष्टुष्टको कन्या देनेसे आगे आप मी मंत्र विद्याधरोंके  
स्वामी हो जायेंगे. इसलिये इसका निश्चय कर इसकामको इसीप्रकार करना चाहिये क्योंकि वह सब श्रीष्टुष्टभदेवका कहा हुआ  
है ॥ ९५ ॥ उस निमित्त ज्ञानीके वचन सुनकर वह रथनूपुरका राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और उस निमित्तज्ञानीको आदर  
सत्कारकर विदा किया ॥ ९६ ॥ तदनंतर उसने उसीममय इंद्रु नामके एक अच्छे दूतको बुलाया उसे लिखा पत्र और  
मेढ देकर महाराज प्रजापतिके समीप भेजा ॥ ९७ ॥ महाराज प्रजापति जयगुप्त नामके निमित्तज्ञानीसे पहिले ही  
जान चुके थे कि यह त्रिष्टुष्ट स्वयंप्रभाका पति होनेवाला है ॥ ९८ ॥ महाराज उस समय कुछ उत्सव करते हुये पुष्प-  
करंदक नामके वनमें थे वहीं वह दूत आकाशसे उतगा और महाराजने उसे बड़े आदर सत्कारसे विठाय ॥ ९९ ॥  
जब महाराज अपने राजभवन जाकर राजसभामें सिंहासनपर जा विराजमान हुये तब दूतने लाई हुई भेंट समर्पण की,  
वह भेंट मंत्रीके द्वारा महाराजको दी गई महाराजने उसे देखकर और प्रसन्न होकर अपने रूपसे ही ( आकृतिसे )  
अपना अनुराग समर्पण किया तथा दूतको संतुष्ट करते हुये बोले कि हम इस भेंटसे संतुष्ट नहीं हुए हैं यह त्रिष्टुष्ट  
सब राजकुमारोंमें श्रेष्ठ है इसलिये इसे लक्ष्मीके समान अपनी यह स्वयंप्रभा कन्या देकर सुशोभित कीजिये ॥ १००-  
१०२ ॥ महाराजकी यह बात सुनकर दूतको दूनी प्रसन्नता हुई और बात सुनते ही उसने हाथ जोड़कर मस्तक



नया । स्वयंप्रभाल्पया लक्ष्म्येवायालक्रियतामिति ॥ १०२ ॥ श्रुत्वा यथाऽर्थमप्याभिर्भूतद्विगुणसंपदः । वारिकं च समाकर्ण्य भुजाप्राक्रातमस्तकः ॥ १०३ ॥ स्वयमेव कगाधीशः स्वआमातुर्महोदय । इम विधातुमन्य च संचितसाय के बय ॥ १०४ ॥ इति दूत तदायातकार्यसिद्धया प्रसाभयन् । प्रपूज्य प्रति-  
दूत च प्रदायाशु व्यसर्जयत् ॥ १०५ ॥ स दूत सरवरं गत्वा रथनूपुरनायकं । प्राप्य प्रणम्य कल्याणकार्यसिद्धिं व्यजिज्ञपत् ॥ १०६ ॥ तच्छ्रुत्वा लेख-  
राधीश प्रप्रमोदप्रचोदित । न कालहरण कार्यमिति कन्यासमन्वित ॥ १०७ ॥ महाविभूत्या संप्राप्य नगरं पौदनाह्वयं । उद्बद्धतोरण दत्तचदनच्छदमु-  
त्सुकं ॥ १०८ ॥ केतुमालाचलरोभिर्गण्डादगतिसम्प्रभात् । प्रतियात स्वमरण्या महीश प्राविशामुदा ॥ १०९ ॥ प्रविश्य स्वोचितस्थाने तेनैव विनिवेशितः ।  
प्रासप्रार्थूणाचारप्रसन्नहृदयाननः ॥ ११० ॥ विवाहोचितविन्यासैस्तर्पितक्षोणभूतलः । स्वयंप्रभा प्रभां वाग्या त्रिपुशाय प्रदाय ता ॥ १११ ॥ सिंहाहिनि-  
द्विद्वाहिन्यौ विधे साधयितुं वदौ । ते तत्र सर्वे सभूय व्यगाहंत सुखाशु ॥ ११२ ॥ इतोद्योगीवचक्रेषो विनाशयिषुन पुरे । उत्पतस्त्रिविधः प्रोक्तः सब  
नवाया और कहा कि हम तो कौन चीज हैं विद्याधरों का स्वामी स्वयं जमाई के इम उत्सव करनेकेलिये चिंता कर रहा  
है ॥ १०३-१०४ ॥ इस तरह महागजने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये आये हुये दूतको प्रमत्त किया, उसका आदर  
संस्कार किया और साथमें अपना एक दूत देकर उसे शीघ्र ही विदा किया ॥ १०५ ॥ वह दूत भी शीघ्र ही जाकर रथ-  
नूपुर पहुंचा अपने स्वामीके पास पहुंचकर नमस्कार किया और कल्याण करनेवाले कार्यके भिन्न होनेकी सूचना दी  
॥ १०६ ॥ वह विद्याधरोंका स्वामी यह बात सुनकर बहुत ही प्रमत्त हुआ और कहने लगा कि अब इसमें देर करना  
ठीक नहीं है, वस वह कन्यासहित बड़ी विभूतिके साथ पौदनपुर नगरमें जा पहुंचा, उस नगरमें सब जगह तोरण  
बंधे हुये थे और फहराती हुई ध्वजाओंसे ऐसा जान पड़ता था मानों बड़े संप्रभुके साथ अपने बड़े संप्रभुके से नगरमें प्रवेश कराया  
हो । महाराज प्रजापति अपनी विभूतिके साथ उसे लेनेकेलिये सामने आये और बड़ी प्रसन्नतासे नगरमें प्रवेश कराया  
॥ १०७-१०९ ॥ नगरमें जाकर योग्य स्थानपर डेरे दिये, महाराज प्रजापतिने ही ठहरने आदिको प्रबंध किया था ।  
वह ज्वलनजटी सबसे मिला भेटा और अपना मुंह तथा हृदय बहुत ही प्रसन्न किया ॥ ११० ॥ विवाहके योग्य सब  
मामग्री इकट्ठी की, दान देकर सब पृथ्वीको संतुष्ट किया, त्रिपुष्टके लिये दूसरी प्रभाके समान स्वयंप्रभा कन्या दी  
और सिंहाहिनी गरुडवाहिनी दो विद्यायें भिन्न करनेके लिये दीं । इसतरह वे सब मिलकर वहींपर सुखरूपी समुद्रमें  
क्रीडा करते थे ॥ १११-११२ ॥ श्वर अश्वग्रीव प्रतिनारायणके नगरमें विनाशको सूचित करनेवाला तीन तरहका  
उपद्रव हुआ ॥ ११३ ॥ जिसप्रकार भोगभूमिमें पत्न्यका आठवां भाग बाकी रहजानेपर सूर्य चंद्रमा आदि नई चीजें



स्वागतिं पुनं निवेगमुमेतौ वृत् । इष्ट्वा यगो धेनं दत्तं पाशुनं विनयात्रिभौ ॥ २५ ॥ अथ ग्रीवेन देवेन ममयासापितोऽहः । रथावतीडिम्येति तस्या-  
 वातु भवति ॥ १२६ ॥ आवा त्वामागतो नेतुमाशानागोप्य मत्तह । आगतत्वा तग्युर्गन्धयु मोरि चोपमान् ॥ १२७ ॥ शशमीनां स्मरणीनाः क्रौंच-  
 प्रीवास्तथापरे । दृष्ट्वा क्रमेलकश्रीना नापुनौत स पश्यता ॥ १२८ ॥ इराष्ट्र तो न किं युक्तमयं तु यगेभ्यः । त्विन्धुपममन्यच्चर्वं तं भवत्यसपातिनं  
 ॥ १२९ ॥ इवागुतु स्वगोनु पक्षपती न वांयेने । नतुमेव्यामि तं दृष्टुमिति प्रयत्नवीर्यं तो ॥ १३० ॥ दग्दीदि न वक्त्वममगु चमरातां । देष्टुऽपि  
 न स्थितिभूमाक पुन स्थानुमर्दति ॥ १३१ ॥ इति श्रत्वा बजो राजा तगोर्गन्धं वर्तिषु । नीलोर्गं किं पट्टादीना कारक कारकाजानी ॥ १३२ ॥  
 तस्य किं प्रेक्षमित्युक्तो तं सक्तोपावरोन्ता । कन्यारत्नमिदं चक्रिष्येयं किं तेऽयं जीर्गति ॥ १३३ ॥ रथनपुराजालो ज्वलनादिजटी कथ । प्रजापतिज

ममाचार कहला भजे, आज्ञा पाकर राजाके दर्शन किये, बड़ी विनयसे जो यथायोग्य भेट लाये थे वह समर्पण की  
 और कहने लगे कि महाराज अश्वग्रीवने आपके लिये आज्ञा दी है कि "मैं रथावर्त नामके पर्वतपर आता हूं आप भी  
 वहां आना" अर्थात् वे उस पर्वतपर पहुंचे होंगे आपको भी चलना चाहिये, हम दोनों आपको लेनेके लिये ही आए  
 हैं इसलिये उनकी आज्ञाको मस्तकपर रखकर आपको चलना चाहिये, यह कहकर वे दोनों ही चुप होगये तब क्रो-  
 धित होकर त्रिपुष्टने कहा कि अश्वग्रीव ( बोंडेकी गर्दन ) खग्रीव, ( गधेकी गर्दन ) कौंचग्रीव ( कौंच पक्षीकी  
 गर्दन ) तथा क्रमेलकग्रीव ( ऊंटकी गर्दन ) ये सब देखी हैं उसमें कोई अपूर्व वाण नहीं है जो देखी जाय ॥ १२९  
 और आपका पक्षपाती है इसलिये इसप्रकार उसका अपमान करना आपको उचित नहीं है । यह सुनकर त्रिपुष्टने  
 फिर कहा कि वह विद्याघा हमारा पक्षपाती हो वा न हां उसके आनेपर भी मैं उससे मिलनेके लिये नहीं जाऊंगा ॥  
 १२९-१३० ॥ त्रिपुष्टकी यह बात सुनकर दूतोंने फिर कहा कि अहंकारमें आकर ऐसा नहीं कहना चाहिये उप चक्र-  
 वर्तीके देखे विना शरीरमें भी स्थिति नहीं हो सकती फिर भला पृथ्वीपर तो रह ही कौन सकता है ॥ ३१ ॥ उन  
 दूतोंकी यह बात सुनकर त्रिपुष्टने कहा कि वह चक्रवर्ती है चक्र फिराता है वा फिरा सकता है सो क्या घड़े आदि  
 मिट्टीके वर्तन बनानेवाला कुंभार है" और जब वह कुंभार है तब उसे क्या मेजना चाहिये इसके उत्तरमें दूतोंने बड़े  
 क्रोधसे कहा कि "यह कन्यारत्न चक्रवर्तीके उपभोग करने योग्य है सो आज तेरे यहां जीर्ण हो रही है ॥ १३२-  
 १३३ ॥ चक्रवर्तीसे बहुत करानेपर यह रथनपुरका राजा ज्वलनजटी और तेरा वाप प्रजापति ये दोनों ही अपना नाम

नामापि संघने चक्रिणि द्विधि ॥ १३४ ॥ इति सद्यस्ततो द्रुतौ निर्यत्य द्रुतगमिनौ । प्राप्याश्वमेधमानस्य प्रोचतुस्तद्विजृम्भणं ॥ १३५ ॥ स्वर्गेश्वरोपि तत्सं-  
 तुमस्यमो रुक्मवीक्षण । भेरीमास्त्रालयमास रणप्रारम्भस्त्विनी ॥ १३६ ॥ तद्वचनि व्यापि दिग्ग्रातां हत्वा दिग्दतिनां मद । चक्रिबर्तिनि संहुदे महा-  
 तः के न विभ्यति ॥ १३७ ॥ शत्रुरंगबलेनासौ रथावर्तमागाधु गिरि । पेरुल्लाकाध बाल्ला दिक्षु दाहा जजुंभिरे ॥ १३८ ॥ प्रजापतिमुतो चैतद्विदित्वा विततो  
 जसौ । प्रतीयदुः प्रतापनिभस्मितारीधनोऽथौ ॥ १३९ ॥ उभयोः सेनयोस्तत्र मंग्राम समभ्यूहान् । समक्षयात्तयोः प्रापदतकः समवर्तिता ॥ १४० ॥  
 युद्ध्वा चिरं पदातीनां वृथा किं क्रियते क्षयः । इति त्रिष्टुष्टो युद्धार्थमन्यग्रग्रीवमेयिवान् ॥ १४१ ॥ ह्यग्रीवोपि जन्मातरादुपद्रोश्चैव रत । आन्ध्यादय-  
 दतिक्रुद्ध शारवर्षीर्वीरोचिन ॥ १४२ ॥ द्रुदयुद्धेन तौ जेतुमक्षमावितरेतर । मायायुद्ध समारब्धौ महाविद्याबलोद्धतौ ॥ १४३ ॥ युद्ध्वा चिरं ह्यग्रोवधक  
 मी कैसे धारण कर सकते हैं भावार्थ-अब संसारमें इनका नाम रहना मी कठिन है यह कहकर वे द्रुत बड़ी जल्दी  
 वहांसे निकल गये, शीघ्र चलकर अश्वग्रीवके पास पहुंचे और त्रिष्टुष्टकं सब समाचार कह सुनाये ॥ १३४-१३५ ॥ उन्हें  
 सुनकर अश्वग्रीव भी त्रिष्टुष्टको धमा करनेकेलिये असमर्थ हो गया, उमके नेत्र रुखे हो गये, और उसने युद्धके प्रारंभ की  
 सूचना करनेवाली भेरी बजवाई ॥ १३६ ॥ उन मेरियों की आवाज दिग्गजोंके, मदको नष्ट करती हुई दिशाओंके अंत-  
 तक फैल गई, सो ठीक ही है क्योंकि चक्रवर्तीके क्रोधित होनेपर भला बड़े आदमी भी कितने नहीं डर जाते हैं ॥  
 १३७ ॥ वह अश्वग्रीव चारों तरफ की सेना लेकर रथावर्त नामके पर्वतपर जा पहुंचा, वहांपर चंचल उत्कापात होने  
 लगे और मध और अग्नि लग गई ॥ १३८ ॥ प्रतापरूपी अग्निसे शत्रुरूपी ईंधनके समूहको भस्म करनेवाले और बड़े  
 तेजस्वी ऐसे प्रजापतिके दोनों पुत्र यह बात सुनकर उसके सामने गये ॥ १३९ ॥ वहांपर दोनों सेनाओंका बड़ा  
 भारी युद्ध हुआ और दोनों सेनाओंका बराबर नाश होनेसे यमराज दोनोंके मध्यस्थ रहा ॥ १४० ॥ तब त्रिष्टुष्ट युद्ध-  
 केलिये अश्वग्रीवके सामने गया और कहने लगा कि बहुत दिनतक युद्ध चलाकर व्यर्थ ही पैदल सेनाका नाश करा-  
 या जाता है तू ही मेरे सामने आ ॥ १४१ ॥ अश्वग्रीवका त्रिष्टुष्टके साथ पहिले जन्मोंका बड़ा भारी बैर बंधा हुआ  
 था इसलिये वह भी क्रोधित होकर सामने आया और वाणीकी वर्षाकर शत्रुको ( त्रिष्टुष्टको ) ठक दिया ॥ १४२ ॥  
 जब वे दोनों ही द्रुदयुद्धमें परस्पर एतद् दूमेरको जीत न सके तब महाविद्या और बलसे उद्धत हुए वे दोनों माया  
 युद्ध करने लगे ॥ १४३ ॥ अश्वग्रीवने बहुत देरतक युद्ध कर अंतमें शत्रुपर चक्र चलाया परंतु वह नागयग त्रिष्टुष्टके  
 हाथपर आ गया और उसने क्रोधित होकर उसी चक्रसे अश्वग्रीवका शिर काट डाला ॥ १४४ ॥ शत्रुओंको नाश करने-

व्यक्षिपदभ्यरि । तदैवादाय तद्वृत्तीनामप्यिच्छदत्तेशव कुया ॥ १४४ ॥ तावर्कविधुसकाशो त्रिष्टुत्रिजयौ त्रिभू । भरतार्दधिपत्येन भात स ध्वस्तविद्वि-  
 धौ ॥ १४५ ॥ त्र्येन्द्रः शेषराचीला व्यतर्तमागधादिभिः । कृताभिपेक सप्राप त्रिष्टुष्ट पृष्टता क्षितेः ॥ १४६ ॥ आधिपत्य इवो श्रेण्योर्विततरादिकेशव ।  
 इष्ट स्वयंप्रभापित्रे न स्यात्किं श्रीमदाश्रयात् ॥ १४७ ॥ असिः शत्रो धनुश्चक शक्तिर्दो गदामवन् । रत्नानि सप्त चक्रेणो रक्षितानि मरुद्गणे ॥ १४८ ॥  
 रत्नमाला हल भास्वद्रास्य सुगल गदा । महारत्नानि चत्वारि वभूवुर्भाविनिर्वृतेः ॥ १४९ ॥ देव्यः स्वयंप्रभामुख्याः सहस्राप्यस गोडश । बलस्या-  
 द्यसहस्राणि कुलरूपगुणान्विताः ॥ १५० ॥ अर्ककीर्तैः कुमारस्य ज्योतिर्माला रगधिपः । प्रजापत्यविवाहेन महत्या सपदा प्रहीत् ॥ १५१ ॥ तयोरमित-  
 तेजाश्च सुतारा नाभवत्सुता । प्रतिपन्नयवो शुक्रपक्षरेखेव चैदवी ॥ १५२ ॥ विष्णो स्वयंप्रभाया च सुत श्रीविजयोजनि । ततो विजयमहात्यः सुता  
 ज्योति प्रभङ्ग्या ॥ १५३ ॥ प्रजापतिमहाराज भूरिप्राप्तमहोदय । कदाचिजातमेव सप्राप्य पिहिताश्रव ॥ १५४ ॥ आदर्जनेश्वरं रूपं त्यक्तवाशेष-  
 चाले और सूर्य तथा चंद्रमाके समान वे त्रिपृष्ट और विजय दोनो ही भाई आधे भरतके स्वामी होकर बहुत ही सुशो-  
 मित होते थे ॥ १४५ ॥ सब राजाओंने विद्याधरोंके स्वामियोंने और मगध आदि व्यंतर देवोंने त्रिपृष्ट का राज्याभिषेक  
 किया और इसतरह वह त्रिपृष्ट सब पृथ्वीमें मुख्य हुआ ॥ १४६ ॥ त्रिपृष्टने प्रसन्न होकर स्वयंप्रभाके पिता ज्वलन-  
 जयीको दोनों श्रेणियोंका स्वामी बनाया सो ठीक ही है क्योंकि बड़े आदमियोंके आश्रयसे क्या क्या नहीं होता है ॥  
 १४७ ॥ नारायणके तलवार, शंख, धनुष, शक्ति, दंड, गदा और चक्र ये सात रत्न थे तथा अनेक देव उनकी रक्षा  
 करते थे ॥ १४८ ॥ उसी भवसे मुक्त होनेवाले बलभद्रके रत्नमाल, दैर्दाध्यमान हल, सुगल और गदा ये चार महारत्न  
 थे ॥ १४९ ॥ त्रिपृष्टके स्वयंप्रभाको आदि लेकर सोलह हजार रानियां थीं और बलभद्रके कुल रूप और गुणोंसे सुशो-  
 भित आठ हजार रानियां थीं ॥ १५० ॥ ज्वलनजटी विद्याधरने कुमार अर्ककीर्तिकेलिये ज्योतिर्माला नामकी कन्या  
 बड़ी विभूतिके साथ विवाहकर स्वीकार की ॥ १५१ ॥ अर्ककीर्ति और ज्योतिर्मालाके अमिततेज नामका पुत्र हुआ  
 और सुतारा नामकी पुत्री हुई, वे दोनों ही भाई बहिन ऐसे सुंदर थे मानों शुक्लपक्षकी पडिवाके चंद्रमाकी रेखायें  
 ही हों ॥ १५२ ॥ इधर त्रिपृष्टके स्वयंप्रभासे श्रीविजय नामका पुत्र हुआ दूसरा विजयभद्र हुआ और फिर ज्योतिप्रभा  
 नामकी पुत्री हुई ॥ १५३ ॥ महाराज प्रजापतिको बहुत भारी विभूति प्राप्त हुई । किसी एक दिन उन्हें वैराग्य उत्पन्न  
 हुआ पिहितान्न भुनिके पास जाकर उन्होंने श्रीजिनेश्वरका रूप धारण किया सब परिग्रहका त्याग किया तथा जि-  
 ससे सुखात्मा और परमात्माका भाव प्राप्त होता है ऐसा छद्म तरहका वास तप और छद्म तरहका अंतरंग तप धारणकर

परिग्रह । येन संप्राप्यते भाव सुखात्मपरमात्मनः ॥ १५५ ॥ वाशेतरद्विषभेदतपस्यविरतोद्यमः । चिरं तपस्यन् संसितमायुरर्ते समादधत् ॥ १५६ ॥  
 मिथ्यात्व सयमाभाव प्रमाद सकषायता । कैवल्यं स सयोगत्व लक्ष्म्यभूतपरम कमात् ॥ १५७ ॥ खेचरेषोपि तच्छुत्वा राज्य दत्त्वाक्रीर्तये । निर्गुण  
 रूपमापन्नो जगन्मदनसन्निधौ ॥ १५८ ॥ अयाचितसनादानमार्जव त्यागमस्पृहा । कोधादिद्विषापन ज्ञानाभ्यासं ध्यानं च सोन्वयात् ॥ १५९ ॥ ततोनि शेष-  
 महासि निहृत्य निरुपोपधिः । निराकारोपि साकारो निर्वाणमगमत्परं ॥ १६० ॥ त्रिष्टो गोपिष्ठुरारातिविजयो विजयानुगः । त्रिग्वङ्गमंड गोमिन्याः काम का-  
 मान्समन्वभूत् ॥ १६१ ॥ स कदाचित्स्वजाभातुः सुतयामिततेजसः । स्वयंवरविधानेन मालामार्जयद्गुले ॥ १६२ ॥ अनेनैव विधानेन सुतारा चानु-  
 रागिणी । स्वयं श्रीविजयरायासीदृक्ष स्वरूपां सिनी ॥ १६३ ॥ इत्यन्धो न्यान्वितापत्यसंबधा सर्वबांधवाः । स्वच्छाम पूर्णसंफुल्लसरस श्रियमभ्ययु-  
 ॥ १६४ ॥ आयुरर्तेवधिस्थानप्राप्तैर्दभरतेक्षिनि । विजयो राज्यमाज्य मुते श्रीविजये स्वयं ॥ १६५ ॥ दत्त्वा विजयभद्राय यौवराज्यपदं च स । चकि-  
 पूर्ण संयम पालन करने के लिये उद्यमी हुआ । बहुत दिन तक तपश्चरण कर समता धारणकी, मिथ्यात्व असंयम प्रमाद  
 कषाय आदिका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा योगोंका भी नाशकर अनुक्रमसे परम सिद्ध हुए ॥ १५४-१५७ ॥  
 विद्याधर ज्वलनजटीने भी यह बात सुनकर अर्ककोटिको राज्य दिया और सुनिराज जगन्मदनके समीप दीक्षा धारण  
 की ॥ १५८ ॥ कभी मांगना नहीं, बिना दिया हुआ ग्रहण करना नहीं, ईर्ष्याका त्याग, क्रोधादि  
 कषायोंका त्याग, ज्ञानका अभ्यास और ध्यान आदि धारण किया ॥ १५९ ॥ तदनंतर समस्त पापोंका नाशकर सब जंजा-  
 लोंसे अलग हुआ, साकार होकर भी निराकार हुआ और उत्तम मोक्ष स्थानको जा प्राप्त हुआ ॥ १६० ॥ दृष्टं त्रिष्टुष्टने अपने  
 सब शत्रु नाश किये, और विजय सदा विजयी ही होता रहा, उसतरह वे दोनों भाई इच्छानुसार तीनों खंडकी अखंड पृथ्वीके  
 भोगोपभोग भोगने लगे ॥ १६१ ॥ किसी एक दिन त्रिष्टुष्टने स्वयंवरकी विधिसे अपनी कन्या ज्योतिप्रभाके द्वारा अपने जमाई  
 अमिततेजके गलेमें वरमाला डलवाई ॥ १६२ ॥ इसीतरह स्वयंवरकी विधिये वधःस्थलपर निवास करनेवाली सुतागश्री-  
 विजयपर अपने आप अनुरागिणी हुई ॥ १६३ ॥ इतमगद परस्पर एक दूसरेकी संनान के साथ संबंध करते हुए भाई बंधु  
 निर्मल जलसे भरे हुए और प्रफुल्लित सरोवरकी शोभाको प्राप्त हुए ॥ १६४ ॥ आयु पूर्णकर त्रिष्टुष्ट मरकर सातव  
 नरकमें पहुंचा, विजयने अपने पुत्र श्रीविजयके लिये राज्य दिया और विजयभद्रके लिये युवराज पद दिया । त्रिष्टुष्टके  
 मरनेका उसे बहुत शोक हुआ और वह पापरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये तैयार हुआ ॥ १६५-१६६ ॥ जिसे  
 बहुत शीघ्र मोक्षपद मिलनेवाला है ऐसे उस विजयने सुवर्णकुंभ मुनिके समीप जाकर सात हजार राजाओंके साथ

शोकसमाक्रांतस्वातो हंमुमयद्रुप ॥ १६६ ॥ सहस्रैः सप्तभिः सार्द्धं राजभिः समयसंयुतौ । सुवर्णकुंभमन्येत्य सुनिमग्न्यर्णनिवृत्तिः ॥ १६७ ॥ घातिकर्मी-  
भि निर्मूल्य केवल्यं चोदपादयत् । अभ्रुभिलिपसंपूज्यो व्यपेतागारकेवली ॥ १६८ ॥ तदाकर्ण्यार्कक्षीतिं निधायामिततेजस । राज्ये विपुलमत्याख्या-  
धारणादगमसप्तः ॥ १६९ ॥ नष्टकर्मिष्ठकोऽभीष्टामसावपाष्टमीं महीं । अनाप्यं नाम किं लज्ज व्यक्तमाशावधौक्षितां ॥ १७० ॥ तयोरविकल्पोत्थाया आति  
काले निराकुल । मुखेनामितशब्दादितेज श्रीविजयाख्यायो ॥ १७१ ॥ कश्चिच्छ्रीविजयाधीश साक्षीवांशः कदाचन । उपेत्य राज्ञश्चित् त्व प्रणिवेदि  
ममोदिते ॥ १७२ ॥ पोदनाधिपतेर्मूर्ध्न पतितेतोहि मससे । महाबातिस्ततांश्चित्य प्रतीकारोत्स सत्वर ॥ १७३ ॥ इत्यवतीत्तदाकर्ण्य युवराजोरुणेक्षण ।  
वद किं पतिता सर्वविदस्ते मस्तके तदा ॥ १७४ ॥ इति नैमित्तिक कष्ट्वा प्राक्षीत्सोप्याह मूर्ध्नि मे । रज्जुष्टि पतेत्साकमभिषेकेण हीन्यदः ॥ १७५ ॥  
सावष्टमं वच ध्रुत्वा तस्य राजा सविस्मय । भद्र त्वयास्यतामस्मिन्नासने किंचिदुच्यते ॥ १७६ ॥ किंगोत्र किंगुर्वह्नि किंशास्त्र किनिमित्तक । किं  
दीक्षा धारण की ॥ १६७ ॥ घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान उत्तरा किया तथा इद्रादि देवताओंसे पूज्य होकर अनगर  
केवली हुआ ॥ १६८ ॥ अर्कक्षीतिने यह बात सुनकर अपने पुत्र अमिततेजके लिये राज्य दिया, विपुलमति चारण सुनि  
से तपश्चरण ग्रहण किया और आठों कर्मोंको नाशर सबकी प्यारी आठवीं पृथ्वी अर्थात् मोक्ष प्राप्त की । सो ठीक  
ही है क्योंकि जिन्होंने आशा छोड़ दी है ऐसे महापुरुषोंको इस संसार में न मिलने योग्य कुछ भी वस्तु नहीं है ॥  
१६९-१७० ॥ इधर अमिततेज और श्रीविजयमें बड़ा प्रेम रहा दोनोंका ही समय बड़े सुखसे बिना किसी उपद्रवके  
व्यतीत हुआ ॥ १७१ ॥ किसी एक दिन आकर महाराज श्रीविजयको आशीर्वाद दिया और कहा कि  
हे प्रभो ! आप चित्त देकर मेरी बात सुनिये ॥ १७२ ॥ आजसे सातवें दिन पोदनपुरके राजाके मस्तकपर महावज्र  
पड़ेगा, इसलिये आपको इसका उपाय शीघ्र ही सोचना चाहिये ॥ १७३ ॥ उसकी इस बातको सुनकर युवराजने  
कोधित होकर उस निमित्तज्ञानीसे पूछा कि अच्छा तू सब बातोंका जानकार है बता उसमय मेरे मस्तकपर क्या पड़ेगा  
युवराजकी यह बात सुनकर निमित्तज्ञानीने भी कहा, कि मेरे मस्तकपर अभियेकके साथ साथ रत्नोंकी वर्षा होगी ॥ १७५ ॥  
निमित्तज्ञानीके अभिमानसहित ऐसे वचन सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा कि हे भद्र ! तुम  
इस आसनपर बैठो और मैं जो कुछ कहता हू उसे सुनो ॥ १७६ ॥ कहो तो सही तुम्हारा गोत्र क्या है, गुरु कौन  
है, क्या क्या शास्त्र पढ़ा है, क्या क्या निमित्त जानते हो, क्या नाम है और तुम यह ऐसी आज्ञा क्यों करते हो ?  
यह सब राजाने पूछा ॥ १७७ ॥ तब वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि कुडलपुरमें सिंहस्थ नामका एक बड़ा राजा

नाम किमितिोपमर्देश इति पृष्ठवान् ॥ १७७ ॥ कुडालाह्वयपुरे राजा नामा भिहृयो महान् । पुरोहित सुरगुरुस्तस्य शिष्यो विशारदः ॥ १७८ ॥ तच्छिष्येण निमित्तानि प्रव्रज्य हलिना सह । मयाष्टान्यान्धीतानि सोपदेशश्रुतानि च ॥ १७९ ॥ अष्टांगानि निमित्तानि कानि क्लिष्टाणि चेत । शृणु श्रीविजयायुष्मान् यथाप्रदं ब्रवीमि ते ॥ १८० ॥ अंतरिक्षसमौमागस्वरव्यंजनलक्षण । छिन्नस्वप्नविभेदेन प्रोक्तान्यागमवेदिमि ॥ १८१ ॥ तात्पर्यात्माह-  
वर्यद्वा ज्योतिषामतरिक्षाक् । चन्द्रादियंचभेदानामुदयास्तमयादिभिः ॥ १८२ ॥ जय पराजयो ह्यनिर्वृद्धिर्दृशु सजीवित । लाभालाभो निरूप्यते यत्रान्यानि च तत्स्थत ॥ १८३ ॥ भूमिस्थानादिभेदेन ह्यनिष्टद्वय्यादिबोधनं । भूम्यत स्थितरक्षादिकथनं भौममिष्यते ॥ १८४ ॥ अगप्रत्यंगसंस्पर्शदर्शना-  
दिसिरेणिना । अंगकालत्रयोत्पन्नशुभाशुभनिरूपण ॥ १८५ ॥ मृदंगादिगणैश्चादिवैतनेतरसुस्वरैः । दुःस्वरैश्च स्वोभीष्टानिष्टप्रापणसूचनः ॥ १८६ ॥ शि-

राहय करता है उसके पुरोहितका नाम सुरगुरु है और उसका एक शिष्य बहुत ही विद्वान् है । किसी एक दिन बलभद्रके साथ दीक्षा लेकर उस शिष्यके साथ मैने अष्टांग, निमित्तज्ञान सीखा है और उपदेशके साथ बड़ी सावधानीसे सुना है ॥ १७८-१७९ ॥ वे अष्टांग निमित्त कौन कौन हैं उनके क्या लक्षण हैं यह सब सुजनेकी इच्छा हो तो हे चिरंजीव श्रीविजय सुनो मैं तुम्हारे मनके अनुसार ही सब कहता हूँ ॥ १८० ॥ आ-  
खोंके जानकार आचार्योंने अंतरिक्ष, भौम, स्वर्ग, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न इनके भेदसे आ-  
ठ तरहका निमित्त कहा है ॥ १८१ ॥ सूर्य चंद्रमा आदि ज्योतिषी देव आकाशमें रहते हैं आकाशके साथ उनका संबंध है, इसलिये ज्योतिषियोंको अंतरिक्ष ( आकाश ) कहते हैं सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र तारे इनके उदय अस्त आदि होनेसे जय, पराजय, हानि, वृद्धि, जीना, मरना, लाभ, अलाभ आदि निरूपण किया जाता है तथा और भी बहुतसी वास्तविक बातें कही जाती हैं उसे अंतरिक्ष निमित्त कहते हैं ॥ १८२-१८३ ॥ जुदी जुदी जगह पृथ्वी भी जुदी जुदी तरहकी है उसके भेदसे जो हानि वृद्धि आदिका ज्ञान होता है तथा पृथ्वीके भीतर रखे हुए जो रत्न आदि बताये जाते हैं उसे भौम निमित्त कहते हैं ॥ १८४ ॥ अंग प्रत्यंगको स्पर्श करने अथवा देखनेसे जो प्राणियों के शरीरसंबंधी तीनों कालोंमें होनेवाले शुभ अशुभका निरूपण किया जाता है उसे अंगनिमित्त कहते हैं ॥ १८५ ॥ मृदंग आदि अचेतन तथा हाथी आदि चेतन पदार्थोंके सुस्वर अथवा दुःस्वरसे जो इष्ट अनिष्टके प्राप्त होनेकी सूच-  
ना होती है उसे स्वरनिमित्त कहते हैं ॥ १८६ ॥ शिर मुख आदिमें उत्पन्न हुए तिल आदि चिन्ह अथवा घाव आ-  
दिसे जो किसी स्थानको उद्देशकर लाभ अलाभ आदिका जानना है उसे व्यंजन निमित्त कहते हैं ॥ १८७ ॥ श्रीकृष्ण स्वस्तिक



गेमुखादिसजातलिलस्मरणदिभिः । व्यंजनं स्थानमनेय्य लाभालाभादिदेवत ॥ १८७ ॥ श्रीवृक्षस्वस्तिकायशतागगतलक्षणं । भोगैर्भयार्थदिसंप्राप्ति-  
कथन लक्षणं मतं ॥ १८८ ॥ देवमानुषरक्षोविमर्गवैष्णवशुभादिषु । मूषकादिहृतच्छेदै छिन तत्फलमाषण ॥ १८९ ॥ शुभाशुभविभागोक्तस्वप्नसदृशाना-  
नृणां । स्वप्नो वृद्धिविनाशादियायात्म्यकथन मत ॥ १९० ॥ इत्युक्त्वा धृतिपंगमादिद्वाविंशतिपरिषद्भिः । पीडितोसहमानोह' पद्मिनीखेटमाययो  
॥ १९१ ॥ तत्र सन्यातुलः सोमशर्मा चंद्राननां शुभा । हिरण्यलोमासभूता प्रीत्या महां प्रदसवान् ॥ १९२ ॥ द्रव्यार्जन परित्यज्य' निमित्ताभ्यासतत्परं ।  
सा मां निरीक्ष्य निर्विण्णा पितृदत्तधनक्षयात् ॥ १९३ ॥ भोजनावसरेन्युर्धनमेतत्त्वदजितं । इति पात्रे क्षिपेद्रोषान्मद्राटकसचयं ॥ १९४ ॥ रंजित-  
स्फटिके तत्र तपनान्नीपुसन्निधि । कांकाक्षित करक्षालनावुधारा च पश्यता ॥ १९५ ॥ मर्यालभं निश्चित्य तोषाभिषवपूर्वक । अमोघजिह्वन द्राय-

(माथिया) आदि जो शरीरमें एकसौ आठ लक्षण होते हैं उन्हें देखकर जो भोग ऐश्वर्य आदिकी प्राप्ति कहा है उसे लक्षणनिमित्त कहते हैं ॥ १८८ ॥ वस्त्र आयुध आदिमें जो चूहे आदि छेद कर देते हैं वे देव मनुष्य और राक्षसके भेदसे तीन तरहके होते हैं उन्हें देखकर जो अच्छा बुरा फल कहना वह छिन्ननिमित्त कहलाता है ॥ १८९ ॥ शुभ अशुभ के भेदसे सप्त दो तरहके बतलाये हैं उन्हें देखकर जो मनुष्योंकी वृद्धि तथा विनाश आदि यथार्थ वस्तुका कहना है वह स्वप्ननिमित्त कहलाता है ॥ १९० ॥ यह कहकर वह निमित्तज्ञानी फिर कहने लगा कि तप करते समय भूख प्यास चाईस परिषद्भिः मैं बहुत ही दुखी होगया था उन्हें सह नहीं सका था इसलिये तपश्चरण छोड़कर मैं पविनीखेटना-  
मके नगरमें आया ॥ १९१ ॥ वहां सोमशर्मा नामका मेरा एक मामा रहता था उसकी एक चद्रमाकेसे मुखवाली चंद्रानना नामकी कन्या था जोकि शुभ थी और हिरण्यलोमानामकी उमकी स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी, वह मेरे सामने बड़े प्रेमसे मुझे दी ॥ १९२ ॥ उसमय मैं धन कमाना छोड़कर केवल निमित्तके अभ्यास करनेमें तत्पर था इसलिये थोड़े ही दिनमें ससुरका दिया हुआ सब धन पूरा होगया फिर भी जब मैंने कुल नहीं कमाया तब मेरी पत्नी मुझसे बहुत ही विरक्त होगई ॥ १९३ ॥ किसी एक दिन भोजन करनेके समय क्रोधमें आकर उसने मेरी हकली की हुई कौड़ियोंका समूह डाल दिया और कहा कि तेरा कमाया हुआ वही द्रव्य है ॥ १९४ ॥ उन कौड़ियोंमें एक अच्छी कौड़ी थी वह सुंदर स्फटिक मणिके बने हुए थालमें जापड़ी थी उसपर जलाई हुई अग्निके फुल्लिगे पड़ रहे थे तथा उसीमय मेरी स्त्री अपने हाथसे मुझपर पानीकी छींटे डाल रही थी, यह सब देखकर मैंने निश्चय कर लिया है कि संतोषसे अभिषेक होकर मुझे धनकी प्राप्ति अवश्य होगी । आपके लिये यह सब समाचार अमोघजिह्व मुनिराजने कह-

मादेसास्तेऽधुना कृतः ॥ १९६ ॥ इत्यन्वाख्यत स तच्छ्रुत्वा सयुक्तिकमसौ ग्रुप । किताकुलो विसर्ज्यैर्मुक्तवानिति मन्त्रिणः ॥ १९७ ॥ इदं प्रत्येयमस्योक्तं विचिन्त्येतिप्रतिक्रिया । अभ्यर्णं मूलनाथो कं कुर्यात्कालविलम्बन ॥ १९८ ॥ तच्छ्रुत्वा कुमतिः प्राह त्वमोधिजर्म्भतरे । लोहमज्जविकतस्य स्थापयामेति रक्षितु ॥ १९९ ॥ मकरादिभ्य तत्र विजयार्द्रगुहातरे । निदधाम इति श्रुत्वा स सुबुद्धिरभाषत ॥ २०० ॥ तद्वचोवसितौ प्राज्ञ पुराष्टतकवित्तदा । अथास्यानकमित्याख्यप्रसिद्धं बुद्धिसागरः ॥ २०१ ॥ दुःशास्त्रधृतिदर्पिष्ठ सोमः सिंहपुरे वसन् । परिव्राट् स विबाद्यर्थे जिनदासेन निर्जित ॥ २०२ ॥ श्रुत्वा तत्रैव कालाते सम्भूय महिषो महान् । वणिजलवणदुर्भारत्तिरिवाहवधीकृत ॥ २०३ ॥ प्राक् पोषयद्विद्धिं शक्तिरिति यथादुपेक्षित । जातिस्मरः पुरे बद्ध-धैरोप्युपगतार्मुक ॥ २०४ ॥ स्मशाने राक्षसः पापी तस्मिन्नेवोपपद्यत । तत्पुराधीशिनौ कुंभमीसौ कुंभस्य पाचक ॥ २०५ ॥ रसायनादिपाकाख्यस्त-

ला मेजा है ॥ १९५-१९६ ॥ इसप्रकार युक्तिपूर्वक उसने सब हाल कहा उससे सुनकर राजाको बड़ी चिंता हुई, उस निमित्तज्ञानीको तो विदा किया और मंत्रियोंको बुलाकर उनसे कहने लगा कि ये इस निमित्तज्ञानीके कहे हुए वचन हैं इनपर विश्वास करो और विचारकर शीघ्र ही इपका उपाय करो क्योंकि जडका नाश समीप आ जानेपर भला कौन देर करता है ॥ १९७-१९८ ॥ महाराजकी यह बात सुनकर सुमति नामका मंत्री कहने लगा कि आप की रक्षा करनेकेलिये आपको लोहेके संदूकमें विठाकर समुद्रके जलके भीतर समुद्रमें विठा देंगे ॥ १९९ ॥ यह सुनकर सुबुद्धि नामका मंत्री कहने लगा कि समुद्रमें मगर मच्छोंका डर है इसलिये महाराजको विजयाद्र पर्वतकी गुफामें रखना चाहिये ॥ २०० ॥ सुबुद्धिकी बात पूरी होते ही बुद्धिमान और पहिले समयकी सब बातें जाननेवाला बुद्धिसागर मंत्री नीचे लिखे अनुसार पहिलेकी एक प्रसिद्ध कथा कहने लगा ॥ २०१ ॥

इसी भरतक्षेत्रके सिंहपुर नगरमें मिथ्या शास्त्रोंके सुननेसे अत्यंत घमंडी हुआ सोम नामका एक सन्यासी रहता था, उसने जिनदासके साथ शास्त्रार्थ किया परंतु वह हार गया ॥ २०२ ॥ समयानुसार मरकर वह उसी शहरमें एक बड़ा भैंसा हुआ, वहांपर एक वैश्यके यहां पला, वह वैश्य उसपर नमकका बहुतसा बोझ लादा करता था जब वह बोझ लादने योग्य न रहा तब उस वैश्यने उसे खाना पीना देना भी बंद कर दिया । कारणवश उसे जातिस्मरण होगया और वह नगर भरके साथ वैर करने लगा । आयु पूरीकर वह पापी मरा और उसी नगरके श्मशानमें राक्षस हुआ । उस नगरके कुंभ और भीम नामके दो अधिपति वा राजा थे । राजा कुंभके रसोइयाका नाम रसायनपाक था । राजा कुंभ मांसभोजी था, कारणवश किसी दिन रसोइयाको मांस नहीं मिला इसलिये उसने किसी मरे हुए

द्वौयुधिष्ठितेऽमति । शिशोर्व्योमस्तदा मास स मृगस्य न्ययोजयत् ॥ २०६ ॥ तत्स्वादलोलुपः पापी तदाप्रभृति स्मादितुं । मनुष्यमागमाव्वा संप्रेषु-  
 नारकीं गति ॥ २०७ ॥ प्रजाना पालको राजा तव तिष्ठतु पालने । खादत्ययमिति त्यक्तः स त्याज्यः सन्निवादिभि ॥ २०८ ॥ तन्मासजीवितः कूर-  
 कदाचिन्निजपावकं । हत्वा साधिततद्विद्य लक्षांतप्रोक्तराक्षस ॥ २०९ ॥ प्रजा स भक्षयामास प्रत्यह परिनो भ्रमन् । तत् सर्वेपि मंत्रस्ताः पांराः संत्याज्य  
 तत्तुरं ॥ २१० ॥ नगरे प्राविशन् कारकट नाम महर्षिभ्या । तत्राप्यागल पापिष्ठः कुम्भाहोऽभक्षयत्तरा ॥ २११ ॥ तत्प्रभृति तदाप्राहु कुंभकारकट  
 पुरं । यथाहृष्टमृभक्षित्वाद्भूमौत्वैकशकटांशन ॥ २१२ ॥ खादैकमातुष चेति प्रजास्तस्य स्थिति व्यथुः । तत्रैव जगरे चडकौशिको नाम विप्रक ॥ २१३ ॥  
 सोमश्रीस्तत्प्रिया भूतसमुपासुनतत्थिरं । मौडकौशिकनामान तनय ताववापतुः ॥ २१४ ॥ कुंभाहाराय यातं त कदाचिन्मुडकौशिकं । शकटस्योपरि क्षिप्त  
 बन्धुका मांस ही बनाकर राजा कुंभको परोस दिया ॥ २०३-२०६ ॥ उस पापीको वह मांस अच्छा लगा और नरक  
 गतिमें पहुंचनेकी इच्छा करनेवाले उसने उसी दिनसे मनुष्यों का मांस खाना पारंभ कर दिया ॥ २०७ ॥ राजा प्र-  
 जाकी रक्षा करनेवाला होता है जबतक वह प्रजाका पालन करे तब तक राजा कहा जा सकता है जब यह मनुष्योंको  
 ही खाने लगा तब इसे छोड़ देना ही चाहिये यही सोचकर मंत्री आदि प्रजाके लोगोंने उसे निकाल दिया ॥ २०८ ॥  
 उसका रसोहया उसे मांस खिलाकर जीवित रहता था किसी एक दिन उस क्रूरने अपने रसोहयाको ही मार डाला  
 और विद्या सिद्धकर ऊपर लिखे हुए राक्षसको वश कर लिया ॥ २०९ ॥ इस तरह वह नगरके चारों ओर फिरता हुआ  
 प्रतिदिन प्रजाका भक्षण करने लगा इसलिये नगरके सब लोग डर गये आर उस नगरको छोड़कर डरके मारे कारकट  
 नामके नगरमें जा गये । परंतु वह पापी कुंभ मर्मा मी भ्रागया और लोगोंको भक्षण करने लगा ॥ २१०-२११ ॥  
 उस समयसे लेकर उस नगरका नाम कुंभकारकट पड़ गया है । जब प्रजाने उसे मनुष्यमयी देखा तब सबने मिल-  
 कर एक गाड़ी भात और एक मनुष्य देनेका प्रबंध कर दिया ॥ २१२-२१३ ॥ उसी नगरमें एक चंडकौशिक नाम  
 का ब्राह्मण रहता था, उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था । बहुत दिनतक भूतोंकी सेवा करनेसे उन दोनोंके मौडकौशि-  
 क नामका पुत्र हुआ था । किसी एक दिन कुंभको देनेके लिये उस लड़केकी मी गरी आई, लोग उसे गाड़ीमें डाल  
 कर लेजा गये थे, परंतु भूत उसे गाड़ीसे उठाकर ले भागे, कुंभ उनके पीछे पड़ा और हाथके दंडसे आक्रमणकर ल-  
 लंकार उन्हीं भगा दिया ॥ २१४-२१६ ॥ डरके मारे उन्होंने उस ब्राह्मणको किसी विलमें पटक दिया परंतु उस वि-  
 लमें एक अजगर रहता था जो कि पढ़ते ही उस ब्राह्मणको खा गया । इसलिये मैं कहता हूं महाराजको गुफामें रखना

नीत्या भूतः प्रयायिषि ॥२१५॥ कुमेनाजयता दडहस्तेनाक्रम्य तर्जिते । भयाद्विले विनिमिषित जगाराजगरो द्वित्रं ॥ २१६ ॥ मिजयार्धपुहायां तमिषेपण-  
ममुचक । पयं तद्वचन श्रुत्वा सूक्ष्मवीर्मिसागरः ॥ २१७ ॥ भूपतेरशने पातो नोको नैमिषितकेन तत् । पोदनाधिपति कश्चिदन्-योबत्साप्यतामिति ॥  
॥ २१८ ॥ जगाद भवता प्रोक्तं युष्मत्सिन्धुपेत्य ते । सम्यग् मन्त्रिणो यक्षप्रतिविंबं कृपास्ने ॥ २१९ ॥ निवेश्य पोदनाधीशस्त्वमित्येनमपूजयत् । मही-  
शोपि परित्यक्तराज्यभोगोपभोगकः ॥ २२० ॥ प्रारब्धपूजादानादि निजप्रकृतिमहल । जिनवैज्यालये शान्तिकर्म कुर्वन्पुविशत् ॥ २२१ ॥ सप्तमेहनि  
यक्षस्य प्रसिमायां महाच्चनि । न्यपतन्निष्ठुरमूर्ध्नि सहस्रासीषणोऽशनिः ॥ २२२ ॥ तस्मिन्नुपद्रवे शते प्रमोदासुरवसिन । बद्धमानानकथानैरकुर्वन्नुत्सव परं ।  
॥ २२३ ॥ नैमिषिकं समाहूय राजा सपुत्र्य दत्तवान् तस्मै ग्रामशतं पद्मिनीखेटेन ससम्पद ॥ २२४ ॥ विषय विधिवद्भक्त्या शान्तिपूजापुरस्सरं महाभिषेकं  
कोकेशामर्हता समिवोत्तमा ॥ २२५ ॥ अष्टापदमयः कुम्भरमिषिव्य महीपति । सिंहासन समारोप्य कुराज्ये प्रत्यतिष्ठपत् ॥ २२६ ॥ एवं सुखसुखेनैव काळे गच्छ-  
रीक नहीं है ॥ २१७ ॥ बुद्धिमागरके ये योग्य वचन सुनकर मूर्खमबुद्धिको धारण करनेवाला मतिसागर मंत्री कहने  
लगा कि वज्र महाराजपर पड़ेगा ऐसा तो निमित्तज्ञानीने कहा ही नहीं है जो पोदनपुरका स्वामी होगा उसपर ही  
वज्र पड़ना बतलाया है इसलिये पोदनपुरके स्वामीकी जगह किसी दूसरेको स्थापन कर देना चाहिये । उसकी इस  
बातको सुनकर सबने मानलिया और कहा कि तुमने बहुत योग्य कहा है ॥ २१८-२१९ ॥ सब मंत्रियोंने मिलकर  
राजाके सिंहासनपर एक यक्षका प्रतिविंब बिठाया और तू ही पोदनपुरका राजा है' ऐसा मानकर उसे पूजने लगे  
॥ २२० ॥ इधर राजाने राज्य भोग उपभोग आदि सब छोड़ दिये और अपनी स्वभाववाली मंडलीके साथ साथ  
जिनवैज्यालयमें बैठकर पूजा दान आदि शान्तिकर्म करने प्रारंभ किये । सातवें दिन उस यक्षकी प्रतिमाके ऊपर बड़ा भारी  
शब्द करता हुआ भयंकर वज्र अकस्मात् बड़ी कठोरताके साथ आपड़ा । जब वह उपद्रव आत होगया तब नगरके  
लोग बड़े आनंदसे बढती हुई नगार्डोंकी आवाजोंसे बढाभारी उत्सव करने लगे । राजाने निमित्तज्ञानीको बुलाकर  
उसका खूब आदर सत्कार किया और प्रसन्न होकर पद्मिनीखेटके साथ उसे सो गांव दिये । तीनों लोकोंके स्वामी भग-  
वान् अरहंतदेवकी विधिपूर्वक बड़ी भक्तिसे शान्तिपूजा की और उनका महाभिषेक किया । सब मंत्रियोंने मिलकर सु-  
वर्णके बने हुए घड़ोंसे महाराजका अभिषेक किया उन्हें सिंहासनपर विराजकर उस राज्यका अधिपति बनाया ।  
॥ २२१-२२६ ॥ इसके बाद उनका समय बड़े सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन राजा श्रीविजयने अपनी  
माताकी आकाशगमिनी विद्या लेकर सिद्ध की और कीडा करनेकी इच्छासे रानी सुताराके साथ ज्योतिर्वनमें गया

नि सोच्यदा । विद्या स्वमातुरादाय ससाध्याकाशगमिनी ॥ २२७ ॥ सुतारया सह ज्योतिर्विनं गावा रिरसया । यथेष्ट विहस्तत्र सलीलं कातया स्थितः ॥ २२८ ॥ इत्यमरचंचाख्यपुरोशानिघोषक । आसुर्याश्च सुतो लक्ष्म्या महानिद्राशनेः खग ॥ २२९ ॥ विद्यां स भ्रामरी नाम्ना प्रसाध्यायान्पुरं स्वकं । सुतारा वीक्ष्य जातेच्छस्तामादातु इतोयमः ॥ २३० ॥ कृत्रिमंण्डलाससादपनीय महीपति । तद्भूषेण निवृत्त्यैव सुतारा दुरेतादाय ॥ २३१ ॥ शृणोमाद्य बाधु-  
वेगेन तं गृहीतुमपारयन् । आगतोह प्रयात्यास्त्रमर्को यावः पुरं प्रति ॥ २३२ ॥ इत्युक्त्वारोप्य ता सेवो विमानसगमश्रत । गत्वातरे स्वसौरुषशा-  
लिनां दर्शित निज ॥ २३३ ॥ रूपमालोक्य तत्कोयमिति सा विह्वलमवत् । इतस्तद्योक्तैवालीं सुतारारूपधारिणीं ॥ २३४ ॥ स्थितां कुक्कुटसर्पेण द-  
ष्टाहमिति सप्रमात् । भ्रियमाणामिवालोम्य विनिवृत्यागत स्वय ॥ २३५ ॥ अर्हाय तद्विष ज्ञात्वा मणिमंत्रौषधादिभि । मुक्तिगन्धः पौदनापीथो मर्तुं मह

बह बहापर अपनी इच्छानुसार विहार करता हुआ रानी सुताराके साथ ठहरा हुआ था । ॥ २२७-२२८ ॥ इतनेमेंही चमरचंचपुरका राजा इंद्राक्षनि रानी आसुरीका लक्ष्मीसे पूज्य ऐसा अश्विनियोष नामका विधाधर पुत्र भ्रामरी विद्याको सिखकर अपने नगरको लौट रहा था ॥ २२९-२३० ॥ मार्गमें उसने सुतारा देखी । देखते ही उसपर उसकी इच्छा हुई और वह उसके हरण करनेका उद्यम करने लगा । उसने एक कृत्रिम हरिण बनाया राजा उसे देखकर पकड़नेके लिये उसके पीछे पड़ा इसतरह राजा श्रीविजयको तो सुतारासे अलग कर दिया और वह दृष्ट श्रीविजयका रूप बना कर सुताराके पाम आकर कहने लगा कि हे प्रिये ! वायुके समान अपने वेगसे हरिण तो भाग गया, मैं उसे पकड़ न सका इसलिए लौट आया अब सूर्य अस्त होना चाहता है इसलिये चलो हम तुम दोनों अब अपने नगरको चलो” इसतरह कहकर उस विधाधरने उसे विमानमें बिठाया और वहासे चल दिया ॥ २३१-२३३ ॥ थोड़ी ही दूर जाकर उस कपटी विधाधरने अपना रूप दिखाया उसे देखकर “यह कौन है” इसतरह कहती हुई सुतारा बहुत ही व्याकुल हुई ॥ २३४ ॥ उसी अश्विनियोष विधाधरने एक बैताली नामकी विद्या मेजी थी जो कि सुताराका रूप धारणकर बहा बैठी थी, जब श्रीविजय वापिस लौटकर आया तब उस बनावटी सुताराने कहा मैं मरने काट खाई हूं इसतरह कह-  
कर वह बड़ी झीघ्रतासे मरी हुईके समान होगई । पौदनपुरके राजा श्रीविजयने उसे मरी हुई देखकर मणि मंत्र औ-  
षधसे अनेक उपाय किये परंतु जब विष उतरते नहीं देखा तब उस रानीमें अत्यंत प्रेम होनेके कारण उसने रानीके साथ वहीं मरनेका विचार किया । लकड़ी इकट्ठीकर सूर्यकांतमणिसे उसने अग्नि जलाई और इसतरह चिता बनाकर खोक्से व्याकुल हो उस चितापर जा चढ़ा । उसीसमय कोई दो विधाधर उनके समीप आये, उनमेंसे महा प्रतापी

तयोत्सुकः ॥ २३६ ॥ सूर्यकांतसमुद्रतटदहनज्वलितेधन । चितिका कांतया सार्द्धमारोह शुचाकुलः ॥ २३७ ॥ तदैव केचरो कौचित तत्र समिहितौ । तयोः । विद्याविच्छेदिनीं विद्यां सूर्यैकेन गृहाजसा ॥ २३८ ॥ इतोसौ भीतवताली वामपादेन दर्शित-स्वरूपास्य पुर स्वातुमशक्तागाददयेता ॥ २३९ ॥ तद्विजोक्त्य गृहीपावलो नितरां विस्मयं गतः । किमेतदित्यवोचत सचरथाह तत्कथा ॥ २४० ॥ द्वीपेस्मिन् दक्षिणश्रेण्यां भरते सचराचले । ज्योति-प्रमपुराधीशः संभिषोह मम प्रिया ॥ २४१ ॥ संख्या सर्वकल्याणी सुदुर्द्वीपबिम्बाह्वयः । एष मे स्वामिना गत्वा रथनूपुरभुज्ज्वा ॥ २४२ ॥ विहर्तुं विपुल्योने नृणां तश्चिखरपुते । ततो निवर्तमान सन् स्वयानकविमानगा ॥ २४३ ॥ क्व मे श्रीविजयः स्वामी रथनूपुरभूषणे । वव मां पाहीति साम्प्रतस्वनितां करणस्वन ॥ २४४ ॥ ध्रुवाहं तत्र गत्वाह्वयं कस्त्वं कां वाहरस्मयं । इत्यसौ चाह सक्रोध च्वातचमराधिप ॥ २४५ ॥ समोशानिघोषाह्वयो दृढादेना नयाम्यहं । भवतो यदि सामर्थ्यमस्त्येवहीति मोचय ॥ २४६ ॥ तच्छ्रुत्वा मत्प्रभोरिया नीयते तेन साजुजा । सामान्यव

एक विद्याधरने विद्याविच्छेदिनी नामकी विद्याका स्मरणकर अपने बायें पैरसे बैतलीको मारा जिमसे वह अपने असली रूपमें आगई और उस विद्याधरके मामने वह अपने रूपमें ठहर नहीं सकी इसलिये वह अदृश्य होगई । इस बातको देखकर राजा श्रीविजयको मी बडा भारी आश्चर्य हुआ ॥ २३४-२४० ॥ उसने उस विद्याधरसे पूछा कि यह क्या बात है ? तब फिर वह विद्याधर कहने लगा कि इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें ज्योतिःप्रभ नामका नगर है मैं संमिन्न नामका वहांका राजा हूं मर्वकल्याणी नामकी यह मेरी स्त्री है और द्वीपशिल्प नामका यह मेरे पुत्र है ॥ २४१-२४२ ॥ मैं अपने स्वामी रथनूपुरके राजा अमिततेजके साथ साथ विपुल नामके वनमें नलांतशिखरनामके प्रसिद्ध पर्वतपर विहार करनेके लिये गया था ॥ २४३ ॥ वहांसे इस सत्र लौट रहे थे, मार्गमें आकाशमें विमानपर बैठी हुई कोई स्त्री रो रही थी और कह रही थी कि “मेरे स्वामी श्रीविजय कहां है ? मेरे भाई रथनूपुरके राजा अमिततेज कहां हैं मेरी रक्षा करो” इस प्रकारकी रोनेकी आवाजको सुनकर हम लोग वहां गये और उस विद्याधरसे पूछा कि तू कौन है और यह कौन है तथा तू इसे क्यों लिये जा रहा है ॥ २४४-२४५ ॥ तब उसने बड़े क्रोधमें आकर कहा कि “मैं चंचाचमरका राजा विद्याधरोंका स्वामी अशनिघोष हूं, इसे मैं जबरदस्ती लिये जाता हूं यदि तुममें सामर्थ्य है तो आओ अओ इसे छुडाओ । विद्याधरकी यह बात सुनकर मैंने सोचा कि “यह मेरे स्वामी अमिततेजकी बहिनको लिये जा रहा है ॥ २४६-२४७ ॥ इसलिये हम साधारण रीतिसे चला जाना ठीक नहीं है इसे मारना चाहिये” ऐसा निश्चयकर मैंने युद्ध करना

तस्य यामि इत्येवमिति । लिखबाह्यः ॥ २४७ ॥ योद्धुं प्रक्रममाणं मा निर्वायेनेन माह्वया । इयेति युद्धं निर्व्याप्त्योदनाख्यपुराविषः ॥ २४८ ॥ ज्योतिर्वने नियोगेनामं शोकान्नाहतः । इतरे तत्र गत्वा तं मदवस्थां निवेदय ॥ २४९ ॥ इति तत्कालं राजन् प्रेषितो हिमिहागतः । इयं त्वदेरिनिर्दिष्ट-  
देवतेत्यादादिकः ॥ २५० ॥ श्रुत्वा तत्प्रेतनाथीशो सत्कृतं कथ्यतामिदं । कृतांतं सत्वरं गत्वा सन्मित्रेण स्वयाधुना ॥ २५१ ॥ मञ्जन-  
स्युत्वाधीनामित्युक्तो नमश्चरः । श्रुतं द्वीपशिखं सद्यः प्राहिणोत्प्रेतान् प्रति ॥ २५२ ॥ अभवत्प्रेतनाख्येपि बहुलातविजृम्भणः । तद्वृद्धामोषजिह्वाह्वो  
जयगुप्तस्य संभ्रमात् ॥ २५३ ॥ उत्पन्नं स्वामिनं किञ्चिद् भयं तदपि निर्गतं । आगमिष्यति चायेवं कश्चिच्छूलवार्तायां ॥ २५४ ॥ स्वस्थाः तिष्ठतु तत्तत्र  
प्रवृत्तो मागमद्भयः । इति स्वयंप्रभादीस्तानाश्वासं नयतः स्म तावत् ॥ २५५ ॥ तथैव गगनाद्द्वीपशिखोप्यागम्य भूतलः । स्वयंप्रभा सुतं चास्याः प्रणम्य विधि-  
वस्तुषी ॥ २५६ ॥ क्षेमं श्रीविजयाधीनो भवद्भित्त्युच्यतां भयं । इति तन्वृत्तकं सर्वं यथावत्स्य न्यवेदयत् ॥ २५७ ॥ तद्वातार्कणनादाश्चपरित्याज्यतलो-

प्रार्थनं किया वरंतु आपकी स्त्रीने मुझे रोका और कहा कि “विना कारणके मर्य ही युद्ध करना ठीक नहीं है, पोद-  
नपुरके राजा श्रीविजय ज्योतिर्वनमें मेरे वियोगसे शोकरूपी अग्निसे जल रहे होंगे इसलिये तुम वहां जाकर उनसे  
मेरी यह अवस्था कह दो” हे राजन् इसतरह आपकी स्त्रीका भेजा हुआ मैं यहां आया हूं ॥ २४८-२५० ॥ यह आ-  
पके अनुकी मेजी हुई देवता है इसप्रकार आदरपूर्वक हितकी बात कही उसे सुनकर पोदनपुरका राजा भीविजय कहने  
लगा कि हे मित्र! आपने बहुत अच्छा किया कृपाकर यह सब समाचार मेरी माता और छोटे भाईसे शीघ्रही जाकर  
कहा दीजिये, ऐसा कहनेपर उस संभिक्ष विद्याधरने भी अपने पुत्र द्वीपशिखको शीघ्र ही पोदनपुर भेज दिया । इसपर  
पोदनपुरमें भी बहुतसे उपद्रव हुए थे ॥ २५१-२५३ ॥ उन्हें देखकर अमोघजिह्वा और जयगुप्त नामके निमिषजानी  
बड़ी शीघ्रतासे कह रहे थे कि “महाराजको कुछ भय हुआ है और वह दूर भी हो गया है ॥ २५४ ॥ उनका कुशल  
मंगल लेकर आज ही कोई मनुष्य आवेगा तुम लोग निराकुल होकर रहो और किसी भयकी शंका मत करो” ॥ २५५ ॥  
इसप्रकार वे दोनों ही निमिषजानी स्वयंप्रभा आदिको धीरज बंधा रहे थे इतनेमें ही द्वीपशिख आकाशसे उतरकर पृथ्वी-  
पर आया ॥ २५६ ॥ उस बुद्धिमानने विधिपूर्वक स्वयंप्रभा और उसके छोटे पुत्रको प्रणाम किया और कहा कि म-  
हाराज भीविजय कुशलपूर्वक हैं आप सब तरहका भय छोड़ दीजिये ॥ २५७ ॥ इसतरह उसने वहाँके सब यथार्थ  
समाचार कह दिये । उस बातको सुनकर जिसप्रकार दावानल अग्निसे लता ( वेल ) मलिन हो जाती है, अथवा जि-  
सप्रकार दुग्धनेके समय दीपककी शिखा प्रभारहित हो जाती है, अथवा वर्षाअतुके बादलोंकी गर्जना सुनकर सुंदर हं-

पमा । निर्विनाशपूर्णस्य शिखि विगतप्रभा ॥ २५८ ॥ ध्रुतप्रावृद्धनयनकलहरीव शोकिनी । स्याद्वायुवादिबिषयस्तदु भ्रुतिबहुलकुला ॥ २५९ ॥ तदानीमेव निर्मल चतुरंगबलान्विता । स्वयंप्रभागात्सत्त्वा समुता तद्वनंतरं ॥ २६० ॥ आर्यातीं द्रुतो द्रष्टु मातरं स्वानुआनुगा । प्रतिगलानमतप्यनु-  
पादयोः पौदनाक्षिप ॥ २६१ ॥ स्वयंप्रभा च त द्रष्टु वाष्पविलविलोचना । उत्तिष्ठ पुत्र दृष्टोसि मत्पुण्याचिरजीवित ॥ २६२ ॥ इति श्रीविजय योग्यं दे  
वद्वयोः पौदनाक्षिप ॥ २६३ ॥ स्वयंप्रभा च त द्रष्टु वाष्पविलविलोचना । उत्तिष्ठ पुत्र दृष्टोसि मत्पुण्याचिरजीवित ॥ २६४ ॥ अनेनोपकृतिर्याग कृता सांभ-  
मुष्वाव्यास्यस्य तोषिणी । कुब्जासीनमयापृच्छसुताराहरणादिकं ॥ २६५ ॥ सग संभिननामायं सेवकोऽमिततेजस । अनेनोपकृतिर्याग कृता सांभ-  
त्वयापि न ॥ २६६ ॥ ममेति शेषमव्याहृतोवाक्यभूद्भवन् । तनूज पुरस्त्रायै निर्वैर्योषजान्विता ॥ २६७ ॥ रथनपुरमुद्दिश्य गता गगनवर्सना ।  
स्वयेश्वरचारोक्त्या विक्षितामिततेजसा ॥ २६८ ॥ महाविभूत्या प्रलेख्य मामिका परिदुष्यता । प्रवेक्षिता सकेतं पुरमाबद्धतोरणं ॥ २६९ ॥ प्राधूर्णक-  
विधि विश्व विषय विधिवत्तयो । तदगमनकार्यं च ज्ञात्वा विद्याधराक्षिप ॥ २७० ॥ इत् मरीचिनामानभिद्राशनिमुत् प्रति । प्रहिल्य तन्मुखात्सत्य  
सिनी झोक करने लग जाती है, अथवा जिसप्रकार स्याद्वादको जाननेवाले वादियोंके द्वारा दलित होकर दुश्प्रति,  
( मिथ्याज्ञासू ) व्याकुल हो जाती है, उसीप्रकार व्याकुल हुई स्वयंप्रभा उसी समय चारोंतरहकी सेना लेकर निकली  
और उस विद्याधर तथा अपने छोटे पुत्रके साथ उसी वनमें जा पहुंची । अपने छोटे भाईके साथ माताको दूरसे ही  
आती देखकर पौदनपुरका राजा श्रीविजय सामने आया और उसके चरणोंको नमस्कार किया । श्रीविजयको देखकर स्व-  
यंप्रभाके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी और कहने लगी कि हे बेटा ! उठो मैंने अपने पुण्योदयसे ही तुम्हें चिर-  
जीवित देखा है, इसतरह कहकर उसने अपने दोनों हाथोंसे श्रीविजयको उठाया, उसका स्पर्श किया और संतुष्ट  
हुई ॥ २५८-६३ ॥ जब वह सुखसे बैठगया तब स्वयंप्रभा ने सुतारोंके हरण होने आदिके समाचार पूछे श्रीविजय क-  
हने लगा कि यह संभिन्न विद्याधर अमिततेजका सेवक है, हे माता ! हमने मेरे जो जो उपकार किये हैं वे आपसे भी  
नहीं हो सकते । इसतरह उसने जो जो समाचार हुए थे वे सब कह सुनाये ॥ २६४-६५ ॥ स्वयंप्रभा ने अपने छोटे पु-  
त्रको तो नगरकी रक्षाके करनेके लिये वापिस भेजा और आप बड़े पुत्र श्रीविजयके साथ आकाशमार्गसे रथनपुरको  
चली ॥ २६६ ॥ रथनपुरके राजा अमिततेजने अपने देशके दूतोंसे स्वयंप्रभाका आना सुना और बड़ी विधुतिके साथ  
सामने आकर अपनी मामीको संतुष्ट किया ॥ २६७ ॥ जिसमें तोरण बंधे गये हैं और ध्वजायें फहरा रही हैं ऐसे अ-  
पने नगरमें प्रवेश कराया और उन दोनोंका सबतरहका आदर सत्कार किया ॥ २६८ ॥ उस विद्याधरोंके स्वामी अ-  
मिततेजने उनके आनेका कारण समझा और फिर अश्वनिघोषके समीप मरीच नामका दूत भेजा, दूतकी बात सुनकर



विदित्वा सुसहं वच ॥ २६९ ॥ आलोच्य मंत्रिभिः सार्वमुच्छेतुं तं प्रयोद्धतं । मैथुनाय महेश्छाय निजाभ्यासमागतं ॥ २७० ॥ युद्धवीर्यं प्रहरणवरणं  
 वधमोजन । इति विद्यात्रय शत्रुज्वंसार्यमहितादरात् ॥ २७१ ॥ रश्मिवेगबुधवेगादिसहस्राद्धस्यजः सह । पारनेल प्रज्येयस्त्वा शत्रोवपदि दर्पिणः ॥ २७२ ॥  
 सहस्ररश्मिना सार्वं ज्यायसा स्वात्मजेन सः । महाज्वालाह्वयां सार्वविद्याच्छेदनसंयुतं ॥ २७३ ॥ सजयतमहाचैत्यमूले सावशितुं गतः । हीमंतं पर्वतं विद्यां  
 विद्यानां साधनास्पदः ॥ २७४ ॥ रश्मिवेगादिभिः सार्वं ध्रुत्वा श्रीविजयगमः । युद्धायाशानिघोषेण प्रेषितः स्वमुता कुधा ॥ २७५ ॥ सुबोष शतघोषा-  
 र्थ्याः सहस्रादिघोषकः । युद्धधान्येपि च मासार्द्धं सर्वे समुपागमन् ॥ २७६ ॥ तद् बुद्ध्या क्रोधसततो योद्धुं स्वयमुपेयिवात् । स्वनावापिशुनाशेषयो-  
 वणोऽशनिघोषकः ॥ २७७ ॥ युद्धे श्रीविजयोच्यतं विधातुं प्राहरदक्षिणः । आमरीविधया सोपि द्विरूपः समजायत ॥ २७८ ॥ चतुर्गुणत्वमायतौ पुनस्तौ  
 तेन खडितौ । संग्रामोऽप्रतिर्वोषकमायासूदिति संभनात् ॥ २७९ ॥ तदा साधितनिषः सत् रथनूपुरनायकः । एवादिगन्महाज्वालाविद्यां तां सेदुमसमः ॥

अशनिघोष बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने अयोग्य वचन कहे । दूतने लौटकर वे सब अमिततेजसे कह सुनाये, अ-  
 सस्र वधनोंको सुनकर उसने मंत्रियोंके साथ विचार किया और मदोन्मत्त अशनिघोषको नाश करनेके लिये पक्का वि-  
 चार कर लिया ॥ २६९-२७० ॥ बड़ी इच्छा करनेवाले अपने बहनोई श्रीविजयकेलिये शत्रुको नाश करनेके लिये  
 बड़े आदरसे अपने कुल परंपरासे बली आई युद्धवीर्य प्रहरणावरण और वधमोचन ये तीन विद्यायें दीं और रश्मिवेग  
 सुवेग आदि पाँचमों पुत्रोंके साथ साथ पोटनपुरके राजां भीविजयसे वपंडी शत्रुपर जानेकेलिये कहा तथा बह अग्नि-  
 ततेज अपने बड़े पुत्रके साथ साथ सब विद्याओंके छेदन करनेके लिये सब विद्याओंको सिद्ध करनेकी जगह  
 ऐसे हीमंत पर्वतपर संजयतकी महाप्रतिमाके समीप गया । इधर अशनिघोषने रश्मिवेगके साथ साथ युद्ध करनेके लि-  
 ये श्रीविजयका आना सुना तब उसने क्रोधित होकर सुबोष शतघोष सहस्रघोष आदि अपने पुत्रोंको भेजा ॥ २७१-  
 २७६ ॥ तथा और भी अनेक शूरवीरोंको भेजा वे सब पट्टह दिनतक लड़ते रहे परंतु अंतमें हारकर भागगये, यह  
 जानकर क्रोधसे संतप्त हुआ अशनिघोष स्वयं लड़नेके लिये आया ॥ २७७ ॥ इधर तो अपने नाशको सूचित करने-  
 वाली पूर्ण घोषणा करता हुआ अशनिघोष आया और इधर उससे युद्ध करनेकेलिये श्रीविजय आया, श्रीविजयने उसके  
 दो दुकड़े करनेकेलिये सबका प्रहार किया ॥ २७८ ॥ सबका प्रहार पड़ते ही आमरी विद्यासे अशनिघोषने दो रू  
 धारणकर लिये । श्रीविजयने जब उन दोनोंके भी दो दो दुकड़े किये तब उसके चार रूप होगये ॥ २७९ ॥ इसतरह  
 दुकड़े करते करते वह युद्धका सब मैदान अशनिघोषकी मायासे भर गया इतनेमेंही रथनूपुरका गन्महाज्वाला

॥ २८० ॥ भासाद्धृतसप्राप्तो विजयाख्यजिनेश्विन । नामेवसौमानाद्रिगजध्वजसमीपगां ॥ २८१ ॥ ममां भीत्वा खगेशोऽग्रात्कोपोत्प्रेष्यतु-  
यायिन । मानस्तंभं निरीक्ष्याचन्द्र प्रसीदचित्तवृत्तयः ॥ २८२ ॥ जिनं प्रदक्षिणीकृत्य त्रि प्रणम्य जगत्पति । वांतवैरविषाः सर्वे तत्रास्त्रिषत से  
समं ॥ २८३ ॥ तद्वागत्यामुरीदेवी सती शीलवती स्वय । सुतारां हृतमानीय परित्स्नानलतोपमा ॥ २८४ ॥ मत्सुत्रस्य युवां क्षंतुमपराधमनईत । इत्युरी-  
शार्पयत्सा श्रीविजयामिततेजसोः ॥ २८५ ॥ शिरस्थायपि चेद्वैरमहायै जातिहेतुकं । विनश्यति जिनाभ्यासे मनुष्याणां क्षिप्त्युच्यते ॥ २८६ ॥ कर्मोष्ण-  
नाशिवद्भानि मुच्यंते यदि संसृते । जिनां सभिधौ तेषा नाश्वर्यं वैरयोचनं ॥ २८७ ॥ अतको दुर्निवारोत्र भार्यते सोपि हेलया । जिनस्मरण-  
मात्रेण न वार्योन्य स को रिपुः ॥ २८८ ॥ तदंतकप्रतीकारे स्मरणीयो मनीषिभि । जगत्त्रयैकनाथोर्हन्त पुरेह च हितावह ॥ २८९ ॥ अयं विद्याधरा-

को सिद्धकर आया और आते ही महाजाल विद्याको आज्ञा दी । अशनिघोष उस विद्याको मह नहीं सका इसलिये प-  
द्रह दिनतक युद्ध कर भागा और डरसे नामेयसीम नामके पर्वतपर गजध्वजके समीप विजय तीर्थकरके समवसरणमें  
जा हुआ अमिततेज श्रीविजय आदि मी क्रोधित होकर उसके पीछे पीछे भागे थे ॥ २८२ ॥ परंतु मानस्तंभको देख-  
ते ही सबके चित्त की वृत्तियां शांत होगईं सबने जगत्पति भगवानकी तीन प्रदक्षिणायें दीं और प्रणाम किया ॥ २८३ ॥  
वहाँ जाकर सबने अपना वर छोड़ दिया और सब साथ साथ बैठे । उसीसमय शीलवती सती आमुरी देवी  
स्वयं आई, मलिन हुई लताके समान सुतागको शीघ्र ही लाई तथा श्रीविजय और अमिततेजको समर्पणकर कहने ल-  
गी कि तुम दोनोंको मेरे पुत्रका अपराध क्षमा कर देना चाहिये ॥ २८४-८५ ॥ तिर्यचोका जो वैर जन्मसे उत्पन्न होता है  
और छूट नहीं सकता वह भी श्रीजिनेंद्रदेवके समीप आकर नष्ट हो जाता है फिर भला मनुष्योंकी तो बात ही क्या है  
२८६ ॥ जिन जिनेंद्रदेवके स्मरण करने मात्रसे अनादिकालके वंशे हुए कर्म छूट जाते हैं फिर भला उन्हीं जिनेंद्रदेवके  
समीप वरका छूट जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २८७ ॥ भगवानके स्मरण करने मात्रसे जो किसीसे निवा-  
रण न किया जा सके ऐसा यमराज भी लीलामात्रमें निवारण किया जाता है फिर भला अन्य ऐसा कौन शत्रु है जो न  
रोका जा सके ॥ २८८ ॥ इसलिये बुद्धिमानों को उन शत्रुओंको नाश करनेकेलिये तीनों लोकोंके नाथ और सबका  
हित करनेवाले भगवान अरहंतदेवका ही स्मरण करना चाहिये ॥ २८९ ॥

अथानंतर—विद्याधरोंके स्वामी अमिततेजने उन भगवानको नमस्कार किया, हाथ जोड़े और तत्त्वार्थोंके जानने-  
की इच्छासे बड़ी भक्तिसे सद्धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २९० ॥ वह पूछने लगा कि जिन ! जिसमें कर्पायरूपी मगरमच्छ

शीघ्र प्रणय प्राजलिजित । भक्त्या सद्गममप्राप्तीत्स तत्त्वार्थमुत्सृज ॥ २३० ॥ महद्दुःखोर्मिकीर्णदुःखसंसारपयोनिधे । सुल्लङ्घयान-  
 क्रस्य पारः केनाप्यते जित ॥ २२९ ॥ पृथ्व्यो नापर कोपि तीर्णमसागरसागर । त्वमेवैको जगद्गुहो विनेयाननुसाधि नः ॥ २२८ ॥ भवद्गुहाराहभावा  
 रक्षत्रयमहाधुना । सस्थान जन्मवारोदगवापसुखसाधन ॥ २२७ ॥ इति तं च ततो देवो वाचा प्रोवाच दिव्यया । संतर्प्यते यथा भव्याः प्राच्या ऋषये  
 चातका ॥ २२६ ॥ धृणु भव्य भवत्स्यास्य कारण कर्म कर्मणः । हेतवो हे खं गाधीश मिथ्यात्वास्यमांदयः ॥ २२५ ॥ मिथ्यात्वोदयसत्तुपरिणामो विपर्ययं ।  
 ज्ञानस्य जनयन् विदि मिथ्यात्व बधकारण ॥ २२४ ॥ अज्ञानसंशयैकाताविपरीतविकल्पन । विनयकीर्तज चेति तज्ज्ञेसात्पचयमत ॥ २२३ ॥ पापधर्मोभि-  
 धानावबोधधरेषु जनुषु । मिथ्यात्वोदयपर्यायो मिथ्यात्व स्यात्सदादिमः ॥ २२२ ॥ आत्मागमादिनात्वास्तत्त्वे दोलायमानता । येन संशय-  
 मिथ्यात्व तद्विदि दुषसनम ॥ २२१ ॥ द्रव्यपर्यायरूपेणैव चाक्षयसाधने । तत्संयतेकांतमिथ्यात्व धैर्यकातावधारणं ॥ २२० ॥ योज्ञानज्ञा-

भरे हुए हैं और जो अनेक दुःख रूपी लहरोंसे भर रहा है, ऐसे विकराल संसाररूपी समुद्रके पार कौन जा सकता है  
 ॥ २२९ ॥ हे नाथ ! यह विषय आपके सिवाय अन्य किसीसे नहीं पूछा जा सकता क्योंकि आप ही संसार सागरके  
 पार पहुंचे हुए हैं और आप ही जगत्के बंधु हैं इसलिये हम शिष्योंपर आप ही कृपा कीजिये ॥ २२८ ॥ रत्नत्रयरूपी  
 उत्तम धनको धारण करनेवाले लोग इस जन्म मरणरूपी महासागरसे आपकी दिव्यध्वनिरूपी बड़ी नावके द्वारा ही  
 सुखपूर्वक अपने स्थानपर पहुंच सकते हैं ॥ २२७ ॥ इस प्रकार पूछनेपर वे भगवान जिस प्रकार पहिली वर्षासे चातक  
 पक्षी संतुष्ट होते हैं उसी प्रकार भव्यजीवोंको संतुष्ट करते हुए अपनी दिव्यध्वनिसे कहने लगे ॥ २२६ ॥ कि हे  
 विद्याधर भव्य ! सुन ! इस संसारके कारण कर्म हैं और कर्मके कारण मिथ्यात्व असंयम आदि हैं ॥ २२५ ॥ मिथ्यात्व  
 कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले जो परिणाम ज्ञानको भी विपरीत वा मिथ्या कर देते हैं और जो बंधके कारण हैं  
 उन्हें मिथ्यात्व कहते हैं ॥ २२४ ॥ अज्ञान संग्रह एकांत विपरीत और विनय इनके भेदसे वह मिथ्यात्व पांच प्रकार  
 रका माना गया है ॥ २२३ ॥ जो जीव पाप और धर्मके नामसे बहुत दूर हैं अर्थात् जो पाप और धर्मका स्वरूप वि-  
 स्मृत नहीं जानते उनके जो मिथ्यात्व कर्मके उदयसे परिणाम होते हैं वह पहिला अज्ञानमिथ्यात्व कहलाता है  
 ॥ २२२ ॥ जिस कर्मके उदयसे अनेक तरहके आप्त आगमोंके द्वारा कहे हुए तत्वोंमें विश्व झूठा रहता है किसीमें  
 विश्वास नहीं होता उसके हे उत्तम बुद्धिमान ! संशय मिथ्यात्व कहते हैं ॥ २२१ ॥ जो समस्त पदार्थ द्रव्य पर्याय  
 रूप हैं अथवा जो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चाग्रि रूप हैं उसमेंसे किसी एक रूप ही मानना एकांत  
 मिथ्यात्व है ॥ २२० ॥ जिसके उदयसे ज्ञान ज्ञायक और जानने योग्य यथार्थ पदार्थोंमें विपरीत निश्चय करना वि-

वक्ष्येयमाशात्म्ये निर्णयोऽन्याः । स येनात्मनि तद्विदि मिथ्यात्वं विपरीतज ॥ ३०१ ॥ मनोवाक्यादृशेन प्रणतौ सर्ववस्तु । मुक्त्युपायमसित्येन मिथ्या-  
त्वं स्यात् तदतिम ॥ ३०२ ॥ अत्रतस्य मनःकायवचोदृशिरसंयमः । तज्ज्ञः सोपि द्विधा प्रोक्तः प्राणीन्द्रियसमाश्रयात् ॥ ३०३ ॥ अप्रत्याख्यानमोहानामुदयो  
मावदस्मिन् । आचतुर्गुणस्थानातावत्स बंधकारणं ॥ ३०४ ॥ कायवाक्चेतसां दृष्टिप्रतानां मलकारिणी । या सा षष्ठगुणस्थाने प्रमादो बंधवृत्तये ॥ ३०५ ॥  
यावदस्मिन् । आचतुर्गुणस्थानातावत्स बंधकारणं ॥ ३०६ ॥ य संज्वलनसंज्ञस्य चतुष्कस्योदयाद्भवेत् । गुणस्थान-  
प्रोक्ता पंचवर्णतस्य मेदाः सज्वलनोदयात् । चारित्र्ययुक्तस्य प्रायश्चित्तस्य हेतवः ॥ ३०७ ॥ य संज्वलनसंज्ञस्य चतुष्कस्योदयाद्भवेत् । गुणस्थान-  
चतुष्के स कषायो बंधहेतुकः ॥ ३०८ ॥ स यः षोडशमेदेन कषाय कथितो जिनैः । उपशान्तादितो हेतुबंधे स्थित्यनुभागयोः ॥ ३०९ ॥ आत्म्यप्रदे-  
शसंचारो योगो बंधविधायकः । गुणस्थानत्रये ज्ञेयः षड्वेद्यस्य स एककः ॥ ३१० ॥ मानस स चतुर्भेदस्तावानेव वच स्थित । काये सप्तविध-  
परीत मिथ्यात्व है ॥ ३११ ॥ जिनके उदयसे सब पदार्थोंमें मुक्तिका उपाय माना जाता है और सभी  
पदार्थोंको मन वचन कायसे प्रमाण किया जाता है वह विनयमिथ्यात्व कहलाता है ॥ ३१२ ॥ अत्रती  
पुरुषकी जो मन वचन कायकी क्रिया है उसे तत्त्वोंको जाननेवाले असंयम कहते हैं वह असंयम दो प्रकारका  
है एक प्राणी असंयम ( प्राणियोंकी रक्षा नहीं करना ) और दूसरा इन्द्रिय असंयम अर्थात् इन्द्रियोंको वश  
नहीं करना ॥ ३१३ ॥ जबतक जीवोंके अप्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहनीय कर्मका उदय रहता है तब-  
तक अर्थात् चौथे गुणस्थानतक इन जीवोंके असंयम रहता है ॥ ३१४ ॥ जो छठे गुणस्थानमें ब्रह्मोंमें ( महाब्रह्मोंमें )  
दोष उत्पन्न करनेवाली मन वचन कायकी प्रवृत्ति है उसे प्रमाद कहते हैं । छठे गुणस्थानमें प्रमाद और कषायसे ही  
बंध होता है ॥ ३१५ ॥ प्रमादके पंद्रह भेद हैं जो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि इन तीनों चारित्र्योंको  
धारण करनेवालेके संज्वलन कषायके उदयसे प्रायश्चित्तके कारणरूप होते हैं ॥ ३१६ ॥ सात आठ नौ दश इन चार  
गुणस्थानोंमें संज्वलन क्रीध मान माया लोभके उदयसे जो परिणाम होते हैं उन्हें कषाय कहते हैं इन चारों गुणस्था-  
नोंमें इन्हींसे बंध होता है ॥ ३१७ ॥ श्रीजिनदेवने कषायोंके सोलह भेद कहे हैं । उपशान्त गुणस्थानके पहिले पहिले  
ये ऊपर कहे हुए मिथ्यात्व असंयम प्रमाद और कषाय ही स्थितिवंध और अनुभागबंधके कारण होते हैं ॥ ३१८ ॥  
उपशान्तसे आगे तीन गुणस्थानोंमें अर्थात् ग्यारहवें बागहवें तेगहवें इन तीन गुणस्थानोंमें एक सातावेदनीय कर्मका ही  
बंध होता है और वह आत्माके प्रदेशोंका हलन चलन रूप जो योग है उसीसे होता है ॥ ३१९ ॥ चार मनोयोग चार  
वचनयोग और सात काययोग इसतरह योगके पंद्रह भेद हैं और वे सब यथायोग्य रीतिसे प्रकृतिबंध और प्रदेशबंधके

सर्वो यथात्वं द्वयपकृत ॥ ३१० ॥ पञ्चमिर्वच्यते मिथ्यात्वादिभिर्वर्णितं सदा । स निश्चितशतेनार्य कर्मणा स्तोत्रिते पदे ॥ ३११ ॥ जंतुस्तैर्ब्रह्म्यते भूयो भूयो गत्यादिपर्यय । आश्रितादिगुणस्थानसर्वजीवसमासक ॥ ३१२ ॥ अज्ञानदर्शनोपेतस्त्रिभावो वीतसंशयः । भव्योभव्यश्च ससारवक्त्रावर्तगतं ॥ ३१३ ॥ जैम्यसुजरादिरोगसुखदुःखादिमेदमाक् । अतीतानादिकाले च धित्कालादिलिखित ॥ ३१४ ॥ करणत्रयसंज्ञातसप्तप्रकृतिसंचयः । प्राप्त-विच्छिन्नसंसारः शमसंभूतदर्शनः ॥ ३१५ ॥ अप्रत्याख्यानमिन्द्राद्यमावासासहोदशव्रतः । प्रत्याख्यानाख्य मित्राद्यमावासासहोदशव्रतः ॥ ३१६ ॥ सप्तप्र-कृतिनिर्वाणलज्जयाधिकदर्शनः । मोहारातिविधातोत्पत्त्याधिकचारभूयित ॥ ३१७ ॥ द्वितीयशुद्धसंस्थानो घातित्रयघातकः । नवकेवलभावाप्या घातक सर्वपूर्वितः ॥ ३१८ ॥ तृतीयशुद्धसंस्थाननिर्वाणलज्जयाधिकचारभूयित ॥ ३१९ ॥ एव त्रिरूपसन्मार्गागतमासासहोदशव-

कारण होते हैं ॥ ३१० ॥ हे आर्य ! ऊपर जो मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कपाय और योग ये पांच वर्णन किये हैं इन्हीं के द्वारा यह जीव अपने अपने योग्य गुणस्थानोंमें योग्यतानुसार एकसौ बीस प्रकृतियोंका बंध करता रहता है ॥ ३११ ॥ उसी बंधके कारण यह जंतु फिर फिर उन्हीं गतियोंमें पर्याय धारणकर परिभ्रमण किया करता है । पहिले ३११ ॥ गुणस्थानमें रहनेवाले सब जीवोंके संक्षेपसे तीन अज्ञान, तीन दर्शन और क्षायोपशमिक औदयिक पारिणामिक ये तीन भाव होते हैं संयमरहित होते हैं और उसमें भव्य अभव्य दोनों तरहके जीव रहते हैं । इसतरह संभाररूपी चक्रके भंवरूपी गठे में पड़ा हुआ यह जीव, जन्म, मरण, बुढ़ापा, रोग, सुख दुःख आदि अनेक लेशोंको महन करता हुआ, वीते हुए अनादिकालसे परिभ्रमण करता है । इनमेंसे कोई एक जीव काललब्धि आदिके निमित्त मिलनेपर अधःप-वृत्तिकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इन तीनों कारणोंको करता है तथा अनन्तावुंबंधी क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंके समूहका उपशम करता है । इसतरह संसारकी परि-पाटीको नष्टकर वह औपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है ॥ ३१२-३१५ ॥ अप्रत्याख्यानावरण कपायके क्षयोपशम होनेपर प्राप्त हुए परिणामोंसे गृहस्थोंके बारह व्रत प्राप्त करता है और मत्याख्यानावरण कपायके क्षयोपशमसे प्राप्त परि-णामोंसे महाव्रत स्वीकार करता है ॥ ३१६ ॥ सम्यग्दर्शनको घात करनेवालीं ऊपर लिखी हुई सात प्रकृतियोंके अ-त्यंत क्षय होनेसे ध्यायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है और मोहनीयरूप शुद्धके अत्यंत क्षय होनेसे यह जीव ध्यायिक सम्यक्चारित्रसे विभूषित होता है ॥ ३१७ ॥ दूसरे एकत्ववितर्क शुद्धध्यानसे ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों घातिया कर्मोंको नष्ट करता है और नौ केवल लब्धियोंके प्राप्त होनेसे सबके द्वारा पूज्य ऐसा स्नातक सर्वज्ञ

रिति । अग्नौ भवादहो भव्य समुत्तीर्यते सदा ॥ ३२० ॥ इति तां जन्मनिर्वाणप्रक्रियां विनभाषितां । श्रुत्वा पीत्वामृतो वासो विश्वविद्याभर ॥ ३२१ ॥  
 कालाशुक्लचन्द्रैर्वेदप्रायोग्यप्राणापरा । सम्यक्श्रद्धानसमुद्भवावकव्रतभूषिताः ॥ ३२२ ॥ भगवन् किञ्चिदिच्छामि प्रष्टुमन्यत्र चेत्सि । स्थित मेवा-  
 निषोषोऽयं प्रभाव तन्वतोवचन् ॥ ३२३ ॥ सुतारां मेनुजामेव हृतवान् केन हेतुना । इत्यप्राप्तीज्जिज्ञेदोपि हेतुं तस्यैवमवचीत् ॥ ३२४ ॥ जबूपलक्षिते द्वीपे  
 विषये भगवाह्वये । अर्चलप्राप्तमास्तव्यो ब्राह्मणो धरणीजड ॥ ३२५ ॥ अग्निलागृहिणी तोको भृत्यवैदोभिसङ्गौ । कपिलस्तस्य दासेरस्तद्वेदाध्ययने स्वयं  
 ॥ ३२६ ॥ वेदान्स मूर्धमुद्दिष्ट्वाद्दशीद् ग्रथतोर्थतः । त ज्ञात्वा ब्राह्मण कुटुम्बा लयायोग्यमिदं कृतं ॥ ३२७ ॥ इति दासीधुतं गेहासदैव निरजीगमत् ।  
 कपिलोपि विषण्णत्वात्साद्रूपुरं गयौ ॥ ३२८ ॥ श्रुत्वाध्ययनसंपन्नं योग्यं त वीक्ष्य सत्यक । विप्रः स्वतनुजा जबूसमुत्पन्ना समर्पयत् ॥ ३२९ ॥

हो जाता है ॥ ३१८ ॥ तीसरे शुक्लध्यानसे योगोंका निरोध करता है और समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे शुक्ल-  
 ध्यानसे समस्त कर्मोंका नाश करता है ॥ ३१९ ॥ इसतरह हे भग्य ! तेरे समान भग्य पुरुष अनुक्रमसे प्राप्त हुए सम्य-  
 दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य तीनों मोक्षके कारणोंसे संसाररूपी समुद्रको पारकर सदा अनंत सुखी रहता है ॥  
 ३२० ॥ इसप्रकार सब विद्याधरोंके स्वामी अमितेजने जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ जन्म मरणसे लेकर निर्वाणपर्यन्तका  
 सब हाल सुना और उस धर्मामृतका पान किया ॥ ३२१ ॥ काल आदि ऊपर कही हुई चारों तरहकी लब्धियोंके  
 प्राप्त होनेसे वह सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हुआ और श्रावकोंके व्रतोंसे विभूषित हुआ ॥ ३२२ ॥ तथा फिर पूछने लगा कि  
 हे भगवन् मैं अपने चित्तकी बात कुछ और पूछना चाहता हूं । इस अशनिघोषने जानबूझकर भी अपना प्रभाव दिख-  
 लाते हुए मेरी छोटी वहिन सुतारा किस कारणसे हरण की । अमितेजके इतना पूछनेपर श्रीजिनेन्द्रदेव कहने लगे  
 कि इसी जंबूद्वीपके मगधदेशमें अवल नामके गांवका रहनेवाला धरणीजड नामका एक ब्राह्मण था ॥ ३२३-३२५ ॥  
 उसकी स्त्रीका नाम अग्रिला था और इंद्रभूति अभिभूति नामके दो पुत्र थे । उसी ब्राह्मणके कपिल नामका एक दासीपुत्र  
 था । वह ब्राह्मण अपने दोनों पुत्रोंको वेद पढ़ाया करता था और दासीपुत्रको वेद पढ़नेका अधिकार न होनेसे कपि-  
 लको अलग रखता था परंतु कपिलकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म थी इसलिये उसने सुन सुनाकर ही कंठ और और दोनों तर-  
 हसे वेदको अच्छी तरह जान लिया । जब धरणीजडको यह बात मालूम हुई तब वह क्रोधित होकर कहने लगा कि  
 तुने यह बड़ा ही अयोग्य कार्य किया है इतना कहकर उसने उसीसमय उस दासीपुत्रको अपने घरसे निकाल दिया ।  
 ब्राह्मणके इस कार्यसे कपिलको बहुत दुःख हुआ और वह वहांसे निकालकर रत्नपुरनगरमें जा पहुंचा ॥ ३२६-३२८ ॥

स रात्रपूजितस्तत्र सर्वथाआर्षमारवित् । व्याख्यासंवेदिता कुंभप्रसरकतिविलम्बाः ॥ ३३० ॥ तस्य विपकुलयोग्यदुष्परिवर्तिविवर्शनात् । तद्भागे अल-  
भाभाय कस्येत्यायत्संशयः ॥ ३३१ ॥ बातापरंपराज्ञाताइकीयाग्रामव दिक् । स्वदारिद्र्यापनोरायं स्वानिकं संपुपागत ॥ ३३२ ॥ इराकपिलने इष्ट्या  
दुष्टात्मा भसीडीजडं । कुपितोपि मनस्वस्मे प्रमुखायाभिवाद्य न ॥ ३३३ ॥ समुबासनमारोप्य यात्रु प्रजोय किं मम । कुदान दूतं मद्राग्याप्यमंत्रैव-  
मागताः ॥ ३३४ ॥ इति घट्टग प्रतोप्यं बानवभ्राजनादिभिः । स्वभ्रात्युद्देशेदीतीत्यात् मय्यस् तस्य मनोजुमीत् ॥ ३३५ ॥ गोपि विप्रोतिदारिद्र्याभि-  
दुता पुत्रमेव तं । प्रतिपयाचरत्यागो नार्पेनां स्थितिगालन ॥ ३३६ ॥ दिनानि कानिषिगातान्मेवं श्रातशृणो- । मनोः कदाचित् विप्रं सुत्यमाया भना-  
वित् ॥ ३३७ ॥ अयादीतत्परोक्षेयं किं सत्यं दूतं न- । पुतः । एतत्कुंभिनचरियाग्र प्रलेनीति पुत्रता ॥ ३३८ ॥ स संप्रयेवमुक्तं विपानुवेतता द्विषं ।

वहाँके सत्यक नामक किसी ब्राह्मणने उसे विद्यासंपन्न और सब तरहसे योग्य देखकर उसे जंशू नाम की स्त्रीसे उत्पन्न  
हुई अपनी पुत्री व्याह दी ॥ ३२९ ॥ इस तरह सब आर्षोंके अर्थ भावार्थको जाननेवाले और राज्यपूज्य ऐसे उम करि-  
लने जिसका कोई खंडन न कर सके ऐसी व्याख्या करते हुए योडेसे बर्ष व्यतीत किये परंतु उमकी स्त्री मलभामा-  
को उसके ब्राह्मण कुलके अयोग्य आचरण देखकर “ यह किसका पुत्र है ” ऐसा संशय बनाही रहा ॥ ३३०-३३१ ॥  
इधर कपिलका पिता धरणीजड दरिद्र हो गया था और उसने परंपरासे कपिलके राज्याधिकारकी सब बातें सुन ली  
थी इसलिये वह अपनी दरिद्रता दूर करने और कुछ धन मिलनेके लोभसे कपिलके पास आया । दूध कविल मी रू-  
से ही उसे देखकर मनमें क्रोधित हुआ परंतु उसे अपनी जातिके भेद भगत होनेका मय था इसलिये वह पिताको  
देखते ही उठा, नमस्कार किया, ऊंचे आसनपर बिठाया और कहा कि “ कहिये पिता जी मेरी माता माई आदि  
सब कुशलपूर्वक हैं ? अच्छा हुआ जो आप मेरे भाग्यसे यहां ही आगये ” इस तरह बूढ़ापाछकर ज्ञान आसन वत्त  
आदिसे उसे खूब संतुष्ट किया और सब तरहसे उमका मन अपने हाथमें ले लिया ॥ ३३२-३३५ ॥ दरिद्रताके चं-  
गुलमें फंसा हुआ वह पागी ब्राह्मण मी कपिलको अपना ही पुत्र कहकर उसके साथ उसी तरह व्यवहार करने लगा  
सो ठीक ही है क्योंकि स्वार्थी लोग अपनी मर्यादाका कमी पालन नहीं कर सकते ॥ ३३६ ॥ इस तरह अपने अपने  
समाचारोंको छिपाते हुए उन पाप बेटोंके कितने ही दिन निकल गये तब किसी एक दिन सत्यभामाने कपिलकी  
अनुपस्थितिमें उस धरणीजड ब्राह्मणको बहुतसा धन देकर पूछा कि आप सत्य कहिये यह आपका ही पुत्र है  
इसका चरित्र ठीक नहीं निंघ है इसलिये मुझे आपके पुत्र होनेका विश्वास नहीं होता है ॥ ३३७-३३८ ॥ धरि-

गद्विष्णुपायकान्त बुष्टानां नास्ति दुष्करे ॥ ३२९ ॥ अथ तन्मगधराधीशः श्रीषेणः सिद्धं विदित्वा । निदिता च प्रिये तस्य तयोर्द्विदुसमिधो ॥ ३३० ॥ इन्द्रोपद्रादिसेनतौ तस्यैव मनुजोत्तमौ । ताम्यामसिक्किनीताभ्या पितर प्रीतिमागमन् ॥ ३३१ ॥ पापस्वपतिना सत्यभामा स्वाभ्ययमानिनी । सहवास-मनिच्छन्ती भूपतिं शरण्य गता ॥ ३३२ ॥ ततः कपिलकं शोकान्मस्तकन्यस्तहस्तकः । स्वोपातोयेतमन्यायबोधेण कृतकद्विज ॥ ३३३ ॥ वीक्ष्य विद्वान-वृत्तान्तं स श्रीषेणमहीपतिः । पापिष्ठानां विजातीनां नाकार्यं नाम किञ्चन ॥ ३३४ ॥ एतदर्थं कुलीनानां नृपा कुर्वन्ति संघट्टः । आदिमन्यावसानेषु न ते यास्यन्ति भिक्षिया ॥ ३३५ ॥ स्वयं रक्तो विरक्तार्यां योनुरागं प्रयच्छति । हरिः शोभमणौ बाँसा देवः कांक्षति लोहित ॥ ३३६ ॥ इत्यादि चिन्तयन् सद्यस्त दुराचारमात्मनः । देशाभिराकारोदम्यां न सहते स्थितिसति ॥ ३३७ ॥ कदाचिन्महीपालः चारणद्वन्द्वमागतं । प्रतीक्ष्यामित्यगत्याह्वयमरिजयमपि स्वयं ॥

भीजह विषमें तो कपिलसे देख रखता ही था और इधर उसे सत्यभामाकें दिये हुए सब धनको घर ले जानेकी इच्छा हुई इसलिये वह जो कुछ सच्चा समाचार था उसे कहकर धन लेकर अपने पर चला गया सो ठीक ही है क्यों-कि दुष्टोंके लिये कोई काम कठिन नहीं है ॥ ३३९ ॥

अद्यानंतर-उस रत्नपुर नगरमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था उसके सिंहनंदिता और अनिदिता नामकी दो रानी थीं उन दोनोंके सूर्य और चंद्रमाके समान इंद्रसेन और उपेंद्रसेन नामके मनुष्योंमें श्रेष्ठ ऐसे दो पुत्र थे दोनों ही पुत्र बड़े विनयवाले थे इसलिये माता पिता दोनों ही उनसे बहुत प्रसन्न थे ॥ ३४०-३४१ ॥ अपने कुलका अभिमान करनेवाली सत्यभामा अपने पापी पतिके साथ नहीं रहना चाहती थी इसलिये वह राजाकी आज्ञा गई ॥ ३४२ ॥ उससमय अन्यायकी घोषणा करनेवाला वह बनावटी ब्राह्मण कपिल शोकरसे अपने दोनों हाथ मस्तकपर रखकर महा-राजके पास ही बैठा था उसे देखकर और सब हाल जानकर वह चिन्ममें विचार करने लगा कि विजातीय पापियोंको संसारमें न करने योग्य कार्य कुछ भी नहीं है इसलिये ही राजा लोग अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको ही अपने पास रखते हैं वे कुलीन मनुष्य आदि मध्य अंत कहीं भी विकृत नहीं होते हैं ॥ ३४३-३४५ ॥ जो स्वयं अनुगृह्यत हुआ मनुष्य विरक्त हुई स्त्रीमें अनुगण करना चाहता है वह इंद्रनील मणिमें लाल तेज चाहता है ॥ ३४६ ॥ यही सोच विचारकर राजाने उस दुराचारी कपिलको अपने देशसे निकाल दिया सो ठीक ही है क्योंकि धर्मोत्तमा लोग मर्यादा की हानिको सहन नहीं कर सकते ॥ ३४७ ॥ किसी एक दिन उस राजाके यहां आदित्यगती और अरिजय नामके दो चारण मुनि पधारे थे, राजाने उनन्हें पङ्कगहनकर आहारदान दिया था जिससे उसके घर पंचाशत्वर्योकी वर्षा हुई



३४८ ॥ बलवानदानमेताभ्यामवाप्यार्थवचकं । उदककूबीयुरप्रभान् दशागतद्रुमोत्तर ॥ ३४९ ॥ देखो दानानुमोदेन सत्यभाषा न मतिहया । तदेवा-  
 युरणपुस्ता किं न स्यात्वापुर्सगमान् ॥ ३५० ॥ अथ कौन्त्याजीगीह मद्राबलमहीरते । श्रीमत्साध मृता नया श्रीकाता कतितामवि ॥ ३५१ ॥ राजा  
 तामिसेनस्य विवाहविधिना ददे । तथा मद्रागतानतमनि मायान्यछासिनी ॥ ३५२ ॥ एतयोर्पदेनस्य मांगार्यं ऐश्वर्यिभरे । अथुदभून् तदेतोन्नतोह-  
 यानवर्जितो ॥ ३५३ ॥ युद्धोयमस्तदाकर्म तो निवारितुं दृग । गथा कामादुरो हृदगतसमर्थः शिवात्मकः ॥ ३५४ ॥ मोदु ननुदतौदुममाद्रागवतया  
 स्वय । अशानुवन्तु वयाप्राय विषयुग मूर्ति यजो ॥ ३५५ ॥ तदेव पुण्यमात्र य मनीयुर्गतायुको । तदेवो सत्यगामा न शिषिना निषिन्दना ॥ ३५६ ॥  
 पात कीनड्ढादंकरूपरानामनु । दपती दृपतिः सिद्धविरता न ममूतु ॥ ३५७ ॥ अनुनिदिताऽय मन्त्रमात्रा न वक्रमा । तस्य सर्वेति ते तत्र भो-

शी तथा उसने दश तरहके कलारुओंसे भोगमोग प्राप्त कर देनेवाली उषरकुकु की उत्तम आयुका बंध किया था ॥  
 ३४८-३४९ ॥ राजा की दोनों रानियोंने तथा सत्यभामाने भी उम दानकी अनुमोदना की थी इसलिये उन तीनोंने  
 भी उसी उत्तरकुकु की आयुका बंध किया था सो ठीक ही है क्योंकि माधुओंके समागमसे क्या क्या नहीं होता है ॥ ३५० ॥

अथानंतर—कौशांबी नगरके राजा मद्राबल रानी श्रीपतीके श्रीकाता नामकी पुत्री थी जो कि बहुत ही सुंदरी  
 थी वह राजा मद्राबलने विवाहकी विधिसे श्रीपणके पुत्र इंद्रसेनको दी थी । श्रीकाताके साथ अनंतमनि नामकी एक  
 साधारण स्त्री आई थी । इस अनंतमतिके साथ उपेंद्रसेनका स्नेहसे भरा हुआ समागम होगया और इसलिये ही किमी  
 उद्यानमें इंद्रसेन और उपेंद्रसेन दोनों भाइयोंमें युद्ध होना पारंप होगया । राजा उस युद्धको बंद करनेके लिये गया,  
 परंतु वे दोनों ही कुमार कामी और कोषी थे इसलिये वे युद्धसे बंद नहीं हुए । जब राजा उनका युद्ध बंद न कर सका  
 तब उसके हृदयमें बहुत दुःख हुआ और वह विषगुण्य ( विषका फूट ) स्पृकर वहीं मर गया ॥ ३५१-३५५ ॥  
 रानी मिहनादिता अनिदिता और रुपिलकी स्त्री सत्यभामा भी वही विषगुण्य स्पृकर मर गई देखो कर्मकी गति चडी  
 ही विचित्र होती है ॥ ३५६ ॥ पातकीसंबंधके पूर्व मेरुकी ओर उत्तरकुर्चमें राजा श्रीपण तो आर्य हुआ और सिंह  
 नंदिता उसकी स्त्री हुई ॥ ३५७ ॥ इसीतरह अनिदिताका जीव वहींपर आर्य हुआ और सत्यभामाका जीव उसकी  
 स्त्री हुई । इस तरह वे सब भोगभूमिके भोगोंका अनुभव करते हुए वहीं रहने लगे ॥ ३५८ ॥

अथानंतर—इंद्रसेन और उपेंद्रसेनके युद्धके बीचमें एक विषाघरने आकर कहा कि तुम दोनों स्वयं ही क्यों  
 लड़ते हो यह अभितमवि तो तुम्हारी बहिन है इस बातको सुनकर वे दोनों ही भाई आनर्षके साथ घुलने लगे कि

गर्भयोगमार्गिनः ॥३५८॥ अथ कश्चित्स्रो गोमत्ये प्रविश्य नृपपुत्रयो । श्रुया किमिति शुश्रूष्येतामनुजा युषोयसिं ॥३५९॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा कुमारान्या सविस्मय । कथं तदिति संपृष्ट प्रत्याह गगनेचर ॥३६०॥ धातकीखंडप्रागभगमदरप्राच्यपुष्कला-वती खगद्वरुणाक्षेत्रेणिमितादित्याभयपुंज ॥३६१॥ तत्-जोमितसेनार्या सुकुण्डलस्त्रगेबिन । मणिकुण्डलनामाह कदाचिपुंडरीकिणी ॥३६२॥ गतोमितप्रभाहं दुभ्याः श्रुत्वा धर्मं सनातन । भर्तृव्यं भवसबन्धमप्राक्षमव-दध तै ॥३६३॥ तृतीये पुष्कराह्यातद्वीये परपुराचलात् । प्रतीच्यां वीतशोकाह्वय ससिद्धियमभ्यगं ॥३६४॥ पुरं वक्रचञ्चस्तस्य पतिः कनकमालिका । देवी कनकपद्मादिलते जाते तयो सुते ॥३६५॥ विभुन्यत्याध तस्यैव देव्या पद्मावती सुता । याति काले सुख तेषा कदान्तिकाललब्धित ॥३६६॥ प्रपीतामित सेनाह्वयगणिनीवासायना । सुते कनकमाला च कत्येजनिपतादिमे ॥३६७॥ सुराः पद्मावती वीक्ष्य गणिका कामुकद्वय । प्रसाध्यमाना तच्चिताभूतत्र सुरल-

“यह कैसे” तब वह विद्याधर कहने लगा कि ॥ ३५९-३६० ॥ धातकीखंडके पूर्व मेरुके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके विजयार्द्र पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके आदित्य नगरमें सुकुण्डलि नामका विद्याधर राज्य करता है उसकी अमितसेना रानीसे मैं मणिकुण्डल नामका पुत्र हुआ हूं । किसी एक दिन मैं पुंडरीकिणी नगरी गया था वहां मैंने अमितप्रभ जिनेंद्रदेवसे अनादिकालसे चले आये धर्मका स्वरूप सुना था और फिर अपने पहिले भवका संबंध पूछा था । इसके उत्तरमें भगवानने कहा था कि ॥ ३६१-३६३ ॥ तीसरे पुष्करद्वीपके पश्चिम मेरुपर्वतके पूर्वमें सरित् नामके देशमें वीतशोक नामका नगर है वहांपर वक्रचञ्च नामका राजा राज्य करता था । उसकी कनकमाला देवीसे कनकलता और पद्मलता नामकी दो कन्यायें थीं । उसी राजाके विष्णुमती नामकी दूसरी रानी थी उस-के पद्मावती नामकी कन्या थी । इसप्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था । किसी समय काललब्धिके निमित्तसे अमितसेना नामकी अजिंक्रासे रानी कनकमाला और कनकलता पद्मलता दोनों कन्याओंने धर्मरूपी अमृत का पान किया था इसलिये वे तीनों ही आयु पूरी कर पहिले स्वर्गमें देव हुए । इधर एक वेश्या दो कामी लोगोंको प्रसन्न कर रही थी उसे देखकर पद्मावतीने भी वैसे ही होनेकी इच्छा की । मरकर वह स्वर्गमें अप्सरा हुई और वहां से आकर यह अनंतमति हुई है । कनकमालाका जीव मैं मणिकुण्डल हुआ हूं और कनकलता पद्मलताके जीव तुम दोनों माई हुये हो तथा अपनी पहिले जन्मकी बहिनके लिये लड़ रहे हो ॥ ३६४-३७० ॥ इसतरह जिनेंद्रदेवकी कही हुई वाणीको सुनकर अन्याय करनेवाले और धर्मको न जाननेवाले तुम दोनोंको रोकनेके लिये मैं यहां आया हू ॥ ३७१ ॥ विद्याधरकी यह बात सुनकर दोनोंने कलह करना छोड़ दिया, दोनों संसारसे विरक्त हुये दोनोंको

विरा ॥ ३६८ ॥ ततः स्नकमर्त्यं लभामर्षिर्निर्मुक्तः । सततं न नम्रमुन्मत्तं दृष्टवन्तः ॥ ३६९ ॥ स्न-ह-पुष्पांगमल-या-मु-त्पुष्पांगमल-या-  
 तदेतौवतै युद्धमय तदाजगुप्रयोः ॥ ३७० ॥ इति ततोऽपि नानीमर्षागम्ययकरीते । गुणगण-कर्मणां निरेदुमर्षागम्यः ॥ ३७१ ॥  
 इति नम्रनम्रौवतैः अतः तद्विदे । मग-ममूर्तिना मुच-गुणगतिना ॥ ३७२ ॥ अभामर्षागम्य निरेदामर्षागम्यतया । क्षा-ति-क्षान्तयोः सतिगुण  
 सिद्धिर्तिमापतु ॥ ३७३ ॥ तदनात्ममन्यनमर्षागम्यतया । ना-नो-क-तागम्य न किं वा मर्षागम्य ॥ ३७४ ॥ मर्षागम्ये भूतेनो विमाने श्रीगणे  
 भवतु । देवी श्रीनिलोत्पुप्रमार्गवर्णनदित ॥ ३७५ ॥ ग्राम्यवर्णिते चाम्य विमाने विगलप्रसे । ते-रि गुणप्रभा नायां देवो-न निगलप्रमः ॥ ३७६ ॥  
 पंचपरयोगमप्रति श्रीणेन प्रच्युतन्तः । अर्कैर्हीतैः मुन भोमानजनिद्वारमोदयाः ॥ ३७७ ॥ मगज्योति-प्रभा फांताकलि या मिदुनदित । मगज्यो-  
 तिदित चय देवी श्रीविजयाक्षय ॥ ३७८ ॥ सत्यमाया गुतागु-आपकः जपिलः मलः । मुक्तिं दुर्गतिं चाम्य कथ्मरसने बने ॥ ३७९ ॥ दृष्टवर्णित-  
 वैराग्य हुआ, सुधर्म गुरुते ममीय जाकर देवाने दीवा घाण की, देनों ही मोक्षमार्गके अंततक पहुंचे, प्रायिक अ-  
 नंतज्ञान आदि गुणोंको प्राप्त हुये और अंतमें देनों ही मुक्त हुये ॥ ३७२-३७३ ॥ तदनंतर अंततमतिने बहुत अच्छी  
 तरह श्रावकके पूर्णव्रत घाण किये और मरकर स्वर्गलोकमें उतरा हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके अनुग्रहसे  
 क्या २ प्राप्त नहीं होता है ॥ ३७४ ॥ श्रीवेणका जीव जो मोगधूमिमें उत्पन्न हुआ था वह सोधर्म स्वर्गमें भीषमदेव  
 हुआ और सिद्धनंदिताका जीव श्रीनिलय नामके विमानमें विद्युत्प्रभा नामकी देवी हुई ॥ ३७५ ॥ हमी तरह अनंदिता-  
 का जीव विमलप्रभ विमानमें विपलप्रभ नामका देव हुआ और ब्राह्मणी सत्यमामाका जीव उसी विमानमें शुक्लप्रभा  
 नामकी देवी हुई ॥ ३७६ ॥ श्रीवेणका जीव अपनी पांच पत्न्यस्त्री आयु पूरीकर बहसे म्र्युत हुआ और इस तरह की  
 लक्ष्मीसे सुगोभिन तू अर्ककीर्तिका पुत्र हुआ है ॥ ३७७ ॥ सिद्धनंदिताका जीव ज्योतिप्रभा नामकी तेरी स्त्री हुई  
 है । देवी अनंदिताका जीव यह भीविजय हुआ है और सत्यमामाका जीव यह सुताग हुई है । दृष्ट कपिलके जीवने  
 बहुत दिनतक अनेक दुर्गतिमें परित्रपण किया और फिर संपूतरमण नामके वनमें ऐरावती नदीके किनारे किसी  
 तापसियोंके आश्रममें कौशिक नामके तपसी की चपलवेगा स्त्रीसे मृगगुण नामका पुत्र हुआ । बर्षापर उस दृष्टने बहुत  
 दिनतक खोटे तापसियोंके व्रत पालन किये । किसी एक दिन चपलवेग विद्याधरकी लक्ष्मीको देखकर उस मूलने  
 मनमें विद्यान् जियकी सदा निंदा करते हैं ऐसा निदान किया तथा उसीके फलसे यह अश्वनि घोष विद्याधर हुआ  
 है । पहिले मरके स्नेहसे ही इसने मृगका हारण किया है ॥ ३७८-३८१ ॥ आगे होनेवाले भवोंमेंसे नीचे भवमें

तीरे समभूतापसाश्रमे । ततश्चपलवेगयार्यां कौशिकान्मृगशृङ्गावाक् ॥ ३८० ॥ कुतापसव्रतं दीर्घमनुश्राय दुराशय । त्रिय चपलवेगस्य विलोक्य स्वचरोभिः ॥ ३८१ ॥ निदान मनसा मूढो विधाय बुचर्निदित । जनिस्त्राशानिवोषोयं सुतारां केहतोऽग्रहीत् ॥ ३८२ ॥ भवे भाव्यत्र नवमे पंचमश्चक्रिवर्तिता । तीर्थेशां षोडशः शांति-  
भवाश्च शांतिप्रद सतां ॥ ३८३ ॥ इति तज्जिनस्तीताशुवारज्योत्स्नाप्रसरप्रभा-प्रसंगाषु व्यकसरेतचर्चद्रुकमुदाकरः ॥ ३८४ ॥ तर्दवाशानि गोणाल्यो माता  
चास्य स्वयंप्रभा । सुतारा च परे वापश्चिर्विष्णाः संयम पूरे ॥ ३८५ ॥ अमिनय जिन सर्वे त्रि-परीत्य यथोचित । अगमुभक्तिनूनायास्ते शत्रून् मततेजसा ॥  
३८६ ॥ अर्ककीतस्तुतः कुर्वमसुक्तिं सर्वपर्वसु । स्थितिमेदे च तयोग्यं प्रायश्चित्तं समाकरन् ॥ ३८७ ॥ महापूजा सदा कुर्वन् पात्रदानादि  
दुर्मकर्यां शृण्वन् भव्मन् धर्म प्रनोवयन् ॥ ३८८ ॥ नि शकादिगुणोस्तन्वन्दष्टिगोदानगोहयन् । इतो बाऽमिततेजा सन् मुक्तप्रदोभृताशु । ॥ ३८९ ॥ स-  
यमीव शंस यात-पालक पितृवत्प्रजाः । लोकद्वयहित धर्म्यं कर्म प्रावर्तयत्सदा ॥ ३९० ॥ प्रवृत्तिकामरुपिण्यावयामिस्तमिनी परा । उदकस्तमिनी विद्या वि-  
द्याविश्वप्रवेशिनी ॥ ३९१ ॥ अप्रतीचातगमिन्या सदान्याकाशगमिनी । उरपादिनी परा विद्या सा वशीकरणीस्तुता ॥ ३९२ ॥ आवेशिनी दशम्यन्या मा-

तेरा जीव सज्जनोंको ज्ञाति देनेवाला पांचवां चक्रवर्ती और सोलहवां तीर्थंकर शांतिनाथ होगा ॥ ८२ ॥ इसप्रकार  
भगवानरूपी चंद्रमाकी फैली हुई वचनरूपी चांदनीकी प्रभाके संबंधसे विद्याधरोके इन्द्र अमिततेजका हृदयरूपी कमोदि-  
नियोंसे भरा हुआ सरोवर खिल गया ॥ ३८३ ॥ उसीसमय अश्वनिषोष, उसकी माता, स्वयंप्रभा, सुतारा तथा और भी  
कई जीवोंने विरक्त होकर संयम धारण किया ॥ ३८४ ॥ बाकीके लोगोंने भगवानकी वंदनाकी यथायोग्य रीतिसे  
प्रदक्षिणा दी और अमिततेजके साथ २ चक्रवर्तीके सब पुत्र और २ मी सब लोग अपने २ घर चले गये ॥ ३८५ ॥  
इधर अर्ककीर्तिका पुत्र अमिततेज सब पर्वोंमें उपवास करने लगा यदि किसी मर्यादामें अंतर पड़ता था तो वह  
यथायोग्य प्रायश्चित्त करता था, सदा महापूजा करता था, आदरपूर्वक पात्रोंको दान देता था, धर्म कथा सुनता  
था, भव्योंको धर्मका उपदेश देता था, दर्शनमोहनीयको नष्टकर निःशंकित आदि गुणोंको बढ़ाता था, अत्यंत तेजस्वी  
होनेसे सूर्यके समान था और चंद्रमाके समान सब लोग उसे आनंदसे देख सकते थे ॥ ३८६-३८८ ॥ संयमीके  
समान वह शांत था, पिताके समान प्रजाकी रक्षा करता था और दोनों लोकोंके हित करनेवाले धर्म कर्मकी प्रवृत्ति  
सदा करता रहता था ॥ ३८९ ॥ प्रज्ञप्ति, कामरूपिणी, अग्निस्तंमिनी, उदकस्तंमिनी, विश्वप्रवेशिनी, अप्रतिघातग-  
मिनी, आकाशगमिनी, उत्पादिनी, वशीकरणी, दशमी आवेशिनी, प्रस्थापनी, प्रमोहनी, प्रहरणी, संक्रामणी, आवर्त-  
नी, संप्रहणी, भंजनी, विपाटनी, प्रावर्तनी, प्रहायणी, प्रभावती, प्रलापिनी, निक्षेपणी, शर्वरी, चांडाली,

न्या प्रस्थापनीति च । प्रमोहनी प्रहरणी मंकाभ्याख्ययोदित ॥३९३॥ आवर्तनी संग्रहणी भंजनी च विपाटनी । प्रावर्तनी प्रमोदित्या सहाय्यापि प्रहा-  
यणी ॥ ३९४ ॥ प्रमावती प्रलापिन्या निक्षेपिण्या च या स्युता । शर्वरी या च चाडाली मातगीति च कीर्तिता ॥ ३९५ ॥ गौरी षडङ्गिका श्रीमत्कन्या  
च शतसंकुला । कुम्भाङ्गीति च विख्याता तथा विरलवेङ्गिका ॥ ३९६ ॥ रोहिण्यतो मनोवेगा महावेगाढ्यापि च । चण्डवेगा सचपलवेगा लघुकरीति च ॥  
३९७ ॥ पर्णलज्जस्थका वेगावतीति प्रतिपादिता । शीतोष्णदे च वेताल्यौ महाज्वालाभिधानिका ॥ ३९८ ॥ छेदनी सर्वविद्यानां युद्धवीर्येति चोदिता ।  
बधाना मोचनी चोक्ता प्रहाराचरणी नया ॥ ३९९ ॥ भ्रामर्या भोगिनीत्यादि कुलजातिप्रसाधिता । विद्यास्तासामय पारं गत्वा योगीव निर्वभौ ॥ ४०० ॥  
श्रेणीद्वयाधिपत्येन विद्याधरधराधिप । प्राप्य तत्कक्रवर्तित्व विरं भोगानभुज स ॥ ४०१ ॥ कदाचित्त्वचराधीश्वरधारणाय यथाविधि । दान दमवराख्याय  
दत्त्वापार्थव्यपचक्र ॥४०२॥ अन्यदामिततेजःश्रीविजयौ विनताननौ । नत्वाभरगुरु देवगुरु च मुनिपुगव ॥४०३॥ दृष्ट्वा धर्मस्य माहात्म्य पीत्वा तद्वचना-  
युत । अजरामरता प्राप्ताविव तोयमुपेयदुः ॥४०४॥ पुन श्रीविजयौप्राक्षीद्भवसवधमात्मनः । पितु स भगवान् प्राह प्रथम प्रास्ताकल्मष ॥४०५॥ साकल्येन-

मातङ्गी गौरी, पङ्गिका, श्रीमत्कन्या, शतसंकुला, कुम्भाङ्गी, विरलवेङ्गिका, रोहिणी, मनोवेगा, महावेगा चण्डवेगा,  
चपलवेगा, लघुकरी, पर्णलघु, वेगावती, शीतदा, उष्णदा, वेताली, महाज्वाला, सर्वविद्याछेदिनी, युद्धवीर्या, वंघमो-  
चनी, प्रहाराचरणी, भ्रामरी, आभोगिनी इत्यादि कुल और जातिमें उत्पन्न हुई अनेक विद्यायें सिद्ध कीं उन सब वि-  
द्याओंका पागामी होकर वह योगीके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ३९०-३९९ ॥ दोनों श्रेणियोंका अधि-  
पति होनेसे वह सब विद्याधरोंकी पृथ्वीका स्वामी था और इमलिये ही वह विद्याधरोंका चक्रवर्ती कहलाता था ।  
इसतरह उसने बहुत दिनतक भोगोंका अनुभव किया था ॥ ४०० ॥ किसी एक दिन उस अमिततेज विद्याधरने  
चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दमवर नामके मुनिको विधिपूर्वक आहारदान दिया जिससे उसके यहां पचाश्रयोंकी  
वर्षा हुई ॥ ४०१ ॥ किसी दूसरे दिन अमिततेज और श्रीविजय दोनोंने अपना मस्तक नवाकर अमरगुरु और देव-  
गुरु दोनों मुनिराजोंको नमस्कार किया, दोनोंने धर्मका माहात्म्य पूछा, उनके वचनरूपी अमृतका पान किया और  
अजर अमर हो जानेके समान संतुष्ट हुए ॥ ४०२-४०३ ॥ तदनंतर श्रीविजयने अपने और पिताके पहिले भर्षोंका  
संबंध पूछा तब सब पापोंको नाश करनेवाले पहिले अमरगुरु भगवान कहने लगे ॥ ४०४ ॥ उन्होंने विश्वनंदिके  
भवसे लेकर सब कह सुनाया उसे सुनकर उसने भोगोंमें निदान किया ॥ ४०५ ॥ इसके बाद थोड़े दिनतक विद्या-  
धर और भूमिगोचरियोंके सुखायुतका पान किया और फिर विपुलमति तथा विमलमतिके समीप दोनों राजाओंने

तदाख्यात विधनंदिमवादि । समाकर्ण्य तदास्थान भोगे कृतनिदानकः ॥४०६॥ किंचित्कालं समासाद्य खभूचरसुखाभृत । विपुलादिमते-  
थ तौ ॥४०७॥ महीभुजौ निशम्यैकमासमात्रात्मजीवितं । दत्त्वाकर्तृजसे राज्यं श्रीदत्ताय च सादरं ॥४०८॥ कृताष्टादिकिससूजौ मुनीशश्चदने वने । समीपे  
नदनाख्यस्य त्यक्त्वा । सग तयोः खगेद ॥४०९॥ प्रायोपगमसंन्यासविधिनाराध्य शुद्धी । नद्यावर्तैऽभवत्कल्पे रविचूलप्रयोदशे ॥४१०॥ अभूच्छ्रीविजयोप्यत्र  
स्वस्तिके मणिचूलकः । विशलञ्च्युपमायुष्यौ जावितावसितौ तत ॥४११॥ द्वीपेस्मिन् प्राग्विदेहस्थविलसद्वत्सकावती । देशे प्रभाकरी पुण्या पतिस्तिमित-  
सागर ॥४१२॥ देवी वसुधरा जातस्तयोरालिख्यचूलवारु । देवोपराजितः सुजुग्ंधावर्ताद् दिक्च्युतः ॥४१३॥ तस्यैवाजुमतौ देव्या मणिचूलोप्यभ्युक्षुतः ।  
श्रीमानंतर्वीर्याख्यो दिविजः स्वस्तिकाच्च्युतः ॥४१४॥ कात्या कुवलयाह्लादात्तुष्णगातागपनोदनात् । कलाधरत्वाद्भात स्म जब्दोपविधूपमां ॥४१५॥

अपनी आयु एक महीनेकी रही सुनी इसलिये उन दोनोंने अर्कतेज और श्रीदत्तके लिये राज्य दिया, आदरपूर्वक  
अष्टादिकाकी पूजा की और चंदनवनमें नंदनमुनिराजके समीप सब परिग्रहका त्यागकर दीक्षा धारण की । उन  
दोनोंमेंसे शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला अमिततेज विद्याधर विधिपूर्वक प्रायोपगमन संन्यास धारणकर आराधना-  
ओंका आराधनकर तेरहवें आनत स्वर्गके नंदावर्त विमानमें रविचूल नामका देव हुआ और श्रीविजय मी इसी  
स्वर्गके स्वस्तिक विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ । इन दोनोंकी वीस सागरकी आयु थी ॥४०६-४११॥  
वहाँकी आयु पूरीकर रविचूल नामका देव नंदावर्त विमानसे च्युत होकर इसी जब्दोपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें अत्यंत  
शोभायमान वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीमें राजा स्तिमितमागर रानी वसुंधराके अपराजित नामका पुत्र हुआ ॥  
४१२-४१३॥ मणिचूलनामका देव मी स्वस्तिक विमानसे च्युत होकर उसी राजा स्तिमितसागरके अनुमति नाम-  
की रानीसे श्रीमान् अनंतवीर्य नामका पुत्र हुआ ॥४१४॥ वे दोनों ही भाई अपनी कांतिसे कुवल्य ( कमोदिनी  
वा पृथ्वी मंडल ) को प्रफुल्लित करते थे, तृष्णासे उत्पन्न हुए संतापको दूर करते थे और अनेक कलाओंको धारण  
करते थे इसलिये वे दोनों ही जब्दोपके दो चंद्रमाके समान सुशोभित होते थे ॥४१५॥ अथवा वे दोनों ही प्रथम  
के दो सूर्योके समान जान पड़ते थे क्योंकि सूर्य कमलोंको खिलाता है उसीप्रकार वे दोनों कमलके समान लोगोंको  
आनंदित करते थे, उनका शरीर कमलके समान गुलाबी रंगका था, सूर्यके समान अंधकारको नाश करनेवाले थे  
उनका सदा उदय रहता था और पदार्थोंको प्रकाशित करनेसे संसारके नेत्र थे ॥४१६॥ अथवा वे पृथ्वीपर नवीन  
चंद्रमाके समान थे क्योंकि उनका कर ( किरणें वा कर ) प्रतापी था परंतु दाह उत्पन्न करने वाला नहीं था ।

पमानकनौ ताप्यद्रुपुको ध्वस्ततामनी । निलोदयो अगन्नेत्रे तावायुयौ वा दिवाकरो ॥ ४१६ ॥ नव च को कलावौ सप्रतापी न दाहको । कद्रव्यव्यपेते  
 तौ सर्तकौ रेजुस्तरा ॥ ४१७ ॥ नोपमानस्त्यो कामो ह्येणानंगतां गतः । नीला नान्योन्यजैतारौ गुरुशुक्रौ च तत्समौ ॥ ४१८ ॥ हीयते बद्धते चापि  
 भास्करेण विनिर्मिता । बद्धते तद्धता छाया बद्धमानस्य वा तरो ॥ ४१९ ॥ न तयोर्विमहो यान तथाप्यारिमहीभुजः । तद्वतापभयासाभ्यां स्वयं संधातु-  
 मयुक्ता ॥ ४२० ॥ अवर्द्धिताता तावेवं राज्यलक्ष्मीकटाक्षगो । नव वय समासाय शुक्रशून्यमृतांशुवत् ॥ ४२१ ॥ पर्यायो राज्यभोग्यस्य योग्योर्मितं-  
 जयोः । इतीव रतिमच्छंस्त्रीद्वोगेज्वेतित्वितान्यदा ॥ ४२२ ॥ तदेव तो समाह्वय कुमारारवमरोपमौ । अभिविच्यार्पयद्राज्यं च यौवराज्यं सोऽष्टदृ ॥ ४२३ ॥ स्वय-  
 स्वयप्रमाख्यानखिनपादोपसेवनं । संयमेन समासाय धरणेन्द्रिदर्शनात् ॥ ४२४ ॥ निदानवृषितो बालतपा लोलुताय सुते । स्वकलते विशुद्धात्मा जगाम  
 यद्यपि वे दोनों तरहके क्रोंसे रहित थे तथापि उनके कर अर्थात् हाथ बड़े ही सुंदर थे. इसतरह वे दोनों ही भाई  
 बड़े सुंदर जान पड़ते थे ॥ ४१७ ॥ उनके रूपकी संसारमें कोई उपमा ही नहीं है क्योंकि कामदेव भी उनके रूपसे  
 लज्जित होकर ही शरीररहित हो गया है । नीतिमें वे एक दूसरेको जीत नहीं सकते थे और बृहस्पति तथा शुक्रके  
 समान सुशोभित होते थे ॥ ४१८ ॥ सूर्यसे उत्पन्न हुई छाया कभी घटती है और कभी बढ़ती है परंतु निमप्रकार  
 बढ़ते हुए वृक्षकी छाया सदा बढ़ती रहती है उसीप्रकार उन दोनों की छाया ( कृपा ) सदा बढ़ती रहती थी ॥  
 ४१९ ॥ वे दोनों न तो किसीक साथ विग्रह वा युद्ध करते थे न यान ( सवारी चढ़कर जाना ) ही करते थे तथापि  
 उनके प्रतापके भयसे ही सब शत्रु राजा स्वयं उनके साथ संधि करनेको उत्सुक रहते थे ॥ ४२० ॥ इसतरह नई  
 जवानी पाकर शुरु पक्षकी अष्टमीके चंद्रमाके समान वे दोनों ही भाई बृद्धिको प्राप्त हो रहे थे और राज्य लक्ष्मीके  
 कटाक्षोंके पात्र हो रहे थे ॥ ४२१ ॥ किसी एक दिन इनके पिता स्तिमितसागरने सोचा कि मेरे योग्य दोनों पुत्रों-  
 की अवस्था अब राज्य भोगनेके योग्य है इसलिये उसने भोगोंसे प्रेम छोड़ दिया ॥ ४२२ ॥ उसीसमय उसने देवोंके  
 समान दोनों कुमारोंको बुलाया और बड़ी उत्कंठाके साथ दोनोंका अभियेककर दोनोंको राज्य और यौवराज्य पद  
 दिया ॥ ४२३ ॥ तथा स्वयंप्रभ तीर्थकरके चरणक्रमलोंके समीप जाकर संयम धारण किया । किसी एक दिन  
 धरणद्रिकी विभूति देखकर निदान किया और उस निदानसे दूषित हुए बालतपके करनेमें तल्लीन हुआ, और  
 विशुद्ध आत्माको धारण करनेवाला वह आयुके अंतमें मरकर धर्णद्रि हुआ ॥ ४२४--४२५ ॥

इधर पिताका राज्य पाकर बीजसे उत्पन्न हुए अंकरके समान वे दोनों ही भाई नीतिरूपी जलके सींचनेसे उस



धरणीयता ॥ ४२५ ॥ तत्पदे तो समासाय वीजमूलं कुराविव । नीतिचारिणीपेक्षास्तु भूमौ वृद्धिनीयतु ॥ ४२६ ॥ अनुपगतस्तयोः पूर्वं सप्रतापा नयाशिव । आक्रम्य मलके चकुण्डस्पद सर्वभूयता ॥ ४२७ ॥ लक्ष्म्यौ नये शुभानौ तौ तत्प्रतिः समसंगमात् । भोगशक्तिं व्यधाद्वाट तयोः रुद्रतपुष्ययो ॥ ४२८ ॥ नन्तकी वर्वरीयेका ह्यतात्या च चिलातिका । नृत्यविद्येयं सामर्थ्याद् रुद्रद्वयमुपागता ॥ ४२९ ॥ भूपती तौ तयोर्नृत्य कदाचिज्जातसंमदौ । विलोकमानावसीनावागमद्भारदस्तदा ॥ ४३० ॥ सूर्याचन्द्रमसौ सहिकेयो वा जनिताश्चुमः । नृतासंगालुमाराभ्यां क्रूरः सो विहितादर ॥ ४३१ ॥ जाज्व त्यमानकोपाग्निशिखा संतप्तमानसः । चंडाश्रुतिव मध्याह्ने जज्वाल शुचिपगमात् ॥ ४३२ ॥ स तदैव समामध्याग्निर्गल्य कलहप्रिय । द्राक्षप्राप्तकोपवेगेन नगरं शिवमिदरे ॥ ४३३ ॥ दमितारिं सभामध्ये सन्निविष्ट स्वविष्टरे । अख्यमस्तकभास्वंतमिव प्रपतनोन्मुखं ॥ ४३४ ॥ सद्यो विलोक्य सोप्याशु प्रत्युत्था-

अच्छी भूमिमें बहुत ही वृद्धि को प्राप्त हुए ॥ ४२६ ॥ जिसप्रकार सूर्य उदय होकर अपना प्रताप और किरणें सब पर्वतोंपर फैलाता है उसीप्रकार पहिले तो उनकी प्रतापसहित नयोंकी किरणें प्रगट हुई थीं और फिर उन्होंने आक्रमण कर सब राजाओंके मस्तकपर अपना स्थान बनाया था । भावार्थ—उन्होंने सब राजा वश कर लिए थे ॥ ४२७ ॥ युवावस्थाको प्राप्त हुये वे दोनों ही भाई प्राप्त हुये पुण्यकर्मके उदयसे नई गज्यलक्ष्मीको पाकर और समान रीतिसे प्रेम करते हुए भोगोंसे तल्लीन होगये थे ॥ ४२८ ॥ उनके वर्वरी और चिलातिका नामकी दो नृत्य करनेवाली थीं वे नृत्य करनेमें इतनी चतुर थीं मानों अपनी सामर्थ्यसे नृत्य विद्या ही दो रूप धारण कर आई हो ॥ ४२९ ॥ किसी एक दिन वे दोनों ही भाई आनंदित होकर नृत्य देख रहे थे इतनेमें ही सूर्य चंद्रमापर राहुके समान अशुभ करनेवाला नारद आया । वे दोनों भाई नृत्य देखनेमें तल्लीन हो रहे थे इसलिये उन्होंने न तो नारदको देख पाया और न वे उसका आदर सत्कार कर सके । क्रूर नारदको भला इतनी बात कब सहन हो सकती थी ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥ जलती हुई क्रोधरूपी अग्नि की शिखासे उसका चित्त संतप्त होगया और जिसप्रकार जेठके महीनेमें दोपहरके समय सूर्य जलता है उसीप्रकार वह क्रोधसे जलने लगा ॥ ४३२ ॥ कलहको प्रिय माननेवाला वह उसी समय उस समासे निकल गया और क्रोधके आवेशमें आकर शीघ्र ही शिवमंदिर नामके नगरमें जा पहुंचा ॥ ४३३ ॥ जिसप्रकार सूर्य गिरनेके सन्मुख होकर अस्ताचल पर्वतके मस्तकपर विराजमान होता है उसीप्रकार राजा दमितारि अपनी सभामें सिंहासनपर विराजमान था राजा नारदको देखकर शीघ्र ही उठकर उसके सामने गया, पडगाहनकर प्रणाम किया और फिर उसे ऊंचे आसनपर विराजमान किया ॥ ४३४-४३५ ॥ नारदने आशीर्वाद दिया, तब फिर



नपुरस्तरं । प्रतिष्ठा प्रणम्योर्वाँष्टरे सन्निवेश्य त ॥ ४३५ ॥ दत्ताक्षिण किमुद्दिश्य भवतो मासुपागताः । सपद किं ममाक्षेष्टु प्राप्ता किं वा महापद ॥

४३६ ॥ इत्यप्राप्तीदसौ वास्य विकामिवदनावुंज । समद जनयन् वाचमवोचत्प्रीतिवर्द्धिनीं ॥ ४३७ ॥ सारभूतानि वस्तूनि सर्वान्वैकुण्ठ परिश्रमन् । नर्तकी-  
द्रयमद्रक्ष प्रेक्षायोग्य तवैव तत् ॥ ४३८ ॥ अस्थानस्य समीक्ष्यवमनिष्ट सोढुमक्षम । आगतोद् कथं सखा पादे चूडामणिस्थिति ॥ ४३९ ॥ सप्रत्यप्र-  
तिमन्त्रो वा नूतनश्रीमदोद्भूतो । प्रभाकरीपुराधीशो व्यलीकविविजिगीषुको ॥ ४४० ॥ ससंव्यसनससको सुखोच्छेद्यो प्रमादिनी । तयोर्गृहे सुखप्राप्तं जग-  
त्सारमवस्थित ॥ ४४१ ॥ तद्दूतप्रेषणदेव तवाद्यायति हेल्ग्या । कालहर्निर्न कर्तव्या हस्तासंज्ञेऽतिदुर्लभे ॥ ४४२ ॥ इत्येव प्रेरितस्तेन सपापेन यमेन वा ।

दमितारि समासन्नमरणः ध्रुवण ददौ ॥ ४४३ ॥ तदेव नर्तकीवार्ताधुतिव्यामुपचैतन । दूतं सोपायन प्रस्तुतार्थसंभववेदिन ॥ ४४४ ॥ प्राहिणोद्वस्का-

राजाने पूछा कि आप किस उद्देश्यसे यहां पधारे हैं क्या कोई संपदा बतलानेकेलिये या कोई आपत्तिका समाचार देनेके लिये ? इसके उत्तरमें जिसका मुखरूपी कमल खिल रहा है ऐसा नारद आनंद उत्पन्न करता हुआ प्रेम चढानेवाले वचन कहने लगा कि—॥ ४३६-४३७ ॥ मैं तेरेलिये सारभूत पदार्थोंको ढूँढनेके लिये भ्रमण करता रहता हूं । किन्ते २ मैंने दो नृत्य करनेवाली देखी हैं जो कि तेरे ही देखने योग्य हैं ॥ ३३८ ॥ मैंने उन्हें अयोग्य स्थानमें देखा और इस बातको अनिष्ट समझकर मैं उसे सहन नहीं कर सका, इसलिये ही यहां आया हूं सो ठीक ही है क्योंकि यदि पैरोंमें चूडामणि रत्न पडा हो तो उसे कौन सहन कर सकता है ॥ ४३९ ॥ इससमय जिनके साथ लडनेवाला कोई नहीं है जो मिली हुई नवीन संपदाके मदसे उद्धत हो रहे हैं जो झुमूठ ही आपको सगका जीतनेवाला समझते हैं, जो सातों व्ययमनोंमें आसक्त हैं, सुखसे ही ( थोड़ेसे में ही ) नष्ट किये जा सकते हैं और जो प्रमादी हैं ऐसे प्रभाकरी नगरीके राजा अपराजित और अनंतवीर्यके घर सुखसे ही ग्रहण करनेमें आ सके ऐसा वह संसारका सारभूत पदार्थ ( दो नृत्य करनेवाली ) मौजूद है ॥ ४४०-४४१ ॥ एक दूत भेज देनेसे ही आज लीलामात्रमें तेरे घर आजायगी इसलिये अत्यंत दुर्लभ वस्तु हाथके समीप आ जानेपर कभी विलंब नहीं करना चाहिये ॥ ४४२ ॥ इसप्रकार पापसहित यम-राजके समान नारदने उससे प्रेरणा की और जिसका मग्न होगया और उसने इस बातके संबंधको जाननेवाले एक नर्तकीकी बात सुनकर दमतारिका आत्मा उसीमग्न मुग्ध होगया और उसने इस बातके संबंधको जाननेवाले एक दूतको भेट देकर शूरवीर दोनों भाइयोंके समीप वत्सकावतीको भेजा । वह दूत भी राजाकी आज्ञासे चला, रास्ते में एक दिन भी व्यर्थ नहीं जाने दिया और शीघ्र ही प्रभाकरी नगरीमें जा पहुंचा । उससमय वे दोनों ही भाई प्रोषघो-

वत्याः महीशो शौर्यशालिनौ । प्रति सोपि त्रुपादेशादत्तेऽहान्यहापयन् ॥ ४४५ ॥ गत्वा जिगृहे शोषधोपाससमन्वित । अपराजितराज च युवराज च  
सुरिषत ॥ ४४६ ॥ द्यूमात्ममुखाद् दूतो निवेदितनिजामग । यथोचितं प्रदायाभ्या स्वानीतोपायन सुधी ॥ ४४७ ॥ ज्वल्यस्य प्रतापाभिर्दिव्यायशिप-  
भास्वरः । कृतदोषान् व्यलीकाभिमानीनो दहति द्रुत ॥ ४४८ ॥ यस्य नाम्नैव निर्भिन्नहृदयाः प्राकृतद्विप । वमति वैरमल्ल वा विनम्रा भयविह्वलाः ॥ ४४९ ॥  
न सति सहजास्तस्य शत्रवः शुद्धचेतसः । विभज्यान्वयैर्विभेस्तद्राज्य भुज्यते यतः ॥ ४५० ॥ कृत्रिमा केन जायते रिपवस्तस्य भूभुज । मालेबाह्वा ह-  
तावज्ञैरथते यदि मूर्खसि ॥ ४५१ ॥ विनम्रविश्वविद्येशुशुक्रुटाग्रमणित्विषा । स पादपीठपर्यन्ते विषस्ते घनुरामरं ॥ ४५२ ॥ यशः कुद्वेदुनिर्भासि तत्स्यारतिज-  
गार्जित । कन्या गार्थसि दिग्दतिदत्तपर्यन्तके कलं ॥ ४५३ ॥ दुर्दमा विद्विषस्तेन दातायतेव दत्तिनः । दम्भितारिरिति ख्याति सघस्तेऽन्वयेवालं ॥ ४५४ ॥  
तस्य शौर्यान्लो, भस्मिताखिलारतिरिघस । जाज्वलीति तथाप्यभिरुमारामरसीपणः ॥ ४५५ ॥ प्रेषित श्रीमता तेन देवेनाह युवां प्रति । प्रीतये यान्निगु

पवामकर जिनालयमें विराजमान थे ॥ ४४४-४४६ ॥ उन्हें देखकर मंत्रीके द्वारा उसने अपने आनेकी सूचना दी  
और वह बुद्धिमान् यथा योग्य भेट लाया था वह समर्पण की ॥ ४४७ ॥ तथा वह कहने लगा कि, दिव्य लोहेके  
पिंडके समान चमकती हुई राजा दम्भितारि की प्रतापरूपी अग्नि अपराधी और झूठमूठके अभिमानी लोगोंको बहुत  
शीघ्र जला डालती है ॥ ४४८ ॥ उसके नामलेनेसे ही स्वाभाविक वैरियोंका हृदय मी फट जाता है तथा डरसे घब-  
डाकर और नम्र होकर वे अपने शत्रु और अपना वैर छोड़ देते हैं ॥ ४४९ ॥ शुद्धचिचवाले उसके स्वाभाविक वा  
भाई बधुओंसे तो कोई शत्रु है ही नहीं क्योंकि अपने कुटुम्बमें उत्पन्न हुए सब लोगोंको नाटकर राज्यका उपभोग  
करता है ॥ ४५० ॥ जब तिरस्कारको न चाहनेवाले लोग मालाके समान उसकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करते हैं  
तब फिर भला उस राजाके कृत्रिम शत्रु तो हो ही किस तरह सकते हैं ॥ ४५१ ॥ जिस समय सब विद्याधर आकर  
उसे नमस्कार करते हैं उससमय वह राजा दम्भितारि उनके मुकुटोंमें लगे हुये मणियोंकी कांतिसे अपने सिंहासन तक  
इंद्र धनुष बना देता है ॥ ४५२ ॥ शत्रुओंके जीतनेसे उत्पन्न हुये तथा कुंदके फूल और चंद्रमाके समान सुशोभित  
हुए उसके मनोहर यशको कन्यार्ये दिग्गजोंके दांत तक गाती रहती हैं ॥ ४५३ ॥ जिसप्रकार हाथी अंकुशसे वश र-  
हते हैं उसीप्रकार बड़े २ शत्रु मी उससे वश कर लिये गये हैं और इसीलिये ही वह दम्भितारि (दम्भित अरि-शत्रुओंको  
नाश करनेवाला) इस सार्थक नामको धारण करता है ॥ ४५४ ॥ यद्यपि समस्त शत्रुरूप ईधनको जलानेवाली उस  
की शूरीरता रूप अग्नि सदा जलती रहती है तथापि वह अधिकुमार देवके समान भयकर जान पड़ता है ॥ ४५५ ॥

तस्माद्वत्तुं नर्तकीद्वय ॥ ४४६ ॥ शुष्मरीय भुवि द्यात योग्य तस्यैव तयानः । युवयो म० हि तद्दानान्मुप्रसन्न फलिष्यति ॥ ४४७ ॥ इत्यब्रवीदद शुल्वा तमावाप्त प्रहित्य तौ । किं कार्यमिति पृच्छन्तो स्थितान् द्वय मन्त्रिणः ॥ ४४८ ॥ ततो पुनोदयात्सद्यस्तृतीयभवेदेवताः । मुनिरूप्य स्वरूपाणि तौ स्वय स-  
मुपाश्रयन् ॥ ४४९ ॥ वय युवाम्भ्या सयोज्य निजामिप्रेयकर्मणि । अम्याने माकुलीभूतामित्याहुर्बाहितादराः ॥ ४५० ॥ धृत्वंतद्राज्यभारं स्व निधाय निजमन्त्रिषु । नर्तकीवेपमादय राज्ञा वां प्रेषिते ततः ॥ ४५१ ॥ यामेति दत्तमाल्य सभाय शिवमदिरं । समालोचितगूढं प्रविश्य नृपमदिरं ॥ ४५२ ॥ दृष्टवतां खगाशीश यथोचित प्रदुष्य सः । संभाष्य सामवार्त्सार पूजयित्वा दिनेपरे ॥ ४५३ ॥ अगहारीः सकरणे रसैर्भावैर्मनोहैः । नृत्यं तयोर्विलोकयामस-  
ममदः परितोपत ॥ ४५६ ॥ भवन्त्यलकला कल्या वा सुनिघ्नयितुं मुता । मयीयमित्यदात्कन्यामेताभ्यां कनकमन्त्रिय ॥ ४५५ ॥ आदीय ता यथायोग्य

उम श्रीमान् महाराज दमितारिने मुझे तुम दोनोंके पास भेजा है और प्रेम बढ़ानेके लिये दो नृत्य करनेवाली मांगी हैं । वे तुम्हारे यहांकी नृत्य करनेवाली संसारमें प्रसिद्ध हैं और उसीके योग्य हैं इसलिये अवश्य दे देनी चाहिये उन-  
के देनेसे वह तुम दोनोंपर प्रसन्न होगा और तुम दोनोंको उनसे बहुत कुछ लाभ होगा ॥ ४५६-४५७ ॥ दूतकी कड़ी हुई इन बातोंको सुनकर उन दोनोंने दूतको तो मकानपर भेज दिया और मंत्रीको बुलाकर पूछा कि इस विषयमें क्या करना चाहिये ॥ ४५८ ॥ उनके पुण्य कर्मके उदयसे तीसरे भवकी विद्या देवता शीघ्र ही आ पहुंची और उम-  
ने बड़े आदरसे अपना परिचय देकर कहा कि तुम्हारे इस दृष्ट काष्णमें मैं तुम दोनोंके साथ रहकर काम करूंगी तुम इस योग्य स्थानमें व्याकुल मत हो ॥ ४५९-४६० ॥ विद्या देवताकी इन बातोंको सुनकर उन दोनोंने राज्यका भार तो मन्त्रियोंके ऊपर पटका और स्वयं नृत्य करनेवालीका वेप बनाकर कहा कि महाराजने हम दोनोंको भेजा है चलो  
चलो । इसतरह दूरसे कहकर उनके साथ शिवमंदिर नगरमें पहुंचे और किसी गूढ अभिप्रायकी आलोचना करते हुये राजसभामें जा उपस्थित हुये ॥ ४६१-४६२ ॥ जाकर विद्यावर्धने स्वामी दमितारिको देखा और यथायोग्य रीति से उसे प्रसन्न किया । राजा दमितारिने भी बड़ी शांततासे उनके साथ बात चीत की और खूब ही उनका आदर सत्कार किया । किसी दूसरे दिन उन दोनोंने शरीरकी सुंदरता कारण तथा मनोहर भाव और रसोंसे भरा हुआ नृत्य किया जिसे देखकर राजा दमितारि बहुत ही आनंदित और संतुष्ट हुआ ॥ ४६३-४६४ ॥ उसने अपनी पुत्री कनकश्रीको बुलाकर उन दोनोंके सुपुर्द किया और कहा कि इसे भी अपनी सब नृत्यकलाकी शिक्षा दो ॥ ४६५ ॥ उस राजपुत्रीको लेकर वे दोनों ही यथायोग्य रीतिसे उसे नृत्य सिखाने लगे । किसी एक दिन उन्होंने होनहार चक्र

नृपयन्तौ नृपात्मजा । पेटगुणसंशोदमिति ते भाविचक्रिणः ॥ ४६६ ॥ गुणं कुलबलादिभिर्भुवि विजित्य विधानं नृपान् । मनोभ्रमपिलब्धयन् भवबरो  
वपु संपदा । विदग्धवनिताविलासललितालोकालय क्षिते पतिरनन्तवीर्ये इति विधुत पातु वः ॥ ४६७ ॥ तदा तच्छ्रुतिमात्रेण मदनाविष्टविग्रहा । स्तयते  
य स को भूतमित्यप्राक्षीः नृपात्मजा ॥ ४६८ ॥ प्रभाकरीपुराधीशोऽजनिस्तमितसागरात् । महायणिषिब क्ष्मायुर्मौलिषूडामणीयितः ॥ ४६९ ॥ काता-  
कल्पलतारोहम्यकल्पमहीरुहः । कामिनीश्रमरीभोग्यदुस्खाभोजविराजितः ॥ ४७० ॥ इति तद्वयतद्रूपलावण्यायनुवर्णनात् । द्विगुणीभूतमप्रीतिरित्युवाच  
खगात्मजा ॥ ४७१ ॥ किमसौ लभ्यते हर्षं कन्यके सुष्ठु लभ्यते । त्वयेयं नन्तवीर्यस्य रूपं साक्षात्प्रदर्शितं ॥ ४७२ ॥ तद्दर्शनसमुद्भूतमनज्वरविह्वला ।  
नेर्तक्यौ ता समादाय जगन्मूर्मकृत पथा ॥ ४७३ ॥ तद्वातां खचराध्रीश भ्रुवातर्बशिकोदितात् । स्वमहान्त्रेपयामास तद्द्रव्यायनयन प्रति ॥ ४७४ ॥ त-  
दागमनमालोक्य स निर्वर्त्य हली बली । न्ययुध्यतानुज दूरेस्थापयित्वा सकन्यकं ॥ ४७५ ॥ ते तेन मुचिरं युद्ध्वा कृतातोपातमाश्रिता । दमितारि पुन  
वर्तोंके गुणसमूहोको इसप्रकार पढा कि जिसने अपने कुल बल आदि गुणोंसे संसारके सब राजाओंको जीत लिया है  
जो युवाओंमें भी श्रेष्ठ है जिसने शरीरकी कृतिसे कामदेवको भी लज्जित कर रक्खा है जो सुंदर स्त्रियोंके विलास और  
मनोहर चितवनोंका घर है ऐसा जगत्प्रसिद्ध पृथ्वीका स्वामी अनन्तवीर्य तुम लोगोंकी रक्षा करो ॥ ४६६-४६७ ॥  
उससमय उसे सुनकर कनकश्रीको कुछ कामका विकार हुआ और वह पूछने लगी कि जिसकी तुम स्तुति  
करते हो वह कौन है ॥ ४६८ ॥ इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि यह स्तिमितसागरसे उत्पन्न हुआ प्रभाकरी नग-  
रीका स्वामी है वह महासगिके समान है स्त्रीरूपी कल्पलताओंका चढनेके लिये मनोहर कल्पवृक्षके समान है और  
उसका मुख स्त्रीरूपी श्रमरियोंके उपभोग करनेके लिये कमलके समान सुशोभित है ॥ ४६९-४७० ॥ इसप्रकार उसकी  
अवस्था रूप लावण्य आदिके वर्णन करनेसे उस विद्याधरकी पुत्रीका प्रेम दूना हो गया और वह कहने लगी कि क्या  
उसे मैं देख सकती हूं इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि हां तू उसे अच्छीतरह देख सकती है इसतरह कहकर उन्होंने  
ने अनन्तवीर्यका रूप साक्षात् प्रगट कर दिखा दिया ॥ ४७१-४७२ ॥ उस अनन्तवीर्यके रूपको देखकर वह कनक-  
श्री कामज्वरसे व्याकुल होगई और वे दोनों ही नृत्य करनेवालीं ( बलभद्र और केशव ) उसको लेकर आकाश मार्ग  
से चली गई ॥ ४७३ ॥ विद्याधरोंके स्वामी दमितारिने कंचुकिरोंके मुखसे यह बात सुनी और सुनते ही उन दोनों-  
को पकड़नेके लिये घोड़ा लोग भेजे ॥ ४७४ ॥ बलमान बलभद्रने घोड़ाओंको आते हुये देखकर कनकश्री और अनन्त-  
वीर्यको तो अलग दूर रक्खा और वे स्वयं लौटकर उनसे युद्ध करने लगे ॥ ४७५ ॥ उन घोड़ाओंने बहुत देर तक



क्षिमाने सहसा स्थिते ॥ ४८५ ॥ केनचिन् कीलिते वेतो न यात. केन हेतुना । इति तौ परितो वीक्ष्य सदो दिव्य म्यलोकयत ॥ ४८६ ॥ मानस्तभाः सरांस्येतान्येतद्वनचतुष्टय । मध्येगघकुटी नूनं जिनेन्द्र कोपि तिष्ठति ॥ ४८७ ॥ इति तत्रावतीर्थेण शिवमक्षिरनायक । सुत कनकपुलस्य जयदेव्या-  
श्च तिष्ठितः ॥ ४८८ ॥ दमितारे पिता कीर्तिधरो नान्ना विरक्तवान् । प्राप्य शांतिकराभ्यासे प्रव्रज्या पारमेश्वरी ॥ ४८९ ॥ सवत्सरं समादाय प्रति-  
मायोगभागमत । केवलावगम भक्त्या मुनासीरादिपूजित ॥ ४९० ॥ इत्युक्तवत्य परीत्य त्रि प्रणम्य जिनेश्वरं । श्रुतधर्मकथां तत्र तस्यतुर्वस्तक-  
स्मरौ ॥ ४९१ ॥ कनकश्रीं सहाम्येत्य ताभ्यां भक्त्या पितामह । बदित्वा घातिहृत्तारमप्राक्षीत्स्वभवातरं ॥ ४९२ ॥ इति पृष्ठो जिनाधीनो निजवाग-  
मृताबुभि । तां तर्पयितुमित्याह परार्थकफलेहित ॥ ४९३ ॥ अत्र जवूडमालक्ष्यद्वीपेत्सा भरतावनी । शस्त्राह्वनागरे वंश्यो देविलस्तत्सुताभव ॥ ४९४ ॥

दिया ) अथवा किस कारणसे यह आगे नहीं चला है इसी बातको वे दोनों भाई देखने लगे देखते ही नीचे उन्हें एक दिव्य सभा दिखाई दी वे कहने लगे कि अरे ये मानस्तंभ हैं ये बावड़ी हैं ये चारो वन हैं और यह मध्यमें गंध कुटी है अवश्य ही यहाँ कोई जिनराज विराजमान हैं ॥ ४८६-४८७ ॥ यही कहते हुए वे नीचे उतरे और कहने लगे कि शिवमंदिर नगरके स्वामी राजा कनकपुल रानी जयदेवीके पुत्र तथा दमितारिके पिता राजा कीर्तिधरने विरक्त होकर शांतिकर मुनिराजके समीप पारमेश्वरी दीक्षा धारण की थी, एक वर्ष तक प्रतिमा योग धारणकर केवल-ज्ञान प्राप्त किया था उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर बड़ी भक्तिये पूजा की थी वे ही भगवान यहाँ विराजमान हैं यही कहते हुए उन दोनों भाइयोंने भगवानकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं उन्हें नमस्कार किया धर्मकथाएँ सुनीं और पा-  
पोंको नाश करनेवाले वे दोनों ही भाई वहाँ बैठ गये ॥ ४८८-४९१ ॥ कनकश्री मी उन दोनोंके साथ बाई थी उस-  
ने बड़ी भक्तिये अपने बाबाकी बंदना की और घातियां कर्मोंको नाश करनेवाले उन भगवानसे अपने पहिले भव-  
पूछे ॥ ४९२ ॥ इस तरह पूछनेपर परोपकाररूप फलमें ही द्वित माननेवाले भगवान कीर्तिधर अपने बचनानुसरूपी जलसे उसे तृप्त करनेकेलिये कहने लगे ॥ ४९३ ॥ कि इसी जंबूद्वीपकी भरत क्षेत्रकी भूमिपर शल नामके नगरमें एक देविल नामका वैश्य रहता था, उसकी बहुश्री नामकी स्त्रीसे तू श्रीदत्ता नामकी बड़ी और सती पुत्री हुई थी तथा कोठी, लंगडी, टोटी, बहरी कुबजी, कानी और खंजी ये तेरी छोटी बहिन थीं तू इन सबका पालन करती थी किसी दूसरे दिन उसने सर्वशैल नामके पर्वतपर मर्वयश नामके मुनिराजकी बंदना की, उसके परिणाम शांत हुए तथा शुद्ध बुद्धिवाली उसने अहिंसाव्रत और धर्म चक्र व्रतका उपवास करना स्वीकार किया ॥ ४९३-४९७ ॥ किसी

बं-दित्तो अर्धवर्षः श्रीरामः स्वर्गस्थः कृती अंगुली तथा ॥ ४०५ ॥ बन्धित कुम्भका कान्त मंत्रा कोटिः स्वर्गं । तं  
 कान्तिमूर्तिं धर्मद्वयं धर्मद्वयं ॥ ४०६ ॥ अभिरामं धर्मं यत्ना दिसातिमन्त्रं । कृतीका यदेनकम्भयमुपासं न शुद्धी ॥ ४०७ ॥ अन्यथा मुन-  
 ध्यायते मन्त्रं विधिपूर्वक । अभासदानेयताया समने मयुगेविना ॥ ४०८ ॥ मन्त्रमाभावात्तस्य विनिश्चिन्मन्त्रान्तः । मन्त्रेण जीवितप्राप्ते मूला-  
 नाभावात्तस्य ॥ ४०९ ॥ नतो मन्त्रस्यादित्यो दमितारे मूलाभवा । पुरायाद्रुतोपमायातद्विनिश्चित्याकल त्रिदं ॥ ४१० ॥ मन्त्रं पितर हन्वा युवा नो-  
 भावि द्द्विधर्मा । विनिश्चित्यो न कृती तस्या गौया युजिता ॥ ४११ ॥ श्रुताजन्तवियोगाता यति वा विनयुगं । प्रसक्तरीमगानानां सह मा लेब-  
 गानात्रा ॥ ४१२ ॥ शुभोपनिषद्दुष्टायां क्रांतौ कनकप्रियः । मनुमेनयेनेन सुपमानौ वलंदत्ता ॥ ४१३ ॥ नियोक्त्य विहितकोक्तो जन्मनुर्लभ्यो ।  
 नो-गन्धर्वा व्याधीमादवा मोक्षसम्पदा ॥ ४१४ ॥ प्रयत्नेनया युगा माशुनेन हाशुति । युगावार्द्धिदुरेयेन कीगा पलक्यादित ॥ ४१५ ॥ नोक्त

दूसरे दिन उसने सुप्रता नामकी मृग्य अर्जिकाको विधिपूर्वक आहारदान दिया था परंतु उस अर्जिकाने पहिले उप-  
 वाय किया था इसलिये टीक न पचनेके कारण उसे वमन होगया और मग्यगर्धान न होनेसे उस श्रीदत्ताने उस अ-  
 र्जिकाके कुछ ग्लानि की । आगुके अंतमें वह श्रीदत्ता मरकर सोधर्म स्वर्गमें सामानिक जातिकी देवी हुई और वहासे  
 आकर राजा दमितारिके रानी मंदरमालिनीसे व्रत और उपवासेके गुण्यसे तू पूत्री हुई है पहिले जो तूने अर्जिकाको  
 वमन करते-देकर ग्लानिकी थी उसका यह फल मिला है कि तेरे बलवान् पिताको मारकर तथा तुझे दुख उत्पन्नकर  
 ये दोनों ही भाई तुझे ले चले हैं इसलिये युद्धिमान लोग माधुओंमें कभी ग्लानि नहीं करते हैं ॥ ४१६-५०१ ॥  
 यह सब कथा गुनधर शोकसे यह कनकश्री कुछ दुखी हुई और फिर जिनराजकी चंदनाकर प्रभाकरी नगरीको  
 चली गई ॥ ५०२ ॥ इधर सुयोग और विशुद्ध ये दोनों कनकश्रीके भाई थे वे बड़े ही बलवान थे तथा शिवमंदि-  
 रमें ही बलभद्र कैशवके ही भेजे हुए अनंतसेनके साथ युद्ध करने लगे थे ॥ ५०३ ॥ यह देखकर बलभद्र नारायण  
 भी कोपित हुए और जाकर उन दोनों भाइयोंको पकड़ लिया । यह सुनकर कनकश्री उनके दुखको सह नहीं सकी  
 जिसप्रकार अपने शुक्रपक्षके बलके बिना बड़े हुए तेजवाले दीपहरके सूर्यसे चंद्रमाकी रेखा कातिरहित हो जाती है  
 उसीप्रकार वह भाइयोंके पकड़े जानेसे कातिरहित होगई ॥ ५०४-५०५ ॥ शोकरूपी दावानल अग्निसे मलिन हुई  
 वनकी लताके समान वह दुबली हो गई उसने सब काम और भोगोंकी इच्छा छोड़ दी और केवल उनके दुखममू-  
 रोंके सुखानेकी इच्छा करने लगी ॥ ५०६ ॥ बलभद्र नारायणसे मार्थना कर उसने दोनों भाइयोंको छुड़ाया उन्हें सम-

दवानलस्त्राना इवेन वनवह्वरी । व्युच्छिन्नप्रकाशमोगेच्छा निच्छिन्नमुखसंतति ॥ ५०६ ॥ मोचयित्वाऽनुग्रह्यतां संप्राप्य बलकेशवी । स्वयंप्रभाहयतीर्थशा-  
त्पीतधर्मसायना ॥ ५०७ ॥ सुप्रभागिणीपाथे कीदृत्वा जीवितावधौ । सौधर्मकल्पे देवोद्भूच्चित्र विसृष्टितं विधेः ॥ ५०८ ॥ सुविहितमहोपाया विद्याव-  
लाद्रुद्रगुण्यकौ, बुधजननुता सुप्रारंभो परस्परसंगता । हतपृथुरेपुशांतात्मानौ यथानयविक्रमो, सममविशता सिद्धार्थौ तौ पुरो परमोत्सवा ॥ ५०९ ॥ जित्वा  
प्रसिद्धसचरान् सचराधिगन्तुरध्यास तद्रुलधरत्वमलध्यशक्तिः । व्यकीचकार सुचिरादपराजितत्व भावेन चेतदिति नैव निजेन नाम्ना ॥ ५१० ॥ वक्त्रेण  
तस्य युधि त नमिताशक्तिं हत्वा त्रिबलपतिता समवाप्य तस्मात् । वीर्येण सूर्यविजयीत्यमन्तवीर्यो बुधोभवद् भुवि स शौर्यपरेषु शूर ॥ ५११ ॥ नित्या-  
लोचिमतमशक्यदुगतः स्फूर्जत्प्रतापानलज्वालाभस्मितवैरियशगहनस्त्व चक्रिणामप्रणीः । यस्त्वां कोपयति क्षणदरित्सौ कालज्जलज्ज्वालित्वा लीढो लिखत

झाया और फिर स्वयंप्रभनामके तीर्थकरसे धर्मसायनका ग्रान किया ॥ ५०७ ॥ तदनंतर सुप्रभा नामकी अग्नि-  
काके समीप उसने दीक्षा धारण की और आयुके अंतमें शरीर छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुई । इससे कहना पड़ता  
है कि कर्मोंकी लीला भी बड़ी ही विचित्र है ॥ ५०८ ॥ जिन्होंने अपनी विद्या और बलसे अनेक बड़े बड़े उपायोंकी  
योजनाकी है, जो बड़े पुण्यवान हैं विद्वान् लोग भी जिनको नमस्कार करते हैं जो सदा अच्छे कर्मोंका ही प्रारंभ  
कहते हैं परस्पर मिलकर रहते हैं बड़े बड़े शत्रुओंको मारकर जिनकी आत्माएं शांत हैं, जो यथायोग्य नय तथा परा-  
क्रमकी धारण करनेवाले हैं और जिनके सब काम सदा सिद्ध ही होते हैं ऐसे उन बलमद्र नारायण दोनों ही भाई  
जोने परमोत्सवसे सजाई हुई उस प्रभाकरी नगरीमें प्रवेश किया ॥ ५०९ ॥ अलंछ्य शक्तिको धारण करनेवाले अप-  
राजितने प्रसिद्ध प्रसिद्ध सब विद्याधरोंको जीता सब विद्याधरोंके स्वामीका पद तथा बलमद्रका पद सुशोभित किया  
और इसतरह केवल नामसे ही नहीं किंतु यथार्थ रीतिसे अपराजित ( जो किसीसे न जीता जा सके ) पनेको प्रगट  
किया ॥ ५१० ॥ जिसने युद्धमें उसीके चक्रसे दमितारिकी शक्तिका नाश किया जो अपने पराक्रमसे सूर्यको भी  
जीतता है और जो संसारके उत्तमोत्तम शूरवीरोंमें भी शूरवीर है ऐसा वह अनंतवीर्य संसारमें सबसे प्रसिद्ध हुआ था ॥  
५११ ॥ बंदीजन सदा उस अनंतवीर्य नारायणकी इसतरह स्तुति किया करते थे कि तू सदा आलोचनाकी हुई मंत्र  
शक्तिके अनुसार चलता है दैदीप्यमान प्रतापरूप अग्निकी ज्वालासे तूने शत्रुओंके वंशरूपी वनोंको जला डाला है,  
तू चक्रवर्तियोंमें गुरुण है और जो शत्रु तुझे क्रोधित करता है वह क्षणभरमें ही कालरूपी जलती हुई अनिका स्पर्श-  
कर उसका स्वाद लेता है ॥ ५१२ ॥ जिसे शत्रुरूप बादल कभी टक नहीं सकते, जो अपने बड़े भाईकी आज्ञानुसार



एव लक्ष्यत इति स्तुत्यः सदा नंदिभिः ॥ ५१२ ॥ गतघनसिखरोध स्वाप्रजोदितभागं संमुपगतविशुद्धि काललक्ष्या स चक्री । रविरीव निजरीत्या व्या-  
सदिकृचक्रवालः शरदमिव पुरी स्वामप्युवासोप्रतेजा ॥ ५१३ ॥

इत्यार्ये भवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अपराजितानतवीर्याभ्युदयवर्णनं नाम द्विषष्टितम पर्व ॥ ६२ ॥

## अथ त्रिषष्टितमं पर्व ।

सिंहासनं समासीनो वीर्यमानप्रकीर्णकः । अर्द्धचक्री व्यराजित यथा पट्टखड्गमण्डित ॥ १ ॥ अथापराजितोप्यात्मयोग्यरत्नावधीश्वरः । बलदेवपद-  
प्राप्य प्रत्यहं वृद्धिमातनौत् ॥ २ ॥ एवं भवार्तरावद्धविशुद्धबेह्योन्मयो । काले गच्छत्यविच्छिन्नस्वच्छंददुःखसारयो ॥ ३ ॥ विजयाया हलेशस्य बभूव सुम-  
चलता है काललब्धसे जियकी विशुद्धि खूब बढ़ गई है और सूर्यके समान जो अपनी कान्तिसे सब दिशाओंके समू-  
होंमें व्याप्त हो रहा है ऐसा वह महा प्रतापी, राजा अनंतवीर्य शरद् ऋतुके समान अपनी प्रभाकरी नगरीमें निवास-  
करता था ॥ ५१३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अपराजित और अनंतवीर्यके अभ्युदयका  
वर्णन करनेवाला यह बासठवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

## तिरसठवां पर्व ।

अर्द्धचक्रवर्ती महाराज अनंतवीर्य सिंहासनपर विराजमान हुआ, सदा उसपर चमर डुते थे और वह ऐसा जान  
पड़ता था मानों छहों खंडोंका स्वामी चक्रवर्ती हो ॥ १ ॥ इसीतरह अपराजित मी अपने योग्य रत्नादिकोंका स्वामी  
हुआ था और बलदेव पदको पाकर प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता रहता था ॥ २ ॥ जिनका परस्परका प्रेम पहिलेके  
जन्मोंसे चला आ रहा है और जो निरंतर स्वच्छंद रीतिसे उत्तम सुखोंका अनुभव करते हैं ऐसे उन दोनोंका समय  
आनंदसे कट रहा था ॥ ३ ॥ बलभद्र अपराजितके विजया रानीसे सुमति नामकी कन्या हुई थी वह शुक्लपक्षके  
चंद्रमाकी रेखासे उत्पन्न हुई चांदनीके समान सबको प्रसन्न करती थी ॥ ४ ॥ रातदिन बढ़ती हुई वह कन्या सब-

ति सुता । ज्योत्स्नेव प्रीणितक्षोषा शुक्लपक्षदुरेखयोः ॥ ४ ॥ सान्वहं कुर्वती दृदि स्वस्याः पित्रोरपि स्वयं । गुणैराह्लादनै रीति व्यधात्कुलमभ्युत्थिता ॥ ५ ॥  
 दानादमवरारुह्याय चारणाय यथोचित । साश्चर्यपंचकं प्राप तत्र दण्ड्वा निजात्मजा ॥ ६ ॥ रूपेण कैवल्येनैयं भूषिता यैवनेन च । वरं प्रार्थयते बाला संश्रिता  
 कालदेवता ॥ ७ ॥ इति संवित्पत्नी श्रावितस्ववरघोषेण । कुत्वा स्वयंभूते शाला प्रवेद्याय वरीणमान् ॥ ८ ॥ सुता च स्पन्दनारुहा सुग्रीतौ तत्पुस्त-  
 दा । कश्चिद्विमानमावहागता सुरगुदरी ॥ ९ ॥ अभिजानासि किं देवजोकेह त्वं च कन्यके । वस्यावस्तत्र भ्रान्नात्समभूत् स्थितिरावयोः ॥ १० ॥ या  
 प्राग्वतरद्वाभी तामन्याबोधयद्विचि । नुवे नौ भवसंबन्धं सनिधाय मन शृणु ॥ ११ ॥ पुष्करद्वीपपूर्वादभरते नंदने पुरे । नयविक्रममप्री महीयोगिमितिक-  
 म ॥ १२ ॥ एतस्यानन्तमत्याश्च धनानन्तश्रियाँ सुते । भुत्वा वाँ सिद्धकूटस्थानन्दनाख्ययतीश्वरात् ॥ १३ ॥ श्रुत्वा धर्मं त्रतैः मार्दमुपवासाश्च सविदा । स

को प्रसन्न करनेवाले गुणोंसे अपने माता पिताको कुलयेत्सित अर्थात् पृथ्वीमंडलमें इष्ट अथवा कुमोदिनियोंको इष्ट  
 ऐसा प्रेम उत्पन्न करती थी ॥ ५ ॥ किसी एक दिन उसने दमवार नामके चारण मुनिको यथायोग्य रीतिसे आहार  
 दान दिया जिससे उसके घर पंचाशच्चर्चां वर्षों हुई वहीं पर अपराजित और अनंतवीर्य दोनों भाईोंने देखा कि यह  
 कन्या केवल रूपसे ही सुशोभित नहीं है किंतु यौवनसे भी सुशोभित है अब यह कन्या कालदेवताका ( समयका )  
 आश्रय पाकर वरकी प्रार्थना करती है अर्थात् अब इसके विवाहका समय आपहुंचा है ॥ ६-७ ॥ यही विचारकर  
 उन दोनों भाइयों ने स्वयंवरकी घोषणा दी, आए हुए अच्छे अच्छे राजकुमारों को स्वयंवरकी शालामें प्रवेश कराया,  
 वहाँपर रथपर सवार कराकर अपनी पुत्रीको मेजा और आप प्रसन्न होकर एक जगह खड़े होगये । उसीसमय विमान-  
 में बैठकर आकाशमार्गसे एक देवी आई और उस कन्यासे कहने लगी कि क्यों याद है हम तुम दोनों ही स्वर्गलोक-  
 में रहते थे वहाँपर जब हम तुम दोनोंको कुछ आत्मज्ञान हुआ था तब प्रतिज्ञाकी थी कि जो पहिले पृथ्वीपर अव-  
 तार लेगी उसे दूसरी देवी आकर समझावेगी देख ! अब मैं दोनोंके पहिले भवके संबन्ध कहती हूँ तू चित्त लगाकर  
 सुन ॥ ८-११ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके भरतक्षेत्रमें नंदनपुर नगरमें नय और पराक्रमसे सुशोभित ऐसा अमृतविक्रम  
 नामका राजा राज्य करता था ॥ १२ ॥ उसकी अनंतमती रानीसे हम दोनों ही धनश्री और अनंतश्री नामकी दो  
 कन्यायें हुई थीं । वे दोनों ही कन्यायें किसी एक दिन सिद्धकूट चैत्यालयमें गई थीं वहाँपर नंदन नामके मुनिराज-  
 से धर्म श्रवण किया था और ज्ञानपूर्वक व्रतोंके साथ साथ बड़े बड़े उपवास ग्रहण किये थे । किसी एक दिन त्रिपुरा  
 नगरका राजा वज्रांगद विद्याधर अपनी रानी वज्रमालिनीके साथ साथ मनोहर नामके वनमें जा रहा था मार्गमें उन

ममरीथा नो दृष्ट्वा कदाचिदधिपुराधिप ॥ १४ ॥ मनोहरवनेगच्छदमहन्नागद लग । कातमा वज्रमालिन्या समासकमनिस्तदा ॥ १५ ॥ पुरीं प्रापथ्य काता स्था सहसा पुनरागत । गृहीत्वा वा प्रजन्नाशु निजाभिप्रायवेदर्गा ॥ १६ ॥ आगतामतेरे दृष्ट्वा दुराता वज्रमालिनी । लक्कवा वेशुवने मीला तस्यां स्वपुर्सीयिवान् ॥ १७ ॥ आवा सन्यस्य तत्रैव सौवर्णद्वयं युद्धधी । व्रतोपवासपुण्येन देवी नवमिकाभव ॥ १८ ॥ त्व न देवी कुवेरस्य रत्नाद्या समजायाः । अन्योन्यमगवलयैल नदीवत्सहामह ॥ १९ ॥ अथ मदरपर्यंतवने निर्जंतुके स्थित । चारण धृतिपेणाल्य समाश्रित्य प्रगम्य ता ॥ २० ॥ आवाप्रश्नयावेद कदा स्यान्मुक्तिरावयो । इत्यथो मुनिरप्याह जन्मनीतधनुर्गके ॥ २१ ॥ अवश्य युवयोर्मुक्तिरिति तस्मान्महामते । मुमते नंक्ति ना लोकात्वा बोधयितुमागता ॥ २२ ॥ इत्यवोचत्तदार्क्यं सुमर्तिनाम सार्थक । कुर्वती पितृनिर्मुक्ता प्रव्राजीन्सुव्रतार्तिके ॥ २३ ॥ कन्यकालिशते साब्दं ससम्भि सा महंतयाः । लक्कप्राणानते कल्पे देवोऽभवदनुदिशे ॥ २४ ॥ आधिपत्यं त्रिवंशस्य विधाय विविधे मुखे । प्राविशत्केशव पापलाशे स्त्रप्रमा क्षिति ॥

दोनो कन्याओंको देखकर मोहित हुआ । उसने उसीमय अपनी रानीको घर पहुंचा दिया और वह तुरंत ही लौटकर आया तब उन दोनों कन्याओंको विमानमें रखकर जाने लगा । इधर रानी वज्रमालिनी अपने घर रखने और राजाके तुरंत ही लौटनेका कारण अमिषाय समझ गई । वह तुरंत ही आई, उसे दूरसे ही आता देखकर उसके डरसे वज्रांगदने उन दोनों कन्याओंको तो वेशुवनेमें छोड़ दिया और स्वयं उस रानीके साथ अपने नगरको लौट गया ॥ १-१७ ॥ हम दोनों ही ने (उन दोनों कन्याओंने) वहाँपर समाधिमरणवाण किया । मरकर शुद्ध बुद्धिवाली मैं तो त्रत और उपवासके पुण्यसे सौधर्म इंद्रकी नवमिका नामकी देवी हुई और तू कुवेरकी रति नामकी देवी हुई । किसी एक दिन हम दोनों ही मिलकर नंदीधर द्वीपमें महामह यज्ञ देखनेके लिये गई थीं, वहाँपर मदर पर्यंत नामके वनमें किसी निर्जीव स्थानमें धृतिषेण नामके चारण छुनि विराजमान थे उनके समीप जाकर हम दोनोंने नामस्कार किया और उनसे पूछा कि हम दोनोंकी मोक्ष कब होगी । इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था इस जन्मसे चौथे भवमें अवश्य ही तुम दोनोंकी मोक्ष होगी । वहाँकी आयु पूरी कर तू यहाँ उत्पन्न हुई है हे बुद्धिमती सुमते मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तुझे समझानेके लिये स्वर्ग लोकसे आई हूँ ॥ १८-२२ ॥ देवीकी कही हुई इन बातोंको सुनकर सुमतिने अपना सुमति (अच्छी बुद्धिवाली) नाम सार्थक किया, उसने माता पिताको छोड़कर सात सौ सखी कन्याओंके साथ साथ सुवता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण की, कठिन तपश्चरण किया और क्षीर छोड़कर तेरहवें आनंत स्वर्गके अनूदिश विमानमें देवकी पर्यय पाई ॥ २३-२४ ॥ इधर अनंतवीर्य नारायणने तीन खंडका राज्य पाकर अ-

२५ ॥ तच्छोकास्तीरपाणश्च राज्यलक्ष्मा प्रबुद्धा । प्रदायानतस्तथाय भयाचरुः सुगणराजः ॥ २६ ॥ द्वीपेस्मिन्माते खेच-  
संस्थासादृष्ट्युताधीश्वरोभवत् ॥ २७ ॥ भरणेद्राप्तिपुल्लब्ध्या प्राप्तसम्यक्स्वरत्नक । सख्यातवर्षे प्रच्युल्य नरकादुदरितच्युतेः ॥ २८ ॥  
राष्ट्रपदक्षेत्राणि किथुते । मेघवाहनविद्याधरोऽगो गगनवल्लभे ॥ २९ ॥ देव्या तुरमेघमालिन्यां मेघनाद खगाधिप । श्रेणीद्रयाधिपत्येन मोगाश्विरभ्युक्त सः ॥  
३० ॥ कदाचिन्मदरे विद्यां प्रकाति नदने बने । साधयन्मेघनादोयमच्युतेऽनेन बोधित ॥ ३१ ॥ लब्धबोधिः समाश्रित्य सुरामरगुह्यम । सुगतिं समितिं  
सम्यगादाय विरमाचरत् ॥ ३२ ॥ अन्येद्युन्दनाख्येन प्रतिमायोगमागमत् । अश्वघ्रीवावुजो ब्राह्मण सुकंठाख्यो भवार्णवे ॥ ३३ ॥ असुरत्वं समासाय हृष्ट्वेन

नेक तरहके सुखोंका अनुभव किया और अंतमें पाप कर्मके उदयसे पहिली रत्नमभा पृथ्वीमें नारकी उत्पन्न हुआ ॥  
२५ ॥ जिसकी बुद्धि आत्मज्ञानमें लगी हुई है ऐसे अपराजित बलमदने नारायणके शोकसे राज्यलक्ष्मी तो अनंतसेन-  
को दे दी और स्वयं यशोधर नामके मुनिराजसे संयम धारण किया । शीतपरिणामवाले उसको अवधिज्ञान उत्पन्न  
हुआ और अंतमें तीस दिन तक संन्यास धारणकर अच्युत स्वर्गका इंद्र उत्पन्न हुआ ॥ २६-२७ ॥ पहिले अनंतवीर्य  
और अपराजितका पिता मरकर धरणेंद्र हुआ था उसने नरकमें जाकर अनंतवीर्यके जीवको समझाया जिससे उसने  
सम्यग्दर्शनरूपी रत्न धारण किया, वह संख्यात वर्षोंकी आयु पूरीकर उस घोर नरकसे निकला और इसी जंबूद्वीपके  
भरत क्षेत्रमें विजयाब्द पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें प्रसिद्ध गगनवल्लभ नगरके विद्याधरोंके स्वामी राजा मेघवाहनके रानी  
मेघमालिनीसे मेघनाद नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । वह सब विद्याधरोंका स्वामी हुआ और दोनों श्रेणियोंका महा-  
राजा होकर बहुत दिन तक भोगोंका अनुभव करने लगा ॥ २८-३० ॥ किसी एक समय वह मेघनाद विद्याधर सु-  
मेरु पर्वतके नंदन वनमें प्रवृत्ति नामकी विद्या सिद्ध कर रहा था उसे देखकर अच्युत स्वर्गके इंद्रने ( अपराजितके जी-  
वने ) आकर समझाया जिससे उसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ, उसने सुरामरगुरु नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा  
धारण की, गुप्ति समिति आदि धारण कीं और बहुत दिन तक अच्छी तरह उनका पालन किया ॥ ३१-३२ ॥ किसी दू-  
सरे दिन वे मुनिराज नंदन नामके पर्वतपर प्रतिमा योग धारणकर विराजमान थे इतने में ही अश्वघ्रीवका सुकंठ नाम  
का छोटा भाई संसारसागरमें परिभ्रमणकर असुर हुआ था उसने आकर उन उत्तम मुनिराजको देखा, देखते ही उसे  
क्रोध हुआ उसने अनेक तरहके उपसर्ग किये परंतु वह दुष्ट प्रतिज्ञा किये हुए महायोधसे ( ध्यानसे ) स्थिर हुए उन  
मुनिराजको चलायमान न कर सका इसलिये वह लज्जासे तिरस्कृत ( अपमानित ) होकर अंतर्धान हो गया अर्थात्

मुनिस्तम । विधाय बहुधा क्रोधादुपसर्गान्मारयन् ॥ ३४ ॥ महायोगाद्विज्ञातस्थिर चालयितुं मलः । लज्जातिरस्करिण्येव सौतर्धानमुपागत ॥ ३५ ॥  
 मुनि संन्यस्य कालाति सोच्युतेगात्प्रतीदता । इद्रेण सद्म सप्रीत्या सप्रवीचारभोगभाक् ॥ ३६ ॥ प्राक्प्रच्युत्याच्युतावीशो द्वीपेस्मिन् प्राविदेहके । विषये  
 मंगलावत्या स्वानीये रत्नसंचये ॥ ३७ ॥ राक्षः क्षेमकराह्यस्य कृतपुण्योभवस्तुतः । श्रीमत्कनकवित्रायां भासो वा मेघविद्युतेः ॥ ३८ ॥ आधानश्रीतिमुप्रीति-  
 धृतिमोदप्रियोद्भव-प्रच्युत्पुष्पाकियोपेतो धीमान् वज्रायुधाह्वय ॥ ३९ ॥ तन्मातरीव तज्जन्मतोपः सर्वेष्वभूदुहुः । भवेच्छचीशदिदेव किं प्रकाशोभालि-  
 नः ॥ ४० ॥ अवर्धिषु वपुस्तस्य सार्द्धं रूपदिसपदा । भूषितोऽनिमिषोवासी भूषणैः सहगुणैः ॥ ४१ ॥ जनानुरागः प्रागेव तस्मिस्तस्योदयादभूत् । संध्यागग-  
 इवार्कस्य महान्युदयसूचनं ॥ ४२ ॥ विधाया व्यानयो तस्य यशो विशादयदधुश । कासप्रसवसर्वावाप्तमाश्रितजनधुति ॥ ४३ ॥ राज्यलक्ष्म्या व्यसा-  
 भाग गया ॥ ३३-३५ ॥ मुनिराजने आयुके अंतर्मे संन्यास धारण किया और शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्गमें प्रतींद्र  
 हुआ तथा बड़े प्रेससे इंद्रके साथ प्रवीचारसहित भोगोंका उपभोग किया ॥ ३६ ॥ अपराजितका जीव जो इंद्र हुआ  
 था वह पहिले च्युत हुआ और इसी द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देवके रत्नसंचयपुर नगरमें राजा ध्वंसकरके रानी  
 कनकवित्रासे मेघकी विजलीसे प्रकाशके समान पुण्यवान् बुद्धिमान और श्रीमान् वज्रायुध नामका पुत्र हुआ, उसके  
 उत्पन्न होते समय आधान प्रीति सुप्रीति धृति मोद प्रियोद्भव आदि सब क्रियायें की गई थीं ॥ ३७-३९ ॥ उसके  
 जन्मसे माताके समान ही सब लोगोंको बड़ा भारी संतोष हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्य पूर्व दिशासे  
 उत्पन्न होता है उसका प्रकाश पूर्व दिशामें ही नहीं रहता किंतु सम दिशाओंमें फैल जाता है ॥ ४० ॥ रूप आदि सं-  
 पदाके साथ साथ उसका शरीर बढने लगा और जिसप्रकार स्वाभाविक आभूषणोंसे देव विभूषित होता है उसीप्रकार  
 स्वाभाविक गुणोंसे वह सुशोभित होने लगा ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेके पहिले ही उसका अनुराग अथवा  
 लालिमा मग्न जगह फैल जाती है उसीप्रकार महान्युदयको सूचित करनेवाला लोगोंका प्रेम उसके उत्पन्न होनेसे पहिले  
 ही प्रगट हो चुका था ॥ ४२ ॥ सब लोगोंको आश्वासन देनेवाला और कासके फूलके समान फैला हुआ उसका निर्मल  
 यश सब दिशाओंमें व्याप्त हो गया था ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार शुक्लपक्षको पाकर चंद्रमा कांति और चांदनीसे सुशोभित  
 होता है उसीप्रकार वह नई उम्र ( युवावस्था ) पाकर राज्यलक्ष्मी और लक्ष्मीवतीसे बहुत ही सुशोभित होता था  
 ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार सबके समय पूर्व दिशासे सुवर्ण मीसी कांतिवाला सूर्य उदय होता है उसीप्रकार अनंतवीर्य वा  
 प्रतींद्रका जीव भी उन दोनोंके ( वज्रायुध और लक्ष्मीवतीके ) महत्सायुध नामका पुत्र हुआ था ॥ ४५ ॥ उस सहस्रा-

तलस्मीवत्या चाप्य नव वयः । असा पक्षांतरं काल्या ज्योत्स्नयावाप्य वा विधुः ॥ ४४ ॥ सृजस्तयोः प्रतीतिभूतसहस्रायुधनामभाक् । शसरादे प्रतीत्यां वा धर्मवीर्ये कनक्षुति ॥ ४५ ॥ श्रीवेणाया सुतस्तस्य शातातकनकोऽजनि । एव क्षेमकरः पुत्रगोत्रादिपरिवारित ॥ ४५ ॥ अप्रतीपप्रतापीय नतभूपकद-  
बकः । कदाचिद्वीज्यमानोऽस्माकमरै सिंहविपरे ॥ ४७ ॥ तदामरसदस्यासीदीशानस्तुतिगोचर । वज्रायुधो महासम्यग्दर्शनाधिकृत्यतः कृती ॥ ४८ ॥  
देवो विवित्रचूलाख्यस्तस्तव सोढुमक्षम । अभिवज्रायुधं प्रापस्त्वलो ह्यन्यस्तवासह ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वा रूपपराङ्मुखा महीनाथ यथोचित । वादकं दृष्ट्वा यथाबोच-  
त्सोत्रांतिकमते स्थितः ॥ ५० ॥ त्वं जीवादिपदार्थानां विद्वान् क्लिब विचारणे । वद पर्यायिणो भिन्नः पर्यायः किं विपर्ययं ॥ ५१ ॥ भिन्नबेच्छून्यताप्रा-  
सित्तोराधारहानित । तथा चाभ्युपदेशत्वाधाय पक्षो घटामटेत् ॥ ५२ ॥ ऐक्यसंगरेज्येतत्र युक्तिपदवीं व्रजेत् । अन्योन्यगोचरैकत्वनात्वायंतसंकरात् ॥

युधके श्रीवेणा स्त्रीसे कनकशांत नामका पुत्र हुआ था । इस तरह राजा क्षेमंकर पुत्र पौत्र आदि परिवारके साथ राज्य करता था ॥ ४६ ॥ संसारमें उसके प्रतापको कोई टकनेवाला नहीं था और अनेक राजाओंका समूह आकर उन्हें नमस्कार करता था । किसी एक दिन वह सिंहासनपर विराजमान था चमर उसपर दुंगरे जा रहे थे ॥ ४७ ॥ ठीक इसी समय देवोंकी समामें ईशान इंद्र वज्रायुधकी स्तुति कर रहा था और कह रहा था कि वज्रायुध महा सम्यग्दर्शन की अधिकता अर्थात् सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिसे अत्यंत पुण्यवान् हो रहा है ॥ ४८ ॥ उसी सभाका विवित्रचूल नामका एक देव वज्रायुधकी इस स्तुतिको सह नहीं सका इसलिये वह शीघ्र ही वज्रायुधके समीप आया सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट लोगोंको दूसरोंकी प्रशंसा वा स्तुति कभी सहन नहीं होती है ॥ ४९ ॥ राजाको देखकर उसने अपना रूप बदला और वीरका रूप धारणकर वाद करनेकी इच्छासे महाराजको यथायोग्य रीतिसे हन्यकार कहने लगा ॥ ५० ॥ कि आप जीवादि पदार्थोंके विचार करनेमें विद्वान हैं इसलिये बतलाइये कि पर्यायीसे पर्याप अभिन्न है अब वा भिन्न है ॥ ५१ ॥ यदि पर्यायीसे पर्याप भिन्न मानेंगे तो पर्याप पर्यायी दोनोंको शून्य मानना पड़ेगा क्योंकि अलग अलग दोनोंका कोई आधार नहीं है । तथा अलग अलग दोनोंकी कोई संज्ञा वा नाम भी नहीं हो सकता इसलिये यह पक्ष ठीक नहीं बैठता ॥ ५२ ॥ यदि पर्याप पर्यायी दोनोंको अभिन्न वा एक मानेंगे तो भी युक्तिसंगत नहीं होगा क्योंकि जब पर्याप पर्यायी दो पदार्थ हैं और दोनों एक हैं अभिन्न हैं तो एकपना और अनेकपना दोनोंके मिलनेसे संकर दोष उत्पन्न होजायगा ॥ ५३ ॥ यदि द्रव्य एक है और पर्यापें बहुत हैं ऐसा मानेंगे तो फिर दोनों एक स्वरूप भी हैं इस प्रतिज्ञाका भंग हो जायगा ॥ ५४ ॥ यदि द्रव्य पर्याप दोनोंको नित्य मानेंगे तो फिर नित्य होनेसे पुण्य पाप रूप कर्मोंका उदय नहीं

५३ ॥ अस्ति चेष्टद्वयमेकं ते पर्याया बहवो मताः । एकात्मकमपीत्येष संगरो भगवानुयात् ॥ ५३ ॥ नित्यत्वेपि तयोः पुण्यपापपाकात्मताऽनुरे । तच्छु-  
 बधनाभावान्नोक्षाभावो न वार्यते ॥ ५५ ॥ अगत्या क्षयिकत्वं चेतयोरभ्युपगम्यते । तवाभ्युपगमस्याग पक्षसिद्धिश्च भवेत् ॥ ५६ ॥ ततो भवन्मतं  
 भद्रं बौद्धिकः परिकल्पित । कल्पनामात्रमत्रस्य माकृयास्त्व हृषाश्रम ॥ ५७ ॥ इत्याह्वयं तदोक्तं तद् बुधो ब्रह्मायुधोऽभजत् । शृणु चित् निधायोर्बोभीष्यस्यं  
 प्राप्य सौगत ॥ ५८ ॥ जिनेन्द्रदेन्द्वयस्याद्वादशुतपयिना । स्वकर्मफलमोगादिव्यवहारविरोधिना ॥ ५९ ॥ क्षणिकैकतदुर्वादमवलम्ब्य प्ररूपितः । त्व-  
 या दोषो न बाधाय कल्पते धर्मधर्मिणो ॥ ६० ॥ सञ्ज्ञाप्रज्ञास्वचिन्तादिर्देहिमिश्रत्वमेतयोः । एकत्वं चाष्टयस्त्वार्पणनयकालम्बनात् ॥ ६१ ॥ कार्यकारण-  
 भावेन कालत्रितयवर्तिना । स्वकथनामव्यवच्छेदमतामोभ्युपगम्यते ॥ ६२ ॥ एकथना क्षणिकत्वेपि तद्भावकृतकर्मण युक्तं फलोपभोगदिरसाकमिति ते

हो सकेगा, कर्मके उदयके विना बंधके कारण रागद्वेष आदि परिणाम नहीं हो सकेंगे, रागद्वेष रूप परिणामोंके विना  
 बंध नहीं हो सकेगा और बंधके विना मोक्षका अभाव भी निवारण नहीं किया जा सकेगा भावार्थ-मोक्षका अभाव  
 भी हो ही जायगा ॥ ५५ ॥ इसलिये द्रव्य पर्याय दोनों ही नित्य न बन सकनेके कारण दोनोंको ही यदि लाचार  
 होकर क्षणिक मानेगे तो आपका मत छूट जायगा और मेरे पक्षकी सिद्धि हो जायगी ॥ ५६ ॥ इसलिये हे भद्र ! आप-  
 का मत केवल नीच बौद्धोंका कल्पना किया हुआ है, इसके कहे हुए सब पदार्थ केवल कल्पनामात्र हैं वास्त-  
 विक नहीं हैं इसलिये आप इसमें व्यर्थ परिश्रम मत कीजिये ॥ ५७ ॥ इन सब बातोंको सुनकर बुद्धिमान ब्रह्मायुध  
 कहने लगा कि हे नौद्ध ! जिसको स्व मध्यस्थ रखकर सुन ॥ ५८ ॥ अपने कर्म, कर्मोंका फल, भोग आदि व्यवहारका  
 विरोधी जो क्षणिक (संसारके सब पदार्थोंको क्षणिक मानना) एकांत (इसी एक पक्षको मानना) मिथ्यावाद है  
 उसका सहारा लेकर जो दोष निरूपण किया है वह जिनरात्रके मुखरूपी चंद्रमासे निकले हुए स्याद्वादरूपी अमृतको  
 पीनेवाले लोगोंको अर्थात् अनेकातको माननेवाले जैनियोंको कभी बाधा नहीं पहुंचा सकता क्योंकि धर्म धर्मी वा  
 पर्याय पर्यायी इन दोनोंमें संज्ञा (नाम) बुद्धि तथा अपने अपने लक्षण आदिकी भिन्नता होनेसे भेद वा  
 भिन्नता मानी जाती है और पर्याय पर्यायी कभी अलग नहीं हो सकते 'इस नयके सहारेसे अमेद वा अभिक्ता  
 मानी जाती है । भावार्थ-द्रव्य पर्याय वा पर्याय पर्यायी कभी किसी तरह अलग नहीं हो सकते इसलिये निश्चय  
 नयसे दोनों ही एकस्वरूप हैं तथा व्यवहार नयसे द्रव्योंका नाम संख्या लक्षण प्रयोजन आदि भिन्न है और पर्या-  
 योंका नाम संख्या लक्षण आदि भिन्न है इसलिये दोनों ही भिन्न हैं ॥ ५९-६१ ॥ कार्य कारणरूपसे तीनों कालोंमें

मति ॥ ६३ ॥

पृथक्चे किं न पश्य

नरक्षण । बातारितरुन्धेन गोघो वा मसदंतिन ॥ ६४ ॥ सतानिभ्यः स संतानं पृथक् किं वाऽपृथग्मतः । पृथक् न त ॥ ६५ ॥ अथेष्टो व्यतिरेकेण सतानिभ्यः स्वकल्पितः । संतानं शून्यता तस्य सुगतोऽपि न दारयेत् ॥

६६ ॥ प्रवसात्रास्त्यक्तांत क्षणोभाग्यव्ययुद्धात् । भवत्क्षणस्वरूपासिग्यासो नाप्नोति संततिं ॥ ६७ ॥ यदि कश्चिदुभयोऽस्ति सतानस्य तवास्तु स ।

ततः संतानवादेभ्यं भवव्यसनसंतति ॥ ६८ ॥ इति देवोप्यसौ तस्य वागवज्रेण विष्णुर्णितं । वचो विनित्यं स्वं भग्नमानः कालादिलब्धितः ॥ ६९ ॥ सद्यः

सम्यक्सवमादाय संपूज्य धरणीश्वरं । निजागमनश्रुतातममिधाय दिव गतः ॥ ७० ॥ अथ क्षेमंकरं पृथ्व्याः क्षेमं योगं च संदधत् । लब्धवोधिर्मतिज्ञानं

रहनेवाले स्कंधोंकी विना किसी व्यवच्छेदके निरंतर संतान उत्पन्न होती रहती है यदि ऐसा स्वीकार करते हो तथा स्कंधोंको क्षणिक मानकर भी उनकी निरंतर संतान उत्पन्न होती रहती है ऐसा मानकर भी किये हुए कर्मोंका उपभोग आदि फल जो हम लोगोंको मिलता है वह ठीक है ऐसा मानते हो और इसी परिहारसे अपने पक्षकी रक्षा करना चाहते हो परंतु इससे अपने पक्षकी रक्षा करना एरंडके वृक्षसे हाथीको बांधकर रोकना है भावार्थ-जैसे एरंडके वृक्षसे हाथी रुक नहीं सकता उसीप्रकार ऊपर लिखे परिहारसे आपके पक्षकी रक्षा हो नहीं सकती ॥ ६२-६४ ॥

स्कंधोंसे उत्पन्न हुई वह संतान संतानीसे भिन्न है अथवा अभिन्न है यदि संतानको भिन्न मानेंगे तो वह संतान उस संतानीसे अलग क्यों नहीं दिखाई देती ? ॥ ६५ ॥ यदि आप अपनी कल्पित संतान संतानीसे अभिन्न मानते हैं तो फिर उसकी शून्यताको बुद्ध भी निवारण नहीं कर सकता अर्थात् फिर वह शून्य ही माननी पड़ेगी कोई वस्तु नहीं । आपका माना हुआ क्षण वस्तुके नाश स्वरूप है नाशसे भिन्न नहीं है क्योंकि नाशके समय होनहार संतान उत्पन्न नहीं होती इसलिये आपने जो क्षणका स्वरूप माना है उसकी प्राप्तिसे क्या हुआ वर्तमान क्षण किसी भी तरह संतानको उत्पन्न नहीं कर सकता । भावार्थ-पहिले क्षणमें वस्तुकी उत्पत्ति दूसरेमें सत्ता और तीसरेमें नाश होगा फिर कहीं चौथे क्षणमें जाकर संतान उत्पन्न होगी इसलिये आगे लिखते हैं कि यदि आप संतानकी उत्पत्तिका चौथा क्षण मानते हैं तो किसी तरह ठीक हो सकता है भावार्थ-चौथे क्षणमें संतानकी उत्पत्ति होनेसे स्कंधकी सत्ता तीन क्षणतक माननी पड़ेगी और इसतरह क्षणिकवाद बन नहीं सकेगा इसलिये यह संतानवाद संसारके व्यसनोकी संतान है, अर्थात् दुःखदायी है ॥ ६६-६८ ॥ इसप्रकार अपमानित हुए उस देवने वज्रायुधके कहे हुए वचनरूपी वज्रसे खंड खंड हुए अपने वचनोंका विचार किया, काललब्धिके मास हो जानेसे क्षीय ही सम्यग्दर्शन स्वीकार किया,



शयोपशमनाश्रतः ॥ ७१ ॥ वज्रायुधकुमारस्य कृत्वा राज्यमभिषेचनं । प्राप्तौल्लासकस्तोत्रं परीक्षिष्यत्य गेहृतः ॥ ७२ ॥ अनावरणमस्थानमप्रमादमुत्कमं । अस्मगमकृताहारमार्ताह्यर्चनमेकधा ॥ ७३ ॥ अक्षययमनारंभमनवद्यम्लक्षितं । अनारतश्रुताभ्यासं प्रकुर्वन्स तपश्चिरं ॥ ७४ ॥ निर्ममं निरहकारं निःशान्कं निजितेन्द्रियं । निःक्रोधं निश्चलं चित्तं निर्द्वैतं निर्मलं व्यधात् ॥ ७५ ॥ क्रमात्कैवल्यमप्याय व्याहृतपुरुकृतकं । गणान् द्वादशं बालीयान् बाणिवसर्गादतीवृ-  
पत् ॥ ७६ ॥ वज्रायुधेय भूमाये सुपुण्यफलिता महीं । पालागमन्मधुमासी मदनोन्मादीपन ॥ ७७ ॥ कोष्ठिलानां कलालोपो ध्वनिश्च मधुरोऽल्लिमा । अह-  
रत्काममनो वा प्राणान् प्रोषितयोजिता ॥ ७८ ॥ वनान्यपि मनोजाय त्रिजगद्विजिगीषवे । यस्मिन्पुष्पकरे स्वेरं ददुः सर्वस्वमात्मन ॥ ७९ ॥ तस्मिन्काले  
बने रतु खदेवरमणे मति । श्रुत्वा सुदर्शनावयवश्रृणुयाथात्मयोजिता ॥ ८० ॥ औत्सुक्यापन्नं गत्वा सुदर्शनसरोवरे । जलकोटां स्वदेवीभिः प्रवर्तयति  
मधुजे ॥ ८१ ॥ अपिधाय सरं सद्यः कश्चिद्विलासं स्मृतं । शिलया नागपाशेन तमवभ्राज्यन्त्युप्यसौ ॥ ८२ ॥ बिलां हस्तलेनाहस्ता गता शतसङ्घातां ।

राजाकी पूजाकी, अपने आनेके समाचार कहे और स्वर्गको चला गया ॥ ६९-७० ॥ अथानंतर राजा क्षेमकर पृथ्वी-  
के क्षेम और योगका पालन करने लगे । किसी एक दिन मतिज्ञानावरण कर्मके अत्यंत क्षयोपशम होनेसे उन्होंने आत्म-  
ज्ञान उत्पन्न हुआ उन्होंने वज्रायुध कुमारका राज्याभिषेक किया उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति  
की और उन्होंने घरसे निकलकर दीक्षा धारण की ॥ ७१-७२ ॥ तदनंतर उन्होंने आवरण स्थान और प्रमाद अनु-  
क्रमसे परिग्रह आहार आदिका त्यागकर अनेक तरहसे तपश्चरण किया, कषाय और आरंभोंका त्याग किया, बहुत  
दिनतक निर्दोष और अखंडित तपश्चरण किया तथा निरंतर श्रुतज्ञानका अभ्यास किया ॥ ७३-७४ ॥ ममता अहं-  
कार मूर्खता आदि सबका त्यागकर हृदियोंको दमन किया, क्रोधका त्याग किया तथा मोक्षके लिये चिरको शांत  
और निश्चल बनाकर निर्मल बनाया ॥ ७५ ॥ अनुक्रमसे केवलज्ञान प्राप्त किया, उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर  
समवसरण आदिकी रचनाकी और वे भगवान् अपनी दिव्यध्वनिसे अपनी बारह सभाओंको तृप्त करने लगे ॥ ७६ ॥  
इधर महापुण्यसे फली हुई पृथ्वीका उपभोग करता हुआ राजा वज्रायुध राज्य करने लगा । धीरे धीरे कामदेवकी  
उन्मत्तताको और बढ़ानेवाली वसंत ऋतु आई कोयलोंका मनोहर आलाप और भ्रमरोंकी मधुर ध्वनि होने लगी  
और वे दोनों ही काममंत्रके समान वियोगिनी स्त्रियोंके प्राण हरण करने लगीं ॥ ७७-७८ ॥ उससमय वनोंमें  
भी सब तरहके फूल आगये थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानों तीनों जगतको जीतनेवाले कामदेवके  
लिपे इच्छानुसार अपना सब कुछ दे रहे हों उसीसमय सुदर्शना रानीके मुखसे और धारिणी आदि

विद्याधरोपि दुष्टात्मा तवानीं प्रपलायित ॥ ८३ ॥ एष पूर्वभवे शत्रुविशुंष्ट्याभिधानकः । वज्रायु गोपि देवीभिः सह स्वागुरुमागमत् ॥ ८४ ॥ एवं सुखेन भूमलुः काले गच्छत्यश्रोदयात् । निभयो नव रत्नानि चतुर्दश तदामबन् ॥ ८५ ॥ चक्रवर्तिधिय प्राप्त्य निक्लिप्त सिंहविष्टरे । कश्चिद्विद्याधरो भीत शरणं तमुपागतः ॥ ८६ ॥ तत्संवत्सुपद काचिदुत्खातासिलता स्वमी । क्रोधानलशिक्षेवागात् द्योतयती समपति ॥ ८७ ॥ तस्याश्वानुपदं कश्चित्स्वविरः स गन्धधरः । समागत्य महाराज दुराटमैव खगाधमः ॥ ८८ ॥ त्वं दुष्टनेमहे शिष्टपालने न निरंतरं । आगतिं निग्रहः कार्यस्त्वयास्यान्यायकारिणः ॥ ८९ ॥ कोमावन्याय इत्येतत् शान्तिमुच्छा तवास्ति चेत् । वदामि देव सम्यक् त्वं प्रणिधाय मनः शृणु ॥ ९० ॥ जंबूद्वीपमुच्छाह्यविषये खेचरालये । श्रेण्यामुत्त-

अन्य रानियोंकी उत्सुकतासे राजा वज्रायुधने जान लिया कि अपने देतरमण नामके वनमें जाकर क्रीडा करनेकी इनकी इच्छा है, तदनुसार वह उसी वनमें गया और सुदर्शन नामके सरोवरमें अपनी रानियोंके साथ साथ जल क्रीडा करने लगा ॥ ७९-८१ ॥ उसीसमय कोई दुष्ट एरु विद्याधर आया उसने एक पत्थरकी शिलासे उस सरोवरको टुक दिया और नागपाशसे उस राजा वज्रायुधको बांध लिया । उसीसमय वज्रायुधने उस शिलापर एक हाथकी हथेली मारी जिससे उसके सौ टुकड़े होगये और उसीसमय वह दुष्ट विद्याधर भाग गया ॥ ८२-८३ ॥ वह विद्याधर और कोई नहीं था पहिले जन्मका शत्रु विषुददंष्ट्रका जीव था । इधर राजा वज्रायुध अपनी रानियोंके साथ २ अपने नगरको लौट आया ॥ ८४ ॥ इसप्रकार राजा वज्रायुधका समय सुखसे व्यतीत होने लगा और पुण्यकर्मके उदयसे उसके नौ निधि चौदह रत्न प्रगट हुये ॥ ८५ ॥ इसतरह चक्रवर्तीकी विसृति पाकर वह किसी एक दिन सिंहासनपर विराजमान था कि इतनेमें ही कोई एक डरा हुआ विद्याधर उसके शरण आया ॥ ८६ ॥ उसके पीछे ही हाथमें तलवार उठाये क्रोधरूप अग्निकी शिखाके समान सभापति राजा वज्रायुधको मी प्रकाशित करती हुई एक विद्याधरी आई ॥ ८७ ॥ उस विद्याधरीके मी पीछे हाथमें गदा लिये एरु बूढा विद्याधर आया और महाराजसे कहने लगा कि हे महाराज ! वह विद्याधर दुष्ट और नीच है आप दुष्ट लोगोंके निग्रह करनेमें ( दंड देनेमें ) और सज्जन लोगोंके पालन करनेमें सदा सावधान रहतें हैं इसलिये आपको इस अन्याय करनेवालेका निग्रह अवश्य करना चाहिये अर्थात् इसे अवश्य दंड देना चाहिये ॥ ८८-८९ ॥ यदि इसने कौनसा अन्याय किया है, सुननेकी आपकी इच्छा हो तो मैं उसे कहता हूं आप अच्छी तरह चित्त लगाकर सुनिये ॥ ९० ॥ इसी जंबूद्वीपके विदेह क्षेत्रके कच्छा देशमें विजयाचं पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें चक्रप्रभा नामका नगर है उसके स्वामी विद्याधरोंके राजा इन्द्रदत्त रानी यशोधरा-

रष्ट्रिण्याया शुक्रप्रमपुण्यपि ॥ ९१ ॥ रागाधीन्द्रदत्ताख्य रिया ताय यगोधरा । तयोर्हं दुतो वायुवेगो विधाधैर्मतः ॥ ९२ ॥ तत्र किन्नरगीताहं नगराधिप-  
ति खगः । चित्रसेन सुता तस्य सुकाता मे प्रियाऽभवत् ॥ ९३ ॥ सुता मम सुकातायाश्चैषा शांतिमतिः सती । विधा संधिर्दुं यता मुनिसागरप-  
र्वत ॥ ९४ ॥ विधासाधनविद्भार्य पापीय समुपस्थितः । पुण्योदयात्तत्वास्या विधा सिद्धिमुपाशता ॥ ९५ ॥ तद्रूप्यत्वाभ्य पापकर्मकृतसमुपाश्रयत ।  
विधापूजा समादाय तदैवाहं समागम ॥ ९६ ॥ अष्टपु मरुता तत्र तन्वागं क्षिप्रमन्वितः । इत्यवादीत्य तत्सर्वं शृत्वाधिविलोचन ॥ ९७ ॥ जानाम्यह  
महत्वात्स्य विधाया विघ्नकारण । इति ब्रजालुघो व्यक्तमेव प्रोवाच तां कथा ॥ ९८ ॥ अभिमैरावते ह्य्याते गांधारविपये नृप । विध्यसेन पतिविध्यपुर-  
स्य विलसन्पुंगः ॥ ९९ ॥ सुलक्षणाया तस्यापूर्यदुर्नलिनकैतुक । तनेव धनमित्रस्य श्रीदत्ताया मुर्तो वणिक् ॥ १०० ॥ गुदस्तो नाम तस्यासीद्गोवा  
प्रीतिकराह्वया । दृष्ट्वा नलिनकैतुस्तं क्वचिद्वनविहारिणी ॥ १०१ ॥ मदनालसतस्तदाह सोढुमक्षम । न्याययुति समुल्लस्य बलादहत दुर्मतिः ॥

का मैं पुत्र हूं वायुवेग मेरा नाम है और मर्कटविधाधर मुझे मानते हैं ॥ ९१-९२ ॥ उसी देशमें किन्नरगीत नगरके  
राजा चित्रसेन विधाधरकी सुकाता नामकी पुत्री मेरी स्त्री है ॥ ९३ ॥ उसी सुकाता स्त्रीसे मेरी यह सती शांतिमती  
पुत्री हुई है । यह विधासिद्ध करनेके लिये मुनिसागर नामके पर्वतपर गई थी, वहींपर यह पापी भी इसकी विधा  
सिद्ध होनेमें विघ्न करनेके लिये उपस्थित हुआ था, परंतु पुण्य कर्मके उदयसे उसीमय इस शांतिमतीको विधा सिद्ध  
हो गई ॥ ९४-९५ ॥ उस विधाके डरसे ही यह पापी आपके शरण आया है । जिससमय यह भागा था और इसके पीछे  
यह शांतिमती भागी थी उसीसमय मैं विधाकी पूजाकी मामग्री लेकर वहां पहुंचा था परंतु अपनी पुत्रीको वहां न  
देखकर उसी मार्गसे शीघ्र ही इनके पीछे आया हूं । यह सन उस बूढ़े विधाधरने कहा । यह सब सुनकर अवधिज्ञान-  
रूपी नेत्रको धारण करनेवाला राजा ब्रजालुष कहने लगा कि इसको विधामें विघ्न होनेका जो बड़ा भारी कारण है  
उसको मैं जानता हूं, इसतरह कहकर वह उस कथाको इमतरह स्पष्ट कहने लगा ॥ ९६-९८ ॥ कि इसी जंबूदीपके  
पेरावत क्षेत्रमें गांधार देशके विध्यपुर नगरमें गुणोंसे सुशोभित राजा विध्यसेन राज्य करता था उसकी सुलक्षणा रा-  
नीसे नलिनकैतु नामका पुत्र हुआ था । उसी नगरमें एक धनमित्र श्रेष्ठ रहता था, उसकी श्रीदत्ता स्त्रीसे सुदत्त नाम  
का पुत्र हुआ था, उस सुदत्तकी स्त्रीका नाम प्रीतिकरा था । वह प्रीतिकरा एक दिन किसी वनमें विहारकर रही थी  
उसी समय राजपुत्र नलिनकैतुने उसे देखा ॥ ९९-१०१ ॥ देखते ही वह दुर्बुद्धि कामदेवकी अनिसे जल उठा  
और उस जलनको सह नहीं सका इसलिये न्यायमार्गका उल्लंघनकर जबर्दस्ती उसे हर लाया ॥ १०२ ॥ स्त्रीके हरे

१०२ ॥ शुद्धतत्त्वेन निर्विणः सुव्रताख्यजिनातिके । प्रव्रज्य सुचिरं घोर तप कृत्वायुषोर्बधौ ॥ १०३ ॥ सम्भयेषानकल्पेभूरेकसागरजीवित । तत्र भो गार्भिरं मुक्त्वा ततः प्रच्युत्य पुण्यभाक् ॥ १०४ ॥ जंबूद्वीपसुकच्छास्यविजयादौचलोत्तर-श्रेण्या पुरेभक्तान्ननाथं ततिलकाङ्क्षये ॥ १०५ ॥ महेंद्रविक्रम-स्वेष्टतनूजोऽजितसेनबाक् । अभूदनिलवेगायां विद्याविक्रमदुर्गतः ॥ १०६ ॥ इतो नलिनकेमुख दीक्ष्योल्कापातमालम्बान् । निर्विद्य प्राक्तनास्मीयं दुष्परिश्रं वि-निदयन् ॥ १०७ ॥ सीमकरमुनिं श्रित्वा दीक्षामादाय शुद्धधीः । क्रमादकैवल्यमुत्पाद्य संप्रापक्षितिमष्टमीं ॥ १०८ ॥ प्रीतिकरापि सवेगात्सश्रिता सुमतां-तिकं । गृहसंगपरिह्यागाकृत्वा चाद्रायणं परं ॥ १०९ ॥ प्राप्ते संन्यस्य सा प्रायात्कल्पमीशाननामक । तत्र स्वायुःस्थितिं नीत्वा दिग्भ्रमैर्गैस्ततस्थुना ॥ ११० ॥ तत्राजनि तनूजेयमग विद्याविघातकृत् । तत्संबधादिति श्रोक्त सर्वमाकर्ण्य भूभुजा ॥ १११ ॥ निर्विद्य संसृतेः शांतिमती क्षेमंकराकृत्वात् । तीर्थेशा-

जानेसे सुदृढ विरक्त हुआ उसने सुव्रत नामके जिनराजके समीप दीक्षा धारण कर ली, बहुत दिनतक कठिन तप-श्रम किया और आयुके अंतमें समाधिभरण धारणकर दूसरे ईशान स्वर्गमें देव हुआ । वहांपर एक सागरकी आयु पाई बहुत दिनतक भोगोंका उपभोग किया और आयुके अंतमें वहांसे आकर वह पुण्यवान् इसी जंबूद्वीपके सुकच्छा देशके विजयाद्रि पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें कांचनतिलक नामक नगरके राजा महेंद्रविक्रम रानी अनलवेगके यह अजित सेन नामका प्रिय पुत्र हुआ है विद्या और पराक्रमसे यह अजेय है कोई इसे पा नहीं सकता ॥ १०३-१०६ ॥ इधर नलिनकेतुको उत्कापात देखकर अपना ज्ञान हुआ अपने पहिले दुश्चरित्रोंकी निंदा करता हुआ वह विरक्त हुआ, सीमंकर मुनिराजके समीप जाकर शुद्ध बुद्धिवाले उमने दीक्षा धारणकी, अनुक्रमसे कैवलज्ञान उत्पन्न किया और अंतमें आठवीं पृथ्वी अर्थात् मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ । भावार्थ-वह मुक्त हुआ ॥ १०७-१०८ ॥ प्रीतिकराने भी विरक्त होकर सुव्रता अर्जिकाके समीप घर और परिग्रहका त्याग किया तथा चंद्रायण तप किया अंतमें संन्यास धारणकर दूसरे ईशान स्वर्गमें देवी हुई दिव्य भोगोंका अनुभवकर वहांकी आयु पूरी की और वहांसे आकर तुम्हारे यह पुत्री हुई है । पहिलेके संवंधसे ही इसने विद्यासिद्धिमें यह विघ्न किया है । राजाकी कही हुई इस बात-को सुनकर शांतिमती संसारसे विरक्त हुई, उसने क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप जाकर धर्मश्रवण किया और तुरंत ही सुलक्षणा अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण की । अंतमें समाधि भरण धारणकर ईशान स्वर्गमें देव हुई । इधर पवनवेग और अजितसेन दोनों को उसीममय कैवलज्ञान प्राप्त हुआ था इसलिए उनकी पूजा करनेकेलिये वह शांतिमती का जीव देव आकर चला गया था ॥ १०९-११४ ॥ इधर ब्रह्म चक्रवर्ती राजवलक्ष्मी पाकर दशतरुके भोगोंका अनुभव

तदानीं- ॥ ११२ ॥ गणिनीं समयं गित्वा सन्यस्तेशानसङ्घके । नाके निलिपो भूत्वा स्वकायपूजार्थमागमत् ॥ ११३ ॥ तदानीं-  
दरमेसाय सद्यः प्राप्य सुलक्षणां ॥ ११२ ॥ गणिनीं समयं गित्वा सन्यस्तेशानसङ्घके । नाके निलिपो भूत्वा स्वकायपूजार्थमागमत् ॥ ११३ ॥ तदानीं-  
मेव कैवल्य प्राप्त्यवनवेगवान् । सहैवाजितसेनेन कृत्वा पूजा तयोरयात् ॥ ११४ ॥ तथा चक्रधरे राज्यलक्ष्म्यालिंगितविप्रहे । दशागभोगसादभूते गति  
मेव कैवल्य प्राप्त्यवनवेगवान् । सहैवाजितसेनेन कृत्वा पूजा तयोरयात् ॥ ११४ ॥ तथा चक्रधरे राज्यलक्ष्म्यालिंगितविप्रहे । दशागभोगसादभूते गति  
॥ ११५ ॥ विद्याधरादुद्यपागमागे शिवमदिरभूति । मेघवाहननामास्य विमलाख्या प्रिया तयो ॥ ११६ ॥ सुता कनकमालेति कल्याण  
पट्टव्यवमङ्गलं ॥ ११५ ॥ विद्याधरादुद्यपागमागे शिवमदिरभूति । मेघवाहननामास्य विमलाख्या प्रिया तयो ॥ ११६ ॥ सुता कनकमालेति कल्याण  
विधिपूर्वक । जाता कनकशोभेः सा ह्यपकेतुमुखावहा ॥ ११७ ॥ तथावस्तोकसाराल्यपुराधीश्वरोधिनिः । सुतां समुद्रसेनस्य जयसेनोदरोदित्वा ॥ ११८ ॥  
प्रिया वसतसेनापि वयूदास्य कनीयसी । ताभ्या निवृत्तिमापायौ दृष्टिवर्थाद्वयेन वा ॥ ११९ ॥ कोकिलाप्रथमालापैराहूत इव कौतुकात् । अयाद्वनविहाराय  
कदानित्स सहप्रिय ॥ १२० ॥ कदमूलफलान्वेषी तिष्ठि वा झुकुतोदयात् । कुमारे मुनिमद्राक्षीद्विपिने विमलप्रभं ॥ १२१ ॥ त त्रि परीत्य वदित्वा तत-  
स्तत्त्व प्रबुद्धवान् । मनोरज समुद्भूय शुद्धि दुःखरुपासदत् ॥ १२२ ॥ तदानीमेव तं वीक्षावस्थीय स्ववश व्यधात् । शफलीव वनतश्रीरजायत तपप्रिय ॥  
करता हुआ छहों खंड पृथ्वीका पालन करता था ॥ ११५ ॥ इसीसमय विजयार्द्र पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें शिवमंदिर  
नगरके राजा मेघवाहन रानी विमलाके कनकमाला नामकी पुत्री हुई थी उसके जन्मके समय अनैकतरहके उत्सव  
मनाये गये थे । वह कनकमाला कनकशोतिके साथ काम क्रीडा करनेवाली हुई थी अर्थात् उसके साथ व्याही गई  
थी ॥ ११६-११७ ॥ इसीतरह वस्तोकसार नाम नगरके स्वामी राजा समुद्रसेन विद्याधरकी रानी जयसेनाके उदरसे  
उत्पन्न हुई वसंतसेना पुत्री कनकशोतिकी छोटी स्त्री हुई थी । जिसप्रकार समुद्रदर्शन और सम्यग्ज्ञापरित्रसे मोक्ष  
प्राप्त होती है उसीप्रकार उन दोनों स्त्रियोंसे वह कुमार बहुत ही सुखी था ॥ ११८-११९ ॥ किसी एकदिन वसंत  
ऋतुके समय कोयलोंकी प्रथम कूजनोंके द्वारा बुलाया हुआ ही क्या मानों वह कुमार अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ  
वनमें विहार करनेकेलिये निकला ॥ १२० ॥ जिसप्रकार कंदमूल फल ढूँढनेवालेको कोई खजाना मिलजाय उसी-  
प्रकार उस वनमें उस कुमारको विमलप्रभ नामके मुनिराजके दर्शन हुए ॥ १२१ ॥ उसने मुनिराजकी तीन प्रदक्षि-  
णाये दीं, बंदनाकी, उनसे तत्त्वोंका स्वरूप समझा और मनकी सब मलिनता दूरकर बुद्धिको शुद्ध किया ॥ १२२ ॥  
जिसप्रकार वसंतऋतु शोभा वा लक्ष्मीको अपने वश कर लेती है उसीप्रकार तपश्चरणकी दूतीके समान दीक्षा लक्ष्मीने  
उसीसमय उसे अपने वश कर लिया अर्थात् उसने दीक्षा धारण की ॥ १२३ ॥ उसकी दोनों स्त्रियोंने भी विमलमती  
नामकी अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण की सो ठीक ही है क्योंकि कुलस्त्रियोंको ऐसा करना योग्य ही है  
-भावार्थ-कुलस्त्रियोंको पतिके पीछे दीक्षा लेनी ही चाहिये ॥ १२४ ॥ किसी एक समय वह कनकशोतिं मुनिराज सिद्धा

१२३ ॥ देव्यौ विमलमलयाद्वयगिणीं ते समाश्रिते । अवीक्षेता सहैतेन शुक्र तत्कुलयोगिता ॥ १२४ ॥ सिद्धाचले कदाचित्स प्रतिमायोगधारिणं । स्वगो वसंतसेनाया बद्धवैरेण मैथुन ॥ १२५ ॥ विलोक्य चित्रचूलाख्यः क्रोपाकणितवीक्षणं । प्रारिप्सुरुपसर्गाय तर्जितं खनरेश्वरं ॥ १२६ ॥ अन्यथा रत्नसेनाह्वयो द्रुपो रत्नपुराधिप । दत्त्वाप पचकाश्रयं शिक्षां कनकशातये ॥ १२७ ॥ चित्रचूलः पुनश्चास्य प्रतिमायोगधारिणः । वने सुरनिपाताह्वये विधाय कर्तुमुद्यत ॥ १२८ ॥ तरिमन्त्रकोप परिलज्जं घातिघातायतीश्वर । केवलान्नगम प्राप्तत्वापि क्रोपो न धीमता ॥ १२९ ॥ देवागमनमालोम्य मीत्वा स खगपापकः । तमेव शरणं यातो नीचानां धृतिरीदृशी ॥ १३० ॥ अथ ब्रह्म युधाधीशो नम्रुकेवलदर्शनात् । लब्धगोधिः सहस्रायुधाय राज्यं प्रदाय तत् ॥ १३१ ॥ दीक्षा क्षेमंकराख्यानतीर्थैर्वनुपातगः । प्राप्य सिद्धिनिरी वषप्रतिमायोगगास्थित ॥ १३२ ॥ तस्य गदैः समालज्ज्य वारमीकं बहुवर्तत । वचल पर्वतपर प्रतिमायोग धारणकर विराजमान ये, वहींपर उनकी स्त्री वसंतसेनाका भाई विचित्रचूल नामका विधाधर आया पहिले जन्मके बंधे हुए बैरके कारण मुनिराजको देखते ही क्रोधसे उसकी लाल आँखें हो गईं, उसने उपसर्ग करना प्रारंभ किया परंतु चक्रवर्तीने उसे ललकारकर भगा दिया ॥ १२५-१२६ ॥ किसी दूसरे दिन रत्नपुराके राजा रत्नसेनने कनकशांति मुनिराजको आहारदान दिया जिससे उसके घर पचाइचर्योंकी वर्षा हुई ॥ १२७ ॥ किन्तु दूसरे दिन वे कनकशांति मुनिराज सुरनिपात नामके वनमें प्रतिमायोग धारणकर विराजमान थे वहाँपर वह विचित्रचूल आ पहुँचा और उसने उनके तपश्चरणमें विध्न करना प्रारंभ किया ॥ १२८ ॥ मुनिराजने क्रोधादिका सर्वथा त्याग कर दिया और घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया इसलिये कहना पडता है कि बुद्धिमानों को क्रोध कभी नहीं करना चाहिये ॥ १२९ ॥ उसीसमय उनकी पूजा करनेकेलिये इद्रादि देव आए उन्हीं देवत्वकर वह पापी डरकर उन्हींके शरण आया सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः नीचोंके ऐसे ही आचरण हुआ उसने अपने इधर वज्रायुधने मुना कि उसके पोते कनकशांतिको केवलज्ञान हुआ है सुनते ही उसे आत्मज्ञान हुआ उसने अपने पुत्र सहस्रायुधको राज्य दिया और क्षेमंकर तीर्थकरके समीप जाकर दीक्षा धारण की । वे वज्रायुध मुनिराज सिद्धगिरि पर्वतपर एक वर्षतक प्रतिमायोग धारणकर विराजमान रहे, और उनके चरणोंके सहारे साँपोंने बहुतसी वामियाँ बना लीं । सो ठीक ही है क्योंकि महात्मा लोग अपने चरणोंके सहारे आए हुए शत्रुओंको भी वधाते ही हैं ॥ १३१-१३३ ॥ मिट्टीके ढेरपर चढ़नेवाली अनेक लताएं चारों ओरसे आकर उन व्रती मुनिराजके कंठतक सब शरीरसे आ लिपटीं ॥ १३४ ॥ अश्वघ्रीवके रत्नकंठ और रत्नायुध नामके जो दो पुत्र थे वे संसारमें परिभ्रमणकर अतिबल और

दंयति महात्मानः पादलभानपि द्विष ॥ १३३ ॥ अतिनं त व्रतलोपि सार्देवं वा समीप्यवः । गाढ रुडा समासेदुराकटमसितस्तनु ॥ १३४ ॥ अश्वघोष-  
मुतो रत्नकटाक्षोयुधाभिघौ । धात्वा अन्मान्यति बलमहाबलसमाख्यया ॥ १३५ ॥ भूवासुरौ तमभ्येत्य तद्विधात चिकीर्षकौ । रंभातिलोत्तमे दृष्ट्वा तर्ज-  
यित्वातिभक्तित ॥ १३६ ॥ गथादिभिर्यति दिव्यैरभ्यर्च्य दिवसीयतु । क्व वा ते क्व सुरौ पुण्ये सति किं न घटामदेषु ॥ १३७ ॥ किंवित्कारणमुद्दिश्य  
वज्रायुधमुतोपि तत् । राज्य शतवलिन्त्युच्चैर्नधाय निहतस्तृह ॥ १३८ ॥ संयम सम्यगादाय मुनीन्द्रात्पिहितास्त्रवत्सु । योगवमाने स प्रापद्ब्रह्मायुधमुनी-  
श्वरं ॥ १३९ ॥ तायुमो मुचिरं कृत्या ग्रन्थ्या सह दुःस्सहा । वैभारपर्वतस्याग्ने विप्रहेयकृताग्रहौ ॥ १४० ॥ ऊर्ध्वचर्मवैयकस्य धोभूता सौमनसाह्वये ।  
एकाग्रविजयदब्ध्यायुगौ विमाने महद्विकौ ॥ १४१ ॥ ततो वज्रायुधदधुत्वा द्दोभेस्मिन्प्राग्निर्वदेहने । विपये पुष्कलाख्या नगरी पुढरीकिणी ॥ १४२ ॥ पति-  
धनरथस्तस्य देवी काता मनोहरा । तयोर्मन्त्रथास्त्योऽभूदाधनाथास्तसक्तियः ॥ १४३ ॥ तत्पौबान्योहर्मिद्रोपि मुतो दृढरथाह्वय । जातो मनोरमाया नाविब

महबल नामके देव हुए थे उन्होंने उसीसमय आकर उन गुनिगजके तपश्चरणमें विघ्न करना प्रारंभ किया । रंभा तिलोत्तमाने देखकर उन दोनों व्यंतर देवोंको ललकारा और बड़ी भक्तिये दिव्य गंध आदि सामग्रीसे उनकी पूजा कर स्वर्गका चली गई । देखो कहां तो दो स्त्रियां ( देवियां ) और कहां वे दो व्यंतर देव, परंतु पुण्य होनेपर क्या क्या नहीं हो सकता है अर्थात् सब कुछ हो सकता है ॥ १३५-१३७ ॥ इधर वज्रायुधका पुत्र सहसायुध भी कोई कारण पाकर विरक्त हुआ उसने अपना राज्य शतवलीको दिया, निरीह होकर पिहितास्त्र मुनिराजसे संयम स्वी-  
कार किया और योगके अंतमें वज्रायुध मुनिराजके समीप आ पहुंचा ॥ १३८-१३९ ॥ उन दोनोंने बहुत दिनतक कठिन तपश्चरण किया और वैभार पर्वतपर संन्यास धारणकर शरीरका त्याग किया ॥ १४० ॥ वे दोनों ही उर्ध्व चर्मवैयकके अ-  
धोभागमें ( नीचले पटलमें ) सौमनस नामके विमानमें उन्तीस सागरकी आयु पाकर बड़ी ऋद्धिवाले अहमिंद्र हुए ॥ १४१ ॥ वज्रायुधका जीव वहांसे आकर इसी जबूदीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीमें राजा घनरथ रानी मनोहरा देवीके मेघरथ नामका पुत्र हुआ, उसके जन्मसे पहिले ही गर्भाधान आदि सब क्रियायें की गई थीं ॥ १४२-१४३ ॥ सहसायुधका जीव वह दूसरा अहमिंद्र भी इसी राजा घनरथके मनोरमा देवीसे दृढरथ नामका पुत्र हुआ । ये दोनों ही भाई सूर्य चंद्रमाके समान सुशोभित होते थे ॥ १४४ ॥ उन दोनोंके पराक्रम, बुद्धि, विनय, प्रताप, क्षमा, सत्य, त्याग तथा और भी अनेक गुण स्थिर रूपसे आकर प्रगट हुए थे ॥ १४५ ॥ वे दोनों ही भाई पूर्ण यौवन अवस्थाको पाकर बड़े ही ऐश्वर्य शाली हुए और दो हाथीके समान ज्ञान पढ़ने लगे, उन्हें देखकर राजा घन-



चंद्रविवाहको ॥ १४४ ॥ तपो पराक्रमप्रज्ञाप्रश्रयप्रभवक्षमा । सत्यत्यागादयोऽन्ये च शत्रुरासत् गुणाः स्थिराः ॥ १४५ ॥ सुतो तौ धौवनापूर्णौ प्राप्तेभ-  
योविष द्विग । विलोक्य तद्विवाहार्थं महीशो विहितस्मृतिः ॥ १४६ ॥ ज्योत्स्नोर्विवाहेन प्रियमित्रामनोरमे । कनीयसोपि युमतिं विदधे चिंतवज्जर्भा ॥  
१४७ ॥ अभवत्प्रियमित्रार्थां तनूजो नदिवर्द्धन । सुमत्या वरवेनाख्य मुनो दृढशस्त्र च ॥ १४८ ॥ इति स्वपुत्रपौत्ररिषुलसाधनसंयुत । सिंहविधर-  
मध्यास्य शकलीला समावहन् ॥ १४९ ॥ तदात्र प्रियमित्रायाः सुप्रेणा नाम-चेटिका । कुक्वाकुं समानीय घनतुंडाभिधानक ॥ १५० ॥ दर्शयित्वा द व-  
द्येन जययु कुक्वाकुकाः । परेषा प्रददे तेभ्यो धीनाराणा सहचकं ॥ १५१ ॥ इति केव्या कनीयस्याः ध्रुत्वा तद्रणिकानयत् । कावना वज्रतुंडाख्यं  
कुक्कुट बोधने तयो ॥ १५२ ॥ अन्योन्यदु खहेतुत्वावेतयोः पश्यतामपि । हिसानंददिकं दृष्टुमयोग्यं घर्मवेदिना ॥ १५३ ॥ इति स्मरथ भव्याना ब-  
ह्नामुपकर्ताये । स्वकीयपुत्रमाहात्म्यप्रकाशनधिया च तत् ॥ १५४ ॥ युद्धं घनरयावीशो लोकमानो दृढकुधो । य मेघरथमप्राक्षीष्ट बलमेतत्कुतो नयोः ॥

रथको उनके विवाहकी चिंता हुई ॥ १४६ ॥ उन्होंने बड़े पुत्र मेघरथका विवाह तो प्रियमित्रा और मनोरमाके साथ  
किया और दृढरथकी चित्तवल्लभा सुमति बनाई अर्थात् सुमतिके साथ दृढरथका विवाह किया ॥ १४७ ॥ राजकुमार  
मेघरथके प्रियमित्रासे नंदिवर्द्धन नामका पुत्र हुआ और दृढरथके सुमतिदेवीसे वरसेन नामका पुत्र हुआ ॥ १४८ ॥  
इसतरह पुत्र पौत्र आदि सब सुखकी सामग्रीमहित सिंहासनपर विराजमान हुआ वह राजा घनरथ इंद्रकीसी लीला  
धारण करता था ॥ १४९ ॥ किसी एक दिन प्रियमित्राकी सुप्रेणा नामकी दासी एक घनतुंड नामके मुर्गेको लाई और  
राजाको दिखलाकर कहने लगी कि इसको जो किसी दूसरेका मुर्गा जीत लेगा तो मैं उसे एक हजार दीनार दूंगी ।  
यह सुनकर छोटी सुमतिकी कांचना नामकी दासी उसके साथ लड़ानेके लिये वज्रतुंड नामके मुर्गेको लाई । वे दोनों  
ही मुर्गे आपसमें एक दूसरेको दुख पहुंचाते हुये खुर लड़े, उनके देखनेसे ही हिसानंद ( हिसामें आनंद मानना  
आदि ) रौद्रध्यान हो जाता था इसलिये धर्मात्माओंको ऐसा युद्ध देखना सर्वथा अयोग्य है इसीतरहके विचार करने  
वाले अनेक भव्य जीवोंके परिणाम उस युद्धसे ही ज्ञात हो गये थे । अपने पुत्रकी महिमा प्रगट करनेकेलिये उस  
युद्धको देखनेवाले राजा घनरथने पुत्र मेघरथसे पूछा कि अत्यंत क्रोध करनेवाले इन दोनों मुर्गोंका यह ऐसा बल क्यों  
हुआ ॥ १५०-१५१ ॥ इसप्रकार घनरथके पूछनेपर विशुद्ध अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाला मेघरथ उन दोनों  
मुर्गोंके उस युद्धका कारण कहने लगा ॥ १५२ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें रत्नपुर नामके नगरमें मद्र और  
घन्य नामके दो सगे भाई थे उनके गाड़ी चलानेका व्यापार था किसी एक दिन वे दोनों ही पापी श्रीनदीके कि-



तपुस्त्विति । लब्धवोधिः समादत्त दुस्सद न भ्रातृन ॥ १७७ ॥ आग्न तीर्थकुत्राम्नो भावयित्व युगेवधा । सम्यगारध्य पुत्राभ्यमच्युन कल्पमात्म-  
वान् ॥ १७८ ॥ द्वाविशत्यब्धिमाना पुंशुक्त्वा भोगाश्च ता तत । जीविताते भवन्तो जातो नृपकुमारका ॥ १७९ ॥ इति तत्सम्यग्यकाण्यं भगवन्नावयो  
पिता । क्वेति पृष्ठो मुनिस्ताभ्यामनवीदिति तत्कथा ॥ १८० ॥ तत प्रच्युत्य कत्पाते हेमागदमहीपतेः । सुनोमन्मेघमालिन्या देव्या घनरथः सुयः ॥  
१८१ ॥ इदानीं पुंडरीकिण्या युद्ध कुक्कुटयोर्यम् । मेघमाग्न स्थित श्रीमान् देवीसुतमन्वित ॥ १८२ ॥ तदाकर्ण भवद्वीत्या खगौ तावागताविमौ ।  
इति मेघरथस्त्वर्वाकायार्थोऽनीयविप्रद ॥ १८३ ॥ प्रक्रीकृत्य तौ भूः कुमारं चामिष्य त । गत्वा गोवर्दनोपांते वीक्षासिद्धिमावापतां ॥ १८४ ॥ स्वपूर्वं  
भवसकथ विदित्वा कुक्कुटौ च तौ । मुक्त्वा परस्परवद्वैरं सत्यम् साहसात् ॥ १८५ ॥ अभूतौ, भूतदेवादिरमणातवनद्वये । ताम्र दिचूलचूलातकनकौ  
भूतजातिजौ ॥ १८६ ॥ तदैवागत्य तौ देवौ श्रीला मेघरथाब्ध्य । सपूज्याब्धाय सक्थ स्वजन्मातरं न स्फुट ॥ १८७ ॥ मानुषोत्तमभूतातवर्ति विक्व विलो-

(अभयघोषका जीव ) कहाँ है तब मुनिराज उन दोनोंसे फिर उसी कथाको कहने लगे कि वह अच्युत स्वर्गसे च्युत  
होकर पुंडरीकिणी नगरीमें राजा हेमांगद रानी मेघमालिनीके घनरथ नामका पुत्र हुआ है और इसलिये वह श्रीमान्  
रानी और पुत्रोंके साथ साथ सिंहासनपर बैठा हुआ सुगौका युद्ध देख रहा है ॥ १८०--१८२ ॥ उन मुनिराजसे ये  
सब बातें सुनकर ये दोनों ही विद्याधर आपके प्रेमसे यहां आए हैं । इसतरह मेघरथसे पिछिले मच समाचार सुनकर  
उन विद्याधरोंने अपना स्वरूप प्रगट किया और राजा घनरथ तथा कुमार मेघरथकी पूजा की । तदनंतर उन्होंने  
गोवर्द्धन मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण की और वे दोनों ही विद्याधर पुक्त हुए ॥ १८३--१८४ ॥ उन  
दोनों सुगौने भी अपने पहिलेके जन्म सुनकर आपसका चहुंत दिनसे वधा हुआ वैर विरोध छोड़ दिया अंतमें बड़े  
साहससे संन्यास धारण किया । उनसे एक तो भूतरमण नामके वनमें ताम्रचूल नामका भूत जातिका व्यंतरदेव हुआ  
और दूसरा देवरमण नामके वनमें कनकचूल नामकाभूत जातिका व्यंतर देव हुआ ॥ १८५-१८६ ॥ जन्म धरनेके  
साथ ही वे दोनों व्यंतर देव पुंडरीकिणी नगरीमें आए और बड़े प्रेमसे मेघरथकी पूजाकी और अपने पहिले जन्म  
के सब संबंध कह सुनाये ॥ १८७ ॥ तदनंतर वे देव उस कुमारसे फिर कहने लगे कि हे राजन् हम दोनों आपका  
यही उपकार करना चाहते हैं कि आप हमारे साथ चलकर मानुषोत्तर पर्वततक सब पृथ्वी मंडल देख लीजिये ॥ १८८ ॥  
कुमारने देवोंकी यह बात स्वीकार कर ली, देवोंने बड़े बड़े मच परिवारके साथ उस कुमारको बड़ी २ आदिमोंसे सु-  
शोभित विमानमें बढाया और मेघमालाओंसे (चादलके टुकड़ोंसे) सुशोभित आकाशमार्गमें जाकर अनुक्रमसे सब

क्य । एष एव तथाभ्यामुपकारो विधीयते ॥ १८८ ॥ इत्युत्थीय कुमारं तं स्थापयेति प्रतिश्रुत । सादं स्वासे समारोप्य विमान विविचदिक ॥ १८९ ॥ सप्राप्य गगनाभोग मेघमालाविभूषित । दर्शयामासतुर्याती कालान् देशान्यथाक्रमं ॥ १९० ॥ भरतः प्रथमो देशस्ततो हेमवत पर । हरिवर्षो विदेहश्च रम्यकः पंचमो मत ॥ १९१ ॥ हैरण्यवतसञ्च परधैरावताह्वय । पश्येते सप्त भूयुद्विर्विमुक्ता सप्तभिर्बिम्बो ॥ १९२ ॥ हिमवान् महाहिमवान् निषधो मदरो महान् । नीले स्वामी शिखर्याह्वयो विख्याताः कुलपर्वता ॥ १९३ ॥ इमा रम्या महानयश्चतुर्दश समुद्रगा । पयादिहृदयभृता नाना श्रोतस्विनीयुता ॥ १९४ ॥ गंगा सिंधुश्च रोहिण्य रोहिताह्वया हरितरा । हरिकाता परा सीता सीतोदा चाष्टमी नदी ॥ १९५ ॥ नारी च नरकांता च कूर्वाता सुवर्णसञ्चिका । ततोऽन्या रूप्यकूलाख्या रक्षा रक्तोदया सह ॥ १९६ ॥ हृदा पोड्या नख्याः स्युः कुशेययविभूषिता । पश्य पद्मो महापद्म-स्तिगच्छः कैसरी महा ॥ १९७ ॥ पुडरीकस्तथा पुडरीको नियधनामक । परो देवकुरुः सूर्यः सुलभो दशम स्मृतः ॥ १९८ ॥ विद्युत्प्रभाह्वय-ख्यातो नीलवान् कुरुरत्तरः । चंद्रधैरावतो माल्यवाश्च विख्यातसञ्चकः ॥ १९९ ॥ तेपासाधेषु परसु स्युस्ता श्रीश्रीश्रुतिकीर्तयः । बुद्धिलक्ष्मीश्च सुंदर देशोंको दिखलाने लगे ॥ १८९-१९० ॥ वे देव चलते जाते थे और बतलाते जाते थे कि यह पहिला भरतक्षेत्र है यह दूसरा हेमवत क्षेत्र है यह हरिवर्ष है यह विदेह है और यह पाचवां रम्यक है ॥ १९१ ॥ यह हैरण्यवत् और यह ऐरावत क्षेत्र है इसतरह हे प्रभो ! छह कुलाचलोंसे अलग किये हुये जंबूद्वीपमें ये सात क्षेत्र हैं ॥ १९२ ॥ हिमवान् महाहिमवान्-निषध नील रुक्मि शिखरी ये प्रसिद्ध कुल पर्वत हैं तथा इनके मध्यमें सप्तसे बड़ा यह सुमेरु पर्वत पडा हुआ है ॥ १९३ ॥ देखो पद्म आदि द्रहोंसे निकलने वाली समुद्रकी और जानेवाली और अनेक नदियोंसे सुशोभित ऐसी ये बड़ी मनोहर चांदह नदियां हैं । गंगा, सिंधु, रोहिण्य, रोहितास्या, हरित हरिकांता, सीता आ-ठवां सीतोदा नारी नरकांता सुवर्णकूला रूप्यकूला, रक्षा और रक्तोदा ये अनुक्रमसे इन नदियोंके नाम हैं ॥ १९४-१९६ ॥ देखो ! कमलोंसे सुशोभित ये सोलह द्रह वा दृढ़ हैं पद्म, महापद्म, तिगच्छ, कैसरी, महापुडरीक, पुडरीक, निषध, देवकुरु, सूर्य, दशवां सुलभ, विद्युत्प्रम, नीलवान्, उत्तरकुरु, चंद्र ऐरावत और माल्यवान् ये इन सोलह दृढ़ोंके नाम हैं ॥ १९७-१९९ ॥ इन दृढ़ोंमेंसे पहिले छह दृढ़ोंमें अनुक्रमसे श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये इंद्रकी वल्लभा व्यंतरी देवियां रहती हैं ॥ २०० ॥ वाक्कीं जो दश दृढ़ हैं उनमें उसी नाम के नागकुमार देव सदा निवास करते हैं । हे महाभाग ! इधर देखो ये वक्षार पर्वत देखने योग्य हैं चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट यह शैल त्रिकूट वैश्रवणकूट अंजनात्म, अंजन श्रद्धावान् विजयवान् आशीविप सुखावह चद्रमाल सूर्यमाल नागमाल और देवमाल ये सोलह इनके नाम हैं इनके

शक्रस्य स्यंतयो बलभांगना ॥ २०० ॥ नाना श्रेयेषु तन्नामधेयाः संततवातिनः । पद्मामी च महाभाग श्रेयसा वक्षारपर्वताः ॥ २०१ ॥ विघ्नपद्मादि-  
कृष्टाह्वी कृष्टातनलिनः पर । एकशैलैर्विकृत्य वृटो वैश्रवणादिम ॥ २०२ ॥ अजनात्माजनौ श्रद्धावन्ध विजयावता । आशीविषाभिधानध सुगवह-  
समाह्वय ॥ २०३ ॥ चद्रमालस्तथा सूर्यमालो नागदिमालवाक् । देवमाल परो गधमादनो मात्यवानपि ॥ २०४ ॥ विद्युत्प्रभ सौममम् प्रल्योत्पत्ति-  
रुगाः । विभगनयो ह्येताश्च स्वच्छबुधुरिपुरिताः ॥ २०५ ॥ हृदा हृदवती सङ्गे परा पङ्कवतीति च । तप्तसत्तजलाभ्या च महोन्मत्तजलाह्वया ॥ २०६ ॥  
क्षीरोदा च सखीतोदा श्रोतैर्तवाहिनी परा । गभीरमालिनी फेनमालिन्यूर्ग्यादिमालिनी ॥ २०७ ॥ अमी च विपया कच्छसुकच्छपरिभाषितौ । महा-  
कच्छा तथा कच्छकावल्यावतलगलाः ॥ २०८ ॥ पुष्कला पुष्कलावत्यो वत्सा नाक्षा च कीर्तिता । सुतरा च महावत्या वित्याता वत्सकावती ॥ २०९ ॥  
रम्या च रम्यकाख्या रमणीया मंगलावती । पद्मा सुपद्मा महापद्मा पद्मावत्यमित्यया ॥ २१० ॥ शला च नलिनाह्वया च कुमुदा सरिता परा । वमा  
सुवमा च महावप्रया वप्रकावती ॥ २११ ॥ गधा सुगधा गधवती शब्दा गध्यादिनी । एताश्च राजधान्योत्र कुमारालोदय स्फुट ॥ २१२ ॥ क्षेमा क्षेम-  
पुरी चान्याशिरादिपुरी परा । खड्गालयया च मञ्जूया चौषधी पुडरीकिणी ॥ २१३ ॥ सुसीमा कुडला सार्द्धमपराजितसङ्गया । प्रमकराकवत्याह्वया  
पद्मावत्यसिषोदिता ॥ २१४ ॥ शुभा शब्दाभिधाना च नगरी रत्नचया । अश्वमिहमहापुण्यौ विजयादिपुरी परा ॥ २१५ ॥ अल्पा निरजोध्वमशोका  
सिन्धाय गंधमादन मात्यवान् विद्युत्प्रभ और सौमनस ये चार गजदंत हैं ये सब हृद पर्वत आदि नतों उत्पन्न हुए हैं और  
न नष्ट होंगे अनादि अनिघन हैं । इधर देखिये ! निर्मल जलसे भरी हुई ये विभंगा नदी हैं ॥ २०१-२०५ ॥ हृदा  
हृदवती पङ्कवती तप्तजला उन्मत्तजला क्षोदा शीतोदा श्रोतवाहिनी गभीरमालिनी, फेनमालिनी और उर्मिमा-  
लिनी ये चारह विभगा नदी हैं ॥ २०६-२०७ ॥ हे कुमार देखिये ! कच्छा सुकच्छा महाकच्छा कच्छकावती आ-  
वती लागला पुष्कला पुष्कलावती वत्सा महावत्या वत्पकावती रम्या रम्यका रमणी मंगलावती  
पद्मा सुपद्मा महापद्मा पद्मावती शला नलिना कुमुदा सरिता वमा सुवमा महावप्रा वप्रकावती गंधा सुगंधा गंधवती  
और गंधमालिनी ये वत्सीस विदेह क्षेत्रके देश हैं और क्षेमा क्षेमपुरी अरिष्टा अरिष्टपुरी खड्गा मञ्जूया औषधी पुडरीकिणी  
सुसीमा कुडला अपराजिता प्रमकरा अंकवती पद्मावती शुभा रत्नसंचया अश्वपुरी सिंहपुरी महापुरी विजयपुरी अरजा  
विरजा अशोका वीतशोका विजया वैजयंती जयंती अपराजिता चक्रपुरी खड्गपुरी अयोध्या और अवध्या ये वत्सीस  
नगरी उन वत्सीस देशोंकी राजधानी हैं । हे कुमार ! आप अच्छी तरह देखिये ये वक्षार पर्वत विभंगा नदी और देश  
आदि सब सीता नदीके उत्तरकी ओर मेरु पर्वतके समीपसे प्रदक्षिणारूपसे वर्णन किये हैं । इनके सिन्धाय उन व्यंतर

वीतशोकवाक् । विजया वैजयंती च अयंती चापराजिता ॥ २१६ ॥ अथ चक्रपुरी स्वर्गपुर्योध्या च वर्णिता । अक्थेत्याथ सीतोत्तराङ्गाग्न्येहसन्निधे ॥ २१७ ॥ प्रादक्षिण्येन बभारां प्रसादीष्य प्रतिपादितान् । समुद्रादिवनादीनि भूतोदिष्टानि भूमुजा ॥ २१८ ॥ पश्यतान्यानि च स्वरं मानुषोत्तरभूयत । मध्यवर्तीनि सर्वाणि प्रीत्य विवृणुतसेजसा ॥ २१९ ॥ अक्रुन्निमज्जिनगाराण्यन्यच्चयं स्तुतिभिश्चिरं । स्तुत्याप्यासिर्निर्वृत्त्याविशदुरं परमोत्सव ॥ २२० ॥ दिव्याभरणदानेन परिपूज्य महीपति । सायोज्जिभिश्च तौ व्यतदेशां स्वावासमीयतुः ॥ २२१ ॥ य कर्मव्यतिहारेण नोपकाराणं व तरेत् । स जीवन्नपि नि-  
जीवो निर्गन्धकुसुमोपमः ॥ २२२ ॥ इक्ष्वाकू च चेदेवमुपकारविदो कथ । मनुष्यो जरयत्येन न चेदुपकृतं खलु ॥ २२३ ॥ कदाचित्कालकायेन दृगो घनरथाद्भव । चोदित स्वगतं धीमानिति देहाद्यर्चितयत् ॥ २२४ ॥ धिक्कृष्टमिष्टमित्येतत् शरीरं जतुरोवसेत् । अवास्करगृहाश्चैतन्मा-  
देवोंने समुद्र वन आदि जो जो दिखलाये थे वे सब राजकुमारने देखे, इच्छानुसार मानुषोत्तर पर्वत देखा और मध्य-  
के सब नदी देश पर्वत आदि देखे । तदनंतर प्रतापशाली उस राजकुमारने सब अक्रुन्निम जैत्यालयोंकी पूजा की, पूज्य  
अर्थसे भरे हुए स्तोत्रोंसे बहुत देर तक स्तुतिकी और फिर मद्वा उत्सवसे सुशोभित अपने नगरमें लौट आया ॥  
२०८-२२० ॥ वहां आकर उन दोनों व्यंतर देवोंने दिव्य आभरण देकर तथा विनयके वचन कहकर राजाकी  
पूजाकी और फिर वे अपने स्थानपर चले गये ॥ २२१ ॥ जो जीव किसी भी कामसे बदला देकर उपकाररूपी सा-  
गरको नहीं तिरता अर्थात् उपकारके बदले प्रत्युपकार नहीं करता वह गंधर्वादित फूलके समान जीना हुआ भी भरेके  
समान है ॥ २२२ ॥ जब दो मुर्गोंके जीवोंने राजकुमारके उपकारको इमप्रकार माना तब फिर मनुष्य अपने शरीर  
में व्यर्थ ही क्यों क्षीण होता जाता है यदि वह उपकार नहीं मानता तो फिर उसे दुष्ट ही कहना चाहिये ॥ २२३ ॥ किसी  
एक समय कालविवेकके द्वारा प्रेरणा किये हुए बुद्धिमान् महागज घनगन्ध अपने मनमें ही शरीरादिज्ञा इसप्रकार चिंत-  
न करने लगे कि इस जीवको धिक्कार है और बड़ा ही दुःख है कि यह जीव इस शरीरमें आकर निवास करता है  
बहु शरीर विष्टाका घर होनेसे अत्यंत घृणित है इस बातकी इसे कुछ खबर नहीं है ॥ २२४-२२५ ॥ सुख संतुष्ट  
करनेवाले कहे जाते हैं परंतु वे सुख इन प्राणियोंको कहां मिलते हैं ? यह कोई मोहनीय कर्मसे पापके कारण  
ऐसे बड़े बड़े दुःखोंमें ही सुख कल्पना करलेता है ॥ २२६ ॥ जन्मने लेकर अंतर्मुहूर्त तक भी यदि  
जीवित रहनेका निश्चय हो तब भी किसी तरह ठीक माना जा सकता है परंतु जब एक क्षणभर भी इस जीवके  
जीवित रहनेका निश्चय नहीं है तब भी यह जीव अपने आत्माका हित क्यों नहीं करता है ? ॥ २२७ ॥

वेत्तिषुशुष्यितं ॥ २२५ ॥ तर्पकाणि सुबान्याहुः कानि तान्यत्र देहिना । मोह कोप्यादिषु खेषु सुखासा पापहेतुषु ॥ २२६ ॥ खन्मायतमुद्गृतं चेन्नो-  
चित भिक्षिक् ततः । न क्षणे च कृतो जन्मी आयेत न क्षिते रतः ॥ २२७ ॥ बंधवो बधनान्येते संपदो विपदागिनि । न चेदेवं कृत संतो बन्तं प्रा-  
पना मताः ॥ २२८ ॥ वितर्कयत्तमित्येन प्राप्य लौक्यतिकाभरा । विद्यायावविद्यानादनुवक्तुं तक्षीप्सित ॥ २२९ ॥ देव देवस्य को बन्का देव  
एवावगच्छति । साधु हेतुमुपादेय चार्थमित्यादिसख्यै ॥ २३० ॥ सुखा सतामभिभूयसमभ्यर्च्य प्रसर्वजिज्ज- । नियोगमनुपात्यं स्व स्व धर्मनु नमो-  
मम ॥ २३१ ॥ ततो मेघरवे राज्यमभिषेकपुरस्तरं । निरोज्याभिषेच देवैः स्वयं चाप्याप सयम ॥ २३२ ॥ मनोवाक्कायसंश्रुदि विदधद्विजितेन्द्रिय ।  
कषायविषमस्वित्तमवनीद्वयं सुधी ॥ २३३ ॥ आद्यश्रेणीं समाख्या कमात्कर्मणि निर्मम । निर्मूल्य निर्मल भावमवापवगमस्य सः ॥ २३४ ॥ तदा कैवल्य-  
येन सब भाई बंधु आदि इस जीवके बंधन हैं और ये सपदाएं विपत्तियां हैं यदि बंधुजन बंधन न होते और संप-  
दाएं विपत्तियां न होतीं तो पहिलेके सज्जन लोग इन सबको छोड़कर वनमें क्यों गये ॥ २२८ ॥ वे महाराज इस  
प्रकार विचार करही रहे थे कि इतनेमें ही अवधिज्ञानसे जानकर लौकांतिक देव आए और उनकी इच्छानुसार स्तुति  
करने लगे कि हे देव इस संसारमें आपको समझानेवाला कोई नहीं है इस जगत्में कौनसा पदार्थ छोड़ने योग्य है  
और कौनसा ग्रहण करने योग्य है इस बातको मी आप ही अच्छी तरह जानते हैं इत्यादि स्तोत्रोंसे उन सज्जनोंके  
द्वारा स्तुति करने योग्य भगवान् घनरथकी स्तुतिकी अपने फूलोंसे उनकी पूजा की और इस तरह अपने नियोगका  
पालनकर अपने स्थानपर जानेकेलिये आकाशकी ओर चले गये ॥ २२९-२३१ ॥ तदनंतर घनरथ ने मेघरथका रा-  
ज्याभिषेक किया, इंद्रादि देवोंने उसी समय आकर उन भगवानका दीक्षाकल्याणका अभिषेक किया और इस तरह भग-  
वानने अपने आप दीक्षा धारण की ॥ २३२ ॥ बुद्धिमान और इंद्रियोंको जीतनेवाले उन्होंने मन वचन कायको वि-  
शुद्ध किया और प्राणोंका नाश करनेवाले तथा नीच ऐसे कषायरूप विषका वमन अर्थात् त्याग किया ॥ २३३ ॥ उ-  
न्होंने क्षपकश्रेणी चढ़ कर तथा निर्ममत्व होकर कर्मोंका नाश किया और शुद्ध भाव प्राप्त किंवे ॥ २३३-२३४ ॥ केवल ज्ञान  
होनेके समय सब देवोंके आसन कपित हुए और उन्होंने सब विभूतिके साथ साथ देवरमण नामके वनमें विहार करता हुआ चंद्रकांत शि-  
ंघर राजा मेघरथ किसी एक दिन अपनी रानियोंके साथ साथ देवरमण नामके वनमें विहार करता हुआ चंद्रकांत शि-  
लापर बैठा था जहां वह बैठा था ठीक उसी जगहके ऊपर होकर एक विद्याधर जा रहा था परंतु उसके ऊपर आते  
ही पत्थरके बड़े टुकड़ेसे अटक जानेके समान उसका विमान वहीं रुक गया ॥ २३६-२३७ ॥ उस विद्याधरने वि-

संप्राप्तिप्रभावात्कंपितासना । निलिपा सर्वसंपत्त्या पत्युः पूजामकुर्वत ॥ २३५ ॥ स देबरमणोयाने संगं मेघरथोन्यदा । स्वदेवीमिषेह्यत्यास्मांभ्रकांत-  
शिलातले ॥ २३६ ॥ निविष्टं तं समाक्रम्य गच्छन्कश्चिन्नभक्षर । गडोपल इव व्योम्नि सरुदुसुविमानकः ॥ २३७ ॥ शिलो दृष्ट्वा नृपालदामसुत्थापयितुमु-  
षत् । नृपांशुप्रानिर्भुमशिलाभारप्रपीडित- ॥ २३८ ॥ तत्तोदुमक्षमो गाढमाक्रदक्कणस्वरं । तदा तत्स्वचरी प्राप्य नाथानाधारिम नाप्यंसे ॥ २३९ ॥  
पतिसिक्कां बदस्वति प्राहायोत्थापितक्रम । किमेतदिति भुनाथ सपृष्ट प्रियमित्रया ॥ २४० ॥ विजयार्द्रालकाक्ष्येशो विद्युरंष्ट्रखगाधिपः । प्राणेशानिल-  
वेगास सुतः सिंहस्थयोः ॥ २४१ ॥ अस्मिन् विमाने स्वे रुदे वा याति केनचित् ॥ २४२ ॥ दिशा विलोक्य  
मां दृष्ट्वा खदपत्कोपवेपितः । अस्मान् शिलातलेनामा प्रोत्थापयितुमुद्यमी ॥ २४३ ॥ पीडितोयं मदगुणेन्योप्यस्य मनोरमा । इत्यब्रवीत्तदाकर्ण्य किं  
कोपस्यास्य कारणं ॥ २४४ ॥ इदमेव किमस्त्यन्यत्तत्रान्यत्रापि चेत्यसौ । तयोको नान्गदित्यस्य प्राजन्मेत्युपदिष्टवान् ॥ २४५ ॥ द्वीपे द्वितीये पूर्ववरावतस-

मानसे ही देखा कि एक शिलापर राजा मेघरथ बैठा हुआ है उसे देखते ही वह उस शिलाको उठानेका प्रयत्न करने  
लगा परंतु राजा मेघरथ ने अपना पैरका अंगूठा दबा दिया जिससे वह विद्याधर उस शिलाके नोससे बहुत ही दुखी  
हुआ ॥ २३८ ॥ जब वह उस बोझको सह नहीं सका तब वह बड़ी करुणाके स्वरसे बहुत जोरसे रोने लगा उसकी  
रोनेकी आवाज सुनकर विमानसे उसकी विद्याधरी आई और कहने लगी कि हे नाथ ! मैं अनाथ हूं मुझे पतिकी मित्रा  
दीजिये अर्थात् कृपाकर मेरे पतिको छोड़ दीजिये । यह सुनकर मेघरथने भी अपना अंगूठा उठा लिया यह सब देख-  
कर प्रियामित्राने अपने पति मेघरथसे पूछा कि हे महाराज यह क्या बात है ॥ २३९-२४० ॥ तब मेघरथ कहने  
लगा कि विजयार्द्र पर्वतपर अलका नगरके राजा विद्युरंष्ट्र विद्याधर और रानी अनिलवेगाका यह सिंहस्थ नामका पुत्र  
है । अमितवाहेन तीर्थंकर की वदनाकर आया है । मेरे ऊपरसे इसका विमान जा रहा था वह किसी कारणसे रुक गया,  
उससमय सब ओर देखते हुए इसे मैं ही दिखाई पड़ा, अपने अहंकारके कारण क्रोधसे यह कांपने लगा और इस शि-  
लाके साथ साथ हमलोगोंको उठानेके लिये तैयार होगया परंतु मैंने पैरका अंगूठा दबा दिया जिससे यह दबकर रोने  
लगा इसकी आवाज सुनकर यह इसकी रानी आई है मेघरथका कहा यह सुनकर प्रियमित्रा फिर पूछने लगी कि  
इसके क्रोधका कारण यही है अथवा और कुछ है तथा वह इस जन्मका है अथवा पहिलेके जन्मका है तब फिर मेघ-  
रथ कहने लगा कि इसके वैरका कारण और कुछ नहीं है इसतरह कहकर वह उस विद्याधरके पहिलेके जन्म नीचे  
लिखे अनुसार कहने लगा ॥ २४१-२४५ ॥ कि दूसरे घातकी दीपके पेरारवत क्षेत्रमें शंखपुरनगरमें राजा राजगुप्त

माह्वये । देशे शंखपुरे राजा राजगुप्तोऽयं शंखिका ॥ २४६ ॥ भाग्यां तो शंखैश्चैव्यात्सर्वगुप्तमुनीश्वरात् । आसी जिनगुणख्यातिमुपोषितविधिं समं ॥ २४७ ॥ सिंखान्वरमाख्येऽनुतिथेययतीश्वर । निरीक्ष्य भिक्षां दत्त्वाऽपि वसुधाराधवापता ॥ २४८ ॥ यमाधियुत्तमासाद्य संन्यस्याभूत्स भूमति । ब्रह्मदस्वायोक्तुष्ट तस्मादसिंहरथोऽर्जुनि ॥ २४९ ॥ शंखिका च परिभ्रम्य ससारे तपसागमत् । देवलोके तपश्च्युत्वा खगभूदगमाकृतं ॥ २५० ॥ वस्त्रालम्बपुरे सैन्धवेनोरासीदियं कुला । सती मदनवेगाद्व्यागुप्रभार्यां स तच्छ्रुतेः ॥ २५१ ॥ परितुष्य नृपं ग्रित्वा पूजयित्वा यथोचित । सुवर्णतिलके राज्यं निजोऽयं बहुमि सह ॥ २५२ ॥ दीक्षा घनरथाभ्यर्च्य जैनीं सिंहरथोऽग्रहीत् । प्रियमियासिवा प्राप्य गणिनीं गुणसक्तिं ॥ २५३ ॥ सुधीर्मदनवेगा च कृच्छ्रमुखावरणम् । कोपेपि क्वचपि कोपेपलेपनापनुदे मतः ॥ २५४ ॥ अथ स्वपुण्यकर्मसंप्राज्यराज्यमहोदयात् । त्रिवर्गफलपर्यंतपरिपूर्णमनोरथ ॥

राज्यं करता था उसकी रानीका नाम शंखिका था । किसी एकदिन वे दोनों ही राजा रानी शंखैल नामके पर्वतपर विराजमान सर्वगुप्त मुनिराजके समीप गये और दोनोंने साथ साथ जिनगुणख्याति नामक व्रतके उपवास करनेकी विधि स्वीकार की ॥ २४६-२४७ ॥ किसी दूसरे दिन धृतिपेण नामके मुनिराज भिक्षा लेनेके लिये आए थे उनका पडगाहनकर राजाने आहार दिया जिससे उसके घा रत्नोंकी वर्षा आदि पंचाश्रय हुए ॥ २४८ ॥ अंतमें उस राजाने समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण की और सन्यास धारणकर ब्रह्मस्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ, वहाँकी उत्कृष्ट आयुका उपभोगकर यह सिंहरथ उत्पन्न हुआ है ॥ २४९ ॥ शंखिका भी संसारमें परिभ्रमणकर तथा तपश्चरणकर स्वर्गको गई और वहाँसे आकर विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें वस्त्रालय नगरके राजा इद्रकेतु रानी सुप्रभाके यह मदनवेगा नामकी पुत्री हुई है यह सब बात सुनकर राजा सिंहरथ बहुत ही संतुष्ट हुआ समीप जाकर उमने यथायोग्य रीतिसे राजा मेघरथकी पूजा की और फिर अपने पुत्र सुवर्णतिलकको राज्य देकर अनेक लोगोंके साथ साथ श्रीघनरथ तीर्थंकरके समीप श्रीजैनेश्वरी दीक्षा धारण की ॥ इधर बुद्धिमती मदनवेगा भी गुणोंकी भंडार ऐसी प्रियमित्रा नामकी अजिकाके समीप दीक्षा धारणकर कठिन तपश्चरण करने लगी । सो ठीक ही है क्योंकि कहीं कहीं क्रोध भी क्रोध वा पापके उपलेपको दूर कानेवाला माना गया है ॥ २५०-२५४ ॥

अथानंतर—इधर राजा मेघरथ राज्य करने लगा अपने पुण्यकर्मके उदयसे जो बड़ी भारी राज्यकी विभूति प्राप्त हुई थी उससे धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंके अंततक उसके सब मनोरथ पूर्ण होगये थे । उसके शुद्ध सम्यग्दर्शन था यह व्रत शील आदि गुणोंसे सुशोभित था, विनयवान, शास्त्रोंका ज्ञानकार, प्रगल्भ, सत्यवक्ता, सातों परमस्था-



२५५ ॥ शुद्धश्रद्धाजनसपन्न व्रतशीलपुणान्वितः । सप्रश्रयं श्रुताभिज्ञं प्रगल्भं बलमभाषिण ॥ २५६ ॥ सुमत्सपरमम्यानं भागिनं भव्यभास्करः । नृप मेघरथ  
वारदाकादितिलोचनं ॥ २५७ ॥ कृत्वा नाडीश्ररीं पूजां जैनधर्मोपदेशिनीं । लोपवासमवात्येकं कपोतः तं सवेपथुः ॥ २५८ ॥ तस्यानुपदेशे वान्यो  
शुद्धयो बद्धजवः पुरः । स्थित्वा नृपस्य देवाहं महाशुद्धदेवनातुरः ॥ २५९ ॥ ततः कपोतमेतं मे भक्ष्यं त्वच्छरणागतं । ददस्व दानशूर त्वं न चेद्विदुष्यन्न मां  
युतं ॥ २६० ॥ इत्यवापीत्तदाकर्ण्य युवा दृढरथोऽब्रवीत् । पूज्यं दृष्टिं वदत्येष श्रद्धा केनारिमि विरिमतः ॥ २६१ ॥ इति स्वानुजसप्रदनादित्यवोचनमही  
पतिः । इह जवकुम्हरीपे क्षेत्रे भेरोरुदगते ॥ २६२ ॥ नगरे पट्टमिनीखेटे वणिक् सागरसेनवाक् । तस्यामितमति प्रीता तयोर्लघुवरी सुतौ ॥ २६३ ॥  
धनमित्रो भवमद्विषेणः स्वधनहेतुमा । हत्वा परस्परं मृत्वा सगर्वौ बभूवुः ॥ २६४ ॥ देवः सन्निहितं कथिद् गुप्त्रस्योपरिकः स चेत् । त्वया हेम  
रथो नाम्ना दमितारिणे हतः ॥ २६५ ॥ परित्रम्य भवे भूय कैलाशाद्रितटेऽयवत् । पर्णकाशनवीतीरे धीमादं च द्वाभिधानकः ॥ २६६ ॥ श्रीदत्ताया  
नौको ग्रामं कार्त्तनेवाला, और भव्योर्ध्वं सुर्य था, किस्ती एक दिन उसने जैनधर्मका उपदेश देनेवाली नंदीश्वरकी (अष्टा-  
निहकाकी) पूजा की थी और वह उपजामकर स्त्री पुर्यों के साथ साथ विराजमान था कि इतनेमें ही उसके पास कांप-  
ता हुआ एक कवूतर आया ॥ २५५-२५८ ॥ उसके पीछे नीछे ही बड़े वेगसे भागता हुआ एक गीध आया और  
राजा के सामने खड़ा होकर कहने लगा कि हे देव । मैं भूखसे व्याकुल हो रहा हूँ, आप दानवीर हैं इसलिये आपकी  
शरणमें आए हुए मेरे खाने योग्य ऐसे इस कवूतरको मुझे दे दीजिये यदि आप न देंगे तो फिर मुझे मरा समझिये अ-  
र्थीत भूखसे मैं अवश्य मर जाऊंगा । गीधकी यह बात सुनकर छोटा दृढरथ पूछने लगा कि हे पूज्य ! कहिये यह गीध  
इस प्रकारकी बात चीत किसतरह कर रहा है, इसका बोलना सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है ॥ २५९-२६१ ॥ अपने  
छोटे भाईके इस प्रश्नके उत्तरमें राजा मेघरथ कहने लगा कि इस जघृद्धीपके मेरु पर्वतके उत्तरकी ओर ऐरावत क्षेत्रके  
पद्मिनीखेट नामके नगरमें एक सागरसेन नामका वैश्य रहता था उसकी अमितमती स्त्रीसे घनमित्र और नंदियेण नामके  
दो सबसे छोटे पुत्र थे घनकैलिये वे दोनों ही भाई परस्पर लड़े और एक दूसरेको मारकर दोनों ही ये कवूतर और गीध  
हूए ॥ २६२-२६४ ॥ यह गीधके ऊपर जो देव है वह कौन है इसके सुननेकी जो इच्छा हो तो वह भी मैं बतला देता हूँ ।  
जब हमारे तुम्हारे साथ दमितारिका युद्ध हुआ था तब हेमरथ तुम्हारे हाथसे मारा गया था ॥ २६५ ॥ वह संसारमें परि-  
त्रमणकर कैलाश पर्वतके किनारे पर्णकाश नामकी नदीके समीप सोम नामके तपस्वीसे उसकी श्रीदत्ता नामकी स्त्रीके अनेक  
कुशास्त्रोंको जाननेवाला बुद्धिमान् चंद्रनामका तपस्वी हुआ था, वहीपर पंचाग्नि कर यह ज्योतिष जातिका देव हुआ है ॥



कृपाव्रजस्तनूज गोमातापसात् । तप पचानि सतप्य जगतीलोकैर्मरोजनि ॥ २६७ ॥ स कदाचिद्विव गत्वा द्वितीयद्रसमासदैः । दाता मेघ(यात्रा)न्य  
क्षितावन्तीति संस्तुत ॥ २६८ ॥ श्रुत्वा प्रायदमर्पेण मा परीक्षितुमागत । शृणु चेत् समाधाय आतर्दानादिलक्षण ॥ २६९ ॥ अनुग्रहायै स्वदेवातिसर्गो  
वर्द्धन ॥ २७१ ॥ सायन क्रमशो मुकराहाराभेपज धृत । सर्वप्राणिदयाशुद्ध देय सर्वज्ञमायितं ॥ २७२ ॥ मोक्षमार्गे स्थितः पाता स्वत्यान्येषां च सत्सु-  
न तु मांसादिक देय पात्रं नास्य प्रतीच्छकः । तद्वातापि न दातेमौ ज्ञेया नरकनायकौ ॥ २७५ ॥ ततो गृध्रो न तस्यात्र नाय देवं कपोतकः । तथा मेघ-  
२६६-२६७॥ किसी एक समय स्वर्गमें ईशान इंद्रकी सभामें गया था वहाँपर सभासदोंने कुछ मेरी स्तुति की थी और कहा  
था कि इस पृथ्वीपर मेघरथके समान और कोई दाता नहीं है उसे सुनकर इसे कुछ ईर्ष्या हुई और अब यहाँ यह मेरी  
परीक्षा करनेके लिये आया है । अपने छोटे भाई वृद्धरथसे इतनी बात कहकर फिर वह राजा मेघरथ उम देवसे कहने  
लगा कि हे भाई मैं दान आदि सबका लक्षण कहता हूँ तू चित्त लगाकर सुन ॥ २६८-२६९॥ अनुग्रह करनेकेलिये जो  
कुछ अपना धन वा और कोई वस्तु दी जाती है उसे दानको जाननेवाले दान कहते हैं तथा अनुग्रह शब्दका अर्थ  
अपना और दूसरेका उपकार करना बतलाया जाता है ॥ २७० ॥ शक्ति विज्ञान और श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित  
दाता कहलाता है तथा जो वस्तु पीडा करनेवाली न हो और लेने देनेवाले दोनोंके गुण बढ़ानेवाली हो वह देने  
योग्य समझी जाती है ॥ २७१ ॥ सर्वज्ञ देवने उस दानके चार भेद बतलाए हैं, आहार, औषध शास्त्र और सब प्रा-  
णियोंपर श्रद्धा दयाका पालन करना । ये चारों ही दान अनुक्रमसे मोक्षके साधन मनिने जाते हैं ॥ २७२ ॥ जो जीव  
तरण तारण है वही दान देनेका पात्र है कृतकृत्य और कर्म रहित अरहंत देव उसीको पात्र कहते हैं ॥ २७३॥ अथवा जो कृतार्थ  
( अरहंत ) होकर जन्ममरणरूप संसारसे रक्षा करनेकेलिये भग्य जीवोंको अनिष्ट वचन कहता है ( मोक्षमार्गका  
उपदेश देता है ) वह भी दाता है । इसतरह ऊपर कहे अनुसार ही उत्तम पात्र हैं और ऊपर कहे अनुसार ही देने  
योग्य वस्तु है मांस आदि निष्ठ वस्तु देने योग्य नहीं हैं तथा उसके लेनेकी इच्छा करनेवाले कभी देनेके पात्र नहीं हैं और ऐसे  
दानको देनेवाले कभी दाता नहीं हो सकते ऐसी वस्तुओंके देनेवाले और लेनेवाले दोनों ही नरकके स्वामी मनिने जाते हैं ॥

धी वीर्यमर्च्य ज्योतिषोत्तमः ॥ २७६ ॥ अस्ति दानविभागो दानश्रेष्ठ पार्थिवः । इति स्तुत्वा प्रदर्श्य स्वं तं प्रपूज्य जगाम सः ॥ २७७ ॥ द्विज-  
द्वयमपि ब्रह्मा तदुक्तं त्यक्तदेहक । अरव्ये देवरमणैस्तं मुद्रापतिरूपकैः ॥ २७८ ॥ देवो मेघरथं पश्चात्पुत्रसादात्करोति । निरगाव नृपेत्युक्त्वा पूज्य  
संपूज्य जग्मदुः ॥ २७९ ॥ कदाचित्स नृपो दानं दत्त्वा दमवरोक्षिते । चारणाय परिप्राप्तपंचाश्वविधिवि सुधीः ॥ २८० ॥ नंदीभरमहापूजा विधायोपो-  
षित श्रितः । निशामां प्रतिमायोगे ध्यायन्नस्यादित्यादिप्रादुः ॥ २८१ ॥ ईशानो विदित्वतन्मस्तदसि शुद्धहृः । धर्मसारस्त्वमेवाद्य चित्रमित्यब्रवीन्मुदा ॥  
२८२ ॥ स्वगतं तं स्तव ध्रुत्वा देवैः कस्य स्तुति मतः । त्वयाकारीत्यसौ पृष्ठं प्रत्याहेति कुरान् प्रति ॥ २८३ ॥ धीरो मेघरथो नाम शुद्धहृः पार्थिवप्रणी ।  
प्रतिमायोगभार्यय तस्य भक्त्या स्तुतिः कृता ॥ २८४ ॥ तदुदीरितमाकर्ण्य तत्परीक्षतिदक्षिणे । अतिरूपामुरुपाख्ये देव्यावागत्य भूपति ॥ २८५ ॥ वि-

२७५॥ इसलिये न तो यह गीध दान देनेका पात्र है और न यह कबूतर देने योग्य वस्तु है । मेघरथकी इस बातको सुनकर उस ज्योतिषी देवने राजा मेघरथकी स्तुतिकी कि वास्तवमें आप दानके विभागको जाननेवाले हैं और दानवीर राजा हैं । इसतरह स्तुतिकर उसने अपना रूप प्रगट किया और राजाकी पूजाकर अपने स्थानपर चला गया ॥ २७६-२७७ उन गीध और कबूतर दोनों पक्षियोंने भी मेघरथकी कही हुई सब बातें समझीं और शरीर छोड़ कर वे दोनों ही देवरमण नामके वनमें सुरूप और अतिरूप नामके व्यंतर देव हुये ॥ २७८ ॥ उत्पन्न होते ही वे मेघरथके पास आए और कहने लगे कि “हे राजन् आपके प्रसादसे ही हम दोनों कुंजोत्तिसे निकले हैं” इसतरह कहकर उस पूज्य राजाकी पूजाकी और फिर वे दोनों ही अपने स्थानको चले गये ॥ २७९ ॥ किसी एक दिन उस बुद्धिमान राजा मेघरथने चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दमवर नामके मुनिराजको आहारदान दिया था जिससे उसके घर पंचाश्वर्योंकी वर्षा हुई थी ॥ २८० ॥ किसी दूसरे दिन वह राजा मेघरथ नंदीश्वर पूर्वमें महापूजाकर और उपवास धारणकर रात्रिमें सुमेरुपर्वतके समान ध्यानकरता हुआ प्रतिमायोग धारणकर निश्चल बिगजमान था इसीसमय देवों की सभामें ईशानस्वर्गके इंद्रने मेघरथकी ये सब बातें जानकर बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि अहा ! आश्चर्य है आज संसारमें तू ही शुद्ध सग्यहृदि है और तू ही धीर वीर है । इसतरह अपने आपही की हुई स्तुतिको सुनकर देवों ने पूछा कि आपने किस सज्जनकी यह स्तुति की है इसके उत्तरमें वह इंद्र उन देवोंसे इसतरह कहने लगा कि राजाओंमें भी मुख्य राजा मेघरथ बहुत ही धीरवीर है और शुद्ध सग्यहृदि है आज वह प्रतिमायोग धारणकर बैठा है उसीकी भक्तिसे आज मैंने स्तुति की है ॥ २८१-२८४ ॥ ईशान इंद्रकी इस बातको सुनकर उसकी परीक्षा करनेमें अत्यंत

आसन्नैर्धर्मैर्विभक्तिं प्रजल्पितः । अन्यैश्च मदोनानादेहेतुभिरतन्मनोबल ॥ २८६ ॥ विद्युद्धतेव देवादि ते चालयितुमशक्ते । सत्यमीशानसगोक्षमिति  
सुखा स्वरीयतुः ॥ २८७ ॥ अन्वदृष्टानकल्पेणो मरुन्मये ग्रहन्तुया । समस्तैरिप्रियमित्राया रूपमाकर्ण्य तास्तव ॥ २८८ ॥ रतिप्रेणारतिवैत्येदेभ्यो तद्दृ-  
ष्यमीषिनु । एता मब्जनेवलाया गंधतेलाक्तदेहिना ॥ २८९ ॥ निरुद्येद्वचः सम्यक् श्रद्धायाप्यभिभाषितु । तथा सहेत्यकन्याकृती धृत्वा ता समुच्यु ॥  
२९० ॥ त्वपि कन्यके दृष्टुर्मैतामिति सखीमुखत् । ताभ्यामुक्तं समाश्रुय प्रमदादस्तु तिष्ठता ॥ २९१ ॥ तावदित्यात्मसंस्कार कृत्वाहूयाभ्यदर्शयत् ।  
तां निशम्यावस्तुस्ते च प्राग्वक्तानि चाधुना ॥ २९२ ॥ इति सा तद्वचः धुत्वा प्रियमित्रा महीपतेः । वक्त्र व्यलोकयत्प्राह सोपि काते नथेति तां ॥ २९३ ॥  
देव्यो स्वरूपमादाय निजानमनवृत्तक । निवेद्यरूपमस्याश्च धिक्चिद्विदिति निर्विद्य चेतसा । ता समुच्येयतु

चतुर ऐसी अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियां राजा मेघरथके समीप आईं और विलास, विभ्रम, हाव, भाव  
गीत बातचीत तथा और भी कामदेवकी बढानेवाले कारणोंसे उसके मनको चलायमान करने लगीं परंतु जिसप्रकार  
बिजलीकी लता मेघ पर्वतको नहीं डिगा सकती उसीप्रकार वे दोनों ही देवियां उसके मनको चलायमान नहीं कर  
सकीं तब उन्होंने ईशान इंद्रके कहे हुएको सत्य माना और फिर उस मेघरथकी स्तुतिकर अपने स्थानको चली गईं ॥  
॥ २८५-२८५ ॥ किसी दूसरे दिन ईशान स्वर्गके इंद्रने देवोंकी सभामें अपनी इच्छानुसार मेघरथकी रानी प्रियमित्रा  
के रूपकी प्रशंसाकी, उसकी प्रशंसाको सुनकर रतिप्रेणा और रति नामकी दो देवियां उसका रूप देखनेके लिये आईं ।  
जिससमय वे देवियां आई थीं उमममय वह प्रियमित्रा स्नान करनेकेलिये शरीरसे उबटन तेल आदि लगा रही थी  
उसे देखकर उन देवियोंने इंद्रकी कही हुई बातोंको सच माना और उसके साथ बात चीत करनेकी इच्छासे कन्या-  
का रूप धारणकर सखीके द्वारा कहला मेजा कि आपके दर्शन करनेकेलिये दो कन्यायें आई हैं । उन दोनोंकी बात  
सुनकर वह प्रियमित्रा प्रसन्न हुई और प्रत्युत्तरमें कहा कि अच्छा जबतक मैं स्नानकर आती हूं तबतक ठहरो  
तदनंतर नहा घोर आभूषण पहिन प्रियमित्रा ने उन दोनों देवियोंसे भेट की । उससमय उन देवियोंने कहा कि  
जैसी कति पहिले थी वैसी अब नहीं है देवियोंकी इस बातको सुनकर प्रियमित्रा राजा मेघरथका मुह देखने लगी  
उसे अपनी ओर देखते हुये देखकर मेघरथने कहा कि हे कति ! बात तो ऐसी ही है अर्थात् रूपमें भवश्य कुछ कमी  
हुई है । इसके बाद देवियोंने अपना रूप प्रगट किया अपने आनेका सब कारण कहा और “इसके बिलक्षण नासमान  
रूपको धिक्कार है इस संसारमें कोई भी वस्तु नित्य नहीं है” इसप्रकार अपने ही निषर्गमें विरक्त होकर तथा प्रियमित्रा

स्वर्ग स्वर्गीतिव्यासकृते ॥ २९५ ॥ देवी तदेतुना किंवा नित्यानित्यात्मकं जगत् । सर्वमंतः शुच्यं माणा इत्यत्याभास्य महीपतिः ॥ २९६ ॥ राज्यभोगः स्वर्गातामिनितात् निर्द्वितीं ब्रजन् । गत्व मनोहरोद्यानमन्युः स्वयं ब्रिज ॥ २९७ ॥ सिंहासने समासीनं दुराधुरिणकृत । समस्तपरिवारेण त्रि परीत्यासितं च ॥ २९८ ॥ सर्वभव्यहितं बांछन् पप्रच्छोपासकक्रियाः । प्राप्य कल्पद्रुमस्यैव परार्थं चोद्धितं सता ॥ २९९ ॥ प्राणैकादशोपासकस्यानानि बिभ्रमतः । उपासकक्रियावदोपासकाध्ययनाह्वय ॥ ३०० ॥ अगतस्तममाख्येयं श्रावकाणां हितैषिणां । इति व्यावर्ण्यमास तीर्थरुद्रार्थितायै कृत ॥ ३०१ ॥ गर्भान्वयक्रिया पूर्वं ततो वीक्षान्वयक्रिया । कर्त्तव्यक्रियाद्यान्या तत्संख्यास्य तु तत्पथ ॥ ३०२ ॥ गर्भाधानादिनिर्वोणपर्यन्ता प्रथमक्रिया । प्रोक्ताः सत्यक्षिपचाशस्तस्यम्यदर्शनशृद्धिषु ॥ ३०३ ॥ वीक्षान्वयक्रियापृच्छत्वारिंशत्प्रकीर्तिता । अवतारादिकनिर्व्यंता निर्वोणसाधिकाः ॥

की पूजाकर अपनी कांतिसे विशाओंके किनारेको व्याप्त करती हुई वे दोनों ही देवियां अपने स्वर्गको चली गई ॥ २८८-२९५ ॥ इस बातसे देवी प्रियमित्रा कुछ खिन्न हुई परंतु राजा मेघरथने उसे समझाकर आश्वासन दिया कि यह सब संसार नित्यानित्यात्मक है इसलिये अपने मनमें किसी तरहका शोक नहीं करना चाहिये ॥ २९६ ॥ इसतरह अपनी स्त्रियों और राज्य भोगोंसे सबसे अधिक सुख भोगते हुए उसका समय व्यतीत हो रहा था । किसी दूसरे दिन मेघरथके पिता घनरथ जिनराज मनोहर नामके उद्यानमें सिंहासनपर विराजमान थे देव व्यंतर आदि सब उनके चारों ओर समवसरणमें बैठे थे वहींपर राजा मेघरथ भी उनकी बंदना करनेकेलिये अपने सब परिवार सहित गया, जाकर सब भव्योंके हित करनेवाले उन भगवानकीतीन प्रदक्षिणाएं दी नमस्कार किया और अपनी जगहपर बैठकर श्रावकों की क्रियाएं पूछने लगा । वह प्रार्थनापूर्वक कहने लगा कि सज्जनोंकी चेष्टाएँ प्रायः कल्पवृक्षके समान दूसरोंके प्रयोजन के लिये ही होती हैं इसलिये हे देव ! पहिले जो अपना हित चाहनेवाले श्रावकोंके ग्यारह भेदकर ग्यारह ही स्थान बतलाये हैं उन श्रावकोंकी क्रियाओंको कहनेवाला जो सातवां उपासकाध्ययन है उसको कहिये । इसतरहकी प्रार्थना को पूर्ण करनेवाले भगवान तीर्थंकर कहने लगे कि श्रावकोंकी गर्भान्वय दीक्षान्वय और कर्त्तव्य ये तीन प्रकारकी क्रियाएं हैं ॥ २९७-३०२ ॥ सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेवाली पहिली गर्भान्वय आदि क्रियाएं गर्भाधानसे लेकर निर्वोणपर्यंत तिरें पन क्रियाएं कही गई हैं ॥ ३०३ ॥ अवतारसे लेकर निर्द्विती वा मोक्ष होनेतक मोक्षकी साधन ऐसी अठ्ठालीस दीक्षान्वय क्रियाएं कही गई हैं ॥ ३०४ ॥ सद्गुरुहितसे लेकर सिद्ध होनेतक सात कर्त्तव्य क्रियाएं हैं । इन सब क्रियाओंका अलग अलग यह स्वरूप है यह विधि है और यह फल है ॥ ३०५ ॥ इसतरह घनरथके कहे हुए उपासक धर्मको सु-

३०४ ॥ सदृष्टहित्वासिचिन्ता, सप्त कर्तव्यमक्रिया । सम्यक् स्वरूपमेतासा विधान फलमप्यद ॥ ३०५ ॥ तमुपासकसद्वर्गं धृत्वा पनयोदितं । नत्वा मेघरथो भक्त्या मुक्त्यै शांतातरेण ॥ ३०६ ॥ शरीरभोगसंसारदौःस्थित्यं चित्तयन्मुहुः । संयमाभिमुखो राज्ये तिष्ठत्वजुजमादिशत् ॥ ३०७ ॥ त्वया गज्यस्य यो दोगो द्योदधिं मयाप्यसौ । लाज्यं तबेद् गृहीत्वापि प्रागेवाग्रहणं वरं ॥ ३०८ ॥ प्रक्षालनादि पंकस्य इगदस्पर्शनं यथा । इति तस्मिन्सदादानविमुखत्वमुपागते ॥ ३०९ ॥ सुताय मेघसेनाय दत्त्वा राज्यं यथाविधि । सदैवः सप्तभिः साद्वं साजुजो जगतीपति ॥ ३१० ॥ नृपैः दीक्षा समादाय क्रमादेकादशांगवित् । प्रत्ययास्तीर्थशुभाश्रः योद्धैतानभाषयत् ॥ ३११ ॥ जिनोपदिष्टनिर्ग्रन्थमोक्षमार्गं रुचिर्मेता । नि शंक्तादिक्षा-श्रया विशुद्धिर्दर्शनस्य सां ॥ ३१२ ॥ मार्गेस्मिन्तत्समस्य यदुक्त तद्भवेन्न वा । इति शकापरित्यागः शकारहितता विदुः ॥ ३१३ ॥ हिलोकभोग नकर राजा मेघरथने बद्धी भक्तिसे नमस्कार किया और मोक्ष जानेकेलिये उसका अंतरंग ज्ञात हो गया ॥ ३०६ ॥ वह शरीर भोग और ससारकी बुरी दशाका वार २ चितवनकर संयम धारण करनेके लिये तैयार हुआ और छोटे भाई दृढ़रथको राज्यपर बैठनेके लिये आज्ञा दी ॥ ३०७ ॥ परंतु दृढ़रथ कहने लगा कि इस राज्यमें जो दोष आपको दिखाई दे रहे हैं वे मुझे भी दिख रहे हैं जब यह राज्य ग्रहण करके मी छोड़ना ही पड़ेगा तब पहिलेसे ही उसका ग्रहण न करना सबसे अच्छा है ॥ ३०८ ॥ कीचडमें पैर देकर घोनेसे उसका स्पर्श न करना ही सबसे अच्छा है इस तरह कह कर जब वह राज्य लेनेसे विमुख होगया तब मेघरथ ने अपने पुत्र मेघसेनको विधिपूर्वक राज्य दिया और अपने छोटे भाई तथा सात हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की । अलुकरमसे ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और नीचे लिखे अनुमार तीर्थंकर नामकी कारण ऐसी सोलह कारण भावनाओंका चितवन किया ॥ ३०९-३११ ॥ जो निश्चित आदि आठों अंगों सहित भगवान् अरहंतदेवके कहे हुए मोक्षमार्गमें रुचि विश्वास वा श्रद्धा है वह पहिली दर्शनविशुद्धि भावना है ॥ ३१२ ॥ इस मोक्षमार्गमें अथवा इस अरहंतदेवके कहे हुए मतमें जो कुछ कहा गया है अर्थात् जो जो तत्त्व अथवा उन तत्त्वोंका जो जो स्वरूप माना गया है वह ठीक है अथवा नहीं इस प्रकारकी शंका नहीं करना पहिला निःशंकित अंग है ॥ ३१३ ॥ इसलोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें होनेवाले भोगोंमें मिथ्यादर्शनसे उत्पन्न होनीवाली आर्कांक्षाका त्याग करना शास्त्रकारोंने दूसरा निःकांक्षित अंग कहा है यह अंग मी दर्शनकी विशुद्ध करनेवाला है ॥ ३१४ ॥ इस शरीर आदिको अत्यंत अपवित्र ज्ञानकर मी 'यह पवित्र है' ऐसे संकल्पका त्याग करना तीसरा निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है ॥ ३१५ ॥ अथवा अरहंतके मतमें जो यह ऐसा मानागया है वह न होता

सिध्दात्कक्षाव्यावृत्तिरागमे । द्वितीयसंगमाख्यात विशुद्धिदर्शनाश्रिता ॥ ३१४ ॥ देहाद्यशुभिसंज्ञावयवगम्य शुचीति यः । संकल्पस्तस्य सत्यागः सा स्यान्निर्विक्रिस्तता ॥ ३१५ ॥ अथवाहन्मते नेद चेत्सर्वं युक्तमित्यमम् । आप्रदः क्वापि तस्याग सात्याग्निर्विक्रिस्तता ॥ ३१६ ॥ तस्यं चाभासमानेषु बहुदुर्नयवर्त्मसु । युक्तिमवे द्विमोहत्वमाहुर्दृष्टेरुद्धता ॥ ३१७ ॥ वृद्धि क्रियात्मधर्मस्य भावनामि क्षमादिभिः । अमीष्ट दर्शनस्यागं सुदृढिभरुपट्ट ॥ ३१८ ॥ धर्मवत्संनिमित्तेषु या कषायोपपादितु । वर्मच्यवनसरक्षा रवान्ययोः सा स्थितिक्रिया ॥ ३१९ ॥ जिनप्रणीतसद्धर्ममृत्तनिलानुरागता । वात्सल्य मार्गमहात्म्यभावना स्यात्तपभावना ॥ ३२० ॥ ज्ञानादिषु च तद्वत्सु चादरो निकषायता । तद्वद्वय विनयस्याहु सत सपन्नतां स्कुट ॥ ३२१ ॥ व्रतशीलनिवेदेषु मेदेषु निरक्वता । शीलव्रतानतीचार प्राहु सूक्तविदारै ॥ ३२२ ॥ ज्ञानोपयोगोऽभीष्टोसी या नित्यश्रुतभावना । संतो ॥ ३२३ ॥

तो सब ठीक होता ऐसा किसी भी वस्तुमें होनेवाले आग्रहका त्याग करना निर्विक्रिक्तता कहलाता है ॥ ३१६ ॥ जिनके माने हुए तत्त्व तो नहीं है परंतु तत्त्वोंके समान जान पड़ते हैं तथा जिनमें अनेक दुर्नय भरे हुए हैं ऐसे मतोंमें युक्ति होते हुए भी मोहित नहीं होना अमृदृष्टि अंग कहलाता है ॥ ३१७ ॥ क्षमा मार्दव आदि भावनाओं के द्वारा क्रिया रूप धर्म की वृद्धि करना सम्यग्दर्शनका अमीष्ट उपबृंहण अंग कहा जाता है ॥ ३१९ ॥ धर्मके नाश होनेके कारण अथवा कषायोंके उत्पन्न होनेके कारण आ मिलनेपर धर्मसे डिगते समय अपनी अथवा दूसरेकी रक्षा करना अर्थात् न तो स्वयं धर्मसे चलायमान होना और न दूसरेको होने देना स्थितिकरण कहलाता है ॥ ३१९ ॥ अरहंतदेवके कहे हुए सद्धर्मरूपी अमृतसे सदा अनुराग रखना वात्सल्य कहा जाता है और मोक्षमार्ग अथवा जिनमार्गकी महिमा प्रगट होनेकी भावना रखना प्रभावना अंग कहलाता है ॥ ३२० ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रिका विनय करना अर्थात् इनको अच्छी तरह पालन करना तथा इनके पालन करनेवालोंका विनय करना और कषायरहित परिणाम रखना इन दोनोंको ही सज्जन लोग विनयसंपन्नता कहते हैं ॥ ३२१ ॥ व्रत और शीलके सब भेदोंमें अर्थात् पांच व्रत और सातों शीलमें अतिचार नहीं लगाना शास्त्रोंके अच्छे ज्ञानकारोंके द्वारा शीलव्रतानतीचार कहलाता है ॥ ३२२ ॥ सदा शास्त्रोंमें भावना रखनेको अभीष्टज्ञानोपयोग कहते हैं और असह्य संसारके दुखोंसे सदा दूर रहना संवेग कहलाता है ॥ ३२३ ॥ पात्रोंकेलिये आहार अमय और शास्त्र वा ज्ञान आदिका देना त्याग है तथा शास्त्रोंके अनुकूल अपनी शक्तिके अनुसार कायक्लेश करना तप कहलाता है ॥ ३२४ ॥ किसी समय बाह्य अभ्यंतर कारण आ मिलनेपर मुनिसमुदायके (मुनि यति ऋषि तपस्त्रियोंके) तपश्चरणमें किसी विघ्नके आनेपर उसे दूर करना साधुसमा-

वेगं संवृतेर्दुःखदुःस्वप्नाभिलम्बीस्ता ॥ ३२३ ॥ अद्वारादित्रयोत्तर्गं पात्रेभ्यस्त्वाग इधते । यथागमं यथावीर्यं कायक्लेशं ततो भवेत् ॥ ३२४ ॥ कदाचिन्मुनिसंघस्य वाताभ्यान्तरहेतुमि । सचारणं समाधिः स्यात्कालहे तपसः सति ॥ ३२५ ॥ शुभिता निरवद्येन विविना दुःखनिवृत्तिं । वैयावृत्स्यक्रिया प्रायः साधनं तपसः परे ॥ ३२७ ॥ जितेषु गणनार्थेषु बहुशोकेषु चागमे । भावशुच्यानुरागः स्याद्रक्ति कायादिगोचरा ॥ ३२७ ॥ सामायिकादिपूर्वकस्य यथाकालं प्रवर्तन । भवेदावश्यकाहानिर्यथोक्तविधिना मुने ॥ ३२८ ॥ ज्ञानेन तपसा जैनपूज्यान्वेन चापि वा । धर्मप्रकाशनं प्राज्ञा प्राहुर्मार्गप्रभावना ॥ ३२९ ॥ वत्से घेनोरिव केहो यः सयसंयत्कृत्रिम । तद्वात्सल्यं प्रशंसति प्रथमापारमाश्रिता ॥ ३३० ॥ इत्येतानि समस्तानि व्यस्तानि च जितेधराः । कारणान्यासन्तंयनान्न, षोडश बंधने ॥ ३३१ ॥ एतद्भवनया बद्ध्वा तीर्थकृत्याम निर्मल । येन त्रैलोक्यसंशोभस्तत्स मेघयथो मुनिः ॥

वि कहलाती है ॥ ३२५ ॥ निर्दोष विधिसे गुणिकों के दुःख दूर करना तपश्चरण का उत्कृष्ट साधन वैयावृत्य कहलाता है ॥ ३२६ ॥ अरहतदेव आचार्य उपाध्याय और शास्त्रों में मन वचन कायसे परिणामों की शुद्धतापूर्वक अनुराग रखना भक्ति कही जाती है ॥ ३२७ ॥ मुनियों के जो सामयिक आदि छह आवश्यक हैं उन्हें यथायोग्य समयपर शास्त्रों के अनुसार विधिपूर्वक करना आवश्यकतापरिहाणि है ॥ ३२९ ॥ ज्ञान तपश्चरण जिनपूजा अथवा और किसी तरह धर्म की महिमा प्रगट करनेको विद्वान् लोग मार्गप्रभावना कहते हैं ॥ ३२९ ॥ बछड़े गायके प्रेमके समान जो माधर्म्य लोगों में अकृत्रिम (स्वभाविक) प्रेम है उसे प्रशंसा के पागामी पुरुष वात्सल्य कहते हैं ॥ ३३० ॥ श्री जिनेंद्रदेव इन सोलह भावनाओंको सब मिलकर अथवा अलग अलग तीर्थंकर नामकर्म के बंधके कारण बतलाते हैं ॥ ३३१ ॥ मेघरथ मुनिराजने इन ऊपर लिखी भावनाओंसे उस निर्मल तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया कि जिससे तीनों लोकों में धोम उत्पन्न हो जाता है ॥ ३३२ ॥ अनुक्रमसे सब देशों में विहार करते हुए वे श्रीपुर नगर में आए और वहाँ के राजा श्रीपेणने उन्हें यथायोग्य रीतिसे आहार दिया ॥ ३३३ ॥ तदनंतर दक्षपुर नगर में भक्तिमान् राजा नंदने और पुंडरीकिणी नगरी में सग्यदृष्टी राजा सिंहसेन ने आहार दिया जिससे वे मुनिराज ज्ञानदर्शन चारित्र और तपकी अनेक पर्यायोंको अच्छी तरह बढ़ाने लगे और उन दान देनेवाले राजाओंके यहां पंचाशत्त्योंकी वर्षा हुई ॥ ३३४-३३५ ॥ मुनिराज मेघरथ और दृढ प्रतिज्ञावाले दृढरथ इन दोनोंने ही उचम संयम धारण किया, नमस्तिलक पर्वतपर एक महीने तक शीत परिणामोंसे प्रायोगमन सन्यास धारण किया और आयुके अंतमें श्रीर छोड़कर दोनों ही अहमिंद्र हुए ॥ ३३६-३३७ ॥ वहाँपर उन दोनोंकी तेतीस सागरकी आयु थी, चंद्रमाके समान अत्यंत निर्मल एक हाथका श्रीर



३३२॥ क्रमेण विहरन्नेषान् प्राप्तवान् धीपुङ्गवः । श्रीवेणुस्त्यक्षिस्तस्मै दत्त्वा मित्रां यथोचितां ॥ ३३॥ पश्चात्तपुरे नन्दनामिमान्ध भक्तिमान् । तथैव पुंढरीकिर्णं सिंहसेनम् ध्रुवदत्तम् ॥ ३४॥ ज्ञानदर्शनचारिशतपुङ्गवः पर्यायान् बहून् । मन्त्र्यवर्द्धयते प्रापुं पञ्चाशद्योगि पार्थिवाः ॥ ३५॥ समयस्य परां कोटिमारुह्य स मुनीश्वरः । दृढो दृढरथो नामा नभस्तिलकपर्वते ॥ ३६॥ मासमात्रं परित्यज्य जरीर शांतकृष्णः । प्रायोपगम्येनासः प्राणानेनाहमिदता ॥ ३७॥ तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमजीवितौ । विधूज्वलतराग्लिशरीरौ शुक्रलेखकौ ॥ ३८॥ भग्नैः षोडशभिः सार्द्धमासनिःश्वासमीशुयौ । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दराहतामृतमोजनौ ॥ ३९॥ निःप्रवीचारसौख्यायां लोकानां द्युततराग्लित-स्वर्गोच्चरपटिच्छेदप्रमाणबधिलेनौ ॥ ४०॥ तत्क्षेत्रमितवीर्याभाक्रियौ सुचिर स्थितौ । समन्तरजन्माप्य मोक्षलक्ष्मीसमागमौ ॥ ४१॥ अवाप्तिमन् भारते वंशं विपयः कुरुजागलः । धार्यक्षेत्रस्य मध्यस्थः सर्वधान्याकरो महान् ॥ ४२॥ तत्र तादृ

था, शुक्र लेख्या थी, वे दोनों ही मांटे सोलह महीने बाद श्वास लेते थे और तेतीसहजार वर्ष बाद अमृतका मानसिक आहार करते थे ॥ ३२९-३४० ॥ उन दोनोंके प्रवीचाररहित सुख था, लोकनाडीके अंततक अवधिज्ञानरूपी नेत्र सब पदार्थोंको देख सकते थे उतने ही क्षेत्रतक शक्ति कांति और विक्रिया ऋद्धि थी और आगेके जन्ममें ही वे मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होनेवाले थे, इस तरह वे बहुत दिनतक वहां रहे थे ॥ ३४०-३४१ ॥

अथानंतर—इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कुरुजांगल देश है जो कि आर्यक्षेत्रके मध्यमें हैं सबसे बड़ा है और मवनरहके धान्य जिसमें उत्पन्न होते हैं ॥ ३४३ ॥ वहांपर उत्पन्न हुई पानकी वेलें और फलसहित सुपारीके वृक्ष स्त्री पुरुषोंके आलिंगन सुखको प्रगट करते रहते हैं ॥ ३४३ ॥ वहांके चोच जातिके वृक्ष किसी अच्छे राजाके समान सुशोभित होते हैं क्योंकि जिसप्रकार अच्छा राजा अनेक तगहके फल देनेवाला, मनोहर ऊचा ( बड़ा ) होता है उसी प्रकार वे वृक्ष भी अनेक फल देते थे ऊंचे और मनोहर थे, जिसप्रकार अच्छा राजा सत्यत्र अर्थात् अच्छी अच्छी सवारियोंवाला और वद्धमूल अर्थात् राज्यकी जड़ वाला होता है उसी प्रकार वे वृक्ष भी सत्यत्र अर्थात् अच्छे पत्रे वाले और चद्रमूल अर्थात् मजबूत मजबूत जड़वाले थे ॥ ३४४ ॥ वहांके कैलेके वृक्ष स्त्रियोंके समान प्रेम उत्पन्न करते थे क्योंकि स्त्रियां जिमप्रकार मनोहर दृष्टि सुकुमारता छाया अर्थात् कांति और रसीली होनेसे सब तरहसे सुंदर दिखती हैं इसी तरह वे वृक्ष भी, देखनेमें मनोहर सुकुमार छायावाले और रसीले होनेसे सब तरहसे सुंदर थे ॥ ३४५ ॥ वहांके आमोंके वृक्ष मनोहर थे फलोंसे नव रहे थे, फूल और पत्तोंसे उज्ज्वल थे, कोयलोंकी कुहूकनसे वाज्याल हो रहे थे और चंचल अमरोंके समूहोंसे भर रहे थे ॥ ३४६ ॥ इसीतरह जिनपर बड़े २ पके फल लग रहे हैं,



उत्तरवृत्ताः प्रकलाः सन्तु दुष्टमा । पुद्गादरकारणेषु पुन्य प्रत्यागयति वा ॥ ३४३ ॥ महाफलप्रदाः पुन्य वद्धसूता मनोहरा । सुराजवदिराजते मन्त्रत्राश्वेषु मृगा ॥  
 ३४४ ॥ मन्दवृद्धा सौरुपावर्ण लायथा रसवत्तया । कदल्य सर्वसौंदर्याः सग्रीयै रमणीसना ॥ ३४५ ॥ आश्र कन्नाः फलैर्नम्राः पलनप्रमवोज्वला । कोकिला-  
 लापवाचा लोलालिङ्गलसकुला ॥ ३४६ ॥ स्थूलपक्वफलाः श्रोत्रदृग्धावीरुतपद्मदा । पनसा प्रचुरा रेसुरामूलात्फलदायिनि ॥ ३४७ ॥ शुम्भव-  
 ल्लीडुमा सर्वे प्रमूनसरभयुराः । कीडागारनिभा भाति कामानाममहीमुखः ॥ ३४८ ॥ निर्मूलिच्छिद्रमच्छिद्र नि पाषाण निरुष्ण । निर्नष्ट दृश्य भूरिभूतल-  
 सफलं सदा ॥ ३४९ ॥ अग्रमादोरवारिवा प्रायश्चित्तयेव द्विजाः । न दडमयमुच्छति प्रजा स्वस्थितिपालनात् ॥ ३५० ॥ महाजलशया नित्यमच्छाः  
 स्वच्छावुत्सृताः । नानाप्रसवसुता जडुज्योतिर्नगच्छिष्य ॥ ३५१ ॥ पुष्पनेत्राः समुत्तुगा विटपायतवाहव । मूहदा भूमिपायते मदाचारकआनहा ॥

उडती हुई सुगंधसे जिन्होंने अमरोंको भी अंधा कर रक्खा है और जो जडसे ही फल देनेवाले हैं ऐसे वट्टनसे पनम  
 ( कटहर ) सुशोभित थे ॥ ३४७ ॥ फूलोंके समूहोंसे भरे हुए छोटे २ पौधे और लतायें सब ऐसे अच्छे जान पड़ते  
 थे मानों कामदेवरूपी राजाके क्रीडा करनेके घर ही हों ॥ ३४८ ॥ वहाँकी पृथ्वीमें गढे नहीं थे पत्थर नहीं थे  
 उत्तर भूमि नहीं थीं आठ तरहके भयोंमेंसे कोई भय नहीं था और पृथ्वीके भीतर भी गढे वगैरह नहीं थे वइ वट्टन  
 बड़ा पृथ्वीका टुकड़ा सदा फल देता रहता था ॥ ३४९ ॥ प्रमादरहित वडे २ चारित्र्योंको धारण करनेवाले वहाँके  
 ब्राह्मण कमी प्रायश्चित्त नहीं लेते थे और अपनी २ स्थितिको पालन करती हुई वहाँकी प्रजा कमी दंड पानेका भय  
 नहीं करती थी ॥ ३५० ॥ अनेक तरहके फूलोंसे ढके हुए स्वच्छ जल और मगर मच्छियोंसे सदा भरे हुए वहाँके वडे २ जला-  
 शय ( सरोवर आदि ) ज्योतिर्लोककी ( ज्योतिर्वियोंके विमानों भरे हुए आकाश की ) शोभाको भी जीतते थे ॥ ३५२ ॥  
 वहाँके वृक्ष राजाओंके समान जान पड़ते थे क्योंकि पुष्पही उनके नेत्र थे वे ऊँचे थे बड़ी २ शाखाएं ही उनकी लंबी भुजायें थीं  
 और सदाचार ( सदा सुदृग् ) फलको वे धारण करते थे ॥ ३५३ ॥ नये पत्ते ही जिनके ओठ हैं, पुष्प जिनपर लग रहे हैं  
 जिनका शरीर कृश है अमरोंके समूह ही जिनके बाल हैं और अच्छे पत्ते ही जिनकी पत्र रचना है ऐसी तरह तरहकी  
 वेले स्त्रियोंके समान सुशोभित होती थीं ॥ ३५४ ॥ जो मूलसे लेकर मध्य तक रसीले हैं परतु अंतमें नीरस हैं ऐसे  
 दुर्घोंको भी जीतनेवाले ईश्व अपने आप ग्रंथोंके द्वारा पीढे जाते थे ॥ ३५३-३५४ ॥ वहाँपर लोप तो शब्द बनानेमें  
 विभक्ति आदिका करना पड़ता था दूसरेका नहीं, नाश पापरूप प्रवृत्तियोंका होता था, दाह विरही लोगोंमें था और  
 वेध अर्थात् छेदना केवल दोनों कानोंमें था दूसरी जगह नहीं ॥ ३५५ ॥ दंड केवल लकड़ियोंमें था, तेजी केवल

पल्लवेष्टा प्रमृगाद्यास्तन्वयोल्लुललका । सप्तप्राश्चिद्वक्त्रं रम्य इव रेखिरे ॥ ३५३ ॥ अमार्थं रसिकमूलत्यर्थे विरसास्तत । पीड्यते सुतरां यंत्ररिक्तवो जितदुर्जना ॥ ३५४ ॥ शब्दनिष्पादने लोपं प्रश्नं पापदृष्टिगुं दाहो विरहिर्गोप्ये वेधः श्रवणयोर्द्वये ॥ ३५५ ॥ दंडो दाहपु शंखपु निष्क्र-  
शोक्तिस्तपस्विषु । निर्धनत्व विद्वान्त्व मदागये न वंतिषु ॥ ३५६ ॥ सुरतेषु विलम्बत्व कातकन्यासु याचन । तावोजलोपजीवेषु मार्गं रमवाटिषु ॥ ३५७ ॥  
नाकांष्टयवः सति नापि दुर्मयंगामिनः । मुक्त्वा विग्रहिणो मुक्तमाराणातिक्रियद्वात् ॥ ३५८ ॥ प्राच्ययुतिविपर्ययसं सयममाहिणो भवेत् । न यद-  
कर्मसु कस्यापि वर्णानां दुर्णचक्षिषा ॥ ३५९ ॥ शालयो लीलया वृद्धिमुपेता सर्वतर्पिण । निम्ना फलसंप्राप्ता मेजु सद्भूमिपोपमा ॥ ३६० ॥ क्षरति  
धारिदा काले दुहते धेनव सदा । फलंति भूकृदा सर्वे पुण्यति च लतास्तता ॥ ३६१ ॥ नित्योत्तमवाः निरातका निर्वधा धनिकाः प्रजा । निर्मला नित्य-  
कर्मणो नियुक्ताः स्वासु वृत्तिषु ॥ ३६२ ॥ दारितानाह्यापुरीतर । शुभा नामिरिवाभ्यौ । शृशं देशस्य देहस्य महती मय्यवतिनी ॥ ३६३ ॥ भूरीनीरभवानेकप्र-  
सूनोदितभूतिभिः । तिष्ठसि परिस्वामिस्तन्नगरं परिवेष्टित ॥ ३६४ ॥ विभाति गोपुरोपेतद्वारादलकपकिभिः । वप्रप्रकारदुर्लभ्य सुरजैः कोपीपिकैः ॥

तपस्वियोंमें थी और दानरहितपना केवल मदके नाश होनेमें था हाथियोंमें नहीं ॥ ३५६ ॥ निर्लज्जपना केवल काम क्रीडामें ही था, याचना केवल सुंदर कन्याओंकी की जाती थी, सताप केवल अग्निमें था और मारण केवल रस आदिकोंमें था दूसरी जगह नहीं ॥ ३५७ ॥ वहांपर न तो किसीकी अकाल मृत्यु होती थी और न कोई दु-  
र्मार्गमें चलनेवाला मनुष्य था, मारणांतिक समुद्रातके विना सबकी गति सीधी थी अर्थात् कोई भी कुटिलगामी नहीं था ॥ ३५८ ॥ दुर्नयसे द्वेष रखनेवाले चारों ही वर्णवाले जीवोंके देवपूजा आदि छह कर्मोंमें कहीं विपरीतपना न था यदि उनका विपरीतपना था तो यही था कि वे पहिली गृहस्था अवस्था छोडकर संयम धारण करते थे ॥ ३५९ ॥ लीलापूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए और सबको संतुष्ट करनेवाले शालि चावल फल लगनेपर नव गये थे और किसी अच्छे राजाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३६० ॥ वहांपर वादल सदा समयपर बरमते थे, गायें सदा दूध देती थीं, वृक्ष सब फलते थे और लताएं सब फूलती थीं ॥ ३६१ ॥ वहाकी प्रजा सदा उत्सव मनाया करती थी, धनिक निर्मल नीरोगी और वधनरहित थी, सदा काम करनेमें लगी रहती थी और अपनी २ जीविकाओंमें नियुक्त थी ॥ ३६२ ॥ जिसप्रकार शरीरके मध्यभागमें नाभि सुशोभित होती है उसीप्रकार उस देशके मध्यभागमें हस्तिनापुर नामकी बड़ी थारीं शुभ नगरी शोभायमान थी ॥ ३६३ ॥ अगाध जलसे उत्पन्न हुए अनेक फूलोंसे प्रगट हुई विभूतिसे शोभाय-  
मान ऐसी तीन खाइयोंसे वह नगर घिरा हुआ था ॥ ३६४ ॥ बाहरी मीठरी चंडे २ दरवाजे, अटारियोंकी पंक्तियां

३६५ ॥ इन्द्रकोई दृष्टवैदेक देवपयादिसि । महाशुद्राग्निमद्वारेवाग्निविन्दुदित्य तत् ॥ ३६६ ॥ राजभार्गा विराजते मारवस्तुमन्विताः । स्वर्गपद्वग-  
मार्गमाः सुवरचारवृत्तयः ॥ ३६७ ॥ न नेपथ्यादिभिर्मदस्तद्वसुधा सारवस्तुन । कुञ्जतैवयोगवर्णवोद्योधादिभिर्मिदा ॥ ३६८ ॥ तत्पुण्यो सौधमूढाप्रव-  
द्वध्वत्तिरोधनात् । नातपरय प्रवेष्टेति विमार्कदिनेष्वपि ॥ ३६९ ॥ पुष्पागरगधूपदिसौगध्याघीकृतारिनि । अयद्रिस्तत्र खे प्राग्रयका गृहशिरादि-  
ना ॥ ३७० ॥ स्पलावप्यक्रान्तादिगुण्युवातिमिथुता । युवानस्तैश्च तास्तत्र तदन्योन्यमुखावहा ॥ ३७१ ॥ मदनेद्वीपनद्व्यैर्निमग्निसमतो गुणैः । कात्या-  
निसिध दपत्योः प्रीतिस्तत्र तिरंतरं ॥ ३७२ ॥ अर्हिसालक्षणो धर्मो यतयो विगताग्रहाः । देवोर्हैव निर्दोषस्तत्सर्वेभ्यश्च गर्भिष्ठाः ॥ ३७३ ॥ यत्किंचि-  
त्स्वितं पाप पचमूत्रादिगृत्तिभिः । पात्रदानादिभिः सयस्तद्विदुर्गुण्युपासकाः ॥ ३७४ ॥ न्याय्यो वृष प्रजा यज्यन्ति त्वं क्षेत्रमन्वह । स्वाध्यावस्तस्युर त-

और पंदरके सुहवाले नुरज इन सबसे कोट और दीवालोंसे अलंध्य वह नगर बहुत ही सुशोभित हो रहा था ॥ ३६५ ॥  
उस नगरमें राजमार्गमें ही मिलनेवाले डरानेके लिये बनाये हुये अनेक हाथी घोडे आदि जानवरोंके चित्र थे और  
बहुत छोटे दरवाजेवाली बहुतसी गलियां थी ॥ ३६६ ॥ सार वस्तुओंसे भरे हुए राजमार्ग सुशोभित हो रहे थे ।  
स्वर्ग मोक्षके मार्गके समान जान पड़ते थे और उनपर सदाचारी लोग इधरसे उधर टहला करते थे ॥ ३६७ ॥ वहां-  
के लोगोंमें सार वस्तुओंमें उत्पन्न हुए वस्त्र आभूषण आदिसे कोई भेद नहीं था परंतु कुल, जाति, वय, वर्ण, वचन  
और ज्ञान आदिसे भेद था ॥ ३६८ ॥ उस नगरमें बड़े २ राजभवनोंकी शिखरोंपर जो ध्वजाएं फहरा रही थीं उनमें  
रुक्मजानेके कारण बादलोंके द्वारा सूर्यके बिना ठके हुए दिनमें भी धूपका प्रवेश नहीं होने पाता था ॥ ३६९ ॥ पुष्प उवटन  
धूप इत्यादि वस्तुओंकी सुगंधिसे अंधे हुए अमर जो चारों ओर फिर रहे थे उनसे घरके मयूरोंको आकाशमें वर्षा ऋतु  
की शंका हो रही थी ॥ ३७० ॥ रूप लावण्य और कान्ति आदि गुणोंसे सुशोभित युवतियां और युवा पुरुष दोनों ही  
वहां फिाते थे और एक दूसरेको सुख पहुंचाते थे ॥ ३७१ ॥ कामदेवको उदीपित करनेवाले द्रव्य, स्वाभाविक प्रेम  
और कान्ति आदि गुणोंसे स्त्री पुरुषोंमें सदा प्रेम बना रहता था ॥ ३७२ ॥ वहांपर धर्म अहिंसारूप माना जाता था,  
यती सच इच्छारहित थे, देव अरहंत ही माने जाते थे और वहांके लोग सब धर्मात्मा थे ॥ ३७३ ॥ श्रावक लोग  
जो चक्की उखली चूल बुहारी पानी आदि पांचों कार्यसे पापका संयच करते थे वे उसे पात्रदान देकर उसीसमय  
नाश कर डालते थे ॥ ३७४ ॥ वहांका राजा न्यायी था, प्रजा धर्मात्मा थी, क्षेत्र जीवरहित प्रासुक था और वहांपर  
सदा स्वाध्याय होता रहता था, इसीलिये सुनिलोग उस नगरको नहीं छोड़ते थे ॥ ३७५ ॥ उस नगरके समीपमें ही

स्मात्प्र त्यजति यतीश्वरा ॥ ३७५ ॥ नानापुण्यकृतानममदीर्जनैर्देवैः । नदन च विजयेत तत्पुरोपातवर्तिभिः ॥ ३७६ ॥ निष्पन्नमारवस्तुना निःशेषाणां निजोद्धव-स्थानेनैवमुपभोग्यत्वात्तदेवायंति सर्वतः ॥ ३७७ ॥ तत्रस्थैरेव भुज्यते तानि दानेन चेद्विद्विः । निर्याति यातु तत्तादृक् त्यागिनोभिर्जनैर्विधत् ॥ ३७८ ॥ तत्र तादात्मिका सर्वे तत्र दोषाय कल्पते । तत्पुण्यात्सर्ववस्तूनि वर्द्धते श्रत्यहं यत ॥ ३७९ ॥ ब्रह्मस्थानोत्तरे भागे भुवोऽम्बुद्राजमंदिरं । महासेननिभं भास्वद्ब्रह्मालादिभूयित ॥ ३८० ॥ यथास्थाननिवेशेन परितो राजमंदिरं । उद्भूतिं वोज्ज्वलदम्यहर्म्योपन्यानि वा बभूव ॥ ३८१ ॥ तत्राप्रयतिनाथस्य काश्यपायन्यभास्वत । भूपस्याजितसेनस्य चित्तेनप्रप्रियप्रदा ॥ ३८२ ॥ बाला चंद्रादिसुस्वप्नदर्शिनी प्रियदर्शना । ब्रह्मकल्पच्युतं सृजु विश्वसेनमजीजनत् ॥ ३८३ ॥ गंधारविषयख्यातगंधारनगरेक्षिन । अजित जयभूभट्टरजितयां युता गता ॥ ३८४ ॥ सनत्कुमारदैराख्या विश्वसेनप्रिया भवत् । श्रीह्रीधृत्यादिसस्यया जो अनेक फूल फलोंसे नवे हुये इक्षोसे सुशोभित नंदन बन था उससे नंदनका बन मी जीता जाता था ॥ ३८५ ॥ जो वस्तु जहां उत्पन्न होती है उसका वहीं उपभोग करना अनुचित है इसी न्यायके अनुसार संसारमें जो जो सार वस्तु जहां उत्पन्न होती थीं वहींसे उस नगरमें आ जाती थीं और फिर वहांके लोग उसका उपभोग करते थे, यदि उनमेंसे कोई वस्तु बाहर दिखाई पड़ती थी तो समझना चाहिये कि दानमें दी गई होगी इसतरह त्यागी और भोगी दोनोंके द्वारा इक्षुही की हुई वे सब चीजें चारों ओर फैल रही थीं ॥ ३८६-३८७ ॥ वहांके सब लोग तादात्मिक अर्थात् भोगोपभोगमें सब धन खर्च करनेवाले थे तथापि वे दोषी नहीं थे, क्योंकि उनके पुण्य कर्मके उदयसे सब वस्तुएं प्रवर्तित न बढ़ती रहती थीं ॥ ३८८ ॥ उस नगरकी पृथ्वीके ब्रह्मस्थानके उत्तरकी ओर राजमंदिर था जो कि भद्रशाल आदि बनोंसे सुशोभित महामेरु पर्वतके समान सुशोभित होता था ॥ ३८९ ॥ उस राजभवनके चारों ओर जो यथायोग्य स्थानपर बने हुये सुंदर और दैदीप्यमान राजभवन थे वे ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो मेरुके चारों ओर तारागण ही हों ॥ ३९० ॥ उस हस्तिनापुर राजधानीमें काश्यपगोत्री दैदीप्यमान राजा अजितसेन राज्य करता था और उसकी रानी चित्त और नैत्र दोनोंको प्रिय तथा आनंद देनेवाली प्रियदर्शना थी । उसने किसी एक दिन स्वप्नमें चंद्रमा आदि देखे थे और ब्रह्मस्वर्गसे च्युत हुए ऐसे विश्वसेन पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ ३९१-३९२ ॥ गंधार देशके गंधार नगरके राजा अजितजयके उनकी अजिता रानीसे सनत्कुमार स्वर्गसे आकर ऐसा नामकी पुत्री हुई थी और वही ऐसा राजा विश्वसेनकी ध्यारी रानी हुई थी श्री ह्री धृति आदि देवियां उसकी सेवा करती थीं भादों वदि सप्तमीके दिन भरणी नक्षत्रमें रात्रिके चौथे पहर उसने साक्षात् सत्य फलोंको देनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ ३९३-३९४ ॥

न भवते कृष्णतप्तसो॥३८॥ दिने भरणिनश्चरे यामिनीतुयभागगा । स्वप्नान् बोडश साद्राधीतसाक्षात्सत्यफलप्रदान् ॥३८॥ दरनिद्रातसमुद्भूतबोधा शुद्धसुवास-  
ना । तदगतरमैक्षिष्ट प्रविष्ट बन्दे गज॥३८॥ तदैवासा दिवो देवस्ततो मेघरयामिध । तत्पामवतारद् गर्भे स्वातै मुक्तोदविदुबत् ॥३८॥ तदैव याममेरी  
व तत्स्वप्नशुभसूचिनी । जनुमे मधुरं सुप्तं बोधयतीव सुरदी ॥६८॥ पदमिनीव तदाकर्ण्य विक्रसन्मुमुषकजा । शय्यागृह्यात्समुत्थाय कृतमंगलमजना ॥  
३९०॥ तत्कालोचितनेय्या कल्यवलीव जगमा । सितातपत्रविद्यासितार्कबालंशुमालिका ॥३९१॥ प्रकीर्णकपक्षिणप्रपञ्चितमहोदया । जनेः कतिपर्यैरेव  
प्रत्यासन्नै परिकृता ॥ ३९२ ॥ सावित्रौ चरन् रेखाभा सभासिब विभार्यी । कृतोपचारविनया वामांदासनमापयत् ॥ ३९३ ॥ नृपं साभिनिव्यात्मदृष्टां  
स्वप्नावलीं क्रमात् । तत्कालान्यव्यबोधिष्ट राहः सावधिलोचनात् ॥ ३९४ ॥ स्वर्गात्तदैव देवैरा सह देवैश्चतुर्विधैः । स्वर्गावतारकल्याण सप्ताप्य समुपाद-

कुछ २ नीदके टूटनेसे जिसे कुछ ज्ञान मी प्रगट होरहा है और जिसके मुखसे शुद्ध सुगंध आरही है  
ऐसी उस ऐराने स्वप्न देखनेके बाद ही अपने मुंहमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा ॥ ३८७ ॥ उसी  
समय मेघरथका जीव जो अहर्निद्र हुआ था वहांसे चयकर स्वाति नक्षत्र में सीपमें मोतीकी बूंदके समान  
उस ऐरके गर्भमें आ विराजमान हुआ ॥ ३८८ ॥ उसीमसय सोती हुई मंदरीको जगानेके लिये ही  
क्या मानों शुभ स्वप्नोंको सूचित करनेवाले सवेरेके मधुर नगाडे बजने लगे ॥ ३८९ ॥ उन्हें सुनते ही कमलिनीके  
समान उसका मुखकमल खिल गया और सोनेके घरसे उठकर उसने मंगलस्नान किया ॥ ३९० ॥ उससमयके यो-  
ग वस्त्र आभूषण पहिने चलती हुई कल्पलताके समान अथवा उदय होते हुए सूर्यकी छोटी छोटी किरण समूहोंके  
समान मफेद छत्र लगाये, चमरोंके द्वाराये जानेसे अपनी विभूतिको प्रगट करती हुई तथा अपने समीप रहनेवाले कितने ही  
लोगोंको साथ लेकर जिमप्रकार रात्रिमें चंद्रमाकी रेखा प्रवेश करती है उसी प्रकार उस ऐरा देवीने राजसभामें प्रवेश  
किया । वह उपचार विनय के साथ राजसभामें पहुंची और महाराजाने उसे बाईशोरका अपना आधा आसन बैठनेके  
लिये दिया ॥ ३९१-३९३ ॥ ऐरा देवीने महाराजासे अनुक्रमसे अपने देखे हुए स्वप्न कह सुनाए और अवधिज्ञान-  
रूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले उन महाराजसे उनके फल मी सुने ॥ ३९४ ॥ उसी समय चारों प्रकारके देवोंके साथ  
स्वर्गसे सब इंद्र आए और उन्होंने स्वर्गावतरण कल्याणका महोत्सव मनाया ॥ ३९५ ॥ इधर आनंद और बड़ी बड़ी  
विभूतियोंके साथ गर्भ बढने लगा, धीरे धीरे नांवां महीना आ पहुंचा अबतक इंद्रादि देवोंने पंद्रह महीनेतक रत्नोंकी  
वर्षा कर तथा और मी अनेक तरहसे भागवानकी माताकी पूजा की थी । उष्टेष्ट कृष्ण चतुर्दशीके दिन भरणी नक्षत्र



साहं मदरादेस्य मदिर । जनन्याः सर्वमावेण जगदीशं समर्पयत् ॥ ४०७ ॥ अत्रयुगोद्गतानदो बहुभावास्मोद्वयः । सम्मदधेदमर्थदः सरागं क न नतेयत् ॥ ४०८ ॥ लोकपालाखिलोक्तानां पालकस्य महात्मनः । बालकस्यास्य कल्पेशः पालकान्पर्यकल्पयत् ॥ ४०९ ॥ इति द्वितीयकल्याणसाक्य-  
समनन्तरं । सशक्राः सर्वगीर्वीणाः स्व स्वमोकं समं ययुः ॥ ४१० ॥ चतुर्विभक्तपत्योपमन्त्र्यशोनित्रिसागरे । धर्मतीर्थस्य सताने पत्ययुयांशोयथेति ॥ ४११ ॥ म्युच्छिन्नो मुक्तिसन्मार्गे तदन्यन्तरजीवितः । शान्तिं समुद्रपाथानमरामरनायक ॥ ४१२ ॥ लक्ष्मी समायुधत्वारिशबापांगः सुवर्णरत्नः । ध्वज-  
तोरणमूर्त्युशालचक्रादिलक्षण ॥ ४१३ ॥ पुण्याद्वद्धरथो र्ध्वमनुभूयाहमिद्रतां । विभसेनायशस्वस्या मुतयकायुधोऽभवत् ॥ ४१४ ॥ महामणिगिरिबामोघो गुणना वा गणो मुनौ । तत्र शक्तिरमाद् वृद्धिं प्रणेदो वोदितोदिते ॥ ४१५ ॥ पदंते स्म गुणास्तस्मिन् स्पन्देनावमवैः क्रमात् । तथा विधाय सौन्दर्यं कीर्ति-  
लक्ष्मीं सरस्वती ॥ ४१६ ॥ अथातस्यात्सौन्दर्यं रूपमापूर्णयोगने । विद्योर्विधूतैर्वक्यमिष पर्वणि मण्डल ॥ ४१७ ॥ मृदवस्तनवः स्निग्धाः कृष्णा

द्वके भाव और रसोंसे भरा हुआ नृत्य किया सो ठीक ही है क्योंकि मर्यादा रहित आनंद भला किस सरागीसे नृत्य नहीं कर लेता है ? ॥ ४०८ ॥ तदनंतर इंद्रने तीनों लोकोंको पालन करनेवाले उन महात्मा बालकको पालन करनेके लिये लोकपालोंको नियुक्त किया ॥ ४०९ ॥ इसप्रकार दूसरे जन्मकल्याणको पूर्ण कर सब इंद्र और सब देव अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ४१० ॥ धर्मनाथ तीर्थंकरके बाद पौनःपत्य कम तीन सागर वीत जानेपर तथा पाव पत्य-  
तक मोक्षमार्गका विच्छेद होने पर मनुष्य और इंद्रोंसे भी नमस्कार करानेवाले शान्तिनाथ उत्पन्न हुये थे उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है ॥ ४११-४१२ ॥ इनकी आयु एक लाख वर्षकी थी, क्षीरकी उंचाई चालीस धनुष थी सुवर्ण सरीखी शरीरकी कांति थी और ध्वजा तोरण चंद्रमा शूल चक्र आदि सब शुभ लक्षण थे ॥ ४१३ ॥ पुण्यकर्म के उदयसे दृढरथभी बहुत दिनतक अहमिंद्रोंका सुख भोग कर इन्हीं राजा विश्वसेनके यशस्वती रानीसे चक्रायुध नाम-  
का पुत्र हुआ ॥ ४१४ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें महामणि होता है अथवा मुनियोंमें गुणोंके भंडार गणधर होते हैं उसी प्रकार पुण्यकर्मके उदयसे आनंदके साथ साथ वे शान्तिनाथ भगवान भी वृद्धि को प्राप्त हो गये थे ॥ ४१५ ॥ उनमें अ-  
नुक्रमसे अर्चवोंके साथ स्पर्धा करते हुए ही क्या मानों गुण बढ़ गये थे और कीर्ति लक्ष्मी सरस्वती सगी वहिनके समान प्रेमपूर्वक रहती थीं ॥ ४१६ ॥ जिसप्रकार पौर्णमासीके दिन राहुके दृटजनेपर चंद्रमंडल सुशोभित होता है उसी प्र-  
कार पूर्ण जीवन अवस्था आनेपर उनका सुंदर रूप सुशोभित होता था ॥ ४१७ ॥ उनके मत्सरूपर इकट्ठे हुए भ्रमरोंके समान कोमल पतले चिकने काले और घूंघरवाले शुभ बाल बडेही अच्छे जान पड़ते थे ॥ ४१८ ॥ मेरुपर्वतके शिखर-

परीति धा ॥ ४१५ ॥ । प्राचिताचरीकामा शुभात्तन्मस्तकस्थिताः ॥ ४१८ ॥ विरो विराजते तस्य विश्वरं वा मरुत्सरोः । ललाटात्पट्टमार्जस्त्रादहमेव  
 रेजुः । कुटिलेति न रेखा किं पीयूषाशो विराजते ॥ ४२१ ॥ आधिक्यं चक्षुषोः प्रादुः शुभावयवचितकाः । वीक्ष्य तक्षुषी व्यकमितीयमनयोः स्तुतिः ॥  
 ४२२ ॥ कर्णौ तस्य न वर्धते निःशेषशुतपात्रता । याता चेद् दुर्लभं तत्तु रोमान्यत्रापि विद्यते ॥ ४२३ ॥ अयं विनिर्जिताशेयं मोहमलं विजेष्यते ।  
 भात्वैवेति वा तुंगा स्रगता नासिका कृता ॥ ४२४ ॥ कपोलफलको रक्षणौ धात्रा वा विपुल्ये कृता । ह्रता तद्वज्रजसरस्त्रया विनोदेन विलोडितुं ॥ ४२५ ॥  
 स्मितमेवा सरस्त्रयाः किं किं शुद्धाधरावलि । शकामिति कृताः क्रियाः घनात्स्ववर्द्धिजाः समाः ॥ ४२६ ॥ वदविघ्नप्रवालादि परया भवत्तुषमा ।  
 समान उनका शिर ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों पट्टको धारण करनेवाले इस ललाटसे एक हमी ऊंचे हैं यही  
 लोगोंको बतला रहा हो ॥ ४१९ ॥ धर्मचक्र और राजचक्र दोनों पदोंसे पूजित हुई लक्ष्मी इसी ललाटपर सुशोभित  
 रहे यही समझकर मानों नाम कर्मरूपी विधाताने उनका ललाट ऊंचा और विस्तृत बनाया था ॥ ४२० ॥ उनकी सु-  
 दूर और कुटिल ( टेढ़ी ) भोंएं वेश्याके समान सुशोभित होती थीं अथवा चंद्रमाकी कुटिल रेखा भी क्या सुशोभित  
 नहीं होती है ? ॥ ४२१ ॥ शुभ अवयवोंको चितवन करनेवाले लोग उनके नेत्रोंको देखकर प्रगट रीतिसे यही उनकी स्तुति  
 करते थे कि ये नेत्र कुछ बड़े हैं अर्थात् उनके नेत्र सबसे बड़े थे ॥ ४२२ ॥ उनके कानोंका वर्णन तो करना ही नहीं चाहिये,  
 क्योंकि वे सब श्रुतज्ञानके पात्र थे और संसारमें यही दुर्लभ है शोभा तो दूसरी जगह भी हो सकती है ॥ ४२३ ॥ ये भग-  
 वान् सबको जीतने वाले मोहमल्लको भी जीतेंगे इसलिये ये इस लोकमें भी सुशोभित हों यही समझकर मानों उनकी  
 नाक सबसे ऊंची बनाई गई थी ॥ ४२४ ॥ उनके मुखसे उत्पन्न हुई मरुत्सरी क्रीडापूर्वक कुछ लिखेगी इसीलिये  
 मानों विधाताने उनके कपोल फलक चिकने और बड़े बनाये थे ॥ ४२५ ॥ उनके समान सफेद चिकने और घने  
 दांत यही शंका उत्पन्न करते थे कि क्या यह अनेक तरहका सरस्वतीका गंद हास्य है अथवा यह शुद्ध अक्षरोंकी पं-  
 ग ॥ ४२६ ॥ वरगदका नया पत्ता, बिनाफल अथवा प्रवाल आदि दूसरेके ओठोंके उपमा हो सकते हैं परंतु  
 के ओठोंके उपमा नहीं थे इसीलिये उनका अधर ( ओठ ) अधर ( नीचा ) नहीं गिना जाता था अर्थात्  
 । ओठ सबसे उत्तम था ॥ ४२७ ॥ अन्य लोगोंका चिबुक तो आगामी कालमें डाढीसे ढक जाया है परंतु भग-  
 । वह चिबुक स्वभावसे ही सदा दिखलाई देता था इससे जानपड़ता है कि वह केवल शोभाके लिये ही था ॥



नास्याधरस्य तेनाग्र स्मृते नाधरोधर ॥ ४२७ ॥ भवेद्विबुधमन्मेषा माविस्सु किमप्यद । सोदा दृश्यमिदं भावादिलक्ष्मणीव चोभन ॥ ४२८ ॥ क्षयी करकी पंक्तौथ रजसा दूषित तत । नैतद्वक्त्रस्य साधर्म्यं घत स्मंदुसरोरुहे ॥ ४२९ ॥ ध्वनिश्चेतिगतास्तस्मादिव्यो विद्यार्थदण्ण । पृथक् सुकंठता तस्य क-  
उत्स्य किमु वयंते ॥ ४३० ॥ स्पन्दमानमुजाग्रभ्या तौत्येन शिरसा सम । त्रिकूटदहाटकात्रिणौ सोऽभातिजमुवनप्रभुः ॥ ४३१ ॥ बाहू बाहुतरं तस्य भात  
स्याजानुलज्जिता । धात्रीं सघर्षकांमा वा केयूरादिविभूषणो ॥ ४३२ ॥ व्यधायि वैधसा तस्य विस्तीर्णं वक्षस स्थल । असबाध वसत्वस्मिन्निति वा बहव  
प्रिय ॥ ४३३ ॥ व्यासमध्यमणिच्छायाहार वक्षो व्यभासाग । मय्यीकृताकंसध्याप्रहेमाद्रितटसन्निभ ॥ ४३४ ॥ तन्मयं मुष्टिसम्मायि विभर्त्यूर्ध्वतनो-  
भर । गुह निगकुल तस्य तानव तेन शोभते ॥ ४३५ ॥ गभीरा दक्षिणावता तस्याऽप्युदयसूचिनी । नाभिः सपद्मा मध्यस्था स्यात्सदं न सुते कुतः ॥  
४३६ ॥ कटी तटी कटीसूत्रधारिणी हरिणी भृश । सर्वदिकास्थली वास्य जंबूदीपस्य भासते ॥ ४३७ ॥ हृते श्लक्ष्णे सुखलक्षणे स्ता रभास्तमसनभिमे

४२८ ॥ चंद्रमा क्षय होनेवाला है और कलंकी है तथा कमल कीचड़से उत्पन्न होता है और धूलसे दूषित रहता है ।  
इसीलिये वे दोनों ही उनके मुख की समानता नहीं कर सकते थे ॥ ४२९ ॥ जब उनके कंठसे दर्पणके समान सब प-  
दार्थोंको प्रगट करनेवाली दिव्यध्वनि प्रगट होगी तब फिर भला उस कठकी सुकंठवाका अलग वर्णन क्या करना चा-  
हिये ॥ ४३० ॥ तीनों लोकोंके प्रभु वे भगवान् ऊंचाईसे मस्तकके साथ स्पर्द्धा करते हुये दोनों कंधोंसे ऐसे अच्छे  
जान पड़ते थे मानों सुवर्णका बना हुआ त्रिकूटाचल पर्वत ही हो ॥ ४३१ ॥ घुटनोंतक लंबी और केयूर आदि आ-  
भूषणोंसे सुशोभित ऐसी बहुत सुंदर उनकी भुजाएं ऐसी अच्छी जान पड़ती थीं मानो पृथ्वीको उठाना ही चाहती  
हों ॥ ४३२ ॥ अनेक लक्ष्मियां आकर हममें विना किसी दूसरेको बाधा देती हुई एक साथ रहें इसीलिये मानों वि-  
धाताने उनका वक्ष स्थल बहुत ही बड़ा बनाया था ॥ ४३३ ॥ जिसके मध्यमें मणियोंकी कांति पड़ रही है ऐसे हार-  
से सुशोभित उनका वक्षस्थल ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों जिसके मध्यमें सूर्यकी संध्याके बादल सुशोभित हो-  
रहे हैं ऐसा हिमाचल पर्वतका तट ही हो ॥ ४३४ ॥ उस शरीरके मध्य भागमें मुष्टिमें माने योग्य और शरीरके ऊपर-  
के बोझको निराकुल रीतिसे धारण करता हुआ उसका मध्य भाग बहुत ही अच्छा था और उससे वे बहुत ही सुंदर  
दिखने थे ॥ ४३५ ॥ उनके अभ्युदयको सूचित करनेवाली गंभीर दक्षिणावर्त पद्मसहित और मध्यमें विराजमान उन-  
की नाभि भला स्तुतिकी पात्र क्यों नहीं थी अर्थात् वह बहुत ही प्रशंसा करने योग्य थी ॥ ४३६ ॥ करधनीके सूत्र-  
को धारण करनेवाली और अत्यंत मनोहर ऐसी उनकी कमर जब्बूदीपकी बेदीके समान सुशोभित होती थी ॥ ४३७ ॥

कित्त्वस्योक्तं यथादत्तफले गुरुभरक्षये ॥ ४३८ ॥ मयादाकारि यत्सासदेतस्मोरुजघयोः । शस्यं जामुद्वयं सद्धिः सात्कर्मं किं न शस्यते ॥ ४३९ ॥ नमो  
 ताशेषदेवैर्दो पादपद्मो प्रिया धृति । तयोपरि नेत्रे च तस्य का वर्णना परा ॥ ४४० ॥ गुल्फोर्विवं मंत्रस्य गूढतैव गुणोऽभवत् । फलदा सा ततः सर्व  
 फलदात्वाद् गुणि स्थित ॥ ४४१ ॥ कर्मपुष्पाः कर्मो तस्य प्रित्वा ता सुस्थिता घरा । धृता कर्मण धात्रीति ध्रुवः रुढिस्ततोऽभवत् ॥ ४४२ ॥ पी-  
 नावमोन्नतः सुखा तस्यागुणै सुखाकरो । रेजुद्वैशयै वा मार्गे स्वर्गापवर्गयोः ॥ ४४३ ॥ आधातुगुल्यस्तस्य मधु दिलघाः परस्परं । कर्मोऽप्यथावपन्धेनु  
 निरिता एव शक्तयः ॥ ४४४ ॥ इषा धर्मोः पुरैवेन तद्व्याजेनैव सेवितुं । कर्मो समाधितोस्तस्य व्यराजत नखा सुखा ॥ ४४५ ॥ अस्यावयवमावाते  
 वासवाया नमंति नौ । इतीव राक्षसा तस्य पादौ पङ्कजसंक्षिप्ता ॥ ४४६ ॥ नायुताकोनिशासगुणत्याग्रास्करस्य च । तेजस्तस्योपमानं स्याद् भूषण-  
 उनके ऊरु गोल, चिकने, केलेके धंमेके समान और स्पर्श करते समय सुख देनेवाले थे किंतु अंतर इतना था कि  
 केलेपर एक ही बार फल लगता है और वे सदा फल देनेवाले थे तथा केला बोझ नहीं सह सकता और वे बहुत  
 भारी बोझ सह सकते थे ॥ ४३८ ॥ उनके दोनों घुटने ऊरु और जंघा करनेवालों की प्रशंसा क्यों न की जाय ॥ ४३९ ॥ उसके चर-  
 ने प्रशंसनीय थे सो ठीक ही है क्योंकि अच्छी क्रियायें करनेवालों की प्रशंसा क्यों न की जाय ॥ ४३९ ॥ उसके चर-  
 णकमल ही सब देवों को तथा इंद्रों को नमस्कार कराते थे और लक्ष्मी भी आकर उनकी सेवा करती थी जब उनके  
 चरणों का यह हाल था तब जंघाएं तो उनके ऊपर थीं इसलिये उनका और वर्णन करना व्यर्थ ही है ॥ ४४० ॥  
 जिसप्रकार मंत्रमें गूढता गुण रहता है उसीप्रकार उनके गुल्फोंमें ( एडीके ऊपर की गंठोंमें ) भी गूढता गुण था अर्थात्  
 उनके गुल्फ वेमालूम थे । परंतु उनकी वह गूढता भी फलदायक थी क्योंकि गुणवान सब फलदायक होनेसे ही  
 गुणी माने जाते हैं ॥ ४४१ ॥ उनके दोनों चरण कछुए की पीठके समान थे उनका आश्रय पाकर ही पृथ्वी निरा-  
 कुल थी तथा उसीसमयसे ' पृथ्वी कछुएके आश्रय है ' यह रुढि प्रसिद्ध हुई है ॥ ४४२ ॥ मोटे, आगेसे कुछ ऊंचे  
 स्थिर और सुख देनेवाले उनके दोनों पैरके अंगुठे ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों स्वर्ग और मोक्षका मार्ग ही दि-  
 खला रहे हों ॥ ४४३ ॥ परस्पर सटी हुई बाकीकी पैरकी आठ उंगलियां ऐसी अच्छी जान पड़ती थीं मानों आठों  
 कर्मोंका नाश करनेके लिये आठ शक्तियां ही निकली हों ॥ ४४४ ॥ उनके पैरोंका आश्रय लेनेवाले और सुख देने-  
 वाले दश नख ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों उन नखोंके वहानेसे पहिलेसे ही दश धर्म उनकी सेवा करनेकेलिये  
 आए हों ॥ ४४५ ॥ हम भगवानके शरीरके एक अवयव हैं इसीलिये इंद्रादि देव आकर हमको नमस्कार करते हैं

स्वामिदेवमः ॥ ४४७ ॥ बतों: हा नाना लक्ष नरि तत्क. उदरक. सा तत्काल हीनो लुप्तने कीर्तिप्राप्त ॥ ४४८ ॥ मृगयते पुनः केसे ऐनो मयि-  
 मुंभयत ॥ महामणिनिबेदनमुपेता कलै गान्ध ॥ ४४९ ॥ स्वामिनिमुल्लस्यमाने विलोकि: । रते उदरक। सामने सारक विपत्त ॥ ४५० ॥  
 कीर्तिवल्ली जगज्जान प्राग्ग मनेव नमनः । तदीयातेवमल्लसोरिह तावदि श्रुतिपत्त ॥ ४५१ ॥ इत्यमरपुनः मण्डलमन्त्रे चोदिरुणाः । स्वामि-  
 तिता तेनानो जयप्रदित्तिदिवी: ॥ ४५२ ॥ कामिनीनिर्गन्दिरेव प्रोमस्वयै नैवने । प्रेमाप्राप्तिने पदुदरक देवियम ॥ ४५३ ॥ सत्तामरनिज-  
 नोक्तीलज्जमुदिलोकेन: । स्वमनोराग्यैरुत्त म गर्वदिवार ॥ ४५४ ॥ अंगवस्त्रमल्लसोरिह मण्डलमन्त्रे चोदिरुणाः । स्वामि-  
 योचरे ॥ ४५५ ॥ तमोनु ताम्रमोनि विपद्येन मयि ॥ ४५६ ॥ मण्डलमन्त्रे चोदिरुणाः । स्वामि-  
 योचरे ॥ ४५७ ॥ तमोनु ताम्रमोनि विपद्येन मयि ॥ ४५८ ॥ मण्डलमन्त्रे चोदिरुणाः । स्वामि-

वही समझकर मानों नवीन बरोंके समान उनके दोनों चरण रागी ( राग सहित अथवा लाल रंगके ) हो रहे थे ॥  
 ४४६ ॥ उनके तेजकी उपमा न तो चंद्रमाके तेजके दी आ सकती है और न सूर्यके तेजके मास, क्योंकि चंद्रमाके  
 साथ रात्रिका समापन रहता है और सूर्य अस्तंत उष्य है इसलिये उनकी उपमा केवल आशुष्य आदिके कदाश्तके  
 साथ ही जासकती थी ॥ ४४७ ॥ उनकी क्रांतिका वर्णन तो करना ही नहीं चाहिये क्योंकि हजार नेत्रवाला इंद्र भी  
 इंद्राणीके मूलकमलको छोड़कर उनको देखता था ॥ ४४८ ॥ जिसप्रकार महामणियों विंशा हुआ श्रुत और उनके  
 सुवर्ण सुखोचित होता है उसीप्रकार उनके शरीरके मास साथ आभूषणोंका समूह भी मुशोभित होता था ॥ ४४९ ॥  
 जिसप्रकार सिंहके कण्ठसे ही शयियोंका समूह नष्ट हो जाता है उसीप्रकार त्रिनका नाम सुनने मात्रसे मदीनमन उभू-  
 रूप शयियोंका समूह नष्ट हो जाता था ऐसे अनेक राजाओंके स्वामी उन मगवानका दृष्ट टीक सिंदूर मयान मु-  
 शोभित होता था ॥ ४५० ॥ उनकी कीर्तिरूपी लता जन्मसे पहिले ही जगतके अंग तक पहुंच चुकी थी परंतु आगे  
 उसे कुछ सहारा न मिलनेसे वह वहीं तक फैली रही ॥ ४५१ ॥ उनके पिताने कुल रूप वय शील करना और कति  
 आदिसे मुशोभित तथा सुप्त हेनेवाली अनेक कन्याओंके साथ उनका विवाह किया था ॥ ४५२ ॥ प्रेमाश्रुतरूपी  
 जलसे सींचे हुए खियोंके नीलकमलके दलके मयान, निर्मल नेत्रोंसे वे अपना हृदय बार बार मसम करतें थे ॥ ४५३ ॥  
 अपने मनरूपी धनको लट्टनेवही खियोंकी तिरछी, चंचल, लीलापूर्वक और आलस भरी चितचनोसे वे पूर्ण मुखको  
 प्राप्त होने थे ॥ ४५४ ॥ इसतरह देव और मनुष्योंकेसे मुख ओभते हुए उन मगवानके जब कुमार कालके पक्षीस  
 हजार वर्ष व्यतीत होवने तक महाराज विषलेनने उन्हें अपना सब राज्य समर्पण कर दिया था इसतरह निरंतर मे-

५९ । रत्नाणि निधिगोभूषण्य आर्विः कुतोजसः ॥ ४५७ ॥ तेषु चक्रातपयसिः कां । शरैरुहेऽम्बरं । काकिणी चर्म चूलादिमणिष्व श्रीनिकेतने ॥ ४५८ ॥  
 पुरोषाः स्यपतिः सेनापतिर्गृहपतिश्च ते । हास्तिनाख्यपुरे कन्यागजाभ्याः स्वर्गपुत्रे ॥ ४५९ ॥ नवासि निषयः पूज्या नवीसागरसंगमे । तदानीमेज-  
 देवेरीनीतिः पुण्यचोदितैः ॥ ४६० ॥ इत्याधिपत्यमासाय दक्षभोगसंज्ञतः । तावत्येव गते फाले स्वालकारालयातरे ॥ ४६१ ॥ अलंकृत्यैत्रिजच्छाया-  
 द्रुमालोक्य धर्मके । साधव्यं नित्यवर्तकमिलतगतं कृती ॥ ४६२ ॥ लब्धवोधिर्मतिज्ञानक्षायोपशमसपदा । स्वजन्मांतरसंज्ञतं स्थत्वा निवेदमास-  
 वियोगवत् । संयोगो हानिवदुद्विज्जनेद पूर्वजन्यवत् ॥ ४६३ ॥ विद्युदुदुह्रुतिवाहसिनी कायो मायामयोमि वा ॥ ४६४ ॥ प्रातः छायायुरात्मीया परकीया-  
 गौको अनुभव करते हुए उनका वह समय भी व्यतीत हो रहा था ॥ ४५५-४५६ ॥ जिनका पराक्रम प्रगट है ऐसे  
 उन भगवानके राज्यके साधन चक्र आदि चौदह रत्न और नौ निधियां भी प्रगट हुई थीं ॥ ४५७ ॥ चौदह रत्नोंमें से  
 चक्र, छत्र, तलवार और दंड ये आयुधशालामें उत्पन्न हुए थे, काकिणी चर्म और चूडामणि श्रीगृहमें प्रगट हुए थे  
 पुरोहित, स्थपति, सेनापति और गृहपति हस्तनापुरमें ही मिले थे तथा कन्या ( पट्टरानी ) हाथी और घोडा विज-  
 याद्व पर्वतसे प्राप्त हुए थे ॥ ४५८-४५९ ॥ इसीतरह पूज्य नौ निधियां भी पुण्यके द्वारा प्रेरणा किये हुए इन्द्रने नदी  
 और सागरके समागमपर उसीसमय लांकर दी थी ॥ ४६० ॥ इसतरह सबके स्वामी होकर और दश तरहके भोगों-  
 का उपभोग करते हुए उनके राज्यकालके पचीस हजार वर्ष भी अपने अलंकारके घरमें ही व्यतीत होगये थे ॥ ४६१ ॥  
 किसी एक दिन वे भगवान अलंकार करते हुए दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे देखते देखते एक साथ दो  
 प्रतिबिंब दिखाई दिये उन्हें देखकर वे पुण्यवान चित्तमें आश्चर्यके साथ विचार करने लगे कि यह क्या है ? ॥ ४६२ ॥  
 उसीसमय उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमरूप संपत्तिसे पहिले जन्मकी सब बातें  
 याद आई और उसीसे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ४६३ ॥ वे विचार करने लगे कि ये सब संपदाएं बादलकी छाया-  
 के समान हैं, लक्ष्मी विजलीकी चमकके समान है और शरीर मायामयी ऐसा है ॥ ४६४ ॥ यह आयु सवरेके सम-  
 यकी छायाके समान है कुटुंब परिवारके लोग सब दूसरे हैं, संयोगके साथ वियोग है बृद्धिके साथ हानि है और यह  
 जन्म पहिलेके जन्मोंके समान है ॥ ४६५ ॥ सब दुराशयोंको दूर फेंकनेवाले वे भगवान् शान्तिनाथ इसप्रकार चित्तमें  
 विचार करते हुए घरसे बाहर निकलनेके लिये तैयारी करने लगे ॥ ४६६ ॥ उसीसमय लौकिक देवोंने आकर नि-

तदा लोकांति का प्राप्य धर्मतीर्थस्य वन्दने । कालेयं तव देवस्य चिरविच्छिन्नसंततेः ॥ ४६७ ॥ इत्यवोचन्वचस्तेषामनुमत्य महामतिः । नारायणाय तन्नाम्य सुनवे श्राणयन्मुदा ॥ ४६८ ॥ तत सुरगणाधीना विहितामिषवोत्सव । युक्तिमद्वचनं बधून् मोचयित्वा प्रणी- सतां ॥ ४६९ ॥ सर्वोर्वसिद्धिं शिवकामा रूपा स मरुद्भृतां । सहस्राश्वनं प्राप्य कमनीयशिलातले ॥ ४७० ॥ कुवेरदिपुत्रो बह्वल्यङ्गः सन्नुत्स्थित । ज्येष्ठे मास्यसिते पक्षे चतुर्थ्यामपराह्वके ॥ ४७१ ॥ ऋक्षे षष्ठोपवासेन भरण्यां प्रणिधानवत् । कृत्नसिद्धनमस्कारस्त्यक्त्वन्नागपुच्छद ॥ ४७२ ॥ पञ्चमुष्टिभिरुल्लुच्य केशान् केशानिवायतांन् । आत- रूपं हसदीप्या जातरूपमवाप्य सः ॥ ४७३ ॥ सद्य सामयिकीं शुद्धिं ममनःपर्ययामगात् । केशास्तदैव देवको ज्वलत्पटलिकाग्रितान् ॥ ४७४ ॥ यथा बहुगुणभूतानामोदमिलितालिप्ति । पञ्चमाधितरंगणा परभागे व्यवाचारां ॥ ४७५ ॥ चक्रार्जुनादि तप्राज्ञा सहस्र सह संयम । शास्तिनायेन सप्रापदा- पदामंतकारिणा ॥ ४७६ ॥ भूयादस्माकमप्येवमित्याशासनतत्पराः । पुण्यं पुण्य समादाय भक्तिभाव्येन भाक्तिका ॥ ४७७ ॥ पाकशासनमुह्यन्वाच वेदुन किया कि हे भगवन् ! आपका यह समय चिरकालसे विछिन्न हुए इस धर्मतीर्थके बढानेका है ॥ ४६७ ॥ महा बुद्धिमान् भगवानने उन देवोंके कहे हुए वचनोंमें अनुमति दी और बड़ी प्रसन्नतासे अपने पुत्र नारायणको राज्य दिया ॥ ४६८ ॥ तदनंतर इंद्रादि देवोंने आकर दीक्षा कल्याणका अभियेककर उत्सव मनाया और सज्जनोंमें मुख्य उन भगवानने बड़ी युक्तियोंके वचनोंसे समझाकर भाई बंधुओंको छोडा ॥ ४६९ ॥ देवोंके द्वारा उठाई हुई सर्वोर्ध- सिद्धि नामकी पालकीपर सवार होकर वे महात्मा प्र वनमें पहुचे उच्चर दिशाकी ओर मुखकर पल्यंकासनसे एक सुदूर शिलापर विराजमान हुए । ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थीके दिन शामके समय भरणि नक्षत्रमें तैलाका नियम लेकर साक्षात् ध्यानके समान स्थित हुए, सिद्धोंको नमस्कार कर वस्त्रादिपरिग्रहोंका त्याग किया, लंबे चलेशोंके समान केशोंको पांच मुष्टियोंसे लोंच किया और अपनी कांतिसे सुवर्णकी ओर भी हंमते हुए उन्होंने दिगंबर अवस्था धारण की ॥ ४७०-४७३ ॥ सामायिककी शुद्धतासे उसीसमय उन्हें मन पर्यय ज्ञान प्रगट हुआ । सुगंधसे आकर इकठे हुये भ्रमरोंसे जिनके बहुतेसे गुण प्रगट हो रहे हैं ऐसे उन केशोंको इद्रने एक देदीप्यमान पिटासे रक्खा और पांचवें क्षीरमागरकी तरंगमें जा क्षेपण किया ॥ ४७४-४७५ ॥ आपत्तियोंको नाश करनेवाले भगवान सांतिनाथके साथ २ चक्रार्जुन आदि एक हजार राजाओंने संयम धारण किया था ४७६ ॥ हमारी भी यह अवस्था हो अर्थात् हम भी संयम धारण करें इसप्रकार आशा करते हुए तथा अपने स्वर्ग लोकको जानेकी इच्छा करते हुए इंद्र आदि सब भक्तिवाले देव अपनी भक्तिके मूल्यमें पुण्यरूपी सौदा लेकर अपने अपने स्थानको चले गये । इधर भगवानने चर्गोंके लिये पवित्र

नाकलोकोलुका ययु । रवाश्रमान् विबलोकेशो पवित्रं मंदरं पुरं ॥ ४७८ ॥ प्रविष्टाय प्रदायाम प्राहुः परमोत्सवात् । सुभेन्द्राख्यमहीपालः प्रापदार्थ्यपचकं ॥ ४७९ ॥ क्रमादेवं तप कुर्वन्तुवो सर्वा पवित्रयन् । तद्वृत्तकथायं सन् मोहारातिजिगीषया ॥ ४८० ॥ बहुभिर्मुनिभिः सार्द्धं श्रीमान् चक्रायुधाक्षिभिः । खो बाह्यसामग्रीं नैर्मथ्यादिमवासवान् । करणत्रयसंप्राप्तिसिद्धयर्थे निमग्नः ॥ ४८१ ॥ श्रेष्ठ वष्टोपवासेन ध्वले दयामीदिने । पौषे मासि दिनस्याते पत्न्यकासनमास्थित ॥ ४८२ ॥ ग्राम्य-  
वीतरागोत्सवस्यः ॥ ४८३ ॥ द्वितीयशुक्लपक्षे द्वाविंशत्यध्यायः ॥ ४८४ ॥ आरुढतुर्यचारित्रयो बर्ग्याभिधानभाक्-ध्यानासिंहतमोहारी-  
विघ्नो विश्वकबाधवः । केवलज्ञानसाध्याज्यश्रियं शांतामिश्रियत् ॥ ४८५ ॥ एवं षोडशवर्षाणि छात्रस्य भावमाश्रित ॥ ४८६ ॥ निर्मयो नीरजा वीत-  
स्वसमुद्भूतसङ्कित्तरंगानीतपूजनः । रत्नावलीमिरित्येत प्रार्थयन्प्राणशुचिर्निः ॥ ४८७ ॥ तदातीर्थकराख्योऽपुण्यकर्ममहामन्त्र-सक्षोभितचतुर्भेदसुराभोजिर्विजृम्भित ॥ ४८८ ॥  
मंदरपुरमें प्रवेश किया और वहाँपर सुमित्र नामके महाराजने बड़े उत्सवसे प्रासुक आहार दिया जिससे उसके घर पंचा-  
शच्चर्योंकी वर्षी हुई ॥ ४७७-४७९ ॥ इसप्रकार तपश्चरण करते हुए उन्होंने अनुक्रमसे सत्र पृथ्वी पवित्र की, मोहलूपी  
शत्रुको जीतनेके लिये कपायोंको कुश किया, चक्रायुध आदि अनेक मुनियोंके साथ २ वे श्रीमान् भगवान् सत्रसे श्रेष्ठ  
सहस्रात्र वनमें पहुँचकर तैलाका नियमकर नद्या वर्त नामके वृक्षके नीचे विराजमान हुए । उसमय पूर्वकी ओर उन-  
का मुख था और निग्रथता आदि सब बाह्य सामग्री उपस्थित थी । तीनों कारणोंको धारणकर वे क्षपक श्रेणीके मध्य-  
में जा विराजमान हुए, सूक्ष्मसांपराय नामके चक्षुषे चारित्ररूपी रथमें विराजमान होकर धर्म ध्यानरूपी तलवारसे  
मोहलूपी शत्रुको नाशकर उन्होंने वीतराग संयम धारण किया और दूसरे शुद्धध्यानरूपी चक्रसे घातिया कर्मोंका नाश  
किया । इसतरह सोलह वर्ष तक छत्रस्य अवस्था धारण करनेके बाद पौष शुक्ला दशमीके दिन शामके समय, मोह-  
लूपी परिग्रहरहित ज्ञानावरण दर्शनावरणरूपी धूल रहित अंतरायरूपी विघ्न रहित और सब संसारके एक बंधु ऐसे  
उन भगवानके केवलज्ञानरूपी शांत साम्राज्य लक्ष्मी प्राप्त हुई ॥ ४८०-४८६ ॥ उसीसमय तीर्थकर नामका बड़ाभारी  
पुण्यकर्म रूप महा वायु चारोंप्रकारके देवोंके समुदायरूपी महासागरको क्षुब्ध करता हुआ बड़े वेगसे बहने लगा ॥  
४८७ ॥ उत्पन्न हुई अपनी उत्तम भक्तिरूपी तुरंगोंसे सब लोग पूजनकी सामग्री लाये और आकर रत्न समूहोंसे सब  
प्राणियोंके स्वामी-उन शान्तिनाथ भगवानकी पूजा करने लगे ॥ ४८८ ॥ उनके समवसरणमें चक्रायुधको आदि लेकर  
सब छत्तीस गणधर थे और आठ सौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार श्रुतकेवली थे ॥ ४८९ ॥ इकतालीस हजार

र्षा पारदार्षाः ॥ ४८९ ॥ इत्यद्वैतयवस्वेकचतुर्निर्मितविश्वका । त्रिसहस्रावधिज्ञानमनुउज्ज्वलविलोचनः ॥ ४९० ॥ चतुर्सहस्राण्येकोकेनलाभमेधरा । षट्सह-  
स्राभिः संश्लेषका विस्फियद्विधैरुपविताः ॥ ४९१ ॥ मर्न पर्ययसद्वोधसहस्राणां चतुष्टय । श्रुत्यद्वयचतुर्पक्षलक्षिताः पूज्यवादिनः ॥ ४९२ ॥ ते द्विषष्टिमह-  
स्राणि सर्वेपि मुनयो मतो । आर्यिका हरिवेणाद्याः खट्वयत्रियख्यमृमिता ॥ ४९३ ॥ श्रावका सुरकीर्त्यां लक्षद्वयनिरूपिता । अर्हहास्यादिकाः प्रोक्ता  
श्राविका द्विगुणस्ततः ॥ ४९४ ॥ देवा देव्योप्यसंख्यातास्तिर्यकाः सत्ययामिताः । इति द्वादशसि सांख्येणैः सद्धर्ममादिशत ॥ ४९५ ॥ विहर  
न्यासमात्रायुः सम्येदाचलमागत । व्यपेतुल्याहतिर्योगमास्थायचलित विशु ॥ ४९६ ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां पूर्वरात्रे कृतक्रियः । तृतीयशुक्रव्या-  
नेन रुद्धयोगो विबधनः ॥ ४९७ ॥ इकारपंचकोचारमात्रकाले वियोगक । चतुर्थशुक्रव्यानेन निराकृततनुजयः ॥ ४९८ ॥ अग्राङ्गराग्निनक्षत्रे लोकप्रमं गुण

आठसौ शिक्षक मुनि थे, और तीन हजार अवधिज्ञानरूपी निर्मल नेत्रोंको धारण करनेवाले थे ॥ ४९० ॥ चार हजार  
केवलज्ञानी और छहहजार विक्रियां ऋद्धिसे सुशोभित मुनिराज उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ४९१ ॥ चार हजार  
मन पर्ययज्ञानी और दो हजार चारसौ पूज्य वादी उनकी समा में विराजमान थे ॥ ४९२ ॥ इसतरह सब मिलकर  
वासिष्ठ हजार मुनिराज थे । इनके सिवाय साठ हजार तीनों हरियेणां आदि अर्जिकाएं थी, सुरकीर्ति आदि दो लाख  
श्रावक थे, अर्हहासी आदि चार लाख श्राविकाएं थीं, असंख्यात देव देवी थे और संख्यात तिर्यक थे । इसप्रकार बा-  
रह समाओंके साथ साथ वे भगवान सद्धर्मका उपदेश देते थे ॥ ४९३-४९५ ॥ इसतरह विहार करते हुए जब उन-  
की एक महीनेकी आयु रह गई तब सम्येद शिखरपर आ विराजमान हुए उस समय उन मधुने विहार करना छोड़ दिया  
था और योगोंको निश्चल धारण किया था ॥ ४९६ ॥ सब क्रियाओंको पूर्ण कर चुकनेवाले और बध्नरहित  
उन भगवानने तीसरे शुक्रव्यानसे योगोंका निरोध किया और अ इ उ ऋ ल इन पांचों अक्षरोंके उच्चारणमें जितना  
समय लगता है उतने ही समयमें सब कर्मोंका नाशकर उसीसमय चौथे शुक्रव्यानसे तीनों शरीरोंका नाश किया ।  
इसतरह ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन श्रावक के समय भगि नक्षत्रमें वे भगवान केवल सम्यक्त्व आदि आठ गुणरूप-  
शरीरको धारण किये हुए लोकके ऊपर जा विराजमान हुए । और अतीत कालमें गये हुए अनंत सिद्ध जहां विराज-  
मान थे उन्हींमें जाकर मिल गये उसीसमय बड़ी भक्तिको धारण करनेवाले आलसरहित इंद्रों सहित चारों प्रकारके  
देव आये और शरीरसंस्कार आदि अंतिम पूजाकर तथा मोक्षकल्पणका उत्सव मनाकर अपने २ स्थानको चले गये ॥  
५९७-५०० ॥ चक्रायुष आदि नौ हजार मुनिराज इसीतरह अंतमें तीनों शरीरोंको नाशकर मुक्त हुए थे ॥ ५०१ ॥ इसप्रकार



विग्रह । अतीतकालेता सिद्धा यंत्रानंता निरजनाः ॥ ४९९ ॥ चतुर्विधामरा सेव्याः निस्तदादिभक्तयः । कुलात्येष्टि तदगल्य त्वं स्वमावासमाश्रयन् ॥

५०० ॥ चक्राधुनादयोर्व्यमघ्यायालयतनुवयं । हिल्लो नव संहयामि निवृति यतयोगमन्त्र ॥ ५०१ ॥ इति परमर्मवाप्य क्षानहकृतीहृदवीथ सुखिततनुनिवास-

सम्यक्त्वोद्विगुणष्टक निजमजः स्वीकृत्य कृत्यातगः । स्वाकार विगतादिभूतसमये नष्ट समाप्य सुष्टं शातीशखिजगच्छिज्जामणिरयुदाविर्भवत्वाप्रवः ॥ ५०२ ॥

श्रीवेणः कुंजः सुरः खगपतिर्देवो हलेयोमरो यो वज्रायुधवक्त्रसुरपतिर्वीर्याहमिन्द्र पदं । पञ्चान्मेघयो मुनीन्द्रमहितः सर्वार्थसिद्धिं प्रित शातीशो जगदे-

कृत्यातिगुला दिव्याचिद्रूपं वधिर ॥ ५०३ ॥ आर्द्रावनिदिताभोगभूमिजो विमलप्रमः । ततः श्रीविजयोदेवो नतवीथो नारकः ॥ ५०४ ॥ मेघनादः प्रती-

द्रीभूतत्वहसयुधोजनि । ततोहमिन्द्रकलेशोनल्यद्विरसवत्तः ॥ ५०५ ॥ च्युनो हठयो जज्ञे प्राप्नो मेघरथानुजः । अयानुतरजशक्रयुवोगणचरोक्षरः ॥ ५०६ ॥

जिनहोने उत्तम ज्ञान दर्शन सुख वीर्य देदीप्यमान परमौदारिक शरीरका निवास और अनेक उत्तम विहारस्थान प्राप्त

किये, अरहते पद पाया और इन्द्रादि देवोंके मी आकर जिनकी दृढ पूजाकी ऐसे श्रीशान्तिनाथ भट्टारक तुम लोगोंको

सात परमस्थानोंकी प्राप्ति करे ॥ ५०२ ॥ जो कारण और फल सहित आठों कर्मोंका निर्मूल नाशकर अत्यंत निर्मल

हुए थे, आत्माके सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंको पाकर जो करने योग्य कार्योंके अंततक पहुंच गये थे अर्थात् कृत्य

स्वरूपको प्राप्त हो गये थे और जिनकी समवसरण आदि बहुवत्सी विभूति प्रगट हुई थी ऐसे वे श्री शान्तिनाथ भग-

वान तीनों जगतके शिखामणि हुए थे ॥ ५०३ ॥ जो पहिले श्रीवेण राजा होकर उत्तम भोग भूमिया हुए थे, फिर

देव होकर विद्याधर हुए थे, तदनंतर देव होकर हलधर हुए थे तथा देवोंके स्वामी अहमिन्द्रका पद पाकर राजा भेज-

रथ हुए थे तदनंतर उत्तम मुनिराज होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए थे और फिर जो संसारको एक ही शान्ति देने

वाले शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए थे ऐसे वे भगवान तुम लोगोंको चिरकालके लिये उपमारहित मोक्ष लक्ष्मी दें ॥

५०२ ॥ पहिले अनिदिता रानी हुई थीं फिर उत्तम भोग भूमिया हुआ, तदनंतर विमलप्रम देव होकर राजा श्रीवि-

जय हुआ फिर देव होकर अंतर्वीर्य नारायण हुआ, पश्चात् नरकमें जाकर वहांसे आ राजा मेघनाद हुआ, फिर

प्रतींद्र होकर सहसायुध हुआ, तदनंतर वडी भारी कृद्धिको धारण करनेवाला कल्योंका स्वामी अहमिन्द्र हुआ, वहांसे

नयकर मेघरथका छोटा भाई दठरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर

नयकर मेघरथका छोटा भाई दठरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर

नयकर मेघरथका छोटा भाई दठरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर

नयकर मेघरथका छोटा भाई दठरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर

नयकर मेघरथका छोटा भाई दठरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर

नयकर मेघरथका छोटा भाई दठरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और वहांसे आकर



इति हितछन्दोऽर्चयन् । हारं भावः सकलजगदभीशा शान्तिना न साद्व । परमसुखपद सप्राप चक्रयुधको भवति क्रिहिह नेष्टं संयोगान्महद्भिः ॥ ५०८ ॥  
अन्ये तावदिहासतां भगवता मध्येऽपि तीर्थक्षिणा कोसौ द्वादशजन्मसु प्रतिभा प्रापत्यर्द्धं परा । मु त्वा शान्तिजिन ततो बुधजना ध्यायंतु सर्वे सर सार्व  
शान्तिजिनेन्द्रयेव सतत शान्तिं संय प्रेम्सवः ॥ ५०९ ॥ ध्वस्तो मुक्तिपथ पुरुषयुतिभिर्देवैः पुनर्निशितः किं वत प्रथितावधेर्गमयितु कोपि प्रमुनोभवत् । देवे-  
नाभिहितस्त्वनेन समगादव्याहृतस्वावधि तच्छान्तिं समुपेत तत्र भवतामाय गुणं धीधनाः ॥ ५१० ॥

इत्यार्षे भवद्गुणमद्राचार्यप्रणीते त्रिपट्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे शान्तिचक्रवर्तीर्थकपुराण परिसमाप्त त्रिषष्टितम पर्व ॥ ६३ ॥

जो चक्रायुध होकर उत्तम गणधर और अंतर्में सिद्ध हुआ ॥ ५०५-५०७ ॥ इसप्रकार अपने हित और किये हुये को जाननेवाले चक्रायुधने अपने भाईके साथ सैाहार्द धारणकर समस्त जगतके स्वामी श्रीशान्तिनाथके साथ परम सुख देनेवाला मोक्षपद प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि महात्मा लोगोंकी संगतिसे इस संसारमें क्या क्या इष्ट प्राप्त नहीं होते हैं ? अर्थात् ममी इष्टोंकी प्राप्ति होती है ॥ ५०९ ॥ इस संसारमें और लोगोंकी तो बात जाने दीजिये श्री-शान्तिनाथ जिनराजको छोड़कर भगवान तीर्थकरोंमें मी अन्य ऐसा कौन है जिसने बाह्य जन्मोंमें मी प्रत्येक भवमें बड़ी भारी श्रद्धा प्राप्त की हो इसलिये हे विद्वान् लोगो ! यदि तुम मी सदा शान्ति चाहते हो तो सबसे उत्तम और सबका मला करनेवाले ऐसे श्री शान्तिनाथ जिनराजका सदा ध्यान करते रहो ॥ ५१० ॥ जो मोक्षमार्ग भोगयुग्मि आदि होनेके कारण नष्ट हो गया था वही श्रीश्रृणुभदेवसे धर्मनाथ तीर्थकर तक सबने फिरसे प्रगटकर दिखाया परंतु उम मोक्षमार्गको अंततक निर्वाह करनेकेलिये इन पंद्रह तीर्थकरोंमेंसे कोई मी समर्थ नहीं हुआ तदनंतर भगवान शान्तिनाथने जो मोक्षमार्ग प्रगट किया वह बिना किसी बाधा वा रुकावटके आज तक चला आ रहा है अर्थात् शान्तिनाथ के प्रगट किये मोक्षमार्गमें कभी विच्छेद नहीं हुआ । इसलिये हे बुद्धिमान लोगों ! तुम लोग भी आद्य गुरु श्री शान्तिनाथका शरण लो ॥ ५११ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणमद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें शान्तिनाथ तीर्थकर और चक्रवर्तीका पुराण वर्णन करनेवाला यह त्रिसठवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥



सिम मन्दुत्तर ॥ १० ॥ अन्धदृष्टीचारं सुखं तत्रात्तकैवकुं । मानस माननीयं यत् मुनीना चापरागजं ॥ ११ ॥ इह जन्मसि द्रीपे भरते कुरुजायले । हस्तिना ख्यपुराधीशः कौरवः काश्यपायन्यः ॥ १२ ॥ सूरसेनो महाराजः श्रीकातास्याप्रबलभा । देवेभ्यो वसुधारादिपूजामाप्तवती सती ॥ १३ ॥ भोगे मनोहरे यासे दशम्या निशि पश्चिमे । श्रावणे बहुले पक्षे नक्षत्रे कृतिकाह्वये ॥ १४ ॥ सर्वार्थसिद्धिदेवस्य स्वर्गावतरणक्षणे । दृष्टयोदशसुखाना गजं वक्त्रप्रवेशिनं ॥ १५ ॥ निशम्य श्याममेर्यादिमंगलव्यनिबोधिता । कृतनित्यक्रिया सात्वा धृतमंगलमंकना ॥ १६ ॥ आप्तेः कृतिपर्यरेव कृता विद्युद्विलासिनी । योतयंती सदोव्योम साक्षाद्दन्तीरिचापरा ॥ १७ ॥ कृतानुरूपविभा भर्तुरासनं स्थिता । स्वप्राबली निवेद्यास्माद्विदित्वावपिबीक्षणात् ॥ १८ ॥ फलान्यनुकमात्सेना विकसद्वदनविज्वा । नल्लिनीबाहु सस्पृगादुष्णाशोरदुष्टतरा ॥ १९ ॥ तदैवानिमिषाधीशाः कल्याणमिषवं तयोः । विधाय बहुधाभ्यन्त्र्यं तोषयित्वा यशुर्दिव ॥ २० ॥ शुक्तियुक्ताविशेषेणकाभूत्सा तेन गर्भिणी । कोटीकृतामृताभीमुखेरेखेव चाबन्दी ॥ २१ ॥ नवमे मासि वैशाखशुक्लपक्षादिमे

बहापर उसने कौतुकपूर्वक प्रवीचारेहित मानसिक हृमियोंको मान्य और रागरहित मुखोंका अनुभव किया ॥ ११ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कुरुजंगल देशके हस्तिनापुर नगरमें कुरुवंशी काश्यपगोत्री महाराजा सूरसेन राज्य करते थे उनकी पहचानीका नाम सती श्रीकांता था । रात्रादिकी वर्षा तथा और भी अनेक तरहसे इंद्रादि देवोंने आंकर उसकी पूजा की थी ॥ १३ ॥ आबन कृष्ण दशमीके दिन रात्रिके पिछिले पहर कृतिका नक्षत्रमें जब सर्वार्थसिद्धिके उस अहमिंद्रकी आयु समाप्त होनेपर भी उसीसमय उस श्रीकांता देवीने क्षुम सोलह स्वप्न देखे और अंतमें अपने मुखमें एक हाथी घुसता हुआ देखा ॥ १४-१५ ॥ सवेरे ही मेरी आदिकी मंगलध्वनि सुनकर जंगी नित्य क्रियाकर स्नान किया आभूषण पहिने और थोड़ेसे अपने गुरुजनोंके साथ साथ विजलीके समान विलास करती हुई सभारूपी आकाशको प्रकाशित करती हुई साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान राजसभामें गई, बहापर अपनी योग्यताके अनुसार विनय किया और महाराजके आगे आसनपर जा विराजमान हुई । अवचिदानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले महाराजसे सब स्वप्न कहे अनुक्रमसे उनका फल सुना और जिसप्रकार सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे कमलिनी संतुष्ट होती है, उसीप्रकार अपने मुखरूपी कमलको प्रफुल्लित करती हुई वह संतुष्ट हुई ॥ १६-१९ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उन दोनोंका कल्याणामिषेक किया अनेक तरहसे पूजा की और उन्हें संतुष्ट कर के सब अपने अपने स्वर्गको चले गये ॥ २० ॥

जिसप्र

सोप सुशोभित होती है जबका चंद्रमाको गोदीमें लेकर बादलोंकी रेखा सुशोभित होती है उसी प्रहरीणी वह रानी सुशोभित होवे । लक्ष्मी ॥ २१ ॥ जिसप्रकार गरुडिका चित्ता

॥ २२ ॥ तदा वह पुरा धार्य समर्थस्य दुराधाराः । सुखमनक नीलाः शीतधववाहिभिः ॥ २३ ॥ अग्नि-  
 समर्थान् विचार्य चारोप्रकारकः देवः । आण्डाकारावा समानान् ॥ २४ ॥ शीतोवातोयस्तानकोलेजनि विनेधरः ॥ पल्पोपमो दे पुण्योतिव  
 ॥ २५ ॥ पुनस्तद्वानुलक्षः सवत्सरस्थितिः । एवाग्रशकडो कायोः निष्टमाध्यापयथुतिः ॥ २६ ॥ अपञ्चसुनिवन्निर्दिष्टप्रमाणः सव-  
 त्साधुतरभीवितः ॥ २७ ॥ तिजलन्मविनः चक्रे हस्मोः सप्राप्य सम्मवाट्टः । दशागमोगाभिर्विषय निप्रतीतिः निरर्तरः ॥ २८ ॥  
 पद्मानलसमुज्जः सदानिनीवितुः । गत्वा रत्नाः निरः सारं निरुपयन्मुनः पुरः ॥ २९ ॥ मुनिमातृपयोगेन स्थितः कश्चिन्निरूपयन् । भक्तिप्रतीतिं तजि-  
 न्मा पसापश्येति चक्रवर्तः ॥ ३० ॥ स तं निरीक्ष्य तत्रैव भक्त्यावतनमस्तकः । देवैव दुष्कसे कुर्वत्तपः किं फलमाप्स्यति ॥ ३१ ॥ इत्यग्रीवीन्द्रयोग्यस्य

है उसी प्रकार नावा महीना लगनेपर वैसाख शुक्ल पंचिका के दिन कृतिका नक्षत्रमें उस देवीने वह पुत्र उत्पन्न किया ॥  
 २२ ॥ उसी समय इंद्रको आदि लेकर चारोंप्रकारके देव आए उस बालकको सुमेरु पर्वतपर ले जाकर धीरे सागरके  
 जलसे अभिषेक किया, वस्त्रभूषण पहनाये श्रीकृष्णनाथ नाम रक्खा और मातापिताके घर वापिस लाकर उधे सम्प्रेषण  
 कर सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २३-२४ ॥ श्रीशक्तिनाथ तीर्थकरके मोक्ष ज्ञानके बाद आधा पल्य बीत  
 जानेपर पुण्यसागर श्रीकृष्णनाथ हुये थे उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है ॥ २५ ॥ पिचानवे हजार वर्षकी उन  
 की आयु थी पतीस धनुष ऊंचा शरीर था और शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी ॥ २६ ॥ तेईस हजार सातसा  
 पचास वर्ष कुमारकालके बीत जानेपर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था । तथा जब इतना ही समय राज्य करते हुये बीत  
 गया तब चक्रवर्त उत्पन्न हुआ इस तरह वे बड़े आनंदसे बाधारहित निरंतर दश तरहके भोगोंका अनुभव करने लगे  
 ॥ २७-२८ ॥ किसी एक दिन वे अपनी छह तरहकी सेना लेकर वनमें क्रीडा करनेकैलिये गये थे वहां बहुत देरतक  
 क्रीडा कर इच्छानुसार अपने नगरको वापिस आरहे थे । मार्गमें एक मुनिराज आतापन योग धारण किये हुये विराजमान  
 थे उन्हें देखकर श्रीकृष्णनाथने अपनी ताजेनी उगलीका इशाराकर भत्रीसे कहा कि देखो ! देखो !! उन्हें देखकर भत्रीने  
 भी भवितसे मस्तक नवाकर नमस्कार किया और भगवानसे पूछने लगा कि ऐसे कठिन तपश्चरण करनेसे क्या फल  
 मिलता है ? महाराज कृष्णनाथने भी कुछ कुछ हसते हुए कहा कि ऐसे कठिन तपश्चरण करनेसे समस्त कर्मोंको नाशकर इसी  
 भवमें मोक्ष प्राप्त होती है यदि इसी मोक्ष नहीं हुई तो फिर इंद्र चक्रवर्ती आदिकी सुख संपदाओंका अनुभवकर उसे अनुक्रम  
 से मोक्ष प्राप्त होती है ॥ २९-३० ॥ जो परिग्रहोंका त्याग नहीं करता वही इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है इस प्रकार मोक्ष

भूतः स्मेरमुखोऽवदत् । भवेस्मिन्मैव निर्भूय कर्मोप्याप्नोति निर्धृतिं ॥ ३२ ॥ न चेदेवं सुरैर्द्वलचक्रवर्तित्वगोचरः । सुखमभ्युदय भुक्त्वा क्रमाच्छाश्वतमे-  
व्यति ॥ ३३ ॥ अपरिलयकसरास्य भवे पर्यटन भवेत् । इत्युच्चैर्भुक्तिर्संसारकरण परमार्थवित् ॥ ३४ ॥ कालो माडलिकत्वेन यावाभ्रीत सुखायुषा । ताव  
लेख/समानीय महेच्छश्चक्रवर्तिना ॥ ३५ ॥ विरज्य राज्यभोगेषु निर्वाणमुखलिप्सया । स्मृतीतमवबोधेन लब्धबोधिविधौत्तम ॥ ३६ ॥ सारस्वतादिसंस्तोत्र  
मपि सभाव्य सादर । खजे निवोज्य राज्यस्य भारं निष्कमणोरसव ॥ ३७ ॥ स्वयं सप्राय देवैर्देवैः विविका विजयाभिधा । आरुह्यारसबासा सहेतुकवन  
प्रति ॥ ३८ ॥ गत्वा षष्ठोपवासिन सयम प्रलययत् । जन्ममा पक्षदिवसे कृत्तिकाया नृपोत्तमैः ॥ ३९ ॥ सहस्रपाप तुर्यवबोधं च दियसात्यये । पुर हा-  
स्तिनमन्येयुस्तस्मै गतवतेदित ॥ ४० ॥ आहारं धर्मसिन्धुख्य । पाप चाश्वयैपवक । कुर्वन्नेव तपोधोरं नीत्वा षोडशवत्सरान् ॥ ४१ ॥ जिनवीक्षावने षष्ठो-  
पवासेन शुद्धिभाक् । तिलकद्रुममूलस्थधन्वज्योत्तापराहकं ॥ ४२ ॥ कृत्तिकायां तृतीयायां कैवल्यमुपपादयत् । मुदा तत्कालसप्तसप्तसर्वाभारसमर्थितं ॥

और संसारके कारणोंको तथा आत्माके शुद्ध स्वरूपको जाननेवाले बड़ी भारी इच्छाको धारण करनेवाले उन भगवान-  
का जितना समय सुखपूर्वक मांडलिक राज्य करते हुये व्यतीत हुआ था उतना ही समय चक्रवर्तीका सुख भोगते  
हुये व्यतीत होगया तब मोक्ष सुखकी इच्छाकर वे राज्य भोगोंसे विरक्त हुए और उन सबसे उत्तम बुद्धिमानको पहिले  
भबका रमण हो आनेसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ३४-३६ ॥ उसीसमय सारस्वत आदि लौकांतिक देवोंने आकर  
उनकी सदा स्तुतिकी आंग पुत्रको राज्य देकर निष्क्रमण कल्याणके उत्सव मनानेकी इच्छासे स्वयं आये हुये इद्रादि  
देवों में से कुछ देवोंके द्वाग उठाई हुई विजया नामकी पालकीपर सवार होकर सहेतुक वनमें पहुंचे । वहांपर तेला  
का नियम लेकर जन्मके ही दिन अर्थात् वैशाख शुक्ल-पडिवाके दिन कृत्तिका नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजा-  
ओंके साथ साथ सयम धारण किया । उसीसमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हुआ । पारणाके दिन उन्होंने हस्तना-  
पुगमें प्रवेश किया और धर्ममित्रने आहारदान देकर पंचाशचर्य प्राप्त किये । इसतरह घोर तपश्चरण करते हुये उनके  
सोलह वर्ष व्यतीत होगये ॥ ३७-४१ ॥ किसी एक दिन परम शुद्धिको धारण करनेवाले वे भगवान् तेलोंका नियम  
लेकर अपने दीक्षा लेनेके ( सहेतुक ) वनमें तिलकद्रुमके नीचे विराजमान हुए वहींपर चैत्र शुक्ला तृतीयाके दिन कृ-  
त्तिका नक्षत्रमें शामके समय उन्हें कैवल्यज्ञान उत्पन्न हुआ । उसीसमय प्रसन्न होकर सब इंद्रादि देव आए और सबने  
प्रार्थनाकर विधिपूर्वक ज्ञान कल्याणकी पूजा की । उन भगवानके स्वयं आदि पैंतीस गणधर थे, सातसौ गणरह  
अंग बौद्ध पूर्वोंके जानकार उत्तम मुनिराज थे और तैत्तलीस हजार एकसौ पचास मर्मवेदी शिक्षक थे ॥ ४२-४५ ॥ दो



४३ ॥ प्रारम्भ चतुर्थकल्याणपूजाविधिमवाप सः ॥ तस्या स्वयम् नामाद्याः पञ्चविण्द्वयनेति ॥ ४३ ॥ शतानि सप्तपूत्राणि संविदो मुनिसत्तमाः । खपचैक-  
त्रिवाद्वैष्णवाः विधक्षा लक्षितायथा ॥ ४५ ॥ खद्वयद्विप्रक्षोकारुतृतीयावगमामलाः । श्रव्यद्वयद्विन्दुयुक्ता केवलज्ञानभास्कराः ॥ ४६ ॥ खद्वयकैद्वि-  
भातविक्रियाद्विभूषणाः । निवृत्तात्रिसहस्राणि चतुर्थज्ञानधारिणः ॥ ४७ ॥ पञ्चाक्षरद्विसहस्राणि ख्यातासुरवादिनः । सर्वे ते विदितारः पटिसहस्राणि यमे-  
दिव्येन ध्वनिनामीषा कुर्वन्वर्मापदेशनाः । त्रिलक्षाः श्राविका लक्षाग्रं सर्वयुपासकाः ॥ ४९ ॥ देवा देव्योऽसह्यतास्तित्यका संख्यया मिता ।  
पक्षादिदिने रात्रे पुरातने । भागे कर्माणि निर्मूल्य-कृतिकाया निरञ्जनः ॥ ५२ ॥ आपसुर्वीर्वाणनिर्विण्णपूजः प्राप्तुं पद । सखद्विज्ञानवराग्यसाध्याधमविन-  
हजार पांचसौ निर्मल अवधिज्ञानको जाननेवाले थे और तीनहजार दोसौ केवलज्ञानरूपी सूर्यसे सुशोभित मुनिगज थे ॥ ४६ ॥  
पांचहजार एकसौ विक्रियाक्रद्विको धारण करनेवाले और तीन हजार तीन सौ मन-पर्ययज्ञानी थे ॥ ४७ ॥ दोहजार  
पचास भाविता आदि अर्जिह्राएं थीं, तीन लाख श्राविकाएं दो लाख श्रावक, असंख्यात देव देवियां और संख्यात  
तिर्यच थे । भगवान् कुंथुनाथने सब देशोंमें विहारकर अपनी दिव्यध्वनिसे इन सबको धर्मोपदेश दिया । जब उन  
की आयु एक महीनेकी रह गई तब प्रतिमा योग धारणकर सम्मेलन शिखरपर आ विराजमान हुए और योग निरोधकर  
वैशाख शुक्ला पडिवाके दिन कृतिका नक्षत्रमें रात्रिके पहिले पहरमें एक हजार मुनियोंके साथसाथ सब कर्मोंको नाश-  
कर मुक्त हुए ॥ ४९-५२ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनकी मोक्षकल्याणकी पूजाकी और इस तरह उन भग-  
वानने शुद्ध ज्ञान वराग्यसे भरा हुआ निर्वाण और अविनाश सर्वोत्तम मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ५३ ॥ जो पहिले भव-  
में राजा सिंहरथ थे, फिर घोर तपश्चरणकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिद्वद् रूप बर्हासे आकर जिन्होंने तीर्थंकर और चक्र-  
वर्ती दो पद पाये, जो छह तरहकी सेनाके स्वामी थे तीनों लोक मुख्य मानकर जिनकी पूजा करता था, जिन्होंने  
सम्यक्त्व आदि आत्माके आठों गुण प्राप्त किये और चूडामणि रत्नके समान तीनों लोकोंकी शिखर सिद्ध शिलाको  
प्रकाशित किया ऐसे श्री कुंथुनाथ जिन्हें देव तुम लोगोको जिसकी महिमाको कोई रोक नहीं सकता ऐसी सदा रह-  
नेवाली मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ ५४ ॥ जिनके शरीरकी कातिमें इंद्रसहित सभी देव भग्न हैं, तथा जिनके ज्ञानके प्रकाश-  
में पंचतत्त्व सहित सभी आकाश ( लोकालोक दोनों ) भग्न हैं अर्थात् जो सबके जानकार हैं, जो लक्ष्मीके स्थान

श्वर ॥ ५३ ॥ आसीत्तिहरयो ह्युप पशुतः सर्वोयसिद्धीधरः । कल्याणद्वयभर् पदगणधिरल्लोचनमुत्सृजितः । प्राप्तात्माष्टगुणविशिष्टपशित्वागो-  
द्गामि चूडामणि-दिन्याद्र-धियमप्रतीपमहिमा दुंयुर्जिन शास्वती ॥ ५३ ॥ देहयोतिरपि यस्य शक्तमहिता चतुर्वि मया गुरा ज्ञानज्योतिरपि पंच  
तारवत्सहित लभ नभश्चाविल । लक्ष्मीयाम दधद्विधूतविततर्ज्यातः सयामद्वयं पथानं कथयत्वगतगुणभूरुंयुर्भवात्स व- ॥ ५५ ॥

इत्यार्ये त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणमद्राचार्यप्रणीते कुचुचक्रवर्तीर्णकपुराण परिसमाप्त चतुः यत्प्रितम पत्रे ॥ ६४ ॥

## अथ पंचपट्टितमं पर्व ।

सुरतारं परं सारं नरनाथवृत्तानति । अगाधानारसंसारसागरोत्तारकारण ॥ १ ॥ द्विपे जंबूद्वयव्याते सीतोत्तरतटारगति । कच्छाद्वयव्याते  
क्षेमपुरावर्धयो महीपतिः ॥ २ ॥ नामा घनपति पाता प्रजानां जनताप्रिय । यन्त्री धेनुः सग तस्य दुग्धेस्म प्रस्तुतानिज ॥ ३ ॥ विनाघिनिर्दिषि त्यागी  
हूँ फेले हृष्ट अज्ञानाधकारको नाश करनेवाले हैं जिन्होंने निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारके मोक्षमार्गका निरूपण  
किया है और जो अनंत गुणोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे श्रीकुंयुनाथ स्वामी तुम लोगोंके संसारका नाश करें ॥ ५५ ॥  
इसप्रकार भवद्गुणमद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवौं हिंदी भाषानुवादमें श्रीकुंयुनाथ तीर्थंकर और चक्रवर्तीका पुराण  
पूर्ण करनेवाला यह चौठमवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

## अथ पैंसठवां पर्व ।

अथानंतर-जो प्रगाध और असार ऐसे संसाररूपी भागरसे पारकर देनेमें कारण हैं अनेक राजा लोग जिन्हें नम-  
स्कार करते हैं और जो सबसे उत्कृष्ट हैं ऐसे अरनाथकी तुम सब लोग सेवा करो ॥ १ ॥ इसी जंबूद्वीपके सीता  
नदीके उत्तर किनारेपर कच्छ नामका देश है उसके धेमपुर नगरमें धनपति नामका राजा राज्य करता था वह प्रजा-  
को पालनेवाला और लोगोंको अत्यंत प्रिय था, पृथ्वी रूपी कामधेनुउसके मनोरथ सदा पूर्ण किया करती थी ॥ २-  
३ ॥ वह विना मांगनेवालोंके मी दानी था और विना शत्रुओंके मी उधमी था, समस्त मांगनेवालोंको संतुष्ट करने-  
वाले और समस्त शत्रुओंको नाश करनेवाले उस राजामें ये स्वभाविक गुण थे ॥ ४ ॥ उसके राज्यमें राजा प्रजा सब  
लोग अपनी अपनी जीविकाके अनुसार धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करते थे इसलिये धर्मका व्यति-

विनाप्यसिभिरुचमी । तर्पितार्थिनि धृतारौ तस्मिस्तौ सहजौ शुणौ ॥ ४ ॥ स्वदृष्टानुगमेनैव वर्गत्रयनिषेविणः । राजाप्रजाश्च राज्योर्मिस्तत्र धर्मव्यतिक्रमः ॥  
 ५ ॥ कदाचिदरणीधर्त्ता पीत्वाहंमदतीर्थकृत् । दिव्यध्वनिसमुद्भूतधर्मसारसायनं ॥ ६ ॥ विरज्य राज्यभोगात्तरसादाज्यं निजात्मजे । नियोज्य मंशु प्रज-  
 मिदता । त्रयक्षिशत्समुद्रोपमायुर्हस्ततुप्रभः ॥ ७ ॥ आसाद्यैकादशागोरुपारावारस्य पारगः । द्रव्यशृङ्गारणसबद्धतीर्थकृन्नामपुण्यकृत् ॥ ८ ॥ प्रायोपगमनादापस्तज्यतेह  
 नि प्रवीचारमुखसगरपारगः । स्वावधिज्ञाननिर्णतिलोकनाय्यविस्त्वृति ॥ ९ ॥ शुक्ललेखाह्वय सादेर्भीसै पोडशसि श्वसन् । त्रयाक्षिशत्सदसौकवर्षैर्मनसमाहृन् ॥ १० ॥ अश्रु-  
 राससीकृतनिर्वृतिः ॥ १० ॥ सद्देवोदयसभूतमन्त्रभूष भोगमुत्तम । उदितोदितपर्यासिपर्यतोपातमारुह्य ॥ ११ ॥ स्ववधिक्षेत्रनिर्णतप्रकाशवल्बिक्रियः । अतिप्रशस्तरागादि  
 जागलः । हस्तिनाख्य पुरं तस्य पतिगोत्रेण काश्यप ॥ १२ ॥ सोमवशसमुद्भूतदुर्दर्शनसमाह्वयः । मित्रसेना महादेवी प्राणेभ्योव्यस्य बल्लभा ॥ १३ ॥  
 क्रम ( उल्लंघन ) कभी नहीं होता था ॥ ५ ॥ किसी एक समय उस राजाने अर्हनेन्द नामके तीर्थकरसे उनकी दि-  
 व्यध्वनिसे प्रगट हुए धर्मका सार रूप रसायनका श्रवण किया तथा राज्य भोगसे विरक्त होकर शीघ्र ही अपने पुत्र-  
 को राज्य दिया और जन्ममरणको नाश करनेवाली जैनी दीक्षा शीघ्र ही धारण करली ॥ ६-७ ॥ ग्यारह अंग रूपी  
 महासागरके पार होकर महापुण्यको प्रगट करने वाली सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन कर तीर्थकर प्रकृतिका  
 वंश किया ॥ ८ ॥ प्रायोपगमन सन्याससे शरीर छोडकर जयंत नामके विमानमें ( पंचोत्तरमें ) अहमिंद हुआ वहांपर  
 उसकी तेतीस सागरकी आयु थी एक हाथका शरीर था, शुक्ल लेखा थी, वह साडे सोलह महीने बाद थास लेता  
 था और तेतीस हजार वर्ष पीछे मानसिक अश्रुत आहार करता था । प्रवीचारहित सुखसागरका पारगामी था तथा  
 अपने अवधिज्ञानसे लोकनाडीमें फैले हुए सब पदार्थोंको जानता था ॥ ९-११ ॥ उसके रागद्वेष आदि सब श्रांत होगये थे और मोक्ष  
 या उतने ही क्षेत्रतक उसका प्रकाश बल और विक्रिया ऋद्धि थी, उसके रागद्वेष आदि सब श्रांत होगये थे और मोक्ष  
 उसके समीप ही आ चुकी थी ॥ १२ ॥ साता वेदनीयके उदयसे प्रगट हुए उत्तम भोगोंका वह अनुभव करता था ।  
 इसतरह उदयमें आई हुई पर्याप्तिके अंततक पहुंच गया था और आयुका अंतिम भाग भोग रहा था ॥ १३ ॥  
 अथानंतर-इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरुर्जागल नामका देश है उसके हस्तिनापुर नगरमें सोमवंशमें उत्पन्न  
 हुआ काश्यप गोत्रीय सुदर्शन नामका राजा राज्य करता था उसके मित्रसेना नामकी महादेवी थी जोकि प्राणोंसे  
 भी प्यारी थी ॥ १४-१५ ॥ रत्नोंकी वर्षाकर इंद्रादि देवोंने भी बडे प्रेमसे उसकी पूजा की थी और फागुन कृष्णा



वसुधैव कुटुम्बकम् । मासेनित्तुनीयाया रेवत्या निशि पश्चिमे ॥ १६ ॥ भोगे जयते देवस्य स्वर्गोत्तरणक्षणे । दृष्टयोऽयमुत्सृष्टा फल तेषां निजाधिप ॥ १७ ॥ अनुयुज्यावधिगन्तुं कुरु फलसंभूते । प्राप्तं त्रैलोक्यं राज्येव प्रसीदत्यरमोदया ॥ १८ ॥ ततो गता मराधीशकृतकल्याणसं-  
म्मदा । निर्वृता निर्मदा नित्यरम्या मोक्षानना शुक्तिः ॥ १९ ॥ सखायमाना देवीभिस्तत्कालोन्नितस्तुभिरभिः । मेघमालेव सद्गर्भमुद्रहती जगद्धितं ॥ २० ॥  
मांगक्षीर्वै सिते पक्षे पुण्ययोगे चतुर्दशी-तिथौ त्रिविधसहोद्रे तैजसमुद्रधीयत् ॥ २१ ॥ तस्य जन्मोत्सवस्थालं वगनाय महद्वराः । यदि स्वर्गं समुद्धृत्य  
सर्वेयत्र सञ्चानय ॥ २२ ॥ अत्यल्प वृत्तिमापन्ना धीनानाथवनीपका । इतीदमिह संप्राप्त यदि तृप्तिं जगत्पद्मं ॥ २३ ॥ दुष्टुतीर्थशसताने पत्ये दुर्ग-  
शसम्मिते । सहस्रकोटिर्बौन्दतदभ्यतरजीवित ॥ २४ ॥ अरोजिनो जिनश्रीमानश्रीर्षि-चतुर्भुक्तरा । वत्सराणां सहस्राणि परमायुः समुद्रहन् ॥ २५ ॥

तुनीयाके दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर उसने सोलह स्वप्न देखे थे और उसीदिन धनपतिके जीव जयत विमानके अहमिंद्रने वहांसे च्युत होकर उस मित्रसेनाके गर्भमें अवतार लिया था । सर्वेगा होते ही रानीने अपने स्वामीके पास जाकर उन स्वप्नोंके फल पूछे, महाराज सुदर्शन अवधिज्ञानी थे शसलिये अवधिज्ञानसे जानकर उन्होंने उन स्वप्नोंके फल कहे । उन स्वप्नोंके फल सुनकर अच्छीसे अच्छी विभूतिकी धारण करनेवाली वह रानी तीनों लोकोंका राज्य पानेके समान प्रसन्न हुई ॥ १६-१८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर गर्भकल्याणका उत्सव मनाया जिससे वह देवी बहुत ही प्रसन्न हुई, कृत्यकृत्य, मंदरहित, सदा मनोहर श्रान्तचित्त और पवित्र उस देवीकी उससमय के योग्य वस्तुओंके द्वारा बहुतसी देवियां आकर सेवा करती थीं । इसतरङ्ग मेघमालाके समान वह संसारका हित करनेवाले उत्तम गर्भके धारण करनेवाले पुत्र रत्नको प्रगट किया ॥ २१ ॥ उसके जन्म समयमें जो उत्सव हुआ था वधि इन तीनों ज्ञानोंकी धारण करनेवाले नहीं है केवल इसीपरसे समझ लेना चाहिये कि इंद्रादि देव भी अपना स्वर्ग छोड़ उसके वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है केवल इसीपरसे समझ लेना चाहिये कि इंद्रादि देव भी अपना स्वर्ग छोड़ कर अपनी अपनी देवियोंके साथ यहां आए थे ॥ २२ ॥ दीन अनाथ और याचक लोग उससमय खूब ही संतुष्ट हो गये थे यह कहना ठीक ही है क्योंकि उनके जन्मके समय तीनों लोक भूपुर संतुष्ट हो गया था ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णनाथ तीर्थंकरके बाद एकहजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य वीत जानेपर अरनाथ हुए थे उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल समझनी चाहिये ॥ २४ ॥ श्रीमान् जिनराज अरनाथ भगवानकी उत्कृष्ट आयु चौरासी हजार वर्षकी थी ॥ २५ ॥ तीस बहुत ऊंचा उनका शरीर था सुवर्णके समान उनकी कांति थी । वे लावण्यकी परम हृष्ट थे सी-

त्रिंशत्पाततुल्यं चारुचामीकरच्छविः । लोषण्यस्य परं ॥ २७ ॥ अथ ह्युण्मयः किं वेत्याशंकां जनयन् जनान् । अर्धदत्तं समं लक्ष्म्या बालकल्पद्रुमोपमम् ॥ २८ ॥ तस्य धन्य-  
न्त्यमृताः किं गुणेष्वस्य संभवः ॥ २७ ॥ अथ ह्युण्मयः किं वेत्याशंकां जनयन् जनान् । अर्धदत्तं समं लक्ष्म्या बालकल्पद्रुमोपमम् ॥ २८ ॥ तस्य धन्य-  
त्रिद्वैकद्विप्रमाणमितवस्तरैः । गते कुमारकालेऽप्युद्राज्यं मांडलिकोचिंतं ॥ २९ ॥ तावत्येव गते काले तस्मिन् सकलचक्रिता । भोगान्समन्वभूद्भ्रागे तुतीये  
स निजायुषः ॥ ३० ॥ कदाचिच्छारदाभोदविलयप्रतिलोकनात् । समुद्रतुल्यजन्मोपयोगबोधिः सुरोत्तयैः ॥ ३१ ॥ प्रयोधितोबुवादेन दत्वा राज्यं स्वसूनुवे ।  
आरविदकुमारस्य दुरैस्त्वामविधितः ॥ ३२ ॥ त्रिविको वैजयत्याख्या सहैतुर्कर्वन् गतः । धीर्धा यथोपवासेन रेचत्या दशमीदिने ॥ ३३ ॥ शुद्धेगान्मार्गशीर्षस्य  
सायाने भूयुजै सह । सहस्रं चतुर्धनधारी च समजायत ॥ ३४ ॥ सम्यगेवं तपः कुर्वन् कदाचित्पारणादिने । प्रायाच्चक्रपुरं तस्मै दत्वाऽममपराजितम् ॥ ३५ ॥  
मायकी उत्तम खानि ये, सुदूरताके समुद्र ये और रूपसंपदाओंके घर थे । उन्हें देखकर लोगोंको ऐसी संकाएं होती  
थीं कि गुण इनमें प्रगट हुए हैं अथवा ये गुणोंमें ही उत्पन्न हुए हैं अथवा ये स्वयं ही गुणरूप हैं ? इसप्रकार लक्ष्मी  
के साथ साथ छोटेसे कल्पवृक्षके समान वे बढने लगे ॥ २६-२८ ॥ हस्तरह कुमार अवस्थाके इकईस हजार वर्ष व्य-  
तीत होजानेपर मांडलिकके समान राज्य प्राप्त हुआ था ॥ २९ ॥ राज्य प्राप्त होनेके बाद इकईस हजार वर्ष व्य-  
व्यतीत हो जानेपर उन्हें सकल चक्रवर्तीका पद प्राप्त हुआ था और अपनी आयुके तीसरे भागमें अर्थात् त्रिंशत्  
हजार वर्षकी आयुतक उन्होंने भोगोपभोगोंका अनुभव किया था ॥ ३० ॥ तदनंतर किसी एक दिन शरद ऋतुके बादलों  
का नष्ट होना देखकर उन्हें जन्मको सार्थक बनानेवाला रत्नत्रय प्राप्त हुआ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकर उन्हें  
प्रबोधित किया अरुनाथने अरविदकुमार नामके अपने पुत्र को राज्य दिया और आप देवोंके द्वारा उठाई हुई वैजयंत नामकी  
पालकीपर सवार होकर सहेतुक वनमें गये वहांपर मगसिर शुका दक्षमीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय वेलाका  
नियम लेकर एक हजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने दीक्षा धारणकी और उन्हें उसी समय मनःपर्यय ज्ञान प्रगट  
होगया ॥ ३१, ३४ ॥ इस तरह उन्होंने बहुत अच्छी तरह तपश्चरण किया, पारणाके दिन वे चक्रपुर नगरमें गये  
वहांपर सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा अपराजितने उन्हें आहार दान दिया और पंचाशत्य प्राप्त किये । हस्तरह तपश्च-  
रण करते हुए उनके छात्र्य अवस्थामें सोलह वर्ष व्यतीत होगये ॥ ३५-३६ ॥ तब सहेतुक नामके दीक्षा वनमें ही  
कांतिक शुका द्वादशीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय आमके वृक्षके नीचे वेलाका नियम धारणकर विराजमान  
थे वहींपर उन्होंने घातिया कर्मोंका नाश किया और अरहंत पद प्राप्त किया । देव लोगोंने उसीसमय आकर केवल

महीपति सुवर्णेभ आपदाश्रयार्थकं । छात्राख्येनाममस्तस्य सुनेर्वैशेणि योदश ॥३६॥ ततो रीक्षावने मासे कार्तिके द्वादशीदिने । देवत्या शुक्रपक्षेऽपराह  
चतुर्दशेऽर्ध ॥ ३७ ॥ षष्ठोपवासोनाहत्य घातन्याहृतमाससप्त । सुराभ्यर्च्यकल्याणे संभूयेनमपूजयन् ॥ ३८ ॥ कुंभार्याया गणेशोस त्रिंशत्पूर्वागवेदिनः ।  
भूयैकषट्मिताः श्रेयाः शिक्षकाः सूक्ष्मबुद्धय ॥ ३९ ॥ पचन्याष्टपंचाग्निमितास्त्रिंशानधारिणः । शून्यद्वयाष्टपक्षोक्ताः केवलज्ञानलोचनाः ॥ ४० ॥  
तावत् स्रद्धयग्न्याच्चिन्निमिता विक्रियादिकाः । करणैरियत्स्रद्धयुक्ता मन पर्ययवोधनाः ॥ ४१ ॥ शतानि घट् स्रद्धसू च तत्रातुस्तत्वादिनः । सर्वे ते  
संचिताः पचाशत्स्रद्धाणि संयता ॥ ४२ ॥ श्रेयाः षष्टिपदस्राणि यक्षिलाप्रमुखायिका । लक्षा षष्टिस्रद्धाणि श्रावका श्राविकाश्च ता ॥ ४३ ॥ लक्ष-  
त्रय विनिर्दिष्टा देवा पूर्वोक्तमानका । तिर्यग्मेधाश्च संख्याता ततो द्वादशभिरांगेः ॥ ४४ ॥ एभिर्धर्मपदेशार्थं ब्यहरद्विषयान् शुचीन् । मासमात्रावशे-  
षाद्युः सम्मोदगिरिमल्लके ॥ ४५ ॥ स्रद्धसूनिभिः साद्धं प्रतिभार्योगमास्थित । चैत्रकृष्णतरेवत्या पूर्वरात्रेऽग्नमच्छिव ॥ ४६ ॥ तदागत्य सुराधीशा

ज्ञानका उत्सव मनाया और इकठे होकर उनकी पूजा की ॥ ३७-३८ ॥ आर्य कुंभको आदि लेकर तीस तो उनके  
गणधर थे, छह सौ दस ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस सूक्ष्म बुद्धिको धारण  
करनेवाले शिक्षक थे, अट्ठाईस सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही अर्थात् अट्ठाईस सौ ही केवलज्ञानी थे, तैतलीससौ वि-  
क्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे और बीससौ पचपन मन पर्यय ज्ञानी थे ॥ ३९-४१ ॥ तथा सोलह सौ उत्तर  
अनुत्तमवादी थे इसतरह सब मिलाकर पचास हजार मुनिराज थे ॥ ४२ ॥ यथिलाको आदि लेकर साठ हजार अ-  
र्बिकाएं थीं एक लाख साठ हजार श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाएं थीं । इनके शिष्याय पहिले कहे अनुसार  
असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे । इसतरह वारह सभाओंसे सुशोभित होकर उन भगवानने धर्मो-  
पदेश देनेकेलिये पवित्र देशोंमें विहार किया । जब उनकी आयु एक महीनेकी शेष रह गई तब वे एक हजार मु-  
नियोंके साथ प्रतिमायोग धारणकर सम्मोद शिखरके मस्तकपर विराजमान हुए और चैत्र कृष्ण अमावस्याके दिन  
रेवती नक्षत्रमें रात्रिके प्रारंभमें मोक्ष पधारें ॥ ४३-४६ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकी पूज-  
नकी भक्तिपूर्वक सैकड़ों स्तुतियोंसे उनकी स्तुतिकी और फिर वे अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ४७ ॥ जिन्होंने धर्म चक्रकी  
इच्छासे कुमारके चक्रके समान चक्रका त्याग कर दिया और मोक्षरूपी परम लक्ष्मीकी इच्छासे समस्त पृथ्वीके मास  
होनेसे प्रगट हुई राज्य लक्ष्मीको घटदासीके ( पानी भरने वालीके ) समान छोड़ दिया तथा जो पापरूपी शत्रुओंको  
नाश करनेवाले हैं ऐसे श्री अरनाथ जिनेंद्र देव भक्तिके भारसे नगीश्वर हुए और संसारसे डरनेवाले ऐसे तुम भव्य

कृतनिर्वाणपूजनाः । सुत्वा सुतिष्ठतमिक्त्वा स्वस्वमोक्तं समं यदुः ॥ ४७ ॥ त्पुनः येन कुलत्वं कर्मिव तच्छक धराचक्रवित् श्रीवासी षट्दशिकेः  
परमश्रीधर्मचक्रवत्सया । दुष्मान्भक्तिभरान्तान् दुरितारतरथ चसहन् पापाम्भयजनानरो विनपति संसारमीलन सदा ॥ ४८ ॥ ह्युदभयाधिपुरुकमे  
कृतोद्दोषानद्यादशपि सन्निमित्तमाप्य शुद्धि । यो लब्धवाप्तिभुवनैकपुणरीया नष्टदशो दिशतु शीघ्रमर शिव वः ॥ ४९ ॥ प्राग्योभूतपतिमहान धन-  
पति पद्मोद्वतानां पति स्वर्गमे विलसज्यतजपति प्रोयत्तुखानां पति । पुट्टं लडाधिपतिरचतुदशलसद्वजैर्निधीनां पतिः त्रैलोक्याधिपतिः पुनात्वरपतिः  
स संश्रितान् वदिरा ॥ ५० ॥ अयोस्मिन्नेव तीर्थभूतयामो नाम चक्रवत् । तृतीयजन्मन्यत्रैव भवतेस भुव पतिः ॥ ५१ ॥ भूपालो नाम समाने बलिमिर्विजिगीषुभिः  
प्राप्सोभिमानभंगः सन् यथा निर्विण्य सद्यते ॥ ५२ ॥ दीक्षा जैनेश्वरीमादात्स भूतगुरुसन्निधौ । कुदाचित्स तप कुर्वन्निदानमकरोकुम्भी ॥ ५३ ॥ भूयाने चक्रवर्तिल-  
मेति भोगानुपजनात् । झरिरे विवेण वा तेन मनसा दूषितं तपः ॥ ५४ ॥ स तथैवाचरन् घोरं तपः स्वस्यानुपः क्षये । समाधाय महाशुके सन्यासेनोदययत् ॥  
लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ ४८ ॥ जो भूख ग्यास भय आदि बड़े भारी कर्म करनेवाले बड़े बड़े अठारह दोषोंको  
उनके कारणों सहित ( कर्म सहित ) नाशकर परम विशुद्धि को प्राप्त हुए, जो तीनों लोकोंके गुरु और सबसे बड़े  
हैं ऐसे अठारहवें तीर्थकर श्रीअरनाथ भगवान् तुम लोगोंको शीघ्र ही मोक्ष दें ॥ ४९ ॥ जो पहिले धनपति नामके  
बड़े राजा हुए थे फिर व्रतोंके स्वामी मुनिराज हुए तदनंतर उदय होते हुए अनेक सुखोंके स्वामी ऐसे स्वर्गके ऊपर  
शोभायमान जयंत विमानमें अहमिंद्र हुए, फिर छहो खंड पृथ्वीके स्वामी होकर चौदह रत्न और नौ निधियोंके स्वा-  
मी हुए तदनंतर जो तीनों लोकोंके स्वामी हुए ऐसे श्री अरनाथ भगवान् अपने आश्रित तुम लोगोंको चिरकाल तक  
पालन करो ॥ ५० ॥  
अथानंतर-इन्हीं अरनाथ भगवानके समय सुभीम चक्रवर्ती हुआ है वह तीसरे भवमें इसी भरतक्षेत्रमें भूपाल  
नामका राजा था । वह किसी युद्धमें जीतनेकी इच्छा करनेवाले बलवान राजासे हार गया तथा मान भंग होनेसे  
विरक्त होकर संभूत गुरुके समीप उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली किसी एक समय तपश्चरण करते हुए उस  
बुद्धिमानने भोगोंमें आसक्त होकर निदान किया कि मुझे चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त हो । इसतरह जिसप्रकार विषसे  
दूध विगड़ जाता है उसीप्रकार उसने मनसे अपना तपश्चरण दूषित कर लिया ॥ ५१-५४ ॥ वह उसीतरह घोर त-  
पश्चरण करता रहा आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर शरीर छोड़ और महाशुक्र नामके दशवें स्वर्गमें देव उत्पन्न  
हुआ ॥ ५५ ॥ वहांपर उसकी सोलह सागरकी आयु थी । सोलह ॥ सुखसे व्यतीत करने लगा-इधर इसी भरत

५५॥ तत्र षोडशवारशिमान्तयुः शुद्धमास्त स । द्वीपेस्मिन् भारते कौशलादये राष्ट्रे गुणान्विते ॥ ५६ ॥ सहस्रबाहुस्त्रिबाहुः साकेतनगराधिप । राक्षी तस्मा-  
भविष्यन्मत्याह्वया हृदयप्रिया ॥ ५७ ॥ कान्त्यकुञ्जमहीशस्य पारताह्यस्य सात्मजा । तस्या भुतः सुपुण्येन कृतवीराधिपोभवत् ॥ ५८ ॥ तत्र प्रवर्द्धमानेस्मिभिर्दम-  
न्यदुशीर्यते । सहस्रसुजम्भतुः पितृव्याच्छतविंदुतः ॥ ५९ ॥ पारताह्यमहीशस्य श्रीमत्यास्तनयः स्वपुत्रः । जमदग्नि सरामांतः कौमारो मातृशुतः ॥  
६० ॥ निर्वेदात्तापसो भूत्वा पंचाभितपसि स्थित । दृढग्राहिमहीशस्य विप्रेण हरिशर्मण ॥ ६१ ॥ अभूदलंकित सहायमेव काले प्रयात्यसौ । दृढग्राही  
तपो, जैनमग्रहीद् ब्राह्मणोपि च ॥ ६२ ॥ तापसव्रतमतभूज्योतिर्लोकं द्विजोत्तमः । दृढग्राही च सौभर्मे सोवचिह्नानवधुषा ॥ ६३ ॥ मिथ्यात्वाज्ज्योतिरे  
लोके समुत्पन्न द्विजोत्तम । विज्ञाय जैनसदंभं त प्राहयितुमागमत् ॥ ६४ ॥ द्रष्टुं त तत्र मिथ्यात्वात्त्वमेवं कुतस्मिं तो भवः । उत्कृष्टशुद्धसम्यक्त्वादेवभूय

क्षेत्रके बहुत गुणी कौशल देशमें अयोध्यानगरके इक्ष्वाकुवंशी राजा सहस्रबाहुके चित्रमती नामकी मनको अच्छी  
लगनेवाली रानी थी जोकि कुञ्ज देशके पारत नामके राजाकी पुत्री थी उसके अपने पुण्योदयसे कृतवीराधिप नाम  
का पुत्र हुआ ॥ ५६-५८ ॥ वह दिनों दिन बढ़ने लगा इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और है और वह इसप्र-  
कार है कि राजा सहस्रबाहुके काका अतविंदुकी स्त्रीका नाम श्रीमती था जोकि पारत देशके राजाकी वहिन थी  
उसके जमदग्नि नामका एक पुत्र हुआ था । कुमार अवस्थामें ही उसकी माता मर गई थी इसलिये विरक्त होकर  
वह तपस्वी हो गया था और पंचाग्नि तपश्चरण तपने लगा था । इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा यह है कि एक  
दृढग्राही नामके राजाकी हरिशर्मा नामके ब्राह्मणके साथ गाढ मित्रता थी । इसतरह कुछ समय वीतजानेपर राजा  
दृढग्राहीने तो जैनधर दीक्षा धारण कर ली हरिशर्मा ब्राह्मणने भी तापसीके व्रत धारण कर लिये तथा वह मरकर  
ज्योतिर्लोकमें ज्योतिषी जातिका देव हुआ । इधर दृढग्राही भी शरीर छोड़कर मौर्धर्म स्वर्गमें देव हुआ । दृढग्राहीके  
जीवने अवधिज्ञानसे देखा कि मिथ्यात्वके प्रभावसे ही यह ब्राह्मण ज्योतिषी जातिका देव हुआ है यह जानकर वह  
उस ज्योतीषी देवको उत्तम जैन धर्म स्वीकार करानेके लिये आया ॥ ५९-६४ ॥ उस ज्योतिषी देवको देखकर वह  
दृढग्राहीका जीव कहने लगा कि मिथ्यात्वके प्रभावसे ही तू ऐसा नीच देव हुआ है और शुद्ध सम्यग्दर्शनके प्रभावे  
ही मैं उत्कृष्ट देव होकर यहां उत्पन्न हुआ हूं ॥ ६५ ॥ इसलिये मोक्षके साक्षात् कारण सम्यग्दर्शनको तू भी स्वीकार  
कर । इसप्रकार उस दृढग्राहीके जीवने कहा तब संशयकर वह ज्योतिषी देव कहने लगा कि तपसियोंका तप अशुद्ध  
क्यों है ? तब दृढग्राहीके जीवने कहा कि बलो पृथ्वीपर चलकर मैं तुझे दिखला देता हूं । इसतरह परस्पर बातचीत

महं गत ॥ ६५ ॥ तस्म  
भूलं । इत्यन्योन्यं समालोच्य कीचकद्वयमागतौ ॥ ६७ ॥ जयदमिसुनेर्दीर्घस्रचाश्रयमुपाश्रितौ । काचित्कालकलां स्थित्वा सदृष्टि  
समयावत मायाको ज्योतिष्कामरकीचकी । एतद्वनातरं गत्वा प्रत्यायास्याम्यहं प्रिये ॥ ६३ ॥ प्रतीक्षत्वात्र मां स्थित्वेत्यसौ चाहगमं तव । न श्रद्धधामि  
मे देहि शपथं यदि यास्यासि ॥ ७० ॥ इत्यत सोऽब्रवीद् दृष्टि पातकेषु किमिच्छसि । पंचषु त्वमहं तस्मिन् दास्यामि तदिति स्फुटं ॥ ७१ ॥ श्लाघ्याह  
कीचक ग्राह युक्त्वेन किंचिदीप्सितं ॥ ७२ ॥ इत्यन्यमिति तद्वदं विसर्वादं स तापसः । धृत्वा क्रोधेन संतप्तो विधूर्णितविलोचनः ॥ ६४ ॥ हस्ताभ्या  
ह्वयुक्तोयादृहीत्वा निश्चलं द्विजौ । मधुदरतपः प्राप्य भाविलोकनमीप्सितः ॥ ७५ ॥ युवाभ्यां केन तद्वाच्यमित्यहोतः खगोब्रवीत् । मागमः कोप  
कर और दोनोंही चिडा तथा चिडियाका रूप बनाकर पृथ्वीपर आगये ॥ ६६-६७ ॥ यहां आकर वे दोनों ही जम-  
दग्नि मुनिकी बडी बडी गुंछ और दाहीमें रहने लगे, थोड़े समयतक तो वे वहां रहे फिर मायाको जाननेवाला दृढ-  
ग्राहीका जीव चिडा ज्योतिषी देवका जीव चिडियासे कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं इस वनमें जाता हूं जाकर जल्दी ही जम-  
लौट आऊंगा तू यहां ही रहकर मेरी प्रतीक्षा करना । इसके उत्तरमें वह चिडिया कहने लगी कि तेरे आनेका मुझे  
विश्वास नहीं है यदि तू जाना ही है तो शपथ ( सौगंद ) दे जा ॥ ६८-७० ॥ तब वह चिडा कहने लगा  
कि पांचों पापोंमें से तू किसकी इच्छा करती है मैं उसीकी सौगंद तुझे दे जाऊंगा ॥ ७१ ॥ तब वह  
चिडिया कहने लगीकि उन पांचों पापोंमें से तो मुझे किसीकी इच्छा नहीं है यदि तू जाना ही चाहता  
है तो तू यह सौगंद दे कि यदि मैं न आऊं तो इस तापसीकी गतिको प्राप्त होऊं हे प्रिय ! मैं इस सौगंदपर  
तुझे जानेकी आज्ञा दे सकती हूं । यह सुनकर वह चिडा कहने लगा कि इसको छोडकर तू अन्य किसी  
इष्टकी सौगंद ले इस तरह उन दोनोंमें कुछ झगडा होता रहा । यह सुन उस जमदग्नि तपस्वीको क्रोध आया,  
क्रोधसे वह लाल होगया नेत्र धूमने लगे वह अपने हाथसे उन दोनों पक्षियोंको मारनेके लिये उधमी हुआ उसने  
दोनों पक्षियोंको निश्चल रीतिसे ( जकडकर ) फकड लिया और कहने लगा कि बताओ तुमने किस कारणसे मेरे दु-  
र्जर तपश्चरणको दुर्गतिका कारण वा आगामी लोगोंके लिये अवांछनीय बतलाया है । इसके उत्तरमें वह चिडा कहने  
लगा-आप क्रोध न करें इससे आपका सौजन्य नष्ट हो जायगा ॥ ७१-७६ ॥ क्या थोडीसी ही असुतरूपी छाछसे

भेतो न सौजन्यं तव नदयति ॥ ७६ ॥ यात्यात च न तमेकं पयोलेन न किं क्षति । शृणु ते दुर्गतेर्हेतुं चिरं घोरं तपस्यतः ॥ ७७ ॥ कैमारव्याचा-  
रित्वं तव सततिविच्छिन्दे । सतानघातिन पुंसः का गतिर्निरादृशिता ॥ ७८ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्तीत्यार्ष किं न त्वया श्रुतं । कुतोऽविचारयेन्न कि-  
ञ्चास्ति जरुधीमिति ॥ ७९ ॥ भुत्वा तद्वचनं मंदमिति निश्चित्य तप्तया । बधूजनेषु सफानामाज्ञानतपसः क्षिति ॥ ८० ॥ ममोपकारकार्त्तवितिसुखं वा  
द्विजद्वय । वंचितोगाङ्गुलीत्याभ्या कन्यकुञ्जधिप प्रति ॥ ८१ ॥ स्यात्सु नाज्ञानवैराग्यमित्यत्रापोषयश्रिव । दम्प्रा पारतभूषात्ममत्समतुलमन्त्रपः ॥  
८२ ॥ आकारेणैव कन्यार्योगमनं स निवेदयन् । आसनद्वयमात्रोक्त्य सरागासनमादिशतः ॥ ८३ ॥ निजागमनवृत्तांतं महीपविमजीगमत् । तदाकर्ण्य  
युपः खेदादिगणितज्ञानमित्युं ॥ ८४ ॥ कन्यावात ममास्त्यत्र त्या त्वाभिच्छति सास्तु ते । इत्यत्रोचयमा चागतकन्यकास्त निरीक्ष्य ताः ॥ ८५ ॥ अर्द्धदण्ड

दण्ड नष्ट नहीं हो जाता है यद्यपि तैने घोर तपश्चरण किया है तथापि तू अपनी दुर्गतिका कारण सुन ! तू कुमार  
कालसे ही ब्रह्मचारी है इसलिये तेरे कोई संतान नहीं है संतानका घात करनेवाले पुरुष की नरकके बिना भला और  
कौनसी गति हो सकती है ॥ ७७-७८ ॥ जिसके पुत्र नहीं है उसकी कोई गति नहीं होती क्या तेने यह बेदका  
वाक्य नहीं सुना है, हे मूर्ख ! तू बिना विचार किये ही क्यों इसप्रकारका दुःख भोगता है ॥ ७९ ॥ इसतरह उनके  
मंद वचन सुनकर जमदग्निने वैसा ही निश्चय कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि त्वियोंमें आसक्त पुरुषोंको अज्ञान-  
तपश्चरणकी ही पृथ्वी प्राप्त होती है ॥ ८० ॥ ये दोनों पक्षी मेरे उपकारी हैं यही समझकर जमदग्निने उन दोनों-  
को छोड़ दिया इसतरह उन दोनों पक्षियोंसे ठगा जाकर वह मूर्ख तपस्वी कन्यकुञ्ज देशके राजाके पास पहुंचा  
मानो अज्ञानजन्य वैराग्य स्थिर नहीं रहता इसकी घोषणा ही कर रहा हो । वहां अपने मामा पारत देशके राजाको  
देखकर उस निर्लज्जने ह्मारेसे ही बातला दिया कि मैं कन्या मागनेके लिये यहां आया हूं राजाने उसको लिये एक  
वीतरागियोंके योग्य और दूसरा मरागियोंके योग्य ऐसे दो आमन ढाल दिये उनमेंसे वह जमदग्नि सरागियोंके योग्य  
आसनपर बैठ गया ॥ ८१-८३ ॥ उसने राजासे अपने आनेका कारण भी कह सुनाया जिसे सुनकर खेदसे राजा  
कहने लगा कि इस अज्ञानको विवकार है ॥ ८४ ॥ फिर राजाने कहा कि मेरे सौ कन्याएं हैं उनमेंसे जो तुझे चा-  
हेगी उसीको मैं तुझे दे दूंगा इसतरह बातचीतके बाद वह जमदग्नि उन कन्याओंके यहां गया परंतु वे कन्याएं तप-  
श्चरणसे जिसका शरीर अत्यंत कृश हो रहा है ऐसे जमदग्निको देखकर और उसे अब जला मुरदा समझकर कोई तो  
भलानि कारती हुई वहांसे भाग गई और कितनी ही डरसे भाग गई ॥ ८५-८६ ॥ यह देखकर जमदग्नि भी लज्जा-



शवं मत्वा तपोदग्गयरीरकं । जुगुप्सयाऽपलायत काञ्चिकादिद्रयाहिताः ॥ ८६ ॥ व्रीडया भीडित सोऽपि तास्त्यक्त्वा बालिका मुता । तद्वैवालोक्त्य  
मूढात्मा पालुकीडापरायणा ॥ ८७ ॥ कदलीफलमादस्य ग्राह मामिच्छतीति तां । बाञ्छामीत्यनुवृत्ता च मामियं बाञ्छतीति त ॥ ८८ ॥ दृपमावेद्य  
सृष्टया समायाचीद्विन प्रति । पदं प्रति वनैर्निशमानो दीनतमो जड ॥ ८९ ॥ रेणुकाल्यभिषां तस्या विषय स्वीचकार सः । प्रवृत्तिर्धर्म इत्येषा तदा-  
प्रवृत्ति वागभूत् ॥ ९० ॥ बोधो श्रद्धाविशेषस्य भेदो वा तपसः पते । वाढान्यंतरनामानौ तावभूतां मुतां ह्युता ॥ ९१ ॥ इत्र श्रेतश्च रामातो इदमदि-  
लसमन्वितौ । कामार्थो वा-जनानीष्टौ युक्तौ वा नयविक्रमौ ॥ ९२ ॥ प्रत्यायेवं तयोः काले मुनिरन्येयुरागतः । अरिजयोपजो मेहं रेणुक्यास्ताद्विद्वया ॥  
९३ ॥ दृष्ट्वा यथोपचारेण मुनिं भर्तृप्रचोदितः । पूज्य ! भदान्काले मे दत्त किं भवता धन ॥ ९४ ॥ वदेत्वाह ततस्तेन मया दत्तं न किंचन । इदानीं  
से बड़ा दुखी हुआ उसने उन कन्याओंको तो छोड़ दिया और उसी राजाकी एक छोटी सी कन्या धूलमें सेल रही  
थी उसे एक केलाका फल दिखाकर उस पापीने कहा कि क्या तू मुझे चाहती है उस अबोध बालिकाने कह दिया  
कि हां चाहती हू । इसके बाद ही जमदग्निने राजासे कह दिया कि यह कन्या मुझे चाहती है इस तरह निवेदन  
कर वह कन्या राजासे ले ली और लेकर वह फिर वनमें चला आया । उस अत्यंत दीन और सुखेकी पदपदपर लोगों-  
ने निंदा की ॥ ८७-८९ ॥ उस कन्याका रेणुका नाम रखकर उसके साथ-विवाह कर लिया उससमयसे लेकर ऐसी-  
मवृत्ति (स्त्रियोंके साथ रहकर तपश्चरण करना) ही धर्म है यह कहावत प्रसिद्ध हुई है ॥ ९० ॥ जिसप्रकार श्रद्धा वि-  
शेषके ही दो ज्ञानरूप भेद होते हैं अथवा तपश्चरणके बाल और आभ्यंतर दो भेद होते हैं उसीप्रकार जमदग्निने दो  
पुत्र हुये उनमेंसे एकका नाम इंद्रराम था और दूसरे का श्वेतराम था । वे दोनों ही कतिसे सूर्य चंद्रमाके समान थे  
योग्य थे काम तथा अर्थके समान लोगोंको प्यारे थे और नय तथा पराक्रमके समान जान पड़ते थे ॥ ९१-९२ ॥  
इस तरह उन दोनोंका समय बड़े सुखसे जा रहा था किसी एक दिन रेणुकाका बड़ा भाई अरिजय नामका मुनि  
रेणुकाको देखनेके लिये उसके घर आया था । जमदग्निने कहनेसे रेणुकाने बड़े आदर सत्कारसे उसके दर्शन किये  
और पूछा कि हे भाई कहिये मुझे देते समय आपने कुछ धन दिया था । इसके उत्तरमें अरिजयने कहा कि उससमय  
तो मैंने कुछ नहीं दिया था परंतु हे भद्रे अब मैं तुम्हें देता हूं जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ हो ॥  
९३-९५ ॥ तू त्रत सहित और शीलकी मालासे निर्मल ऐसा सग्यदर्शन ले इससे तू अनेक सुखों की परंपराको प्राप्त होगी ॥  
९६ ॥ इसतरह कहा तब काललब्धिके समान उसके वचनोंसे प्रेरित हुई वह सती रेणुका कहने लगी अच्छा यह स-

दीयते भद्रे त्रिजगत्स्वपि दुर्लभम् ॥ ७५ ॥ गृहाण येन प्राप्नोषि नृ सुमाना परपरा । सम्पन्नत्वं अनस्युक शीलमालाममुज्ज्वल ॥ ९६ ॥ इयुक्त्वा काल-  
लब्धयेन तद्व चा चोदिता सती । सम्पद्यद्दीतमित्याख्यन्मुनीशब्दातिरुष्टवान् ॥ ९७ ॥ कामधेनवभिर्भा विद्यामीरिस्ताथैवप्राथिनी । तस्य विश्रणयाचक्रे  
समन्नं पशुं च सः ॥ ९८ ॥ अथ न्यदा यया सादं कृतवीरेण ततिपता । तपोवन सनामित्वाद्भुक्त्वा गतव्यमित्यमुं ॥ ९९ ॥ सहस्रबाहुं सभाय्य  
जमदग्निरभोजयत् । महाराजकुल्येषा सामग्री नास्ति भोजने ॥ १०० ॥ तपोवननिविधानामगता भवता कुत । इति स्वमातुरनुग्रामप्राप्तिद्रुकां  
मियः ॥ १०१ ॥ कृतवीरोन्नवीत्सापि तद्विद्यालभनादिकं । सोपि मोहोदयाविष्टा धेनुमकृतबक ॥ १०२ ॥ होमधेनुरिय तात वर्णाश्रमगुरोस्तव ।  
याचनया न युक्तेति तुदुक्त्या कोपवेगत ॥ १०३ ॥ परादं यद्धनं लोके तथोग्यं शुचिवीभुजां । न धेनुरीदृशी भोग्या कंदमूलफलादिभिः ॥ १०४ ॥  
इत्युक्त्वा धेनुमादाय दृष्टात्कारेण गच्छतः । अकस्मिन् पुरस्तात् जमदग्निं महीपतिः ॥ १०५ ॥ हत्वा स्वमार्गमुत्सृज्य कुमार्गेणभूयुरेनुसुख । वरंती  
म्यदर्शनं स्वीकार किया मुनिराज भी उससे बहुत संतुष्ट हुये और उसे इच्छानुसार फल देनेवाली कामधेनु नामकी  
विद्या दी और मंत्र सहित एक फरसा दिया ॥ ९७-९९ ॥ इसके बाद किसी एक दिन पुत्र कृतवीरके साथ उसका  
पिता सहस्रबाहु उसी वनमें आया । माई होनेसे जमदग्निने सहस्राबाहुसे कहा कि आज तो भोजन करके जाना,  
यह कहकर उसने उसे अच्छीतरह भोजन कराया भोजनके बाद कृतवीरने अपनी माकी छोटी बहिन रेणुकासे पूछा  
कि भोजनमें ऐसी सामग्री महाराजाओंके घर भी नहीं होती है ऐसी सामग्री इस तपोवनमें रहनेवाले तुम्हारे यहा  
कहाँसे आई उत्तरमें रेणुका ने भी कह दिया ये सब सामग्री कामधेनु नाम की विद्यासे प्राप्त होती है यह सुनकर और  
मोहनीय कर्मके उदय लोभमें आकर वह धेनु मांगी, रेणुका ने कहा कि वर्णाश्रममें आकर राजाने कहा कि पृथ्वीमें जो बहुमूल्य  
सामाना योग्य नहीं है । उसके ये वचन सुनकर और क्रोधके आवेष्टमें आकर राजाने कहा कि पृथ्वीमें जो बहुमूल्य  
धन है वह राजाओंके ही योग्य है ऐसी गाय कंद मूल फल खानेवालोंके उपयोग करने योग्य नहीं है । यह कहकर  
दृष्टसे गाय लेकर वह चलने लगा तब जमदग्निने सामने आकर गाय ले जानेसे उसे रोका । कुमार्गेणामी उसे मार-  
कर रास्ता साफकर अपने नगरकी ओर चला । पतिके वियोगसे कुछोदरी रेणुका रोने लगी ॥ ९९-१०६ ॥ इतनेमें  
ही उसके दोनों पुत्र जो वनमें कंद मूल फल लेने गये थे वे वापिस आगये देखकर बड़ा ही आश्चर्य करने लगे कि  
यह क्या है ॥ १०७ ॥ वहाँका हाल देखकर और सब समाचार जानकर वे बड़े ही क्रोधित हुए स्वामाविक पराक्रमी  
उन दोनों भाइयोंने पहिले तो युक्तियोंके वचनकर माताका शोक दूर किया और फिर तेज बारवाले फरसेको ध्वजा

रेणुका भर्तृभरणात्प्राहोदगी ॥ १०६ ॥ अथ पुत्री बनात्पुष्पकंदमूलफलदिकं । आदायालोक्य सप्राप्तौ क्रिमेतदिति विस्मयात् ॥ १०७ ॥ दृष्ट्वा विशय तत्त्व  
सकोपौ शोकनिर्भरा । निर्दोष्य युक्तिमद्वयिभक्तौ नैसर्गिकविक्रमौ ॥ १०८ ॥ चञ्चलनिशितोत्पलप्रपञ्च यमसन्निभौ । गोमूत्रे मरण पुण्यहेतुरित्यविमानत ॥ १०९ ॥  
भूयते तत्पर्यवास्तां कं सहेत भितुर्वच । इत्युत्पानुगतशेषस्त्रिगुणानुनिकुमारौ ॥ ११० ॥ तद्वत् मार्गमन्वेत्य मार्कतनगरादिकं । सप्राप्य कृतसंप्राप्तौ  
कृतवीरेण भूयति ॥ १११ ॥ सहस्रबाहुसतानतिःशेवीकरणोत्सुकं ॥ ११२ ॥ श्लाघा परशुरामीयमभिप्रायं महीपतिः । भूपालचरदेवेन निदानविपर्ययात् ॥ ११३ ॥ समु-  
दयतेन तपसो महाशुक्ल जन्मिना । राज्ञी नगर्भा चित्रमतिं ता शोडित्यतापसाः ॥ ११४ ॥ तदग्रज समादाय गत्वाविष्णुतचर्यया । स सुवंचाख्यनि-  
बनाकर यमके समान दोनों ही भाई सोचने लगे कि गायके ग्रहण करनेमें यदि मरण भी हो जाय तो भी पुण्यका  
ही कारण है ऐसा निश्चय है तथा शास्त्रोंसे भी सुना जाता है और फिर यह बात तो रहो पित्तके मरणको कौन  
सह सकता है इसतरह कहकर और साथमें आनेवाले शत्रुको लेकर वे दोनों मुनिकुमार उसी मार्गको दृढ़ते हुए आ-  
योध्या नगरमें प्रवेश किया । देखो संसारमें जो शत्रु लिंग राजा सहस्रबाहुको मारा और श्यामके समय  
दुःखोंकी परंपगरूप फल शीघ्र ही दे डालते हैं । इन्हें उनके विपत्ति समान दैदीप्यमान घोर पाप असह्य  
को विलुल नाश करनेका विचारकर लिया तथा पहिले राजा भूपालका जीव जो निदानरूपी विषसे दूषित तपश्चरण-  
कर महाशुक्ल विमानमें देव उत्पन्न हुआ था वह सहस्रबाहुकी रानी चित्रमतीके गर्भमें आगया था । यह बात (चित्र-  
मती गर्भवती है) चित्रमतीके बड़े भाई शोडित्य नामके तपसीने भी सुन ली थी तथा उसने परशुरामका सहस्र-  
बाहुकी सब संतान नाश करनेका विचार भी सुन लिया था इसलिये वह चित्रमतीको छिपाकर वनमें लेगया । उसने  
सुबंशु नामके निर्ग्रंथ मुनिसे सब समाचार कहे चित्रमतीको उन्हींके समीप छोड दिया और निवेदन किया कि हे  
आर्य मेरे मठमें कोई नहीं है मैं वहां जाकर पीछे आऊंगा तबतक यह देवी यहां ही बनी रहेगी यह कहकर वह वहां-  
से चला गया । उसके चले जानेके बाद ही उसीसमय चित्रमतीके पुत्र हुआ वहांकी वन देवताने उसीसमय जान  
लिया कि यह बालक भरतक्षेत्रका अधिपति (चक्रवर्ती) होनेवाला है यही समझकर उस वनदेवताने उसे उठा लिया  
और वह उसका पालन पोषण करने लगी इसतरह वह कुमार विना किसी विघ्न और बाधाके दिन रात बढ़ने लगा

प्रथमुनेरविवक्षितं ॥११६॥ तत्त्वमीये निधायार्थं मते मे गारितं कल्पे । तत्र गत्वा समालोक्य कर्मणि तत्र लिप्यन् ॥११७॥ देवीनि गतवत्सस्मात्सदैवा-  
सूतं सा सुतं । तदानीमेव तं तत्र भविष्यद्भूताधिप ॥ ११८ ॥ बालकोयमेति ज्ञानात्सर्वचक्रुर्नन्देवता । तामिदं भ्रमात्यजान्निधौ नानावधमवर्द्धत ॥११९॥  
शिवानि, कतिचिन्नीत्वा महीमांश्चिह्नं जातवान् । बालकोयं कथंभावी भट्टारक शुभाशुभ ॥ १२० ॥ अनुगुणस्य वक्तव्यमिति देव्योक्तिः मुनिः । एव  
चमी भवेद्वं वत्सरे बोद्धो ध्रुव ॥ १२१ ॥ सागिन्नुद्गीगतत्थलकिलासधृतमध्यगान् । उष्णान् एषानुपादाय भक्षयिष्यति बालकः ॥१२२॥ अभिज्ञानमिदं  
भाविव चक्रवर्त्तस्य निश्चित । तस्मान्मास भयं यासीरिति तामिति दु खिता ॥ १२३ ॥ सुवचाह्यो मृगं स्वास्थ्यमनैपीकरात्मकः । ततस्तदग्रजो  
भ्येत्य तां नीवागेहमात्मन ॥१२४॥ समुद्रमुत्तैयमांश्चिह्नंमेदिनीमिति तस्य स । सुमैममिति संप्रीत्या चक्रे नाम हुतोत्सव ॥१२५॥ तत्र शास्त्राणि स-  
वाणि सप्रयोगाणि सतत । सोपदेशं समभ्यस्यन् वर्द्धतेऽस्य स गोपित ॥ १२६ ॥ अयं तौ रेणुकीपुत्रौ प्रवृद्धोभ्रमराकमौ । त्रि सप्तहस्तौ निर्मूलमापाय क-

॥११८-११९॥ कितने ही दिन बीत जानेपर उस चित्रमती देवीने मुनिराजके पास जाकर पूछा कि हे भट्टारक ! यह बालक पृथ्वीको छूकर उत्पन्न हुआ है इसलिये कृपाकर कहिये कि यह कैसा होगा और इसका शुभाशुभ कैसा है । तब, मुनिराजने कहा कि हे मा ! यह बालक सोलहवें ही वर्ष में अवश्य ही चक्रवर्ती होगा ॥ १२०-१२१ ॥ उसकी परीक्षाके चिन्ह ये हैं कि जलते हुए चूल्हे पर रखी हुई कढ़ाईके गर्म घीमेंसे गर्मगर्म पूजोंको निकालकर यह बालक खा लेगा यह इसके होनहार चक्रवर्तिपनेका चिन्ह है इसलिये तू किसी तरहका डर मतकर इमतरह इंद्रियोंको नष्टकरनेवाले सुबंधु मुनिने अत्यंत दुःख करनेवाली उस चित्रमतीको कुछ स्वस्थ किया । इसके बाद चित्रमतीका बड़ा भाई शंडिल्य नामका तपसी आकर उसे अपने घर ले गया ॥ १२२-१२४ ॥ यह बालक पृथ्वीको छूकर उत्पन्न हुआ है इसीलिये शंडिल्यने बड़े उत्सव और प्रेमके साथ उसका सुभोग नाम रखवा ॥१२५॥ बड़ापर वह उपदेशके अनुसार निरंतर प्रयोगसहित सब शास्त्रोंका अभ्यास करने लगा और इमतरह छिपकर वह बढ़ने लगा ॥१२६॥ इधर जिनका उग्र पराक्रम दिन रात बढ रहा है ऐसे उन दोनों रेणुकीके पुत्रोंने इकईसवार शत्रियोंके वंशका नाश किया ॥ १२७ ॥ अपने पिताके मारे जानेसे वैर बांधकर मारे हुये समस्त राजाओंके मस्तकोंको एक जगह इकठे करनेकी इच्छासे उन्होंने उनके सब मस्तकोंको शिलाके एक स्तंभमें इकट्ठा किया ॥ १२८ ॥ वे दोनों ही भाई मिलकर समस्त पृथ्वीमंडलकी राज्य लक्ष्मीका अनुभव करने लगे । किसी एक दिन निमिषज्ञानीने आकर उन दोनों कुमारोंसे कहा कि आपका बहुत उत्पन्न हो चुका है इसके लिये आप कुछ उपाय

नि यान्दह ॥१२०॥ स्वहृताभिरभ्यान्विता स्थितिः । नि यान्दह ॥१२०॥  
 ॥ १३० ॥ दत्ता यस्यापान भूत्वा परिणस्यत्सा म्रियुः । इतिदरामं राजानं परशिशमवुधत ॥१३१॥ शुत्वा मयावन्नैमित्तिके चेतसि धारयन् । कुत्वा  
 परशुरामोपि दानशाला सुभोजनो ॥ १३२ ॥ तत्परीक्षार्थमायातु येन विभ्रणनार्थिनः । इत्याघोषयतिस्वैतत् शुत्वा तेषि समागमन् ॥१३३॥ तेषा पात्र  
 स्यतंहंतान् सप्रदक्ष्य परीक्षितुं । तान् भोजयति भूषाले प्रत्यह स्वनियोगिभिः ॥१३४॥ गिरुमरणतृप्तात् स्वमातुवबुद्धवान् । स्वचक्रेविवसंग्रहासिकालायान  
 ओदयत्येव काले कल्याणकृद्विधि ॥ १३५ ॥ दुर्बलमुनिनिर्दिष्टसद्वृत्तात्मस्वरूपकः । परिव्राजकत्वेण स्वरहस्यार्थवेदिना ॥ १३६ ॥ राजपुत्रसमूहेन उभौमोघ्यागमपुरं । समग्या-  
 च तत्त्वतः ॥ १३५ ॥ दुर्बलमुनिनिर्दिष्टसद्वृत्तात्मस्वरूपकः । परिव्राजकत्वेण स्वरहस्यार्थवेदिना ॥ १३६ ॥ तदा साकेतवास्तव्यदेवतार्कदनं महत् । महीकपो दिवा तारादृष्ट्यादिरभवदुदरे ॥१३८॥ तदागल्य कुमारो

कीजिये इस बातपर विश्राम दिलानेकेलिये मैं एक चिन्ह बतलाता हूं वह यह है कि आपके हाथसे मारे हुये राजाओं  
 के दांत जिसके लिये भोजनरूप होकर परिणत हों जायेंगे उसे ही आप अपना शत्रु समझना इसतरह फरसाके स्वामी  
 और उन्हें यथार्थ रीतिसे चित्तमें धारणकर परशुरामने शत्रुकी परीक्षा करनेलिये अच्छे २ भोजनोंवाली  
 एक दानशाला खुलवाई और सब जगह घोषणा करा दी कि जो २ भोजन करना चाहते हों वे सब यहां  
 आवें । इस घोषणाको सुनकर बहुतसे लोग उसमें भोजन करनेके लिये आते थे उनकी परीक्षा करनेके  
 लिये उन्हें सबसे पहिले पात्रमें ( थालीमें ) रखे हुये वे दांत दिखाये जाते थे इस तरह वह इंद्रराम राजा अपने  
 कर्मचारियोंके द्वारा सबको भोजन कराने लगा ॥१३४॥ इसर सुभौमने अपनी मातासे पिताके मरनेके समाचार  
 जान लिये वास्तवमें उसका चक्रवर्तीपना प्राप्त होनेका समय आ चुका था, सुबंधुनिके कहे अनुसार उसने  
 अपना छिपा हुआ वृतांत भी जान लिया था इसलिये परिव्राजकका मेघ बनाकर अपने गुप्त अभिषायको जाननेवाले  
 राजपुत्रोंके समूहके साथ वह सुभौम नगरमें आया सो ठीक ही है क्योंकि कल्याण करने वाला माग्य अपने समय पर  
 भाग्यवानोंको प्रेरणा करता ही है ॥ १३५-१३७ ॥ उससमय अयोध्या नगरके रहनेवाले देवता लोग जोरसे  
 रोने लगे, वहांपर भूकंप हुआ और दिनमें ही तारे दीखने लगे ॥ १३८ ॥ तदनंतर वह सुभौम कुमार भोजन करने  
 के लिये उस शालामें आया, वहांके लोगोंने उसे बुलाया ऊंचे आसनपर बिठाया और निधुक्त किये हुए लोगोंने उसे  
 उन मारे हुए राजाओंके दांत दिखाया परंतु वे दांत उसके प्रभावसे शालि चावलोंके मातरूप होगये उन्हें देखकर

सो शान्ता भोक्तुमुपागतः । तमाह्वय निवेश्योर्वासने हतभयुजः ॥ १३९ ॥ नियुक्ता रक्षयसि स्म दत्तास्तस्यानुभाषतः । कलमामं तदासंस्ते तद्वद्व्या-  
परीवारिणः ॥ १४० ॥ व्यजिह्वपट्टं सोपि स जुवानीयतामिति । समर्थोऽग्राहिणोद्भृशस्तेपि तं प्राप्य निपुणः ॥ १४१ ॥ आहूतोसि भरीशेन त्वमेका-  
धियुदाहुन् । नाह यूयमिवास्मादायजीविष्ठां तप्तदंतीकी ॥ १४२ ॥ किमिलेज्यामि यातेति तज्जितान्त्वभाषतः । भटा भयम्बरप्रस्ताऽयुः सर्वे यथा-  
यथ ॥ १४३ ॥ युक्ता परशुरामस्तकुटुम्बघ्वासनदसाधनः । समागमं तदाढोक्त्वा सुमीमांसिमुचं ययौ ॥ १४४ ॥ वरुं परशुरामस्तप्तेन योद्धुं सदाक्षिमत ।  
अन्यप्रयुतिपाता भरतव्यतराधिपः ॥ १४५ ॥ रक्षित्वास्यालुमारु त तस्मात्स्याप्रतो बलः । श्वातुमक्षममालोक्त्वा स्वयं गजमनोदयत ॥ १४६ ॥ सह-  
मेव सुभीमस्याप्यभवद् गंधवारणः । चक्रं च सजिघौ दिव्य मार्गेभौमत्वसाधनं ॥ १४७ ॥ सहस्रदेवतारप्यं किं न स्यात्समुले विधौ । वारेण्डर समारुणा-  
परिवारके लोणैने राजाको खबर दी राजाने तुरंत ही सामर्थ्यबाले सेवक भेज दिये और कहला भेजा कि उसे पकड़-  
कर यहाँ ले आओ । वे कठोर सेवक लोग उसके समीप गये और कहने लगे कि तुमको महागजने बुलाया है जल्दी  
चलो । उधरमें सुभीमने कहा कि मैं तुम्हारे समान राजासे कुछ जीविका नहीं लेना हूँ इसलिये मैं क्यों चलूँ यह  
कहकर सुभीमने उन्हें कुछ तर्जना मी की । उसके प्रभावसे उन योद्धाओंको भी भय उबर चढ़ आया और वे सब  
अपनी २ जगहपर भाग गये ॥ १३९-१४३ ॥ यह सुनकर परशुराम क्रोधित होकर सेना तैयार कर आया और सुभीम-  
को देखकर लड़नेके लिये उसके सामने आया ॥ १४४ ॥ परशुरामने उसके साथ युद्ध करनेके लिये अपनी सेनाको  
आज्ञा दी । परंतु जिस भारतके अधिपति ध्यंतर्ग देवने जन्मसे लेकर उसकी रक्षा की थी उसने आकर उस कुमारकी  
रक्षा की इसलिये उसके सामने परशुरामकी सेना ठहर नहीं सकी । यह देखकर परशुरामने स्वयं अपना हाथी आने  
बढाया ॥ १४४-१४६ ॥ उसीसमय अकस्मात् सुभीमके सामने मी एक गंधवारण हाथी आ खड़ा हुआ और सम-  
स्त भूमंडलको सिद्ध करनेवाला जीतनेवाला दिव्य चक्राब मी पास ही आ सुओभित होने लगा । एक हजार देवता  
उसकी रक्षा करते थे सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यके सन्मुख होनेपर क्या २ नहीं होता है । वह सुभीम कुमार अपूर्व  
इंद्रके समान उस हाथीपर सवार हुआ और उसने सूर्यके समान एक हजार आरे बाला वह चक्र हाथमें लिया । इस-  
तरह वह कुमार उस सेना को सुओभित करने लगा । उसे देखकर जमदग्निना पुत्र इंद्रराम अथवा परशुराम मी को-  
षित होकर उसे मारनेके लिये सामने आया परंतु कुमारने चक्रसे उसे उसीसमय परलोक भेज दिया और उन्मीलन  
अन्य सब सेनाको अभयघोषणा कर दी ॥ १४७-१५० ॥ श्री अरनाथ तीर्थंकरके बाद दोस्रो चरित्र कर्त्तव्य उर्ध्व शीत

पूर्वेद इव भास्करे ॥ १४८ ॥ सहस्रारं करे कृत्वा कुमारश्चक्रमावभा ॥ त हृष्ट्वा दृष्टवान् दत्तु जामदग्न्योभ्युपागमत् ॥ १४९ ॥ चक्रेण तं कुमारोपि लो-  
कातरमजीगमत् । अकरोच्चान्यसैन्यस्य तदैवाभयवोषणं ॥ १५० ॥ अरेशतीर्थस्तानकाले द्विशतकोटिषु । स द्वात्रिंशत्तु जातेभूत्सुभौमो वत्सरेष्वयं ॥  
१५१ ॥ अभिमृताखिलारातिरष्टमश्चक्रवर्तिषु । सभा पृष्टिषहस्रायुरष्टाविंशतिचापम ॥ १५२ ॥ जातरूपच्छवि श्रीमानिन्द्राकुलकैसरो । विराजमानो  
विस्पष्टचक्रादिसुमलक्षणैः ॥ १५३ ॥ ततो रत्नानि शेषाणि निधयोपि नवाभवन् । षट्खड्गस्याधिपत्येन प्रादुरासीत्स चक्रदृष्ट ॥ १५४ ॥ चक्रवर्तित्वसंप्रा-  
प्त्या भोगान् दधविवाधिरं । अन्वभूदिव देवेन्द्रो दिवि दिव्यान्वरातं ॥ १५५ ॥ अन्येद्युः सूपकारोऽस्य नाम्नामृतरसायनः । रसायनाभिधामस्मे मुदादाद-  
तीव्ररुदं । वध्यासं वृषमित्यात्तनिदानं पुण्यत्वेनातः ॥ १५६ ॥ ज्योतिर्लोकैकमरो भूत्वा विभंगज्ञानवीक्षणं । अनुस्पृष्ट्य स्रवा वैरं विधासु स महीपतिं ॥  
जानेपरं सुभौम चक्रवर्ती हुआ था, ॥ १५१ ॥ उसने समस्त शत्रुओंको वश कर लिया था, वह आठवां चक्रवर्ती था  
साठ हजार वर्षकी उसकी आयु थी अष्टादश धनुष ऊँचा शरीर था ॥ १५२ ॥ सुवर्णके समान उसके शरीरकी  
कांति थी इक्ष्वाकुकुलमें वह श्रीमान सिंहके समान था और चक्र आदि स्पष्ट दिखनेवाले शुभ लक्षणोंसे वह  
शुशोमित था ॥ १५३ ॥ तदनंतर चक्रके सिवाय वाकीके सब रत्न और नौ निधियां भी उसके प्रगट हुई थीं  
इसतरह छहों खंडका स्वामी होकर वह चक्रवर्ती प्रगट हुआ था ॥ १५४ ॥ जिसप्रकार स्वर्गमें इंद्र निरंतर भोगों-  
का अनुभव करता है उसीप्रकार चक्रवर्तीपनेके योग्य प्राप्त हुए दशतरहके भोगोंको वह बहुत दिनतक अनुभव करता  
रहा था ॥ १५५ ॥ किसी एक दिन अमृतरसायन नामके हितैषी रसोदयाने उसे अम्लिका नामकी रसायन खानेके  
लिए दी उसका नाम सुनकर ही सुभौमने उसके गुणोंका तो कुछ विचार नहीं किया किंतु उसके वैरसे प्रेरित होकर  
कोषसे उसने उस रसोदयाको दंडित किया ॥ १५६-१५७ ॥ उस रसोदयाको भी बहुत क्रोध आया उसने निदान किया  
कि मैं इस राजाको मारूंगा इसप्रकार निदान करता हुआ वह उसी दंडसे मर गया । उसका कुछ पुण्य कर्म वाकी  
बचा था जिससे वह ज्योतिर्लोकमें जाकर ज्योतिषी देव हुआ वहापर उसके मिथ्या अवधिज्ञान था ही उससे उसने  
पहिलेका सब हाल जान लिया और क्रोधित होकर उस वैरी राजाको (सुभौमको) मारनेकी इच्छाकी ॥ १५८-१५९ ॥  
उसने राजाको जिहाका लोलुपी समझकर एक वैश्यका भेष धारण किया और वह स्वादिष्ट फल देकर प्रतिदिन उस-  
की सेवा करने लगा ॥ १६० ॥ किसी एक दिन उस वैश्यरूप देवने आकर राजासे कहा कि महाराज वे फल तो अब



॥ १५९ ॥ जिह्मलोलुपमालक्ष्य सशूल वणिगाकृति । सुस्वाधुफलदनेन प्रलहं तमसेवत ॥ १६० ॥ निष्ठितानि फलानीति कदाचित्तेन भाषिते । आनेत-  
व्यानि तान्येव गलेत्याख्यन्युपेति त ॥ १६१ ॥ आनेतु तान्यशक्त्यानि प्राङ्मयराध्य देवता । तद्वनस्वामिनीं रीधं लब्धान्येतानि कानिचित् ॥ १६२ ॥  
आसक्तिस्तेषु चेदस्ति देवस्य तद्वने भया । सह तत्रत्वमायाहि यथेष्ट नानि भक्षय ॥ १६३ ॥ इति प्रलभन तस्य विश्रस्य प्रतिपन्नवान् । राजा प्रक्षीणपु-  
ष्पात्ता विनश्यति विचारणा ॥ १६४ ॥ एतद्राज्यं परिलज्य रसनैदियलोलुपः । मत्स्यवर्त्तिकविनष्टेति मंत्रिभिर्वारितोव्यसा ॥ १६५ ॥ तदुक्तमतिरुद्धाह  
पोतेनागाहतां बुधि । तदा रत्नानि तदेगेहाद् व्यपेतान्खिलान्यपि ॥ १६६ ॥ सहस्रयस्त्रस्राणि प्रलेख निधिभिः सम । तद्विद्धिवा वणिग्वरी नीत्वा मर्च्ये  
बुधि द्विषः ॥ १६७ ॥ स्वप्राजन्माकृतिं तस्य प्रकटीकृत्य दुर्वच । उक्त्वा वैराजुर्बध च क्रूरयिन्नवधं व्यधात् ॥ १६८ ॥ कुम्भोमोपि विपण्यते रौद्रव्यान-  
निवट गये उचरये राजाने कदा किं तुम फिराकर उन्हीं वनोंको जाओ ॥ १६९ ॥ तब उस वैश्यने फिर कहा कि अब  
उनका लाना असंभव है पहिले मैंने उस बनकी स्वामिनी देवताका बहुत दिनतक आराधन किया था इसीलिये मुझे  
वे थोड़ेसे फल मिले थे ॥ १६२ ॥ यदि आपको उनके खानेकी लालसा ही हो आप मेरे साथ उस बनमें चलिये और  
वहाँपर इच्छानुसार खूब खाइये ॥ १६३ ॥ इसप्रकार उस देवने जो उगनेका उपाय किया था राजा सुमौमने भी उस-  
पर विश्वास कर लिया तो ठीक ही है क्योंकि जिनका पुण्य नष्ट हो जाता है उनके विचार भी नष्ट हो जाते हैं ॥  
१६४ ॥ उस देवके साथ जाते हुए देखकर मंत्रियोंने राजाको रोका और कहा कि जिह्वा हृदयके लोलुपी होकर मछ-  
लीके समान इस सज्जको छोड़कर आप क्यों नष्ट होना चाहते हैं ॥ १६५ ॥ परंतु उस मूर्खने मंत्रियोंके कहे हुए  
वाक्य विलकुल न सुने और जहाजमें बैठकर वह उस वैश्यके साथ समुद्रमें चलने लगा । उसीसमय उसके घरसे जिनकी  
एक एक हजार यश रक्षा करते थे ऐसे सब रत्न चले गये तथा उनके साथ नौ निधियां भी चली गई यह समाचार  
जानकर वह वैश्यका मेघ बनाया हुआ देव भी अपने शत्रु राजा सुमौमको समुद्रके बीचमें ले गया ॥ १६६-१६७ ॥ वहाँ  
ले जाकर उसे पहिले जन्मका अपना रसोदयाका रूप प्रगट कर दिखालाया और उस दुष्टने अनेक दुर्वचन कहकर प-  
हिली बंधी हुई शत्रुतासे विचित्र रीतिसे उसे मार डाला ॥ १६८ ॥ सुमौम भी उस विपत्तिके अंतसमयमें रौद्रव्यानमें  
लीन रहा इसलिये मरकर नरकमें पहुंचा सो ठीक ही है क्योंकि दुर्बुद्धिसे क्या क्या नहीं होता है ॥ १६९ ॥ सहस्र-  
बाहु लोभ करनेसे अपने पुत्र सहित तिर्यंच गतिमें पहुंचा और हिंसा करनेमें तत्पर रहनेसे जमदग्निनके दोनों पुत्र  
अधोगतिमें ( नरकगति ) पहुंचे ॥ १७० ॥ इसीलिये बुद्धिमान लोग इन रागेद्वेष दोनोंको छोड़ देते हैं क्योंकि इन

परायणः । आश्री गतिं समापनो दैर्घ्यात्किञ्च आसते ॥२६॥ लोभात्सहस्राहुष ग्राप सियेगतिं सुदुः । जमदग्निमुतो हि सापर-  
तव एक त्वर्जयेतो रागद्वेषौ मनीषिणः । तत्यागावापुर्व्वव्याप्याप्यसि च परं पदं ॥ १७१ ॥ एकोपि सिंहसदृशः सुकलावनीमो हवा पितुर्व्वक्तुः । जम-  
दग्निमुद । कीलो स्वया धवलिताखिलदिक्कुसुममयको धुनुनयवसो नरकष्टमोऽभूत् ॥ १७२ ॥ भूपालभूपतिरसद्यतयोविद्यामी शुद्धेभवन्यद्विती । जम-  
सागरासुः । अयुत्वा ततः सकलचक्रधरः सुमौमो रामान्तरुमरकनायकता जगाम ॥ १७३ ॥ नंदिवेणो वलः पुंडरीकोर्ध्वरताधिपः । राजसुभाविनो  
जती तुवीयेत्र भवतिरे ॥ १७४ ॥ इकेत्वाश्रयशाल्येन तपः कृत्वायुषोवर्धा । आये कल्ये सुमुत्पय ततः प्रच्युतय चक्रिणः ॥ १७५ ॥ पद्मावदक्षरकोटप-  
व्दवत् ॥ १७७ ॥ राक्षस्यकपुराधीयादिस्वाकोर्व्वरसेनतः ॥ १७६ ॥ वैजयलो वलो देवो लक्ष्मीमत्यामजायत । पुंडरीकस्त्योरासुः खत्रयत्वद्विया-  
व्यतीतौ तत्रैव भारते । राक्षस्यकपुराधीयादिस्वाकोर्व्वरसेनतः ॥ १७६ ॥ वैजयलो वलो देवो लक्ष्मीमत्यामजायत । पुंडरीकस्त्योरासुः खत्रयत्वद्विया-  
दोनोंका त्याग कर देनेसे कोई किसीतरङ्गी आपत्ति नहीं आती और उसम मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है ॥ १७१ ॥  
देखो आठवां चक्रवर्ती सुमौम यद्यपि सिंहके समान एक था तथापि वह समस्त पृथ्वीका स्वामी हुआ अपने पिताके  
मारनेवाले जमदग्निनके दोनों पुत्रोंको उसने मारा और अपनी कीर्तिसे सब दिशाएं सफेद करदीं परंतु वही चक्र-  
वर्ती दुर्नयके वशमें पडकर (हृदिय लंपटी होकर) नरकमें पहुंचा ॥ १७३ ॥ सुमौम चक्रवर्तीका जीव पहिले तो भूपाल राजा था  
फिर असब तपश्चरणकर शुक्र नामके बड़े विमानमें सोलह सांगरकी आयुवाला देव हुआ वहांसे च्युत होकर सुमौम  
नामका सकल चक्रवर्ती हुआ और फिर परशुरामको मारकर नरकका अधिपति हुआ अर्थात् मारकर नगरमें  
गया ॥ १७४ ॥  
अथानंतर-इन्हींके समय नंदिवेण वलभद्र और पुंडरीक नारायण ये दोनों ही राजपुत्र हुये हैं । इनमेंसे पुंडरीक  
का जीव तीसरे भवमें राजा सुकेतुके आश्रयसे शल्यपूर्व्वक (निदान नामकी भल्य सहित) तपश्चरणकर आयुके अंत  
में पहिले स्वर्गमें देव हुआ था वहांसे चयकर चक्रवर्तीके बाद छहसौ करोड वर्ष वीत जानेपर इस भरतक्षेत्रके  
इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए चक्रपुर नगरके राजा वरसेनके रानी लक्ष्मीमतीके पुंडरीक नामका पुत्र हुआ था तथा इन्हीं  
राजाके वैजयंती रानीसे वलदेव नंदिवेण हुआ था । इन दोनों भाइयोंकी आयु छण्यष हजार वर्षकी थी, खरीर छ-  
ब्जित धनुष ऊंचा था, इनकी आयु नियत थी अपने तपश्चरणसे इकठे हुए पुण्यसे समयानुसार उनकी आयु सुलसे  
व्यतीत हो रही थी ॥ १७४-१७८ ॥ किसी एकसमय इंद्रपुरके राजा उपेद्रसेनने अपनी पद्मावती नामकी कन्या पुं-

रिपुः । पद्मावता युता स्वस्य पुंडरीकाय दनवान् ॥ १७९ ॥ अथ दर्श दुर्ग-नारः मुक्तेषु ग्राह्यो रिपुः । निचोपाजितकर्मसुरेण भवशान्ति ॥ १८० ॥  
 आत्मा क्रमेण संचित्य शुभ तदनुगन्त ॥ भूत्रा चक्रपुराधीशो वसीहतवसुर ॥ १८१ ॥ भीष्माकर्मउल्लगत्वादनोढा परतेगसां । तद्विवाहयुते  
 कृत्वा सप्तदशोपसाधन ॥ १८२ ॥ निम्नुभो मारकोरीण नारकेभ्यो निर्दयः । ग्रसिताउडविकाति पुंडरीक विषासुक ॥ १८३ ॥ शुद्धा बहुविध-  
 नामा तेनोदयततेत्रसा । तयकागनियामेन घातितासुराद १. ॥ १८४ ॥ तातुभाविष चद्राकीं सयुकां लोकपालकां । स्वप्रभाक्रान्तिरुचकां पालयित्वा  
 विरं धर्ग ॥ १८५ ॥ अभिमक्कथिप्रो प्रीतिं परमा प्राणतु पुण्यक् । व्याप्तचक्षुर्विजोयां या रम्यं कविपेयवर्ण ॥ ८६ ॥ ततोभिवन्धायताः परस्परसमु-  
 द्रवात् । प्रेम्णस्तुमेत्यामांशमपि तृप्तिर्नृपवज्रा ॥ १८७ ॥ पुंडरीकाधिरं भुवत्वा भोगोस्तत्रातिशक्तिः । बधयुनांरक घोरे वहाहंभपरिमह ॥ १८८ ॥

रीकको दी थी ॥ १७९ ॥ अथानंतर पहिले भवमें जो सुक्तेत राजा था जोकि पुंडरीकके जीवका शत्रु था तथा अत्यंत  
 दुर्गचारी था उसने उपार्जन किये हुए अपने कर्मोंके अनुसार बहुत दिनतक इस संसारमें परिभ्रमण किया फिर शुभ  
 कर्मोंका संचयकर उनके उदयसे निशुंभनामका चक्रपुर नगरका राजा हुआ था, उमने सब पृथ्वीको अपने वश कर  
 लिया था ग्रीष्म ऋतुके मूर्धमंडलके समान उसकी कांति थी इसीलिये वह दूसरेके तेजको सहन नहीं कर सकता था ।  
 पुंडरीकके साथ पद्मावतीके विवाहकी बात सुनकर वह बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने अपनी सब सेना तैयार कर  
 ली । वह सब शत्रुओंका नाश करनेवाला था नागकिर्योंसे भी अत्यंत निर्दय था और उमका अखंड पराक्रम सब ज-  
 गह फैल गया था । उसीने पुंडरीकको मारनेकी इच्छा प्रगट की ॥ १८०-१८३ ॥ अंतमें जियका तेज प्रगट हो रहा है  
 ऐसे पुंडरीकके साथ वह अनेक तरहसे लड़ा उमे मारनेके लिये उसपर चक्र चलाया परंतु पुंडरीकके द्वारा उसी चक्र-  
 से मारा जाकर वह नरकमें पहुंचा ॥ १८४ ॥ सूर्य चद्रमाके समान अथवा मिले हुए दो लोकपालोंके समान उन दोनों  
 ही माइयोंने अपनी कांतिसे सब दिशाओंके समूहको आक्रमण कर लिया और बहुत दिनतक इस पृथ्वीका पालन  
 किया ॥ १८५ ॥ वे दोनों ही भाई बिना बांटी हुई लक्ष्मीका एक साथ उपयोग करते थे उन दोनोंमें बहुत प्रेम था  
 और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो किसी मनोहर एक विषयको देखते हुए और अलग २ रहते हुए दो नेत्र ही हों ॥  
 १८६ ॥ उन दोनोंकी राज्यसे उत्पन्न हुई वृप्ति तीन भवसे चले आ रहे परस्परके प्रेमसे उत्पन्न हुई वृप्ति के एक अंशकी  
 भी समता नहीं रखती थी ॥ १८७ ॥ पुंडरीकने बहुत दिन तक भोगोंका अनुभव किया उनमें अत्यंत आसक्त होने-  
 से घोर नरक आयुका बंध किया, बहुतसा आरंभ और परिग्रह धारण करनेसे तथा रौद्रध्यानके प्रभावसे मिले हुये

प्राप्ते रैवामिषधानाद्रुदमियात्वभावनं । प्राणैस्तमःप्रभा द्रुत्वा आविशद्वायुपञ्चभान् ॥ १८३ ॥ द्रुल्लवरादिगोम  
यतिं प्राप्य स्यमं प्रत्यपयत् ॥ १८० ॥ स वाह्याभ्यन्तरं शुद्धं तपः कृत्वा निराकुलः । द्रुल्लवराणि कर्मणि निर्मल्याप्य निर्वृतिं ॥ १८१ ॥ जातो नृतीमं  
जनने धरणीशुभौ पद्मासुरौ प्रथमकल्पगतावभूता । श्रीनन्दिपेणहलेश्चनिशुभशत्रु पृष्ठप्रिलंडधरणीदृष्ट च पुंडरीकः ॥ १८२ ॥  
इत्यार्षे त्रिपशिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भवद्रुणभद्राचार्यप्रणीतेऽरतार्यकरचक्रधर- सुमौमचक्रवर्ति-नन्दिपेणवलदेव-पुंडरीकादिचक्रवर्ति-निशुभ-  
नाम प्रसिद्धानु पुराणं परिसमाप्तं पंचपष्ठ पर्व ॥ ६५ ॥

## अथ षट्षष्टितमं पर्व ।

मोहमहममल्लं यो व्यजेष्टानिष्टकारिणं । करिद्र वा हरिः सौर्य मल्लिः शल्यहरोस्तु नः ॥ १ ॥ जंबूपलक्षिते द्वीपे मेरोः प्राक् कच्छकावती-  
मिथ्यात्व भाव प्राप्त होनेसे वह प्राण छोड़कर मरा और पाप कर्मोंके उदयसे तमःप्रभा नामके छद्दे नरक में पहुँचा ॥  
१८८-१८९ ॥ नन्दिपेण बलभद्रको उसके वियोगसे वैराग्य उत्पन्न हुआ था और उसने शिवघोष सुनिके समीप जा-  
कर संयम धारण कर लिया था ॥ ९० ॥ बाह्य और अभ्यन्तर दोनों तरहसे शुद्ध तपश्चरण तथा निराकुल होकर और  
मूलप्रकृति तथा उत्तर प्रकृति ऐसे दोनों तरहके कर्मोंको नाशकर वह मुक्त हुआ था ॥ १९१ ॥ तीसरे भवमें तो  
दोनों ही राजपुत्र हुए थे और फिर पहिले स्वर्गमें देव हुए थे तदनंतर एक तो नन्दिपेण बलभद्र हुआ था और दूसरा  
निशुभ प्रतिनारायणका शत्रु पुंडरीक हुआ था जो कि तीनों खंडोंके राजाओंका स्वामी अर्थात् नारायण था ॥ १९२ ॥  
इसप्रकार भगवद्रुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अरनाथ तीर्थंकर, सुमौम चक्रवर्ती, नन्दिपेण  
बलभद्र, पुंडरीक नारायण और निशुभ प्रतिनारायणका पुराण समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

## अथ छयासठ्वां पर्व ।

अथानंतर-जिसप्रकार सिंह हाथीको जीत लेता है उसीप्रकार जिन्होंने अनिष्ट करनेवाले मोहलुपी मल्लको  
मल्लके समान जीत लिया ऐसे मल्लिनाथ भगवान् हम लोगोंकी शल्योंका नाश करें ॥ १ ॥ इसी जंबूद्वीपमें मेरु  
पर्वतके पूर्वकी ओर वत्सकावती देशके वीतशोका नामके नगरमें वैश्रवण नामका राजा था ॥ २ ॥ वह बहुत बड़े

मिषये वीतशोकाव्यपुरे वैश्रवणाद्वय ॥ २ ॥ महाबहो मही तस्य महागुणमहीयम । कुम्भकारकरालग्रन्थेव नगवर्तिनी ॥ ३ ॥ योगस्ताभ्यो महा-  
स्तास्य प्रजानां क्षेमकारिणः । तां यस्मादुपयुज्यते कोशदुर्गबलादिभिः ॥ ४ ॥ महाभयेषु सयर्तुं संविनोति धनं प्रजा । घस्ते दड च सन्मार्गे सप्रवर्तयितुं  
स ताः ॥ ५ ॥ इति प्रवृद्धपुण्यानुभवसंपादित्वा श्रियं । प्रियामिव नवोढा तामुलीत्यानुभवमिदं ॥ ६ ॥ इदमित्प्रवृद्धारमे जुंभमाणा वनावली । विलो-  
कितुं पुरस्यायादुपशाल्यमुदात्तवी ॥ ७ ॥ तत्र शास्त्रोपशाखाः स्या प्रसार्येव नृपो महात् । अवगाढा महीं तस्यां न्यप्रोधः सेवितो द्विजः ॥ ८ ॥ तं वि-  
लोक्ष्य महीपालः पश्य पद्मस्य विस्तृतिं । कुण्डलं बद्धमूल्यं बहुश्रन्वेति मामय ॥ ९ ॥ दर्शयति चार्धं त्रियाणो पार्श्ववर्तिना । गत्वा वनातरे आ-  
त्वा तेनैवायसुर पया ॥ १० ॥ आमूलाद्भस्मित वीक्ष्य वज्रपतेन तं बटं । कस्यात्र नदमूलं कस्य का वात्र विस्तृतिः ॥ ११ ॥ कस्य का तुंगता  
वंशमें उत्पन्न हुआ था और बड़े बड़े गुणोंसे पूज्य था कुंभारके हाथमें लगी हुई मिट्टीके समान पृथ्वी उसके वंशमें  
थी ॥ ३ ॥ प्रजाका कल्याण करनेवाले उस राजासे प्रजाका सबसे बड़ा योग ( जो नहीं है उसकी प्राप्ति ) होता  
था क्योंकि वह खजाना किला और सेना आदिसे उस प्रजाका उपयोग करता था ॥ ४ ॥ वह किसी भयके समय  
रक्षा करनेके लिये धन इकट्ठा करता था और उस प्रजाको सन्मार्गमें चलानेके लिये उसे दंडदेता था ॥ ५ ॥  
इस प्रकार बंटते हुए पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई लक्ष्मीको वह प्रेमपूर्वक नवोढा स्त्रीके समान बहुत दिन तक  
अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन उदार बुद्धिवाला वह राजा वर्षाश्रुतके प्रारंभमें बटती हुई वनकी  
शोभाको देखनेकेलिये नगरके बाहर गया ॥ ७ ॥ जिस प्रकार कोई बड़ा राजा अपनी शाखा उपशाखाओंको  
फलाकर तथा बहुतसी पृथ्वीको घेर कर रहता है और अनेक द्विज अर्थात् ब्राह्मण उसकी सेवा करते हैं उसीप्रकार  
वहाँ पर एक बटका ( बटका ) दृश्य था जिसने अपनी बहुतसी शाखा उपशाखाएं फैला रखी थीं, वह बहुतसी  
पृथ्वीको घेरकर खड़ा था और अनेक द्विज अर्थात् पक्षीगण उसकी सेवा करते थे ॥ ८ ॥ उसे देखकर वह  
राजा आश्चर्यके साथ अपने समीप रहनेवाले प्रिय लोगोंको दिखलाने लगा और कहने लगा कि देखो ! देखो ! इसका  
विस्तार देखो यह मानो मेरा अनुकरण करके ही अपनी उंचाई और जड़ोंकी मजबूती धारण करता है । इसतरह  
कहकर वह आगे किसी दूसरे वनमें गया और वहाँ घूम फिरकर वह उसी मार्गसे लौटा ॥ ९-१० ॥ लौटकर उसने  
देखा कि विजलीके पड जानेसे वह बटका दृश्य जड़तक जलगया है उसे देखकर वह विचार करनेलगा कि इस संसार  
में जड़ किसकी मजबूत है अथवा विस्तार किसका अधिक है अथवा किसकी कितनी उंचाई है इस ऐसे मजबूत

नाम यथस्यापीदृशी गतिः । इति वितासमापन्न स्रजस्त सखतिस्थिते ॥ १२ ॥ प्रदाय राज्यं पुत्रां  
 रसायनः ॥ १३ ॥ राजमिवहुभिः सार्द्धमवाप्यायुव्रतं तपः । अगान्येकादशागानि विधाय विधिना धिया ॥ १४ ॥ सपाद्य ताथशृण्वान् ॥  
 चोपासमावतः । तपस्यन्नुच्चिरं प्राप्ते प्रास्ताक्षरेपरिग्रहः ॥ १५ ॥ सोऽन्तरविमानेषु संवभूतापरराजिते । त्रयास्त्रिंशत्समुद्रोपमायुर्हस्तोच्छ्रितः कृती  
 ॥ १६ ॥ मासान् षोडश मासान् चातिवाणं मनान् स्रज्ज ॥ १७ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्रलोकवत्सराणां  
 व्यतिक्रमे । भोगोत्सवं नि प्रवीचरो लोकानल्यन्तरावधे ॥ १८ ॥ तत्क्षेत्रमितमाशक्तिक्रियत्यामरेभिर्बुः । तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यागमिष्यति  
 भूतलं ॥ १९ ॥ अत्रैव भरते वगविषये मिथिलाधिप । इक्ष्वाकुभूति कुंभनामा काश्यपगोत्रज ॥ २० ॥ प्रजावती महादेवी तस्य  
 लक्ष्मीरिवापरा । पीयूषाविकृतावित्यवधुधारादिवम्बा ॥ २१ ॥ चैत्रमासे सिते पक्षे निशाते प्रतिपद्दिने । अधिन्या षोडश स्वमान् ज्यलोकिष्टेष्ट-  
 जडवाले ऊँचे और विस्तृत दृशकी भी ऐसी दशा है । वह इसीतरहके विचारोंमें मग्न हो गया और संसारकी दशासे  
 डर गया ॥ ११-१२ ॥ उसने राज्य तो अपने पुत्रको दे दिया और श्रीनाग नामके पर्वतपर विराजमान श्रीनाग  
 नामके मुनिराजके समीप जाकर धर्मरूपी रसायनका पान किया ॥ १३ ॥ उसने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण  
 की उग्र तपश्चरण किया और विधिपूर्वक अपनी बुद्धिके अनुसार ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया ॥ १४ ॥ उसने  
 सोलह कारण भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया और बहुत दिन तक तपश्चरणकर अंतमें  
 समस्त परिग्रहका त्याग किया ॥ १५ ॥ शरीरका त्यागकर अपराजित नामके अनुचर विमानमें अहमिंद्र हुआ । ते-  
 तीस सागरकी उसकी आयु थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था साडे सोलह महीने वीत जानेपर एकवार थोड़ा सा श्वास  
 लेता था तेतीस हजार वर्ष वीत जानेपर मानसिक योग्य पुद्गलोंका आहार लेता था । वह प्रविचाररहित भोगोंका  
 सेवन करता था, लोकनाडीके अंततक उसका अवधिज्ञान था उतनी ही कति थी और विक्रिया कृद्धिकी शक्ति भी  
 उतनी ही थी । जब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतार लेनेके  
 सन्मुख हुआ तब इसी भरतक्षेत्रके वंगाल देशमें मिथिलाधिपति इक्ष्वाकुवंशी काश्यप गोत्री राजा कुंभ राज्य करता था,  
 दूसरी लक्ष्मीके समान प्रजावती नामकी उसकी महादेवी थी इंद्रोंके द्वारा प्राप्त हुई रत्नोंकी धारा और अमृत  
 भोजन आदि विभूतियोंसे वह पूजित हुई थी ॥ १६-१७ ॥ चैत्रशुक्ला प्रतिपदाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें रात्रिके  
 पिछिले पहर उसने दृशको सूचित करनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ २२ ॥ उसीसमय मंगल पढ़नेवाले वंदीजन

सूचित ॥ २२ ॥ तदैव मंगलान्युचैः पेटुर्मंगलपाठका । हता प्रभातभेरी च हरनिश्राविधातिनी ॥ २३ ॥ प्रमुष्याधिकसतोषात्सत्वा मगलवेषधृक् ।  
पतिं प्रति गता रेखा चंद्रस्येव तदातनी ॥ २४ ॥ संमल्लुपुद्रती सा विकासयती स्वतेजसा । भानंदयद्विलोक्यैनामधीशोप्यासनादिभिः ॥ २५ ॥ सु-  
स्थितादीनाने सापि स्वमास्तास्तमवेदयत् । फलान्यमीषां शुश्रूषु परितोषकराण्यतः ॥ २६ ॥ यथाक्रमं दुरोद्युक्त्वा फल तेषां धृष्यक् धृष्यक् । गजवक्त्रप्रवे-  
शावलोकं नाद्रुर्ममाश्रित ॥ २७ ॥ तवाहमिन्द्र इत्येनामानयत्प्रमद परे । कुर्वतस्तेद्वय सत्यं समतादमरेश्वरा ॥ २८ ॥ समागत्य तयो कृत्वा स्वर्गावतरणोत्सव ।  
कल्याणभागिन पित्रोर्गन्धुस्तोषात्स्वमाश्रय ॥ २९ ॥ तमादयोदरे तस्या निर्वाध भासतेऽस्य तव । सक्रातपूर्णशीतांशुसुखीनतलोपमं ॥ ३० ॥ सुखेन  
नवमे मासि पूर्णैर्दुमास्वरं । विभक्तसर्वावयव सर्वलक्षणलक्षितं ॥ ३१ ॥ मार्गशीर्षे सितैकादशीदिनेश्वरनिर्गमे । त्रिह्वानलोचनं देवं त प्राप्तु प्रजावती ॥

ऊँचे स्वरसे मंगल पढ़ने लगे मयैरेके समय नगाड़े बजने लगे और अधखुली निद्राको छोड़कर वह बड़े संतोषसे उठी ।  
पहिले उसने स्नान किया वस्त्राभूषण पहिने और पडिवाके दिन चंद्रमाकी रेखा जैसे चंद्रमाके ही समीप रहती है उ-  
सीप्रकार वह अपने एतिके समीप पहुंची ॥ २३-२४ ॥ उसने अपने तेजसे समारूपी कमोदनीको प्रफुल्लित कर दिया  
महाराज उसे देखकर बहुत ही आनंदित हुए और आसन आदि देकर उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया ॥  
२५ ॥ वह रानी महाराजके आंधे आसनपर बैठ गई, उनसे अपने देखे हुए सब स्वप्न निवेदन कर दिये और  
संतोष करनेवाले उनके फल सुननेकी इच्छा करने लगी ॥ २६ ॥ महाराजने भी यथाक्रमसे अलग २  
उनके फल कहे और कहा कि अंतमें जो हाथी मुंहमें प्रवेश करता हुआ देखा है उससे स्पष्ट सिद्ध  
है कि अहमिंद्रने आकर तेरे गर्भमें अवतार लिया है इस तरह महाराजने रानीको बहुत ही प्रसन्न किया उसीस-  
मय महाराजकी बातको सच करते हुये ही क्या मानो इंद्रादि देव चारों ओरसे आये कल्याण करनेवाले होतहार ती-  
र्थकरका स्वर्गावतरणोत्सव मनाया और उनके उन माता पिताओंका अभिषेक आदि किया तथा संतुष्ट होकर अपने  
अपने स्थानको चले गये ॥ २७-२९ ॥ जिसप्रकार पूर्ण चंद्रमाके प्रतिबिम्बसे दर्पण सुशोभित होता है उसीप्रकार  
उस पुत्रके आनेसे उस देवीका उदर विना किसी बाधाके बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥ ३० ॥ सुखपूर्वक नौ  
महीना पूर्ण होजानेपर उस प्रजावती देवीने मार्गशीर्ष ( अगहन ) सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें जो पूर्ण  
चंद्रमाके समान दैदीप्यमान है जिसके सब अवयव अलग २ विभक्त हैं जिसमें सब लक्षण सुशोभित हैं और जो मति  
भूत अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करता है ऐसे तीर्थकर देवको उत्पन्न किया ॥ ३१-३२ ॥ उसीसमय आनंदित हो-



३२ ॥ तदायुताशिन । सर्वे सप्राप्य प्राप्तसमदा । तेज पिंड समादाय वाले बालार्कमशिमं ॥ ३३ ॥ गत्वाचलेशे संस्थाप्य पंचमाविधपयोजनम् । अभिवि-  
च्य विभूष्योत्तमैल्लिनामानमाजगु ॥ ३४ ॥ ते पुनस्तं समातीय नामश्रावणपूर्वकं । मातुरंगे व्यवस्थाप्य स्तनिवासान् प्रपेदिरे ॥ ३५ ॥ अरेवातीर्थस-  
तानकालस्यते स पुण्यभाक् । सहस्रकोटिवर्षस्य तदभ्यंतरजीव्यभूत् । समानां पचपचाशत् सहस्राण्यस्य जीवित । पंचविंशतिवाणसनीच्छत् कनकयुतिः ॥  
३७ ॥ शतसर्वसरे यावे कुमारसमये पुरे । चलस्तिपताकामिः सर्वत्रोद्विगतां ॥ ३८ ॥ विचित्ररंगवल्लीमिर्विकीर्णदुसुमोक्तरे । निर्जिताभोनिषिञ्चाने  
ता महिमा च सा । कुतः कुतो विवाहोय सता लब्धाविधायकं ॥ ३९ ॥ मल्लिनिजविवाहार्थं भूयो वीक्ष्य विभूषित । स्थत्वापराजितं रम्यं विमानं पूर्वजन्मनः ॥ ४० ॥ सा वीतरागता अतिस्तब्धा  
४२ ॥ तदा दुसुनयः प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिर्विस्तार । अनुमत्य मते तस्य यत्नं प्रकृतं प्राकृतैर्जने । निन्दयन्निति निर्विद्य सोभूत्रिक्कमणोषत् ।  
कारं सब इंद्रादि देव आए उदय होते हुए सूर्यके समान तेजके पिंडरूप उस बालकको उठाकर सुमेरु पर्वतपर पहुंचे  
और क्षीरसागरके जलसे अभिषेककर तथा वद्याभूषण पहिनाकर मल्लिनाथ उनका नाम रक्खा ॥ ३३-३४ ॥ वे  
देव फिर उनको घर लाये तथा रक्खा हुआ नाम सुनाकर उन्हें माताकी गोदमें बिठाया और फिर सब देव अपने-  
स्थानको चले गये ॥ ३५ ॥ अरनाथ तीर्थकरके बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जानेपर पुण्यवान् मल्लिनाथ हुये थे  
उनकी आयु भी इसी कालमें शामिल है ॥ ३६ ॥ पचपन हजार वर्षकी उनकी आयु थी पचीस धनुष ऊंचा शरीर  
लिये नगर सजाया जा रहा है उसमें चंचल सफेद पताकाएं फहरा रही हैं सब जगह उंचे २ तोरण बांधे जा रहे हैं  
अनेक तरहकी रंगवली वनाई जा रही है जगह २ फूलोंके ढेर बरमाये जा रहे हैं और सयुद्धकी गर्जनाको जीतने  
वाले अनेक नगाड़े बज रहे हैं । उससमय वे पहिले जन्मके मनोहर अपराजित विमानका स्मरण करते हुये वि-  
चार करने लगे कि कहाँ तो वह वीतरागतासे उत्पन्न हुआ भ्रम और उससे प्रगट हुई महिमा और कहाँ यह सज्जनों-  
को लज्जा उत्पन्न करनेवाला विवाह ! यह विवाह आदि सब बिड़बना मात्र है और पहिलेके बड़े लोग सदा इसकी  
निंदा करते चले आये हैं । इसतरह विरक्त होकर वे दीक्षा लेनेकेलिये तैयार होगये ॥ ३७-४२ ॥ उसीसमय लो-  
कांतिक देवोंने आकर उनकी बड़ी भारी स्तुतिकी और उनकी दीक्षामें सम्मति देकर आकाशमार्गसे अदृश्य होकर  
चले गये ॥ ४३ ॥ क्या तीर्थकरोंमें किसीकी ऐसी बुद्धि हुई है क्योंकि कुमार अवस्थामें बड़े आदमियोंको भी विष-

भूरो विषयत्याग. कैमारे महतामपि ॥ ४४ ॥ इति भक्त्या कृतालापा नभोभोगे परस्पर । परति कांतकल्याणमहासिपव त्सवं ॥ ४५ ॥ सोत्सवाः प्रापयिस्म कुमारममरेध्वरा । कुमारोपि जयतांभिधान 'जानसधिष्ठितः' ॥ ४६ ॥ गत्वाश्वेतवनोयानमुपवासद्वयान्वित । स्वजनम्यासनसत्रादिनपक्षसमाश्रितः ४७ ॥ कृतसिद्धिमहस्कार' परित्यक्तोपधिद्वय । सायात्रे विशंतभूयः सह सप्राप्य संयम ॥ ४८ ॥ संयमप्रत्ययोत्सवचतुर्दशानभास्कर । मार्गोयमिति सर्वित्य सम्यग्ज्ञाने प्रचोदितः ॥ ४९ ॥ मिथिला प्राविशतस्मै नंदिपेणनरधिप । प्रदय्य प्राप्तुं काह्वारं प्राप धूमन्धुति शुभां ॥ ५० ॥ दिने षट्के गते तस्य छात्राभ्ये प्राक्त्वे वने । अधस्तरोरशोकस्य त्यक्ताहर्द्वितावृत्ते ॥ ५१ ॥ पूर्वाह्णे जन्मनीवात्राव्यस्य सत्सु दिनादिषु । घातिव्रित्तयनिनांशाले वलावगमोऽभवत् ॥ ५२ ॥ बोधिता इव देवेन्द्राः सर्वे ज्ञानेन तेन ते । समूयागत्य तत्पूजामकुर्वन् सर्ववेदिन ॥ ५३ ॥ अष्टाविंशतिरित्यासन्नं विशाखाया गणाधिपाः । खपचंद्रियमा-

योका त्याग करना बड़ा ही कठिन है ॥ ४४ ॥ इसतरह भक्तिपूर्वक आकाशमार्गमें परस्पर बात चीत करते हुये और उत्सव मनाते हुए देव लोग जिनका दीक्षा कल्याणके महा अभिषेकका उत्सव होनेवाला है ऐसे कुमार मल्लिनाथके समीप आए । कुमार मल्लिनाथ भी जयंत नामकी पालकीपर सवार होकर इवेत बनके उद्यानमें गये तथा उन्होंने दो दिनका उपवास धारणकर अपने जन्म दिनके महीना नक्षत्र दिन और पक्षमें ( अर्थात् अगहन सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें ) शामके समय तीन सौ राजाओंके साथ साथ सिद्धोंको नमस्कारकर बाह्य अभ्यंतर दोनों तरफके पश्चिमका त्याग किया और इमतरह उन्होंने दीक्षा धारण की ॥ ४५-४८ ॥ संयमके धारण करते ही उनका मनः पर्ययज्ञानरूपी सूर्य प्रगट हुआ । सम्यग्ज्ञानसे प्रेरित होकर ही क्या मानो "यह सनातन मार्ग है" यही समझकर पारणाके दिन उन्होंने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया और सुवर्णकी कांतिवाले राजा नंदिपेणने उन्हें प्राप्तुं काह्वार देकर शुभ (पंचाश्वर्य) प्राप्त किया ॥ ४८-५० ॥ छात्रस्थ अवस्थाके छह दिन बीत जानेपर पहिलेके श्वेत बनमें अशोक वृक्षके नीचे दो दिनका उपवास धारणकर विराजमान थे वहींपर जन्मके समान शुभ दिन और शुभ नक्षत्र आदिमें सबेरेके समय तीनों घातिया कर्मोंका नाश होजानेसे (मोहनीय कर्म पहिले नष्ट हो जाता है उस सहित चारों घातिया कर्मोंके नाश हो जानेसे) उन्हें केवल ज्ञान प्रगट हुआ ॥ ५२ ॥ उसी केवलज्ञानसे मानों प्रबोधित हुए इंद्रादि देव सब इकट्ठे होकर आए और सबने उन्हें सर्वज्ञ-देवकी पूजा की ॥ ५३ ॥ उनके समवसरणमें विशाखको आदि लेकर अष्टाईस गणधर देव हुए थे, पंचमौ पचाम ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे, उन्तीस हजार शिष्य थे और दोहजार दोसौ पुत्र्य अवधिज्ञानी थे ॥ ५४-५५ ॥ दो हजार दोसौ ही केवलज्ञानी थे, एक हजार चारसौ वादी थे, दो हजार नौसौ विक्रिया श्रद्धिसे सुशोभित थे और

नोका मुनयः पूर्वधारिणः ॥ ५४ ॥ शून्यत्रितयर्गद्विगोक्तसंख्यानविकल्पाः । दिशतद्विस्तृत्योक्तपृतीयान्वगमस्तुताः ॥ ५५ ॥ तावत् पंचमज्ञानाः  
संख्याव्येकवादिनः । शून्यद्वयनवद्व्युक्तविक्रियद्विविभक्तिता ॥ ५६ ॥ शून्यपंचमुनीद्वयमन पर्यवबोधनाः । चत्वारिंशत्सहस्राणि सर्वे संकलना  
श्चिता ॥ ५७ ॥ सत्रयैवियपंचोक्ता वंधुवेणादिकार्यिकाः । श्रावका लक्षया प्रोक्ता श्राविकास्त्रिगुणास्ततः । देवा देव्यस्त्वसंस्थाताः गण्या कर्णरवादयः ।  
मासावशेषास्तु सम्मेदाचलमाश्रितः । प्रतिमार्गं नयन् भव्यपायिकान् प्रयित्तुचरिणः । विजहार महादेवान् भव्यसत्त्वानुरोयतः ॥ ६० ॥ ततो  
तनुवार्त्तं समाश्रयत् ॥ ६२ ॥ कल्यात्रिंशोक्तकल्याणमेवेत्यामरनायकाः । गंधादिमि समभ्यर्च्य तत्क्षेत्रमपवित्रयन् ॥ ६३ ॥ फाल्गुनोज्ज्वलपचम्या  
वंधुपेणाको आदि लेकर पचपन हजार अजिकाए थी, एक लाख श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाएं थीं ॥ ५६-५७ ॥  
इसके सिवाय असंख्यात देव देवियां थीं और सिंह आदि संख्यात पशु थे । इसतरह वे भगवान् इन चारह समाओंसे  
सुशोभित हो रहे थे ॥ ५९ ॥ जिनकी दिव्यध्वनि प्रसिद्ध है ऐसे मल्लिनाथ भगवानने भव्य रूपी पयिकोंको मोक्षमार्ग  
में लगाते हुए भव्य जीवोंके अनुरोधसे अनेक देशोंमें विहार किया ॥ ६० ॥ तदनंतर जब उनकी आयु एक महीने  
की रह गई तब उन्होंने सम्मेदाचल पर्वतपर आकर पांच हजार मुनियोंके साथ प्रतिमायोग धारण किया और ध्यान धारण  
कर फाल्गुन शुक्ला पंचमीके दिन भरणी नक्षत्रमें शामके समय कर्मांको नष्टकर तनुवार्त्तमें जा विराजमान हुए ॥ ६१-  
६२ ॥ निर्वाण कल्याणका उत्सव मनानेके लिये इंद्रादि देव स्वर्गसे उसीसमय आए और गंध अक्षत आदिसे उस  
क्षेत्रकी पूजाकर उन्होंने उसे पवित्र बनाया ॥ ६३ ॥ इस संसाररूपी समुद्रमें जन्म मरण ही तरंग हैं यह दुःखरूपी  
खारे जलसे लवालच भरा हुआ है इसमें खोटी इच्छाएं ही भंवर पढ़नेके गढे हैं और मिथ्यात्व रूपी चंद्रमासे ही यह  
बढता रहता है जो मल्लिनाथ भगवान् गुणरूपी रत्नोंको इकट्ठाकर और शरीर रूपी मगर मच्छोंको दूर हटाकर ध्यान  
रूपी नावसे ऐसे संसारसमुद्रको पारकर लोकके ऊपर जा विराजमान हुए जिन्होंने हम बड़े भारी मोक्षके मार्गका उप-  
देश दिया जिन्हें नम्र होते हुए सब लोग नमस्कार करते हैं और जिन्हें सब गुणोंने आकर स्वयं स्वीकार किया है  
ऐसे शल्यरहित श्रीमल्लिनाथ भगवान् हम तुम सब लोगोंको मोक्ष दूँगी ॥ ६४-६५ ॥ जो पहिले वैश्रवण

निमुक्तैर्न नमति नमितापिलोकाः । यो गुणैः स्वयमधारं समग्रं ; स भिन्नं दिशतु मल्लिशाल्यः ॥ ६५ ॥ अजनि वैश्रवणो धारणीश्वरः पुनरनुत्तर-  
नामन्यपराजिते । जितराजखिलमोहपुर्विभु-दिशतु मल्लिशाल्यतुलं सुख ॥ ६६ ॥ मल्लैर्जिनस्य सतानेऽभूद्वदसो नाम चक्रवृत् । द्वीपैरिमनप्रान्त्यसौ-  
मेरो मुकुन्धविषये नृप ॥ ६७ ॥ श्रीपुरेश प्रजापालस्तृतीयेऽजनि जन्मनि । त्वादिप्रकृतिसौक्यगुणानामुत्तमाश्रय ॥ ६८ ॥ सुराज्ञस्तस्य नाभूत्राज्येस्या-  
युक्तिकादिभिः । प्रजाना पचसिर्वाद्यास्तदवर्तत ता मुख ॥ ६९ ॥ शक्तिवितयसुपत्या शत्रुविडिं कल्य जित्वर । विश्रातविग्रहो भोगान् धर्मेणाथेन चान्व-  
भूत ॥ ७० ॥ स कदाचिद् विलोक्योक्तापात जातावबोधन । आपातरमणीयत्वमाकलयेष्टसपदा ॥ ७१ ॥ स्यात्सुवृथा विमुग्धत्वादनभूतमिमामाश्रितं ।  
न चेदुक्ताप्रपातोयं भूयोऽतिभ्रंषणं ॥ ७२ ॥ इत्यारोप्य सुते राज्यं शिवगुप्तजिनेश्वरं । प्रपद्य परमं पित्रुरायासीत्सयमद्वय ॥ ७३ ॥ समुत्कृष्टाष्टशुद्धीद

राजा हुए थे फिर अपराजित नामके अनुसर विमानमें अहमिंद्र हुए और फिर जो दुष्ट समस्त मोहरूपी शत्रुको जीत-  
कर भगवान तीर्थंकर हुए ऐसे श्रीमल्लिनाथ भगवान् हम तुम सब लोगोंको अतुल सुख देवें ॥ ६६ ॥

अथानंतर-इन्हीं मल्लिनाथ तीर्थंकरके समयमें पद्म नामका चक्रवर्ती हुआ है । वह अपनेसे पहिलेके तीसरे जन्म  
में इसी जंबूद्वीपके सुमेरु पर्वतके पूर्वकी ओर सुकच्छा देशके श्रीपुर नगरमें प्रजापाल नामका राजा था, राजाओंमें  
जितने प्राकृतिक गुण होने चाहिये वे उसमें थे ॥ ६७-६९ ॥ उस अच्छे राजाके राज्यमें प्रजाको अनुक्ति आदि पांच  
तरहकी बाधाओंमेंसे किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी और इसीलिये उसकी प्रजा सुखसे निवास करती थी ॥  
॥ ६९ ॥ सबका विजेता वह राजा अपनी तीनों तरहकी शक्तियोंसे सब शत्रुओंको जीतकर तथा सब युद्धोंको शांतकर धर्म  
और अर्थके साथ भोगोंका अनुभव करता था ॥ ७० ॥ किसी एक दिन वह उत्क्रापातको देखकर प्रबोधित हुआ और  
समस्त इष्ट संपदाको देखनेमें ही सुदूर किंतु शीघ्र ही नष्ट होनेवाली मानने लगा ॥ ७१ ॥ वह विचार करने लगा  
कि मैंने अपनी मूर्खतासे इसे स्थिर मानकर बहुत दिनतक इसका अनुभव किया यदि यह उत्क्रापात न होता तो  
मुझे फिर भी इसी संसार महासागरमें गोता खाने पड़ते ॥ ७२ ॥ इसतरह सोचकर उसने पुत्रको राज्य दिया और  
शिवगुप्त जिन राजाके समीप आकर मोक्षकी इच्छा करते हुए दोनों प्रकारका संयम धारण किया उत्कृष्ट आगे शुद्धियोंसे  
बढ़ते हुए तपश्चरणसे उमने अशुभास्रवको रोक और अनुक्रमसे अंत समयमें समाधि भ्रमण धारण किया ॥ ७३ ॥ इसतरह  
अपना राज्य देकर अपने हाथमें आया हुआ अच्युत स्वर्ग खरीदा और उस स्वर्गको देखकर बहुत ही संतुष्ट हुआ  
सो ठीक ही है क्योंकि खरीदनेमें जीतनेवाला संतुष्ट होता ही है ॥ ७५ ॥ वहाँपर उसकी बाईस सागरकी आयु थी

साधु सुसमाहितमानस ॥ ७५ ॥ । निज राज्यें सन्निहत करला प्रसन्नयुत । सुतोष करगालोक्य जितकेयोहि पुण्य-  
 प्राप्ति साधुसुताधिप ॥ दीपेन भरतु काया बालगया । सदीभुज ॥ ७६ ॥ । रत्नको पवनभास्य रामायणानुसन्धत ॥  
 पण ॥ ७७ ॥ । निमग्न प्रसरतु द्वाविशति वस्तु । दुरसम्यक् कालोदिकतत्पर विगल ॥ ७८ ॥ । पुण्योदयति सप्ता-  
 गाणि संगमगालन भन्ति ॥ ७९ ॥ । श्रुतिवैदिकमुखात्तयाश्री पुत्रिका सती । सुकेतुचराश्रीका पुत्र-पौत्रा-  
 क वस्य गति सुखदोष । वैद्य प्रमोदमुखाय स्यादो विकृति यो ॥ ८० ॥ । त वीर्य न विवदोस्य तया योगमात्र ॥  
 सपत्न्य सन्निविष्टु का स्यात्प्राय विवेकिन ॥ ८१ ॥ । इति चर्का समालोच्य सगुणभूततया । सुकेतु कुलदोस्य नाश्रु दुःखस्तोषवीत ॥ ८२ ॥ । राज्यस-  
 यासिकावर्ते कनीयान नवयोवन । भोगान भुञ्ज न काळोय तपस किं विधीयते ॥ ८३ ॥ । केनापि तपसा कार्य किं शयाया समाश्रय । नाश्रु किंचिफल

अत समयमें उस अच्युत स्वर्गसे व्युत होकर वह इसी जंबूद्वीपके भारतखेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें रहवाकु  
 म्भीराजा पवनभक्त की रत्नीसे पुत्र उत्पन्न हुआ । पक्ष उसका नाम था और कमल आदि सब प्रशसनीय लक्षण उसमें  
 थे ॥ ७६-७७ ॥ तीस हजार वर्षकी उसकी आयु थी चाईस धनुष ऊंचा शरीर था सुवर्णके समान शरीरकी कति  
 भी जिसकी देव लोग भी प्रार्थना करते थे ॥ ७८ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे अनुक्रमसे या अपने पराक्रमसे चक्रवर्तीपना  
 प्राप्त हुआ था और बिना किसी बाधा और बिना किसीकी सहायतासे वह बहुत दिनतक दश तरहके भोगोंका  
 अनुभव करता रहा था ॥ ७९ ॥ उसके पृथिवी सुंदरी आदि मूल्य आठ पुत्रियां थीं जो कि सती थीं और उस ब्रह्म  
 वतीने उन्हें प्रसन्न होकर सुकेतु नामके विद्याधरके पुत्रोंको दे दी थीं ॥ ८० ॥ इस तरह उसका समय सुखसे व्यतीत  
 हो रहा था किसी एक दिन वह आकाशमें बादल देख रहा था कि इतनेमें ही वह बादल अदृश्य हो गया ॥ ८१ ॥  
 उसे देखकर वह चक्रवर्ती विचार करने लगा कि इस बादलका कोई शत्रु नहीं है तथापि यह नष्ट होगया फिर जिस  
 के सब शत्रु हैं ऐसी संपत्तिमें बुद्धिमान लोग स्थिर रहनेकी श्रद्धा किस तरह रख सकते हैं ? ॥ ८२ ॥ यही सोचकर  
 वह चक्रवर्ती संयम वारण करनेके लिये तैयार हुआ परंतु उसी समय दृशचरित्र किंतु कुलमें बड़ा ऐसा सुकेतु कहने  
 लगा कि अमी आपका राज्य करनेका समय है आप अमी नवयोवन हैं और छोटे हैं इसलिये अभी भोगोंका अ-  
 नुभव कीजिये अभी आपका तपश्चरण करनेका समय नहीं है नाहक क्यों बुद्धिहीन हुए हैं ॥ ८३-८४ ॥ किसी भी  
 तपश्चरणसे क्या कार्य निकलता है सब परिश्रम मात्र है न तो इस भवमें कुछ फल मिलता है और न परलोकही

नैव परलोककथं कथन ॥ ८५ ॥ कथं न परलोककथेदमावात्परलोकैक । पंचभूतात्मके काये चेतना मदशक्तिवत् ॥ ८६ ॥ मिथिष्वादिष्योने तदात्मोक्तिं स्फुण्यवत् । ततः प्रेलोपभोगादिकांक्षा स्वकृतकर्मणः ॥ ८७ ॥ बंध्यास्तनयस्येव तपुष्यापीडितस्त्वन । आप्रहोयं परित्याज्यो राज्यं कुरु निराकुल ॥ ८८ ॥ सत्यप्यात्मसि कौमारं सुकुमारः कथं तपः । सहसे निष्ठुरं देव दुष्करं पि दुष्करं ॥ ८९ ॥ इत्युक्तं तवमालस्य स युत्वा शून्यवादिन । नृपादिरूप एवात्र भूतस्योमिलिष्यते ॥ ९० ॥ सुखदुःखादिसर्वेषु चैतन्यं तद्विलक्षणं । तद्वन्न देहादिहान्योय स्वसहित्यानुभूयते ॥ ९१ ॥ बुद्धिपूर्वकियालिंगादित्यत्राप्यनुमीयते । अस्त्वात्मा भाविलोककथं सत्वाभातीतसंस्थते ॥ ९२ ॥ इह लोकादिपंचतवीक्षणैर्जन्मिना सतां । बुद्धिकारणकार्यो ह्यस्तौ चैतन्यान्मयधीरिव ॥ ९३ ॥ कोई चीज है ॥ ८५ ॥ कदाचित् यह पूछो कि परलोक क्यों नहीं है तो इसका उत्तर यही है कि इस संसारमें परलोकोंका अभाव है यह शरीर पंचभूतात्मक है और मदिराकी शक्तिके समान उसमें चेतना है जिसप्रकार आटा और मदिराकी सामग्रीके संयोगसे मदिरा (मादक शक्ति) प्रगट हो जाती है उसीप्रकार पंच भूतोंके संयोगसे आत्माशक्ति प्रगट हो जाती है वास्तवमें आत्मा आकाश पुरुषके समान कोई चीज नहीं है, इसलिये अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे परलोकमें भोगोपभोगोंकी आकांक्षा वा इच्छा करना बंध्या करना आग्रह आपकी छोड़ देना चाहिये और निराकुल होकर राज्य करना चाहिये ॥ ८६-८८ ॥ अभी आपकी कुमार अवस्था है हे देव सुकुमार होकर अत्यंत कठिन और दुःकर रसे दुष्कर तपश्चरण आप कैसे सहन करेंगे ॥ ८९ ॥ इसप्रकार शून्यवादी मंत्रीके ये वचन सुनकर चक्रवर्ती कहने लगा कि पंचभूतात्मक सब रूपी पदार्थ हैं और वे सबरूपी पदार्थमें ही रहते हैं परंतु जो सुख दुःख आदिसे अनुभव किया जाता है ऐसा चैतन्य उन रूपादि पदार्थोंसे विल्कुल विलक्षण है वह चैतन्य जिसमें रहता है वही आत्मा है वह शरीरसे भिन्न है और मैं सुखी मैं दुखी ऐसे स्वसंवेदनसे अनुभव किया जाता है ॥ ९०-९१ ॥ दूसरे लोग भी बुद्धिपूर्वक क्रियाएं करते हैं इसी हेतुसे उनमें भी आत्माका अनुभव किया जाता है इसलिये आत्मा अलग कोई पदार्थ है और पहिले जन्मका स्मरण होनेसे तथा उसका अस्तित्व होनेसे परलोक भी मानना ही पड़ता है ॥ ९२ ॥ जिसप्रकार यौवनावस्थामें जो बुद्धि होती है वह उससमयसे पहिले रहनेवाली बुद्धिसे उत्पन्न होती है और वही बुद्धि आगेकी बुद्धिको उत्पन्न कराती है अर्थात् एक ही बुद्धि कार्यकारण दोनों रूप होती है इसीप्रकार इसजन्ममें जो प्रथम समयकी बुद्धि है वह अपनी कारणरूप पहिले जन्मकी बुद्धिसे ही उत्पन्न होती है और इस जन्मके अंतसमयकी बुद्धि अगिले जन्मकी बुद्धि



इत्यादियुक्तिवादेन चकीर्तुं शक्यवादिनः । श्रद्धायात्मास्तिता स्वसात्कृतमोहविसर्जनः ॥ १४ ॥ नियोज्य स्वात्मजे राज्य सुकेत्वादिमहीभुजः । जिना-  
 त्समाधिगुप्ताह्यात्समं संयममाददौ ॥ १५ ॥ विबुद्धिपरिणामानामुत्तरोत्तरभाविनां । प्राप्य क्रमेण पर्यंतं प्राप घातिनीं ॥ १६ ॥ नवकेवललवीद्विबुद्ध्याह  
 नेन मामतो मामतोदयाः । सपमास्यः सपद्माल्यः संगमः सता ॥ १७ ॥ उदयाब्जोदयादस्य धरणीधरणीमुदः । तानवं तानवं किंत्सपद सपदं श्रितः ॥ १८ ॥ नापमापन्नभो-  
 युदा ॥ १०० ॥ प्रब्रममजनि राजा यः प्रजापालनामा शमितकृष्णवृत्त्या प्रातकल्पैश्चरोभुत् । सकलभरतनाथः शर्मणः सप पद्मः परमपदमवापत्तोमलं शं  
 क्रियाशः ॥ १०१ ॥ तार्येस्मिन्नेव सभूतां सप्तमौ रामकेशवौ । तृतीये तौ भवेऽभूतां साकेते राजपुत्रकौ ॥ १०२ ॥ अत्रियत्वात्पिता लक्त्वा तौ केहेन  
 दिको उत्पन्न करती ही है इसप्रकार संसारी जीवोंकी कार्यकारण रूप बुद्धि देखनेसे अगिले जन्मोंका अस्तित्व भी  
 मानना ही पड़ता है ॥ १०३ ॥ इत्यादि रीतिसे युक्तियोंके वचन कहकर चक्रवर्तीने उस शून्यवादीको आत्माके अस्तित्वका श्रद्धान  
 कराया और फिर अपने आत्मासे सब तरहका मोह छोड़कर अपने पुत्रको राज्य दिया तथा सुकेतु आदि अनेक राजाओंके  
 साथ समाधि गुप्त नामक जिनराजके समीप संयम धारण किया ॥ १०४-१०५ ॥ उत्तरोत्तर होनेवाले विबुद्ध परिणामोंको अनु-  
 क्रमसे धारणकर घातिया कर्मोंका नाश किया और फिर नव केवल लब्धियोंको धारणकर उन भगवानने विबुद्ध रीतिसे  
 विहार किया तथा आयुके अंतमें औदारिक तैजस कर्मण तीनों शरीरोंको नष्टकर परमेश्वरका पद सुशोभित किया ॥  
 १०६-१०७ ॥ अनेक सुकुटवद् राजाओंसे हर्षित होनेवाले और उत्कृष्ट प्रकर्षवत्को प्राप्त हुए उस पद्मको पुण्योदयसे न-  
 तो कुछ शरीर संबंधी कृशता हुई थी और न उसे किसीके लिये नवना ही पडा था ॥ १०८ ॥ जिसे अनेक भोगो-  
 पभोग प्राप्त हैं ऐसे पद्म चक्रवर्तीको अकेली लक्ष्मी ही प्राप्त नहीं हुई थी किंतु कीर्तिके साथ साथ अनेक अभ्युदय  
 प्राप्त हुए थे इसप्रकार सम्यक् ज्ञानको धारण करनेवाले लक्ष्मी तथा कीर्तिके साथ साथ अनेक अभ्युदय  
 लिये हों । जो मंदराचलके समान ऊंचा है शत्रुओंमें जिसका स्नेह मंद है जो चंद्रमाके प्रकाशके समान सुशोभित है  
 और मुख्य नौवां चक्रवर्ती है वह सबकी प्रसन्नताके लिये हो ॥ १०९ ॥ जो पहिले प्रजापाल नामका राजा हुआ था  
 फिर इंद्रियोंको दमन कर अर्थात् तपश्चरणकर अच्युत स्वर्गका ईश्वर हुआ तदनंतर जो समस्त भरत क्षेत्रका स्वामी  
 और अनेक कल्याणोंका धर ऐसा पद्म नामका चक्रवर्ती हुआ और फिर जो परमपद अर्थात् मोक्षस्थानको प्राप्त हुआ  
 वह हम लोगोंका भी निर्मल कल्याण करनेवाला हो ॥ ११० ॥



कनिष्ठः । आने स्वस्ते देहो शीवराज्य यद्यकालित ॥ १०३ ॥ भोजनैव ह्यनं सर्वमिदमस्मिन्निति । भगवान् बद्धदेहो तो धर्मेतीर्थात्परदुर्गा ॥ १०४ ॥ शिवगुप्तमुनेस्तेवार्मितोपेतो मयम् । शिवग मुनिगालम्बे योग्यमंगनो मनी ॥ १०५ ॥ ततः प्रपुत्र भृत्य गालम्बो बन्धुः । शिवकृति-  
सकस्वामिभिसस्य तनयो प्रियो ॥ १०६ ॥ माता पराप्रिता केववती च कान्तस्तयो । मरिचैवद्वयो उमेतु कृतिने क्षमाम्बु ॥ १०७ ॥ दूयप्रित-  
लक्षणादानी द्वाविगतिधुस्तद । चैवलील्यकथावर्द्धतामनुतरा ॥ १०८ ॥ ननो मेनो च एवोको भ्राता भुक्तारामगरे । अयेन विवदादंतिनद्विगम्ब-  
पुरासिप । बलीशमिभ्या ब्यातो जातो विद्याधराभिः । सोऽनेषु रोगैर्भक्षीयेदाश्वोसि भियुतः ॥ ११० ॥ मरन्मनं चोरोवोति शीयतां तेष्वारक- ।  
इति दर्पात्रिष्ठमी प्राणिषोऽथ तो बन् ॥ १११ ॥ भुक्वा मरुचन ना च तेनाराम्बो भुते स्वयं । देवे चैवोपले इती ओनेनोदि न जीयते ॥ ११२ ॥

अथानंतर— इन्हीं तीर्थंकरके समयमें मातबै बलमद्र और नारायण हुए हैं वे अपनेसे तीसरे भवमें अयोध्या नगरमें राजपुत्र हुए थे ॥ १०२ ॥ पिताको वे प्यारे नहीं थे इसलिए उन्हे छोड़कर उमने अपने प्रेमके कारण छोटे भाईको युवराज पद दे दिया था ॥ १०३ ॥ परंतु उन दोनों भाइयोंने समझा कि यह सब काम मंत्रीने किया है यही समझकर वे बड़े क्रोधित हुए, मंत्रीके साथ उन्होंने पैंग जाँच लिया और फिर अपने तीर्थके अनुयायी होकर शिव-  
गुप्त मुनिके शिष्य हो गये, संयम धारणकर तपश्चरण किया और फिर आपुनके अंतमें मोक्षार्थ स्वयंके सुविज्ञान नामके विमानमें देव हुए ॥ १०५ ॥ वहाँसे ल्युत होकर बनारस नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें शिवोपनि राजा अग्निशिल्पके अरा-  
जिता और कैवली रानियोंसे दोनों राजपुत्र हुए । बड़ेका नाम नंदिमित्र था और छोटेका नाम दत्त था ॥ १०६-  
१०७ ॥ उन दोनोंकी वसीम हजार वर्षकी आयु थी और चाइस भुक् उँवा करीर था । एकके गरीबीकी क्रांति चं-  
द्रमाके समान थी और दूसरेकी इद्र नीलमणिके समान थी इत्यतएव वे दोनोंही भाई अनुक्रमसे रहने लगे ॥ १०८ ॥  
पहिले भवका मंत्रीका जीव संसार मागमें परिग्रमण कर अनुक्रमसे विजयार्क पर्वतपर मंदार नामके नगरका स्वामी हुआ वलींद्र उसका नाम था और वह सब विद्याधरोंका शासी था । किमी एक दिन कार्योंका रोक देने वाले बली-  
द्रने अपने अभिमानसे नदिमित्र और दत्तने कहला मेत्रा कि तुम्हारे यहां जो मद्र क्षीणेद नामका गंधवागण हाथी है जो कि बहुत बड़ा और प्रसिद्ध है तथा जो मेरे ही योग्य है उसे भेज दो ॥ १०९-१११ ॥ यह सुनकर इसके उत्तरमें उन दोनों भाइयोंने कहला मेत्रा कि यदि वह हम दोनों भाइयोंका हो पुत्रियां दे तो हम भी उसे वह हाथी दे सकते हैं यदि वह पुत्रियां न देगा तो हम अपना हाथी भी नहीं देंगे इसप्रकारके कहवे बचन उन दोनों भाइयोंने कहला भेजे । उसे सुनकर कालका अनुकरण करता हुआ वलींद्र भी



हुता तौ समादाय वीक्षां प्रति सौधर्मकृत्ये प्रणिहितमनसौ देवमांश्वयातौ नाराणस्यामभूतां पुष्कलतिलैकं नदिमित्रव्रतसौ दत्तोऽसौ सप्तमीं क्षया समगमदपु-  
रोच्याप कैवल्यलक्ष्मीं ॥ १२४ ॥ मन्त्री चिरं जननवारिनिघां प्रमिद्वं पश्चाद्वर्लीद्व इति नामधर खगेष्वाः । दत्तादवासमरणो नरकं दुरंतं प्रापन्नत परिह-  
रेत्त्वबुधद्वरं ॥ १२५ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे मल्लितीर्थकर-पद्मचक्रि-नदिमित्रवलदेव-दत्तनामावासुदेव-वर्लीद्वाल्म्य-  
प्रतिमासुदेव पुराण परिसमाप्त ॥ ६६ ॥

## सप्तषष्टितमं पर्व ।

निवृत्ता व्रतशब्दार्थो यस्याभूत्सर्ववस्तुषु । देयान्न स व्रत स्वस्य सुव्रतो मुनिसुव्रत ॥ १ ॥ तृतीये जन्मनीहारीजिनेन्द्रो मुनिसुव्रतः । भारतंगा-  
मणि नदिमित्र और दत्त नामके बलभद्र नारायण हुए । उनमेंसे दत्त तो मरकर मातवें नरकमें पहुंचा और नदिमित्र-  
ने केवलज्ञानलक्ष्मी प्राप्तकी अर्थात् वह मुक्त हुआ ॥ १२४ ॥ जो पहिले राजमन्त्री होकर संसार सागरमें बहुत दिन  
तक घूमा, पीछे जो वर्लीद्व नामके विद्याधरोंका राजा हुआ और दत्तके हाथसे मरकर नरकमें पहुंचा इसलिये सकल  
नोंको बैर वा शत्रुताका संस्कार रखना विष्कल छोड़ देना चाहिये ॥ १२५ ॥

इसप्रकारभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके निवान हिंदी भाषानुवादमें मल्लिनाथ तीर्थकर पदम् चक्रवर्ती नदिमित्र  
वलदेव दत्त वासुदेव और वर्लीद्व प्रति वासुदेवका पुराण समाप्त करदेनेवाला छयासठवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

## सहस्रठवां पर्व ।

जिनके नामके व्रत शब्दका अर्थ सभी पदार्थोंका त्याग था और जिनके व्रत सबसे उत्तम थे ऐसे श्री मुनिसुव्रत  
भगवान हम लोगोंको भी अपने व्रत दें ॥ १ ॥ भगवान मुनिसुव्रत साथ पहिले तीसरे भवमें इसी भरतक्षेत्रके अंग-  
देशके चंपापुर नगरमें हरि वर्मा नामके राजा थे । किसी एक दिन उनके उद्यानमें अनंतवीर्य नामके मुनिराज पधारे  
थे उनकी बंदना करनेकी इच्छासे वे राजा हरिवर्मा पूजाकी सब सामग्री लेकर अपने सब परिवारके साथ उनके  
समीप गये । वहां जाकर तीन प्रदक्षिणा दीं तीनवार नमस्कार और पूजाकी तथा इसतरह बंदनाकर उन्होंने उनसे

इत्यावश्ये उपधांपुराधिपः ॥ २ ॥ हरिवर्मासिधोन्वयुरयोयाने जिनेश्वर । वंगपद्म नाशा सावनगारं विवर्द्धिषुः ॥ ३ ॥ गत्वात्मपरिवारेण संसर्पयः प-  
 रीत्य तं । त्रिःसप्तम्यर्च्यं वंदित्वा प्राक्षीकर्म सनातनं ॥ ४ ॥ सवारी मुक्त इत्यात्मा विधाकर्मभिरष्टभिः । वक् संसारिणं प्रादुर्लभको मुक्त इष्यते ॥ ५ ॥  
 सिध्यात्वादिर्जितोदितः ॥ ७ ॥ उदयादिविकल्पेन कर्मवत्सा चतुर्विधा । संसारः पंचधा प्रोक्तो द्रव्यसैत्रादिविकल्पितः । प्रत्ययोऽपि चतुर्भेदो  
 रोधातिर्जरे । तुरीयशुक्ल्यानेन मोक्षः सिद्धस्ततो भवेत् ॥ ९ ॥ कृत्तकर्मक्षयो मोक्षो निर्जरा त्वेकदेशतः । युक्तस्यातुल्यमत्यतरायमालयितं मुक्तं तपसा  
 इत्यादि तत्त्वसर्वस्वं भगवास्तमवबुधत् । स्वचोरात्मिजालेन भव्याङ्गानां प्रबोधक ॥ ११ ॥ सोपि तत्तत्त्वसद्भावमगम्य ययौदितं । निर्विद्यं सत्सर्वेभ्य-  
 ष्ठुने राज्यं नियोज्य तत् ॥ १२ ॥ ग्रंथद्वयपरित्यागे पटुश्छुलमायवौ । संयमं बहुभिः सार्द्धं भूधनैरुर्ध्वगामिभिः ॥ १३ ॥ अवाकीवरदेकादशांगानि गुरु-  
 सनातन धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २-४ ॥ मुनिराज कहने लगे कि आत्मा दो प्रकारके हैं संसारी और मुक्त । जो  
 ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे बंधे हुए हैं उन्हें संसारी कहते हैं और जो इन कर्मोंसे छूट चुके हैं वे मुक्त कहलाते हैं ॥  
 ५ ॥ उन कर्मोंके मूल भेद ज्ञानावरणादिक आठ हैं और उत्तर भेद एकसौ अडतालीस हैं ॥ ६ ॥ प्रकृति स्थिति अ-  
 नुभाग प्रदेश इनके भेदसे चार चार तरहका है और मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय इनके भेदसे उनके उनके कारण भी  
 जिनराजने चार ही बतलाए हैं ॥ ७ ॥ उदय आदिके भेदसे कर्मोंकी अवस्था भी चार तरहकी है और द्रव्य क्षेत्र  
 काल भव भावके भेदसे संसार पांच प्रकारका है ॥ ८ ॥ गुप्ति समिति आदिसे वे कर्म आनेसे रुक जाते हैं अर्थात्  
 उनका संवर हो जाता है, तपश्चरणसे संवर भी होता है और निर्जरा भी होती है चाये शुक्ल्यानसे मोक्ष होती है  
 और फिर यह जीव सिद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥ समस्त कर्मोंका नाश हो जाना मोक्ष है एक देश कर्मोंका नाश होना निर्जरा है मुक्त  
 जीवको उपमारहित वाथा रहित आत्यंतिक सुख प्राप्त होता है ॥ १० ॥ इसप्रकार अपने वचनरूपी किरणसमूहोंसे भव्यरूपी क-  
 मलोंको प्रफुल्लित करनेवाले भगवान् अनंतवर्षिने महाराज हरिवर्माको सब तत्त्वोंका स्वरूप समझाया ॥ ११ ॥ वे राजा  
 मलोंको प्रफुल्लित करनेवाले भगवान् अनंतवर्षिने महाराज हरिवर्माको अपने वचनरूपी किरणसमूहोंसे भव्यरूपी क-  
 त्याग करनेमें चतुर ऐसे उन्होंने अपने बड़े पुत्रको राज्यका भार सौंपकर मोक्ष जानेवाले अनेक राजाओंके साथ २  
 सुंदर संयम धारण किया ॥ १२-१३ ॥ गुरुके समागमसे ग्यारह अंगोंके पारगामी हुए और दर्शन विशुद्धि आदि  
 सोलह कारण भावनाओंका चितवनकर उन्होंने तीर्थकर नामकर्मका बंध किया ॥ १४ ॥ इसप्रकार बहुत दिन तक



समाप्त । अवध्राप्तीऋद्धोत्र श्रद्धाशुभ्यादिभावनः ॥ २४ ॥ त्रिमेव तपः कृत्वा श्रान्ते स्नानाश्चनानिधिः । भविष्यत्सम्यक्करण प्राणतन्त्रेभ्यश्चिदु ॥ २५ ॥ सागरोपमविद्यामितायुः शुक्लेश्वरक । सार्द्धेऋत्रयोत्सेधो मायैश्वर्यमिच्छन् ॥ २६ ॥ स्वत्सरसहस्राणा विद्याभ्यामादिताहतिः । मनात्मन प्रवीचन- रभोगोष्ठदिसमन्वित ॥ २७ ॥ आपचमवानेरात्मगोचरव्यावृतावधिः । तत्क्षेत्रमितशक्त्यादिधिरे तन्मान्यभुक्तम् ॥ २८ ॥ तस्मिन् षण्मासशेषाशुभ्यागमिष्यति भूत- ल । जन्मोद्धारण तस्य रत्नश्रयान्तिर्तुः ॥ २९ ॥ अत्रैव भरते राज्ञां पुरे राजगृहादये । सुमित्रो मगधाधीशो हरिवंशशिन्धामणिः ॥ ३० ॥ गोत्रेण कान- द्यपस्तस्य देवी सोमाह्वया मुरैः । पूजिता श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे दिने ॥ ३१ ॥ स्वप्नान् कृष्णद्वितीयाया स्वर्गावतरणोन्मुखे । प्राणताधीश्वरेऽपश्यत् नो ब्रह्मेश्वरमूचकान् ॥ ३२ ॥ गजराज च वक्त्र एवं प्रविशतं प्रमादित । तेनैव परितोषेण प्रभुदा शुद्धवैषष्ट ॥ ३३ ॥ त्र्यम्बादेयस्त्वमस्मिन्तत्फलप्रवर्णेच्छया । क्षाववि मोष्यभाषिष्ठ सभृति त्रिजगत्पतेः ॥ ३४ ॥ तद्वाक्यश्रवणसमुत्समनोबदनकजा । तद्देवायातवेदकृताभिषवणोत्सवा ॥ ३५ ॥ सुरोपनीत- तपश्चरणकर आयुके अंतर्मे समाधि मरण धारण किया और आगे जिनके पंच कल्याण होनेवाले हैं ऐसे वे प्रभु चौद- हवें प्राणत स्वर्गमें इंद्र हुये ॥ १५ ॥ वहांपर उनकी वीस सागरकी आयु थी शुक्ल लेख्या थी, साठे तीन हाथ ऊंचा शरीर था, दश महीने बाद उच्छ्वास लेते थे वीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे उनके मनसे होनेवाला थोडासा संभोग था, आठ ऋद्धियोंसे वे सुशोभित थे, पांचवे नरक तक उनका अवधिज्ञान था और उतने ही क्षेत्र- तक उनकी शक्ति थी, इस तरह बहुत-दिन तक उन्होंने सुखका अनुभव किया ॥ १५-१८ ॥ जब उनकी आयुके छह महीने रह गये और वे पृथ्वीपर जन्म लेनेके मन्सुब हुये तपसे ही देवोंने रत्नोंकी वर्षाकर उनके जन्म लेनेके घरके आंगनकी पूजा की अर्थात् उनके घर रत्नोंकी वर्षा की ॥ १९ ॥

अथानंतर-इसी भरतखेत्रके राजगृह नगरमें मगध देशका राजा सुमित्र राज्य करता था वह हरिवंशका शिरोमणि था और काश्यप उसका गोत्र था । उसकी पटरानीका नाम सोमा था और अनेक देव भी उसकी पूजा करते थे । जब चौदहवें स्वर्गके इंद्रकी आयु पूर्ण होने लगी तब श्रावण कृष्ण द्वितीयाके दिन श्रवण नक्षत्रमें उस पटरानीने अपने इष्ट प्रयोजनको सूचित करनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ २०-२२ ॥ अंतर्मे एक प्रभावशाली हाथीको अपने मुखमें घुमते हुए देखा । उससे संतुष्ट होकर वह जग गई तथा शुद्ध वस्त्राश्रुषण पहिनकर उन स्वप्नोंके फल पंछनेकी इच्छासे महागजके समीप जाकर उनसे सब स्वप्न कहने लगी । महाराज अवधिज्ञानी । वे इसलिये उन्होंने बतलाया कि तुम्हारे तीनों लोकोंके स्वामी भगवान तीर्थंकर उत्पन्न होंगे ॥ २३-२४ ॥ पतिके वचन सुनते ही उसका मन

[illegible]



नैऋत्यं बने सरति दुर्मति ॥ ३६ ॥ तद्वच श्रवणोत्पन्नस्त्वर्णवसुस्थते । सयमाचमनं सद्यो ब्रह्माह गजवत्तमः ॥ ३७ ॥ तत्प्रलयसमुत्पन्नवोधित्वयोगो-  
न्मुखो वृषः । लोकाधिकैस्तदैवेत्य प्रस्तुतोक्त्या प्रतिश्रुत ॥ ३८ ॥ स्वराज्य युवराज्याय विजयाय विजयान्वितीर्णं सः । सुरैः समासनि क्रांतिकल्प्येण्डुसंधीगुणः ॥  
३९ ॥ अपराजितनामोऽधिकविक्रमविस्त्ववान् । स्वकीर्तिः क्षत्रमूर्धिरुडोनरखगामरैः ॥ ४० ॥ प्राप्य बभ्रुपवासेन वन नीलाभिधानकं । वेदासे बहूले पक्षे  
श्रवणे दक्षमीदिने ॥ ४१ ॥ सहस्रपदैः सायाहने सम सयममग्रहीत् । कैश्यमीश सुरेशानां सुरेशो विश्वदहनः ॥ ४२ ॥ शास्वत पदमन्विच्छन्प्रापयत्सच-  
माशुषिम् । चतुर्थीवगमः शुद्धमताप्यीत्तोप्यल तप ॥ ४३ ॥ ममभावनया तुप्यन् तुतेषि तनुसस्थिते । रुदाक्षिपारणकाले प्रायाद्राजगृह पुरं ॥ ४४ ॥  
प्रदाय प्राशुकाहारं तस्मै चामीकास्च्छविः । दृपो हृषभसेनाह्वयः पञ्चाश्वर्यमवापिमान् ॥ ४५ ॥ मासोनवसरे याते छात्रस्यै स्वतपोवने । चंपकट्टममूल-

वाले राउयका स्मरण करता है और न अपने कुदानकी निष्फलताका स्मरण करता है यह मूर्ख केवल वनका स्मरण  
कर रहा है ॥ ३६ ॥ भगवान् के वचन सुनकर उस उत्तम हाथीको अपने पहिले भवका स्मरण हो आया और क्षीघ्र  
ही उसने संयमासंबन्ध धारण कर लिया ॥ ३७ ॥ उसी कारणसे भगवान् को आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और वे मन परि-  
ग्रहोंके त्याग करनेके सन्मुख हुए । उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुतिकी और कुछ विरक्तता दिख-  
लाई ॥ ३८ ॥ उन्होंने अपना राज्य युवराज विजयकेलिये समर्पण किया और वे देवोंके द्वारा प्राप्त हुये दीक्षा कल्या-  
णके महोत्सवको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ जिनकी कीर्ति प्रसिद्ध है मोहनीय कर्म जिनके हृदयसे निकल रहा है और मनु-  
ष्य विद्याधर तथा देव जिन्हें ले जा रहे हैं, ऐसे वे भगवान् अपराजित नामकी बड़ी पालकीपर सवार होकर निकले  
॥ ४० ॥ नील नामके वनमें पहुंचकर वैशाख कृष्ण दशमीके दिन भ्रवण नक्षत्रमें शामके समय उन्होंने तैलाका नि-  
यम लेकर एक हजार राजाओंके साथ २ संयम धारण किया । आश्वत मोक्ष पदकी इच्छा करते हुए इंद्रने सब इंद्रोंके  
स्वामी और संसारमर्कको देखनेवाले उन भगवान् के केश ( जो कि उन्होंने पंच मुष्टि लोंचकर उखाड़े थे ) पांचवें क्षी-  
र सागरमें जाकर डाले । भगवान् को उसीसमय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ और इसतरह वे शुद्ध तपध्वज करने लगे ॥  
४१-४३ ॥ यद्यपि वे समता भावोंसे सदा तृप्त रहते थे तथापि अर्थात् वृत्त होकर भी केवल शरीरको स्थिर रखनेके  
लिये पारणाकेलिये वे किसी समय राजगृह नगरमें पहुंचे ॥ ४४ ॥ सुवर्णकीसी कांतिवाले महाराज हृषभसेनने  
उन्हें प्राशुक आहार दिया और उस पुण्यसे उसके घर पञ्चाश्वर्योकी वर्षा हुई ॥ ४५ ॥ इस तरह ग्यारह महीने तक  
उन्होंने तपश्चरण किया तब वैशाख कृष्ण नवमीके दिन भ्रवण नक्षत्रमें शामके समय दीक्षा ग्रहण करनेवाले नील



भद्रा

सुगण

३३३

स्थो सिद्धितो योगित्तमम् ॥ ४६ ॥ स्वधीशपक्षनक्षत्रसहिते नवमीदिने । सायाहने केवलज्ञान संस्थानेनोपादयत् ॥ ४७ ॥ तदैवागत्स देवैर्द्रास्तत्त्वार्थानि व्यधुमुदा । मानस्तं भादिविद्यासविविधादिविभूषितं ॥ ४८ ॥ मल्लिप्रवृत्तयो भूवज्रप्रादशगणेशिनः । द्वादशागधराः पंचशतानि परमेष्ठिनः ॥ ४९ ॥ शिला-  
नधारिणः ॥ ५१ ॥ सहस्रादं सहस्रं तु बादिना द्विशताधिकं । पितृता पठिताक्षितास्तद्वह्मणि मुनीश्वराः ॥ ५२ ॥ पुष्पदत्तादयः पंचाशत्सद्वह्मणि चोर्वि-  
काः । एकका श्रावकाः लक्षाः त्रिगुणाः श्राविकास्तदाः ॥ ५३ ॥ असंख्यातो मरुत्सवः सख्यातो द्वादशो गणः । एषा धर्मं ब्रुवन्नायं क्षेत्राणि व्यहरन्ति ॥  
५४ ॥ विह्वल मासमात्राणु सम्येदाचलमूर्द्धनि । प्रतिगयोगधारी सन् सप्तसहस्रमुनीश्वरः ॥ ५५ ॥ फाल्गुने श्रवणे कृष्णद्वादश्या निशि पश्चिमे । भागे दि-  
त्वा तन् मुक्तिमवापमुत्तुष्टतः ॥ ५६ ॥ कृत्वा पंचमकल्याणसपर्यामूर्जितो दया । वंदित्वा सुरवदारुणं दंयात यथा तथं ॥ ५७ ॥ व्याप्तं त्वत्प्रमया सदे-  
वनमें चंपकं वृक्षके नीचे तैलाका नियम लेकर विराजमान हुए और उत्तम ध्यानसे वहींपर उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ४६-४७ ॥ उसीसमय इंद्रोंने आकर बड़ी प्रसन्नतासे ज्ञानकल्याणका उत्सव मनाया और अनेक ऋद्धियोंसे विभूषित मानस्तंभ आदि समवसरणकी रचना की ॥ ४८ ॥ उन परमेष्ठीके मल्लिकी आदि लेकर अठारह गणधर थे तथा पांचसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वकी जाननेवाले मुनिराज थे ॥ ४९ ॥ उन भगवानके सज्जनोंके द्वारा बंदना करने योग्य इकईस हजार शिक्षक थे तथा एक हजार आठ सौ अविज्ञानी थे ॥ ५० ॥ एक हजार पांच सौ मनःपर्ययज्ञानी थे और वलज्ञानी थे, दो हजार दोसौ विद्विद्या ऋद्धियोंको धारण करनेवाले थे एक हजार आठ सौ ही के- एक हजार दोसौ वादी थे । इसतरह सब मिलकर विद्वान् मुनिराजोंकी संख्या तीस हजार थी ॥ ५१-५२ ॥ पुष्पदत्ता को आदि लेकर पचास हजार अजिवाएं थीं एक लाख श्रावक तीन लाख श्राविकाएं संख्यात तिर्यच और असंख्यात देव देवियोंका समुदाय था । इसतरह बारह सभाओंके स्वामी होकर उन्होंने बहुत दिनतक आर्यक्षेत्रमें विहारकर धर्मोपदेश दिया था ॥ ५३-५४ ॥ विहार करते हुये जब उनकी आयु एक महीनेकी रह गई तब एक हजार मुनियोंके साथ २ प्रतिमा योग धारणकर सम्येददक्षिणपर आ विराजमान हुए और फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर शरीरको छोड़कर मुक्त हुए ॥ ५५-५६ ॥ इंद्रादि देवोंने आकर उनके मोक्षकल्याणका बड़ा भारी उत्सव मनाया और उनकी बंदनाकर सब देव अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५७ ॥ हे प्रभो ! आपके शरीरकी प्रभासे व्याप्त होकर सभा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों नील कमलोंका वन ही हो आपकी वाणी मनके सब अंधकारको नष्ट करती

विजयते नीलोत्पलानां बन् ध्वात शक्चमनोगत ध्रुतवतीभा भानुजां भासुरा । दोषधाशिलजं तमो व्यपहरद् ब्रह्म जगद्वदित धरे तन्मुनिसुव्रतस्य मगव  
न्यादं तैवदाक्षिभिः ॥ ५८ ॥ कार्यं कारणतो गुण च गुणितो मेद च सामान्यतो ध्वलोकः पृथगेव कोव्यपृथग्यस्यैकोततो न द्वय । तत्सर्वं घटते तैव नय-  
स्योगास्तत्स्व सतामासोभूम्निसुव्रताय भगवस्तुभ्य नम कुर्महे ॥ ५९ ॥ प्रागासीदश्विर्मनाम दृपतिलेख्या तपो बद्धवान् नामात्य बहुभावनः शुचिपु-  
तिर्यः प्राणतैवोऽभवत् । द्युत्वास्मान्मुनिसुव्रतो हरिकुलव्योभामलेभुर्जिनो भूत्वा भव्यकुमुदतीं व्यकचयद्वक्षमी प्रदिश्यात्मनः ॥ ६० ॥ ततीर्य एव चक्रेजो ह-  
रियेणसमाह्वयः । तृतीयभवेनंतजिनतीर्यं द्रुपो महान् ॥ ६१ ॥ कृत्वा तप समुत्कृष्ट कोपि केनापि हेतुना । सनत्कुमारकल्पेभूत्सुविशालविमानकः ॥ ६२ ॥  
षट्सागरोपमात्मायुर्मुक्त्वा भोगाननारतं । नतः प्रच्युत्य तीर्थस्मिन् गज्ये भोगपुरेश्विदु ॥ ६३ ॥ प्रमोक्षस्वाकुशस्य पद्मनाभस्य भामिनी । ऐरा तयो

थी तथा सूर्यकी देदीप्यमान कान्तिका मी तिरस्कार करती थी । इसी तरह आपका ज्ञान भी संसारके समस्त पदा-  
र्थोंसे उत्पन्न हुए अज्ञानांधकारको नष्ट करता था इसलिये हे भगवन् हे मुनि सुव्रतनाथ ! जिसे इंद्रादि देवोंके साथ  
साथ सब संसार नमस्कार करता है ऐसे आपके अपूर्व ज्ञानरूपी सूर्य मंडलको मैं नमस्कार करना हूं ॥ ५८ ॥  
कोई तो कारणसे कार्य गुणीसे गुण और सामान्यसे विशेषको जुदा बतलाते हैं और कोई कोई एक ही मानते  
हैं ये दोनों ही नहीं बन सकते परंतु हे भगवान् आपके आपस वां अरुंदत कहते हैं अतएव हे मुनिसुव्रत जिनेंद्र मैं भी आपके लिये  
जाते हैं इसीलिये ही सज्जन लोग आपको आपस वां अरुंदत कहते हैं अतएव हे मुनिसुव्रत जिनेंद्र मैं भी आपके लिये  
नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥ जो पहिले सबमें हरिवर्म नामके राजा हुए थे फिर जिन्होंने तपश्चरणकर तथा सोलह  
कारण भाननाओंका चित्तवनकर तीर्थकर नामकर्मका बव किया था, तदनन्तर समाधि मरणसे शरीर छोड़कर जो प्रा-  
णत स्वर्गके इंद्र हुए थे वहासे आकर जिन्होंने हरिवंश रूपी आकाशके निर्मल चंद्रमाके समान तीर्थकर होकर भव्यरूपी  
कमोदनियोंको प्रफुल्लित किया ऐसे श्रीमुनिसुव्रतनाथ भगवान हम लोगोंको लक्ष्मी दें ॥ ६० ॥

अथानंतर-इन्हीं मुनिसुव्रत तीर्थकरके समयमें हरियेण चक्रवर्ती हुआ है । वह पहिले तीसरे भवमें अनंतनाथ  
तीर्थकरके समयमें बड़ा भारी राजा था; किसी कारणसे विरक्त होकर कठिन तपश्चरण किया और समाधि मरणसे  
शरीर छोड़कर तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें सुविशाल विमानमें छह सागरकी आयुवाला देव हुआ । वहाँके निरंतर  
भोग भोगकर तथा आपके अंतर्गत् सबकर मुनिसुव्रत तीर्थकरके समयमें भोगपुर नगरके राजा इक्ष्वाकुवंशी पद्मनाभकी  
रानी ऐराके हरियेण नामका उषम पुत्र हुआ ॥ ६१-६४ ॥ दशहजार वर्षकी उसकी आयु थी और वीस धनुष

डुतो जातो हरिणः सुरोत्तमः ॥ ६४ ॥ समायुतमितातमायुः कनकचक्षुरसच्छविः । धनुर्विशतिमानागः क्रमेण पूर्णयौवनः ॥ ६५ ॥ कदाचित्तेन गत्वाऽम  
 पद्मनाभमहामतिः । जिनं मनोहरोद्यानेनंतवीर्याभिधानक ॥ ६६ ॥ अमिवय ततः श्रुत्वा तत्त्वं संपारमोक्षयोः । संसृज्य राक्षसां वृत्तिं शमे स्थातुं समुत्सु-  
 तीयसोपानमिति मत्वाविशतुरं ॥ ६९ ॥ तपस्यतद्विरं घोरं पद्मनाभमहासुनेः । दीक्षावनेभूतैकैक्यं प्रतिमायोगधारिणः ॥ ७० ॥ आसन्नकातपत्रासिदंढर-  
 दत्त्वा वृष्टिघनं प्रायज्विनपूजाविधिस्तस्या । पूजयित्वासिधर्वेनं जिनः प्रतिनिवर्त्य सः ॥ ७३ ॥ पुरं प्रविश्यं चक्रस्य कृतपूजाविधिर्दिशः । जेतुं समुद्यतस्तस्य  
 तदानीमभवतुरं ॥ ७४ ॥ पुरोहितो गृहपतिः स्थपतिश्च चतुर्पतिः । हस्त्यश्चक्रचारुजातिः खगाद्वैरोनयन् खगाः ॥ ७५ ॥ नवीमुखेषु सभूलाव्रवापि महतो  
 ऊंचाः शरीरं था । इसतरह वह क्रमसे पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ था ॥ ६५ ॥ किसी एक दिन राजा पद्मनाभ  
 हरिणके साथ मनोहर नामके उद्यानमें भगवान् अनंतवीर्यकी वंदना करनेकेलिये गये थे तथा संसार और मोक्षका  
 स्वरूप सुनकर वहीपर उन्होंने राज्य छोड़कर शांत होनेकी इच्छाकी थी ॥ ६६-६७ ॥ मोक्षकी इच्छा करते हुए  
 उन्होंने पुत्र हरिणको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ संयम धारण किया ॥ ६८ ॥ हरिणने भी श्रावकके उच्चम  
 व्रत धारण किये और उन्हें मोक्षकी दूसरी सीढ़ी मानकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ६९ ॥ इधर घोर तपश्चरण  
 करते हुए पद्मनाभ महाशुद्धी दीक्षावनमें ही योग धारण किया और वही पर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥  
 ७० ॥ उसी दिन और उसीसमय हरिण चक्रवर्तीकी आयुधशालामें चक्र छत्र तलवार और दंड रत्न प्रगट हुआ तथा  
 श्रीगृहमें काकिणी चर्म और मणि ये तीन रत्न प्रगट हुए । समाचार देनेवालेने दोनों समाचार एक साथ आकर  
 सुनाये, सुनकर हरिणका चित्त बहुत ही संतुष्ट हुआ समाचार देनेवालेकेलिये संतोषजनक घन दिया और भगवान्  
 को नमस्कार कर उनकी पूजा करनेकी इच्छासे निकला । भगवानकी पूजा और वंदनाकर अपने नगरको लौटा ।  
 पुरोहित गृहपति स्थपति ( शिलामटी ) और सेनापति ये चार रत्न प्रगट हुए तथा विद्याधर लोग विजयाद्वि पर्वतसे  
 हाथी घोड़ा और कन्या ये तीन रत्न लाये ॥ ७१-७५ ॥ गणवद्ध नामके देव बड़ी भक्तिसे नदी मुखमें ( जहां नदी  
 समुद्रमें गिरती है ) उत्पन्न हुई बड़ी भारी निधियोंको लाये ॥ ७६ ॥ उन देवोंके साथ साथ छहतरहकी सेना लेकर

निधीन् । आनिधिरं महात्मक्या गणनद्धामिधाः सुराः ॥ ७६ ॥ स ते स्थाप्यबडगेन बलैर्न प्रस्थितो दिशः । जित्वा तत्सारम्भानि स्वीकृत्य विजिताखिलं ॥ ७७ ॥ स्वराजधान्यां संसेव्य सुरभूपखगाधिपैः । दशागमोगान्निर्व्यग्रं निर्विघ्नं सुचिरं स्थितः ॥ ७८ ॥ कदाचिक्वार्तिके भासे नदीश्वरदिनेष्वयम् । कृत्वाष्टषु महापूर्णां सोपवासांतिमे दिने ॥ ७९ ॥ दम्यष्टे सभामध्ये शारददुरिवावरे । भासमान समालोक्य राष्ट्राप्रसीकृत विभुं ॥ ८० ॥ पिपास्तु ससृष्टे आंब ज्योतिर्लोकैकनायक । प्रस्तस्तारापति कष्ट पूर्णः स्वेवेष्टितोऽप्ययं ॥ ८१ ॥ अत्र का गतिरन्येन प्राप्तं कालेऽविलंघिनि । विद्यां विलसतीत्याप्तानिवेदो भरताधिपः ॥ ८२ ॥ अनुप्रेक्षा स्वरूपाख्या मुखेन स्वसभास्थितान् । धर्मसारं निरूप्याशु कृत्वा तत्सर्वार्थवेदिन ॥ ८३ ॥ दत्त्वा राज्यं सतां पूज्यो महासेनाय सृजने । तत्प्राथितेन संतर्पणीनानाथवनीपकान् ॥ ८४ ॥ श्रीनागजिनमासाद्य सीमांतानलघुस्थित । ययोकविधिना त्यक्त्वा संगं दुल्यगमनगजित्वा ॥ ८५ ॥ बहुभिः सह संप्राप्य सयमं शमसाधनं । क्रमेण प्राप्तवह्निदिराधुरते चतुर्विधा ॥ ८६ ॥ आराधनां समाराध्य प्रायोपगमनं श्रित । क्षीणपापः कृपापूर्तिरा-

वह सब दिशाओंमें गया, सबको जीतकर उनके उत्तम उत्तम सबको जीतकर अपनी राजधानीमें लौट आया । वहाँपर अनेक देव-विद्याधर और राजा उसकी सेवा करने लगे तथा स्वस्थतासे दश तरहके भोगोंका उपभोग करते हुए उसने बहुत दिनतक निवास किया ॥ ७७-७८ ॥ किसी एक समय क्रांतिक्र महीनेके नदी-श्वरके दिनोंमें आठ दिनतक महापूजाकर तथा अंतके दिन उपवासकर वह राजा हरियेण राजभवनकी छतपर सभामें बैठा था, वहीँपर बैठे बैठे उसने आकाशमें शरद ऋतुका दैदीप्यमान चंद्रमा देखा, थोड़ी ही देरमें उस चंद्रमाको राहुने ढक लिया, उसे देखकर वह विचार करने लगा कि संसारकी ऐसी दशाको धिक्कार है देखो यह चंद्रमा अपने तारागणोंसे घिरा हुआ, पूर्ण था और ज्योतिर्लोकका एक स्वामी था तथापि उसे राहुने ढक लिया यह बड़ा ही दुःख है । जब चंद्रमाकी यह दशा है तब जिसे कोई उल्लघन नहीं कर सकता ऐसे कालके आ-पहुंचनेपर दूसरे जीवोंकी क्या दशा होती होगी ? इसप्रकार प्रकाशमान चंद्रमाको देखकर ही उस चक्रवर्तीको वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ८३ ॥ सज्जनोंके द्वारा पूज्य ऐसे उस हरियेणने अपने पुत्र महासेनको राज्य दिया तथा दीन अनाथ और याचकोंको उनकी प्रार्थनाके अनुसार स्व संतुष्ट किया ॥ ८४ ॥ कामदेवको जीतनेवाले उस हरियेणने सीमंत नामके पर्वतपर विराजमान श्रीनाग नामके जिनराजके समीप जाकर बाण अभ्यंतर दोनों तरहके परिग्रहका त्याग किया ॥ ८५ ॥ कृपाकी साक्षात् मूर्ति ऐसे उस हरियेणने अनेक लोगोंके साथ साथ समता अथवा शान्त परिणामोंका कारण ऐसा संयम धारण किया, क्रमसे अनेक ऋद्धियां प्राप्त कीं, आधुके अंतमें चारों प्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया,

प्राप्तिमुत्तरं ॥ ८७ ॥ भूय कोपि पुरा श्रिया श्रितबुधः पापोपलेपादुद्वेगं विभ्र्यतात्य तपो भवस्य धारणं मत्वा पृतीयैर्भवत् । कल्पेते भुवनेत्य चक्रिगदव  
सभास्य भुक्त्वा उलं स श्रीमान् हरिरेणराजवृषभ सर्वार्थसिद्धिं यथा ॥ ८८ ॥ त्रिपैस्मिन्नेव भूभूतावष्टौ रामकेवकौ । रामलक्ष्मणनामानौ तत्पुराणं नि-  
गच्छते ॥ ८९ ॥ इहैव भारते क्षेत्रे राष्ट्रे मलयनामनि । प्रजापतिमहाराजोजति रत्नपुराधिपः ॥ ९० ॥ उक्तस्य गुणकार्या चंद्रचूलसमाह्वयः । निजया-  
व्येन तत्स्वावीत्समीतिर्मयिमुमुना ॥ ९१ ॥ पितृसन्नाहितौ बालौ कुलादिमदचोदितौ । अमृता दुष्टचारिणौ दंतिनौ वानिबर्हिनी ॥ ९२ ॥ अन्येद्युस्तत्पुरे  
गौतमावैश्रवणसंभव-श्रीदत्ताढ्याय मुख्याय कुवेरेणात्यजां सर्तौ ॥ ९३ ॥ दीयमाना समालोक्य पाण्यभःसेकपूर्वकं । कुवेरदत्ता केनापि महापापविधामि-  
ना ॥ ९४ ॥ तस्याः स्वायुर्वरेणिका धृत्वा रूपादिसंपदं । कुमारं ता स्वसात्कर्तुं सह मित्रे समुच्यते ॥ ९५ ॥ वणिक्संघसमाक्रोशध्वनिमाकर्ण्य भूपतिः ॥  
प्रायोगमन संन्यास धारण किया और पापोंको नाशकर अंतिम अनुत्तर अर्थात् सर्वार्थसिद्धि प्राप्तकी ॥ ८६-८७ ॥  
श्रीमान् हरिरेण चक्रवर्तीका जीव पहिले जिसका शरीर लक्ष्मीसे सुशोभित है ऐसा कोई राजा था उसने पापोंसे सब  
उरकर संसारमें एक ही शरण ऐसा तपश्चरण धारण किया, आयुके अंतमें तीसरे स्वर्गमें देव हुआ वहांसे चयकर  
इस पृथ्वीपर जन्म लेकर चक्रवर्तीका पद पाया अनेक तरहके सुखोंका अनुभव किया राजाओंमें श्रेष्ठ हुआ और आयु-  
के अंतमें सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिंद्र उत्पन्न हुआ ॥ ८८ ॥

अथानंतर-इन्हीं युनिसुत्रत तीर्थकरके समयमें राम लक्ष्मण नामके आठवें बलभद्र नारायण हुए हैं उन्हींका पु-  
राण अब लिखा जाता है ॥ ८९ ॥ इसीभरत क्षेत्रके मलय देशमें रत्नपुर नगरके स्वामी महाराज प्रजापति राज्य क-  
ता था ॥ ९०-९१ ॥ जिसप्रकार दुष्ट हाथी किसीसे रोक नहीं जाता उसीप्रकार माता पिताओंके बहुत ही प्रेम रख-  
करनेसे और कुल आदिके घमंड करनेसे वे दोनों ही दुराचारी होगयेथे ॥ ९२ ॥ किसी एक दिन उसी नगरके रहनेवाले कुवेर-  
शेठने अपनी पुत्री कुवेरदत्ताया उसी नगरके रहनेवाले शेठ वैश्रवणकी स्त्री गौतमासे उत्पन्न हुए श्रीदत्त नामके मुख्य पुत्रकेलिये  
विधिपूर्वक विवाहकर देनेका विचार किया । उसीसमय महा पाप करनेवाले किसी सेवकने उस राजकुमारसे कुवेरदत्ताके  
रूप आदिकी प्रशंसाकी उसे सुनकर वह राजकुमार अपने मित्रके साथ उस कन्याको अपने स्वाधीन करनेके लिये तैयार  
हुआ ॥ ९३-९५ ॥ इस बातको जानकर वैश्रवणका समुदाय चिछाता हुआ महाराजके पास पहुंचा उनके रोने चिछानेकी सुनकर  
अपने पुत्रके दुराचाररूपी ईधनसे उत्पन्न हुई राजाकी क्रोधरूपी अग्नि बहुत ही बढ़ गई और उसने कौतवालकी बु-

स्वतन्त्रदुर्गाचारदारुणदण्डकोपपापकः ॥ ९६ ॥ पुरस्सं समाङ्गं दुरात्मानं कुमारम् । लोकातरातिभिं सद्यो विधेहीति समादिशत् ॥ ९७ ॥ तदैव सोपि राजा चोदितस्तुमुलहवे । जीवग्रहं गृहीत्स्वैनमानयभ्रिकटं विभो ॥ ९८ ॥ तदालोक्य किमिलेष पापीहानीयते ब्रुव । निशातशूलमारोप्य रमशाने स्थाप्य-  
तामिति ॥ ९९ ॥ राज्ञोके प्रस्थितो हर्षं कुमारं पुररक्षकः । न्यायानुवर्तिनां युक्तं न हि ब्रह्मनुवर्तिनः ॥ १०० ॥ तदामारयोत्तमः पौरान्पुस्कृत्य महीपति । व्यभिचरपदिति व्यक्तमुक्षिप्तकरकुट्टमल ॥ १०१ ॥ कृत्याकृत्यविवेकश्च न वाल्यादेव विद्यते । प्रमादस्माकमेवाय विनेया पितृभि हुताः ॥ १०२ ॥ न दत्तोय वृषिर्वेदी शेषावे चेद् द्युयोजितं । प्राप्तिभ्यो न किं कुर्यादसौ दर्पग्रहाहितः ॥ १०३ ॥ न बुद्धिमान् न कुर्वन्नि न दुर्बुद्धिर्न । आहार्यबुद्धिरेषोतः शिक्षणीयोऽधुनाप्यल ॥ १०४ ॥ न कोयोस्मिस्तथास्त्येव न्यायमार्गेर्निनीषयाः । निशुद्धास्येक एवायं राज्यसंततिस्ततौ ॥ १०५ ॥ अन्यत्संधित्सतोत्रा-

लाकर आज्ञा दी कि इस दुष्ट कुमारको अभी परलोक भेज दो ॥ ९६-९७ ॥ कोतवालने भी उसी समय महाराजकी आज्ञाके अनुसार बड़ी भारी मीढ़में से राजकुमारको जीता हुआ ही पकड़ लिया और वह उसे महाराजके समीप ले आया ॥ ९८ ॥ उसे देखकर महाराजने आज्ञा दी कि इस पापीको शीघ्र ही मार दो और इमशानमें ले जाकर पैनी गूली पर चढ़ा दो ॥ ९९ ॥ महाराजकी आज्ञानुसार वह कोतवाल भी उम कुमारका मारनेके लिये ले गया सो ठीक ही है क्योंकि न्यायमार्गसे चलनेवाले राजाओंको प्रेम करना युक्त नहीं है ॥ १०० ॥ इधर यह हाल देखकर मुख्य मंत्री सब नगर निवासियोंको लेकर महाराजके समीप गया और खड़े होकर हाथ जोड़कर नीचे लिखे अनुसार निवेदन करने लगा ॥ १०१ ॥ कि हे देव यह काम करने योग्य है यह नहीं ऐसा बालपनसे नहीं होता है, तथा इसमें तो हम लोगोंका प्रमाद है क्योंकि लड़कोंको विनीत और सदाचारी बनाना माता पिताका काम है ॥ १०२ ॥ यदि बालकपनमें हाथीको यथा योग्य रीतिसे बशमें न किया जाय तो फिर वह किसी मनुष्यसे बश नहीं हो सकता । इसीतरह अस्मिन्नरूपी ब्रह्मसे प्रसूत हुआ यह मनुष्य ऐश्वर्य पाकर क्या नहीं कर सकता है ? ॥ १०३ ॥ यह कुमार न तो बुद्धिमान है और दुर्बुद्धि है इसलिये यह प्राणघातके दंड देनेके योग्य नहीं है इसकी बुद्धि अभी ब्रह्म करने योग्य है इसलिये अभी इसको खूब शिक्षा देनी चाहिये ॥ १०३-१०४ ॥ कुमारपर आपका कोई कोप तो है नहीं आप तो न्याय मार्गके ऊँचा ले जानेके लिये इसे दंड देना चाहते हैं परंतु आपको यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि राज्यकी संतान बलानेके लिये यह एक ही कुमार है ॥ १०५ ॥ यदि आप इस एकरी संतानको नष्ट कर देंगे तो कुछ करना चाहते थे और कुछ होगया” यह कलक आज ही आपके सिरपर लग जाइगा ॥ १०६ ॥ एक बात और है हम लो-

न्यत्ययुतं तदिति श्रुतिः । सा तवाया समायासि सतानोच्छेदकारिणः ॥ १०६ ॥ एतयुक्तारतो ज्येष्ठ तन्जन्मवर्षीन्युप । इत्यवाच्यमयमस्ताः वैराज्येते  
पुरस्थिताः ॥ १०७ ॥ तत्समस्वर्गपराध ये मन्त्रिणाप्रार्थितोत्सुम् । एतन्मन्त्रिवक्त्रं सुता विरूपकमुदीरितं ॥ १०८ ॥ अबिभ्रिरिव शाकार्य भवदभिः ध्रुतगा-  
रैः । दुष्टानां निग्रहं शिष्टपालनं भुञ्जानं मतं ॥ १०९ ॥ नीतिशालेषु तत्केहमोहासफिमयाक्षिभिः । अस्माभिलोबते न्याये भवतस्तस्य वक्तव्यः ॥ ११० ॥  
तत्कादनुर्गुण्यार्क मां योजयितुमुत्स्ये । दुष्टो दक्षिणहस्तोऽपि स्वस्य छेदो महीमुजा ॥ १११ ॥ कलाकलविवेकतिष्ठो मूढो महीमुखः । स सांख्ययुग-  
स्तेन कल्य आत्रापयन् च ॥ ११२ ॥ तस्मात् प्रतिपेक्ष्योहमिति । रात्राभिमणिते । कैरालदेव जानति देव एवेत्युभयमात् ॥ ११३ ॥ सुते निक्षिप्यतां भर्तु-  
र्जानन् देवाहमेतत् । दंढविष्यामि मत्वेति निर्गल्य तदनुज्ञया ॥ ११४ ॥ प्राप्य स्वराजपुत्राभ्यां वननिर्गन्धिमव्रवीत् । हे कुमार तवावश्यं मरणं समुपस्थितं ॥  
गोके चित्ताने और प्रार्थना करनेसे महाराजने अपने बड़े पुत्रको भरवा डाला' इसी निंदाके भयसे ये नगर निवासी  
लोग आपके सामने आकर खड़े हुए हैं ॥ १०७ ॥ इसलिये हे महाराज हम लोग प्रार्थना करते हैं । हम अपराधको  
क्षमाकर दीजिये । मन्त्रियोंकी इस बातको सुनकर महाराज कहने लगे कि आप लोगोंका यह कहना अनुचित है ॥  
१०८ ॥ यद्यपि आप लोग आश्रयोंके पारगामी हैं तथापि ऐसा जान पड़ता है मानों आप आश्रयके अर्थको जानते ही  
नहीं । नीति शास्त्रके अनुसार दुष्टोंका निग्रह करना और सज्जन लोगोंका पालन करना राजाओंका काम है इसलिये  
रनेह मोह वा असामर्थ्य आदिके भयसे यदि हम लोग न्यायमार्गका उल्लंघन करदेंगे तो फिर आप ही लोग उसकी  
प्रवृत्ति करने लग जायेंगे ॥ १०९-११० ॥ इसलिये आप लोग जो मुझे उन्मार्गमें (अन्यायमार्गमें) ले जाना चा-  
हते हैं सो आपका यह काम ठीक नहीं है । यदि अपना दाहिना हाथ भी दुष्ट हो तो राजाओंको उसे भी काट डाल  
ना चाहिये ॥ १११ ॥ जिस राजाको करने और न करने योग्य कार्योंका कुछ भी विचार नहीं है वह मूर्ख है वह  
सांख्य मतके माने हुये पुरुषके समान है उससे इस लोक और परलोक संबंधी कोई भी कार्य नहीं हो सकता ॥  
११२ ॥ इसलिये इसकाममें मुझे रोकना ठीक नहीं है । महाराजके इसप्रकार कहनेपर नगर निवासी लोगोंने समझा  
कि महाराज सब कुछ जानते हैं और यह समझकर सब लोग डरसे अपने २ घर चले गये ॥ ११३ ॥ पुत्रपर महा-  
राजका प्रेम नहीं है यह जानकर मंत्रीने भी कहा कि मैं स्वयं कुमारको दंड दूंगा यह कहकर तथा महाराजकी आज्ञा  
लेकर वह मंत्री भी निकल गया ॥ ११४ ॥ अपने पुत्र और राजकुमारको साथ लेकर वह वनगिरि नामके पर्वतपर  
गया और वहां जाकर कुमारसे कहने लगा कि अब अवश्य ही आपका मरण समीप आगया है, क्या आप निडर



११५ ॥ विभी सक्नोषि किं मर्तुमिवावादीस चेदह । विभेमि चेदह मृत्योः किमिदं तदनुष्ठितं ॥ ११६ ॥ सलिलं वा वृषातस्य शीतलं मरण मम । तत्र का भीषितिं व्यक्त तदुष्णमवबुध्य स ॥ ११७ ॥ नागरेभ्यो महीमत्रं कुमाराणात्मनेषु च । लोकद्वयहितं कार्यं निश्चिन्त्या सन्निवाप्रणी ॥ ११८ ॥ तदद्विमस्तकं गत्वा महाबलगणेशिनं । अभिवर्धं निजायातृकार्यं चारमयवेदयत ॥ ११९ ॥ मनःपर्ययसञ्चानचक्षुः स गणनायकः । मायैभीद्विवैरो रामकेशवाविहभविना ॥ १२० ॥ वृतीयजन्मनीत्याह तच्छ्रुत्वा सन्निवो मुदा । तौ तत्रानीय सश्राव्य धर्मं संयममापयत ॥ १२१ ॥ ततो भूपतिमासाद्य मन्त्रीतीक्ष्णबोधयत । वारणारिष्यामीरोरकस्य गृहाश्रित ॥ १२२ ॥ अनादृतस्वसौख्यस्य कस्यचिद्वनवासिनः । स्वकार्येष्वतितीक्ष्ण जनस्यात्युभचेष्टितु ॥ १२३ ॥ द्वावर्षिता मया सोपि तवाह कृतदोषयो । भवतो न शुभ स्मर्यं दुःखं भोग्य सुदुष्करं ॥ १२४ ॥ स्मर्तव्या देवता चित्ते परलोकनिमित्ततः । इत्येतौ च होकर मरनेके लिये तैयार हैं ? इसके उत्तरमें कुमारने कहा कि यदि मैं मृत्युसे हस्तारह डरता तो फिर यह अयोग्य काम ही क्यों करता ॥ ११५-११६ ॥ जिसप्रकार प्यासे मनुष्यको पानी ठंडा और अच्छा लगता है उसीप्रकार मेरे लिये मरण है इसमें डरनेका क्या काम है इसप्रकार कुमारकी बात सुनकर उस मुख्य मंत्रीने नगरनिवासी महाराज राजकुमार और अपने दोनों लोकोंका हित करनेवाला कोई कार्य करनेका निश्चय किया ॥ ११७-११८ ॥ तदनंतर वह मन्त्री उस पर्वतकी सिखरपर चढ़ा और उसने वहाँ पर विराजमान श्रीमहाबल नामके गणधरकी वंदना की तथा उसने अपने आनेका कारण भी निवेदन किया ॥ ११९ ॥ वे गणधर देव मनःपर्यय ज्ञानी थे इसलिये कहने लगे कि तुम बड़ो मत ये दोनों ही तीसरे भवमें नारायण और बलभद्र होनेवाले हैं” यह सुनकर वह मन्त्री प्रसन्न होकर उन दोनोंको ले आया और धर्म श्रवण कराकर संयम धारण करादिया ॥ १२०-२२१ ॥ तदनंतर वह मन्त्री राजाके समीप आया और नीचे लिखे अनुसार राजाको समझाने लगा कि एक कोई शुभाभे रूढ़नेवाला बनवासी सिंहके समान निर्भय था, उसने अपने सब सुख छोड़ रखे थे, अपने काममें वह बड़ा ही तीव्र था और उसकी चेष्टाएं अत्यंत उग्र थीं उसे ही मैं उन दोनों पुत्रोंको सौंप आया हूँ । जाते ही उस बनवासीने दोनों पुत्रोंसे कहा था कि तुम दोनोंने बहुत दोष किये हैं अब तुम अपने सुखका स्मरण मत करो किंतु कठिनसे कठिन दुःख भोगनेके लिये तैयार हो ॥ १२२-१२४ ॥ अब तुम्हें परलोकके लिये अपने इष्ट देवताका स्मरण कर लेना चाहिये, यह सुनकर उन दोनोंने इससे कहा कि हे भद्र आप हमारे कष्ट और दंडकी चिंता न करें यह काम हमने अपने ही हाथसे किया है हस्तारह करके वे दोनों ही कठिन दुःख सहकर

भद्रत्वं माहृषा कष्टदंनं ॥ १२५ ॥ आवाभ्यामावयोः कार्यभिरयात्मकरभावितो । वेदनां तीव्रमापाय परलोकोन्मुखावुभौ ॥ १२६ ॥ अङ्गानां तद्विद्वो-  
क्त्वाहमभिप्रेतावनिष्ठितौ । सुविधाययातो वेब सिद्ध भवदुर्वीरित ॥ १२७ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं राजा महादुःखाकुलो यनाक् । निषातस्तिमितस्माजसमानो निश्च-  
ल स्थितः ॥ १२८ ॥ आत्मना मंत्रिभिर्विषुजैश्चालोक्य निश्चितं । कार्यं हितमनुष्ठेय तत्प्राप्तानुष्ठित त्वया ॥ १२९ ॥ करजालमतिक्रातमिव सर्पिमहीरिष्टे ।  
प्रसूनमिव संश्रुत्क कार्यं कालातिपातितं ॥ १३० ॥ तत्र शोको न कर्तव्यो द्युषेति सन्निवोदितं । श्रुत्वा तद्वचनं ब्रूहि तर्कं तद्वृत्तक कथ ॥ १३१ ॥ इत्य-  
प्राशीततोत्सामिप्रायश्चित्सन्निवोऽब्रुवत् । यतयो वनगिर्यद्रिशुद्ध्यगहनवासिनः ॥ १३२ ॥ धैर्यसिधारानिर्भिन्नकषायविषयद्विपः । स्थूलसूक्ष्मासुशुद्धशान्तिना-  
तोयतद्वृत्तय ॥ १३३ ॥ मिया मियेव कोपेन कोपेनैवान्तितायायाः । असयतेषु भोगोपभोगोऽप्येव निरादराः ॥ १३४ ॥ तेभ्यस्तौ धर्मसद्भाव श्रुत्वा निर्विय

परलोक जानेके लिये तैयार हुए । यह देखकर मैंने भी इच्छानुसार अपना काम होता हुआ देखा और फिर मैं यहां चला आया । हे देव ! इसतरह आपका कहा हुआ सब काम बन गया ॥ १२५-१२७ ॥ मंत्रीकी इस बातको सुनकर राजाके चित्तमें बहुत दुःख हुआ और जिसप्रकार हवा वंद हो जानेपर दृक्ष निश्चल हो जाते हैं उसीप्रकार वह बोड़ी देर तक निश्चल रहा ॥ १२८ ॥ तदनंतर राजाने मंत्री और भाई बंधुओंके साथ विचारकर निश्चय किया कि तुमने वह काम कर डाला है जो पहिले कभी नहीं किया था । यह सुनकर मंत्री फिर कहने लगा कि यह काम सूके हुए फूलके समान अथवा सर्प वाले वृक्षपर बहुत फैले हुए करजालके समान समयके आधीन पड़ गया है इसमें व्यर्थ ही शोक करना उचित नहीं है । यह सुनकर राजा फिर पूछने लगा कि वास्तवमें जो हुआ है उसे सब सच कहो । तब महाराजके अमिप्रायको जाननेवाला मंत्री कहने लगा कि वनगिरि नामके पर्वतकी गहन गुफामें निवास करने वाले यति थे, वे कषाय और विषयरूपी शत्रुओंको धैर्य रूपी तलवारकी धारसे नाश करनेवाले थे, उनकी प्रवृत्ति स्थूल सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा करनेमें सदा तैयार रहती थी, उनके हृदयमेंसे भय मानों भयसे ही भाग गया था और क्रोध क्रोधित होकर ही पास नहीं आता था, वे असंयमके समान भोगोपभोगोंमें भी सदा निरादर ही किया करते थे ॥ १२९-१३४ ॥ उनके समीप धर्मका स्वरूप सुनकर वे दोनों ही पुत्र दीक्षित हो गये हैं । इसप्रकारके स्पष्ट बचनोंको सुनकर महाराज बहुत ही संतुष्ट हुए ॥ १३५ ॥ उन्होंने मंत्रीकी प्रशंसाकी और कहा कि दोनों लोकोंका हित करनेवाला तू ही है ॥ तदनंतर “कुपुत्रके समान ये भोग भी पाप और निंदाके कारण हैं” यही समझकर महाराज प्रजापतिने अपने राज्यका महाभाग अपने कुलके किसी योग्य पुरुषको दिया और बन पर्वतपर जाकर महाबल नामके गणधरकी पूजा

सीकृति । इति विस्पष्टतद्व्याख्यापरितुष्टो यदीपसि ॥ १३५ ॥ लोकद्वयद्वितो नान्यस्त्वमेवेत्यभिनिन्द्य तं । दुपुत्र द्वय भोगोय गापापलापकारण ॥ १३६ ॥ इति-  
स्वकुसुमयोग्याय दत्तराज्यमहाभर । गला गणेशमन्यार्ज्यं वनाशौ नवसंयता ॥ १३७ ॥ मया कृतो महान् दोष त क्षमेयां युवामिति । निगदन्नाबयोर्लोकद्वि-  
सीवैकगुरुर्भवात् ॥ १३८ ॥ सयमोयं त्वय्यपि ताभ्यां सप्राप्य संस्त्वं । बहुभिर्भूजै सादं लक्षसग स सयम ॥ १३९ ॥ प्राप्य क्रमेण च्वत्तारिथितिकर्म-  
विषातकृत् । केवलवगमज्योतिर्लोकामे व्ययुततरा ॥ १४० ॥ तौ समुत्कृष्टचारिणौ द्वौ खड्गपुरवागणौ । आतापयोगमादाय तस्यतुल्यस्त्वकाविप्रदौ ॥ १४१ ॥  
तपुराविषयोमप्रमाद्वयस्य सुदर्शना । सीता च देव्यौ तत्सूनु सुप्रभः सुप्रभागधृत् ॥ १४२ ॥ पुरुषोत्तमनामा च गुणेश्व पुरुषोत्तमः । मधुसूदनमुचिष्ठयु  
कृत्स्निरज्यपूर्णक ॥ १४३ ॥ द्रुवचरसुराधीनाप्रवर्द्धितमहोदय । प्रविशत प्रभात नगरं पुरुषोत्तमं ॥ १४४ ॥ चन्द्रशूलमुनिं द्रष्टुं निदानमकृताङ्क । जीवि-

की । वहींपर नवदीक्षित दोनों कुमार विराजमान थे उनसे कहा कि “ मैंने बड़ा अपराध किया है आप दोनों ही क्षमा कीजिये ” इसके उत्तरमें उन दोनोंने उनकी प्रज्ञा की और कहा कि “ आप हमारे दोनों लोकोंके एक ही गुरु हैं आपने ही हमको यह संयम धारण कराया है ” तदनंतर महाराज प्रजापतिने अनेक राजाओंके साथ परि-  
ग्रह छोड़कर संयम धारण किया, पापरूप शत्रुओंका नाश किया, घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान रूपी ज्योति प्राप्तकी और अंतमें लोक शिखरपर जाकर सुशोभित होने लगे ॥ १३६-१४० ॥ इधर उत्कृष्ट चारित्र्य पालन करते हुए वे दोनों ही पुत्र किसी एक दिन आतापन योग धारणकर तथा शरीरसे ममत्व छोड़कर खड्गपुर नगरके बाहर वि-  
राजमान थे ॥ १४१ ॥ उसी खड्गपुर नगरके राजाके सोमप्रभ की रानी सुदर्शना और सीतासे सुंदर कातिवाले श-  
रीरको धारण करनेवाला सुप्रभ और गुणोंसे भी पुरुषोत्तम ऐसा पुरुषोत्तम नामके दो पुत्र थे जोकि बलमद् और नारायण कहालगे थे । वे मधुसूदन नामके प्रतिनारायणको मारकर और दिग्विजयकर आए थे ॥ १४२-१४३ ॥ अनेक राजा विद्या-  
धर और देवता उनके प्रेक्षकों बड़ा रहे थे । इसतद्द प्रभावशाली पुरुषोत्तमको । नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर अज्ञानी चन्द्रचूलमुनिने ( राजाके पुत्रने ) निदान किया आयुके अंतमें दोनोंने ही चारोंप्रकारकी आराधनाओंका आ-  
राधन किया तथा चंद्रचूल सनतकुमार स्वर्गके कनक प्रभ विमानमें विजय नामका देव हुआ और मंत्रीका पुत्र स्वर्ण-  
चूल उसी स्वर्गके भगिप्रभ विमानमें भणिचूल नामका देव हुआ, दोनोंकी सात सागरकी आयु थी और दोनोंने ही बहुत दिन तक स्वर्गोंके सुखोंका अनुभव किया वहांसे च्युत होकर वे दोनों ही इसी भयत क्षेत्रमें उत्पन्न होगे ॥ १४४-१४७ ॥  
अबानंतर-बनारस नगरके प्रसिद्ध राजा दधरथके सुवाला नामकी रानी थी, उसने शुभ स्वप्न देखे और उसी-

तावसितौ सम्पन्नारण्योर्भौ ब्रह्मविष्णु ॥१४५॥

गरोपमितायुधौ । इषिर् अणुसंभोगी ततश्च्युतेह मंगते ॥ १४७ ॥

१४८ ॥ इष्णुपक्षे त्रयोदश्यां फाल्गुने मास्यजायत । भगव्या इत्युद्राकी चलातकनकामरः ॥ १४९ ॥ त्रयोदशसहस्राब्दो रामनामानताश्चितः । ततएव महीभर्तुं कैकेय्यामभवत्पुर ॥ १५० ॥ सरःसुगन्दुकलमक्षेत्रसिंहाय महाफलीन । स्वप्नान् संदश्ये माषस्य शङ्कयथादिने दिने चक्रांको मणिचूलोऽय्यताशन । बहुगुणद्विसहस्राब्दजीवितो लक्ष्मणाह्वयः ॥ १५१ ॥ ता पंचदशजायते द्वात्रिंशत्संक्षणां विवता । आदिसंहननो संस्थानं चा-

भृशदक्षिण तयोः ॥ १५३ ॥ अमेयवीर्यो हसासनीलोत्पलसमस्त्विवौ । तयोः संपंचपंचाक्षरं पंचाशद्वर्षसंमिते ॥ १५४ ॥ कुमारकाले नि कृतिं नितान्तर- के गर्भसे फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें स्वर्णचूल देवका जीव ( मंत्रीका पुत्रका ) होनहार बलमद्र उ-

त्पन्न हुआ ॥ १४८-१४९ ॥ राम उसका नाम था तेरह हजार वर्षकी उसकी आयु थी और उसने सब संसार अपने आधीन कर लिया था, उसी राजा दशरथके एक कैकेयी रानी थी उसने सरोवर सूर्य, चंद्रमा, कलमी चावलोंका खेत और सिंह ये पांच महाफल देनेवाले स्वप्न देखे और उसके गर्भसे माष शुक्ला पडिवाके दिन विशाखा नक्षत्रमें मणिचूलदेवका जीव ( राजपुत्रका जीव ) उत्पन्न हुआ, चक्रका चिन्ह उसके शरीरपर बहुत ही अच्छा जान पड़ता था, बारह हजार वर्ष उसकी आयु थी और लक्ष्मण उसका नाम था ॥ १५०-१५१ ॥ ये दोनों ही माई, पंद्रह वर्ष तुष ऊंचे थे, बत्तीस लक्ष्मणोंसे सुसोमित थे, उन दोनों ही के वज्रवृषभ नाराच नामका पहिला संहनन था पहिला ही समचतुरस्र नाम संस्थान था, दोनों ही अमित शक्तिवाले थे, राम चंद्रके शरीरकी कृति इसके पंखोंके समान सफेद थी और लक्ष्मणके शरीरकी कृति नीलकण्ठके समान इयाम थी कुमार कालके रामके पंचपन और लक्ष्मणके पचास वर्ष व्यतीत होजानेपर उन दोनों माइयोंका परम ऐश्वर्य प्रगट हुआ था ।

अथानंतर-इसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें इक्ष्वाकुवंशके भरत आदि असंख्यात राजा हो गये थे, उनके बाद दशर्षा चक्रवर्ती हरिषेण हुआ उसके भी सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र होनेके एक हजार वर्ष बाद सगर नामका राजा हुआ था ॥ १५३-१५७ ॥ वह सब देशका स्वामी था और बड़ा ही प्रतापी था एक बार दुलसाके स्वयंवरमें मधुपिंगल नामका सुंदर कुमार आया था पतंग राजा सगरने "इसके लक्षण दूषित हैं इसतरह कहकर राजाओंके बीचमें निरादरकर उसे निकाल दिया था इस तरह सगरके साथ वैर बांधकर वह मधुपिंगल वहांसे निकल गया और लज्जित होकर उसने संयम धारण

मौदये । भारतेस्मिन्नोच्चार्या भारतादिमहीभिः ॥ १५५ ॥ गतेचिक्वाकुमुद्येयु सख्यातीतेष्वनन्तरं । हरिवेणमहाराजे दशमे चक्रवर्तिनि ॥ १५६ ॥ स-  
र्वार्थसिद्धाबुल्लेखं संवत्सरसहस्रके । काले गतवति प्रामत्सगराख्यो महीपति ॥ १५७ ॥ नि खंडमंडलखंडः सुलसायाः खयवरे । मधुपिंगलनामान कुमार-  
वरमागतं ॥ १५८ ॥ दृढालक्ष्म्यामित्युक्त्वा निगम्यत नृपसमर्थग । सगरे वदवैरः सन् नि क्रम्य मधुपिंगलः ॥ १५९ ॥ सलज्ज सयमी भूत्वा महाकालो-  
सुरोमभवत् । सोसुरः सगराधीशवशात्तिल्लोभयत् ॥ १६० ॥ द्विजवेष समादाय संप्राप्य संगराहय । अपूर्ववेदविहितं प्राणहिंसापरायण ॥ १६१ ॥ कुह याग  
प्रियो दृढये शत्रुविच्छेदनेच्छया । इति त दुर्मति भूत पापासीरुष्यमोहयत् ॥ १६२ ॥ भृशुष्टाय तथा सोमि प्राविशत्पाणिनां किति । निर्मूलं कुलमप्यस्य  
नष्ट दुर्मतिवर्तनात् ॥ १६३ ॥ भुत्वा तत्तात्पलौ रामपितासक क्रमागत । साकेतपुरमित्येय तदध्यात्म्यत्वेपालयत् ॥ १६४ ॥ तत्रास्य देव्या कस्याविदम-  
वद्भरताह्वयः ॥ शत्रुम्रधान्यद्वयेक दशाननवधाबाधः ॥ १६५ ॥ कारण प्रकृत भावि रामलक्ष्मणयोसिदं । मिथिलानगराधीशो जनकस्तस्य वल्लभा ॥ १६६ ॥

कर लिया तथा मरकर वह महाकाल नामका व्यंता देव हुआ । वह व्यंतर देव राजा सगरके वंशको नाश करने-  
के लिये तैयार हुआ ॥ १५८-१५९ ॥ ब्राह्मणका भेष धारणकर वह राजा सगरके समीप आया, पापोंसे नहीं डरनेवाले  
उम देवने दुर्बुद्धि राजा सगरको मोहितकर कहा कि यदि तू अपनी लक्ष्मीको बढ़ाना चाहता है और शत्रुओंके नाश  
करनेकी इच्छा रखता है तो अपूर्व वेदमें कहें हुये और प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले भस्मको कर ॥ १६१-१६२ ॥  
उसके कहनेसे सगरने भी सब ज्योंका त्यों किया और अंतमें वह पापियोंकी पृथ्वी नरकमें जा उत्पन्न हुआ । और  
मिथ्या मार्गमें प्रवृत्त होनेसे उसका कुल समूल नाश होगया ॥ १६३ ॥ इसे बातको सुनकर दशरथने विचार किया  
कि अयोध्यामें कुलक्रमसे हमारा राज्य चला आता है यही समझकर वे अपने पुत्रोंसहित अयोध्यामें आये और  
वहाँका राज्य करने लगे ॥ ६४ ॥ वहींपर उनके किसी रानीसे भरत नामका पुत्र हुआ, तथा किसी दूसरी रानीसे  
शत्रुघ्न नामका पुत्र हुआ था । रामलक्ष्मणके प्रसिद्ध होनेका स्वामाविक कारण रावणके मारनेसे उत्पन्न हुआ यश  
ही था और वह दसप्रकार प्रगट हुआ था कि उसीसमय मिथिला नगरमें राजा जनक राज्य करते थे उनकी पटरानीका  
नाम वसुधा था, वसुधा बड़ी ही रूपवती और विनयादि गुणोंसे सुशोभित थी उसके एक सीता नामकी पुत्री थी,  
जब वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई ॥ १६५-१६७ ॥ तब उसे मांगनेकेलिये अनेक राजाओंके दूत आये परंतु राजा  
जनकने सबको यही कहकर विदा कर दिया था कि यह मैं उसीको दूंगा जिसका देव अनुकूल होगा ॥ १६८ ॥

अयानन्तर-राजा जनक किसी एक दिन विद्वज्जनोंसे सुशोभित अपनी समामें बैठा था वहीं पर कार्य करते में

सुरुषा वडुषा देवी विनयादिबिभूषिता । कुता सीतेत्यभूत्स्याः सप्राप्तनवयौवना ॥ १६७ ॥ तां बरीतुं शमायातवृष्टनान्महीपतिः । ददामि तस्यै देवानु-  
कूल्य यत्सेति सोमुच्यत ॥ १६८ ॥ नृप कदाभिरास्थानीं विद्वज्जनविराजिनीं । आस्थाय कार्यकुशलं कुशलार्थमिति हितं ॥ १६९ ॥ सेनापतिं सम्प्रासीत  
प्राक्प्रवृत्तं कर्णतरं । पुरा किलात्र सगरः सुलसा चादुतीकृता ॥ १७० ॥ परे चाश्वादयः प्रापत्सशरीरां सुरालयं । इतीदं धूयतेषामपि यागेन यदि गम्भ-  
ते ॥ १७१ ॥ खल्लोकः क्रियतेस्मासिरपि याहो यथोचित । इति तद्वचनं श्रुत्वा स सेनापतिरब्रवीत् ॥ १७२ ॥ नागादुरैः सदा कुद्वैमत्स्येण परस्परं ।  
अन्योन्यावरव्वकार्यार्णं प्रतिघातो विधीयते ॥ १७३ ॥ अयं चाद्यमहाकालेनादुरेण नवो विधिः । याहो विनिर्मितस्तस्य विधातः शंक्यतेरिभि ॥ १७४ ॥  
नागगण्डपुङ्क्तोभूतमेव विनमेरपि । ततोयातास्य हन्तारः खगास्तपक्षपातिनः । यागः सिद्ध्यति शष्कानां तद्विकारव्यपोहने । यद्यप्येतन्ननुष्ठेयं ह्यन्यथैव  
निवासिनः ॥ १७५ ॥ निश्चितो रावणः शैत्यशाली मानप्रहाहितं । तस्मात्प्रागपि शंकास्ति स कदाचिद्विधातुकृत् ॥ १७७ ॥ स्मात्तद्रामाय शकाय दास्या-

कुशल और हित करनेवाला कुशलमति सेनापति बैठा था राजाने सेनापतिसे कुछ पहिलेकी कथाएं पूछी और पछा  
कि पहिले राजा सगर रानी सुलसा तथा और घोडा आदि कितने ही जीव यज्ञमें होमे गये थे और वे सब शरीर  
सहित स्वर्गको गये थे ऐसा सुना जाता है यदि आज भी यज्ञसे स्वर्गमें चले जाते हों तो यथायोग्य रीतिसे हम  
लोगोंको करना चाहिये । राजाकी इस बातको सुनकर वह सेनापति कहने लगा ॥ १६९-१७२ ॥ कि सदा कोधित  
हुए नागासुर परस्परकी मत्सरतासे एक दूसरेके आरंभ किये हुए कामोंमें विघ्न किया करते हैं ॥ १७३ ॥ इसके  
सिवाय आज महाकाल नामके व्यंतरदेवने यह यज्ञकी नई विधि बनाई है इसलिये बहुत से शत्रुओंके द्वारा उसमें  
विघ्न करनेकी शंका है ॥ १७४ ॥ इसके सिवाय एक बात यह भी है कि नागराज धर्णीद्रने नमि और विनमिका  
उपकार किया था इसलिये उसके पक्षपाती विद्याधर अवश्य ही यज्ञमें विघ्न उपस्थित करेंगे ॥ १७५ ॥ यज्ञ समर्थ  
पुरुषों का सिद्ध होता है सो भी उसके विघ्न दूर करने पर । यद्यपि यह बात विजयाद्र पर्वतपर रहनेवाले विद्या  
धरोंको मालूम नहीं होगी तथापि यह निश्चय है कि उनमें रावण बडाही प्रतापी है और अभिमानरूपी ग्रहके वशी  
भूत हो रहा है इसलिये शंका तो पहिलेसे ही होसकती है कि कदाचित् कोई आकर विघ्न उपस्थित कर दे ॥  
१७६-१७७ ॥ हां इसका एक उपाय है कि रामचंद्र बहुत ही शक्तिशाली है यदि उसे हम लोग इस कन्याको  
दे दें तो वह सहायक होसकता है । सेनापतिकी इस बातको सुनकर सभी समासद उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७८ ॥  
सब लोगोंने राजाके साथ मिलकर इसी कामका विचार किया और उसी समय राजा जनकने एक दूत सज्जन राजा

म कन्यकाभिषा । इति तद्वचन सर्वे तुष्टुबुद्धस्तभासिन ॥ १७८ ॥ निरन्विन्नं भूयेन सां तन्त्रांभिः ते । तदैव अनन्तो कृतं आहिगोदामलम्भजौ ॥ १७९ ॥ मदीयागङ्गां प्रहेतव्यौ कृतत्वरं । रामाय दास्यते सीता चेति शासनद्वारिणं ॥ १८० ॥ सखेलोपायनं संतं वृषं दशरथं प्रति । तथान्यात्र महीदू सूदत दूतानानेतुमादिशत् ॥ १८१ ॥ अयोध्येभ्यो ऐजायं दूतोक्त चावधारयन् । तत्रयोजननिर्विल मंत्रिणं पृच्छतिस् स ॥ १८२ ॥ जनकोक्तं निवेद्यात्र किं कार्यं क्रियतामिति । इदमागमसाराख्यो मन्थवोचद्वचोबुधं ॥ ८३ ॥ निरंतराग्यसलिकौ बागस्थोभयलोकजं । हितं कृतं भवेत्तस्माद्वतिरस्त्वनयोसिति ॥ १८४ ॥ वचस्त्ववसिते तस्य तदुक्तमवधार्य स । प्रजल्यसिस्मातिशयमत्याख्यो मंत्रिणां मत ॥ १८५ ॥ भयो यागोयमित्येतस्ममाणपदवी बध् । न प्राप्नोत्यतएवात्र न वर्तते मनीषिण ॥ १८६ ॥ प्रमाणभूयं वाक्यस्य वक्तृप्रामाण्यतो भवेत् । सर्वप्राप्तिवधाशसियश्चागमविश्वामिनि ॥ १८७ ॥ कथमुन्मत्तकस्यैव प्रमाणं विप्रबादिनः । विरुद्धाव्युत्पत्तिस्तिष्ठानेति चेदेवबादिनः ॥ १८८ ॥ सिद्धे वैकत्र बातोऽन्त्यैत्रैतिविषेचनात् । स्वयम्भूत्वादयो-

दशरथके समीप मेजा साथयें मेट मेजी और एरु पत्र भेजा । पत्रमें लिखा था कि “मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ उस यज्ञकी रक्षा करनेकेलिये आप बहुत शीघ्र राम और लक्ष्मणको भेज दीजिये, मैं रामके लिये सीता समर्पण कर दूंगा” इसके सिवाय राजा जनकने और भी राजपुत्रोंको बुलानेकेलिये अपने अनेक हतोको आज्ञा दी थी ॥ १७९-१८१ ॥ अयोध्याके राजा दशरथने पत्रमें लिखे हुए अर्थको समझा और दूतके कहे हुये बचनोंको भी सुना तथा उनका अभिप्राय निबध करनेके लिये उन्होंने मंत्रियोंसे पूछा ॥ १८२ ॥ उन्होंने जनकका कहा हुआ सब मंत्रियोंको सुनाया और पूछा कि इस समय क्या काम करना चाहिये । इसके उत्तरमें आगमसार नामका मंत्री नीचे लिखे अनुसार बचन कहने लगा कि यज्ञके निर्विघ्न समाप्त हो जानेपर दोनों लोकोंसे उत्पन्न हुआ हित वा कल्याण होगा और ऐसा होनेसे इन दोनों भाइयोंकी अच्छी गति होगी ॥ १८३-१८४ ॥ आगमसारके ये बचन समाप्त होनेपर तथा उसके कहे हुएको समझकर अतिशयमति नामका सब मंत्रियोंमें मुख्यमंत्री कहने लगा यज्ञ करना धर्म है । ये बचन कभी प्रामाणिक नहीं हो सकते इसलिये ही बुद्धिमान मनुष्य कभी ऐसे कार्योंमें नहीं पड़ते हैं । १८५-१८६ ॥ यह बात निश्चित है कि वक्ताकी प्रमाणतासे वाक्यकी प्रमाणता मानी जाती है जो सब प्राणियोंकी हिसाका निरूपण करनेवाले यज्ञरूप आगमका विधान करते हैं ऐसे उन्मत्तके समान ब्राह्मणोंके बचन किस प्रकार प्रमाण हो सकते हैं । यदि वेदके कहनेवाले परस्पर विरुद्धभावी न हों तो उसमें एक जगह हिसाका मिलन और दूसरी जगह उसका निषेध ऐसे दोनों तरहके वाक्य क्यों मिलते ? कदापि इस विरोधको दूर करनेके लिये



स्य विरोधे सत्यपीत्यस्त ॥ १८९ ॥ प्रष्टव्योसि स्वयंभूत्वं क्रीड्योऽतु तदुच्यते ॥ बुद्धिमत्कारणस्य दसं वध निरेक्षणं ॥ १९० ॥ स्वयंभूत्वं भवेत्स्वयमेका-  
 रीनां च सा गतिः । ततः सर्वज्ञनिर्दिष्टः सर्वप्राणिहितारम्भः ॥ १९१ ॥ श्रेयसागमस्य शब्दाख्यं सर्वदोषविवर्जितं । वर्तते यत्र शब्दश्च दानदेवविपुल्योः  
 ॥ १९२ ॥ यागो यज्ञ क्रतु पूजा सगर्भेऽप्यथो मन्त्रः । मह इत्यपि पर्यायवचनान्यर्चनाविधौ ॥ १९३ ॥ यज्ञशब्दाभिधेयोरुदानपूजास्वरूपकात् ।  
 घमोत्पुण्यं समावर्ज्य तस्याकादिविलेख्यः ॥ १९४ ॥ शतक्रतुः शतमख शताध्वर इति श्रुतिः । प्रादुर्भूता प्रसिदास्ते लोकेषु समयेषु च ॥ १९५ ॥ हि-  
 सार्थो यज्ञशब्दश्चेतत्त्वतुंगारकी गतिः । पर्याप्तिं गोपि चेतस्वर्गं निर्दिष्टानामधोगतिः ॥ १९६ ॥ तव स्यादित्यभिप्रायो हित्यमानागिदानतः । तद्वेधेन च  
 यह यहाँ कि वेद अपने आय बना हुआ है किसीका बनाया हुआ नहीं है और इसलिये ही प्रमाण है इसमें कोई  
 दोष नहीं है ॥ १८७-१८९ ॥ तो फिर उनसे पूछना चाहिये आपका स्वयंभूतना ( अपने आप बनाना ) कैसा है  
 उसे कहिये । यदि बुद्धिपूर्वक इन्द्रियों के परिस्पदके संवधकी अपेक्षा नहीं होना ही स्वयंभूतना है तो मेवकी गर्जना  
 और मेढकोंके चंचल आदिकी भी वही गति होगी अर्थात् वे भी प्रमाण मानने पड़ेंगे । इसलिये जो सर्वज्ञदेवका कहा  
 हुआ है सब जीवोंको हित करनेवाला है और पूर्वापर विरुद्ध आदि सब तरहके दोषोंसे रहित है वही आगम प्रमाण  
 माना जा सकता है । इसके सिवाय एक बात यह है कि दान देना देव और ऋषियोंकी पूजा करना इन दो ही अर्थोंमें यज्ञ  
 शब्दकी प्रवृत्ति होती है ॥ १९०-१९२ ॥ याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख, महये सब पूजा विधिके पर्या-  
 यवाचक शब्द हैं ॥ १९३ ॥ यज्ञ शब्दका अर्थ जो बहुतसा दान देना पूजा करना आदि है वही यज्ञका स्वरूप है और वही  
 धर्म है उस यज्ञस्वरूप धर्मसे पुण्यका संचयकर उस पुण्यके फलसे ही ये जीव सुरेश वा इंद्र होते हैं इसलिये ही  
 लोक और शास्त्र दोनोंमें ही शतक्रतु शतमख शताध्वर आदि इंद्रके प्रसिद्ध नाम प्रगट हुए हैं और सब जगह सुनाई  
 दे रहे हैं ॥ १९४-१९५ ॥ यदि यज्ञ शब्दका अर्थ हिंसा ही हो तो उसके करनेवालेको नरकगति होना चाहिये, यदि  
 ऐसे हिंसास्वरूप यज्ञको करनेवाला स्वर्गको चलाजाय तो फिर हिंसा न करनेवालोंकी अधोगति होनी चाहिये ॥ १९६ ॥  
 कदाचित् आपका यह अभिप्राय हो कि यज्ञमें जो जीव मारा जाता है उसके शरीरकी अधोगति होनी चाहिये, यदि  
 उसका शरीर सबको बांट दिया जाता है और उसको मारकर देवोंकी पूजाकी जाती है इस प्रकार यज्ञ शब्दका अर्थ  
 जो दान देना और देव पूजा करना है उसकी प्रवृत्ति सार्थक होती है ! तो इसका उत्तर यह है कि यह आपका अर्थ  
 केवल आपके ही घरमें माना जायगा दूसरी जगह नहीं क्योंकि इस दान पूजाके प्रकरणमें यज्ञ शब्दका यह अर्थ नहीं

देवानां पूजनं वाचाच्च इत्यर्थः ॥ १९७ ॥ वर्तते देवपूजाया दाने चान्वयता गतः । एतत्स्वर्गद्वयं ते यथास्मिन्ने पश्यते ॥ १९८ ॥ हिंसायामिति घात-  
र्थपाठे किं न विधीयते । न हिंसा यद्वाच्यार्थो यदि प्राणवधात्मकं ॥ १९९ ॥ यज्ञं कथं चर्त्तयामां इत्यक्षितत्वात् । आर्पणार्थविकल्पेन यागो द्विविध-  
इष्यते ॥ २०० ॥ तीर्थंशा जगदधेन परमब्रह्मणोदिते । वेदे जीवादिपदद्रव्यभेदे याथात्म्यवेदाने ॥ २०१ ॥ त्रयोमयः समुद्दिष्टा क्रोषकामोदरागनय ।  
तेषु क्षमाविरागत्वानन्दानुतिमिर्बने ॥ २०२ ॥ स्थित्वर्पण्यसिमुन्यस्त शरणा परमहिंसाः । इष्टुमव्ययस्मिन्धार्थानष्टमीमवनीं ययुः ॥ २०३ ॥ तथा तीर्थे-  
स्तफलादिभिः ॥ २०५ ॥ भार्योपासकदेवोक्तमन्त्रोच्चारणपूर्वक । दानादिसहिक्रियोयता गेहाश्रमतपस्विन ॥ २०६ ॥ नित्यमिष्टुवसानात्मिकादिमान्यपदेदि-  
हे ॥ १९७-१९८ ॥ यदि यज्ञ शब्दका यह अर्थ हिंसा ही होता तो जहां घातुओंका अर्थ लिखा है वहां यज्ञका अर्थ  
( यज्ञका अर्थ ) हिंसा क्यों नहीं लिखा इसलिये यज्ञ शब्दका अर्थ हिंसा कभी नहीं हो सकता कदाचित् यह कहो  
कि यदि यज्ञ शब्दका अर्थ प्राणियोंका वध करना न होता तो बड़े बड़े आर्य लोग इसे क्यों करते ? परंतु आपका  
बह कहना अशिक्षित और मूर्खों सरीखा है क्योंकि आर्य और अनार्यके भेदसे यज्ञके दो भेद कहे हैं ॥ १९९-२०० ॥  
इस कर्मभूमिरूपी जगतके प्रारंभमें होनेवाले परम ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव तीर्थंकरके कहे हुए वेदमें जहां जीवादि छ-  
हों द्रव्योंका यथार्थ निरूपण किया गया है वहां क्रोधाग्नि कामाग्नि और उदराग्नि ऐसी तीन अग्नियोंका निरूपण कि-  
या गया है । आत्माके सिवाय अन्य किसीको भी शरण न माननेवाले परमब्रह्मण ऋषि यति मुनि वनमें रहकर उन  
अग्नियोंमें अनुक्रमसे क्षमा वैराग्य और अनशन इनकी आहूति दिया करते हैं अर्थात् क्रोधाग्निमें क्षमाकी आहूति, का-  
माग्निमें वैराग्यकी आहूति और उदराग्निमें अनशन ( उपवास ) की आहूति दिया करते हैं । इसतरह वे मुनिराज  
आत्मयज्ञ करके अपनी वांच्छनीय आठवीं पृथ्वीमें ( मोक्षमें ) जाकर विराजमान होते हैं ॥ २०१-२०३ ॥ इसके सि-  
वाय तीर्थंकर गणधर और शेष केवलियोंके उत्तम शरीरके संस्कारसे पूज्य तथा अग्निकुमार इंद्रके मुकुटसे उत्पन्न हुई  
तीन अग्नियां हैं उनमें अत्यंत मत्त तथा दान आदि उत्तम उपासक क्रियाओंको करनेवाले गृहस्थ-तपस्वी परमात्मपद  
को ( सिद्धपदको ) प्राप्त हुए अपने पिता पितामह आदिको उद्देशकर ऋषि प्रणीत उपासकाध्ययन नामके वेदमें कहे हुए मंत्रोंको  
उच्चारणकर पुष्प अथवा गंध फल आदिके द्वारा जो सदा आहूति देते हैं वह दूसरा आर्य यज्ञ कहलाता है इसयज्ञके करने-  
वाले लोग भी इंद्र सामानिक आदि पूज्यपद पाते हैं तथा देवब्रह्मण लौकांतिक देव होते हैं । और अंतमें कर्मरूपी पापको

गमत् ॥ २२६ ॥ परया परः ॥ २१० ॥ एवं परंपरायातदेवयज्ञविधिष्विह । द्विलोकहितकृत्येषु वर्तमानेषु संतत ॥ २११ ॥ मुनिसुव्रततीर्थक्षस्ताने स-

द्विभोः । महाकालापुरो हिंसायज्ञमज्ञोन्वशादसुं ॥ २१२ ॥ कथं तदिति चेदस्मिन् भारते चारणादिके । युगले नगरे राजाजनि नात्रा सुयोधन ॥ २१३ ॥ तस्यातिथिद्वयातिस्तनूजा सुलसानयोः । तस्या स्वयंवरायें दूतोक्त्या पुरमागते ॥ २१४ ॥ महीशमंडले साकेतेश्विन सगराद्वयं । तत्रागतुं समु-

युक्मन्यदा स्वसिरोरुहां ॥ २१५ ॥ कलापे पलित प्राच्य झाला तैलोपलेपिना । निर्विघ्न विमुखं याते विलोक्य कुशला तदा ॥ २१६ ॥ धात्री मदेदरी नाशकर मुक्त होते हैं २०४-२०७ ॥ दूमरे श्रुतज्ञान शास्त्रके सामान्य रीतिसे द्रव्य क्षेत्र आदिके भेदसे अथना तीर्थकरोंके पंचक-  
ल्याणोंके भेदसे अनेक भेद हैं उन्हें देव लोग करते हैं और उनसे इकट्ठे हुए पुण्यफलको भोगकर अनुक्रमसे सिद्धपद पाते हैं ॥ २०८-२०९ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने मुनि और गृहस्थ इन दोनोंके आश्रयसे यज्ञके दो भेद निरूपण किये हैं । उनमें से पहिला यज्ञ सखाव मोक्षका कारण है और दूसरा परंपरासे मोक्षका कारण है ॥ १० ॥ हे देव ! इसप्रकार यह देवयज्ञ की विधि परंपरासे चली आई है यही विधि दोनों लोकोंका हित करनेवाली है और अनादिकालसे चली आ रही है ॥ ११ ॥ श्री मुनिसुव्रत तीर्थकारके समयमें राजा सगरसे द्वेष करनेवाले मूर्ख महाकाल नामके व्यंतरदेवने इस हिसारूप यज्ञका प्रचार किया है ॥ १२ ॥ महाकालने इस हिसारूप यज्ञ का प्रचार क्यों किया यदि इसके जानने की इच्छा हो तो वह भी सुन लीजिये । इसी भारतक्षेत्रके चारणयुगल नामके नगरमें सुयोधन नामका राजा राज्य करता था ॥ १३ ॥ उसकी पट्टरानीका नाम अतिथि था, उन दोनोंके सुलसा नामकी पुत्री थी । उसके स्वयंवरकेलिये दूतोंके द्वारा बुलाये हुए बहुतसे राजा महाराजा आये थे । उससमय अयोध्या नगरका राजा सगर भी आनेकेलिये तैयार हुआ था । किसी एक दिन तैल लगानेवालेके द्वारा उसने अपने मस्तकपर एक सफेद बाल देखा और यह भी मालूम हुआ कि यह बहुत दिनका है । यह जानकर वह विरक्त हुआ और स्वयंवरमें जानेसे विमुख होगया । उसकी मंदोदरी नामकी धाय बड़ी ही चतुर थी जब उसे यह बात मालूम हुई तो वह तुरंत ही सगरके पास आई और उसने “यह नया सफेद बाल आपका किसी पवित्र वस्तुके मिलनेकी सूचना करता है” यह कहकर उसे अच्छीतरह स-  
मझा दिया ॥ १४-१७ ॥ उसीसमय विश्वभू नामका मंत्री आया और सगरको समझाने लगा कि जिस तरह

सतस्तद्वाधावान्धे विपादमगमस्तादा । न पश्यत्यर्थेन पाप वचनासन्निव महत ॥ २३८ ॥ अथ कृत्वा महापूजा दिगान्गष्टा विनेशिनः । तददेऽसिप  
वचना सुलसा कन्यकोत्तमा ॥ २३९ ॥ आतामलकृता शुद्धतिथेयारादिप्रतिष्ठा । पुणेधारायमारोप्य नीवा चारुमश्रुतां ॥ २४० ॥ नृगन् मद्रासमा  
रुहान् स स्वयंवरमण्डपे । यथाक्रमं विनिर्दिश्य कुलजाल्यादिभिः पृथक् ॥ २४१ ॥ व्यस्मन्वा समासका याकेतुनुरायाकं । अकरोत्कठडेते त मा-  
लालंकृतविभ्रद ॥ २४२ ॥ अनयोरनुलोपय सगमो वे रमा कृत । इयुर्नृवा मत्सरापेनमुप्य द्यू मण्डल ॥ २४३ ॥ कन्याणाविधिपर्याप्ता स्थित्वा तत्र  
कानिचित् । दिनानि सगर श्रीमान् सुखेन सुलसात्स्वितः ॥ २४४ ॥ याकेतनगरं गत्वा भोगाननुभवन् स्थितः । मर्गिगलसाधोय वर्तमानस्य सयमे  
॥ २४५ ॥ पुर्येक तनुस्थित्ये विधितो वीक्ष्य लक्षण । कैथिप्रभित्तिको यूयः पृथ्वीराजमहिदेवज ॥ २४६ ॥ लक्षणेप सिंहासी किल किं लक्षणमगमः ।

और अंतमें अभिषेक किया । तदनंतर उत्तम कन्या सुलसाको स्नान कराया, आभूषण पहिनाये और शुद्ध तिथि नार  
आदिके दिन अनेक योद्धाओंसे घेरकर तथा रथमें विठाकर पुरोहित उसे स्वयंवर मंडपमें लाया वहाँपर अनेक राजा  
सुंदर आसनोपर विराजमान थे उनके कुल जाति आदिक अलग अलग नाम लेकर अनुक्रमसे वह उसे बतलाने  
लगा ॥ २९-४१ ॥ परंतु अयोध्या नगरके राजा सगरपर आगत हुई वह सबको छोड़ गई और मगरके गलेमें  
माला डालकर उसका शरीर मालासे सुशोभित किया ॥ ४२ ॥ अन्य राजाओंका समूह इस संबंधसे ईर्ष्या छोड़कर  
संतुष्ट हुआ और कहने लगा कि विधाताने ( पूर्व कर्मोंके उदयेने ) इन दोनोंका समागम इनके रूपके अनुसार ही  
किया है ॥ ४३ ॥ तदनंतर उन दोनोंकी विवाहविधि समाप्त होगई । वह श्रीमान् राजा सगर सुलसाके साथ  
कुछ दिन तक बड़े सुखसे वहीं ठहरा ॥ ४४ ॥ फिर अयोध्यानगरमें आकर भोगोंका अनुभव करता हुआ रहने लगा  
इधर मधुपिंगल साधु संयम धारणकर रहने लगा किसी एक दिन भोजन करनेके लिये वह किसी नगरमें गया ।  
उसे देखकर किसी नैमित्तिकने कहा कि इस युवाके शरीरके चिन्ह पृथ्वीका राज्य करने योग्य हैं फिर भी यह भील  
माग रहा है हमसे जान पड़ता है कि ये लक्षणशाल किसी कामके नहीं हैं, इस तरह उसने लक्षणशास्त्रोंकी निंदा  
की । उसकी इस बातको सुनकर दूसरा नैमित्तिक कहने लगा कि पहिले यह राज्य लक्ष्मीका ही उपभोग करता था  
परंतु राजा सगरके मंत्रीने झूठमूठ ही एक बनावटी शाल बनाया और उसे सुनाकर इसे दूषित ठहराया । इस बातसे  
लज्जित होकर इसने तपश्चरण धारण कर लिया और इस तरह इसके चले जानेपर सुलसा सगरकी मिल गई । उन दो-  
नों नैमित्तिकोंकी बात सुनकर वह मधुपिंगल क्रोधरूपी अग्निसे लाल हो गया और उस दुर्बुद्धिने निदान किया कि

इत्यर्निदत्तदत्तकर्म परीयेवमभाषता ॥ २४७ ॥ एष राज्यधिय मुंजन् शृषा सगरमंत्रिणा । कृत्रिमागममार्कथं दूषितः सन् द्रिया तप ॥ २४८ ॥ प्रपन्नवन् गते चा-  
स्मिन् मुलसां सगरोऽग्रहीत् । इति तद्वचन श्रुत्वा मुनि क्रोधाग्निवीषित ॥ २४९ ॥ जन्मातरे फलेनात्मा तपसः सगरान्वयं । सर्वं निर्मूलयामीति विधीः कृतनि-  
दानक ॥ २५० ॥ मृत्वासावसुरेन्द्रस्य महिषानीक आदिमे । कक्षाभेदे चतुःषष्टिसहस्रासुरनायक ॥ २५१ ॥ महाकालोऽमरवत्तत्र देवैरावेष्टितो निजैः । देवलोकमिम  
केन प्राप्सोहमिति सस्मरन् ॥ २५२ ॥ क्षात्वा विभग्नानोपयोगेन प्राक्कने भवे । प्रवृत्तमखिलं पापी कोषाविष्कृतचेतसा ॥ २५३ ॥ तस्मिन् मन्त्रिणि भूये च हृढ  
बैरोपि तौ तदा । अनिच्छन् हंतुमशुभं सुचिकीर्णुर्यं तयोः ॥ २५४ ॥ तदुपाय सहार्थाश्च सन्वित्य ससुपस्थितः । नान्तिथयन् महत्यापमात्मानो धितिक्वद  
ता ॥ २५५ ॥ इदं प्रकृतमत्रान्यत्तदभिप्रायसाधन । द्विषेन्न भरते देशे धवले स्वस्तिकावती ॥ २५६ ॥ पुरं विश्वावसुस्तस्य पालको हरिवंशजः । देव्यस्य  
श्रीमती नाम्ना वसुरासीस्तुतोनयोः ॥ २५७ ॥ तत्रैव ब्राह्मण पूज्य सर्वशास्त्रविशारदः । अभूत्क्षीरकंदवाह्यो विख्यातोऽध्यापकोत्तमः ॥ २५८ ॥ समये  
मै इस तपश्चरणके फलसे दूसरे जन्ममें सगरका सव वश नाश करुणा ॥ ४५५० ॥ मरकर वह असुरेंद्रके पहिली  
महिष जातिकी सेनाके कक्षा भेदमें चौसठ हजार असुरोंका नायक महाकाल नामका देव हुआ, उत्पन्न होते ही अपने  
सेवक देवोंने उसे घेर लिया तथा उन्हें देखकर वह स्मरण करने लगा कि मैं किस कारणसे इस स्वर्ग लोकमें प्राप्त  
हुआ हूं ॥ ५१-५२ ॥ विभंगज्ञानरूपी उपयोगसे ( मिथ्या अवधि ज्ञानसे ) उसे पहिले भवके सब समाचार मा-  
लूम होगये उसी समय उस पापीका हृदय क्रोधसे भरगया और मंत्री तथा राजा सगरपर उसका वैर खूब ही बढ़  
गया । उसने उन दोनोंको मारनेकी इच्छा तो नहीं की किंतु उन दोनोंसे कोई बड़ा भारी पाप करानेकी इच्छा  
की ॥ ५३-५४ ॥ वह उसके उपाय और सहायोंकी चिंता करता हुआ रहने लगा । यह जीव अपने वडे बडे पापों-  
का भी चिंतन नहीं करता है इसलिये उसकी इस मूर्खतापर भी धिक्कार हो ॥ ५५ ॥ उधर वह तो अपनी चिं-  
तामें रहा इधर उसके अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली एक बात और होगई और वह इसतरह है । इसी जंबू द्वीपके भ-  
रतदेशमें धवलदेशके स्वस्तिकावती नगरमें हरिवंशमें उत्पन्न हुआ विश्वावसु नामका राजा राज्य करता था । उसकी  
पटरानीका नाम श्रीमती था और उन दोनोंके वसु नामका पुत्र हुआ था ॥ ५६-५७ ॥ उसी नगरमें एक क्षीरकंदव  
नामका प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था, वह पूज्य था सब शास्त्रोंमें निपुण था और बहुत ही अच्छा अध्यापक था ॥ ५८ ॥  
उसके समीप उसी क्षीरकंदवका पुत्र पर्वत तथा किसी दूसरे देशसे आया हुआ नारद नामका विद्यार्थी और राजा  
विश्ववसुका पुत्र वसु ये तीनों ही पढ़कर विद्यार्थीके पारंगत होगये थे । उन तीनोंमें पर्वत निर्बुद्धि था तथा मोह क-

तस्य तत्सूनुः पर्वतोऽथ नरद । देशान्तरगतछात्रान्मुखमुञ्च महीपतेः ॥ २५९ ॥ एते त्रयोऽपि विद्यानां पारम्पागतसं पर्वतः । तेज्वीर्विपरीतार्थ-  
ग्रही मोहविपाकतः ॥ २६० ॥ श्रेया यथोपदिष्टार्थग्राहिणो ते त्रयोऽप्यगुः । वन दर्मादिकं चेन्नु सोपाध्याया कदाचन ॥ २६१ ॥ गुह्यं श्रुतधरोनाम  
तत्राचलशिरातले । श्रियतो मुनित्रय तस्मादुक्तबाधागनिमित्तम् ॥ २६२ ॥ तत्समाप्तोऽस्तुतिं कृत्वा मुनिश्च तत्रिरीक्ष्य सः । तत्रै पुण्यपरीक्षार्थं समपृच्छ-  
न्मुनीश्वरः ॥ २६३ ॥ पठच्छात्रग्रन्थाद्यं नाम किं कस्य किं कुल । को भावः का गति प्राप्ते भवद्भिः कथ्यतामिति ॥ २६४ ॥ तेज्वीकोऽभ्यापतत्सम्भ  
श्रुचिवलस्सत्समीपम् । वसुः धितिपतेः सुनुः तीव्ररागादिभूयित ॥ २६५ ॥ हिंसाधर्मं विनिश्चित्य नारकावाप्तमप्येयति । परोऽब्रवीदयं मध्यस्थितो ब्रा-  
ह्मणपुत्रक ॥ २६६ ॥ पर्वताख्यो विधीः कृतो महाकालोपदेशनात् । पठित्वाश्रवणं पापशालं दुर्मागदेशक ॥ २६७ ॥ हिंसैव धर्मं इत्यङ्गो रौद्रव्यान्परायणः ।  
बहूस्तत्र प्रवर्धयैस्मिन् नरकं आन्यतीत्यतः ॥ २६८ ॥ तृतीयोऽपि ततोवासीयेय पथादब्रवीत् । नारदाख्यो द्विजो धीमान् धर्मध्यानपरायणः ॥ २६९ ॥

मैंके उदयसे विपरीत अर्थको ग्रहण करनेवाला था और बाकीके दोनों कहे हुए यथार्थ अर्थको ग्रहण करनेवाले थे ।  
किसी एक दिन वे तीनों ही डाम आदि लेनेके लिये उपाध्यायके साथ साथ वनमें गये ॥ ५८-६६१ ॥ यहाँपर अ-  
बल नामकी शिलाके ऊपर श्रुतचर नामके गुरु विराजमान थे, उनसे अन्य तीन मुनियोंने अष्टांग निमित्त सुना या  
उसके समाप्त हो जानेपर वे तीनों ही मुनि स्तुति कर बैठे थे । उन्हें इस तरह बैठे देखकर उनकी निपुणताकी परीक्षा  
करनेके लिये मुनिराज श्रुतचर पूछने लगे कि इन पढ़नेवाले तीनों ही विद्यार्थियोंके क्या क्या नाम हैं किसका क्या  
कुल है इनके परिणाम कैसे हैं और मरकर ये किस गतिमें जायेंगे, अनुक्रमसे तुम तीनों ही कहो ॥ ६३-६४ ॥  
इसके उत्तरमें उन तीनोंमेंसे आत्माको जाननेवाला एक मुनि कहने लगा कि महाराज सुनिये यह जो मेरे समीप है  
वह राजाका पुत्र वसु है, तीव्र राग आदि दोषोंसे दूषित है और हिंसारूप धर्मपर विश्वास रखकर वह अंतमें नरक जा-  
यागा । दूसरा मुनि कहने लगा कि यह मध्यमें बैठा हुआ ब्राह्मणका है पर्वत इसका नाम है यह दुर्बुद्धि है क्रूर है महा-  
कालके उपदेशसे अथर्वण नामके पापशालाको पढ़कर दुर्मार्गका उपदेश देगा, तथा यह मूर्ख हिंसाको ही धर्म मान-  
कर सदा रौद्र ध्यानमें लीन रहेगा । इस तरह अनेक लोगोंमें इस पापकर्मकी प्रवृत्ति कराकर यह स्वयं नरकमें पड़ेगा  
॥ २६५-२६८ ॥ इसके बाद तीसरा मुनि कहने लगा कि यह जो सबसे पीछे बैठा है उसका नाम नरद है वह ब्राह्मण  
है बुद्धिमान है धर्मध्यानमें सदा लीन रहता है, अपने आश्रय आए हुए लोगोंको अहिंसारूप धर्मका ही प्रतिपादन करता  
है यह गिरिपति नामके नगरका स्वामी होकर परिग्रहका त्याग करेगा और तपश्चरण धारणकर अंतमें अनुचर विमा-

अहिसालक्षणं धर्ममाश्रितानामुदाहरन् । प्रतिगतिताख्यायाः पुरोभूता परिग्रहं ॥ २७० ॥ परिलज्य तपः प्राप्य प्रांतानुत्तरमेप्यति । इत्येव तैत्तिरि-  
शोक्तं धृत्वा सम्यगभ्योदित ॥ ७१ ॥ सोपदेशं धृतं सर्वैरित्यस्त्रावीन्युनिश्च तान् । सर्गमेतदुपाध्यायः । प्रत्यासन्नमुमाश्रयः ॥ ७२ ॥ प्रणिधानात्तदा-  
कर्ण्य तदेतद्विचिंशति । एतयोरेशुभं विगिह्य किं मयात्र विधीयते ॥ ७३ ॥ विचिंत्येति यतीन् भक्त्या तत्प्रमण्यवासिष्य तान् । वैमनस्येन तैश्छात्रै-  
र्नगरं प्राप्तिशतम ॥ ७४ ॥ शास्त्रवाल्म्येयैरेकवत्सरे परिपूर्णे । वसोः पिता स्वयं पटं बध्वा प्राभूतगोचन ॥ ७५ ॥ वसु निष्कटकं पृथ्वीं पालयन्  
हेलयान्यदा । वनं विहृतुमभ्येत्य पयोधरपथाद् द्विजान् ॥ ७६ ॥ प्रस्वस्य पतितान् वीक्ष्य विसर्गादिति खादुदत । पतता हेतुनावश्यं भवितव्यमिति  
स्फुटं ॥ ७७ ॥ मत्वाकृष्यधनुर्वीणममुचत्तत्प्रदेशवित् । स्वरित्वा पतितस्मात् समीक्ष्य महीपति ॥ ७८ ॥ तत्प्रदेशं स्वयं गत्वा रथिकेन सहा-  
नमै अहमिन्द्र दोगा । इसतरह उन तीनोंके कहे हुयेको सुनकर वे मुनिराज उन तीनोंकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे  
तुम सबने मेरे कहे हुये उपदेशको बहुत अच्छी तरह सुना और धारण किया है । इन सब बातोंको क्षीरकंदं उपा-  
ध्याय समीप ही इक्ष्वाकी आड़में छिपकर बड़े ध्यानसे सुन रहा था, सुनकर वह विचार करने लगा कि कर्मकी लीला  
भी बड़ी ही विचित्र है देखो इन दोनोंका बुरा होनेवाला है विचकार है मुझे अब क्या करना चाहिये ॥ ६९-७३ ॥  
यही सोच विचारकर उसने वहींसे बड़ी भक्तिपूर्वक उन मुनियोंको नमस्कार किया और फिर बड़ी उदासीनतासे  
उन विद्यार्थियोंके साथ नगरमें आया ॥ ७४ ॥ एक वर्षके बाद शास्त्राभ्यास और बाल्य अवस्था दोनों ही समाप्त  
होजानेपर वसुका पिता राजा विधावसु वसुके मस्तकपर स्वयं पट बांधकर दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा ॥ ७५ ॥  
इधर राजा वसु निष्कटकं पृथ्वीका पालन करने लगा । किसी एक दिन वह लीलापूर्वक वनमें विहार करनेके लिये  
गया वहांपर देखा कि आकाशमार्गसे उडते हुए बहुतसे पक्षी टक्कर खाकर गिर पडते हैं उन्हें देखकर वह आश्चर्य  
करने लगा और विचार करने लगा कि इनके इस तरह पडनेका कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये, यही स-  
मझ कर उसने उस देशको लक्ष्यकर धनुष चढाकर एक बाण छोडा, वह बाण ठोकर खाकर गिर पडा यह देखकर  
वह राजा सारथिके साथ स्वयं उस जगह गया और उस जगहको टटोलने लगा । टटोलनेसे उसे मालूम हुआ कि  
जो दूसरोंको दिखाई भी नहीं पड सकता ऐसा आकाशस्तटिक स्तंभ है । वह उस स्तंभको घर ले आया उसके चार  
बड़े २ पाये बनवाये और उनका एक सिंहासन बनाकर उसपर विराजमान हुआ, उससमय अनेक राजा उसकी सेवा  
करते थे तथा आश्चर्य करनेवाले अनेक लोग उसकी उन्नतिकी इसप्रकार घोषणा करते थे कि राजा वसु सत्यके प्र-



सुधार। आकाशस्फटिकस्तम्भं विज्ञायाविरहितं परं ॥ २७१ ॥ आनाय तेन निर्गम्य शृणुष्वद्वन्द्वयं । तत्सिंहासनमारुह्य सेव्यमानो दुष्पदिभिः ॥ ८० ॥ बभूव सत्यस्य महाहत्यात्स्थितः के सिंहसिंघरे । इति सिंखबमानेन जनेनापोषितोभूति ॥ ८१ ॥ तस्मादेव प्रयात्यस्य काले पर्वतनारदौ । समित्युपायैर्नम्रेत्या बत नयाः प्रवाहजं ॥ ८२ ॥ जलं पीत्वा मयूराणां गतानां मार्गदर्शनान् । बभावे नारदस्तत्र हे पर्वत शिखाबलः ॥ ८३ ॥ तेजकोत्ति जिय सतेवेति तच्छूकरादसौ । शृण्वत्यसौवा चितेन व्यात्यभिगतबंधन ॥ ८४ ॥ गत्वा तत्रातरे किंविस्तद्भूतं नारदोदित । अंबवासेक्षणा हस्तिवशकान्नाधुना गता ॥ ८५ ॥ तामास्वदती चांतर्विजो पशंश्चोर्ज्वला । अवाप्तुमश्रयैवेत्येतदाकर्ण्य पर्वतः ॥ ८६ ॥ अंधसर्पविलायानमिव ते पूर्वभाषित । आसीथादृच्छक सत्यमिदं तु परिहास्यतां ॥ ८७ ॥ प्रयाति तत्र विज्ञानं मया विदितमस्ति किं । इति स्मितं स सासुर्यं चित्ते विस्यमास-  
तापसे आकाशमें ही (अधर) सिंहासनपर विराजमान है ॥ ७६-८१ ॥ इस तरह राज्य करते हुये राजा वसुका समय व्यतीत होने लगा इधर नारद और पर्वत किसी एक दिन समिध (यज्ञकी लकड़ी) और फूल लेनेके लिये बनमें गये थे उन्होंने मार्गमें देखा कि कितने ही मयूर नदीके प्रवाहका जल पीकर पीछे लौट रहे हैं । उन्हें देखकर नारदने कहा कि हे पर्वत ! इन मयूरोंमें एक तो मयूर है और शेष सात मयूरिणी हैं । नारदकी यह बात सुनकर पर्वत कहने लगा कि नहीं यह बात झूठ है । पर्वतके चित्तमें यह बात सहन नहीं हुई और झट उसने कुछ शूर्त बदली ॥ ८२-८४ ॥ थोड़ी दूर जाकर देखा तो नारदका कहा हुआ सब सब पाया । थोड़ी देर बाद नारदने फिर कहा कि इस मार्गसे बाईं आंखसे कानी एक हथिनी गई है उसपर एक गर्भिणी स्त्री सवार थी वह संकेद साडी पहने थी और वह आज ही पुत्र उत्पन्न करेगी नारदकी वह बात सुनकर पर्वत फिर कहने लगा कि जिसप्रकार अंधा सर्प विलमें घला जाता है उसीप्रकार तुम्हारा इच्छानुसार पहिला कहा हुआ तो किसी तरह सत्य होगया परंतु तुम्हारा सब विज्ञान तो सर्वथा हंसीके योग्य है मैं इस विषयमें क्या जान सकता हूं यह कहकर वह कुछ हंसा और ईर्ष्याके साथ चित्तमें कुछ आश्चर्य करने लगा ॥ ८५-८८ ॥ नारदकी बात झूठी ठहरानेकेलिये वह हथिनीके पीछे गया और देखा कि नारदने जो कुछ कहा था वह सब उर्थों का त्यों सत्य है ॥ ८९ ॥ ओक करता हुआ वह पर आया, उसने बड़े आश्चर्यसे नारदकी कही हुई बात मातासे कही और माताको समझाया कि पिताजीने आकाशका यथावत् स्वरूप जैसा नारदको कहा है मुझै वैसा नहीं कहा है । इससे जान पड़ता है कि पिताका झूझमें कुछ भी आदर नहीं था इस तरह विपरीत समझनेरूप पापसे पुत्रके वधन तीक्ष्णदृष्टिके समान हृदयको विदीर्णकर उसके भीतर घुस गये

निष्ठासिमुलमासीनं तत्तुलं चैवमब्रवीत् । विनांग त्व विवेकेन विध षेवद्विरूपकं ॥ ३१९ ॥ कार्यकार्यविवेकस्ते न भुतादपि विद्यते । कथ जीवसि म-  
भुः परोक्षे गतधीरिति ॥ ३२० ॥ एवं पित्रा सशोकेन कृतशिक्षो विचक्षणः । नारदे वदवैरोभूकुविधायीदृशी गतिः ॥ ३२१ ॥ स रुदामिदुपाध्याय-  
सर्वमंगान् परित्यजन् । पर्वतस्तस्य माता च मंदबुद्धी तथापि तौ ॥ ३२२ ॥ पालनीयौ त्वया भ्रा मत्परोक्षेपि सर्वथा । इत्यवोचत्सु सोपि प्रीतोस्मि त्व-  
यनुग्रहात् ॥ ३२३ ॥ अनुकसिद्धमेतत्तु वक्तव्यं किमिदं मम । विधेये धुरयो नात्र पूज्यपाद यथोचित ॥ ३२४ ॥ परलोकमनुष्ठानमहंसीति द्विजोत्सह । मनो-  
हरकृष्णाम्बानमालयाभ्यर्चयन्नुप ॥ ३२५ ॥ तत क्षीरकदंबे च सम्यक् संप्राप्य सयम् । प्राप्ते सत्यस्य संप्राप्ते नाकिना लोकमुत्सम ॥ ३२६ ॥ पर्वतोपि पि-  
तृस्थानमध्यास्यशेषशाल्ववित् । शिक्षाणा विभक्तिकानां व्याख्यातु रतिभातनोत् ॥ ३२७ ॥ तस्मिन्नेव पुरे नारदोपि विद्वज्जनान्वितः । सूक्ष्मधीर्विहितस्थानो  
बभार व्याख्याया यश ॥ ३२८ ॥ गच्छलेव तयो काले कदाचित्साधुससदि । अर्जुनोऽहोतव्यमित्यस्य वाक्यस्यार्थप्ररूपणे ॥ ३२९ ॥ विबादोभून्महास्तत्र वि-  
होती है ॥ ३१९-३२१ ॥ किसी एक दिन क्षीरकदंब उपाध्यायने सब परिग्रहोंके त्याग करनेका विचार किया इस-  
लिये उसने राजा वसुको बुलाकर कहा कि यद्यपि यह पर्वत और पर्वतकी माता दोनों ही मंदबुद्धि हैं तथापि हे भद्र  
तू मेरे पीछे भी सबतरहसे इनका पालन करना । वसुने भी इसके उत्तरमें कहा कि मैं आपके अनुग्रहसे बहुत प्रसन्न  
हूं यह काम करना तो बिना कहे ही मेरा कर्तव्य है इसके लिये आप मुझे वर्यो कहते हैं । हे पूज्यपाद ! करने योग्य  
इसकाममें आप किसी तरहका संदेह मत समझिये आप तो यथायोग्य रीतिसे परलोक सुधारनेका प्रयत्न कीजिये  
इसतरह राजा वसुने मनोहर कथारूपी निर्मल मालाओंसे क्षीरकदंब ब्राह्मणका आदर सत्कार किया ॥ ३२२-३२५ ॥  
तदनंतर क्षीरकदंब उत्तम संयम धारणकर और अंतमें समाधिप्राण धारणकर उत्तम स्वर्गलोकमें जा उत्पन्न हुआ ॥  
३२६ ॥ इधर सब शास्त्रोंका जाननेवाला पर्वत पित्तके स्थानपर बैठकर सब जगहके शिष्योंके पढ़ानेमें प्रेम करने लगा ॥  
३२७ ॥ उसी नगरमें अनेक विद्वानोंसे सुशोभित और सूक्ष्मबुद्धिवाला नारद मकान बनाकर रहने लगा शिक्षा देकर  
वा शास्त्रोंका व्याख्यानकर यशको खूब बढ़ाने लगा ॥ ३२८ ॥ इस तरह उन दोनोंका समय व्यतीत होने लगा ।  
किसी एक दिन किसी सज्जनोकी सभामें “अर्जुनोऽहोतव्यम्” अर्थात् अर्जुनसे होम करना इस वाक्यका अर्थ निरूपण क-  
रते समय बड़ा भारी विवाद उपस्थित हुआ । नारद कहता था कि जिसमें अंकुर उत्पन्न होनेकी शक्ति नहीं है ऐसे  
तीन वर्षके पुराने जौके बीजोंका अज कहते हैं ॥ ३२९-३३० ॥ उस जौके विकाससे अग्निमें देवोंकी पूजा करना  
यह है ऐसा नारदने पद्धतिके अनुसार विधि पूर्वक कहा ॥ ३३१ ॥ निर्बुद्धि पर्वत कहता था कि अज शब्दका अर्थ पशु

ईशित्वत्वे प्रपन्नमव्युत्थत् ॥ ३०९ ॥ नारदोऽपि यत्नं यातोऽहम् देवोऽहम् कर्णयोगः । कर्तव्यश्चेत्तद् इत्युक्तं गुरुणा चंद्रमासकरो ॥ ३१० ॥ नक्षत्राणि प्रहास्तार-  
काश्च पर्ययति देवताः । सदा सन्निहिताः सति पक्षिणो मृगजातयः ॥ ३११ ॥ नन्ते शम्भ्या निराकृतुर्मित्येत्य गुरुस्तत्रिधो । भव्यात्माष्टदेवास्त्य बने के-  
नाप्यसम्बार्धे ॥ ३१२ ॥ नामादिचतुर्थेषु पापापहृत्यति कारण-क्रियाणामविधेयत्वाद्याहमानीतवानि ॥ ३१३ ॥ इत्याह तद्वचः श्रुत्वा स्वमुत्त-  
जडात्मता । विचिंतयेकांतवायुक्त सर्वथा कारणानुगं ॥ ३१४ ॥ कार्यमित्येतदेकांतमतं कुमतेमेव तत् । कारणानुमते कार्यं क्वचित्त्वचनित्यन्याया ॥  
३१५ ॥ इति स्याद्वाददृष्टदृष्ट सत्यमित्युत्तुवान् । सिध्यस्य योग्यता चित्ते निधाय युज्यमतम् ॥ ३१६ ॥ हे नारद त्वमेवान्म सुखमग्रहो यथाशक्ति ।  
इत् प्रष्टुयाध्यायपदे त्वं स्थापितो मया ॥ ३१७ ॥ व्याख्येयानि त्वया सर्वगत्वात्माणीति प्रपूज्य तं । प्राबुद्धयद् गुणैरेव प्रीतिः सर्वेन धीमता ॥ ३१८ ॥

की आज्ञा है परंतु यहां वनमें भी सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र तारे आदि देवता देखते हैं पक्षी हरिण आदि सब समीप रह-  
ते हैं और ये सब किसी तरह दूर नहीं किये जा सकते, यही सोचकर वह भग्य पुरुष गुरुके समीप आया और क-  
हने लगा कि वनमें जिन जगह कोई न देख सके ऐसी जगह मिलना असंभव है दूसरी यह बात है कि नाम स्थाप-  
ना द्रव्य भाव इन चारों पदार्थोंमें पाप और निंदा उत्पन्न करनेवाली क्रियाएँ करनेका विधान नहीं है इसी लिये मैं  
इस बकरेको ऐसा ही ले आया हूं ॥ ३१०-३१३ ॥ नारदकी कही हुई इस बातको सुनकर उस पंडितने अपने पुत्र-  
की जड़बुद्धिका विचार किया और सोचा कि एकांतवादी जो कारणके समान कार्य मानते हैं वह निरा एकांतमत ही  
है और इसीलिये वह मिथ्यामत है । कहीं कहींपर कारणके समान कार्य होता है और कहीं कहीं उससे विपरीत होता  
है यह जो स्याद्वाद मत है वही सत्य है यही समझकर वह संतुष्ट हुआ और चित्तमें शिष्यकी योग्यता देखकर वह उ-  
त्तम ब्राह्मण कहने लगा कि ॥ ३१४-३१७ ॥ हे नारद तू ही मूढ बुद्धिवाला और पदार्थको यथार्थ जाननेवाला है  
इसलिये आजसैं मैं इस उपाध्यायके पदपर तुझे स्थापन करता हूँ आजसैं तू ही सब आसनोंका ध्यालयान करना इस  
प्रकार उसका आदर सत्कारकर उसे बढाया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंका प्रेम सब जगह गुणोंसे ही हुआ करता  
है ॥ ३१८-३१९ ॥ तदनंतर वह क्षीरकंदंन अपने पुत्रसे कहने लगा कि हे पुत्र विवेकके विना ही तूने यह प्रतिश्रुत और  
बुरा कार्य किया है, कार्य और अकार्यका विचार करना तुझे ज्ञास्य पटकर भी नहीं आया तू इसतरह निबुद्धि होकर मेरी  
बातके पीछे कैसे जीबेगा । इस तरह झोक करते हुए पिताने उसे शिक्षा दी परंतु उस शिक्षाका असर मूल पर्यंतपर उलटा  
हुआ और वह उसी दिनसे नारदसे बैर करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि मूल खोटी बुद्धिवालोंकी ऐसी ही गति

व्याधुल विमुक्त कुपुपद्मदस्थितः ॥ ३०४ ॥ कलापी गतवानेकः शेषाथ तन्महादिताः । पत्रभागं विधूयागुस्त दृष्ट्वा समभाषिषि ॥ ३०५ ॥ पुमानेकः  
स्मिपद्माया इति सत्त्वानुमानतः । ततो ब्रह्मतरात्किमिदं गत्य पुरसन्निधौ ॥ ३०६ ॥ तथा करिण्याः पादाभ्यां पश्चिमाभ्यां प्रयाणके । स्वयूत्रघटनाद्वा-  
ने दक्षिणे तर्करिषा ॥ ३०७ ॥ भगेन मार्गाग्रच्युल श्रमादाकृष्टयोषितः । शीतच्छायाभिलाषेण सुप्ताया पुलिनस्थले ॥ ३०८ ॥ उदरपर्यामणैः द-  
शभ्या गुल्मसर्पका । करिणीश्रितगेहामणितोयत्तेतनेन च ॥ ३०९ ॥ मया तदुक्मिलेतदहननाद् द्विजसत्तम । निजापराधाभावात्स्य भावमाविरभावयत्  
॥ ३१० ॥ तदापर्वतमातापि प्रसन्नामनुनय सः । तत्प्राप्त्यनुनिवाक्यार्थसंश्लयविधिसुकः ॥ ३११ ॥ स्वपुत्रछात्रयोर्भावपरीक्षायै द्विजाग्रणीः ।  
स्थित्वा सजानिरेकाते कृत्वा पिष्टेन वस्तके ॥ ३१२ ॥ देशोर्ध्वत्वा परादर्यै गृध्रमात्यादिमंगले । कर्णच्छेदं विधायैनावैवानयत युवा ॥ ३१३ ॥ इत्य-  
वादीतः पापी पर्वतोत्ति न कथन । बनेस्मिन्निति विच्छिद्य कर्णौ पितृमागतः ॥ ३१४ ॥ त्वया पूज्य यथादिष्ट तत्तयव मया कृतः । इति वीतघृणो  
ल्लुल किनारे सोई थी वहांपर जो कुछ उदरका चिन्ह था उससे वह गर्भिणी जान पड़ती थी, उसकी साडीका ठोक  
एक छोटेसे कटीले झाडसे लगकर फट गया था तथा फटा हुआ ठुकडा उसी झाडपर लटकता था उसपरसे उसकी  
सफेद साडीका अनुमान किया था जहां हथिनी उहरी थी उस मकान पर सफेद ध्वजा फहरा रही थी उसपरसे मैंने  
सुत्र होनेका अनुमान किया था । इसतरह अनुमानसे मैंने ऊपरकी सब बातें कहीं थीं । नारदकी ये बातें सुनकर उ-  
स ब्राह्मणने ब्राह्मणीको प्रगटकर दिखला दिया कि मैं मर्वाथा निरपराधी हूं अर्थात् मैंने दोनोंको एकसा उपदेश दि-  
या है ॥ ३०४ ॥ ये सब बातें सुनकर पर्वतकी माता भी बहुत प्रसन्न हुई । तदनंतर उस ब्राह्मणने पर्वतकी माताको  
उन मुनियोंके कहे हुए बचनोंका निश्चय करानेकी इच्छाकी तथा पर्वत और नारद दोनोंकी परीक्षा करनेकेलिये अप-  
नी स्त्रीके साथ वह एकान्तमें बैठा, वहांपर उसने आटेके दो बकरे बनाये और वे दोनों शिष्योंको देकर कहा कि जि-  
स जगह कोई देखनेवाला न हो उस जगह लेजाकर गंधमाला आदि मांगलिक चीजोंसे इनकी पूजा करना और  
फिर कान छेदकर आज ही ले आना ॥ ३०५-३०७ ॥ इस तरह कहकर उन दोनों शिष्योंको विदा किया तदनंतर  
पापी पर्वतने सोचा कि इस वनमें देखनेवाला कौन है ? कोई नहीं है यही विचारकर और उस आटेके बकरेके कान  
छेदकर वह पिताके पास आया और कहने लगा कि हे पूज्य आपने जैसी आज्ञा दी थी मैंने वैसा ही किया है । इस  
तरह उसने बिना किसी घृणाके बड़े हर्षसे अपने पिताको आकर समझाया ॥ ३०८-३०९ ॥ नारद भी उस बकरे-  
को लेकर वनमें गया और सोचने लगा कि "जिस जगह कोई देखनेवाला न हो वहां इसके कान छेदना" ऐसी गुरु

वान् ॥ २८८ ॥ तमसस्य पुनः कर्तुं करिणीगमनाहुः । पुरोतर्गिरदारिद्र्यमुपलभ्य तथैव तत् ॥ ८९ ॥ सशोको गृहमागत्य नारदोक्तं सविस्मयः । मा-  
तर्ं बोधयित्वाह नारदस्यैव मे पिता ॥ ९० ॥ नावोचच्छास्त्रायात्म्यमस्ति मय्यस्य नारदः । इति पुत्रवचसास्या इदं निश्चिताहवत् ॥ ९१ ॥ विदार्थं  
प्राविशत्यापाद्विपरीतावमर्शनात् । ब्राह्मणी तद्वचश्चित्तानवधार्यं शुभं गता ॥ ९२ ॥ कृत्वा ज्ञानाभिप्राशयित्वा स्वामाश्रणे स्थिते । अवव्रीत्पर्वतप्रोक्तं  
तस्मिन्मय विदार्थः ॥ ९३ ॥ निर्विशेषोपदेशोहं सर्वेषां पुरुषं प्रति । विभिन्ना बुद्ध्यस्तस्याभारदः कुशलोभवत् ॥ ९४ ॥ प्रकृत्या त्वत्सुतो मदी नानुया-  
स्यन् विवीचते । इति तत्प्रत्ययं कर्तुं नारदं सुतसाम्रिषौ ॥ ९५ ॥ वद केन वने ब्राह्मण्यपर्वतस्योदपादयः । विस्मयं बभूवि प्राह सोपि सप्रश्रयोभ्यधात्  
॥ ९६ ॥ वनेह पर्वतेनाया गच्छन्नयंकथातरः । शिखिना पीतवारीणां सवो नया निवर्तते ॥ ९७ ॥ स्वचक्रकलापाभिमध्यमज्जनगैरवात् । भीत्वा

बह ब्राह्मणी अपने चित्तमें पुत्रके बचनोंका कुछ निश्चयकर शोक करने लगी और जब ब्राह्मण स्नान अग्निहोत्र आ-  
दि कर्मकर तथा भोजन कर बैठा था तब पर्वतकी कही हुई सब बात कह सुनाई । उसे सुनकर वह बुद्धिमान विद्वान्  
कहने लगा कि मैं सब लोगोंको एकसा उपदेश देता हूं परंतु प्रत्येक पुरुषकी बुद्धि भिन्न भिन्न होती है इसलिये ही  
नारद चतुर होगया है ॥ ९०-९४ ॥ तेरा पुत्र स्वभावसे ही मंद है इसलिये इसविषयमें कुछ ईर्ष्या नहीं करनी  
चाहिये । इसी बातका निश्चय करानेकेलिये धीरकदंबने अपने पुत्रके सामने नारदसे पूछा कि कहो  
आज किस वनमें घूमे थे और वहां पर्वतके साथ क्या उपद्रव किया था । गुरूजीकी यह बात सुनकर  
नारदको कुछ आश्चर्य हुआ और वह बड़ी विनयके साथ कहने लगा ॥ ९५-९६ ॥ किं मे आज पर्वतके  
साथ वनमें गया था मार्गमें कुछ कथाएं कहता जाता था । मार्गमें कुछ मयूर नदीमें पानी पीकर उसीमय  
लौटे थे उनमेंसे जो मयूर था वह अपनी पूँछके चद्रमाश्रितों पानीमें भीगकर भारी हो जानेसे डरसे अपने पैर उलटे  
पीछेकी ओर रखकर फिर मुंह फिराकर लौटा था और बाकी जो मयूरिणी थीं वे अपने पंखोंको पानीमें भिगो कर त-  
था फटकारकर लौटी थीं यही देखकर मैंने अनुमानसे जान लिया था और पर्वतसे कहा था कि इनमें एक पुरुष (म-  
यूर) है और बाकी सब स्त्रियां (मयूरिणी) हैं इसके बाद वनमें थोड़ी दूर जाकर किसी नगरके समीप देखा चलते  
समय किसी इधिनीके पिछले पैर (पैरके बिन्दु) उसीके मूत्रसे भीगे हुए हैं इसीपरसे मैंने जाना कि यह इधिनी है  
तथा उसके दाई ओरके हृक्ष और बाँधे टूटे हुए थे इससे अनुमानसे जान लिया कि वह इधिनी बाँध आँखसे कानी  
थी । उसपर सवार होनेवाली स्त्री मार्गकी बकावटसे उतरकर झील छायाकी इच्छा करती हुई नदीके पानीके वि-

गताङ्कशाक्तिक । यववीजं त्रिवर्षस्यमजमित्यभिधीयते ॥ ३० ॥ तद्विकारेण सप्तचसुखे देवान्न विद । वदति यन्नमिषाख्यदुषुपक्षी नारदः ॥ ३१ ॥  
 पर्वतोप्यजपदेन पशुमेव प्रकीर्त्यते । यन्नोन्नो तद्विकारेण होत्रमिष्यवदद्विधीः ॥ ३२ ॥ तयोर्वचनमाकर्ण्य द्विजप्रसुतसाधव । मात्सर्थाकारदेव धर्मः  
 प्राणवधादिति ॥ ३३ ॥ प्रतिष्ठापयितुं धार्या दुरात्मा पर्वतोव्रवीत् । पतितोयमयोग्योतः गृह संमाणपादितु ॥ ३४ ॥ इति हस्ततलास्फालनेन निर्मितस्य त  
 भरोपानपदवीमिव । वलीरुद्विताभूयस्तलवेवाधचक्षुषा ॥ ३५ ॥ एवं बहिःकृतः सर्वमनमगादगादन्नं । तत्र ब्राह्मणवेपेण वयसापरिणामिना ॥ ३६ ॥ कृत्वातरोदृणास-  
 जरागनासमासप्रमुखाद्वामीचक्षुषा । चलच्छिन्नकरेण करिणा कुपिताहिना ॥ ३७ ॥ इतोर्वधासिनाराजवल्मेनैव नाप्रत । प्रसुतं पश्यता भग्नपृष्ठ-  
 विशेष ( बकरा ) कहा जाता है उसके विकारसे अग्निमें होम करना यज्ञ कहलाता है ॥ ३३ ॥ उन दोनोंके वचन  
 सुनकर बड़े बड़े सज्जन ब्राह्मणोंने घोषणा की कि यह दुष्ट पर्वत नारदके साथ ईर्ष्या रखता है इसलिये ही संसारमें  
 प्राणियोंके बचसे धर्मकी स्थापना करनेके लिये ऐसा कहता है परंतु प्राणियोंकी हिंसासे कभी धर्म नहीं हो सकता,  
 यह पर्वत पतित है और इसलिये ही अपने साथ बात चीत करनेके भी अयोग्य है इस तरह क्रोधसे सबने हाथकी  
 हथेली हिलाकर उसका तिरस्कार किया और लोगोंपर प्रगट किया कि दुर्बुद्धिका ऐसा फल इस लोकमें ही  
 मिल जाता है ॥ ३३३-३३५ ॥ इस तरह सब लोगोंने उसे बाहर निकाल दिया इसलिये मान मंग होनेसे वह  
 वनमें चला गया । वहांपर महाकाल नामका देव ब्राह्मणका वेश धारण कर फिर रहा था उस समय वह दुष्ट  
 अवस्थाके रूपमें था, ऐसा जान पड़ता था मानों यमराजकी चटने योग्य सीढियों पर बहुत शीघ्र चढ़ना  
 चाहता हो, आंखसे अंधके समान चलते चलते रुक जाता था, उसके सिरपर दूर दूर सफेद बाल थे,  
 शिंघर पगड़ी ऐसी जान पड़ती थी मानों यमराजसे उत्पन्न हुए उसके कोई चांदीका टोप ही रखवा हो उसके नेत्र  
 कुछ कुछ बंद थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों जराखूनी ( बुढापा ) स्त्रीके समागमसे उत्पन्न हुए सुखसे ही वे नेत्र  
 बंद होगये हो उसकी गति कटी झुंडवाले हाथीके समान थी, क्रोधित हुए सर्पके समान वह लंबी सांस ले रहा था,  
 जिसप्रकार राजप्रिय मनुष्य मदसे आगे नहीं देखता है, उसीप्रकार वह भी आगे नहीं देखता था । उसकी पीठ टूटी  
 हुई थी, सुखसे शब्द साफ नहीं निकलते थे, सगरकी स्त्रीसे जो उसने वैर बांध रखवा था उसे प्रगट करनेकेलिये  
 ही मानो उसने तिहरा यज्ञोपवात धारण कर रखवा था और वह अपने अमिष्रायको सिद्ध करनेकेलिये कोई खास

नपट्टभाषिणा ॥ ५० ॥ रावेव गोमयदंडेन मयेनेत तांश्रुता । विष्णुपुराणंतामु यन्दकोरमिवरमन ॥ ४१ ॥ यक्षुं पारयना यमोपवीतं विष्णुनीकुनं । तेन स्वात्मिमतारंमतिरिदियुवेषिणा ॥ ४२ ॥ महाकालेन इष्ट मनु पर्वतः पर्वते भ्रमन् । प्रतिगम्य तमानम्य सोमं धादमिगदने ॥ ४३ ॥ महाकालः समभास्य स्वस्ति तेस्तिवति सादरं । नमश्चित्तपूर्वस्वात्कुलसन्तु बर्नातरे ॥ ४४ ॥ पारब्रजणगेपते वृद्धि ने केन देवता । इतगुच्छद्वैता चाष्ट विभक्तुतामा-  
दितः ॥ ४५ ॥ न निराय्य महाकालः सगरे मय वैरिण । निर्वेत्ती हनुमेव स्वात्मसंथा मे प्रविष्टमयः ॥ ४६ ॥ इति निश्चित पापात्मा प्रविष्टमनवीरतः । तत्पिता स्यंठिडो विष्णुरममन्युरहं च भो ॥ ४७ ॥ मीमोषापापसाक्षिणे शास्त्रन्यासमकुरुहि । तपिता मे ततो विदि पर्वतत्रा तनोकिंतु ॥ ४८ ॥  
कारण दंडता फिरता था, ऐसे महाकालने किसी पर्वतपर फिरते हुये पर्वतको देखा ब्राह्मण उस पर्वतके सामने गया और जाकर उसें नमस्कार किया । वदलेमें पर्वतने भी नमस्कार किया ॥ ३३६-३४३ ॥ महाकालने उसे आवाहन दिया और बड़े आदरसे उसे कहा कि तेरा कन्याण हो । महाकालने अजान सरीखा बनकर पर्वतसे पूछा कि तू कहाँसे आया है और इस वनमें किस कारणसे फिर रहा है तू ये सब बातें इससे कह । इसके उत्तरमें पर्वतने भी आदिसे अंततक अपना सब हाल कह दिया ॥ ३४४-३४५ ॥ यह सुनकर महाकालने सोचा कि मेरे वंसी सगरको निर्वेश करनेकेलिये यह समय ठे यह मेरा साधर्म्य है ॥ ३४६ ॥ यही निश्चयकर यह ठगनेमें बहुत और पापी महाकाल कहने लगा कि तेरा पिता स्थंडिल विष्णु उपमन्यु और मैंने एक साथ भीम उपाध्यायसे अनेक दानोंका अक्षयन किया है । इस हिसाबसे तेरा पिता मेरा धर्मका भाई है उसीके देखनेके लिये मैं यहाँ आया था परंतु दुल्ल है कि यह मेरा आना निष्फल हुआ । तू किसी बातका डर मतकर शत्रुको नाश करनेके लिये मैं तेरा सहायक बनूंगा ॥ ३४७-३४९ ॥ इसप्रकार क्षीरकंदवंकें पुत्र पर्वतके लिये अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली अथर्वण वेदकी साठ हजार ऋचाएं बनाई तथा पर्वतको वह सब वेदका रहस्य पढ़ाया और कहा कि ऊपर लिखे मंत्रोंसे वायुके द्वारा बंदी हुई अंधिकी उजालामें अति पुष्टि और अभिचारारमक क्रियाएँ की जाय तो पशुओंकी हिंसासे भी अपने इष्ट फलकी प्राप्ति होजाती है । तदनंतर दोनोंने विस्तार किया कि अयोध्यामें जाकर अति आदिको देनेवाला हिंसा यज्ञ करेंगे और इसतरह इन वेदोंका प्रभाव दिसलावेंगे । यह कहकर अपने शत्रुको नाश करनेकेलिये उसने अपने कृ-  
र शत्रुओंको बुलाया और उन्हें आज्ञा दी कि राजा सगरके राज्यमें अवराधिकी तीव्र बाधा उत्पन्न करो, यह कहकर उन देवोंको भेजा । इधर पर्वत अयोध्या नगर में जाकर राजसभामें गया और मंत्रोंसे मिले हुए आजीवन देकर



समागमनमेतत् न वै कस्यं समपद्यत । मा भवीः शत्रुविध्वंसे सहायस्ते भवाम्यहं ॥ ३४९ ॥ इति शीरकदम्बाभोजेष्टाभीनुमताः स्वयं । आर्षवर्णगता बहिः-  
सहस्रप्रमिताः पृथक् ॥ ३५० ॥ ऋजो वेदरहस्यानीत्युपाशाध्याप्य पर्वत । शांतिपुष्टयभिचारमक्रियाः पूर्वोक्तमंत्रैर्गणैः ॥ ३५१ ॥ निषिताः पवनोपेतव-  
न्निज्वालासमा कलं । इष्टरुपादविध्वंसि प्रयुक्ताः पशुहंसिनात् ॥ ३५२ ॥ ततः साकेतमध्यास्य शांतिर्कादिफलप्रदं । हिंसायां समारभ्य प्रभवं विदधा-  
महे ॥ ३५३ ॥ इत्युक्त्वा वैरिनाशार्थमात्मीयान् धितिपुत्रकान् । तीव्रान् सगराण्डस्य बाधा तीव्रज्वरादिभिः ॥ ३५४ ॥ कुरुत्वमिति सप्रेष्य स द्विजस्त-  
तुरं गतः । सगरं मंत्रगर्भांसीबीदेनालोक्य पर्वत ॥ ३५५ ॥ स्वप्रभाव प्रकाश्यास्य त्वद्देशविषमशिव । शेषविष्यामि यद्देन सुमित्रेणविलंबितं ॥ ३५६ ॥  
यद्वायु वैषसा सृष्टा पशवस्तद्विहंसिनात् । न पापं पुण्यमेव स्यात्स्वर्गोक्तसुखसाधनं ॥ ३५७ ॥ इति प्रत्याय तं पापं पुनरप्येवमवधीत् । त्वं पशूनां सहजा-  
णि बहिं यागस्य सिद्धये ॥ ३५८ ॥ कुरु सप्रहमन्यन्व इत्थं तद्योग्यभिलसौ । रात्राणि सर्वैकस्तुति तर्थावसै समर्पयत् ॥ ३५९ ॥ आरभ्य पर्वतो याग प्रा-

सगरके दर्शन किये ॥ ३५८-३५५ ॥ राजाको कुछ अपना प्रभाव दिखलाया और फिर कहा कि तेरे देशमें जो वि-  
षम अकल्याण हो रहा है उसे मैं सुमित्र नामके यज्ञसे बहुत शीघ्र दूर कर दूंगा ॥ ३५६ ॥ ब्रह्माने ये पशु यज्ञके  
लिये ही बनाये हैं इनकी हिंसा करनेसे पाप नहीं होता किंतु पुण्य ही होता है तथा बड़े भारी सुखका साधन  
ऐसा स्वर्ग मिलता है ॥ ३५७ ॥ इसतरह विश्वास दिलाकर वह पापी पर्वत फिर कहने लगा कि यज्ञपूरा होनेके  
लिये तू साठ हजार पशु इकट्ठे कर तथा उसके लिये इतनी इतनी और सामग्री इकट्ठी कर । राजाने भी खुपचाप  
पर्वतके अनुसार सन सामग्री लाकर उसे समर्पणकी ॥ ३५८-३५९ ॥ पर्वतने यज्ञ करना प्रारंभ किया वह मन्त्रपूर्वक  
प्राणियोंका होम करने लगा । उससमय महाकालने भी उन प्राणियोंको विमान में बिठाकर शरीरसहित आकाशमें  
ले जाते हुए दिखलाया और लोगोंको विश्वास दिला दिया कि ये सब स्वर्गका गये हैं । उसीसमय देशमें जो अक-  
ल्याण और उपसर्ग हो रहा था वह भी उसने दूर कर दिया ॥ ३६०-३६१ ॥ उसे देखकर उसके छल कपटसे  
मोहित हुए लोग मुग्ध हो गये और स्वर्ग में जानेकी इच्छा करते हुए सब लोग खुशी खुशी उस यज्ञमें मरनेकी  
आकांक्षा करने लगे ॥ ३६२ ॥ यज्ञके समाप्त होनेपर उस दुष्ट पर्वतने विधि पूर्वक एक जाति नामके घोड़ेका होम  
किया और फिर राजाकी आज्ञासे सुलसा देवीको भी होम दिया ॥ ३६३ ॥ तदनंतर प्यारी देवीके वियोगसे उत्पन्न  
हुई शोकरूपी दावानल अनिसे जिसका शरीर सब जल गया है ऐसा वह राजा मगर अपनी राजधानीको लौट  
आया ॥ ३६४ ॥ वह शय्यापर जाकर पढ़गया और विचार करने लगा कि यह प्राणियोंकी हिंसा करना बड़ा भारी काम

भिनोऽमंत्रयत्तदा । महाकालः क्षरीरेण सह स्वर्गमुपागतः ॥ ३६० ॥ इत्याकाशे विमानैस्तान्नीयमा नानदर्शनयत् । देशाधिबोपसर्गं च तदैवासी निरस्तवान् ॥  
 ३६१ ॥ तद्दृष्ट्वा देहिनो मुग्धास्तत्प्रत्यक्षमेव मोहिता । तां गतिं प्रेक्षन्वो यागयतिमाकांक्षयन्तलं ॥ ३६२ ॥ तपश्चावसितौ जाल्य हयमेक विधानतः । इयाज  
 बुद्धिर्मां देवीमभिः राक्षसाश्वा खल ॥ ३६३ ॥ भियवकांतावियोगोत्थयोक्तयोक्तदवानलाचिषा । परिच्छुष्टनन् राजा राजधानीं प्रविष्टवान् ॥ ३६४ ॥ शत्र्यातले  
 विनिक्षिप्य क्षरीरं प्राणिर्हिंसन । शूतं महर्हिद धर्मः क्षिप्रचर्मोयमित्यसौ ॥ ३६५ ॥ संक्षयानस्तथाऽन्धेधुर्मुनिं भसिबराभिष । अभिवंश भयारब्ध भटारक च-  
 वास्थित ॥ ३६६ ॥ दूहि किं कर्म पुण्य मे पाप चेद विचार्य तत् । इत्यवोचदमौ चाह धर्मशास्त्राभिः कृत ॥ ३६७ ॥ एतदेव विधातारं वसुधामीं प्रापयेत्क्षि-  
 त्ति । तस्याभिज्ञानमप्यस्ति द्वितेस्मिन् सप्तमेधानिः ॥ ३६८ ॥ पतिष्यति ततो विदि सप्तमी शरणीसि ते । तदुक्त भूपतिर्मैला ब्राह्मण त्त्वं वेदयत् ॥ ३६९ ॥  
 तन्मृषा क्षिप्तसौ वेति नमः क्षणकस्ततः । शक्वा चेत्सैतस्याः शास्त्रिण विधीयते ॥ ३७० ॥ इत्युक्तिर्मैमस्तस्य सचार्यं शिष्यिणीकृतं । यत्र पुनस्तमा-  
 है वह धर्म है अथवा अधर्म है । इसतरह संक्षय करता हुआ वह सवेरे ही पतिवर नामके मुनिके समीप गया और  
 बर्दनाकर प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन् ! मैंने यज्ञ करना प्रारंभ किया है, आप विचारकर कहिये कि यह पुण्य-  
 का काम है अथवा पापका ? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि यह काम धर्मशास्त्रके विरुद्ध है इसके करनेवालेको  
 सातवां नरक मिलता है । इसके सिवाय आजसे सातवें दिन तुझपर यज्ञ पड़ेगा और तू भरकर सातवें नरक जायगा  
 यह तू निश्चय समझ । मुनिराजकी ये सब बात सुनकर राजाने ज्यों की त्यों ब्राह्मणसे जाकर कही ॥ ३६५-३६९ ॥  
 राजाकी यह बात सुनकर वह पर्वत ब्राह्मण कहने लगा कि यह सब बात झूठ है, वह नंगा बर्बा जानता है । यदि  
 तेरे पितामें फिर भी कुछ श्रद्धा हो तो इसकी भी श्रांति कर डालते हैं ॥ ३७० ॥ इसतरहके बचनोंसे राजाके चित्तको  
 धीरज बढाया और जो यज्ञ श्रांत कर दिया था उसे फिरसे करना प्रारंभ किया । सातवें दिन उस पापी असुरने  
 अपनी मायासे दिखलाया कि सुलसा विमानमें बैठकर देवका क्षरीर धारणकर आई है आकाशमें ठहरी है और राजा  
 सगरसे कह रही है कि यज्ञमें मरनेके फलसे ही मैंने यह देवगति पाई है मेरे पहिले जो पशु होमे गये थे वे भी  
 सब देव हुए हैं आपको वही आनदकी बात कहनेके लिये मैं विमानमें बैठकर यहाँ आई हूँ । यज्ञसे सब देव प्रसन्न  
 हुए हैं और सब पितर उत्स हुए हैं उसकी यह बात सुनकर राजाने विचार किया कि यज्ञ में मरे हुएोंका यह प्रत्यक्ष  
 फल दिखाई दे रहा है इसलिये समझना चाहिये कि मुनियोंके कहे हुए वचन झूठे हैं तीव्र हिसामें अनुराग रखनेसे,  
 सदर्मसे बच करानेवाले कर्मकी मूल श्रुति तथा उपरमश्रुतियोंके मेढ़से उत्पन्न हुए परिणामोंसे, नरक आयुके बोध उत्पन्न

रन्ध्रः स ततः सप्तमे स्थिते ॥ ३७१ ॥ भाव्यायुरपायस्य सुदसा नमसि स्थिता । देवभावं गता प्राच्यपशुमेदपुरस्कृता ॥ ३७२ ॥ यागमृगफलैर्नैव लब्ध्वा देवगतिर्मया । तं प्रमोद तवाख्यातुं विमानेहमिहानंता ॥ ३७३ ॥ बह्वेन प्रीयिता देवाः पितरभ्येत्यभाषत । तद्वचः श्रवणाद् दृष्ट्वा प्रत्यक्ष यागमृगयुज ॥ ३७४ ॥ फल कैनुर्नैवीयमसत्यमिति भूपतिः । तीव्रहिसानुरागेन सद्धर्मद्विषणोदयात् ॥ ३७५ ॥ सभूतपरिणामेन भूलोतरविकल्पितात् । तत्प्रायोग्यसमुत्सृज्य । तत्तत्कर्मप्रसफाखिलमिभिः सगरः सह ॥ ३७६ ॥ नरकाबु प्रभृत्यष्टकर्मणा स्वोचितस्थितेः । धनुभागस्य बधस्य निकचितनिवर्धने ॥ ३७७ ॥ विनीषणशानित्वेन तुत्काले पतितौ बभ्रुवुमुत्क्रोधस्तृतीयनरकावधौ । धन्विष्यान्बलोक्यैनं विषममृग्यस्तिद्विगं ॥ ३७८ ॥ स्वैरपवनापूरणेन गत्वा रसातलं ॥ ३७९ ॥ तं ददुष्ट और संलेश परिणामों से आठों कर्मों की उचित स्थिति और अनुभाग बंधके योग्य नरकायुका बंध किया उसीसमय भयानक वज्रपात हुआ वह उन सब शत्रुओंपर पड़ा और उस काममें लगे हुए सब जीवोंके साथ साथ वह राजा सगर मरकर सातवें नरकमें जा उत्पन्न हुआ । महाकाल उसीसमय उसे दंड देनेके लिये तीव्र क्रोध करता हुआ अपने बैररूपी बाणोंके शकीरेसे नरकमें गया तीसरे नरकतक उसे विभंगज्ञान था इसलिये वहांतक तो उसने डंढा परंतु जब उसे वहां न देखा तब वह विना किसी तरहकी ग्लानिके वहांसे निकला और सगरके मंत्री विश्वभू आदिके माने का उपाय सोचने लगा तदनंतर उस महाकालने "पर्वतकी कृपासे मैं सुलसासहित सुलोको प्राप्त हुआ हूं यह कहकर विमान में सुलसा और सगर दोनोंको दिखलाया ।" यह देखकर राजा सगरके न रहनेपर जो विश्वभू मंत्री स्वयं उस देशका राजा बन बैठा था वह फिर महामेघ करनेका प्रयत्न करने लगा । उसने महाकालकी मायासे आकाशरूपी आंगनमें विमानमें बैठे हुए देव और पितर सब लोगोंको प्रगट दिखलाये । उससमय वे सब मिलकर विश्वभू मंत्रीकी स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे पुण्यवान् मंत्री ! आपने यह महामेघ यज्ञ बहुत अच्छा किया है । नारद और कुछ तपस्वियोंने यह बात सुनकर विचार किया कि धिक्कार है इस दुष्टने संसारमें मिथ्यामार्गका एक अधि-कार फैला दिया है पाप करनेमें पंडित ऐसे इस दुष्टको किसी भी उपायसे रोकना चाहिये ॥ ३७१-३८६ ॥ नारद विचारकर वे सब अयोध्या आये । वहांपर उन्होंने यज्ञ करते हुए विश्वभू मंत्रीको देखा तथा देखा कि अनेक पापी लोग अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये अत्यंत प्राणियोंकी हिंसा कर रहे हैं । तब सब प्राणियोंके हितकी इच्छा करनेवाले तपस्वी लोग कहने लगे कि किसी भी जगह कोई भी मनुष्य धर्मके लिये प्राणियोंके हिंसक नहीं बनते

हितः दुःखं ॥ ३८१ ॥ आतोहमिति शंसते विमानेतिमदशयत् । तं दृष्ट्वा तत्परोक्षेऽत्र विषभू सन्निवः स्वयं ॥ ३८२ ॥ निषयाधिपतिर्भूत्वा महामेधे कृतो-  
यमः । विमानातंगता देवा पितरश्च नभोगणे ॥ ३८३ ॥ सर्वेषां दर्शिता व्यक्तं महाकर्मात्म्य मायया । महामेधस्तुत्या यागो भवितुं पुण्यवता कृत ॥ ३८४ ॥ इति  
विषभूषण संभूयास्तामिबुस्तदा । नारदस्तापसाश्चतदाकर्ण्य बुदुगत्सना ॥ ३८५ ॥ दुर्मर्गाधिपकृतोनेन विक्लोकस्य प्रकाशित । निवार्येयमुपगयेन केनचित्पापप-  
भितः ॥ ३८६ ॥ इति सर्वेपि संगन्य साकेतपुरमागता । यथाविधिसमालोक्य सन्निव पापिनो नरा ॥ ३८७ ॥ नितातमर्यकामार्थं कुर्वति प्राणिना वच । न कोपि  
कृत्वापि घसीर्यं प्राणिना सति वातकाः ॥ ३८८ ॥ वेदविद्विभिरहितोका नैदो ब्रह्मनिरूपितः । कल्पवल्लीव मातेव सखीव जगते हिता ॥ ३८९ ॥ इति  
पूर्वोपवाक्यस्य स्वयाः प्राप्ताप्यसिद्धता । त्याज्यमेतद्वधप्रायं कर्म कर्मनिवधन ॥ ३९० ॥ तापमैरभ्यवायीति सर्वप्राणिहितैषिसिः । विषभूतिदमाकर्ण्य  
तापसा भोः कथं भया ॥ ३९१ ॥ दृष्ट शक्यमपह्नोतुं साक्षात्सर्गस्य साधन । इति भुवन् पुनर्नारदे लोक पापभीक्ष्ण ॥ ३९२ ॥ अमात्योत्तम

है यह वेदब्रह्माका कहा हुआ है वेदके जाननेवाले सदा अहिंसाका ही बगल्लयान करते हैं और यह अहिंसा ही  
कल्पवेल्लेके समान, अथवा माताके समान अथवा सखीके समान संसारका हित करनेवाली है । इसप्रकार पहिलेके  
श्रुतिभोके कहे हुए वाक्योंको यदि तू प्रमाण माननेकी इच्छा करता है तो अनंत कर्मोंका कारण ऐसा यह घोर हिं-  
सासे भरा हुआ कर्म तुझे छोड देना चाहिये । तपसियोंकी इस बातको सुनकर विषभू मंत्री कहने लगा कि भो तपस्वियो !  
यह यह स्वर्गका साधन है यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है फिर क्या मैं इसे छिपा सकता हूं । यह सुनकर पापसे डरनेवाले  
नारदने कहा ॥ ३८७-३९२ ॥ कि हे उत्तम मंत्री तू तो विद्वान् है क्या यह सब (हिंसा) स्वर्गका साधन है ? यह प्रत्यक्ष फल  
दिखाकर किसी शत्रुने पतिवार सहित सगरको विल्कुल नाश करनेकी इच्छासे एक उपाय किया है । यह उपाय किसी  
मायावीका कहा हुआ है इसलिये यह केवल मूर्ख लोगोंका ही मोहित करनेवाला है ॥ ३९३-३९४ ॥ इसलिये यदि  
तू स्वर्ग चाहता है तो शील उपवास आदि कृति प्रणीत शास्त्रमें कही हुई विधिका आचरण कर । यह सुनकर विषा-  
भूने नारदके कहे हुए वचन पर्वतसे कहे और कहा कि क्या नारदका कहा सुना ! उत्तरमें असुरके कहे हुए शास्त्रोंसे  
मोहित हुआ वह दुर्मति कहने लगा कि क्या यह सब शास्त्र नारदने पहिले सुने हैं ? मेरे और उसके गुरु तो एक ही  
हैं वह अपनी बुद्धिका बहुत अभिमान करता है और इसलिये ही कुछ ईर्ष्या भाव भी रखता है तथापि आज वह सु-  
नसे क्या कहना चाहता है ॥ ३९५-३९७ ॥ आप जानते हैं स्थाविर शास्त्रोंके अच्छे जानकर मेरे गुरुके धर्म भाई  
और संसारमें प्रसिद्ध वे उन्हीं गुरु वेदका रहस्य बतलाया है और यद्यपि मैं शत्रुका फल निरूपण किया है वही मेने

विदास्त्वं किमिति स्वर्गसाधनं । सगरं सपरीवारं निर्मूलं विनुमिच्छता ॥ ३९३ ॥ उपायोय विधाय्येव प्रत्यक्षफलदर्शनात् । केनचित्कुटुम्बकेन मुग्धानो  
 मोहकारण ॥ ३९४ ॥ तत सीलोपवासाद्विधिमार्थगमोदित । आत्मेति स तं ग्राह पर्वतं नारदोदित ॥ ३९५ ॥ श्रुतं ध्वयेत्यसौ शाखिणसुरोक्तेन  
 ३९७ ॥ सधृतो मद्रुरोर्धर्मत्राता जगति विधुत । स्थविरस्तेन च श्रौतरहस्य प्रतिपादितं ॥ ३९८ ॥ यागमृत्युफलं साक्षान्मयापि प्रकटीकृतं ।  
 न चेते प्रत्ययो विग्रवेदर्शान्विधिपारग ॥ ३९९ ॥ वसु प्रसिद्ध सत्येन पृच्छेरित्यन्वभाषत । तच्छ्रुत्वा नारदोवाचीको दोषः पृच्छयतामसौ ॥ ४०० ॥  
 इद तावद्विचारार्हं वयधेदमसाधनं । अहिंसादानशीलादि भवेत्पापप्रसाधन ॥ ४०१ ॥ अस्तु चेन्मत्स्यवधादिपापिना परमा गतिः । सत्यधर्मसत्योपक्रम

आज साक्षात् प्रगटकर दिखला दिया है । यदि आपको विश्वास न हो तो समस्त वेदरूपी महासागरके पारसामी  
 और सच बोलनेमें प्रसिद्ध ऐसे राजा वसुको पूछ लीजिये । पर्वतकी यह बात सुनकर नारदने कहा कि अच्छा इसमें  
 हानि ही क्या है राजा वसुसे पूछ लीजिये ॥ ३९८-४०० ॥ परंतु यह बात भी तो विचार करनेकी है कि यदि हिंसा  
 ही धर्म साधन मानी जायगी तो फिर अहिंसा दान शील आदि पापियोंको सबसे अच्छी गति मिलनी चाहिये और सत्य, धर्म, तपश्चरण  
 माननेसे मछली मारनेवाले घीवर आदि पापियोंको नरक आदि अधोगति मिलनी चाहिये ॥ ४०१ ॥ तथा ऐसा  
 आदिको पालन करनेवाले तथा ब्रह्मचारियोंको नरक आदि अधोगति मिलनी चाहिये ॥ ४०२ ॥ कदाचित् यह  
 कहो कि यज्ञमें पशुओंका मारना धर्म है दूसरी जगह नहीं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि हिंसा सदा दुःख देनेवाली  
 है और वह दोनों जगह एकसी है इसलिये दोनों जगह ( यज्ञमें और दूसरी जगह ) की हुई हिंसाका फल भी एक  
 सा ही होना चाहिये उसका निषेध करनेवाला भला कौन होगा । कदाचित् तुम ऐसा मानते हो कि ब्रह्माकी यह  
 पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये है इसलिये उनकी हिंसा करनेमें पाप नहीं है ऐसा शास्त्रमें लिखा है परंतु यह कहना  
 मूलोंकी इच्छाके समान और साधु विनिर्दिष्ट है ॥ ४०३-४०५ ॥ क्योंकि यदि तुम ब्रह्माकी सृष्टिको अच्छी मा-  
 नते हो तो इसमें और बहुतसे दोष आते हैं जो वस्तु जिसलिये बनाई जाती है यदि उसका उपयोग किसी दूसरे  
 काममें किया जाय तो वह वस्तु दूसरे काममें उपकारी नहीं हो सकती । जैसे श्लेष्मा ( कफ ) आदिको दूर करने-  
 वाली औषधि यदि किसी दूसरे रोगमें दी जाय तो वह उसकाममें नहीं आ सकती । इसी तरह यदि पशुओंकी सृष्टि  
 यज्ञके ही लिये की गई है तो उन पशुओंका खरीदना बेचना उनपर बोझा लादना आदि उनको दूसरे काममें लाना

चारिणी यांश्चोद्यति ॥ ४०२ ॥ यह पशुवशादयो नेतरत्रेति चेन्न तत् । बधस्य दुःखहेतुत्वे सादृश्यादुभयत्र वा ॥ ४०३ ॥ फलेनापि समानेन भाव्यं कृतमिवैवम् । अथ तमेव मन्त्रेयाः पशुसृष्टि स्वयम्भुवः ॥ ४०४ ॥ यद्वायत्वात् तस्यातिवित्तियोक्तुरागमः । इत्ययं चातिमुग्धासिद्धिषा साधुवि-  
गर्हितः ॥ ४०५ ॥ तत्समस्यैव साधुबाहस्यन्यथाय्यं हुन्ता ॥ यदर्थं यदि तस्यान्यथोपयोगोऽर्थकृत् तत् ॥ ४०६ ॥ यथान्यथोपयुक्तं च श्लेषादिशमनो-  
पच । यद्वायोरशुतर्गेण क्रयविक्रयणादिकं ॥ ४०७ ॥ तथाप्यथा प्रयुक्तं तु महादोषाय कल्पते । दुर्बलं वादितं दृष्ट्वा द्रुम त्वामभ्युपेत्य च ॥ ४०८ ॥  
यथा शास्त्रादिभिः प्राणिव्यापारी बध्यतेहृषा । भैरवसि पञ्चन हता बध्यते निर्विशेषतः ॥ ४०९ ॥ पश्चादिलक्षणं सगो व्यज्यते क्रियतेयवा ।  
क्रियते चैरब्युप्यादि चासन्न क्रियते कुतः ॥ ४१० ॥ अणारिल्लक्षणं प्रदीपज्वलनाख्यं घटादेरप्यकारवत् ॥ ४११ ॥

महा दोष समझना चाहिये । नाद करनेवाला तू बहुत दुर्बल है इसलिए हम तेरे समीप आकर कइते हैं । कि जिस-  
तरह शस्त्रादिकोंसे प्राणियोंका घातकरनेवाला कर्मोंसे बहुत शीघ्र बंधता है उसीतरह भ्रंशोंके द्वारा पशुओंको मारनेवाला यह  
जीव विना किसी विशेषताके कर्मोंसे बंध जाता है ॥ ४०६-४०९ ॥ दूसरी बात यह है कि ज्ञाता जो पशु आदिकों-  
की सृष्टि उत्पन्न करता है सो वह प्रगट करता है अथवा उत्पन्न करता है । यदि वह उत्पन्न करता है तो आकाश-  
का फूल आदि जो वस्तुएं नहीं हैं उन्हें वह क्यों नहीं उत्पन्न कर सकता ? ॥ ११० ॥ यदि वह प्रगट करता है तो  
प्रगट करनेके पहिले उसे प्रगट करनेसे रोकनेवाला कौन है उसे बतलाना चाहिये जैसे दीपक जलानेसे पहिले बड़े-  
को प्रगट करनेसे अधिकार रोकता है ॥ ४११ ॥ इसतरह आपका यह सृष्टिवादका कथन आदर करने योग्य नहीं है । इसप्रकार  
नारदके बचन सुनकर सबलोग उसकी स्तुति करने लगे ॥ ४१२ ॥ तथा सब कहने लगे कि यदि तू म दोनोंका विवाद राजा वसु  
दत्त करदे तो हमलोग वहीं बलें । इसतरह निश्चयकर उन दोनोंके साथ वह सब सभा स्वस्ति कावती नगरमें आई ॥ ४१३ ॥  
वहां आते ही पर्वतकी माताने पर्वतकी कड़ी हुई सब बातें सुनी और तुरंत ही वह पर्वतको साथ लेकर राजा वसुके पास  
पहुंची । वहां जाकर वह वसुसे कहने लगी कि तपोवनको जाते समय अर्थात् दीक्षा लेते समय तेरे गुरु क्षीरकंदवने यह कुटुंब-  
रहित पर्वत हमसे समर्पण किया था । अब यहां तेरे ही समायत्तित्वमें नारदके साथ इसका विवाद होगा, यदि इसमें  
यह पर्वत हार गया तो फिर इसके लिये आनेवाला यमराजका मुह ही शरण समझना, अर्थात् यह अवश्य मर जाय-  
गा दूसरा कोई उपाय नहीं है । अपनी गुराणी की यह बात सुनकर गुरुकी सेवा शुश्रूषा करनेकी इच्छा रखनेवाला  
वह राजा वसु बड़े आदरसे कहने लगा कि “भा ! आप इसमें किसी घातकी शंका मत कीजिये मैं अवश्य ही पर्वत-

अस्तु वा नाहृत्य किमपि विधीयते । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे ते तं समस्तुवन् ॥ ४१२ ॥ वसुना चेद् द्रव्योवादे विच्छेदः सोमिगम्यते । इति ताभ्यां समं संसर्गच्छस्वस्ति कावर्त्तौ ॥ ४१३ ॥ तत्सर्वं पर्वतेनोक्तं ज्ञात्वा तज्जनो तदा । सह तेन वसुं दृष्ट्वा पर्वतस्तत्र परिग्रहः ॥ ४१४ ॥ तपो-  
विलास्यतेऽपि गुरुणापि तत्रार्पितः । नारदेन सहस्यैह तवायुष्मे भविष्यति ॥ ४१५ ॥ विवादो यदि भंगोत्र भावी भावियमानः । विदूष्य शरणं नान्य-  
काहं यदुदतासन् । सिद्धाकितं समाख्या स्थितं ससुपगम्यते ॥ ४१६ ॥ सपृच्छतिस्र सर्वेपि विश्वभूषसन्निवाहयः । त्वत्स प्रागप्यर्हिसादिर्वर्षणतत्पराः ॥  
४१७ ॥ चत्वारोऽत्र महीपाला भूतः हिममहासम-वत्स्वादिसिर्षयतनामानो हरिवंशजाः ॥ ४१८ ॥ पुरा चेष्टु व्यतीतेषु विश्ववसुमहामहीदः । अभूस्ततो  
भवांश्चासीदर्हिसाधर्मैरक्षक ॥ ४१९ ॥ त्वमेव सत्यवादीति प्रबोधो भुवनत्रये । विषवन्दिहलोकदेश्यो वस्तुसदेहसन्निधौ ॥ ४२० ॥ त्वमेव प्रत्ययोत्पादी  
को जिता द्रुंगा । इतस्तरह कहकर उसने पर्वतकी माका भय दूर किया ॥ ४२१-४२२ ॥ दूसरे दिन राजा वसु आ-  
काश स्फटिकके बने हुए राजसिंहासनपर बैठा, विश्वभू मंत्री आदि सब उस समामें गये और पूछने लगे कि हे महा-  
राज आपसे पहिले इस हरिवंशमें हिमगिरि महागिरि समगिरि और वसुगिरि ये चार राजा हुए थे उन्होंने बहुत ही अच्छी  
तरह अर्हिसा धर्मकी रक्षा की थी ॥ ४२३-४२४ ॥ इनके बाद महाराजाधिराज विश्वावसु हुये फिर  
अर्हिसा धर्मकी रक्षा करनेवाले आप हुए हैं ॥ ४२५ ॥ आप बड़े ही सत्यवादी हैं यह बात तीनों लोकमें प्र-  
सिद्ध है किसी वस्तुके संदेह होनेपर आप विष अग्नि अथवा तुला (तराजू) के समान हैं संसारमें विश्वास उत्पन्न कर  
नेवाले आपही हैं । हे विभो ! आप ही हम लोगोंका संदेह दूर कीजिये । यह नारद धर्मका स्वरूप अर्हिसा रूप बत-  
लाता है और यह पर्वत उपाध्यायके उपदेशानुसार उससे विपरीत हिसारूप बतलाता है अब वास्तवमें धर्मका स्वरूप क-  
या है सो आप कहिये । यद्यपि राजा वसु गुरुके कहे हुए वा अरहंत देवके कहे हुए अर्हिसाधर्मको जानता था  
तथापि गुगणी उससे पहिले पर्वतके जितानेकी प्रार्थना कर चुकी थी, इसके सिवाय महाकालके मोहसे वह मोहित  
भी हो चुका था, दुलकी चरम सीमा उसके समीप आ चुकी थी वह परिग्रहरूपी रौद्रध्यानमें लवलीन था इसलिये  
कहने लगा कि जो पर्वत कह रहा है वह ठीक है देखी हुई वस्तुमें संदेह करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ४२६-४२७ ॥  
इसी यज्ञसे राजा सगर अपनी स्त्री सहित स्वर्ग गया है । जो दीपक जल रहा है उसे दूसरे दीपकसे प्रकाशित करने-  
की आवश्यकता नहीं है ॥ ४२८ ॥ इसलिये सब तरहका डर छोड़कर तुम लोग पर्वतका कहा हुआ स्वर्गका साधन  
करो । इतस्तरह हिसानंद और अनृतानंद नामके रौद्रध्यानसे उसने नरकायुका बंध किया और मिथ्यापाप तथा अ-



छिद्रि नः संशयं विभो ! अहिंसाक्षणं धर्मं नारद प्रत्यपयत ॥ ४२३ ॥ पर्वततटद्विपर्यासमुपाध्यायोपदेशनं । यादृक् तादृक् त्वया आश्रमिष्यमो चार्थि-  
त पुरा ॥ ४२४ ॥ गुह्यतयासनिर्दिष्टं बुध्यमानोऽपि भ्रूयति । महाकालमहामोहेनाहितो दुःखमावधे ॥ ४२५ ॥ सामीप्यादक्षणांनंदौद्रध्यानपरायण । प-  
र्वतमिहितं तत्त्वं दृष्टेकानुपपन्नता ॥ ४२६ ॥ स्वर्गमसौ वै योनेन सजाति सगरोप्यगात् । ज्वलन्तीपमन्त्रेन को दीपेन प्रकाशयन्तु ॥ ४२७ ॥ पर्वतोंकं भ-  
यं हित्वा कुक्ष्य स्वर्गसावन । इति हिंसावृत्तानंदराष्ट्रं बन्धायुर्नरकं प्रति ॥ ४२८ ॥ मिथ्यापापापावादभ्यामभीष्टरूपनिर्दिष्ट । अहोमहीपर्वतैर्वक्त्रादप्युं घोरमी-  
दृश ॥ ४२९ ॥ तिर्योत्तमिति । वैषम्यादेकं नारदतापमयाः ॥ ४३० ॥ अयोध्याद्वरं नयः प्रति कृतञ्जलवहा ॥ ४३१ ॥ सदाः सरासि शुष्काणि रक्तदृष्टिरनारता ।  
तीव्राघोरशाने मदा विश्वापाध मंतीमसाः ॥ ४३२ ॥ बभूवुः प्राणिनः कपामादुभयैर्यविहलाः । तदा महाध्वनिर्वाती द्विगुणमिति पुरा ॥ ४३३ ॥ धर्मविध्वंसन  
बसोऽस्मिन्महाद्विषमज्जलिहविष्टरं । तद्वद्गुह्यदेवविधाघरेणा घनपथे स्थिता ॥ ४३४ ॥ अतिक्रम्यादिमं मार्गं वसुराजमहापते । धर्मविध्वंसन  
मार्गं मामिषा इत्यवोचयन् ॥ ४३५ ॥ पर्वतं वसुदानं च सिंहासननिमज्जनात् । परिमलान्मुखा दृष्ट्वा महाकालस्य किकराः ॥ ४३६ ॥ तापसाकार-

पवाद्दसे न डरनेवाले वसुनें उन सभामें ऊपर लिखे अनुसार वचन कहे । राजा वसुकी यह बात सुनकर नारद और  
तापसी कहने लगे कि यह बड़ा ही आश्चर्य है किसी विषम कारणसे महाराजके मुखसे ऐसे अपूर्व और घोर वचन नि-  
कले हैं उसीसमय आकाश गरजने लगा, नदियोंका जल प्रतिकूल बहने लगा, सरोवर बहुत क्षीघ्र सूख गये, बिना  
किसी रक्तावटके रक्तकी वर्षा होने लगी, सूर्यकी किरणें मंद पड़ गईं, दिशायें सब मलिन होगईं और भयसे घबड़ा-  
कर सब प्राणी कंपने लगे । उसीसमय बड़ी भारी आवाज करती हुई पृथ्वी फट गई और उसके बड़े भारी गडमें  
राजा वसुका सिंहासन घुमने लगा । उस सिंहासनको पृथ्वीमें घुमते हुए देखकर आकाशमें ठहरे हुए देव और वि-  
द्याधरोंके स्वामी घोषणा करने लगे कि हे महा बुद्धिमान् राजा वसु ! इस अहिंसारूप अनादि मार्गको उलंघनकर  
तु धर्मका विध्वंस वा नाश करनेवाले इस हिंसारूप मार्गकी प्रशंसा मत कर ॥ ४२८-४३४ ॥ पृथ्वीमें सिंहासन घुस-  
नेसे पर्वत और राजा वसुका सुह फीका पड़ गया, उनका सुह फीका देखकर महाकालके सेवक तपस्वियोंका रूप  
धारणकर कहने लगे कि आप लोग किसी तरहका भय मत कीजिये इस तरह कहकर उन्होंने उसे सिंहासनको खुद  
पकड़कर तथा अपने ऊपर रखवा हुआ लोगोंको दिखावा दिया ॥ ४३५-४३६ ॥ तदनंतर वह राजा वसु फिर क-  
हने लगा कि मैं राजा हूं और तत्त्वोंका अच्छा जानकार हूं फिर मुझे डरनेका कुछ काम नहीं है मैं फिर कहता हूं  
कि पर्वतके ही बचन सत्य हैं इस तरह निश्चय करता हुआ वह उस फटी हुई पृथ्वीमें कंठ तक घंसा गया ॥ ४३७ ॥

संभ्रमं लब्ध्वा तदा गच्छति तदा ॥ ४३३ ॥ तपोऽयं कथं तस्य विद्विग्मस्य च विचर्य पितृत्वं  
 गन्तव्यं ॥ ४३४ ॥ अनेनैवमवस्थान्निगच्छति ॥ ४३५ ॥ तदापि न्यस्यते  
 भुवः कपितृवसो निगण्डागमगच्छति ॥ ४३६ ॥ कथासु जगत्सर्वं यावत् न दृश्यते ॥ विष्णु रूपमवाप्त्वा वा यागयज्मा  
 विष्णुसिंहासनात् प्रवृत्तता ॥ शोकाद्यनृणां गतवधुनं मयि मिति ॥ ४३७ ॥ तदा देवेषु वसन्तः प्रयागेन विष्णुभूतत्वा राजस्य  
 घात ॥ ४३८ ॥ महापराधिपत्याश्च नृदतो जनयुक्ता ॥ परमप्रानिदिष्टमारे का मुना का स्थिता ॥ ४३९ ॥ नारदेन च समस्त मया दत्ता भिन्नं त  
 हस्तस्य परं निमित्ताभिर्वा ॥ ४४० ॥ तापसाश्च वयाधर्मविचरिषु राक्षसाः ॥ कलगतः कलिं कालं विनेच्छेत् स्व स्वमात्मनः ॥ ४४१ ॥ ततोन्निष्प  
 द साधुओं ने बड़े प्रयत्नसे फिर प्रार्थना की कि हे राजेन इस घट बोलनेसे ही तेरी यह अवस्था हुई है इस  
 लिये अब इस घटको छोड़ दे ॥ ४३८ ॥ इस तरह प्रार्थना करने पर भी उस मुखने यज्ञको ही सन्तानों वतलाया  
 उसी समय पृथ्वी ने मानों कोषित होकर ही उसको निगल लिया और इस तरह भरकर वह मातवी पृथ्वी में सातवें  
 नरक में जा उत्पन्न हुआ ॥ ४३९ ॥ तदनंतर उस महाकाल नामके असुरने संसारको विज्वाल उत्पन्न करनेके लिये  
 राजा वसु और सगरका दिव्य रूप धारण किया और "नारदके बचनोंको न मानकर केवल यज्ञकी श्रद्धासे ही हम  
 दोनोंको स्वर्ग प्राप्त हुआ है" यह कहकर अहंभू हो गया ॥ इसके बाद लोगोंको बहुत शोक और आश्चर्य हुआ तथा वे  
 परस्पर विवाद करने लगे कोई कहता था कि नहीं वसु स्वर्ग गया है और कोई कहता था नरक गया है ॥ इस तरह विवाद  
 करते हुए अनेक लोगोंके साथ विश्वभू अपने नगरको लौट गया तथा प्रयागमें जाकर उसने राजस्य यज्ञ करना प्रारंभ  
 किया ॥ ४४०-४४२ ॥ इसपर महापुर आदि नगरके राजाओंने लोगोंकी मुखताकी निंदाकी और वे परमब्रह्म भगवान्  
 ऋषभदेवके कहे हुए मार्गमें तल्लीन होते हुए थोड़े दिन तक योही ठहरे रहे ॥ ४४३ ॥ नारदने इस  
 समय धर्मकी मर्यादा रखी है यही समझकर उन लोगोंने नारदकी प्रशंसाकी और निरिच्छा नामका नगर  
 उस रहनेके लिये दिया ॥ ४४४ ॥ नारदके साथ जो तापसी थे वे दयाधर्मके विध्वंससे अत्यंत दुःख रहनेकी इच्छासे  
 कलिकालकी महिमा गाते हुए अपने अपने आश्रमको चले गये ॥ ४४५ ॥ किसी दूसरे दिन नारदकी दिनकर देव  
 नामके विद्याधरसे भेंट हुई उस समय नारदने बड़े प्रेमसे उस विद्याधरसे कहा कि पर्वत समस्त प्राणियोंके विच्छेद  
 अपना आचरण कर रहा है आपको इसे रोचना चाहिये ॥ उत्तरमें उसने स्वीकारता ही और उसी समय अपनी विद्या-

सन्ने, नाम्ना देवो दिनकरादिम् । पर्वतस्याभिलग्नविरुद्धावसितिं लया ॥ ८६ ॥ निरुध्यतामिति प्रीत्या निदिश्ये नारदेन सः । करिष्यामि तयेतीत्वा । नागा तं वार पद्मगान् ॥ ८७ ॥ मयिद्यया समाहूतोस्तत्पर्वचं यथारिषतं । अबोचतेपि सप्राप्ते भवत्वा दैत्यमुकुर्वत ॥ ८८ ॥ यज्ञविघ्न तमालोक्य किं शयूरवैताडयौ । शरगान्धेयगोधुको महाकालं गृह्यथा ॥ ८९ ॥ पुर सन्निहितं दृष्ट्वा यागविघ्नं तमूचतुः । नागैर्द्विभिरस्माक विहितोयमुपद्रवः ॥ ९० ॥ नागविद्याय विद्यानुप्रवादे परिसाधिता । निषिद्ध जिनविनानामुपयाह तौ च तच्छक्रुस्तथा । पुनः स्यादपिोनैतय यज्ञविघ्नवित्तया ॥ ९३ ॥ दृष्ट्वा जनेन्द्रवि- यज्ञस्य प्रक्रमेयामिमं विधिं ॥ ९२ ॥ इत्युपायमसमावाह तौ च तच्छक्रुस्तथा । पुनः स्यादपिोनैतय यज्ञविघ्नवित्तया ॥ ९३ ॥ दृष्ट्वा जनेन्द्रवि- वासि विद्याः कामति नात्र मे । नारदाय निवेद्येति स्वस्वयाम समाश्रयत ॥ ९४ ॥ निर्विघ्नं यज्ञनिर्दुत्तो विमशू पर्वतश्च तौ । जीविताते निर्दुल न केनु- बभूवतु ॥ ९५ ॥ महाकालोप्यभिप्रेत साधयित्वा स्वरूपश्रुत । प्राग्भवे पौदनाधीनो द्रुपदे मधुपिंगलः ॥ ९६ ॥ मयैवं सुलसाहेतोर्भट्टस्यपमश्रुतिं ।

से पक्षग जातिके ( नाग कुमार ) देवोंको बुलाकर उस यज्ञमें विघ्न डालनेकी सब बातें समझा दीं । उन देवोंने जाकर दैत्योंसे संग्राम किया उन्हें भगाया और सब तरह यज्ञमें विघ्न मचा दिया । यज्ञमें होनेवाले विघ्नको देखकर विश्वभू और पर्वत दोनोंही अगण हुंढने लगे उसीसमय सामने ही इच्छानुसार आता हुआ महाकाल देख गया ॥ ८६-८९ ॥ उसे देखते ही उन्होंने, उससे यज्ञमें विघ्न होनेके समाचार सुनाये, उसे सुनकर महाकालने कहा कि हमसे श्रेष्ठ करनेवाले नागकुमार देवोंने ही हमारे काममें यह उपद्रव किया है । यह नागविद्या विद्यानुप्रवादमें निरू- पणकी है । जिनविघ्नोके ऊपर इनकी शक्तिका निषेध बतलाया जाता है अर्थात् जिन विघ्नोके ऊपर इनका कुछ बल नहीं चलता । इसलिये इसका यही उपाय है कि सुंदर जिनप्रतिमायें चारों दिशाओंमें स्थापनकर उनकी पूजा करो और फिर इस यज्ञकी विधि करना प्रारंभ करो । महाकालकी यह बात सुनकर विश्वभू और पर्वतने भी वैसा ही किया, अर्थात् जिनप्रतिमा विराजमानकर यज्ञ करना प्रारंभ किया । वह विद्याधर उस यज्ञमें विघ्न करनेकी इच्छासे फिर आया परंतु जिनप्रतिमाओंको देखकर नारदसे निवेदन करने लगा कि इस जगह ( जिनप्रतिमाओंके सामने ) मेरी विद्याएं कुछ काम नहीं कर सकतीं । इस तरह कहकर वह अपने घर चला गया ॥ ८५०-८५४ ॥ इसतरह वह यज्ञ समाप्त हुआ विश्वभू और पर्वत दोनों ही आयुके अंतमें मरकर नरकमें गये और वहाँपर बहुत दिन तक दुःखोंका अनुभव करने लगे ॥ ५५ ॥ इस महाकालने अपना अभिप्राय सिद्धकर अपना स्वरूप धारण किया और लोगोंको समझाने लगा कि पहिले भवमें मैं पौदनपुरका राजा मधुपिंगल था ॥ ५६ ॥ मैंने ही सुलसाकेलिये यह महा पाप किया है

अहिंसा लक्षणो धर्मो जिनेन्द्रमिमांशित ॥ ५७ ॥ अनुष्ठेय स धर्मिष्ठैरित्युक्त्या लो तिरोरथात् । स्वयं चाक्षत्स्वदुःश्रेयाश्रयायक्षित दयाईधीः ॥ ५८ ॥ नि-  
वृत्तिरेव सम्मोक्षद्विहिता त्यागकर्मणः । विश्वभूतमुखाः सर्वे हिंसाधर्मप्रवृत्तकाः ॥ ५९ ॥ प्रययुस्ते गतिं पापान्तरकीमिति केचन । दिव्यवोद्वेः समाकर्ण्य  
मार्हत । समासीनाथ सर्वेपि मन्त्रिणं वृणुदुत्तरा ॥ ६० ॥ तदा सेनापतिर्नाम्ना महीशाय महाबल । पुण्यं भवतु पाप वा यो नस्तेन किं फलं ॥ ६१ ॥ इत्यनेन स मंत्री च राजा चागम-  
प्रभावदर्शन श्रेयो भूयन्मन्त्र्ये कुमारयोः । इत्युक्तवास्ततो राजा पुनश्चैतद्विचारवत् ॥ ६२ ॥ इति मत्वा विस्मयं तान् मन्त्रिसेनापतीन् पुन । हितोपदेशि-  
प्रदं तमपृच्छपुरोहित ॥ ६३ ॥ गतयोजनकारं स्यात्त वेष्ट कुमारयोः । इति सोपि पुराणेषु निमित्तेषु च लक्षितं ॥ ६४ ॥ अस्मात्कुमारयोस्तत्र यागे  
वास्तवमे श्रीजिनेन्द्रदेवका कथा हुआ अहिंसारूप ही धर्म है धर्मात्मा लोगोंको इसीका अनुष्ठान वा सेवन करना चा-  
हिये । यह कहकर वह अदृश्य होगया और जिसकी बुद्धि दयासे भीग रही है ऐसे उसी महाकालने अपने आप ही  
उस दुस्वेषाका प्रायश्चित्त धारण किया ॥ ४५७-४५८ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे जो पाप कर्म किये थे उनका उसने  
त्याग किया । उनमेंसे विश्वभू आदिक हिंसाधर्मकी मृष्टि करनेवाले सब लोग पापकर्मके उदयसे नरक गतिमें पहु-  
चे और पापोंसे डरनेवाले कितने ही लोगोंने दिव्य ज्ञानको धारण करनेवाले मुनियोंसे पर्वतके कहे हुये मिथ्यामार्ग-  
का स्वरूप सुनकर उसे स्वीकार नहीं किया, तथा संसारमें बहुत दिन तक परिभ्रमण करनेवाले कितने ही लोग उसी  
मिथ्यामार्गमें लवलीन होगये ॥ ४५९-४६१ ॥ इसप्रकार उस मंत्रीने राजासे भगवानके कहे हुए मतका उपदेश  
दिया उसे सुनकर सब सभासद लोग उस मंत्रीकी प्रशंसाकरने लगे ॥ ४६२ ॥ उसीसमय महाराज दशरथका महाबल  
नामका सेनपति कहने लगा कि यज्ञमें चाहे पुण्य हो अथवा पाप हो इससे हमें कुछ प्रयोजन नहीं है हमें राजाओंके  
वीचमें दोनों कुमारोंका प्रभाव दिखलाना चाहिये सेनापतिकी यह बात सुनकर राजाने फिर कहा कि यह बात मी अभी विचार  
करने योग्य है ॥ ४६३-४६४ ॥ यही समझकर उसने मंत्री और सेनापतिकी तो विदा किया और फिर हितरूप उपदेश करनेवाले  
पुरोहितकी बुलाकर उससे पूछा कि राजा जनकके घर दोनों कुमारोंको मेजना ठीक है या नहीं उत्तरमें पुराण और निमित्त-  
शास्त्रोंमें कहे अनुसार वह पुरोहित मी कहने लगा कि उस यज्ञमें हमारे दोनों कुमारोंका महोदय प्रगट होगा, इस  
विषयमें विस्तुल संदेह नहीं करना चाहिये । इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इसी भरतक्षेत्रमें बड़े मत्वापी मनु,  
तीर्थकर तीनों तरहके ( चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण ) चक्रवर्ती और बलमद्र होने ॥ ४६५-४६८ ॥ पुराणके

भंवी महोदयः । संशयोत्र न कर्तव्यस्त्वयान्यथेदमुच्यते ॥ ६७ ॥ अथास्मिन्मार्ते क्षेत्रे मनवस्तीर्येनायका । चक्रेशाभिवाचा रामा भवित्यंति महो-  
वसः ॥ ६८ ॥ इत्याह्वयताः पुराणैर्दुर्नीशं प्रागमया युताः । श्रुतेष्वष्टमाविमौ रामकेशवा न कुमारौ ॥ ६९ ॥ भाविनौ रावणं हत्वैववापीद्वारविधि-  
द्वार । तत्पुत्रं तदाकर्ण्य परितोषमाणान्युपः ॥ ७० ॥ कृत्वा पापमदः क्रुधा पशुवधस्योत्पन्नमभूतल हिंसायश्ममवर्तयत्कपटधी करो महाकालकः ।  
तेनागात्स वसु सपर्वतखलो घोरां घरां नारकीं दुर्मागान् वृष्टिवाहादिबद्धतां नैतन्महत्याग्निना ॥ ७१ ॥ व्यामोहात्सुलसाप्रियस्सुलसा सादं स्वयं  
मन्त्रिणां शङ्खचक्रादिवेकान्यहृदयः सपाश-दिसाक्षिन्वा । नष्टो गलुभधःक्षितिं दुरितिनार्मकूलनाश मुधा दु कर्मभिरतस्य किं हि न भवेदन्यस्य चेदृग्  
विष ॥ ७२ ॥ स्वाचार्यैर्धर्ममुल्लंघितादुशासीं वादे समेत्य बुधसंसदि साधुबादं । श्रीनारदो विदितभूरितपाः कृतार्थः सर्वार्थसिद्धिमगर्दु-  
वियामवीक्षः ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे दुर्मागप्रवर्तनप्रपञ्चवर्णनं नाम सप्तषष्ठ पर्व ॥ ६७ ॥

जाननेवाले छुनियोने यह भी कहा है और मैंने पहिले सुना है कि उन नारायण बलभद्रोंमें हमारे कुमार बलभद्र  
और नारायण होनेवाले हैं और आगे प्रतिनारायण रावणको मारेंगे । इसतरह भविष्यको जाननेवाले पुरोहितने ये वचन  
कहे । उन्हें सुनकर महाराजा दशरथको बहुत ही संतोष हुआ ॥ ६९-७० ॥ जिसकी कपटरूप बुद्धि है और जो क्रूर है  
ऐसे महाकालने क्रोधमें आकर समस्त संसारमें शास्त्रोंके विरुद्ध और अत्यंत पापरूप ऐसे इस पशुओंकी हिंसा करनेरूप  
हिंसा-यज्ञकी प्रवृत्तिकी एसी कागणसे वह राजा वसु और दुष्ट पर्वतके साथ घोर नरक गतिमें गया इसलिये पापोंका बोझा  
दोनेवाले इन मिथ्यामागोंकी प्रवृत्ति कमी नहीं करनी चाहिये क्योंकि पापी लोगोंकेलिये इनके नरकादि फल बहुत  
ही बड़े वा अघोर हैं ॥ ७१ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे शत्रुके कपटके ज्ञानसे जिसका हृदय अन्य है अर्थात् जो श-  
त्रुके छल कपटको समझ भी नहीं सका ऐसे राजा सागरने सुलसा और मंत्रीके साथ स्वयं हिंसा रूप क्रियाएं की थीं  
इसीलिये नरकमें जानेके लिये वह नष्ट हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापरूप क्रूर कर्मोंको नाश करनेके लिये जो ऐसे  
अन्य पुरुष भी व्यर्थ ही दुष्कर्म करनेमें लीन हो जायेंगे वे क्या ऐसी ही दशाको प्राप्त नहीं होंगे ? अर्थात् अवश्य होंगे  
॥ ७२ ॥ जिसने अपने उत्पन्न आचार्योंका अनुसरणकर हितरूप उपदेश दिया था, जिसने बाद विवादके समय  
विद्वानोंकी समामें आकर भी सत्य वचन ही कहे थे, और जो अच्छेसे अच्छे बुद्धिमानोंका भी स्वामी था ऐसा नारद  
बहुतसा तपश्चरणकर और कृतार्थ होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र उत्पन्न हुआ था ॥ ७३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मिथ्यामागोंकी प्रवृत्तिके विस्तारको निरूपण

करनेवाला यह सप्तसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

## अथाष्टषष्ठं पर्वः।

पुरोहितः पुनर्वासी तत्कर्था श्रोतुमर्हसि । इति सैनोच्य भृगुलं ततो यवतुं प्रवक्तुम् ॥ १ ॥ क्रमेण श्रव्यशब्दार्थमावाणिमवावलि । दशस्य दशाशास्य प्रकाशित्यया श्रियः ॥ २ ॥ अथास्ति नाकलोकाभोऽभातकीखण्डपूर्वभाक् । भारते भूगुणैर्बुक्तो देशः सारसमुख्यः ॥ ३ ॥ तस्मिन्नाकर्षुरे ह्यातो नरदेवो महीगतिः । सकदाचिदन्तार्द्धगणैर्नाल्लुतवन्दनः ॥ ४ ॥ श्रुतधर्मक्यो जातनिर्वेदो ज्येष्ठसूनुवै । प्रदाय भोगदेवाय राज्यमापन्नसयसः ॥ ५ ॥ चरन्त्य समुत्कृष्टं हर्षवा विद्याधराधिपः । सद्यक्षपलवेगाख्यं निदानमकरोदधीः ॥ ६ ॥ प्रति सत्यस्य सौधर्मकल्पेभ्यदूदसुताशनः । अथास्ति न्भारते क्षेत्रे विजयार्द्धमहाचले ॥ ७ ॥ खगेसो दक्षिणश्रेण्यां मेघकूटपुराधिपः । निरन्ध्रव्ययसभूतः सहस्रग्रीवलेखः ॥ ८ ॥ कुयारस्यत्रातुपुत्रोखलेनो-

## अथ अरसठवां पर्वः।

अथानन्तर—पुरोहित फिर कहने लगा कि हे महाराज ! यदि आप इस कथाको सुनना चाहते हैं तो सुनिये मैं कहता हूँ जिसके शब्द और अर्थ सुनने योग्य हैं और जिसकी वाणी साररूप है ऐसा वह पुरोहित दशों दिशाओंके जीतनेवाले और अपने यशकी शोभाको प्रकाशित करनेवाले रावणके पूर्वभव कहने लगा ॥ १-२ ॥ कि धातकी खण्डभीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें स्वर्गलोकके समान और पृथ्वीके सब गुणोंसहित सारसमुख्य नामका देश है, उसी देशके नाकपुर नगरमें प्रसिद्ध राजा नरदेव राज्य करता था । वह किसी एक दिन अन्त नामके गणवरके समीप गया, उन्की बंदना की, उनसे धर्मकथा सुनी और विरक्त होकर तथा अपने बड़े पुत्र भोगदेवको राज्य देकर उसने संयम धारण कर लिया ॥ ३-५ ॥ उसने तपश्चरण तो उत्कृष्ट किया परंतु चपलवेग नामके विद्याधरोके राजाको देखकर उस मूर्खने निदान कर लिया ॥ ६ ॥ तथा आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ ।

अथानन्तर—इसी (खण्डभीपके) भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिणश्रेणीमें मेघकूट नामका नगर है उसमें राजा विनमिके वंशमें उत्पन्न हुआ सहस्रग्रीव नामका विद्याधर राज्य करता था ॥ ७-८ ॥ उसके भाईका पुत्र बहुत बलवान था इसलिये उसने क्रोधित होकर सहस्रग्रीवको निकाल दिया, वह सहस्रग्रीव वहांसे निकलकर लंकापुरीमें गया और वहांपर उसने तीस हजार वर्षतक राज्य किया ॥ ९ ॥ उसके पुत्रका नाम शतग्रीव था सहस्रग्रीवके बाद उसने वहां पच्चीस हजार वर्षतक राज्य किया, उसके बाद उसके पुत्र पचासग्रीवने वीस हजार वर्षतक राज्य किया ।







मिनी निजा । आपयेति स्थितः कश्चिद्विग्रहो द्वारीलङ्घयत् ॥ ६०२ ॥ सापि खस्वामिनीमेतद्विग्रहप्रक्रमवोषयत् । ततः स्वानुमतायात् श्रुदवप्र यथोचित ॥ ६०३ ॥ प्रतिगुण कृतस्यस्त्वं गमिष्यसि कुतोऽथवा । इति तस्याः परिग्रहे पथादिह समागतः ॥ ६०४ ॥ पुनः पुरो गमिष्यामीत्याह । तच्छब्देनैव नः पार्श्ववर्ती व्यधादासं दारिकाया द्विजोऽपि त ॥ ६०५ ॥ न हस्यं कुस्तेवं भो वार्धक्यं विपरीततां । उत्पादयति शुष्माकः किं न भावीति सोऽवदत् ॥ ६०६ ॥ त्वेवं नर्मप्रयोक्तिपूर्वकं ॥ ६०८ ॥ अग्रासने विधायेनं स्वयमभ्यवहस्य सा । 'इवर्गो भवतो यत्र बाह्या तत्राद्यु गम्यता' ॥ ६०९ ॥ इत्याह सोऽपि शुद्धं लया भद्रे ममेति ता । प्रगसन् प्रस्वल्पम् कृच्छ्रदुःखायालव्य यष्टिका ॥ ६१० ॥ तवीयस्यनारोहं व्यधादुक्त इवैतया । चेदिकास्तद्विलोक्यास्य पश्य निः कही हुई बात अपनी स्वामिनीको समझा दी । उस गुणमालाने अपनी इच्छानुसार आये हुए वृद्ध ब्राह्मणका यथायोग्य आदर सत्कार कर विठायी और पूछा कि आप कहाँसे आये हैं और कहाँ जायेंगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि मैं पीछेसे आया हूँ और आगे जाऊँगा । ब्राह्मणकी यह बात सुन कर गुणमालाके पास बैठे हुए पशुपत्य उसकी हसी कहने लगे कि आप कहाँसे आये हैं । क्या यह बुढ़ापा आपलोगोंको नहीं आवेगा ? ॥ ६०३-६०६ ॥ तदनंतर सब लोग कहने लगे कि यह शरीरसे बूढ़ा है और आयुसे बूढ़ा है परंतु इसका मन अभी बूढ़ा नहीं है । इसके बाद नम्रता से प्रार्थना कर उसे आगे आसन पर विठायी और फिर स्वयं गुणमालाने उससे कहा कि "अब आपकी जहाँ जानेकी इच्छा हो वहाँ शीघ्र ही चले जाइये" इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि हे भद्रे तूने बहुत अच्छा कहा' इस प्रकार उसकी 'देवो इसकी निलज्जता' इस प्रकार कह कर हाथके सहारेसे वह उसे हटानेको तैयार हुई । इतनेमें ही उस ब्राह्मणने कहा कि 'हां तुम लोगोंने बहुत ठीक कहा क्योंकि ऐसी लज्जा स्त्रियोंमें ही होती है पुरुषोंमें नहीं, यदि पुरुषोंमें भी साधारण रीतिसे ऐसी लज्जा हो तो कामदेवके संस्कारसे स्त्रियोंके साथ पुरुषोंका समागम कैसे हो ? ॥ ६०८-६१३ ॥ इस प्रकार

तच्छ्रुत्वा पश्य नैलज्जयमस्य वार्धयमीदृशं । वशीकरणचूर्णजननादिवंदनाप्यदः ॥ ५९३ ॥ इति तद्रचनात्सर्वे कृत्वा हास द्विजोत्तम । कन्यका गुणमा-  
लाख्या पुरेऽरिममस्ति विभृता ॥ ५९४ ॥ 'जीवधरेण मन्त्रचूर्णवासस्य न कृता स्तुति' । इति तद्वैपिणी जाता ता त्वच्छूर्णजननादिभिः ॥ ५९५ ॥ वशी-  
कुरुष्व तद्वीक्ष्य तव मन्त्रोपाधादिकं । मौल्येन बहुना सर्वमाददित्यामहे मय ॥ ५९६ ॥ इत्युक्तैः सक्रोधो वा युष्मज्जीवधरो विधी' । चूर्णवासदिमेद  
किं स जानाति परीक्षितु ॥ ५९७ ॥ इत्युक्त्वास्तु सर्वे सक्रोधा विप्रमनुवन् । 'यथेष्टं किं नवीव्येव मुसारमविवेचयन् ॥ ५९८ ॥ आत्मस्त्वोऽन्यनिन्दा  
व मरणज्ञ विशिष्यते । इति लोकप्रसिद्धं किं न श्रुत दुश्लोदित' ॥ ५९९ ॥ इत्यसौ तैधिक्षिप्त किं न मंति प्रशसका । युष्माद्विधा ममापीति सम्भा-  
व्यात्मानमुद्वत- ॥ ६०० ॥ घटदासी विधास्यामि गुणमालां मुहूर्तत । ममेति संगरे कृत्वा प्रस्थितस्तदुद्वह प्रति ॥ ६०१ ॥ तत्र तत्रोदिकामेकामाहूय स्वा

हाथमें प्रत्यक्ष फल देनेवाली वशीकरण चूर्ण रूप औपधि है जिसकी इच्छा हो वही इसे ले सकता है ॥ ५९२ ॥ उस  
की इस ओपणाको सुनकर सब लोग उसकी हंसी करने लगे और कहने लगे कि देखो इसकी निर्लज्जता ! इसका यह  
ऐसा तो बुढापा है और यह वशीकरण चूर्ण तथा अंजन इस नगरमें एक गुणमाला नामकी प्रसिद्ध कन्या है 'जीवधरेने उसके चूर्णकी  
लोगोंने हंसी करते हुए कहा कि हे ब्राह्मण इस नगरमें एक गुणमाला नामकी प्रसिद्ध कन्या है 'जीवधरेने उसके चूर्ण अंजन आदिसे  
सुगंधिकी प्रशंसा नहीं की थी इसलिये वह मनुष्योंसे द्वेष करने लगी है अतएव पहिले तू अपने चूर्ण अंजन आदिसे  
उसे अपने वक्षमें करले यदि वह तेरे वश हो जायगी तो फिर इसको देख कर हमलोग बहुतसा मन्त्र्य देकर तेरी भंत्र  
औपधि आदि सब खरीद लेंगे ॥ ५९३-९६ ॥ इस प्रकार लोगोंने कहा । तब वह ब्राह्मण क्रोधित होकर कहने लगा  
कि तुम्हारा मुख जीवधर क्या चूर्णकी सुगंधियोंके भेदकी परीक्षा करना जानता है ? इसके उत्तरमें सब लोग क्रोधित  
होकर उस ब्राह्मणसे कहने लगे कि 'इस प्रकार मनुष्यत्वकी सारताका कुछ भी विचार न कर इच्छानुसार क्यों बकता  
है हे खोटे शास्त्रोंकी जानकारीसे, उद्वत हुए ब्राह्मण ! क्या तू ने यह लोकमें प्रसिद्ध कथावत नहीं सुनी है कि अपनी  
प्रशंसा और दूसरेकी निंदा करना मरनेके बराबर है इसप्रकार उन लोगोंने उस ब्राह्मण पर आक्षेप किये तब वह ब्राह्मण  
कहने लगा कि क्या आपके समान मेरी प्रशंसा करनेवाले लोग नहीं हैं । अपने आत्माकी संभावना कर उद्वत हुआ मैं  
एक क्षणमात्रमें गुणमालाको अपनी घटदासी ( पानी भरनेवाली दासी ) बना सकता हूँ । ऐसी प्रतिज्ञा कर वह उसके  
घरकी ओर चला ॥ ५९७-६०१ ॥ वहाँ पर पहुंच कर उसने एक दासी बुलाई और उसे समझाकर कहला भेजा  
कि एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है ऐसा तुम अपनी स्वामिनीसे कहो ॥ ६०२ ॥ उस दासीने भी जाकर उस ब्राह्मणकी

पयोत्सा बलं नदाव्यनायकं ॥ ५८१ ॥ त्वामानेतु प्रहेयामि तावदत्र लयारयता । दिनानि कानिचिद्विगतशोक्येति महामतिः ॥ ५८२ ॥ तद्योग्यसर्ववस्तूनि परिवारं च कंचन । तत्सनिधाववस्थाप्य गत्वा गजपुरं खय ॥ ५८३ ॥ प्राप्य तद्विजयशालीनं पुरं, प्रस्थाप्य कस्य चित् । ममागतिर्न वाच्येति प्रतिपाद्य पृथक्पृथक् ॥ ५८४ ॥ वैश्यवेष समादाय विद्यामुद्राप्रभावतः । पुरं प्रविश्य कस्मिंश्चिदपणे समवस्थितः ॥ ५८५ ॥ तत्र तत्सन्निधानेन नानारत्नादिभाड-  
कानिचित्तत्र सवसनं सुखमन्यदा । परिव्राजकवेषेण काष्ठांगारकससद ॥ ५८६ ॥ वणिगादेशानिदिष्टो देवद्वारयामलतां । दत्तवान्विमला तस्मै सुता रत्ना कमलोद्भवा ॥ ५८७ ॥ दिनानि मतिविर्गुणी ॥ ५८८ ॥ मा भोजयेत्युवाचैतच्छ्रुत्वा स प्रतिपन्नवाक् । 'मदुद्योगफलस्यैतन्निमित्तं तुमुम परं' ॥ ५८९ ॥ इत्यग्रासनमास्थाय भुक्त्वा तस्मा-  
त्स निर्गतः । 'वशीकरणपूर्णादिप्रत्यक्षफलमौपद्य ॥ ५९० ॥ मत्करे विद्यते यस्मै रुचिर्गृहात्वसाविद' इति राजकमभ्येल्य पृथग्व्यगद्योषयत् ॥ ५९१ ॥

बुद्धिमानने वह हृदयमें ही छिपा लिया और फिर पातासे कहा कि हे मा ! इस कामको पूरा कर लेने पर मैं आपको बु-  
लानेके लिये नंदाव्यको नायक बना कर अपनी सेना भेजूंगा तब तक थोड़े दिन तक आप शोक छोड़कर आनंदसे यहां  
ही रहें ॥ ५७७-५८२ ॥ इस प्रकार कह कर उसने माताके योग्य सब पदार्थ तथा थोड़ेसे परिवारके लोग उसके समीप  
रख दिये और फिर वह स्वयं राजपुर नगरको चला गया ॥ ५८३ ॥ राजपुर नगरके समीप जाकर उसने साथके सब  
लोगोंसे अलग अलग कह दिया कि 'मेरे आनेकी खबर किसीको मत देना' इस तरह कह कर सेवक आदि सब लोगोंको  
जाकर किसी एक दुकान पर जाकर बैठ गया ॥ ५८४ ॥ तदनंतर उसने उस विद्यामयी अंगूठीके प्रभावसे वैश्यका भेष बनाया और नगरमें  
पर बैठ जानेसे अनेक रत्न आदिके पिछारे तथा और भी अपूर्व वस्तुओंका लाभ हुआ जिसे देखकर शेरने सोचा कि नि-  
मित्तज्ञानीने जिसके लिये कहा था वह यही पुरुष है इस लिये उसने अपनी स्त्री कमलासे उत्पन्न हुई विमला नामकी क-  
न्या उसे व्याह दी ॥ ५८६-५८७ ॥ अथानंतर कुछ दिन तक तो वह जीवंधर कुमार वहीं सुखसे रहा फिर किसी एक  
दिन परिव्राजका रूप धारण कर काष्ठांगारकी सभामें गया वहां पर जाकर राजाको देखकर उसे आशीर्वाद दिया और  
कहा कि हे राजन् सुनो मैं अतिथि और गुणी हूं तुमसे थोड़ा सा भोजन मांगता हूं मुझे खिला दे । राजाने यह बात  
सुन कर स्वीकारकी और यह फूल ही मेरे उद्योगके फलका उत्कृष्ट कारण है यही सोचकर वह ऊंचे आसन पर बैठकर  
भोजन कर वहांसे बाहर निकल आया । तदनंतर उसने राजाओंके समूहोंमें जाकर अलग अलग घोषणा दी कि 'मेरे

अब बुद्धिभूतसुखसंगमात् । कुमार भीतमीन वा मद्धदुग्ध सदसा गतं ॥ ५७२ ॥ एवं देव्या दुष्ठा खात निगदता नवतरे । नंत्रा... मत्तरे यज्ञो यक्ष-  
केहात्कुमारजात् ॥ ५७३ ॥ सानस्ररेष्टेनक्षेत्रभूगवत्पागनादिभिः । नपुल्य जैनमद्वैतवात्सल्यात्कन्यो युयुत् ॥ ५७४ ॥ अपास्त मधुशाल्यंस्तरगतैर्भे-  
युक्तिभिः । मदनदिक्यानिष्ठ शोक मातुः मृतान्य च ॥ ५७५ ॥ जगाम समुत्तं धाम्नः स्वत्येत्पापाग सुम्किना । तर्गोद्गर्तं यदागन्तु मुरालिगुमुगुत्ते ॥  
५७६ ॥ रात्री चैव महापुण्यभागीलाष्टो न पुष्टत् । कुमारमभ्यधायेव प्रक्षारिकमशात्तिन ॥ ५७७ ॥ प्रत्यंरमहापात्रं तव राजपुरे मुहं । इत्या राज्ञे  
दिशत शत्रुस्तत्काष्टागारकस्तन ॥ ५७८ ॥ सिवुत्थानपविरागे न योग्यस्ते मनस्विनः । इत्या न तदाकार्य प्रतिपद्यादित तता ॥ ५७९ ॥ अकालजा-  
घनं शौर्यं न फलाय प्रकल्पते । धान्य वा मयर्गो यो यः कातः कार्यस्य मापक ॥ ५८० ॥ इति मत्तित्य मयातमोऽध्यायश्चाय त हरिः । औम, कार्द-  
चरणकमलोंको नमस्कार किया ॥ ५७० ॥ तदनंतर महादेवीने 'हे कुमार उठ तुझे सैरुडों कल्याण प्राप्त हो' उग्रप्रकार  
सैरुडों आशीर्वाद देकर बड़े मोहसे उसे बहाया और फिर इसप्रकार कहने लगी कि "हे कुमार तेरे देवनेसे जो भुव  
उत्पन्न हुआ है उसीके समागमरूपी गधुसे अत्यंत डरकर ही क्या मानों मेरा दुःख अकम्मान् भाग गया है ।" ५७१-५७२  
इसप्रकार वह महादेवी पुत्रके साथ बात चीत कर रही थी कि इसी बीचमें कुमारके स्नेहसे वह चतुर यज्ञ भी बड़ी शीघ्र-  
तासे बहा आपहुंचा ॥ ५७३ ॥ उसने आकर उत्तम जैनधर्मके वात्सल्यसे स्नान, पाला, लेपन, सवनरहने आभूषण  
वस्त्र और भोजन आदि देकर अलग अलग सबका आदर सत्कार किया ॥ ५७४ ॥ तदनंतर उगने युक्तियोंसे पूर्ण  
और तत्त्वोंके स्वरूपसे भरे हुए मयूर वचनोंसे तथा प्रद्वैयुक्त आदिकी कथाओंसे माला और युव दोनोंका जोर दूर किया  
॥ ५७५ ॥ इसप्रकार आदर सत्कारकर वह यज्ञ अपने स्यानकी ओर चला गया । देखो मित्रता बही है जिसका अनु-  
भव आपत्तिमें भी मित्रोंके द्राग किया जाता है ॥ ५७६ ॥ उसके बाद विजया महाराणीने कुमार जीवंधरको बुद्धिमान  
और अत्यंत पराक्रमी देखकर तथा 'यह महापुण्यवान् है' यही समझकर एकांतमें लेवाकर उससे इसप्रकार कहा कि "तेरे  
पिता राजपुर नगरके महाराज थे और सत्यंवरके नामसे प्रसिद्ध थे । तेरा गधु यह काष्ठंगार उन्हें पारकर राज्यकर रहा है । तू  
विचार शील है इस लिये तुझे अपने पिताका स्यान छोड़ देना ठीक नहीं है" इस प्रकार माताके द्राग बड़े हुए वचनों  
को मुनकर और अच्छी तरह समझ कर वह विचार करते लगा कि ब्रह्मसमर्थों की हुई शूरवीरतासे भी कुछ फल नहीं  
निकलता है जिस प्रकार धान्योंको फलनेके लिये समथकी प्रतीक्षा करनी पडती है उसी प्रकार कार्यको सिद्ध करनेवाले  
समथकी भी प्रतीक्षा करनी पडती है । इस प्रकार कहते हुए उसके हृदयमें अथपि क्रोध उत्पन्न हो आया था पर उस महा-

भीगेऽभ्यर्थेणमागमन् ॥ ५६० ॥ हेमामपुरसार्थपहरणरंभसभ्रमे । तत्कर्म नगरैरुर्वप्यस्तहस्तैर्निवेदित ॥ ५६१ ॥ आक्रोशदूमिः सकारुण्यो जीवंधर-  
माह्वयः । गत्वा व्याघ्रबलं युद्धे निरुद्ध्यातक्यविक्रमः ॥ ५६२ ॥ तद्दृष्टहीत धन सर्वं वभिर्गन्धो ह्यर्पयत्युन । युद्ध्वा चिरं विमुक्तमनामांशुशरदर्शनम् ॥  
५६३ ॥ जीवंधरकुमारेण विदिता मधुरादयः । संगतास्ते कुमारस्य वार्तां राजपुरोद्भवां ॥ ५६४ ॥ सर्वो निर्बन्धं विश्रम्य कश्चित्कालं स्थिता ब्रुव ।  
लोलाक्षी क्षामक्षार्माग्यष्टिका । चिन्तासहस्रतप्ता जटीभूतकिरीटिका ॥ ५६५ ॥ अरण्यमप्रयाणार्थं दृष्ट्वा कथमुपगमन् । तत्र केहान्महादेवी क्षीराणूणां जतस्तनी ॥ ५६६ ॥ वाष्पाविल-  
सि ॥ ५६८ ॥ अशोचयुग्ममालोक्य रश्मणीव मनोभवं । इष्टकालातरालोक्तक्षणे दुःखकारण ॥ ५६९ ॥ तनुजस्वर्शसंभूतमस्तपुशंतीं सुखायुत । अप्य-  
न्वापतत्यादप्यदयो स कृताजलिः ॥ ५७० ॥ कुमारोत्तिष्ठ कल्याणशतभागी भवेत्तैसा । तमाशिषां शतैः सेहादमिनयाऽववीदिति ॥ ५७१ ॥ 'प्रतिपक्षा-

वे भील लोग हेमाम नगरके अनेक वैश्योके समूहका धन लूट चुके थे हसलिये उनलोगोंने नगरमें जाकर चिह्ना चिह्नाकर  
तथा ऊपरको हाथ उठाकर सब हाल कहा था । यह सब हाल सुनकर अतर्क्य पराक्रमको धारण करनेवाले दयालु  
जीवंधरने उसी वनमें आकर युद्धमें भीलोंकी सेना हराई और फिर उनसे सब धन वापिस लेकर उन वैश्योको दे दिया  
जिससमय जीवंधर उन भीलोंसे युद्ध कर रहा था उस समय मधुर आदिकोंने उसके पास अपना नाम सुना हुआ बाण  
छोड़ा था उसे देखकर जीवंधरने मधुर आदिकोंका सब हाल जान लिया था । कुमार उसी समय उनके समीप आया  
मिलनेके बाद उसने राजपुरकी सब बात सुनी कुछ देरतक वहां विश्राम किया और फिर ( हेमामनगरमें जाकर ) सुखसे  
रहने लगे । तदनंतर कुमार जीवंधरको लेकर वे सबलोग अपने नगरको चलने लगे । मार्गमें ठहरनेके लिये उसी दंडकवनमें  
पहुंचे । वहांपर विजया महादेवी मिली स्नेहसे उसके कुर्चोंमें दूध आगया उससे वे उन्नत हो रहे थे, उसके चंचलनेत्रोंमें  
आंसू भर रहे थे, और शरीररूपी लकड़ी अत्यंत कुश हो रही थी । हजारों चिन्ताओंसे वह संतप्त हो रही थी, उसके केश  
जटाके समान हो रहे थे, सदा उष्ण निश्वास लेनेसे ओठोंका रंग ही बदल गया था तांबूल आदि द्रव्योंके न खानेसे  
उसके दांतोंपर भी बहुतसा मैल जमगया था और जिसप्रकार मधुमक्खीको दुख हुआ था उसीप्रकार पु-  
त्रको देखकर वह शोककर रही थी । सो ठीक ही है क्योंकि इष्टजनों को बहुत दिन बाद देखना भी उसीसमय दुःखका  
कारण हो जाता है भावार्थ-बहुत दिन बाद इष्ट जनोको देखनेसे दुख उमड़ आता है ॥ ५६०-५६९ ॥ जो पुत्रके स्पर्श  
से उत्पन्न हुए सुखरूपी अमृतका स्पर्श नहीं कर रही है ऐसी उस माताको जानकर जीवंधरने भी हाथ जोड़कर उसके

पृष्ठा केहिहैमैधुरादिमि । बहासकं विवेदिस त्व कुमारौ क गताविति ॥ ५५१ ॥ साप्याह शुभने देखो हेमासननगरे सुखं । वसतस्तत्र का निता युष्माकमिति सादरे ॥ ५५२ ॥ ज्ञात्वा ताभ्यां स्थितं स्मान ते सर्वे तर्हिदृक्षया । आपृच्छय खजजान् सर्वांन् संतोषातौविमोचिताः ॥ ५५३ ॥ गच्छंतो दृढकारण्ये व्यश्रम्य-स्तापसाश्रमे । तापसीषु समागम्य तान् यदयतीषु कौतुकात् ॥ ५५४ ॥ महादेवी च तान् शृणु श्रूय कस्मात्समागताः । गमिष्यथ क वेत्सितवष्टच्छत्तेहनिर्भरे ॥ ५५५ ॥ यथाश्रुतातमेवेषु कथयत्यु प्रतोषिर्णा । मधुघ्नपरिवारोऽय सघो यूतामिति स्फुट ॥ ५५६ ॥ विज्ञायाथात्र विश्रम्य भवदमिगम्यतां पुन । समा-गमनकालेऽसाविहैवानीयतामिति ॥ ५५७ ॥ सम्यक्प्रार्थयतैतौस्तेऽप्येषा जीवधरश्रुते । रूपेण निर्विशेषा किं तन्मातेत्याससशया ॥ ५५८ ॥ कुर्मस्तथेति सतोष्य तां प्रियादुगतौकिमि । गत्वा तत्रोत्तर किं निसत्र व्याघ्र कदर्थिताः ॥ ५५९ ॥ युद्धे पुरुषकारेण क्वव्यादानमिभूय तान् । गंतो यदृच्छया व्याघ्रे

अब इस कथनको यहांही छोड़कर इसीसे संबंध रखनेवाली दूसरी कथा कही जाती है । जिसदिन राजपुर नगरसे नंदा-द्वय निकल गया उसके दूसरे ही दिन उससे स्नेह रखनेवाले मधुर आदिकोंने गंधर्वदत्तासे पूछा कि दोनों कुमार कहां गये तू सब जानती है, बतला ॥ ५५०-५५१ ॥ इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने भी बड़े आदरसे कहा कि आपलोग उनकी चिंता क्यों करते हैं वे दोनों भाई सुजन देशके हेमाभ नगरमें सुखसे निवास करते हैं ॥ ५५२ ॥ इसप्रकार उन दोनों कुमारोंके रहनेका स्थान जानकर मधुर आदि सब कुमारोंको उन्हें देखनेकी इच्छा हुई उन्होंने अपने सब भाई बंधुओंसे पूछा और संतोषके साथ सबसे विदा होकर वे लोग चले । चलते चलते सबलोग दंडकवनके तापसाश्रममें पहुंचे । वहांपर वे लोग तपस्विनियोंके समीप पहुंचे सब तपस्विनियें उन्हें कौतुकसे देखने लगीं उनमेंसे विजया महादेवीने बड़े प्रेमसे उनलोगोंसे पूछा कि तुमलोग कहांसे आये हो और कहां जाओगे ॥ ५५३-५५४ ॥ जब मधुर आदिकोंने अपना सब हाल कहा तब बहुतही संतुष्ट हुई और उनसे कहने लगी तुम युवकोंका समूह सब मेरे ही पुत्रका परिवार है । तदनंतर उसने कहा कि तुमलोग आज यहां ही विश्राम करो, विश्रामकर फिर चले जाना और जीवंधरसे मिलनेपर उसे, यहां अवश्य लाना ॥ ५५६-५५७ ॥ इसप्रकार विजयाने उन लोगोंसे अच्छीतरह प्रार्थनाकी उस महादेवीके रूपको जीवंधरके रूपके ही समान देख-कर उनलोगोंको भी संदेह होगया कि शायद यह जीवंधरकी पाता ही हो ॥ ५५८ ॥ तदनंतर उनलोगोंने प्रिय और मयायोग्य बचनोंसे उस देवीको संतुष्ट किया तथा कहा कि हमलोग ऐसा ही करेंगे । इसके बाद वे लोग आगे चले थोड़ी ही दूर जानेपर भीलोंने आकर उन्हें खेदलिख किया ॥ ५५९ ॥ परंतु पुरुषार्थ दिखलाकर उनलोगोंने युद्धमें भीलोंको हरा दिया और फिर वे इच्छानुसार आगे चले । आगे पहुंचते ही अन्य भीलोंने आकर उन्हें घेर लिया । उसके पहिले

धिमं ॥ ५३९ ॥ मात्रा सयोजयेत्साह त्व चाक्षानादिदं भया । कृतं कर्मेति नितित्वा गर्हित्वात्मानमाद्रंघी ॥ ५४० ॥ तदादानदिनादसशाकं घोडशे  
दिने । चातकं बनकालो वा सजलांभोदमालया ॥ ५४१ ॥ असव मधुमासो वा लतया वृत्तसंख्या । पद्मिन्यार्कोदयो बालि त मात्रा समजीगम ॥ ५४२ ॥  
सहस्रारे सुरोभवः ॥ ५४३ ॥ तत्राष्टादशवाद्यांशुदिव्यभोगाभितर्पितः । ततश्च्युत्वेह सभूत शुभाशुभविपाकतः ॥ ५४४ ॥ राज्यभारं परित्यज्य तपोभारं समुद्रदहन् । जीवितार्ते तनु लयत्वा  
शुभि ॥ ५४५ ॥ सह सजात इत्येतद्विद्याधरनिरूपित । शुला कल्याणबधुस्त्व ममेत्येनमपूजयत् ॥ ५४६ ॥ मंदसाननिशोः पित्रोर्विप्रयोगकृतनसः । फलात् घोडशवर्षाणि वियोगस्त्व ब-  
कामभोगशुल स्वैरमिष्टैरनुभवस्थित ॥ ५४७ ॥ इदं प्रकृतमत्राम्नात्सविधानमुदीर्यते । नद व्यस्य पुगत्स्वस्मात्रियोगानन्तरे दिने ॥ ५४८ ॥ गधर्वदत्ता स-

कहा कि शुभसे यह काम अज्ञानतासे बन पडा है इस तरह कहकर उसने अपनी वही निंदाकी अपने आपको धिक्कार  
दिया और फिर चित्तमें दया आजानेसे जिसदिन उस वच्चेको लिया था उससे सोलहवें दिन उसकी मातासे मिलीया ।  
जिस प्रकार वर्षाका समय जलसे भरी हुई मेघपंक्तिसे चातकको मिला देता है वसंतऋतु आमकी वेलके साथ फूलोंको  
मिला देता है और सूर्योदय कमलिनीके साथ अमरोंको मिला देता है उसी प्रकार जयद्रथने वह वच्चा उसकी मातासे  
मिला दिया ॥ ५३८-५४२ ॥ इस प्रकारके अन्य कितने ही विनोंदोंके साथ जयद्रथका समय निरंतर सुखसे व्यतीत  
होने लगा । किसी एक समय किसी कारणसे उसका चित्त भोगोंसे उदास हुआ । उसने राज्यभार छोडकर तपश्चरण  
का भार धारण किया और आयुके अंतमें शरीर छोड कर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ ॥ ५४३-५४४ ॥ वहां पर अठा-  
रह सागर तक दिव्य भोगोंका अनुभव कर तप्त हुआ और वहांसे च्युत होकर अपने शुभाशुभ कर्मोंके उदयसे आप उ-  
त्पन्न हुए हैं ॥ ५४५ ॥ जो इस सेवकके द्वारा मारा गया था वह मर कर कितने ही भवोंके बाद यह काष्ठांगार हुआ  
है इसी लिये ही पहिले जन्मके संवधसे काष्ठांगारने युद्धमें आपके पिताका घात किया था ॥ ५४६ ॥ जयद्रथने  
पहिले हंसके वच्चेको माता पितासे अलग किया था उसीके पापसे सोलह वर्षतक भाई वंशुओंसे आपका वियोग हुआ है  
इसप्रकार विद्याधरकी कही हुई सब कथा सुनकर जीवंधर कहने लगा कि तू मेरा कल्याण करनेवाला भाई है इस प्रकार  
कहकर उस विद्याधरका खूब आदर सत्कार किया ॥ ५४७-५४८ ॥ तदनंतर वह जीवंधर सबके साथ वडी प्रसन्नतासे  
हेमाभ नगरमें आया और इष्ट वस्तुओंके साथ इच्छानुसार काम भोगोंका सुख अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥ ५४९ ॥



तस्य नंदिन्या तनयोऽभवत् ॥५२८॥ चद्राभो मे सखा तस्य कदाचिद्विर्मम्यधात् । भवान् च धर्म्यं तेन रक्षाशयस्तदा ॥ ५२९ ॥ विधाय मयमासादि-  
निष्ठति तत्फलान्मृत । इह विषाधरो भूत्वा सिद्धकृटजिनालये ॥ ५३० ॥ विलोक्य चारुणद्वयं विनयेनोपसृत्य तदा । आवयोर्मवर्ममघमाकर्ण्य त्वां निरी-  
क्षितु ॥ ५३१ ॥ रसितैतत्सरोऽन्यथा प्रवेशाद्विषया स्थित । वदसे त्वद्वयसंबन्धं दिव्यावधिनिरूपित ॥ ५३२ ॥ धातक्रीस्त्रदमगभागमेरुपूर्वविदेहने ।  
विषये पुष्कलाबल्यां नगरी पुण्डरीकणी ॥ ५३३ ॥ पतिजयधरस्तस्य तन्त्रजोऽभूजयद्रथ । जयवला लमन्त्येयुवेन नाम्ना मनोहरं ॥ ५३४ ॥ विहर्तुं प्र-  
स्थितस्तत्र सरस्या हसवाचक । विलोक्य चेटकैर्दक्षिस्तमानाग्र्य सैकटुक ॥ ५३५ ॥ स्थितस्तन्योपयोगे तन्मातापितरौ तदा । सशौका करुणाकन्द न-  
भस्यकुरुता मुहु ॥ ५३६ ॥ चेटकस्ते तदाकर्ण्ये कणीताकृष्टचापक । शरेणापातयत्त त तस्माकार्यं न पापिता ॥ ५३७ ॥ तन्निरीक्ष्य भवन्माता काह  
प्यार्द्राकृताशया । विभेत्तदिति सपृच्छय प्रबुद्धा परिचारकात् ॥ ५३८ ॥ कुपित्वा चेटकाग्रेण दृथा विद्वत्ते सती । निर्भन्त्यं त्वां च ते पुत्र न युक्तमिदमा-

मद्य मांसादिका त्याग किया था उसके फलसे मरकर मैं यह विद्याधर हुआ । किसी एक समय मैंने सिद्धकृट जिनालय  
में दो चारणं मुनिराजोंके दर्शन किये थे मैं वडी विनयसे उनके समीप पहुंचा था और उनसे मैंने अपने  
और आपके दोनों भवोंका संबंध सुना था । अब मैं आपके दर्शन करनेके लिये ही इस सरोवरकी रक्षा करता था और  
अपनी विद्यासे अन्य किसीको इस सरोवरमें प्रवेश नहीं करने देता । अब मैं दिव्य अवधिज्ञानके द्वारा निरूपण किये  
हुए आपके भवोंका संबंध कहता हूं ॥ ५२८-५३२ ॥ धातकी खंडक पूर्व मेरुसंबन्धी पूर्व विदेहचेन्नमें पुष्कलावती देश  
के पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा जयधर राज्य करता था उसकी रानीका नाम जयावती था उसके आपका जीव जयद्रथ  
नामका पुत्र हुआ था । किसी एक समय वह जयद्रथ मनोहर नामके वनमें क्रीडा करनेके लिये गया था वहां पर सरोवर  
में एक हंसके बच्चेको देख कर चतुर सेंवकोके द्वारा केवल चित्त प्रसन्न करनेके लिये वह बच्चा भंगा कर रख लिया  
था । उस बच्चेके माता पिता उसका भरण पोषण करनेके लिये बहुत ही शोक करने लगे और बार बार आकाशमें करुणा-  
जनक आक्रंदन करने लगे ॥ ५३३-५३६ ॥ उस आक्रंदनको सुनकर जयद्रथके एक सेवकने कानतक धनुष चढ़ाकर  
बाणसे उस बच्चेके बापको मार दिया सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंके लिये संसारमें कोई अकार्य है ही नहीं ॥ ५३७ ॥  
इस कामको देख कर जयद्रथकी माताका हृदय करुणासे भीग गया और उसने पूछा कि यह क्या है सेवकोंसे सब हाल  
जानकर वह सती उस हंसको व्यर्थ ही मारनेवाले सेवक पर बहुत ही क्रोधित हुई तथा उसने जयद्रथको भी ताडना कर  
कहा कि हे पुत्र यह ऐसा करना ठीक नहीं है तू इस बच्चेको शीघ्र ही इसकी मातासे मिला दे । जयद्रथने इसके उत्तरमें

५१८ ॥ पितरः वनराजस्य ॥ तन्मुक्त्वा नमः ।

गत्वा नगरकोशाख्ये श्रीचंद्रा भद्रकागिनी ॥ ५२० ॥

त्यागमे सत्याधरसूतं निरीक्ष्य तं । दसविंशत्सरस्तीरे तत्रात्रेतुं जलं गता ॥ ५२२ ॥ परिवारजना दद्या दुर्लभमिच्छामाक्षिकैः । तद्भयाद् बोधयतिस्व जीवंपर-  
कुमारकं ॥ ५२३ ॥ तदाकर्ण्य विविन्त्यैतत्कुमारोऽपि सविस्मयः । हेतुरस्यत्र क्रोडीति त्वं ज्ञातुं यक्षमस्मरत् ॥ ५२४ ॥ सोऽपि संनिहितस्तत्र विद्यां  
विध्वंस्य सेवरी । तं सेचरं कुमारस्य पुरस्तादकरोत् कुत ॥ ५२५ ॥ इदं सरस्वत्या केन रक्ष्यते हेतुर्नेति सः । परिपृष्टं कुमारेण खैचर सम्यगब्रवीत् ॥

५२६ ॥ शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि मत्कथां कृतचेतनः । अमन्युष्यदत्ताख्यमालाकारधनेविनः ॥ ५२७ ॥ इतो राजपुरे जातिभटाहः कुसुमश्रियः । तत्रैव वनद-  
का हरणं नहीं किया है किंतु पहिले जन्मके स्नेहसे किया है इसप्रकार सोच विचार कर वे सब लोग शांत होगये ॥ ५१८ ॥ ततो राक्षः पुरं गत्वा स्थिता द्विनिदिशति वे ।  
तदनंतर उन सब लोगोंने वनराज और उसके पिता हरविक्रमके बंधन छोड दिये और उन दोनोंको विडा कर दिया  
सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा करना ही सज्जनोंका धर्मत्पापन कहलाता है ॥ ५१९ ॥ इसके बाद वे सबलोग राजाके  
नगरमें ( हेमांभ नगरमें ) गये दो दिन वहां रहे फिर नगरशोभा नामके नगरमें आये और कल्याण रूप भाग्यको धारण  
करनेवाली श्रीचंद्रा बड़ी विभूतिके साथ धनके स्वामी युवक नंदाढ्यको व्याह दी । इस प्रकार विवाहकी सब विधि पूर्ण  
हो जाने पर सब भाई बंधुओंके साथ फिर हेमांभ नगरको लौटे मार्गमें किसी तालाबके किनारे ठहरे । वहां पर परिवारके  
लोग जीवंधर कुमारको एक जगह विठला कर उस सरोवरमेंसे जल लेने गये परंतु दुष्ट मधुमक्खियोंने वे सब लोग काट  
खाये तब सब लोगोंने डर कर जीवंधर कुमारसे कहा । कुमारने भी सुनकर बड़ा आश्चर्य किया और सोचा कि इसमें अ-  
वश्य ही कोई कारण होना चाहिये इसलिये उस कारणको जाननेके लिये उसने यक्षका स्मरण किया ॥ ५२०-५२४ ॥  
स्मरण करते ही वह यक्ष भी आ उपस्थित हुआ उसने आते ही वह विद्याधरकी विद्याका नाश किया और फिर श्री घृही  
उस विद्याधरको कुमारके सामने ला खडा किया ॥ ५२५ ॥ कुमारने उस विद्याधरसे पूछा कि तू किसे कारणसे इस  
सरोवरकी रक्षा करते हो । इसके उत्तरमें विद्याधर कहने लगा कि हे भद्र ! मेरी कथा चित्त लगा कर सुनो । पहिले ज-  
न्ममें मैं राजपुर नगरमें अत्यंत धनी ऐसे गुणदंत मालाकारकी स्त्री कुसुमश्रीसे जातिभट नामका पुत्र था । उसी नगरमें  
धनदत्तकी स्त्री नंदिनीसे उत्पन्न हुआ चंद्रांभ नामका पुत्र था वह मेरा मित्र था, किसी एक समय आपने उस चंद्रांभको  
धर्मका स्वरूप सुनाया था उस समय उसको सुन कर मेरे हृदयमें भी क्षोभ उत्पन्न हुआ था और मैंने उसी समय

सोपाय पापभीरवः ॥ ५०७ ॥ ते सर्वे सिद्धसाध्यत्वाद्युद्ध सहाय्यं समुल्ल । नगरस्यागमनेतद्वृत्तं नैसा वनराजकः ॥ ५०८ ॥ युयुत्सया ययौ वीक्ष्य त यक्षो  
बुधचेतसं । परिणष्ट दृष्टात्सयः कुमाराय समर्पयत् ॥ ५०९ ॥ वंदीकृत्य कुमारोऽपि वनराजं निविष्टवान् । सतेनः सरसि श्रीमान्सेनारम्याभिधानकै ॥  
५१० ॥ तत्रैक चारुणं वीक्ष्य सहसा महसा तिष्ठि । भिक्षाहेतोरेति प्राप्तमभ्युत्थाय यथोचित ॥ ५११ ॥ कृताभिवन्दनो योग्य भाक्तिकोऽवास्तुभोजनं ।  
तद्वानावर्जितयोऽयमवादाश्चर्यपचकं ॥ ५१२ ॥ तद्दानफलमालोक्य वनराज स्वजन्मनः । सचन्व यथुपावृत्त स तत्सर्वमवागमत् ॥ ५१३ ॥ बलेन म-  
हता योद्धु इरिकममागत । यक्षस्तं च समादाय कुमारस्य करेऽकरोत् ॥ ५१४ ॥ वनराजस्तदोशेष सर्वेषामित्यथाजवीत् । “जन्मनीतस्त्वतीयेऽहं  
बभूव वणिजा सुतः ॥ ५१५ ॥ सुवर्णदेजास्तस्मान्न मृला भार्जता गतः । कयोर्ता प्राग्भवै कन्यामिमा हन्तु समुधतः ॥ ५१६ ॥ केनचिन्मुनिनाधीत-  
चतुर्गतिगतयुते । मुक्तवैरोऽन्न भूतैस्तत्स्नेहादेनामनीनय ॥ ५१७ ॥ तदुक्तं ते समाकण्य नाय कन्यामनीनयत् । दर्पेण किं तु संप्रीत्येत्ववधाय शम गताः ॥

यक्षकी सहायतासे युद्धमें करने योग्य कामको सिद्ध कर तथा युद्धको समाप्तकर वे दृढमित्र आदि सब लोग अपने नगर  
को लौट गये परंतु वनराज युद्ध करनेकी इच्छासे उन सबके पीछे ही गया । वनराजका ऐसा दुष्ट अभिप्राय देखकर  
यक्षने उसे जवर्दस्ती पकड़ लिया और शीघ्रही कुमार जीवंधर को समर्पण कर दिया ॥ ५०८-५०९ ॥ कुमार जीवंधर  
ने भी उसे बंधनमें डालकर रक्खा । तदनंतर उस श्रीमान् कुमार जीवंधरने सेना सहित सेनारम्य नामके सरोवरपर  
डेरा दिये । दैवयोगसे वहीपर उसने तेजके निधि ऐसे एक चारणामुनिके अकस्मात् दर्शन किये वे मुनिराज भिक्षाके लिये  
आ रहे थे इसलिये दर्शन करते ही जीवंधर उठा, विधि पूर्वक उनकी वंदना की पड़ेगाहन किया और बड़ी भक्तिसे उन्हें  
योग्य आहार दिया । उन मुनिराजको दान देनेसे जीवंधरको बड़ेभारी पुरायकी प्राप्ति हुई और उसीसे उसके यहां पंचा-  
श्रयोंकी वर्षा हुई ॥ ५१०-१२ ॥ उस पंचाश्रयरूप दानके फलको देखकर वनराजको लालि स्मरण होगया और उसने  
अपने पहिले जन्मके सब समाचार जान लिये ॥ ५१३ ॥ इधर हरिविक्रम भी वही भारी सेना लेकर युद्ध करनेके लिये  
आया परंतु यक्षने उसे भी पकड़कर कुमार जीवंधरको सौंप दिया ॥ ५१४ ॥ तदनंतर वनराज सब लोगोंके सामने अप-  
नी पहिले जन्मकी सब कथा इसप्रकार कहने लगा कि मैं इससे तीसरे जन्ममें एक सुवर्णतेज नामका वैश्यपुत्र था वहांसे  
मरकर मैं विजाव हुआ । उससमय इस श्रीचंद्राका जीव कवूतरी था इस लिये उसे भी मारनेके लिये मैंने उद्यम किया  
था ॥ ५१५-५१६ ॥ किसी एकसमय कोई मुनिराज चारोंगतिओंके परिभ्रमण का पाठ कर रहे थे उसे सुनकर मैंने  
सब बैर छोड़ दिया था और फिर मर कर यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं इसलिये पहिले जन्मके स्नेहसे ही मैंने इस कन्या  
का हरण किया था ॥ ५१७ ॥ वनराजकी ये सब बातें सुनकर सब लोग कहने लगे कि इसने अभिमानसे कन्याका

हुत हृदय शनैः । “किमेव तिष्ठति त्रिषति परिधत्स्व विभूषणं ॥ ४९६ ॥ अलंकृतं ह्यज धेहि मुक्ताहारं मनोहरं । ब्रूहि विसृज्यमस्मानि श्रीचन्द्रे सुखसक-  
 या ॥ ४९७ ॥ मनुष्यजन्म संयात दुःखेनानेकयोगिषु । दुर्लभ भोगवसुधया देतव्या नीनशो वृथा ॥ ४९८ ॥ वनराजत्परो नास्ति वरो रूपदिभिर्गुणैः ।  
 लोकैः स्मिन्नोचने सम्यक्त्वोन्मील्य न पश्यति ॥ ४९९ ॥ लभ्यगीरिवादिकेन भूषणभरणक्षुभं । संपूर्णेन्दुभिर्वज्यात्ला वनराजमुपाश्रय ॥ ५०० ॥ प्राप्य  
 वृद्धामणि मूढ को नामात्रावप्यते ॥ ५०१ ॥ लभ्यप्रार्थनैर्नैकदर्शयन् ॥ ५०२ ॥ तदुपद्रवमाकर्ण्य प्रच्छन्नैर्हरिविक्रम । विपत्तिर्निग्रहेणासा कन्यायाः  
 प्रतिपत्स्यते ॥ ५०३ ॥ कदाचिदिति सचिन्तितं निर्भयं वनराजक । तस्या निजतनुनामि सह वास चकार सः ॥ ५०४ ॥ दृढमित्रादय सर्वे तदा सप्रा-  
 प्य बांधवा । सशब्दवलसपद्मास्तस्थुरावेष्टय तत्पुंरं ॥ ५०५ ॥ युयुत्सवो विपश्चाथ जीवधरकुमारक । तद्दृष्ट्वा स्पृष्टकारुण्यो युद्ध बहुजनातङ्कत ॥ ५०६ ॥  
 किमनेनेति यक्षेश स सुदर्शनमस्मरत् । अनुस्मरणमात्रेण यक्षोऽप्यानीय कन्यका ॥ ५०७ ॥ कुमागयापंगामास कस्याप्यकृतपीडन । ससाधयति कार्यणि  
 कर और हमारे साथ विश्वास पूर्वक सुखकी कथाएं कह ॥ ४९६-४९७ ॥ अनेक योगियोंमें परिश्रमण करते करते  
 बड़ी कठिनतासे यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया है इसलिये इसे भोगोपभोगोंके बिना व्यर्थ ही मत खो ॥ ४९८ ॥ इस सं-  
 सारमें रूप आदि गुणोंको धारण करनेवाला वनराजके सिवाय और कोई अच्छा घर नहीं है तेरे वे दोनों नेत्र भी अच्छे  
 हैं इसलिये इन्हें खोलकर तू क्यों नहीं देखती ॥ ४९९ ॥ जिसप्रकार भरतचक्रवर्तीके समीप लक्ष्मी रहती थी आपरण  
 जातिके वृक्षोंके समीप शोभा रहती है और संपूर्ण चंद्रमाके समीप चांदनी रहती है उसीप्रकार तू वनराजके समीप रह ॥ ५०० ॥  
 अरे चूड़ामणि रत्नको पाकर ऐसा कौन मूर्ख है जो उसका तिरस्कार करे” इसप्रकारके वचन तथा और भी भयदेनेवाले  
 वचनोंसे उन दूतियोंने उस श्रीचंद्राको खेदखिन्न किया ॥ ५०१ ॥ हरिविक्रमने गुप्त रीतिसे कन्याका यह सब उपद्रव  
 सुनकर विचार किया कि इस कन्याको खेदखिन्न करनेसे कदाचित् इन दूतियोंको कोई विपत्ति आ सकती है यही सो-  
 चसमझकर उसने वनराजको तो फटकार लगाई और उस श्रीचंद्राको अपनी पुत्रियोंमें रख दिया ॥ ५०२-५०३ ॥ इ-  
 धर दृढमित्र आदि सब भाई वंधुओंने अपनी सब सेना तैयार की और उस सेनाके द्वारा उस नगरको घेरकर आ डटे  
 ॥ ५०४ ॥ उधरसे भील लोग भी युद्धकी इच्छासे बाहर निकले यह सब देखकर जीवधरके हृदयमें करुणा आगई और  
 वह विचार करने लगा अनेक लोगोंका नाश करनेवाले इस युद्धसे क्या लाभ है यही सोचकर उसने सुदर्शन यक्षको स्म-  
 रण किया । स्मरण करते ही वह यक्ष आया और उसने विना किसीको पीडा दिये वह कन्या लाकर जीवधरके सुपुर्द  
 की सो ठीक ही है क्योंकि पाणोंसे डरनेवाले लोग किसी न किसी उपायसे कार्योंके पीढ़कर ही लेते हैं ॥ ५०५-५०६ ॥

यक्षो

वनराजस्य तत्कालारूपकालाद्विषपद । सम्यग्दर्शयतः स्मैतच्छुब्धः तदभिलाषिणा ॥ ४८५ ॥ सुवर्णतेजसा श्रीतिमतास्या पूर्वजन्मनि । सा केनापि प्रेक्षा त यक्षो-  
वनराजस्य तत्कालारूपकालाद्विषपद । सम्यग्दर्शयतः स्मैतच्छुब्धः तदभिलाषिणा ॥ ४८५ ॥ सुवर्णतेजसा श्रीतिमतास्या पूर्वजन्मनि । सा केनापि प्रेक्षा त यक्षो-  
४८६ ॥ त्रेमितावनु तेनेत्वा महाभटपरिष्कृता । तत्कन्याबायनागरे शात्वा कृतसुरंगैका ॥ ४८७ ॥ निकृष्य कन्या श्रीवैणलोहज-  
मा प्रत्यानीयतामिति ॥ ४८६ ॥ त्रेमितावनु तेनेत्वा महाभटपरिष्कृता । तत्कन्याबायनागरे शात्वा कृतसुरंगैका ॥ ४८७ ॥ निकृष्य कन्या श्रीवैणलोहज-  
४८८ ॥ गौता कन्या गृहीत्वेति तस्मिन्निखिलपत्रक ॥ ४८८ ॥ सुरगे समबल्याप्य वनराजस्य संनिधि । रजन्या सेंदुरेक्षा वा प्रस्थिता मदभूमिजा ॥  
४८९ ॥ आदित्योद्गमवेलाया विदित्वा लेखवाचनात् । कन्यापहरणं तस्या आतरो नृपचोदितौ ॥ ४९० ॥ अनुसृत्य इत ताभ्यां युध्यमानो निरीक्ष्य सा ।  
४९१ ॥ श्रीचन्द्राह न भोक्तेऽस्मन्नगराऽस्मज्जिमाज्य । अद्यथा किमिदं पश्चिमिदिति नैन समादेदे ॥ ४९२ ॥ सखा-  
मित्रांतकिन्नरं यक्षमित्र चाकुलिताया ॥ ४९१ ॥ श्रीचन्द्राह न भोक्तेऽस्मन्नगराऽस्मज्जिमाज्य । अद्यथा किमिदं पश्चिमिदिति नैन समादेदे ॥ ४९२ ॥ सखा-  
४९३ ॥ कुर्वतेमा ममि श्रीतामुपायंरिलमापत । ताश्च तलेषण रुन्ध्या श्रीचन्द्राभ्यासमागता । साममेवविधानज्ञा प्रवे-  
पाथैः स्वाः समाहूय दूतिका ॥ ४९३ ॥ कुर्वतेमा ममि श्रीतामुपायंरिलमापत । ताश्च तलेषण रुन्ध्या श्रीचन्द्राभ्यासमागता । साममेवविधानज्ञा प्रवे-

किसी भी उपायसे तुम उसे छुके लाकर दो इसप्रकार कहकर उसने वे दोनों मित्र अनेक बड़े योद्धाओंके साथ भेजे ।  
उन दोनोंने जाकर पहिले नो उस कन्याके सोनेकी जगहका पता लगाया और फिर श्रीवैण तथा लोहजंय दोनों पुर-  
पाथी सुरंग लगाकर कन्याके यहां पहुंचे वहां जाकर कन्याको उठाया और एक पत्र लिखकर वहां डाल दिया । उस प-  
त्रमें लिखा था कि जिसप्रकार चंद्रमाकी रेखाके साथ शनि और मंगल जाते हैं उसीप्रकार हम दोनों इस कन्याको लेकर  
वनराजके समीप जाते हैं ॥ ४९८-४९९ ॥ सूर्योदय होते ही उस पत्रके वाचनेसे कन्याके हरण होनेके समाचार मालूम  
हुए राजाने अपने दोनों पुत्रोंसे कन्या लानेकेलिये कहा इसलिये बड़ी शीघ्रतासे वे दोनों ही चले और लोहजंय तथा  
श्रीवैणसे युद्ध करने लगे । किन्नरमित्र और यक्षमित्र ऐसे अपने दोनों भाइयोंको युद्ध करते देख कर श्रीचंद्राका भी चिर-  
व्याकुल हुआ और उसने यह प्रतिज्ञाकर मौन धारण करलिया कि मेरे नगरमें जो जिनालय है उसके दर्शन किये  
दिया और बहुत ही प्रसन्न होकर वह कन्या राजपुत्र ( वनराज ) को समर्पण कर दी ॥ ४९३ ॥ जब वनराजने देखा कि  
श्रीचंद्रा युद्धसे विरक्त है तब उसने अनेक उपाय करनेमें चतुर ऐसी अपनी दूती बुलाई और उनसे कहा कि किसीभी  
उपायसे 'यह मुझपर प्रेम करो' ऐसा काम करो । वनराजकी बेजी हुई वे सब दूती श्रीचंद्राके समीप आई ॥ ४९४-  
४९५ ॥ साम भेद आदि अनेक विधानोंको जाननेवाली वे दूतियां धीरे धीरे उसके हृदयमें प्रवेश करनेके लिये कहने लगीं  
कि 'हे श्रीचंद्र ! तू इस तरह क्यों बैठी है स्नान कर कपड़े पहिन, आभूषणोंसे अलंकारकर, माला पहिन मनोहर भोजन

४७३ ॥ गत्वा तत्र मतोद्धारि वृत्तं चित्रयोजयत् । नागरं सह नदाबधौ वृत्तमालोकितुं गतः ॥ ४७४ ॥ वन्योत्तरस्मृत्यैर्मुखा सहसारावपश्यत । शीतं क्रियाविशेषायनीतमूर्च्छस्तदमङ्गः ॥ ४७५ ॥ जीवधोऽबद्धमूर्च्छाकारणं कथयति तं । पङ्कालिखितं सर्वमभिधायाम्यध्यादिद ॥ ४७६ ॥ सोऽग्नय तव सोदगोऽजलिपील्यमजं प्रति । दुष्टांश्च च धिवाहार्थं प्रागारब्धमहामहं ॥ ४७७ ॥ ह्य प्रकृतमत्रान्यन्यच्छ्रुता समुपदिशत । निराताधीश्वरो नाम्ना वि-  
श्रुतो हरिलिङ्गमः ॥ ४७८ ॥ स दायादगयादृत्वा कपित्वाद्यवनेऽकरोत् । दिशानिरो पुरं तस्य वनदिगिरि सुदरी ॥ ४७९ ॥ प्रिया तुभ्यवनराजोऽस्याव्य-  
जयत वनेनेति । वटशृङ्गाहरो गिरिविश्वसेन संसंधव ॥ ४८० ॥ आरिजयादयः शत्रुमर्दनोऽतिबलोऽप्यमी । भृत्यास्तस्यागजस्यापि लोहजपः सखा  
पर ॥ ४८१ ॥ श्रीपेणश्रान्यदा गत्वा पुरं तां तद्वगातरे । रममाणां समालोक्य श्रीचन्द्रां नक्षिकोपमा ॥ ४८२ ॥ प्रशस्य यातौ वीक्ष्यांस्तु पापं यान्तं नुरं  
गमं । रक्षकाभिभवाम्नीत्या दत्वास्मै तोषमापनुः ॥ ४८३ ॥ हरिविङ्गवत् पथात्तावन्मेल्य हितैरिणि । सिपो वननरेणागजस्यान्यायांनुसारिणः ॥ ४८४ ॥

पचारकर उसकी मूर्छा दूर की। फिर जीवंधरने उससे पूछा कि मूर्छा आनेका कारण वतला। तब नंदराजने चित्रका सब हाल कहकर जीवंधरसे कहा कि वही गुणचित्रका जीव आज मैं तेरा छोटा भाई हुआ हूं। जीवंधर इस बातसे ब-हुत संतुष्ट हुआ और पहिलेसे ही विवाहकेलिये भगवान जिनेंदेवकी पूजा करने लगा ॥ ४७६-४७७ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और कहता हूं उसे भी सुनो। हरिविक्रम नामका एक प्रसिद्ध भील्लोका राजा था उसने भाई बंधुओंसे डरकर कपिल नामके वनमें दिशगिरि नामके पर्वतपर वनगिरि नामका एक नगर बसाया था उस वनके स्वामी भील्लके सुंदरी नामकी स्त्री थी और वनराज नामका पुत्र था। बटुक, चित्रसेन, संधव, अरिजय, शत्रुमर्दन, और अति-बल ये उस भील्लके सेवक थे। लोहजंघ उसके पुत्र वनराजका मित्र था तथा श्रीपेण भी उसका मित्र था। किसी एक दिन लोहजंघ और श्रीपेण ये दोनों ही हेमाथ नगरमें गये वहाँके वनमें चांदनीके समान श्रीचंद्रा खेल रही थी उसे देखकर दोनोंने उसकी प्रशंसा की वर्षोंपर एक मनुष्य घोड़ाको पानी पिलानेकेलिये लाया था उसे देखकर उन्होंने उस घोड़ेके रक्षकका तिरस्कार किया और उससे घोड़ा छीनकर हरिविक्रम भील्लको दिया और इस तरह हरिविक्रमको बहुत संतुष्ट किया। हरिविक्रमने भी वह घोड़ा उन्हीं दोनोंको दे दिया। इसप्रकार भील्लके हितैषी उन दोनोंने अन्याय मार्गपर चलनेवाले भील्लके पुत्र वनराजसे उस श्रीचंद्राकी रूप कांति आदि शोभाका वर्णन किया। उसे सुनकर इसी श्रीचंद्रा के जीवमें पहिले जन्ममें सुवर्णतेजने प्रेम रखकर अभिलाषाकी थी और अब इस जन्ममें वनराजने उन दोनोंसे कहा कि

१ पहले बनराजका जीव ही सर्वणतेज था जिसे श्रीचन्द्राका जीव अनुपमा देनी कही श्री और फिर नहीं की थी ।

वृत्त

कदाचित्पुत्रप्रत्यासन्नमभूविलातरे । पाशे निरचिते पापं कपोते पतिते सति ॥ ४६२ ॥ स्वयं गृह समागम्य रतिवैगल्यनो मृति । ५७  
तत्सर्वानप्यबोधयत् ॥ ४६३ ॥ तद्वियोगमहादुःखपीडिता विगतायुका । श्रीचंद्रास्थ्याजनिष्ठियमधीष्ठा भवतो मुता ॥ ४६४ ॥ अथ पारावतद्वन्द्वं वीक्ष्य  
जन्मान्तं स्युते । व्यमुखात्रियमैतद्यत्कं सर्वं ममाब्रवीत् ॥ ४६५ ॥ इत्यथालम्बसुदयं वचः श्रुत्वाकुलकुलौ । मुतापतिसमन्वेषणेच्छया पितरौ तदा  
४६५ ॥ तद्भवातरुतागत पटके लिखित स्फुट । रंगतेजोऽभिधानस्य नटवर्गे पीडयस ॥ ४६७ ॥ मदनादिलतायाश्च दानसमानपूर्वक । तत्कर्तव्यं समाख्या-  
य यत्नेन कुरुता करो ॥ ४६८ ॥ पुष्पकाख्ये वने तौ च 'कृतपट्टप्रसारणा । स्वयं नटिदुमारब्धे' नानाजनसमाकुले ॥ ४६९ ॥ पितास्थ्यास्तद्वन्द्वे रंतु गतस्तत्र सुनीश्वर ।  
ममाधिगुप्तमालोक्य परित्यज्जुतेवन्दन ॥ ४७० ॥ धर्मसद्भावमाकर्ण्य प्रपच्छ तदनतरं । पूज्य मस्तुत्रिकापूर्वभक्ततां क वतते ॥ ४७१ ॥ कथ्यतामिति दिव्या-  
वधीक्षुणः सोऽप्यथ वदत् । स हेमामपुरे वैश्यतमयोऽद्याप्तोयौवनः ॥ ४७२ ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्य तदैव स महीपति । सनटः ससुहृत्सर्वपरीवारपरिकृत ॥

और मरकर यह श्रीचंद्रा नामकी आपकी अभीष्ट पुत्री हुई है ॥ ४६४ ॥ आज कवूतर कवूतरीके जोड़ेको देखकर इसे  
जातिस्मरण हुआ है और नियमसे इसीलिये मूर्छित हो गई है । ये सब समाचार उसने मुझसे स्पष्ट कहे हैं ॥ ४६५ ॥  
इसप्रकार अलरुंदुदरीके वचन सुनकर अपनी पुत्रीके पतिको दूढ़नेकी इच्छासे वे माता पिता बहुत ही व्याकुल हुए ॥ ४६६ ॥  
उन्होंने उस पुत्रीके पहिले भवका वृत्तात सब एक चित्रमें अच्छीतरह लिखाया तथा नटोंमें जो रंगतेज नामका चतुर नट  
था और मदनलता उसकी स्त्री थी उन्हें बुलाया, दान देकर उनका आदर सत्कार किया और फिर हाथमें वह चित्र दे-  
कर कहा कि यह काम बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ ४६७-६८ ॥ वे नट और नटी उस चित्रको लेकर पुष्पक वनमें गये  
वहाँपर उन्होने वह चित्र तो लटका दिया और स्वयं अनेक लोगोंके बीचमें नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ४६९ ॥ इधर  
श्रीचंद्राका पिता वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया वहाँपर उसने मुनिराज समाधिगुप्तके दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणाएं दीं,  
बंदना की, धर्मका स्वरूप सुना और फिर पूछा कि हे पूज्य ! कहिये आज मेरी पुत्रीके पहिले जन्मका पति कहाँ है इ-  
सके उत्तरमें दिव्य अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे मुनिराज कहने लगे कि वह एक वैश्यका पुत्र हुआ है और यौवन  
अवस्था धारणकर आज हेमाभ नगरमें उपस्थित है ॥ ४७०-४७२ ॥ मुनिराजकी यह बात सुनकर वह राजा नट मित्र,  
और सब परिवारके साथ वहाँ पहुंचा । वहाँपर जाकर उस नटने वह चित्र लटका दिया और मनोहर नृत्य करने लगा  
उस नृत्यको देखनेकेलिये नगरके सब लोग आये और सबके साथमें नंदाढ्य भी आया ॥ ४७३-४७४ ॥ उस चित्र  
पटके देखनेसे नंदाढ्यको अकस्मात जातिस्मरण हो आया और मूर्छा आगई तब जीवंधरने अनेक विशेष शीतो-



जन्मति । देशे हेमगढे राजपुरे वैश्यकुलाग्रणीः ॥ ४५० ॥ रत्नतेजा श्रिया तस्य रत्नमाला तयो मुता । सुहृद्यनुपमा नात्रा नाम्नैव न गुणैरपि ॥ ४५१ ॥  
तस्मिन्नेव पुरे वंशे विशा कनकतेजस । तनूजश्वद्रमालायामभवद् दुर्बिधो विधीः ॥ ४५२ ॥ सुवर्णतेजा नामाभूत्तस्मै प्राक्परिभाषिता । पुनस्तदवमानेन त-  
न्मातापितरौ किल ॥ ४५३ ॥ समाश्रण्यतां वैश्यपुत्राय मणिकारिणे । गुणमित्राय तत्रेय स्लोक कालमगात्सुख ॥ ४५४ ॥ कदाचिज्जलयत्रायाममोनिधि-  
नदीमुखात् । निगमे विषमावर्ते गुणमित्रे यति गते ॥ ४५५ ॥ खय चेत्वा प्रदेशं तं मृत्युमेवा समाश्रयत् । ततो राजपुरे गंधोत्कटैर्वयसुधालये ॥ ४५६ ॥  
पति पवनवेगाख्यो रतिवेगेयमप्यभूत् । पारावतकुलद्वंद्वं तद्दालाक्षरमिक्षणे ॥ ४५७ ॥ स्वय नैत्याक्षराभ्यान्-गृहिणो आवकवत् । तयोर्द्विप्रसंशतोपयोगं  
जन्मांतरागतात् ॥ ४५८ ॥ स्नेहादन्धोऽन्यसक्तसुख तत्रावसाचिर । सुवर्णतेजास्तद्वद्वैरेण पुलंदशतां ॥ ४५९ ॥ मृदा सप्राप्य तद् दृष्ट्वा दृष्ट्वा कापि  
यच्छया । अग्रहीदतिवेगा ता राहुर्मूर्तिमिवैदवी ॥ ४६० ॥ जातक्रोपः क्रयतोऽपु नल्पपक्षप्रनाडनैः । बुडधातंश्च हत्व शु निजपत्नीमयूयुचत् ॥ ४६१ ॥  
किसी अन्ये वैश्यपुत्रको देदी । वहांपर उन दोनोका थोडा समय सुखसे व्यतीत हुआ ॥ ४६२-४६४ ॥ किसी एकस-  
मय वह गुणमित्र जहाजमें बैठकर समुद्रमें गया था परंतु समुद्रमें किसी नदीके मिलनेकी जगह बड़े विषम भंवर पड़ रहे  
थे उसी मार्गसे निकलते समय वह वहीं डूबकर मर गया ॥ ४६५ ॥ वह अनुपमा उसकी स्त्री भी यह खबर सुनकर वहीं  
जाकर डूब पड़ी । इसप्रकार वे दोनों मरकर गुणमित्रका जीव उसी राजपुर नगरके गंधोत्कट वैश्यके घर पवनवेग नामका  
कवृत्तर हुआ और वह अनुपमाका जीव उसीके घर रतिवेगा नामकी कवृत्तरी हुई । गंधोत्कटके घर उसके लड़के अक्षरा-  
भ्यास करते थे उन्हें देखकर उन दोनों कवृत्तर कवृत्तरीने भी अक्षरोंका अभ्यास कर लिया और चित्तको अत्यंत शांतकर  
रहे । सुवर्णतेजको अनुपमा नहीं मिलती थी इसलिये वह उन दोनोंसे बंर करने लगा था और आयुके अंतमें मरकर वि-  
लाव हुआ था । किसी एक दिन उसने उन दोनों कवृत्तर कवृत्तरीको देखा और जिसप्रकार चंद्रमाकी मूर्तिको राहु ग्रस  
लेता है उसीप्रकार उसने अपनी इच्छानुसार रतिवेगाको पकड़ लिया ॥ ४६६-४६८ ॥ यह देखकर कवृत्तरको क्रोध  
आया तथा उसने पंख और पंजोंकी ताडनासे तथा चौचोंकी घातसे विलावको चोटें पहुंचाकर शीघ्र ही अपनी कवृत्तरी  
छुड़ा ली ॥ ४६९ ॥ किसी एक समय उसी नगरके समीपवर्ती पर्वतकी गुफाके समीप किसी पापी भीलने जाल डाला  
और उसमें पवनवेग कवृत्तरको फंसा लिया । यह देखकर रतिवेगा कवृत्तरी घर आई और उसने अपने पतिके मरनेके  
समाचार चौंचसे लिखकर सबको समझा दिये ॥ ४६२-४६३ ॥ तदनंतर उसके वियोगसे वह कवृत्तरी बहुत दुखी हुई

बुद्धिगणने । वीक्ष्य पारावर्तद्वंद्वं स्वीरे कीदृशदृच्छंया ॥ ४४० ॥ आतजास्तिस्त्रिभूच्छां सहसा समुपागमत् । तदशालोकनव्याकुलीकृतास्तस्मिन्निपमा ॥ ४४१ ॥  
कुशलाब्धनोक्षीरस्त्रीतलाग्नौनिषेधितां । व्यजनापादिताद्वादिपवनाद्वासिताशया ॥ ४४२ ॥ ता संबोध्य सुखालापैर्विभावितविबोधना । विदधु किं न कुर्वन्ति  
कृच्छ्रेषु सुखेनो हिता ॥ ४४३ ॥ श्रुत्वैतत्पितरौ कन्याप्रियांमलकसुंदरी । पुत्री तिलकशब्ददिचंद्रिकाया विमूर्च्छिता ॥ ४४४ ॥ कन्या गवेपयेवेति तवरा अगदतु  
शुचा । सापि सप्राप्य संलापनिपुणा कन्यका मिथः ॥ ४४५ ॥ भ्रातरिके वदतसे किं मूर्च्छाकारणं मम । इति पृष्ठवती मूर्च्छाहेतु चेच्छ्रेतुमिच्छसि ॥  
४४६ ॥ न हस्त्यकन्यनीय मे तव प्राणाधिकप्रिये । शृणु चेत् समाधायैलसां सन्मगनुस्मृति ॥ ४४७ ॥ स्वपूर्वमवसवधमनोप प्रलापीपदत् । तत्सर्वमवधा-  
यैशु सुवीरलकसुंदरी ॥ ४४८ ॥ तदैवागत्य तन्मूर्च्छाकारणं प्राग्यथाश्रुतं । प्रसथमपुरालोपस्तनेरेवममाधत् ॥ ४४९ ॥ “इतस्तृतीये कन्येया बभूव किल

मिला हुआ शीतल जल छिड़का और पंखेसे अच्छी हवा की जिससे वह सावधान हुई तब भीठे वचनोंसे वह सम्मोहित ।  
सो ठीक ही है क्योंकि आपत्ति पड़नेपर मित्रलोग क्या क्या हित नहीं करते हैं ॥ ४४०-४४३ ॥ यह समाचार सुनकर  
उसके माता पिताने तिलकचंद्राकी पुत्री और श्रीचंद्राकी सखी अलकसुंदरीसे कहा कि तू जाकर कन्याके शोकका कारण  
तलाशकर । राजारानीकी यह बात सुनकर वातचीत करनेमें अत्यंत निपुण ऐसी वह अलकसुंदरी भी श्रीचंद्राके रामीप प-  
हुंची और परस्पर वातचीत करनेपर पूछने लगी कि है भ्रातरिके ( पूज्ये ) मुझे वतला-तेरी मूर्च्छा आनेका कारण क्या  
है ? इसके उत्तरमें श्रीचंद्राने कहा कि है प्राणोसे अधिक प्यारी सखी ! यदि तू मेरी मूर्च्छाका कारण सुनना चाहती है तो  
सुन, क्योंकि तेरे लिये न कहने योग्य मेरी कुछ बात नहीं है । तू चित्त लगाकर सुन इसप्रकार उसने जो जो स्मरण हुआ  
था वह पहिले भवका सब संबंध ज्योंका त्यों अच्छीतरह कह सुनाया । उस सबको सुनकर वह बुद्धिमती अलकसुंदरी  
उसीसमय उसके माता पिताके समीप आई और उसने उसकी मूर्च्छाका कारण जो कुछ पहिले सुना था वह सब स्पष्ट  
रीतिसे मथुर शब्दोंमें नीचे लिखे अनुसार उन दोनोंको कह सुनाया ॥ ४४४-४४६ ॥ वह कहने लगी कि यह कन्या  
इस भवसे पहिले तीसरे जन्ममें हेमांगदेशके राजपुर नगरमें वैश्यकुलमें श्रेष्ठ ऐसे रत्नतेजकी स्त्री रत्नमालासे अनुपमा ना-  
मकी सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या केवल नामसे ही अनुपमा नहीं थी किंतु गुणोंसे भी अनुपमा थी ॥ ४४०-४४१ ॥  
उसी नगरमें वैश्यवंशमें उत्पन्न हुए कनकतेजकी स्त्री चंद्रमालासे सुवर्णतेज नामका पुत्र हुआ था जो कि बहुत ही बुद्धि-  
हीन और भाग्यहीन था । रत्नतेजने पहिले वह अनुपमा कन्या सुवर्णतेजको देनी कही थी परंतु उसे मूर्ख और भाग्यहीन  
देखकर उसका अपमानकर अर्थात् उसे न दे कर उन्होंने वह कन्या जवाहरातका काम जाननेवाले गुणमित्र नामके

॥ ४३२ ॥ तत्र पूर्वकृतं पुण्यं कुमारोऽनुभवन् स्थित । इतो जीवधराभ्युर्णमप्रकाशं सुमुमुक्षुः ॥ ४३३ ॥ गङ्गागमनमालोक्य नन्दाढयेन कदाचन ।  
ताचिछितां नाम्ना शय्या स्मरतरेगिणी । तत्राश्रजं तव स्थलीं सख्यात्वं विधिपूर्वकं ॥ ४३४ ॥ तथा प्राप्नोषि सतोषात्स्वमीयमिति सुदं । ४३५ ॥ देव-  
प्रभपूर्वकं तत्र तत्त्वतः । नाधिक प्रीत्यैवाच्यार्थतमोदर्थसंगमात् ॥ ४३६ ॥ राट्टेऽस्मिन्नेव विख्याते सुजनेऽस्ति परं पुरं । नाम्ना नगरशोभाख्यं दृष्ट्वा  
त्रय भूयतेः ॥ ४३७ ॥ आता तस्य सुमित्राख्यो राक्षी तस्य वसुधरा । रूपविज्ञानसंपन्ना श्रीचन्द्रा तनया तयोः ॥ ४३८ ॥ आपन्नयौवनारंभा सा कदाचि-  
कहते हैं गुणामित्रं बहुमित्रं, सुमित्रं, और धनमित्र तथा और भी कितने ही जीवधरके साले थे उन सबको जीवधरने सब-  
तरहके विक्षानमें निपुण बना दिया था इसप्रकार वह जीवधर कुमार बहुत दिनतक पहिले किये हुए पुरयकर्मका अनु-  
भव करता हुआ वहीं रहता था । इधर गंधर्वदत्ता वार वार छिपकर जीवधरके समीप आती जाती थी उसे देखकर किसी  
एक दिन नन्दाढ्यने पूछा कि वनला तू छिपकर कहाँ जाती है और किस तरह जाती है क्योंकि जहाँ तू जाती है वहाँ  
में भी जाना चाहता हूँ इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने हँसकर कहा कि जहाँ मैं जाती हूँ यदि तू वहाँ जाना चाहता है तो  
स्मरतरंगिणी नामकी एक देवाधिष्ठित शय्या है उसपर तू अपने बड़े भाईको स्मरणकर विधिपूर्वक सो जाना ॥ ४३५ ॥ इसतरह  
तू संतोष पूर्वक अपने बड़े भाईके पास पहुंच जायगा । गंधर्वदत्ताकी यह बात सुनकर वह नन्दाढ्यकुमार रात्रिमें शय्या पर  
सो गया और भोगिनी विद्याने शय्या समेत उठाकर उसे उसके बड़े भाई जीवधरके समीप पहुंचा दिया । तदनंतर जीव-  
धर कुमार और नन्दाढ्य दोनों एक दूसरेको देखकर बड़ी प्रसन्नतासे मिले और परस्पर कुशलजेम पूछकर वहीं पर रहने  
लगे सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें प्रेम करनेवाले दो भाइयोंके समागमसे और अधिक प्रेम करनेवाली कोई चीज नहीं  
है ॥ ४३५-४३७ ॥ अथानंतर इसी प्रसिद्ध सुजन देशमें एक शोभा नामका नगर है उसमें राजा दृढमित्र राज्य करता था उसके  
भाईका नाम सुमित्र था और उसकी वसुधरा नामकी रानीसे रूप और विज्ञानसे सुशोभित ऐसी श्रीचंद्रा नामकी कन्या थी ॥  
४३८-४३९ ॥ उसकी यौवन अवस्था प्रारंभ हो रही थी । किसी एक दिन उसके घरके आंगनमें कवुतर कवुतरी अपनी इच्छानु-  
सार स्वतंत्रतापूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे उन्हें देखकर श्रीचंद्राको अकस्मात् जातिस्मरण हुआ और वह मुग्धित हो गई । उसे  
मुग्धित देखकर उसके समीप रहनेवाली सखियां व्याकुल हो गई और उनमें जो चतुर थीं उन्होंने चंदन और उसीरसे

दिनै प्राणि च तत्सुरात् ॥ ४१९ ॥ चापवाणधरो गत्या विषये सुजनाहुये । हेमामनगर प्राप्त कुमार पुण्यसाधनः ॥ ४२० ॥ तत्पतिर्दुर्मित्राद्यो नस्मिन्  
तस्य बलमा । हेमामाख्या तयो पुत्री तज्जन्मन्येव केनचित् ॥ ४२१ ॥ कृत मिलनमादेशो मनोहरवनांतरे । खल्वरिकाया धानुष्कव्यायामे येन चोदितः ॥  
४२२ ॥ लक्ष्याभ्युणोद्विहस्त सन् शरः पश्चात्समेष्यति । बलमा तस्य बालेय भवितेति सुलक्षणा ॥ ४२३ ॥ धनुर्विद्याविद सर्वे तददिशश्च तेस्तदा । तथा गु-  
णयितु युक्ता समभूवस्तदाशयाः ॥ ४२४ ॥ जीवंधरकुमारोऽपि तत्प्रदेवायुपागमत् । धानुष्कास्तं विलोक्यादुरादेशोऽकधनुःश्रमः ॥ ४२५ ॥ किमगास्ती-  
ति सोऽप्याह किंचिदस्तीति तैरिद । विध्यता लक्षमित्युक्तः सज्जीकृतधनुःशरः ॥ ४२६ ॥ आदाय विद्वर्वाहसमप्राप्यैव न्यवर्तते । त तदालोक्य तत्रस्था  
महीपतिमबोधयन् ॥ ४२७ ॥ श्रुयमाणो हि मे वक्षीविशेषधरणेऽसजत् । इति क्षितीश्वर प्रीतो विवाहविधिना मुता ॥ ४२८ ॥ अश्राणयद्विभूल्यास्मे त-  
दिद पुण्यसुच्यते । आदिमो गुणमित्रोऽन्यो बहुमित्रस्ततः पर ॥ ४२९ ॥ सुमित्रो धनमित्रोऽन्यस्तयान्ये चास्य मैमुनाः । तांस्तान् सर्वान्सविज्ञानकुशलान्विदय

गंधर्वदत्ता अपनी विद्यासे जीवंधरके समीप आई और जीवंधरको सुखी देखकर छिपकर ही फिर अपने राजपुर नगरमें  
आगई सो ठीक ही है क्योंकि प्यारोंको देखकर उत्सव मानना ही प्रेम करनेवालोंका प्रेम कहलाता है । तदनंतर कितने  
ही दिनोंके बाद पहिलेके समान उसनगरसे भी वह पुरयवान् कुमार छिपकर निकला और धनुषबाण लेकर मुजन नामके  
देशके हेमाभ नामके नगरमें जा पहुंचा ॥ ४१७—४२० ॥ वहाँके राजाका नाम दृढमित्र था और उसकी रानी नलिना-  
से हेमाभा नामकी पुत्री हुई थी । उसके जन्म होते ही किसी निमित्तज्ञानीने कहा था कि मनोहर नामके जन्ममें  
जो आयुधशाला है उसमें धनुषविद्याके व्यायाममें जो कोई पुरुष ठीक निशानेपर बाण मारेगा और वह बाण निशानेको  
मारकर पीछे वापिस आजायगा वह पुरुष इस सुलक्षणा कन्याका पति होगा ॥ ४२१-४२३ ॥ उस आदेशको सुनकर  
उससमय धनुषविद्याको जाननेवाले सब लोग उस कन्याके लोभसे उसीप्रकारका अभ्यास करनेमें तत्पर होरहे थे ॥ ४२४ ॥  
चलता चलता जीवंधर कुमार भी वहीं पर जा पहुंचा उस देखकर धानुष्क लोग कहने लगे कि हे भाई राजाकी ऐसी  
आज्ञा है क्या तुमने कभी धनुष चलानेका परिश्रम किया है? उत्तरमें जीवंधरने कहा कि हां! कुछ किया है तब उन लोगोंने कहा  
कि अच्छा तो इस निशानको मारो । तब जीवंधरने धनुष बाण तैयार कर वह निशाना मारा और वह छोटा हुआ  
बाण उस निशानेके समीप पहुंचकर लोंट आया इस बातको देखकर वहां खड़े हुये लोगोंने राजाको खबर दी । यह ख-  
बर सुनते ही राजा कहने लगा कि जिस खास बेलको ढूंढ रहे थे वही परसे आ लगी । राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस-  
ने बड़ी विधित्तिके साथ विवाहकी विधिपूर्वक वह कन्या जीवंधर कुमारको दे दी सो ठीक ही है क्योंकि पुराय इसीको

भारवं । ततोपुरकवाटानामुद्वटनममृतस्वय ॥ ४०८ ॥ तद्विलोक्य समुत्पन्नमपि आनविष्टुदिमाकं । तत्सरोवरसमृत्प्रसववहुमिजिन ॥ ४०९ ॥ अग्न्य-  
 द्याच्यैर्मुदा क्यप्रमस्तोष्ठैश्चरमिदुवै । सुता तत्र सुभाख्यश्रद्धिनो निवृत्तेश्च सा ॥ ४१० ॥ साक्षादस्मीदिवक्षणाभूमात्रा क्षेमसुंदरी । तद्भविभर्तृसंनिध्ये  
 चंपकप्रसवादिक ॥ ४११ ॥ समादिकसुरा सर्व मुनीशो विनयधरः । तत्रस्थास्तत्परीक्षार्थं नियुक्तुरुवास्ता ॥ ४१२ ॥ जीवधरकुमारालोकनाब्जातसम-  
 दा । सफलोऽस्माप्रियोगोऽयूदिति तत्क्षणमेव ते ॥ ४१३ ॥ न्यबोधयत्समस्त तत्संप्राप्य स्वामिनः निज । सोऽपि सनुष्य नासत्य मुनीनां जातुचिद्वचः ॥  
 ४१४ ॥ इति तस्मै सुता योग्या विधिना श्रीमतेऽवित । तथा श्राम्ये मुवा राजपुरे निवसते वृष ॥ ४१५ ॥ सत्यधरोऽददेतद्वरेतास्माद्य वे । योग्या-  
 स्तात्त्व गृह्णाणेति भूयस्तेनास्मिमावितः ॥ ४१६ ॥ गृहीत्वा सुखं सनुष्टानपुरं सुखमावसत । एव गच्छति कालेऽस्य कदाचिन्निजविषया ॥ ४१७ ॥ गण-  
 वेदता संप्राप्य जीवधरकुमारकं । तं सुखासीनमालोक्य केनाप्यविवर्तित पुनः ॥ ४१८ ॥ आयाद्वाजपुरं प्रीति प्रीतानां हि प्रियोत्सवः । ततः कतिपयैरेव  
 जल पुष्प ये सब स्पष्ट रीतिसे खिल गये थे और उन पर संध्रमके साथ आये हुए अमर शब्द करने लगे थे तथा जि-  
 नालयके बड़े दरवाजेके किवाड अपने आप खुल गये थे ॥ ४०७-४०८ ॥ इन सब बातोंको देखकर उसकी गाढ भक्ति  
 और प्रगट हुई उसने उसी सरोवरमें उत्पन्न हुए अनेक फूलोंसे भगवानकी पूजा की तथा अग्यौसे भरे हुए अनेक इष्ट  
 स्तोत्रोंसे निश्चल होकर भगवानकी स्तुति की उस नगरमें श्रेष्ठ सुभद्रकी निवृत्ति नामकी स्त्रीसे एक नेमसुंदरी नामकी क-  
 न्या थी जो कि साक्षात् लक्ष्मीके समान सुशोभित थी । किसी एक समय मुनिराज विनयधरने कहा था कि इस नेम  
 सुंदरीके पतिके आने पर चंपक वृक्ष फूल जायगा किवाड खुल जायंगे आदि ऊपर लिखे हुए सब चिन्ह बतलाए थे इस  
 लिए उस श्रेष्ठकी ओरसे उसकी परीक्षाके लिए बहुतसे पुरुष नियुक्त थे वे जीवधर कुमारको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए  
 थे और कहने लगे थे कि आज हम लोगोंका यहां नियुक्त होना सफल हो गया । वे लोग उसी समय दौड़े और अपने  
 स्वामीके पास जाकर उन्होंने वहांका सब समाचार निवेदन किया वह श्रेष्ठ भी इस समाचारसे बहुत संतुष्ट हुआ और  
 मनमें कहने लगा कि मुनियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते हैं । इस प्रकार प्रसन्न होकर उसने उस श्रीमान् जीवधर  
 कुमारको विधिपूर्वक अपनी योग्य कन्या समर्पण की । तदनंतर वह श्रेष्ठ जीवधरसे निवेदन करने लगा कि पहिले जब मैं  
 राजपुर नगरमें रहता था तब राजा सत्यधरने मुझे यह धनुष दिया था और ये बाण दिये थे वे आपके ही योग्य हैं इसलिये  
 इन्हें आप ही स्वीकार कीजिये इस प्रकार कह वह धनुष और बाण भी समर्पण करदिये ॥ ४०९-४१६ ॥ जीवधर  
 सबको लेकर संतुष्ट हुआ और उसी नगरमें सुखसे रहने लगा । इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर किसी एक समय

उपि तद् द्वापये किंविन्मयेति प्रत्याभाषत । तद्वच्चुत्तिसंशुष्टस्ते नयति स्म त मुदा ॥ ३९७ ॥ सोऽपि यक्षमनुस्तस्य मणिमन्त्रविशारदः । अभिमन्त्राक-  
रोद्धीतविषयेना नृपात्मजा ॥ ३९८ ॥ जातदोषी नृपस्तस्य सत्त्वच्छायादिलक्षणे । अवश्य राजवशोऽयमिति निश्चिद्य पुत्रिका ॥ ३९९ ॥ अर्धराज्यं च  
पूर्वोक्त तस्मै वितरति स्म सः । ततः स लोकपालादिकन्यकाभ्रातृभिः सम ॥ ४०० ॥ द्वात्रिंशता चिरं रेमे तद्वर्णनुरजित । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा  
दैवप्रचोदित ॥ ४०१ ॥ कदाचिन्निशि केनापि जनेनानुपलक्षित । गत्वा गन्धुतिका काचित्क्षेमाख्याविषये पुरं ॥ ४०२ ॥ क्षेमाह्वयमवाप्यास्य वने बाधे  
मनोरमे । सहस्रकूटे राजत जिनालयमलोकत ॥ ४०३ ॥ लोकनानतर नत्वा कृताञ्जलिपुट पुनः ॥ ४०४ ॥ वि परीत्य स्तुतिं कर्तुं विधिनातन्धवास्तदा ॥ ४०५ ॥ चिकित्सिता इव  
सहस्रवारान्नो राग व्यक्त बहिरिवार्षेयन । चपकानेकह प्रादुरासीदको निजोद्भूतै ॥ ४०६ ॥ कोकिलाद्य पुरा मूकीभूतास्तथानभेवजैः । चिकित्सिता इव  
श्रव्यमकूजन्मधुरस्वन ॥ ४०७ ॥ तज्जनभवनाभ्याग्धैर्वितिन्यच्छाब्दुसमृते । स्फाटिकवर्णैर्वा व्यक्तसन् सरसि स्फुट ॥ ४०८ ॥ सर्वाणि जलपुष्पाणि मन्त्रमध्वज-

भी कहा कि हां थोडा बहुत जानता हूं । जीवंधरकी यह बात सुनकर वे लोग बड़े संतुष्ट हुए और प्रसन्न होकर जीवंधर  
को राजा धनपतिके पास ले गये ॥ ३९७ ॥ मणि और मंत्रोंके जाननेमें चतुर ऐसे उस जीवंधरने भी यक्षका स्मरण  
किया और फिर उस राजपुत्रीको मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर विपरहित कर दिया ॥ ३९८ ॥ इससे राजा धनपतिको बहुत  
संतोष हुआ और उसने तेज तथा छाया आदि लक्षणांसे निश्चय कर लिया कि यह अवश्य ही राजवंशमें उत्पन्न हुआ  
है इसलिये उसने अपनी पुत्री और पहिले कहा हुआ आधा राज्य उसे समर्पण कर दिया । तदनंतर लोकपाल आदि  
पञ्चोत्तमाके वत्सीस भाइयोंके विनय आदि गुणोंसे प्रसन्न होकर कुमार जीवंधर बहुत दिन तक उन्हींके साथ क्रीडा करने  
लगा । वह कुमार थोड़े दिन तक वहां रह कर भाग्यके द्वारा प्रेरणा किया हुआ किसी एक दिन रात्रिमें सब लोगोंसे  
छिप कर वहांसे चल दिया । थोड़े ही कोस चल कर वह क्षेम नामके देशमें क्षेम नामके नगरमें पहुंचा और वहांके मनो-  
हर नामके वाहरके वनमें उसने एक हजार शिखरोंसे सुशोभित एक जिनालय देखा ॥ ३९९-४०३ ॥ जिनालयको दे-  
खतेही उसने नमस्कार किया हाथ जोड़े तीन प्रदक्षिणाएं दी और उसी समय उसने विधि पूर्वक स्तुति करना प्रारंभ  
किया ॥ ४०४ ॥ उसी समय अकस्मात् एक चपक दृप्त मानों अपना प्रगट अनुराग बाहर समर्पण करता हुआ फूलोंसे  
सुशोभित हो गया ॥ ४०५ ॥ जो कोयले पहिले गूंगी सरिसी हो रही थीं वे उस कुमारके आने रूप औपधिसे इलाज  
की हुईके समान अच्छी होकर सुनने योग्य मधुर शब्द बोलने लगीं ॥ ४०६ ॥ उस जिनालयके भीतर जो स्वच्छ जल  
से भरा हुआ सरोवर था जो कि ऐसा जान पड़ता था मानों स्फटिक पत्थरसे चू चू कर ही भर गया हो उसमें जितने

कुमारस्य न मीरस्ति तस्माद् भीता का मात्रा योः । समक्षेतीति तान् सर्वान् प्रशान्तिं प्रापयत्युभौ ॥ ३८६ ॥ जीवधरोऽपि यक्षस्य वसतौ सुमिरं सुखं । स्थिता जिगमिषा स्वस्याङ्गापययषस्यमितिः ॥ ३८७ ॥ तदभिप्रायमालक्ष्य यक्षो वत्सा स्फुरत्प्रभा । साषनीमीरसितार्याना मुद्रिका कामरूपिणी ॥ ३८८ ॥ तद्वदेवतीर्ण न मीरस्य कुतश्चन । इति किंचिदनुव्रज्य तमसुंचकृताचेन ॥ ३८९ ॥ कुमारोऽपि ततः किंचिद्वलातरमुपेयिवान् । पुर चक्षभनामान सज्योस्त वा युधागृहे ॥ ३९० ॥ दृपो धनपतिस्तस्य पालको लोकपालवत् । देवी तिलोत्तमा तस्य तयोः पद्मोत्तमा सुता ॥ ३९१ ॥ सा विहर्तुं वन याता दद्या दुष्टाहिना तदा । य इमा निर्दोषा कुथान्मणिः स्रौपयादिभिः ॥ ३९२ ॥ मयेय कन्यका तस्मै सार्धराब्ध्या प्रदास्यते । घोषणामिति भूपाल पुरे तस्मिन्भीकृत ॥ ३९३ ॥ फलिवैयस्तदाकर्ण्य प्रागव्यादिष्टमीदृशः । मुनिनादितानाम्नेति कन्यालोभाक्किंचित्सु ॥ ३९४ ॥ सप्राप्य बह्वौ नोपसहर्तुं तदश- वमुवन् । राजाज्ञया पुनर्वैयमन्वेष्टुं परिचारका ॥ ३९५ ॥ धावतो दैवसयोगालुकुमारम्बलोक्य ते । किमस्ति विषविज्ञानमित्यष्टुच्छत्माकुला ॥ ३९६ ॥ सो- ३८६ ॥ कुमारजीवंधरभी यक्षके निवासस्थानमें बहुत दिनतक सुखसे रहा और फिर इशारोंसेही उसने यक्षसे अपने जानकी इच्छा प्रगट की ॥ ३८७ ॥ यक्षने जीवंधरका अभिप्राय जानकर उसे जिसकी कांति देदीप्यमान है जो इष्ट पदार्थोंको लेकर वह जीवंधर उस पर्वतसे उतरा, उसको किसी तरहका डर नहीं था वह यक्ष कुछ दूर तक तो उसके साथ गया और फिर उसकी पूजा कर उसे विदा किया ॥ ३८८ ॥ कुमार जीवंधर वहांसे कुछ दूर चल कर चूनासे पुते हुए घरों से मानों चांदनीके समान शोभायमान ऐसे चद्राभ नामके नगरमें पहुंचा ॥ ३८९ ॥ वहांके राजाका नाम धनपति था जो कि लोकपालके समान प्रजाका पालन करता था उसके तिलोत्तमा नामकी रानी थी और पद्मोत्तमा नामकी पुत्री थी ॥ ३९० ॥ इसलिये उसके पिता राजा धनपतिने अपने नगरमें घोषणा करदी थी कि जो कोई मणि मंत्र औषधि आदिकसे इस कन्याका विप दूर करेगा उसे मैं यह कन्या और आया राज्य दूंगा ॥ ३९१-३९३ ॥ आदित्य नामके मुनिराजने पहिले ही यह बात कह रक्खी थी इसलिये राजाकी यह घोषणाको सुनकर सांपके काटेका इलाज करनेवाले बहुतसे वैद्य लोग कन्याके लोभसे चिकित्सा ( इलाज ) करनेको आये परंतु उस विषको कोई भी दूर न कर सका । तदनंतर राजाकी आज्ञासे बहुतसे सेवक लोग वैद्यको ढूंढनेके लिये दौड़े । दैवयोगसे कितने ही सेवकोंने कुमार जीवंधरको देखकर उससे भी व्याकुलताके साथ पूछा कि क्या आपको विष उतारनेका कुछ ज्ञान है ॥ ३९४-३९६ ॥ इसके उत्तरमें जीवंधरने



पारशस्त्रमुत्तरोष्ठु मर्दपगजबाधन ॥ ३७४ ॥ इत्या जीवधरस्तस्य परिभृतिं व्यधादधीः । पथ्यामलकुशुआदिदानमहणकर्मण ॥ ३७५ ॥ निजजालानुरागद्वयो विमुख सुष्ठु गर्वितः । राजपुत्रोन्मिते वृत्ते निपक्वोय वरोद्वजः ॥ ३७६ ॥ कृतांतवदन्त सद्यः प्रापयेम कुचेष्टितं । इत्याह्वयबट्टदहाह्व्य मुख्य तत्पुनरक्षिणा ॥ ३७७ ॥ स सनन्दल्लोऽधावदमिजीवधरं कुधा । स कुमारोऽपि तद्वह्मला ससहायो युधुसया ॥ ३७८ ॥ तमप्येत्य तंदबास्मै ददौ भगमभयुरः । पुनः कुपितवान्काष्ठागारिक स्वबल बहु ॥ ३७९ ॥ ग्राहिणोत्त निरीक्ष्याग्निस्तो जीवधरो कृधा । क्षुद्रप्राणिविधातेन किमनेन दुरात्मकं ॥ ३८० ॥ काष्ठागा रिकमेवैनमुपायैः प्रशम नये । इति यक्षः निज मित्रमस्मरत्तोऽप्युपागत ॥ ३८१ ॥ ज्ञातजीवधराकृतस्तत्सर्वं शंतिमानयत् । ततो विजयनिर्याह्य समा- रोध्य गज धिप ॥ ३८२ ॥ कुमारं तदनुज्ञानात्स्वावासमनयत्क्षुह्वर । स्वगेहदर्शनं नाम सद्भाष सुहृदा स हि ॥ ३८३ ॥ सहाया नांश्चवाबास्य प्रहृतेन- सिद्धकाः । पवनान्योलितालोलवालपल्लवलीलया ॥ ३८४ ॥ अकम्पिषत् सर्वेऽपि स्वान्स्वर्धनुर्माषका । गन्वदत्ता तयाननिमित्तज्ञा निराकुला ॥ ३८५ ॥

खोटी चेष्टा करनेवाले इसको मैं अभी यमराजके मुहमें पहुँचाऊँगा इसप्रकार उसने नगरकी रक्षा करनेवालोंमें प्रधान ऐसे चंडदंड नामके कोतवालको उसके मारनेकी आज्ञा दी ३७३-३७७ ॥ वह कोतवाल भी क्रोधित होकर अपनी सब सेना लेकर जीवधरके सामने गया परंतु नाश न होने वाला ( चरमशरीरी ) कुमार जीवधर भी यह सब समाचार जान- कर युद्ध करनेकी इच्छासे अपने सब साथियोंको लेकर उस कोतवालके सामने गया और उसीसमय उस कोतवालकी जीवधरने भारी हार दी । इससे काष्ठांगार और भी क्रोधित हुआ और उसने अपनी बहुतसी सेना उसपर भेजी उस सेनाको देखकर जीवधरके चित्तमें दया उत्पन्न हुई और वह विचार करने लगा कि व्यर्थ ही इन क्षुद्र प्राणियोंके मारने से क्या लाभ है इस क्षुद्र काष्ठांगारको ही अनेक उपायोंसे शांत करना चाहिये । इसप्रकार सोचविचारकर उसने अपने मित्र यक्षको स्मरण किया और स्मरण करते ही वह भी तुरंत ही आ पहुँचा ॥ ३७८-३८१ ॥ उस यक्षने जीवधरका अभिप्राय जानकर सब उपद्रव शांत कर दिया । तदनंतर वह यक्ष कुमारकी सम्पत्तिके अनुसार कुमारको विजयगिरि नाम के गजराजपर सवार कराकर अपने घर लेगया सो ठीक ही है क्योंकि अपना घर दिखाना मित्रोंका सद्भाव सदा ही रहता है ॥ ३८२-३८३ ॥ जीवधरकी प्रवृत्तिको न जाननेवाले उसके साथी और भारी बंधु लोग वायुसे हिलाये हुए चंचल छोट्टे पत्थोंके समान कंपने लगे और वे सब अपने आपको संभाल न सके परंतु गंधर्वदत्ता जीवधरके जानेका का- रण जानती थी इसलिये वह घबड़ाई नहीं और निराकुल होकर उस बुद्धिमतीने सबको समझाया कि 'कुमार को किसी बातका डर नहीं है तुम लोग भय मत करो कुमार शीघ्रही आँवेँगे' इसप्रकार समझाकर उसने सबको शांत किया ॥ ३८४-

स्वया ॥ ३६४ ॥ कुमारैति तस्यैव स्वं धामैव जगाम सः । अकारणोपकाराणामवश्यभावि तत्फलं ॥ ३६५ ॥ चिरं बने विहस्यैवं निवृत्ता गंधवारण । तन्महीशस्य नास्माकानिवेगोऽजनि घोषतः ॥ ३६६ ॥ समुद्रांतोऽतिवीर्योऽन्यैरथावत्पुंक्ष्ण प्रति । खलु सुरमर्त्याः स कुमारो विलोक्य त ॥ ३६७ ॥ विनयोनयनिर्गतक्रियः सप्राप्य हेलया । कृत्वा परिभ्रमं तस्य द्वाविंशत्केलिभिः स्वय ॥ ३६८ ॥ वीतश्रमस्तमससंदं हेलयालानमापयत् । दृष्ट्वास्य गजविभामिन्ध्र युक्ति । माता पिता च जीवधराभिलापपरायण ॥ ३६९ ॥ विज्ञाय ता निवेदयन्तत्पित्रे तदनुज्ञया । विभूतिमकुमाराय शुभयोगे वितरेतु ॥ ३७० ॥ ततः समुचितप्रेमा स काम सुखमन्वभूत् । तत्र तच्छैत्यसद्व्यायसकथा सतत जनैः ॥ ३७१ ॥ क्रियमाणा दुरात्मासौ काष्ठागारिकभूपतिः । को-

विजलीके समान शब्द करता हुआ अशनिवेग नामका गंधवारण हाथी दिखलाई दिया । वह हाथी मदनोन्मत्त हो रहा था, अन्य साधारण मनुष्य उसे वश नहीं कर सकते थे और पागलकी तरह वह सुरमंजरीके रथकी ओर दौड़ रहा था । कुमार जीवंधरने उस रथमें सुरमंजरीको देखकर हाथीकी विनय और उन्नय क्रियाको भट पहिचान लिया वह लीलापूर्वक उसके पास पहुंचा, वत्सीस तरहकी क्रीडाओंके द्वारा उससे परिश्रम नहीं किया और थोड़ी ही नेरमें चैष्टा रहित कर उसे खूदेसे वाय दिया । वहां खड़े हुए लोग जीवंधरकी ऐसी हाथीकी शिक्षा देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए नगरमें प्रवेश करने लगे ॥ ३६६-३६९ ॥ उस दिनसे लेकर जीवंधर कुमारको देखनेसे सुरमंजरीका हृदय भी व्याकुल होगया और वह कामसे मोहित होगई ॥ ३७० ॥ सुरमंजरीके माता पिताने उसकी चैष्टा आदिके अनेक इशारोंसे तथा उसकी कही कथा आदिकोंसे बड़ी युक्तिसे यह बात जानली कि उसकी चैष्टा लाषा जीवंधर कुमारकी ओर है । तदनंतर उन्होंने जीवंधरके माता पितासे निवेदन किया और उनकी आज्ञानुसार किसी शुभ योगमें अत्यंत ऐश्वर्यको धारण करनेवाले जीवंधर कुमारको वह कन्या समर्पण की ॥ ३७१-३७२ ॥ इसके बाद योग्यतानुसार प्रेम करनेवाला वह कुमार अपनी इच्छानुसार सुखोंका अनुभव करने लगा । अथानंतर-नगरके लोग सदा जीवंधरकी शूरवीरता और भाग्यशीलता की कथा करने लगे परंतु उसे दृष्ट राजा काष्ठांगार सह नहीं सका इसलिये उसने क्रोधमें आकर लोगोंसे कहा कि इस मुख जीवंधरने मेरे गंधवारण हाथीको वाधा पहुंचाकर उसका तिरस्कार किया है । यह वैश्य है इस लिये हरद आमले सोंठ आदि चीजोंकी खरीद विक्री करना इसका काम है परंतु यह अपनी जातिमें होनेवाले कामोंको तो नहीं करता और लुट्र होकर भी राजपुत्रोंके योग्य कामोंमें आसक्त होता है । इसलिये

रघुवधर । परीक्ष्य तत्सव्य सम्यक्श्रेष्ठश्चंद्रोदयोऽनयोः ॥ ३५५ ॥ प्रत्यागः कोऽस्य चैवक दर्शयामीति तद्दृश्य । अवष्टभ्य स्वहस्ताभ्यां विनिक्रिप ततो  
 दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५७ ॥ तदा प्रभृति ते, कन्ये परस्परनिबधन । ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-

कर उसने दोनों हाथोंमेंसे दोनों चूण लिये और शीघ्रताके साथ दोनों ही फेंक दिये । उन दोनों चूणोंके फेंकते ही सु-  
 गंधिकी उत्कटतासे बहुतसे भ्रमर चंद्रोदय चूण पर आ जमे यह देखकर वहा पर बैठे हुए उस विधाके जानकार सब  
 लोग जीवंधरकी ईर्ष्या छोड़ दी और दोनोंने आगे ईर्ष्या न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली ॥ ३५६-३५७ ॥ उस दिनसे लेकर उन दोनों कन्याओंने विधासे उत्पन्न होनेवाली

अन्यन्तर-किसी एक समय नगर निवासी लोग अपनी इच्छानुसार वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे । वहांपर  
 किसी एक कुत्तेका देखकर दृष्ट बालकगण मारने लगे वह कुत्ताभी चपल था इसलिये भयसे व्याकुल होकर दौड़ता हुआ  
 किसी कुंडमें जाकर गिर पड़ा और वही पर मरनेके सन्मुख हो गया ॥ ३५६-३५७ ॥ जीवंधर कुमारने अपने सेवकों द्वारा  
 वह कुत्ता वहां से उठाकर भंगवाया और उसके कानमें पंचनमस्कार मंत्र सुनाया ॥ ३६१ ॥ ध्यानपूर्वक ध्वज नमस्कार  
 मंत्रको ग्रहणकर वह कुत्ता मरा और चंद्रोदय पर्वतके ऊपर सुदर्शन नामका यस हुआ । उसीसमय (अवधि ज्ञानके द्वारा)  
 उसे पूर्व भवकी बात याद आई, वह उसीसमय कुमार जीवंधरके समीप आया और स्तुति करने लगा कि 'हे प्रभो !  
 आपके प्रसादसे ही मुझे यह ऐसी विभूति प्राप्त हुई है' इसप्रकार स्तुतिकर उसने सब लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया ।  
 तदनंतर किये हुए उपकारको माननेवाले उस यज्ञने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे जीवंधरकी पूजा की और कहा कि 'हे कुमार  
 आजसे लेकर किसी उत्सव अथवा आपत्तिमें मुझे स्मरण करना' इस प्रकार जीवंधरकी पूजाकर वह यस अपने स्थानको  
 चला गया सो ठीकही है क्योंकि जो विना कारणके ही परोपकार करते हैं उन्हें उसका फल अवश्य ही मिलता है ॥  
 ३६२-३६६ ॥ अथानंतर वनमें बहुत देर तक क्रीडा कर वह जीवंधर कुमार लौट रहा था कि उसे राजा काष्ठांगारका

गात् । निर्वृतिः परमा काष्ठा समस्योगसंभवा ॥ ३४५ ॥ अथान्यदा भवा भो भद्वन्दोदयसाधने । इराक्षिमल्योषाने वनकीर्तानिमित्तक ॥ ३४६ ॥ नृपेण सह सर्वेषु पारेषु सुखस्त्वियया । आविष्कृतस्त्वसंपत्तु यातेषु परमोत्सवात् ॥ ३४७ ॥ पुरे तस्मिन्वणिगमुख्योऽभूद्वैश्रवणदत्तवाक् । तन्ना चतुर्भ्यश्चा तस्यासी-  
 त्पुरमजरी ॥ ३४८ ॥ तस्या श्यामलता चेटक्यसौ चोदयाह्वयः । चूर्णवासोऽयमस्त्यन्यो नास्माद्वन्वेन बहुरः ॥ ३४९ ॥ इत्यात्मस्वामिनीदाश्यप्रकाशन-  
 परायणा । इतस्तत्समुद्रवृष्य विचचार जनांतरे ॥ ३५० ॥ कुमारदत्तवैश्यस्य विमलायां सुताभवत् । गुणमालामला तस्यावेष्टकी पटुभाविणी ॥ ३५१ ॥  
 विद्युल्लतामिधा चूर्णवासोऽय पटुपदाव्रत । बर्गैः सुयोदयो नाम नेष्टक् स्वर्गेऽपि विद्यते ॥ ३५२ ॥ इति विद्वत्सभामध्ये भूयः स्वस्वामिनीगुण । विद्योत्तयती  
 बभ्राम सुभ्रूर्गर्वमहाहिता ॥ ३५३ ॥ एव तथो समुद्रभूतमात्सर्याहितचेतसो । विवादे सति तद्विधवावेदिनस्तत्परिहितु ॥ ३५४ ॥ अथुवशक्षमास्तत्र जीवध-  
 पिताको कन्या समर्पण करनेके सिवाय और कुछ कार्य ही नहीं है । ॥ ३४४ ॥ जिनका परस्पर प्रेम और सुख बढ रहा  
 है ऐसे उन दोनोंका ( जीवधर और गंयर्वदत्ताका ) सम संयोगसे उत्पन्न होनेवाला सुख सबसे उत्तम सीमाको पहुँच  
 गया था ॥ ३४५ ॥ अथानंतर-कामदेवको उत्तेजित करनेवाला वसंत ऋतु आया उसमें सब नगर निवासी लोग सुखकी  
 इच्छासे अपने अपने सब ऐश्वर्यके साथ बडे उत्सवसे राजाके साथ सुमलयोधानमें वनक्रीडा करनेके लिये गये । उसी न-  
 गरमें एक वैश्रवणदत्त नामका अच्छा वैश्य रहता था उसकी आभ्रमंजरी स्त्रीसे सुरमंजरी नामकी कन्या हुई थी ॥ ३४६-  
 ३४८ ॥ उस सुरमंजरीकी श्यामलता नामकी दासी थी वह भी सुरमंजरीके साथ उसी उद्यानमें आई थी उसके पास  
 चंद्रोदय नामका एक सुगंधित चूर्ण था उसको लेकर 'रस चूर्णके सिवाय संसारमें और कोई सुगंधित चूर्ण है ही नहीं'  
 इस प्रकार घोषणा करती हुई वह इधर उधर घूम रही थी और अपनी स्वामिनीकी चतुरता प्रगट कर रही थी ॥ ३४९-  
 उसी नगरमें कुमारदत्त वैश्यकी विमला स्त्रीसे निर्मल गुणमाला नामकी पुत्री थी और उस गुणमालाकी चतुरताके साथ  
 भाषण करनेवाली विद्युल्लता नामकी दासी थी । अच्छी भोहोंको धारणा करनेवाली अभिमानरूपी पिशाचके फंदेमें फंसी  
 हुई वह विद्युल्लता भी विद्वानोंकी सभामें बार बार अपनी स्वामिनीके गुणोंको प्रकाशित करती हुई यह कहती हुई घूम  
 रही थी कि 'यह सुयोदय नामका चूर्ण है यह इतना सुगंधित है कि अगर आकर इस पर पड रहे हैं ऐसा सुगंधित चूर्ण  
 स्वर्गमें भी नहीं मिल सकता ॥ ५१-५३ ॥ इस प्रकार उन दोनोंका हृदय ईर्ष्या और डाहसे भर गया और परस्पर वि-  
 वाद करनेकी ठहरी । परंतु विद्याको जाननेवाले लोगोंने उसकी परीक्षा की और बतला दिया कि इन दोनोंमें चंद्रोदयचूर्ण  
 बहुत अच्छा है ॥ ३५४-३५५ ॥ इसका विश्वास कैसे हो इसको भी मैं स्पष्ट रीतिसे दिखला देता हूं इस तरह कह

कीर्णां स्वकरस्मा कृतादर ॥ ३३३ ॥ तमादाय कुमारं शास्त्रमार्गानुशरिणा । गीतमिष्टितबायेन मंत्रतारेण शरिणा ॥ ३३४ ॥ मधुरेण शृगाणा च मनो-  
विभ्रमकारिणा । तद्विद्याशास्त्रबादोद्ग्रसूनाचनभासिना ॥ ३३५ ॥ हृदि गन्धर्वदत्तेन पंचबाणप्रचोभिता । मालयालंकाराये संयुक्ते किं न जायते ॥ ३३६ ॥  
हीनामासोऽभ्यवन् केनिहिनदीयोपमा परे । निवाप्रवीपर्वकाशा भासमानानास्तदा ॥ ३३७ ॥ सुयोधादेतुनाप्राप्तकुमारा परितोषिणी । गंधर्वदत्ता तां वीणा-  
मात्मन्येवमभाषत ॥ ३३८ ॥ “कुलोचिता सुयोधा त्व मधुरा चित्तहारिणी । कुमारसंगमे हेतुर्दत्तीय कुशाळा मम” ॥ ३३९ ॥ काष्ठागारिकपुत्रेण चोक्षितेन  
सुदुर्जने । गंधर्वदत्तामाहर्तुमुद्यमो विहितस्तदा ॥ ३४० ॥ कुमारोऽपि विशिलितदलाधिकपुर सरै । विद्याधरै समं गंधगज जयनिरिष्टुति ॥ ३४१ ॥ आ-  
रक्ष शत्रुमैत्र्यस्स प्रतीपमगमकुशा । तदा गरुडवेगादयो विद्याधरवराधिपः ॥ ३४२ ॥ पिता गंधर्वदत्ताया गत्वा मध्यस्थतां तयो । उपायकुशलं शत्रुबलं  
रक्ष शत्रुमैत्र्यस्स प्रतीपमगमकुशा । तदा गरुडवेगादयो विद्याधरवराधिपः ॥ ३४३ ॥ ततस्तयोर्विवाहेन विद्यायास्तौ समागम । कृतार्थोऽभूत्पितृनुन्यात्कार्यं कन्यासमर्पणात् ॥ ३४४ ॥ तयोः परस्परप्रेमप्रवृद्धमुल्लयोर-  
प्रथममानयत् ॥ ३४५ ॥

शास्त्र मार्गके अनुसार था, गीत और वाजेकी आवाज दोनोंसे मिला हुआ था, गंधीर ध्वनिसे भरा हुआ था, मनोहर था, मधुर था, हिरण्योके मनको भी विभ्रम उत्पन्न करनेवाला था और उस विद्या संबंधी धन्यवाद रूपी फूलोंकी पूजासे सुशोभित था । जीवन्मरका ऐसा गाना देखकर कामके वारणोंके द्वारा प्रेरणाकी हुई गंधर्वदत्ताने उसका हृदय मालासे अलंकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि पुराणके सन्मुख रहने पर क्या नहीं हो सकता है ॥ ३३४-३३६ ॥ जिनके मुख पहिले रात्रिमें दीपकके समान दैदीप्यमान थे उन लोगोंमेंसे जीवन्मरके गलेमें माला पहने ही कितने तो कांतिहीन हो गये और अन्य कितने ही दिनमें जलाए हुए दीपकके समान निस्तेज हो गये ॥ ३३७ ॥ उस सुयोधा वीणाके द्वारा जिसे जीवन्मर कुमार प्राप्त हुआ है ऐसी संतुष्ट हुई वह गंधर्वदत्ता मनमें ही उस वीणासे इस प्रकार कहने लगी कि ‘हे सुयोधपत्नी तू मधुर है, चित्तको हरण करनेवाली है और श्रेष्ठ कुलके योग्य है तू इस कुमारके समागम होनेमें मेरी आज्ञा त्वत् कुशल दूतीके समान कारण हुई है’ ॥ ३३८-३३९ ॥ उस समय दुष्टोंके द्वारा प्रेरणा किए हुए काष्ठागारिक पुत्र त्वत् कुशल दूतीके समान कारण हुई है ॥ ३४० ॥ कुमार जीवन्मर भी यह सब समाचार जानकर अधिक कालांगारिकने गंधर्वदत्ताको साथ लेकर तथा जयगिरि नामके गंधगज पर ( गंधजातिके हाथी पर ) सवार हो कर क्रोधपूर्वक बलशाली विद्याधरोंको युद्ध करनेको चला । इतनेमें ही गंधर्वदत्ताका पिता विद्याधरोंका राजा गरुडवेग उन दोनोंका मध्य-  
स्थ बन गया और अनेक उपायोंके ज्ञाननेमें निपुण ऐसे उस गरुडवेगने शत्रुकी सेना शान्त कर दी ॥ ३४१-३४३ ॥ तद-  
न्तर उसने उन दोनोंका विवाह कर पति-पत्नी संबंध करा दिया और इस तरह वह कृतार्थ हुआ सो ठीक ही है क्योंकि

ताया मसुताया' स्वयंवर ॥ ३२३ ॥ तत्पुत्रे कारयेत्येनमभ्यधादधिकार । जिनदत्तोऽपि तां नीत्वा सह राजपुरं खंगः ॥ ३२४ ॥ स्वयंवरं समुत्सुष्य मनोहरवर्णान्तरे । मनोहरं समुत्पाष्य स्वयंवरमहगृहं ॥ ३२५ ॥ कलाविद्याविदग्धेषु भृगोचरमहीशिषु । सकुमारेषु यातेषु जिनपूजा न्यवर्तयत् ॥ ३२६ ॥ तदा गंधर्व-  
दत्तापि स्वयंवरसमागृह । प्रविश्य वीणामादाय सुयोषाख्यां सुलक्षणां ॥ ३२७ ॥ स्वरप्रामादिसद्वाद्य शुद्धदेशजलक्षण । गीतमिश्रं विधायैतानघरीकृत्य मधुजः-  
३२८ ॥ स्थितो जीवधरस्तस्या वीणाविद्याकृत मद । निराचिकीर्तुराण्य स्वयंवरसमागृह ॥ ३२९ ॥ अपद्यमयितान् प्रज्ञानीणां विद्याविशारदान् । गुणदोष-  
परीक्षायां नियोज्योभयसमतान् ॥ ३३० ॥ निर्दोषा वीयता वीणेत्यभ्यधात्तत्रियोनिनः । वीणाश्चित्रगुरास्तस्मै तदानीय समर्पयन् ॥ ३३१ ॥ केशरोमल-  
वाचीनां दोषाणा ताडु दर्शनात् । स ताः सवो निराकृत्य कन्यका प्रत्यगादयत् ॥ ३३२ ॥ यद्वि निर्मत्सरासि त्व त्वदीणा वीयतामिति । अदितौका च ता  
जिनदत्त गरुडवेगके समीप आया । उसके ज्ञानसे गरुडवेग बहुत संतुष्ट हुआ उसने खूबही उसका आदरसत्कार किया  
और फिर बड़े आदरके साथ कहा कि हे मित्र मेरे एक गंधर्वदत्ता नामकी पुत्री है उसे तू अपने राजपुर नगरमें लेजाकर  
उसका स्वयंवर कर । उसकी आज्ञानुसार जिनदत्त भी अनेक विद्यार्थोके साथ उस कन्याको राजपुर नगरमें लेगया ॥  
३२२-३२४ ॥ वहां जाकर उसने मनोहर नामके वनमें स्वयंवर होनेकी घोषणा की और एक बडाही मनोहर स्वयंवर  
भवन बनाया ॥ ३२५ ॥ उस स्वयंवर भवनमें कितने ही विद्या और कलाओंमें निपुण ऐसे भूमिगोचरी राजा और  
राजकुमार आये । तदनंतर गंधर्वदत्ताने श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा की और फिर अच्छे लक्ष्णोंवाली सुयोषा नामकी वीणा  
लेकर स्वयंवर सभाभवन में पहुंची ॥ ३२६-३२७ ॥ वहांपर जाकर उसने गीतोंसे मिले हुए शुद्ध और देशसे  
उत्पन्न हुए स्वरके समूहोंसे वीणा बजाई और वहां पर बैठे हुए सब राजाओंको नीचा दिखलाया ॥ ३२८ ॥ उस स्व-  
यंवर लभा भवनमें जीवंधर भी विराजमान था उसने आकर उस गंधर्वदत्ताका वीणा विद्यासे होनेवाला अभिमान सब  
दूर कर दिया ॥ ३२९ ॥ उसने पहिले तो जो किसी ओरके पक्षपाती न थे, विद्वान् थे, वीणा विद्यामें निपुण थे, और दोनों  
पक्षवालोंने जिन्हें स्वीकार किया था ऐसे लोगोंको गुण और दोषोंकी परीक्षा करनेमें नियुक्त किया और फिर उस काम  
में नियुक्त किये हुये लोगोंसे निर्दोष वीणा मांगी । उन लोगोंने उसे तीन चार वीणा लाकर दीं परंतु जीवंधरने  
उनमें केश रोम आदि अनेक दोष दिखलाकर वे सब वापिस करदीं तदनंतर उसने गंधर्वदत्तासे कहा कि यदि  
तेरे हृदयमें किसी तरहकी ईर्ष्या नहीं है तो तू अपनी वीणा दे । जीवंधरके इस प्रकार मांगने पर उस कन्याने भी आदर  
के साथ अपने हाथकी वह वीणा जीवंधरको दे दी ॥ ३३०-३३३ ॥ जीवंधरने वह वीणा लेकर गाया उसका वह गाना

विप्यति' । इति मन्त्रिच भूत्वा खगेष्टः किंनिद कृतः ॥ ३१२ ॥ "भविता कथमस्माकं स्वधो भूमिगोर्बन्धः इत्यप्राधीत्युन्वन्त मन्त्रिणं मत्तिसागरं ॥ ३१३ ॥ सोऽप्यन्यच्च मुनेर्ज्ञातं स्रष्टमेवमभाषत । "श्रेष्ठी दृपभदत्ताख्यस्तस्मिन् राजपुरे प्रिया ॥ ३१४ ॥ तस्य पद्मावती मुजुर्जितदत्तयोरभूत् । स कदाचित्पुरे तस्मिन्नुद्याने प्रीतिबधने ॥ ३१५ ॥ जिन सागरसेनाय केवलज्ञानपूजने । भक्त्या चदितुमागतस्तत्त न तद्रुणा सम ॥ ३१६ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र तेनामा प्रीतिस्ते समजायत । देहमेदद्विद्वान्मेदो न युवयोरभूत् ॥ ३१७ ॥ एव दिनेषु गच्छत्सु केयुनिद्विजिजा वरः । जिनदत्तमवस्थाप्य स्वस्थाने निवृत्ते मुनेः ॥ ३१८ ॥ गुणपालाभिधानस्य लब्धबाधिरहीक्षत । सुव्रता ६ तिसिन्धिय संक्रादाय सयम ॥ ३१९ ॥ पद्मावती च के लीन्यं सुव्रता सान्यपालयत् । जिनत्तनोऽपि वितेश पितु पदमधिष्ठितः ॥ ३२० ॥ मनोरामादिरामाभि काम कामान् समन्वभूत् । स रत्नप्रीत्यर्थं स्वयमेवागमिष्यति ॥ ३२१ ॥ तैर्नवास्मदभिप्रेतकार्यसिद्धिर्भविष्यति" इत्यसौ चागमत् केयुचिर्दिनेषु तदतिक ॥ ३२२ ॥ ततस्तुष्ट म्मनाभीशः कृतप्राणुणकञ्चिगः । मित्र गम्भर्वद-

एक श्रीमान् बुद्धिमान् पुत्र है यह गंधर्वदत्ता वीणा स्वयंवरमें उसकी स्त्री होगी । उस मंत्रीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर राजा कुछ व्याकुल हुआ और 'भूमिगोचरियोंके साथ हमारा संबंध कैसे होगा' इसप्रकार उस मत्तिसागर मंत्रीसे पूछने लगा ॥ ३०९-३१३ ॥ इसके उत्तरमें वह मत्तिसागर मंत्री मुनिराजसे जाने हुए अन्य सब समाचारों की भी स्पष्ट रीति से इसप्रकार कहने लगा कि उसी राजपुर नगरमें एक दृपभदत्त नामका श्रेष्ठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था और उन दोनोंके जिनदत्त नामका पुत्र हुआ था । किसी एक समय उसी राजपुर नगरके प्रीतिवर्द्धन नामके उद्यानमें सागरसेन नामके जिनराज विराजमान थे उनके केवल ज्ञानकी पूजा वंदना करनेके लिये वह जिनदत्त अपने पिता दृपभदत्तके साथ आया था और भक्ति पूर्वक आप भी वहां गये थे जिनदत्तको देखकर उसके साथ आपका विशेष प्रेम होगया था और शरीर अलग अलग होनेके सिवाय और किसी प्रकारका जुदापन आप दोनोंमें नहीं रहा था ॥ ३१४-३१७ ॥ इसके बाद कितनेही दिन धीत जानेपर श्रेष्ठ दृपभदत्तने अपनेपद पर तो जिनदत्तको स्थापन किया और गुणपाल नामके मुनिराजके समीप जाकर आत्मज्ञान प्राप्त कर दीक्षा धारण करली ॥ ३१८-३१९ ॥ इसीप्रकार उसकी स्त्री पद्मावतीने सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप जाकर संयम धारण करलिया और इसतरह अच्छे व्रत धारणकर अपनी कुलीनता का पालन करने लगी । जिनदत्त पिताके पदपर विराजमान होकर सब धनका स्वामी हुआ और मनोरमा आदि अनेक स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार भोगोंका अनुभव करने लगा । वही जिनदत्त धन कमानेके लिये इस रत्नप्रीत्यर्थं स्वयं भाषेगा ॥ ३२०-३२१ ॥ उसीके साथ हमारे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जायगी इस बातचीतके कितने ही दिन बाद वह



१५९ लवरात्रा दक्षिणभाग । गगनाच्छीरिवाभासीसुरं गगनवल्लभ ॥ ३०२ ॥ रमणीयामिध कृत्वा नाग्राक्षो मनुजोदये । निविष्टवान् पुरेऽदृश्यासीद्वारिणी प्राणवल्लभ ॥ ३०३ ॥ तत्पुतामुपवासेन परिस्थानधारीका । गं धर्वदत्तामन्येषु पुजयित्वा जितेश्वरान् ॥ ३०४ ॥ शेषां माला समादाय दत्त खेसमे समागतां । आपूर्णयैवर्ना वीक्ष्य कस्मै देयेयमित्यत्ता ॥ ३०५ ॥ अग्रे वने जिननिकेतन ॥ ३०६ ॥ भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वा विधिपुर सरं । तत्रत्यचारण नत्वा मलत्तविपुलादिक ॥ ३०७ ॥ श्रुत्वा धर्म जगत्पुत्र्य सती मात्स्वामिनः कुता । कस्य गधर्वदत्ताख्या भोगभोग्या भविष्यति ॥ ३०८ ॥ इत्यप्राक्षं तदावोचत्सोऽयेवमवधीक्षणः । 'क्षीयेऽस्मिन्मारते हेमंगदेवो मनोहरे ॥ ३०९ ॥ राजा राजपुरे सत्यधर सत्यविभूषणः । विजयास्य महादेवी तयो श्रीमान्मुधी कुतः ॥ ३१० ॥ वीणास्वयंवरे तस्य दत्ता भार्या म- नंदाज्यको समर्पणा की । सो ठीक ही है क्योंकि कार्योंकी पट्टति अनेक तरहकी होती है ॥ ३११-३१२ ॥ अयानंतर— इसी भरतक्षेत्रके विजयाद्वि पर्वतपर दक्षिण श्रेणीमें आकाशकी शोभाके समान एक गगनवल्लभ नामका नगर शोभायमान है उसमें विद्याधरोंका स्वामी गरुडवेग राज्य करता था । दैवयोगसे उसके भाई बंधुओंने उसका अभिमान चूर्ण कर दिया इसलिये वह भागकर रत्नद्वीपमें गया और मनुजोदय नामके पर्वतपर रमणीय नामका एक उत्तम नगर बसाकर उसी में वह रहने लगा । उसकी रानीका नाम धारणी था ॥ ३१३-३१४ ॥ किसी दूसरे दिन उसकी गंधर्वदत्ता कन्याने उपवास किया था इसलिये उसका शरीर कुछ झुरफा गया था वह श्रीजितेंद्रदेवकी पूजा करके पूजासे बची हुई शेष पुष्प-माला पिताको देनेके लिये आई थी उसे पूर्ण यौवनवती देखकर उस विद्याधरोंके राजाने मतिसागर नामके मंत्रीसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये । इसके उत्तरमें वह अपार बुद्धिको धारण करनेवाला मंत्री पहिली सुनी हुई बातको इसप्रकार कहने लगा ॥ ३१५-३१६ ॥ कि मैं किसी एक दिन श्रीजितेंद्रदेवकी वंदना करनेके लिये मंदराचल पर्वतपर गया था पूर्वदिशाके नंदन वनमें जो जिनमंदिर है उसमें जाकर मैंने भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दी और विधिपूर्वक स्तुति की । वहींपर एक विपुलमति नामके चारण मुनि विराजमान थे उनको भी मैंने नमस्कार किया ॥ ३१७-३१८ ॥ उन से धर्मका स्वरूप सुनकर मैंने पूछा कि हे जगत्पुत्र्य मेरे स्वामीके एक गंधर्वदत्ता नामकी सती कन्या है वह किसकी पत्नी होगी ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे मुनिराज कहने लगे कि जंबुद्वीपके भरतक्षेत्रमें मनोहर हेमंगद देश के राजपुर नगरमें सत्यवचनोसे सुशोभित राजा सत्यधर राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम विजया ॥ उसके

मादोय विषाणोऽनेनभीक्य ॥ २८९ ॥ तमालारामनिर्भासितो गोवरमुपागत । गोघ्नो विघ्नः स साधूना गोमडलविधृक्षया ॥ २९० ॥ ता किंवदन्तीमाक-  
 ७५ कन्या गोदावरीं स्तुतः । पुत्री गोपेन्द्रोपश्रीसंभूता गोविमोक्षण ॥ २९१ ॥ विधास्यते ददामीति काष्ठांगारिकमुभूजा । घोषणा कारितां धुत्वा कालागा-  
 रिकसंगत ॥ २९२ ॥ जीवधरः सहायैः स्वं परितो व्याधसनिधि । संप्राप्याकृष्टकोददनिशातरसंतति ॥ २९३ ॥ संदधत्सतर्ति मुचल्लु शिक्षाविशेषतः ।  
 धनुर्वदसमादिष्ट स्नानं सर्वमाब्रजन् ॥ २९४ ॥ बाणपात परेषां च वचयन्मल्लु सचरन् । निकुन्तन् शत्रुबाणौघ रंधयन्नाणि भीरुषु ॥ २९५ ॥ इति युद्ध्या  
 चिरं व्याधान् जित्वा चानुनयाप्रयः । अयश्रिया समालीढ सर्वेकायशसा मृग ॥ २९६ ॥ पूर्यच्छादिहसासकुदप्रसवहासिना । समागमपुर चंचद्वैजयतीवि-  
 राजित ॥ २९७ ॥ देहभूते कुमारस्य शौर्यादिप्रसवान्विते । जननेत्रालयः पेटुः कीर्तिगंधावर्कविता ॥ २९८ ॥ तदा कुमारसदेशादिकवाक्येन विद्वुता ।  
 गोविमोक्षमेतेन कृतं युद्धमेति भूयति ॥ ३०१ ॥ विद्याप्यादापयन् कन्यां नंदाढ्याय पुरेदिता । गोदावरी विवाहेन विनित्रा कार्यवृत्तयः ॥ ३०॥ अथात्र

जिसे कोई सहन न कर सके औबधिके समान कटुक, निर्दय, और सींगोंके शब्दोंसे भयानक पेसी सेना लेकर सब पशु  
 ओंको हरण करनेकी इच्छासे साधुओंको विघ्नके समान चढकर आया ॥ २८७-२९० ॥ इस बातको सुनकर  
 राजा काष्ठांगारके द्वारा यह घोषणा दिलाई गई कि जो कोई इस भीलसे इन पशुओंको छुडावेगा उसे मैं गोपेन्द्र की स्त्री  
 गोपश्रीसे उत्पन्न हुई पुत्री सती गोदावरी नामकी कन्या दूंगा । इस घोषणाको सुनकर कालांगारिकके साथ कुमार जीव-  
 धर अपने सब साथियोंको लेकर उन भीलोंके समीप पहुंचा । वहां जाकर उसने अपना धनुष चढाया और उसपर तेज  
 बाण रक्खे । अच्छी शिक्षा मिलनेके कारण वह बहुत जल्दी बाणोंके समूहों को छोडता था और जहां जहां धनुष धारी  
 दिखते थे वहीं पर वह झट पहुंच जाता था । शीघ्रताके साथ पैतरा बदलता हुआ वह दूसरेके पडते हुए बाणोंसे भी  
 बचता था शत्रुओंके बाण समूहोंको काटता था और भयभीत लोगोंमें शल्लोंको रोकता भी था, जिसप्रकार नय दुर्नयोंको  
 जीत लेता है उसीप्रकार जीवधरने बहुत देरतक युद्ध कर भीलोंको जीत लिया विजयलक्ष्मी स्वयं उसके समीप आपहुंची  
 और चंद्रमा, हंसोंके पंख तथा कुंदके फूलोंको भी लज्जित करने वाले अपने यशसे अच्छीतरह सबदिशाओंको व्याप्त करते  
 हुए उसने चंचल पताकाओंसे सुशोभित नगरमें प्रवेश किया ॥ २९१-२९७ ॥ उससमय शौर्ये आदि अनेक गुणरूपी  
 फूलोंसे सुशोभित ऐसे कुमारके शरीररूपी आपके दृक्षपर कीर्तिरूपी सुगंधके द्वारा स्वींचे हुए लोगोंके नेत्ररूपी भ्रमर पड  
 रहे थे ॥ २९८ ॥ तदनंतर 'युद्धकर इस कुमार जीवधर ने ही पशु छुडाये है' इस एक वाक्यके द्वारा वैश्य पुत्रोंने राजाको  
 खबर दी और फिर कुमारके संदेशके अनुसार वह पहिले बचन द्वारा दी हुई गोदावरी कन्या विवाहकी विधिके साथ

होऽभूदेत्यास्य योग्यतां । महाबाह्यान्विसंघातमतिरेष करिष्यते ॥ २७८ ॥ इति तद्भाषितं भुला वरिष्ठः श्रावकेष्वहं । नान्यलिङ्गिनमस्कारं कुर्वे केनापि  
 हेतुना ॥ २७९ ॥ स्वाद्विमनस्य तेऽपश्य तदभावेऽतिमानिन । इति श्रेष्ठाह तच्छ्रुत्वा स्वसद्भावम्याववीत् ॥ २८० ॥ राजा सिंहपुरस्याहमार्गवमस्मिधा-  
 नक । वीरनदिसुनेः भुत्वा धर्मं संशुद्धदर्शन ॥ २८१ ॥ धृतिवैष्णय मद्राज्यं प्रदायादाय सयम । तीव्रोदराग्निसंभूतमहादाहासहिष्णुकः ॥ २८२ ॥ सय-  
 ग्दृष्टिर्गृहीतेरुवेष्टे घर्मबाधिव । इति तद्वचनं सम्यक्परीक्ष्य वणिजां वरः ॥ २८३ ॥ सुतं समर्पयामास तस्मै त सखिभि सम । क्षेत्रे वीजमिव स्थाने  
 योग्ये किं नार्पयितुमी ॥ २८४ ॥ सवृद्धिस्तमादाय नित्यगमतिविस्तृति । अचिरेणैव कालेन विश्वविद्यातमानयत् ॥ २८५ ॥ कुमारोपि रविबोम्मोदान्ते  
 विबाभिरबुतत् । प्राप्तद्वयो द्विगे वातु संप्राप्तनवयौवन ॥ २८६ ॥ उपाध्यायोऽपि कालान्तरेणयात्सयत् । शिव । तत्काले कालकूटाख्यो मुख्यो वननिवा  
 सिना ॥ २८७ ॥ मर्त्याकारं प्रपन्नो वा सुंदरस्मिभयात्स्वय । अन्यकारः सकोदण्डशरहस्तं दुरीक्षकं । केनाप्यसह्यमायाते कटुक वा महौषध । निर्दूण बल  
 लिये मैं किसी भी कारणसे अन्य मतवालेको नमस्कार नहीं करता तथा इसके अभावमें अर्थात् नमस्कार न करनेसे  
 अत्यंत अभिमान रखनेवाले आपको अवश्य ही बुरा लगेगा । शेरकी यह बात सुन कर वह तपसी अपना परिचय इस  
 प्रकार देने लगा ॥ २७९-२८० ॥ मैं सिंहपुर नगरका राजा हूं और आर्यवर्मा मेरा नाम है मैंने श्रीवीरनंदि नामके  
 सुनिराजसे धर्मका स्वरूप सुनकर शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया है तथा धृतिवैष्णवी अपना राज्य देकर संयम धारण  
 किया था, परंतु तीव्र जठर अग्निके (भस्मव्याधिके) उत्पन्न हो जानेसे उसकी महाजलनको मैं सह नहीं सका इसलिये  
 हे धर्मबंधु ! सम्यग्दृष्टि रह कर ही मैंने यह वेप धारण किया है । उस तपसीकी यह बात सुन कर उस श्रेष्ठ वैश्यने उसकी  
 अच्छीतरह परीक्षा की और फिर सब साधियोंके साथ वह पुत्र उसे समर्पण कर दिया सो ठीक ही है योंकि योग्य स्वतंत्र वीजके  
 समान बुद्धिमान पुरुष योग्य स्थानमें क्या उत्पन्न नहीं कर सक्ता अर्थात् सब कुछ उत्पन्न कर सकता है ॥ २८१-२८२ ॥  
 सम्यग्दृष्टि पुरुषने स्वभावसे ही अत्यंत महान् ऐसे उस जीवधर को लेकर थोड़ी ही दिनमें उसे सब विद्याओंके पारंगत कर  
 दिया ॥ २८३ ॥ जिसप्रकार वषट्कि वाद सूर्य देदीप्यमान होता है अथवा ऐश्वर्य को पाकर हाथी सुशोभित होता है उसी  
 प्रकार नव यौवन अवस्थाको पाकर वह कुमार जीवधर सब विद्याओंके द्वारा अत्यंत सुशोभित होने लगा ॥ २८४ ॥ वह  
 उपाध्याय भी समयानुसार संयम धारणकर मुक्त हुआ । अथानंतर उससमय एक कालकूट नामका भीलोंका राजा था  
 जो कि ऐसा काला था मानों सूर्यकी किरणोंके डरसे स्वयं अंधकार ही मनुष्यके आकार बन गया हो, तमाखुके घनके  
 समान उसकी कांति थी और वह पशुहिसक था, वह भील जिसके हाथमें धनुष बाण है, जो तेजी जा सके पडनेपर

स परीक्षितु । वाछन्नयाचतैन मे भोजन शीयतामिति ॥ २६७ ॥ कुमारोऽपि प्रतिज्ञाय नीत्वा सार्धं तमात्मना । पितु सनिधिमाहरो मयास्मै स्म प्रवीर्य  
ते ॥ २६८ ॥ भवान् प्रमाणमित्याह्वयत्तच्छ्रुत्वा तस्मिन् मुदा । विनीतोऽयं सुत श्लाघ्यो ममेत्याश्लिष्य त मुहुः ॥ २६९ ॥ पुत्र आनामसानेऽयं मयासा साधु  
भोक्ष्यते । त्वया व्यपगताशकं भोक्त्व्यमिति सोऽप्यधात् ॥ २७० ॥ सहायै सह संविद्य भोक्तुं प्रारब्धवानसौ । अधार्मकस्त्वभावेन सर्वसुणामिदं कथं ॥  
२७१ ॥ भुंजेऽहमिति रोक्ष्वा जननीयं रुदयैयत् । रुदन्त त समालोक्य भद्रतते न युज्यते ॥ २७२ ॥ अपि त्वं वयसालपीयान् घ्रीस्थो वीर्यादिभिर्गुणः । अ-  
घरीरुतबिभ्रोऽसि हेतुना केन रोक्षिषि ॥ २७३ ॥ इति तापसवेषेण भाषितः स कुमारः । शृणु पुत्र्य न वेदितुं त्वं रोदनेऽस्मिन्पुणानिमान् ॥ २७४ ॥ नि-  
येति सहतश्चेष्ट्या वमल्यमपि नेत्रयो । शीतीभवति चाहारः कथमेतन्निर्गर्हते ॥ २७५ ॥ इत्याह्वयत्तत्समाकर्ण्य मातास्य मुदिता सती । यथाविधि सहार्ह-  
स्त सह सम्यगभोजयत् ॥ २७६ ॥ ततो गंधोत्कटो भुक्त्वा सनिधौ दद्यासुख । तेन तापसवैयोऽपि भुक्त्वामैवमभायत ॥ २७७ ॥ कुमारोऽस्मिन्मम के-

यह बात सुनकर पिता गंधोत्कट बहुत ही प्रसन्न हुआ और यह मेरा पुत्र बड़ा ही विनयवान् और प्रशंसनीय है इस प्रकार  
सोच कर बार बार उसे आलिगन करने लगा ॥ २६८-२६९ ॥ फिर उसने जीवंधरसे कहा कि हे पुत्र ! स्नान करनेके  
बाद यह मेरे साथ अच्छी तरह भोजन कर लेगा तू निःशंक होकर पहिले भोजन कर ले ॥ २७० ॥ इसके बाद वह जीवंधर  
अपने सब सन्धियोंके साथ भोजन करनेको बैठा भोजन परोसनेके बाद ही वह वालक स्वभाव होनेसे कहने लगा कि  
'यह भोजन सब गर्म है मैं इसे कैसे खाऊँ' इस प्रकार कह कर वह रोने लगा और रो रो कर माताको खेद खिन्न करने  
लगा । उसे रोता हुआ देखकर तपसीके भेषको धारण करनेवाले आंगतुक मनुष्यने कहा कि हे कुमार हे भद्र इस प्रकार  
रोना तुम्हें शोभा नहीं देता यद्यपि तू आयुसे छोटा है बालक है तथापि बुद्धिमान है और शक्ति आदि गुणोंसे सब सं-  
सारको नीचा दिखानेवाला है फिर भला क्यों रोता है ? इसके उत्तरमें जीवंधर कहने लगा हे पूज्य सुनिये ! इस रीतेमें  
जो गुण हैं उन्हें आप नहीं जानते हैं रोनेसे इकट्ठा किया हुआ क्रफ निकल जाता है नेत्रोंमें निर्मलपन आता है और इधर  
भोजन ठंडा हो जाता है फिर भला आप मुझे रोनेसे क्यों रोक्ते हैं ? पुत्रकी यह बात सुन कर माता भी बहुत प्रसन्न  
हुई और उसने विधि पूर्वक सन्धियोंके साथ उसे अच्छी तरह भोजन कराया ॥ २७१-२७२ ॥ तदनंतर गंधोत्कट श्रेष्ठ  
भोजन कर सुख पूर्वक बैठा और उसके साथ वह तपस्वी भी भोजन कर इस प्रकार कहने लगा कि इस कुमारमें मेरा  
बहुत स्नेह है इसकी योग्यता देखकर मैं चाहता हूँ कि इसकी बुद्धि महाशास्त्र रूपी सागरके जलसे धोकर निर्मल कर  
हाऊँ ॥ २७७-२७८ ॥ उस तपसीकी यह बात सुन कर वह श्रेष्ठ गंधोत्कट कहने लगा कि मैं श्रावकोंमें श्रेष्ठ हूँ इस

एकदैनैव पोषितौ बुद्धिमापनुः । तत्रैव आश्रमां जातो मलयतमिजयादयः ॥ २५६ ॥ सागरो वनपालाख्यबभूवौ मरिसागरः । सेनापतिः पुरोधाख्यं श्रेष्ठं मं-  
 त्री च भृशुकः ॥ २५७ ॥ माया अयावती श्रीमती श्रीदत्ता यथाक्रमं । चतुर्व्युपमा तेषां देवसेन सुतोडार ॥ २५८ ॥ बुद्धिवैजो वरादिव्य दत्तो मधुसु-  
 यात् ॥ २५९ ॥ नक्तदिवं निजप्राणसमाः काप्यनपायिन । अथ नदापि नंदाढ्यं क्रमेणासवती सुतं ॥ २६० ॥ जीवादयः पदांशो वा लोकात्सान्महास-  
 कुमारं गोलकायुक्कबालक्रीडानुसंगिण ॥ २६१ ॥ विलोक्यासात्किञ्चदुदरं पुरं ब्रूहीति पृष्ठवान् । वृद्धस्यापि तवाङ्गत्वं बालो ह्यत्र न मुह्यति ॥ २६२ ॥  
 वाग्रे पुरवरोयाने बालक्रीडावलोकनात् । पुरस्यासप्तवर्तित्वं केन वा नानुमीयते ॥ २६३ ॥ धूमोपलम्भनादभिप्रव्यस्येति कृतस्मितः । जीवधरोऽवदत्त-  
 चेष्टाच्छायास्तराधिक ॥ २६४ ॥ दृष्ट्वा भुत्वा विविच्यैष सामान्यो नैव बालकः । राजवशसमुद्भूतिश्चिह्नस्वरसानुमीयते ॥ २६५ ॥ इति केनाप्युपायेन तद्वशं  
 स्त्रियां यौ और इन्हीं चारोंके अनुक्रमसे देवसेन बुद्धिपेण वरदत्त और मधुसुख नामके पुत्र थे जिस प्रकार लोकाकाशके  
 साथ जीवादिक छहों पदार्थ रहते हैं उसी प्रकार बालक्रीडा करनेमें तत्पर ऐसे मधुर आदि छहों पुत्र कुमार जीवधरके  
 ही साथ बढ़ते थे ॥ २५६-२६० ॥ ये सब बालक रात दिन जीवधरके प्राणोंके समान रहते थे और कभी अलग नहीं  
 होते थे । तदनंतर गंधोत्कटकी स्त्री नंदाके भी नंदाढ्य नामका पुत्र हुआ था ॥ २६१ ॥ किसी दूसरे दिन नगरके बाहर  
 बगीचेमें गेद आदिसे खेल कर वे बालक्रीडा कर रहे थे वहीं पर तपसीका रूप धारण किये एक मनुष्य आया और कुमार  
 कि तू बृद्ध है तौ भी यह बात नहीं जानता है ऐसी जगह तो एक बालक भी नहीं भूल सकता । अरे नगरके बाहर किसी  
 बगीचेमें बालकोंको क्रीडा करते हुए देख कर भला कौन अनुमान नहीं कर सकता कि नगर अत्यंत समीप है जिसप्रकार  
 कि धूआं देखकर आशिका अनुमान कर लिया जाता है उसी प्रकार यह अनुमान भी सहजमें हो सकता है । जीवधरकी  
 यह बात सुनकर तथा उसकी चेष्टा छाया और स्वर आदि देखकर वह तपसी विचार करने लगा कि यह कोई साधा-  
 रण बालक नहीं है इसके चिन्हसे अनुमान होता है कि अवश्य ही इसका जन्म किसी राजवंशमें होना चाहिये ॥ २६२-  
 २६६ ॥ इस प्रकार किसी उपायसे उसके वंशकी परीक्षा करनेकी इच्छासे उसने जीवधरसे याचना की कि मुझे थोडा  
 सा भोजन तो दो ॥ २६७ ॥ कुमार जीवधरने भी उसे भोजन देनेकी स्वीकारता दी और वह उसे अपने साथ पिताके  
 पास ले गया । वह पितासे कहने लगा कि मैंने इसे भोजन देनेके लिये कहा है इसमें आप ही प्रमाण हैं । जीवधरकी

मधोऽष्टाहय ॥ २४३ ॥ अवबोधेय तमात्मान भद्र त्व नयन मम । वर्द्धयान्यैरविज्ञातमिति तस्मै समर्पयत् ॥ २४५ ॥ सोऽपि न प्रतिगृह्येव करोमीति  
कृतवत् ॥ गला गृह स्वकान्तायै नन्दयै तत्प्रवृत्तं ॥ २४६ ॥ किमप्यप्रतिपाद्यास्यै कुप्यशिव गतस्तुते । सप्राणमपरीक्ष्यैव भवत्येतदपत्यक ॥ २४७ ॥  
विसर्जनाय मङ्गस्ते निर्विचारं समर्पित । आयुष्मान् पुण्यवानेप गृह्णाणेति वितीर्णवान् ॥ २४८ ॥ प्रलच्छत्सापि सतुष्टा कराम्या बालभास्करं । विराजिन प  
राजिल बाल लोलविलोचना ॥ २४९ ॥ तस्यान्यदा वणिक्वर्थं कृतमगलसत्क्रियः । अयप्राशनपर्वते व्याघ्राजीवधराभिधा ॥ २५० ॥ अथेला तेन यत्रेण  
तस्मात्सा विजयाह्वया । दण्डकारण्यमध्यस्थ महान्त तापसाश्रम ॥ २५१ ॥ तत्राप्रकाशमेवैषा वसति स समाकुला । ता यशो समुपागता तच्छोकापनुदे-  
च्छया ॥ २५२ ॥ तदवस्थोचितश्रव्यकयामि सद्यतेः स्थिति । प्रलूय धर्ममार्गं च प्रलह समरीरमत् ॥ २५३ ॥ इतः सत्याधरान्यस्य दुर्पेद्रस्य कनीयसी ।  
भामारति परानगपताका च मनोरमे ॥ २५४ ॥ मधुरं वकुल चान्यमलमेता सुतादुभा । झाला सद्धर्मसद्भाव गृहीतश्रावकनैता ॥ २५५ ॥ तां च गव्यो

कर कहा कि तेरी स्मरण शक्ति भी सब नष्ट हो गई है तूने विना परीक्षा किये ही और विना कुछ विचार किये ही  
प्राणसहित इस बालकको स्मशानमें रखनेके लिये मेरे हाथमें सौंप दिया यह बालक चिरजीवी है और पुरयवान है ले  
इसका पालन कर इसप्रकार कह कर शेटने वह बालक अपनी स्त्री नंदाको सौंप दिया ॥ २४६-२४८ ॥ चंचल नैत्रो-  
वाली उस नंदाने भी संतुष्ट होकर उदय होते हुए सूर्यको भी जीत कर सुशोभित होनेवाले उस बालकको गोदीमें  
ले लिया ॥ २४६ ॥ दूसरे ही दिन उस शेटने अनेक मांगलिक क्रियाएं कर अन्नप्राशन क्रियाके बाद उस बालकका  
जीवंधर नाम रक्खा ।

अथानंतर—वह विजया महारानी उसी यंत्र पर बैठ कर वहांसे चली और दंडक वनके भीतर जो बड़ा भारी तापसा-  
श्रम है उसमें छिपकर रहने लगी । जब वह विजया शोकसे व्याकुल होती थी तब वह यक्षी आकर उसका शोक दूर  
करनेके लिये उसकी अवस्थाके योग्य सुनने योग्य कथाओंके द्वारा संसारका स्वरूप और स्थिति निरूपण कर उसे प्रति-  
दिन धर्म मार्ग पर लगाती थी ॥ २५०-२५३ ॥ इधर महाराज सत्यंधरकी भामा रति और अंगगताका नामकी दो  
छोटी रानियां और थीं । इन दोनोंके मधुर और वकुल नामके दो पुत्र हुए थे । इन दोनोंने ही सद्धर्मका स्वरूप जानकर  
श्रावकके व्रत धारण कर लिये थे ॥ २५४-२५५ ॥ ये दोनों ही भाई शेट गंधोत्कटके यहां ही पालन पोषण होकर बड़े  
थे । उसी नगरमें विजयमति, सागर, धनपाल और यतिसागर नामके चार श्रावक और थे जो कि अनुक्रमसे राजाके  
सेनापति पुरोहित श्रेष्ठ और मंत्री थे । इन्हीं चारों श्रावकोंके अनुक्रमसे जयावती श्रीमती श्रीदत्ता और अनुपमा नामकी

इतिरीक्षते । नेक्षित स्यात्स्व तेनापि क्वपि किञ्चित्कदाचन ॥ २३५ ॥ सत्सु भाविषु च प्रीतिरस्ति चेदस्तु वस्तुषु । ६५ प्रययति प्रीतिं विनष्टेषु सुधीः स  
कः ॥ २३६ ॥ इति संसारसङ्कावं निर्विल्य विजये प्रिये । कुच मा गा व्यतीर्तषु कृपा प्रीतिं च मा कृया ॥ २३७ ॥ श्रीमानामुक्तिपर्यन्तं सुतोऽयमुदि-  
तोदितः । निहत्यारातिदुर्वृतं मोद ते जनविष्यति ॥ २३८ ॥ अ हि चित्तं समावेहि योग्यमाहारमाहार । किं दृष्टानेन शोकेन धिग्देहक्षयकारिणा ॥ २३९ ॥  
गलन्तरेपि ते मर्ता न हि शोकेन लभ्यते । गतगो भिक्षवत्पीनः कर्मभेदेन देहिना ॥ ३४० ॥ इत्यादियुक्तिमद्वाग्भिः सविषाय विशोकिता । पाश्चे तस्याः  
स्वयं सास्त्रासुता सौहार्दमीदृश ॥ २४१ ॥ तत्र गंधोत्कटं स्वस्य स्वयं भिक्षुशव तदा । गच्छन्निक्षिप्य गंभीरमाकर्ण्य तर्कमुत्तरं ॥ २४२ ॥ जीव जीवेति  
जीवधराख्या वा भाविनी वदन् । सत्वं मुनिसमाविष्टमिति तुष्टोऽवगम्य तं ॥ २४३ ॥ कौतो प्रसार्य सक्नेहं बालं सुमुदतिष्ठपत् । देवी तत्स्वरमाकर्ण्य बुद्ध्या  
जा मकता है ॥ २३६ ॥ इस प्रकार संसारका स्वभाव चितवन कर है प्रिये विजये अब तू शोक मत कर और नष्ट हुए  
राजामें व्यर्थ ही प्रेम मत कर ॥ २३७ ॥ यह श्रीमान् तेरा पुत्र मोक्षगामी है मोक्ष जाने पर्यंत इसका अभ्युदय बराबर  
प्रगट होता रहेगा और शत्रुके दुराचरणको नष्ट कर यह अवश्य ही तुझे प्रसन्न करेगा ॥ २३८ ॥ इस लिये अब तू  
स्नान कर चित्तको शांत रख और योग्य भोजन कर अब शरीरको नष्ट करनेवाले और धिक्कारनेयोग्य शोकसे क्या लाभ  
है ॥ २३९ ॥ अब शोक करनेसे कुछ परलोकमें भी तेरा वह पति नहीं मिल सकता क्योंकि जीवोंको कर्मोंकी  
दुर किया और वह उसके समीप ही रही सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी सज्जना ऐसी ही होती है ॥ २४० ॥  
इतने में ही वहां गंधोत्कट शेट अपने भरे हुए पुत्रको वहां रखनेकेलिये स्वयं गया उसने पुत्रको यथास्थान रख दिया  
और फिर एक बालकका गंभीर शब्द सुना ॥ २४१ ॥ उसी समय उसने 'जीव जीव' ऐसा आशीर्वाद दिया मानों हो-  
नहार जीवधर नामको ही पुकारा मुनिराजके बचनको सत्य मानकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ और उस बालकके पास  
पहुंच कर तथा दोनों हाथ फैलाकर बड़े प्रेमसे उस बालकको उठा लिया । विजया देवीने उस गंधोत्कटका शब्द सुनकर  
ही उसे पहिचान लिया और फिर उसे समझाया कि हे भद्र तू इस भरे पुत्र को अपना ही समझ कर पालन पोषण  
करना और इस प्रकार रखना जिससे किसीको मालूम न हो इस प्रकार कह कर उसने वह पुत्र उस शेटको समर्पण कर  
दिया ॥ २४३-२४५ ॥ शेट गंधोत्कटने भी 'मैं' ऐसा ही कहेगा 'ये शब्द कह कर वह बालक ले लिया और बड़ी  
जल्दी अपने घर पहुंचा । उसने अपनी स्त्री नंदासे ये सब समाचार तो नहीं बतलाये परंतु कुछ क्रोध सरीखा दिखला



लितार्थकैः ॥ २२५ ॥ सम्बन्धार्थोपबन्धः स्तेनैर्नासिधै रवैः । समिदग्न शव नहोराकुप्यच्छिद्य खण्डश ॥ २२६ ॥ कृत्तिकामिनिशातामिर्दकिनीमि  
समन्ततः । सादन्तीमिष सकीर्णं पिनृणामगमद्वनं ॥ २२७ ॥ तत्र रात्रौ कृतारक्षा यस्या विगतबाधिका । अलम्भ तनय कान्त चैरिवावृतदीधिति ॥ २२८ ॥  
नाभ्रस्थास्तोऽन्योऽपि पुत्रोत्पत्तिमुत्सवः । शोक प्रत्युत सभूतो विलोमविविधवर्धितः ॥ २२९ ॥ सद्यो यक्षी च सुभाष्य समतान्ममिदीपिका । शोककुला  
विलोक्यैना दानालीढलतोपमा ॥ २३० ॥ सर्वस्थानानि दुःस्थानि गरव्यैर्गौवनात्रियः । विष्वक्सी बहुसबधो जीवित कीपचचला ॥ २३१ ॥ कायः सर्वोऽनुविप्रायो हेयो-  
ऽयमिह धीमतां राज्य सर्वजगत्तुल्य विद्यदुद्योतसनिभं ॥ २३२ ॥ पर्यायेवैव सर्वेषा प्रीतिः सर्वेषु वस्तुषु । सेऽवश्य नश्वरास्तस्माद्वीतिः पर्यततापिनी ॥  
२३३ ॥ सत्यप्यर्थे रतिर्न स्यात्सत्य वा सति चेष्टिते । सति स्वस्मिन् रौतौ चासौ त्रयाणां वा स्थिते क्षति ॥ २३४ ॥ यस्य निष्कममासाद्य विश्वं वि-

वह महारानी पहुंची ॥ २२४-२२७ ॥ रात्रिमें उस यक्षीने उसकी खूब रक्षा की और कोई बाधा नहीं होने दी । जिस प्रकार आकाशमें चंद्रमाका उदय होता है उसीप्रकार उसीरात्रिमें उसके सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२८ ॥ उससमय विजया महारानीके पुत्र उत्पन्न होनेका उत्सव विलुल नहीं हुआ था किंतु कर्मोंकी विपरीतता वदजानेसे अर्थात् पाप कर्मोंके उदय हो जानेसे शोक उत्पन्न हुआ था ॥ २२९ ॥ जिसप्रकार दावानल अग्निसे लता मुरझा जाती है उसीप्रकार यक्षीने उस रानीको शोकसे व्याकुल देखकर शीघ्रही चारों ओर मणियोंके दीपक लगा दिये ॥ २३० ॥ तदनंतर वह यक्षी उस रानीको समझाने लगी कि देखो इस संसारमें सब जगह दुःखही दुःख भरे हैं, यह जीवन लक्ष्मी भी अवश्य ढल जाने वाली है, भाई बंधुओंका समागम भी नाश होनेवाला है और यह जीवन भी दीपकके समान चंचल है ॥ २३१ ॥ यह शरीर सब ओरसे अशुद्ध है इस लिये बुद्धिमानोको प्रायः छोड़ने ही योग्य है और सभस्त संसार जिसकी पूजा करता है ऐसा यह राज्य विजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है ॥ २३२ ॥ सब जीव जो सब वस्तुओंमें प्रेम करते हैं वे उनकी पर्यायोंमें ही करते हैं और पर्यायें सब अवश्य नष्ट होनेवाली हैं इस लिये प्रेम करनेसे अंतमें अवश्य ही संताप होता है ॥ २३३ ॥ अनिष्ट पदार्थोंके रहते हुए भी उनमें प्रेम नहीं होता तथा इष्ट पदार्थोंके रहते हुए उन पर अपना अधिकार नहीं होता और अपने पदार्थोंमें प्रेम होने पर पदार्थ, इष्टपना और अधिकार इन तीनोंकी ही स्थितिका नाश हो जाता है ॥ २३४ ॥ यह ज्ञान बिना किसी क्रमके ( एक साथ ) संसारके सभस्त पदार्थोंको जानता है परंतु उसने भी किसी समय किसी जगह किसी पदार्थको किसी स्थिर रहनेवाला नहीं देखा है भावार्थ-संसारमें सब कुछ नश्वर है ॥ २३५ ॥ यदि होनहार पदार्थमें प्रेम हो तो हो परंतु जो नष्ट हुए पदार्थोंमें भी प्रेम करता है वह बुद्धिमान कैसे कहा

२१५ ॥ शरदसोऽयमच्छन्नप्रगतिं सुचिरं दुःखदा । काष्ठांगारिकमंत्री च शरदस्तनिरूपितात् ॥ २१६ ॥ दुपं स्वसृत्युमांशक्य प्रजिघासुदुःखाय । द्विसहस्रम-  
हीपालैर्दानमित्रभेदोत्कटः ॥ २१७ ॥ राक्षसेह समुद्दिग्ध संनद्धजवाजिभि । सप्त सममियाति स्म तद्विदत्वा महीपति ॥ २१८ ॥ देवीं गरुडं न त्रस्यामपवा-  
ये प्रयत्नतः । प्राग्मेतिस्वीकृतासीयमहीपालै स्तर्शनात् ॥ २१९ ॥ विमुक्तमंत्रिभिः सार्धं कुध्वा संप्राप्य मन्त्रिण । युद्धे सखं स निर्जित्य भयोन्मार्गमनी-  
नयत् ॥ २२० ॥ वृक्ष कालांगारिकस्तस्य सगरे भगवान् ॥ २२१ ॥ सकोषो नहुसंजद्धबलेन सहसागतः ॥ २२२ ॥ काष्ठांगारिकपापोऽपि पुनस्तैर्नैव संगत ।  
हत्वा युद्धे महीपालं तस्मिन् राज्येऽप्यवस्थित ॥ २२३ ॥ सविषं वाहनं मित्रं कृतम वा सहिसक । धर्मं वाशमंद राज्यमाददे सविवाधमः ॥ २२४ ॥  
धत्तो विजयदेवी च यन्त्रमारुह्य गारुड । शोकमिदममानां गी रुदती यक्षिरक्षिता ॥ २२५ ॥ व्रणवक्त्रगलद्वारा लोहिताकान्तशूलकैः । झलति भेदं स्यूतवेदनाद्ध-

दोहजार बड़े गोद्धा राजाओंको धन देकर अपने वश कर लिया उन सबको साथ लेकर तथा अनेक तै २०१ ॥ वा  
हाथी घोड़ोंको लेकर राजभवनकी ओर चला और वहां पहुंच गया । राजाने सब समाचार जानकर विजयाकर पृथ्वी  
गरुडयंत्र पर विठाया और बड़े प्रयत्नसे उसे अपने यहांसे दूर किया । जो राजा पहिले काष्ठांगार मंत्रीके वश देख कर  
थे उन्होंने राजाको देखतेही काष्ठांगार मंत्रीको छोड़ दिया और वे राजाके वश होगये । राजा उन सब राजांतर एक  
क्रोधपूर्वक मंत्रीके पास पहुंचा और शीघ्रही उसे युद्धमें जीतकर भयके मार्गपर पहुंचा दिया ॥ २१४-२२० ॥ श्रुतके  
के पुत्र कालांगारिकने युद्धमें अपने पिताके हारनेकी बात सुनी जिससे उसे बहुतही क्रोध आया और वह शीघ्रैश्योंमें  
सी तैयार सेना लेकर आगया ॥ २२१ ॥ पापी काष्ठांगार भी अपने पुत्रके साथ आ मिला और राजाको मा नामके  
उसके राज्यसिंहासनपर बैठा ॥ २२२ ॥ उस नीच काष्ठांगार मंत्रीने विष मिले हुए भोजनके समान अथवा कुं-इदयसे  
समान, अथवा हिंसक धर्मके समान अकल्याण करनेवाला वह राज्य स्वीकार किया ॥ २२३ ॥ इधर विजया महादेवी  
गरुडयंत्र पर बैठकर चली । शोकरूपी अग्निसे उसका शरीर जल रहा था और वह रो रही थी तथापि यन्त्री देवता उसकी  
रक्षा कर रही थी । इसप्रकार वह विजया रानी श्मशान भूमिमें जा पहुंची । उस स्मशानमें कितने ही लोगोंको शूली दी  
जा रही थी जिससे उनके गलोंमें घाव होगये थे और उन घावोंसे निकलते हुए रक्तसे वह शूली भीग गई थी कहीं पर  
उस शूलसे जो मस्तक कट गया था उससे उसको जो दुःख हुआ था उससे प्राणही लटक रहे थे कहींपर चोर नीचेकी  
ओर मुंहकर लटकाये जा रहे थे जिससे वे अनेक तरहसे रो रहे थे, और कहींपर डाकिनियां अथजले मुरदोंको अग्निमेंसे  
निकालकर तथा तेज छुरीसे उसे काटकर चारोंओरसे खा रही थीं इसप्रकारके भयानक दृश्योंसे भरे हुए उस स्मशानमें

राजकुल नैनेत्ययवगाभाभवत् । प्रायः प्रकृतपुण्येन सनिधित्सति देवताः ॥ २०६ ॥ अथागते मधौ मासे सर्वसत्वसुखावहे । पुरोहितोऽहितोऽन्येयुः शत-  
रेव समागतः ॥ ७ ॥ महीपतिद्वंद्वं देवीं वीक्ष्य वीतविभूषणा । उपविष्टा क राजेति समपृच्छस्त सादरं ॥ २०८ ॥ साप्याह सुसवानराजा शक्यो नैव नि-  
रीक्षितु । इति तद्वचन सोऽपि दुर्निमित्तं विभावयन् ॥ २०९ ॥ ततो निवृत्त सप्राप्य काष्ठांगारिकर्मत्रिण । भास्करोदयवेलाया मेहं तत्रावलोकय त ॥  
२१० ॥ पापबुद्धिर्मिशोऽवादीराज्यं तव मविध्यति ॥ महीपतिर्निहतः स्वयेति तदुदीरित ॥ २११ ॥ श्रुत्वा क्रमंकर मन्त्रिपदे मामित्यगोजयत् । राजायम  
कृतज्ञो वा कथं वापकरोम्यह ॥ २१२ ॥ रुद्रदत्त ! त्वया प्रभावताप्येतच्छुदन्यं । निरूपितमिति श्रोत्रपिधानं समभ्यो व्यधात् ॥ २१३ ॥ पुरोहितस्तदाकर्ण्य  
अविध्यत्सुंदरस्य ते । प्राणहारी भवेत्तत्र प्रतीकारं ततः कुरु ॥ २१४ ॥ इत्येतदभिधायाशु गत्वा तत्पापपाकृत । तृतीयादिवसे व्याधिपीडितो विगतायुक्तः ॥

उसके चित्तमें माताके उपकार करनेकी इच्छा प्रगट हुई । वह उसीसमय राजकुलमें गई और एक गरुडयंत्रका रूप बना  
कर वहां पहुंची । सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः पहिले किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे देवता भी समीप आसमि कर्मके  
॥ २०२-२०६ ॥ अथानंतर सब जीवोंको सुख देनेवाला वसंतऋतु आया । किसी एक दिन वह अहित क्र यज्ञीने  
रुद्रदत्त नामका पुरोहित सबेरेके समय राजाके घर आया । रानीको आभूषणरहित देखकर वह बैठ गया और रानी उस  
रानीसे पूछा कि राजा कहाँ है ॥ २०७-२०८ ॥ रानीने उत्तर दिया कि राजा सोये हुए हैं उनके दर्शन अर्हल जाने  
सकते । रानीके इन वचनोंको ही उस पुरोहित ने अशकुन समझा और फिर वहांसे लौटकर वह काष्ठांगार मंत्र २३१ ॥  
आया । उस समय सूर्य उदय हो रहा था वहांपर काष्ठांगारको देखकर उस पापी पुरोहितने काष्ठांगारसे कासकी पूजा  
राज्य सब तैरा हो जायगा तू शीघ्रही राजाको मार डाल । इसप्रकार पुरोहितके वचन सुनकर भयभीत होकर प्रेय करते  
से कानोंको ढककर कहने लगा कि मैं राजाका एक कर्मचारी हूं मुझे राजाने मंत्री पद दिया है यद्यपि यह वश्य ही सं-  
तप्त है अर्थात् मेरे किये हुए कार्योंको विलुल नहीं जानता तथापि मैं ऐसा अप्रकार कैसे करूं ? हे रुद्रदत्त ! तू तो बुद्धि-  
मान है तथापि तूने ऐसी दुर्नीतिके ( अन्यायके ) वचन कैसे कहे ॥ २०६-२१३ ॥ काष्ठांगारके ऐसे वचन सुनकर वह  
पुरोहित फिर कहने लगा कि अच्छा इस राजाका होनहार पुत्र तेरा प्राणघातक होगा इसलिये तू इसका कुछ भी उपाय  
कर इसप्रकार कह कर वह पुरोहित शीघ्रही अपने घर चला गया परंतु उस पाप कर्मके उदयसे तीसरेही दिन वह रोगसे  
पीडित हुआ और मर गया । परकर वह रुद्रदत्त बहुत दिन तक दुःख देनेवाली नरक गतिमें गया । इधर दुष्ट आशयवाले  
काष्ठांगार मंत्रने रुद्रदत्तके कहे हुए वाक्योंके अनुसार अपनी मृत्युकी आशंका कर राजाको मारनेकी इच्छा की । उसने

अ त्वमित्याह महीनात् प्रियाप्रियं । धृत्वा शोकप्रमोहाभ्यां तापान्निवृत्तयेत ॥ १९५ ॥ राश्रीं राधा समालोक्य सङ्कल्पा समतपयेत् । सुलेनेन तयोः  
 काले गतिं कवित्समागतं ॥ १९६ ॥ देवलोकारिस्थितिं लेभे देवीगर्भधरै सुखं । सपुण्यो राजहट्ठो वा शारदाद्वजरोदरे ॥ १९७ ॥ अथान्यैशुर्कभिरन्यथा  
 वास्तव्यस्तपुरान्तरे । धनी गन्धोक्तो नाम श्रीलक्ष्मणमहासुनि ॥ १९८ ॥ मनोहरबनोभा ने ज्ञानप्रयविभोचनं । विलोक्य विनयाप्रवा प्राप्राक्षीभ्रगन्मम ॥  
 १९९ ॥ बहवोऽन्यायुषोऽभूत्कृतनयाः पापपाकतः । वीषायुयो भविष्यति यता ये किमताः परे ॥ २०० ॥ इति शोऽपि दयालुवाग्युनीषाः प्रलभापत ।  
 तत्र कंठितयुजं त्व लक्ष्यसे पुण्यभाजन । स समस्तां महीं भुगता वृत्तो देवविके भुगः ॥ २०१ ॥ प्राप्ते विजय्य कर्माणि मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति । इति  
 तद्वचन धृत्वा कवित्सर्वनिधा स्थिता ॥ २०४ ॥ यक्षी मनियतो राजसूतोः पुण्यप्रनोदिता । तस्मिन्पला स्वयं माधुर्यकारविहितया ॥ २०५ ॥ गत्वा  
 रानीको विवाया और पूछने पर कहा कि मेरे नष्ट होनेके बाद तेरे पुत्र होगा जो कि आठ लाभोंको पाकर पृथ्वी  
 का भोक्ता होगा । रानीका चित्त ऐसे अभिय वाक्यको सुनकर शोक और आनन्दसे भर गया । ऐसी रानीको देख कर  
 राजाने अच्छे २ वचनोंसे सम्भा कर संतुष्ट किया इसके बाद उन दोनोंका समयमुखसे व्यतीत होने लगा । तदनंतर एक  
 देवका जीव स्वर्गसे च्युत होकर विजया रानीके गर्भमें आया और मुखपूर्वक इस प्रकार रहने लगा मानों शरद ऋतुके  
 कमलोंसे सुशोभित सरोवरमें पुष्यवान् राजहंस ही हो ॥ १९४-१९७ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें रहनेवाले वैश्योंमें  
 श्रेष्ठ और वनी शेट गंधोक्तने मनोहर नामके वनमें प्रतिश्रुत अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले शीलगुप्त नामके  
 महा मुनिराजको देखा उसने वडी विनयके साथ नमस्कार किया और पूछा कि हे भगवन ! मेरे पापकर्मके उदयसे  
 कितने ही पुत्र थोडी आयुवाले हुए हैं । हे प्रभो ! क्या आगे कोई वडी आयुवाला भी पुत्र होगा या नहीं ॥ १९८-२०० ॥  
 इस प्रकार पूछने पर दयालु मुनिराज कहने लगे कि हां तेरे चिरंजीवी पुत्र भी होंगे ॥ २०१ ॥ हे वैश्यवर !  
 चिरंजीवी पुत्र होने की बात पर विश्वास रखनेका चिन्ह यह है तू अच्छी तरह सुन । गोहे ही दिनमें तेरे मृतपुत्र होगा  
 उसे रखनेके लिये तू वनमें जायगा वहांपर तुझे एक पुत्र मिलेगा जो कि बडाही पुण्यात्मा होगा तथा वह समस्त पृथ्वी  
 का उपभोग ( राज्य ) कर इंद्रियोंके विषयसंबंधी सुखोंसे वृत्त होकर वडी प्रसन्नताके साथ सब कर्मोंको नष्ट करेगा और  
 मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगा । इस प्रकार उन मुनिराज ने कहा दैवयोगसे वहांपर एक यक्षी बंठी थी उसने भी ये सब बातें  
 सुनी इधर होनहार राजपुत्र के पुरयकर्मोंने भी मानों उसे प्रेरणा की और इसीलिये उस राजपुत्रके उत्पन्न होनेके समय

हृये ॥ १८३ ॥ स्थित पिण्डिदुसस्यावो जीवधरमुनीश्वर । ध्यानाकलं विलोचयितद्रूपविषु विषकधी ॥ १८४ ॥ सकीतुकं समभ्येत्य सुचर्मगणनायक । भाक्तिकोऽन्यच्चर्चं बन्दिता यथास्थानं निवेद्य तम् ॥ १८५ ॥ प्राजलिर्मगवानेन यसीन्द्र सर्वकर्मसि । मुक्तो बायैव को वेति पप्रच्छ प्रप्रथाश्रय ॥ १८६ ॥ अवबोधचतुष्कात्मा सोऽय्येवं सममाश्रित । केदो न हि सतां हृतेर्वक्तुः श्रोतुश्च चेतस ॥ १८७ ॥ शृणु श्रेणिक जम्बुभूजविभूषितभूतले । अत्र हेमाद्रगदे देवो राजन् राजपुराधिप ॥ १८८ ॥ राजेव रंजिताशेषः सत्यधरमहीपति । विजयास्य महादेवी विजयश्रीविवापरा ॥ १८९ ॥ सर्वकर्मचणोऽमाल्यः का-  
ष्ठागारिकनामश्रुत । भक्ता देवोपघातानां रुद्रदत्त पुरोहित ॥ १९० ॥ कदापिद्विजया देवी सुता गर्भगृहे सुख । मुकुट भूभुजा हेमघटाष्टकविराजित ॥ १८१ ॥ दत्त स्वस्यै धिताशोकतरोर्मूलं च केनचित् । छिन्न परशुना जगत पुनर्बालमहीरुह ॥ १९२ ॥ निगया पद्मिने यामे स्वप्रावेता प्रमकधीः । विलो-  
क्य सा तयोर्भागु फलमभ्येत्य भूपति ॥ १९३ ॥ सप्रथया समीक्ष्यैनमन्मयुक्त मदलये । अष्टौ कभ्यानाप्यान्ते क्षितेर्भाकारमात्मज ॥ १९४ ॥ आत्म्यसा-

रहे थे ॥ १८३ ॥ वहीं पर एक जगह पिंडीदृशके नीचे ध्यानाकल महाराज जीवंधर मुनिराज विराजमान थे । महाराज श्रेणिक उनके रूपादिकमें आसक्त चित्त होकर कौतुकके साथ भीतर गये तथा वही भक्तिसे सुचर्म गणधरदेव की पूजा बंदना कर अपनी जगह पर बैठ गये । तदनंतर वे हाथ जोड़कर वडी विनयसे गणधरदेवसे पूछने लगे कि हे भगवन्! मानों सब कर्मोंसे आज ही मुक्त हो जायेंगे ऐसे ये मुनिराज कौन हैं? ॥ १८४-१८६ ॥ इसके उत्तरमें चार ज्ञानकी धारणा करनेवाले भगवान गणधर देव नीचे लिखे अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके चारित्र्यसे वक्ता और श्रोता दोनोंके चित्तको खेद नहीं होता ॥ १८७ ॥ वे कहने लगे कि हे श्रेणिक सुन ! इसी जंबू दृक्षसे सुशो-  
भित होनेवाली पृथ्वीपर हेमांगद नामका एकदेश है और उसमें राजपुर नामका नगर है ॥ १८८ ॥ उस नगरमें चंद्रपाके समान सबको प्रसन्न करनेवाला सत्यधर नामका राजा था और दूसरी विजयलक्ष्मीके समान विजया नामकी पट्टरानी थी ॥ १८९ ॥ उसी राजाके सब कामोंमें निपुण ऐसा काष्ठांगार नामका मंत्री था और दैवजन्य उपघातोंको दूर करने-  
वाला रुद्रदत्त नामका पुरोहित था ॥ १९० ॥ किसी एक समय वह विजया महादेवी भीतरके राजभवनमें सुखसे सो रही थी वहां पर उसने दो स्वप्न देखे पहिला यह कि सुवर्णके आठ घंठोंसे सुशोभित अपना मुकुट राजाने रानीको दे दिया है दूसरा रानी एक अशोकवृक्षके नीचे बैठी है परंतु किसीने वह अशोक वृक्ष कुल्हाडीसे काट डाला है और उस जगहसे दूसरा छोटा अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ है ॥ १९१-१९२ ॥ रानीने प्रसन्न चित्त होकर ये स्वप्न रात्रिके पिछले पहर देखे थे । सबेरे ही उठ कर वह उनका फल पूछनेके लिये राजा सत्यधरके पास विनयके साथ गई ॥ १९३ ॥ राजाने

नैवदुग्धस्य मित्रवीराहवः कृषीः ॥ १७२ ॥ शृङ्गे दृषभसेनस्य चंदनां स समर्पयत् । पिता श्रीनागदत्तस्य धनदेवो वणिग्वरः ॥ १७३ ॥ खलोकं शांत-  
 चित्तं नृपस्य श्रेष्ठितां गतः । श्रीमान् दृषभसेनाख्यः कौशाव्यां कलितो गुणैः ॥ १७४ ॥ सोमिलायां कृतद्वेषा चित्रसेनां चतुर्गतिः । परिश्रम्य विरं शांता-  
 मनां तत्रैव विदुमुता ॥ १७५ ॥ भूत्वा दृषभसेनस्य पत्नी भद्राभिधाभवत् । निदानकृतवैरेण न्यगृह्णाचंदनामसी ॥ १७६ ॥ चंदनैवाच्युतात्कल्याणप्रसंगस्य  
 शुभोदयात् । द्वितीयवेद संश्रम्य पारमात्म्यमवाप्स्यति ॥ १७७ ॥ एवमवधिविधानोक्तमिव्याभावादपचकात् । संवितै कर्मसिः प्राप्य द्रव्यादिपरिवर्तनं ॥  
 चित्रतपोरूपमनुत्तरं ॥ १७८ ॥ अभ्येत्य पुण्यकर्मणः परमस्थानसप्तके । संश्रम्य परमैश्वर्यं भवंति सुखभाषिणः ॥ १७९ ॥ इति तद्भ्रातृमाधीश्वश्रीमद्  
 चित्ररसायनात् । समा सर्वो बभूवौ तदेववाजराभरा ॥ १८० ॥ अन्यदौलौ महाराजः श्रेणिकाख्यः परिश्रमन् । प्रीत्या गन्धकुटीवाद्यामाखनचतु-  
 दृषभसेनका सेवक है और उसीने चंदना दृषभसेनको समर्पण की थी । नागदत्तका पिता श्रेष्ठ धनदेव शांतचित्तसे मर कर  
 स्वर्ग गया था और वहांसे आकर गुणोंसे भरपूर कौशावी नगरमें श्रीमान् दृषभसेन नामका श्रेष्ठ हुआ है ॥ १७२-  
 १७४ ॥ चित्रसेनाने पहिले सोमिलासे द्वेष किया था इसलिये वह बहुत दिन तक चतुर्गतिमें परिश्रमण कर तथा शांत  
 है निदानसे जो उसने पहिले कौशावी नगरमें वैश्य पुत्री हुई थी और भद्रा नामसे प्रसिद्ध होकर दृषभसेनकी स्त्री हुई  
 यह चंदना अच्युत स्वर्गसे आकर तथा शुभोदयसे पुंवेद पाकर अवश्य ही परम मोक्ष पदको प्राप्त होगी ॥ १७५-१७६ ॥  
 बंधके साधनोंमें जो मिथ्यात्वादिक पांच भाव कहे हैं उनसे संवित किये हुए कर्मोंके द्वारा यह जीव द्रव्य क्षेत्र आदि पंच-  
 परावर्तनोंको प्राप्त होता है । संसारमें निरंतर होनेवाले ये ही पांच प्रकारके सबसे बड़े दुख हैं इन्हींको भोगता हुआ यह  
 जीव कालके मुखमें पड़ता है और फिर अनेक तरहके दुःख भोगता है ॥ १७८-१७९ ॥ इस लिये काल लब्धि प्राप्त  
 होना आदि जो मोक्षके साधन हैं तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य तपस्व्य जो सबसे उत्तम मोक्षके साधन हैं उनको पाकर  
 तथा पुण्य कर्म करते हुए सातों परम स्थानोंमें परम ऐश्वर्य पाकर ये जीव अनंत सुखी होते हैं ॥ १८०-१८१ ॥ इस  
 प्रकार वह सब सभा गौतम गणधरकी पुण्य लक्ष्मीसे भरी हुई ध्वनिरूपी रसायनसे उसी समय अजर अमरके समान  
 हो गई थी ॥ १८२ ॥  
 अथानंतर—किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक गंधकुटीके बाहर देदीप्यमान चारों वनोंमें बड़े प्रेमसे धूम

एवं श्रावकपदार्थमवगम्य परस्परं । जातसौहार्दचित्तानां दानपूजादिकर्मभिः ॥ १६१ ॥ काले गच्छति जीवाते सन्ध्यासविधिमश्रित । श्रीनागदत्त । सौधर्म-  
कस्येऽन्यत्प्राप्तो भवत् ॥ १६२ ॥ तत्र निर्विघ्नदिव्योत्सवो भोगश्च्युत्वा ततो जति । द्वीपेस्मिन्भारते खेचराचले नगरे वरे ॥ १६३ ॥ शिवकुरे तदीशस्य विद्याधर-  
घरेभिन । सुत पनववेगस्य सुवेगया सुखावहः ॥ १६४ ॥ मनोवेगोऽन्यजन्मोऽप्येव विवशीकृत । अनेपीबदनासेनामसिनेद्रोऽप्य नयेत् ॥ १६५ ॥  
स एषोऽन्यजन्मोऽप्येव जन्मति । जिनाकृतिं समादाय संप्राप्यस्यधिम पद ॥ १६६ ॥ ततः श्रीनागदत्तस्य नाकलोकात्कनीयसी । इहागत्याभव-  
नाम्ना मनोवेगा महायुति ॥ १६७ ॥ पत्मावनगरे नागदत्तहस्तयुत खगः । सुरलोकाद्भूतोऽसौमवो त्वं चेतको मृगः ॥ १६८ ॥ माता श्रीनागदत्तस्य धन-  
मित्रा दिव गता । ततश्च्युत्वा तवैवासीत्सुभदेय मन प्रिया ॥ १६९ ॥ यासौ पद्मलता सापि कृतोपवसना दिव । गत्वागत्याजनिष्ठेय चंदना नदना तव ॥  
१७० ॥ नकुल सस्रति प्रात्वा सिंहास्थोभृद्भूतचर । प्राग्जन्मभेदेहवैराभ्यामवधीष्ट स चरना ॥ १७१ ॥ सहदेवोऽपि सद्यस्य ससारे रुचिरं पुन । कैशाग्या

बुद्धिमानने यात्राकं पहिले कही हुई श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की ॥ १५२-१६० ॥ इस प्रकार सबने श्रावकोंका सद्धर्म स्वी-  
कार किया, परस्पर सबके चित्त मित्ररूप हो गये और दान जिनपूजा आदि उत्तम कर्मोंके द्वारा सबका समय सुखसे  
व्यतीत होने लगा । आयुके अंतमें नागदत्तने समाधि परण धारण कर शरीर छोड़ा जिससे वह सौधर्मस्वर्गमें वही श्रुद्धि  
का धारक देव हुआ ॥ १६१-१६२ ॥ वहा पर उसने वहे बड़े दिव्य भोगोंका उपयोग किया और फिर वहांसे च्युत  
हो कर इसी द्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्र पर्वतके शिवंकर नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा पनववेगकी रानी सुवेगासे यह  
अत्यंत सुखी मनोवेगा हुआ है । दूसरे जन्मके उठे हुए स्नेहसे विवश होकर इसने चंदनाका हरण किया था सो ठीक ही  
है क्योंकि अत्यंत स्नेह कुमार्गमें ले ही जाता है ॥ १६३-१६४ ॥ यह आसन्न भव्य है और इसी जन्ममें दिगंबर मुनि  
होकर परम मोक्ष स्थान प्राप्त करेगा ॥ १६६ ॥ नागदत्तकी छोटी बहिन अर्थस्वामिनी स्वर्गसे यहां आकर यह महाकां-  
तिकी धारण करनेवाली मनोवेगा हुई है ॥ १६७ ॥ जो विद्याधर पलाश नगरमें नागदत्तके हाथसे मारा गया था वह  
स्वर्गसे आकर सोपबंधमें तु राजा चेटक हुआ है ॥ १६८ ॥ धनमित्रा नामकी जो नागदत्तकी माता थी वह स्वर्ग गई  
थी और वहांसे आकर यह तेरी मनको प्यारी सुभद्रा रानी हुई है ॥ १६९ ॥ जो नागदत्तकी स्त्री पद्मलता थी वह  
अनेक उपवास कर स्वर्ग गई थी और वहांसे आकर यह चंदना नामकी तेरी पुत्री हुई है ॥ १७० ॥ नकुल संसारमें  
परित्रमण कर सिंह नामका भील हुआ है और पहिले जन्मके स्नेह तथा वैरसे उसने चंदनाको तंग किया था ॥ १७१ ॥  
सहदेव भी संसारमें बहुत दिन तक परित्रमण कर कौशांबी नगरीमें मित्रवीर नामका बुद्धिमान वैश्यपुत्र हुआ है जो कि



तत्प्राप्तवत् । क वा गत त्वयेत्येष तृष्टः पृष्ठो महीयुजा ॥ १५१ ॥ आगयाचनयात्रादि सर्वमाभून्नोन्नीवीत् । तदाकर्णं नृपः क्रुधा प्रवृत्त श्रेष्ठिनिप्रहे ॥ १५२ ॥  
 न युष्मसि निर्वधो नागदत्तेन वारितः । दत्त्वा श्रेष्ठिपदं तस्मै सारविषममन्त्रितं ॥ १५३ ॥ विवाहविधित्वा पद्मलतामपि समर्पयत् । कथात्मससदि व्यक्त-  
 मवनीद्वीभ्यधादिदं ॥ १५४ ॥ परमं पुण्यस्य महात्म्यं राक्षसाद्यनरायतः । धृपेत्यायं महारक्षान्यात्मीक्रुत्यागतं सुख ॥ १५५ ॥ पुण्याब्जलायते वन्दिहविष-  
 मप्यमृतायते । मित्रायते द्विषः पुण्यापुण्याच्छान्यति कुरुजः ॥ १५६ ॥ दुर्विधः सधनं पुण्यात् पुण्यात्स्वर्गं पण्यते । तस्मात्पुण्यं विचिन्वतु हतापस्वर्गदैविणं ॥  
 मत्स्य मे कुमारैति प्रणमत स्वपुत्रक ॥ १५७ ॥ सभायां श्रेष्ठिनं मैवमित्युयाप्य प्रियोक्तिभिः । सतोष्य जिनपूजां च शक्नु प्राकामकरोत्कृती ॥ १५८ ॥ क्ष-  
 दिसे अंत तक सब कथा कह सुनाई और फिर उसके साथ अच्छे रत्न भेंट लेकर बड़े प्रेमसे महाराजके दर्शन किये ।  
 महाराजने उसे देखकर पूछा कि नागदत्त तुम कहाँसे आये और कहाँ चले गये थे इस प्रकार महाराजके पूछने पर  
 संतुष्ट होकर उस नागदत्तने अपना भाग मांगने और उसके लिये यात्रा करने आदिके सब समाचार आदिसे अंततक  
 कह सुनाए । उसे सुनकर राजाको भी क्रोध हुआ और वह शेरको ढंड देनेके लिये तैयार हो गया ॥ १५०-१५२ ॥  
 परंतु ऐसा करना ठीक नहीं है इस तरह समझा कर नागदत्तने उसे रोक दिया । राजाने बहुतसा अच्छा धन देकर  
 नागदत्तका शेरको पद दिया और विधिपूर्वक विवाह कर वह पद्मलता भी उसे समर्पण कर दी । तदनंतर राजाने सभामें  
 बैठकर सब लोगोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि देखो पुरायका माहात्म्य कैसा है यह नागदत्त राक्षस आदि अनेक  
 विघ्नोंको दूर कर तथा अनेक महारत्नोंको लेकर सुख पूर्वक यहां आया है ॥ १५३-१५५ ॥ इसलिये कहना पड़ता है  
 कि पुरायकर्मके उदयसे अग्नि भी जल हो जाती है, विष भी अमृतके समान हो जाता है पुरायसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं  
 और बड़े बड़े रोग तथा आपत्तियां भी पुरायसे शांत हो जाती हैं ॥ १५६ ॥ पुरायसे दरिद्री भी सधन हो जाता है और  
 स्वर्गकी प्राप्ति भी पुरायसे ही होती है इसलिये आपत्तियोंको दूर करने और संपदाओंकी इच्छा करनेवालोंको श्रीजिनेंद्र-  
 देवके कहे हुए धर्म शास्त्रोंके अनुसार सब क्रियाओंका अनुष्ठानकर सदा पुरायका संपादन करना चाहिये । राजाका यह उ-  
 पदेश सभाने सब सभासद लोगोंने अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण किया ॥ १५७-१५८ ॥ इसके बाद शेरको भी  
 बहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने सभामें ही पुत्रको नमस्कारकर क्षमा मांगी और कहा कि हे कुमार ! मुझे क्षमाकर । परंतु  
 नागदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और स्वयं खड़े होकर बड़े भीठे वचनोंसे पिताको संनम्य किया और फिर उस

व्याघातसम्मानलोचन । इतः श्रीनागदत्तोपि विलोक्य जिनमदिरै ॥ १४० ॥ किंचित्पटक्षिणीकृत्य निर्धादन्नाहमिलिटः । प्रविश्य निहितस्तोत्रः सचिन्तस्तत्र  
संस्थितः ॥ १४१ ॥ तदा विद्याधर कश्चित् दृष्ट्वा ज्ञातवृत्तकः । जैनः सचित् नीलास्माद् द्वीपमध्यान्मनोहरे ॥ १४२ ॥ बनेनतार्यं सुस्थाप्य समावृ-  
च्छयादरान्वित । यथेष्टमगमत्समा हि धर्मवत्सलता रता ॥ १४३ ॥ तत्समीपेनुजाग्रामे वसत्येवैत्य सादरं । प्रत्याब्रवीद्धन तत्र मोपि निक्षिप्य सुस्थितः ॥  
१४४ ॥ अथोपगम्य तं कैवलास्त्वानुजादिसनाभय । कुमारभिनर्वा कन्या नकुलस्य जिघृक्षुणा ॥ १४५ ॥ श्रेष्ठिना वयमाहूता नि स्वर्वादिक्कपाणयः । कथं  
तत्र त्रिजिघ्याम इत्यलालुकुलचेतसः ॥ १४६ ॥ अथ सर्वेपि जाताः स्म इति ते न्यगददसा । तच्छ्रुत्वा साररत्ना निजालकदवकात ॥ १४७ ॥ तेनोषिक  
मुदा दत्त्वा न्यगमागमन मम । ददव्य संतिवैयता कन्यायै रत्नमुद्रिका ॥ १४८ ॥ इत्युक्त्वा स्वयमित्यानुसीलदत्तगुरु मिय । वदित्वा रक्षसुनु च दृष्ट्वा स-  
न्मित्रमात्मनः ॥ १४९ ॥ आमूलत्कार्यमास्थाय सह तेन ततो गतः । साररत्नमहीपाल साजुराग विलोक्य ता ॥ १५० ॥ दृष्ट्वा भवानहो नागदत्त । कन्या-

इस प्रकार ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनिराजने उसे आश्वासन दिया । उधर श्रीनागदत्तने एक जिनमंदिर देखा,  
उसकी थोड़ीसी प्रदक्षिणा की और उसमें भीतर जाकर बैठनेका विचार किया । भीतर जाकर उसने भगवानकी स्तुति  
की और फिर चिंतातुर होकर वह वहीं बैठ गया ॥ १४०-१४१ ॥ देवयोगसे वहीं पर एक जैनी विद्याधर आ निकला  
उसने नागदत्तके सब समाचार जानकर उसे उस द्वीपसे धनसहित उठाकर मनोहर बनेमें जा उतारा । वह नागदत्तको  
वहां उतार कर और बड़े आदरसे आज्ञा लेकर अपनी इच्छानुसार चला गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी धर्म-  
वत्सलता यहीं कहलाती है ॥ १४२-१४३ ॥ उस मनोहर बनेके समीप ही नंदीप्राय था जहां उसकी वहिन व्याही थी वहाँ  
पर वह नागदत्त पहुंचा, वहिनने उसका आदर सत्कार किया और नागदत्त अपना सब धन एक जगह रख कर सुखसे  
रहने लगा ॥ १४४ ॥ तदनंतर किसी एक दिन नागदत्तको वहिनके ससुर आदि संबंधियोंने आकर कहा कि हे कुमार  
शेठ नई आई हुई कन्याका विवाह अपने पुत्र नकुलके साथ करना चाहता है उसने हमको भी बुलाया है परंतु हमारे  
पास धन नहीं है रीति हाथ हमलोग कैसे जाय इस प्रकार व्याकुल चित्त होकर सब संबंधियोने आकर कहा । उनकी यह  
बात सुन कर नागदत्तने अपने रत्नोंके भंडारमेंसे अच्छे २ रत्न निकाल कर वही प्रसन्नतासे उन्हें दिये और उन्हें  
समझा दिया कि तुम उस कन्याके पास जाकर उसे यह रत्नोंकी अंगूठी देना और उससे मेरे आनेके सब समाचार क-  
हना ॥ १४५-१४६ ॥ इस प्रकार संबंधियोंको समझा कर वह स्वयं भी चला सबसे पहिले शीलदत्त गुरुके समीप जा-  
कर उनकी बंदना की और फिर अपने मित्र अपने मित्र कोतवालके पुत्र ददा रथके समीप पहुंचा ॥ १४७ ॥ नागदत्तने दहरयसे आ-

१२८ ॥ अधूना मोह दृष्ट्वेमां कन्यका शोकविह्वला । तद्व्याकुल्य-दोष्यानीत्याविभूतयराक्रयः ॥ १२९ ॥ अतुल्यं वा धर्मभक्तं तदुक्तवान्कात्रीमहिम् । लय-  
सदमवात्सल्य सारं जैनैर्दशसने ॥ १३० ॥ जैनशासनमगदागति लब्धयतो मम । अपराधं क्षमस्वेति तदुक्तमवगम्य सः ॥ १३१ ॥ किं कृतं भवता पूर्वं म-  
दुपाजितकर्मणः । परिपाकविशेषोयमिति पंचनमस्कारिया ॥ १३२ ॥ श्रीनागदत्तसंगोक्ता भावयथाकामपिवाच ॥ १३३ ॥ पमलतो कन्या धनं च गितुमर्हति ॥  
१३३ ॥ समाकर्षणरज्जुवावतायः आर्तुनिजल्य तौ । नकुलं सहदेवश्च रज्जुमाकर्षणोचिता ॥ १३४ ॥ कदला पापपुद्गल्यास्मान्मखं स्वपुरगीयतुः । छिद्रमासा-  
द्य तन्नास्ति दायदा यन्न कुर्वते ॥ १३५ ॥ तौ दृष्ट्वा नागदत्तोपि युवाभ्यां सह-यातवान् ॥ १३६ ॥ किं नायादिति भूयेन सांशकेन जनेन च ॥ १३७ ॥ पृष्ट्वा-  
सहैव गत्वासां पृथक्कापि गतस्ततः । न विद्वोतिव्यवत्ता तावनुजावप्यपहव ॥ १३७ ॥ श्रीनागदत्तमातापि व्याकुलीभूतचेतसा । शिन्दुत्तगुरु प्राप्य स-  
मपृच्छत् तुजः कथां ॥ १३८ ॥ सोपि तत्संश्रय दृष्ट्वा कारुण्याहितमानसः । निर्विघ्नं ते तदुजो द्राम्माभिवीर्यागमिष्यति ॥ १३९ ॥ इत्याध्यासं मुनिस्तस्या  
वातको जाने विना ही मुक्तसे यह ऐसा कार्य वन गया है और मैंने श्रीजिनैन्द्रदेवके शासनमें कहे हुए सारभूत धर्मवात्स-  
ल्यको छोड़ दिया है ॥ १३० ॥ हे भव्य जैनशासनकी मर्यादाका उल्लंघन होकर मुक्तसे यह अपराध वन गया है इसलि-  
ये आप जमा कर दीजिये । नागदत्तकी कही हुई इन सब बातोंको जानकर वह विद्याधर कहने लगा कि इसमें आपने  
हुए पंचनमस्कार मंत्रकी भावना करता हुआ वह विद्याधर शरीर छोड़कर स्वर्ग पहुंचा । तदनंतर पबलता कन्या और पि-  
ताके कमाये हुए धनको उस रस्सीसे पारकर जहांपर पहुंचाया तथा नकुल सहदेव दोनों भाइयोंको भी पहुंचाया । नकु-  
ल सहदेव ने जहांपर पहुंचकर पापबुद्धिसे वह रस्सीचनेकी रस्सी नागदत्तको नहीं दी और वे दोनों भाई जहाजको लेकर  
शीघ्रही अपने नगरमें जा पहुंचे । सो ठीक ही है क्योंकि छिद्र पाकर ऐसा कोई काम नहीं है जिसे दायद न  
कर सकें ॥ १३१-१३५ ॥ उन दोनों भाइयोंको देखकर बहाके राजा को और सब साधारण लोगोंको कुछ गंका हुई  
और इसीलिये उन सबने पूछा कि नागदत्त तुमलोगोंके साथ गया था फिर वह साथ आया क्यों नहीं ? इसके उत्तरमें उन  
दोनोंने कहा कि वह गया तो साथ था परंतु वहां जाकर कहीं अलग चला गया इसलिये हमें उसकी मालूम नहीं है इस-  
प्रकार उन्होंने वह बात छिपा ली ॥ १३६-१३७ ॥ अपने पुत्रके न जानेकी खबर सुनकर नागदत्तकी माता चित्तमें  
बहुत ही व्याकुल हुई और शीलदत्तगुरुके समीप जाकर उसने अपने पुत्रकी कथा पूछी ॥ १३८ ॥ वे मुनिराज भी इस सब  
संश्रयको देखकर करुणासे भरपूर मनसे कहने लगे कि तू डरे मत तेरा पुत्र निर्विघ्न रीतिसे शीघ्र ही आवेगा ॥ १३८-१३९ ॥

तमः । प्रमादात् करोति स्म नरे तदग्रवीक्षणम् ॥ ११९ ॥ राक्षसेन हतस्तस्मात्पुरे इत्यममर्थिद । मस्तुतातिर्विबोलेत् या मत्त्वाऽमारगन् गत ॥ १२० ॥  
आंगतांता पुनर्नेतुमिति तद्वचनभूतेः । वैश्यः खट्वा तमादाय गोपुरांतहित खग ॥ १२१ ॥ आयातप्रवर्षीत्तोपि पठन् पचनमस्फुटि । न्यपत्त्येदिनीभागे  
भमाहितमस्फुटः ॥ १२२ ॥ श्रुत्वा श्रीनागदत्तोपि नमस्कारपदावली । श्रेय्या मे दुष्कृत सर्वमिल्यास्यायुध भोज ॥ १२३ ॥ कुतो धर्मस्तवेत्यवमप्रवी-  
त्सम्रण खग । सोपि भ्रावकपुत्रोह क्रोधादेतत्कृत मया ॥ १२४ ॥ क्रोधान्मित्र भवेच्छुभः क्रोधादर्थो विनश्यति । क्रोधाद्राज्यमरिभयः । क्रोधान्मोमुच्यते शु-  
भिः ॥ १२५ ॥ क्रोधान्मातापि सक्क्रोधाभवेत् क्रोधादयोगतिः । तत् श्रेयार्थिना त्याज्य स सदेति जिनोदित ॥ १२६ ॥ तज्जानक्षपि पापेन कोपेनाह व-  
शीकृत । आसक्तत्कलमयैव परलोके किमुच्यते ॥ १२७ ॥ इत्यात्मान विनिर्धेय कुतस्त्यस्तव ब्रजेः क्व वा । इत्यनोचमभोगस्त्व वैश्योप्येवमुदाहरत् ॥

मंत्रसे सिद्ध किये हुए खड्गको कभी अलग नहीं रखता था परंतु प्रमादसे एकवार वह अलग रख दिया और छिद्र दे-  
खकर राजसने उसे मारडाला इसलिये यह नगर-फिरसे मूना होगया है । उसने मुझे पुत्रीके समान माना और मुझे  
बिना मारे ही चला गया ॥ ११९-१२० ॥ अब वह मुझे लेनेके लिये फिर आवेगा । उस कन्याकी गह बात सुनकर  
वह वैश्य उस खड्गको लेकर नगरके बड़े दरवाजेके भीतर जा छिपा । ज्योंही वह राजस विधाधर वहांसे निकला त्योंही  
उसने उस तलवारसे उसे मार दिया । वह विधाधर उसी समय पंच नमस्कारमंत्रका पाठ करता हुआ चित्तमें समाधि  
धारणकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १२१-१२२ ॥ पंच नमस्कार मंत्रको सुनकर नागदत्त विचार करने लगा कि हा ! मैंने  
यह सब पाप मिथ्या ही किया उसने मरु अपनी तलवार रखकर उस घाव लगे हुए विधाधरसे पूछा कि तेरा धर्म क्या  
है इसके उत्तरमें वह विधाधर कहने लगा कि मैं भी श्रावकपुत्र हूं मैंने यह सब ( नगरका नाश ) क्रोधसे किया है ॥  
१२३-१२४ ॥ क्रोधसे मित्र शत्रु हो जाता है क्रोधसे धर्म नष्ट हो जाता है क्रोधसे राज्य भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधसे  
प्राणतक छूट जाते हैं ॥ १२५ ॥ क्रोधसे पित्र शत्रु हो जाता है क्रोधसे माता भी क्रोध करने लगती है, क्रोधसे अयोगति प्राप्त होती है इसलिये आत्म-  
कल्याण चाहनेवालोंको वह क्रोध सदाके लिये छोड़ देना चाहिये ऐसा श्रीजिनैन्द्रदेवने कहा है ॥ १२६ ॥ यद्यपि मैं ये  
सब बातें जानता था तथापि पापी क्रोधने मुझे अपने वश कर लिया और उसका फल मुझे यहां ही मिल गया फिर  
भला परलोककी तो बात ही क्या है ॥ १२७ ॥ इसप्रकार अपनी निंदा करता हुआ वह विधाधर नागदत्तसे पूछने  
लगा कि तू कहाँसे आया और कहाँ जायगा । तब वह वैश्य कहने लगा कि मैं एक पाहुना हूं शोकसे व्याकुल हुई  
इस कन्याको देखकर राक्षसके भयसे इसकी रक्षा करनेके लिये यह पराक्रम कर बैठा हूं ॥ १२८ ॥ 'तु धर्मभक्त है' इस

जीव पुत्रोक्तिधेतिः प्रियेः प्रीणयसिस्व सः । सोपि रक्षादितद्वस्तुभागं देहीत्युच्यते ॥ १०८ ॥ पिता तु पुत्रं मद्रस्तु पलाशद्वीपमन्वयो । सि । पुरे पलाश-  
स्त्वे तत्पद्यानीयं शृणुता ॥ १०९ ॥ इत्याख्यमकुब्जेनामा आत्रादायादकैः सः । सहदेवेन चासिद्धिद्विदि भवेदह ॥ ११० ॥ प्रलागल्य भूगामि पुत्रा-  
जैनेश्वरीमिति । आशास्यानुविनानुत्सा कृताशुगुणवन्दनः ॥ १११ ॥ आरुहा नामभोविमवगाणा मजनं दुतः । पलाशपुमसाया तत्र स्याद्विपोतकः ॥  
११२ ॥ पुरे विगतसंनारं क्रमेतदिति विख्यातः । ततः प्रसारितायामिरज्जुभिस्तटमासवान् ॥ ११३ ॥ प्रविश्य तत्पुरं तत्र कन्यानेकाकिनी स्थिता । एकत्र-  
लोक्या तामाह वृद्धवक्त्रं दुतः ॥ ११४ ॥ जातमीदृक् स्वयं का चेलगदत्साम्बवीदलः । प्रागेतमगरेयास्य दायदः कोपि कोपनः ॥ ११५ ॥ सिद्धोत्पस-  
विद्यतात्सप्राप्तो राक्षसाभिधा । पुरं पुराधिनाथं च समिर्मूलं व्यनीनशतः ॥ ११६ ॥ तद्वंशजेन केनापि संभ्रमसाधितासिना । कृतरक्षं तथैवैतस्यापितं न-  
गरं पुनः ॥ ११७ ॥ पतिर्महाबलौघास्य कांचनादिलता प्रिया । तस्यैतयोर्गृहं पद्मलनाभूत् कृताख्यया ॥ ११८ ॥ कदाचिन्मरियता मन्त्रसाधितं वज्रम-  
राणं कमलौको प्रणाम किया धनदेवने उसे देखकर 'हे पुत्र चिरंजीव हो यहां बैठ' इस तरहके मीठे वचनोंसे उसे प्रसन्न  
किया । तदनंतर नागदत्तने अपने भांगकी रत्नादिक वस्तुएं मांगी ॥ १०७-१०८ ॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे  
पुत्र ! मेरी सब चीजें पलाशद्वीपके मध्यमें बसनेवाले पलाश गांवमें रखी है वहांसे जाकर तुम ले लो ॥ १०९ ॥ पिता  
के इस प्रकार करने पर वह नागदत्त अपने भागीदार (दायाद) नकुल और सहदेव दो भाइयोंके साथ नावमें बैठकर  
समुद्रके भीतर चला । चलते समय उसने आशा प्रगटकी कि यदि मेरी इष्ट सिद्धि हो गई तो लौट कर मैं श्रीजिनदेव  
की पूजा करूंगा ऐसी आशा कर उसने श्रीजिनदेवको नमस्कार किया और फिर गुरुवन्दना कर वह वहांसे चला ।  
शीघ्रही वह पलाशपुरमें जा पहुंचा और वहां पर अपना जहाज खड़ा किया जहाज परसे ही उसने देखा कि नगरमें  
किंसी भी मनुष्यके जाने जानेका संचार नहीं है यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ और वह अपनी लंबी रस्सी फेंककर  
किनारे पर पहुंचा ॥ ११०-११३ ॥ उसने नगरके भीतर जाकर एक जगह अकेली बैठी हुई एक कन्याको देखा और  
पूछा कि यह नगर ऐसा कैसे हो गया है और तू कौन है तब वह कन्या कहने लगी कि किसी एक समय इस नगरका  
अधिकारी बड़ा ही क्रोधी था ॥ ११४-११५ ॥ वह राक्षस नामकी विधाको सिद्ध कर राक्षस नामसे ही प्रसिद्ध हो  
गया था और उसने इस नगरको तथा नगरके राजाको समूल नष्ट कर दिया था ॥ ११६ ॥ उसके वंशमें होनेवाले  
किंसी पुरुषने मंत्रपूर्वक एक तलवार सिद्धकी थी उसने उसी तलवारसे सुरक्षित रह कर फिरसे यह नगर बसाया था  
॥ ११७ ॥ इसी नगरके राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे मैं पद्मलता नामकी पुत्री हुई थी ॥ १८ ॥ मेरा पिता उस

द्रोहिनी सती । धनमित्रा तयो मुर्धनो गदतो महाबलः ॥ ९६ ॥ तनूजा चतुर्जास्यासीदर्थस्वामिभ्यमिहयया । पक्षाशद्गीपमध्यस्थपलाशनगरेक्षितः ॥ ९७ ॥  
महाबलमहीरास्य कनकादिलताभवात् । काचनारिलतायाश्च ख्याता पद्मलता मुता ॥ ९८ ॥ उपयम्यापरा श्रेणी श्रेष्ठिनीं विषसर्जतां । सापि देशांतरं गत्वा  
समुता जातवशिषा ॥ ९९ ॥ सीलदत्तगुणे पार्श्वे गृहीतश्रावककृता । मुदुमव्यर्पयामास शास्त्रभ्यामनिमित्ततः ॥ १०० ॥ सोपि कामांतरे बुद्धिनिस्तीर्ण-  
श्रुतां बुधैः । सत्कविष्व स्वयभूला शास्त्रव्याख्यासप्तशशा ॥ १०१ ॥ नानादंकाररम्योक्तिसुप्रसन्नसुभाषितैः । विविष्टजनचेत सुप्रन्हादमुदपादयत् ॥ १०२ ॥  
तत्रैवारमिपुत्रेण दृढरसेण संगतिं । कृत्वा तत्पुरमिथानां शास्त्रव्याख्यानकर्मणा ॥ १०३ ॥ उपाध्यायत्वमयास्य तत्रासवसुना निजा । जननीं च स्वतारं च  
स्वयं च परितोषयत् ॥ १०४ ॥ स्वमातुलानीपुत्राय नदिप्रामतिवाक्षिने । कुलवाणिजनाम्ने स्वामनुजामदितारदात् ॥ १०५ ॥ स कदाचिदुपप्लोकोपपूर्वकं  
क्षितिनायक । विलोक्य तत्प्रसादात्सम्मानधनसम्पदं ॥ १०६ ॥ कृतमातृपरिग्रहः पितुरागत्य मुनिर्वि । प्राणमत्तपदामो ज वनदेव समीक्ष्य त ॥ १०७ ॥

वाले पलाश नगरमें राजा महाबल राज्य करता था वह कनकलता भरकर उस राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे पद्म-  
लता नामकी पुत्री हुई ॥ ९७-९८ ॥ किसी एक समय उज्जयिनी नगरीके शेट धनदेवने अपना दूसरा विवाह कर लिया  
और पहिली स्त्री धनमित्राका परित्याग कर दिया इस लिये वह धनमित्रा अपने पुत्र सहित देशांतर चली गई । किसी  
एक समय ज्ञान होने पर उसने श्रीशीलगुप्त नामके मुनिराजके समीप श्रावकके व्रत धारण किये और शास्त्रोंका अभ्यास  
करनेके लिये अपना पुत्र उन मुनिराजको सौंप दिया ॥ ९९-१०० ॥ समयानुसार वह पुत्र भी बुद्धिरूपी नावसे शास्त्र  
रूपी महासागरके पार हो गया वह स्वयं अच्छा कवि बन गया और शास्त्रोंकी व्याख्या कर उसने अच्छा यज्ञ उत्पन्न  
किया ॥ १०१ ॥ वह अनेक तरहके अलंकारोंसे मिले हुए सुंदर वचन कह कर तथा प्रसन्नताके साथ सुभाषित कहकर  
विशेष लोगोंका ( बड़े आदमियोंका ) चित्त सहजमें ही प्रसन्न कर देता था ॥ १०२ ॥ वहाँके कोटपालके पुत्र दृढरसके  
साथ उसकी मित्रता हो गई और उसीके द्वारा उसने उस नगरके शिष्ट मनुष्योंको शास्त्रोंकी व्याख्या सुनाकर उपाध्याय  
पद प्राप्त किया । वहाँ पर उसने धन भी खूब कमाया और अपनी माता तथा बहिनको खूब संतुष्ट किया और वह स्वयं  
भी संतुष्ट हुआ ॥ १०३-१०४ ॥ नंदी नामके गावमें रहनेवाले कुलवाणिज नामके अपनी मामीके पुत्रके साथ बड़े आ-  
दरसे उसने अपनी बहिनका विवाह कर दिया ॥ १०५ ॥ किसी एक समय उसने बहुतसे नये श्लोक बनाकर राजा  
को सुनाये जिससे वहाँका राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस नागदत्त कविको आदर सत्कार कर ता, धन दे  
कर बहुत प्रसन्न किया ॥ १०६ ॥ किसी एक समय माताकी सलाहसे वह अपने पिताके समीप गया और कि च-







सह स्तुति ॥७४॥ शिवभूतेः सभापथा दैवस्य कुटिला गतिः । सोमिला शिवसेनायास्तुतानां च पोषण॥७५॥पापिष्ठासहमानांसा तर्जिता शिवभूतिना । कुर्वा जीवलमा शिवसेनयायं स चेलसत्त्व॥७६॥अकरोद् दृष्टुण शिग्धिभाकार्यं नाम योषिता । शिवसेनापि मांमया रूपादूषयन्मृषा ॥७७॥ नियुहीच्यामि मृत्युना निदानमकरोदिति । अन्यदाशत्रवे पूर्वं शिवपुत्रसुनीश्वर॥७८॥सोमिलाभोजयत्तस्मै शिवभूतिःस्य कुप्यति । तत्तपोधनमाहात्म्यकथनेन तया पति ॥७९॥ प्रसादितस्तुत साधु तदान सोन्मयन्त्यतः । स काशतरमाश्रित्य लोकांतरगत सुतः ॥ ८० ॥ आतोत्र विषये वेगे कांते कातपुरेदिनः । सुवर्णवर्मणो शिव-  
पुत्रेकायात्र महाबलः ॥ ८१ ॥ देवगेत्रैव चंपाया श्रीपेणाख्यमहीपतेः । सुवर्णवर्मसौटया धनश्री प्रेमदायिनी ॥ ८२ ॥ सोमिलाभुत्तयो पुत्री कनकाशि-  
लतामिधा । महाबलकुमाराय दातव्यमिति स्तव्य ॥ ८३ ॥ जन्मन्येवाभ्युपेतैषा मात्रा पित्रा च समदात् । वदमान पुरे तस्मिन्नेव बालिकया सम ॥

पतिते अनुरक्त रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंको कोई भी काम अकार्य नहीं है अर्थात् वे बुरे से बुरा काम कर सकती हैं और इसलिये स्त्रियोंको वार बार धिक्कार है । शिवसेनाने भी क्रोधमें आकर निदान किया कि इसने मुझे भि-  
ध्या दोष लगाया है इसलिये मैं मर कर परलोकमें इसका निग्रह करूंगी । तदनंतर किसी एक दिन सोमिलाने श्री शिव-  
पुत्र सुनिराजका पदगाहन कर आहार दिया जिससे शिवभूतिको बहुत ही क्रोध हुआ । परंतु पीछेसे उन सुनिराजका  
माहात्म्य कहकर सोमिलाने पतिको प्रसन्न कर लिया और फिर शिवभूतिने भी उस आहारदानको बहुत अच्छा माना ।  
समय पाकर वह शिवभूति मरा और बंमदेशके मनोहर कांतपुर नगरके राजा सुवर्णवर्माके उसकी रानी विद्युल्लेखासे  
महाबल नाम का पुत्र हुआ ॥ ७४-८५ ॥ इसी अंगदेशके चंपानगरमें श्रीपेण नामका राजा राज्य करता था उसके राजा  
सुवर्णवर्माकी बहिन धनश्री रानी थी ॥ ८२ ॥ उन दोनोंके सोमिलाका जीव कनकलता नामकी पुत्री हुई थी । राजा  
श्रीपेण और रानी धनश्रीने जन्मसे ही हर्षित होकर संकल्प कर लिया था कि यह पुत्री महाबलको ही दी जायगी । उ-  
सके माता पिताने भी यह बात स्वीकार कर ली थी देवयोगसे वृद्धिको प्राप्त हुआ महाबल यामाके ही यहां जा रहा  
और उस बालिकाके साथ रहने लगा ॥ ८२-८४ ॥ यामाने आज्ञा दी कि तुम दोनोंकी युवावस्था समीप समीप आ  
रही है इसलिये जब तक तुम दोनोंका विवाह न होजाय तब तक तुम दोनोंको अलग अलग रहना चाहिये इस प्रकारकी आ-  
मागाकी आज्ञानुसार वह कुमार बाहर रहने लगा परंतु उसका चित्त कन्यामें आसक्त ही रहा । वे दोनों ही कामकी आ-  
वस्थाको सह न सके इसलिये उन दोनोंका समागम हो गया ॥ ८५-८६ ॥ इस कृत्यसे वे दोनोंही लज्जित हुए और

प्राक्तनं इत्तं शुल्बाशोककुलो भृश । निजगेहं समानीय सुस्थिता भयविह्वला ॥ ६५ ॥ स्वपादशरणे भद्रा श्रेष्ठिं च भृगवती । चरनापादपकेजमुगल तावनीनमत् ॥ ६६ ॥ क्षमापूजित्वी चैव कुन्वाल्हाद तयोन्मत्तः । तदूर्तां कर्णेनोदीर्णपागादागतयधुसिः ॥ ६७ ॥ आप्रपितैत्तुर् वीर वेदितुं निजवाध-  
वान् । विमर्ज्य जातनिर्देहा गृहीत्वाधैव सयमं ॥ ६८ ॥ तत्त गोवगममाहात्म्यादध्यादागणिनीपदं । इतीह जन्मसंबधं भुत्वा तत्रानुचेष्टक ॥ ६९ ॥ भूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया ॥ ७१ ॥ परा वर्यश्रुता सुबुद्धता शिवभूतिवाक् । दुहिता चित्रसेनाख्या विदुष्टाया मजायत ॥ ७२ ॥ विप्रस्तत्राग्नि-  
या सामिला सोमशर्मणः । इतस्तु देवशर्मण्यचित्रसेनास्य च प्रिया ॥ ७३ ॥ अग्निभूता गतप्राणे तन्मृजस्तपदेभवत् । विधवा चित्रसेनापि पोष्यात्व-  
दोनों ही ढरसे घबड़ाए और भृगावतीके चरणोंके शरणमें आये भृगावतीने उन दोनोंसे चंदनाके चरण कमलोंमें नमस्कार कराया ॥ ६५-६६ ॥ चंदनाके क्षमा कर देने पर वे दोनों उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह क्षमाकी मूर्ति है । चंदनाने भी उन दोनोंको प्रसन्न किया तदनंतर चंदनाके भाई वंशुओं ने भी यह बात सुनी और स्नेहके कारण वे उसी नगरमें आये उसी नगरमें सब लोग महावीर स्वामीकी वदना करने गये । वहां पर जाकर चंदनाको वैराग्य उ-  
त्पन्न हुआ और उसने सब भाई वंशुओंको छोड़कर दीक्षा धारण करली ॥ ६७-६९ ॥ तपश्चरण और ज्ञानके माहा-  
त्म्यसे उसने गणिनी ( अर्जिकाओंकी नायिका ) का पद धारण किया । इस प्रकार चंदनाका इस भांतिका हाल सुन कर राजा चेटक पूछने लगा कि चंदना पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा कार्य करके यहां उत्पन्न हुई है । इसके उत्तरमें गणा-  
धर देव कहने लगे कि इसी प्रगथ देशके वत्सा नगरमें राजा प्रसेनिक राज्य करता । उसी नगरमें एक अग्निभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसके एक तो ब्राह्मणी स्त्री थी और दूसरी वैश्यकी पुत्री थी । ब्राह्मणीके शिवभूति नामका पुत्र हुआ और वैश्यकी पुत्रीके चित्रसेना नामकी पुत्री हुई ॥ ६९-७२ ॥ शिवभूतिकी स्त्रीका नाम सोमिला था जोकि सोमशर्मा नामका पुत्र हुआ । उसी नगरमें देवशर्मा नामका ब्राह्मणपुत्र और था उसे चित्रसेना व्याही ॥ ७३ ॥ कितने ही दिन बाद अग्निभूति के मरजानेपर उसका पुत्र शिवभूति घरका मालिक हुआ । इयर  
सहित वह अपने भाई शिवभूतिके घर आकर रही सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोंका भूति जो अपनी वहिन चित्रसेना और उसके पुत्रोंका भरण पोषण करता था वह पा  
इसलिये शिवभूति ने उसको ताड़ना दी तब क्रोधित होकर सोमिला ने चित्रसेनाको मारा ॥

साईं नीला कन्या न्यवेदयत् । कदाचिच्छेष्टिन पातु जलमुपद्रव्य यजत' ॥ ५४ ॥ भावर्जयत्याः केयाना कलाप मुकुवधन ।  
उत्थमान करेणादात्सज्जालाईं धरातले ॥ ५५ ॥ चंदनायास्तदालोक्य तद्रूपदत्तिकोपिनी । श्रेष्ठिनी तस्य भ्राष्ट्या स्वभर्तुल्या समं ॥ ५६ ॥  
संपर्क-मनसा मत्वा कोपात्प्रस्फुरिताधरा । निक्षिप्तशृंगला कन्या दुराहारेण दुर्जना ॥ ५६ ॥ प्रतर्जनादिभिश्चिना निरंतरसबाधत । सापि मरुत्पापस्य  
विपाकोयं वराभिका ॥ ५८ ॥ श्रेष्ठिनी किं करोतीति कुर्वत्यात्मविगर्हणं । स्वाभ्रजाया मृगावत्या अय्येतन्न न्यवेदयत् ॥ ५९ ॥ अन्यदा नगरे तस्मिन्नेव  
वीरस्तनुस्थिते । प्रविष्टवाग्विरीक्ष्यांघ्रा त भक्त्या मुक्तशृंगला ॥ ६० ॥ सर्वोभरणहर्षाया तद्रूपरेणैव भृतं । किरसा स्पृशानत्वोभैः; प्रतिश्ला यथाविधि  
॥ ६१ ॥ भोजवित्त्वपतदानाद् मानिनी मानितामरे । वसुधारा मरुत्पुष्पवृष्टिं सुमिसास्तं ॥ ६२ ॥ सुरद्विभूतिर्घोषं दानस्तवनयोपण । तदैवोच्छ्र-  
पुण्यानि फलंति विपुलं फलं ॥ ६३ ॥ अभ्रजास्यास्तादगन्त्य पुत्रेणामा मृगावती । तद्वृत्तान्दयनाह्वयेन स्नेहेनास्त्रिय भद्रना ॥ ६४ ॥ शृष्टुवा तां

मय उस श्रेष्ठकी श्रेष्ठानी भद्राने चंदनाको देखा चंदनाका रूप देख कर वह क्रोधित हुई और अपने मनमें उसके साथ  
अपने पतिका संबंध समझकर क्रोधसे अपने ओठ हिलाने लगी । उस दुष्टिनीने चंदनाको सांकलोंसे बांध दिया वह  
उसे बुरा आहार देने लगी और ताडना मारना आदिसे सदा उसे दुःख देने लगी । परंतु वह चंदना यही विचार क-  
रती थी कि यह सब मेरे पूर्व कर्मोंके उदयका फल है यह छुद्र श्रेष्ठानी भला क्या कर सकती है इस प्रकार वह सदा  
अपनी निंदा करती रही और उसने उसी शहरमें रहनेवाली वहांकी महारानी अपनी बड़ी बहिन मृगावतीसे भी ये स-  
माचार कहला कर नहीं भेजे ॥ ५६-५९ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें भगवान वीरनाथ आहारके लिये आए ।  
उन्हें देखकर चंदना बड़ी भक्तिसे उठी, उठते ही सांकलके वंथन सब छूट गये उसका शरीर सब आभूषणोंसे सुशोभित  
हो गया तथा उसीके भारसे मानों उसने पृथ्वीको छूकर मस्तक नवाकर नमस्कार किया और फिर विधिपूर्वक उनका  
पङ्कगाहन किया ॥ ६०-६१ ॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें आहार दिया । दानके प्रभावसे देवीने आकर उसका आदर स-  
त्कार किया उसके घर रत्नोंकी वर्षा हुई, देवपुष्पोंकी वर्षा हुई, सुगंधित वायु बहने लगा, देवोंके दंडुभी बाजे बजने लगे  
॥ ६२-६३ ॥ तदनंतर उसकी बड़ी बहिन मृगावती यह सब समाचार जानकर अपने उदयन नामके पुत्रके साथ उसके  
समीप आई और स्नेहसे चंदनाका आलिगन किया ॥ ६४ ॥ उसने चंदनाका सब पहिला हाल पूछा और उसका कहा  
हुआ सुन कर शोकसे बहुत ही व्याकुल हुई और उसे घर ले जाकर आरामसे ठहराया । यह देख कर श्रेष्ठ श्रेष्ठानी

स्वकीर्ति ॥ ४२ ॥ यत्नैर्वाच्येति कोषात् निर्मलस्यसिद्धि सा । सभूतस्यणात्मे ता खदादिभीकृः ॥ ४३ ॥ ईरावतीसर्विदक्षिणते साधितविद्य-  
या । पर्णसङ्घा तदैवात् कुतशोको विमुच्यन्त ॥ ४४ ॥ सापि पंवनमस्कारपरिवर्तनतपरा । निनाय सर्वेरी कृच्छ्राङ्गानुमयुहिते स्वयं ॥ ४५ ॥ तत्र  
सन्निहितो दैवात्कालकाव्यो बनेचरः । तस्मै निजपराद्वयैकस्फुरिताभरणान्यदात् ॥ ४६ ॥ धर्मं च कवयामास तेन गुणो बनेचरः । भीष्मकुट्टानलोपात्  
निवासौ सिंहसङ्घः ॥ ४७ ॥ भयंकाव्ययपत्नीशक्त्य तां स समर्पयत् । सोपि पायी विलोक्यैनां कामव्यामोहिताशयः ॥ ४८ ॥ निमहेण भः कूरो वा-  
त्सवात्कुण्डमुपतः । तदीक्य पुत्र मैवं त्वं कृपाः प्रत्यक्षदेवता ॥ ४९ ॥ यदि कुन्येदियं तापशापदुःखप्रदायिनी । इति सानुक्तिमित्या तां दुर्जनोपि व्यसज-  
यत् ॥ ५० ॥ तत्रैव चन्दना तस्य मात्रा सम्यग्विबधानत । योग्यमाणा विनिर्दितां किम्बिरकालमजीगमत् ॥ ५१ ॥ अथ वत्साह्वये देवो कैलाशोऽयं प्रवरे पुरे । अ-  
श्रीवृषभसेनाख्यस्तस्य कर्मकरोऽभवत् ॥ ५२ ॥ सिन्धवीरो बनेशस्य मित्र तस्य वनाधिपः । चन्दनामर्पयामास सोपि भक्त्या वाणिक्पतेः ॥ ५३ ॥ धनेन महता

ने भी पंच नमस्कार मंत्रका जप करते हुए बड़ी कठिन्तासे रात्रि पूर्णकी और सूर्यो उदय होते ही उसने स्वयं दैवयोगसे  
समीप ही रहनेवाले कालक नामके भीलको अपने बहुमूल्य दैदीप्यमान आभूषण दिये और उसे धर्मका उपदेश दिया, जि-  
ससे वह भीष्म बहुत संतुष्ट हुआ । परंतु उसने भीष्मकुट्ट नामके पर्वतके समीप रहनेवाले भयंकर नामक पल्लवीके स्वामी  
सिंह नामके अपने राजाको वह चंदना समर्पण कर दी । वह भीलोंका राजा सिंह पापी था इसलिये चंदनाको देखकर  
उसका हृदय कामसे मोहित होगया ॥ ४६-४८ ॥ वह दुष्ट क्रूरग्रहके समान निग्रहकर उसे अपने वश करनेके लिये  
तैयार हुआ । उसे इसतरह करते देखकर भीलकी माताने अपने पुत्रको समझाया कि 'हे पुत्र तू ऐसी  
मतकर, यह प्रत्यक्ष देवता है यदि यह क्रोधित हो जायगी तो फिर कितनेही संताप प्राप्त और दुःख  
देगी' इस प्रकार माताके वचन सुनकर वह डरा और दुष्ट होनेपर भी उसने वह चंदना छेाड दी ॥ ४९-५० ॥  
तदनंतर वह चंदना उस भीलकी माताके साथ निश्चित होकर थोड़े दिनतक वहीं रही भीलकी माता उसका  
पालन पोषण अच्छी तरह करती थी ॥ ५१ ॥ अयानंतर-वत्सदेशके कौशांबी नामके श्रेष्ठ नगरमें एक वृषभसेन  
नामका श्रेष्ठ रहता था उसके मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था जो कि उस भीलका मित्र था उस भीलने  
वह चंदना उस मित्रवीरको दी । उस मित्रवीरने बड़ी भक्तिसे बहुत धनके साथ वह कन्या श्रेष्ठको समर्पण की ।  
किसी एक समय वह चंदना उस श्रेष्ठको जल पिला रही थी उससमय उसके केशोंका कलाप छूट गया था और  
जलसे भीगा हुआ पृथ्वी पर लटक रहा था उसे वह बड़े यत्नसे एकहाथसे संभाल रही थी ॥ ५२-५५ ॥ उस स-

ता-म्यानयाभरणणीति स्वयं तेन सहागमत् ॥ ३१ ॥ साप्याभाभरणगत्य तानदृष्टुमिच्छति । तथाहमिति ओकार्ता निजमाभौ यशस्वती ॥ ३२ ॥  
दृष्ट्वा स्मृतिं सन्तीरेण्या ध्रुत्वा पर्यं जिनोदितः । निर्विद्य संसृतेर्दक्षिणं प्राप पापविनाशिनीं ॥ ३३ ॥ भवतासि महाप्रीत्या चेलिनीयं यथाविधि । गृहीतानु मदा  
देवीपद्मचानुतोष सा ॥ ३४ ॥ चंदना च यशस्वत्या गणिन्यः सन्निधौ स्वयं । सम्यक्त्वं श्रावकाणां च प्रत्यायादत्त सुखता ॥ ३५ ॥ ततः स्वगन्धगच्छे-  
पीसुवर्णभूपुरेश्वरः । मनोवेगं स्वगाभीशः समनोवेगंगा सम ॥ ३६ ॥ स्वच्छदं चिरमाक्रीड्य प्रत्यायादत्त बने । अशोकास्ये सम्यक्क्रोडमानां परिजनं  
सह ॥ ३७ ॥ विलोक्यानगतिर्गुणशरजर्जरीतांगकः । प्रापय्य स्वप्रियां गेहं रूपिणीविद्यया स्वयं ॥ ३८ ॥ विकृत्य रूपं स्व तत्र निधाय हरिषिष्टरे । शशो-  
कबनमभ्येत्य गृहीत्वा चंदना द्रुत ॥ ३९ ॥ प्रत्यागतो मनोवेगाप्येतन्निहितवचनं । ज्ञात्वा कोपाकृणीभूतविगीपणविलोचना ॥ ४० ॥ तां विद्यान्वृता वान-  
पादेनाकम्प साबधीत् । कृताहृदासा सा विद्याधर्यागर्तिसिंहासनात्पदा ॥ ४१ ॥ चेष्टामाभोगिनीविद्यानो ज्ञात्वा स्वपतेरनु । गच्छत्यर्धपदे दृष्ट्वा दिव्येभौ

रनेवाली दीक्षा धारण कर ली ॥ ३२-३३ ॥ तूने भी बड़े प्रेम्से चेलिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और महादेवी  
का पट्ट बांधकर उसे संतुष्ट किया ॥ ३४ ॥ इधर अच्छे ब्रतोंको धारण करनेवाली चंदनाने भी यशस्वती अर्जिकाके स-  
मीप जाकर स्वयं सम्यग्दर्शन धारण किया और श्रावकोंके ब्रत धारण किये ॥ ३५ ॥ किसी एक समय वह चंदना अपने  
परिवारके लोगोंके साथ अशोक वनमें क्रीडा कर रही थी देवयोगसे उसी समय विजयादर्यपर्वतकी दक्षिण श्रेणीके सुव-  
र्णभू नगरका राजा मनोवेग विद्याधर अपनी रानी मनोवेगाके साथ स्वच्छंद रीतिसे क्रीडा करता हुआ वहां आ निकला  
और चंदनाको देखकर कामके छोड़े हुए चाखोंसे उसका शरीर जर्जरित होगया । वह तुरंत ही अपनी स्त्री को घर पहुंच-  
चानेके लिये वापिस लौटा और रूपिणी विद्यासे अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासनपर बिठला दिया । फिर वहांसे  
चलकर अशोक वनमें आया और चंदनाको लेकर शीघ्रही घरकी ओर लौटा । इधर मनोवेगा रानीने इस ठगीको पहिचान  
लिया और क्रोधसे उसके नेत्र लाल तथा भयंकर होगये ॥ ३६-४० ॥ उसने उस विद्यादेवताको बांये पैरसे आक्रमण  
कर मारा जिससे वह विद्या देवता जोरसे हंसकर उसी समय सिंहासनसे उतरकर भाग गई ॥ ४१ ॥ तदनंतर वह मनो-  
वेगा रानी आभोगिनी विद्यासे अपने पतिकी चेष्टा जानकर उसके पीछे दौड़ी और आधी दूर जाकर चंदना सहित लौटते  
हुए पतिको देखा उसने बड़े क्रोधसे पतिको तिरस्कारकर डांटा और कहा कि यदि तू अपने जीनेकी इच्छा रखता है तो  
इसको छोड । स्त्रीकी यह बात सुनकर वह मनोवेग बहुत डरा और उसने शोकसे व्याकुल होकर सिद्धकी हुई पशेलघृ-  
नामकी विद्यासे भूतरमण नामके वनमें ईरावती नदीके दक्षिण किनारे बह चंदना छोड दी ॥ ४२-४४ ॥ उस चंदना

मार्गचं पुर । राजद्रोहपदं बाणोबा ने आनपुरसरं ॥ २० ॥ विनप्रतिनिधि पूर्वमभ्यर्च्योभ्यर्च्यपदं । आनचं तद्विलोक्य त्वमप्राप्तिः पार्थवर्तिनः ॥ २१ ॥  
 किमेतदिति तदेवचनं राक्षः सप्तपि पुत्रिका । लिखितास्तास्तु कल्याणं चतस्रः समवायिताः ॥ २२ ॥ तिष्ठो नाशसि कीर्यते तत्र द्वे प्राप्तयौवने । कनिष्ठा  
 शस्य सुतयोः सुरकवान् । पिता ते याचमानोऽसौ न दत्ते भयसंश्रुते ॥ २५ ॥ इदं चावश्यकर्तव्यं कोभ्युपायोज कथ्यतां । सोऽपि मन्त्रिषु च भुला तत्का-  
 योपायपठितः ॥ २६ ॥ शेषमायमह कुर्वे तत्समर्थनमित्यमून । सतोष्य मन्त्रिणः सोऽपि तत्स्वरूप विलासवत् ॥ २७ ॥ पटके सम्यगालिख्य वक्राणा-  
 ष्ठाव यजतः । तत्पार्थवर्तिनः सर्वान् रवीन्द्रलोकोददानत ॥ २८ ॥ स्वयं च वीरको नाम वंशिमूला तदाढ्य । प्रातिक्षत्यटके रूप कन्ये ते तत्स्वरूप-  
 ते ॥ २९ ॥ विलोक्य भवति प्रीत्या सारंगदत्तिसाहस्यत् । कुमारविहिताभ्यागाद्गत्वा किंचित्ततोरे ॥ ३० ॥ चेलिनी कुटिला ज्येष्ठा मुक्ता त्व गच्छ विस्तृ-  
 और एक बालिका है । उन लोगोंकी यह बात सुनकर तू उनमें आसक्त हुआ और अपने चित्तका अभिप्राय मंत्रियोंसे  
 कहा । मंत्री भी उस कार्यको लेकर अभयकुमारके पास आये और कहने लगे कि तेरे पिता राजा श्रेणिककी अवस्था ढल जाने  
 ककी दोनों कन्याओंमें आसक्त हुए हैं उन्होंने चेदकसे वे दोनों कन्याएं मांगी थी परंतु श्रेणिककी अवस्था ढल जाने  
 से चेदकने दी नहीं ॥ २०-२५ ॥ यह काम करना अवश्य है इस लिये इसके करनेका क्या उपाय है सो कहो । उस  
 तरह उसने मंत्रियोंको संतुष्ट किया और फिर राजा श्रेणिकका एक अच्छा विलास युक्त चित्र बनाया । उसे वस्त्रसे ढक-  
 कर बड़े यज्ञसे ले गया । राजाके समीपवर्ती लोगोंको बहुतसा धन देकर अपने वंश किया और फिर स्वयं वोदक नामके  
 वैश्यका ( व्यापारीका ) रूप बनाकर राजाके घर गया । वह चित्र उन दोनों कन्याओंको दिखाया उसे देखकर वे दोनों  
 प्रसन्न हुई और चलनेको तैयार होगई । इधर कुमारने पहिलेसे ही सुरंग तैयार करा रखी थी इसीलिये वह उसी मार्ग  
 से साहस पूर्वक उनको ले आया । थोड़ी दूर जाकर कुटिल चेलिनीने ज्येष्ठसे कहा कि ' मैं अपने आभूषण भूल आई  
 हूं तू जाकर लेआ ' इसतरह कहकर उसको तो लौटा दिया और वह चेलिना स्वयं अभयकुमारके साथ चली गई ॥ २६-३१ ॥  
 इसके बाद वह ज्येष्ठा आभूषण लेकर वहां आई परंतु उनको वहां न देखकर बहुतही शोक करने लगी और मनमें कहने  
 लगी कि चेलनाने मुझे इसतरह ठगा है । तदनंतर वह शोकसे व्याकुल होकर अपनी मामी यशस्वती नामकी अर्जिकाके  
 समीप गई और उससे श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मका स्वरूप सुनकर और संसारसे विरक्त होकर उसने पापोंका नाश क-

सूर्यसमो दशरथोभवत् ॥ १० ॥ तस्याभूत्पुत्रा देवी भास्वतो वा प्रभामला । कच्छाह्यविषये रोकाह्योगां पुरि भूपति ॥ ११ ॥ महाहृदयनस्तस्य प्रमदभूताभावती । प्राप शीलवती स्थाति सा सम्यक् श्रीमधाराणात् ॥ १२ ॥ गाथाव विषये स्थातो महीपालो महीपुरे । याचिस्वा सात्यको ज्योष्ठाम-  
लुब्ध्वा कुटुम्बान् सिन्धीः ॥ १३ ॥ बुध्वा रणांगणे प्राप्तमानमंग स सत्रप । सद्यो दम्बरं प्राप्य पुनः संयममग्रहीत् ॥ १४ ॥ स चेटकमहाराजः सेवाद्वय-  
मलीलिङ्गत । पटके सप्त पुत्रीणां विंशतश्चरन्महीक्षितुं ॥ १५ ॥ निरीक्ष्य तत्र चेलिष्वारूपस्य पतितं मनाक् । विदुमुरो सिचात्रेस्व द्रुपे कुपितबल्लो ॥ १६ ॥  
पूज्य द्विक्रमेया विदुः प्रयुष्टः सप्त चापि सः । तथैव पतितस्त्वस्मिन् भाव्यमैकेन तादृशा ॥ १७ ॥ इति मन्वानुमानेन पुनर्न तपमार्जिय । इत्यब्रवीत्तदुक्तेन  
भूपति श्रीसिमास्तवान् ॥ १८ ॥ स देवार्चनदेवायां स्निहविनोपकठके । तत्पटक प्रसाधैर्ध्या निर्वर्तयति सवेदा ॥ १९ ॥ कदाचिद्वेटको गत्वा संसन्धो

पालन किया था इसलिये शीलवती उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था ॥ १०-१२ ॥ गंधार देशके महीनगरके राजा सा-  
त्यकने राजा चेटकसे वधेष्टा नामकी कन्या मांगी थी परंतु चेटकने दी नहीं इससे वह मूर्ख क्रोधित हुआ रणांगणमें आ-  
कर लड़ा परंतु उसे हारना पड़ा और मानभंग होनेके कारण वह लज्जित हुआ तथा दम्बर मुनिराजके समीप जाकर  
उसने शीघ्रही संयम धारण कर लिया ॥ १३-१४ ॥ तदनंतर महाराज चेटकने पुत्रियोंमें अत्यंत स्नेह होनेके कारण  
उनका प्रतिविंब सदा देखनेके लिये सातों पुत्रियोंका चित्र लिखाया ॥ १५ ॥ जब चित्र तैयार होकर आया तब चेलि-  
नीके चित्र पर उसकी जंघाके ऊपर एक छोटा सा विंदु दिखाई दिया जिसे देख कर उसके बनानेवाले पर राजा बहुत  
क्रोधित हुआ ॥ १६ ॥ तब पूछने पर चित्रकारने कहा कि हे पूज्य यहां विंदु पड़ गया था और मैंने साफ कर लिया  
था परंतु द्वारा फिर पड़ गया फिर साफ करने पर फिर पड़ गया इस तरह सातवार साफ किया परंतु फिर भी पड़  
गया तब फिर मैंने अनुमानसे यह समझा कि इस जगह ऐसा विंदु होना ही चाहिये साफ नहीं किया । उसकी यह बात  
सुन कर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १७-१८ ॥ तदनंतर वह राजा भगवानकी पूजा करनेके समय भगवानके प्रति-  
विंबके समीप ही उस चित्रको टांग कर सदा भगवानकी पूजा किया करता था ॥ १९ ॥ किसी एक समय राजा चेटक  
अपनी सब सेना सहित मगधपुरी गया था और राजगृह नगरके बाहर उद्यानमें डेरा दिये थे सबेरके समय स्नानकर  
उसने पहिले श्रीजिनदेवकी पूजा की और फिर पासमें रखे हुये उन पुत्रियोंके चित्रकी पूजा की । यह देख तने समीप  
वर्ती लोगोंसे पूछा कि यह क्या है तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि राजा ने यह अपनी सात पुत्रियोंका चित्र लिखाया  
है इनमेंसे चार तो बिचारी जा चुकी हैं और शेष तीनको राजा अभी देता नहीं है इन शेष तीन में दो की युवावस्था है



## अथ पंचसप्तति तमं पर्व ।

अथान्ये बुः समासीनं गणैर्दं विपुलाचले । श्रेणिक प्रीणिताशेषमव्यं सुन्यकतेजसं ॥ १ ॥ गणिन्याधंदनार्थया संवत्समिह जन्मनः । अन्वसुक-  
गणी चैवमाहादितमहद्विकः ॥ २ ॥ सिंघाह्ये विषये भूयदैशालीनगरेभवत् । चेटकाह्योविद्विषयातो विनीतः परमाहृतः ॥ ३ ॥ तस्य देवी च अ-  
द्राह्या तयोः पुत्रा दशाभवन् । घनाह्यो दत्तमदातालुपेद्रोऽन्य दुरत्तवाक् ॥ ४ ॥ सिंहभद्र सुकुमोजोकपनः सप्ततंगक । प्रमंजनः प्रभासश्च धर्मो द्व-  
सुनिर्मला ॥ ५ ॥ सप्तर्षयो वा पुत्र्यश्च ज्यायसी प्रियकारिणी । ततो मृगावती पद्मासुप्रभाऽतः प्रभावती ॥ ६ ॥ चेलिनी पंचमी ज्येष्ठा षष्ठी वंशा च  
विषये वत्सबासाह्ये कौशावीनगराधिप । सोमवंशे शतानीको देव्यस्यासीन्मृगावती ॥ ६ ॥ दशार्णविकये राजा हेरकच्छपुराधिपः । सूर्यवशावरे

## अथ पिचचहरिवां पर्व ।

अथानंतर-किसी दूसरे दिन विपुलाचल पर्वत पर सब भव्योंको प्रसन्न करनेवाले और सुमकट तेजस्वी भगवान गण  
धरदेव सभामें विराजमान थे उनके समीप जाकर महाराज श्रेणिकने सब अर्जिकाओंकी नायिका ऐसी चंदना  
अर्जिकाकी इस जन्म संबंधी कथा पूछी तब अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले गणधर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ १-  
२ ॥ सिन्धु देशके वैशाली नगरमें चेटक नामका प्रसिद्ध राजा था जोकि विनयी और अरहंतदेवका अनुयायी था उसकी  
महारानीका नाम भद्रा था उससे उस राजाके दस पुत्र थे जो कि धन, दत्तभद्र, उर्षेद्र, सुदत्त सिंहभद्र, सुकुंभोज, अकंपन,  
सुपतंग प्रमंजन और प्रभास के नामसे प्रसिद्ध थे और दश धर्मोंके समान निर्मल थे ॥ ३-६ ॥ उसी भद्रासे ऋद्धियोंके  
समान सात पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं जो कि प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और पूज्य चंदनाके  
नामसे प्रसिद्ध थीं । विदेहदेशके कुंड नगरमें नाथ वंशका स्वामी राजा सिद्धार्थ राज्य करता था, उसने अपनी सब सि-  
द्धियां पूर्ण कर ली थीं । उसके पुरायकर्मके उदयसे वह प्रियकारिणी उसकी स्त्री हुई थी ॥ ६-८ ॥ वत्सदेशके कौशावी  
नगरके स्वामी चंद्रवंशी राजा शतानीकके मृगावती दूसरी पुत्री पट्टरानी हुई थी ॥ ९ ॥ दशार्ण देशके हेरकच्छ नगरके  
स्वामी सूर्यवंश रूपी आकाशके सूर्य राजा दशरथ थे सूर्यकी निर्मल प्रभाके समान सुप्रभा नामकी देवी उनकी पट्टरानी  
हुई थी । कच्छदेशके रोहक नगरके स्वामी राजा उदयनके प्रभावती रानी हुई थी । उस प्रभावतीने

सर्वे समासीना तन्माहात्म्यं समस्तुवन । समासार्थं च वेत्ते वा न स्तुवति गुणालम्ता ॥ ४६ ॥ धियोऽस्य सदैव ज्ञानमन्विता ॥ १० ॥ महाश्रद्धयनस्तस्य  
हृतसंस्कृते निमित्तानुचान्चैव सा । ततः स निखिला समामभयपडितो वागुणोपपायनिपुणो लब्धविजयपञ्चो रंजयन् ॥ ४७ ॥ क स मुक्ति-  
विततत्तव श्रावकः शोभमशः स्फुरितदुर्गतिदूरारुणोद्भेदोद्दयान् । अमरपरिवृत्तं प्राप्यतेऽसोपदेशादभयविमुक्तभूतस्तस्यः किं न कुर्यात् ॥ ४८ ॥  
स्याक्षीरस्तव विमार्शनी कृतधियाः श्रद्धानुविद्धा तथा हित्वा हेयमुपेयमाप्य विचरन् विचिच्छ बर्वास्तत । सत्कर्मणि च संतत बहुगुणं संश्रावयन् सख्यते  
प्राप्तं प्राप्य भवेद्विभावयविसुनिर्बन्धोऽख्यालय ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे भगवद्वगुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अंत्यतीर्थक्षेत्रश्रेणिकाभाष्यव्याख्यानं नाम चतुःसप्ततितम पर्व ।

मात्सर्यं रत्ननेवाले मनुष्य न हों तो फिर गुणोंकी प्रशंसा कौन नहीं करता भावार्थ—सभी करते हैं ॥ ४४५-४४६ ॥ उस  
बुद्धिमानकी बुद्धि जन्म से ही कुशाग्र थी और फिर शास्त्रोंके संस्कारसे वह और भी तेज होकर एक विलक्षण बन गई  
थी । इसीलिये उस अभयकुमार पंडितने अपने वचनरूपी गुणोंसे सब सभा प्रसन्न कर ली थी और अनेक उपायोंमें  
निपुण पुरुषोंमें भी अपनी विजय पताका प्राप्त की थी ॥ ४४७ ॥ देखो कहां तो अच्छे तत्त्वोंका जानकार वह श्रावक  
और कहां वह मूर्ख ब्राह्मण जोकि दैदीप्यमान पापोंको दूर फेंककर केवल उस श्रावकके समागमसे ब्रतोंमें डूब होगया और  
उसीके उपदेशसे देव होकर ऐसा ऐश्वर्य शाली अभयकुमार हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समागमसे क्या क्या  
नहीं होता है ॥ ४४८ ॥ जिनकी बुद्धि तत्त्वोंका विचार करने वाली है तथा उस बुद्धिके साथ साथ अटल श्रद्धा है उस  
श्रद्धासे जो हेय पदार्थोंका त्यागकर और उपादेय पदार्थोंका ग्रहणकर विहार करते हैं । तदनंतर कर्म बंधोंका नाशकर  
सदासे इकट्ठे किये हुए शुभकर्मोंकोभी आत्माके अनेक गुणोंसे नाशकर संसारके पार पहुंचते हैं वे ऐश्वर्यशाली अभयकुमार  
के समान मोक्ष रूपी अनंत सुखके स्थान बन जाते हैं भावार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ४४९ ॥

इसप्रकार भगवद्वगुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान श्रेणिक और अमयकुमारके  
चरित्रको कहनेवाला यह चौदहचरित्रा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

आतमन्यतरं द्रव्यान्तस्थाप्राप्ततां कुत ॥ ५३६ ॥ एकधर्मोत्तमं सर्वं वाञ्छतोचितवदितः । सामान्येत्तत्समूहो कुन सगानिर्णयः  
 धानवस्थाप्युपेतहोत्रनिवारणं ॥ ५३७ ॥ प्रतीयमानानामिधानासत्याभिधाधिनिः । तगोरसत्याज्ञानाभिधानयो केन मयता ॥ ५३८ ॥ गुणगुणभिसम्बन्धे समानान्वयः न । निसा-  
 सम्यग्दर्शनमिष्यते । ज्ञातिस्तत्त्वोक्तवस्तुना सम्यग्ज्ञानमुदाहृतं ॥ ५३९ ॥ तत्त्ववस्तुवैक्यं दुर्गादगर्वं सर्वज्ञमार्ति । नित्याभित्यात्मकं तत्त्वं प्रत्येतव्यं मनीषिणा ॥ ५४० ॥ सवविस्मयतमश्रद्धा  
 ५४२ ॥ समेतमेव सम्यक्त्वज्ञानाभां चरितं मतं । स्यातां विनापि तेनेन गुणस्याने चतुर्षके ॥ ५४१ ॥ कार्त्स्न्येन कार्यणा कृत्वा सवरं निजता परां ।  
 प्राप्नोतु परमं स्थानं विनेयो विश्वदृक् तत ॥ ५४२ ॥ इति सर्वं मनोहारि भुत्वा तस्य निरूपण । वस्तुतस्वो दिदेश्य कुशलमपण्डितः ॥ ५४३ ॥ इति  
 को अत्रांत कैसे कहता है भावार्थ वह स्वयं आंत है ॥ ५३६ ॥ सबको एक धर्मात्मक माननेवाले जो वादी हैं उनके मत  
 में सामान्य और विशेष की उत्पत्तिमें संशय वा निर्णय कैसे हो सकेगा ॥ ५३७ ॥ जो पदार्थ विश्वप्रणीय ज्ञानके मत  
 कहा हुआ है और जो असत्य रीतिसे कहा हुआ है इन दोनोंमें अर्थात् असत्य और यथार्थ ज्ञानके द्वारा कहे हुए पदार्थों  
 में सत्यका निर्णय कैसे होगा ॥ ५३८ ॥ गुण गुणीका संबंध रहते हुए भी जो अन्य संबंधकी कल्पना करते हैं उनके  
 मतमें संबंधरहित पदार्थोंमें अनवस्था दोषसे प्राप्त हुई जो हानि है उसका निवारण कैसे हो सकता है । भावार्थ-गुणगुणी  
 संबंध को न मानकर समवाय संबंध माननेमें जो अनवस्था आदि अनेक दोष आते हैं उनका निवारण कभी नहीं हो  
 सकता ॥ ५३९ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको एकांत मिथ्यावादका अभिमान छोड़कर सर्वज्ञ देवके कहे हुए नित्यानित्यात्मक  
 पदार्थोंका श्रद्धान करना चाहिये ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञ और सर्वज्ञदेवके कहे हुए मतपर श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन कह-  
 लाता है । सर्वज्ञदेवके कहे हुए पदार्थों को जानना सम्यग्ज्ञान कहा जाता है और उसके कहे हुए आगमके उपदेशके अनु-  
 सार मन वचन काय तीनों योगोंका रोकना चारित्र्य सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साधनी होता है परंतु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये  
 दोनो बिना सम्यक्चारित्र्यके भी चौथे गुणस्थानमें हो जाते हैं ॥ ५४१ ॥ इसलिये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये  
 का उत्कृष्ट संवर और उत्कृष्ट निर्जरा करके मोक्षरूप परमस्थान प्राप्त करना चाहिये ॥ ५४२ ॥ इसप्रकार सब मनोहर  
 रीतिसे निरूपण किया हुआ पदार्थोंका स्वरूप सुनकर सब बैठे हुए सभासद लोग उसकी महिमाकी प्रशंसा करने लगे  
 और कहने लगे कि यह अभयकुमार तत्त्वोपदेश देनेमें बड़ाही कुशल और पंडित है सो ठीक ही है क्योंकि यदि ईर्ष्या और

तत्त्वा विनिर्देशबोधितं ॥ ५२६ ॥ अवाप्ससि पद मुकेरित्यस्यैवपुत्र्युत्त । अस्मिन् राहा सह दुष्टोविनाशुर ॥ ५२७ ॥ अथान्येभ्युर्महाराजश्रेष्ठिक  
सदसि स्थित । अमर्यं सर्वशास्त्रं कुमारं ब्रवागिमनां ॥ ५२८ ॥ तन्माहात्म्यप्रकाशार्थं तत्त्व पत्रञ्च वस्तुन । सोऽयामन्त्रविनेयसाद्वस्तुयाम्यदशिधीः ॥  
५२९ ॥ स्वद्विजोत्सर्गिभारविभासितसमांतर । एवं निरूपयामास स्पष्टशृष्ट्यंगुणः ॥ ५३० ॥ यस्य जीवादिभावानां बाधालयेन प्रकाशनं । तं पठितं  
बुधाः श्राद्ध परे तान्मैव पठिताः ॥ ५३१ ॥ जीवाद्याः कालपर्यन्त पदार्था विनभाषिताः । द्रव्यपर्यायमेषाभ्यां नित्यानित्यस्वभावकाः ॥ ५३२ ॥ सर्व-  
थात्मादितत्त्वानां मोहाभित्यक्त्वल्पने । सर्वद्रव्येषु सभूति परिणामस्य नो भवेत् ॥ ५३३ ॥ क्षणिकत्वे पदार्थानां न क्रिया कारक च न । न फल च त-  
था लोकव्यवहारविलोपन ॥ ५३४ ॥ नित्यस्वस्योपचारेण सत्त्वात्तस्य विलोपनं । नोचेन्मिव्योपचारेण कथं तथस्य साधन ॥ ५३५ ॥ धर्मद्रव्योपलभाभ्यां

समप्रकार उस अभयकुमारने संतुष्ट होकर तथा श्रीजिनराज को नमस्कार राजा श्रेणिकके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥  
५२३-५२७ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक अपनी राजसभामें विराजमान हुए । वहांपर उन्होंने बड़े बड़े  
वक्ताओंके सामने अपने पुत्रका माहात्म्य दिखलानेके लिये समस्त शास्त्रोंके जानकार अभयकुमार को पदार्थोंका स्वरूप  
पूछा आसन्नभव होनेसे वह अभयकुमार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको दिखलानेमें समर्थ था इसलिये अपने दांतोंकी फैलती  
हुई कांतिके भारसे सब सभाको प्रकाशित करता हुआ तथा स्पष्ट निर्मल और इष्ट कहनेरूप अपूर्व गुण को धारण करने  
वाला वह अभयकुमार नीचे लिखे अनुसार तत्त्वोंका स्वरूप कहने लगा ॥ ५२८-५३० ॥ जो जीवादि पदार्थोंका स्वरूप  
यथार्थ रीतिसे प्रगट कर सकते हैं विद्वान लोग उर्हींको पंडित कहते हैं जो पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप नहीं कह सकते वे  
केवल नामके पंडित हैं ॥ ५३१ ॥ श्री जिनेंद्रदेवने जीव पुद्गल-धर्म अर्थात् आकाश और काल ये छह पदार्थ कहे हैं ये सब  
पदार्थ द्रव्य और पर्यायके भेदसे नित्यस्वभाव और अनित्यस्वभाव कहे जाते हैं ॥ ५३२ ॥ यदि मोहनीय कर्मके उदयसे  
जीवादि सब पदार्थोंको सर्वथा नित्य कल्पना किया जाय तो फिर सभी पदार्थोंमें परिणामन होनेकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी  
॥ ३३ ॥ यदि सब पदार्थोंको क्षणिक मान लिया जाय तो न क्रिया धन सकेगी न कारक बन सकेगा और न क्रियाका  
फल बन सकेगा । तथा लेने देने रूप लोक व्यवहार का बिखुल नाश हो जायगा ॥ ५३४ ॥ यदि नित्यको उपचारसे  
मानोगे तो जो नित्यत्व वास्तवमें है उसका अभाव ही मानना पड़ेगा क्योंकि आभावमें ही उपचार माना जाता है यदि वह  
वास्तवमें है ही नहीं तो फिर मिथ्या उपचारसे उसका सत्यस्वरूप कैसे सिद्ध हो सकता है ॥ ५३५ ॥ इसलिये नित्या-  
नित्यात्मक दोनों धर्मोंके रहनेसे ही अर्थ क्रिया होती है इस बातको

वादस्य नाहेत ॥ ४१८ ॥ इत्याहं लोक तत्तत्त्वं भुत्वा सर्वं दिङ्मात्रम् । त्वय्युहीतो मया दैव्यास्तु धर्मोय प्रयुवीति च ॥ ५१९ ॥ तदाद्याश्रद्धिर्दमं निर्मलं बि-  
 नभाषित । सतां बन्धो हित हि रथादारुरायैष भोजनं ॥ ५२० ॥ अथ तो सह गच्छतां नाय ॥ ५२१ ॥ तदाद्याश्रद्धिर्दमं निर्मलं बि-  
 देशकोस्ति न मार्गस्य बन्धेतदमात्रम् । नास्ति कश्चिदुपायोत्र विहाय जिनमाश्रित ॥ ५२२ ॥ परिच्छेदोहि पांडित्ये  
 सद्यनानासीनं श्रावकं द्विज ॥ ५२३ ॥ विदोक्त्य सयमय्येतदुपदेशेन, शुद्धीः । उ स्थित्वा तथैव सयाससमाभिर्जाहिताभ्यो ॥ ५२४ ॥ सौषर्मे-  
 कल्पे देवोभूद् भुक्त्वा तत्रामरं सुखं । लायुरति लघुप्येन श्रेणिकस्य महीपते ॥ ५२५ ॥ अ न मयाख्यं सुतो धीमानजनिष्टास्त्वमीदृशः । अत परं तपः क-  
 दो ॥ ५२६ ॥ कदाचित् यह कहो कि जो विसंवादरहित है वही प्रत्यक्ष है और वही प्रमाण है तो भी पूछा जा सकता  
 है कि वही प्रमाण क्यों है ? कदाचित् कहो कि अनुमानसे ऐसा ही सिद्ध होता है तो फिर उत्तरमें कहा जा सकता है  
 कि अनुमान तुम्हें इष्ट नहीं है इसके सिवाय फिर भला राजाओंको भी अनिवार्य क्या होगा ? ॥ ५२७ ॥ अथवा सांख्य  
 आदि अन्य मतोंके बचन भलेही अप्रमाण हों क्योंकि उनमें परस्पर विरोध आप्तग है परंतु अरहंत के वचन कभी अप्रमाण  
 नहीं हो सकते क्योंकि सर्वज्ञ होनेसे प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उनमें विसंवादका अभ्यास सिद्ध होता है ॥ ५२८ ॥ इसप्रकार  
 अरहंतदेवके कहे हुए सब यथार्थ तत्वों को सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि क राजसे तेरे धर्म को मैं भी स्वीकार करता  
 हूं ॥ ५२९ ॥ इसप्रकार उसने उस श्रावकके कहे अनुसार जिनेंद्र देवका कहा हुआ निर्मल धर्म स्वीकार करवा  
 ही है क्योंकि जिसप्रकार औपधिका सबको अनुराग होता है उसीप्रकार सज्जनोंके हितरूप वचनोंका भी स्वीकार किया सो ठीक  
 होता है ॥ ५३० ॥ अतानंतर वे दोनों ही साथ चलने लगे दैवयोगसे पाप कर्मके उद्धारसे वे दोनोंही किसी गहन वनमें  
 जाकर मार्ग भूल गये और दिशाभूल हो गये ॥ ५३१ ॥ तब श्रावकने विचार किया कि यहां मार्ग वतलाने वाला कोई  
 नहीं है क्योंकि इस वनमें मनुष्य का कहीं पता ही नहीं है यहां पर सिवाय श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए उपायके और कोई  
 उपाय ही नहीं है ॥ ५३२ ॥ ऐसे समयमें शूरीरका पांडित्य इसीमें है कि वह आहार और शरीरका त्याग करदे । इस  
 तरह विचार कर वह सन्यास धारणकर ध्यानस्थ विराजमान होगया । ब्राह्मण ने भी उससे इसप्रकार देवकर अपना चित्त  
 शुद्ध किया और उसके उपदेशके अनुसार उसीतरह सन्यास धारण कर शरीर छूटजानेपर वह सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ ।  
 वहांके देवोंके सुख भोगकर आयुके अंतमें पुण्यकर्मके उदयसे राजा श्रेणिकके तू अभयकुमार नामका ऐसा बुद्धिमान पुत्र  
 उत्पन्न हुआ है । आगे तू श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ बारह तरहका तपश्चरण धारणकर मोक्ष स्थानको प्राप्त होगा यह सब

न तथ्यः स्यादेवामावधिकोपतः ।  
 मन ॥ ५१० ॥ हेतुवादीऽप्रमाणं चेयथाश्रितिरुक्तिरिति । इन्दीय सत्यमेव किं इतिमाश्रितिरित्यपि ॥ ५११ ॥ वाग-  
 यत्ना शीर्त्वापि तदुत्प्रेषितव्यस्त्वयपि सः ॥ ५१२ ॥ इष्टे तस्मिन्मयाभीष्टो विश्ववित्किञ्च सिद्ध्यति । ततः त-  
 विप्रस्तव ददप्रमावाची न चार्वाको न मां प्रति । प्रभोगोऽनभ्युपेतत्वादित्युक्तिर्घटते न ते ॥ ५१४ ॥ साध्यसा-  
 सि कथं न स्यात्प्रयोगस्तथा प्रतिप्रमा ॥ ५१५ ॥ क्वचिच्च व्यभिचारोऽवेदप्रत्यक्षेऽपि न मोरिति किं । नानुमानप्र-  
 विधेर्वादि प्रमाणमिति चेत्कुल । अनुमानेऽपि तत्रेष्टमनिष्ट किं किंतीविमिः ॥ ५१७ ॥ अस्तु साह्यादिवाद्

पुरुषका भी पढ जाना ( धोखा खाना ) दुर्लेप नहीं है । हे विप्र यदि तुम इस तार कहो सो भी ठीक नहीं है  
 क्योंकि इससे कुछ बड़े आदमियोंका-विद्वानोंका मन आकर्षित नहीं होता ॥ ५०७-५१० ॥ इसका भी  
 कारण यह है कि हेतुवादको अप्रमाण मान लेनेपर जिसप्रकार वेद अकृत्रिम वा अपौरुषेय हैं यह बात सत्य है उसी  
 प्रकार वेद कृत्रिम वा पौरुषेय है यह बात भी क्या सत्य नहीं है ? कदाचित् इसके उत्तरमें यह कहा जाय कि  
 केवल वचनमात्रसे कह देना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंके सिद्ध करनेमें कोई शेष हेतु नहीं है तो फिर मर सठकर  
 तुम्हें वेदको अकृत्रिम सिद्ध करनेका हेतु स्वीकार करना ही पड़ेगा ॥ ५११-५१२ ॥ यदि वेदको अकृत्रिम सिद्ध  
 करनेके लिये किसी हेतुको मानना श्रुत है तो फिर उसी हेतुवादसे वा अनुमान से हमारे अभीष्ट ऐसे सर्वज्ञकी सिद्धि भी  
 क्यों नहीं हो जायगी अर्थात् अवश्य होजायगी इसलिये विद्वान् लोग सर्वज्ञों के कहे हुए बचनोंके विरुद्ध कभी स्वीकार  
 नहीं करते हैं ॥ ५१३ ॥ हे विप्र ! तुम प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्द, उपमान, अर्थोपपत्ति और अभाव इन छह प्रमाणोंको  
 माननेवाले मीमांसक हो, केवल प्रत्यक्षप्रमाणको माननेवाले चार्वाक नहीं हैं इसलिये “यह अनुमानका प्रयोग भरे लिये  
 नहीं है क्योंकि मैं हेतुवाद मानता नहीं” यह तुम्हारी युक्ति अथवा तुम्हारे बचन ठीक नहीं जम सकेंगे ॥ ५१४ ॥ साध्य  
 साधनके अविनाभावी संबंधको हेतु कहते हैं और वह हेतु प्रत्यक्ष होता है इसलिये उस हेतुको प्रत्यक्ष देखकर उसके संब-  
 धको जाननेरूप तर्कप्रमाण के द्वारा उसकी व्याप्तिका ज्ञान कैसे नहीं होना अर्थात् उस साधनसे साध्यका ज्ञान क्यों नहीं  
 होगा और फिर ऐसा अनुमानका प्रयोग तुम्हें प्रमाण क्यों नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य मानना पड़ेगा ॥ ५१५ ॥ कदा-  
 चिद् यह कहो कि अनुमानमें कहीं व्यभिचार हो जाता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कहीं व्यभिचार आ जाना क्या  
 प्रत्यक्ष प्रमाण में अर्थात् नहीं है ? वहां भी है इसलिये हे आर्य ! अनुमान

शोऽप्रवीत । आतोकागमवैमुख्यादिति हेतुन मां प्रति ॥ ४९९ ॥ साख्याशासत्रवादानां वैकुण्ठ्यस्वदोक्तः । दायताः पुरुषाः सर्वे बाल रागाद्यविषया ॥ ५०० ॥ इत्यनालोचिताथस्य बचते नैति सारता । यतो रागाद्यविषयानां क्वचित्प्रितुल्यसंख्यः ॥ ५०१ ॥ सर्वज्ञस्य विरागस्य प्रयोगः साधनं प्रति । क्रियते युक्तिवादनुसारिणो विदुषस्तत्र ॥ ५०२ ॥ क्वचित्प्राप्त्यातिर्गुणं पुंसि यति साक्ष्यविषया । रागाद्यस्तिरोभूतिं तारतम्यावलोकनात् ॥ ५०३ ॥ सामग्रीसन्निधानेन कनकादमरकवत् । तत्तथात्रैव जायेत तारतम्यं च नोभवेत् ॥ ५०४ ॥ दृष्टेस्तदातु चेन्मूलहातिः केन निवार्यते । सर्वशास्त्रकलामिदं सर्वज्ञोक्तिर्जनोदिता ॥ ५०५ ॥ मुख्यसर्वज्ञसिद्धिर्गणतत्त्वात्साधयेदियं । जैत्रे सिद्धमिधानेन मुख्यसिद्धस्य सिद्धिर्वा ॥ ५०६ ॥ न मां प्रति प्रयोगोऽयं मुक्तिहेता निराकृतेः अत्रत्या देशकालादिभेदाद् यिमाद्यु शांक्त्यु ॥ ५०७ ॥ भावानामनुमानेन प्रतीतिरतिदुर्लभा । यत्नेन साधितोऽयं यथः कुण्डलैरनुमातृभिः ॥ ५०८ ॥ अभिव्युक्तैरन्येनान्यथा क्रियते यतः । हृदयस्थशर्दिवाधस्य विषये पयि यावतः ॥ ५०९ ॥ अनुमानप्रधानस्य विनिर्णयो न दुर्लभः । इति चेद्विप्र ! नतेन गृह्यते महता

ओंका कहीं भी अत्यंत नाश हो सकता है और रागादि अविद्याओंके नाश होनेसे सर्वज्ञ और वीतरागकी सिद्धि हो सकती है तुम युक्तिवादको माननेवाले विद्वान हो इस लिये तुम्हारे लिये सर्वज्ञ वीतरागकी सिद्धिका प्रयोग किया जाता है । अविद्या और रागादि भावोंमें तारतम्य ( हीनाधिकता ) देखा जाता है इस लिये किसी पुरुषमें अविद्याके साथ साथ रागादि भावोंका सर्वथा नाश भी हो सकता है ॥ ४९९-५०३ ॥ जिस प्रकार सामग्रीके मिलने पर कनक पापाण की कीट कालिमा आदि दूर की जा सकती है उसी प्रकार अविद्या और रागादि विकार भी नाश किये जा सकते हैं । यदि वे नाश न किये जा सकें तो फिर उनमें हीनाधिकता भी नहीं होनी चाहिये परंतु हीनाधिकता तो देखी जाती है इस लिये उनकी मूलहातिका भी कौन निवारण कर सकता है ? जो सब शास्त्र और कलाओंमें निपुण हैं उन्हींको लोग सर्वज्ञ कह देते हैं और उनकी सर्वज्ञकी यह गौण युक्ति ही मुख्य सर्वज्ञको सिद्ध कर देती है जिस प्रकार कि किसी बालकको सिंह कहनेसे मुख्य सिंहकी सिद्धि हो जाती है ॥ ५०४-५०६ ॥ कदाचित् यह कहा जाय कि यह सर्वज्ञ रूप जो मोक्षका कारण है उसका निराकरण किया जा चुका है कि अवस्था देश काल आदिके भेदसे शक्तियों प्रतीति की हो जाती हैं इस लिये रागादि दोषोंकी हीनाधिकता तो हो सकती है परंतु उनका सर्वथा नाश होनेकी प्रतीति योंका अनुमानसे निश्चय होना अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि अनुमान करनेमें अत्यंत कुशल पुरुष भी बड़े यत्नसे किसी पदार्थ को सिद्ध करे तो भी अन्य प्रवादीकी ओरसे वह पदार्थ दूसरी तरह सिद्ध किया जा सकता है । जिस प्रकार केवल हाथके स्पर्शसे विषम मार्गमें दौड़ने वाले अंधे पुरुषका पड जाना दुर्लभ नहीं है उसी प्रकार अनुमानको प्रधान माननेवाले



पञ्चमिष्येन्दुसहं तप ॥ ४८८ ॥ कुर्वतस्तापस्योच्चैः प्रज्वलद्बन्धिरसहैतौ । ब्यंजयत्प्राणिनो भ्रातृषु मेयानामनारत ॥ ४८९ ॥ तस्य पश्चद्विभेदय  
च युक्तिभिः स निराकृतः । गोमांसप्रक्षणगन्धगमार्थैः पतिते क्षणात् ॥ ४९० ॥ वर्णकुल्यादिमेदानां देहेस्मिन्नव दर्शनात् । ब्राह्मण्यादियु शुद्राद्यैर्गर्भाधान  
प्रवर्तनात् ॥ ४९१ ॥ नास्ति जातिरुक्तो भेदो मनुष्याणां गन्धश्रवणत्वात् । आकृतिग्रहणात्समादन्यथा परिकल्प्यते ॥ ४९२ ॥ आतिगोत्रादिकर्मणि शुल्लक्ष्या-  
नस्य हेतवः । येषु ते सुखयो वर्णः शोभाः शुद्धा प्रकीर्तिता ॥ ४९३ ॥ अच्छेदो मुक्तियोग्याया विदेहे जातिर्नततेः । तस्मिन्नामगोत्राच्छजीवाविच्छि-  
न्नसंभवात् ॥ ४९४ ॥ शेषयोस्तु चतुर्षु स्वास्माकं तज्जातिसन्ति । एवं वर्णविभागः स्यान्मनुष्येषु विनागमे ॥ ४९५ ॥ इत्यादिहेतुभिर्जातिभिर्ब्रह्मस्य  
निराकरोत् । वदेस्मिन् सख्य विच्छेदो बसतीत्येवमादिक ॥ ४९६ ॥ बाक्य श्रद्धाय तद्योग्यमानर्ततो महीभुज । किञ्च जानति लोकस्य मार्गोय प्रथितो म-  
हान् ॥ ४९७ ॥ न लयन्तु शक्य इत्यादि न प्राह्य लौकिक बन्धः । आसीत्तोगमवाद्यान्वन्दोन्मत्तकवाक्यवत् ॥ ४९८ ॥ इति तल्लोकभेदय च निरस्तुदय

शरीरमें वर्ण वा आकारसे कुछ भेद भी दिखाई नहीं पड़ता और आसूरा क्षत्रिय वैश्योंमें शुद्रोंसे भी गर्भाधानकी प्रवृ-  
त्ति देख पड़ती है, इसलिये मनुष्योंमें गाय और घोड़ेके समान जातिका किया हुआ कुछ भेद नहीं है । यदि आकृति  
में कुछ भेद हो तो जातिमें भी कुछ भेद कल्पना किया जा सकता है ॥ ४८८-४९२ ॥ जिनकी जाति गोत्र कर्म आदि  
शुद्ध्यान्के कारण हैं वे उत्तम तीन वर्ण कहलाते हैं और बाकी सब शूद्र कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ विदेहक्षेत्रमें मोक्षजाने  
योग्य जातिकी संतानका कभी नाश नहीं होता है क्योंकि कि मोक्षके कारणभूत नाम गोत्रसहित जीव व्यवधानरहित सदा  
बने रहते हैं । शेष भरत पुरावत क्षेत्रमें चौथे कालमें ही जातिकी संतान होती है सदा नहीं । जैन शास्त्रोंमें मनुष्योंका  
वर्ण विभाग इस प्रकार निरूपण किया गया है ॥ ४९४-४९६ ॥ इस प्रकारके वचनोंके द्वारा उस श्रावकने उसकी  
जातिमृदता भी दूर की । इसके बाद वह श्रावक फिर कहने लगा 'कि इस वट वृक्ष पर कुवेर रहता है ऐसी बातों पर  
श्रद्धान रख कर राजा लोग भी उसके योग्य आचरण करने लग जाते हैं अर्थात् पूजने लग जाते हैं । क्या वे  
जानते नहीं है कि लोकका यह बड़ा भारी प्रसिद्ध हुआ मार्ग छोड़ा नहीं जा सकता' इत्यादि ऐसे लोकप्रसिद्ध बचनोंको  
कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसे वचन सर्वप्रणीत शास्त्रके बाहर हैं और मंदोन्मत्त पुरुषके वाक्यके समान  
है इस प्रकार समझा कर उसने उसकी लोकमृदता भी दूर की । तदनंतर वह श्रावक फिर समझाने लगा कि कदाचित्  
यह कहा जाय कि आप्तके कहे हुए शास्त्रसे विमुख है इस लिये अप्रमाण है यह हेतु हमारे लिये नहीं हो सकता क्योंकि  
सांख्य आदिके मतमें आप्त माननेमें भी पौरुषेयका दोष आता है पुरुष जितने हैं वे सब रागादि अविद्यासे दूषित हैं सो  
भी ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकारके वचन सब विचाररहित हैं, इनमें कुछ भी सार नहीं है क्योंकि रागादि अविद्या-

तीर्थयुक्तं समागम्य ॥ ४८० ॥ अथास्मै भोक्तुं कामाय सुकृत्वा स श्रावक स्वयं । स्वीच्छिष्टं सुरसिंघं बुभुक्षितं पावनं त्वया ॥ ४८१ ॥ भोक्तव्यमिति  
 विप्राय यदो ज्ञापयितुं हित । तं दृष्ट्वाह कथं भुंजे तवोच्छिष्टं विशिष्टता ॥ ४८२ ॥ किं न वेदिस भवैव त्वं व्रजेति स तमब्रवीत् । कथं तीर्थजलं पापमला-  
 पनयने क्षम ॥ ४८३ ॥ यययोच्छिष्टदोषं चेन्नापनेतुं समीहते । ततो निर्हेतुकार्मेतां प्रयेयां सुगन्धचेतसा ॥ ४८४ ॥ त्यज दुर्वासनापाप प्रक्षाल्यमिति  
 सम्यक्त्वादित्युक्तेण पुण्यं प्राप्ते च निश्चिन्तिः । एतज्जैश्वरं तत्त्वं यद्वाण्यलवदयुनः ॥ ४८५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विप्रस्तीर्थमैराह्य निराकरोत् । अथ तत्रैव  
 गंगा नदीके किनारे गया ॥ ४८६ ॥ भूख लगने पर उस ब्राह्मणने उस नदीके जलको मणिगंगा नामका उत्तम तीर्थ  
 समझ कर स्नान किया और इस तरह तीर्थमृदताका काम किया ॥ ४८७ ॥ तदनंतर जब वह ब्राह्मण खानेकी इच्छा  
 करने लगा तब श्रावकने पहिले स्वयं खाकर उस वचे हुए उच्छिष्ट भोजनमें गंगा नदी का वही पानी मिलाकर उस  
 ब्राह्मणको दिया और हित वतलानेके लिये कहा कि गंगाका जल मिल जानेसे यह भोजन पवित्र है इसे खाओ । उसे  
 देखकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि तेरा उच्छिष्ट भोजन मैं कैसे खाऊं तब उस श्रावकने कहा कि तू जो इस तरह कह  
 रहा है सो क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इसमें गंगाका जल मिला हुआ है । यदि यह गंगाजल इस भोजनके उच्छिष्ट  
 दोषको भी दूर नहीं कर सकता तो फिर इन तीर्थोंके जलसे पापरूपी मल किस तरह दूर हो सकता है । इसलिये तू  
 अपने मृद चित्तसे इन निर्मूल विचारोंको निकाल दे यदि जलसे ही बुरी वासनाओंके पाप दूर हो जाय तो फिर  
 दान आदि अनुष्ठानोंका करना व्यर्थ ही हो जायगा ॥ ४८८ ॥ सब लोग जलसे ही पाप दूर कर लिया करें क्योंकि जल सब  
 जगह सुलभ रीतिसे मिलता है । मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय इनसे पापकर्मोंका बंध होता है और सम्यक्त्व ज्ञान चा-  
 रित्र तपसे पुण्य कर्मोंका बंध होता है तथा अंतमें इन्हीं चारोंसे मोक्ष होती है । इसलिये अब तू श्रीजिनेन्द्रदेवका मत  
 स्वीकार कर इस प्रकार उस श्रावकने कहा ॥ ४८९ ॥ उस श्रावकका यह उपदेश सुन कर उस ब्राह्मणने तीर्थ  
 मृदता भी छोड़ दी इसके बाद वहीं पर एक तपस्वी पांच अग्रियोंके मध्यमें बैठकर दुःस्सह तप कर रहा था जलती हुई  
 अग्निमें छहों प्रकारके जीवोंका निरंतर घात हो रहा था और वह प्रत्यक्ष जान पड़ता था उस श्रावकने उस तपस्वीके मा-  
 ननेकी पाखंडिमृदता भी बड़ी युक्तियोंसे दूर की । तदनंतर वह उसकी जातिमृदता दूर करनेकेलिये कहने लगा कि  
 गोमांसपक्षजण तथा वेश्यादि सेवन, न करने योग्योंका सेवन करनेसे जगण भ्रममें पतित हो जाता है । इसके सिवाय इस

आवकः सिती ॥ ४६९ ॥ तस्यावमिसि विधिर्य तद्दुमादात्तपहर्ष ॥ परिरुज्य स्वपादाकभूति ते वर्य देवता ॥ ४७० ॥ नाहं ताना विधाताय समर्थस्य  
बदद् द्विज । विप्रेणानु तथैवास्तु वो दोषस्तव देवता ॥ ४७१ ॥ परिरुजिपद नेयाऽप्युपाध्यायारवमश्र मे । इत्युक्तस्तेन तस्मात्स प्रदेशातरमाप्तवान् ॥ ४७२ ॥  
आवकः कपिरोमाह्वयवल्लीजाल समीक्ष्य मे । देवमेतदिति व्यक्तमुक्त्वा भक्त्या परीत्य ततः ॥ ४७३ ॥ श्रग्म्य रिशतवान् विप्रोव्याधिष्ठतश्चोपयुक्तः ।  
कराभ्यां तत्समुच्छिद्यश्च विमृश्य सम ततः ॥ ४७४ ॥ तांशुतासह्यवद्वृकाविशोयेणातिवार्यित । एतस्मिन्निहित देव त्वरीयमिति भीतवान् ॥ ४७५ ॥  
सहासो विद्यते नान्द्रिधियात् सुखदुःखयो । प्राणिना प्राक्तनं कर्म मुक्त्वास्मिन्मूलकारण ॥ ४७६ ॥ श्रेयो वापु ततो यत्नं तपोदानादिकर्मसि । कुर्व त्वमिति  
तन्मोहय ह्रित्वा देव निवधन ॥ ४७७ ॥ देवा खलु सहायत्व याति पुण्यवतां वृणा । तर्के विचि कर्ग पुण्यवलयै मूलसन्निभाः ॥ ४७८ ॥ इत्युक्त्वा-  
स्तद्विजोर्ध्वदेवर्गद्वारतत्त नमोऽग । आवकस्तेन विप्रेण गगतीरं समागमत् ॥ ४७९ ॥ सुधुस्तत्र विप्रोऽग मणिगंगास्यमुत्तम । तीर्थमेतदिति आत्वा

चेष्टा को देवकर वह आवक हंसने लगा ॥ ४६६-४६९ ॥ तथा उसकी अवज्ञा करनेके लिये उस वृक्षके कुछ पत्ते तोड़  
कर भीड़कर अपने पैर की धूलिसे लगा लिये और उस ब्राह्मणसे कहा कि देख तेरा देव जैनियों का अनिष्ट करनेमें  
विलुल समर्थ नहीं है । इसके उत्तरमें उस ब्राह्मणने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही इसमें श्रानि ही क्या है मैं भी तेरे  
देवका तिरस्कार कर सकता हूं इस विषयमें तू मेरा गुरु ही सही । इसतरह कहकर वे दोनों फिर साथ चलने लगे और  
किसी एक देशमें जा पहुंचे ॥ ४७०-४७२ ॥ वहां पर कपिरोमा नामकी बेलके बहुतसे वृक्ष थे उन्हें देखकर वह आ-  
वक कहने लगा कि देखो यह हमारा देव है कह कर उसने बड़ी भक्तिसे मटलिया दी और नमस्कार कर अलग खड़ा हो  
गया । वह ब्राह्मण पहिलेसे क्रोध कर ही रहा था इस लिये उसने भी हाथसे उसके पत्ते तोड़े और मसल कर सब ज-  
गह लगा लिये परंतु वे सुजली करनेवाले पत्ते थे इस लिये लगाते ही उसे असह्य सुजलीकी बाधा होने लगी तथा वह  
दूर गया और आवकसे कहने लगा कि इसमें अवश्य ही तेरा देव है ॥ ४७३-४७५ ॥ तब हंसता हुआ वह आवक  
कहने लगा कि इस संसारमें जीवोंको सुख दुःख देनेवाला पहिले किये हुए कर्मोंके सिवाय और कुछ नहीं है कर्म ही  
इसके मूल कारण हैं ॥ ४७६ ॥ इस लिये तप दान आदि सत्कार्योंके द्वारा तू अपना कल्याण करनेके लिये प्रयत्न कर  
और इस प्रकारकी देवमूढ़ता को कि देवता ही सब करते हैं निकाल फेंक वादको वह फिर कहने लगा कि जो मनुष्य  
पुरुषवान हैं उनके देवलोग स्वय आकर सहायक हो जाते हैं पुरुषरूपी कंकणके रहते हुए देव कुछ हानि नहीं कर सकते  
॥ ४७७-४७९ ॥ इस प्रकार सपमाकर अनुक्रमसे उसकी देवमूढ़ता दूर की । तदनंतर वह आवक उस ब्राह्मणके साथ

नास्ति सर्वं धो यदि देहिना । मया कथमवांलंभि मनुष्यसर्वभवं ॥ ४५८ ॥ ततः पुन्यं न पाप वा यथेष्ट वृत्तं शुभ । इति कृत्वा, अनुनिक पापी हि-  
 सादिपंचक ॥ ४५९ ॥ मासावाहारसंस्कृतो वशरंभपरिग्रहः । अनुबद्धोस्ति वधायुनारक परमावधि ॥ ४६० ॥ तेन यात्यत्यसा पृथ्वी सप्तमा वोरदुःखदां ।  
 सदा वदनागकायुस्तनुच्युतौ । तप्त प्रभामहादु स्वभागिनीयं भविष्यति ॥ ४६१ ॥ इति तद्विचित्रप्रति प्रणिपत्य सुनीभरे । कुमारोपभयोपृच्छस्वमवातर-  
 संतति ॥ ४६२ ॥ तदनुग्रहबुधैवमाहासा भव्यवत्सल । इतो भवात्तुतीयैव भवे भव्योपि स कुधी ॥ ४६३ ॥ इति तद्विचित्रप्रति वेदाभ्यासहेतो परिब्रजन् ।  
 देशातराणि पाल्बिदेवतातीर्थजातिभिः ॥ ४६४ ॥ लोकैर्न च विमुखाकुलीभूतस्तत्प्रशंसन् । तदाचरितमनुच्युतौ नुतिष्ठप्रयेच्छया ॥ ४६५ ॥ केनचित्प्रापि  
 केनामा जैनैर्न पचि स ब्रजन् । पाषाणप्राक्सिलक्ष्यभूताधिष्ठितभूह ॥ ४६६ ॥ समीप प्राप्य भक्त्यातो देवमेतदिति इतं । परीत्य प्राणमदं दृष्ट्वा तच्छया  
 पुराय है न कुच्छ पाप है अपनी इच्छानुसार वर्तीव रखना ही सुख है । इसप्रकार वह पापी दृढ निशंक होकर हिंसादिक  
 पांचो पाप करने लगा है ॥ ४६६ ॥ वह पांसादिकके आहारमें आसक्त होगया है उसने आरंभी और  
 बहुपरिग्रही होनेसे सबसे अधिक ( सातवें नरकका ) नरकायुका बंध किया है ॥ ४६७ ॥  
 इसलिये वह घोर दुख देनेवाले सातवें नरकमें जायगा । इसी तरह शुभा भी तीव्र अनुभाग जन्य स्त्री वेदके उदय  
 से खूब बढे हुए राग द्वेष पैशून्य आदि दोषोंसे खूब भरी हुई है गुणशील और सदाचार आदिकोंको सुन कर तथा  
 देवकर वह बहुत ही क्रोध करती है इसलिये संक्षेप परिमाणोंसे उसने नरकायुका बंध किया है और शरीर छोड़कर  
 वह छठे नरकमें जायगी तथा वहाँके अनेक दुख भोगेगी ॥ ४६८-४६९ ॥ इस प्रकार गुणधरके कह चुकने पर अभय-  
 कुमारने भी उठ कर सुनिराजको नमस्कार किया और अपने पहिले भव पूछे ॥ ४६९ ॥ अभयकुमारका अनुग्रह करने  
 के लिये ही भव्यों पर वात्सल्य रखने वाले गुणधर कहने लगे कि इससे तीसरे भवमें तू भव्य होकर भी बुद्धिहीन या  
 ॥ ४६९ ॥ तू किसी ब्राह्मणका पुत्र था और वेद पढनेके लिये अनेक देशोंमें इधर उधर घूमता फिरता था । पाखंड-  
 सूढ़ता, देवमूढ़ता, तीर्थमूढ़ता और जातिमूढ़तासे सबको विमोहित कर बहुत ही आकुलित होता था तथा उन्हींकी प्रशंसा  
 के लिये उन्हीं कामोंको अच्छीतरह करता था । किसी एक समय वह दूसरी जगह जा रहा था उसके साथ मार्गमें कोई  
 जैनी पथिक भी जा रहा था । मार्गमें पथिकोंके ढेरके पास एक भूतोंका निवासस्थान पैड था । उसके समीप जाकर और  
 उसे अपना देव समझकर बड़ी भक्ति से उस ब्राह्मणपुत्रने उस

किया ।

४४६ ॥ वाग्विष्णुपरित्यागादुपदेष्टुर्ग्रहामते । अर्थमात्र समादाय समुत्था इतिर्यजा, कर्तुं किं ते' इत्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हतत्तत्पुर्तिगताय समर्थस्य  
या श्रद्धा सावगादेति कथ्यते ॥ ४४८ ॥ केवलवगमालोकिताखिलार्थता रुचिः । परमाथवगादासां श्रदेति परमार्थिभ्यः ॥ ४४९ ॥ एतास्वपि महान्या-  
तव संलया काश्चन । दर्शनाद्यागमशोकशुद्धयोदयकारणैः ॥ ४५० ॥ भव्यो व्यस्तै समस्तैश्च नामात्मीकुर्वतेति । तेषु श्रद्धादिभि कैश्चिद्व्या तन्नामका  
रणैः ॥ ४५१ ॥ रत्नप्रभां प्रविष्टः संस्तुतफल मध्यमायुषा । भुक्त्वा निर्गल भव्यारिम्न महापद्माह्वयतीर्यकृत् ॥ ४५२ ॥ आगाम्युत्तिर्णीकालस्यादिमः  
क्षेमकृतसता । तस्मादात्मनमव्योसि माभैषी, सद्यतेरिति ॥ ४५३ ॥ स्वस्य रत्नप्रभावासे विषण्णः श्रेणिक पुन । अप्राक्षीदीधनान्योपि पुरेरेमन्युपधाम-  
नि ॥ ४५४ ॥ किमस्त्यधोगतिं यात्यनिस्ततो मुनिरादिशत् । कालशौकारिकस्यात्र शुभायाथ प्रवेशन ॥ ४५५ ॥ अस्ति द्विजतन्त्रायास्तुक्तुर्बोधिप्रशम्यता ।  
कालसौकरिकोत्रैव पुरे नीचकुले भूश ॥ ४५६ ॥ सबस्थितिवशाद्दसनरायु पापकर्मणा । सप्तह्रलोभुना जातिस्त्रोभुर्वैवमस्मत् ॥ ४५७ ॥ पुण्यपापफले-

अर्थज सम्यग्दर्शन है । मोहनीयकर्मके क्षय हो जानेपर जो अंग अंगवार्थके ज्ञानकी भावनासे श्रद्धा उत्पन्न होती है वह अ-  
वगाढ सम्यग्दर्शन है । तथा केवलज्ञानसे सब पदार्थोंके देखलेनेपर जो श्रद्धान होता है वह परमावगाढ सम्यग्दर्शन कहला-  
ता है ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥ ४४९-४४९ ॥ हे महाभाग इन श्रद्धाओंमेंसे आज तेरे कितनी ही श्रद्धाएं मौजूद हैं ।  
इनके सिवाय दर्शन विशुद्धि आदि शास्त्रोंमें कहे हुए जो शुद्ध सोलह कारण हैं उनमेंसे सब त्या कुछ कारणोंसे यह भ-  
व्य जीव तीर्थंकर नामकर्मका बंध करता है । इनमेंसे दर्शनविशुद्धि आदि कितनेही कारणोंसे तू तीर्थंकर नामकर्मका बंध  
करोगा, परकर रत्नप्रभा ( पहिले ) नरकमें जायगा मध्यम आयुसे वशाका फल भोगकर निकलेगा और हे भव्य फिर  
इसी भरतक्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीकालमें सज्जनोंको कल्याण करनेवाला महापद्म नामका सबसे पहिला तीर्थंकर होगा ।  
तु आसन्नभव्य है इसलिये अब संसारसे भय मतकर ॥ ४५०-४५३ ॥ तदनंतर अपने नरकमें जानेकी बात सुनकर श्रे-  
णि रु कुछ खेद विषम हुआ और फिर पूछने लगा कि हे धीधन ! पुण्यके घर ऐसे इस नगरमें नरकमें जानेवाला और  
भी कोई है या नहीं ? तब गणेशदेव कहने लगे कि इस नगरमें कालसौकरी और ब्राह्मणकी पुत्री शुभा ये दो जीव ऐसे  
हैं जो नरक जायेंगे ये जीव क्यों नरकमें जायेंगे इसका कारण मैं कहता हूं सुनो ! कालसौकरिक इसी नगरमें नीच कुल  
में उत्पन्न हुआ है ॥ ४५४-४५६ ॥ यद्यपि पहिले वह पापी था तथापि भवस्थितिके वशसे उसे सातवार मनुष्य आयुका  
बंध हुआ था । अब उसे जाति स्मरण हो चुका है और वह सदा यही विचार करता रहता है कि जीवोंका यदि पुण्य  
पापके फलसे कुछ संबंध रहता है तो फिर मुझ ऐसे पापीको मनुष्य भव कैसे मिल गया ॥ ४५७-४५८ ॥ इसलिये न

इदानीमुत्तमं प्रागेवात्र जन्मनि ॥ ४३५ ॥ वद्धदेवाद्युन्यायुर्नागी स्वीकुरुते व्रत । श्रद्धानं तु यमादत्ते तस्मात्त्व नामहीयते ॥ ४३६ ॥ पुराणस्थितिसंभूत-  
विशुद्ध्या करणत्रयात् । सम्यक्त्वमादिमं प्राप्य शांतसममहारजाः ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तकालेन सम्यक्त्वोदयभाविते । क्षायेपश्चमिके स्थित्वा श्रद्धाने सं-  
चलात्मके ॥ ४३८ ॥ सप्तप्रकृतिनिर्मूलक्षयात्स्थानविक्रमागमः । आनामागोपदेशोत्पन्नं सूत्रबीजसमुद्भवं ॥ ४३९ ॥ संक्षेपाद्विस्तरेर्थाच्चावासमवगाढकं ।  
न रति शुल्का या रुचिर्माणजालत्वा । त्रिषष्टिपुरुषादीनां या पुराणप्ररूपणात् ॥ ४४० ॥ श्रद्धा सय समुत्पन्ना सोपदेशसमुद्भवा ॥ ४४१ ॥ मोक्षमा-  
कृतयोर्मेददुर्गन्धं ॥ ४४२ ॥ प्रादुर्भूता रुचिस्तुल्यैः सूत्रजेति निरूप्यते । या तु बीजपदादानपूर्वसूत्रमार्गजा रुचि ॥ ४४३ ॥ बीजजास्तौ पदार्थानां संक्षेपो-  
कस्या समुद्रता । या सा संक्षेपरजा यान्या विस्तारजा तु सा ॥ ४४४ ॥ प्रमाणनयनिक्षेपाद्युपायैरतिविस्तृतैः । अवगाह्य परिज्ञानात्तत्त्वम्यागदिभावित ॥  
और स्मरण करनेसे उस श्रेणिकके परिणाम विशुद्ध हुए तथा तीनों करण होनेसे और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति  
तथा अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति ऐसे सात कर्मप्रकृतिरूप महारजके शांत होने पर उसे पहिला उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त  
हुआ ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तके बाद ही सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्वका उदय हुआ और संचलात्मक ज्ञायोपशमिक सम्यग्द-  
र्शनमें ठहर कर ऊपर लिखी हुई सातों प्रकृतियोंके अत्यंत क्षय होजानेके कारण तेने ज्ञायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया  
सम्यग्दर्शन दश प्रकार गिना जाता है आज्ञा, मार्ग, उपदेशोत्पन्न, सूत्रसमुद्भव, बीजसमुद्भव, संक्षेपज्ञ, विस्तारज्ञ, अर्थज्ञ,  
अवगाढ और परमावगाढ ॥ ४३८-४४० ॥ सर्वज्ञकी आज्ञाके निमित्तसे जो छहों द्रव्योंमें रुचि उत्पन्न हो जाती है उसे  
रूप सुन कर जो श्रद्धान होता है वह मार्गज्ञ रहित है । वस्त्ररहित है और पाणिपात्रता रूप ही है इस प्रकार मोक्षमार्गका स्व-  
ज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं मोक्षमार्ग परिग्रह रहित है । वस्त्ररहित है । वस्त्ररहित है और पाणिपात्रता रूप ही है इस प्रकार मोक्षमार्गका स्व-  
जो शीघ्र श्रद्धा हो जाती है वह उपदेश समुद्भव वा उपदेशसे उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन है आचारंग नामके पहिले अंगमें  
कहे हुए तपश्चरणके भेदोंको सुन कर जो तत्त्वज्ञ लोगोंको शीघ्र श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है वह सूत्रज्ञ वा सूत्रसे प्रगट हुआ  
सम्यग्दर्शन कहलाता है । जो बीजपदोंको ग्रहण पूर्वक सूक्ष्म पदार्थोंसे श्रद्धान प्रगट हो जाता है वह बीजज्ञ सम्यग्दर्शन  
है । पदार्थोंको संक्षेप रीतिसे कथन करनेसे जो श्रद्धान होता है वह संक्षेपज्ञ सम्यग्दर्शन है । जो विस्तारसे कहे हुए प्रमाण  
नय निक्षेपादिके द्वारा ज्ञानसागरमें अवगाहन कर अंगादिकमें कही हुई तत्त्वोंकी श्रद्धा होती है वह विस्तारज्ञ सम्यग्द-  
र्शन है । वचनोंके विस्तारको छोड़कर महा बुद्धिमान उपदेशकसे जो

मापिबान् । स्वद्विपत्ययुवत्वादिगुणकर्मतिद्विजः ॥४२५॥ वितीर्णवान् युता तुभ्यं निर्ः । परमाथवाङ्मनः ॥ ४२६ ॥ स्वगज्य दत्तवास्तुभ्यं त्वं च तद्वतिपालयन् । अन्-  
कदानिकेनचिद्धेतो स्वयं राज्यं परित्यजन् । भवत ब्राह्मणप्राप्तादानीय कुम्भिकः क्षिती ॥ ४२६ ॥ स्वगज्य दत्तवास्तुभ्यं त्वं च तद्वतिपालयन् । अन्-  
मिष्यत्कनोपः सन् पूर्ववद्भक्षणसम्पृतेः ॥ ४२७ ॥ विधिस्तु निग्रहं स्रमं नदिप्राप्तमिवासिना । आदिष्टवान् करं तेवा निर्वोदुमसिदुष्करं ॥ ४२८ ॥ भवतो  
विप्रकन्याया सुतोयुद्धमयाह्वय । स कदाचिन्निजस्थानादागच्छस्त्वां समीक्षितुं ॥ ४२९ ॥ सप्त जनन्या तन्नादिप्राप्ते त्वत्पतः समाकुला । प्रजा समीक्ष्य ते  
को गुणयैः समसीधामत् ॥ ४३० ॥ नानोपायप्रवीणोयमभयाह्वोस्तु पंडितः । नात्रेति विद्विभिराहूत स तदा तेन धीमता ॥४३१॥ पुत्रेणानेन सार्द्धं त्वं  
मिहयैवमुपस्थितः । शृण्वन् पुराणसद्भावमित्याहाकर्ण्य तद्वचः ॥४३२॥ सर्वं निषाय तविते श्रद्धाभूम्यहती मते । जनेन कृतस्तथापि स्नात्र मे व्रतपरिग्रहः ॥  
४३३ ॥ इत्यनुश्रेणिकप्रश्नादवबीद्वृणतायक । भोगसजननदादमित्यात्वाजुम्भनोदथात् ॥ ४३३ ॥ दुधन्नित्रान्महारंभारंविर्त्येनोनिकाशित । नारक-  
समय राजा कुणिकने किसी कारणसे राज्यका स्वयं परित्याग कर दिया और उस ब्राह्मणके गांवसे बुला कर अपना  
सब राज्य तुझे दे दिया । तू भी उस राज्यका पालन करने लगा । नंदिग्रामके रहनेवालोंकी पहिली बात स्मरण कर  
तू अंतरंगमें क्रोधित हुआ और उनका अच्छी तरह निग्रह करनेके लिये उन पर बहुत कठोर और असह्य कर बिठलाने  
की आज्ञा दी ॥ ४२६--४२८ ॥ तेरे उस ब्राह्मणकी पुत्रीसे एक अभयकुमार नामका पुत्र हुआ था, वह किसी एक  
समय अपने उस ब्राह्मणके गांवसे तेरे दर्शनके लिये आ रहा था । वह अपनी माताको साथ लिये था मार्गमें नंदिगांव  
पड़ा वहांकी प्रजा तुमसे पीडित हो ही रही थी इसलिये उसने अनेक उपायोंसे तेरा क्रोध शांत किया ॥४२९--४३०॥  
वह अभयकुमार पुत्र अनेक उपाय करनेमें चतुर है तथा पंडित है भगवान महावीर स्वामीका बुलाया हुआ तू आज उसी  
बुद्धिमान पुत्रके साथ आकर इस समयसरण सभामें उपस्थित है इस प्रकार पुराणका भाव सुनकर और गणधर देवके  
कहे सब वचन सुन कर वह श्रेणिक फिर पूछने लगा कि आपके कहे हुए वचनोंको सुनकर तथा सबको चित्तमें धारण  
कर जैनमतमें मेरी वही भारी श्रद्धा प्रगट हुई है तथापि मैं व्रतोंको क्यों ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ४३१--४३३ ॥ श्रे-  
णिकके इस प्रकार प्रश्न करने पर वे गणधर देव कहने लगे कि तेने इसी जन्ममें पहिले भोगोंकी इच्छा, गाढ मिथ्या-  
त्वका उदय, दुश्चरित्र और महारंभसे अनेक बड़े पापोंका संग्रह किया है तथा नरकायुका बंध किया है और  
यह नियम है कि देवायुके बंधकों छोड़कर अन्य आयुका बंध करनेवाला फिर व्रतोंको स्वीकार नहीं कर सकता हां यह  
सम्बन्धदर्शन धारण कर सकता है इसीलिये तू व्रत धारण नहीं कर सकता ४३४--४३६ ॥ इस प्रकार पुराणोंके सुनने



तरत्परानुबन्धः । कभूसौचमर्कमेतौ परिमम कथ भवेत् ॥ ४१३ ॥ प्रकृष्टदिव्यभोगाना भोकेति वननायकः । तत्त्वायं तद्वचो व्याचक्षते साहाय्यमीदृशं ॥ ४१४ ॥ व्रतस्याभीप्सत सौख्य प्रापयेदिति भावयन् । समाधिगुप्तमयेत्य श्रावकव्रतैः प्रकीर्त ॥ ४१५ ॥ भव्योयमिति त, मत्वा यक्षी तत्पक्षपातत । तथा येनानयजनधर्म सा हि हितं विता ॥ ४१६ ॥ स्वर्गात्स्वदिरसारोपि द्विसागरमितायुषा । दिव्यभोगोपभोगाते निदानात्यच्युतस्ततः ॥ ४१७ ॥ सुद कुणिक-  
परीक्ष्य संतुष्टो निसर्गात्स्वदिरसारोपि द्विसागरमितायुषा । दिव्यभोगोपभोगाते निदानात्यच्युतस्ततः ॥ ४१८ ॥ राज्यस्य कृतमोत्रेति निमित्तैः सकलैरपि । सम्यक्-  
तुरातस्मादेशांतरमयीयुषः । सुप्रकाशदुपदेशभयात् सकलाः प्रजाः ॥ ४२१ ॥ नंदिप्रामनिवासिन्यः प्रत्युत्थानपुरस्सरं । मानभोजनशस्यादिक्रियावसुहृ-  
मागमन् ॥ ४२२ ॥ तत्स्वमपि केनापि ब्राह्मणेन सम प्रजन् । देवताजातिपांखलमोहप्रतिविषादिनी ॥ ४२३ ॥ कथाः प्ररूपयन् ग्रीत्वा तदीयस्थान-  
भोगोंका भोक्ता हुआ है, उस यक्षीकी ये यथार्थ बातें सुनकर वह विचार करने लगा कि देखो व्रतका कैसा माहात्म्य  
है इससे इच्छानुसार सुखोंकी प्राप्ति होती है इस प्रकार विचार करते हुए उसने समाधिगुप्त मुनिके समीप जाकर श्रावक  
के व्रत धारण कर लिये ॥ ४१४-४१६ ॥ इस प्रकार उस यक्षीने उसे भव्य समझकर उसके पक्षपातसे इस उपायके  
द्वारा उसे जैन धर्म धारण कराया सो ठीक ही है क्योंकि परहितकी इच्छा रखना इसीका नाम है ॥ ४१६ ॥ इधर स्वदिर-  
सारके जीवने स्वर्गमें दो सागरकी आयु तक दिव्य भोग भोगे और फिर वहाँसे च्युत होकर तू राजा कुणिककी रानी  
श्रीमतीसे पुत्र उत्पन्न हुआ । किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तज्ञानियोंसे पूछा था कि मेरे पुत्रोंमेंसे राज्यका स्वामी  
कौनसा पुत्र होगा तब सब निमित्त ज्ञानियोंने अच्छी तरह परीक्षा कर राजाको संतुष्ट किया था और राज्यका स्वामी  
तुम्हे ही बतलाया था । राजाका तुम्ह पर स्वाभाविक स्नेह अधिक था इस लिये तुम्हे राज्यका अधिकारी समझकर और  
दायादोंसे तेरी रक्षा करनेके लिये उस बुद्धिमानने वनावटी क्रोधकर तुम्हें नगरके बाहर निकाल दिया । बाहर जानेकी  
आज्ञा पाकर तू नंदी ग्राममें पहुँचा परंतु राजाकी प्रगट आज्ञाके भयसे वहाँ रहनेवाली सब प्रजा न उठी, न सामने आई, तथा  
ज्ञान भोजन शय्या आदि क्रियाओंके प्रबंधसे वह विमुख ही रहा ॥ ४१७-४२२ ॥ तदनंतर तू भी किसी ब्राह्मणके  
साथ आगे चला और बड़े भेदसे देवमूढता, 'जाति मूढता पांखंडि मूढता आदिको निरूपित करनेवाली कथाएं कहता  
हुआ उस ब्राह्मणके स्थानमें जा पहुँचा, तेरे वचन कौशल और युवावस्था आदि गुणोंसे अनुरंजित होकर उस ब्राह्मण  
ने तुम्हें अपनी यौवनवती कन्या दी उमके साथ विवाह कर तू वहीं पर सुखसे रहने लगा ॥ ४२३-४२४ ॥ किसी एक

४०१ ॥ अवस्तापोषित काचिद्वृद्धतीममिवीक्ष्य सः । रोदिति त्वं कुतो ब्रूहीत्यब्रवीत्सायुवाच ता ॥ ४०२ ॥ शृणु चित्त समाधाय वनयक्षी वसाम्यहं । बने खदिरसारस्ते मैशुनो व्याधिपीडित ॥ ४०३ ॥ काकयासनिवृत्त्यासां पतिर्मम भविष्यति । गच्छस्त्व तत्परित्यक्तं मास भोजयितुं पुनः ॥ ४०४ ॥ नरके धोरदुःखाना भाजन कर्तुमिच्छसि । ततो मे रोदनं तस्मात्पञ्च भद्र तदाग्रहं ॥ ४०५ ॥ इति तदेवतात्रोकमवकर्ण्यतर्पणीं प्रति । सप्राप्यातुरभालोक्य मिव-  
कथितमौषध ॥ ४०६ ॥ स्या मयापनोदार्थमुपयोक्तव्यममित्यसा । अगाध सोपि तद्वाक्यमनिच्छेन्नैवमब्रवीत् ॥ ४०७ ॥ त्वं मे प्राणसमो बहुमा जिजीविषिषु  
। ब्रवीष्वेव हितं नैव जीवित व्रतमंजनात् ॥ ४०८ ॥ दुर्गतिप्राप्तिद्वेष्टत्वादिति तद्व्रतनिश्चित । ब्राला यक्षीप्रपञ्च त शूरवीरो व्यबोधयत् ॥ ४०९ ॥  
तद्वृत्तात् विचार्यसां भावकव्रतपक्व । समादायाखिलं जीवितानि सौधर्म्यकल्पज ॥ ४१० ॥ देवोऽमबदनिर्देश्यः शूरवीरोपि दुःखितः । परलोकक्रिया  
कृत्वा स्वाबास समुपगमज्ज ॥ ४११ ॥ बटदुग्मसमीपस्थो यक्षि किं मे स मैशुन । पतिस्वामयमवेति यक्षीमाहावदक्ष सा ॥ ४१२ ॥ समस्तव्रतपुत्रो ब्य-

इस वनमें रहती हूं । तेरा वहनोई खदिरसार व्याधिसे बहुत पीडित है और कौआका पांस त्याग करनेसे वह मेरा पति होगा । परंतु तू अब उसे त्याग किये हुये मांसको ही खिलानेके लिये जा रहा है और उसे इस तरह घोर नरकमें डाल कर दुःखोंका पात्र बनाना चाहता है इसीलिये मैं रो रही हूं हे भद्र अब तू अपना आग्रह छोड़ दे ॥ ३६७--४०५ ॥ इस प्रकार उस देवीकी बातें सुनकर वह शूरवीर उस वनमें पहुंचा खदिरसार रोगीको देखा और कहा कि बैद्यने जो औषधि बतलाई है वह मेरी प्रसन्नताके लिये ही खाओ इसके उत्तरमें मांसकी अनिच्छा करता हुआ वह खदिरसार इस प्रकार कहने लगा कि तू मेरे प्राणोंके समान प्रेम करनेवाला भाई है स्नेहके कारण मेरे जीवित रहनेकी इच्छासे तू ऐसा कहता है परंतु व्रतोंका भंगकर जीवित रहनेसे जीविका हित नहीं हो सकता ॥ ४०६--४०८ ॥ इसके सिवा व्रत भंगकर जीवित रहना दुर्गतिका भी कारण है । इसप्रकार कह कर वह अपने व्रतमें निश्चित ही रहा । उसका इस प्रकार निश्चय देख कर शूरवीरने उस यक्षीका वृत्तांत भी उसे समझा दिया ॥ ४०९ ॥ उस वृत्तातका विचार कर उस खदिरसारने श्राव-  
कोंके पूर्ण पांचों व्रत धारण किये और आयुके अंतमें मर कर सौधर्मस्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ । उसके वियोगसे शूरवीरका बहुत दुःख हुआ और वह उसकी उत्तर क्रिया कर अपने घर जाने लगा ॥ ४१०-४११ ॥ जब वह उस बट वृद्धके नीचे गया और उस यक्षीसे पूछा कि क्यों हमारा बहनोई मर कर तुम्हारा पति हुआ या नहीं इसके उत्तरमें उस यक्षी ने कहा कि संपूर्णा व्रत धारण करनेसे वह अंतर योनिसे परान्मुक्त हो गया अर्थात् इस योनिमें नहीं आ सका और सौ-  
धर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ फिर भला वह मेरा पति कैसे हो सकता है ॥ ४१२--४१३ ॥ वह तो अब उत्कृष्ट दिव्य

बा ॥ ३९० ॥ धर्मसागरोस्तु सेवोसि । माकृतायास्तु न मुनिः । किरातः कीदृशो धर्मस्तु न किं कृत्यमंगिनां ॥ ३९१ ॥ किरातेनेति संदृष्टं सोपीति प्रत्यभावत ।  
 श्रुत्वा तं जगद्गुरुस्य साधुसिद्धिर्वाप्यते ॥ ३९२ ॥ स धर्मस्तस्य साधो यो धर्मकायः स उच्यते । तेन कृत्यं परं पुण्यं पुण्यास्वर्गं सुखं परं ॥ ३९३ ॥  
 विचित्राख्यातकदम्बिभ्यः मक्षितं ॥ ३९४ ॥ मयेत्येवं यदि खाल्यं तत्त्वैत्यवधीन्मुनिः । सोपि तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रबुधो सीयतां व्रतं ॥ ३९५ ॥ तत्त्वश्रुत्वा स  
 नदिता गतस्तस्य कदाचन । व्याधयः साधो संभूते काकमांसस्य मक्षणात् ॥ ३९६ ॥ शातिरस्येति निदिष्टे भिक्षुगमि स वनेचरः । प्रयात्स्वमी मम प्राणाः  
 किं कृत्यमिमैकैकैः ॥ ३९७ ॥ व्रतं तपोधनाभ्यासे यथैतं धर्मसिद्धता । इतसं कल्पमंगल्यं कुनस्तस्युत्पन्नं ॥ ३९८ ॥ पापेनानेन नासेन नाद्य प्राणि-  
 निषाध्यह । इति नैच्छन्तुं तच्छ्रुत्वा तन्मैशुनः पुरात् ॥ ४०० ॥ सारसाख्यातसमागच्छन् शूरवीरमिधानक । महागहनमन्यस्यमोघपृथिवीविह ॥  
 पांसादिकका सेवेन करना पापका कारण है इस लिये उसका त्याग करना धर्म है और उसकी प्राप्ति होना धर्मलाभ कह-  
 लाता है । धर्मसेवन करनेसे जीवोंको पुरायकी प्राप्ति होती है और पुरायसे स्वर्गके उच्च सुख मिलते हैं ॥ ३९१-३९३ ॥  
 इसे सुनकर वह भील कहने लगा कि ऐसे धर्मका स्वामी मैं नहीं हो सकता । तब मुनिराजने उसके कुलका विचार कर-  
 कहा कि हे भव्य ! क्या तेने पहिले कभी कौआका मांस खाया है तब वह बुद्धिमानोंमें अष्ट भील विचारकर कहने लगा  
 कि मैंने कौआका मांस तो कभी नहीं खाया है । तब मुनिराजने कहा कि तब उसे जरूर छोड़ देना चाहिये । मुनिराज  
 के ये वचन सुनकर वह भील संतुष्ट होकर कहने लगा कि यह व्रत मुझे दे दीजिये ॥ ३९४-३९६ ॥ इस प्रकार वह  
 भील उस समय व्रत ले कर तथा मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया । किसी एक समय उसके एक असा-  
 ध्य रोग हुआ, वैद्योंने बतलाया कि कौआका मांस खानेसे यह रोग शांत हो सकता है । यह सुन कर वह भील विचार  
 करने लगा कि भले ही मेरे प्राण चले जाओ इन वंचल प्राणोंसे मुझे क्या काम है मैंने धर्मकी इच्छासे उन मुनिराज  
 से जो व्रत स्वीकार किया है उसका भंग मैं नहीं कर सकता क्योंकि संकल्प किये हुए व्रतका भंग करनेसे पुरुषव्रत कहां  
 रह सकता है मैं इस पाप रूप मांसको खाकर आज जीवित रहना नहीं चाहता इस प्रकार सोच विचार कर उसने कौआ  
 का मांस खाना स्वीकार नहीं किया । यह बात सुन कर शूरवीर नामका उसका साला सारस नगरसे आया । ज्ञाते  
 हुए मार्गमें उसने गहन वनके भीतर एक वटवृक्षके नीचे रोती हुई किसी स्त्रीको देखा । शूरवीरने उसे रोते हुए देखकर  
 पूछा कि तू क्यों रो रही है ? इसके उत्तरमें वह कहने लगी कि तुम चित लगाकर सुनो मैं एक वनयन्त्री हूं और यहां

सुमिता । श्रावका लक्ष्मणं तु त्रिपुणा श्राविकास्ततः ॥ ३७१ ॥ देवादेव्यस्त्वसंस्थातास्तिर्यचः कृतसह्यकाः । गणैर्द्वंद्वशभिः प्रोक्तैः परीतेन जिनेश्विना ॥ ३८० ॥ सिंहविष्टरमञ्जारेनार्द्धमागधभाषया । बट् द्रव्याणि पदार्थाद्य सप्त संघतिमोक्षयोगैः ॥ ३८१ ॥ प्रत्येयस्तफलं चैतत्सर्वमेव प्रपञ्चतः । प्रमाणनयनि-  
क्षेपाद्युपायै सुनिरूपित ॥ ३८२ ॥ उत्पत्तिकादिधीयुक्ताः क्षुतवत सभासद । केचित्सयममापधाः सयमासथम परे ॥ ३८३ ॥ सम्यक्त्वमपरे सद्यः  
स्वभाव्यत्वनिर्घोषतः । एव श्रीवर्द्धमानेशो विवदधर्मेदना ॥ ३८४ ॥ क्रमाद्राजगृह प्राप्य तस्थिवात् विपुलाचले । श्रुतैतदागमं सद्यो मगधेश त्मागमः ॥  
३८५ ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य प्रवृष्टः प्रगतो मुहुः । जातसवेगनिर्वेग स्वपूर्वभावसतर्ति ॥ ३८६ ॥ अन्धयुक्त गणाधीश सोपीति प्रत्यबबुधत । त्रिपटिलक्षण  
पूर्वं पुराण पृष्ठमादित ॥ ३८७ ॥ निदिष्टं च मया स्पष्टं श्रुतं च भवता स्फुट । शृणु नित सभाधाय श्रेणिक श्रावकोत्तम ॥ ३८८ ॥ वृत्तक तब वक्ष्यामो  
भवत्रयनिवर्धनं । इह जंघमति द्वीपे विष्यादौ कुटचाह्वये ॥ ३८९ ॥ वने खदिरसाराख्यः किरातः सोन्यदा मुनि । समाधिगुप्तनामानं समीक्ष्य व्यनमन्मु-

कहे हुए जीवोंसे भरी हुई बारह सभाओंसे यष्टित होकर सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान् जिनेन्द्र देवने अर्द्धभाग-  
धीभाषाके द्वारा छह द्रव्य, सात पदार्थ, संसार मोक्षका कारण और उसका फल आदि सब विस्तारपूर्वक बतलाया ।  
भगवानने यह सब पदार्थोंका स्वरूप प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके कारणपूर्वक बतलाया जिसे सुनकर बहुतेसे स्वाभा-  
विक बुद्धिवाले शास्त्र सभासदोंने संयम धारण किया और अपने भव्यत्वकी विशेषतासे किसीने उस समय सम्यग्द-  
र्शन ही धारण किया । इसप्रकार श्रीवर्द्धमान स्वामीने सब जगह धर्मोपदेश दिया ॥ ३७९-३८४ ॥ किसी एक समय  
विहार करते हुए वे भगवान् राजगृह नगर आ पहुँचे और विपुलाचल पर विराजमान हुए । हे मगधेश ! इनका आगम  
सुनकर तू भी शीघ्र ही आया ॥ ३८५ ॥ इन सब कथाओंको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही संतुष्ट हुआ, उसने बार  
बार नमस्कार किया, और उसे संवेग तथा निर्वेग उत्पन्न हुआ । तदनंतर उसने गणधर स्वामीसे अपने पहिले भव पूछे  
उसके उत्तरमें गणधर स्वामीभी सम्मानने लगे कि तेने जो तिरसठ शलाकाओंका पुराण पहिले पूछा था वह मैंने  
आदिसे अंत तक स्पष्ट रीतिसे कहा और तैने भी अच्छी तरह सुना । हे श्रावकोत्तम श्रेणिक अब मैं तेरा तीन भव पहि-  
लेका चारित्र्य कहता हूँ तू चित्त लगाकर सुन । इसी जंबूद्वीपके विंध्याचल पर्वतके कुटच नामके वनमें एक खदिरसार नाम  
का भील था किसी एक दिन उसने समाधिगुप्त नामके मुनिराजको देख कर बड़े हर्षसे उन्हें नमस्कार किया ॥ ३८६-  
३९० ॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने “आज तुम्हें धर्म लाभ हो” ऐसा आशीर्वाद दिया । तब उस भीलने पूछा कि हे  
प्रभो ! धर्म क्या है और उससे जीवोंको क्या लाभ होता है ? भीलके इस प्रकार पूछने पर वे मुनिराज कहने लगे कि मधु

आक्षेपमनुमि ॥ ३६७ ॥ श्रीवर्द्धमानमानस्य सयमं प्रतिपन्नवान् । तदैव मे समुपपन्ना परिणामनिशेषतः ॥ ३६८ ॥ ऋद्धयः सप्त गर्भागानामप्युपपन्नाः । मष्टारवोऽप्येतेन धावणे बहुले तिष्ठे ॥ ३६९ ॥ पश्चादावर्धरूपेण सद्यः पर्याणमन् स्फुटः । पूर्वोक्ते पश्चिमे भागे पूर्वाणामप्यनुक्रमान् ॥ ३७० ॥ भूतं गणश्चदादिमः ॥ ३७१ ॥ ततः परं जिनेन्द्रस्य वायुभूतानिभूतिकाः । सुधर्मयोग्यौ भौद्रपाक्ष्यः पुत्रमैत्रेयसङ्काः ॥ ३७२ ॥ इति श्रुतादिभिः पूर्णो सहस्रमेकः त्रिंशत्तन्त्रलोचनाः । सन्मतेर्गणनायकाः ॥ ३७३ ॥ शतानि त्रीणि पूर्वणा धारका शिक्षकाः परे ॥ ३७४ ॥ अकंठनोर्विबलः सद्यः प्रभः सद्यः पुनर्ज्ञानलोचनाः ॥ ३७५ ॥ चतुःशतानि सत्रोकास्तत्रानुत्तरवादिनः । चतुर्दशसहस्राणि विहिताः सुसुवीथराः ॥ ३७६ ॥ चन्दनाधार्यिकाः शतत्रयवत्तन्त्राणि ।

सौधर्म्यं इन्द्रे मेरी पूजाकी और मैंने पांचसौ ब्राह्मणोंके साथ श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कारकर संयम धारण कर लिया । परिणामोंकी विशेष विशुद्धि होनेसे उसी समय मुझे सात ऋद्धियां प्राप्त हुईं । तदनंतर भट्टारक श्रीवर्द्धमानके उपदेशसे आचरण कृष्ण प्रतिपदाके दिन सबरे के समय सब अंगोंके अर्थ और पद शीघ्रही अर्थरूपसे स्पष्ट जान पड़े और इसीतरह उसी दिनके शामके समय अनुक्रमसे सब पूर्वोंके अर्थ और पदोंका ज्ञान होगया ॥ ३६८-३७० ॥ इसप्रकार मुझे सब अंग और पूर्वोंके अर्थोंका ज्ञान होगया तथा चौथा मनः पर्यय ज्ञान भी होगया । तदनंतर मैंने रात्रिके पहिले भागमें अंगों की ग्रंथ रूपसे रचना की और रात्रिके पिछिले भागमें पूर्वोंकी ग्रंथ रचना की इसतरह मैंने रात्रिके पहिले भागमें अंगों में ग्रंथकर्ता प्रसिद्ध हुआ हूं । इस प्रकार श्रुतज्ञानरूपी ऋद्धिसे पूर्ण होकर मैं श्रीवर्द्धमान स्वामीका पहिला गणक हुआ हूं ॥ ३७१-३७२ ॥ इसके बाद वायुभूति अग्निभूति, सुधर्म, मोर्गे, मौद्रिय, पुत्र, मैत्रेय, अकंठन, अंधवेल और प्रभास ये जिनेंद्रदेवके और गणधर हुए इसतरह मुझ चौदह पूर्वोंके ज्ञानकार थे, नौ हजार नौसौ वास्तविक संयमको धारण करने वाले शिचिक मुनि थे, तेरहसौ अवधिज्ञानी थे, सातसौ केवलज्ञानी अरहत परमेष्ठी थे ॥ ३७३-३७४ ॥ इनको सिवाय तीनसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके ज्ञानकार थे, सातसौ केवलज्ञानी अरहत परमेष्ठी थे ॥ ३७५-३७६ ॥ नौसौ चिक्रिया ऋद्धि को धारण करनेवाले मुनिराज थे और पांच सौ पूज्य मनः पर्यय ज्ञानी थे ॥ ३७७ ॥ तथा चारसौ अनुत्तरवादी थे इस प्रकार सब मुनिश्वरोंकी संख्या चौदह हजार थी ॥ ३७८ ॥ इसीप्रकार छत्तीस हजार चंदना आदिक अर्जिकाएं थीं एक लाख श्रावक थे तीनलाख श्राविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यक थे इसप्रकार ऊपर

ज्ञात्वा मा परितुष्टवान् ॥ ३५६ ॥ तदैवागल्य त ग्राम गौतमाख्यं शचीपति । तत्र गौतमगोत्रोत्थमिष्टभृति द्विजोत्तम ॥ ३५७ ॥ महाभिमानमाहिल्यविमाना-  
दित्यभासुरं । शेषः पुण्यं समुत्पन्न वेदवेदांगवेदिन ॥ ३५८ ॥ दृष्ट्वा केनायुपायेन समानीयातिकं विभो । खप्रिच्छिषित जीवभाव पृच्छेल्यचोदयत् ३५९  
अस्ति किं नास्ति वा जीवस्वरूप निरूप्यतां । इत्यप्राक्षमतो महां भगवान् भव्यवत्सलः ॥ ३६० ॥ अस्ति जीवं स चोपात्तदेहमात्रं सदादिभि । किमा-  
दिभिश्च निर्देशो नोत्तमो न विनश्यति ॥ ३६१ ॥ द्रव्यरूपेण पर्यायैः परिणामी प्रतिक्षणं । चैतन्यलक्षण कर्ता भोक्ता सर्वैकदेशवित् ॥ ३६२ ॥ संसारी  
निर्वृतचेति द्वैव्येन निरूपित । अनादिरस्य ससाः सादिनिर्वाणमिष्यते ॥ ३६३ ॥ न निर्वृतस्य संसारो नित्या कस्यापि सद्यतिः । अनता सद्यतां मु-  
क्तास्तदनता । कुलक्षिताः ॥ ३६४ ॥ सति व्ययेपि वृद्धाना हानिरेव नहि क्षयः । आनत्यमेव तदेतु शक्तीनामिव वस्तुनः ॥ ३६५ ॥ इति जीवस्य या-  
शाम्यं युक्त्या व्यक्तं न्यवेदयत् । द्रव्यहेतुं विधायास्य वच कालादिसाधनः ॥ ३६६ ॥ विवेयोह कृतश्रद्धो जीततत्त्वविनिधये । सौधर्मपूजित पंचशत-

वह इंद्र किसी भी उपायसे मुझे भगवानके समीप लाया और मुझसे प्रेरणा की कि तुम जो जीवका स्वरूप पृच्छना चाहते  
थे उसे पूछो ॥ ३५६-५९ ॥ तब मैंने पूछा कि जीव कोई पदार्थ है अथवा नहीं है उसका स्वरूप कहिये तब भव्योंपर  
दया करने वाले भगवान मुझसे कहने लगे कि जीव एक भिन्न पदार्थ है, वह प्राप्त हुई देहके समान है, सत् संख्या आदि  
सदादिक तथा निर्देश स्वात्मित्व आदि किमादिकसे उसका स्वरूप कहा जाता है वह द्रव्यरूपसे न कभी चत्यन्न हुआ है  
और न कभी नष्ट होगा किंतु पर्यायरूपसे वह प्रतिक्षण परिणामी है अर्थात् उत्पन्न और नष्ट होता रहता है । चेतना उस  
का लक्षण है, वह कर्ता है, भोक्ता है पदार्थोंके एकदेश तथा सर्वदेशका ज्ञानकार है ॥ ३६०-३६२ ॥ संसारी और मुक्त  
ऐसे दो भेदसे वह निरूपण किया जाता है, संसारमें यह जीव अनादि कालसे चला आ रहा है और मुक्त जीव सादि  
होता है अर्थात् कर्मोंके नष्ट कर लेने पर वह मुक्त कहलाता है ॥ ३६३ ॥ जो मुक्त नहीं है वह संसारमें ही रहता है अय-  
वा संसारी कहलाता है, किसी (अभव्य) जीवका संसार सदा बना रहता है अर्थात् वह सदा संसारमें ही रहता है सं-  
सारमेंसे अनंत जीव तो मुक्त हो गये हैं और उनसे भी अनंत विद्यमान हैं । कर्म बंधनोंमें बंधे हुए जीवोंमें से मुक्त हो  
जानेपर हानि अवश्य होती है परंतु उनका क्षय नहीं होता । जिसप्रकार पदार्थोंकी शक्तियां अनंत है इसलिये उनका कभी  
क्षय नहीं होता इसीतरह जीव भी अनंत हैं इसीलिये उनका क्षय कभी नहीं होता ॥ ३६५ ॥ इसप्रकार भगवानने युक्ति  
से स्पष्ट सिद्ध ऐसा जीवका यथार्थ स्वरूप कहा । तब भगवानके वचनको द्रव्य हेतु मानकर और काल लब्धि आदि की  
कारण सामग्री मिल जानेपर जीवतत्त्वके निश्चय करलेनेपर मुझे श्रद्धा हुई और मैं भगवानका शिष्य बन गया । तदनंतर

गलन्माकृतीमालादिव्यावरविभूषणा । नवप्रकारपुण्येशा भक्तिभारभरानता ॥ ३४५ ॥ क्षीलमाहस्यसभृगष्टयुद्धेदेवताविका । शाल्यभ्रभावत्कोप्रोदना  
विधिविस्मयीः ॥ ३४६ ॥ अन्नमभ्रणयसमै तेनाप्याश्चर्यपंचक । बहुभिन्न समयोगः कृतवदनया तदा ॥ ३४७ ॥ भगवान् वर्द्धमानोपि नीत्वा द्वादशवत्स  
वष्टोपवासेन सोधस्थातलभूरुह । वैशाखमाससज्ज्योत्स्तादशम्यामपराहके ॥ ३४८ ॥ ऋजुकूलानवीतीरे मनोहरकनारे । महारक्षाशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसत् ॥ ३४९ ॥ स्थित्वा  
ध्यानेन ह्रस्वितः ॥ ३५० ॥ घातिकर्मणि निर्मूल्य प्राप्यान्तचतुष्टयं । चतुर्दशदतीक्षेपव्याभासिमहिमालयः ॥ ३५१ ॥ क्षपकत्रेणिमास्त्रा सुहृ  
धक । परमादरिकं देहं विभद्रभ्राणे बन्ध ॥ ३५२ ॥ चतुर्विधामरैः सार्द्धं सौधमस्तदागतं । तुर्गकल्याणतदुजाविधिं सर्वं समानयत् ॥ ३५३ ॥ अ-  
पायप्राप्तितन्विज्याक्षाधकातिशयोक्तं । परमात्मपदं प्राप परमेष्ठी स सन्मति ॥ ३५४ ॥ अयं दिव्यध्वनेर्हेतुः कोसावीशुपयोगवान् । तृतीयज्ञाननेत्रेण  
गया ॥ ३४३-३४७ ॥ इधर जगतबंधु भगवान् वर्द्धमानने भी वारह वर्ष तक छत्रस्य अवस्थामें रहकर तपश्चरण किया ।  
तदनंतर वे जंभिका गांवके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें महारत्न शिलापर शालवृक्षके नीचे वे-  
लाका नियम लेकर प्रतिमायोग धारणकर विराजमान हुए । वैशाख शुक्ल दशमीके दिन शामके समय हस्त और उत्तर  
नक्षत्रके मध्यभागमें चंद्रमाके आजानेपर परिणामोंकी अत्यंत शुद्धतासे क्षपक श्रेणी चढकर शुक्लध्यानमें विराजमान हुए ॥  
३४८-३५१ ॥ उसीसमय चारों घातियां कर्मोंको नष्टकर उन्होंने अनंत चतुष्टय प्राप्त किये और चौत्तिस अतिशयोक्ते दै-  
दीप्यमान होकर वे महिमाके घर वन गये ॥ ३५२ ॥ सयोग भाव रहने तक वे अपने और दूसरोंके प्रयोजनोंको सिद्ध  
करनेवाले थे, और परमौदारिक शरीरको धारणकर आकाशरूपी आंगनमें सुशोभित हो रहे थे ॥ ३५३ ॥ उसीसमय  
सौधर्म इंद्र चारोंप्रकारके देवोंके साथ आया और उसने विधिपूर्वक ज्ञानकल्याणकी सब पूजा समाप्त की ॥ ३५४ ॥ अ-  
प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति, शरीरकी पूजा और ज्ञाधिक सम्यक्त्व आदि अतिशयोक्ते वे उत्तम पूज्य होगये थे तथा वे परमेष्ठी  
वर्द्धमान स्वामी परमात्मपदको प्राप्त हो गये थे ॥ ३५५ ॥ तदनंतर इंद्रने भगवानकी दिव्यध्वनिका कारण क्या होना  
चाहिये इसपर विचार किया अवधिज्ञानसे इसका कारण मुझे जानकर वह शीघ्र ही गौतम गांवमें आया संतुष्ट हुआ तथा  
वहांपर मैं गौतम गोत्रीय इंद्रभूति नामका उत्तम ब्राह्मण था महा अभिमानी था आदित्य विमानसे चयकर शेष बचे हुए  
पुरयकर्म के उदयसे दैदीप्यमान शरीर को पाकर उत्पन्न हुआ था और वेद वेदांग सबका जानकार था । मुझे देखकर



हृदयैर्दरीक्षणी ॥ ३३३ ॥ स्थूलवेतालरूपाणि निधि कृत्वा समतत । पराप्यपि फणीर्दिमसिदहन्वन्निर्ले समं ॥ ३३४ ॥ किरातसैन्यरूपाणि पापैर्कार्जप-  
 कितः । विद्याप्रभावार्सवितोपसर्गैर्भयावहै ॥ ३३५ ॥ स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थक । स महातिमहावीराह्व्या कृत्वा विविधाः स्तुतीः ॥ ३३६ ॥  
 उभया स समाह्वयाय नर्तित्रागादमत्सरः । पापिनीपि प्रतुष्यति प्रस्पष्ट दृष्टसादृशाः ॥ ३३७ ॥ कदाचिचेष्टकाह्वयस्य नृपतेष्वदनाभिधा । सुनां वीक्ष्य न  
 नकीडामकां कामशादुर ॥ ३३८ ॥ कृतोपायो गृहीत्वैना कश्चिद्दृग्गन्धमभयर । पश्चाद्ग्रीवास्वभागीया महादृष्ट्या व्यसर्जन्त ॥ ३३९ ॥ वनेवरपतिः  
 कश्चित्त्रालोक्य घनेच्छया । एना कृपभद्रतस्य वाणिजस्य समार्पयत् ॥ ३४० ॥ तस्य भार्या सुभद्राह्वया तथा संपर्कमात्मन । बणिजः शकुमानोन्मां पुराण-  
 कोद्ववादन ॥ ३४१ ॥ आरनलेन संमिश्र शरावे निहित सदा । दिशती शृङ्खलाबधभाणिनी तां व्यधादुषा ॥ ३४२ ॥ पेरुर्ध्वस्तेशस्यैकाशावीनगरातर ।  
 कायस्थित्यै विशतं त महावीरं विलोक्य सा ॥ ३४३ ॥ प्रत्युद्गन्तीविच्छिन्नशृङ्खलाकृतबचना । लोहाल्लिकुलनीलोत्तेशभाराभलं बलात् ॥ ३४४ ॥ वि

वीर रक्त्वा पार्वतीके, साथ अनेक तरहकी स्तुतिकी नृत्य किया और फिर अभिमान छोड़कर अपने स्थानको चला गया  
 सो ठीक ही है क्योंकि साहसको स्पष्ट रीतिसे देखकर बड़े २ पापी भी संतुष्ट होजाते हैं ॥ ३३२-३३७ ॥ किसी एक  
 दिन चेटक नामके राजाकी चंदना नामकी पुत्री वन क्रीडा करनेमें लगी हुई थी उसे देखकर कोई विद्याधर कामवाणसे  
 पीडित हुआ और किसी उपायसे उसे लेकर चलता बना । पीछे आई हुई अपनी स्त्रिसे डरकर उसने उस कन्याको म-  
 हादबीमें छोड़ दिया ॥ ३३८-३३९ ॥ वहांपर किसी भीलने देखकर धनकी इच्छासे वह दृषभद्रत नामके शेटको दे  
 दी ॥ ३४० ॥ उस शेटकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था उसे शंका होगई कि कहीं अपने शेटका इसके साथ संबंध न हो जाय  
 इसलिये वह सुभद्रा उस चंदनाको खानेके लिये एक भिट्टीके सकोरामें कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोका भात सदा  
 दिया करती थी और क्रोधमें आकर सदा उसे संकलसे बांधकर रखती थी ॥ ३४१-३४२ ॥ किसी दूसरे दिन दत्त-  
 देशकी उसी कौशांबी नगरमें श्रीमहावीरस्वामी आहारके लिये गये उन्हें देखकर वह चंदना उनके सोपने जाने लगी  
 उसीसमय उसकी संकलके बंधन सब टूट गये, चंचल अमर समूहके समान चलाचल काले केशोका समूह सुशोभित होने  
 लगा, उसकी मालती माला टूट गई और दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे सुशोभित होकर और भक्तिके भारसे अत्यंत  
 नम्रीभूत होकर पुरयकी स्वामिनी उस चंदनाने नक्शा भक्तिसे उनका पदग्राहना किया । उसके शीलके माहात्म्यसे वह  
 भिट्टीका सकोरा बड़े भारी सुवर्णका होगया और कोदोंका भात शाली चावलोंका भात होगया उस बुद्धिपतीने विधि-  
 पूर्वक भगवानको आहार दिया इसलिये उसके यहां पंचाशत्पौकी वर्षा हुई और आई बंधुओंसे भी उसका समागम हो-

केतु विषयं विनिर्वाणः ॥ ३२३ ॥ विषयप्रसक्तकीर्णं करणद्विभोक्तं । परीषदमहाघोरं विश्वसुपदसंकुलं ॥ ३२४ ॥ रुवायमममातगसंभारतसंतत ।  
विद्वत्स्योक्तनितेर्वीनसविभीषण ॥ ३२५ ॥ चतुर्विधोपसर्गोऽप्रकटीरवकठोरित । विद्वोषतस्करारुदं लयत्वा भवन्न शनै ॥ ३२६ ॥ तपोवनं सतो  
शीलयुधो गुणग्रतकचः शुद्धिमागंग । सद्भावनामहायः सन् प्रविश्य परम पुमान् ॥ ३२७ ॥ महाप्रतमहासामन्तान्वितं सुनयानुग । दर्शनज्ञानचारित्र्यव्यक्तिकाफिप्रयोजितं ॥ ३२८ ॥  
विविक्तस्था ध्यायन् दशविध मुहुः ॥ ३२९ ॥ उच्चयिन्यामयान्येयुस्तच्छ्रमशानेतिमुक्तके । अवर्द्धमानं महामासत्वं प्रतिमायोगधारिणं ॥ ३३० ॥ धर्म्यध्यान  
शुरेत्स दैष्ट्यं परीक्षितं । उत्कल्य कृतिकारतीक्ष्ण प्रविष्टजघराण्यलं ॥ ३३१ ॥ व्याप्तानामिभीष्माणि दृश्यति विविधैर्लघैः । तर्जयति स्फुरद्भवानै सा-

दुष्ट पशुओंसे भरा हुआ है, कषयारूपी मदोन्मत्त हाथियोंके सैकड़ों समूहोंसे व्याकुल है, मुंह फाड़े हुए कालके समान अ-  
नंत सर्पोंसे भयंकर है, चारों तरफके उग्र उपसर्गरूपी सिंहोंसे कठोर है, और अनेक विघ्नरूपी चोरोंसे रूका हुआ है ऐसे  
संसाररूपी वनको घेरे २ छोड़कर उन परम पुरुष भगवानने जो सज्जनोंके द्वारा सेवन करने योग्य है जिसमें वाया  
रहित सुख भरा हुआ है, जो उत्तम मनुष्योंसे भरा है, विस्तीर्ण है, और सब तरहके उपद्रवोंसे रहित है ऐसे तपोवनमें म-  
हाव्रतरूपी महायोधाओं सहित, मुनियोंकी अनुकूलताको धारणकर, सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्ररूपी प्रगट हुई तीनों शक्तियोंसे  
सुशोभित, शीलरूपी आयुध लेकर, गुणोंके समूहका कवच पहिनकर शुद्धतारूपी मार्गसे चलकर और उत्तम भावनाओं-  
की सहायता लेकर प्रवेश किया ॥ ३२४-३२६ ॥ वहांपर निःशंक रीतिसे रहकर उन्होंने अनेक योगोंकी प्रवृत्ति की  
और एकांत स्थानमें विराजमान होकर बारवार दश तरहके धर्म ध्यानका चिंतन किया ॥ ३३० ॥ अथानंतर किसी  
एक दिन विहार करते हुये महा पराक्रमी भगवान् वर्द्धमानने अतिमुक्त नामके श्मशानमें प्रतिमा योग धारण किया ॥  
३३१ ॥ उन्हें देखकर महादेवने अपनी दुष्टतासे उनके धैर्यकी परीक्षा करनेका विचार किया । पापोंके उपार्जन करनेमें  
एक अद्वितीय पंडित ऐसे उस महादेवने अपनी विद्यासे अंधेरा कर दिया फिर अनेक वैताल आकर तीक्ष्ण चमड़ेको  
निकालकर मुंहमें दबाये हुए तथा मुंह फाड़कर अत्यंत भयानकरूप धारणकर अनेक तरहके लथोंसे नाचने लगे और  
कठोर शब्द, अट्टहास ( जोरकी हंसी ) तथा किंकरालदृष्टिसे देखकर डराने लगे । तदनंतर सर्प हाथी सिंह अग्नि और  
वायु आदिके साथ भीलोंकी सेना बनकर आई इस तरह उस महादेवने अपनी विद्याके प्रभावसे अनेक भयानक उपसर्ग  
किये परंतु वह भगवानके चित्तको समाधिसे च्युत करनेमें समर्थ नहीं हुआ उस समय उसने भगवानका नाम महातिमहा-

५ स्यात्समाश्रित ॥ ३१३ ॥ चतुःसंज्ञानेनैतस्य निसर्गबलशालिनः । तस्याशमेव चारित्र्य द्वितीय तु त्रयाश्रितानां ॥ ३१४ ॥ सिंहनैव मया प्राप्त बने सु  
 ब्रत । मत्वेवेत्येकता तत्र सैही श्रुतिं समाप स ॥ ३१५ ॥ अतीक्ष्णनखदण्डोयमकूरो रफकेसरः । शौर्यकावचनस्थानुरन्वयान्मृगविद्विषः ॥ ३१६ ॥ दुरा  
 ननैवमेतत्साहस्रसंस्तवे । सक्ता समागमन स्वस्वमोकः संतुष्टचेतस ॥ ३१७ ॥ अथ भट्टारकोप्यस्मादगात्कायस्थितिं प्राति । कुलप्राप्तपुरी श्रीमत  
 सिपुरोपम ॥ ३१८ ॥ हूलनामा महीपालो दष्टुग तं भक्तिभक्ति । प्रिययुक्तुमुगामागः त्रि, पराश्रयदक्षिण ॥ ३१९ ॥ प्रणम्य पादयार्मुर्ध्ना निवि  
 गत । प्रतीक्ष्याघौदिसि पूज्यस्थाने सुस्थाप्य सुव्रत ॥ ३२० ॥ गधादिभिर्विभूष्यैतत्पादोपातमहीतल । परमात्र विशुद्ध्यास्मै सोदितेष्टार्थमाघन  
 आनुपलिकमेतत्तै फल भावि महत्तर । इति वक्तुमिवाश्चर्यपञ्चक तद्गुहेभवत् ॥ ३२१ ॥ पुण्यहेतोर्विनियानां वीरो निर्गल्य तद्गुहात् । विहिते  
 उन भगवान्के पहिला सामायिक ही चारित्र था क्योंकि दूसरा छेदोपस्थापना तो प्रमादी जीवोंके ही होता है ॥  
 पहिले सिंह पर्यायमें मैने वनमें मुनिराजकी आज्ञानुसार व्रत धारण किये थे यही समझकर उन्होंने अपनी  
 वंसीही सिंहवृत्ति धारण की थी ॥ ३१५ ॥ जिसप्रकार सिंहपर्यायमें नख और दाढ़ तीक्ष्ण नहीं थे क्रूरता  
 नहीं थी केसर रक्त थी और शूरवीरता धारणकर अकेला ही वनमें रहता था उसीप्रकार सिंहको अमुक-  
 रणकर वे भगवान भी अकेले ही रहते थे ॥ ३१६ ॥ देव सब उन भगवानको नमस्कारकर तथा  
 उनके साहसकी स्तुति करते हुए संतुष्टचित्त होकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३१७ ॥ अथानंतर पार-  
 णाके दिन वे भट्टारक महावीर स्वामी आहारके लिये निकले तथा स्वर्गकी नगरीके समान कुलद्राम नामकी नगरीमें पहुंचे  
 प्रियंगुके फूलके समान ( कुछ लालवर्ण ) कातिको धारण करनेवाले वहाँके कूल नामके राजाने वही भक्तिसे उनके  
 दर्शनकर उन्हें पहगाहन किया, तीन प्रदक्षिणाएं दीं उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर नमस्कार किया और घरमें आई  
 हुई निधिके समान उन्हें माना । उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले उन भगवानको उस राजाने पूज्यस्थानपर विराजमान  
 कर अर्घ्यादिकसे उनकी पूजा की । उनके चरणक्षमलके समीपवर्ती पृथिवीका भाग गंधादिकसे विभूषित किया और वही  
 विशुद्धिके साथ उन्हें इष्ट अर्घ्यको सिद्ध करनेवाला परमात्म समर्पण किया ॥ ३१८-३२१ ॥ यह तो आनुपलंगिक फल है  
 परंतु इसका होनहार फल बहुत बड़ा है यही कहनेके लिये मानो उसके घर पंचाश्रयोंकी वर्षा हुई ॥ ३२२ ॥ तदनंतर  
 शिष्योंका पुरय बढ़ानेके लिये वे भगवान एकांत स्थानमें विधिपूर्वक तपश्चरण करनेकी इच्छासे उसके घरसे निकले ॥  
 ३२३ ॥ जो विषयरूपी वृक्षोंसे भरा हुआ है, पांचों इंद्रियरूपी व्यर्थोंसे उक्त है, परीपहोंसे महाघोर है सब तरहके

रक्ष सः । श्रेष्ठः पशोपवासेन तत्प्रभापटलादृते ॥ ३०२ ॥ निविद्योत्तरमुखो भीरो रुद्रभक्षितालते । दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शक्तिनि श्रिते ॥ ३०३ ॥  
हस्तोत्तरक्षगोर्मध्य भागं वापास्तलक्ष्मणि । दिवसावसिता वीर सयमाभिमुखोऽभवत् ॥ ३०४ ॥ नन्नाभरणमात्यानि स्वयं शक्र समावदे । मुक्कान्येतेन पू-  
तानि मत्वा माहात्म्यमीदृश ॥ ३०५ ॥ अगारागंगलग्नोऽस्य सगधोह कथं मया । मोक्षयोगमिति मत्वेव स्थित शोभा समुद्रहन् ॥ ३०६ ॥ मलिना कुटिला  
मुग्धः पूज्यारत्याज्या मुमुक्षुभिः । केशाः क्लेशसमास्तेन यूनामूलात्समुद्धृता ३०७ ॥ सुराधीशः स्नहस्तेन तान् प्रतीक्ष्य महामणि-ज्वलत्पटलिकामने-  
मूढधी । अभ्येत्य मोक्षलक्ष्मीं श्रद्धां फल्येव विदग्धया ॥ ३०८ ॥ अतः प्रपत्तिरालागास्तस्य नैर्ग्रथ्यमाबधौ । भोगिनो न्यस्तनिर्मात्यागवभावभासते ॥ ३०९ ॥ तपोलक्ष्म्या निगूढाभूद्राड वाढम-  
चतुर्थोऽप्यवबोधोऽस्य सयमेन समर्पित । तदैवात्यावबोधस्य सत्यकार इवेशितु ॥ ३१० ॥ अप्रमत्तगुणस्थाने मुक्तिसाम्राज्यकठिका । तपस्विना सतालंभि तत्क-  
उत्तरा नक्षत्रके पट्यमें था उस संध्याके समय श्रेष्ठ भगवान् वीरनाथने दीक्षा धारणा की ॥ २९९-३०४ ॥ भगवानने जो  
वस्त्र आभरण माला आदि उतार फेंके थे वे इंद्रने महा पवित्र समझकर उठा लिये सो ठीक ही है क्योंकि भगवानका  
माहात्म्य ही ऐसा है ॥ ३०५ ॥ उससमय भगवानके शरीरमें लगा हुआ सुगंधित अंगराग समझ रहा था कि मैं यहां-  
से कैसे ब्रालग हो सकूँ-हूं यही समझकर मानों वह वहीं रहकर भगवानकी शोभा बड़ा रहा था ॥ ३०६ ॥ मलिन कु-  
टिल, अज्ञानियोंके द्वारा त्याज्य ऐसे केशोंके समान केश उन तरुण भगवानने जड़से ही उखाड़ फेंके थे ॥ ३०७ ॥ इंद्र-  
ने वे सब केश अपने हाथसे चुनकर उठा लिये थे और मणियोंके दैदीप्यमान पिटांरमें रखकर उनकी पूजाकी आदर स-  
त्कार किया अनेक तरहके वस्त्रोंमें उन्हें लपेटकर रखवा और फिर स्वयं सब देवोंके साथ जाकर उन्हें चीरसागरमें धरा-  
या ॥ ३०८-३०९ ॥ मोक्ष लक्ष्मीकी इष्ट और चतुर दूतीके समान तपोलक्ष्मीने स्वयं आकर अतिशय शुद्ध बुद्धिको धारण  
करनेवाले भगवान् वीरनाथ अपनी इच्छानुसार स्वीकार किये थे ॥ ३१० ॥ अंतरंग परियहोंका त्याग करदेनेसे उनका  
निर्ग्रथपना बहुत ही अच्छा सुशोभित हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि सांपकी काचलीके समान केवल बाह्य परिग्रहों-  
का त्याग करना कुछ सुशोभित नहीं होता ॥ ३११ ॥ उसी समय संयमने उन भगवानको केवलज्ञानके वयानके समान  
चौथा मनःपर्ययज्ञान भी आकर समर्पण किया था ॥ ३१२ ॥ तपश्चरण करनेवाले उन भगवानने अप्रमत्त गुणस्थानमें  
जाकर मोक्षरूपी साम्राज्यकी कंठी भी पहिन ली थी सो ठीक ही है क्योंकि प्रमादी जीवोंको अर्थात् प्रमत्तगुणस्थानमें  
रहनेवालोंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है ॥ ३१३ ॥ चार ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले और स्वाभाविक बलशाली

निर्वाच्योदितं ॥ २१० ॥ कुमारं भास्वराकारं द्रुमकीर्वापरायण । स विभीषणितु वांछन् महानागाकृतिं दधत् ॥ २११ ॥ मूलाश्वश्रुतिभूजस्य  
स्त्वक्षमस्मिद्धितं । ऋटपेभ्यो निपत्याद्यु धरणी भयविह्वला ॥ २१२ ॥ प्रपलायत तं दृष्ट्वा बालाः सर्वे यथायथ । महाभये समुत्पन्ने महतोन्व्यो न  
॥ २१३ ॥ लज्जामाता-न्युग्रमास्त्रा तमहि विभी । कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यवत्तदा ॥ २१४ ॥ विजृम्भाणहर्षभोनिधिः सगमकामर । स  
वान् महावीर इति नाम चकार स ॥ २१५ ॥ शिशुचरद्विस्तस्थैव कैमारमगमद्वयः । ततोन्व्युर्मतिज्ञानक्षयोपशममेदत ॥ २१६ ॥ समुत्पन्न  
स्मृतपूर्वमवातरः । लौकांतिकामरै प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिभि स्तुतः ॥ २१७ ॥ सकलामरसंदेहकृतति-कर्मणक्रिय । स्वबाह्मीणितसद्वधुभाषि  
॥ २१८ ॥ चंद्रप्रभाख्यविदिकामबिरुद्धो हृदव्रत । कळां परिहृज्जृणां ततो विद्याभराधिपं ॥ २१९ ॥ ततश्चाभिषिषीधैश्वर्यलज्जामरसहतिः । प्रप्रम  
॥ २२० ॥ आह्वयदा प्रसूतौ चै प्रहसदा प्रमोदत । पल्लवरुराग वा स्वकीयं सप्रकाशयत् ॥ २२१ ॥ नाथः पंडवन प्राप्य

धवड़ाकर अपने अपने सुभीते के अनुसार वृक्षों से पृथ्वी पर कूदकर भागए । सो ठीकही है क्योंकि महाभय प्रत्यक्ष  
होनेपर महापुरुषों के सिवाय अन्य कोई नहीं उठर सकता है । २१०-२१३ ॥ उससमय जिसकी सौ जिह्वाएं उभर  
रही है ऐसे उस सर्पके मस्तक पर बैठकर उन वीरनायने माताकी चारपाईके समान क्रीड़ा की ॥ २१४ ॥ अतएव  
के समागमसे उस संगमदेवका हर्षरूपी महासागर उमड़ आया और उसने भगवानकी स्तुतिकर महावीर नाम रखा  
॥ २१५ ॥ इस प्रकार भगवानके कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत हुए । उसके दूसरेही दिन मतिज्ञानके विशेष द्वयोप-  
क्षमसे उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ और पहिले भक्ता जातिस्मरण हुआ । उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर सम्प-  
यानुसार उनकी स्तुतिकी और इंद्रादि सब देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनया । भगवानने मीठी  
वाणी से सब भाई बन्धुओं को प्रसन्न किया और सबसे विदा ली ॥ २१६-२१८ ॥ ब्रतोंको हृदतासे पालन करने  
वाले वे भगवान चंद्रप्रभा नामकी पालकी पर सवार हुए । पहिले वह पालकी चारों ओर घिरे हुए मनुष्योंने उठाई फिर  
विद्याधर ले चले और फिर अंतमें देव लोग उसे ले चले । उस समय चमरोंके समूह हुलाये जा रहे थे । जिस वनकी  
ओर वे जा रहे थे वह वन मानें उड़ते हुए भ्रमरोंके समूहसे उन्हें बुलाराहा था, कोयलोंके पथुर शब्दोंसे मानों हंस रहा  
था फूलोंके समूहसे मानों प्रसन्न हो रहा था और नवीन पत्तोंसे मानों अपना अनुराग ही प्रगट कर रहा था । वे भगवान  
ऐसे पंड नापके वनमें पहुंचे पालकीसे उतरे तथा अपनी कांतिसे सब प्रदेशोंको ढकनेवाली एक बड़ी रत्नशिलाके ऊपर  
उत्तरकी ओर मुड़कर तैलेका नियम लेकर विराजमान हुए । इस तरह अगहनवदि दशमीके दिन जब चंद्रमा इस्त और

दिशि दिष्टः दशात्मजगुणोदयः । मदसप्तकनिर्मुक्तः सर्वचेष्टाविराजित ॥ २८१ ॥ संजयस्यार्थसदेहे संजाते विजयस्य च । जन्मानतरमेवैनमभ्येत्यालोक-  
मात्रतः ॥ २८२ ॥ तत्सदेहगतै ताभ्या चारणाभ्या स्वभक्तितः । अस्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदहतः ॥ २८३ ॥ अर्थिनः किं पुनर्वाच्या शब्दाश्च  
गुणगोचरा । अयासाश्चः परेष्वस्मिन्नर्थवतोऽभवन् यदि ॥ २८४ ॥ लोभयमेव दोषोऽस्य शब्दा दोषाभिधायिन । पुष्कलायां परत्रासाद्रुता दूरमनर्थकाः ॥  
२८५ ॥ न गोमिन्यां न कीर्त्या वा प्रीतिरस्याभवद्विभो । गुणेष्विव मुलेयाना प्रायेण हि गुणाः प्रिया ॥ २८६ ॥ तस्य कालवयोवाञ्छावशेनैविल-  
ख्य । भोगोपभोगवस्तूनि स्वर्गसाराण्यहर्निश ॥ २८७ ॥ शक्राक्षया समानीय व्ययं प्रावर्तयत्सदा । अन्येषु स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा ॥ २८८ ॥  
देवानामधुना शूरो वीरत्वामीति तच्छ्रुत्वा । देव सगमको नाम संयातस्त परीक्षन् ॥ २८९ ॥ दृष्टोद्यानवने राजकुमारैर्बहुभिः सह । काकपक्षधरत्वैकवयो-

॥ २९० ॥ एक वार संजय और विजय नामके दो चारण युनियोंको किसी पदार्थमें संदेह उत्पन्न हुआ या परंतु भग-  
वानके जन्मके बाद ही वे उनके समीप आए थे और भगवानके दर्शन करने मात्रसे उनका संदेह दूर हो गया या इसलिये  
उन्होंने बड़ी भक्तिसे उनका होनहार सन्मति नाम रक्खा था ॥ २८१-२८३ ॥ गुणोंको कहनेवाले अर्थवाले शब्दोंकी  
तो बात ही क्या है वीरनाथको छोड़कर अन्य लोगोंमें जिनका गुणवाचक अर्थ नहीं होता है ऐसे शब्द भी वीरनाथमें  
आकर अर्थवाले हो जाते थे ॥ २८४ ॥ उन भगवानके त्यागमें यही सबसे बड़ा दोष था कि रागद्वेष आदि दोषोंको  
कहनेवाले ऐसे शब्द कि दूसरी जगह जिनके अनेक अर्थ हो जाते हैं वे भी भगवान वीरनाथके समीपसे अनर्थक होकर  
दूर भाग जाते थे ॥ २८५ ॥ उन भगवानका प्रेम न तो लक्ष्मीमें था और न कीर्तिमें ही था किंतु शुभ लक्ष्याओंको धा-  
रण करने वालोंके समान गुणोंमें ही उनका प्रेम था सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः गुण सबको प्रिय होते ही हैं ॥ २८६ ॥  
इंद्रकी आज्ञासे कुबेर रात दिन उन भगवानके समय आयु और इच्छाके अनुसार स्वर्गकी सारभूत भोगोपभोग की सब  
चीजें लाता था और सदा उन चीजोंको काममें लाया करता था अथवा खर्च किया करता था । किसी एक दिन इंद्रकी  
सभामें देवोंमें परस्पर यह कथा चल रही थी कि इस समय सबसे शूरवीर श्रीवर्द्धमान स्वामी हैं उसे सुनकर संगम नाम  
का एक देव उनकी परीक्षा करनेके लिये आया ॥ २८७-२८९ ॥ उस समय बालकोंके द्वारा प्रेरणा किये गये और  
सूर्यके समान दैदीप्यमान भगवान वीरनाथ, केश रखाए हुए, समान आयुवाले, ऐसे अनेक राजकुमारोंके साथ देखने  
योग्य उद्यान वनमें वृक्षपर चढ़ने उतरनेका खेल खेल रहे थे । वहां पर आए हुए उस देवने उन्हें डरानेकी इच्छासे महा-  
नागका रूप धारण किया और वह वृक्षकी जड़से लेकर स्कंध तक वरावर लिपट गया । उसे देखकर सब बालक डरसे

वा विवा ॥ २६६ ॥ ननादानकसंपातो ननर्त प्रमदगणः । जगौ च गायकानीकः पपाठीवोपि बंदिनां ॥ २७० ॥ अभातरत् घुराः सर्वेषु दास्यावावमा-  
त्मन । मायाविंशु पुरोधाय मातुः सौधर्मनायक ॥ २७१ ॥ नागेंद्ररुद्रं घमागेष्य बालं भास्वरभास्वरं । तत्तेजसा दिशो विधाकाशायममराङ्गन ॥ २७२ ॥  
संप्राप्य मेरुमारोप्य शिलाया सिंहविष्टरं । अमिविच्य ज्वलकुम्भे क्षीरसागरबासिनि ॥ २७३ ॥ विशुद्धपुष्टलात्कार्यदेहस्य विमलात्मनः । शुद्धितेतस्य कांभोमि  
दूधैरशुभिः स्वय ॥ २७४ ॥ चोदितास्तीर्थकुम्भाभ्रा स्वाभ्रायोग्यं समागत । इति वैक्यमस्यैव कृताभियवणा बयं ॥ २७५ ॥ अल तदिति तं भगवा-  
विभूष्योद्यद्विभूषणैः । वीरः श्रीवर्द्धमानस्तोष्विवलाष्ट्याद्वितय व्यघाट । ततस्त सप्रमानीय सर्वमारसमन्वित । मातुरेके तितेदगोर्बोबिंहितानदनटकः ॥  
२७७ ॥ विभूष्य पितरौ चास्य तयोर्बिंहितसम्पदः । श्रीवर्द्धमानमानम्य स्वधाम समगासुरैः ॥ २७८ ॥ पार्थिवतीर्यसंताने पंचाशद्वैद्यतान्दके । तद  
न्यतरबलायुर्महावीरोश्च जातवान् ॥ २७९ ॥ द्वावसतिसमाः किं बिन्दुनास्तस्यायुष स्थिति । सप्तारिभिर्मितोत्सेय सर्वलक्षणभूषित ॥ २८० ॥ ति त्वेदत्वा-

द्वारा ) माताके समीप मायापयी बालक रत्नकर वह बालक गोदीमें लिया और उठ्य होते हुए मूर्यके समान दैदीप्य-  
मान उस बालकको घेरावत हाथीके कंधे पर विराजमान किया । उस बालकके तेजसे सब दिशाओंको प्रकाशित करता और  
देवोंसे घिरा हुआ वह इंद्र मेरुपर्वत पर पहुंचा और पांडुवनकी पाहुक शिला पर रखे हुए सिंहासन पर उन भगवान  
को विराजमान कर दैदीप्यमान सुवर्णके कलशों द्वारा क्षीर सागरका जल लाकर उनका अभिषेक किया ॥ २७३ ॥ उन  
भगवानका शरीर विशुद्ध पुष्टलसे बना था फिर भला स्वयं अशुद्ध और दूषित जलसे उनकी शुद्धि कैसे हो सकती  
है ॥ २७४ ॥ पहिलेसे ही बंधे हुए तीर्थंकर नाम कर्मके उदयके द्वारा प्रेरणा करनेसे अथवा हमलोंकी यह आन्नाय  
ही है इसीलिये आकर हमलोग इनके सेवक हुए हैं और यह अभिषेकका कार्य समाप्त किया है ॥ २७५ ॥ बहुत  
कहनेसे क्या ? बड़ी भक्तिसे दैदीप्यमान आभूषणोंसे विभूषित कर उनके वीर और वर्द्धमान ऐसे दो नाम प्रसिद्ध किये  
॥ २७६ ॥ तदनंतर सब देवोंके साथ साथ उन्हें घर लाये और उन्हें माताकी गोदमें विराजमान कर आनंद नाटक किया  
॥ २७७ ॥ उन इंद्रादि देवोंने माता पिताको भी विभूषित कर प्रसन्न किया और फिर सब देव उन श्रीवर्द्धमान स्वामी  
को नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७८ ॥ श्रीपार्थनाथ तीर्थंकरके बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने  
पर भीमरावीर स्वामी हुए उनकी आयु भी इसीमें शामिल है ॥ २७९ ॥ उनकी आयु कुछ कम वहपरि वर्षकी थी,  
सात अरलि ( अरलि कुछ कम एक हाथ ) ऊंचा शरीर था और वे सब लक्ष्योंसे सुशोभित थे ॥ २८० ॥ उनके  
पसीना नहीं आना आदि दशगुण जन्मसे ही थे तथा सात गर्दोंसे वे रहित थे और सब तरहकी चेष्टासे वे सुशोभित थे



तानसि ॥ २५८ ॥ सप्रासादोसना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत । सोपि तेषां फलं भावि यथाक्रममुदुषवत् ॥ २५९ ॥ श्रुतस्वप्नफला देवी दुष्टा प्रासेव तत्क-  
ल । अयासराधिपा सर्वे तयोरभ्येत्य सपदा ॥ २६० ॥ कल्याणामिषवं कृत्वा नियोगेषु यथोचित । देवान् देवीष्व संयोज्य स्वं स्व धाम ययुः पृथक् ॥  
२६१ ॥ नवमे मासि संपूर्णे चैत्र मासे त्रयोदशी—दिने शुक्ले शुभे योगे सत्ययोगिनामनि ॥ २६२ ॥ अलं कालः कुलस्यार्हस्यपदामालयोजनि । आकरो  
गुणरत्नानामाश्रयो विश्रुतप्रिया ॥ २६३ ॥ भातुमान् वधुपद्माना भुवनत्रयनायक । दायको मुक्तिसाह्यस्य त्रायक सर्वदेहिनां ॥ २६४ ॥ भस्मदुतिर्भिवञ्चसी  
ममैव कर्मविद्विषां । धर्मतीर्थस्य धर्मो निर्मल शयवासिधिः ॥ २६५ ॥ प्राचीव दिशि बालाकौ याभिन्यामिव चंद्रमा । पद्मायामिव गौघो बाभ्यामिव  
धनोत्करः ॥ २६६ ॥ बागवच्चाभिव वागुराशिलिष्म्यामिव सुलोदय । तस्या सुतोच्युताधीशो लोकालोकैकभास्कर ॥ २६७ ॥ भातुराणां सुराणां च  
तिरथां च चकार सा । तत्पमूला पृथुप्रीतिं तत्सलं प्रियक रिणी ॥ २६८ ॥ सुखाभोजानि सर्वेषां तदाकस्माद्भुं प्रियं । प्रमुक्तानि प्रसूतानि प्रमोदाश्रानि  
पालयिष्यां हो । तदनंतरं सब इंद्रादि देव अपनी अपनी विभूतिके साथ आए और सबने कल्याणाभिषेकका उत्सव मनाया  
फिर अनेक देव देवियोंको यथायोग्य कामोंपर अलग २ नियुक्त किया और सब देव अपने अपने स्थानको चले गये ॥ नौ  
महीने पूर्ण हो जानेपर चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नामके शुभ नक्षत्रमें जिसप्रकार पूर्व दिशासे उदय होता  
हुआ बालक सूर्य निकलता है रात्रिमें चंद्र निकलता है अथवा पद्मद्रहसे गंगाका समूह पड़ता है वा पृथ्वीसे धनसमूह  
निकलता है अथवा सरस्वतीसे वचनराशि निकलती है और लक्ष्मीसे सुखका उदय प्रगट होता है उसीप्रकार वह अच्युत  
देवका जीव प्रियकारिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ वह पुत्र कुलका अलंकार था, अरहंती संपदाओंका घर था, गुणरूपी रत्नों-  
का खजाना था, प्रसिद्ध लक्ष्मियोंका आश्रय था, भाई वंशु रूपी कमलोंके लिये सूर्य था, तीनलोकोंका नायक था, मो-  
क्षकरनेवाला था, धर्मरूपी तीर्थकी प्रवृत्तिमें मुख्य था, शांतताका निर्मल समुद्र था और सूर्यके समान लोकालोकको प्रका-  
शित करनेवाला था ॥ २६०-२६७ ॥ उस प्रियकारिणी उन भगवानको उत्पन्न कर देव मनुष्य और तिर्यच सबके ह-  
दयमें गाढ प्रेम प्रगट कर दिया था इसीलिये उसका प्रियकारिणी यह यथार्थ नाम पड़गया था ॥ २६८ ॥ उससमय सब-  
के मुखकमलोंने अकस्मात् शोभा धारण करली थी और स्वर्गसे आनंदके आसुओंके समान फूलोंकी वर्षा हो रही थी ॥ २६९ ॥  
उस समय नगाडोंके समूह बज रहे थे, स्त्रियोंके समूह नाच रहे थे, गानेवालोंके समूह गा रहे थे और वंदीगणोंका समूह  
पाठ कर रहा था ॥ २७० ॥ देवलीग अपने अपने स्थानको छोडकर नीचे उतर रहे थे, तदनंतर सौर्यम् इंद्रने (इंद्रानी



२३५ ॥ भिकये पुण्डलावल्यां घरेण. पुंडरीकिणी । पति । सुमित्रविल्यातिः सुप्रताल्या मनोरमा ॥ २३६ ॥ त्रियमित्रस्तयोरासीत्तनयो नयभूषण । नान्नेव नमितासेवविद्विषयक्रिवर्तिता ॥ २३७ ॥ संप्राप्य भुक्प्रभोगगो भयुरान् सर्वसंगमान् । क्षेमंकरखिनाधीशवक्त्राभोजविनिर्गमात् ॥ २३८ ॥ तत्त्वगमन- मीरार्थव्याक्यान्मला विरफवान् । सर्वमिवाह्यसूतो स्व राज्यभारं निधाय सः ॥ २३९ ॥ भव्यभूपसहस्रेण सह संयममाददे । प्रतिष्ठानं यमास्तस्मिन्प्रवाप- स्तेष्टमातृमित्रः ॥ २४० ॥ प्राते प्रांसहस्रारसभूतसूर्यप्रभासरः । सुखाष्टदशवाह्यार्थयुर्वृद्धाद्विमुक्तभोगक ॥ २४१ ॥ मेघाद्विद्वद्विशेषो वा ततः स्वंगाद्विनि- र्गतः । छात्राकारपुरेऽत्रैव नंदिवर्द्धनमुज ॥ २४२ ॥ वीरवत्याश्च नंदाह्यस्तान्ज- भुजजोजति । निष्ठाव्येष्टमुष्ठान स श्रेष्ठं औष्ठिलं शुभं ॥ २४३ ॥ सप्रा- प्य घर्मेमाकर्ण्य निर्णतिार्थगमार्थकः । संयम संप्रपयाद्यु स्वीकृतेकादशांगक ॥ २४४ ॥ भावयित्वा भवच्चसितीर्थक्यामकारणं । वदध्वा तीर्थकरं नाम, सहोर्बोत्रकर्मणा ॥ २४५ ॥ जीवितंते समासाद्य सर्वमाराधनाविधि । पुष्पोत्तरविमानेभूदभ्युत्तैवः क्षुरोत्तमः ॥ २४६ ॥ द्वाविंशत्यन्विमेयायुरालिख्यदे- हुए, तत्त्वोके स्वरूपसे भरे हुए और गंभीर अर्थवाले वाक्योंको सुनकर सब परिग्रहोंको जलाभंगुर समझा और विरक्त होकर सर्वमित्र नामके अपने पुत्रको राज्यका भार दिया और स्वयं एक हजार भव्य राजाओंके साथ संयम धारण किया उन प्रियमित्र मुनिराजमें पांच समिति और तीन गुप्ति इन आठ मातृकाओंके साथ अहिंसादि पांचों महाव्रतोंने अपना स्थान बना लिया था ॥ २३६-२४० ॥ अंतमें समाधि धारणकर वह सहस्रार स्वर्गमें सूर्यमभ नामका देव हुआ और वहां पर उसने अठारह सागरकी आयुतक बड़ी हुई सृष्टियां और अनेक तरहके भोगोंका अनुभव किया ॥ २४१ ॥ जिस प्रकार मेघसे एक विशेष विजली निकल पड़ती है उसी प्रकार वह उस स्वर्गसे च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके छत्रपुर नगरके राजा नंदिवर्द्धनकी रानी वीरवतीसे नंदनामका सज्जन पुत्र उत्पन्न हुआ । इष्ट राज्यका अनुभवकर वह श्रेष्ठ प्रा- ण छोड़कर नामकर्मका बंध किया ॥ २४२-२४४ ॥ तदनंतर उसने स्वर्गसे च्युत हुआ और शास्त्रोंके अर्थका निर्णय किया । त- दनंतर उसने संयम धारण किया और धर्मका स्वल्प सुनकर उसने पदार्थ और शास्त्रोंके अर्थका निर्णय किया । त- नाश करनेवाली और तीर्थकर नामकी कारण ऐसी सोलहकारण भावनाओंका चिंतन किया और उंचगोत्र कर्मके साथ तीर्थकर नामकर्मका बंध किया ॥ २४५ ॥ आयुके अंतमें सब तरहकी आराधनाओंको विधिपूर्वक धारण किया और प्रा- ण छोड़कर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें उत्तम इंद्र हुआ ॥ २४६ ॥ वहांपर उसकी वाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था, द्रव्य और भाव दोनों ही शुद्ध लेश्याएं थीं, वाईस पुच्छके वाद अर्थात् ग्यारह महीने वाद वह श्वास लेता था वाईस हजार वर्ष वाद मानसिक अभूत आहार लेता था । वहांपर सदा मानसिक प्रवीचार था और उत्तम भोगों

प्रपातनात् । धीमन् विरस दुर्गोर्गादारमात्महिते मते ॥ २०५ ॥ हेम चेदानुमिच्छास्ति काम लोकाप्रथामनि । आतांगमपदोर्ध्वशुभ्रदां धत्स्वेति तद्वच ॥ २०६ ॥ विधाय इति योगीन्द्रमुपभक्तिभराहितः । मुहुः प्रदक्षिणीकृत्य प्रप्रणम्य युगाधिप ॥ २०७ ॥ तत्त्वभ्रदानमासाय सद्यः कालादिलिखित । प्रभि-  
षाय मन श्रावकव्रतानि समाददे ॥ २०८ ॥ दया मुनिनिरास्यती कूरतां तन्मनोविशत । कालस्य बलमप्राप्य को विपक्ष निरस्यति ॥ २०९ ॥ ह्यिरौद्र-  
साहसं किमतः परे ॥ २११ ॥ सच्यैल्लक्षसमो मोहलक्ष्योपशममावृत ॥ २१० ॥ व्रत नैतस्य सामान्य निराहारं यतो विना । कन्यादन्त्योस्य नाहारः  
सम्यक्त्वमादिभ्यः । निसर्गोदेव गृह्णन्ति तस्यादस्मिन् विस्मय ॥ २१३ ॥ निरुद्धसर्वदुर्वृत सर्वसद्वृत्तसन्मुख । प्रावर्तत चिरं धीरः समीप्युः परम पदं ॥  
२१४ ॥ संयमासयमाध्वं तिरश्चा नेति मुदते । रुद्धतेनान्यथा मोक्षयुक्तेरासीत्स गोचर ॥ २१५ ॥ तच्छौर्यं कार्यसंशीष्य किल सप्रति सक्रयं । कल-

छोड़ और अपने आत्माके हितमें लग ॥ २०५ ॥ यदि आत्माके कल्याण करनेकी तेरी इच्छा है और तू लोकके ऊपर विराजमान होना चाहता है तो तू आप आगम और पदार्थोंमें श्रद्धा रख । इसप्रकार उस सिंहेने मुनिराजके बचन हृदयमें धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजकी भक्तिके भारसे नम्र होकर उसने प्रदक्षिणा दी, प्रणाम किया, आपना मन लगाया ॥ २०६-२०८ ॥ मुनिराजके बचनोंसे दयाने सिंहेके मनसे क्रूरता सब निकाल फेंकी और वह स्वयं उसके मनमें जा बैठी सो डीक ही है क्योंकि कालका बल प्राप्त किये विना विपत्तीको कौन दूर कर सकता है ॥ २०९ ॥ मोहनीय के लक्ष्योपशम होनेसे उस सिंहाका रौद्ररस स्थिर हो गया और एक नटके समान उसने शीघ्रही शांतरस धारण कर लिया ॥ २१० ॥ उस सिंहेने निराहारके सिवा और कोई सामान्य व्रत धारण नहीं किया क्योंकि पांसादिकके बिना और उसका कोई आहार था ही नहीं । इससे अधिक भला और साहस क्या हो सकता है ? ॥ २१० ॥ उस सिंहेने अपने कर्माकी धातक हुई ॥ २१२ ॥ सातवें नरकके नारकी उपशम सम्यक्त्वको स्वभावसे ही ग्रहण कर लेते हैं इसलिये सिंहेके सम्यक्त्व ग्रहण करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २१३ ॥ मोक्षपद की प्राप्त करने की इच्छा करने वाले उस धीर वीर ने सब दुराचरण छोड़दिये और बहुत दिन तक वह सब तरहके सम्यक व्रतोंके संमुख होकर रहने लगा ॥ २१४ ॥ तिर्य-  
चोको संयमासंगमसे मोक्ष प्राप्त नहीं होती है ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है इसीलिये वह सिंह रुक गया था अन्यथा वह अवश्य

साक्षात्पुनः । सानाकभन्वृणाधीनः । पापित्तत्वं न जानासीत्याकर्णं तदुद्योतं ॥ १९४ ॥ सद्यो जातिस्थितिं गत्वा चौरसंसारदुःखजात । भयाच्चलितम्  
 नानां गल्लान् । तदुत्पन्नेनामा गत् ॥ लोचनाभ्या हरेर्वेषसज्जितं व्यगलच्चिरं । सम्पत्तवाय हृदि स्थानं मिथ्यावमिष दिवसु तत् ॥ १९६ ॥ प्रत्यसम्प्रवि-  
 नेनानि स्थितप्रारब्धेषु सुगोचि । पथात्तायेन य शोकः संघटौ स न कस्यचित् ॥ १९७ ॥ हरिं शोतातरंगत्वात्सस्मिन् वदन्तिरीक्षणं । विलोक्यैप हितमही-  
 लाहैव स मुनिः पुनः ॥ १९८ ॥ पुरा पुरुषवाभूत्वा धर्मात्तामस्यैककल्पजः । जातस्ततोवतीर्थान् मरीचिरतिदुर्मतिः ॥ १९९ ॥ सन्मार्गदूषणं कृत्वा कुमा-  
 र्गमभिवद्वयन् । वृषभस्वामिनो वाक्यमनादलान्जवर्चये ॥ २०० ॥ आतो जातिजरायुसुखचये पापसंचयान् । विप्रयोगं त्रिवेद्यगमप्रिणैराजुच्चिरं ॥ २०१ ॥  
 अपरंच महदुद्वेगं दृढत्यापोदयोदिते । त्रसस्यावससभूतावससंख्यातसमा अमन् ॥ २०२ ॥ केनापि हेतुनावाप्य विष्वन्तिलेमातवान् । सयमं तन्निदानेन त्रिष्टु-  
 ष्टवमुपेयिवान् ॥ २०३ ॥ इतोस्मिन् दशमे प्राप्ते भवैल्यस्तीर्थकुरुवान् । सर्वमाश्रयि तीर्थशान्मयेवं श्रीधराह्वयात् ॥ २०४ ॥ अथ प्रथतिससारधोतराण्य  
 वचनं मुनकर उस सिंहको उसीसमय जातिस्मरण होगया तथा संसारके घोर दुःखोंके भयसे उसका सब शरीर  
 कंपायमान होने लगा और उसके नेत्रोंसे आंसू पहने लगे ॥ १९४-१९५ ॥ उस सिंहके दोनों नेत्रोंसे बहुत देर तक  
 आंसुओंकी धारा बहने लगी और वह ऐसी मालूम होने लगी मानों हृदयमें सम्यक्त्वको जगह देनेके लिये मिथ्यात्व ही  
 निकलरहा हो ॥ १९६ ॥ आसन्न भव्योंको पहिले जन्मोंका जाति स्मरण हो जानेपर पश्चात्तापके द्वारा जो शोक होता है  
 वह संसारमें अन्य किसीको नहीं हो सकता ॥ १९७ ॥ तदनंतर मुनिराजने देखा कि अंतरंग शांत होजानेसे वह सिंह  
 अपनी ओर (मुनिराजकी ओर) ही दृष्टि लगाये है उसे इसतरह देखकर उन्होंने समझा कि अब यह अपना हित ग्रहण  
 कर सकता है इसलिये वे फिर कहने लगे ॥ १९८ ॥ पहिले तू पुरुषवा भील हुआ था फिर धर्मसेवनकर सौधमें स्वर्गमें  
 देव हुआ और वहांसे आकर तू इसी भरतक्षेत्रमें अत्यंत दुर्मति मारीचि हुआ था ॥ १९९ ॥ उस पर्यायमें तेने मन्मार्गको  
 दोष लगाया था और कुमार्ग की वृद्धि की थी । श्रद्धिभदेव तीर्थंकर के वाक्योंका अनादर कर तेने संसारमें परिभ्रमण  
 किया । पापोंका संचय करने से जन्म परण बुढापा आदि अनेक दुःखोंका संचय किया तथा इष्ट वियोग और अनिष्ट  
 संयोग के दुख बहुत दिन तक त्रस स्यावर योनियोंमें परिभ्रमण किया ॥ २००-१ ॥ इसके बाद भी महापापोंके उदयसे अनेक बड़े बड़े दुःख भोगे  
 और असंख्यात वर्ष तक त्रस स्यावर योनियोंमें परिभ्रमण किया ॥ २०२ ॥ किसी कारणके मिलजानेसे विष्वन्तरी हुआ,  
 संयम धारण किया और निदानकर त्रिष्टुष्ट हुआ ॥ २०३ ॥ अब इस भवसे दशवें भवमें तू अंतिम तीर्थंकर होगा यह सब  
 मैंने श्रीधर तीर्थंकरसे सुना है ॥ २०४ ॥ अबतक तू संसाररूपी घोर वनमें पडा रहा है बुद्धिमान् अब तू इस दुर्मार्गको

श्रोति तमस्तम ॥ १८२ ॥ भीमा वैतरिणीं तत्र प्रज्वलद्धारिपुरितां । प्रवेधितोसि पापिष्ठैः प्राक् शक्त्या हनमब्ज ॥ १८३ ॥ ज्वलज्ज्वालकरालोत्थासं-  
दग्गोपलाचले । प्रधावितोसि तदं कछिन्नछिन्नाविकीर्णकः ॥ १८४ ॥ कदववाकुक्षतापन्दुष्टाष्टनयवोव्यभूः । प्रज्वलचित्तिकाक्षितो भस्मसाङ्कावमागतः ॥  
१८५ ॥ तप्तायः पेंडतिर्धतधेठं सचूर्णितोव्यभूः । निखिण्यच्छदसन्नवनेषु आतवान् मुहु ॥ १८६ ॥ नानापक्षिमुग्रैः कालकैलियककुलैरल । परस्पामि-  
घातेन ताडनेन च पीडितः ॥ १८७ ॥ वद्ध्वा बहुविधैर्धनैर्नष्टुरं निष्ठुराशयैः । कणाष्ठनासिकाधीना छेदनेर्वाधितो भृश ॥ १८८ ॥ पापैः संमानशूलाना-  
मारोपणमपि च । एव बहुविध दुस्समवशोनुभवधिरं ॥ १८९ ॥ प्रलापाक्रन्दरोदादिवाग्मिरुदहरिद्वया । शरण प्रार्थयन् दन्यादप्राप्यातीव दुःखितः ॥  
१९० ॥ स्यायुः ते विनियोग्य ततो भूत्वा मृगाधिपः । क्षुपिपास विमिर्वातातपवर्गदिमिश्र बिक् ॥ १९१ ॥ व्याध्यमानः पुन प्राणी हिसया मासमाहृ-  
त् । भूः पाप समुक्त्व्य श्रुतिवी प्रथमामगा ॥ १९२ ॥ ततोपीह समुद्भूय कैर्यमेव समुद्रहन् । महदह समावर्ज्य दुःखायोत्सहसे पुन ॥ १९३ ॥

छिन्न भिन्न हो जाया करता था ॥ १८४ ॥ कदं वृक्षों के तलवार के समान पत्तों से और गर्म बालू से तेरे शरीर के सब अ-  
वयवों को छेदा जाता था तथा वे नारकी तुम्हें जलती हुई चिता में पटक देते थे इसलिये तेरा शरीर झिल्लुल भस्म हो जाता  
था ॥ १८५ ॥ बड़े प्रचंड और गर्म किये हुए लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था और तलवार के समान  
तीक्ष्ण पत्तों से भरे हुए बन में तू बार बार घुमाया जाता था ॥ १८६ ॥ अनेक तरह के पक्षी बनपशु और काल के समान  
कुत्तों के द्वारा तू बहुत दुखी किया जाता था और परस्पर की ताडना तथा चोट से तुम्हें बहुत ही पीडा पहुंचाई जाती थी  
॥ १८७ ॥ निष्ठुर हृदय के नारकी बड़ी कठोरता से तुम्हें अनेक तरह से बांधते थे और कान नाक ओठ आदि काटकर  
तुम्हें बार बार दुःख पहुंचाया करते थे ॥ १८८ ॥ पापों के समान अनेक तरह के शूलों पर तुम्हें विधते थे और इस तरह  
परवश होकर तेने बहुत दिन तक अनेक नरक के दुःखों का अनुभव किया था ॥ १८९ ॥ प्रलाप आक्रंदन रोना आदि बच-  
नों के द्वारा तेने व्यर्थ ही सब दिशाएं रोकली थीं और दीनता से शरण्य की प्रार्थना करते तेने बहुत ही दुख पाया था ॥ १९०  
वहां की आयु समाप्त कर तू वहा से निकला और सिंह हुआ वहां पर भी तेने भूल व्यास वायु गर्भी वर्षा आदिके अनेक  
दुःख सहे तथा अनेक प्राणियों की हिसाकर मांस खाया और इस तरह उस क्रूर पर्याय में अनेक तरह के पाप कर तू मरकर  
पहिले नरक में ॥ १९१-१९२ ॥ वहां से निकलकर तू फिर यहां आकर सिंह हुआ है यहां भी तू इस तरह की क्रूर-  
ता के काम कर रहा है वहां भी तेने भारी पापों का उपार्जन कर दुःखों को लिये फिर उत्साह करता है ॥ १९३ ॥ अरे पापी तेरा  
अज्ञान है उसी के यथाक्से तू तत्त्वों को नहीं जानता है । इस प्रकार मुनिराज के कहे हुए

विभवतिरे । सानावभृत्पृष्ठाधीनो ज्वलत्केसरमासुरः ॥ १७१ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्राकरालानतः कदाचिद्विभीषण । कविन्युपमनष्टस्य मसयन् स समीक्षित ॥  
 १७२ ॥ अग्नेर्भित्तुणेनामा गच्छतातिष्ठप छना । अजितञ्जयन अम्बारेण सुनीक्षिना ॥ १७३ ॥ स मुनिर्सेनीर्धनायोक्तमनुष्टुभ्यः सुकृपा । अकृतीर्ध  
 नभोगां सनासाय दृग्गाधिप ॥ १७४ ॥ गिलातले निवेश्योक्तैर्धन्या वाचमुदाहरत् । भो मय्य दृग्गाधीना त्वं त्रिपृष्ठभवे पुरा ॥ १७५ ॥ परार्थं पञ्चवा  
 ओक्तं तदुक्त्यातले चिरं । स्वरं कातामिरिष्टाभिरमीष्ट सुखमन्वभुः ॥ १७६ ॥ दिव्यं सर्वैरुच्यते रसनेन्द्रियतर्पणं । सार्द्धमानममुक्तैः प्राक् सुत्रामुतरया  
 यदैः ॥ १७७ ॥ धृपातुलेपनैस्तैर्लघ्वैश्चैर्वा सुगन्धिभिः । तोषितं सुस्मिरे तत्र त्वया प्राणपुटद्वयं ॥ १७८ ॥ रसभावसमाविष्टं विवित्रं चरणोच्चिनं । दृतं  
 निरीक्षितं चित्रमगनाभिः प्रयोजितं ॥ १७९ ॥ शुद्धदेशजमेदं तत् पट्टगादिस्वरसक्तं । चेतनेतरमिष्टं यत् प्रीतिं कर्णेन्द्रियो ॥ १८० ॥ त्रिविडम-  
 चित्तोक्तेन जातं सर्वं भवेत् तत् । इत्यामिमानि साख्यं मनसा विरमन्वभुः ॥ १८१ ॥ एव वैपयिकं साख्यमनुभूगाप्युत्तवान् । श्रद्धापञ्चवतापेतं प्रवि-  
 राज्ञ अमितं गुणैः साथ आकाशमार्गसे जा रहे थे ॥ १७२-१७३ ॥ वे मुनिराज तीर्थकरके वचनों का स्मरण कर दयाकर  
 आकाशसे उतरे और उस सिंहके पास आकर शिलापर विराजमान हुए वे जो जोरसे धर्मोपदेश देने लगे और  
 लगे कि हे भव्य-सिंह पहिले त्रिपृष्ठके भवमें तेने बहुमूल्य-पांचों इंद्रियोंके विषयोंका अनुभव किया है बहुत-दिनतक कोमल  
 शय्यापर अभीष्ट स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार स्वतंत्रता पूर्वक सुखों का अनुभव किया है रसनेन्द्रिय को दृत करनेवाले सब  
 तरहके दिव्य-रसोंका भोग किया है और अमृत रसायनके साथ साथ स्पर्द्धा करनेवाले व्यंजनोंका स्वाद लिया है ॥ १७४  
 ७७ ॥ सुगन्धित धूपका लेपकर तथा सुगन्धित चूर्ण वास मालाएं आदिके द्वारा बहुत दिन तक नाकके दोनों घोणा संतु-  
 हुआ और ललनाओं के द्वारा किया हुआ अनेक तरहका नृत्य देखा ॥ १७५ ॥ शुद्ध देशज आदि कारणों से उत्पन्न  
 ॥ १८० ॥ तीन खंडमें जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब मेरा है ऐसा अभिमान जन्य सुख भी मनमें बहुत दिनतक अ-  
 नुभव किया ॥ १८१ ॥ इसतरहके विषयोंका सुख अनुभव कर भी तू तस नहीं हुआ और सम्यग्दर्शन तथा पांचों व्रतोंके  
 विना तुम्हें सातवें नरकमें जाना पडा ॥ १८२ ॥ वहांपर जो जलते हुए जलसे भरी हुई वैतरणी नदी है उसमें पापी ना-  
 रकियोंके द्वारा तू घुसाया गया और ज्वरदंस्ती तुम्हें स्नान करना पडा ॥ १८३ ॥ उस दुखसे वचनेकेलिये तू जलती हुई अ-  
 ग्निसे जिसके पत्थरके टुकड़े उछल उछलकर पड रहे हैं ऐसे पर्वतपर दौडता था परंतु वहांपर भी तेरा सब शरीर टांकीसे



आश्विनीजिह्व पदातिपरिवर्तिः । यथोक्तविहितव्यूहयुध्येतां महाबलैः ॥ १६० ॥ गज कंठीरवेणैव वज्रेण च महाचल । आस्करेणाघकारो वा त्रिपृष्ठेन पराजितः ॥ १६१ ॥ स त्रिलसो ह्यग्नीवो मायायुद्धेति निर्जित । चक्र संश्लेषयामास त्रिपृष्ठमग्निनिष्ठुरे ॥ १६२ ॥ तत्तु प्रदक्षिणीकृत्य मधु तदक्षिणे युजे । तस्यैव सोपि तदादाय रथ प्रलक्षिपन्कुधा ॥ १६३ ॥ खड्गद्वयं ह्यग्नीवर्गवा सद्यो व्यधादद । त्रिखंडाधिपतिर्वेन त्रिपृष्ठं चार्द्धचक्रिण ॥ १६४ ॥ विजयेनावलब्धेन विजयेनैव चक्रभृत् । विजयादं समं गत्वा रथमुपगृह्यति ॥ १६५ ॥ श्रेणिद्वयाधिपलेन प्रापयचक्रवर्तिता । प्रमोदमूर्फलस्यान्न व्यक्तिः कोपप्रसादयोः ॥ १६६ ॥ राज्यलक्ष्मीं निर युक्त्वाप्यनुत्वा भोगकालिष्या । युत्वागास्तप्तमीं पृथ्वीं वह्निर्दरभ्यभिप्रहः ॥ १६७ ॥ परस्परकृत दुःखमनुभूय निरयुषा । स्वधात्रीकृतदुःखं च तस्मान्निर्गल्य दुस्तरात् ॥ १६८ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते गगनवीरतटवसीपते । वने सिंहगिरे सिंहे भूत्वासा वृंहितां हसा ॥ १६९ ॥ रत्नप्रभां प्रविशेय प्रज्वलद्बिन्दुमहासावान् । दुःखमेकाधिभमेयायुततटस्थुत्वा पुनश्च सः ॥ १७० ॥ द्वीपेस्मिन् सिंहकूटस्य प्राग्भागे

कर डालता है और सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार त्रिपृष्ठने आश्वीवकी हरा दिया ॥ १६१ ॥ जब आश्वीव से चकित हुआ आश्वीव मायायुद्धमें भी हार गया तब उसने त्रिपृष्ठ पर अत्यन्त कठोर चक्र चलाया ॥ १६२ ॥ वह चक्र त्रिपृष्ठकी मदक्षिणा देकर शीघ्र ही उसकी दाहिनी भुजापर आ ठहरा वही चक्र त्रिपृष्ठने क्रोधित होकर आश्वीवपर चलाया उसने जातेही आश्वीवकी ग्रीवाके दो ठुकड़े कर दिये । त्रिखंडका अधिपति होनेसे त्रिपृष्ठको अर्द्ध चक्रीका पद मिला ॥ १६३-१६४ ॥ विजय करनेवाली सेना तथा भाई विजयके साथ वह चक्रवर्ती विजयादं पर्वतपर गया और रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीको दोनों श्रेणी के चक्रवर्तीका पद दिया सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके क्रोध और प्रसन्न होनेका फल यहांही प्रगट मिल जाता है ॥ १६५-१६६ ॥ उस त्रिपृष्ठने बहुत दिन तक राज्यलक्ष्मीका उपयोग किया परंतु भोगोंकी आकांक्षा से वह रस नहीं हुआ इसलिये बहुआरंभ परित्यही होनेसे वह परकर सातवें नरक गया ॥ १६७ ॥ वहां बहुत दिनतक परस्पर किये हुए अनेक दुःखोंका अनुभव किया और वहां की पृथ्वी सम्बंधी अनेक दुःखोंका अनुभव किया । तदनंतर उस कठिन भूमिसे निकल कर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें गंगा नदीके किनारे सिद्धगिरि पर्वतपर बड़े हुए पापोंके कारण वह सिंह हुआ वहांसे परकर फिर जलती हुई अग्निके समान पहिले नरकमें गया वहांपर एक सागरकी आयु तक अनेक दुःख भोगे और फिर वहांसे निकलकर इसी जंबूद्वीपमें सिंहकूटके पूर्वकी ओर हिमवान पर्वत की शिखरपर देदीप्यमान केसरसे सुशोभित सिंह हुआ ॥ १६८-१७१ ॥ उसकी दाढ़ों तीक्ष्ण थीं मूल कराल या और वह बदाही भयंकर था । किसी एक समय वह एक हिरण्यको मार कर खा रहा था उसीसमय अत्यंत कृपालु चारण्य मुनि अजितंजय मुनि-

विषयो बाधना मया ॥ १४८ ॥ लबा चारुवायोरत्र पार्ययसमापतः । न कार्यं वंवायोरथ गुणदोषपरीक्षणं ॥ १४९ ॥ विप्रदयोः प्रसिद्धतायाश्च न-  
द्राखिलयोसिक् । पूज्य मद्राणिनेयस्य त्रिपृष्ठस्य स्वयंप्रभा ॥ १५० ॥ मस्तुता आमिनीनास्य लक्ष्मीः खड्गयोद्धता । आतनोदु रतिं सत्यां समताद् भूयसी-  
मिति ॥ १५१ ॥ प्रजापतिमहाराजः श्रुत्वा तदंशुभाषितं । मया तेनेष्टमेष्टमिलमालमतोवयत् ॥ १५२ ॥ सोमि संप्राप्तसंगानदानत्तेन विसर्जितः ।  
सद्यः संप्राप्य तत्सर्वं समहीयं न्यवेदयत् ॥ १५३ ॥ ज्वलनादिजटी चाशु सार्ककीर्तिं स्वयंप्रभा । आनीय सर्वसंपत्त्या त्रिपृष्ठाय समर्पयत् ॥ १५४ ॥  
यथोक्तविभिना सिद्धवाहिनीं गरुडादिकां । वाहिनीं च ददौ सिद्धविये विदितशक्तिके ॥ १५५ ॥ चारोपनीतद्वर्ताज्वलनज्वलितोशय । विद्यात्रितयसंपन्नै-  
त्रिद्याभरणपरमिषैः ॥ १५६ ॥ कवचैरभ्यमित्रीणैरायुधीयैर्मंडितैः । रथावतीचल प्राप्तदशमीवो युमुत्सया ॥ १५७ ॥ तदागमनमाकर्ण्य चतुरंगवर्त्तान्व-  
तः । प्रागेवागल्य तत्रास्यात्त्रिपृष्ठो विपुनिष्ठुरः ॥ १५८ ॥ कुद्वचा ता युद्धसमस्तदुद्धर्ता रुद्रमात्सरो । स्वयं सचन्निवभिः सार्द्धं वारसंघातवर्षणे ॥ १५९ ॥  
अपनीं पुत्री स्वयंप्रभा देना चाहता हूं वह इसकी स्त्री होकर तीनवृद्धमे उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान अपने आप अपनेमें व-  
हुतसा प्रेम उत्पन्न करेगी ॥ १६१ ॥ महाराज प्रजापति अपने भाईके ऐसे वचन सुनकर उस मंत्रीको संतुष्ट करनेके लिये  
उसे विदा किया । उस मंत्रीने भी शीघ्रही जाकर अपने राजासे सब समाचार निवेदन किये ॥ १६२ ॥ इसतरह संतुष्टकर तथा बहुतसा आदरसत्कार कर  
कीर्तिके साथ शीघ्रही आया और स्वयंप्रभाको लाकर वही विभूतिके साथ त्रिपृष्ठको व्याह दी ॥ १६३ ॥ ज्वलनजटी अर्क  
ज्वलन जटीने त्रिपृष्ठको शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जिनकी शक्ति प्रसिद्ध है और जो सिद्ध हैं ऐसी सिद्धवाहिनी  
और गरुडवाहिनी दो विद्याएं दीं ॥ १६४ ॥ इधर अभ्यग्रीवने यह सब अपने दूतोंसे सुनी जिससे उसका हृदय क्रोधरूपी  
अग्निसे जल उठा तथा वह युद्ध करनेकी इच्छासे तीनों तरहकी विद्याओंसे सुशोभित ऐसे अनेक विद्याधर राजाओंके  
मार्गमें चलनेवाली सेना, शत्रुके सामने जाकर पराक्रम दिखानेवाले योद्धा और शस्त्र आदिसे युक्त अनेक योद्धाओंके साथ रथावर्त  
अपनी चारों तरहकी सेना साथ लेकर तथा उससे पहिले आकर वहां आ दया ॥ १६८ ॥ ये दोनों ही उद्धत होकर  
घिरे हुए सूर्यके समान क्रोधित होकर युद्धके लिये तैयार हुए तथा अनेक वाणोंकी वर्षा करने वाले धनुष्यारी अभ्यारोही  
रथसवार, हाथीसवार और पैदल चलने वाले आदि लोगोंको चारों ओर कर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार द्यूहकी रचना  
कर वही भारी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ १६९-१७० ॥ जिसप्रकार सिंह हाथीको भगा देता है वज्र वड़े पर्वतको भी चूर्ण

भूषणं । योषित्सर्गं इतार्थत्वं स्वया सावनयद्विधिं ॥ १३७ ॥ तां वीक्ष्यापूर्णसौदर्या समीपीकृतचित्तया । पिता वितरितुं कस्य योग्यमिति चिंतयन् ॥ १३८ ॥ तदैवाङ्गुय संमिश्रश्रोतारं तरप्रयोजन । अपृच्छत्स निमित्तेषु कुशलः समभाषत ॥ १३९ ॥ केशवस्पादिमस्त्येय महादेवी भविष्यति । त्वमप्याप्यसि तर्तां खगानां चक्रवर्तितां ॥ १४० ॥ इति तद्वचन त्विसे प्रत्येयमवधार्य स । अमाल्यभिद्रनामानं भक्तिकं सुश्रुतं शुचिं ॥ १४१ ॥ सलेखं प्राश्रुत दत्वा प्राहिणोत्पोदन प्रति । गत्वाखिलवितं सोपि बने पुण्यकरंडके ॥ १४२ ॥ पोदनाधिपतिं स प्रणाममालोक्य पत्रक । सप्राश्रुत प्रदायाहमे यथास्थानमुपावि शत ॥ १४३ ॥ विलोक्य सुभ्रासुदुर्मिय तदवस्थितपत्रक । प्रसार्य वाक्यामास न्युकः सधिविग्रहे ॥ १४४ ॥ श्रीमानित खगाधीशो निजलोकत्रिखा मर्गः । खानुरकाप्रजो राजा नगरद्वयनुरात ॥ १४५ ॥ ज्वलनादिजटी रूयतो नमिंश्चावारांशुमान् । पोदनाख्यपुराधीश प्रजापतिमहादृढं ॥ १४६ ॥ आदिभट्टारकोत्समबहुबल्यन्वयोद्भव । प्रणम्य शिरसा ब्रह्माङ्कुशलप्रपूर्वक ॥ १४७ ॥ सप्रश्रयं प्रजानायमित्य विज्ञापयत्यसौ । वैवाहिक स सुवचो करने लगा कि यह किसको देनी चाहिये किसके योग्य है ॥ १३८ ॥ उसी समय उसने संभिक्षश्रोता नामके पुरोहितको बुलाया और उससे प्रयोजन पूछा वह पुरोहित निमित्तयाह्वमें बहुत ही कुशल या इसलिये कहने लगा कि यह स्वयंप्रभा पहिले नारायणकी पहरानी होगी और आप भी उस नारायणके द्वारा दिये हुए विद्याधरोंके चक्रवर्ती पदको अर्थात् सब विद्याधरोंके अधिपतिका पद प्राप्त करेंगे ॥ १३९-१४० ॥ उसकी इसप्रकार विश्वास करनेयोग्य बात चित्तमें धारणकर उसने पवित्र हृदयवाले, शास्त्रोंके जानकार और राजभक्त ऐसे इंद्र नामा मंत्रीको बुलाया तथा लेख और भेट देकर उसे पोदनपुर भेजा । वह शीघ्रतासे जाकर पोदनपुर जा पहुंचा उससमय पोदनपुरका अधिपति पुण्यकरंड वन में था । मंत्रीने राजाको प्रणाम किया, पत्र दिया, भेट दी और फिर अपने योग्य स्थानपर जा बैठा ॥ १४१-१४३ ॥ राजा प्रजापतिने सुहर देखकर वह पत्र खोला और भीतरका पत्र निकालकर बांचा । उसमें लिखा था कि संधि विग्रहमें नियुक्त, विद्याधरोंका स्वामी, अपने लोकका शिखामणि, अपनी प्रजाको प्रसन्न करनेवाला महाराज नभिके वंशरूपी आकाशका सूर्य श्रीमान् प्रसिद्ध राजा ज्वलनजटी रथनूर पुर नगरसे पोदनपुर नगरके स्वामी, भगवान् दृषभदेवके पुत्र बाहुवली के वंशमें उत्पन्न हुए महाराज प्रजापतिको शिरसे नमस्कार कर बड़े प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछता है तथा महाराज प्रजापति को बड़ी विनयके साथ यह निवेदन करता है कि इससमय आपको हमारे साथ वैवाहिक संबंध कर लेना चाहिये हमारा आपका यह संबंध परंपरासे चला आया है इसलिये इसमें आज बंशके गुण तथा दोनों की परीक्षा करनी भी आवश्यक नहीं है क्योंकि सूर्य चंद्रमाके समान हम दोनों वंशोंकी विशुद्धि जगत्प्रसिद्ध है । हे पूज्य ! मैं अपने भानजे त्रिपृष्ठके लिये

रामिष्टुतः । किं किं इव निर्भक्तो नमितामरमस्तकः ॥ १२६ ॥ बिला ज्योत्स्नां हृदिहानिमतां निरं । अतिरत्नाखिलं व्याप्य शशिनी देव-  
सः स्थिता ॥ १२७ ॥ उदकक्षेप्यां सगाभीशो, मयूरग्रीवनाममाक । नीलांजना प्रिया तस्यामृणयोरलकापुरे ॥ १२८ ॥ शिवाकानंद संसारे निरं अ-  
व्यतिष्ठ सितः । अश्वप्रीवासिधः सुलजनिष्ठापचारवात् ॥ १२९ ॥ से सर्वे पुरोपासपुण्यपापविशेषिनः । अमीष्टकामभोगोपभोगोत्प्लुताः स्थिताः  
कुल ॥ १३० ॥ इतः क्षेत्रभूमर्तुदक्षिणश्रेण्यलङ्कृतिः । रथपुरशब्दादिककवालपुरी परा ॥ १३१ ॥ उषलनादिजटी पति तां स वा पाकशासनः । कुल-  
साधितसंप्राप्तविद्या, त्रयसिभूषित ॥ १३२ ॥ प्रतापोपनतालोपापाच्येणिसचरेणिनां । तिनमयैस्त्रिआलाभिरलंकृतपदावुजः ॥ १३३ ॥ वायुवेगा प्रिया तस्य  
चंद्रामस्तचरेणिनः । सुमद्रायाश्च तनया पुरे द्युतिलकाह्वये ॥ १३४ ॥ अर्ककीर्तित्तियो मूढः प्रतापेनार्कजित् सुधी । कुला स्वयंप्रभाह्वयात् प्रभवेव महा-  
मणि ॥ १३५ ॥ श्रीलक्षणानि सर्वेणि शक्तान्यापादमस्तक । उदाहरणतामापन् व्याप्य व्यकानि तप्तनु ॥ १३६ ॥ संप्राप्य धैवनं तन्वी भूषणानां च  
वह सब संसारमें व्याप्त होकर फैल गई थी ॥ १२७ ॥ इधर विजयादे पर्वतकी उत्तर श्रेणीके अलकापुर नगरमें मयूर  
ग्रीव नामका विद्याधरोंका राजा रहता था उसकी रानीका नाम नीलांजना था उसके विशाल नंदका जीव बहुत दिन तक  
संसारमें परिभ्रमण कर तथा बहुत दुःखी होकर अनेक दुराचार करनेवाला अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ था ॥ १२८-१२९ ॥  
वे सब अपने अपने पुरय पाप कर्मोंके अनुसार अलंकृत करनेवाली रथपुरचक्रवाल नामकी उत्तम नगरी थी उसमें इंद्रके  
हर्षदिनों विजयादे पर्वतकी दक्षिण श्रेणीको अलंकृत करनेवाली रथपुरचक्रवाल नामकी उत्तम नगरी थी उसमें इंद्रके  
समान ज्वलनजटी नामका विद्याधर राज्य करता था तथा कुलपरंपरासे चली आई सिद्धकी हुई तथा प्राप्त ऐसी तीनों  
विद्याओंसे वह विभूषित था ॥ १३१-१३२ ॥ उसने अपने प्रतापसे दक्षिण श्रेणीके सब विद्याधर नवा लिये थे और  
उनके नवे हुए सुकुटुमालासे उसके चरण कमल सदा सुशोभित रहते थे ॥ १३३ ॥ उसकी रानीका नाम वायुवेगा था  
जो कि द्युतिलक नगरके विद्याधर राजा चंद्रमाकी रानी सुभद्राकी पुत्री थी ॥ १३४ ॥ उस वायुवेगाके अर्ककीर्ति नामका  
पुत्र था जो कि प्रतापसे सूर्यको भी जीतता था और बुद्धिमान था तथा उसी वायुवेगाके कांतिके द्वारा महामणि के समान  
सुशोभित होनेवाली स्वयंप्रभा नामकी पुत्री थी ॥ १३५ ॥ उस स्वयंप्रभाके शरीरमें सिरसे पैर तक सब स्त्रियोंके प्रश-  
सनीय सुलक्षण थे जो कि उसके शरीरमें व्याप्त होकर अत्यन्त उदाहरण बने थे ॥ १३६ ॥ आभूषणोंको भी सुशो-  
भित करनेवाले यौवनको पाकर, उस स्वयंप्रभाने स्त्रियोंको बनानेमें विधाताको भी स्वयं कृतार्थ किया था ॥ १३७ ॥  
पूर्ण सुंदरी और कामावस्थाके समीप पहुंचनेवाली उस कन्याको देखकर उसका पिता ज्वलनजटी विचार

११४ ॥ नयप्रभूतसकुन्दगोचेषुप्रतिपातनात् । प्रस्फलत समीक्ष्यैतं भुनि कोपरपायण ॥ ११५ ॥ तत्राय तच्छिवास्तम्भंगदृष्टः पराक्रम । क यात इति दुश्चितः परिहारं व्याधादौ ॥ ११६ ॥ मुनिश्च तद्वक्ष्ये तस्यवार्थं प्रकीर्णवान् । परिहासफल प्राप्नुसीति स्वातर्गतं वदन् ॥ ११७ ॥ सनिदानो भवप्राप्तो कृतसंयसनक्रिय- । स्वय विद्यास्वभूतिश्च महाशुक्लमुगाधिता ॥ ११८ ॥ तत्र षोडश आराधमानमेयायुधौ चिरं । भोगान् मुक्त्वा ततश्च्युत्वा शीपेस्मिन्नैव भारते ॥ ११९ ॥ सुरम्यविषये रम्ये पोदनाख्यपुरे नृप । प्रजापतिर्महाराजोऽजनि देवी जयावती ॥ १२० ॥ तस्यासीदनयोः सूनुः पितृव्यो विश्वमर्दिन । विजयाख्यस्ततोऽप्यैव विश्वनयनतरं ॥ १२१ ॥ युगावल्यामभूदुग्रः त्रिपृष्ठो भाविककण्ठः । त्रिखंडाधिपतित्वस्य स पूर्वगणना गतः ॥ १२२ ॥ उद्वेगेनैव निर्वृत्तैरुत्तिष्ठेचक्रमात् । अर्कस्येव प्रतापोऽस्य व्याप्य विश्वमनुस्थितः ॥ १२३ ॥ अनन्यगोचरा तस्मीरसद्येयसमाः स्वय । इममेव प्रतीक्ष्यास्ता माडोत्सुक्यार्द्धचक्रिणां ॥ १२४ ॥ तस्मीजाछनमेवास्य चक्र विक्रमसाधिन । मागषायाभरारक्ष्य ससमुद्र महोत्तल ॥ १२५ ॥ सिंहशैथेयमित्येव होमुर्वाकै-

था वह आज कहाँ चला गया इस तरह उसने खोटे परिणामोंसे मुनिकी हंसीकी । मुनि भी उसके बचनोंको चित्तमें धारण कर कुछ क्रोधित हुए और मनमें ही कहने लगे कि इस हंसी करनेका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा ॥ ११५-११७ ॥ अंतमें उसने निदान किया संन्यास धारण कर शरीर छोड़ा और महाशुक्ल नामके स्वर्गके विमानमें देव हुआ तथा विशाल-भूति भी वहीं देव हुआ ॥ ११८ ॥ वहां पर उन्होंने सोलह सागर तक देवोंके सुख भोगे फिर वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनपुर नगरमें महाराजाधिराज राजा प्रजापतिकी रानी जयावती से विश्वभूतिका जीव विजय नामका पुत्र हुआ उसके बाद इसी राजाकी दूसरी युगावती रानीसे विश्वनंदीका जीव त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ वह त्रिपृष्ठ होनहार चक्रवर्ती ( अर्द्धचक्री ) था और तीन खंडके अधिराजाओंमें अर्थात् अर्द्धचक्रवर्तियों में सबसे पहिला था ॥ ११९-१२२ ॥ उसके उत्पन्न होते ही सब शत्रुओंको एक साथ नष्ट करनेवाला सूर्यके समान उ-सका प्रताप सब संसारमें व्याप्त होकर भर गया था ॥ १२३ ॥ अर्धचक्रवर्तियोंमें गढ़ उत्सुकता रखनेवाली और जो दु-सरी जगह न रह सके ऐसी लक्ष्मी असंख्यात वर्षसे स्वयं इस त्रिपृष्ठकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥ १२४ ॥ पराक्रमसे सिद्ध हुआ तथा लक्ष्मीके चिन्हवाला उसका चक्र था मगध आदि देव उसकी रक्षा करते थे और समुद्र सहित सब पृथ्वी उसकी ही थी ॥ १२५ ॥ देवोंके मस्तकको भी नष्टी भूत करनेवाला वह त्रिपृष्ठ यद्यपि सिंहके समान पराक्रमी था बुद्धिमान लोग इसी तरह उसकी स्तुति करते थे तथापि वह सिंहके समान निर्भय था ॥ १२६ ॥ उसकी कीर्तिने परि-मित क्षेत्रमें रहनेवाली और भीन हीन वृद्धि सहित ऐसी चंद्रमाकी चांदनी भी जीत ली थी और ब्रह्माकी जातिके समान

न्यभजन । इति भवा निवृत्त्यासा हनुं सुवनहारिण ॥ १०५ ॥ प्राव्यावान् भयाहत्वा सा कपित्थमहीरुहं । कृत्वा श्रुति स्थित स्फीतं कुमारोपि महीरुहं ॥  
१०६ ॥ समुन्मूल्य निहंतु त तेनाधानस्ततोपस्थौ । अपष्टय शिलास्तमस्मार्तर्धान यथा पुनः ॥ १०७ ॥ वली तलयद्वारेण स्तम्भ चापाल्य स हृत । पलाय-  
यथौ वीक्षां संभृतपुरसन्निधौ । अपकारोपि नीचानामुपकार सता भवेत् ॥ १०८ ॥ तदा विशाखभूतिश्च सजातानुशयो मया । कृतं पापमिति प्रायश्चित्तं वा  
प्राप संयम ॥ १०९ ॥ कुर्वन् घोरं तपो विश्वनदी देशान् परिस्रमन् । कृशीभूतः क्रमात्प्राप्य मथुरां स्वतनुस्थिते ॥ ११० ॥ तदा विशाखभूतिश्च सजातानुशयो मया । कृतं पापमिति प्रायश्चित्तं वा  
पदस्थितिः । तदा व्यसनसंयगो अष्टराज्यो महीपतेः ॥ १११ ॥ कस्यचिद् दूतभावेन मथुरां पुरमागत । विशाखनदो वेदयाया प्रापादतलमाश्रितः ॥

का उद्योग करने लगा । यह देव कर विशाखनंद भयसे भागा और एक कैथके वृक्षपर चढ़ गया । परंतु कुमार विश्वनंदी ने उसे मारनेके लिये वह वृक्ष ही उखाड़ डाला । तदनंतर वह विशाखनंद वहांसे भी भागा और दौड़कर एक पत्थरके खंभेके नीचे जाकर छिप गया । कुमार विश्वनंदीने वह खंभा भी हथेलियोंकी चोटसे बहुत शीघ्र तोड़ डाला जिससे वह ग्रासे प्रेरित होकर विश्वनंदीने उसे धीरज दिया और कहा कि अब तू हरे मत यहां आ । उसने इसतरह डुलाकर वह दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है नीच लोगोंका किया हुआ अपकार भी सज्जनोंके लिये उपकार हो जाता है ॥ १-१० ॥ उस समय विशाखभूतिकोभी पश्चात्ताप हुआ वह सोचने लगा कि यह मैंने एक पाप किया है इसलिये इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये यही सोच कर उसने संयम धारण कर लिया ॥ १११ ॥ इधर विश्वनंदी घोर तपश्चरण करता वह सब देशोंमें परिभ्रमण करने लगा । उसका शरीर अत्यंत कृश हो गया था अनुक्रमसे वह मथुरा नगरमें पहुंचा और आहारके लिये शहरमें गया उन दिनों अपने आत्मवलको खोकर तथा अपने राज्य पदसे अष्ट होकर विशाखनंद पकानके संसर्गसे राज्य अष्ट हो गया था और किसी राजाका दूत बनकर मथुरा नगरमें आयाथा तथा एक वेश्याके वह सुनिराजको देख कर क्रोधित हुई और उसने उन विश्वनंदी मुनिको धक्का देकर गिरा दिया । उन्हें गिरते हुए देख कर क्रोध करता हुआ वह विशाखनंद बड़ने लगा कि क्यों जो पत्थरके खंभेको तोड़ देनेवाला पराक्रम पहिले दिखाया

धो ॥ १३ ॥ महां मनोहरिधान दीयतां भवताम्यथा । कुर्वां देवपरिष्ठागमहमित्यभ्यधाकरो ॥ १४ ॥ ब० दु शस्त्रपि भोगेषु विरुद्धविषमप्रिय । भवे-  
 त्त्रावि भवे भूयो भविव्यदु सुभारवाक् ॥ १५ ॥ शुक्ला तद्वचन मिते निषाव सेहर्षिभर । कियते प्रदशमीति संतोष्य तनुज निज ॥ १६ ॥ विभनश्चिन-  
 माहूय राज्यभारस्वगानुना । शुद्धतामहमाकम् प्रत्यतप्रतिभूयत ॥ १७ ॥ कृत्वा तन्मनितकौमप्रश्रान्ति मन्त्रितेर्दित । प्रत्येध्यामीति सोबाच धृत्वा ततप्र-  
 सुवाच त ॥ १८ ॥ पूज्यपादस्त्वयात्रैव निश्चितमुपविदे तां । गम्भादेव त श्रेय करोमीति सुतोषमः ॥ १९ ॥ राज्यमस्थीव मे सेहाक्रादानीत्यतर्कयन् ।  
 बर्नाभमसिंसिस्तुरभूत विपदुराशयं ॥ २० ॥ ततश्चानुयते तस्मिन् स्वबलेन सम रिपुः । निर्मैदु विहितोयोगे गते विक्रमशालि ॥ २०१ ॥ वन वि-  
 शासनदाय केडाद्वन्द्यामकाक्षिणे । विशाखभूतिरुद्धय क्रम गतगतिर्दौ ॥ २०२ ॥ विश्वनदी तदाकर्ण्य सद्य कोषाम्निदीपितः । पश्य मामिति संधाय प्र-  
 त्यतुष्टयतीत्यति ॥ २०३ ॥ प्रह्लय मदन दत्त पितृज्येष्ठात्मसूने । देहीति बचनाम्नाह किं दशमि क्षिप्रद्वनं ॥ २०४ ॥ निदधालस्य दुश्श्रया मम संज-  
 तरमें भी होनहार दुःखोंका भार ही धारणा करनेवाला होता है ॥ २३-२४ ॥ पुत्रकी बात सुन कर तथा हृदयमें धा-  
 रणा कर बड़े स्नेहसे कहने लगा कि यह कितनी बड़ी बात है मैं तुम्हें वह उद्यान अवश्य दूंगा इस तरह पुत्रको संतुष्ट कर  
 उसने विश्वनंदीको बुलाया और उससे कहा कि इस समय यह राज्यका भार तुम स्वीकार करो मैं पर्वतोंके समीप रहने  
 वाले राजाओं पर चढ़ाई करूंगा और उन लोगोंने जो लोभ कर रक्खा है उसे शान्त कर थोड़े ही दिनमें लौट आऊंगा  
 अपने काकाके इस प्रकारके बचन सुन कर वह विश्वनंदी कहने लगा कि हे पूज्यपाद ! आप निश्चित हों कर यहां ही  
 रहें मैं स्वयं जाकर उन लोगोंका आपके पास भेज देता हूँ । उस श्रेष्ठ पुत्रकी बात सुन कर उसने यह न विचार कि  
 वास्तवमें राज्य तो इसीका है परंतु भाईने स्नेहसे मुझे दिया था । केवल एक बनके लिये ही उसे टाकर बाहर भेजा  
 इस लिये ऐसे दुष्ट आशयको भी धिक्कार हो ॥ २६-१०० ॥ तदनंतर वह पराक्रमी विश्वनंदी काकाकी आज्ञा-  
 नुसार अपनी सब सेना लेकर शत्रुओंको जीतनेकी तैयारी करने लगा और नगरसे बाहर निकला ॥ १०१ ॥ उसके  
 बाहर निकल जाने पर निर्दुष्टि विशाखभूतिने क्रमका उल्लंघन कर अन्यायकी इच्छा करनेवाले विशाखनंदको यह वन केवल  
 स्नेहसे दे डाला ॥ १०२ ॥ विश्वनंदी इस बातको सुनकर शीघ्र ही क्रोधरूपी अग्निसे उदीपित हुआ और विचार करने  
 लगा कि देखो काकाके मुझे पर्वतीय राजाओंके समीप भेजकर तथा मेरा उद्यान मुझसे छुटाकर अपने पुत्रको दे दिया  
 क्या मांगने पर मैं नहीं देता ? उद्यान है कितनी बड़ी चीज ? ॥ १०३-१०४ ॥ वास्तवमें इसकी यह दुश्चेष्टा मेरी  
 सज्जनता नष्ट कर रही है यही सोचकर वह अपने वन सेने वालेको मारनेके लिये लौट पड़ा और विशाखनंदको पकड़ने



सुतोस्मिन् वेदवेदिनः ॥ ८२ ॥ शांतिस्थास्यस्य मुख्यस्य पाराशर्यां स्वसङ्घाया । स्वावरो वेदवेदाङ्गपारगः पापभाजनः ॥ ८३ ॥ मतिं श्रुतं तपः शांतिः समाभिरुच्यवकीर्णं । सर्वं सम्यक्स्वध्यास्यस्य मरीचेतिव निष्फलः ॥ ८४ ॥ परित्राजकरीक्षायाभासक्तिं पुनगदधत् । सप्ताध्युपमितायुष्को माहेंद्रं समभूय हत् ॥ ८५ ॥ ततोवतीर्य देवोस्मिन् मगधाख्ये पुरोत्तमे । जतो राजगृहे विश्वभूतिनाम्नो महीपतेः ॥ ८६ ॥ अैन्याश्च तनयो विश्वनवी विख्यातपारुषः । विश्वभूतिमहीमर्तुज्जालो महोदयः ॥ ८७ ॥ विशालभूतिरेतस्य लक्ष्मणायात्मयुदेयीः । पुत्रो विशालनंदश्छास्ते सर्वे सुखमास्थिताः ॥ ८८ ॥ अन्येषु शरदशस्य विभंशं वीक्ष्य शुद्धची । निर्विण्णो विश्वभूत्याख्यः स्वराज्यमनुजन्मति ॥ ८९ ॥ निधाय यैवराज्यं च स्वसूतो महदप्रणीः । सात्त्विकैकशतैः सार्धं राजभिक्षीतरूपतां ॥ ९० ॥ श्रीभराह्यपुरोः पार्श्वे समादाय समलभाक् । बालमाभ्यंतरं चोपमकरोत्स तपश्चिरं ॥ ९१ ॥ अद्यान्यदा कुमारोऽसौ विश्वनरी मनोहरे । निजोशाने समस्तामिदेवीभिः क्रीडया स्थितः ॥ ९२ ॥ विशालनंदस्त दृष्ट्वा तदुशानं मनोहरे । स्वीकृतं मतिमाधाय गत्वा स पितृसन्नि

परगामी या तथा अनेक पापोंका पात्र था ॥ ८०-८३ ॥ उसका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, तप, शांति, समाधि और तत्त्वान्वेषण आदि सब सम्यक् रहित अर्थात् मिथ्या था और मरीचिके समान सब निष्फल था ॥ ८४ ॥ फिर भी वह परित्राजक की दीक्षा में ही आसक्त हुआ और मरकर माहेंद्र स्वर्ग में सातसागर की आयु पाकर देव उत्पन्न हुआ ॥ ८५ ॥ वहां से आकर इसी मगध देशके राजगृह नगर में राजा विश्वभूतिकी जैनी नामकी रानीसे विश्वनंदी नामका प्रसिद्धपराक्रमी पुत्र हुआ । इसी राजा विश्वभूति के छोटे भाई का नाम विशालभूति था जोकि बहुत ऐश्वर्यशाली था उसकी लक्ष्मणा नाम की स्त्रीसे विशालनंद नामका बुद्धिहीन पुत्र उत्पन्न हुआ था ये सब लोग सुखसे निवास करते थे ॥ ८६-८८ ॥ किसी दूसरे दिन शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विश्वभूति शरदऋतुके बादलों को नष्ट होते देखकर विरक्त हुआ उस सबके नायक राजाने अपना राज्य तो अपने छोटे भाईको दिया और युवराज पद अपने पुत्रको दिया तथा सात्त्विक वृत्ति को धारण करने वाले तीनसौ राजाओंके साथ उसने श्रीधर नामके मुनिराजके समीप दिगम्बरी दीक्षा धारण की समता रूप परिणाम किये और बहुत दिनतक बाल आभ्यंतर दोनों तरह का उग्र तपश्चरण किया ॥ ८९-९१ ॥ अथानंतर किसी एक दिन वह विश्वनंदीकुमार अपने मनोहर नामके उद्यान में अपनी सब स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा था ॥ ९२ ॥ विशालनंद उसे इस तरह क्रीडा करते देख कर उस मनोहर बनको अपने आधीन करनेकी इच्छासे पितृके समीप गया और पितासे कहने लगा कि आप था तो मनोहर नामका उद्यान मुझे दीजिये नहीं तो मैं आपका देश छोड़ कर चला जाऊंगा । सो ठीक है समीचीन भोगोपभोग सामग्रीके रहते हुए भी जिसे विरुद्ध विषय ही अच्छे लगते हैं वह भवां-

वासं विरेजे श्रीश्रीवागता ॥ ५० ॥ प्रभाविकमयोर्लक्ष्मीविधयो वा पुरस्ता । मरुभूतस्तयोरारीन्मरीचिः सुतुप्रणी- ॥ ५१ ॥ स्वपितामहस्यलो ह्यय  
न शुलभकित । राजभिः सह कच्छाद्यै परित्यक्तपरिग्रह ॥ ५२ ॥ निर सोऽत्रा तप ह्येव धुच्छीतादिपरीषहान् । दीर्घसंसारवासित्वात्पश्चात्तोदुमशकु-  
न- ॥ ५३ ॥ स्वयं गृहीतुमारब्धफलप्रावणार्थक । हृष्टा तं देवता नायं क्रमो नैर्मप्यचारिणां ॥ ५४ ॥ गृहाण वेषमन्यत्वं यद्येष्टमि-  
ति चाबुञ्जन् । धृत्वा तद्वचनं सोऽपि गाढमिध्यातवचोऽपि ॥ ५५ ॥ परित्राजकरीक्षायां प्राप्यमयं प्रत्यपयत । दीर्घाजंजवनां तत्कर्म दु-  
र्भोगं देशान् ॥ ५६ ॥ तच्छृङ्खलचन्द्रगुणाप्यस्य स्वयमेव किलाजनि । सतामिवावता च स्याद्बोध स्ववियये स्वयं ॥ ५७ ॥ धुलापि ती-  
र्थकृद्वाच सदस्यं नाग्रहीवर्त्ता । पुरर्गथात्मनैवात्र सर्वसगवियोजनात् ॥ ५८ ॥ भुवनत्रयसक्षोभकरिसामर्थ्यमसवान् । मनुष्य तथा लोके व्यवस्था-  
समानं यी अथवा कमलके निवास स्थानको छोड़कर आई हुई लक्ष्मीके समान सुशोभित होती थी ॥ ५० ॥ जिसप्रकार  
बुद्धि और पराक्रमसे विशेष लक्ष्मी उत्पन्न होती है उसीप्रकार उन दोनोंके वह पुरस्ता भीलका जीवदेव बरीचि नामका  
मुख्य पुत्र हुआ ॥ ५१ ॥ जिससमय परीचिके बाबा वृषभदेवने दीक्षा धारण की थी उससमय स्वयं गुरु श्रीवृषभदेवकी  
भक्तिसे कच्छादिक राजाओंके साथ उस मरीचिने भी सब परिग्रहोंका त्यागकर दीक्षा धारण की थी ॥ ५२ ॥ उसने  
बहुत दिनतक तो तपश्चरणका ह्येव धुच्छीतादिपरीषहान् भी सहन किया था परंतु दीर्घ संसारी  
होनेके कारण पीछेसे वह उन्हें सहन नहीं कर सका था ॥ ५३ ॥ इसलिये उसने स्वानेकेलिये फल और ओढ़नेकेलिये  
वस्त्र आदि स्वयं ग्रहण करलिये थे यह देखकर वन देवताने आकर उससे कहा कि निग्रथ दीक्षा धारण करनेवालोंकेलिये  
यह क्रम नहीं है । यदि तुम्हें ऐसा ही करना है तो तुम अपनी इच्छानुसार कोई दूसरा वेष धारण करो । वन देवताकी  
यह बात सुनकर मिथ्यात्वकर्मके प्रवल उदयसे उसने सबसे पहिले परित्राजक दीक्षा धारण की सो ठीक ही है क्योंकि  
जिनका दीर्घ संसार परिग्रमण वाकी है उनकेलिये मिथ्यात्वकर्म कुमार्गका ही उपदेश देता है ॥ ५४-५६ ॥ उसमय प-  
रित्राजकमतके शास्त्रोंका थोड़ा बहुत कथन भी उसे अपने आप प्रगट हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समान  
दुष्टोंको भी अपने विषयमें स्वयं ज्ञान हो जाता है ॥ ५७ ॥ उसने तीर्थकरकी वाणी सुनकर भी सदस्यको स्वीकार नहीं  
किया था वह अपने पनमें सोचता था कि जिसप्रकार श्रीवृषभदेवने अपने आप ही सब परिग्रहोंको छोड़कर तीनों लोकों  
के लोभित करनेवाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसीप्रकार मैं भी संसारमें अपने चलाये हुए अन्य मतकी व्यवस्था करूंगा  
और उसके निमित्तसे होनेवाले बड़े भारी प्रभावके कारण इंद्री प्रतीक्षा प्राप्त करूंगा ऐसी मेरी इच्छा है मुझे आज्ञा है

४० ॥ घुरा केत्र नराः के वा सर्वे रूपादिसि समा । इत्यायाता स्वगाधीशा मोमुंभंते विवेचने ॥ ४१ ॥ तत्र पण्यक्रियो वीक्ष्य वाढं घुरकुमारकाः । विस्मयन्ते न रज्ज्ते तामिजातिविशेषत ॥ ४२ ॥ करणानामरीष्टाय शिवयास्तत्र ते तत । न नोकेपि यतस्तत्र नाकिपूजासमुद्भव ॥ ४३ ॥ अष्टत्रिमाणि निर्जितु विमानानि स्वकांक्षलात् । सुरैः कृतगृहाण्यत्र चैकान्या तेषु वर्णना ॥ ४४ ॥ बभूवास्याः पतिः पके-स्वर्गस्मैवाभरेश्वर । भरताह्वयः पुरो सुदुरि-  
श्वाकुलुनंदन ॥ ४५ ॥ अकपनाया भूणाला नमिसुहृद्याब्ध खेचरा । मागधायाश्च देवेशास्त्यक्तमाना समुत्सुका ॥ ४६ ॥ यस्याश्वा मालतीमालासिव स्वाननमौलय । भूषाधिकैकमस्माकमिति सधारणी ते ॥ ४७ ॥ सत्कर्मभावितैर्भावैः क्षात्रोपशमिकैश्च स । भव्यभावविशेषाच्च श्रेष्ठकाष्ठामाधिष्ठित ॥ ४८ ॥  
आदितीर्यकृतो ज्येष्ठपुत्रो राजसु वोदस । ज्यायांश्चक्री मुहूर्त्तेन मुक्तोय कैस्तुलां ब्रजेत् ॥ ४९ ॥ तस्यानंतमतिर्देवी प्रख्यातिरिव देहिनी । विमुच्य कयला-

थी, वस्त्राभूषण आदि उपकरणोंसे नहीं ॥ ३९ ॥ वहाँके उत्तम मनुष्य प्रायः स्वर्गसे आकर ही उत्पन्न होते थे इसलिये स्वर्गमें उत्पन्न हुई मित्रताके कारण बहुतसे देव स्वर्गसे आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उन लोगोंके साथ क्रीडा करते थे ॥ ४० ॥ इनमें देव कौन हैं और मनुष्य कौन हैं क्योंकि रूपादिकसे सभी समान हैं इस प्रकार बाहरसे आये हुए विद्या-धरोंके राजा उनको अलग पहचाननेमें मोहित हो जाते थे ॥ ४१ ॥ देवकुमार वहाँकी वेण्याओंको देख कर बहुत ही आश्चर्य करते थे परंतु पृथक् जाति होनेके कारण उनके साथ क्रीडा नहीं करते थे ॥ ४२ ॥ इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले जैसे विषय वहाँ थे वैसे स्वर्गमें भी नहीं थे इस लिये देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर भी वहाँ उत्पन्न होते थे ॥ ४३ ॥ देवोंने जो अपने कौशलसे वहाँके घर बनाये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों अष्टत्रिमा विमानोंको जीतनेके लिये ही बनाये हों फिर भला वहाँका वर्णन करना व्यर्थ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार स्वर्गकी पंक्ति का स्वामी इंद्र होता है उसी प्रकार उस नगरी का स्वामी राजा भरत था जो कि इत्वाकुलमें उत्पन्न हुआ था और वृषभदेवका पुत्र था ॥ ४५ ॥ अकंपन आदि राजा, नमि विनमि आदि विद्याधर और मागध आदि देव अपना अभिमान छोड़कर और उत्कंठित होकर मालती पुष्पोंकी मालाके समान अपना मस्तक भुकाकर जिसकी आज्ञाको धारण करते थे और उसे अपने लिये सबसे अधिक आभूषण मानते थे ॥ ४६-४७ ॥ अपने सत्कर्म्मों की भावनासे तथा कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे उत्पन्न हुए भावोंसे और भव्यत्वके विशेष भावसे वह सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता था ॥ ४८ ॥ वह भरत श्रीआदिनाथ तीर्थंकरका सबसे बड़ा पुत्र था सोलहवां मनु और राजाओंमें चक्रवर्ती था तथा दीक्षा लेनेके अंतर्मुखित वाद ही केवली होगया था इसलिये उसकी ब-रावरी अन्य कौन कर सकता था ॥ ४९ ॥ उसकी स्त्रीका नाम अनंतमति था जोकि शरीरको धारण करनेवाली कीर्तिके

न वामनाश्रोताथडालाश्र न दुष्टराः ॥ ३० ॥ नानिदुष्टालिकाभूमिर्न क्षमापृदनादन ॥ ३१ ॥ मध्ये तस्य विनीताख्या हृदयप्राहिणी पुरी । जनाना सा विनीतेव रमणी सत्सुखप्रदा ॥ ३२ ॥ प्रकाशसितुमाम्नीयं पुरनिमोर्गङ्गाशाल । भक्ति तीर्थकृतस्यार्दा सा शक्रेणैव निर्मिता ॥ ३३ ॥ मुनेर्धर्मिणेनेव स्वा-  
मिने वपताकिनी । कञ्चीव मणिनामिच्छे सा शालेन ह्यमापत ॥ ३४ ॥ भूषणादेव शालेयासा स्वादिकापरिवेष्टितः । शक. कर्ता पतिव्रत्तकी यदि कृतस्तुत भय ॥ ३५ ॥ वतते जिनपूजासां दिन प्रति गृहे गृहे । सर्वभारतकार्योणां तत्पूर्वत्वाद गृहेष्विना ॥ ३६ ॥ विद्याभ्यासाद्विना बाल्य विना भोगेन यावन । वादिक्य न विना बर्माद्विनातोपि समाधिना ॥ ३७ ॥ नावबोध. क्रियाशून्यो न क्रिया फलवर्जिता । अमुक न फलं भोगो नार्थमद्वयन्युतः ॥ ३८ ॥ प्रधानप्रकृति. प्राय. स्व मित्रैर्नैव साधिका । जनेभ्यस्तद्विषयिभ्यो न भूषादिपरिच्छेदः ॥ ३९ ॥ कुरास्तत्र समागल्य स्वर्गायातेनैरोत्तमः । स्वर्गसंभूतसौदाहर्द्राद्रदमते सतत मुदा ॥ ४० ॥

वा क्रिवाड खोलनेकी सत्ताईमें ही थी २९ ॥ वहाँके गोपाल ( गजालिये ) भी मूर्ख नहीं थे तथा स्त्री बालक भी इरपोक नहीं थे वहाँके वामन ( छोटे कदके मनुष्य ) दुष्ट नहीं थे और चांडाल दुश्चरित्र नहीं थे ॥ ३० ॥ वहाँकी भूमि ईश्वर और चावलसे रहित नहीं थी पर्वत विना चंदनवाले नहीं थे, सरोवर विना कमलोंके नहीं थे, और वन विना स्वादिष्ट फलोंके नहीं थे ॥ ३१ ॥ उस देगके मध्य भागमें हृदयको मनोहर लगनेवाली विनीता ( अयोध्या ) नामकी नगरी थी जो कि विनीत स्त्रीके समान सुख देनेवाली थी ॥ ३२ ॥ वह नगरी ऐसी जान पड़ती थी मानों अपनी नगर रचनकी कुशलता दिखानेके लिये अथवा तीर्थकरकी भक्ति दिखलानेके लिये सबसे पहिले इंद्रने ही बनाई हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार विनयसे मुनिकी बुद्धि सुशोभित होती है, स्वार्थसे सेना शोभायमान होती है, मणिसे करधनी अच्छी लगती है उसी प्रकार मध्यभागमें बने हुए कोटसे वह नगरी शोभायमान थी ॥ ३४ ॥ खाईसे घिरा हुआ वह उस नगरीका कोट केवल शोभाके लिये था क्योंकि उसका बनानेवाला इंद्र था और उसका स्वामी चक्रवर्ती था फिर भला उस में भय किसका हो सकता था ॥ ३५ ॥ वहाँ पर प्रतिदिन प्रत्येक घरमें जिनपूजा होती थी क्योंकि गृहस्थियोंके सब मांग-  
लिक कार्य जिनपूजापूर्वक ही होते थे ॥ ३६ ॥ वहाँ पर विना धर्मके शुद्धापा व्यतीत नहीं होता था और विना समाधि के परण नहीं विना भोगोंके जीवन व्यतीत नहीं होता था, विना धर्मके शुद्धापा व्यतीत नहीं होता था और विना समाधि के परण नहीं होता था ॥ ३७ ॥ वहाँ पर किसीका भी ज्ञान क्रियारहित नहीं था, क्रिया विना फलके नहीं थी, फल विना भोगोंके नहीं थे और भोग अर्थ तथा धर्म दोनोंसे रहित नहीं थे ॥ ३८ ॥ शिरमें हिताहित ज्ञानकी शून्यता नहीं है ऐसा ज्ञान मुख्य प्रकृति कहलाती है वह :

शास्त्रभ्यसनशीला वा ह्यात गुरुकुलं महत् । मन्वादित्रितय्यागलक्षणं व्रतमासदत् ॥ २१ ॥ जीर्णतावसिता सम्यक् पात्यित्वादराद्भूतं । सागरोपमदिव्या-  
यु नैषाधर्मोऽन्तिमियो भवत् ॥ २२ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते देशः कैशलाख्योऽस्ति विभ्रुत । आर्यक्षेत्रस्य भग्नस्य सौस्थिल्यं सर्वदाभजन् ॥ २३ ॥ बाधाभावा-  
दरसात्र रक्षकभ्यो विना न सा । अदातारो न कैनास्याते तुल्या ग्राहकैर्विना ॥ २४ ॥ काठिन्य कुचयोरेव नैव चेतसि कस्यचित् । केहि याहीति संप्रयो  
नाधिचैनं मयेन वा ॥ २५ ॥ कलंकक्षीणते राक्षि चण्डएव पश्व न । शिबतिरूपोवनेष्वेव विनाहारादरेषु न ॥ २६ ॥ पीडा तिलातसीक्षणां नान्यप्राणिषु  
केषुचित् । नान्यत्र शिरसस्फुल्लेद प्रवृद्धेष्वेव शास्त्रिषु ॥ २७ ॥ वधोमोक्षश्च राद्धाते भूयते नापराधिषु । विना विमुक्तारगेभ्यो नान्यत्रेन्द्रियविप्रदः ॥ २८ ॥  
जाड्य जलेषु नान्येषु सुटादिष्वेव तीक्ष्णता । नान्यत्र रुचिकास्त्वेव कृत्ये नान्यत्र वक्रता ॥ २९ ॥ न विदग्धश्च गोपाला न स्त्रीवालाश्च मीरकाः । शठा

के दुःखोंके कारण रूप कभीसे दुखी हुआ मनुष्य इस हमारे जैनधर्ममें आकर तृप्त होता है ॥ २० ॥ जिस प्रकार शास्त्रों  
का अभ्यास करनेवाला शिष्य प्रसिद्ध गुरुकुलमें जाकर विद्याग्रहण करता है उसी प्रकार उस भीलने भी उन मुनिराज  
से मद्य मांस और मद्युके त्याग करने रूप व्रतको स्वीकार किया ॥ २१ ॥ उसने जीवन पर्यंत बड़े आदरसे उस व्रतको  
अच्छी तरह पालन किया और आयु पूर्ण होने पर सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥ २२ ॥ इसी  
जंबू द्वीपके भरतक्षेत्रमें आर्य क्षेत्रके मध्यभागमें सदा अच्छी स्थितिमें रहनेवाला अथवा सदा स्थित रहने वाला कौशल  
नामका एक प्रसिद्ध देश है ॥ २३ ॥ वहां पर किसीको किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी इसलिये वहां  
पर अरक्षा ( रक्षाका अभाव ) थी परंतु वह अरक्षा रक्षकोंके अभावसे नहीं थी । इसी तरह वहां पर कोई दातार नहीं  
थे दातारोंका अभाव कृपणातासे नहीं था किंतु संतुष्ट होनेसे ग्राहकोंके ( मांगनेवालोंके ) अभावसे दाताओंका अभाव था  
॥ २४ ॥ वहांपर कठिनता कुचोंमें ही थी किसीके हृदयमें नहीं थी इसीतरह हमें कुछ दो ये शब्द मांगनेकेलिये नहीं निकलते  
थे तथा जाओ ये शब्द भयसे नहीं निकलते थे ॥ २५ ॥ कलंक और क्षीणता ये दो शब्द चंद्रमामें ही थे किसी अन्य  
राजामें नहीं थे, निराहार रहना तपोवनके तपस्वियोंमें था किसी दूसरेमें नहीं ॥ २६ ॥ तथा पीडा ( कोल्हूमें पेलना )  
तिल अलसी और ईखमें ही थी किसी अन्य प्राणीमें नहीं थी । सिरका काटना बड़े हुए चावलमें ही था दूसरी जगह  
नहीं ॥ २७ ॥ बंध और मोक्ष ये दो शब्द सिद्धांत ग्रंथोंमें ही सुने जाते थे किसी अपराधीकेलिये नहीं, इन्द्रियोंका निग्रह  
विरागी लोगोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २८ ॥ जहता जलमें ही थी कोई मनुष्य मूर्ख नहीं था तीक्ष्णता सोंठ मिरच  
आदि पदार्थोंमें ही थी कोई मनुष्य तीक्ष्णस्वभावका नहीं था इसीतरह वक्रता किसी काममें नहीं थी यदि थी तो ताली

६ । नावेवाभौनिघेरस्य प्रासादं पारमेतया ॥ ५ ॥ कथाकथकयोस्तावद्वर्णनं प्राग्विधीयते । दोषं ताभ्यामदोगाभ्यां पुराणं नोपढाकते ॥ १० ॥ सा कथा या समाकर्ण्य हेयोपादेयनिर्णय । कर्णकट्वीभिरन्याभि किं कथाभिर्हितायिनी ॥ ११ ॥ रागादिदोषनिर्मुक्तो निरपेक्षोपकारकृत् । भव्याना दिव्यया वाचा कथक स हि कथ्यते ॥ १२ ॥ एतद् द्वितयमत्रैव पुराणे जिनभाषिते । नान्येषु दु पुराणेषु तस्म दुप्राण्यपिद दुर्धः ॥ १३ ॥ अयं जवदुमालक्ष्ये द्रीपाना मध्यवर्तिनि । द्वीपे विदेहे पूर्वस्मिन् सीतामरिदुदकृते ॥ १४ ॥ विषये पुष्कलावल्या नगरी पुढरीकिणी । मधुकाख्यावने तस्य नाम्ना व्यवाधिप भवत् ॥ १५ ॥ पुष्पावाः प्रियास्थायीत्वल्लिकाख्याचुरागिणी । अनुरूप विषये हि वेधा सगममगिना ॥ १६ ॥ कद चित्वा नने तस्मिन् दिग्विभागविमोहनत् । मुनि स गगनेनह्यपर्यटतमितस्तत् ॥ १७ ॥ विलोक्य त मृग मत्वा मृदुकाम स्वकातया । वनदेव शरतीये मावगीरिति वारित ॥ १८ ॥ तदेव मु स रत्ना ममुपेय पुरुखाः । प्रणम्य तद्वचं श्रुत्वा स शत श्रद्धयाहित ॥ १९ ॥ शीतलंमस्तडाग वा निदाये वृषितो जनः । ससारतु स्वहेतोर्वा भीरुर्भैरवर् मत् ॥ २० ॥

सो पहिले कथा और कथाके कहनेवाले वक्ताका वर्णन किया जाता है क्योंकि यदि ये दोनों ही निर्दोष हो तो फिर पुराणमें कोई दोष प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥ कथा वही कहलाती है जिसको सुनकर हेय और उपदेयका निर्णय किया जाय आत्माका कल्याण चाहने वाले लोगोंके कानोंको कड़वी लगनेवाली अन्य कथाओंसे क्या प्रयोजन है ॥ ११ ॥ जो रागादि दोषोंसे रहित है और दिव्य वाणीके द्वारा भव्यजीवोंको बिना किसी अपेक्षाके उपकार करनेवाला है वह कथक कहलाता है ॥ १२ ॥ ये दोनों ही बातें अर्थात् कथा और कथक श्रीजिनेन्द्र देवके कहे हुए इसी पुराणमें मिलते हैं इसको छांडकर अन्य खोटै पुराणोंमें नहीं मिल सकते इसलिये बुद्धिमानोंको इसी पुराणको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥ अथानंतर सब द्वीपोंके मध्यमें रहनेवाले इस जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारे पुष्कलावती देशमें एक पुढरीकिणी नगरी है उसके मधुनामके वनमें पुरुरवा नामका भीलोंका स्वामी रहता था तथा उससे अनुराग रखनेवाली कालिका नामकी उसकी स्त्री थी सो ठीकही है—प्रायः कर्मरूपी विधाता जीवोंका समागम एकसा ही निर्माण करता है ॥ १४—१६ ॥ किसी एक दिन दिग्भ्रम हो जानेके कारण सागरसेन नामके मुनि उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे उन्हें देखकर पुरुरवा भील द्विगुण समझकर उन्हें पारनेके लिये तैयार हुआ परंतु उसकी स्त्री कालिकाने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि ये वनके देवता फिर रहे हैं इन्हें मत मारो ॥ १७—१८ ॥ इस प्रकार उसी समय प्रसन्नचित होकर वह भील उन मुनिराजके पास पहुंचा तथा नमस्कार कर उनके कहे हुए वचन सुनने लगा सुनकर उसे श्रद्धा हुई और वह शांत हुआ ॥ १९ ॥ जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें प्यासा मनुष्य शीतल जलसे भरे हुए सरोवरके पास जाकर वृत्त होता है उसी प्रकार संसार

## अथ चतुःसप्ततितमं पर्व ।

बर्द्धमानो विनः श्रीमाधामान्वर्धं समुद्रहन् । देवान्मे बुधिसुवर्धुषातिकर्मविमितां ॥ १ ॥ तत्पदार्थनिर्वयात्प्राप्य सन्मसित्वं । सुबोधराह् । पूर्यो देवागमाय भूत्वात्राकलको बभूविष ॥ २ ॥ वीरसेनो महावीरो वीरसेनैवैतां गतः । वीरसेनैववर्षाद्विर्वीरसेनेन भावितः ॥ ३ ॥ देवालोकरतवैको लोकालोकाबलोक्ते । किमस्ति व्यस्तमव्यस्मिन्ननेनानवलोकितं ॥ ४ ॥ रूपमेव तव ब्रूते नाथ कोपाद्योदहन । मणेर्मलस्य वैकल्पं महत केन कथ्यते ॥ ५ ॥ अतिक्लम्य कुतीर्यानि तव तीर्यं प्रवर्तते । संप्रत्यपीति नुत्वाजु पुराण तत्प्रचक्ष्यते ॥ ६ ॥ महापुराणवारादिपारावारप्रसिद्धया । विनसेनानुगामिरवमस्माभिर्निबिबधुभिः ॥ ७ ॥ अगाधोयं पुराणाब्धिरपारध्व भतिर्मम । पश्योत्ताना सपारा च त सितीर्षुः क्लिप्तया ॥ ८ ॥ मतिरस्तु ममेवात्मा पुराण महदहसि-व-

## अथ चौहत्तरिवां पर्व ॥ ७४ ॥

अग्रानंतर-अन्वर्थ नामको धारण करनेवाले श्रीमान वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव घातिया कर्मके नाश होनेसे प्राप्त हुई वृद्धि मुझे दें ॥ १ ॥ तत्त्वार्थके निर्णय करनेसे आपका सन्मति नाम पडा है और देवोंके आगमनसे पूज्य होकर आप अकलंक हुए हैं ॥ २ ॥ आपका नाम वीरसेन है रुद्रके द्वारा आप महावीर कहलाये हैं । अशुद्धिधारी मुनियोंकी सेनाके नायक हैं । गणधर देव आपके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं तथा अनेक मुनिराज आपका ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥ हे देव ! लोक और अलोकके देखनेमें आपका ही केवल ज्ञानरूपी प्रकाश मुख्य गिना जाता है । जिसे आपका दर्शन देख नहीं सकता ऐसा क्या कोई फुटकर पदार्थ संसारमें है ? ॥ ४ ॥ हे नाथ आपका रूप ही क्रोधादिकके अभावको सूचित करता है सो ठीक ही है क्योंकि बहुमूल्य वडी मणियोंके मल कालिमा आदिके अभावको कौन कहने आता है भावार्थ-उनका स्वरूप उन्हींसे मालूम हो जाता है ॥ ५ ॥ हे देव अन्य अनेक कुतीर्योंका उल्लंघन कर वर्तमानमें भी आपका ही तीर्थ चल रहा है इसलिये आपको ही नमस्कार कर आपका ही पुराण कहा जाता है ॥ ६ ॥ यह महापुराण एक महासागरके समान है इसके पार जानेके लिये कुछ कहनेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंको महर्षि जिनसेनका अनुयायी होना चाहिये ॥ ७ ॥ यह पुराणरूपी महासागर अगाध और अपार है और मेरी बुद्धि थोडी और समयार्थ है इसी बुद्धिके अनुसार मैं इस महा सागरके पार होना चाहता हूं ॥ ८ ॥ यद्यपि मेरी बुद्धि छोटी है और यह पुराण बहुत बडा है तथापि जिस प्रकार नावसे ही समुद्रके पार हो जाते हैं उसी प्रकार मैं भी इस छोटीसी बुद्धिसे ही इसके पार हो जाऊंगा ॥ ९ ॥ सब



चासन्त्यम भर्तुं यस्य स सततात्कर्म्यं ह्यस्यवसाप्रणीः ॥ १६६ ॥ किं ध्यानात्कमिनः कर्णीद्रव्यते- . क्षातेर्महेश्वस्तत्तत्तत्प्रान्मप्रविजुभणद्वत सिधोभते  
रयश्चोदयात् ॥ कालाद्वातिहृतेसिद शममभूत्सिधवैहृते सुरैरावाक्योमरविधिविच्युतिरथ ह्य्यात्स वीराप्रणी ॥ १६७ ॥ श्रुत्वा यस्य बचोमृत धृतिमुत्तं ह्य  
हित हेतुमन्मिथ्यात्ता सिधिविजोवमीन्द्रपस्मिन् आविद्वैरोद्वधुर ॥ य नैतिस्य च ताद- . ग्युपनतश्रेय म पाशे विभुविश्राय इर्मिष्टुमानशित्वा मध्यास्य सिद्धो-  
हतात् ॥ १६८ ॥ जातः प्रायमरुभूतिरन्विभपसिद्धैः सहस्रारजो विदेशोच्युतकल्याज सिद्धिभृता श्रीवज्रनाभिः पति ॥ देवो मध्यममथ्यमे नृगुणैरानननामनते  
देवैर्देवैर्दत्तघातिसहतिरव्यवसान्स् पाशैश्चर ॥ १६९ ॥ कमठः कुम्कुटः पर्यः पञ्चमभूतोहिरभमवदय नरके ॥ न्य भोधागः सिद्धो नरकी नरपाण्डु शबरो दिविज ॥ १७० ॥

इत्यार्ये भगवद्गुणभद्राचार्यविरचिते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पार्श्वतीर्थकपुराण परिसमाप्त त्रिसप्ततितम पर्व ॥ ७३ ॥

नाश हुआ, सर्पिणीके छत्र धारण करनेसे घातिया कर्मोंका नाश हुआ घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति  
हुई और केवलज्ञानके प्राप्त होनेसे शरीरकी महिमा बढी इसतरह संवर देवका उपद्रव आपके संसारका नाश करनेवाला  
हुआ और आपके तीर्थकरका उदय समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला हुआ । हे प्रभो ऐसे उग्रवंशके अग्रगण्य आप सदा  
होनेवाला यमराजका भय दूर करो अर्थात् मोक्ष दो ॥ १६६ ॥ क्या यह शत्रुका किया हुआ उपद्रव भगवानके ध्यानसे  
शांत हुआ वा वरयोदसे शांत हुआ अथवा वरयोद्राणीसे शांत हुआ, अथवा भगवानकी जग्यसे शांत हुआ, किंवा इंद्रसे  
शांत हुआ वा स्वयं शांत हो गया, अथवा किसी तंत्रसे शांत हुआ वा मंत्र पढ़नेसे शांत हुआ, अथवा पुण्यकर्मके उदयसे  
शांत हुआ वा समय पाकर शांत हुआ इसप्रकार अर्थलिये हुए देव लोक संवरदेवके द्वारा किये हुए जिनके विघ्नोंकी  
शांतिकी आशंका कर रहे हैं ऐसे शूरवीरोंमें अग्रगण्य भगवान पार्श्वनाथ हमलोगोंके सब पाप नष्ट कर ॥ १६७ ॥ का-  
नोंको सुख देनेवाले, हृदयको मनोहर, हित करनेवाले और हेतुपूर्वक जिनके बचनरूपी अमृतको सुनकर संवरदेवने भी  
वियके समान मिथ्यात्वको छोड़ दिया और उत्कट वैरको नाश करनेवाले जिन पार्श्वनाथको आकर नमस्कार किया,  
इसप्रकार नमस्कार करनेवालोंका भी कल्याण करनेवाले स्वामी पार्श्वनाथ सिद्धभगवान् सिंहासनपर विराजमान होकर हम  
लोगोंके सब विघ्नोंको नष्ट करें ॥ १६८ ॥ पार्श्वनाथका जीव पहिले मरुभूति पंथी हुआ, फिर हाथी हुआ, फिर सहस्रार  
स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर विद्याधर हुआ, फिर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ व-  
हांसे मध्यम प्रैवेयकमें अहर्निद्र हुआ, वहांसे आकर राजाओंके मुखोंसे सुशोभित आनंद नामका राजा हुआ फिर आनंत  
स्वर्गमें इंद्र हुआ तदनंतर पार्श्वनाथ होकर घातिया कर्मोंका नाश किया ऐसे वे श्री पार्श्वनाथ भगवान् हम लोगोंकी रक्षा  
करें ॥ १६९ ॥ कमठका जीव पहिले कमठ था फिर कुम्कुट सर्प हुआ, पांचवें नरकमें गया, फिर अजगर हुआ, नरक  
गया, फिर भील होकर नरकमें गया, फिर सिंह हुआ और नरक गया फिर महीपाल होकर संवर देव हुआ ॥ १७० ॥  
इसप्रकार, श्रीभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषाउद्धारवें भगवान पार्श्वनाथका पुराण कहनेवाला यह सिंहात्मा पर्व समाप्त हुआ ।

शिवस्मरण पाठीनो जलधेरीपेसलियुत पाशों किन पातु नः ॥ १६१ ॥ निष्कपं तव कुकृत्यमुपगतं बोध पर्याधिर्महापातोयुततनुर्विनीकसलिल प्राप्नोति इराजत । ध्यानं ते बत बाचकस्य भवतां वासालिङ्गाद्वरात् क्षोभ कः कथमित्यभिष्टुतिपतिः पार्श्वप्रभु पातु न ॥ १६२ ॥ तीर्थेशा, सहस्रो गुणैः १ ननुमि सर्वेपि वैभक्तिभिः, सत्यध्वेयधीशविधिविधिता ये ते गुणाः प्रीणनाः । तत्सर्वं कमठापथाहिं महतां भक्तो कृतापक्रियात् ह्य्यासितो महती न आनुभविता मित्राकृतोपक्रियात् ॥ १६३ ॥ बुरस्यामरविक्रियस्य भवतो बाधा न शांतात्मनो न क्रोधो न भयं च तेन न बुधैः सोढेति संस्मृत्यसे । साहाय्यप्रसन्नौ तु विस्मयकरौ तौ तेन तीर्थेजिनः स्तोतव्यं किमिति स्तुतो भवतु न पाशेषां भवोच्छिन्नये ॥ १६४ ॥ पश्यंतां कृतवेदिना हि धरणी धर्म्यविपीडागतौ तावेवोपकृतिर्न ते त्रिभुवनसैमैकभूमेस्ततः । भूतत्पातनिषेधन ननु कृतं चेत्पावनोपद्रवाः कर्नासमिति सारमंस्तुतिकृतः पाशेषां विनः पातु नः ॥ १६५ ॥ मेदोहे फलिमदप फलिबधून्त्र क्षतिर्धातिना कैबल्यात्तिराधातु देहमहिमा दानिर्भवत्सामरी । भीतिस्तीर्थकुदुद्रुमोपगमन सिद्धस्य-

ही नञ्ची भूत जान पड़ता है परंतु आपका ध्यान सुमेरु पर्वतके समान अवल है फिर भला भासोच्छ्वास की वायुके समान संवरदेवसे आपको क्या क्षोभ हो सकता है इस प्रकारकी अनेक स्तुतियोंके स्वामी श्रीपार्श्वनाथ भगवान हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६२ ॥ हे स्वामी ! यद्यपि धैर्य आदि बड़े २ गुणोंसे सब तीर्थंकर समान हैं तथापि आपके वृत्त करनेवाले गुण सब संसारमें प्रसिद्ध हुए हैं और वे सब एक कमठके ही कारण प्रसिद्ध हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि अपकार करने वाले शत्रुसंघ बड़े पुरुषोंकी जो सबसे बड़ी प्रसिद्ध होती है वह उपकार करनेवाले मित्रसे कभी नहीं हो सकती ॥ १६३ ॥

हे देव ! संवर देवने दूर रहकर आपपर विक्रिया की तथापि आपका आत्मा अत्यंत शांत बना रहा आपको किसी तरहकी बाधा नहीं हुई न क्रोध आया और न भय हुआ परंतु विद्वान लोग इन गुणोंसे भी “आप सहनशील हैं” ऐसी आपकी स्तुति नहीं करते किंतु आपका माहात्म्य और शांतता दोनों ही अत्यंत आश्चर्यजनक हैं इसलिये आपकी स्तुति भी किस तरह की जाय इसप्रकार जिनकी स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथस्वामी हम लोगोंके जन्ममरणरूप संसारका नाश करें ॥ १६४ ॥ देखो ये धरणींद्र पद्मावती दोनों ही बड़े कुतज्ञ हैं और बड़े धर्मात्मा हैं इसप्रकार इन दोनोंकी संसारमें पूज्यता हुई है परंतु तीनों लोकोंके कल्याण उत्पन्न करनेकी एक भूमि ऐसे आपका ही यह उपकार समझना चाहिये यदि ऐसा न माना जाय और उन दोनोंने ही पर्वतोंका पटना पत्थर बरसाना आदि वंद किया है ऐसा माना जाय तो फिर यह भी ढूंढना पड़ेगा कि पहिले उपद्रव किसके द्वारा नष्ट हुए थे ? इसप्रकार जिनकी सारभूत स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६५ ॥ हे भगवन् सपके फणाओंके मंदलसे आपके उपद्रवोंका

ज्ञानास्वाप्तो निष्क्रियद्विधाः । भूतानि सप्त पंचाशच्चतुर्योवगमाः स्मृताः ॥ १७१ ॥ आदिनः षट्शतान्येव ते सर्वेऽपि समुत्पिताः । अभ्यर्णोद्धतनिर्वाणा  
स्युः सहस्राणि षोडश ॥ १७२ ॥ सुलोचनायाः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यायिका विभोः । श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणा श्रविकास्तत् ॥ १७३ ॥ देवी देव्योप्यसंख्याता  
संख्यातास्तित्यंगनि । एव द्वादशशक्तिर्युक्तो गणधर्मोपदेशनं ॥ १७४ ॥ कुर्वोण पञ्चभिर्मसिर्विहीकृतसप्तति । संवत्सराणा मास स सहस्र विहृति क्रिया ॥ १७५ ॥  
षट्त्रिंशन्मुनिभिः सार्द्धं पतिमायोगमास्थित । धावणे मासि सप्तम्यां सितगङ्गे दिनादिमे ॥ १७६ ॥ मागे विशाखनक्षत्रे ध्यानद्वयसमाश्रयात् । गुणस्थानद्वये  
स्थित्वा सम्मेदाचलमस्तके ॥ १७७ ॥ तत्कालोचितकार्योणि वतमिता यथाक्रम । नि शेषकर्मनिनाशाद्विकोण निश्चलं स्थितः ॥ १७८ ॥ कृतनिर्वाणकल्या-  
णा सुदैवास्त बर्बद्विरे । बदामहे बय चैन नदिदु सुदैरुगुणं ॥ १७९ ॥ आदिमध्यातंगभीरा सतोभोनिधिसन्निभा । उदाहरणमेतेषां पार्श्वे गण्यः क्षमा-  
बता ॥ १८० ॥ त्वन्मन्माषिषोत्सवेऽमरगिरौ स्वोच्छ्वासनि श्वासजैः स्वर्गेशां युष्मानयस्त्वमतिरंशदोलोला सुहुः । किं कुर्यात्तव तादृशोयमरस्तत्क्षान-

वाय असंख्यात देव देवियां थी और तिर्यच ये । इस प्रकार बारह सभाओंसे सुशोभित होकर धर्मोपदेश देते हुए उन  
भगवानने पांच महीने कम सत्तरि वर्ष तक विहार किया । अंतमें एक महीने तक सब योगोंका निरोध कर छत्तीस मुनि-  
योंके साथ सम्मेद शिखर पर्वत पर प्रतिपा योग धारण किया तथा श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन विशाखा नक्षत्रमें दिनके  
पहिले भागमें अर्थात् सवेरेके समय तीसरे और चौथे दो शुक्ल ध्यानोका आश्रय लिया ॥ १५४-१५७ ॥ उन्होंने अनुक्रम  
से उस समय करने योग्य सब काम किये और फिर समस्त ऋषीके नाश हो जानेसे वे भगवान अचल मोक्ष स्थानमें जा  
विराजमान हुए ॥ १५८ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणकी पूजा की और उनकी वंदना  
की इसीलिये सुंदर गुणोंके द्वारा इन्द्रको प्राप्त होनेके लिये हमलोग भी उनकी वंदना करते हैं ॥ १५९ ॥ जो सज्जन  
समुद्रके समान आदि मध्य और अंतमें भी गंभीर हैं ऐसे ज्ञानवानोंमें यदि अच्छा उदाहरण ढूँढा जाय तो श्रीपार्ष्णाथ  
स्वामी ही गिनने योग्य हैं ॥ १६० ॥ हे प्रभो ! जन्माधिकेके समय मेरु पर्वत पर अपने उच्छ्वास निच्छ्वासकी वायुसे  
आपने स्वर्गके इंद्रादि देवोंको भी अच्छी तरह बारबार झुला दिया था फिर भला यह संवर सरीखा छुद्र देव आपका  
क्या कर सकता उसे तो केवल आपकी ज्ञामासे ही अच्छा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ, और जिसप्रकार पछली समुद्रमें लोडनी  
हैं उसी प्रकार उसने आपके चरणोंमें आकर नमस्कार किया । हे देव पार्ष्णाथ जिनेंद्र ! ऐसे आप हमलोगोंकी रक्षा करें  
॥ १६१ ॥ हे नाथ ! अत्यंत निर्मल हुआ आपका ज्ञान अकंप है उसको समुद्रकी उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि समुद्र  
पहावायुके बलने पर चंचल हो जाता है और उसमें भरा हुआ पानी नीला है परंतु आपका ज्ञान निर्मल है समुद्र दूरसे

१३९ ॥ भर्तारमस्यादाहस्य तस्यकी च फलालते । उपयुक्तैः समुपयुक्त्य रिचता बजातपण्डितं ॥ १४० ॥ अयम् कुरौ प्रकृत्यैव नाभौ सस्मारतु कृतं । नोपकारं परे कस्माद्विस्मरेत्साद्रचेतसः ॥ १४१ ॥ ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंशये । विनाशमगमद्विभो विकार कमठद्विषः ॥ १४२ ॥ द्वितीयशुश्रूष्यनेन मुनिर्निर्जित्य कर्मणा । अतिर्य चैत्रमासस्य कालपक्षे दिनादिमे ॥ १४३ ॥ भागे विशाखनक्षत्रे चतुर्दश्यां महोदय । संप्रापत्केवलज्ञान लोकोलोकबभामनं ॥ १४४ ॥ तदा केवलपूजां च सुरैश्चा निरवर्तयन् । संवरोप्याप्तकालादिलिख्य शममुपागमत् ॥ १४५ ॥ प्रापत्सम्यक्त्वसंशुद्धिं दृष्ट्वा तद्वनवासिनः । तापसारस्यकसिध्यात्वाः भक्तानां सप्त संयमं ॥ १४६ ॥ गृहीत्वा शुद्धमन्यक्त्वाः पार्श्वनाथ कृतादरा । सर्वे प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमुः पादयोर्द्वयोः ॥ १४७ ॥ क त-द्वैर कृष्ण वासिरीहकी कास्य पापिनः । सख्यमास्ता विरोधस्य दृढये हि महात्मभिः ॥ १४८ ॥ गणीया दश तस्यासन् विधायानि स्वयंभुव । साक्षात्नि-विश्वान्मुक्ता मुनीन्द्राः पूर्वधारिणः ॥ १४९ ॥ यतयोर्युतपूर्वाणि शतानि नव शिक्षका । चतु शतानरं प्रोक्ता सहस्रमवधित्विषः ॥ १५० ॥ सहस्रमतिम-कमठ शत्रुका सब विकार नष्ट हो गया ॥ १४२ ॥ दूसरे शुकु ध्यानके बलसे उन्होंने ज्ञानावरण और अंतराय इन तीनों कर्मोंको नष्ट किया और चैत्र कृष्णा चतुर्दशीके दिन विशापा नक्षत्रमें सबरेके समय उन महा विभूतिको धारण करनेवाले भगवानन लोकोलोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १४३-१४४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर केवल ज्ञानकी पूजा की और वह संवर नामका ज्योतिषी देव भी कालादि लब्धिके प्राप्त होनेसे अत्यंत शांत हो गया ॥ १४५ ॥ उसने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया तथा उसे देखकर उस वनमें रहनेवाले सातसौ तपस्वियोंने भि-ध्यात्व छोड़कर संयम धारण किया शुद्ध सम्यग्दर्शन स्वीकार किया और उन सबने बड़े आदरसे श्रीपार्श्वनाथकी प्रद-क्षिणा देकर उनके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम किया ॥ १४६-१४७ ॥ देखो कहाँ तो उस पापीका ऐसा व्यर्थका बैर और कहाँ ऐसी शांति, परंतु यह भी ठीक ही है क्योंकि महात्माओंके साथ मित्रता करना अथवा विरोध करना दोनों ही दृढि करने वाले होते हैं ॥ १४८ ॥ भगवान पार्श्वनाथके समवसरणमें स्वयंभुवको आदि लेकर दश गणधर थे, ग्य-रह अंग और चौदह पूर्वको धारण करनेवालोंकी संख्या तीन सौ पचास थी । दशहजार नौ सौ शिक्षक मुनि थे और एक हजार चारसौ अवधिज्ञानी थे ॥ १४९-१५० ॥ इसी प्रकार एक हजार केवल ज्ञानी थे, एक ही हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, सातसौ पचास मनःपर्ययज्ञानी थे और छह सौ वादी थे । इसप्रकार शीघ्र ही मुक्त होने वाले सब मुनियोंकी संख्या सोलह हजार थी ॥ १५१-१५२ ॥ इसी प्रकार उन भगवानके समवसरणमें सुलोचनाको आदि लेकर छत्तीस हजार अर्जिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाएं थीं ॥ १५३ ॥ इनके सि-

स्थितः ॥ १०८ ॥ उत्तराभिमुखे वैष्णवे मासि सितेतिरे । एकादश्या स पूर्वाह्ने समं त्रिसप्तभुजैः ॥ १२९ ॥ कृतसिद्धनमस्कारो वीर्यालस्यो समादे ।  
द्वौ वा मुक्तिप्रदाया आन्यां कृत्स्नप्रसाधिकां ॥ १३० ॥ केशान् विमोचितास्तस्म मुष्टिभिः पचभिः झरेत् । समन्यच्च्योदराभीवा व्यक्षिपत्सीरवारिधौ ॥  
१३१ ॥ नातसामाधिकः शुद्ध्या चतुर्यङ्गानमास्करः । शुल्लसेत्पुरं कायस्थित्यर्थं समुपेतिवान् ॥ १३२ ॥ तत्र धन्यास्वभूणाल इवामर्गोष्ठमण्डलं । प्रति-  
गुणाशनं छुट् रत्ना यत्तत्किमयोषितं ॥ १३३ ॥ नदन् स चतुरो मासान् जाग्रत्येव सिद्धिदमाक् । वीर्यापदमेव देवदारुभूमिहरीरुद्रः ॥ १३४ ॥ अप-  
सावृष्टमाहारस्वागादापविष्टुदिकः । प्रत्यासन्नभयप्रतीतो योग्यं सप्तदिनावधि ॥ १३५ ॥ गृहीत्वा सत्पसारोऽस्वादर्कस्थानं प्रवर्तयन् । संबरो चाबरे गच्छन्नग-  
च्छत् स्व विमानकं ॥ १३६ ॥ लोकमानो विभगेन स्पष्टप्राग्वैरवधन । रोषात्कृतमहागोषो महाहृष्टिमपातयत् ॥ १३७ ॥ व्यघातयेन सप्ताहान्यन्यांश्च  
विनिधान् विधीः । महोपवर्गान् कैलेपनिपातात्तत्पितातक ॥ १३८ ॥ तद्वात्वाविवोधेन धरणीयोर्विनिर्गतः । वरण्या प्रसुरद्वजगामपमद्वितः ॥

इसके बाद अत्यंत विशुद्धि को धारण करनेवाले पार्थिनाथने छत्रस्थ अवस्थाके चार महीने व्यतीत किये और फिर जहां दीक्षा ली थी उसी बनमें आकर एक देवदारु नामके सबसे बड़े वृक्षके नीचे विराजमान हुए । आठ दिनका उपवास धारण करनेसे उनकी विशुद्धि और भी बढ़ गई थी, उनके संसारका अंत अत्यंत समीप आ चुका था और उनका पराक्रम बहुत ही बढ़ गया था । सात दिन तक योग धारण करनेका नियम लेकर वे श्रेष्ठ धर्मध्यानमें लग रहे थे । इसी समय संवर नामका कमठका जीव ज्योतिषी देव आकाश मार्गसे जा रहा था परंतु भगवानके ऊपरसे आनके कारण उसका विमान रुक गया ॥ १३४-१३६ ॥ तब उसने विभंगावधिसे देखा । पार्थिनाथको देखते ही पहिले बैरका संस्कार होनेसे वह क्रोधित हुआ । उस निर्बुद्धिने बड़ा भारी शब्द किया और बड़ी भारी वर्षा वरसाई इसी तरह वह सात दिन तक महा गर्जना और महा वर्षा करता रहा । इसके सिवाय यमराजके समान उसने पत्थरोंकी वर्षाको आदि लेकर और भी अनेक तरहके महोपसर्ग किये ॥ १३७-१३८ ॥ अवधि भ्रानसे उस उपसर्गको जानकर उसी समय पद्मावतीके साथ धर-  
खेद आया और दैदीक्यमान रत्नोंके फखामंडपसे सुशोभित होकर उसने चारो ओरसे ढक्कर भगवानको ऊपर उठा लिया तथा उसकी देवी पद्मावती अपने फखामंडपके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत ऊंचा ऊपर उठा कर खड़ी रही ॥ १३९-१४० ॥ इस प्रकार स्वभावसे ही क्रूर ऐसे सर्प सर्पिणीने केवल किये हुए उपकारका स्मरण कर वह उपसर्ग दूर किया सो ठीक ही है क्योंकि दयालु पुरुष किये हुए उपकारको किस प्रकार भूल सकते हैं अर्थात् वे कभी नहीं भूलते ॥ १४१ ॥ तदनंतर भगवान् ध्यानमें तल्लीन हुए ध्यानके माहात्म्यसे उनका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया और मोहनीयके नाश होनेसे

न । नशब्दो मृत्तिसाध सवरो ज्योतिषामरः ॥ ११७ ॥ नाम्नाभवत्सक्रोधानां तपसाभीष्टशी गति । नागो नागी च संप्राप्तसमयं वा कुमारतः ॥ ११८ ॥  
 वभून्तुर्द्विष्य तपन्त्री च पृथुग्रिथा । तत दिग्भारसमामानकुमारे समये गते ॥ ११९ ॥ साधे तनगराधीशो जयसेनपदीपति । भग्वतीदेशराज तद्व्यादि  
 आभृताग्नित ॥ १२० ॥ अन्धदासा निःसृष्टार्थे प्राहिणोत्यार्थसन्निधि । गृहीतोपायनं पूजयित्वा दूतोत्तमं मुदा ॥ १२१ ॥ माकेतस्य विभूतिं त कुमार प-  
 रिपृष्टवान् । सोपि भट्टारक पूर्व वर्णयित्वा पुनं परे ॥ १२२ ॥ पथाद्यावर्णयामास प्राज्ञा हि क्रमवेदिनः । श्रुत्वा तत्तत्र किं जातः तीर्भक्त्याम बद्धवान् ॥  
 १२३ ॥ एष एव पुनर्मुक्तिप्राप्तित्युपयोगवान् । साक्षात्कृतविजानीनसर्वप्रभवसंततिः ॥ १२४ ॥ विजृम्भितमविज्ञानक्षयोगशर्मैवभावात् । लब्धवोधि  
 पुनरोक्तातिकदेवप्रबोधितः ॥ १२५ ॥ तत्क्षणगतदेन्द्रप्रमुखामरनिमित्त । प्रसिद्धमध्यमस्थगणसवनादिमहोत्सव ॥ १२६ ॥ अत्येयभुक्तिमद्भागिभिः  
 कृतवधुविसर्जन । आश्रय विविका रूढा विमलाभिधयः विभुः ॥ १२७ ॥ विधायाष्टमहाहारात्यागमश्चरने महा । शिलातले मह सत्व पत्यकासनमा-  
 ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग अनुक्रमको भी अच्छी तरह जानते हैं । उसे सुनकर वे विचार करने लगे कि मैंने तीर्थकर  
 नाम कर्मका बंध किया इससे क्या लाभ हुआ । यह तीर्थकर नाम कर्मका बंध करना तबही उपयोगी हो सकता है जब  
 कि यह जीव मुक्त हो जाय । इस तरह विचार करते हुए उन्होंने अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष चर्योपशम होनेसे अपने  
 पहिलेके भव प्रत्यक्षके समान जान लिये तथा उन्हें स्वात्मज्ञान प्रगट हुआ और उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर स्तु-  
 तिकर समझाया ॥ १२०-१२५ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर प्रसिद्ध दीक्षा कल्याणका अभिषेक कर महोत्सव  
 मनाया ॥ १२६ ॥ तदनंतर पार्श्वनाथने विश्वास करने योग्य और युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे समझाकर सब भाई बंधु  
 ओंसे विदा मांगी और फिर वे भगवान विमला नामकी पालकी पर सवार होकर अश्ववनमें पहुंचे अनंत शक्तिको धारण  
 करनेवाले वे भगवान एक शिला पर उत्तरकी ओर मुखकर पर्यकासन विराजमान हुए । पौष कृष्ण एकादशीके दिन सबेरे  
 के समय तैलाका नियम लेकर तीनसैं राजाओंके साथ सिद्ध भगवानको नमस्कार किया और वस्त्राभूषण पहिने हुए तथा  
 अत्यंत मान्य ऐसी मुक्ति रूपी कन्याकी दूतीके समान दीक्षा लक्ष्मी स्वीकार की ॥ १२७-१३० ॥ भगवानने जो पांच  
 मुष्टिओंके द्वारा कैशोंका लोंच किया था इंद्रने उन वालोंकी पूजा की और आदर पूर्वक ले जाकर क्षीर सागर  
 में उन्हें डाला ॥ १३१ ॥ भगवानने सामायिक धारण किया आत्माकी शुद्धि होनेसे उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञानरूपी सूर्य  
 उदय हुआ और फिर वे आहारके लिये गुल्मसेट्युर नगरमें पहुंचे ॥ १३२ ॥ वहां पर श्यामवर्णको धारण करनेवाले धन्य  
 नामके राजाने अष्टमंगल द्रव्योंके द्वारा उनका पङ्गाहन किया और उस समयकी उचित क्रिया कर शुद्ध आहार दिया ॥ १३३ ॥

१०५ ॥ अह प्रसुर्ममायं किं वा करोतीत्यवज्ञया । तपसो मम माहात्म्यमुल्लेख्य ब्रवीषि किं ॥ १०६ ॥ पंचाग्निमध्यवर्तित्वं पवनाहारजीवनम् । ऊर्ध्वबाहु  
तथा पादौर्ध्वैर्नैव शिरस्थितिः ॥ १०७ ॥ स्वयं पतितपर्णैरेकपासेन पारणम् । इत्यादिकायसंतापि तापसानां सुदुर्दरे ॥ १०८ ॥ तपोनाधिकमस्त्यस्या-  
दिति तद्वचनदुते । सुओम सस्मितोवादीय भवंतमहं गुहं ॥ १०९ ॥ अवमन्ये पुनः किं तु संत्यज्यासंगमादिकं । सिध्यात्वादिचतुष्केण प्रयिव्यादिसु पद-  
स्वपि ॥ ११० ॥ वाचा कार्येन मनसा कृतकादिक्रियेण च । बने प्रवर्तमानानामनासमतसश्रयात् ॥ १११ ॥ निर्गोणप्रार्थनां तेषां तदुल्लावासिवाच्छया ।  
दुपलब्धनलेदो वा घृतेच्छा जलमयनात् ॥ ११२ ॥ हेमोपलब्धिवुद्धिर्वा दाहादधामसहतेः । अश्वसेवाग्निसपातो दैवभीत्या प्रधावत ॥ ११३ ॥ ज्ञानहीने  
परीक्षेणो भाङ्गिण्यस्य कारणम् । इति प्ररूप्यते शुभमत्स्नेहेन महता मुना ॥ ११४ ॥ इत्येतदुक्तमक्षेपि पूर्वैरेवानुबधनात् । निजपक्षासुरागिवाद्दुःसारादि-  
हागते ॥ ११५ ॥ प्रकृत्यैवातिदुष्टवादानादाय विरुद्धीः । सुयोमको भवानत्र सस्ययोज कुमारक ॥ ११६ ॥ पराभवति मामेवमिति तस्मिन् मन्त्रोपवा-  
अथवा जल पंथनसें धीकी इच्छा करते हैं ॥ १०७-११२ ॥ अथवा अंधपापाणो जो जलाकर सुवर्ण प्राप्त करना चाहते  
हैं अथवा अंधोंके समान दावानल अग्निसे डरकर दौड़ते हुए अग्निमें ही पड़ते हैं ॥ १३ ॥ बिना सम्यग्ज्ञानके जो कुछ भी  
कायकेश किया जाता है वह ज्ञानवाले दुःखोंका कारणही होता है और आपके स्नेहसे यही बात मन-कुमार महापुरुषने  
आपसे कही है ॥ ११४ ॥ इस प्रकार उस सुभौमकुमारने कहा तथापि उस विरुद्ध बुद्धिवाले मुख तपस्वीने पहिले जन्मके  
बैरका संस्कार होनेसे वा अपने पक्षका अनुरागी होनेसे अथवा स्वभाव ही से अत्यंत दुष्ट होनेसे उसके कहने पर कुछ  
भी ध्यान नहीं दिया । तदनंतर वह तपस्वी क्रोधित होकर कहने लगा कि इस संसारमें तू ही सुभौम है और यह कुंगार  
बड़ा ही अभिमानी है इसलिये इसने मेरा तिरस्कार किया है । इसप्रकार उस तपस्वीके हृदयमें शल्य बनी ही रही और  
आयुके अंतमें मरकर वह संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधसहित तपश्चरण करनेवालोंकी  
ऐसी ही गति होती है । इधर सर्व सर्पिणीने कुमारके समझाने पर समंता भाव धारण किया और परकर दोनोंही बड़ी  
विभूतिको धारण करनेवाले धरणींद्रि पद्मावती हुए । इसके बाद जब कुमारके जन्मसे तीस वर्ष गये अर्थात् जब उनकी  
तीस वर्षकी अवस्था हो गई ॥ २१५-११६ ॥ तब साकेत नगरके स्वामी राजा जयसेनने किसी एक दिन भगली देशमें  
उत्पन्न हुए घोड़े आदि अनेक तरहकी भेंट देनेके लिये पार्श्वनाथके समीप किसी दूतको भेजा । कुमार पार्श्वनाथने बड़ी  
प्रसन्नतासे वह भेंट ली, उस उत्तम दूतका आदर सत्कार किया और फिर उस दूतसे साकेत नगरकी विभूति पूछी ।  
इसके उत्तरमें दूतने पहिले ही श्रीशुभदेव आदि तीर्थक्षेत्रोंका वर्णन किया और फिर अपने नगरका हाल कहा सो ठीक





नेक्षणत् । स्वर्गलोकैव समान्य स्वर्गादयावतीर्णवान् ॥ ८४ ॥ अक्वताराद्विमानस्य भवनात्पबनाविनः । त्रिवोधकीधिती रगराशिनालिंगितो गुणः ॥ ८५ ॥ विधुधूमकेतुलक्षणाद्दहकोहसा । बध्वाभोजे गजेग्रस्य प्रवेशात्ते कुशोदसि ॥ ८६ ॥ अवस्थिति स सप्रापदुदरेऽमरपूजितः । इति शु वलुपद्वर्णी पयुरेणी-  
विलोचना ॥ ८७ ॥ तदाखिलाभराधीशाः समागत्य व्यधुमुदा । स्वर्गावतरणे मित्रोः कल्याण भिषवोत्सव ॥ ८८ ॥ स्वर्गलोकं च तद्वदहमतिशेतेऽस्य संप-  
दा । किं करोति न कल्याण कृतपुण्यसमागम ॥ ८९ ॥ नवमे मासि संपूर्णे पौषे मास्यति शुत । पक्षे योगेनिले प्रादुरासीदेकादशीतिथौ ॥ ९० ॥ त-  
दा निजासनाकपाद् श्रुत्वा तीर्थकरोदय । साधर्मप्रमुखाः सर्वे मदराचलमस्तके ॥ ९१ ॥ जन्मभिषेककल्याणपूजादिभूत्यन्तरं । पार्थाभिधानं कृतवस्य  
पितृभ्या त समर्पयन् ॥ ९२ ॥ नेम्यन्तरे स्वपचरवरागन्धश्रुमितवत्सरे । श्रुते हता कृतातस्य तदन्तरजीवितः ॥ ९३ ॥ पार्श्वनाथ संसुप्तः शतसवत्स-

मनाया उस समय उनका राजभवन संपदाओंसे स्वर्गलोकको भी उल्लंघन कर रहा था सो टीक ही है क्योंकि किन्ने हुए  
पुण्य कर्मोंका उदय होनेसे कौनसा कल्याण प्राप्त नहीं होता है ॥ ८६ ॥ नौ महीने बीत जाने पर पौष कृष्ण एकादशी  
के दिन अनिलयोगमें वह पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ८७ ॥ उसी समय अपने आसनोंके कंपायमान होनेसे सौधेन्द्र आदि  
देवोंने तीर्थकरका जन्म जाना और सबने आकर सुमेरु पर्वत पर उनका जन्माभिषेक कर पूजा की तथा पार्श्वनाथ नाम  
रत्न कर फिर माता पिताको सोंप दिया ॥ ८९-९० ॥ श्रीनेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद तिरासी हजार सातसौ पचास  
वर्ष बीत जाने पर सब कर्मोंको नाश करने वाले पार्श्वनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है । उनकी  
शरीरकी कीर्ति छोटै चावल्लोके पेड़ोंके समान थी, उनके शरीरमें सब लक्षणा सुशोभित थे,  
वस्त्रा प्राप्त हुई थी । किसी एक दिन वे लक्ष्मीवान् उग्रवंशमें उत्पन्न हुए थे । सोलह वर्ष बीत जाने पर उन्हें नवयौवन आ-  
जाकर वे आश्रय वनमें पहुंचे वहां पर महीपाल नगरका राजा था तथा अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुखी होकर तपसी  
हो गया था और पंचाभिके मध्यमें बैठा हुआ तपश्चरण कर रहा था उसे देखकर देवोंके द्वारा पूजित हुए कुमार पार्श्व-  
नाथ उसके समीप गये और उसे विना ही नमस्कार किये जाकर खड़े रहे । अपना इसतरहका अनादर होते देखकर मही-  
पालको क्रोध आया और वह विचार करने लगा कि मैं गुरु हूँ, कुलीन हूँ, तपोव्रत हूँ अर्थात् तपस्वी होनेसे बड़ा हूँ  
और इसकी माताका पिता हूँ तो भी इस मुखे कुमारने मुझे नमस्कार नहीं किया है और मदनोन्मत्त होकर मेरे सामने खड़ा  
है । इसप्रकार क्रुब्ध होकर उस मुखे तपस्वीने शांत हुई अग्निमें डालनेकेलिये वहांपर पड़ी हुई लकड़ी काटनी चाही और

करः ॥ ७२ ॥ विश्वान् वैश्विकान् भोगान् शरत्संप्राप्य निविशाम् । तन्नो लीलया कालमासमैतलपन् कर्त्ता ॥ ७३ ॥ षष्ठासैरितैस्तस्मिन्नागमिष्य-  
स्वम् महीं । द्विपेस्मिन् भारते काशिषिषये नगराधिप ॥ ७४ ॥ वाराणस्यामभुद्विभसेनः काश्यपगोत्रज । ब्रह्मास्य देवी संप्राप्तवसुधाराधिपूजना ॥ ७५ ॥  
वैशाखकृष्णपक्षस्य द्वितीयायां निशालये । विशाल्वे शुभरघुप्राप्तिरीक्ष्य तदनंतरं ॥ ७६ ॥ स्ववक्त्राब्जप्रविष्टोरुगणरूपविलोकनी । प्रभातपटहज्वानसमु-  
न्मीलितलोचना ॥ ७७ ॥ मगलाभिषेकाविष्टदुष्टि पुण्यप्रसाधना । विभावरीव सज्ज्योत्सा राजान समुपेत्य सा ॥ ७८ ॥ इतोपचारा सविश्य विष्टादं  
महीपते । स्वदृष्टसकलस्वप्नं यथाक्रममभाषत ॥ ७९ ॥ श्रुत्वा तान् सावधिः सोपि फलान्येवं न्यवेदयत् । गजेन्द्रवीक्षणस्तुत्रो वृषभालोकनात्पति ॥ ८० ॥  
त्रिविष्टपस्य सिंहेन दृष्टेनानतवीर्यक । मदराभिषेकप्रापी पद्मामिषवदर्शनात् ॥ ८१ ॥ दामद्वयावलोकेन धर्मद्वितयतीर्थात् । दशकमंडलालोकात् प्रलो-  
क्यकुमुदप्रिय ॥ ८२ ॥ तेजस्वी भास्वतो मत्स्ययुगलेन, मुक्ताखिलः । निर्धोनामधिपः कुभवीक्षणत्सर्वलक्षण ॥ ८३ ॥ सरसः सागरात्सर्वज्ञाता सिंहास-

वजनेवाले नगाडे आदि वाजोंकी आवाज सुनकर वह उठी और मंगलाभिषेक कर तथा वस्त्राभरण पहिन कर राजाके समीप इस प्रकार पहुँची मानो चांदनी रात चंद्रमाके समीप पहुँची हो ॥ ७७-७८ ॥ आदरपूर्वक वह महाराजके आश्रये सिंहासन पर विराजमान हुई और उसने महाराजसे अपने देखे हुए सब स्वप्न अनुक्रमसे कह सुनाए ॥ ७९ ॥ उन स्वप्नों को सुन कर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले महाराज विश्वसेनभी उनका फल इसप्रकार कहने लगे कि हाथीके देखनेसे पुत्र होगा, बैलके देखनेसे वह तीनोंलोकोंका स्वामी होगा, सिंहके देखनेसे उसके अनंत वीर्य वा पराक्रमी होगा, और लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे सुमेरु पर्वत पर उसका अभिषेक होगा ॥ ८०-८१ ॥ दो मालाओंके देखनेसे दोनों धर्मरूप तीर्थोंकी प्रवृत्ति करने वाला होगा, चंद्रमाके देखनेसे तीनोंलोक रूपी कर्मादिनीका प्रिय होगा ॥ ८२ ॥ सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होगा, दो मछलियोंके देखनेसे सब तरहसे सुखी होगा, सरोवरके देखनेसे सब लक्षणोंसे सुशोभित होगा, समुद्र देखनेसे सर्वज्ञ होगा, सिंहासन देखनेसे स्वर्गलोकके इंद्रादि देवोंके द्वारा सबसे अधिक पूज्य होगा, नीचे आते हुए विमान के देखनेसे वह स्वर्गसे आकर अवतीर्ण होगा, धरगोद्रेका भवन देखनेसे तीनों ज्ञानोंकी कांतिको धारण करने वाला होगा, रत्नोंकी राशि देखनेसे वह सर्व गुण संपन्न होगा और निरभूत अधिक देखनेसे वह सब पापोंका वा कर्मोंका नाश करनेवाला होगा हे कुशोदर ! तेरे मुख कमलमें हाथीके प्रवेश करनेसे देवोंके द्वारा पूजित हुए उस पुत्रने तेरे उदरमें आकर अवस्थान किया है । इस प्रकार पतिके वचन सुनकर वह मृगनयनी बहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ८३-८७ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बड़ी प्रसन्नतासे भगवानके स्वर्गवितरणके समय माता पिताका कल्याणाभिषेक कर उत्सव

यत्ते समुद्रतप्त्य समीपे बहुभिः समं । राजसी राजस भाव परित्यज्य कुलेयया ॥ ६३ ॥ सारावनाचतुष्क सन् विशुद्धैकादशांगधृत् । प्रत्ययोस्ती-  
यैरुज्जानो भावयात्मास बोद्धव्यः ॥ ६४ ॥ यथोक्त भावविलेताश्रम वधांतिमं शुभ । विरं चोरतप कृत्वा प्रांते शातांतरात्मक ॥ ६५ ॥ प्रायोगपम्न प्राप्य  
प्रतिमायोगमास्थित । धीर क्षीरवने धर्मव्यानाधीनो निराकुलं ॥ ६६ ॥ कथं प्राक्कन पापी प्रच्युतो नरकक्षितैः । कंठीरक्तव्यूसाद्य तन्मुनेः कठम-  
सार्द्धारक्षितयोन्मेषधारीरः शुक्लेयया ॥ ६९ ॥ दशमासातनि शाली मनसाऽभ्युत्तमाहन् । सचतुष्कद्विवर्षते मनसा क्षीप्रचारवान् ॥ ७० ॥ आपचमक्षि-  
तिव्यासतृतीयावगमेक्षण । स्वावधिक्षेत्रमानाविक्रियाबलसंगत ॥ ७१ ॥ सामानिकारिसर्वद्विषाशनसमर्चितः । कानकामप्रदानकदेवीकृतसुखा-  
बन्धं क्रिया और फिर बहुत दिन तक घोर तपश्चरणकर तथा जिनका अंतरात्मा अत्यंत शांत है और जो धर्मध्यानके आ-  
धीन हो रहा है ऐसा धीर वीर वह मुनिराज प्रायोगप संन्यास लेकर प्रतिमायोग धारणकर निराकुल रीतिसे क्षीर वनमें  
विराजमान हुआ ॥ ६४-६६ ॥ पहिले जन्मके पापी कथका जीव नरकसे निकलकर वहीं सिंह हुआ था इसलिये  
धारकर उसने माण छोड़े और आनत स्वर्गके प्राणत विमानमें इंद्र हुआ ॥ ६८ ॥ वहांपर उसकी वीससागरकी धनको  
भी, साढ़े तीन हाथका शरीर था शुक्लेयया थी, वह दश महीने बाद भ्रांस लेता था, वीस हजार वर्ष बाद मानसिक आयु  
मृताहार करता था और उसके मानसिक प्रवीचार था ॥ ६९-७० ॥ उसे पांचवें नरकतक अवधिज्ञान था और उतनी  
ही दूर तक शरीरकी कांति विक्रिया तथा बल था ॥ ७१ ॥ सब तरहकी सुखियोंको पूर्ण करनेवाली अनेक सुंदर देवियोंके आदि  
देवोंके द्वारा वह पूजा जाता था और इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली अनेक सुंदर देवियोंके द्वारा वह सब  
तरहके सुखोंका अनुभव करता था ॥ ७२ ॥ इसप्रकार सब इंद्रियोंके विषयभोगोंको सदा सेवन करता हुआ  
तथा उनमें लवलिन हुआ वह इंद्र लगाभरके समान लीला पूर्वक लंबे समयको व्यतीत करने लगा ॥ ७३ ॥ जिस  
समय उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके समुत्सव हुआ उससमय इसी  
अंबुदीपके भरतक्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुए राजा विशसेनकी रानी ब्रह्मादेवी रत्नों  
की वर्षा आदिसे पूजित हुई थी । उसने दैशास्व कृष्णा द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें रात्रिके अंत समयमें सोलह शुभ  
स्वप्न देखे और उन स्वप्नोंके देखनेके बाद उसने अपने सुखमें घुसता हुआ एक बड़ा हाथी देखा । तदनंतर सबैरके

समुद्रव । तस्मात्तत्साधुविधेयं पुण्यकारणकारणं ॥ ५३ ॥ तत्कथाबसरे लोकत्रयबलाढ्याकृतीः । सम्यग्दर्शनं विदुं वाञ्छन् प्रागादित्यविमानजे ॥ ५४ ॥  
खिन्नैर्भवने भूता विभूतिं सोन्वयन्त्यह । तामसाधारणीं श्रुत्वा नन्दः भद्रा नरे बहन् ॥ ५५ ॥ दिनादौ च दिनानि च कुर्यान्मो कृतकुम्भलः । स्तुवमान-  
प्रसुकुटो खिनेशान् मंडले रवेः ॥ ५६ ॥ कित्तिमि कारयित्वा विमान मणिकान्तेन । कोटीकृतजिनापीशभवन विततधुति ॥ ५७ ॥ शालोकाविशिना  
भवत्या पूजामाष्टान्दिकीं व्याधात् । चतुर्मुख रथाभर्त सर्वतोभद्रमूर्जितं ॥ ५८ ॥ कल्पवृक्ष च धीनेभ्यो ददद्दानमबाधित । तद्विलोक्य जनाः सर्वे तत्तमाप्या-  
त्स्वय च तं ॥ ५९ ॥ स्तोत्रमारेमिरे भक्त्या मडल चक्रोन्विष । तदाप्रधुति लोकेस्मिन् बभूवोऽपसेवनं ॥ ६० ॥ अथान्यदा किलानन्दमहीचिह्नरसि  
बुद्धवान् । पक्षितं दलयथौघनार्थिनां हृदयं द्विधा ॥ ६१ ॥ तन्निमित्तसमुद्रभूलनिर्वेगो ज्येष्ठसूनुवे । साभिषेकं निज राज्यं दत्त्वा दत्त स्पृह तप ॥ ६२ ॥

होते हैं और शुभ परिणामोंसे पुण्य कर्मोंका वंध होता है ॥ ५०-५३ ॥ इसी उपदेशके समय उन मुनिराजने तीनों लो-  
कोंके चैत्यालयोंका आकार अच्छी तरह निरूपण करना चाहा और सबसे पहिले सूर्यके विमानमें जिन चैत्यालयकी वि-  
भूति बहुत अच्छीतरहसे वर्णन की उस असाधारण विभूतिको सुनकर महाराज आनन्दको बड़ी ही श्रद्धा उत्पन्न हुई  
॥ ५४-५६ ॥ वह राजा आनन्द सुबह शाम दोनों समय हाथ जोड़कर और मुकुटसहित अपना मस्तक नवाकर सूर्यके  
विमानमें विराजमान जिनैर्द्रप्रतिमाओंकी स्तुति करने लगा ॥ ५६ ॥ उसने कारीगरोंके द्वारा सुवर्ण और मणियोंका सू-  
र्यका विमान बनवाया और उसके भीतर फैलती हुई कान्तिको धारण करनेवाला जिनभवन बनवाया ॥ ५७ ॥ तदनंतर  
उसने शास्त्रोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक अष्टान्हिकाओंकी पूजा की और चतुर्मुख पूजा रथावर्तपूजा सबसे बड़ी सर्वतोभद्र पूजा  
तथा दीनोंको अनिवार्य दान देते हुए कल्पवृक्ष पूजा की । इसप्रकार उस राजाको सूर्यमंडलकी पूजा करते हुए देखकर  
अन्य साधारण लोगोंने भी भक्तिपूर्वक सूर्यमंडलकी स्तुति करना प्रारंभ कर दिया और उसी समयसे लेकर इस संसार  
में सूर्यकी उपासना करना प्रारंभ हुआ है ॥ ५८-६० ॥ अथानंतर—किसी एक दिन राजा आनन्दने यौवन नाहनेवालोंके  
हृदयके दो टूंक करनेवाला सफेदबाल शिरमें देखा । उसे देखते ही राजा आनन्दको वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने बड़े पु-  
त्रको अभिषेक पूर्वक अपना सब राज्य दे दिया और स्वयं समुद्रदत्त मुनिराजके समीप जाकर अनेक राजाओंके  
साथ राजसीभाव छोड़कर निरीह ( इच्छारहित ) तपश्चरण धारण किया । तदनंतर शुभ लेश्याओंके द्वारा चारों  
आराधनाओंका आराधन किया, विशुद्ध होकर ग्यारह अंगोंका ज्ञान संपादन किया और तीर्थकर प्रकृतिकी कारण ऐसी  
सोलह भावनाओंका चिंतन किया ॥ ६१-६४ ॥ शास्त्रानुसार उन सोलह भावनाओंका चिंतनकर तीर्थकर नामकर्मका

प्राप्तमहामदलीकस्थानो महोदय ॥ ४३ ॥ स्वस्य स्वामिहिताख्यस्य मदतो मत्रिणोन्मथा । वाचा वसंतमासस्य नदीभरदिनाष्टके ॥ ४४ ॥ पूजा निर्वर्त-  
यन् दण्डकाम तत्र समागत । विपुलादिमति दृष्ट्वा गणेश प्रश्रयाश्रयः ॥ ४५ ॥ अमिवद्य समाकर्ण्य सद्धर्म सर्वशर्मद । भगवान् किमिदिच्छामि श्रोतु मे  
संशयास्यद ॥ ४६ ॥ अचेतने कथं पूजा सिप्रहानुग्रहच्युते । जिनदिवे कृता भक्तिः सता पुण्य फलस्यैव ॥ ४७ ॥ इत्यदृष्टदसौ चाह सत्यमिति वच-  
स्तदा । शृणु राजन् जिनैद्रस्य न्येत्य चत्यादयादि वा ॥ ४८ ॥ भवत्यचेतन किंतु भव्यानां पुण्यबंधने । परिणामसमुत्पत्तिहेतुवात्कारण भवेत् ॥ ४९ ॥  
रागादिदोषहीनलदायुधभरणादिकात् । विमुख्यस्य प्रसंगेदुकातिहासिसुखश्रियः ॥ ५० ॥ अपर्तिताधसूत्रस्य लोकालोकाबलोकिनः । कृतार्थत्वात्परित्यक्त-  
जटादे परमात्मनः ॥ ५१ ॥ जिनैद्रत्याख्यातस्य प्रतिसाद्य प्रपश्यतां । भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥ कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वकार्य-

राजा बज्रबाहुकी सती प्रभाकरीके आनंद नामका प्रिय पुत्र उत्पन्न हुआ । बड़ा होनेपर वह महामंडलेश्वर राजा हुआ था  
और उसे बड़ी भारी विभूति प्राप्त हुई थी ॥ ४०-४३ ॥ किसी एक दिन स्वामिहित नामके अपने सबसे बड़े मंत्रीके क-  
थनानुसार वसंतऋतुके नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें उस राजा आनंदने पूजा कराई । उसे देखनेकेलिये वहांपर विपुलमति ना-  
मके मुनिराज पधारे । उन्हें देखकर राजा आनंदने बड़ी विनयके साथ उनकी वंदना की तथा सबतरहके कल्याण करने-  
वाले सद्धर्मका स्वरूप सुना । तदनंतर उसने पूछा कि हे भगवान् मुझे कुछ संशय है वह मैं आपसे पूछना चाहता हूं  
॥ ४४-४५ ॥ हे प्रभो ! भगवानकी प्रतिमा अचेतन है उसमें निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति नहीं है फिर उसमें भक्ति  
करने वा पूजा करनेसे सज्जनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति कैसे होती है ? इसप्रकारके पूछनेपर वे मुनिराज कहने लगे कि हे  
राजन् ! सुन यद्यपि श्रीजिनराजकी प्रतिमा जिनालयके समान अचेतन है तथापि वह भव्य जीवों पुण्यबंधका कारण ही  
होती है । क्योंकि वह शुभ परिणामोंको उत्पन्न करानेका कारण है ॥ ४७-४९ ॥ इसका भी कारण यह है कि भगवान्  
जिनैन्द्रदेव राम द्वेप आदि दोपोंसे रहित हैं और इसीलिये वे आयुध आभरण आदिसे सर्वथा रहित हैं । इसके सिवाय उन-  
नके मुखकी शोभा निर्मल चंद्रमाकी कान्तिके समान सदा सुशोभित रहती है वे लोक अलोकके जानकार हैं इन्द्रियज्ञानसे  
रहित हैं अर्थात् उनका ज्ञान अतींद्रिय है कृत्य कृत्य होनेसे जटा आदि सब उपद्रवोंसे रहित हैं और परमात्मा हैं । इसलिये  
उन जिनैन्द्रदेवके मंदिर और उनकी प्रतिमोंके दर्शन करनेसे जैसी शुभ भावोंकी उत्कृष्टता होती है वैसी और किसीसे नहीं  
हो सकती क्योंकि अंतरंग बहिरंग दोनों कारणोंके मिलनेसे सब कार्य उत्पन्न होते हैं इसलिये यह बात अच्छीतरह समझ  
लेना चाहिये कि श्रीजिनैन्द्र देवके मंदिर अथवा उनकी प्रतिमा पुण्यबंधके कारणके कारण है अर्थात् उनसे शुभ परिणाम

पुराधीशो वज्रवीर्यस्य भूपतेः । विजयायाश्च तदेव्या वज्रनाभिं सुतोमभत् ॥ ३२ ॥ स चक्रलक्षिता लक्ष्मीमक्षीणा पुण्यरक्षित । शुभवाप्यतृप्तमत्र भोवद्धं  
मोक्षलक्ष्मीं समुद्यत ॥ ३३ ॥ क्षेमकराख्यभट्टारकसुवक्त्राञ्जननिर्गत । धर्माश्रुतरसं पीत्वा लक्ष्म्याशेषपरमसुखा ॥ ३४ ॥ सुत स्वराज्यं सस्थाप्य राजसिर्निहु-  
भि सम । सयम समगात्सम्यक् सर्वमस्वानुकेपक ॥ ३५ ॥ प्राक्फनोजगरं षष्ठनरके तनुमाश्रित । द्वाविंशत्यन्धसंख्यानजीवितेन तितुङ्गित ॥ ३६ ॥  
चिरात्तस्माद्विनिर्गल्य कुरगाह्व्यो वनेचरः । कपयन् वनसमूतान् दधुत सर्वदेहिन ॥ ३७ ॥ विवर्जितातेध्यानस्य विधृतातपनभ्यधृतेः । तस्य लयकशरी-  
रस्य शरीरबलशालिनः ॥ ३८ ॥ तपोधनस्य चक्रंसा घोरं कातरदुःसह । उपसर्गं स्फुरद्वरं स पापी बहुधा व्यभात ॥ ३९ ॥ धर्मं ध्यानं श्रद्धयासां स-  
माराध्य सुरोत्तम । समुत्पन्न सुभद्राह्व्ये सहस्रमध्यममध्यमे ॥ ४० ॥ सप्तविंशतिवारान्निमेययुद्धिद्व्यभोगभाक् । ततश्चयुतेस्मिन् द्वीपेसाऽनुभूयुद्धभूयिते ॥  
४१ ॥ कौशले विषयेऽधोध्यानगरे काश्यपान्वये । इक्ष्वाकुवशजातरस्य वज्रबाहुमर्हभुत ॥ ४२ ॥ सुतो देव्या प्रभाकर्णमानन्द हर्षोजनि प्रिय । स सं-

पुरायोंका साथ लेकर वह वहांसे च्युत हुआ और उसी जंबूद्वीपके पश्चिम दिदेहक्षेत्रमें पद्मनामके देशमें आश्वपुरनगरका राजा  
वज्रवीर्य रानी विजयाके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ ॥ ३१-३२ ॥ पुरायके द्वारा रत्ना किये उस वज्रनाभिने पूर्ण चक्र-  
वर्तीकी लक्ष्मी प्राप्तकी और उनका उपभोग करने पर भी तृप्त न होने पर वह मोक्ष लक्ष्मीके प्राप्त करनेके लिये तैयार  
हुआ ३३ ॥ वह भट्टारक जोगकर मुनिराजके समीप गया और उनके मुखरूपी कमलसे निकले हुए धर्माश्रुत रूपी रस  
को पीकर उसने और सब रसोंकी इच्छा छोड़दी ॥ ३४ ॥ उसने अपने राज्यपर अपने पुत्रको विठाकर अनेक राजाओं  
के साथ समस्त जीवोंपर अच्छी तरह दया करनेवाला संयम धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ इधर पहिले क्षयटका जीव  
जो अजगर हुआ था यह मर कर छठे नरकमें जाकर नारकी हुआ, वहाकी वाईस सागरकी आयुतक अनेक तरहके  
दुःख भोगकर वहांसे निकला और वनमें उत्पन्न होनेवाले सब प्राणियोंको कंपाने वाला कुरंग नामका भील हुआ ॥ ३६-  
३७ ॥ किसी एक दिन शारीरिक बलको धारण करनेवाले शरीरसे समस्त छोड़े हुए वज्रनाभि सुनि आर्तिध्यानका परि-  
त्याग कर आतापन योग धारण कर विराजमान थे कि इतनेमें ही वह भील आ पहुंचा, उस पापीको पहिला चैर स्मरण  
हो आया और उसने उन मुनिराज पर जिसे कातर लोग सहन नहीं कर सकते ऐसे अनेक तरहका घोर उपसर्ग किया  
॥ ३८-३९ ॥ उन मुनिराजका जीव धर्मव्याप्तमें लीन होकर सज्जगदर्शन सहित सुभद्र नामके मध्यमप्रवेयकके विमानमें  
सत्ताईस सागरकी आयु पाकर उत्तम ब्रह्मिंद्र देव हुआ । वहां पर उसने अनेक दिव्य भोगोंका अनुभव किया तथा  
आयुके अंतमें वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके अयोध्या नगरमें काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशी



पानि कुष्काणि पत्राणि च भयादधात् ॥ २० ॥ उपलास्कात्मनापि द्विपसंभवात्तद्विहितं । विभक्त्यं निराहार पारणाया महाबलः ॥ २१ ॥ विरमेवं तप  
कुर्वन् क्षीणदेहपराक्रमः । कदाचित्प्राप्तुमायातो वेगबला हरेऽपतत् ॥ २२ ॥ पके पुनः समुत्थात् विहितेहोष्यशानुषम् । कर्मठेन कुहतेन कुक्कुटाहिलमे-  
युषा ॥ २३ ॥ पूर्ववाराजुब घेन हृष्टो निर्नेष्टवित । अमृतक्षये सबहारे षेढशाव्युपमायुषा ॥ २४ ॥ तत्र भोगान्ययोग्यं भुक्त्वा प्राप्ते ततश्च्युत । विधुन्माका-  
सर्वतोभद्रप्रभृत्युक्तो-  
विषेस्मिन् प्र निवदेहेस्ति विषयः पुष्कलावती ॥ २५ ॥ तत्खेचराबले राजा त्रिलोकोत्तमानामनि । पुरे विधुप्रतिविद्याधरेस्तस्य वक्रभा ॥ २६ ॥ विधुन्माका  
तयो सुदुरभिर्वाङ्मयोजति । संपूर्णयावनो घीमान् प्रत्यासन्नभावाधि ॥ २७ ॥ समाधिगुप्तमासाद्य मुनि संप्राप्य सयम । गृहीत्वा सर्वतोभद्रप्रभृत्युक्तो-  
पवासकः ॥ २८ ॥ पेरुहतिनिर्विघ्नाया योगमादधत् । प्राप्तधूमप्रभादु स्वकुङ्कटोरगपापिना ॥ २९ ॥ ततश्च्युतेन मूलाजगरेणालोक्य कोपिना ।  
निर्गीर्णच्युतकल्पविमाने पुष्करैस्वतः ॥ ३० ॥ द्वाविंशत्यव्ययानायुततदेतै पुण्यसारधिः । द्वीपे परनिवेदेहिस्मिन् विषये पद्मसंके ॥ ३१ ॥ महोत्सव  
त्यरोंकी रगडसे अथवा हाथियोंके समूहके घटनेसे प्राप्तुक हुआ जल पीता था । वह उपवास कर पारणा करता था इस  
तरह उसने बहुत दिन तक तपश्चरण किया । यद्यपि वह महा बलवान था तथापि कठिन तपश्चरण करनेसे उसका शरीर  
और पराक्रम सब क्षीण हो गया था । किसी एक दिन वह पानी पीनेके लिये वेगवती नदीमें आया और उसके पासके  
गठमें कीचड़में फस गया । यद्यपि उसने उठनेकी इच्छा की तथापि वह अशक्त होनेसे उठ न सका । इधर दुराचारी  
कमठ मर कर कुक्कुट सर्प हुआ था इसलिये उसने पहिलेके वैरके संस्कारोंसे उस हाथीको वहीं पर काट खाया जिससे  
वह मर गया और सहस्रार रत्नमें न्युत हुआ तथा इसी जंघदीपके पूर्व विदेहेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयाद पर्वत पर  
का अनुभव कर वह आयुके अंतमें न्युत हुआ तथा राजा विदुदगति रानी विधुन्मालाके अभिवेग नामका पुत्र हुआ । जिसका  
त्रिलोकोत्तम नामके नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा विदुदगति रानी विधुन्मालाके अभिवेगने अपनी पूर्णयौवन अवस्था प्राप्त होने पर  
संसारमें परिभ्रमण करनेका समय बहुत थोड़ा है ऐसे उस बुद्धिमान अभिवेगने अनेक उपवास धारण कर किये  
समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर संयम धारण कर लिया और सर्वतोभद्र आदि अनेक उपवास धारण कर किये  
॥ २५-२८ ॥ किसी एक दिन वह हरिनामके पर्वतकी गुफामें योग धारण कर विराजमान हुआ । इतनेमें ही जिस  
कुक्कुट सर्पने वज्रघोष हाथीको काटा था वही पापी धूमप्रभा नरके दुःख भोगकर निकला और इसी वनमें अजगर हुआ  
था । उन मुनिराजको देखते ही अजगर क्रोधित हुआ और उन्हें निगल गया, जिससे उनका जीव शरीर छोड़कर सो-  
लहवें अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव हुआ ॥ २९-३० ॥ वार्डस सागरकी उसे आयु मिली, आयु पूरी होने पर

अभूतामेतयो पुत्रौ विषामृतकृतोपमौ । कमठो मरुभूतिश्च पापयमिविषाणौ ॥ ९ ॥ वरुणा ऋषयो भार्या तृतीयस्य वसुंधरी । मंत्रिणा तो महीपस्य क  
कनीयान् नीतिवित्तयोः ॥ १० ॥ वसुंधरीनिमित्तेन सदाचारं सतां मत । मरुभूतौ दुराचारो जघान कमठोपमः ॥ ११ ॥ मरुये कुम्भकाक्ष्याने विपुले  
सङ्गकीवने । मरुभूतिरमृत्युत्वा ब्रह्मचर्यो द्विपाचिप ॥ १२ ॥ वरुणा च मृता तस्य करोरुभरत्रिया । तयोस्तस्मिन्वने प्रीत्या काळे गच्छत्यनुच्छेके ॥ १३ ॥  
अरविदमहाराजस्यत्वा राज्य विरम्य सः । संप्राप्य समयं सार्येनामा सम्मेदनीभितुं ॥ १४ ॥ प्रजन् बने स्ववेलायां प्रतिमायोगमागमत् । नोब्रधते निदो-  
ग स्वं मनागपि मनस्विन ॥ १५ ॥ विलोक्य त महानागः त्रिप्रसूतमहोदत । द्रुमभुवतस्तस्य प्रतिमायोगभाषिणः ॥ १६ ॥ सीश्य बहस्ते ससाक्षा-  
न्मंशु श्रीवत्सर्काच्छन । स्वपूर्वभवसंबंध प्रत्यक्षीकृत्यचेत सा ॥ १७ ॥ तस्मिन्माकनसाहोदप्रतोषी ओषमास्त सः । तिर्यचोपि सुहृद्भाव पाकल्लेख बभूवु ॥  
१८ ॥ धर्मतत्त्व मुने सम्यग्ज्ञात्वा तस्मात्सहेतुक । सप्रोषधोपवासादिश्रावकव्रतमप्रहीत् ॥ १९ ॥ तदा प्रमृति नागोदो भग्ना शाक्वा परेद्विप । खादस्त

वसुंधरी था । ये दोनों ही भाई राजाके मंत्री थे परंतु उन दोनोंमें छोटा मरुभूति नीतिका अच्छा जानकार था ॥ १० ॥  
नीच और दुराचारी कमठने वसुंधरीके निमित्तसे सज्जनोंका माना हुआ सदाचार नष्ट किया और मरुभूतिको भी मारा  
॥ ११ ॥ मरुभूति मरकर मलय पर्वतपर कुब्जक नामके सालकीके वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ ॥ १२ ॥ वरुणा मरकर  
उसी वनमें हथिनी हुई और वह वज्रघोषके साथ क्रीडा करने लगी । इसप्रकार उन दोनोंका समय बड़े प्रेमसे व्यतीत हो  
रहा था ॥ १३ ॥ किसी एक समय राजा अरविदने विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया और संयम धारणकर सब संघके  
साथ सम्मेद शिखरकी यात्रा करनेको निकले । चलते चलते वे उसी सङ्गकी वनमें पहुंचे और वहां उन्होंने अपने सा-  
मायिकके समयपर प्रतिमायोग धारण किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य अपने कर्तव्योंके एक अंशको भी उ-  
लंघन नहीं करते हैं ॥ १४-१५ ॥ उन्हें देखकर जिसके दोनों कपोल और ललाट ऐसे तीनों जगहसे मद वह रहा है  
ऐसा वह महा उद्धत हुआ हाथी प्रतिमा योग धारण करवाले उन मुनिराजको मारनेकेलिये तैयार हुआ, परंतु उनके व-  
ज्रःस्थलपर श्रीवत्स चिन्ह देखकर उसके चित्तमें शीघ्र ही पहिले भवका संबंध साक्षात् दिखाई पढ़नेके समान स्मरण हो  
आया ॥ १६-१७ ॥ पहिली मित्रता होनेके कारण वह हाथी उन्हें देखते ही शांत हो गया सो ठीक ही है क्योंकि ति-  
र्थच भी अपने भाई बंधुओंमें मित्रताका पालन करते ही हैं ॥ १८ ॥ उस हाथीने उन मुनिराजसे हेतुपूर्वक धर्मका स्वरूप  
अच्छीतरह समझा और उसने प्रोषधोपवास पूर्वक श्रावकके व्रत धारण किये ॥ १९ ॥ उससमयसे लेकर वह दूसरे हाथि-  
योंके द्वारा तोड़ी हुई हवनोंकी दालियोंको खाता था अथवा पापके ढरसे सूखे तृण वा पत्ते खाता था, इसीप्रकार वह प-

## अथ त्रिसप्ततितमं पर्व ।

स पातु पार्श्वनाथोस्मान् यन्महिम्नैव भूषार । न्ययेषि केवलं भक्तिर्भोनिनी छत्रधारण ॥ १ ॥ धर्मश्रेयतातपत्र त्रे सूते विश्वविस्मिणी । छायां पापा-  
तपस्त्रिष्टुत्सवापि क्षितिल केचन ॥ २ ॥ सर्वभाषा भवद्भाषा सत्यां सर्वोपाकारिणी । कृत शृण्वति सदुष्टाः सटास्ता नन नावुन्निव ॥ ३ ॥ अनसिञ्चकमदा-  
न्या देवतीर्थकरा परे । तमेव न्यकमाहात्म्यो वाच्यते साधुतकथा ॥ ४ ॥ कुमार्गोवाहिणी यस्यायस्यात्सन्मार्गोभारिणी । तत्त घर्मा कथा वदये भव्याना  
मोक्षमार्गिना ॥ ५ ॥ उबूकिभूयणे द्वीपे भरत दक्षिणे महात् । कुम्भो विषयस्तत्र विस्तीर्ण पोदन पुर ॥ ६ ॥ रक्षितास्मारविदाह्यो विद्वन्मो विद्वन्मो विद्वन्मो  
मिः । विप्रियुस्त समाश्रित्य प्रजापतिमिव प्रजा ॥ ७ ॥ तद्वेव विश्वभूताह्यो ब्राह्मणो युतिश्च ब्रवित । आक्रम्यनुधरा तस्य श्रीत्ये शुतिरिवापरा ॥ ८ ॥

## अथ तिहत्तरिवां पर्व ।

अथानंतर---जिनकी केवल महिमासे ही धरगोद और इदानीने भक्तिपूर्वक छत्र धारणकर जिनका उगसर्ग दूर किया  
देसे श्री पार्श्वनाथ स्वामी हमलोगोंकी भी रक्षा करें ॥ १ ॥

हे भगवान यद्यपि आपका धर्मरूपी श्वेत छत्र समस्त संसारमें फैलनेवाली छायाको प्रगट कर देता है तथापि त्रितने  
ही जीव पापरूपी घूँपसे दुःखी रहते हैं ॥ २ ॥ हे प्रभो ! आपकी भाषा सर्व भाषारूप है अर्थात् उसे सब अपनी अपनी  
भाषामें समझ सकते हैं, वह सत्यरूप है और सबका उपकार करनेवाली है उसे संतुष्ट हुए सज्जन लोग ही सुनते हैं दुष्ट  
लोग उसे कभी नहीं सुनते ॥ ३ ॥ हे देव ! अन्य तीर्थक्षेत्रोंकी महिमा इतनी प्रगट नहीं है परंतु आपकी महिमा सबसे  
अधिक प्रगट है इसलिये सुंदर कथा लिखी जाती है ॥ ४ ॥ जिससे कुमार्गका नाश होता है और सन्मार्गकी प्रवृत्ति  
होती है ऐसी आपकी धर्मरूप कथा मोक्ष जानेवाले भक्त्योंकेलिये कही जाती है ॥ ५ ॥ इसी जंबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें  
एक सुरम्प देश है और उसमें बहुत बड़ा पोदनपुर नगर है ॥ ६ ॥ उस नगरमें पराक्रम आदिसे प्रसिद्ध अरविंद नामका  
राजा राज्य करता था जिसप्रकार चंद्रमासे सब प्रसन्न रहते हैं उसीप्रकार सब प्रजा प्रसन्न रहती थी ॥ ७ ॥ उसी नगरमें  
वेदशास्त्रको जाननेवाला विश्वभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसको प्रसन्न करनेवाली दूसरी भक्तिके समान अनुंधरी ना-  
मकी ब्राह्मणी थी ॥ ८ ॥ उन दोनोंके कमठ और परशुति नामके दो पुत्र थे जो कि विप और अमृतके वनाये हुएके  
समान थे अथवा दूसरे पाप और धर्मके समान थे ॥ ९ ॥ कमठकी स्त्रीका नाम वरूणा था और परशुतिकी स्त्रीका नाम

वात्र न स्यात् अस्मिन् हि विविचकं चरनेति क्रमेण ॥ २८५ ॥ ब्रह्मायुगपद् दशमित्यर्थोऽयनामा चास्मादयोगमदसौ भूतराज्यभार ।  
कुरुत यज्ञमखड्मयुग्मं प्रति प्रतिपदं शुक्लित्सर्वधेत ॥ २८६ ॥ अस्मैव तीर्थसताने ब्रह्मणो धरणीभिस्तु । चूलादेव्याश्च संजज्ञे ब्रह्मदत्तो नि-  
तदीभनाः ॥ २८७ ॥ द्विदशो नामत सप्तचाप सप्तशताब्दकै । परिच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥  
इत्यार्षे विश्विच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥  
इत्यार्षे विश्विच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥

इत्यार्षे विश्विच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥

क्यों न गिना जाय ॥ २८३ ॥ शूरवीरताके महासागर कृष्णने सिंहके समान हो कर बड़े प्रतापशाली हार्यके समान ही सब शत्रुओंको जीतकर गर्जना की वे सब संसारके विजेता कहलाए और हाथमें एकही दंड लेकर इन अखंड तीनों खंडोंको जीता तथा वे बालक अवस्थामें मायोंका पालन करनेसे आज तक भी वे गोप कहलाते हैं ॥ २८४ ॥ देखो कहां तक बड़े २ सब शत्रुओंको नाश करनेसे कृष्णको ऐसी अद्भुत राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई थी और कहां सब गहन वनमें जाकर उनका समूल नाश हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे किसको क्या नहीं होता है अर्थात् कर्मके उदयसे सब को सबकुछ होता है । यह कर्मोंका चक्र पहिचकी धुरीके समान अनुक्रमसे सदा घूमा ही करता है ॥ २८५ ॥ देखो कृष्णने पहिले नरकआशुका वंध किया था और फिर तीर्थकर नामकर्मकी प्रकृतिका वंध किया पहिले नरक आशुका वंध कारलेनेसे ही उन्हें सब राज्य सुलका अनुभव कर भी नरक जाना पडा इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि सुखकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान लोगोंको प्रत्येक पद पर अर्थात् पेंड पेंड पर ( समय समय पर ) आयुबंध बांधनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८६ ॥ इन्ही नेनिनाथ तीर्थकरके समयमें ब्रह्मदत्त चारहवां चक्रवर्ती हुआ है वह ब्रह्मा नामके राजाका पुत्र था और उसकी माताका नाम चूलादेवी था । उसका शरीर सात धनुष ऊंचा था और सातसैवर्षकी उसकी आयु थी । वह चक्रवर्तियोंमें सबसे पिछला था (और गरकर सातवें नरक गया) था ॥ २८७-२८८ ॥ इस प्रकार श्रीमगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुगणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अगिष्टुनेमितीर्थकर, पद्मनाभ बलदेव कृष्णनाम अर्धचक्री, जरासंध प्रतिवासुदेव, और ब्रह्मदत्त सकल चक्रवर्तीके पुगणको कहनेवाला यह बहचरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

केन न धर्मचक्रमभितो नेमीश्वरो नेमिता ॥ २७८ ॥ सुभापुरभवत्तत प्रथमकल्पयोसाच्छ्रुतः कृष्णमिषतिरन्वतोऽजनि वतुर्धन्यैरभः । वणीभजति शकबागु सुरो महाशुक्लस्तोमि नवमो बलोलुदिविजस्तत्तरीर्यद्वय ॥ २७९ ॥ प्रागासीदश्वतरसायनस्तृतीये श्वेयुहनुभववसिधौ अमिला । भूयोभूयुहो हपतिरत्र यक्षनामा निर्नामा द्रुपतिद्रुतस्तोमृतासी ॥ २८० ॥ तस्मादभ्यन्तरिषु कृतद्रुमिदानाचक्रैश्चरो इतविषद्वजरादिंसंघ । धर्मोद्भवाद्दुभयवत् बहुदुः- समस्कारिर्गन्ध तीर्थकृदनयविघातकृत्सः ॥ २८१ ॥ द्रोहाभ्युने पलपच स कुषीरयोगात्पदीजएवतपसाप्य च चकलक्ष्मी । धर्मोद्भवाद्दुभयवत् बहुदुः- तेजस्विना कयमिहास्तु न सोऽग्रगण्यः ॥ २८२ ॥ चाणूरमेणमिव यो इतवान् हरिर्वा कस च कसमिव बाशनिरन्वमेरवीत् । द्रुतुर्धन्याहतकिशुं शिशुपालमौजो ददोऽप्रतिहतां यथापादाल्ये गा किल सल स गोमेन्वपि ततः ॥ २८३ ॥ सकन्दपुत्रशुक्लसनात्सादुतुतः क च सधुवनवाभोही हरेर्भूलनासः । सकृतवि- समान मानकर संयम धारण किया ऐसे श्रीनेमिनाथको धर्मचक्रकी घुरी वनानेके लिये भला कौन धारण नहीं करता अर्थात् सब ही धारण करते हैं ॥ २७८ ॥ बलदेवका जीव पहिले सुमानु हुआ था फिर पहिले स्वर्गमें देव हुआ, वहां से आकर विद्याधर हुआ, फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर शंख नामका वैश्य हुआ तदनंतर महाशुक्र विमानमें देव हुआ और वहांसे आकर नौवां बलदेव हुआ । तथा अभी स्वर्गमें देवोंके सुख भोग रहा है और वहांसे आकर तीर्थ- तक संसार रूपी सागरमें परिभ्रमण कर यत्न नामका गृहस्थ हुआ, फिर तीसरे नरकमें गया, फिर उसके बाद बहुत दिन हुआ और फिर वहांसे आकर अपने शत्रु जरासंध आदिको मारने वाला चक्रवर्ती कृष्ण हुआ, वहांसे स्वर्गमें देव कारण चक्रवर्तीकी पर्याय छोटकर और नरकमें पड़ कर अनेक दुखोंका अनुभव कर रहा है और आयु पूर्ण होने पर वहां से निकल कर सब तरहके अनर्थोंको नाश करनेवाला तीर्थंकर होगा ॥ २८०-२८१ ॥ कृष्णके जीवने चांडाल अवस्था लक्ष्मी भी नष्ट हुई है । इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि परिग्रहोंका त्याग करने वाले मुनिराजोंका पाप रूप बुद्धिसे थोडा सा भी अपकार मत करो ॥ २८२ ॥ जिस प्रकार सिंह हिरण्यको मार डालता है उसी प्रकार जिसने चाणूरमल्लको मारा, वज्र जिस प्रकार कांसको फोड़ डालता है उसी प्रकार जिसने कंसका चूर्ण कर डाला और मृत्यु जिस प्रकार बबेको उठा ले जाती है उसी प्रकार युद्धमें जिसने शिशुपालको जीता ऐसा कृष्ण भला मताप शालियोंमें सबसे मुख्य

सिदिमानुवन् ॥ २७० ॥ नकुलः सहदेवश्च पञ्चमानुवन्तं ययुः । भट्टारकोपि संप्रापद्भयं तं भराघरं ॥ २७१ ॥ नवरेध्रुवेषु चतुर्दिवससंयुते । युतेषु नवभिर्महोदधौ विहरिष्यिष्युतौ ॥ २७२ ॥ पथात्पञ्चवर्तैः सार्द्धं संयतैः क्षिता त्रिभिः । मासं योगं निरुप्यासौ हताघातचित्तुककः ॥ २७३ ॥ आसाहमासे उग्रोत्थायाः पक्षे पित्रा समागमे । क्षीतांशोः सप्तमीपूर्वरात्रे निवोणमासमान् ॥ २७४ ॥ तदा सुराधिपाः प्राप्य कन्याणं पञ्चम परं । विधाय विधिवद्भक्त्या स्व स्वमेकं पुनर्ययुः ॥ २७५ ॥ शकाद्या व्योम्नि दुरादमरपशुदृढा वाहनेभ्योऽवतीर्णातरुणं मूर्ध्नावनम्राः स्तुतिमुखारमुखा कुड्मलीभूतदस्ता । ध्वस्तान्-र्वीताघ्नः प्रमिहितमनसो यस्य पादौ प्रणेसुः क्षेम श्रीमान्स्व नेमिर्भटिति षटययु प्रांत्यवोधप्रसिद्धयै ॥ २७६ ॥ प्राक्क्षितागतिरावभावनुतत कल्पे चतुर्भे मरो जज्ञेसादपराहित क्षितिपतिर्जतोऽच्युतैरस्ततः । तस्मात्सोजनि सुप्रतिष्ठपतिर्देवो जयतेऽक्षभूदसीदत्र महोदयो हरिकुलज्योर्मासल्लेखुर्जिनः ॥ २७७ ॥ सा कस्मी सकलामराक्षितपदार्थोजो यथायं मिथुस्तत्कौमारसमेयरूपविभवं कन्या च साविस्तुतिः । भीमान् सर्वभिदं जरत्पुणसम मत्वाप्रहीतसंयम घनां

हुए ॥ २६८-२७१ ॥ उन्होंने छहसौ निन्याने वर्ष नौ महीना और चार दिन विहार किया । फिर विहार छोड़ कर पांचसौ तीतीस मुनिराजोंके साथ साथ एक महीने तक योगोंका निरोध कर आपाठ शुक्का सप्तमिके दिन चित्रा नक्षत्रमें रात्रिके प्रारंभमें ही चारों अघातिया कर्माका नाश कर वे मुक्त हुए ॥ २७२-२७४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बड़ी भक्तिके विधिपूर्वक उनका पांचवां निर्वाणकल्याणकका उत्सव मनाया और फिर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७५ ॥ जो अनेक देवोंसे घिरे हुए हैं, आकाशमें दूरसे ही अपनी अपनी सत्वारियोंसे उतर पड़े हैं, जिन्होंने बड़ी शीघ्रतासे अपने मस्तक नवा लिये हैं जिनके मुख स्तुतियोंके उच्चारण करनेसे मुखर हो रहे हैं दोनों हाथ संकुचित कमलोंके समान जुड़े हुए हैं जिनके हृदयका ग्रंथकार नष्ट हो गया है और जो मनमें बार बार नमस्कार कर रहे हैं ऐसे इंद्रादि देव भी जिनके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे वे श्रीनेमिनाथ भगवान् अतिप्र केवल ज्ञानको प्रगट करने के लिये शीघ्रही कल्याण करो ॥ २७६ ॥ श्रीनेमिनाथका जीव चिंतागति विद्याधर हुआ उसके बाद चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर अपराजित राजा हुआ, फिर सोलहें स्वर्गमें इंद्र हुआ, वहांसे चयकर सुप्रतिष्ठ राजा हुआ फिर ज-यंत विमानमें अहर्निद्र हुआ और फिर अंतमें इसी जंबू द्वीपमें बड़ी विभूतिको धारण करनेवाले और हरिवंश रूपी आ-काशमें निर्मल चंद्रमाके समान श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर हुआ ॥ २७७ ॥ श्रीनेमिनाथकी राज्यलक्ष्मी भी सबमें प्रसिद्ध थी उनके चरण कमलोंकी सेवा इंद्रादि सब देव आकर करते थे, उनकी कुमार अवस्था अत्यंत रूप रूपी ऐश्वर्यसे भरपूर थी और उनके लिये पांगी हुई राजमति कन्या अत्यंत प्रशंसनीय थी तथापि उन बुद्धिमानने इन सबको पुराने तिनकेके

प्रातरुत्पत्तिविवर्तनः ॥ २५१ ॥ उत्कृष्टजीवित तत्र गमयित्वा त्रयोपि से । सोदर्याः प्रच्युता यूय जाता रत्नत्रयोपमाः ॥ २६० ॥ धर्मजो भीमसेनश्च पा-  
थंश्च ह्ययातपूषयः । धनमित्राश्रिया चारिमन्नभूता सुतविक्रमा ॥ २६१ ॥ नकुलः सहदेवश्च चद्रादित्यसमप्रमा । सुकुमारी च कपिल्यापुरे द्रुपदभूपतेः ॥  
२६२ ॥ सुता दृढरयाश्च द्रैप्याख्याजनिष्ठ सा । इति नेमीश्वरप्रोक्तामाकल्पं बहुमि सम ॥ २६३ ॥ पाण्डवाः सधम प्रापन्वसतामेषा हि बहुता । कुन्ती-  
सुभद्राद्रौपयः दीक्षा ता परां ययु ॥ २६४ ॥ निकटे राक्षिमलाख्यगणिन्या शुभभूणाः । तास्तिष्ठः पोडशे कल्पे भूला तस्मात्परिच्युता ॥ २६५ ॥  
विश्वकर्ममैतृङ्का मुक्तिमेष्यलसंशयं । पंचापि पाण्डवा नेमिस्त्वामिना माहितदंयः ॥ २६६ ॥ विह्वल भक्तिका काश्चित्समा रघुप्राप्य भूधर । शत्रुजय  
समादाय योगमातृपमाश्रिता ॥ २६७ ॥ तत्र कौरवनाथस्य भागिनियो निरीक्ष्य तान् । क्रूर कुंवर स्थूला स्वमातुलवध कुधा ॥ २६८ ॥ आर्यसान्ध्याम-  
तप्तानि मुकुटादीनि पापभाक् । देया विभूषणानीति शरीरेषु निधाय स ॥ २६९ ॥ उपसर्ग व्यथातेषु कंतेयाः श्रेणिमाश्रित । शुक्रव्यानाग्निदिग्बन्धकर्मधाः

की उत्कृष्ट बर्दिस सागरकी आयुका उपभोग कर उन तीनों भाइयोंके जीव वहांसे च्युत होकर रत्नत्रयके समान अत्यंत  
प्रसिद्ध धर्मराज ( युधिष्ठिर ) भीम और अर्जुन ऐसे तुम तीनों भाई हुए हो । तथा धनश्री और मित्रश्रीका जीव सूर्य चं-  
द्रमाके समान प्रभावशाली और पराक्रमी नकुल और सहदेव ये दो भाई हुए हैं और सुकुमारीका जीव कपिला नगरके  
राजा द्रुपदकी रानी दृढरयासे यह द्रौपदी हुई है । इस प्रकार श्रीनेमिनाथके कहे हुए बचनोंको सुन कर पाण्डवोंने अनेक  
राजाओंके साथ दीक्षा धारण करली सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंका भाई वंशुपना भी ऐसा ही होता है । गुणरूपी  
आभूषणोंको धारण करनेवाली कुन्ती सुभद्रा और द्रौपदीने भी राजपत्नी गणनीके समीप जाकर उत्तम दीक्षा धारण कर  
ली । कुन्ती सुभद्रा और द्रौपदीके जीव सोलहवें स्वर्गमें देव हुए और वहांसे च्युत होकर मनुष्य जन्म पाकर निःसंदेह सम-  
स्त कर्मरूपी मलसे रहित होकर मोक्षमें जा विराजमान होंगे । अत्यंत भक्तिको धारण करनेवाले पाचो पाण्डवोंको अनेक कु-  
द्वियां प्राप्त हुई थीं उन्होंने कितने ही वर्ष तक श्रीनेमिनाथ स्वामीके साथ विहार किया था और अंतमें शत्रुजय पर्वतपर  
आकर आतप योग धारणकर विराजमान हुए थे ॥ २६६-२६७ ॥ दैवयोगसे वहां पर दुर्योधनका भानजा आ निकला  
उन्हें देखते ही उनके द्वारा मामाके मारनेका स्मरण कर उस क्रूर पापी दुष्टने क्रोधमें आकर उनके शरीरमें अग्निमें तपाये  
हुए सुकुट आदि सब आभूषण पहिनाए और इस तरह उनको चोर उपसर्ग किया । उन पाचो भाइयोंमें युधिष्ठिर भीम  
अर्जुनने तपकश्रेणी चढ़कर शुक्रव्यान रूपी अग्निसे सब कर्मोंके समूहोंको नष्ट कर सिद्ध अवस्था प्राप्त की और नकुल सहदेव  
अनुत्तरके पांचवें सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए इधर भट्टारक श्रीनेमिनाथ स्वामीभी गिरनार पर्वत पर जा विराजमान





नारणाश्रुतस्त्वय्ये । सामानिद्रापती द्विविशतिसागरजीविन ॥ २३७ ॥ अन्वभूधिरौगस्तत्र मप्रविचारका । नागश्रीरपि पापेन पचन्वा पृथिवी भगात् ॥ २३८ ॥ दुख तत्रानुभूयते स्वयुषोर्जु ततश्च्युता । अभूत्स्वयप्रमदीये सौगं दृष्टिविषयो मृत ॥ २३९ ॥ द्वितीयनरक गत्वा त्रिसमुद्रोपमयुगा । मुक्त्वा दुःख विलिङ्ग्य त्रसस्वावरणोनिषु ॥ २४० ॥ द्विसागरापम काल परिश्रम्य भवार्णवे । चपापुरे समुद्रं मातंगी मदपापतः ॥ २४१ ॥ समावि-  
शतनामान मुनिमासाद्य सान्यदा । बहिला धर्ममाकर्ण्य मधुपर्वासनिवृत्तित ॥ २४२ ॥ तस्मिन्नेव पुरे श्रुत्वा सुतेभ्यस्त्याभवन्मनी । सुयथोधनदेव्याश्च मुहु  
र्गंधशरीरिका ॥ २४३ ॥ सुकुमारीति सहाऽप्या विहिताशीनुयासिनी । पुरस्मिन्नेव वैदग्य धनदेयस्य पुत्रतां ॥ २४४ ॥ प्रासादशोकदाताया देवदत्ता जि-  
बादिकौ । मंत्रधार्थ्यं स्ववधूनामादानं स्वस्य वेदिता ॥ २४५ ॥ सुकुमार्था सुदैर्गध्य जिनदेवो जुगुप्सयन् । सुवताह्यमुनेरैतैर्वास्तिव समबाध सः ॥ २४६ ॥  
बनीयान् जिनदत्तोप प्रेरितो बंधुमिमंहु । आसवधुसुता नावमानयोगेति तद्वयात् ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा तामभा कुक्षफणिमिव नागमन् । स्वमेवस्य

अनेक भोगोंका बहुत दिन तक अनुभव किया । इधर नागश्रीका जीव पापोंके कारण पांचवें नरकमें जाकर नारकी हुआ ॥ २३८ ॥ वहाँके आयु पर्यंत अनेक दुःखोंका अनुभव कर वहाँसे निकला और स्वयंभवा द्वीपमें दृष्टिविषय नामका सर्प हुआ । वहाँसे परकर दूसरे नरकमें पहुँचा वहाँ पर उसने तीन सागरकी आयु तक अपनेमें परिश्रमण किया । तदनंतर वह पापकर्मोंके मंदोदयसे चपापुर नगरमें चांडालिनी हुई ॥ २४१ ॥ किसी दूसरे दिन वह समाधिगुप्त नामके सुरिराजके समीप पहुँची । उनकी बंदना कर उसने धर्मका स्वरूप सुना और शब्द तथा मांसका त्याग किया ॥ २४२ ॥ इतना त्याग करनेसे ही वह आयु के अंतमें परकर उसी नगरके धनी शेट सुबंयूकी स्त्री धनदेवीसे सुकुमारी नामकी कन्या हुई । उसका शरीर अत्यंत ही दुर्गंध था परंतु तौ भी धन होनेके कारण माता पिताने उसका नाम सुकुमारी रखा था उसी नगरमें एक धनदेव वैश्य रहता था उसकी अशोकदत्ता स्त्रीसे जिनदेव और जिनदत्त नामके दो पुत्र हुएथे । जिनदेवके कुटुंबी लोग उसका विवाह सुकुमारीके साथ करना चाहते थे परंतु यह समाचार सुन कर और उसकी दुर्गंधता जानकर वह विरक्त हुआ तथा सुद्वत नामके मुनिके समीप जाकर उनका शिष्य हो गया अर्थात् उसने दीक्षा ग्रहण करली ॥ २४३-२४६ ॥ तदनंतर जोड़े पाई जिन दत्तको कुटुंबियोंने बहुत प्रेरणा की और समझाया कि अपने बड़े लोगोंकी कन्याका अपमान करना ठीक नहीं है इस हरसे जिनदत्तने उसके साथ विवाह तो कर लिया परंतु कोथित हुई सर्पश्रीके समान उसके पास कभी मसंग भी नहीं जाता था । इस प्रकार पतिके विरक्त होनेसे वह सुकुमारी अपनी पुरयहीन्ताकी बड़ी निंदा करती थी ॥ २४७-

स्वपूर्वभक्तवधमपृच्छन्समुत्तरेभयात् । अत्रोचद्गङ्गावर्तिधमप्रतर्कर्महोदय ॥ २२६ ॥ जंबूर्ममाविते द्वीपे अतंगे पुरी परा । चपाह्वया कौरवस्तत्र महीशो मेघवाहनः ॥ २२७ ॥ सोमदेवो द्विजोऽथैव ब्राह्मणी तस्य सोमिला । तयो मुताभयः सोमदत्तः सोमिलनामकः ॥ २२८ ॥ सोमभूतिश्च वेदांगपारगा प रमद्विजाः । अमीषा मातुलस्यामिभूतेस्तिष्ठोऽभवन्मुता ॥ २२९ ॥ अमिलाया धनश्रीमित्रश्रीनागश्रियः प्रिया । तेभ्यो यथाक्रममाहतास्ताः सितुभ्या सुलक्षणाः ॥ २३० ॥ सोमदेवः मुनिर्विष्य सुधी केनापि हेतुना । प्रात्राजीदन्यदा धर्मरुचिनाम तपोधन ॥ २३१ ॥ प्रविशत गृहं शिक्षाकाले वीक्ष्यगुरुक-  
पया । सोमदत्त प्रतीक्षेन्ममाह पत्नी कनीयसः ॥ २३२ ॥ नागश्रीर्वितरास्मे त्वं शिक्षामिति कृतादर । मामेव सर्वदा सर्वमेव प्रेषयतीति सा ॥ २३३ ॥  
कुपिला विषसन्मित्र ददावन्नं तपोधृते । स सत्यस्य समाराध्य प्राप्तुल्यमनुत्तर ॥ २३४ ॥ नागश्रीविहिताकार्यं ब्राला ते आतराभयः । समीपे वरुणार्थं  
स रीक्षा मैक्षीं समाययुः ॥ २३५ ॥ गुणवत्यार्थकाभ्यासे ब्राह्मण्यावितिरे तदा । ईश्वर संयम इतमोहं सदमतमिदं ॥ २३६ ॥ पंचाप्याराम्य तेऽभूव

लगे ॥ २२४-२२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रके चंपपुर नगरमें कौरव वंशी राजा मेघवाहन राज्य करता था । उसी नगरमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम सोमिला था, उनदोनोंके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति ये वेदके अंगोंके जानकार परम ब्राह्मण तीन पुत्र हुए थे । उन तीनों भाइयोंके मामाका नाम अभिभूति था उस अभिभूतके अशिला स्त्रीसे धनश्री मित्रश्री नागश्री नामकी तीन पुत्रियां हुई थीं । अभिभूति और अशिलाने वे शुभ लक्षणवा-  
ली तीनों कन्याएं यथाक्रमसे अपने अपने भानजों को दे दी ॥ २२७-२३० ॥ तदनंतर बुद्धिमान सोमदेवने किसी कारणसे विरक्त होकर दीक्षा ले ली थी । किसी दूसरे दिन आहारके समय धर्मरुचि नामके तपस्वी सोमदेवके घर आए सोमदत्तने कल्याण कर उनका पडगाहन किया और छोटे भाईकी स्त्री नागश्रीसे आहार देनेके लिये आदर पूर्वक कहा । नागश्री यह सुन कर क्रोधित हो गई और मनमें कहने लगी कि यह सोमदत्त सदा सवकामके लिये मुझसे ही कहता है । इस तरह क्रो-  
धित होकर उसने मुनिके लिये विप मिला अन्न दे दिया जिससे संन्यास धारण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर वे मुनिराज सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहर्भिद्र हुए ॥ २३१-२३४ ॥ नागश्रीके द्वारा किये हुए अकार्यको जानकर उन तीनोंही भाइयोंने वरुण नामके मुनिराजके समीप जाकर मोक्ष देनेवाली दीक्षा धारण करली ॥ २३५ ॥ उसी स-  
मय ब्राह्मणीने भी गुणवती नामकी अर्जिराके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली । सी ठीक ही है क्योंकि सज्जन और असज्जनोंका चरित्र ऐसा ही होता है इस प्रकार ये पांचो ही जीव तपश्चरण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर आरण तथा अच्युत स्वर्गमें वाईस सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुए और वहां पर उन्होंने प्रवीचारसहित

भवन्कमात् ॥ २१४ ॥ द्यूत युधिष्ठिरस्यात्र दुर्धनमहीभुजा । भुनक्तुं लुपुथा यत्कीचकानां विनाशन ॥ २१५ ॥ विराट्भूतोर्धुरिगोमंडलनिवर्तनं । अ-  
नुगतैर्भूतस्य विराटस्य सुधर्मणः ॥ २१६ ॥ अल्पगोमंडलस्यार्जुनोत्तराभ्यां निवर्तनं । पुराणवेदिभिर्विच्यं विस्तरेण यथाश्रुतं ॥ २१७ ॥ अथ युद्ध-  
रंजयज्जन ॥ २१८ ॥ एव स्वकृतपुण्यस्य ते सर्वं परिगच्छ । सुखं निखिलमव्ययमन्यभूयान्न रतं ॥ २१९ ॥ तदा द्वारवतीदाहः के शर्मावीगहनतरे ।  
युतिर्जित्कुमारैर्ण विष्णोर्जष्टस्य सयम ॥ २२० ॥ भविष्यतीति यन्त्रोक्तं दागवला जिनेषिना । निवृत्तं तत्र तत्सर्वं न सिध्यायदिनो जिना ॥ २२१ ॥  
तादृशं तादृशमासीद् विनिवृत्तं दुष्कर्मणा गतिं । निर्मूल्यति कर्मणि तत एव हि यीधनाः ॥ २२२ ॥ तत्सर्वं पांडवाः श्रुत्वा तदयान्मधुगुधिपाः । स्वा-  
मिबधुविद्योगेन निर्दिष्टं लक्ष्म्याज्जका ॥ २२३ ॥ महाप्रस्थानकर्मण प्राप्य नैमिषिनेश्वरं । ताकालोचितसत्कर्म सर्वं निर्माप्य भास्विकाः ॥ २२४ ॥  
कीचकको मारा और राजा विराटका गोमंडल शत्रुओंसे छुड़ाया । इस प्रकार उन्होंने राजा विराटको सुखी किया । तथा  
थोडासा गोमंडल ( नाग भैंस आदि पशु ) कोई और शत्रु ले गया था वह अर्जुनके छोटे भाइयोंने छुड़ाया । इन्मन्त्र  
उनका यह संचित चरित्र है विस्तारसे आगमानुसार पुराणके जानकारोंको जान लेना चाहिये ॥ २१४-२१६ ॥ तद-  
नंतर कुरुक्षेत्रमें कौरव और पांडवोंका युद्ध हुआ उसमें पांडवोंने दुर्धनको जीता । युधिष्ठिर सब देशका राजा हुआ  
और छोटे भाइयोंमें राजलक्ष्मीका विभाग कर तथा उसका उपयोग करता हुआ सबलोगोंको प्रसन्न करने लगा ॥ २१७-  
२१९ ॥ इस प्रकार वे सब पांडव अपने पुण्यकर्मके फल सुखको विना किसी व्याकुलताके रात दिन पूर्ण रीतिसे अनु-  
भव करने लगे ॥ २२० ॥ तदनंतर द्वारवती नगरी जली, कौरवांनी वनमें जरतुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु हुई और  
ज्यों का त्यों हुआ सो ठीक ही है क्यों कि जिनेंद्र देव कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहते हैं ॥ २२१-२२२ ॥ जिनके  
लिये जैसा कहा था उनको वैसाही हुआ अतएव इन अशुभ कर्मोंकी गतिको भी बार बार धिक्कार हो और इसलिये शुद्धिमान  
बंधुओंके वियोगसे विरक्त हुए, और मोक्षके लिये महाप्रस्थानकी तैयारी करने लगे । उन भक्त लोगोंने श्रीनेमिनाथ  
स्वामीके समीप जाकर उस समय करने योग्य प्रदक्षिणा नमस्कार आदि सब कर्म किए और संसारसे दूरकर अपने पहिले  
भवोंका संबंध पूछा । इनके उत्तरमें जिनके ऐश्वर्यकी कल्पना भी नहीं होसकती ऐसे भगवान नेमिनाथ इस प्रकार कहने

साः । स्वसंववादिषु 'सूत्र्य' लेखं नायम् पांडवा' ॥ २०३ ॥ पौद्गनाहयपुरे चंद्ररत्ननाममहीपतेः । देविसायाश्च पुत्राय कलागुणविशारद ॥ २०४ ॥ वि-  
धाय निहितस्वर्णगण्ड राज्यं व्यतारिषु । अर्थद्वयमने श्रीला तथा वार्ताशुलाचराद ॥ २०५ ॥ इहाप्यवश्यमेव्यति विधेयान्स्वयंवर । न केनचिद्विरोधो  
यमिति तद्वचनधृतेः ॥ २०६ ॥ वसतेऽन्वीकरद्राजा स स्वयंमंडप । तेन सर्वमहीपालाः सप्रापन् पांडवेषु च ॥ २०७ ॥ भीमस्य भोजनार्ह्यगजस्य क-  
स्तर्जनेनात् । पार्थस्य मत्स्यनिर्मैदाच्चापरोपणसाहसात् ॥ २०८ ॥ नारदागमनाच्चापि लक्ष्यमाणेषु निश्चित । समागतेषु सत्स्वईन्महापूजापुस्तमैः ॥ २०९ ॥  
प्रविश्य भूयिता रक्षै सा स्वयंवरमंडप । भूमिपान् जलरूपादिगुणै सिद्धार्थनामनि ॥ २१० ॥ पुरोधसि कर्मात्मर्व न कश्चल्यविलक्ष्यतान् । कन्या सभाय  
यामास्य मालयेज्वल्यार्जुन ॥ २११ ॥ द्रुपदाद्युग्रवज्रोत्था महीशाः कुरुवज्राः । अन्येपि चानुरुलोयमिति तुष्टिं समागमन् ॥ २१२ ॥ एव सप्राप्तकल्या  
ना' प्रविश्य पु मात्मन । गमयति स्म सौहृदेन काल दीर्घमिव क्षण ॥ २१३ ॥ ततः पार्थातुष्टुगद्वायामभिमन्युरभूत्तुतः । द्रोण्यां पंच पञ्चालनामानोन्व-

में निपुण बना कर कंटकरहित राज्य समर्पण किया है इसलिये प्रेमपूर्वक उसे देना चाहिये । यह सुन कर अन्य मंत्रीने  
कहा कि इस बातको सुनकर भी लोग विरोध करेंगे इसलिये स्वयंवर करना ही ठीक है, क्योंकि स्वयंवर करने किंसीका  
विरोध नहीं होगा । मंत्रियोंकी ये सब बातें सुनकर राजाने वसंत ऋतुमें स्वयंवर मंडप बनवाया और उसमें सब राजा  
लोग आए । इधर पांडव लोग जो परदेश चले गये थे उनमेंसे भीम तो भोजनके बन्धाने और गंधगजको हाथसे ही ताड़न  
करनेसे प्रसिद्ध हुआ, अर्जुन मत्स्यभेद करने और धनुष चढ़ानेके साहससे प्रसिद्ध हुआ तथा नारदके आनेसे सभी प्रसिद्ध-  
हुए और सभी स्वयंवरमंडप में जा विराजमान हुए । तदनंतर भगवान् अरुहंतदेवकी पूजा कर तथा रत्नादिकोके आभू-  
षण और वस्त्र आदिसे विभूषित होकर वह द्रौपदी स्वयंवरमंडपमें आई । सिद्धार्थ नामका पुरोहित अर्जुनसे सब रा-  
जाओंके कुल रूप आदि गुणवर्णन करने लगा परंतु उस कन्याने सबको छोड़कर उज्जल मालाके द्वारा अर्जुनको अपना  
पति बनाया ॥ २०१-२११ ॥ यह देख कर द्रुपद आदि उग्रवर्णों उत्पन्न हुए राजा कुरुवंशी तथा और भी अनेक राजा  
कहने लगे कि कन्यके योग्य ही वर मिला है इस तरह संतुष्ट होकर सब अपने अपने घरको चले गये ॥ ११२ ॥ इस  
प्रकार अनेक कल्याणोंको प्राप्त होकर वे पांडव अपने नगरमें गये और सुखपूर्वक बड़े लंबे समयको भी क्षणभरके समान  
व्यतीत करने लगे ॥ २१३ ॥ तदनंतर अर्जुनके सुभद्रासे अभिमन्यु नामका पुत्र हुआ और द्रौपदीसे अर्जुनपुत्र पंचाल  
आदि पांच पुत्र हुए ॥ २१४ ॥ किसी एक दिन राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके साथ जूआ खेला जूआमें वे सब हार  
गये और नगर छोड़कर छिप कर विराटके राजाके यहां सेवक बन कर रह गये वहां पर भीमने युजंगशैल नगरमें

क्षत्रचक्रपुरस्सरः । पादयोः पुं पथासतोः सप्तसि पृथक् ॥ १३२ ॥ कृतशोभो अगमार्थद्वयप्रतिहार्यकः । महन्मार्गगताशेषपुरलेचसेवि-  
त ॥ १३३ ॥ पृथ्वीपथप्रवृत्तान्यविनेयैर्बनतानुगः । पवनमरतिर्भूतिधूलीकटकभूतलः ॥ १३४ ॥ मेघामरकुमारोपसिक्तगर्वांशुसत्सति । इत्या-  
द्याथ्यसंपन्नः सर्वप्राप्तिमनोहरः ॥ १३५ ॥ धर्ममृतमयी वृष्टिमभिर्विवन् जिन्श्वर । विश्वन् देशन् विह्वलायामदेभ पक्षमाङ्गं ॥ १३६ ॥ अत्र प. ३  
तनुजानां प्रपचोत्थः प्रभाष्यते । अथविस्तारसीरुणामायुर्नैधानुरोधत ॥ १३७ ॥ कणित्वायां घरायीत्रो नगरे डडाह्वयः । देवी हठरथा तस्य द्रौपदी  
तनया तयोः ॥ १३८ ॥ स्त्रीगुणैः सकलैः शस्या भूय भुवनप्रिया । तत्पूर्णैवना वीक्ष्य पित्रा कस्यै मय्यता ॥ १३९ ॥ इय कन्येति सपृष्टा मन्त्रिणो  
मन्त्रिचर्चया । प्रभाषत प्रचन्द्यै पाद्वैभ्यः प्रतीयता ॥ २०० ॥ एतन् सहजशत्रुत्वाद् दुर्योधनमहीवति । पादुपुत्रानुपायेन लाक्षालयमवीविशत् ॥  
२०१ ॥ हेतुं त तेपि विज्ञाय स्वपुण्यपरिचोदितः । प्रवृत्ता पदसि क्षमाजस्यार्घत्तात्कल्पिप स्वय ॥ २०२ ॥ अपहृत्य सुरगोपातेन देशातरं ग-

पीछे अलग अलग सात सात कमलोंसे उन त्रिलोकीनाथकी निराली ही शोभा हो रही थी चमर छत्र आदि प्रातिहार्य  
अलग शोभा दे रहे थे, सब देव विद्यावर उनकी सेवा करते हुए आकाश मार्गसे जा रहे थे । उनके साथ साथ ही पृथ्वी-  
परके मार्गसे अन्य शिष्य लोग जा रहे थे, उस समय वायु कुमारके देवोंने भी धूली कंटक साफ कर पृथ्वी साफ कर  
दी थी और मेघकुमारके देवोंने पृथ्वी पर गंधोदक सींच दिया था । इस प्रकार अनेक आश्चर्योंसे भरपूर, सब प्राणियों  
को मनोहर और धर्मरूपी अमृतकी वर्षा बरसाते हुए वे भगवान नेमिनाथ सब देशोंमें बिहार कर पल्लवनामके देवों जा  
विराजमान हुए ॥ १६१-१६६ ॥ यहा पर समय पाकर ग्रंथके विस्तारसे इरनेवाले मनुष्योंकी आयु और बुद्धिके अनु-  
सार पांडुओंकी भी थोड़ी सी कथा लिख देते हैं ॥ १६७ ॥ कंपिला नगरीमें राजा द्रुपद राज्य करता था उसकी दृढ-  
रथा देवीसे द्रौपदी नामकी पुत्री हुई थी ॥ १६८ ॥ वह द्रौपदी स्त्रीमें होने वाले सबगुणोंसे प्रशंसनीय थी और सबको  
प्यारी थी । उसे पूर्ण यौवनांगी देखकर राजाने मंत्रचर्चिके द्वारा मंत्रियोंसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये ।  
सब एक मंत्री कहने लगा कि पांडव बड़े बलवान हैं उन्हें देनी चाहिये ॥ १६९-२०० ॥ यह सुन कर दूसरा मंत्री कह-  
ने लगा कि दुर्योधन पांडवोंका स्वाभाविक शत्रु है, उसने अपने उपायसे सब पांडवोंको लाक्षासहस्रमें घुसा दिया था  
परंतु पुत्रयवान् पांडव इसका हेतु जान गये थे और जलमें खड़े हुए एक वृत्तके नीचे रहने वाले किल्बिष नामके राजास  
को स्वयं मार कर सुरंगके रास्तेसे भागकर देशांतरको चले गये थे- इस प्रकार पांडवोंके कुटुंब परिवार आदिकोंका दुःख  
भी नष्ट नहीं हुआ है । इधर पौन्दनपुर नगरके राजा चंद्रवत्सके रानी देविलासे इन्द्रवर्मा नामका पुत्र है, उसे राजाने संकलगुणों

१८० ॥ विष्णोर्ज्ञात्कुम्भ, रेण गन्धनरपतिर्भवेत् । म एष प्रथमा पृथ्वी प्रविश्यात्-गुणमयुष ॥ १८१ ॥ प्राते तस्माद्विनिर्गम्य तीर्थं गोत्र भविष्यति । त्वम  
त्येनद्रिगेन वषमासकृन्मशोचन ॥ १८२ ॥ सिद्धार्थं सुनोवन, पास्तान्निहलदु खकः । दीक्षायादाय माहेंद्रकल्पे देवो जनिष्यते ॥ १८३ ॥ उक्त्यु  
त्तिथिस्तत्र मुक्तमोगोत्र तीर्थं कृत् । भूत्वा निर्दग्धार्त्तमिदं मुक्तो भविष्यति ॥ १८४ ॥ इति तीर्थयिना ग्रीक शुभवा द्वीपायनाह्वयः । सयः संयममादाय  
प्रायाज्जनपदांतर ॥ १८५ ॥ तथा जरत्कुमारश्च कैशावर्ण्यमाश्रयत् । प्राग्मद्वारकायुष्यो हरिश्च सदर्शनः ॥ १८६ ॥ भाव्यमानात्पनामासा नाह शक्नो  
मि वीक्षितु । शक्य प्रविधवासीत्याख्यो बालमगोपयत् ॥ १८७ ॥ प्रद्युम्नादिमुना देव्यो हस्तिनयाद्याश्च चक्रिण । ब्रूथापृच्छ्य तं मुक्ताः प्रत्यपयंत सयम ॥  
१८८ ॥ द्वीपायननिदानानमाने जाववतीसुत । अनिरुद्धश्च कामस्य सुनः सुप्राप्य सयम ॥ १८९ ॥ प्रद्युम्नमुनिना मार्दमूजयताचलाग्रिम । कूटत्रय  
समावृष्ट प्रतिमायोगवारिण ॥ १९० ॥ शुक्लश्च न समापूर्य नयस्ते घातिवातिनः । कैमल्यनवंक प्राप्य प्रापन्मुक्तिमथान्यदा ॥ १९१ ॥ पुण्यघोषणकुम्भ-

आयु पाकर पहिले नरकमें नारकी होगा और आयु पूरी होने पर वहांसे निकल कर इसी भरतजैवमें तीर्थकर होगा ।  
तू भी कृष्णके वियोगसे छह महीने तक शोक करेगा और फिर सिद्धार्थ देवके द्वारा समझाए जाने पर सब दुःखोंको  
दूर कर दीक्षा लेकर चौथे माहेंद्र स्वर्गमें देव होगा ॥ १८०-१८३ ॥ पहां पर सात सागरकी आयु पाकर भोगोंका  
अनुभव कर इसी भरतजैवमें तीर्थकर होगा और कर्मरूप शत्रुओंको नष्ट कर वहींसे मुक्त होगा ॥ १८४ ॥ श्रीतीर्थकरका  
यह उपदेश सुनकर द्वीपायन तो उसी समय दीक्षा लेकर दूसरे देशमें चला गया, तथा जरत्कुमार कौशांबी वनमें चला  
गया । जिन्होंने पहिलेही नरककी आयु बांध ली है और फिर सम्यग्दर्शन धारण किया है, ऐसे कृष्णने अंतिम तीर्थकर  
नाम कर्मकी कारण सोलह कारण भावनाओंका चितवन कर स्त्री बालक आदि सबके लिये यह घोषणा कर दी कि मैं  
तो दीक्षा ले नहीं सकता परंतु जो दीक्षा ले सकते हैं उन्हें मैं रोकता भी नहीं जो चाहे सो दीक्षा ले ले ॥ १८५-१८८ ॥  
यह सुनकर प्रद्युम्न आदि राजपुत्रोंने तथा रुक्मिणी आदि देवियोंने दीक्षाके लिये कृष्ण और भाई बंधुओंसे पूछा, सब  
ने उन्हें आज्ञा देदी और इसप्रकार उन्होंने दीक्षा धारण कर ली ॥ ८८ ॥ द्वीपायनके निदान करते समय जाववतीके  
पुत्र शंभुवने तथा कामदेवके पुत्र अनिरुद्धने भी दीक्षा धारण करली और प्रद्युम्न मुनिके साथ गिरनार पर्वतके ऊंचे तीनों  
कुओं पर क्रिजमान होकर प्रतिभा योग धारण किया ॥ १८९-१९० ॥ उन तीनोंने शुद्ध्यान धारण कर घातिया  
कर्म नष्ट किये और फिर नौ केवल लब्धियोंको पाकर वे मुक्त हुए । अथानंतर किसी दूसरे दिन भगवान् नेमिनाथने  
वहांसे विहार किया, उनके पुण्योदयसे यज्ञ धर्मचक्रको लेकर आगे चलता था, उनके पैर रखनेकी जगह तथा आगे



रमन् पति । यथास्वात्तसमुपतिः स्वास्वात्तादगवाचत ॥ १७१ ॥ तच्छ्रुत्वा रुक्मिणी चाह कामं प्राप्नुवती यथा । लप्स्यते तेजुर्न प्राच्यं तथा कुर्विति  
सादर ॥ १७२ ॥ सोध्यदान्मुद्रिको कामरूपिणीं तामवाप्य सा । सत्यभामाकृतिं गत्वा पतिसंयोगतः सुत ॥ १७३ ॥ क्रीडावं जांववत्याप तातवाह्यदि-  
वद्व्युतं ॥ सुभानु सत्यभामा च जातमत्सरयोस्तयोः ॥ १७४ ॥ गांधर्वदिबिवायेषु सुभानु शंभवोजयत् । सर्वत्र पूर्वपुण्याना विजयो नैव दुर्लभ ॥ १७५ ॥  
रुक्मिणी सत्यभामा च गतमात्सर्यवचने । परस्परगतौ प्रीतिमन्वभूतामत परं ॥ १७६ ॥ इत्यशेष गणेशोक्तमाकर्ष्य सकल सदः । ननाम मुकुलीभूतका-  
राब्जं तत्कमान्जयो ॥ १७७ ॥ अथान्यदा जिन नेमिं सीरपाणि कृतां ब्रलि । अवनम्यान्वयुक्तेवं हसिन्नेहस्तमानसः ॥ १७८ ॥ भगवन् बाहुदेवस्य  
राज्यं प्रज्यमहोदयं । प्रवर्तते प्रतीतं मे ब्रुहीतीदं किम्विचरं ॥ १७९ ॥ भद्र द्वादशवर्णते नखेनमयनिमित्तकं । द्वीपायनेन निर्मलमिव द्वारावती पुरी ॥  
सवने सुना किं प्रद्युम्नका पहिले जन्मका छोटा भाई स्वर्गसे आकर कृष्णका पुत्र होगा । यह सुनते ही सत्यभामाने  
अपने पतिसे याचना की कि जिस तरह यह पुत्र मेरे ही उत्पन्न हो वही उपाय करना चाहिये ॥ १७०-१७१ ॥ सत्य-  
भामाकी यह बात सुनकर रुक्मिणी प्रद्युम्नसे सदा कहने लगी कि जिस तरह हो तेरे पहिले भवके छोटे भाईका जीव  
जांववतीके पुत्र हो ऐसा उपाय कर ॥ १७२ ॥ माताकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने जांववतीका अपनी कामरूपिणी अं-  
गूठी दी जिससे वह सत्यभामाका रूप बना कर पतिके पास गई और पतिके संयोगसे उसने लातंव स्वर्गसे च्युत हुए  
क्रीडावके जीवको धारण किया, तथा शंभव वा जांव नामका पुत्र हुआ । इधर सत्यभामाके सुभानु नामका पुत्र हुआ  
सुभानु और शंभव ये दोनों भी परस्पर ईर्ष्या करने लगे और गांधर्व आदि विवादोंमें शंभवने सुभानुको जीता, सो डीक  
ही है क्योंकि जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुराय कर्माका उपार्जन किया है उनकी सब जगह जीत होना कुछ भी कठिन नहीं है ॥  
१७३-१७४ ॥ तदनंतर रुक्मिणी और सत्यभामाने परस्परकी ईर्ष्या छोड़ दी और फिर उसके बाद वे दोनों परस्परके  
प्रेमको अनुभव करने लगीं ॥ १७६ ॥ इस प्रकार गणेशदेवके कहे हुए सब चारित्रको सुनकर सब सभा हाथ जोड़कर  
उनके चरणकमलोंको नमस्कार करने लगी ॥ १७७ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन कृष्णके स्नेहसे जिनका चित्त भीग  
रहा है ऐसे बलदेवने श्रीनिमिनाथको नमस्कार कर इस तरह पूछा कि हे भगवन् कृष्णका जो यह बड़ी भारी त्रिभूति  
और पेश्वर्यसे भरा हुआ राज्य है वह इसी प्रकार कितने दिन तक चलता रहेगा, हे प्रभो ! यह सुके वतला दीजिये  
॥ १७८-१७९ ॥ तत्र भगवान् कहने लगे कि हे भद्र बारहवर्ष बाद मद्यके निमित्तसे यह राज्य नष्ट हो जायगा, द्वीपा-  
यनके द्वारा यह द्वारावती नगरी भस्म हो जायगी, जरखुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु होगी । तथा मरकर वह एक सागरकी

पितृ विकारणामगरोदाकरं पुनः । आगनाथ व्यधाद् भृत्यान् गोपुरेध स्थिताननान् ॥ १६० ॥ वागुदेवस्य त्प्रेणातजंयन्न विद्वानं । वीर्यं कृतस्वागा-  
देन जगद्गर्ह्यं च संहरं ॥ १६१ ॥ मेघरूपेण सगत्या पातयत्सपितामह । हलिन च हरिर्भूला निगीर्यत्वमद्वयता ॥ १६२ ॥ गलात्र मुग्धमास्व वेत्याभि-  
धाय स्वविधया । रुक्मिणीरूपाभावात् निर्विजोषं मनोहरं ॥ १६३ ॥ विमाने स्थपयित्वाष्टु गन्धर्व स सवलं हरिं । प्रामवतं ममाद्वुम कालिद्रुमोपप ॥  
१६४ ॥ जित्वा नरेन्द्रं च लब्धविद्याविहितमायया । तस्यैव निःप्रतिपक्षं गन् वीक्षणाभीलविप्रहः ॥ १६५ ॥ नारदः स तद्गम्य तन्मृगस्यावधीभण । युग-  
शीरीदृश लब्धप्रविद्यारोप्यभ्यर्चयन् ॥ १६६ ॥ सोऽपि प्रकटितान्मीयरूपं पञ्चशरावल । हरिं च स्वशिरोन्यस्ततः कपाटनोत्थमानयत् ॥ १६७ ॥ ततश्चक्र  
प्रगेतवा प्रेमामितितदिप्रदः । आरोप्य स्वगजस्कन्धं प्रहृष्टः प्राविशतुरं ॥ १६८ ॥ सत्यभामामयुजं विष्टकन्यकामि सह स्मरः । कलगाणाभिप्रायं दिश्या मंप्रा  
पस्वर्वसमतः ॥ १६९ ॥ एव प्रप्राति कालेस्य स्वर्गादागम्य रुच्यन् । तनूजः कामयोद्यों हरे प्राच्यो भविष्यति ॥ १७० ॥ इत्यादेश समाकर्ण्य सत्यभा

जो सैवक आये थे उन्हें नगरेके बड़े दरवाजेपर नीचेनी ओर मुख कर लटका दिया ॥ १६० ॥ फिर वागुदेवका, रूप धारण कर उन सेवकों की अनेक तरहसे ताडना की । तदनंतर अत्यंत बूढ़का रूप बनाकर गलीमें सो रहा और बलभद्रके जगानेपर विद्यासे अपने पैर लंबे कर उनको ठगा । फिर भेषका ( भेडाका ) रूप बना कर वाया बसुदेवका बौद्ध तोडा और सिंह बनकर बलभद्रको निगलकर अदृश्य कर दिया ॥ १६१-१६२ ॥ इसके बाद वह फिर माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि तू यहां ही सुखसे ठहरना । इसतरह कहकर उसने अपनी विद्यासे रुक्मिणीका वैसाही मनोहर रूप बनाया और उसे विमानमें बिठाकर शीघ्र ही कृष्णके समीप पहुंचा और कहने लगा कि मैं तेरी स्त्रीको हरले जाता हूं यदि सामर्थ्य हो तो छुडा । उसकी यह बात सुनकर समयानुसार यमके समान कृष्ण अपनी सब सेना लेकर आए परंतु भीलका रूप धारण करने वाला मद्युम्न मायापयी नरेन्द्रजाल विद्यासे सबको जीत कर शत्रु रहित होकर अर्थात् सब शत्रुओं को नष्ट कर खडा रहा ॥ १६३-१६५ ॥ इतनेमेंही नारद कृष्णके समीप आकर बैठ गये और कहने लगे कि जिसने अनेक विद्याएं प्राप्त की हैं ऐसे पुत्रको तुम दोनों इसतरह देख रहे हो ॥ ६६ ॥ उसी समय मद्युम्नने भी अपना रूप प्रगट कर और पिताके चरण कमलोंको अपने मस्तक पर धारण कर उनका बहुत ही आदर सत्कार किया ॥ १६७ ॥ तदनंतर जिसका शरीर प्रेमसे आलिंगन हो रहा है ऐसे मद्युम्नको कृष्णने हाथी पर बिठाया और बड़ी प्रसन्नताके साथ नगरमें प्रवेश कराया ॥ १६८ ॥ फिर मद्युम्नने अपने पुरोयोदयसे भानुकुमारके लिये जो कन्याएं आई थी उनके साथ सबकी सम्मतिसे विवाह किया ॥ १६९ ॥ इस प्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन

व्यवसयीक्य सा । कलात्मिकोक्तिः काष्ठापवाचालित्वनातरे ॥ १४९ ॥ तदा विस्मयमापन्ना मुखा पप्रच्छ किं भवान् । भद्रोऽसौ मत्सुनो नारदोक्तकान्ते स मागतः ॥ १५० ॥ इति तस्या परिश्रेष्ठे स्वरूप सप्रकाशयन् । कृत्वा शिरसि तत्पादनलक्ष्मीवित्तमवती । १५१ ॥ अभिवाय स्वधृतातमशेष परिबोधय-  
त् । जननी सह मनुष्यतया तदभिवाञ्छितैः ॥ १५२ ॥ बालक्रीडाविशेष्यता परा प्रीतिमवापयन् । प्रायजन्मोपाजितार्पूर्वपुण्ये देय इव स्थितः ॥ १५३ ॥  
तदा नापितक्तः कोपि रुक्मिणी समुपागतः । हरिप्रभ्रातृवृत्तौ विद्याय विनयभरात् ॥ १५४ ॥ मुनीश्वराद्योऽप्येसा प्रायजन्मोपाजितार्पूर्वपुण्ये देय इव स्थितः ॥ १५५ ॥  
तस्यैव विवाहेण वृत्तमित्यवधीद । किमेतदिति सपृष्टा कामेन तत्र जन्मना ॥ १५६ ॥ सम भानुष्व संज तत्सदावाभ्यां युवां हरे । नीता दर्शयि-  
मुने तस्मिन्स्व पादसन्निधौ ॥ १५७ ॥ स्थापितः स शिरोभागे प्रभुष्य त्वा पुरो हरि । श्लोक्य ज्येष्ठता तेऽदाहिनि माताभ्यभासत ॥ १५८ ॥ स जा-  
रहे ह ॥ १५९ ॥ उन्नें देखकर रुक्मिणीको बहुत आश्चर्य हुआ और वह प्रसन्न चित्त होकर पूछने लगी क्या आप मेरे पुत्र हैं और नारदके कहे अनुसार ठीक समय पर आए हैं । माता की यह बात सुन कर मद्युञ्जने अपना रूप प्रगट किया और माताके चरणोंमें मस्तक नवाकर उसके चरणोंके नखोंकी कांति रूपी मंजरीको अपने मस्तक पर चढ़ाया ॥ १५०-१५१ ॥ तदनंतर मद्युञ्जने अपना सब हाल कहकर माताको समझाया और माताके साथ बहुत संतुष्ट हुआ । फिर माताकी इच्छानुसार अनेक तरहकी बालक्रीडाएं कर माताको बहुत ही संतुष्ट किया और पहिले जन्ममें कमाए हुए अपूर्व पुरयकर्मके उदयके समान वह वहीं ठहरा रहा ॥ १५२-१५३ ॥ इतनेमें ही रुक्मिणीके समीप एक नई आया और इसप्रकार कहनेलगा कि श्रीकृष्णके प्रश्न करने पर श्री विनयंभर मुनिराजसे सत्यभाषा और तुम दोनोंने अपने पुत्रकी उत्पत्ति जान परस्पर शर्त बंदी थी कि जिसके पहिले पुत्र होगा वह पुत्र विवाहके समय दूसरीके शिरके बालोंपर बैठकर स्नान करेगा इसलिये हे देवी उस बातको स्मरणकर भानुकुमारके स्नानके लिये आप अपने मस्तकके केश दें यही कहकर आज विवाहके दिन सत्यभामाने झुंके आपके समीप मेजा है । उस नाईकी यह बात सुनकर मद्युञ्जने मातासे पूछा कि यह क्या बात है । तब माता कहने लगी कि तेरे जन्मके साथही भानुकुमारका जन्म हुआ था तब हम दोनोंने ( मैंने और सत्यभामाने ) कृष्ण को दिखानेके लिये तुम दोनोंको उनके समीप मेजा था । कृष्ण उस समय सो रहे थे इसलिये तू तो उनके पैरोंकी ओर मुला दिया था और भानुकुमारको शिरकी ओर मुलाया था । कृष्णने उठतेही पहिले तू देखा इसलिये तुझे ही बहा माना था ॥ १५४-१५५ ॥ इसवरह माताकी बात सुनकर मद्युञ्जने उस नाईके अनेक बिकार किये तथा उसके साथमें

कोदंडहस्तो व्याघ्राकृतिं द्रष्टुं । तेषां कदंबेन कृत्वा नागा द्वारवतीमिति ॥ १३८ ॥ विद्याय विद्याया प्राग्वक्षारवं स्थानस्थितं । एकाक्षी स्वयमागच्छ वि-  
द्यायाः आनुगाकृतिः ॥ १३९ ॥ बभञ्ज सत्यभामाया नन्दनं बाबनं वनं । तत्पाननापीनिःशेषञ्चरुपूर्णकमण्डलः ॥ १४० ॥ ततो गत्वांतरं किंचित्स्थानेनोरमि रा-  
सभान् । विपर्यासं समाजोऽयं मयाकरुणहरः स्मर- ॥ १४१ ॥ पुरगोपुरतिर्याप्पप्रवेशनगतान् जनान् । सप्रहासान् समापण्य प्रविश्य नगरं पुन- ॥ १४२ ॥  
आलोक्य वैश्वेकेण संप्रत्येयं स्वविद्याया । विच्छिन्नकर्णसंभानवेदित्वाहिं प्रचोषयन् ॥ १४३ ॥ प्राप्य भानुकुमाराय दातुमानीतकृत्यका । तत्राविर्भावित-  
नेकधाहास्यशुद्धिजाकृतिः ॥ १४४ ॥ सत्यभामागृहं गत्वा भोजनान्नसरे द्विजान् । विप्रकृत्य स्वपाद्वर्गेन भुक्त्वा स्वीकृतदक्षिणं ॥ १४५ ॥ ततः शुभ्रकवे-  
केण समुपेत्य स्वमातरं । बुभुक्षितोऽहं सदृष्टे सम्भ्रमभोजय मामिति ॥ १४६ ॥ सप्राथम्यं विविधाहासान् भुक्त्वा दातुममनं सव न् । कुष्ठं मे देवि सदासमि-  
ति व्याकुलतां नयन् ॥ १४७ ॥ तद्वितीर्णमहाभोदकोपयोगास्तुष्टुमवान् । ईषच्छातमनस्तत्र कुलं समुपविष्टवान् ॥ १४८ ॥ अकाले चपकाशोकपुष्पा-

विद्यासे नारदको तो रथमें ही रोक दिया और बंदरकारूप धारणकर अकेला ही नीचे आया ॥ १३९ ॥ आते ही सत्य-  
भामाका बावन नामका बहुत सुंदर बाग उजाड़ डाला और उसमेंकी बावडीका सब जल एक कमंडलुमें भरलिया ॥ १४० ॥  
तदनंतर थोड़ी दूर जाकर उसने अपने रथमें उलटे गये जोते इसतरह मायामयी रूप धारणकर वह पृथुयुन्न नगरके दरवा-  
जेपर पहुंचा वहांपर जाने लोगोंको सब हंसाया और फिर नगरके भीतर गया ॥ १४१-१४२ ॥ अपनी विद्यासे  
उसने वैद्यका रूप बनाया और घोषणा करने लगा कि मैं छिंदे हुए कानोंको जोड़ देता हूं तथा और भी ऐसे ही अनेक  
काम करना जानता हूं ॥ १४३ ॥ उसके बाद भानुकुमारके लिये जो कन्या लेकर आए थे उनके यहां पहुंचा और उ-  
नकी अनेक तरहसे हंसी की । फिर ब्राह्मणका रूप बनाकर सत्यभामाके घर पहुंचा वहां पर ब्राह्मणलोग भोजन करने  
के लिये तैयार थे इस लिये उसने उन्हें तो अपनी धृष्टतासे बाहर कर दिया और आप भोजन कर दक्षिणा लेकर चल-  
बना ॥ १४४-१४५ ॥ तदनंतर जुष्टकका रूप धारण कर अपनी माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि हे सम्यग्द-  
र्शनको पालन करनेवाली मैं भूखा हूं मुझे अच्छी तरह भोजन करा ॥ १४६ ॥ इस तरह प्रार्थना कर उसके दिए हुए  
अनेक तरहके भोजन खाये परंतु वह दास नहीं हुआ । तब फिर कहने लगा कि हे देवी मेरा पेट<sup>ज</sup> भर मुझे संतुष्ट करो  
इस तरह कह कर कुछ देरके लिये उसे व्याकुल कर दिया और फिर उसका दिया हुआ एक महाभोदक स्वाकर संतुष्ट  
हुआ । इस तरह कुछ शांतचित होकर सुखपूर्वक वहां बैठ गया ॥ १४७-१४८ ॥ उसी समय रुक्मिणीने देखा कि अस-  
मयमें ही चंपा अशोक आदिके सब फूल गये हैं और अमर कोकिल आदि जानवर बागमें भीठे भीठे शब्द बोल

पराभव ॥ १२६ ॥ अथान्न नारद क्षामचारिण नमस्तस्मात् । आगच्छत निश्चयानं हरिमुज्ज्वलोकन ॥ १२७ ॥ यथाविधि प्रतीक्ष्यैनमभ्युत्थानपुरंदर । कृतपंथापणस्तेन प्रणीत तमप्रबंधः ॥ १२८ ॥ ममक श्रद्धया तस्मै प्रष्टोस्त्रिवलागम । इन्द्र स्वविस्मयस्तबद्धं तं मनरोधिषु ॥ १२९ ॥ सहस्रान्वेष्टेवार्कं आद्रुमोदजालक । कालसम्भवमुखं तत्स युध्वा भगमागयन् ॥ १३० ॥ तत्सूनुहृन्मृनात बोधयित्वा क्षणाधिप । अपनीय शिला नागयात्राथिता न व्यगसयत् ॥ १३१ ॥ नारदागमहेतुं च क्षापयित्वा स चित्तरं । आपृच्छाद्यनुमत्तेन रथ यूनभनभक्तं ॥ १३२ ॥ नारदेन समारुप प्रायद् द्व रावती प्रति । स्वपूर्वभववयम श्रुवस्तेन निरूपित ॥ १३३ ॥ हस्तिन नगपुरं प्राप्य दुर्योधनभहीभूतः । जश्चेथ सुतां कन्या मान्यामुदधिमहाया ॥ १३४ ॥ दातुं भातुकुमारान् तां महाभिमनोत्सवा । विधीयमान वीक्ष्यत्वा रथे पत्नगमिया ॥ १३५ ॥ नारद शिलगच्छाम्य नस्माद्रुसीय भूतल । बहुप्रकाशं ह्रासना तत्र कृत्वा ततो गतः ॥ १३६ ॥ मधुराया वह्निर्गमे पांडवान् स्वप्रिया सुता । प्रदत्तसूनु गच्छतो भक्तुमारगासिनीक्ष्य मः ॥ १३७ ॥ समारोपिन

विधिमूर्क उनका आदर सत्कार किया । उनके साथ बात चीत की और नारदने अपना तथा प्रद्यून्नहा मय हाल बतलाया ॥ १२८ ॥ उसे सुनकर और उसपर विश्वास कर प्रद्यून्न बहुत संतुष्ट हुआ और शत्रुकी सेनाके अनेकी प्रतीक्षा करता हुआ नारदके समीप बैठ गया । इतनेहीमें कालसंभव पिताधर की सेनाने अकस्मात् आकर उभयकार धोर लिया मानों बर्षाश्रुके वाजलने मूर्यको ही दूक लिया हो । कालसंभव आदि मुख्य २ योद्धा लड़ने लगे परंतु प्रद्यून्नसे सब हार गये ॥ १२९-१३० ॥ तदनंतर प्रद्यून्नने कालसंभव पिताधरसे विद्यूदंष्ट्र आदि सब भाइयोंके दुआरित्र गुनाह, शिलाको हटाकर सबको नागपासे छुड़ाया और नारदके अनेका सन हाल सविस्तर समझाया । तदनंतर पिता कात्तान्भवकी आज्ञानुसार वह दारिकाको चलनेको तैयार हुआ और नारदके साथ दृगध नार्यके रथपर सवार होकर दारिकाको निकला । नारद उसके पहिले भव कह रहे थे उन्हें सुनता हुआ वह राजा दुर्योधनके हस्तिनापुर नगरमें जा पहुंचा । वहांपर दुर्योधनकी जलधि नापकी रानीसे उत्पन्न हुई उदधि नापकी सुंदर कन्याको भातुकुमारको देनेकेलिये महाभियंक्र और उत्सव हो रहा था । उसे देखकर उसने पुनर विद्यसे नारदको तो एक शिलासे रथपर ही दूक दिया और वहासे पृथ्वीपर उतरा । वहापर उन लोगोंकी अनेक तरहसे हंसी की और फिर वहांसे भी आगे चला ॥ १३१-१३६ ॥ चलते चलते वह मथुरा नगरके बाहर पहुंचा, वहांपर पांडव लोग प्रिय कन्याको भातुकुमारको देनेकेलिये जा रहे थे उन्हें देखकर वह उनके समीप आया उसने दुर्योधनमें धतुप लेकर भीलका रूप धारण किया और फिर अच्छी तरह कई प्रकार से उनका तिरस्कार किया वहांसे चलकर वह दारिका पहुंचा ॥ १३७-१३८ ॥ वहांपर पहिलेके अनुसार उसीप्रकार

तौ सम तर्कं त्रितेरुः । कपनेन कपित्वाक्षिपस्यास पादुकादयः ॥ ११७ ॥ तेनानर्थं नमोगामि देवतायास्तदाश्रितः । सुवर्णककुमे पंचफणाहिपतिनपिता ॥  
११८ ॥ तपनस्तापनो मोहनामिषानो विक्रापन । मारणशेति पचैतान् शरान् सत्राप्य पुण्यभाक् ॥ ११९ ॥ मालिभौपदिमाला च छत्र नामययुमक ।  
दत्त क्षीरवने मर्कटनास्मै परितोषिणा ॥ १२० ॥ कदवकमुखीवाप्या नागपाणमवाप्नुवान् । अस्य इदंरसोढार सर्वे ते स्वगसुनव ॥ १२१ ॥ यः पाताल-  
मुखीवाप्या पतत्स सकलेश्वरः । भवेद्विलंबदन्कमोप्यवगम्य तर्दिगित ॥ १२२ ॥ प्रक्षप्ति निजरूपेण तस्या वाप्यामयीपतत् । स्वय पाक्षे सिराधाय स्वरूप  
नयवित् स्थितः ॥ १२३ ॥ महाशिलाभिस्तै सर्वविधेय बधवात्सल । निरिला कोपसतसो विथुहंष्टादिविद्विष ॥ १२४ ॥ गाढ पाशेन कवाधोमुख न्  
प्रक्षिप्य तत्र स । कृत्वा शिलापिधान च ग्रहिल्य नगरं प्रति ॥ १२५ ॥ ज्योतिःप्रभ कनीयांस तेष्वक्रम्य शिला स्थित । पापिनो हि स्वपापेन प्राप्नुवति

नीचे पहुंचा और उसे खूब हिलाया । उसपर एक देव रहता था उसने तुरंत ही आकर आकाशमें लेजाने वाली बहु-  
मूल्य दो चरणपादुकाएं ( खडाऊं ) दी । वहांसे चलकर एक अर्जुनवृक्षके नीचे आया और वहापर रहनेवाले पांच फणा  
वाले नागपति देवसे तपन तापन मोहन विलापन और मारण ये कामके पांच वाण उस पुरायवानको प्राप्त हुए ॥ ११२-  
११६ ॥ वहांसे चलकर वह प्रद्युम्न क्षीरवनमें गया वहांके मर्कट देवने संतुष्ट होकर मौलि, औषधियाला, छत्र और दो  
चमर दिये ॥ १२० ॥ तदनंतर वह कदंबकमुखी वाधडीमें गया और वहांके देवसे एक नागपाश प्राप्त किया । इसतरह  
प्रद्युम्नकी वृद्धि देखकर विद्युहंष्ट्र आदि सब विद्याधर दुःखी हुए और कहने लगे कि जो कोई इस पातालमुखी नामकी  
बावडीमें कूद पड़ेगा वह सब संसारका स्वामी हो जायगा । प्रद्युम्नने उनकी यह बात सुनकर उनके सब अभिप्राय जान  
लिये और प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको अपना रूप बनाकर उस बावडीमें कूदा दिया तथा उनका सब अभिप्राय जाननेके  
लिये नयोंको जानने वाला वह प्रद्युम्न सभीप ही जाकर छिप रहा ॥ १२१-१२३ ॥ प्रज्ञप्तिविद्याके कूद पड़ने पर  
प्रद्युम्नको मारनेके लिये उन विद्युहंष्ट्र आदि विद्याधरोंने बड़े बड़े पत्थर मारना प्रारंभ किया, उनके इस कामको देख  
कर प्रद्युम्नको क्रोध आया और उन सबको नागपाणसे जकडकर बांध लिया, उन सबका नीचे को मुखकर उलटा दांग  
दिया और ऊपरसे एक बड़ी शिला ढाकदी । उन विद्याधरोंमेंसे ज्योतिषम नामका सबसे छोटा पुत्र था उसे उसने  
समाचार देनेके लिये नगरमें भेज दिया और आप उस शिला पर बैठ गया सो ठीक ही है क्योंकि पापी लोग अपने  
पाप कर्मसे तिरस्कार पातेही हैं ॥ १२४-१२६ ॥ अथानंतर थोड़ीही देर बाद प्रद्युम्नने देखा कि अपनी इच्छानुसार  
विहार करते हुए नारद आकाशसे उतर कर अपनी ओर आ रहे हैं ॥ १२७ ॥ उनको देखतेही वह खडा हो गया और

ततो निर्गतवान् भृगुस्तत्रिंशद्विक्रमं विह ॥ १०७ ॥ बराहदेववायुप्रमापतं बराहक । करैर्लेकेन रघूयां पृथान्नेनास्य मल्लं ॥ १०८ ॥ प्रहस्य हे-  
क्या तस्यां तस्यासाध मेहित । समीप्य देवत तस्या रक्षिणीप्रियमृते ॥ १०९ ॥ शंखं विजययोगाद्यं महाकासमपि ह्वयं । दशसिंहं सुपुण्यानां क बा-  
र कोपि कीकृतः । तद्वदेव स कामस्य दृष्टिगोचरमापतत् ॥ ११० ॥ तथा कासगुहायां च महाकासक्याक्षसात् । ह्यभास्यथ रजःकवचं प्राप निर्वृतात् ॥ १११ ॥ विद्याधरेण केनपि बच-  
११२ ॥ खेटदस्ता स्यादाय समप्ययम्य शिखेचने । कुतो गता संप्राप तस्याद्रिषाज्य महत् ॥ ११३ ॥ दुर्देवजालजातनरेव प्रसरं च सः । पुन सहस्र  
वक्रादिसवने साक्षयं पात् ॥ ११४ ॥ निवाशिर्यस्य नागश्च नागी च मकरपञ्च । चित्रवर्णं मनुर्नंदकाक्यासि कामरूपिणी ॥ ११५ ॥ सुविक्ता च प्रवृत्ता  
आप परंतु मृदयुग्म दोनोंको रोककर खड़ा हो गया, यह देख कर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे मग-  
रके आकारके दो दिव्य कुंडल दिये । तदनंतर वह वहांसे निकला और भाइयोंकी आज्ञानुसार बराह नामके विलमें गया ।  
वहां पर एक देव बराहका ( सूअरका ) उग्र रूप धारण कर सामने आया परंतु मृदयुग्मने एक हाथसे तो उसका दांत  
पकड़ लिया और दूसरे हाथसे उसका मस्तक ठोकता हुआ वह लीलापूर्वक खड़ा रहा । मृदयुग्मकी इस असाधारण  
चैष्टाको देखकर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और विजययोग नामका शंख तथा महाजाल ये दो वस्तुएं उसे दीं तो  
ठीक ही है क्योंकि पुरयवान मनुष्योंको कहां लाभ नहीं होता अर्थात् उन्हें सब जगह लाभ होता ही है ॥ १०६-११० ॥  
इसी तरह वह काल नायकी गुफामें गया वहां पर महाकाल नायके राजस देवकी जीता और उससे वृषभ नामका रथ  
और रत्नकवच ये वस्तुएं प्राप्त की ॥ १११ ॥ आगे चल कर दो हत्थोंके बीचमें किसी विद्याधरको किसी  
विद्याधरने किलित कर दिया था वह मृदयुग्मको दिखाई दिया वह कीलित हुआ विद्याधर असह्य वेदनासे  
दुःखी हो रहा था । यद्यपि उसके हाथमें वंध्यमोचनी अंगूठी थी परंतु वह कीलित था इसलिये कुछ कर न सका ।  
मृदयुग्म उसको देखते ही उसके समीप गया, उसके शरीरों को समझकर वह अंगूठी उसके हाथसे उतारी और उसके  
नेत्रोंमें फेरकर उसे छुड़ा दिया । इसतरह अपना उपकार करने वाले मृदयुग्मको उस विद्याधरने सुर्देजाल, नंदजाल और  
प्रस्तर ये तीन महा विद्याएं दीं । तदनंतर वह पृथुस्र सहस्रकवच नामके नागकुमारके भवनमें गया, वहांपर उसने शंख  
बजाया उसे सुनकर नाग नागिनी दोनोंही बिलके बाहर आए, मृदयुग्मको देखकर वे दोनोंही बहुत प्रसन्न हुए और उनमें  
ने उसे चित्रवर्ण नामका मनुष्य, नंदक नायकी तलवार और कामरूपिणी अंगूठी दी । वहांसे चलकर एक कैयके हस्ते



॥ १० ॥ किं प्रत्येयमिदं श्रेष्ठिः शब्देनार्थेन च युज्यते । तर्कं वक्तुं परीक्ष्यं तदा वयोव्यापुर्द्वैतसिद्धिः ॥ १० ॥ शिवा लोकेन लोकेन मातृवर्णेन कृपा प्रिया ।  
 शिवोऽनेन बोधेन परैर्वा प्रेरणेन वा ॥ ११ ॥ वक्तृत्वोऽयं निमित्ताति परीक्षाभिः सुमेवया । एवं प्रवर्तमानोऽन विद्वान् विद्वत्तुः वेत्त्यते ॥ १०० ॥ वा वीर्या-  
 भावबुध्यते युवा कष्टयं च तदा । इव विद्वानुवचिषादि संयोगीति वत् ॥ १०१ ॥ तदैव तं वक्तुमात्रं सिद्धं ते वनं गताः । अमिहुः प्रवर्तमान १-  
 तंस्त्वस्मिन्नमीरवः ॥ १०२ ॥ इत्याहुः सोऽपि तच्छ्रुत्वा न्यतततत्र निर्भवः । विचारयति चीमांश्च न कार्यं देवोऽनित्यमिदं ॥ १०३ ॥ देवैर्बोत्रनिवासिन्या  
 प्रसिष्टाणि युजितः । कनकांबाभूयसिदनेनाभ्यादितिर्ययो ॥ १०४ ॥ तस्माद्विस्मयमापका गत्वा तेऽन्यत्र तं पुनः । श्रोतवाक्येभ्य भूभर्त्रोभ्य आनेकव-  
 न् कला ॥ १०५ ॥ पर्वतौ मेघकलेन पतंतौ भुजवाहिनः । तत्रिकय रिवतं दृष्ट्वा मुद्रा तद्रुतदेवता ॥ १०६ ॥ तस्मै शिष्ये ददौ रजकुंडके मकराक्षिते ।

ज्ञानसे वक्ताकी परीक्षा करनी चाहिये । नयोंके जाननेवाले चतुर पुरुषको देखना चाहिये कि यह बात इसमें संभव हो  
 सकती है या नहीं, उसके आचरणोंसे उसकी परीक्षा करनी चाहिये तथा जिस उद्देश्यसे तथा जिसको उद्देश मानकर  
 जो वचन कहे गये हैं वे विभास करने योग्य हैं अथवा नहीं है इसकी शब्द और अर्थ दोनोंसे परीक्षा करनी चाहिये ।  
 तथा जो कुछ कहा जाय उसकी भी विचारवालोंको परीक्षा करनी चाहिये बुद्धिमानको यह भी देखना चाहिये कि  
 यह स्त्री भयसे कह रही है वा स्नेहसे, लोभसे कह रही है अथवा ईर्ष्यासे, भूखसे कह रही है अथवा लज्जासे, जानबूझ कर  
 कह रही है वा बिना जाने अथवा किसी दूसरेकी प्रेरणासे कह रही है इन सब कारणोंकी परीक्षा करनी चाहिये जो  
 बुद्धिमान इस प्रकार चलता है वह विद्वानोंमें भी विद्वान् गिना जाता है ॥ १०६-१०७ ॥ दुःख है कि स्त्री स्वभाव होनेके  
 कारण दुष्ट स्त्रियां यह नहीं समझती कि इष्ट और शिष्टके संबंध होने पर इष्ट पुरुष ही मोहित होते हैं शिष्ट नहीं ॥ १०१ ॥  
 तदनंतर वे विद्वदुद्भूत आदि पांचसौ पुत्र प्रदुष्टको उत्साहित कर विहार करनेके लिये वनमें ले गये और एक अग्नि-  
 कुंडको दिखाकर कहने लगे कि जो कोई इसमें कूद पड़ेगा वह सबसे निर्भय गिना जायगा । भाइयोंकी यह बात सुनकर  
 वह प्रदुष्ट भी निर्भय होकर उसमें कूद पड़ा सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यसे प्रेरित हुए बुद्धिमान लोग किसी कामको  
 सोचते नहीं हैं ॥ १०२-१०३ ॥ उस कुंडमें कूदते ही वहांकी रहनेवाली देवीने उसका आदर सत्कार किया और सु-  
 वर्णके आभूषण वस्त्र आदि देकर उसकी पूजा की इस तरह वह वहांसे निकला ॥ १०४ ॥ उसे देखकर विद्वदुद्भूत  
 आदिको बहुत आश्चर्य हुआ तथा वे दुष्ट फिर उसे उत्साहित कर दूसरी जगह ले गये और उसे विजयाद पर्वतके किसी  
 विलेमें घुसा दिया ॥ १०५ ॥ वहां पर भुजाओंमें बल रखनेवाले प्रदुष्टके ऊपर भेड़का रूप धारण कर दो पर्वत

सर्वो बर्तमानस्वाद् दुःकलाद् ध्रुवं शति ॥ ८८ ॥ चालयति स्थिराश्रयं नवति विपरीतता । आदयति श्रुति रीतां क्रियो वा दोषविक्रिया ॥ ८९ ॥  
 सर्व तोष पापिनीनां श्रियान् प्रति । न हेतुस्तत्र कोप्यन्तो लभालाभद्वयादिना ॥ ९० ॥ अकार्यमवशिष्ट यतआसीह कुगोषिता । मुक्ता पुत्राभि-  
 लाविलमेतदप्येतवाकृत ॥ ९१ ॥ योषिमुव्रतसीलाशिक्षिकाश्राम्यवति चेत् । न दुष्टिताः स्वपदं कथ नार्थावसत्क्रियाः ॥ ९२ ॥ आपो बांभोअपत्रेपु  
 वित तासां न केषु चित् । स्यायु तिष्ठदपि स्पृष्टाभ्यष्टवददृष्टकृ ॥ ९३ ॥ सर्वदोषमयो भावो दुर्लभः सर्वयोगिता । इ साध्यम महामोहावहोसा  
 संनिपातवत् ॥ ९४ ॥ क्व क्वि केनेति विचार्य कार्यकारिणा । ऐहिकामुप्रकार्येषु ततोय नेति वचना ॥ ९५ ॥ प्रमणवचनं किं वा नेति वक्ता  
 परीक्ष्यता । विदुषा तस्य वृत्तन परिक्षानेन च स्फुटं ॥ ९६ ॥ एतस्मिन् सम्भवेदेतन्नवेति नयवेदिता । तदाचारः परीक्ष्य प्राक्यमुपदिश च स च

उसे मारनेके लिये वहांसे निकले ॥ ८५-८७ ॥ देखो—जिसप्रकार हिंसाको प्रधान माननेवाले शास्त्र व आपससे हानि  
 पहुंचती है अथवा नीतिरहित राज्यसे हानि पहुंचती है और कुमारमें लगे हुए तपश्चरणसे हानि पहुंचती है उसी प्रकार  
 बुरी स्त्रियोसे अवश्य हानि पहुंचती है ॥ ८८ ॥ दोषोंके विकारोंसे भरी हुई स्त्रिया स्थिरको चला सकती हैं सीधेकी  
 उलटि कर देती है और दंभीयमान बुद्धिको भी ढक देती है ॥ ८९ ॥ ये पापिनीएं अपने अपने पतियों पर उसी समय  
 तो संतुष्ट हो जाती हैं और फिर उसी समय क्रोध करने लग जाती हैं । उनके ऐसा करनेमें लाभ वा हानि इन दो के  
 सिवाय अन्य कुछ भी कारण नहीं है ॥ ९० ॥ संसारमें जो कुछ अकार्य वाकी है वह भी दुष्ट स्त्रियोंके लिये वाकी नहीं  
 है हा पुत्रके साथ कामसेवनकी इच्छा करना उनके लिये भी वाकी है अर्थात् दुष्टसे दुष्ट स्त्री भी पुत्रके साथ कामसेवनकी  
 इच्छा नहीं करती परंतु कंचनमालाने यह इच्छा भी कर डाली ॥ ९१ ॥ यदि स्त्रियां व्रतगील आदि सक्रियाओंको  
 भी करने लगे तो भी ये शुद्ध नहीं होती इस लिये वे अधिकसे अधिक असत् क्रियाओंको किस तरह प्राप्त न हों ॥ ९२ ॥  
 जिस प्रकार जल कमलपत्रको स्पर्श करता हुआ भी उसपर निश्चल ठहरता नहीं उसी प्रकार स्त्रियोंका मन भी कहीं  
 पर निश्चल नहीं ठहरता, वह स्पर्श न किये हुएके समान सदा अलग ही रहता है ॥ ९३ ॥ सब स्त्रियोंके सब तरहके  
 दोषोंसे भरे हुए भाव सदा दुर्लभ्य ( छिपे हुए ) होते हैं अर्थात् ये किसीके देखनेमें नहीं आते और सन्निपातके समान  
 वे कष्टसाध्य होते हैं तथा महामोहसे सदा भरे रहते हैं ॥ ९४ ॥ यह किससे क्या कहती हैं और क्यों कहती हैं इसका  
 विचार कार्य करनेवालेको अवश्य करना चाहिये । जो ऐसा विचार करता है वह इसलोक और परलोकके किसी भी  
 काममें मग्न नहीं जाता ॥ ९५ ॥ यह वचन प्रमाण है अथवा नहीं है इसकेलिये विद्वान् पुरुषको 'उसके आचरण' और

प्रकाशयन्त्या स्वातन्त्र्यं भाव पापपरीतया । कुमार दुग्ध मदेशा गृह्ण विधिपूर्वक ॥ ७७ ॥ प्रज्ञासिद्धिं विभक्त्युक्त्या मायामयेदृया । सोपे मातस्त्वैवाहं करिष्यामीति पेमदत् ॥ ७८ ॥ आदाय धीमास्ता विद्या सिद्धकृतमुपागमत् ॥ ७९ ॥ धिस्त्वा शुत्वा ततो धर्मे ज्ञात्वा विद्याप्रसाधने । हेतु तदुपदेशेन सन्नयत् समाश्रय ॥ ८० ॥ आकर्षे तत्पुरुषाण च तदर्चापादंशंश्चात् । विद्या संसाध्य संज तत्समद पुरम गमत् ८१ दृष्ट्वा द्विगुणिनाकारशोभत कामकातरा । प्रार्थयन्ती बहु गौर्यनिरुद्धन महामति ॥ ८२ ॥ पुरुषवत्संपन्नमिति द्वेषादबुध्यत् । कुमार सहव सत्य रोच्यो नाथ कुचेष्टित ॥ ८३ ॥ जानात्यनभिज्ञात वमस्येति खचराधिपं । विचारविकल सोपि तदुक्त मशतीतवान् ॥ ८४ ॥ विदु इन्द्रादिव न पंच शतानि तनुजान् मिष । अह्म देवदत्तोय दोष्युगशु बधोचित ॥ ८५ ॥ तत केनाप्युगयेन भवन्नि क्रियता ८५ ॥ इत्याह खच राध शलधवाज्ञास्तेपि दोषिनः ॥ ८६ ॥ स्वयं प्रागपि त हंतुं कृतमंत्राः परस्पर । तमेति प्रतिपद्यातो निश्च्युत्तच्छिकीर्षव ॥ ८७ ॥ हिंसाप्रधानशास्त्रात्त राज्ञ्य द्वा नयवर्जितात् ।

माला किसी एक दिन कामसे विकल होगई । जन्मांतरके स्नेहसे वह अनेक विकार करने लगी, पापोंसे घिरकर अपने हृदयके भाव प्रकाशित करने लगी और हृदयमें मायापयी इच्छा रखकर कहने लगी कि हे कुमार ! मैं तुम्हें विधिपूर्वक प्रज्ञा नामकी विद्यादेती हूं उसे तू स्वीकार कर । माताकी यह बात सुनकर कुमारने कह दिया कि हे माता जैसा आप कहेंगी वैसाही करूंगा । इस तरह आनंदित होकर उस बुद्धिमानने वह विद्याली और विद्या लेकर सिद्धकूट चैत्यालयपर गया । वहांपर भगवानको नमस्कारकर दो चारण मुनियोंकी बंदनाकी, उनसे धर्मका स्वरूप सुना, उनके उपदेशसे संजयन्तके आश्रयसे विद्या सिद्ध होगी यह बात भी जानी और उनका ( संजयंतका ) पुराण भी सुना तदनंतर श्रीसंजयंत मुनिकी प्रत्तिमाके चरणरूपलोक आश्रय लेकर विद्या सिद्धकी और फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ वह नगरमें आया ॥ ७५-८१ ॥ विद्या सिद्ध होनेसे कुमारकी शोभा दूनी होगई उसे देखकर कामसे कातर हुई कांचनमाला अनेक उपायोंसे मार्यना करने लगी परंतु उस महा बुद्धिमान प्रभुत्रने उसकी कभी इच्छा न की । तब उसे मालूम हुआ कि इसके पुरुषव्रत अर्थात् स्वदार संतोष व्रत है तब वह द्वेषसे राजाने कहने लगी कि यह कुमार कुचेष्टी है इसलिये हमलोगोंके साथ रहने योग्य नहीं है मैं इसे किसी नीचकुलका समझती हूं । रानीकी यह बात सुनकर विचारशून्य राजाने भी उसकी बातपर विश्वास कर लिया ॥ ८२-८४ ॥ तथा विषुदंष्ट्र आदि अपने पांचसौ पुत्रोंको बुलाकर आज्ञा दी कि यह देवदत्त दुष्ट है इसलिये किसी एकांत जगहमें मारने योग्य है अतएव तुमलोग किसी भी उपायसे इसे मार डालो इसतरह राजाकी आज्ञा पाकर वे कुमार बहुतही क्रोधित हुए वे परस्पर उसके मारनेकी सलाह कर चुके थे इसलिये राजाकी आज्ञा पाकर

विद्योगादगाच्छुच । धृष्टं तद्वृत्तायोगेन ब्रह्मपरिताडन ॥ ६५ ॥ जलाशयस्तुपातस्य केकिनो जलदागमः । यथा तथास्य संतुष्टयं संनिधिर्नारदाभवत् ६६  
 स त स्वबालवृत्तात् हरिरुक्त्वभ्यधासिद् । तस्या केनाप्युपायेन क्वापि सोनिद्व्यथासिति ॥ ६७ ॥ नारदस्तत्तमाकर्ण्य शृणु पूर्वसिद्धेहेले । नगरे गुडरीकि-  
 र्णा मया तीर्थकृतो निरा ॥ ६८ ॥ स्वयप्रभस्य ज्ञातानि बातां बालस्य पृच्छता । अर्वातराणि तद्वृद्धिस्थानलाभो महानपि ॥ ६९ ॥ सद्य योगो युवाभ्या च  
 तस्य वोढव्यवर्त्सः । इत्यमी वामुदेव च हविमणी च यथाभूत ॥ ७० ॥ प्रबोधयतगोस्त्रस्मात्सुरसेनानृलोकगो । प्रादुर्भावाद्भित्त्येव प्रमोद परमोऽभवत्  
 ॥ ७१ ॥ क्रमेण इतपुण्योमा तत्र संपूर्णगोचन । कद्विदाह्वया राक्ष प्रधुम्नः सत्रलो बली ॥ ७२ ॥ गत्वा द्वियोगिनराजस्य विक्रमादुपरि स्वयं । नि.प्र-  
 ताप विचार्यैन युद्धे विलार्ययस्त्रिपु ॥ ७३ ॥ तदा दृष्टाबदानस्य प्रधुम्नस्य खगाधिपः । परार्थबस्तुदानेन महती मननार्थं व्यषत् ॥ ७४ ॥ अवतीर्णसिद्ध  
 स्वर्गाद्यौबैकविभूणा । मुबं कदाचित्पुनमाहर्थातिमाभरं ॥ ७५ ॥ अवलोक्य स्मराकृतियुव्या काचनमालया । जन्मातरगतस्नेहकृतोद्वेहिनिकारया ७६

सतापर ब्रह्म पढ़नेसे भस्म हो जाता है उसी प्रकार रुक्मिणीके साथ साथ कृष्णको भी पुत्रके वियोगसे बहुत गोक हुआ ॥  
 ६५ ॥ जिसप्रकार प्याससे दुखी मनुष्यको तालाब मिल जाता है अथवा चातकको वादल मिल जाते हैं उसीप्रकार कृष्ण  
 को संतुष्ट करनेके लिये उनके समीप नारद आ पहुंचे ॥ ६६ ॥ आते ही कृष्णने उनसे अपने पुत्रहरणका सब वृत्तांत  
 कहा और कहा कि आप किसी भी उपायसे कहीं भी उसे ढूंढे ॥ ६७ ॥ कृष्णकी यह बात सुनकर नारद कहने लगे  
 कि सुनो—पूर्व विदेहक्षेत्रकी पुंडरीकिणी नगरीमें स्वयंभू तीर्थकरसे मैंने उस बालककी सब बात पूछी थी और अपने  
 प्रश्नके उत्तरमें उनकी वाणीसे मैंने उसके पहिले भवभी जान लिये हैं वह अच्छी तरह देगा उसे बहुतसे लाभ होंगे  
 और सोलह वर्ष बाद तुम दोनोंसे आ मिलेगा । इस प्रकार नारदने जैसा सुना था वैसा ही कृष्ण और रुक्मिणीको क-  
 हकर समझाया । जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे देवोंकी सेना और मनुष्य लोक दोनोंमें परम आनंद होता है उसी प्र-  
 कार नारदकी बात सुननेसे कृष्ण और रुक्मिणीको बहुत ही आनंद हुआ ॥ ६८-७१ ॥ इधर प्रपुत्र ( देवदत्त ) अप-  
 ने पुरयोदयसे बढता हुआ पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त होगया । किसी एक दिन अधिराज नामका कालसंभवका शत्रु स्वयं  
 कासंभवपर चढ आया था इसलिये राजा कालसंभवकी आज्ञासे बलवान् देवदत्तने अपनी सेना लेकर उसे प्रतापरहित  
 किया और युद्धमें उसे जीतकर पिताको समर्पण किया ॥ ७२-७३ ॥ उससमय विद्याधर कालसंभवने बहुतसी बहुमूल्य  
 वस्तु देकर श्रवीरता दिखलानेवाले प्रपुत्रका बहुतही आदर सत्कार किया ॥ ७४ ॥ यौवनरूपी एक आश्रुपथको धारण  
 करनेवाले, योग्यतासे अत्यंत दैदीप्यमान और स्वर्गसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुएके समान प्रपुत्रके रूपको देखकर कांचन-

पस्तादमु गतः ॥ ५३ ॥ तदैव विजयार्द्रोदसिपथे निपुणैः । विषये युगबलान्वे मेघदूटपुराधिपः ॥ ५४ ॥ कालस्यमवधारणः कान्वनमालया । सह जनेधरीरर्चा प्रियया प्रावर्तितं प्रयान् ॥ ५५ ॥ महाशिलाखिलांगासिचलनं बीधय विस्मयात् । संमतात् नीलमानोत्तौ द्रष्टु बाले उबलप्रभं ॥ ५६ ॥ प्रा-  
कृतोयं न केनापि कोपात्प्राञ्जन्मवैरिणा । निशिसः पाणिनामुष्मिन् पश्य बालाकभास्कर ॥ ५७ ॥ तस्मान्नवास्तु पुत्रोयं शुद्धानुं मनोरमे । इत्याहोबाज  
साव्यस्मै यौवराज्य ददासि चेत् ॥ ५८ ॥ शुद्धीष्यामीति तेनापि प्रतिपद्य तद्यः स्थिति । तत्कर्णगतसौवर्णपत्रेणारन्धि पहकः ॥ ५९ ॥ तां त बाल समा-  
दाय पुरमासिद्धतोत्सव । प्रविश्य देवदत्ताख्यं व्यथातां विधिपूर्वक ॥ ६० ॥ तद्वालालनालीकाविलासैर्दृष्टचेतनोः । तयोर्यच्छति तिब्याज काले सुमुखभोगिनोः  
॥ ६१ ॥ इतः कुतवियोगेन रुक्मिणी शोकवन्दिना । दद्यामाना स्वाभावोजबल्लीव नववन्दिना ॥ ६२ ॥ संपत्तिर्वा चरित्रस्य दयाभावाविजिता । कार्योका  
र्थविकारेषु मदमदेव शेषुषी ॥ ६३ ॥ मेघमालेव कालेन निर्गलजलसचया । नावभ से गतप्रणो सा भवेत् वा प्रभा तनो ॥ ६४ ॥ तथैव वासुदेवोपि त-

लगा । देखते देखते उसने शिलाके नीचे दँदीयमान कांतिवाले पुत्रको देखा ॥ ५४--५६ ॥ तब वह राजा उस पुत्रको  
उठा कर अपनी रानीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! यह बालक स्वाभाविक रीतिसे शिलाके नीचे नहीं आया है किंतु पहिले  
जन्मके किसी पापी शत्रुने यहां लाकर रख दिया है । हे प्रिये ! देख यह बालक उगते हुए सूर्यके समान दँदीयमान है ।  
इस लिये हे सुंदरी ! यह तेरा ही पुत्र हो तू ही इसे स्वीकार कर । इसके उत्तरमें रानीने कहा कि हे नाथ ! यदि आप इसे  
युवराज पद दें तो मैं स्वीकार कर सकती हूँ । यह सुनकर राजा कालसंभवेने भी यह बात स्वीकार करली और ऐसा  
ही हो इस्तरह कहकर रानीके कानमें पहने हुए सुवर्ण पत्र पर ही शिलालेख लिख दिया ॥ ५७--५९ ॥ तदनंतर  
वे दोनों राजा रानी उस बालकको लेकर बड़े उत्सवके साथ नगरमें पहुंचे और विधिपूर्वक उस बालकका नाम देवदत्त  
रखवा ॥ ६० ॥ उस बालकके लालन पालनकी लीलाके विलासोंसे जिनका चित्त प्रसन्न हो रहा है और जो सदा सु-  
खका अनुभव कर रहे हैं ऐसे उन दोनों राजा रानियोंका समय बिना किसी उपद्रवके बड़ी शांततासे व्यतीत होने लगा ॥  
६१ ॥ इधर जिसप्रकार दावानल अग्निसे स्थलकमलकी बेल जल जाती है उसीप्रकार रुक्मिणी पुत्रके वियोगके कारण  
शोकरूपी अग्निसे जलने लगी ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार चरित्रहीनकी संपत्ति दयाभावोंसे रहित होती है और अत्यंत मंद  
बुद्धि कार्य अकार्यके विचारमें कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार वह चेष्टा और विचाररहित होगई । समयानुसार जि-  
ससे सब जलका समूह निकलजाता है ऐसी मेघमालाके समान शोभाहीन होगई और प्राणोंके निकलजानेपर शरीरकी  
प्रभा जैसी सुशोभित नहीं होती उसी प्रकार वह भी प्रभाहीन होगई ॥ ६३--६४ ॥ जिसप्रकार लतासे भिन्न होनेपर भी वृक्ष

इवातकनकाद्य । पाँचें छिजटिसंहरय तापसन्नमावदे ॥ ४२ ॥ मधुकीढावयोरेवं काले गच्छत्यध्यावदा । सम्यगाकर्ण्य सदर्भं मधुर्विलवाहनात् ॥ ४३ ॥  
गर्हणं स्वदुराचारे कृत्वा कीढाव संयुत । संयम समवाप्याते संश्रित्याराधनाभिधि ॥ ४४ ॥ अन्वभूत्स महाशुक्रस्याधिपत्यं सहनुजः । स्वायुरते ततश्च्यु-  
त्वा स्वावेशेयशुभोदायात् ॥ ४५ ॥ सुखप्रपूर्वकं ज्येष्ठा रुक्मिण्यामभवत्पुनः । दुर्गाचारिजितं पापं सञ्चरित्रेण नश्यति ॥ ४६ ॥ द्वितीयेहति तद्द्वारसंनितां प्रा-  
प्तसन्निभं । देवो ज्योतिर्गणे जातो धूमकेतुममाहूय ॥ ४७ ॥ गच्छन् गच्छन् यदृच्छया ज्योतिर्ग विहर्तुं वातरंहरा । विमाने स्वे घृते वा न्यः प्रदमत्योपरि स्थिते  
॥ ४८ ॥ चरमागस्य केनेदं कृतमित्युपयुक्तवान् । विभागाद तमनः शत्रुं श्रुत्वा प्राक्कनजन्मनि ॥ ४९ ॥ रथांतकनकस्याय दर्पाद्वारान् समाहरत् । तत्फल  
प्रापयाम्येवमिति वैरागिनुज्वलन् ॥ ५० ॥ विधाय स महानिद्राप्रतः पुरनिवास्तिनां । तमुद्रुल्लाब्दमार्गेण दूरं नीत्वा यथा चिदं ॥ ५१ ॥ अंतुभूय मह  
ददुःखं कुंक्ष्मात्राणविमोचन । करिव्यामि तपेयस्य पुण्येनैव प्रचोदितः ॥ ५२ ॥ अवश्यं नभोभागाद्वने स्वदिरनामनि । दिलादास्तक्षकाख्याया सि त्वा

मधुका जीव शुभ स्वप्नपूर्वकं रुक्मिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि दुराचारसे उत्पन्न हुए पाप भी सूक्ष्म चा-  
रित्रसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३-४६ ॥ इधर कनकरथका जीव पिण्यां तपश्चरण कर धूमकेतु नामका ज्योतिषी देव हुआ  
था और इच्छानुसार आकाश मार्गसे विहार करनेके लिये निकला था उसके विमानको दूसरे देव चला रहे थे अक-  
स्मात् चलते चलते वह विमान चरम शरीर प्रदुष्मके ऊपर पहुंच कर रुक गया उसे रुका जानकर उस बालकके इकठे  
हुए पापोंके समान वह देव विचार करने लगा कि यह मेरा विमान किसने रोका है ? सोचते ही विभंगावधिसे उसने  
जान लिया कि यह मेरे पहिले जन्मका शत्रु है । मैं पहिले जब कनकरथ था तब इसने अपने अपने विमानसे मेरी स्त्री हर  
ली थी इसलिये अब मैं इसे उसका फल चखाऊंगा इस तरह शत्रुत्वारूपी अग्निसे वह जलने लगा ॥ ४७-५० ॥ उस  
ने अपनी शक्तिसे अंतःपुरके रहनेवाले सब लोगोंको महानिद्रासे निद्रित कर दिया और फिर उस बालकको उठा कर  
आकाश मार्गसे ले गया । फिर वह देव सोचने लगा कि कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे यह बालक बहुत देर  
तक दुःख भोगता हुआ प्राण छोड़े यही सोचता हुआ मानो उस बालकके पुण्यसे प्रेरित होकर ही वह देव स्वदिर नामके  
वनमें आकाशसे नीचे उतरा और तत्काल नामकी शिलाके नीचे उस बालकको रख कर अपने स्थानको चला गया ॥ ५१-  
५३ ॥ देवयोगसे उसी समय विजयादे पर्वतकी दक्षिण ओष्णिके गंगावती नामके सुंदर देशके मेघवट्ट नगरके विद्या-  
धरोका राजा कालसंभव अपनी रानी कांचनमालाके साथ भगवान् जिनेंद्रदेवकी पूजा करनेके लिये वही छोकर जा रहा  
था वहां पर वह उस सब शिलाको हिलती हुई देखकर आश्चर्य करने लगा और इधर उधर शिलाके चारो ओर देखने

मृतः ॥ ३० ॥ रत्नप्रभाविष्टे सर्ववर्तनान्नि ततो जनि । मातंग कांक्षया ह्य सोमदेवो भवति ॥ ३१ ॥ मातामिनला च तद्देव आयत्तेस्स शुनी गृहे ।  
 इहेत्याकथं तद्रोक्ते तेन तौ परिबोधिता ॥ ३२ ॥ संप्राप्तोपशम भावं संन्यस्य विविना मृत । काकजयोऽभर्षदीभ्यद्वीपे निवीभ्य ॥ ३३ ॥ तदुरा-  
 चीभ्यर्गिदमाख्यमूखपते सुता । श्रीमत्याम्ब शुनी सुप्रभुद्व्याख्याजयत प्रिया ॥ ३४ ॥ संपूर्णैषिना याती सा स्वर्गमरुप । यक्षेण बोधिता वीक्षामि-  
 ताया प्रियदर्शना ॥ ३५ ॥ जीवितातेऽभर्षदेवी मणिबूलेति रूपिणी । सौधर्म क्षिपते पूर्णभद्रस्तदनुजोपि च ॥ ३६ ॥ सप्तस्थानगता ख्यातभावका तौ  
 दृढव्रता । प्राप्ते सामानिकी देवां जातौ सौधर्मनामनि ॥ ३७ ॥ द्विसागरो म तौतौ द्वीपेक्ष कुरुजंगले । हस्तिनाख्यपुराधीशम्याहं हंसमहीपतेः ॥ ३८ ॥  
 कादपपायाश्च पुत्रौ तौ मधुकीडावनामकौ । समभूतां तौ राजा राजत युवराजते ॥ ३९ ॥ विधाय विमलां प्रापद्विमलप्रभमिष्यतां । कठोतामलका-  
 ह्यस्य पुरस्त्रेशः कदाचन ॥ ४० ॥ रथांतवनकाख्यस्य समयात्तस्य सेवितु । कांता वनकभाक् ह्या समीक्ष्य मदनानुर ॥ ४१ ॥ स्वीचकार मधु शोका-

देव हुआ ॥ ३३ ॥ इसीतरह उस कुत्तीका जीव उसी साकेत नगरके राजा अरिदमकी रानी श्रीमतीसे सुप्रभुद्वया नाम-  
 नामकी प्यारी पुत्री हुई ॥ ३४ ॥ पूर्ण यौवन अवस्था प्राप्त होने पर वह पति ढूंढनेके लिये स्वयंवर मंडपमें गई । परंतु  
 वहां पर उसे उसके पहिले जन्मके पतिके जीव व्यंतर देवने आकर समझाया जिससे उसने प्रियदर्शना अर्जिकोके समीप  
 जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३५ ॥ आयुके अंतमें वह सौधर्म इंद्रकी मणिचूला नामकी बड़ी रूपवती देवी हुई ।  
 इधर पूर्णभद्र और मणिभद्र दोनों भाइयोंने बड़ी हठतासे श्रावकके व्रत पालन किये सातों धर्मचेत्रोंमें धन खर्च किया और  
 अंतमें आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर सामानिक जातिके देव हुए । वहांकी आयु पूरीकर इसी  
 जंबू द्वीपके कुरुजंगल देशमें हस्तिनापुर नगरके राजा अर्हदास रानी काश्यपाके मधु और क्रीडाव नामके दोनों पुत्र हुए  
 किसी एक दिन राजा अर्हदास मधुको राज्य और क्रीडावको युवराज पद देकर विमलप्रभ मुनिका निर्मल ( शुद्ध वा उ-  
 त्तम ) शिष्य हो गया । किसी एक दिन अपमलकंड नगरका राजा कनकरथ अपनी कनकमाला नामकी रानीको सेवन  
 करनेके लिये वनमें आया था । उस समय उस कनकमालाको देखकर राजा मधु कामसे विकल होगया और उसे अपने  
 घर ले आया । इससे राजा कनकरथको बहुत शोक हुआ और उसने द्विजटी नामके तापसीके समीप जाकर तपसियोंके  
 व्रत धारण कर लिये ॥ ३६-४२ ॥ इधर मधु और क्रीडाव इन दोनों भाइयोंका समय बड़े सुखसे व्यतीत होने लगा ।  
 किसी एक दिन राजा मधुने विमलवाहन मुनिके समीप धर्मका स्वरूप सुना, अपने दुराचारकी निंदा की और अपने छोटे  
 भाईके साथ महाशुक्र नागके स्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांकी आयु पूरी कर बाकी बचे हुए पुण्यकर्मके उदयसे वह





रिषति । इतोपहासो एवं प्राप्य गच्छतां वसितुं गतः ॥ १ ॥ आभासतात्समायातं मुनिमालोक्य सत्यकं । तत्समीपमईहाद्रेरितः पुण्यं तं ॥ १० ॥  
नाश्रयातो नागमो नैव पशवी गच्छ । किं क्षिप्रमिदं बुभुक्ष्यार्गमूढो दृष्ट्विनासिति ॥ ११ ॥ इत्यप्यक्षिपतां सोपि जिनकचक्रविनिर्गतं । विनक्षितेतरानेकस्व-  
रुपातसमाभयः ॥ १२ ॥ इत्यतस्तं यथादृष्ट कचमंतं उहेतुक । स्याद्वादमविन्दो यैः स्तारमेतु प्रमाणतां ॥ १३ ॥ प्रसाध्याहृद्यगोसि तदुष्णमसुरिषति ।  
निरूप्य बादकं हस्तिमपनीय दुरात्मनोः ॥ १४ ॥ तयोर्जयध्वज प्राप्तद्विद्वज्जनसमर्पित । तौ मानभगवत्संभूतौ निक्षिप्तितायुधा ॥ १५ ॥ परयुः पाप-  
कर्मिणो विजने हुन्द्वेतरे । अस्तिमायोगमापन्न सत्यकं मुनिपुत्रव ॥ १६ ॥ शकेणाहमुत्पुष्पाभ्यामयोगमिति बुधा । द्विजौ सुवर्णयज्ञेन स्तम्भितौ कीकृता-  
दिव ॥ १७ ॥ तदा पारममायातास्तान्यातृषिर्तुर्वाधवाः । मुनीनामाङ्गुलीभूय यक्षस्तवदत्सुभी ॥ १८ ॥ हिंसाधर्मं परित्यज्य यदि जैनेश्वरं मत । भ-

कथन करनेवाले स्याद्वादका आश्रय लेकर उन तत्त्वोंको कहनेवाले अथवा स्याद्वादको कहनेवाले आप्तको प्रमाण सिद्ध कि-  
या तथा परीक्षप्रमाणमें भी उन्हींके कहे हुए आगमको अच्छी तरह प्रमाण ठहराया और इससरह उन दुष्टोंकी बाद करने  
की खुजाती दूरकी ॥ १-१४ ॥ इसके सिवाय उन्होंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे अनेक विद्वानोंके द्वारा समर्पणकी हुई जय-  
ध्वजा प्राप्तकी । वे दोनों ही ब्राह्मण मान्यंग होनेसे बहुतही क्रोधित हुए और पापकर्म करनेवाले वे दोनोंही दूसरे ही  
दिन रातमें हतबार लेकर निकले । मार्गमें किसी निर्जनवनमें शुद्धचित्तवाले और प्रतिमा योगधारण किये हुए वे ही मु-  
निराज सत्यक विराजमान थे उन्हें शस्त्रसे पारनेके लिये वे दोनों ही ब्राह्मण तैयार होगये यह देखकर और यह अन्याय  
होता है ऐसा समझकर सुवर्ण यज्ञने क्रोधमें आकर उन दोनों ब्राह्मणोंको कीलित हुएके समान स्तम्भित कर दिया ॥  
१५-१७ ॥ यह देखकर उनके माता पिता भाई आदि लोग व्याकुल होकर मुनियोंके शरण गये तब बुद्धिमान यज्ञ उ-  
नसे कहने लगा कि यदि तुमलोग अपने हिंसा धर्मको छोड़कर श्रीजिनराजके धर्मको स्वीकार करोगे तो ये दोनों भाई  
छूट सकते हैं ॥ १८-१९ ॥ यज्ञकी ये बातें सुनकर वे सब कुटुंबी लोग डरकर कहने लगे कि अच्छा हमें स्वीकार है  
यह कहकर उन्होंने विधिपूर्वक मुनियोंकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया मूठही श्रावकोंके पालन करने योग्य धर्म-  
को धारण कर लिया । जब वे दोनों भाई छूट आए तब उनके माता पिता और कुटुंबियो ने उनसे कहा कि अब तुम  
इस जैन धर्मको छोड़ दो क्योंकि यह तो केवल तुम्हारे छुड़ानेकेलिये पालन किया गया था । इतना सब कुछ कहने सु-  
ननेपर भी काललब्धिके प्राप्त होनेसे उन दोनों भाइयोंने वह स्वीकार किया हुआ सन्मार्ग नहीं छोड़ा जिससे उनके  
माता पिता आदि बहुत ही क्रोधित हुए तथा परकर पाप कर्मके उदयसे उन्होंने बहुतसी कुगतियोंमें परिभ्रमण किया ।

## अथ दामसर्तितमं पर्व ।

अथ तज्ज्ञातपूर्वं च अगत्ययसमावर्तौ । प्रकाशवितुकायेन बलदेवेन भीमता ॥ १ ॥ प्रभुप्रसंभवोत्पत्तिसंबंधं पृच्छपठे स्वः सः । वरदत्तगणेशोनु-  
रंभुर्ध्वेयमप्रवीत ॥ २ ॥ दीयोस्मिन् मगधे देशे शालिग्रामनिवासिनः । द्विजस्य सोमदेवस्य भार्याभूदग्निव्याहृतया ॥ ३ ॥ अग्निभूतिभूतसूतवीर्यभू-  
तिस्तयोराजु । ताबन्धेयु पुरे नदिबर्द्धनाख्ये मनोहरे ॥ ४ ॥ नंदाननंदियोषाख्ये बने मुनिमण्डप्यतां । नदिबर्द्धननामानं मुनिं संघविभूषणं ॥ ५ ॥ दुष्टदु-  
नुपसर्गो भविष्यति ॥ ७ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा गुह्यसासनकारिण । मौनव्रतेन सर्वेपि स्थिता सयमिनस्तदा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तावत्स्य सर्वेषां प्रकीर्तय अव-  
स्य ॥

## अथ बहत्तरवां पर्व ।

अग्रानंतर—तीनों लोकोंके सभाभवनमें अर्थात् समवसरणमें अपने पहिले भव जानकर बुद्धिमान बलभद्रने सबको  
मगट करनेके लिये प्रभुभ्रके उत्पन्न होनेका संबंध पूछा तब वरदत्त गणाधर कृपाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ १-२ ॥ इसी  
जंघुदीपके मगधदेशमें शालि नामके गांवमें रहनेवाले सोमदेव ब्राह्मणकी स्त्रीका नाम अधिला था उसके अग्निभूति और  
वायुभूति नामके दो पुत्र थे । किसी एक दिन वे दोनों ही भाई नंदिवर्द्धन नामके सुशोभित नंदिवर्द्धन नामके सुनिराजकी देखा ॥ ३-४ ॥ सु-  
निराज नंदिवर्द्धनने उन दोनों दुष्टोंको आते हुये देखकर सब सुनिराजोंको आज्ञा दी कि ये दोनों मिथ्यादृष्टी तुम लोगों  
से विवाद करनेकेलिये आए हैं परंतु तुममेंसे कोई भी इनके साथ किसी तरहकी बात चीत नहीं करना, अन्यथा इनके  
संबंधसे भारी उपसर्ग होगा ॥ ६-७ ॥ शासन करनेवाले आचार्यके ये वचन सुनकर उसीसमय सब मुनि मौनव्रत लेकर  
जाने लगे । उन मुनियोंमेंसे एक सत्यक नामके मुनि आज्ञा करनेके लिये दूसरे गांव गये थे और वे आहारकर लौट रहे  
थे, उन्हें देखकर वे दोनोंही ब्राह्मण अहंकारमें आकर उनके समीप पहुंचे और आज्ञेप करने लगे कि इस संसारमें न तो  
कोई आपस है न आगम है और न कोई पदार्थ ही है, हे मूर्ख तू पुण्ययापको नाश करनेवाले इस मिथ्यामार्गमें व्यर्थ ही,  
क्यों हे श पा रहा है । ब्राह्मणोंकी ये बातें सुनकर उन सुनिराजने भगवान् अरहंतदेवके मुखसे निकले हुए, विवक्षित ऐसे  
अनेक स्वरूपरूप धर्मोंका आश्रय करनेवाले तथा द्रव्य और तत्त्वोंको सर्वत्रके देसे अनुसार अच्छे ब्रह्मे हेतुओंसे

भक्षण कृतेति दृढप्रता । वनेवर कदाचित्स ग्र मोक्षसुन्दरातिभिः ॥ ४४८ ॥ विलोपितस्तद पद्मेदेवी सिद्धयाद्भ्यात् । नीला महट्टी सर्वे जन-  
 भुतपरिपीडिता ॥ ४४९ ॥ त्रिपञ्चलीकल न्य शु भञ्जयिता मृते ययु । व्रतभगवत्युत्ताति स विहय हर्षविना ॥ ४५० ॥ मूल हैमवते भूत्वा जीविनाते  
 ततश्च्युता । द्वीपे स्वयं प्रमे जाता देवी सद्य स्वयंप्रभा ॥ ४५१ ॥ स्वयंप्रभास्त्वदेवस्य ततो निर्गम्य सा पुन । द्वीपेस्मिन्भस्ते क्षेत्रे जयतपरभूतः  
 श्रीधरस्य सुता भूत्वा श्रीमत्यां सुदराकृति । विमलश्रीरभूपत्नी भद्रिलाल्यपुरेशिन ॥ ४५२ ॥ वृषस्य मेघन दय्य समीप्तिमतमुज्जप्रदा । राक्षिभर्ममुने-  
 स्स्यवत्त्वा गजय प्रजय्य शुद्धीः ॥ ४५३ ॥ ज नो व्रतधरस्तस्मिन् महस्वारपतां सति । अष्ट दश ममुद्र युग्मोजि भासुरदीक्षितै ॥ ४५४ ॥ सापि  
 पद्मावती क्षाति संप्रप्यादाय संयमं । आचाम्लवर्द्धमान च समुगोष्ठायुषोवधौ ॥ ४५५ ॥ तत्रैव कल्पे देवीत्व प्रतिपद्य निजयुष । प्रातिरेक्षपुराधीश-  
 श्रीमत्या तनयाजति ॥ ४५६ ॥ हिमवतवर्मण पद्म वनीत्येषा स्वप्रवरे । संभाव्य संसृतस्त्वेश भानं रत्नमालया ॥ ४५७ ॥ शीलावहा महादेवीपट्ट  
 प्रापदिति स्फुट । तास्तित्तोपि स्वजन्मानि भुत्वा मुदमयुररे ॥ ४५८ ॥ इत्युर्बेर्गणनायकौ गुणनिधि प्रसष्टमिश्रधरः साक्षात्कृत्य भवावलीविलसितं  
 व्यावर्णयभिर्जयं । सा त्वाकर्ण्य चिरं सुख सुखमयी स्वेष्टाष्टदेवीकथां संपुष्टिं स मुरारिरा सुतगं प्राते प्रवृत्तिप्रदा ॥ ४५९ ॥ देवोपि विषयवचन  
 मुनिपुणवस्य, भगवदं बहुभवातनिब्राह्मणं तद । कृत्वा हृदि प्रमुक्षिताः प्रयुधर्मसारे धर्महेतो हिततमे स्वमनि प्रतेजुः ॥ ४६० ॥ नहि हितमिह-  
 किंचिदस्यैक विहाय, व्यवसितममुपदुःखो विवेकसमुपगतसमृद्धे नेमिचरिते भवात्तव्यावर्णनं नाम एकसततितमं पर्व ॥ ४६१ ॥ नहि हितमिह-  
 इत्यर्थे भगवद्गुणमन्त्राचार्यप्रणीते विषाष्टिल्लग्नमहापुणसमृद्धे नेमिचरिते भवात्तव्यावर्णनं नाम एकसततितमं पर्व ॥ ४६२ ॥

आचाम्लवर्द्धमान व्रतके उपवास करने लगी आयुके अंतमें वह उसी सहस्रार स्वर्गमें देवी हुई । वहांकी आयु पूरी कर  
 अरिष्टपुर नगरके राजा त्रिगयवर्माकी रानी श्रीमतीसे यह पत्रावती पुत्री हुई है । इसने संसारके स्नेहसे स्वयंवरमें वरमाला  
 ढाल कर तुम्हें ही स्वीकार किया और फिर महाशीलको धारण करनेवाली इसने महादेवीका पद प्राप्त किया इस प्रकार  
 तीनों ही रानियां अपने पूर्वपव सुन कर प्रसन्न हुई और उन्होंने कृष्णको भी प्रसन्न किया ॥ ४६-४६ ॥ इस प्रकार  
 गुणोंके खजाने श्रीगणेशदेवने अत्यंत स्पष्ट और मीठे अन्तरोसे पूर्व भवोंका संबंध सब स्पष्ट कर दिखाया तथा सबका  
 निर्णय कह सुनाया । श्रीकृष्ण भी अपनी प्यासी आठों देवियोंकी सुख दुखमयी कथा सुनकर अपने आप अंतमें प्रश्रुति  
 करने वाला संतोष धारण करने लगे ॥ ४६० ॥ वे देवियां भी अनेक जन्मके कर्माएँ हुए अपने पापोंके नाश करनेवाले  
 उन गणेश देवके दिव्य वचनोंको हृदयमें धारण कर बहुत ही प्रसन्न हुई तथा उन्होंने महाकल्याण और अत्यंत हित  
 करने वाले भगवान् अरहत देवके धर्ममें अपनी बुद्धि लगाई ॥ ४६१ ॥ इस संसारमें एकधर्मको छोड़कर जीवोंका और  
 कुछ कल्याण करनेवाला नहीं है । धर्म रहित जो मूर्ख जीवोंका चरित्र है उसे बार बार धिक्कार हो । इस प्रकार तर्क वि-  
 तर्क करते हुए सब धर्मात्मा सभासदोंने श्रीनेमिनाथ स्वामीका कहा हुआ धर्म स्वीकार किया ।

इस प्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यविरचित श्रीभट्टापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नेमिनाथके चरित्रकथनमें  
 भवार्तोंका कहनेवाला यह इकहचरिवां पर्व पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

निर्माप्य महाशुकेऽभवत्सुत्री ॥ ४३८ ॥ चिरान्तो विनिर्गल्य वीतशोकपुरेक्षितः । महीशो मेरुचन्द्रस्य चन्द्रत्यागजायत ॥ ४३९ ॥ गौरीति रूपकावप्य-  
काल्याणीनामसौ स मे । विजयाख्यपुरार्धशो विभुविजयनन्दनः ॥ ४४० ॥ वत्सरस्तुभ्यस्मानीय ताम्रदत्त लयापि सा । पदेन योजितेत्याख्यस्तो हसि-  
रगन्मुद ॥ ३४१ ॥ तत पद्मावतीजन्मसम्बन्ध गणनायक । शुगानामाकरोऽवासीदित्य जनमनोहरं ॥ ४४२ ॥ अस्मिन्नेवोच्चैः प्राख्यनगरीनायको हसि-  
विभुसयोगीशो भूला हैमवते चिरं । सुकृत्वा भोगान् भवप्राप्ते जाता चन्द्रस्य रोहिणी ॥ ४४३ ॥ पत्योपमायुष साते विषये मगध सिधे । वसत-  
शाल्मलिप्राप्ते पद्मदेवी सुताजनि ॥ ४४४ ॥ सती विजयदेवस्य देविलायां कदाचन । वरधर्मयते संनिधाने सा व्रतप्रहीव ॥ ४४५ ॥ अविक्रान्तफला-  
देव लोगोके लिये मनोहर ऐसा पद्मावतीके पहिले भवका संवन्ध इस प्रकार कहने लगे ॥ ४४२ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत-  
चैत्रमें उज्जयनी नगरीके राजा विजयके विक्रान्तिके समान अपराजिता नामकी देवी थी उसके विजयश्री नामकी पुत्री भी  
वह विजयश्री हस्तशीर्षपुर नगरके राजा हरिषेणको व्याही गई थी । उसने बड़ी प्रसन्नतासे समाधिगुप्त नामके सुनिराजको  
आहार दान दिया था इसलिये आयु पूरी कर हैमवत चैत्रकी भोगभूमिमें उत्सव हुई । बहुत दिन तक वहाँके सुखोंका  
अनुभव कर चंद्रमाके रोहिणी नामकी देवी हुई । वहाँ पर एक पत्न्यकी आयु पूरी कर मगधदेशके शाल्मलि ग्राममें विजय  
देवकी देविला स्त्रीसे पद्मदेवी नामकी सती पुत्री हुई । किसी एक समय उसने वरधर्म रही । किसी एक समय जाकर अज्ञानफलोंके  
खानेका त्याग रूप व्रत धारण किया । अपने व्रत पालन करनेमें वह दृढ़ बनी रही । किसी एक समय जाकर अज्ञानफलोंके  
आकर लूट लिया और नष्ट कर दिया इस लिये सिंहस्थके दशसे सब लोग पद्मदेवीको लेकर वनमें चले गये । सबलोगों  
को श्रव लगी इस लिये सबलोग विषफल खा खा कर मर गये । परंतु पद्मदेवी उन्हें जानती नहीं थी इसलिये अज्ञान-  
फल समझ कर उसने छुए तक नहीं और विना ही भोजनके प्राण छोड़ कर हैमवतचैत्रकी भोगभूमिमें उत्सव हुई । वहाँ  
से चयकर स्वयंप्रभ द्वीपमें स्वयंप्रभ देवकी स्वयंप्रभा देवी हुई । वहाँसे चयकर वह इसी जंबूद्वीपके भरतचैत्रमें जयंतपुर नग-  
रके राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके सुंदर आकरवाली विगलश्री नामकी पुत्री हुई । वह भद्रिल नगरके राजा मेघनादको  
व्याही गई थी और उन्हें इच्छानुसार सुख देती थी । किसी एक समय शुद्ध बुद्धिवाले राजा मेघनादने अपना सब राज्य  
छोड़ कर बर्गमुनिके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली तथा तपश्चरण कर अंतमें सहस्रार स्वर्गमें अवतरह सागरकी आ-  
यु पाकर दैदीप्यमान इंद्र हुआ तथा उसके बाद ही वह विमलश्री रानी भी पद्मावती अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर

तदुक्तान्तरं प्रेमबंधः संनद्धमन्यकः ॥ ४२७ ॥ युद्धे भंगं व्यधायैवेति श्रान्त्यमहीभुजा । आदाय तां महाशैवीपदं त्वं त्वया हतः ॥ ४२८ ॥ अथ गौरी-  
भव चैव वदामि शृणु माधव । अस्मिन् दृष्टेन विख्यातं पुरं नागपुरं ५ ॥ ४२९ ॥ पालकस्तस्य हेमाभो देवी तस्य यशस्वती । सान्नेयुश्चाग्न्य दृष्ट्वा  
यगोघरमुनीश्वरं ॥ ४३० ॥ स्मृतपूर्वमज्ञा राक्षसं प्रत्यभाषत । स्वभवं दशहोदित्या आपयंती मनोरम ॥ ४३१ ॥ अतस्तीक्ष्णश्रावणमदरापरस्त्वन्दिदे  
ह्यग । नात्रा शोकपुरं तत्र वास्तवगो वलिर्चावः ॥ ४३२ ॥ अनंदस्तस्य भार्याया जाता नन्दयशः भुति । दत्वा अतस्मिन्तुक्तिसागाग्य तनुस्थिति  
॥ ४३३ ॥ आश्चर्यपचक प्राप्य तत्पुण्यान्नीवित वधौ । उदककुण्डेषु समूहं भुक्त्वा तत्र कुर्वन् ततः ॥ ४३४ ॥ भुक्त्वा भवनवत्सीदभार्यः स्मृति समदात् ।  
ततः कदाचित्सद्वार्थवने सागरसङ्गं ॥ ४३५ ॥ सुरमधिरस्य संभावितोपवसा भवत्वावौ । देवी जातादिमे कल्पे तत्र निर्वर्तितस्थिति ॥ ४३६ ॥ द्वी-  
पेऽस्मिन्नेव काशाव्या सुमतिश्छित्तोभवत् । सुमदाया मृता धार्मिकी ते सशक्तिता जने ॥ ४३७ ॥ पुनर्जिनमतिष्ठातिवत्ता जिनगुणादिका । सपत्नि मधु

नामका राजा राज्य करता था उसकी रानीका नाम यशस्वती था । किसी एक दिन यशोधर नामके चारण्य मुनिराजको देखकर उसे पहिले भवोंका स्मरण हो आया । राजाके पूछने पर वह अपने दातोंकी कान्तिसे अपने पतिको स्नान करा-  
ती हुई इस प्रकार अपने पूर्व भव कहने लगी ॥ ४२९-४३१ ॥ धातकी खंडमें पूर्व मंदराचल संबंधी पश्चिम विदेह क्षेत्र में अशोकपुर नामका एक नगर था उसमें अनंद नामका एक वैश्यपति ( उत्तम वैश्य ) रहता था उसकी स्त्रीसे उसके एक अनंदयशा नामकी पुत्री थी । किसी एक दिन उसके घर अभितसागर नामके मुनिराज पधारे उन्हें अनंदयशाने  
आहार दिया इसलिये पुण्यकर्मके उदयसे उसके घर पंचाचार्योंकी वर्षा हुई । आयु पूरी होने पर वह उदक कुण्ड भोगभूमि में उत्पन्न हुई । वहाँके सुख भोग कर भवनवासी इंद्रकी इंद्राणी हुई और वहाँसे चयकर यहां आ उत्पन्न हुई हं । यह सब हाल सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ । तदनंतर किसी एक दिन उसने सागर नामके मुनिराजके समीप जाकर उपवास धारण किये । आयुके अंतमें वह पहिले स्वर्गमें देवी हुई । वहाँ की आयु पूरी कर इसी जंबूद्वीपकी कोशांची नगरीमें सुमति नामके शेटकी स्त्री सुमदासे धार्मिकी नामकी पुत्री हुई ॥ ४३३-४३७ ॥ वहाँ पर उसने जिनमति नामकी अजिकाके दिये हुए जिनगुण संपत्ति नामके व्रतका अच्छी तरह पालन किया और आयुके अंतमें महाशुक्र स्वर्गमें देवी हुई ॥ ४३८ ॥ बहुत दिन बाद वहाँसे निकल कर वीतशोक नगरके राजा मेरुचंद्रकी रानी चंद्रावतीके रूप लावण्य और कान्ति आदि गुणोंकी खानि यह गौरी हुई है । तुम पर प्रेम रखनेवाले विजयपुर नगरके राजा विजयनंदने लाकर तुम्हें दी और तेने भी इसे पहिरानी बनाया । यह सुनकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४४०-४४१ ॥ तदनंतर-गुणोंकी खानि ऐसे गणेश

इह जन्मति द्वीपे विषयोस्ति शुकोवालः । तत्रायोष्यापुरात्रीणो रुद्रान्मनो मनोरमा ॥ ४१६ ॥ विनयश्रीरिति ह्यता सिद्धार्थं हृग्वनेन्यदा । उदार्थमुने  
दत्तद ना स्वायु परिशये ॥ ४१७ ॥ उदत्कुण्डु निर्बिष्टभोगा तस्मादर्थच्युता । इदोद्यद्वनी देवी भूलाडनोप्यायुयोबध्ने ॥ ४१८ ॥ द्वीपेव स्वर्गमर्तु-  
रपाक्रेयथा खगेक्षित । विष्णुदेवस्य सदीप्ते पुरे गगनवल्लभे ॥ ४१९ ॥ सुरूपाह्वया सुता विष्णुदेवायामजनिष्ट सा । नित्यालोकपुरीशो िय विष्णु-  
शालिने ॥ ४२० ॥ महेंद्रविक्रमाथैषा दत्त न्येयुर्महेश्वरि । तौ गतौ चलगेहेषु जिनपूजार्थमुत्सुको ॥ ४२१ ॥ विनीतचारणरसेदुच्युतं चर्मविव मृत् । पी-  
त्वा श्रवणधुनेन पर्णं वृत्तिप्रदायतु ॥ ४२२ ॥ तयोर्नरपतिर्दीक्षामादात्तबर्णातिके । सुभद्रापादनासाय सापि सयममादरे ॥ ४२३ ॥ यौधर्मकल्पे  
देवीलमुगमगोपववित । स्वायु पत्न्योऽयमग्रते कनःत्रिष्वप्य तरुते । गगान्विषये पुष्कलावतीनगरेक्षितु । नृस्येन्द्रजिरेर्महमत्याय तनयाभवत् ॥  
४२५ ॥ गांधारील हयया ह्यता प्रदलुर्मिथुभय तां । पितु पापमति भुला प्रारंभ नारदस्वदा ॥ ४२६ ॥ सवस्व मेय तर्हर्म न्य दज्ज दप्रिय ॥

आहार दान दिया । अंतमें आयु पूरी होने पर उदक् कुलकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई । वहां से चय कर चंद्रमाकी चंद्रवती  
देवी हुई । वहां की आयु पूरी कर इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके गगनवट्टभ नगरके विद्याशरोंके  
प्रभापी राजा विद्युदेगकी रानी विद्युदेगासे सुल्या नामकी पुत्री हुई । वह अत्यंत विद्यावान् और पराक्रमी ऐसे नित्या-  
लोक नगरके राजा महेंद्रविक्रमको व्याही गई । किसी एक दिन वे दोनोंही दंपती बड़े उत्कंडित होकर चैत्यालयोंमें जिन-  
पूजा करनेमेंलिये सुमेरु पर्वतपर गये ॥ ४१६-४२१ ॥ वहां पर निराल्पमान किसी चरणगुनिल्ली चंद्रमासे निकला  
हुआ धर्मरूपी अभुतका पान किया और उसे सुक्कर वे दोनोंही बहुत संतुष्ट हुये ॥ ४२२ ॥ उन दोनोंमेंसे राजा महेंद्र  
विक्रमने तो उन्हीं चारणसुनिसे दीक्षा धारण कर ली और रानी सुल्याने सुभद्रा नामकी अर्जिकके समीप जाकर संयम  
धारण कर लिया ॥ ४२३ ॥ आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें एक पत्न्यकी आयु पाकर देवी हुई आयुके अंतमें वहांसे भी  
च्युत हो कर गंधार देशमें पुष्कलावती नगरके इंद्रगिरि की रानी मेरुपतीसे यह गांधारी नामकी पुत्री हुई है । राजा इंद्र-  
गिरि इसे अपने वृद्धाके लडकेको देना चाहता था परंतु यह बात संसारको अभिय और पाप बुद्धिवाले नारदने सुनी ।  
सुन कर शीघ्रही वह तेरे समीप आया और तुझसे सब बात कह सुनाई । सुनते ही तू भी मेमेके वश होगया और सेना  
फिर इसे पहरानीका पद दिया ॥ ४२४-४२८ ॥ यह कह कर गणेश देव फिर कहने लगे कि हे कृष्ण अब मैं गौरीके  
भव करता हूं तू सुन ! इसी जंबूद्वीपमें नागपुर नामका एक प्रसिद्ध नगर है । उसमें पुष्केश्रियोंकी रक्षा करनेवाला हेमपथ



पुच्छिदी संजाता सान्येपुर्नक्षिर्बर्देन । मुनि चारणमाश्रित्य गृहीतोपासकप्रता ॥ ४०३ ॥ यत्ना जाताष्टमे कल्पे नर्तकीदस्य हृदिप्रिया । अवतीर्य ततो  
 द्वीपे भरतेस्मिन् सगाचके ॥ ४०४ ॥ खगेदो दक्षिणश्रेण्या जाता चद्रुरेभिनि । भर्हदस्य सुतानुध्याय नेत्रमनोहरा ॥ ४०५ ॥ मालांतकनका सिद्ध-  
 विद्याख्याते स्वयम्बरे । मालया स्वीचकारोसौ कुमार हरिवाहनं ॥ ४०६ ॥ अय्येदु सिद्धकृत्यगुरु यमधराह्वय । समुपेत्य समाकण्ठे स्वभर्वातरसत-  
 ति ॥ ४०७ ॥ मुक्तावलीमुष्ण्यासीत् वृत्तियैदमनप्रिया । नवपल्लोपमयुष्का कालातसा ततद्व्युता ॥ ४०८ ॥ सुप्रकारपुराधीशशवरह्वयमहीपते । द्वी  
 मल्लश्च सुतासीत्त्व श्रीपद्मधुवसेनयो ॥ ४०९ ॥ कनीयसी गुणैश्च लक्ष्मणा सर्वलक्षणा । ता त्वा पवनवेगाह्वयलेचरः कमलोदरे ॥ ४१० ॥ समुपेत्य  
 रथागेशबाधुमार्गस्य निर्मला । लसती चद्रलेखेव तव योग्या ग्वमेशिनः ॥ ४११ ॥ तनूत्रा लक्ष्मणा कामोद्दीपिनीति जगाद सः । तद्वयःश्रवणा नतरे  
 त्वमेव नयेति तं ॥ ४१२ ॥ प्रेयसासास कसारि सोपि गन्धर्विलबित । तद्विपयोरनुमित्या त्वमर्पयामास चक्रिणे ॥ ४१३ ॥ तेनापि पटवधेन त्वमेवमसि  
 मानिता । इति श्रुत्वात्मजन्मतारावली सागममुद ॥ ४१४ ॥ गाधाराने रीपद्मवतीना जन्मतारावलि । गणेशो बासुदेवेन प्रष्टुम्याविलभापत ॥ ४१५ ॥

मोहद्वीकी रानी अनुधरीके नेत्रोंको प्यारी कनकमाला नामकी पुत्री हुई और सिद्धविद्य नामके स्वयम्बरमें उसने उसी डाल-  
 कर कुमार हरिवाहनको अपना पति बनाया ॥ ४०४-४०६ ॥ किसी एक दिन वह सिद्धहृत्पर विरजिमान यमधर नामके  
 गुरुके समीप गई और अपने पहिले भव सुनकर मुक्तावली व्रतका उपवास करने लगी आयु पूरी होनेपर तीसरे स्वर्गमें इं-  
 द्रकी इंद्रानी हुई नौ पल्यकी आयु पूरकर वहांसे च्युत हुई और सुप्रकार नगरके राजा शंकर रानी हीमतीके तू  
 पुत्री हुई है । तू श्रीपद्म और धुवसेनकी छोटी बहिन है परंतु गुणोंमें सबसे बड़ी है । तू सब लक्षणांसे पूरी है इसीलिये  
 लक्ष्मणा तेरा नाम है । किसी एक दिन पवनवेग नामका विद्याधर कृष्णके समीप जाकर कहने लगा कि हे चक्रवर्ती !  
 शंकरके एक लक्षणा नामकी पुत्री है जोकि आकाशमें चंद्रमाकी रेखाके समान सुशोभित है । वह कामको उदीपित करने-  
 वाली है और आपके ही योग्य है पवनवेगकी यह बात सुनकर कृष्णने उसे ही भेजा और कहा कि तू ही उसे ले आ ।  
 कृष्णकी यह आज्ञा पाकर पवनवेग शीघ्र ही गया और माता पितृके साथ उसे लेआया तथा चक्रवर्तीकी समर्पण कर दी  
 ॥ ४०७-४१३ ॥ कृष्णने भी तुम्हें पट्टरानी व्रता कर के तेरा सन्धान किया । इस तरह अपने भव सुनकर वह बहुत ही  
 प्रसन्न हुई ॥ ४१४ ॥ तदनंतर कृष्णने गांधारी गौरी और पद्मावतीके पहिले भव पूछे तब गणेशदेव भी इस प्रकार क-  
 हने लगे ॥ ४१५ ॥ इसी जंबूद्वीपके सुकोशल देशके अयोध्या नगरमें रुद्रनामका राजा राज्य करता था । उसकी विनय-  
 श्री नामकी मनोहर रानी थी । किसी एक दिन वह सिद्धार्थ बनमें गई । वहां पर उसने एक बुद्धार्थ नामके मुनिराजको

जाना सुता सुधीः ॥ ३९० ॥ कदाचिद्विदेहेनाख्य मुनिं संस्थित्य सद्रता । मासोपवासिने तस्मै दत्त्वा कायस्य संस्थिति ॥ ३९१ ॥ सा कदाचिद्वने रंतु मता वर्षभयाद् गुहां । प्रविष्टाजगराणीणां हरिवर्षतनु श्रिता ॥ ३९२ ॥ निर्विदग्ध तद्रतान् भोगान् नागी जाता ततश्च्युता । च्युता ततो विदेहेस्मिन् पुष्कलाबलुषीरिते ॥ ३९३ ॥ विषये पुढरीकिण्यामशोकाख्यमहीरतेः । सोमश्रियश्च श्रीकाता सुता भूत्वा कदाचन ॥ ३९४ ॥ विनदत्ताधिकोपाते वी-क्षामादाय सुवता । तपस्यती चिरं घोरमुपोष्य कनकावली ॥ ३९५ ॥ माहेंद्रे दिविजी भूत्वा भोगान् दिव्यान् दिवाकसां । त्वयुरिते तनश्च्युत्वा सु-ज्येष्ठाया सुताऽभव ॥ ३९६ ॥ सुराष्ट्रवर्द्धनाख्यस्य वृपस्थ त्व सुलक्षणा । हरेर्देवी प्रमोदेनं वद्धसे वल्लभा सती ॥ ३९७ ॥ स्वभवांतरसंबधमाकण्डे-बाप समदं । को न गच्छति सतोयसुतरोत्तमृद्धित ॥ ३९८ ॥ लक्ष्मणापि मुनिं नत्वा शुद्धं स्वभवानभूत् । अंधाश्रयैवमेतस्याश्चिकीर्षु सोप्यनु-ब्रह्म ॥ ३९९ ॥ इह पूर्वविदेहेस्ति विषयः पुष्कलावती । तत्राश्रितपुरावीथो वासवस्य महीपतेः ॥ ४०० ॥ वसुभ्यामभूत्सुतः सुषेणाख्यो गुणाकरः । केनचिष्वातनिर्वेगो वासवो निकटेप्रहीत ॥ ४०१ ॥ दीक्षां सागरसेनस्य तदप्रिया सुतमोहिता । गेहवास परित्यक्तुमसमर्था कुचेष्टया ॥ ४०२ ॥ मृत्वा

देहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें पुंढरीकिणी नगरीके राजा अशोक रानी सोमश्रीके श्रीकांता नामकी पुत्री हुई । किसी एक दिन जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप उसने दीक्षा धारण की, अच्छे अच्छे व्रतोंका पालन किया, और कनकावली नामके व्रतके बहुत दिनतक घोर उपास किये ॥ ३९२-३९५ ॥ आयुके अंतमें चौथे महेंद्र स्वर्गमें देवी हुई, वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर आयु पूरी होनेपर च्युत हुई और सुराष्ट्रवर्द्धन राजाकी रानी ज्येष्ठाके अच्छे लक्षणोंवाली तू-पुत्री हुई है । तथा कृष्णकी सती और प्यारी पटरानी होकर आनंदसे दिन बिता रही है ॥ ३९६-३९७ ॥ इसतरह सु-सीमा अपने भवोंका संबंध सुनकर बहुत प्रसन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होनेसे भला कोन सं-तुष्ट नहीं होता है ॥ ३९८ ॥ तदनंतर लक्ष्मणा भी मुनिको नमस्कारकर अपने भव सुननेकी इच्छा करने लगी । तब वे मुनिराज भी उपकार करनेकी इच्छासे इसप्रकार कहने लगे ॥ ३९९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके अश्रित नगरके राजा वासवकी रानी वसुमतीके सुषेण नामका एक गुणवान पुत्र हुआ था । किसी कारणसे राजा वासवसेनने तो मुनिराज सागरसेनके निकट दीक्षा धारण करली परंतु उसकी रानी वसुमती पुत्रके प्रेमसे घरका नि-वास छोड़ न सकी इसलिये कुचेष्टासे घरकर स्नेच्छिनी हुई । किसी एकदिन नंदिवर्द्धन नामके चारण मुनिराजके समीप जाकर उसने श्रावकके व्रत धारण किये ॥ ४००-४०१ ॥ आयु पूरी होनेपर वह आठवें स्वर्गमें इंद्रकी प्यारी नृत्यका-रिणी हुई । वहांसे चयकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयाज्य पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें चंद्रपुर नगरके विद्याधरोंके राजा

दे साधवेति ते ॥ ३७९ ॥ दत्ता तत्साधनोपायमभिधाय गन्गे दिङ् । स ह्रीं स गङ्गा तत्र दिश्यते स्थितः ॥ ३८० ॥ साधयामास मासांस्तो च-  
तुरो विधिपूर्वक । सिंहादिर्विबाहिः द्वौ विधौ हलिहरी गतौ ॥ ३८१ ॥ आरभ्य जाववं युद्धे विजित्यादयः तत्पुता । महादेवीपदे प्रीत्या त्वामकर्मणि-  
तीडिति ॥ ३८२ ॥ श्रुत बन्धुविशेषेण यद्यप्यस्पष्टतर्कण । तत्पृष्टमिव विस्पष्ट सर्वं तस्यास्तदाभवत् ॥ ३८३ ॥ अथानन्तरमेवेन शुनीद्र गणनायकं ।  
सुतीमाः भवसंबन्धमात्मन पृच्छतिस्म सा ॥ ३८४ ॥ स्ववाकिरणजालेन बोधस्तन्मनोबुज । इत्युवाच विनेयाना निनिर्मितकबाधव ॥ ३८५ ॥ धात-  
कीखड्गपूर्वांशान्निविदेतिश्रुतः । भोगागमनिर्मात्रौ विषयो मंगलावती ॥ ३८६ ॥ रत्नसन्ध्यानामात्र पुरं तत्परिपालक । विश्वदेवः प्रियास्यासी  
देवी श्रीमत्यनुधरी ॥ ३८७ ॥ तमगोप्यापतौ युद्धे हतबलतिगोक्तनः । सा मन्त्रिभिर्निपिद्धापि प्रविश्य हुतभोजन ॥ ३८८ ॥ विजयादं सुरी भूज्या  
व्यतरेष्वयुतयुषा । जीवित्वा तस्य तत्रांते भवे प्रात्वा यथोचित ॥ ३८९ ॥ द्वीपेस्मिन् मारते शालिग्रामे यक्षस्य मेहिनी । देवसेना तयोर्थक्षदेवी

वर्तने बडे प्रेम्से महादेवी पदपर विराजमान किया ॥ ३८२ ॥ यद्यपि पहिले जन्मका वृत्तांत सब छिपा हुआ था तथापि  
विशेष वक्ता गणेश्वर देवके कहनेसे वह उससमय उसे देखे हुएके सुमान स्पष्ट हो गया ॥ ३८३ ॥ अथानन्तर-इन्हीं शुनि-  
राज गणेश्वर देवको सुसीमा नामकी पट्टरानी अपने पहिले भवोंका संबंध पूछने लगी ॥ ३८४ ॥ तव शिष्योकेलिये वि-  
नाही कारणके एक बंधु भगवान गणेश्वरदेव अपने वचनरूपी किरण समूहसे उसके मनरूपी कमलको प्रफुल्लित करते हुए  
इसप्रकार कहने लगे ॥ ३८५ ॥ धातकीखड्गके पूर्वकी ओर पूर्व विदेहक्षेत्रमें मंगलावती नामका एक प्रसिद्ध देश है जो  
कि जीवोंके भोगोपभोगकेलिये एक ही साधन है ॥ ३८६ ॥ उसमें एक रत्नसंघ नामका नगर है उसमें राजा विश्वदेव  
राज्य करता था और उसके बुद्धिमती अनुधरी नामकी रानी थी ॥ ३८७ ॥ किसी एक दिन अयोध्याके राजाने युद्धमें  
राजा विश्वदेवको मार दिया इसलिये अत्यंत शोकके कारण मंत्रियोंके निषेध करनेपर भी वह अग्निमें जलमरी ॥ ३८८ ॥  
मरकर वह विजयाद पर्वतपर दशहजार वर्षकी आयु पाकर व्यंतरी देवी हुई । वहांकी आयु पूरीकर उसने अपने कर्मोंके  
अनुसार संसारमें परिभ्रमण किया ॥ ३८९ ॥ फिर इसी जंबूद्वीपमें भरतदेवके शालिग्राममें धनकी स्त्री देवसेनाके यत्न-  
देवी नामकी बुद्धिमती पुत्री हुई ॥ ३९० ॥ किसी एक दिन वर्षसेन नामके मुनिराजके समीप जाकर उसने व्रत धारण  
किये और एक महीनका उपवास करनेवाले उन्हीं मुनिराजको उसने आहार दिया ॥ ३९१ ॥ किसी एकदिन वह क्रीडा  
करनेकेलिये बनमें गई, वहांपर वर्षा बहुत आनेसे वह किसी गुफामें छुस गई परंतु वहांपर उसे एक अजगरने खा लिया,  
इसलिये मरकर वह हरिवर्षदेवकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई, वहांके भोग भोगकर नागकुमारी देवी हुई । वहांसे चक्कर वि-

देः ॥ ३६८ ॥ अपस्तवं जुनेपायां सती जांबवती कुता । सुतः पवनवेगस्य श्यामलायाश्च कामुक ॥ ३६९ ॥ भवत्या, स नर्मिनीप्रा मैथुनाक्षिपिजे-  
च्छ्या । ज्योतिर्विनेन्द्रा स्थित्वा देया जांबवती न चेत् ॥ ३७० ॥ आच्छिद्यबाह प्रदीप्यामीत्यवोचज्जांबव कुथा । आदितुं प्रेषयामास विद्यामाक्षिकल-  
क्षिता ॥ ३७१ ॥ तदा नमिक्कुमारस्य किमरोह्यपुराधिपः । मादुलो यक्षमाली तामच्छेदीत्स्वचरेभर ॥ ३७२ ॥ सर्वविद्याच्छिदा भुत्वा तत् जांबवतनू  
मुवे । नरेनाकम्य संप्राप्ते कुमारै जुनुनामिति ॥ ३७३ ॥ पलायत निजस्थानानामिभात्वा समादुलः । अनालोभितकार्यणां किं मुक्त्वान्यत्पराभव ॥  
३७४ ॥ नारदस्तद्वित्वाणु संप्राप्य कमलोदरं । वर्णयामास जम्बावतीरुपमतिदुंदरं ॥ ३७५ ॥ हठात्कृष्णस्तदाकर्ण्य हरिष्यामीति तां सती । संभ्रमदवत  
संपत्या गत्वा सगवर्नासिके ॥ ३७६ ॥ निविष्टा मनसालोक्य भात्वा तत्कर्म दुष्करं । उपोष्याचितयद्वाश्रौ केनेद सेस्थतीत्यसौ ॥ ३७७ ॥ प्रसाधितात्रि  
सहोपि तत्राभ्युत्पलवतायति । तद्विपक्षसङ्गोदस्य पुण्यं किमपि तादृश ॥ ३७८ ॥ यक्षिलाद्येनो जस्तस्य 'प्राक्कनस्तपसावसन् । महाशुक्तेतदस्येते तिवे

परंतु बहापर किमरपुर नगरका विद्याधरोंका राजा यक्षमाली नमिक्कुमारका मामा था उसने वह विद्या छेद डाली ॥ ३७२ ॥  
अपनी सब विद्याओंके छेदी जानेकी बात सुनकर राजा जांबवने सब सेनाके साथ अपना जंबूकुमार नामका पुत्र भेजा ।  
उसके आते ही वह नमिक्कुमार मामाको साथ लेकर अपने नगरको आगया सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य बिना विचार  
किया जाता है उसका फल अपमानके सिवाय और क्या हो सकता है ॥ ३७३-३७४ ॥ नारद ये सब बातें जानकर  
शीघ्र ही कृष्णपर गया और उसने उनसे जांबवतीके अत्यंत सुंदर रूपका वर्णन किया ॥ ३७५ ॥ यह सुनकर कृष्णने हठ  
पूर्वक उस सतीको हरनेका विचार किया और इसीलिये वे अपनी सब सेनारूपी संपत्ति लेकर विद्याधरोंके बनमें जाकर  
ठहर गये । मनमें सोचने लगे कि यह काम तो बहुत कठिन है यही समझ कर उन्होंने उपवास किया और रात्रिमें विचार  
करने लगे कि यह काम किसतरह सिद्ध होगा ॥ ३७६-३७७ ॥ देखो ! जिसने तीनों खंड अपने वश कर लिये हैं ऐसे  
कृष्णका भी प्रभाव खंडित हो गया परंतु विद्याधरके शत्रु कृष्णका पुराय ही कुछ ऐसा था जिससे पहिले जन्मका यज्ञित  
नामका छोटा भाई जो तपश्चरणकर महाशुक् विमानमें देव हुआ था वह आया और कहने लगा कि जो मैं देता हूं वे दो  
विद्याएं सिद्ध करो इसतरह कहकर उसने दो विद्याएं दी और उनके सिद्ध करनेका उपाय वतलाकर वह स्वर्गको चला  
गया । इधर कृष्ण एक लीरसागर बनाकर उसमें नागशय्यापर विराजमान हुए और विधिपूर्वक चार महीने तक विद्याएं  
सिद्ध कीं तदनंतर उन्हें सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याएं सिद्ध हुई । बलभद्रने सिंहवाहिनी ली और कृष्णने गरुडवा-  
हिनी ली ॥ ३७८-३७९ ॥ फिर राजा जांबवके साथ किया, उसे जीता और उसकी पुत्री तुम्हे लेकर उस चक्र-

देवमुवाच भगवानिति ॥ ३५९ ॥ द्वीपेस्मिन् प्राग्निदेहेस्ति विषय पुष्कलावती । वीतशोकं पुरं तत्र दमको वैश्यवंशज ॥ ३६० ॥ पत्नी देवमतिस्तस्य सुतासीदेविला तयो । दत्तासौ वसुमित्राय विचवाभ्युदन्तरं ॥ ३६१ ॥ निर्बुध्ना जिनदेवाद्ययतिमेत्याहितव्रता । अगाद् व्यतरटेनीत्वं मंदारे नदने वने ॥ ३६२ ॥ ततश्चतुरशीत्युक्तसहस्रान्दधुषदच्युतौ । विषये पुष्कलावत्या पुरे विजयनामनि ॥ ३६३ ॥ मधुषेणान्येयस्य वधुमत्याश्च बंधुरा । सुता बंधुयशा नाम भूताभ्युदयोन्मुखी ॥ ३६४ ॥ जिह्वैदेवमुवा सह्या सहसौ जिनदत्ताया । समुपोष्यादिसे कल्पे कुबेरस्याभवत् त्रिया ॥ ३६५ ॥ ततश्च्युत्वा उभवापुंडरीकिण्या वज्रनामभ्यु-वैश्यस्य सुप्रभायाश्च सुमति सुतसप्तमा ॥ ३६६ ॥ सा तत्र सुव्रताख्याधिकिहारापणपूर्वकं । रत्नावलीमुपोष्याभूद् ब्रह्मलोकेप्सरोवरा ॥ ३६७ ॥ विरात्ततोपि निष्क्रम्य द्वीपेस्मिन् खेचराचले । उदक्त्रेण्या पुरे जाववाह्ये जाववभ्युप-

धर देव इस प्रकार कहने लगे ॥ ३५९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतयोका नगरीमें दमक नामका एक वैश्य रहता था ॥ ३६० ॥ उसकी स्त्रीका नाम देवमति था और उन दोनोंके देविला नामकी पुत्री थी । वह देविला वसुमित्रको व्याही गई थी परंतु वह विधवा हो गई थी ॥ ३६१ ॥ इसलिये विरक्त होकर तुने जिनदेव नामके मुनिराजके समीप जाकर व्रत धारण किये थे और प्राण छोड़कर तू मन्दराचल पर्वतके नंदन वनमें व्यंजरी देवी हुई थी ॥ ३६२ ॥ वहांकी चौरासी हजार वर्षकी आयु भोग कर च्युत हुई और पुष्कलावती देशके विजयपुर नगरमें मधुषेण नामके वैश्यकी स्त्री बंधुमतीसे बंधुयशा नामकी बहुत सुंदर पुत्री हुई और उसका पुण्य बढ़ता ही जाता था वहींपर जिनदेवकी पुत्री जिनदत्ताके साथ उसकी मित्रता थी इसलिये उसीके साथ उपवास आदिकर वह मरकर पहिले स्वर्गमें कुबेरकी देवांगना हुई ॥ ३६३-३६५ ॥ वहांसे चयकर पुंडरीकिणी नगरीमें वज्र नामके वैश्यके घर उसकी सुमभा स्त्रीसे सुमति नामकी उत्तम पुत्री हुई ॥ ३६६ ॥ वहांपर उसने सुव्रता नामकी अर्जिकाको आहार दिया और रत्नावली व्रतका उपवास किया जिससे आयु पूरी होनेपर वह ब्रह्म नापके पांचवें स्वर्गमें उत्तम अम्भरा हुई ॥ ३६७ ॥ बहुत दिनतक वहांके सुखभोगकर च्युत हुई और इसी जंबूद्वीपके विजयाद्र पर्वतकी उत्तर श्रेणीके जांवव नगरमें राजा जांवव रानी जंबुषेणाके तू सती जांववती पुत्री हुई है । उसी विजयार्ण पर्वतपर राजा पवनके रानी प्र्यामलोके एक नमि नामका पुत्र था वह कामी था नातेमें तेरा पति होने योग्य था और तुझे चाहता था किसी एक दिन वह ज्योतिर्वनमें गया और वहां पर जाकर उसने साफ कह सुनाया कि यदि राजा जांवव मुझे अपनी पुत्री जांववती न देगा तो मैं हरकर उसे ले आऊंगा । तब राजा जांववको ब्रह्म आया और उसने उसे खानेकेलिये आजिकलजिता नामकी विद्या भेजी ३६८-३७१

भूयस्मूलस्यपादक । शेषावे शिशुपालोभा मासतेस्तेव शास्त्रं ॥ ३५० ॥ हरि हरिवाक्यम् विक्रमेगकमेणिना । राजकं धीरराजेन सोवाच्य-  
दतिवु स्वय ॥ ३५१ ॥ दधिणा यशसा विश्वमर्षिणा म्यायुरर्षिणा । दत्त तेनापराधानां व्याधायि मयुरिद्विगः ॥ ३५२ ॥ स्वमूर्द्धकरा मूर्द्धन- कृतमक्षो-  
पटगवल्गसपत्नी गत्वा हत्वा तस्मिन्निजित ॥ ३५३ ॥ संघ शान्तोपि शत्रूणा हर्षवैषागमनययः । विविगीपुतायुक्तेषु लेपकृत्र मुमुक्षुयत् ॥  
इत्य दूतकमार्द्धयं कः करोति कुयुक्त्वं । मत्वागमैमयाशो चैयदि दुर्गमिनीभरात् ॥ ३५४ ॥ नारदेन हरिः गर्ग मरकादंमयवोस्त्रिनः ।  
है उसी प्रकार वह भी क्रूर और मतार्षा था तथा सूर्य जिस प्रकार दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूयुत अर्थात् पर्वतके  
पर्वत पर अपनी किरणों फैलाता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूयुत अर्थात्  
राजाओंके पर्वतपर अपने पैर रखता था ॥ ३४२-३५० ॥ इधर कृष्ण अपने एक साथ होने वाले पराक्रमसे सुगोभित  
हो रहे थे उनको भी यह अपनी धीरतासे सिद्ध और अपनी आयुको समर्पण करनेवाले अभिमानी शिशुपालने कृष्णके सौ  
रस तरह अपने यशसे सब संसारमें मसिद्ध और अपनी आयुको समर्पण करनेवाले अभिमानी शिशुपालने कृष्णके सौ  
अपराध कर डाले ॥ ३५२ ॥ जो अपनेको बहुत बड़ा समझता है सिरके बल चलना है अर्थात् जो उन्मत्त वा पक्षाग्रि-  
मानी है और जो कृष्णकी पक्षको काटनेके लिये तैयार हुआ है ऐसा वा शिशुपाल कृष्णको तिरस्कार कर लक्ष्मी  
पर अधिकार जमानेके लिये तैयार हुआ ॥ ३५३ ॥ शांत हुआ भी गदुओंका समूह पापोंके समूहके समान  
कभी न कभी मारता है इस लिये पापोंकी जीतनेकी इच्छा करनेवाले मोक्षार्थीके ममान उसे उक्ताड कर फेंकनेमें कभी  
देर नहीं करनी चाहिये ॥ ३५४ ॥ इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर तेरा पिता बड़े प्रेमसे तुम्हें शिशुपालको देनेके  
लिये तैयार हुआ ॥ ३५४ ॥ इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर तेरा पिता बड़े प्रेमसे तुम्हें शिशुपालको देनेके  
कृष्ण अपनी छह तरहकी सब सेना लेकर वहां गये, उस प्रतापी शिशुपालको मार कर तुम्हें लाभ और तेरे पर्वत पर  
महादेवीका पदबंध बांधा । गणधरकी ये सब बातें सुनकर रुक्मिणीको बहुत ही संतोष हुआ ॥ ३५५-३५६ ॥ इस  
कगानकको सुनकर दुर्बुद्धिको छोड़कर अन्य कौन ऐसा बुद्धिमान है जो मुनियोंको मलिन देखकर भी स्तानिकरो ॥ ३५७ ॥  
अयानंतर—रानी जांवकी भी भगवान गणधर देवको नमस्कार कर बड़े आदरसे अपने भव पृष्ठने लगी तब गण-

स्नान्मनैर्धीरत्वमतः परं । इति श्रोत्वाहिता सह्या सा संन्यस्य समाधिना ॥ ३३९ ॥ च्युतप्राणाच्युतैतस्य ब्रह्मभाभूदतिश्रिया । पत्यानां पचर्पचाशत त-  
त्राच्छिद्रमैसाह्यभाक् ॥ ३४० ॥ च्युत्वा ततो विदमोह्यविषये कुडलाह्वये । पुरे वासवभूभर्तुः श्रीमत्याश्च सुताभवः ॥ ३४१ ॥ रविमण्यथ पुरः कोशला-  
ह्याया भूपते सुत । भेषजस्याभवन्मद्रथा शिशुपालखिलोचनः ॥ ३४२ ॥ अभूतपूर्वमेतत्तु मनुष्येष्वस्य किं फल । इति भूपतिना पृष्टः स्पष्ट नैमित्तिको  
बदत् ॥ ३४३ ॥ तृतीय नयनं यस्य दर्शनादस्य नश्यति । अयं हविष्यते तेन सद्यो नेत्यदृष्टवित् ॥ ३४४ ॥ कदाचिद्भेपजो मद्रो शिशुपाल परेषि च ।  
गता द्वारावती दृष्टु बाहुदेव समुत्सुकाः ॥ ३४५ ॥ अदृश्यतामगानेत्र जरासंधाविधीक्षणात् । तृतीयं शिशुपालस्य विवित्रा द्रव्यक्षयः ॥ ३४६ ॥  
विज्ञातादेशया मद्रा तद्विलोक्य हरिं मिया । ददस्व पूज्य मे पुत्रमिक्षामित्यभ्याचत ॥ ३४७ ॥ शतापराधपर्यंतमंतरेणाव मङ्गयं । नास्यास्तीति हरे  
हन्धवरासा स्वा पुरीमगात् ॥ ३४८ ॥ विशुद्धमंडलो नित्यमुद्यद्यस्तद्विपत्तया । पद्माल्हादपरस्तीक्ष्णाकरः क्रूरः प्रतापवान् ॥ ३४९ ॥ प्रच्छाद्य परतेजाति-

राजा भेषज राज्य करता था उसकी मद्रो रानीसे शिशुपाल नामका एक पुत्र था और उसके तीन नेत्र थे ॥ ३४१-३४२ ॥  
तब राजाने किसी निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मनुष्योंमें तीन नेत्र होना कभी न देखा न सुना इसलिये शिशुपालके तीन  
नेत्र होनेका क्या फल है ? इसके उत्तरमें अष्टक को जानने वाले निमित्तज्ञानीने स्पष्ट कह सुनाया कि जिसके देखनेसे इसका  
तीसरा नेत्र न हो जायगा वही पुरुष ऐसे मारेगा इसमें विलकुल संदेह नहीं है ॥ ३४३-३४४ ॥ किसी एकदिन राजा  
भेषज रानी मद्रो, कुमार शिशुपाल तथा और भी कितने ही लोग बड़े उत्साहसे कृष्णाको देखनेकेलिये द्वारावती नगरीमें  
गये ॥ ३४५ ॥ वहां पर कृष्णाको देखते ही शिशुपालका तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया सो ठीक ही है क्योंकि द्रव्योंकी  
शक्तियां बड़ी ही विचित्र हैं ॥ ३४६ ॥ मद्रोने यह सब हाल जानकर कृष्णाकी आज्ञानुसार उनके दर्शन किये और बड़े  
डरसे याचना की कि हे पूज्य मुझे पुत्रकी भिन्ना दीजिये ॥ ३४७ ॥ तब कृष्णने कहा कि जब तक इसके सौ अपराध  
न हो जायगे तब तक इसे मेरा कुछ किसी तरहका भय नहीं होगा । इस तरह कृष्णासे बर पाकर वह मद्रो अपने घरको  
चली गई ॥ ३४८ ॥ इधर शिशुपाल वालक अवस्थामें ही सूर्यके समान दैदीप्यमान होने लगा क्योंकि जिस प्रकार सूर्य  
मंडल विशुद्ध है उसी प्रकार उसका मंडल अर्थात् मंत्री आदि सब विशुद्ध ( शुद्धतारहित ) थे, सूर्य जिस प्रकार सदा  
उदय होते ही शत्रु अंधकारको नष्ट करता है उसी प्रकार वह सदा उदय रूप होकर बड़े २ शत्रुओंको नष्ट करता था, सूर्य  
जिस प्रकार कमलोंको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी पद्मा अर्थात् लक्ष्मीको प्रसन्न करता था, जिस-  
प्रकार सूर्यकी किरणों तीक्ष्ण हैं उसी प्रकार उसका कर ( महसूल ) भी तीक्ष्ण था, सूर्य जिस प्रकार क्रूर और प्रतापी



रवर्तिनी स कदाचन । समाधियुक्तमालोक्य नदीतीरे पुरातन ॥ ३२८ ॥ काललब्ध्या समासाय प्रतिमायोगधारिणं । गृहीतोपशमां योगिदेहस्यमशरादि-  
क ॥ ३२९ ॥ अपास्यंती प्रयत्नेन निशाते योगनिष्ठिता । उपविष्टस्य पादाब्जमुपहृत्योदितं मुनेः ॥ ३३० ॥ श्रुत्वा धर्मधियादत्तपर्वोपवसतिं बुधी । प-  
उपविष्टा निजाचारं पालयंती भयादधात् ॥ ३३१ ॥ आमातरं समं गत्वा तदानीतांधसा सदा । प्राणसधारणं कृत्वा कस्मिंश्चिद् भूयतोवले ॥ ३३२ ॥  
का दृष्टुं स्वा वास्तव्यादुपागता ॥ ३३३ ॥ अमिधायानं पापिष्ठा मा त्वं पुण्यवती कुतः । पश्यसीति निजातीतसवान् ज्ञातान् यतींधरात् ॥ ३३४ ॥  
तस्या व्यावर्णयत्सापि वयस्यासाः पुरातनी । तथैतदबुद्ध्याग्रामार्गं जैनमयक्षयात् ॥ ३३५ ॥ प्राणजन्मार्जितपापस्य परिपाकाद्विरूपता । रोगवत्त्वं कुगं-  
धल निर्धनत्वादिकं च कैः ॥ ३३६ ॥ न ग्राण्यतेन ससारे तत्त्व भूमां हितां शुभा । लयात् ज्ञातशीलोपवासादिपरजन्मने ॥ ३३७ ॥ पापेयं दुर्लभं त-  
मका स्वरूपं मुना और धर्मबुद्धिसे पूर्वमें उपवास करना स्वीकार किया । दूसरे दिन एक अर्जिका जिनपूजा करनेकोलिये  
दूसरे गांव जाती थी उसे देखकर वह उसीके साथ हो ली उसीके साथ वह भोजन कर आती थी इसतरह वह अपना  
जीवन निर्वाह करतीथी और पापोंसे डरकर अपने आचारका पालन करती हुई किसी पर्वतपर रहती थी । किसी एकदिन  
पूजा करनेवाली अर्जिकाके दर्शन करनेकोलिये एक आर्विका आई थी उसके पहलेनेपर अर्जिकाने कौतुक रूपसे सब समा-  
चार कहा और कहा कि नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी यह ऐसे व्रत उपवास करती है इसमकर आदरपूर्वक उसकी प्रशं-  
साकी । तब वह पूतका कहने लगी कि हे माता ! मुझ पापिनीको आप पुरायवती कैसे समझती हो । इसतरह कहकर उसने  
मुनिराजसे जो अपने पहिले भव मुने थे वे सब उस आर्विकासे कह सुनाये । वह आर्विका पहिले किसी भवकी इसकी  
सखी थी उसने यह सब सुनकर कहा अब पापकर्मोंके नष्ट होनेसे तुम्हें जैन धर्मकी प्राप्ति हुई है ॥ ३२९-३३६ ॥ पहिले  
जन्ममें कमाये हुए पापकर्मोंके उदयसे इस संसारमें बुरा रूप, रोगी शरीर, दुर्गंधपना और निर्धनता किसको प्राप्त नहीं  
होती इसलिये तू शोक मतकर । तूने जो व्रत शील उपवास आदि धारण किये हैं वे परजन्मके लिये अत्यंत दुर्लभ पापेय  
( रस्तेका खर्च ) हैं इसलिये अब तू आगेकेलिये कुछ द्रम्यत कर । इसतरह उस सखीने उसे उत्साह दिलाया । आयुके  
अंतमें उसने समाधिपूर्वक संन्यास धारण किया ॥ ३३७-३३९ ॥ प्राण छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गके इंद्रकी अ-  
त्यंत मिय बल्लभा हुई । वहांपर उसने पचपन पत्यतक निरंतर सुखोंका अनुभव किया ॥ ३४० ॥ वहासे च्युत होकर वि-  
दर्भ देशके कुंडलपुर नगरमें राजा वासवकी रानी श्रीमतीसे तू रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई है । अयानंतर-कोशल नगरमें

भारते क्षेत्रे मगधांतरवर्तिनि । शष्मीग्रामे द्विजः सोमोत्पाश्रुशष्मीमतिः प्रिया ॥ ३१७ ॥ प्रसाधितांगी सान्येयुर्दण्डलोकोनोषता । समाधिगुप्तमालोक्य मुनिं शिक्षार्थमागत ॥ ३१८ ॥ प्रस्वेदमलदिग्भागो दुर्गभोयमिति कुषा । विचिकित्सापरा साधिक्षेपोकोद्रारिणी तदा ॥ ३१९ ॥ सहस्रोद्वराह्येन कुटेन व्यासदेहिना । शुनीव सर्वतस्तर्ज्यमाना परुषभाषितैः ॥ ३२० ॥ शून्यगेहेऽतिदु खेन मृत्वा मेहाहिताशया । गेहस्यैव द्विजस्याभूद् दुर्गंधश्चिकराच्छुक ॥ ३२१ ॥ तस्योपरि मुहुर्थावस्तेन कोपवता वहिः । गृहीत्वा निष्ठुरं क्षिप्तो मृत्वा त्वहिरजायत ॥ ३२२ ॥ तत्रैवासा पुनर्मृत्वा गर्दभोभूस्त्वपपतः । मुहु मुहुर्गृह गच्छस्त्वदैव कुपितैर्द्विजैः ॥ ३२३ ॥ इतो लकुटपाणैर्गर्भप्रापद् क्षुमित्रणैः । आकुल पतित कृपे दुःखितो मृतिमागतः ॥ ३२४ ॥ ततो वहि स मुत्पन्नो मृत्वाधश्चाथ शक्रः । ग्रामे यो भक्षितो मृत्वा सोऽपि श्रमिश्रितस्ततः ॥ ३२५ ॥ मत्स्यस्य मंदिरग्रामे नद्युत्तरणकारिणः । मंदूक्यश्च सुता जाता पूतकानाम पाणिनी ॥ ३२६ ॥ सोत्पल्यन्तरं लोकांतरं यातः पिता ततः । माता च योयिता मातामया सर्वोच्छ्रमादिले ॥ ३२७ ॥ विचिकित्स्या नदीती कुष्ठ ( कोट ) रोगसे उसका शरीर भर गया और सब लोग कठोर वचन कहकर कुत्तीके समान उसका ताडन करने लगे ॥ ३१८-३२० ॥ वह मृने मकानमें अकेली पड़ी रहती थी निदान हृदयमें पतिका प्रेम रखकर वडे दुखसे वहीं मृने मकानमें मरी और उसी ब्राह्मणके घर छछूंदर हुई ॥ ३२१ ॥ प्रेमके कारण वह बार बार उस ब्राह्मणके ऊपर दौड़ती थी इस लिये क्रोधकर ब्राह्मणने उसे पकड़ा और बाहर जाकर वडे जोरसे उसे दे पटका जिससे मरकर सांप हुई ॥ ३२२ ॥ फिर मरकर अपने पाप कर्मके उदयसे वहीं (ब्राह्मणके समीप ही) गया हुई । वह गया बार बार उस ब्राह्मणके यहां जाता था इसलिये ब्राह्मणने क्रोधित होकर सकड़ी पत्थरसे उसे मारा जिससे उसका एक पैर टूट गया, उसके धावमें कीडे पडगये व्याकुल होकर वह झूएमें पड गया और दुःखी होकर मरगया ॥ ३२३-३२४ ॥ मरकर उसी गांवके बाहर अंधा सञ्चार हुआ, गांवके कुत्तोंने इधर उधर फिरते हुए उसे काट खाया जिससे मरकर वह मंदिर नामके गांवमें नाव चलानेवाले मत्स्य नामके धीवरकी स्त्री मंडूकीसे पाणिनी पूतका नामकी पुत्री हुई ॥ ३२५-३२६ ॥ इसके उत्पन्न होते ही इसका पिता मरगया था और माता भी मर गई थी, दादीने उसे पाला था वह सञ्चरहसे अशुभ थी और सब लोग उसकी निंदा करते थे । किसी एक दिन वह नदीके किनारे बैठी थी वहीपर नदीके किनारे उसने उन्हीं पहिले समाधिगुप्त मुनिके दर्शन किये ॥ ३२७-३२८ ॥ वे मुनि प्रतिमायोग धारण किये हुए शांतचित्त थे पूतकाकी काललब्धि समीप आगई थी इसलिये उसने मुनिराजके शरीरपर लगे हुए मच्छर आदि वडे प्रयत्नसे दूर किये । सबरेके समय जब उनका योग समाप्त हुआ तब मुनि विराजमान हुए वह पूतका भी उनके चरणकमलोंके समीप पहुंची, उस बुद्धिमतीने उनसे ध-

३.५ ॥ निर्धनेः परलोकार्यं स्वयं साहसवाल्लिप्ति । भूखण्डगिरिदानेन सुखमिष्टमवाप्यते ॥ ३०६ ॥ इतीलादिदृष्टातकुद्रेतुनिपुर्णनृपं । कायक्रेशासह  
वाक्यैरमथार्थमवबुधत् ॥ ३०७ ॥ तथापराश्व निर्बुद्धीन् बोधयन् जीवितान्धैषा । भूत्वा सप्तस्वधोभूमिष्वतस्तिर्यङ्मु च क्रमात् ॥ ३०८ ॥ गंधमादनकूटो-  
त्यमहागंधावती नदी । समीपगतमल्लुकिनामपत्न्यां स्वपापतः ॥ ३०९ ॥ जातो बनेचरः कालसह स तु कदाचन । बरधर्मयतिं प्राप्य मध्यादिनि  
निवृत्ति ॥ ३१० ॥ विजयाईलकापुर्याः पत्यु पुत्रवत्स्य च । ज्योतिर्मात्राभिधायाश्च सुतो हरिवलोभवत् ॥ ३११ ॥ अनंतवीर्ययत्यते गृहीत्वा द्रव्यसयम ।  
सौधर्मकल्ये संभूय कालाते प्रच्युतस्ततः ॥ ३१२ ॥ सुकेतो विजयाईलकापुर्याः पत्यु पुत्रवत्स्य च । सुता स्वयं प्रमायाश्च सत्यभामा त्वमित्यभूः ॥ ३१३ ॥  
मित्रा ते मेन्यदा कस्य सुता पत्नी भविष्यति । इत्युक्तौसौ निमित्तादिकुशलह्योद्वेचक्रिण ॥ ३१४ ॥ भविष्यति महादेवीत्याह्यभैमित्तिकोत्तमः । इत्यु-  
वीरितमाकर्ण्य सत्यभामादुषत्सरा ॥ ३१५ ॥ रुक्मिण्याश्च महादेव्या प्रणम्य स्वभवातर । परिपृष्ट पराव्हो व्याजहारेति तद्भवान् ॥ ३१६ ॥ द्वीपेस्मिन्

तिर्यचपर्यायों तथा सातो नरकोंमें परिभ्रमण करता रहा ॥ ३०८ ॥ तदनंतर वह अपने पाप कर्मके उदयसे गंधमादन  
नामके पर्वतसे निकली हुई महागंधवती नदीके किनारे भल्लुंकी नामकी पट्टीमें काल नामका वनेचर वा भील हुआ ।  
किसी एक दिन वह वरधर्म मुनिके समीप गया उनके उपदेशसे उसने मधुमांसादिका त्याग किया जिससे मरनेके बाद  
वह विजयाई पर्वतकी झलका पुरी नगरके राजा पुरुवल रानी ज्योतिर्मालिके हरिवल नामका पुत्र हुआ ॥ ३०९--३११ ॥  
उस पर्यायमें उसने श्रीअनंतवीर्य मुनिराजके समीप द्रव्य संयम धारण किया जिससे आयुके अंतमें वह सौधर्म स्वर्गमें देव  
हुआ । वहांकी आयु पूरी कर वहांसे च्युते हुआ और विजयाई पर्वतके रथनपुर नगरके राजा सुकेतुके उसकी रानी स्व-  
यंप्रभासे तू सत्यभामा पुत्री हुई है ॥ ३१२--३१३ ॥ किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तकुशल नामके उत्तम निमित्त-  
ज्ञानीसे पूछा था कि मेरी यह पुत्री किसकी स्त्री होगी, तब उस निमित्तज्ञानीने कहा था कि यह अर्थ चक्रवर्तीकी पट-  
रानी होगी । ये सब बातें सुनकर सत्यभामा बहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ३१४--३१५ ॥ तदनंतर महादेवी रुक्मिणी नमस्कार  
कर अपने भव पृष्ठने लगी तब पूज्य बुद्धिको धारण करने वाले गणधर देव कहने लगे ॥ ३१६ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके  
भरतक्षेत्रमें मगध देशके लक्ष्मी गांवमें एक सोम नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमति था ॥ ३१७ ॥  
किसी एक दिन वह लक्ष्मीमती नहा धोकर आयुषण पहिन कर दर्पण देख रही थी कि इतनेमें ही समाधि गुप्ति मुनि  
आहारके लिये उसके घर पधारे । उन्हें देखकर “इसका शरीर पत्नीके मलसे भर रहा है और दुर्गंधित हो रहा है” इस  
तरह क्रोध करती हुई वह स्नानि करने लगी और कुछ निंदोके वचन कहने लगी । उसी समय ब्रह्मस्मात् उदंबर नामके

नेदेशात्कथतो भयात् ॥ २९४ ॥ ते नैगमर्विणा नीताः श्रेष्ठिन्या स्वल्पाख्या । वर्दिता देवदत्ताय देवपात्रोपज्ञस्ततः ॥ २९५ ॥ अनीकदत्तधानीक-  
पाल शत्रुघ्नसङ्गः । जितशत्रुघ्न षण्मन्येवात्र निर्वृत्तिगामिनः ॥ २९६ ॥ नवे धयसि दीक्षित्वा मिश्रार्थपुरमागता । त्वया दृष्टास्वतस्तेषु ब्रह्मो बन्मात-  
रागतः ॥ २९७ ॥ स्वयभूकेशवैश्वर्यं तपकाळे निरीक्ष्य सः । निर्नामकमुत्तरेऽयं कमशत्रुरजायत ॥ २९८ ॥ त्वं कुतस्ते कुतः कोयं संबन्धो निर्निबंधनः ।  
विधेर्विलसित चित्रमगम्य योनिनामपि ॥ २९९ ॥ इति नैसर्गिकाशेषमव्यानुप्रहभावकः । न्यगदङ्गवानेवं भक्त्यावंदत देवकी ॥ ३०० ॥ अथानतरमे-  
वैन सत्यभामापि-भाक्तिका । स्वपूर्वमवसयमप्राक्षीदक्षरावधिं ॥ ३०१ ॥ सोपि व्याख्ययामास तदभीष्टनिवेदने । न हेतुः कृतकृत्यानामस्त्यन्योन्यप्र-  
हासिना ॥ ३०२ ॥ शीतलाख्यजिनाधीशतीर्थं धर्मं विनश्यति । भद्रिलाख्यपुराधीशो नाम्ना मेघस्थो नृपः ॥ ३०३ ॥ प्रेगसी तस्य नदाख्या भूतिशर्मा  
द्विजप्रणीः । तस्यासीत्कमला पत्नी मुण्डशालायनस्तयो ॥ ३०४ ॥ तनूजो वेदवेदागपारगो भोगसक्धीः । दृष्ट्वा तपःप्रतिक्रियो मूर्खेरेष प्रकल्पितः ॥

है ॥ २९८ ॥ हे देवकी ! तू कहाँसे आई वे तेरे पुत्र कहाँसे आए और विना ही कारणके यह संबंध कैसा आ मिला ।  
इस लिए कहना पड़ता है कि कर्मोंका उदय बड़ा ही विचित्र है योगी लोग भी इसका पार नहीं पा सकते ॥ २९९ ॥  
इस प्रकार स्वाभाविक रीतिसे समस्त भव्य जीवोंका अनुग्रह करने वाले भगवान गणधर देवने यह सब क्या कही  
तब देवकीने वही भक्तिसे उनकी वंदना की ॥

अथानंतर-----अक्षरावधिको धारण करने वाले गणधरदेवसे भक्तिको धारण करनेवाली सत्यभामाने भी अपने  
पहिले भर्त्सका संबंध पूछा ॥ ३०१ ॥ तब गणधर देवभी सत्यभामाका अभीष्ट कहने लगे सी ठीक ही है क्योंकि कृत-  
कृत्य लोगोंको अनुग्रहके विना और किसी कारणकी आवश्यकता नहीं पड़ती ॥ ३०२ ॥ शीतलनाथ तीर्थकरके बाद  
जब धर्मका विच्छेद हुआ था तब भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघस्थ राज्य करता था ॥ ३०३ ॥ उसकी रानीका नाम नंदा  
था उसी राजाके भूतिशर्मा नामका एक मुख्य ब्राह्मण था उसकी कमला स्त्रीसे मुण्डशालायन नामका एक पुत्र हुआ था ।  
वह वेद वेदाङ्गका पारगामी था और उसकी बुद्धि भोगोंमें तल्लीन थी इसलिये उसने अनेक कुहट्टांत और कुहेतुओंको  
बतलाने वाले त्रात्यंत निपुण वाक्योंके द्वारा काय क्लेशको न सहन करनेवाले राजाको झूठ मूठ समझाया कि स्वयं  
साहस करनेवाले निर्धन मूर्ख लोगोंने परलोक सुधारनेकेलिये व्यर्थही तपश्चरणोंके द्वारा शरीरको क्लेश देनेकी कल्पना की  
है वास्तवमें पृथ्वी सुवर्ण आदिका दान देनेसे ही परलोकमें इष्ट सुखकी प्राप्ति हो जाती है । इसी तरह वह अपने जीवित  
रहने तक अनेक अन्य निर्बुद्धियोंको भी समझाता रहा । अंतमें वह मरकर नरक गया । वहांसे निकल कर सब तरहकी

महीपते । वसुधाया सुता नन्दयशा समुद्रपादयो ॥ पुनर्निर्बुद्धपथ आत्रा दुःस्वनिमित्तक । त्वयेदं न कर्तव्यमित्युक्त । शममागत ॥ २८३ ॥ स्वयुरते स-  
मुत्पन्नः सोय निर्नामसङ्गया । ततः पूर्वमवोपात्तापस्य परिपाकत ॥ २८५ ॥ जायते नन्दयशस मेगो निर्नामक गति । इति तस्य वचः श्रुत्वा ते ति-  
र्थगपरायणा ॥ २८६ ॥ नरेन्द्र पदसुता शैला शत्रो निर्नामकौव्यशु । तथा नन्दयशा रेवती नामादित साम ॥ २८७ ॥ सुप्रतापार्थिकाभ्यामे पुत्रस्नेहा-  
हितेच्छया । अन्यजन्मनि चागीपामेव लोके न वर्दने ॥ २८८ ॥ ते निदान विमूढत्वादुमे चाकुन्ता सम । ततः सर्वे तपः कृत्वा समाराज्य गगोस्वित ॥  
२८९ ॥ महाशुके समुत्पत्ता गते मामानिकाः सुरा । पौड्याच्छुपमाशुका दिव्यभोगीकृता ॥ २९० ॥ ततः प्रत्युल शस्त्रोभूद्भलेवो दुलायुव ।  
शृगावलाद्व्यविपवे दशार्णपुरभूपतेः ॥ २९१ ॥ देवसेनस्य नोत्पत्ता धनदेव्याश्च देवकी । त सा नन्दयशा लीलमुपगम्य निदानतः ॥ २९२ ॥ भद्रिला  
त्यदुरे देवे मल्लगेडजनि रेवती । सुदृष्टिरेष्ट्रिज श्रेष्ठा धेष्टिनी सालकात्यया ॥ २९३ ॥ प्राक्का. पट्टकुमाराश्च यमीभूतास्तत्र त्रयः । तरानीमेव शक्य

और निर्नामक सब विरक्त हुए और सर्वने दीक्षा धारण करली । तथा उनके साथ साथ पुत्रोंके स्नेह और अपनी इच्छासे  
नन्दयशा और रेवती बायेन भी सुत्रता नामकी अर्जिकके समीप दीक्षा धारण करली । एक दिन उन दोनों अर्जिकाओं  
ने अपनी मूर्ध्नितांस निदान किया नन्दयशाने तो यह निदान किया कि दूसरे जन्ममें भी ये मेरे पुत्र हों और रेवतीने यह  
निदान किया कि मैं इनका पालन करूँ । तदनंतर सब तपश्चरण कर और अपनी योग्यताके अनुसार आराधनाओंका  
आराधन कर आशुके अंतमें महाशुक विमानमें सामानिक जातिके देव हुए, सोलह सागरकी उनकी आशु थी और वे सदा  
दिव्य भोगोका अनुभव करते थे ॥ २८४-२८६ ॥ वहलसे ज्युत होकर शलका जीव तो चलभद्र चलदेव हुआ है, नन्दयशा  
का जीव मृगावती देशमें दशार्णपुर नगरके राजा देवसेन रानी धनदेवीके तू देवकी हुई है, निदानके कारण तूने देव  
पर्यायेसे स्त्री पर्याय पाई है । रेवतीका जीव मलयदेशके भद्रिलपुर नगरके श्रेष्ठ सुदृष्टिके अलिका नामकी श्रेष्ठ श्रेष्ठानी हुई  
है । छहो राज पुत्रोंके जीव तेरे दो दो कर तीन वारसे छह यमल पुत्र हुए । उसी समय कंसके डरसे और इंद्रकी आज्ञासे  
नेमगर्पी नामके देवने उन पुत्रोंको उठा कर अलका नामकी श्रेष्ठानीके घर रख दिया इसलिये अलकाने ही उन पुत्रोंका  
पालन किया । देवदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु ये उनके नाम हैं ये छहों भाई इसी जन्म  
से मुक्त हो जायेंगे ॥ २८९-२९६ ॥ ये छहों भाई नई अवस्थामें ही दीक्षा धारण कर आहारके लिये नगरमें आए  
थे इस लिये उन्हें देख कर उनमें तेरा पूर्व जन्मका चला आया लोह उत्पन्न हो आया है ॥ २९७ ॥ निर्नामकने तपश्चरण  
करते समय स्वयंभू नामके नारायणके ऐश्वर्यको देखकर निदान किया था इसलिये उसका जीव कंसका शत्रु कृष्ण हुआ

अभित द्वाक्श प्रामात्र महीसो मांसलोच्छ्रपः । स कदाचिच्छुषमोक्ष्यत्यभ्यासे धृतागमः ॥ २७२ ॥ श्रद्धाम बोक्षिमाधाय राज्यं मेघरथे सुते । नियोज्य सबतो जातः सुतोपि श्रावकोऽजति ॥ २७३ ॥ तत सूषकरग्रामानेकशेषं समाहरत् । सोन्येयुर्वददैरः सन् सर्वसंभारसंस्कृतं ॥ २७४ ॥ घोषातकी- फलं पक्वं मुनीन् तमभ्योजयत् । ऊर्जयन्तगिरौ सोपि तन्निमित्तं गतासुकः ॥ २७५ ॥ सम्यगाराध्य संभूतः कल्पातीते उपराजिते । अष्वन्वतद्वृगतायुः सप्त इर्मिद्रो महार्द्धिकः ॥ २७६ ॥ सूषकारोपि कालांते तृतीयनरकं गत । ततो निर्गत्य संसारे शुद्धं सञ्चिरे अभ्रम् ॥ २७७ ॥ द्वीपेस्मिन्भारते क्षेत्रे विषये मरुथाद्वये । पलाशकूटग्रामस्य यक्षदत्तगृहेष्विनः ॥ २७८ ॥ सुतो यक्षादिदत्ताया यक्षनामा बभूव सः । तथोयंक्षिलसदृशं सूदुरन्योन्वजायत ॥ २७९ ॥ तयोः स्वकर्मणा ज्येष्ठो नान्ता निरनुकंपक । सानुकंपो परोक्षायि जनैर्यथानुसारिभि ॥ २८० ॥ कदाचित्सानुकंपेन कार्यमाणोपि सोपर । मार्गस्थितावस- पस्य दयाकरो हृयोपरि ॥ २८१ ॥ शकटं भाटसूर्णे वलीवदैर्योजयत् । सर्पस्तन्मादितोऽकामनिर्जरो विगतासुक ॥ २८२ ॥ पुरश्चेतविकानाम्नि वासवस्य पंहुचे और उस आहारके कारण वे वहींपर प्राणांत हो गये उन्होंने अंतमें आराधनाओंका अच्छीतरह आराधन किया या इसलिये वे पंचोत्तरके अपराजित विमानमें जयन्त्य आयुको पाकर वडी ऋद्धिको धारण करनेवाले अहर्मिद्र हुए ॥ २७२-२७६ ॥ वह रसोइया भी आयुके अंतमें मरकर तीसरे नरक गया वहांसे निकलकर अनेक दुख भोगते हुए उसने बहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमण किया ॥ २७७ ॥ फिर इसी भरतक्षेत्रके मलय देशमें पलाशकूट गांवके एक यक्षदत्त नामके गृहस्थीके उसकी यक्षदत्ता नामकी स्त्रीसे यक्ष नामका पुत्र हुआ । उन्हीं यक्षदत्तके यक्षिल नामका दूसरा छोटा पुत्र हुआ ॥ २७८-२७९ ॥ उन दोनों भाइयोंमें अपने २ कर्मोंके उदयसे बड़ा भाई तो निर्दय था इसलिये लोग उसकी क्रियाओंके अनुसार उसे निरनुकंप ( दयारहित ) कहते थे और छोटा भाई दयावान था इसलिये लोग उसे सानुकंप क- हते थे ॥ २८० ॥ किसी एक दिन वह निरनुकंप वर्तनीसे भरी हुई गाडी बैलोंसे जोतकर ले जा रहा था और मार्गमें एक था सर्प बैठा था, निरनुकंपके हृदयमें दया तो थी ही नहीं इसलिये सानुकंपके बार बार मना करनेपर भी उसने वह गाडी उस सर्पके ऊपर होकर निकालदी । वह सर्प उसके बोझसे दबकर अकाम निर्जरा करता हुआ मर गया और मरकर भेतविका नाम नगरमें राजा वासवकी वंसुधरी रानीसे यह नंदयशा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई ॥ २८१-२८३ ॥ तदनं- तर उस निरनुकंपको सानुकंपने बहुत समझाया कि तुझे दुःख देनेवाले कार्य कभी नहीं करने चाहिये । ये सब बातें सुनकर निरनुकंप कुछ शांत हुआ और आयुके अंतमें मरकर यह निर्नामक उत्पन्न हुआ है । इसलिये पूर्वभ्रममें कमाये हुए पापकर्मके उदयसे निर्नामकपर यह नंदयशा क्रोध करती है । मुनिराज द्रुमसेनकी ये बातें सुन कर राजाके छहों पुत्र तथा शंख

सुभासुर्धनद स्वयं । तसुराधिपतेर्गतेवनामधरेबिन ॥ २६१ ॥ तदेव्या नदयशसः शेषास्ते यमलाक्षयः । गंगाह्यो नन्देवश्च खड्गमित्त्रश्च नन्दवत् ॥  
२६२ ॥ मुनयो नदियेषश्च जाता क्रिष्णा परस्परः । गर्भेभ्यस्मिन् महीनाशस्तस्यामासीद्विरुद्धकः ॥ २६३ ॥ तदैवासीन्सुपन्न पुत्रहेतुकमिलसा ।  
न्यदिशद्वेवती धार्त्री तदपत्यनिराकृता ॥ २६४ ॥ त सा नदयशो ज्येष्ठबधुमलै समार्पयत् । निर्नामकाह्य तत्राप्यपरेशुर्नन्दने वने ॥ २६५ ॥ प्रपश्यन् सह  
भुजानान् पण्महोद्युतान् सम । त्वमप्यभीमिर्भुवेति दशेन समुदाहृतः ॥ २६६ ॥ स्थितो भोक्तुमसौ नन्दयशास्त वीक्ष्य कोपिनी । क-  
स्यायमिति पादेनाहस्तावन्वीयतु शुच ॥ २६७ ॥ शब्दनिर्नामका राजा कदाचित्सह वदितु । इमत्सेनमुनिं यातावधिविज्ञानलोचन ॥ २६८ ॥ अभिनन्द्य ततो  
धर्मभ्रवणानन्तर पुन । निर्नामकाय किं नदयशा कुप्यत्यकारणं ॥ २६९ ॥ इति वखेन दृष्टोसौ मुनिरेवमभाषत । सुराष्ट्रवियये राजा  
निर्यादिनगराधिपः ॥ २७० ॥ अभूच्चित्ररथो नाम तस्यामृतरसायन । सूपकारः पल पक्तुं कुशलोरसे प्रतुष्टवान् ॥ २७१ ॥

नाम रक्त्वा । किसी दूसरे दिन ये सब लोग नन्दन वनमें गये, वहा पर राजाके छोहो पुत्र एक साथ बैठकर खा रहे थे ।  
यह देख कर शंखने निर्नामकसे कहा कि तू भी इनके साथ बैठकर खा ॥ ५१-६६ ॥ शंखकी आज्ञानुसार  
वह उनके साथ खानेको बैठ गया, यह देखकर नन्दयशाको बहुत क्रोध आया और “यह किसका लडका यहां आ-  
गया” इसतरह कहकर उसके एक लात मारी जिससे शंख और निर्नामक दोनोंको शोक हुआ ॥ २६७ ॥ किरिः एकदिन  
शंख और निर्नामक दोनों ही राजाके साथ साथ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले इमसेन मुनिकी वंदना करनेकेलिये  
गये ॥ २६८ ॥ दोनोंने मुनिराजकी वंदना की, धर्मका स्वरूप सुना, और फिर शंखने पूछा कि नन्दयशा निर्नामक पर  
विना ही कारणके क्यों क्रोध करती है । तब मुनिराज कहने लगे कि मोरठ देशके गिरपुर नगरमें चित्ररथ नामका राजा  
राज्य करता था उसके यहां अमृतरसायन वा सुभारसायन नामका एक रसोइया था जो कि मांस पकानेमें बड़ा ही निपुण  
था उसने मांस खिलाकर राजाको संतुष्ट किया ॥ २६९-२७१ ॥ राजा मांसका लोलुपी था इसलिये उसने उस रसोइ-  
याको बारह गांव दे डाले । किसी एक दिन राजा चित्ररथ सुभर्म नामके मुनिके समीप गया, वहांपर उसने शास्त्रोंका र-  
हस्य सुना, रक्त्रय प्राप्त किया, और अपने मेघरथ पुत्रको राज्य देकर वह स्वयं मुनि हो गया । उस तत्कालीन राजा मे-  
घरथने भी श्रावकके व्रत धारण कर लिये, इसलिये उसने एक गांवको छोडकर वाकी उस रसोइयासे सब गांव छीन लिये  
किसी दूसरे दिन वैही मुनिराज आहारकेलिये राजाके यहां पधारे, रसोइयाने ( उनके उपदेशसे गांव छिन्ननेके कारण )  
उन्से बैरकर सब मसालोंसे सुशोभितकर पकी कढी तूबीका आहार दिया । वे मुनिराज आहार लेकर गिरनार पर्वतपर



कक ॥ २५१ ॥ पुष्पकूलाङ्गयो नदनचरौ गगनादिकौ । तत्रैव दक्षिणश्रेण्या त्रयो मेघपुराधिप ॥ २५२ ॥ धनंजयोस्य सर्वश्रीर्जाया तस्याः सुतामभवत् । धनश्री श्रीरिकाचैषा नवैवाच्यो महीपति ॥ २५३ ॥ ख्यातो नंदपुराधीशो हरिवेणो हरिर्द्विषां । श्रीकातास्य त्रिया तस्यां सुतोमूढरिवाहन ॥ २५४ ॥ धनत्रिगोपं बधेन मैथुनः प्रयितो गुणै । तत्रैव भरतेऽयोध्याया स्वयंवरकर्मणि ॥ २५५ ॥ भाला सत्रापयत्प्रिया धनश्रीहरिवाहन । चक्रवास्त-दयोध्यायां पुष्पदंतमहीपतिः ॥ २५६ ॥ तस्य प्रीतिकरा देवी तत्सुतु पापपण्डित । धनत्रिय सुदत्तोऽलाविहत्य हरिवाहन ॥ २५७ ॥ तन्निवेगेण चित्रा-गदायाः सप्तापि संयम । भूतानवाह्यतीर्थेषापादमूले समाश्रयन् ॥ २५८ ॥ ते कालातेऽभवन् कल्पे त्रुणै सामानिका सुरा । सप्तान्ध्यायुःस्थितिप्राप्ते ततः प्रच्युत्य भारते ॥ २५९ ॥ कुरुर्जागलदेशेस्मिन् हस्तिनाख्यपुरेभवत् । बंधुमत्या सुतः धेतवाहनाख्यवर्णिकृपतेः ॥ २६० ॥ शंखो नाम धनद्वयोत्तो

धनश्री नामकी पुत्री थी । उसी विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नंदपुर नगरमें शत्रुओंको सिंहेके समान हरिवेण नामका राजा राज्य करता था, उसकी रानीका नाम श्रीकांताया और उन दोनोंके हरिवाहन नामका पुत्र था ॥ २४८-२४९ ॥ वह गुणोंसे प्रसिद्ध हरिवाहन नातेमें भी धनश्रीका पति होने योग्य था । इसलिये उसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें धनश्री का स्वयंवर किया गया उसमें धनश्रीने बड़े प्रेमसे हरिवाहनके गलेमें वरमाला डाली । उसी अयोध्या नगरमें पुष्पदंत नामका चक्रवर्ती राजा था उसकी प्रीतिकरा रानीसे पापोंमें निपुण ऐसा सुदत्त नामका पुत्र था उसने उसी समय हरि-वाहनको मार कर धनश्री छीन ली ॥ २४५-४७ ॥ यह सब देखकर चित्रांगद आदि सातो भाई विरक्त हुए और उ-न्होंने भूतानंद नामके तीर्थंकरके चरण कमलोंके समीप जाकर दीक्षा धारण करली ॥ २४८ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वे सातोही भाई सात सागरकी आयु पाकर चौथे स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए, वहांसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रके कुरु जंगल देशके हस्तनागपुर नगरमें शेट श्वेतवाहनके उसकी स्त्री बंधुमतीसे सुभानुका जीव शंख नामका पुत्र हुआ वह शंख धन संपदा, आदिसे स्वयं कुबेर के समान था । उसी नगरमें राजा गंगदेव राज्य करता था उसकी नंदयशा देवीसे बाकी छह भाइयोंके जीव दो दो कर तीन बारमें छह पुत्र हुए । गंग, नंददेव, खड्गमित्र, नंदकुमार, सुनंद और नंदिवेण ये उनके नाम थे, इन छहो भाइयोंमें परस्पर बहुतही प्रेम था । जब नंदयशाके सातवां गर्भ रहा तबसे ही राजा रानीसे बहुत उदास रहने लगा । रानीने समझा कि गर्भमें कोई ऐसा कुपुत्र है जिसके आतेही राजा सुभसे उदास हो गया है इसलिये उसने पुत्र होतेही उसे अलग रखनेके लिये रेवती नामकी धायको सोंप दिया और कहा कि इसे मेरी बड़ी बहिन बंधुमतीको सोंप आ । तदनुसार उसने वह पुत्र बंधुमतीको सोंप दिया, बंधुमतीने निर्नामिक उसका



दर्शयित्वा बद्धत्सर्वमात्ममंगीविचेष्टित । तत्सुभानुः समाकर्ण्य श्रीनिधामकरोदिति ॥ २३३ ॥ स्थान ता एव निदायाः परब्राह्मणमागताः । वर्णमात्रेण राजस्यो रंजयन्तो परान् भृश ॥ २३४ ॥ आदाय कृत्रिम रागं रागिणां नयनप्रियाः । विभ्रतीह भृश भूषारम्यावित्राकृती- स्त्रियः ॥ २३५ ॥ सुख विष- यज प्राप्तुं प्राप्तमाधुर्यमाश्रिता । किंवाकफलमाला वा काष्ठ हन्युर्मनोरमाः ॥ २३६ ॥ मातरः केवलं नताः प्रजानामेव योषित । दोषाणामपि दुःसिद्धा- दुर्विद्या इव दुःखदा ॥ २३७ ॥ मृदवः शीतलाः श्लक्ष्णा प्रायः स्पर्शसुखप्रदाः । भुञ्जन्त्यो वागना प्राणहरिण्यः पापरूपिका ॥ २३८ ॥ हन्यादृक्कृत- सकात विषं विषयता न वा । सर्वागं सहसा हार्य कान्ताना इति सततं ॥ २३९ ॥ परेषा प्राणपर्यता पापिनामप्यपक्रिया । हिंसानामिव कान्तानामातीता दयाद्विषा ॥ २४० ॥ जातिमात्रेण सर्वोश्च योषितो विषमृत्य ॥ न शातमेतन्नीतिहैः कुर्वन्निर्विषकन्यकाः ॥ २४१ ॥ कौटिल्यकोटय कैर्यपर्यताः पचपा-

निंदा करने लगा ॥ २३१-२३३ ॥ कि वास्तवमें निंदाका स्थान स्त्रियां ही हैं निंदाके सिवाय स्त्रियां और किसी योग्य नहीं हैं ये केवल रूपसे ही अच्छी दिखती हैं और रूपसे ही दूसरे लोगोंको बहुत जल्दी मोहित कर लेती हैं ॥ २३४ ॥ बनावटी राग भगट करनेसे ही ये स्त्रियां रागी लोगोंके नेत्रोंको अच्छी लगती हैं और मनोहर आभूषण धारण कर चित्र विचित्रका वेश धारण करती हैं ॥ २३५ ॥ मधुरता मिले हुए विषयजन्य सुखको प्राप्त करनेके लिये आश्रयभूत ऐसी किंवाकफलकी मालाके समान मनोहर ये स्त्रियां भला किनको न मार सकेगी अर्थात् सबको मार सकेगी ॥ २३६ ॥ ये स्त्रियां केवल अपनी संतानोंकी ही माता नहीं हैं किंतु सब दोषोंकी माता हैं और जिस प्रकार बुरी शिन्दासे प्राप्त हुई बुरी विद्या दुःख देती है उसी प्रकार ये दुःख देनेवाली हैं ॥ २३७ ॥ जिस प्रकार सर्पिणी कोमल शीतल चिकनी तथा स्पर्श करते समय दुख देनेवाली होकर प्राण हरण करनेवाली और पापरूप होती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी कोमल शीतल चिकनी और स्पर्श करते समय सुख देनेवाली होकर प्राण हरण करने वाली और पापरूप हैं ॥ २३८ ॥ सर्पोंका विष केवल मुखमें रहता है और वह किसीको मारता है किसीको नहीं भी मारता परंतु स्त्रियोंका विष सब शरी- रमें भरा है वह अकस्मात् हट नहीं सकता और निरंतर मारता ही है ॥ २३९ ॥ जिस प्रकार दयारहित पापी हिंसकों की निंद्य क्रियायें अंतरहित अर्थात् सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं उसी प्रकार दयारहित पापिनी स्त्रियों की निंद्य क्रियाएं सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं ॥ २४० ॥ स्त्रियां सब उत्पन्न होनेके समयसे ही विष की मूर्तियां हैं परंतु विषकन्या बनानेवाले नीतिकारोंको यह बात मालूम नहीं है ( क्योंकि यदि मालूम होती तो वे विष कन्या बनाते ही क्यों ) ॥ २४१ ॥ इन स्त्रियोंमें करोड़ों कुटिलताएं भरी हैं अंतिम सीमा तक क्रूरता है और पांचों पाप-

भीतरहितो डूमे ॥ २२१ ॥ वीक्ष्य सगमाः परीक्षार्थं तदभ्यर्णमुपागत । स्वागसदृशेन कृत्वा मनुरागापचेष्टितः ॥ २२२ ॥ लीलाविलोकनेनैवैव्यथादिश्रमणं  
कृतम् । साय्याह भवता सार्द्धमागमिष्यामि मां भवान् ॥ २२३ ॥ गृहीत्वा यातिवति व्यक्तं थुला तस्मत्पतेरहं । विभेमि तत्र वक्तव्यमिति तेनाभिभाषिता ॥  
२२४ ॥ साय्याह भवता सार्द्धमागमिष्यामि मां भवान् ॥ २२५ ॥ इत्यन्योन्यकथाकाले हस्ताहितसरोरुहः । करेण  
पुंशः । साय्याह भवता सार्द्धमागमिष्यामि मां भवान् ॥ २२६ ॥ आनमंतं प्रिया तस्य प्रहर्षमस्मिमुद्दये ॥ २२७ ॥ करेण  
२२८ ॥ मांमयीस्त्वं वराकोसौ किं करिष्यसि मीलुक् । ततो येन तवापायो नस्यात्तत्किञ्चित् प्रया ॥ २२९ ॥ आनमंतं प्रिया तस्य प्रहर्षमस्मिमुद्दये ॥ २२९ ॥ करेण  
२२९ ॥ समागत्य करवालं प्रियाकरे ॥ २२६ ॥ निधाय मुनिपादान्बद्धयमभ्यर्च्य भक्तिः । आनमंतं प्रिया तस्य प्रहर्षमस्मिमुद्दये ॥ २२९ ॥ करेण  
वज्रमुष्टिः समागत्य करवालं प्रियाकरे ॥ २२६ ॥ निधाय मुनिपादान्बद्धयमभ्यर्च्य भक्तिः । आनमंतं प्रिया तस्य प्रहर्षमस्मिमुद्दये ॥ २२९ ॥ करेण  
सूरसेनोद्वेष्टत्कलालि तदैव स । आच्छिद्य न्यपतद् भूयो सूरसेनकरागुलि ॥ २२८ ॥ वज्रमुष्टिस्तदालोक्य मामेवौलियायत । भीताहमिति सा शापादद्विता-  
हमे वृथोत्तर ॥ २२९ ॥ तदैव सूरसेनोपि भादुर्मिलिष्यवितर्कः । चौर्येणाग भवद्भाग गृह्णाणेत्युदित पुनरु ॥ २३० ॥ स सयोरिति विरक्तः सप्त घनेन प्र-  
योजन । ससारादतिभीतोह तद् गृहीष्यामि संयम ॥ २३१ ॥ इत्यत्रवीक्ष्य देवः कस्तपोप्रहणे तव । वदेत्युक्तः स तैस्त्विच्छत्रं निजहस्तागुलोत्पन्न ॥ २३२ ॥  
लीला पूर्वक उसे देवा और हंसी मजाक किया, इन सब बातोंसे उसे शीघ्र ही अपने वश कर लिया । तब वह मंगी  
कहने लगी कि मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूं आप मुझे लेकर निकल चलो, मंगीकी ऐसी अत्यंत स्पष्ट बात सुनकर  
सूरसेन कहने लगा कि मैं तेरे पतितसे बहुत डरता हूं इसलिये तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये । इसके उत्तरमें मंगीने कहा  
कि उससे तुम विष्कल मत डरो वह नीच दरपोक तुम्हारा क्या कर सकता है, अन्ध्या जिससे तुम्हारी कुछ हानि न हो  
ऐसा उपाय मैं कर देती हूं ॥ २२१-२५ ॥ इन दोनों की इसतर्फ बात चीत हो पाई थी कि इतनेमें ही हाथमें कमल  
लेकर वज्रमुष्टि आगया, आते ही उसने तलवार तो अपनी स्त्री मंगीके हाथमें देदी और आप वडी भक्तिसे सुनिराजके  
दोनों चरण कमलोंकी पूजाकर नमस्कार करने लगा, उसी समय मंगीने उसे मारनेके लिये तलवार उठाई ॥ २२६-२७ ॥  
परंतु सूरसेनने उसी समय अपने हाथसे वह तलवार रोक ली जिससे उसकी सवंगुली कटकर जमीन पर गिर गई ॥ २२८ ॥  
उसे देखकर वज्रमुष्टिने कहा कि प्रिया डरो मत, इसके उत्तरमें मंगीने डर कर फूट ही कह दिया कि मैं डर गई थी  
॥ २३ ॥ उसी समय चोरीका धन लेकर सूरसेनके सब भाई आगये और सूरसेनसे कहने लगे कि हे भाई ! तू अपना  
भाग ले ले ॥ २३० ॥ परंतु सूरसेन उस समय अत्यंत विरक्त हो चुका था इस लिये वह कहने लगा कि मुझे अब  
धनसे कुछ प्रयोजन नहीं है मैं तो संसारसे बहुत डर चुका हूं इसलिये संयम धारण करूंगा । तब सब भाइयोंने पूछा कि  
भाई तेरे संयम धारण करनेका कारण क्या है सो तो सब कह सुना, तब सूरसेनने अपनी कडी हुई हाथकी उंगलियोंका  
घाव दिखलाया और अपनी तथा मंगीकी सब चेष्टाएं कह सुनाई । उसे सुन कर सुभाउ नीचे लिखे अनुसार

तत्कालमुत्प्लविस्या । वप्रथी सह मालाभिः कालाहि कलशोक्षिपत् ॥ २१२ ॥ स्तुषाभ्यसुमया कार्यं नाम नास्तीति योषिता । मंगी चोद्यानयानार्थं माला-  
दानसमुपयता ॥ २१३ ॥ दद्या वसंतकालोपविषेण विषिभर्तृणा । विष्वक्पातशरीरत्वादस्पदाभूदसौ तदा ॥ २१४ ॥ पलाळवत्या चावेष्टय स्तुषां प्रेतवनेऽल-  
बत् । वज्रमुष्टिर्वनक्रीडाविरामेभ्येत्य घृष्टवान् ॥ २१५ ॥ मंगी क्वेत्याकुलो माताप्यसद्वाता न्यवेदयत् । सशोकं ससुखातनिशातकरबालवृत् ॥ २१६ ॥  
तामन्वेष्टु ब्रजन् रात्रौ इमशाने योगमास्थित । वरधर्ममुनिं दृष्ट्वा नमन् भक्त्या कृताञ्जलिः ॥ २१७ ॥ यदि पूज्यं प्रियां प्रेक्षे सहस्रदलवारिजं । त्वा सम-  
भ्यर्चयिष्यामीत्याशास्य गतवात्सदा ॥ २१८ ॥ वीक्ष्यतेऽस्य प्रियामीषेत्तना विषदुषिता । पलाळवतिं मुक्त्वाऽथु समानीयातिक मुनेः ॥ २१९ ॥ तेन त-  
त्यादसंसर्शमेषजेनाविषीकृता । सापि सद्यः ससुत्याय प्रियस्य प्रियमातनोत् ॥ २२० ॥ गुरुश्रीतमनस्यस्मिन्नभोजार्थं गते सति । सूरसेनस्तदा सर्वं तत्क-

और उसने माला लेनेके लिये घडेमें हाथ डाला परंतु उसकी सासु वप्रथीने उससे ईर्षाकर पहिलेसे ही उस घडेमें माला के साथ एक काला सर्प रख दिया था सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्रियोंसे न हो सके । हाथ डालते ही वह उस वसंतऋतुके उग्र विषको धारण करनेवाले नागराजने काट खाई । उसीसमय उसके सब शरीरमें विष फैल गया और वह चेष्टारहित हो गई ॥ २११-२१४ ॥ तदनंतर वह वप्रथी सासु अपनी पतोहू मंगीके शरीरको पलाल (एक तरहकी लंबी घास) से ढककर स्मशानमें छोड़ आई । इधर वनक्रीडाकर वज्रमुष्टि घर आया और मातासे पूछा कि मंगी कहाँ है । इसके उत्तरमें माताने इधर उधरकी झूठमूठकी बातें बना दीं । मंगीके न मिलनेसे वज्रमुष्टिको बहुत शोक हुआ, वह नंगी तलवार लेकर रातमें ही उसे ढूँढनेकेलिये निकला । श्मशानमें पहुंचनेपर उसे योग धारण किये हुए वरधर्म मुनिके दर्शन हुए, वज्रमुष्टिने वडी भक्तिसे हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और आशार्पूर्वक प्रतिज्ञा की कि हे पूज्य यदि मैं अपनी स्त्रीको देख पाऊं तो हजार दलवाले कमलसे आपकी पूजा करूं । इसतरह कहकर वह निकला देखते दे-  
खते आगे चलकर उसने देखा कि विषसे दूषित किंतु कुछ जीवित स्त्री पड़ी है उसने उसीसमय उसके चारों ओरका प-  
लाल हटाया और वह शीघ्र ही उसे उन मुनिराजके समीप ले आया ॥ २१५-२१९ ॥ वज्रमुष्टिने मुनिराजके चरणकम-  
लोंकी स्पर्शरूपी औषधिसे वह स्त्री विषरहित करली इसलिये वह शीघ्र ही उठी और उसने अपने पतिको प्रसन्न किया ॥ २२० ॥ तदनंतर जिसके मनमें मुनिराजके चरण कमलोंका बहुत बड़ा प्रेम है ऐसा वह वज्रमुष्टि तो कमल लेनेके लिये चला गया और सूरसेन वृक्षकी आड़में छिपा हुआ ये सब कर्म देख रहा था इसलिये वह उस मंगीकी परीक्षा करनेके लिये उसके समीप गया । वहां जाकर उसने अपना शरीर दिखाया, मीठी मीठी बातें बनाई, अच्छी २ चेष्टा दिखालाई

मिति जातवान् । इति सोमि कथासिन्धु बन्तु शारन्धवान् युष्मन् । जवूपलक्षिते द्वीपे क्षेत्रस्मिन्मथुरापुरे ॥२०१॥ सौर्यदेशाभिपः मुरसेनो नाम महीपतिः । तत्रैव भातुदाह्यश्रेष्ठिनः सप्त सूनवः ॥ २०२॥ मातृर्वा यमुनादाता सुभातुः सकलाभिपः । भातुकीर्तिस्ततो भातुबेणोभूद्भातुसुरबाक् ॥ २०३॥ पत्न्यः मुरदेवाह्य मुरदतस्ततोव्यभूत । सप्तमः मुरसेनाह्यः पुत्रै स्वेस्तावकृता ॥ २०४॥ स्वपुण्यफलकारेण जगत्पुत्रं हनेमिता । धर्ममन्येयुरभ्यर्णदात्वा-  
र्थाभयनंदिन ॥ २०५॥ भुला वृषो वणिक्पुष्ट्योपग्रहीष्टास्तु सप्तम । विनदतार्यकाम्येर्णे श्रेष्ठिभार्या च वीक्षिता ॥ २०६॥ सप्तम्यवनसंयमा जाता स-  
प्तपि तत्कृता । पापान्मूलहरा भूला रात्रा निर्वासिता पुरात ॥२०७॥ अवतिषिष्य गत्वा विशालाया स्मयानके । मुरसेनमवस्थाप्य सेवाशोचिषु पुरं ॥  
२०८॥ प्राविशान्नकृत तस्मिन्निदमन्यदुपस्थित । तत्पुराभिपतिर्भूतो बभूव वृषमन्वजः ॥२०९॥ धृत्यो दृढप्रदार्थाह्य स सहस्रभट- पट्ट । वप्रश्रीरत्न जा-  
यासीद्भ्रमुष्टिस्तयोः सुत ॥ २१०॥ विमलायाः सुता मंगी विमलेंदुविभाःशसा । तद्विषया भूभुजा सादं वसते वनमन्यदा ॥ २११॥ विहृतुमुद्यताः सर्वे

इसतरह पृच्छनेपर गणधर भी उस कथाको इसतरह कहने लगे कि इसी जंवूदीपके भरतनेत्रके मथुरा नगरमें शौर्य देशका स्वामी मुरसेन नामका राजा रहता था । उसी नगरमें भातुदत्त नामके शेटके उसकी यमुनादाता स्त्रीसे सात पुत्र हुए थे उनमेंसे सुभातु सर्वसे बड़ा था, दूसरा भातुकीर्ति, तीसरा भातुप्रेण, चौथा भातुसूर, पांचवां मुरदेव, छठा मुरदत्त, और सातवां मुरसेन था । इन सातों पुत्रोंसे वे दोनों ही मा बाप बड़े ही सुशोभित थे और अपने पुण्य कर्मके उदयसे गृहस्थ धर्मेका पालन करते थे । किसी दूसरे दिन श्रीअभयनंदी आचार्यके समीप राजाने दीक्षा लेली उसे सुनकर सेठ भातुदत्तने भी संयम धारण कर लिया और सेठकी स्त्री यमुनादाताने भी जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २०१-२०६॥ मा बापके दीक्षा ले जानेपर वे सातो ही शेटके पुत्र सातों व्यसनोमें तल्लीन हो गये और पाप कर्मके उदयसे उन्होंने अपने पिताका सब धन नष्ट कर दिया यह देखकर राजाने भी उन्हें अपने नगरसे निकाल दिया ॥२०७॥ वहांसे चलकर वे सब उज्जयनी नगरीमें पहुंचे वहां जाकर मुरसेनको तो वहांके शमसानमें छोड़ा और बाकी छह भाई जोरी कूनेकेलिये नगरमें गये । उन भाइयोंके चले जानेपर शमसानमें एक घटना और हो गई और वह इसतरहसे है-उ-  
ससमय उज्जयनी नगरीमें राजा वृषभध्वज राज्य करता था उसके एक दृढप्रहारी नामका एक सहस्रभट योद्धा था जो कि बहुत ही चतुर था उसकी कपथ्री नामकी स्त्रीसे वज्रमुष्टि नामका पुत्र था ॥ २०८-२१०॥ उसी नगरमें सेठ विमलचंद्रकी स्त्री विमलासे उत्पन्न हुई मंगी नामकी पुत्री थी वह वज्रमुष्टिको व्याही गई थी । किसी दिन कसन्त श्रुतुमें उस समयका सुल बूटनेकेलिये सब लोग राजाके साथ वनमें विहार करनेके लिये तैयार हुए । मंगी भी वनमें जानेकेलिये तैयार हुई

तपिभ्यामायुःकेवः ॥ १८९ ॥ बलवेषस्य संप्राप्य स्वयंयद्विस्वमन्त्रिता । नंरित्वा भुतबर्माणौ प्रोक्षितौ शतो हरिः ॥ १९० ॥ प्राहुर्नास्तीति यं केचि-  
त्केचिभिर्यं क्षणस्थिति । केचित्केचिदयु चाणोः केचित्स्वामाकलभ्यन्तं ॥ १९१ ॥ केचिदशुभमातव्यं योषनानां समुच्छ्रितं । केचित्छतानि पंचैव केचि-  
द्रुगनवद्विभु ॥ १९२ ॥ केचिदेकं परे नाना परे इमपरेभ्यथा । तं जीवाख्यं प्रति प्राय संहिहोस्तीर्यधीश्वरं ॥ १९३ ॥ पप्रच्छ सोपि नैतेषु कोपि विद्वत्स्य  
लक्षण । प्रोव्योत्पादव्ययात्मासां मुणीं सूक्ष्मस्वकृत्यभुक् ॥ १९४ ॥ ज्ञातातदेहसम्मयेय स्वयंवेष सुखादिभिः । अनादिकर्मसंबंधः सरन् गतिचतुष्टये १९५  
कालादिलिविधमासाद्य भव्यो नष्टाष्टदुर्मंद । सम्यक्कृत्वाष्टकं प्राप्य प्रागेदृष्टपरिमाणमृत् ॥ १९६ ॥ ऊर्ज्वज्यास्वभावाब्जगन्मूर्दनि तिष्ठति । इति जीवस्य  
सङ्गाव जमाद जगता गुरुः ॥ १९७ ॥ तन्निशम्यास्तिका सर्वे तथेति प्रतिपेदिरे । अभव्या दूरभव्याश्च मिथ्यास्वोदयदूषिता ॥ १९८ ॥ नासुचकैवना-  
नासिधासना भववर्दिनी । देवकी च तथापृच्छद्भद्रदसगणेशिन ॥ १९९ ॥ भगवन् भद्रदृष्टं द्वौ द्वौ भूत्वा शिक्षार्थमागता । बाधवेधिव पट् स्वेष्टु स्नेहः कि-  
न्तु, कोई कोई योजन लंबा चौड़ा मानते हैं कोई पांचसौ योजन मानते हैं और कोई आकाशके समान व्यापक मानते हैं  
॥ १८६-१८८ ॥ इसीतरह कोई एक मानते हैं कोई अनेक मानते हैं, कोई ज्ञानस्वरूप मानते हैं कोई अज्ञानस्वरूप ही मा-  
नते हैं इसतरह प्रायः जीवका स्वरूप अनेक तरहसे मानते हैं हे स्वामी इसलिये मुझे संदेह है आप कृपाकर इसका स्वरूप  
कहिये इसतरह कृष्णने पूछा तब तीनों लोकोंके गुरु भगवान कहने लगे कि जीवका स्वरूप जो ऊपर कहा गया है उन-  
मेंसे एक भी ठीक नहीं है । जो उत्पाद व्यय श्रौव्यस्वरूप है जो गुणवाला है सूक्ष्म है अपने किये हुए कर्मोंका भोगने-  
वाला है, ज्ञाता है, अपने शरीरके परिमाणके बराबर है, और सुख दुःख आदिके द्वारा स्वयं वेद्य है अर्थात् मैं सुखी मैं  
दुखी आदि अनुभवके द्वारा अपने आप जाना जाता है वही जीव है । इस जीवके साथ अनादि कालसे कर्मोंका सं-  
बंध लग रहा है उसीसे यह चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है परंतु काल आदि लब्धियोंको पाकर भव्य जीवोंके आठों  
कर्म नष्ट हो जाते हैं सम्यक्त्व आदि आठों गुण प्रगट हो जाते हैं । उनका आकार अंतिम शरीरके समान ( कुछ कम )  
रह जाता है, और ऊर्ज्वगमन स्वभाव ( ऊपरको जानेका स्वभाव ) होनेसे वे लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं । इसप्र-  
कार भगवानने जीवकी सत्ताका निरूपण किया ॥ १८३-१८७ ॥ उसे सुनकर आस्तिक जीवोंने तो उसे उसी तरह मा-  
नलिया परंतु जो कोई अभव्य थे अथवा दूरभव्य थे उन्होंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दूषित होकर अनादिकालसे लगी  
हुई संसारकी बढानेवाली वासना नहीं छोड़ी । तदनंतर देवकीने वरदण गम्धरसे पूछा कि हे भगवान् मेरे घर दो दो  
करके छह मुनिराज आहारकेलिये पधारे उनमें अपने कुटुंबियोंके समान मुझे प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ था ॥ १८८-२०० ॥



ताडितदुग्भिः । ध्वान् मनोहरं साधुदानबोधणपूर्वक ॥ १७८ ॥ एवं तपस्यस्तस्य पटुपंचाशद्विग्रहे । छमस्यसमये याते गिरौ रैवतकामिनि ॥ १७९ ॥  
पष्ठोपवासयुक्तस्य महावेणोरधः स्थित । पूर्वन्ते ऋयुजे मासि शुक्लपक्षादिमे दिने ॥ १८० ॥ चित्रायां केवलज्ञानमुदपश्यत सर्वंग । पूजयंति स्म त देवाः  
केवलावगमोत्सवे ॥ १८१ ॥ वरदस्तादयोऽभुवनेकादश गणेशिनः । चतुःशतानि पूर्वज्ञा भुतज्ञानाब्धिपारगाः ॥ १८२ ॥ शून्यद्वितयवस्त्वेकमितास्तस्य  
केवलावगमोत्सवे ॥ १८३ ॥ तावत् पचमज्ञाना विक्रियर्दिसमन्विता । शताधिकसहस्रं तु मन पर्ययबोधनाः ॥ १८४ ॥  
शिक्षकाः । शून्यद्वितयपदैकमिताशिक्षानलोचनाः ॥ १८५ ॥ तावत् पचमज्ञाना विक्रियर्दिसमन्विता । चत्वारिंश-  
शतानि नव विज्ञेया वादिनोद्यताति च । अष्टादश सहस्राणि ते सर्वेऽपि समुच्चिता ॥ १८५ ॥ यक्षी राजमती कात्यायन्यायाद्यादिछायाः । चत्वारिंश-  
त्सहस्राणि श्रावका लक्ष्येयिता ॥ १८६ ॥ त्रिलक्षश्राविका देवा देव्याश्चल्ययोर्यिताः । तिर्यचः सहस्रया शोका गणैर्द्विःपण्डितैरपि ॥ १८७ ॥ परीतो  
भव्यपद्माना विकाश जनयन्मुद । धर्मोपदानार्काशुप्रसारेणापनायिना ॥ १८८ ॥ विश्वान् देशान् विहृत्याते प्राप्य द्वारावतीं कृती । स्थितो रैवतकोयाने

वस्यथेके छप्पन दिन निकलगये तव वै रैवतक (गिरनार) पर्वतपर महावेणुके (वांसके) वृद्धके नीचे तेलाका नियम लेकर त्रिराजमान  
हुए और वहींपर उन्हें आसोज (कार) पडिवाके दिन सबेरेके समयः चित्रा नक्षत्रमें सब लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवल-  
ज्ञान प्रगट हुआ । उसीसमय ईद्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञानकल्याणका उत्सव मनाया और उनकी पूजा की ॥ १७९-१८१ ॥  
उनकी सभामें वरदत्तकी आदि लेकर ग्यारह गणधर थे, तथा चारसौ श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारगामी ग्यारह अंग चौदह पूर्वके  
ज्ञानकार थे ॥ १८२ ॥ इसीतरह ग्यारह हजार आठसौ शिक्षक थे, और पंद्रहसौ मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण  
करनेवाले थे, ॥ १८३ ॥ इसीप्रकार पंद्रहसौ केवलज्ञानी थे, ग्यारहसौ विक्रिया श्रुद्धिको धारण करनेवाले थे, नौ सौ  
मनःपर्यय ज्ञानी थे, और आठसौ वादी थे । इस तरह सबमिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे ॥ १८४-१८५ ॥ यक्षी  
राजमती कात्यायनी आदि चालीस हजार अर्जिकाएं थीं, एकलाब श्रावक थे तीनलाख श्राविकायें थीं असंख्यत देव  
देवियां थीं और संख्यात तिर्यच थे, इसप्रकारकी बारह सभाओंसे सुशोभित वै भगवान् भव्यरूपी कमलोंको बार बार प्र-  
फुल्लित करने लगे और धर्मोपदेश देनेकेलिये उन्होंने पापोंको नाश करनेवाला विहार किया ॥ १८६-१८८ ॥ वह वि-  
हार सब देशोंमें किया । अंतमें वै कृतकृत्य भगवान् द्वारावती नगरीमें आए और रैवतक नामके उद्यानमें आ घिराजमान  
हुए यह बात सुनकर कृष्ण और बलभद्र अपनी सब विभूतिसहित दर्शन करनेके लिये गये वहांपर जाकर भगवानकी  
बंदनकी धर्मका स्वरूप सुना और दोनों भाई बड़े ही प्रसन्न हुए । तदनंतर कृष्ण कहने लगे कि हे भगवान् ! जीवको  
कोई तो मानते ही नहीं, कोई नित्य मानते हैं कोई क्षणिक मानते हैं कोई सरसोंके समानमानते हैं कोई अंगूठेके समान मानते

निर्बिद्य निवृत्य निजमन्दिर । प्रविश्याविश्वद्वोऽक्षिस्तत्कालोपगतामरैः ॥ १६७ ॥ बोधित समतीतामभवानुत्पत्तिवेपितः । तदैवागल्य देवंद्रा कृतनिष्कमणो-  
त्सव ॥ १६८ ॥ शिविकां देवकुर्वाह्यमाशामरवेष्टितां । सहस्रामवणे यष्टानशन भ्रावणे सिते ॥ १६९ ॥ पक्षे चित्राख्यनक्षत्रे यष्टया सायाहमा  
श्रित । शतत्रयकुमारारब्धव्यतीतौ सह भृशुजा ॥ १७० ॥ सहस्रेण समाधाय संयम प्रत्यपद्यत । चतुर्थैश्चानधारी च बभूवासम्भवेव ॥ १७१ ॥  
संयमेव भानुमस्ताद्रावतु राजमसिद्ध त । यथैवाचापि दक्षानां न्यायोय कुन्ध्योषितां ॥ १७२ ॥ स्वतु खेनापि निर्विण्णः श्रयते न जनः पर । परदुःखे-  
न संतोमी लज्जयेवमहो श्रियं ॥ १७३ ॥ बलकेशवमुह्यवनीशाः संपूज्य संस्तवे । ससुरेस्तासमीशान् स्वं धाम समुपाश्रयन् ॥ १७४ ॥ पारणादि  
वसे तस्मै वरदसो महीपतिः । कनकाभः प्रविष्टाय पुरीं द्वारावतीं सते ॥ १७५ ॥ श्रद्धादिगुणसपन्नः प्रतीच्छादिनवक्रिय । आदिताम मुनिप्राप्तं  
पंचाक्षर्यमि चाप सः ॥ १७६ ॥ कोटिर्द्वादश रत्नाना सार्द्धाः सुरकरच्युता । श्रुतिं सौमनसीं बाधु मायादित्रिगुणान्वितं ॥ १७७ ॥ घनतारितकायानामभि-

भगवान् देवोंके द्वारा उठाई हुई देवकुरु नामकी पालकीपर सवार होकर सहस्राश्र वनमें गये और उन्होंने श्रावण शुक्ला प-  
ष्टीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय तैलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की । अपने कुमार कालके तीनसौ वर्ष बीत  
जानेपर उन्होंने दीक्षा धारण की थी और उनके साथ एक हजार राजा दीक्षित हुए थे । उसीसमय उन्हें चौथा मनःपर्यय  
ज्ञान प्रगट हुआ था और केवलज्ञान भी थोड़े ही दिनमें होनेवाला था ॥ १६४-१७१ ॥ जिसप्रकार संन्या सूर्यके पीछे  
पीछे अस्ताचल पर्वतपर जाती है उसीप्रकार राजमति भी भगवान् नेमिनाथके पीछे ही तपश्चरण धारण करनेकेलिये गई  
सो ठीक ही है क्योंकि वचनसे दी हुई कुलस्त्रियोंका भी यही न्याय है ॥ १७२ ॥ दूसरे लोग अपने दुःखसे भी विरक्त  
होते नहीं सुने पंतु आश्चर्य है नेमिनाथ सरीखे सज्जन लोग दूसरेके दुःखसे भी ऐसी महा विभूतियोंका त्याग कर  
देते हैं ॥ १७३ ॥ कृष्ण बलभद्र आदि अनेक राजा तथा इंद्रादि सब देव उन भगवानकी पूजा और स्तुतिकर सब अपने  
अपने स्थानको चले गये ॥ १७४ ॥ पारणाके दिन सज्जनोत्तम श्रीनेमिनाथने द्वारावती नगरीमें प्रवेश किया, वहांपर सु-  
वर्णकी कांतिको धारण करनेवाले तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित राजा वरदत्तने नवधा भक्तिसे उनका पडगाहन  
किया और उन्हें मुनियोंके ग्रहण करने योग्य प्राप्तुक आहारदान दिया जिससे उसके घर पंचाश्रयोंकी वर्षा हुई ॥ १७५-  
१७६ ॥ उसके घर देवोंके हाथसे छूटे हुए साडे बारह करोड़ रत्न वरसे, फूलोंकी वर्षा हुई, शीतल मंद सुगंध इन तीनों गु-  
णोंसे भरी हुई हवा चलने लगी, आकाशमें देवोंके द्वारा वजाये हुए दुंदुभियोंके मनोहर शब्द होने लगे और आपने यह  
बहुत अच्छा दान दिया ऐसी घोषणा होने लगी ॥ १७७-१७८ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए जब उसके छत्रस्य अ-

यक्त महापापोपलिपक ॥ १५७ ॥ अथ नेमिकुमारोपि नानाभरणभारभाक् । सहस्रकुंतलो रक्तोत्पलमालाभ्यल्लहतः ॥ १५८ ॥ तुरंगमहरोरुभूत-  
धूतीक्षितदिगगननः । सवयोमिरिति प्रतीतैर्बहाभ्रान्तसुनुभि ॥ १५९ ॥ परीत भिबिकां चित्रामारुह्य वयनप्रियः । भिबो विदोकेयितुं गच्छस्तत्राश्लोक्य  
यदृच्छया ॥ १६० ॥ शुभानितल्लतो वोरं रश्मिता करुणाक्षन । अमृतस्तृषितान् दीनदृष्टीनतिमयाकुलान् ॥ १६१ ॥ किमयमिदमेकत्र निरुद्धं वृणु-  
यदृच्छया ॥ १६२ ॥ देवैतद्वत्सुदेवेन तद्विवाहमहोरसवे । व्ययीकर्तुमिहानीतमित्यभापत तेभि त ॥ १६३ ॥ वर्तव्य-  
ककुल । इत्यन्वयुक्त तदक्षानियुक्ताननुकपया ॥ १६४ ॥ देवैतद्वत्सुदेवेन तद्विवाहमहोरसवे । व्ययीकर्तुमिहानीतमित्यभापत तेभि त ॥ १६५ ॥ इति निधाय  
रम्ये स्वादति वृणान्यनपराधकाः । किलेताद्य स्वमोगार्थं पीडयंति पिगीदृश ॥ १६६ ॥ किं न कुर्वन्ममी मूढाः श्रौढमित्यालवचेतसः । प्राणिनः प्राणिनु  
प्राणिनिधृणाः स्वैर्विनस्वैरैः ॥ १६७ ॥ स्वराज्यग्रहणाशंकं विधाय मयि दुर्मतिः । व्यधात्कपटमीदृश कष्ट दुष्टविचेष्टित ॥ १६८ ॥ इति निधाय

के लिये कृष्णाने ये सब पशु इकठे किये हैं ॥ १५६-१५७ ॥ इसके बाद जो अनेक आभूषणोंके बोझसे सुशोभित हो रहे हैं रक्त कमलोंकी मालासे अलंकृत हो रहे हैं, जो साथमें चलते हुए अनेक घोड़ोंके खुरोंसे उठी धूलिसे सब दिशा-  
ओंके मुह भर रहे हैं जिनके चारों ओर उनकी उमरके तथा प्रसन्न चित्तवाले वडे वडे सामन्तोंके पुत्र चल रहे हैं एक ह-  
जार भालासवार जिनके साथ हैं और जो सबके ननोंको प्रिय हैं ऐसे श्रीनेमिकुमार भी चित्रा नामकी नालकीपर सवार हो-  
कर दिशाएं देखनेके लिये निकले वहींपर इच्छानुसार देखते हुए उन्होंने घोर करुणास्वरसे चिछा चिछाकर इधर उधर  
फिरते हुए, प्यासे, भयसे अत्यंत व्याकुल और दीन दृष्टिको धारण करनेवाले पशु देखे ॥ १५८-१६१ ॥ उन्हें देख-  
कर नेमिकुमारने वही दया बुद्धिसे उनके रक्तकोंसे पूछा कि यह पशुओंका समूह एक जगह किस लिये इकट्ठा किया  
गया है ॥ १६२ ॥ इसके उत्तरमें उन लोगोंने भी कहा कि हे देव ! आपके विवाहमहोत्सवमें मारनेके लिये कृष्णाने ये  
सब यहां इकट्ठे किये हैं ॥ १६३ ॥ यह सुनते ही वे विचार करने लगे कि ये पशु वनमें तो रहते हैं वृणु खाते हैं और  
किसीका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इस तरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर  
किंसाका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इस तरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर  
किंसाका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इस तरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर  
जीवित रहनेकेलिये क्या नहीं कर डालते हैं । इस दुर्बुद्धिको मेरे विषयमें अपना राज्य लेलेनेकी शंका उठी है इसीलिये इ-  
सने ऐसा कपट किया है इसीसे कहना पडता है कि दुष्टोंकी चेष्टाएं भी वही ही भयानक होती हैं । इस तरह सोचकर वे  
विरक्त हुए और लौटकर अपने मंदिरमें आए । रत्नत्रय प्रगट होनेसे उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उन्हें सम्पत्ताया ।  
पहिलेके भवोंका स्मरणकर वे दुखी हुए और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव किया । वे

त्रिलोकस्वामिनो नेमेः प्रियास्तुवेति सादर ॥ १४६ ॥ त्रिखण्डजातरत्नानां त्व पतिर्नो विशेषतः । देव त्वमेव नाबोसि प्रस्तुतार्थस्य के वयं ॥ १४७ ॥  
 इत्युप्रसेनवाचोवत्सल्यम् । शुभेहनि समारभ्य विधातुं स तदुत्सवं ॥ १४८ ॥ पञ्चरत्नमयं रम्य समानयदनुत्तरं । विवाहमउप तस्य मध्य-  
 स्मे जगतीतले ॥ १४९ ॥ नवमुक्ताफलाखिलरंगवल्लीविराजिति । मंगलामोदपुष्पोपहारसारविलासिति ॥ १५० ॥ विस्तृताग्निवानर्घ्यवेक्ष्य सौभर्मपटके ।  
 बध्वा सह समापार्द्रतदुलारोपणं वरः ॥ १५१ ॥ परेद्यु समये पाणिजलसेकस्य माषव । गियासुर्दुर्गतिं लोभसुतीव्रानुभवोदयात् ॥ १५२ ॥ दुराशय  
 सुराधीशपूज्यस्यापि महात्मनः । स्वराज्यादानमाशंक्य नेमेस्यैयाविना वरः ॥ १५३ ॥ निर्वेदकारण किञ्चित् निरीक्ष्यैव विरस्यति । भोगेभ्य इति  
 सार्धित्य तदुपायविधिस्तथा ॥ १५४ ॥ व्याघाधिपैर्वृत्तानीतं नानामृगकन्दवक । विघातैकत्र संकीर्णं वृत्तिं तत्परितो व्यधात् ॥ १५५ ॥ अशिक्षयत  
 तद्विश्राध्यक्षान् यदि समीक्षितुं । क्षीणो नेमीश्वरोभ्येति भवद्भि सोमिधीयता ॥ १५६ ॥ त्वद्विवाहे व्ययीकदुं चक्रिणैष मृगोत्करः । समानीत इति  
 बडे आदरसे मांगी ॥ १४५-१४६ ॥ कृष्णके इसतरह मांगनेपर राजा उग्रसेनेने कहा कि हे देव तीन खंडमें उत्पन्न हुए  
 रत्नोंके स्वामी हैं इसमें कुछ विशेषता नहीं है । आपने अभी जो मांगा है उसके भी स्वामी आप ही हैं आपके सामने हम  
 कौन हैं इस प्रकारके उग्रसेनके वचनोंसे कृष्णको बड़ी ही प्रसन्नता हुई और उन्होंने किसी शुभ दिनमें वह विवाहका उत्सव  
 करना प्रारंभ कर दिया ॥ १४७-१४८ ॥ उन्होंने सबसे उत्तम और मनोहर पांचों रत्नोंका विवाह मंडप बनवाया, उ-  
 सके मध्यभागमें एक घेदी बनवाई वह घेदी नये मोतियोंकी सुंदर रंगावलीसे सुशोभित हो रही थी, मांगलिक सुगंधित  
 पुष्पोंकी भेंटसे वह बहुत सुंदर दिखती थी, और उसपर बहुत वा बडे नये और बहुमूल्य रेशमी वस्त्र बिछे थे । उससमय  
 वर श्री नेमिकुमारने बधू राजपतिके साथ भीने तंदुलोंका आरोपण किया था ॥ १४९-१५१ ॥ दूसरे दिन पाणिग्रहण  
 वा कन्यादानका दिन था उस दिन मायाचारियोंमें श्रेष्ठ और दुर्गतिको जानकी इच्छा करनेवाले दुष्ट कृष्णको तीव्र  
 लोभ कर्मके उदयसे इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे महात्मा नेमिकुमारके विषयमें यह शंका उत्पन्न हुई कि ये मेरा राज्य ले लेंगे  
 तथा उन्होंने यह भी विचार किया कि ये वैराग्यका थोडासा ही कारण देखकर भोगोंसे विरक्त हो जायेंगे । यही सो-  
 चकर उन्होंने नेमिकुमारको विरक्त करनेके लिये एक उपाय किया । उन्होंने ब्रानेक अच्छे व्याधोंके द्वारा बहुतसे पशु  
 पक्षवाकर मगवाकर और उन सबको एक जगह इकट्ठाकर उनके चारों ओर एक छोटीसी वाढ ( घेरा ) लगवा दी ॥  
 १५२-१५६ ॥ तदनंतर महापाषमें इबनेवाले कृष्णने उन पशुओंकी रक्षा करनेवालोंको समझा दिया कि यदि महाशुद्धि-  
 मान श्रीनेमीश्वर कुमार उन्हें देखनेके लिये यहां आवें तो तुम सब उनसे इसतरह स्पष्ट कहना कि आपके विवाहमें मारने-



१२४ ॥ रत्नमाला गदा सीरी मुशलं च हवेधिनः । महारत्नानि चत्वारि स्फुरत्स्वीव्यभञ्जन् प्रभो ॥ १२५ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च सती जाववतीति च । सुवीमा लक्ष्मणा गौरी गांधारी सप्तमी प्रिया ॥ १२६ ॥ पद्मावती च दैव्योऽमरौ पद्मप्रसाधनाः । सर्वा देव्यः सहस्राणि चाणूरांतस्य पोद्धरा ॥ १२७ ॥ बलस्याष्टसहस्राणि देव्योभीष्टसुखप्रदा । तस्मिन्नावाभारं सौख्यमाप्नोति ना प्रीतिर्नीयतुः ॥ १२८ ॥ स्वपूर्वकृतपुण्यस्य परिपाकेन पुष्कलान् । भोगान्प्राप्नुवतस्तस्य ऋणं गच्छति शार्ङ्गिण ॥ १२९ ॥ अन्येयुर्वादिदत्तैः पुरेणामा सरोवरे । मनोहरास्मिन्नानेऽभूजलकेली मनोहरा ॥ १३० ॥ तत्र नेमीश्विनः सत्यभामायाश्चावुसेचनात् । संलापोऽभवदित्युधैश्वरुरोक्तया मनोहरः ॥ १३१ ॥ त्वं प्रियावकुतो रंता मयि त्व किं मयाप्रिया । प्रिया चे तत्तव आता यातु का कामदायिनी ॥ १३२ ॥ कासौ किं ता न वेत्ति त्व सभ्यक् सा वेदविष्यति । वदति लामृजु सर्वे कुटिलस्त्व लवदव्यह ॥ १३३ ॥ पुनः ज्ञानविनोदावसाने तामेवमवर्षीत् । ज्ञानवन्न त्वया प्राणं नीलोत्पलविलोचने ॥ १३४ ॥ कस्य मे किं करोम्येतत्प्रसाल्य हरिर्भवान् । यो नागश-

ये सात रत्न कृष्णांके थे ॥ १२४ ॥ रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये दैदीप्यमान चार महारत्न बलदेव प्रभुके थे ॥ १२५ ॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, सती जाववती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गौरी, सातवीं गांधारी और पद्मावती ये आठ देवियां कृष्णाकी पट्टरानी थीं इनको लेकर कृष्णके सब सोलह हजार रानियां थी ॥ १२६-१२७ ॥ इसी तरह बलदेवके इच्छानुसार सुख देनेवाली आठ हजार रानियां थीं इन सब अपनी अपनी रानियोंसे देवोंके समान सुख भोगते हुए सदा प्रसन्न रहते थे ॥ १२८ ॥ इस तरह पूर्व जन्मके पुण्यकर्मके उदयसे जिन्हें अनेक भोग प्राप्त हुए हैं ऐसे कृष्णका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था ॥ १२९ ॥ किसी एक समय शरद ऋतुमें सब अंतःपुरके साथ मनोहर नामके सरोवर पर गये वहां पर सबने मनोहर जलक्रीडा की ॥ १३० ॥ वहीं पर परस्पर जल उछालते समय नेमिनाथ और सत्यभामाकी चतुराईसे भरी हुई कुछ मनोहर बात चीत हुई । सत्यभामाने कहा कि आप मेरे साथ अपनी प्यारीके समान जलक्रीडा क्यों करते हैं ? इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि तू क्या मेरी प्यारी नहीं है । इसके उत्तरमें सत्यभामाने फिर कहा कि यदि मैं आपकी प्यारी हूं तो आपके भाई फिर किस कामिनीके पास जाते हैं । यह सुन कर नेमिकुमारने कहा कि वह कौनसी कामिनी है क्या तू उसे नहीं जानती अच्छा वह अब अच्छी तरह जान लेगी । यह सुन कर सत्यभामाने फिर कहा कि आपको सबलोग सीधा बतलाते हैं परंतु आप तो बड़े ही कुटिल निकले । इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि क्या मैं तुमसे भी अधिक कुटिल हूं ॥ १३१-१३३ ॥ इस प्रकारके विनोद और स्नान करनेके बाद नेमिकुमारने सत्यभामासे फिर कहा कि हे नील कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तू यह गीली धोती पकड़ ॥ १३४ ॥ इसके उत्तरमें

॥ ११३ ॥ योतिताखिलदिक्चक्र चक्रमादाय विक्रमात् । त्रिविक्रम समुविश्य न्यक्षिप्ररुखीक्षण ॥ ११४ ॥ तप्त प्रदक्षिणीकृत्य स्थितवद्वक्षिणे भुजे । तदेवादाय कषारिर्मगधेदोछिनच्छिर ॥ ११५ ॥ षष्ठो बयानकांनोक वदतिष्ठागलन दिवः । पुरद्वयप्रसृतानि सह गथांशुविदुभिः ॥ ११६ ॥ चक्रं चक पुरस्कृत्य विजिगीर्षुर्दिशो शृणु । प्रस्थानमकरोत्सार्द्धं बटेन स्वबलेन वा ॥ ११७ ॥ मगधादीन्धुरान् खित्वा विषेयीकृत्य सिधुताम् । गृहीत्वा सार-  
रत्नानि तद्दृष्टान्यूर्जितोदैय ॥ ११८ ॥ सिधुसिधुखगाधृतारालव्याधधराधिपान् । खपादनसभाभारमानमय्योदवाहयन् ॥ ११९ ॥ खेचराचलवाराशि-  
गगामध्यगतान् पुनः । वशीकृत्य वशी चूर्णं म्लेच्छगजान् संखेचरान् ॥ १२० ॥ भरतार्धमहीनाथो दुरोच्छ्रितपताकिंका । उद्वदतोरणा द्वारवर्ती द्युग्न-  
विवेश सः ॥ १२१ ॥ प्रविष्टवत् तं देवविद्याधरधराधिपः । त्रिखडाधिपतिधकीत्यभिर्विचक्रयामितं ॥ १२२ ॥ स सहस्रसमाशुष्को दगचापसमु-  
च्छ्रित । नीलाब्जवर्णो भाल्लोलस्रम्यालिंगितविग्रहः ॥ १२३ ॥ चक्रं शक्तिर्गदा शंखो धनुर्दंडः सनदकः । वभ्रुः सप्त रत्नानि रक्षाण्यस्याद्युवाटकैः ॥

के उदय होनेसे अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार कृष्णके आते ही जरासंध की सेना नष्ट होने लगी । अपनी सेना को नष्ट होते देखकर क्रोधका भरा जरासंध भी आया तथा रुखी दृष्टिको धारण करनेवाले उसने अपने पराक्रमसे सब दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला चक्र लेकर कृष्णकी ओर चलाया ॥ ११३-११४ ॥ परंतु वह चक्र कृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजा पर आकर ठहर गया इस लिये कृष्णने वही चक्र लेकर जरासंधका शिर काट डाला ॥ ११५ ॥ उसी समय कृष्णकी सेनामें जीतके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे सुगंधित जलकी बूंदोंके साथ साथ कल्यवृक्षोंके फूल बरसने लगे ॥ ११६ ॥ तदनंतर कृष्णने सब दिशाओंके जीतनेकी इच्छासे बलदेव और सब सेनाके साथ चक्रको आगे कर प्रस्थान किया ॥ ११७ ॥ जिनका पुण्योदय चमक रहा है ऐसे उन दोनों भाइयोंने मगध आदि प्रसिद्ध देवोंको जाकर जीता और उनके दिये हुए उत्तमोत्तम रत्न स्वीकार किये ॥ ११८ ॥ लवणोद समुद्र सिंधु नदी, और विजयादर्ध पर्वतके मध्यके म्लेच्छोंसे नमस्कार कराकर उनसे अपने पैरोंके नखोंकी कान्तिका भार उठवाया ॥ ११९ ॥ तदनंतर विज-  
यादर्ध पर्वत, समुद्र, और गंगा नदीके बीच वालोंको वश किया और फिर उन जितेंद्रियने सीम्र ही विद्याधरों सहित म्लेच्छों-  
को वश किया ॥ १२० ॥ इसी तरह आधे भारतके स्वामी होकर उन्होंने जिसमें पलाकाएं बहुत ऊंची फहरा रही हैं और जगह जगह तोरख बंधें हुए हैं ऐसी दारावतीमें प्रवेश किया । जाते ही देव विद्याधर और भूमिगेचरी राजाओंने उन्हें वीन खंडके स्वामी चक्रवर्ती पानकर बिना कहे सुने कृष्णका अभिषेक किया ॥ १२२ ॥ कृष्णकी एक हजार वर्षकी आयु थी, दश धनुष ऊंचा शरीर था, नील कमलके समान वर्ण था और चंचल लक्ष्मीसे आलिंगन किया हुआ उनका शरीर बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥ १२३ ॥ देवोंके द्वारा सुरक्षित ऐसे चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और तलवार



विमुक्तबलकीक्या ॥ १०२ ॥ पतितानां परैः स्तूयमानसाहसकर्मणः । अत्राप्येति शक्यमिह स्वल्पद्वित्रियं द्युः ॥ १०३ ॥ भटैः परस्य सज्जामि खंडि-  
ताति स्वकीयासात् । तत्खंडैस्तत्र पार्थस्या बहवो व्यसवोभबन् ॥ १०४ ॥ न मत्सरेण न क्रोधाभ रथातेन फलेच्छया । भटाः केचिद्युयंत न्यायोनमिति  
केवल ॥ १०५ ॥ सर्वबाहसमुद्धुमिषधारीरावीरयोधना । परिच्युता गजस्कंधाच्छूलिकाभिगितां ह्य- ॥ १०६ ॥ चिरं परिक्रिंतं स्थान परित्यक्तुमिवा-  
क्षमाः । प्रलवते स्म कर्णोप्रभवलय्यानतानना ॥ १०७ ॥ केचिद्भामकरोपात्तचित्रदंढस्वरक्षणाः । दक्षिणाभमुजेनाग्रान् भटाश्छटुच्छारिणः ॥ १०८ ॥  
तत्र वाक्यो मनुष्याणा मूलोरुक्लृष्टसवय । कदलीघातज्जातस्येत्येयुकिमत्तप्रमाण ॥ १०९ ॥ एवं तुमुल्युदेन प्रयुते सगरे चिरं । सेनयोरंतकस्यापि संतृप्तिः  
समजायत ॥ ११० ॥ विलिपितं बल विष्णो बलेन द्विषता तदा । यथा क्षुद्रसरिद्धारिवाद्याः सिंधुसर्वाबुना ॥ १११ ॥ तदाबोक्थ दुरिः कृष्णा हरिर्वा  
करिणां कुलं । समस्तबलसदोहसहितो हतुमुद्यतः ॥ ११२ ॥ भास्करस्योदयाद्याधकारं शत्रुबलं तदा । विलीनं तं निरीक्ष्यैत्य जरासघोचिंत कुधा ॥

शत्रु भी जिनके साहसके कामोंकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसे पड़े हुए योद्धाओंके प्रसन हुए मुख ठीक स्थलकमलोंकी शोभाको  
धारण करते थे ॥ १०३ ॥ कितनेही योद्धाओंने अपनी कुशलतासे दूसरोके शत्रु तोड़ डाले थे परंतु उनके तोड़नेसे समीपके  
बहुतेसे लोग मर गये थे ॥ १०४ ॥ कितने ही योद्धा न किसी ईर्ष्यासे लड़ते थे, न क्रोधसे, न कीर्तिके लिये और न  
फलकी इच्छासे लड़ते थे किंतु लड़ना न्याय है यही समझकर लड़ते थे ॥ १०५ ॥ जिनका शरीर सब तरहके शस्त्रोंसे  
छिद्र गया भिद्र गया है ऐसे कितनेही योद्धा हाथीके कंधेसे गिर गये थे परंतु उनके पैर हाथीके कानोंसे लटक ही रहे  
थे इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों वे अपने बहुत दिनके परिचित स्थान छोड़ नहीं सकते इसलिये हाथीके कानोंका  
सहारा लेकर और नीचे मुंह लटका कर लटक रहे हों ॥ १०६-१०७ ॥ चंचल पैरोंको रखनेवाले कितने ही योद्धा  
अपनी रक्षाके लिये वार्ये हाथमें चित्र दंड लेकर शस्त्रोंवाली दाहिनी भुजासे शत्रुओंको मारकर डाल रहे थे ॥ १०८ ॥  
जिस प्रकार केलाओंकाघात क्षणभरमें हो जाता है उसी प्रकार उस युद्धके मैदानमें मृत्युके लिये मनुष्योंका उत्कृष्ट जमाव  
हो रहा था । भावार्थ—बड़ी शीघ्रतासे ढेरके ढेर लोग मर रहे थे ॥ १०९ ॥ इस प्रकार उस युद्धस्थलमें बहुत देर तक  
दोनों सेनाओंका घोर युद्ध हो रहा था जिससे यमराज भी खूब तृप्त हो गया था ॥ ११० ॥ तदनंतर जिसप्रकार स मुद्रके  
ज्वारके जलसे छोटी नदियोंका पानी बहने लगता है उसी प्रकार शत्रुओंकी सेनासे कृष्णाकी सेना कुछ पीछेकी ओर हटने  
लगी ॥ १११ ॥ अपनी सेनाको पीछेकी ओर हटती देखकर जिसप्रकार सिंह हाथियोंके फुंड पर दृढ़ता है उसी प्रकार  
कृष्ण क्रोध कर अपनी सब सेनाको साथ लेकर शत्रुकी सेना को मारनेके लिये तैयार हुए ॥ ११२ ॥ जिस प्रकार मर्ये

लक्षितः ॥ ९० ॥ सबानावर्जनिर्णिक्तसौवर्णैरुगलतिका—जलैराचम्य युद्धेच्छु क्षिप्तपूर्णजालि ॥ ९१ ॥ गंधपुष्पादिभिर्विभिन्नविनायकमनायक । भक्त्या जिनेन्द्रमन्यर्च्य भव्यकल्पमहीरह ॥ ९२ ॥ अमिषवाप्तसासैः समंतात्परिवारित । प्रतिपक्षमपक्षेषु पक्षेणासिमुख ययौ ॥ ९३ ॥ तत कृष्णेन निर्दिष्टाः प्रशाष्टपरिचारिणः । सैन्य यथोक्तविन्यास रचयति स्म रात्रिणि ॥ ९४ ॥ जरासंधोपि सग्नमरंगमध्यमधिष्ठित । स्वसैन्य निष्ठुरारातेरध्यक्षैरन्वयो-जयत् ॥ ९५ ॥ इति विन्यासितसेन्ये दृष्ट्वेने समरानकैः । शूरथातुच्छनिर्मुक्तशरानाराचसकुल ॥ ९६ ॥ नभोन्यरुणदुष्णाशुप्रसरत्करसतति । वियोगमग-मन्योद्वात्तस्तारमयशंक्या ॥ ९७ ॥ कोकयुग्म विहगद्य खतो नीढमाश्रयन् । नेक्षते स्म भटा योद्धुमन्योन्यं समरागणे ॥ ९८ ॥ संकुदमत्तमांतगत-सघट्टजन्मना । सप्तार्विषा विधूतैश्चकारे दिगबलोकनात् ॥ ९९ ॥ पुनः प्रष्टुत्संगमाः सर्वशस्त्रविचक्षणः । नदीं रक्तमयीं चक्रुर्विक्रमैकरसा क्षण ॥ १०० ॥ क्लरालकरवालगूनिर्मुक्तचरणद्वयाः । तुरंगमा गतिं प्राप्नुवन्ते नष्टतपोधनाः ॥ १०१ ॥ विच्छिन्नचरणा पेटुर्दिपाः प्रातमहामहत । निर्मूलपातितानील-द्रोके नाश करनेवाले तथा भव्योंके लिये कल्पवृक्षोंके समान श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजाकी और फिर उन्हें नमस्कार किया । त-दन्तर गुरुजन और समंत लोगोंको अपने चारो ओर रखकर अपनी पक्षसे ही शत्रुओंको जीतनेके लिये उनके सामने हुए ॥ ९१-९३ ॥ तदनंतर कृष्णाकी आज्ञासे अनुराग रखनेवाले प्रशंसनीय परिचारक लोगोंने यथा योग्य रीतिसे सेनाकी रचनाकी ॥ ९४ ॥ जरासंध भी संग्रामरूपी रंगश्रुमिके मध्यमें आ विराजमान हुआ और निर्दिष्टी शत्रुओंके साथ अपनी से-नाकी योजना करने लगा ॥ ९५ ॥ इसप्रकार रचनाकी हुई दोनो सेनाएं युद्धके वाजोंसे शब्दायमान होने लगीं । शूरवीर धनुष धारियोंके छोड़े हुए बाणोंसे आकाश भरगया और सूर्यके फैले हुए किरणोंके समूह सब ढक गये । उस समय सूर्य-को अस्त हुआ समझ कर चक्रवाक् पक्षियोंका जोड़ा बिछुड़ गया, और पक्षी भी वहचहाट करते हुए अपने घोंसलेमें घुस गये, तथा उस युद्धके मैदानमें योद्धा लोग युद्ध करनेके लिये परस्पर दिखाई भी नहीं पड़ते थे ॥ ९६-९८ ॥ उस समय क्रोधित हुए मदोन्मत्त हाथियोंके दातोंके संघटनसे जो अग्नि निकलती थी उससे कुछ अंधकार दूर होता था और सब तरहके शस्त्र चलानेमें निपुण योद्धा उसी अग्निके उजालेसे दिशाओंको देखकर फिर युद्ध करने लग जाते थे, पराक्रम रूपी एक रससे भरे हुए वे योद्धा क्षणभरके लिये नदीको भी रक्तमयी ( लोहसे भरी हुई ) बनारहे थे ॥ ९९-१०० ॥ कठिन तलवारकी धारसे जिनके दो पैर कट गये हैं ऐसे घोड़े उसी गतिको प्राप्त हो रहे थे जिसे कि वनमें रहनेवाले तप-स्वी अपने तपश्चरारूपी धनको नष्टकर प्राप्त होते हैं ॥ १०१ ॥ जिनके पैर कट गये हैं ऐसे हाथी इस तरह पट गये थे मानों प्रलय-कालकी महाबायुसे जटसे उसदकर पड़े हुए नीले चिल्लाचलकी शोभाको ही घोरण कर रहे हों ॥ १०२ ॥

दुर्गोचनपरोक्षिना । दुःशासनेन दुर्मर्षणेन दुर्धर्षणेन च ॥ ७९ ॥ इत्येन कल्लिगेशा भगवतेन यमुना । परैश्च भूरिभूषणैराजगाम स केसवं ॥ ८० ॥ तदा हरिबळे युद्धदुदुभिक्षितरुचरान् । शूरचेतोरसो बाध कौसुभो बान्धवजयत् ॥ ८१ ॥ तदाकर्णं द्रुपः केभिर्युजयत्सि देवताः । अर्हिसादिप्रताप्यन्ते जगद्गु पुरुसन्निधौ ॥ ८२ ॥ परे निस्तारकेष्वर्थान् वितरति स्म सातिबका । मुंचताशु तनुप्राण शूरीतासिलतां सितां ॥ ८३ ॥ आरोपयत चौपधान् सनहता गजाश्रिता । हरयो बद्धपर्याणा क्रियतामधिकारिषु ॥ ८४ ॥ समर्थता कलत्रादि युज्यता बाजिभी रथाः । भोगोपभोगवस्तुनि भुज्यतामनिबा- रित ॥ ८५ ॥ बदिमगधवृन्देन वंयतां निजविक्रमाः । इति केजिजगुर्भृत्यान्नुपाः सगामसन्मुखाः ॥ ८६ ॥ पतिभक्त्या निसर्गालयैरुषेण विरोधिना । मातसर्थेण यशोहेतो शूरलोकसमीप्सया ॥ ८७ ॥ निजान्वयाभिमानेन परैश्च रणकारणैः । समजायंत राजान प्राणव्ययविधाग्नि ॥ ८८ ॥ वधुदेव- सुतोप्यासगर्बं सर्वविभूषण । कुङ्कुमाकितगात्रत्वादिब सिद्धैरितद्विप ॥ ८९ ॥ जय जीवेति वंदाकृन्देन कृतमगल । नवोर्वाभोधरश्चावतकचचनि-

चित्तमें शूरवीरता का रस भरगया ॥ ८१ ॥ उन बाजोंको सुनकर कितने ही राजा लोग देवियोंकी पूजा करने लगे और अन्य कितने ही गुरुके समीप जाकर अर्हिसा आदि व्रतोंको धारण करने लगे ॥ ८२ ॥ अन्य कितने ही सात्विक राजा दीनोंको दान देने लगे । युद्धके लिये तैयार हुए कितने ही राजा लोग अपने २ सेवकोंसे कहने लगे कि “तुमलोग अ- पना वस्त्र शीघ्र पहिनो, सफेद तलवार रूपी लताको धारण करो, सब धनुषोंको चढाओ और हाथियोंके सवार सब तै- यार हो, अधिकारियोंके लिये घोड़े सब जीन कस कर तैयार करो, स्त्री आदिको योग्य जगह पर पहुँचाओ घोड़े जोतकर रथ तैयार करो विना किसी रोक टोकके भोगोपभोगोंकी सब वस्तुओंका उपभोग करो और वंदीजन तथा स्तुति पढनेवाले लोग अपने पराक्रमका उच्चारण करें” ॥ ८३-८६ ॥ राजालोगोंमेंसे कितने ही यशके लिये कितने ही शूरलोक जानेकी इच्छासे कितने स्वाभाविक पौरुषसे, कितने ही विरोधियोंकी ईर्ष्यासे, कितने ही यशके लिये कितने ही अपने स्वामीकी भक्तिसे, कितने ही अपने ही अपने वंशके अभिमानसे और कितने ही युद्ध होनेके कारण प्राण देनेके लिये तैयार हो गये ॥ ८७-८८ ॥ उससमय कृष्ण बड़ा अभिमान कर रहे थे, वे सब आभूषण पहिने थे और शरीर पर कुंकुम लगा लेनेसे ऐसे जान पड़ते थे मानों सिंदूर लगा हुआ हाथी ही हो ॥ ८९ ॥ आपकी जय हो आप चिरंजीव रहे इस प्रकार वंदीजन लोग उनका मांगलिक पाठ पढ रहे थे, वे नये श्याम वादलके समान जान पड़ते थे और सुंदर चातकोंकी आवाजसे वे बहुत ही अच्छे मालूम होते थे ॥ ९० ॥ उससमय युद्धकी इच्छा करनेवाले उन्होंने सज्जनोंके द्वारा लाये हुए टोंटनीदार सुवर्णकी वनी हुई भा- रीसे निकलते हुए जलसे आचमन किया, पूर्ण जलांजलि दी, फिर बड़ी भक्तिके साथ गंध पुष्प आदि द्रव्योंसे सब वि-

मन्त्रेण तद्विकारं न्यवेदयत् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा शार्ङ्गधरः शंश्रुतमुत्थानसमाकुलः । कुमारं नैमिषमन्त्रेण प्रगाधि त्वमिदं पुरं ॥ ६८ ॥ विजिगीषु किंला-  
शाभ्यस्त्यस्मान्मगधाधिपः । भनन्ति तमहं जीर्णह्रम वा युगमक्षित ॥ ६९ ॥ तूर्णं महत्प्रभावेन गत्वेत्यवददुर्जितं । प्रसन्नचेतास्तच्छ्रुत्वा सस्मितो मधुरे-  
क्षणः ॥ ७० ॥ सावर्धिर्विजय तेन विनिश्चित्य विरोधिनां । स्फुरन्तश्चिद्विष्णुं नैमिरोमित्यभाषत ॥ ७१ ॥ स्मितैधिः स्वजय सोपि निधिकाय जग-  
त्प्रभोः । जैनो वादीव पक्षायैरेकलक्षणभूषणं ॥ ७२ ॥ अथ शत्रुं समं जेतुं जयेन विजयेन च । सारणेनागदाह्येन धमाहेनोद्धवेन च ॥ ७३ ॥ सुमु-  
खाधारपद्मैश्च जराह्येन सुदृष्टिना । पादवै पंचभिः सत्यकेनाथ कुपदेन च ॥ ७४ ॥ यादवै सविराट्पण्डितैरप्रमेयैर्महाबलैः । धृष्टार्जुनोप्रसेनाभ्यां चमरेण  
रणेषुना ॥ ७५ ॥ विदुरेण द्रुपदैरनैथान्वितौ बलकेनौवा । समद्वानुद्वितौ योद्धुं कुरुक्षेत्रमुपागतौ ॥ ७६ ॥ जरासंधोपि युद्धेच्छुर्भुज्येणाविष्कृतोष्मणा ।  
सद्रौणेन सकर्णेन साश्वत्थान्न । च रुक्मिन्ना ॥ ७७ ॥ शल्येन द्रुपसेनेन कृपेण कृपवर्मणा । रुधिरैर्दशसेनेन जयद्रथमहीयता ॥ ७८ ॥ हेमप्रमेण भूमन्त्रा

तथा नैमिकुमारके समीप जाकर कहने लगे कि आप इस नगर की रक्षा कीजिये आज मगधदेशका राजा जरासंध हम लो-  
गोंको जीतनेके लिये आ रहा है इसलिये आपके प्रभावसे शीघ्र ही जाकर घुनके खायें हुए पुराने दहनके समान उसे उ-  
खाड फेंकूंगा इसतरह कृष्णने प्रभावशाली वचन कहे । इन सब बातोंको सुनकर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले और प्रसन्न  
चित्त नैमिकुमार मधुर नेत्रोंसे कुछ हंसे परंतु उनकी उस थोड़ीसी हंसीसे अपने विरोधियोंके जीतनेका निश्चय कर लिया ।  
जिनके दांतोंकी क्रांति दैदीप्यमान हो रही है ऐसे नैमिकुमारने कृष्णसे ओं अक्षर कहकर स्वीकारता दी । जिसप्रकार जि-  
नका अन्यथा अनुपपत्ति यह लक्षण ही आभूषण है ऐसे पक्ष आदिकोंके द्वारा जैनवादी अपनी विजयका निश्चय कर लेता  
है उसीप्रकार तीनोंलोकोंके स्वामी नैमिकुमारके हंसनेसे ही कृष्णने अपनी विजयका निश्चय कर लिया ॥ ६८-७२ ॥ अ-  
शानंतर कृष्ण और बलदेव दोनों भाई शत्रुको जीतनेकेलिये जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, पद्म, जरा,  
सुदृष्टि, पांचों पांडव, सत्यक, अपद, सब यादव, विराट, अपार सेनासे वेष्टित धृष्ट अर्जुन, उग्रसेन, युद्धरा अभिलषी चमर,  
विदुर तथा अन्य अनेक राजाओंके साथ उद्धत होकर युद्धकेलिये तैयार हुए और वहांसे चलकर कुरुक्षेत्रमें जा पहुंचे  
॥ ७३-७६ ॥ उपर युद्धकी इच्छा करनेवाला जरासंध भी अपनी ज्वालाको फंकते हुए भीष्म, कर्ण, द्रोण, अभ्युत्थामा,  
रुक्म, शल्य, द्रुपसेन कृप, कृपवर्मा, रुधिर इंद्रसेन, जयद्रथ, हेमप्रभ, पृथ्वीका नाथ दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्धर्षण, दु-  
र्जय, राजा कर्लिग, भगदत्त, तथा और अनेक राजाओंके साथ कृष्णके समने आ पहुंचा ॥ ७७-८० ॥ उसीसमय कृष्णकी  
सेनामें युद्धके बाजे बजने लगे तथा जिसप्रकार कुसुंभ वस्त्रको रंग देता है उसी प्रकार उस बाजेकी आवाजसे शूरवीरोंके

रत्नान्याबाय सारभूतानि तत्पराय । गत्वा राजपृष्ठ प्राप्तचक्रलमहीपति ॥ ५८ ॥ रत्नान्युपायनीकृत्य पुरस्कर्य वणिक्पतिं । ददद्भुः कृतसन्मानस्तान-  
पृच्छत्यजेधरः ॥ ५५ ॥ भो भवद्भिः कृतो लब्धमिदं रत्नकंदवक्रं । उदंभुमिरिवोन्मीलितेषु कौतुकाधिति ॥ ५६ ॥ शृणु देव महविभ्रमेतदसद्विलो-  
कित । पातालदेरय बाह्यदृष्ट्युभयमुपस्थितं ॥ ५७ ॥ सकंदीकृतसौख्योहमवनत्वादिबाहुधेः । फेनराशिस्तदाकारपरिणाममुपागतः ॥ ५८ ॥ अलघ्य-  
त्वात्परे पुण्य वापरं भरतेशिषु । नेस्त्वामिसमुत्पत्तिहेतुत्वाभगोत्तम ॥ ५९ ॥ अमहत्तदनस्येवमार्थमिर्वातगौरवं । शरदन्दकुल लिष्ट्युपैयंत-  
न्ममेति वा ॥ ६० ॥ सौधागुंदोलितालोपताकाबहुबाहुभिः । निराचिभिर्यत्सवर्गदुर्गमप्रपथोच्छ्रित ॥ ६१ ॥ परार्थभूमिरज्जलाकृष्णतेजोविराजनात् ।  
सदागंभीरशब्दत्वादंभोधिलसक्तिम ॥ ६२ ॥ नवयोजनविस्तारं दैर्घ्यं द्वादशयोजन । पुरं द्वारवती नाम यादवाना पयोनिधे ॥ ६३ ॥ मध्ये प्रवर्तते  
तस्मादेतद्वक्रदवक्रं । लब्धमस्माभिरित्येवमनुवस्तेपि भूपति ॥ ६४ ॥ श्रुत्वा तद्वचन कोषादवीभूतो गव्रीक्षण । जरासंधो धियाप्यंधो दर्पदेवातिपथितः ॥  
६५ ॥ चंचालाकालकालांतचलितात्मबलावुधि । कर्तुं यादवलोकस्य विलयं बाविलवित ॥ ६६ ॥ नारदस्तत्तदा ब्रुत्वा निर्हेतुसमरप्रियः । हरि सत्वर-

किया गया हो अथवा समुद्रके फेनका समूह ही नगररूप बन गया हो । अन्य शत्रु लोग उसे कभी उल्लंघन नहीं कर सकते  
वह भरतक्षेत्रके स्वामी चक्रवर्तीके दूसरे पुराणके समान जान पड़ता है । अथवा स्वामी नेभिनाथके उत्पन्न होनेके कारण ही  
वह नगर सबसे उत्तम है ॥ ५७-५८ ॥ वह नगर विशद था यावक लोगोंके लिये सेवा करने योग्य था और गुरुता अ-  
र्थात् भारस्मिन वा जड़तासे रहित था । अथवा यह शरद ऋतुका वादल मेरे भी ऊपर रहना है यही सपरम्भकर वह बड़े बड़े  
राजभवनोंके ऊपर फहराती हुई अनेक चंचल पताकाखूयी भुजाओंके संघट्टनसे आकाशमें दूर जाकर पड़े हुए उन वादलोंको  
निराकरण करता है ॥ ६०-६१ ॥ अथवा वह बहुमूल्य रत्नों की भूमि होनेसे वा कृष्णके तेजसे सुशोभित हो-  
नेसे और सदा गंभीर शब्द करनेसे वह नगर सदा समुद्रके जलके समान जान पड़ता है । वह द्वारवती नामका यादवोंका  
नगर नौ योजन चौड़ा है और बारह योजन लंबा है तथा समुद्रके मध्यमें सुशोभित है । उसी नगरसे ये रत्न हप्त लोगोंको  
मिले हैं इसतरह उन वैष्णवपुत्रोंने राजा जरासंधसे कहा ॥ ६२-६४ ॥ ये बातें सुनकर जरासंधने क्रोधसे अंधे होनेके स-  
मान ऊंची दृष्टि कर ली, उससमय वह बुद्धिसे भी अंधा बन गया और अभिमानसे सब नियमोंका उल्लंघन करने लगा  
॥ ६५ ॥ शीघ्र ही यादवोंका नाश करनेकेलिये वह असमयमें ही प्रलयकालके समुद्रके समान अपनी सब सेना लेकर चला  
॥ ६६ बिना कारण युद्धको पसंद करनेवाला नारद ये सब समाचार जानकर बड़ी शीघ्रतासे उसीसमय कृष्णके समीप  
पहुंचा और उसने जरासंधके आनेकी सब खबर कह सुनाई ॥ ६७ ॥ सुनते ही कृष्ण शत्रुको मारनेकेलिये व्याकुल हुए

वनेशनिर्मितत्रेयामणिस्तोपानमार्गम् ॥ ४२ ॥ नीला पयोदमार्गेण तिरिविशानदिगते । पाङ्कजाख्याशिलाप्रस्थमणिर्निर्दृतायने ॥ ४३ ॥ अनादिनिघने  
नालमारोप्यालकतेजस । क्षीरान्नोधिपय पूर्णसुदणकलशोत्तमैः ॥ ४४ ॥ अष्टाधिकसहस्रेण प्रमितैरभितप्रभैः । हस्तादस्त क्रमेणमराधिनाथसमर्पितैः ॥ ४५ ॥  
अभिविध्य यथाकाममलङ्कृत्य दशोचितं । नैर्मि सदर्मचक्रस्य नेमिनामानमभ्यधात ॥ ४६ ॥ तस्मादानीय मौलीप्रमाननीयं महोदय । मातापित्रो पुन-  
र्दत्ता विधायानन्दनाटक ॥ ४७ ॥ विदुस्य विविधान्वाङ्मन रसभावनिर्तरं । स्वावासमगमत्सर्वहर्षिभिर सहामरैः ॥ ४८ ॥ नभैर्भगवत्स्तरीयसतानसमये  
स्थितः । पचलक्षः समाः प्रातै तदंतर्गतजीवितः ॥ ४९ ॥ जिनो नेभि समुत्पन्नः सहस्राब्दायुरतिवितः । दशचापसमुत्प्रेषः शस्तसंस्थानसहतिः ॥ ५० ॥  
त्रिलोकनायकाभ्यर्थ्यः स्वाम्यर्णीकृतनिर्वृति । तस्या सुखाति दिव्याति तस्मिन्मनुर्बन्धिरं ॥ ५१ ॥ गच्छत्येव क्षणेवात्य काले बहुतेत्यदा । आतवारि-  
पयोयोगा नष्टदिका बणिक्कुताः ॥ ५२ ॥ प्राप्य द्वारावतीं केचित्पुण्यानगधवासिनः । राज्यलीलां विलोक्यावबिभूतिं च सविस्मयाः ॥ ५३ ॥ बहुनि-

पूज्य और महापुरुषात्मा नेमिनाथको वहांसे लाकर मातापिताको सौंपा, विक्रिया श्रद्धिके द्वारा अनेक भुजाओंको बनाकर  
निरंतर रसभावसे भरा हुआ आनंद नाटक किया और फिर सब देवोंके साथ वह इंद्र अपने निवास स्थानको चला गया  
॥ ४७-४८ ॥ श्रीनेमिनाथ स्वामीके बाद पांच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमिनाथ हुए थे उनकी आयु भी इसी समय  
में अंतर्गत समझनी चाहिये । उनकी आयु एक हजार वर्षकी थी शरीरकी ऊंचाई दश धनुष थी उनके संस्थान आदि  
सब प्रशंसनीय थे तीनों लोकोंके इंद्र उनकी पूजा करते थे, मोक्ष उनके समीप थी, और उसी द्वारावतीमें बहुत दिन तक  
दिव्य सुखोंका अनुभव करते हुए निवास करने लगे ॥ ४९-५१ ॥ इस तरह उनका बहुत बड़ा समय भी क्षणभरके  
समान व्यतीत हो गया था । किसी एक दिन मण्ददेशके रहने वाले कितने ही वैश्यपुत्र अपने पुण्यकर्मके उदयसे समुद्र-  
मार्गसे मार्ग भूलकर द्वारावतीमें आ पहुंचे वहांकी राजलीला और विभूति देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने वहां  
से बहुतसे अच्छे अच्छे रत्न साथ लिये और फिर वे वहांसे चल कर राजगृह नगरमें पहुंचे । वहां जाकर उन्होंने वे रत्न  
भेट कर चक्ररत्नके स्वामी महाराज जरासंधके दर्शन किये राजाने उन सबका आदर सत्कार किया और फिर  
बड़े कौतुकसे पूछा कि उठती हुई किरणोंसे खुले हुए नेत्रोंके समान यह रत्नोंका समूह तुम्हें कहाँसे मिला  
है ॥ ५२-५६ ॥ तब वे वैश्य पुत्र कहने लगे कि हे देव ! सुनिये हमने ये सब बड़ी आश्चर्य रखने-  
वाली चीजें देखी हैं । समुद्रके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर नगर है ऐसा नगर हम लोगोंके देखनेमें  
कभी नहीं आया मानों वह पातालसे निकल कर ही पृथ्वीपर आया हो अथवा उज्जलताका समुदाय ही एक जगह इकठा

सम्राजिका । आलोकताबुधप्रान्दं प्रविष्ट च गजविप ॥ ३२ ॥ तदा चरित्तोयाबमेरीजनिबिबोषिता । कुतमंगलमुत्ताता धृतपुण्यप्रसाधना ॥ ३३ ॥  
उपचारबद्धेय्य त्रुपमर्दोसने स्थिता । खट्टखप्रनामाजीमन्वयुक्तं शुभायमं ॥ ३४ ॥ संकल्प्य नरोदोपि फल तेषामभाषत । स्वद्वर्भे शिखलेकोशोवतीर्ण  
इति सूक्ष्मधीः ॥ ३५ ॥ शुलातदैव संलब्धवती बालुबदय्यसौ । जाला खनिन्दैर्देव्याः सभूयागल्य सम्मदाः ॥ ३६ ॥ स्वर्गावतारकल्याणमहोत्सववि-  
धायिनः । त्वेषां च पुण्यं निर्वर्त्य स्वधाम समुपागमन् ॥ ३७ ॥ य पुनः श्रावणे शुक्लपक्षे षष्ठीदिने विनः । ज्ञानत्रितयधृत्वधृत्योने दुष्टयामभाषत ॥ ३८ ॥  
अथ खविष्टारकपसुत्तप्रावधीषणा । बुद्ध्या भगवदुत्पत्तिं सौधमैर्पुरस्सरा ॥ ३९ ॥ संजातसमदाः प्राप्य परिवेष्य पुरं स्थिता । ऐरावतगजस्कन्धभा-  
रोप्य भुवनप्रभु ॥ ४० ॥ सौधमैर्पतिभक्त्या नीलाभोजदलद्युति । ईशमीशानकल्पेशधृतातपनिवारण ॥ ४१ ॥ नमस्वरैर्वरोचनोद्भूतचामरीरह ।

देखे हुए सब स्वम कह सुनाए सुन कर मूढम बुद्धि वाले महाराज समुद्रविजयने भी शुभके आगमनको सूचित करनेवाला  
उनका इकठा एक फल कहा कि तेरे गर्भमें तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकर परमदेवने अवतार लिया है ॥ ३३—३४ ॥  
पतिके वचन सुनकर तीर्थंकर पुत्र हुएके समान ही वह संतुष्ट हुई । उसी समय अपने अपने चिन्होंसे इंद्रोंको भी मालूम  
हुआ वे सब वडी प्रसन्नतासे मिलकर आए, उन्होंने स्वर्गावतरण कल्याणका महोत्सव किया तथा अपने पुण्यकर्मोंका वंश  
किया और फिर वे सब लोग अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३६—३७ ॥ तदनंतर श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन विवा नक्षत्रमें  
मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले भगवान उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उसी समय सौधर्म आदि सब इंद्रोंके  
सिंहासन कंपायमान हुए उन्होंने अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे भगवानका जन्म जान लिया । तदनंतर वे सब मिलकर वडी प्रस-  
न्नतासे आए, द्वारवती नगरीके चारोओर आ उपस्थित हुए सौधर्म स्वर्गके इंद्रने वडी भक्तिसे तीनोंलोकोंके स्वामी और  
नील कमलके दलकी कांतिके समान भगवान पुत्रको ऐरावत हाथीके मस्तक पर विराजमान किया, ईशान स्वर्गके इंद्रने  
उनपर चत्र लगाया तथा चमर डुलाने लगे । कुबेरने तीन तरह मणियोंकी सीढियां बना कर मार्ग बनाया था उसी परसे  
आकाशमार्गमें होकर मेरु पर्वतपर पहुंचे । मेरु पर्वतकी ईशान दिशाकी ओर जो पांडुशिला है और उसपर जो अनादि  
अनिधन मणियोंका सिंहासन रक्खा है उस पर मूर्त्यके समान तेजको धारण करनेवाले पुत्रको विराजमान किया । फिर  
सब इंद्र अपार कांतिको धारण करनेवाले सुवर्णके बने हुए एकहजार आठ उत्तम कलशोंसे हाथों हाथ क्षीरसागरका जल  
लाए । उनसे इच्छानुसार भगवानका अभिषेक किया यथायोग्य रीतिसे वस्त्राभरण पहिनाकर अलंकृत किया और फिर  
उन्हें सद्धर्मरूपी चक्रकी धुरी समझकर उनका नेमि अथवा नेमिनाथ नाम रक्खा ॥ ३९—४० ॥ फिर सबके मुकुटमणि,





संप्राप्यापतदुप्रमेततनयो बन्धुपातद्वेषत । तं द्योमिन् अमयद् करेण बगणे संगृह्य बाल्याङ्ग भूतो नेतुसुपांतमंतकविभो कृष्ण समाह्वयन्मगत ॥ ४९४ ॥ आपेतुनभस्तदा मुमनसो देवानकैर्दध्ने, स्वारावो वसुदेवसन्ध्यालया प्रसोभणादुद्धत । सीरी वीरवरो विरुद्धगुणीनाक्रम्य रंगरिषतेः स्वीकृत्वा-प्रतिमल्लमाप्तविजयं नीर्योजितं स्वावुज ॥ ४९५ ॥ अतुलबलमलघ्यारातिमन्तभवात् त्कुपेतहरिसमान माननीयापदानं । सपदि समुपयाता वदिभेदेयमान अनितसकलराग त हरि वीरलक्ष्मीः ॥ ४९६ ॥ दूरीव मे श्रिनयती वतीरलक्ष्मीरेतस्य दक्षिणभुज विजयैकरोह । प्रापदगतिं चित्तरादिने त क-टाक्षरेक्षिण रागतर्लेभरतांलक्ष्मी ॥ ४९५ ॥

इत्यादि भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे 'ने मे चरिते कृष्णविजयो नाम' सप्ततितम पर्व ॥ ७० ॥

उसीसमय आकाशसे पुरुषोंकी वर्षा हुई, देवोंके नगाड़े बजने लगे और वसुदेवकी सेनारूप समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न होनेसे बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । उसी समय जिसके साथ लड़ने योग्य कोई मल्ल नहीं है जो शूरवीरतामें सबसे बड़े हैं और जिन्होंने विजय प्राप्त की है ऐसे अपने छोटे भाई कृष्ण को साथ लेकर शूरवीर बलभद्र विरुद्ध राजाओंपर आक्रमणकर रंगभूमिमें आखड़े हुए ॥ ४९३ ॥ जिनमें अतुल बल है जो किसीसे उलंघन न किये जा सकें ऐसे शत्रुरूप मत्त हाथियोंके घात करनेके लिये क्रोधित हुए सिंहके समान हैं, जिनका पदस्थ माननीय है और वदीजन सदा जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे कृष्णके समीप वीर लक्ष्मी अयना सत्र अत्रराग प्रगटकर वद्धत शीघ्र आ उपस्थित हुई थी ॥ ४९४ ॥ श्रीकृष्णके समीप श्रेष्ठगीर लक्ष्मी तो दूतीके समान आ ही गई थी परंतु आधे भरतक्षेत्रकी लक्ष्मी चिरकालसे प्राप्त हुए पतिके समान विजयकी एक स्थान ऐसी कृष्णकी दाहिनी भुजाको प्रेमसे भरे तरल कटाक्षोंसे देखती थी ॥ ४९५ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीनेमिनाथके चरित्रमें श्रीकृष्णके विजयका वर्णन करनेवाला यह संचरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

मात्राधित्तवृत्तप्रवीणाः । सतत्कृतनिर्गोयद्रोगमलैरमलैरविकलज्वलम मर्षंभान्विनीजाः ॥ ४८८ ॥ शिखरचरणनिवेगो बभ्रसारास्त्रिबन्धो गुञ्जगरीबन्धि-  
बाधौ सुष्टिसमायिमध्य । कठिनप्रभुलक्षः स्थूलनीलाद्रिगुणश्चिगुणितनिजमूर्तिर्द्वैतसर्पादुदुरीक्ष्यः ॥ ४८९ ॥ उन्नतियलितनेत्रो तिल्लुरावदमुष्टं परि  
णतक्राणोघो मधुसचारदधः । मृदाभशान्तिरिवोभो नदसुनुः शितः सन् भयमवददसण प्रेतनाशय्य वौकः ॥ ४९० ॥ स्त्रीव शौर्यमविकल मिलिन बलं वा  
रेदुःसमस्तमपि सहतिमेथि वद्धा । मिहाकृतिः न महसाकृतसिंहनादो रंगादलघत नमोग्गमगण वा ॥ ४९१ ॥ आपल स्वादरातिवदूवदमादपादपा-  
तामिघातवलिताचलसधिवधः । वलगन् मुहुः परिगरन् प्रतिजुभमाणनिर्दूरजितगुर्जा बलयन्मुद्रां ॥ ४९२ ॥ क्रुद्ध कटीद्वितयपार्श्वविलम्बितवज्रो  
नियुद्धकुशल प्रतिमल्लमुग्र । चाणूर्यमद्रिखिलरोधतमापततमाह्वय मिहवदिय सहसा बगते ॥ ४९३ ॥ हृष्ट्यैव रुधिरोद्धनोप्रनयनो योद्धुः स्वय मल्लतां  
पतली धी, तथा वक्षःस्थल बद्धन ही कठिन और बड़ा था । वे स्थूल नील पर्वतके समान ऊंचे थे, गजाओंके तीनों  
गुणोंरूप ही उनकी मूर्ति थी और वे अभिमानी मर्षसे भी दुरीक्ष्य ( जो देखे न जा सकें ) थे ॥ ४८७ ॥ उनके ज-  
लते हुए नेत्र चारों ओर फिर रहे थे, कठोर मुठी वभी हुई थी, उन्होंने अपनी इंद्रियोंको खूब पुष्ट किया था वे  
शीघ्रतासे पैतडा बदलनेमें चतुर थे, वज्रके समान अत्यंत उग्र थे और यमराजको भी अमह्य भय देनेवाले थे ऐसे वे  
नंदकुमार श्रीकृष्ण अखांडेमें खड़े थे ॥ ४८८ ॥ उममयय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शूरवीरताकी मूर्ति ही हों अ-  
थवा संसारका सब बल एक ही जगह इकट्ठा होकर आगया हो अथवा वेगका सब मभूह एक जगह आकर बंध गया  
हो । सिंहके आकारको धारण करनेवाले उन कृष्णने अरुस्मात् मिहनाद किया और फिर रंगभूमिसे उछलकर आं-  
गनके समान आकाशको उल्लंघन किया ॥ ८९ ॥ फिर आकाशमें वज्रके समान जमीनपर आये, उनके पैर पड़नेकी  
चीटसे निश्चल संयोगिके बंध भी हिल गये, वे बार २ गर्जने लगे, दौड़ने लगे और लंबी तथा फैली हुई सिंदूरसे  
रंगी हुई भुजाओंको इधर उधर चलाने लगे ॥ ९० ॥ उस समय वे क्रोधित होरहे थे, कमरके दोनों ओर पीला  
वस्त्र पीली लोपोटी पहिने थे, और लडनेमें अत्यंत निगुण, उग्र और पर्वतकी शिखरके समान ऊंचे ऐसे आये हुये  
हाथीके समान चाणूर नामके प्रतिमल्लको बड़ी शीघ्रतासे मारकर वे सिंहके समान सुशोभित होरहे थे ॥ ४९१ ॥  
इसमकार विजयी कृष्णको देखकर क्रोधके कारण रुधिर भरजानेसे ( लाल होजानेसे ) जिसके नेत्र विशाल हो रहे हैं  
ऐसा उग्रसेनका पुत्र कंस पूर्व जन्मके वैरके कारण मल्लवन कर आया परंतु कृष्णने उसके दोनों पैर पकड़कर छोटे  
अंडेके समान आकाशमें फिराया और यमराज महाराजके समीप ले जानेके लिये उसे जमीनपर दे पटका ॥ ४९२ ॥

यद्विचित्रं ॥ ४७९ ॥ स्वतेन्य समुदायेन सनौकैश्च तस्मिन् । सीरपाणि समुत्थाय कृतदो स्फालमन्थनिः ॥ ४८० ॥ कृष्णेन सह रंग वा समंतात् स  
परिभ्रमन् । कस नाशयितु कालस्तवेत्याख्याय निर्गतः ॥ ४८१ ॥ तदा कसाक्षया विष्णुविधेया गोपमूनुव । दर्विणो भुजमास्फाल्य धृतमल्लपरिच्छदा ॥  
४८२ ॥ भ्रवणाद्दिवादित्रचटुलचनिसगताः । क्रमेणैषेपविनिक्षेपाः प्रोत्रतासद्रोक्षधुराः ॥ ४८३ ॥ पर्यायनर्तितप्रक्षयभूमा भीषणाऽवा । निवर्तनीः  
शतावर्तनैः सभ्रमणवर्गनं ॥ ४८४ ॥ हर्जनैः समवस्थानर्ननैश्च करणैः स्फुटैः । रंगाभ्यर्णमलकृत्य तस्यैर्नमनोहराः ॥ ४८५ ॥ प्रावृत्ता कसमल्लाश्च चाणप्रमुखा-  
स्तथा । रंगाभ्यासं समाकृत्य विक्रमैकसाः स्थिताः ॥ ४८६ ॥ मध्येरंगमुद्रात्तचित्तविसरो वीरोरुमल्लप्रणी प्रागेव प्रतिमल्लयुद्धविजय प्राप्येव सीप्रद्युति ।  
भास्वत च दियोवतीर्णमधुना योद्धु गत मल्लता जेष्यामीति विवृद्धविक्रमस संभावयन्स स्वय ॥ ४८७ ॥ घनधृतपरिगनो वदकेशोविकूर्च सहजमसृण  
मारनेका समय है ” ऐसा कृष्णसे कह कर बाहर निकल गये ॥ ४७५-८१ ॥ इसके बाद कंसकी आज्ञा से अभिमानी  
कृष्ण आदि गोपोंके पुत्र मल्लोंका भेप बनाए भुजाएं ठोंकते हुए आए ॥ ४८२ ॥ उस समय कानोंको प्रसन्न करनेवाले  
बाजे बज रहे थे और उनकी चंचल ध्वनिके साथ साथ वे मल्ल लोग अपने पैर उठाते रखते जाते थे अपने उठे हुए  
कंधों से वे कुछ गर्विष्ठ हो रहे थे ॥ ४८३ ॥ वे लोग लौट कर देखते हुए भोंहें नचाना, भीषण शब्द करना,  
सैकड़ोंबार इधरसे उधर और उधरसे इधर आना जाना मंभ्रमके साथ गर्जना, दौड़ना कूदना चुप चाप  
वैठना तथा और मी अनेक तरहके कामकर रंगभूमिको सुशोभित करते हुए लोगोंके नेत्रोंको मनोहर जान पड़ते  
थे ॥ ४८२-४८३ ॥ इतनेमें ही पराक्रम ही जिनका एक रस है ऐसे २ चाणूर आदि कंसके मल्ल मी उठे और रंग-  
भूमिके चारों ओर आकर बैठ गये ॥ ४८४ ॥ उससमय रंगभूमिमें खड़े हुए कृष्ण बड़े ही अच्छे जान पड़ते थे । उन-  
के चित्तका विस्तार बहुत बड़ा था, वे शूरवीर और बड़े बड़े मल्लोंमें मुख्य थे, प्रतिमल्लसे युद्धकी विजय पानेके म-  
मान उनकी कांति पहिले ही से देदीप्यमान हो रही थी उनका पराक्रमरूपी रस बहुत बढ़ रहा था और वे अपने  
लिये ऐसी संभावना कर रहे थे मानो युद्ध करनेके लिये मल्ल बनकर आकाश से उतरकर आए हुए सूर्यको मी में  
उससमय अवश्य नीतंगा ॥ ४८५ ॥ उससमय उनके वस्त्र बहुत कड़े बंधे थे, केश बंधे हुए थे, दाढ़ी मूंछ थी नहीं  
स्वभावसे ही चिकना शरीर था, वे चित्तकी वृत्तिमें बड़े प्रवीण थे, अमल्लोंके समान गोप मल्लोंसे वे सदा लड़ते  
रहते थे और वे सदा जीतते थे, इसतरह उनका पराक्रम सचपर प्रगट था ॥ ४८६ ॥ उनके पैरका टिकाव स्थिर था,  
हृदिदयोंका बंधन वज्रके समान था, झुजारूपी लोहेके डंडे अवाध थे, मध्यभाग अर्थात् कमर मुठीमें समाने लायक

स्त्विति ॥ ४६१ ॥ पीतांबरं समुद्रपुल जलांश्च मधुसूदनः । एकदमास्फलयामास पक्षिकेणेव पक्षिराट् ॥ ४७० ॥ वज्रपातयितासहस्रपातादिभीतवान् । पूर्वपुण्योद्यान्वासास्य फणीद्रोहदयतामगात् ॥ ४७१ ॥ हरिरेयेष्टयज्ज्वानि समादाय निजद्विष ॥ ४७२ ॥ नदगोप-  
समीपेस्थान्मच्छत्रुमिति निश्चयात् । कदाचिदनदगोपाल मण्डयुद्ध निरीक्षितु ॥ ४७३ ॥ निजमल्लैः सहगच्छेदिति संदिशति स्म सः । सोपि कृष्णादिमिल्ले  
सह प्रादिक्षरक्षय ॥ ४७४ ॥ वन्निमगज जीतवधन यमसन्निभ । भद्रगधसमाकृष्टवद्वज्रमरसेवित ॥ ४७५ ॥ नियमच्युतभूषणकुमारं वा निरंकुश ।  
रदनाघातनिर्भिक्षुधाभवनमिन्निक ॥ ४७६ ॥ आघातत विलोक्यासौ प्रतीत्योत्पद्य मीपणः । रदमेक कुमारस्त तेनैव समताडयत् ॥ ४७७ ॥ सोपि मी-  
तो गतो दूरं ततश्चक्षुः हरिभूष । जयोनेन निमित्तेन कुटुम्बभक्तकृतः ॥ ४७८ ॥ इति गोपान् समुत्साह्य प्रविशत्कसससद । वसुदेवमहीभोपि कसाभिप्रा-

की शिला वनाता हं ऐसा विचार कर वे जलसे भीगा हुआ अपना पीतांबर उठा कर उस फणा पर धोने लगे तब  
वह नागराज वज्रपातके समान उस पीतांबरके गिरनेसे छोटे पक्षीके समान डर गया और कृष्णके पूर्व पुण्यकर्मके उद-  
से वह नागराज अहङ्ग्य हो गया ॥ ४६५-४७१ ॥ तदनंतर कृष्णने इच्छानुसार कमल तोड़े और अपने शत्रुके पास  
पहुँचा दिए, उन कमलोंको देखकर कंसने शत्रुको देखनेके समान ही मान लिया और निश्चय कर लिया कि मेरा शत्रु  
नंदगोपके समीप ही है । किसी एक दिन कंसने नंदगोपालको समाचार कहला भेजा कि तুম अपने मल्लोंके साथ  
मल्ल युद्ध देखनेके लिये आओ । इन समाचारोंको सुन कर नंदगोप भी कृष्ण आदि सब मल्लोंको लेकर निर्भय हो  
मथुराको चले ॥ ४७२-४७४ ॥ नगरमें घुसते ही कृष्णकी ओर एक हाथी दौड़ा, वह हाथी मदोन्मत्त था, यमके  
समान था, बंधन तोड़ कर आया था, उसके मदकी गंधसे गुजार करते हुए अनेक भ्रम आकर उसकी सेवा करने  
थे अपने नियमोंसे च्युत हुए राजकुमारके समान निरंकुश था और अपने दातोंकी चोटोंसे चूनासे सफेद हुई दीवालों  
को तोहता आ रहा था उसे अपनी ओर दौड़ा हुआ देखकर भयंकर कुमार कृष्णने खड़े होकर उसका एक दांत  
तोड़ दिया और फिर उसी दांतसे उसे मारने लगे जिससे वह हाथी डरकर दूर भाग गया । यह देखकर नंदगोप  
बहुत ही संतुष्ट हुए और कहने लगे कि हम लोगोंकी जीत यदि होगी तो इसीसे होगी इस तरह सब कुटुम्बमें प्रगट  
कर और दूसरे गोपोंको उत्साहित कर वे कंसकी सभामें पहुँचे । उस समय राजा वसुदेवने भी कंसके अभिप्राय जान  
लिये और अपनी सब सेना सजा कर एक जगह आ खड़े हुए । वलभद्र उठ कर अपनी भुजाओंके टोंकनेकी आवाज  
करते हुए कृष्णके साथ रंगभूमिमें पहुँचे और चारों ओर इधर उधर घूमने लगे । तदनंतर वे “यह तुम्हारा कंसके

त ॥ ४६१ ॥ नंदगोपस्य पुत्रो मोगः परतत्प्रितयकर्मकृत । इत्यन्वेष्टु गतौ सम्यक् प्राणितेनाप्यनिधितेः ॥ ४६२ ॥ सहस्रपत्रमभोजमन्यदहीद्विरहित । प्रीयतामिति प्रोक्तो राजा जिज्ञासया रियो ॥ ४६३ ॥ युत्वा तद्रोपतिः शोकादकुलः किल भूयुजः । प्रजानां रक्षितारस्ते कष्टमय हि मारकाः ॥ ४६४ ॥ इति निर्बिण यासंगराज विष्टिर्मेदसी । त्वयैवावुरुहण्युप्रसर्गरक्षणि भूयुज ॥ ४६५ ॥ नयानीत्यब्रवीकृष्णः सोपि किं वात्र दुष्करं । नेष्यामीति महा-नागसरः क्षिप्रतरं ययौ ॥ ४६६ ॥ अविशच्च विनिःशक तद्वात्या कोपवैपितः । स्वनिश्वासमुद्भूतञ्चलद्ववालाकणान् फ्रित् ॥ ४६७ ॥ भूडामणिप्रभाभा सिस्फटाटोपभयकरः । जलज्जिह्वाद्वयः स्फूर्जद्दीक्षणात्युग्रवीक्षणः ॥ ४६८ ॥ प्रत्युत्थाय यमाकारो निगरीदुं तमुयतः । सोपि मद्भूसनस्थेषा स्पटा बुद्धशिला-

तथा आश्चर्य करने लगे तथा अकस्मात् आकर उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण आदि देकर कृष्णका यथायोग्य आदर सत्कार किया ॥ ४६० ॥ तत्र कृष्णके पिता नंदगोपने समझ लिया कि इस कृष्णके प्रभावसे अब हमें किसी बातका डर नहीं है इसलिये वे अपने ब्रजके पहिले स्थानमें आ पहुँचे ॥ ४६१ ॥ इधर तीनों रत्नोंको सिद्ध करनेवालेको दूढ़नेके लिये जो लोग निकले थे उन्होंने तलाश कर कंससे जा निवेदन किया कि नंदगोपके पुत्रने ही ये तीनों काम एक साथ किये हैं । ऐसा निश्चय हो जाने पर कंसने शत्रुको जाननेकी इच्छासे नंदगोपको कहला भेजा कि नागराज जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा एक हजार दलवाला कमलका फूल लाकर दो ॥ ४६२-४६३ ॥ यह सुन कर नंदगोप शोकसे बहुत ही व्याकुल हुआ और कहने लगा कि राजा लोग प्रजाकी रक्षा करनेवाले होते हैं परंतु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि वे ही राजा लोग आज प्रजाको मारनेवाले बनगये हैं ॥ ४६४ ॥ इस तरह उदास होकर कृष्णसे कहने लगे कि मेरी तो यह दशा है अब सर्प जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा कमल तूही लाकर राजा कंसको दे । इसके उत्तरमें कृष्णने कहा कि यह क्या कठिन काम है मैं अभी ले आऊंगा यह कह कर वे महानागोंसे सुरक्षित सरोवर पर शीघ्र ही गये और निशंक होकर उसमें कूद पड़े । उन्हें आता हुआ देखकर यमराजके आकारका एक नागराज खड़ा होकर उन्हें निगलनेके लिये तैयार हुआ । उस समय वह नाग क्रोधसे कंप रहा था, अपने निश्वाससे उत्पन्न हुई दैदीप्यमान अग्निके कणाओंको फेंक रहा था मस्तक पर लगी हुई चूडामणि रत्नकी कांतिसे प्रकाशमान अपना फणा उठाये था और उससे वह बहुत ही भयंकर जान पड़ता था, उसकी दोनों जिह्वएँ चंचल हो रही थीं और प्रकाशमान नेत्रोंसे उसकी दृष्टि बड़ी ही उग्र हो रही थी । कृष्णने सोचा कि मैं इस फणाको अभी अपने कपड़े भोजे

नागनिवासरसस्तटे । विना कृष्णेन चासुखादानेन सरसं परैः ॥ ४५९ ॥ अवाक्यमिति गोपालकुमारोक्त्या महीपति । तमाहूय बल तत्र यथास्थानं  
स्वीकृतम् ॥ ४५० ॥ क्व गम्यते त्वया राज्ञि कृष्णेन भाषितः । स्वर्भानुर्गुरुरायानप्रयोजनमबुधत ॥ ४५१ ॥ श्रुत्वा तन्मन्त्रि-  
भैरवि । इति कृष्णपतिप्रदने वीक्ष्य पुण्याधिकं शिशु ॥ ४५२ ॥ न केवलोयमित्येहि शक्येति तस्य कर्मण । इत्यादाय स्वपुत्रं वा स्वर्भानुं तत्पुरीमगात् ॥  
४५३ ॥ कस्य यथा हेमालोक्य तत्कर्मकरकामं बहून् । भग्नमानाश्च सवीक्ष्य कृत्वा भानु भमीग ॥ ४५४ ॥ युगपत्त्रितयं कर्म समाप्तिमनयद्वरि । तत-  
स्वर्भानुनादिष्टो दिष्ट्या कृष्णो गमद्वज ॥ ४५५ ॥ तच्छ्रुत्वा भानुनेति कैश्चित्कसो निव्रोधितः । कैश्चित् भानुर्गुरुरायानप्रयोजनमनयति रक्षकैः ॥ ४५६ ॥ तच्छ्रुत्वा-  
न्विष्यतां सोम्यस्तस्मै कन्या प्रीयते । स कस्य किं कुल कस्मिन्नि राजाऽब्रवीदिदं ॥ ४५७ ॥ अवधार्य स्वपुत्रेण सम्यक्कर्मसमाधत्त । गोमडलेन भीत्वा-  
मा नदगोपं पलायितः ॥ ४५८ ॥ शैलस्तमं समुद्रं तत्र सर्वेऽन्यदा गता । नाशक्युर्वन् समेल्यते कृष्णेनेव समुद्रतः ॥ ४५९ ॥ प्रहृष्य सहसा तस्मा-

पणको बुलवाया और फिर कृष्णकी सहायतासे अच्छीतरह निवास किया ॥ ४४८-४४९ ॥ तदनंतर कृष्णने पूछा कि  
हे राजन् आप कहाँ जा रहे हैं । इसके उत्तरमें राजा स्वर्भानुने मथुरा जानेका सब प्रयोजन समझाया ॥ ४६० ॥  
यह सुनकर कृष्णने फिर पूछा कि क्या इस कामको हम सरीखे भी कर सकते हैं ? कृष्णने इसप्रकार कहकर पुत्रके समान उस  
उसे पुण्याधिकारी बालक समझकर कहा कि यदि इस कामको कर सकते हो तो चलो हमप्रकार कहकर पुत्रके समान उस  
बालकको साथ ले कर राजा स्वर्भानु मथुरा नगरीमें पहुँचे ॥ ४६१-४६३ ॥ स्वर्भानुने यथा योग्य रीतिसे कंसके  
दर्शन किये फिर वे तीनों रत्न सिद्ध करनेके लिये निकले । वहाँ पर अनेक सिद्ध करनेवालोंका भग्न होते देखकर  
कृष्णने स्वर्भानुके पुत्र भानुको पास ही खड़ा रख कर तीनों काम एक साथ कर डाले । तदनंतर राजा सुभानुने  
आँखके ईशारेसे आज्ञा दी आज्ञा पाते ही कृष्ण वहाँसे चलकर व्रजमें आगये ॥ ४४-५५ ॥ इसके बाद कितने ही  
लोगोंने कंसको जाकर यह समझा दिया कि ये तीनों रत्न भानुने सिद्ध किये हैं परंतु कितने ही रक्षक लोगोंने यही  
कहा कि भानुने नहीं किंतु किसी दूसरे कुमारने सिद्ध किये हैं ॥ ४५६ ॥ यह सुन कर राजा कंसने कहा कि उस  
कुमारको ढूँढो उसे मैं अपनी कन्या दूँगा वह किसका पुत्र है किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और कहाँका रहनेवाला  
है ॥ ४५७ ॥ पुत्रने यह काम तो अच्छा किया यही सोच कर नदगोप अपनी सब गायोंके साथ कृष्णको लेकर  
हर कर भाग गये ॥ ४५८ ॥ किसी दूसरे दिन बहुतसे लोग एक खंभ उखाड़नेको गये थे परंतु वे उखाड़ न सके  
इसलिये यह देख कर कृष्णने आकर वह खंभ उखाड़ दिया ॥ ४५९ ॥ उसे देखकर वे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए



झिल जगत् । क्षारातिवर्द्धनाभोजरात्रिसंकोचकारिणी ॥ ४३७ ॥ तत्पुरुषाणामहेतुभूतजनालयातिके । शक्रदिशेवतागारे हरे पुण्यातिरेकतः ॥ ४३८ ॥  
 सर्पशय्या धनु शंखो रत्नत्रितममुष्यौ । देवतारक्षिता लक्ष्मीं भाविनीमस्यमूचयत् ॥ ४३९ ॥ समयस्ताति दृष्ट्वाह्यद्वरणं मथुरापतिः । प्रादुर्भवेनमेतेषां  
 किं फलं कथयेति त ॥ ४४० ॥ राजधेताति शास्त्रोक्तविधिना साधयेत्स यः । राज्यं चक्रेण संरक्ष्यमाप्स्यनीत्यभ्यधादेसा ॥ ४४१ ॥ कंसस्तद्वचनं श्रुत्वा स-  
 तिसाधयिषुः स्वयं । ताम्यशक्तो मनाक् खिन्नो विरतः साधनोद्यमात् ॥ ४४२ ॥ अधिरुह्य नागशय्यां शलमेककरेण यः । पुरयिद्वयं यश्चाप चारोपयति  
 देहया ॥ ४४३ ॥ परेण तस्मै भूमतां स्वधुता दास्यतीति । परिज्ञातु साशक्तो घोषणां पुर्यंकारयत् ॥ ४४४ ॥ तद्वर्त्तनाश्रवणाद्विश्वमहीशाः सहस्रगमन् ।  
 तथा राजगृहत्कस्यैथुनो भानुसत्तिभं ॥ ४४५ ॥ स्वर्गैर्धुर्भुनामानं स्वसूनुं सर्वसंभवा । समादाय समागच्छन्निवेष्टुमभिलाषवान् ॥ ४४६ ॥ गोदावनमहा-  
 समयं जो जिनालय सबसे पहिले बनाया गया था उसके समीप जो पूर्वदिशाके अविष्ठाताके देवमंदिरमें कृष्णके पुण्य  
 कर्मके उदयसे मर्पशय्या ( नागशय्या ) धनुष और शंख ये तीन रत्न उत्पन्न हुए । उन तीनों रत्नोंकी देवलोग रक्षा  
 करते थे और वे तीनों ही रत्न कृष्णकी होनहार लक्ष्मीको सूचित करते थे ॥ ४३८-४३९ ॥ उन्हें देख कर मथुराका  
 राजा कंस कुछ डरने लगा और बरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछने लगा कि इनके प्रगट होनेका क्या फल है सो  
 कहो । इसके उत्तरमें वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जो कोई इन्हें सिद्ध करेगा  
 उसे चक्रके द्वाग सुरक्षित राज्य प्राप्त होगा ॥ ४४०-४४१ ॥ यह सुन कर कंस स्वयं उन्हें सिद्ध करनेकी इच्छा कर  
 ने लगा परंतु उन्हें सिद्ध कर न सका इसलिये कुछ खेद खिन्न होकर उस कामसे विरक्त हुआ उसने सिद्ध करना  
 छोड़ दिया ॥ ४४२ ॥ तब उसने संशुक्ति होकर सिद्ध करनेवालेको जाननेके लिये नगरमें यह घोषणा करादी कि  
 जो कोई अन्य मनुष्य इस नागशय्या पर चढ़ कर एक हाथसे इस शंखको पूरेगा ( बजावेगा ) और फिर लीलामात्रमें  
 ही इस धनुषको चढ़ा लेगा उसे राजा कंस अपनी पुत्री देगा ॥ ४४३-४४४ ॥ यह समाचार सुन कर संपारके सब  
 राजा लोग बड़ी शीघ्रतासे आए तथा राजगृह नगरसे कंसका साला स्वर्भानु सूर्यके समान अपने भानु नामके  
 सहित बड़ी विभूति लेकर मथुरा जाने के लिये आया उसने गोदावनमें महानागोंके निवास स्थान-  
 को देखते ही सरोवरके किनारे डेरा दिये लोग जब सरोवरमेंसे जल लेने लगे और वहाँके सूर्य काटनेको  
 दाँडे तब उन्होंने गोपाल कुमारोंसे पूछा कि इसमेंसे जल किस तरह लेना चाहिये । इसके उत्तरमें  
 गोपाल कुमारोंने कहा कि कृष्णके बिना इसमेंसे और कोई जल नहीं ले सकता । यह सुनकर राजा स्वर्भानुने क-

माफलचेष्टितात् । पुत्रैवमाश्रित लेखांतरसंपादकादिति ॥ ४२६ ॥ भूयो विचारयामास तवात्येतन्मशेषधुरा । सोन्वतिअत्रिवार्यते नावदाने महोजसः ॥ ४२७ ॥ श्रुत्वा तत्सौख्यं ह्यात जनजल्यै समुत्सर्का । गोमुखीनामेषेयोपवासव्याजमुगागतौ ॥ ४२८ ॥ देवकी बहुदेव्य विभूला सह सौरिणा । व्रत गोदावन यांतां परिवारपरिकृतां ॥ ४२९ ॥ ततः कृष्णं समालव्य स्थितवत महाबलं । दर्पिणीं वृणुमेशस्य ग्रीवा भक्त्या तदैव तौ ॥ ४३० ॥ विलोक्य गन्धमात्यादिमाननानतरं पुनः प्रीला भूपयतः स्नातः कुर्वेला द्राक् प्रदक्षिण ॥ ४३१ ॥ देवक्याः स्तनयो शातकुम्भकुर्मामयोः पयः । निर्गलन्य पतन्मूर्ध्ने कृष्णस्येवामिषेचन ॥ ४३२ ॥ वीरपाणिस्तदन्वीक्ष्य मन्त्रमेदमयान्वित । उमवासपरिश्रान्ता मूर्छितेत्यवदस्युवीः ॥ ४३३ ॥ कुम्भपूर्णं भोभिस्तामभ्यर्चिचत् समतत । ततो ब्रजार्द्रिपादानामपि तयोभ्यपूजन ॥ ४३४ ॥ कृत्वा कृष्णं च गोपालकुमारैर्जातसंमदै । भोजयित्वा स्वयं चात्र भुङ्क्ता स्तामभ्यर्चिचत् समतत । ततो ब्रजार्द्रिपादानामपि तयोभ्यपूजन ॥ ४३५ ॥ स कदम्बिन्महावर्षागते गोवर्द्धनाढ्य । हरिः पर्वतमुत्पुल्य चकार वरण गवा ॥ ४३६ ॥ तेन उद्योस्तेन तत्कीर्तिर्वाप्नोति स्म पुरमविशतां ॥ ४३७ ॥

उस कामको वे अवश्य करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महा प्रतापी लोग किये दूधे कामोंसे कभी नहीं रोके जा सकते ॥ ४२५-४२७ ॥ इस प्रकार लोगोंके मुखसे देवकी और वसुदेवने भी कृष्णका पौख सुना तब उन्हें कृष्णके देखनेकी इच्छा हुई और वे दोनों बलभद्र तथा सब यरिवारके साथ साथ गोमुखी नामके उपवासके बहानेसे बड़ी विभूति लेकर गोदावनमें आए ॥ ४२८-४२९ ॥ आते ही उन्होंने कृष्णको देखा उस समय कृष्ण एक बड़े भारी बलवान और उन्मत्त बलकी गर्दन पकड़ कर लटक रहे थे और उन्होंने उस बलकी गर्दन तोड़ दी थी । ऐसे कृष्णको देख कर देवकीने पहिले तो गव माला आदिसे उनकी मानता की, बड़े प्रेमसे आभूषण पहिनाए और फिर प्रदक्षिणा दी । उसी समय देवकीके सुवर्णके कलशोंके समान दोनों स्तनोंसे दूध निकलने लगा और अभिवेक करनेके समान कृष्णके मस्तक पर पड़ने लगा ॥ ४३०-४३२ ॥ बलभद्र उसे देख कर सोचने लगे कि इस तरह भेद खुलनेका डर है यही सोच कर वे बुद्धिमान् कहने लगे कि उपवास करनेके खेदसे यह मूर्छित हो गई है ॥ ४३३ ॥ तदनंतर बल से भरे हुए कलशोंसे सब ओरसे कृष्णका अभिवेक किया फिर कृष्णके सब लोगोंका यथायोग्य आदर सत्कार किया, बड़ी प्रसन्नतासे गोपालकुमारोंके साथ कृष्णको भोजन कराया, आप भोजन किया और फिर वे सब अपने मथुरा नगरको चले गये ॥ ४३४-४३५ ॥ किसी एक दिन व्रजमें पानी बहुत बरसा तब कृष्णने गोवर्द्धन नामका पर्वत उठा कर उसके नीचे गार्योंकी रक्षा की ॥ ४३६ ॥ इस कामसे चांदनीके समान कृष्णकी कीर्ति सब संसारमें फैल गई और वह शत्रुओंके मुखरूपी कमलोंके समूहको संकुचित करने लगी ॥ ४३७ ॥ किसी एक दिन मथुरा नगर बसनेके

नोपायेन ब्रह्माग्रणीः । तद्ब्रह्मालोचनोपाका काव्यस्वात्मस्य देवता ॥ ४१५ ॥ इतनयोर्वैलक्षरीर्द्धा तस्यानलभये भवन्नाह । आरकायतः साङ्ख्य तत्त्वार्थो नो-  
 द्रुमक्षमा ॥ ४१६ ॥ शकटाकारास्त्राद्य पुनरन्यपि देवता । बालस्योपरिधापंती पादभङ्गां तेन सां हता ॥ ४१७ ॥ अन्येयुर्नंदगोपस्य वध्वा कञ्च मु-  
 खं । अगच्छत्तुल्यमानेन मन्वगच्छत्तुल्यव्यसा ॥ ४१८ ॥ परिसीदयितुं बाल तदा ककुभपादयो । भूत्वा श्रितो क्षुरीमेधै सम्प्रादुर्गगटयत् ॥ ४१९ ॥  
 तच्चक्रमवेसायां तालद्वयं हृत्तिमिधता । एका फलानि तन्मूर्द्धं प्रपानयितुमुपाया ॥ ४२० ॥ राक्षसीरूपमापन्नं न दण्डपरागता । अरणे राक्षसीं विष्णुर्-  
 ह्नीत्वा दन्तं स तं ह्रम ॥ ४२१ ॥ अन्येयुर्देवकन्यापि विह्वल्य बुरगकृति । तं हतुं प्रस्थिता तस्यापापकृत् वदनं दत्ता ॥ ४२२ ॥ आहतुं न समर्थः स  
 इत्युक्त्वा समं देवताः । कसाभ्यासं समागत्य विलीना इव विद्युतः ॥ ४२३ ॥ शक्रो देवतानां न निस्साराः पुण्यवज्जने । आयुयानामिदं द्राव्यं पर-  
 स्मिन् दृष्टकर्मणां ॥ ४२४ ॥ अरिष्टाख्यं क्षुरोन्नेयुर्विक्रिप्तं तत्पराक्रम । आयातकृष्णं दृगकारस्तद्वृषीवाम्बुनोचन ॥ ४२५ ॥ तस्य मातामिनोर्जन विद-  
 द्वासीतरह दूसरी देवी गाडीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर आई परंतु कृष्णने वह लात मारकर तोड़ दी ॥ ४२७ ॥  
 किसी दूसरे दिन नंदगोपकी स्त्री कृष्णकी कमर एक ऊखलसे बांधकर स्वयं जल लेनेके लिये गई परंतु कृष्ण फिर  
 भी उसे तोड़कर उसके पीछे २ गये ॥ ४२८ ॥ उसी समय बालकको पीडा देनेके लिये देा देवियोंने आकाशमें उड़ने  
 वाले दो वृक्षोंका रूप बनाया परंतु कृष्णने उन दोनों वृक्षोंको जड़से ही उखाड़कर फेंक दिया ॥ ४२९ ॥ उन वृक्षोंके  
 फेकते समय एक देवीने तो तालका रूप बना लिया और दूसरी फल बनकर कृष्णके मस्तकपर पड़नेके लिये तैयार  
 हुई ॥ ४३० ॥ तीसरी देवीने गधीका रूप बनाया और कृष्णको काटनेके लिये आई परंतु कृष्णने उस गधीके दोनों  
 पैरोंपर उन दोनों वृक्षोंको दे पट्टा ॥ ४३१ ॥ किसी दूसरे दिन एक देवी घीडेका रूप बनाकर कृष्णको मारनेके लिये  
 आई परंतु कृष्णने क्रोधमें आकर उसका मुँह खूब ही ठोका ॥ ४३२ ॥ अंतमें वे सातों देवियां कंसके पास गईं और  
 हम उसे मार नहीं सकतीं ऐसा कहकर विजलीके समान अदृश्य हो गईं ॥ ४३३ ॥ जिस प्रकार दूसरी जगह अपना काम  
 दिखावेवाले शस्त्र वज्र नामके इद्रके शस्त्रपर निष्फल हो जाते हैं उसी प्रकार पुण्यवान लोगोंपर देवों की शक्तियां  
 भी निस्सार हो जाती हैं ॥ ४३४ ॥ किसी दूसरे दिन अरिष्ट नामका एक देव कृष्ण का पराक्रम देखनेके लिये  
 वैलका रूप धारणकर आया परंतु कृष्ण उसकी गर्दन तोड़नेके लिये ही तैयार हो गये यह देखकर माताने  
 ललकार कर उस वैलको छुड़ाया तब कहीं वे उस चेष्टा रहित बेलमें अलग हुए । इस तरह वह यक्षोदा ऐसे २ अनेक  
 बड़ेय उत्पन्न करनेवाले कायोंसे कृष्णको निवारण करने लगी परंतु कृष्ण भदोन्मेष थे जिस कामको वह रोकती थी

स्वप्रियायै श्रिय पति । कसोपि देवकी कृत्स्नवदपत्यममूयत ॥ ४०४ ॥ इति श्रुत्वा समागत्य तां व्यथाभ्रमनासिकां । भुमिगेहे प्रयत्नेन मात्रा सारवमिव-  
 र्द्विता ॥ ४०५ ॥ सा सुव्रतार्थिकाभ्यर्गो शोकात्स्वविकृतांकुतेः । गृहीतवीर्या विध्याद्रौ स्थानयोगमुपाश्रिता ॥ ४०६ ॥ देवतेति समभ्यर्च्य गतेषु वनदति-  
 बु । व्याघ्रेण भक्षिता मधु स्वर्गलोकमुपागमत् ॥ ४०७ ॥ अपरस्मिन्दिने व्याघ्रैर्दृष्ट्वा हस्तांगुलित्रय । तस्या क्षीरागरागादिजित देशवासिन ॥ ४०८ ॥  
 मुहुःस्नानः स्वय चैतदाद्यौतौ विध्यवासिनी । देवतेति समभ्यर्च्य तदारभ्या प्रमाणयन् ॥ ४०९ ॥ अथाकस्मात्सुरे तस्मिन्महोत्पाता विजृम्भिताः । वरु-  
 णाह्वय निमित्तिन्न द्राक्षन् परिपृष्टवान् ॥ ४१० ॥ किमेतेषा फल ब्रूहि यथार्थमिति सोब्रवीत् । तब शत्रु समुत्पन्नमन्विष्याहृत पापिन । इत्यसौ प्रेषया  
 द्वाकार्ये महीनाय वितयत चिरंतनाः । देवतास्तमवोचस्ता किं कतव्यमिति श्रिताः ॥ ४१२ ॥ शत्रु मम समुत्पन्नमन्विष्याहृत पापिन । इत्यसौ प्रेषया  
 मास ताः सप्तपि तथात्त्विति ॥ ४१३ ॥ आगमत्पूजना तासु बाधुदेव विमग्नः । विज्ञायादाय तन्मातृरूप ह्युमुरागता ॥ ४१४ ॥ विषस्तनपय पाय-  
 नीचे जलघरमें बड़े प्रयत्नसे घायके द्वारा उसे बड़ा किया ॥ ४०९ ॥ बड़ी होनेपर अपना विकृत शरीर देखकर  
 शोकसे उसने सुन्नता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण काली और फिर वह विंध्याचल पर्वतपर एक जमाह रहने  
 लगी ॥ ४०६ बनमें रहनेवाली दासियां उसे देवता ममझकर पूजने लगीं । किसी एक दिन वह किसी बाघने खाली  
 इसलिये वह तो मरकर स्वर्ग चली गई परंतु दूसरे ही दिन वहाँके मीलोंने उसकी केवल तीन उंगलियां देखी इसलिये  
 वहाँके रहनेवाले मूर्ख लोगोंने दूध शरीरका उबटन आदिसे उसकी पूजा की । उसी समयसे लेकर वे लोग विंध्यावा-  
 सिनी देवीके नामसे उसे पूजने और मानने लगे ॥ ४०७-४०९ ॥ अथानंतर—इधर मथुरा नगरमें अहमत् बहूतसे  
 उत्पात होने लगे तब कंसने वरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछा कि इनका फल क्या है सो यथार्थ कहो तब वह निमि-  
 त्तज्ञानी कहने लगा कि तेरा बड़ा भारी शत्रु उत्पन्न होचुका है ॥ ४१०-४११ ॥ इस बातको सुनकर कंसकी बड़ी  
 चिंता हुई तब पहिले जन्मके देवताओंने आकर कहा कि हे स्वामी कहिये हमारे लिये क्या काम है ॥ ४१२ ॥ तब  
 कंसने कहा कि मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है उस पापीको दूढ़कर तुम मार आओ । इस तरह उसने उन सातों देवताओं  
 को भेजा । अच्छा कहकर वे देवता भी गये । उनमेंसे पूतना नामकी देवीने विभगावधिसे बासुदेवको जान लिया ।  
 उस दुष्टिनीने माताका रूप धारणकर और स्तनोंमें विष मिलाकर उन विष भरे स्तनोंको पिलाकर कृष्णको मारनेका  
 विचार किया इसतरह वह बालकको पालन पोषण करने लगी परंतु बालक कृष्णके दूध पीते समय किसी दूसरी दे-  
 वीने आकर उन कृष्णोंको ऐसी पीटा पहुचाई जिसे वह सह न सकी और भागकर अपने घर गई ॥ ४१३-४१६ ॥

राक्षस्यैष वचास्वानधिराश्वोचिप्यसि । दृणीमुपविशेत्पुत्रो बलेन मधुराविपः ॥ ४९५ ॥ तत्रास्ति तमासीमिः प्रतोपादभ्यनंदयत् । तौ च तस्मादि-  
निर्गस्य यमुनां प्रापदुर्निधिः ॥ ३९६ ॥ भाविचक्रिप्रभावेन दत्तमार्गद्विधाभवत् । सा सवर्गीश्रित कोबा नार्शत्मा वधुतां ब्रजेत् ॥ ३९७ ॥ सविस्सयो मि-  
सर्धैर्नां मच्छतां नदगोपति । उष्यत्य बालिकां यजेनागच्छतमदर्शतां ॥ ३९८ ॥ दृष्ट्वा ताभ्यां कुनोभ्र रात्रा बागमन तत्र । नि मखस्येति संष्टु सप्रव-  
म्याभ्यभाबत् ॥ ३९९ ॥ मत्पिया पुत्रलाभार्थं भवतोः परिचारिका । गंधादिभिः समन्वय्य श्रद्धानादभूतदेवताः ॥ ४०० ॥ आशास्य स्त्रीस्ववद्रात्रावशा-  
पत्यमवाप्य सा । सशोका दीयतामेतन्नाभ्य एवेति साव्रवीत् ॥ ४०१ ॥ तदर्पयितुमायासो ममायं स्वामिनिविति । तद्वच सम्यगाकर्ण्य सिद्धमश्मश्रयोजम ॥  
४०२ ॥ इति संतुष्य तत्सर्वमवबोध्य प्रवृत्तक । तदपत्य समादाय दृष्ट्वा तस्मै स्वगमक ॥ ४०३ ॥ भाविचक्रपरं विद्धि बलमिस्समिवाय च । अनन्यविदि-  
तां गृहं तां तदद्विधाता दुरं ॥ ४०४ ॥ नदगोपोपि त बलमादाय गृहमागतः । तुभ्य सुत महापुण्य प्रसन्ना देवता ददुः ॥ ४०५ ॥ इत्युदीर्यपयामास  
हुवे ॥ ३९६ ॥ होनहार चक्रवर्तीके प्रभावेसे यमुनाने मी मार्गं दे दिया सो ठीक ही है क्योंकि समान वर्णवालेको  
देखकर ( यमुना मी काली है और कृष्ण मी काले थे ) किसके हृदयमें करुणा नहीं आती और कौन भाईचारा  
नहीं करता ॥ ३९७ ॥ उन दोनोंने आश्चर्यके साथ यमुना नदी पार की और फिर आगे चलकर बड़े यत्नसे एक बा-  
लिकाको गोदीमें लेकर आते हुये नंदगोपालको देखा ॥ ३९८ ॥ नंदगोपालको देखते ही उन दोनोंने पूछा कि हे  
भद्र आप गात्रिमें ही अकेले क्यों आ रहे हैं । इसके उत्तरमें नमस्कारकर नंदगोपाल कहने लगा कि आपकी सेवा करने-  
वाले मेरी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये एक भूत देवताकी बड़ी श्रद्धासे गंध आदि द्रव्योंके द्वारा पूजा की थी ॥ ३९९-  
४०० ॥ उस देवीने आश्वासन देकर आज रातमें ही एक कन्या लाकर दी और कहा कि इस कन्याको शोकके साथ  
उन्हें ( आपको ) दे आना ॥ ४०१ ॥ हे स्वामी उसी कन्याको रातमें ही आपके यहाँ पहुंचानेके लिये मैं जा रहा हूं ।  
नंदगोपकी ये बातें सुनकर वे दोनों पिता पुत्र संतुष्ट हुए और सोचने लगे कि हमारा काम बन गया । तदनंतर उन  
दोनोंने नंदगोपालसे सब समाचार कहे उसकी पुत्रीको लेकर अपना पुत्र दे दिया और समझा दिया कि यह बालक  
होनहार चक्रवर्ती है । इसके बाद वे दोनों पिता पुत्र छिपकर बिना किसीको मालूम हुए मधुग नगरमें आये ॥  
४०३-४०४ ॥ नंदगोप मी उस बालकको लेकर अपने घर गया और स्त्रीसे कहने लगा कि उस देवताने प्रसन्न हो-  
कर तुझे बच्चा ही पुण्यवान् पुत्र दिया है । इसतरह कहकर अपनी स्त्रीको कृष्ण सोंप दिये । इधर कंसने सुना कि देव-  
कीके पुत्री हुई है । सुनते ही वह तुरंत दीहा आया आकर पहिले तो उसकी नाक काट डाली और फिर पृथ्वीके

त ॥ ३८३ ॥ देवकी च मुदा पथात्रि हृत्वा सक्ती यमान् । चरमांगानिमान् ज्ञानवता शक्रेण चोदितः ॥ ३८४ ॥ दिविजो नैगमर्षश्चो भद्रिलाख्यपुरे-  
का । वगिरुसुताया निक्षिप्य पुरस्तात्सुतान् स्तान् ॥ ३८५ ॥ तदा तदैव संभूतं गृहीत्वा त्रिमितानिमान् । तान् पुरस्तात्त्रिचक्षेप देवक्या गृहकृत्यवि-  
त् ॥ ३८६ ॥ यमान् सोपि गतप्राणान् क्रमात्कसं समीक्ष्य तान् । किमेसिमें गतप्राणैरभ्युत्तिसलवाक् ॥ ३८७ ॥ इति भवति साशंक शिलापे न्यपात-  
वर्दयिष्याव इति नदविशारदौ । पिता भ्राता च तद्देवकीं विहाय ततो बलः ॥ ३९० ॥ कसानवगमेनैव नंदगोपगृहे सुख ॥ ३८९ ॥ बालक  
नैमिषीपिका-॥ ३९१ ॥ निगस्तस्मिरादोवो वृषभोऽभूत्तदगूत । तथा विकृतिमापन्नो तत्पुण्यामुद्वेगता ॥ ३९२ ॥ सयस्तदाप्य बालस्य चरणस्योसंगमा-  
त् । उद्व्यादितकपाट तद्वशं पुरोपुरं ॥ ३९३ ॥ उग्रसेनस्तदलोक्ष्य बध्नस्य समव्रीत् । कवाटोदघ्न टनं क्रोत्र करोतीत्यतिसध्रमात् ॥ ३९४ ॥ त-  
उसके उत्पन्न हुए मरे पुत्रोंको लाकर देवकीके आगे डाल दिया ॥ ३८४-३८६ ॥ कंसने उन सब मरे पुत्रोंको  
देखकर सोचा कि इन मरे हुए पुत्रोंसे मेरी क्या हानि हो सकती है अथवा मुनि के वचन मिथ्या भी हो सकते हैं ।  
ऐसा समझकर भी उसे शंका बही रही और उसने उन मरे हुए वच्चोंको भी शिलापर पटावाया । इसके बाद नि-  
नीमक नामके मुनिका जीव महाशुक्रसे च्युत होकर देवकीके गर्भमें आया और उस देवकीने अपने ही घर सातवें म-  
हीनेमें उस पुत्रको उत्पन्न किया । पुत्र होते ही वसुदेव और बलभद्रने विचार किया कि कंसको विना जताये इस  
पुत्रको नंदगोपके घर पहुंचा देना चाहिये और वहींपर इसका सुखपूर्वक पालन पोषण कराना चाहिये । चतुर पिता  
और भाईने ( वसुदेव बलभद्रने ) यही बात देवकीको समझाई । तदनंतर बलभद्रने उस पुत्रको उठा लिया और पिता  
वसुदेवने उसपर छत्र लगाया । रात अंधेरी थी इसलिये कृष्णके पुण्य कर्मके उदयसे नगरके देवताने बैलका रूप धा-  
रण किया उसने अपने दोनों सींगोंपर दो दीदीपमान मणियां लगाई और इसतरह सब अंधेरेको दूर करता हुआ  
वह उन दोनोंके आगे २ चला ॥ ३८७-३९० ॥ उसीसमय उस बालकके चरणोंका स्पर्श होते ही नगरके बड़े दर-  
वाजेके किवाड खुल गये ॥ ३९३ ॥ रात्रिमें किवाड खुलते हुये देखकर बंधनमें पड़े हुए राजा उग्रसेनने बड़े आश्चर्यसे  
कहा कि इससमय किवाड किसने खोले ॥ ३९४ ॥ यह बात सुनकर बलभद्रने उग्रसेनसे कहा कि आप जूय चाप  
बैठे रहिये । यह किवाड खोलनेवाला इस बंधनसे आपको शीघ्र ही छुड़ावेगा ॥ ३९५ ॥ यह सुनते ही उग्रसेनको बड़ा  
संतोष हुआ और आशीर्वाद देकर उसे बहाया । फिर वहांसे चलकर वे दोनों पिता पुत्र रातमें ही यहना नदीपर प-

शुभिमित ॥ ३७२ ॥ सुतोयास्व भर्तार आद्यवदयं हृदिष्यति । इत्यवोचत्ततः कुरा सा तद्वत् द्विषा व्यधात् ॥ ३७३ ॥ नमिसेव न त्रैलोक्येन पितरं व  
हृदिष्यति । इत्युक्ता सा पुनः कुरा पादभ्यां तद्वद्व्यदेदयत् ॥ ३७४ ॥ तद्विलोक्य मुनिर्देवकीभुतः सगराबधि । पाठयिष्यति भूतारी नारी वेलप्रवीण-  
तां ॥ ३७५ ॥ जीवन्मृत्युं तत्सर्वमवधार्य बभूव । गत्वा बुद्धिमती कसं भिषस्त तदवोचयत् ॥ ३७६ ॥ हातेनापि मुनिप्रोक्तमवध्यमिति मीतिमान् ।  
बभूवैवमहीना स कुराभेदमयान्त ॥ ३७७ ॥ प्रसूतिसमयेवाप्य देवकी मद्गुहांतरं । प्रसूतिविधिपर्याप्त विदग्धास्वन्मृतादिति ॥ ३७८ ॥ सोपि तेनोप-  
रुद्धः संस्तथास्त्वेतदमस्तस । अवश्य आचिन्तयेषु मुख्याणि मुनीश्वर- ॥ ३७९ ॥ मिश्रार्थं देवकीगेहं स पुनश्च प्रविष्टवान् । प्रत्युत्थाय यथोक्तं विधिना  
प्रतिश्रुत्वा त ॥ ३८० ॥ देवकी वसुदेवश्च वीक्षन् स्यामवाच्योः । किमिति छमता भूतो ज्ञात्वा सोपि तदिगित ॥ ३८१ ॥ सप्त पुत्रा समाप्यंते भवद्भ्यां  
तेषु षट् भुताः । परस्मानेषु वदिंवा ग्रास्यंति परमा गतिं ॥ ३८२ ॥ सप्तमः सकला पृथ्वीं स्वच्छन्द्यायया चिरं । पाठयिष्यति निर्वाप्य चक्रवर्तिल्याम्ब-  
प्रकारं करते हुए देखकर मुनिने फिर कहा कि वह देवकीका पुत्र सती स्त्री के समान समुद्रपर्यंत सब पृथ्वीका पालन  
करेगा ॥ ३७५ ॥ जीवद्यशा इन सब बातोंका विचार कर दुखी हुई और उस बुद्धिप्रतीने शीघ्रही जाकर-सब बातें  
कंसको समझा दीं ॥ ३७६ ॥ कंस ये सब बातें सुनकर डरा क्योंकि उसने समझ लिया कि मुनियोंके हसीमें कहे हुए  
बचन भी कभी मिथ्या नहीं होते हैं तब उसने राजा वसुदेवसे बड़े प्रेमसे यह याचना की कि आपकी आज्ञानुसार  
देवकी प्रसूतिके समय मेरे ही घरमें प्रसूतिकी सब विधि पूर्णकरे ॥ ३७७-३७८ ॥ वसुदेवने भी मुलाहिजेमें आकर  
कंसकी सब बात मान ली तो ठीक ही है क्योंकि अवश्य ही होनहार कार्योंमें मुनीश्वर लोग भी मोहित हो जाते हैं  
॥ ३७९ ॥ किसी दूसरे दिन वे ही अतिमुक्त मुनि आहारके लिये देवकीके घर गये । देवकीने उठकर विधिपूर्वक  
उनका पङ्कगहन किया आहार देनेके बाद देवकी और वसुदेव दोनोंने पूछा कि हम दोनों दीक्षा धारण करेंगे या  
नहीं । मुनिराजने उन दोनोंके इशारे समझ लिये और कहा कि तुम दोनों इस तरहके बहाने अथवा कपटसे क्यों पूछते  
हो । तुम्हारे सब सात पुत्र होंगे उनमेंसे छह पुत्र तो दूसरी जगह पाले जायेंगे और अंतमें मुक्त होंगे और सातवां  
पुत्र चक्रवर्ती होकर अपनी छत्रछायासे बहुत दिन तक इस सब पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३८०-३८३ ॥  
यह सुन देवकी बहुत प्रसन्न हुई । पीछे देवकीने तीनवारमें दो दो चरमशरीरी पुत्र उत्पन्न किये । जब  
जब इसके ये पुत्र हुए उसी समय ज्ञानी इंद्रकी प्रेरणासे देवकीके गूढ कार्योंको जाननेवाले नेगमर्षनामके  
देवने वे सब पुत्र उठाकर भद्रिलनगरमें अलका नामकी वैश्यपुत्रीके आगे ढाल दिये और उसीसमय



भागतः वंसं रूपामधिष्ठायामर्मकः । जले कलिदेवन्त्याया मयादायाभिवाहितः ॥ ३६३ ॥ वंसनाम्ना समाहृतस्तएव परोद्भवैः । निसर्गौर्वायद्विष्टः शौ-  
भावेति निरर्गलः ॥ ३६४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मंजुयातस्थपत्रक । गृहीत्वा नाचयित्वा वैष्णवेणसेनमहीपतेः ॥ ३६५ ॥ पद्मावत्याश्च पुत्रोयमिति ज्ञात्वा मही-  
पतिः । विततार सुतां तस्मै राज्यादं न प्रतुष्टवान् ॥ ३६६ ॥ वसोयुत्यस्तिमात्रेण स्वस्य नद्यां विसर्जनात् । प्रवृद्धपूर्ववर सन् कुपितो मथुरापुरी ॥  
३६७ ॥ स्वयमादाय वयस्यां गोपुरे पितरौ व्यधात् । विचारविकलाः पापा- कोपिताः किं न कुर्वते ॥ ३६८ ॥ अयं स्वपुरमातीय बहुदेवमहीपति । दे-  
वसेनसुतामस्मै देवकीमनुजां निजां ॥ ३६९ ॥ विभूतिमद्वितीयैवं काले कसस्य गच्छति । अन्येयुरतिमुक्ताख्यमुनिमिशार्यमागमत् ॥ ३७० ॥ राजगेह  
समीर्धन हासार्ज्यव्यथा मुदा । देवकी पुण्यजानदवंकमेतत्तवानुजा ॥ ३७१ ॥ स्वस्याश्रितमेतेन प्रकाशयति ते मुने । इत्येवोचत्तत्कारण्यं सकोपः सोपि  
मैने लेकर इसे बड़ा किया है ॥ ३६२-३६३ ॥ यह कंसोकी संतुर्कमें आया था इसीलिये इसका नाम कंस रक्खा है ।  
बात सुनकर राजा जरासबने उस संतुर्कमेंसे पत्र लेकर बांचा और निश्चय किया कि यह कंस राजा उग्रसेन रानी  
पद्मावतीका पुत्र है । इसलिये संतुष्ट होकर उसने उस कंसको आधा राज्य और अपनी कन्या देदी ॥ ३६४ ॥ मंदोदरीकी यह  
उसी समय कंसके पूर्वभवका वर प्रगट हुआ उसने सोचा कि मेरे माता पिताने मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ दिया था  
इसलिये वह उसी समय मथुरापुरीको गया और माता पिताको पकड़ कर बांधकर नगरके बड़े दरवाजे पर रख  
दिया सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधित हुए विचाररहित पापी लोग क्या क्या नहीं करते हैं ॥ ३६७-३६८ ॥ तदनं-  
तर कंस राजा वसुदेवको भी अपने नगरमें ले आयां और बड़ी विभूतिके साथ राजा देवसेनकी पुत्री अपनी छोटी  
बहिन देवकी उन्हें ब्याह दी । इस प्रकार कंसका समय व्यतीत होने लगा । किसी दूसरे दिन अतिमुक्त नामके मुनि  
आहारके लिये राजभवनमें ही आए उन्हें देखकर जीवधशा मसन्न होकर हंसीसे कहने लगी कि हे मुनि ! देखो ये  
देवकीके कामदेवके आनदवस्त्र हैं यह आपकी बहिन आपकी ही अपनी चेष्टा दिखला रही है । जीवधशाकी ये नाते  
मुन कर मुनिराजको क्रोध आया और उन्होंने अपनी वचनगुप्तिहा भग कर कहा कि आगे इसका ( देवकीका ) पुत्र  
यह देखकर मुनिराजने फिर कहा कि वह अकेले तेरे पतिको ही नहीं किंतु तेरे पिताको भी मारेगा यह सुनते ही  
जीवधशाको फिर क्रोध आया और वह उस वस्त्रको अपने पैरसे मर्दन करने लगी ॥ ३६९-३७४ ॥ जीवधशाको इस

रोभवत् ॥ ३५१ ॥ इतोन्मथकृत भूमे जरासंधमहीपतिः । निर्जिताशेषभूपादः कदाचित्कार्यशेषवान् ॥ ३५२ ॥ दुरन्त्यविषवातस्तपोदानाख्यपुरा-  
खिप । सिपु सिंहस्थ खिन्वा बलागुदे ममांसिक ॥ ३५३ ॥ बन्धा नीतवते देवस्यार्द्धे मापुत्रिकामपि । कलिदेवनासंभूतां सती जीवबशोमिषां ॥ ३५४ ॥  
द्रास्यामीत्यपि भूगालान्त्राहिणोत्पन्नमालिकां । वसुदेवकुमारस्तरणिरुष्ण प्रतापवान् ॥ ३५५ ॥ बाजिनः सिंहशृङ्ग भाग्यविला रज स तैः । बाणामाख्या  
समाप्ते जिह्वा सिंहस्थ पृथु ॥ ३५६ ॥ कसेन निजमृत्लेन बधयित्वा महीपते । स्वयं समर्पयामास सोपि दुष्ठा सुतां निजां ॥ ३५७ ॥ देवसादेन समं  
तस्मै प्रतिपत्तां प्रदत्तवान् । वसुदेवोपि तां दुष्टलक्षणा वीर्ययो मया ॥ ३५८ ॥ बद्धः सिंहस्थः कर्म कसेनानेन तद्वत् । कन्या प्रवीयतायस्मै भवत्येषका-  
रिणे ॥ ३५९ ॥ इत्याह तद्वच्च धुत्वा जरासंधनरेधरः । कुलं कसस्य विहातुं इतं मयोदरीं प्रति ॥ ३६० ॥ प्रेषयामास तं दुष्ठा किं तत्राप्यपराधवान् ।  
मसुत्र इति मीलसां समज्ज्वागमत् स्वयं ॥ ३६१ ॥ आगल्य द्रुपतेरग्रे मातास्थेयमिति क्षिति । निक्षिप्य कंसमश्रुणां प्रमिपत्यैवमब्रवीत् ॥ ३६२ ॥

तथा रात दिन उनकी सेवा करने लगा ॥ ३५१ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और है और वह इस तरह है कि  
राजा जरासंध ने सब राजा जीत लिये थे परंतु किसी एक समय उत्तका भी एक काम वाकी रह गया था उसे पूरा  
करनेके लिये उसने सब राजाओंके पास पत्र लिखकर भेजे कि सुरम्भ देशके अंतर्गत पोदनपुर नगरके राजा सिंहस्थ  
शत्रुको युद्धमें जवर्दस्ती जीतकर और बांधकर जो कोई मेरे पास लावेगा उसे आधा देश और कलिदेवनासे उत्पन्न  
हुई जीवबशा नामकी पुत्री दूंगा । यह समाचार पाकर प्रतापी वसुदेवकुमार ने सिंहका मूत्र मंगाकर घोड़ोंके शरीरपर लगवा-  
या और उन्हें रथमें जोतकर तथा उम रथपर सवार होकर युद्धके लिये निकला युद्धमें उस भारी राजा सिंहस्थको जी-  
तकर और अपने सेवक कंसके द्वारा उसे बंधवाकर अपने हाथसे राजा जरासंधको सोंप दिया । राजा जरासंध भी संतु-  
ष्ट होकर आधे देशके साथ साथ सामने खड़ी हुई अपनी पुत्री देने लगा । वसुदेवने देखा कि उस पुत्रीके लक्षण अच्छे  
नहीं है तब उन्होंने कहा कि राजा सिंहस्थको मैंने नहीं बांधा है किंतु यह काम कंसने किया है इसलिये इस मेजने  
वाले कंसको ही अपनी कन्या दीजिये । वसुदेवकी यह बात सुनकर राजा जरासंधने कंसका कुल जाननेके लिये मंदो-  
दरीके पास एक दूत भेजा मंदोदरीने दूतको देखकर सोचा कि मेरे पुत्रने वहां भी कुछ अपराध किया जान पड-  
ता है यही सोचकर और डरकर वह स्वयं संदूकको ले आई ॥ ३५२-३६१ ॥ मंदोदरीने आकर राजा जरासंध  
के सामने वह कांसिकी संदूक जमीनपर रखदी और कहा कि इस कसकी यही माता है । तदनंतर राजा को नम-  
स्कार कर कहने लगी कि इस कांसिकी संदूकमें रखला हुआ यह बालक यमुना नदीके प्रवाहमें आरहा था ।

मिदं राज्यं गृह्यामिति बुभुक्षति ॥ ४० ॥ एतदुत्पत्तिरिति मुनिः प्राप्य परां श्रुतिं । जातः पद्मावतीर्गर्भं भूरिश्वरानुसंभवतः ॥ ४१ ॥ सापि गर्भं भूकैर्कौ-  
न्मरीयुषुषुदयामिप । अथुदमिलपत्यात्ता तदुहात्वा मन्त्रिणस्तदा ॥ ३४२ ॥ प्रयोगविहितं भर्तृभ्यामिति दीहृद । स्वपुद्ग्या पूरयस्तस्या किञ्च कुञ्ति  
धीधनाः ॥ ३४३ ॥ निर्दोहदा क्रमेणस वलन्ध उतपातक । दष्टिष्ठ निष्ठुरालोकं कृतभ्रमंगमगम ॥ ३४४ ॥ दष्टा तं गितरौ नस्य नात्र विप्रभ्य पोषणे ।  
योगयोगमिति सस्त्य विधिं तस्य विसर्जने ॥ ३४५ ॥ मज्जुषया विनिक्षिप्य कंसमय्यां सवृत्तक । कंसं कलिदुःकन्याया प्रवाहे सुवतः स तौ ॥ ३४६ ॥  
अस्ति मदोदरी नाम कैशाव्या धाद्रुदरी । तथा प्रवाहे मज्जुषा मध्यस्थासौ व्यलोकत ॥ ३४७ ॥ अवीश्वत् गृहे त्वेनमिव सा स्वकुत हित । किं न कु-  
वंति पुष्पाणि हीनान्यपि तपस्विनां ॥ ३४८ ॥ अहोभि कैश्विदासाय लभनादिसदं वय । आकीडमानो निर्हेतुः सन् सकलबलकान् ॥ ३४९ ॥ चपेटा  
सुष्टिदबादिप्रहारैर्बाधते सदा । तददुराचारनिर्विण्णारयजन्मदोदरीं पुन ॥ ३५० ॥ सोपि क्षौर्यपुरं गत्वा बहुदेवमहीपते । प्रतिपद्य पदातिव तत्वेवातर-

णामोसे वह मुनि मरा और पहिलेके बैरके संवधसे उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आया ॥ ३४१ ॥ उस रानी  
पद्मावतीको भी उस गर्भके बालककी क्रूरतासे राजा उग्रसेनके हृदयका मांस खानेकी इच्छा हुई और उसीसे वह दुःखी  
होने लगी । यह ज्ञानकर मन्त्रियोंने अपनी बुद्धिसे कोई बनावटी चीज देकर और यह तुमारे पतिके हृदयका मांस है  
ऐसा कहकर उसका दोहद वा इच्छा पूरी की । सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग क्या नहीं करते हैं ॥ ३४२ -  
३४३ ॥ दोहद रहित उस रानी ने अनुक्रमसे उस पापी पुत्रको जन्म दिया । माता पिता उसे देखकर विचार करने लगे कि इसका पालन पो-  
षण करना योग्य नहीं है यही समझ कर उन्होंने उसे छोड़ देना उचित समझा कंसोकी एक अच्छी संदूक बनाकर  
और मन्त्र समाचार लिखकर उसमें उस बालक कंसको रखकर वह संदूक यमुना नदीके प्रवाह में वहां दी ॥ ३४४-३४६ ॥  
कैशावी नगरकी शूद्र स्त्री मदोदरीने पानीके प्रवाहमें बहती हुई वह संदूक देखी ॥ ३४७ ॥ उस पुत्रको  
घर लाकर अपने पुत्रके समान उसका पालन पोषण करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि तपस्वियोंके हीन पुत्रको  
क्या क्या काम नहीं करते हैं अर्थात् सभी करते हैं ॥ ३४८ ॥ कितने ही दिनोंमें वह आयु और सहारा पाकर अनेक  
बालकोंके साथ क्रीडा करने लगा परंतु वह विना ही कारणके थप्यड़ घुंसा दंडा आदिसे उन सब बालकोंको मारकर  
सदा दुख दिया करता था । उसके इस दुराचरणोंसे दुखी होकर मदोदरीने उस बालकको अपने घरसे निकाल दिया ॥  
३४९-३५० ॥ वहांसे चलकर वह कंस खरीपुर पहुंचा और राजा बहुदेवके समीप जाकर उनका पियादा बन गया

मिष्टमिष्टान्नं स्विताः ॥ ३२९ ॥ इष्ट्या ताः स कुनिः प्राह भवतीमिः प्रयोजनं । नास्त्यत्र गच्छताम्यस्मिन् यूयं जन्मनि ममिति ॥ ३३० ॥ कमेकैष  
 तपः कुर्वन्मागमन्मुग्धपुं । तत्र मासोपवासी सभाताप योगमाचरन् ॥ ३३१ ॥ अथान्ये बुद्धिलोकैक्येनमुग्रसेनमदीपति । भक्त्या मद्गेहपदायं मिसां गृ-  
 ह्णतु नाम्यत ॥ ३३२ ॥ अकार भोषणां पुर्यामिति सर्वनिवेदिनी । स्वपारणादिने सोपि मिसार्यं प्राक्सिद्धुरी ॥ ३३३ ॥ उदतिष्ठतर्वासी राजगेहे  
 निरीक्ष्य त । मुनीभरो निबर्त्त्याभिराहारस्तपोवनं ॥ ३३४ ॥ ततः पुनर्गते मासे दुमुधुः क्षीणदेहक । प्रविश्य नगरीं वीक्ष्य क्षोमेण यागहस्तिन ॥  
 ३३५ ॥ सद्यो निबर्त्ततेस्वात्मासमासाज्जाग्रतव्रत । मासांते पुनरन्येयुः शरीरस्थितियोगतः ॥ ३३६ ॥ राजगेहं जरासपमहीदूयहितपत्रक । समाकर्ण्य  
 महीपाले व्याकुलीकृतचेतसि ॥ ३३७ ॥ ततो निवर्त्तमानो नौ क्षीणगो जनजम्पित । न ददाति स्वयमिसां निषिध्यति परानिति ॥ ३३८ ॥ कोमि-  
 प्रायो महीसत्य न विदुमो वयमिलरः । शुल्का पापोदयात्कुक्ष्या निदानमकरोन्मुनिः ॥ ३३९ ॥ पुत्रोभूत्वाद्य भूषस्य बहुप्रतपसः कलात् । निगृह्येन-  
 तपश्चरण करता हुआ वह अनुक्रमसे मथुरापुरीमें आया और वहां पर एक महीनेके उपवास की प्रतिज्ञा कर आतापन  
 योग धारण कर विराजमान हुआ ॥ ३३१ ॥ किसी दूसरे दिन वहांका राजा उग्रसेन उसे देखकर भक्तिपूर्वक  
 सनमें सोचने लगा कि यह मुनि मेरे ही घरमें आहार ले दूसरी जगह न ले तो अच्छा ॥ ३३२ ॥  
 यही सोचकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि इन मुनिका पडगाहन कोई मत करना । इसके बाद  
 पारणाके दिन मुनिने नगरमें प्रवेश किया ॥ ३३३ ॥ दैवयोगसे उसी समय राजभवनमें आग लगी उसे देखकर वे  
 मुनि लौटकर निराहार ही तपोवनमें चले गये ॥ ३३४ ॥ एक महीनेका फिर उपवास कर अत्यंत क्षीण शरीरवाले उन  
 मुनिराजने पारणाके लिये फिर नगरमें प्रवेश किया परंतु उस दिन पट्ट हाथी विगड गया था इसलिये उसका शोभ  
 देखकर वे फिर लौट गये । उन्होंने फिर एक महीनेका उपवास किया और महीना बीत जानेपर पारणाके लिये वे  
 फिर नगरमें गये । दैवयोगसे उसदिन राजा जरामंत्र ने राजा उग्रसेनके लिये पत्र देकर कुछ समाचार भेजे थे उन्हें  
 सुनकर राजा उग्रसेनका चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा था ॥ ३३५-३३७ ॥ इसी कारण अत्यंत क्षीण शरीर सहित  
 मुनिराजको उस दिन मी लौटना पड़ा । उन्हें लौटते हुए देखकर लोग परस्पर कहने लगे कि राजा इन मुनिराजको न  
 तो स्वयं आहार देता है और न दूसरोंको देने देता है । इसमें राजाका क्या अभिप्राय है सो कुछ मी हमारी समझमें नहीं  
 आता । लोगोंकी ये बातें सुनकर और पापकर्मके उदयसे क्रोधित होकर उस दुर्बुद्धि मुनिने निदान किया कि मैं अप-  
 ने उग्र तपश्चरणके फलसे इसी राजाहा पुत्र होकर इसे मारकर इसका राज्य लूंगा ॥ ३३८-३४० ॥ ऐसे ही घुरे परि-

भार्यासी वीरस्य निर्मला । शरदाप्राप्य सस्कारं धृत्या पद्मोद्भवमहा ॥ ३२० ॥ इत्येतो दुष्टरिप्यंसी निक्षिप्रप्रतिपालकः । तन्प्रणयः कर्म गौरमसि  
सारं न लभते ॥ ३२१ ॥ इत शक्रुमन्यन्तु इनकं तर्णिगयते । गगनवायसीनयो संगमे मफलदुभे ॥ ३२२ ॥ तपसातामसूपनो नात्रा अवरकसिद्ध ।  
ममेति सकोध कुनी स्थित्वा तयो पुर । अगोच यस्तुमुशुक चोति हितमपिण ॥ ३२३ ॥ अज्ञानकृमिपुष्पनाकर्गदृच्छदमता ॥ ३२४ ॥ कुने  
सलमजटातृत्मीनकान् ॥ ३२६ ॥ दणमाने ग्नातथ्यसुखीद्विविजोदमान् । उदरैर तवाज्ञानमिति तं ममोवात् ॥ ३२७ ॥ कालकनिं तपाथित्य  
निक्षिप्रोपि निक्षिप्री । सीक्षित्वातयोगस्य गोमार्गं ततो व्यपात् ॥ ३२८ ॥ इतीते संगं च बहुते फले फूले वृक्षथे । वदरार तप-  
उसका प्रताप सूर्यके माररूप प्रतापको भी किस तरह उल्लंघन न करता ॥ ३२८ ॥ इसीसे संगं च बहुते फले फूले वृक्षथे । वदरार तप-  
कथा और है आगे वही कही जाती है । गंगा और गंधवती नदीके संगम पर बहुतसे फले फूले वृक्षथे । वदरार तप-  
तियोंका एक निवासस्थान था उसमें जठरकौशिक नामका तपसी यमका नायक था और पंचामि तपता हुआ  
वहां रहता था । ३२०-३२२ ॥ किसी एक दिन गुणभद्र और वीरभद्र नामके दो धारण मुनि वहां आए, उन्होंने  
उन तपसियोंको देख कर कहा कि ये सब अज्ञानपूर्वक तपश्चरण कर रहे हैं । पुनिराजके ऐसे वचन सुनकर वह नायक  
तपसी सूर्य उन दोनों पुनिराजोंके सामने खड़े होकर कांधसे कहने लगा कि आपने मेरी प्रसूता किम तरह नायक  
तब गुणभद्र मुनि कहनेके लिये तैयार हुए सो ठीक ही है क्योंकि सबजन लोग सदा हित रूप ही वचन कहते  
हैं ॥ २४-२५ ॥ ये कहने लगे कि जटाओंमें बहुतसे लीख और जूआं रहते हैं वे सब मरते ही हैं, दूसरे स्थान करते  
समय जटाकी चोटसे तथा शरीरकी रगडसे मछली आदि अनेक छोटे छोटे जीव मर जाते हैं और तीसरे पंचागिनके  
तपनेमें लकड़ीमें रहने वाले अनेक छोटे छोटे जीव मर जाते हैं । इन सब बातोंको देख कर कहना पड़ता है कि  
तुम्हारा यह सब अज्ञानतप है । इस तरह उन पुनिराजने उसे समझाया ॥ ३२६-३२७ ॥ काल लब्धिके प्राप्त होनेसे  
विशिष्ट बुद्धिवाला वह सबका नायक तपसी दीक्षा लेकर और आतापन योग धारण कर उपवास सहित तपश्चरण करने  
लगा ॥ ३२६ ॥ उसके तपश्चरणके साहाय्यसे सात अंतर देवता आए और सामने खड़े होकर कहने लगे कि हे मुनि-  
राज आपका जो इष्ट संदेशा हो वह कदिये हम करनेको तैयार हैं ॥ ३२९ ॥ उन्हें देख कर वह मुनि कहने लगा कि  
तुम्हारा यहां कुछ काम नहीं है तुम जाओ और दूसरे जन्ममें हमारी कुछ सहायता करना ॥ ३३० ॥ इस तरह

संहारे प्रक्षोभमुपगम्य तां मे ३१० ॥ 'बाहर्दुनयता सर्वं दृष्टीतान् दुष्टचेतसः । योद्धुं हिरण्यबन्धैर्मयि स स्ववपुः' समुच्यते ॥ ३११ ॥ वसुदेवकुमारोपि निजनामाक्षरार्तिनः । प्रविशाय' शरे सद्यः समुद्रविजयं प्रति ॥ ३१२ ॥ नामाक्षराणि तस्यासीं बाचयिष्या सविस्मयः । वसुदेवकुमारोत्र पुण्यासंभावितो मया ॥ ३१३ ॥ इति बुध्याभिवाद्यैर्दानं संधामः समुपागतान् । महाबुजः कनीयासमनुज जितयन्मय ॥ ३१४ ॥ समुद्रविजयाधीश वसुदेवः कृताञ्जलिः । प्रणम्य प्रीणयामास शेषानपि निजानुजान् ॥ ३१५ ॥ भूलेबाग कुमारेण तदा सर्वे निज द्यजाः । परिणीता पुरानीय समुद्रः समजीगमत् ॥ ३१६ ॥ कुमारेण सम गत्वा स्वपुरं विहितोत्सवः । दशार्हाः स्वेप्सितं सौख्यमन्यभूवसनारत ॥ ३१७ ॥ एवं काले प्रय होषा क्लृप्त्यैर्भोगैर्भोगैः । महाशुकारम मुत्तरीयं शस्त्राख्य प्राप्नो मुनि ॥ ३१८ ॥ रोहिण्या पुण्यभाक् पद्मनाभासी समजायत । प्रतोष बहुवर्गेषु बद्धयश्वबभौ बल ॥ ३१९ ॥ सप्रताप प्रमेवा-

ता है उसीप्रकार समुद्रविजय आदि अनेक राजा लोग अपनी मर्यादा छोड़कर क्षुब्ध होगये ॥ ३१० ॥ वे सब लोग कन्याको हर ले जानेके लिये तैयार होगये उनके दुष्ट चित्त देखकर हिरण्यवर्मा भी अपने सब भाइयोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ३११ ॥ उसीमय कुमार वसुदेवने समुद्रविजयके समीप अपना नाम सुना हुआ एक बाण भेजा ॥ ३१२ ॥ उस नामको बाँचकर समुद्रविजयको बड़ाही आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि पुण्यकर्मके उदयसे मुझे वसुदेव मिल गये ॥ ३१३ ॥ इसतरह उम युद्धमें आए हुए सब दुष्ट राजाओंको रोका और अपने सब छोटे भाइयोंके साथ कामदेवको भी जीतनेवाले कुमार वसुदेवसे मिलनेको चले ॥ ३१४ ॥ वसुदेवने समुद्रविजयको हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और फिर और भी बड़े भाइयोंको नमस्कारादि कर प्रसन्न किया ॥ ३१५ ॥ भूमि-गोचरी और विद्याधरोंकी जो कन्याएं कुमार वसुदेवने व्याहीं थी उनके माता पितासे उन्हें ले आए और इस तरह कुमारके साथ समुद्रविजय बड़े उत्सवके साथ अपने नगरमें पहुँचे सबलोग निरंतर इच्छानुसार दश तरहके भोगोंका अनुभव करने लगे ॥ ३१६-३१७ ॥ इस प्रकार उन सब लोगोंका समय बड़े सुखसे व्यतीत हो रहा था । उधर शंख नामके मुनिराज तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुए थे वहाँ पर कभी न नाश होनेवाले भोगोंका अनुभव कर तथा वहाँसे च्युत होकर रोहिणी रानीके पद्म नामका पुण्यवान पुत्र हुआ । वह नौवां बलभद्र सब कुटुंबका संतुष्ट करता हुआ अनुक्रमसे बढ़ने लगा ॥ ३१८-३१९ ॥ उस शूस्वीरकी प्रताप महित निर्मलकांति सूर्यकी प्रभाके समान थी और शास्त्रोंका संस्कार पाकर शरद ऋतुके समान कमल अथवा लक्ष्मीकी उत्पन्न करनेवाली थी । वह पद्म अर्थात् दुर्वीर (जिसे कोई न रोक सके) था, दुष्टोंका नाश करनेवाला और सज्जनोंका पालन करनेवाला था इसीलिये

प्रतिष्ठिष्य प्रसन्नात्मा सदैवं तमजिगृह्य ॥ २९३ ॥ एवं महाभूमिस्तत्र कृतान्तप्रभावन । पूज्यः पद्मोऽस्मात्सस्वधमगमन्मुषी ॥ ३०० ॥ तस्यु घो-  
षवती नाम वीणावंदेव सन्निधे । समागता भवद्भिरतन्माममानीयता शुभा ॥ ३०१ ॥ एवमुक्त्यते तस्मै तामेव नीच तै ददुः । तयामौ भीतवायान्यां  
श्रोत्रचेतोभिरजन ॥ ३०२ ॥ समापादयदाकर्ण्य तद्वीणां शलं महत् । श्रोता धर्षयत्तापि स्वा वा मातां समाधत्त ॥ ३०३ ॥ तस्य वटे कृच्छंठस्य  
कुण्डितस्तिरभूजः । ननु प्राकृतपुण्यानां स्वय संति महर्दयः ॥ ३०४ ॥ ततः सर्वे प्राप्स्यास्य कन्याणानि श्रवणं । एवं विद्याधरे श्रेण्यां लभन्नास्त-  
शतान्यनैः ॥ ३०५ ॥ सम्राप्य जेजुरेडोऽगस्तकन्यादानमानितः । ततो निरुल्लभगमागत्य पद्मोदयः ॥ ३०६ ॥ शिरण्यवर्मजोऽश्चरुतापीतो मही-  
पते । पद्मावल्यामभूदुग्री रोहिणी रोहिणी सा ॥ ३०७ ॥ सात्याः स्वयगार्यल्य शिक्षकागून् कल्पगुणान् । वसुदेवमुपाप्यायनया बोधयितुं रिक्तं ॥  
३०८ ॥ एवं बाहुलस्यावर्नं रोहिणीं रत्नमासया । आरुष्ट वटमकरोदुल्लेखान् रुच्येत्तथा ॥ ३०९ ॥ तदा विमिश्रमयोदाः ससुदनिजयादयः । ससुश इव

महा सुनिराज विष्णुकुमारने वहां पर धर्मकी प्रभावना की । तदनंतर पद्मरायके द्वारा पूज्य हो कर वे बुद्धिमान मुनि-  
राज अपने स्थानको चले गये । उन वीणाओंमें घोषवती नामकी वीणा इस वंशमें आई है इसलिये आप इसके साथ  
उस अच्छी वीणाको लाइये । वसुदेवके इस प्रकार कहनु करने पर उन लोगोंने वही वीणा लाकर वसुदेवको दी । वसु-  
देवकर बहुत ही प्रसन्न हुई और उसने अच्छे कंठवाले तथा सब राजाओंको कुंठित कर देनेवाले  
कुमार वसुदेवके कंठमें अपना शरीर और बरमाला समर्पण की, सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभाविक  
पुण्यात्मा लोगोंके समीप वही बड़ी क्रादियां अपने आप आ जाती है ॥ ३००-३०४ ॥ इसके बाद  
समने प्रसन्न होकर वसुदेवका कन्याणाभिषेक किया इसी तरह विजयार्थ पर्वतपर जाकर वहांके विद्याधर राजा-  
ओंके द्वाग कन्यादान आदिसे सम्मानित होकर वसुदेवने सातसी कन्याएं प्राप्त कीं । तदनंतर वे महापुण्यवान् कु-  
मार भूमंडल पर आए ॥ ३०५-३०६ ॥ वहांपर अरिष्ट नगरके राजा शिरण्यवर्मा रानी पद्मावतीके रोहिणीके समान  
रोहिणी नामकी पुत्री भी उसके स्वयंवरके लिये अनेक कला गुणोंके धारण करनेवाले मुख्य ज्योत्स्नाकोके समान बहुत  
से राजा लोग आए थे परंतु वसुदेव "इस सबके उपाध्याय हैं" लोगोंको वही समझानेके लिये सबसे अलग खड़े थे  
उस समय कन्या रोहिणी ने उत्कंठासे कुंठित चित्र होकर अपनी पुत्रा लताओंके द्वारा रत्नमाला डालकर वसुदेवके  
कंठका स्पर्श किया ॥ ३०७-३०९ ॥ यह देखकर जिस प्रकार प्रलयकालके समय समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर सुख हो जा-



कारसागतः । संप्राप्त्या बलिनीभ्यर्णसहितवारपुरस्सरं ॥ २८८ ॥ महाभागहयवत्सं वारपुरमुद्रमुपागमं । देवं त्वयैरावधीतोत्पत्नीं प्रप्रिपञ्चमाज् ॥ २८९ ॥ अथापव द्विजो राजन् देवं मे विक्रमैर्भिषिः । प्रमित क्षेत्रमिदम्यत्नं किमेतदभिप्रायितं ॥ २९० ॥ गृहणेति बली पाणिजलसेकस्वमन्वितं । अदितारुणे मुनिश्च प्रविक्रियद्विनिजकमं ॥ २९१ ॥ व्याघादेकं प्रसार्यैर्भूमौ नुबोत्तरमुदति । द्वितीयमपि देवादि बलिकायां स्फुरत्पुति ॥ २९२ ॥ तथा विद्याधरा भूमिगोचराभार्ये संहार । चरणौ संयुतेर्हेतुं कोध मास्मकृथा दृष्टा ॥ २९३ ॥ इति संगीतवीणादिमुखा मुनिसत्तम । सद्यः प्रसादयामासुः सोप्यही रसौ समाहरत् ॥ २९४ ॥ धृत्वा लक्षणवर्तेषां तदा गीत सुधासिनः । दुष्ठा घोषाघोषास्यै मरुघोषां च सुखरा ॥ २९५ ॥ वीणां घोषवती चास्या ददतिस्म सुसंगताः । विद्याधरेभ्यो द्व द्वे च भूचरेभ्यो यथाकमं ॥ २९६ ॥ दृष्ट्वा त्व याचितो विप्रवरेणापि मयाधुना । नावकाशास्तृतीयस्य चरणस्येति सत्वरं ॥ २९७ ॥ वध्वा बलिनमुद्रुत्स बली विष्णुसुनीश्वर । दुःमह त निराकारादिपुसर्ग सुनीशिर्ना ॥ २९८ ॥ वद्ध बलिनमादुत समुधुकं महीपतिं ।

कहा कि यह इतना थोड़ा क्यों मार्गा अच्छा ले इस तरह कह कर बलिने हाथसे जल छोड़ कर तीन पेंड पृथ्वी उस ब्राह्मणको दे दी । मुनिराजने विक्रियाश्रुद्विके द्वारा अपना एक पैर तो फैलाकर मानुषोत्तर पर्वतके मस्तक पर रखवा और दूसरा जिसकी कान्ति है दीपमान हो रही है ऐसी मेरु पर्वतकी चूलिका पर रखवा ॥ २८८-२९२ ॥ उस समय विद्याधर और भूमिगोचरी मभी उन मुनिराजसे प्रार्थना करने लगे कि हे आर्य ! अपने दोनों पैरोंको संकोच लीजिये और व्यर्थ ही संसारके कारण कीषको मत कीजिये ॥ २९३ ॥ इस तरह प्रार्थना कर संगीत और वीणा आदि बाजे बजाकर उनलोगोंने मुनिराजको शीघ्र ही प्रसन्न किया तथा उन मुनिराजने भी अपने दोनों पैर समेट लिये ॥ २९४ ॥ उस समय उन भूमिगोचरी विद्याधरोंके यथायोग्य लक्षण महित गीत सुनकर देव लोग बड़े संतुष्ट हुए और उन्होंने अच्छे स्वरवाली और बहुत अच्छी घोषा सुषोषा और महासुषोषा घोषवती ये चार वीणाएं उनको लाई दी । उन वीणाओंमें से देवोंने अनुक्रमसे दो तो विद्याधरोंको दी और दो भूमिगोचरियोंको दीं ॥ २९५-२९६ ॥ तदनंतर अत्यंत बलवान मुनिराज विष्णुकुमारने बलिसे कहा कि इस समय पुत्र ब्राह्मणने व्यर्थ ही तुझसे याचना की क्योंकि जब तीसरा पैर रखनेके लिये कहीं जगह ही नहीं है इमतरह कहकर उन मुनिराजने शीघ्रही उस दुराचारी बलिको बांधलिया और अकंपन आदि मुनिराजोंके उस असह्य उपमर्गको दूर किया ॥ २९७-२९८ ॥ बलिको बांधा हुआ देखकर राजा पट्टमरथ भी उसे मारनेके लिये तैयार हुआ परंतु विष्णुकुमारने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया । तदनंतर बलिने प्रसन्नचित्त होकर अर्थात् सम्पददर्शन धारण कर श्रेष्ठ जिनधर्म स्वीकार किया ॥ २९९ ॥ इस प्रकार

२७६॥ राजा वृषभवादि स्वयेष्ट माध्यमास्मिन् । राज्य सप्तदिन कर्तुमिच्छामीत्यब्रवीद्वली ॥ २७७ ॥ दत्त अरतृणं मत्वाभगदस्मै तद्भुजित । कृतोपका-  
रिणे देय किं न तत्कृतवेदिभिः ॥ २७८ ॥ तत्राकपनयुर्वाद्यमागत्य मुनिपटल । अप्रहीदातपे योग सर्वे सौम्यमहीभृति ॥ २७९ ॥ निजित- प्राप्तिमदुषि  
ध्यामकपनमुनीनिना । वादे सभायां तत्कोगात् जिघासुर्वात्मकः ॥ २८० ॥ यागव्याज समारभ्य स मन्त्री परितो गिरि । अर्धताहारदानार्थं देवसत्तप  
णाय च ॥ २८१ ॥ पाक प्रकल्पयामास धूमज्वालालिप्तत । क्षात्वा विष्णुकुमारस्तुमुसर्गं मुनीश्वर ॥ २८२ ॥ गत्वा पद्मरथारुण्य वीतरागासने स्थित ।  
राक्षसिन्धव संपूज्य किं कृत्यमिति भाषितः ॥ २८३ ॥ उपमर्गं व्यधान्मन्त्री तवाज्ञातपयोगिना । निवार्यतामसावाशु त्वदेयाह महीपतिः ॥ २८४ ॥  
प्रतिपन्नं मया तस्मै राज्य सप्तदिनावधि । न निवारयितुं शक्यः सत्यमेदमयादृशा ॥ २८५ ॥ ततो भवदुर्भिरार्ण्यं निवार्यो दुर्जनोधुना । न विंदति क्षलाः  
स्वरायुक्तायुक्ताविचेष्टितं ॥ २८६ ॥ इत्यवोचदसौ चैतदवगम्य मुनीश्वर । प्रतिपिध्यामि पापिष्ठमहमेवाशु नश्वरे ॥ २८७ ॥ इति वामनरूपेण ब्राह्मणा

मुनिराज अकंपनने उस बलिको जीता था उसीके कोषमे उमने अकंपन आदि सब मुनियोंके मारनेकी इच्छा  
की ॥ २७९-२८० ॥ उस पापीने यज्ञका बहाना कर जहाँ पर वे मुनिराज विराजमान थे उस पर्वतके चारों ओर  
पाचक लोगोंको आहार दान देनेके लिये और देवोंको संतुष्ट करनेके लिये पाक अर्थात् रसोई बनाना प्रारंभ की ।  
बह पाक इस तरह बनवाया जिससे धूआँकी लपट घुमड घुमड कर उसी पर्वत पर पहुँचे । मुनिराज विष्णुकुमार उन  
मुनियोंके उस उपसर्गको जानकर राजा पद्मरथके समीप आए और वीतराग आसन पर आ विराजमान हुए । राजा  
पद्मरथने आकर मुनिराजकी बंदना की, पूजा की और मार्यना की कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥ २८१-२८३ ॥  
तब मुनिराजने कहा कि तेरा मंत्री जो आतपयोगको धारण करनेवाले मुनियोंको उपसर्ग कर रहा है उसे तुम बहुत  
शीघ्र रोको । इसके उत्तरमें पद्मरथने कहा कि हे स्वामी मैंने उसे सात दिन तकके लिये राज्य दे दिया है इसलिये  
मैं अपने सत्य बचनोंके मंग न होनेके डरसे रोक नहीं सकता । अतएव हे आर्य ! अब उस दुष्टको आप ही रोकिये  
क्योंकि दुष्ट लोग योग्य अयोग्य क्रियायोंको स्वयं नहीं जान सकते हैं । पद्मरथकी ये बातें सुन कर और समझ कर  
मुनिराजने सोचा कि उस नाश होनेवाले पापीको मैं ही बहुत शीघ्र रोकता हूँ ॥ २८४-२८७ ॥ इसके बाद वे मुनि-  
राज वामन ब्राह्मणका रूप धारण कर बलिके समीप पहुँचे और आशीर्वाद देकर कहने लगे कि हे महाभाग्यशाली  
आज तु दाताओंमें मुख्य है इसलिये आज मैं तेरे समीप आया हूँ तुझे मी कुछ दे । इसके उत्तरमें बलिने कहा कि  
जो तुम्हें पसन्द हो सो माँग ले । ब्राह्मणने कहा कि हे महाराज ! मेरे पैरोंसे तीन पैद पृथ्वी मुझे दीजिये । राजाने

२६५ ॥ भर्ता गधर्वदत्तायास्त्वमेवेव विचक्षणः । गीतवाद्यविज्ञेयुः सर्वानस्यान् जयैरिति ॥ २६६ ॥ पठ्यन्प्रश्ने तस्मिन् धरागतलोगवराः । प्रार्थनार्थं धर्वदत्तायाः स्वयंवरमुत्तुकाः ॥ २६७ ॥ सा स्वयंवरशालायां बहून् जितवती स्वयं । तदानीं गीतवाद्याभ्यां तत्कलारूपधारिणी ॥ २६८ ॥ वारुदत्तादिभिः श्रोतृपदसंघातितैः स्तुता । कलाकौशलमेतस्याः विलक्षणमिति स्फुट ॥ २६९ ॥ स्वोपाध्यायं तदापृच्छथ कन्याभ्यर्णमुत्तुगानः । वसुदेवोऽभगणीद्वीणा विदोषामानयद्विति ॥ २७० ॥ तेषां तन्त्रीषु लौमदयं शल्यं चालोक्य सस्मित ॥ २७१ ॥ तुवीफलैर्युग्मैः मल्लक पाषाणमप्यसौ । स्फुटीचकार तद्दृष्ट्वा त्वदिष्टा कीदृशी भवेत् ॥ २७२ ॥ कीर्ति कन्याया प्रोक्तो मद्विषय इति प्राह-  
दंडेषु मल्लक पाषाणमप्यसौ ॥ २७३ ॥ हस्तिनाख्यपुंगवीशो राज्ञो मेवरथयुते । पद्मांबलाश्च सभातौ विष्णुपद्मरथां मुते ॥ २७४ ॥ सहविष्णुकुमारैः ग- भूपतौ तुमसि स्थिते । पश्चात्पद्मरथे राज्यमल्लकुर्वत्यथान्यथा ॥ २७५ ॥ प्रत्यतवातिसंक्षोभे संभ्रान्ते सचिवाग्रणी । सामादिमिहगार्हस्त प्रसीतिं समजीगमत् ॥

प्रकार जिसकी प्रशंसा हो रही है ऐसी गंधर्वदत्ता कन्याके समीप अपने उपाध्यायको पूछकर कुमार वसुदेव भी जा पहुंचे । वसुदेवने जाते ही कहा कि जिसमें कोई दोष न हो ऐसी वीणा लाओ ॥ २६९-२७० ॥ यह सुनकर वसुदेवके हाथमें तीन चार वीणा रख दी परंतु वसुदेवने आश्चर्यके साथ देख कर कहा कि इसकी तांतमें लोमश (बाल सरीखे) हैं तथा शल्य [ गांठ सरीखी ] है । इसी तरह तूनामें सल्ल और दंडमें पाषाण है । इस तरह उम वीणाके दोष प्रगट करने पर उस कन्याने कहा कि आप कैसी वीणा चाहते हैं हमारे यहां तो ऐसी ही है । इसके उत्तरमें कुमार वसुदेव एक कथा कहने लगे कि ॥ २७१-२७३ ॥ हस्तिनापुर नगरके राजा मेघरथ रानी पद्मावतीके विष्णुकुमार और पद्मरथ ये दो पुत्र हुए थे ॥ २७४ ॥ महाराज मेघरथ बड़े पुत्र विष्णुकुमारके साथ दीक्षा ले गये थे और उनके बाद राजा पद्मरथ राज्य करने लगे थे । किसी एक दिन मलेच्छदेशके लोगोंने आकर नगरमें बहुत सा उपद्रव मचाया तब मुख्य मंत्री बलिते साम दाम आदि उपायोंसे उस उपद्रवको शांत किया ॥ २७५-२७६ ॥ राजा पद्मरथने संतुष्ट होकर बलिसे कहा कि जो तुम्हें अच्छा लगे सो मांग ले । इसके उत्तरमें बलिते कहा कि मैं मात दिन तक राज्य करना चाहता हूं ॥ २७७ ॥ राजाने जीर्ण तुण समझ कर राज्य दे दिया और कहा कि उपकार जानने वाले कुतश्च लोग उपकार करनेवालेके लिये अपना कमाया हुआ क्या नहीं दे डालते हैं अर्थात् सब कुछ दे डालते हैं ॥ २७८ ॥ देवयोगसे वहां अकंपन आदि अनेक मुनिराज आ विराजमान हुए थे और उन सबने आतापन योग धारण किया था । पहिले किसी समय साम्भ्य राजाके यहां यही बलि मंत्री था उस समय सभामें वाद करते समय

स्मिन्विं ॥ २५५ ॥ आतो पवनवेगायासादिषां परिणीतवान् । तथा सह स्मरस्यापि शुद्ध स्मरुंगोचरं ॥ २५५ ॥ भुवनेषु दिनान्यत्र विभ्रातः कालिचि-  
तुन । तथोपसर्तुं काम तं समीप्यागारवेगकः ॥ २५६ ॥ उदल्याशनिवेगत्य दायोदयं नभस्तले । इत्या दर्शितास्मत्स्या संसुद्रीणीसिहस्तभा ॥ २५७ ॥  
मोन्वीतस्तद्गयानुस्त्वा त तदनाश्रपलावित । विषया पर्णलब्ध्यासौ प्रियं प्रियतपातया ॥ २५८ ॥ न्यापुरसमीपस्वसरोमये हाने हाने ॥ द्वीपे निपा-  
तितो ऽटुन्छरेहिन्स्तीरवर्तिन ॥ २५९ ॥ द्वीपादमुत्साभिर्गुं किं तीर्थं वदतेति तान् । भवदस्तेपि किं भद्रं पतितः खारवमिलसुं ॥ २६० ॥ सत्याम्भ  
वति विज्ञातमिति तेन सुभाषिताः । प्रहस्यानेन मार्गेण जलाग्निगम्यतामिति ॥ २६१ ॥ न्यदिशप्रतस्तस्याध्वविद्यं नगरं शुभं । गार्धर्वकुशल प्राप मुनो-  
हरसमाह्वय ॥ २६२ ॥ उपविश्य तदभ्यासे वीणाबादुनशिक्षकान् । तत्र गार्धर्वदत्तायाः स्वयवरविधिं प्रति ॥ २६३ ॥ दध्ना निगूढनज्ज्वाणे वसुदेवो वि-  
मूढवत् । अहं चैभिः सहभ्यासे करोमीत्याप्तवल्गवी ॥ २६४ ॥ आदयेवाछिन्नन्त्री तुवाज वामितकलं । विगत्यं पदयुतास्थाल दध्ना त तेषु हनन् मृशः ।  
करं वे किनारेके लोगोसे पूछने लगे कि इस द्वीपसे बाहर निकलनेका मार्ग कौन सा है कृपा कर बाला दीजिये । तब  
वे लोग कुमारसे पूछने लगे कि हे भद्र क्या आप आकाशसे पड़े हैं ? इसके उत्तरमें कुमारने कहा कि आपने बहुत  
अच्छा जाना अर्थात् मैं वास्तवमें आकाशसे ही गिरा हूं यह सुन कर वे सब लोग इस पड़े और इस पड़े और इस पड़े कर उन्होंने बत-  
लाविया कि इस मार्गसे आप इस सरोवरके बाहर निकल आइये । वसुदेव वहांसे निकल कर नगरमें गये और गार्धर्व  
विधामें ( गाने बजानेमें ) अत्यंत निपुण ऐसे मनोहर नामके गुरुके समीप जा पहुंचे ॥ २५३-२६२ ॥ गंधर्वदत्ताको  
स्वयंवरमें जीतनेके लिये उन गुरुके समीप अनेक शिष्य वीणा बजानेकी शिक्षा पा रहे थे उन्हें देखकर और अपने  
बजानेकी कलाको छिया कर वसुदेव एक मूर्खके समान उन गुरुके समीप बैठ गये, तथा उससे कहने लगे कि इन  
शिष्यादियोंके साथ मैं भी बजानेका अभ्यास करूंगा । यह कह कर उन्होंने एक वीणा ले ली पहिले तो उसकी सांत  
तोड़ डाली और फिर उसका तुवा तोड़ डाला । इस उलटे तमाशेको देख कर वे सब लोग इसने लगे और कहने लगे  
कि तू गाने बजानेमें बहुत चतुर है इस विधामें हम सबको जीत कर तू ही गंधर्वदत्ताका पति होगा ॥ २६३-२६६ ॥  
इस तरह यहां लोगोका अभ्यास चल रहा था उपर गंधर्वदत्ताके स्वयंवरके लिये उत्कंठित हुए यमिगोचरी विद्या-  
वर आदि सबलोग आ इकट्ठे हुए ॥ २६७ ॥ गाने बजानेकी सब कलाओंको जाननेवाली उस गंधर्वदत्ताने माने ब-  
जानेके द्वारा उस स्वयंवरशालामें अनेक लोगोको जीत लिया ॥ २६८ ॥ बादर आदि अनेक लोग उस गाने  
बजानेसे सुननेकेलिये बैठे थे और सब कह रहे थे कि इस गंधर्वदत्ताका कला कौशल अत्यंत ही विलक्षण है । इस

कार्डें संभरनेहुनचैकत । अरणीगल सब तर्क आकर्मनं बं दुर्मर्म ॥ २४५ ॥ तत्कंडगजमादार्चनीयां रामो खर्गपर्वतः । तत्पार्श्वे तत्पार्श्वे सज्जुदर्वनि बया-  
दयः ॥ २४६ ॥ महीभुजः परे चालिजेकसंतसचेतनः । नैमित्तिकोक्तशोकप्रभाङ्गः कममार्जताः ॥ २४७ ॥ श्रवण्यश्रीयति स्नेहात्मकं तदेव समस्तं ।  
तमावेबधितुं दक्षान् प्राहिणोत्संहितान् बहून् ॥ २४८ ॥ विजयाक्षयं पुरं गत्वा तोष्यशोकमरीहहः । कुत्रे विभांजये तस्मै तदुच्छ्वासमभिरिचतां ॥ २४९ ॥  
तनीक्ष्यादैक्षिक्योक्तमधूरद्विजं च वचः । द्रुष्टवानपतिर्गत्वा मगधेशमवबुधन् ॥ ५० ॥ राजापि श्यामसाहस्यो तां कुला तस्यै समार्पयन् । शिनानि कानि-  
भित्तत्र विप्रम्य गतवर्तस्ततः ॥ २५१ ॥ देवदारुवने पुष्परम्याह्वये बनजाकरे । अ ॥ बागैनासौ कर्षित्वाकण त मुदा ॥ २५२ ॥ क्षाप्यमान स्वयं केनचि-  
त्त्वगेन गजधिपात् । अगस्त्य सहसानीतः खेचराक्षि कृती पुर ॥ २५३ ॥ पत्यु किन्नरगीतस्य द्वितीयां वा रतिं सती । सुतामशनिवेगस्य दत्ता शाल्म-  
वानीके द्वारा उसके फिर मिलनेकी बात सुनकर सबलोग आंत हो गये ॥ २४६-२४७ ॥ राजा समुद्रविजयने भ्रमवश  
कुमारको ढूढ़नेके लिये बहुतसे चतुर लोगोंको चागे ओग मेजा ॥ २४८ ॥ इधर कुमार बसुदेव विजयपुर नगरमें  
बहुंचे और विश्राम करनेके लिये अशोकवृक्षके नीचे घनी छाया देखकर बैठ गये ॥ २४९ ॥ बागवानने उस वृक्षकी  
छायाको स्थिर देखकर सोचा कि उस निमित्तज्ञानीके बचन सत्य निकले यही सोच कर उसने मगध देशके राजाको  
उसकी खबर दी ॥ २५० ॥ मगधेयने अपनी श्यामला नामकी कन्या बसुदेवकी समर्पण की । कुमार कुछदिन तो  
वहां रहे फिर वहांले निकल कर देवदारु नामके वनमें पुष्परम्य नामके कमलसमूहमें जा पहुंचे । वहां पर किसी जंग-  
ली हाथीसे क्रीडा कर बड़ी प्रसन्नतासे उस पर जा चढ़े ॥ २५१-५२ ॥ उसी समय किसी विद्याधरने उनकी प्रशंसा  
की और हाथीमे उठाकर अकस्मात् उन पुण्यवानको विजयार्द्ध पर्वत पर जा पहुंचाया । वहां पर किन्नरगीत नगरमें  
राजा अशनिवेग राज्य करते थे उनकी रानी पवनवेगासे दूसरी रतिके समान सती शाल्मलिदत्ता नामकी पुत्री हुई थी  
वह पुत्री राजा अशनिवेगने निमित्तज्ञानीकी आज्ञानुसार कुमार बसुदेवको समर्पण की कुमार बसुदेव कुछ दिन तक  
वहीं रहे और उन्होंने उस शाल्मलिदत्ताके साथ कामदेवके स्मरण करनेके मी अगोचर ऐसे सुखोंका अनुभव किया ।  
कुछ दिन बाद कुमारकी जानेकी इच्छा हुई तब अशनिवेगका दायद ( बारिस वा उचराधिकारी ) अंगारवेग उन्हें  
उठाकर आकाशमें ले चला । शाल्मलिदत्ता यह देख कर हाथमें तलवार उठा कर उसके पीछे दौड़ी । यह देख कर  
अंगारवेग कुमारको वहीं छोड़कर भाग गया । जब कुमार बसुदेव उससे छूटकर नीचे गिरने लगे तब धारी शाल्मलि-  
दत्ताने पर्णलघी विद्यासे चंपापुर नगरके समीपवाले सरोवरके बीचके टोले पर घीरे घीरे उतार दिया । वहां पर आ-

विरकाश्चिर्मित्यं रक्षकान् । भर्तृनविरगण्डान्याः पुत्राभ्यान्वाथ पुत्रकान् ॥ २३३ ॥ मत्वा मर्कटकान् कश्चित्समुद्रिष्य समाकुलान् । कंठलं परिधयान्या  
विचित्रोत्प्लुङ्गवासी ॥ २३५ ॥ अंगरागं समालोच्य काचिदालिप्य कर्दम । लोचने स्वे समालोच्य ललटे न्यसनकज्जलाः ॥ २३६ ॥ स्वास्तास्तथाविधा  
सर्वो- सर्वद्विरनमानसैः । निरीक्ष्य पारैर्विक्रयेन क्वाणितोय नरेश्वरः ॥ २३७ ॥ तत्वेदशीमुगायेन भ्यवस्था पर्यंकलयत् । इति संशुल्य तेनोफ कुमारस्तत्प-  
रीक्षितु ॥ २३८ ॥ राजगेहद्विनिर्गतु कामो दौर्बालिकंस्तथा । तत्र प्रजस्य देवस्य नादेशोऽस्माकमीदृश ॥ २३९ ॥ बहिस्तस्या न गतव्यमिति रुद्ध स्थितो-  
न्यदा । समुद्रविजयादीनामनुकुवऽप्यशयोयात् ॥ २४० ॥ वसुदेवो युतो गत्वा विद्याससाधनछलात् ॥ स्मशानभूमावेकाकी महाज्वाले हुताशने ॥ २४१  
॥ निपन्याकीर्तिमीमानुरिति पत्र व्यलिख्यत् । कठे निवप्य बाहस्य मुक्त्वा तत्रैव तं स्वयं ॥ २४२ ॥ बर्हिह प्रदक्षिणीकृत्य दशमानशवान्वित । अगादल-  
क्षमार्गः स रात्रावेव द्रुत ततः ॥ २४३ ॥ तत् सूर्योदये गेहे तद्रक्षणकराग्रणी । अनिरीक्ष्यानुज राज्ञो राजादेशादिनास्तनतः ॥ २४४ ॥ पर्यटन्नुन्नि

लिये उन सब स्त्रियों की ऐसी दशा देख कर नगरके लोगोंके चित्त बड़े ही खेदखिन्न हुए थे, और उन्होंने महाराजसे  
आकर प्रार्थना की थी तब महाराज समुद्रविजयने ऐसा उपाय कर आपकी ऐसी व्यवस्था कर दी है । उस सेवककी  
ये सब बातें सुनकर कुमार वसुदेवने इस बातकी परीक्षा करनेके लिये घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा प्रगट की । तब  
द्वारपालने यह प्रार्थना कर उसे रोक दिया कि “आपके बड़े भाई ने हमलोगोंको आपके बाहर जाने देनेकी आज्ञा  
नहीं दी है इसलिये आप बाहर न जाइये” यह सुनकर कुमार वसुदेव वहीं रह गये । परंतु दूसरे ही दिन समुद्रविजय  
आदि सब भाइयोंसे बिना कहे सुने ही अपयज्ञके ढरसे विद्या सिद्ध करनेके बहानेसे अकेले ही स्मशानमें गये और  
वहाँ पर जाकर माताके नाम पर एक पत्र लिखा कि “मैं अपकीर्तिके भयसे बड़ी भारी चिन्तामें जल कर मर जाता  
हूँ” । इस तरहका पत्र लिखकर घोंडेके गलेमें बांध दिया, उसे वहीं छोड़ दिया और आप जिसमें कोई सुरदा जल

रहा था ऐसी उस अग्निनी प्रदक्षिणा देकर रात्रिमें ही बड़ीशीघ्रतासे किसी छिये मार्गसे बाहर जा निकला ॥ २३७-  
२४३ ॥ सूर्य उदय होते ही वसुदेवके मुखपर रक्षक लोगोंने घर्मे कुमारको न देखकर राजासे निवेदन किया तथा  
राजाकी आज्ञासे वे लोग अनेक सामंतोंके साथ कुमारको देखनेके लिये इधर उधर घूमने लगे । स्मशानमें जाकर  
उन्होंने एक जले हुए मुरदेको देखा और उसके चारी ओर फिरते हुए घोंडेको देखा ॥ २४४-२४५ ॥ उस घोंडेके  
कंठमें बंधे हुए पत्रको खोल कर महाराज समुद्रविजयको समर्पण किया । उस पत्रके लिखे हुए समाचारोंको सुनकर  
समुद्रविजय आदि सब राजा तथा और भी कुटुंबी आदि सब लोगोंका हृदय कीकसे संतप्त हो गया परंतु निमिष

प्रकाशप्रतिबेधेन कदाचिद्विमुखो भवेत् ॥ २२४ ॥ कुमार इति सीधित्य तमाह्वय शिषोर्बहीर । कुमार वपुरतेने पदयामि किमिदं न्यथा ॥ २२५ ॥  
 इव टन परित्याज्य शीततातद्विषु त्वया । विहर्षं परिवांच्छा चेत्यरितो राजमदिरं ॥ २२६ ॥ धारागृहे बने रम्ये हर्म्ये विहितपर्वते । मन्त्रिर्मातयोधाग्रमहा-  
 मात्रात्मजः समं ॥ २२७ ॥ यथेष्ट विचरैत्येतत् शुभा सोपि तथाचरत् । आददत्यमृत वासवचन शुद्धमुद्धय ॥ २२८ ॥ एव विहरमाण त बाबाट्टेष्टको परे ।  
 न न्ना निपुणमत्याह्वयो यथेष्टाचरणोच्छुकः ॥ २२९ ॥ राज्ञा त्व प्रतिषिद्धोसि सोपाय निर्गम प्रति । इत्यवारीदमौ च ह किमर्थमिति चेत्क २२३० ॥ सोम-  
 वीतवनिर्माणकाले रूपविलोकनत् । परे शिथिलचारित्रा मन्मथेन कुलीकताः ॥ २३१ ॥ वीतलब्धा विमर्थाद्या विपरीतविकेष्टता । पीतासवसमा- बन्धाः  
 सधवा विषबाध ता ॥ २३२ ॥ काथिदशस्त्रसमसर्वागाः काथिदद्वन्द्वकलोचना । काथितसत्यकर्तयताः काथित्यकार्दभोजना ॥ २३३ ॥ अथमत्य गुरुन् का-  
 मुख्य अमात्योके पुत्रोके साथ इच्छानुसार विहार किया करो । समुद्रविजय की यह बात सुन कर वसुदेव भी उसी  
 तरह विहार करने लगे सो ठीक है क्योंकि शुद्धबुद्धिवाले पुरुष बड़े लोगोंके वचन अमृतके समान ग्रहण करते हैं ॥ २४-  
 २८ ॥ वसुदेव इसी तरह प्रति दिन विहार करने लगे किसी एकदिन इच्छानुसार आचरणोंकी इच्छा करनेवाले एक  
 निपुणमती नामके बहुत बोलनेवाले सेवकने वसुदेवसे कहा कि महाराज समुद्रविजयने इस उपायसे आपको बाहरजाने  
 से रोक रक्खा है । इसके उत्तरमें वसुदेवने उस सेवकसे पूछा कि महाराजने बाहर जानसे मुझे क्यों रोका है ॥ २९-  
 ३० ॥ तब वह सेवक कहने लगा कि आपके बाहर निकलने समय आपका सुंदर रूप देवकर नगरकी स्त्रियोंके  
 चारित्रमें कुछ शिथिलता आ जाती है वे कामदेवसे व्याकुल हो जानी हैं लज्जा और मर्यादा भ्रष्ट होती हैं और  
 उनकी सब चेष्टाएं विपरीत हो जाती हैं । कन्या सधवा विधवा आदि सब मध्यमी हुईके समान हो जाती हैं । कितनी  
 ही स्त्रियोंके शरीर सब पसीनेसे डूब जाते हैं कितनी ही स्त्रियां अपने आपे नेत्र खुले रखती हैं कितनी ही अपने पहि-  
 ननेके कपड़े ही भूल जाती हैं और कितनी ही अपना आधा भोजन छोड़ देती हैं ॥ २३१-२३३ ॥ कितनी ही साथ  
 समुर आदि गुरुजनोंका अपमान कर बैठती हैं कितनी ही रक्षा करनेवालोंका तिरस्कार कर डालती हैं, अन्य कित-  
 नी ही स्त्रियां अपने पतियोंको कुछ नहीं गिनती, कितनी ही दूसरे पुत्रोंको अपना ही मानकर ले चलती हैं और  
 अपने व्याकुल बच्चोंको बंदर समझ कर दूधसे ही ललकार देती हैं । कितनी ही स्त्रियां कंवल को ही उत्तम वस्त्र समझ  
 कर पहिन लेती हैं कितनी ही कीचड़को ही शरीर पर लगानेका उसम उवटन समझ कर शरीर पर लपेट लेती हैं  
 और कितनी ही स्त्रियां ललाटको नेत्र ही समझ कर वहीं काजल लगा लेती हैं ॥ २३४-२३६ ॥ आपके देखनेके





पातोन्मुको भयात्तुर्बन्धनं ॥ २०५ ॥ संसृजिगार्धिकाख्याभ्या संयताभ्यां वरातके । सुस्थिताभ्यामियं छाया शुभः कस्वेति सादरं ॥ २०६ ॥  
 सुशुद्धसौम्याहयः सन्निबोधोऽब्रवीद्विदः । भवे भवौ त्वंतीयेस्माच्छायेयं युवयो पिता ॥ २०७ ॥ शुखा ततो न यत्नं नन्तिं भविमंदनौ । कुतस्ते  
 मृत्तिनिर्दधो वधो विरस निष्कलात् ॥ २०८ ॥ अमुष्मान्मरणाङ्गम्यसौभाग्यादि स्वयैप्सितं । भविष्यति तपः सिद्धेरित्यप्राहयतां तपः ॥ २०९ ॥ विर  
 सोपि तपः कृत्वा महाशुक्लैर्मोजति । तत्र बोधशार्धोयुरनुभूयाभियाच्छितं ॥ २१० ॥ प्रादुरासीत्तदप्युत्वा वगुदेवो वसुधरा । वसीकृतुमयं यस्माद्भा  
 विनौ बलकेशवौ ॥ २११ ॥ इति सर्वसिद्धं श्रुत्वा ससंवेगपरायणः । सप्रक्षोषककृष्टघाह्यः स्वीभिक्षीयुं परंपदं ॥ २१२ ॥ समुद्रविजयाख्याय दत्त्वाभिवध  
 पूर्वकं । राज्यमुन्नतसंगः सन् शमसगस्तपोमहीत् ॥ २१३ ॥ सुप्रतिष्ठविनाभ्यर्णे राजभिर्बहुभिः धमं । स संयमाते संन्यस्य विन्यास निर्वृतेरमात् ॥

छाया किसकी है ? वे गुरु अवविज्ञानी थे इसलिये कहने लगे कि यह छाया अर्थात् जिनकी यह छाया है वह जीव  
 इस जन्मसे तीसरे भवमें तुम दोनोंका पिता होगा ॥ २०६-२०७ ॥ गुरुराजजी यह बात सुन कर उसके होनहार  
 वे दोनों पुत्र अर्थात् वे दोनों शिष्य मुनि उस नंदीके पास गये और कहने लगे कि हे भाई आपने यह मरनेका वि  
 चार क्योंकर लिया अब आप इस निष्फल अपघात कर मरनेका विचार छोड़ दीजिये । आप इस तरह मरकर भाग्य  
 सौभाग्य आदि चाहते हैं सो वह तपध्वज धारण करनेसे अपने आप सिद्ध हो जायगा । इस तरह समझा कर उसे  
 तपध्वज धारण करा दिया ॥ २०८-२०९ ॥ वह नंदी भी बहुत दिन तक तपध्वज कर महाशुक्ल विमानमें देव  
 हुआ । वहां पर सोलह सागर तक इच्छानुसार दिव्य सुखोंका अनुभव कर वहांसे च्युत होकर सब पृथ्वीको अपने  
 वश करनेके लिये यह वसुदेव हुआ है और इसीसे होनहार नारायण और बलभद्र होंगे ॥ २१०-२११ ॥ महाराज  
 मुनिगजकी ये बातें सुनकर अंधकहृष्टि बड़ी उत्कंठासे विरक्त हुए और उन्होंने मोक्षपद प्राप्त करना स्वीकार किया  
 ॥ २१२ ॥ उन्होंने समुद्रविजयको अभियेक पूर्वक राज्य दिया तथा सब तरहके परिश्रमोंको छोड़कर और श्रान्तताको  
 धारण कर अनेक राजाओंके साथ सुप्रतिष्ठ नामके मुनिगजके समीप दीक्षा धारण की । उन्होंने संयम धारणकर अंत  
 में संन्यास धारण किया और कर्मोंको नष्टकर मोक्षपद प्राप्त किया ॥ २१३-२१४ ॥ इधर समुद्रविजय पृथ्वीका  
 पालन करने लगे उनके राज्यमें सब वर्णाश्रमके लोग धर्मकार्यमें अपनी इच्छानुसार यथायोग्य रीतिसे सुखपूर्वक ग्रह  
 ति करते थे ॥ २१५ ॥ महाराज समुद्रविजयने दिक्पालोंके समान आठों भाइयोंमें अपना राज्य बांट दिया था और  
 वे स्वयं सबके साथ सब तरहके सुख देने वाले सब राज्यका अनभव करते थे ॥ २१६ ॥ इस तरह पुण्य कर्मके उदय



बगिचपते ॥ १८४ ॥ धनादिदेवपालाहौ देवराजौ जिनादिकौ । अहंते हारदासांतौ त्रिनयन सप्तमः ॥ १८५ ॥ प्रियमित्रोद्यो धर्मरुचिबारायोऽ  
भवत्सुत । प्रियदर्शना च ज्येष्ठा च जाते बुद्धितरो ततः ॥ १८६ ॥ दृष्टः सुदर्शनाने मंदिरस्थविरासिके । कदाचिषुवगिगीश्वर पुत्रादिपरिवारितौ ॥  
१८७ ॥ सक्रियं धर्ममाकथ्य निर्विण्य स महीपतिः । दत्त्वा दृढरथायामिषेकपूर्तं स्वकं पदं ॥ १८८ ॥ आदये संयमं पञ्चाब्देष्ट्री च नवभिः सुतैः । ततो  
नदयथा पुत्रिकाद्वेनागमत्तपः ॥ १८९ ॥ सुदर्शनार्थिकाभ्यर्णे तूर्गेनिर्णीतसेच्यति । क्रमाद्वाराणसीबाण केवलज्ञानिनोभवन् ॥ १९० ॥ बने प्रियंगु-  
खडाह्वये मनोहरतमद्वये । शुद्धमेवरयो ध्यात्वा धनदत्तश्च ते त्रयः ॥ १९१ ॥ धर्मोद्युतमयीं दृष्टिमुद्गरितो निरंतरं । जीवितो तटे सिद्धिबिलाया  
सिद्धिमवब्रजन् ॥ १९२ ॥ पुरे राजगृहे पूज्याब्जिजगज्जननायकैः । धनदेवादिक्तास्त्रिभेवान्येषुः शिलातटे ॥ १९३ ॥ नवापि विविधा सम्यस्यंतो वीक्ष्य  
और नौवां धर्मरुचि ये नौ पुत्र हुए थे । इसीतरह प्रियदर्शना और ज्येष्ठा नामकी दो पुत्रियां हुई थी ॥ १८४-१८६ ॥  
किसी एक समय सुदर्शन नामके उद्यानमें मंदिरस्थविर नामके सुनिराज पवारें । राजा मेवरथ और धनदत्त वैश्य भी  
अपने पुत्रादि सब परिवारके साथ उनकी बंदना करनेके लिये गये ॥ १८७ ॥ राजा मेवरथ कियापूर्वक धर्मका स्व-  
रूप सुनकर विरक्त हुआ और अभियेकपूर्वक दृढरथको राज्य देकर उमरं, स्वयं संयम धारण कर लिया । तदनंतर श्रेष्ठ  
धनदत्तने भी अपने नौ पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण की तथा नंदयज्ञाने भी संसारका यथार्थ स्वरूप समझकर सुदर्शना  
अर्जिकाके समीप दोनों पुत्रियोंके साथ साथ तपश्चरण धारण किया ॥ १८८-१८९ ॥ अनुक्रमसे विहार करते हुए वे  
सब बनारस नगरके बाहर प्रियंगुखंड नामके बनमें मनोहर वृक्षोंके नीचे जा विराजमान हुए वहांपर गुह मंदिरस्थ-  
विर मेवरथ और धनदत्तने शुक्लध्यान धारणकर केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १९०-१९१ ॥ तदनंतर वे निरंतर धर्मा-  
भुतकी बातें करने लगे और आयु पूर्ण होनेपर तीनों लोकोंके इष्टोंके द्वारा पूज्य होकर राजगृह नगरके समीप सिद्ध-  
शिलासे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए । किसी दूसरे दिन धनदेव आदि नौ भाई दोनों बहिनें और नंदयज्ञाने उसी शि-  
लापर विधिपूर्वक संन्यास धारण किया । उन सबको देखकर नंदयज्ञाने निदान किया कि जिसप्रकार ये सब हममंथमें  
मेरे पुत्र हुए हैं उसीप्रकार परमंथमें भी मेरे ये ही पुत्र होंगे । इसतरह निदानकर उसने संन्यास धारण किया । तदन-  
ंतर प्राण छोड़कर वे सब तेरहवें आनत स्वर्गके शांतकर विमानमें देव उत्पन्न हुए । वहांपर वीस सागरतक उन्होंने  
दिव्य सुखोंका अनुभव किया । फिर वहांसे स्थुत होकर नंदयज्ञाका जीव तो तेरी सुभद्रा रानी हुई है तथा धन देव  
आदि नौ भाई प्रसिद्ध पौरुषको धारण करनेवाले समुद्रविजय आदि नौ पुत्र हुए हैं और प्रियदर्शना तथा ज्येष्ठा दोनों

त्वामिव मामपि । इत्यबादीदं वास्तु भव्योयमिति निष्पाद्य ॥ १७५ ॥ दिवसेः सहस्रासेन कैथिक्कितितन्मनाः । भयाद्वयन्युनिस्तेन स्युमं शुभसाधनं ॥  
१७६ ॥ बुध्यादिकर्दयस्तस्य जाता सवत्सरादवः । श्रीगतमनामा गुरुस्थानमवाप सः ॥ १७७ ॥ जीवितांते गुरुस्तस्य मध्यप्रवेयकोद्धरे । विमाने  
सुविशालाख्ये समुत्पन्नः सुरोत्तम ॥ १७८ ॥ स श्रीगौतमनामापि विहिताराधनाविधिः । सम्यक् संन्यस्य तत्रैव संप्रापदहर्निव्रता ॥ १७९ ॥  
तत्र दिव्य सुलं भुक्त्वा तस्माद्विप्रचरो मुनिः । अर्वाविषतिबाधायुक्तिकां च्युतो भवान् ॥ १८० ॥ अजन्मबद्धदृष्टाक्ष्य इति तद्भावयन् सुखी ।  
तत्रो मेघरघो स्तत्रो मेघरघो पुनर्जिन ॥ १८१ ॥ सर्वभाषास्त्वभावेन ध्वनिना निजगाद स । जम्बूद्विपे द्वीपे विपये मगलाह्वये ॥ १८२ ॥ नृपो मेघरघो  
स्वपुत्रमवधवध सोवयुष्क पुनर्जिन ॥ १८३ ॥ सर्वभाषास्त्वभावेन ध्वनिना निजगाद स । पदबधं स्वपुण्येन यौवराज्यस्य सोविभ । तत्र नंदयशोनाम्न्यां धनदत्त  
नामा पुरे भद्रिलनामनि । सुमद्रायां सुतस्तस्य रत्नांतद्वदसङ्कटः ॥ १८४ ॥ पदबधं स्वपुण्येन यौवराज्यस्य सोविभ । तत्र नंदयशोनाम्न्यां धनदत्त  
सुद्रसेन नामके महा मुनिराजके पीछे पीछे गया । वैश्रवण नामके शेठने उनका पहगाहन किया । शेठने उस ब्राह्मणको  
मी कंठतक भोजन कराया ॥ १७३-१७४ ॥ भोजनकर वह ब्राह्मण मुनिराजके पीछे पीछे उनके आश्रममें गया और  
उन मुनिराजसे कहने लगा कि हे स्वामी आप अपने समान मुझे मी चना लीजिये मुनिराजने पहिले तो यह निश्चय  
किया कि यह वास्तवमें भव्य है, फिर कुछ दिन तक साथ रखकर उसका मन देख्ना और फिर उसे शांत परिणामों-  
का कारण ऐसा संयम धारण कराया ॥ ७५-७६ ॥ एक वर्षके बाद ही बुद्धि आदि अनेक कदियां उसे प्राप्त होगई  
और श्री गौतम नामके साथ साथ ही वह अपने गुरुके स्थानपर जा पहुंचा अर्थात् उनके समान होगया ॥ ७७ ॥  
आयुके अंतमें उसके गुरु मध्यम प्रवेयकके सुविशाल नामके ऊपरके विमानमें अहर्निद्र उत्पन्न हुए और भी गौतम  
मुनिराज मी विधि पूर्वक चारों आराधनाओंका आराधन कर और अच्छी तरह संन्यास धारण कर उसी मध्यम प्रवे-  
यकके सुविशाल नामके विमानमें अहर्निद्र हुए ॥ ७८-७९ ॥ अट्टाहस सागर तक वहांके दिव्य सुखोंका अनुभव कर  
वह ब्राह्मण मुनिका जीव वहांसे च्युत हुआ और अंधकदृष्टि नामका तू राजा हुआ है । इस तरह अपने भवोंका अनु-  
भव करता हुआ वह बुद्धिमान् अंधकदृष्टि फिर भगवानसे अपने पुत्रोंके भवोंका संबंध पूछने लगा ॥ ८०-८१ ॥ वे  
भगवान मी सब भाषाओं में परिणत होनेवाली अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके मंगला देशके  
भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरघ राक्ष्य करता था उसकी सुभद्रारानीसे ददरक्ष नामका पुत्र हुआ था ॥ ८२-८३ ॥  
अपने पुत्र कर्मके उदयसे ददरक्षके यौवराज्यका पद नांवा गया था । उसी नगरमें एक धनदक्ष वैश्य रहता था उस  
की नंदयशो कीसे धनपाल, देवपाल, जिनदेव, अर्हदक्ष, अर्हारास, सातवां जिनदक्ष, आठवां त्रियमित्र

मलपारी परिमष्टोषधियविजृम्भणः । जिह्वाविक्रयस्यैवेच्छन् दहचारीव भृषति ॥ १६९ ॥ तमस्तप्तप्रजतानां रसमीदमवेक्षति । वेपथुस्य स्फुटीकृतं  
मिहस्नानां विनिर्मित ॥ १६८ ॥ दधन्यासमसीदुर्णमर्कमीरया तमधयः । नररूपधरो वासि सुपुण्यः पापभाक्कचित् ॥ १६९ ॥ आकट्ठर्णहारोपि  
नयनाभ्यामवसृजान् । परिवीतकटीजीर्णछिद्रिताशुमर्कपटैः ॥ १७० ॥ ग्रणवैगुण्यसंसर्कमक्षिकोपैरितस्ततः ॥ कुर्यात्कनकवदनेष्टयो मुक्तैरनगादिभिः ॥  
१७१ ॥ पैरबालकसंघातैरनुयातैरनुक्षणं । उगलादिप्रहारेण ताव्यमानः प्रकोपवान् ॥ १७२ ॥ अनुयाजसुतवैव दुल्लः कलमवीगसत् । कदाचि-  
न्नाच्छित्त रसकैः ससान 'दो दो' ऐसे बचनोसे वह सदा लोलुपी रहता था और वह पापी सिधासे कमी तप्त नहीं हो-  
ता था जिसप्रकार पर्वकें दिनोंमें बलि (श्राद्धकें दिनोंमें काशोंकें लिये डाला हुआ अन्न) दूढ़वा हुआ कौआ इधर  
उधर फिरता है उसी तरह वह सब ओर मील मांगता हुआ फिरता था । मुनियोंकें समान वह ठंडी गर्मीकें दुल सहता  
था, उसका शरीर सदा मैला रहता था और उसकी सब इद्रियां सदा शिथिल रहती थीं । जिसप्रकार खानेकी इच्छा  
करनेवाला राजा अधिक दंड देता है उसीप्रकार वह खानेकी इच्छा करता हुआ वह सदा दंड लिये फिरता था ॥ १६५-  
१६७ ॥ सातवें नरकमें उत्पन्न हुए नारकियोंका ऐसा ही रूप होता है इसी बातको यहांकें लोगोंपर प्रगट करनेकें लिये  
मानों नाम कर्म रूपी ब्रह्माने उसका शरीर बनाया जान पड़ता था ॥ १६८ ॥ उसका वर्ण ( रंग ) काले उड़दकें स-  
मान था और ऐसा जान पड़ता था मानों सूर्यकें डरसे पापी और अतिशय निंदा करने योग्य अधकारकें समूहने ही  
अपना मनुष्यका रूप धारण कर लिया है कंठतक पूर्ण भोजन कर लेनेपर भी वह नेत्रोंसे कमी तप्त नहीं देखता था  
और उसकी कमरपर केवल फटी पुरानी तथा बहुत बुरी एक लंगोटी रहती थी ॥ १६९-१७० ॥ उसके शरीर पर  
बहुतसे घाव हो गये थे उनकी बड़ी दुर्गंध आती थी तथा मिनमिनाती हुई अनेक मक्खियां मुँदकें समान उसे सदा  
घेरे रहती थीं और वे कमी वहाँसे हटती नहीं थीं इससे उसे बड़ा ही क्रोध आया करता था ॥ १७१ ॥ नगरकें ल-  
डकोंका समूह सदा उसके पीछे लगा रहता था और ककर पत्थरोंकी वर्षाकर सदा उसकी ताड़ना किया करता था  
इससे भी उसे सदा क्रोध आया करता था ॥ १७२ ॥ इसतरह दौड़ता फिरता वह अनेक दुःखोंसे अपना समय व्य-  
तीत करता था । किसी एक समयकाल लब्धि प्राप्त हो जानेसे वह गौतम ब्राह्मण चर्योंकें लिये विहार करते हुए स-

महा०

पुराण

७६१

तलवरो द्विज । श्वेनकाश्यो भ्रमन् दृष्ट्वा रात्रौ स्वां हन्यह नहि ॥ ५४ ॥ द्विजाख्याचारिण याहि नगरदृश्यते यदि पुनः । कृतातवक्त्रं त्वं नेष्यसे दुःखिणो मया ॥ १५५ ॥ इत्यतर्जयत्सोऽपि कालकाश्येन पापिना । सममुक्तामुखीव्याधनिवासपतिनिगमत् ॥ १५६ ॥ स कदाचिदयोध्यायां गोकुलापहृतौ द्विजः । श्वेनकैर्न हृतोऽयसीन्महापापादधोगति ॥ १५७ ॥ ततश्च्युत्वा महाभक्त्यो हरिर्दिविवोरगः । शार्दूलो पक्षिणमीशो व्यालव्याधश्च समवन् । प्रविश्याद्यो गती सर्वाः कृच्छ्रात्ताभ्यो विनिर्गत । त्रसस्थावस्यावेत् चिरं कालं परिभ्रमन् ॥ १५८ ॥ जवूलक्षिते द्वीपे, भरते कुरुजागले । हस्तिनाख्ये पुरं पाति धराधीशे धनजये ॥ १५९ ॥ युतो गौतमगोत्रस्य सबभूव द्विजात्मज । कापिष्ठस्य निःश्रीकः सोनुर्व्याध गोतमः ॥ १६० ॥ तत्समुत्पत्ति-मात्रेण तच्छेषमभवत्कुल । अलव्याध-कृशीभूतजठर प्रगटास्थिकः ॥ १६१ ॥ त्रसावनन्दुष्कायो यूक्ताचित्तशिरोरह । शयानश्चैव सर्वैश्चाजितो यत्र तत्र वा ॥ १६२ ॥ कराग्रकर्परेणोपलक्ष्यमाणोऽनयायिना । सुमित्रैर्नैव सर्वत्र शरीरस्थितिर्हेतुना ॥ १६३ ॥ वाञ्छितेन रसेनैव देहीति वचसा तदा । देवा तो फिर मैं तुझे मार ही दूंगा ॥ १५४-१५५ ॥ इसतरह तर्जना करनेपर वह पापी उस शहरसे निकल गया और उलकामुखी पर रहने वाले मीलोंके स्वामी कालिकसे जा मिला ॥ १५६ ॥ किसी एक समय उसी ब्राह्मणने अयोध्यामें आकर बहुतसी गायें जुगई थीं इसलिये वह श्वेनक नामके कौतवालेके द्वारा मारा गया और महा पाप करनेके कारण नरकमें नारकी हुआ ॥ १५७ ॥ वहाँसे निकलकर महामत्स्य हुआ फिर नरकमें गया, वहाँसे आकर सिंह हुआ, मरकर नरक गया, वहाँसे आकर दृष्टिविष ( जिसकी आखोंमें ही विष हो ) नामका सर्प हुआ । फिर नरकके दुख भोग कर सिंह हुआ और फिर नरकमें पहुँचा । वहाँसे आकर गरुडपक्षी हुआ फिर नरक गया, वहाँसे निकलकर सर्प हुआ फिर नरकमें जाकर मील हुआ इसतरह परिभ्रमण कर उस रुद्रदत्तके जीवने त्रस और स्यावर योनियोंमें बहुत दिनतक परिभ्रमण किया ॥ १५७-१५८ ॥ अंतमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा धनजय राज्य करता था उसी नगरमें गौतम गोत्रका कपिष्ठ नामका ब्राह्मण रहता था उसी ब्राह्मणके उसकी अनुवरी ब्राह्मणीसे वह रुद्रदत्तका जीव गौतम नामका महा दरिद्र पुत्र हुआ ॥ १६०-१६१ ॥ उत्पन्न होते ही उसका सब कुल नष्ट होगया था, उसे कमी खानेकी नहीं मिलता था, पेट उसका सूख गया था, हडिडया निकल रही थीं, केवल न सोसे घिरा हुआ शरीर बहुत ही बुग दिखता था, उसके शिरके बाल जूँओंसे भरे थे और जहाँ कहीं वह जाता था वहींपर सब लोग उसे ललकार और फटकार बतलाते थे ॥ १६२-१६३ ॥ वह अपना शरीर रखनेके लिये अ-र्थात् पेट भरनेके लिये कमी अलग न होनेवाले श्रेष्ठ मित्रके समान हाथमें सदा खण्ड लिए फिरता था ॥ १६४ ॥



मिमयेऽसौ विधाय ज्योतिषा गणे । देवः सुदर्शनी नात्रा भूत्वा प्राजन्मवेरत ॥ १४३ ॥ मयायमकरोदीदृगिति तद्वाक्यमादरत् । भुत्वा सुरार्णो  
सुकवेरः सद्धर्मप्रणीत् ॥ १४४ ॥ अथातौषकदृष्टिश्च भुत्वा सुकल्यन्करो । स्वपूर्वभ्रमवधमनुच्छिन्नपुगव ॥ १४५ ॥ वीतरागोपि सोप्याह तत्पुष्ट-  
शिष्टागुण । निनिमित्तहिताख्यान नाम तेषु निसर्गज ॥ १४६ ॥ द्वीपेनैव विनोतायां नरैर्दोऽनतवीर्यवारु । सुरैर्दत्तस्तत्रैव वैश्यो वेश्रवणोपमः ॥  
पात्रदानेन सशील- सोपवासकः ॥ १४९ ॥ धर्मशील इति ख्याति स समापापपापक । गन्तु वारिपथ वच्छिन्नन्येधुवर्णिजावरः । सहितः  
समावज्यं धनमागतुक. परं । जिनपूजाव्यायार्थं द्वादशाब्दनिवधन ॥ १५१ ॥ मित्रस्य रुद्रतस्य ब्राह्मणस्य करे न्यधात् । अनेन जिनपूजादि कुर्वह  
वा त्वमित्यसौ ॥ १५२ ॥ तस्मिन् गते स विप्रोपि लीयूतव्यसनादिभि । घन कतिपर्यरेव दिनेष्वयमनीनयत् ॥ १५३ ॥ तत्तथायादिदुष्कर्मसक  
पहिले भवोंका संबंध पूछा ॥ १४५ ॥ शिष्ट वचन ही जिनका मुख्य गुण है ऐसे वे वीतराग भगवान मी उनके प्रश्न हे  
अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि विना किसी कारणके हितोपदेश देना उनका स्वाभाविक गुण है ॥ १४६ ॥  
वे कहनेलगे कि इसी जब्द्वीपके अयोध्या नगरमें राजा अनंतवीर्य राज्य करता था । उसी नगरमें कुवेरके समान  
धनवान् एक सुरैर्दत्त नामका श्रेष्ठ रहता था ॥ १४७ ॥ वह श्रेष्ठ प्रतिदिन दश दीनारसे भगवान अरहत देवकी पूजा  
करता था तथा अष्टमीके दिन वीम दीनारसे, अमावस्यके दिन चालीस दीनारसे, और चतुर्दशीके दिन अस्सी दीनारसे  
भगवानकी पूजा करता था । वह इस तरह खर्च करता था, मदा पात्रदान देता था, शील पालन करता था और  
अनेक उपवासादि करता था ॥ १४८-१४९ ॥ इन्हीं सब कारणोंसे उस पाप रहित श्रेष्ठने धर्मशीलकी उपाधि पाई  
थी । किसी एक दिन उस वैश्यवरने समुद्रमार्गमे जाकर घन कमानेकी इच्छा प्रगट की उसने बाह वर्प तक भगवानकी पूजा करके लौट आ-  
नेका विचार किया इसलिये उसने बारह वर्ष तक भगवानकी पूजा करनेके लिये अपने मित्र रुद्रदत्त ब्राह्मणके हाथ  
धन सौंप दिया और ममज्ञा दिया कि इस धनसे बाजार इस तरह भगवानकी पूजा करते रहना । क्योंकि मुझमें  
तुझमें कुछ अंतर नहीं है ॥ १५०-१५२ ॥ परंतु वैश्यके चले जानेपर उस ब्राह्मणने थोड़े ही दिनोंमें जूआ खेलना  
खी सेवन करना आदि व्यमर्शोंके द्वारा सब धन खर्च कर दिया ॥ १५३ ॥ तब फिर वह चोरी आदि बुरे कर्म करनेमें  
लग गया । किसी एक दिन अयेमक नामके कोतवालने घूमते हुए रात्रिमें उसे देख लिया और कहा कि तू ब्रा-  
ह्मण है इसलिये मैं तुझे मारना नहीं चाहता, तू मेरे सहरसे निकल जा यदि ऐसे नीच कर्म करनेवाला तू फिर दिखाई

उद्यमस्य ऋणिकुत्रै तत्रदेशे निजं धन । अनिरीक्ष्य मृतौ हत्वा श्रद्धधानौ परस्परं ॥ १३२ ॥ बद्धबाहुः क्रोधलोभाभ्यामायं नरकमीयतु । तत्र दुःख  
विदं भुक्त्वा ततो विध्याद्रिकदरे ॥ १३३ ॥ जातौ मेया पुनस्तत्राप्यन्यो यवकांरिणौ । गोकुले कृषभा जातौ गगातटनिवासिनि ॥ १३४ ॥ तत्र  
जन्मांतरद्वेष्टाकृत्युद्धां गतासुतौ । सम्मेदपर्वते जातौ वानरौ वा नरौ धिया ॥ १३५ ॥ शिलासलिलहेतोस्तौ कलहं सक्तुः सपथेकः  
परं कंठगतासुकः ॥ १३६ ॥ सुरदेवदिगुर्वतचारणाभ्यां समुत्सुकः । श्रुत्वा पञ्चनमस्कारं धर्मश्रुतिपुरःसरं ॥ १३७ ॥ सौधर्मकत्वे वित्रागदाह्यो  
देवोजनिष्ठः स । ततो निर्गल्य जन्वादिद्वीपे भरतमप्यगे ॥ ३८ ॥ सुरम्यविषये पोदनेशः कुरित्यतभूतैः । सुलक्षणायां पुत्रोभूत्सुप्रतिष्ठो बरिष्ठधीः ॥  
१३९ ॥ कदाचित्प्राङ्मार्गे गिरावसितनामनि । युद्धं मर्दयौवीक्ष्य स्थुतप्रागजन्मचेष्टितं ॥ १४० ॥ सुधर्माचार्यमासाद्य दीक्षित्वाऽभववीक्ष्य । सूरदत्त  
वरः सोहृदस्तोयजुजो भवे ॥ १४१ ॥ आत्माते सिधुन्नीरस्यमृगायणतपस्विनः । विशालायाश्च तोकभद्रोत्तमाख्य कुदर्शनात् ॥ १४२ ॥ तपः पचा-

तक वहांसे दुःख भोग कर निकले और विध्याचल पर्वतकी गुफामें दोनों ही मेंढा हुए । वहां पर भी वे दोनों आप-  
समें लड कर मरे और गंगानदीके किनारे गाथोंके समूहमें दोनों ही सांड हुए ॥ १३२-१३४ ॥ जन्मांतरके द्वेषसे  
वहां भी वे परस्पर युद्ध कर मरे और सम्मेद पर्वत पर बुद्धिसे मनुष्योंके समान बंदर हुए ॥ १३५ ॥ वहां पर पत्थरसे  
निकलते हुए पानीके लिये दोनों ही लड़ने लगे । उनमेंसे एक तो मर गया और दूसरा कठगत प्राण होगया ॥ १३६ ॥  
उसी समय सुरगुरु और देवगुरु दो धारण मुनि वहां आ पहुंचे उनसे उसने बड़ी उत्कंठासे पंचनमस्कार मंत्र सुना  
और इसतरह धर्मश्रवणपूर्वक मरकर सौधर्म स्वर्गमें चित्रांगद नामका देव हुआ । वहांसे निकलकर जंबूद्वीपके भरत-  
क्षेत्रमें सुरम्भ देशके पोदनापुर नगरके राजा सुस्थित गनी सुलक्षणाके उत्तम बुद्धिवाला सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ ॥  
१३७-१३९ ॥ किसी एक समय वर्षा ऋतुके प्रारंभमें अवसित नामके पर्वतपर उसने दो बंदरोंका युद्ध देखा उसे दे-  
खकर उसे पूर्व जन्मका स्मरण हो आया और सुधर्माचार्यके निकट जाकर उसने दीक्षा धारण कर ली । वही सुरदत्तका  
जीव मैं हूं । मेरा छोटा भाई सुदत्त संसारमें परिभ्रमण कर सिंधु नदीके किनारे मृगायण नामके तपस्वीके उसकी वि-  
आला स्त्री से गौतम नामका पुत्र हुआ । मिथ्यादर्शनके प्रभावसे पंचादि तपश्चरण कर सुदर्शन नामका ज्योतिषी देव  
हुआ है । पूर्व जन्मके वैरसे ही इसने सुक्ष्मपर ऐसा उपसर्ग किया है । सुदर्शन नामके उस ज्योतिषी देवने उन सुप्रतिष्ठ  
सर्वज्ञदेवके वचन बड़े आदरसे सुने और अपना सब तरहका वैर विरोध छोड़कर उसने उत्तम जैन धर्म स्वीकार किया  
॥ १४०-१४४ ॥ अधानंतर-अंशकहृदिने ये सब बाहें सुनकर और अपने दोनों हाथ जोड़कर उन भगवानसे अपने

स्वयमादाय तपोस्तुतैः सयाचन् । गतेषु द्वादशाब्देषु पर्वते गंगमादत्ते ॥ १२२ ॥ प्रतिमायोगमालम्ब्य उपतिष्ठन् सिद्धतः । देवः कुदशो नाम ककारोपकृतं  
 कृपा ॥ १२३ ॥ उपसर्गं विस्मयात् सोढ्वाशेषपरिवहन् । च्यानेनाह्वय्य कृतीनि प्रादुरासीत् केवली ॥ १२४ ॥ देवैश्चकृदृष्टिः सह प्रणयमागतः । अपृच्छ-  
 देव देवाय देवस्ते केन हेतुना । महोपसर्गं पृथस्य कृतवानिति विस्मयात् । तदुक्त्यवसितौ व्यक्तं जिनेन्द्रोद्योवयववीत् ॥ १२६ ॥ द्विपेक्षित्वा मारते क्षेत्रे  
 कलिगविषये पुरे । काष्ठां बभिक्षुतः सूरदत्तोन्मथ्य सुदत्तवाक् ॥ १२७ ॥ लकाद्वीपादिषु त्वैर समावर्त्य निज धनं । पुरो न्यक्षिपतां गृहं प्रवेशो  
 शुष्कमीलुका ॥ १२८ ॥ मूलधुपविशेषस्य सामिगानमधोम्यदा । कथिम्यप्रयोगार्थं हुने तपोमयभूलां ॥ १२९ ॥ मूलानुक्तस्य संयुक्तं विलोक्य  
 बहु तद्वनं । किमनेन मुपा मूलखननेनात्पहेतुना ॥ १३० ॥ सुप्रभूतमिदं तन्म धनं द्वाविपृच्छति । सिद्धवात्यामृतेभ्योस्त्रियादाय कृतस्ततः ॥ १३१ ॥  
 धारण कर विराजमान हुए । उस समय सुदर्शन नामके किसी देवने कोधमें आकर कुछ उपद्रव किया ॥ १२२-१२३ ॥  
 परंतु वे मुनिराज उस उपसर्गको जीत कर तथा सब परीषद्को सहनकर और शुक्लध्यानके द्वारा धातिया कर्मोंको  
 नाश कर केवलज्ञानी हुए ॥ १२४ ॥ उस समय सब देवोंके साथ पूछा कि हे देव इस देवने किस कारणसे आप ऐसे पूथ्य  
 आए और उन्होने उन्हीं भगवानसे बड़े आश्चर्यके साथ पूछा कि हे देव इस देवने किस कारणसे आप ऐसे पूथ्य  
 पुरुषोंको उपद्रव किया । उनके इस प्रकार कह चुकने पर श्रीजिनेन्द्र देव कहने लगे ॥ १२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके  
 भगवत्क्षेत्रमें कलिंग देशके कांचीपुर नगरमें दो वैश्यपुत्र रहते थे एकका नाम सुदत्त था और दूसरेका नाम सुदत्त  
 था ॥ २७ ॥ उन दोनोंने लंका आदि अनेक द्वीपोंमें जाकर धन कमाया था । जब लौट कर वे अपने नगरमें आए  
 तो उस धन पर कर लग जानेके डरसे उन्होंने वह धन शहरके बाहर ही किसी वृक्षके नीचे गाढ़ दिया था और  
 उसी वृक्षके नीचे पहिचाननेकेलिये कुछ चिन्ह कर दिया था । किसी दूसरे दिन कोई अन्य पुरुष मद्य बनानेके  
 लिये वृक्षोंकी जड़ोंको ढूँढता हुआ उसी वृक्षकी जड़ खोदने लगा और वहाँ पर बहुतसा धन देखकर विचार करने  
 लगा कि थोड़ेसे पैसे देनेवाली इन जड़ोंके उखाड़नेसे क्या लाभ है मुझे तो अब यह बहुतसा धन मिल गया है इससे  
 मेरा सब दारिद्र्य दूर हो जायगा और मैं अपनी उमर तक इस धनसे भोगोपभोगोंका सेवन करूँगा यही समझकर  
 वह उस धनको लेकर चला गया ॥ १२८-१३१ ॥ उसके बाद वे दोनों वैश्यपुत्र आए और उस जगह अपना धन न  
 देखकर परस्पर लड़ने लगे । उन दोनोंको एक दूसरे पर धन ले जानेका विश्वास हो गया था इसलिये परस्पर एक  
 दूसरेको मारते हुए दोनों ही मर गये और क्रोध लोभसे नरकागुह्यं चंद्र कर पहिले नरकमें जा पहुंचे । बहुत दिन

पत्रकेण सहाभक्त । कुल्या परिजनः कालिषाः प्रवाहे मुनीच त ॥ १११ ॥ चपासु ॥ ११२ ॥ पर्यन्त स्वचैत्यै राधायै तुक स्यादिति भाववित् । दत्ता सकृद्विलोक्यैन राधा कर्णपरिस्पृष्ट ॥ ११३ ॥ अस्तु कर्णाभिधानेने मिति सादरसम्बन्धित । पांडो कुल्या च मद्रुला च पाणिपट्टणपट्टेक ॥ ११४ ॥ प्राजापत्येन सबधो विवाहेनाभवपुनः । कुल्यामजनि धर्मो धर्मपुत्रो धराधिप ॥ ११५ ॥ भीमसेनोऽनु पार्थश्च त्रयो वर्गत्रयोपमाः । मद्रुला च नकुलो ज्येष्ठः सहदेवस्ततोन्वभूत ॥ ११६ ॥ धृतराष्ट्राय गाधारी रतः दुर्धनोऽजनि । तयोर्दुःशासन पश्चादथ दुर्धर्षणस्ततः ॥ ११७ ॥ दुर्मपणाथाः सर्वेपि शतमेकं महेजस । एव सुखेन सर्वेषां कालो गच्छति लील्या ॥ ११८ ॥ अन्येणः सुप्रतिष्ठाहयो मुनीन्द्रो गन्धमादने । शिरौ सन्निहितः शूरवीराह्यो वदितु निजं ॥ ११९ ॥ पुत्रपौत्रादिभिः सार्द्धं गत्वाभ्यर्च्योभिनुत्य त । श्रुत्वा धर्मं तदुद्दिष्टं स सर्वेणपरायण ॥ १२० ॥ कृत्वास्मिन्नेव च दत्ता राज्यमथकदृष्टये । योगयोग्यमिति सयोग्यं यौवराज्यं कनीयसे ॥ १२१ ॥ समय

उदय होते हुये सूर्यके समान बालक था उस बालकको देखकर उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ । अपनी सब सेनाके साथ उसे देखकर विचार किया कि रानी राधाके लिये यह पुत्र हुआ । यही सोचकर उसने वह पुत्र अपनी रानी राधाको दिया । राधाने देखा कि वह पुत्र अपना कान पकड़े हुए है इसलिये उसने बड़े आदर और प्रेमके साथ कर्ण उसका नाम रखवा । वह सब काम हो जानेके बाद कुंती और मद्रिकीके साथ पांडुका विवाह हुआ ॥ ११२-११४ ॥ तभीसे प्राञ्चापस्य विवाहका संबंध प्रचलित हुआ है कुंतीके धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) नामका धर्मत्मा राजा उत्पन्न हुआ था तथा उसके बाद भीमसेन और अर्जुन हुए । इस तरह उस कुंतीके तीनों बर्गके समान तीन पुत्र हुए । इसी तरह मद्रिकीके बड़ा पुत्र नकुल हुआ और फिर उसके बाद सहदेव हुआ ॥ ११५-११६ ॥ धृतराष्ट्रको गांधारी दी गई थी इसलिये उन दोनोंके दुर्योधन, दुःशासन, दुर्दर्येण और दुर्मर्षण आदि प्रतापशाली सौ पुत्र हुए । इस प्रकार उन सबका बड़े सुखसे लीला पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था ॥ ११७-११८ ॥ किसी दूसरे दिन गन्धमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ नामके मुनि-राज आ विराजमान हुए थे इसलिये महाराज शूरवीर अपने पुत्र पौत्रादिके साथ उनकी वंदना करनेके लिये निकला । वहाँ जाकर उनकी पूजा की नमस्कार किया उनका कहा हुआ धर्म भवण किया तथा संसारके दुःखोंसे छुटकार और विरक्त होकर अंधकदृष्टिका राज्याभिषेक कर उसे राज्य समर्पण किया । इसी तरह छोटें नरवृद्धिको योग्य समझकर उसे यौवराज्यपद दिया ॥ ११९-१२१ ॥ वह सब काम कर उन्होंने स्वयं संयम धारण किया और वे जोर तपश्चरण करने लगे । इसके बाद बारह वर्ष बीते थे ही सुप्रतिष्ठ मुनिराज फिर उसी गन्धमादन पर्वत पर प्रतिभा योग

तनवाः । उभयदेवमहत्पुण्येनांतः पुण्यवृत्ताः ॥ १०० ॥ गांधारी न मुना ग्राहुरभवनं शुभदायिन । अप कौरवगुह्यस्य दारिद्र्यं न ह्यनुरे  
 शिनः ॥ १०१ ॥ शक्तिनाममहीशस्य मातृकयैश्च परास्त्र । तस्य मातृकुलोत्पन्नराजपुत्र्या सुतोभवत् ॥ १०२ ॥ सत्यवत्या सुधीर्व्यास पुनर्व्यास-  
 १०४ ॥ विलोम्य पांडुरगालो गन्ते ततगमग्रहीत् । स्पृत्वा खग विरूढस्य मुद्रिका तामितस्तत् ॥ १०५ ॥ अन्विच्छत विलोक्याह पांडुः किं सृज्यते  
 त्वया । इति तद्वचनं श्रुत्वा विद्याभूषणम मुद्रिका ॥ १०६ ॥ विनष्टेत्युदत्तस्य पांडुश्चतामदशयन् । पुन किमनया कृत्यमिति तस्यानुयोजनात् ॥ १०७ ॥  
 भद्रया कामरूपस्य सायनीत्यब्रवीत्खग । यथैव कानिचिद् भ्रातृदिनान्येषास्तु मत्करे ॥ १०८ ॥ प्रभवमस्या पद्माम्नीत्यर्थतस्तेन सोप्यदात् । पांडुश्च  
 तत्कृताव्ययनिरूपेण सगम ॥ १०९ ॥ कुला सहकृतोत्पन्नस्तत्र कर्णः सुतः । ततः परैरविरहितं मज्जास्य सकुडल ॥ ११० ॥ स राजकन्य लेख्य-  
 व्यासकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था इसलिये व्यासके उस सुभद्रासे धृतराष्ट्र पांडु और विदुर ये तीन पुत्र हुए थे ॥  
 १००-१०३ ॥ अथानंतर किसी एक समय वज्रमाली नामका विद्याधर हस्तनापुरके वनमें क्रीडा करने आया था और  
 वह अपनी अंगूठी भूलकर चला गया था ॥ १०४ ॥ राजा पांडु भी उस समय क्रीडा करनेके लिये वनमें गये थे और  
 वह अंगूठी देखकर उन्हें उठाने लगा कि मेरी अंगूठी गिर गई है उसे ही ढूँढता फिरता हूँ इसके उत्तरमें पांडुने यह बात  
 सुनकर वह विद्याधर कहने लगा उसे ढूँढता हुआ देखकर पांडुने कहा कि आप क्या बूढ़ रहे हैं ? पांडुकी यह बात  
 गूठी उसे दिखला दी । इसके बाद पांडुने उस विद्याधरसे पूछा कि इससे क्या काम निकलना है ॥ १०५-१०७ ॥  
 इसके उत्तरमें उस विद्याधरने कहा कि हे भद्र ! यह इच्छानुसार रूप बना देनेवाली है । यह सुनकर पांडुने प्रार्थनाकी  
 कि हे भाई यदि ऐसा ही है तो थोड़े दिन तक इसे मेरे हाथमें रहने दो मैं इसका प्रभाव देखना चाहता हूँ । ऐसी  
 प्रार्थना करनेपर विद्याधाने भी वह अंगूठी उसे दे दी । पांडुने उसे पहिनकर अपना अदृश्य रूप बनाया और फिर  
 प्राथे इस तरह छिपाकर उस बालकको एक सद्रूपमें रखवा उसे कुंडल पहिना दिये रत्नोंका कवच पहिना दिया तथा  
 उसका परिचायक एक लेख लिखकर रख दिया । इस तरह रखकर वह सद्रूप गगुना नदी के प्रवाहमें छोड दी ॥  
 १०८-१११ ॥ वह सद्रूप बहती बहती चंपापुरके राजा आदित्यके यहां पहुंची उसने उसे खोलकर देखा तो उसमें

मार्कण्डेयस्तु नाम्नैव इति ते तमुदाहरन् ॥ ९० ॥ एष दैवोपनीत तद्राज्य सुचिरमन्ययत् । सताने तस्य निर्यतो हरिर्हिमगिरि पर ॥ ९१ ॥ वृत्तीनो वसुगिर्याख्य परेपि बहवो गता । तदा कुशार्थविषये तद्राजावरमास्वतः ॥ ९२ ॥ अवार्यनिजशौर्येण निर्जिताशोषविक्षिय । ख्यातशौर्यपुगधीशसू-सेन-महीपते ॥ ९३ ॥ सुतस्य शूरवीरस्य धारिण्याश्च तनुद्वयौ । विख्यातौ चक्रकृष्ट्य पतिर्विजितं रादिशक्र ॥ ९४ ॥ धर्मो बाधककृष्टश्च सुमद्रायाश्च तुगवराः । समुद्रविजयोऽशोभ्यस्तत्तिमितसागर ॥ ९५ ॥ हिमवान् विजयो विद्वाननन्तो धारणाढ्य । पूरणं पुरितार्थाच्छो नवमोप्यमिनदनः ॥ ९६ ॥ बगुदेवो-तिमर्धैव दशाभूवन् शशिप्रभाः । कुन्ती मदी च सोमेवा सुते प्रादुर्बभूवुः ॥ ९७ ॥ समुद्रविजयावीना नवानां सुरतप्रदाः । शिवदेवगनु तस्य धृतीधरा स्वयंप्रभा ॥ ९८ ॥ सुनीताख्या च शीता च प्रियवाक् च प्रभावती । कालिणी सुप्रभा चेति बभूवुर्बुवोत्तमाः ॥ ९९ ॥ पद्मावत्या द्वितीयस्य कृष्ट्य

किंसी देवने स्त्रीमहित लाकर मुखे यहां आ पटका है और अबतक मैं बनमें ही ठहरा हुआ था ॥ ८८-८९ ॥ राजाकी यह बात सुनकर उन लोगोंने उसे मृकंडूका पुत्र समझकर उसका मार्कण्डेय नाम रक्खा और फिर इसी नामसे वे लोग पुकारने लगे ॥ ९० ॥ इस तरह वह मार्कण्डेय नाम धारी सिंहकेतु देवयोगसे प्राप्त हुये राज्यका बहुत दिन तक उपभोग करने लगा । उसीकी संतानमें हरिगिरि हेमगिरि और वसुगिरि आदि अनेक राजा हुए उन्हींमें कुशार्थ देशके शौर्यपुर नगरमें राजा मूरसेन हुआ था जो कि हरिवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान था और जिसने अपनी अनिवार्य शूरवीरतासे सब शत्रु जीत लिये थे उस मूरसेनके शूरवीर नामका एक पुत्र था और उसकी स्त्री का नाम धारिणी था उसके अंबककृष्टि और नरदृष्टि नामके दो पुत्र हुए थे ॥ ९१-९४ ॥ अंबक कृष्टिकी रानीका नाम सुमद्रा था उसके धर्मके समान क्षोभरहित समुद्रविजयी १ स्तिमितसागर २ हिमवान् ३ विजय ४ विद्वान् अबल ५ धारण ६ पूरण ७ पुरितार्थोच्छ ८ अभिनंदन ९ और वसुदेव १० ये चंद्रमाकी किरणोंके समान दश पुत्र हुए थे तथा इसीतरह चंद्रमाकी चंदनीके समान कुन्ती और मदी नामकी दो पुत्रियां हुई थीं ॥ ९५-९७ ॥ समुद्रविजय आदि पहिलेके नौ पुत्रोंके अनुक्रमसे शिवदेवी, धृतीधरा ( पृथ्वी ) स्वयंप्रभा, सुनीता, सीता, प्रियवाक्, प्रभावती, कालिणी और सुप्रभा ये संसारमें सबसे उत्तम स्त्रियां थीं ॥ ९८-९९ ॥ नरदृष्टिकी रानीका नाम पद्मावती था और उससे उनके उग्रसेन देवसेन और महासेन ये तीन गुणी पुत्र हुए थे तथा एक गांधारी नामकी पुत्री हुई थी, ये सब पुत्र पुत्री सुख देने वाले थे ॥ इधर हतिनापुर नगरमें कौरव वंशी राजा शक्ति गजय करता था उसकी शतकी रानीसे पारासर नामका पुत्र हुआ था उस पारासरके मत्स्य कुलमें उत्पन्न राजपुत्री रानी सत्यवतीसे बुद्धिमान् व्यास नामका पुत्र हुआ था ।

सत्ता त्रियः । अणुव्रतफलेनाश्रुत्यै सोधर्मनामनि ॥ ७९ ॥ बर्ध सूर्यप्रभो नाम वीक्ष्य चित्रांगदं तदा । शृणु मद्रवनं मद्र फलं किं तेऽजयोः सृताः ॥ ८० ॥ पापानुवचि कर्मदमयुक्त युक्तिकारिणा । संसारदुष्टदुःखामिधान दुःखफलप्रद ॥ ८१ ॥ ततो मिथुनमेतत्त्व विद्युज्वेत्यभ्यधात्सुदुः । शुक्ला तजान-  
चदकीर्तिनाममहीमुखि । विपुत्रे मरण प्राप्ते राज्यसंततिसंस्थितेः ॥ ८४ ॥ समुपयं योग्यमन्वेष्टु वारण शुभलक्षण । गंधादिभिः समभ्यर्चयामुचदम-  
नमत्रिमंडलं ॥ ८५ ॥ सोपि द्विगो गजो गत्वा वन पुण्यविपाकतः । तावुदुःसुत्य निजसंक्षमागप्य पुत्रमागमत ॥ ८६ ॥ सिंहकैतोर्विधायाभिषेक मंत्रया-  
दयस्तदा । राज्यासन समारोप्य बद्ध्वा पट स सम्मदा ॥ ८७ ॥ त्व कस्यात्रागतः कस्मादित्याहु सोमवीदिदं । प्रभजनः पिता माता मुकुटु मंडिता गुणैः  
॥ ८८ ॥ हरिवंशमलव्योमसोमोदमिह केनचित् । सुरेणनीय मुक्तः सन् सह पत्न्या वने स्थितः ॥ ८९ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुकुटुवास्तनयो यत ।  
उसे उठाकर ले चला ॥ ७८ ॥ पहिले जन्ममें अठ सुमुखका प्रिय मित्र राजा रघु अणुव्रतोंके फलसे सौधर्मस्वर्गमें सूर्य-  
प्रभ नामका उचाभ देव हुआ था वह उसी समय चित्रांगदको देखकर कहने लगा कि हे मद्र ! मेरी बात सुन इनके  
मरने पर तुझे क्या फल मिलेगा ॥ ७९-८० ॥ यह काम पापका वंश करनेवाला है युक्तिपूर्वक चलनेवालोंके लिये  
अयोग्य है और संसाररूप दुःखके दुःखरूप दुष्ट फलोंका देनेवाला है ॥ ८१ ॥ इसलिये तुझे यह जोडा छोड़ देना  
चाहिये इस प्रकार उसने बार बार कहा उसे सुन कर चित्रांगदको भी दया आगई और उसने वे दोनों छोड़ दिये ॥ ८२ ॥  
तदनंतर सूर्यप्रभ ने उन दोनोंको समझाया आश्वासन दिया और उनके होनहार सुखको जानकर उन्हें चंपापुरके वन  
में छोड़ दिया ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे चंपापुर नगरका राजा चंद्रकीर्ति उन्हीं दिनों विना संतानके मर गया था इस-  
लिये किसी शुभ लक्षणवाले हाथीको चंदन गंध आदि से पूजा कर छोड़ा था ॥ ८४-८५ ॥ वह दिव्य हाथी भी वन-  
लिये किसी शुभ लक्षणवाले हाथीको चंदन गंध आदि से पूजा कर छोड़ा था ॥ ८४-८५ ॥ वह दिव्य हाथी भी वन-  
में गया और पुण्य कर्मके उदयसे उन दोनों स्त्री पुरुषोंकी ( सिंहकेतु और विद्युन्मालाको ) उठाकर मस्तक पर  
विराजमान कर नगरमें आगया ॥ ८६ ॥ मंत्री आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सिंहकेतु का  
राज्याभिषेक किया और राज्य सिंहासनपर विराजमानकर उसपर पट बांधा ॥ ८७ ॥ तदनंतर उन लो-  
गोंने पूछा कि आप किसके पुत्र हैं और यहां कहाँसे आये हैं ? उत्तरमें राजाने कहा कि हमारे पिताका नाम प्रभजन  
है और गुणोंसे सुशोभित माताका नाम मुकुटु है ॥ हरिवंशरूपी निर्मल आकाशका एक चंद्रमा है । किसी कारणसे



नामा व्याधप्रयादेल् भायया बनमालया ॥ ६६ ॥ कौशावी नगरं तत्र सुमुखाख्यं समाश्रयत् । बनमालां समालोक्य स श्रेष्ठी विहरन् बने ॥ ६७ ॥  
 विकायसायकैस्तीक्ष्णै कदाचिच्छर्यीकृत । भायावी वीरदत्त त पापी बाणिज्यहेतुना ॥ ६८ ॥ प्राहिणोद् द्वादशाब्दना दत्त्वा पुष्कलजीविकां । रीति-  
 कार सहाकीर्त्या बनमालां विलोभिता ॥ ६९ ॥ अतिबाह्यागतो वीरदत्तो द्वादश वत्सरान् । तद्विक्रिया समाकर्ण्य स्मरन् संसारादुत्तिष्ठति ॥ ७० ॥ शोभा-  
 कुल मुनिर्विष्णा, क्षीणपुण्यो निराश्रयः । वणिक् समग्रहीद्दीक्षा गोष्ठिलाख्यमुनिं श्रित ॥ ७१ ॥ जीवितांते स संन्यस्य कल्पे साधर्मनामनि । जातश्चित्रा-  
 गदो देव प्रवीचारमुखाकर ॥ ७२ ॥ स श्रेष्ठी बनमाला चर्चयसिंहतपोभृते । दत्त्वा प्रासुकमाहारं निदित्रा निजदुःकृत ॥ ७३ ॥ अन्येयुवसनेः पाता-  
 त्सप्राप्य मरणं सम । भारते हतिवर्षाख्ये देहो योगपुरेविन ॥ ७४ ॥ प्रमजनाख्यनृपतेर्मुकुन्दोवाख्या मनोरमा । हरिवहोऽजनि श्रेष्ठी सिंहकेतुस्तयोः सुतः ॥ ७५ ॥  
 अथ शीलपुतावीशो ब्रह्मभोषमहीरते । तत्रैवासा सुभायाश्च बनमालावुरुपि गी ॥ ७६ ॥ विद्युन्मालेति भूत्वा तुक् विद्युद्योतहासिनी । अपूर्णयौवनस्याग्नी-  
 त्सिंहकेतोः रतिप्रदा ॥ ७७ ॥ जातु तौ दंपती दृष्ट्वा देवे विहरणे बने । कित्रागदे समुद्रधृत्य हनिष्यामीति गच्छति ॥ ७८ ॥ रघुः पुरातनो भरः सुमुखाख्य  
 था और आकर सुमुख शेटके यहां रहता था किसी एकदिन बनमें घूमती हुई बनमालाको देखकर शेट सुमुख काम-  
 देवके तीक्ष्ण बाणोंसे बेवा गया था इसलिये उस पापी मायाचारीने वीरदत्तको तो बहुतमा धन देकर बारह वर्ष  
 तक ब्यापारके लिये भेज दिया और अपकीर्तिके साथ साथ लोभमें आई हुई बनमालाको स्वीकार किया ॥ ६६-६९ ॥  
 बारह वर्ष वीत जानेपर वीरदत्त आया और बनमालाके विकारको सुनकर संसारकी ऐसी नीच स्थितिका स्मरण करने  
 लगा ॥ ७० ॥ दुःखहीन और आश्रयरहित वह वैश्य शोकसे व्याकुल होकर विरक्त हुआ और मोष्ठिल मुनिके समीप  
 जाकर उमने दीक्षा धारण करली ॥ ७१ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वह सौधर्म स्वर्गमें प्रवीचार सुखकी  
 खानि ऐसा चित्रांगद नामका देव हुआ ॥ ७२ ॥ किसी समय उस शेट सुमुख और बनमालाने धर्मसिंह नामके  
 मुनिराजको प्रासुक आहार दिया और अयने पापकी बहुत निंदा की ॥ ७३ ॥ किसी दूसरे दिन वज्रपातसे वे दोनों  
 साथ साथ मरे और शेटका जीव भरतक्षेत्रके हरिवर्ष नामके देशमें इरिवंशमें उत्पन्न हुए भोगपुर नगरके स्वामी  
 राजा प्रमज्जन रानी मृकंदके सिंहकेतु नामका पुत्र हुआ ॥ ७४-७५ ॥ इसी तरह उसी देशमें बनमालाका जीव शील-  
 पुर नगरके स्वामी राजा वज्रवीर रानी सुभाके बिजलीकी कांतिको लज्जित करनेवाली विद्युन्माला नामकी पुत्री हुई  
 जो कि सिंहकेतुकी पूर्वयौवन अवस्था होने पर उसकी स्त्री हुई थी ॥ ७६-७७ ॥ किसी एक समय चित्रांगद देव  
 बनमें बिहार कर रहा था इतनेमें ही वही पर उस दंपतिको (सिंहकेतु और विद्युन्मालाको) देख कर मारनेकी इच्छासे

अतःपुरादिवतोन्मेषु-शाखाककरनिर्गते । रम्ये हर्म्यतले स्थिता कुर्वन् दिग्बलोकनं ॥ ५५ ॥ उत्कापतनमालोक्य भगुरे भावयन् अगच्छ । कुदरेव्येष्ठ-  
 उग्ररम्य इत्यवाराख्यासि-वेचनं ॥ ५६ ॥ सुगंदरजिनाभ्यासे लज्जबोविरहीकृत । क्रमेणैकादशांगानां पारगो भावनापरः ॥ ५७ ॥ सम्यक्त्वादियु वध्यासौ  
 तीर्थहरकर्मनिर्मलं । स्वायुरंते समाधाय यासं संन्यासमास्थितः ॥ ५८ ॥ अनुत्तरे जयताह्ये संप्रापदहमिंद्रतां । त्रयाक्षिनासमुदोपमायुर्हस्ततनुच्छिन्तिः ॥  
 ५९ ॥ सादयोक्तासातानि श्लासोऽयुमिराकुल । त्रयाक्षिनासहस्राब्दव्यतीतौ भोगसंपदं ॥ ६० ॥ भुञ्जानो नि प्रवीचारे लोकनालीगतावधिः । बलही-  
 तिदिकरादिगुणैस्तत्कोत्रमात्रकः ॥ ६१ ॥ एवं देवगतौ दिव्यमुखं सुखमहाबुधे । संप्राप जातसंतुप्तिं स्थितश्चिरसुखायुषा ॥ ६२ ॥ अतः परं तदुद्वृत्तेः  
 विदते वरावर्जनं । दीये जंबूमति केने भरते वत्सकेजा ॥ ६३ ॥ कौशाव्याह्ये सुविस्थितो नगरे मधवा द्रुप । तदेवी वीतशोकाभ्युत्थतः ख्यातो रघु-  
 रतयोः ॥ ६४ ॥ सुमुखो नाम तत्रैव जातः श्रेष्ठी महादिकः । इत कलिंगविषये पुरातपुराख्यात् ॥ ६५ ॥ सार्येन सममागच्छद्द्वारदत्तो वमिक्कुत ।  
 रहा या कि अकरमात् उसने एक उत्कापात देखा उसे देखते ही वह संसारकी क्षणभंगुर अवस्थाका विचार करने  
 लगा अपने सुदृष्टि नामके बड़े पुत्रका उसने राज्याभिषेक किया और रत्नत्रयको प्राप्त कर सुमंदर नामके तीर्थकरके  
 समीप जाकर दीक्षा धारण करली अनुक्रमसे उसने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और फिर दर्शनविशुद्धि आदि  
 सोलह कारण भावनाओंका चिंतन कर निर्मल तीर्थकर नामकर्मका बंध किया आयुके अंतमें समाधि धारण कर एक  
 महीनेका संन्यास धारण किया और शरीर छोड़ कर जयंत नामके अनुत्तर विमानमें अहमिंद्र हुआ और वहां पर उम-  
 की तेतीस सागरकी आयु थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ५५-५९ ॥ साठे सोलह महीने बाद वह निराकुल रीतिसे  
 यास लेता था तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था इस तरह वह प्रविचार रहित भोग संपदाओंका  
 उपभोग करता था । लोक नाही तक उसे अवधि ज्ञान था और उत्तरे ही क्षेत्रक उसका बल कांति और विक्रिया  
 ऋद्धि आदि गुण थे ॥ ६०-६१ ॥ इस प्रकार वह देव गतिमें दिव्य सुखोंका अनुभव करता था सुखरूपी महामागरसे  
 अत्यंत तप्त हो रहा था और सुखरूपी आयुका अनुभव करता हुआ बहुत दिन तक वहां विराजमान रहा था ॥ ६२ ॥  
 इसके आगे अब जिस वंशमें वह उत्पन्न होगा उसीका वर्णन करते हैं । इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्सदेशके प्रसिद्ध  
 कौशांबी नगरमें राजा मधवा राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम वीतशोका था और उन दोनोंके रघु नामका  
 पुत्र हुआ ॥ ६३-६४ ॥ उसी नगरमें एक सुमुख नामका बहुत धनी शेट रहता था किसी एक समय कलिंग देशके  
 दंतपुर नामके नगरसे वीरदत्त नामका वैश्यपुत्र व्याधोंके डरसे अपनी स्त्री वनमालाके साथ कौशांबी नगरमें आया

हंतो हितं ॥ ४३ ॥ तत्समीपे समादाय समयम् त्वां हिलोक्षितुं । त्वयि जन्मांतरनेहादिहागमनमावयो ॥ ४४ ॥ पुण्योद्योहितान् भोगान्स्वीकृत्य भूयो भु-  
क्त्वा न । मासप्रमाणजीवी त्व हितमय स्मराक्षिति ॥ ४५ ॥ भुत्वा तद्वचन राजा वदित्वा तौ मुनीश्वरौ । युवां जन्मांतरस्तेहाभि सगतव गतावपि ॥ ४६ ॥  
उपचारं मृदांत मे दृढवतौ हितैः पिणौ । इत्याह्वयन्स ततः प्रीतौ तौ निजस्थानमीयतुः ॥ ४७ ॥ तदैव स महीशोपि दत्त्वा राज्य यथाविधि । प्रीतिकर-  
कुमारया इत्वाष्टाहकपूजन ॥ ४८ ॥ बधून् द्विसर्ज्य प्रायोपगमसन्नासमुत्तम । विधाय घोडशे कल्पे द्वाविशत्यब्धिजीवितः ॥ ४९ ॥ पुष्पोत्तरे विमानेऽभू-  
दच्युतेन्द्रो महर्द्धिकः । दिव्यभोगांस्त्रिंशु कृत्वा ततः प्रच्युत्य पुण्यभाक् ॥ ५० ॥ द्वीपेस्मिन् भारते क्षेत्रे विषये कुरुजांगले । हस्तिनाह्यपुराधीशः श्रीच-  
द्रस्य महीपतेः ॥ ५१ ॥ श्रीमत्या सुप्रतिष्ठाह्वयः सुप्रतिष्ठः सुतोभवत् । आपूर्णयौवनस्यास्य सुनदासीस्तुक्षप्रदा ॥ ५२ ॥ सुत योग्यतम मत्वा श्रीचद्र-  
धरणीश्वरः । दत्तार्ज्योऽप्रहीदीक्षा सुमदरयति श्रित ॥ ५३ ॥ सुप्रतिष्ठोपि तद्वाज्ये नि कोपे सुप्रतिष्ठित । यशोधरमुनेर्दानादवापाध्वर्यपंचक ॥ ५४ ॥

३८-४४ ॥ अब तक तुने पुण्यकर्मके उदयसे सब तरहके भोग भोगे हैं परंतु अब तेरी आयु केवल एक महीनेकी रह गई है इसलिये शीघ्र ही तू अब अपने हितका स्मरण कर ॥ ४५ ॥ राजाने यह बात सुनकर उन दोनों मुनिराजोंकी बंदनाकी और निवेदन किया कि यद्यपि आप परिश्रमरहित हैं तथापि आप सबका हित चाहनेवाले हैं इसीलिये जन्मांतरके स्नेहसे आपने यह मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । इसके बाद वे दोनों मुनिराज अपने स्थानको चले गये ॥ ४६-४७ ॥ उसीसमय राजा अपराजितने विधि पूर्वक प्रीतिकर कुमारको राज्य दिया अष्टान्हिक पूजनकी, सब माई बधुओंका त्याग किया और उत्तम मायोपगमन सन्यास धारणकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें वाईस सागरकी आयु पाकर बड़ी ऋद्धिका धारण करनेवाला अच्युतेन्द्र हुआ वह पुण्यवान् बहुत दिनतक वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरु जांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा श्रीचंद्र रानी श्रीमतीके सुप्रतिष्ठित नामका बहुत प्रतिष्ठित पुत्र हुआ और पूर्ण यौवन अवस्था होनेपर उसे सुखदेनेवाली सुनंदा नामकी स्त्री मिली ॥ ४८-५२ ॥ किसी एक दिन राजा श्रीचद्रने अपने पुत्रको अत्यंत योग्य समझकर उसे राज्य दिया और आप सुमंदर नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ५३ ॥ इधर सुप्रतिष्ठ भी क्रीडादि सब तरहके दोषोंसे रहित ऐसे राज्यपर विराजमान हुआ और किसी एक समय उमने यशोधर नामके मुनि-राजको आहार दान दिया था जिससे उसे पंचाशत्तौकी प्राप्ति हुई थी ॥ ५४ ॥ किसी दूसरे दिन बह राजा अपने सब रथबासके साथ पंद्रमाकी किरणोंके समान निर्मल ऐसे सुंदर राजभवनके ऊपर बैठा हुआ दिशार्जोंको देख

चीत् । संभाव्युर्वनीयासं यम त्वं रक्षाम लया ॥ ३० ॥ श्रुतनद्वचा साह गाढ पितवतो परे । मालाभिर्मा क्षिपामीति क्षिपामीति सा तामित्यत्र वीत्युन ॥ ३३ ॥  
 गतिशुद्ध तथा पूर्वमनुजाभ्या कृतं मम । अभिलाषा तनत्याज्या त्वं नया तद्वचःश्रुतेः ॥ ३४ ॥ निर्विणा मा निगृताग्निकाम्यासेऽगतपः परे । तद्वीक्ष्य  
 बहवस्तत्र निर्विद्य तपसि स्थिताः ॥ ३५ ॥ अनुजाभ्यां मम चितागतिधालोक्य माहस । वन्याया जातसन्नेगो गुरु दमवगभिषि ॥ ३६ ॥ संप्राप्य संयम  
 प्राप्य शुद्ध्यष्टकमधिष्ठितः । प्राप्ते सामानिकस्तुं कल्पेऽजायत सानुजः ॥ ३७ ॥ तत्र भोगान्वहून भुक्त्वा सप्ताब्धिपरमायुषा । ततस्त्नावनुजां जम्बूद्वीपपूर्व  
 विदेहमे ॥ ३८ ॥ दिषये पुष्कलावत्या विजयादेर्नरे तटे । राजा गगनचद्राख्यः पुरे गगनवल्लभे ॥ ३९ ॥ श्रुतो गगनसुन्दर्या तस्यामितमतिस्ततः । आ-  
 वाममिततेजाश्च जातौ विद्यात्रयान्विता ॥ ४० ॥ अन्येष्टु पुडरीण्यामावाभ्या जन्मपूर्वजः । आवयो परिपृष्टेन जन्मत्रितयश्रुतं ॥ ४१ ॥ सर्वं स्वयम्प्र-  
 भात्येन तीर्थनायेन भाषित । ततोऽस्मदप्रजः क्वाचोऽव्ययोरनुदो जने ॥ ४२ ॥ भूया सिंहपुरे जातो राजते सोपराजितः । नाम्ना राज्य समासाद्य स्वयमित्य-  
 मतीकहने लगी कि मैं दूसरेसे नहीं जीती हूं जो दूसरेके गलेमें माला डालूं । इसके उत्तरमें चिंतागतिने कहा कि  
 तुने पहिले वरनेकी अभिलाषासे ही मेरे छोटे भाइयोंके साथ गतिशुद्ध किया था इसीलिये तू मेरे लिये त्याज्य है ।  
 चिंतागतिकी यह बात सुनकर वह विरक्त हुई और निवृत्ता नामकी अर्जिकाके समीप जाकर उसने उत्कृष्ट तपश्चरण  
 धारण कर लिया । उसे दीक्षित होते देखकर वहांपर बहुतसे लोगोंने विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३३-३५ ॥  
 उस कन्याका माहस देखकर छोटे भाइयोंके साथ साथ चिंतागतिको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और दमवर नामके गुरु-  
 के समीप जाकर संयम धारण कर लिया आठों शुद्धियोंका पाकर अंतमें तीनों भाई चौथे स्वर्गमें जाकर सामानिक देव  
 हुए ॥ ३६-३७ ॥ वहां सात सागर तक अनेक भोगोंका अनुभवकर च्युत हुए और तीनों छोटे भाइयोंके जीव जंबू  
 द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयादे पर्वतके उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचंद्र रानी  
 गगन सुंदरीके हम अमितमति और अमिततेजा नामके पुत्र हुए उममय हम दोनों ही पुत्र तीनों विद्यायोंके ज्ञान-  
 कार थे । किसी दूसरे दिन हमारे पिता पुडरीकिणी नगरीको गये वहांपर उन्होंने हम दोनोंके अगिले पिछिले जन्म-  
 की बात पृछी और स्वयंप्रथ तीर्थंकर भगवान् ने वे सब बातें कहीं उसीसमय हम दोनोंके प्रकरणमें यह भी बात निक-  
 ली थी कि हमारे पहिले जन्मका बड़ा भाई कहा है इसके उत्तरमें तीर्थंकरने कहा था कि उसका जीव सिंहपुर नगर-  
 में राजा अपराजित हुआ है और वह स्वयं राज्यकर रहा है । इसप्रकार उन भगवान् के वचन सुनकर हम दोनोंने उन्हीं  
 के समीप संयम धारण कर लिया और फिर पहिले जन्मके स्नेहसे तुझे देखनेके लिये हम दोनों यहां आए हैं ॥

महाशुभः ॥ २० ॥ जनमे देव सूर्योऽयम् तं सोऽपि कृतवन्दनः । भुक्त्वा जेहशोकार्त्तचेतसां का विचारणा ॥ २१ ॥ वसतसमयेन्येयुर्नदीश्वरदिनेष्वसौ । जित-  
द्वैत्यानि संपूज्य तत्तत्संज्ञनपदैक ॥ २२ ॥ तत्र स्थितः स्वयं धर्मदेवान् न्याघदत्तसुधी । स्वाभिव्यञ्जना साधू प्रापस्तुतस्तु पद ॥ २३ ॥ प्रणिपत्य  
तयोदयतास्तवावर्तितां नृप । सोऽन्वा- समभ्येत्य श्रुत्वा धर्मभाषत ॥ २४ ॥ भगवताबह पूज्या बभूवुःप्रादृष्टवानिति । ज्येष्ठो मुनिस्त्वचैवं सत्यमावा-  
त्त्वयेक्षिता ॥ २५ ॥ स्वदर्शनप्रेक्ष्य न पश्यामि शृणु भूषते । पुष्करार्द्धपराद्रोदापरभागे महासरोत्त ॥ २६ ॥ तत्प्राधारयुत्तरे भागे गविलो विषयो महा-  
नृ । तत्सगद्गुणश्रेण्यां सूर्येन-पुगधिप ॥ २७ ॥ राजा सूर्यप्रभस्तस्य धारिणी प्राणवक्षसा । तयोदितगतिज्येष्ठस्तनुजोऽनुमनोगति ॥ २८ ॥ ततश्चपल-  
गव्याह्यकिम्बितैस्तैस्तैः शुभं गता । तैः-यस्यैकैर्मां के न दुष्यति सख्यते ॥ २९ ॥ तस्यामेवोत्तरश्रेण्यामरिदमपुंश्चरात् । अरिजयाख्यादवितसेनायामभवत्सु-  
ता ॥ ३० ॥ सती प्रीतिमती मेरुशिरेः सकलसेचरात् । त्रिस्तालासाज्जयचित्तागतिं मुक्त्वा खवियया ॥ ३१ ॥ जित्वा चित्तागतिर्वेगातां पथादिति चात्र-

शक्ति मी कैसे रह सकती है ॥ २१ ॥ किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुकी अष्टाह्निकाओंके दिनोंमें वह राजा अपरा-  
जित जिनमंदिरोंकी पूजाकर उनकी स्तुति करता हुआ वहां बैठा था और वह बुद्धिमान स्वयं धर्मोपदेश दे रहा था  
इतनेमें ही वहां चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दो चारण मुनिराज पधारें और वहीं आकर विराजमान होगये ।  
राजाने बड़ी विनयके साथ उठकर उन्हें नमस्कार किया स्तुतिकी पास बैठकर धर्म श्रवण किया और फिर वह क-  
हने लगा कि हे पूज्य हे भगवन् ! मैंने पहिले कमी आपको देखा है । इसके उत्तरमें बड़े मुनिराज कहने लगे कि ठीक  
है तुमने हमको देखा तो है ॥ २२-२५ ॥ परंतु कहां देखा है उस जगहको मैं कहता हूँ । हे राजन् तू सुन ! पुष्क-  
रार्द्ध द्वीपके पश्चिम मेरुकी ओर पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो महा नदी है उसके उत्तरकी ओर एक गंधिल नामका बड़ा  
देश है उसके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सूर्यग्रम नगरका स्वामी राजा सूर्यग्रम राज्य करता था उसकी महादेवी-  
का नाम धारणी था । उन दोनोंके बड़ा पुत्र चित्तागति मझिला मनोगति और छोटा चपलगति हुआ था धर्म अर्थ  
काम इन तीनों पुरुषार्थोंके समान इन तीनों पुत्रोंमें भी बाप सदा प्रसन्न रहते थे सो ठीक ही है क्योंकि सुपुत्रोंसे  
कौन संतुष्ट नहीं होता है ॥ २६-२९ ॥ उसी गंधिल देशकी उत्तर श्रेणीमें अरिदम नगरके राजा अरिजय रानी अजि-  
तसेनासे प्रीतिमती नामकी सती पुत्री हुई थी उसने अपनी विद्यासे चित्तागतिको छोडकर सब विद्याधरोंको मेरु पर्व-  
तकी प्रदक्षिणा देनेमें जीत लिया था ॥ ३०-३१ ॥ चित्तागति अपने वेगसे उसे जीतकर फिर कहने लगा कि तू इस  
सुरत्नमालाके ( वरमालाके ) द्वारा मेरे छोटे भाईको स्वीकारकर ॥ ३२ ॥ चित्तागतिकी यह बात सुनकर वह प्रीति-

प्रहुरभूकृती । नवभासावसानेसावसूत सुतमूर्जिते ॥ ९ ॥ तजन्मनः प्रसृत्यन्धैरज्यस्तपिताऽभवत् । ततोपराजिताख्यानमकुर्वस्तस्य बांधवा ॥ ७ ॥  
रूपादिपुणसपत्या सार्द्धं वृद्धिमसावगात् । आशैवन मनोहारी सुरेंद्रो वा दिवौकसा ॥ ११ ॥ तदा मनोहारोद्यानगत विमलवाहन । तीर्थकर्तारमाकर्ण्य  
वनपालमुखान्नुपः ॥ १२ ॥ स्वांत पुनरीवारपरीतो भक्तिचोदित । गत्वा प्रदक्षिणकृत्य मुहुर्मुकुलितजलिः ॥ १३ ॥ प्रप्रणम्य समभ्यर्च्य गधपुण्या-  
कुमारोपि गृहीताण्यतादिः शुद्धदर्शनं । प्राविशल्लसितो लक्ष्म्या साक्षादिव पुरं हरी ॥ १४ ॥ तुजे पराजिताख्याय दत्ता ससागसपद । तपोग्र्य समुपादत्त पंचभिर्मुखां शतैः ॥ १५ ॥  
कर्मार्णेण तदासौ धर्मकामयोः ॥ १७ ॥ कदाचिन्निजपित्रामा जिनं विमलवाहन । सुकृत्या वशीकृत श्रुत्वा गधमादनपर्वते ॥ १८ ॥ शक्त शालो-  
भोक्ष्येऽहं जिन विमलवाहन । इति प्रतिज्ञयाद्योपवासास्यसीदरराजित ॥ १९ ॥ तदा शक्राज्ञया यक्षपतिर्विमलवाहन । तस्यै सदृश्यामास साधातुत्वा

हमलिये उसके भाइयोंने उसका नाम अपराजित रखवा था ॥ १० ॥ रूप आदि संपदाओंके साथ साथ वह यौवन  
अवस्थातक वरावर बढ़ने लगा और देवोंके इंद्रके समान मनोहर दिखने लगा ॥ ११ ॥ किसी एक दिन महाराजने  
वनपालके मुखसे यह सुना कि मनोहर नामके उद्यानमें विमलवाहन नामके तीर्थकर आए हैं । यह सुनकर वह भक्ति  
से प्रेरित होकर अंतःपुर और परिवारके साथ साथ वहां गया, जाकर प्रदक्षिणा दी बार बार हाथ जोड़े नमस्कार  
किया, गंध पुष्प अक्षत आदिसे उनकी पूजाकी और उनसे धर्मसुतका पान किया आग वह अंक्रुमात् भोगोंसे नि-  
स्पृह होकर विरक्त होगया ॥ १२-१४ ॥ उसने अपराजित नामके पुत्रको राज्य दिया और पांच सौ राजाओंके साथ  
ससांग संपदाओंसे सुशोभित उग्र तपश्चरण धारण किया ॥ १५ ॥ कुमार अपराजितने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारणकर  
अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ उसने राज्यकी सत्र चिंताका भार तो अपने मंत्रियोंपर सौंप दिया और शास्त्रोक्त  
रीतिसे धर्म और काम इन दो पदार्थोंके सेवन करनेमें वह लीन हो गया ॥ १७ ॥ किसी एक दिन उसने सुना कि  
पुण्य पिताके साथ साथ श्रीविमलवाहन तीर्थकर गंधमादन पर्वतसे मुक्त होगये हैं यह सुनकर उसने प्रतिज्ञाकी कि  
मैं श्रीविमलवाहन तीर्थकरके विना दर्शन किये भोजन नहीं करूंगा इसतगह उम अपराजितके आठ उपवास होगये  
॥ १९ ॥ तदनंतर इंद्रकी आज्ञासे यक्षपतिने उस महापवित्र राजाको विमल वाहनका साक्षात् रूप बनाकर दिख-  
लाया ॥ २० ॥ अपराजितने समवसरणमें वंदनाकर उनकी पूजा की और फिर भोजन किया सो ठीक ही है क्योंकि

## अथ सप्ततितमं पर्व ।

धात्यादिदशाराधर्मलंवनं यमुदाहृतं । सतः सद्वर्मेचक्रस्य स नेमि शकरोस्तु नः ॥ १ ॥ सवेगजनन पुण्यं पुराणं जिनचक्रिणो । बलानां च श्रुतज्ञानमेतत् वन्दे त्रिशुद्धये ॥ २ ॥ पूर्वानुपूर्व्यां वन्द्येह कृतमगलसत्तत्क्रियः । पुराणं हरिवंशाख्यं यथाश्रुतं यथाश्रुतं ॥ ३ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विदेहेपर-  
नामनि । सीतोदोदकतटे देशे सुगन्धिलसमाह्वये ॥ ४ ॥ पुरे सिंहपुरे ख्यातो भूयोर्हंदाससङ्गः । देव्यस्य जिनदत्ताद्या तयोः पूर्वभगार्जितात् ॥ ५ ॥ पुण्योदयात्समुद्रभूलकामभोगेन सन्तुष्टयो । काले गच्छत्यथान्येद्युरहंता परमेश्वरिणां ॥ ६ ॥ आप्राद्विक्रमदापूत्रां विधाय नृपतिप्रिया । कुलस्य तिलक पुत्र-  
लक्ष्मीयाहमिति स्वयं ॥ ७ ॥ आशास्यासां सुखं सुप्ता निशायां मुप्रसन्नाधीः । सिंहभाक्कुदुपश्यामिषेकानैक्षिष्ट सुव्रता ॥ ८ ॥ स्वप्नान्तरमेवास्या गर्भे

## अथ सत्तरवां पर्व ।

अथानन्तर-सज्जन लोग जिन्हें उत्तम क्षमा आदि दश धर्मरूपों ओरोंका आलंवन वतलाते हैं और जो सद्वर्मेचक्र-  
के धुरा हैं ऐसे श्री नेमिनाथ स्वामी हम लोगोंका कल्याण करें ॥ १ ॥ जिनेन्द्रदेव और चक्रवर्तियोंका पुराण वैराग्य  
उत्पन्न करनेवाला है और पुण्य बढ़ानेवाला है तथा बलभद्रका पुराण श्रुतज्ञानको बढ़ानेवाला है इसलिये मन बचन  
काय तीनोंको शुद्ध करनेके लिये इस पुराणको नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ पहिले मगलरूप अच्छी क्रिया करके मैं  
हरिवंश पुराण कहूंगा और वह पुराण पूर्वाचार्योंके अनुसार जैसा सुना है वैसा ही ऊपरके छंदोंमें ही कहूंगा ॥ ३ ॥  
इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर सुगन्धिला नामके देशमें सिंहपुर नगरमें अर्हदास  
नामका राजा गण्य करता था उसकी देवीका नाम जिनदत्ता था । पूर्व भवमें हकूटे किये हुए पुण्य कर्मोंके उदयसे  
उन दोनोंको काम भोगकी सब सामग्री मिली थी इससे वे खूब वृत्त थे । इसतरह उन दोनोंका समय व्यतीत हो  
रहा था । किसी एक दिन महारानीने अष्टह्निकाके दिनोंमें अरहंत परमेष्ठीकी पूजाकी और उससे आशाकी कि  
मेरे कुल तिलक पुत्र उत्पन्न हो ऐसी आशा कर वह प्रसन्नचित्त होकर रातको सुख पूर्वक सो गई । उस सुव्रताने  
( अच्छे व्रत धारण करने वालीने ) उसीरातको सिंह, हाथी, सूर्य चद्रमा और लक्ष्मीका अभिवेक ऐसे पांच स्वप्न देखे  
स्वप्न देखनेके बाद ही किसी पुण्यवानने उसके गर्भमें आकर अवतार लिया और नौ महीने वीत जानेपर उस रानीने  
पुण्यवान पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४-९ ॥ उसके जन्म लेनेके समयसे ही उसके पिताको अन्य कोई जीत नहीं सका था,



व्यवस्थितपिण्ड । प्रयाति गतिमेतस्य परोपन्न प्रमादवात् ॥ ८६ ॥ इत्याकलय्य कालादिलब्ध्या चक्रैश्चक्रवीः । त्यक्तुं चक्रादिभामाज्यं परिच्छिद्योच्छिद्रते-  
च्छया । दुष्ट राज्यमनिच्छत्सु महीयःसु कनीयसे । इत्वा पुत्राय साम्राज्य वरदत्ताभिधाविन ॥ ८८ ॥ केवलवगमात्प्राप्य संयमं बहुभिः समं । धृत-  
जातो विमाने लवसत्तम । पुण्योत्तमाहुभागत्यभ्यभूत्सुचिरं सुख ॥ ९१ ॥ वसुधैवकुटू चारणोत्तुंगकूटे स्वाराधनाविधिः ॥ ९० ॥ जयतेऽ नुतरे  
इत्यार्ये भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसमूहे नमितीर्थकरजयसेनचक्रवर्तिपुराणं परिसमाप्तं एकोनसत्तितम पर्व ॥ ६९ ॥

करता हुआ और अपने अपने परलोक सिद्ध करनेमें मूर्ख ऐसा यह प्राणी अपने हितका आचरण नहीं करता ॥ ८५ ॥ जो  
विषय अनित्य है और जो कभी संतुष्ट करनेवाले नहीं है उनमें जो लीन रहता है वह प्रमादी पुरुष इसी उत्तकापातकी  
गतिको प्राप्त होता है, अर्थात् अधोगतिको जाता है ॥ ८६ ॥ यही समझकर सरलबुद्धिवाला वह चक्रवर्ती काल आदि लब्धियोंको  
पाकर चक्र आदि सब साम्राज्यको छोड़नेके लिये तैयार हुआ । वह अपने बड़े पुत्रको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ वरदत्तनामके केवली भ-  
झकर लेनेकी इच्छा नहीं की तब उसने छोटे पुत्रको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ वरदत्तनामके केवली भ-  
गवानसे संयम धारण किया । उसे श्रुतबुद्धि । उसे धृतबुद्धि तप, तिक्रिया आपधि आदि अनेक ऋद्धियां प्रगट हुई चारण ऋद्धि मी  
प्रगट हुई और अंतमें उसने प्रयोगमन संन्यास धारण किया । समेद शिखरपर चारण नामके ऊँचे शिखरपर संन्यास  
धारण कर वह जयंत नामके अनुत्तरके विमानमें उत्तम अहमिंद्र हुआ और वहांपर उत्तम पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए  
सुखोंको बहुत दिनतक अनुभव करता रहा । ८७-९१ ॥ जयसेनका जीव पहिले जन्ममें राजा वसुधर हुआ था  
फिर उत्तम तपश्चरण कर सोलह सागरकी आयु पाकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ वहांसे चयकर बहुत उत्तम जय-  
सेन चक्रवर्ती हुआ और फिर जयंत विमानमें अनेक सुखोंका लजाना-स्वामी अहमिंद्र हुआ ॥ ९२ ॥

इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नमिनाथ तीर्थकर और जयसेन चक्रवर्तीके  
पुराणको कहनेवाला यह उनहत्तरवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ ७४ ॥ पद्मावतीद्वियोगेन युग निर्दिष्टमानमन्त्र । बने मनोहरे रम्ये वरचर्मविलेखिणः ॥ ७५ ॥ निर्णय धर्मसद्भाव तनये विनय-  
धरे । निर्दिष्टितात्मभारः स बहुभिर्मुमुक्षुः सम ॥ ७६ ॥ सयम सन्यगादाय चारित्र दुश्चरं चरन् । स्वाराधनाविधानेन महाशुके सुरोभवत् ॥ ७७ ॥ पोड-  
शाव्युपमस्वायुर्दिव्यान् भोगान् मुमुक्षुः स । तत् प्रच्युत्य तन्निधं वत्साव्यविजयेऽजनि ॥ ७८ ॥ वृषत्येवाकुशस्य कौशावीनगरेदिन । तनूजो विजया-  
स्त्यस्य प्रमाकर्था प्रमाधिकः ॥ ७९ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णं जयसेनसमाह्वयः । त्रिगडस्वरज्जीवी पटिदृस्तसमुच्छ्रितः ॥ ८० ॥ तप्तचामीकरच्छाय स  
चतुर्दशक्रमाद् । निधिमिलवभिः सेव्यो भोगेन्द्राविधिः सुर्य ॥ ८१ ॥ विरमेकादशकथधरः कालमजीगमत । अन्यैर्युक्तुसौधाध्रे सुसुप्तोत्त पुनरुत्त ॥  
८२ ॥ कुर्वन्पर्वशशाकभो दिगतरत्रिलोकन । उल्कासिपतन वीर्य सुनिर्वेगपरायणः ॥ ८३ ॥ उच्चैरिष्टतमिदं पश्य भास्वरं पर्ययद्वयं । परित्यज्य सुसं-  
प्रापदयोगसिम्पप्रभ ॥ ८४ ॥ उग्रतयमूर्जित तेजो ममेति मदमावहत् । अनाचरन् हित मूढः पारलौकिकमात्मने ॥ ८५ ॥ विषयेषु क्षिपक सन्नयुवे-

अथानन्तर—इसी जंबूद्वीपके उत्तरकी ओर महा ऐरावतक्षेत्रमें श्रीपुर नगरमें लक्ष्मीवान् राजा वसुधर राज्य करता  
था ॥ ७४ ॥ किसी एक दिन पद्मावतीके वियोगसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ वह मनोहर नामके बनमें गया  
और वरचर्म नामके सर्वज्ञदेवसे धर्मके सद्भावका निर्णयकर विनयधर नामके पुत्रको राज्यका भार सौंपा और अनेक  
राजाओंके साथ समय धारणकर घोर तपश्चरण करने लगा । अंतमें समाधिभरण धारणकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ  
॥ ७५-७७ ॥ वहाँपर उसकी सोलह मागम्मी आयु थी वहाँके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इन्हीं न-  
मीनाथ तीर्थकरके समयमें वत्सविजय नामके देशमें कौशावी नगरीके स्वामी इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय रानी प्रभाकरी  
के जयसेन नामका पुत्र हुआ । उसकी कांति सबसे अधिक थी और वह सब लक्षणोंसे संपूर्ण था, उसकी तीन हजार  
वर्षकी आयु थी और साठ हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ७८-८० ॥ उसके शरीरकी कांति तपाये हुए सुवर्णके समान थी  
वह चौदह रत्नोंका स्वामी था नौ निधियां उसकी सेवा करती थी और दशों प्रकारके भोगोंका अनुभव कर वह सु-  
खी हो रहा था ॥ ८१ ॥ इसप्रकार ग्याग्रहर्वा चक्रवर्ती वह सुख भोगता हुआ समय बिता रहा था । किसी एक दिन  
ऊँचे राजभवनपर अंतःपुरके साथ लेट रहा था ॥ ८२ ॥ पौर्णमासीके चंद्रमाके समान वह सब दिशाओंको देख रहा  
था कि इतनेमें ही उसे एक उल्कापात दिखाई दिया और उसे देखकर वह विरक्त हुआ ॥ ८३ ॥ वह विचार करने  
लगा कि देखो यह प्रकाशमान वस्तु अभी तो ऊपर थी और फिर तुरंत ही अपनी दो पर्यायें छोड़कर तथा कांतिरहित  
होकर नीचे चली गई ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार मेरा तेज भी बहुत ऊंचा है और प्रकाशमान है इसतरहके मदकी धारण

शाधिका मताः ॥ ६५ ॥ श्रावका लक्ष्यमेक तु त्रिगुणाः श्राविकास्ततः । देवा देवोप्यसंख्यातास्तिर्यचः संख्याया मिताः ॥ ६५ ॥ एवं द्वादशसंख्यान-  
गणनैर्ब्रह्मर्षीश्वर । सद्धर्मदेशन कुर्वन्नायक्षेत्राणि सर्वतः ॥ ६६ ॥ विहृत्य सिद्धिं लयत्वा मासं सम्पेदपर्वते । सहस्रमुनिमि सार्द्धं प्रतिमायोगमास्थितः ॥ ६७ ॥  
वेनालो मासि कृष्णया चतुर्दश्यां निशात्यये । मुक्तिमरुत्याह्वनक्षत्रे नमितोर्थकरो उगमत् ॥ ६८ ॥ अकुर्वन्पञ्चम देवाः कल्याण चाभिलेखिनः । स्व स्व-  
मोक्षं सप्तासप्तपुष्पपण्या प्रवेदिरे ॥ ६९ ॥ कनकनकविग्रहे विहितविग्रहो घातिमि सहाहितजयो जयेति च तुलो नैर्नाकिमिः । मियं भवभवां  
बहु नयतु नः क्षय नायको विनेयविदुषा स्वय, विहर्तविग्रहोऽतो नमिः ॥ ७० ॥ कौशाव्यां प्रयितस्तुतीयजनने सिद्धार्थनामा दृपः कृत्वा तत्र तपोतिथोर-  
पतञ्चामरो अमवृत्रमरविभ्रमप्रमितपुष्पवृष्ट्युत्करः । करोतु चरणारविदमरुदसपायिना विनेयमधुपायिनामवितोषं वृत्तिं जिनः ॥ ७१ ॥ जगत्त्रयज-  
योत्सिफमोहमाहात्म्यमर्दनात् । एकविंशो जिनो लब्धलक्ष्मीर्लक्ष्मीं ददातु न ॥ ७२ ॥ द्वीपेस्सिन्धुतरे भागे महत्थैरावताह्वये । लक्ष्मीवान् श्रीपुरावीशो  
हजार मुनियोंके साथ साथ उन्होंने प्रतिमा योग धारण किया था ॥ ६६-६७ ॥ वैसाखकृष्ण चतुर्दशीके दिन सवेरे  
के समय अश्विनी नक्षत्रमें वे नमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे थे ॥ ६८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उन सर्वज्ञ  
को जीत लिया था जिन्हें नम्रभूत हुए देवलोग जय जय करते हुए नमस्कार करते थे तथा सत्र तरहके अहिन  
हैं और जिन्होंने सब तरहके शरीर नष्ट कर दिये हैं ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी हम तुम लोगोंका संसार समुद्रका भय  
दूर करें ॥ ७० ॥ जो तीसरे भवमें कौशावी नगरीमें प्रसिद्ध राजा सिद्धार्थ थे वहां पर घोर तपश्चरण कर जो अतुत्तरके  
चोथे अपराजित विमानमें अहर्भिद्र हुए और वहांसे आकर जो मिथिला नगरीमें इंद्रोंके द्वारा वेदनीय केवल तीनों  
जगतके हितरूप वचनोंको प्रगट करनेके लिये नमिनाथ नामके इकईसवें तीर्थंकर हुए ॥ ७१ ॥ जिन्होंने देवों सहित  
सब इंद्रोंसे नमस्कार कराया था जिन पर चमर डुते थे, और उडते हुए अमरोंके समान फिरते हुए पुष्पोंके समूह  
जिनपर वरसते थे ऐसे वे श्रीनमिनाथ भगवान चरणकमलके रसको पान करनेवाले शिष्य रूपी अमरोंको निरंतर ही  
संतुष्ट वा तुम करें ॥ ७२ ॥ तीनों जगतकी जीतनेसे अत्यंत उन्मत्त हुए मोहके माहात्म्यको मर्दन करनेसे-उसे नाश  
करनेसे जिन्हें मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हुई है ऐसे वे इकईसवें तीर्थंकर नमिनाथ भगवान् हम लोगोंको मोक्षलक्ष्मी दें ॥ ७३ ॥

मानयुत्तरकुर्वीत्यं समारम्भ मनोहर ॥ ५३ ॥ गत्वा चित्रवनोद्यानं यः शोपनस्यन श्रितः । आशङ्कालपक्षेयितुश्चैत्रे दशमीदिने ॥ ५४ ॥ अपराह्ने सह-  
लेग क्षत्रियाणां सहाप्रहीतः । समयं सयमाप्यायं सञ्चानं च चतुर्थक ॥ ५५ ॥ भोक्तुं वीरपुरं तस्मै दत्तो गतवते नृप । सुवर्णदण्डो दम्बासमवापाश्रय-  
पत्रक ॥ ५६ ॥ आश्रयेन ततः काले प्रयाते नववत्सरे । निजरीक्षावने रम्ये मूले नकुलभूह ॥ ५७ ॥ तत्स पशोपवासस्य नक्षत्रेभ्यश्चानके ।  
मार्गशीर्षशुचौ पक्षे दिनाते केवल विभोः ॥ ५८ ॥ दिने तृतीयनद्यासभूदखिलोच्चरं । नायनायकसचार्यतुर्यकल्याणभागिनः ॥ ५९ ॥ सुप्रभात्या-  
दयः सप्तदशासन्नं गणनायका । चतुःशतानि पंचाशत्सर्वदूतचरा मता ॥ ६० ॥ शिक्षकाः षट्शतद्वयसहस्राणि सद्रताः । विज्ञानचारिणां सख्या  
सहस्र षट् शताधिक ॥ ६१ ॥ तावत् पञ्चमज्ञाना मुनयो विक्रियादिकाः । सर्वे सार्द्धसहस्रं स्तुर्मन पर्ययबोधनाः ॥ ६२ ॥ शून्यपंचद्विकैकोकास्त्य-  
कसंगाः प्रकीर्तिता । सहस्र बादिना सख्या ते सर्वेऽपि समुच्चिता ॥ ६३ ॥ विद्वानि स्तुःसहस्राणि मंगिनीप्रभुजार्जिका । चत्वारिंशत्सहस्राणि तदृश-  
पालकीपर सवार चित्रवन नामके उद्यानमें गये और बेलाका नियम लेकर आसाढ कृष्णा दशमीके दिन अश्वनी  
नक्षत्रमें शामके समय एकहजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने संयम धारण किया तथा उसी समय संयमसे प्राप्त होनेवाला बी-  
या मनःपर्ययज्ञान उन्हें मगट हुआ ॥ ५३-५५ ॥ पारणाके दिन वे वीरपुर नगरमें गये वहाँपर सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा  
दत्तने उन्हें आहार दान दिया और पंचाश्रय प्राप्त किये ॥ ५६ ॥ तदनंतर नौ वर्ष उनके छत्रस्य अवस्थाके वीतजानेपर वे अपने  
दीक्षावनमें मनोहर वकुल वृक्षके नीचे बेलाका नियम लेकर विराजमान हुए वहीं पर उनके मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासीके दिन  
तीसरे पहर अश्वनी नक्षत्रमें समस्त संसारको दिखलानेवाला केवल ज्ञान हुआ उसी समय श्रद्धादि देवोंने आकर केवल  
ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया ॥ ५७-५९ ॥ सुप्रभायकी आदि लेकर उनके सत्रह गणधर थे, और चारसौ पचास  
रमारह अंग चौदह पूर्वोके जानकार थे ॥ ६० ॥ बारह हजार छहसौ अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाले शिक्षक थे और  
सोलहसौ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले मुनिराज थे ॥ ६१ ॥ सोलहसौ ही केवलज्ञानी थे, पंद्रहसौ विक्रिया श्रद्धिको  
धारण करनेवाले थे, बारहसौ पचास परिश्रमरहित मनःपर्ययज्ञानी जिने गये थे और एक हजार बादी थे, इस तरह  
सब मुनिराजोंकी संख्या बीसहजार थी । मंगिनीको आदि लेकर पैंतालीस हजार अर्जिकाएं थीं, एक लाख भावक थे  
तीन लाख भाविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे ॥ ६२-६५ ॥ इस प्रकार नम्र हुई बारह  
सभाओंसे सुशोभित उन नेमिनाथ भगवानने सद्धर्मका उपदेश देते हुए आर्यदेवमें सब ओर विहार किया था । जब  
उनकी एक महीनेकी आयु रह गई थी तब वे विहार छोड़कर सम्प्रेद स्थिर पर आ विराजमान हुए थे और एक

बोलुकी ॥ ४३ ॥ इति सोमि समासश्रेयलावगमोदयः । निते विधाय तत्सर्वं महीशः प्राविशसुरं ॥ ४४ ॥ तत्र स्वभवंसंबंधं स्मृत्वा तीर्थकरं च तं ।  
 अयं कुजवसजातसद्भानं मानयन्मुहु- ॥ ४५ ॥ अनादिवधैर्गोढ वध्यात्मात्मानमात्मना । कायकारागुहे स्थित्वा पापी पक्षीव पंजरे ॥ ४५ ॥ कुज-  
 रक्षापितालानो कळजलमात्मनः । नानादुःखानि मुजानो भूयस्त्वेव रजितः ॥ ४६ ॥ इदियार्थेषु संसर्गो रतितीव्रतरोदयात् । अशुचिष्वेव संवृद्धपुण्यो  
 वस्त्रकीटवत् ॥ ४८ ॥ विभ्यन्त्योस्तमाधावन् वर्ज्यदुःखस्तदर्जयत् । विपर्यस्तमतिः कष्टमार्तैरीद्राहिताशया ॥ ४९ ॥ भवे आम्ययविश्राम्यन् प्रता-  
 म्यन् पापपाकतः । दृढा निक्कटा धिगमूढमभीष्टार्थविधातिनी ॥ ५० ॥ इति निर्वेदसवेगाद्भोगरागातिदूगः । सारस्तदादिसर्वापरागमरसरमर्चितः ॥  
 ५१ ॥ अथोपशमसप्राप्तशस्तसंज्वलनोदयः । लब्धवोधि सुतं राज्ये निजे सयोज्य सुप्रभ ॥ ५२ ॥ साम्बिकं सुरै प्राप्य परीनि क्वातिपूजनं ।  
 और होनहार तीर्थकरपनेको स्मरणकर संसारमें होनेवाले भावोंका बार बार विचार करने लगे ॥ ४५ ॥ वे विचार  
 करने लगे कि इस आत्माने अपने आपही इस आत्माको अनादिकालसे चले आए बंधसे अच्छी तरह जकड़कर बंध  
 रक्खा है, जिसप्रकार पक्षी पिंजरेमें बंद हो जाता है उसीप्रकार यह आत्मा शरीररूपी जेलखानेमें बंद हो रहा है ॥  
 ४६ ॥ अथवा अपने बलको दिखलानेवाला हाथी अपने आप बड़ा खंभा लाकर देता है और उससे स्वयं बंध जाता  
 है उसी प्रकार यह आत्मा बंध रहा है यह अनेक दुःखोंको भोगता है और फिर उन्हींमें राग करने लग जाता  
 ४७ ॥ रति नामके मोहकर्मके अत्यंत तीव्र उदयसे यह आत्मा इन्द्रियोंके विषयोंमें तल्लीन रहता है और विद्याके की-  
 डके समान शरीर आदि अपवित्र पदार्थोंमें ही अपनी वृष्णा बढ़ाता रहता है ॥ ४८ ॥ जो छोड़ने योग्य दुःखोंमें ही  
 मग्न है ऐसा यह प्राणी मृत्युसे डरता है परंतु उसीकी ओर दौडता है और उसीका संचय करता है दुःख है कि आते  
 और रौद्रध्यानसे हृदय मीगनेके कारण इसकी बुद्धि ही विपरीत हो रही है ॥ ४९ ॥ संसारमें परिभ्रमण करता हुआ  
 यह कमी विश्राम नहीं लेता और पापकर्मके उदयसे सदा दुःखी रहता है । अमीष्ट अर्थका घात करनेवाली, दृढ और  
 अत्यंत प्रचलित ऐसी इस मूर्खताको मी धिक्कार हो ॥ ५० ॥ इसतरहके निर्वेद और संवेग उत्पन्न होनेसे वे भोगोंके  
 प्रेमसे बहुत दूर जा खड़े हुए और उसी समय सारस्वत आदि वीतरागी लौकांतिक देवोंने आकर उनकी पूजा की ॥  
 ५१ ॥ कर्मोंके ध्योपशमसे उनके प्रशस्त संज्वलनका उदय हुआ अर्थात् प्रत्याख्यानवरण अप्रत्याख्यानावरणका उप-  
 शम होगया और रत्नत्रयको पाकर उन्होंने सुप्रभ नामके अपने पुत्रको राज्यका भार सौंपा ॥ ५२ ॥ इंद्रादि देवोंने  
 आकर उनका अभिषेक किया और दीक्षा कल्याणकी पूजन की तदनंतर वे भगवान मनोहर उषरकुरु नामकी

ताने वर्षमानत । गतेषु पथिलक्षेणु नमिनाथममुद्रवः ॥ ३२ ॥ आयुर्दशमहस्राणि वर्षाणां परम मत । उत्तेधो यनुयां पंच दश चास्यामिनीयते ॥ ३३ ॥  
जातरूपयुति सार्द्धद्विसहस्राब्दसमिति । गते कुमारकाले ऽभिषेकमापत्सराज्यक ॥ ३४ ॥ राज्ये पञ्चसहस्राणि वर्त्सराणामशुर्विभो । तदा प्रायुधुनाटोप-  
संकटे गगनागणे ॥ ३५ ॥ एवं वनविहाराय गतवत महोदय । गजस्त्रयममारुढ भानुमत्तमिवापरं ॥ ३६ ॥ नभस्तलगता देवकुमारो विहितानती । एवं  
विष्णायामासतुर्वदकरपङ्कजा ॥ ३७ ॥ द्वीपेस्मिन्प्राग्निदेहेति विषयो वन्यकावती । सुसीमा नगरी तत्र विमानादपराजितात् ॥ ३८ ॥ अवतीर्य समु-  
त्पन्नतीर्थनाथोपराजितः । तस्य केवलपूजायं देवेंद्राः समुपागता ॥ ३९ ॥ तत्समायामाभूत्त्रय किमस्ति मरतेदुना । कथितोर्ध्वदित्याह सोऽयं  
सकलार्थदहृक् ॥ ४० ॥ वगाख्यदेशो मिथिलानगरे नयिनामक । भवितीर्थकरः पुण्यादवतीर्णो ऽपराजितात् ॥ ४१ ॥ देवोपनीतभोगानां भोक्ता  
संप्रति साध्विति । तपः प्राग्धातकीखंडे कृत्वा सौवर्ग्यनामनि ॥ ४२ ॥ सपूज्येता द्वितीयेन्द्र मत्वा तद्वचन धृते । भवतमीलितु पूज्यमाभामेवं स-  
की थी और शरीर पंद्रह घनुष ऊंचा था और शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी । कुमारकालके पञ्चीमसा वर्ष बी-  
त जानेपर उन्हें अभियेकपूर्वक राज्य प्राप्त हुआ था ॥ ३३-३४ ॥ उन भगवानने पांच हजार वर्षतक राज्य किया  
था किसी एक समय वर्षा ऋतुके घने बादलोंसे घिरे हुए आकाशमार्गसे वे महा उदयशाली भगवान किसी वनमें वि-  
हार करने गये थे और दूसरे सूर्यके समान वे हाथीके मस्तक पर विराजमान थे, उसीसमय आकाशमार्गसे दो देव कु-  
मार आए उन्होंने आकर भगवानको नमस्कार किया और करकमल जोड़कर इसप्रकार निवेदन करने लगे ॥ ३५-३७ ॥  
कि हे नाथ ! इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक वत्सकावती देश है उसमें सुसीमा नामकी नगरी है उसमें अपरा-  
जित विमानसे आकर अपराजित नामके तीर्थकर उत्पन्न हुए हैं । उनके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिये सब इन्द्रादि  
देव आए थे ॥ ३८-३९ ॥ उनकी सभामें यह प्रश्न हुआ था कि इस समय भारतक्षेत्रमें क्या कोई तीर्थकर है ? इस-  
के उत्तरमें उन सर्वदेवोंने कहा था कि वंगदेशके मिथिला नगरमें नमिनाथ नामके होनहार तीर्थकर अपने पुण्यकर्मके  
उदयसे अपराजित स्वर्गसेही आकर उत्पन्न हुए हैं ॥ ४०-४१ ॥ तथा इस समय वे देवोंके द्वारा प्राप्त हुए भोगोप-  
भोगोंका अच्छी तरह सेवन कर रहे हैं । हे प्रभो ! हम दोनों पहिले धातकीखंडमें थे तपश्चरण कर सौवर्ग्य स्वर्गमें  
देव हुए दूसरे ही दिन अपराजित केवलीके दर्शन करनेके लिये गये और वहाँके बचन सुनकर कौतुकके साथ पूज्य  
आपके दर्शनके लिये आए हैं ॥ ४२-४३ ॥ जिन्हें केवलज्ञानका उदय समीप ही होनेवाला है ऐसे वे भगवान उन  
देवोंकी बातें सुनकर और चित्तमें सब धारणकर अपने नगरको लौट गये ॥ ४४ ॥ वहाँपर पहिले भवके सब संबंधको

जयार्थिषु ॥ २३ ॥ शरव्यापिः सरस्वेव ज्योति प्वेवानवस्थिति । कीर्य क्रूरमहेव देवेव्वेव पिशाचता ॥ २४ ॥ वणिग्ला तन्महादेवी वसुधाराविप्लुजिता । श्रीही  
प्रलादिभिः सेव्या सुयसुप्तानिशावधौ ॥ २५ ॥ शरदादिद्वितीयाया नक्षत्रेष्वादिसे सति । स्वर्गावतरणे भर्तुर्दृष्ट्वा स्वप्नपुरोदितान् ॥ २६ ॥ स्वकाञ्चप्र-  
विष्टमप्यालोक्य विनिप्रिका । प्रभातपट्टहृच्चानश्रवणाविष्कृतोत्सवा ॥ २७ ॥ अष्टच्छफलमेतेषा नृपं देशवधीक्षणं । सोप्यवादीश्वरवर्भे भावितीर्थकृ-  
म्या विश्वलोकेशमसूत तनुजोत्तमं ॥ ३० ॥ देवा द्वितीयकल्याणमप्यभ्येत्य तदा व्यधुः । नर्मिनामानमयेन व्याहरन्मोहमेदिनं ॥ ३१ ॥ मुनिमुव्रतवीर्यशस्त्र-  
का धन तुराया यह शब्द ही नहीं था अर्थात् उसके राज्यमें विना दी हुई कोई चीज किसीकी नहीं लेता था, इसीप्रकार  
बंधन केवल काव्यमें था दूसरी जगह नहीं, और विवाद केवल विजय चाहनेवाले विद्वानोंमें ही था, शर नामकी एक  
तरहकी रुखड़ीकी फैलावट केवल नदियोंमें थी दूसरी जगह शर अर्थात् बाणोंकी फैलावट नहीं थी, इसीतरह अस्थि-  
रता केवल ज्योतिषी जातिके देवोंके विमानोंमें ही थी दूसरी जगह नहीं, क्रूरता केवल क्रूर ग्रहोंमें ही थी और पिचा-  
चपन केवल व्यंतर जातिके एक तरहके देवोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २३-२४ ॥ उस राजाकी महादेवीका नाम  
वणिग्ला था रत्नोंकी वर्षा आदिसे वह पूजित हुई थी और श्री द्वी भी आदि अनेक देवियां उसकी सेवा करने लगी  
थीं, आश्विन ( क्वार ) कृष्णा द्वितियाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें वह सुखसे सो रही थी उसी दिन रात्रिके पिछिड़े प-  
हर भगवानके गर्भावतरणके समय ( जिससमय उस अर्धमिदने महादेवीके गर्भमें अवतार लिया था ) उसने पहिले कहे  
हुए सोलह स्वप्न देखे ॥ २५-२६ ॥ अंतमें उसने अपने सुखकमलमें घुसता हुआ एक हाथी भी देखा और उसे  
देख कर सवेरेके वजते हुये नगाड़ोंको सुनती हुई अनक उत्सवोंके साथ वह लगी ॥ २७ ॥ देशवधिको धारण करने-  
वाले महाराजसे उन स्वप्नोंके फल पूछे और महाराजने भी “आपके गर्भमें होनहार तीर्थकर आए हैं” यह उन स्व-  
प्नोंका फल कहा ॥ २८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देव आये और अपने अपने नियोगके अनुसार स्वर्गावतरणका उत्सव  
मनाकर सब एक साथ अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २९ ॥ आसाढ कृष्णा दशमीके दिन स्वाति नक्षत्रमें उस  
महादेवीने तीनों लोकोंके स्वामी और तेजस्वी ऐसे उत्तम पुत्ररत्नको उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने  
आकर जन्म कल्याणका उत्सव मनाया और मोहनीयकर्मको नाश करनेवाले उन भगवानका नमिनाथ नाम रक्खा ॥  
३१ ॥ मुनिमुव्रत तीर्थकरके वाद साठ लाख वर्ष वीत जानेपर नमिनाथ हुये थे ॥ ३२ ॥ उनकी आयु दशहजार वर्ष-



स्वगुरोर्मुनेः । भुत्वा शरीरसंन्यासं विच्छिन्ननिषण्डह ॥ १२ ॥ श्रुत्वा मनोहरोक्तं पुनरुत्तरार्थविस्तृतिः । महाकलाभिरात्मा गतेरन्तात्मानेव नात् ॥  
१३ ॥ राज्यभारं समारोप्य श्रीदत्ते स्वकुले सति । लज्जश्रविक्रमम्यक्त- दम्भी मयमनाददे ॥ १४ ॥ स धृरेकदशो गतिं कृत्वा गोचराकारणः । अञ्ज-  
नामादिर्भीमि पुण्यानि पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥ स्वयुरते समाराण्य विमाने लब्धनाशन । देवोपराजिते पुण्याहुस्तुलसीदेववत् ॥ १६ ॥ अगहिर्भरता गोल्या-  
युदेकार्त्तिसमुच्छ्रितः । निभामाहारैर्यथाविभक्त्योदितैर्युत ॥ १७ ॥ जीवितातेदृग्भिरेस्मिन् कामार्थगतस्मिन्गति । अक्षयलक्षिते द्रोणे रिपये वगनाम-  
नि ॥ १८ ॥ मिथिलाया महीपालः श्रीमान् गोत्रेण काश्यपः । विभ्रयादिमहाराजो विद्वान्गो विप्रम नन्दे ॥ १९ ॥ अनुरक्तं व्यथातृन्मनुसिन्धु रिक्त-  
गत् । स्वविगगाद्विरक्त तत्सोऽतपस्तस्य तादृश ॥ २० ॥ अकृणीत् गुणानेव मरेन् मुक्तोदयात् । पुष्कलाभिर्युगे तस्मिन् पुरुषार्थजन्यं तपः ॥ २१ ॥ तन्म-  
राज्ये रत्नावेव तापः कोटोपि कामिषु । विमृष्टया तनुर्वेन मुग्धेवैव विरागता ॥ २२ ॥ परार्थमद्वयं नाम कुञ्जकिर्षेव यथं । काश्यपेवैव विषादय विद्वत्सर्व-  
ने भीदस्य नामके अपने उत्तम पूवको राज्यका भार सौम्या तथा श्रायिक सायगर्दनेन धारणकर और शान होकर संयम  
धारणकर लीया ॥ १४ ॥ उम पुरुषोत्तमने ग्यारह अंगोका अभ्यास किया और सोलहकाग्र भावनाओंका चिंतन-  
कर पुण्यस्वरूप तीर्थकर/नाम कर्मका वच किया ॥ १५ ॥ आयुके अंतमें समाधिमग्न धारणकर बह बिलासोत्तम  
मुनिराज अपने पुण्योदयसे अपगजित नामके उत्तम अनुत्तर विमानमें देव हुआ ॥ १६ ॥ बहोत्तर उसकी तेतीस भा-  
गकी आयु थी, एक अरतिन ( हाथ ) ऊँचा शरीर था और निष्पात आहार लेश्या आदि भाव सब पहिले कहे अनु-  
सार थे ॥ १७ ॥ अब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतार लेनेके मन्मुख हुआ उम-  
समय इस बंबूद्रीपके भरतक्षेत्रमें बग देवकी मिथिला नगरीमें श्री रूपभेदके वंशमें उत्पन्न हुआ, काश्यप गोत्री महा-  
राधिराज श्रीविजय नामका प्रसिद्ध राजा राज्य करता था ॥ १८-१९ ॥ उदय होते हुंये सूर्यके समान उसने समस्त  
संसारको अपने आधीन कर लिया था तथा अपने वंगपसे बह उसे विराजतकर देवा था । इसतरह वह संसारको खूब  
ही संतप्त कर रहा था ॥ २० ॥ उसने अपने पुण्योदयसे सब गुण स्वीकार कर लिये थे और इसीलिये उसमें धर्म अर्ध  
काम तीनों पुरुषार्थ स्वयं अच्छी तरह प्रगट हो रहे थे ॥ २१ ॥ उसके राज्यमें ताप केवल सूर्यमें था दूसरी जगह नहीं  
क्रीच केवल कामियोंमें ही था, विप्रह केवल शरीरका ही नाम था दूसरी जगह विप्रह अर्थात् लड़ाई भगदा नहीं था  
और विरागता अर्थात् वैराग्य परिणाम केवल मुनियोंमें ही थे दूसरी जगह विरागता अर्थात् वेप बुद्धि नहीं थी ॥ २२ ॥  
इसीतरह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरेके अर्थको ग्रहण करना केवल कुञ्जकिर्षोंमें था दूसरी जगह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरे-

नगरे राजा पार्थिवराजो विभुविश्वो ॥ २ ॥ चक्षुरिदं कुंशस्य लक्ष्मीं वक्ष्यतेऽदधत् । साक्षात्कीव दिक्चक्रमकम्पाभात्स विक्रमी ॥ ३ ॥ तनूत्रस्तस्य सुदंया देव्या सिद्धार्थनामभाक् । मुनिं मनोहरोयाने परमावधिबीक्षण ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा मुनिवराख्यान कदाचिद्विनयानत । संपृच्छय धर्मसद्भाव यथावत्त-  
रुत्तरितं ॥ ५ ॥ समाकर्ण्य समुत्पन्नसर्ववेगः स भूमीगति । गृतेमूलधनेनाधमणों मृत्योरिहामुभय ॥ ६ ॥ वहन् दुखानि तदुद्धारं सर्वो जन्मनि दुर्गतः । श्रुतमाख्याय प्रजापालनशीलने । सिद्धार्थाय समर्थय दत्त्वा राज्यश्रिय मुधीः ॥ ७ ॥ प्राजातीत्युत्पन्नगदस्य मुनेर्मुनिवरमुते । पादमूलं समासाद्य सतां सा  
वृत्तिरीदृशी ॥ १० ॥ सिद्धार्थोऽव्याप्तसम्यक्त्वो गृहीताणुव्रतादिकः । भोगान् मुखेन भुञ्जान प्रचोऽपालयत्प्रजाः ॥ ११ ॥ काले गच्छति तस्यैवं कदाचि-  
राज्य करता था, वह इक्ष्वाकुवंशका नेत्र था अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको धारण करता था और वह पराक्रमी साक्षात्  
चक्रवर्तीके समान सब दिशाओंपर आक्रमणकर सुशोभित होता था ॥ २-३ ॥ उस राजाके सुंदरी नामकी महादेवीसे  
सिद्धार्थ नामका पुत्र था । किसी एक दिन वह राजा मनोहर नामके उद्यानमें गया था वहाँपर उसने मुनिवर नामके  
अवधिज्ञानी मुनिराजके दर्शन किये, बड़ी विनयसे नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा मुनिराजने धर्मका स्वरूप  
कहा उसे सुनकर राजा विरक्त हुआ और विचार करने लगा कि यह पाणी मरणरूप मूलधन लेकर मृत्युका कर्जदार  
हो रहा है ॥ ४-६ ॥ प्रत्येक जन्ममें अनेक दुर्खोंको भोगता हुआ और उस कणकी दृष्टि करता हुआ सब तरहकी  
दुर्गतियां भोग रहा है । रत्नत्रयको छोड़कर जबतक व्याजसहित यह उससे न चुका दिया जायगा तबतक किसतरह  
स्वस्थ और सुखी हो सकता है ? यही निश्चयकर वह कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये उद्यम करने लगा ॥ ७-८ ॥  
उस बुद्धिमानने अनेक शास्त्रोंको सुननेवाले, प्रजाको अच्छीतरह पालन करनेवाले और सब तरह समर्थ ऐसे अपने  
पुत्र सिद्धार्थके लिये तो राज्यलक्ष्मी समर्पणकी और पूज्यपाद श्रीमुनिवर नामके मुनिराजके चरण कमलोंके  
समीप ही दीक्षा धारणकी सो ठीक ही है क्योंकि मज्जनोंकी प्रवृत्ति ऐसी ही होती है ॥ ९-१० ॥ प्रतापी  
सिद्धार्थ भी सम्यग्दर्शनमें तमन्य हो तथा अनुव्रतादि व्रतोंको धारण कर सुखपूर्वक भोगोंका अनुभव  
करता हुआ प्रजाका पालन करने लगा ॥ ११ ॥ इसप्रकार उसका समय व्यतीत होने लगा । किसी एक समय अ-  
पने पिता मुनिराजके शरीरका समाधिपरण सुनकर वह विषयोंकी इच्छासे विरक्त हुआ, वह शीघ्र ही मनोहर नामके  
वनमें गया और महाबल नामके केवली भगवानके दर्शन कर उनसे सब तत्त्वोंका विस्तार समझा ॥ १२-१३ ॥ उस-

धरितः समाप्य । पञ्चाक्षोर्जनि सुरः स सनत्कुमारे तस्मादिदं सप्तभूद्विभुर्देवकी ॥ मणिमतिः ख गरी शुगभूणा कृतनिदानमृतेरपि कोपिनी । ततश्च  
सप्तभूद्विह सुव्रता परिस्ता जनकेशमुता सती ॥ ७३० ॥ इह सन्निवृत्तन्मदचन्द्रचूलस्य मित्र विजयविदितनामाऽजायत खन्तुतीये । कायितकनकचूत्रो लालितो,  
दिव्यभौगैरमवदमितवीर्यं सूर्यवंशो स रामः ॥ ७३१ ॥ जनयतु वलदेवो देवदेवो दुर्तादुर्गतिदुर्दयो थादृष्टुं यदु खाद्वीयान् । अवनतमुवनेशो विश्वदृष्टा  
विरागी निखिलमुखनिवासः सोऽष्टमोभीष्टमस्मान् ॥ ७३२ ॥

इत्यार्षे भवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्ठिलक्षणमहापुराणमगूढे मुनिपुत्रतर्पीर्यकः हरिषेण चक्रवर्तते रामवलदेवलक्ष्मीधरकेशवसीतारावणपुराण

परिसमाप्तमष्टपद्यं पर्व ॥ ६८ ॥

## अथ एकोनसप्ततितमं पर्व ।

यस्य नामापि धर्तृणा मुक्त्यै हृदयपकजे । नमिर्गमयतामत्रान् मोक्षलक्ष्मीं समष्टु न ॥ १ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते वर्षे विषये वत्सनामनि । कौशव्या  
सरे भवमे मंत्रीका पुत्र और चंद्रचूलका मित्रविजय नामसे प्रसिद्ध हुआ था फिर दिव्य भोगोंसे लालित यालित ऐशा  
कनकचूल नामका देव हुआ और फिर सूर्यवंशमें अपार शक्तिको धारण करनेवाला रामचंद्र हुआ ॥ ७३१ ॥ जो बुरे  
से बुरे पापोंके अशुभोदयसे उत्पन्न हुए बुरे दुर्बोले कोसों दूर थे, जिन्होंने संसारके सब इंद्रोंसे नमस्कार करा लिया  
था जो वीतराग सर्वज्ञ और समस्त सुखोंके निवासस्थान थे ऐसे देवाधिदेव आठवें बलदेव रामचंद्र हमलोगोंकी  
इष्टसिद्धि करें ॥ ७३२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मुनिसुव्रततीर्थंकर हरिषेण चक्रवर्ती रामवलदेव लक्ष्मीधर  
( लक्ष्मण ) नारायण सीता और रावणका पुराण समाप्त करनेवाला यह अष्टसठवा पर्व पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

## अथ उनहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर—हृदयकमलमें धारण किया हुआ जिनका नाम भी मोक्ष दे सकता है ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी नम्र  
हुए हम लोगोंको मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ १ ॥ इसी जम्बूद्वीपके भारतक्षेत्रमें वत्सदेशके कौशात्री नगरमें पार्थिव नामका राजा

सैन्यं रुक्मा रियोः पुरमगारमिवैकमलयं । निर्मूल्यं वरिङ्गलमाश्रितं सत्समीपस्थया सह क्षितिपुतामपहृत्य शत्रोः ॥ ७२४ ॥ आनम्रागमभूतमथरशिरः  
पीठोद्धृताद्दिवा निष्कन्दीकृतदक्षिणाद्भरतामृण्डविमंढाधिना । साकेत समधिष्ठिता हतशुचिगोद्रासिभास्वत्प्रभा दिभ्यातद्विपसर्पदंशमनन्यमोप्रवीरप्रिया ॥  
७२५ ॥ सीरादिप्रयुतिप्रसिद्धविलसदरत्नावलीरंजितश्रीसपादितभोग्योगमुग्गिना संवर्धयिततर्पका । चद्राकाविव तेजसा स्वयशसा विश्व प्रकाश्य स्फुटं श्री-  
द्विशेषान्मा तद्व्यथादुधवत्सुखयो निदान ॥ ७२६ ॥ एकस्त्रिचक्रोक्तशिविरं मुखमध्यगतिष्ठदन्त्यश्रुतर्धनरकावनिनायकोभूर । भोग्ये समेपि परिणामकता-  
ताखिलसंचरोज्ज्वलसिरोमालो विनम्यन्वये स्त्रीलो लो निजवशकैरुहनाचारागणी रावण ॥ ७२८ ॥ आसीदहैव मलये विषये महीशस्तु त्वचद्रूल इति दु-  
हाथियोंके ( दिग्गजोंके ) बहते हुए मदको शान्त करनेके लिये जिनकी उग्र वीर लक्ष्मी मदा व्यग्र रहती थी हलको  
आदि लेकर दैदीप्यमान रत्नों की पंक्तियोंसे सुशोभित ऐसी लक्ष्मीके द्वारा इकट्ठे किये हुए भागोंके संयोगोंसे जो  
बड़े ही सुखी थे, जो समस्त याचकोंको संतुष्ट करनेवाले थे, प्रतापसे जो सूर्य चंद्रमाके मंडलके समान थे, यशसे जि-  
न्होंने समस्त संसारको खूब अच्छी तरह प्रकाशित कर दिया था ऐसे श्रीमान् वलभद्र नारायण वा रामचंद्र लक्ष्मणने  
साथ साथ बहुत दिनतक इस पृथ्वीका पालन किया था ॥ ७२४-७२६ ॥ उनमेंसे एक तो तीनों लोकोंके शिवरप-  
विराजमान होकर अनंत सुखोंका अनुभव करने लगा और दूसरा चौथे नरकका स्वामी हुआ अर्थात् चौथे नरकमें  
गया । यद्यपि उन दोनोंकी उपयोग करनेकी वस्तुएं मय समान थीं तथापि परिणामोंमें विशेषता होनेसे ऐसा हुआ  
इसलिये बुद्धिमानोंको सुखोंके समान कभी निदान नहीं करना चाहिये ॥ ७२७ ॥ रावणका जीव पहिले सारसमुञ्चय  
नामके देशमें नरदेव नामका राजा हुआ था और वहांमे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रमें राजा विनमिके वशमें समस्त  
विद्याधरोंको वश करनेवाला, स्त्रीलंपट, अपना वंशका केतु ( नाशक ) अहित करनेवालोंमें मुख्य और जिसके मस्त-  
कोकी माला दैदीप्यमान हो रही है ऐसा रावण हुआ था ॥ ७२८ ॥ लक्ष्मणका जीव पहिले इसी क्षेत्रके मलय देशमें  
चद्रचूल नामका राजपुत्र हुआ था जो कि अत्यंत दुराचारी था, फिर तपश्चरण धारणकर सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ  
और फिर वहांसे आकर इसी भरतक्षेत्रमें अर्द्धचक्री लक्ष्मण हुआ ॥ ७२९ ॥ सीताका जीव पहिले गुणोंसे सुशोभित  
मणिमति नामकी विद्याधरी थी वहां पर क्रोधित होकर मरते समय निदान किया था वहांसे आकर यशको रत्नने-  
वाली अच्छे व्रतोंको पालन करनेवाली महासती जानकी पुत्री सीता हुई थी ॥ ७३० ॥ रामचंद्रका जीव पहिले ती-

धाय यथावाक्कि यथाविधि । रामाणुमंतौ सजातौ श्रुतकेवलिनौ मुनी ॥ ७१४ ॥ जाता शेषाश्च युष्यादिसप्तवृष्याविष्कृतोदयाः । एव छत्रस्यकालस्य प-  
चाद्वेनचनु शते ॥ ७१५ ॥ न्यतीतवति सद्ग्यानविशेषाद्वत्तथातिनः । रामस्य केवलज्ञानमुदपरायकार्षिबवत् ॥ ७१६ ॥ समुद्रनैकछत्रादिप्रातिहार्यविभू-  
षित । अर्षिचन्द्रव्यसस्याना दृष्टि धर्मभयीमसां ॥ ६१७ ॥ एव केवलबोधेन नीत्वा घट्टशतकत्तरान् । फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे शुक्लपक्षे चतुर्दशी-॥ ७१८ ॥  
क्षिने सम्मेदगिर्यगे तृतीय शुक्लमाश्रितः । ओगत्रितयमाह्वय समुन्मुखक्रियाश्रय ॥ ७१९ ॥ नि शेषा प्राकृताघातिकर्मोऽणुमदादिभिः । शरीरत्रितयापायाद-  
बापतपसुभ्रत ॥ ७२० ॥ विभीषणादयः वे चित्प्रापन्ननुग्राहा पुनः । रामचवक्ष्यप्रवेद्यायाः काश्चिद्युरिनोच्युत ॥ ७२१ ॥ शेषाः कल्पेभवन्नादौ लक्ष्मणया-  
गत कमात् । नरकात्सयम प्राप्य मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति ॥ ७२२ ॥ विनैयातस्य जतूना भवेद्वैचित्र्यभीहृत् ॥ ७२३ ॥ श्रोत्वैव गोपदमिन्नावुनिधिं स्व-  
सूर्यके विवके समान उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ७१५-७१६ ॥ उसीसमय एक छत्र आदि प्रातिहार्य प्रगट हुए  
और उनसे सुशीमित होकर वे भव्यरूपी अनाजके पौधोंको धर्मकी वर्षाकर सींचने लगे ॥ ७१७ ॥ इसतरह केवलज्ञानसे  
विभूषित होकर उन्होंने छहसौ वर्ष व्यतीत किये तब फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीके दिन सबरेके समय स्वयं पर्वतके शिख-  
रपर विराजमान होकर तीसरे शुक्लध्यानके आश्रयसे तीनों योगोंका निरोध किया और समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे  
शुक्लध्यानके आश्रयसे समस्त वेचे हुए अघातिया कर्मोंका नाशकर तीनों शरीरोंके नाश हो जानेसे अनुमान आदिके  
साथ साथ सबसे उत्तम पद प्राप्त किया अर्थात् उस दिन वे मुक्त हुए ॥ ७१९-७२० ॥ विभीषण आदि कितने ही  
मुनिराज अनुदिश विमानमें अहर्भित्र हुए रामचंद्र लक्ष्मणकी पटरानी सीता और शृथिवीसुंदरी आदि कितनीही अर्जि-  
काएं अच्युत स्वर्गमें देव हुई ॥ ७२१ ॥ बाकी सब सोलह स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए । लक्ष्मण नरकसे निकलकर अनुक्रमसे  
संयम धारण करेगा और अंतमें मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होगा ॥ ७२२ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंको संयम धारण  
करनेसे ऐसा ही फल मिला करता है ॥ ७२३ ॥ जिन दोनों भार्योंने समुद्रको गोपदके ( कीचडमें बनेहुए गौंके  
खुरके ) समान उल्टवन किया जिन्होंने अपनी सेनासे एक छोटे घरके समान शत्रुके नगरको घेर लिया खेतके समान  
शत्रुका सब घर बहुत सीघ्र चौपट कर दिया और लक्ष्मीके साथ साथ सीता भी शत्रुसे छुड़ा ली, नमस्कार करते  
हुए देव विद्याधर और भूमिगोचरियोंके राजाओंके मस्तकोंसे लगे हुए सिंहासन पर जिनके चरण कमल रहते थे जि-  
न्होंने दक्षिण की ओरका आधा भरतक्षेत्र निर्फटक कर दिया था जो तीनों खंडोंके स्वामी थे, अयोध्यामें निवास  
करते थे, जेठ महीनेके वैदीप्यमान सूर्यको कालिको नी जिन्होंने विरस्कृत कर दिया था, दिशाओंके अंतमें रहनेवाले

राज्यं निधायोच्चैः सपट्टं वैशवात्मजे ॥ ७०४ ॥ अष्टौ विजयराभाया सीतायाः सात्विकाः सुताः । लक्ष्मीमनसिवांच्छु तेषां ज्येष्ठेषु सप्तसु ॥ ७०५ ॥  
 दत्वाजितजयाख्याय यौवराज्यं कनीयसे । मिथिलामर्पयित्वास्मै त्रिनिर्वंदपरायणैः ॥ ७०६ ॥ साकेतपुरमभ्येत्य दत्ते सिद्धार्थनामनि । शृणुमस्वामिनिकाति  
 तीर्थभूमौ महौजसः ॥ ७०७ ॥ शिवशुताभिधानस्य समीपे केवलेजिन । ससारमोक्षयोर्हेतुफले सम्यक् प्रबुद्धवान् ॥ ७०८ ॥ निदानशल्यदोषेण चतुर्थी  
 नारकीं भुवं । केशव प्राप्त इत्येतद् बुद्ध्वा देवो विशुद्धधी ॥ ७०९ ॥ निरस्ततद्गतवैहविधिरामिनिवोधिकात् । वेदान्याहुर्भवद्वोधिः सुग्रीवाणुसदादिभिः ॥  
 ७१० ॥ विमिषणादिमिश्रामा भूमिपैः पंचभिः शतैः । अशीतिशतपुत्रैश्च सह संयममाप्तवान् ॥ ७११ ॥ तथा सीता महादेवी शुश्रूषीसुंदरीयुता । देव्यं श्रुत-  
 वती सास्तिनिकटे तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥ तौ राजयुवराजौ च गृहीतश्रावकक्रतौ । जिनाद्दिशुयमानमभ्य सम्यक्शुश्रूषिता पुरी ॥ ७१३ ॥ मोक्षमार्गमनु-  
 द्रिया और अपने ही हाथसे उसका पट्ट बंधा ॥ ७०४ ॥ सात्विक वृत्तिको धारण करनेवाले विजयराम आदिक  
 सीताके आठ पुत्र थे उनमेंसे बड़े २ सातोंने तो राज्यलक्ष्मीकी अनिच्छा प्रगटकी इसलिये रामचंद्रने अजितजय नाम-  
 के सबसे छोटे पुत्रको युवराज पद दिया और मिथिला देश उसके समर्पण किया तथा आप संसार शरीर और भोगों-  
 से अत्यंत विरक्त हुये ॥ ७०५-७०६ ॥ वे अयोध्या नगरके समीप सिद्धार्थ नामके बनमें गये जो कि श्रीहृषय देवके  
 तपकल्याणक धारण करनेसे तीर्थस्थान होगया था वहांपर महा पराक्रमी श्रीशिवगुप्त नामके केवली भगवान् विराजमा-  
 नथे उनसे उन्होंने संसार तथा मोक्षका हेतु तथा फल अच्छी तरह समझा ॥ ७०७-७०८ ॥ लक्ष्मण निदान नामकी  
 शल्यके अपराधसे चौथे नरकमें गया है वह जानकर उनकी बुद्धि और विशुद्ध होगई उन्होंने लक्ष्मणका मोह छोड  
 दिया और आमिनिबोधक नामके ज्ञानसे अनुमानसे उन्हें रत्नत्रय प्राप्त हुआ । तदनंतर सुग्रीव हनुमान और विभीषण  
 आदि पाचसौ राजाओंके साथ तथा एक सौ अस्सी पुत्रोंके साथ सीता महादेवी ने भी श्रुतवती नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण  
 प्रकार शुश्रूषी सुंदरी आठ रानियोंके साथ साथ सीता महादेवी ने भी श्रुतवती नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण  
 करली ॥ ७१२ ॥ शुश्रूषीसुंदर और अजितजय दोनों राजा और युवराजाओंने श्रावकोंके व्रत धारण किये और श्री  
 जिनराजके चरणकमलोंको नमस्कारकर अच्छीतरह नगरीमें प्रवेश किया ॥ ७१३ ॥ रामचंद्र और हनुमान दोनों ही  
 सुनिराजोंने अपनी शक्तिके अनुसार और विधिपूर्वक मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकी और दोनों ही श्रुतकेवली हुए ॥ ७१४ ॥  
 शेष बचे हुए सुनिराज भी बुद्धि आदि सातों ऋद्धियोंसे विभूषित और प्रसिद्ध हुए । इसप्रकार छत्रस्य अवस्थाके ती-  
 नसौ पिचाने वर्ष व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यान नामके उत्तम ध्यानसे रामचंद्रने घातिया कर्मोंका नाश किया और

भवलितुंगमासादैकांशविच्युति ॥ ६९३ ॥ स्वमे दष्ट्रा समुत्थाय समासाद्य निजाप्रज । स्वप्नान् सप्रथयं सर्वान् यथादृष्टान् न्यवेदयत् ॥ ६९४ ॥ पुरोहि-  
तस्तादाकर्ण्य फल तत्रैत्र्यमब्रवीत् । न्यमोघोन्मूलनाद् व्याधिमसाध्य कैशवो ब्रजेत् ॥ ६९५ ॥ राहुप्रस्तार्कसपाताद्व्योमयोगयुषां क्षय । तुंगप्रासाद-  
भोगेन त्व प्रयाता तपोवनं ॥ ६९६ ॥ ईश्वरकान्ते वचस्तस्य श्रुत्वा रामो यथार्थवित् । धीरोदात्ततया नायान्मनागपि मनःक्षतिं ॥ ६९७ ॥ लोकद्वन्द्वहितं  
मत्वा कारयामास घोषण । प्राग्निना नहि हतव्या कैश्चिद्योति द्योयवत् ॥ ६९८ ॥ चकार शक्तिपूजा च सर्वज्ञसवनान्वधि । देवो दान च क्षीनेभ्यो येन  
यद्यदभीप्सितं ॥ ६९९ ॥ तभूव क्षीणपुण्यस्य ततः कतिपयैर्दिनैः । केशवस्य महाव्याधिरसातोदयचोदित ॥ ७०० ॥ दुःसाध्येनामयेनासौ माघे मास्य-  
सितंतिमे । दिने तेनागमचक्री पृथ्वीं पक्कप्रभाभिर्धा ॥ ७०१ ॥ तद्वियोगेन शोकामिसतसहृदयो बलः । कथं कथमपि ज्ञानात्सर्घार्थात्मानमात्मना ॥  
७०२ ॥ कृत्वा शरीरसंस्कारमनुजस्य यथाविधि । सर्वतःपुरदुःखं च प्रथममप्य प्रसन्नवाक् ॥ ७०३ ॥ सर्वप्रकृतिसान्निध्ये पृथिवीसुंदरे सुते । ज्येष्ठे

६९२-६९४ ॥ पुरोहित सुनते ही उनका फल इसतरह कहने लगा कि स्वप्नमें जो बडका वृक्ष टूटता हुआ देखा है उसका फल यही है कि लक्ष्मणको कोई असाध्य रोग होगा, राहुसे टका हुआ सूर्य जो रसातलमें चलागया देखा है उसका फल भोगोपभोग करने योग्य वस्तुओंकी आयुका नाश हो जाना है और ऊँचे राजमहलके गिर जानेका फल आपका ( रामचंद्रका ) तपोवन चले जाना है ॥ ६९५-६९६ ॥ इसप्रकार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले रामचंद्रने वे पुरोहितके बचन एकांत स्थानमें सुने और धीरवीर तथा गंभीर होनेसे उनके चित्तमें कुछ भी रंज नहीं हुआ ॥ ६९७ ॥ तदनंतर दयाशाली रामचंद्रने दोनों लोकोंका हित समझकर यह घोषणा कर दी कि हमारे राज्यमें कोई मनुष्य किसी जीवको न मारने पावे ॥ ६९८ ॥ इसके सिवाय उन्होंने सर्वदेवके चरण कमलोंके समीप शान्ति पूजाकी और दीन लोगोंको उनकी इच्छानुसार अर्थात् जो जो उन्हें चाहिये वही दान दिया ॥ ६९९ ॥ तदनंतर-पुण्य कर्मोंके नाश होजानेके कारण थोडे ही दिनोंमें असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेसे लक्ष्मणको बडा भारी रोग हुआ ॥ ७०० ॥ वह चक्रवर्ती लक्ष्मण माघ कृष्णा अमावास्याके दिन उसी असाध्य रोगसे मरकर पंकप्रभा नामकी चौथी पृथ्वीमें ( चौथे नरकमें ) वा उत्पन्न हुआ ॥ ७०१ ॥ लक्ष्मणके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकरूपी अग्निसे जिनका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसे रामचंद्रने ज्ञान होनेसे किसी तरह अपने आप आत्माको संभाला ॥ ७०२ ॥ तदनंतर उन्होंने विविधपूर्वक अपने छोटे भाईका शरीर संस्कार किया और प्रसन्नतापूर्वक बचन कहकर रणवासकी सब रानि-योका दुःख शान्त किया ॥ ७०३ ॥ फिर उन्होंने सब प्रजाके सामने पृथ्वीसुंदर नामके लक्ष्मणके बडे पुत्रको राज्य



फनुयोंगैनेहेतुभि । गुणमुख्यनयादानविशेषगल्लाभतः ॥ ६८२ ॥ स्थान्छन्दलान्छितास्तित्वनास्तित्वव्यंतमुत्तं । जीवतीया पदार्थानां तत्त्वगुण-  
लक्षणं ॥ ६८३ ॥ मार्गणा गुणजीवाना समासं संसृतिरिति । अन्यच्च धर्मसंबद्ध न्यक्तं युक्तितमाम्भित ॥ ६८४ ॥ कर्ममेदान् फलं तेषां सुखदुःखादि-  
भेदकं । बंधमोचनयोर्हेतु स्वरूप मुक्तिमुक्तयोः ॥ ६८५ ॥ इति धर्मविशेष तत् ततः श्रुत्वा मनीषिणः । सर्वे रामादयोभूवत् पृथीतोपासकत्रता ॥ ६८६ ॥  
निदानशल्यदोषेण भोगासक्त स कैशव । वषाद्युन्नारक घोरं नागृहीदर्शनादिकं ॥ ६८७ ॥ एव सवत्सराजीत्वा माकेते कतिन्विमुख । तदाधिपत्य भक्त्या-  
मुचाभ्यां प्रदाय तौ ॥ ६८८ ॥ स्वयं स्वपरिवारेण गत्वा वाराणसीं पुरीं । प्राविष्टतामधिष्यिष्य शकजीलां स्वसपदा ॥ ६८९ ॥ सुतो विजयरामान्नो  
रामस्यामरमक्षिभः । युथिवीचरनामाभूच्छादागः कैशवस्य च ॥ ६९० ॥ अन्यैश्च पुत्रपौत्राद्यैः परीतो तौ धृतोदया । नयतःस्स सुख काल त्रिवर्गफला-  
लिनौ ॥ ६९१ ॥ कदाचिच्छरणो नागवाहिनीशयने सुख । मुपेत्यग्नौघघृक्षस्य भजन मतदंतिना ॥ ६९२ ॥ संहिक्रयनिर्गणैर्कासातलनिवेशनं । सुवा-

कह सुनाई तथा और भी युवितयोंसे सुसंगत धर्मका स्पष्ट स्वरूप कहा । कर्मके भेद कहे सुख दुःख आदि उनका  
फल कहा और मोक्षके कारण वतलाये तथा मुक्ति और मुक्त होनेवाले जीवोंका स्वरूप बतलाया ॥ ६८२---८५ ॥  
इसप्रकार मुनिराजने धर्मका विशेष स्वरूप बतलाया जिसे सुनकर रामचंद्र आदि सब बुद्धिमान लोगोंने श्रावकके व्रत  
धारण किये ॥ ८६ ॥ निदान नामकी शल्यके दोषसे लक्ष्मण भोगोंमें आसक्त था तथा उसने घोर नरकायुका बंध  
भी कर लिया था इसलिये सम्यग्दर्शन आदि कुछ भी धारण नहीं किया ॥ ८७ ॥ इसतरह उन दोनों भाइयोंके  
कुछ वर्ष तो सुख पूर्वक अयोध्यामें ही निकल गये तदनंतर उन दोनोंने वहांका राज्य तो भरत और शत्रुघ्नको दिया  
और आप अपने सब परिवारके साथ बनारसी नगरीमें आए तथा अपनी संपदाओंसे इंद्रजी लीलाको भी तिरस्कार  
करते हुए रहने लगे ॥ ८८---८९ ॥ रामचंद्रके देवके समान विजयराम नामका पुत्र हुआ था और लक्ष्मणके चंद्रमा  
के समान पृथ्वीचंद्र नामका पुत्र हुआ था ॥ ९० ॥ जिनका उदय प्रसिद्ध है और जो तीनों पुरुषार्थोंके फलोंसे  
सुशोभित हैं ऐसे वे दोनों भाई और भी अनेक पुत्र पौत्रों सहित सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे ॥ ७१ ॥  
किसी एक दिन लक्ष्मण नागवाहिनी शय्यापर सुखसे सोया हुआ था वहांपर उसने तीन स्वप्न देखे-पहिला मस्त  
हाथीके द्वारा बडका वृक्ष उखाड़ा जाना, दूसरा राट्टके द्वारा निगले हुए (ढंके हुए) सूर्यका रसातलमें चले जाना और  
तीसरा चूनेसे पोते हुए बड़े भारी राजभवनका एक अंग गिर जाना । इन स्वप्नोंको देखकर वह उठा, अपने बड़े  
भाई रामचंद्रके समीप पहुंचा और उनसे बड़ी विनयके साथ सब देखे हुए स्वप्न यथार्थ रीतिसे निवेदन कर दिये ॥

६७० ॥ इन्द्रपञ्चकपक्षविधिमितास्तुंगमतगजा । रथवर्थास्तु तावतो नवक्रोव्यस्तुरंगमा ॥ ६७१ ॥ स्वसप्तकद्विचार्युका युद्धशौढाः पदातय । देशा-  
द्यसहस्राणि गणवद्वासिधानकाः ॥ ६७२ ॥ हलायुधं महागजमपरवित्तनामकं । अमोघाह्वयाः खगास्तीक्ष्णाः स्रग्धया कौमुदी गदा ॥ ६७३ ॥ रत्नाव-  
तसिका माला रत्नान्येतानि सीरिणः । तानि यक्षमहेश्वरेण रक्षितानि पृथक् पृथक् ॥ ६७४ ॥ चक्र सुदर्शनाह्वयं कौमुदीयुदिता गदा । अक्षिः सौनन्दकोऽ-  
मोघमुखी शक्तिः शरासना ॥ ६७५ ॥ शार्ङ्ग पञ्चमुख पाञ्चजन्यः शखो महाध्वनिः । कौस्तुभ स्रग्भामारभासमान महामणिः ॥ ६७६ ॥ रत्नान्येतानि सप्तैव के-  
शवस्य पृथक् पृथक् । सदा यक्षसहस्रेण रक्षितान्यमितयुतेः ॥ ६७७ ॥ एव तयोर्महाभागधेययोगैर्भोगपदा । निमग्नयोः सुवामोघा काले गच्छत्यन्यथा ॥  
६७८ ॥ जिन मनोहरोद्याने शिवगुप्तसमाह्वयं । विनयेन समामाद्य पूजयित्वामिवयता ॥ ६७९ ॥ श्रद्धालुधर्मप्रप्राप्तीक्षीमान् राम सकेशव । प्रत्यासम्भा-  
स्मनिष्ठवनिष्ठितार्यो निरंजनः ॥ ६८० ॥ भव्यानुग्रहमुह्यत्प्रद्युति सोप्यभाषत । स्ववक्त्रसज्ज्योत्तममाद्वहिततलमः ॥ ६८१ ॥ प्रमाणनयनिज्ञे-

६७३-७४ ॥ इसीतरह सुदर्शन नामका चक्र कौमुदी नामकी गदा, सौनन्दक नामकी तलवार, अमोघमुखी शक्ति,  
शार्ङ्ग नामका धनुष, बड़ी भारी आवाज करनेवाला और पाँच मुखका पाँचजन्य नामका शंख, और, अग्रनी क्तिके  
नीक्षसे दैदीप्यमान ऐसा कौस्तुभ नामका महामणि ये सात रत्न अनंत कांतिको धारण करनेवाले नारायण लक्ष्मणके  
थे और एक एक हजार यक्ष देव मन्वकी अलग अलग रक्षा करते थे ॥ ७५-७७ ॥ इसतरह सुखसागरमें तल्लीन  
रहनेवाले और महा आगशाली उन दोनों भाइयोंका समय भोग और संपदाओंके द्वारा व्यतीत होने लगा किसी  
एक दिन मनोहर नामके वनमें दोनों भाइयोंने शिवगुप्त नामके जिनराजेके दर्शन किये तथा बड़ी विनयसे पूजा और  
वदनाकी ॥ ७४-७९ ॥ तदनंतर श्रद्धालु और बुद्धिमान रामचंद्रने लक्ष्मणके साथ २ धर्मका स्वरूप पूछा आत्म-  
निष्ठा समीप होनेसे जिनके चारों पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके हैं जो मोहनीय आदि कर्मोंसे रहित हैं भव्योंका अनुग्रह करना  
ही जिनके आत्माकी मुख्य प्रवृत्ति है ऐसे वे जिनराज अपने वचनरूपी फैलती हुई चांदनीसे उस सभाको प्रसन्न  
करते हुए कहने लगे ॥ ८०-८१ ॥ कि इस संसारमें जीवादिक नौ पदार्थ हैं प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके  
कारण ऐसे अनुयोगोंसे उनका ज्ञान होता है तथा गौण और मुख्य नयोंके स्वीकार करनेरूप विशेष वलके मिलजाने-  
से अर्थात् गौण और मुख्य नयोंकी अपेक्षासे उनमें स्यात् अस्तित्व ( वे पदार्थ कथंचित हैं ) स्यात् नास्तित्व ( वे प-  
दार्थ कथंचित नहीं भी हैं ) आदि सात धर्म सदा विद्यमान रहते हैं श्रीशिवगुप्ति मुनिराजने इनके विशद स्वरूपके  
सिवाय आपका ( सच्चे देवका ) लक्षण कहा, मार्गेणा गुणस्थान और जीवोंका संक्षेप वर्णन किया, संसारकी स्थिति

नः । द्वाचत्वारिंशद्वंशते परिनिष्ठितद्विरजय ॥ ६५९ ॥ कृताञ्जलिभिरासेव्यो देवखेचरभूरैः । अग्नयसेसखकी सबक सर्वरूजित ॥ ६६० ॥ कृत-  
मंगलनेपथ्यां प्रार्थ्यमानसमागमा । कातामिन्न विनीता तां शकवद्याधिगन्तुरीं ॥ ६६१ ॥ लग्नोचरसंशुभवेलादिसभिधा । नरविद्याधरा व्यतराधि-  
पप्रमुखाः मम ॥ ६६२ ॥ सिंहासन समारोप्य श्रीमते रामलक्ष्मणे । तीर्थवृण्णसैवर्णसहस्राष्टमहाघटैः ॥ ६६३ ॥ अभिषिच्य त्रिबुण्डाधिगज्ये सपूजितां  
युवा । प्रवर्द्धमानलक्ष्मीकायास्त्रास्त्रयशोऽर्जुना ॥ ६६४ ॥ इत्यारोपितरत्नोत्सुकुटौ मणिभूयणा । अंकुत्य महाशीर्षं पूजयामासुस्तुका ॥ ६६५ ॥ पृथिवी-  
सुदरीमुख्याः केशवस्य मनोरमा । द्विगुणाष्टसहस्राणि देव्य सत्योभवन्प्रश्रियाः ॥ ६६६ ॥ सीतायष्टसहस्राणि रामस्य प्राणवल्लभाः । द्विगुणाष्टसहस्राणि दे-  
शास्तावन्महीभुज ॥ ६६७ ॥ शून्यं पचाष्टश्लोकद्वगता द्रोणमुद्राः स्मृता । पत्नानि सहस्राणि पञ्चविंशतिसहस्रया ॥ ६६८ ॥ कर्वेटा खत्रयद्वयेकप्रमिताः  
प्रार्थितार्यदाः । मटवास्तत्प्रमाणाः स्युः सहस्राण्यष्टखेटकाः ॥ ६६९ ॥ शून्यसप्तकवल्ग्विभिता ग्रामा महाफलाः । अष्टद्विसम्मिता द्वीपाः समुद्रावर्तेन ॥

गमकी प्रार्थना करनेवाली कांताके समान उस अयोध्या नगरीमें इद्रके ममान लक्ष्मणने प्रवेश किया ॥ ६५८-६१ ॥  
तदनंतर किसी शुद्ध लग्न और शुभ मुहूर्तमें मनुष्य विद्याधर और व्यंतरदेवोंके मुखिया लोगोंने इकट्ठे होकर श्रीमान्  
राम लक्ष्मणको सिंहासनपर विराजमान किया तथा तीर्थोंके जलसे भरे हुए सुवर्णके एकहजार आठ बड़े २ कलशोंसे  
उन दोनों भाइयोंका अभियेक किया । इमतरह उन्हें तीनों खंडोंके साम्राज्यपर विराजमानकर प्रार्थनाकी आपकी  
लक्ष्मी सदा बढ़ती रहे और आपका यश सब दिशाओंमें फैलकर व्याप्त हो जाय । इसतरह प्रार्थना कर रत्नोंके बड़े  
भारी मुकुट और मणियोंके आभूषण पहिनाकर उनका अलंकार किया और बड़ी उत्कंठासे अनेक आशीर्वाद देकर  
उनकी पूजाकी ॥ ६२-५५ ॥ लक्ष्मणके पृथ्वी सुंदरी आदि लक्ष्मीके समान सोलह हजार सुंदर सानियां थीं और  
रामचंद्रके सीता आदि आठ हजार प्राणप्यारी रानियां थीं इसीतरह सोलह हजार देश सोलह हजार आधीन राजा थे  
नौ हजार आठ सौ पचास द्रोणमुख थे और पच्चीस हजार पत्तन थे, ॥ ६६-६८ ॥ इच्छानुसार फल देनेवाले बारह  
हजार कर्वेट थे, बारह हजार मटव थे और आठ हजार खेटक थे ॥ ६९ ॥ महाफल देनेवाले अडतालीस करोड  
गांव थे और समुद्रके भीतरके अट्टाईस द्वीप थे ॥ ७० ॥ इसीतरह ग्यालीस लाख बड़े २ हाथी थे, और नौ करोड  
घोडे थे ॥ ७१ ॥ तथा ग्यालीस करोड बड़ी शूरवीर पैदल सेना थी और आठ हजार गणपद नामके देव थे ॥  
७२ ॥ बलभद्र रामचंद्रके अग्रजित नामका हलायुध अमोघ नामके तीक्ष्ण बाण कौमुदी नामका गदा और रत्नावर्त-  
सिका नामकी माला ये चार महारत्न थे और उनकी सबकी अलग अलग एक एक हजार यक्षदेव रक्षा करते थे ॥

ण ॥ ६३९ ॥ रत्नहारिं तिरिंट च कुंडलं शरमण्यसु । तीर्थपुष्पकुभातर्गतमस्मै ददौ सुर ॥ ६४० ॥ ततोनुजलधिं गन्वा वैजयंताख्यगोपुरे । वशीकृत्य  
यथाप्राच्य तथा वरतनुं च त ॥ ६४१ ॥ कटकं सागद चूशमणि मौलिधिभूषण । गैवेयक ततश्चक्री कटीसूत्रं च लब्धवान् ॥ ६४२ ॥ तत प्रतीचीमा-  
गल्य सबलः सिंधुगोपुरे । प्रविश्यान्धि प्रभासं च विनतीकृत्य पूर्ववत् ॥ ६४३ ॥ मालां सतानकाख्याना मुक्ताजालप्रलंबक । श्वेतच्छत्र ततो भूयण न्यन्या-  
न्यपि चादहौ ॥ ६४४ ॥ तत सिंधोस्तटेगच्छन् प्रतीचीवृद्धवासिन । खत्रीया श्रावयित्वाज्ञां सारवस्तुनि चाददत् ॥ ६४५ ॥ ऐंद्रक्ष शभिमु नो भूत्वा  
विजयार्द्धनिवासिनः । विनिमय्य गजाश्वास्त्रविवाध-कुमारिभाः ॥ ६४६ ॥ रत्नानि चात्मसात्कृत्य पूर्वखंडनिवासिना । विधाय कारदान् म्लेच्छन् निजग्री  
र्णिगतस्ततः ॥ ६४७ ॥ द्विगुणशतसहस्राणि पटवध न् महीभुजः । दशोत्तरशतव्यातपुराधीशान् खगेक्षिनः ॥ ६४८ ॥ त्रिखण्डवासिदेवाश्च विषयाज्ञाभिधावि-

कलयमै रत्नोंका हार मुकुट कुंडल और वह चाण रत्नकर लक्ष्मणकी भेंट किया ॥ ६४० ॥ तदनंतर समुद्रके किनारे  
किनारे जाकर वैजयंत नामके बड़े दरवाजेपर पहुंचे और पहिले कहे अनुसार वहांपर वरतनु नामके देवकी वश  
किया ॥ ४१ ॥ तथा उसदेवसे कटक, अंगद, चूड़ामणि सुंदर मौलिसे सुशोभित हार और एक करधनी लक्ष्मणको  
प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ तदनंतर वे दोनों ही भाई सेनामहित पश्चिमकी ओर बढे और सिंधु नदीके बडे दरवाजेसे  
समुद्रमें घुसकर पहिलेके समान प्रभास नामके देवको अपने वश किया ॥ ४३ ॥ उस प्रभास देवने संतानके  
फूलोंकी एक माला मोतियोंकी जाली लटकता हुआ एक सफेद छत्र तथा और भी अनेक आभूषण लक्ष्मणकी  
दिये ॥ ४४ ॥ इसके बाद सिंधु नदीके किनारे जाकर पश्चिमकी ओरके म्लेच्छ खंडके निवासि -  
योंको अपनी आज्ञा सुनाई और वहांकी सब अच्छी चीजें अपने आधीन कीं ॥ ४५ ॥ फिर दोनों भाई  
पूर्वकी ओर मुड़कर निकले विजयार्द्ध पूर्वतः रहनेवाले विद्याधरोंको वश किया तथा हाथी घोड़े शस्त्र विद्या-  
धरोंकी कन्याएं और अनेक रत्न अपने आधीन कर उन दोनों विजयी कुमारोंने पूर्व खंडके म्लेच्छ देशके राजाओं-  
को करदेनेवाला बना दिया और इस तरह वहांसे निकलकर चले ॥ ४६-४७ ॥ इसतरह चक्रवर्ती लक्ष्मणने मो-  
लह हजार पटबंध राजाओंको एक सौ दश प्रसिद्ध नगरियोंके स्वामी विद्याधरोंको तथा तीनों खंडमें रहनेवाले देवोंकी  
अपना आज्ञाकारी बनाया और इसतरह बगलीस वर्षों अपना सब दिग्विजय समाप्त किया । उसतमय देव विद्याधर  
और भूमिगोचरी सब लोग हाथ जोड़कर उसकी सेवा कर रहे थे बडे भाई रामचंद्र उसके आगे थे, चक्र उसके साथ  
था, सब लोग उसकी पूजा ( आदर सत्कार ) कर रहे थे इसतरह सबतरहके मंगलिक वस्त्राभरण पहिने हुए समा-

तस्मिन् ॥ ६३८ ॥ वहती जानकी दुःखमग्राणप्रियदर्शनात् । रामोपि तद्वियोगोत्थोक्कव्याकुलिताश्रय ॥ ६३९ ॥ तौ परस्परसदृशोत्परा प्रीतिमवाप्तु ।  
तृतीयप्रकृति प्राप्य त्रयो बा सापि बा त्रयं ॥ ६४० ॥ आरभ्य विरहाद्वृत्त यथाततदृच्छता । अन्योन्यसुखदुःखानि निवेद्य सुखिन प्रिया ॥ ६४१ ॥  
इतदोवो हत सीता निरोपेक्षि निरूप्य ता । स्वीकरोद्वाधव सतो विचारानुवराः भदा मे ६४२ ॥ ततोरेखपुगेगच्छत्स्फुरत्पीठिगिरी स्थित । तत्रैवामिषं  
प्राप्य सर्वतीर्थीबुधयुतैः ॥ ६४३ ॥ अष्टोत्तरसहस्रैरुत्सुवर्णकलशैर्मुदा । देवविधवागधीशः स्वहस्तेन ममुदतैः ॥ ६४४ ॥ कोटिकास्त्रशिला तस्मिन्-  
नुज्ज्वरे राघवानुजः । तन्महात्स्यग्रस्तुष्ट सन् सिंहनाद व्यधाद्वलः ॥ ६४५ ॥ तन्निवसी सुनदाश्चो यश संपूज्यं तौ मुदा । अति सौनन्द्य नाम्ना-  
समान चक्रिणेक्षित ॥ ६४६ ॥ अनुगम्य ततो गावा गगाद्वारसमीपगे । नने निवेद्य शिविरं रथमाश्रय चक्रवृत्त ॥ ६४७ ॥ गोपुरेण प्रविश्याच्च निजना-  
मार्क्षित शरं । मागधावासमुद्दिश्य व्यमुच्युचितकम् ॥ ६४८ ॥ मागधोपि शरं वीक्ष्य मत्वा स्व स्वल्पपुण्यक । अभिष्टुवन्महापुण्यक्षकवतीति लक्ष्म-

था तथा रामचंद्रका मी हृदय सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकसे व्याकुल हो रहा था ॥ ६३९ ॥ इसलिये वे दोनों  
ही परस्पर एक दूसरेको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए । रामचंद्र तीसरी मित्र प्रकृति सीताको पाकर और सीता राम-  
चंद्रको पाकर विरहसे लेकर सब वृत्तांत एक दूसरेसे पूछने लगे तथा दोनोंने अपने अपने सुख दुःख कह सुनाये ॥  
६४०-६४१ ॥ रावण अपराधी था वह तो माग ही गया और यह सीता निर्दोष है यही समझकर रामचंद्रने सीता  
को स्वीकारकर लिया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग सदा विचारके अनुसार ही चलते हैं ॥ ६४२ ॥ तदनंतर  
वे दोनों ही भाई लंकासे निकलकर पीठ नामके सुंदर पर्वतपर ठहरे, वहाँपर देव और विद्याधरोंके राजाओंने अपने  
हाथसे उठा उठाकर सब तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक हजार आठ सुवर्णके कलशोंसे दोनों भाइयोंका अभिषेक किया ॥  
६४३-६४४ वहींपर लक्ष्मणने कोटिशिला उठाई और उसके महात्म्यसे संतुष्ट होकर रामचंद्रने सिंहनाद किया ॥ ६४५ ॥  
वहाँके रहनेवाले सुनंद नामके यक्षने बड़ी प्रसन्नतासे उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और चक्रके ही समान सानंद  
नामकी तलवार लक्ष्मणको दी ॥ ६४६ ॥ तदनंतर वे दोनों भाई गंगके किनारे गये और गंगाद्वारके ( जहाँ  
गंगा समुद्रमें मिलती है ) समीप ही बनमें डेरे डाल दिये । लक्ष्मण स्थपर सवार होकर गोपुरके ( बड़े दरवाजेके )  
गास्ते समुद्रमें गया और अपने दोनों पैर कुछ सकोडकर मागधदेवके निवासस्थानको निशाना बनाकर अपना नाम  
लिखा हुआ वाण छोड़ा ॥ ६४७-६४८ ॥ वाणको देखकर मागधने भी अपनेको थोड़ा पुण्यवान माना और यह  
महापुण्यवान् है चक्रवर्ती है यही समझकर लक्ष्मणकी स्तुतिकी ॥ ६४९ ॥ उस देवने तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक

६०८ ॥ चक्रेण विक्रमेणैव मूर्तीभूतेन चक्रिणा । तेन तेन क्षिरोमाहि त्रिलङ्घ वा खगेक्षितु ॥ ६२९ ॥ सोपि प्रागेव ब्रह्मायुर्दुर्गचरादधोगति । प्रापदापन्करी  
घोरा पापिना कापरागतिः ॥ ६३० ॥ विजयाब्ज समापूर्वं कैशवो विश्वविद्विषा । अभय घोपयामास स घमो जितभूषां ॥ ६३१ ॥ तदानशिशु  
६३३ ॥ दशवठान्वयायातविश्वभुर्क वितेरतुः । आभूता च त्रिलङ्घैश्च प्रचडौ बलकैश्चवो ॥ ६३४ ॥ अथ शीलवती सीतामशोकवसमथ्यागा । सग्राम-  
विजयाकर्णनोषीर्णप्रमदान्विता ॥ ६३५ ॥ रावणलुजसुग्रीवपवमानात्मजादय । गत्वा ययोचितं हृष्ट्वा क्षामयित्वा जयोत्स्व ॥ ६३६ ॥ समयुजत  
रामेण सम् तदसीमिवापरा । महामणि वा हारेण कुण्डला कवयोथवा ॥ ६३७ ॥ वाच मनोहरार्थेन संतो घर्मेण वा धियं । मद्दुत्पत्त्यमित्सवधाद्भवतीसि-  
लक्ष्मणने उसी चक्रसे तीन खड्गके समान रावणका सिर काटकर अपने आधीन कर लिया ॥ ६२८—२९ ॥ उस  
रावणने अपने दुराचरणोंसे पहिले नरकायुका बधकर रक्खा था इसलिये मरकर वह अनेक दुःख देनेवाली घोर नरक  
गतिको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंको और कौनसी गति मिल सकती है ॥ ३० ॥ तदनंतर लक्ष्मण  
ने विजयका शंख पूरा और सब शत्रुओंको अभय देनेकी घोषणाकी सो ठीक ही है क्योंकि जीतनेवाले राजाओंका  
यही धर्म है ॥ ३१ ॥ उसीसमय रावणके बचे हुए महामंत्री आदि लोगोंने अमरोंके समान मलिन होकर रामचंद्र और  
लक्ष्मणके चरण कमलोंका आश्रय लिया ॥ ३२ ॥ मंदोदरी आदि रानियां जो दुःखसे रो रही थी उन्हें समझा  
बुझाकर उनका दुःख दूर किया और फिर दोनों भाइयोंने विभीषण को लंकाका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ तथा राव-  
णकी सब विश्रुति उसे समर्पण कर दी । इसतरह रामचंद्र और लक्ष्मण दोनों भाई बलभद्र और नारायण होकर तीन  
खंडके स्वामी हुए ॥ ३४ ॥  
अथानंतर--शीलवती सीता अशोक वनमें बैठी थी और युद्धमें रामचंद्रकी विजय सुनकर वहीं ही प्रसन्न हो रही  
थी ॥ ३५ ॥ विभीषण हनुमान और सुग्रीव आदि मुख्य लोग उसके पास गये यथायोग्य रीतिसे उसके दर्शन  
किये और सबने विजयौत्सवकी खबर सुनाई ॥ ३६ ॥ जिसप्रकार महामणिको द्वारमें लगा देते हैं अथवा कुशल  
कवि अपनी वाणीको मनोहर अर्थके साथ संबद्धकर देते हैं अथवा सज्जन लोग अपनी बुद्धिका धर्मके साथ संबध कर  
देते हैं उसीप्रकार दूसरी लक्ष्मीके समान सीता रामचंद्रसे मिलाई, सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे सेवक और मित्रोंके  
संबधसे इष्ट सिद्धियां हो ही जाती हैं ॥ ३७—३८ ॥ प्राणप्रियके दर्शन न होनेसे जानकीको अगर दुःख हो रहा

सर्वान् गूढान् अयिषु तया । नि शक्तिर्वीतवानेति शकाविषयमिति ॥ ६०६ ॥ इतस्ततो भटा व्यम्गाः सगरे अजर्गकाः । अनयं त्यतः कस्यापि  
वीर्यमानस्य भीरुसं ॥ ६०७ ॥ बाखिनोत्र समुच्छिन्नचरणाः मय्यवशात्तिनः । अगेनेव समुत्थातुमुत्थातिर्जोर्जासः ॥ ६०८ ॥ अभातिभा भटोन्मुकशर-  
नाराचकीलिता । प्रक्षरद्वातुनिष्पन्ननिर्गमो वारपवेणवः ॥ ६०९ ॥ चक्राद्यवयवमैत्रेयिनिता सर्वतो रथा । भोतिस्म भिन्नपोता वा तत्संगामाद्विधमध्यगा ॥  
६१० ॥ शिन्यान्येव बहुन्यासीत्संगमो वलथोद्वेयो । प्रायेण विमले द्वेत्रे स्व वल वीर्य भगुरे ॥ ६११ ॥ सतातो नायया सीताशिरश्च्छेद दशाननः । विधा-  
न तव देवीय गृह्णाणस्ति श्वाक्षिपत् ॥ ६१२ ॥ शिरस्तपयत्यतोर्भर्तुद्विदो भोद्रे कृतास्पदः । खेचरेभ्यश्चर्मनश्य रामोऽस्य समरोहमव ॥ ६१३ ॥ सीता शीलवती  
कश्चिदपि स्पृष्टुं त्वया विना । कणो नारित दशस्यस्य मायेय मांत्रगाः शुच ॥ ६१४ ॥ नायेति राघव तवमवव्रीदवणावुत्र । विभीषणस्य तद्वाक्य श्र-  
वाय वसुधनः ॥ ६१५ ॥ गजार्निजयूथ वा भास्करो वा तमस्तति । बल विनेदयामास सद्यो विद्याधरेक्षिनः ॥ ६१६ ॥ प्रकाशशुद्धमुज्ज्वला मायायुद्ध-

ये ॥ ६०७ ॥ जिनके पंर कट गये हैं ऐसे कितने ही प्रतापी और बलवान घोड़े अपने शरीरसे ही उछाल मारनेकी  
कोशिस कर रहे थे ॥ ६०८ ॥ घोड़ाओंके द्वारा छोड़े हुए वाण और नाराचों ( लोहेके वाण ) से कीलित हुए हाथी  
ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों जिसमें गेरूके शरने झग रहे हैं और जिनके ऊपर थोड़ेसे बत खड़े हैं  
ऐसे निखल पर्वत ही हों ॥ ६०९ ॥ टूटे हुए चक्र आदि शस्त्रोंके टुकड़ोंसे रथ चारों ओर भाग गये थे और वे ऐसे  
बान पड़ते थे मानों इस संभ्रामरूपी महासागरके मध्यमें अलग हुए जहाज ही हों ॥ ६१० ॥ इततरह उन  
दोनों सेनाओंका युद्ध होते हुए बहुत दिन हो गये तब अपना भाग्य प्रतिकूल होनेसे रावणने अपनी सेना नष्ट होती  
हुई देखी तब वह बहुत ही संतप्त हुआ और उसने मायासे सीताका सिर काटकर ( वह बनावटी कटा हुआ सिर था )  
क्रोधित होकर रामचंद्रके सामने फेंक दिया और कहने लगा कि 'लो यह रही तुम्हारी देवी सीता ॥ ६११-६१२ ॥  
उस कटे हुए सिरको देखकर रामचंद्रके हृदयमें मोहका वेग प्रगट हो आया । इधर विभीषणने रावणकी सेनामें युद्ध-  
का उद्भव होता हुआ देखा तब वह रामचंद्रसे यथार्थ बात कहने लगा कि हे नाथ ! सीता शीलवती है उसे आरके  
विना कोई दूसरा छ नहीं सकता यह केवल रावणकी माया है इससे आप कुछ शोक मत कीजिये । विभीषणकी इस  
बातपर विश्वास रखकर रामचंद्र बहुत ही ग्रीव रावणकी सेनाको इसप्रकार नष्ट करने लगे जैसे सिंह हाथियोंके  
समूहको नष्ट करता है अथवा सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट कर डालता है ॥ ६१३-६१६ ॥ तब रावणने प्रकाश  
युद्धको छोड़कर माया युद्ध करनेकी इच्छाकी और वह अपने पुत्रोंके साथ उड़कर आकाशरूपी आंगनमें आगया ॥  
६१७ ॥ उस युद्धमें उस रावणको दुरीक्ष्य ( जो देखा न जा सके ) देखकर बहुत चतुर रामचंद्र और लक्ष्मण सिंह



निहितस्या । स पुत्रैः सह पौररत्नो लंघते स्मनभोगेन ॥ ६१७ ॥ त वीक्ष्य तद्रेणे दक्षौ दुरीक्ष्य रामलक्ष्मणौ । गजारिचिन्तामूर्धुनिनीताभ्या समुद्यतौ ॥ ६१८ ॥ सुग्रीवाणुमदाद्यात्मविद्याधरवलाचितौ । रावणेन सम रामो लक्ष्मणोऽप्यप्रसुतना ॥ ६१९ ॥ सुमीचः कुम्भकर्णेन मरुतुम्रविकीर्तिना । खरेण वेतु रज्जादिरंगदध्नेचेतुना ॥ ६२० ॥ इंद्रवर्मभिधानेन कुमुदो युद्धविभ्रुतः । खरदूषणनाम्नापि नीलो मायाविधारदः ॥ ६२१ ॥ एवमन्येपि तैरन्यै रामश्रुत्याः रणेद्धताः । दशास्यनायकैः सार्द्धं मायायुद्धं व्यकुर्वन्तः ॥ ६२२ ॥ तदा रामेण सत्राग्रे परिभूतं दशाननं । अवलोक्येंद्रजिन्मध्य प्राविशद्वाहस्य जीवित ॥ ६२३ ॥ तं शक्याद्यत्तयद्रामस्त निरीक्ष्य खगाधिपः । कुपित्वाऽथावदुद्दिश्य ससन्न लक्ष्मणाग्रज ॥ ६२४ ॥ तन्मध्ये लक्ष्मणरतूर्णमभूतं दशकधरः । मायागज स- मादृष्ट्वा वदथाभाराचपञ्चरैः ॥ ६२५ ॥ प्रहारावरणेनापि प्रतापी गरुडच्वजः । सिंहगोत इवोद्गसो दुर्निवारोऽस्तिवारैः ॥ ६२६ ॥ तत्पजरं विमियासौ निर्वयौ निजविधया । दृष्ट्वा तद्रावणः कुदृच्चा प्रतीतं चक्रमादिशत् ॥ ६२७ ॥ सिंहनादं तदाकुर्वन् गगने नारदादयः । बाहौ प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणे स्वस्य तिष्ठता ॥

वाहिनी और गरुडवाहिनी विद्या लेकर अर्थात् उन विद्याओंके रथपर सवार होकर लड़नेको तैयार हुए ॥ ६१८ ॥ उनके साथ साथ सुग्रीव हनुमान आदि सब साथी विद्याधर तैयार हुए रावणके साथ । रामचन्द्र, इंद्रजीतके साथ लक्ष्मण, कुम्भकर्णके साथ सुग्रीव, रविकीर्तिके साथ हनुमान्, खरके साथ कमलकेतु, इंद्रकेतुके साथ अंगद, इंद्रवर्मके साथ युद्धमें प्रसिद्ध कुमुद, खरदूषणके साथ माया करनेमें चतुर नील तथा और भी रावणके अनेक योद्धाओंके साथ उद्धत ऐसे रामचन्द्रके अनेक योद्धा रावणके मुखिया लोगोंके साथ माया युद्ध करने लगे ॥ १९-२२ ॥ उसीसमय इंद्रजीतने देखा कि रामचन्द्र रावणको दबाये जा रहे हैं उमका निरस्कार कर रहे हैं यह देखकर रावणके जीवनके समान वह वीचमें ही घुम पड़ा ॥ २३ ॥ परंतु रामचन्द्रने उसे शक्तिही भारी चोट दी यह देखकर रावण क्रोधित हुआ और शस्त्रोंसहित दौड़कर रामचन्द्रके ऊपर आया ॥ २४ ॥ इसी वीचमें लक्ष्मण बड़ी शीघ्रतासे उन दोनोंके वीचमें आगया तब रावणने मासामयी हाथीपर सवार होकर लक्ष्मणको नाराच पंजरमें घेर लिया अर्थात् उसे बाणोंसे ढक लिया परंतु गरुडकी ध्वजा फहरानेवाला लक्ष्मण प्रहारावरण नामकी विद्यासे बड़ा ही प्रतापी था सिंहके बच्चेके समान उद्धत था और शत्रुरूप हाथियोंसे रोका नहीं जा सकता था, इसलिये वह अपनी विद्यासे ही, उस पंजरको तोड़कर बाहर निकल आया । यह देखकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने क्रोधित होकर विद्या-संपन्न चक्रको आज्ञा दी ॥ १६-१८ ॥ उससमय नारद आदि आकाशमें सिंहनाद करने लगे । वह चक्र प्रदक्षिणा देकर साक्षात् मूर्तिको घागण करनेवाले पराक्रमके समान लक्ष्मणके दाहिने हाथपर आकर ठहर गया, तब

अमर्महान् विजिगीषवः । प्रधातमूर्च्छत कश्चिद्व्रवहल्लोहितो भटः ॥ ५९६ ॥ आगन् युद्धप्रधागिलो देवतो ह्यवहन् पुनः । नीयमानगिवान्मानं वीक्षयान्यो देवकन्यया ॥ ५९७ ॥ सोन्तवः सहस्रोदय्यास्तस्योदरगुच्छिद्यतः । वाणाकिते रणतूर्यरणरे निरंतरं ॥ ५९८ ॥ वृयत्कन्यके सद्य शरच्छादितमनुये । वदन्त्रजालमालोन्नयो वहलाद्यायवाचितः ॥ ५९९ ॥ राक्षसेन विवाहेन वीरलक्ष्मीं समाक्षिपत् । उक्रियथ्यदुलं नेदुःशङ्कन् भैरवं शिवा ॥ ६०० ॥ ऊर्ध्व-  
वपत्रमवमद्वह्निस्फुल्लिगविभीषणः । उरिक्षप्तकर्तिकाजालगल्लोलकपालयुत् ॥ ६०१ ॥ अतिपातनिपीताक्षगन्गीद्राक्षसीगण । निशातशरनाशान्चक्रालुप-  
निपातनात् । नि प्रभे निःप्रतापं च तदाभूदूर्ध्वमंडलं । स्याद्विभिः समाक्रातुकुगदिकु उवत्तद ॥ ६०३ ॥ दशाननवलाभ्यापन् भग रायवसैनिकैः । इति प्रवृत्तं  
समामे सुचिरं तद्व्रणांगणे ॥ ६०४ ॥ मृताः केचित्पुनः केचित्प्रहताः प्राणमोक्षणे । अक्षमाः पापकर्मण स्थिताः कठगतासवः ॥ ६०५ ॥ समवर्ती नरान्

को ऐसा मालूम हो रहा था कि देवकन्या मुझे उत्सवके साथ ले जा रही हैं इसीलिये वह हंसता हुआ एक साथ उठ खड़ा हुआ था और फिर बीचमें भी मूर्छित हो गया था अर्थात् मर गया था । वह युद्धस्थल वाणोंसे भर रहा था युद्धके वाजोंसे गूंज रहा था उसमें कटे हुए घड़ सदा नृत्य करते रहते थे और उसपर वाणोंका मंडप छाया हुआ था ऐसे युद्धस्थलमें जिसकी सब अंतर्दियोंका समूह वध रहा है और जो बहुतसे वहते हुए खूनसे पूजित हो रहा है ऐसा कोई योधा राक्षस नामका विवाहका (जवर्दस्ती) वीर लक्ष्मीको अपनी ओर खींच रहा था । वहाँपर डाक-  
नियां खूब नाच रही थीं और ऊपरको सुहकर उगलते हुए अधिक फुल्लिगोंसे भयानक ऐसे सियार (गीदड) खूब रो रहे थे । जिनकी कैचियां ऊपरको उठी हुई हैं और जो लटकते हुए चंचल कपाल पहिने हुए हैं ऐसे राक्षसियोंके समूह बहुत पी जानीसे पिये हुए सब खूनको उगल रहे थे । बड़े तेज वाण और नाराचोंके समूह आदि अनेक शस्त्रोंके चलनेसे उससमय सूर्य मंडल भी कांति और प्रताप रहित हो गया था । जिसप्रकार स्याद्वादको माननेवाले लोग कुत्रादियोंके समूहोंपर आक्रमण करते हैं उसीप्रकार रामचंद्रकी सेनाने रावणकी सेनाको छितर छितर कर दिया था । हस्ततः उस युद्धस्थलमें संग्राम होते होते बहुत दिन हो गये ॥ ५५६-६०४ ॥ कितने ही लोग मर गये कितने ही घायल होगये और कितने ही पापी प्राण छोड़ न सके इसलिये कंठगत प्राण होकर पड़े थे ॥ ६०५ ॥ यमराज सब मनुष्योंको निगल तो गया था परंतु पचा नहीं सका था इसीलिये अंका करनेवाले लोग ऐसे जानने लगे थे मानों यमराजने पचानेमें अममर्थ होकर ही उन सबको उगल दिया हो ॥ ६०६ ॥ जिनके अंग छिन्न भिन्न होगये हैं ऐसे कितने ही योधा उस युद्धस्थलमें इधर उधर भाग रहे थे और देखनेवाले यमराजको भी भयानक रस उत्पन्न कर रहे

पुरषार्थं चैतवेत्येवमन्युच्यते । नास्मद्वले मृत्तिं वीक्षे कस्यपि स परामभव ॥५८८॥ ममेति मन्यमानोन्य प्राग्युष्वाभियत खयं । अयुंध्यतैवमुत्कोधा सर्वशोभे-  
रनारत ॥५८९॥ सव्यापसव्यमुष्कार्थमुक्तामुक्तेरनाकुल । आनीतमार्गजैर्नैव मार्गणमार्गमात्मन ॥५९०॥ मध्ये विधाय गत्वा द्राक् परं प्रपतिताः परे । दुरे त्यक्त्वा  
गुणान्वागैस्तीक्ष्णः शोभितपाम्भिः ॥५९१॥ ऋजुत्वाच्चहिरे प्राणान् गुणोपि न गुणः खले । न वैरं न फलं किञ्चित्पथ्यपन्नं शरा परान् ॥५९२॥ परशेरितवृ-  
त्तीना तीक्ष्णानामीदृशी गतिः । नाना खगाः खगान् अण्डुर्वद्वैराः खगा इव ॥५९३॥ वृणाय मन्यमानाः स्वान् प्राणान् गमा परस्परं । लक्ष्यवद्वात्म-  
दृष्टयन्वितासुपातिसितैः शरैः ॥५९४॥ घट्ठिवनः पातयतिस्स गिरीन्वा करिणो बहून् । एकैकैः शरेणैवमवधीमममेदिना ॥५९५॥ स्वीकुर्वत्यतएवा-

और हम लोगोंके ये ही तीन पुरुषार्थ हैं यही समझकर कोई योधा किसी दूसरे योधासे लड़ रहा था । मैं अपनी  
सेनामें न तो किसीकी मृत्यु देखूंगा और न किसीका तिरस्कार देखूंगा ॥ ५८८ ॥ यही मानकर कोई योधा स्वयं  
सबसे पहिले लड़कर मरगया था, तीव्र क्रोध करते हुए सब योधा दायें बायें दोनों हाथोंसे बाण आदि  
छोड़ने योग्य वरछी आदि आधे छोड़ने योग्य और तलवार आदि न छोड़ने योग्य ऐसे सब तरहके झांझी-  
से बिना किसी न्याकुलता और अवकाशके खूब लड़ रहे थे । दोनों ओरसे बाण छोड़े जा रहे थे वे बाण  
बीचमें ही परस्पर एक दूसरेको छोटकर और इसतरह अपना रास्ता बनाकर झुञ्झोंकी सेनामें पड़ रहे थे । गुण अ-  
र्थात् धनुषकी डोरीको बहुत दूर छोटकर तीक्ष्ण और सून पीनेवाले बाण सीधे होकर मी प्राणोंका नाश कर रहे थे  
सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंके गुण गुण नहीं गिने जाते हैं । बाणोंकी न तो किसीके साथ झुटता थी और न उन्हें  
कुछ फल ही मिलता था तथापि वे झुञ्झोंका घात कर रहे थे ॥ ५८९-५९१ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि दूसरोंकी  
प्रेरणसे काम करनेवाले तीक्ष्ण पुरुषोंकी ऐसी ही गति होती है । जिनकी परस्पर एक दूसरेसे झुटता है ऐसे अनेक  
पापी विद्याधर पक्षियोंके समान अपने प्राणोंको वृणके समान मानकर परस्पर एक दूसरे विद्याधरोंको मार रहे थे ।  
बहुतसे धनुष धारण करनेवाले लोग निशानेपर लगाये हुए तथा जिनपर अपनी दृष्टि लगी हुई है ऐसे प्राणोंको नाश  
करनेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे पर्वतोंके समान बहुतसे हाथियोंको गिरा रहे थे । कितने ही लोगोंने अपने एकही, मर्म  
मेदी बाणसे हाथीको मार गिराया था सो ठीक ही है क्योंकि इसीलिये जीतनेकी इच्छा करनेवाले लोग दूसरे मर्मके  
जानकारोंको स्वीकार करते हैं । कोई योधा चोटसे मूर्छित होकर खूनसे तरवतर हो गया था ॥ ५८९-५९५ ॥  
तथा आए हुए गीध पक्षियोंकी सासोंकी वायुसे सचेत होकर फिर चहुँतोंको मारने लगा था । अन्य किसी योधा

शेषबोधविश्वसकारणे ॥ ५७९ ॥ महाभये वा संभ्राते रणविघ्नविचारिणि । पुरानजितपुण्ये वा समस्तनयनाश्रिते ॥ ५८० ॥ रजस्यैव नमोभागलंपित्याहिः  
तर्हसि । मूर्च्छितं गमंगं कुब्जलिखितं चातिशय्य तत् ॥ ५८१ ॥ बलं कलं किंचिदिच्छेष्टप्रभवतादा । विष्यस्तैर्वीरभूगालक्षितसोभोपमे शनैः ॥ ५८२ ॥  
श्रुयो तस्मिन् रण क्षोभे प्रस्राते सति सकुब्धः । प्रसृष्टदृष्टिर्बचारा सेनानायकचोदिताः ॥ ५८३ ॥ गतिप्रपातसंशुद्धा नवाब्दा वा धनुर्वराः । शरदृष्टिं विमु-  
चतो हृदयानि विरोचिनां ॥ ५८४ ॥ कुर्वति स्फापरगाभि सद्भटानां रणागणे । युध्यतेसाहचोसाहातोपि तैरेव चोदिताः ॥ ५८५ ॥ द्विषतो वा न सत्वा-  
भिष्यक्तिः स्यात्सहृद सतां । मया मञ्जीवितं दातुं शृण्वन्मीवितमाददे ॥ ५८६ ॥ तस्य कालेयमित्येको व्यतरत्तदण रणे । मृत्युकृत्यं यशः शूरगतिश्चात्र त्रयं फलं ॥ ५८७ ॥

सुख होनेसे अर्थात् समयपर फहराई जानेसे मुनियोंके मार्गमें चल रही सी जान पड़ती थी ॥ ५७८ ॥ उससमय धूलि  
उड़कर चारों ओर फैल गई थी और वह ऐसी जान पड़ती थी मानों सेनाके चोमसे खिन्न होकर पृथ्वी सांस ही ले  
रही हो अथवा पूर्णज्ञानको नाश करनेका कारण ऐसा मिथ्याज्ञान ही फैल गया हो अथवा उस युद्धमें विघ्न करने-  
वाला कोई बड़ा भारी भय ही आ गया हो अथवा जिसने पहिले जन्ममें पुण्य संपादन नहीं किया है वह जिसप्रकार  
सबके नेत्रोंको बुरा लगता है उसीप्रकार सबके नेत्रोंको बुरी लग रही हो इसप्रकार वेगरहित अर्थात् स्थिर रहनेवाली  
धूलि आकाशमें चारों ओर फैल गई तब सब सेना मूर्छित हुईके समान अथवा गर्भमें रहनेवालेके समान वा दीवालपर  
लिखे हुए चित्रके समान थोड़ी देर तक चेष्टा रहित हो गई और उसका सब कलकल शब्द शांत हो गया । जिस-  
प्रकार शत्रुराजाको नष्टकर चिचका क्षोभ धीरे धीरे शांत हो जाता है उसीप्रकार जब वह बड़ी भारी धूलि धीरे धीरे  
शांत हो गई और दृष्टिका कुछ संचार होने लगा अर्थात् कुछ दिखाई देने लगा तब सेनापति लोग युद्ध करनेकेलिये  
प्रेरणा करने लगे । आज्ञा पाते ही गमन करनेसे शुद्ध हुए नये वादलोंके समान घनुष धारण करनेवाले लोग वाणों-  
की वर्षा करने लगे तथा उसी युद्धके मैदानमें शत्रुओंके अच्छे अच्छे योधाश्रोंके हृदयोंको क्रोध रहित करने लगे  
अथवा उनके हृदयोंको खूनसे तरावर करने लगे । उन सेनापतियोंके द्वारा प्रेरणा किये हुए वे योधा युद्धके उत्साहसे  
खुब ही शुद्ध कर रहे थे, सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंसे मित्रोंका बल प्रगट होता है परंतु सज्जनोंका बल प्रगट  
नहीं होता । मैंने अपना जीवन देनेके लिये महाराजसे बहुत कुछ जीविका पाई है ॥ ५७९-५८६ ॥ अब यह उसके  
लौटानेका वा जीवन देनेका समय है यही समझकर कोई योधा उम युद्धमें अपना ऋण चुका रहा था युद्ध करनेमें एक तो सेवक-  
का कर्तव्य पूरा होता है दूसरे यशकी प्राप्ति होती है और तीसरे शूरवीरोंकी गति मिलती है ये तीन फल मिलते हैं ॥ ५८७ ॥

रिण ॥ ५६९ ॥ पञ्चास्रसारिताग्नौर्ल विलग्न्य स्वपेक्का । अभोऽहंरात्रोद्यदकुण्डकशोभिनः ॥ ५७० ॥ परप्रणेयवृत्तिर्दुर्लभोऽनुविगमिनि । स्वे-  
वोऽप्यपयतोलीन् कर्णतोलै कदस्थितान् ॥ ५७१ ॥ भवलाका इवाभोदाः समुद्यदधवलध्वजै । केचित्परमदामोदमाध्यायामोदवर्त्मनि ॥ ५७२ ॥ कर्तै  
प्रविकसयुष्करस्तैर्वाद्भुं समुद्यताः । निशितोदोऽकुशाघातदलत्रियणवारिता ॥ ५७३ ॥ मुहुर्विधूतमूढनः करेणुगणसन्निधा । प्रज्ञातीभूतसरमा महामात्रा-  
द्यधिष्ठाता ॥ ५७४ ॥ मातागस्तुगदेहत्वादाकामत इवाखिल । सर्वतो निर्ययुर्वैचैर्जगमा धरणीधराः ॥ ५७५ ॥ केतव्यत्राकुलालेरिता विद्विष प्रति ।  
चेड्डंडान् परित्यज्य पुरो योद्धुमिवोद्यताः ॥ ५७६ ॥ नमः शुद्धरूपस्य मलं जलधराकृति । अथवापनयंतो वा सच्छादितरवित्विपः ॥ ५७७ ॥  
धृतददप्रवृत्तिवाद् वयोतीतादुकारिणः । काले विमुक्तिमत्वाच्च मुनिमार्गानुसारिण ॥ ५७८ ॥ बलवष्टभखिन्नावतिमेति श्रुतिसन्निभ । मिथ्याज्ञान इवा-  
किया जायगा क्योंकि उनके दो दो चक्र होते हैं इसीतरह पर्वतके समान अगिले शरीरसे जो बहुत स्थूल हो रहे हैं ॥  
५६९-६९ पीछेकी ओर फैली हुई पूछसे जिनकी पूछका नीचला भाग कुछ खुल रहा है, कमलके ( कमलनालके )  
समान जिनकी सूड है खिलते हुए लाल कमलके समान जिनका मुह है, दूसरोंपर प्रेम करनेका अभ्यास होनेसे जो  
बर्षोंके समान जान पड़ते हैं जो क्रोधमे ही मानों गंडस्थलपर बैठे हुए भ्रमरोंको अपने कानरूपी पल्लोंसे उड़ा रहे हैं,  
उड़ती हुई मफेद ध्वजाओंसे जो बगलाओंकी पंक्तियों सहित काले बादलोंके समान जान पड़ते हैं ऐसे कितने ही  
हाथी दूसरे हाथियोंके मदकी सुगंध सूघकर आकाशमें खिले हुए कमलके समान अपनी सूंडसे युद्ध करनेके लिये  
तैयार हुए थे । जिनकी नोक बहुत पैनी है ऐसे अंकुशोंकी चोटसे घायल होकर वे हाथी चलनेसे रोकें जा रहे थे ॥  
५७०-५७३ ॥ और हथिनियोंके समुदायमें वे बार बार अपना मस्तक हिला रहे थे उनके सब आरंभ शांत हो गये  
थे, मुख्य मुख्य सहायक राजा लोग उनपर बैठे हुए थे और स्थूल शरीर होनेसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों मंत्र  
संसारपर ही आक्रमण करना चाहते हों इसप्रकारके वे ऊंचे हाथी चलते हुए पर्वतोंके समान चारों ओरसे निकलकर  
चल रहे थे ॥ ५७४-५७५ ॥ उससमय अनुकूल ( पीछेकी ) वायु होनेसे ध्वजाएं सब उस वायुसे उड़कर शत्रुओंकी  
ओर ( आगेकी ओर ) जा रही थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानों अपने दंडोंको छोड़कर युद्ध करनेके लिये सा-  
मने जानेको तैयार ही हुई हों ॥ ५७६ ॥ अथवा निर्मल आकाशमें जो बादलोंका मेल छाया हुआ है उसे दूर करने  
केलिये ही उड़ रही हों अथवा आच्छादित हुई फैली हुई सूर्यकी कान्तिको ही दूर करनेकेलिये उड़ रही हों ॥ ५७७ ॥  
अथवा वे ध्वजाएं दंड धारण कर रही थीं इसलिये दूरोंका अनुकरण कर रहींसी जान पड़ती थीं अथवा समयपर

इव संप्राप्ता मधुरैः किंकिणीरवैः । विजयं वा स्वसैन्यस्य बोधयंतो निरतर ॥ ५६० ॥ सपक्षा इव संपन्नकंठटा गर्गनातर । त्रिलंघयिष्वो लोला जलफेन-  
प्रसूनकै ॥ ५६१ ॥ संपादनदट्टतार्यमर्चयंतो धरामिव । हया यवनकर्मगौरवालीकसिद्धनाः ॥ ५६२ ॥ स्फुरदुखातलङ्गाश्रुविलसत्साधधिष्ठिता । मह-  
सैन्यान्विधसेभूततरंगभासिनिर्गता ॥ ५६३ ॥ द्वियो मीषयितुं वोचद्वैषाद्येर्विभूषणैः । स्वातुङ्गलानिला शस्त्रमांडा ओदंबकैतवः ॥ ५६४ ॥ संप्रामाभोनिधेः  
पोताः प्रचेलुः श्रुयवो रथाः । नक्रैर्गौकेन चैवक्री विक्रमी नल्लयोद्वयं ॥ ५६५ ॥ मत्वेति वा हुतं पेटुर्दिक्चक्राक्रमिणो रथाः । नायकाधिष्ठिता शस्त्रैः संपूर्णा-  
स्तूर्णवाजिन ॥ ५६६ ॥ समद्धाः सतु नो युद्धे बद्धकक्षा कथं रथाः । धावतु पत्तो वाहा गजाश्चेभि किमातुरैः ॥ ५६७ ॥ जयोन्माभिविति वा मंदं  
समराः स्पृहना ययु । सन्मार्गगमिमि शस्त्रधारिभिश्चक्रवर्तिभि ॥ ५६८ ॥ रथोर्दिक्चक्रमाक्रम्य तैर्द्विवंकं किमुच्यते । महीधरनिर्भः पूर्वकायैरेदमप्या-

हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५९-६० ॥ पलोंके समान जो वे घोड़े क्वच पहिने हुए थे उनसे ऐसे ऐसे चंचल जान पड़ते थे मानों आकाशको उल्लंघन करना ही चाहते हों, अपने फेन रूपी फूलोंसे अपने पररूपी नटके नृत्य करने के लिये पृथ्वीका पूजन करते हुए के ही समान मालूम हो रहे थे । वे घोड़े अरब कझीर और वाल्हीक देशोंमें उत्पन्न हुए थे, उनके सवारोंके हाथमें दंड़ीरूपमान और ऊंचेको उठी हुई तलवारोंकी किरणें सुशोभित हो रही थीं, महासेना रूपी महासागरमें उत्पन्न हुई लहरोंके समान वे घोड़े चल रहे थे और जोर जोरसे हीमनेके शब्दरूपी आश्रुवर्णोंसे शत्रुओंको भय उत्पन्न कर रहे थे । इनके सिवाय वायु जिनके अनुकूल चल रही है जिनमें शस्त्ररूपी वर्तन भरे हुए हैं ऊंचे ऊंचे ढंडोंमें ध्वजाएं फहरा रही हैं और जो संग्राम रूपी महासागरके जहाजसे जान पड़ते हैं ऐसे बड़े बड़े रथ भी वहांपर चल रहे थे चक्रवर्ती रावण यदि एक ही चक्रसे पराक्रमी गिना जाता है तो हम लोगोंके पाम ऐसे दो चक्र ( पहिये ) हैं यही समझकर मानों सब दिशाओंमें आक्रमण करनेवाले रथ बहुत शीघ्र आकर संग्राममें पड़ रहे थे अर्थात् चारों ओरसे आ रहे थे । जिनके स्वामी भीतर बैठे हुए हैं जो शस्त्रोंसे भर रहे हैं तेज चलनेवाले घोड़े जिनमें लग रहे हैं और युद्धके लिये जो कमर कसकर तैयार हैं ऐसे हमारे रथ किस तरह तैयार हो रहे हैं । वे सोच रहे थे कि पैदल चलनेवाली सेना चाहे आगे निकल जाओ और घोड़ा हाथी भी चाहे आगे भाग जाओ परंतु इन जलदवाजोंसे क्या काम निगलता है जीत तो हमसे ही होगी यही सोचते हुए मानों वोझसे भरे हुए वे धीरे धीरे जा रहे थे । सन्मार्गपर चलने वाले, शस्त्रोंको धारण करने वाले, चक्रवर्तीसे यह समस्त दिक्चक्र वा दिशाओंका समूह आक्रमण किया जाता है, फिर भला रथोंसे तो कहना ही क्या है अर्थात् रथोंसे तो अवश्य ही सब दिशाओंका आक्रमण

भवेत्प्रकृतिविभ्रमः ॥ ४३० ॥ इति गर्जन्समाक्रान्तनुगमातगसिंहवत् । रविकीर्तिं स्वसेनान्यं हरिणध्वजमादिशत् ॥ ४३१ ॥ युद्धायास्फाल्यता मेरी शत्रु-  
पक्षक्षयवन्दा । इत्यादिष्टस्तदैवासा तथा कृत्वाखिलं बल ॥ ४३२ ॥ कालातै कालदूतो वीं सहसैकीचकार तत् । अय निर्गत्य लंकाया विभक्तजिघा-  
षन ॥ ४३३ ॥ सुकुमेन निकुमेन कुभकर्णेन चार्पर । सहजैरिदजिन्मुख्येनग्रास्येनैवकीर्तिना ॥ ४३४ ॥ इन्द्रवर्मसिंघानेन तनुजेरपरैरपि । महासुखाति-  
कायाह्यदुर्मुखाख्यैर्महाबलै ॥ ४३५ ॥ खरदूषणधूमाल्याप्रमुखैश्च खगेभ्यै । इव क्रूरप्रहर्षास्वाग्निदापः परिवारितः ॥ ४३६ ॥ त्रिजगदुपसनालोल-  
काललीलां विडम्बयत् । न तौ मम पुरः स्थातु समर्थौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४३७ ॥ तिष्ठतः शुश्रोगोमायू किं पुन संहतौ हरेः । अरावणः भवेद्युजगदेतत्स-  
त्त्वोत्सवोः ॥ ४३८ ॥ सहावश्यमह ताभ्या पालयामि महीं न हि । इत्याद्य तर्कितयतिनिजागमलालपन् ॥ ४३९ ॥ कालमेघमहागघगजरूपमधि-

तम वह विचार करने लगा कि समयका विपरीतपना देखो हरिणों ने आकर सिंहको घेर लिखा है । अथवा जिनकी मृत्यु समीप है उनको स्वभावमें भी भ्रम हो जाता है ॥ ५३० ॥ जियप्रकार चडे भारी हाथीके आक्रमण करने पर भिंह गर्जना करता है उसीप्रकार उसने गर्जनाकी और हरिणोंकी ध्वजांको धारण करनेवाले रविकीर्ति नामके अपने सेनापतिको आज्ञा दी ॥ ५३१ ॥ कि युद्धके लिये शत्रुओंके पक्षके नाशको सूचित करनेवाली मेरी (नगाडा) जल्दी बजाओ । रावणकी आज्ञानुसार सेनापति ने उसीसमय युद्धके नगाडे बजाये और प्रलयकालके अंतमें कालके दूतोंके समान अपनी सब सेना उसने एक जगह इकट्ठी की । तदनंतर अपनी सेनाका अलग अलग विभागकर वह रावण लंकासे निकला ॥ ५३२-५३३ ॥ उसके साथ साथ सुकुभं निकुभं कुंभकर्ण तथा और भी सब माई ये सबसे मुख्य इन्द्रजीत, इंद्रकीर्ति, इंद्रवर्मा, आदि सब पुत्र थे महाबल, अतिकाय, दुर्मुख, महाबल, खरदूषण और घूम आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्याधर थे । इसतरह क्रूर ग्रहोंसे घिरे हुए जेट महीनेके सूर्यके समान वह रावण निकला ॥ ५३४-५३६ ॥ उससमय वह तीनों जगतको ग्रासकरनेके लोलुपी ऐसे काल की लीलाको भी तिरस्कार कर रहा था तथा तर्क वितर्क कर रहा था कि राम लक्ष्मण मेरे सामने कमी नहीं उठर सकते । क्या सिंहके सामने खरगोश और गीदड़ ठहर सकते हैं । आज उनके जीते जी यह संसार विना रावणके भले ही हो जाय परंतु उनके साथ साथ मैं पृथ्वीका पालन कमी नहीं कर सकता इसतरह अपने ही अमगलका तर्क वितर्क करता हुआ रावण आया ॥ ५३७-५३९ ॥ उससमय रावण कालके मेघके समान महागंध नामके हाथीके स्कंधपर बैठा था, प्रतिकूल चलती हुई वायुसे पीछेकी ओर उडती हुई राक्षसके चिन्ह वाली ध्वजाओंसे सुशोभित हो रहा था, उसके आगे आगे सूर्यकी कांतिको भी तिरस्कार करनेवाला चक्र और छत्र



संसाधन स्थित । राक्षसादिमहाविद्या सिद्धादुपपत्तिभवात् ॥ ५१९ ॥ तद्विघ्नपूर्वक लक्ष्मणसम्यक् निवेशनं । प्रयोजनमिति श्रद्धयत सीतापति प्रति ॥ ५२० ॥ नायकान्या तत् सुग्रीवाजुमतौ स्वसाधिता । द्रुवा गरुडसिंहदिवाद्या बधमोचनी ॥ ५२१ ॥ हननावरणी विद्याशक्त्यस्य पृथक् पृथक् । प्रसिद्धिवाविकृतविमानेन महाबल ॥ ५२२ ॥ लकापुरवर्हिर्भगे तापवेद्ययत स्म तौ । नभश्चरकुमारेषु तदारामाश्रया गिरि ॥ ५२३ ॥ संप्राप्य युष्मन्मानेषु रावणस्याग्रसूनुना । तंयुग्मद्विजिता यूयं युष्मच्चमिति सकुवा ॥ ५२४ ॥ प्रेषिता खवराधीशाः प्राच्याः सर्वोद्य देवता । दम्पतं कालमस्माभिर्भवत्युप्यवलोदयात् ॥ ५२५ ॥ स्वयाम्बिलजित कार्यं साधितं पुण्यसंश्रये । समर्थो नेत्यसायुक्तो व्यक्तं तामिदधाननः ॥ ५२६ ॥ भवतीभिर्वराक्षीभिर्यत किं मय साध्यते । इन्मयं पौरुषैव वृथुगान् सहलेचरान् ॥ ५२७ ॥ सहायैः साधितं कार्यं लज्जायै ननु मानिना । इति क्रुद्धः पुरीमागतदंबासौ सहैद्विजित ॥ ५२८ ॥ दुष्टेष्टस्याप्तपुण्यस्य भूत भावि च नदयति । परिवारमुखाद् आत्मा परैर्लोकपगोचन ॥ ५२९ ॥ हरिगैहरीराष्ट्रदः पश्य कालविपर्ययं । अथवासभसूनुना

५१९ ॥ हमलिये इसममय हम लोगोंका काम है कि उसमें विघ्न करें लंकाको घेर लें और उसमें घुम जाय । इसतरह विभीषणके कहे हुएको रामचंद्रने भी मान लिया ॥ ५२० ॥ तदनंतर सुग्रीव और हनुमानने अपनी सिद्धकी हुई गरुडवाहिनी सिंह वाहिनी, बंधमोचनी, और हननावरणी ये चार विद्याएं अलग अलग रामचंद्र तथा लक्ष्मण को दीं । इसके बाद दोनों माइयोंने प्रवृत्ति विद्यासे अनेक विमान बनाकर अपनी सब सेना लंका नगरके बाहर मेढानमें जा ठहराई । जब इधरके सब विद्यावर कुमार रामचंद्रकी आज्ञा पाकर पहाडपर जाकर युद्ध करने लगे तब रावणके बड़े पुत्र इंद्रजीतने क्रोधित होकर सब विद्याधर और पहिलेके सब देवताओंको मेजा और कहा कि तुम सब लोग मिलकर उनके साथ युद्ध करो । तब पहिलेके सिद्ध किये हुए अथवा वधमें हुए देवता कहने लगे कि आपके बलवान पुण्यकर्मके उदयसे हमने इतने दिनतक तो आपकी इच्छानुसार सब कार्य सिद्ध किये परंतु अब आपका पुण्य कर्म क्षय हो गया है इसलिये हम कुछ नहीं कर सकते इसतरह उन देवताओंने रावणसे स्पष्ट कह सुनाया ॥ ५२१-५२६ ॥ यह सुनकर रावण कहने लगा कि तुम नीच देवता भले ही चले जाओ तुमसे मेरा क्या काम निकलता है मैं अपने पुरुषार्थसे ही विद्याधरोंके साथ साथ सब मनुष्यरूपी हरिणोंको मार डालूंगा ॥ ५२७ ॥ अभिवानी लोगोंके लिये दूसरेकी सहायतासे कार्य सिद्ध करना लज्जाकी बात है । इमतरह क्रोधित होकर वह रावण उसीसमय इंद्रजीतके साथ नगरमें आया । देखो दुश्चरित्र करनेवाले यदि पुण्यवान भी हों तो भी उनका पहिलेका और होनहार सब नष्ट हो जाता है । परिवारके लोगोंके मुखसे उसने शत्रुके द्वारा लंकाके गिर जानेकी बात सुनी ॥ ५२८-५२९ ॥

न्तु ॥ ५०७ ॥ सहायाद्यादिसत्तस्य विद्येशान् शौर्यशालिनः । लब्धाहः सोपि सतुष्य सद्यो वानरविद्यया ॥ ५०८ ॥ प्रादुर्भाषितदुःश्रेयनानवानर-  
सेनया । इत वारामिसुल्लंघ्य विक्रमाद्रनपालकान् ॥ ५०९ ॥ आक्रम्य निग्रहं कृत्वा वनभगं व्यघ्राकुया । हृदीकृतकंगधोरं क्रोशतो बनपालका ॥ ५१० ॥  
प्राविशन्नगरीं घोरों श्रावयंतोऽश्रुतश्रुतिं । तदा राक्षसविद्योयध्वजमालोपलक्षिताः ॥ ५११ ॥ अभियाता पुरारक्षा योद्धुं पवननदन । अयानिलमुतादिथा  
वानरानीकनायका ॥ ५१२ ॥ तानभजन समुद्वृण्व प्रहृत्य वनपादपैः । तत सुखन्महाज्वालविद्ययासौ वहिःपुरं ॥ ५१३ ॥ निरधाक्षीदधिधिक्षिप्य रूक्षरक्षो  
बल बली । एव रावणदुर्वप्रतापप्रोथतड्डम ॥ ५१४ ॥ ग्रोन्यूव्यानरानीकनायको राममायैषा । सत्राहा तत्र तु स्थित्वा बल सग्रामसम्मुखं ॥ ५१५ ॥  
नागतो रावण केन हेतुनेति विभीषण । अप्राक्षीदथ सोप्याद्यल्लकार्या नास्ति रावणः ॥ ५१६ ॥ चालिलोकातरापत्तिं सुमीवाणुमतोरपि । विद्याबलाबले-  
पित्वमवगम्य स्वयं च सः ॥ ५१७ ॥ निवेदय निजरक्षाया सुनिर्मिदजिदाह्वयं । अद्योपवासमासाद्य सम्यग्नियमितेन्दिय ॥ ५१८ ॥ आदित्यपादशैलेर्विद्याः

मकी विद्यासे जो देखी न जा मके ऐसी बदरोंकी सेनाके रूपमें वनगया । उसने शीघ्रही समुद्रको उदलघन किया और  
अपने पराक्रमसे वनकी रक्षा करनेवालोंपर आक्रमणकर उनका निग्रह किया तथा क्रोधसे रावणके सब वनका नाशकर  
ढाला । तब वनके रक्षक लोग अपनी सुनाओंको ऊंचीकर तथा जोर जोरसे चिछाते हुए घोर ( लोगोंसे भरी हुई )  
नगरीमें गये और जो बात कमी नहीं सुनी थी उसे सुनाने लगे । तब राक्षस विद्यासे जिनकी ध्वजाओंके समूह फह-  
रा रहे हैं ऐसे नगरके रक्षक लोग हनुमानसे लड़नेके लिये उसके सामने आये । यह देखकर हनुमानने भी बदरोंकी  
सेनाके सेनापतियोंको आज्ञा दी और तदनुसार वे सेनापति लोग वनके दृक्षोंको उखाडकर उन्हींसे उनलोगोंको ताड-  
ना करते हुए मारने लगे । तदनंतर दैदीप्यमान महाज्वाल नामकी विद्यासे बलवान हनुमानने नगरके बाहर राक्षसों  
की रूखी सेनाको नायक बह हनुमान रामचद्रके समीप आगया । तदनंतर सब सेनाको सजाकर युद्ध करनेके लिये  
सबलोग वहीं ठहर गये ॥ ५०६-५१५ ॥ इसके बाद रामचंद्रने विभीषणसे पूछा कि रावण युद्ध करनेके लिये अभी नहीं  
आया इसका क्या कारण है ? इसके उत्तरमें विभीषणने कहा कि रावण लंकारमें नहीं है ॥ ५१६ ॥ चालिका  
परलोक गमन तथा सुग्रीव और हनुमानके विद्या बलका अभिमान सुनकर उसने अपनी रक्षाके लिये इंद्रजीत नामके  
पुत्रको नियुक्त किया है तथा आठ दिनका उपवास धारणकर सब इंद्रियोंको वध कर आदित्यपाद नामके पर्वतपर  
विद्याओंको सिद्ध करता हुआ बैठा है राक्षसादि महाविद्याएं जब सिद्ध हो जायंगी तब वह वहांसे उठेगा ॥ ५१७-

शोबदय भविष्यति । सङ्गनेन विनाशो मा कृष्यत्ययशस्कर ॥ ४९८ ॥ निर्वासितोहं निर्भर्त्त्य देशाद्विमुदाहरन् । इष्ट एव किलारण्ये कृष्टो देव इति श्रुतिः ॥ ४९९ ॥ पुण्यन्ममाद्य संपन्ना यामि रामकमन्बुजं । इत्यतर्गतमालोच्य विनिधित्य विभीषणः ॥ ५०० ॥ जलधेजलमुल्लंघ्य सौजन्यमिव सत्वर । महानदीप्रवाहो वा वारिधिं राममासदत् ॥ ५०१ ॥ लक्ष्मणप्रमुखं न्मुह्यान्वेलालीलावहान् बहून् । प्रत्युद्गम्य विभ्रम्य तमानीय परीक्षया ॥ ५०२ ॥ सोऽपि ज्ञाताबुभावत्वेऽस्मीभावसुयागमत् । ततः कतिपयैरेव प्रयार्णगतवद्बलं ॥ ५०३ ॥ जलधेस्तटमाश्रित्य सनिविष्ट समततः । तदा तत्राणुमानित्यं राम विज्ञापयन्मय ॥ ५०४ ॥ देवाद्वेशोस्ति चेद्भूत्वा लंका शौर्योज्जिहीर्षया । बन्मर्गेन ते शत्रोर्भीनमग करोम्यह ॥ ५०५ ॥ लंकादाहेन दाह च देहस्य हि तत्कारिण । तथा सति स मानित्वादसौ चेदागमिष्यति ॥ ५०६ ॥ स्थानभ्रंशं तपुश्चोच्छेद्यो नागच्छेत्तेजसः क्षतिः । इति श्रुत्वा स्य विज्ञप्तिं तदस्तिवत्यवद-

नाश होगा और अपयश करनेवाला यह नाश मुझे दूषित करेगा ॥ ४९८ ॥ इसके सिवाय इसने मेरा तिरस्कार कर मुझे देशसे निकाल दिया है सो तो मेरे लिये हित ही किया है क्योंकि यह मुझे इष्ट ही है “बादल जंगलमें ही जाकर वरसे” यह कहावत आज मुझे पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई है इसलिये आज मैं रामचंद्रके चरणकमलोंके समीप जाता हूँ इसप्रकार विभीषणने चित्तमें विचार किया और ऐसा ही निश्चय कर लिया ॥ ४९९-५०० ॥ उसने सुजनताके समान बहूत शीघ्र समुद्रका जल उल्लंघन किया और महानदीके प्रवाहके ममान वह रामचंद्ररूपी समुद्रके समीप जा पहुंचा ॥ ५०१ ॥ तरंगोंकी लीलाको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदि अनेक बड़े बड़े योद्धा उसके आते ही खड़े होगये सब उससे मिले, आदरसे ले आए और परीक्षाकर उसे अपनेमें मिला लिया वह विभीषण भी सब बातोंका जानकार था इसलिये वह परीक्षामें पास होकर शीघ्र ही उनमें मिल गया । तदनंतर वह चलती हुई सेना कितने ही मुकामकर समुद्रके किनारे जा पहुंची और वहां उसने चारों ओर अपने डेरे डाल दिये । उसमय वहोंपर हनुमानने आकर रामचंद्रसे निवेदन किया कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो हमलोग अपनी शूरवीरताको प्रगट करनेकी इच्छासे लंकामें जायं और आपके शत्रु रावणके बनका नाश कर उसका मानभंग करें ॥ ५०२-५०५ ॥ इसके सिवाय लंकाको जलाकर अहित करनेवाले रावणका शरीर जलावें । ऐसा करनेसे अभिमानी होनेसे वह रावण यहांही आवेगा तथा यहां आनेपर स्थान अष्ट होनेसे वह सुखपूर्वक नाश किया जा सकेगा । यदि वह यहां न आ सकेगा तो उसके प्रतापमें हानि पहुंचेगी । हनुमानका यह निवेदन सुनकर रामचंद्रने उसे जानेकी आज्ञा दी और बड़े बड़े शूरवीर विद्याधरोंको साथ देकर उसकी सहायता की । रामचंद्रकी आज्ञा पाकर और संतुष्ट होकर वह हनुमान् शीघ्रही वानर ना-

पोतभूत भवान्वि किं तत्तरीतुं विनाशयेः । प्राणैरपि यशः क्रेयं मता पाणैश्च तेन च ॥ ४८७ ॥ पाप कृत्वातस्मात्पि क्रीणास्पृशोऽयशश्चरिक् । कस्येय दु-  
हिना सीता किं तत्र ज्ञायते त्वया ॥ ४८८ ॥ सुहृन्ममप्यविदोऽग कामव्यासुधमार्गनमः । अलौकिकसुखमनासेषु प्राप्तेषु परितोषण ॥ ४८९ ॥ भुजमानेषु वरस्य  
विषयेषु न वेदिसि किं । अयोध्यायासनाथाया नाशहतौ वृथा रतिं ॥ ४९० ॥ माकृथाः पाण्डु-त्यागलेगमाक्षुरयोयिति । आदेशः क्रीदशः सोपि स्मार्थो वा  
भविष्यति ॥ ४९१ ॥ चक्रस्य परियाक च प्रादुर्भूत च भावय । बलनामष्टम राम लक्ष्मण चादंचक्रिणां ॥ ४९२ ॥ आननति पुराणज्ञाः ग्राह तत्र  
विविचय । यादृमार्पयतो दोपस्तादृगप्यतस्तथा ॥ ४९३ ॥ सीता नेति विविधित्व ता रामाय मर्पय । इति लक्ष्मीलतावृद्धिगार्धनं धर्मशर्मद ॥ ४९४ ॥  
बचोऽनैचद्विचर्योर्वैश कर्तुं शशिप्रभ । भाषा विभीषणार्थं भाषमाणान् सीपणः ॥ ४९५ ॥ सुपितो रवणो दूतेनैकत्वमुपगम्य मे । पराम्बव समाश्रये  
प्राग्दूतमदमजीजन ॥ ४९६ ॥ संप्रत्यपि दुरुक्तोह त्वया ग्रहजतावलात् । अमृथो याहि भद्रदेशादिलाभायत निन्दुरं ॥ ४९७ ॥ सोपि दुश्चरितस्यास्य ना-

॥ ४८५-४८८ ॥ अथवा जिनका चित्त कामसे मोहित हो जाता है वे अपनी धारणा और प्रत्यभिज्ञानको अथवा  
अच्छे ज्ञानको भी भूल जाते हैं । क्या आप इनविषयोंकी दृष्टाको नहीं जानते हैं जबतक ये प्राप्त नहीं होते तबतक  
तो इनमें बड़ी भारी उत्सुकता बनी रहती है, प्राप्त होनेपर इनमें संतोष रहता है और इनका उपभोग करनेपर इनमें  
नीरसता आ जाती है इसलिये अयोग्य, अनार्थ, विनाशकी कारण तथा पाप और दुखोंका संचय करनेवाली परस्त्रीमें  
व्यर्थका प्रेम मतकर । आगामी कालमें होनेवाली बातोंके जानकार लोगोंकी क्या आज्ञा है उसे भी कुछ स्मरण कर-  
ना चाहिये ॥ ४८९-४९१ ॥ तथा चक्रसे उत्पन्न होनेवाले फलका भी विचार कीजिये । पुराणोंके जानकार रामचं-  
द्रको आठवां बलप्रश्न और लक्ष्मणको आठवां नारायण मानते हैं । हे विद्वान् आप इस बातका भी तो विचार कीजिये ।  
सीताको समर्पण न करनेमें जितना दोष है उतना दोष उसको समर्पण करनेमें नहीं है इसलिये इन सब बातोंका नि-  
श्चयकर सीता रामचंद्रको समर्पण कर दीजिये । इसप्रकार विभीषणने बहुत अच्छी तरह विचारकर यशको चद्रमाके  
समान निर्मल करनेवाले, लक्ष्मीलपी लताको बढ़ानेवाले तथा धर्म और कल्याणको देनेवाले वचन कहे । इमत्तर्हके  
वचन कहनेवाले विभीषणके लिये वह कठोर रावण क्रोधित होकर कठोर वचन कहने लगा कि पहिले तो तुने दूतके  
साथ मिलकर सभामें ही मेरा असह्य तिरस्कार किया था और अब भी तू मुझसे बुरे वचन कहता है तू मेरा भाई  
होनेसे मारने योग्य नहीं है इसलियं तू मेरे देशसे निकल जा ॥ ४९२-४९७ ॥ रावणकी यह बात सुनकर विभी-  
षण चिसमें विचार करने लगा कि यह दुश्चरित्री है इसलिये इसका नाश अवश्य होनेवाला है इसके साथ मेरा भी

४७८ ॥ परस्त्रीग्रहण शार्थं त्वत्पुण्यं भवेद् युधि । शिष्योत्तरेण किं मार्गविघ्नोन्मार्गवर्तिन ॥ ४७९ ॥ दुर्द्धरं तव दुर्बुद्धेर्लोकद्वयभयावह । विषयाननिषि-  
द्वांश्च परित्यक्तुं वयस्तव ॥ ४८० ॥ परामृशात्र किं युक्त निषिद्धविषयैषणं । विद्धि वंशाधरीं लक्ष्मीमिमां तव गुणप्रियां ॥ ४८१ ॥ अनर्पयत सीतां त्वां  
लज्जत्यर्थेन निर्गुण । अकार्यकारिणामत्र गणनीय किमग्रिम ॥ ४८२ ॥ त्वं करोष्यमिलाषाल्पकार्येण परयोषिति । प्रतिकूलोसि पुण्यस्य दुष्ट्या पापसचचा-  
त् ॥ ४८३ ॥ ततो ननु गुण देव विना देवाकुल भ्रिय । परस्त्रीहरण नाम पापं पापेषु दुस्तरं ॥ ४८४ ॥ विस्तरेण किमुक्तेन नेक्यते तत्समस्तम् ।  
आस्तां तावद्दो भावि शापः शीलालयप्रियः ॥ ४८५ ॥ अलमामूलतो दरापुं कुल क्रोधविधायिनां । नानिच्छन्तीं प्रतीच्छामीत्येकमेव तव व्रत ॥ ४८६ ॥

मुख्य हैं इसलिये परस्त्रीके समर्पण करनेको दोष बतलाते हैं ॥ ४७७-४७८ ॥ अब संसारमें आपके कहे अनुसार परस्त्रीको ग्रहण करना ही शूद्रवीरता गिनी जायगी ! आप अपनी दुर्बुद्धिसे जो यह मिथ्या उत्तर दे रहे हैं उससे दोनों लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाला और दुर्द्धर उन्मार्गकी प्रवृत्ति होगी और सुमार्गका नाश हो जायगा । जो विषय निषिद्ध नहीं है उनके मी त्याग करनेकी यह आपकी अवस्था है फिर भला आप विचार तो कीजिये अब इस अवस्थामें निषिद्ध विषयोंकी इच्छा करना क्या आपके योग्य है आप यही समझिये कि यह विद्याधरोंकी लक्ष्मी आपके गुणोंकी प्रिया है यदि आप गमचन्द्रको सीता समर्पण न कर देंगे तो यह आपका गुणहीन समझकर आज ही छोड़ जायगी । परस्त्रीकी अभिलाषा करनेरूप जो बहुत बुरा कार्य है उससे आप अपनेको अकार्य करनेवालोंमें मुख्य गि-  
नने योग्य क्यों बना रहे हैं । इससमय आप दुराचरण करने और पापोंका संचय करनेसे पुण्यके प्रतिकूल हो रहे हैं ॥ ४७९-४८३ ॥ विना गुणोंके पुण्य नहीं होता और विना पुण्यके लक्ष्मी नहीं मिल सकती तथा परस्त्रीका हरण क-  
रना पापोंमें मी सबसे बड़ा पाप है ॥ ४८४ ॥ अधिक कहनेसे क्या लाभ है पाप तुझे सातवें नरकमें ले जायगा । इसलिये क्रोध करनेवालोंके कुलकी समूल नाश करनेके लिये जबतक शीलकी भंडार स्वरूप सती सीता लक्ष्मीका होनहार शाप नहीं निकलता है तबतक अर्थात् उसके पहिले ही आप सीता रामचंद्रको समर्पणकर दीजिये । आपने जो “ जो स्त्री मुझे न चाहेगी उसे मैं मी कभी नहीं चाहूंगा ” यह जो आपने एक व्रत लिया था जो कि संसार-  
रूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाजके समान है उसे क्यों आप नष्ट करते हैं । सच्चजनोंको प्राण देकर भी यश ख-  
रीदना चाहिये परंतु आप मूर्ख हैं क्योंकि आप प्राण और यश दोनों देकर पाप तथा दूसरे कल्पकाल तक टिकने-  
वाला अपयश खरीद रहे हैं इसलिये आपके अधिकार है क्या आप नहीं जानते हैं कि यह सीता किसकी पुत्री है ?

वधोपाख्यानमोक्षस्थाने कृतार्चन ॥ ४६८ ॥ त्रिभिर्नि साधयामास भटाष्टशतरक्षितः । सुग्रीवोपि महाविद्या पूजयामास सुव्रतः ॥ ४६९ ॥ सेपवासो निग्री-  
समोदाहृत्ये निदसिलतले । तथान्येपि स्वविद्याना खगा- पूजामकुर्वत ॥ ४७० ॥ एवं भूखेचराधीश बल चलितकेतन । रामलक्ष्मणसुग्रीवमरुतदननायक ॥  
४७१ ॥ करिद्रिमकराकीर्णं तुरगमतरंगक । प्रलयामोधिसकाशं लका प्रति चचाल तत् ॥ ४७२ ॥ लकापुरेप्यणुमतो विनिवृत्ता दशाननः । कुम्भकर्णोदिभि-  
र्नासदुग्धप्रवशस्य भास्वतः ॥ ४७३ ॥ कर्मदमुचितं व्यातपौरुषस्य तव प्रभो । वीरभ्रमेतदुच्छिष्टं तदस्मादनुरोधत ॥ ४७४ ॥ विस्तृत्य तामिति प्रोचोप्यासकस्त्वक्तु-  
मक्षयः । भूयस्त्वणमनुष्यस्य रामनाम्नो बल मिला ॥ ४७५ ॥ सीतानेतुमतोस्माकमुपर्यागच्छतीति वाक् । श्रूयतेय कथं सीतामोक्ष कुलकलकृत् ॥ ४७६ ॥ इत्याह्वय-  
त्तद्वचं सेतुमक्षमो रावणाजुज । सूर्यवंशस्य शौर्यं किं रामस्त्वणमनुष्यकः ॥ ४७७ ॥ न शृणोसि वचं पथ्यं वधूना मदनायक । परदारार्पणं दोषं वदत् दोषविदावर ॥

नामकी विद्या सिद्धकी उससमय एक सौ आठ योद्धाओंने उसकी रक्षाकी थी । इसीतरह सुग्रीवने भी अनेक व्रत और उपवास धारणकर सम्मेद पर्वतपर सिद्धशिलाके ऊपर अनेक महा विद्याओंकी पूजाकी थी । इसीतरह और भी सब विद्याधरोंने अपनी अपनी विद्याओंकी पूजाकी थी ॥ ४६८-४७० ॥ इसप्रकार जिसमें ध्वजाएं फहरा रही हैं, रामचंद्र लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान आदि मुख्य योद्धा हैं वड़े वड़े हाथी ही जिसमें मगर मच्छ हैं और बांड़े ही बड़ी बड़ी तरंगे वा लहरें हैं ऐसी प्रलयकालके समुद्रके समान वह भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंकी सेना लंकाके लिये रवाना हुई ॥ ४७१-४७२ ॥

अथानंतर-जब हनुमान लका नगरसे वापिस लौट आया था तब कुम्भकर्ण आदि भाइयोंने रावणसे प्रार्थनाकी थी कि हे देव ! आप हमारे बड़े भारी उच्च वंशमें सूर्यके समान हैं और आपका पैरुप भी संसारमें प्रसिद्ध है इसलिये आपवो यह काम करना उचित नहीं है यह स्त्री सब उच्छिष्ट है इसलिये आप हम लोगोंके अनुगीध करनेसे इसे छोड़ दीजिये ” इसतरह सबने प्रार्थनाकी परंतु रावण सीतामें आसक्त था इसलिये उसे छोड़ नहीं सकता था अतएव वह कहने लगा कि रामचंद्र तूण मनुष्य हैं अर्थात् अत्यंत तुच्छ हैं अथवा न कुलके समान हैं उनकी सेना सीताको लेनेकेलिये यहां हमारे उपर आ रही है ऐसा सुन रहे हैं फिर भला आज सीताको कैसे छोड़ दें यह बात तो कुलको लेनेकेलिये यहां हमारे उपर आ रही है ऐसा सुन रहे हैं क्या आपने सूर्यवंशकी शरवीरता नहीं सका और कहने लगा कि आप रामचंद्रको तूण मनुष्यके समान मानते हैं क्या आपने सूर्यवंशकी शरवीरता नहीं सुनी है आप इससमय कामांध हो रहे हैं इसीलिये भाइयोंके हितरूप वचन नहीं सुनते आप दोपोंके जानकारोंमें भी

पुष्पं बचः । बारणाशा त्यजत्वस्ति चेदाद्या नास्ति वा रणं ॥ ४५७ ॥ यातु मत्पादसेवा स भयोमा यातु वारण । तदा तस्याशुभो वाणीं तद्विनाशविधा-  
 विनी ॥ ४५८ ॥ श्रत्वा इतोऽप्युपैष्यद्वलिनैर्बलिनैर्तकं । प्राक्षिक्त्येन वाली बः कुत्रिमः शत्रुशयित ॥ ४५९ ॥ पारिपयिकबन्धार्गे दुर्गस्तस्मिन्विरोचिनि ।  
 इत्यब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवप्रमुखं वलं ॥ ४६० ॥ लक्ष्मणं नायकं कृत्वा प्राहिणोत्स्वखिरं वनं । गत्वा वैद्याधरं सैन्यं वालिनोऽप्यागत बल ॥ ४६१ ॥ जवानेव  
 वनं वज्रं प्रज्वळच्छरसतसि । स्वयं सर्वबलेनामा योद्धुं वाली तदागमत् ॥ ४६२ ॥ पुनस्तयोरभूद्युद्धं बल्योः काललीलयोः । प्रलयेवातकस्तत्र प्रायस्तुमि-  
 मुयेयिबान् ॥ ४६३ ॥ आकूर्णकृष्टनिर्गुप्तविद्यातसितपत्रिणा । लक्ष्मणेन विरोप्राहि ताल वा वालिनः फलं ॥ ४६४ ॥ तदा स्वस्थानमापन्नौ सुग्रीवानिलन-  
 दनौ । सद्यः फलति संसेवा प्रायेण प्रयुमाश्रिता ॥ ४६५ ॥ ततः सर्वगमन् रामस्त्वामिनं सोऽप्यनीयत । स्वस्थानं सबलो भक्त्या सुग्रीवेण सहजुव ॥  
 ४६६ ॥ विभोर्मनोहरोयाने किंकिधे शरदागमे । बलं चतुर्दंशाक्षौहिणीप्रमं भूदुतामभूत् ॥ ४६७ ॥ लक्ष्मणश्च जगत्पादमिरो निरशनस्तदा । सप्तह बि-

वालिके विनाशको सूचित करनेवाली उसकी अशुभ वाणीको सुनकर वह दूत उसीसमय वालिको मारनेवाले रामचंद्र  
 के पास आया और कहने लगा कि आपके प्रतिकूल हो कर वालि आपका कुत्रिम शत्रु प्रगट हुआ है ॥ ४५७-४५९ ॥  
 मार्ग अत्यंत कठिन है उसमें अच्छा किला है उसमें शत्रु रहता है इसतरह दूतने कहा । यह सुनकर रामचंद्रने लक्ष्मण  
 को नायक बनाकर सुग्रीव आदिकी सब सेना खदिरके वनमें भेज दी । वज्रके समान जिसके सब शस्त्रोंके समूह दै-  
 दीप्यमान हो रहे हैं ऐसी उस विद्याधरोंकी सेनाने वनके समान वालिकी आई हुई मय सेना काट डाली तब वालि  
 स्वयं सब सेनाको लेकर युद्ध करनेके लिये आया ॥ ४६०-४६२ ॥ तदनंतर कालके समान लीला करनेवाले उन दोनों  
 बलवानोंका ( वालि और लक्ष्मणका ) युद्ध होने लगा और काल उस युद्धमें प्रायः प्रलयके समान वृष से बाण छोड़ा  
 ४६३ ॥ अंतमें जिसप्रकार ताल वृक्षका फल तोड़ लेते हैं उसीप्रकार लक्ष्मणने कानतक खेंचकर धनुषसे बाण छोड़ा  
 और उससे वालिका शिर काट डाला ॥ ४६४ ॥ उसीसमय सुग्रीव और हनुमानको अपना अपना स्थान मिल गया  
 सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके आश्रय रहकर उनकी सेवा करनेसे उसका फल बहुत शीघ्र मिल जाता है ॥ ४६५ ॥  
 तदनंतर सब लोग रामचंद्रके समीप आए सुग्रीव रामचंद्रको लक्ष्मण और सब सेनाके साथ बड़ी भक्तिसे अपने नग-  
 रमें लाया और किंकिधा नगरके मनोहर नामके उद्यानमें सबको ठहरा दिया उससमय शरद ऋतु आगई थी और  
 रामचंद्रके साथ राजाओंकी चौदह अक्षौहिणी सेना होगई थी ॥ ४६६-४६७ ॥ “ जहांसे शिवघोष नामके सुनिराज  
 मोक्ष पधारे थे ऐसे जगत्पाद नामके पर्वत पर जाकर लक्ष्मणने सात दिनका उपवास धारणकर पूजाकी और प्रवृत्ति



तरुवि दुष्कर ॥ ४३७ ॥ ततो हठात्तवायात किष्किधेशविनाशिन । श्राम् पश्चाच्छक्तिपगत्या सुखोच्छेद्यो दशाननः ॥ ४३८ ॥ इत्यब्रवीत्तदादाय दूत-  
माहूय भूपति । महाधेयाभिधानं मे प्रदायानेकपायिमा ॥ ४३९ ॥ सहान्तेनु मया लक्षा चर्च्य पश्चात्तत्तीप्सित । इत्युक्त्वामामुनात्सीयमपि दूत व्यसर्जयत् ४५०  
गत्वा तौ रामसेदशासुग्रीवस्राजन्मन । कोपमानयतः स्मासाविल्वोच-भटोद्धत ॥ ४५१ ॥ एव प्रार्थयमानो मा रामो रामापहारिण । निर्मूल्यानीय  
सीता किं यशो विष्णु विकीर्णवान् ॥ ४५२ ॥ दशास्ये साममामोक्त्या समीप्यो सामवायिके । पशुपक्तिर्मयीत्यस्य वीशोऽयं पश्य कीदृशो ॥ ४५३ ॥ इमा  
तद्वर्चदुर्भावा ध्रुवा राघवसेविना । चौर्येण परदारणां नेतुर्गमार्गगमिनः ॥ ४५४ ॥ दोषद्वयानुरूप त्व दृढ इत्यसि चाचिरात् । किं तेन तव चेत्यय्यमि-  
च्छेन्नृद्वय दुर्मद ॥ ४५५ ॥ दत्त्वा गजं कुरूपस स्वाभिनो वृद्धियेक्यसि । अवश्यमचिरेणेति दूतेनोद्दीपितं क्रुधा ॥ ४५६ ॥ बाली कालानुकारी तं प्रत्याह

४४८ ॥ इसतरह अंगदके वचन सुनकर रामचंद्रने बालिके दूतको बुलाया और कहा कि आपके यहां जो महामेघ  
नामका उचम हाथी है उसे मुझे समर्पण करो और मेरे साथ लंकामें चलनेकेलिये तैयार हो पीछे आपके कामकी  
चर्चाकी जायगी इसतरह कहकर और उस दूतके साथ एक अपना दूत देकर उसे विदा किया ॥ ४४९-४५० ॥ वे  
दोनों ही दूत जाकर बालिके पास पहुंचे और उन्होंने रामचंद्रका संदेशा कहकर सुग्रीवके बड़े भाई बालिको बहुत ही  
क्रोधित किया तब वह मदसे उद्वत हुआ बालि कहने लगा कि ॥ ४५१ ॥ रामचंद्रने मुझसे इसतरह प्रार्थना की है  
ब्रह्मा देखता हू क्या इसतरह सीताको हरण करनेवाले गवणको नाशकर तथा सीताको लाकर रामचंद्र सब दिशा-  
ओंमें अपना यज्ञ फैला दंगे ? ॥ ४५२ ॥ अपनी इष्टसिद्धिके लिये गवणसे तो ऐसे सतताके बचन कहला भेजे हैं  
और उसके निकट संबंधी मुझसे ऐसे कठोर वचन कहला भेजे हैं इनकी बुद्धि और दूरवीरता कैसी है सो तो देखो ॥  
४५३ ॥ नीच अभिमानसे भरी हुई ऐसी कठोर भाषाका सुनकर रामचंद्रका दूत कहने लगा कि उन्मार्गपर  
चलनेवाले रावणने जो चेचरी करके परस्त्री हरणकी है सो इन दोनों अपराधोंके अनुसार उसे दंड मिलेगा और तू  
स्त्रीघ्न ही देखेगा अथवा इससे आपसे क्या संबंध है यदि आप अपना हित चाहते हैं तो इस मिथ्या अभिमानको  
छोड़कर हाथी दे दीजिये और स्वामीकी सेवा कीजिये इसतरह करनेसे आप बहुत शीघ्र और अवश्य वृद्धिको प्राप्त  
होगे ॥ इसतरह कहकर दूतने उसे क्रोधसे और उद्दीपित किया ॥ ४५४-४५६ ॥ तब कालका अनुचर ( शीघ्र मरने  
वाला ) बालि उस दूतसे कठोर वचन कहने लगा कि यदि जीनेकी आशा है तो हाथीकी आशा छोड़ दो यदि जी-  
नेकी आशा नहीं है तो सामने युद्धमें आओ अथवा मेरे चरणोंकी सेवा करते हुए बनारसको लौट जाओ । इसतरह

णमुपागत ॥ ४३६ ॥ नत्वा कि बहुलोक्तेन सीता तेन न भाक्ष्यते । अतस्तदनु रूप वा कार्यं माभून्नीतकाः ॥ ४३७ ॥ शसति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञा  
 क्षिप्रकारिता । इत्याहवाय तत्रोक्तमिदं कुलकैः नरी ॥ ४३८ ॥ चतुरंगवलेनामा चित्रकूटवनान्तरे । कालमेव बल मत्वानैषीद्वर्षद्विमिवरः ॥ ४३९ ॥  
 तत्रत्यं वालिनो दूत समीक्ष्य श्रुतदत्त । प्रणम्योपायन दत्तेयव्रवीदविमोहित ॥ ४४० ॥ विक्षपयति मत्स्वामी वालीति बलवानलं । पूज्यपादो यदि  
 प्रेष्यं मामिच्छति महीपतिः ॥ ४४१ ॥ मा प्रतीच्छतु शृत्यत्व सुग्रीवानिलपुत्रयोः । तावद्विचित्रकारवायो वेति वैतत्परक्रमं ॥ ४४२ ॥ तिष्ठत्वत्रैव  
 देवोहं गत्वा लकां दसाननं । मानभगे नियोज्यार्योमानयेऽथैव जानकीं ॥ ४४३ ॥ इत्याकीर्णतद्वाक्यः सोप्राक्षीकृत्प्रमणाप्रजः । साममेदविदो वाज्य  
 किंकिथेस किमुत्तरं ॥ ४४४ ॥ इति मंदिगण सर्वसम्मतः संस्तुतौ गद । शत्रुभिन्नुदासीन इति भूपास्यो मता ॥ ४४५ ॥ रावणस्तेषु नः शत्रु-  
 वाली मित्रस्य विद्विषः । कुर्मो यदि तत्कार्यं संवन्नीयात्स शत्रुणा ॥ ४४६ ॥ तथा चोपचयः शत्रोर्दुरुच्छेदो हि तेन सः । अथ वालिवचनं कुर्मः कर्म-  
 रामचन्द्र अपनी चारों तरहकी सेना लेकर चित्रकूट वनमें जा पहुंचे । तथा समयको ही बलवान मानकर उन्हेंने वर्षा-  
 ऋतु वहीं बिताई ॥ ४३७-४३९ ॥ जब रामचंद्र चित्रकूट वनमें निवास कर रहे थे उसीसमय राजा वालिका दूत राम-  
 चंद्रके समीप आया तथा दर्शनकर प्रणामकर भेट समर्पणकर सावधान होकर इसप्रकार कहने लगा कि हे देव मेरे  
 स्वामी बहुत बलवान राजा वालि आपसे इसप्रकार निवेदन करते हैं कि पूज्यपाद राजा रामचंद्र यदि सुझे दूत बनाना  
 चाहते हैं तो हुनुमान और सुग्रीवको सेवक न रखें क्योंकि ये दोनों ही बहुत थोड़ा काम करनेवाले हैं यदि आर्य  
 आप मेरा पराक्रम देखना चाहें तो हे देव आप यहां ही ठहरिये मैं लंकामें जाकर रावणका मानभंगकर सती  
 जानकीको आज ही ले आऊंगा ॥ ४४०-४४३ ॥ दूतके उन वचनोंको सुनकर रामचंद्र साम नामके उपायके  
 भेदोंको जाननेवाले मंत्रियोंसे पूछने लगे कि किंकिथा नगरके स्वामी राजा वालिको क्या उचर देना चाहिये ॥  
 ४४४ ॥ तब सब मंत्रियोंकी सम्मतिसे प्रशंसीय अंगद कहने लगा कि राजा लोग तीन तरहके होते हैं एक शत्रु  
 दूसरे मित्र, और तीसरे उदासीन ॥ ४४५ ॥ इसमेंसे रावण तो हमारा शत्रु है और वालि मित्रका शत्रु है यदि हम  
 लोग उसका काम न करेंगे तो वह शत्रुसे मिल जायगा ॥ ४४६ ॥ तथा उसके शत्रुसे मिलजानेपर शत्रु बलवान हो  
 जायगा और फिर बड़ी कठिनतासे नाश किया जा सकेगा यदि वालिके कहे हुए कामको करें तो यह काम आपके  
 लिये बहुत कठिन है ॥ ४४७ ॥ इसलिये सबसे पहिले किंकिथा नगरके स्वामीके नाश करनेका काम आपके गलेमें  
 जवर्दस्ती आ पड़ा है । इसके बाद शक्ति और संगति चढजानेसे सुखपूर्वक ही रावणका नाश किया जा सकेगा ॥

किमेतेन भवच्छैर्य वदान प्रगटीमवेत् । किं द्योक्त्वा प्रियेणैव ॥ ४२७ ॥ इति तद्रहसोक्तिव-  
 न्निहसतपिताशयः । पुण्यकाथिपतिर्दृष्टिविषाहीदृष्टफणामणिः ॥ ४२८ ॥ आदगुमिच्छतो गंतुं गतिं रामोभियाच्छति । इतस्त्व यत्र वच्योसि याहि याहीत्यतर्जयत् ॥  
 ४२९ ॥ निजिल सिधुराति गजितेनो जितकुचां । ततः कुभनिकुभो भुंक्तुं कर्णदिभिर्नटैः ॥ ४३० ॥ इद्रजित् संद्रचर्मातिकन्यार्कसदृक्कैः । खरेण दुमुपात्येन नहा-  
 वीत्तदानेदमुचित दुरपीरितं ॥ ४३१ ॥ इति तान् वारयन् कुदान् नयवेरी विभीषणः । गजितेन दृशनेन वनिताजनसमुत्त ॥ ४३२ ॥ किं कृतमत्र तस्मै मदीयं शृणुते तत्र । इत्य-  
 भाविनां को निवारक । इदुवाचाणुमाश्रय जानकी वजिताशना ॥ ४३३ ॥ मदोद्वेगकृष्यास्या दगद्वद्वा पारणाविधि । ततो वारादिमुत्पद्य रामाभ्य-  
 अग्निसे जिसका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसा पुष्पक विमानका स्वामी रावण हनुमानको ललकारता हुआ कहने लगा  
 कि जिसकी दृष्टि ही विष भरा हुआ है ऐसे बड़े भारी सर्पके फणके मणिकी ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवालेकी  
 जो गति होती है उसी गतिको रामचंद्र पहुंचना चाहता है अर्थात् मरना चाहता है हे दूत तू मारने योग्य नहीं है  
 इसलिये तू यहांसे निकल और जल्दी जा ॥ ४२८-४२९ ॥ इसतरह कहकर रावणने बड़े कोषमें आकर सिंहकी भी  
 जीतनेवाली गर्जना की, तदनंतर हाथीके मस्तकके समान उग्र ऐसे कुंभकर्ण आदि योद्धाओंने, इंद्रजीत इंद्रचर्म, अति  
 कार्यार्क, खरदूषण, खर, दुर्मुख, महामुख आदि विद्याधरोंने तथा और भी कोषित हुए कुमारोंने हनुमानको ललकारा  
 तब हनुमानने कहा कि खिगोंके सामने इसतरह व्यर्थ गरजनेसे कुछ लाभ नहीं है अब तू मर मेरा उचर सुखमें सुनना  
 यह सुनकर नयोंके जानकार विभीषणने सबको रोका और कहा ऐसे बुरे बचन कहना ठीक नहीं है, वह हनुमानसे  
 है सो ठीक ही है क्योंकि होनहार शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भला कौन रोक सकता है । इसतरह विभीषणने कहा  
 तब हनुमान आहार पानी छोड़े हुए सीताके पास आया ॥ ४३०-४३१ ॥ मंदोदरीके उपरोधसे सीताने कुछ थोड़ा-  
 सा खाया था उसे देखकर और समुद्रको उल्लंघनकर वह हनुमान शीघ्र ही रामचंद्रके पास आया ॥ ४३२ ॥ नम-  
 स्कार कर कहने लगा कि बहुत कहनेसे क्या लाभ है सबका सार यही है कि रावण सीताको छोड़ना नहीं चाहता,  
 इसलिये सीताके अनुकूल कार्य करनेमें देर करना नहीं चाहिये क्योंकि जिसमान लोग निश्चय किये हुए कार्यमें  
 जल्दी करना ही मंजूसनीय समझते हैं । हनुमानके कहे हुये इसतरहके बचनोंको सुनकर इस्वाकृ बंधुमें सिंहके समान

४२६ ॥ जित्वा मा विप्रहेणाशु गृह्णीयात्केन वार्यते । इति तत्प्राशस्त्यसूचिवचनं देवचोदितं ॥ ४१७ ॥ श्रुत्वा रामोदयागदिनिमित्तं शुभसूचक । इदमे-  
वान्नोभीष्टमिति चित्तेनिलात्मजः ॥ ४१८ ॥ व्याजहार दुरात्मान दुश्चरित्रदशानन । अन्यायस्य निषेधा त्व निषेधश्च निषेदरि ॥ ४१९ ॥ बाह्वामिनि-  
वामोयो केन वा स निषिध्यते । अमेयेयमहं ह्य्यातो राघव सिंहविक्रम ॥ ४२० ॥ अस्मीतिनिष्कला चद्रमिति स्मृतुं तवोचित । मया बहुत्वसनयासव  
पथ्यमुदाहृत ॥ ४२१ ॥ प्रभो गृहाण चैतन्न्य रोचते चेन्न मागृही । इति द्रुतवचः श्रुत्वा गोलस्त्य पुनरग्रवीत् ॥ ४२२ ॥ रत्न ममानिवेद जनकेन स-  
मर्पित । दण्डाशयो तस्मादाहतेय मया कथा ॥ ४२३ ॥ मद्योग्यवस्तुस्वीकागदकीर्तिश्चद्वेनमम । चक्रत्त व मद्रस्तादादातु स राघव ॥ ४२४ ॥  
इत्यन्यतोजनासुरवोचदशकथर । वच प्रपन्नगभीर तदुक्त्यनुसरि यत् ॥ ४२५ ॥ सीता मया हतेत्येतद्वि वक्षि विदित ज्ञेयः । करे कस्य स्थिता सेति  
इतस्तह भाग्यकी प्रेरणासे रावणके नाश करनेको सूचित करनेवाले वचन सुनकर हनुमान चित्तमें विचार करने  
लगा कि गमचंद्रके उदयको प्रगट करनेवाले और शुभकी सूचना करनेवाले निमित्त हो रहे हैं और इस विषयमें हमें  
भी यही इष्ट है ॥ ४१५-४१८ ॥ तदनंतर वह हनुमान रामचंद्रकी ओरसे दुष्ट और दुश्चरित्र रावणसे फिर कहने लगा कि  
आप अन्यायको रोकनेवाले हैं यदि रोकनेवाले को ही रोकने का काम पड़े तो उसे कौन रोक सकता है जो बड़बानल  
अग्नि समुद्रमें प्रगट हुई है उसे भला कौन रोक सकता है । यह सीता अभेद्य है इसे कोई चलायमान नहीं कर स-  
कता और मैं भिन्नके समान पगक्रमी प्रसिद्ध गमचंद्र हूं इममें सूर्य चंद्रमाके टिकने पर्यंत विना किसी प्रयोजनके अ-  
कीर्ति होगी इसका स्मरण करलेना भी आपको उचित है मैंने भाईपनेके नातेसे आपके हित करनेवाले वचन कहे हैं  
यदि आपको अच्छा लगे तो ग्रहण कीजिये नहीं तो मत कीजिये । इस तरह दूत हनुमानके वचन सुनकर रावण फिर  
कहने लगा ॥ ४१९-४२२ ॥ कि यह सीता रत्न मुझे विना खबर दिये ही जनकने अपने अभिमानसे रामचंद्रको  
दी थी इसीलिये क्रोधसे मैं इसे ले आया हूं ॥ ४२३ ॥ मेरे योग्य वस्तुको स्वीकार करनेमें यदि अपकीर्ति होती हो  
तो हो । वह गमचंद्र तो मेरे हाथसे चक्र रत्न भी लेना चाहता है । यह सुनकर हनुमान प्रसन्न गभीर और रावणके  
कहे अनुसार ही रावणसे कहने लगा ॥ ४२४-४२५ ॥ कि सीता मैंने हरी है ऐसे वचन आप क्या कहते हैं । यह  
तो संसार जानता है हे विभो जब आपने सीता हरी थी तब यह किसके हाथमें थी, इसके सिवाय आप यह तो क-  
हिये कि क्या इस कार्यसे आपकी शूर वीरता प्रगट होती है इसलिये व्यर्थके वचनोंसे क्या लाभ है आपको इन  
मीठे वचनोंसे ही वह रानी सीता समर्पण कर देनी चाहिये २६ २७ इस तरह जिसमें हंसी मिल रही है ऐसे गूढ वचनरूपी

त नीत्वा दशाननमज्झिष्यन् । वचोहरोय रामेण प्रहितो देवसन्निधिं ॥ ८०७ ॥ इत्यभावपि योग्येन क्रमेणालोक्य रावण । तदादिष्टासने स्थित्वा प्राप्तुर्तप-  
णपूर्वक ॥ ४०८ ॥ श्रव्यैर्हितमितालापः शृणु देवेति बोधयन् । प्राज्ञो विज्ञापयामास प्रसृष्टमधुरध्वनिं ॥ ४०९ ॥ अयोध्यामधुनाध्यास्य वर्द्धमानो निजेज-  
सा । आत्माभिमानीकप्रज्ञामाहसगुणभूषण- ॥ ४१० ॥ राघवे कुशली देव त्रिखंडाखंडनायक । कुशलोदतसप्तश्रृण्वैर्मित्यभभाषत ॥ ४११ ॥ सीताव्य-  
स्येति नीता सावस्वदीयेत्यजानता । किं जात नास्ति दोषो द्राक् प्रेपणीया मनीषिणा ॥ ४१२ ॥ न चेद्विनमिवैकभूषणस्य महात्मन । नानारूपभेद कर्म  
धर्मशर्मविधातुकृन् ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्रमिवाभोधेनं युक्त मलधारण । सीताविमोचनोत्तुंगतरंगैः क्षिप्यता वहि ॥ ४१४ ॥ इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य प्रयुक्त्वाच  
खगेश्वरः । सीतां नानवबुध्याहमनैप किंतु भूभुजः ॥ ४१५ ॥ मयैव सर्वस्वानि स्त्रीरक्ष तु विशेषत । प्रपयत्विति किं वक्तुं युक्त मा ते महीपते ॥

जाननेवाला विभीषण उसीसमय हनुमानको रावणके समीप ले गया और रावणसे निवेदन करने लगा कि “हे देव  
यह रामचंद्रका दूत हैं रामचंद्रने आपके समीप भेजा है ॥ ४०६-४०७ ॥ इसप्रकार हनुमानने यथायोग्य रीति और अनुक्रमसे  
रावणके दर्शन किये और लाई हुई भेट समर्पण कर रावणके बतलाये हुए आमनपर बैठ गया ॥ ४०८ ॥ पहिले तो सुनने योग्य  
हितरूप और फिर मधुर और थोड़ेसे बचनोंसे रावणकी प्रशंसाकी और स्पष्ट बचन कहनेवाला विद्वान् हनुमान निवेदन करने  
लगा कि हे देव सुनिये ॥ ४०९ ॥ अपने प्रतापमें ही रात दिन बढनेवाले, आत्माभिमान बुद्धिमानी और साहस आदि गुणोंसे  
सुशोभित तथा क्षेम कुशलमें रहनेवाले राजा रामचंद्रने अयोध्या नगरमें ही विराजमान होकर तीनों खंडके एक  
स्वामी ऐसे आपका पहिले तो कुशलप्रश्न पूछा है और फिर यह कहला भेजा है ॥ ४१०-४११ ॥ कि आप सीता-  
को किसी दूसरेकी सम्भार ले आए हैं परंतु वह मेरी स्त्री है आप विना जाने लाये हैं इसलिये कुछ विगड़ा नहीं  
है आप बुद्धिमान हैं इसलिये उसे क्षीघ्र भेज दीजिये इसमें कुछ दोष भी नहीं है ॥ ४१२ ॥ यदि आप सीताको नहीं  
भेजेंगे तो विनमि बशके एक रत्न और महात्मा ऐसे आपका विचित्ररूप यह कार्य धर्म कर्म और कल्याणको नाश  
करनेवाला होगा ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्ररूपी महासागरको मल धारण करना योग्य नहीं है इसलिये सीताको छोड़ने  
रूप बड़ी बड़ी तरंगोंके द्वारा इसे बाहर ही फेंक देना चाहिये ॥ ४१४ ॥ हनुमानके कहे हुए इन बचनोंके सुनकर  
रावण कहने लगा कि मैं सीताको विना जाने नहीं लाया हूं किंतु मैं राजा हूँ इसलिये संसारके सब रत्न मेरे हैं तथा  
स्त्रीरत्न तो विशेष कर मेरा है । तुम्हारे स्वामी रामचंद्रने मेरे लिये जो यह कहला भेजा है कि सीताको भेज दो  
तो क्या उन्होंने योग्य किया है युद्धमें मुझे जीतकर वे सीताको क्षीघ्र ही ले जायें उन्हें कैान रोकता है ।

स्वीकृता द्वय ॥ गोमिन्या सह सीतापि वेत्ति वृत्तोत्तमापरे । त्वमेव कृत्यं निर्णीय द्विदृष्टं श्रीघ्र मे हितं ॥ ३९६ ॥ इल्लमुत्सवाहायैस्तैः स कुमारः प्रणम्य त । गत्वाऽप्य सहसा लंकां ज्ञातो वीक्ष्य विभीषण ॥ ३९७ ॥ रामभद्रारकेणाहं प्रेषितो भवदतिक । इति सप्रश्रय सर्वं तदुक्तं तमजीगमत् ॥ ३९८ ॥ इदं च स्वयमाहासो स्वामिदेशव्हाणि । प्रापयन्त्वं स्वर्गाधीश मा तस्मै हितकारिण ॥ ३९९ ॥ रामाभिप्रेतकार्यस्य त्वया सिद्धिस्तथासति । कार्यमेतत्तु मधुद्वारा-विधातु भवतो भवेत् ॥ ४०० ॥ त्वय्योक्तोऽपि न चेत्सीता विमुचति स मंदधीः । नापरराष्ट्रवापुष्य स्वयमेव विनश्यति ॥ ४०१ ॥ वर्द्धमानप्रिय दृष्ट्वा रामं तत्पुण्योदित । इतो द्वितयलोकैकहित यायामधीश्वर ॥ ४०२ ॥ इति रक्त स्वयं भूयो धरणीगोचरं बल । पंचाशत्कोटिसंयुक्त लक्षा चतुरसीतिक ॥ ४०३ ॥ सार्द्धश्रितयमंरुगात् खेचरानीकमय्यदः । वल्लेनतेन सप्राप्य सट्टविह मलक्ष्मणः ॥ ४०४ ॥ हर्षुमयं च सीतां वा सीता च खचेरशिन । समर्थः किंतु दक्षिणं विभोर्नैसर्गिक त्वयि ॥ ४०५ ॥ ततोह प्रेषितस्तेन त्वं च किं वेत्सि नेहलं । इति तद्वचनं धृत्वा कार्यविश्रावणानुजः ॥ ४०६ ॥ तदानीमेव इमतरह कहकर और ऊपर कहे राजाओंको साथ देकर रामचंद्रने हनुमानको विदा किया ; हनुमान भी रामचंद्रको प्रणामकर चला और शीघ्र ही लंकामें जा पहुंचा । वह वहांका जानकार था इसलिए वह सीधा विभीषणके यहां जा पहुंचा और कहने लगा कि स्वामी रामचंद्रने मुझे आपके पास भेजा है इमतरह कहकर हनुमाननं बड़ी विनयके साथ रामचंद्रके कहे हुए सब समाचार विभीषणको कह सुनाये ॥ ३९७-३९८ ॥ तथा इतने समाचार उमने अपनी ओरसे कहे कि आप रावणका हित करनेवाले और स्वामी रामचंद्रका समाचार ले जानेवाले मुझे रावणके पास पहुंचा दीजिये ॥ ३९९ ॥ आपसे रामचंद्रके इष्ट कार्यकी सिद्धि अवश्य हो जायगी और ऐसा हो जानेपर यहकार्य मेरे द्वारा आपसे ही हुआ समझिये ॥ ४०० ॥ यदि वह मंदबुद्धि वाला रावण आपके कहनेसे भी सीताको न छोड़े तो फिर इसमें आपका कोई अपराध नहीं है वह पुण्यहीन अपने आप नष्ट हो जायगा ॥ ४०१ ॥ इससमय रामचंद्रकी लक्ष्मी बढ रही है यही देखकर उनके पुण्यकी प्रेरणासे ही मानों दोनों लोकोंके हित करनेवाले स्वामी रामचंद्रकी शरण जाना चाहिये यही समझकर पचास करोड चौरामी लाख भूमिगोचरियोंकी सेना और सांडे तीन करोड विद्याधरोंकी सेना स्वयं अनुरक्त होकर उनमें आ मिली है । वे रामचंद्र इतनी मर सेना और भाई लक्ष्मणके साथ स्वयं यहां आ पहुंचेंगे ॥ ४०२-४०४ ॥ यद्यपि वे गीताके साथ साथ विद्याधरोंके स्वामी रावणकी लक्ष्मीको भी आज ही हरण करनेको समर्थ हैं तथापि उनका आपमें स्वाभाविक प्रेम है ॥ ४०५ ॥ इसलिये उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है क्या आप इसतरहके सब समाचार नहीं जानते हैं ? हनुमानके इसतरहके कहे हुए बचनोंको सुनकर कार्यको

व्यौ तस्मिन्नातिविदिमि । क्रमस्तथापि नोल्लभ्यः साम तावत्प्रयुज्यता ॥ ३८६ ॥ कः सामवित्प्रयोक्तव्य इत्यस्मिन् सप्रधारणे । दक्षतादिगुणोपेता बहव सति भूचराः ॥ ३८७ ॥ किं नु नाकाशगामित्वसामर्थ्यं तेषु विद्यते । तस्मात्तेनापति प्रेष्यस्त्वयाय नूतन कृत ॥ ३८८ ॥ दृष्टमार्गं पराश्रुष्य सिद्धकार्यं श्रुतागम । जात्यादिविद्यासम्पन्नः स्यादस्मात्कार्यनिर्णय ॥ ३८९ ॥ इत्येतदुपदेशेन मनोवेगाभिधानक । विजय कुमुदाख्यान ह्ययात रविगतिं हितं ॥ ३९० ॥ सहायिकृत्य सपुज्य कुमार भवतोऽपर । कार्यवित्कार्यकृत्वास्ति नात्रेति श्लाघयन्नुप ॥ पवमानाम्नाम वाच्यास्त्वयैव सविभीषण । अत्र त्वमेव धर्मज्ञः आह । कार्यविपाकविद् ॥ ३९१ ॥ हितो लोकेश्वरायास्मं सूर्यवशाधियाय च । सीताहरणमन्याय्यमाकल्पमयशस्करं ॥ ३९२ ॥ अपव्यमिति संश्राव्य रावण रस्मिहित । मोचनीया त्वया सीता तथा सति भवत्कुल ॥ ३९४ ॥ त्वयैव रक्षित पापादपायादपवादनः । इति सामोक्तिमिस्तस्मिन्स्वीकृते-

मेजा जाय तो इसका उत्तर यह है कि यद्यपि अनेक भूमिगोचरी चतुरता आदि गुणोंसे सुशोभित हैं परंतु उनमें आकाशमें चलनेकी सामर्थ्य नहीं है इसलिये आपने जो नया सेनापति बनाया है उसे ही भेजना चाहिये ॥ ३८७-३८८ इस नये सेनापति हनुमानने मार्ग भी देखा है इसे कोई हरा भी नहीं सकता, यह कार्योक्तो सिद्ध करनेवाला और सब शास्त्रोंका जानकार है । जाति आदि अनेक विद्याओंसे भी यह सुशोभित है इसलिये अवश्य ही इससे कार्य का निर्णय हो जायगा ॥ ३८९ ॥ इसतरहके उपदेशानुसार रामचंद्रने मनोवेग विजय कुमुद, और रविगति आदि राजाओंको साथ किया और हनुमानका सब आदर सत्कार कर प्रशंसा करने लगे कि आपके सिवाय ऐसा कार्योक्ता जाननेवाला और कार्योक्तो करनेवाला कोई दूसरा नहीं है ॥ ३९०-३९१ ॥ रामचंद्र फिर हनुमानसे कहने लगे कि आप विभीषणके पास जाकर इसतरह कहना कि “आप ही इससमय धर्मके जानकार हैं विद्वान हैं प्रत्येक कार्यके फलको जानते हैं और सूर्यवशको नाश करनेके लिये अश्विके समान इस रावणके हितैषी हैं । रावणने जो सीताका हरण किया है वह अन्याय है कल्पकाल तक अपयश करनेवाला है और अपथ्य वा अयोग्य है । आप रतिसे मोहित हुए रावणको समझाइये और उनसे सीताको छुड़वा दीजिये । इसतरह करनेसे पाप, अपाय ( नाश ) और अपवाद वा निंदासे अपने कुलकी रक्षा करनेका श्रेय आपको ही मिलेगा । इसतरह शान्ति भरे बचनोंसे कहना यदि विभीषणने यह बात स्वीकार करली तो फिर सब शत्रु अपने वश ही समझिये । हे दूतोत्तम ! इतना ही नहीं किंतु पृथ्वी के साथ साथ सीता भी अपने यहां आई हुई ही समझिये । इसके सिवाय शत्रुओंके करनेलिये जो कुछ काम हो या जो कुछ समाचार हो उन सबका निर्णय आप ही कर लेना और शीघ्र ही मेरा हित संपादन करना ॥ ३९२-३९६ ॥



सुता ॥ ३७४ ॥ कार्यस्थितिप्रसादानं चाभ्युपेत्य कृतत्वरं । तत्कालोचितकार्योक्तिशुश्रूषा तं व्यसर्जयत् ॥ ३७५ ॥ प्रणम्य सोपि तत्पदपङ्कजं भास्वरौ-  
दये । गत्वा ततो ह्यटित्याप रामं स्नागमनोन्मुख ॥ ३७६ ॥ बदनान्जप्रसादेन कार्यसिद्धिं न्यवेदयत् । प्रणम्य स्नामिना सम्यक्परिरम्योभिलाषनः ॥ ३७७ ॥  
उपविष्टो मुदा तेन पृष्ठो दृष्टो मत्प्रिया । सप्रपञ्चसुखीर्षोर्बर्चस्सट्प्रीतिहेतुकं ॥ ३७८ ॥ निसर्गाद्रावणो हसन्कं चान्यत्समुद्ययौ । लंकार्यां दुर्निमित्तानि  
वास न ह्याश्रयेचराः ॥ ३७९ ॥ संति तत्सेवकाः सर्वमेतदालोच्य मंत्रिमि । जानक्याननयोपायो निश्चेतव्यो यथा तथा ॥ ३८० ॥ इतीदमुच्यते  
यमवदत्पवनान्मजः । तदुक्तं चेतसा सम्यगवधार्योर्जिताशय ॥ ३८१ ॥ सेनापतिं पट्टवधेनाकृतानिलनंदनं । कृत्वाभिराज्यपट्टं च सुग्रीवस्य महीपतिः ॥  
३८२ ॥ सह ताभ्यां समप्राक्षीन्मंत्रिणः कर्मनिर्णयं । तत्रैवयंगदोवोचदेव त्रेधा महीभुज ॥ ३८३ ॥ बोधधर्मासुराह्वादि विजयातामिधानका । प्रथमे दान-  
मन्यस्मिन् साम्राट्ये मेददंढन ॥ ३८४ ॥ नयज्ञं कार्यसिद्ध्यर्थमित्युपायं प्रयुज्यते । अंतिमो रावणरतेषु नीचत्वात्कर्मकृत् ॥ ३८५ ॥ मेदददौ प्रयोक्त-  
वैठ गया । तब रामचंद्रने बड़ी प्रसन्नतासे पूछा कि क्या तुमने मेरी प्यारी देखी थी तब हनुमानने रामचंद्रको प्रेम  
उत्पन्न करनेवाली सब बातें बड़े जोरसे और बड़े विस्तारसे कहीं ॥ ३७६-३७८ ॥ और कहा कि रावण स्वभावसे  
ही मदान्मत्त हो रहा है तथा उसके आयुधशालमें चक्र रत्न भी उत्पन्न हुआ है इसके सिवाय लंकारमें बहुतसे अप-  
कून हो रहे हैं और उसके विद्याधर सेवक सब बहुत निपुण हैं । यह सब समाचार कहकर हनुमान मंत्रियोंसे फिर  
यह एक उचित कार्य कहने लगा कि जिसतिस तरहसे सीताकी यहां लानेका उपाय निश्चय करना चाहिये । ऊंचे वि-  
चार करनेवाले रामचंद्रने हनुमानकी कही हुई बातोंका मनमें अच्छीतरह विचार किया, उसीसमय हनुमानको सेना-  
पतिका पट्ट बांधा और सुग्रीवको युवराजका पट्ट बांधा ॥ ३७९-३८३ ॥ तदनंतर वे उन दोनोंके साथ साथ मंत्रियों-  
से कार्य करनेका निर्णय करने लगे तब अंगद कहने लगा कि हे देव ! राजा लोग तीन तरहके होते हैं लोभविजयी  
धर्मविजयी और असुरविजयी नयोंके जाननेवाले नीतिकारोंने कार्य सिद्ध होनेकेलिये लोभ विजयीको दान देना  
धर्मविजयीको सांतवना देना और असुरविजयीको भेद और दंड देना यही सबसे अच्छा उपाय बतलाया है ॥  
३८४ ॥ इन तीनों तरहके राजाओंमेंसे रावण असुरविजयी है क्योंकि वह नीच है और क्रूरकर्म करनेवाला है ॥  
३८३-३८५ ॥ इसलिये नीतिके जानकारोंको उसके लिये भेद और दंडका ही प्रयोग करना चाहिये यद्यपि वह भेद  
और दंडकापात्र है तथापि क्रमका उल्लंघन करना ठीक नहीं है इसलिये पहिले सामका ही प्रयोग करना चाहिये ॥  
३८६ ॥ कदाचित् आप यह निश्चय करना चाहें कि हम लोगोंमें अच्छी तरह सामको जाननेवाला कौन है जिसे

संश्राव्यं वानर । रामस्याभितिविशेन लेखगर्भकण्डक ॥ ३६५ ॥ मयानीतिदं देवीत्यग्रेषाः स तदक्षिपत् । तद्वद्वृष्टा किमथ मायाविप्रहो रावणोऽथम ॥ ३६६ ॥ शंक्रयानेति सा वीक्ष्य तत्र श्रीवत्सलाञ्छन । रत्नागुलीयक चातमपतिनामाक्षराकित ॥ ३६७ ॥ ममेदमपि भालेव मायेवास्य दुरान्मन । को जानाति तथाप्येतस्य तस्यैव वासवत् ॥ ३६८ ॥ मद्भ्रातृगदिति निर्भिष्य मुद्रा पत्रं त्वदाचरत् । वचनानतर वीतशोकया त्रिगुणवीक्षया ॥ ३६९ ॥ जीविताह त्वया स्थानमधिपतिष्ठसि मे पितु । इत्युक्तः सीतया कृणौ पिधाय पवनात्मजः ॥ ३७० ॥ मत्स्वामिनो महादेवी मातनंद्वाङ्मन्यत्पना । त्वा नेतु मम मामर्थ्य-मर्धवास्ति पतिव्रते ॥ ३७१ ॥ नास्ति भट्टारकस्याज्ञा खयमेव महीपतिः । हर्षेण्य रावणं तस्य त्वा नेष्यति सह श्रिया ॥ ३७२ ॥ तत्साहसेन तत्कीर्तिव्या-प्यतां भुवनत्रय । तत शरीरसंघारणार्थमाहात्म्यम् ॥ ३७३ ॥ भगवत्यत्र को दोषो राज्ञा ते संगमोच्चिरात् । इत्याद्यत्मा ततस्त्यक्त्वा वैमनस्य मही

खुदे हुए हैं और श्रीवत्स चिन्ह बन रहा है ऐसी रत्नोंकी अंगूठी देखी ॥ ३६५-३६७ ॥ उसे देखकर भी वह सोचने लगी कि मुझे तो यह भी उसी नीचकी मायाके समान जान पड़ती है किंतु इस बातको कौन जानता है, तथापि मेरे मायोदयसे यह पत्र पत्र उन्हीका लिखा है, इसतरह सोचकर उसपरकी मुहर तोड़कर वह उस पत्रको बाँचने लगी । पत्र बाँचकर वह सब शोक भूल गई और स्नेहकी दृष्टिसे देखती हुई कहने लगी कि तेने मुझे जीवदान दिया है इसलिये तू मेरे पिताके समान है । सीताकी इस बातको सुनकर हनुमान कानोंपर हाथ रखकर कहने लगा कि तू मेरे स्वामीकी महादेवी है इसलिये मेरी माताके समान है मैं तुझमें कोई और कल्पना नहीं कर सकता । हे पतिव्रते तुझे आवही ले चलनेकी मुझमें सामर्थ्य है परंतु मेरे स्वामीकी ऐसी आज्ञा नहीं है । मेरे स्वामी महाराज रामचंद्र स्वयं आकर और रावणको मारकर उसकी राजलक्ष्मीके साथ साथ तुझे ले जायेंगे ॥ ३६८-३७२ ॥ इसलिये इस साहससे उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैलेगी अतएव शरीरकी रक्षा करनेकेलिये तू भोजन ग्रहण कर ॥ ३७३ ॥ हे भगवती अब इसमें दोष ही क्या है क्योंकि शीघ्रही महाराज रामचंद्रके साथ तेरा समागम अवश्य होगा । इसतरह हनुमानने सीतासे कहा उसे सुनकर सीताने अपनी उदासीनता छोड़ दी, शरीर स्थिर रखनेके लिये बहुत शीघ्र भोजन करना स्वीकार कर लिया और उसीसमय उचित कार्योंके कहनेमें चतुर उस सीताने हनुमानको विदा किया ॥ ३७४-३७५ ॥ हनुमान भी उसके चरणकमलोंको नमस्कारकर सूर्योदय होते ही चला और बहुत शीघ्र रामके समीप जा पहुंचा । रामचंद्र उससमय उसके आनेकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे उन्हें पहिले तो हनुमानने अपने मुख कमलकी प्रसन्नतासे कार्यकी सिद्धि निवेदनकी, स्वामीको प्रणाम किया, अच्छी तरहसे मिला और उनके बताये हुए आसनपर

३५५ ॥ तदभिप्रायमाश्रय दशाननवधूसमा । यदि स्वकार्यमसिद्धिमिश्रामयसे वृश ॥ ३५६ ॥ कृताञ्जलिहृ याने गृहणाहारमन्त्रिके । सर्वस्य साधनो देहस्तथाहार सुसाधन ॥ ३५७ ॥ वदंति निपुणाः क्षमाजे प्रसवादि कुतोलमसि । सिंगते वपुषि रामस्य स्वामिनस्त्वं वीक्षण ॥ ३५८ ॥ न चेत्सर्वशेन गार्ध्यं वपुषेव महत्तपः । न चेन्मद्वचन प्राण स्वयाहमपि भोजन ॥ ३५९ ॥ लज्जामीत्यवदसीताव्येतच्छ्रुत्वावधार्य च । ममामातापि मातैव मद्दुःखे दुःखिताजति ॥ ३६० ॥ इति चित्ते विनम्रैतत्करणे स्मिन्मयेक्षत । मञ्जुपास्थापनाकाले मत्सुनाया उद्देक्षित ॥ ३६१ ॥ एतन्मा मधुरं सत्याः सतापयति सर्वतः । इति प्रलयमापन्ना तदा रावणवल्लभा ॥ ३६२ ॥ आसेदु मेन तद्दुःखं गद् विनीता प्राविशत्पुर । शिशिपास्थस्तोलोऽभ्येत्य द्रुत गविषया ॥ ३६३ ॥ परावृत्य कपेर्मुत्था स्वयं निर्दोल्याभिमुत्तान् । निधाय रक्षकान् देव्याः पुरस्तादसमवस्थिताः ॥ ३६४ ॥ प्रणम्य तां स्वहृतांतं सर्वं

मंदोदरी कहने लगी कि तू अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है तो मैं हाथजोड़कर यह मांगती हूँ कि हे मातृ आहार ग्रहणकर । क्योंकि सब का कारण शरीर है और शरीरका साधन आहार है ॥ ३५६-३५७ ॥ विद्वान लोग सब यही कहते हैं कि यदि वृश्च न होगा तो फूल कहाँसे आवेंगे इसी तरह यदि शरीर रहेगा तो तू अपने स्वामी रामको देख सकेगी ॥ ३५८ ॥ यदि उनके दर्शन होनेकी संभावना न हो तो इस शरीरसे घोर तपश्चरण ही करना चाहिये । यदि तू मेरी बात नहीं मानेगी मैं भी भोजनका त्याग कर दूंगी । इसतरह मंदोदरीने कहा उसे सुझाव और विचारकर सीता सोचने लगी कि यद्यपि यह मेरी माना नहीं है तथापि माताके समान ही मेरे दुःखमें दुखी हुई इसतरह सोचकर और चित्तमें नमस्कार कर बड़े प्रेमसे उसके दोनों चरणोंको देखने लगी । उसे इसतरह देखकर मंदोदरी सोचने लगी कि जिस समय मैंने पुत्रीको संदूकमें रक्खा था उसीके समान यह सुझे सब ओरसे दुःख दे रही है । इसप्रकार शोक करती हुई उस मंदोदरीने बड़ोंके दुःखसे दुःखी होनेके समान सीताके दुखमें दुखी होकर बड़ी नम्रतासे नगरमें प्रवेश किया ।

अथानंतर—वह हनूमन उसी सीसोंके वृक्षपर बैठा था उसने समय देखकर प्लवंग नामकी विद्यासे अपना रूप बदलकर बदरकासा बना लिया और अपनी विद्यासे उस वाणके रक्षकोंको निद्राके आधीनकर अर्थात् मोहितकर वा खुलाकर सीता देवीके सामने जा खड़ा हुआ ॥ ३५९-३६४ ॥ पहिले तो उस चंदरने उसे प्रणाम किया और फिर अपने आनेका सब समाचार सुनाया और कहा कि “रामचंद्र मेरे स्वामी हैं उनकी आज्ञासे मैं यह पत्र रक्खा हुआ पिटारा लाया हूँ” यह कहकर उसने वह पिटारा सीताके सामने रख दिया । उसे देखकर वह संदेह करने लगी कि क्या यह मायामयी शरीर बनाकर नीच रावण ही आया है परंतु पिटारेमें उसने जिसपर अपने पतिके नामके अक्षर

३३४ ॥ पराभव परिप्राप्तो माभूत्स्वमपि तादृशः । मा मस्था मा सपत्नीति मद्रवत्त्वं प्रमाणयन् ॥ ३३५ ॥ त्यज सीतागतं मोहमित्यसौ निजगाद त । तदुक्तेतरं वाक्यमभिधातुमशक्नुवन् ॥ ३३६ ॥ सम प्राणिरिय त्याज्येयगात्स कृपितः पुरे । मदीदरीपरित्यक्तनिजपुत्रीदुगाहिता ॥ ३३७ ॥ सीतां मिथिः-  
प्रिता भाविनिदा देगमयात् क्षितौ । या निक्षेपयति स्मेति मया कलहकारणात् ॥ ३३८ ॥ आगतायेव मत्पुत्रीं ता त्वा मे मन्यते मन । पापेन विधिना  
नीता भद्रे त्व दुःखकारिणा ॥ ३३९ ॥ अलंध्य केनयिन्नात्र प्रायेण विधिचेष्टित । इह जन्मनि किं वधुः किं वा त्व मेत्यजन्मनि ॥ ३४० ॥ न जाने त्वा  
विलोकयाद्य मम स्नेहः प्रवर्द्धते । यदि मज्जननीत्वं त्व पद्मनेत्रेवबुध्यसे ॥ ३४१ ॥ त्वा मे भावयिषुं वष्टि सपत्नीं खचराधिप । तेन बाले श्रुतिं वापि  
याहि मागांस्तवीप्सित ॥ ३४२ ॥ स्तनप्रसूतिमित्येव वदती प्रापदुस्तुका । तस्याः पयोधरद्वंद्वमभिषेकमुमिवापतत् ॥ ३४३ ॥ जल गद्गदकंठायाम्बुधुभ्यो  
स्नेहसूचन । शोकानलपरिम्लान वक्त्राब्ज चाभवत्तदा ॥ ३४४ ॥ तदीक्ष्य जानकी सर्व प्राप्ता स्वामिव मातरं । जायतेस्माद्रहदया वाष्पाविलविलोचना ॥

छोड़ दीजिये ” इसतरह मंदोदरीने रावणसे कहा । रावण हमका कुछ उचर न देसकां इसलिये “प्राणों के साथ ही इसे छोड़ूंगा ” इसतरह कहता हुआ वह क्रोधित होकर नगरको चला गया । उसीसमय मंदोदरीने जो अपनी पुत्री संदूकमें रखकर छोड़ दी थी उसका वह शोक करने लगी और कहने लगी कि जिस सीताको निमित्त छानियोंकी आवाजके डरसे मिथिला देशमें पृथ्वीके नीचे गढ़वा दिया था वही कलह करनेवाली मेरी पुत्री सीता आ गई है ऐसा मेरा मन स्वीकार करता है । हे भद्रे दुःख देनेवाला पापी विधाता ही तुझे यहां ले आया है ॥ ३४२-३४९ ॥ इस संसारमें कर्मोंके उदयको भला कौन उलंघन कर सकता है । न जाने तू मेरी इसी जन्मकी कोई सवधिनी है अथवा किसी अन्य जन्मकी संबंधिनी है न जाने क्यों आज तुझे देखकर मेरा स्नेह बढ रहा है । हे कमलनेत्रे ! तू मुझे मेरी पुत्री ही ऐसी जान पड़ती है ॥ ३५०-३५१ ॥ यह विद्यार्थीका स्वामी रावण तुझे मेरी सीत बनाना चाहता है इसलिये हे पुत्री चाहे तू मर जेन्ना परंतु उसकी इच्छानुसार काम मत करना ॥ ३५२ ॥ इसतरह कहती हुई वह बड़ी ही उत्सुक हुई उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा और उसके स्तन ऐसे जान पड़ने लगे मानों उसका अभिषेक करनेके लिये ही कुछ नीचेकी ओर झुक गये हों ॥ ३५३ ॥ उसका कंठ गदगद हो गया दोनों नेत्रोंसे स्नेहकी सूचित करनेवाला जल गिरने लगा और उससमय उसका मुखकमल झोक रूपी अग्निसे मलिन हो गया सुरक्षा गया ॥ ३५४ ॥ उन सन कारणोंको देखकर सीताकी ऐसा मालूम होने लगा मानों उसे अपनी माता ही मिल गई हो उसका हृदय दुःखसे भीग गया और उसके नेत्रोंमें आंसू भर आए ॥ ३५५ ॥ उसके अभिप्रायको जानकर

नयत्वाद्यैव घटदासिन् । अतिथिर्वाभवत् प्रेतनाथावासनिवासिनां ॥ ३३५ ॥ इति ता मामिवापुण्य स्वीकृतुं व्यर्थमब्रवीत् । तदाकण्ठ्यापि भूयता समा-  
हितमनास्तादा ॥ ३३६ ॥ ध्यातिध्वर्थैव नैर्मल्यमादधानाभवत्तिथरा । खगेशवक्ष्यनिर्यातवाग्जालज्जलनावली ॥ ३३७ ॥ सीतार्थैर्ध्यावुषि प्राप्य सद्य शान्तिप्रा-  
प्ता । विक्रमेण यथा पुंसः सर्वसाभ्याग्यसपदा ॥ ३३८ ॥ स्त्रीष्टमपि जेतारं मायेया परिभवाका । किलेति कुव्यत' पत्युर्दासकोधदवानल ॥ ३३९ ॥  
सद्यः सीतालता दग्गु जूभमाण मनोरणे । मंदोदरीहितश्रव्यवचनामृतवारिभि ॥ ३४० ॥ प्रशमय किमस्थाने जनवत्कोपवान् भवे । विवितय किमेया  
ते दड्योश्यावमासते ॥ ३४१ ॥ मंदारप्रसवारब्धमालाप्रिसेपमर्हति । मतीनां परिभूत्याशु रागमित्वाधिका ध्रुव ॥ ३४२ ॥ विद्या विनाशमायांति तस्याः  
विद्याविपक्षकः । पुग स्वयप्रभ हेतोरश्रुप्रोवखगाधिप ॥ ३४३ ॥ पद्मावतीनिमित्तन प्रसिद्धो मधुसूदनः । समासक्त सुताराया विधीरशनिघोषकः ॥

तो तुझे अभी पाली भरनेवाली दासी बनना पड़ेगा अथवा प्रेतनाथके घर निवास करनेवालोंका ( मृत्युका ) अभ्या-  
गत बनना पड़ेगा ॥ ३३५ ॥ जिसप्रकार पुण्यहीन पुरुष लक्ष्मीको वश करनेकेलिये व्यर्थ ही वक्ताद करता है उसी-  
प्रकार रावणने सीताको वश करनेके लिये ऊपर लिखे अनुसार व्यर्थ ही वक्ताद किया उसे सुनकर सीता चित्तमें  
समता धारणकर तथा धर्म्य ध्यानके समान निर्मलता धारणकर निश्चल हो गई, और उसीसमय रावणके मुखसे निकले  
हुए वचनसमूहरूपी अशिकी पंक्ति सीताके धैर्यरूपी समुद्रको पाकर शीघ्र ही शांत हो गई । तब रावणको क्रोध  
आया वह सोचने लगा कि जैसे मैं अपने पराक्रमसे पुरुषोंको जीतता हू उसीप्रकार सब तरहकी सौभाग्यरूपी संप-  
त्तियोंके द्वारा खियोंके समूहको भी जीतनेवाला हूं फिर भी यह सीता मेरा तिरस्कार कर रही है ” इसतरह सोचने  
हुए उसके मनरूपी युद्धस्थलमें बहुत शीघ्र सीतारूपी लताको जलानेके लिये क्रोधरूपी दावानल अग्नि भड़क उठी  
तब मंदोदरीने हितरूप और सुनने योग्य वचनमृत रूपी जलसे उसे शांत किया और कहने लगी कि आप विना  
ही कारणके क्रोध क्यों कर रहे हैं, आप विचार तो कीजिये क्या यह सीता आपको दंड देने योग्य प्रतीत होती है ॥  
३३६-३४१ ॥ मंदार वृक्षोंके फूलोंकी वनाई हुई माला क्या अग्निमें डालनी चाहिये । सतियोंका तिरस्कार करनेसे  
आकाशगामिनी आदि विद्याएं अवश्य और बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं इसलिये आप भी पक्षरहित पक्षीके समान  
विद्याहीन हो जायेंगे । पहिले स्वयंप्रभाके लिये अश्वप्रीत विद्याधर, पद्मावतीके कारण प्रसिद्ध मधुसूदन, और सुता-  
रामें आयत्त हुआ बुद्धिहीन अशनिघोष तिरस्कार पा चुका है इसलिये आप भी उन्हीं ऐसे मत हो । आप यह भी  
मत समझिये कि मैं सपत्नी ( सौत ) होनेके डरसे ऐसा कह रही हूं नहीं आप मेरे वचनोंको प्रमाण मानकर सीताको

स्वामिनी भूवा महादेवी पदे स्थिता । त्रिलङ्कापितोर्भूया सश्रीर्वसुस्थले चिरं ॥ ३२४ ॥ विफल माकृषा विमुञ्चयत् तव भोगेन । हस्तासुलसिपुत्रस्य रामस्त्वा नेष्यतीत्यद ॥ ३२५ ॥ वितर्कण कदवोस्वन वा विद्धि निष्फल । क्षुधार्तनेकपारातिक्वत्वातर्बन्तिं मृग ॥ ३२६ ॥ परित्याजयितुं ब्रूहि क समर्थ-तमः पुमान् । इत्यभ्यधात्तदाकर्ण्य निश्चला बहुधासुता ॥ ३२७ ॥ वसुधैव स्थिता भेत्तुं के वा शक्ताः पतिव्रता । नदद्द्रुग खेचराधीया स्वयमागल्य का-तरः ॥ ३२८ ॥ कुल चेद्रक्षितुं तिष्ठेर्न विचारक्षम हि तत् । लब्धा चेद्दीनसबधात्सा तस्याः प्रसवोन्न न ॥ ३२९ ॥ रामे चैतेषाम तद्विद्धि जन्मतारितमनि-म । चिरं परिचित कस्माद्विस्मराम्यर्जुनैव त ॥ ३३० ॥ इति चेत्ससर्गता जैता केन कस्य न सस्तवः । परिखा वारिधिरुगंघ्रिकृद्वादिः खगेश्वरः ॥ ३३१ ॥ दुर्गपाला पुरं रक्षा मेघनादादयो भटा । नायकोह कथ तस्य तव भर्तुं प्रवेग्य ॥ ३३२ ॥ तस्मात्तदाशुजिह्वा मदाशा पूर्य त्रिये । अवश्यभा-विकार्यैस्मिन् किं कालहरणेन ते ॥ ३३३ ॥ हस्तयाश्च रुदरयाश्च तव प्राधूर्ण्यकोऽस्म्यहं । मरकात्कातासताने काते चूलामणिर्भव ॥ ३३४ ॥ न चेदस्ति विभा-

निष्फल होता है । भला कह तो सही भूखसे व्याकुल हुए सिंहके मुंहमें पड़े हुए हरिणको छुड़ानेके लिये इस संसारमें भला कौन पुरुष समर्थ होता है ? इसतरह उस दूतीने कहा उसे सुनकर वह सीता पृथ्वीके समान ही निश्चल बैठी रही सो ठीक ही है क्योंकि पतिव्रताओंको भेदन करनेकेलिये भला कौन समर्थ है सीताको चुपचाप देखकर रावण कातर होकर स्वयं आया ॥ ३२५-३२८ ॥ तथा कहने लगा कि यदि तू कुलकी रक्षा करनेकेलिये बैठी है तो यह बात कुछ विचार करने योग्य नहीं है कदाचित् तुझे लज्जा आती हो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि लज्जा तो नीच लोगोंके ( हीनके ) संबन्धसे होती है यहां तो हीनताकी गंध भी नहीं है ॥ ३२९ ॥ कदाचित् राममें तेरा प्रेम हो सो उसे अब तू एक जन्मका अंतर पड़नेके समान समझ कदाचित् यह विचार हो कि रामचंद्रके साथ बहुत दिनका परिचय था उसे मैं अभी कैसे भूल जाऊं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इससंसारमें जीवोंको किसके साथ संबध नहीं है । कदाचित् यह सोचती हो कि रामचंद्र मुझे आकर ले जायेंगे सो यह भी व्यर्थ है क्योंकि यहां की खाई तो समुद्र है त्रिकूटाचल पर्वत किला है, विद्याधर इसके रक्षक हैं यह नगर लंका है मेघनाद आदि यहांके योद्धा हैं और इसका स्वामी मैं हूं इसमें भला तेरे पतिका प्रवेश कैसे हो सकता है ॥ ३३०-३३२ ॥ इसलिये हे प्रिये तू अब उसकी तो आज्ञा छोड़ दे और मेरी आज्ञाको पूर्णकर । यह कार्य होनेवाला तो अवश्य है फिर इसमें तू व्यर्थ समय क्यों खो रही है ॥ ३३३ ॥ तू चाहे इस आर चाहे रो मैं तेरा अभ्यागत हो चुका हूं हे सुंदरि ! मेरे सुंदर स्त्रियोंके समूहमें तू चूड़ामणि रत्नके समान हो ॥ ३३४ ॥ यदि तू अपने अभाग्यसे मेरा कहना नहीं मानेगी

पि नीतिमार्गविशारदः ॥ ३१४ ॥ आरब्धकार्यसंनिधाबुधतस्य विवेकिनः । प्राहुर्नितिविदः कोपं व्यसनं कार्यविघ्नकृतं ॥ ३१५ ॥ तस्मादस्थानकोपेन कृत-  
मिल्लाहितक्षमः । निजागमनशुभातमवबोधयितुं सती ॥ ३१६ ॥ मनागवसरावेक्षी स्थितस्तावद्विशङ्करः । उदयश्यामयुद्धासि चूडामणिनिभो बभौ ॥  
२१७ ॥ दशाननोप्यतिक्वाते तत्र स्याद्विनससके । सीता कीदृगवस्थेति चिंतयन् दीपिकाश्रुतः ॥ ३१८ ॥ दीव्यकल्पद्रुमोपेतनीलाद्रिखि जगम । निरी-  
क्षितुं तदंबायात्कटांतःपुरान्वितः ॥ ३१९ ॥ मद्भर्तुः कुशलोदत सश्रोण्यामि कदन्विति । मत्वा तां स्तिमिताकारां चिरं वीक्ष्य सविस्मयः ॥ ३२० ॥  
न कंचिच्छेदशी स्त्रीषु पतिं भक्तेति चिंतयन् । अपसृत्य स्थितः किंचिद् दूतीं मजरिकाभिधा ॥ ३२१ ॥ प्रहोत्तदस्मिन्प्रागपरिक्षातुं विवेकिनी । जानकीं  
विनयेनसौ प्रपथ शृणु मद्बच ॥ ३२२ ॥ भट्टारिके खगेंद्रस्य खेचरेंद्रप्रियात्मजाः । देव्यं पंच सहस्राणि त्वत्समाना मनोरमाः ॥ ३२३ ॥ तासां त्व

क्रोध उस कार्यमें अवश्य ही विघ्नकारक होता है ॥ ३१५ ॥ इसलिये असमयमें क्रोध करना ठीक नहीं है इसतरह  
क्षमा धारणकर सती सीताको अपने आनेका समाचार बतलानेके लिये थोड़ी देरतक समयकी प्रतिक्षा करता हुआ  
वहीं ठहर गया इतनेमें ही उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए चूडामणि रत्नके समान चंद्रमा उदय हुआ ॥ ३१६-  
३१७ ॥ उसी समय रावणने सोचा कि सीताको लाये आज सात दिन होगये उमकी अब क्या दशा है सो भी चल-  
कर देखना चाहिये यही सोचकर और अनेक दीपकोंके साथ साथ कल्पवृक्षों सहित चलते हुए नीलपर्वतके ममान दे-  
दीप्यमान होता हुआ अपने सब अंत पुरके ( रणवासके ) साथ साथ उत्तंठित होकर सीताके देखनेके लिये आया ॥  
३१८-३१९ ॥ उससमय सीता “मैं अपने पतिके राजीखुशीके समाचार कब सुनूंगी” यही सोचती हुई निश्चल बै-  
ठी थी उसे देखकर वह बहुत ही आश्चर्य करने लगा और सोचने लगा कि “संसारकी स्त्रियोंमें पतिकी भक्ति करने-  
वाली मैंने तो अन्य कोई ऐसी स्त्री नहीं देखी है” इसलिये वह कुछ हटकर ठहर गया । उसने सीताका  
अभिप्राय जाननेके लिये बड़ी बुद्धिमती मंजरिका नामकी दूती भेजी । वह दूती सीताके पास जाकर बड़ी  
विनयसे कहने लगी कि हे देवी तू मेरे वचन सुन ॥ ३२०-३२२ ॥ हे बुद्धिमती इस विद्याधरोंके  
राजा रावणके तेरे ही समान सुंदरी विद्याधर राजाओंकी पुत्रियें पांच हजार रानी हैं ॥ ३२३ ॥ तू उन सबकी  
स्वामिनी होकर महादेवी पदपर विराजमान हो और तीन खड्के स्वामीके श्रीलक्षण सहित वक्षःस्थलपर बहुत  
दिनतक क्रीडाकर ॥ ३२४ ॥ यह तेरा यौवन विजलीके समान चंचल है इसे तू व्यर्थ मत खो । “अब रामचंद्र  
रावणके हाथसे तुझे ले जायेंगे” इस वितर्कका तू ऐसा ही निष्फल समझ जैसा कि कदंबोंका बड़ा भारी बन



पद प्रायो मन्वानः सपदान्वा ॥ ३०४ ॥ उदयास्तमयो गित्य देहिनामिति रात्रि । रविर्दया तिरुत्तये मयस्तर्हि तिगान् ॥ ३०५ ॥ वृत्तो रामान् ग-  
त्वाति पुराधिमगोपुरं । आरुय लोकमानोयं अमरावराचितं ॥ ३०६ ॥ न नर्तक नाम नन्दन नन्दनोपम । फलप्रयत्नगारासनकञ्चनादि ॥ ३०७ ॥ अर्चन-  
यवहो दूतानाग्रस्तवाशुनि । कृतकाद्रिगरोनपीततालत्रितमयै ॥ ३०८ ॥ मन्त्रो ह्यो र्वर्द्धनं द्यातिमोदरे । हृद्गन्ध मगान् धियात्त सप्रनोदः गर्भानु-  
कः ॥ ३०९ ॥ तत्रैकस्मिन् समासयवेको वियाघरीजने । गामादिभिर्नैकीकृत्यनिताकारवैरिभिः ॥ ३१० ॥ पर्यता विन्निगह्याजमुने गोमहाकुम्भता ।  
३१२ अभिर्नर्द्धेण, मम पुण्योदयादिति । तदर्थसमुत्पन्नगो रायणपरिणा ॥ ३१३ ॥ कच्यन्तीग र्जने शक्तिर, मर्ता नन् । शोचामितमन्त्रि-  
सब ओरसे चिंतवन करता हुआ वह रामचंद्रका दूत हनुमान अंतःपुरके पथिकी ओर के बड़े दरवाजेपर जा चढ़ा और  
जिमपर अनेक अमर गुंजार कर रहे हैं वहांसे देखने लगा जोफल और फूलोंके बोलसे नत्र तथा सुंदर दृश्योंसे सब  
क्रतुओंकी शोभा बढ़ानेवाला है तथा नन्दन वनके समान सुंदर है ऐसा नन्दन नामतावन देगा । वह वन मंद और सुगं-  
धित बहते हुए वायुसे उडती हुई अनेक फूलोंकी झुल्लिमें, कृत्रिम बने हुए पर्वत सरोवर वावडी और लताओंके सुंदर  
मंडपोंसे, कामदेवकी उदीपन करनेवाले देवोंसे तथा और भी बहुतसी वस्तुओंसे बडावी मनोहर था, उसे देवरकर  
वह प्रसन्न होकर तथा कुछ कौतुक वा आश्चर्य करता हुआ थोड़ी देर तक ठहर गया ॥ ३०४-९ ॥ उसी वनमें किसी  
समीपके ही स्थानपर सीतोंके वृक्षके नीचे सीता बैठी थी, साम दाम दंड भेद आदि सब उपार्जनोंसे उसे वश करने  
के लिये इसारोंकी जाननेवाली अनेक विद्याधरियं उसके चारों ओर बैठी थीं, वह जोकसे व्याकुल हो रही थी तथा  
“कुलकी रक्षा करनेके लिये जीर्ण शीर्ण होकर तथा मरकर भी प्रयत्नके माध शीलरूप मालावी खुर रक्षा करूंगी”  
इसी बातका वह ध्यान कर रही थी उस सीताकी देगुकर रामचंद्रके बताये हुए चिन्तोंमें उसे पट्टिचाना और विचार  
करने लगा कि यह वही सीता है जिसे रावण ले आया है मेरे पुण्यकर्मके उदयसे इसके दर्शन हुए हैं और इसे देख  
कर एक तरहका प्रेम प्रगट हुआ है जिसप्रकार कललताको दावानल अग्नि जला देती है उसीप्रकार पापी रावणने  
इसे दुःख दिया है इसप्रकार विचार करते हुए उसका चित्त शोकसे भर गया और जोधसे लाल हो गया तथापि वह  
नीतिमार्गको जाननेमें पडित था ॥ ३१०-३१४ ॥ इसलिये फिर सोचने लगा कि प्रारंभ किये हुए कामको सिद्ध क-  
रनेके लिये जो विवेकी पुरुष तैयार होते हैं उन्हें कोष करना नीतिकारोने एक तरहका व्यसन बतलाया है और वह

संसारं ॥ २९२ ॥ इति मत्वा खनार्मांकमुद्रिका मतिप्रवेष्टसी । बर्णशिरसि विष्णुमुक्त्वा तस्मै दशै नमः ॥ २९३ ॥ स रामचरणामोखं विनम्य नग-  
नार्तर । समुत्पत्य समुल्लङ्घ्य समुद्रं सत्रिकूटकं ॥ २९४ ॥ द्विषट्कयोजनायामं नवयोजनविस्तृतं । द्वात्रिंशद्भूषोरोपेत रत्नप्राकारवेष्टितं ॥ २९५ ॥ नानाम-  
वनसंकीर्ण मणितोरणभास्वरं । महामेरुसमुत्पुग रावणावासाभाजितं ॥ २९६ ॥ अस्मिन्सुकोकिजालार्पलसङ्कुसुमपङ्क्तैः । सरागहासं गायद्भूमिचोर्णानैर्मनोहरं ॥  
२९७ ॥ लकानगरमासाय सीतान्वेषणतत्पर । युहीतभ्रमराकारो दक्षाननसमायुहे ॥ २९८ ॥ इद्रजिप्रमुखान् भूपकुमारान् वीक्ष्य सावरं । मंदोदरी-  
प्रक्षुत्तद्वनिताश्च निरूपयन् ॥ २९९ ॥ नताखिलस्वगाधीशमौलिमाळाचिंतकम् । मध्येसिंहासन सिद्धधिक्रम शक्तसन्निभं ॥ ३०० ॥ नीलाद्रिमिव गंगोहतरं-  
गैश्चमरीवहैः । दध्नुयमानमालोक्य रावण रावितद्विप ॥ ३०१ ॥ अहो पापस्य कोट्येव विपाकोयमपीदृशः । किल धिग्धर्ममुल्लङ्घ्य परदारामिलाधुक् ॥  
३०२ ॥ ध्रुव तन्नारयेनोक्तमकालमरणं ध्रुवं । भावीति भावयन् सीता तत्सभागामलक्षयन् ॥ ३०३ ॥ मंदमंदप्रमे भानौ दिने सति दिनालये । सहायस-

मकानोसे संकीर्ण थी, मणियोंके तोरणोंसे सुशोभित थी, महामेरुके समान ऊँचे ऊँचे रावणके मकानोंसे सुंदर थी, भ्रमर तथा नर कोइलोंकी मधुर आवाजसे गाते हुएके समान अनेक उद्यानोंसे वह मनोहर थी और दैदीप्यमान फूल तथा पत्तोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानों रागपूर्वक हंस रही ही हो । ऐसी लंकामें पहुँचकर वह सीताके दृढ़नेमें लगगया, उसने भ्रमरका रूप धारण कर लिया और फिर रावणके सभामवनमें गया ॥ २९४-२९८ ॥ वहाँपर उसने बड़े आदरसे इंद्रजीत आदि अनेक राजकुमारोंको देखा और फिर मंदोदरी आदि रावणकी रानियोंको भी देखा ॥ २९९ ॥ तदनंतर नमस्कार करते हुए समस्त विद्याधरोंके राजाओंके मुकुटोंके समूहसे जिसके चरणरुमल पूजे जा रहे हैं, जो सिंहके समान पराक्रमी है, इंद्रके समान सुशोभित है, सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान है तथा नील पर्वतके समान जिसके शरीरपर गंगा नदीकी बड़ी बड़ी तरंगोंके समान अनेक चमर दुलारा जा रहे हैं और जो शत्रुओंको हलानेवाला है ऐसे रावणको देखा ॥ ३००-३०१ ॥ रावणको देखकर वह सोचने लगा कि हाय ! यह इस-तरहका किसी पाप कर्मका फल है, अवश्य ही इसे बार बार धिक्कार है क्योंकि इसने धर्मका उल्लंघनकर परस्त्रीकी इच्छा की है ॥ ३०२ ॥ नारदने जो कहा था कि इसका अकालमरण अवश्य होनेवाला है सो बात सर्वथा सत्य है इसतरह विचार करते हुए उस सभामें सीता नहीं देख पड़ी ॥ ३०३ ॥ जिससमय सूर्यका ताप मंद पड़गया वह दिन होगया दिन अस्त होनेका समय होगया उस समय जीवोंकी कारणरूप संपदाओं और वास्तविक संपदाओंको सदा उदय और अस्तरूप मानता हुआ सूर्य मानों रावणको यही उपदेश देता हुआ चला जा रहा है इसी विषयको

कदाचिदेतेन सह सम्बेदयन् । सिद्धकृत्यादिषु तीर्थेष्वेवंप्रसिद्धा यतः ॥ २८१ ॥ अथर्वं सरस्वा यत्तत्रा शिवतोयम् शुभभाजनः । ब्रह्मसुन्दरं कौरी  
शुभयज्ञोपवीतकः ॥ २८३ ॥ अथर्वकः ब्रह्मवर्चोपवीतकमण्डपः । ब्रह्मसुन्दरा यत्तत्रा नैष्ठिकब्रह्मण्डपः ॥ २८३ ॥ नरदीपि विष्णुभक्तो रंद्रयानरराजनः ।  
अवतीर्य नमोभागात्परीत्य जितमिदं ॥ २८४ ॥ सुसुपाशिते कश्च जितमननरं । मयुरेल तमस्तु किं नुमे व्यनमायतः ॥ २८५ ॥ सुसुपाशिते न  
वेलेनद्वन्द्वनीदीपः । रामनक्षत्रावर्धनसतसामितागिरात् ॥ २८६ ॥ गतिगतिं ब्रह्मैवमस्य रामो रंद्रोपनी । भक्तमते च मद्रंजं विचित्रमन-  
नोरनो ॥ २८७ ॥ सिद्धेर्ली वने नील्य रामो यथावापरीत् । तद्वन्द्वनस्य गतागुल्लक्ष्मिगमनोर्ध्वतं ॥ २८८ ॥ भर्तृरिति गुरु शिष्यः शार्ङ्गदिने ।  
इति तद्वन्द्वनतोयैकस्मिन् त्वो प्रतीतिर ॥ २८९ ॥ तौ च तद्वन्द्वनस्य सुगतिं चन्द्रमुत्तरे । अथ निबन्धनं कथं द्रव्यं नराद्वयः ॥ २९० ॥ यत्  
देवोस्ति चेद्वेद्या मानमन्येयमागच्छ । तत्प्रत्ययार्थमाथेयमभिज्ञानं मयिगते । इति तेनोक्तमाकर्ष्य शिष्यः नराद्वयं दृष्ट्वा । नयानि रंक्षतेन प्रमेयस्य सत्ता

मुनि श्रेष्ठे अपनी जगह ( युवगजपद ) मिलेगी या नहीं । मेरे इन बचनोंको सुनकर उन्होंने कहा या कि रामचंद्र  
और लक्ष्मणको बहुत शीघ्र ही आधे भरतका स्वामीपना ( बलमय नागयणपद ) मिलनेवाला है यदि तू उनका  
बाहर जानेका कुछ काम करेगा तो तेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे । तेरे मेवनेका क्या काम है सो भी मैं बतलाये  
देता हूं । रामकी रानी सीता वनमें बिहार कर रही थी उसे देखकर रावण मायाबाषीसे हरण कर लेगया है इसलिये  
राम लक्ष्मण दोनों ही भाई बाज अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकेलिये लंकामें मेवने योग्य किसी पुरुषको ढूँढ रहे हैं  
उनके बचन सुनकर हम दोनोंको संतोष हुआ और हम दोनों ही वहाँ आपके समीप आए हैं ॥ २८१-२८९ ॥  
रामलक्ष्मण दोनोंने उनकी बातें सुनकर यथायोग्य रीतिसे उनका आदर बतकार किया । तदनंतर प्रबंधनका युव  
अभितवेग ( अणुमान् अर्धवा हनुमान ) निवेदन करने लगा कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सीता देवीका  
स्थान ढूँढूँ । हे महाराज आप उनके पहिचाननेकेलिये कुछ बिन्द बतला दीजिये ॥ २९०-२९१ ॥ इसतराह हनुमान-  
के बचन सुनकर राजा रामचंद्रने यह मानलिया कि बिनामिके वंजरूपी आकाशमें चद्रमाके समान इस हनुमानसे  
निसंदेह मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा फिर रूप आदिसे मेरी प्यारी सीता ऐसी है ऐसी है इसतराहके कुछ बिन्द  
बतलाकर अपने नामकी अंगुठी उसे दी ॥ २९२-२९३ ॥ वह हनुमान रामचंद्रके चरण कमलोंको नमस्कारकर आ-  
काश मार्गसे चलने लगा और समुद्र तथा त्रिशूलाचलको उल्लंघनकर लंका नगरमें जा पहुँचा । वह लंका शहर यो-  
जन लंबी थी, नौ योजन चौड़ी थी, उसमें गतीस बड़े बड़े दरवाजे थे, गतीके कोठा परकोठा थे, वह अनेक तराहके

स्तत्रेद सम्यगवतीत् । खगादिदिग्गणश्रेण्या पुर किलकिलाह्वय ॥ २७१ ॥ तदधीशो वलीन्द्राख्यो विह्वयातः खंचेरेण्यमा । प्रियायुसुदरी तस्य प्रिया तस्यां तनुद्वौ ॥ २७२ ॥ बालिमुग्रोवनामानावजायावहि-भूभुज । पितृपुण्ड्रितेऽजायताग्रजस्याभिराजता ॥ २७३ ॥ ममापि युवराजत्वमजनिष्ठ क्रमगतं । एव गच्छति मत्स्यानमपहत्य मदग्रजः ॥ २७४ ॥ लोभक्रांताद्यो देशात्स निर्वासयतिस्म मां । एगोपि दक्षिणश्रेण्या विद्युत्क्रांतापुरेशिनः ॥ २७५ ॥ प्रमज्जनखगाधीशस्तन्मूर्तिमिवेगवाक् । त्रिधाविद्योर्नानादेवामव्याहृतपराक्रमः ॥ २७६ ॥ नभश्चरकुमाराणा समुदाये परस्परं । कदाचिदात्मविद्यानामुभावरि-क्षणे ॥ २७७ ॥ विजयादीगिरेर्बुद्धिं कर्म विन्यस्य दक्षिण । वामपादेन भास्वतमपहत्य पुनस्तदा ॥ २७८ ॥ नसरेणुप्रमाणं स्वं शरीरमकृताद्भुतं । ततः प्रसृति विवर्धैर्विम्ब्याहितमानसैः ॥ २७९ ॥ अणुमानिति ह्येण निश्चिलैरव्यधाय्यं । पीतव्याकरणाभोधिः सखा प्राणाधिको मम ॥ २८० ॥ गत्वा

राज्यका त्याग कर दिया तब बड़े होनेसे बालिको राज्य मिला था और मुझे अनुक्रमसे प्राप्त होनेवाला युवराजपद मिला था । इसतरह कितना ही काल बीत जानेपर मेरे बड़े भाईने मेरा युवराज पद छीन लिया और लोभके वशीभूत होकर मुझे घरसे निकाल दिया । यह मेरे समीप बैठा हुआ भी दक्षिण श्रेणीके विद्युत्क्रांता नगरके राजा प्रमंजन विद्यावरका पुत्र है, अमितवेग इसका नाम है यह अंजनादेवीसे उत्पन्न हुआ है तीनों तरहकी विद्याएं जानता है और इसका पराक्रम अखंडनीय है ॥ २७०-२७६ ॥ किसी एक समय विद्याघर कुमारोंका समुदाय परस्पर अपनी अपनी विद्याओंके शक्तियोंकी परीक्षा करनेकेलिये विजयाद्वर्गपर्वतके मस्तकपर गया था, वहाँपर इसने अपना दहिना पैर तो पर्वतपर ही रखवा और बायें पैरको बढाकर उससे सूर्यमंडलमें जाकर ठोकर लगाई फिर इसने अपना शरीर अद्भुत त्रसरेणुके समान बना लिया । उससमयसे लेकर चित्तमें अत्यंत आश्चर्य करते हुए सब विद्याधरोंने बड़ी प्रमत्नता से इसका नाम अणुमान् रखवा है । इसने व्याकरणरूपी समुद्र पी डाला है और मेरा प्राणोंसे भी अधिक प्यारा मित्र है ॥ २७७-२८० ॥ किसी एक दिन मैं इसके साथ समेद शिखर पर्वतपर गया था वहाँपर सिद्धकूट नामके तीर्थ क्षेत्रपर बहुतसी प्रतिमाओंकी पूजा की थी. भक्तिपूर्वक बंदना की थी और वहाँपर बड़े शुभभावों सहित बैठ गया था । देव योगसे उसीसमय वहां नारद आये वे जटाओंका मुकुट पहिने थे गलेमें यज्ञोपवीत था, उनके कपायले बस्त्र थे, बगलमें रत्नोंका कमंडलु था, हाथमें छतरी थी और वे नैष्ठिक ब्रह्मचारीके व्रत पालन करनेवाले थे । इसीतरह उनकी चोटी लटक रही थी और रौद्रध्यानमें वे तल्लीन हो गये थे । आकाशमें उतरकर उन्होंने जिनमंदिरकी प्रदक्षिणा दी और एक जगह भगवानका स्तोत्र करते हुए बैठ गये । उनके पास जाकर मैंने पूछा था कि हे

प्राहिणोषु कुमारोऽयं दूतं त्वं धीर्यमिति ॥ २६१ ॥ पितृलेखार्थमाध्यायः स्वदेशोक्तः कुयोद्धतः । अतस्तस्याकमारोहं स लक्ष्यः किमिच्छति ॥ २६२ ॥ शशस्य  
सिंहयोतेन किं विरोधेति जीविका । सत्यमासन्नमृत्युता सद्यो विच्छस्य मतेः ॥ २६३ ॥ इदमुद्धतोदितैः कोपमाविश्येक्य लक्ष्मणः । जनको भरतः शत्रुमय  
तद्वद्वत्कथुत ॥ २६४ ॥ सप्राप्य रामवत् सोपचारमालोक्य युक्तिमतः । वाक्यैः शोकं समनेतुं तदैव ते समनुवन् ॥ २६५ ॥ चैत्रेण रावणस्यैव परदार-  
पहारिणः । पराभवः परिदोषा दुर्गतामर्षवर्तनः ॥ २६६ ॥ सीताशयेन दाढ्योऽयं निर्विचारसकार्यकृत् । महापापकृतां पापमस्मिन्नेव फलिष्यति ॥  
२६७ ॥ उपायधिल्लता कोपि सीताप्रत्यायनं प्रति । इति तैर्विधितो राम सुतोऽस्थित इवामवत् ॥ २६८ ॥ तत्काले खेचरद्वंद्वैर्वाविरुक्तिवैदितः । वृषा-  
दुगतमागत्य यथाभित्तमलोकते ॥ २६९ ॥ भविष्यद्वलदेवोऽपि कृतयोगसंस्मदः । एतदागमनं कस्मात्कौ भवतौ कुमारौ ॥ २७० ॥ इत्यन्ययुक्तं सुग्रीव  
पिताके पत्रका अर्थं समझकर रामचंद्रका शोक तो रुक गया और वे क्रोधसे उद्धत होकर कहने लगे कि रावण मृत्यु-  
की गोदमें सोनेके लिये क्या चाहता है ॥ २६१ ॥ सिंहके वंशके साथ विरोध करनेसे क्या खरगोशकी जीविका चल  
सकती है ? अथवा ठीक है, क्योंकि जिनकी मृत्यु समीप है उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है ॥ २६३ ॥ इसतरह  
उद्धत वचन कहकर उन्होंने अपना क्रोध प्रगट किया । तदनंतर लक्ष्मण, जनक, भरत और शत्रुघ्न इस समाचारको  
सुनकर रामचंद्रके समीप आए, वही विनयसे उनसे मिले और युक्तियोंसे मरे हुए वचनोंसे उनका शोक दूर करनेके  
लिये वे सब उससमय इसप्रकार कहने लगे ॥ २६४-२६५ ॥ कि रावण ने जो इसतरह चोरीकर परस्वीका हारण  
किया है इससे उसका ही तिरस्कार हुआ है । वह सबका शत्रु है, दुष्ट है और अवर्मकी प्रवृत्ति करनेवाला है ॥ २६६ ॥  
वह सीताके आपसे जलने योग्य है और बिना विचारे ही अक्रियाका करनेवाला है । महापाप करनेवालोंका पाप इसी  
लोकमें अपना फल दे लेता है ॥ २६७ ॥ अब सीताकी वापिस लानेका कोई उपाय सोचना चाहिये ” इसतरह कह-  
कर उन लोगोंने रामचंद्रको बढाया तब रामचंद्र सोतेसे उठे हुएके समान सावधान हुए ॥ २६८ ॥ इसीसमय रामसे  
मिलनेके लिये दो विद्याधर आए, द्वारपालने आकर रामको खबर दी, रामकी आज्ञासे वे भीतर बुलाये गये और  
उन्होंने यथायोग्य रीतिसे रामके दर्शन किये ॥ २६९ ॥ होनहार बलभद्र राम उनसे मिलकर प्रसन्न हुए और पूछने  
लगे कि आप दोनों ही कुमार कौन हैं और कहाँसे आए हैं । इसके उत्तरमें सुग्रीव अच्छी रीतिसे कहने लगा कि  
विजयार्च पर्वतकी दक्षिण-अर्णीमें एक किलकिल नामका नगर है उसमें सब विद्याधरोंमें प्रसिद्ध बलींद्र नामका वि-  
द्याधर राज्य करता था । उसकी गियंगुसुंदरी नामकी रानीसे बालि और सुग्रीव नामके दो पुत्र हुए थे । ॥ २७० ॥ नीताने

२५० ॥ मंडु द्रुतसुखदेतत्पापणीयमिति स्फुटं । तत्राज्ञाज्ञागतोस्मीति लेखगर्मकरंडकं ॥ २५१ ॥ न्यघाच्चाम्रे तदादाय शिरसा रघुनंदन । विमोच्य पत्रमनस्यं स्वयमित्यमवाचयत् ॥ २५२ ॥ इतो विनीतनगरात् श्रीमतः श्रीमता पतिः । प्रेमप्रसारितात्मीयभुजाभ्यां स्वप्रियात्मजौ ॥ २५३ ॥ परिष्वज्यानुयुग्मागक्षेमवार्त्तां तत परं । इदमाज्ञापयत्यत्र दक्षिणाव्यतरस्थिताः ॥ २५४ ॥ षट्पञ्चाशन्महाद्वीपाश्चक्रवर्त्यनुवृत्तैः । केशवाश्च समाहात्म्यास्तदूर्ध्वपरिरक्षिण ॥ २५५ ॥ द्वीगोस्ति तेषु लक्षाद्व्यक्लिङ्काद्विविभक्ति । तस्मिन् विनमिसतानविद्याधरजिनां ॥ २५६ ॥ चतुष्टये व्यक्तिकांते प्रजापालनलोलुप । रावणाख्य खलौ लोककटक स्रोपु लपट ॥ २५७ ॥ तनोभूदृग्दया तस्य नारदेन रणेच्छुना । रूपलावण्यकर्त्तव्यदिकथित क्षितिजाश्रितं ॥ २५८ ॥ तदव मदनामोघवाणनिर्भरमानस । पैलस्तनो च्वस्तभीधैर्गो मायानी न्यायदूग ॥ २५९ ॥ अनन्यवेषमागत्य सोपायं स्वा पुरीं सती । अनेषीथावदस्मकमुद्योगममयो भवेत् ॥ २६० ॥ तावत्स्वकायसरक्षा कर्तव्येति प्रियां प्रति ।

२४८-२५० ॥ यह सुनते ही महाराजने आज्ञा दी कि दूतके द्वारा यह समाचार शीघ्र ही रामचंद्रके पास भेज दो । हे देव ! उन्हींकी आज्ञासे मैं यहाँ आया हूँ यह कहकर उसने पत्रमहित पिटारा उनके सामने रख दिया । रामचंद्रने वह पिटारा लेकर शिरसे लगा लिया और उसमेंका पत्र निहालकर वे स्वयं वाचने लगे ॥ २५१-२५२ ॥ उसमें लिखा था कि इस श्रीमान् अयोध्या नगरसे सब श्रीमानोंके स्वामी राजा दशरथ प्रेमसे फैलाई हुई अपनी दोनों भुजाओंसे अपने अपने दोनों प्यारे पुत्रोंका आर्लगनकर तथा उन दोनोंके शरीरकी क्षेम कुशल पूछकर यह आज्ञा देते हैं कि यहाँसे दक्षिणकी ओर समुद्रके मध्यमें छपन महाद्वीप हैं वे सब चक्रवर्त्तीकी आज्ञामें रहते हैं तथा नारायण अपने प्रतापसे उनमेंसे आधेकी रक्षा करते हैं ॥ २५३-२५५ ॥ उन द्वीपोंमें एक लंका नामका द्वीप है जो कि त्रिकूटाचल पर्वतसे सुशोभित है । उसी लंका द्वीपमें राजा विनमिके वशमें जो सहस्रग्रीव आदि चार राजा हुए थे उनके बाद अब रावण नामका राजा राज्य करता है । वह रावण प्रजाके पालन करनेमें लोलुपी है, दुष्ट है, लोगोंके लिये कांटा है और स्त्रियोंमें बड़ा ही लंपटी है किसी एक दिन युद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले नारदने उससे सीताके रूप लावण्य कांति आदिकी प्रशंसाकी ॥ २५६-२५८ ॥ उसीसमय कामदेवके अमोघ वाणसे रावणका चित्त भिद गया, उसकी बुद्धि और धैर्य सब नष्ट हो गया, वह मायाचारी और न्यायसे कोसों दूर रहनेवाला तो है ही इसलिये वह रामका ही रूप धारण कर बड़े उपायसे सती सीताको ले गया और उसने अपने नगरमें लेजाकर उसे रक्खा है इसलिये जबतक उसके लानेके लिये उद्योग करनेका समय आवे तबतक वह अपने शरीरकी रक्षा करती रहे यह समाचार पहुचानेके लिये और उसे धीरज देनेके लिये अपना कोई कुमार वा दूत उसके पास भेजना चाहिये ॥ २५९-२६१ ॥

देवी छायेव ते तस्मात्त्वमेवैषीति सोभ्यधात् ॥ २४१ ॥ इति तद्वचनात्तद्वच्छा राम समग्रहीत् । मूर्च्छा सीता सपत्नीव मोहयन्ती मनः क्षण ॥ २४२ ॥ तदा शीतक्रिया सीतासखीव सहसा द्रुप । व्यभ्रंश्यन्तत्तं सोपि क्व सीतेति गवुद्धवान् ॥ २४३ ॥ देवीं परिजनः सर्वं समंतात्प्रतिभूह । अन्येप्यनू वि-  
लोक्योत्तरीयं वशविदारित ॥ २४४ ॥ तस्यास्तदा तदानीय राघवाय समर्पयत् । उत्तरीयायुक्त देव्या भवेत्येतदित कुत ॥ २४५ ॥ इति निष्कातयत्तत्वं  
शोकव्याकुलमानसः । सहजुजस्तत्तार्थिता कुर्वन्नुर्वीथरः स्थित ॥ २४६ ॥ तत्क्षणे सत्रमाकृतो द्रुतो दशरथात्किात् । त प्राप्य विनतो मूर्च्छा कार्येभि-  
त्यभाषयत् ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा रोहिणीं राहौ प्रयाते गगनतारं । एकाकिन तुयाराशु भ्राम्यन्तं समलोकिपि ॥ २४८ ॥ खण्णि फलमेतत्सत्येन्द्रयुक्त मही-  
पति । पुरोहितमग्रा चाह सीतामय दधाननः ॥ २४९ ॥ गृहीत्वायात्स मायावी राम स्वामी न कानने । ता समन्वैषिषु शोकादकुलो भ्राम्यति स्वयं ॥

रामचंद्र स्वयं परिजनोंके साथ आसिले, और व्याकुल होकर उनसे पूछने लगे कि मेरी प्यारी जानकी कहाँ हैं ॥  
२३८-२४०॥ इसके उत्तरमें उनलोगोंने कहा कि हे देव ! हमलोगोंने न तो आपको देखा और न देवी सीताको देखा,  
सीता छायाके समान आपके ही पास थी इसलिये उनके विषयमें आपही जानते होंगे ॥ २४१ ॥ इतनी बात सुनते ही  
अवकाश पाकर क्षण भरके लिये मनको मोहित करती हुई सीताकी मयनीके ( सौतके ) ममान मूर्छाने आकर रामचंद्र  
को पकड़ लिया मावार्थ-रामचंद्रको मूर्छा आगई ॥ २४२ ॥ उसीसमय सीताकी मखीकेसमान शीतोपचार क्रियाने  
अकस्मात् आकर उस मूर्छासे रामचंद्रको अलग कर दिया रामचंद्र सावधान हुए और फिर पूछने लगे कि सीता  
कहाँ है ॥ २४३ ॥ परिजनके सब लोग चारों ओर प्रत्येक दृष्टके नीचे सीताको ढूँढने लगे, सीता तो नहीं मिली परंतु  
बांसमें फटा हुआ उसका एक ओढ़नेका कपड़ा मिला, उसे वे लोग ले आए और रामचंद्रको लाकर सोंप दिया ।  
रामचंद्र सोचने लगे कि यह देवीके ओढ़नेका कपड़ा यहाँ कैसे आगया, तब वे उसके वास्तविक समाचारको सम-  
झगये और व्याकुल चित्त होकर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ चिंता करते हुए वहीं बैठ गये ॥ २४४-२४६ ॥ उसी-  
समय राजा दशरथके समीपसे आश्रय करता हुआ एक दूत आया, मस्तक नवाकर रामचंद्रके पास गया और नीचे  
लिखे अनुसार अपना कार्य कहने लगा ॥ २४७ ॥ कि महाराज दशरथने आज स्वप्नमें देखा था कि राहु चंद्रमाकी  
रानी रोहिणीको लेकर आकाशमें चला गया है और अकेला चंद्रमा इधर उभर घूम रहा है, उसीसमय महाराजने  
पुरोहितको बुलाकर पूछा कि इन स्वप्नोंका फल क्या है तब पुरोहितने उत्तर दिया था कि आज मायाचारी रावण  
सीताको हर ले गया है, और स्वामी रामचंद्र वनमें उसे ढूँढते हुए शोकसे व्याकुल होकर इधर उधर भटक रहे हैं ॥



अभिभूति सशीलानामत्रैव फलदायिनी ॥ २३० ॥ उवाताथ पुरेभूवन् बहवोऽशुभसूचका । लोकद्वयाहितं वाढमयथाश्च युगावधि ॥ २३१ ॥ मुच्यता मक्षिणं यावन्न चेदं रुढिमृच्छति । इति युक्तिमतीं वाणीमुक्तो मथ्यादिमितादा ॥ २३२ ॥ प्रत्यभाषत लकेशो यूय युक्तिविरोधि किं । अस्थूला वदतव च प्रत्यक्षे का विचाणा ॥ २३३ ॥ चक्राक्ष ममुपन्न सीतापहरणेन मे । षट्चन्द्रस्याधिपत्यं च तेन वित्य करस्थित ॥ २३४ ॥ स्वयं गृहगतता लक्ष्मीं हन्यत्यर्धेन को विधी । इति तद्गणितं भुन्वा व्यरमन् हितवादिनः ॥ २३५ ॥ इतः परिजनों राम मायामणिपुण्ड्रानुग । विभिने नष्टदिग्भागं सूर्यस्ताच-लमेयुषि ॥ २३६ ॥ अष्टद्वन्द्विष्य सीतां च वंमनस्यमगात्तरां । सहा सूनोर्वियोगोपि स्वाभिनः केन सहाते ॥ २३७ ॥ भानावुदयमायाति मर्त्यलोकैक-चक्षुषि । ध्वाते स्मियेव त्रियाते दलतीः३३जराशिशु ॥ २३८ ॥ घटामटति क्रोकाना युग्मे युग्मद्विषा मुदा । अर्थं शब्देन वा योगं साधुना जानकीप्रियः ॥ २३९ ॥ स्वयं परिजनेनापि भास्करो दिवसेन वा । दृष्ट्वा त मत्प्रिया क्वेति नृपः पटुच्छ साकुल ॥ २४० ॥ देव देवी च देवो वा नास्माभिरवलोकितः ।

में अशुभको सूचित करनेवाले बहुतसे उत्पाद हो रहे हैं । यह काम दोनों लोकोंमें अहित उत्पन्न करनेवाला है और युगपर्यंत बहुत भारी अपयश फलानेवाला है इसलिए आप इसे शीघ्र छोड़ दीजिये नहीं तो संसारमें यह एक रुढि हो जायगी । हमतरह मंत्रियोंने बड़ी युक्तियोंसे भरे हुए वचन कहे रात्रण उनके प्रत्युत्तरमें कहने लगा कि आप लोग बिना कुछ सोचे विचारे ऐसे युक्तियोंके विरोधी वचन क्यों कहते हैं, प्रत्यक्ष फलमें विचार करनेकी क्या आवश्यकता है । सीताके हरण करनेसे मेरे घरमें चक्राक्षकी उत्पत्ति हुई है और मुझे छहों खंडका स्वामीपना मिला है हाथ में रखे हुएके समान इस प्रत्यक्ष बात पर भी तो विचार करना चाहिये ॥ २२९-२३४ ॥ ऐसा कौन मूर्ख है जो घरमें आई हुई लक्ष्मीको पैरसे ठोकर दे इसतरह रावणके वचन सुनकर वे हितरूप वचन कहनेवाले मंत्री सब चुप होगये ॥ २३५ ॥

अथानतर—इधर रामचंद्र मायामयी मणियोंके बने हुए हिरणके पीछे चलेगये, जंगलमें दिशाओंका ज्ञान सब नष्ट होगया, सूर्य अस्ताचल पर्वतपर अस्त होगया, तब परिजन लोग सीता और रामचंद्रको न देखकर बड़ेही खेदखिन्न हुए सो ठीक ही है पुत्रका वियोग तो सहन किया भी जा सकता है परंतु स्वामीका वियोग मला कौन सह सकता है ॥ २३६-२३७ ॥ सवेरेके समय जब मर्त्यलोकके एक चक्षुके समान सूर्य उदय हुआ, डरकरही मानों अंधकार मच नष्ट होगया, कमल सब खिलगये, और जिसप्रकार साधु लोगोंके द्वाग अर्थ शब्दोंसे मिल जाता है उसी प्रकार परस्पर द्वेष रखनेवाले चक्रवर्तियोंके जोड़े परस्पर मिलगये तब जिस प्रकार सूर्य दिनके साथ मिल जाता है उसीप्रकार

श्रीलस्य सहन महनस्य मे । प्राणाः सता नहि प्राणा गुणाः प्राणाः त्रियास्तत ॥ २२१ ॥ तद्व्ययात्पात्याम्येतान् गुणप्राणान् जीविका । मूर्तिविन-  
शरी यातु विनाशमविनश्वरं ॥ २२२ ॥ विनश्यति न मे शील कुलशैलानुकारि तत् । इति प्रत्युत्तरं दत्वा गृहीत्वा सा व्रत तदा ॥ २२३ ॥ वंदिष्यामि न  
मोक्षे च यावन्न श्रयते मया । रामस्य क्षेमवार्तेति मनसालोच्य सुव्रता ॥ २२४ ॥ अवबोधितवैधव्यविरुद्धस्वल्पभूषण । यथार्थं चिंतयत्यास्त संतत  
सद्यते स्थितिं ॥ २२५ ॥ प्रादुरासत्तदोत्पाता लकाया किंकरा इव । तद्वर्चसिकालराजस्य समताङ्गयदायिनः ॥ २२६ ॥ उत्पन्नमायुधागारे चक्रं वा का-  
लचक्रवत् । यज्ञशालाप्रबद्धस्य वस्तकर्त्तव्यं शास्त्रं ॥ २२७ ॥ तदुत्पत्तिफलस्यादृशानवबोधः खगेक्षित् । ज्वलदारं महाचक्रं महातोयमजीजनत् ।  
२२८ ॥ रामो नाम बलो भावी लक्ष्मणोऽयुज्जातकाङ्क्ष । तस्य लब्धप्रतापी तौ द्वव्यमिमुखोदयौ ॥ २२९ ॥ सीता शीलवती नैय जीवती ते भविष्यति ।  
बया लाभ है सज्जनोंके प्राण प्राण नहीं हैं किंतु गुण ही प्राण हैं और इसलिये ही वे गुण अधिक प्रिय हैं । अतएव मैं  
उन प्राणोंका नाशकर इन गुण रूप प्राणोंकी रक्षा कस्सी गुणोंका नाशकर मैं अपनी जीविका (जीवन) की रक्षा  
नहीं कर सकती । यह मूर्ति वा शरीर तो विनश्वर है किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट होगा इसलिये इसका नाश  
भले ही हो जाओ परंतु कभी न नाश होनेवाला मेरा शील कभी नष्ट नहीं होसकता क्योंकि वह कुलपर्वतोंके समान  
अचल और अविनश्वर है । इसतरह उत्तर देकर उस सीताने उसी समय व्रत धारण कर लिया और अच्छी तरह व्रत  
पालन करनेवाली उसने मनमें यह भी प्रतिज्ञा करली कि जबतक रामचंद्रकी क्षेमकुशलकी बात न सुन लूंगी तबतक  
न तो मैं कुछ बोलूंगी और न कुछ खाऊंगी ॥ २१९-२२४ ॥ वह अपनको विधवा समझने लगी आभूषण आदि सब  
उतार दिये और निरंतर संसारकी दशाका यथार्थ स्वरूप चिंतवन करती हुई रहने लगी ॥ २२५ ॥ उसी समयसे लंका  
में उसे ही नाश करनेवाले मृत्युराजके भय देनेवाले किकरोंके समान चारों ओरसे उत्पन्न होने लगे ॥ २२६ ॥ जिस  
प्रकार यज्ञशालामें वंधे हुए वकरेलिये घासके छोटें छोटें अंकुर उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार रावणकी आयुधशालामें का-  
लचक्रके समान चक्र उत्पन्न हुआ ॥ २२७ ॥ उस चक्रके देखकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ २२८ ॥ तदनंतर मंत्रियोंने  
लिये जिसके अरे दीप्यमान हो रहे हैं ऐसे चक्रको देखकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ २२८ ॥ तदनंतर मंत्रियोंने  
उसे समझाया और कहा कि रामचंद्र होनहार बलभद्र हैं और लक्ष्मण उनका छोटा भाई नारायण है वे दोनों भाई  
बड़े ही प्रतापी हैं उनकी उन्नति और अभ्युदय मानने ही दिख रहा है सीता बड़ी शीलवती है और जीते जी आप-  
की कभी नहीं होसकती, शीलवती, स्त्रियोंका तिरस्कार करना इसी लोकमें बुरा फल दे देता है । इसके सिवाय नगर

सुविरात्समदर्शयत् ॥ २११ ॥ भयेन लज्जया रामविरहोत्थमुद्रा च सा । अग्राजसुता मूर्च्छामतिक्रच्छ्रतिक्त्रियां ॥ २१२ ॥ सद्यः शीलवतीस्पर्शद्विधा गगन-  
गामिनी । विनश्यतीति भीत्वा सौ जानकीं स्वयमस्तु ॥ २१३ ॥ विद्याधरी समाहूय श्रीतांबुलवनादिभिः । मूर्छामस्या निराकुर्यमिति वक्ष्या न्ययोजयत् ॥  
उपपैस्तामिरुद्धूतमूर्च्छाबोधद्वारा सुता । श्रूयं का कः प्रदेशोयमिति शंकाकुलाशया ॥ २१५ ॥ विद्याधर्या वयं लंकापुरमेतन्मनोहरं । वनं रावणराजस्य  
त्रिलंबाधिपतेरिदं ॥ २१६ ॥ त्वादृशी वनिता लोके न कश्चिपुण्यभागिनी । महेंद्रमिव पैलोमी सुभदेवादिभूषति ॥ २१७ ॥ श्रीमती वज्रजंघ वा त्वमेव  
कुर्वते पति । स्वामिनी यव सौभाग्याद्रावणस्य महाश्रियः ॥ २१८ ॥ जानकी तामिरियुक्ता मुद्रया शीनमानया । किं पैलोम्यादयः शीलभंगेन ताः  
पतीन् स्वयं ॥ २१९ ॥ प्राग्नेभ्योव्यधिकान् का वा विक्रीणंति गुणान् क्रिय । त्रिलंबस्याधिपोस्त्वस्तु षट्खंडस्याखिलस्य वा ॥ २२० ॥ किं तेन यदि

बहुत देरसे उस सीताको अपना इंद्रनील कान्तिका शरीर दिखलाया ॥ २११ ॥ उसे देखतेही वह राजकन्या सीता  
भयसे लज्जासे और रामके विरहसे उत्पन्न हुए शोकसे ऐसी मूर्छित होगई कि जिसका उपाय करना भी बहुत कठिन  
होगया ॥ २१२ ॥ शीलवतीको, स्पर्श करनेसे आकाशगामिनी विद्या शीघ्र ही नष्ट होजायगी इसी डरसे रावणने स्वयं  
सीताका स्पर्श नहीं किया ॥ २१३ ॥ उसने अनेक चतुर विद्याधरियें बुलाई और आज्ञा दी कि शीतल वायु आदिसे  
शीघ्रही इसकी मूर्छाको दूर करो । इसतरह कहकर अनेक विद्याधरियोंको उसने नियुक्त किया ॥ २१४ ॥ अनेक उपायों  
के करनेसे उसकी मूर्छा दूर हुई तब अनेक शंकाओंसे व्याकुल हुई वह सीता उन विद्याधरियोंसे पूछने लगी कि तुम  
कौन हो और यह जगह कौनसी है ॥ २१५ ॥ इसके उत्तरमें वे विद्याधरियें कहने लगीं कि हम विद्याधरियां हैं यह  
लंका नगर है और यह तीनखंडके स्वामी राजा रावणका मनोहर वन है ॥ २१६ ॥ इस संसारमें तेरे समान पुण्यशा-  
लिनी अन्य कोई स्त्री नहीं है, क्योंकि जिसप्रकार इंद्राणी इंद्रको पति बनाती है अथवा सुभद्राने प्रथम राजा भरत  
चक्रवर्तीको पति बनाया था अथवा श्रीमतीने वज्रजंघको पति बनाया था उसी प्रकार तू इस रावणको अपना पति  
बना तथा अपने सौभाग्यसे रावणकी महालक्ष्मीकी स्वामिनी हो ॥ २१७-२१८ ॥ उन विद्याधरियोंके ये वचन सुनकर  
सीता बहुत ही खेदस्विन्न हुई उसका चित्त दीन होगया और वह कहने लगी कि क्या इंद्राणी सुभद्रा आदिने स्व-  
यं अपना शील भंगकर उनको पति बनाया था ? संसारमें ऐसी कौनसी स्त्रियां हैं जो अपने प्राणोंसे भी ध्यारे गुणों  
को बेच डालती हों । वह रावण चाहे तीन खंडका स्वामी हो, चाहे छह खंडका स्वामी हो और चाहे समस्त पृथ्वी-  
का स्वामी है यदि मेरे शोभास्वरूप वा मुझे विभूषित करनेवाले शीलव्रतका खंडन होता है तो उससे (रावणसे)

वैश्वदेवः ॥ २०५ ॥ वदश्रित्यन्वगात्सोपि मृगोगादूगर्णागण । कुतः कृत्यपरामर्शः स्त्रीवशीकृतचेतसा ॥ २०२ ॥ लोकमानो नभो रामस्तुतामतिरूपय-  
न । तत्रैव तत्रैव विभ्रातो घटातनगतादिवत् ॥ २०३ ॥ अथातो रामरूपेण परिश्रुतो दशानन । सीतामिव पुरोधत्वा प्रहिनो हरिणो मया ॥ २०० ॥ वा-  
रुणीष्टिक् प्रिये पश्य विवसेपाश्रुमालिन । सिद्धतिलक न्यस्तं विप्रतीव विगृजते ॥ २०५ ॥ आरोह सिविका तस्मादशु सुंदरी बंधुरां । पुरोगमनकालेय व-  
र्तते सुखगत्रये ॥ २०६ ॥ इत्यवादीसदाकर्ण सा मायाशिविकाकृति-विमान पुष्पक मोहादासरोह धरासुता ॥ २०७ ॥ राम वा तुंगारूढात्मान सप्रद-  
श्यन् । महर्गतमिव अंगं जनयन् उदितुर्महे ॥ २०८ ॥ ता भुजगीशिवानैर्गदुणयेन स्वरुच्यवे । पतिव्रताग्रया पापी मायाचतुर्दशानन ॥ २०९ ॥ कमा-  
ह्वरामवाप्यनामवतार्य बनातरे । सद्यो माया निराकृत्य द्वापितानयनक्रम ॥ २१० ॥ इन्द्रीलच्छवि देह गूढार्थं शिष्यसत्ततेः । आचार्यो वा स तस्या स्व  
मायमृग ( कपटसे बना हुआ हरिण ) है बड़ी बड़ी कठिनतासे भले ही पकड़ा जा सके यह व्यर्थ ही खींचकर मुखे  
दूर ले जा रहा है ” इसतगह कहते हुए रामचंद्र उसके पीछे पीछे जाने लगे; थोड़ी देरके बादही वह उडकर  
आकाशमें चला गया । देखो जिनका चित्त खियोंके-वश होजाता है वे किसी कामका विचार नहीं कर सकते ॥  
२०१-२०२ ॥ जिस प्रकार घडेमें रखवा हुआ सर्प बड़ा दुखी होता है उसीप्रकार आकाशकी ओर देखते हुए  
और अपनी हीनता दिखलाते हुए रामचंद्र घबड़ाये हुएसे होकर वहींर ठहर गये ॥ २०३ ॥ इधर रावण रामका  
रूप धारणकर सीताके समीप आया तथा कहने लगा कि मैंने हिरण पकड़कर आगे भेज दिया है, हे प्रिये हम  
पश्चिम दिशाको देखो यह इस समय ऐसी सुशोभित हो रही है मानों इसने सूर्य मंडलको ही सिंदूरका तिलक बना-  
कर लगाया हो ॥ २०४-२०५ ॥ इसलिये हे सुंदरि अब तू इस सुंदर पालकीमें बैठ अब सुखकी रात वितानेकेलिये यह  
नगरमें जानेका समय आगया है ॥ २०६ ॥ रामका रूप धारण किये हुए रावणकी यह बात सुनकर सीता मोहनीय क-  
र्मके उदयसे जो पुष्पक विमान मायासे पालकीके आकार बन गया था उसीपर सवार हो गई ॥ २०७ ॥ रामचंद्रके  
मेवमें घोड़ेपर चढ़े हुए रावणने अपनी मायासे सीताको यह भी दिखला दिया कि घोड़ेपर चढ़े हुए राम पृथ्वीपर चल  
रहे हैं ॥ २०८ ॥ इसतरहके उपायसे वह पापी और मायाचारी रावण अपनी मृत्यु बुलानेके किये सर्पिणीके समान  
पतिव्रताओंमें शिरोमणि उस सीताको ले आया ॥ २०९ ॥ इसतगह अनुक्रमसे वह रावण लंकामें जा पहुंचा और उस-  
ने सीताको किसी बन्में उतार दिया । रावणने शीघ्र ही अपनी माया भी दूर कर दी और उसके लानेका सब हाल  
भी उसे बतला दिया ॥ २१० ॥ जिसप्रकार आचार्य अपने शिष्योंको गूढ अर्थ दिखलाता है उसी प्रकार उस रावण ने

तीक्ष्णित न शक्य मन्मथेन च ॥ १९० ॥ इत्याख्यात्माप्यद् पापादवकथं स गवणः । निर्मले, केतनैर्द्रव्यदयता जगयद्भृगं ॥ १९१ ॥ हंसावकीति संदेह नवनिर्मोकहासिभिः । दिशो मुखरथद्वेभघटाचटुलनिःखनैः ॥ १९२ ॥ कुर्वद्वर्धनैर्घनाद्वेप्य विहिलंष्टीरिव बंधुभिः । ययौ पुष्पकमारुह्य गगने सह म-  
विणा ॥ १९३ ॥ ध्वजवटाग्रनिभश्रवारिच्छुच्युतवालैः । मंदगंधवहर्नितोर्विनीताध्वपरिश्रमः ॥ १९४ ॥ सीतोद्विक्तस्था गच्छन् दृष्टो पुष्पकस्थितः ।  
अरद्वलाकातस्थो वासो नीलवलाहक ॥ १९४ ॥ सप्राप्य चित्रकूटाग्रनंदन नंदनस्वन । प्रविष्ट इव सीतायास्थित तुष्टिमगादलं ॥ १९६ ॥ तदाज्ञाय  
मारीचपरार्थमणिनिर्मित । भूत्वा हरिणपीतोसो सीताया, स्वमदर्शयत् ॥ १९७ ॥ त मनोद्वारिण दृष्ट्वा पश्य नायाति कौतुक । दुरिणश्चित्रवर्णोयं रंजय-  
त्यंजना मन ॥ १९८ ॥ इति सीतावचः श्रुत्वा विनेतु तत्कुतूहलं । तदा निनीषया गत्वा रामो वामे विधे विधीः ॥ १९९ ॥ ग्रीवामगेन वा पश्यन् कु-  
र्वन् दूरं पुनः प्लुतिं । वलान् धावन् क्षण खादन् विभयो वा तृणाकुलं ॥ २०० ॥ हस्तप्राणमिवात्मानं कुत्वोग्रीयति दूरगः । वृथा कर्षति मा मायाभृगो

शब्दोंसे सब दिशाओंको शब्दायमान कर रहा था और अलग अलग हुए माथोंके समान अलग अलग बाद-  
लोंसे खूब मिल रहा था ॥ १९२-१९३ उस समय ध्वजा और घंटोंकी नोकोंसे जो बादल छिन्न भिन्न होगये थे  
और उनसे जो पानीकी बूंदें गिर रहीं थीं उनसे शीतल हुए तथा सुगंधित और मंदवायुसे रावणका सब  
परिश्रम दूर हो रहा था और सीताकेलिये वह उत्सुक हो रहा था सफेद पुष्पक विमानमें बैठकर जाता  
हुआ वह नीलवर्णका रावण ऐसा जान पड़ता था मानो शब्द ऋतुके सफेद बादलोंके समीप कोई काला  
बादल ही हो ॥ १९४-१९५ ॥ धीरे-२ वह नंदन वनके समान चित्रकूट वनमें जा पहुंचा और सीताके  
हृदयमें घुसे हुएके समान वह वहां बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ १९६ ॥ रावणकी आज्ञासे मारीचने वहां  
जाकर बहुमूल्य मणियोंसे बने हुये हरिणके वच्चेका रूप बना लिया और सीताके सामने जाकर उसके दृष्टि गोचर  
हुआ ॥ १९७ ॥ उम मनोहर हरिणको देखकर सीता रामचंद्रसे कहने लगी कि हे नाथ देखिये यह कैसे आश्चर्यकी  
वस्तु है अनेक वर्णका यह हरिण चित्तको बहुत ग्रीष्म मोहित वा प्रमत्त कर रहा है ॥ १९८ ॥ सीताकी यह बात सुन-  
कर उस आश्चर्य करनेवाली वस्तुको पकड़ने और उसे लेनेकी इच्छासे रामचंद्र निकले सो ठीक ही है दैवके प्रतिकूल  
होनेपर बुद्धि मी नहीं रहती है ॥ १९९ ॥ वह हरिण कभी गर्दन झुकाकर पीछेकी ओर देखता था, कभी दूर हो जाता  
था, कभी जोरसे चिल्लाता था, कभी दौड़ता था, और कभी क्षणभर तक निर्भय होकर घासके अंकुरोंको चरता  
था ॥ २०० ॥ कभी हाथसे पकड़ने योग्य अत्यंत समीप आकर छलांग मारकर बहुत दूर चला जाता था । “यह

दृष्ट्वा त स्त्रोचित देव सीता शीलवती न सा । वज्रयष्टिरीवायेन मेतु केनापि शक्यते ॥ १८१ ॥ इति स्वगतवृत्तातमुक्त्वा तेभिर्मतं मया ! नोक्तं शील-  
वतीक्रोपवन्दिहमीत्येति साववीत् ॥ १८२ ॥ श्रुत्वा तद्वचन सर्वमसत्यमवधारयत् । प्रकटीकृतकोपाग्निशिरिताकारवृत्तिभिः ॥ १८३ ॥ सुग्रे फणीद्विधा-  
सगोमादोर्पाविलोकनात् । भीत्वा तद्व्यवहणं को वा विषयावी विमुचति ॥ १८४ ॥ बाह्यस्थैर्यवचः श्रुत्वा भीत्वा तस्यास्त्वमागता । गजकर्णचला व्रीणा वि-  
मनो यदि । तत्र यद्वस्तु नान्यत्र तत्स्वप्नेष्युपलभ्यते ॥ १८५ ॥ अथ शौर्यादिमीरामसदृशो न क्वचिस्सुम । ॥ १८६ ॥ भोगोपभोगद्वारेण रंजयेय  
१८८ ॥ सुग्रहं तल्लहस्तेन भूमिष्ठमनुमडल । पातालादपि शेषाहिः सुहरो डिभकेन च ॥ १८९ ॥ मनुत्तानयितु शक्ताः ससमुद्रा वसुधरा । मेतु शीलव-  
सार नहीं कहा है ॥ १८२ ॥ उसकी ये बातें सुनकर रावणने सब झूठ समझी और अपने सुखकी आकृति  
बनाकर उसने अपनी क्रोधरूपी अग्नि प्रगटकी ॥ १८३ ॥ क्रोधमेंही वह कहने लगा कि हे सुग्रे ! ऐसा कौन  
विषयादी है जो सर्पके निश्वासेसे उठे हुए भयकर फणको देखकर और उससे डरकर उसका पकड़ना छोड़ दे, ॥  
१८४ ॥ उसके बाहरके स्तिररूप वचन सुनकर और उससे डरकर तू वापिस लौट आई है ? क्या तू नहीं जानती  
कि स्त्रियोंके चित्तकी छत्ति हाथीके कानोंके समान चंचल होती है ॥ १८५ ॥ ममझमें नहीं आता कि किस कारणसे  
तू उसके चित्तको न मेद सकी जान पड़ता है तू उपायोंमें इतनी चतुर नहीं है जितनी कि बाहरसे दिखती है  
इसतरह कहकर रावणने उसे खूब डाट लगाई ॥ १८६ ॥ तब वह सर्पणखा फिर कहने लगी कि यदि भोगोप-  
भोगकी वस्तुओंसे उसका मन वश किया जाय तो भोगोपभोगकी जो वस्तुएं वहां उपस्थित हैं वे  
नहीं बन सकता क्योंकि शूर वीरतामें भी रामके समान कोई दूसरा पुरुष नहीं है । यदि वीणा आदिगाने बजानेसे वश  
किया जाय तो वह सब कला और सब गुणोंमें चतुर है । पृथ्वीपर खड़ा होकर हाथकी हथेलीसे ही सूर्यमंडलका पकड़लेना  
सहज है, किसी चालकके द्वारा शेपनागको पातालसे भी बाहर निकाल लेना सहज है और समुद्रसहित इस समस्त पृ-  
थ्वीको उठा लेना सहज है परंतु कामदेवके द्वारा भी शीलवतीके चित्तका मेदन करना निर्वात असंभव है । सर्पणखा  
की ये बातें सुनकर रावण पाप कर्मके उदयसे मारीच मंत्रीके साथ गुप्तक विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे चला उस  
पुष्पक विमानमें सर्पकी नई काचलीको भी लज्जित करनेवाली जो निर्मल ध्वजाएं फहरा रही थीं वे देखनेवाले लो  
गोंको बार २ हंसांकी पक्षितयोंका संदेह उत्पन्न करती थीं तथा वह विमान सुवर्णकी लटकती हुई सुंदर धंटियोंके

त्वे महादुःखपात्रत्वं दृष्टचेष्टया ॥ १७१ ॥ दानशीलेषु बाधासि परलोकहितक्रिया-विधानेष्वप्रधानत्वं संतानार्थानवधानं ॥ १७२ ॥ कुलनाशोऽपगतिर्मुक्ते-  
रित्याद्यन्यत्र दूषित । साधारणमिदं सर्वस्त्रीणां कस्मात्तत्त्वमवतत् ॥ १७३ ॥ तस्मिन्सुखामिलापित्वं वयस्यरिमन् गतत्रये । न विसृजसि ते भाविहित म-  
तिविपर्ययात् ॥ १७४ ॥ स्त्रीत्वे सतीत्वमेवैक आध्य तत्पत्तिमात्मनः । विरूप व्याधितं निःस्व दुःस्वभावमवर्तकं ॥ १७५ ॥ त्यक्तत्वाभ्यं चेष्टया वत्सां क-  
किणं वामिलापिणं । परमलसः कुष्टिचोडालसदृश नामिलापुका ॥ १७६ ॥ तमप्याक्रम्य भोगोत्थ सद्यो दृष्टिविषयोपमा । नयसि भस्मसाद्भावं यद्वलात्कुलयोगेभि-  
त ॥ १७७ ॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा मदरोद्विध चालयते । शक्यं चालयितुं नास्यावित्तमित्याकुलकुला ॥ १७८ ॥ गृहकार्यं भवद्वाक्यधृतोर्विस्मृत्य दुःखि-  
ता । यामि देव्यहमिलेतत्करणवचनम्य सा ॥ १७९ ॥ गत्वनिष्ठितकार्यत्वाद्विषणा रावण प्रति । अशक्यारंभमवृत्तीनां क्लेशादन्यत्कृतः फलं ॥ १८० ॥

है और स्त्री मोक्षकी पात्र कभी होती ही नहीं । इनके सिवाय और भी बहुतसे दोष हैं जो कि सब स्त्रियोंमें साधारण  
सीतिसे पाये जाते हैं इसलिये ऐसी निध स्त्रीपर्यायमें तुम्हें सुखकी अमिलावा क्यों हुई जान पड़ती है तेरी बुद्धि प्रतिकूल  
वा उलटी होगई है हमलिये ही तू निर्लेज अवस्थायें भी अपने होनहार हितका चिंतवन नहीं करती है ॥ १७१-  
१७४ ॥ स्त्रीपर्यायमें तो एक सतीत्व ही प्रशंसनीय है और वह सतीत्व यही है कि अपना पति चाहे कुरूप हो चाहे  
रोगी हो चाहे निर्धन हो, चाहे बुरे स्वभावका हो और चाहे बुरे बर्तावका हो उसे छोड़कर किसी ऐसे ही अथवा इ-  
च्छा करनेवाले किसी चक्रवर्तीको भी कोठी और चंडालके समान दिखती हुई कमी उनकी इच्छा नहीं करती है ॥  
१७५-१७६ ॥ कदाचित् कोई पुरुष ऐसी सतियोंपर आक्रमण करे तो सर्पिणीके समान वे कुलीन स्त्रियें अपने सतीत्व-  
सामर्थ्यसे शीघ्रही उसे भस्म कर देती हैं सीताके ये बचन सुनकर वह सूर्पणखा सोचने लगी कि कदाचित् मेरुगर्वत  
चलाया जा सकता है परंतु इसका चिंत कभी नहीं चलाया जा सकता तदनंतर वह व्याकुल होकर कहने लगी कि  
हे देवी मैं आपके वचन सुनकर घरके सब काम भूल गई और बहुत देरतक यहां ठहरी रही अब मैं जाती हूं इसतरह  
कहकर और चरणोंको नमस्कारकर वह चली गई । कार्य न बननेसे उसका मुख कुछ खेदखिन्न था वह रावणके पास  
लौटगई सो ठीक ही है क्योंकि जो काम हो नहीं सकते उनके आरंभ करनेसे क्लेशके सिवाय और कुछ फल नहीं  
मिलता है ॥ १७८-१८० ॥ सूर्पणखाने वहां जाकर अपनी योग्यतानुसार पहिले तो रावणके दर्शन किये और कहने  
लगी कि हे देव सीता बड़ीही शीलवती है । वज्रकी लकड़ीके समान उसे अन्य कोई पुरुष भी भेद नहीं सकता ॥  
१८१ ॥ इसतरह अपना दृत्तांत कहकर फिर कहने लगी कि शीलवतीके क्रोधरूपी अग्निके डरसे मैंने तेरी इच्छानु-



मा वीक्ष्य कारुण्याञ्जनकात्मजा । किमिन्द्राकांक्षसि स्त्रीत्वं त्वं हितानवबोधिनी ॥ १३ ॥ स्त्रीतामनुभवतीभिराग्रभूमिरनीप्सित । प्राप्त प्राप्य च दुर्बुद्धे महापापफल  
शृणु ॥ १६४ ॥ अनिष्टलक्षणादन्यैरप्राप्तत्वाच्छुचा ग्रहे । स्वे वासो मृत्युपर्यन्तं कुलरक्षणकारणात् ॥ १६५ ॥ अपत्यजननाभावे प्रविष्टोत्पन्नगेहयोः । शोको-  
त्पादनव्याप्तत्वं निर्भाग्यत्वादगौरव ॥ १६६ ॥ दुर्भागत्वेन काताना परित्यागात्पराभवः । आस्थुर्यत्वं रजोदोषात्सङ्घनात्कलहविमिः ॥ १६७ ॥ दुःखदावा-  
मिसतापो वन्यानामिव भूरुहा । चक्रवर्तिमुत्ताना च परपादोपसेवना ॥ १६८ ॥ मानभंग सपत्नीपु ह्योत्कर्षेण केनचित् । स्वभाववक्रवाक्कायमनोभिः कु-  
टिलात्मता ॥ १६९ ॥ गर्भमूर्तिसमुत्पन्नरोगादिपरपीडन । शोचन स्त्रीसमुत्पत्तावपत्यभरणेऽसुखं ॥ १७० ॥ रहस्यकार्यबाधत्वं सर्वकार्येष्वन्तर्गता । विधवा-

रूपासे सीता कहने लगी कि अरे क्या तू स्त्रीपना चाहती है जान पड़ता है तू अपने हितको मी नहीं  
जानती ॥ १६०-१६३ ॥ स्त्रीपनेका अनुभव करती हुई ये सब यहां ही अनिष्टताको प्राप्त हुई हैं । हे  
दुर्बुद्धे ! यह स्त्रीपना बड़े बड़े पापोंका फल है सुन ! यदि कन्यामें लक्षण अच्छे नहीं हुए तो उसे कोई  
ग्रहण नहीं करता इससे घरमें शोक ही शोक छाया रहता है । स्त्रियोंको मरने तक कुलकी रक्षा करनी  
पड़ती है इसलिये उन्हें सदा सेवामें ही लगा रहना पड़ता है ॥ १६४-१६५ ॥ यदि किसीके पुत्र उत्पन्न न हो तो  
दोनों घरोंमें शोक उत्पन्न करती रहती है यदि भाग्यहीनतासे कोई बध्या हुई तो वह कभी गौरवताको (बहपनका)  
प्राप्त नहीं होती है ॥ १६६ ॥ यदि कोई स्त्री कुरूपता हुई तो पति उसे छोड़ देता है और इसतरह उसे अपना  
तिरस्कार सहना पड़ता है रजो दोषसे उसे कोई छुना नहीं कदाचित् कलह करनेसे वह छोड़ दी जाय ( पति उसे  
छोड़ दे ) तो जिस प्रकार वनके वृक्ष दावानल अग्निसे जला करते हैं उसीप्रकार वह दुस्वरूपी दावानल अग्निसे  
जला करती है । चक्रवर्तीकी पुत्रियोंको भी दूसरेके चरणोंकी सेवा करनी पड़ती है ॥ १६७-१६८ ॥ और सपत्नियोंमें  
किसी कारणसे उत्कृष्टता हुई तो फिर मानभंग सहना पड़ता है । स्त्रियोंके मन वचन काय स्वभावसे ही सदा कुटिल  
रहनेसे वे मदा कुटिलरूप रहती हैं ॥ १६९ ॥ गर्भकी प्रसूति होते समय उत्पन्न हुए अनेक रोगादिकोंकी पीड़ा  
सहनी पड़ती है, स्त्रियोंके उत्पन्न होतेही शोक करना पड़ता है और संतानके मरने पर दुःख सहना पड़ता है ॥ १७० ॥  
विचार करने योग्य बातोंपर उनसे कोई सलाह लेता नहीं सब कार्योंमें पराधीनता रहती है और यदि विधवा हुई तो  
महादुखोंकी पात्र बनती है अर्थात् उसे अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं । दुष्ट चेष्टा होनेसे दान शील उपवास आदि पर-  
लोकके हित करनेवाली क्रियाओंके करनेमें प्रधानता नहीं रहती । यदि स्त्रीके संतान न हो तो कुलका नाश हो जाता

अलाटेतरुते रूप न वेधसा ॥ १५३ ॥ गृहच्छिकं न चेदन्यत्किमकारीति नेदृशं । शेषदेव्यो जराजीर्णां तां दृष्ट्वा यौवनोदता ॥ १५४ ॥ का त्वं बद्ध-  
कुतरत्या वेलवोचन्द्रासपूर्वक । उद्यानपालकस्याह मातात्रैवेति सा पुन ॥ १५५ ॥ तासां चित्तपरीक्षाधर्मिणां वाचमुदाहरत् । युष्मदपुण्यभारिन्त्यो मान्या  
सत्यन्यथोषित ॥ १५६ ॥ स्नाताभ्यां कुमारभ्या सह भोगपरायणा । युष्माभिः प्राकृत किं वा पुण्यं तन्मम कथ्यता ॥ १५७ ॥ तत्करिष्यमि येनास्य  
राक्षीभूत्वा गृहीपतेः । इमं विरक्तमन्यासु सिधारयामीति तद्वचः ॥ १५८ ॥ श्रुत्वा ताक्षिणमेतस्यास्तारुण स्मरविह्वल । वपुरेव जराप्रस्तमित्यल सहसाह-  
सन् ॥ १५९ ॥ माहासः कुर्यात्संख्यकलागुणयुजामिह । समप्रेमहृत्प्रतिः किमन्यजन्मन फल ॥ १६० ॥ वदतेति वदतीं ता पुनर्भौ अन्यन फल ।  
तवेदमेव चेदस्मद्विभुना सिद्धिना वय ॥ १६१ ॥ त्वमथ योजयिष्याम परिमुक्तविचारण । भद्रादेरी मवेलासा दामवाणशरद्व्यती ॥ १६२ ॥ उपयातीभि-

गई मानो सीताके विलासों के देखनेसे उत्पन्न हुई लज्जासे ही नव गई हो ॥ १५२ ॥ ब्रह्माने (नामकर्मरूपी ब्रह्माने) इसका यह  
रूप अपनी बुद्धि की चतुरता से नहीं बनाया है किंतु अनायास ही ऐसा बन गया है यदि यह रूप अनायास न बन जाता वह  
स्वयं बुद्धि की चतुरता से बनाता तो फिर ऐसा रूप किसी दूसरी जगह क्यों नहीं बनाता इस तरह उसके रूपका वर्णन करती  
हुई वह बहुत ही आश्चर्य करने लगी । सीताको छोड़कर बाकी की जीवनसे युद्धत हुई रानियों ने बूढ़ापे से जीर्ण हुई उस बुढ़ियाको  
देखकर हंसीपूर्वक पूछा कि बुढ़िया बता तो तू कौन है ? कहाँ से आई है ? इसके उत्तरमें वह बुढ़िया कहने लगी कि मैं इस  
उद्यान की रक्षा करनेवाले की माता हूँ और यहाँ ही रहती हूँ । उन रानियोंके चित्त की परीक्षा करनेके लिये वह फिर कहने  
लगी कि आपलोग बड़ी पुण्यशालिनी हैं और अन्य सब स्त्रियोंसे मान्य हैं तभी तो इन ऐसे कुमारीके साथ भोगोपभोग करनेमें  
लीन हो रहीं हो । आपने पहिले जन्ममें कौनसा पुण्य किया है उसे मुझसे भी कह दीजिये मैं भी उस पुण्यको करूंगी  
और इन्हीं महाराजकी रानी होकर इन्हें अन्य सब स्त्रियोंसे विरक्त कर दूंगी । उस बुढ़ियाकी यह बात सुनकर वे सब  
स्त्रियां एकसाथ हंस पड़ी और कहने लगीं कि केवल इसका शरीर ही बूढ़ा होगया है चित्त तो इसका तरुण है और  
अब भी कामदेवसे विह्वल है ॥ १५३-१५९ ॥ इस प्रकार उनको हंसते हुए देखकर वह बुढ़िया फिर कहने लगी कि  
उत्तम कुल, सुंदरता भला और गुणोंको पाकर तुमलोग हंसी मत करो भला कहाँ तो यही बलभद्रका समान प्रेम प्राप्त  
होनेपर फिर इस जन्मका और फल है ही क्या ? बुढ़ियाकी ये बातें सुनकर वे फिर कहने लगीं कि ए बुढ़िया ! यदि  
तेरे जन्म लेनेका यही फल है तो आज हम विधिपूर्वक अपने पतिसे तुझे मिला देंगे फिर तू विना किसी सोच वि-  
चारके पट्टरानी होजावगी । इस तरह उन स्त्रियोंकी हंसीरूपी बाणोंका निशाना बनती हुई उस बुढ़ियाको देखकर क-

किंचिद्विस्मितामिवावक्ष्य ता जलाशयमासदत् । तत्र सिचम् भिया शीतैर्यन्त्रमुक्तपरमः क्रुणः ॥ १४४ ॥ ईषभिर्मिस्त्रितालोकनयनेवीरोज्वलं । तद्वक्त्रकमलं  
पश्यन् सा बल्य तदाद्रुपत् ॥ १४५ ॥ वक्षोदध्नमसौ नरि प्राविशत्सस्मिता प्रिया । परिरेभोसुक्ता विद्वान्निगतिज्ञा हि नागराः ॥ १४६ ॥ अमराः कज्जकं  
सुखत्वा कान्तास्यान्नेऽपतस्तम । तं राकुलीकृतो दष्ट्रा खेदी ल्हकी च सोभवत् ॥ १४७ ॥ एव जल चिरं रत्ना तत्रापूर्वं मनोरथ । सात पुरो वने रम्यप्र-  
देक्षे स्थितिमात्रजत् ॥ १४८ ॥ तदा सूर्येणखागल्य तयोर्नृपतन्त्रयोः । वीक्ष्यमाणानुलौ लक्ष्मीभुरक्षा सविस्मय ॥ १४९ ॥ प्रभूतप्रसवानध्रकआशोक-  
महीसह । अथस्था सुस्थिता सीता हरिन्मणिगिलातले ॥ १५० ॥ वनलक्ष्मीमिवालोक्वय भूष्यमाणा सखीजनै । युक्तमेव खगोदास्य प्रेमास्यामिति वादि  
नी ॥ १५१ ॥ नभस्य स्थविरा रुच्यपरावर्तनविधया । सीताविलामसदर्शसम्भूतग्रीडयेव सा ॥ १५२ ॥ तद्रूप वर्णयतीत्य सकौतुकममन्वत । खलुद्विकी-  
रहे ह ॥ १४२ ॥ जिसप्रकार इद्र शची देवीके माथ बनमें क्रीडा करता है उसीप्रकार मनोहर नूचनोंसे  
सीताको प्रसन्न करते हुये रामचंद्र उसके माथ वन क्रीडा करने लगे ॥ १४३ ॥ रामचंद्र सीताको कुछ खेद  
विशेष देखकर किसी जलाशयके (सरोवरके) पास पहुंचे और वहांपर सीताको यंत्रके द्राग (पिचकरेसे)  
छोड़ी हुई छोटी छोटी ठंडी बूंदोंसे सींचने लगे ॥ १४४ ॥ जिनके पलक कुछ कुछ सुंद रहे हैं ऐसे चंचल  
नेत्ररूपी कमलोंसे उज्ज्वल उस सीताके मुखरूपी कमलको देखते हुए रामचंद्र उस समय कुछ कम संतुष्ट  
नहीं हुए थे ॥ १४५ ॥ वे बुद्धिमान रामचंद्र आलिंगन करनेको उत्सुक हुई और कुछ कुछ हंसती हुई सीताके समी-  
प छातीतक पानीमें पहुंच गये थे सो ठीक ही है क्योंकि नागरपुरुष (चतुर पुरुष) इसारोंको खूब अच्छी तरह  
समझ लेते हैं ॥ १४६ ॥ उस समय अमर सब कमलोंको छोड़कर एक साथ सीताके मुखरूपी कमलपर पड़ रहे थे  
उनसे व्याकुल हुई सीताको देखकर रामचंद्र कुछ खेद विश्व मी हुए थे और प्रसन्न मी हुए थे ॥ १४७ ॥ इसतरह  
बहुत देरतक जलक्रीडाकर तथा अपने मनोरथ पूर्णकर रामचंद्र अपने रणवासके साथ बनकी किसी सुंदर जगहपर जा  
बैठे ॥ १४८ ॥ उसीसमय वहां सूर्यणखा आई और दोनों राजपुत्रोंकी अनुपम शोभा देखकर बड़े आश्चर्यके साथ उ-  
नमें अनुक्त होगई ॥ १४९ ॥ उससमय सीता बहुतसे फूलोंसे नवे हुए और सुशोभित अशोकवृक्षके नीचे हरिन्मणि-  
बोकी शिलापर आरामसे बैठी थी, अनेक सखियां उसकी शोभा बढ़ा रहीं थीं और वह ठीक वनलक्ष्मीके समान जान  
पड़ती थी उसे देखकर सूर्यणखाने कहा कि इस ऐसी सुंदरीमें विद्याधर रावणका प्रेम होना ठीक ही है ॥ १५०-  
१५१ ॥ परावर्तिनी (जिससे रूप बदला जाय) विद्यासे उसने अपना बुढ़ियाका रूप बना लिया और वह ऐसी नव

भूतमालोक्य कामिनी । पुनर्देवमभामिष्ट मृष्टवचनो नृप ॥ १३३ ॥ त्वद्वचनं दर्पणे वीक्ष्य चक्षुषी ते कृतार्थकं । अदात्त सारमेणैव तृप्ता ते नासि-  
का भृशं ॥ १३४ ॥ त्वच्छब्दयोग्यसल्लापः कर्णौ पूर्णरसौ तव । तव विवाभारस्वादावज्जिह्वाभ्यन्तरसासृष्टा ॥ १३५ ॥ परिभ्रम्य करो तृप्ता तव त्वत्कठि-  
नस्तनौ । मनोर्पीन्द्रियसदृश्या सतृप्तं नितरा प्रिये ॥ १३६ ॥ स्वस्यामेवं स्वयं तृप्ता सिद्धाकृतिरिवाधुना । कोपस्ते सुकण्ठेति सीतां च चतुरोक्तिमि ॥  
१३७ ॥ तत प्रसन्नया सार्द्धं सुख सर्वद्वियोद्धवं । सप्राप्य नूतनं भूपः कोनोपि सुखदः स्वचित् ॥ १३८ ॥ तत्रैव लक्ष्मणोप्येवं स्वप्रियाभि सहारमत् ।  
ददौ तदा मुदा कामस्तेभ्योभ्यर्थ्यमदः सुखं ॥ १३९ ॥ एवं रामश्चिद्वरं रत्ना काते पश्य रविः करे । मर्वान् दहति मूर्दस्थस्तीव्रः कस्यात्र शोतये ॥  
४० ॥ लक्ष्मणाक्रमविक्रान्तिविजितारतिसिन्धु । छायामात्मनि संलीना प्रकुर्वति महीरह ॥ १४१ ॥ वैराज्यपरिवारो वा मृगरूपः सशावकः । क्वा-  
प्यलब्धनाश्रयस्तसौ भ्राम्यतीतस्ततोपि च ॥ १४२ ॥ इतिचेतोहरः सीता मोदयन् स तथा सह । शचीदेव्येव देवेशः कृत्वा वनविनोदनं ॥ १४३ ॥

पित्त हुई सीता चुप ही रही उसे चुप देखकर रामचन्द्र मीठे और इष्ट वचन कहने लगे ॥ १३३ ॥ कि हे प्रिये !  
तेरे नेत्र दर्पणमें तेरा मुह देखकर कृतार्थ होचुके हैं, तेरी नाक तेरे मुखकी सुगंधिसे ही खूब तृप्त हो चुकी है, तेरे  
कान सुनने योग्य तेरे गीत और वचनालापोंसे खूब रससे भरगये हैं तेरी जीभ भी विवाफलेके समान तेरे अपरोका  
( ओठोंका ) स्वाद लेकर आग किसी रसकी इच्छा नहीं करती तथा तेरे दोनों हाथ भी तेरे दोनों कठिन स्तनोंका  
स्पर्शकर तृप्त होगये हैं, इसीतरह हे प्रिये तेरी सच इन्द्रियोंके तृप्त हो जानेसे तेरा मन भी खूब तृप्त होगया है इसतरह  
तू स्वयं अपनेमें ही तृप्त हो रही है इसलिये इससमय तेरी आकृति ठीक सिद्धोंके समान है । हे प्यारी फिर भी क्या तूझे  
कोप करना योग्य है इसप्रकार चतुरताकी युक्तियोंसे रामने सीताको समझाया ॥ १३४-१३७ ॥ तदनंतर रामचन्द्र  
प्रसन्न हुई सीताके साथ सच इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए नये सुखको प्राप्त हुये सो ठीक ही है क्योंकि कहीं कहीं कोप भी  
सुख देनेवाला हो जाता है ॥ १३८ ॥ वहींपर लक्ष्मण भी इसीतरह अपनी रानियोंके साथ क्रीडा करते थे । उम-  
समय कामदेव उन सबको इच्छानुसार सुख दे रहा था ॥ १३९ ॥ इसतरह रामचन्द्र बहुत देर तक क्रीडा कर फिर  
सीतासे कहने लगे कि हे प्रिये देख यह सूर्य अपनी किरणोंसे सबको जला रहा है सो ठीक ही है क्योंकि मस्तकपर  
रहनेवाला कोई भी तीव्र पुरुष भला किसको शान्ति दे सकता है ॥ १४० ॥ लक्ष्मणके आक्रमणके पराक्रमसे  
हारे हुए शत्रुओंके समान ये वृक्ष अपनी छायाको भी अपनेमें मिला रहे हैं ॥ १४१ ॥ शत्रु राजाओंके परिवारके  
समान इन वंश सहित हिरणोंको कहीं भी आश्रय नहीं मिला है इसलिये ही ये इधरसे उधर और उधरसे इधर भि-  
ट



मन्त्राला प्रविश्यात्सगन्तन्निश्चयमन्यथा । उदयस्यश्रमेनादे कार्यं नहि वलत्कृते ॥ ११३ ॥ मनीषतोयुपायेन श्रीरयाद्विद्यते धुने । स्वतो-  
मायामाहूय दत्ता दशरथात्मजौ ॥ ११२ ॥ जिगीषू मन्यदं दुष्टावुच्छेदाहो ह्रतस्वर । पत्नी सीताभिधानास्ति रामाहस्य दुरात्मनः ॥ ११३ ॥ त-  
माहिरिष्ये तौ इतु तदुपाय विचिंतय । इत्यनोक्त्य मारीचो विनयाकुम्भिताजलि ॥ ११४ ॥ शृणु मष्टारक स्वामिन् हितकार्यानुवर्तन । अहितप्रतिपक्ष  
मन्त्रिहृत्यभिदं द्वय ॥ ११५ ॥ भवविह्वलितं कार्यमप्ययमशस्करं । पापातुबधि दुःसाध्यमयोगं सद्विगदितं ॥ ११६ ॥ अन्यदाराहतिनाम पातकेष्वति-  
पातकं । क्रोहि नाम कुले जातो जातुचिन्वितयेति ॥ ११७ ॥ अस्थन्योपि तदुच्छिस्तयासुपाय किमनेन ते । भवद्वशविनाशोऽकहेतुना ध्रुमकेतुना ॥ ११८ ॥  
इत्याख्यन्मार्थकोपाह्वयं तन्मारीच वचो विधी । नादादासममृत्युत्वाद्दृष्टरिट इवैष ॥ ११९ ॥ गृहीतोयव नेत्येतन्नाबीच्चेति मन्त्रिणं । किमनेन वृथा  
मन्त्रिन् वचनेनेष्टयतिना ॥ १२० ॥ वेदिस चेद्वृहि सीतापहरणोपायमार्गं मे । एवं तेनोच्यमानोसौ तव चेष्टेय निश्चयः ॥ १२१ ॥ परीक्ष्य स्वस्या

सोचो । यह सुनकर मारीच नामका मंत्री बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे मष्टारक हे स्वामी ! सुनिधे  
हितरूप कार्मोंका उपदेश देना और अहितका निषेध करना ये दोही काम मंत्रियोंके मुख्य काम हैं ॥ ११०-११५ ॥  
आपने जिस कामके लिये कहा है वह काम अपत्य है अपयश करने वाला है पाप उत्पन्न करनेवाला दुसाध्य और  
अयोग्य है तथा सज्जनोंके द्वारा सदा निंदनीय है ॥ ११६ ॥ दूमेरेकी स्त्रीको हर लेना पापोंमें भी बड़ा पाप है मरु-  
लमें उत्पन्न हुआ ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसे कार्योंका विचार करे ॥ ११७ ॥ उनके नाश करनेके लिये और भी बहुत  
तसे उपाय हैं इस उपायसे आपका क्या काम है यह यह उपाय अग्निके समान आपके वंशके नाश करनेका एक ही  
कारण है ॥ ११८ ॥ इसप्रकार मारीच मंत्रीने कहा परंतु जिसप्रकार थोड़ी ही देरमें मरनेवाला मनुष्य अपनी मृत्यु  
जानकर औषधि नहीं लेता है उसीप्रकार उस बुद्धिहीन रावणने मारीचके कहे हुए सार्थक वचनोंको ग्रहण नहीं  
किया ॥ ११९ ॥ वह मारीचसे कहने लगा कि हे मारीच “ यह तुम्हारी बात नहीं मानते ” यही तुमने क्यों नहीं  
कहा अपने इष्टको घात करनेवाले इन व्यर्थके वचनोंसे मला क्या लाभ है ॥ १२० ॥ हे आर्य ! यदि तू सीताके  
हरण करनेका कोई उपाय जानता हो तो कह । रावणकी यह बात सुनकर मारीच फिर कहने लगा कि यदि आपने  
ऐसा करना निश्चय ही कर लिया है तो अपनी एक दूती भेजकर परीक्षा कर लीजिये कि वह आपमें अनुराग रखती  
है या नहीं । यदि अनुराग रखती हो तब तो किसी सुखकर सहज उपायसे ही ले आनी चाहिये ! यदि वह आपसे  
विरक्त हो तो फिर जवर्दस्ती ले आना । मारीच की यह बात सुनकर रावणने उसकी प्रशंसाकी और कहा कि

पश्यति नो चक्षुः कामिनामित्युदीरितं ॥ १०१ ॥ सत्यं प्रकुर्वता सद्यः शीतासंबंधाकृष्टते । अनगशरसपाताब्जनीकृतचेतसा ॥ १०२ ॥ धन्यान्वत्र न सा स्यात्तु योग्या भाग्यविहीनके । मंदकिन्याः स्थिति क्व स्यात्प्रविद्याय महाद्विधि ॥ १०३ ॥ बलात्कारेण तस्मादपहृत्यासिदुर्बलात् । रत्नमाला-  
भिवालोलो करिष्यामि ममोरसि ॥ १०४ ॥ इति कामागिनतसेन तेन पापेन ससदि । स्वस्यामगार्वनार्थेण दुर्जनानामियं गतिः ॥ १०५ ॥ स नारदः पुन-  
स्तत्र प्रवीस कोपपावक । प्रज्ज्वालयितुमस्येदमाचक्षतेति पापवीः ॥ १०६ ॥ परिप्राप्तोदयो रामो महाराज्यपर्ये दिव्यतः । यौवराज्यपदे तस्य लक्ष्मणोऽस्या-  
स्तहोद्वजः ॥ १०७ ॥ वाराणसीं प्रविष्टान्मया ताभ्या विभक्त्युपेक्षरा । स्वक्षुतादानसमानिताभ्यां सवधमादधुः ॥ १०८ ॥ ततस्ते तेन रागेण लक्ष्मणाविक्षौभतौ जसा ।  
न युद्धं युज्यते ऽस्मास्मिन्न्ययता विप्रहाग्रहः ॥ १०९ ॥ इत्येतदुक्तमाकर्ण्य कुपितस्मितमुदहन् । मत्प्रभावं मुने मंधु श्रोष्यसीति विस्मय्य तं ॥ ११० ॥

गह भाग्यहीनके घर ठहरने योग्य नहीं है भला महासागरको छोड़कर गंगाकी स्थिति कहाँ हो सकती है ॥ १०३ ॥  
वह राम अत्यंत दुर्बल है उससे मैं जबर्दस्ती सीताको लेआऊंगा और चंचल रत्नमालाके समान उसे अपने वशः स्थल पर धारण करूँगा ॥ १०४ ॥ इसतरह कामरूप अग्निसे जले हुए पापी और अनार्य उस रावणने अपनी सभामें ऐसे बचन कहे सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंकी ऐसीही गति हुआ करती है १०५ तदनंतर पापी नारद बढती हुई रावणकी क्रोधरूपी अग्निको और बढानेके लिये फिर कहने लगा कि हे राजन् ! राम इससमय सब उन्नत हो रहा है वह महाराजके पदपर विराजमान है, और युवराजके पदपर उसका छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ १०६-१०७ ॥ जबसे ये दोनों भाई पहुंचे हैं तबसे प्रायः सब राजा महाराजाओंने अपनी अपनी कन्या देकर उनका सम्भाव किया है और इसतरह सबने उनसे अपना संबंध जोड़ लिया है ॥ १०८ ॥ इसलिये लक्ष्मणसे जिसका प्रताप बहुत बढगया है ऐसे रामसे कुछ करना तो ठीक नहीं है हम लोगोंको कुछका आग्रह छोड़ देना चाहिये ॥ १०९ ॥ रावण नारदकी बात सुनकर कुछ क्रोधित होता हुआ हंसा और कहने लगा कि हे मुनि ! आप मेरा प्रभाव क्षीत्र ही मुनैमे । यह कहकर उनको तो विदा किया और खुद मंत्रशालामें गया वहाँ जाकर वह सोचने लगा कि यह काम किसी उपायसे करना चाहिये जबर्दस्ती करना ठीक नहीं क्योंकि बुद्धिमान लोग बड़े भारी लोगोंकी लक्ष्मी भी किसी उपायसे हरण कर लेते हैं । यही सोचकर उसने मंत्रियोंको बुलावा और कहने लगा कि दशरथके दोनों पुत्र बड़े अगिमानी और मदोन्मत्त हो रहे हैं वे अब मेरे इस पदको जीतना चाहते हैं और दुष्ट हैं इसलिये क्षीत्र ही दोनोंका नाश करना चाहिये । उनमेंसे रामचंद्र नामका जो दुष्ट पुत्र है उसकी सीता नामकी स्त्री है, रामको मारनेकेलिये मैं उस सीताको हटना चाहता हूं तुम लोग उसका उपाय



६ श्योषीति स्वयाद्वता ॥ ९१ ॥ कौतुकतः किमर्थं वा तद्वागमनमित्यसौ । रावणेनानुयुक्तः सन् कुशीरिदमभाषत ॥ ९२ ॥ हतजुंयभूषणप्रकरिंकी-  
विवाभित । एतन्मनः समाश्रय दशास्त्र श्रोतुमर्हसि ॥ ९३ ॥ वाराणसीपुरादय ममात्रागमनं विभो । तत्सुरीपतिरिषवाकुंषांवरविवाकः ॥ ९४ ॥ सुतो  
दशरथाख्यस्य रामनामासिबिभ्रुते । कुम्भकपर्वयोगानसौर्विषयमादिभिर्मुने ॥ ९५ ॥ अनृणीय स्वपुण्येन स संग्रस्यलुद्वयान्मुखा । तस्मै यज्ञापदेत्तेन  
स्वयमाहूय कन्यकां ॥ ९६ ॥ स्वनामश्रवणादेवगर्विका मुकुचेतस । परमांस्त्रीगुणैर्कथ्ययुतिसंपदकृताकृति ॥ ९७ ॥ नेत्रगोचरमात्राखिलानंगमुल्लासयिनी ।  
जेतुं संभोगरयते शष्पां मुक्तिवधूमपि ॥ ९८ ॥ त्वामनाहस्य योग्य ते त्रिलङ्कावडसंपदं । भीरत्वं स्वात्मजां तस्मीमिवादानिमिथिलाभिपः ॥ ९९ ॥  
तस्य भोगोपभोगैर्कनिष्ठस्य विदुलश्रियः । पादौ स्थितासहिष्युत्पङ्कजं तमवलोकितुं ॥ १०० ॥ इह प्रेम्णागतोस्मीति नारदोक्त्या बभोगेक्षिता । इच्छा

इत्तरह पूछनेपर वह निर्बुद्धि नारद कहने लगा ॥ ८९-९२ ॥ कि खूब अभिमान करनेवाले और बड़ी कठिनातासे  
जीतने योग्य ऐसे राजा रूपी बड़े भारी शायिकोंके लिये सिंहके समान रावण ! तू अपने मनको एकाग्र कर सुन ॥ ९३ ॥  
हे प्रभो आज मैं यहाँ बनारस नगरसे आया हूँ उस नगरका स्वामी इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान राजा दशरथका  
प्रसिद्ध पुत्र राम वहाँका राज्य करता है । अपने कुल, रूप, वय, ज्ञान, द्यूवीरता और सत्य आदि गुणोंसे वह सबसे  
चढ़ बढकर है और अपने पुण्यकर्मके उदयसे इस समय वह खूब ही उन्नत होनेके सन्मुख हो रहा है श्वर मिथिला देश  
के राजा जनकने यज्ञके बहानेसे स्वयं उस रामको बुलाया, तथा तीनों खंडकी अखंड संपत्ति जिसके हाथमें है और  
जो सबतरह योग्य है ऐसे तेरा तो अनादर किया ( तुझे बुलाया नहीं ) और अपने घर उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान  
सीता नामकी अपनी पुत्री उस रामको समर्पण कर दी । वह सीता एक स्त्री रख है, उसका नाम सुनते ही कामी लोगोंके  
चित्त एक प्रकारके ग्रहण करने योग्य अभिमानको धारण करते हैं संसारकी सब स्त्रियोंके गुणोंको इकट्ठाकर उन सब  
की शोभासे ही मानों उसकी आकृति बनाई गई है, दर्शन होते ही वह संपूर्ण कामदेवको सुख देनेवाली है और सं-  
भोग रतिके अंतमें मुक्तिवधूको भी जीत सकती है ॥ ९४-९९ ॥ भोगोपभोगोंमें ही सदा लीन रहनेवाले उसी राम  
के समीप मैं गया था, उसकी बड़ी भारी लक्ष्मी और शोभाको मैं सह नहीं सका इसीलिये आपके प्रेमसे यहाँ आपके  
दर्शन करनेकेलिये आया हूँ । नारदकी यह बात सुनकर रावणकी इच्छा बढी, 'कामी लोगोंके नेत्र कुछ नहीं देख  
सकते' यह जो कहावत है उसे सत्य करनेके लिये वह तैयार हुआ सीताके संबंधकी बात सुनते ही कामदेवके बाण  
पड़नेसे उसका चित्त छिन्न भिन्न होगया ॥ १००-१०२ ॥ तथा वह सोचने लगा कि धन्यरूप वह भीता दूसरी ज-

पङ्कमपि । दानमानादिभिः मन्थक् सदा तोषयतोत्तमोः ॥ ८१ ॥ वृष्टिप्रहृष्टिष्टाव गलनप्रविनम्रितो । अविऽअग्रतो पूर्वमश्रीदां नीतिवेदिनोः ॥ ८२ ॥  
प्रजापालनकार्यैकनिष्ठयोर्निष्ठितार्थयोः । काले गच्छति कल्याणैः कल्पैः नि शाल्यसौहृदैः ॥ ८३ ॥ इतो लंकाप्रविष्टाय त्रिखंडभरतावनेनः । अधीश्वरोह-  
मेवेति गर्ववर्तभास्करं ॥ ८४ ॥ समावयंतमात्मनं रावणं शत्रुरावणं । निजतेजः प्रतापापहस्तितोष्णाशुर्महलं ॥ ८५ ॥ इंडोपनतसामतविनम्रसुडुदा-  
ग्रम स्फुरन्मणिमयूखावुविकसम्बरणजुज ॥ ८६ ॥ निजासने समासीन कीर्यमाणप्रकीर्णक ॥ अवतीर्ण धराभागमिव नीलनवाबुदं ॥ ८७ ॥ आभायमाण-  
माभाष्य सधूम्रं भयकर । अनुजैरात्मजैर्मौलैर्मैत्रेय परित्राविन ॥ ८८ ॥ भिगोतुगजटाट्टप्रमपिंजरितावरः । इदानीलाक्षसूशोस्त्रलयालकृताशुलिः ॥  
८९ ॥ तीर्थं दुःसुतोद्वासिपभरागकमंडलुः । सुवर्णसूत्रयज्ञोपवीतपूजाजिज्जकृति ॥ ९० ॥ स्वादेत्य नारदोन्मथु सोपद्वारं समैक्षत । तदालोक्य विराड्-  
ये शिष्ट वा भले आदमियोंका पालन करते थे, पहिलेकी मर्यादाको कमी उल्लंघन नहीं करते थे, नीतिको अच्छी त-  
रह जानते थे, उनका प्रजा पालन करना ही एक मुख्य कार्य था और धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंको वे अच्छी  
तरह सेवन करते थे, इसतरह अत्यरहित सुख देनेवाले कल्याणरूप कार्योंसे उनका समय व्यतीत होने लगा ॥ ८२-  
८३ ॥ इधर रावण लंकामें रहकर भारतवर्षकी तीन खंड पृथ्वीका पालन करने लगा, मैं तीन खंडका स्वामी हूं ऐसे  
अभिमानरूपी पर्वतर सूर्यके समान अपनेको मानने लगा, वह सब शत्रुओंको हलाता था इसीलिये उसका नाम रा-  
वण पड़ गया था अपने तेजरूपी प्रतापसे सूर्यमंडलको भी नीचा दिखलाता था, दंड लिये हुए और नभीभूत हुए  
अनेक सामंतोंके नवे हुए सुकुटोंमें जो देदीप्यमान मणिवा लग रही थीं उनकी किरणें रूपी जलमें उमकें चरण-  
कमल सदा प्रफुल्लित रहते थे, किसी एक दिन वह अपने सिंहासनपर बैठा था; उस पर चमर डुलाये जा रहे थे, उम-  
समय ऐसा जान पड़ता था मानों नीले रंगका नया बादल पृथ्वीपर ही उतर आया हो, मोहें घटाकर भयकर रीतिसे  
वह सबसे बात चीत कर रहा था, उसके आस पास उसके छोटे भाई पुत्र सुकुटवद राजा और योद्धा लोग बैठे थे ॥  
८४-८८ ॥ उसी समय पीले रंगकी बड़ी बड़ी जटाओं की कांतिसे जिसके घरीरका रंग कुछ पीला होगया है, जो  
शुंघ्रील तथा अधश्चक्रके कटे और अंगूठियोंसे सुसोमित है, पद्मराग मणिवोंका बना हुआ जिसका कमंडलु, तीर्थोंके  
जलसे मरा हुआ शोभायमान है, जो सुवर्णका बना हुआ यज्ञोपवीत पहिने है और उल्टीसे जिसकी आकृति पूज्य हो  
रही है ऐसे नारदने आकाशसे उतरकर समीपके दरवाजेसे रावणको देखा । नारदको देखते ही रावण उठा और कहने  
लगा कि हे भद्र आपने बहुत दिनमें दर्शन दिये हैं आइये बैठिये, इस समय आप कहाँसे आए हैं और क्यों आए हैं ?

भाषा विना प्रति ॥ ७५ ॥ स्वाम्यमास्यो जनस्थानं कोणो दंडः सगुप्तिकः । मितं भूमिपालस्य सप्त प्रकृतयः स्यूताः ॥ ७२ ॥ इमे राजवस्थितेः प्राद्वैः पदाभी हेतवो मन्त्रा । तेषुपायवती शक्तिः । प्रधानव्यवसायिनी ॥ ७३ ॥ पानीयं खननाद्विनिर्गमनादुपलभ्यते । अदृश्यमपि संप्राप्यं सत्कणं व्यवसायनः ॥ ७४ ॥ फलप्रसन्नहीनं वा सहकारं विहंगमा । विवेकवतो नातोपदिष्टं वा कुरिसतागमं ॥ ७५ ॥ राजपुत्रमनुत्साहं त्वर्जसि विपुलाः प्रियः । स्वकीय-नोपवासांतमाहमास्वाद्योपि च ॥ ७६ ॥ पुत्रं पितृपुत्र्ययोगं मत्वा योग्यं विधीयति । इति विज्ञापनं भुत्वा तयोर्नरपतिस्तथा ॥ ७७ ॥ युवान्यामुक् मेवेदं प्रत्यपदि कुलोक्ति । इत्याविष्कृतहर्षसिभिर्विहीरवतः स्वयं ॥ ७८ ॥ विनस्य राज्ययोग्योऽयमुकुट लक्ष्मणस्य च । प्रबध्य धौबाराज्याविपस्पष्टं महौजस्य ॥ ७९ ॥ महायुद्धसंपादिसत्याशीभिः प्रबन्धेन । पुत्री प्रस्थापयामास पुत्रीं वाराणसीं प्रति ॥ ८० ॥ गत्वा प्रविश्य तामुत्तमं वीरान् जन-

संधि विग्रह करा देना वैधीभाव है ॥ ७१ ॥ इसीतरह स्वामी, मंत्री, कोश, दंड, गठ और मित्र ये सात राजा-ओंकी प्रकृतियां कहलाती हैं ॥ ७२ ॥ विद्वान लोगोंने ये ऊपर कहे हुए सब पदार्थ राज्यके स्थिर रखनेके कारण बतलाए हैं । परंतु इन सबमें उपायशाली शक्ति ही मुख्य रीतिसे काम करनेवाली है ॥ ७३ ॥ क्योंकि पानी खोदनेसे ही निकलता है और अग्नि परस्पर रगड़नेसे ही निकलती है ऊपर तो क्या व्यवसाय ( उपाय वा परिश्रम ) करने से जो श्रेष्ठ फल अदृश्य है दिखाई नहीं पड़ता वह भी मास हो जाता है ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार पक्षीगण फूल और फलसे रहित आमके दृक्षको छोड़ देते हैं, विवेकी पुरुष नाममात्रके कहे हुए खोटे शान्तिको छोड़ देते हैं उसी तरह अनेक तरहकी लक्ष्मियां उत्साहरहित राजपुत्रको छोड़ देती हैं, इतना ही नहीं किंतु अपने मोट्टा-सामंत तथा बड़े मंत्री आदि भी उस राजपुत्रको छोड़ देते हैं ॥ ७५-७६ ॥ इसी तरह पिता उद्यमरहित पुत्रको अयोग्य समझकर दुखी होता है । इसतरह उन दोनों कुमारोंके कहे हुए निवेदन को सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगोंने जो कुछ कहा है वह कुल परंपराके योग्य और ठीक कहा है । इसप्रकार हर्ष प्रकटकर होनेवाले चलभद्रको अर्थात् रामचंद्रको तो राज्यके योग्य भारी झुकट बांधा और प्रतापी लक्ष्मणको युवराजके आधिपत्यका पट बांधा ॥ ७७-७९ ॥ वही विधियोंको प्रकट करनेवाले सच्चे सच्चे आक्षेपोंसे बढाते हुए राजा दशरथने वनारस नगरके लिये दोनों भाइयोंको भेज दिया ॥ ८० ॥ दोनों भा-इयोंने जाकर नगरमें प्रवेश किया और वहाँके रहनेवाले नगरनिवासियोंको तथा उस देशके रहनेवालोंको दान स-न्मान आदि देकर दोनों भाई सदा अच्छी तरह संतुष्ट करने लगे ॥ ८१ ॥ वे दोनों भाई सदा दुष्टोंको निग्रह करते

पद्मा मेदं दंडं च नयकोविदाः । वदंतुपार्याश्वतरो यैरर्चः साच्यते नृपैः ॥ ६२ ॥ प्रियं हितं बन्धु-कायपरिवर्गं हि सामं ततः । हस्त्यश्वदेशरक्षादि दत्ते-  
सोपप्रदा मता ॥ ६३ ॥ कृत्यगन्तामुपजापेन स्वीकृतिं मेदमादिशेत् । शष्पमुष्टिबन्ध दाहलोपविध्वंसनादिक ॥ ६४ ॥ शत्रुक्षयकरं कर्म दंडितैर्दंडमि-  
ष्यते । इन्द्रियाणां निजार्थेषु प्रवृत्तिरविरोधिनी ॥ ६५ ॥ कामादिबाहुविश्रासो वा जयो जयशालिनः । संक्षिप्तः स विप्रहो नेतुरासनं यानसप्रथया ॥ ६६ ॥  
द्वेधीभावश्च षट् प्रोक्ता गुणाः प्रगथिनः प्रियः । कृतविप्रहयोः पञ्चात्केन विदेतुना तयोः ॥ ६७ ॥ भैत्रीभावः स संधिः स्यात्सावधिर्विगतावधिः ।  
परस्परपक्षादोसिभिर्जिगीव्यैः स विप्रहः ॥ ६८ ॥ मार्मिहान्यो ह्यमप्यन्यमशक्तो ह्युर्मिल्यसा । तृणीं भावो भवेत्नेतुरासनं दृष्टिकारणं ॥ ६९ ॥ स्वयं द्या-  
बाहुशूनौ वा द्वयोर्बाहुभुजं स्थित । अरिं प्रति विभोर्मानं तावन्मात्रफलप्रदं ॥ ७० ॥ अनन्यशरणस्नाहुः सप्रथय सत्यसप्रथय । सधिविप्रहयोर्बुद्धिद्विधी-

( खजाना ) तथा दंड ( सेना ) वाअधिक दंड देनेकी शक्तिको प्रशुशक्ति कहते हैं ॥ ६१ ॥ राजा लोग जिनसे अपना अभिप्राय सिद्ध करते हैं ऐसे साम उपप्रद ( दाम ) दंड और मेद ये चार उपाय नयोंके अच्छे जानकार लोग बतलाते हैं ॥ ६२ ॥ बचन और शरीरका आलंगन आदि प्रिय और हितरूप करना साम है तथा हाथी घोड़ा देश रत्न आदि देना उपप्रद वा दाम अथवा दान कहलाता है ॥ ६३ ॥ कृत्य पुरुषोंको फूट डालकर ( परस्पर विरोधकर ) मिला लेना मेद कहलाता है और रस्सी मुष्टियोंसे मारना, जलाना, छिपादेना नाश कर देना आदि शत्रुओंको क्षय करनेवाले जितने काम हैं उन सबको पंडित लोग दंड कहते हैं । इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंमें जो परस्पर विरोध रहित प्रवृत्ति है जोकि काम आदि शत्रुओंको शास देनेवाली है उसे जयशाली लोग जय बतलाते हैं । इसीतरह लक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले लोगोंके संधि, विग्रह, लानेवालेकेलिये आसन देना, यान संभय और द्वेधीभाव ये छह गुण कहे हैं । पाहिले जिन दो ( या अनेक ) राजाओंमें युद्ध हुआ हो और फिर किसी कारणसे उनमें मित्रता हो जाय उसको संधि कहते हैं यह संधि किसी नियत समय तक भी होती है और समयकी सीमाके बिना सदाके लिये भी होती है । परस्पर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंका परस्पर अपकार वा हानि करना विग्रह कहलाता है ॥ ६५-८८ ॥ यह शत्रु इसे मार सकता है परंतु मैं इस शत्रुको नहीं मार सकता यही समझकर शत्रु रहना यह इति वा उभति करनेवाला नेताका आसन कहलाता है ॥ ६९ ॥ अपनी उभति और शत्रुकी हानि करनेके लिये जो उद्यम करना शत्रुपर चढ़कर जाना है यह यान कहलाता है उसका फलभी शत्रुकी हानि और अपनी उभति है ॥ ७० ॥ जिसका कोई शरण नहीं है उसे अपनी शरणमें रखकर आश्रय देना संभय है । तथा शत्रुओंमें

तुर्नृपं ॥ ५० ॥ काशिशेखो क्कमायातमस्ससुरवरं पुरा । वाराणसी तदद्याभूदनभिष्टितनामकं ॥ ५१ ॥ बाहा यथस्ति देवस्य तदा वामुदितोदितं । विषा-  
स्वाव इति ध्रुत्वा नरैरस्ससुरीरितं ॥ ५२ ॥ नियोगमखमः सोढुमेतयोर्मतादव । अस्सद्वस्या महीनायाः स्थित्वात्रैव पुरे पुरा ॥ ५३ ॥ वट्खंडमं-  
कितो पृथ्वी बट्टवो पालयंश्चिरं । एकदेशस्थयोरैव सूर्याचंद्रमसोरिव ॥ ५४ ॥ विभासि भवतोस्तेजो व्याप्नोति महिमंडलं । ततः किं तत्प्रयाणेन मायात-  
मिति सोऽब्रवीत् ॥ ५५ ॥ निषिद्धावपि तां तेन पुनर्देवमवोचता । आचार्यैरेव देवस्य कोहो याननिषेधनं ॥ ५६ ॥ शौर्यस्य संभवो यावद्यावत्पुण्यस्य  
च स्थिति । तान्बुत्साहर्षनाहं न मुंचत्युदयाचिनः ॥ ५७ ॥ बुद्धिदाफिमुपायं च अयं गुणविकल्पन । सम्यक्प्रकृतिमेदाय विधित्वा राजसूनुना ॥  
५८ ॥ मद्येयोगो विषातव्यो विरुद्धान्विचित्रिणीपुषा । स्वभावविनयोद्भूता द्विधा बुद्धिर्निगद्यते ॥ ५९ ॥ मंत्रोत्साहप्रभूका च त्रिधा शक्तिरदाहना ।  
पंचांगमन्त्रनिर्णीतिर्गन्त्रशक्तिर्मतांगमे ॥ ६० ॥ शौर्योर्जितत्वादुत्साहशक्ति शक्तिरसंभता । प्रभुशक्तिर्महीभर्तुराधिक्य कोदादण्डयो ॥ ६१ ॥ सांज्ञ मो-

परंतु अब वह कुछ दिनसे विना स्वामीके पड़ा है । हे देव ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम दोनों भाई वहां रहकर  
उसे फिरसे धनजनसंपन्न और सुशोभित बना दें । दोनों भाइयोंकी यह बात सुनकर महाराज कहने लगे कि मैं  
तुम दोनों का वियोग सह नहीं सकूंगा । दूसरे भरत आदि हमारे ही वंशमें उत्पन्न हुये अनेक राजा महाराजाओंने  
पहिले इसी नगरमें रहकर छह खंडोंसे सुशोभित इस पृथ्वीका बहुत दिनतक पालन किया है । जिस  
प्रकार सूर्य और चंद्रमा एक ही जगह रहते हैं और उनका प्रकाश सब संसारमें फैल जाता है उसीप्रकार एक  
जगह रहते हुए भी तुम दोनोंका प्रताप समस्त पृथ्वीमंडलमें फैल जायगा इसलिये वहां जानेसे कुछ लाभ नहीं  
है तुमलोग मत जाओ ॥ ५१-५५ ॥ इस तरह यद्यपि महाराजने दोनोंको जानेका निषेध किया था तथापि वे दोनों  
भाई फिर कहने लगे कि हे देव आप जो हमको रोकते हैं सो इसमें आपका खेद ही कारण है ॥ ५६ ॥ इस संसारमें  
जबतक शूरवीरताकी संभावना रहती है जबतक पुण्यकी स्थिति रहती है जबतक अपनी उन्नति चाहनेवाले लोग कभी  
अपने उत्साहकी तैयारीकी नहीं छोड़ते हैं ॥ ५७ ॥ अपने विरोधी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजपुत्रोंको  
बुद्धि, शक्ति, उपाय, जय, गुणोंके भेद, और प्रकृतिबोधके भेदोंको अच्छीतरह जानकर बड़ा भारी उद्योग करना  
चाहिये । उनमेंसे बुद्धि दो प्रकारकी है एक स्वभावसे उत्पन्न हुई और दूसरी विनयसे उत्पन्न हुई ॥ ५८-५९ ॥  
शक्ति तीन तरहकी है मंत्र उत्साह और प्रभु उनमेंसे पांच तरहके मंत्रोंसे जो निर्णय हो वह शास्त्रोंमें मंत्रशक्ति कह  
लाती है ॥ ६० ॥ शक्तिके जाननेवाले शूरवीरतासे उत्पन्न हुए उत्साहको उत्साह शक्ति कहते हैं और राजाके कोश

नोपस्य कामस्य साममादिकता वरु ॥ ४१ ॥ कामिनी च उदयमान विपुलान् रंभयन् शृंगं । चंद्रपुष्पान् निशिताम् कुम्भं प्रचण्डः पवित्राङ्गार ॥ ४२ ॥  
तदागमनमात्रेण सद्गनस्सस्तिजातव । काचिदं कुर्विताः काचिन्साधुरागा सगर्हवे ॥ ४३ ॥ काचिकोरमिताः काचिन्महासाः कुम्भोकरे । स्वावगन्धान-  
विसेवा कता इव निरंतरं ॥ ४४ ॥ क्षियानीपटलेन्मुक्ता मुप्युक्ता चंद्रमंडलं । ग्रीष्मो प्रनालामास शिशु रंभीरिपिणिनी ॥ ४५ ॥ मारमामोदमा-  
दाय विकारमुपल रज । सरोवरिकर्णः सार्धमपान्धवजो बंधा ॥ ४६ ॥ तरुग्यानिश्च रानस्य रामान्ति । चतुर्भिर्नृपः । त्रेद्व्याभिर्द्वन्द्वज  
स्यापि प्रथिवीदेविकादिभि ॥ ४७ ॥ ग्रीत्या योऽशमानागिर्जिनप्रभापुरस्सरः । तन्मृगानिर्दंशना विवाहप्रदोऽट्टली ॥ ४८ ॥ ततः तर्जुनु त्रेम्या वा-  
सिन्तो मुखमीयदुः । ताव तान्मामयो यसाद्वाग्देतोः मुक्ताप्रदः ॥ ४९ ॥ एव सपुण्याकाञ्चनुगुणवतापरो । ता उवाचकाविग्न रुदन्तिवोच-  
के साथ अपना संबंध टूट करते हुये, तथा कामियों के अभिमानको चूर २ करते हुए, वियोगियोंको खूब दंड देते हुये  
और संयोगियोंको एकत्रित करते हुए प्रचंड वसंत ऋतुने इस संसारमें प्रवेश किया ॥ ४१-४२ ॥ उम वसंतऋतुके  
आते ही जो वनकी अच्छी वनस्पतियां थीं उनमेंसे कितनी ही वनस्पतियोंपर तो अंकुरे आगये और कितनी ही अपने  
आये हुए नये पत्तोंसे प्रेम प्रगट करने लगीं ॥ ४३ कितनी ही वनस्पतियोंपर कलियां आगई कितनी ही अपने आए  
हुये फूलोंके समूहोंसे ईंसने लगीं और कोई वनवाली स्त्रियोंके समान केवल अपना ही ध्यान करने लगीं ॥ ४४ ॥ उस-  
समय पाला अथवा बादलोंके पटलसे छूटे हुए और इसलिये ही अच्छीतरह दिखनेवाले चंद्रमंडलने सब दिशाओंमें  
झोमा फैला देनेवाली अपनी चांदनी फैला दी थी ॥ ४५ ॥ दक्षिण दिशाका वायु सब जगह फैले हुये पुष्पोंकी रज-  
की सारभूत सुगंधिकी लेकर तालावोंके जलकी छोटी २ बूंदोंके साथ २ बह रहा था । भार्वाच-उस समय दक्षिण-  
दिशासे झीतल और सुगंधित वायु चल रहा था ॥ ४६ ॥ उसी समय चतुर राजा दशरथ ने भीजिनैन्द्रदेवकी पूजा  
आदि सब विधिपूर्वक अन्य राजाओंकी छुंदर सात और कन्याओंसे रामका विवाह किया था और प्रथिवी देवी  
आदि सोलह राजकन्याओंसे बड़े प्रेमसे लक्ष्मणका विवाह किया था ॥ ४७-४८ ॥ इसतरह सब ऋतुओंमें वे दोनों  
ही भाई बड़े प्रेमके साथ उन स्त्रियोंसे मुख पाने लगे तथा वे स्त्रियां भी उन दोनों भार्योंसे मुख पाने लगीं सो  
झीक ही है क्योंकि पुण्य बाण कारणोंसे ही मुख दे सकता है ॥ ४९ ॥ इसतरह अपने पुण्यकर्मके उदयसे सुखोंके  
अनुभव करनेमें तत्पर वे दोनों ही भाई किसी एक दिन समय देखकर महाराज दशरथसे कहने लगे ॥ ५० ॥ किं  
काशी देखमें बनारस नामका उत्तम नगर हमारे पूर्वजोंकी परंपरासे ही हम लोगोंकी आधीनतामें चला आ रहा है

प्रेतत्वयिविधि नैमित्तिकोक्ति । राक्षारिखलेनामा प्रदिहौ रामलक्ष्मणा ॥ ३० ॥ प्रतुष्टाता गभीरेण जगदे-गानुराशिणा । प्रागजन्ममर्तमितायेन एतत्पु-  
न्यपरिपाकतः ॥ -१ ॥ रूपदिगुणसंपत्त्या मृत्युमेता गतोपमा । इति पौनः प्रशमयन्तिः प्रेक्षमाणं यमं तत ॥ ३२ ॥ पुरं नविश्य भूगोके ध्याने  
न्यवसतां सुख । दिनेः कतिपयैरेव नृपमउलसन्निधौ ॥ ३३ ॥ निर्वैद्योमिमत्तं यज्ञविधानं तद्वन्दर । महाभिपूतिभिः सीतां देवा रामाय भूषतिः ॥ ३४ ॥  
दिनानि कानिचित्तत्र सीतयैव प्रिया सयं । नयप्रेमसमुद्भूतं मय रामोन्मथूदृशा ॥ ३५ ॥ ततया दवारयाभ्याणीदागतमभिगोप्तिभिः । जनकानुमताः द्युतिर्या  
परिजानन्वितः ॥ ३६ ॥ अभ्ययोध्यां पुरीं सीतागमेतो जातसम्मदः । लक्ष्मणेन च गतवायु स्याज्जाभ्यां स्वर्भुमिः ॥ ३७ ॥ गरिवारिधं ग प्रत्यगाम्यमानो  
निजा पुरीं । विभूत्या दिविजेंद्रो वा विनीता प्राधिदाज्यी ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा यथोचितं प्रीत्या पितरं प्रीतचेतसा । गर्श्या प्रवर्द्धमानधीः मप्रियाः गानुभः शूरः ॥  
३९ ॥ तदा तदुत्सवं भूयो वर्द्धयमात्मना मधुः । कोटिजालिद्रुलापार्दिभ्यो मंडयन् दिशः ॥ ४० ॥ गन्धिः तपोभर्तुः सार्धं निमहं निधिक्रमताः । प्रक-

इनकी उपमा संसारमें कहीं नहीं है " इसतरह कहते हुए नगरनिवासी लोग जिन्हें देख रहे हैं ऐसे दोनों  
भार्यों ने नगरमें प्रवेश किया और वे महाराज जनकके बतलाए हुए स्थानमें सुखपूर्वक रहने लगे । थोड़े  
ही दिनोंमें अनेक राजाओंके सामने राजा जनककी दृष्टानुसार वह यज्ञकी विधि पूरी हुई और फिर राजा  
जनकने बड़ी विभूतिके साथ रामके लिये सीता न्याह दी ॥ ३१-३४ ॥ रामचंद्रने थोड़े दिन तक लक्ष्मीके  
समान सीताके साथ २ बहुत अच्छी तरह वहीं जनकपुरमें नये प्रेमसे उत्पन्न हुए सुखका अनुभव किया ॥  
३५ ॥ उसीसमय राजा दशरथके यहांसे रामको लेनेके लिये एक मंत्री आया, तदनुसार राजा जनकको  
आज्ञा लेकर किसी शुद्ध तिथिके दिन रामने बड़ी प्रसन्नतासे सीता लक्ष्मण और परिजनोके साथ अयोध्या नगरीको  
गमन किया । वहां पहुंचकर बड़ी औषतासे सामने आये हुए अपने दोनों छोटे भाई, बंधु और परिवारके लोगोंसे  
मिले और जिमप्रकार इंद्र अपनी नगरीमें प्रवेश करता है उसीप्रकार उन विजयी दोनों भाइयोने बड़ी विभूतिके साथ  
अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया ॥ ३६-३८ ॥ माता पिताने संतुष्टचित्त होकर बैठ प्रेममें और यथा योग्य रीतिसं  
उन्हें देखा तथा इस तरह जिनकी लक्ष्मी वा जामा रात दिन बढ रही है ऐसे राम और सीता छोटे भाइयोके साथ २  
सुखसे निवास करने लगे ॥ ३९ ॥ उसीसमय उस उत्सवकी अपने साथ बढाता दृष्ट्वा वसंत ऋतु आया, क्रोडन और  
अमरोंकी भीठी आवाजें ही उसके नगाड़े थे और वह सब दिशाओंको सुजोमित कर रहा था ॥ ४० ॥ कामदेव जो  
तपस्वियोंके साथ संवि करना चाहता था और जिनके व्रत गिथिल हैं उनके साथ युद्ध करना चाहता था उस काम-



जेमामिति मारीचमाहायदसावभीः । सोपि मंदोदरीगेहं गत्वा देवस्य देवि मे ॥ १९ ॥ कर्मवर्णिर्धृणस्यासीदिति तस्मै न्यवेदयत् । सापि देवनिदि-  
 शस्य नाहमस्मि निवारिका ॥ २० ॥ इति प्रभृतदव्येण मंजूषाया विधाय तां । तत्सन्निधानपठेण सहोक्तेव च त मुहुः ॥ २१ ॥ मारीचमान्यसे  
 स्निग्धप्रकृत्या बालिकामिमां । बाधाविरहिते देवे निक्षिपेति गलज्जले ॥ २२ ॥ विरज्य लोचने तस्मै स्वतनूजा समर्पयत् । स नीत्वा मियिलोयान-  
 निकटप्रकटे क्वचित् ॥ २३ ॥ घरांत कृतमज्जो विषण्यो न्यवृत्तबुधा । तस्मिन्नेव दिने दृष्ट्वा गेह निर्माण प्रति ॥ २४ ॥ भूमिसंशोधने लागलाप्र  
 लमाधियोत्तिन । मंजूषामेतदाश्चर्यमिति भुपमवोधयत् ॥ २५ ॥ मुरुषा बालिकां वीक्ष्य तदभ्यन्तरवर्तिनी । वृपस्तदवतारार्थं पिलेखादबुध्य स ॥  
 २६ ॥ तत्पूर्वापरसवधमेया सीतामिधानिका । मुता भवैतवेत्येता यमुधायै ददा मुदा ॥ २७ ॥ वसुधा च मुद्रागेहे गुणयती कलागुणान् । अवर्दय-  
 दिमा गूढ लंकेशोपि न वैत्यम् ॥ २८ ॥ वार्ता जनकयागस्य तस्माद्भात्रागमिष्यति । दास्यत्यवश्य रामाय ता कन्या मिधिलेश्वरः ॥ २९ ॥ तत्कुमारी

मी हे मारीच तू स्वभावसे ही कोमल प्रकृतिवाला है तू इस कन्याको किसी उपद्रवरहित जगहमें रखना । उससमय उं-  
 सके नेत्रसे आंसू बह रहे थे उन्हें पोंछकर उसने वह कन्या मारीचको सुन्द की । वह मारीच उस कन्याको लेकर  
 मिथिला देशके निकट किसी बनमें गया और संदूकको पृथ्वीमें गाडकर शोक करता हुआ तथा खेदखिन्न होता हुआ  
 वहांसे लौट आया । दैवयोगसे उसी दिन बहुतसे लोग घर बनानेके लिये भूमि देख रहे थे उनके हलकी नोकसे वह  
 संदूक दिखपड़ी उन्होंने तुरंतही राजाको खबर दी और कहा कि यह आश्चर्य करनेवाली संदूक हमलोगोंको मिली  
 है ॥ २१-२५ ॥ महाराजने उस संदूकके भीतर सुंदर कन्याको देखा और उसीमें रखे हुए लेखसे उसके उत्पन्न हो-  
 नेका हाल तथा उसका अगिला पीछिला सब संबंध जान लिया उन्होंने उसका सीता नाम रक्खा बड़ी प्रसन्नतासे व-  
 सुधा रानीको उसे सौंपा और कहा कि इसे तुम कन्याके ममान पालो ॥ २६-२७ ॥ तदनंतर रानी वसुधा अपने सुधाधर्म  
 छिपे छिपे बढ़ाने के साथ उसके कला गुणोंको भी बढ़ाने लगी । यह बात रावणको भी मालूम नहीं है तथा जनक  
 कोई यज्ञ करता है यह बात भी उसे मालूम नहीं है इसलिये इस यज्ञमें रावण तो आवेगा नहीं और जनक अवश्य ही  
 रामके लिये वह कन्या समर्पण कर देंगे ॥ २८-२९ ॥ इसलिये दोनों कुमारोंको वहां अवश्य ही भेजना चाहिये ।  
 इसतरह नैमित्तिकके कहे अनुसार सब सेनाके साथ राम लक्ष्मणको वहां भेज दिया ॥ ३० ॥ राजा जनकने बड़े प्रेम  
 से सामने आकर उनका आदर सत्कार किया, वहांके नगरनिवासियों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा “पहिले  
 जन्मके संचित किये हुए अपने अनंत पुण्य कर्मोंके उदयसे ही इन्हें ऐसी रूप आदि गुणोंकी संपत्ति मिली है सब है

लंजतामिति ॥ ६११ ॥ हस्तावलम्बनेनैव निराकर्तुं समुद्यताः । 'युष्मासिः सम्गमेवोक्तं लब्ध्वा श्रीविषयैव सा ॥ ६१२ ॥ न पुष्टु यदि तत्रास्ति लब्ध्वा सा-  
धारणी भवेत् । ततः स्त्रीसिः कथं पुंसा संगमोऽनगसंस्कृतः' ॥ ६१३ ॥ इति वृद्धोक्तिमाकर्ण्य ब्राह्मणोऽयं न केवल । कोऽपि रूपपरमश्रुतिविषया मामु-  
पागत ॥ ६१४ ॥ इत्योक्तलज्ज्य को दोषो विप्र प्रापूर्णको मम । तिष्ठलत्रेति तत्रोक्तिः निवारयति स्म सा ॥ ६१५ ॥ तन्निशावसितौ शुद्धदेशजस्वरमेव-  
वित । गीतवान्मधुरं वृद्धचिरं श्रोत्रमनोहरं ॥ ६१६ ॥ गन्धर्वदत्ताकल्याणकाले सालक्रिय कल । जीवधरकुमारस्य गीतं वैतच्छ्रुते सुख ॥ ६१७ ॥ इति ग्रात  
समुद्गाय विनयेनोपसृत्य त । साप्राक्षीत्केषु शास्त्रेषु प्रबोधो भवतामिति ॥ ६१८ ॥ 'धर्मार्थकामशास्त्राणि भूयोऽभ्यस्तानि यत्नतः । तेषु धर्मार्थयो काम-  
शास्त्रात्फलविनिश्चय ॥ ६१९ ॥ कथं तदिति चेत्किंचिन्मया तत्र निरूप्यते । पंचेन्द्रियाणि तेषां च विषया पचवा स्मृताः ॥ ६२० ॥ स्पृशादयोऽष्टधा  
स्पर्शा कर्कशाणां श्रुतोदिताः । रसोऽपि पचविषः श्रोको मधुरादिर्मनीयसि ॥ ६२१ ॥ कृतकं सहजं चेति गन्धोऽपि द्विविधो मतः । सर्वं युगधनुर्गन्धचे-

उस बूढ़के वचन सुनकर वह गुणमाला मनमें कहने लगी कि यह कोरा ब्राह्मण नहीं है किंतु रूप बदलनेवाली विद्यासे  
कोई अन्य ब्राह्मणका रूप बना कर मेरे पास आया है ऐसा विचार कर वह प्रत्यक्षमें कहने लगी कि इसमें कोई दोष  
नहीं है यह ब्राह्मण मेरा अतिथि है इस लिये इसे यहां बैठने दो' इसप्रकार कह कर उसने दासीको रोक दिया ॥ ६१४-  
६१५ ॥ इसप्रकार रात्रिके बीच जानेपर शुद्धज और देशज आदि स्वरोंके भेदोंको जाननेवाले उसने मधुर गीत गाये गन्धर्वदत्ताके  
स्वयंवरके समय जो जीवंचरने अलंकार सहित मधुर गीत गाये थे वैसे ही गीत उस ब्राह्मणने गाये जिसे सुनकर गुणमालाको बहुत  
ही सुख हुआ ॥ ६१६-६१७ ॥ सवेरे ही उठकर वह गुणमाला बड़ी विनयके साथ उस ब्राह्मणके पास पहुंची और उससे पूछने  
लगी किन किन शास्त्रोंमें आपका ज्ञान अच्छा है ॥ ६१८ ॥ इसके उत्तरमें जीवंचरने कहा कि मैंने धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र और  
कामशास्त्र बड़े यत्नसे अच्छी तरह अभ्यास किये हैं । इन शास्त्रोंमें कामशास्त्रसे ही धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्रके फलका निश्चय  
होता है भावार्थ-धर्मसे अर्थ और अर्थसे कामकी प्राप्ति होती है इसलिये कामकी प्राप्तिसे धर्म और अर्थका निश्चय हो  
जाता है ॥ ६१९ ॥ यह कैसे होता है सो भी मैं कुछ थोड़ासा कहता हूं । इंद्रियां पांच हैं और स्पर्शादिक उनके विषय  
भी पांच ही प्रकारके कहे गये हैं उनमेंसे शास्त्रोंमें कहे हुए कर्कश आदिके भेदसे स्पर्शके आठ भेद होते हैं और  
विद्वानोंने मधुर आदिके भेदसे रस भी छह प्रकारका बतलाया है ॥ ६२०-६२१ ॥ सुगंध और दुर्गन्धरूप चेतन अचेतन  
वस्तुओंमें उत्पन्न होनेवाला सब तरहका गंध भी कृतक और सहजके भेदसे दो तरहका माना गया है ॥ ६२२ ॥ इसीत-  
रह सपेद काले आदिके भेदसे रूप पांच तरहका है और जीव तथा अजीवसे उत्पन्न हुए स्वर षड्ग आदिके भेदसे सात

तनेतरवरतुंगः ॥ ६२२ ॥ रूपं पंचविधं श्वेतकृष्णादिप्रभिभागभाक् । यद्गुणदयः स्वरा सप्त जीवाजीवसमुद्भवाः ॥ ६२३ ॥ इत्याद्याविंशतिर्भूला द्वैगुण्य पुनरागता । इष्टानिष्टविकल्पाभ्यां षट्पञ्चाशाद्विकल्पना ॥ ६२४ ॥ तेष्विष्टाः कृतपुण्याना तानि पुण्यानि धर्मतः । निषिद्धविविधत्यागो धर्मः सङ्क्रियरीरित ॥ ६२५ ॥ निषिद्धविषय तस्मात्पविहृत्य विचक्षणः । शोयानमुभयवर्तोऽत्र कामशास्त्रविदो मताः ॥ ६२६ ॥ लयाशुभयमानेषु दोषाः संतीह वेपु षित् । इति तेनोदित भूला तदोषक्षिनिवृत्तये ॥ ६२७ ॥ लयोपदेशः कर्तव्यो यास्यामि तव सिध्यतां । इत्युदीर्णवर्ती विप्रस्ता व्यनैवीत्यल्लादिषु ॥ ६२८ ॥ सर्वे तत्पुनरन्येषु विहितं मनः प्रागमन् । स्थितस्तत्रायमेकांतप्रदेशे गुणमालया ॥ ६२९ ॥ सह स्वाभाविक रूपमात्मनः समदर्शयात् । कन्या दृष्ट्वा तं जातसद्यथा सत्रपा सती ॥ ६३० ॥ मौनेनावस्थितां वीक्ष्य तामेव प्राक्नोक्तिमि । कृष्णवासादिजाताभिः प्रत्यापयदतिदुतं ॥ ६३१ ॥ पुनः प्राक्नारूपस्थः पुष्पशय्यामधिष्ठितः । कुरु मया दलवाहमिति प्रेषयति स्म ता ॥ ६३२ ॥ तां च स्नेहेन तत्कर्म कुर्वती वीक्ष्य विस्मयात् । ते राजसूनुवः सर्वे तन्मन्त्रादिकमस्तुवन् ॥ ६३३ ॥ अथ तस्मा-

प्रकारके हैं ॥ ६२३ ॥ इसप्रकार पांचों इंद्रियोंके सब विषय अष्टाईस होते हैं और फिर उनमें भी इष्ट और अनिष्टके भेदसे प्रत्येकके दो दो भेद हो जाते हैं इसप्रकार सब छप्पन भेद हो जाते हैं ॥ ६२४ ॥ इनमेंसे जो इष्ट विषय हैं वे पुण्यवानोंको प्राप्त होते हैं तथा वे पुण्य धर्मसे प्राप्त होते हैं और निषिद्ध विषयोंका त्याग करना ही सज्जनोंके द्वारा धर्म कहा जाता है ॥ ६२५ ॥ इसलिये जो चतुर पुरुष निषिद्ध विषयोंका त्यागकर शेष विषयोंका अनुभव करते हैं वे ही इस संसारमें कामशास्त्रके जानकार कहलाते हैं ॥ ६२६ ॥ हे गुणमाले ! तू जो विषयोंका अनुभव करती है उसमें कितने ही दोष हैं । ब्राह्मणकी यह बात सुनकर वह गुणमाला कहने लगी कि उन दोषोंकी दूर करनेकेलिये तू मुझे कुछ उपदेश दो । मैं आपकी शिष्या बन जाऊंगी । यह सुनकर उस ब्राह्मणने उसे बहुतसी कलाएं सिखलाई ॥ ६२७-६२८ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन सब लोग बनमें घूमने फिरनेकेलिये गये वहां जाकर जीवंधरने गुणमालाके साथ एकांतमें बैठकर उसे अपना स्वाभाविकरूप दिखलाया । उसे देखकर सती गुणमालाकी कुछ संदेह हो गया और वह लज्जित होकर मौन धारणकर बैठ गई । उसे मौनसे वैठी देखकर जीवंधरने सुगंधित चूर्णकी कथासे लेकर पहिलेकी सब बातें कहकर बहुत ही शीघ्र उसे विश्वास दिला दिया ॥ ६२९-६३१ ॥ तदनंतर फिर वह अपना पहिला ब्राह्मणकासा रूप बनाकर पुष्पशय्यापर बैठ गया और गुणमालासे कहने लगा तू मेरे पैर दाब ॥ ६३२ ॥ वह गुणमाला भी उसके स्नेहसे पैर दाबने लगी उसे पैर दाबते देखकर उन राजपुत्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और फिर वे सब उस ब्राह्मणके मंत्र आदिकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६३३ ॥ तदनंतर वह कुमार बनसे अपने घर आगया गुणमालाने भी घर आकर अपने माता पितासे जीवंधरके

द्रुनाद्रेहमागतो गुणमालया । मातुः पितुश्च जीवंचरागतिः कथिता मिव ॥ ६३४ ॥ शिवाहविधिना तौ च तां तस्माकुस्ता प्रिया । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा जीवंचरस्तया ॥ ६३५ ॥ वृष्णानि सह भुजानः सर्वबन्धुसमन्वितः । जनप्रस्तममनोऽभ्याग्यो गधगजं मिरि ॥ ६३६ ॥ विजयादि ममारुह्य नृ-रंगबलान्नतः । गृहं गयोत्कटाख्यस्य प्राविशत्परमोदय ॥ ६३७ ॥ तदुत्सव समाकर्ण्य स काष्ठांगारिक कुषा । पर्य वैश्यात्मजो मतो मनाक् च न बिभेति मत् ॥ ६३८ ॥ इति प्रकाशकोपोऽभ्युपग्रीह्य सन्निवोत्तमाः । “जीवंचराकुमारोऽयं देवादाविष्कृतोदयः ॥ ६३९ ॥ गन्धर्वदत्तया साक्षात्क्षम्येव समुपाश्रित । यक्षेण कृतसंवृद्धिभिन्नेणाव्यसिचरिणा ॥ ६४० ॥ मधुरादिसहाय्यश्च सहितो गन्ततो मद्रान् । अमेयविक्रमोऽनेन विप्रहो नैव गुज्यते ॥ ६४१ ॥ बलिना सह युद्धस्य हेतुः कोऽपि न विषते” । इत्यादियुक्तिमद्वागिभस्तामशु समशीलमन ॥ ६४२ ॥ इदमन्यदित किञ्चित्प्रसृत प्रतिपाद्यते । विदेदविषये ह्ययां विदेदशब्दं पुं परं ॥ ६४३ ॥ गोपेन्द्रो भूषतिस्तस्य पाता पातितविद्विषः । दुक् शुचिव्यादिसुदर्या राश्यां रत्नवती सती ॥ ६४४ ॥ चन्द्रकव्यधने दलं

आनेके समाचार कह सुनायें और माता पिताने भी विधिपूर्वक विवाहकर वह गुणमाला जीवंधरको व्याह दी । इसके बाद वह जीवंधर कुछ दिनें तक तो वहींपर उसी गुणमालाके साथ रहा और सब भाई बंधुओंके साथ अनेक तरहके सुखोंका अनुभव करने लगा । संसारके लोग भी उसके बडेभारी भाग्यकी प्रशंसा करने लगे थे किसी एक दिन परम विभूतिको धारणा करनेवाले उस कुमारने चारोंप्रकारकी सेना लेकर और विजयगिरि नामके गंधगजपर सवार होकर गंधोत्कटके घर प्रवेश किया ॥ ६३४-६३७ ॥ उस उत्सवको सुनकर काष्ठांगार बहुत क्रोधित हुआ और कहने लगा कि देखो यह महा अभिषानी उन्मत्त हुआ वैश्यपुत्र मुझसे विष्कुल नहीं डरता है इसप्रकार कहकर वह प्रगटरीतसे क्रोध करने लगा उसे क्रोधित देखकर अच्छे अच्छे मंत्री कहने लगे कि “यह जीवंधर कुमार है भाग्यके उदयसे इसे बड़ी भाभी विभूति प्राप्त हुई है गंधर्वदत्ता भी साक्षात् लक्ष्मीके समान इसकी सेवा करती है, अभिन्न मित्र ऐसे यज्ञके द्वारा इसकी वृद्धि हुई है और मधुर आदि साधियोंके साथ यह बडे यज्ञसे रहता है यह महान् पुरुष है इसके पराक्रमका कोई भेदन नहीं कर सकता इसलिये इसके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है क्योंकि बलवानके साथ युद्ध करनेसे कोई लाभ नहीं होता इसप्रकारके युक्तियोंके बचनोंसे मंत्रियोंने उसे शीघ्र ही शांत कर दिया ॥ ६३८-६४२ ॥ अब कथांतरके बाद प्रकृत विषयकी कथा कहते हैं विदेह देशमें एक विदेह नामका उत्तम नगर है उसमें शत्रुओंको नष्ट करनेवाला राजा गोपेन्द्र राज्य करता था उसकी पृथिवी सुंदरी नामकी रानीसे सती रत्नवती नामकी पुत्री हुई थी ॥ ६४३-६४४ ॥ उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो चंद्रक यंत्रपर निशाना मारकर चलुरता दिखलावेगा उसीको मैं वरमाला पहिनाकर अलंकृत करूंगी उसके सिवाय अन्य

माल्यालकरोम्यह । नेच्छाम्यन्य पति क्विदकरोदिति संगरं ॥ ६४५ ॥ तद् ज्ञात्वास्या पिता चापवेदवैद्युदितोदित । जीवधरोऽत्र तत्कन्यासिमां तत्सन्निधि नये ॥ ६४६ ॥ इति राजपुरे गत्वा सकन्यः सहसाधन । घोषणा कारयामास स्वर्गवरविधिं प्रति ॥ ६४७ ॥ तद्व्योषणा समाक्षये सर्वे भूस्वधरेधराः । कन्यापतिप्रहायायान्मृदु राजपुरे प्रति ॥ ६४८ ॥ स्वर्गवरविधा तस्मिन्मृदुकव्यधने नृपान् । स्मृतितांस्तान्बहुवीक्ष्य जीवधरकुमारकः ॥ ६४९ ॥ कृत- सिद्धनमस्कारः स्वगुरोश्चार्थवर्मणः । विधाय विनय नाभमानुवादेयशैलम् ॥ ६५० ॥ स्थित्वा विभास्वरस्तस्मिन्मृदु स्खलनवर्जित । कृतवैधो व्यधात्सिहन द नादितद्विफट ॥ ६५१ ॥ साधु विद्वन्मनेनेति प्राशंसन् प्राशिकास्तदा ॥ ६५२ ॥ साधवस्तात्र श्रोत्योऽयमनयोन्नु सगम । शरत्समयहृत्वात्योरिवेति प्रीतिमागत ॥ ६५३ ॥ सर्वत्र विजय गुण्यवता को वात्र विस्मय । इत्यादासीन्यमापन्ना मध्यमाः हतवृद्धयः ॥ ६५४ ॥ काष्ठाङ्गारिकमुद्वास्ते नीचाः प्राप्तपराभवा । प्राकस्यातदनुश्रुत्य दुग्धकोपप्रचोदिताः ॥ ६५५ ॥ पापास्तुमुत्पुद्गेन कन्यामाहर्मुच्यता । बुद्ध्या जीव-

किसीको अपना पति नहीं बनाऊंगी ॥ ६४५ ॥ उस कन्याकी ऐसी प्रतिज्ञा जानकर उसके पिताने सोचा कि इस सं- सारमें धनुषविद्याको जाननेवाला और अत्यंत ऐश्वर्यशाली जीवधर ही है इसलिये उसीके समीप यह कन्या ले चलनी चाहिये । इसप्रकार विचारकर वह राजा उस कन्याको लेकर अपनी सब सेनाके साथ राजपुर नगरमें पहुंचा और वहां जाकर उसने स्वयंवरकी घोषणा कराई ॥ ६४६-६४७ ॥ इस घोषणाको सुनकर उस कन्याके साथ विवाह करनेकेलिये भूमिगोचरी और विद्याधरोंके राजा लोग शीघ्र ही राजपुर नगरमें आ पहुंचे ॥ ६४८ ॥ उस स्वयंवरमें उस चंद्रक यंत्रपर निशाना मारनेमें बहुतसे राजा लोग चूक गये तब उन सबको स्वलित हुआ देखकर जीवधर कुमार उठा उसने पहिले ही सिद्धोंको नमस्कार किया फिर अपने गुरु आर्यवर्माकी विनय की और उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए बालसूर्यके समान दैदीप्यमान होकर खड़ा हुआ । तदनंतर उसने बिना किसी भूलके उस यंत्रमें निशाना मार दिया और फिर सब दिग्भ्रात्रोंके किनारोंको शब्दायमान करता हुआ सिंहनाद किया ॥ ६४९-६५० ॥ उसीसमय धनुर्विद्याके अच्छे जान- कार लोग उसकी प्रशंसा करने लगे कि इसने अच्छा निशाना मारा तथा उस रत्नवती कन्याने भी प्रसन्न होकर कुमारके कंठमें बरमाला पहिनाई ॥ ६५१ ॥ सज्जन लोग कहने लगे कि जिसप्रकार शरद समय और हंसोंकी पंक्ति का समागम होता है उसीप्रकार इन दोनोंका समागम बहुत ही ठीक हुआ है इसप्रकार उन दोनोंके समागमसे सज्जन लोगोंको बहुत ही प्रेम हुआ था ॥ ६५२ ॥ इसीतरह बुद्धिमान् पण्डित्य लोग उदासीनता धारण करने लगे थे और कहने लगे थे कि पुण्यवानोंका सब जगह विजय होता है इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ६५३ ॥ तिरस्कारको प्राप्त हुए जो काष्ठान्गरादि

धरस्तेषां वैषम्यं नयकोविद ॥ ६५६ ॥ सत्यधरमहाराजसामन्ताशातिकं तदा । प्राणिभित्तिं ससिद्धान् ब्रह्मान् सोपायानान्बहून् ॥ ६५७ ॥ “अहं सत्यधराधी-  
शाद्विजयाया सुतोऽभवं । मत्पूर्वकृतदैवेन ताभ्यामुत्पत्त्यनन्तरं ॥ ६५८ ॥ विद्युकोऽस्मिन्वसिगव्यशरणे समर्पयिषि । काष्ठाङ्गारिकपापोऽयं काष्ठागाराद्वि-  
क्रियात् ॥ ६५९ ॥ प्राणसधारणं कुर्वन्नुष्मदुर्वीर्यतां कृत । द्वितीयप्रकृतिर्नाको लघ्वरश्चो दुराधम ॥ ६६० ॥ तमेवाहिर्वाहृत्य स्वयं राज्ये व्यवरिष्यत । उ-  
च्छेद्व्यो न ममैवाशु शत्रुबाह्वतामपि ॥ ६६१ ॥ रसातलं गतोऽप्यथ मयावश्यं हनिष्यते । सत्यधरमहीशस्य सामन्तास्तस्य भाषिका ॥ ६६२ ॥ योमा  
पुष्टा महाभाद्रास्तेनान्ये चानुजीविनः । कृतघ्नममुमुक्षुधेनुमर्हति कृतवेदिनः” ॥ ६६३ ॥ ते तत्सदेशमाकर्ष्य कुमारोऽयं नृपात्मजः । सत्यमेवेति सभास्य  
बह्वर्तेन संगताः ॥ ६६४ ॥ ततः सनद्धसैन्यं संस्तस्य गत्वोपरि स्वयं । युद्धं नानाप्रकारेण चिरं निर्जित्य तदहं ॥ ६६५ ॥ गिर्यतविजयं गङ्गाज

नीच पुरुष ये वे जीवन्तरेके पहिलेके पराभवका ( गंधर्वदत्ताके विवाहके समय होनेवाले पराभवका ), स्मरण करने लगे  
और नीच क्रोधसे प्रेरित होकर उन पापियोंने भारी युद्धकर कन्याको हरणकरनेका उद्यम किया । नर्थेकी जाननेवाले  
जीवन्तरेने उनकी यह विषमता जान ली और उसीसमय उसने सत्यधर महाराजके जो सामंत थे उनके समीप भेट लेलेकर  
बहुतसे दूत भेजे उसने उन दूतोंके साथ यह समाचार कहला भेजा कि “मैं विजया महारानीसे उत्पन्न हुआ महाराज स-  
त्यधरका पुत्र हूं मैं अपने पहिले किये हुए कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होते ही माता पितासे अलग हो गया था और यहाँके  
उत्तम वैश्य गंधोत्कटकी शरणमें जाकर इतना बड़ा हुआ हूं यह पापी काष्ठंगार काष्ठंगारकी विव्रियासे अर्थात् लकड़ी  
लाकर बेचना आदि व्यापारसे प्राण धारण करता था परंतु आपके स्वामी महाराज सत्यधरने इसे मंत्री बनाया यह रा-  
जसी प्रकृतिका नीच मनुष्य है इस दुष्टने छिद्र पाकर सर्पके समान उन्हीं सत्यधर महाराजको मारा और आप स्वयं रा-  
जसिंहासनपर बैठ गया । इसलिये आज मुझे ही इसका नाश नहीं करना चाहिये किंतु यह आपका भी शत्रु है इसलिये  
आपको भी शीघ्र ही इसका नाश करना चाहिये । यदि आज यह रसातलमें भी पहुंच जाय तो भी मैं आज इसे अवश्य मा-  
रूंगा । आप लोग सत्यधरके सामंत हैं उनके भक्त हैं उनके योद्धा हैं उनके द्वारा पुष्ट हुए हैं उनके महामंत्री हैं और कृ-  
तज्ञ अर्थात् अपने स्वामी महाराज सत्यधरके उपकारोंको जानते हैं इसलिये आपको तथा और भी जो उनके अनुचर वा  
अनुयायी हैं उन सबको आज इस कृतघ्नका अवश्य ही नाश करना चाहिये” ॥ ६६५-६६६ ॥ इस समाचारको पाकर  
बहुत सामंत विचार करने लगे कि यह कुमार अवश्य ही राजपुत्र है इसमें कोई संदेह नहीं है यही विचारकर बहुतसे सा-  
मंत उसकीओर आ मिले ॥ ६६६ ॥ तदनंतर अपनी सब सेना तयारकर वह कुमार स्वयं उसके ऊपर गया और बहुत

समदमूर्जित । समारुढः प्ररुढाङ्ग काष्ठाट्गारिकमुद्धत ॥ ६६६ ॥ उपर्यशनिवेगाद्यविद्ययातकरिण स्थित । हत्वा चकार चक्रेण तनुशेष रुषा द्रिय ॥ ६६७ ॥ विलोक्य तद्रुहे भग्न भयादुपगते सति । तदाकारितसमाश्रय विधायामयघोषणः ॥ ६६८ ॥ मधुनसर्वान् समाहूय विनैयानवलेक्य तान् । तत्कालोचितसभाषणादिभिर्हृदमनयत् ॥ ६६९ ॥ जिनपूजां विनिर्घृत्य कृतमगलसरिक्कमः । यक्षेण भूभुजं सर्वैश्वरासुराज्याभियेचनः ॥ ६७० ॥ रत्नवत्या च सप्राप्य स विवाहमहोत्सवः । कुन्दा गन्धर्वदाया महत्याः पट्टवधन । नदाब्बाविसरानीतमातृजायादिसिन्धुतः । सप्राप्य परैश्वर्यमूर्जितो निजितद्विष ॥ ६७१ ॥ यथान्याय प्रजा सर्वत्रः पालयन् हेलेवेसिताम् । लीलयाऽनुभवन् भोगान् स्वपुण्यफलितान् स्थित ॥ ६७२ ॥ सुराभिसलयोषाणे कदाचिद्विहरन् विभुः । वरधर्मयति दृष्ट्वा संप्राप्य विहितानसि ॥ ६७३ ॥ ततस्तत्त्व विदित्वाऽप्रतप्तोऽप्युद्दर्शनमल । नदाब्बायाश्च सम्यक्त्वव्रतशीलान्युपगमत् ॥ ६७४ ॥ एतैः सुखमसां स्वाप्तैः साकं कालमजीगमत् ।

देरतक जनेक तरहसे खुदकर उसने काष्ठांगारकी सेनां हराई ॥ ६६६ ॥ तब प्ररुढ आङ्गाको चलानेवाला उद्धत काष्ठांगार अशनिवेग नामके प्रसिद्ध हाथीके ऊपर सवार होकर आया और उसके सामने मदनपत्त और बड़े भारी ऐसे विजयगिरि नामके गंधजपर सवार होकर जीवंधर भी आया । जीवंधरन क्रोधमें आकर चक्कसे उस शत्रु काष्ठांगारको मार गिराया ६६७-६६८ राजा काष्ठांगारके मरनेसे भंगके भयसे उसकी सेनाको भागती हुई देखकर जीवंधरने अभय घोषणा दिलवाई और सब को आश्वासन दिया ॥ ६६९ ॥ तदनंतर कुमारने अपने सब भाई बंधुओंको बुलाया और सबको नम्र देखकर उस समय के योग्य बात चीतके द्वारा सबको प्रसन्न किया ॥ ६६९ ॥ इसके बाद सबसे पहिले श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा की गई फिर अनेक मांगलिक क्रियाएं हुई और फिर उस यक्ष और सब राजाओंके द्वारा जीवंधरका राज्याभिषेक किया गया ॥ ६७० ॥ तदनंतर रत्नवतीके साथ उसका विवाह महोत्सव हुआ और फिर गंधर्वदाकाको महापट्ट बांधा गया अर्थात् वह महा पट्टरानी बनाई गई ॥ ६७१ ॥ नंदाढ्य जीवंधरकी माता विजयाको ले आया था और हेमाभा आदि सब जीवंधरकी रानियोंको ले आया था उन सबके साथ जीवंधरकुमार परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ बहुत ही दैदीप्यमान हुआ और उसने सब शत्रुओंको जीता ॥ ६७२ ॥ तदनंतर वह न्यायपूर्वक कौतुकसे ही सब प्रजाका पालन करने लगा और अपने पुण्य कर्मके फलसे प्राप्त हुए इष्ट भोगोंका लीलापूर्वक अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥ ६७३ ॥ किसी एक समय महाराज जीवंधर सुरमलय नामके उद्यानमें विहार करने गये थे वहां पर उन्होंने वरधर्म नामके मुनिराजके दर्शन किये उनके समीप जाकर नमस्कार किया उनसे तत्त्वोंका स्वरूप जाना और व्रत धारण कर सम्यग्दर्शनको निर्मल किया । नंदाढ्य आदि भाइयोंने भी सम्यग्दर्शन व्रत और शील धारण किये ॥ ७७४-७७५ ॥ इस प्रकार वे जीवंधर महाराज इन प्राप्त स्वर्गोके



अथाशोकवनेऽन्येभ्युपभ्रमानं परस्परं ॥ ६७६ ॥ कपीना यूथमालोक्य ज्वलत्कोपधुताशनं । जातससारनिर्वेगस्तस्मिन्नेव बनतरे ॥ ६७७ ॥ प्ररास्तवक-  
नामान चारणं वीक्ष्य सादरं । पूर्वश्रुतानुसारेण धृतात्ममवसंततिं ॥ ६७८ ॥ जिनपूजा विधायां नु वर्धमानविशुद्धिक । सुरादिमलयोयानायान वीरजिनेशिव  
॥ ६७९ ॥ श्रुत्वा विभूतिमद्रत्वा सपूज्य परमेश्वरं । महादेवीतनूजाय दत्त्वा राज्यं यथाविधि ॥ ६८० ॥ वसुधरकुमाराय वीतमोहो महामना । मातुलादि-  
महीपालैर्नंदाढ्यामधुरादिभिः ॥ ६८१ ॥ सर्वसगपरित्यागात्सत्यम प्रत्यपद्यत । भुक्तभोगा हि निष्काङ्क्षा भवति भुवनेश्वरः ॥ ६८२ ॥ सत्यधरमहादेव्या  
सहायै सुदृढा स्तुषा । सद्यो गधर्वदत्ताद्यास्तासामपि च मातर ॥ ६८३ ॥ समीपे चन्दनार्थीया जगद्गुरुः सयमं पर । महानेको भवेदेतुर्बहुनामर्थसिद्धये  
॥ ६८४ ॥ “भवता परिपृष्टोऽय जीवधरमुनीश्वरः । महीयान सुतपा राजन् सप्रति श्रुतकेवली ॥ ६८५ ॥ घातिकर्मणि विष्वस्य जनितागृहेकेवली सार्धं वि

साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे । अथानंतर किसी एक दिन वे महाराज अशोक वनमें गये थे वहांपर जिनकी क्रो-  
धरूपी अग्नि जल रही है ऐसे दो वंदरोंके झुंड परस्पर लड़ रहे थे उन्हें लड़ते हुए देखकर जीवंधरको संसारसे वैराग्य  
उत्पन्न हुआ । उसी वनमें प्रशस्तवंश नामके चारण मुनिराज विराजमान थे इसलिये जीवंधरने बड़े आदरसे उनके दर्शन  
किये और पहिले सुने अनुसार अपने पहिले भवोंकी परंपरा सुनी ॥ ६७६-६७८ ॥ तदनंतर उन्होंने भगवान जिनेंद्र-  
देवकी पूजाकर आत्माकी विशुद्धि बढ़ाई । फिर उन्होंने सुरमलय उद्यानमें भगवान वीरनाथके समवसरणके आनेकी बात  
सुनी उसे सुनते ही वे बड़ी विभूतिके साथ वहां पहुंचे परमेश्वर भगवान वीरनाथ की पूजा की और गंधर्वदत्ता महादेवीके  
पुत्र वसुंधर कुमारको विधिपूर्वक अपना राज्य दिया । जिनका मोहनीय कर्म शांत हो गया है और जिनका मन आत्माके  
विशुद्ध भावोंमें लगा हुआ है ऐसे उन महाराज जीवंधरने मामा आदि अनेक राजाओं और नंदाढ्य मधुर आदि भाइयोंके  
साथ सब तरहके परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारणकर लिया । सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग भोगोंका अनुभव कर  
फिर अंतमें आकांक्षाहित-विरक्त हो ही जाते हैं ॥ ६७९-६८२ ॥ गंधर्वदत्ता आदि सुंदर नेत्रोंको धारण करनेवाली  
जीवंधरकी आठों रानियोंने तथा उन रानियोंकी माताओंने महाराज सत्यंधरकी महादेवी विजयके साथ चंदना आर्याके  
समीप जाकर शीघ्र ही उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि एक भी बड़ा आदमी अनेक लोगोंका अर्थ-  
सिद्धिका कारण हो जाता है ॥ ६८३-६८४ ॥ हे श्रेष्ठिक ? तूने जिन मुनिराजकेलिये पूछा था वे ही जीवंधर हैं ये बड़े  
तपस्वी हैं और इससमय श्रुतकेवली हैं ॥ ६८५ ॥ घातिया कर्मोंको नागकर ये अगृहेकेवली होंगे महावीर तीर्थकरके  
साथ विहारकर महावीर स्वामीके ही मोक्ष जानेके समय ही विपुलाचल पर्वतपर समस्त कर्मोंको नाशकर मोक्षरूप उत्कृष्ट

इत्य तीर्थेणा तस्मिन्मुक्तिमसिद्धिरे ॥ ६८६ ॥ विपुलादौ हताशेषकर्मो शर्मोऽप्यमेव्यति ।  
भर्माख्यगणशुद्धचनामर्तः । मित्रिये श्रेमिकः कस्य न धर्मं ग्रीतये भवेत् ॥ ६८८ ॥ अन्यैर्धः समवाप पूर्वसुहृतात्कन्याशुकं दुर्लभं यः शत्रुं पितृघातिन रण-  
मुके लोकातरे प्रापयत् । यः प्रकृत्य विमिश्रकर्मसिद्धिरेऽप्रासिद्धि मुक्तिश्चिदा त वदे मुकुलीकृतां बलिह जीवधरस्वामिनं ॥ ६८९ ॥ विद्वेष्य षोडश दिना-  
नि स मदसान्नाय विहाय कर्णा विमतिः पितृन्या । सप्राप षोडश समाः स्वसनानिमिदेदं जीवधर, कुलत तद्दुरित न भव्या ॥ ६९० ॥ क स पितृ-  
उपसृत्युः क इमयाने प्रसुतिर्वैणिगुपगमनं क क स्वयक्षोपकारः । क तदुदयविधानं शत्रुघातः क चित्र विम्विलसितमेतत्पश्य जीवधरेऽस्मिन् ॥ ६९१ ॥  
इत्यार्ये त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसमूहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते चन्दनार्थिकाजीवधरचरितं परिसमाप्त पंचसप्ततितमं पर्व ॥ ७५ ॥

कल्याणको प्राप्त होंगे तथा उनका कुतकृत्य आत्मा इष्ट आठ गुणोंसे संपूर्ण होकर कर्मरूपी अंजनसे सर्वथा अलग हो जा-  
या ॥ ६८६-६८७ ॥ इसप्रकार सुशर्माचार्य गणाधरके वचनरूपी अमृतको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही प्रसन्न हुआ  
सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे किसको प्रसन्नता नहीं होती है ? ॥ ६८८ ॥ जिसने पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे अन्य लोगोंको  
दुर्लभ ऐसी आठ कन्याएं प्राप्त की, पिताको घात करनेवाले काष्ठंगार शत्रुको युद्धमें परलोक पठाया, जिसने दीक्षा ले-  
कर कर्मरूपी अधकारको नष्ट किया और जो मोक्षरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हुआ ऐसे जीवधर स्वामीको मैं हाथ जोड़कर  
नमस्कार करता हूं ॥ ६८९ ॥ जिसने ( नयद्वय अवस्थामें ) मुखतासे दयारहित होकर हंसके वन्चकोंको सोलह दिनतक  
पिता पितासे अलग रखवा और इसीलिये जीवधरको सोलहवर्षतक अपने कुटुंबियोंसे अलग रहना पड़ा इसलिये भव्य  
जीवोंको पाप कार्य कभी नहीं करने लाहिये ॥ ६९० ॥ देखो कहां तो महाराज पिताकी मृत्यु, कहां शमशानमें जन्म लेना,  
कहां वैश्यके घर जाकर पलना, कहां यसका उपकार, कहां सुंदर कन्याएं और राज्य आदि विभूतियोंकी प्राप्ति  
और कहां काष्ठंगार ऐसे शत्रुका घात करना । इस जीवधरमें ही ऐसे विचित्र कर्मोंका उदय विद्यमान है ॥ ६९१ ॥  
इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित महापुराणके नवीन हिंदीभाषानुवादमें जीवधरके चरित्रको कहनेवाला यह पंचवहतरवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

## अथ षट्पदसतितमं पर्व ॥ ७६ ॥

अयान्येयुर्महावीर सुरासुरपरिष्कृत । विहय विविधान् देशान् पुनस्तसुरमागत ॥ १ ॥ गणैर्द्वादशभिः पूज्यः स्थितः स विपुलाचले । गच्छस्त-  
श्रेणिकः स्तोतु इक्ष्मूले शिलातले ॥ २ ॥ मुनि धर्मसूचि नाम्ना निस्सरगमिवोदधि । प्रदीपमित्र निष्कंप सांयु बामोदमुन्नतं ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियसमाहारं पर्यङ्क-  
हितासनं । ईषभिरुद्गनिःश्रासं मन ग्मीलितलोचन ॥ ४ ॥ ध्यायत वीक्ष्य वदेत्वा साशक्तो विकृताननात् । ततो गत्वा जिन प्राप्य स्तुत्वा मुकुलिताञ्जलिः  
॥ ५ ॥ गौतम च समा दृष्टः कबिदेकललोचनः । ध्यायन् साक्षादिव ध्यातिस्तद्रूपेण आवस्थिता ॥ ६ ॥ स को मे कंतु क तस्मिन् ब्रूहि नायस्यम वत ।  
अनुयुक्तो गणी तेन प्रोवाच व वसापतिः ॥ ७ ॥ अत्यत्र विषयैर्गच्छयः संगतः सर्ववस्तुभिः । नगरी तत्र चपाह्वया तरंगिताः श्वेतवाहनः ॥ ८ ॥ भुला

## अथ छिहत्तरिवां पर्व ।

अयानतर-जिनके चारोंओर सदा सुर असुर रहते हैं ऐसे श्रीमहावीर स्वामी अनेक देशोंमें विहार कर किसी दिन फिर उसी नगरमें आपहुंचे ॥ १ ॥ बारह सभाओंसे पूज्य वे भगवान विपुलाचल पर्वतपर विराजमान हुए राजा श्रेणिक उनकी स्तुति करनेके लिये जाने लगा । मार्गमें एक वृक्षके नीचे शिलाके ऊपर धर्मरुचि नामके मुनिराज विराजमान थे वे मुनिराज तरंगरहित समुद्रके समान निश्चल थे, दीपकके समान निष्कंप थे और जलसे भरे हुए बादलके समान उन्नत थे ॥ २-३ ॥ वे जितेन्द्रियकी चरम सीमातक पहुंचे हुए थे पर्यंक आसनसे विराजमान थे थोडा थोडा श्वास रोके हुए थे और उनके नेत्र कुछ कुछ बंद थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार ध्यान करते हुए उन मुनिराजको देखकर श्रेणिकने उनकी वंदना की परंतु उन मुनिराजका कुछ विकृत मुह देखकर श्रेणिकको कुछ शंका उत्पन्न हो गई । तदनंतर वह भगवानके समवसरणमें पहुंचा और हाथ जोहकर भगवानकी स्तुति की ॥ ५ ॥ फिर उसने गौतम गणधरसे पूछा कि हे प्रभो मैंने मार्गमें एक मुनि देखे हैं वे ऐसा ध्यान कर रहे हैं मानों उनका रूप धारणकर साक्षात् ध्यान ही विराजमान हो । नाथ वे कौन हैं उनके जाननेकी मेरी बड़ी इच्छा है आप कृपाकर कहिये ? इसके उत्तरमें वे वचनोंके स्वामी गणधर देव इसप्रकार क-  
हने लगे ॥ ६-७ ॥ इसी भरतचक्रके अंग देशमें सब वस्तुओंसे सुशोभित ऐसी एक चंपा नगरी है उसमें राजा श्वेतवा-  
हन राज्य करता था ॥ ८ ॥ इन्हीं भगवान वीरनाथसे धर्मका स्वरूप सुनकर उसका चित्त तीनोंतरहके वैराग्यसे पूर्ण भ-  
राया और अपने पुत्र विमलवाहनको राज्य देकर अनेक लोगोंके साथ उसने दीक्षा धारण करली । अनेक मुनियोंके साथ

धर्म जिनादसाभिनिर्देगाहितासयः । राज्यभारे समारोघ्य मुते विमलबाहुमे ॥ १ ॥ समयम बहुभिः सार्धमैव प्रतिष्ठापयान् । चिरे मुनिगणैः साक विह्वला-  
खंडसयमः ॥ १० ॥ धर्मेषु रुचिमातन्वन् दशखण्डनिशं ब्रनः । प्राप्तधर्मैरुचि स्याति सख्यं यत्सर्वजनुषु ॥ ११ ॥ अथ मासोपवासार्ति भिक्षार्थं प्राविश  
सुर । पुरुषा संहतास्त्र तत्समीपमितास्त्रयः ॥ १२ ॥ नरलक्षणशास्त्रज्ञस्तेज्वेको वीक्ष्य तन्मुनिं । लक्षणान्यस्य साम्राज्यपदवीप्राप्तिहेतव ॥ १३ ॥ अट-  
त्येष च भिक्षायै शास्त्रोक्त तन्मृदेव्यैः । नृद्वज्रमिहितोन्वेन न यथा शास्त्रभाषित ॥ १४ ॥ लयकसाम्राज्यतत्रोद्युपि केनापि हेतुना । निर्विण्णस्तनये बाले  
निधाय व्यावृत्ति निजा ॥ १५ ॥ एत तपः करोतीति श्रुत्वा तद्वचन परः । अवोचद्विष्मनेनास्य तपसा पापहेतुना ॥ १६ ॥ दुरात्मनः कृपा हिला बालं  
तमसमर्थक । लोकसव्यवहारार्थं स्थापयित्वा घरातले ॥ १७ ॥ खग सार्यं संसृदिष्य तप कुंभिहागतः । मत्रिप्रभृतिभिः सवे कृत्वा त शृंगलावृत ॥ १८ ॥

बहुत दिनतक विहारकर आखंड संयमको धारण करते हुए वे मुनिराज यहां आ विराजमान हुए हैं ॥ २-१० ॥ वे दश  
धर्मों में सदा प्रेम रखते थे इसीलिये लोगों के द्वारा धर्मरुचि के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं । सो ठीक ही है क्योंकि सब जीवों में  
मैत्रीभाव रखना ही धर्म प्रेम कहलाता है ॥ ११ ॥ आज एक महीने के उपवास के बाद भिक्षाकेलिये नगर में गये थे वहापर  
उनके समीप तीन मनुष्य मिलकर आये थे ॥ १२ ॥ उनमें से एक मनुष्य मनुष्यों के लक्षणशास्त्र जानता था उसने उन  
मुनिराजको देखकर कहा कि इनके लक्षण साम्राज्यपदवी के प्राप्त होने के कारण हैं परंतु ये तो भिक्षा प्रांगत फिरते हैं इस-  
लिये शास्त्रों में कहा हुआ सब झूठ जान पड़ता है । उसकी कही हुई यह बात सुनकर दूसरा कहने लगा कि शास्त्रों में  
कहा हुआ झूठ नहीं है ॥ १३-१४ ॥ अपने साम्राज्य तंत्रका त्यागकर किसी कारणसे ये झुपि हो गये हैं और अ-  
पना सब राज्यका भार अपने बालक पुत्रपर रखकर इसप्रकारका तपश्चरण कर रहे हैं । दूसरे पुरुषकी यह बात सुनकर  
तीसरा पुरुष कहने लगा कि इसके इस पाप के कारण तपश्चरणसे क्या लाभ है ? इस दुरात्माने दिया तो बिल्कुल छोट दी  
है जो बालक बिल्कुल असमर्थ है और जो लोक व्यवहारको समर्थ नहीं जानता उसे पृथ्वीतलपर ( राज्य पर ) स्थापन  
कर यह स्वयं अपने स्वार्थ साधनकी इच्छासे तपश्चरण करने के लिये यहां आये हैं । परन्तु उसके मंत्री आदि सब पापी  
लोगोंने उस बालक को तो सांकलसे बांध दिया है और राज्यको बांट कर सब उसका अनुभव कर रहे हैं । उस तीसरे  
पुरुषकी यह बात सुनकर उन मुनिराज के हृदय में स्नेह हो आया ॥ १५-१६ ॥ वे बिना आहारलिये ही नगरसे बाहर  
लौट आये और वन में इसके नीचे आकर विराजमान हुए । बाह्य कारण के मिलने से उनके अंतरंग में क्रोध रुपाय के तीव्र स्प-  
न्दोंका उदय हो आया है और संक्षेप परिणामों के होने से कृष्ण नील कापोत इन तीनों लेश्याओंकी वृद्धि हो गई है

राजः विभज्य तत्सर्वं पापैस्तैरनुभूयते । इति तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहमानप्रचोदितः ॥ १९ ॥ अमुं बान पुराहाणु निवृत्तैव वनांतरे । वृक्षमूलं समाश्रित्य  
वाह्यकारणसन्निधौ ॥ २० ॥ अतः क्रोधकपायोनुमागोप्रसङ्गोदयात् । सख्येऽप्यवसायेन वर्द्धमानत्रिलेश्यकः ॥ २१ ॥ मन्त्र्यादिप्रतिकूलेषु हिंसायत्निलनि-  
प्रात् । ध्यायन् संरक्षणानंदरौद्रध्यानं प्रविष्टवान् ॥ २२ ॥ अतः परं मुहूर्तं चेदेवमेव स्थितिं भजेत् । आयुषो नारकस्यापि प्राप्नोत्येव भविष्यति ॥ २३ ॥  
ततस्त्वया स सर्वोद्यो ध्यानमेतत्स्थजाशुभं । समयकोधदुर्वर्हिं मोहजालं निराकुरु ॥ २४ ॥ यद्वाणं सयमं त्यक्तं पुनः स्तं मुक्तिसाधनं । दारदारकवच्चादिस-  
वधनमवधुरं ॥ २५ ॥ संसारवर्द्धनं साधो जहीहीत्येवमादिभिः । युक्तिर्महिर्बोमि स प्रलयस्थानमाप्तवान् ॥ २६ ॥ शुक्रध्यानाभिनिर्दग्धघातिकर्मघना-  
दृष्टिः । नव कैवल्यज्योत्स्नाशुभावो भविष्यति ॥ २७ ॥ इत्यसौ च गणाधीशवचनान्मगधाधिपः । गत्वा तदुक्तमार्गेण सद्यः प्रासादयन्मुनिं ॥ २८ ॥ सोऽपि स-  
प्राप्य सामग्रीं कषायक्षयशालिनां । द्वितीशुक्रध्यानेन वैबल्यमुदपादयत् ॥ २९ ॥ तदा पूजां समायत्तौ श्रेणिको वृत्रहादिभिः । सह घर्मरुचैः कृत्वा पुनर्वारं

॥ २०-२१ ॥ मंत्री आदिक जो लोग प्रतिकूल हो गये हैं उन सबमें हिंसा आदि सब पापोंके द्वारा निग्रह करनेका चिंत-  
न कर रहे हैं और इस समय संरक्षणानंद अर्थात् सबको पारकर पुत्रकी रक्षा करनेरूप रौद्रध्यानमें प्रविष्ट हो रहे हैं ॥ २२ ॥  
यदि एक मुहूर्ततक उनकी यही स्थिति रही तो अवश्य ही उनके नरक आयुका बंध हो जायगा ॥ २३ ॥ इसलिये तू  
जाकर उन्हें समझा कि हे साधो ! आप इस अशुभ ध्यानको छोड़ दीजिये और समयके अनुसार उत्पन्न हुई क्रोधरूपी  
अधिको तथा मोह रूपी जालको दूर कर दीजिये ॥ २४ ॥ आपने जो अपना संयम छोड़ दिया है जो कि मों-  
त्तका साक्षात् साधन है उसे स्वीकार कीजिये क्योंकि स्त्री पुत्र भाई बंधु आदि लोगोंका जो दुःखदायी संबंध है वह केवल  
संसार बढानेवाला है इसलिये उसे आप छोड़ दीजिये । इस प्रकारके शुक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे वे अपने स्थानपर आ-  
जायेंगे अर्थात् क्रोधादि कषायके द्वारा उत्पन्न हुए रौद्रध्यानको छोड़कर शांत हो जायेंगे ॥ २५-२६ ॥ शुक्रध्यानरूपी  
अग्निसे घातिया कर्मरूपी घने जंगलको जलाकर तथा नौ केवल लक्षियोंको पाकर अत्यंत शुद्ध परिणामोंको धारण करेंगे  
॥ २७ ॥ गणधरदेवकी यह बात सुनकर वह राजा श्रेणिक बहां गया और गणधर देवके कहे अनुसार शीघ्र ही उन मुनिरा-  
जको प्रसन्न कर लिया तदनंतर उन मुनिराजने सब सामग्रीके मिलजानेसे कषायोंको नष्ट किया और द्वितीय शुक्रध्यानसे  
केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ २८-२९ ॥ उसी समय उनकी पूजा करनेकेलिये इंद्रादिक देव आये राजा श्रेणिकने भी उन  
सबके साथ केवली धर्मरुचिकी पूजा की और फिर वह भगवान् वीरनाथके समीप आया ॥ ३० ॥ आते ही उसने गणा-  
धरदेवसे पूछा कि हे प्रभो इस भारतक्षेत्रमें सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन केवलज्ञानी होगा । इसके उत्तरमें गणधर-

सर्माभित ॥ ३० ॥ भरते को भ्र पाभास स्तुतः केवलबीषणः । इसप्रालीनूणी कैव विषभुरभक्तवा ॥ ३१ ॥ अर्धकल्याधिपो अर्धहरयाख्यविमानवः । विधुन्माली उखलनैर्गति श्रियर्थाशुकिदर्शने ॥ ३२ ॥ विधुदृष्टिप्रभावेगे देव्योप्याय तद्वृत्त । जिनमगल्य बंशिरा यथास्थानमुगविशत् ॥ ३३ ॥ त नि रूप्य परिच्छेदोनेन स्यात्केवलद्युते । तत्कथं चेद्विष्यामि क्षिनेस्मात्समने दिनात् ॥ ३४ ॥ अर्धोद्यो विबोध्येत्य पुरेस्मिमेव वारण । सरः शालिवन निदूर्यमानं प्रउजलच्छिख ॥ ३५ ॥ युक्कुमारसमीपमानजबूफलाति च । स्वप्ननेतानुरः कुर्वन्बर्हृशकाभिवानकात् ॥ ३६ ॥ इभ्यात्कृती सुतो भावी जिनदासा महाबुक्तिः । जंभ्याह्योनादुतावादासपृथोतिविश्रुतः ॥ ३७ ॥ विनीतो यौवनारसेप्यनासिष्कृतविक्रियः । वीर पावापुरे तस्मिन्काले प्राप्स्यति निवृत्ति ॥ ३८ ॥ तदैव ह्रमपि प्राप्य बोध केवलसंज्ञक । सुवर्माह्यगणेशेन सादं ससारबन्दिना ॥ ३९ ॥ करिष्यान्नतितमानां इदं धर्ममृताबुना । इदमेव पुर भूयः संप्राप्यान्व भूवरे ॥ ४० ॥ स्वास्थ्येतत्समाकृण्य कुजिकरचेलिनीकुनः । तत्पुताधिपतिः सर्वगिरिवारपरिष्कृतः ॥ ४१ ॥ आगलाभ्यर्च्य वदित्वा श्रुत्वा धर्मं शु

देव कहने लगे कि अहम स्वर्गके अर्धहृदय विमानमें दैदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला विधुन्माली नामका इंद्र है । यि- यदर्शना, सुदर्शना, विद्युत्प्रभा और विद्युद्वेगा ये चार उसकी देवियां हैं उन सबको लेकर वह देव भगवान वीरनायकी बंदना करनेकेलिये आया है और अपने योग्य स्थानपर बैठा है ॥ ३१-३३ ॥ उसकी ओर इशारा करके गणधरदेव क- हने लगे इसके केवलज्ञानरूपी प्रकाशके वाद फिर केवलियोंका विच्छेद हो जायगा । इस देवको केवलज्ञान कैसे होगा सो भी मैं कहता हूं । आजसे सातवें दिन यह इंद्र स्वर्गसे च्युत होगा और इसी नगरके धनी श्रेष्ठ अर्धहासकी स्त्री महा कां- तिको धारण करनेवाली जिनदासीके गर्भमें आवेगा गर्भमें आनेके पहिले जिनदासी पांच स्वप्न देखेगी हाथी, सरोवर, चांवल्लोका खेत, जिसकी शिखा ऊपरको जा रही है ऐसी धूम्रगर्हित अग्नि और दिक्कुमारोंके द्वारा किये हुए जामुनके फल । जन्म होनेके बाद जबकुमार इसका नाम रक्खा जायगा, अनादृत देव भी आकर इसकी पूजा करेगा और यह अ- त्यंत प्रसिद्ध तथा विनयवान होगा । यौवन अवस्था आजानेपर भी इसे कोई विकार नहीं होगा । जिससमय श्रीवीरनाथ भगवान पावापुरसे मोक्ष प्राप्त करेंगे उसीसमय बुद्धे भी केवलज्ञान प्राप्त होगा । तदनंतर सुधर्माचार्य गणधरके साथ संसा- ररूपी अभ्रिसे तप्त हुए लोगोंको धर्माश्रुतरूपी जलसे आनंदित करता हुआ मैं फिर भी इसी नगरमें आकर इसी विपुला- चल्पवर्तपर विराजमान हूंगा । मेरे आनेके समाचार सुनकर इस नगरका राजा चेलिनीका पुत्र कुञ्जिक सब परिवारके साथ आवेगा और पूजा बंदनाकर तथा कर्मका स्वरूप सुनकर स्वर्ग मोक्षके साधन ऐसे दान शील उपवास आदि व्रत धारण करेगा ॥ ३४-४२ ॥ उससमय जबकुमारको भी वैराग्य उत्पन्न होगा और वह दीक्षा धारण करनेकेलिये तत्पर होगा

हीप्यति । दानस्त्रीलोपवाससिंहासनं स्वर्गनोदयोः ॥ ४२ ॥ जडनामापि निर्वेदतन्मूढाग्रहणोत्सुक । सैवहाल्येषु वर्षेषु मृतीवेषु बध्न त्वया ॥ ४३ ॥ सर्वे  
रीशां प्रहीष्याम इति बंधुजनोदित । मोक्षकन्दुविकारकुर्मायास्यति गुरं तदा ॥ ४४ ॥ मोह विविक्तुभित्तस्य बहुभिः सुखवर्धनं । अरस्यते विवाहस्तैः श्रेयो  
क्षिप्तं हि बांधवाः ॥ ४५ ॥ सुता सागरदत्तस्य पद्मावत्या सुलक्षणा । पद्मश्रीरपराश्रीर्वा कनकश्री सुमेक्षणा ॥ ४६ ॥ सुता कुवेरदत्तस्य जाता कनकमालया ।  
वीक्ष्या विनयवत्याथवा वैश्रवणदत्तजा ॥ ४७ ॥ विनयश्रीः श्रीरदत्तस्य रूपश्रीश्च धनश्रियः । आभि सागरदत्तादिपुत्रिकाभिर्यथाविधि ॥ ४८ ॥ साधागारे नि  
रस्तांधकारे सन्मणिदीप्तिभिः । विचित्ररत्नसङ्घारंगवर्हीविभूषिते ॥ ४९ ॥ नानासुराभिपुण्योपहारादयं जगतीतले । स्थास्यत्याप्तविवाहोयं पाणिग्रहणपूर्वक  
॥ ५० ॥ सुतो ममायं रागेण प्रेरितो विकृतिं भजन् । रिमतहासकटाक्षेक्षणादिना किं भवेत्तथा ॥ ५१ ॥ इत्यात्मानं तिरोधाय पश्यता स्वास्यति लिहा । माता  
तस्य तदैवैक पापिष्ठ प्रथमावाक ॥ ५२ ॥ सुरस्यविषये ह्ययातपोदनाख्यपुरेभिः । विद्युद्राजस्य दुर्गिबुधुप्रभो नाम तदप्रणी ॥ ५३ ॥ तीक्ष्णो विमल-

परंतु उसीसमय भाई बंधु लोग उसे समझावेंगे और कहेंगे कि थोड़े ही वर्षोंके बाद हम सब तेरे साथ दीक्षा धारण करे-  
ंगे । उन भाई बंधुओंके बचनोंको वह डाल नहीं सकेगा और वहांसे फिर अपने नगरमें आवेगा ॥ ४३-४४ ॥ तदनंतर  
वे सब भाई बंधु लोग उसे मोहमें फंसानेकेलिये उसका विवाह कर देंगे सो ठीक ही है क्योंकि भाई बंधु लोग कल्याण  
कार्योंमें विघ्न ही करते हैं ॥ ४५ ॥ उस जंबूकुमारको एक तो शेट सागरदत्तकी स्त्री पद्मावतीसे उत्पन्न हुई शुभ लक्षणों-  
वाली पद्मश्री नामकी कन्या व्याही जायगी दूसरी शेट कुवेरदत्तकी स्त्री कनकमालासे उत्पन्न हुई शुभ नेत्रोंवाली दूसरी  
लक्ष्मीके समान कनकश्री व्याही जायगी । तीसरी वैश्रवणदत्तकी स्त्री विनयवतीसे उत्पन्न हुई देखनेयोग्य सुंदर विनयश्री  
व्याही जायगी और चौथी शेट श्रीदत्तकी स्त्री धनश्रीसे उत्पन्न हुई रूपश्री व्याही जायगी । इसप्रकार इन सागरदत्त आदि  
शेटोंकी पुत्रियोंके साथ विधिपूर्वक उसका विवाह होगा ॥ ४६-४८ ॥ पाणिग्रहण पूर्वक विवाहकर वह कुमार ऐसे बड़े  
भवनमें ठहरेगा जिसमें श्रेष्ठ मणियोंकी कातिसे अंधकार कहीं न रहने पावेगा जो अनेक तरहके रत्नोंके चूर्णकी रंगव-  
लीसे सुशोभित होगा जिसमें अनेक तरहके सुगंधित फूलोंके उपहार रखे रहेंगे और जो मध्यभागमें होगा ॥ ४९-५० ॥ तदनंतर  
उसकी माता स्नेहसे छिपकर देखेगी कि थोड़ा हंसना, कटाक्ष करना आदि काम विकारोंके द्वारा रागसे प्रेरित होकर यह  
मेरा पुत्र काम विकारको प्राप्त होगा या नहीं । जिससमय यह जंबूकुमारकी माता जिनदासी छिपकर खड़ी खड़ी देखेगी  
उसीसमय सुरस्य देशके प्रसिद्ध पोदनपुर नगरके विद्युद्राजकी रानी विमलपतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका  
चोर आवेगा वह विद्युत्प्रभ महापापी मुख्य चोर होगा परंतु तीक्ष्ण भी होगा वह किसी कारणसे अपने बड़े भाईसे



वलाय कृत्वा केनापि हेतुना । निजाग्रजाय निर्गला तसात्पचनार्थेन ॥५४॥ विदुषोराह्य कृत्वा स्वस्य प्राप्य पुरीमिमां । जानवदस्यदेहात् क्वाटोद्धाट  
नादिक ॥ ५५ ॥ चौरशाब्दोपदेशेन यत्रतत्रविधानतः । अर्हदासद्वयान्नरस्यं चोरयितुं धनं ॥ ५६ ॥ प्रविश्य नष्टनिद्रा तां जिनदासीं विलोक्य सः ।  
यदीम त्वं धारयस्याग्रहस्ततः । उपवैरया वे सर्वं धन दास्याम्यमीदृशत ॥५७॥ इति वकीभवेत्सापि सोऽपि सप्रतिपद्य ततः । एव संपन्नभोगोपि क्लिप्य विरि-  
सति ॥ ६० ॥ धिर्मां घनमिहाहर्तुं प्रविष्टमिति निर्दन । स्वस्य कुर्नन्ताशुकः संगप्यानु तर्दतिक ॥ ६१ ॥ कन्यकानां कुमारं त तासां चाप्यमविष्टितं ।  
विजृम्भमाणसद्वुद्धिं पजरस्यमिवाडज ॥ ६२ ॥ जालद्वयेणोत वा मद्र वा कुजराधिप । अपारकर्ममे मम सिंह वा लोहपजरे ॥ ६३ ॥ निरुद्धं लब्धनि-  
कोथितं होगा इसलिये यह पांचसौ योयात्राको साथ लेकर विदुषोरा नाम रत्नकर इसी नगरमें आयेगा और उसी अर्ह-  
दासके घर आवेगा वह अदृश्य होकर किवाड जानका होगा । वह अर्हदासके घर धन चुरानेकेलिये आवेगा और जिनदासीको ज-  
होगा और मंत्र तंत्रका भी अच्छा जानका होगा । वह भी संकल्पकर बैठा है कि मैं सबेरे ही दीक्षा लेनेकेलिये तपोवनमें  
गती हुई देखकर अपना सब पता बतलावेगा तथा जिनदासीसे जगनेका कारण पूछेगा ॥ ५१-५७ ॥ इसके उत्तरमें  
जिनदासी उत्तर देगी कि “मेरे एक ही पुत्र है वह भी संकल्पकर बैठा है कि मैं सबेरे ही दीक्षा लेनेकेलिये तपोवनमें  
जाऊंगा इसीलिये मुझे शोक हो रहा है ॥ ५८ ॥ यदि तू बुद्धिमान है और किसी भी उपायसे इसे घर रखवेगा दीक्षा  
न लेने देगा तो मैं तेरी इच्छानुसार सब धन देदूंगी ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहकर वह जिनदासी फिर छिप जायगी ।  
तदनंतर वह विदुषोर विचार करेगा कि देखो इसके भोगोपभोगकी सब सामग्री उपस्थित है तो भी यह उसे छोड़ना चा-  
हता है मुझे धिक्कार है जो मैं दूसरेका धन चुरानेकेलिये यहां आया हूं इसप्रकार वह अपनी निद्रा करता हुआ निःशंक हो-  
कर जंघुखमारके समीप जावेगा उससमय उस कुमारको वे सब कन्याएं प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगी परंतु उन सबके बीचमें  
बैठा हुआ वह सदबुद्धि कुमार ऐसा जान पड़ेगा मानों किसी पिंजरेमें बंद हुआ पत्नी ही हो अथवा लोहेके पिंजरेमें बंद हुआ सिंह  
हुआ हिरण्यका बच्चा ही हो अथवा अपार कीचड़में फंसा हुआ अष्ट हाथी ही हो अथवा लोहेके पिंजरेमें बंद हुआ फंसा  
ही हो । संसारका नाश करना जिसके अत्यंत निकट है ऐसा वह उससमय वैराग्यसे भरपूर होगा । उसको देखकर वह  
बुद्धिमान विदुषोरा उससे एक नंदकी कथा कहेगा ॥ ६०-६४ ॥ कि है कुमार सुनो एकसमय किसी पर्वतपर एक जंतु

गायश्वेतः ॥ ६५ ॥ पतन्मदुरसोन्मिधमास्वाद्य सङ्घुसुखः । तादगेबाहुरिष्याभीत्येतत्तातामिवाच्छया ॥ ६६ ॥ तूर्णात्तरोपयोगतिपरानुसृतया स्थितः । मृतस्तथैव त्व चैतान भोगान् भोजयुषस्थितान् ॥ ६७ ॥ अविच्छन्नं स्वर्गभोगार्थं भविता रहितो बिया । इत्येकागारिकप्रोक्त तदाकार्ण्यं वगिरवरः ॥ ६८ ॥ प्रतिष्ठा स तं चोरे स्पष्टदृष्टात्पूर्वकं । नरः कश्चिन्महादाहज्वरेण परिपीडित ॥ ६९ ॥ नदीसरस्तडागादिपयः पीत्वा मुहुर्मुहुः । तथाप्यगततृष्ण किं तृ-  
णाप्रस्थां बुद्धिना ॥ ७० ॥ तृप्तिं प्राप्नोत्यसौ बाणं जीवो दिव्यमुलं विरे । युक्तवायव्यतुतः स्वप्नेपि गजकर्णस्थिरात्मना ॥ ७१ ॥ मुखेनास्वादुननेन कथं तृ-  
प्तिमवाप्नुयात् । इति तद्वाचमाकर्ण्य चोरोनुव्य हरिष्यति ॥ ७२ ॥ बने वनचरवट कृन्वायारं महाहमं । गंडांताकृष्टकोदण्डाडिनाखंध्य मारण ॥ ७३ ॥  
महीरुट्कोटरस्थेन संदष्टः कृपिना खयं । स्व चार्हिं न गजं चाज्ञो गत्यंतरमजीगमत् ॥ ७४ ॥ अथ सर्वान् मृतान् दृष्ट्वा तान् कोष्ठिकोत्तिष्ठन्वच । ता-  
वदेतानाह नायि अयु मौर्वद्विप्राज ॥ ७५ ॥ खादामीति कृतोयोगस्तच्छेदमकरोद्विभी । सद्यथाप्राप्तिर्भिन्नगल सोपि कृया मृतः ॥ ७६ ॥ ततोत्तिष्ठ-

अपनी इच्छानुसार चर रहा था जिस घासको वह चर रहा था उसपर ऊंची जगहसे मक्खियोंके छत्तेसे शहत आकर गिर गया था और उसी मीठी घासको वह खा रहा था । उसे खाकर फिर एकबार उसकी यह इच्छा हुई कि जब शहत गिरेगा तब मैं वैसी ही मीठी घास खाऊंगा यही सोचकर शहत गिरनेकी प्रतीक्षा करने लगा । उस मीठी घासकी लालसामें उसने और घास भी नहीं खाई । परन्तु शहत गिरा नहीं इसलिये वह वहीं बैठा बैठा भूखों मर गया । इसी प्रकार तू भी इन उपस्थित भोगोंको छोड़कर स्वर्गके भोगोंकी इच्छा करना चाहता है सो तू भी ऊंटके समान बुद्धि रहित है । उस चोरकी यह बात सुनकर वह श्रेष्ठ वैश्य जंबूकुमार भी उस चोरको दृष्टान्त देकर इस प्रकार उसका उत्तर देगा कि एक मनुष्य महादाह करनेवाले ज्वरसे पीडित था उसने नदी, सरोवर तालाव आदिका जल बार बार पिया था तथापि उसकी प्यास मिटी नहीं थी तो क्या उस मनुष्यकी प्यास तुझके ऊपर लगी हुई एक पानीकी बूंदसे मिट जायगी ? वह उस एक बूंदसे तृप्त हो जायगा ? उसी प्रकार इस जीवने भी बहुत दिन तक दिव्य सुखोंका अनुभव किया है तथापि तृप्त नहीं हुआ फिर क्या जिसमें कुछ स्वाद नहीं है जो हाथीके कानोंके समान चंचल है ऐसे इस सुखसे स्वप्नमें यह जीव कैसे तृप्त हो जायगा । जंबूकुमारकी यह बात सुनकर वह फिर कहने लगा ॥ ६५-७२ ॥ किसी वनमें एक चंड भील था उसने किसी वृक्षपर बैठकर और कानतक धनुष खींचकर एक हाथीको मार गिराया इतनेमेंही उस वृक्षके कोटरमेंसे निकल कर एक सांपने उसे काटखाया काटतेही उस मूर्ख भीलने उस सांपको मार दिया ॥ ७३-७४ ॥ उन सबको मरा हुआ देखकर एक लोभी गीदड आया उसने सोचा कि मैं पहिले इनको न खाकर इस धनुष चापको

मुतालायेत्यस्योक्तिरितौ सुधीः । कुमारः सृष्टिमाधाय सूक्त प्रत्याप्यासति ॥ ७७ ॥ चतुर्मासमायोगदेशमाये महाश्रुति । रत्नराशि समभ्येत्य सुमहं  
पयिको सिधीः ॥ ७८ ॥ तदनादाय केनापि हेतुना गतवान् पुन । समादिष्टः समागत्य तद्देश किं लभेत सः ॥ ७९ ॥ तथा दुष्प्रापमालोक्य गुणमा-  
श्र्गाल कथिदास्यस्य मांसविड विस्मयवान् । यकीरमानमीनादनेच्छुर्निपतितोमसि ॥ ८० ॥ तदुदीरितमेतस्य कृत्वा चिते परस्वहर । वक्ष्यति तदाख्यानमन्यदन्यायसूचन ॥ ८१ ॥  
लमध्ये स्थित सुख ॥ ८२ ॥ एवं शृगालवन्दुवो सुधो-नोपि । विनश्यति । इति तत्कमुख्योक्तिमाकर्णयानाकुलात्मक ॥ ८४ ॥ प्रत्यासन्नविनयत्याद्वच  
प्रतिभग्न्यति । निश्रुको वणिक्त्रिभिर्दामुखविमोहितः ॥ ८५ ॥ सुप्तः परार्च्यमाणश्च्यगर्भस्थपुटे निजे । चौरपहते तेन दुःखेनामृत दुर्मति ॥ ८६ ॥  
खाऊं और फिर इनको खाऊंगा इस प्रकार सोचकर वह मूर्ख उस चापको खानेका उद्योग करने लगा और उस चापको  
तोड़ने लगा उस चापके टूटते ही उसका गला भिद गया और वह व्यर्थही मर गया इसलिये अतिशय लोभ करना सर्वथा  
छोड़देना चाहिये इसप्रकार उस चौरके कह चुकनेपर वह बुद्धिमान कुमार विचारकर फिर अच्छी बात कहेगा ॥ ७५-७७ ॥  
कि एक कोई मूर्ख पथिक अपनी महादेदीयमान ग्रहण करने योग्य उत्तम रत्न राशिको चौरस्ते पर छोड़कर अपने  
घर चलागया था और फिर लेनेके लिये आया था नो क्या फिर उसे वह रत्नराशि मिल सकती है ? कभी नहीं ॥ ७८-७९ ॥  
इसी प्रकार इस संसाररूपी महासागरमें अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य ऐसा यह गुणरूपी मणियोंका समूह है इसे  
स्वीकार नहीं करता उसे क्या फिर कभी मिल सकता है ? कभी नहीं ॥ ८० ॥ उस कुमारकी यह बात समझकर वह चोर  
अन्यायको सूचित करनेवाली एक कथा और कहेगा ॥ ८१ ॥ कि एक गीदड़ मांसका टुकड़ा लिये हुए पानीमें जा  
रहा था उसने उस पानीमें क्रीडा करती हुई मछलीको खानेकी इच्छासे वह मांस छोड़ दिया और मछलीके पकड़ने  
की इच्छासे वह पानीमें क्रीडा करती हुई मछलीको खानेकी इच्छासे वह मांस छोड़ दिया और मछलीके पकड़ने  
समान अधिक भी इच्छासे वह भी उस पानीमें सुखसे रहने लगी ॥ ८२-८३ ॥ इसी प्रकार जो मूर्ख गीदड़के  
यव्य होनेसे वह कुमार भी निराकुल होकर कहेगा कि किसी वैश्यको नींद लगी थी इसलिये नींदसे मोहित  
होकर वह सुखसे उसके सो जानेपर जो निराकुल होकर कहेगा कि किसी वैश्यको नींद लगी थी इसलिये नींदसे मोहित  
सो गया । और चोरीकी बात जानने पर वह मूर्ख वैश्य उस दुःखसे मर गया ॥ ८४-८६ ॥ इसीप्रकार जोहसे विषयोंके

विषयस्थुलेनैव संसक्तो रोगचौरकैः । ज्ञानदर्शनचारित्र्यलेखपहोष्य ॥ ८७ ॥ जन्मी नश्यति निर्मूलमिल्यतः स गश्मिष्यति । स्वमातुलानीदुर्वाक्यको-  
पास्काब्धिमुमुक्षुः ॥ ८८ ॥ इक्षुमूले स्थितां वीक्ष्य सर्वाभरणभूषितां । अद्भुतवन्दोपायामाकुलकुलचेतसं ॥ ८९ ॥ सुवर्णदारको नाम पापी मार्देनिक-  
स्तदा । तदाभरणमाक्षिमुमुक्षुः स्व तरोरुच ॥ ९० ॥ स्वापयिला समाकृष्टा स्वगलोद्दरज्जुक । उद्वधनक्रम तस्या दर्शयन्मृत्युचोदित ॥ ९१ ॥ मृदगे प-  
तिते भूया सद्यः केनापि हेतुना । रज्जुपाशाविविभूतकंठं प्रोद्धतलोचन ॥ ९२ ॥ प्रापत्प्रेताधिपावास तद्वीक्ष्यासौ मृतेर्भयात् । आयाद्वृद्धमतस्तद्ब्रह्मो देवो  
मदोत्स्वया ॥ ९३ ॥ इत्यस्य सोपि वाग्जालमोढो व्याहरिष्यति । किल धूर्तबिड वीक्ष्य कलितगाभिधानक ॥ ९४ ॥ कस्यचित्सा महादेवी जाता मदनवि-  
ह्वला । तद्विद्वानयोपायनिर्तरनियुक्तया ॥ ९५ ॥ तदाभ्या गुप्तया नीतः पथिकातप्रदेविना । सा चैतेन महादेवी रममाणा यथेष्टित ॥ ९६ ॥ अहोमि-  
वैदुर्भिर्जाता ब्रह्मे शुद्धातरक्षिभिः । तन्मुखान्तद्वाराचारे राक्षसि विक्षिते स्मृति ॥ ९७ ॥ जारापनयोपायमाज्ञाताः परिचायका । अवस्करगृहं नी - १ सा तं

मुखोंमें आसक्त होकर यह जीव मोहित हो जाता है और रोगरूपी झोर इसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी रत्नोंको डुरा  
ले जाते हैं तब यह संसारी जीव विलकुल नष्ट हो जाता है । इसके उत्तरमें वह चोर फिर कहेगा कि कोई स्त्री सासुके  
दुर्बल सुनकर क्रोधित हुई और मरनेकी इच्छासे वृद्धके नीचे जा बैठी वह सब साधूषणोंसे सुशोभित थी पंतु फांसी  
लगाना जानती नहीं थी इसलिये उसका चित्त बड़ा ही व्याकुल हो रहा था । देव योगसे उसी मार्गसे सुवर्णदारक नाम-  
का मृदंग बजानेवाला पापी आनिकला उसने उसकी मरनेकी इच्छा जानली और उसके आभरणोंके लेनेकी इच्छासे  
उसे फांसीकी क्रिया बताने लगा । उसने मृदंगको तो वृद्धके नीचे रख दिया और उसपर चढ़कर गलेमें रस्सी लटका  
ली । इसप्रकार वह फांसीकी क्रिया बतला रहा था कि उसकी मृत्यु समीप आ लगी । किसी कारणसे वह मृदंग बड़ी  
शीघ्रतासे पृथ्वीपर लुढ़क गया और उस रस्सीसे कंठ दबजानेके कारण वह मर गया । मरते समय उसकी दोनों आंखें नि-  
कल पड़ी थीं इसलिये उस भयानक दृश्यको देखकर वह स्त्री मरनेसे डर गई और अपने धर आ गई । आप महा पुरुष  
हैं इसलिये आपको ऐसा लोभ अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ८७-९३ ॥ इसप्रकार उस चोरका कहा हुआ वचनोंका  
जाल कुमारको सहन नहीं होगा और वह उत्तरमें दूसरी कथा कहेगा कि किसी ललितांग नामके धूर्त व्यभिचारीको देख-  
कर किसी राजाकी महारानी कामसे पीडित होगई थी उसने किसी भी उपायसे उसे लानेके लिये गुप्त रीतिसे एक  
धाय नियुक्त की थी । वह धाय उसपथिकको किसी तरह ले आई और वह महादेवी इच्छानुसार उसके साथ क्रीडा  
करने लगी ॥ ९४-९६ ॥ कई दिनोंके बाद रणवासकी रक्षा करनेवाले खोजा लोगोंको यह बात मालूम होगई और

तत्राक्षिपस्वच्छ ॥ १८ ॥ झुहुगंधेन तन्मनुषिष्य दुःखमवानुबन्ध । अथैव नरकावासमाप्तवान् पापपाकत ॥ १९ ॥ तद्वदल्पमुल्लस्यामिलाविणो नरकादिषु । भवंति दुस्तरापापघोरदुःखानि तेष्वपि ॥ १०० ॥ पुनः कुमार एवक प्रपञ्च गदिता सत । येन संसार निर्वेगो जायते सहया स त ॥ १०१ ॥ अम्यन्संसार-कांतारे, मय्युमतद्विवेचिना । रषा विषावृणा जंबुरजुयातोतिमीलुक् ॥ १०२ ॥ पलायमानो मानुष्यभूहातहितात्मकः । तन्मूले कुलगोत्रादिनानावल्लीस माकुले ॥ १०३ ॥ जन्मकूपे पतितार्युर्वर्ह लग्नशरीरक । सिमासितदिनानेकमूयकोच्छिद्यतलतः ॥ १०४ ॥ नरकन्यासवक्त्रोदसर्पसप्तसन्निधि । तदभूये-ष्टार्थयुनेत्यसौख्यदोषरसोत्सुक ॥ १०५ ॥ तदग्रदोषायापितायुग्रव्यापवद्माक्षिकममयक । तत्संसेवां सुख भत्वा कष्ट संवापि जीवति ॥ १०६ ॥ विधीविंश-यसंसको धीमानपि कथ तथा । वर्तते लक्षसगः सन्नकुर्वन्नुर्वह तपः ॥ १०७ ॥ इत्याकर्ण्य वक्तव्ययाता कन्याश्च तत्कर । तनुससारभोगेषु यातारोति

उन्धोने राजासे कह दी । राजाने इस दुराचारकी बात जानकर किसी भी उपायसे उसजारको पकडनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दी । जब सेवक लोग पकडनेके लिये गये तो उस रानीने उस दुष्टको दृष्टिमें छिपादिया । वहांकी दुर्गंध और कीहोंसे उसे बहुत दुःख हुआ और पाप कर्मके उदयसे उसी जन्ममें उसे नरकमें रहनेका स्वाद मिल गया ॥ १७-२१ ॥ इसीप्रकार थोड़े सुखकी इच्छा करनेवाले लोग नरकमें पडते हैं और वहांपर अत्यंत असह्य, अपार और घोर दुःखोंको सहते हैं ॥ १०० ॥ इसके बाद भी वह कुमार संसारसे वैगन्य उत्पन्न करनेवाली एक कथा उस चोरसे और कहगा ॥ १०१ ॥ कि एक जीव संसाररूपी बनमें घूम रहा था, एक मदेनमत्त मृत्युरूपी हाथी क्रोधसे मारनेके लिये उसके पीछे पडा जिसे देखकर डरसे वह भागा और उसके पीछे पीछे वह हाथी दौडा । वह जीव भागता भागता मनुष्यरूपी दृक्षके आ-दमें छिपगया । उसी दृक्षकी जडके नीचे कुल गोत्र आदि अनेक धूलोंसे व्याप्त ऐसा जन्म कूप था उसीमें वह जीव पडगया परंतु आयुरूपी वेल उसके हाथ आगई और वह उसे ही पकडकर लटकता रहा । कृष्णपत्त और शुक्ल-पत्तरूपी अनेक चूहे उस वेलकी जड काट रहे थे ॥ १०२-१०४ ॥ सातों नरकरूपी सर्प उसकी ओर मुंह फाडे उसके गिरनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । उसी दृक्षपर पुत्रादिक इष्ट पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ सुखरूपी शहदका रस टपक रहा था उसके खानेकी उसे बहुत ही लालसा लग रही थी ॥ १०५ ॥ उस रसके चाटनेसे वे शहदकी मक्खियां उडकर शरीर-से लग गई थी वह जीव उस रसकी बूदके लिये सेवा करनेको ही सुलभ मान रहा था । इसीप्रकार संसारके सब ही जीव बड़े कष्टसे जीवित रहते हैं ॥ १०६ ॥ जो मूर्ख है वे भले ही इसप्रकार विषयोंमें आसक्त हो जाय परंतु जो बुद्धिमान हैं वे इसप्रकार विषयोंमें आसक्त कैसे हो सकते हैं वे तो सब परिग्रहोंका त्याग कर दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए समय व्यतीत

विरागता ॥ १०८ ॥ तदा तपः समाधूय भ्रासमानो दिवाकर । योजयन् प्रियया कोक कुमारसिन्धु वीक्षया ॥ १०९ ॥ कोर्नैज कुमारस्य मनोवात्सल्य रंजयन् । उद्यमस्तपसी वोढे शिवरेद्रेहेष्यति ॥ ११० ॥ सर्वसतापकुत्तीक्ष्णकरः क्रूरोनवरिषत् । रधिःकुबलयप्यवसी प्रजिता कुटुम्बोपमां ॥ १११ ॥ निलो-  
दयो युधाधीशो विशुद्धास्त्रमण्डल । पद्मालादी प्रवृद्धोष्मा सुजातं स जेष्यति ॥ ११२ ॥ भ्रात्या संसारवमुह्य कुमारस्यास्य बांधवा । तदा कुणिभ-  
द्वाराजः सेनयाष्टादशाभिच ॥ ११३ ॥ सदानादृतदेवेन परेनिष्क्रमण प्रति । अभिवेक कश्चित्ति संगता मगलैर्जनैः ॥ ११४ ॥ तत्कालोचितवेयोसौ शिविका  
देवनिर्मिता । आरुष भूरिभूयोर्बाविपुलाचलमस्तके ॥ ११५ ॥ मा निविष्ट समभ्येत्य महाभुनिनिबेवित । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य यथाविधि ॥ ११६ ॥  
वर्णत्रयसमुद्भूतैर्विषैर्बहुभि सम । विषुबोरेण तत्पचशतमलैश्च समयम् ॥ ११७ ॥ सुषर्मणश्चतुर्ध्वैः समन्वितो प्रहोष्यति । कैवल्याद्वाद्वाद्वाद्वाते मध्यस्या

करते हैं ॥ १०७ ॥ जंबूकुमारकी यह बात सुनकर उसकी माता वे कन्याएं और वह चोर सब शरीर संसार और भो-  
गोंसे विरक्त होगे ॥ १०८ ॥ तदनंतर चक्रवाको चक्रवीके समान कुमारको दीक्षासे संयोग कराता हुआ अपना किरणों-  
से कुमारके मनको स्पर्शकर प्रसन्न करता हुआ तपश्चरणके लिये श्रेष्ठ उद्यमके समान सब अधिकारको नष्टकर उदयाचल  
पर्वतकी शिखरपर सूर्य उदय होगा ॥ १०९-११० ॥ उससमय सबको संताप उत्पन्न करनेवाला तीक्ष्ण किरणोंको  
धारण करता हुआ ( राजा पक्षमें तीक्ष्णकर लगाता हुआ ) क्रूर, एक जगह न टिकनेवाला और कुबलय अर्थात् कम्पो-  
दिनियों ( राजा पक्षमें पृथ्वीमंडलको ) नाश करता हुआ सूर्य अन्यायी राजाकी उपमाको धारण करेगा ॥ १११ ॥  
अथवा नित्य उदय होनेवाला बुध नक्षत्रका स्वामी ( राजापक्षमें विद्वानोंका स्वामी ) विशुद्ध अखंड मंडलको धारण क-  
रनेवाला, कमलोंको प्रसन्न करनेवाला और उष्णताको बढ़ानेवाला वह सूर्य किसी अच्छे राजाको भी जितेगा ॥ ११२ ॥  
जंबूकुमारको संसारसे विरक्त देखकर उसके सब भाई बंधु लोग तथा अठारह तरहकी सेनाके साथ महाराज कुणिक आ-  
वेगा सबके साथ यह अनादृत यक्ष भी आवेगा और ये सब लोग मांगलिक लोगोंके साथ २ दीक्षा लेनेकेलिये जंबूकुमा-  
रका अभिवेक करेंगे ॥ ११३-११४ ॥ उससमयके योग्य वस्त्राभूषण पहिनकर वह कुमार देवोंके द्वारा बनाई हुई पालकीपर  
सवार होकर बड़ी विश्रुतिके साथ विपुलाचल पर्वतपर आवेगा ॥ ११५ ॥ मुझे विराजमान देखकर वह मेरेही समीप आवेगा  
उस समय अनेक मुनि मेरी सेवा बंदना कर रहे होंगे वह आकर बड़ी भक्तिसे प्रदक्षिणा देगा और विधि पूर्वक नमस्कार करेगा ॥ ११६ ॥  
तदनंतर समता परिणामोंको धारण करनेवाला वह जंबूकुमार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके साथ तथा  
विषुबोर और उसके पांचसौ योद्धाओंके साथ सुधर्माचार्यके समीप दीक्षा धारण करेगा । मुझे केवल ज्ञानके बारह वर्ष बाद नि-

गौतमा गते ॥ ११८ ॥ सुधर्मकेवली जंबूनामा च श्रुतकेवली । भूला पुनस्ततो द्वावशाब्दाते निर्वृति गते ॥ ११९ ॥ सुधर्मव्यतिष्ठि ज्ञान जंबूनाम्नो भविष्यति ।  
स्तस्य विष्यो भवो नाम चलाशितस्यमा महान् ॥ १२० ॥ इह धर्मोपदेशेन धरित्र्या विहरिष्यति । इत्यबाहीतदाकर्णस्थितस्तस्मिन्नामृतः ॥ १२१ ॥  
देवो महीपवशस्य माहात्म्यमिदमब्रुवत । अन्यआहृष्टसितुश्चरकृतानहताटक ॥ १२२ ॥ कस्मादेनेन बहुत्वमत्येतिश्रेयिकोभ्यधाव । गौतम विनयात्सोपि  
न्यागदत्तविति स्फुट ॥ १२३ ॥ जंबूनाम्नोन्वये पूर्व धर्मप्रियवर्णिकृते । गुणदेव्याम्बनासाहृष्टसुगुणजनिष्ठ स ॥ १२४ ॥ धनयौवनदर्पेण शिक्षामगमय-  
त्पितु । निरंकुशो भवत्सस्तस्यसनेषु विधेर्वशात् ॥ १२५ ॥ स दुर्देवद्विदोर्गत्यात्सञ्जातानुशयो मया । न श्रुता मत्पितु शिक्षेयकाशशमभावन ॥ १२६ ॥  
किञ्चितुष्यं समावर्ज्य व्यंतरस्तमुपागत । आददेनावृताख्योय तत्र सम्यक्त्वसंपद ॥ १२७ ॥ इति तद्वृत्ताश्रितः गौतमं मगधाविपः । अन्वबुक्कगतः क-  
स्मादिक पुण्य कृतवानयं ॥ १२८ ॥ विष्णुमालीभवेतीते प्रभास्यातेष्यनाहना । इत्यनुग्रहसुखैव भगवानेवमब्रवीत् ॥ १२९ ॥ अस्मिन् विदेहे पूर्वस्मिन्

वीणा प्राप्त होगा उस समय सुधर्माचार्यको केवल होगा और जंबूकुमारभुतकेवली होंगे । उसके बारह वर्ष बाद सुधर्माचार्यको मोक्ष प्राप्त होगा और जंबूस्वामीको केवलज्ञान होगा । भव नामका एक जंबूस्वामीका शिष्य होगा और उसके साथ चालीस वर्ष तक धर्मो-  
पदेश देते हुए जंबूस्वामी इस पृथ्वीपर विहार करेंगे गौतमस्वामीकी कही हुई इस कथाको सुनकर वहांपर बैठा हुआ अना-  
दृत नामका यस बड़ा ही प्रसन्न हुआ और भेरे वंशका ऐसा अद्भुत माहात्म्य है जो कि दूसरी जगह कहीं देखनेमें नहीं  
आता इसप्रकार कहते हुए उसने आनंद नाटक किया ॥ ११७-१२२ ॥ यह देखकर राजा श्रेणिकने बड़ी विनयसे  
गौतम गणधरसे पूछा कि हे देव जंबूकुमारके साथ इसका भाईपना ( एक वंशपना ) कैसा ! इसके उत्तरमें गौतम गणधर  
कहने लगे ॥ १२३ ॥ जंबूकुमारके वंशमें पहिले एक धर्मप्रिय नामका वैश्य था । उसकी गुणादेवी नामकी स्त्रीसे अर्द्धरास  
नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १२४ ॥ धन और यौवनके अधिमानसे वह पिताकी शिक्षाको कुछ नहीं गिनता था और  
कर्मोंके उदयसे निरंकुश होकर सातों व्यसनोंमें आसक्त हो गया था ॥ १२५ ॥ अनेक दृष्ट चेष्टाओंके कारण जब उ-  
सकी दुर्गति होने लगी तब उसे पश्चात्ताप हुआ और “मैंने पिताकी शिक्षा नहीं सुनी” यही विचार करते हुए उसका  
चित्त कुछ शांत हुआ ॥ १२६ ॥ तदनंतर उसने कुछ पुण्यका उपार्जन किया जिससे यह अनादृत नामका व्यंतर देव  
हुआ है । इसी पर्यायमें इसने सम्यग्दर्शन धारण किया है ॥ २७ ॥ इसप्रकार इन दोनोंमें परस्पर भाईपनेका प्रेम है । इ-  
सके बाद श्रेणिकने गौतमगणधरसे फिर पूछा कि हे देव विद्वन्माली भवके पहिले भी इसने कौनसा पुण्य किया था क-  
हांसे यह आया है क्योंकि इसके अंतिस दिन है तब भी इसकी प्रथा कम नहीं हुई है । इसके उत्तरमें भगवान गौतमगण-



वीतशोकान्नयं पुरं विषये पुष्कलावलीं महापद्मोत्सव गलक ॥ १३० ॥ बनमालास्य दे व्यस्या सुतः शिवकुमारक । नवयौवनपुंषभ मवयोसिः न तद्वन ॥ १३१ ॥ विह्वल्य पुनरागच्छन्सम्प्रेमण समंतत । गम्पुष्पादिर्भागल्यद्वयसद्विबस्यपा ॥ १३२ ॥ जनानाम्रजतो दृष्ट्वा किमेतदिति विस्मयात् । तन्नुज, पु-  
च्छस्तिस्मात्सौ बुद्धिसागरमन्त्रिणः ॥ १३३ ॥ कुमार शृणु बन्ध्यामि मुनीन्द्रः श्रुतकेवली । ह्ययात सागरदत्ताह्यस्तपसा कीर्तयन् ॥ १३४ ॥ असां मायोपवा-  
साते पारणायं प्रविष्टवान् । पुरं कामममुद्राह्वयः श्रेष्ठी तस्मै यथाविधि ॥ १३५ ॥ दत्त्वा विश्राणन मकथा प्रापदाभ्यर्चयन्क । मुनिं मनोहरोद्यनवासिन  
त सकौतुकात् ॥ १३६ ॥ सपूज्य वदितुं याति पौराः परमभक्ति । इत्याख्यस्तोत्रे तच्छ्रुत्वा पुनरप्यनुयुक्त स ॥ १३७ ॥ कथं सागरदत्ताह्वयं विविषद्भि  
श्रगे श्रुती । प्रापदिल्यब्रवीन्मन्त्रिदुतोऽप्यनुयथाश्रुत ॥ १३८ ॥ विषये पुष्कलावलीं नगरी पुढरीकिणी । वज्रदंत पतिस्तस्याश्चक्रेणाक्रांतभूतलः ॥ १३९ ॥  
देवी यशोधरा तस्य गर्भिणी जातैर्देहदा । महा विभूया गत्वासां सीतासागरसंगमे ॥ १४० ॥ महाद्वारेण संप्राप्य जलधिं जलजानना । जलकेलीविधौ पु

धर देव दम्पत्रकार कहने लगे ॥ १२८-१२९ ॥ इसी जीवद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतशोक नामके न-  
गरमें महापद्म नामका राजा राज्य करता था ॥ १३० ॥ इसकी बनमाला देवीसे शिवकुमार नामका पुत्र हुआ था ।  
यौवन अवस्था आनेपर किसी दिन वहां अपने साथियोंके साथ क्रीडा करनेके लिये वनमें गया था । क्रीडा कर वनसे  
लौट रहा था कि मार्गमें उसे गंध पुष्प आदि मांगलिक चीजें लेकर चारों ओरसे संभ्रमके साथ आते हुए लोग मिले ।  
उन्हें देखकर उसने बड़े आश्चर्यसे बुद्धिसागरके मंत्रीसे पूछा कि यह क्या है ॥ १३१-१३३ ॥ इसके उत्तरमें वह मंत्रीका  
पुत्र कहने लगा कि हे कुमार मैं कहता हूं सुन दीप्त नामके तपश्चरणसे प्रसिद्ध ऐसे सागरदत्त नामके श्रुतकेवली मुनि हैं ॥ १३४  
वे एक महीनेका उपवासकर आहारकेलिये नगरमें आये थे । कामसमुद्र नामके शेरठने उन्हें विधि पूर्वक बड़ी भक्तिसे आ-  
हार दिया था इसलिये उसके घर पंचाश्वर्योंकी वर्षा हुई थी । वे ही मुनिराज आहार लेकर मनोहर नामके उद्यानमें वि-  
राजमान हुए हैं उनकी पूजा और वंदना करनेकेलिये ये सब नगरनिवासी लोग बड़ी भक्तिसे और बड़े कौतुकसे जारेहे  
हैं । मंत्रीके पुत्रकी वह बात सुनकर वह राजकुमार फिर कहने लगा ॥ १३४-१३७ ॥ कि इन मुनिराजका नाम सागर-  
दत्त क्यों पडा और इन्हें श्रुतज्ञान और ऋद्धियां क्यों हुई हैं इसके उत्तरमें वह मंत्रीका पुत्र जैसा सुना था वैसा ही कहने  
लगा ॥ १३८ ॥ कि इसी पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत चक्रवर्ती चक्रवर्त्तसे सब पृथ्वीको जीतकर  
राज्य करता था । जब उसकी यशोधरा देवी गर्भिणी हुई थी तब उसे दौहद हुआ था और उसके अनुसार बड़ी विभू-  
तिके साथ वह कमलनयनी जहां सीता नदी जाकर मिलती है उसी महाद्वारसे जाकर समुद्रमें क्रीडा करनेकेलिये गई थी ।

शमलन्ध्याम्यर्णनिवृत्ति ॥ १४१ ॥ तस्मात्सागरदत्ताख्यामस्यां कुप्यन्तनामयः । वधयौवनसंप्राप्तौ स कदाचन नाटकं ॥ १४२ ॥ सार्द्धं स्वपरिवारेण पश्यन्  
 हर्षतले स्थित । चेटकेनानुकुलाख्यानमधेयेन भाषित ॥ १४३ ॥ कुमार मदारकारितवृत्तयेप पयोधरः । पस्याधर्यमतिथीत्या प्रोन्मुखोलोचनप्रियं १४४  
 योगभाक् समजायत ॥ १४६ ॥ स्वपित्रा सममन्येयुः संप्राप्यायुतसागरं । स्थित मनोद्वेगाने धर्मतीर्थस्य नायकं ॥ १४७ ॥ श्रुत्वा धर्मं तदभ्यर्णं नि-  
 र्गतसकलस्थिति । संयमं बहुभि सार्द्धं कृतवंधुविसर्जनः ॥ १४८ ॥ प्रतिश्रुणु मनःपर्यायादिं प्राप्यदिसपद । देशान् विहृत्य सधर्मवेदोनेह समागतः १४९  
 केन वक्त्रमिष्टपृच्छन् मचाववीत् ॥ १५१ ॥ द्वीपेस्मिन् मरुतेक्षेत्रे क्षिप्ये मगथाह्वये । इदमामे झुता जातो रेवत्या वरजन्मन ॥ १५२ ॥ ज्येष्ठोत्र राष्ट्र-  
 वहीपर जलक्रीडां करते समय ही उसके शीघ्र ही मोक्ष जानेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १३१-१४१ ॥ इसीलिये उ-  
 रदत्त अपने परिवारके साथ राजभवनकी ऊपरकी गद्दीपर बैठा हुआ नाटक देख रहा था, उससमय अनुकूल नामके सेव-  
 कने कहा कि हे कुमार देखो यह बादल कैसा मंदराचल पर्वतके आकारका बना हुआ है । इस आश्चर्यको सुनकर वह  
 कुमार भी बड़े प्रेमसे ऊपरकी ओर देखने लगा परंतु नेत्रोंको सुंदर लगनेवाला वह बादल उसी समय नष्ट हो गया । उ-  
 सकं नष्ट होते ही वह विचार करने लगा कि जिसप्रकार यह बादल वायुसे नष्ट हो गया उसीप्रकार यह यौवन सरীর  
 और विभूति सब नष्ट होनेवाली है । परिवर्तनशील संसारमें एकसे दूसरेका नाश होना अवश्यभावी है इसप्रकार विचार-  
 कर वह संसारसे विरक्त हुआ ॥ १४२-१४६ ॥ दूसरे दिन ही वह पिताके साथ मनोहर नामके उद्यानमें विराजमान  
 ऐसे अमृतसागर नामके धर्मतीर्थके नायक अर्थात् तीर्थंकरके समीप पहुंचा । वहांपर जाकर उनसे धर्मका स्वरूप सुना सब  
 पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय किया और अनेक लोगोंके समीप पहुंचा । वहांपर जाकर उनसे धर्मका स्वरूप सुना सब  
 तदनंतर मनःपर्याय आदि अनेक श्रद्धियोंकी संपदाको पाकर धर्मोपदेश देते हुए सब देशोंमें विहारकर वे ही सागरदत्त  
 मुनिराज यहां पधारे हैं ॥ १४९ ॥ मंत्रीके पुत्रकी यह बात सुनकर उस राजकुमारके चित्तमें मुनिराजके प्रति प्रेम उत्पन्न  
 हुआ वह स्वयं उनके समीप पहुंचा उनकी स्तुतिकी, धर्मायुक्तका पान किया और फिर पूछा कि हे भगवान आपको । देख-  
 कर मुझे भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है इसका क्या कारण है आप कृपाकर कहिये इसके उत्तर में मुनिराज कहने लगे कि

कूटस्य भगवत्सुत परः । भवदेवस्तयोर्ध्यायान् संयम प्रत्यगच्छत ॥ १५३ ॥ सुस्थिताश्च गुणं प्राप्य तेनामा विनयाग्निवत् । नानादेशान्निहत्यायास्त्वज-  
न्मग्राः समेव सः ॥ १५४ ॥ तदा तद्वाधवा सर्वे समागल्य सर्वमदा । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य स पूज्यान्तमुद्यता ॥ १५५ ॥ ग्रामे दुर्मेषणो नाम तस्मिन्नेव  
युहाधिप । तस्य नागवसुर्मर्त्या नागश्रीरनयो सुता ॥ १५६ ॥ ताभ्यां सा भवदेवाय प्रादायि विधिपूर्वक । अग्रजागमत श्रुत्वा सद्यः सजातसमदः १५७  
भवदेवोप्युपागल्य भगवत्सुनीश्वर । विमयात्स प्रणम्यास्त तत्कृताशासनाद्रिः ॥ १५८ ॥ आस्थाय धर्मयाथात्म्यं वैरूप्यमपि सद्यते । गृहीतपाणिरेकांते सं-  
जमो गृह्यता खया ॥ १५९ ॥ इत्याह त मुनि सोपि प्रत्यवासीदिद वच । नागश्रीं लक्षण कृत्वा कर्तास्मि भवतोदित ॥ १६० ॥ इति तन्मुनिराकर्ण्य ज-  
गाद जनने जनः । भार्यारिप्राशसत्स्रम करोत्यात्महिं कथ ॥ १६१ ॥ लज तन्मोक्षमित्येवं भवदेवोद्यनुत्तर । मतिं ज्येष्ठानुरोधेन व्याधादीक्षाविद्यां तदा

इसी जंबूदीपके भारतक्षेत्रमें मगधदेशके वर्द्धमान गांवमें एक राष्ट्रकूट नामका वैश्य रहता था उसकी रेवती नामकी स्त्रीसे दो पुत्र हुए थे एक भगदत्त और दूसरा भवदेव । उनमेंसे बड़े पुत्र भगदत्तने सुस्थित नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण करली थी । तदनंतर उन गुरुके साथ बड़ी विनयसे अनेक देशोंमें विहारकर वह अपनी जन्मभूमिमें आया था ॥ १४९-१५४ ॥ उससमय उसके सब भाई बंधु लोग बड़े हर्षसे उसके समीप आये थे और मुनिराजकी प्रदक्षिणा देकर पूजाकर नमस्कार करनेको तैयार हुए थे ॥ १५५ ॥ उसीगांवमें एक दुर्मेषण नामका सदृहस्य था उसके नागवसु नामकी स्त्री थी और उससे उत्पन्न हुई नागश्री नामकी कन्या थी ॥ १५६ ॥ उन दोनों माता पिताने वह नागश्री कन्या विधि पूर्वक भवदेवको व्याह दी थी । अपने बड़े भाई मुनिराज भगदत्तका आना सुनकर भवदेव भी बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही उनके समीप पहुंचा । बड़ी विनयसे उन्हें नमस्कार किया और मुनिराजके उपदेशसे उसका चित्त बहुत ही आर्द्र हुआ ॥ १५७-१५८ ॥ तदनंतर भग-  
दत्त मुनिराजने अपने छोटे भाई भवदेवका हाथ पकड़कर और एकांतमें ले जाकर संसारसे विरक्तता उत्पन्न करनेवाला धर्मके यथार्थ स्वरूपका उपदेश दिया और कहा कि अब तू संयम धारण करले । उसके उत्तरमें भवदेवने कहा कि मैं घर जाकर नागश्रीसे पूछ आऊँ तब फिर आपका कहना कर लूंगा ॥ १५९-१६० ॥ भवदेवकी यह बात सुनकर मुनिराज कहने लगे कि इस संसारमें स्त्री आदिके जालमें फंसा हुआ यह जीव अपना कल्याण कैसे कर सकता है ? ॥ १६१ ॥ इसलिये तू अपना मोह छोड़ दे । इसप्रकार समझानेपर भवदेवने कुछ उत्तर नहीं दिया और बड़े भाईके अनुरोधसे दीक्षा लेनेमें अपना चित्त लगाया ॥ १६२ ॥ तदन्तर वे भगदत्तमुनि भवदेवको अपने गुरुके समीप लेगये और संसारको

॥ १६२ ॥ नीला स्वगुणसमीप्यं भगवतोः भवच्छेदे । दीक्षामप्राहयन्मौक्षीं सतां तोदयमीदृशः ॥ १६३ ॥ स त्रय्यसंयमी भूला विधीद्विदशवत्सरान् । विहृत्य  
 गुरुभिः सार्द्धमन्त्रैरुरसद्वायकः ॥ १६४ ॥ बुद्धमाम निजयत्वा सुप्रतापणिनीमभि । समीक्ष्यास्मिन् किमस्त्यय नागधीर्नाम काञ्चन ॥ १६५ ॥ इति संप्रज्ञ-  
 नकमप्रवीतः ॥ १६७ ॥ वैश्य सर्वसमृद्धाख्यस्तद्वापीतनयः झुचि । दारुकाख्य सुमात्रास्त्रच्छेष्टशुचिष्ठामित त्वया ॥ १६८ ॥ भोजन्यमिति निर्वभाङ्गो-  
 जित स जुगुप्सया । वतितोऽन् वसपात्रेण तत्तन्मात्राहित पुनः ॥ १६९ ॥ उज्जुर्गन्तरे भोक्तुं प्रार्थयामास दारुकः । तयापि कवपात्रस्य पुरस्तादुपवा-  
 कितं ॥ १७० ॥ उज्जुषीद्वितोर्व्येय नाग्रदीक्षातमात्मनः । सोपि चेत्तादृशः साधु कथं सफममीप्सति ॥ १७१ ॥ अर्थाख्यानमिदं कथं शृणु कृपापात्र-  
 नाश करनेके लिये मोक्ष देनेवाली दीक्षा ग्रहण करा दी सो ठीक है क्योंकि सज्जनोंका भाईपना ऐसा ही होता है ॥ १६३ ॥  
 उस मूर्खने त्रय्यसंयम धारणकर बारह वर्षतक गुरुके साथ विहार किया और फिर किसी एक दिन वह सकेला ही  
 अपने वज्रपान गाँवमें आया उसने एक सुव्रता नामकी गणिनीके समीप जाकर पूछा कि हे माता इस गाँवमें कोई नागभी  
 नामकी स्त्री रहती है ? । इस तरह कहकर और उदासीनता धारणकर उस गणिनीने उस मुनिको संयममें स्थिर करनेके  
 लिये एक गुणवती नामकी अजिंकासे कथा कहना प्रारम्भ किया ॥ १६४-१६६ ॥ वह कहने लगी एक सर्वसमृद्ध नामका  
 वैश्य था उसके शुद्ध हृदयवाला दारुक नामका दासीपुत्र था । किसी एकदिन उसकी माताने उससे कहा कि हमारे  
 शेटका झूठा भोजन तू खायाकर इस तरह कहकर उसने जवर्दस्ती झूठा भोजन उसे खिला दिया परन्तु ग्लानि अनेसे  
 उस पुत्रने वह सब वमन कर दिया । उसकी माताने वह सब वमन एक कांसेकी थालीमें ले लिया और जब फिर उस  
 दारुककी भूल लगी तथा मातासे भोजन मांगा तब उस माताने वही कांसेकी थालीमें रखवा हुआ उसका वमन उसके  
 सामने रख दिया ॥ १६६-१७० ॥ यद्यपि उस दारुकको बहुत भूल लगी थी तथापि उसने वह अपना वमन किया हुआ  
 नहीं खाया । जब उस दासी पुत्रने ही अपना वमन किया हुआ भोजन बहुत भूल लगने पर भी नहीं खाया तब साधु  
 होकर भी अपनी छोटी हुई चीजको किस तरह चाहते हैं ? ॥ १७१ ॥ इसके सिवाय भी मैं एक कथा और कहती हूँ तु  
 चित्तको स्थिर रखकर सुन । एक नरपाल नामका राजा था उसने बड़े कौतुकसे एक कुत्ता पाला था । भीटे भोजन दे  
 देकर उसे पाला था उसे सब तरहके सोनेके आभूषण पहिनाये थे वह मूर्ख राजा उसे पालकीमें बिठाकर सदा बजने

रिबर । नरेशो नरपलाय-मानमेक सकौतुक ॥ १०२ ॥ मिष्टशनेन सपोष्य स्वर्णोत्तरणभूषित । सदा वनविह्वलसिङ्गित कनककल्पित ॥ १०३ ॥ कारोष्य  
शिबिकाभेवं महशुदिरपाक्यात् । कदाचिच्छिविकाः सहो गच्छन्केल्येकाधम ॥ १०४ ॥ विद्यामालोक्य बालस्य लिप्पुरापततिस्म स । तद्वद्वृषपाकरोद्भूतो  
ककुटीतावनेन त ॥ १०५ ॥ तद्वन्मुनिष सर्वेषां पूजनीयः पुरा पुन । सत्तामिवाच्छया भूयः संप्राप्नोति पराभव ॥ १०६ ॥ इदमन्यक्तवित्कवित्पथिक-  
सहनार्तरे । शुग्धिफलपुष्पादिसेवयाश्रयं सुखं सत ॥ १०७ ॥ गत्वा विहाय सन्यार्ग महागहनसंकटे । दृष्ट्वा भुवितमस्युम सचमूरं जियाकुं ॥ १०८ ॥  
भीत्वा धावंसदैकस्मिन् भीमे कृपेपतस्समीः । तत्र श्रीतादिसिः पापाद् पत्रितयसभवे ॥ १०९ ॥ बगदृष्टिभ्रुतिगत्याहिहीनं सर्वविबाधन । तं त्रिर्गमनोपा-  
ययजानत यहच्छया ॥ ११० ॥ कश्चिद्भूषणवरो वीक्ष्य दययाहीकृताशय । भिर्गमय्य ततः केनाप्युपायेन महादरात् ॥ १११ ॥ मत्प्रौढप्रयोगेण कृतपा-  
दप्रसारण । सूक्ष्मरूपसमालोकनोन्मीलितविलोचन ॥ ११२ ॥ स्रष्टाकर्णनविज्ञातलक्षशक्तिश्रवणद्वय । व्यफवाक्प्रसरोयेतरसन च व्यादासु ॥ ११३ ॥ स स-

क्रीडा करनेके लिये ले जाता था । किसी एक दिन वह नीच कुत्ता पालकीमें बैठा हुआ जा रहा था कि एक बालककी  
विष्टा उसे दिख ई पधी और उसे चाटनेके लिये वह तुरन्त ही दूद पडा । यह देखकर उस राजाने भी लकड़ियोंकी मार  
उसे दूर भगा दिया ॥ १०२-१०५ ॥ इसी प्रकार जिन मुनियोंकी पहिले सब लोग पूजा करते हैं यदि वेही फिर त्याग  
किये हुए पदार्थोंकी इच्छा करने लगें तो उनका भी संसारमें तिरस्कार ही होता है ॥ १०६ ॥ इस कथाके बाद एक कथा और  
कहती हूं-किसी वनमें कोई पथिक सुगन्धित फल पुष्प लेनेके लिये सुखसे जा रहा था परन्तु वह अच्छा मार्ग छोड़कर  
बड़े संकीर्ण और गहन वनमें जा पडा । वहापर उसने एक भ्रवा, बहुत बडा और मारनेके लिये अपनी ओर आता हुआ  
सिंह देखा ॥ १०७-१०८ ॥ उसके डरसे डरकर दौडता हुआ वह भयभीत पथिक एक भयानक कूपमें पडगया । पाप  
कर्मके उदयसे वात पिच कफ आदि तीनों दोष उत्पन्न हुए और वह वचन, दृष्टि, कान, गति इन सबसे हीन होगया-  
इसके सिवाय भी सांप आदिकी वाधा उसे अलग थी । सब इंद्रियां बन्द हो जानेसे वह वहांसे निकलनेका उपाय भी  
नहीं जानता था । दैवयोगसे इच्छानुसार चलकर एक वैद्य भी वहां जा पहुंचा उस पथिकको देखकर उसका हृदय  
दयासे भीग गया और किसी भी उपायसे उसने उसे बड़े आदरसे वाहर निकाला ॥ १०९-११० ॥ उस वैद्यने मंत्र और  
औषधियोंके प्रयोगसे उसके पैर भी सीधे कर दिये और सूक्ष्मरूपको देखनेयोग्य नेत्र भी खोल दिये ॥ ११२ ॥ उसके कानोंमें  
भी स्पष्ट सुननेयोग्य शक्ति उत्पन्न करदी और उसकी जीभमें भी व्यक्त वाक्योंके कहनेकी शक्ति उत्पन्न कर दी ॥ ११३ ॥  
इसके बाद उसे मार्ग दिखलाकर सर्वप्रथमीय नामके नगरमें पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि उदार हृदयवाले मनुष्य

नैरसनीयास्यं पुरं ते मार्गवर्सेनात् । प्रत्याण्यस्य कस्योपकुर्वन्ति विद्यादायका ॥ १८४ ॥ पुनः स विद्यासाधकमस्ति पयिकुमुस्ति । प्रकटीकृतदिग्भाषामोहः  
 प्राक्तनरूपकं ॥ १८५ ॥ संप्राप्य पतितत्वास्मिन्ना कोचन सद्यते । मिथ्यात्वदिक्पक्षोपमाविधादीन्युपागतान् ॥ १८६ ॥ जन्मकृते क्षुधादाहाद्यातान्ध-  
 नीस्यं सन्मस्ति । युक्तैवो दयादाहादीन्युपागतान् ॥ १८७ ॥ निर्गम्य ततो जैनभाषावृत्तिनिषेवनात् । सम्यक्त्वनेत्रमुन्नीत्य सम्यग्ज्ञानमुतिद्वयं  
 ॥ १८८ ॥ समुद्धृत्य सदुद्धृतपादौ इत्वा प्रसारिता । व्यक्तां दयामयीं शिक्षा विधाय विधिपूर्वकं ॥ १८९ ॥ पंचप्रकारस्वाध्यायवचनान्यमिधाय तान् ।  
 सुधीरागमन्यमार्गं साधुः स्वर्गापवर्गयोः ॥ १९० ॥ निष्पन्नोदयादीपवसं रास्तात्र केचन । उगंधिचंद्रोदुमिन्वंपकाभ्यासवर्तिनः ॥ १९१ ॥ तत्सौरमाव-  
 वोभावमुक्ताः पट्वरणा यथा । पार्श्वस्थाख्या सुदृक् नचारित्र्योपागतवतनात् ॥ १९२ ॥ कषायविषयारभैकिकिज्ञानवेदैकैः । विद्यावद्भेदवसंख्याः कुली-  
 काख्या दुराध्यायाः ॥ १९३ ॥ संघक्ताशा निविद्धे दुःस्वप्नावेषु लोढ्या । अवसानाद्धया हीयमानज्ञानादिकल्पतः ॥ १९४ ॥ समाचारवर्हिषता मृगचार्य-  
 किसको उपकार नहीं करते हैं अर्थात् सवका उपकार करते ही हैं ॥ १८४ ॥ इसके बाद उस मूल पर्यिककी बुद्धि फिर  
 विषयोंमें आसक्त होगई और दिग्भ्रम प्रगट होनेके कारण वह फिर उसी रूपके समीप जाकर उसीमें जापड़ा । इसी  
 प्रकार ये जीव भी इस संसारमें मिथ्यात्व आदि आसक्तके कारण रूप पांचो बधिर आदि महारोगोंको प्राप्त हो रहे हैं और  
 जन्मरूपी रूपमें पडकर भूत्व प्यास आदिके दुःखोंसे महादुखी हो रहे हैं उन्हें देखकर धर्मोपदेश देनेके उपायोंमें अत्यन्त  
 चतुर और श्रेष्ठ बुद्धिको धारण करनेवाले गुरुरूपी वैद्य दयालु होनेके कारण उन्हें निकालते हैं और फिर जैनवचनरूपी  
 औषधियोंका सेवन कराकर सम्यग्दर्शनरूपी नेत्रोंको खोल देते हैं, सम्यग्ज्ञानरूपी कानोंको साफ प्रगट कर देते हैं, सम्यक्  
 चारित्र्यरूपी दोनों पैर फैलाकर सीधा कर देते हैं और जीभको विधिपूर्वक व्यक्त दयामयी बना देते हैं ॥ १८५-१८९ ॥  
 भी बहुतसे लोग पापकर्मके उदयसे दीर्घसंसारी होते हैं । जिस प्रकार अमरको सुगंधित और मिष्ट गन्धवाले चम्पकके  
 सपीप रहते हुए भी उसकी सुगन्धिताका ज्ञान नहीं होता इसी प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्यके समीप रहते हुए भी जिन्हें  
 रत्नत्रयका ज्ञान नहीं होता वे पार्श्वस्थ कहलाते हैं ॥ १९०-१९२ ॥ जो कषाय, विषय, आरंभ लौकिक ज्ञान आदिके  
 वश होकर जिज्ञा इन्द्रियके छहों रसोंमें आसक्त हो रहते हैं वे दुष्ट कुशील कहलाते हैं ॥ १९३ ॥ जो निषिद्ध वा त्याग  
 करने योग्य द्रव्य भावोंमें लोलुपी रहते हैं वे संसक्त कहलाते हैं । जिनके ज्ञान चारित्र्य आदि घटते जाते हैं वे अवसान  
 कहे जाते हैं और जो सदाचार रहित स्वच्छाचारी हैं वे मृगचारी कहलाते हैं । ये सब मृग महामोहका त्याग नहीं करते

सिमानका । महामोहानिबुलाजबंबागाधकृष्णके ॥ १९५ ॥ पतस्वि पुनश्चेति भवदेवोपि तच्छब्दे । संश्रान्तशतभाषोभूद्वात्वा तत्सार्थकाश्रणीः २९६ नागश्रिय च दैर्गस्यभाषोपामित्तु स्थिति । अनादयावदशोबस्तोपि तां दृष्ट्वा संसृतिस्थिति ॥ १९७ ॥ स्पृत्वा धिगति निदित्वा गृहीत्वा समयम पुन । आत्रान् सहायुषः प्राप्ते कुमारखाराधना श्रितः ॥ १९८ ॥ मुरवा म हेंद्रकल्पेभृद्वलभद्रविमानके । सामानिकसुर सप्तसागरोपमजीवितः ॥ १९९ ॥ ज्यायानहम जायि त्व कनिष्ठोमूस्ततश्च्युतः । इति सोपि मुनिप्रोक्तश्रवणेन विरक्तवान् ॥ २०० ॥ वीक्षा गृहीदुमुक्तो मात्रा पित्रा च वारित । प्रविश्य नगरं जातस विद्वत्प्रासुकाशन ॥ २०१ ॥ नाहमाहारयामीति कुमारोऽकृत निश्चय । तद्वाताश्रवणाद्भूतो यः कश्चिद्भोजयत्यमु ॥ २०२ ॥ तस्मै सप्र धेनं दास्यामीति स- सद्योषयत् । तज्ज्ञात्वा दृढधर्मस्थः सप्तस्थानममाश्रयः ॥ २०३ ॥ श्रावकः समुपेत्येन कुमारं ज्ञातिशत्रवः । तंवते स्वपरष्वसकोविदाः पापहेतवः २०४ भावसंयमकिञ्चित्स्तिमकृत्वा प्रासुकाशनं । कस्मिन् भद्रं पशुष्टिमवियुक्तस्य वंशुसि ॥ २०५ ॥ दुर्लभा समये वृत्तितिल्यवोचदित वच । सोपि भवत्वा तदाचा

इसलिये दीर्घ संसारीरूपी अगाध कूपमें फिर भी जाकर पड़ते ही हैं । अजिंकाकी ये सब बातें सुनकर भद्रदेवका चित्त अत्यंत शान्त होगया उसका शान्त चित्त देखकर उस मुख्य आर्थिकाने भी दुर्गति वा दरिद्रतासे जिसकी स्थिति अत्यन्त शान्त होरही है ऐसी नागश्रीको लाकर उसे दिखला दिया । उसे देखकर भवदेवने और भी संसारकी साक्षात् स्थितिका स्मरण किया धिक्कार देते हुए अपनी निन्दाकी फिरसे संयम धारण किया और बड़े भारीके साथ आयुके अन्तमें अनुक्रमसे चारों आराधनाओंका आश्रय लिया । परकर अपने भारिकेही चौथे माहेन्द्र स्वर्गके वलभद्र विमानमें सात सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुआ ॥ २०४-२०५ ॥ वहांसे च्युत होकर बड़े भारी भगदत्तका जीव में हुआ हूं और छोटे भारी भवदेवका जीव तू हुआ है । इस प्रकार छुनिराजके वचन सुनकर वह शिवकुमार विरक्त हुआ ॥ २०० ॥ वह दीक्षा लेनेके लिये तैयार हुआ परन्तु माता पिताने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया । जिसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ है ऐसा वह कुमार यद्यपि नगरमें गया तथापि उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अमासुक आहार कभी नहीं करूंगा । कुमारकी यह प्रतिज्ञा सुनकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि जो कोई इस कुमारको भोजन करावेगा उसे मैं इच्छानुसार धन दूंगा । राजाकी यह घोषणा सुनकर धार्मिक सातों स्थानोंमें दान देनेवाला दृढधर्मा नामका श्रावक उस कुमारको समझाने लगा कि हे कुमार अपने और दूसरेके आत्माको नष्ट करनेमें परिहृत तथा पापके कारण ऐसे ये कुटुंबी लोग सब तेरे शत्रु हैं इसलिये हे भद्र ! भाए संयमका नाश न करते हुए मासुक भोजन लेकर पारखा कर । तू भारी बंधुओंसे रहित है इसलिये मैं तेरी वैयाह्य करूंगा । क्योंकि संयममें प्रवृत्ति रखना अत्यंत दुर्लभ है । इसप्रकार उस श्रावकने कुमारसे हितरूप वचन कहे । कुमारने





स्मिन् मंगवे स्वे सुप्रतिष्ठाप्यं पुरं ॥ २१६ ॥ जयसेनबहीपालः पाळकस्तस्य डीलया । तत्र सागरदत्ताध्याः श्रेष्ठी तस्य प्रभाकरी ॥ २१७ ॥ भार्या त  
योः भूषागदतो ज्येष्ठ सुतोदुजः । कुवेरदत्तो त्रिलोकसमस्तशृङ्खलिनः ॥ २१८ ॥ नागदत्त विषयार्थान्ये सर्वभूतनुपासकाः । रत्नाकरेपि सद्गत नागोत्पल्लवत-  
प्यकः ॥ २१९ ॥ तेषां काले प्रजयेवं निरौ धरणिभूषणे । इने त्रियकरोधने रुद्राभित्समवस्थित ॥ २२० ॥ मुनि सागरसेनारुम् जयसेनदृषादयः । गम्भा  
सपुत्र्य वंदित्वा धर्म साध्वन्व्युजत ॥ २२१ ॥ सोप्येधमव्रवीत्प्राप्तसम्पदं नलोचन । दानपूजाव्रतापोषिताभिभिः प्राप्तपुत्रका ॥ २२२ ॥ प्राप्नुवन्ति  
शुल स्वर्गे चापवर्गे च सममाह । सिन्धुहृदशब्द दानादिपुण्येन स्वर्गज सुख ॥ २२३ ॥ सप्राप्नुवन्ति तंत्रके शममाहात्म्यतः पुनः । कालाहिलिखमाश्रित्य-  
स्वतो वा परतोपि वा ॥ २२४ ॥ सद्धर्मलाभयोग्याश्च भयद्वयभ्यर्णमोचनाः । अन्ये तु भोगसंस्का गाढमिष्यात्वचल्यकाः ॥ २२५ ॥ हिंसादृष्टान्याराम-  
रत्नारंभपरिमहै । पाप संनित्य ससारदुष्कृते निपतसि ते ॥ २२६ ॥ इति तद्वचनं धृत्वा बहवो धर्ममाददु । अथ सागरदत्ताख्यश्रेष्ठिना स्वाधुबोधेन

नामकां राजा लीलापूर्वक राज्य करता था । उसी नगरमें एक सागरदत्त नामका श्रेष्ठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम प्रभाकरी था । उन दोनोंके दो पुत्र थे बड़ेका नाम नागदत्त था और छोटेका नाम कुवेरदत्त था । उस श्रेष्ठके घर जितने लोग रहते थे उनमेंसे नागदत्तको छोड़कर बाकी सब श्रावक थे सो ठीक ही है क्योंकि जो पुरुषहीन है उसे रत्नाकरमें रत्नोकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २१७-२१९ ॥ इसप्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होरहा था किसी एक समय धरणि भूषण नामके पर्वतके प्रियंकरोद्यान नामके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज आ विराजमान हुये । राजा जयसेन आदि बहुतसे लोगोंने जाकर उनकी पूजा बंदनाकी और सबने उनसे धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २२०-२२१ ॥ वे मुनि-  
राज भी धर्मका स्वरूप इसप्रकार कहने लगे कि जिन्हें सम्यग्दर्शनरूपी नेत्र प्राप्त हो चुके हैं ऐसे पुरुष दान पूजा व्रत उपवास आदिके द्वारा पुराय सम्पादन करते हैं तथा संयम धारणकर स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं । मिथ्या दृष्टि लोग दानादिक पुरायोंके द्वारा स्वर्गके सुख प्राप्त करते हैं । मिथ्यादृष्टियोंमें भी शान्त परिणायोंके माहात्म्यसे कितने ही जीव तो काल आदि लब्धियोंको पाकर अपने आप अथवा दूसरोंके द्वारा श्रेष्ठ धर्मको प्राप्त होनेके योग्य हो जाते हैं तथा शीघ्रही मुक्त होने योग्य हो जाते हैं और कितने ही जीव ऐसे हैं जिनके गाढ मिथ्यात्वरूपी शल्य बनी रहती है जो भोगोंमें आसक्त रहते हैं और हिंसा मृदु चोरी कुशील अत्यन्त आरम्भ तथा अत्यन्त परिग्रहसे पापोंका उपार्जनकर संसाररूपी बुरे कृष्ण पद जाते हैं ॥ २२२-२२६ ॥ इस प्रकार उन मुनिराजके वचन सुनकर बहुतसे स्त्रीगोंने धर्मको धारण कर लिया । तदंतर श्रेष्ठ सागरदत्तने अपनी आयुके दिन पूछे मुनिराजने तीस दिनकी आयु बतलाई । यह सुनकर वह श्रेष्ठ अपने नगरमें

॥ २२७ ॥ परिशुष्टे सुनिराजः दिवसांश्चिद्विश्रितो । तच्छब्दा नगरं श्रेष्ठं प्रविश्याद्यादिहकीं मुदा ॥ २२८ ॥ पूजा विधाय दत्तात्मपद ज्येष्ठाय सूनवे । कुबेरदत्तात्मन्यैवाववाप्तुं सर्वान् द्विविंशतिदिनानि सः । संन्यस्य विधिवन्नोक्तमवापददृशतामिना ॥ २२९ ॥ कथ्येद्युर्नागदत्तौ सौ लोभेनायेन चोदितः ॥ २३० ॥ युरोः पृथक् ॥ २३२ ॥ संन्यस्य विधिना स्वर्गं गतत्वापरि दूषण । महत्यापमिदं वक्तुं आतृप्तं न युज्यते ॥ २३३ ॥ श्रोतुं ममापि चेत्याह सोऽप्यप्यास्य दुर्मतिः । विमज्ज्य सकलं वस्तु चैलचैलाख्यादिकं ॥ २३४ ॥ निर्माप्यं जिनपूजाय विधाय विविधा सदा । दानं चतुर्विधं पात्रत्रये भक्त्या प्रवर्त्य तो ॥ २३५ ॥ कालं गमयतः स्मोद्यधीती प्रति परस्परं । दत्ता सागरसेनाय कदाचिन्मृत्पूजकं ॥ २३६ ॥ मिश्रां कुबेरदत्ताभ्याः सहितो धनमित्रया । अस्मि- गया उसने बड़े आनन्दसे आशान्दिकाकी पूजा की और फिर अपना पद अपने बड़े पुत्रको दिया । इसके बाद उसने सब भाई वन्धुओंसे पूछकर चाँस दिन तक विधि पूर्वक संन्यास धारण किया और शरीर छोड़कर स्वर्गलोक प्राप्त किया । किसी दूसरे दिन नागदत्तको अनन्ताशुवन्धी लोभने सताया इसलिये उसने दुष्टचित्तसे कुबेरदत्तको बुलाकर पूछा कि क्या पिताजी अपना सब कीमती धन तुमको बतला गये हैं ? ॥ २२७-२३१ ॥ कुबेरदत्तने सम्मत्तियां लगा कि आप न कहने योग्य ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं । स्वर्ग प्राप्त किया है उनके लिये ऐसा कहना उनपर दोष लगाना है और एक तरहका महापाप है । हे भाई आपको ऐसा कहना योग्य नहीं है और मुझे सुनना भी योग्य नहीं है । इस प्रकार कुबेरदत्तने सपने बड़े भाई की कुबुद्धि दूरकी, सब धनका बाँट किया, अनेक चैत्य चैत्यालय बनवाये, अनेक तरहसे जिन पूजा की और बड़ी भक्तिसे उच्चम मध्यम जगन्मयी तीनों तरहके पात्रोंको सदा चारों प्रकारका दान दिया । इस प्रकार दोनों भाईयोंमें परस्परका प्रेम बहुत ही बढ गया और दोनोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन कुबेरदत्तने अपनी स्त्री धनमित्राके साथ सागरसेन नामके सुनिराजको बड़ी भक्तिसे आहार दिया । आहार देनेके बाद उन दोनोंने वन्दनाकर पूछा कि हम दोनोंके कोई पुत्र होगा या नहीं यदि न हो तो हम दोनों ही दीक्षा धारण करलें इसके उत्तरमें सुनिराजने कहा कि तुम दोनोंके पराशुरूपवान् और चरमशरीरी पुत्र होगा । सुनिराजकी यह बात सुनकर दोनोंका हृदय बहुत ही मनुष्ट हुआ और उन

मिति तद्वाक्यश्रवणातोचिताशयैः । यत्नेन पूज्यपादस्य भवतः श्रुतकोत्सवमौ ॥ २३९ ॥ तस्मिन्नुत्सवस्यैव दास्याव इति तौ सुखः । भुञ्जानौ कतिविम्या-  
सान् गमयित्वा द्युतोचम ॥ २४० ॥ लब्ध्वा प्रीतिकराहानमेतस्याङ्कुरता मुदा । करेणु स्वगुणस्तोष सर्वेषां जगतामिति ॥ २४१ ॥ पञ्चसदसरातीता तस्मि-  
न्धास्यपुरान्मुनौ । आगते सति गत्वेनमस्मिन्वय मुनीन्द्र ते ॥ २४२ ॥ ध्रुवकोयं दृष्टाणेति तस्मै दत्तः म तं तदा । प्रतिष्ठ्य गुरुर्धन्यपुरमेवागत पुन ॥ २४३ ॥  
तत्र त सर्वशास्त्राणि दशवर्षेण्यशिक्षयत् । सोप्यासप्रविनेयत्वात्संयमग्रहणोत्सुक ॥ २४४ ॥ गुरुभिर्नियते बीक्षाकालोयमिति वारितः । तथैवास्त्विति तं  
भक्त्या नदित्वा पित्रौ प्रति ॥ २४५ ॥ प्रत्येलाभ्यस्वशास्त्राणि शिष्याणां समुपादिशत् । छात्रवैषम्ये गत्वा सर्ववधुकदवक ॥ २४६ ॥ विलोकयानतरे राज्ञा  
सम्यग्विबहितसङ्कतिः । असाधरणमात्मानं भन्यमानं कुलादिभिः २४७ ॥ धनं बहुतरं सारं यावन्नावर्जयाम्यह । तावन्न संप्रीक्ष्यामि पत्नीमिति विवितयत्  
॥ २४८ ॥ अन्येभुर्नागरैः कैश्चिज्जलयात्रोन्मुखैः सह । गियाधुर्वाषवान्सर्वानापृच्छयत्तत्र्यशोजन ॥ २४९ ॥ सम्मतस्तेनैर्मत्कुरुं गत्वा गुरुमुदात्तधी । पत्रमेकं

दोनोने कहा कि हे पूज्यपाद यदि ऐसाही है तो वह पुत्र आपका ही चुल्लूक हो उत्पन्न होते ही हम उसे आपको दे देंगे ।  
इसके बाद वे फिर सुखसे रहने लगे कितने ही महीने बीत जानेपर उनके उत्तम पुत्र हुआ और 'यह पुत्र अपने गुणोंसे  
सब संसारको सन्तुष्ट करो' यही सम्मकर बड़ी प्रसन्नतासे उसका नाम प्रीतिकर रखवा ॥ २३१-२४१ ॥ पुत्र जन्मके  
पाँच वर्ष बाद वे ही मुनिगज फिर धान्यपुर नगरमें आये कुवेरदत्त और धनमित्राने जाकर उनकी वन्दना की और कहा  
कि हे मुनिराज यह आपका चुल्लूक है इसे लीजिये इसप्रकार कहकर वह बालक उन्हें दे दिया । मुनिराज भी उस  
बालकको लेकर फिर धान्यपुर नगरमें आगये ॥ २४२-२४३ ॥ वहाँपर उन मुनिराजने दश वर्ष तक उस बालकको  
समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा दी । आसन्न भव्य होनेके कारण शिक्षाके बादही वह संयम धारण करनेके लिये तैयार होगया ॥ २४४ ॥  
परन्तु गुरुराजने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया और समझा दिया कि तेरा अभी दीक्षा लेनेका समय नहीं है । प्रीतिकरने  
भी गुरुकी यह बात स्वीकार कर ली, भक्ति पूर्वक उनकी वन्दनाकर वह अपने माता पिताके पास चला गया और पढ़े  
हुए सब शास्त्र अनेक शिष्योंको पढ़ाने लगा । वह पहिले तो विद्यार्थियोंका ही वेप धारण कर गया था और फिर सब  
भाई बन्धुओंको देखकर भसन्न हुआ । राजाने भी उसे विद्वान् देखकर उसका खूब आदर सत्कार किया । तदनंतर उसने  
विचार किया कि मेरा कुल गोत्र आदि बहुत बड़ा है मैं साधारण आदमी नहीं हूँ इसलिये जबतक बहुतसा धन न  
कमा लूँगा तबतक मैं अपना विवाह नहीं करूँगा ॥ २४५-२४७ ॥ किसी एक दिन कितने ही नगर निवासी जलयात्रा  
अर्थात् व्यापारके लिये समुद्रयात्रा करनेको तैयार हुए उनके साथ प्रीतिकर भी जानेको तैयार हुआ उसने जानेके लिये

निजामिप्रेतार्थकारसमर्पित ॥ २५० ॥ गुरुणार्पितमादाय कर्णे शुष्णाप्य सादरे । शकुनयानुकूल्येन ससखं पोतसाधन ॥ २५१ ॥ अवगाह्य पयोराशिं पुरं भूतलकाङ्क्ष्य । परित बलयाकारगिरिणा प्राप्य पुण्यवान् ॥ २५२ ॥ शबलदूर्वादिभिस्तस्मिन् ध्वनदुग्धि समुखान् बनान् । निर्गच्छतः प्रपश्यद्विमिराशक्य वणिगा वरैः ॥ २५३ ॥ गर्वतत्पुरभन्विष्य प्रत्येतुमिह कः सहः । इत्युदीरितमकण्ठ्यं प्रीतिकारकुमारक ॥ २५४ ॥ कर्मणोऽप्य समर्थोऽहमिति संगीर्णवास्तदा । नीचवक्त्रजनिष्पन्नरज्ज्वा तैरवतारित ॥ २५५ ॥ विस्मयात्परित पश्यन् प्रविश्य परित पुरा । निरीक्ष्य भवनं जैन परीत्य विहितस्तुतिः ॥ २५६ ॥ ततो गत्वा युष्मापातविगतास्तास्तिरूपयन् । समतात् कन्याको वाञ्छित गच्छतीं मरसो गृह ॥ २५७ ॥ केयमिलयुगातोऽसा त सलोक्य गृहगणे । भद्रगतः कुतो-ऽप्रेति पीठमस्मै समर्पयत् ॥ २५८ ॥ सोऽपि तस्योपरि स्थित्वा नैगरं केन हेतुना । संजातमीदृशं ब्रूहि इत्याह तामय साव्रवीत् ॥ २५९ ॥ एतद्वक्तुं नारित

सब भाई वन्धुओंसे पूछा सबके द्वारा सम्पति मिलजानेपर उदार बुद्धिवाला वह कुमार नमस्कार करनेके लिये गुरुके पास गया । गुरुने अपने अभिप्रायका एक पत्र लिख दिया जिसे लेकर कुमारने बड़े आदरसे कानमें रखलिया । तदन्तर अन्धे शकुन आदि देखकर अपने मित्रोंके साथ जहाजपर बैठकर समुद्रमें चलने लगा और थोड़े ही दिनमें वह पुरयवान् कंकणके आकारके पर्वतसे धिरे हुए एक भूतिलक नामके नगरमें पहुंचा ॥ २४६-२४७ ॥ उस समय शंख तुरई आदि बाजे बजाते हुए लोग सामने ही नगरके बाहर निकल रहे थे उन्हें देखकर जहाजके सब वैश्य नगरमें जानेसे डर गये ॥ ४३ ॥ सबने कहा कि इस नगरमें जाकर और सब बातें तलाशकर फिर लौट आनेकी कौन सामर्थ्य रखता है इस बातको सुन कर प्रीतिकर कुमारने प्रतिज्ञाकर कहा कि इस कामको मैं कर सकता हूँ । इस बातको सुनकर दालचीनीकी छालसे बनाये हुए रस्सेसे उसको नीचे किनारे पर उतार दिया ॥ २४४-२४५ ॥ आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए उस कुमारने नगरमें प्रवेश किया और पहिलेही जिन भवन देखकर उसकी प्रदक्षिणा देकर स्तुति की ॥ २४६ ॥ वहांसे आगे चलकर उसने देखा कि बहुतसे लोग चारों ओर शस्त्रोंसे भरे पड़े हैं आगे चलकर एक कन्याको तालावसे घरको जाते हुए देखा । उस कन्याको जाननेकेलिये वह उसके पीछे पीछे चला घरके आंगनमें जाकर कन्याने कुमारको देखा और बैठनेकेलिये एक सिंहासन डालकर पूछा कि हे भद्र कहांसे आये हो ॥ २४७-२४८ ॥ कुमारने उस सिंहासनपर बैठकर पूछा कि कहो यह नगर किस कारणसे ऐसा उजाड होगया है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि यह सब बतलानेका यह समय नहीं है भद्र तू यहांसे जल्दी भाग जा नहीं तो तेरे लिये यहां बड़ा भारी भय उपस्थित होगा । कन्याकी यह बात सुनकर वह कुमार निर्भय होकर कहने लगा कि जो मुझे भय देगा उसके क्या हज़ार हाथ हैं । कुमारका ऐसा निर्भय और गंभीर उत्तर सुनकर कन्याका भय कुछ दूर हुआ

गंभीरविजृम्भणात् ॥ २६१ ॥ क्षिपिलीभूतमी कन्याप्यवोचद्विस्तरेण तत् । एतत्सख्यशुभिव्यालकेभराः सहजाभयः ॥ २६२ ॥ ज्यायान् हरिवल-  
सास्य महासेनोनुजः । तस्य भूतिलकस्तैषु धरिण्यां ज्यायसोऽभवत् ॥ २६३ ॥ तन्जो भीमकस्तस्मादेव विद्याधरोभिः । हिरण्यवर्मा श्रीमत्यामजायत  
सुतोपरः ॥ २६४ ॥ महासेनस्य सुदर्शमुग्रसेन सुतोऽजनि । वरसेनश्च तस्यानुजा जाताह वसुधरा ॥ २६५ ॥ कदाचिन्मपिता भीमविहारे विपुलं पुरं ।  
निरीक्ष्येद विरं चित्तहारीति स्वीप्सिर्कुर्युः ॥ २६६ ॥ एतन्निवासिनीहिला रणे भर्तरेवेता- । अत्र भूतिलकाह्वयेन सोदयेण समन्वित ॥ २६७ ॥ इह  
संवासिभिर्भूये सेव्यमान सुखेन सः । काल गमयति स्मैव किंचित्संस्मितपुण्यक ॥ २६८ ॥ इतः कनीयसे विद्या भीमकायालकप्रियं । दला संसारमीह-  
स्वाभिर्विष विजितेन्द्रियः ॥ २६९ ॥ कर्मनिर्मुक्तं कर्तुं शीघ्र हरिवलाह्वयः । विद्वान् विपुलमत्याह्यचारणस्याथ सन्निधौ ॥ २७० ॥ शुक्रप्यानानालीढु-

और वह कन्या फिर विस्तारके साथ सब कथा कहने लगी । कि इस विद्याधर पर्वतके उत्तरकी ओर एक अलका नगर  
है उसमें राज्य करनेवाले तीन भाई थे ॥ २५६-२६२ ॥ सबसे बड़ा हरिवल, उससे छोटा महासेन और उससे छोटा  
भूतिलक । हरिवलकी रानी धारिणीसे भीमक नामका बड़ा पुत्र हुआ था और उसी विद्याधरकी श्रीमती नामकी दूसरी  
रानीसे हिरण्यवर्मा नामका छोटा पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ २६३-२६४ ॥ महासेनकी सुंदरी स्त्रीसे उग्रसेन और वर-  
सेन दो पुत्र हुए और वसुधरा नामकी मैं कन्या हुई ॥ २६५ ॥ किसी एक समय मेरे पिता झीड़ा करनेके लिये आये  
उन्होंने इस मनोहर और बड़े नगरको देखकर लेनेकी इच्छा की । पहिले यहां एक व्यंतरी देवी रहती थी युद्धमें उसे  
जीतकर अपने छोटे भाई भूतिलकके साथ यहां ही रहने लगे । यहांके रहनेवाले राजा लोग उनकी सेवा करने लगे इस-  
प्रकार उन पुरयवानका समय बड़े सुखसे व्यतीत होने लगा ॥ २६६-२६८ ॥ इधर जितेंद्रिय और विद्वान् राजा हरि-  
वलको वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने अपने छोटे पुत्र हिरण्यवर्माको तो विद्याएं दी और बड़े पुत्र भीमकको अलकापुरीका  
राज्य दिया । संसारसे डरकर और विरक्त होकर समस्त कर्मको सर्वथा नाश करनेके लिये विपुलमति नामके चारण  
मुनिके समीप जाकर दीक्षा धारणकी और शुक्लऋष्यानरूपी अग्निसे समस्त पापरूपी आठों दुष्ट कर्मोंको जलाकर तथा  
आठों गुणोंसे सुशोभित होकर वह इष्ट आठवीं मोसरूपी पृथ्वीमें जा विराजमान हुआ ॥ २६९-२७१ ॥ इधर भीमक  
राज्य करने लगा उसने किसी कपटसे हिरण्यवर्माकी विद्या हर ली और फिर वह उसे मारनेका उद्यम करने लगा हिर-  
ण्यवर्माको भी यह बात मालूम होगई इसलिये वह भागकर समुद्रदशिक्षरपर जा पहुंचा । भीमक भी क्रोधसे उसके पीछे

विताडकपुत्रको अङ्गनीमगयतयुद्धीमिष्टामष्टगुणान्वित ॥ २७२ ॥ प्रकुर्वन् भीमको राज्यं विद्यां शाठ्येन केनचित् । हिरण्यवर्षणो हत्वा तं च हतुं समुपगतः ॥ २७२ ॥ ज्ञात्वा हिरण्यवर्षेणैतस्मिन्नेवादिमविश्रियत् । भीमकस्तं कुचान्वित्यग्निरि गन्धमशर्ककः ॥ २७३ ॥ तौर्धराशभिमानेन तीर्थलादागमसुरः । ततो तस्माद् ज्ञात्वा या तं सुपुरतया ॥ २७४ ॥ तच्छ्रुत्वा तं निराकर्तुं पुण्यपादोद्दीप्त्यलौ । महावेनमहाराजं प्राहिणोत्यतिपक्वकः ॥ २७५ ॥ तस्याभ्यामकृतिं शुणु ममेति तं ॥ २७७ ॥ युक्त्या विनाय संधानं प्रणमय्य द्विगोक्तिम् । हिरण्यवर्मणा सार्द्धं दत्त्वा राज्यं च पूर्ववत् ॥ २७८ ॥ विस्मज्जं तयाप्यशो नैत-  
द्वैर स भीमकः । हिरण्यवर्मोपि श्रोत्रो विद्यां सहाय्य राक्षसी ॥ २७९ ॥ तथा हिरण्यवर्मण पापी महितरं पुरं । मद्रधुत्वपि विष्वस्य मासुदिरयागमि-  
ष्यति ॥ २८० ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य कुमारो विस्मयावह । माध्यातलस्यमालोक्य सद्गमैव युद्धमणः ॥ २८१ ॥ यत्न इत्यगतो जंतुं तं ककोपि न शक्नु-  
पीच्छे दौडा परंतु तीर्थंकरके समीप रहनेसे तथा तीर्थ होनेसे वह वहांतक पहुंच नहीं सका और लौटकर अपने नगरमें जा-  
गया । तदनंतर हिरण्यवर्षा भी अपने काका महासेनके समीप आगया ॥ २७२-२७४ ॥ भीमकने यह बात सुनकर अपने  
काका महाराज महासेनको एक पत्र लिखकर भेजा कि आप हमारे पूज्य हैं इसलिये हमारे शत्रु हिरण्यवर्षाको वहांसे  
निकाल दीजिये ॥ २७५ ॥ महासेन हिरण्यवर्षाके मुखसे भीमकका अन्याय जानकर युद्ध करनेके लिये चला और यह  
भीमक कूर है दुष्ट है यही समझकर मेरे पिताने युद्धमें उसे जीता और उसके दोनों पैर लोहेकी सांकलसे बांध दिये ।  
जब मेरे पिता शान्त हुये तब उन्होंने सोचा कि मेरे लिये यह काम करना योग्य नहीं है यही समझकर भीमकको छोड़  
दिया उसके साथ संधि की हितरूप वचनोंसे उसे समझाया और पहिलेके समान हिरण्यवर्षाके साथ उसे राज्य दे दिया  
॥ २७६-२७८ ॥ इसके बाद दोनोंको विदाकर दिया यद्यपि भीमकको सब तरह समझा दिया था तथापि उस मुखने  
नहीं छोड़ा तथा हिरण्यवर्षाका बैर भी शांत नहीं हुआ । पापी भीमकने राससी विद्या सिद्ध की उससे उसने हिरण्य-  
वर्षाको मारा मेरे पिताको मारा और इस नगरको इसमकर उजाह कर दिया । अब वह केवल मेरे  
लिये आवेगा ॥ २७९-२८० ॥ यह आश्चर्य करनेवाली सब घटना सुनकर कुमारने शन्यापर रक्खी हुई तलवार उठा-  
कर देखी और यह तलवार बड़ी अच्छी है जिसके हाथमें यह तलवार होगी उसे इंद्र भी नहीं जीत सकता यही समझकर  
उस कन्यासे पूछा कि क्या तेरे पिताने इस तलवारसे भी किसीके साथ युद्ध किये हैं ? इसके उत्तरमें कन्याने भी कहा  
कि नहीं मेरे पिताने स्वप्नमें भी इस तलवारसे अभी युद्ध नहीं किया । तदनंतर भीमकने जा तलवार कागमें ली



यात् । इति मत्वा पितानेन ते किं केनापि बुद्धवान् ॥ २८२ ॥ इत्यब्राह्मीत्स तां सापि न खल्वेपीत्यभाषत । तदा श्रीर्तिकरो हृष्यगतमस्त्रं विधाय तत् ॥ २८३ ॥ त इतु निर्भयो भीमं गोपुराभ्यन्तरस्थित । निगूढतनुगबिम्बुतोत्रतिर्बुध्नं दधत् ॥ २८४ ॥ तस्मिन् क्षणे समागत्य ममताद्रीस्व मीमक । खविद्या प्रेययामास दृष्ट्वा दुष्ट जहीहि त ॥ २८५ ॥ सम्यग्दृष्टिरय सप्तविधभीतिविदूरगः । चरमाणो महान् शूरो नाह ह्रुमिम क्षमा ॥ २८६ ॥ इति भीत्या तदभ्यर्णं सचरतीमितस्तत् । विलोक्य मीमको विद्या शक्तिहीनां व्यसर्जयत् ॥ २८७ ॥ निःसाराऽभूर्जेत्युक्त्वा साध्यगच्छद्दृष्टता । स्वयमेवासिसु-  
खाय मीमकस्त जिघांसुकः ॥ २८८ ॥ संप्राप्तवान् कुमारोपि तर्जयन्नतिमीषण । तद्वात वचयित्वा ईस्त प्राणैः मोप्यमुच्यत ॥ २८९ ॥ ततो विध्वंस्य बुध्ना रिमाया तमसि विधय सा । कुमारं कन्यकाभ्येत्य व्यधात्स्व भद्र साहस ॥ २९० ॥ इत्यारोप्यासन स्वर्णमय राजगृह्णामणे । अभिषिच्य जलापूर्णे कलशे कालधौतकैः ॥ २९१ ॥ विन्यस्य मणिभासास्त्रि मुकुट बाहुमस्तकैः । यथास्थानमशेषाणि विविष्टाभरणान्यपि ॥ २९२ ॥ विलासिनीकरोद्बुधूयमानचामरको-

निर्भय होकर भीमको मारनेके लिये हाथमें तलवार लेकर उन्नत होकर तथा शरीरको छियाकर निर्भय रीतिसे नगरके बड़े दरवाजेके बीचमें जा खड़ा हुआ ॥ २८१-२८४ ॥ उसीसमय भीमक आया उसने अपनी विद्या भेजी और कहा कि तू चारों ओर देखना जो कोई मेरा दुष्ट शत्रु मिले उसे मार डालना ॥ २८५ ॥ वह विद्या शीर्तिकरके समीप उसे देखकर “यह सम्यग्दृष्टी है” सातों प्रकारके भयसे दूर है चरम शरीरी है और बहुत ही शूरवीर है मैं इसे मार नहीं सकती यही समझकर और डरकर वह उसके पास इधर उधर फिरने लगी । भीमकने उसे शक्ति हीन देखकर विदा करदी और कह दिया कि तू अब निःस्सार होगई है इसलिये जा । भीमककी यह बात सुनकर वह विद्या भी अदृश्य हो गई । तदनंतर वह कुमार स्वयं तलवार लेकर कुमारको मारनेकेलिये उसके पास पहुंचा । कुमारने भी बड़ी भीषणताके साथ उसकी तर्जना की और उसका घात बचाकर उसको मारदिया तलवारकी चोटसे उसके भी प्राण छूट गये ॥ २८६-२८८ ॥ तदनंतर वह कुमार कन्याके पास गया, कुमार दुष्ट शत्रुको मारकर आया है यह देखकर वह कन्या उन्म-  
के सामने आई और कहने लगी कि हे भद्र ! आपने बड़ा ही साहस किया है ॥ २८९ ॥ यह कहकर राजघरके चौकमें उसे सोनेके सिंहासनपर विठाया सोनेके जलसे भरे हुए पूरे कलशोंसे उसका अभिषेक किया, सुंदर मस्तक पर मणियोंकी कांतिसे रेदीप्यमान मुकुट पहनाया, यथायोग्य स्थान पर सब अच्छे अच्छे आभूषण पहनाये वेश्याओंके द्वारा अनेक चपर दुराकर उसकी शोभा बढ़ाई । यह सब देखकर शीर्तिकर कुमारने पूछा कि यह सब क्या है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि मैं इस नगरकी स्वामिनी हूं पंद्रहवर्ष पूर्वक मैं अपना सब राज्य आपको देती हूं और गलेमें

निर्णय । अकरोत्तन्निरीत्याह प्रीतिकरकुमारक ॥ २९३ ॥ किमेतदिति सावोचदस्यस्या स्वामिनी पुरः । दत्त्वा राज्यं सर्वीयं ते परमं सुखं ॥ २९४ ॥  
 रत्नमालां गळे कृत्वा स्वां प्रेम्णा समवीमव । इति तल्लोकमाकर्ण्य कुमारः प्रत्यभाषत ॥ २९५ ॥ विना मित्रोत्सुहानां वैव स्वीक्रियते मया । कोपि प्रगोच  
 रत्नवा तेन सह खय । यियादुरासीरज्जु ता प्रमोदात्तोप्यचालयत् ॥ २९६ ॥ यद्वैव तत्समायोगकालेऽपि भविष्यति । इति तद्वचनं कन्या अतिपण धनं महत् ॥ २९७ ॥ वदुस्त्वावतरणायाम-  
 वृष्टवान् ॥ २९९ ॥ पोतप्रस्थानकालेऽस्याः सारामरणसंहति । विस्तृतां स कुमारस्त्वामानेतुं गतवान् पुनः ॥ ३०० ॥ नागदत्तस्तदा रज्जुमाकुञ्च्य इवमे-  
 तथा । सारं संप्राप्तमेतन्मे भोक्तुमामरणाद्भवेत् ॥ ३०१ ॥ कृतार्थोऽहं कुमारेण दद्या तद्वाजुभूयतां । इति प्रस्थितः सारं तैलवर्धो बणिज्वनैः ॥ ३०२ ॥  
 नागदत्तमिति ज्ञात्वा कन्यका मौनमग्रहीत् । प्रीतिकरादिनाजानैर्न वदाम्यहमिलसा ॥ ३०३ ॥ नागदत्तोपि कन्यया मूर्छति प्रतिपादयन् । तां इव्यरक्षणे  
 रत्नमाला डालकर आपकी प्रेमभांगिनी वनकर रहूंगी । कन्याकी यह बात सुनकर कुमार कहने लगा कि मैं विना माता  
 पिताकी आश्रयों इस बातको स्वीकार नहीं करूंगा मैंने पहिले ऐसी ही प्रतिज्ञा कर ली है ॥ २९१-२९६ ॥ यदि तू  
 ऐसा ही करना चाहती है तो मातापिताके मिलनेपर तेरा अभीष्ट सिद्ध हो सकेगा । कन्याने प्रीतिकरकी यह बात मान  
 ली और बहुतसा धन वांधकर उस लम्बी रस्सीके द्वारा जहाजपर चढ़नेके लिये कुमारके साथ किनारे पर आई । कुमारने  
 और उस कन्याको और उसको सब धनको जहाजमें लींचकर बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥ २९७-२९८ ॥ रस्सीके हिलानेको देखकर नागदत्त भी बाहिर आया  
 हुआ तब वह कुमार उस कन्याके थूले हुए कितने ही आभरणोंको लेनेके लिये फिर उस नगरमें गया ॥ ३०० ॥  
 उसके चले जानेपर नागदत्तने वह रस्सी लींच ली और “इस कन्याके साथ मुझे बहुतसा अच्छा धन मिल गया है  
 यह मेरे मरनेतक भोग करनेके काममें आवेगा मैं तो कृतार्थ हो चुका अब कुमार चोहे जहां इधर उधर भटकता फिरो”  
 इधर कन्याने नागदत्तका अभिप्राय जानकर मौन धारण कर लिया और प्रतिज्ञा करली कि मैं प्रीतिकरके सिवाय और  
 किसीके साथ बातचीत नहीं करूंगी ॥ ३०३ ॥ नागदत्तने भी “यह कन्या गूंगी है” ऐसा सब लोगोंपर प्रगटकर दिया  
 और उसे उंगलीके इसारसे बड़े प्रेम्से इव्यकी रसा करनेपर निधुक्त किया ॥ ३०४ ॥ वह नागदत्त अतुल्यसे अपने  
 नगरमें पहुंचा । शेषने नागदत्तसे पूछा कि प्रीतिकर भी तुम लोगोंके साथ भूतिलक नगरको — या वह क्यों नहीं

श्रीहृत्कीर्त्या स्वागुल्लिखया ॥ ३०४ ॥ कमारस्सनगरं प्राप श्रेष्ठी प्रीतिकरस्तथा । गतो भूतिलकं नायात्कुलं इत्यबदत्स त ॥ ३०५ ॥ नागदत्तसमसा नाह जानामीत्युत्तरं ददौ । भूषणानि समादाय समुद्रतटमागतः ॥ ३०६ ॥ नागदत्तेन पापेन स कुमारोतिर्संभितः । अष्टद्व्या पोतमुद्धिमं पुरं प्रति निवृत्तवान् ॥ ३०७ ॥ संचितस्तत्र जैनैर्द्रोहमेक विलोक्य त । पुण्यादिभिः समस्यर्च्य विधाय विधिवदना ॥ ३०८ ॥ खिन त्वद्दृष्टिमात्रेण मत्पापं क्राव्यलीयत । की- पेन निदि वा ध्यात समुन्मीलितचक्षुषः ॥ ३०९ ॥ चेतनं कर्मभिर्भूतं सर्वोप्यन्यदचेतनं । सर्ववित्कर्मनिर्मुक्तो जने केनोपमीयते ॥ ३१० ॥ साह्ययादी- नूलोकविक्षयान्न सर्वथा सावधारणान् । एको भवान् खिनजैषींश्चित्रं निरवधारणः ॥ ३११ ॥ अवोषतमसाक्रातमनायंतं जगत्प्रयं । कुत त्वमेव जागर्षि श- श्वद्विस्व च पश्यसि ॥ ३१२ ॥ वस्तुवोचे विनेयस्य जिनेन्द्र भवदागमः । निर्मलः शर्मदो हेतुरालोकावासचक्षुषः ॥ ३१३ ॥ इतिस्वकृतसतोषः शुद्धः श्र- द्धावबोधेन । सम्यक्संसारसंस्त्राव भावयन् कर्मनिर्मितं ॥ ३१४ ॥ अभिविचनशालायां सुप्तवान् किंपिदाकुलः । तदा नदमहानदावागता गुहाकामरा ३१५

आया इसके उत्तरमें नागदत्तने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता । इधर आभूषण लेकर कुमार समुद्रके किनारे आया परन्तु पापी नागदत्त पहिलेसे ही थोखा देकर चला गया था । जहाजको न देखकर वह खेदखिन्न हुआ और फिर नगरको लौट आया ॥ ३०५-३०७ ॥ वह बड़ी चिन्ता करने लगा और वहींपर एक जिनालय देखकर उसमें गया पुष्पादिकसे भगवानकी पूजा की विधि पूर्वक वन्दना की और फिर वह स्तुति करने लगा ॥ ३०८ ॥ कि हे देव ! जिस प्रकार रात्रिमें दीपकसे खुले नेत्रवालेका अन्यकार दूर हो जाता है उसी प्रकार आपके दर्शन करनेमात्रसे ही मेरे पाप न जाने कहां छिप जाते हैं ॥ ३०९ ॥ आप शुद्धजीव, कर्मोंसे मिला हुआ जीव और जीवोंसे भिन्न अचेतन इन सबको आप जानते हैं तथा आप सब कर्मोंसे रहित है फिर संसारमें आपकी उपमा किसके साथ दी जासके ॥ ३१० ॥ हे देव यद्यपि आप ऐन्द्रियक ज्ञान रहित हैं ( अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं ) तथापि ऐन्द्रियक ज्ञानको धारण करनेवाले जगत प्रसिद्ध सांख्य आदिको केवल आपने ही जीता है यह आश्चर्यकी बात है ॥ ३११ ॥ हे देव यह आदि अन्त रहित यह तीनोंलोक अज्ञानरूपी अन्यकारसे व्याप्त होकर सोरहा है उसमें केवल आपही जग रहे हैं और आपही इस संसारको देख रहे हैं ॥ ३१२ ॥ हे जिनेन्द्र सम्यग्दर्शनरूपी प्रकाशमें रहनेवाले और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले शिष्योंके पदार्थज्ञानमें आपका कहा हुआ आगमही निर्मल और कल्याण करनेवाला कारण है ॥ ३१३ ॥ इसप्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले उस कुमारने अपनी बनाई हुई स्तुति पढ़ी और फिर कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए संसारके स्वरूपको अच्छी तरह चिंतन करता हुआ कुछ व्याकुल होकर अभिविचनशालामें जाकर सोगया । उस समय नन्द और महानन्द नामके दो यक्ष उस जिन मंदिरकी वन्दना करनेकेलिये आए

वादिपुं मंदिर जैन वीक्ष्य तत्कर्णपत्रक । तो तवीय समादाय सधर्मोवा कुमारकः ॥ ३१६ ॥ इति आपयत देवैः द्रव्येण महता सह । सुप्रतिष्ठपुरं श्रुति-

करमेन प्रमोदिन ॥ ३१७ ॥ श्रेण युवयोरेतदस्माकमिति तद्वत । गुरोः सदेशमालोक्य झत्वा प्रारभयद्भक्तं ॥ ३१८ ॥ वारोणस्या पुरे पूर्वं धनदेव-

वणिकपतेः । भूत्वा च जिनदत्तया शांतवो रमण सुतां ॥ ३१९ ॥ तत्र शास्त्राणि सर्वाणि विदित्वा प्रयतोर्थतः । चोरशास्त्रवल्लभा परार्थहरणे रतौ

॥ ३२० ॥ अपूता मधुगुहस्तस्मान्निवारयितुमक्षम । सर्वसंगपरित्यागमकरोदतिदुस्तरं ॥ ३२१ ॥ इतो धान्यपुराभ्यर्णं क्षितिभूषणममति । भूधरे मुनि-

दृष्ट्वा सागसेनाख्य तत्समीपे जिनोदित । श्रुत्वा धर्मं परित्यज्य मधुमासदिभक्षणं ॥ ३२२ ॥ तस्मिन् गुरौ ततः सुप्रतिष्ठाख्यनगरं गते । शार्दूलोपध्वान्मुत्वा

देवभूयं गताविद ॥ ३२३ ॥ सर्वमेतद्वगुरोरेतं ज्ञातदित्यसिमन्यत । गत्वा संग्राह्यं संपूज्य किमावाभ्या निवेदानं ॥ ३२४ ॥ कर्तव्यमिति सद्यो मुनिना-

उन्होंने प्रीतिकर कुमारके कानमें लगे हुए पत्रको लेकर चांचा उसमें लिखा हुआ था कि कुमार धर्मीत्मा है इसलिये तुम

दोनों प्रसन्न रहनेवाले इस प्रीतिकर कुमारको खूब धनके साथ स्वमतिष्ठ नगरमें पहुंचाना मेरा ही काम समझना । इसम-

चार भी जान लिये ॥ २१४-२१८ ॥ पहिले बनारस नगरमें धनदेव नामका वैश्य रहता था उसकी जिनदत्ता स्त्रीसे

आभ्यास किया परंतु चोर शास्त्रकी अधिकता होनेसे हम दोनों पापी दूसरेका धन चुरानेमें तत्पर होगये ॥ २२० ॥ हमारे

माता पिता वा गुरु लोग भी हमारे चोरीके कामको छुड़ा न सके इसलिये उन्होंने अत्यंत कठिन ऐसा सब तरहके परिश्र-

होंका परित्याग कर दिया अर्थात् दीक्षा धारण कर ली ॥ २२१ ॥ इधर धान्यपुर नगरके समीप शिखिधूर नामके

पर्वतपर रहनेवाले मुनियोंके महात्म्यसे वहांपर रहनेवाले सिंह आदि दुष्ट जीव भी किसीको वाया नहीं पहुंचाते थे लोगों

के मुखसे हमने भी यह बात सुनी और सुनते ही उस पर्वतपर अपना निवास स्थान बनाया । वहींपर घोर तपश्चरण कर-

नेवाले सागरसेन नामके मुनिराज विराजमान थे उन्हें देखकर हम दोनों उनके समीप गये, उनसे भगवान् जिनंदेवके

कहे हुए धर्मका स्वरूप सुना और मध्य प्रांस आदिके भक्षणा करनेका त्याग किया ॥ २२२-२२४ ॥ गृहे दिनोंके वाद

वे मुनिराज सुमतिष्ठ नगरमें चले गये उनके चले जानेपर सिंहने हम दोनोंको मार डाला था और परकर हम दोनों देव

हूए हैं ॥ २२५ ॥ अविद्वानसे हम दोनोंने जान लिया कि हमने गुरुके समीप जो व्रत लिये थे उन्हींके प्रसादसे हम

शोचनीयता । अतः परं दिने कैवल्यकर्मैव मङ्गलविष्यति ॥ ३२७ ॥ भवद्भयासेव तज्ज्ञात्वा विधेयमिति सादरं । स एष तस्य संदेश इति पत्र प्रदर्शय त ॥ ३२८ ॥ इत्येव बहुना सार्द्धं विमानमधिरोप्य त । सुप्रतिष्ठप्राभूयणं निर्दिधरणिभूषण ॥ ३२९ ॥ सद्यः प्रापयत स्मैता किं न कुर्यादयोदय । तदागमनमाकार्यं भूपतिस्तस्य वीर्यवाः ॥ ३३० ॥ नागराश्च विभूयैव सम्मदात्समुपगताः । तेभ्यः प्रीतिकरं दत्त्वा स्वावास जग्मतु सुरा ॥ ३३१ ॥ पुरं प्रविश्य सद्गन्तं स महीशमपूजयत् । सोपि संभाव्य त स्थानमानादिभिरितोषयत् ॥ ३३२ ॥ अथान्येषु कुमारस्य ज्वायसीं प्रियमित्रिकां । मातरं स्वतनूजस्य प्राप्य परिण्योत्सवे ॥ ३३३ ॥ आत्मस्तुषां लकर्तुं रत्नाभरणसहति । गृहीत्वा रथमारुह्य महादर्शनकर्मणि ॥ ३३४ ॥ यांतीं दृष्टुं समायाता रथ्याया मू किका स्वयं । वीर्यं स्वभूषासदोहं स्वष्टं मुल्लिखन्त्या ॥ ३३५ ॥ मदीयमेतदियुक्त्वा जनान् सा ता रथरिचिता । रुवा स्थितवती सापि प्राहिया महिलेति

देव हुए हैं यही समझकर हम दोनों गुरुके समीप पहुंचे उनकी पूजा वंदना की और पूछा कि हमारे लिये क्या आज्ञा है कुछ काम बतलाइये । इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि थोड़े दिन बाद मेरा एक काम होगा उसे जानकर तुम आदरके साथ करना सो मुनिराजकी वह आज्ञा यही है यही कहकर वह पत्र खोलकर दिखाया ॥ ३२६-३२८ ॥ तदन्तर उन दोनों देवीने साथमें बहुतसा धन लेकर उसे विमानमें विद्याया और सुप्रतिष्ठ नगरके समीपवाले धरणिभूषण नामके पर्वतपर शीघ्र ही उसे पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्योदय क्या नहीं करता है । प्रीतिकरका आना सुनकर राजा उसके भाई बन्धु कुटुम्बी लोग और नगर निवासी लोग बड़े हर्षसे अपनी अपनी विभूति लेकर उसके समीप आये । उन दोनों देवीने भी उन सबको वह कुमार सौंपा और फिर वे अपने स्थानको चले गये ॥ ३२९-३३१ ॥ नगरमें जाकर प्रीतिकरने अच्छे अच्छे रत्न भेट देकर राजाके दर्शन किये । राजाने भी उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया और स्थान तथा मान देकर उसे सन्तुष्ट किया ॥ ३३२ ॥ अथानन्तर किसी दूसरे दिन प्रीतिकर कुमारकी बड़ी मा प्रियमित्रा अपने पुत्रके विवाहोत्सवमें अपनी पतोहूको पहनानेके लिये सब रत्नोंके आभूषण लेकर और रथमें बैठकर सबको दिखलाती हुई चली । उसे देखनेके लिये वह गंगी कन्या स्वयं मार्गमें आई और अपने आभूषण देखकर उसने उंगलीके इशारेसे सब लोगोंको समझा दिया कि ये सब आभूषण मेरे हैं तदन्तर वह कन्या रथमें बैठी हुई । प्रियमित्राको रोककर खड़ी होगई । इसके उत्तरमें प्रियमित्राने भी सबको समझाकर कहा कि यह कन्या पागल है ॥ ३३३-३३४ ॥ तब मंत्र तंत्रोंके जानकारोंने विधि पूर्वक मंत्र तंत्रोंका प्रयोग किया और परीक्षाकर स्पष्ट कह दिया कि न यह पागल है न इसे भूत लगा है ॥ ३३७ ॥ यह बात सुनकर कुमार प्रीतिकरने उस वसुन्धरा कन्याके पास छिपकर एक पत्र भेजा उसमें

तो ॥ ३३६ ॥ सज्जनांक मन्त्रतन्त्राक्षिविभिन्न सुप्रयोजिते । परीक्षेन न भूतोपश्लेष्टेति व्यक्तमवबून् ॥ ३३७ ॥ कुमारोपि तदाकर्णं न विमेलु कुमारिका । राजाभ्यास समभ्येष्टु तन्नाह चास्म्युपरिचर्यत ॥ ३३८ ॥ इत्यस्या ग्राहिणीत्यर्थं गूढ तदीक्ष्य ततया । श्रद्धयाज्ञानिता राक्षः समीपमगमन्मुदा ॥ ३३९ ॥ तदीमरणकृतातपरिच्छेदाय भूपतिः । यथाव्यशान् समाहूय विचाराय न्ययोजयत् ॥ ३४० ॥ वसुंधरा च तत्रैव ज्ञात्वा सविहिता तदा । राजा कुमारमप्रापिना ॥ ३४१ ॥ अमिषाय स्वविज्ञात शेषं तृतीयमेव त । देवतां गृहमित्येव सोपि भूपमवोषयत् ॥ ३४२ ॥ गथाविभिः समभ्यर्च्यं सोऽन्यतस्तदा वृष्टा कुमारस्य निजात्सजां ॥ ३४३ ॥ पुत्रवधः स्वामिश्रोद्धचेति महीपतिः । सा नागदसदुश्चेष्टां महीनायमवबुधत् ॥ ३४४ ॥ गथाविभिः समभ्यर्च्यं सोऽन्यतस्तदा वृष्टा कुमारस्य निजात्सजां ॥ ३४५ ॥ पुत्रवधः स्वामिश्रोद्धचेति महीपतिः । सर्वस्वहरण कृत्वा निगृहीतु तस्यतः ॥ ३४६ ॥ प्रतिविद्धं कुमारेण नैतद्युक्त तवेति सः । पत्रं देवकर विधास किया और वह प्रसन्नताके साथ राजाके समीप पहुंची ॥ ३४७-३४८ ॥ तव राजाने उसके उसके आप्र-पणोंके समाचार जाननेके लिये धर्माधिकारियोंको बुलाया और विचार करनेके लिये उन्हें नियुक्त किया ॥ ३४९ ॥ राजाने वसुंधरा कन्याको समीप ही आडमें विठलकर कुमार प्रीतिकरसे पूछा कि क्या तुम इसका कुछ हाल जानते हो । इसके उत्तरमें कुमारने अपना जाना हुआ हाल तो कह दिया और फिर उस राजासे समझाकर कह दिया कि वाकीको हाल मैं नहीं जानता यह देवता जानती है ॥ ३४९-३५० ॥ राजाने गन्यादिकसे कपडेकी आडमें बैठी हुई वसुंधराकी पूजा की और फिर कहा कि हे देवते जो तूने देखा है वह सब ज्योंकात्यों कह दे ॥ ३५१ ॥ वसुंधराने इसके उत्तरमें नागदत्तके सब दुराचार कह सुनाये । राजाने सुनकर उनपर विचार किया और फिर नागदत्तपर क्रोध किया कि इस पापीने पुत्रवध किया है और स्वाभिद्रोह किया है । इसीलिये राजाने उसका सब धन लुटवा लिया और वह उसे दंड देनेको तैयार हुआ ॥ ३५२-३५३ ॥ परन्तु कुमारने राजाको रोक दिया और समझा दिया कि आपको ऐसा करना योग्य नहीं है । राजा कुमारकी सज्जनता देख बहुत संतुष्ट हुआ और उसने पृथिवीसुंदरी नामकी अपनी कन्या वसुंधरा और वचीस अन्य वैश्योंकी कन्यायें उत्सवके साथ विधिपूर्वक कुमारको व्याहर् दी ॥ ३५४-३५५ ॥ इसके सिवाय उस श्रीमान् कुमारको पहिलेका स्थान और सब धन दिया तथा अपनी आधा राज्य दिया सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने पहिले पुण्य किया है उनके लिये संपदाएं स्वयं आ जाती हैं ॥ ३५६ ॥ इस प्रकार प्रसन्न हुए उस प्रीतिकर कुमारने अपनी बहती हुई इच्छाओंके अनुसार बहुत दिनतक

पूरे बलान्तराज्य च भावते । इति विहितशुभार्थां स्वयम्भावांति संपदः ॥ ३४८ ॥ प्रीतिरिक्तास्तत्र कामसोपात् संवीरिताम् । स्वेच्छया बर्धमाने  
 पृच्छन्ति यानुवन्धुषः ॥ ३४९ ॥ मुनौ सागरसेनाख्ये सम्भस्यान्त्येष्टावुषि । लोकातरं तदगस्त्य नारणौ बभूवुस्तथा ॥ ३५० ॥ ऋजुब विपुलाह्वय  
 मंथतौ मुनिभूषण । रम्ये मनोहरोद्याने गत्वा स्तुत्या वणिग्वरः ३५१ धर्म समन्वेयुक्तैतावित्याहुर्जुमस्तिस्वया । धर्मोहि द्विविको हेय सदृष्टहादृष्टमेतः ३५२  
 एकादशविधस्तत्र धर्मोऽष्टहविदिना । भद्रानव्रतमेवदधिशेषो बभूविषः स्मृतः ॥ ३५३ ॥ क्षांत्यादिः कर्मविध्वंसी तच्छ्रुत्वा तद्वनतरं । स्वपूर्वमभसंबध पप्र-  
 दधैव च सोऽब्रवीत् ॥ ३५४ ॥ शृणु सागरसेनाख्यं मुनिमातपयोगिन । पुरेस्मिमेव भूपालप्रमुखा बभूवुः गताः ॥ ३५५ ॥ नानाविचार्वनद्वन्द्वैः संपूज्य पु-  
 रमागता । नाश्रुत्वा ॥ निश्चितं भूतैकस्मिन् जलुक ॥ ३५६ ॥ कश्चिन्नोकातरं यातः पुरेऽयं जनो बहि । क्षिप्रवायात् ततोऽप्यभिष्यामीत्यागत मुनिः ॥ ३५७ ॥  
 भद्रयोग्य व्रतमादाय मुक्तिमाद्यु गमिष्यति । इति शब्दाः तमासन्नमसावेवमभाषत ॥ ३५८ ॥ प्राग्भ्रमकृतपापस्य पक्षेनाभूच्छ्रुत्वा लक । इदानीं च कुधी सा-

अच्छे लगनेवाले काम भोगोंका अनुभव किया ॥ ३४९ ॥ किसी एक दिन मुनिराज सागरसेनने आयुके अंतमें संन्यास  
 धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया उसीदिन वहां दो चारण मुनि आ उपस्थित हुए ॥ ३५० ॥ मुनियोंके आभूषण ऐसे उन  
 दोनों मुनियोंके ऋजुमति और विपुलमति नाम थे और वे दोनों ही सुंदर मनोहर नामके उद्यानमें आ विराजमान हुए,  
 प्रीतिकर श्रेष्ठ भी उनके दर्शन करनेके लिये गया और स्तुतिकर उनसे धर्मका स्वरूप पूछा । इसके उत्तरमें ऋजुमति  
 नामके मुनिराज कहने लगे कि हे भद्र ! गृहस्थ और अनगरके भेदसे धर्म दो प्रकारका है ॥ ३५१-३५२ ॥ उनमें  
 गृहस्थोंका धर्म श्रद्धान व्रत आदिके भेदसे ग्यारह प्रकारका है और कर्मोंको नाश करनेवाला मुनियोंका धर्म उत्तम सप्ता  
 आदिके भेदसे दश प्रकारका है । इसप्रकार धर्मका स्वरूप सुनकर प्रीतिकरने अपने पहिले भव पूछे तब  
 वे मुनिराज इसप्रकार कहने लगे ॥ ३५३-३५४ ॥ हे भव्य सुन किसी एक समय इसी नगरके बाहर सागरसेन मुनि-  
 राजने आतप योग धारण किया था इसीलिये उनकी बंदना करनेके लिये राजा आदि बहुतसे लोग आये थे ॥ ३५५ ॥  
 अनेक तरहकी पूजाकी सामग्रीसे उनकी पूजाकर शंख तुरई आदि बाजोंके साथ नगरमें आये थे उन बाजोंकी आवाज  
 सुनकर एक गीदडने सोचा कि आज कोई नगरमें मर गया है उसे ही लोग नगरके बाहर रखकर आये हैं इसलिये उस-  
 के समीप जाकर उसे खाना चाहिये । यही सोच विचारकर वह मुनिराजके समीप पहुंचा । मुनिराजने उसे देखकर वि-  
 चार किया कि यह भव्य है और व्रत लेकर शीघ्र ही मुक्त होगा यही समझकर वे उसके समीपमें ही इसप्रकार कहने  
 लगे कि पहिले नामके किये हुए पाप कर्मके उद्धारसे तू गीदड हुआ है परंतु हे मूर्ख ! अब साधुओंका समागम मिलने-



पुसमायोगेऽपि भव्यसे ॥ ३५९ ॥ दुष्कर्म विरयैतस्माद् दुर्लभमिहावह ॥ शुद्धाण प्रतमभ्येहि परिणाम बुधावह ॥ ३६० ॥ इति तद्वचनदेव मुनिर्मन्म-  
नसि रिपते । आतामानिस्ति सजातसमद स शृगालक ॥ ३५९१ ॥ मुनिस्तद्विनिताभिः पुनरेव समप्रवीत । त्वमन्यस्य न शक्नोषि व्रतस्याभिषालस्य  
॥ ३६२ ॥ शुद्धानेदं व्रतं श्रेष्ठ रात्रिभोजनवर्जन । परलोकस्य पायेयमिति धर्म्यं मुनेर्वच ॥ ३६३ ॥ शुत्वा भक्त्या परीत्येन प्रणम्य कृतसम्मदः । गृ-  
हीत्वा तद्व्रतं सयमासादीनि च सोलजत ॥ ३६४ ॥ तदाप्रभृति शाल्यादि विशुद्धाशनमाहरन् अतिं कृच्छ्रं तप कृत्वेन् कनित्कालमजीगमत ॥ ३६५ ॥ शु-  
ष्काहारमथात्यशुभं यत्वा तृष्णादिबाधित । अर्कास्तमन्वेलायां पयःपानाभिलाषया ॥ ३६६ ॥ कूप सोपानमार्गेण प्रविद्यात किमप्यसौ । तत्रालोकमनालोक्य  
क्षिणेकोस्तमुपागत ॥ ३६७ ॥ इति निर्गल्य दृष्ट्वा भां पुनः पातुं प्रविष्टवान् । गोमायुरेव हि त्रिवो कुर्वेत्तत्र गमागमां ॥ ३६८ ॥ दिनेषामस्तमानीय सोढ-  
तृष्णापरीषदः । विशुद्धपरिणामेन मृतिमित्वा दृढव्रत ॥ ३६९ ॥ एव कुर्वेदस्तस्य भूला श्रीतिरकर सुतः । व्रतेन धनमित्रायामिदं शैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ३७० ॥

पर भी तू दुष्कर्म करना चाहता है अब तू अत्यंत घोर पाप करनेवाले इन दुष्कर्मों का त्यागकर व्रतोंको स्वीकार कर और  
शुद्ध परिणामोंको धारणकर ॥ ३६६-३६० ॥ मुनिराजके ये बचन सुनकर वह गीदड मनमें सोचने लगा कि इन्होंने  
मेरे मनकी बात जानली यह समझकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ । मुनिराजने उसकी चेष्टासे उसका अभिप्राय जानलिया  
और वे फिर उससे इसप्रकार कहने लगे कि तू मांस भक्षणका लोलुपी है इसलिये तूभसे और व्रत तो बन नहीं सकेगा  
इसलिये रात्रि भोजन त्याग करनेका व्रत ले यह व्रत सबसे श्रेष्ठ है, और परलोकके लिये पायेय ( रास्तेमें काम आने  
योग्य स्थाने पीने आदिकी चीजें ) हैं । इसप्रकार मुनिराजके कहे हुए धर्मके बचन सुनकर उस गीदडने बड़ी भक्तिसे  
उनकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया और बहुत ही आनंद मनाया । उसने रात्रि भक्षण त्यागका भी व्रत लिया और  
मध्य मांसादिकका भी त्याग किया ॥ ३६१-३६४ ॥ उससमयसे लेकर वह चावल आदि शुद्ध भोजन करने लगा इस-  
तरह कठिन तपश्चरणा करते हुए उसके कितने ही दिन व्यतीत हुए ॥ ३६५ ॥ किसी एक दिन उसने सूका भोजन  
किया और प्याससे दुखी होकर सूर्यके अस्त होनेके समय पानी पीनेकी इच्छासे रास्तेसे किसी कूपमें उतरा  
वहांपर प्रकाश न देखकर सूर्यको ढूँढा हुआ समझकर बाहर निकला और बाहर सूर्यका प्रकाश देखकर पानी पीनेके  
लिये वह गीदड फिर कूपमें भीतर गया । इसप्रकार उसने दो तीनवार किया, इतनेमें सूर्य अस्त होगया उस  
गीदडने व्रतोंमें दृढ़ रहकर प्यासकी परीषद सहन करते हुए शुद्ध परिणामोंसे शरीर छोड़ा ॥ ३६५-३६९ ॥  
वहांसे आकर कुर्वेदशकी स्त्री धनमित्राके यह प्रीतिकर नामका कुमार हुआ है और उसने ऐसा एवम्भय प्राप्त किया है ॥ ३७० ॥

इति तद्वचनाज्जातसंवेगस्ते यतीश्वरं । शसन् व्रतस्य माहात्म्यमसिंघाययौ गृह ॥ ३७१ ॥ निर्व्रतः सद्यता दीर्घमश्नन् दुःखान्यनारत । अपारं खेदमा-  
याति बुभिक्षे दुर्विधा यथा ॥ ३७२ ॥ व्रतात्प्रत्ययमायाति निर्व्रतः शक्यते जने । व्रती सफलशुद्धो वा निर्व्रतो बध्यशुद्धवत् ॥ ३७३ ॥ अमीश फलमा-  
प्नोति व्रतवान् परजन्मति । न व्रतादपरो बहुर्नव्रतादपरो रिपुः ॥ ३७४ ॥ सर्वे वीर्यव्रतिनो ब्रह्मा निर्व्रतस्य न केनचित् । उन्नासिर्देवतासिध व्रतवाक्षाभिभू-  
यते ॥ ३७५ ॥ जर्तोलपि नमस्येव व्रतवत नवयौवन । बयोशुद्धो व्रत क्षीनश्चतुर्णवद्भूयते जनैः ॥ ३७६ ॥ प्रवृत्त्या चीयते पाप निवृत्त्या तस्य संक्षय । व्रतं  
निवृत्तिमिलाहुस्तद्वृत्ताद्युत्तमो व्रते ॥ ३७७ ॥ व्रतेन जायते संपन्नाव्रत संगदेऽभवत् । तस्मात्संपदमाकांक्षन्निःकाक्षः सव्रतो भवेत् ॥ ३७८ ॥ स्वर्गपव-  
नं योर्ध्वज जतो, स्वल्पमपि व्रत । तत्र प्रीतिकरो व कथो व्यक्त दृष्टातकाक्षिणां ॥ ३७९ ॥ पूर्वोपायव्रतस्येष्टं फलमप्राप्तुमभ्युते । क्वचित्कदाभित्तिक्वचित्कि

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने मुनिराजको नमस्कार किया और फिर व्रतोंके  
माहात्म्यकी प्रशंसा करता हुआ वह अपने घर आया ॥ ३७१ ॥ देखो जिस प्रकार दुष्काल यज्ञनेपर निर्धन अनेक प्रकारके  
दुःख पाता है उसी प्रकार व्रतरहित जीव भी इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ तथा सदा अनेक दुःखोंको भोगता  
हुआ अपार खेदको प्राप्त होता है ॥ ३७२ ॥ व्रत धारण करनेसे यह जीव सब लोगोंका विश्वासपात्र होता है और व्रत  
रहित होनेसे सदा लोगोंकी दृष्टि में सदा शंकित बना रहता है । व्रती फल सहित वृक्षके समान है और अव्रती फलरहित  
बाँक वृक्षके समान है ॥ ३७३ ॥ व्रती जीव परजन्ममें इच्छानुसार फल पाता है इस संसारमें व्रतके समान कोई वन्धु  
नहीं है और अव्रतके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ ३७४ ॥ व्रती पुरुषके वचन सब कोई ग्रहण करता है और अव्रतीके  
वचन कोई नहीं मानता बड़े बड़े देव लोग भी व्रती जीवका तिरस्कार नहीं कर सकते ॥ ३७५ ॥ व्रती पुरुष नवयौवन  
हो तो भी वृद्ध पुरुष भी आकर उसे नमस्कार करते हैं व्रतोंसे ही यह जीव वृद्ध गिना जाता है । व्रतोंसे रहित पुरुषको  
लोग तृणके समान भी नहीं गिनते हैं ॥ ३७६ ॥ इस संसारमें प्रवृत्तिसे पापोंका संचय होता है और निवृत्तिसे त्यागसे  
पापोंका क्षय होता है तथा निवृत्तिको ही व्रत कहते हैं इसलिये उत्तम पुरुष व्रतोंको ही ग्रहण करते हैं ॥ ३७७ ॥ व्रत  
धारण करनेसे सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है और अव्रतीपनासे कभी सम्पदा नहीं आती इसलिये जो सम्पदा चाहता है  
उसे आकांक्षा रहित व्रत धारण करना चाहिये ॥ ३७८ ॥ इस जीवके लिये थोडासा व्रत भी स्वर्ग और मोक्षका कारण  
है इसके लिये जो दृष्टान्त देखना चाहते हैं उन्हें प्रीतिकरका स्पष्ट दृष्टान्त देख लेना चाहिये ॥ ३७९ ॥ जिन्होंने पहिले  
अच्छी तरह व्रतोंका पालन किया है वे इस लोकमें इच्छानुसार फलोंका अनुभन करते हैं सो ठीक है क्योंकि बिना

जायते कारणादिना ॥ ३८० ॥ कारणादिच्छता कार्य कार्ययोः सुसदुःस्थोः । धर्मपाये विपर्यस्ते तदा नान्यतरीक्षतां ॥ ३८१ ॥ धर्मपाये निमुच्यन्  
वे द्वितयं कारणं बहव । को विधीर्व्ययनी नोचेत्प्रियुगे नास्तिकोऽय वा ॥ ३८२ ॥ धीमातुरीषावे पत्य अन्यतोस शिताद्विते । भावितस्ते प्रपदतः स्तुनं  
धीमताः कथ ॥ ३८३ ॥ इति मत्वा जिनगोक प्रतमादाय शुद्धीः । स्वांगपर्वसिन्ध्याय सतेताक्षिण्णोद्यमः ॥ ३८४ ॥ अय प्रियंस्त्रास्याय कामिः  
वेकं लसपद । वसुंधराजुञ्जै श्रुतिक्रो दत्वा विरक्तीः ॥ ३८५ ॥ एत राजगं मर्दं मुनिर्भूषवर्षवैः । भगवार्थमायाय संयमं प्राप्तवानय ३८६  
निययव्यवहारात्मसारतिर्गणसायन । शिष्यमोक्षस्यमार्गमावत तद्वलोदयात् ॥ ३८७ ॥ निहृत्वा यानि कर्मणि प्राप्नोतत्तत्तुष्टं । अपातीति न विवश्य  
परमात्मनं प्रयासति ॥ ३८८ ॥ इति श्रीनहणाश्विनिदेशानामधोऽध्यायः । सतिमानशित्तयान्यन्यानः सारुतार्थता ॥ ३८९ ॥ अयान्दश मसराजः श्रे-  
कारणैकं क्या कमी किसी जगह कुछ होता है ? अर्थात् सुवादिक तत्र किसी कारणसे ही प्राप्त होता है ॥ ३८० ॥  
जो कारणसे कार्यकी उत्पत्ति मानते हैं उन्हें सुखका कारण धर्म और दुःखका कारण पाप मानना चाहिये ॥ ३८१ ॥ जो धर्म और पापको छोड़कर सुख  
विपरीत मानते हैं उन्हें दूसरी जगह यह बात स्पष्ट देख लेनी चाहिये ॥ ३८२ ॥ जो धर्म और पापको छोड़कर सुख  
दुःखका कारण और कुछ चलाते हैं वे या तो मूर्ख हैं या व्यसनी हैं या घृणारति हैं अथवा नास्तिक हैं ॥ ३८३ ॥  
जो बुद्धिमान् इसी जन्मके हित अहितको देखते हैं वे किस तरह सबसे उत्तम बुद्धिमान नहीं हो सकते ? अर्थात् अवश्य होते हैं ॥ ३८४ ॥  
यही समझकर जिनकी बुद्धि है और जो उद्यमी हैं वे श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए व्रतोंको धारणकर स्वर्ग और मोक्षके  
लिये प्रयत्न करते हैं ॥ ३८५ ॥ अयान्तर विरक्त बुद्धिको धारण करनेवाले कुमार प्रति करने अपनी स्त्री वसुन्धराके  
पुत्र प्रियंकरको अभिषेक पूर्वक सब सम्पदाएं समर्पण कीं और स्वयं अनेक सेवक भाई कन्धुमौके साथ राजगृह  
नगरमें आकर भगवान् वीरनाथके समीप संयम धारण किया है ॥ ३८६-३८७ ॥ मोक्षका साधन निश्चय और  
व्यहारूप जो सम्यग्दर्शनज्ञान वाविरूप मोक्षमार्गकी भावना है वह इन्होंने चित्तवन की है इसलिये उसके बलसे अब वे  
मुनिराज यातियां कर्मोंको नष्टकर अनंत चतुष्टय प्राप्तकर और फिर अथातियां कर्मोंका नाश कर परमात्म पदको  
प्राप्त होंगे ॥ ३८७-३८८ ॥ इस प्रकार गणपति देवकी कही हुई धर्मकथाको सुनकर राजा श्रेष्ठिकने उन्हें नमस्कार किया  
और अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वह अपने घर आया ॥ ३८९ ॥ अयान्तर किसी दूसरे दिन शायिकसम्यग्दर्शनको  
धारण करनेवाले राजा श्रेष्ठिकने हाथ जोड़कर गणेशदेवको नमस्कार किया और उनसे वाकी बची हुई अवसरिणी

शिकः क्षायिकी इति । दम्बकला गणाधीश कुलुमली कुतइलकः ॥ ३९० ॥ शेषावसापिणीकालस्थिति निरवशेषतः । आगाम्युत्सर्पिणीकालस्थितिमप्यनुकु-  
बान् ॥ ३९१ ॥ गम्भीरया व्यकुम्भानिति स क्कमात् ॥ ३९२ ॥ चतुर्थकालपते स्थिते संवत्सरज्ये ।  
साष्टमासे सप्तमे स्यात्सिद्ध सिद्धार्थनदनः ॥ ३९३ ॥ दुष्कृमाया स्थितिर्वैद्यः सहस्राण्येकविंशति । शतवर्षायुष्मत्सिन्धुकुण्डेन मता नरा ॥ ३९४ ॥ स-  
स रत्नप्रमाणं ग्राह्यं च्छाया विरूपका । त्रिकालाद्वारनिरताः सुरतासक्तमानसा ॥ ३९५ ॥ परेपि दोषा प्रायेण तेषां स्युः कालदोषत । यतोऽस्या पापक-  
र्मणो अनिष्टयते सहस्रवत् ॥ ३९६ ॥ यथोक्तभूजुभाभाज्जाते वर्षादिसंकरे । दुःषमायां सहस्रद्वयतीता धर्महानित ॥ ३९७ ॥ पुरे पाटलिपुत्राह्वये  
विशुपालमहीपतेः । पापी तनूजः पृथिवीसुन्दर्याः दुर्जेनादिमः ॥ ३९८ ॥ चतुर्मुखः कल्किराजो वेजितभूतल । उत्पत्स्यते मघासवत्सरयोगसमागमे

कालकी पूर्ण स्थिति तथा आगामी होनेवाली उत्सर्पिणी कालकी स्थिति पूछी ॥ ३८६-३९० ॥ इसके उत्तरमें अपने  
दातोंकी किरणोंके फैलावसे सब सभाको प्रसन्न करते हुए गणधर देव गंभीर वाणीके द्वारा अनुक्रमसे तथा व्यक्तीरितसे  
नीचे लिखे अनुसार कहने लगे ॥ ३९२ ॥ जब चतुर्थकालकी स्थितिमें तीन वर्ष साडे आठ महीने बाम्नी रहेंगे तब भग-  
वान् वीर नाथ मुक्त होंगे ॥ ३९३ ॥ पांचवें दुष्कृमा कालकी स्थिति इकईस हजार वर्ष होगी । उसमें अधिकतर मनुष्यों-  
की आयु सौ वर्षकी होगी ॥ ३९४ ॥ इसी तरह उनके शरीरकी उंचाई सात अरत्ति होगी, उससमयके लोगोंकी कान्ति  
रुखी होगी उनका रूप अच्छा नहीं होगा वे तीनों समय भोजनमें लीन रहेंगे और उनके मन कामसेवनमें आसक्त रहेंगे  
॥ ३९५ ॥ काल दोषके अनुसार उनमें प्रायः और भी दोष होंगे क्योंकि उस समय प्राय हजारों पापी लोग ही आकर  
उत्पन्न होंगे ॥ ४९६ शास्त्रोंमें कहे हुए लक्षणवाले राजाओंका अभाव होगा इसलिये राजा लोग वर्णसंकर होंगे । दुःप-  
माकालके एक हजार वर्ष व्यतीत होजानेपर धर्मकी हानि होनेसे पाटलीपुत्र नगरमें राजा शिशुपालकी गनी पृथिवी सु-  
दरीके चतुर्मुख नामका एक पापी पुत्र होगा जो कि सबसे अधिक दुष्ट होगा पृथ्वीको कंपायमान करेगा और कल्किराज  
नामसे प्रसिद्ध होगा । यह कल्की मया नामके संवत्सरमें होगा ॥ ४९७-४९९ ॥ उस आक्रमण कालवालेकी आयु वह-  
त्तर वर्षकी होगी और चालीस वर्ष तक वह राज्य करेगा ॥ ४०० ॥ जो छयानवे पाखंड गिने जाते हैं उनकी आज्ञा-  
को जो मानेगा उसे ही वह अपने यहां सेवक रखेगा इसप्रकार वह सब पृथ्वीका उपभोग करेगा ॥ ४०१ ॥ तदनंतर  
किसी एक दिन जिसका हृदय मिथ्यात्व कर्मके उदयसे भर रहा है ऐसा वह पापी अपने मंत्रियोंसे पूछेगा कि कहा  
पाखण्डियोंमें अब भी क्या कोई हमारी आज्ञाके परानुव्रत है । इसके उत्तरमें मंत्री कहेंगे कि हे देव निर्ग्रन्थश्रुति अब भी

॥ ३३९ ॥ समाना ससत्तित्तस्य परमायुः प्रकीर्तित । चत्वारिंशत्समारज्यरियतिथ्याक्रमकारिण ॥ ४०० ॥ यण्वत्युपपद्यिगत्वाद्वाविधायिन । निजमूलत्वमायाय महीं कृत्वा स भोक्ष्यति ॥ ४०१ ॥ अय न्येधु स्वमिथ्यालगाकाविष्कृतचेतसा । पापटिषु किमस्माक सत्यमज्ञापराट्मुखा ॥ ४०२ ॥ कथ्यतामिति पापेन प्रष्टव्यास्तेन मयिण । निप्रथाः सति देवेति ते वदिष्यति सोमि नान् ॥ ४०३ ॥ आचारः क्रीदयस्तेषामिति पृच्छति भूगतिः । निज-पणिपुटामत्रा धनहीना गतपृष्टहा ॥ ४०४ ॥ अहिंसाव्रतार्थार्थं लक्षकेला दिगवराः । साधन तपसो मत्वा देहस्थित्यर्थमाहति ॥ ४०५ ॥ एकद्वयुपवि-सत्यपि कारणे ॥ ४०७ ॥ परपापद्विवान्यैरदत्तममिलायुकाः । संयो वा विहितवासा ज्ञानध्यानपरायणा ॥ ४०८ ॥ अट्टसचारदेकोषु सयसंति द्रुगे सह । इति वक्ष्यति दृष्ट तैर्विशिष्टास्तेऽद्य मयिण ॥ ४०९ ॥ ध्रुत्वा तत्सहिषु नाह शक्नोम्यक्रमवर्तनं । तेषां पाणिपुटे प्राच्यः पिब शुद्धो विधीयता ॥ ४१० ॥

आपकी आज्ञासे परानुग्रह हैं । यह सुनकर वह राजा फिर मंत्रियोंसे पूछेगा कि उनका आचरण कैसा है ? इसके उत्तरमें मंत्री लोग कहेंगे कि वे अपने हाथमें ही भोजन करते हैं, धनहीन होते हैं, तपश्चरणा का साधन मानकर केवल शरीर की स्थितिकेलिये एक दो उपवासके लिये सब वस्त्रों का त्याग कर दिखलाकर बिना याचनाके अपने शास्त्रोंमें कहीं हुई विधिकेलिये एक दो उपवासके बाद भिक्षाके समयपर केवल शरीर दिखलाकर बिना याचनाके अपने शास्त्रोंमें कहीं हुई विधिकेलिये एक दो उपवासके इच्छा करते हैं, वे लोग अपना घात करनेवाले तथा रक्षा करनेवालोंको एक दृष्टिसे देखते हैं, भूख प्यास आदिकी बाधाओंको सहन करते हैं, कारण मिलनेपर भी दूसरे पाखण्डियोंके समान दूसरेके द्वारा बिना दी हुई वस्तुकी कभी अभिलाषा नहीं करते, सर्पके समान उनके कहीं रहनेका स्थान नहीं, ज्ञान ध्यानमें सदा तल्लीन रहते हैं और जहां मनुष्यों का संचार तक नहीं ऐसे ऐसे निर्जन स्थानोंमें केवल हिरणादि पशुओंके साथ रहते हैं ऐसे अक्रमसे चलनेवालोंको सहन नहीं कर सकता इसलिये उनसे उनके हाथ पर रखवा सुनकर वह आज्ञा देगा कि मैं ऐसे अक्रमसे चलनेवालोंको सहन नहीं कर सकूँ ॥ ४१० ॥ इस प्रकार राजाकी आज्ञानुसार उस कामपर नियुक्त हुए पुरुष उनसे हुआ पहिला आस करके रूपमें वमूल करो ॥ ४११ ॥ इस प्रकार राजाकी आज्ञानुसार उस कामपर नियुक्त हुए पुरुष उनसे देवत्वर वे नियुक्त हुए इसलिये वे सुनिराज भी पहिला आस खाये बिना अर्थात् निराहार ही रहेंगे ॥ ४११ ॥ यह आज्ञा माननेको तैयार नहीं है ॥ ४१२ ॥ यह सुनकर उस पापीके नेत्र क्रोधसे लाल हो जायेंगे और क्रोधसे जिसका ओठ कंप रहा है ऐसा वह राजा उस आसको लेनेके लिये स्वयं उद्यमी होगा ॥ ४१३ ॥ उससमय शुद्ध, सम्यग्दृष्टी

इति राक्षोपदेसेन याचिष्यते नियोगिनः । अप्रपिदमयुजानाः स्थास्यति मुनयोपि तं ॥ ४११ ॥ तद्धृष्ट्या दर्पिणो नमा नात्रा राक्षः प्रतीप्यवः । किं जात-  
मिति ते गला ज्ञापयिष्यति तन्मृगं ॥ ४१२ ॥ सोपि पापः स्वयं क्रोधादहर्णभूतवीक्षणः । उद्यमी पिबमाहर्तुं प्रसुररसनच्छदः ॥ ४१३ ॥ सोऽतु तदसमः  
कश्चिदसुरः शुद्धहृत्तदा । इतिष्यति तमन्याय शकः सन् सहते नहि ॥ ४१४ ॥ सोपि रत्नप्रभा गला सागरोपमजीवितः । स्मिरे चतुर्मुखो दुःखं लोभादनु-  
भविष्यति ॥ ४१५ ॥ धर्मनिर्दुलबिध्वंसं सहते न प्रभावका । नास्ति सावश्लेशेन विना धर्मप्रभावना ॥ ४१५ ॥ धर्मो माता पिता धर्मो धर्मस्थाताभिव-  
र्द्धकः । धर्ता मयधृता धर्मो निर्मले निष्कले पदे ॥ ४१७ ॥ धर्मध्वसे सता ध्वस्तस्तस्माद्धर्मदुःधमान् । निवारयति ये सतो रक्षित तै सता जगत् ॥ ४१८ ॥  
निर्निर्गच्छा प्रोक्तैस्तपोभिर्जनैर्जकैः । धर्मोपदेसैर्नैन्यबादिदर्यातिशान्तं ॥ ४१९ ॥ नृपचेतोर्देहैः श्रव्यैः काव्यैः शब्दार्थसुन्दरैः । सद्भिः दैर्घ्येण वा कार्यं  
शासनस्य प्रवक्तव्यं ॥ ४२० ॥ वितामणिसमा केचित्प्राथितार्थप्रदायिनः । दुर्लभा धीमता पूज्या धन्या धर्मप्रकाशका ॥ ४२१ ॥ रुचिः प्रवर्तते यस्य जै-

कोई असुर ( व्यंतर ) उस अन्यायको सह नहीं सकेगा इसलिये वह उस अन्यायी राजाको मार देगा । सो ठीक ही है  
व्योंकि सपर्य्य पुरुष अन्यायको कभी सहन नहीं करते हैं ॥ ४१४ ॥ वह चतुर्मुख मरकर पहिले नरकमें जायगा और  
एक सागरकी आयु पाकर लोभसे बहुत दिनतक दुःखोंका अनुभव करेगा ॥ ४१५ ॥ प्रभावशाली पुरुष धर्मका निर्मूल  
नाश कभी नहीं सह सकते और थोडासा सावधानकर्म ( पापरूपी क्रिया ) किये विना धर्मकी प्रभावना हो नहीं सकती  
॥ ४१६ ॥ इस संसारमें धर्म ही माता है, धर्म ही पिता है, धर्म ही रक्षक है धर्म ही बढ़ानेवाला है, और धर्म ही जीवोंका  
निर्मूल और निश्चल मोक्षपदमें धारण करनेवाला है ॥ ४१७ ॥ धर्मका नाश होनेसे सज्जनोंका नाश होता है इसलिये  
जो सज्जन पुरुष हैं वे नीच धर्मद्रोहियोंका निवारण करते ही हैं और ऐसे ही पुरुषोंसे सज्जन संसारकी ( सज्जनोंके स-  
मूहकी ) रक्षा होती है ॥ ४१८ ॥ शास्त्रोंमें जैनशासनकी प्रभावनाके आठ अंग बतलाये हैं तपश्चरण करना, लोगोंको  
प्रसन्न करना, धर्मोपदेश देना, अन्य वादियोंके अभिमानको चूर करना, राजाके मनको वश करना, शब्द तथा अर्थसे सुं-  
दर ऐसे सुन्दर योग्य काव्य बनाना, और शूरवीरता दिखाना इन सब कारणोंसे सज्जन लोगोंको जैन शासनकी प्रभावना-  
करनी चाहिये ॥ ४१९-४२० ॥ चित्तामणिरत्नके समान भागनेवालोंकी इच्छानुसार धन देकर जो कोई धर्मकी  
प्रभावना करते हैं ऐसे धन्य और सज्जनोंके द्वारा पूज्य पुरुष इससंसारमें बहुत ही दुर्लभ है ॥ ४२१ ॥ सूत्रोंमें लिखा है  
कि जैनशासनकी प्रभावना करनेमें जिसके रुचि है मोक्ष उसके हाथमें ही रक्खी है ॥ ४२२ ॥ जो जैनशासनका प्रकाश  
करता है संसारमें वही वैयाकरण है वही सिद्धांती है और वही श्रेष्ठ तपस्वी है । यदि वह जैनशासनकी

नशासनभासने । हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते ॥ ४२२ ॥ स शाब्दः स हि तर्कः स सैद्धांतः स सत्ताः । यः शासनसमुदासी न चोक्तिं तैर-  
नर्थकैः ॥ ४२३ ॥ भासते च जगद्येन भासते जिनशासन । तस्य पादबुजद्वयं धियता मूढि धार्मिकाः ॥ ४२४ ॥ उदन्वानिव रत्नस्य मलयश्चंदनस्य वा ।  
प्रमदप्रसवाकीर्णं मनोरो महानटः । नटतालैर्न सद्धर्मभासनाग्निनयोपमः ॥ ४२५ ॥ तमूज कल्किराजस्य बुद्धिमानजितजय । पत्न्या बालनया साद्वैत ॥ ४२६ ॥  
दिपापिभिः । किंचित्काल जिन्दोक्तयैः वतिष्यतेतदा ॥ ४२७ ॥ एव प्रतिसद्धवाब्द तत्र विंशतिकल्पिषु । गतेषु तेषु पापिष्ठ पक्षिणो जलमंथन  
॥ ४२८ ॥ राक्षस भक्तिता नाम्ना तदा मुनिषु पक्षिम । चन्द्राचार्यस्य शिष्य स्यान्मुनिर्वीरागजाह्वन ॥ ४२९ ॥ सर्वश्रीरायिकावर्णे पक्षिम भावको-  
प्रभावना नहीं करता तो फिर व्यर्थ ही व्याकरण न्याय सिद्धांत पढ़ने तथा तपश्चरण करनेसे क्या लाभ है ॥ ४२३ ॥  
जो जिनशासनकी प्रभावना करता है उसीसे यह जगत सुशोभित होता है धर्मात्मा लोगोंको उसके दोनों चरणकमल अपने  
मस्तकपर रखना चाहिये ॥ ४२४ ॥ जिसप्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है, मलयगिरि पर्वत चंदनकी उत्पत्तिका  
कारण है उसीप्रकार जो श्रीमान् पुरुष जिनशासनकी प्रभावना करता है वह धर्मकी उत्पत्तिका कारण है ॥ ४२५ ॥  
जो पुरुष राज्य कराटकोंके समान धर्मके कराटकोंको निकाल फेंकता है अथवा जो इसके उद्योगमें लगा रहता है वह अवश्य  
ही लक्ष्मीका स्वामी होता है ॥ ४२६ ॥ इसलिये श्रीजिनेन्द्रके कहे हुए सद्धर्मकी प्रभावनारूपी अभिनयको करनेवालों  
यह जीवरूपी महानट आनन्दरूपी फूलोंसे भरे हुए मनरूपी रंगभूमिमें सदा नृत्य करता रहे ॥ ४२७ ॥ अथान्तर उस  
कल्कीका अजितंजय नामका बुद्धिमान पुत्र होगा वह अपनी बालना स्त्रीके साथ उस व्यन्तरदेवकी शरण लेगा ॥ ४२८ ॥  
तथा बहुमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको स्वीकार करेगा उस देवके द्वारा किये हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मके माहात्म्यको  
देखकर उसी समयसे बहुतसे पापी पाखराही अपना अधिमान छोड़ देंगे और फिर गेहे दिन तक श्रीजिनेन्द्रदेवका धर्म  
प्रचलित होगा ॥ ४२९-४३० ॥ इस प्रकार एक एक हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की होगा सब वीस कल्की हो चुकने  
पर सबसे पिछला कल्की पापी जलमन्थन होगा ॥ ४३१ ॥ वह सब राजाओंमें मुख्य होगा उस समय चन्द्राचार्यके शिष्य  
वीरगज नामके मुनि सबसे पिछले मुनि होंगे, सर्वश्री सबसे पिछली अर्जिका होगी अनिल नामका सबसे उत्तम  
पिछिला भावक होगा और अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाली फल्युत्सेना नामकी सबसे पिछली श्राविका होगी ॥ ४३२-४३३ ॥



तमः । अग्निलः फाल्गुसेनाद्वया श्रविकापि च सद्वृत्ता ॥४३३॥ एते सर्वेपि साकेतवास्तव्या दुःशमत्यजाः । सत्सु पंचमकालस्य त्रिषु बर्षेष्वप्यष्ट ५३४ मासेष्वष्टः शु मासार्द्धमितेषु च सुभाबना । कार्तिकस्यादिपक्षाते पूर्वाङ्कं स्वातिसंगमे ॥ ४३५ ॥ वीरगंजोमिलः सर्वश्रीस्यक्त्वा श्रविकापि सा । देहमायुश्च सदमोद्गमिष्यत्यादिम दिव ॥ ४३६ ॥ मय्यान्दे भूभुजो ध्वसः साय वे पाकभोजनं । षट्कर्मकुलदेशाहेतुधर्मोद्य मूरुत ॥ ४३७ ॥ सार्द्धं स्वहेतुसं-  
प्राप्तौ प्राप्स्यति विलय ध्रुव । ततोतिदुष्कषादौ स्युर्विशालद्वदपरायुषः ॥ ४३८ ॥ नरोदोभ्यधिकारविप्रयमानशरीरकाः । सततादृशिणः पापा गतिद्वयसमा-  
गताः ४३९ ॥ पुनरतदेव शस्यति तिर्यग्भ्रकनामक । कपोतसवनाभावाद् गतेवन्देषु वेभुषित ॥ ४३९ ॥ पर्णदिवसनाः कालस्याते नद्या यथेप्सित ।  
चरिष्यति फल वीनि वीना- शाखाभृगोपमा ॥ ४४० ॥ एकविंशतिरष्टाना सहस्राण्यष्टशृण्व । जलदा कालदोषेण कालोहि दुरतिक्रम ॥ ४४१ ॥ क्रमा-  
द्धि वलकायायुरादिहान्यो भविष्यति । प्राप्ते वोडशवर्षे युजोविनो हस्तामत्रका ॥ ४४१ ॥ अधिराथशुभान्येव प्रफलिष्यति नामसु । कृष्णरुसुतनुच्छाया दु-

ये सब अयीच्या नगरके रहनेवाले होंगे । पांचवें दुष्पमकालके अन्तिम धर्मात्मा होंगे । जब दुष्पमकालमें तीन वर्ष साढ़े आठ महीना बाकी रह जायेंगे तब कार्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन सर्वेके समय स्वाति नक्षत्रमें अच्छी भावनाओंको धारण करनेवाले, वीरगंज अग्निल सर्वश्री और फल्गुसेना श्रविका आयु और शरीर छोडकर सद्धर्मके प्रभावसे पहिले स्वर्गमें जा उत्पन्न होंगे ॥ ४३५-४३६ ॥ दोषहरके समय राजाका नाश होगा और शामको अशिका नाश होगा तथा पट्कर्म कुल देश और अर्थका कारण ऐसे धर्मका मूलसे नाश हो जायथा । ये सब अपने अपने कारण सहित अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे तदन्तर अति दुष्पमकालके प्रारम्भमें बीस वर्षकी आयु होगी मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई साढ़े तीन अरत्निकी होगी वे सदा भोजन करते रहेंगे पापी होंगे नरक तिर्यच दोनों ही गतियोंसे आकर उत्पन्न होंगे और फिर मरकर इन्हीं दोनों गतियोंमें जायेंगे । कपास और वस्त्रोंके अभावसे कुछ दिन तक तो वस्त्रोंके छाल पत्ते आदि पहिनेंगे और फिर अन्तमें इच्छानुसार नगन रहेंगे तथा वन्दरोंके समान फलादिकोंका भोजन करेंगे ॥४३६-४३७॥ कालदोषके कारण उस कालके इकईस हजार वर्षतक वादलोंसे बहुत थोडा पानी वरसेगा सो ठीकही है क्योंकि कालका उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४४२ ॥ तदन्तर अनुक्रमसे बुद्धि बल काय आयुकी कमी होती जायगी । अन्तमें सोलह वर्षकी आयु रह जायगी, एक हाथका शरीर होगा, तथा नाम कर्ममें जो अस्थिर आदि अशुभ नाम कर्म हैं उन्हींका उदय होगा । उनका शरीर काला शरीरकी कति रूखी, वे देखनेमें बुरे कर्कश स्वरवाले और दुष्ट होंगे ॥ ४४३-४४४ ॥ वे देखनेमें बुरे होंगे उनका आकार विकट होगा वे दुर्बल होंगे उनके दांत अलग अलग होंगे छाती गाल और आंखकी जगह नीचेकी ओर

भेगा दुःखरा खलाः ॥ ४४४ ॥ दुरीक्ष्या विकटाकारा दुर्वला निरलाद्विजाः । निमग्नवक्षोगङ्गाक्षिप्रदेशाधिपुटनासिका ॥ ४४५ ॥ लक्षसर्वदाचारा  
भुत्पपासादिवाधिताः । सरोगा दुःप्रतीकारा दुःखसादकवेधिनः ॥ ४४६ ॥ एव गच्छति कालेस्मिन्नेतस्य परमावधौ । निःशेष शोषमेतानु शरीरमिव संक्षयं  
॥ ४४७ ॥ अतिरुक्षा धरा तत्र माविनी स्फुटिता स्फुट । विनाशान्वितेनाग्निगात्र प्रमलानयष्टय ॥ ४४८ ॥ प्रलयः प्राणिनामेव प्रादौणोपजनिष्यते । सुरासे-  
नोश्च सिंघे, द्व खेचराद्रेश्च वेदिकाः ॥ ४४९ ॥ शिला नवीसमुद्रमुतभीनमद्भूकच्छणान् । कृत्वा कर्कटकदीब निजाहारान् मनुष्यकाः ॥ ४५० ॥ विष्टा भुद्रविला-  
दीनि द्वासप्तति कुलेद्भवा । हीना वीना दुराचारास्तदा स्थास्यति केचन ॥ ४५१ ॥ सरस विरस तीक्ष्ण रुक्षमुष्ण विषं विष । क्षारमेवा- क्षरीष्यति सप्त-  
सप्त दिनाभ्युत्थ ॥ ४५२ ॥ ततो घरण्या वैषम्यविगमे सति सर्वतः । भवेच्चित्रा समाभूमिः समासात्रावसर्पिणी ॥ ४५३ ॥ इतोऽसिदुःषमोत्सर्पिण्याः पूर्वोक्त-  
प्रमाणमाकृ । वर्तिष्यति प्रजावृद्धयं ततः क्षीरपयोधरा ॥ ४५४ ॥ तावद्विनिवधेन निर्दिशाममहर्दिव । पयः पर्यासि दास्यति रुक्षता ॥ ४५५ ॥

बैठी हुई होगी तथा नाक चिपटी होगी ॥ ४४४ ॥ वे सब तरहके सदाचारोंसे रहित होंगे भूख प्यास आदि वायात्रोंसे  
पीड़ित होंगे रोगी होंगे ऐसे रोगी होंगे जिनका कुछ भी इलाज न हो सकेगा और महा दुःखोंकाही अनुभव करते रहेंगे ॥ ४४६ ॥  
इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर सबसे अन्त समयमें पानी सब सूख जायगा और शरीरके समान नष्ट हो जायगा ॥ ४४७ ॥  
उस समय पृथिवी सब अत्यन्त सूखी हो जायगी और अपने नाश होनेकी चिन्तासे ही क्या मानों वृक्ष सब मलिन होकर  
सूखकर लकड़ीके समान हो जायेंगे ॥ ४४८ ॥ इस प्रकार प्रायः सब प्राणियोंका प्रलय होगा गंगा सिंधु और विजयाद्वे  
पर्वतकी वेदिकापर घोंडेसे जीव विश्राम लेंगे वे मनुष्य नदियोंमें पैदा हुए मछली, मेढक, कछुआ, केकडा आदिको खा  
जायेंगे उनमेंसे वहूचरि कुलोंमें उत्पन्न हुए हीन दीन और दुराचारी जीव छोटे छोटे विलोमें घुस जांदगे ॥ ४४९-४५० ॥  
तदनन्तर सात दिन तक आगिकी वर्षा सात दिन तक शीत जलकी वर्षा होगी, सात दिन तक खारा पानी बरसेगा,  
सात दिन तक विषकी वर्षा होगी, सात दिन तक दुस्सह अग्नि वर्षा होगी, सात दिन तक धूलि बरसेगी और फिर  
सात दिन धूमकी वर्षा होगी इस प्रकार उनंचास दिन तक वर्षा होगी (?) ॥ ४५१ ॥ इसके बाद पृथिवीका विपपपना सब  
नष्ट हो जायगा और चित्रा पृथ्वी निकल आवेगी तथा यहां ही पर अवसर्पिणीकाल समाप्त हो जायगा ॥ ४५३ ॥ इससे  
आगे उत्सर्पिणीकालका अति दुःपमाकाल चलेगा वह भी इकईस हजार वर्षका होगा और इसमें प्रजाकी फिर वृद्धि होगी ।  
पहिले ही क्षीर जातिके मेघ सात सात दिन तक रात दिन विना विश्राम लिये जल और दूधकी वर्षा करेंगे जिससे पृथ्वीका  
रूखापन नष्ट होजायगा और उसीसे यह पृथिवी अनुक्रमसे वर्णादि गुणोंको प्राप्त होगी इसके बाद अमृत जातिके मेघ सात

तन्निधनवर्णद्विगुणं चाभास्य निष्कमात् । तथैवायुतमेवाथ तावद्विषसगोचराः ॥ ४५६ ॥ दृष्टिमापातमिष्यति निष्यत्स्यत्रैव पूर्ववत् । औषध्यस्तराधोगुणमदु-  
षावीन्यप्यनारत ॥ ४५७ ॥ ततो रसाधिक्यभोदवर्षणत्पद्मसोद्वहः । यस्यासादा विलासिभ्यो निर्गत्य मनुजास्तदा ॥ ४५८ ॥ तेषां रसोपयोगेन जीविष्यत्या-  
ससमदा । दृष्टिर्गलति कालेरिमन् क्रमात्प्राग् हासमात्मना ॥ ४५९ ॥ तन्वाहीना पुनर्दुःखमासमायाः प्रवेक्षते । आयुर्विगतिवर्षाणि नराणां परम मत् ॥ ४६० ॥  
सादरान्नित्रयोत्सेधदेहानां दृष्टिमीयुषा । प्रादुर्गणीतप्रमाणेस्मिन् काले विमलबुद्धयः ॥ ४६१ ॥ षोडशविधैविष्यति क्रमेण कुलधारिणः । प्रथमस्य मनोग-  
ना तनुश्चतुरङ्गिणः ॥ ४६२ ॥ अंशस्यापि तनुः सप्तारङ्गिभिः यन्मिता भवेत् । आदिम कनकस्तैषु द्वितीयः कनकप्रभः ॥ ४६३ ॥ तत् कनकराजाख्य-  
श्चतुर्थः कनकध्वजः । कनकपुगवातोस्मात्प्रलिनो नलिनप्रभः ॥ ४६४ ॥ ततो नलिनराजाख्यो नवमो नलिनध्वजः । पुगवात्तत्र नलिनः पद्मप्रभाश्चतु-  
ः ॥ ४६५ ॥ पद्मराजस्ततः पद्मध्वजः पद्माधिपुगवः । महापद्मश्च विज्ञेयाः प्रजा पारिवेयशालिनः ॥ ४६६ ॥ एतेषां क्रमशः काले शुभभावेन वर्द्धनः । महीसलि-

दिनः तत्र अमृतकी वर्षा करेंगे जिससे औषधि या द्रव्य पौधे और घास आदि पहिलेके समान निरन्तर होंगे ॥ ४६४-४६६ ॥  
तदनंतर रसाधिक्य जातिके बादल रसकी वर्षा करेंगे जिससे सब चीजोंमें रस उत्पन्न होगा । उत्सर्पिणी कालमें सबसे  
पहिले जो मनुष्य विलोमें घुस गये थे वे निकलेंगे और उस रसके संयोगसे प्रसन्न होकर जीवित रहेंगे । उन्हीं उन्हीं काल  
व्यतीत होता जायगा त्यों त्यों शरीरकी उंचाई आयु आदि जिन जिन चीजोंकी पहिले कधी होती जाती थी उन सबकी  
वृद्धि होती जायगी । इसीतरह अनुक्रमसे दुःख काल आवेगा उसमें मनुष्योंकी आयु बीस वर्षकी होगी और शरीरकी  
उंचाई साढ़े तीन अरति होगी । फिर वृद्धि होती होती पहिले कहे हुए इक्कीस हजार वर्ष निकल जानेपर अनुक्रमसे नि-  
र्भल बुद्धिको धारण करनेवाले सोलह कुलकर होमे उनमेंसे पहिले कुलकरके शरीरकी उंचाई कुछ कम चार अरति  
होगी ॥ ४६७-४६९ ॥ अंतिम कुलकरका शरीर सात अरति उंचा होगा । कुलकरोंमें सबसे पहिला कनक नामका  
कुलकर होगा, दूसरा कनकप्रभ, तीसरा कनकध्वज, चौथा कनकध्वज, पांचवां कनकपुंगव, छठा नलिन, सातवां नलिन-  
प्रभ, आठवां नलिनराज, नौवां नलिनध्वज, दशवां नलिनपुंगव, ग्यारहवां पद्म, बारहवां पद्मप्रभ, तेरहवां पद्मराज, चौदह-  
वां पद्मध्वज, पंद्रहवां पद्मपुंगव और सोलहवां महापद्म नामका कुलकर होगा वे सब बड़े पराक्रमी और दुरुपार्थी होंगे उनके  
समयमें पानी धान्य आदिकी सदा अच्छी तरह वृद्धि होती रहेगी ॥ ४६६-४६७ ॥ मनुष्य अनाचारका त्याग करेंगे  
परिमित समयपर योग्य अन्नका भोजन करेंगे, मैत्री, लज्जा, सत्य, दया, इन्द्रियदमन, संतोष, विनय, क्षमा, रागद्वेषका  
त्याग आदि सज्जनैके चारित्र प्रगट होंगे और लोग अग्निमें पकाकर भोजन करेंगे ॥ ४६८-४६९ ॥ इसप्रकार दूसरा

लकालानां धान्यादीनां च सततं ॥ ४६७ ॥ मनुष्याणां नानाचारत्यागो योग्यात्मोन्नतः । काले परिमिते मैत्री सखासत्य दया दम ॥ ४६८ ॥ सुदुष्टिर्विनय-  
 क्षांतीरागद्वेषाद्यतीव्रता । इत्यादिषां सुदुष्टा च बहिर्नयाकेन भोजन ॥ ४६९ ॥ द्वितीयकाले वर्तते तृतीयस्य प्रवेशने । सप्तारविप्रमाणोगाः सद्योकाव्यायुषो  
 नराः ॥ ४७० ॥ तत्तत्तीर्थकरोत्यत्तिरतेषां नामाभिधीयते । आदिम श्रेणिकस्तस्मात्सुपाध्वेयं द्रव्यसङ्ग ॥ ४७१ ॥ ओष्ठिलाह्य कटप्रक्ष्व क्षत्रिय श्रेष्ठि-  
 भगवतिर्वागलिङ्गिपायनः क्षनकसङ्गः । पदादौ नारदधारुणः सत्यकिपुत्रकः ॥ ४७२ ॥ शयाक सेवक प्रेमकश्चातोरणसङ्गः । रवतो वासुदेवाह्वो बलदेवस्ततः परः ॥ ४७३ ॥  
 त्रिविधतिसम्पत्ता ॥ ४७४ ॥ तत्रायः पोटशमातकताब्दाद्यु प्रमाणकः । सप्तारविप्रमाणस्यैव तृतीयनायकः ॥ ४७५ ॥ पूर्वकोटीमितायुष्कश्चाप्यन्यथातो-  
 काल व्यतीत हो जानेपर तीसरा काल लगेगा उससमय लोगोंका शरीर सात अरति उंचा होगा और आयु एससौ वीस  
 वर्षकी होगी ॥ ४७० ॥ इस समय जो जीव तीर्थकर होंगे उनके नाम इस प्रकार पहिला श्रेणिक, दूसरा सुपाध्वेयक  
 मोष्ठिल, कटप्र, क्षत्रिय, श्रेष्ठि, शंख, नंदन, सुनन्द, शशांक, सेवक, प्रेमक, अतोरण, रवत, वासुदेव, भगलि, वागलि,  
 द्वैपायन, कनकपाद, नारद चारुपाद, सत्यकिपुत्र ये तेईस जीव आगे तीर्थकर होंगे ( ये इसी क्षेत्रके जीव हैं एक अन्यत्रसे  
 आकर तीर्थकर होगा ) सात अरति आदि इनके शरीरकी उंचाई होगी । आगे जो चौबीस तीर्थकर होंगे, उनमेंसे  
 पहिले तीर्थकर सोलहवें कुलकर होंगे सौवर्षकी उनकी आयु होगी और शरीर सात अरति उंचा होगा । इनके नाम इस प्रकार होंगे । पहिले महापद्म, दूसरे सुरदेव  
 एक करोड पूर्वकी होगी और शरीर पांचसौ धनुष उंचा होगा । उनके नाम इस प्रकार होंगे । पहिले महापद्म, दूसरे सुरदेव  
 ग्यारहवें सुनिमुबल, बारहवें अरनाय, तेरहवें अपाप (निष्पाप) चौदहवें निष्कपाय, पंद्रहवें विपुल, दशवें जयकीर्ति  
 चित्रगुप्त, अठारहवें समाधिगुप्त, उन्नीसवें स्वयम्बर, बीसवें अनिवर्ती, इकईसवें विपल, तेईसवें देवपाल, और चौबीसवें  
 अनन्तवीर्य, चौबीस तीर्थकर होंगे सब इंद इनके चरणकमलोंकी बंदना करेंगे । उसकालमें उल्लूख लक्ष्मीकी धारणकरने  
 वाले बारह चक्रवर्ती होंगे ॥ ४७१-४८० ॥ उनके नाम इस प्रकार होंगे पहला भरत, दूसरा दीर्घदत्त, तीसरा  
 सुक्तदत्त, चौथा गृहदत्त, पांचवां श्रीषेण, छठा श्रीभूत, सातवां श्रीकांत, आठवां पद्म, नौवां महापद्म, दशवां विचि-  
 त्रवाहन, ग्यारहवां विमलवाहन और बारहवां सबसे पिछला सब संपदाओंको धारण करनेवाला अरिष्टसेन ॥  
 ४८२-४८४ ॥ इस कालमें बलभद्र भी नौ होंगे और उनके नाम इस प्रकार होंगे पहिला चंद्र, दूसरा महाचंद्र तीसरा

चिह्नितः । तेषामायो महापद्मं सुरदेव-सुपार्थवाक् ॥ ४७७ ॥ स्वयंप्रभश्च सर्वोत्पत्ताहो देवपुत्रवाक् । कुलपुत्रश्च योदकं प्रोष्ठिले जयकीर्तिवाक् ४७८  
मुनिब्रह्मनामारुरक्षोपायसिधानकः । निष्कषायः सविपुलो निर्मलविशुद्धः ॥ ४७९ ॥ समाधिगुप्तसदृशश्च स्वयंव-  
रसमाह्वयकः । अनिवर्ती च मित्रयो विमलो देवपालवाक् ॥ ४८० ॥ अनंतवीथीं सिद्धैर्वदति त्राघिसरोरुहः । कालेभिरेव चक्रेषा भाविनो द्वांदशोच्छ्रय  
॥ ४८१ ॥ भरतो दीर्घदत्तश्च मुक्तदत्तस्तृतीयकः । गृहदत्तश्चतुर्थस्तु श्रीषेणः पंचमो मतः ॥ ४८२ ॥ षष्ठः श्रीभृतिश्च दृढश्च श्रीक तः सप्तमः स्मृतः । प-  
द्मोऽष्टमो महापद्मो विवित्रादिश्च वाहनः ॥ ४८३ ॥ दशमोऽस्मात्परः कृत्यतत्त्वकी विमलवाहनः । अरिहसेनः सर्वालसंपन्नः सर्वसंपदः ॥ ४८४ ॥ सीरि-  
णोपि नवैवान्न तत्राष्टचक्रनामकः । महाचक्रो द्वितीयो भूततत्त्वचक्रभरोमवेत् ॥ ४८५ ॥ हरिश्चंद्राभिधः सिंहचंद्रश्चो वरादिकः । पूर्णचंद्रः सुवद्रश्च श्रीचंद्रः केश  
वाचितः ॥ ४८६ ॥ केशवाश्च नवैवान्न तेष्वायो नदिनामकः । नदिमित्रो द्वितीयः स्यान्नदिषेणस्ततः परः ॥ ४८७ ॥ नदिभृतिश्चतुर्थस्तु प्रतीतः पंचमो

चक्रपरः, चौथा हरिचंद्र, पांचवां सिंहचंद्र, छठा वरचंद्र, सातवां पूर्णचंद्र, आठवां सुचंद्र और नौवां नारायणके द्वारा पूज्य  
श्रीचंद्र ॥ ३८५-३८६ ॥ इसीप्रकार नारायण भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला नंदि, दूसरा नंदिमित्र  
तीसरा नंदिषेण, चौथा नंदिभृति, पांचवां सुमसिद्धवल, छठा महावल, सातवां अतिवल, आठवां त्रिपुट और नौवां विभू  
इन नारायणोंके शत्रु प्रति नारायण भी नौ ही होंगे ॥ ४८७-४८८ ॥ इस दुष्पमसुपम कालके बाद सुपमदुःपम काल  
आवेगा उसके प्रारंभमें मनुष्यकी ऊंचाई पांचसौ धनुष होगी और कुछ अधिक एक करोड पूर्वकी आयु होगी । उसके  
थोड़े ही वर्ष बाद वहां जघन्य भोग भूमिकी पूर्ण स्थिति हो जायगी ॥ ४९०-४९२ ॥ इसी तरह पांचवें सुपमकालमें  
मध्यम भोगभूमिकी स्थिति रहेगी और छठे सुपमसुपम कालमें उत्तम भोग भूमिकी स्थिति रहेगी ॥ ४९२ ॥ भरतचक्रके  
सिवाय और जो वाक्की की नौ कर्म भूमियां हैं उनकी प्रवृत्ति भी इसीप्रकार होती है इसप्रकार भूतकालकी अवसरपिणी  
और होनहार उत्सरपिणी ये दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ जो इस कल्पकालकी विधि है वही सब  
कल्प कालोंमें समझ लेनी चाहिये । हाई द्वीपमें जितने विदेह क्षेत्र हैं उन सबमें मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई पांच सौ ध-  
नुष होती है और आयु एक करोड पूर्वकी होती है । वहांपर तीर्थंकर चक्रवर्ती बलभद्र नारायण आदि सबकी अलग २  
संख्या अधिकसे अधिक एकसौ साठ होती है तथा कमसे कम संख्या भी बीस रहती है ॥ ४९४-४९५ ॥ इसतरह सब  
एकसौ सत्तर कर्मभूमियां हैं उनमें एकसौ सत्तर ही चक्रवर्ती राजा हो सकते हैं उनमें चारो गतियोंसे जीव आकर उत्पन्न  
होते हैं और अपने आचरणके वशीभूत होकर मोक्ष मोक्ष सहित पांचों गतियोंमें जाते हैं । भोगभूमियोंमें सब जीव कर्मभूमिमेंसे

बल । पछो महाबलन्तेषु सप्तमोतिबलाह्वयः ॥ ४८७ ॥ अष्टमोभूत्विष्टाख्यो द्विष्टो नवमो विभु । तद्वैरिणोपि तावत् एव विदेयसङ्गकाः ॥ ४८९ ॥ तत्-  
स्तत्कालपर्यन्ते भवेत्सुपमदुःपमा । औदौ तस्या मनुष्याणा पचचापशतोच्छ्रितः ॥ ४९० ॥ साधिका पूर्वकोट्यायुःस्थितिर्चातैषु केमुचित् । वर्षेषु निर्वि-  
शेषोऽत्र जघन्यार्थजनस्थितिः ॥ ४९१ ॥ ततः पचमकालेपि मध्यभोगमुखः स्थितिः । पृष्ठकालेपि विज्ञेया वरीयोगभूमिस्थितिः ॥ ४९२ ॥ एव शेषनव-  
स्थानकर्मभूमिषु वर्तन । एव कल्पस्थितिः प्रोक्ता भूतेष्वपि च भाविषु ॥ ४९३ ॥ एष एव विविक्ष्य कल्पेषु जिनमापित । विदेहेषु च सर्वेषु पचचाप-  
शतोच्छ्रितः ॥ ४९४ ॥ मनुष्याणा परं चायुः पूर्वकोटिमितं मत । तत्र तीर्थकराद्यकवर्तिनो रामकेशवा ॥ ४९५ ॥ पृथक्पृथग्ऋतुत्वेन शत पञ्चदश-  
स्मृताः । अल्पैवापि विज्ञातिर्भवति च पृथक् पृथक् ॥ ४९६ ॥ उच्छृण्वन् शत सप्ततिद्वयं स्युः सर्वभूमिजा । उत्पद्यते नरास्त्रय चतुर्गतिसमागता ॥ ४९७ ॥  
गतीरिच्छति पचापि निजाचारवनीकृताः । भोगभूमिषु सर्वसु कर्मभूमिषुद्रुवा ॥ ४९८ ॥ मनुष्या संज्ञिन तिर्यचद्वयं शान्त्युपपादन । आदिकल्पद्वये

ही आकर उत्पन्न होते हैं और मनुष्य तथा संज्ञी तिर्यच ही उत्पन्न होते हैं । भोग भूमिमें उत्पन्न हुए जीव मरकर पहिले और दूसरे स्वर्गमें अथवा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्कामें उत्पन्न होते हैं यह नियम है कि वे सब मरकर देव ही होते हैं । मनुष्योंमें भोगभूमिके मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए अपने आचरणोंकी विशेषतासे तीन प्रकारके कहे जाते हैं एक शालका पुरुष दूसरे साधारण और तीसरे विशाधर ॥ ४९७-४९९ ॥ उत्सर्पिणी अप्सर्पिणीका चौथा पांचवा छद्मा ये छह काल कनिष्ठकाल ( जघन्य ) गिने जाते हैं । एक पैरवाले, भापारहित, शंक्कु सरीखे कानवाले, फैले हुए कानवाले, लम्बे कानवाले, खरगोसकेसे कानवाले, अभ्यमुख, सिंहमुख, देखनेके अयोग्य, महिषमुख, कोलमुख, व्याघ्रमुख, उलूकमुख, वानरमुख, मत्स्यमुख, कालमुख, गोमुख, मेघमुख, विद्युन्मुख, आदर्शमुख, हस्तिमुख, पूँछवाले, सींगवाले, ये नीच कुभोगभूमिके मनुष्य होते हैं और अन्तरद्वीपोंमें रहते हैं । सब मलेच्छखण्डोंकी स्थिति और विजयादौ पर्वतकी स्थिति तीर्थकरोंके समयके समान रहती है और वृद्धि ह्रास सदा कर्मभूमिमें ही होता है । इस प्रकार श्रेणिके प्रश्नके अनुसार इन्द्रभूतिगणधरने वचनरूपी धिराणोंसे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट करते हुए यह सब हाल कहा । ये कहने लगे कि इसके बाद भगवान् महावीर भी बहुतसे देशोंमें विहार करेंगे ॥ ४९०-४९८ ॥ विहार करते करते अन्तमें वे पावापुर नगरमें पहुँचेंगे वहाँके मनोहर नामके वनके भीतर अनेक सरोवरोके मध्यमें महामणिर्षोंकी शिलापर विराजमान होंगे । विहार छोड़कर ( योगनिरोधकर ) निर्जराको बढाते हुए वे दो दिन तक वहा विराजमान रहेंगे और फिर कार्षिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम समयमें स्वाति नक्षत्रमें तीसरे शुक्लध्यानमें तत्पर होंगे ।

आचनसिद्धेकेषु च त्रिषु ॥४९॥ जीतितांते नियोगेन सर्वे ते देवभाविन । भनुज्योपूतमा भोगभूमिजाः कर्मशुश्रुष ॥५०॥ निजवृत्तिविक्षेपेण त्रिविधारते प्रक्रीतिताः । शलाकापुरुषाः कामा खगाश्चान्ये सुरार्चिताः ॥५०१॥ यतो दिव्यमनुय्यासु षष्ठकालाः कनिष्ठका (१) एकोरुकास्तथा भाषाविहीनाः शंङ्कुकर्णका ॥५०२॥ कर्णप्रावरणा लंबशशाकादवादिकर्णकाः । अश्वसिंहमुखाश्चान्ये दु प्रेक्ष्या महिषानना ॥५०३॥ कोलव्याघ्रमुखाश्चैवमुल्लङ्कमुखनामकाः । शाखासृगमुखामस्त्यमुखाः कालमुखास्तथा ॥५०४॥ गोमेघमेघवक्त्राश्च विष्णुदाक्षशंखवक्त्रकाः । हरितवक्त्रा कुमानुय्याजा लांगुलिविषाणिनः ॥५०५॥ ऐते च नीचका यस्यादतर-द्वीपवासिन । म्लेच्छसखेसु सर्वेषु विजयाद्देशु च स्थितिः ॥५०६॥ तीर्थकुत्सासवदृष्टिहा, मध्वकर्मभूमिषु । इदं च श्रेणिकप्रश्नादिदभूतिर्गणधिय ॥५०७॥ इत्याह वचनामीमुनिरस्तातमस्सतिः । इत्यल्यतीर्थेनाभोपि विहस्य विषयान् बहून् ॥५०८॥ क्रमात्पावापुर प्राप्य मनोहरवनातरे । बहूना सरसा मध्ये महाभविबिलालते ॥५०९॥ स्थिला क्षिणद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जर । कृष्णकान्तिकपशस्य चतुर्दश्यां निशाल्यै ॥५१०॥ स्वातियोगे तृतीयैदशुल्लङ्घ्या-नपरायण । कृतत्रियोगसरोषसुच्छिन्नक्रिय प्रित ॥५११॥ हताघातिचतुल्ल सन्नशरीरो गुणात्मकः । गता मुनिसदृशेण निर्वाणं सर्ववाञ्छित ॥५१२॥

तदन्तर तीनों योगोंका निरोधकर समुच्छिन्न क्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानका आश्रय लेंगे तथा चारों उपाधियां कर्माको नाशकर शरीररहित केवल गुणरूप होकर एकहजार मुनियोंके साथ सबके द्वारा वाञ्छनीय ऐसा मोक्ष पद प्राप्त करेंगे ५०६-५१२ उसी समय पुरुषार्थका अंतिम जो अनन्त सुख है वह उन्हें प्राप्त होगा । तदन्तर इन्द्रादि सब देव आर्वोंगे मोहके नाश करनेवाले भगवानके शरीरकी विधि पूर्वक दिव्य गन्धमाला आदि द्रव्योंसे पूजा करेंगे और फिर अधिकुमार देवोंके इन्द्रके शुकुटसे प्रगट हुई अश्विकी शिखामें उस शरीरको स्थापन करेंगे । फिर अर्थोंसे भरी हुई प्रशंसा वाचक स्तुतिसे संसारको नाश करनेवाले भगवानकी स्तुति करेंगे । जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष पथारोंगे उसी दिन मुझे भी घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानरूपी नेत्र प्रगट होगा । भव्य जीवोंका धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशोंमें विहार करूंगा और फिर विपुलाचल पर्वतपर जाकर मुक्त हूंगा । जिस दिन मैं मुक्त हूंगा उसी दिन सकल श्रुतज्ञानके पारगामी सुधर्माचार्यको लोक अलोक सबको एकसाथ देखनेवाला अंतिम केवलज्ञान प्रगट होगा सुधर्माचार्यके निर्वाण होनेके समय ही जंबूकुमारको केवल ज्ञान प्रगट होगा ॥ ५१२-५७८ ॥ यह जम्बूकुमार अंतिम केवल ज्ञानी होंगे । जम्बूकुमारके बाद जो इस भरतक्षेत्रमें धर्मोपदेश देंगे । उनके नाम इस प्रकार होंगे । नंदिमुनि, श्रेष्ठ नंदिभित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और महातपस्वी भद्रबाहुये सब अनेक नयोंके विचित्र अर्थोंसे भरे हुए पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी होंगे ॥ ५१९-५२० ॥ विशुद्धिको धारण करनेवाले ये पांचो ही अनुक्रमसे होंगे । इनके बाद विशाखार्य, मोष्टिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल,



तदेव पुरुषार्थस्य पर्यन्तान्तसौख्यकृत् । अथ सर्वेपि देवेन्द्रा वर्द्धिप्रमुक्तस्फुरत् ॥ ५१३ ॥ हुताशनशिखान्यस्तत्तरेषा मोहविद्विष । अन्वयक्यं गधमाल्यादिदन्त्य-  
दिभ्यैर्यथाविधि ॥ ५१४ ॥ वंदिष्यते भवातीतमर्थ्यवन्दारवस्तवै । वीरतिर्वृत्तिसंपासदिन एवास्तघातिकः ॥ ५१५ ॥ भविष्याम्यहमप्यय केलशानलोचनः ।  
भयाना धर्मदेशेन विहस्य विपयास्ततः ॥ ५१६ ॥ गला विपुलशब्दादिगिरौ प्रास्यामि निर्वृति । मन्त्रिभूतिदिने लब्ध्वा सुधमां श्रुतपारगः ॥ ५१७ ॥ लो-  
कालोकावलोकैकलोकमत्यावलोकन । तन्निर्वीणक्षणे, भान्नी जवूनमात्तकैवल ॥ ५१८ ॥ अल्य केवलानामस्मिन्भरते य प्ररुष्यते । नदी मुनिस्तत श्रेष्ठो  
नक्षिभिन्नोपराजितः ॥ ५१९ ॥ गोवद्वनश्चतुर्थोऽनु भद्रवाहुर्महातपाः । नानानयविचित्रार्थसमस्तश्रुतपूर्णता ॥ ५२० ॥ ऐते क्रमेण पचापि प्राप्यत्याः सविशु-  
द्ध्य । तता भावी विशाः सार्थः श्रोष्ठिल क्षत्रियाः फक्त ॥ ५२१ ॥ जयनामानुनागाहः सिद्धार्थो घृतिपेणकः । विजयो बुद्धिलो गंगदेवश्च क्रमतो मता  
॥ ५२२ ॥ एकदश सहश्रीमद्वर्मसेनेन धीमता । द्वादशागाधकुशला दशपूर्वधराश्च ते ॥ ५२३ ॥ मयाना कल्पवृक्षाः स्फुरन्धर्मप्रकाशका । ततो न  
क्षत्रनामा च जयपालश्च पांडुना ॥ ५२४ ॥ सुवसेनोऽनु कर्मयोग विधिर्नैकादशागका । सुमदश्च यशोभद्रो यशोवाहु प्रकृष्टधी ॥ ५२५ ॥ लोहनामा चतुथ

गंगदेव, और बुद्धिमान धर्मसेन ने सब श्रीमान् अनुक्रमसे होंगे तथा ग्यारह अंग दश पूर्वके पाठी और द्वादशांगके अर्थ  
कहनेमें अन्यन्त कुशल होंगे ॥ ५२१-५२२ ॥ ये ग्यारह नुनि भव्योंको कल्पवृक्षके समान होंगे और जैन धर्मको प्रकाश  
करनेवाले होंगे । इनके बाद नक्षत्र, जयपाल, पांडु, धुवसेन, और कंसार्थ ये विधि पूर्वक ग्यारह अंगोंके जानकार होंगे ।  
इनके बाद सुभद्र, यशोभद्र प्रकृष्ट बुद्धिवाले यशोवाहु और चौथे लोहाचार्य ये चार आचारांग नामके पहिले अंगके जान-  
कार होंगे । इन सब तपस्वियोंकी परम्परा अर्थात् सब मुनि जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे प्रगट हुए पवित्र और पापोंका नाशकर  
नेवाले शास्त्रोंका प्ररूपण करेंगे । इनके बाद अनेक ऋद्धिोंको धारण करनेवाले वीरसेन जिनसेन आदि महातपस्वी शेष  
मुनि भी श्रुतज्ञानके एकादशको प्रगट करेंगे । तथा इसी तरह प्रायः दुःपमकालके समाप्त होने तक जिनधर्मका प्रकाश होता  
रहेगा ॥ ५२६-५२८ ॥ भरत, समर, जिनके द्वारा प्रशंननीय सत्यवीर्य, राजा मित्र मित्रवीर्य भाव, अच्छी कांतिको धारण  
करनेवाला धर्मवीर्य दानवीर्य, मधवा शुद्धवीर्य, सीमन्धर त्रिष्टुप स्वयम्भू पुरुषोत्तम पुरुषशुद्धरीक, प्रशंसनीय सत्यदत्त, राजा  
कुनाल, सब पृथिवीका और मनुष्योंका स्वामी नारायण, सुभौम, सार्वभौम, अजितंजय, विजय, उग्रसेन, महासेन, और  
शुद्ध सम्यक्त्वी तू श्रेष्ठिक । ये सब बुद्धिमान ये धर्मसम्बन्धी प्रश्न करनेमें चतुर थे, और सदा चौबीसो तीर्थकरोंके चरण  
कमलोंकी सेवा करनेवाले थे ॥ ५२९-५३३ ॥ भगवान् वर्द्धमानका जीव पहिले पुरुखा भील था, फिर पहिले स्वर्गमें  
देव हुआ, फिर भरतका पुत्र मरीचि हुआ, पंचवै स्वर्गमें देव हुआ फिर जटिल ब्राह्मण हुआ वहांसे सौधर्म स्वर्गमें देव

स्मादन्वारंगविदस्त्वभी । जिर्मद्रवचनोद्गीर्णं पावन पापलोपनं ॥ ५२६ ॥ धृत तपोयुतामेया प्रणेभ्यति परंपरा । शैर्षपि श्रुतज्ञानस्यकोशस्तपोधनः ॥ ५२७ ॥ जिनसेनानुगैर्वसेनै प्राप्तमहर्द्धिभिः । समाप्ते दुष्कषमाया प्राक् प्रायशो वर्तयिष्यति ॥ ५२८ ॥ भरत सगराह्योऽनु सत्यवीर्यो जिनस्तुत । महीशो मित्रभावाह्वो मित्रवीर्योऽयमद्युति ॥ ५२९ ॥ धर्मदानादिवीर्यो च मधना शुद्धवीर्यकः । सीमधराश्रिष्टाह्यः स्वयंभू पुरुषोत्तम ॥ ५३० ॥ पुण्डरीकांतपुरुषो दत्त सत्यादिभि स्तुत । कुनालपालक पृथ्व्या पतिर्नारायणो णुणा ॥ ५३१ ॥ सुभौमः सर्वभामोऽजितजयोविजयाभिध । उग्रसेनो महर्द्धेनो-जिनस्त्वं श्रेणिकैलभी ॥ ५३२ ॥ सर्वे क्रमेण धीमतो धर्मप्रभविदावरा । चतुर्दिशतितीर्थेया संतत पादसेविन ॥ ५३३ ॥ पुरुषा सुर प्राच्यकल्पेभू-द्धरतामजः । मरीचिप्रद्वकल्योत्थस्ततोभुजटिलद्विजः ॥ ५३४ ॥ सुरः सौधर्मकल्पे तु पुण्यमित्रद्विजस्ततः । सौधर्मजोमरस्तस्माद्विजन्ममिसमाह्वयः ५३५ सनत्कुमारेदेवोस्मादभि मित्राभिधो द्विजः । मरुमार्हेदकल्पेभुद्गराद्वाजो द्विजान्वये ॥ ५३६ ॥ जातो म हेदकल्पेऽनु मनुष्योऽनु ततश्च्युतः । नरकेषु त्रसस्था-वरेष्वसह्यातवत्सरान् ॥ ५३७ ॥ आत्मा ततो विनिर्गल्य स्थावराह्यो द्विजोऽभवत् । ततश्चतुर्थकल्पेभूद्विश्वनदी ततश्च्युतः ॥ ५३८ ॥ महाशुके ततो डे-

हुआ, फिर अग्निविम नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे तीसरे सानत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ । फिर अग्निमित्र नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ । वहांसे आकर भारद्वाज नामका ब्राह्मण हुआ और फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ । वहांसे च्युत होकर फिर मनुष्य हुआ । और फिर असंख्यात वर्षोंतक नरकोंमें तथा त्रस और स्थावर पर्यायोंमें उसने परिभ्रमण किया ॥ ५३४-५३७ ॥ वहांसे निकलकर फिर स्थावर नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ फिर राजा विश्वनन्दी हुआ, इसके बाद महाशुक नामके दशवें स्वर्गमें देव हुआ फिर तीन खगडका स्वामी त्रिपृष्ट नारयण हुआ, वहांसे सातवें नरक गया और फिर सिंह हुआ ॥ ५३८-५३९ ॥ वहांसे फिर पहिले नरकमें गया वहांसे आकर सिंह हुआ इसी सिंहकी पर्यायमें उसने निर्मल सद्धर्म धारण किया और उस पर्यायको छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेतु नामका उत्तम देव हुआ ॥ ५४० ॥ तदनन्तर कनकोज्वल नामका विद्याधरोका राजा हुआ, फिर सातवें स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर राजा हरिषेण हुआ, फिर महाशुक नामके दशवें स्वर्गमें देव हुआ, उसके बाद प्रियमित्र राजा हुआ फिर सहस्रार नामके वारहवें स्वर्गमें सूर्यप्रभनामका देव हुआ ॥ ५४१-५४२ ॥ वहांसे आकर नन्द नामका राजा हुआ, वहांसे सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुण्योत्तर विमानमें इन्द्र हुआ और वहांसे च्युत होकर भगवान् बद्धमान हुआ ॥ ५४३ ॥ जिन्हें पंचों कल्याणोंकी श्रद्धियां प्राप्त हुई हैं और जिन्हें मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त हुई ऐसे वे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी गुण-भद्रके लिये अथवा गुणवानोंके लिये सब तरहके मंगल प्रदान करें ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार अच्छी कथाके रससे अत्यंत

वज्रसद्वेगप्रिपृष्टपाद् । सप्तमे नरके तस्मात्तस्मान् गजविद्विषः ॥ ५३९ ॥ आदिमे नरके तस्मात्सिंहः स्रद्धमर्निमलः । ततः सौषर्षकस्यैभृत्सिंहकेतुसुरो-  
त्तमः ॥ ५४० ॥ कनकोज्वलनाम्नाभूस्ततो विषधराधिपः । देवः सप्तमकल्पे तु हरिवेणस्ततो द्रुपः ॥ ५४१ ॥ महाशुके ततो देवः प्रियसित्रस्ततो महीर् ।  
स सहस्रारकल्पेभूरेवः सूर्यप्रभाह्वयः ॥ ५४२ ॥ राजनंदाभिधस्तास्मात्पुण्योत्तरविमानजः । वायुतैरस्तस्तद्व्युत्पन्ना वर्द्धमानो जिनेश्वरः ॥ ५४३ ॥ प्राप्तापचमहा-  
कव्याणाद्विः प्रास्तुत सिद्धिभाक् । प्रदिश्यादुगुणभेदेभ्यः स विभुः सर्वमगलं ॥ ५४४ ॥ इत्य गौतमवक्त्रवारिजलपद्मावलम्बावाढमयैः पीयूषैः सुकथारसाति-  
मधुरैः मकरधोण्युक्तैश्चिरैः । सा संसन्मगधाधिपश्च महतीं दुष्टिं स्वम जग्मतुः शुष्टिं दृष्टिविवोद्योविंदधतीं सर्वार्थसंपत्करीं ॥ ५४५ ॥ श्रीवर्द्धमानमनिशं सि-  
नवर्द्धमानं त्व त नये स्तुतिपथं पथि संप्रधाते । गोलोपि तीर्थकरमग्रिममव्यजैषीत् काळे कलौ च पृथुलीकृतधर्मतीर्थः ॥ ५४६ ॥ स्तुत्या प्रसादयितुमर्थि-  
जनो विनैति न लप्यदस्ताव स मोहजयस्तबोय । तन्मार्थिनस्तुतिरिदेशं ममास्ति बाह स्तुत्यस्तुतिप्रणयिनीऽर्थपराद्भुतस्य ॥ ५४७ ॥ येषा प्रमेयविमुख दु-  
मुच्चप्रमाणं तेन स्तुतेर्हितजुषा विषयीमवेयु । त्व विषयभावविहितावगमाभ्यर्कोर्हन्तृ वक्ता हि तस्य ततएव हितैविवच्य ॥ ५४८ ॥ दातासि न स्तुतिकले

मधुर, भक्तिके द्वारा आस्थादित और अमृतमय ऐसे गौतम गणधरके मुखरूपी कमलसे सुशोभित हुई सरस्वतीके वचनोसे वह सब सथा तथा मगधेश्वर राजा श्रेणिक दोनों ही अर्थ और संपदाओंके देनेवाले तथा ज्ञान और दर्शनको पुष्ट करने-  
वाले ऐसे बड़ेभारी संतोषको प्राप्त हुए थे ॥ ५४५ ॥ जो श्रीवर्द्धमान सदा वर्द्धमान वा जयशील रहते हैं जो तुम्हें नि-  
र्घल मोक्षमार्गमें ले जाते हैं जिनका धर्म तीर्थ कलिकालमें भी बड़े विस्तारसे प्रचलित हुआ है और इसलिये ही तीर्थकरों-  
में अंतिम होकर भी जिन्होंने प्रथम तीर्थकर वृषभदेवको भी जीतलिया था ऐसे श्री वर्द्धमानकी मैं स्तुति करता हूं ॥  
५४६॥ हे देव ! अर्थी-कुछ इच्छा रखनेवाले, जन आपको प्रसन्न करनेके लिये नमस्कार वा स्तुति करते हैं परंतु आपका  
यह जय स्तोत्र ऐसे स्तोत्रोंके समान नहीं है । हे ईश ! हे स्तुति करने योग्य ! मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता हूं  
न मुझे कुछ स्तुति करनेके, फलकी अभिलाषा है मुझे तो केवल स्तुति करने योग्य पुरुषमें प्रेम है इसलिये मेरी यह स्तुति  
इससंसारमें खूब ही प्रसिद्ध हो ॥ ५४७ ॥ हे सुमुख जिनका प्रमाण प्रमेयसे रहित है वे पुरुष हित चाहनेवाले हम लोगों-  
के स्तुतिके गोचर नहीं हो सकते अर्थात् हम लोग उनकी स्तुति नहीं कर सकते हे अर्हन् ! आप तो समस्त पदार्थोंके  
कहे हुए ज्ञानरूप ही हैं और इसलिये ही आप उन पदार्थोंके स्वरूपके वक्ता वा कहनेवाले हैं अतएव आपही हितचाहने-  
वाले हम लोगोंके द्वारा बंदनीय हैं ॥ ५४८ ॥ हे जिनेंद्र यद्यपि आप स्तुतिका फल नहीं देते हैं तथापि स्तुति करनेवाला  
पुरुष याचना न करता हुआ भी सबसे अच्छे और सबसे अधिक फलको बहुत शीघ्र और अवश्य प्राप्त होता है फिर

समुपैत्यवश्यं स्तोता मह्यमिति शुभ्रमयामितोय । कुर्यात् कुतस्तव न सक्तव न सक्तव न सक्तव न सक्तव न सक्तव ॥ ५४९ ॥ निष्कारणं तृणलवं च दद्विभी-को लोके जिन लयि ददाति निरर्थकृत् । मुक्तिप्रदायिनि तथापि भवंतमेव प्रेक्षावता प्रथमगण्यमुंशति चित्र ॥ ५५० ॥ सर्वलभविजयता लमिह स्त्रीय चक्रु परे निह० क्षिप्रिधरसत्त्वसाराः । प्रोक्ष्य तान् जिन वदति वदान्यवर्यं ह्यं वाग्मिरेव वितरंतमहो विदग्धाः ॥ ५५१ ॥ धीं यैरुवं च विष-यार्जनमेव येषां साह्य च विश्वविषयाविरतोपयोग । तेवा कथं तदुभयप्रतिपक्षरूप लब्धाशन भ्रवणमिज्जिनमाजनिष्ट ॥ ५५२ ॥ पुण्यं लया जिनविनेय-विधेयमिष्ट गस्यादिभिः परमनिर्वृत्तिसाधनलात् । नैवामनरिगलसुरा प्रति तच्च यस्माद् बंधप्रद विषयनिष्ठममीष्टयति ॥ ५५३ ॥ कायार्थिकः सदसि ते विफल किलाहुर्नैतद्वत्स्तव निशम्य निशम्य साक्षात् । ह्य याति निर्वृत्तिमिहैव विनेयमुख्या मुख्यं फलं ननु फलेषु परोपकार ॥ ५५६ ॥ यक्षक्षणाक्षिकृदात्मनि

भया मैं तो दीनतासे अत्यंत डरता हुआ भी सबसे अधिक फलकी इच्छा रखता हूं इसलिये आपका स्तोत्र क्यों न करूं ॥ ५४९ ॥ संसारमें जो कोई बिना कारणके एक तृणका टुकड़ा भी देता है वह बुद्धिहीन मूर्ख गिना जाता है । हे जिनेंद्र ! आप मोक्ष देनेवाले हैं तथापि लोग आपको देते हैं इसलिये आप अनर्थकारी अर्थात् अपना प्रयोजन सिद्धकर दूसरेका उपकार करनेवाले हैं तथापि आश्चर्य है कि लोग आपको ही बुद्धिमानोंमें सबसे उत्तम मानते हैं ॥ ५४० ॥ हे देव सत्त्वशाली लोग अपना सब धन याचकोंको देकर स्वयं विल्कुल परिग्रह रहित हो जाते हैं तथापि हे जिन उनको उलंघनकर कितने ही चतुर लोग केवल बचनोंसे ही देनेवाले आपको ही दान देनेवालोंमें सबसे उत्तम कहते हैं यह एक आश्चर्यकी बात है ॥ ५४१ ॥ हे देव ! जिनकी बुद्धि और जिनका पुरुषार्थ केवल विषय सेवन करनेकेलिये है और जिनका सुख विषयोंसे विरक्तचित्त न होना है उन लोगोंको विषयसेवन और विषय जन्य सुखसे प्रतिकूल ऐसा आपका शासन कानोंको फोड़ देनेवाला कैसे नहीं होसकता अर्थात् होता ही है ॥ ५४२ ॥ हे जिन आपने जो पुरुषका स्वरूप कहा है वह ज्ञानादिकके द्वारा भव्य जीवोंको सिद्ध करने योग्य है और सबको इष्ट है क्योंकि ज्ञानादिकके द्वारा उपार्जन किया हुआ पुण्य ही परम मोक्षका साधन है । जो देवादिकोंके पूर्ण सुखके लिये किया जाता है वह कुछ पुण्य नहीं है क्योंकि वह बंधका कारण है विषयोंमें लुभानेवाला है और मोक्ष रूप इष्टका विघात करनेवाला है ॥ ५४३ ॥ हे देव ! यद्यपि आपका शरीर आदि विद्यमान है तथापि लोग उसे निष्फल नहीं कहते हैं क्योंकि आपके वचन सुनकर तथा आपका साक्षात् रूप देखकर मुख्य २ शिष्य इसी भवमें मुक्त हो जाते हैं सो ठीक ही है क्योंकि फलोंमें परोपकार ही सबसे मुख्य फल है ॥ ५४४ ॥ जो आत्माके ज्ञान आदि लक्षणरूप गुणों को नष्ट कर देनेवाला है ऐसा नामादिक कर्म क्या आपके ज्ञान दर्शन रूप उपयोगको नष्ट कर सकता है ? कभी नहीं ।

तद्धि कर्म नामादिक किमु निहति तबोपयोग । तत्सत्तया जिन भवंतमसिद्धमिच्छभिच्छेदनूर्ध्वगमनादतनोरसिद्धि ॥ ५५५ ॥ साधंतहीनमनवयमनादिसात  
साधयमादिरहितानवसानमाहु । त्व दु खित सुखिनमप्युभयव्यपेतं तेनैव दुर्गमतमोसि नयानसिद्धैः ॥ ५५६ ॥ संयोग स्वज इति द्विविधो हि भावो  
जीवस्य योगवियमाद्विगमी तदुत्थ । स्वोत्थे स्थिति परमनिवृत्तिरेषमोगो दुर्ग परस्य तव वाक्यवहि कृतस्य ॥ ५५७ ॥ आस्तामनादिनिगलच्छिद्यया  
ददासि यन्मुक्तिमंतरहितां तदिहालमेया । केशादिहेतुनिवृत्तसमस्तसत्त्वसंपादनप्रवणतैव तबासतायै ॥ ५५८ ॥ नोषस्तवाखिलविलोकनविभ्रमी किं किं  
वागिमता मितपदार्थनिरूपणाया । किं स्वार्थसंपदि परार्थपराङ्मुखस्त्व किं नासि सत्सु जिन पूज्यतमस्त्वमेव ॥ ५५९ ॥ विश्वावलोकनवितन्वदनतवीर्यापा  
रपाशरण न कदापि ते स्यात् । चित्र तथापि सुखिना सुखित भवंत संतो वदति किमु भक्तिरुतावबोध ॥ ५६० ॥ भव्यात्मना परमनिर्वृत्तिसाधनार्थं त्वा-

हे जिन ! उन कर्मोंकी सत्तासे ही आपको असिद्ध होनेकी इच्छा करता हुआ ऊर्ध्वगमनके अभावसे शरीररहित न होनेकी  
इच्छा करता है । हे देव ! आपको आदि, अंत रहित, पाप रहित, अपादित, अनादि, पर अंतरहित, सावध, अगदि रहित, अंतरहित  
सुखी दुखी और सुख दुःख दोनोंसे रहित, कहते हैं इसलिये हे देव ! जो नयोंको नहीं जानते वे आपको जान भी नहीं  
सकते ॥ ५५६ ॥ हे नाथ ! जीवोंके भाव दो प्रकारके हैं एक-संयोगसे उत्पन्न होनेवाले और दूसरे स्वभाविक । जो सं-  
योगसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं वे संयोगके नाश होनेसे नष्ट होजाते हैं । उनके नष्ट होनेसे आत्माके ज्ञानादि स्वाभाविक  
भावोंमें जो आत्माकी स्थिति है वही परम निवृत्ति वा परम मोक्ष कहलाती है परंतु आपके वाक्योंको न माननेवाले जो  
अन्य दर्शनकार हैं उनको यह मार्ग अत्यंत कठिन है ॥ ५५७ ॥ हे देव अनादि कालसे लगे हुए कर्मोंके नष्ट होनेपर आप  
अंतरहित मोक्ष देते हैं यह बात तो दूर ही रही आप स्नेह आदि कारणोंसे रहित होकर भी समस्त प्राणियोंके पालन कर-  
नेमें अत्यंत चतुर हैं यही हेतु आपकी आपत्ता सिद्ध करनेके लिये बहुत है ॥ ५५८ ॥ हे स्वप्ति ! क्या आपका ज्ञान  
समस्त पदार्थोंके देखनेमें समर्थ नहीं है ? क्या आपकी वाणी प्रमाणभूत पदार्थोंके निरूपण करनेमें समर्थ नहीं है ? क्या  
आपकी परपदार्थोंसे परासुखता अपने आत्माके अनंतगुणरूप संपदाओंके लिये समर्थ नहीं है और इसीलिये हे जिन !  
क्या आप सज्जनोंमें सबसे अधिक पूज्य नहीं हैं ? ॥ ५५९ ॥ हे प्रभो ! समस्त संसारको देखनेके लिये फैले हुए आ-  
पके अनंतवीर्यके व्यापारका पार कभी प्राप्त किया जा सकता तथापि आश्चर्य है कि सज्जन लोग आपको ही सुखियोंमें  
सबसे अधिक सुखी बतलाते हैं परन्तु यह उनकी भक्ति है अथवा यथार्थ ज्ञान है सो जान नहीं पड़ता ॥ ५६० ॥ हे देव !  
आपकी जितनी चेष्टा है वे सब भव्य जीवोंको मोक्ष सिद्ध करनेके लिये हैं परन्तु आपको उसके किसी तरहके फलकी

नेष्टित तव न तत्र फलोपल्लिप्सा । तस्मात्प्रबन्धेन विन वागमृतावुष्टया संतर्पयन् जगदकारणवधुरेक ॥ ५६१ ॥ जीवोयमुद्यदुपयोगगुणोपलक्ष्यस्तस्योपहृष्ट-  
ननु धातिचतुष्कमेव । धातेन तस्य जिन पुष्कललक्षणस्त्व त्वां तादृश वद वदतु कथं न सिद्ध ॥ ५६२ ॥ साधारणास्तव न सन्तु गुणास्तदिष्ट दृश्यो न तेषु  
जिन सन्तु गुणेषु साक्षात् । दृष्टे भवेद्भवति भक्तिरसौ यथा यश्चेचीयते स्वसति पापमपि प्रभूतं ॥ ५६३ ॥ देवागाढमभवत्तव मोहघाताच्छ्रद्धानमनाद्विदिते-  
परमावगाढ । आदये चरित्रप्रतिपूर्तिरथोत्तरत्र विश्वावबोधवियुतासि ततोमिवंघ ॥ ५६४ ॥ ध्वस्त त्वया प्रबलपापबल परं च ओन्मिषपालिजलवत्प्रवहल-  
जलम् । श्रद्धादिभिलिभिरभूद्विजयी च सिद्धिः सद्धर्मचक्रमुभवदुभुवनैकनाथ ॥ ५६५ ॥ देहो विकाररहितस्तव वाग्यार्थदृक्श्रोत्रनेत्रविषयत्वमुपेत्य  
सद्यः । त्वामस्तरागमखिलावगम च कस्या न स्थापयेन्मनसि मन्मथमानमर्दिन् ॥ ५६६ ॥ किं वस्तिहाक्षणिक्मन्मथरूपमस्ति व्यस्तान्वयं नट हि किं क्ष-

इच्छा नहीं है इसलिये हे जिनराज । वचनामृतरूपी जलकी वर्षासे संसारभरको तृप्त करते हुए केवल आप एकही विना  
कारणोंके बन्धु हो ॥ ५६१ ॥ यह जीव प्रगट हुए ज्ञानगुणरूपों उपयोगसे जाना जाता है और उस ज्ञान गुणोंको नष्ट  
करनेवाले चार धातियां कर्म हैं उन धातियां कर्मोंको नष्ट करनेसे आपका ज्ञानगुण पूर्ण प्रगट हो गया है इसलिये हे जिन !  
आपही कहिये कि ऐसे आत्मस्वरूपवाले आपको सिद्ध कैसे न कहें ॥ ५६२ ॥ हे जिनराज ! आपमें साधारण गुण नहीं  
तो न सही परन्तु उन विशेष गुणोंके रहते हुए भी हम लोगोंको इष्ट ऐसे आप साक्षात् दिखाई नहीं देते । यदि कदाचित्  
आप दिखलाई पड जाय तो फिर आपमें वह भक्ति उत्पन्न होती है जिससे बड़े प्रभुओंको भी पुरस्कार संचय होता है  
और पापका नाश होता है ॥ ५६३ ॥ हे देव ! मोहनीय कर्मके नाश होनेसे आपको अवगाढ श्रद्धान वा तम्यक्त्व हुआ  
है और ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मोंके नाश होनेसे परमावगाढ सम्यक्त्व हुआ है पहिले अवगाढ सम्यक्त्वमें चारित्रिकी परिपूर्णता  
होती है और परमावगाढमें पूर्णज्ञान समस्त आकाशमें फैल जाता है इसलिये हे नाथ आपही धंदना करने योग्य हैं ॥ ५६४ ॥  
हे देव ! आपने प्रबल धातियां कर्मोंको तो पहिले ही नष्ट कर दिया था और अब अयातिया कर्म किसी बांधके टूट जाने  
पर जलके समान सदा बहते रहते हैं । हे नाथ ! व्यवहार रत्नत्रयके द्वारा आपको विश्व रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई है और सद्धर्म  
चक्रकी प्राप्ति होनेसे आप तीनों भुवनोंके एक स्वामी हुए हैं ॥ ५६५ ॥ कामदेवके अभिमानको चूर्ण करनेवाले हे प्रभो !  
आपका शरीर विकाररहित है और आपकी वाणी पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको देखनेवाली वा कहनेवाली है यदि आपका  
विकाररहित वह शरीर नेत्रोंके विषयभूत हो जाय अर्थात् देखलिया जाय तथा आपकी वाणी कानोंके विषयभूत हो जाय  
अर्थात् सुनली जाय तो वे दोनोंही रागरहित और समस्त ज्ञानको धारण करनेवाले आपको फिर किसके हृदयमें स्थापन

निक च किंचित् । बुद्धादयो बुधपदगर्भगतार्मकाभा मेदोगमर्थविमुखोक्ताभा ॥ ५६७ ॥ तिष्ठत्वगोचरमनतचतुष्टय ते स्वाभाविकेष्वातिशयेष्वपरोपि कथित । कस्यापि समवति किं कपिलदिकाना केनाप्तपक्षिमुपयाति तमस्विनोमी ॥ ५६८ ॥ त्वामामनति मुनयः परम पुमांस ध्वस्तद्विवेदमपि किं परमा- गसगात् । किं मोहवन्निद्रहनातिक्रमन्तवीर्यात् किं सिद्धतापरिणतेर्गुणैर्गौरवाद्वा ॥ ५६९ ॥ देहत्रयापनयनेन विनादिसिद्धत्वं द्युदशकयत्तुल्यदुष्टदितोदितत्वात् । आशिष्यमस्त्यधिपते त्वदुर्वीरितोऽसन्मार्गमाश्रयसि यत्परमात्मभावं ॥ ५७० ॥ अस्त्यैव देव तव चादधिकोपि भावः किं त्वेष मोहुरहितस्य न बभूवतु । योगानुरोधसमवाप्तुभाण्वेयबध निवधनशुशालविरोधकत्वात् ॥ ५७१ ॥ त्वत्पादपंकजपङ्कजध्रितयाप्तपुण्याद् गण्योभवत्सुरगणोगणनातिगम्भी । आनन्दमालि- रत एव नखोन्मुखांशुशालन्मुख शतमख सुमुखस्तवाध्यायः ॥ ५७२ ॥ प्रथमपरयकाष्ठाधिष्ठितोदात्तमूले क्रमकरणविहीनज्ञानधामैकधाम्न । द्वितयनय-

कार्दं अर्थात् आपका शरीर देखनेमात्रसे अथवा आपकी चाणी सुनने मात्रसे आप सबके हृदयमें स्थापित होजाते हैं ॥ ५६६ ॥ हे विद्वानों के परिपालक ! क्या वस्तुका स्वरूप अन्य रूपसे सदा नित्य है अथवा पृथक् पृथक् स्वरूप रूपसे कुछ क्षणिक है कैसा है सो कहिये इसका स्वरूप कहनेमें बुद्धादिक सब गर्भमें बैठे हुए बच्चेके समान हैं क्योंकि इनमें भेद है ॥ ५६७ ॥ हे प्रभो ! आपका अनंतचतुष्टय तो कपिलादिक अन्य लोगोंके विषयभूत नहीं है यह बात तो दूर रही परंतु जो आपके निःस्वेदता आदि स्वाभाविक अतिशय हैं उनमेंसे क्या कोई एक भी अतिशय कपिलादिकोंमेंसे किसीके भी संभव हो सकते हैं ? फिर भला मित्यायकारमें दूरे हुए ये कपिलादिक लोग किस कारणसे आपकी पंक्तिमें बैठ सकते हैं ! भा- वार्थ-कभी नहीं ॥ ५६८ ॥ हे देव ! यद्यपि आपके स्त्रीपुंनपुंसक ये तीनों वेद नष्ट होगये हैं तो भी मृनि लोग आपको परम पुरुष मानते हैं अथवा वेदोंके नष्ट होनेपर ही आपको परम पुरुष मानते हैं फिर आपको परम औदारिक शरीरके समागमसे क्या लाभ है अथवा मोहरूपी जेलको जला देनेसे क्या लाभ है तथा अन्ननवीर्य प्राप्त होनेसे क्या लाभ है वा सिद्ध अवस्था प्राप्त होनेसे क्या लाभ है और अनेक गुणोंकी गौरवता होनेसे भी क्या लाभ है ॥ ५६९ ॥ हे स्वामिन् ! तीनों शरीरोंके नष्ट होनेके विना ही निर्मलता, शक्ति, और अनुपम संतोषके अत्यधिक उदय होनेसे ही आप सिद्ध होगये हैं फिर भला आपके कहे हुए श्रेष्ठ सन्मार्गमें ( मोक्षमार्गमें ) चलनेवाले लोगोंको आप परमात्मस्वरूप करदेते हैं यह आप में और भी सबसे बड़ी अधिकता है ॥ ५७० ॥ हे देव आपके औदारिक भाव है सो वह भले ही बना रहे आप मोह रहित हैं इसलिये वह आपके कर्मबंधका कारण नहीं हो सकता परंतु मन वचन कायकी क्रियाओंका निरोध करनेसे आप- के थोड़ेसे शुभ वेदनीय कर्मोंका बंध होता है इसलिये विद्वान लोग आपको ही शुभ बंधका कारण बतलाते हैं क्योंकि



मयोषादीर सिव्यन्नेस्ते ननु जिन परमात्मप्रायवं अस्ति भर्तु ॥ ५७३ ॥ ज्ञानं सर्वगत स्वरूपनियतं ते स्यादेष्टुः इतोर्बीतेच्छायतनाः स्वरूपपटवो धावो विबाधामपि । प्रस्थानस्थितयोग्यनास्त्वविहिता नात्माभ्यवाचाप्रश्रया सा त्व निर्मलबोधवर्णतले ज्ञेयाकृतिं प्रसूमे ॥ ५७४ ॥ विषयस्यास्त्वलित्त प्रशरित तत्र बाग्यथात्म्यमात्मेभिर्नो यस्मादुद्विचिरोबोधविहितारागव्यविषयिच्छिद । तस्माद्वीरविकायसायकविषाभौस्त्वर्बीर्यदुहोमोहोद्वज्यस्वैव न परेष्वन्यायविन्यासिषु ॥ ५७५ ॥ देवो बीरखिनोयमस्तु जगतो यथाः सखा युद्धिर्नि मे देशस्त्व हृष्ये गणेशा धवत्सा स्पष्टेन यैनातिरु । काशण्यात्प्रधमानुयोगमभवद् भद्रास्मिन्नहृषावहं

इसमें कोई विरोध नहीं आता। भावार्थ—आपके औदयिक भाव तो बन्धके कारण नहीं है परन्तु आप शुभवन्धके कारण हैं क्योंकि आपके शुभवैदनीयका बन्ध होता है शुभवन्धको करनेवाला शुभवन्धका कारण होताही है इसमें कोई विरोध नहीं ॥ ५७१ ॥ आपके चरण कमलोंके अग्र वननेसे अर्थात् आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ था उसीसे यह देवताओंका समूह मान्य गिना गया है और उसीकारणसे उसकी लक्ष्मी संख्याके बाहर होगई अर्थात् वह देवताओंका समूह असंख्योत् लक्ष्मीका स्वामी होगया है इसीलिये जो आपके चरणकमलोंमें अपना मुकुट झुका रहा है और आपके चरणनखोंके सामनेकी किरणोंसे जिसका मुख वैदीप्यमान हो रहा है ऐसा इन्द्रमुख कहलाता है ॥ ५७२ ॥ हे विनराज ! आपकी उत्कट मूर्ति उपलभ्यभावकी चरमसीमासे परिपूर्ण है, आप इंद्रिय और अनुक्रमसे रहित ऐसे केवल ज्ञानरूपी तेजके एक मुख्य स्थान हैं आपकी गम्भीर दिव्यध्वनि व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंसे परिपूर्ण होकर उत्पन्न हुई है और आप सबके स्वामी हैं इसलिये हे नाथ ! आपके परमात्मपनेका प्रभाव बहुत ही सुशोभित हो रहा है ॥ ५७३ ॥ हे नाथ ! आपका ज्ञान सब जगह व्याप्त है तो भी आपने ही स्वरूपमें निश्चल है और किसी भी व्यापारका कारण नहीं है। इच्छा और आग्रह रहित आपकी वाणी भी गूँगे लोगोंके कार्य करनेमें भी अत्यन्त चतुर है इसी तरह आपका आकाशगमन भी आपका किया नहीं है किन्तु देवोंके द्वारा किया हुआ है और आपका किया हुआ है और आपका किया हुआ है देव ! आप मेरे निर्मलज्ञानरूपी दर्पणतलमें ज्ञेयका आकार धारण करो अर्थात् मेरे ज्ञानगोचर हो ॥ ५७४ ॥ हे देव ! आप आत्माके स्वामी हैं सम्यग्दर्शनको रोकनेवाले मिथ्यात्वकर्मको नाश करनेसे आपकी रागादि अविद्याओंका नाश हो चुका है और आप कामदेवके बाणोंकी शिखाकी सुखरता अथवा वाचालपनेके बलको नाश कर चुके हैं ऐसे आपकी वाणी विना किसी रुकावट वा थकावटके इस समस्त संसारके यथार्थ स्वरूपको प्रगट करती है इसलिये हे वीर ! मोहनीय कर्मको नाश करनेका जय आपको ही प्राप्त है अन्याय करनेवाले अन्य किसीको वह जय प्राप्त नहीं है ॥ ५७५ ॥ इसलिये

मङ्गायोदयतः सतां स सहजो भावो ह्यय तादृशां ॥५७६॥ इति कतिपयवार्गिभर्वर्द्धमानं जिनं प्रमगधपतिरूपीभ्रद्वया सिद्धकृत्य । गणश्रुतमपि नुला गौ-  
तम धर्मधुर्य स्वदुरमविशदुष्युष्टिरागामिसिद्धि ॥ ५७७ ॥ अनुष्टुप्छन्दसा ज्ञेया प्रथमस्क्या दु विंशतिः । सहस्राणा पुराणसं व्याख्यातुश्रेष्ठुलेखकै ॥५७८॥

इत्यार्षे त्रिवष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते श्रीवर्धमानस्वामिपुराण परिसमाप्त ।

## अथ प्रशस्तिः ।

यस्यानता पदनस्यैवविचित्रविष्टाभमिप्रकटसमुत्पत्ताः सुरैराः । न्यक्कुर्वते स्म हरमर्द्धशाशकमौलिलीलोदत स जयताजिनवर्द्धमाने ॥ १ ॥ श्री-

जिनै समस्त संसार नमस्कार करता है ऐसे वर्द्धमान स्वामी सदा मेरे मस्तकपर विराजमान रहें और हे गणधर देव !  
आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहें क्योंकि मेरे भाग्यके उदयसे करुणाकर आपने ही स्पष्टवाणीसे श्रद्धाकी अभिष्टादिको  
धारण करनेवाले-श्रद्धाको बढ़ानेवाले प्रथमानुयोगका निरूपण किया है सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे सज्जनोंका ऐसा भाव  
होना स्वाभाविक ही है ॥ ५७६ ॥ जिसे बहुत भारी सन्तोष हुआ है जो आगामीकालमें सिद्ध होनेवाला है जिसने अपना  
कृत्यकर्म सब सिद्ध कर लिया है और जो धर्मधारण करनेमें सबसे मुख्य है ऐसे मगधेश्वर राजा श्रेणिकने उत्सव हुई  
श्रद्धासे ऊपर लिखे हुए कुछ वचनोंके द्वारा भगवान श्रीवर्द्धमानकी स्तुति की तदनन्तर उसने श्रीगौतमगणधरदेवको नमस्कार  
किया और फिर सन्तुष्ट होकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ५७७ ॥ व्याख्या करनेवाले, सुननेवाले, और लिखने-  
वालोंको अनुष्टुप् श्लोकोसे इस पुराणकी संख्या बीस हजार समझनी चाहिये ॥ ५७८ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणकी नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान स्वामीका पुराण समाप्त करनेवाला यह छिहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ७६

## अथ प्रशस्ति ।

जो श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कार कर रहे हैं और इसलिये श्रीवर्द्धमानस्वामीके चरणनखरूपी चन्द्रमाके विम्बको  
स्पर्श करनेवाले चूहापणि रत्नोंसे जिनके उत्तम मुकुट प्रगट हो रहे हैं ऐसे इन्द्र लोग भी मस्तकपर आधे चन्द्रमाको धारण  
करनेकी लीलासे उद्धत हुए महादेवको तिरस्कार करते थे ऐसे श्रीवर्द्धमानस्वामी सदा जयशील हों ॥१॥ जिस प्रकार

( १ ) चतुर्विंशतितीर्थयात्रागुणितिनिरुत्तये । शृषभादिसहावीरपर्यतान् प्रणमाम्यहं ॥ १ ॥ अर्थ-चारों गतियोंसे छूटनेकेलिये शृषभदेवसे लेकर म  
हावीर पर्यंत चौबीस तीर्थयात्राको मैं नमस्कार करता हूँ । एक पुस्तकके हासियेपर यह श्लोक दूसरे नवरपर अधिक लिखा है ।

मूलसूत्रधारशौ मणीनाम्निव सार्धिषा । महापुरुषरत्नानां स्थानं सेनान्वयोऽजनि ॥ २ ॥ तत्र वित्रासिताशेषप्रबादिमद्वारण । वीरसेनाप्रणीवार्सेनमद्वारको बभौ ॥ ३ ॥ ज्ञानचारित्रसामग्रीमप्रदीप्तिव विग्रहं । विराजते विधातु यो विनेयानामनुग्रह ॥ ४ ॥ यत्कामानप्रराज्यमुक्ताब्जान्यदधु त्रियं । चित्रं विकास-मासाय नखचक्रमरीचिभिः ॥ ५ ॥ सिद्धिभूषणदतिर्यस्य टीका सवीक्ष्य मिथुभि । टीकयते हेलयान्येषा विषमामपि पदेपदे ॥ ६ ॥ यस्यास्याब्जजवाकत्रिया-घबलया कीलैव सत्राव्यया समीतिं सतत समस्तमुधिया सपादयन्त्या सता । विश्वव्याप्तिपरिश्रमादिषु चिर लोके स्थितिं संश्रिता श्रोत्रालीनमलान्यनाद्युप-चितान्यस्ताति निःशेषत ॥ ७ ॥ अथवदिषु हिमाद्रैर्देवसिन्धुप्रबाहो ध्वनिरिव सकलात्सर्वशक्तैकमूर्ति । उदयनिरितिटाद्वार भास्वरो भासमानो मुनिरनु जिन सेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥ ८ ॥ यस्य प्राञ्चनखान्जुनालविसरद्वारांतराभिर्भवत्पादाम्भोजरजःपिणगमुकुटप्रत्यप्रजद्युति । सस्मर्तो स्वमधोघवर्षवृष्टपति पूतोऽहम-

समुद्रमें बहुमूल्य मणियोंके स्थान होते हैं उसी प्रकार मूलसंघरूपी महासागरमें महापुरुषरूपी रत्नोंका स्थान ऐसा सेनवंश अथवा सेनसंघ हुआ था ॥ २ ॥ उसमें समस्तवादीरूपी मदोन्मत्त हाथियोंको त्रास देनेवाले वीरसेनसंघमें मुख्य ऐसे वीरसेन भट्टारक सुशोभित हुए थे ॥ ३ ॥ उन्होंने शरीरके समान ही ज्ञान और चारित्रकी सामग्रीको धारण किया था और वे शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये ही मानों सुशोभित हुए थे ॥ ४ ॥ यह एक आश्चर्यकी बात है कि उन वीरसेनके चरणोंमें नम्र हुए राजा लोगोंके मुखरूपी कमल उनके नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रफुल्लित होकर अच्छी शोभाको धारण करते थे ॥ ५ ॥ यद्यपि मोक्षरूप पृथिवीकी पद्धति अर्थात् सीढी अथवा सिद्धिभूषणदति नामकी तत्त्वार्थकी टीका पद पदपर विषय है तथापि श्रीवीरसेनकी बनाई हुई जिसकी टीकाको देखकर भिन्नु अर्थात् मुनि लोग भी लीला पूर्वक दूसरोंके लिये उपदेश दिया करते हैं ॥ ६ ॥ जिस श्रीवीरसेनके मुखरूपी कमलसे प्रगट हुई वचनरूपी लक्ष्मी कीर्तिके समान धवल अच्छी तरह सुनने योग्य है समस्त बुद्धिमान सज्जनोंको सदा प्रेम उत्पन्न करती है और संसारभरमें फैलनेके परिश्रमसे ही क्या मानों इस लोकमें बहुत दिनसे ठहरी हुई है उसी वचनरूपी लक्ष्मीके द्वारा अनादिकालसे इकट्ठे हुए कानोंमें भरे हुए मैल पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार हिमवन पर्वतसे गंगा नदीका प्रवाह निकलता है अथवा सर्वदेवसे दिव्यध्वनि निकलती है अथवा उदयाचल पर्वतसे प्रकासमान सूर्य निकलता है उसीप्रकार इन्हीं वीरसेन भट्टारकके पीछे समस्त शास्त्रोंकी साक्षात् मूर्तिके समान जिनसेनाचार्य हुए ॥ ८ ॥ जिन श्रीजिनसेनके देदीप्यमान नखोंके किरणसमूहसे जो फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके चरण कमलकी शोभाको धारण करते थे उनकी रजसे जब राजा अमोघवर्षके मुकुटके ऊपर लगे हुए रत्नोंकी कांति पीली पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपकी

बेचल स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगत्सवक ॥ ९ ॥ श्रावीण्य पदवाक्ययोः परिणति पक्षातराक्षेपणे सद्भावावगतिः कृततत्त्वविषया श्रेयः कयाको-  
शल । मयप्रयत्निभिः सदृशकलितैस्तन्मयो गुणानां गणो य संप्राप्य निरं कलंककल काले कलौ सुस्थितः ॥ १० ॥ ज्योत्स्नेव तारकावीथे सद्भावाविष-  
प्रभा । स्फटिके लखछतेवासीत्साहजास्मिन्सरस्वती ॥ ११ ॥ दशरथगुरुरासीत्स धीमान्सधर्मा शक्ति इव दिनेशो विभुलोकैकचक्रुः । निखिलमिदमपी-  
व्यापि तद्वाङ्मयैः प्रकटितनिजभावं निर्मलैर्धर्मसारैः ॥ १२ ॥ सद्भावं सर्वशाखाणां तद्भास्वत्वाक्यविस्तरे । दर्पणापि तन्निर्भासो नालैरप्याश्रु बुध्यते ॥ १३ ॥  
प्रत्यक्षीकृतलक्ष्यलक्षणविधिविधोपविधातिग सिद्धांतान्वयवसानयानजनितप्रागल्भ्यश्रुदेदधीः । नानानूनयप्रमाणनिपुणोऽगण्यैर्गुणैर्भूषितः शिष्य श्रीगुणभद्रसु-  
भिरनयोरासीजगद्भिःश्रुतः ॥ १४ ॥ पुण्याश्रितोऽयमजयस्तुभगत्वदर्पमिलाकल्य पश्चिद्वयतिस्त्वपःश्रीः । मुक्तिश्रिया पटुतमा प्रहितेव नृती प्रीत्या महागुण-

पवित्र मानता या और अपनी उसी अवस्थाका सदा स्मरण किया करता था ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्रीजिनसेना-  
चार्य सदा संसारका भंगल करते रहे ॥ ९ ॥ वे पद और वाक्योंकी रचना करनेमें बड़े प्रवीण थे, जिनकी परिणति सदा  
परमनके खगडनमें ही लगी रहती थी, जिन्हें श्रेष्ठ पदार्थोंका सिद्धान्त विषयक अच्छा ज्ञान था वे कथाकी कुशलतामें  
कल्याणकारी थे, श्रवणोंके गूढ़ विषयको अच्छीतरह स्पष्ट करते थे, सन्मार्गको निरूपण करनेवाली उनकी कविता थी, वे गुण-  
वानोंमें सबसे अग्रसर थे, और कलिकालमें भी उनका आश्रय लेकर यह धुनियोंका समुद्राय कलंकरहित होकर बहुतदिनतक  
टिका रहा था ॥ १० ॥ जिसप्रकार चंद्रमामें चांदनी रहती है, सूर्यमें प्रभा रहती है और स्फटिकमें स्वच्छता रहती है उसीप्रकार  
जिन श्रीजिनसेनाचार्यमें सरस्वती निवास करती थी ॥ ११ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाका साधर्म्य सूर्य होता है उसीप्रकार जिन  
जिनसेनाचार्यके साथर्मी ( एक गुरुके शिष्य ) दशरथगुरु नामके आचार्य थे, वे दशरथ गुरु बड़े ही बुद्धिमान थे, संसार  
को दिखलानेवाले अद्वितीय नेत्र थे और उनकी निर्मल धर्मको कहनेवाली वचनरूपी किरणोंसे अंधकारसे व्याप्त हुआ  
यह समस्त संसार आज भी अपने यथार्थ भावको प्रगट करता है । भावार्थ-जिनकी वाणीसे संसारके जीव अपना स्वरूप  
जान लेते हैं ॥ १२ ॥ उनके प्रकाशमान विस्तृत वाक्योंमें समस्त शास्त्रोंका श्रेष्ठ भाव दर्पणमें पड़े हुए प्रतिविकें समान  
मूर्त्त पुरुषोंको भी शीघ्र ही मालूम होजाता है ॥ १३ ॥ जिसे समस्त व्याकरण शास्त्र प्रत्यक्ष हो रहा है जो विद्या और  
उपविद्याओंके पार पहुंच गया है सिद्धांतसागरके पारगामी होनेसे जिसकी प्रतिभा और पूज्य बुद्धि स्वयं बढ रही है, जो  
अनेक तरहके समस्त नय और प्रमाणोंके जाननेमें चतुर है और जो मुख्य २ समस्त गुणोंसे विभूषित है ऐसा जगतप्र-  
सिद्ध श्रीगुणभद्राचार्य इन्हीं दोनोंका अर्थत श्रीजिनसेन और दशरथगुरुका शिष्य था ॥ १४ ॥ यह गुणभद्र पुरस्करूपी

धिया समधिश्चिय ॥ १५ ॥ तस्य बचनाश्रुविसर सततहृदुस्तरतरंगतमाः । कुबलयपद्माक्षरी जितकिशिराशिखिराश्विप्रसर ॥ १६ ॥ कवियमेश्वरनिग-  
दितगद्यकासात्रक पुरोभरित । सकलच्छदोलङ्कितलक्ष्म सूर्यार्णवपदरन्त ॥ १७ ॥ व्यावर्णनानुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसम्भाव । अपदस्तिताम्यकाव्य  
धन्य व्युत्पन्नमस्तिमिरादेय ॥ १८ ॥ जिनसेनभगवतोक्त मिथ्याकविदर्पदलनमलिलित । विद्यातोपनिबन्धनकथा भर्त्रा पिरादिनायासात् ॥ १९ ॥ अस्तिविस्त-  
रभीरुवाद्बबिष्ठ संगृहीतममलधिया । गुणभद्रसूरिणेय प्रहीणकालानुरोधेन ॥ २० ॥ व्यावर्णनानिरहित सुबोधमखिलं सुलेखमखिलहित । महित महापुराण  
पठंशु गृण्वतु भक्तिमन्मूढा ॥ २१ ॥ इदं भाव्यता पुसां तपो भवविमित्तया । भव्याना भाविसिद्धीना शुद्धदृग्मत्तिद्वतां ॥ २२ ॥ नास्तिर्विद्विज्भ श्रेयः प्राप्य  
प्रेयःसमागमः । विगमो विप्रबव्यामेरातिरत्यसंपत्का ॥ २३ ॥ बधहेतुफलज्ञान स्याच्छुभाश्रुभकर्मणा । निवेद्यो मुक्तिसद्भावो मुक्तिहेतुश्च निबन्धितः ॥ २४ ॥

लक्ष्मीकी सुंदरताके अभिमानको भी जीतता है यही समझकर मानो महा गुणवती और बुद्धिमती ऐसी मुक्तिरूपी लक्ष्मी-  
के द्वारा भेजी हुई अल- शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाली और अत्यंत चतुर ऐसी दूतीके समान तपश्चरखरूपी लक्ष्मीने  
बड़े प्रेमसे स्वयं आकर जिस गुणभद्राचार्यका आश्रय लिया था ॥ १४ ॥ जिस गुणभद्राचार्यके वचनरूपी किरणोंका  
फैलाव सूर्य और चंद्रमा दोनोंकी किरणोंके फैलावको जीतता है क्योंकि वह अत्यंत निविड ऐसे अंतरंगके अंधकारको  
भी सदा नष्ट करता रहता है और कुबलय पद्माक्षदी अर्थात् कपोदनी और कमल दोनोंको प्रफुल्लित करनेवाला अथवा  
कुबलय अर्थात् पृथ्वीमंडलरूपी कमलको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १६ ॥ यह पुरुदेव अर्थात् श्रीशृषभदेवका चरित्र कवि-  
परमेश्वरकी कही हुई गद्यकथाके आधारसे बनाया गया है इसमें सब छंद और अलंकारोंके उदाहरण है तथा इसकी  
रचना सूक्ष्म अर्थ और गूढ़पदोंसे भरी हुई है ॥ १७ ॥ इसका वर्णन बहुत ही अच्छा है इसके पढ़नेसे सब शास्त्रोंके  
उत्तम २ पदार्थ साक्षात् हो जाते हैं, यह अन्य काव्योंका तिरस्कार करता है अर्थात् सब काव्योंसे उत्तम है सुनने योग्य  
है और विद्वानोंके ग्रहण करने योग्य है ॥ १८ ॥ यह पुरुदेवका चरित्र मिथ्या कवियोंके अभिमानको नष्ट करदेता है  
और बहुत ही मनोहर है । इसे सिद्धांत ग्रंथकी टीका करनेवाले और बहुत दिन तक शिष्योंका शासन करनेवाले भगव-  
ज्जिनसेनाचार्यने बनाया था ॥ १९ ॥ इसका अवशिष्ट भाग बहुत विस्तारके भषसे और हीनकालके अनुरोधसे निर्मल  
बुद्धिको धारण करनेवाले गुणभद्राचार्यने थोड़ेमें संग्रह किया है ॥ २० ॥ यद्यपि यह महापुरुष विशेष रचना आदिसे  
रहित है तथापि पूज्य है, सबका हित करनेवाला है, पूर्ण है, सम्यग्ज्ञान वदानेवाला है, और सुंदर लेखोंसे भरपूर है इस-  
लिये भक्तिवाले भव्य पुरुषोंको सदा पढ़ना और सुनना चाहिये ॥ २१ ॥ जो पुरुष इस महापुरुषकी भावना करते हैं

ईशित्वत्वे प्रपन्नमव्युत्थत् ॥ ३०५ ॥ नारदोपि यत्न यातोऽहम् देवोऽहम् कर्णयोगः । कर्तव्यश्चेत्तद् इत्युक्त गुरुणा चंद्रमासकरो ॥ ३१० ॥ नक्षत्राणि प्रहास्तार-  
काश्च पर्ययति देवताः । सदा सन्निहिताः सति पक्षिणो मृगजातयः ॥ ३११ ॥ नन्ते शम्भ्या निराकृतमित्येत्य गुरुस्तत्रिधो । भव्यात्माष्टदेवास्त्य बने के-  
नाप्यसम्बार्धे ॥ ३१२ ॥ नामादिचतुर्थेषु पापापह्यतिकारण-क्रियाणामविधेयत्वाद्याहमानीतवानि ॥ ३१३ ॥ इत्याह तद्वचः श्रुत्वा स्वमुत्तस्य  
जडात्मता । विचिंतयेकांतवाद्युक्त सर्वथा कारणानुगं ॥ ३१४ ॥ कार्यमित्येतदेकांतमतं कुमतेमेव तत् । कारणानुमते कार्यं क्वचित्त्वचनित्यन्याया ॥  
३१५ ॥ इति स्याद्वाददृष्टसत्यमित्युत्तवान् । सिध्यस्य योग्यता चित्ते निधाय युज्यमतम् ॥ ३१६ ॥ हे नारद त्वमेवात्र सूक्ष्मग्रहो यथाशक्ति ।  
इत् प्रष्टुयाध्यायपदे त्वं स्थापितो मया ॥ ३१७ ॥ व्याख्येयानि त्वया सर्वगत्वात्माणीति प्रपूज्य तं । प्राबुद्धयद् गुणैरेव प्रीतिः सर्वेन धीमता ॥ ३१८ ॥

की आज्ञा है परंतु यहां वनमें भी सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र तारे आदि देवता देखते हैं पक्षी हरिण आदि सब समीप रह-  
ते हैं और ये सब किसी तरह दूर नहीं किये जा सकते, यही सोचकर वह भग्य पुरुष गुरुके समीप आया और क-  
हने लगा कि वनमें जिन जगह कोई न देख सके ऐसी जगह मिलना असंभव है दूसरी यह बात है कि नाम स्थाप-  
ना द्रव्य भाव इन चारों पदार्थोंमें पाप और निंदा उत्पन्न करनेवाली क्रियाएँ करनेका विधान नहीं है इसी लिये मैं  
इस बकरेको ऐसा ही ले आया हूं ॥ ३१०-३१३ ॥ नारदकी कही हुई इस बातको सुनकर उस पंडितने अपने पुत्र-  
की जड़बुद्धिका विचार किया और सोचा कि एकांतवादी जो कारणके समान कार्य मानते हैं वह निरा एकांतमत ही  
है और इसीलिये वह मिथ्यामत है । कहीं कहींपर कारणके समान कार्य होता है और कहीं कहीं उससे विपरीत होता  
है यह जो स्याद्वाद मत है वही सत्य है यही समझकर वह संतुष्ट हुआ और चित्तमें शिष्यकी योग्यता देखकर वह उ-  
त्तम ब्राह्मण कहने लगा कि ॥ ३१४-३१७ ॥ हे नारद तू ही सूक्ष्म बुद्धिवाला और पदार्थको यथार्थ जाननेवाला है  
इसलिये आजसैं मैं इस उपाध्यायके पदपर तुझे स्थापन करता हूँ आजसैं तू ही सब आसनोंका ध्यालयान करना इस  
प्रकार उसका आदर सत्कारकर उसे बढाया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंका प्रेम सब जगह गुणोंसे ही हुआ करता  
है ॥ ३१८-३१९ ॥ तदनंतर वह क्षीरकंदंन अपने पुत्रसे कहने लगा कि हे पुत्र विवेकके विना ही तूने यह प्रतिश्रुत और  
बुरा कार्य किया है, कार्य और अकार्यका विचार करना तुझे ज्ञास्य पटकर भी नहीं आया तू इसतरह निबुद्धि होकर मेरी  
बातके पीछे कैसे जीबेगा । इस तरह झोक करते हुए पिताने उसे शिक्षा दी परंतु उस शिक्षाका असर मूल पर्यंतपर उलटा  
हुआ और वह उसी दिनसे नारदसे बैर करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि मूल खोटी बुद्धिवालोंकी ऐसी ही गति

व्याधुल विमुक्त कुपुपद्मदस्थितः ॥ ३०४ ॥ कलापी गतवानेकः शेषाथ तन्महादिताः । पत्रभागं विधूयागुस्त दृष्ट्वा समभाषिषि ॥ ३०५ ॥ पुमानेकः  
स्मिपद्माया इति सत्त्वानुमानतः । ततो ब्रह्मतरात्किमिदं गत्य पुरसन्निधौ ॥ ३०६ ॥ तथा करिण्याः पादाभ्यां पश्चिमाभ्यां प्रयाणके । स्वयूत्रघटनाद्वा-  
ने दक्षिणे तर्करिषा ॥ ३०७ ॥ भगेन मार्गाग्रच्युल श्रमादाकृष्टयोषितः । शीतच्छायाभिलाषेण सुप्ताया पुलिनस्थले ॥ ३०८ ॥ उदरपर्यामणैः द-  
शया गुल्मसफेया । करिणीश्रितगोहामणितोयत्तेतनेन च ॥ ३०९ ॥ मया तदुक्मिलेतदहननाद् द्विजसत्तम । निजापराधाभावात्स्य भावमाविरभावयत्  
॥ ३१० ॥ तदापर्वतमातापि प्रसन्नामनुनय सः । तत्पुन्यनिवाक्यार्थसंश्लयविधिसुकः ॥ ३११ ॥ स्वपुत्रछात्रयोर्भावपरीक्षायै द्विजाग्रणीः ।  
स्थित्वा सजनिरेकाते कृत्वा पिष्टेन वस्तके ॥ ३१२ ॥ देशोर्ध्वत्वा परादर्यै गृध्रमात्मादिमंगले । कर्णच्छेदं विधायैनावैवानयत युवा ॥ ३१३ ॥ इत्य-  
वादीकृतः पापी पर्वतोत्ति न कथन । बनेस्मिन्निति विच्छिद्य कर्णौ पितृमागतः ॥ ३१४ ॥ त्वया पूज्य यथादिष्ट तत्तयव मया कृतः । इति वीतघृणो  
ल्लुल किनारे सोई थी वहांपर जो कुछ उदरका चिन्ह था उससे वह गर्भिणी जान पड़ती थी, उसकी साडीका ठोक  
एक छोटेसे कटीले झाडसे लगकर फट गया था तथा फटा हुआ ठुकडा उसी झाडपर लटकता था उसपरसे उसकी  
सफेद साडीका अनुमान किया था जहां हथिनी उहरी थी उस मकान पर सफेद ध्वजा फहरा रही थी उसपरसे मैंने  
सुत्र होनेका अनुमान किया था । इसतरह अनुमानसे मैंने ऊपरकी सब बातें कहीं थीं । नारदकी ये बातें सुनकर उ-  
स ब्राह्मणने ब्राह्मणीको प्रगटकर दिखला दिया कि मैं मर्वाथा निरपराधी हूं अर्थात् मैंने दोनोंको एकसा उपदेश दि-  
या है ॥ ३०४ ॥ ये सब बातें सुनकर पर्वतकी माता भी बहुत प्रसन्न हुई । तदनंतर उस ब्राह्मणने पर्वतकी माताको  
उन मुनियोंके कहे हुए बचनोंका निश्चय करानेकी इच्छाकी तथा पर्वत और नारद दोनोंकी परीक्षा करनेकेलिये अप-  
नी स्त्रीके साथ वह एकान्तमें बैठा, वहांपर उसने आटेके दो बकरे बनाये और वे दोनों शिष्योंको देकर कहा कि जि-  
स जगह कोई देखनेवाला न हो उस जगह लेजाकर गंधमाला आदि मांगलिक चीजोंसे इनकी पूजा करना और  
फिर कान छेदकर आज ही ले आना ॥ ३०५-३०७ ॥ इस तरह कहकर उन दोनों शिष्योंको विदा किया तदनंतर  
पापी पर्वतने सोचा कि इस वनमें देखनेवाला कौन है ? कोई नहीं है यही विचारकर और उस आटेके बकरेके कान  
छेदकर वह पिताके पास आया और कहने लगा कि हे पूज्य आपने जैसी आज्ञा दी थी मैंने वैसा ही किया है । इस  
तरह उसने बिना किसी घृणाके बड़े हर्षसे अपने पिताको आकर समझाया ॥ ३०८-३०९ ॥ नारद भी उस बकरे-  
को लेकर वनमें गया और सोचने लगा कि “जिस जगह कोई देखनेवाला न हो वहां इसके कान छेदना” ऐसी गुरु



वान् ॥ २८८ ॥ तमसस्य पुनः कर्तुं करिणीगमनायुगः । पुरोतर्गिरदारिद्र्यमुपलभ्य तथैव तत् ॥ ८९ ॥ सशोको गृहमागत्य नारदोक्तं सविस्मयः । मा-  
तर्ं बोधयित्वाह नारदस्यैव मे पिता ॥ ९० ॥ नावोचच्छास्त्रायास्तम्यमस्ति मय्यस्य नारदः । इति पुत्रवचसास्या इदं निश्चिताम्भवत् ॥ ९१ ॥ विदार्थं  
प्राविशत्यापाद्विपरीतावमर्शनात् । ब्राह्मणी तद्वचश्चित्तानवधार्यं शुचं गता ॥ ९२ ॥ कृत्वा ज्ञानाभिप्रेतप्रदिशुक्त्वा स्वाभ्यासे स्थिते । अवव्रीत्पर्वतप्रोक्तं  
तस्मिन्मय विदार्थः ॥ ९३ ॥ निर्विशेषोपदेशोहं सर्वेषां पुरुषं प्रति । विभिन्ना बुद्ध्यस्तस्याभारदः कुशलोभवत् ॥ ९४ ॥ प्रकृत्या त्वत्सुतो मदी नानुया-  
स्यन् विवीचते । इति तत्प्रत्ययं कर्तुं नारदं सुतसाम्रिषौ ॥ ९५ ॥ वद केन वने ब्राह्म्यम्यपर्वतस्योदपादयः । विस्मयं बभूवि प्राह सोपि सप्रश्रयोभ्यधात्  
॥ ९६ ॥ वनेह पर्वतेनाया गच्छन्नयंकथातरः । शिखिना पीतवारीणां सवो नया निवर्तते ॥ ९७ ॥ स्वचक्रकलापाभिमध्यमज्जनगैरवात् । भीत्वा

बह ब्राह्मणी अपने चित्तमें पुत्रके बचनोंका कुछ निश्चयकर शोक करने लगी और जब ब्राह्मण स्नान अग्निहोत्र आ-  
दि कर्मकर तथा भोजन कर बैठा था तब पर्वतकी कही हुई सब बात कह सुनाई । उसे सुनकर वह बुद्धिमान विद्वान्  
कहने लगा कि मैं सब लोगोंको एकसा उपदेश देता हूं परंतु प्रत्येक पुरुषकी बुद्धि भिन्न भिन्न होती है इसलिये ही  
नारद चतुर होगया है ॥ ९०-९४ ॥ तेरा पुत्र स्वभावसे ही मंद है इसलिये इसविषयमें कुछ ईर्ष्या नहीं करनी  
चाहिये । इसी बातका निश्चय करानेकेलिये धीरकदंबने अपने पुत्रके सामने नारदसे पूछा कि कहो  
आज किस वनमें घूमे थे और वहां पर्वतके साथ क्या उपद्रव किया था । गुरूजीकी यह बात सुनकर  
नारदको कुछ आश्चर्य हुआ और वह बड़ी विनयके साथ कहने लगा ॥ ९५-९६ ॥ किं मे आज पर्वतके  
साथ वनमें गया था मार्गमें कुछ कथाएं कहता जाता था । मार्गमें कुछ मयूर नदीमें पानी पीकर उसीमय  
लौटे थे उनमेंसे जो मयूर था वह अपनी पूँछके चद्रमाओंको पानीमें भीगकर भारी हो जानेसे डरसे अपने पैर उलटे  
पीछेकी ओर रखकर फिर मुंह फिराकर लौटा था और बाकी जो मयूरिणी थीं वे अपने पंखोंको पानीमें भिगो कर त-  
था फटकारकर लौटी थीं यही देखकर मैंने अनुमानसे जान लिया था और पर्वतसे कहा था कि इनमें एक पुरुष (म-  
यूर) है और बाकी सब स्त्रियां (मयूरिणी) हैं इसके बाद वनमें थोड़ी दूर जाकर किसी नगरके समीप देखा चलते  
समय किसी इधिनीके पिछले पैर ( पैरके बिन्दु ) उसीके मूत्रसे भीगे हुए हैं इसीपरसे मैंने जाना कि यह इधिनी है  
तथा उसके दाई ओरके हृक्ष और पौंचे टूटे हुए थे इससे अनुमानसे जान लिया कि वह इधिनी माई आँखसे कानी  
थी । उसपर सवार होनेवाली स्त्री मार्गकी बकावटसे उतरकर झील छायाकी इच्छा करती हुई नदीके पानीके वि-

गताङ्कशाक्तिक । यववीजं त्रिवर्षस्यमजमित्यभिधीयते ॥ ३० ॥ तद्विकारेण सप्तचसुखे देवान्न विद । वदति यन्नमिषास्यदुपकृति नारदः ॥ ३१ ॥  
 पर्वतोप्यजपदेन पञ्चमेक प्रकीर्त्यते । यन्नोक्तो तद्विकारेण होत्रमिष्यवदद्विधीः ॥ ३२ ॥ तयोर्वचनमाकर्ण्य द्विजप्रसुतसाधव । मातस्यभारदेव धर्मः  
 प्राणवधादिति ॥ ३३ ॥ प्रतिष्ठापयितुं धार्या दुरात्मा पर्वतोक्तीव । पतितोयमयोग्योतः गृह संभाषणादिषु ॥ ३४ ॥ इति हस्ततलास्फालनेन निर्मितस्य त  
 भरोपानपदवीमिव । वलीरुद्विताभूयस्तलवेवाधचक्षुषा ॥ ३५ ॥ एवं बहिःकृतः सर्वमनमगादगाहनं । तत्र ब्राह्मणवेषेण वयसापरिणामिना ॥ ३६ ॥ कृत्वातरोद्गनास-  
 जरागनासमासप्रमुखाद्वामीचक्षुषा । चलच्छिन्नकरेण करिणा कुपिताहिना ॥ ३७ ॥ इतोर्वधासिनाराजवल्मेनैव नाग्रतः । प्रस्रुतं पश्यता भग्नपृष्ठे-  
 विशेष ( बकरा ) कहा जाता है उसके विकारसे अग्निमें होम करना यज्ञ कहलाता है ॥ ३३ ॥ उन दोनोंके वचन  
 सुनकर बड़े बड़े सज्जन ब्राह्मणोंने घोषणा की कि यह दुष्ट पर्वत नारदके साथ ईर्ष्या रखता है इसलिये ही संसारमें  
 प्राणियोंके बचसे धर्मकी स्थापना करनेके लिये ऐसा कहता है परंतु प्राणियोंकी हिंसासे कभी धर्म नहीं हो सकता,  
 यह पर्वत पतित है और इसलिये ही अपने साथ बात चीत करनेके भी अयोग्य है इस तरह क्रोधसे सबने हाथकी  
 हथेली हिलाकर उसका तिरस्कार किया और लोगोंपर प्रगट किया कि दुर्बुद्धिका ऐसा फल इस लोकमें ही  
 मिल जाता है ॥ ३३३-३३५ ॥ इस तरह सब लोगोंने उसे बाहर निकाल दिया इसलिये मान मंग होनेसे वह  
 वनमें चला गया । वहांपर महाकाल नामका देव ब्राह्मणका वेश धारण कर फिर रहा था उस समय वह दुष्ट  
 अवस्थाके रूपमें था, ऐसा जान पड़ता था मानों यमराजकी चटने योग्य सीढियों पर बहुत शीघ्र चढ़ना  
 चाहता हो, आंखसे अंधके समान चलते चलते रुक जाता था, उसके सिरपर दूर दूर सफेद बाल थे,  
 शिंघर पगड़ी ऐसी जान पड़ती थी मानों यमराजसे उत्पन्न हुए उसके कोई चांदीका टोप ही रखता हो उसके नेत्र  
 कुछ कुछ बंद थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों जराखूनी ( बुढापा ) स्त्रीके समागमसे उत्पन्न हुए सुखसे ही वे नेत्र  
 बंद होगये हो उसकी गति कटी झुंडवाले हाथीके समान थी, क्रोधित हुए सर्पके समान वह लंबी सांस ले रहा था,  
 जिसप्रकार राजप्रिय मनुष्य मदसे आगे नहीं देखता है, उसीप्रकार वह भी आगे नहीं देखता था । उसकी पीठ टूटी  
 हुई थी, सुखसे शब्द साफ नहीं निकलते थे, सगरकी स्त्रीसे जो उसने वैर बांध रखा था उसे प्रगट करनेकेलिये  
 ही मानो उसने तिहरा यज्ञोपवात धारण कर रखा था और वह अपने अमिष्रायको सिद्ध करनेकेलिये कोई खास

नपट्टभाषिणा ॥ ५० ॥ रावेव नोभ्यर्द्धेन भवेनेव तांश्रुता । विष्णुपुराणोत्तायु मन्दकोरभिवर्धन ॥ ४१ ॥ यक्षुं पारयता यमोपवीतं विष्णुनीकुनं । तेन स्वात्मिमतारंमतिरिदियुवेषिणा ॥ ४२ ॥ महाकालेन इष्ट मनु पर्वतः पर्वते भ्रनन् । प्रतिगम्य तमानम्य सोमधधुष्टमिगदने ॥ ४३ ॥ महाकालः समभास्य स्वस्ति तेस्तिवति सादरे । नमभिजातपूर्वस्वात्कुलसन्तु बर्नातरे ॥ ४४ ॥ पारब्रजणगेवते वृद्धि ने केन देवता । इतगुण्डरैना चाष्ट विभयुक्तमामा-  
दितः ॥ ४५ ॥ न निशम्य महाकालः सगरे मय वैरिण । निर्वेत्ती हनुमेव स्वात्मसमर्था ये प्रतिप्रद्युमः ॥ ४६ ॥ इति निश्चित पापात्मा प्रवैलेभनवीरितः । तत्पिता स्यंठिडो विष्णुरममन्युरहं च भो ॥ ४७ ॥ मीमोषाधमसाक्रिये शास्त्रन्यासमकुर्वेद । तपिता ये ततो विदि पर्वतत्रा तनोकिंतु ॥ ४८ ॥  
कारण दंडता फिरता था, ऐसे महाकालने किसी पर्वतपर फिरते हुये पर्वतको देखा ब्राह्मण उस पर्वतके सामने गया और जाकर उसें नमस्कार किया । वदलेमें पर्वतने भी नमस्कार किया ॥ ३३६-३४३ ॥ महाकालने उसे आवाहन दिया और बड़े आदरसे उसे कहा कि तेरा कन्याण हो । महाकालने अजान सरीखा बनकर पर्वतसे पूछा कि तू कहाँसे आया है और इस वनमें किस कारणसे फिर रहा है तू ये सब बातें इससे कह । इसके उत्तरमें पर्वतने भी आदिसे अंततक अपना सब हाल कह दिया ॥ ३४४-३४५ ॥ यह सुनकर महाकालने सोचा कि मेरे वंसी सगरको निर्वंश करनेकेलिये यह समय ठे यह मेरा साधर्मि है ॥ ३४६ ॥ यही निश्चयकर यह ठगनेमें बहुत और पापी महाकाल कहने लगा कि तेरा पिता स्यंठिल विष्णु उपमन्यु और मैंने एक साथ भीम उपाध्यायसे अनेक दानोंका अक्षयन किया है । इस हिसाबसे तेरा पिता मेरा धर्मका भाई है उसीके देखनेके लिये मैं यहाँ आया था परंतु दुख है कि यह मेरा आना निष्फल हुआ । तू किसी बातका हर मतकर शत्रुको नाश करनेके लिये मैं तेरा सहायक बनूंगा ॥ ३४७-३४९ ॥ इसप्रकार क्षीरकंदवंकें पुत्र पर्वतके लिये अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली अथर्वण वेदकी साठ हजार ऋचाएं बनाई तथा पर्वतको वह सब वेदका रहस्य पढ़ाया और कहा कि ऊपर लिखे मंत्रोंसे वायुके द्वारा बंदी हुई अधिकी जंगलमें शक्ति पुष्टि और अभिचारारमक क्रियाएँ की जाय तो पशुओंकी हिंसासे भी अपने इष्ट फलकी प्राप्ति होजाती है । तदनंतर दोनोंने विस्तार किया कि अयोध्यामें जाकर शक्ति आदिको देनेवाला हिंसा यज्ञ करेंगे और इसतरह इन वेदोंका प्रभाव दिसलावेंगे । यह कहकर अपने शत्रुको नाश करनेकेलिये उसने अपने कृ-  
र शत्रुओंको बुलाया और उन्हें आज्ञा दी कि राजा सगरके राज्यमें अवराधिकी तीव्र बाधा उत्पन्न करो, यह कहकर उन देवोंको भेजा । इधर पर्वत अयोध्या नगर में जाकर राजसभामें गया और मंत्रोंसे मिले हुए आजीवन देकर

समागमनमेतच्च वैकृत्यं समपद्यत । मा श्रेयीः शत्रुविषये सहायस्ते सहायस्ते भवाम्यहं ॥ ३४९ ॥ इति शीरकदबामजेश्वरीयुगताः स्वयं । आर्षदीपगता षष्ठि-  
सहस्रप्रमिताः पृथक् ॥ ३५० ॥ ऋन्तो वेदरहस्यानीतुषाद्याध्याप्य पर्वत । शांतिपुष्टयभित्तिरारामकियाः पूर्वोक्तमंत्रजैः ॥ ३५१ ॥ निश्चिताः पवनोपेतव-  
न्निज्वालासमा फलं । द्रष्टव्यादधिष्यन्ति प्रयुक्ताः पञ्चहिंसनात् ॥ ३५२ ॥ ततः साकेतमध्यास्य शांतिकादिफलप्रदं । हिंसायागं समारभ्य प्रभावं शिव्या-  
महे ॥ ३५३ ॥ दत्तयुक्ता वैशिनाशार्थमात्मीयान् विततिपुत्रकान् । तीव्रान् सगरराष्ट्रस्य बाधा तीव्रज्वरादिभिः ॥ ३५४ ॥ कुरुवमिति सत्रेभ्यः स द्वित्रस्त-  
तुर्गतः । सगरं मंत्रगंधांशीवीदेनालोक्य पर्वत ॥ ३५५ ॥ स्वप्रभाव प्रकाशस्य त्वद्देशविषयमशिव । शेषविषयमि यद्देन सुमित्रेणाविलंबितं ॥ ३५६ ॥  
यज्ञाय वैषसा स्रष्टा पशवस्तद्विहिंसनात् । न पापं पुण्यमेव स्यात्स्वर्गोक्तुलसायनं ॥ ३५७ ॥ इति प्रत्याप्य तं पापं पुनर्येवमवर्षीत् । त्वं पशुनां सहजा-  
नि षष्टि यागस्य सिद्धये ॥ ३५८ ॥ कुरु सप्रहमन्यच्च द्वयं तथोगयभिलसौ । रामापि सर्ववस्तुनि तर्थावस्यै समर्पयत् ॥ ३५९ ॥ प्रारभ्य पर्वतो याग प्रा-

सगरके दर्शन क्रिये ॥ ३५८-३५९ ॥ राजाको कुछ अपना प्रभाव दिखाया और फिर कहा कि तेरे देशमें जो वि-  
षम अकल्याण हो रहा है उसे मैं सुमित्र नामके यज्ञसे बहुत शीघ्र दूर कर दूंगा ॥ ३५६ ॥ ब्रह्माने ये पशु यज्ञके  
लिये ही बनाये हैं इनकी हिंसा करनेसे पाप नहीं होता है तथा बड़े भारी सुखका साधन  
ऐसा स्वर्ग मिलता है ॥ ३५७ ॥ इसतरह विश्वास दिलाकर वह पायी पर्वत फिर कहने लगा कि यज्ञपूरा होनेके  
लिये तू साठ हजार पशु इकट्ठे कर तथा उसके लिये इतनी इतनी और सामग्री इकट्ठी कर । राजाने भी खुपचाप  
पर्वतके अनुसार सब सामग्री लाकर उसे समर्पणकी ॥ ३५८-३५९ ॥ पर्वतने यज्ञ करना प्रारंभ किया वह मंत्रपूर्वक  
प्राणियोंका होम करने लगा । उससमय महाकालने भी उन प्राणियोंको विमान में बिठाकर शरीरसहित आकाशमें  
ले जाते हुए दिखलाया और लोगोंको विश्वास दिला दिया कि ये सब स्वर्गका गये हैं । उसीसमय देशमें जो अक-  
ल्याण और उपसर्ग हो रहा था वह भी उसने दूर कर दिया ॥ ३६०-३६१ ॥ उसे देखकर उसके छल कपटसे  
मोहित हुए लोग सुगुह हो गये और स्वर्ग में जानेकी इच्छा करते हुए सब लोग खुशी खुशी उस यज्ञमें मरनेकी  
आकांक्षा करने लगे ॥ ३६२ ॥ यज्ञके समाप्त होनेपर उस दुष्ट पर्वतने विधि पूर्वक एक जाति नामके घोडेका होम  
किया और फिर राजाकी आज्ञासे सुलसा देवीको भी होम दिया ॥ ३६३ ॥ तदनंतर प्यारी देवीके वियोगसे उत्पन्न  
हुई शोकरूपी दावानल अग्निसे जिसका शरीर सब जल गया है ऐसा वह राजा मगर अपनी राजधानीको लौट  
आया ॥ ३६४ ॥ वह शय्यापर जाकर पढ़गया और विचार करने लगा कि यह प्राणियोंकी हिंसा करना बड़ा भारी काम

भिनोऽमंत्रयत्तदा । महाकालः क्षरीरेण सह स्वर्गमुपागतः ॥ ३६० ॥ इत्याकाशे विमानैस्तान्नीयमा नानदर्शनयत् । देशाधिबोपसर्गं च तदेवासी निरस्तवान् ॥  
 ३६१ ॥ तद्वदृष्ट्वा देहिनो मुग्धास्तत्प्रत्यक्षमेव मोहिता । तां गतिं प्रेक्षन्वो यागयुतिमाकांक्षयन्तलं ॥ ३६२ ॥ तपश्चावसितौ जाल्य हयमेक विधानतः । इयाज  
 बुद्धिर्मां देवीमभिः राक्षसाश्वा खल ॥ ३६३ ॥ भियवकांतावियोगोत्थयोक्तयोक्तदवानलाचिषा । परिच्छुष्टनन् राजा राजधानीं प्रविष्टवान् ॥ ३६४ ॥ शत्र्यातले  
 विनिक्षिप्य क्षरीरं प्रागिर्हिसन । शूतं महर्हिद धर्मैः क्षिप्रचर्मोयमित्यसौ ॥ ३६५ ॥ संक्षयानस्तथाऽन्धेधुर्मुनिं भसिबराभिष । अभिवंश भयारब्ध भटारक च-  
 वास्थित ॥ ३६६ ॥ ब्रूहि किं कर्म पुण्य मे पाप चेद विचार्य तत् । इत्यवोचदमौ चाह धर्मशास्त्राभिः कृत ॥ ३६७ ॥ एतदेव विधातारं वसुधामां प्रापयेत्क्षि-  
 त्ति । तस्याभिज्ञानमप्यस्ति द्वितेस्मिन् सप्तमेधानिः ॥ ३६८ ॥ पतिष्यति ततो विद्धि सप्तमी शरणीसि ते । तदुक्तं भूपतिर्मला ब्राह्मणं तत्त्ववेदयत् ॥ ३६९ ॥  
 तन्मृषां क्षिप्तसौ वेति नमः क्षणकस्ततः । शक्वा चेत्सैतस्याः शास्त्रिण विधीयते ॥ ३७० ॥ इत्युक्तिर्मर्मस्तस्य सचार्यं शिथिलीकृतं । यत्र पुनस्तमा-  
 है वह धर्म है अथवा अधर्म है । इसतरह संक्षय करता हुआ वह सवेरे ही पतिवर नामके मुनिके समीप गया और  
 बर्दानकर प्रार्थना करने लगा कि हे ममो ! मैंने यज्ञ करना प्रारंभ किया है, आप विचारकर कहिये कि यह पुण्य-  
 का काम है अथवा पापका ? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि यह काम धर्मशास्त्रके विरुद्ध है इसके करनेवालेको  
 सातवां नरक मिलता है । इसके सिवाय आजसे सातवें दिन तुझपर यज्ञ पड़ेगा और तू भरकर सातवें नरक जायगा  
 यह तू निश्चय समझ । मुनिराजकी ये सब बात सुनकर राजाने ज्यों की त्यों ब्राह्मणसे जाकर कही ॥ ३६५-३६९ ॥  
 राजाकी यह बात सुनकर वह पर्वत ब्राह्मण कहने लगा कि यह सब बात झूठ है, वह नंगा बर्बा जानता है । यदि  
 तेरे पितामें फिर भी कुछ श्रद्धा हो तो इसकी भी श्रांति कर डालते हैं ॥ ३७० ॥ इसतरहके बचनोंसे राजाके चित्तको  
 धीरज बढाया और जो यज्ञ श्रांत कर दिया था उसे फिरसे करना प्रारंभ किया । सातवें दिन उस पापी असुरने  
 अपनी मायासे दिखलाया कि सुलसा विमानमें बैठकर देवका क्षरीर धारणकर आई है आकाशमें ठहरी है और राजा  
 सगरसे कह रही है कि यज्ञमें मरनेके फलसे ही मैंने यह देवगति पाई है मेरे पहिले जो पशु होमे गये थे वे भी  
 सब देव हुए हैं आपको वही आनदकी बात कहनेके लिये मैं विमानमें बैठकर यहाँ आई हूँ । यज्ञसे सब देव प्रसन्न  
 हुए हैं और सब पितर उत्स हुए हैं उसकी यह बात सुनकर राजाने विचार किया कि यज्ञ में मरे हुएोंका यह प्रत्यक्ष  
 फल दिखाई दे रहा है इसलिये समझना चाहिये कि मुनियोंके कहे हुए वचन झूठे हैं तीव्र हिसामें अनुराग रखनेसे,  
 सदर्मसे दूरे करानेवाले कर्मकी मूल श्रुति तथा उपरमश्रुतियोंके मेदसे उत्पन्न हुए परिणामोंसे, नरक आयुके बोध उत्पन्न

रन्ध्रः स ततः सप्तमे स्थिते ॥ ३७१ ॥ भाव्यायुरपायस्य सुदसा नमसि स्थिता । देवभावं गता प्राच्यपशुमेदपुरस्कृता ॥ ३७२ ॥ यागमृगफलैर्नैव लब्ध्वा देवगतिर्मया । तं प्रमोद तवाख्यातुं विमानेहमिहानंता ॥ ३७३ ॥ बह्वेन प्रीयिता देवाः पितरभ्येत्यभाषत । तद्वचः श्रवणाद् दृष्ट्वा प्रत्यक्ष यागमृगयुज ॥ ३७४ ॥ फल कैनुर्नैवीयमसत्यमिति भूपतिः । तीव्रहिसानुरागेन सद्धर्मद्विषणोदयात् ॥ ३७५ ॥ सभूतपरिणामेन भूलोतरविकल्पितात् । तत्प्रायोग्यसमुत्सृष्टदुष्टसंश्लेषाधनात् ॥ ३७६ ॥ नरकाबु प्रभृत्यष्टकर्मणा स्वोचितस्थितेः । धनुभागस्य बधस्य निकचितनिवर्धने ॥ ३७७ ॥ विनीषणशानित्वेन तुत्काले पतितौ बभ्रुवुमुत्क्रोधस्तृतीयनरकावधौ । धन्विष्यानवलोक्यैनं विषममृगमृतिद्विगं ॥ ३७८ ॥ स्वैरपवनापूरणेन गत्वा रसातलं ॥ ३७९ ॥ तं ददुष्ट और संश्लेष परिणामों से आठों कर्मों की उचित स्थिति और अनुभाग बंधके योग्य नरकायुका बंध किया उसीसमय भयानक वज्रपात हुआ वह उन सब शत्रुओंपर पड़ा और उस काममें लगे हुए सब जीवोंके साथ साथ वह राजा सगर मरकर सातवें नरकमें जा उत्पन्न हुआ । महाकाल उसीसमय उसे दंड देनेके लिये तीव्र क्रोध करता हुआ अपने बैररूपी बाणोंके शकीरेसे नरकमें गया तीसरे नरकतक उसे विभंगज्ञान था इसलिये वहांतक तो उसने डंडा परंतु जब उसे वहां न देखा तब वह विना किसी तरहकी ग्लानिके वहांसे निकला और सगरके मंत्री विश्वभू आदिके माने का उपाय सोचने लगा तदनंतर उस महाकालने “पर्वतकी कृपासे मैं सुलसासहित सुलोको प्राप्त हुआ हूं यह कहकर विमान में सुलसा और सगर दोनोंको दिखलाया ।” यह देखकर राजा सगरके न रहनेपर जो विश्वभू मंत्री स्वयं उस देशका राजा बन बैठा था वह फिर महामेघ करनेका प्रयत्न करने लगा । उसने महाकालकी मायासे आकाशरूपी आंगनमें विमानमें बैठे हुए देव और पितर सब लोगोंको प्रगट दिखलाये । उससमय वे सब मिलकर विश्वभू मंत्रीकी स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे पुण्यवान् मंत्री ! आपने यह महामेघ यज्ञ बहुत अच्छा किया है । नारद और कुछ तपस्वियोंने यह बात सुनकर विचार किया कि धिक्कार है इस दुष्टको किसी भी उपायसे रोकना चाहिये ॥ ३७१-३८६ ॥ नारद विचारकर वे सब अयोध्या आये । वहांपर उन्होंने यज्ञ करते हुए विश्वभू मंत्रीको देखा तथा देखा कि अनेक पापी लोग अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये अत्यंत प्राणियोंकी हिंसा कर रहे हैं । तब सब प्राणियोंके हितकी इच्छा करनेवाले तपस्वी लोग कहने लगे कि किसी भी जगह कोई भी मनुष्य धर्मके लिये प्राणियोंके हिंसक नहीं बनते

हितः दुःखं ॥ ३८१ ॥ आतोहमिति शंसते विमाने निमदशयत् । तं दृष्ट्वा तत्परोक्षेऽत्र विषभू सन्निवः स्वयं ॥ ३८२ ॥ निषयाधिपतिभूत्वा महामेधे कृतो-  
यमः । विमानातंगता देवा पितरश्च नभोगणे ॥ ३८३ ॥ सर्वेषां दर्शिता व्यक्तं महाकर्मात्म्य मायया । महामेधस्तुत्या यागो भवितुं पुण्यवता कृत ॥ ३८४ ॥ इति  
विषभूषण संभूयास्तामिबुस्तदा । नारदस्तापसाश्चतदाकर्ण्य बुदुगत्सना ॥ ३८५ ॥ दुर्मर्गाधिपकृतोनेन चिह्नं लोकस्य प्रकाशित । निवार्यैयमुपगयेन केनचित्पापप-  
भितः ॥ ३८६ ॥ इति सर्वेऽपि संगम्य साकेतपुरमागता । यथाविधिसमालोक्य सन्निव पापिनो नरा ॥ ३८७ ॥ नितातमर्षकामार्थं कुर्वति प्राणिना वच । न कोपि  
कृत्वापि घमोर्धं प्राणिना सति वातकाः ॥ ३८८ ॥ वेदविद्विभिरहितोका नैदो ब्रह्मनिरूपितः । कल्पवल्लीव मातेव सखीव जगते हिता ॥ ३८९ ॥ इति  
पूर्वोर्षवाक्यस्य स्वयाः । प्राप्ताप्यसिद्धता । त्याज्यमेतद्वधप्रायं कर्म कर्मनिवधन ॥ ३९० ॥ तापमैरभ्युपगयीति सर्वप्राणिहितैषिभिः । विषभूतिदमाकर्ण्य  
तापसा भोः कथं भया ॥ ३९१ ॥ दृष्ट शक्यमपह्नोतुं साक्षात्सर्गस्य साधन । इति बुधन् पुनर्नारदे लोक पापभीक्ष्ण ॥ ३९२ ॥ अमात्योत्तम

है यह वेदब्रह्माका कहा हुआ है वेदके जाननेवाले सदा अहिंसाका ही बगल्लयान करते हैं और यह अहिंसा ही  
कल्पवेल्लेके समान, अथवा माताके समान अथवा सखीके समान संसारका हित करनेवाली है । इसप्रकार पहिलेके  
श्रुतिभोके कहे हुए वाक्योंको यदि तू प्रमाण माननेकी इच्छा करता है तो अनंत कर्मोंका कारण ऐसा यह घोर हिं-  
सासे भरा हुआ कर्म तुझे छोड़ देना चाहिये । तपसियोंकी इस बातको सुनकर विषभू मंत्री कहने लगा कि भो तपस्वियो !  
यह यह स्वर्गका साधन है यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है फिर क्या मैं इसे छिपा सकता हूं । यह सुनकर पापसे डरनेवाले  
नारदने कहा ॥ ३८७-३९२ ॥ कि हे उत्तम मंत्री तू तो विश्रन् है क्या यह सब (हिंसा) स्वर्गका साधन है ? यह प्रत्यक्ष फल  
दिखाकर किसी शत्रुने पतिवार सहित सगरको विल्कुल नाश करनेकी इच्छासे एक उपाय किया है । यह उपाय किसी  
मायावीका कहा हुआ है इसलिये यह केवल मूर्ख लोगोंका ही मोहित करनेवाला है ॥ ३९३-३९४ ॥ इसलिये यदि  
तू स्वर्ग चाहता है तो शील उपवास आदि कृति प्रणीत शास्त्रमें कही हुई विधिका आचरण कर । यह सुनकर विषा-  
भूने नारदके कहे हुए वचन पर्वतसे कहे और कहा कि क्या नारदका कहा सुना ! उत्तरमें असुरके कहे हुए शास्त्रोंसे  
मोहित हुआ वह दुर्मति कहने लगा कि क्या यह सब शास्त्र नारदने पहिले सुने हैं ? मेरे और उसके गुरु तो एक ही  
हैं वह अपनी बुद्धिका बहुत अभिमान करता है और इसलिये ही कुछ ईर्ष्या भाव भी रखता है तथापि आज वह सु-  
नसे क्या कहना चाहता है ॥ ३९५-३९७ ॥ आप जानते हैं स्थाविर शास्त्रोंके अच्छे जानकर मेरे गुरुके धर्म भाई  
और संसारमें प्रसिद्ध वे उन्हीं गुरु वेदका रहस्य बतलाया है और यज्ञमें शत्रुका फल निरूपण किया है वही मेने



विदास्त्वं किमिति स्वर्गसाधनं । सगरं सपरीवारं निर्मूलं विनुमिच्छता ॥ ३९३ ॥ उपायोय विधाय्येव प्रत्यक्षफलदर्शनात् । केनचित्कुटुम्बकेन मुग्धानो मोहकारण ॥ ३९४ ॥ तत शीलोपवासाद्विधिमार्थगमोदित । आत्मेति स तं ग्राह पर्वतं नारदोदित ॥ ३९५ ॥ श्रुतं ध्वयेत्यसौ शाखिण्यसुरोक्तेन ३९७ ॥ सधृतो मदुगुरोर्धर्मत्राता जगति विधुत । स्थविरस्तेन च श्रौतरहस्य प्रतिपादितं ॥ ३९८ ॥ यागमृत्युफलं साक्षान्मयापि प्रकटीकृतं । न चेते प्रत्ययो विग्रहवेदाभोनिधिपारग ॥ ३९९ ॥ वसु प्रसिद्ध सत्येन पृच्छेरित्यन्वमाषत । तच्छ्रुत्वा नारदोवाचीको दोषः पृच्छयतामसौ ॥ ४०० ॥ इदं तावद्विचारार्हं वयधेदधर्मसाधनं । अहिंसादानशीलादि भवेत्पापप्रसाधन ॥ ४०१ ॥ अस्तु चेन्मत्स्यवधादिपापिना परमा गतिः । सत्यधर्मसत्योपक्रम

आज साक्षात् प्रगटकर दिखला दिया है । यदि आपको विश्वास न हो तो समस्त वेदरूपी महासागरके पारसामी और सच बोलनेमें प्रसिद्ध ऐसे राजा वसुको पूछ लीजिये । पर्वतकी यह बात सुनकर नारदने कहा कि अच्छा इसमें झानि ही क्या है राजा वसुसे पूछ लीजिये ॥ ३९८-४०० ॥ परंतु यह बात भी तो विचार करनेकी है कि यदि हिंसा ही धर्म साधन मानी जायगी तो फिर अहिंसा दान शील आदि पापियोंको सबसे अच्छी गति मिलनी चाहिये और सत्य, धर्म, तपश्चरण माननेसे मछली मारनेवाले घीवर आदि पापियोंको नरक आदि अधोगति मिलनी चाहिये ॥ ४०१ ॥ तथा ऐसा आदिको पालन करनेवाले तथा ब्रह्मचारियोंको नरक आदि अधोगति मिलनी चाहिये ॥ ४०२ ॥ कदाचित् यह कहो कि यज्ञमें पशुओंका मारना धर्म है दूसरी जगह ( यज्ञमें और दूसरी जगह ) की हुई हिंसा सदा दुःख देनेवाली है और वह दोनों जगह एकसी है इसलिये दोनों जगह ( यज्ञमें और दूसरी जगह ) की हुई हिंसा फल भी एक सा ही होना चाहिये उसका निषेध करनेवाला भला कौन होगा । कदाचित् तुम ऐसा मानते हो कि ब्रह्माकी यह पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये है इसलिये उनकी हिंसा करनेमें पाप नहीं है ऐसा शास्त्रमें लिखा है परंतु यह कहना मुश्लोंकी इच्छाके समान और साधु विनिर्दिष्ट है ॥ ४०३-४०५ ॥ क्योंकि यदि तुम ब्रह्माकी सृष्टिको अच्छी मा- नते हो तो इसमें और बहुतसे दोष आते हैं जो वस्तु जिसलिये बनाई जाती है यदि उसका उपयोग किसी दूसरे काममें किया जाय तो वह वस्तु दूसरे काममें उपकारी नहीं हो सकती । जैसे श्लेष्मा ( कफ ) आदिको दूर करने वाली औषधि यदि किसी दूसरे रोगमें दी जाय तो वह उसकाममें नहीं आ सकती । इसी तरह यदि पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये की गई है तो उन पशुओंका खरीदना बेचना उनपर बोझा लादना आदि उनको दूसरे काममें लाना

चारिणी यांन्वचोगति ॥ ४०२ ॥ यह पशुवशादयो नेतरजैति चेन्न तत् । बधस्य दुःखहेतुत्वे सादृश्यादभयश्च वा ॥ ४०३ ॥ फलेनापि समानेन भाव्यं कृतमिवैवम् । अथ तमेव मन्त्रेयाः पशुसृष्टि स्वयम्भुवः ॥ ४०४ ॥ यद्वायत्वाप्तं तस्यातिवित्तियोक्तुरागमः । इत्ययं चास्मिन्वाधिमिषाण साधुवि-  
गर्हितः ॥ ४०५ ॥ तत्समस्यैव साधुबाहस्यन्यथाज्ञं पुनटा ॥ यदर्थं यदि तस्यान्यथोपयोगोऽर्थकृत् तत् ॥ ४०६ ॥ यथान्यथोपयुक्तं च श्लेषादिशमनो-  
पच । यद्वायोरशुतर्गेण क्रयविक्रयणादिकं ॥ ४०७ ॥ तथा न्यथा प्रयुक्तं तु महादोषाय कल्पते । दुर्बलं वादितं दृष्ट्वा द्रुम त्वामभ्युपेत्य च ॥ ४०८ ॥  
यथा शास्त्रादिभिः प्राणिव्यापारी बध्यते हया । मयैवसि पशून् हता बध्यते निर्विशेषतः ॥ ४०९ ॥ पश्यादिलक्षणं सगो व्यज्यते क्रियतेयवा ।  
क्रियते चैरब्युप्यादि चासन्न क्रियते कुतः ॥ ४१० ॥ अणारिल्लक्षणं प्रदीपज्वलनाख्यं घटादेरेवकारवत् ॥ ४११ ॥

महा दोष समझना चाहिये । बाद करनेवाला तू बहुत दुर्बल है इसलिए हम तेरे समीप आकर कइते हैं । कि जिस-  
तरह शस्त्रादिकोंसे प्राणियोंका घातकरनेवाला कर्मोंसे बहुत शीघ्र बंधता है उसीतरह मंत्रोंके द्वारा पशुओंको मारनेवाला यह  
जीव विना किसी विशेषताके कर्मोंसे बंध जाता है ॥ ४०६-४०९ ॥ दूसरी बात यह है कि ज्ञाता जो पशु आदिकों-  
की सृष्टि उत्पन्न करता है सो वह प्रगट करता है अथवा उत्पन्न करता है । यदि वह उत्पन्न करता है तो आकाश-  
का फूल आदि जो वस्तुएं नहीं हैं उन्हें वह क्यों नहीं उत्पन्न कर सकता ? ॥ ११० ॥ यदि वह प्रगट करता है तो  
प्रगट करनेके पहिले उसे प्रगट करनेसे रोकनेवाला कौन है उसे बतलाना चाहिये जैसे दीपक जलानेसे पहिले बड़े-  
को प्रगट करनेसे अंधकार रोकता है ॥ ४११ ॥ इसतरह आपका यह सृष्टिवादका कथन आदर करने योग्य नहीं है । इसप्रकार  
नारदके बचन सुनकर सबलोग उसकी स्तुति करने लगे ॥ ४१२ ॥ तथा सब कहने लगे कि यदि तू म दोनोंका विवाद राजा वसु  
दत्त करदे तो हमलोग वहीं बलें । इसतरह निश्चयकर उन दोनोंके साथ वह सब सभा स्वस्ति कावती नगरमें आई ॥ ४१३ ॥  
वहां आते ही पर्वतकी माताने पर्वतकी कड़ी हुई सब बातें सुनी और तुरंत ही वह पर्वतको साथ लेकर राजा वसुके पास  
पहुंची । वहां जाकर वह वसुसे कहने लगी कि तपोवनको जाते समय अर्थात् दीक्षा लेते समय तेरे गुरु क्षीरकंदवने यह कुटुंब-  
रहित पर्वत हमसे समर्पण किया था । अब यहां तेरे ही समायपतित्वमें नारदके साथ इसका विवाद होगा, यदि इसमें  
यह पर्वत हार गया तो फिर इसके लिये आनेवाला यमराजका मुह ही शरण समझना, अर्थात् यह अवश्य मर जाय-  
गा दूसरा कोई उपाय नहीं है । अपनी गुराणी की यह बात सुनकर गुरुकी सेवा शुश्रूषा करनेकी इच्छा रखनेवाला  
वह राजा वसु बड़े आदरसे कहने लगा कि “भा ! आप इसमें किसी घातकी शंका मत कीजिये मैं अवश्य ही पर्वत-

अस्तु वा नाहृत्य किमपि विधीयते । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे ते तं समस्तुवन् ॥ ४१२ ॥ वसुना चेद् द्रव्योवादे विच्छेदः सोमिगम्यते । इति ताभ्यां समं संसर्गच्छस्वस्ति कावर्त्तौ ॥ ४१३ ॥ तत्सर्वं पर्वतेनोक्तं ज्ञात्वा तज्जनो तदा । सह तेन वसुं दृष्ट्वा पर्वतस्तत्र परिग्रहः ॥ ४१४ ॥ तपो-  
विलास्यतेऽपि गुरुणापि तत्रार्पितः । नारदेन सहस्यैह तवायुक्ते भविष्यति ॥ ४१५ ॥ विवादो यदि भंगोत्र भावी भावियमान । विदूष्य शरणं नान्य-  
काहं दुःखदत्तासनं । सिद्धाकितं समाख्या स्थितं ससुपगम्यते ॥ ३१८ ॥ सपृच्छतिस्र सर्वेपि विश्वभूषसन्निवाहयः । त्वत्स प्रागप्यर्हिसादिर्वर्षणतत्पराः ॥  
४१९ ॥ चत्वारोऽत्र महीपाला भूतः हिममहासम-वत्स्वादिसिर्षयतनामानो हरिवंशजाः ॥ ४२० ॥ पुरा चेष्टु व्यतीतेषु विश्ववसुमहामहीदः । अभूस्ततो  
भवांश्चासीदर्हिसाधर्मैरक्षक ॥ ४२१ ॥ त्वमेव सत्यवादीति प्रबोधो भुवनत्रये । विषवन्दिहलोकदेश्यो वस्तुसंदेहसन्निधौ ॥ ४२२ ॥ त्वमेव प्रत्ययोत्पादी  
को जिता द्रुंगा । इस्तरह कहकर उसने पर्वतकी माका भय दूर किया ॥ ४१४-४१७ ॥ दूसरे दिन राजा वसु आ-  
काश स्फटिकके बने हुए राजसिंहासनपर बैठा, विश्वभू मंत्री आदि सब उस समामें गये और पूछने लगे कि हे महा-  
राज आपसे पहिले इस हरिवंशमें हिमगिरि महागिरि समगिरि और वसुगिरि ये चार राजा हुए थे उन्होंने बहुत ही अच्छी  
तरह अर्हिसा धर्मकी रक्षा की थी ॥ ४१८-४२० ॥ इनके बाद महाराजाधिराज विश्वावसु हुये फिर  
अर्हिसा धर्मकी रक्षा करनेवाले आप हुए हैं ॥ ४२१ ॥ आप बड़े ही सत्यवादी हैं यह बात तीनों लोकमें प्र-  
सिद्ध है किसी वस्तुके संदेह होनेपर आप विष अग्नि अथवा तुला (तराजू) के समान हैं संसारमें विश्वास उत्पन्न कर  
नेवाले आपही हैं । हे विभो ! आप ही हम लोगोंका संदेह दूर कीजिये । यह नारद धर्मका स्वरूप अर्हिसा रूप बत-  
लाता है और यह पर्वत उपाध्यायके उपदेशानुसार उससे विपरीत हिसारूप बतलाता है अब वास्तवमें धर्मका स्वरूप क-  
या है सो आप कहिये । यद्यपि राजा वसु गुरुके कहे हुए वा अरहंत देवके कहे हुए अर्हिसाधर्मको जानता था  
तथापि गुगणी उससे पहिले पर्वतके जितानेकी प्रार्थना कर चुकी थी, इसके सिवाय महाकालके मोहसे वह मोहित  
भी हो चुका था, दुलकी चरम सीमा उसके समीप आ चुकी थी वह परिग्रहरूपी रौद्रध्यानमें लवलीन था इसलिये  
कहने लगा कि जो पर्वत कह रहा है वह ठीक है देखी हुई वस्तुमें संदेह करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ४२२-२६ ॥  
इसी यज्ञसे राजा सगर अपनी स्त्री सहित स्वर्ग गया है । जो दीपक जल रहा है उसे दूसरे दीपकसे प्रकाशित करने-  
की आवश्यकता नहीं है ॥ ४२७ ॥ इसलिये सब तरहका डर छोड़कर तुम लोग पर्वतका कहा हुआ स्वर्गका साधन  
करो । इस्तरह हिसानंद और अनृतानंद नामके रौद्रध्यानसे उसने नरकायुका बंध किया और मिथ्यापाप तथा अ-

छिद्रि नः संशयं विभो ! अहिंसाक्षणं धर्मं नारद प्रत्यपयत ॥ ४२३ ॥ पर्वततद्विपर्यासमुपाध्यायोपदेशनं । यादृक् तादृक् त्वया आश्रमिष्यमो चार्थि-  
त पुरा ॥ ४२४ ॥ सुखपत्यासनिर्दोषं बुध्यमानोऽपि भ्रूयति । महाकालमहामोहेनाहितो दुःखमावधे ॥ ४२५ ॥ सामीप्यादक्षणांनंदौद्रध्यानपरायण । प-  
र्वतमिहितं तत्त्वं दृष्टेकानुपपन्नता ॥ ४२६ ॥ स्वर्गमसौ वै योनेन सजाति सगरोप्यगात् । ज्वलन्तीपमन्त्रेन को दीपेन प्रकाशयंतु ॥ ४२७ ॥ पर्वतोंकं भ-  
यं हित्वा कुक्ष्यं स्वर्गसावन । इति हिंसावृत्तानंदराष्ट्रं बभूवुर्नरकं प्रति ॥ ४२८ ॥ मिथ्यापापापावादभ्यामभीष्टरूपनिर्दिद । अहोमहीपर्वतैर्वक्त्रादपुं चोरमी-  
दृश ॥ ४२९ ॥ निर्यातमिति । वैपम्यादेकं नारदतापम्याः ॥ ४३० ॥ अतिक्रम्यादिमं मार्गं वसुराजमहापते । धर्मविवंचनं  
तीव्रान्धोरावधे मदा विश्वापाध मंतीमसाः ॥ ४३१ ॥ बभूवुः प्राणिनः कपामादुभयैर्यविहलाः । तदा महाध्वनिर्वाजी द्विगुणमिति पुरा ॥ ४३२ ॥  
बसोऽस्मिन्महाद्विष्यमज्जतिहविष्टरं । तद्वद्वृद्धदेवविवाधरेषा घनपथे स्थिता ॥ ४३३ ॥ अतिक्रम्यादिमं मार्गं वसुराजमहापते । धर्मविवंचनं  
मार्गं मामिषा इत्यवोचयत् ॥ ४३४ ॥ पर्वतं वसुराजं च सिंहासननिमज्जनात् । परिम्लानमुक्ता दृष्ट्वा महाकालस्य किकराः ॥ ४३५ ॥ तापसाकार-

पवाद्दसे न डरनेवाले वसुनें उन सभामें ऊपर लिखे अनुसार वचन कहे । राजा वसुकी यह बात सुनकर नारद और  
तापसी कहने लगे कि यह बड़ा ही आश्चर्य है किसी विषम कारणसे महाराजके मुखसे ऐसे अपूर्व और घोर वचन नि-  
कले हैं उसीसमय आकाश गरजने लगा, नदियोंका जल प्रतिकूल बहने लगा, सरोवर बहुत क्षीघ्र सूख गये, बिना  
किसी रक्तावटके रक्तकी वर्षा होने लगी, सूर्यकी किरणें मंद पड़ गई, दिशायें सब मलिन होगईं और भयसे घबड़ा-  
कर सब प्राणी कंपने लगे । उसीसमय बड़ी भारी आवाज करती हुई पृथ्वी फट गई और उसके बड़े भारी गडोंमें  
राजा वसुका सिंहासन घुमने लगा । उस सिंहासनको पृथ्वीमें घुमते हुए देखकर आकाशमें ठहरे हुए देव और वि-  
द्याधरोंके स्वामी घोषणा करने लगे कि हे महा बुद्धिमान् राजा वसु ! इस अहिंसारूप अनादि मार्गको उलंघनकर  
तु धर्मका विध्वंस वा नाश करनेवाले इस हिंसारूप मार्गकी प्रश्रुति मतकर ॥ ४२८-४३४ ॥ पृथ्वीमें सिंहासन घुस-  
नेसे पर्वत और राजा वसुका सुह फीका पड़ गया, उनका सुह फीका देखकर महाकालके सेवक तपस्वियोंका रूप  
धारणकर कहने लगे कि आप लोग किसी तरहका भय मत कीजिये इस तरह कहकर उन्होंने उसे सिंहासनको खुद  
पकड़कर तथा अपने ऊपर रखवा हुआ लोगोंको दिखावा दिया ॥ ४३५-४३६ ॥ तदनंतर वह राजा वसु फिर क-  
हने लगा कि मैं राजा हूं और तत्त्वोंका अच्छा जानकार हूं फिर मुझे डरनेका कुछ काम नहीं है मैं फिर कहता हूं  
कि पर्वतके ही बंचन सत्य है इस तरह निश्चय करता हुआ वह उस फटी हुई पृथ्वीमें कंठ तक घंसा गया ॥ ४३७ ॥

अथैवा  
 रम्यं चेतः । इत्युक्तं योनिं वा  
 गन्वान् ॥ २० ॥ अनेनैवमवस्थाभिः प्रिया  
 । इवाऽभित्यक्ता । निगणित्यमग्रात्स्विति ॥ २१ ॥  
 इत्युक्तं सितुवत्वापुनरुच्यता । आकाशं नृणां ग्राहकं चक्षुः  
 ग्राह्यं ॥ २२ ॥ महापुराणि पुराणां निर्वृता जन्मसुता ।  
 इत्युक्तं पुनर्निर्वृतासिवा ॥ २३ ॥ तापगाथाः दयाधर्मविषयविधुराण्याः । कथ्यन्तः कश्चि काश्चि विनेछा स्व स्वमाभयः ॥ २४ ॥

इसके बाद साधुओं ने बड़े प्रयत्न से फिर प्रार्थना की कि हे राजन इस दृष्ट बोलने से ही तेरी यह अवस्था हुई है। इस-  
लिये अब तू इस दृष्ट को छोड़ दे ॥ ४३८ ॥ इस्तरह प्रार्थना करने पर भी उस मुखने यज्ञ को ही सन्मार्ग बतलाया  
उसी समय पृथ्वी ने मानों कोषित होकर ही उसको निगल लिया और इस तरह भरकर वह सातवीं पृथ्वी में (सातवें-  
नरक में) जा उत्पन्न हुआ ॥ ४३९ ॥ तदनंतर उस महाकाल नामके असुर ने संसारको विधवास उत्पन्न करने के लिये  
राजा वसु और सगर का दिव्य रूप धारण किया और "नारद के वचनों को न मानकर केवल यज्ञ की श्रद्धा से ही हम  
दोनों को स्वर्ग प्राप्त हुआ है" यह कहकर अदृश्य हो गया। इसके बाद लोगों को बहुत शोक और आश्चर्य हुआ तथा वे  
परस्पर विवाद करने लगे कोई कहता था कि नहीं वसु स्वर्ग गया है और कोई कहता था नरक गया है। इस्तरह विवाद  
करते हुए अनेक लोगों के साथ विश्वभू अपने नगर को लौट गया तथा प्रयाग में जाकर उसने राजसूय यज्ञ करना प्रारम्भ  
किया ॥ ४४०-४४२ ॥ इसपर महापुर आदि नगर के राजाओं ने लोगों की मुखता की निंदा की और वे परमब्रह्म भगवान्  
श्रुतमदवक के कहें हुए मार्ग में तल्लीन होते हुए थोड़े दिन तक योही उधरे रहे ॥ ४४३ ॥ नारद ने इस  
समय धर्म की मर्यादा रखी है यही समझकर उन लोगों ने नारद की मशंमा की आ गिरित नाम का नगर  
उसे रहने के लिये दिया ॥ ४४४ ॥ नारद के साथ जो तापसी थे वे दयाधर्म के विध्वंस से अत्यंत दूर रहने की इच्छा से  
कलिकाल की महिमा गाते हुए अपने अपने आश्रम को चले गये ॥ ४४५ ॥ किसी दूसरे दिन नारद की दिनकर देव  
नाम के विद्याधर से भेंट हुई उस समय नारद ने बड़े प्रेम से उस विद्याधर से कहा कि पर्वत समस्त प्राणियों के विश्व  
अपना आचरण कर रहा है आपको इसे रोकना चाहिये। उत्तर में उसने स्वीकारता दी और उसी समय अपनी विद्या

सन्ने, नाम्ना देवो दिनकरादिम् । पर्वतस्याभिलग्नविरुद्धावसितिं लया ॥ ८६ ॥ निरुध्यतामिति प्रीत्या निदिश्ये नारदेन सः । करिष्यामि तयेतीत्वा । नागा तं वार पद्मगान् ॥ ८७ ॥ मयिद्यया समाहूतोस्तत्पदं यथारिषतं । अबोचतेपि सप्राप्ते भवत्वा दैत्यमुकुर्वत ॥ ८८ ॥ यज्ञविघ्न तमालोक्य किं शयूरवैताड्यौ । शरगान्धेयगोधुको महाकालं गृह्यथा ॥ ८९ ॥ पुर सन्निहितं दृष्ट्वा यागविघ्नं तमूचतुः । नागैर्द्विभिरस्माक विहितोयमुपद्रवः ॥ ९० ॥ नागविद्याय विद्यानुप्रवादे परिसाधिता । निषिद्ध जिनविनानामुपयाह तौ च तच्छक्रुस्तथा । पुनः स्यादपिोनैतय यज्ञविघ्नवित्तया ॥ ९३ ॥ दृष्ट्वा जनेन्द्रवि- यज्ञस्य प्रक्रमेयामिधं विधि ॥ ९२ ॥ इत्युपायमसमावाह तौ च तच्छक्रुस्तथा । पुनः स्यादपिोनैतय यज्ञविघ्नवित्तया ॥ ९३ ॥ दृष्ट्वा जनेन्द्रवि- वासि विद्याः कामति नात्र मे । नारदाय निवेद्येति स्वस्वयाम समाश्रयत ॥ ९४ ॥ निर्विघ्नं यज्ञनिर्दुत्तो विमशू पर्वतश्च तौ । जीविताते निरं दुल नकेनु- वमूचतु ॥ ९५ ॥ महाकालोप्यभिप्रेत साधयित्वा स्वरूपश्रुत । प्राग्भवे पौदनाधीनो द्रुपदे मधुपिंगलः ॥ ९६ ॥ मयैवं सुलसाहेतोर्महत्पणमनुष्ठितं ।

से पक्षग जातिके ( नाग कुमार ) देवोंको बुलाकर उस यज्ञमें विघ्न डालनेकी सब बातें समझा दीं । उन देवोंने जाकर दैत्योंसे संग्राम किया उन्हें भगाया और सब तरह यज्ञमें विघ्न मचा दिया । यज्ञमें होनेवाले विघ्नको देखकर विश्वभू और पर्वत दोनोंही अगण हुंढने लगे उसीसमय सामने ही इच्छानुसार आता हुआ महाकाल देख गया ॥ ८६-८९ ॥ उसे देखते ही उन्होंने, उससे यज्ञमें विघ्न होनेके समाचार सुनाये, उसे सुनकर महाकालने कहा कि हमसे श्रेष्ठ करनेवाले नागकुमार देवोंने ही हमारे काममें यह उपद्रव किया है । यह नागविद्या विद्यानुप्रवादमें निरू- पणकी है । जिनविघ्नोके ऊपर इनकी शक्तिका निषेध बतलाया जाता है अर्थात् जिन विघ्नोके ऊपर इनका कुछ बल नहीं चलता । इसलिये इसका यही उपाय है कि सुंदर जिनप्रतिमायें चारों दिशाओंमें स्थापनकर उनकी पूजा करो और फिर इस यज्ञकी विधि करना प्रारंभ करो । महाकालकी यह बात सुनकर विश्वभू और पर्वतने भी वैसा ही किया, अर्थात् जिनप्रतिमा विराजमानकर यज्ञ करना प्रारंभ किया । वह विद्याधर उस यज्ञमें विघ्न करनेकी इच्छासे फिर आया परंतु जिनप्रतिमाओंको देखकर नारदसे निवेदन करने लगा कि इस जगह ( जिनप्रतिमाओंके सामने ) मेरी विद्याएं कुछ काम नहीं कर सकतीं । इस तरह कहकर वह अपने घर चला गया ॥ ८५०-८५४ ॥ इसतरह वह यज्ञ समाप्त हुआ विश्वभू और पर्वत दोनों ही आयुके अंतमें मरकर नरकमें गये और वहाँपर बहुत दिन तक दुःखोंका अनुभव करने लगे ॥ ५५ ॥ इस महाकालने अपना अभिप्राय सिद्धकर अपना स्वरूप धारण किया और लोगोंको समझाने लगा कि पहिले भवमें मैं पौदनपुरका राजा मधुपिंगल था ॥ ५६ ॥ मैंने ही सुलसाकेलिये यह महा पाप किया है



अहिंसा लक्षणो धर्मो जिनेन्द्रमिमांशित ॥ ५७ ॥ अनुष्ठेय स धर्मिष्ठैरित्युक्त्या लो तिरोरथात् । स्वयं चाक्षत्स्वदुःश्रेयाश्रयायक्षित दयाईधीः ॥ ५८ ॥ नि-  
वृत्तिरेव सम्मोक्षद्विहिता त्यागकर्मणः । विश्वभूतमुखाः सर्वे हिंसाधर्मप्रवृत्तकाः ॥ ५९ ॥ प्रययुस्ते गतिं पापाभारकीमिति केचन । दिव्यवोद्वेः समाकर्ण्य  
मार्हत । समासीनाथ सर्वेपि मन्त्रिणं वृणुदुत्तरा ॥ ६० ॥ तदा सेनापतिर्नाम्ना महीशाय महाबल । पुण्यं भवतु पाप वा यागे नस्तेन किं फलं ॥ ६१ ॥ इत्यनेन स मंत्री च राजा चागम-  
प्रभावदर्शन श्रेयो भूयन्मन्त्र्ये कुमारयोः । इत्युक्तवास्ततो राजा पुनश्चैतद्विचारवत् ॥ ६२ ॥ इति मत्वा विस्मयं तान् मन्त्रिसेनापतीन् पुन । हितोपदेशिनं  
प्रदत्त तमपृच्छपुरोहित ॥ ६३ ॥ गतयोजनकारं स्यात्त वेष्ट कुमारयोः । इति सोपि पुराणेषु निमित्तेषु च लक्षितं ॥ ६४ ॥ अस्मात्कुमारयोस्तत्र यागे  
वास्तवमे श्रीजिनेन्द्रदेवका कथा हुआ अहिंसारूप ही धर्म है धर्मात्मा लोगोंको इसीका अनुष्ठान वा सेवन करना चा-  
हिये । यह कहकर वह अदृश्य होगया और जिसकी बुद्धि दयासे भीग रही है ऐसे उसी महाकालने अपने आप ही  
उस दुस्वेषाका प्रायश्चित्त धारण किया ॥ ४५७-४५८ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे जो पाप कर्म किये थे उनका उसने  
त्याग किया । उनमेंसे विश्वभू आदिक हिंसाधर्मकी मृष्टि करनेवाले सब लोग पापकर्मके उदयसे नरक गतिमें पहु-  
चे और पापोंसे डरनेवाले कितने ही लोगोंने दिव्य ज्ञानको धारण करनेवाले मुनियोंसे पर्वतके कहे हुये मिथ्यामार्ग-  
का स्वरूप सुनकर उसे स्वीकार नहीं किया, तथा संसारमें बहुत दिन तक परिभ्रमण करनेवाले कितने ही लोग उसी  
मिथ्यामार्गमें लवलीन होगये ॥ ४५९-४६१ ॥ इसप्रकार उस मंत्रीने राजासे भगवानके कहे हुए मतका उपदेश  
दिया उसे सुनकर सब सभासद लोग उस मंत्रीकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४६२ ॥ उसीसमय महाराज दशरथका महाबल  
नामका सेनपति कहने लगा कि यज्ञमें चाहे पुण्य हो अथवा पाप हो इससे हमें कुछ प्रयोजन नहीं है हमें राजाओंके  
वीचमें दोनों कुमारोंका प्रभाव दिखलाना चाहिये सेनापतिकी यह बात सुनकर राजाने फिर कहा कि यह बात मी अभी विचार  
करने योग्य है ॥ ४६३-४६४ ॥ यही समझकर उसने मंत्री और सेनापतिकी तो विदा किया और फिर हितरूप उपदेश करनेवाले  
पुरोहितकी बुलाकर उससे पूछा कि राजा जनकके घर दोनों कुमारोंको मेजना ठीक है या नहीं उत्तरमें पुराण और निमित्त-  
शास्त्रोंमें कहे अनुसार वह पुरोहित मी कहने लगा कि उस यज्ञमें हमारे दोनों कुमारोंका महोदय प्रगट होगा, इस  
विषयमें विस्तुल संदेह नहीं करना चाहिये । इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इसी भरतक्षेत्रमें बड़े मत्वापी मनु,  
तीर्थकर तीनों तरहके ( चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण ) चक्रवर्ती और बलमद्र होने ॥ ४६५-४६८ ॥ पुराणके



भंवी महोदयः । संशयोत्र न कर्तव्यस्त्वयान्यथेदमुच्यते ॥ ६७ ॥ अथास्मिन्मार्ते क्षेत्रे मनवस्तीयेनायका । चक्रेशाभिवाचा रामा भवित्यंति महो-  
वसः ॥ ६८ ॥ इत्याख्याताः पुराणैर्दुर्नीश प्राग्मया युताः । श्रुतेष्वष्टमाविमौ रामकेशवा न कुमारौ ॥ ६९ ॥ भाविनौ रावणं हत्वैववापीद्वीविदि-  
द्वीप । तत्पुत्रं तदाकर्ण्य परितोषमाणान्युपः ॥ ७० ॥ कृत्वा पापमदः क्रुधा पशुवधस्योत्पन्नमभूतल हिंसायश्ममवर्तयत्कपटधी करो महाकालकः ।  
तेनागात्स वसु सपर्वतखलो घोरां घरां नारकीं दुर्मागान् वृष्टिवाहादिबद्धतां नैतन्महत्याग्निना ॥ ७१ ॥ व्यामोहात्सुलसाप्रियस्सुलसा सादं स्वयं  
मन्त्रिणां शङ्खचक्रादिवेकान्यहृदयः सपाश-दिसाक्षिन्वा । नष्टो गलुभधःक्षितिं दुरितिनार्मकूलनाश मुधा दु कर्मभिरतस्य किं हि न भवेदन्यस्य चेदृग्  
विष ॥ ७२ ॥ स्वाचार्यव्यमनुसुल्यः हितादुशासीं वादे समेत्य बुधसंसदि साधुबादं । श्रीनारदो विदितभूरतिपाः कृतार्थः सर्वार्थसिद्धिमगर्दु-  
वियामवीशः ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे दुर्मागप्रवर्तनप्रपञ्चवर्णनं नाम सप्तषष्ठ पर्व ॥ ६७ ॥

जाननेवाले छुनियोने यह भी कहा है और मैंने पहिले सुना है कि उन नारायण बलभद्रोंमें हमारे कुमार बलभद्र  
और नारायण होनेवाले हैं और आगे प्रतिनारायण रावणको मारेंगे । इसतरह भविष्यको जाननेवाले पुरोहितने ये वचन  
कहे । उन्हें सुनकर महाराजा दशरथको बहुत ही संतोष हुआ ॥ ६९-७० ॥ जिसकी कपटरूप बुद्धि है और जो क्रूर है  
ऐसे महाकालने क्रोधमें आकर समस्त संसारमें शास्त्रोंके विरुद्ध और अत्यंत पापरूप ऐसे इस पशुओंकी हिंसा करनेरूप  
हिंसा-यज्ञकी प्रवृत्तिकी एसी कागणसे वह राजा वसु और दुष्ट पर्वतके साथ घोर नरक गतिमें गया इसलिये पापोंका बोझा  
दोनेवाले इन मिथ्यामागोंकी प्रवृत्ति कमी नहीं करनी चाहिये क्योंकि पापी लोगोंकेलिये इनके नरकादि फल बहुत  
ही बड़े वा अघोर हैं ॥ ७१ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे शत्रुके कपटके ज्ञानसे जिसका हृदय अन्य है अर्थात् जो श-  
त्रुके छल कपटको समझ भी नहीं सका ऐसे राजा सागरने सुलसा और मंत्रीके साथ स्वयं हिंसा रूप क्रियाएं की थीं  
इसीलिये नरकमें जानेके लिये वह नष्ट हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापरूप क्रूर कर्मोंको नाश करनेके लिये जो ऐसे  
अन्य पुरुष भी व्यर्थ ही दुष्कर्म करनेमें लीन हो जायेंगे वे क्या ऐसी ही दशाको प्राप्त नहीं होंगे ? अर्थात् अवश्य होंगे  
॥ ७२ ॥ जिसने अपने उत्तम आचार्योंका अनुसरणकर हितरूप उपदेश दिया था, जिसने बाद विवादके समय  
विद्वानोंकी समामें आकर भी सत्य वचन ही कहे थे, और जो अच्छेसे अच्छे बुद्धिमानोंका भी स्वामी था ऐसा नारद  
बहुतसा तपश्चरणकर और कृतार्थ होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र उत्पन्न हुआ था ॥ ७३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मिथ्यामागोंकी प्रवृत्तिके विस्तारको निरूपण

करनेवाला यह सप्तसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

## अथाष्टषष्ठं पर्वः।

पुरोहितः पुनर्वासी तत्कर्था श्रोतुमर्हसि । इति सैनोच्य भृगुलं ततो यवतुं प्रवक्तुम् ॥ १ ॥ क्रमेण श्रव्यशब्दार्थमावाणिमवावलि । दशस्य दशाशास्य प्रकाशित्यया श्रियः ॥ २ ॥ अथास्ति नाकलोकाभोऽभातकीखण्डपूर्वभाक् । भारते भूगुणैर्बुक्तो देशः सारसमुख्यः ॥ ३ ॥ तस्मिन्नाकर्षुरे ह्यातो नरदेवो महीगतिः । सकदाचिदन्तार्द्धगणैर्नाल्लुतवन्दनः ॥ ४ ॥ श्रुतधर्मक्यो जातनिर्वेदो ज्येष्ठसूनुवै । प्रदाय भोगदेवाय राज्यमापन्नसयसः ॥ ५ ॥ चरस्तपः समुत्कृष्टं हर्षवा विद्याधराधिपः । सद्यक्षपलवेगाख्यं निदानमकरोदधीः ॥ ६ ॥ प्रति सत्यस्य सौधर्मकल्पेभ्यः दूरदुताशनः । अथास्ति न्भारते क्षेत्रे विजयार्द्धमहाचले ॥ ७ ॥ खगेसो दक्षिणश्रेण्यां मेघकूटपुराधिपः । निनेयन्वयसभूतः सहस्रग्रीवलेखः ॥ ८ ॥ कुयारस्यत्रातुपुत्रोखलेनो-

## अथ अरसठवां पर्वः।

अथानन्तर—पुरोहित फिर कहने लगा कि हे महाराज ! यदि आप इस कथाको सुनना चाहते हैं तो सुनिये मैं कहता हूँ जिसके शब्द और अर्थ सुनने योग्य हैं और जिसकी वाणी साररूप है ऐसा वह पुरोहित दशों दिशाओंके जीतनेवाले और अपने यशकी शोभाको प्रकाशित करनेवाले रावणके पूर्वभव कहने लगा ॥ १-२ ॥ कि धातकी खण्डभीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें स्वर्गलोकके समान और पृथ्वीके सब गुणोंसहित सारसमुख्य नामका देश है, उसी देशके नाकपुर नगरमें प्रसिद्ध राजा नरदेव राज्य करता था । वह किसी एक दिन अन्त नामके गणवरके समीप गया, उन्हींकी बंदना की, उनसे धर्मकथा सुनी और विरक्त होकर तथा अपने बड़े पुत्र भोगदेवको राज्य देकर उसने संयम धारण कर लिया ॥ ३-५ ॥ उसने तपश्चरण तो उत्कृष्ट किया परंतु चपलवेग नामके विद्याधरोके राजाको देखकर उस मूर्खने निदान कर लिया ॥ ६ ॥ तथा आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ ।

अथानन्तर—इसी (खण्डभीपके) भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिणश्रेणीमें मेघकूट नामका नगर है उसमें राजा विनमिके वंशमें उत्पन्न हुआ सहस्रग्रीव नामका विद्याधर राज्य करता था ॥ ७-८ ॥ उसके भाईका पुत्र बहुत बलवान था इसलिये उसने क्रोधित होकर सहस्रग्रीवको निकाल दिया, वह सहस्रग्रीव वहांसे निकलकर लंकापुरीमें गया और वहांपर उसने तीस हजार वर्षतक राज्य किया ॥ ९ ॥ उसके पुत्रका नाम शतग्रीव था सहस्रग्रीवके बाद उसने वहां पच्चीस हजार वर्षतक राज्य किया, उसके बाद उसके पुत्र पचासग्रीवने वीस हजार वर्षतक राज्य किया ।

स्मरतिस्ततः । गत्वा लंकापुरं त्रिशतसहस्रान्दान्यपालयद् ॥ ९ ॥ तस्य पुत्रश्चतस्रो ब्रह्मवर्षाणि वसतः । पतिमस्तत्कुतः पंचाशद्वर्षीभ्योऽन्यपालयद् ॥ १० ॥ वत्सराणां सहस्राणि विशतिं तस्य चात्मजः । पुलस्त्यसि त्रिषु खर्बुषाण्युत्स्य बलभा ॥ ११ ॥ मेघश्रीनमो सुतुः सा देवोभूद्गाननः । चतुर्दशसहस्राण्युपमार्जयिषीतल ॥ १२ ॥ पालयन्नन्यदा कर्तासह्यः क्रीडिषुं वनं । गत्वा लंकेष्वर खेबराचलकेशितु ॥ १३ ॥ सुतामस्मिन्नेवेत्यस्य विद्यासाधनतत्परा । लोलो मणिमतिं वीक्ष्य काममोहवशोऽकृतः ॥ १४ ॥ तां दुरात्म्यात्सत्कुरुं तद्विद्यासिद्धिमभ्यहरन् । सापि द्वादशवर्षोपवासकलेशकुशीकृता ॥ १५ ॥ तत्सिद्धिर्विश्रुत्वा त्वत्पिता खेचरोऽग्निने । पुत्रिकास्यैव भवेमं वय्यासमिति दुर्मतिं ॥ १६ ॥ कृत्वा भवते मंदोदरीगनं समधिष्ठिता । भूकंपादिमहोत्पातैस्तज्जन्मसमयोद्भवै ॥ १७ ॥ विनाशो रावणस्येति नैमित्तिकवचनं ॥ १८ ॥ त्व-

तदनंतरं पचासवर्षीयके पुलस्त्य राजा हुआ और उसने पंद्रह हजार वर्षतक राज्य किया पुलस्त्यके मेघश्री नामकी रानी थी उसके वह राजा नरदेवका जीव सौषर्म स्वर्गका देव दशानन नामका पुत्र हुआ उसकी उत्कृष्ट आयु चौदह हजार वर्ष की थी पिताके बाद वह पृथ्वीका पालन करने लगा । किसी एक दिन वह लंकाका राजा दशानन अपनी रानीके साथ वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया था, वहां पर विजयादे पर्वतके अचलक नगरके स्वामी राजा अमितवेग की पुत्री मणिमती विद्या सिद्ध कर रही थी, उसे देखकर वह काम और मोहके वश होकर आसक्त होगया ॥ १०-१४ ॥ उस कन्याको अपने वश करनेके लिये उस दुष्टने उसकी सिद्धकी हुई विद्या हरण करली । वह कन्या उस विद्याको सिद्ध करनेके लिये बारह वर्षतक उपवासकर बहुत कुछ होगई थी, अब वह अपनी विद्याकी सिद्धिमें विघ्न होता हुआ देखकर रावण पर बहुत क्रोधित हुई और उसने निदान किया कि मैं इसकी पुत्री होकर इसे मारुंगी ॥ १५-१६ ॥ आयुके अंतमें प्राण छोडकर वह रावणकी रानी मंदोदरीके गर्भमें आई उसके जन्म होते ही भूकंप आदि अनेक उपद्रव होने लगे जिन्हें देखकर नैमित्तिकोंने कह दिया कि यही रावणके नाशका कारण होगी । नैमित्तिककी यह बात सुनकर निर्भय रावणको भी बहुत मारी मय हुआ और उसने मारीचको आज्ञा दी कि इस पापिनीको कहीं भी दूधरी जगह छोड आओ । रावणकी आज्ञानुसार मारीच मंदोदरीके घर गया और कहने लगा कि हे देवि ! मैं बहुत ही घृणारहित हूं इसलिये रावणने मुझे ऐसे काम करनेकी आज्ञा दी है इसतरह उसने सब हाल सुना दिया यह सुनकर वह कहने लगी कि मैं महाराज रावणकी आज्ञा उलंघन नहीं कर सकती ॥ १७-२० ॥ यह कहकर उसने एक संदूकमें बहुतसा द्रव्य रक्खा एक लिखा हुआ पत्र रक्खा और उस कन्याको रखकर वह मारीचसे का-

मिनी निजा । आपयेति स्थितः कश्चिद्विद्यो द्वालील्लुपत् ॥ ६०२ ॥ सापि खस्वामिनीमेतद्विप्रप्रक्रमवोषयत् । ततः स्वानुमतायात् श्रुदवप्र यथोचित ॥ ६०३ ॥ प्रतिगुण कृतस्यस्त्वं गमिष्यसि कुतोऽथवा । इति तस्या परिग्रहे पथादिह समागतः ॥ ६०४ ॥ पुनः पुरो गमिष्यामीत्याह । तच्छ्रुतेजिनः । पार्श्ववर्ती व्यधादासं दारिकाया द्विलोऽपि त ॥ ६०५ ॥ न हस्यं कुस्तेवं भो वार्धक्यं विपरीततां । उत्पादयति शुष्माकः किं न भावीति सोऽवदत् ॥ ६०६ ॥ त्वेवं नर्मप्रयोक्तृवृत्तं ॥ ६०८ ॥ अग्रासने विधायेनं स्वयमभ्यवहस्य सा । 'इवार्णो भवतो यत्र बाष्ठा तत्राद्यु गम्यता' ॥ ६०९ ॥ इत्याह सोऽपि शु धूक्तं लया भद्रे ममेति ता । प्रगसन् प्रस्वल्पम् कृच्छ्रदुःखायालभ्य यष्टिका ॥ ६१० ॥ तथीयस्यनारोहं व्यधादुक्तं इवैतया । चेदिकास्तद्विलोक्यास्य पश्य निः

कही हुई बात अपनी स्वामिनीको समझा दी । उस गुणमालाने अपनी इच्छानुसार आये हुए वृद्ध ब्राह्मणका यथायोग्य आदर सत्कार कर विठायी और पूछा कि आप कहाँसे आये हैं और कहाँ जायेंगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि मैं पीछेसे आया हूँ और आगे जाऊँगा । ब्राह्मणकी यह बात सुन कर गुणमालाके पास बैठे हुआ मनुष्य उसकी हंसी करने लगा उस हंसीको सुनकर वह ब्राह्मण उस मनुष्यसे कहने लगा कि मैं कुछ हंसी नहीं करता किंतु यह बुढ़ापा कुछ ऐसी ही विपरीतता उत्पन्न कर देता है । क्या यह बुढ़ापा आपलोगोंको नहीं आवेगा ? ॥ ६०३-६०६ ॥ तदनंतर उन लोगोंने फिर पूछा कि तुम आगे कहाँ जाओगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि जब तक मुझे कन्यारूपी तीर्थ की प्राप्ति नहीं होती है तब तक मुझे गमन करना ही पड़ेगा ॥ ६०७ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी कही हुई बात सुन कर सब लोग कहने लगे कि यह शरीरसे बूढ़ा है और आयुसे बूढ़ा है परंतु इसका मन अभी बूढ़ा नहीं है । इसके बाद नम्रता से प्रार्थना कर उसे आगे आसन पर विठायी और फिर स्वयं गुणमालाने उससे कहा कि "अब आपकी जहां जानेकी इच्छा हो वहां शीघ्र ही चले जाइये" इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि हे भद्रे तूने बहुत अच्छा कहा' इस प्रकार उसकी इस प्रशंसा करता हुआ वह ब्राह्मण दगमगाता हुआ वही कठिनतासे उठा और लकड़ीके सहारे चलकर उसकी शय्या पर इस प्रकार चढ़ गया मानों उसने शय्या पर जानेके लिये ही आज्ञा दी हो । यह देखकर गुणमालाकी दासीने कहा कि 'हां तुम लोगोंने बहुत ठीक कहा क्योंकि ऐसी लज्जा स्त्रियोंमें ही होती है पुरुषोंमें नहीं, यदि पुरुषोंमें भी साधारण रीतिसे ऐसी लज्जा हो तो कामदेवके संस्कारसे स्त्रियोंके साथ पुरुषोंका समागम कैसे हो ? ॥ ६०८-६१३ ॥ इस प्रकार

तच्छ्रुत्वा पश्य नैलज्जयमस्य वार्धयमीदृशं । वशीकरणचूर्णजननादिवंदनामप्यदः ॥ ५९३ ॥ इति तद्वचनात्सर्वे कृत्वा हास द्विजोत्तम । कन्यका गुणमा-  
लाख्या पुरेऽरिममस्ति विद्यता ॥ ५९४ ॥ 'जीवधरेण मन्त्रचूर्णवासस्य न कृता मृत्ति' । इति उद्वेगिणी जाता ता त्वच्छूर्णजननादिभिः ॥ ५९५ ॥ वशी-  
कुरुष्व तद्वीक्ष्य तव मन्त्रोपाधादिकं । मौल्येन बहुना सर्वमाददित्यामहे मय ॥ ५९६ ॥ इत्युक्तैः सक्रोधो वा युष्मज्जीवधरो विधी' । चूर्णवासदिमेद  
किं स जानाति परिक्षिप्तु ॥ ५९७ ॥ इत्युक्त्वास्तु सर्वे सक्रोधा विप्रमनुवन् । 'यथेष्टं किं नवीव्येव मृसारमविवेचयन् ॥ ५९८ ॥ आत्मस्त्वोऽन्यनिन्दा  
न मरणान्न विशिष्यते । इति लोकप्रसिद्धं किं न श्रुत दुश्लोदित' ॥ ५९९ ॥ इत्यसौ तैधिक्षिप्त किं न मंति प्रशसका । युष्माद्विधा ममापीति सम्भा-  
व्यात्मानमुद्वत- ॥ ६०० ॥ घटदासी विधास्यामि गुणमालां मुहूर्तत । ममेति संगरे कृत्वा प्रस्थितस्तदुद्वत प्रति ॥ ६०१ ॥ तत्र तत्रोदिकामेकामाहूय स्वा

हाथमें प्रत्यक्ष फल देनेवाली वशीकरण चूर्ण रूप औपधि है जिसकी इच्छा हो वही इसे ले सकता है ॥ ५९२ ॥ उस  
की इस ओपणाको सुनकर सब लोग उसकी हंसी करने लगे और कहने लगे कि देखो इसकी निर्लज्जता ! इसका यह  
ऐसा तो बुढापा है और यह वशीकरण चूर्ण तथा अंजन इस नगरमें एक गुणमाला नामकी प्रसिद्ध कन्या है 'जीवधरेने उसके चूर्णकी  
लोगोंने हंसी करते हुए कहा कि हे ब्राह्मण इस नगरमें एक गुणमाला नामकी प्रसिद्ध कन्या है 'जीवधरेने उसके चूर्ण अंजन आदिसे  
सुगंधिकी प्रशंसा नहीं की थी इसलिये वह मनुष्योंसे द्वेष करने लगी है अतएव पहिले तू अपने चूर्ण अंजन आदिसे  
उसे अपने वक्षमें करले यदि वह तेरे वश हो जायगी तो फिर इसको देख कर हमलोग बहुतसा मन्त्र्य देकर तेरी मंत्र  
औपधि आदि सब खरीद लेंगे ॥ ५९३-९६ ॥ इस प्रकार लोगोंने कहा । तब वह ब्राह्मण क्रोधित होकर कहने लगा  
कि तुम्हारा मुख जीवधर क्या चूर्णकी सुगंधियोंके भेदकी परीक्षा करना जानता है ? इसके उत्तरमें सब लोग क्रोधित  
होकर उस ब्राह्मणसे कहने लगे कि 'इस प्रकार मनुष्यत्वकी सारताका कुछ भी विचार न कर इच्छानुसार क्यों बकता  
है हे खोटे शास्त्रोंकी जानकारीसे, उद्वत हुए ब्राह्मण ! क्या तू ने यह लोकमें प्रसिद्ध कथावत नहीं सुनी है कि अपनी  
प्रशंसा और दूसरेकी निंदा करना मरनेके बराबर है इसप्रकार उन लोगोंने उस ब्राह्मण पर आक्षेप किये तब वह ब्राह्मण  
कहने लगा कि क्या आपके समान मेरी प्रशंसा करनेवाले लोग नहीं हैं । अपने आत्माकी संभावना कर उद्वत हुआ मैं  
एक क्षणमात्रमें गुणमालाको अपनी घटदासी ( पानी भरनेवाली दासी ) बना सकता हूँ । ऐसी प्रतिज्ञा कर वह उसके  
घरकी ओर चला ॥ ५९७-६०१ ॥ वहाँ पर पहुंच कर उसने एक दासी बुलाई और उसे समझाकर कहला भेजा  
कि एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है ऐसा तुम अपनी स्वामिनीसे कहो ॥ ६०२ ॥ उस दासीने भी जाकर उस ब्राह्मणकी

पयोत्सा बलं नदाव्यनायकं ॥ ५८१ ॥ त्वामानेतु प्रहेयामि तावदत्र लयारयता । दिनानि कानिचिद्विगतशोक्येति महामतिः ॥ ५८२ ॥ तद्योग्यसर्ववस्तूनि परिवारं च कंचन । तत्सनिधाववस्थाप्य गत्वा गजपुरं खय ॥ ५८३ ॥ प्राप्य तन्निजभृत्यादीन् पुरं, प्रस्थाप्य कस्य चित् । ममागतिर्न वाच्येति प्रतिपाद्य पृथक्पृथक् ॥ ५८४ ॥ वैश्यवेष समादाय विद्यामुद्राप्रभावतः । पुरं प्रविश्य कस्मिंश्चिदपणे समवस्थितः ॥ ५८५ ॥ तत्र तत्सन्निधानेन नानारत्नादिभाङ्ग-कानिचित्तत्र सवसन् सुखमन्यदा । परिव्राजकवेषेण काष्ठांगारकससद ॥ ५८६ ॥ वणिगादेशनिर्दिष्टो देवद्वारयामलत्सा । दत्तवान्विमला तस्मै सुता रत्ना कमलोद्भवा ॥ ५८७ ॥ दिनानि मतिविर्गुणी ॥ ५८८ ॥ मा भोजयेत्युवाचैतच्छ्रुत्वा स प्रतिपन्नवाक् । 'मदुद्योगफलस्यैतन्निमित्तं तुमुम परं' ॥ ५८९ ॥ इत्यग्रासनमास्थाय भुक्त्वा तस्मात्स निर्गतः । 'वशीकरणपूर्णादिप्रत्यक्षफलमौपद्य ॥ ५९० ॥ मत्करे विद्यते यस्मै रुचिर्गृहात्वसाविद' इति राजकमभ्येल्य पृथगुद्योगघोषयत् ॥ ५९१ ॥

बुद्धिमानने वह हृदयमें ही छिपा लिया और फिर पातासे कहा कि हे मा ! इस कामको पूरा कर लेने पर मैं आपको बुलानेके लिये नंदाव्यको नायक बना कर अपनी सेना भेजूंगा तब तक थोड़े दिन तक आप शोक छोड़कर आनंदसे यहां ही रहें ॥ ५७७-५८२ ॥ इस प्रकार कह कर उसने माताके योग्य सब पदार्थ तथा थोड़ेसे परिवारके लोग उसके समीप रख दिये और फिर वह स्वयं राजपुर नगरको चला गया ॥ ५८३ ॥ राजपुर नगरके समीप जाकर उसने साथके सब लोगोंसे अलग अलग कह दिया कि 'मेरे आनेकी खबर किसीको मत देना' इस तरह कह कर सेवक आदि सब लोगोंको जाकर किसी एक दुकान पर जाकर बैठ गया ॥ ५८४ ॥ तदनंतर उसने उस विधामयी अंगूठीके प्रभावसे वैश्यका भेष बनाया और नगरमें पर बैठ जानेसे अनेक रत्न आदिके पिछारे तथा और भी अपूर्व वस्तुओंका लाभ हुआ जिसे देखकर शेरने सोचा कि निमित्तज्ञानीने जिसके लिये कहा था वह यही पुरुष है इस लिये उसने अपनी स्त्री कमलासे उत्पन्न हुई विमला नामकी कन्या उसे व्याह दी ॥ ५८६-५८७ ॥ अथानंतर कुछ दिन तक तो वह जीवंधर कुमार वहीं सुखसे रहा फिर किसी एक दिन परिव्राजका रूप धारण कर काष्ठांगारकी सभामें गया वहां पर जाकर राजाको देखकर उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि हे राजन् सुनो मैं अतिथि और गुणी हूं तुमसे थोडा सा भोजन मांगता हूं मुझे खिला दे । राजाने यह बात सुन कर स्वीकारकी और यह फूल ही मेरे उद्योगके फलका उत्कृष्ट कारण है यही सोचकर वह ऊंचे आसन पर बैठकर भोजन कर वहांसे बाहर निकल आया । तदनंतर उसने राजाओंके समूहोंमें जाकर अलग अलग घोषणा दी कि "मेरे

अब बुद्धिभूतसुखसंगमात् । कुमार भीतमीन वा मद्धदुग्ध सदसा गतं ॥ ५७२ ॥ एवं देव्या दुष्ठा साह निगदता नवतरे । नंत्रा... मत्तरे यज्ञो यक्ष-  
केहात्कुमारजात् ॥ ५७३ ॥ सानस्रष्टेपनाक्षेपभूणवत्पागनादिभिः । नपुल्य जैनमद्वैतवात्सल्यात्कन्यो युयुत् ॥ ५७४ ॥ अपास्त मधुशाल्यंस्तरगतैर्भे-  
युक्तिभिः । मदनदिक्यानिष्ठ शोक मातुः मृतान्य च ॥ ५७५ ॥ जगाम समुत्तं धाम्नः स्वत्येत्पापाग सुम्किना । तर्गोद्गर्तं यदागन्तु मुरास्तिगुमुगुत्ते ॥  
५७६ ॥ रात्री चैव महापुण्यभागीलाष्टो न पुयट् । कुमारमभ्यधायेत् प्रक्षारिकमशात्तिन ॥ ५७७ ॥ प्रत्यंरमहापात्रं तव राजपुरे मुहं । इत्या राज्ञे  
दिशत शत्रुस्तत्काष्टागारकस्तन ॥ ५७८ ॥ सिवुत्थानपविरागे न योग्यस्ते मनस्विनः । इत्या न तदाकार्य प्रतिपद्यादित तता ॥ ५७९ ॥ अकालजा-  
घनं शौर्यं न फलाय प्रकल्पते । धान्य वा मयर्गोदयो यः कात् कार्यस्य मापक ॥ ५८० ॥ इति सचित्य मयातमोऽध्यायश्चाय त हरिः । औमकारै-

चरणकमलोंको नमस्कार किया ॥ ५७० ॥ तदनंतर महादेवीने 'हे कुमार उठ तुझे सैरुडों कल्याण प्राप्त हो' उग्रप्रकार  
सैरुडों आशीर्वाद देकर वड़े मोहसे उसे बढ़ाया और फिर इसप्रकार कहने लगी कि "हे कुमार तेरे देवनेसे जो भुव  
उत्पन्न हुआ है उसीके समागमरूपी गधुसे अत्यंत डरकर ही क्या मानों मेरा दुःख अकम्मान् भाग गया है ।" ५७१-५७२  
इसप्रकार वह महादेवी पुत्रके साथ बात चीत कर रही थी कि इसी बीचमें कुमारके स्नेहसे वह चतुर यज्ञ भी बड़ी शीघ्र-  
तासे वहां आयहुंचा ॥ ५७३ ॥ उसने आकर उत्तम जैनधर्मके वात्सल्यसे स्नान, पाला, लेपन, सवनरहने आभूषण  
वस्त्र और भोजन आदि देकर अलग अलग सबका आदर सत्कार किया ॥ ५७४ ॥ तदनंतर उगने युक्तियोंसे पूर्ण  
और तत्त्वोंके स्वरूपसे भरे हुए मयूर वचनोंसे तथा प्रद्वैयुक्त आदिकी कथाओंसे माता और पुत्र दोनोंका जोरु दूर किया  
॥ ५७५ ॥ इसप्रकार आदर सत्कारकर वह यज्ञ अपने स्यानकी ओर चला गया । देखो मित्रता बही है जिसका अनु-  
भव आपत्तिमें भी मित्रोंके द्राग किया जाता है ॥ ५७६ ॥ उसके बाद विजया महाराणीने कुमार जीवंधरको बुद्धिमान  
और अत्यंत पराक्रमी देखकर तथा 'यह महापुण्यवान् है' यही समझकर एकांतमें लेवाकर उससे इसप्रकार कहा कि "तेरे  
पिता राजपुर नगरके महाराज थे और सत्यंरके नामसे प्रसिद्ध थे । तेरा गधु यह काष्टांगार उन्हें पारकर राज्यकर रहा है । तू  
विचार शील है इस लिये तुझे अपने पिताका स्यान छोड़ देना ठीक नहीं है" इस प्रकार माताके द्राग कहे हुए वचनों  
को मुनकर और अच्छी तरह समझ कर वह विचार करते लगा कि ब्रह्मसमर्थों की हुई शूरवीरतासे भी कुछ फल नहीं  
निकलता है जिस प्रकार धान्योंको फलनेके लिये समथकी प्रतीक्षा करनी पडती है उसी प्रकार कार्यको सिद्ध करनेवाले  
समथकी भी प्रतीक्षा करनी पडती है । इस प्रकार कहते हुए उसके हृदयमें अथपि कोष उत्कन्न हो आया था पर उस महा-



भीगेऽभ्यर्थेणमागमन् ॥ ५६० ॥ हेमामपुरसार्थीपहरणरंभसभ्रमे । तत्कर्म नगरैरुर्वप्यस्तहस्तैर्निवेदित ॥ ५६१ ॥ आक्रोशदूभिः सकारुण्यो जीवंधर-  
माह्वयः । गत्वा व्याघ्रबलं युद्धे निरुद्ध्यातक्यविक्रमः ॥ ५६२ ॥ तद्दृष्टहीत धन सर्वं वभिर्गन्धो ह्यर्पयत्युन । युद्ध्वा चिरं विमुक्तारमनामांशरदर्शनार्त् ॥  
५६३ ॥ जीवंधरकुमारेण विदिता मधुरादयः । संगतास्ते कुमारस्य वार्तां राजपुरोद्भवां ॥ ५६४ ॥ सर्वो निर्बन्धं विश्रम्य कश्चित्कालं स्थिता ब्रुव ।  
लोलाक्षी क्षामक्षार्माग्यष्टिका । चिन्तासहस्रतप्ता अटीभूतकिरीटिका ॥ ५६५ ॥ अरण्यमप्रयाणार्थं दृष्ट्वा कथमुपागमन् । तत्र केहान्महादेवी क्षीराणूणां जतस्तनी ॥ ५६६ ॥ वाचाविल-  
सि ॥ ५६८ ॥ अशोचयुग्ममालोक्य रश्मणीव मनोभवं । इष्टकालातरालोक्तक्षणे दुःखकारण ॥ ५६९ ॥ तनुजस्वर्शसंभूतमस्तपुशंतीं सुखायुत । अप्य-  
न्वापतत्यादप्यदयो स कृताजलिः ॥ ५७० ॥ कुमारोत्तिष्ठ कल्याणशतभागी भवेत्तैसा । तमाशिषां शतैः सेहादमिनयाऽववीदिति ॥ ५७१ ॥ 'प्रतिपक्षा-  
वे भील लोग हेमाम नगरके अनेक वैश्योके समूहका धन लूट चुके थे इसलिये उनलोगोंने नगरमें जाकर चिह्ना चिह्नाकर  
तथा ऊपरको हाथ उठाकर सब हाल कहा था । यह सब हाल सुनकर अतर्क्य पराक्रमको धारण करनेवाले दयालु  
जीवंधरने उसी वनमें आकर युद्धमें भीलोंकी सेना हराई और फिर उनसे सब धन वापिस लेकर उन वैश्योको दे दिया  
जिससमय जीवंधर उन भीलोंसे युद्ध कर रहा था उस समय मधुर आदिकोंने उसके पास अपना नाम सुना हुआ बाण  
छोड़ा था उसे देखकर जीवंधरने मधुर आदिकोंका सब हाल जान लिया था । कुमार उसी समय उनके समीप आया  
मिलनेके बाद उसने राजपुरकी सब बात सुनी कुछ देरतक वहां विश्राम किया और फिर ( हेमामनगरमें जाकर ) सुखसे  
रहने लगे । तदनंतर कुमार जीवंधरको लेकर वे सबलोग अपने नगरको चलने लगे । मार्गमें ठहरनेके लिये उसी दंडकवनमें  
पहुंचे । वहांपर विजया महादेवी मिली स्नेहसे उसके कुचोंमें दूध आगया उससे वे उन्नत हो रहे थे, उसके चंचलनेत्रोंमें  
आंसू भर रहे थे, और शरीररूपी लकड़ी अत्यंत कुश हो रही थी । हजारों चिन्ताओंसे वह संतप्त हो रही थी, उसके केश  
जटाके समान हो रहे थे, सदा उष्ण निश्वास लेनेसे ओठोंका रंग ही बदल गया था तांबूल आदि द्रव्योंके न खानेसे  
उसके दांतोंपर भी बहुतसा मैल जमगया था और जिसप्रकार मधुमक्खीको दुख हुआ था उसीप्रकार पु-  
त्रको देखकर वह शोककर रही थी । सो ठीक ही है क्योंकि इष्टजनों को बहुत दिन बाद देखना भी उसीसमय दुःखका  
कारण हो जाता है भावार्थ-बहुत दिन बाद इष्ट जनोंको देखनेसे दुख उमड़ आता है ॥ ५६०-५६९ ॥ जो पुत्रके स्पर्श  
से उत्पन्न हुए सुखरूपी अमृतका स्पर्श नहीं कर रही है ऐसी उस माताको जानकर जीवंधरने भी हाथ जोड़कर उसके

पृष्ठा केहिहैमैधुरादिमि । बहासकं विवेदिस त्व कुमारौ क गताविति ॥ ५५१ ॥ साप्याह शुभने देखो हेमासननगरे सुखं । वसतस्तत्र का निता युष्माकमिति सादरे ॥ ५५२ ॥ ज्ञात्वा ताभ्यां स्थितं स्मान ते सर्वे तर्हिदृक्षया । आपृच्छय खजजान् सर्वांन् संतोषातौविमोचिताः ॥ ५५३ ॥ गच्छंतो दृढकारण्ये व्यश्रम्य-स्तापसाश्रमे । तापसीषु समागम्य तान् यदयतीषु कौतुकात् ॥ ५५४ ॥ महादेवी च तान् शृणु श्रुय कस्मात्समागताः । गमिष्यथ क वेत्सितवष्टच्छत्तेहनिर्भरे ॥ ५५५ ॥ यथाश्रुतातमेवेषु कथयन्तु प्रतोषिर्णा । मधुघ्नपरिवारोऽय सघो यूतामिति स्फुट ॥ ५५६ ॥ विज्ञायाथात्र विश्रम्य भवदमिगम्यतां पुन । समा-गमनकालेऽसाविहैवानीयतामिति ॥ ५५७ ॥ सम्यक्प्रार्थयतैतौस्तेऽप्येषा जीवधरश्रुते । रूपेण निर्विशेषा किं तन्मातेत्याससशया ॥ ५५८ ॥ कुर्मस्तथेति सतोष्य तां प्रियादुगतौकिमि । गत्वा तत्रोत्तर किंनिसत्र व्याघ्र कदर्थिताः ॥ ५५९ ॥ युद्धे पुरुषकारेण क्वव्यादानमिभूय तान् । गंतो यदृच्छया व्याघ्रे

अब इस कथनको यहांही छोड़कर इसीसे संबंध रखनेवाली दूसरी कथा कही जाती है । जिसदिन राजपुर नगरसे नंदा-द्वय निकल गया उसके दूसरे ही दिन उससे स्नेह रखनेवाले मधुर आदिकोंने गंधर्वदत्तासे पूछा कि दोनों कुमार कहां गये तू सब जानती है, बतला ॥ ५५०-५५१ ॥ इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने भी बड़े आदरसे कहा कि आपलोग उनकी चिंता क्यों करते हैं वे दोनों भाई सुजन देशके हेमाभ नगरमें सुखसे निवास करते हैं ॥ ५५२ ॥ इसप्रकार उन दोनों कुमारोंके रहनेका स्थान जानकर मधुर आदि सब कुमारोंको उन्हें देखनेकी इच्छा हुई उन्होंने अपने सब भाई बंधुओंसे पूछा और संतोषके साथ सबसे विदा होकर वे लोग चले । चलते चलते सबलोग दंडकवनके तापसाश्रममें पहुंचे । वहांपर वे लोग तपस्विनियोंके समीप पहुंचे सब तपस्विनियें उन्हें कौतुकसे देखने लगीं उनमेंसे विजया महादेवीने बड़े प्रेमसे उनलोगोंसे पूछा कि तुमलोग कहांसे आये हो और कहां जाओगे ॥ ५५३-५५४ ॥ जब मधुर आदिकोंने अपना सब हाल कहा तब बहुतही संतुष्ट हुई और उनसे कहने लगी तुम युवकोंका समूह सब मेरे ही पुत्रका परिवार है । तदनंतर उसने कहा कि तुमलोग आज यहां ही विश्राम करो, विश्रामकर फिर चले जाना और जीवंधरसे मिलनेपर उसे, यहां अवश्य लाना ॥ ५५६-५५७ ॥ इसप्रकार विजयाने उन लोगोंसे अच्छीतरह प्रार्थनाकी उस महादेवीके रूपको जीवंधरके रूपके ही समान देख-कर उनलोगोंको भी संदेह होगया कि शायद यह जीवंधरकी पाता ही हो ॥ ५५८ ॥ तदनंतर उनलोगोंने प्रिय और मयायोग्य बचनोंसे उस देवीको संतुष्ट किया तथा कहा कि हमलोग ऐसा ही करेंगे । इसके बाद वे लोग आगे चले थोड़ी ही दूर जानेपर भीलोंने आकर उन्हें खेदलिख किया ॥ ५५९ ॥ परंतु पुरुषार्थ दिखलाकर उनलोगोंने युद्धमें भीलोंको हरा दिया और फिर वे इच्छानुसार आगे चले । आगे पहुंचते ही अन्य भीलोंने आकर उन्हें घेर लिया । उसके पहिले

धिमं ॥ ५३९ ॥ मात्रा सयोजयेत्साह त्व चाक्षानादिदं भया । कृतं कर्मेति नितित्वा गर्हित्वात्मानमाद्रंघी ॥ ५४० ॥ तदादानदिनादसशाकं घोडशे  
दिने । चातकं बनकालो वा सजलांभोदमालया ॥ ५४१ ॥ असव मधुमासो वा लतया वृत्तसंख्या । पद्मिन्यार्कोदयो बालि त मात्रा समजीगम ॥ ५४२ ॥  
सहस्रारे सुरोभवः ॥ ५४३ ॥ तत्राष्टादशवाद्यांशुदिव्यभोगाभितर्पितः । ततश्च्युत्वेह सभूत शुभाशुभविपाकतः ॥ ५४४ ॥ राज्यभारं परित्यज्य तपोभारं समुद्वहन् । जीवितार्ते तनु लयत्वा  
शुभि ॥ ५४५ ॥ सह सजात इत्येतद्विद्याधरनिरूपित । शुला कल्याणबधुस्त्व ममेत्येनमपूजयत् ॥ ५४६ ॥ मंदसाननिशोः पित्रोर्विप्रयोगकृतनसः । फलात् घोडशवर्षाणि वियोगस्त्व ब-  
कामभोगशुल स्वैरमिष्टैरनुभवस्थित ॥ ५४७ ॥ इदं प्रकृतमत्राम्नात्सविधानमुदीर्यते । नद व्यस्य पुगत्स्वसाधिर्योणान्तरे दिने ॥ ५४८ ॥ गधर्वदत्ता स-

कहा कि शुभसे यह काम अज्ञानतासे बन पडा है इस तरह कहकर उसने अपनी बड़ी निंदाकी अपने आपको धिक्कार  
दिया और फिर चित्तमें दया आजानेसे जिसदिन उस वच्चेको लिया था उससे सोलहवें दिन उसकी मातासे मिलाया ।  
जिस प्रकार वर्षाका समय जलसे भरी हुई मेघपंक्तिसे चातकको मिला देता है वसंतऋतु आमकी वेलके साथ फूलोंको  
मिला देता है और सूर्योदय कमलिनीके साथ अमरोंको मिला देता है उसी प्रकार जयद्रथने वह वच्चा उसकी मातासे  
मिला दिया ॥ ५३८-५४२ ॥ इस प्रकारके अन्य कितने ही विनोदोंके साथ जयद्रथका समय निरंतर सुखसे व्यतीत  
होने लगा । किसी एक समय किसी कारणसे उसका चित्त भोगोंसे उदास हुआ । उसने राज्यभार छोडकर तपश्चरण  
का भार धारण किया और आयुके अंतमें शरीर छोड कर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ ॥ ५४३-५४४ ॥ वहां पर अठा-  
रह सागर तक दिव्य भोगोंका अनुभव कर तप्त हुआ और वहांसे च्युत होकर अपने शुभाशुभ कर्मोंके उदयसे आप उ-  
त्पन्न हुए हैं ॥ ५४५ ॥ जो इस सेवकके द्वारा मारा गया था वह मर कर कितने ही भवोंके बाद यह काष्ठांगार हुआ  
है इसी लिये ही पहिले जन्मके संवधसे काष्ठांगारने युद्धमें आपके पिताका घात किया था ॥ ५४६ ॥ जयद्रथने  
पहिले हंसके वच्चेको माता पितासे अलग किया था उसीके पापसे सोलह वर्षतक भाई वंशुओंसे आपका वियोग हुआ है  
इसप्रकार विद्याधरकी कही हुई सब कथा सुनकर जीवंधर कहने लगा कि तू मेरा कल्याण करनेवाला भाई है इस प्रकार  
कहकर उस विद्याधरका खूब आदर सत्कार किया ॥ ५४७-५४८ ॥ तदनंतर वह जीवंधर सबके साथ बड़ी प्रसन्नतासे  
हेमाभ नगरमें आया और इष्ट वस्तुओंके साथ इच्छानुसार काम भोगोंका सुख अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥ ५४९ ॥

तस्य नंदिन्या तनयोऽभवत् ॥५२८॥ चद्राभो मे सखा तस्य कदाचिद्विर्मम्यधात् । भवान् च धर्म्यं तेन रक्षाशयस्तदा ॥ ५२९ ॥ विधाय मयमासादि-  
निष्ठति तत्फलान्मृत । इह विषाधरो भूत्वा सिद्धकृटजिनालये ॥ ५३० ॥ विलोक्य चारुणद्वयं विनयेनोपसृत्य ततः । आवयोर्मवर्ममघमाकर्ण्य त्वां निरी-  
क्षितु ॥ ५३१ ॥ रसितैतस्सरोऽन्यथा प्रवेशाद्विषया स्थित । नद्वे त्वद्भवसुवधं दिव्यावधिनिरूपित ॥ ५३२ ॥ धातक्रीस्वडमगमगमेरुपूर्वविदेहने ।  
विषये पुष्कलाबल्यां नगरी पुण्डरीकणी ॥ ५३३ ॥ पतिजयधरस्तस्य तन्त्रजोऽभूजयद्रथ । जयवला लमन्त्रेद्युवेन नाम्ना मनोहरं ॥ ५३४ ॥ विहर्तुं प्र-  
स्थितस्तत्र सरस्या हसवाचक । विलोक्य चेटकैर्दक्षिस्तमानाग्र्य सैकटुक ॥ ५३५ ॥ स्थितस्तन्मोषयोगे तन्मातापितरौ तदा । सशौका करुणाकन्द न-  
भस्यकुरुता मुहु ॥ ५३६ ॥ चेटकस्ते तदाकर्ण्ये कणीताकृष्टचापक । शरेणापातयत्त त तस्माकार्यं न पापिता ॥ ५३७ ॥ तन्निरीक्ष्य भवन्माता काह  
प्यार्द्राकृताशया । विभेत्तदिति सपृच्छय प्रबुद्धा परिचारकात् ॥ ५३८ ॥ कुपित्वा चेटकाग्रेण दृथा विद्वत्ते सती । निर्भन्त्यं त्वां च ते पुत्र न युक्तमिदमा-

मद्य मांसादिका त्याग किया था उसके फलसे मरकर मैं यह विद्याधर हुआ । किसी एक समय मैंने सिद्धकृट जिनालय  
में दो चारणं मुनिराजोंके दर्शन किये थे मैं वडी विनयसे उनके समीप पहुंचा था और उनसे मैंने अपने  
और आपके दोनों भवोंका संबंध सुना था । अब मैं आपके दर्शन करनेके लिये ही इस सरोवरकी रक्षा करता था और  
अपनी विद्यासे अन्य किसीको इस सरोवरमें प्रवेश नहीं करने देता । अब मैं दिव्य अवधिज्ञानके द्वारा निरूपण किये  
हुए आपके भवोंका संबंध कहता हूं ॥ ५२८-५३२ ॥ धातकी खंडके पूर्व मेरुसंबंधी पूर्व विदेहचेन्नमें पुष्कलावती देश  
के पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा जयधर राज्य करता था उसकी रानीका नाम जयावती था उसके आपका जीव जयद्रथ  
नामका पुत्र हुआ था । किसी एक समय वह जयद्रथ मनोहर नामके वनमें क्रीडा करनेके लिये गया था वहां पर सरोवर  
में एक हंसके बच्चेको देख कर चतुर सेंवकोके द्वारा केवल चित्त प्रसन्न करनेके लिये वह बच्चा भंगा कर रख लिया  
था । उस बच्चेके माता पिता उसका भरण पोषण करनेके लिये बहुत ही शोक करने लगे और बार बार आकाशमें करुणा-  
जनक आक्रंदन करने लगे ॥ ५३३-५३६ ॥ उस आक्रंदनको सुनकर जयद्रथके एक सेवकने कानतक धनुष चढ़ाकर  
बाणसे उस बच्चेके बापको मार दिया सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंके लिये संसारमें कोई अकार्य है ही नहीं ॥ ५३७ ॥  
इस कामको देख कर जयद्रथकी माताका हृदय करुणासे भीग गया और उसने पूछा कि यह क्या है सेवकोंसे सब हाल  
जानकर वह सती उस हंसको व्यर्थ ही मारनेवाले सेवक पर बहुत ही क्रोधित हुई तथा उसने जयद्रथको भी ताडना कर  
कहा कि हे पुत्र यह ऐसा करना ठीक नहीं है तू इस बच्चेको शीघ्र ही इसकी मातासे मिला दे । जयद्रथने इसके उत्तरमें

1997

पुस्तकालय

22

गंगा नगरसोमाह्वये श्रीचंद्रां आश्रमागिनीं ॥ ५२० ॥ नंद्यालय दधुभरिभूलायुक्ते धनेश्वरिने । एव विषाहनिर्वृत्तौ हेमाभ बधुभिः सम ॥ ५२१ ॥ पुरं प्र-  
लागमे सत्याधरसूनुं निरीक्ष्य तं L दसमिस्तरसस्तीरे तत्रानेतुं जलं गता ॥ ५२२ ॥ परिवारजना दद्या दुष्टैर्गविलमाक्षिकैः । तद्भयाद् बोधयतिस्व जीवंपर-  
कुमारकं ॥ ५२३ ॥ तदाकर्ण्य विचिन्त्यैतकुमारोऽपि सबिस्सयः । हेतुरस्त्यत्र कोऽपीति तद् ज्ञातुं यक्षमस्मरत् ॥ ५२४ ॥ सोऽपि संनिहितस्तत्र त्रियां  
विष्वस्य खेचरी । त खेचरं कुमारस्य पुरस्तादकोक्त्वा हुत ॥ ५२५ ॥ इदं सारस्वत्या केन रक्षयते हेतुर्नैति सः । परिपृष्ट कुमारेण खेचर सम्यगब्रवीत् ॥  
५२६ ॥ शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि मत्कथा कृतचेतनः । अमवपुष्पदत्ताख्यमालाकारधनेश्विनः ॥ ५२७ ॥ हुतो राजपुरे जातिभटाहः कुसुमश्रियः । तत्रैव बन्ध-  
का हरण नहीं किया है किंतु पहिले जन्मके स्नेहसे किया है इसप्रकार सोच बिचार कर वे सब लोग शांत होगये ॥ ५१८ ॥  
तदनंतर उन सब लोगोंने बनराज और उसके पिता हरिविक्रमके बंधन छोड दिये और उन दोनोंको विडा कर दिया  
सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा करना ही सज्जनोंका धर्मात्मापन कहलाता है ॥ ५१९ ॥ इसके बाद वे सबलोग राजाके  
नगरमें ( हेमाभ नगरमें ) गये दो दिन वहां रहे फिर नगरशोभा नामके नगरमें आये और कल्याण रूप भाग्यको धारण  
करनेवाली श्रीचंद्रा वडी विभूतिके साथ धनके स्वामी युवक नंदाल्बको व्याह दी । इस प्रकार विवाहकी सब विधि पूर्ण  
हो जाने पर सब भाई बंधुओंके साथ फिर हेमाभ नगरको लौटे मार्गमें किसी तालाबके किनारे ठहरे । वहां पर परिवारके  
लोग जीवंधर कुमारको एक जगह बिठला कर उस सरोवरमेंसे जल लेने गये परंतु दुष्ट मधुमक्खियोंने वे सब लोग काट  
खाये तब सब लोगोंने डर कर जीवंधर कुमारसे कहा । कुमारने भी सुनकर बडा आश्चर्य किया और सोचा कि इसमें अ-  
वश्य ही कोई कारण होना चाहिये इसलिये उस कारणको जाननेके लिये उसने आते ही वह विद्याधरकी विद्याका नाम किया और फिर शी ब्रह्मी  
स्मरण करते ही वह यक्ष भी आ उपस्थित हुआ उसने आते ही वह विद्याधरकी विद्याका नाम किया और फिर शी ब्रह्मी  
उस विद्याधरको कुमारके सामने ला खडा किया ॥ ५२५ ॥ कुमारने उस विद्याधरसे पूछा कि तूम किस कारणसे इस  
सरोवरकी रक्षा करते हो । इसके उत्तरमें विद्याधर कहने लगा कि हे भद्र ! मेरी कथा चित्त लगा कर सुनो । पहिले ज-  
न्ममें मैं राजपुर नगरमें अत्यंत धनी ऐसे पुण्यदंत मालाकारकी स्त्री कुसुमश्रीसे जातिभट नामका पुत्र था । उसी नगरमें  
धनदत्ताकी स्त्री नंदिनीसे उत्पन्न हुआ चंद्राभ नामका पुत्र था वह मेरा मित्र था, किसी एक समय आपने उस चंद्राभको  
धर्मका स्वरूप सुनाया था उस समय उसको सुन कर मेरे हृदयमें भी धर्मम उत्पन्न हुआ था और मैंने उसी समय

सोपाय पापभीरवः ॥ ५०७ ॥ ते सर्वे सिद्धसाध्यत्वाद्युद्ध सहाय्य समुल्ल । नगरस्यागमनेतद्वृत्तं नैसा वनराजकः ॥ ५०८ ॥ युयुत्सया ययौ वीक्ष्य त यक्षो  
बुधचेतसं । परिणष्ट दृष्टात्सयः कुमाराय समर्पयत् ॥ ५०९ ॥ वंदीकृत्य कुमारोऽपि वनराजं निविष्टवान् । सतेनः सरसि श्रीमान्सेनारम्याभिधानकै ॥  
५१० ॥ तत्रैक चारुणं वीक्ष्य सहसा महसा तिष्ठि । भिक्षाहेतोरेति प्राप्तमभ्युत्थाय यथोचित ॥ ५११ ॥ कृतामिवन्दनो योग्य भाक्तिकोऽवास्तुभोजनं ।  
तद्वानावर्जितयोऽयमवादाश्चर्यपचकं ॥ ५१२ ॥ तद्दानफलमालोक्य वनराज स्वजन्मनः । सचन्व यथुपावृत्त स तत्सर्वमवागमत् ॥ ५१३ ॥ बलेन म-  
हता योद्धु इरिकममागत । यक्षस्तं च समादाय कुमारस्य करेऽकरोत् ॥ ५१४ ॥ वनराजस्तदोशेष सर्वेषामित्यथाजवीत् । “जन्मनीतस्त्वतीयेऽहं  
बभूव वणिजा सुतः ॥ ५१५ ॥ सुवर्णदेजास्तस्मान् मृला भार्जराता गतः । कयोता प्राग्भवै कन्यामिमा हन्तु समुधतः ॥ ५१६ ॥ केनचिन्मुनिनाधीत-  
चतुर्गतिगतयुते । मुक्तवैरोऽन्न भूतैतत्स्नेहादेनामनीनय ॥ ५१७ ॥ तदुक्तं ते समाकण्य नाय कन्यामनीनयत् । दर्पेण किं तु संप्रीत्येत्ववधाय शम गताः ॥

यक्षकी सहायतासे युद्धमें करने योग्य कामको सिद्ध कर तथा युद्धको समाप्तकर वे दृढमित्र आदि सब लोग अपने नगर  
को लौट गये परंतु वनराज युद्ध करनेकी इच्छासे उन सबके पीछे ही गया । वनराजका ऐसा दुष्ट अभिप्राय देखकर  
यक्षने उसे जवर्दस्ती पकड़ लिया और शीघ्रही कुमार जीवंधर को समर्पण कर दिया ॥ ५०८-५०९ ॥ कुमार जीवंधर  
ने भी उसे बंधनमें डालकर रक्खा । तदनंतर उस श्रीमान् कुमार जीवंधरने सेना सहित सेनारम्य नामके सरोवरपर  
डेरा दिये । दैवयोगसे वहीपर उसने तेजके निधि ऐसे एक चारणामुनिके अकस्मात् दर्शन किये वे मुनिराज भिक्षाके लिये  
आ रहे थे इसलिये दर्शन करते ही जीवंधर उठा, विधि पूर्वक उनकी वंदना की पड़ेगाहन किया और बड़ी भक्तिसे उन्हें  
योग्य आहार दिया । उन मुनिराजको दान देनेसे जीवंधरको बडेभारी पुरायकी प्राप्ति हुई और उसीसे उसके यहां पंचा-  
श्रयोंकी वर्षा हुई ॥ ५१०-१२ ॥ उस पंचाश्रयरूप दानके फलको देखकर वनराजको लालि स्मरण होगया और उसने  
अपने पहिले जन्मके सब समाचार जान लिये ॥ ५१३ ॥ इत्थ हरिविक्रम भी वही भारी सेना लेकर युद्ध करनेके लिये  
आया परंतु यक्षने उसे भी पकड़कर कुमार जीवंधरको सोंप दिया ॥ ५१४ ॥ तदनंतर वनराज सब लोगोंके सामने अप-  
नी पहिले जन्मकी सब कथा इसप्रकार कहने लगा कि मैं इससे तीसरे जन्ममें एक सुवर्णतेज नामका वैश्यपुत्र था वहांसे  
मरकर मैं विजाव हुआ । उससमय इस श्रीचंद्राका जीव कवतूरी था इस लिये उसे भी मारनेके लिये मैंने उद्यम किया  
था ॥ ५१५-५१६ ॥ किसी एकसमय कोई मुनिराज चारोंगतिओंके परिभ्रमण का पाठ कर रहे थे उसे सुनकर मैंने  
सब बैर छोड़ दिया था और फिर मर कर यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं इसलिये पहिले जन्मके स्नेहसे ही मैंने इस कन्या  
का हरण किया था ॥ ५१७ ॥ वनराजकी ये सब बातें सुनकर सब लोग कहने लगे कि इसने अभिमानसे कन्याका

हुत हृदय शनैः । “किमेव तिष्ठति त्रिषति परिधत्स्व विभूषणं ॥ ४९६ ॥ अलंकृतं ह्यज धेहि मुक्ताहारं मनोहरं । ब्रूहि विसृज्यमस्मानि श्रीचन्द्रे सुखसक-  
 या ॥ ४९७ ॥ मनुष्यजन्म संयात दुःखेनानेकयोगिषु । दुर्लभ भोगवसुधया देतव्या नीनशो वृथा ॥ ४९८ ॥ वनराजत्परो नास्ति वरो रूपदिभिर्गुणैः ।  
 लोकैः स्मिहोचने सम्यक्त्वोन्मील्य न पश्यति ॥ ४९९ ॥ लभ्यगीरिवादिकेश भूषणभरणदुर्गमं । संपूर्णेन्दुभिर्वज्यात्ला वनराजमुपाश्रय ॥ ५०० ॥ प्राप्य  
 वृद्धामणि मूढ को नामात्रावप्यते ॥ ५०१ ॥ लभ्यप्रपन्नैर्वचनैरकदर्ययन् ॥ ५०२ ॥ तदुपद्रवमाकर्ण्य प्रच्छन्नैर्हरिविक्रम । विपत्तिर्निग्रहेणासा कन्यायाः  
 प्रतिपत्स्यते ॥ ५०३ ॥ कदाचिदिति सचिह्न निर्भर्त्स्य वनराजक । तस्या निजतनुजाभि सह वास चकार सः ॥ ५०४ ॥ दृढमित्रादन्य सर्वे तदा सप्रा-  
 प्य बांधवा । सशब्दवलसपद्मास्तस्थुरावेष्टय तत्पुंरं ॥ ५०५ ॥ युयुत्सवो विपश्चाथ जीवधरकुमारक । तद्दृष्ट्वा स्पृष्टकारुण्यो युद्ध बहुजनातङ्कत ॥ ५०६ ॥ प्राप्य  
 किमनेनेति यक्षेश स सुदर्शनमस्मरत् । अनुस्मरणमात्रेण यक्षोऽप्यानीय कन्यका ॥ ५०७ ॥ कुमागयापंगामास कस्याप्यकृतपीडन । ससाधयति कार्यणि  
 कर और हमारे साथ विश्वास पूर्वक सुखकी कथाएं कह ॥ ४९६-४९७ ॥ अनेक योगियोंमें परिश्रमण करते करते  
 बड़ी कठिनतासे यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया है इसलिये इसे भोगोपभोगोंके बिना व्यर्थ ही मत खो ॥ ४९८ ॥ इस सं-  
 सारमें रूप आदि गुणोंको धारण करनेवाला वनराजके सिवाय और कोई अच्छा घर नहीं है तेरे वे दोनों नेत्र भी अच्छे  
 हैं इसलिये इन्हें खोलकर तू क्यों नहीं देखती ॥ ४९९ ॥ जिसप्रकार भरतचक्रवर्तीके समीप लक्ष्मी रहती थी आभरण  
 जातिके वृत्तोंके समीप शोभा रहती है और संपूर्ण चंद्रमाके समीप चांदनी रहती है उसीप्रकार तू वनराजके समीप रह ॥ ५०० ॥  
 अरे चूड़ामणि रत्नको पाकर ऐसा कौन मूर्ख है जो उसका तिरस्कार करे” इसप्रकारके वचन तथा और भी भयदेनेवाले  
 वचनोंसे उन दूतियोंने उस श्रीचंद्राको खेदखिन्न किया ॥ ५०१ ॥ हरिविक्रमने गुप्त रीतिसे कन्याका यह सब उपद्रव  
 सुनकर विचार किया कि इस कन्याको खेदखिन्न किया ॥ ५०२ ॥ हरिविक्रमने गुप्त रीतिसे कन्याका यह सब उपद्रव  
 चसमझकर उसने वनराजको तो फटकार लगाई और उस श्रीचंद्राको अपनी पुत्रियोंमें रख दिया ॥ ५०३-५०४ ॥ इ-  
 थर दृढमित्र आदि सब भाई वंधुओंने अपनी सब सेना तैयार की और उस सेनाके द्वारा उस नगरको घेरकर आ डटे  
 ॥ ५०५ ॥ उधरसे भील लोग भी युद्धकी इच्छासे बाहर निकले यह सब देखकर जीवधरके हृदयमें करुणा आगई और  
 वह विचार करने लगा अनेक लोगोंका नाश करनेवाले इस युद्धसे क्या लाभ है यही सोचकर उसने सुदर्शन यक्षको स्म-  
 रण किया । स्मरण करते ही वह यक्ष आया और उसने विना किसीको पीडा दिये वह कन्या लाकर जीवधरके सुपुर्द  
 की सो ठीक ही है क्योंकि पापोंसे डरनेवाले लोग किसी न किसी उपायसे कार्योंके पीढ़कर ही लेते हैं ॥ ५०६-५०७ ॥







कदाचित्पुत्रप्रत्यासन्नमभूविलातरे । पाशे निरचिते पापं कपोते पतिते सति ॥ ४६२ ॥ स्वयं गृह समागम्य रतिवैगम्यनो मृति । ५७  
तत्सर्वानप्यबोधयत् ॥ ४६३ ॥ तद्वियोगमहादुःखपीडिता विगतायुका । श्रीचंद्रास्थ्याजनिष्ठियमधीष्ठा भवतो सुता ॥ ४६४ ॥ अथ पारावतद्वन्द्वं वीक्ष्य  
जन्मान्तं स्युते । व्यमुखात्रियमैतद्यत्कं सर्वं ममाब्रवीत् ॥ ४६५ ॥ इत्यथालम्बसुरदयां वचः श्रुत्वाकुलकुलौ । सुतापतिसमन्वेषणेच्छया पितरौ तदा  
४६५ ॥ तद्भवातरुतागत पटके लिखित स्फुट । रंगतेजोऽभिधानस्य नटवर्गे पीडयस ॥ ४६७ ॥ मदनादिलतायाश्च दानसमानपूर्वक । तत्कर्तव्यं समाख्या-  
य यत्नेन कुरुता करो ॥ ४६८ ॥ पुष्पकाख्ये वने तौ च 'कृतपट्टप्रसारणा । स्वयं नटिदुमारब्धे' नानाजनसमाकुले ॥ ४६९ ॥ पितास्थ्यास्तद्वन्द्वे रंतु गतस्तत्र सुनीश्वर ।  
ममाधिगुप्तमालोक्य परित्यज्जुतेवन्दन ॥ ४७० ॥ धर्मसद्भावमाकर्ण्य प्रपच्छ तदनतरं । पूज्य मस्तुत्रिकापूर्वभवभर्ता क वतते ॥ ४७१ ॥ कथ्यतामिति दिव्या-  
वधीक्षुणः सोऽप्यथ वदत् । स हेमामपुरे वैश्यतमयोऽद्याप्तोयौवनः ॥ ४७२ ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्य तदैव स महीपति । सनटः ससुहृत्सर्वपरीवारपरिकृत ॥

और मरकर यह श्रीचंद्रा नामकी आपकी अभीष्ट पुत्री हुई है ॥ ४६४ ॥ आज कवूतर कवूतरीके जोड़ेको देखकर इसे  
जातिस्मरण हुआ है और नियमसे इसीलिये मूर्छित हो गई है । ये सब समाचार उसने मुझसे स्पष्ट कहे हैं ॥ ४६५ ॥  
इसप्रकार अलरुंदुदरीके वचन सुनकर अपनी पुत्रीके पतिको दूढ़नेकी इच्छासे वे माता पिता बहुत ही व्याकुल हुए ॥ ४६६ ॥  
उन्होंने उस पुत्रीके पहिले भवका वृत्तात सब एक चित्रमें अच्छीतरह लिखाया तथा नटोंमें जो रंगतेज नामका चतुर नट  
था और मदनलता उसकी स्त्री थी उन्हें बुलाया, दान देकर उनका आदर सत्कार किया और फिर हाथमें वह चित्र दे-  
कर कहा कि यह काम बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ ४६७-६८ ॥ वे नट और नटी उस चित्रको लेकर पुष्पक वनमें गये  
वहाँपर उन्होने वह चित्र तो लटका दिया और स्वयं अनेक लोगोंके बीचमें नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ४६९ ॥ इधर  
श्रीचंद्राका पिता वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया वहाँपर उसने सुनिराज समाधिगुप्तके दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणाएं दीं,  
बंदना की, धर्मका स्वरूप सुना और फिर पूछा कि हे पूज्य ! कहिये आज मेरी पुत्रीके पहिले जन्मका पति कहाँ है इ-  
सके उत्तरमें दिव्य अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे सुनिराज कहने लगे कि वह एक वैश्यका पुत्र हुआ है और यौवन  
अवस्था धारणकर आज हेमाभ नगरमें उपस्थित है ॥ ४७०-४७२ ॥ सुनिराजकी यह बात सुनकर वह राजा नट मित्र,  
और सब परिवारके साथ वहाँ पहुंचा । वहाँपर जाकर उस नटने वह चित्र लटका दिया और मनोहर नृत्य करने लगा  
उस नृत्यको देखनेकेलिये नगरके सब लोग आये और सबके साथमें नंदाढ्य भी आया ॥ ४७३-४७४ ॥ उस चित्र  
पटके देखनेसे नंदाढ्यको अकस्मात जातिस्मरण हो आया और मूर्छा आगई तब जीवंधरने अनेक विशेष शीतो-

जन्मति । देशे हेमगढे राजपुरे वैश्यकुलाग्रणीः ॥ ४५० ॥ रत्नतेजा श्रिया तस्य रत्नमाला तयो मुता । सुहृद्यनुपमा नात्रा नाम्नैव न गुणैरपि ॥ ४५१ ॥  
तस्मिन्नेव पुरे वंशे विशा कनकतेजस । तनूजश्वद्रमालायामभवद् दुर्बिधो विधीः ॥ ४५२ ॥ सुवर्णतेजा नामाभूत्तस्मै प्राक्परिभाषिता । पुनस्तदवमानेन त-  
न्मातापितरौ किल ॥ ४५३ ॥ समाश्रण्यतां वैश्यपुत्राय मणिकारिणे । गुणमित्राय तत्रेय स्लोक कालमगात्सुख ॥ ४५४ ॥ कदाचिज्जलयत्रायाममोनिधि-  
नदीमुखात् । निगमे विषमावर्ते गुणमित्रे यति गते ॥ ४५५ ॥ खय चेत्वा प्रदेशं तं मृत्युमेवा समाश्रयत् । ततो राजपुरे गंधोत्कटैर्वयसुधालये ॥ ४५६ ॥  
पति पवनवेगाख्यो रतिवेगेयमप्यभूत् । पारावतकुलद्वंद्वं तद्दालाक्षरमिक्षणे ॥ ४५७ ॥ स्वय नैत्याक्षराभ्यान्-गृहिणो आवकवत् । तयोर्द्विप्रसंशतोपयोगं  
जन्मांतरागतात् ॥ ४५८ ॥ स्नेहादन्धोऽन्यससक्तसुख तत्रावसाच्चिर । सुवर्णतेजास्तद्वद्वैरण पुलंदशतां ॥ ४५९ ॥ मृदा सप्राप्य तद् दृष्ट्वा दृष्ट्वा कापि  
यच्छया । अग्रहीदतिवेगा ता राहुर्मूर्तिमिवैदवी ॥ ४६० ॥ जातक्रोपः क्रपोतोऽपु नखपक्षप्रनाडनैः । बुडधातंश्च हत्व शु निजपत्नीमयूचत् ॥ ४६१ ॥  
किंसी अन्ये वैश्यपुत्रको देदी । वहांपर उन दोनोका थोडा समय सुखसे व्यतीत हुआ ॥ ४६२-४६४ ॥ किसी एकस-  
मय वह गुणमित्र जहाजमें बैठकर समुद्रमें गया था परंतु समुद्रमें किसी नदीके मिलनेकी जगह बड़े विषम भंवर पड़ रहे  
थे उसी मार्गसे निकलते समय वह वहीं डूबकर मर गया ॥ ४६५ ॥ वह अनुपमा उसकी स्त्री भी यह खबर सुनकर वहीं  
जाकर डूब पड़ी । इसप्रकार वे दोनों मरकर गुणमित्रका जीव उसी राजपुर नगरके गंधोत्कट वैश्यके घर पवनवेग नामका  
कवूतर हुआ और वह अनुपमाका जीव उसी राजपुर नगरके गंधोत्कट वैश्यके घर पवनवेग नामका  
भ्यास करते थे उन्हें देखकर उन दोनों कवूतर कवूतरिने भी अक्षरोंका अभ्यास करलिया और चित्तको अत्यंत शातकर  
आवकके व्रत धारण किये । जन्मांतरसे चले आए स्नेहके कारण परस्पर सुख भोगते हुए वे दोनों बहुत दिनतक वहीं  
रहे । सुवर्णतेजको अनुपमा नहीं मिलती थी इसलिये वह उन दोनोंसे वंग करने लगा था और आयुके अंतमें मरकर वि-  
लाव हुआ था । किसी एक दिन उसने उन दोनों कवूतर कवूतरकी देखा और जिसप्रकार चंद्रमाकी मूर्तिको राहु ग्रस  
लेता है उसीप्रकार उसने अपनी इच्छानुसार रतिवेगाको पकड़लिया ॥ ४६६-४६८ ॥ यह देखकर कवूतरको क्रोध  
आया तथा उसने पंख और पंजोंकी ताडनासे तथा चोंचोंकी घातसे विलावको चोटें पहुंचाकर शीघ्र ही अपनी कवूतरी  
छुड़ा ली ॥ ४६९ ॥ किसी एक समय उसी नगरके समीपवर्ती पर्वतकी गुफाके समीप किसी पापी भीलने जाल डाला  
और उसमें पवनवेग कवूतरको फंसा लिया । यह देखकर रतिवेगा कवूतरी घर आई और उसने अपने पतिके मरनेके  
समाचार चोंचसे लिखकर सबको समझा दिये ॥ ४६२-४६३ ॥ तदनंतर उसके वियोगसे वह कवूतरी बहुत दुखी हुई

बुद्धिगणने । वीक्ष्य पारावर्तद्वंदं स्वैरं कीदृशदृच्छंया ॥ ४४० ॥ आतजास्तिस्त्रिभूच्छां सहसा समुपागमत् । तदशालोकनव्याकुलीकृतास्तस्मिन्निपमा ॥ ४४१ ॥  
कुशलाब्धनोक्षीरस्त्रीतलाग्नौनिषेधितां । व्यजनापादिताद्वादिपवनाद्वासिताशया ॥ ४४२ ॥ ता संबोध्य सुखालापैर्विभावितविबोधना । विदधु किं न कुर्वन्ति  
कृच्छ्रेषु सुहृदो हिता ॥ ४४३ ॥ श्रुत्वैतत्पितरौ कन्याप्रियामलकसुंदरी । पुत्री तिलकशब्ददिचंद्रिकाया विमूर्च्छिता ॥ ४४४ ॥ कन्या गवेपयेवेति तवरा अगदतु  
शुचा । सापि सप्राप्य संलापनिपुणा कन्यका मिथः ॥ ४४५ ॥ भ्रातरिके वदतसे किं मूर्च्छाकारणं मम । इति पृष्ठवती मूर्च्छाहेतु चेच्छ्रेतुमिच्छसि ॥  
४४६ ॥ न हस्त्यकपनीय मे तव प्राणाधिकप्रिये । शृणु चेत् समाधायैलसां सन्मगनुस्मृति ॥ ४४७ ॥ स्वपूर्वभवसवधमर्जय प्रलापीपदत् । तत्सर्वमवधा-  
यैशु सुवीरलकसुंदरी ॥ ४४८ ॥ तदैवागत्य तन्मूर्च्छाकारणं प्राग्यथाश्रुतं । प्रसथमपुरालोपस्तरेवममाधत् ॥ ४४९ ॥ “इतस्तुतीये कन्येया बभूव किल

मिला हुआ शीतल जल छिड़का और पंखेसे अच्छी हवा की जिससे वह सावधान हुई तब भीठे वचनोंसे वह सम्मोहित ।  
सो ठीक ही है क्योंकि आपत्ति पड़नेपर मित्रलोग क्या क्या हित नहीं करते हैं ॥ ४४०-४४३ ॥ यह समाचार सुनकर  
उसके माता पिताने तिलकचंद्राकी पुत्री और श्रीचंद्राकी सखी अलकसुंदरीसे कहा कि तू जाकर कन्याके शोकका कारण  
तलाशकर । राजारानीकी यह बात सुनकर वातचीत करनेमें अत्यंत निपुण ऐसी वह अलकसुंदरी भी श्रीचंद्राके रामीय प-  
हुंची और परस्पर वातचीत करनेपर पूछने लगी कि है भ्रातरिके ( पूज्ये ) मुझे वतला-तेरी मूर्च्छा आनेका कारण क्या  
है ? इसके उत्तरमें श्रीचंद्राने कहा कि है प्राणोसे अधिक प्यारी सखी ! यदि तू मेरी मूर्च्छाका कारण सुनना चाहती है तो  
सुन, क्योंकि तेरे लिये न कहने योग्य मेरी कुछ बात नहीं है । तू चित्त लगाकर सुन इसप्रकार उसने जो जो स्मरण हुआ  
था वह पहिले भवका सब संबंध ज्योंका त्यों अच्छीतरह कह सुनाया । उस सबको सुनकर वह बुद्धिमती अलकसुंदरी  
उसीसमय उसके माता पिताके समीप आई और उसने उसकी मूर्च्छाका कारण जो कुछ पहिले सुना था वह सब स्पष्ट  
रीतिसे मथुर शब्दोंमें नीचे लिखे अनुसार उन दोनोंको कह सुनाया ॥ ४४४-४४६ ॥ वह कहने लगी कि यह कन्या  
इस भवसे पहिले तीसरे जन्ममें हेमांगदेशके राजपुर नगरमें वैश्यकुलमें श्रेष्ठ ऐसे रत्नतेजकी स्त्री रत्नमालासे अनुपमा ना-  
मकी सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या केवल नामसे ही अनुपमा नहीं थी किंतु गुणोंसे भी अनुपमा थी ॥ ४४०-४४१ ॥  
उसी नगरमें वैश्यवंशमें उत्पन्न हुए कनकतेजकी स्त्री चंद्रमालासे सुवर्णतेज नामका पुत्र हुआ था जो कि बहुत ही बुद्धि-  
हीन और भाग्यहीन था । रत्नतेजने पहिले वह अनुपमा कन्या सुवर्णतेजको देनी कही थी परंतु उसे मूर्ख और भाग्यहीन  
देखकर उसका अपमानकर अर्थात् उसे न दे कर उन्होंने वह कन्या जवाहरातका काम जाननेवाले गुणमित्र नामके

॥ ४३२ ॥ तत्र पूर्वकृतं पुण्य कुमारोऽनुभवन् स्थित । इतो जीवधराभ्युर्णमप्रकाशं सुमुमुक्षुः ॥ ४३३ ॥ गङ्गागमनमालोक्य नन्दाढयेन कदाचन ।  
ताविष्टिता नाम्ना शय्या स्मृत्तरंगिणी । तत्राश्रज तव स्थली सख्यात्वं विधिपूर्वक ॥ ४३४ ॥ तथा प्राप्नोषि सतोषातस्वमीममिति सुदं । ४३५ ॥ देव-  
प्रभपूर्वकं तत्र तत्त्वतु । नाधिक प्रीत्यैवाच्यार्थतमोदर्थसंगमात् ॥ ४३६ ॥ राट्टेऽस्मिन्नेव विख्याते सुजनेऽस्ति परं पुरं । नात्रा नगरशोभाख्यं दृष्टमि-  
त्रस्य भूपतेः ॥ ४३७ ॥ आता तस्य सुमित्राख्यो राक्षी तस्य वसुधरा । रूपविज्ञानसंपन्ना श्रीचन्द्रा तनया तयो ॥ ४३८ ॥ आपन्नयौवनरंभा सा कदाचि-  
कहते हैं गुणामित्र बहुमित्र, सुमित्र, और धनमित्र तथा और भी कितने ही जीवधरके साले थे उन सबको जीवधरने सब-  
तरहके विक्षानमें निपुण बना दिया था इसप्रकार वह जीवधर कुमार बहुत दिनतक पहिले किये हुए पुरयकर्मका अनु-  
भव करता हुआ वहीं रहता था । इधर गंधर्वदत्ता वार वार छिपकर जीवधरके समीप आती जाती थी उसे देखकर किसी  
एक दिन नन्दाढ्यने पूछा कि वनला तू छिपकर कहाँ जाती है और किस तरह जाती है क्योंकि जहाँ तू जाती है वहाँ  
में भी जाना चाहता हूँ इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने हँसकर कहा कि जहाँ मैं जाती हूँ यदि तू वहाँ जाना चाहता है तो  
स्मृतरंगिणी नामकी एक देवाधिष्ठित शय्या है उसपर तू अपने बड़े भाईको स्मरणकर विधिपूर्वक सो जाना ॥ ४३५ ॥ इसतरह  
तू संतोष पूर्वक अपने बड़े भाईके पास पहुंच जायगा । गंधर्वदत्ताकी यह बात सुनकर वह नन्दाढ्यकुमार रात्रिमें शय्या पर  
सो गया और भोगिनी विद्याने शय्या समेत उठाकर उसे उसके बड़े भाई जीवधरके समीप पहुंचा दिया । तदनंतर जीव-  
धर कुमार और नन्दाढ्य दोनों एक दूसरेको देखकर बड़ी प्रसन्नतासे मिले और परस्पर कुशलजेम पूछकर वहीं पर रहने  
लगे सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें प्रेम करनेवाले दो भाइयोंके समागमसे और अधिक प्रेम करनेवाली कोई चीज नहीं  
है ॥ ४३५-४३७ ॥ अथानंतर इसी प्रसिद्ध सुजन देशमें एक शोभा नामका नगर है उसमें राजा दृढमित्र राज्य करता था उसके  
भाईका नाम सुमित्र था और उसकी वसुधरा नामकी रानीसे रूप और विज्ञानसे सुशोभित ऐसी श्रीचंद्रा नामकी कन्या थी ॥  
४३८-४३९ ॥ उसकी यौवन अवस्था प्रारंभ हो रही थी । किसी एक दिन उसके घरके आंगनमें कवुतर कवुतरी अपनी इच्छानु-  
सार स्वतंत्रतापूर्वक क्रीडा कर रहे थे उन्हें देखकर श्रीचंद्राको अकस्मात् जातिस्मरण हुआ और वह मुर्छित हो गई । उसे  
मुर्छित देखकर उसके समीप रहनेवाली सखियां व्याकुल हो गई और उनमें जो चतुर थीं उन्होंने चंदन और उसीरसे

दिनै प्राणिन तत्पुत्रात् ॥ ४१९ ॥ चापवाणधरो गत्या विषये सुजनाहुये । हेमामनगर प्राप्त कुमार पुण्यसाधनः ॥ ४२० ॥ तत्पतिर्दुर्मित्राद्यो नस्मिन्  
तस्य बलमा । हेमामाख्या तयो पुत्री तज्जन्मन्येव केनचित् ॥ ४२१ ॥ कृत मिलनमादेशो मनोहरवनांतरे । खल्वरिकाया धानुष्कव्यायामे येन चोदितः ॥  
४२२ ॥ लक्ष्याभ्युणोद्विहस्त सन् शरः पश्चात्समेष्यति । बलमा तस्य बालेय भवितेति सुलक्षणा ॥ ४२३ ॥ धनुर्विद्याविद सर्वे तददिशश्च तेस्तदा । तथा गु-  
णयितु युक्ता समभूवस्तदाशयाः ॥ ४२४ ॥ जीवंधरकुमारोऽपि तत्प्रदेवायुषागमत् । धानुष्कास्तं विलोक्यादुरादेशोक्तधनुःश्रमः ॥ ४२५ ॥ किमगास्ती-  
ति सोऽप्याह किंचिदस्तीति तैरिद । विध्यता लक्षमित्युक्तः सज्जीकृतधनुःशरः ॥ ४२६ ॥ आदाय विद्वर्वाहसमप्राप्यैव न्यवर्तते । त तदालोक्य तत्रस्था  
महीपतिमबोधयन् ॥ ४२७ ॥ श्रुयमाणो हि मे वक्षीविशेषधरणेऽसजत् । इति क्षितीश्वर प्रीतो विवाहविधिना मुता ॥ ४२८ ॥ अश्राणयद्विभूल्यास्मे त-  
दिद पुण्यसुच्यते । आदिमो गुणमित्रोऽन्यो बहुमित्रस्ततः पर ॥ ४२९ ॥ सुमित्रो धनमित्रोऽन्यस्तयान्ये चास्य मैमुनाः । तांस्तान् सर्वान्सविज्ञानकुशलान्विदय

गंधर्वदत्ता अपनी विद्यासे जीवंधरके समीप आई और जीवंधरको सुखी देखकर छिपकर ही फिर अपने राजपुर नगरमें  
आगई सो ठीक ही है क्योंकि प्यारोंको देखकर उत्सव मानना ही प्रेम करनेवालोंका प्रेम कहलाता है । तदनंतर कितने  
ही दिनोंके बाद पहिलेके समान उसनगरसे भी वह पुरययान् कुमार छिपकर निकला और धनुषबाण लेकर मुजन नामके  
देशके हेमाभ नामके नगरमें जा पहुंचा ॥ ४१७—४२० ॥ वहाँके राजाका नाम दृढमित्र था और उसकी रानी नलिना-  
से हेमाभा नामकी पुत्री हुई थी । उसके जन्म होते ही किसी निमित्तज्ञानीने कहा था कि मनोहर नामके जन्ममें  
जो आयुधशाला है उसमें धनुषविद्याके व्यायाममें जो कोई पुरुष ठीक निशानेपर बाण मारेगा और वह बाण निशानेको  
मारकर पीछे वापिस आजायगा वह पुरुष इस सुलक्षणा कन्याका पति होगा ॥ ४२१-४२३ ॥ उस आदेशको सुनकर  
उससमय धनुषविद्याको जाननेवाले सब लोग उस कन्याके लोभसे उसीप्रकारका अभ्यास करनेमें तत्पर होरहे थे ॥ ४२४ ॥  
चलता चलता जीवंधर कुमार भी वहाँ पर जा पहुंचा उस देखकर धानुष्क लोग कहने लगे कि हे भाई राजाकी ऐसी  
आज्ञा है क्या तुमने कभी धनुष चलानेका परिश्रम किया है? उत्तरमें जीवंधरने कहा कि हाँ! कुछ किया है तब उन लोगोंने कहा  
कि अच्छा तो इस निशानको मारो । तब जीवंधरने धनुष बाण तैयार कर वह निशाना मारा और वह छोटा हुआ  
बाण उस निशानेके समीप पहुंचकर लोंट आया इस बातको देखकर वहाँ खड़े हुये लोगोंने राजाको खबर दी । यह ख-  
बर सुनते ही राजा कहने लगा कि जिस खास बेलको ढूढ़ रहे थे वही परसे आ लगी । राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस-  
ने बड़ी विधित्तिके साथ विवाहकी विधिपूर्वक वह कन्या जीवंधर कुमारको दे दी सो ठीक ही है क्योंकि पुराय इसीको



भारवं । ततोपुरकवाटानामुद्वटनममृतस्वय ॥ ४०८ ॥ तद्विलोक्य समुत्पन्नमपि आनविशुद्धिमाकं । तत्सरोवरसमृत्प्रसववहुमिजिन ॥ ४०९ ॥ अग्न्य-  
 द्याच्यैर्मुदा क्यप्रमस्तोष्ठैश्चरमिदुवै । सुता तत्र सुभाख्यश्रद्धिनो निवृत्तेष्व सा ॥ ४१० ॥ साक्षादस्मीदिवक्षणाभूमात्रा क्षेमसुंदरी । तद्भविभर्तृसंनिध्ये  
 चंपकप्रसवादि ॥ ४११ ॥ समादितपुरा सर्व मुनीशो विनयधरः । तत्रस्थास्तत्परीक्षार्थं नियुक्तुरुवास्ता ॥ ४१२ ॥ जीवधरकुमारालोकनाब्जातसम-  
 दा । सफलोऽस्मन्प्रियोगोऽयमिति तत्क्षणमेव ते ॥ ४१३ ॥ न्यबोधयत्समस्त तत्संप्राप्य स्वामिनः निज । सोऽपि सतुष्य नासत्य मुनीनां जातुचिद्वचः ॥  
 ४१४ ॥ इति तस्मै सुता योग्या विधिना श्रीमतेऽवित । तथा श्राम्ये मुवा राजपुरे निवसते वृष ॥ ४१५ ॥ सत्यधरोऽददेतद्वरेतास्माद्य वे । योग्या-  
 स्तात्त्व गृह्णाणेति भूयस्तेनास्मिमावितः ॥ ४१६ ॥ गृहीत्वा सुखं सतुष्टस्तानुरं सुखमावसत । एव गच्छति कालेऽस्य कदाचित्रिजविषया ॥ ४१७ ॥ गण-  
 वेदता संप्राप्य जीवधरकुमारकं । तं सुखासीनमालोक्य केनाप्यविवर्तित पुनः ॥ ४१८ ॥ आयाद्वाजपुरं प्रीति प्रीतानां हि प्रियोत्सवः । ततः कतिपयैरेव  
 जलं पुष्पं ये सब स्पृष्ट रीतिसे खिल गये थे और उन पर संध्रमके साथ आये हुए अमर शब्द करने लगे थे तथा जि-  
 नालयके बड़े दरवाजेके किवाड अपने आप खुल गये थे ॥ ४०७-४०८ ॥ इन सब बातोंको देखकर उसकी गाढ भक्ति  
 और प्रगट हुई उसने उसी सरोवरमें उत्पन्न हुए अनेक फूलोंसे भगवानकी पूजा की तथा अग्यौसे भरे हुए अनेक इष्ट  
 स्तोत्रोंसे निश्चल होकर भगवानकी स्तुति की उस नगरमें श्रेष्ठ सुभद्रकी निवृत्ति नामकी स्त्रीसे एक नेमसुंदरी नामकी क-  
 न्या थी जो कि साक्षात् लक्ष्मीके समान सुशोभित थी । किसी एक समय मुनिराज विनयधरने कहा था कि इस नेम  
 सुंदरीके पतिके आने पर चंपक वृक्ष फूल जायगा किवाड खुल जायंगे आदि ऊपर लिखे हुए सब चिन्ह बतलाए थे इस  
 लिए उस श्रेष्ठकी ओरसे उसकी परीक्षाके लिए बहुतसे पुरुष नियुक्त थे वे जीवधर कुमारको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए  
 थे और कहने लगे थे कि आज हम लोगोंका यहां नियुक्त होना सफल हो गया । वे लोग उसी समय दौड़े और अपने  
 स्वामीके पास जाकर उन्होंने वहांका सब समाचार निवेदन किया वह श्रेष्ठ भी इस समाचारसे बहुत संतुष्ट हुआ और  
 मनमें कहने लगा कि मुनियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते हैं । इस प्रकार प्रसन्न होकर उसने उस श्रीमान् जीवधर  
 कुमारको विधिपूर्वक अपनी योग्य कन्या समर्पण की । तदनंतर वह श्रेष्ठ जीवधरसे निवेदन करने लगा कि पहिले जब मैं  
 राजपुर नगरमें रहता था तब राजा सत्यधरने मुझे यह धनुष दिया था और ये बाण दिये थे वे आपके ही योग्य हैं इसलिये  
 इन्हें आप ही स्वीकार कीजिये इस प्रकार कह वह धनुष और बाण भी समर्पण करदिये ॥ ४०९-४१६ ॥ जीवधर  
 सबको लेकर संतुष्ट हुआ और उसी नगरमें सुखसे रहने लगा । इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर किसी एक समय

ऽपि तद् द्वापये किंविन्मयेति प्रत्याभाषत । तद्वच्चक्षुःश्रुतिसंश्रुष्टे नयति स्म त मुदा ॥ ३९७ ॥ सोऽपि यक्षमनुस्तस्य मणिमन्त्रविशारदः । अभिमन्त्राक-  
रोद्धीतविषयेना नृपात्मजा ॥ ३९८ ॥ जातदोषी नृपस्तस्य सत्त्वच्छायादिलक्षणे । अवश्य राजवशोऽयमिति निश्चिद्य पुत्रिका ॥ ३९९ ॥ अर्धराज्यं च  
पूर्वोक्त तस्मै वितरति स्म सः । ततः स लोकपालादिकन्यकाभ्रातृभिः सम ॥ ४०० ॥ द्वात्रिंशता चिरं रेमे तद्वर्णनुरजित । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा  
दैवप्रचोदित ॥ ४०१ ॥ कदाचिन्निशि केनापि जनेनानुपलक्षित । गत्वा गन्धुतिका काचित्क्षेमाख्याविषये पुरं ॥ ४०२ ॥ क्षेमाह्वयमवाप्यास्य वने बाधे  
मनोरमे । सहस्रकूटे राजत जिनालयमलोकत ॥ ४०३ ॥ लोकनानतर नत्वा कृताञ्जलिपुट पुनः ॥ ४०४ ॥ वि परीत्य स्तुतिं कर्तुं विधिनातन्धवास्तदा ॥ ४०५ ॥ चिकित्सिता इव  
सहस्रवारान्नो राग व्यक्त बहिरिवार्षेयन । चपकानेकह प्रादुरासीदको निजोद्भूतै ॥ ४०६ ॥ कोकिलाद्य पुरा मूकीभूतास्तथानभेषजैः । चिकित्सिता इव  
श्रव्यमकूजन्मधुरस्वन ॥ ४०७ ॥ तज्जनभवनाभ्याग्धैर्वितिन्यच्छाब्दुसमृते । स्फाटिकवर्णैर्वा व्यक्तसन् सरसि स्फुट ॥ ४०८ ॥ सर्वाणि जलपुष्पाणि मन्त्रमध्वज-

भी कहा कि हां थोडा बहुत जानता हूं । जीवंधरकी यह बात सुनकर वे लोग बड़े संतुष्ट हुए और प्रसन्न होकर जीवंधर  
को राजा धनपतिके पास ले गये ॥ ३९७ ॥ मणि और मंत्रोंके जाननेमें चतुर ऐसे उस जीवंधरने भी यक्षका स्मरण  
किया और फिर उस राजपुत्रीको मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर विपरहित कर दिया ॥ ३९८ ॥ इससे राजा धनपतिको बहुत  
संतोष हुआ और उसने तेज तथा छाया आदि लक्षणांसे निश्चय कर लिया कि यह अवश्य ही राजवंशमें उत्पन्न हुआ  
है इसलिये उसने अपनी पुत्री और पहिले कहा हुआ आधा राज्य उसे समर्पण कर दिया । तदनंतर लोकपाल आदि  
पद्मोत्तमाके वत्सीस भाइयोंके विनय आदि गुणोंसे प्रसन्न होकर कुमार जीवंधर बहुत दिन तक उन्हींके साथ क्रीडा करने  
लगा । वह कुमार थोड़े दिन तक वहां रह कर भाग्यके द्वारा प्रेरणा किया हुआ किसी एक दिन रात्रिमें सब लोगोंसे  
छिप कर वहांसे चल दिया । थोड़े ही कोस चल कर वह क्षेम नामके देशमें क्षेम नामके नगरमें पहुंचा और वहांके मनो-  
हर नामके वाहरके वनमें उसने एक हजार शिखरोंसे सुशोभित एक जिनालय देखा ॥ ३९९-४०३ ॥ जिनालयको दे-  
खतेही उसने नमस्कार किया हाथ जोड़े तीन प्रदक्षिणाएं दी और उसी समय उसने विधि पूर्वक स्तुति करना प्रारंभ  
किया ॥ ४०४ ॥ उसी समय अकस्मात् एक चंपक वृक्ष मानों अपना प्रगट अनुराग बाहर समर्पण करता हुआ फूलोंसे  
सुशोभित हो गया ॥ ४०५ ॥ जो कोयले पहिले गूंगी सरिसी हो रही थीं वे उस कुमारके आने रूप औपधिसे इलाज  
की हुईके समान अच्छी होकर सुनने योग्य मधुर शब्द बोलने लगीं ॥ ४०६ ॥ उस जिनालयके भीतर जो स्वच्छ जल  
से भरा हुआ सरोवर था जो कि ऐसा जान पड़ता था मानों स्फटिक पत्थरसे चू चू कर ही भर गया हो उसमें जितने

कुमारस्य न मीरस्ति तस्माद् भीता का मात्रा योः । समक्षेतीति तान् सर्वान् प्रक्षान्तिं प्रापयत्युभौ ॥ ३८६ ॥ जीवधरोऽपि यक्षस्य वसतौ सुमिरं सुखं । स्थिता जिगमिषा स्वस्याङ्गापययक्षसिंहितैः ॥ ३८७ ॥ तदभिप्रायमालक्ष्य यक्षो वत्सा स्फुरत्प्रभा । साषनीमीरसितार्याना मुद्रिका कामरूपिणी ॥ ३८८ ॥ तद्वदेवतीर्थेन न मीरस्य कुतश्चन । इति किंचिदनुव्रज्य तमसुंचकृताचन ॥ ३८९ ॥ कुमारोऽपि ततः किंचिद्वलातरमुपेयिवान् । पुर चक्षभनामान सज्योस्त वा युधागृहे ॥ ३९० ॥ दृपो धनपतिस्तस्य पालको लोकपालवत् । देवी तिलोत्तमा तस्य तयोः पद्मोत्तमा सुता ॥ ३९१ ॥ सा विहर्तुं वन याता दद्या दुष्टाहिना तदा । य इमा निर्दोषा कुथान्मणिः स्रौपयादिभिः ॥ ३९२ ॥ मयेय कन्यका तस्मै सार्धराब्ध्या प्रदास्यते । घोषणामिति भूपाल पुरे तस्मिन्भीकृत ॥ ३९३ ॥ फलिवैयस्तदाकर्ण्य प्रागव्यादिष्टमीदृशः । मुनिनादितानाम्नेति कन्यालोभाक्किंचित्सु ॥ ३९४ ॥ सप्राप्य बह्वौ नोपसहर्तुं तदश्ववृन् । राजाङ्गया पुनर्वैयमन्वेष्टुं परिचारका ॥ ३९५ ॥ धावतो दैवसयोगालुकुमारम्बलोक्य ते । किमस्ति विषविज्ञानमित्यष्टुच्छत्तमाकुला ॥ ३९६ ॥ सोऽदृष्ट्वा प्रगट की ॥ ३८७ ॥ यक्षने जीवंधरका अभिप्राय जानकर उसे जिसकी कांति दैदीप्यमान है जो इष्ट पदार्थोंको लेकर वह जीवंधर उस पर्वतसे उतरा, उसको किसी तरहका डर नहीं था वह यक्ष कुछ दूर तक तो उसके साथ गया और फिर उसकी पूजा कर उसे विदा किया ॥ ३८८ ॥ कुमार जीवंधर वहांसे कुछ दूर चल कर चूनासे पुते हुए घरों से मानों चांदनीके समान शोभायमान ऐसे चद्राभ नामके नगरमें पहुंचा ॥ ३८९ ॥ वहांके राजाका नाम धनपति था जो कि लोकपालके समान प्रजाका पालन करता था उसके तिलोत्तमा नामकी रानी थी और पद्मोत्तमा नामकी पुत्री थी ॥ ३९० ॥ इसलिये उसके पिता राजा धनपतिने अपने नगरमें घोषणा करदी थी कि जो कोई मणि मंत्र औषधि आदिकसे इस कन्याका विप दूर करेगा उसे मैं यह कन्या और आया राज्य दूंगा ॥ ३९१-३९३ ॥ आदित्य नामके मुनिराजने पहिले ही यह बात कह रक्खी थी इसलिये राजाकी यह घोषणाको सुनकर सांपके काटेका इलाज करनेवाले बहुतसे वैद्य लोग कन्याके लोभसे चिकित्सा ( इलाज ) करनेको आये परंतु उस विषको कोई भी दूर न कर सका । तदनंतर राजाकी आज्ञासे बहुतसे सेवक लोग वैद्यको ढूंढनेके लिये दौड़े । दैवयोगसे कितने ही सेवकोंने कुमार जीवंधरको देखकर उससे भी व्याकुलताके साथ पूछा कि क्या आपको विष उतारनेका कुछ ज्ञान है ॥ ३९४-३९६ ॥ इसके उत्तरमें जीवंधरने

पारसमनुजसोढु मरुपगजबाधन ॥ ३७४ ॥ इत्या जीवधरस्तस्य परिभृति व्यधादधीः । पथ्यामलकुशुआदिदानमहणकरैण ॥ ३७५ ॥ निजजालानुरागद्वयो विमुख सुष्ठु गर्वितः । राजपुत्रोन्मिते वृत्ते निपक्वोय वरोदजः ॥ ३७६ ॥ कृतांतवदत सद्यः प्रापयेम कुचेष्टितं । इत्याह्यबटदटाह्य मुख्य तत्पुनरक्षिणा ॥ ३७७ ॥ स सनद्वल्लोऽधावदमिजीवधरं कुधा । स कुमारोऽपि तद्वह्मला ससहायो युधुसया ॥ ३७८ ॥ तमप्येत्य तंदबास्मै ददौ भगमभयुरः । पुनः कुपितवान्काष्ठागारिक स्वबल बहु ॥ ३७९ ॥ ग्राहिणोस निरीक्ष्याऽन्वितो जीवधरो कृधा । शुद्रप्राणिविधातेन किमनेन दुरात्मकं ॥ ३८० ॥ काष्ठागा रिकमेवैनमुपायैः प्रशम नये । इति यक्षः निज मित्रमस्मरत्तोऽप्युपागत ॥ ३८१ ॥ ज्ञातजीवधराकृतस्तत्सर्वं शंतिमानयत् । ततो विजयनिर्याह्य समा- रोध्य गज धिप ॥ ३८२ ॥ कुमारं तदनुज्ञानात्स्वावासमनयत्क्षुह्वर । स्वगेहदर्शनं नाम सद्भाष सुहृदा स हि ॥ ३८३ ॥ सहाया नांश्चवाबास्य प्रहृतेन- सिद्धकाः । पवनान्योलितालोलवालपल्लवलीलया ॥ ३८४ ॥ अकम्पिषत् सर्वेऽपि स्वान्स्वर्धनुर्माषाकका । गन्वदत्ता तयाननिमित्तज्ञा निराकुला ॥ ३८५ ॥

खोटी चेष्टा करनेवाले इसको मैं अभी यमराजके मुहमें पहुँचाऊँगा इसप्रकार उसने नगरकी रक्षा करनेवालोंमें प्रधान ऐसे चंडदंड नामके कोतवालको उसके मारनेकी आज्ञा दी ३७३-३७७ ॥ वह कोतवाल भी क्रोधित होकर अपनी सब सेना लेकर जीवधरके सामने गया परंतु नाश न होने वाला ( चरमशरीरी ) कुमार जीवधर भी यह सब समाचार जान- कर युद्ध करनेकी इच्छासे अपने सब साथियोंको लेकर उस कोतवालके सामने गया और उसीसमय उस कोतवालकी जीवधरने भारी हार दी । इससे काष्ठांगार और भी क्रोधित हुआ और उसने अपनी बहुतसी सेना उसपर भेजी उस सेनाको देखकर जीवधरके चित्तमें दया उत्पन्न हुई और वह विचार करने लगा कि व्यर्थ ही इन छुद्र प्राणियोंके मारने से क्या लाभ है इस छुद्र काष्ठांगारको ही अनेक उपायोंसे शांत करना चाहिये । इसप्रकार सोचविचारकर उसने अपने मित्र यक्षको स्मरण किया और स्मरण करते ही वह भी तुरंत ही आ पहुँचा ॥ ३७८-३८१ ॥ उस यक्षने जीवधरका अभिप्राय जानकर सब उपद्रव शांत कर दिया । तदनंतर वह यक्ष कुमारकी सम्पत्तिके अनुसार कुमारको विजयगिरि नाम के गजराजपर सवार कराकर अपने घर ले गया सो ठीक ही है क्योंकि अपना घर दिखाना मित्रोंका सद्भाव सदा ही रहता है ॥ ३८२-३८३ ॥ जीवधरकी प्रवृत्तिको न जाननेवाले उसके साथी और भारी बंधु लोग वायुसे हिलाये हुए चंचल छोट्टे पत्थोंके समान कंपने लगे और वे सब अपने आपको संभाल न सके परंतु गंधर्वदत्ता जीवधरके जानेका का- रण जानती थी इसलिये वह घबड़ाई नहीं और निराकुल होकर उस बुद्धिमतीने सबको समझाया कि 'कुमार को किसी बातका डर नहीं है तुम लोग भय मत करो कुमार शीघ्रही आवेंगे' इसप्रकार समझाकर उसने सबको शांत किया ॥ ३८४-

स्वया ॥ ३६४ ॥ कुमारैति तस्यैव स्वं धामैव जगाम सः । अकारणोपकाराणामवश्यभावि तत्फलं ॥ ३६५ ॥ चिरं बने विहस्यैवं निवृत्ता गंधवारण । तन्महीशस्य नाम्नाशानिवेगोऽजनि घोषतः ॥ ३६६ ॥ समुद्रांतोऽतिवीर्योऽन्यैरथावत्पुंक्ष्वन प्रति । खड्गसुरमर्क्याः स कुमारो विलोक्य त ॥ ३६७ ॥ विनयोनयनिर्गतक्रियः सप्राप्य हेलया । कृत्वा परिश्रमं तस्य द्वाविंशत्केलिभिः स्वय ॥ ३६८ ॥ वीतश्रमस्तमससंदं हेलयालानमापयत् । दृष्ट्वास्य गजवि धामिन्ध युक्ति । माता पिता च जीवधराभिलापपरायण ॥ ३६९ ॥ विज्ञाय ता निवेदित्तत्पित्रे तदनुज्ञया । विभूतिमकुमाराय शुभयोगे वितरेतु ॥ ३७० ॥ ततः समुचितप्रेमा स काम सुखमन्वभूत् । तत्र तच्छैत्यं सद्गम्य सकथा सतत जनैः ॥ ३७१ ॥ क्रियमाणा कृतात्मसौ काष्ठागारिकभूपतिः । को-

विजलीके समान शब्द करता हुआ अशनिवेग नामका गंधवारण हाथी दिखलाई दिया । वह हाथी मदनोन्मत्त हो रहा था, अन्य साधारण मनुष्य उसे वश नहीं कर सकते थे और पागलकी तरह वह सुरमंजरीके रथकी ओर दौड़ रहा था । कुमार जीवंधरने उस रथमें सुरमंजरीको देखकर हाथीकी विनय और उन्नय क्रियाको भट पहिचान लिया वह लीलापूर्वक उसके पास पहुंचा, वत्सीस तरहकी क्रीडाओंके द्वारा उससे परिश्रम नहीं किया और थोड़ी ही नेरमें चैष्टा रहित कर उसे खूदेसे वाप दिया । वहां खड़े हुए लोग जीवंधरकी ऐसी हाथीकी शिक्षा देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए नगरमें प्रवेश करने लगे ॥ ३६६-३६९ ॥ उस दिनसे लेकर जीवंधर कुमारको देखनेसे सुरमंजरीका हृदय भी व्याकुल होगया और वह कामसे मोहित होगई ॥ ३७० ॥ सुरमंजरीके माता पिताने उसकी चेष्टा आदिके अनेक इशारोंसे तथा उसकी कही कथा आदिकोंसे बड़ी युक्तिसे यह बात जानली कि उसकी चेष्टा लाषा जीवंधर कुमारकी ओर है । तदनंतर उन्होंने जीवंधरके माता पितासे निवेदन किया और उनकी आज्ञानुसार किसी शुभ योगमें अत्यंत ऐश्वर्यको धारण करनेवाले जीवंधर कुमारको वह कन्या समर्पण की ॥ ३७१-३७२ ॥ इसके बाद योग्यतानुसार प्रेम करनेवाला वह कुमार अपनी इच्छानुसार सुखोंका अनुभव करने लगा । अथानंतर-नगरके लोग सदा जीवंधरकी शूरवीरता और भाग्यशीलता की कथा करने लगे परंतु उसे दृष्ट राजा काष्ठांगार सह नहीं सका इसलिये उसने क्रोधमें आकर लोगोंसे कहा कि इस मुख जीवंधरने मेरे गंधवारण हाथीको वाधा पहुंचाकर उसका तिरस्कार किया है । यह वैश्य है इस लिये हरद आमले सोंठ आदि चीजोंकी खरीद विक्री करना इसका काम है परंतु यह अपनी जातिमें होनेवाले कामोंको तो नहीं करता और लुट्र होकर भी राजपुत्रोंके योग्य कामोंमें आसक्त होता है । इसलिये

रघुवधर । परीक्ष्य तत्सव्य सम्यक्श्रेष्ठश्चंद्रोदयोऽनयोः ॥ ३५५ ॥ प्रत्यागः कोऽस्य चैवक दर्शयामीति तद्दृश्य । अवष्टभ्य स्वहस्ताभ्यां विनिक्रिप ततो  
 दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५७ ॥ तदा प्रभृति ते, कन्ये परस्परनिबधन । ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-  
 द्रुत ॥ ३५६ ॥ चंद्रोदयमल्लिखतो गंधोत्कषेयतरीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रत्यास्तत्तमेवास्तुवन्निन्द ॥ ३५९ ॥ भ-

कर उसने दोनों हाथोंमेंसे दोनों चूण लिये और शीघ्रताके साथ दोनों ही फेंक दिये । उन दोनों चूणोंके फेंकते ही सु-  
 गंधिकी उत्कटतासे बहुतसे भ्रमर चंद्रोदय चूण पर आ जमे यह देखकर वहा पर बैठे हुए उस विधाके जानकार सब  
 लोग जीवंधरकी ईर्ष्या छोड़ दी और दोनोंने आगे ईर्ष्या न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली ॥ ३५६-३५७ ॥ उस दिनसे लेकर उन दोनों कन्याओंने विधासे उत्पन्न होनेवाली

अन्यन्तर—किसी एक समय नगर निवासी लोग अपनी इच्छानुसार वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे । वहांपर  
 किसी एक कुत्तेका देखकर दुष्ट बालकगण मारने लगे वह कुत्ताभी चपल था इसलिये भयसे व्याकुल होकर दौड़ता हुआ  
 किसी कुंडमें जाकर गिर पड़ा और वही पर मरनेके सन्मुख हो गया ॥ ३५६-३५७ ॥ जीवंधर कुमारने अपने सेवकों द्वारा  
 वह कुत्ता वहां से उठाकर भंगवाया और उसके कानमें पंचनमस्कार मंत्र सुनाया ॥ ३६१ ॥ ध्यानपूर्वक ध्वज नमस्कार  
 मंत्रको ग्रहणकर वह कुत्ता मरा और चंद्रोदय पर्वतके ऊपर सुदर्शन नामका यस हुआ । उसीसमय (अवधि ज्ञानके द्वारा)  
 उसे पूर्व भवकी बात याद आई, वह उसीसमय कुमार जीवंधरके समीप आया और स्तुति करने लगा कि 'हे प्रभो !  
 आपके प्रसादसे ही मुझे यह ऐसी विभूति प्राप्त हुई है' इसप्रकार स्तुतिकर उसने सब लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया ।  
 तदनंतर किये हुए उपकारको माननेवाले उस यज्ञने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे जीवंधरकी पूजा की और कहा कि 'हे कुमार  
 आजसे लेकर किसी उत्सव अथवा आपत्तिमें मुझे स्मरण करना' इस प्रकार जीवंधरकी पूजाकर वह यस अपने स्थानको  
 चला गया सो ठीकही है क्योंकि जो विना कारणके ही परोपकार करते हैं उन्हें उसका फल अवश्य ही मिलता है ॥  
 ३६२-३६६ ॥ अथानंतर वनमें बहुत देर तक क्रीडा कर वह जीवंधर कुमार लौट रहा था कि उसे राजा काष्ठांगारका

गात् । निर्वृतिः परमा काष्ठा समस्योगसंभवा ॥ ३४५ ॥ अथान्यदा भवा भो भद्वन्दोदयसाधने । इराक्षिमल्योषाने वनकीर्तानिमित्तक ॥ ३४६ ॥ नृपेण सह सर्वेषु पारेषु सुखस्त्वियया । आविष्कृतस्वसंपत्तु यातेषु परमोत्सवात् ॥ ३४७ ॥ पुरे तस्मिन्वणिगमुख्योऽभूद्वैश्वणदत्तवाक् । तन्ना चतुर्मन्त्रा तस्यासी-  
 त्पुरमजरी ॥ ३४८ ॥ तस्या श्यामलता चेटक्यसौ चोदयाह्वयः । चूर्णवासोऽयमस्त्यन्यो नास्माद्वन्वेन बहुरः ॥ ३४९ ॥ इत्यात्मस्वामिनीदाश्यप्रकाशन-  
 परायणा । इतस्तत्समुद्रवृष्य विचचार जनांतरे ॥ ३५० ॥ कुमारदत्तवैश्यस्य विमलायां सुताभवत् । गुणमालामला तस्यावेष्टकी पटुभाविणी ॥ ३५१ ॥  
 विद्युलतामिधा चूर्णवासोऽय पटुपदाव्रत । बर्गः सूर्योदयो नाम नेष्टक स्वर्गेऽपि विद्यते ॥ ३५२ ॥ इति विद्वत्सभामध्ये भूयः स्वस्वामिनीगुण । विद्योतयती-  
 बभ्राम सुभ्रूर्गर्वमहाहिता ॥ ३५३ ॥ एव तथो समुद्रभूतमात्सर्याहितचेतसो । विवादे सति तद्विधवावेदिनस्तत्परीक्षितुं ॥ ३५४ ॥ अथुवशक्षमास्तत्र जीवध-  
 पिताको कन्या समर्पण करनेके सिवाय और कुछ कार्य ही नहीं है । ॥ ३४४ ॥ जिनका परस्पर प्रेम और सुख वढ रहा  
 है ऐसे उन दोनोंका ( जीवधर और गंयर्वदत्ताका ) सम संयोगसे उत्पन्न होनेवाला सुख सबसे उत्तम सीमाको पहुँच  
 गया था ॥ ३४५ ॥ अथानंतर-कामदेवको उत्तेजित करनेवाला वसंत ऋतु आया उसमें सब नगर निवासी लोग सुखकी  
 इच्छासे अपने अपने सब ऐश्वर्यके साथ बडे उत्सवसे राजाके साथ सुमलयोधानमें वनक्रीडा करनेके लिये गये । उसी न-  
 गरमें एक वैश्वणदत्त नामका अच्छा वैश्य रहता था उसकी आभ्रमंजरी स्त्रीसे सुरमंजरी नामकी कन्या हुई थी ॥ ३४६-  
 ३४८ ॥ उस सुरमंजरीकी श्यामलता नामकी दासी थी वह भी सुरमंजरीके साथ उसी उद्यानमें आई थी उसके पास  
 चंद्रोदय नामका एक सुगंधित चूर्ण था उसको लेकर 'रस चूर्णके सिवाय संसारमें और कोई सुगंधित चूर्ण है ही नहीं'  
 इस प्रकार घोषणा करती हुई वह इधर उधर घूम रही थी और अपनी स्वामिनीकी चतुरता प्रगट कर रही थी ॥ ३४९-  
 उसी नगरमें कुमारदत्त वैश्यकी विमला स्त्रीसे निर्मल गुणमाला नामकी पुत्री थी और उस गुणमालाकी चतुरताके साथ  
 भाषण करनेवाली विद्युलता नामकी दासी थी । अच्छी भोहोंको धारणा करनेवाली अभिमानरूपी पिशाचके फंदेमें फंसी  
 हुई वह विद्युलता भी विद्वानोंकी सभामें बार बार अपनी स्वामिनीके गुणोंको प्रकाशित करती हुई यह कहती हुई घूम  
 रही थी कि 'यह सूर्योदय नामका चूर्ण है यह इतना सुगंधित है कि अगर आकर इस पर पड रहे हैं ऐसा सुगंधित चूर्ण  
 स्वर्गमें भी नहीं मिल सकता ॥ ५१-५३ ॥ इस प्रकार उन दोनोंका हृदय ईर्ष्या और डाहसे भर गया और परस्पर वि-  
 वाद करनेकी ठहरी । परंतु विद्याको जाननेवाले लोगोंने उसकी परीक्षा की और बतला दिया कि इन दोनोंमें चंद्रोदयचूर्ण  
 बहुत अच्छा है ॥ ३५४-३५५ ॥ इसका विश्वास कैसे हो इसको भी मैं स्पष्ट रीतिसे दिखला देता हूं इस तरह कह



कीर्णां स्वकरस्मा कृतादर ॥ ३३३ ॥ तमादाय कुमारेण शास्त्रमार्गानुशोषिणा । गीतमिप्रितबालेन मंत्रतारेण हारिणा ॥ ३३४ ॥ मधुरेण मृगाणा च मनो-  
विभ्रमकारिणा । तद्विद्याशास्त्रबाधोद्धप्रसूनार्चनभासिना ॥ ३३५ ॥ हृदि गन्धर्वदत्तेन पंचबाणप्रचोभिता । मालयालंकाराभे संमुखे किं न जायते ॥ ३३६ ॥  
हीनामासोऽभ्यवन् केनिहिनदीयोपमा परे । निवाप्रवीपर्वकाशा भासमानानास्तदा ॥ ३३७ ॥ सुयोधादेतुनाप्राप्तकुमारा परितोषिणी । गंधर्वदत्ता तां वीणा-  
मात्मन्येवमभाषत ॥ ३३८ ॥ “कुलोचिता सुयोधा त्व मधुरा चित्तहारिणी । कुमारसंगमे हेतुर्दत्तीव कुशाळा मम” ॥ ३३९ ॥ काष्ठागारिकपुत्रेण चोक्षितेन  
सुदुर्जने । गंधर्वदत्तामाहर्तुमुद्यमो विहितस्तदा ॥ ३४० ॥ कुमारोऽपि विशिलितदलाधिकपुर सरै । विद्याधरै समं गंधगज जयनिरिधुति ॥ ३४१ ॥ आ-  
रक्ष शत्रुमैत्र्यस्स प्रतीपमगमकुशा । तदा गरुडवेगादयो विद्याधर वराधिपः ॥ ३४२ ॥ पिता गंधर्वदत्ताया गत्वा मध्यस्थतां तयो । उपायकुशलं शत्रुबलं  
रक्ष शत्रुमैत्र्यस्स प्रतीपमगमकुशा । तदा गरुडवेगादयो विद्याधर वराधिपः ॥ ३४३ ॥ ततस्तयोर्विवाहेन विद्यायाँलौ समागम । कृतार्थोऽभूत्पितुर्नान्यत्कार्यं कन्यासमर्पणात् ॥ ३४४ ॥ तयोः परस्परप्रेमप्रवृद्धमुल्लयोर-  
प्रथममानयत् ॥ ३४५ ॥

शास्त्र मार्गके अनुसार था, गीत और वाजेकी आवाज दोनोंसे मिला हुआ था, गंधीर ध्वनिसे भरा हुआ था, मनोहर था, मधुर था, हिरणोंके मनको भी विभ्रम उत्पन्न करनेवाला था और उस विद्या संबंधी धन्यवाद रूपी फूलोंकी पूजासे सुशोभित था । जीवन्मरका ऐसा गाना देखकर कामके वारणोंके द्वारा प्रेरणाकी हुई गंधर्वदत्ताने उसका हृदय मालासे अलंकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि पुराणके सन्मुख रहने पर क्या नहीं हो सकता है ॥ ३३४-३३६ ॥ जिनके मुख पहिले रात्रिमें दीपकके समान दैदीप्यमान थे उन लोगोंमेंसे जीवन्मरके गलेमें माला पहने ही कितने तो कांतिहीन हो गये और अन्य कितने ही दिनमें जलाए हुए दीपकके समान निस्तेज हो गये ॥ ३३७ ॥ उस सुयोधा वीणाके द्वारा जिसे जीवन्मर कुमार प्राप्त हुआ है ऐसी संतुष्ट हुई वह गंधर्वदत्ता मनमें ही उस वीणासे इस प्रकार कहने लगी कि ‘हे सुयोधपत्नी तू मधुर है, चित्तको हरण करनेवाली है और श्रेष्ठ कुलके योग्य है तू इस कुमारके समागम होनेमें मेरी आज्ञासे जीवन्मर कुमार प्राप्त हुआ है’ ॥ ३३८-३३९ ॥ उस समय दुष्टोंके द्वारा प्रेरणा किए हुए काष्ठागारिक पुत्र त्योंत कुशल दूतीके समान कारण हुई है’ ॥ ३४०-३४१ ॥ कुमार जीवन्मर भी यह सब समाचार जानकर अधिक कालांगारिकने गंधर्वदत्ताको साथ लेकर तथा जयगिरि नामके गंधगज पर ( गंधजातिके हाथी पर ) सवार हो कर क्रोधपूर्वक बलशाली विद्याधरोंको युद्ध करनेको चला । इतनेमें ही गंधर्वदत्ताका पिता विद्याधरोंका राजा गरुडवेग उन दोनोंका मध्य-  
शत्रुकी सेनाके सामने युद्ध करनेको चला । इतनेमें ही गंधर्वदत्ताका पिता विद्याधरोंका राजा गरुडवेग उन दोनोंका मध्य-  
स्थ बन गया और अनेक उपायोंके ज्ञाननेमें निपुण, ऐसे उस गरुडवेगने शत्रुकी सेना शान्त कर दी ॥ ३४१-३४३ ॥ तद-  
नंतर उसने उन दोनोंका विवाह कर पति-पत्नी संबंध करा दिया और इस तरह वह कृतार्थ हुआ सो ठीक ही है क्योंकि

ताया मसुताया' स्वयंवर ॥ ३२३ ॥ तत्पुत्रे कारयेत्येनमभ्यधादधिकार । जिनदत्तोऽपि तां नीत्वा सह राजपुरं खंगः ॥ ३२४ ॥ स्वयंवरं समुत्सुष्य मनोहरवर्णान्तरे । मनोहरं समुत्पाष्य स्वयंवरमहगृहं ॥ ३२५ ॥ कलाविद्याविदग्धेषु भृगोचरमहीशिषु । सकुमारेषु यातेषु जिनपूजा न्यवर्तयत् ॥ ३२६ ॥ तदा गंधर्व-  
दत्तापि स्वयंवरसमागृह । प्रविश्य वीणामादाय सुयोषाख्यां सुलक्षणां ॥ ३२७ ॥ स्वरप्रामादिसद्वाद्य शुद्धदेशजलक्षण । गीतमिश्रं विधायैतानघरीकृत्य मधुजः-  
३२८ ॥ स्थितो जीवधरस्तस्या वीणविद्याकृत मद । निराचिकीर्तुराण्य स्वयंवरसमागृह ॥ ३२९ ॥ अपक्ष्यमतितान् प्रज्ञानीणाविद्याविशारदान् । गुणदोष-  
परीक्षायां नियोज्योभयसमतान् ॥ ३३० ॥ निर्दोषा वीयता वीणेत्यभ्यधात्तत्रियोनिनः । वीणाश्चित्रगुरास्तस्मै तदानीय समर्पयन् ॥ ३३१ ॥ केशरोमल-  
वाचीनां दोषाणा तासु दर्शनात् । स ताः सवो निराकृत्य कन्यका प्रत्यगादयत् ॥ ३३२ ॥ यद्वि निर्मत्सरासि त्व त्वदीणा वीयतामिति । अदितौका च ता  
जिनदत्त गरुडवेगके समीप आया । उसके ज्ञानसे गरुडवेग बहुत संतुष्ट हुआ उसने खूबही उसका आदरसत्कार किया  
और फिर बड़े आदरके साथ कहा कि हे मित्र मेरे एक गंधर्वदत्ता नामकी पुत्री है उसे तू अपने राजपुर नगरमें लेजाकर  
उसका स्वयंवर कर । उसकी आज्ञानुसार जिनदत्त भी अनेक विद्यार्थोके साथ उस कन्याको राजपुर नगरमें लेगया ॥  
३२२-३२४ ॥ वहां जाकर उसने मनोहर नामके वनमें स्वयंवर होनेकी घोषणा की और एक बडाही मनोहर स्वयंवर  
भवन बनाया ॥ ३२५ ॥ उस स्वयंवर भवनमें कितने ही विद्या और कलाओंमें निपुण ऐसे भूमिगोचरी राजा और  
राजकुमार आये । तदनंतर गंधर्वदत्ताने श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा की और फिर अच्छे लक्ष्मणोंवाली सुयोषा नामकी वीणा  
लेकर स्वयंवर सभाभवन में पहुंची ॥ ३२६-३२७ ॥ वहांपर जाकर उसने गीतोंसे मिले हुए शुद्ध और देशसे  
उत्पन्न हुए स्वरके समूहोंसे वीणा बजाई और वहां पर बैठे हुए सब राजाओंको नीचा दिखलाया ॥ ३२८ ॥ उस स्व-  
यंवर लभा भवनमें जीवंधर भी विराजमान था उसने आकर उस गंधर्वदत्ताका वीणा विद्यासे होनेवाला अभिमान सब  
दूर कर दिया ॥ ३२९ ॥ उसने पहिले तो जो किसी ओरके पक्षपाती न थे, विद्वान् थे, वीणा विद्यामें निपुण थे, और दोनों  
पक्षवालोंने जिन्हें स्वीकार किया था ऐसे लोगोंको गुण और दोषोंकी परीक्षा करनेमें नियुक्त किया और फिर उस काम  
में नियुक्त किये हुये लोगोंसे निर्दोष वीणा मांगी । उन लोगोंने उसे तीन चार वीणा लाकर दीं परंतु जीवंधरने  
उनमें केश रोम आदि अनेक दोष दिखलाकर वे सब वापिस कर दीं तदनंतर उसने गंधर्वदत्तासे कहा कि यदि  
तेरे हृदयमें किसी तरहकी ईर्ष्या नहीं है तो तू अपनी वीणा दे । जीवंधरके इस प्रकार मांगने पर उस कन्याने भी आदर  
के साथ अपने हाथकी वह वीणा जीवंधरको दे दी ॥ ३३०-३३३ ॥ जीवंधरने वह वीणा लेकर गाया उसका वह गाना

विष्यति' । इति मन्त्रिवच भुवा खगेशः किंनिद कृलः ॥ ३१२ ॥ "अविता कथमस्माक सवधो भूमिगोर्बन्धः इत्यप्राधीत्युन्नेन मन्त्रिणं मतिसागरं ॥ ३१३ ॥ सोऽप्यन्यच्च मुनेर्ज्ञातं स्पष्टमेवमभाषत । "श्रेष्ठी दृपभदत्तादृष्टास्मिन् राजपुरे प्रिया ॥ ३१४ ॥ तस्य पद्मावती सुजुर्जिनदत्तल्योरभूत् । स कदाचित्पुरे तस्मिन्नुद्याने प्रीतिबधने ॥ ३१५ ॥ जिन सागरसेनाय्य केवलज्ञानपूजने । भक्त्वा चदिदुमागातस्तच्च न तद्रुणा सम ॥ ३१६ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र तेनामा प्रीतिस्ते समजायत । देहमेदाद्दिनान्तेन मेदो न युवयोरभूत् ॥ ३१७ ॥ एव दिनेषु गन्धस्यु केयुनिद्विज्जा वरः । जिनदत्तमवस्थाप्य स्वस्थाने निबध्ने मुनेः ॥ ३१८ ॥ गुणपालाभिधानस्य लब्धबाधिरधीक्षत । सुव्रता क्षतिसिन्धु संक्रादाय सयम ॥ ३१९ ॥ पद्मावती च के लीन्यं सुव्रता सान्यपालयत् । जिनचोऽपि वितेश पितु पदमधिष्ठितः ॥ ३२० ॥ मनोरामादिरामाभि काम कामान् समन्वभूत् । स रत्नप्रीत्यर्थं स्वयमेवागमिष्यति ॥ ३२१ ॥ तैर्नवास्मदभिप्रेतकार्यसिद्धिर्भविष्यति" इत्यसौ चागमत् केयुचिद्दिनेषु तदतिक ॥ ३२२ ॥ ततस्तुष्ट म्नाभीशः कृतप्राणुकञ्जिगः । मित्र गणवर्ध-

एक श्रीमान् बुद्धिमान् पुत्र है यह गंधर्वदत्ता वीणा स्वयंवरमें उसकी स्त्री होगी । उस मंत्रीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर राजा कुछ व्याकुल हुआ और 'भूमिगोचरियोंके साथ हमारा संबंध कैसे होगा' इसप्रकार उस मतिसागर मंत्रीसे पूछने लगा ॥ ३०९-३१३ ॥ इसके उत्तरमें वह मतिसागर मंत्री मुनिराजसे जाने हुए अन्य सब समाचारों की भी स्पष्ट रीति से इसप्रकार कहने लगा कि उसी राजपुर नगरमें एक दृपभदत्त नामका श्रेष्ठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था और उन दोनोंके जिनदत्त नामका पुत्र हुआ था । किसी एक समय उसी राजपुर नगरके प्रीतिवर्द्धन नामके उद्यानमें सागरसेन नामके जिनराज विराजमान थे उनके केवल ज्ञानकी पूजा बंदना करनेके लिये वह जिनदत्त अपने पिता दृपभदत्तके साथ आया था और भक्ति पूर्वक आप भी वहां गये थे जिनदत्तको देखकर उसके साथ आपका विशेष प्रेम होगया था और शरीर अलग अलग होनेके सिवाय और किसी प्रकारका जुदापन आप दोनोंमें नहीं रहा था ॥ ३१४-३१७ ॥ इसके बाद कितनेही दिन थीत जानेपर श्रेष्ठ दृपभदत्तने अपनेपद पर तो जिनदत्तको स्थापन किया और गुणपाल नामके मुनिराजके समीप जाकर आत्मज्ञान प्राप्त कर दीक्षा धारण करली ॥ ३१८-३१९ ॥ इसीप्रकार उसकी स्त्री पद्मावतीने सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप जाकर संयम धारण करलिया और इसतरह अच्छे व्रत धारणकर अपनी कुलीनता का पालन करने लगी । जिनदत्त पिताके पदपर विराजमान होकर सब धनका स्वामी हुआ और मनोरमा आदि अनेक स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार भोगोंका अनुभव करने लगा । वही जिनदत्त धन कमानेके लिये इस रत्नप्रीत्यर्थं स्वयं भाषेगा ॥ ३२०-३२१ ॥ उसीके साथ हमारे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जायगी इस बातचीतके कितने ही दिन बाद वह

१८९७ लवराया दक्षिणभाग । गगनाच्छीरिवाभासीसुरं गगनवल्लभ ॥ ३०२ ॥ रमणीयामिध कृत्वा नाग्राक्षो मनुजोदये । निविष्टवान् पुरेऽदृश्यासीद्वारिणी प्राणवल्लभ ॥ ३०३ ॥ तत्पुतामुपवासेन परिस्थानधारीका । गं-  
धर्वदत्तामन्येषु पुजयित्वा जितेश्वरान् ॥ ३०४ ॥ शेषां माला समादाय दत्त खेसमे समागतां । आपूर्णयैवर्ना वीक्ष्य कस्मै देयेयमित्यत्ता ॥ ३०५ ॥  
गंगागे बने जिननिकेतन ॥ ३०७ ॥ भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य स्तुतां विधिपुर सरं । तत्रत्यचारण नत्वा मलत्तविपुलादिक ॥ ३०८ ॥ श्रुत्वा धर्म जगत्पुत्र्य  
सती मास्त्राभिनः कुता । कस्य गधर्वदत्ताख्या भोगभोग्या भविष्यति ॥ ३०९ ॥ इत्यप्राक्षं तदावोचत्सोऽयेवमवधीक्षणः । 'दीयेऽस्मिन्मारते हेमंगदेवो  
मनोहरे ॥ ३१० ॥ राजा राजपुरे सत्यधर सत्यविभूषणः । विजयास्य महादेवी तयो श्रीमान्मुधी कुतः ॥ ३११ ॥ वीणास्वयंवरे तस्य दत्ता भार्या म-  
नंदाब्जको समर्पणा की । सो ठीक ही है क्योंकि कार्योंकी पट्टति अनेक तरहकी होती है ॥ ३१२-३१० ॥ अयानंतर—  
इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिण श्रेणीमें आकाशकी शोभाके समान एक गगनवल्लभ नामका नगर शोभायमान  
है उसमें विद्याधरोंका स्वामी गरुडवेग राज्य करता था । दैवयोगसे उसके भाई बंधुओंने उसका अभिमान चूर्ण कर दिया  
इसलिये वह भागकर रत्नद्वीपमें गया और मनुजोदय नामके पर्वतपर रमणीय नामका एक उत्तम नगर बसाकर उसी  
में वह रहने लगा । उसकी रानीका नाम धारणी था ॥ ३०१-३०३ ॥ किसी दूसरे दिन उसकी गंधर्वदत्ता कन्याने उप-  
वास किया था इसलिये उसका शरीर कुछ झुरफा गया था वह श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करके पूजासे बची हुई शेष पुण्य-  
माला पिताको देनेके लिये आई थी उसे पूर्ण यौवनवती देखकर उस विद्याधरोंके राजाने मतिसागर नामके मंत्रीसे पूजा  
कि यह कन्या किसको देनेकी चाहिये । इसके उत्तरमें वह अपार बुद्धिको धारण करनेवाला मंत्री पहिली सुनी हुई बातको  
इसप्रकार कहने लगा ॥ ३०४-३०६ ॥ कि मैं किसी एक दिन श्रीजिनेन्द्रदेवकी वंदना करनेके लिये मंदराचल पर्वतपर  
गया था पूर्वदिशाके नंदन वनमें जो जिनमंदिर है उसमें जाकर मैंने भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दी और विधिपूर्वक स्तुति  
की । वहींपर एक विपुलमति नामके चारण मुनि विराजमान थे उनको भी मैंने नमस्कार किया ॥ ३०७-३०८ ॥ उन  
से धर्मका स्वरूप सुनकर मैंने पूछा कि हे जगत्पुत्र्य मेरे स्वामीके एक गंधर्वदत्ता नामकी सती कन्या है वह किसकी पत्नी  
होगी ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको धारण करनेवाले थे मुनिराज कहने लगे कि जंबुद्वीपके भरतक्षेत्रमें मनोहर हेमंगद  
देश के राजपुर नगरमें सत्यवचनोसे सुशोभित राजा सत्यधर राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम विजया ॥ उसके

मादोय विषाणोऽनेनभीक्य ॥ २८९ ॥ तमालारामनिर्भासितो गोवरमुपागत । गोघ्नो विघ्नः स साधूना गोमडलविधृक्षया ॥ २९० ॥ ता किंवदन्तीमाक-  
र्ण्य कन्या गोदावरीं स्तुतः । पुत्री गोपेन्द्रोपश्रीसंभूता गोविमोक्षण ॥ २९१ ॥ विधास्यते ददामीति काष्ठांगारिकमुभूजा । घोषणा कारितां धुत्वा कालागा-  
रिकसंगत ॥ २९२ ॥ जीवधरः सहायैः स्वं परितो व्याधसनिधि । संप्राप्याकृष्टकोददनिशातरसंतति ॥ २९३ ॥ संदधत्सतर्ति मुचल्लु शिक्षाविशेषतः ।  
धनुर्वदसमादिष्ट स्नानं सर्वमाब्रजन् ॥ २९४ ॥ बाणपात परेषां च वचयन्मल्लु सचरन् । निकुन्तन् शत्रुबाणौघ रंधयन्नाणि भीरुषु ॥ २९५ ॥ इति युद्ध्या  
चिरं व्याधान् जित्वा वा दुर्नयाप्रयः । अयश्रिया समालीढ सर्वेकायशसा मृग ॥ २९६ ॥ पूर्यच्छादिहसासकुदप्रसवहासिना । समागमपुर चंचद्वैजयतीवि-  
राजित ॥ २९७ ॥ देहभूते कुमारस्य शौर्यादिप्रसवान्विते । जननेत्रालयः पेटुः कीर्तिगंधावर्कविता ॥ २९८ ॥ तदा कुमारसदेशादिकवाक्येन विदुशुता ।  
गोविमोक्षमेतेन कृतं युद्धवेति भ्रूयते ॥ २९९ ॥ विद्याप्यादप्यन् कन्यां नंदाढ्याय पुरेदिता । गोदावरी विवाहेन विनित्रा कार्ययुक्तय ॥ ३०॥ अथात्र

जिसे कोई सहन न कर सके औबधिके समान कटुक, निर्दय, और सींगोंके शब्दोंसे भयानक पेसी सेना लेकर सब पशु  
ओंको हरण करनेकी इच्छासे साधुओंको विघ्नके समान चढकर आया ॥ २८७-२९० ॥ इस बातको सुनकर  
राजा काष्ठांगारके द्वारा यह घोषणा दिलाई गई कि जो कोई इस भीलसे इन पशुओंको छुडावेगा उसे मैं गोपेन्द्र की स्त्री  
गोपश्रीसे उत्पन्न हुई पुत्री सती गोदावरी नामकी कन्या दूंगा । इस घोषणाको सुनकर कालांगारिकके साथ कुमार जीव-  
धर अपने सब साथियोंको लेकर उन भीलोंके समीप पहुंचा । वहां जाकर उसने अपना धनुष चढाया और उसपर तेज  
बाण रक्खे । अच्छी शिक्षा मिलनेके कारण वह बहुत जल्दी बाणोंके समूहों को छोडता था और जहां जहां धनुष धारी  
दिखते थे वहीं पर वह झट पहुंच जाता था । शीघ्रताके साथ पैतरा बदलता हुआ वह दूसरेके पडते हुए बाणोंसे भी  
बचता था शत्रुओंके बाण समूहोंको काटता था और भयभीत लोगोंमें शल्लोंको रोकता भी था, जिसप्रकार नय दुर्नयोंको  
जीत लेता है उसीप्रकार जीवधरने बहुत देरतक युद्ध कर भीलोंको जीत लिया विजयलक्ष्मी स्वयं उसके समीप आपहुंची  
और चंद्रमा, हंसोंके पंख तथा कुंदके फूलोंको भी लज्जित करने वाले अपने यशसे अच्छीतरह सबदिशाओंको व्याप्त करते  
हुए उसने चंचल पताकाओंसे सुशोभित नगरमें प्रवेश किया ॥ २९१-२९७ ॥ उससमय शौर्ये आदि अनेक गुणरूपी  
फूलोंसे सुशोभित ऐसे कुमारके शरीररूपी आमके दृक्षपर कीर्तिरूपी सुगंधके द्वारा स्वींचे हुए लोगोंके नेत्ररूपी भ्रमर पड  
रहे थे ॥ २९८ ॥ तदनंतर 'युद्धकर इस कुमार जीवधर ने ही पशु छुडाये है' इस एक वाक्यके द्वारा वैश्य पुत्रोंने राजाको  
स्वर दी और फिर कुमारके संदेशके अनुसार वह पहिले बचन द्वारा दी हुई गोदावरी कन्या विवाहकी विधिके साथ

होऽभूदेत्यास्य योग्यतां । महाबाह्वास्त्रिसंघातमतिरेष करिष्यते ॥ २७८ ॥ इति तद्भाषितं भुला वरिष्ठः श्रावकेष्वहं । नाभ्यलिङ्गिनमस्कारं कुर्वे केनापि  
 हेतुना ॥ २७९ ॥ स्वाद्विमनस्य तेऽपश्य तदभावेऽतिमानिन । इति श्रेष्ठाह तच्छ्रुत्वा स्वसद्भावम्याववीत् ॥ २८० ॥ राजा सिंहपुरस्याहमार्गवमस्मिधा-  
 नक । वीरनदिसुनेः भुत्वा धर्मं संशुद्धदर्शन ॥ २८१ ॥ धृतिवैष्णय मद्राज्यं प्रदायादाय सयम । तीव्रोदराग्निसंभूतमहादाहासहिष्णुकः ॥ २८२ ॥ सय-  
 ग्दृष्टिर्गृहीतेरवैषते घर्मबाधिव । इति तद्वचनं सम्यक्परीक्ष्य वणिजां वरः ॥ २८३ ॥ सुतं समर्पयामास तस्मै त सखिभि सम । क्षेत्रे बीजमिव स्थाने  
 योग्ये किं नार्पयितुमी ॥ २८४ ॥ सवृद्धिस्तमादाय नित्यगमतिविस्तृति । अचिरेणैव कालेन विश्वविद्यातमानयत् ॥ २८५ ॥ कुमारोपि रविबोम्मोदान्ते  
 विबाभिरबुतत् । प्राप्तद्वयो द्विगे वातु संप्राप्तनवयौवन ॥ २८६ ॥ उपाध्यायोऽपि कालान्तरेणायात्सयत् । शिव । तत्काले कालकूटाख्यो मुख्यो वननिवा  
 सिना ॥ २८७ ॥ मर्त्याकारं प्रपन्नो वा सुंदरस्मिभयास्तव्य । अन्यकारः सकोदण्डशरहस्तं दुरीक्षकं । केनाप्यसह्यमायाते कटुक वा महौषध । निर्दूण बल  
 लिये मैं किसी भी कारणसे अन्य मतवालेको नमस्कार नहीं करता तथा इसके अभावमें अर्थात् नमस्कार न करनेसे  
 अत्यंत अभिमान रखनेवाले आपको अवश्य ही बुरा लगेगा । शेरकी यह बात सुन कर वह तपसी अपना परिचय इस  
 प्रकार देने लगा ॥ २७९-२८० ॥ मैं सिंहपुर नगरका राजा हूं और आर्यवर्मा मेरा नाम है मैंने श्रीवीरनंदि नामके  
 सुनिराजसे धर्मका स्वरूप सुनकर शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया है तथा धृतिवैष्णकी अपना राज्य देकर संयम धारण  
 किया था, परंतु तीव्र जठर अग्निके (भस्मव्याधिके) उत्पन्न हो जानेसे उसकी महाजलनको मैं सह नहीं सका इसलिये  
 हे धर्मबंधु ! सम्यग्दृष्टि रह कर ही मैंने यह वेप धारण किया है । उस तपसीकी यह बात सुन कर उस श्रेष्ठ वैश्यने उसकी  
 अच्छीतरह परीक्षा की और फिर सब साधियोंके साथ वह पुत्र उसे समर्पण कर दिया सो ठीक ही है योंकि योग्य स्वतंत्र वीजके  
 समान बुद्धिमान पुरुष योग्य स्थानमें क्या उत्पन्न नहीं कर सक्ता अर्थात् सब कुछ उत्पन्न कर सकता है ॥ २८१-२८२ ॥  
 सम्यग्दृष्टि पुरुषने स्वभावसे ही अत्यंत महान् ऐसे उस जीवधर को लेकर थोड़ी ही दिनमें उसे सब विद्याओंके पारंगत कर  
 दिया ॥ २८३ ॥ जिसप्रकार वषट्के बाद सूर्य वैदीयमान होता है अथवा ऐश्वर्य को पाकर हाथी सुशोभित होता है उसी  
 प्रकार नव यौवन अवस्थाको पाकर वह कुमार जीवधर सब विद्याओंके द्वारा अत्यंत सुशोभित होने लगा ॥ २८६ ॥ वह  
 उपाध्याय भी समयानुसार संयम धारणकर मुक्त हुआ । अथानंतर उससमय एक कालकूट नामका भीलोंका राजा था  
 जो कि ऐसा काला था मानों सूर्यकी किरणोंके डरसे स्वयं अंधकार ही मनुष्यके आकार बन गया हो, तमाखुके घनके  
 समान उसकी कांति थी और वह पशुहिसक था, वह भील जिसके हाथमें धनुष बाण है, जो तेजी जा सके पडनेपर

स परीक्षितु । वाछन्नयाचतैन मे भोजन शीयतामिति ॥ २६७ ॥ कुमारोऽपि प्रतिज्ञाय नीत्वा सार्धं तमात्मना । पितु सनिधिमाहरो मयास्मै स्म प्रवीर्य  
ते ॥ २६८ ॥ भवान् प्रमाणमित्याह्वयत्तच्छ्रुत्वा तस्मिन् मुदा । विनीतोऽयं सुत श्लाघ्यो ममेत्याश्लिष्य त मुहुः ॥ २६९ ॥ पुत्र आनामसानेऽयं मयासा साधु  
भोक्ष्यते । त्वया व्यपगताशकं भोक्त्व्यमिति सोऽप्यधात् ॥ २७० ॥ सहायै सह संविद्य भोक्तुं प्रारब्धवानसौ । अथार्भक्तस्त्वभावेन सर्वसुणामिदं कथं ॥  
२७१ ॥ भुंजेऽहमिति रोक्ष्वा जननीयं रुदयैयत् । रुदन्त त समालोक्य भद्रतते न युज्यते ॥ २७२ ॥ अपि त्वं वयसालपीयान् घ्रीस्थो वीर्यादिभिर्गुणः । अ-  
घरीरुतबिभ्रोऽसि हेतुना केन रोक्षिषि ॥ २७३ ॥ इति तापसवेषेण भाषितः स कुमारः । शृणु पुत्र्य न वेदित्स त्वं रोदनेऽस्मिन्पुणानिमान् ॥ २७४ ॥ नि-  
येति सहतश्चेष्ट्या वमल्यमपि नेत्रयो । शीतीभवति चाहारः कथमेतन्निर्गर्हते ॥ २७५ ॥ इत्याह्वयत्तत्समाकर्ण्य मातास्य मुदिता सती । यथाविधि सहार्ह-  
स्त सह सम्यगभोजयत् ॥ २७६ ॥ ततो गंधोत्कटो भुक्त्वा सनिधौ दद्यासुख । तेन तापसवैयोऽपि भुक्त्वामैवमभायत ॥ २७७ ॥ कुमारोऽस्मिन्मम के-

यह बात सुनकर पिता गंधोत्कट बहुत ही प्रसन्न हुआ और यह मेरा पुत्र बड़ा ही विनयवान् और प्रशंसनीय है इस प्रकार  
सोच कर बार बार उसे आलिगन करने लगा ॥ २६८-२६९ ॥ फिर उसने जीवंधरसे कहा कि हे पुत्र ! स्नान करनेके  
बाद यह मेरे साथ अच्छी तरह भोजन कर लेगा तू निःशंक होकर पहिले भोजन कर ले ॥ २७० ॥ इसके बाद वह जीवंधर  
अपने सब सन्धियोंके साथ भोजन करनेको बैठा भोजन परोसनेके बाद ही वह वालक स्वभाव होनेसे कहने लगा कि  
'यह भोजन सब गर्म है मैं इसे कैसे खाऊँ' इस प्रकार कह कर वह रोने लगा और रो रो कर माताको खेद खिन्न करने  
लगा । उसे रोता हुआ देखकर तपसीके भेषको धारण करनेवाले आंगतुक मनुष्यने कहा कि हे कुमार हे भद्र इस प्रकार  
रोना तुम्हें शोभा नहीं देता यद्यपि तू आयुसे छोटा है बालक है तथापि बुद्धिमान है और शक्ति आदि गुणोंसे सब सं-  
सारको नीचा दिखानेवाला है फिर भला क्यों रोता है ? इसके उत्तरमें जीवंधर कहने लगा हे पूज्य सुनिये ! इस रीतेमें  
जो गुण हैं उन्हें आप नहीं जानते हैं रोनेसे इकट्ठा किया हुआ क्रफ निकल जाता है नेत्रोंमें निर्मलपन आता है और इधर  
भोजन ठंडा हो जाता है फिर भला आप मुझे रोनेसे क्यों रोक्ते हैं ? पुत्रकी यह बात सुन कर माता भी बहुत प्रसन्न  
हुई और उसने विधि पूर्वक सन्धियोंके साथ उसे अच्छी तरह भोजन कराया ॥ २७१-२७२ ॥ तदनंतर गंधोत्कट श्रेष्ठ  
भोजन कर सुख पूर्वक बैठा और उसके साथ वह तपस्वी भी भोजन कर इस प्रकार कहने लगा कि इस कुमारमें मेरा  
बहुत स्नेह है इसकी योग्यता देखकर मैं चाहता हूँ कि इसकी बुद्धि महाशास्त्र रूपी सागरके जलसे धोकर निर्मल कर  
हाऊँ ॥ २७३-२७४ ॥ उस तपसीकी यह बात सुन कर वह श्रेष्ठ गंधोत्कट कहने लगा कि मैं श्रावकोंमें श्रेष्ठ हूँ इस



एकदैनैव पोषितौ बुद्धिमापदुः । तत्रैव आश्रयो जातो मलयतमिजयादयः ॥ २५६ ॥ सागरो धनपालाख्यः सधुयो मरिचागरः । सेनापतिः पुरोधाख्यः श्रेष्ठो मं-  
 त्री च मधुसूतः ॥ २५७ ॥ माया अयावती श्रीमती श्रीदत्ता ययाकर्म । चतुर्व्युपमा तेषां देवसेन सुतोडार ॥ २५८ ॥ बुद्धिवैजो वरादिव्य दत्तो मधुसु-  
 यात ॥ २५९ ॥ नक्तदिवं निजप्राणसमाः काप्यनपायिन । अथ नदापि नंदाढ्यं क्रमेणासवती सुतं ॥ २६० ॥ अन्वेदुर्नगरोयाने कोडपि तापसरूपधृक् ।  
 कुमारं गोलकायुक् बालक्रीडानुसंगिण ॥ २६१ ॥ विलोक्यासात्किञ्चदुदरं पुरं ब्रूहीति पृष्ठवान् । वृद्धस्यापि तवाङ्गत्वं बालो ह्यत्र न मुह्यति ॥ २६२ ॥  
 चैष्टाच्छायास्तराधिक ॥ २६३ ॥ दृष्ट्वा भुत्वा विविच्यैष सामान्यो नैव बालकः । राजवशसमुद्भूतिश्चिह्नैश्चरसाऽनुमीयते ॥ २६४ ॥ इति केनाप्युपायेन तद्वशं  
 स्त्रियां यौ और इन्हीं चारोंके अनुक्रमसे देवसेन बुद्धिपेण वरदत्त और मधुसूत नामके पुत्र थे जिस प्रकार लोकाकाशके  
 साथ जीवादिक छहों पदार्थ रहते हैं उसी प्रकार बालक्रीडा करनेमें तत्पर ऐसे मधुर आदि छहों पुत्र कुमार जीवंधरके  
 ही साथ बढ़ते थे ॥ २५६-२६० ॥ ये सब बालक रात दिन जीवंधरके प्राणोंके समान रहते थे और कभी अलग नहीं  
 होते थे । तदनंतर गंधोत्कटकी स्त्री नंदाके भी नंदाढ्य नामका पुत्र हुआ था ॥ २६१ ॥ किसी दूसरे दिन नगरके बाहर  
 बगीचेमें गेद आदिसे खेल कर वे बालक्रीडा कर रहे थे वहीं पर तपसीका रूप धारण किये एक मनुष्य आया और कुमार  
 कि तू बृद्ध है तौ भी यह बात नहीं जानता है ऐसी जगह तो एक बालक भी नहीं भूल सकता । अरे नगरके बाहर किसी  
 बगीचेमें बालकोंको क्रीडा करते हुए देख कर भला कौन अनुमान नहीं कर सकता कि नगर अत्यंत समीप है जिसप्रकार  
 कि धूआं देखकर आशिका अनुमान कर लिया जाता है उसी प्रकार यह अनुमान भी सहजमें हो सकता है । जीवंधरकी  
 यह बात सुनकर तथा उसकी चेष्टा छाया और स्वर आदि देखकर वह तपसी विचार करने लगा कि यह कोई साधा-  
 रण बालक नहीं है इसके चिन्हसे अनुमान होता है कि अवश्य ही इसका जन्म किसी राजवंशमें होना चाहिये ॥ २६२-  
 २६६ ॥ इस प्रकार किसी उपायसे उसके वंशकी परीक्षा करनेकी इच्छासे उसने जीवंधरसे याचना की कि मुझे थोडा  
 सा भोजन तो दो ॥ २६७ ॥ कुमार जीवंधरने भी उसे भोजन देनेकी स्वीकारता दी और वह उसे अपने साथ पिताके  
 पास ले गया । वह पितासे कहने लगा कि मैंने इसे भोजन देनेके लिये कहा है इसमें आप ही प्रमाण हैं । जीवंधरकी

मधोऽष्टाहय ॥ २४३ ॥ अवबोधेय तमात्मान भद्र त्व नयन मम । वर्द्धयान्यैरविज्ञातमिति तस्मै समर्पयत् ॥ २४५ ॥ सोऽपि न प्रतिगृह्येव करोमीति  
कृतवत् ॥ गत्वा शुद्ध स्वकान्तायै नन्दयै तत्प्रवृत्तं ॥ २४६ ॥ किमप्यप्रतिपाद्यास्यै कुप्यशिव गतस्तृते । सप्राणमपरीक्ष्यैव भवत्येतदपत्यक ॥ २४७ ॥  
विसर्जनाय मन्त्रस्ते निर्विचारं समर्पित । आयुष्मान् पुण्यवानेप शुद्धान्तेति वितीर्णवान् ॥ २४८ ॥ प्रलच्छत्सापि सतुष्टा कराम्या बालभास्करं । विराजिन प  
राजिल बाल लोलविलोचना ॥ २४९ ॥ तस्यान्यदा वणिक्वर्धे कृतमगलसत्कियः । अयप्राशनपर्वते व्याघ्राजीवधराभिधा ॥ २५० ॥ अथेला तेन यज्ञेन  
तस्मात्सा विजयाह्वया । दण्डकारण्यमध्यस्थ महान्त तापसाश्रम ॥ २५१ ॥ तत्राप्रकाशमेवैषा वसति स समाकुला । ता यशो समुपागता तच्छोकापनुदे-  
च्छया ॥ २५२ ॥ तदवस्थोचितश्रव्यकयामि सद्यतेः स्थिति । प्रलूय धर्ममार्गं च प्रलह समरीरमत् ॥ २५३ ॥ इतः सत्याधरान्यस्य दुर्पेद्रस्य कनीयसी ।  
भामारति परानगपताका च मनोरमे ॥ २५४ ॥ मधुरं वकुल चान्यमलमेता सुतादुभा । झाला सद्धर्मसद्भाव शुहीतश्रावकनैता ॥ २५५ ॥ तां च गव्यो

कर कहा कि तेरी स्मरण शक्ति भी सब नष्ट हो गई है तूने विना परीक्षा किये ही और विना कुछ विचार किये ही  
प्राणसहित इस बालकको स्मशानमें रखनेके लिये मेरे हाथमें सौंप दिया यह बालक चिरजीवी है और पुरयवान है ले  
इसका पालन कर इसप्रकार कह कर शेटने वह बालक अपनी स्त्री नंदाको सौंप दिया ॥ २४६-२४८ ॥ चंचल नैत्रो-  
वाली उस नंदाने भी संतुष्ट होकर उदय होते हुए सूर्यको भी जीत कर सुशोभित होनेवाले उस बालकको गोदीमें  
ले लिया ॥ २४६ ॥ दूसरे ही दिन उस शेटने अनेक मांगलिक क्रियाएं कर अन्नप्राशन क्रियाके बाद उस बालकका  
जीवंधर नाम रक्खा ।

अथानंतर—वह विजया महारानी उसी यंत्र पर बैठ कर वहांसे चली और दंडक वनके भीतर जो बड़ा भारी तापसा-  
श्रम है उसमें छिपकर रहने लगी । जब वह विजया शोकसे व्याकुल होती थी तब वह यक्षी आकर उसका शोक दूर  
करनेके लिये उसकी अवस्थाके योग्य सुनने योग्य कथाओंके द्वारा संसारका स्वरूप और स्थिति निरूपण कर उसे प्रति-  
दिन धर्म मार्ग पर लगाती थी ॥ २५०-२५३ ॥ इधर महाराज सत्यंधरकी भामा रति और अंगगताका नामकी दो  
छोटी रानियां और थीं । इन दोनोंके मधुर और वकुल नामके दो पुत्र हुए थे । इन दोनोंने ही सद्धर्मका स्वरूप जानकर  
श्रावकके व्रत धारण कर लिये थे ॥ २५४-२५५ ॥ ये दोनों ही भाई शेट गंधोत्कटके यहां ही पालन पोषण होकर बड़े  
थे । उसी नगरमें विजयमति, सागर, धनपाल और यतिसागर नामके चार श्रावक और थे जो कि अनुक्रमसे राजाके  
सेनापति पुरोहित श्रेष्ठ और मंत्री थे । इन्हीं चारों श्रावकोंके अनुक्रमसे जयावती श्रीमती श्रीदत्ता और अनुपमा नामकी

इतिरीक्षते । नेक्षित स्यात्सु तेनापि क्वपि किञ्चित्कदाचन ॥ २३५ ॥ सत्सु भाविषु च प्रीतिरस्ति चेदस्तु वस्तुषु । ६५ प्रययति प्रीतिं विनष्टेषु सुधीः स  
कः ॥ २३६ ॥ इति संसारसङ्ग्रावं निर्विल्य विजये प्रिये । कुच मा गा व्यतीर्तषु कृपा प्रीतिं च मा कृया ॥ २३७ ॥ श्रीमानामुक्तिर्पर्यन्तं सुतोऽयमुदि-  
तोदितः । निहत्यारातिदुर्वृतं मोद ते जनविष्यति ॥ २३८ ॥ अ हि वित्तं समावेहि योग्यमाहारमाहार । किं दृष्टानेन शोकेन धिग्देहक्षयकारिणा ॥ २३९ ॥  
गलन्तरेपि ते मर्ता न हि शोकेन लभ्यते । गतगो भिक्षवत्पीनः कर्मभेदेन देहिना ॥ ३४० ॥ इत्यादियुक्तिमद्वाग्भिः सविधाय विशोक्तिका । पाश्चे तस्याः  
स्वयं सास्त्रासुता सौहार्दमीदृश ॥ २४१ ॥ तत्र गंधोत्कटं स्वस्य स्वयं भिक्षुशव तदा । गच्छन्नक्षिप्य गंभीरमाकर्ण्यार्मकमुत्तरं ॥ २४२ ॥ जीव जीवेति  
जीवधराख्या वा भाविनी वृद्धन् । सत्वं मुनिसमाविष्टमिति तुष्टोऽवगम्य तं ॥ २४३ ॥ कौतो प्रसार्य सक्नेहं बालं सयुदतिष्ठपत् । देवी तत्स्वरमाकर्ण्य बुद्ध्वा  
जा मकता है ॥ २३६ ॥ इस प्रकार संसारका स्वभाव चितवन कर है प्रिये विजये अब तू शोक मत कर और नष्ट हुए  
राजामें व्यर्थ ही प्रेम मत कर ॥ २३७ ॥ यह श्रीमान् तेरा पुत्र मोक्षगामी है मोक्ष जाने पर्यंत इसका अभ्युदय बराबर  
प्रगट होता रहेगा और शत्रुके दुराचरणको नष्ट कर यह अवश्य ही तुझे प्रसन्न करेगा ॥ २३८ ॥ इस लिये अब तू  
स्नान कर चित्तको शांत रख और योग्य भोजन कर अब शरीरको नष्ट करनेवाले और धिक्कारनेयोग्य शोकसे क्या लाभ  
है ॥ २३९ ॥ अब शोक करनेसे कुछ परलोकमें भी तेरा वह पति नहीं मिल सकता क्योंकि जीवोंको कर्मोंकी  
दूर किया और वह उसके समीप ही रही सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी सज्जना ऐसी ही होती है ॥ २४० ॥  
इतने में ही वहां गंधोत्कट शेट अपने भरे हुए पुत्रको वहां रखनेकेलिये स्वयं गया उसने पुत्रको यथास्थान रख दिया  
और फिर एक बालकका गंभीर शब्द सुना ॥ २४१ ॥ उसी समय उसने 'जीव जीव' ऐसा आशीर्वाद दिया मानों हो-  
नहार जीवधर नामको ही पुकारा मुनिराजके बचनको सत्य मानकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ और उस बालकके पास  
पहुंच कर तथा दोनों हाथ फैलाकर बड़े प्रेमसे उस बालकको उठा लिया । विजया देवीने उस गंधोत्कटका शब्द सुनकर  
ही उसे पहिचान लिया और फिर उसे समझाया कि हे भद्र तू इस भरे पुत्र को अपना ही समझ कर पालन पोषण  
करना और इस प्रकार रखना जिससे किसीको मालूम न हो इस प्रकार कह कर उसने वह पुत्र उस शेटको समर्पण कर  
दिया ॥ २४३-२४५ ॥ शेट गंधोत्कटने भी 'मैं' ऐसा ही कहेगा 'ये शब्द कह कर वह बालक ले लिया और वही  
जल्दी अपने घर पहुंचा । उसने अपनी स्त्री नंदासे ये सब समाचार तो नहीं बतलाये परंतु कुछ क्रोध सरीखा दिखला

लितार्थकैः ॥ २२५ ॥ सम्बन्धमार्गयोर्वचनं स्तेनैर्नाविधे रवैः । समिदग्न शव नहेराकुप्यच्छिद्य खण्डश ॥ २२६ ॥ कृत्तिकामिनिशातामिदंकिनीमि  
समन्ततः । सादन्तीमिष सकीर्णं पिनूणामगमद्वनं ॥ २२७ ॥ तत्र रात्रौ कृतारक्षा यस्या विगतबाधिका । अलम्भ तनय कान्त चैरिवावृतदीधिति ॥ २२८ ॥  
नाभ्रदस्यास्तोऽन्योऽपि पुत्रोत्पत्तिमुत्सवः । शोक प्रत्युत सभूतो विलोमविधिवर्धितः ॥ २२९ ॥ सद्यो यक्षी च सुभाष्य समतान्ममिदीपिका । शोककुल  
विलोक्यैना दानालीढलतोपमा ॥ २३० ॥ सर्वस्थानानि दुःस्थानि गरुडैर्गौशैर्वाऽथैव । सिध्वसी बहुसबधो जीवित कीपचचल ॥ २३१ ॥ कायः सर्वोऽपि प्रायो हेयो-  
ऽयमिह धीमतां राज्य सर्वजगत्तुल्य विद्यदुद्योतसन्निभं ॥ २३२ ॥ पर्यायेवेव सर्वेषा प्रीतिः सर्वेषु वस्तुषु । सेऽवश्य नश्वरास्तस्माद्वीतिः पर्यततापिनी ॥  
२३३ ॥ सत्यप्यर्थे रतिर्न स्यात्सत्य वा सति चेष्टिते । सति स्वस्मिन् रौतौ चासौ त्रयाणां वा स्थिते क्षति ॥ २३४ ॥ यस्य निष्कममासाद्य विश्वं वि-

वह महारानी पहुंची ॥ २२४-२२७ ॥ रात्रिमें उस यक्षीने उसकी खूब रक्षा की और कोई बाधा नहीं होने दी । जिस प्रकार आकाशमें चंद्रमाका उदय होता है उसीप्रकार उसीरात्रिमें उसके सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२८ ॥ उससमय विजया महारानीके पुत्र उत्पन्न होनेका उत्सव विलुल नहीं हुआ था किंतु कर्मोंकी विपरीतता वदजानेसे अर्थात् पाप कर्मोंके उदय हो जानेसे शोक उत्पन्न हुआ था ॥ २२९ ॥ जिसप्रकार दावानल अग्निसे लता मुरझा जाती है उसीप्रकार यक्षीने उस रानीको शोकसे व्याकुल देखकर शीघ्रही चारों ओर मणियोंके दीपक लगा दिये ॥ २३० ॥ तदनंतर वह यक्षी उस रानीको समझाने लगी कि देखो इस संसारमें सब जगह दुःखही दुःख भरे हैं, यह जीवन लक्ष्मी भी अवश्य ढल जाने वाली है, भाई बंधुओंका समागम भी नाश होनेवाला है और यह जीवन भी दीपकके समान चंचल है ॥ २३१ ॥ यह शरीर सब ओरसे अशुद्ध है इस लिये बुद्धिमानोको प्रायः छोड़ने ही योग्य है और सभस्त संसार जिसकी पूजा करता है ऐसा यह राज्य विजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है ॥ २३२ ॥ सब जीव जो सब वस्तुओंमें प्रेम करते हैं वे उनकी पर्यायोंमें ही करते हैं और पर्यायें सब अवश्य नष्ट होनेवाली हैं इस लिये प्रेम करनेसे अंतमें अवश्य ही संताप होता है ॥ २३३ ॥ अनिष्ट पदार्थोंके रहते हुए भी उनमें प्रेम नहीं होता तथा इष्ट पदार्थोंके रहते हुए उन पर अपना अधिकार नहीं होता और अपने पदार्थोंमें प्रेम होने पर पदार्थ, इष्टपना और अधिकार इन तीनोंकी ही स्थितिका नाश हो जाता है ॥ २३४ ॥ यह ज्ञान बिना किसी क्रमके ( एक साथ ) संसारके सभस्त पदार्थोंको जानता है परंतु उसने भी किसी समय किसी जगह किसी पदार्थको किसी स्थिर रहनेवाला नहीं देखा है भावार्थ-संसारमें सब कुछ नश्वर है ॥ २३५ ॥ यदि होनहार पदार्थमें प्रेम हो तो हो परंतु जो नष्ट हुए पदार्थोंमें भी प्रेम करता है वह बुद्धिमान कैसे कहा

२१५ ॥ शरदसोऽयमच्छन्नप्रगतिं सुचिरं दुःखदा । काष्ठांगारिकमंत्री च शरदस्तनिरूपितात् ॥ २१६ ॥ दुर्गं स्वसृष्ट्युमांशं कथं प्रजिघासुदुर्गावाय । द्विसहस्रम-  
हीपालैर्दानमित्रैर्भेदोत्कटैः ॥ २१७ ॥ राक्षसेहं समुद्दिश्य संनद्धगजवाजिभिः । सप्त सममियाति स्म तद्विदत्वा महीपति ॥ २१८ ॥ देवीं गरुडं न त्रस्यामपवा-  
ये प्रयत्नतः । प्राग्मेतिस्वीकृतासीयमहीपालैः स्तूयमानात् ॥ २१९ ॥ विमुक्तमंत्रिभिः सार्धं कुत्वा संप्राप्य मन्त्रिण । युद्धे सखं स निर्जित्य भयोन्मार्गमनी-  
नयत् ॥ २२० ॥ वृद्धं कालांगारिकस्तस्य सगरे भगवान् ॥ २२१ ॥ सकोषो नहुसंजद्धबलेन सहसागतः ॥ २२२ ॥ काष्ठांगारिकपापोऽपि पुनस्तैर्नैव संगत ।  
हत्वा युद्धे महीपालं तस्मिन् राज्येऽप्यवस्थित ॥ २२३ ॥ सविषं वाहनं मित्रं कृतम वा सहिसक । धर्मं वाशमंद राज्यमाददे सविवाधमः ॥ २२४ ॥  
धत्तो विजयदेवी च यन्त्रमारुह्य गारुडः । शोकमिदममानां रदती यक्षिरक्षिता ॥ २२५ ॥ व्रणवक्त्रगलद्वारा लोहितकान्तशूलकैः । झलति भेदं स मृतवेदनाद्ध-

दोहजार बड़े घोड़ा राजाओंको धन देकर अपने वश कर लिया उन सबको साथ लेकर तथा अनेक तै २०१ ॥ वा  
हाथी घोड़ोंको लेकर राजभवनकी ओर चला और वहां पहुंच गया । राजाने सब समाचार जानकर विजयाकर पृथ्वी  
गरुडयंत्र पर विठाया और बड़े प्रयत्नसे उसे अपने यहांसे दूर किया । जो राजा पहिले काष्ठांगार मंत्रीके वश देख कर  
थे उन्होंने राजाको देखतेही काष्ठांगार मंत्रीको छोड़ दिया और वे राजाके वश होगये । राजा उन सब राजांतर एक  
क्रोधपूर्वक मंत्रीके पास पहुंचा और शीघ्रही उसे युद्धमें जीतकर भयके मार्गपर पहुंचा दिया ॥ २१४-२२० ॥ शत्रुके  
के पुत्र कालांगारिकने युद्धमें अपने पिताके हारनेकी बात सुनी जिससे उसे बहुतही क्रोध आया और वह शीघ्रैश्योंमें  
सी तैयार सेना लेकर आगया ॥ २२१ ॥ पापी काष्ठांगार भी अपने पुत्रके साथ आ मिला और राजाको मा नामके  
उसके राज्यसिंहासनपर बैठा ॥ २२२ ॥ उस नीच काष्ठांगार मंत्रीने विष मिले हुए भोजनके समान अथवा कुं-इदयसे  
समान, अथवा हिंसक धर्मके समान अकल्याण करनेवाला वह राज्य स्वीकार किया ॥ २२३ ॥ इधर विजया महादेवी  
गरुडयंत्र पर बैठकर चली । शोकरूपी अग्निसे उसका शरीर जल रहा था और वह रो रही थी तथापि यत्नी देवता उसकी  
रक्षा कर रही थी । इसप्रकार वह विजया रानी श्मशान भूमिमें जा पहुंची । उस स्मशानमें कितने ही लोगोंको शूली दी  
जा रही थी जिससे उनके गलोंमें घाव होगये थे और उन घावोंसे निकलते हुए रक्तसे वह शूली भीग गई थी कहीं पर  
उस शूलसे जो मस्तक कट गया था उससे उसको जो दुःख हुआ था उससे प्राणही लटक रहे थे कहींपर चोर नीचेकी  
ओर मुंहकर लटकाये जा रहे थे जिससे वे अनेक तरहसे रो रहे थे, और कहींपर डाकिनियां अथजले मुरदोंको अग्निमेंसे  
निकालकर तथा तेज छुरीसे उसे काटकर चारोंओरसे खा रही थीं इसप्रकारके भयानक दृश्योंसे भरे हुए उस स्मशानमें

राजकुल वैनेत्यत्रागताभवत् । प्रायः प्रकृतपुत्रेन सनिषित्सति देवताः ॥ २०६ ॥ अथागते मधौ मासे सर्वसत्त्वसुखावहे । पुरोहितोऽहितोऽन्येषु श्रान्त-  
रेव समागतः ॥ २०७ ॥ महीपतिगृहं देवीं वीक्ष्य वीतविभूषणा । उपविष्टा न राजेति समपृच्छत्स सादरे ॥ २०८ ॥ साप्याह सुसवानराजा शक्यो नैव नि-  
सीदितु । इति तद्वचन सोऽपि दुर्निमित्तं विभावयन् ॥ २०९ ॥ ततो निवृत्त सप्राप्य काष्ठांगारिकर्मत्रिण । भास्करोदयवेलाया मेह तत्रावलोक्य त ॥  
२१० ॥ पापबुद्धिमिश्रोऽवादीन्द्राज्य तव भविष्यति ॥ महीपतिर्निहतः स्वयेति तदुदीरित ॥ २११ ॥ श्रुत्वा कर्मकर मन्त्रिपदे मामित्यगोजयत् । राजायाम्  
कृतज्ञो वा कथं वापकरोम्यह ॥ २१२ ॥ रुद्रदत्त ! त्वया प्रभावताप्येतत्सुदुर्नयं । निरूपितमिति श्रोत्रपिधानं समयो व्यधात् ॥ २१३ ॥ पुरोहितस्तदाकर्ण्य  
भविष्यत्सूत्रं तस्मै । प्राणहारी भवेत्तत्र प्रतीकारं ततः कुरु ॥ २१४ ॥ इत्येतदभिधायाजु गत्वा तत्पापपाकतः । तृतीयदिनं वै व्याधिपीडितो विगतायुक्तः ॥

उसके चित्तमें माताके उपकार करनेकी इच्छा प्रगट हुई । वह उसीसमय राजकुलमें गई और एक गरुडयंत्रका रूप बना  
कर वहां पहुंची । सो ठीक ही है क्योंकि मायः पहिले किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे देवता भी समीप अस्मिन् कर्मके  
॥ २०२-२०६ ॥ अथानंतर सब जीवोंको सुख देनेवाला वसंतऋतु आया । किसी एक दिन वह अहित क्रूर यक्षीने  
रुद्रदत्त नामका पुरोहित सबेरेके समय राजाके घर आया । रानीको आभूषणरहित देखकर वह बैठ गया और रानी उस  
रानीसे पूछा कि राजा कहाँ है ॥ २०७-२०८ ॥ रानीने उत्तर दिया कि राजा सोये हुए हैं उनके दर्शन अर्थात् जाने  
सकते । रानीके इन वचनोंको ही उस पुरोहित ने अशुभ समझा और फिर वहांसे लौटकर वह काष्ठांगार मंत्र २३१ ॥  
आया । उस समय सूर्य उदय हो रहा था वहांपर काष्ठांगारको देखकर उस पापी पुरोहितने काष्ठांगारसे कासकी पूजा  
राज्य सब तेरा हो जायगा तू शीघ्रही राजाको मार डाल । इसप्रकार पुरोहितके वचन सुनकर भयभीत होकर मेम करते  
से कानोंको ढककर कहने लगा कि मैं राजाका एक कर्मचारी हूं मुझे राजाने मंत्री पद दिया है यद्यपि यह वश्य ही सं-  
तप्त है अर्थात् मेरे किये हुए कर्मोंको विलुप्त नहीं जानता तथापि मैं ऐसा अप्रकार कैसे करूं ? हे रुद्रदत्त ! तू तो बुद्धि-  
मान है तथापि तूने ऐसी दुर्नीतिके ( अन्यायके ) वचन कैसे कहे ॥ २०६-२१३ ॥ काष्ठांगारके ऐसे वचन सुनकर वह  
पुरोहित फिर कहने लगा कि अच्छा इस राजाका होनहार पुत्र तेरा प्राणघातक होगा इसलिये तू इसका कुछ भी उपाय  
कर इसप्रकार कह कर वह पुरोहित शीघ्रही अपने घर चला गया परंतु उस पाप कर्मके उदयसे तीसरेही दिन वह रोगसे  
पीडित हुआ और मर गया । परकर वह रुद्रदत्त बहुत दिन तक दुःख देनेवाली नरक गतिमें गया । इधर दुष्ट आशयवाले  
काष्ठांगार मंत्रीने रुद्रदत्तके कहे हुए वाक्योंके अनुसार अपनी मृत्युकी आशंका कर राजाको मारनेकी इच्छा की । उसने

अ त्वमित्याह महीनात् प्रियाप्रियं । धृत्वा शोकप्रमोदाभ्यां तापान्निवृत्तयेतस्य ॥ १९५ ॥ राश्रीं राधा समालोक्य सङ्कष्टा समतपयत् । सुलेनैव तयोः  
काले गतिं कथित्समागतं ॥ १९६ ॥ देवलोकारिस्थितिं लेभे देवीगर्भशृङ्गे सुखं । सपुण्यो राजहट्ठो वा शारदाद्वजरोदरे ॥ १९७ ॥ अश्वान्यैश्वर्यमिन्द्रेया  
१९९ ॥ बहवोऽन्यायुषोऽभूत्कृतनयाः पापपाकतः । वीषायुषो भविष्यन्ति यता ये किमताः परे ॥ २०० ॥ इति शोऽपि दयालुवान्मुनीनां प्राप्राक्षीभ्रगन्मम ॥  
तत्र कंठितयूजं त्व लक्ष्यसे पुण्यभाजन । स समस्तां महीं भुजता वृत्तो देवविक्रं शृणु षण्णिवर । लक्ष्यमानसुत सवो यत लयकु वनं गत ॥ २०२ ॥  
तद्वचन धृत्वा कान्तितर्पनीया स्थिता ॥ २०४ ॥ यक्षी मनियतो राजसूतोः पुण्यप्रनोदिता । तस्मिन्पुत्रो स्वयं मातुरपकारकितियगा ॥ २०५ ॥ गत्वा  
रानीको विवाया और पूछने पर कहा कि मेरे नष्ट होनेके बाद तेरे पुत्र होगा जो कि आठ लाभोंको पाकर पृथ्वी  
का भोक्ता होगा । रानीका चित्त ऐसे अभिय वाक्यको सुनकर शोक और आनन्दसे भर गया । ऐसी रानीको देख कर  
राजाने अच्छे २ वचनोंसे सम्भा कर संतुष्ट किया इसके बाद उन दोनोंका समयमुखसे व्यतीत होने लगा । तदनंतर एक  
देवका जीव स्वर्गसे च्युत होकर विजया रानीके गर्भमें आया और मुखपूर्वक इस प्रकार रहने लगा मानों शत्रुद शत्रुके  
कमलोंसे मुशोभित सरोवरमें पुस्यवान् राजहंस ही हो ॥ १९४-१९७ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें रहनेवाले वैश्योंमें  
श्रेष्ठ और वनी शेट गंधोत्कटने मनोहर नामके वनमें मतिश्रुत अवधि तीनों शानोंको धारण करनेवाले शीलगुप्त नामके  
महा मुनिराजको देखा उसने वडी विनयके साथ नमस्कार किया और पूछा कि हे भगवन ! मेरे पापकर्मके उदयसे  
कितने ही पुत्र थोडी आयुवाले हुए हैं । हे प्रभो ! क्या आगे कोई वडी आयुवाला भी पुत्र होगा या नहीं ॥ १९८-२०० ॥  
इस प्रकार पूछने पर दयालु मुनिराज कहने लगे कि हां तेरे चिरंजीवी पुत्र भी होंगे ॥ २०१ ॥ हे वैश्यवर !  
चिरंजीवी पुत्र होने की बात पर विश्वास रखनेका चिन्ह यह है तू अच्छी तरह सुन । गोहे ही दिनमें तेरे मृतपुत्र होगा  
उसे रखनेके लिये तू वनमें जायगा वहाँपर तुझे एक पुत्र मिलेगा जो कि बडाही पुण्यात्मा होगा तथा वह समस्त पृथ्वी  
का उपभोग ( राज्य ) कर इंद्रियोंके विषयसंबंधी सुखोंसे वृत्त होकर वडी प्रसन्नताके साथ सब कर्मोंको नष्ट करेगा और  
भोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगा । इस प्रकार उन मुनिराज ने कहा दैवयोगसे वहाँपर एक यक्षी बँधी थी उसने भी ये सब बातें  
सुनी इधर होनहार राजपुत्र के पुरयकर्मोंने भी मानों उसे प्रेरणा की और इसीलिये उस राजपुत्रके उत्पन्न होनेके समय



हृये ॥ १८३ ॥ स्थित पिण्डिदुसस्यावो जीवधरमुनीश्वर । ध्यानाकलं विलोचयितद्रूपविषु विषकधी ॥ १८४ ॥ सकीतुकं समभ्येत्य सुचर्मगणनायक । भाक्तिकोऽप्यन्त्यं बन्दिता यथास्थानं निवेद्य तम् ॥ १८५ ॥ प्राजलिर्मगवानेन यसीन्द्र सर्वकर्मसि । मुक्तो बायैव को वेति पप्रच्छ प्रप्रथाश्रय ॥ १८६ ॥ अवबोधचतुष्कात्मा सोऽप्येवं सममाश्रित । केदो न हि सतां हृतेर्वक्तुः श्रोतुश्च चेतस ॥ १८७ ॥ शृणु श्रेणिक जम्बुभूजविभूषितभूतले । अत्र हेमाद्रगदे देवो राजन् राजपुराधिप ॥ १८८ ॥ राजेव रंजिताशेषः सत्यधरमहीपति । विजयास्य महादेवी विजयश्रीविवापरा ॥ १८९ ॥ सर्वकर्मचणोऽमाल्यः का-  
ष्ठागारिकनामश्रुत । भक्ता देवोपघातानां रुद्रदत्त पुरोहित ॥ १९० ॥ कदापिद्विजया देवी सुता गर्भगृहे सुख । मुकुट भूभुजा हेमघटाष्टकविराजित ॥ १८१ ॥ दत्त स्वस्यै धिताशोकतरोर्मूलं च केनचित् । छिन्न परशुना जगत पुनर्बालमहीरुह ॥ १९२ ॥ निभाया पद्मिने यामे स्वप्रावेता प्रमकधीः । विलो-  
क्य सा तयोर्भागं फलमभ्येत्य भूपति ॥ १९३ ॥ सप्रथया समीक्ष्यैनमन्मयुक्त मदलये । अष्टौ कभ्यानावाप्यान्ते क्षितेर्भाकारमात्मज ॥ १९४ ॥ आत्म्यसा-

रहे थे ॥ १८३ ॥ वहीं पर एक जगह पिंडीदृशके नीचे ध्यानाकल महाराज जीवधर मुनिराज विराजमान थे । महाराज श्रेणिक उनके रूपादिकमें आसक्त चित्त होकर कौतुकके साथ भीतर गये तथा वही भक्तिसे सुचर्म गणधरदेव की पूजा बंदना कर अपनी जगह पर बैठ गये । तदनंतर वे हाथ जोड़कर वडी विनयसे गणधरदेवसे पूछने लगे कि हे भगवन्! मानों सब कर्मोंसे आज ही मुक्त हो जायेंगे ऐसे ये मुनिराज कौन हैं? ॥ १८४-१८६ ॥ इसके उत्तरमें चार ज्ञानकी धारणा करनेवाले भगवान गणधर देव नीचे लिखे अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके चारित्र्यसे वक्ता और श्रोता दोनोंके चित्तको खेद नहीं होता ॥ १८७ ॥ वे कहने लगे कि हे श्रेणिक सुन ! इसी जंबू दृक्षसे सुशो-  
भित होनेवाली पृथ्वीपर हेमांगद नामका एकदेश है और उसमें राजपुर नामका नगर है ॥ १८८ ॥ उस नगरमें चंद्रपाके समान सबको प्रसन्न करनेवाला सत्यधर नामका राजा था और दूसरी विजयलक्ष्मीके समान विजया नामकी पट्टरानी थी ॥ १८९ ॥ उसी राजाके सब कामोंमें निपुण ऐसा काष्ठांगार नामका मंत्री था और दैवजन्य उपघातोंको दूर करने-  
वाला रुद्रदत्त नामका पुरोहित था ॥ १९० ॥ किसी एक समय वह विजया महादेवी भीतरके राजभवनमें सुखसे सो रही थी वहां पर उसने दो स्वप्न देखे पहिला यह कि सुवर्णके आठ घंटोंसे सुशोभित अपना मुकुट राजाने रानीको दे दिया है दूसरा रानी एक अशोकवृक्षके नीचे बैठी है परंतु किसीने वह अशोक वृक्ष कुल्हाड़ीसे काट डाला है और उस जगहसे दूसरा छोटा अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ है ॥ १९१-१९२ ॥ रानीने प्रसन्न चित्त होकर ये स्वप्न रात्रिके पिछले पहर देखे थे । सबेरे ही उठ कर वह उनका फल पूछनेके लिये राजा सत्यधरके पास विनयके साथ गई ॥ १९३ ॥ राजाने

नैवदुग्धस्य मित्रवीराहवः कृषीः ॥ १७२ ॥ शृङ्गे दृषभसेनस्य चंदनां स समर्पयत् । पिता श्रीनागदत्तस्य धनदेवो वणिग्वरः ॥ १७३ ॥ खलौकं शांत-  
चित्तं न तत्स्य श्रेष्ठितां गतः । श्रीमान् दृषभसेनाख्यः कौशाव्यां कलितो गुणैः ॥ १७४ ॥ सोमिलायां कृतद्वेषा चित्रसेनां चतुर्गतिः । परिश्रम्य विरं शांता-  
मनां तत्रैव विदुस्तता ॥ १७५ ॥ भूत्वा दृषभसेनस्य पत्नी भद्राभिधाभवत् । निदानकृतवैरेण न्यगृह्णाचंदनामसी ॥ १७६ ॥ चंदनैवाच्युतात्कल्याणप्रसंगस्य  
दुर्मोदयात् । द्वितीयवेद संश्रम्य पारमात्म्यमवाप्स्यति ॥ १७७ ॥ एवमवधिविधानोक्तमिव्याभावादपचकात् । संचितैः कर्मभिः प्राप्य द्रव्यादिपरिवर्तनं ॥  
१७८ ॥ संसारे पंचधाशोकदुःखानुप्राप्यनारतः । प्राजुतः कृतातास्ये हत सीदति जंतवः ॥ १७९ ॥ त एव लघ्यकालादिसाधनं मुक्तिसाधनं । सन्यक्तत्वज्ञानवा-  
च्यविरसायनात् । सभा सर्वो बन्धुबालौ तद्वैवाज्यरामरा ॥ १८० ॥ अन्यदालौ महाराजः श्रेणिकाख्यः परिश्रमन् ॥ १८१ ॥ इति तद्भ्रातृमाधीश्वश्रीमद्  
दृषभसेनका सेवक है और उसीने चंदना दृषभसेनको समर्पण की थी । नागदत्तका पिता श्रेष्ठ धनदेव शांतचित्तसे मर कर  
स्वर्ग गया था और वहांसे आकर गुणोंसे भरपूर कौशावी नगरमें श्रीमान् दृषभसेन नामका श्रेष्ठ हुआ है ॥ १७२-  
१७४ ॥ चित्रसेनाने पहिले सोमिलासे द्वेष किया था इसलिये वह बहुत दिन तक चतुर्गतिमें परिश्रमण कर तथा शांत  
परिणामोंको धारण कर उसी कौशावी नगरमें वैश्य पुत्री हुई थी और भद्रा नामसे प्रसिद्ध होकर दृषभसेनकी स्त्री हुई  
है निदानसे जो उसने पहिले बैरागी विचार किया था उसीके संस्कारसे उसने चंदनाको दुःख दिया था ॥ १७५-१७६ ॥  
यह चंदना अच्युत स्वर्गसे आकर तथा शुभोदयसे पुंवेद पाकर अवश्य ही परम मोक्ष पदको प्राप्त होगी ॥ १७७ ॥ इसप्रकार  
बंधके साधनोंमें जो मिथ्यात्वादिक पांच भाव कहे हैं उनसे संचित किये हुए कर्मोंके द्वारा यह जीव द्रव्य क्षेत्र आदि पंच-  
परावर्तनोंको प्राप्त होता है । संसारमें निरंतर होनेवाले ये ही पांच प्रकारके सबसे बड़े दुःख हैं इन्हींको भोगता हुआ यह  
जीव कालके सुखमें पड़ता है और फिर अनेक तरहके दुःख भोगता है ॥ १७८-१७९ ॥ इस लिये काल लब्धि प्राप्त  
होना आदि जो मोक्षके साधन हैं तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य तपस्व्य जो सबसे उत्तम मोक्षके साधन हैं उनको पाकर  
तथा पुण्य कर्म करते हुए सातों परम स्थानोंमें परम ऐश्वर्य पाकर ये जीव अनंत सुखी होते हैं ॥ १८०-१८१ ॥ इस  
प्रकार वह सब सभा गौतम गणधरकी पुण्य लक्ष्मीसे भरी हुई ध्वनिरूपी रसायनसे उसी समय अजर अमरके समान  
हो गई थी ॥ १८२ ॥  
अथानंतर—किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक गंधकुटीके बाहर देदीप्यमान चारों वनोंमें बड़े प्रेमसे धूम

एवं श्रावकपदार्थमवगम्य परस्परं । जातसौहार्दचित्तानां दानपूजादिकर्मभिः ॥ १६१ ॥ काले गच्छति जीवाते सन्ध्यासविधिमश्रित । श्रीनागदत्त । सौधर्म-  
कस्तेऽन्यत्प्राप्तो भवतु ॥ १६२ ॥ तत्र निर्विघ्नदिव्योत्सवो भोगश्च्युत्वा ततो जति । द्वीपेस्मिन्भारते खेचराचले नगरे वरे ॥ १६३ ॥ शिवकुरे तदीशस्य विद्याधर-  
घरेजिन । सुत पनववेगस्य सुवेगया सुखावहः ॥ १६४ ॥ मनोवेगो जन्मो यत्वेहेन विवशीकृत । अनेपीबदनासेनामसिनेद्रोऽप्य नयेत ॥ १६५ ॥  
स एषोऽप्यर्णमव्यत्नादमुष्मिन्नेव जन्मति । जिनाकृतिं समादाय संप्राप्यस्यधिम पद ॥ १६६ ॥ ततः श्रीनागदत्तस्य नाकलोकात्कनीयसी । इहागत्याभव-  
नाम्ना मनोवेगा महायुति ॥ १६७ ॥ पत्मावनगरे नागदत्तहस्तयुत खगः । सुरलोकाद्भूतोऽसौमवो त्वं चेतको मृगः ॥ १६८ ॥ माता श्रीनागदत्तस्य धन-  
मित्रा दिव गता । ततश्च्युत्वा तवैवासीत्सुभदेय मन प्रिया ॥ १६९ ॥ यासौ पद्मलता सापि कृतोपवसना दिव । गत्वागत्याजनिष्ठेय चंदना नदना तव ॥  
१७० ॥ नकुल सस्रति प्रात्वा सिंहास्थोभृद्भूतेनर । प्राग्जन्मभेदेहवैराभ्यामवधीष्ट स चरना ॥ १७१ ॥ सहदेवोऽपि सद्यस्य ससारे रुचिरं पुन । कैशाख्या

बुद्धिमानने यात्राकं पहिले कही हुई श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की ॥ १५२-१६० ॥ इस प्रकार सबने श्रावकोंका सद्धर्म स्वी-  
कार किया, परस्पर सबके चित्त मित्ररूप हो गये और दान जिनपूजा आदि उत्तम कर्मोंके द्वारा सबका समय सुखसे  
व्यतीत होने लगा । आयुके अंतमें नागदत्तने समाधि परण धारण कर शरीर छोड़ा जिससे वह सौधर्मस्वर्गमें वही श्रुद्धि  
का धारक देव हुआ ॥ १६१-१६२ ॥ वहा पर उसने वहे बड़े दिव्य भोगोंका उपयोग किया और फिर वहांसे च्युत  
हो कर इसी द्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्र पर्वतके शिवंकर नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा पनववेगकी रानी सुवेगासे यह  
अत्यंत सुखी मनोवेगा हुआ है । दूसरे जन्मके उठे हुए स्नेहसे विवश होकर इसने चंदनाका हरण किया था सो ठीक ही  
है क्योंकि अत्यंत स्नेह कुमार्गमें ले ही जाता है ॥ १६३-१६४ ॥ यह आसन्न भव्य है और इसी जन्ममें दिगंबर मुनि  
होकर परम मोक्ष स्थान प्राप्त करेगा ॥ १६६ ॥ नागदत्तकी छोटी बहिन अर्थस्वामिनी स्वर्गसे यहां आकर यह महाकां-  
तिकी धारण करनेवाली मनोवेगा हुई है ॥ १६७ ॥ जो विद्याधर पलाश नगरमें नागदत्तके हाथसे मारा गया था वह  
स्वर्गसे आकर सोपबंधमें तु राजा चेटक हुआ है ॥ १६८ ॥ धनमित्रा नामकी जो नागदत्तकी माता थी वह स्वर्ग गई  
थी और वहांसे आकर यह तेरी मनको प्यारी सुभद्रा रानी हुई है ॥ १६९ ॥ जो नागदत्तकी स्त्री पद्मलता थी वह  
अनेक उपवास कर स्वर्ग गई थी और वहांसे आकर यह चंदना नामकी तेरी पुत्री हुई है ॥ १७० ॥ नकुल संसारमें  
परित्रमण कर सिंह नामका भील हुआ है और पहिले जन्मके स्नेह तथा वैरसे उसने चंदनाको तंग किया था ॥ १७१ ॥  
सहदेव भी संसारमें बहुत दिन तक परित्रमण कर कौशांबी नगरीमें मित्रवीर नामका बुद्धिमान वैश्यपुत्र हुआ है जो कि

तत्प्राप्तवत् । क वा गत त्वयेत्येष तृष्टः पृष्ठो महीयुजा ॥ १५१ ॥ आगयाचनयात्रादि सर्वमाभून्नोन्नीवीत् । तदाकर्णं नृपः क्रुधा प्रवृत्त श्रेष्ठिनिप्रहे ॥ १५२ ॥  
 न युष्मसि निर्वधो नागदत्तेन वारितः । दत्त्वा श्रेष्ठिपदं तस्मै सारविषममन्त्रितं ॥ १५३ ॥ विवाहविधित्वा पद्मलतामपि समर्पयत् । कथात्मससदि व्यक्त-  
 मवनीद्वीभ्यधादिदं ॥ १५४ ॥ परमं पुण्यस्य महात्म्यं राक्षसाद्यनरायतः । धृपेलायं महारक्षान्यात्मीक्रुत्यागतं सुख ॥ १५५ ॥ पुण्याब्जलायते वन्दिहविष-  
 मस्य मे कुमारेति प्रणमत स्वपुत्रक ॥ १५६ ॥ इति सभ्याश्च तद्वाक्यं वहवधेतसि व्यबुधः ॥ १५८ ॥ अतः श्रीनागदत्तोपि सजातानुशयं तदा । क्ष-  
 दिसे अंत तक सब कथा कह सुनाई और फिर उसके साथ अच्छे रत्न भेंट लेकर बड़े प्रेमसे महाराजके दर्शन किये ।  
 महाराजने उसे देखकर पूछा कि नागदत्त तुम कहाँसे आये और कहाँ चले गये थे इस प्रकार महाराजके पूछने पर  
 संतुष्ट होकर उस नागदत्तने अपना भाग मांगने और उसके लिये यात्रा करने आदिके सब समाचार आदिसे अंततक  
 कह सुनाए । उसे सुनकर राजाको भी क्रोध हुआ और वह शेरको ढंड देनेके लिये तैयार हो गया ॥ १५०-१५२ ॥  
 परंतु ऐसा करना ठीक नहीं है इस तरह समझा कर नागदत्तने उसे रोक दिया । राजाने बहुतसा अच्छा धन देकर  
 नागदत्तका शेरको पद दिया और विधिपूर्वक विवाह कर वह पद्मलता भी उसे समर्पण कर दी । तदनंतर राजाने सभामें  
 बैठकर सब लोगोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि देखो पुरायका महात्म्य कैसा है यह नागदत्त राक्षस आदि अनेक  
 विघ्नोंको दूर कर तथा अनेक महारत्नोंको लेकर सुख पूर्वक यहां आया है ॥ १५३-१५५ ॥ इसलिये कहना पड़ता है  
 कि पुरायकर्मेके उदयसे अग्नि भी जल हो जाती है, विष भी अमृतके समान हो जाता है पुरायसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं  
 और बड़े बड़े रोग तथा आपत्तियां भी पुरायसे शांत हो जाती हैं ॥ १५६ ॥ पुरायसे दरिद्री भी सधन हो जाता है और  
 स्वर्गकी प्राप्ति भी पुरायसे ही होती है इसलिये आपत्तियोंको दूर करने और संपदाओंकी इच्छा करनेवालोंको श्रीजिनेंद्र-  
 देवके कहे हुए धर्म शास्त्रोंके अनुसार सब क्रियाओंका अनुष्ठानकर सदा पुरायका संपादन करना चाहिये । राजाका यह उ-  
 पदेश सभाने सब सभासद लोगोंने अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण किया ॥ १५७-१५८ ॥ इसके बाद शेरको भी  
 बहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने सभामें ही पुत्रको नमस्कारकर क्षमा मांगी और कहा कि हे कुमार ! मुझे क्षमाकर । परंतु  
 नागदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और स्वयं खड़े होकर बड़े भीठे वचनोंसे पिताको संनम्य किया और फिर उस

व्याघातसम्मानलोचन । इतः श्रीनागदत्तोपि विलोक्य जिनमदिरै ॥ १४० ॥ किंचिद्वदक्षिणीकृत्य निर्षादान्नाहमिलिदः । प्रविश्य निहितस्तोत्रः सार्चनस्तत्र  
संस्थितः ॥ १४१ ॥ तदा विद्याधर कश्चित् दृष्ट्वा ज्ञातवृत्तकः । जैनः सञ्चित नीलास्माद् द्वीपमध्यान्मनोहरे ॥ १४२ ॥ बनेनतार्यं सुस्थाप्य समायु-  
च्छयादरान्वित । यथेष्टमगमत्समा हि धर्मवत्सलता सता ॥ १४३ ॥ तत्समीपेनुजाग्रामे वसत्येवैत्य सादरं । प्रत्याब्रवीद्धन तत्र मोषि निक्षिप्य सुस्थितः ॥  
१४४ ॥ अथोपगम्य तं कैवलास्त्वानुजादिसनाभय । कुमारभिनर्वा कन्या नकुलस्य जिघृषुणा ॥ १४५ ॥ श्रेष्ठिना वयमाहूता नि स्वर्वादिक्कपाणयः । कथं  
तत्र त्रिजिघ्याम इत्यल्लालुकुलचेतसः ॥ १४६ ॥ अथ सर्वेपि जाताः स्म इति ते न्यगददसा । तच्छ्रुत्वा साररत्ना निजालकदवकात ॥ १४७ ॥ तेनोषिक  
मुदा दत्त्वा न्यगमागमन मम । ददव्य संनिवेयिता कन्यायै रत्नमुद्रिका ॥ १४८ ॥ इत्युक्त्वा स्वयमित्यानुसीलदत्तगुरु मिय । वदित्वा रक्षसुनु च दृष्ट्वा स-  
न्निवृत्तमात्मनः ॥ १४९ ॥ आमूलत्कार्यमास्थाय सह तेन ततो गतः । साररत्नमहीपाल साजुराग विलोक्य ता ॥ १५० ॥ दृष्ट्वा भवानहो नागदत्त । कन्या-

इस प्रकार ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनिराजने उसे आश्वासन दिया । उधर श्रीनागदत्तने एक जिनमंदिर देखा,  
उसकी थोड़ीसी प्रदक्षिणा की और उसमें भीतर जाकर बैठनेका विचार किया । भीतर जाकर उसने भगवानकी स्तुति  
की और फिर चिंतातुर होकर वह वहीं बैठ गया ॥ १४०-१४१ ॥ देवयोगसे वहीं पर एक जैनी विद्याधर आ निकला  
उसने नागदत्तके सब समाचार जानकर उसे उस द्वीपसे धनसहित उठाकर मनोहर बनेमें जा उतारा । वह नागदत्तको  
वहां उतार कर और बड़े आदरसे आज्ञा लेकर अपनी इच्छानुसार चला गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी धर्म-  
वत्सलता यहीं कहलाती है ॥ १४२-१४३ ॥ उस मनोहर बनेके समीप ही नंदीप्राप था जहां उसकी वहिन व्याही थी वहाँ  
पर वह नागदत्त पहुंचा, वहिनने उसका आदर सत्कार किया और नागदत्त अपना सब धन एक जगह रख कर सुखसे  
रहने लगा ॥ १४४ ॥ तदनंतर किसी एक दिन नागदत्तको वहिनके ससुर आदि संबंधियोंने आकर कहा कि हे कुमार  
शेठ नई आई हुई कन्याका विवाह अपने पुत्र नकुलके साथ करना चाहता है उसने हमको भी बुलाया है परंतु हमारे  
पास धन नहीं है रीति हाथ हमलोग कैसे जाय इस प्रकार व्याकुल चित्त होकर सब संबंधियोने आकर कहा । उनकी यह  
बात सुन कर नागदत्तने अपने रत्नोंके भंडारमेंसे अच्छे २ रत्न निकाल कर वही प्रसन्नतासे उन्हें दिये और उन्हें  
समझा दिया कि तुम उस कन्याके पास जाकर उसे यह रत्नोंकी अंगूठी देना और उससे मेरे आनेके सब समाचार क-  
हना ॥ १४५-१४६ ॥ इस प्रकार संबंधियोंको समझा कर वह स्वयं भी चला सबसे पहिले शीलदत्त गुरुके समीप जा-  
कर उनकी बंदना की और फिर अपने मित्र अपने मित्र कोतवालके पुत्र ददं रथके समीप पहुंचा ॥ १४७ ॥ नागदत्तने ददरथसे आ-

१२८ ॥ आधूनाहोऽष्टवर्षा कन्यका शोकविह्वला । तद्व्याकुल्य-दोष्यानीत्याविह्वलतराक्षसः ॥ १२९ ॥ अयमुवा धर्मभक्तः तदुक्तवान्काशमीहः । लक्ष-  
सदमवात्सल्य सारं जैनदेशासने ॥ १३० ॥ जैनशासनमगदागति लक्ष्यतो मम । अपराधं क्षमस्वेति तदुक्तमवगम्य सः ॥ १३१ ॥ किं कृतं भवता पूर्वं म-  
दुपाजितकर्मणः । परिपाकविशेषोयमिति पंचनमस्कारिया ॥ १३२ ॥ श्रीनागदत्तसंगोक्ता भावयथाकामपिवाच ॥ १३३ ॥ पमलतो कन्या धनं च गितुमर्हति ॥  
१३३ ॥ समाकर्षणरज्जुवाचतयः आर्तुनिजल्य तौ । नकुलं सहदेवश्च रज्जुमाकर्षणोचिता ॥ १३४ ॥ कदला पापपुद्गल्यास्मान्मखं स्वपुरगीयतुः । छिद्रमासा-  
द्य तन्नास्ति दायदा यन्न कुर्वते ॥ १३५ ॥ तौ हृष्ट्वा नागदत्तोपि युवाभ्यां सह-यातवान् ॥ १३६ ॥ किं नायादिति भूयेन सांशकेन जनेन च ॥ १३७ ॥ पृष्ट्वा-  
सहैव गत्वासां पृथक्कापि गतस्ततः । न विद्वोतिव्यवत्ता तावनुजावप्यपहव ॥ १३७ ॥ श्रीनागदत्तमातापि व्याकुलीभूतचेतसा । शनिदत्तगुरु प्राप्य स-  
मपृच्छत् तुजः कथां ॥ १३८ ॥ सोपि तत्संश्रय दृष्ट्वा कारुण्याहितमानसः । निर्विघ्नं ते तदुजो द्राम्माभिवीर्यागमिष्यति ॥ १३९ ॥ इत्याध्यासं मुनिस्तस्या  
वातको जाने विना ही मुक्तसे यह ऐसा कार्य वन गया है और मैंने श्रीजिनैन्द्रदेवके शासनमें कहे हुए सारभूत धर्मवात्स-  
ल्यको छोड़ दिया है ॥ १३० ॥ हे भव्य जैनशासनकी मर्यादाका उल्लंघन होकर मुक्तसे यह अपराध वन गया है इसलि-  
ये आप जमा कर दीजिये । नागदत्तकी कही हुई इन सब बातोंको जानकर वह विद्याधर कहने लगा कि इसमें आपने  
हुए पंचनमस्कार मंत्रकी भावना करता हुआ वह विद्याधर शरीर छोड़कर स्वर्ग पहुंचा । तदनंतर पबलता कन्या और पि-  
ताके कमाये हुए धनको उस रस्सीसे पारकर जहांपर पहुंचाया तथा नकुल सहदेव दोनों भाइयोंको भी पहुंचाया । नकु-  
ल सहदेव ने जहांपर पहुंचकर पापबुद्धिसे वह रस्सीचनेकी रस्सी नागदत्तको नहीं दी और वे दोनों भाई जहाजको लेकर  
शीघ्रही अपने नगरमें जा पहुंचे । सो ठीक ही है क्योंकि छिद्र पाकर ऐसा कोई काम नहीं है जिसे दायद न  
कर सकें ॥ १३१-१३५ ॥ उन दोनों भाइयोंको देखकर बहाके राजा को और सब साधारण लोगोंको कुछ गंका हुई  
और इसीलिये उन सबने पूछा कि नागदत्त तुमलोगोंके साथ गया था फिर वह साथ आया क्यों नहीं ? इसके उत्तरमें उन  
दोनोंने कहा कि वह गया तो साथ था परंतु वहां जाकर कहीं अलग चला गया इसलिये हमें उसकी मालूम नहीं है इस-  
प्रकार उन्होंने वह बात छिपा ली ॥ १३६-१३७ ॥ अपने पुत्रके न जानेकी खबर सुनकर नागदत्तकी माता चित्तमें  
बहुत ही व्याकुल हुई और शीलदत्तगुरुके समीप जाकर उसने अपने पुत्रकी कथा पूछी ॥ १३८ ॥ वे मुनिराज भी इस सब  
संश्रयको देखकर करुणासे भरपूर मनसे कहने लगे कि तू डरे मत तेरा पुत्र निर्विघ्न रीतिसे शीघ्र ही आवेगा ॥ १३८-१३९ ॥

तमः । प्रमादात् करोति स्म नरे तदग्रवीक्षणम् ॥ ११९ ॥ राक्षसेन हतस्तस्मात्पुरे इत्यमर्थेद । मरुतातिर्विबोधेते मा प्रप्त्वाऽमारगन् गत ॥ १२० ॥  
आंगतांता पुनर्नेतुमिति तद्वचनभूतेः । वैश्यः खड्गं तमादाय गोपुरांतद्वित खग ॥ १२१ ॥ आयातप्रवर्षीत्सोपि पठन् पचनमस्फुटि । न्यपत्त्येदिनीभागे  
भमाहितमस्फुटः ॥ १२२ ॥ श्रुत्वा श्रीनागदत्तोपि नमस्कारपदावली । श्रेय्या मे दुष्कृत सर्वमिल्यास्यायुध भोज ॥ १२३ ॥ कुतो धर्मस्तवेत्यवप्रवी-  
त्सम्रण खग । सोपि भ्रावकपुत्रोह क्रोधादेतत्कृत मया ॥ १२४ ॥ क्रोधान्मित्र भवेच्छुभः क्रोधादर्थो विनश्यति । क्रोधाद्राज्यमरिभयः । क्रोधान्मोमुच्यते-  
मि. ॥ १२५ ॥ क्रोधान्मातापि सक्क्रोधाभवेत् क्रोधादयोगतिः । तत् श्रेयार्थिना त्याज्य स सदेति जिनोदित ॥ १२६ ॥ तज्जानसपि पापेन कोपेनाह व-  
शीकृत । आसक्तलभ्यैव परलोके किमुच्यते ॥ १२७ ॥ इत्यात्मान विनियौन कुतस्त्यस्तव ब्रजेः क्व वा । इत्योच्यतेभोगस्त्व वैश्योप्येवमुदाहरत ॥

मंत्रसे सिद्ध किये हुए खड्गको कभी अलग नहीं रखता था परंतु प्रमादसे एकवार वह अलग रख दिया और छिद्र दे-  
खकर राजसने उसे मारडाला इसलिये यह नगर-फिरसे मूना होगया है । उसने मुझे पुत्रीके समान माना और मुझे  
बिना मारे ही चला गया ॥ ११९-१२० ॥ अब वह मुझे लेनेके लिये फिर आवेगा । उस कन्याकी गह बात सुनकर  
वह वैश्य उस खड्गको लेकर नगरके बड़े दरवाजेके भीतर जा छिपा । ज्योंही वह राजस विधाधर वहांसे निकला त्योंही  
उसने उस तलवारसे उसे मार दिया । वह विधाधर उसी समय पंच नमस्कारमंत्रका पाठ करता हुआ चित्तमें समाधि  
धारणकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १२१-१२२ ॥ पंच नमस्कार मंत्रको सुनकर नागदत्त विचार करने लगा कि हा ! मैंने  
यह सब पाप मिथ्या ही किया उसने मरु अपनी तलवार रखकर उस घाव लगे हुए विधाधरसे पूछा कि तेरा धर्म क्या  
है इसके उत्तरमें वह विधाधर कहने लगा कि मैं भी श्रावकपुत्र हूं मैंने यह सब ( नगरका नाश ) क्रोधसे किया है ॥  
१२३-१२४ ॥ क्रोधसे मित्र शत्रु हो जाता है क्रोधसे धर्म नष्ट हो जाता है क्रोधसे राज्य भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधसे  
प्राणतक छूट जाते हैं ॥ १२५ ॥ क्रोधसे माता भी क्रोध करने लगती है, क्रोधसे अयोगति प्राप्त होती है इसलिये आत्म-  
कल्याण चाहनेवालोंको वह क्रोध सदाके लिये छोड़ देना चाहिये ऐसा श्रीजिनैन्द्रदेवने कहा है ॥ १२६ ॥ यद्यपि मैं ये  
सब बातें जानता था तथापि पापी क्रोधने मुझे अपने वश कर लिया और उसका फल मुझे यहां ही मिल गया फिर  
भला परलोककी तो बात ही क्या है ॥ १२७ ॥ इसप्रकार अपनी निंदा करता हुआ वह विधाधर नागदत्तसे पूछने  
लगा कि तू कहाँसे आया और कहाँ जायगा । तब वह वैश्य कहने लगा कि मैं एक पाहुना हूं शोकसे व्याकुल हुई  
इस कन्याको देखकर राक्षसके भयसे इसकी रक्षा करनेके लिये यह पराक्रम कर बैठा हूं ॥ १२८ ॥ 'तु धर्मभक्त है' इस



जीव पुत्रोक्तिधेतिः प्रियेः प्रीणयसिस्व सः । सोपि रक्षादितद्वस्तुभागं देहीत्युच्यते ॥ १०८ ॥ पिता तु पुत्रं मद्रस्तु पलाशद्वीपमन्वयो । सि । पुरे पलाश-  
स्त्वे तत्पद्यानीयं शृणुता ॥ १०९ ॥ इत्याख्यमकुब्जेनामा आत्रादायादकैः सः । सहदेवेन चासष्टसिद्धिर्दि भवेदह ॥ ११० ॥ प्रलागल्य भूगामि पुत्रा-  
जैनेश्वरीमिति । आशास्यानुविनानुत्सा कृताशुगुणवन्दनः ॥ १११ ॥ आरुहा नाकमंभोविमवगाणा मजनं हुतः । पलाशपुमसाया तत्र स्थापितकः ॥  
११२ ॥ पुरे विगतसंनारं क्रमेतदिति विख्यातः । ततः प्रसारितायामिरज्जुभिस्तटमासवान् ॥ ११३ ॥ प्रविश्य तत्पुरं तत्र कन्यानेकाकिनीं स्थितां । एकत्र-  
लोक्या तामाह वृद्धैकगर्भं हुतः ॥ ११४ ॥ जातमीदृक् स्वयं का चेलगदत्साम्बवीदलः । प्रागेतमगरेयास्य दायदः कोपि कोपनः ॥ ११५ ॥ सिद्धोत्पस-  
विद्यत्तात्सप्राप्तो राक्षसाभिधा । पुरं पुराधिनाथं च समिर्मूलं व्यनीनशतः ॥ ११६ ॥ तद्वंशजेन केनापि संभ्रमसाधितासिना । कृतरक्षं तथैवैतस्यापितं न-  
गरं पुनः ॥ ११७ ॥ पतिर्महाबलौघास्य कांचनादिलता प्रिया । तस्यैतयोर्गृहं पद्मलनाभूत् कृताख्यया ॥ ११८ ॥ कदाचिन्मरियता मन्त्रसाधितं वज्रमि-  
राणं कमलौको प्रणाम किया धनदेवने उसे देखकर 'हे पुत्र चिरंजीव हो यहां बैठ' इस तरहके मीठे वचनोंसे उसे प्रसन्न  
किया । तदनंतर नागदत्तने अपने भांगकी रत्नादिक वस्तुएं मांगी ॥ १०७-१०८ ॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे  
पुत्र ! मेरी सब चीजें पलाशद्वीपके मध्यमें बसनेवाले पलाश गांवमें रखी है वहांसे जाकर तुम ले लो ॥ १०९ ॥ पिता  
के इस प्रकार करने पर वह नागदत्त अपने भागीदार (दायाद) नकुल और सहदेव दो भाइयोंके साथ नावमें बैठकर  
समुद्रके भीतर चला । चलते समय उसने आशा प्रगटकी कि यदि मेरी इष्ट सिद्धि हो गई तो लौट कर मैं श्रीजिनदेव  
की पूजा करूंगा ऐसी आशा कर उसने श्रीजिनदेवको नमस्कार किया और फिर गुरुवंदना कर वह वहांसे चला ।  
शीघ्रही वह पलाशपुरमें जा पहुंचा और वहां पर अपना जहाज खड़ा किया जहाज परसे ही उसने देखा कि नगरमें  
किसी भी मनुष्यके जाने जानेका संचार नहीं है यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ और वह अपनी लंबी रस्सी फेंककर  
किनारे पर पहुंचा ॥ ११०-११३ ॥ उसने नगरके भीतर जाकर एक जगह अकेली बैठी हुई एक कन्याको देखा और  
पूछा कि यह नगर ऐसा कैसे हो गया है और तू कौन है तब वह कन्या कहने लगी कि किसी एक समय इस नगरका  
अधिकारी बड़ा ही क्रोधी था ॥ ११४-११५ ॥ वह राक्षस नामकी विधाको सिद्ध कर राक्षस नामसे ही प्रसिद्ध हो  
गया था और उसने इस नगरको तथा नगरके राजाको समूल नष्ट कर दिया था ॥ ११६ ॥ उसके वंशमें होनेवाले  
किसी पुरुषने मंत्रपूर्वक एक तलवार सिद्धकी थी उसने उसी तलवारसे सुरक्षित रह कर फिरसे यह नगर बसाया था  
॥ ११७ ॥ इसी नगरके राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे मैं पद्मलता नामकी पुत्री हुई थी ॥ १८ ॥ मेरा पिता उस

द्रोहिनी सती । धनमित्रा तयो मुमुर्त्तनागदतो महाबलः ॥ ९६ ॥ तनूजा चतुर्जास्यासीदर्थस्वामिभ्यमिहयया । पक्षाशद्वीपमध्यस्थपलाशनगरेक्षितः ॥ ९७ ॥  
महाबलमहीरास्य कनकादिलताभरत । काचनारिलतायाश्च ख्याता पद्मलता सुता ॥ ९८ ॥ उपयम्यापरा श्रेणी श्रेष्ठिनीं विषसर्जतां । सापि देशांतरं गत्वा  
समुता जातवशिषा ॥ ९९ ॥ सीलदत्तगुणे पार्श्वे गृहीतश्रावककृता । मुमुमव्यर्पयामास शास्त्रभ्यामनिमित्ततः ॥ १०० ॥ सोपि कामांतरे बुद्धिनिस्तीर्ण-  
श्रुतां बुधैः । सत्कविष्व स्वयभूला शास्त्रव्याख्यासप्तशशा ॥ १०१ ॥ नानादंकाररम्योक्तिसुप्रसन्नसुभाषितैः । विविष्टजनचेत सुप्रन्हादमुदपादयत् ॥ १०२ ॥  
तत्रैवारमिपुत्रेण दृढरक्षेण संगति । कृत्वा तत्पुरविद्यानां शास्त्रव्याख्यानकर्मणा ॥ १०३ ॥ उपाध्यायत्वमयास्य तत्रासत्तवसुना निजा । जननीं च स्वतारं च  
स्वयं च परितोषयत् ॥ १०४ ॥ स्वमातुलानीपुत्राय नदिप्रामतिवाक्षिने । कुलवाणिजनाम्ने स्वामनुजामदितारदात् ॥ १०५ ॥ स कदाचिदुपप्लोकोपपूर्वकं  
क्षितिनायक । विलोक्य तत्प्रसादात्सम्मानधनसम्पद ॥ १०६ ॥ कृतमातृपरिग्रहः पितुरागत्य मुनिर्वि । प्राणमत्तपदामोज वनदेव समीक्ष्य त ॥ १०७ ॥

वाले पलाश नगरमें राजा महाबल राज्य करता था वह कनकलता भरकर उस राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे पद्म-  
लता नामकी पुत्री हुई ॥ ९७-९८ ॥ किसी एक समय उज्जयिनी नगरीके शेट धनदेवने अपना दूसरा विवाह कर लिया  
और पहिली स्त्री धनमित्राका परित्याग कर दिया इस लिये वह धनमित्रा अपने पुत्र सहित देशांतर चली गई । किसी  
एक समय ज्ञान होने पर उसने श्रीशीलगुप्त नामके मुनिराजके समीप श्रावकके व्रत धारण किये और शास्त्रोंका अभ्यास  
करनेके लिये अपना पुत्र उन मुनिराजको सौंप दिया ॥ ९९-१०० ॥ समयानुसार वह पुत्र भी बुद्धिरूपी नावसे शास्त्र  
रूपी महासागरके पार हो गया वह स्वयं अच्छा कवि बन गया और शास्त्रोंकी व्याख्या कर उसने अच्छा यज्ञ उत्पन्न  
किया ॥ १०१ ॥ वह अनेक तरहके अलंकारोंसे मिले हुए सुंदर वचन कह कर तथा प्रसन्नताके साथ सुभाषित कहकर  
विशेष लोगोंका ( बड़े आदमियोंका ) चित्त सहजमें ही प्रसन्न कर देता था ॥ १०२ ॥ वहाँके कोटपालके पुत्र दृढरक्षके  
साथ उसकी मित्रता हो गई और उसीके द्वारा उसने उस नगरके शिष्ट मनुष्योंको शास्त्रोंकी व्याख्या सुनाकर उपाध्याय  
पद प्राप्त किया । वहाँ पर उसने धन भी खूब कमाया और अपनी माता तथा बहिनको खूब संतुष्ट किया और वह स्वयं  
भी संतुष्ट हुआ ॥ १०३-१०४ ॥ नंदी नामके गावमें रहनेवाले कुलवाणिज नामके अपनी मामीके पुत्रके साथ बड़े आ-  
दरसे उसने अपनी बहिनका विवाह कर दिया ॥ १०५ ॥ किसी एक समय उसने बहुतसे नये श्लोक बनाकर राजा  
को सुनाये जिससे वहाँका राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस नागदत्त कविको आदर सत्कार कर ता, धन दे  
कर बहुत प्रसन्न किया ॥ १०६ ॥ किसी एक समय माताकी सलाहसे वह अपने पिताके समीप गया और कि च-

**CCB**

येनो भवत्कामवत्सामवहमानयो ॥ ८६ ॥ ततः कांतपुरं लज्जाप्रेरितौ तौ गता तदा । दृष्ट्वा तत्र कुमारं च मांज्जि, पित्रा च शोकितः ॥ ८७ ॥ तयोर्वि-  
मुनियुगलं ॥ ८९ ॥ मुनियुगलमिषु वीक्ष्य भक्त्या मित्सागवैषिण । प्रत्युत्थाय परीक्षाभिव्याम्यन्त्यं यथाविधि ॥ ९० ॥ स्वोपयोगनिमित्तानि तानि स्वाया-  
नि मोदत । स्वाङ्गनि लङ्काकीनि दत्त्वा तस्मै तपोपृष्टे ॥ ९१ ॥ नवमेद जिनोर्हिष्टमष्ट स्वेष्टमापनु । वनेन्यदा कुमारोऽसौ मधुमासे विषाहिना ॥ ९२ ॥  
दष्टो नष्टसुको जातो दृष्ट्वा तं देहमात्रक । नत्यासिधेयुना सापि विषाय स्वां गतासुका ॥ ९३ ॥ अगातदनुमार्गेण तमन्वेष्टुमिव प्रिया । परा काष्ठास-  
वासस केहस्य गतिरीदृशी ॥ ९४ ॥ अस्मिन्नेवोत्थिन्याल्यमवतिविषये पुरे । प्रजापतिमहाराजः पालकस्तस्य हेलया ॥ ९५ ॥ तत्रैव धनदेवाख्यश्रेष्ठी त-  
उसी समय अपने कांतपुर नगरमें चले गये । कुमारके माता पिताने उन दोनोंको देखकर कुछ शोक किया और उनसे  
कहा कि तुम दोनोंका चरित्र ठीक नहीं है इसलिये हमको भी तुम दोनों प्रिय नहीं लगते अब तुम किसी दूसरे देशमें  
चले जाओ यहां मत रहो ॥ ८७-८८ ॥ उन दोनोंने उनकी आज्ञाका पालन किया और वे दोनों जाकर प्रत्यंत नगरमें  
जाकर ठहर गये । वहां पर वे इच्छानुसार विहार करने लगे किसी एक दिन उन्होंने एक उद्यानमें मुनियुगल नामके मुनि-  
राजके दर्शन किये वे मुनिराज आहारके लिये आ रहे थे कुमार महाबल और कनकलताने उठ कर बड़ी भक्तिसे उनका  
पङ्गाहन किया प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया, पूजा की और बड़े आनन्दसे उन तपस्वी मुनिराजको अपने लिये व-  
नाया हुआ लङ्का इष्टपुराय सम्पादन किया । किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुमें वह कुमार वनमें घूम रहा था वहां पर  
कहा हुआ नीतरहका इष्टपुराय सम्पादन किया । किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुमें वह कुमार वनमें घूम रहा था वहां पर  
उसे एक विचित्र सपने काट खाया और वह तुरंत मर गया । उसको मरा हुआ शरीर मात्र देखकर उसकी स्त्री कनक-  
लताने उसकी तलवारसे अपने प्राण घात कर लिये मानों वह उसे दूढ़नेके लिये उसके गृहे हुए मार्गसे ही चली गई  
हो । सो ठीक ही है क्योंकि जो स्नेह परम सीमाको पहुंच जाता है उसका ऐसा ही हाल होता है ॥ ९२-९४ ॥ इसी  
अंबती देशमें उज्जयिनी नगरमें महाराज प्रजापति लीलापूर्वक राज्य करते थे । उसी नगरमें एक धनदेव नामका श्रेष्ठ  
रहता था और उसकी सती स्त्रीका नाम धनमित्रा था उन दोनोंके वह महाबलका जीव नागदत्त नामका पुत्र हुआ ॥ ९५-  
९६ ॥ इन्हीं दोनोंके अर्थस्वामिनी नामकी एक पुत्री थी जोकि नागदत्तकी छोटी बहिन थी । पलाशद्वीपके मध्यमें बसने

सह स्तुति ॥७४॥ शिवभूतेः सभापथा दैवस्य कुटिला गतिः । सोमिला शिवसेनायास्तुतानां च पोषण॥७५॥पापिष्ठासहमानांसा तर्जिता शिवभूतिना । कुर्वा जीवलमा शिवसेनयायं स चेलसत्त्व॥७६॥अकरोद् दृष्टुण शिग्धिभाकार्यं नाम योषिता । शिवसेनापि मांमया रूपादूषयन्मृषा ॥७७॥ नियुहीच्यामि मृत्युना निदानमकरोक्षि । अन्यदाशत्रवे पूर्वं शिवपुसुनीश्वर॥७८॥सोमिलाभोजयत्तस्मै शिवभूतिःस्य कुप्यति । तत्तपोधनमाहात्म्यकथनेन तया पति ॥७९॥ प्रसादितस्तुत साधु तदान सोन्मयन्यत । स काशतरमाश्रित्य लोकांतरगत सुतः ॥ ८० ॥ आतोत्र विषये वेगे कांते कातपुरेदिनः । सुवर्णवर्मणो शिव-  
पुत्रेकायात्र महाबलः ॥ ८१ ॥ देवगेत्रैव चंपाया श्रीपेणाख्यमहीपतेः । सुवर्णवर्मसोदर्या धनश्री प्रेमदायिनी ॥ ८२ ॥ सोमिलाभुत्तयो पुत्री कनकाशि-  
लतामिधा । महाबलकुमाराय दातव्यमिति स्त्रिय ॥ ८३ ॥ जन्मन्येवाभ्युपेतैषा मात्रा पित्रा च समदात् । वदमान पुरे तस्मिन्नेव बालिकया सम ॥

पतिसे अनुरक्त रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंको कोई भी काम अकार्य नहीं है अर्थात् वे बुरे से बुरा काम कर सकती हैं और इसलिये स्त्रियोंको वार बार धिक्कार है । शिवसेनाने भी क्रोधमें आकर निदान किया कि इसने मुझे भि-  
ध्या दोष लगाया है इसलिये मैं मर कर परलोकमें इसका निग्रह करूंगी । तदनंतर किसी एक दिन सोमिलाने श्री शिव-  
पुत्र सुनिराजका पदगाहन कर आहार दिया जिससे शिवभूतिको बहुत ही क्रोध हुआ । परंतु पीछेसे उन सुनिराजका  
माहात्म्य कहकर सोमिलाने पतिको प्रसन्न कर लिया और फिर शिवभूतिने भी उस आहारदानको बहुत अच्छा माना ।  
समय पाकर वह शिवभूति मरा और बंमदेशके मनोहर कांतपुर नगरके राजा सुवर्णवर्माके उसकी रानी विद्युल्लेखासे  
महाबल नाम का पुत्र हुआ ॥ ७४-८५ ॥ इसी अंगदेशके चंपानगरमें श्रीपेण नामका राजा राज्य करता था उसके राजा  
सुवर्णवर्माकी बहिन धनश्री रानी थी ॥ ८२ ॥ उन दोनोंके सोमिलाका जीव कनकलता नामकी पुत्री हुई थी । राजा  
श्रीपेण और रानी धनश्रीने जन्मसे ही हर्षित होकर संकल्प कर लिया था कि यह पुत्री महाबलको ही दी जायगी । उ-  
सके माता पिताने भी यह बात स्वीकार कर ली थी देवयोगसे वृद्धिको प्राप्त हुआ महाबल यामाके ही यहां जा रहा  
और उस बालिकाके साथ रहने लगा ॥ ८२-८४ ॥ यामाने आज्ञा दी कि तुम दोनोंकी युवावस्था समीप समीप आ  
रही है इसलिये जब तक तुम दोनोंका विवाह न होजाय तब तक तुम दोनोंको अलग अलग रहना चाहिये इस प्रकारकी आ-  
मागाकी आज्ञानुसार वह कुमार बाहर रहने लगा परंतु उसका चित्त कन्यामें आसक्त ही रहा । वे दोनों ही कामकी आ-  
वस्थाको सह न सके इसलिये उन दोनोंका समागम हो गया ॥ ८५-८६ ॥ इस कृत्यसे वे दोनोंही लज्जित हुए और

प्राक्तनं इत्तं शुल्बाशोककुलो भृश । निजगेहं समानीय सुस्थिता भयविह्वला ॥ ६५ ॥ स्वपादशरणा भद्रा श्रेष्ठिं च भृगवती । चरनापादपकेजयुगल तावनीनमत् ॥ ६६ ॥ क्षमापूजित्वी चैव कुन्वाल्हाद तयोन्मत्तः । तदूर्तां कर्णोदीर्णपागादागतयधुसिः ॥ ६७ ॥ आप्रपितैत्तुर् वीर वेदितुं निजवाध-  
वान् । विमर्ज्य जातनिर्देहा गृहीत्वाधैव सयमं ॥ ६८ ॥ तत्त गोवगममाहात्म्यादध्यादागणिनीपदं । इतीह जन्मसंबधं भुत्वा तत्रानुचेष्टक ॥ ६९ ॥ भूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया ॥ ७१ ॥ परा वर्यश्रुता सुबुद्धता शिवभूतिवाक् । दुहिता चित्रसेनाख्या विदुष्टाया मजायत ॥ ७२ ॥ विप्रस्तत्राग्नि-  
या सामिला सोमशर्मणः । इतस्तु देवशर्मण्यचित्रसेनाय च प्रिया ॥ ७३ ॥ अग्निभूता गतप्राणे तन्मृजस्तपदेभवत् । विधवा चित्रसेनापि पोष्यात्व-  
दोनों ही ढरसे घबड़ाए और भृगावतीके चरणोंके शरणमें आये भृगावतीने उन दोनोंसे चंदनाके चरण कमलोंमें नमस्कार कराया ॥ ६५-६६ ॥ चंदनाके क्षमा कर देने पर वे दोनों उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह क्षमाकी मूर्ति है । चंदनाने भी उन दोनोंको प्रसन्न किया तदनंतर चंदनाके भाई वंशुओं ने भी यह बात सुनी और स्नेहके कारण वे उसी नगरमें आये उसी नगरमें सब लोग महावीर स्वामीकी वदना करने गये । वहां पर जाकर चंदनाको वैराग्य उ-  
त्पन्न हुआ और उसने सब भाई वंशुओंको छोड़कर दीक्षा धारण करली ॥ ६७-६९ ॥ तपश्चरण और ज्ञानके माहा-  
त्म्यसे उसने गणिनी ( अर्जिकाओंकी नायिका ) का पद धारण किया । इस प्रकार चंदनाका इस भांतिका हाल सुन कर राजा चेटक पूछने लगा कि चंदना पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा कार्य करके यहां उत्पन्न हुई है । इसके उत्तरमें गणा-  
धर देव कहने लगे कि इसी प्रगथ देशके वत्सा नगरमें राजा प्रसेनिक राज्य करता । उसी नगरमें एक अग्निभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसके एक तो ब्राह्मणी स्त्री थी और दूसरी वैश्यकी पुत्री थी । ब्राह्मणीके शिवभूति नामका पुत्र हुआ और वैश्यकी पुत्रीके चित्रसेना नामकी पुत्री हुई ॥ ६९-७२ ॥ शिवभूतिकी स्त्रीका नाम सोमिला था जोकि सोमशर्मा नामका पुत्र हुआ । उसी नगरमें देवशर्मा नामका ब्राह्मणपुत्र और था उसे चित्रसेना व्याही ॥ ७३ ॥ कितने ही दिन बाद अग्निभूति के मरजानेपर उसका पुत्र शिवभूति घरका मालिक हुआ । इयर  
सहित वह अपने भाई शिवभूतिके घर आकर रही सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोंका भूति जो अपनी वहिन चित्रसेना और उसके पुत्रोंका भरण पोषण करता था वह पा  
इसलिये शिवभूति ने उसको ताड़ना दी तब क्रोधित होकर सोमिला ने चित्रसेनाको मारा ॥

साईं नीला कन्या न्यवेदयत् । कदाचिच्छेष्टिन पातु जलमुद्वह्य यजत' ॥ ५४ ॥ भावर्जयत्याः केयाना कलाप मुकुवधन ।  
उत्थमान करेणादात्सज्जालाईं धरातले ॥ ५५ ॥ चंदनायास्तदालोक्य तद्रूपदत्तिकोपिनी । श्रेष्ठिनी तस्य भ्राष्ट्या स्वभर्तुल्या समं ॥ ५६ ॥  
संपर्क-मनसा मत्वा कोपात्प्रस्फुरिताधरा । निक्षिप्तशृंगला कन्या दुराहारेण दुर्जना ॥ ५६ ॥ प्रतर्जनादिभिश्चिना निरंतरसबाधत । सापि मरुत्पापस्य  
विपाकोयं वराकिा ॥ ५८ ॥ श्रेष्ठिनी किं करोतीति कुर्वत्याऽभिविगर्हणं । स्वाभ्रजाया मृगावत्या अय्येतन्न न्येवदयत् ॥ ५९ ॥ अन्यदा नगरे तस्मिन्नेव  
वीरस्तनुस्थिते । प्रविष्टवाग्निरिस्थायैव त भक्त्या मुक्तशृंगला ॥ ६० ॥ सर्वोभरणहर्षाया तद्रूपरेणैव भृतं । किरसा स्पृशानत्वोभैः; प्रतिश्ला यथाविधि  
॥ ६१ ॥ भोजवित्त्वपतदानाद् मानिनी मानितामरे । वसुधारा मरुत्पुष्पवृष्टिं सुमिसास्तं ॥ ६२ ॥ सुरद्विभूतिर्घोषं दानस्तवनयोपण । तदैवोच्छ्र-  
पुण्यानि फलंति विपुलं फलं ॥ ६३ ॥ अभ्रजास्यास्तादगन्त्य पुत्रेणामा मृगावती । तद्वृत्तान्दयनाह्वयेन स्नेहेनास्त्रिय भद्रना ॥ ६४ ॥ शृष्टुवा तां

मय उस श्रेष्ठकी शैठानी भद्राने चंदनाको देखा चंदनाका रूप देख कर वह क्रोधित हुई और अपने मनमें उसके साथ  
अपने पतिका संबंध समझकर क्रोधसे अपने ओठ हिलाने लगी । उस दुष्टिनीने चंदनाको सांकलोंसे बांध दिया वह  
उसे बुरा आहार देने लगी और ताडना मारना आदिसे सदा उसे दुःख देने लगी । परंतु वह चंदना यही बिचार क-  
रती थी कि यह सब मेरे पूर्व कर्मोंके उदयका फल है यह छुद्र शैठानी भला क्या कर सकती है इस प्रकार वह सदा  
अपनी निंदा करती रही और उसने उसी शहरमें रहनेवाली वहांकी महारानी अपनी बड़ी बहिन मृगावतीसे भी ये स-  
माचार कहला कर नहीं भेजे ॥ ५६-५९ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें भगवान वीरनाथ आहारके लिये आए ।  
उन्हें देखकर चंदना बड़ी भक्तिसे उठी, उठते ही सांकलके वंथन सब छूट गये उसका शरीर सब आभूषणोंसे सुशोभित  
हो गया तथा उसीके भारसे मानों उसने पृथ्वीको छूकर मस्तक नवाकर नमस्कार किया और फिर विधिपूर्वक उनका  
पङ्गाहन किया ॥ ६०-६१ ॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें आहार दिया । दानके प्रभावसे देवीने आकर उसका आदर स-  
त्कार किया उसके घर रत्नोंकी वर्षा हुई, देवपुष्पोंकी वर्षा हुई, सुगंधित वायु बहने लगा, देवोंके दुंदुभी बाजे बजने लगे  
॥ ६२-६३ ॥ तदनंतर उसकी बड़ी बहिन मृगावती यह सब समाचार जानकर अपने उदयन नामके पुत्रके साथ उसके  
समीप आई और स्नेहसे चंदनाका आर्त्तिगन किया ॥ ६४ ॥ उसने चंदनाका सब पहिला हाल पूछा और उसका कहा  
हुआ सुन कर शोकसे बहुत ही व्याकुल हुई और उसे घर ले जाकर आरामसे ठहराया । यह देख कर श्रेष्ठ शैठानी

स्वकीर्ति ॥ ४२ ॥ यत्नैर्वाच्येति कोषात् निर्मलस्यसिद्धि सा । सभूतस्यणात्मे ता खदादिभीष्टकः ॥ ४३ ॥ ईरावतीसर्विदक्षिणते साधितविद्य-  
या । पर्णसूच्या तदैवात् कुतशोको विमुच्यन्त ॥ ४४ ॥ सापि पंवनमस्कारपरिवर्तनतपरा । निनाय सर्वेरी कृच्छ्राङ्गानुमयुहिते स्वयं ॥ ४५ ॥ तत्र  
सन्निहितो दैवात्कालकाव्यो बनेचरः । तस्मै निजपराद्वयैकस्फुरिताभरणान्यदात् ॥ ४६ ॥ धर्मं च कवयामास तेन गुणो बनेचरः । भीष्मकुट्टानलोपात्  
निवासौ सिंहसंघकः ॥ ४७ ॥ भयंकाव्ययपत्नीशक्तस्य तां स समर्पयत् । सोपि पायी विलोक्यैनां कामव्यामोहिताशयः ॥ ४८ ॥ निमहेण भः कूरो वा-  
त्सवात्कुण्डमुपतः । तदीक्य पुत्र मैवं त्वं कृपाः प्रत्यक्षदेवता ॥ ४९ ॥ यदि कुन्येदियं तापशापदुःखप्रदायिनी । इति सात्रुकिमित्या तां दुर्जनोपि व्यसज-  
यत् ॥ ५० ॥ तत्रैव चन्दना तस्य मात्रा सम्यग्विबधानत । योग्यमाणा विनिर्दितां किम्बिरकालमजीगमत् ॥ ५१ ॥ अथ वत्साह्वये देवो कैलाशोऽयं प्रवरे पुरे । अ-  
श्रीवृषभसेनाव्यस्तस्य कर्मकरोऽभवत् ॥ ५२ ॥ मित्रवीरो बनेशस्य मित्र तस्य वनाधिपः । चन्दनामर्पयामास सोपि भक्त्या वाणिक्पतेः ॥ ५३ ॥ धनेन महता

ने भी पंच नमस्कार मंत्रका जप करते हुए बड़ी कठिन्तासे रात्रि पूर्णकी और सूर्यो उदय होते ही उसने स्वयं दैवयोगसे  
समीप ही रहनेवाले कालक नामके भीलको अपने बहुमूल्य दैदीप्यमान आभूषण दिये और उसे धर्मका उपदेश दिया, जि-  
ससे वह भीञ बहुत संतुष्ट हुआ । परंतु उसने भीष्मकुट्ट नामके पर्वतके समीप रहनेवाले भयंकर नामक पल्लवीके स्वामी  
सिंह नामके अपने राजाको वह चंदना समर्पण कर दी । वह भीलोंका राजा सिंह पापी था इसलिये चंदनाको देखकर  
उसका हृदय कामसे मोहित होगया ॥ ४६-४८ ॥ वह दुष्ट क्रूरग्रहके समान निग्रहकर उसे अपने वश करनेके लिये  
तैयार हुआ । उसे इसतरह करते देखकर भीलकी माताने अपने पुत्रको समझाया कि 'हे पुत्र तू ऐसी  
मतकर, यह प्रत्यक्ष देवता है यदि यह क्रोधित हो जायगी तो फिर कितनेही संताप प्राप्त और दुःख  
देगी' इस प्रकार माताके वचन सुनकर वह डरा और दुष्ट होनेपर भी उसने वह चंदना छेड़ दी ॥ ४९-५० ॥  
तदनंतर वह चंदना उस भीलकी माताके साथ निश्चित होकर थोड़े दिनतक वहीं रही भीलकी माता उसका  
पालन पोषण अच्छी तरह करती थी ॥ ५१ ॥ अयानंतर-वत्सदेशके कौशावी नामके श्रेष्ठ नगरमें एक वृषभसेन  
नामका शेर रहता था उसके मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था जो कि उस भीलका मित्र था उस भीलने  
वह चंदना उस मित्रवीरको दी । उस मित्रवीरने बड़ी भक्तिसे बहुत धनके साथ वह कन्या शेरको समर्पण की ।  
किसी एक समय वह चंदना उस शेरको जल पिला रही थी उससमय उसके केशोंका कलाप छूट गया था और  
जलसे भीगा हुआ पृथ्वी पर लटक रहा था उसे वह बड़े यत्नसे एकहाथसे संभाल रही थी ॥ ५२-५५ ॥ उस स-



ता-म्यानयाभरणणीति स्वयं तेन सहागमत् ॥ ३१ ॥ साप्याभाभरणगत्य तानदृष्टुमिच्छति । तथाहमिति ओक्ताता निजमाभौ यशस्वती ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा स्मृतिं सन्तीरेण्या ध्रुवा पर्यं जिनोदितः । निर्विद्य संसृतेर्दक्षिणा ग्राप पापविनाशिनी ॥ ३३ ॥ भवतासि महाप्रीत्या चेलिनीयं यथाविधि । गृहीतानु मदा देवीपद्मवास्तुतोय सा ॥ ३४ ॥ चंदना च यथासुखा गणित्यः सन्निधौ स्वयं । सम्यक्त्वं थावकाणा च प्रत्यान्यादत्त सुखता ॥ ३५ ॥ तत स्वगन्धगच्छे-  
पीयुषवर्णभपुरेश्वरः । मनोवेग स्वगाधीशः समनोवेगगा सम ॥ ३६ ॥ स्वच्छद चिरमाक्रीड्य प्रत्यायायंदना बने । अधोकास्ये सम्यक्कोडमानां परिजनं सह ॥ ३७ ॥ विलोक्यानगतिर्गुणशरजर्जरीतांगकः । प्राप्य स्वप्रियां गेह रूपिणीविद्या स्वयं ॥ ३८ ॥ विरुह रूप स्व तत्र निधाय हरिषिष्टेरे । धाशो-  
कबनमन्त्रेय्य गृहीत्वा चंदना द्रुत ॥ ३९ ॥ प्रत्यागतो मनोवेगाप्येतन्निहितवचनं । ज्ञात्वा कोपाकृणीभूतविगीपणविलोचना ॥ ४० ॥ ता विद्यान्वता वान-  
पादेनाकम्प साबधीत् । कृताहृदासा सा विद्याध्यागार्त्तिसहायनात्तदा ॥ ४१ ॥ चेष्टामाभोगिनीविद्यानो ज्ञात्वा स्वपतेरनु । गच्छत्यर्घ्यपदे दृष्ट्वा दिव्येभौ

रनेवाली दीक्षा धारण कर ली ॥ ३२-३३ ॥ तूने भी बड़े प्रेमसे चेलिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और महादेवी का पट्ट बांधकर उसे संतुष्ट किया ॥ ३४ ॥ इधर अच्छे व्यक्तोंको धारण करनेवाली चंदनाने भी यशस्वती अर्जिकाके सम-  
सीप जाकर स्वयं सम्यग्दर्शन धारण किया और श्रावकोंके व्रत धारण किये ॥ ३५ ॥ किसी एक समय वह चंदना अपने परिवारके लोगोंके साथ अशोक वनमें क्रीडा कर रही थी देवयोगसे उसी समय विजयाद्वैपर्वतकी दक्षिण श्रेणीके सुव-  
र्णभ नगरका राजा मनोवेग विद्याधर अपनी रानी मनोवेगाके साथ स्वच्छंद रीतिसे क्रीडा करता हुआ वहां आ निकला और चंदनाको देखकर कामके छोड़े हुए बाणोंसे उसका शरीर जर्जरित होगया । वह तुरंत ही अपनी स्त्री को घर पहुंच-  
चानेके लिये वापिस लौटा और रूपिणी विद्यासे अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासनपर बिठला दिया । फिर वहांसे चलकर अशोक वनमें आया और चंदनाको लेकर शीघ्रही घरकी ओर लौटा । इधर मनोवेगा रानीने इस ठगीको पहिचान लिया और क्रोधसे उसके नेत्र लाल तथा भयंकर होगये ॥ ३६-४० ॥ उसने उस विद्यादेवताको बांये पैरसे आक्रमण कर मारा जिससे वह विद्या देवता जोरसे हंसकर उसी समय सिंहासनसे उतरकर भाग गई ॥ ४१ ॥ तदनंतर वह मनो-  
वेगा रानी आभोगिनी विद्यासे अपने पतिकी चेष्टा जानकर उसके पीछे दौड़ी और आधी दूर जाकर चंदना सहित लौटते हुए पतिको देखा उसने बड़े क्रोधसे पतिको तिरस्कारकर डांटा और कहा कि यदि तू अपने जीनेकी इच्छा रखता है तो इसको छोड । स्त्रीकी यह बात सुनकर वह मनोवेग बहुत दरा और उसने शोकसे व्याकुल होकर सिद्धकी हुई पशेलघृ-  
नामकी विद्यासे भूतरपण नामके वनमें ईरावती नदीके दक्षिण किनारे बह चंदना छोड दी ॥ ४२-४४ ॥ उस चंदना

मार्गचं पुर । राजद्रोहपदं बाणोबा ने आनपुरसरं ॥ २० ॥ विनप्रतिनिधि पूर्वमभ्यर्च्योभ्यर्च्यपदं । आनचं तद्विलोक्य त्वमप्राप्तिः पार्थवर्तिनः ॥ २१ ॥  
 किमेतदिति तदेवचनं राक्षः सप्तपि पुत्रिका । लिखितास्तास्तु कल्याणं चतस्रः समवायिताः ॥ २२ ॥ तिष्ठो नाशसि कीर्यते तत्र द्वे प्राप्तयौवने । कनिष्ठा  
 शस्य सुतयोः सुरकवान् । पिता ते याचमानोऽसौ न दत्ते भयसंश्रुते ॥ २५ ॥ इदं चावश्यकर्तव्यं कोभ्युपायोज कथ्यतां । सोऽपि मन्त्रिषु चः शुला तत्का-  
 र्थोपायपठितः ॥ २६ ॥ शेषमायमह कुर्वे तत्समर्थनमित्यमून । सतोष्य मन्त्रिणः सोऽपि तत्स्वरूप विलासवत् ॥ २७ ॥ पटके सम्यगालिख्य वक्राणा-  
 ष्ठाव यजतः । तत्पार्थवर्तिनः सर्वान् रवीन्द्रलोकोददानत ॥ २८ ॥ स्वयं च वीरको नाम वंशिमूला तदाढ्य । प्रातिक्षत्यटके रूप कन्ये ते तत्करस्थि-  
 ते ॥ २९ ॥ विलोक्य भवति प्रीत्या सारंगदत्तिसाहसात् । कुमारविहिताभ्यागाद्गुला किंचित्ततोरे ॥ ३० ॥ चेलिनी कुटिला ज्येष्ठा मुक्ता त्व गच्छ विस्तृ-  
 और एक वालिका है । उन लोगोंकी यह बात सुनकर तू उनमें आसक्त हुआ और अपने चित्तका अभिप्राय मंत्रियोंसे  
 कहा । मंत्री भी उस कार्यको लेकर अभयकुमारके पास आये और कहने लगे कि तेरे पिता राजा श्रेणिक महाराज चेट-  
 ककी दोनों कन्याओंमें आसक्त हुए हैं उन्होंने चेटकसे वे दोनों कन्याएं मांगी थी परंतु श्रेणिककी अवस्था ढल जाने  
 से चेटकने दी नहीं ॥ २०-२५ ॥ यह काम करना अवश्य है इस लिये इसके करनेका क्या उपाय है सो कहो । उस  
 तरह उसने मंत्रियोंको संतुष्ट किया और फिर राजा श्रेणिकका एक अच्छा विलास युक्त चित्र बनाया । उसे वस्त्रसे ढक-  
 कर बड़े यज्ञसे ले गया । राजाके समीपवर्ती लोगोंको बहुतसा धन देकर अपने वंश किया और फिर स्वयं वीरको नामके  
 वैश्यका ( व्यापारीका ) रूप बनाकर राजाके घर गया । वह चित्र उन दोनों कन्याओंको दिखाया उसे देखकर वे दोनों  
 प्रसन्न हुई और चलनेको तैयार होगई । इधर कुमारने पहिलेसे ही सुरंग तैयार करा रखी थी इसीलिये वह उसी मार्ग  
 से साहस पूर्वक उनको ले आया । थोड़ी दूर जाकर कुटिल चेलिनीने ज्येष्ठसे कहा कि ' मैं अपने आभूषण भूल आई  
 हूं तू जाकर लेआ ' इसतरह कहकर उसको तो लौटा दिया और वह चेलिना स्वयं अभयकुमारके साथ चली गई ॥ २६-३१ ॥  
 इसके बाद वह ज्येष्ठा आभूषण लेकर वहां आई परंतु उनको वहां न देखकर बहुतही शोक करने लगी और मनमें कहने  
 लगी कि चेलनाने मुझे इसतरह ठगा है । तदनंतर वह शोकसे व्याकुल होकर अपनी मामी यशस्वती नामकी अर्जिकाके  
 समीप गई और उससे श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मका स्वरूप सुनकर और संसारसे विरक्त होकर उसने पापोंका नाश क-

सूर्यसन्तो दशरथोभवत् ॥ १० ॥ तस्याभूत्तुष्टा देवी भास्वतो वा प्रभाप्रला । कच्छाह्यविषये रोकाह्योयां गुरि भूपति ॥ ११ ॥ महाहृदयनस्तस्य प्रमदभूत्प्रभावती । प्राप शीलवती स्थाति सा सम्यक् श्रीमधाराणात् ॥ १२ ॥ गाथाव विषये स्थातो महीपालो महीपुरे । याचिस्वा सात्यको ज्योष्ठास-  
लब्ध्वा कुटुम्बान् सिन्धीः ॥ १३ ॥ बुद्ध्या रणांगणे प्राप्तमानसंग स सन्नप । सद्यो दमर्बर प्राप्य पुनः संयममग्रहीत् ॥ १४ ॥ स चेटकमहाराजः सेवाद्वय-  
मलीलिङ्गत् । पटके सप्त पुत्रीणां विंशतश्चरन्महीक्षितुं ॥ १५ ॥ निरीक्ष्य तत्र चेलिष्वारूपस्य पतितं मनाक् । विदुर्मुरो सिचात्रेस्य द्रुपे कुपितबल्लो ॥ १६ ॥  
पूज्य द्विक्रमेया विदुः प्रयुष्टः सप्त चापि सः । तथैव पतितस्मिन् भाव्यमैकेन तादृशा ॥ १७ ॥ इति मन्वानुमानेन पुनर्न तममार्जिय । इत्यप्रवीतदुकेन  
भूपति श्रीसिमासवान् ॥ १८ ॥ स देवार्चनदेवायां स्निहविषोपकठके । तत्पटक प्रसाधैर्ष्या निर्वर्तयति सवेदा ॥ १९ ॥ कदाचिद्वेटको गत्वा संसन्धो

पालन किया था इसलिये शीलवती उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था ॥ १०-१२ ॥ गंगार देशके महीनगरके राजा सा-  
त्यकने राजा चेटकसे वधेष्टा नामकी कन्या मांगी थी परंतु चेटकने दी नहीं इससे वह मूर्ख क्रोधित हुआ रणांगणमें आ-  
कर लड़ा परंतु उसे हारना पड़ा और मानभंग होनेके कारण वह लज्जित हुआ तथा दमवर मुनिराजके समीप जाकर  
उसने शीघ्रही संयम धारण कर लिया ॥ १३-१४ ॥ तदनंतर महाराज चेटकने पुत्रियोंमें अत्यंत स्नेह होनेके कारण  
उनका प्रतिविंब सदा देखनेके लिये सातों पुत्रियोंका चित्र लिखाया ॥ १५ ॥ जब चित्र तैयार होकर आया तब चेलि-  
नीके चित्र पर उसकी जंघाके ऊपर एक छोटा सा विंदु दिखाई दिया जिसे देख कर उसके बनानेवाले पर राजा बहुत  
क्रोधित हुआ ॥ १६ ॥ तब पूछने पर चित्रकारने कहा कि हे पूज्य यहां विंदु पड़ गया था और मैंने साफ कर लिया  
था परंतु द्वारा फिर पड़ गया फिर साफ करने पर फिर पड़ गया इस तरह सातवार साफ किया परंतु फिर भी पड़  
गया तब फिर मैंने अनुमानसे यह समझा कि इस जगह ऐसा विंदु होना ही चाहिये साफ नहीं किया । उसकी यह बात  
सुन कर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १७-१८ ॥ तदनंतर वह राजा भगवानकी पूजा करनेके समय भगवानके प्रति-  
विंबके समीप ही उस चित्रको टांग कर सदा भगवानकी पूजा किया करता था ॥ १९ ॥ किसी एक समय राजा चेटक  
अपनी सब सेना सहित मगधपुरी गया था और राजगृह नगरके बाहर उद्यानमें डेरा दिये थे सबेरके समय स्नानकर  
उसने पहिले श्रीजिनदेवकी पूजा की और फिर पासमें रखे हुये उन पुत्रियोंके चित्रकी पूजा की । यह देख तने समीप  
वर्ती लोगोंसे पूछा कि यह क्या है तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि राजा ने यह अपनी सात पुत्रियोंका चित्र लिखाया  
है इनमेंसे चार तो बिबारी जा चुकी हैं और शेष तीनको राजा अभी देता नहीं है इन शेष तीन में दो की युवावस्था है

## अथ पंचसप्तति तमं पर्व ।

अथान्ये बुः समासीनं गणैर्दं विपुलाचले । श्रेणिक प्रीणिताशेषमव्यं सुन्यकतेजसं ॥ १ ॥ गणिन्याधंदनार्थया संवत्समिह जन्मनः । अन्वसुक गणी चैवमाहादितमहद्विकः ॥ २ ॥ सिंघाह्ये विषये भूयदैशालीनगरेभवत् । चेटकाह्योविद्विषयातो विनीतः परमाहृतः ॥ ३ ॥ तस्य देवी च भद्राख्या तयोः पुत्रा दशामवन । घनाह्यो दत्तमदातालुपेद्रोऽन्य सुदत्तवाक् ॥ ४ ॥ सिंहभद्र सुकुमोजोकपनः सप्ततंगक । प्रमंजनः प्रभासश्च धर्मो द्व सुनिर्मला ॥ ५ ॥ सप्तर्षयो वा पुत्र्यश्च ज्यायसी प्रियकारिणी । ततो मृगावती पद्यासुप्रभाऽतः प्रभावती ॥ ६ ॥ चेलिनी पंचमी ज्येष्ठा षष्ठी वंशा च विषये वत्सबासाह्ये कुडंबंक्षायं गुरि भूतिः ॥ ७ ॥ नयो नाथकुलस्यैकः सिद्धार्थाख्य स्वसिद्धिभाक् । तस्य पुण्यानुभावेन प्रियाभूत्प्रियकारिणी ॥ ८ ॥ विषये वत्सबासाह्ये कौशावीनगराधिप । सोमवंशे शतानीको देव्यस्यासीन्मृगावती ॥ ९ ॥ दशार्णविकये राजा हेरकच्छपुराधिपः । सूर्यवशावरे

## अथ पिचचहरिवां पर्व ।

अथानंतर-किसी दूसरे दिन विपुलाचल पर्वत पर सब भव्योंको प्रसन्न करनेवाले और सुमकट तेजस्वी भगवान गण धरदेव सभामें विराजमान थे उनके समीप जाकर महाराज श्रेणिकने सब अर्जिकाओंकी नायिका ऐसी चंदना अर्जिकाकी इस जन्म संबंधी कथा पूछी तब अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले गणधर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ १- २ ॥ सिन्धु देशके वैशाली नगरमें चेटक नामका प्रसिद्ध राजा था जोकि विनयी और अरहंतदेवका अनुयायी था उसकी महारानीका नाम भद्रा था उससे उस राजाके दस पुत्र थे जो कि धन, दत्तभद्र, उर्षेद्र, सुदत्त सिंहभद्र, सुकुंभोज, अकंपन, सुपतंग प्रमंजन और प्रभास के नामसे प्रसिद्ध थे और दश धर्मोंके समान निर्मल थे ॥ ३-६ ॥ उसी भद्रासे ऋद्धियोंके समान सात पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं जो कि प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और पूज्य चंदनाके नामसे प्रसिद्ध थीं । विदेहदेशके कुंड नगरमें नाथ वंशका स्वामी राजा सिद्धार्थ राज्य करता था, उसने अपनी सब सिद्धियां पूर्ण कर ली थीं । उसके पुरायकर्मके उदयसे वह प्रियकारिणी उसकी स्त्री हुई थी ॥ ६-८ ॥ वत्सदेशके कौशावी नगरके स्वामी चंद्रवंशी राजा शतानीकके मृगावती दूसरी पुत्री पहरानी हुई थी ॥ ९ ॥ दशार्ण देशके हेरकच्छ नगरके स्वामी सूर्यवंश रूपी आकाशके सूर्य राजा दशरथ थे सूर्यकी निर्मल प्रभाके समान सुप्रभा नामकी देवी उनकी पहरानी हुई थी । कच्छदेशके रोहक नगरके स्वामी राजा उदयनके प्रभावती रानी हुई थी । उस प्रभावतीने

सर्वे समासीना तन्माहात्म्यं समस्तुवन । समासार्थं च वेत्ते वा न स्तुवति गुणालम्ता ॥ ४६ ॥ धियोऽस्य सदैव ज्ञानमन्विता ॥ १० ॥ महाश्रद्धयनस्तस्य  
हृतसंस्कृते निमित्तानुचान्दौ स । ततः स निखिला समामभयपडितो वागुणोपपायनिपुणो लब्धविजयपञ्चो रंजयन् ॥ ४७ ॥ क स मुक्ति-  
विततत्तव श्रावकः शोभमशः स्फुरितदुर्गतिदूरारुणोद्दौर्दण्डयान् । अमरपरिवृत्तं प्राप्यतेऽसोपदेशादभयविभुरभूत्सत्सगमः किं न कुर्यात् ॥ ४८ ॥  
स्याक्षीस्तत्त्वविमार्शिनी कृतधियाः श्रद्धानुविद्धा तथा हित्वा हेयमुपेयमाप्य विचरन् विचिच्छ बर्वास्तत । सत्कर्मणि च संतत बहुगुणं संश्रावयन् सख्यते  
प्राप्तं प्राप्य भवेद्विभावयविसुनिर्बन्धोऽख्यालय ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे भगवद्वगुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अंत्यतीर्थक्षेत्रश्रेणिकाभाष्यव्याख्यानं नाम चतुःसप्ततितम पर्व ।

मात्सर्यं रत्ननेवाले मनुष्य न हों तो फिर गुणोंकी प्रशंसा कौन नहीं करता भावार्थ—सभी करते हैं ॥ ४४५-४४६ ॥ उस  
बुद्धिमानकी बुद्धि जन्म से ही कुशाग्र थी और फिर शास्त्रोंके संस्कारसे वह और भी तेज होकर एक विलक्षण बन गई  
थी । इसीलिये उस अभयकुमार पंडितने अपने वचनरूपी गुणोंसे सब सभा प्रसन्न कर ली थी और अनेक उपायोंमें  
निपुण पुरुषोंमें भी अपनी विजय पताका प्राप्त की थी ॥ ४४७ ॥ देखो कहां तो अच्छे तत्त्वोंका जानकार वह श्रावक  
और कहां वह मूर्ख ब्राह्मण जोकि दैदीप्यमान पापोंको दूर फेंककर केवल उस श्रावकके समागमसे ब्रतोंमें डूब होगया और  
उसीके उपदेशसे देव होकर ऐसा ऐश्वर्य शाली अभयकुमार हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समागमसे क्या क्या  
नहीं होता है ॥ ४४८ ॥ जिनकी बुद्धि तत्त्वोंका विचार करने वाली है तथा उस बुद्धिके साथ साथ अटल श्रद्धा है उस  
श्रद्धासे जो हेय पदार्थोंका त्यागकर और उपादेय पदार्थोंका ग्रहणकर विहार करते हैं । तदनंतर कर्म बंधोंका नाशकर  
सदासे इकट्ठे किये हुए शुभकर्मोंकोभी आत्माके अनेक गुणोंसे नाशकर संसारके पार पहुंचते हैं वे ऐश्वर्यशाली अभयकुमार  
के समान मोक्ष रूपी अनंत सुखके स्थान बन जाते हैं भावार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ४४९ ॥

इसप्रकार भगवद्वगुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान श्रेणिक और अमयकुमारके  
चरित्रको कहनेवाला यह चौदहचरित्रा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

आतमन्यतरं द्रव्यान्तस्थाप्राप्ततां कुत ॥ ५३६ ॥ एकधर्मोत्तमं सर्वं वाञ्छतोचितवदितः । सामान्यैतत्सप्रैतं कुन सगानिर्ण-  
 या ॥ ५३७ ॥ प्रतीयमानानामिधानासत्याभिधाधिनिः । तगौरसत्याज्ञानाभिधानयो केन मयता ॥ ५३८ ॥ गुणगुणभिसम्बन्धे समानावर्तनं । निस-  
 धानवस्थान्युपेतहान्यनिवारणं ॥ ५३९ ॥ तत्त्ववत्त्वैकांत दुर्गादगर्वं सर्वज्ञमार्तिनं । नित्याभित्यात्मक तत्त्व प्रत्येतव्यं मनीषिणा ॥ ५४० ॥ सवविस्मृतमत्रद्व-  
 सम्पददर्शनमिष्यते । ज्ञातिस्तत्त्वोक्तवस्तुना सम्यग्ज्ञानमुदाहृतं ॥ ५४१ ॥ तदगमोपदेशेन योगव्रथनिर्गवन् । चारित्र्य तत्त्वयं बुक्तं मुक्तैर्भगवत्स्य साधनं ॥  
 ५४२ ॥ समेतमेव सम्यक्त्वज्ञानाभां चरितं मतं । स्यातां विनापि तेनेन गुणस्याने चतुर्षके ॥ ५४३ ॥ कार्त्स्न्येन कार्यणा कृत्वां सवरं निजगा परां ।  
 प्राप्नोतु परमं स्थानं विनेयो विश्वदृक् तत ॥ ५४४ ॥ इति सर्वं मनोहारि भुत्वा तस्य निरूपणं । वस्तुतत्त्वो दिदेश्य कुशलमपण्डितः ॥ ५४५ ॥ इति  
 को अत्रांत कैसे कहता है भावार्थ वह स्वयं आंत है ॥ ५३६ ॥ सबको एक धर्मात्मक माननेवाले जो वादी हैं उनके मत  
 में सामान्य और विशेष की उत्पत्तिमें संशय वा निर्णय कैसे हो सकेगा ॥ ५३७ ॥ जो पदार्थ विश्वप्रणीय ज्ञानके मत  
 कहा हुआ है और जो असत्य रीतिसे कहा हुआ है इन दोनोंमें अर्थात् असत्य और यथार्थ ज्ञानके द्वारा कहे हुए पदार्थों  
 में सत्यका निर्णय कैसे होगा ॥ ५३८ ॥ गुण गुणीका संबंध रहते हुए भी जो अन्य संबंधकी कल्पना करते हैं उनके  
 मतमें संबंधरहित पदार्थोंमें अनवस्था दोषसे प्राप्त हुई जो हानि है उसका निवारण कैसे हो सकता है । भावार्थ-गुणगुणी  
 संबंध को न मानकर समवाय संबंध माननेमें जो अनवस्था आदि अनेक दोष आते हैं उनका निवारण कभी नहीं हो  
 सकता ॥ ५३९ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको एकांत मिथ्यावादका अभिमान छोड़कर सर्वज्ञ देवके कहे हुए नित्यानित्यात्मक  
 पदार्थोंका श्रद्धाजन करना चाहिये ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञ और सर्वज्ञदेवके कहे हुए मतपर श्रद्धा रखना सश्रद्धदर्शन कह-  
 लाता है । सर्वज्ञदेवके कहे हुए पदार्थों को जानना सम्यग्ज्ञान कहा जाता है और उसके कहे हुए आगमके उपदेशके अनु-  
 सार मन वचन काय तीनों योगोंका रोकना चारित्र्य कहलाता है । ये तीनों ही भग्य जीवको मोक्षके साधन गिने जाते  
 हैं ॥ ५४१-५४२ ॥ सम्यक् चारित्र्य, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साधनी होता है परंतु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये  
 दोनों बिना सम्यक्चारित्र्यके भी चौथे गुणस्थानमें हो जाते हैं ॥ ५४३ ॥ इसलिये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये  
 का उत्कृष्ट संवर और उत्कृष्ट निर्जरा करके मोक्षरूप परमस्थान प्राप्त करना चाहिये ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार सब मनोहर  
 रीतिसे निरूपण किया हुआ पदार्थोंका स्वरूप सुनकर सब बैठे हुए सभासद लोग उसकी महिमाकी प्रशंसा करने लगे  
 और कहने लगे कि यह अभयकुमार तत्त्वोपदेश देनेमें बड़ाही कुशल और पंडित है सो ठीक ही है क्योंकि यदि ईर्ष्या और

तत्त्वा विनिर्देशबोधितं ॥ ५२६ ॥ अवाप्ससि पद मुकेरित्यस्य षष्ठ्युच्य तत् । अस्मिन् रात्रौ बह्विंशतिरात्राणि ॥ ५२७ ॥ अथान्येभ्युर्महाराजश्रेष्ठिक  
सदसि स्थित । अमर्यं सर्वशास्त्रं कुमारं ब्रह्मविद्यां ॥ ५२८ ॥ तन्माहात्म्यप्रकाशार्थं तत्त्व पञ्च वस्तुन । सोऽयं सन्निविनेयसद्विस्तृत्याम्यदर्शिवीः ॥  
५२९ ॥ स्वद्विजोत्सर्गिभारविभासितसमांतर । एवं निरूपयामास षष्ठ्यष्टेष्टांगुणः ॥ ५३० ॥ यस्य जीवादिभारानां बाधालयेन प्रकाशनं । तं पठितं  
बुधाः शत्रु परे तान्मैव पठिताः ॥ ५३१ ॥ जीवाद्याः कालपर्यन्तं पदार्था विनभाषिताः । इत्यप्यायमेशभ्यां नित्यानिस्त्वभावकाः ॥ ५३२ ॥ सर्व-  
थात्मादितत्त्वानां मोहाभित्यक्तव्यने । सर्वद्व्येषु सभूति परिणामस्य नो भवेत् ॥ ५३३ ॥ क्षणिकत्वे पदार्थानां न क्रिया कारकं च न । न फलं च त-  
था लोकव्यवहारविलोपन ॥ ५३४ ॥ नित्यत्वस्योपचारेण सत्त्वात्तस्य विलोपनं । नोचेन्मिव्योपचारेण कथं तथ्यस्य साधन ॥ ५३५ ॥ धर्मद्वयोपलभ्यां

समप्रकारं उस अभयकुमारने संतुष्ट होकर तथा श्रीजिनराज को नमस्कार राजा श्रेष्ठिकके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥  
५२३-५२७ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन महाराज श्रेष्ठिक अपनी राजसभामें विराजमान हुए । वहांपर उन्होंने बड़े बड़े  
वक्ताओंके सामने अपने पुत्रका माहात्म्य दिखलानेके लिये समस्त शास्त्रोंके जानकार अभयकुमार को पदार्थोंका स्वरूप  
पूछा आसन्नभव होनेसे वह अभयकुमार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको दिखलानेमें समर्थ था इसलिये अपने दांतोंकी फैलती  
हुई कांतिके भारसे सब सभाको प्रकाशित करता हुआ तथा स्पष्ट निर्मल और इष्ट कहनेरूप अपूर्व गुण को धारण करने  
वाला वह अभयकुमार नीचे लिखे अनुसार तत्त्वोंका स्वरूप कहने लगा ॥ ५२८-५३० ॥ जो जीवादि पदार्थोंका स्वरूप  
यथार्थ रीतिसे प्रगट कर सकते हैं विद्वान लोग उर्हींको पंडित कहते हैं जो पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप नहीं कह सकते वे  
केवल नामके पंडित हैं ॥ ५३१ ॥ श्री जिनेंद्रदेवने जीव पुद्गल-धर्म अर्थात् आकाश और काल ये छह पदार्थ कहे हैं ये सब  
पदार्थ द्रव्य और पर्यायके भेदसे नित्यस्वभाव और अनित्यस्वभाव कहे जाते हैं ॥ ५३२ ॥ यदि मोहनीय कर्मके उदयसे  
जीवादि सब पदार्थोंको सर्वथा नित्य कल्पना किया जाय तो फिर सभी पदार्थोंमें परिणामन होनेकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी  
॥ ३३ ॥ यदि सब पदार्थोंको क्षणिक मान लिया जाय तो न क्रिया धन संकेगी न कारक बन सकेगा और न क्रियाका  
फल बन सकेगा । तथा लेने देने रूप लोक व्यवहार का बिच्छुल नाश हो जायगा ॥ ५३४ ॥ यदि नित्यको उपचारसे  
मानोगे तो जो नित्यत्व वास्तवमें है उसका अभाव ही मानना पड़ेगा क्योंकि अभावमें ही उपचार माना जाता है यदि वह  
वास्तवमें है ही नहीं तो फिर मिथ्या उपचारसे उसका सत्यस्वरूप कैसे सिद्ध हो सकता है ॥ ५३५ ॥ इसलिये नित्या-  
नित्यात्मक दोनों धर्मोंके रहनेसे ही अर्थ क्रिया होती है इस बातको



वादस्य नाहेत ॥ ४१८ ॥ इत्याहं लोक तत्तत्त्वं भुत्वा सर्वं दिङ्मात्रम् । त्वय्युहीतो मया दैव्यास्तु धर्मोय प्रयुवीति च ॥ ५१९ ॥ तदाद्याश्रद्धीदम् निर्मल बि-  
 नभापित । सतां बचो हित हि रथादादुरायैव भोजनं ॥ ५२० ॥ अथ तो सह गच्छतां नाय ॥ ५२१ ॥ तदानीं तरे । पागेदयास्पृश्रिष्ठमोगो विरमुळतां गतो ॥ ५२२ ॥  
 देशकोस्ति न मार्गस्य बन्मेतदमानुष । नास्ति कश्चिदुपायोत्र विहाय जिनमापित ॥ ५२३ ॥ रागाद ॥ परिच्छेदोहि पांडित्ये  
 सद्यनानासीनं श्रावकं द्विज ॥ ५२४ ॥ विदोक्त्य सयमय्येतदुपदेशेन, शुद्धीः । ॥ ५२५ ॥ स्थित्वा तथैव सयाससमाभिर्जाहिताभ्यो ॥ ५२६ ॥ सौषर्मे-  
 कल्पे देवोभूद सुक्त्वा तत्रामरं सुखं । लायुरति लघुप्येन श्रेणिकस्य महीपते ॥ ५२७ ॥ अ- न मयाख्यः सुतो धीमानजनिष्टास्त्वमीदृशः । अत परं तपः क-  
 दो ॥ ५२८ ॥ कदाचित् यह कहो कि जो विसंवादरहित है वही प्रत्यक्ष है और वही प्रमाण है तो भी पूछा जा सकता  
 है कि वही प्रमाण क्यों है ? कदाचित् कहो कि अनुमानसे ऐसा ही सिद्ध होता है तो फिर उत्तरमें कहा जा सकता है  
 कि अनुमान तुम्हें इष्ट नहीं है इसके सिवाय फिर भला राजाओंको भी अनिवार्य क्या होगा ? ॥ ५२९ ॥ अथवा सांख्य  
 आदि अन्य मतोंके बचन भलेही अप्रमाण हों क्योंकि उनमें परस्पर विरोध आप्तग है परंतु अरहंत के वचन कभी अप्रमाण  
 नहीं हो सकते क्योंकि सर्वज्ञ होनेसे प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उनमें विसंवादका अभ्यास सिद्ध होता है ॥ ५३० ॥ इसप्रकार  
 अरहंतदेवके कहे हुए सब यथार्थ तत्वों को सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि राजसे तेरे धर्म को मैं भी स्वीकार करता  
 हूं ॥ ५३१ ॥ इसप्रकार उसने उस श्रावकके कहे अनुसार जिनेंद्र देवका कहा हुआ निर्मल धर्म स्वीकार करवा  
 ही है क्योंकि जिसप्रकार औपधिका सबको अनुराग होता है उसीप्रकार सज्जनोंके हितरूप वचनोंका भी स्वीकार किया सो ठीक  
 होता है ॥ ५३२ ॥ अथानंतर वे दोनों ही साथ चलने लगे दैवयोगसे पाप कर्मके उद्धारसे वे दोनोंही किसी गहन वनमें  
 जाकर मार्ग भूल गये और दिशाभूल हो गये ॥ ५३३ ॥ तब श्रावकने विचार किया कि यहां मार्ग वतलाने वाला कोई  
 नहीं है क्योंकि इस वनमें मनुष्य का कहीं पता ही नहीं है यहां पर सिवाय श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए उपायके और कोई  
 उपाय ही नहीं है ॥ ५३४ ॥ ऐसे समयमें शूरीरका पांडित्य इसीमें है कि वह आहार और शरीरका त्याग करदे । इस  
 तरह विचार कर वह सन्यास धारणकर ध्यानस्थ विराजमान होगया । ब्राह्मण ने भी उसी इसप्रकार देवकर अपना चित्त  
 शुद्ध किया और उसके उपदेशके अनुसार उसीतरह सन्यास धारण कर शरीर छूटजानेपर वह सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ ।  
 वहांके देवोंके सुख भोगकर आयुके अंतमें पुण्यकर्मके उदयसे राजा श्रेणिकके तू अभयकुमार नामका ऐसा बुद्धिमान पुत्र  
 उत्पन्न हुआ है । आगे तू श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ बारह तरहका तपश्चरण धारणकर मोक्ष स्थानको प्राप्त होगा यह सब

न तस्य; स्यादेवाभावविशेषतः । न तस्य; स्यादेवाभावविशेषतः ।  
मन ॥ ५१० ॥ हेतुबाधोऽप्रमाणं चेद्यथाश्रितिरङ्गत्रिमा ॥ इत्थं सत्यमेव किं इतिमाश्रितिरित्यपि ॥ ५११ ॥ वाग्य-  
श्रुता शीर्षाणि तदनुपेक्षितव्यस्त्वयापि सः ॥ ५१२ ॥ इहे तस्मिन्मयाभीष्टो विश्ववित्किम् सिद्ध्यति । ततः त-  
विप्रस्तवदप्रमाबाधो न चार्वाको न मां प्रति । प्रयोगोऽनभ्युपेतत्वादित्युक्तिर्घटते न ते ॥ ५१४ ॥ साध्यसा-  
मि कथं न स्यात्प्रयोगस्तथा प्रतिप्रमा ॥ ५१५ ॥ क्वचिच्च व्यभिचारः केदप्रत्यक्षेपि न मोरित किं । नानुमानप्र-  
विधेर्वादि प्रमाणमिति चेत्कुल । अनुमानेपि तत्रैष्टमनिष्ट किं किंतीविभिः ॥ ५१७ ॥ अस्तु साह्यादित्रिद-

पुरुषका भी पद जाना ( धोखा खाना ) दुर्लभ नहीं है । हे विप्र यदि तुम इस ॥ ५०७-५१० ॥ इसका भी  
क्योंकि इससे कुछ बड़े आदमियोंका-विद्वानोंका मन आकर्षित नहीं होता अपौरुषेय है यह बात सत्य है उसी  
कारण यह है कि हेतुबाधको अप्रमाणा मान लेनेपर जिसप्रकार वेद अकृत्रिम वा इसके उत्तरमें यह कहा जाय कि  
प्रकार वेद कृत्रिम वा पौरुषेय है यह बात भी क्या सत्य नहीं है ? कदाचित् शेष हेतु नहीं है तो फिर मर सडकर  
केवल वचनमात्रसे कह देना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंके सिद्ध करनेमें कोई शेष हेतु नहीं है तो फिर मर सडकर  
तुम्हें वेदको अकृत्रिम सिद्ध करनेका हेतु स्वीकार करना ही पड़ेगा ॥ ५११-५१२ ॥ यदि वेदको अकृत्रिम सिद्ध  
करनेके लिये किसी हेतुको मानना श्रु है तो फिर उसी हेतुवादसे वा अनुमान ॥ ५१३ ॥ हमारे अभीष्ट ऐसे सर्वज्ञकी सिद्धि भी  
क्यों नहीं हो जायगी अर्थात् अवश्य होजायगी इसलिये विद्वान् लोग सर्वज्ञों के हेतु रूप बचनोंके विरुद्ध कभी स्वीकार  
नहीं करते हैं ॥ ५१३ ॥ हे विप्र ! तुम प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्द, उपमान, अर्थोपपत्ति और अभाव इन छह प्रमाणोंको  
माननेवाले मीमांसक हो, केवल प्रत्यक्षप्रमाणको माननेवाले चार्वाक नहीं हैं इसलिये “यह अनुमानका प्रयोग भरे लिये  
नहीं है क्योंकि मैं हेतुवाद मानता नहीं” यह तुम्हारी युक्ति अथवा तुम्हारे बचन ठीक नहीं जम सकेंगे ॥ ५१४ ॥ साध्य  
साधनके अविनाभावी संबंधको हेतु कहते हैं और वह हेतु प्रत्यक्ष होता है इसलिये उस हेतुको प्रत्यक्ष देखकर उसके संब-  
धको जाननेरूप तर्कप्रमाण के द्वारा उसकी व्याप्तिका ज्ञान कैसे नहीं होना अर्थात् उस साधनसे साध्यका ज्ञान क्यों नहीं  
होगा और फिर ऐसा अनुमानका प्रयोग तुम्हें प्रमाण क्यों नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य मानना पड़ेगा ॥ ५१५ ॥ कदा-  
चित् यह कहो कि अनुमानमें कहीं व्यभिचार हो जाता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कहीं व्यभिचार आ जाना क्या  
प्रत्यक्ष प्रमाण में अर्थात् नहीं है ? वहां भी है इसलिये हे अर्थ ! अनुमान

शोऽप्रवीत । आतोकागमवैमुख्यादिति हेतुन मां प्रति ॥ ४९९ ॥ साख्याशासत्रवादानां वैकुण्ठ्यस्वदोक्तः । दायताः पुरुषाः सर्वे बाल रागाद्यविषया ॥ ५०० ॥ इत्यनालोचिताथस्य बचते नैति सारता । यतो रागाद्यविषयानां क्वचित्प्रितुल्यसंख्यः ॥ ५०१ ॥ सर्वज्ञस्य विरागस्य प्रयोगः साधनं प्रति । क्रियते युक्तिवादनुसारिणो विदुषस्तत्र ॥ ५०२ ॥ क्वचित्प्रितुल्यसंख्यः । तत्तथात्रैव जायेत तारतम्यं च नोभवेत् ॥ ५०३ ॥ दृष्टेस्तदनु केन्मूलहातिः केन निवार्यते । सर्वज्ञासत्त्वमिह सर्वज्ञो-  
धानेन कनकादमरकवत् । तत्तथात्रैव जायेत तारतम्यं च नोभवेत् ॥ ५०४ ॥ दृष्टेस्तदनु केन्मूलहातिः केन निवार्यते । सर्वज्ञासत्त्वमिह सर्वज्ञो-  
क्तिर्जनोदिता ॥ ५०५ ॥ मुख्यसर्वज्ञसिद्धिर्गणतत्त्वात्साधयेदियं । जैत्रे सिद्धमिधानेन मुख्यसिद्धिस्तु सिद्धिदत्ता ॥ ५०६ ॥ न मां प्रति प्रयोगोऽयं मुक्तिहेतौ निराकृतेः ।  
अवस्था देशकालादिभेदाद् भिन्नाः साक्षात् ॥ ५०७ ॥ भावानामनुमानेन प्रतीतिरतिदुर्लभा । यत्नेन साधितोऽयं यथः कुण्डलैरनुमातृभिः ॥ ५०८ ॥ अभिव्युक्तैः-  
रन्वैरन्यथा क्रियते यतः । हृदयस्थशर्दिवाधस्य विषये पयि यावतः ॥ ५०९ ॥ अनुमानप्रधानस्य विनिर्णयो न दुर्लभः । इति चेद्विप्र । न तेन गृह्यते महता

ओंका कहीं भी अत्यंत नाश हो सकता है और रागादि अविद्याओंके नाश होनेसे सर्वज्ञ और वीतरागकी सिद्धि हो स-  
कती है तुम युक्तिवादको माननेवाले विद्वान हो इस लिये तुम्हारे लिये सर्वज्ञ वीतरागकी सिद्धिका प्रयोग किया जाता  
है । अविद्या और रागादि भावोंमें तारतम्य ( हीनाधिकता ) देखा जाता है इस लिये किसी पुरुषमें अविद्याके साथ  
साथ रागादि भावोंका सर्वथा नाश भी हो सकता है ॥ ४९९-५०३ ॥ जिस प्रकार सामग्रीके मिलने पर कनक पापाण  
की कीट कालिमा आदि दूर की जा सकती है उसी प्रकार अविद्या और रागादि विकार भी नाश किये जा सकते हैं ।  
यदि वे नाश न किये जा सकें तो फिर उनमें हीनाधिकता भी नहीं होनी चाहिये परंतु हीनाधिकता तो देखी जाती है  
इस लिये उनकी मूलहातिका भी कौन निवारण कर सकता है ? जो सब शास्त्र और कलाओंमें निपुण हैं उन्हींको  
लोग सर्वज्ञ कह देते हैं और उनकी सर्वज्ञकी यह गौण युक्ति ही मुख्य सर्वज्ञको सिद्ध कर देती है जिस प्रकार कि किसी  
बालकको सिंह कहनेसे मुख्य सिंहकी सिद्धि हो जाती है ॥ ५०४-५०६ ॥ कदाचित् यह कहा जाय कि यह सर्वज्ञ  
सिद्ध करनेका प्रयोग मेरे लिये ( भीमांसकके लिये ) नहीं हो सकता क्योंकि रागादि दोषोंके सर्वथा नाश होनेकी प्रतीति  
रूप जो मोक्षका कारण है उसका निराकरण किया जा चुका है कि अवस्था देश काल आदिके भेदसे शक्तियां अनेक तरह  
की हो जाती हैं इस लिये रागादि दोषोंकी हीनाधिकता तो हो सकती है परंतु उनका सर्वथा नाश नहीं हो सकता । पदा-  
र्थोंका अनुमानसे निश्चय होना अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि अनुमान करनेमें अत्यंत कुशल पुरुष भी बड़े यत्नसे किसी पदार्थ  
को सिद्ध करे तो भी अन्य प्रवादीकी ओरसे वह पदार्थ दूसरी तरह सिद्ध किया जा सकता है । जिस प्रकार केवल  
बाथके स्पर्शसे विषम मार्गमें दौड़ने वाले अंधे पुरुषका पड जाना दुर्लभ नहीं है उसी प्रकार अनुमानको प्रधान माननेवाले

पञ्चमिष्येन्दुसहं तप ॥ ४८८ ॥ कुर्वतस्तापस्योच्चैः प्रज्वलद्बन्धिरुहसहैतौ । ब्यंजयत्प्राणिनो भ्रातृषु भेदानामनारत ॥ ४८९ ॥ तस्य पञ्चसिद्धिभेदय  
च युक्तिभिः स निराकृतः । गोमांसप्रक्षणगन्धगर्भायैः पतिते क्षणात् ॥ ४९० ॥ वर्णकुल्यादिभेदानां देहेस्मिन्नव दर्शनात् । ब्राह्मण्यादियु शुद्राद्यैर्गर्भाधान  
प्रवर्तनात् ॥ ४९१ ॥ नास्ति जातिकृत्वो भेदो मनुष्याणां गन्धभ्रवत् । आकृतिग्रहणात्समादन्यथा परिकल्पते ॥ ४९२ ॥ आतिगोत्रादिकर्मणि शुल्लक्ष्या-  
नस्य हेतव । येषु ते सुखयो वर्णः शोभाः शुद्धा प्रकीर्तिता ॥ ४९३ ॥ अच्छेदो मुक्तियोग्याया विदेहे जातिर्नतते । तस्मिन्नामगोत्राच्छजीवाविच्छि-  
न्नसंभवात् ॥ ४९४ ॥ शेषयोस्तु चतुर्षु स्वास्माकं तज्जातिसन्ति । एवं वर्णविभागः स्यान्मनुष्येषु विनागमे ॥ ४९५ ॥ इत्यादिहेतुभिर्जातिभेदात्मन्य  
निराकरोत् । वदेस्मिन् सख्य विच्छेदो बसतीत्येवमादिक ॥ ४९६ ॥ बाक्य श्रद्धाय तद्योग्यमानर्तो महीभुज । किञ्च जानति लोकस्य मार्गोय प्रथितो म-  
हान् ॥ ४९७ ॥ न लयन्तु शक्य इत्यादि न प्राह्य लौकिक बन्धः । आसीत्तोगमवाद्यान्वाद्योन्मत्तकवाक्यवत् ॥ ४९८ ॥ इति तल्लोकभेदय च निरस्तुदय

शरीरमें वर्ण वा आकारसे कुछ भेद भी दिखाई नहीं पड़ता और आसूराण क्षत्रिय वैश्योंमें शुद्रोंसे भी गर्भाधानकी प्रवृ-  
त्ति देख पड़ती है, इसलिये मनुष्योंमें गाय और घोड़ेके समान जातिका किया हुआ कुछ भेद नहीं है । यदि आकृति  
में कुछ भेद हो तो जातिमें भी कुछ भेद कल्पना किया जा सकता है ॥ ४८८-४९२ ॥ जिनकी जाति गोत्र कर्म आदि  
शुद्ध्यान्के कारण हैं वे उत्तम तीन वर्ण कहलाते हैं और बाकी सब शूद्र कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ विदेहक्षेत्रमें मोक्षजाने  
योग्य जातिकी संतानका कभी नाश नहीं होता है क्योंकि कि मोक्षके कारणभूत नाम गोत्रसहित जीव व्यवधानरहित सदा  
बने रहते हैं । शेष भरत पुरावत क्षेत्रमें चौथे कालमें ही जातिकी संतान होती है सदा नहीं । जैन शास्त्रोंमें मनुष्योंका  
वर्ण विभाग इस प्रकार निरूपण किया गया है ॥ ४९४-४९६ ॥ इस प्रकारके वचनोंके द्वारा उस श्रावकने उसकी  
जातिमृदता भी दूर की । इसके बाद वह श्रावक फिर कहने लगा 'कि इस वट वृक्ष पर कुबेर रहता है ऐसी बातों पर  
श्रद्धान रख कर राजा लोग भी उसके योग्य आचरण करने लग जाते हैं अर्थात् पूजने लग जाते हैं । क्या वे  
जानते नहीं है कि लोकका यह बड़ा भारी प्रसिद्ध हुआ मार्ग छोड़ा नहीं जा सकता' इत्यादि ऐसे लोकप्रसिद्ध बचनोंको  
कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसे वचन सर्वप्रणीत शास्त्रके बाहर हैं और मदीन्मत्त पुरुषके वाक्यके समान  
है इस प्रकार समझा कर उसने उसकी लोकमृदता भी दूर की । तदनंतर वह श्रावक फिर समझाने लगा कि कदाचित्  
यह कहा जाय कि आप्तके कहे हुए शास्त्रसे विमुख है इस लिये अप्रमाण है यह हेतु हमारे लिये नहीं हो सकता क्योंकि  
सांख्य आदिके मतमें आप्त माननेमें भी पौरुषेयका दोष आता है पुरुष जितने हैं वे सब रागादि अविद्यासे दूषित हैं सो  
भी ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकारके वचन सब विचाररहित हैं, इनमें कुछ भी सार नहीं है क्योंकि रागादि अविद्या-

तीर्थयुक्तं समागम्य ॥ ४८० ॥ अथास्मी भोक्तुं कामाय सुकृत्वा स श्रावक स्वयं । स्वीच्छिष्टं सुरसिंघं बुभुक्षितं पावनं त्वया ॥ ४८१ ॥ भोक्तव्यमिति  
 विप्राय यदो भामयितुं हित । तं दृष्ट्वाह कथं भुंजे तवोच्छिष्टं विशिष्टता ॥ ४८२ ॥ किं न वेदिस भवैव त्वं व्रजेति स तमब्रवीत् । कथं तीर्थजलं पापमला-  
 पनयने क्षम ॥ ४८३ ॥ यययोच्छिष्टदोषं चेन्नापनेतुं समीहते । ततो निर्हेतुकामेतां प्रयेयां सुगन्धचेतसा ॥ ४८४ ॥ त्यज दुर्वासनापाप प्रक्षाल्यमिति  
 सम्यक्त्वादित्युक्तेण पुण्य प्राप्ते च निश्चिन्तिः । एतज्जैश्वरं तत्त्वं यद्वाण्यलवदयुनः ॥ ४८५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विप्रस्तीर्थमैराह्य निराकरोत् । अथ तत्रैव  
 गंगा नदीके किनारे गया ॥ ४८६ ॥ भूख लगने पर उस ब्राह्मणने उस नदीके जलको मणिगंगा नामका उत्तम तीर्थ  
 समझ कर स्नान किया और इस तरह तीर्थमृदताका काम किया ॥ ४८७ ॥ तदनंतर जब वह ब्राह्मण खानेकी इच्छा  
 करने लगा तब श्रावकने पहिले स्वयं खाकर उस वचे हुए उच्छिष्ट भोजनमें गंगा नदी का वही पानी मिलाकर उस  
 ब्राह्मणको दिया और हित वतलानेके लिये कहा कि गंगाका जल मिल जानेसे यह भोजन पवित्र है इसे खाओ । उसे  
 देखकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि तेरा उच्छिष्ट भोजन मैं कैसे खाऊं तब उस श्रावकने कहा कि तू जो इस तरह कह  
 रहा है सो क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इसमें गंगाका जल मिला हुआ है । यदि यह गंगाजल इस भोजनके उच्छिष्ट  
 दोषको भी दूर नहीं कर सकता तो फिर इन तीर्थोंके जलसे पापरूपी मल किस तरह दूर हो सकता है । इसलिये तू  
 अपने मृद चित्तसे इन निर्मूल विचारोंको निकाल दे यदि जलसे ही बुरी वासनाओंके पाप दूर हो जाय तो फिर  
 दान आदि अनुष्ठानोंका करना व्यर्थ ही हो जायगा ॥ ४८८ ॥ सब लोग जलसे ही पाप दूर कर लिया करें क्योंकि जल सब  
 जगह सुलभ रीतिसे मिलता है । मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय इनसे पापकर्मोंका बंध होता है और सम्यक्त्व ज्ञान चा-  
 रित्र तपसे पुण्य कर्मोंका बंध होता है तथा अंतमें इन्हीं चारोंसे मोक्ष होती है । इसलिये अब तू श्रीजिनेन्द्रदेवका मत  
 स्वीकार कर इस प्रकार उस श्रावकने कहा ॥ ४८९ ॥ उस श्रावकका यह उपदेश सुन कर उस ब्राह्मणने तीर्थ  
 मृदता भी छोड़ दी इसके बाद वहीं पर एक तपस्वी पांच अग्रियोंके मध्यमें बैठकर दुःस्सह तप कर रहा था जलती हुई  
 अग्निमें छहों प्रकारके जीवोंका निरंतर घात हो रहा था और वह प्रत्यक्ष जान पड़ता था उस श्रावकने उस तपस्वीके मा-  
 ननेकी पाखंडिमृदता भी बड़ी युक्तियोंसे दूर की । तदनंतर वह उसकी जातिमृदता दूर करनेकेलिये कहने लगा कि  
 गोमांसपक्षजण तथा वेश्यादि सेवन, न करने योग्योंका सेवन करनेसे जगण भ्रममें पतित हो जाता है । इसके सिवाय इस

आवकः सिती ॥ ४६९ ॥ तस्यावमिसि विधिर्य तद्दुमादात्तपहर्ष ॥ परित्यज्य स्वपादाकभूतिं ते वर्य देवता ॥ ४७० ॥ नाहं ताना विधाताय समर्थस्य  
बदद् द्विज । विप्रेणानु तर्थवारु वो दोषस्तव देवता ॥ ४७१ ॥ परिभूतिपद नेयाभ्युपाध्यायारवमश्र मे । इत्युक्तस्तेन तस्मात्स प्रदेशातरमाप्तवान् ॥ ४७२ ॥  
आवकः कपिरोमाह्यवल्लीजाल समीक्ष्य मे । देवमेतदिति व्यक्तमुक्त्वा भक्त्या परीत्य ततः ॥ ४७३ ॥ श्रग्म्य रिशतवान् विप्रोव्याधिष्ठतश्चोपयुक्तः ।  
कराभ्यां तत्समुच्छिद्यश्च विमृश्य सम ततः ॥ ४७४ ॥ तांशुतासह्यवद्वृकाविशोयेणातिवार्यित । एतस्मिन्निहित देव त्वरीयमिति भीतवान् ॥ ४७५ ॥  
सहासो विद्यते नान्द्रिधियात् सुखदुःखयो । प्राणिना प्राक्तनं कर्म मुक्त्वास्मिन्मूलकारण ॥ ४७६ ॥ श्रेयो वापु ततो यत्नं तपोदानादिकर्मसि । कुर्व त्वमिति  
तन्मोहय ह्रित्वा देव निवधन ॥ ४७७ ॥ देवा खलु सहायत्यत्नं यति पुण्यवतां वृणा । तर्के विचि कर्ग पुण्यवलयै मूलसन्निभाः ॥ ४७८ ॥ इत्युक्त्वा-  
स्तद्विजोर्भु-देवर्ग-द्वारतत नमसा । आवकस्तेन विप्रेण गगतीरं समागमत् ॥ ४७९ ॥ सुधुस्तत्र विप्रो गमिणाभ्यस्यमुत्तम । तीर्थमेतदिति आत्वा

चेष्टा को देवकर वह आवक हंसने लगा ॥ ४६६-४६९ ॥ तथा उसकी अवज्ञा करनेके लिये उस वृक्षके कुछ पत्ते तोड़  
कर भीड़कर अपने पैर की धूलिसे लगा लिये और उस ब्राह्मणसे कहा कि देव तेरा देव जैनियों का अनिष्ट करनेमें  
विलुल समर्थ नहीं है । इसके उत्तरमें उस ब्राह्मणने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही इसमें श्रानि ही क्या है मैं भी तेरे  
देवका तिरस्कार कर सकता हूं इस विषयमें तू मेरा गुरु ही सही । इसतरह कहकर वे दोनों फिर साथ चलने लगे और  
किसी एक देशमें जा पहुंचे ॥ ४७०-४७२ ॥ वहां पर कपिरोमा नामकी बेलके बहुतसे वृक्ष थे उन्हें देखकर वह आ-  
वक कहने लगा कि देखो यह हमारा देव है कह कर उसने बड़ी भक्तिसे मटलिया दी और नमस्कार कर अलग खड़ा हो  
गया । वह ब्राह्मण पहिलेसे क्रोध कर ही रहा था इस लिये उसने भी हाथसे उसके पत्ते तोड़े और मसल कर सब ज-  
गह लगा लिये परंतु वे सुजली करनेवाले पत्ते थे इस लिये लगाते ही उसे असह्य सुजलीकी बाधा होने लगी तथा वह  
दूर गया और आवकसे कहने लगा कि इसमें अवश्य ही तेरा देव है ॥ ४७३-४७५ ॥ तब हंसता हुआ वह आवक  
कहने लगा कि इस संसारमें जीवोंको सुख दुःख देनेवाला पहिले किये हुए कर्मोंके सिवाय और कुछ नहीं है कर्म ही  
इसके मूल कारण हैं ॥ ४७६ ॥ इस लिये तप दान आदि सत्कार्योंके द्वारा तू अपना कल्याण करनेके लिये प्रयत्न कर  
और इस प्रकारकी देवमूर्द्धता को कि देवता ही सब करते हैं निकाल फेंक वादको वह फिर कहने लगा कि जो मनुष्य  
पुरुषवान हैं उनके देवलोग स्वय आकर सहायक हो जाते हैं पुरुषरूपी कंकणके रहते हुए देव कुछ हानि नहीं कर सकते  
॥ ४७७-४७९ ॥ इस प्रकार सपमाकर अनुक्रमसे उसकी देवमूर्द्धता दूर की । तदनंतर वह आवक उस ब्राह्मणके साथ

नास्ति सर्वं धो यदि देहिना । मया कथमवांलंभि मनुष्यसर्वभवं ॥ ४५८ ॥ ततः पुन्यं न पाप वा यथेष्ट वृत्तं शुभ । इति कृत्वा, अनुनिक पापी हि-  
 सादिपंचक ॥ ४५९ ॥ मासावाहारसंस्कृतो वशांरंभपरिग्रहः । अनुबद्धोस्ति वधायुनारक परमावधि ॥ ४६० ॥ तेन यात्यत्यसा पृथ्वी सप्तमा वोरदुःखदां ।  
 सदा वदनागकायुस्तनुच्युतौ । तप्त प्रभामहादु स्वभागिनीयं भविष्यति ॥ ४६१ ॥ इति तद्विचित्रप्रति प्रणिपत्य सुनीभरे । कुमारोपभयोर्योपच्छस्त्रमवातर-  
 संतति ॥ ४६२ ॥ तदनुग्रहबुधैवमाहासा भव्यवत्सल । इतो भवत्तुतीयेन भवे भव्योपि स कुधी ॥ ४६३ ॥ इति तद्विचित्रप्रति वेदाभ्यासहेतो परिब्रजन् ।  
 देशातराणि पाल्बिदेवतातीर्थजातिभिः ॥ ४६४ ॥ लोकैर्न च विमुखाकुलीभूतस्तत्प्रशंसन् । तदाचरितमनुच्युतौ नुतिष्ठप्रयेच्छया ॥ ४६५ ॥ केनचित्यसि  
 केनामा जैनैर्न पवि स ब्रजन् । पाषाणप्राक्सिलक्ष्मभूताधिष्ठितभूह ॥ ४६६ ॥ समीप प्राप्य भक्त्यातो देवमेतदिति इतं । परीत्य प्राणमदं दृष्ट्वा तच्छया  
 पुराय है न कुल पाप है अपनी इच्छानुसार वर्तव रचना ही सुख है । इसप्रकार वह पापी दृढ निशंक होकर हिंसादिक  
 पांचो पाप करने लगा है ॥ ४६६ ॥ वह पांसादिकके आहारमें आसक्त होगया है उसने आरंभी और  
 बहुपरिग्रही होनेसे सबसे अधिक ( सातवें नरकका ) नरकायुका बंध किया है ॥ ४६७ ॥  
 इसलिये वह घोर दुख देनेवाले सातवें नरकमें जायगा । इसी तरह शुभा भी तीव्र अनुभाग जन्य स्त्री वेदके उदय  
 से खूब बढे हुए राग द्वेष पैशून्य आदि दोषोंसे खूब भरी हुई है गुणशील और सदाचार आदिकोंको सुन कर तथा  
 देवकर वह बहुत ही क्रोध करती है इसलिये संक्षेप परिमाणोंसे उसने नरकायुका बंध किया है और शरीर छोड़कर  
 वह छठे नरकमें जायगी तथा वहाँके अनेक दुख भोगेगी ॥ ४६८-४६९ ॥ इस प्रकार गुणधरके कह चुकने पर अभय-  
 कुमारने भी उठ कर सुनिराजको नमस्कार किया और अपने पहिले भव पूछे ॥ ४६९ ॥ अभयकुमारका अनुग्रह करने  
 के लिये ही भव्यों पर वात्सल्य रखने वाले गुणधर कहने लगे कि इससे तीसरे भवमें तू भव्य होकर भी बुद्धिहीन या  
 ॥ ४६९ ॥ तू किसी ब्राह्मणका पुत्र था और वेद पढनेके लिये अनेक देशोंमें इधर उधर घूमता फिरता था । पाखंड-  
 सुद्धता, देवमूढता, तीर्थमूढता और जातिमूढतासे सबको विमोहित कर बहुत ही आकुलित होता था तथा उन्हींकी प्रशंसा  
 के लिये उन्हीं कामोंको अच्छीतरह करता था । किसी एक समय वह दूसरी जगह जा रहा था उसके साथ मार्गमें कोई  
 जैनी पथिक भी जा रहा था । मार्गमें पथिकोंके ढेरके पास एक भूतोंका निवासस्थान पैड था । उसके समीप जाकर और  
 उसे अपना देव समझकर बड़ी भक्ति से उस ब्राह्मणपुत्रने उस



४४६ ॥ वागिष्ठरपरित्यागादुपदेष्टुर्ग्रहामते । अर्थमात्र समादाय समुत्था इतिर्यजा, कर्तुं किं ते? वदय देवता ॥ ४७० ॥ नार्हतत्तत्पुर्तिगताय समर्थस्य  
या श्रद्धा सावगादेति कथ्यते ॥ ४४८ ॥ केवलवगमालोकिताखिलार्थता रुचिः । परमाथवगादासां श्रदेति परमार्थिभ्यः ॥ ४४९ ॥ एतास्वपि महान्या-  
तव संलया काश्चन । दर्शनाद्यागमशोकशुद्धयोदयकारणैः ॥ ४५० ॥ भव्यो व्यस्तैः समस्तैश्च नामात्मीकुर्वतेति । तेषु श्रद्धादिभिः कैश्चिद्व्या तन्नामका  
रणैः ॥ ४५१ ॥ रजप्रभां प्रविष्टः संस्तुतफल मध्यमायुषा । भुक्त्वा निर्गल भव्यारिम्न महापद्माह्वयतीर्यकृत् ॥ ४५२ ॥ आगाम्युत्तिर्णीकालस्यादिमः  
क्षेमकृतसता । तस्मादात्मनमव्योसि माभ्यपी, सदतेरिति ॥ ४५३ ॥ स्वस्य रजप्रभावासे विषण्णः श्रेणिक पुन । अप्राक्षीदीधनान्योपि पुरेरेमन्युपधाम-  
नि ॥ ४५४ ॥ किमस्त्यधोगतिं यात्यनिस्ततो मुनिरादिशत् । कालशौकारिकस्यात्र शुभायाथ प्रवेशन ॥ ४५५ ॥ अस्ति द्विजतन्त्रायास्तुक्तुर्बोधिनिशम्यता ।  
कालसौकारिकोत्रैव पुरे नीचकुले भूष ॥ ४५६ ॥ सबस्थितिवशाद्दसनरायु पापकर्मणा । सप्तह्रलोभुना जातिस्त्रोभुर्वैवमस्मत् ॥ ४५७ ॥ पुण्यपापफले-

अर्थज सम्यग्दर्शन है । मोहनीयकर्मके क्षय हो जानेपर जो अंग अंगवार्थके ज्ञानकी भावनासे श्रद्धा उत्पन्न होती है वह अ-  
वगाढ सम्यग्दर्शन है । तथा केवलज्ञानसे सब पदार्थोंके देखलेनेपर जो श्रद्धान होता है वह परमावगाढ सम्यग्दर्शन कहला-  
ता है ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥ ४४९-४४९ ॥ हे महाभाग इन श्रद्धाओंमेंसे आज तेरे कितनी ही श्रद्धाएं मौजूद हैं ।  
इनके सिवाय दर्शन विशुद्धि आदि शास्त्रोंमें कहे हुए जो शुद्ध सोलह कारण हैं उनमेंसे सब त्या कुछ कारणोंसे यह भ-  
व्य जीव तीर्थंकर नामकर्मका बंध करता है । इनमेंसे दर्शनविशुद्धि आदि कितनेही कारणोंसे तू तीर्थंकर नामकर्मका बंध  
करोगा, परकर रत्नप्रभा ( पहिले ) नरकमें जायगा मध्यम आयुसे वशाका फल भोगकर निकलेगा और हे भव्य फिर  
इसी भरतक्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीकालमें सज्जनोंको कल्याण करनेवाला महापद्म नामका सबसे पहिला तीर्थंकर होगा ।  
तु आसन्नभव्य है इसलिये अब संसारसे भय मतकर ॥ ४५०-४५३ ॥ तदनंतर अपने नरकमें जानेकी बात सुनकर श्रे-  
णि रु कुछ खेद विषम हुआ और फिर पूछने लगा कि हे धीधन ! पुण्यके घर ऐसे इस नगरमें नरकमें जानेवाला और  
भी कोई है या नहीं ? तब गणधरदेव कहने लगे कि इस नगरमें कालसौकीरी और ब्राह्मणकी पुत्री शुभा ये दो जीव ऐसे  
हैं जो नरक जायेंगे ये जीव क्यों नरकमें जायेंगे इसका कारण मैं कहता हूं सुनो ! कालसौकरिक इसी नगरमें नीच कुल  
में उत्पन्न हुआ है ॥ ४५४-४५६ ॥ यद्यपि पहिले वह पापी था तथापि भवस्थितिके वशसे उसे सातवार मनुष्य आयुका  
बंध हुआ था । अब उसे जाति स्मरण हो चुका है और वह सदा यही विचार करता रहता है कि जीवोंका यदि पुण्य  
पापके फलसे कुछ संबंध रहता है तो फिर मुझ ऐसे पापीको मनुष्य भव कैसे मिल गया ॥ ४५७-४५८ ॥ इसलिये न

इदानीमुत्तमं प्रागेवात्र जन्मनि ॥ ४३५ ॥ वद्धदेवाद्युन्यायुर्नागी स्वीकुरुते व्रत । श्रद्धानं तु यमादत्ते तस्मात्त्व नामहीर्यते ॥ ४३६ ॥ पुराणस्थितिसंभूत-  
विशुद्ध्या करणत्रयात् । सम्यक्त्वमादिमं प्राप्य शांतसममहारजाः ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तकालेन सम्यक्त्वोदयभाविते । क्षायेपशमिके स्थित्वा श्रद्धाने सं-  
चलात्मके ॥ ४३८ ॥ सप्तप्रकृतिनिर्मूलक्षयात्स्थानविक्रमागमः । आनामागोपदेशोत्पन्नं सूत्रबीजसमुद्भवं ॥ ४३९ ॥ संक्षेपाद्विस्तरेर्थाच्चावासमवगाढकं ।  
न रति श्रुत्वा या रुचिर्माणजालत्वा । त्रिषष्टिपुरुषादीनां या पुराणप्ररूपणात् ॥ ४४० ॥ श्रद्धा सय समुत्पन्ना सोपदेशसमुद्भवा ॥ ४४१ ॥ मोक्षमा-  
कृतयोर्मेददुर्गन्धं ॥ ४४२ ॥ प्रादुर्भूता रुचिस्तज्ज्ञे । सूत्रजेति निरूप्यते । या तु बीजपदादानपूर्वसूत्रमार्गजा रुचि ॥ ४४३ ॥ बीजजासौ पदार्थानां संक्षेपो-  
कस्या समुद्रता । या सा संक्षेपजा यान्या तस्या विस्तारजा तु सा ॥ ४४४ ॥ प्रमाणनयनिक्षेपाद्युपायैरतिविस्तृतैः । अवगाह्य परिज्ञानात्तत्त्वम्यागदिभावित ॥  
और स्मरण करनेसे उस श्रेणिकके परिणाम विशुद्ध हुए तथा तीनों करण होनेसे और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति  
तथा अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति ऐसे सात कर्मप्रकृतिरूप महारजके शांत होने पर उसे पहिला उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त  
हुआ ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तके बाद ही सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्वका उदय हुआ और संचलात्मक ज्ञायोपशमिक सम्यग्द-  
र्शनमें ठहर कर ऊपर लिखी हुई सातों प्रकृतियोंके अत्यंत क्षय होजानेके कारण तेने ज्ञायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया  
सम्यग्दर्शन दश प्रकार गिना जाता है आज्ञा, मार्ग, उपदेशोत्पन्न, सूत्रसमुद्भव, बीजसमुद्भव, संक्षेपज, विस्तारज, अर्थज,  
अवगाढ और परमावगाढ ॥ ४३८-४४० ॥ सर्वज्ञकी आज्ञाके निमित्तसे जो छहों द्रव्योंमें रुचि उत्पन्न हो जाती है उसे  
रूप सुन कर जो श्रद्धान होता है वह मार्गज सम्यग्दर्शन कहलाता है । तिरैसठ महापुरुषोंके पुराणोंका प्ररूपण करनेसे  
जो शीघ्र श्रद्धा हो जाती है वह उपदेश समुद्भव वा उपदेशसे उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन है आचारांग नामके पहिले अंगमें  
कहे हुए तपश्चरणके भेदोंको सुन कर जो तत्त्वज्ञ लोगोंको ग्रहण पूर्वक सूक्ष्म पदार्थोंसे श्रद्धान प्राप्त हो जाता है वह सूत्रज वा सूत्रसे प्रगट हुआ  
सम्यग्दर्शन कहलाता है । जो बीजपदोंको ग्रहण पूर्वक सूक्ष्म पदार्थोंसे श्रद्धान प्राप्त हो जाता है वह बीजज सम्यग्दर्शन  
है । पदार्थोंको संक्षेप रीतिसे कथन करनेसे जो श्रद्धान होता है वह संक्षेपज सम्यग्दर्शन है । जो विस्तारसे कहे हुए प्रमाण  
नय निक्षेपादिके द्वारा ज्ञानसागरमें अवगाहन कर अंगादिकमें कही हुई तत्त्वोंकी श्रद्धा होती है वह विस्तारज सम्यग्द-  
र्शन है । वचनोंके विस्तारको छोड़कर महा बुद्धिमान उपदेशकसे जो

मापिबान् । स्वद्विपत्ययुवत्वादिगुणकर्मतिद्विजः ॥४२५॥ वितीर्णवान् युता तुभ्यं निर्ः । परमाथवाङ्मनः ॥ ४२६ ॥ स्वगज्य दत्तवास्तुभ्यं त्वं च तद्वतिपालयन् । अन्-  
कदानिकेनचिद्धेतो स्वयं राज्यं परित्यजन् । भवत ब्राह्मणप्राप्तादानीय कुम्भिकः क्षिती ॥ ४२६ ॥ स्वगज्य दत्तवास्तुभ्यं त्वं च तद्वतिपालयन् । अन्-  
मिष्यत्कनोपः सन् पूर्ववद्भक्षणसम्पृतेः ॥ ४२७ ॥ विधिस्तु निग्रहं स्रमं नदिप्राप्तमिवासिना । आदिष्टवान् करं तेवा निर्वोदुमसिदुष्करं ॥ ४२८ ॥ भवतो  
विप्रकन्याया सुतोयुद्धमयाह्वय । स कदाचिन्निजस्थानादागच्छस्त्वां समीक्षितुं ॥ ४२९ ॥ सप्त जनन्या तन्नादिप्राप्ते त्वत्पतः समाकुला । प्रजा समीक्ष्य ते  
को गुणयैः समसीधामत् ॥ ४३० ॥ नानोपायप्रवीणोयमभयाह्वोस्तु पंडितः । नात्रेति विद्विभिराहूत स तदा तेन धीमता ॥४३१॥ पुत्रेणानेन सार्द्धं त्वं  
मिहयैवमुपस्थितः । शृण्वन् पुराणसद्भावमित्याहाकर्ण्य तद्वचः ॥४३२॥ सर्वं निषाय तविते श्रद्धाभूम्यहती मते । जनेन कृतस्तथापि स्नात्र मे व्रतपरिग्रहः ॥  
४३३ ॥ इत्यनुश्रेणिकप्रश्नादवबीद्वृणतायक । भोगसजननदादमित्यात्वाजुम्भनोदयात् ॥ ४३३ ॥ दुधरित्रान्महारंभारंविर्त्यैनोक्तिकामित । नारक-  
समय राजा कुणिकने किसी कारणसे राज्यका स्वयं परित्याग कर दिया और उस ब्राह्मणके गांवसे बुला कर अपना  
सब राज्य तुझे दे दिया । तू भी उस राज्यका पालन करने लगा । नंदिग्रामके रहनेवालोंकी पहिली बात स्मरण कर  
तू अंतरंगमें क्रोधित हुआ और उनका अच्छी तरह निग्रह करनेके लिये उन पर बहुत कठोर और असह्य कर बिठलाने  
की आज्ञा दी ॥ ४२६--४२८ ॥ तेरे उस ब्राह्मणकी पुत्रीसे एक अभयकुमार नामका पुत्र हुआ था, वह किसी एक  
समय अपने उस ब्राह्मणके गांवसे तेरे दर्शनके लिये आ रहा था । वह अपनी माताको साथ लिये था मार्गमें नंदिगांव  
पड़ा वहांकी प्रजा तुमसे पीडित हो ही रही थी इसलिये उसने अनेक उपायोंसे तेरा क्रोध शांत किया ॥४२९--४३०॥  
वह अभयकुमार पुत्र अनेक उपाय करनेमें चतुर है तथा पंडित है भगवान महावीर स्वामीका बुलाया हुआ तू आज उसी  
बुद्धिमान पुत्रके साथ आकर इस समयसरण सभामें उपस्थित है इस प्रकार पुराणका भाव सुनकर और गणधर देवके  
कहे सब वचन सुन कर वह श्रेणिक फिर पूछने लगा कि आपका कहे हुए वचनोंको सुनकर तथा सबको चित्तमें धारण  
कर जैनमतमें मेरी वही भारी श्रद्धा प्रगट हुई है तथापि मैं व्रतोंको क्यों ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ४३१--४३३ ॥ श्रे-  
णिकके इस प्रकार प्रश्न करने पर वे गणधर देव कहने लगे कि तेने इसी जन्ममें पहिले भोगोंकी इच्छा, गाढ मिथ्या-  
त्वका उदय, दुश्चरित्र और महारंभसे अनेक बड़े पापोंका संग्रह किया है तथा नरकायुका बंध किया है और  
यह नियम है कि देवायुके बंधकों छोड़कर अन्य आयुका बंध करनेवाला फिर व्रतोंको स्वीकार नहीं कर सकता हां यह  
सम्बन्धदर्शन धारण कर सकता है इसीलिये तू व्रत धारण नहीं कर सकता ४३४--४३६ ॥ इस प्रकार पुराणोंके सुनने

तरत्परानुबन्धः । कभूसौचमर्कमेतौ परिमेष कथ भवेत् ॥ ४१३ ॥ अकृष्टदिव्यभोगाना भोकेति वननायकः । तत्त्वायं तद्वचो व्याचष्टो माहात्म्यमीदृशं ॥ ४१४ ॥ व्रतस्याभीप्सत सौख्य प्रापयेदिति भावयन् । समाधिगुप्तमयेत्य श्रावकव्रतैः प्रकीर्त ॥ ४१५ ॥ भव्योयमिति त, मत्वा यक्षी तत्पक्षपातत । तथा येनानयजनैर्बर्म सा हि हितं विता ॥ ४१६ ॥ स्वर्गात्स्वदिरसारोपि द्विसागरमितायुषा । दिव्यभोगोपभोगाते निदानात्यच्युतस्ततः ॥ ४१७ ॥ सुद कुणिक-  
परीक्ष्य संतुष्टो निःसर्गात्स्नेहतस्त्वपि ॥ ४१८ ॥ राज्यस्याहोयमेवेति निश्चिन्नापायशक्या । दायदेव्यः परित्रांत्वा सुधी कुत्रिमकुथा ॥ ४२० ॥ निगकरो-  
त्पुरातस्मादेशांतरमयीयुषः । सुप्रकाशदुपदेशभयात् सक्त्वाः प्रजाः ॥ ४२१ ॥ नंदिप्रामनिवासिन्यः प्रत्युत्थानपुरस्सरं । ज्ञानभोजनशस्यादिक्रियावसुहृ-  
मागमन् ॥ ४२२ ॥ तत्स्त्वमपि केनापि ब्राह्मणेन सम प्रजन् । देवताजातिपांखलमोहप्रतिविषादिनी ॥ ४२३ ॥ कथाः प्ररूपयन् ग्रीत्वा तदीयस्थान-  
भोगोंका भोक्ता हुआ है, उस यक्षीकी ये यथार्थ बातें सुनकर वह विचार करने लगा कि देखो व्रतका कैसा माहात्म्य है इससे इच्छानुसार सुखोंकी प्राप्ति होती है इस प्रकार विचार करते हुए उसने समाधिगुप्त मुनिके समीप जाकर श्रावक के व्रत धारण कर लिये ॥ ४१४-४१६ ॥ इस प्रकार उस यक्षीने उसे भव्य समझकर उसके पक्षपातसे इस उपायके द्वारा उसे जैन धर्म धारण कराया सो ठीक ही है क्योंकि परहितकी इच्छा रखना इसीका नाम है ॥ ४१६ ॥ इधर स्वदिर-  
सारके जीवने स्वर्गमें दो सागरकी आयु तक दिव्य भोग भोगे और फिर वहाँसे च्युत होकर तू राजा कुणिककी रानी श्रीमतीसे पुत्र उत्पन्न हुआ । किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तज्ञानियोंसे पूछा था कि मेरे पुत्रोंमेंसे राज्यका स्वामी कौनसा पुत्र होगा तब सब निमित्त ज्ञानियोंने अच्छी तरह परीक्षा कर राजाको संतुष्ट किया था और राज्यका स्वामी तुम्हे ही बतलाया था । राजाका तुम्ह पर स्वाभाविक स्नेह अधिक था इस लिये तुम्हे राज्यका अधिकारी समझकर और दायदोसे तेरी रत्ना करनेके लिये उस बुद्धिमानने वनावटी क्रोधकर तुम्हें नगर्के बाहर निकाल दिया । बाहर जानेकी आज्ञा पाकर तू नंदी ग्राममें पहुंचा परंतु राजाकी प्रगट आज्ञाके प्रबंधसे वह विमुख ही रहा ॥ ४१७-४२२ ॥ तदनंतर तू भी किसी ब्राह्मणके स्नान भोजन शय्या आदि क्रियाओंके प्रबंधसे वह विमुख ही रहा ॥ ४१७-४२२ ॥ तदनंतर तू भी किसी ब्राह्मणके साथ आगे चला और बड़े भेषसे देवमूढता, 'जाति मूढता पांखंडि मूढता आदिको निरूपित करनेवाली कथाएं कहता हुआ उस ब्राह्मणके स्थानमें जा पहुंचा, तेरे वचन कौशल और युवावस्था आदि गुणोंसे अनुरंजित होकर उस ब्राह्मण ने तुम्हें अपनी यौवनवती कन्या दी उमके साथ विवाह कर तू वहीं पर सुखसे रहने लगा ॥ ४२३-४२४ ॥ किसी एक

४०१ ॥ अवस्तापोषित काचिद्वृद्धतीममिवीक्ष्य सः । रोदिति त्वं कुतो ब्रूहीत्यब्रवीत्सायुवाच ता ॥ ४०२ ॥ शृणु चित्त समाधाय वनयक्षी वसाम्यहं । बने खदिरसारस्ते मैशुनो व्याधिपीडित ॥ ४०३ ॥ काकयासनिवृत्त्यासां पतिर्भिम भविष्यति । गच्छस्त्व तत्परित्यक्तं मास भोजयितुं पुनः ॥ ४०४ ॥ नरके धोरदुःखाना भाजन कर्तुमिच्छसि । ततो मे रोदनं तस्मात्पञ्च भद्र तदाग्रहं ॥ ४०५ ॥ इति तदेवतात्रोकमवकर्ण्यतर्पणीं प्रति । सप्राप्यातुरभालोक्य मिव-  
क्रयितमौषध ॥ ४०६ ॥ स्या मयापनोदार्थमुपयोक्तव्यममित्यसा । अगाध सोपि तद्वाक्यमनिच्छेदमवब्रवीत् ॥ ४०७ ॥ त्वं मे प्राणसो बहुमा जिजीविषु  
। ब्रवीष्वेव हितं नैव जीवित व्रतमंजनात् ॥ ४०८ ॥ दुर्गतिप्राप्तिहेतुत्वादिति तद्व्रतनिश्चित । ब्राला यक्षीप्रपञ्च त शूरवीरो व्यबोधयत् ॥ ४०९ ॥  
तद्वृत्तात् विचार्यसां भावकव्रतपक्व । समादायाखिलं जीवितानि सौधर्मकल्पज ॥ ४१० ॥ देवोऽमबदनिर्देश्यः शूरवीरोपि दुःखितः । परलोकक्रिया  
कृत्वा स्वाबास समुपगम्यत् ॥ ४११ ॥ बटदुग्धमसमीपस्थो यक्षि किं मे स मैशुन । पतिस्वामवमेति यक्षीमाहावदक्ष सा ॥ ४१२ ॥ समस्तव्रतपुत्रो व्य-

इस वनमें रहती हूं । तेरा वहनोई खदिरसार व्याधिसे बहुत पीडित है और कौआका पांस त्याग करनेसे वह मेरा पति होगा । परंतु तू अब उसे त्याग किये हुये मांसको ही खिलानेके लिये जा रहा है और उसे इस तरह घोर नरकमें डाल कर दुःखोंका पात्र बनाना चाहता है इसीलिये मैं रो रही हूं हे भद्र अब तू अपना आग्रह छोड़ दे ॥ ३६७--४०५ ॥ इस प्रकार उस देवीकी बातें सुनकर वह शूरवीर उस वनमें पहुंचा खदिरसार रोगीको देखा और कहा कि बैद्यने जो औषधि बतलाई है वह मेरी प्रसन्नताके लिये ही खाओ इसके उत्तरमें मांसकी अनिच्छा करता हुआ वह खदिरसार इस प्रकार कहने लगा कि तू मेरे प्राणोंके समान प्रेम करनेवाला भाई है स्नेहके कारण मेरे जीवित रहनेकी इच्छासे तू ऐसा कहता है परंतु व्रतोंका भंगकर जीवित रहनेसे जीवका हित नहीं हो सकता ॥ ४०६--४०८ ॥ इसके सिवा व्रत भंगकर जीवित रहना दुर्गतिका भी कारण है । इसप्रकार कह कर वह अपने व्रतमें निश्चित ही रहा । उसका इस प्रकार निश्चय देख कर शूरवीरने उस यक्षीका वृत्तांत भी उसे समझा दिया ॥ ४०९ ॥ उस वृत्तातका विचार कर उस खदिरसारने श्राव-  
कोंके पूर्ण पांचों व्रत धारण किये और आयुके अंतमें मर कर सौधर्मस्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ । उसके वियोगसे शूरवीरका बहुत दुःख हुआ और वह उसकी उत्तर क्रिया कर अपने घर जाने लगा ॥ ४१०-४११ ॥ जब वह उस बट वृद्धके नीचे गया और उस यक्षीसे पूछा कि क्यों हमारा बहनोई मर कर तुम्हारा पति हुआ या नहीं इसके उत्तरमें उस यक्षी ने कहा कि संपूर्णा व्रत धारण करनेसे वह अंतर योनिसे परान्मुक्त हो गया अर्थात् इस योनिमें नहीं आ सका और सौ-  
धर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ फिर भला वह मेरा पति कैसे हो सकता है ॥ ४१२--४१३ ॥ वह तो अब उत्कृष्ट दिव्य

बा ॥ ३९० ॥ धर्मसागरोस्तु सेवोसि माकृतायास्तन मुनिः । किरातः कीदृशो धर्मस्तन किं कृत्यमंगिनां ॥ ३९१ ॥ किरातेनेति संदृष्ट सोपीति प्रत्यभावत ।  
 श्रुत्वा त ज्ञाहमस्य स्त्रीयुवाच वनेचरः । तदा कुल वितर्क्याह मुनि किं काममांसक ॥ ३९४ ॥ भव्य मक्षितपूर्व ते नवेति दुधियावरः । तच्छ्रुत्वा स  
 विचित्राख्यपत्न्यकदचित्त मक्षित ॥ ३९५ ॥ मयेत्येवं यदि खाल्यं तत्त्वयैत्यवचीन्मुनिः । सोपि तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रबुधो सीयतां व्रतं ॥ ३९६ ॥ तत्त्वयैत्येव  
 नदिता गतस्तस्य कदाचन । व्याधवत्साव्यो संभूते काममांसस्य मक्षणात् ॥ ३९७ ॥ शातिरस्येति निदिष्टे विषमि स वनेचरः । प्रयात्स्वमी मम प्राणाः  
 किं कृत्यमिमैकैकैः ॥ ३९८ ॥ व्रत तपोधनाभ्यांसे यर्हीत धर्मसिच्छता । कृतसंकल्पमंगल्य कुनस्तस्युपव्रतं ॥ ३९९ ॥ पापेनानेन नासेन नाद्य प्राणि-  
 निषाध्यह । इति नैच्छत्तदुक्तं तच्छ्रुत्वा तन्मैशुनः पुरात् ॥ ४०० ॥ सारसाख्यासमागच्छन् शूरवीरमिधानक । महागहनमन्यत्यन्यमोघपृथिवीविह ॥  
 पांसादिकका सेवन करना पापका कारण है इस लिये उसका त्याग करना धर्म है और उसकी प्राप्ति होना धर्मलाभ कह-  
 लाता है । धर्मसेवन करनेसे जीवोंको पुरायकी प्राप्ति होती है और पुरायसे स्वर्गके उच्च सुख मिलते हैं ॥ ३९१-३९३ ॥  
 इसे सुनकर वह भील कहने लगा कि ऐसे धर्मका स्वामी मैं नहीं हो सकता । तब मुनिराजने उसके कुलका विचार कर-  
 कहा कि हे भव्य ! क्या तेने पहिले कभी कौआका मांस खाया है तब वह बुद्धिमानोंमें अष्ट भील विचारकर कहने लगा  
 कि मैंने कौआका मांस तो कभी नहीं खाया है । तब मुनिराजने कहा कि तब उसे जरूर छोड़ देना चाहिये । मुनिराज  
 के ये वचन सुनकर वह भील संतुष्ट होकर कहने लगा कि यह व्रत मुझे दे दीजिये ॥ ३९४-३९६ ॥ इस प्रकार वह  
 भील उस समय व्रत ले कर तथा मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया । किसी एक समय उसके एक असा-  
 ध्य रोग हुआ, वैद्योंने बतलाया कि कौआका मांस खानेसे यह रोग शांत हो सकता है । यह सुन कर वह भील विचार  
 करने लगा कि भले ही मेरे प्राण चले जाओ इन वंचल प्राणोंसे मुझे क्या काम है मैंने धर्मकी इच्छासे उन मुनिराज  
 से जो व्रत स्वीकार किया है उसका भंग मैं नहीं कर सकता क्योंकि संकल्प किये हुए व्रतका भंग करनेसे पुरुषव्रत कहां  
 रह सकता है मैं इस पाप रूप मांसको खाकर आज जीवित रहना नहीं चाहता इस प्रकार सोच विचार कर उसने कौआ  
 का मांस खाना स्वीकार नहीं किया । यह बात सुन कर शूरवीर नामका उसका साला सारस नगरसे आया । ज्ञाते  
 हुए मार्गमें उसने गहन वनके भीतर एक वटवृक्षके नीचे रोती हुई किसी स्त्रीको देखा । शूरवीरने उसे रोते हुए देखकर  
 पूछा कि तू क्यों रो रही है ? इसके उत्तरमें वह कहने लगी कि तुम चित लगाकर सुनो मैं एक वनयन्त्री हूं और यहां

सुमिता । श्रावका लक्ष्मणं तु त्रिपुणा श्राविकास्ततः ॥ ३७१ ॥ देवादेव्यस्त्वसंस्थयातास्तिर्यचः कृतसह्यकाः । गणैर्द्वंद्वशभिः प्रोक्तैः परीतेन जिनेश्विना ॥ ३८० ॥ सिंहविष्टरमज्ज्येनार्द्धमागधभाषया । षट् द्रव्याणि पदार्थाद्य सप्त संवृतिमोक्षयोगैः ॥ ३८१ ॥ प्रत्येयस्तफलं चैतत्सर्वमेव प्रपंचतः । प्रमाणनयनि-  
क्षेपाद्युपायै सुनिरूपित ॥ ३८२ ॥ उत्पत्तिकादिधीयुष्काः क्षुतवत सभासद । केचित्सयममापधाः सयमासयम परे ॥ ३८३ ॥ सम्यक्त्वमपरे सद्यः  
स्वभाव्यत्वनिर्घोषतः । एव श्रीवर्द्धमानेशो विवधदधैरदत्ताना ॥ ३८४ ॥ क्रमाद्राजगृह प्राप्य तस्थियान् विपुलाचले । श्रुतैवतदागमं सवो मगधेश त्मागमः ॥  
३८५ ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य प्रवृष्टः प्रगतो मुहुः । जातसवेगनिर्वेग स्वपूर्वभावसतर्ति ॥ ३८६ ॥ अन्धयुक्त गणाधीश सोपीति प्रत्यबबुधत । त्रिपटिलक्षण  
पूर्वं पुराण पृष्ठमादित ॥ ३८७ ॥ निदिष्टं च मया स्पष्टं श्रुतं च भवता स्फुट । शृणु नित सभाधाय श्रेणिक श्रावकोत्तम ॥ ३८८ ॥ वृत्तक तब वक्ष्यामो  
भवत्रयनिवर्धनं । इह जंघमति द्वीपे विष्यादौ कुटचाह्वये ॥ ३८९ ॥ वने खदिरसाराख्यः किरातः सोन्यदा मुनि । समाधिगुप्तनामानं समीक्ष्य व्यनमन्मु-

कहे हुए जीवोंसे भरी हुई बारह सभाओंसे यष्टित होकर सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान् जिनेन्द्र देवने अर्द्धभाग-  
धीभाषाके द्वारा छह द्रव्य, सात पदार्थ, संसार मोक्षका कारण और उसका फल आदि सब विस्तारपूर्वक बतलाया ।  
भगवानने यह सब पदार्थोंका स्वरूप प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके कारणपूर्वक बतलाया जिसे सुनकर बहुतेसे स्वाभा-  
विक बुद्धिवाले शास्त्र सभासदोंने संयम धारण किया और अपने भव्यत्वकी विशेषतासे किसीने उस समय सम्यग्द-  
र्शन ही धारण किया । इसप्रकार श्रीवर्द्धमान स्वामीने सब जगह धर्मोपदेश दिया ॥ ३७९-३८४ ॥ किसी एक समय  
विहार करते हुए वे भगवान् राजगृह नगर आ पहुँचे और विपुलाचल पर विराजमान हुए । हे मगधेश ! इनका आगम  
सुनकर तू भी शीघ्र ही आया ॥ ३८५ ॥ इन सब कथाओंको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही संतुष्ट हुआ, उसने बार  
बार नमस्कार किया, और उसे संवेग तथा निर्वेग उत्पन्न हुआ । तदनंतर उसने गणधर स्वामीसे अपने पहिले भव पूछे  
उसके उत्तरमें गणधर स्वामीभी सम्मानने लगे कि तेने जो तिरसठ शलाकाओंका पुराण पहिले पूछा था वह मैंने  
आदिसे अंत तक स्पष्ट रीतिसे कहा और तैने भी अच्छी तरह सुना । हे श्रावकोत्तम श्रेणिक अब मैं तेरा तीन भव पहि-  
लेका चारित्र्य कहता हूँ तू चित्त लगाकर सुन । इसी जंबूद्वीपके विंध्याचल पर्वतके कुटच नामके वनमें एक खदिरसार नाम  
का भील था किसी एक दिन उसने समाधिगुप्त नामके मुनिराजको देख कर बड़े हर्षसे उन्हें नमस्कार किया ॥ ३८६-  
३९० ॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने “आज तुम्हें धर्म लाभ हो” ऐसा आशीर्वाद दिया । तब उस भीलने पूछा कि हे  
प्रभो ! धर्म क्या है और उससे जीवोंको क्या लाभ होता है ? भीलके इस प्रकार पूछने पर वे मुनिराज कहने लगे कि मनु



आक्षेपमनुमि ॥ ३६७ ॥ श्रीवर्द्धमानमानस्य सयमं प्रतिपन्नवान् । तदैव मे समुपपन्ना परिणामनिशेषतः ॥ ३६८ ॥ ऋद्धयः सप्त गर्भागानामप्युपपन्ना  
न्यतः । मष्टारवोऽप्येतेन धावणे बहुले तिष्ठे ॥ ३६९ ॥ पश्चादावर्धरूपेण सद्यः पर्याणमन् स्फुटः । पूर्वोक्ते पश्चिमे भागे पूर्वाणामप्यनुक्रमान् ॥ ३७० ॥  
भूरं गणश्चदादिमः ॥ ३७२ ॥ ततः परं जिनेन्द्रस्य वायुभूत्यग्निभूतिकैः । सुधर्मयोगैः भौद्रषाख्य पुत्रमैत्रेयसत्तकाः ॥ ३७३ ॥ अकंठनोर्विवेकः प्रभः सद्यः  
सहस्रमेकं त्रिजगत्तन्त्रास्त्रिगताधिकः । पञ्चमावगमाः सप्तशतानि परमेष्ठिनः ॥ ३७६ ॥ शतानि नव विज्ञेय विक्रियद्विविधाः सत्यसयमाः ॥ ३७७ ॥  
दुर्धनलोचनाः ॥ ३७७ ॥ चतुःशतानि सत्रोक्तान्त्राजुत्तरवादिनः । चतुर्दशसहस्राणि विहिताः सुसुवीर्यराः ॥ ३७८ ॥ चन्दनाधार्यिकाः शतत्रयवत्तद्विह

सौधर्म्यं इन्द्रे मेरी पूजाकी और मैंने पांचसौ ब्राह्मणोंके साथ श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कारकर संयम धारण कर लिया ।  
परिणामोंकी विशेष विशुद्धि होनेसे उसी समय मुझे सात ऋद्धियां प्राप्त हुईं । तदनंतर भट्टारक श्रीवर्द्धमानके उपदेशसे  
आवण कृष्ण प्रतिपदाके दिन सबरे के समय सब अंगोंके अर्थ और पद शीघ्रही अर्थरूपसे स्पष्ट जान पड़े और इसीतरह  
उसी दिनके शामके समय अनुक्रमसे सब पूर्वोंके अर्थ और पदोंका ज्ञान होगया ॥ ३६६-३७० ॥ इसप्रकार मुझे सब  
अंग और पूर्वोंके अर्थोंका ज्ञान होगया तथा चौथा मनः पर्यय ज्ञान भी होगया । तदनंतर मैंने रात्रिके पहिले भागमें अंगों  
में अर्थकर्ता प्रसिद्ध हुआ हूं । इस प्रकार श्रुतज्ञानरूपी ऋद्धिसे पूर्ण होकर मैं श्रीवर्द्धमान स्वामीका पहिला गणक हुआ  
हूं ॥ ३७१-३७२ ॥ इसके बाद वायुभूति अग्निभूति, सुधर्म, योग, भौद्रिय, पुत्र, मैत्रेय, अकंठन, अंधवेल और प्रभास ये  
जिनंदेवके और गणधर हुए इसतरह मुझ चौदह पूर्वोंके ज्ञानकार थे, नौ हजार नौसौ वास्तविक संयमको धारण करने वाले  
इनके सिवाय तीनसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके ज्ञानकार थे, नौ हजार नौसौ वास्तविक संयमको धारण करने वाले  
शिचक मुनि थे, तेरहसौ अवधिज्ञानी थे, सातसौ केवलज्ञानी अरहत परमेष्ठी थे ॥ ३७५-३७६ ॥ नौसौ चिक्रिया ऋद्धि  
को धारण करनेवाले मुनिराज थे और पांच सौ पूज्य मनः पर्यय ज्ञानी थे ॥ ३७७ ॥ तथा चारसौ ज्ञानुत्तरवादी थे  
इस प्रकार सब मुनिश्वरोंकी संख्या चौदह हजार थी ॥ ३७८ ॥ इसीप्रकार छत्तीस हजार चंदना आदिक अर्जिकाएं  
थीं एक लाख आवक थे तीनलाख आविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यक थे इसप्रकार ऊपर

ज्ञात्वा मा परितुष्टवान् ॥ ३५६ ॥ तदैवागल्य त ग्राम गौतमाख्यं शचीपति । तत्र गौतमगोत्रोत्थमिष्टभृति द्विजोत्तम ॥ ३५७ ॥ महाभिमानमाहिल्यविमाना-  
दित्यभासुरं । शेषः पुण्यं समुत्पन्न वेदवेदांगवेदिन ॥ ३५८ ॥ दृष्ट्वा केनायुषपायेन समानीयातिकं विभो । खपिप्रच्छिषित जीवभाव पृच्छेल्यचोदयत् ३५९  
अस्ति किं नास्ति वा जीवस्वरूप निरूप्यतां । इत्यप्राक्षमतो महां भगवान् भव्यवत्सलः ॥ ३६० ॥ अस्ति जीवं स चोपात्तदेहमात्रं सदादिमि । किमा-  
दिभिश्च निर्देशो नोत्तमो न विनश्यति ॥ ३६१ ॥ द्रव्यरूपेण पर्यायैः परिणामी प्रतिक्षणं । चैतन्यलक्षण कर्ता भोक्ता सर्वैकदेशवित् ॥ ३६२ ॥ संसारी  
निर्वृतचेति द्वैव्येन निरूपित । अनादिरस्य ससाः सादिनिर्वाणमिष्यते ॥ ३६३ ॥ न निर्वृतस्य संसारो नित्या कस्यापि सद्यतिः । अनता सद्यतां मु-  
क्तास्तदनता । कुलक्षिताः ॥ ३६४ ॥ सति व्ययेपि वृद्धाना हानिरेव नहि क्षयः । आनत्यमेव तदेतु शक्तीनामिव वस्तुनः ॥ ३६५ ॥ इति जीवस्य या-  
शाम्यं युक्त्या व्यक्तं न्यवेदयत् । द्रव्यहेतुं विधायास्य वच कालादिसाधनः ॥ ३६६ ॥ विवेयोह कृतश्रद्धो जीततत्त्वविनिधये । सौधर्मपूजित पंचशत-

वह इंद्र किसी भी उपायसे मुझे भगवानके समीप लाया और मुझसे प्रेरणा की कि तुम जो जीवका स्वरूप पृच्छना चाहते  
थे उसे पूछो ॥ ३५६-५९ ॥ तब मैंने पूछा कि जीव कोई पदार्थ है अथवा नहीं है उसका स्वरूप कहिये तब भव्योंपर  
दया करने वाले भगवान् मुझसे कहने लगे कि जीव एक भिन्न पदार्थ है, वह प्राप्त हुई देहके समान है, सत् संख्या आदि  
सदादिक तथा निर्देश स्वात्मित्व आदि किमादिकसे उसका स्वरूप कहा जाता है वह द्रव्यरूपसे न कभी चत्यन्न हुआ है  
और न कभी नष्ट होगा किंतु पर्यायरूपसे वह प्रतिक्षण परिणामी है अर्थात् उत्पन्न और नष्ट होता रहता है । चेतना उस  
का लक्षण है, वह कर्ता है, भोक्ता है पदार्थोंके एकदेश तथा सर्वदेशका ज्ञानकार है ॥ ३६०-३६२ ॥ संसारी और मुक्त  
ऐसे दो भेदसे वह निरूपण किया जाता है, संसारमें यह जीव अनादि कालसे चला आ रहा है और मुक्त जीव सादि  
होता है अर्थात् कर्मोंके नष्ट कर लेने पर वह मुक्त कहलाता है ॥ ३६३ ॥ जो मुक्त नहीं है वह संसारमें ही रहता है अय-  
वा संसारी कहलाता है, किसी (अभव्य) जीवका संसार सदा बना रहता है अर्थात् वह सदा संसारमें ही रहता है सं-  
सारमेंसे अनंत जीव तो मुक्त हो गये हैं और उनसे भी अनंत विद्यमान हैं । कर्म बंधनोंमें बंधे हुए जीवोंमें से मुक्त हो  
जानेपर हानि अवश्य होती है परंतु उनका क्षय नहीं होता । जिसप्रकार पदार्थोंकी शक्तियां अनंत है इसलिये उनका कभी  
क्षय नहीं होता इसीतरह जीव भी अनंत हैं इसीलिये उनका क्षय कभी नहीं होता ॥ ३६५ ॥ इसप्रकार भगवानने युक्ति  
से स्पष्ट सिद्ध ऐसा जीवका यथार्थ स्वरूप कहा । तब भगवानके वचनको द्रव्य हेतु मानकर और काल लब्धि आदि की  
कारण सामग्री मिल जानेपर जीवतत्त्वके निश्चय करलेनेपर मुझे श्रद्धा हुई और मैं भगवानका शिष्य बन गया । तदनंतर

गलन्माकतीमालादिव्यावरविभूषणा । नवप्रकारपुण्येशा भक्तिभारभरानता ॥ ३४५ ॥ क्षीलमाहस्यसभृगष्टयुद्धेदेवताविका । शाल्यभ्रभावत्कोप्रोदना  
विधिविस्मयीः ॥ ३४६ ॥ अन्नमभ्रणयसमै तेनाप्याश्चर्यपंचक । बहुभिन्न समयोगः कृतवदनया तदा ॥ ३४७ ॥ भगवान् वर्द्धमानोपि नीत्वा द्वादशवत्स  
वष्टोपवासेन सोधस्थातलभूरुह । वैशाखमाससज्ज्योत्स्तादशम्यामपराहके । ३४८ ॥ ऋजुकूलनवीतीरे मनोहरकनारे । महारक्षाशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसत् ॥ ३४९ ॥ स्थित्वा  
ध्यानेन ह्रस्वितः ॥ ३५० ॥ घातिकर्मणि निर्मूल्य प्राप्यान्तचतुष्टयं । चतुर्दशदतीक्षेपव्याभासिमहिमालयः ॥ ३५१ ॥ क्षपकत्रेणिमास्त्रा सुहृ  
धक । परमादरिकं देहं विभद्रभ्राणे बन्ध ॥ ३५२ ॥ चतुर्विधामरैः सार्द्धं सौधमस्तदागतं । तुर्गकल्याणतदुजाविधिं सर्वं समानयत् ॥ ३५३ ॥ अ-  
पायप्राप्तितन्विज्याक्षाधकातिशयोक्तं । परमात्मपदं प्राप परमेष्ठी स सन्मति ॥ ३५४ ॥ अयं दिव्यध्वनेर्हेतुः कोसावीशुपयोगवान् । तृतीयज्ञाननेत्रेण  
गया ॥ ३४३-३४७ ॥ इधर जगतबंधु भगवान् वर्द्धमानने भी वारह वर्ष तक छत्रस्य अवस्थामें रहकर तपश्चरण किया ।  
तदनंतर वे जंभिका गांवके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें महारत्न शिलापर शालवृक्षके नीचे वे-  
लाका नियम लेकर प्रतिमायोग धारणकर विराजमान हुए । वैशाख शुक्ला दशमीके दिन शामके समय हस्त और उत्तर  
नक्षत्रके मध्यभागमें चंद्रमाके आजानेपर परिणामोंकी अत्यंत शुद्धतासे क्षपक श्रेणी चढकर शुक्लध्यानमें विराजमान हुए ॥  
३४८-३५१ ॥ उसीसमय चारों घातियां कर्मोंको नष्टकर उन्होंने अनंत चतुष्टय प्राप्त किये और चौत्तीस अतिशयोक्ते दै-  
दीप्यमान होकर वे महिमाके घर वन गये ॥ ३५२ ॥ सयोग भाव रहने तक वे अपने और दूसरोंके प्रयोजनोंको सिद्ध  
करनेवाले थे, और परमौदारिक शरीरको धारणकर आकाशरूपी आंगनमें सुशोभित हो रहे थे ॥ ३५३ ॥ उसीसमय  
सौधर्म इंद्र चारोंप्रकारके देवोंके साथ आया और उसने विधिपूर्वक ज्ञानकल्याणकी सब पूजा समाप्त की ॥ ३५४ ॥ अ-  
प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति, शरीरकी पूजा और ज्ञाधिक सम्यक्त्व आदि अतिशयोक्ते वे उत्तम पूज्य होगये थे तथा वे परमेष्ठी  
वर्द्धमान स्वामी परमात्मपदको प्राप्त हो गये थे ॥ ३५५ ॥ तदनंतर इंद्रने भगवानकी दिव्यध्वनिका कारण क्या होना  
चाहिये इसपर विचार किया अवधिज्ञानसे इसका कारण मुझे जानकर वह शीघ्र ही गौतम गांवमें आया संतुष्ट हुआ तथा  
वहांपर मैं गौतम गोत्रीय इंद्रभूति नामका उत्तम ब्राह्मण था महा अभिमानी था आदित्य विमानसे चयकर शेष बचे हुए  
पुरयकर्म के उदयसे दैदीप्यमान शरीर को पाकर उत्पन्न हुआ था और वेद वेदांग सबका जानकार था । मुझे देखकर

हृदयैर्देरीक्षणै ॥ ३३३ ॥ स्थूलवेतालरूपाणि निधि कृत्वा समतत । पराप्यपि फणीर्देमसिदहन्वन्निर्ले समं ॥ ३३४ ॥ किरातसैन्यरूपाणि पापैर्कार्जप-  
 क्तिः । विद्याप्रभावार्सवितोपसर्गैर्भयावहै ॥ ३३५ ॥ स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थक । स महातिमहावीराह्व्या कृत्वा विविधाः स्तुतीः ॥ ३३६ ॥  
 उभया स समाह्वयाय नर्तित्रागादमत्सरः । पापिनीपि प्रतुष्यति प्रस्पष्ट दृष्टसादृशाः ॥ ३३७ ॥ कदाचिचेष्टकाह्वयस्य नृपतेष्वदनाभिधा । सुनां वीक्ष्य न  
 नकीडामकां कामशादुर ॥ ३३८ ॥ कृतोपायो गृहीत्वैना कश्चिद्गुणच्छमभयर । पश्चाद्ग्रीवास्वभागीया महादृष्ट्या व्यसर्जन्त ॥ ३३९ ॥ वनेवरपतिः  
 कश्चित्त्रालोक्य घनेच्छया । एना कृपभद्रतस्य वाणिजस्य समार्पयत् ॥ ३४० ॥ तस्य भार्या सुभद्राह्वया तथा संपर्कमात्मन । बणिजः शकुमानोन्मां पुराण-  
 कोद्ववादन ॥ ३४१ ॥ आरनलेन संमिश्र शरावै निहित सदा । दिशती शृङ्खलाबधभाणिनी तां व्यधादुषा ॥ ३४२ ॥ पेरुर्ध्वस्तेशस्यैकाशावीनगरातर ।  
 कायस्थित्यै विशतं त महावीरं विलोक्य सा ॥ ३४३ ॥ प्रत्युद्गन्तीविच्छिन्नशृङ्खलाकृतवना । लोहाल्लिकुलनीलोत्तेशभाराभलं बलात् ॥ ३४४ ॥ वि

वीर रक्त्वा पार्वतीके, साथ अनेक तरहकी स्तुतिकी नृत्य किया और फिर अभिमान छोड़कर अपने स्थानको चला गया  
 सो ठीक ही है क्योंकि साहसको स्पष्ट रीतिसे देखकर बड़े २ पापी भी संतुष्ट होजाते हैं ॥ ३३२-३३७ ॥ किसी एक  
 दिन चेटक नामके राजाकी चंदना नामकी पुत्री वन क्रीडा करनेमें लगी हुई थी उसे देखकर कोई विद्याधर कामचारसे  
 पीडित हुआ और किसी उपायसे उसे लेकर चलता बना । पीछे आई हुई अपनी स्त्रिसे डरकर उसने उस कन्याको म-  
 हादमीमें छोड़ दिया ॥ ३३८-३३९ ॥ वहांपर किसी भीलने देखकर धनकी इच्छासे वह दृषभद्रत नामके शेटको दे  
 दी ॥ ३४० ॥ उस शेटकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था उसे शंका होगई कि कहीं अपने शेटका इसके साथ संबंध न हो जाय  
 इसलिये वह सुभद्रा उस चंदनाको खानेके लिये एक भिट्टीके सकोरामें कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोका भात सदा  
 दिया करती थी और क्रोधमें आकर सदा उसे संकलसे बांधकर रखती थी ॥ ३४१-३४२ ॥ किसी दूसरे दिन दत्त-  
 देशकी उसी कौशांबी नगरमें श्रीमहावीरस्वामी आहारके लिये गये उन्हें देखकर वह चंदना उनके सोपने जाने लगी  
 उसीसमय उसकी संकलके बंधन सब टूट गये, चंचल अमर समूहके समान चलाचल काले केशोंका समूह सुशोभित होने  
 लगा, उसकी मालती माला टूट गई और दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे सुशोभित होकर और भक्तिके भारसे अत्यंत  
 नम्रीभूत होकर पुरयकी स्वामिनी उस चंदनाने नक्शा भक्तिसे उनका पदग्राहना किया । उसके शीलके माहात्म्यसे वह  
 भिट्टीका सकोरा बड़े भारी सुवर्णका होगया और कोदोंका भात शाली चावलोंका भात होगया उस बुद्धिपतीने विधि-  
 पूर्वक भगवानको आहार दिया इसलिये उसके यहां पंचाशत्पौकी वर्षों हुई और आई बंधुओंसे भी उसका समागम हो-

केतु विषयं विनिर्वाणः ॥ ३२३ ॥ विषयप्रसक्तकीर्णं करणद्विभोक्तं । परीषदमहाघोरं विश्वसुपदसंकुलं ॥ ३२४ ॥ कषायममतातगसंभतगतसंतत ।  
विद्वत्स्योक्तनितेव मीनसविभीषण ॥ ३२५ ॥ चतुर्विधोपसर्गोऽप्रकटीरवकठोरित । विद्वोषतस्कराहं लयत्वा भवन्न शनै ॥ ३२६ ॥ तपोवनं सतो  
शीलयुधो गुणग्रतकचः शुद्धिमागमः । सद्भावनामहायः सन् प्रविश्य परम पुमान् ॥ ३२७ ॥ महाप्रतमहासामन्तान्वितं सुनयानुग । दर्शनज्ञानचारित्र्यव्यक्तिकाफिप्रयोजितं ॥ ३२८ ॥  
विविक्तस्था ध्यायन् दशविध मुहुः ॥ ३२९ ॥ उच्चयिन्यामयान्येयुस्तच्छ्रमशानेतिमुक्तके । अवधस्तत्र निःशंक नानायोगान् प्रवर्तयन् । धर्म्यध्यान  
शुरेतस्त्वं दक्षपदैर् परीक्षितुं । उत्कल्य कृतिकारतीक्ष्णा प्रविष्टजघराण्यलं ॥ ३३० ॥ व्याप्तानामिभीष्माणि दृश्यति विविधैर्लये । तर्जयति स्फुरद्भुजानै सा-

दुष्ट पशुओंसे भरा हुआ है, कषयारूपी मदोन्मत्त हाथियोंके सैकड़ों समूहोंसे व्याकुल है, मुंह फाड़े हुए कालके समान अ-  
नंत सर्पोंसे भयंकर है, चारों तरफके उग्र उपसर्गरूपी सिंहोंसे कठोर है, और अनेक विघ्नरूपी चोरोंसे रूका हुआ है ऐसे  
संसाररूपी वनको घेरे २ छोड़कर उन परम पुरुष भगवानने जो सज्जनोंके द्वारा सेवन करने योग्य है जिसमें वाया  
रहित सुख भरा हुआ है, जो उत्तम मनुष्योंसे भरा है, विस्तीर्ण है, और सब तरहके उपद्रवोंसे रहित है ऐसे तपोवनमें म-  
हाव्रतरूपी महायोधाओं सहित, मुनियोंकी अनुकूलताको धारणकर, सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्ररूपी प्रगट हुई तीनों शक्तियोंसे  
सुशोभित, शीलरूपी आयुध लेकर, गुणोंके समूहका कवच पहिनकर शुद्धतारूपी मार्गसे चलकर और उत्तम भावनाओं-  
की सहायता लेकर प्रवेश किया ॥ ३२४-३२६ ॥ वहांपर निःशंक रीतिसे रहकर उन्होंने अनेक योगोंकी प्रवृत्ति की  
और एकांत स्थानमें विराजमान होकर बारवार दश तरहके धर्म ध्यानका चिंतन किया ॥ ३३० ॥ अथानंतर किसी  
एक दिन विहार करते हुये महा पराक्रमी भगवान् वर्द्धमानने अतिमुक्त नामके श्मशानमें प्रतिमा योग धारण किया ॥  
३३१ ॥ उन्हें देखकर महादेवने अपनी दुष्टतासे उनके धैर्यकी परीक्षा करनेका विचार किया । पापोंके उपार्जन करनेमें  
एक अद्वितीय पंडित ऐसे उस महादेवने अपनी विद्यासे अंधेरा कर दिया फिर अनेक वैताल आकर तीक्ष्ण चमड़ेको  
निकालकर मुंहमें दबाये हुए तथा मुंह फाड़कर अत्यंत भयानकरूप धारणकर अनेक तरहके लयोंसे नाचने लगे और  
कठोर शब्द, अट्टहास ( जोरकी हंसी ) तथा किंकरालदृष्टिसे देखकर डराने लगे । तदनंतर सर्प हाथी सिंह अग्नि और  
वायु आदिके साथ भीलोंकी सेना बनकर आई इस तरह उस महादेवने अपनी विद्याके प्रभावसे अनेक भयानक उपसर्ग  
किये परंतु वह भगवानके चित्तको समाधिसे च्युत करनेमें समर्थ नहीं हुआ उस समय उसने भगवानका नाम महातिमहा-

५ स्यात्समाश्रित ॥ ३१३ ॥ चतुःसंज्ञानेनैतस्य निसर्गबलशालिनः । तस्याशमेव चारित्र्य द्वितीय तु त्रयाश्रितानां ॥ ३१४ ॥ सिंहनैव मया प्राप्त बने सु  
 ब्रत । मत्वेवेत्येकता तत्र सैही श्रुतिं समाप स ॥ ३१५ ॥ अतीक्ष्णनखदण्डोयमकूरो रफकेसरः । शौर्यकावचनस्थानुरन्वयान्मृगविद्विषः ॥ ३१६ ॥ दुरा  
 ननैवमेतत्साहस्रसंस्तवे । सक्ता समागमन स्वस्वमोकः संतुष्टचेतस ॥ ३१७ ॥ अथ भट्टारकोप्यस्मादगात्कायस्थितिं प्राति । कुलप्राप्तपुरी श्रीमत  
 सिपुरोपम ॥ ३१८ ॥ हूलनामा महीपालो दष्टुग तं भक्तिभक्ति । प्रिययुक्तुमुगामागः त्रि, पराश्रयदक्षिण ॥ ३१९ ॥ प्रणम्य पादयार्मुर्ध्ना निवि  
 गत । प्रतीक्ष्याघौदिसि पूज्यस्थाने सुस्थाप्य सुव्रत ॥ ३२० ॥ गधादिभिर्विभूष्यैतत्पादोपातमहीतल । परमात्र विशुद्ध्यास्मै सोदितेष्टार्थमाघन  
 आनुपलिकमेतत्तै फल भावि महत्तर । इति वक्तुमिवाश्चर्यपञ्चक तद्गुहेभवत् ॥ ३२१ ॥ पुण्यहेतोर्विनियानां वीरो निर्गल्य तद्गुहात् । विहिते  
 उन भगवान्के पहिला सामायिक ही चारित्र था क्योंकि दूसरा छेदोपस्थापना तो प्रमादी जीवोंके ही होता है ॥  
 पहिले सिंह पर्यायमें मैंने वनमें मुनिराजकी आज्ञानुसार व्रत धारण किये थे यही समझकर उन्होंने अपनी  
 वंसीही सिंहवृत्ति धारण की थी ॥ ३१५ ॥ जिसप्रकार सिंहपर्यायमें नख और दाढ़ तीक्ष्ण नहीं थे क्रूरता  
 नहीं थी केसर रक्त थी और शूरवीरता धारणकर अकेला ही वनमें रहता था उसीप्रकार सिंहको अमुक-  
 रणकर वे भगवान भी अकेले ही रहते थे ॥ ३१६ ॥ देव सब उन भगवानको नमस्कारकर तथा  
 उनके साहसकी स्तुति करते हुए संतुष्टचित्त होकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३१७ ॥ अथानंतर पार-  
 णाके दिन वे भट्टारक महावीर स्वामी आहारके लिये निकले तथा स्वर्गकी नगरीके समान कुलद्राम नामकी नगरीमें पहुंचे  
 प्रियगुणके फूलके समान ( कुछ लालवर्ण ) कातिको धारण करनेवाले वहाँके कूल नामके राजाने वही भक्तिसे उनके  
 दर्शनकर उन्हें पहगाहन किया, तीन प्रदक्षिणाएं दीं उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर नमस्कार किया और घरमें आई  
 हुई निधिके समान उन्हें माना । उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले उन भगवानको उस राजाने पूज्यस्थानपर विराजमान  
 कर अर्घ्यादिकसे उनकी पूजा की । उनके चरणक्षमलके समीपवर्ती पृथिवीका भाग गंधादिकसे विभूषित किया और वही  
 विशुद्धिके साथ उन्हें इष्ट अर्घ्यको सिद्ध करनेवाला परमात्म समर्पण किया ॥ ३१८-३२१ ॥ यह तो आनुपलंगिक फल है  
 परंतु इसका होनहार फल बहुत बड़ा है यही कहनेके लिये मानो उसके घर पंचाश्रयोंकी वर्षा हुई ॥ ३२२ ॥ तदनंतर  
 शिष्योंका पुरय बढ़ानेके लिये वे भगवान एकांत स्थानमें विधिपूर्वक तपश्चरण करनेकी इच्छासे उसके घरसे निकले ॥  
 ३२३ ॥ जो विषयरूपी वृक्षोंसे भरा हुआ है, पांचों इंद्रियरूपी व्यर्थोंसे उक्त है, परीपहोंसे महाघोर है सब तरहके

रक्ष सः । श्रेष्ठः पशोपवासेन तत्प्रभापटलादृते ॥ ३०२ ॥ निविद्योत्तरमुखो भीरो रुद्रभक्षितालते । दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शक्तिनि श्रिते ॥ ३०३ ॥  
हस्तोत्तरक्षगोर्मध्य भागं वापास्तलक्ष्मणि । दिवसावसिता वीर सयमाभिमुखोऽभवत् ॥ ३०४ ॥ नन्नाभरणमात्यानि स्वयं शक्र समावदे । मुक्कान्येतेन पू-  
तानि मत्वा माहात्म्यमीदृश ॥ ३०५ ॥ अगारागंगलग्नोस्य सगधोह कथ मया । मोक्षयोगमिति मत्वेव स्थित शोभा समुद्रहन् ॥ ३०६ ॥ मलिना कुटिला  
मुग्धः पूज्यारत्याज्या मुमुक्षुभिः । केशाः क्लेशसमास्तेन यूनामूलात्समुद्धृता ३०७ ॥ सुराधीशः स्नहस्तेन तान् प्रतीक्ष्य महामणि-ज्वलत्पटलिकामने-  
मूढधी । अभ्येत्य मोक्षलक्ष्मीं श्रद्धां फल्येव विदग्धया ॥ ३०८ ॥ अतः प्रपत्तिरालागास्तस्य नैर्ग्रथ्यमाबधौ । भोगिनो न्यस्तनिर्मात्यागवभावभासते ॥ ३०९ ॥ तगोलक्ष्म्या निगूढाभूद्राड वाढम-  
चतुर्थोप्यवबोधोऽस्य सयमेन समर्पित । तदैवात्यावबोधस्य सत्यकार इवेशितु ॥ ३१० ॥ अप्रमत्तगुणस्थाने मुक्तिसाम्राज्यकठिका । तपस्विना सतालंभि तत्क-  
उत्तरा नक्षत्रके पट्यमें था उस संध्याके समय श्रेष्ठ भगवान् वीरनाथने दीक्षा धारणा की ॥ २९९-३०४ ॥ भगवानने जो  
वस्त्र आभरण माला आदि उत्तर फेंके थे वे इंद्रने महा पवित्र समझकर उठा लिये सो ठीक ही है क्योंकि भगवानने जो  
माहात्म्य ही ऐसा है ॥ ३०५ ॥ उससमय भगवानके शरीरमें लगा हुआ सुगंधित अंगराग समझ रहा था कि मैं यहां-  
से कैसे ब्रालग हो सकूँ-हूं यही समझकर मानों वह वहीं रहकर भगवानकी शोभा बड़ा रहा था ॥ ३०६ ॥ मलिन कु-  
टिल, अज्ञानियोंके द्वारा त्याज्य ऐसे केशोंके समान केश उन तरुण भगवानने जइसे ही उखाड़ फेंके थे ॥ ३०७ ॥ इंद्र-  
ने वे सब केश अपने हाथसे चुनकर उठा लिये थे और मणियोंके दैदीप्यमान पिटांरमें रखकर उनकी पूजाकी आदर स-  
त्कार किया अनेक तरहके वस्त्रोंमें उन्हें लपेटकर रखवा और फिर स्वयं सब देवोंके साथ जाकर उन्हें चीरसागरमें धरा-  
या ॥ ३०८-३०९ ॥ मोक्ष लक्ष्मीकी इष्ट और चतुर दूतीके समान तपोलक्ष्मीने स्वयं आकर अतिशय शुद्ध बुद्धिको धारण  
करनेवाले भगवान् वीरनाथ अपनी इच्छानुसार स्वीकार किये थे ॥ ३१० ॥ अंतरंग परियहोंका त्याग करदेनेसे उनका  
निर्ग्रथपना बहुत ही अच्छा सुशोभित हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि सांपकी काचलीके समान केवल बाह्य परिग्रहों-  
का त्याग करना कुछ सुशोभित नहीं होता ॥ ३११ ॥ उसी समय संयमने उन भगवानको केवलज्ञानके वयानेके समान  
चौथा मनःपर्ययज्ञान भी आकर समर्पण किया था ॥ ३१२ ॥ तपश्चरण करनेवाले उन भगवानने अप्रमत्त गुणस्थानमें  
जाकर मोक्षरूपी साम्राज्यकी कंठी भी पहिन ली थी सो ठीक ही है क्योंकि प्रमादी जीवोंको अर्थात् प्रमत्तगुणस्थानमें  
रहनेवालोंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है ॥ ३१३ ॥ चार ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले और स्वाभाविक बलशाली



निर्वाच्योदितं ॥ २१० ॥ कुमारं भास्वराकारं द्रुमकीर्वापरायण । स विभीषणितु वांछन् महानागाकृतिं दधत् ॥ २११ ॥ मूलाश्वश्रुतिभूजस्य  
स्त्वक्षमस्मिद्धितं । ऋटपेभ्यो निपत्याद्यु धरणी भयविह्वला ॥ २१२ ॥ प्रपलायत तं दृष्ट्वा बालाः सर्वे यथायथ । महाभये समुत्पन्ने महतोन्व्यो न  
॥ २१३ ॥ लज्जामाता-न्युप्रमाख्या तमहि विभी । कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यवत्तदा ॥ २१४ ॥ विजृम्भाणहर्षभोनिधिः सगमकामर । स  
वान् महावीर इति नाम चकार स ॥ २१५ ॥ शिशुचरद्विस्तस्यैव कामारमगमद्वयः । ततोन्व्युर्मतिज्ञानक्षयोपशममेदत ॥ २१६ ॥ समुत्पन्न  
स्मृतपूर्वमवातरः । लौकांतिकामरै प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिभि स्तुतः ॥ २१७ ॥ सकलामरसंदेहकृतति-कर्मणक्रिय । स्वबाह्मीणितसद्वधुभाषि  
॥ २१८ ॥ चंद्रप्रभाख्यविदिकामबिरुद्धो हृदव्रत । कळां परिहृदंणं ततो विद्याभराधिपं ॥ २१९ ॥ ततश्चाभिषिषीधैथलज्जामरसहतिः । प्रप्रम  
॥ २२० ॥ आह्वयदा प्रसूतौ चै प्रहसदा प्रमोदत । पल्लवरुराग वा स्वकीयं सप्रकाशयत् ॥ २२१ ॥ नाथः पंडवन प्राप्य

धवड़ाकर अपने अपने सुभीते के अनुसार वृक्षों से पृथ्वी पर कूदकर भागए । सो ठीकही है क्योंकि महाभय प्रत्यक्ष  
होनेपर महापुरुषों के सिवाय अन्य कोई नहीं उठर सकता है । २१०-२१३ ॥ उससमय जिसकी सौ जिह्वाएं लज्जित  
रही है ऐसे उस सर्पके मस्तक पर बैठकर उन वीरनायने माताकी चारपाईके समान क्रीड़ा की ॥ २१४ ॥ अतएव  
के समागमसे उस संगमदेवका हर्षरूपी महासागर उमड़ आया और उसने भगवानकी स्तुतिकर महावीर नाम रखा  
॥ २१५ ॥ इस प्रकार भगवानके कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत हुए । उसके दूसरेही दिन मतिज्ञानके विशेष द्योप-  
क्षमसे उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ और पहिले भक्ता जातिस्मरण हुआ । उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर सम्प-  
यानुसार उनकी स्तुतिकी और इंद्रादि सब देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनया । भगवानने मीठी  
वाणी से सब भाई बन्धुओं को प्रसन्न किया और सबसे विदा ली ॥ २१६-२१८ ॥ ब्रतोंको हृदतासे पालन करने  
वाले वे भगवान चंद्रप्रभा नामकी पालकी पर सवार हुए । पहिले वह पालकी चारों ओर घिरे हुए मनुष्योंने उठाई फिर  
विद्याधर ले चले और फिर अंतमें देव लोग उसे ले चले । उस समय चमरोंके समूह हुलाये जा रहे थे । जिस वनकी  
ओर वे जा रहे थे वह वन मानें उड़ते हुए भ्रमरोंके समूहसे उन्हें बुलारहा था, कोयलोंके मधुर शब्दोंसे मानों हंस रहा  
था फूलोंके समूहसे मानों प्रसन्न हो रहा था और नवीन पत्तोंसे मानों अपना अनुराग ही प्रगट कर रहा था । वे भगवान  
ऐसे पंड नापके वनमें पहुंचे पालकीसे उतरे तथा अपनी कांतिसे सब प्रदेशोंको ढकनेवाली एक बड़ी रत्नशिलाके ऊपर  
उत्तरकी ओर मुड़कर तैलेका नियम लेकर विराजमान हुए । इस तरह अगहनवदि दशमीके दिन जब चंद्रमा इस्त और

दिशि दिष्टः दशात्मजगुणोदयः । मदसप्तकनिर्मुक्तः सर्वचेष्टाविराजित ॥ २८१ ॥ संजयस्यार्थसदेहे संजाते विजयस्य च । जन्मानतरमेवैनमभ्येत्यालोक-  
मात्रतः ॥ २८२ ॥ तत्सदेहगतै ताभ्या चारणाभ्या स्वभक्तितः । अस्वेष्य सन्मतिर्देवो भावीति समुदहतः ॥ २८३ ॥ अर्थिनः किं पुनर्वाच्या शब्दाश्च  
गुणगोचरा । अयासांश्चः परेष्वस्मिन्नर्थवतोऽभवन् यदि ॥ २८४ ॥ लोकोयमेव दोषोऽस्य शब्दा दोषाभिधायिन । पुष्कलायां परत्रासाद्रुता दूरमनर्थकाः ॥  
२८५ ॥ न गोमिन्यां न कीर्त्या वा प्रीतिरस्याभवद्विभो । गुणेष्विव मुलेयाना प्रायेण हि गुणाः प्रिया ॥ २८६ ॥ तस्य कालवयोवाञ्छावशेनैविल-  
ख्य । भोगोपभोगवस्तूनि स्वर्गसाराण्यहर्निश ॥ २८७ ॥ शक्राक्षया समानीय व्ययं प्रावर्तयत्सदा । अन्येषु स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा ॥ २८८ ॥  
देवानामधुना शूरो वीरत्वामीति तच्छ्रुत्वा । देव सगमको नाम संयातस्त परीक्षन् ॥ २८९ ॥ दृष्टोद्यानवने राजकुमारैर्बहुभिः सह । काकपक्षधरत्वैकवयो-

॥ २९० ॥ एक वार संजय और विजय नामके दो चारण युनियोंको किसी पदार्थमें संदेह उत्पन्न हुआ या परंतु भग-  
वानके जन्मके बाद ही वे उनके समीप आए थे और भगवानके दर्शन करने मात्रसे उनका संदेह दूर हो गया या इसलिये  
उन्होंने बड़ी भक्तिसे उनका होनहार सन्मति नाम रक्खा था ॥ २८१-२८३ ॥ गुणोंको कहनेवाले अर्थवाले शब्दोंकी  
तो बात ही क्या है वीरनाथको छोड़कर अन्य लोगोंमें जिनका गुणवाचक अर्थ नहीं होता है ऐसे शब्द भी वीरनाथमें  
आकर अर्थवाले हो जाते थे ॥ २८४ ॥ उन भगवानके त्यागमें यही सबसे बड़ा दोष था कि रागद्वेष आदि दोषोंको  
कहनेवाले ऐसे शब्द कि दूसरी जगह जिनके अनेक अर्थ हो जाते हैं वे भी भगवान वीरनाथके समीपसे अनर्थक होकर  
दूर भाग जाते थे ॥ २८५ ॥ उन भगवानका प्रेम न तो लक्ष्मीमें था और न कीर्तिमें ही था किंतु शुभ लक्ष्याओंको धा-  
रण करने वालोंके समान गुणोंमें ही उनका प्रेम था सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः गुण सबको प्रिय होते ही हैं ॥ २८६ ॥  
इंद्रकी आज्ञासे कुबेर रात दिन उन भगवानके समय आयु और इच्छाके अनुसार स्वर्गकी सारभूत भोगोपभोग की सब  
चीजें लाता था और सदा उन चीजोंको काममें लाया करता था अथवा खर्च किया करता था । किसी एक दिन इंद्रकी  
सभामें देवोंमें परस्पर यह कथा चल रही थी कि इस समय सबसे शूरवीर श्रीवर्द्धमान स्वामी हैं उसे सुनकर संगम नाम  
का एक देव उनकी परीक्षा करनेके लिये आया ॥ २८७-२८९ ॥ उस समय बालकोंके द्वारा प्रेरणा किये गये और  
सूर्यके समान दैदीप्यमान भगवान वीरनाथ, केश रखाए हुए, समान आयुवाले, ऐसे अनेक राजकुमारोंके साथ देखने  
योग्य उद्यान वनमें वृक्षपर चढ़ने उतरनेका खेल खेल रहे थे । वहां पर आए हुए उस देवने उन्हें डरानेकी इच्छासे महा-  
नागका रूप धारण किया और वह वृक्षकी जड़से लेकर स्कंध तक बराबर लिपट गया । उसे देखकर सब बालक डरसे

वा विवा ॥ २६६ ॥ ननादानकसंपातो ननर्त प्रमदगणः । जगौ च गायकानीकः पपाठिषोपि बंधिनां ॥ २७० ॥ अभातरत् घुराः सर्वेषु दास्यावावमा-  
त्मन । मायाविंशु पुरोधाय मातुः सौधर्मनायक ॥ २७१ ॥ नागेंद्ररुद्रं घमागेष्य बालं भास्वरभास्वरं । तत्तेजसा शिशो विधाकाशयममराधनं ॥ २७२ ॥  
संप्राप्य मेरुमारोप्य शिलाया सिंहविष्टरं । अमिविच्य ज्वलकुम्भे क्षीरसागरबासिनि ॥ २७३ ॥ विशुद्धपुष्टलात्पदेहस्य विमलात्मनः । शुद्धितेतस्य कांभोमि  
दूधैरशुभिः स्वयं ॥ २७४ ॥ चोदितास्तीर्थकुम्भाभ्रा स्वाभ्रायोर्यं समागत । इति वै कर्ममैथल्य कृताभियवणा बयं ॥ २७५ ॥ अल तदिति तं भगवा-  
न विभूष्योद्यद्विभूषणैः । वीरः श्रीवर्द्धमानस्तोष्विवलाष्ट्याद्वितय व्यघात । ततस्त सप्रमानीय सर्वमारसमन्वित । मातुरेके तितेदगोर्बोबिंहितानदनटकः ॥  
२७७ ॥ विभूष्य पितरौ चास्य तयोर्बिंहितसम्पदः । श्रीवर्द्धमानमानम्य स्वधाम समगासुरैः ॥ २७८ ॥ पार्थिवतीर्यसंताने पंचाशद्वैशुताब्दके । तद  
न्यतरबलायुर्महावीरोश्च जातवान् ॥ २७९ ॥ द्वावसत्तिसमाः किं बिभूनास्तस्य युष स्थिति । सप्तारिभिर्मितोत्सेय सर्वलक्षणभूषित ॥ २८० ॥ ति स्वैरत्वा-

द्वारा ) माताके समीप मायापयी बालक रत्नकर वह बालक गोदीमें लिया और उठ्य होते हुए मूर्यके समान दैदीप्य-  
मान उस बालकको घेरावत हाथीके कंधे पर विराजमान किया । उस बालकके तेजसे सब दिशाओंको प्रकाशित करता और  
देवोंसे घिरा हुआ वह इंद्र मेरुपर्वत पर पहुंचा और पांडुवनकी पाहुक शिला पर रखे हुए सिंहासन पर उन भगवान  
को विराजमान कर दैदीप्यमान सुवर्णके कलशों द्वारा क्षीर सागरका जल लाकर उनका अभिषेक किया ॥ २७३ ॥ उन  
भगवानका शरीर विशुद्ध पुष्टलसे बना था फिर भला स्वयं अशुद्ध और दूषित जलसे उनकी शुद्धि कैसे हो सकती  
है ॥ २७४ ॥ पहिलेसे ही बंधे हुए तीर्थंकर नाम कर्मके उदयके द्वारा प्रेरणा करनेसे अथवा हमलोंकी यह आत्मा  
ही है इसीलिये आकर हमलोग इनके सेवक हुए हैं और यह अभिषेकका कार्य समाप्त किया है ॥ २७५ ॥ बहुत  
कहनेसे क्या ? बड़ी भक्तिसे दैदीप्यमान आभूषणोंसे विभूषित कर उनके वीर और वर्द्धमान ऐसे दो नाम प्रसिद्ध किये  
॥ २७६ ॥ तदनंतर सब देवोंके साथ साथ उन्हें घर लाये और उन्हें माताकी गोदमें विराजमान कर आनंद नाटक किया  
॥ २७७ ॥ उन इंद्रादि देवोंने माता पिताको भी विभूषित कर प्रसन्न किया और फिर सब देव उन श्रीवर्द्धमान स्वामी  
को नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७८ ॥ श्रीपार्थनाथ तीर्थंकरके बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने  
पर भीमरावीर स्वामी हुए उनकी आयु भी इसीमें शामिल है ॥ २७९ ॥ उनकी आयु कुछ कम वहपरि वर्षकी थी,  
सात अरलि ( अरलि कुछ कम एक हाथ ) ऊंचा शरीर था और वे सब लक्ष्योंसे सुशोभित थे ॥ २८० ॥ उनके  
पसीना नहीं आना आदि दशगुण जन्मसे ही थे तथा सात बर्दोंसे वे रहित थे और सब तरहकी चेष्टासे वे सुशोभित थे

तानसि ॥ २५८ ॥ सप्रासादोसना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत । सोपि तेषां फलं भावि यथाक्रममुदुषवत् ॥ २५९ ॥ श्रुतस्वप्नफला देवी दुष्टा प्राप्तेव तत्क-  
ल । अयासराधिपा सर्वे तयोरभ्येत्य सपदा ॥ २६० ॥ कल्याणामिषवं कृत्वा नियोगेषु यथोचित । देवान् देवीष्व संयोज्य स्वं स्व धाम ययुः पृथक् ॥  
२६१ ॥ नवमे मासि संपूर्णे चैत्र मासे त्रयोदशी—दिने शुक्ले शुभे योगे सत्ययोगिनामनि ॥ २६२ ॥ अलं कालः कुलस्यार्हस्यपदामालयोजनि । आकरो  
गुणरत्नानामाश्रयो विश्रुतप्रिया ॥ २६३ ॥ भातुमान् वधुपद्माना भुवनत्रयनायक । दायको मुक्तिसाह्यस्य त्रायक सर्वदेहिनां ॥ २६४ ॥ भस्मदुतिर्भिवञ्चसी  
ममैव कर्मविद्विषां । धर्मतीर्थस्य धर्मरेयो निर्मल शयवासिधिः ॥ २६५ ॥ प्राचीव दिशि बालाकौ याभिन्यामिव चंद्रमा । पद्मायामिव गौघो वाय्यामिव  
धनोत्करः ॥ २६६ ॥ वागवच्चासिव वाग्गुराशिल्क्ष्म्यामिव मुखोदय । तस्या सुतोच्युताधीशो लोकालोकैकभास्कर ॥ २६७ ॥ भातुराणां सुराणां च  
तिरथां च चकार सा । तत्प्रमूला पृथुग्रीति तत्सत्यं त्रिधक रिणी ॥ २६८ ॥ सुखाभोजानि सर्वेषां तदाकस्माद्भुं प्रियं । प्रमुक्तानि प्रसूतानि प्रमोदाश्रानि  
पालयिष्यां हो । तदनंतरं सब इंद्रादि देव अपनी अपनी विभूतिके साथ आए और सबने कल्याणाभिषेकका उत्सव मनाया  
फिर अनेक देव देवियोंको यथायोग्य कामोंपर अलग २ नियुक्त किया और सब देव अपने अपने स्थानको चले गये ॥ नौ  
महीने पूर्ण हो जानेपर चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नामके शुभ नक्षत्रमें जिसप्रकार पूर्व दिशासे उदय होता  
हुआ बालक सूर्य निकलता है रात्रिमें चंद्र निकलता है अथवा पद्मद्रहसे गंगाका समूह पड़ता है वा पृथ्वीसे धनसमूह  
निकलता है अथवा सरस्वतीसे वचनराशि निकलती है और लक्ष्मीसे सुखका उदय प्रगट होता है उसीप्रकार वह अच्युत  
देवका जीव प्रियकारिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ वह पुत्र कुलका अलंकार था, अरहंती संपदाओंका घर था, गुणरूपी रत्नों-  
का खजाना था, प्रसिद्ध लक्ष्मियोंका आश्रय था, भाई वंशु रूपी कमलोंके लिये सूर्य था, तीनलोकोंका नायक था, मो-  
क्षकरनेवाला था, धर्मरूपी तीर्थकी प्रवृत्तिमें मुख्य था, शांतताका निर्मल समुद्र था और सूर्यके समान लोकालोकको प्राका-  
शित करनेवाला था ॥ २६०-२६७ ॥ उस प्रियकारिणी उन भगवानको उत्पन्न कर देव मनुष्य और तिर्यक् सबके ह-  
दयमें गाढ प्रेम प्रगट कर दिया था इसीलिये उसका प्रियकारिणी यह यथार्थ नाम पड़गया था ॥ २६८ ॥ उससमय सब-  
के मुखकमलोंने अकस्मात् शोभा धारण करली थी और स्वर्गसे आनंदके आसुओंके समान फूलोंकी वर्षा हो रही थी ॥ ६९ ॥  
उस समय नगाडोंके समूह बज रहे थे, स्त्रियोंके समूह नाच रहे थे, गानेवालोंके समूह गा रहे थे और वंदीगणोंका समूह  
पाठ कर रहा था ॥ २७० ॥ देवलीग अपने अपने स्थानको छोडकर नीचे उतर रहे थे, तदनंतर सौधर्म इंद्रने (इंद्रानी

रुक्मः । शुक्रनेश्याद्वयोपेतो द्वाविंशत्या स निश्चसन् ॥ २४७ ॥ पक्षेस्तावत्सहस्राब्दैराहरन्मनसाभ्युत । सदा मनःप्रवीचारो भोगसारेण वृत्तबान् ॥ २४८ ॥  
आषष्ठ्युचितीपातन्टिग्य त्रिंशद्विलोचनः । स्वावधिषेत्रसम्येयवलाभाविक्रियावधि ॥ २४९ ॥ सामानिबालिदिग्भिर्देवैर्देवीभिश्च परिष्कृतः । पुण्योदयविशेषेण  
मज्जतिस्स सुखं बुधा ॥ २५० ॥ तस्मिन् वपमाससोपायुष्यानाकादागमिष्यति । भरतेस्मिन् विदेहाद्वये विषये भवनागणे ॥ २५१ ॥ राज्ञ कुडपुरेशस्य  
वक्रुधाराप नत्पुथु । सप्तकोटीमणीः सार्द्धा सिद्धार्थस्य दिन प्रति ॥ २५२ ॥ आसाढस्य सिते पक्षे पञ्चाशति चोत्तरा पादे सप्ततृप्तप्रासादस्याभ्युत्तव  
तिंति ॥ २५३ ॥ नद्यावतंगृहे रश्मवीपिकाभिः प्रकाशिते । रत्नपर्यंकके ह्रस्वमूलिकादिमयिते ॥ २५४ ॥ रौद्राधसमाध्वयामत्रितयनिगमे । मनोहराद्वय-  
दुर्गस्य यामस्याते प्रसन्नधीः ॥ २५५ ॥ दरनिद्रा न्यलोक्य विशिष्टफलदायिनः । स्वप्नान् पौडश विच्छिन्नान् प्रियस्य प्रियकारिणी ॥ २५६ ॥ तदतेऽ  
परं दम्य च गज वक्त्रप्रवेशिन । प्रभातपटदृच्चनैः पठितैर्विभागैः ॥ २५७ ॥ मगलैश्च प्रबुध्याशु क्राता पुण्यप्रसाधना । सा सिद्धार्थमहाराजमुपगम्य कृ

पद"द्वय च गज वक्त्रप्रवेकिन । प्रभातपटदृच्चाले; पठितवावसांगध ॥ २५० ॥

से वह सदा तप्त रहता था ॥ २४७-२४८ ॥ छठवें नरक तक उसे अबधिज्ञान था और छठवें नरकतक ही बल कांति और विक्रिया आदि थी ॥ २४९ ॥ सामानिक आदि अनेक देव और अनेक देवियोंके साथ वह इंद्र अपने पुरयक्रमके विशेष उदयसे सुखसागरमें स्नान करता था ॥ २५० ॥ जब उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह स्वर्गसे अवतार लेनेके सन्मुख हुआ उससमय इसी भरतक्षेत्रके विदेह नामके देशमें कुंडलपुर नगरके राजा सिद्धार्थके घर प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ मणियोंकी भारी वर्षा होने लगी ॥ २५१-२५२ ॥ आसाढ़ शुक्ल षष्ठीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें वह राजा सिद्धार्थकी पिय रानी प्रियकारिणी पूसन्न विच होकर सतबने राजभवनके भीतर रत्नोंके दीपकोंसे पूकाशित होनेवाले नंद्यावर्त नामके राजभवनमें हंसके समान सफेद चादरसे सुशोभित ऐसे रत्नोंके बने हुए पलंगपर सो रही थी जब उस रातके रौद्र राक्षस और गार्ध्व नामके तीन पहर निकल गये और मनोहर नामका चौथा पहर आया तब उसने कुछ हुं-लीसी नींदमें विशेष फल देनेवाले अलग अलग सोलह स्वन देखे ॥ २५३-२५६ ॥ सोलह स्वनोंके बाद उसने अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा । तदनंतर सबेरेके बजनेवाले नगाडोंकी आवाजसे तथा यागधोके द्वारा पढ़े हुए मंगल पाठोंको सुनकर वह जगी और स्नानादि कर उसने पवित्र वस्त्राभूषण पहिने । फिर वह महारानी महाराज सिद्धार्थके समीप पहुँची और उन्हें नमस्कार कर तथा उनके द्वारा दिये हुए आभे आसनपर विराजमान होकर उसने यथाक्रमसे सब स्वन सुना दिये । स्वन सुनकर महाराज, सिद्धार्थने भी यथाक्रमसे उनका होनहार फल समझा दिया ॥ २५७-२५९ ॥ उन स्वनोंका फल सुनकर वह देवी ऐसी संतुष्ट हुई मानों उसने उसीसमय फल

२३५ ॥ भिकये पुण्डलावल्यां घरेतो. पुंडरीकिणी । पति । सुमित्रविल्यातिः सुप्रताल्या मनोरमा ॥ २३६ ॥ त्रियमित्रस्तयोरासीत्तनयो नयभूषण । नान्नेव नमितासेवविद्विषयक्रिवर्तिता ॥ २३७ ॥ संप्राप्य भुण्णभोगगो भयुरान् सर्वसंगमान् । क्षेमंकरजिनाधीशवक्त्राभोजविनिर्गमात् ॥ २३८ ॥ तत्त्वगमन- मीरार्थव्याक्यान्मला विरफनान् । सर्वमिवाह्यसूतो स्व राज्यभारं निधाय सः ॥ २३९ ॥ भव्यभूषणसहस्रेण सह संयममादे । प्रतिष्ठानं यमास्तस्मिन्प्रवाप- स्तेष्टमातृमिः ॥ २४० ॥ प्राते प्रांसहस्रारसभूषणप्रभासरः । सुखाष्टदशवाह्यार्थयुर्वृद्धाद्विमुक्तभोगक ॥ २४१ ॥ मेघाद्विद्विसेवो वा ततः स्वंगाद्विनि- र्गतः । छात्राकारपुरेऽत्रैव नंदिवर्द्धनमुज ॥ २४२ ॥ वीरवत्याश्च नंदाह्यस्तान्ज- भुजजोजति । निष्ठाव्येष्टमुष्ठान स श्रेष्ठं औष्ठिलं शुभं ॥ २४३ ॥ सप्रा- सहीबर्मात्रकर्मणा ॥ २४४ ॥ जीवितंते समासाद्य सर्वमाराधनाविधि । पुष्पोत्तरविमानेभूदभ्युत्तैः क्षुरोत्तमः ॥ २४५ ॥ द्वाविंशत्यन्विमेयायुरालिख्यदे- हुए, तत्त्वोके स्वरूपसे भरे हुए और गंभीर अर्थवाले वाक्योंको सुनकर सब परिग्रहोंको जलाभंगुर समझा और विरक्त होकर सर्वमित्र नामके अपने पुत्रको राज्यका भार दिया और स्वयं एक हजार भव्य राजाओंके साथ संयम धारण किया उन प्रियमित्र मुनिराजमें पांच समिति और तीन गुप्ति इन आठ मातृकाओंके साथ अहिंसादि पांचों महाव्रतोंने अपना स्थान बना लिया था ॥ २३६-२४० ॥ अंतमें समाधि धारणकर वह सहस्रार स्वर्गमें सूर्यमभ नामका देव हुआ और वहां पर उसने अठारह सागरकी आयुतक बड़ी हुई सृष्टियां और अनेक तरहके भोगोंका अनुभव किया ॥ २४१ ॥ जिस प्रकार मेघसे एक विशेष विजली निकल पड़ती है उसी प्रकार वह उस स्वर्गसे च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके छत्रपुर नगरके राजा नंदिवर्द्धनकी रानी वीरवतीसे नंदनामका सज्जन पुत्र उत्पन्न हुआ । इष्ट राज्यका अनुभवकर वह श्रेष्ठ प्रा- दनंतर उसने संयम धारण किया और धर्मका स्वल्प सुनकर उसने पदार्थ और शास्त्रोंके अर्थका निर्णय किया । त- नाश करनेवाली और तीर्थकर नामकी कारण ऐसी सोलहकारण भावनाओंका चिंतन किया और उंचगोत्र कर्मके साथ तीर्थकर नामकर्मका बंध किया ॥ २४६ ॥ आयुके अंतमें सब तरहकी आराधनाओंको विधिपूर्वक धारण किया और प्रा- ण छोड़कर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें उत्तम इंद्र हुआ ॥ २४६ ॥ वहांपर उसकी वाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था, द्रव्य और भाव दोनों ही शुद्ध लेश्याएं थीं, वाईस पुच्छके वाद अर्थात् ग्यारह महीने वाद वह श्वास लेता था वाईस हजार वर्ष वाद मानसिक अभूत आहार लेता था । वहांपर सदा मानसिक प्रवीचार था और उत्तम भोगों ॥

प्रपातनात् । धीमन् विरस दुर्गोर्गादारमात्महिते मते ॥ २०५ ॥ हेम चेदानुमिच्छास्ति काम लोकाप्रथामनि । आतांगमपदोर्ध्वश्रु श्रदां धत्स्वेति तद्वच ॥ २०६ ॥ विधाय इति योगीन्द्रमुपभक्तिभराहितः । मुहुः प्रदक्षिणीकृत्य प्रप्रणम्य युगाधिप ॥ २०७ ॥ तत्त्वभ्रदानमासाय सद्यः कालादिलिखित । प्रभि-  
षाय मन श्रावकव्रतानि समाददे ॥ २०८ ॥ दया मुनिनिरास्यती क्रूरतां तन्मनोविशत । कालस्य बलमप्राप्य को विपक्ष निरस्यति ॥ २०९ ॥ ह्यिरौद्र-  
साहसं किमतः परं ॥ २११ ॥ सच्यैल्लक्षसमो मोहलक्ष्योपशममावृत ॥ २१० ॥ व्रतं नैतस्य सामान्य निराहारं यतो विना । कन्यादन्त्योस्य नाहारः  
सम्यक्त्वमादिभ्यः । निसर्गोदेव गृह्णन्ति तस्यादस्मिन् विस्मय ॥ २१३ ॥ निरुद्धसर्वदुर्वृत सर्वसद्वृत्तसन्मुखः । प्रावर्तत चिरं धीरः समीप्युः परम पदं ॥  
२१४ ॥ संयमासयमाहर्च्य तिरश्चा नेति मुदते । रुद्धतेनान्यथा मोक्षयुगेरासीत्स गोचर ॥ २१५ ॥ तच्छौर्यं कार्यसंशीष्य किल सप्रति सक्रयं । कल-

छोड़ और अपने आत्माके हितमें लग ॥ २०५ ॥ यदि आत्माके कल्याण करनेकी तेरी इच्छा है और तू लोकके ऊपर  
विराजमान होना चाहता है तो तू आप आगम और पदार्थोंमें श्रद्धा रख । इसप्रकार उस सिंहेने मुनिराजके बचन हृदयमें  
धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजकी भक्तिके भारसे नम्र होकर उसने प्रदक्षिणा दी, प्रणाम किया,  
काल आदि लब्धियोंके मिल जाने से शीघ्र ही तत्त्वभ्रदान धारण किया और भावकोंके व्रत पालन करनेमें प्रेमपूर्वक  
अपना मन लगाया ॥ २०६-२०८ ॥ मुनिराजके बचनोंसे दयाने सिंहेके मनसे क्रूरता सब निकाल फेंकी और वह स्वयं  
उसके मनमें जा बैठी सो डीक ही है क्योंकि कालका बल प्राप्त किये विना विपत्तीको कौन दूर कर सकता है ॥ २०९ ॥  
मोहनीय के लक्ष्योपशम होनेसे उस सिंहाका रौद्ररस स्थिर हो गया और एक नटके समान उसने शीघ्रही शांतरस धारण  
कर लिया ॥ २१० ॥ उस सिंहेने निराहारके सिवा और कोई सामान्य व्रत धारण नहीं किया क्योंकि पांसादिकके बिना  
और उसका कोई आहार था ही नहीं । इससे अधिक भला और साहस क्या हो सकता है ? ॥ २१० ॥ उस सिंहेने अपने  
प्राण नष्ट कर भी अपना व्रत अखंडित गीतिसे पालन किया इसीलिये उसकी पहिली शूरवीरता फलीभूत हुई और वही  
कर्माकी धातक हुई ॥ २१२ ॥ सातवें नरकके नारकी उपशम सम्यक्त्वको स्वभावसे ही ग्रहण कर लेते हैं इसलिये सिंहेके  
सम्यक्त्व-ग्रहण करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २१३ ॥ मोक्षपद की प्राप्त करने की इच्छा करने वाले उस धीर वीर ने  
सब दुराचरण छोड़दिये और बहुत दिन तक वह सब तरहके सम्यक व्रतोंके संमुख होकर रहने लगा ॥ २१४ ॥ तिर्य-  
चोंको संयमासंगमसे मोक्ष प्राप्त नहीं होती है ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है इसीलिये वह सिंह रुक गया था अन्यथा वह अवश्य



साक्षात्पुनः । सानाकभन्वृणाधीनः । पापित्तत्वं न जानासीत्याकर्णं तदुद्योतं ॥ १९४ ॥ सद्यो जातिस्थितिं गत्वा चौरसंसारदुःखजात । भयाच्चलितम्  
 नानां गल्लान् । तदुत्पन्नेनामा गत् ॥ लोचनाभ्या हरेर्वेषसज्जितं व्यगलच्चिरं । सम्पत्तवाय हृदि स्थानं मिथ्यावमिषं दिशु तत् ॥ १९६ ॥ प्रत्यसम्प्रवि-  
 नेनानि स्थितप्रारब्धेषु सुगोचि । पथात्तायेन य शोकः संघटौ स न कस्यचित् ॥ १९७ ॥ हरिं शोतातरंगत्वात्स्वस्मिन् वदन्तिरीक्षणं । विलोक्यैप हितमही-  
 लाहैव स मुनिः पुनः ॥ १९८ ॥ पुरा पुरुषवाभूत्वा धर्मात्तामस्यैककल्पजः । जातस्ततोवतीर्थान् मरीचिरतिदुर्मतिः ॥ १९९ ॥ सन्मार्गदूषणं कृत्वा कुमा-  
 र्गमभिवद्वयन् । वृषभस्वामिनो वाक्यमनादलान्जवर्चये ॥ २०० ॥ आतो जातिजरायुसुखचये पापसंचयान् । विप्रयोगं त्रिवेद्यगमप्रिगरानुचक्षिरं ॥ २०१ ॥  
 अपरंच महदुद्वेगं दृढत्यापोदयोदिते । त्रसस्यावसरसमूताधसंख्यातसमा अमन् ॥ २०२ ॥ केनापि हेतुनावाप्य विष्वन्तिलेमातवान् । सयमं तन्निदानेन त्रिष्ट-  
 ष्ठवमुपेयिवान् ॥ २०३ ॥ इतोस्मिन् दशमे प्राप्ते भवैल्यस्तीर्थकुरुवान् । सर्वमाश्रयि तीर्थशान्मयेवं श्रीधराह्वयात् ॥ २०४ ॥ अथ प्रथतिससारधोतराण्य  
 वचनं मुनकर उस सिंहको उसीसमय जातिस्मरण होगया तथा संसारके घोर दुःखोंके भयसे उसका सब शरीर  
 कंपायमान होने लगा और उसके नेत्रोंसे आंसू पड़ने लगे ॥ १९४-१९५ ॥ उस सिंहके दोनों नेत्रोंसे बहुत देर तक  
 आंसुओंकी धारा बहने लगी और वह ऐसी मालूम होने लगी मानों हृदयमें सम्यक्त्वको जगह देनेके लिये मिथ्यात्व ही  
 निकल रहा हो ॥ १९६ ॥ आसन्न भव्योंको पहिले जन्मोंका जाति स्मरण हो जानैप पश्चात्तापके द्वारा जो शोक होता है  
 वह संसारमें अन्य किसीको नहीं हो सकता ॥ १९७ ॥ तदनंतर मुनिराजने देखा कि अंतरंग शांत होजानेसे वह सिंह  
 अपनी ओर (मुनिराजकी ओर) ही दृष्टि लगाये है उसे इसतरह देखकर उन्होंने समझा कि अब यह अपना हित ग्रहण  
 कर सकता है इसलिये वे फिर कहने लगे ॥ १९८ ॥ पहिले तू पुरुषवा भील हुआ था फिर धर्मसेवनकर सौधमें स्वर्गमें  
 देव हुआ और वहांसे आकर तू इसी भरतक्षेत्रमें अत्यंत दुर्मति मारीचि हुआ था ॥ १९९ ॥ उस पर्यायमें तेने मन्मार्गको  
 दोष लगाया था और कुमार्ग की वृद्धि की थी । श्रद्धिभदेव तीर्थकर के वाक्योंका अनादर कर तेने संसारमें परिभ्रमण  
 किया । पापोंका संचय करने से जन्म परण बुढापा आदि अनेक दुःखोंका संचय किया तथा इष्ट वियोग और अनिष्ट  
 संयोग के दुख बहुत दिन तक त्रस स्यावर योनियोंमें परिभ्रमण किया ॥ २००-१ ॥ इसके बाद भी महापापोंके उदयसे अनेक बड़े बड़े दुःख भोगे  
 और असंख्यात वर्ष तक त्रस स्यावर योनियोंमें परिभ्रमण किया ॥ २०२ ॥ किसी कारणके मिलजानेसे विष्वन्तरी हुआ,  
 संयम धारण किया और निदानकर त्रिष्टुष्ट हुआ ॥ २०३ ॥ अब इस भवसे दशवें भवमें तू अंतिम तीर्थकर होगा यह सब  
 मैंने श्रीधर तीर्थकरसे सुना है ॥ २०४ ॥ अबतक तू संसाररूपी घोर वनमें पड़ा रहा है बुद्धिमान् अब तू इस दुर्मार्गको

श्रोति तमस्तम ॥ १८२ ॥ भीमा वैतरिणीं तत्र प्रज्वलद्धारिपुरितां । प्रवेधितोसि पापिष्ठैः प्राक् शक्त्या हनमब्ज ॥ १८३ ॥ ज्वलज्ज्वालकरालोत्थासं-  
दग्गोपलाचले । प्रधावितोसि तदं कछिन्नछिन्नाभिर्यागकः ॥ १८४ ॥ कदववाकुक्षतापन्दुष्टाष्टनयवोव्यभूः । प्रज्वलचित्तिकाक्षितो भस्मसाङ्कावमागतः ॥  
१८५ ॥ तप्तायः पेंडतिर्धतैर्धठैः सचूर्णितोव्यभूः । निखिद्यच्छदसन्नवनेषु आतवान् मुहु ॥ १८६ ॥ नानापक्षिमुग्रैः कालकैलियककुलैरल । परस्पराभि-  
घातेन ताडनेन च पीडितः ॥ १८७ ॥ वदूवा बहुविधैर्वधैर्वनष्ठुरैः निष्ठुराशयैः । कणाष्ठनासिकाधीना छेदनेर्वाधितो भृश ॥ १८८ ॥ पापैः संमानशूलाना-  
मारोपणमपि च । एव बहुविध दुस्समवशोनुभवधिर ॥ १८९ ॥ प्रलापाक्रन्दरोदादिवाग्मिरुदहरिद्वया । शरण प्रार्थयन् दन्यादप्राप्यातीव दुःखितः ॥  
१९० ॥ स्यायुः ते विनियोग ततो भूत्वा मृगाधिपः । क्षुपिपास विमिर्वातातपवर्गदिमिश्र बिक् ॥ १९१ ॥ व्याध्यमानः पुन प्राणी हिसया मासमाहू-  
न् । क्रूरः पाप समुक्लिय शृण्वी प्रथमामगा ॥ १९२ ॥ ततोपीह समुद्भूय कैर्यमेव समुद्रहन् । महदह समावर्ज्य दुःखायोत्सहसे पुन ॥ १९३ ॥

छिन्न भिन्न हो जाया करता था ॥ १८४ ॥ कदं वृक्षों के तलवार के समान पत्तों से और गर्म बालू से तेरे शरीर के सब अ-  
वयवों को छेदा जाता था तथा वे नारकी तुम्हें जलती हुई चिता में पटक देते थे इसलिये तेरा शरीर झिल्लुल भस्म हो जाता  
था ॥ १८५ ॥ बड़े प्रचंड और गर्म किये हुए लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था और तलवार के समान  
तीक्ष्ण पत्तों से भरे हुए वन में तू बार बार घुमाया जाता था ॥ १८६ ॥ अनेक तरह के पक्षी वनपशु और काल के समान  
कुक्षों के द्वारा तू बहुत दुखी किया जाता था और परस्पर की ताडना तथा चोट से तुम्हें बहुत ही पीडा पहुंचाई जाती थी  
॥ १८७ ॥ निष्ठुर हृदय के नारकी बड़ी कठोरता से तुम्हें अनेक तरह से बांधते थे और कान नाक ओठ आदि काटकर  
तुम्हें बार बार दुःख पहुंचाया करते थे ॥ १८८ ॥ पापों के समान अनेक तरह के शूलों पर तुम्हें विधते थे और इस तरह  
परवश होकर तेने बहुत दिन तक अनेक नरक के दुःखों का अनुभव किया था ॥ १८९ ॥ प्रलाप आक्रंदन रोना आदि बच-  
नों के द्वारा तेने व्यर्थ ही सब दिशाएं रोकली थीं और दीनता से शरण्य की प्रार्थना करते तेने बहुत ही दुख पाया था ॥ १९०  
वहां की आयु समाप्त कर तू वहा से निकला और सिंह हुआ वहां पर भी तेने भूल व्यास वायु गर्भी वर्षा आदिके अनेक  
दुःख सहे तथा अनेक प्राणियों की हिसाकर मांस खाया और इस तरह उस क्रूर पर्याय में अनेक तरह के पाप कर तू मरकर  
पहिले नरक में ॥ १९१-१९२ ॥ वहां से निकलकर तू फिर यहां आकर सिंह हुआ है यहां भी तू इस तरह की क्रूर-  
ता के काम कर रहा है भारी पापों का उपार्जन कर दुःखों के लिये फिर उत्साह करता है ॥ १९३ ॥ अरे पापी तेरा  
अज्ञान हुआ है उसी के यथाक्से तू तत्त्वों को नहीं जानता है । इस प्रकार मुनिराज के कहे हुए

विभवतिरे । सानावभृत्पुगाधीलो ज्वलत्केसरमासुरः ॥ १७१ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्राकरालानतः कदाचिद्विभीषण । कविन्युगमनष्टस्य मसयन् स समीक्षित ॥  
 १७२ ॥ अग्नेर्भित्तुणेनामा गच्छतातिष्ठप छना । अजितञ्जयन अम्बारेणेन मुनीक्षिता ॥ १७३ ॥ स मुनिर्सेवीर्भनायोक्तमनुष्टुभ्यः पुङ्गवा । अकवीर्य  
 नभोभागं सनासाय युगाधिप ॥ १७४ ॥ गिलातले निवेश्योक्तैर्धर्म्या वाचमुदाहरत् । भो मय्य युगाधीश त्वं त्रिपृष्ठभवे पुरा ॥ १७५ ॥ परार्थं पञ्चवा  
 ओक्तं तदुक्त्यातले चिरं । स्वरं कातामिरिष्टाभिरमीष्ट सुखमन्वभुः ॥ १७६ ॥ दिव्यं सर्वैरसं भोज्य रसनैर्दियतर्पणं । सार्द्धमानममुक्तैः प्राक् सुत्रामुतरया  
 यदैः ॥ १७७ ॥ धृपातुलेपनैस्तैर्लघुस्त्रुगैर्वासा सुगन्धिभिः । तोषितं सुस्तिरं तत्र त्वया प्राणपुटद्वयं ॥ १७८ ॥ रसभावसमाविष्ट विवित्र चरणोच्चिन । दृतं  
 निरीक्षितं चित्रमगनाभिः प्रयोजितं ॥ १७९ ॥ शुद्धदेशजमेदं तत् पट्टगादिस्तरससकं । चेतनेतरमिष्टं यत् यतितं कर्णशृङ्गयो ॥ १८० ॥ त्रिविडम-  
 चित्तोक्तेन जातं सर्वं भवेत् तत् । इत्यामिमानि साख्यं मनसा विरमन्वभुः ॥ १८१ ॥ एव वैपयिकं साख्यमनुभूगाप्युत्तवान् । श्रद्धापञ्चवतापेतं प्रवि-  
 राज्ञ अमित गुणैके साथ आकाशमार्गसे जा रहे थे ॥ १७२-१७३ ॥ वे मुनिराज तीर्थकरके वचनों का स्मरण कर दयाकर  
 आकाशसे उतरे और उस सिंहके पास आकर शिलापर विराजमान हुए वे जो जोरसे धर्मोपदेश देने लगे और  
 लगे कि हे भव्य सिंह पहिले त्रिपृष्ठके भवमें तेने बहुमूल्य पांचों इंद्रियोंके विषयोंका अनुभव किया है बहुत दिनतक कोमल  
 शय्यापर अभीष्ट स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार स्वतंत्रता पूर्वक सुखों का अनुभव किया है रसनैर्दिय को दृत करनेवाले सब  
 तरहके दिव्य रसोंका भोग किया है और अमृत रसायनके साथ साथ स्पर्द्धा करनेवाले व्यंजनोंका स्वाद लिया है ॥ १७४  
 ७७ ॥ सुगन्धित धूपका लेपकर तथा सुगन्धित चूर्ण वास मालाएं आदिके द्वारा बहुत दिन तक नाकके दोनों घोणा संतु-  
 हुआ और ललनाओं के द्वारा किया हुआ अनेक तरहका नृत्य देखा ॥ १७५ ॥ शुद्ध देशज आदि कारणों से उत्पन्न  
 ॥ १८० ॥ तीन खंडमें जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब मेरा है ऐसा अभिमान जन्य सुख भी मनमें बहुत दिनतक अ-  
 नुभव किया ॥ १८१ ॥ इसतरहके विषयोंका सुख अनुभव कर भी तू तस नहीं हुआ और सम्यग्दर्शन तथा पांचों व्रतोंके  
 विना तुम्हें सातवें नरकमें जाना पडा ॥ १८२ ॥ वहांपर जो जलते हुए जलसे भरी हुई वैतरणी नदी है उसमें पापी ना-  
 रकियोंके द्वारा तू घुसाया गया और ज्वर्दस्ती तुम्हें स्नान करना पडा ॥ १८३ ॥ उस दुखसे वचनेकेलिये तू जलती हुई अ-  
 भिसे जिसके पत्थरके टुकड़े उछल उछलकर पड रहे हैं ऐसे पर्वतपर दौडता था परंतु वहांपर भी तेरा सब शरीर टांकीसे

आश्विनीजिह्व पदातिपरिवर्तिः । यथोक्तविहितव्यूहयुध्येतां महाबलैः ॥ १६० ॥ गज कंठीरवेणैव वज्रेण च महाचल । आस्करेणाघकारो वा त्रिपृष्ठेन पराजितः ॥ १६१ ॥ स त्रिलक्षो हयग्रीवो मायायुद्धेति निर्जित । चक्र संश्लेषयामास त्रिपृष्ठमग्निनिष्ठुरे ॥ १६२ ॥ तत्तु प्रदक्षिणीकृत्य मधु तदक्षिणे युजे । तस्यैव सोपि तदादाय रथ प्रलक्षिपन्कुधा ॥ १६३ ॥ खड्गद्वयं हयग्रीवग्रीवा सद्यो व्यधादद । त्रिखंडाधिपतिर्वैन त्रिपृष्ठं चार्द्धचक्रिण ॥ १६४ ॥ विजयेनावलम्ब्येन विजयेनैव चक्रभृत् । विजयादं समं गत्वा रथमुपगृध्रति ॥ १६५ ॥ श्रेणिद्वयाधिपलेन प्रापयचक्रवर्तिता । प्रमोदमूर्फलस्यात्र व्यक्तिः कोपप्रसादयोः ॥ १६६ ॥ राज्यलक्ष्मीं निर युक्त्वाप्यनुत्वा भोगकांक्षया । युत्वागास्तप्तमीं पृथ्वीं वह्निर्दरभयप्रहः ॥ १६७ ॥ परस्परकृत दुःखमनुभूय निरयुया । स्वधात्रीकृतदुःखं च तस्मान्निर्गल्य दुस्तरात् ॥ १६८ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते गगनवीरतटवसीपते । वने सिंहगिरे सिंहे भूत्वासा वृद्धितां हसा ॥ १६९ ॥ रत्नप्रभां प्रविशैव प्रज्वलद्बहिर्हमासवान् । दुःखमेकाधिभयमायुततटस्थुत्वा पुनथ सः ॥ १७० ॥ द्वीपेस्मिन् सिंहकूटस्थ प्राग्भागे

कर डालता है और सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार त्रिपृष्ठने आश्वीवकी हरा दिया ॥ १६१ ॥ जब आश्वीव से चकित हुआ आश्वीव मायायुद्धमें भी हार गया तब उसने त्रिपृष्ठ पर अत्यन्त कठोर चक्र चलाया ॥ १६२ ॥ वह चक्र त्रिपृष्ठकी मदन्तिणा देकर शीघ्र ही उसकी दाहिनी भुजापर आ ठहरा वही चक्र त्रिपृष्ठने क्रोधित होकर आश्वीवपर चलाया उसने जातेही आश्वीवकी ग्रीवाके दो ठुकड़े कर दिये । त्रिखंडका अधिपति होनेसे त्रिपृष्ठको अर्द्ध चक्रिका पद मिला ॥ १६३-१६४ ॥ विजय करनेवाली सेना तथा भाई विजयके साथ वह चक्रवर्ती विजयादं पर्वतपर गया और रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीको दोनों श्रेणी के चक्रवर्तीका पद दिया सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके क्रोध और प्रसन्न होनेका फल यहांही प्रगट मिल जाता है ॥ १६५-१६६ ॥ उस त्रिपृष्ठने बहुत दिन तक राज्यलक्ष्मीका उपयोग किया परंतु भोगोंकी आकांक्षा से वह रथ नहीं हुआ इसलिये बहुआरंभ परित्यही होनेसे वह परकर सातवें नरक गया ॥ १६७ ॥ वहां बहुत दिनतक परस्पर किये हुए अनेक दुःखोंका अनुभव किया और वहां की पृथ्वी सम्बंधी अनेक दुःखोंका अनुभव किया । तदनंतर उस कठिन भूमिसे निकल कर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें गंगा नदीके किनारे सिद्धगिरि पर्वतपर बड़े हुए पापोंके कारण वह सिंह हुआ वहांसे परकर फिर जलती हुई अग्निके समान पहिले नरकमें गया वहांपर एक सागरकी आयु तक अनेक दुःख भोगे और फिर वहांसे निकलकर इसी जंबूद्वीपमें सिंहकूटके पूर्वकी ओर हिमवान पर्वत की शिखरपर देदीप्यमान केसरसे सुशोभित सिंह हुआ ॥ १६८-१७१ ॥ उसकी दाढ़ों तीक्ष्ण थीं मूल कराल या और वह बदाही भयंकर था । किसी एक समय वह एक हिरण्यको मार कर खा रहा था उसीसमय अत्यंत कृपालु चारण्य मुनि अजितंजय मुनि-

विषयो बाधना मया ॥ १४८ ॥ लबा चारुवायोत्र पार्ययसमापतः । न कार्य वंवायोत्र गुणदोषपरीक्षण ॥ १४९ ॥ विप्रदयोः प्रसिद्धतायाश्च न-  
द्राखिलयोसिक् । पूज्य मद्राणिनेयस्य त्रिपृष्ठस्य स्वयंप्रभा ॥ १५० ॥ मस्तुता आमिनीनास्य लक्ष्मीः खड्गयोद्धता । आतनोदु रतिं सत्यां समताद् भूयसी-  
मिति ॥ १५१ ॥ प्रजापतिमहाराजः श्रुत्वा तदंशुभाषितं । मया तेनेष्टमेष्टमिलमालमतोवयत् ॥ १५२ ॥ सोमि संप्राप्तसंगानदानत्तेन । विसर्जितः ।  
सद्यः संप्राप्य तत्सर्वं समहीयं न्यवेदयत् ॥ १५३ ॥ ज्वलनादिजटी चाशु सार्ककीर्तिं स्वयंप्रभा । आनीय सर्वसंपत्त्या त्रिपृष्ठाय समर्पयत् ॥ १५४ ॥  
यथोक्तविभिना सिद्धवाहिनीं गरुडादिकां । वाहिनीं च ददौ सिद्धविये विदितशक्तिके ॥ १५५ ॥ चारोपनीतद्वर्ताज्वलनज्वलितोशय । विद्यात्रितयसंपन्नै-  
त्रिद्यावरपराधियैः ॥ १५६ ॥ कवचं चरभ्यमित्रीणरायुधीयैर्भट्टैः । रथावतीचल प्राप्तदशमीवो युमुत्सया ॥ १५७ ॥ तदागमनमाकर्ण्य चतुरंगवर्त्तान्व-  
तः । प्रागेवागल्य तत्रास्यात्त्रिपृष्ठो विपुनिष्ठुरः ॥ १५८ ॥ कुद्वचा ता युद्धसमन्वितोद्धतां रुद्रमात्सरो । स्वयं सचन्निवभिः सार्द्धं वारसंघातवर्षणे ॥ १५९ ॥  
अपनीं पुत्री स्वयंप्रभा देना चाहता हूं वह इसकी स्त्री होकर तीनवडमे उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान अपने आप अपनेमें व-  
हुतसा प्रेम उत्पन्न करेगी ॥ १६१ ॥ महाराज प्रजापति अपने भाईके ऐसे वचन सुनकर उस मंत्रीको संतुष्ट करनेके लिये  
उसे विदा किया । उस मंत्रीने भी शीघ्रही जाकर अपने राजासे सब समाचार निवेदन किये ॥ १६२ ॥ इसतरह संतुष्टकर तथा बहुतसा आदरसत्कार कर  
कीर्तिके साथ शीघ्रही आया और स्वयंप्रभाको लाकर वही विभूतिके साथ त्रिपृष्ठको व्याह दी ॥ १६३ ॥ ज्वलनजटी अर्क  
ज्वलन जटीने त्रिपृष्ठको शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जिनकी शक्ति प्रसिद्ध है और जो सिद्ध हैं ऐसी सिद्धवाहिनी  
और गरुडवाहिनी दो विद्याएं दीं ॥ १६४ ॥ इधर अभ्यग्रीवने यह सब अपने दूतोंसे सुनी जिससे उसका हृदय क्रोधरूपी  
अग्निसे जल उठा तथा वह युद्ध करनेकी इच्छासे तीनों तरहकी विद्याओंसे सुशोभित ऐसे अनेक विद्याधर राजाओंके  
मार्गमें चलनेवाली सेना, शत्रुके सामने जाकर पराक्रम दिखानेवाले योद्धा और शस्त्र आदिसे युक्त अनेक योद्धाओंके साथ रथावर्त  
अपनी चारों तरहकी सेना साथ लेकर तथा उससे पहिले आकर वहां आ डटा ॥ १६५ ॥ ये दोनों ही उद्धत होकर  
घिरे हुए सूर्यके समान क्रोधित होकर युद्धके लिये तैयार हुए तथा अनेक बाणोंकी वर्षा करने वाले धनुष्यारी अभ्यारोही  
रथसवार, हाथीसवार और पैदल चलने वाले आदि लोगोंको चारों ओर कर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार द्यूहकी रचना  
कर वही भारी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ १६६-१६७ ॥ जिसप्रकार सिंह हाथीको भगा देता है वज्र वडे पर्वतको भी चूर्ण

भूषणं । योषितसंगे इतार्थत्वं स्वया सावनयद्विधिं ॥ १३७ ॥ तां वीक्ष्यापूर्णसौदर्या समीपीकृतचित्तया । पिता वितरितुं कस्य योग्यमिति चिंतयन् ॥ १३८ ॥ तदैवाङ्गुय संमिश्रश्रोतारं तरप्रयोजन । अपृच्छत्स निमित्तेषु कुशलः समभाषत ॥ १३९ ॥ केशवस्यादिमस्त्येय महादेवी भविष्यति । त्वमप्याप्यसि तरतां खगानां चक्रवर्तितां ॥ १४० ॥ इति तद्वचन त्विसे प्रत्येयमवधार्य स । अमाल्यभिद्रनामानं भक्तिकं सुश्रुतं शुचिं ॥ १४१ ॥ सलेखं प्राश्रुत दत्वा प्राणिनोत्प्रेदन प्रति । गत्वाशिलवितं सोपि बने पुण्यकरंडके ॥ १४२ ॥ पोटनाधिपतिं स प्रणाममालोक्य पत्रक । सप्राश्रुतं प्रदायाहमे यथास्थानमुपावि शत ॥ १४३ ॥ विलोक्य सुभ्रासुदुर्मिय तदवस्थितपत्रक । प्रसार्य वाक्यामास न्युकः सधिविग्रहे ॥ १४४ ॥ श्रीमानित खगाधीशो निजलोकशिखा मर्गः । खानुरकाप्रजो राजा नगरद्वयनुरात ॥ १४५ ॥ ज्वलनादिजटी रूयतो नमिंश्चावारांशुमान् । पोटनाख्यपुराधीश प्रजापतिमहादृढं ॥ १४६ ॥ आदिभट्टारकोत्समबहुबल्यन्वयोद्भव । प्रणम्य शिरसा ब्रह्माङ्कुशलप्रपूर्वक ॥ १४७ ॥ सप्रश्रयं प्रजानाथमिदं विज्ञापयत्यसौ । वैवाहिक स सुवचो करने लगा कि यह किसको देनी चाहिये किसके योग्य है ॥ १३८ ॥ उसी समय उसने संभिक्षश्रोता नामके पुरोहितको बुलाया और उससे प्रयोजन पूछा वह पुरोहित निमित्तयाह्वनं बहुत ही कुशल या इसलिये कहने लगा कि यह स्वयंप्रभा पहिले नारायणकी पहरानी होगी और आप भी उस नारायणके द्वारा दिये हुए विद्याधरोके चक्रवर्ती पदको अर्थात् सब विद्याधरोके अधिपतिका पद प्राप्त करेंगे ॥ १३९-१४० ॥ उसकी इसप्रकार विश्वास करनेयोग्य बात चित्तमें धारणकर उसने पवित्र हृदयवाले, शास्त्रोंके जानकार और राजभक्त ऐसे इंद्र नामा मंत्रीको बुलाया तथा लेख और भेट देकर उसे पोटनपुर भेजा । वह शीघ्रतासे जाकर पोटनपुर जा पहुंचा उससमय पोटनपुरका अधिपति पुण्यकरंड वन में था । मंत्रीने राजाको प्रणाम किया, पत्र दिया, भेट दी और फिर अपने योग्य स्थानपर जा बैठा ॥ १४१-१४३ ॥ राजा प्रजापतिने सुहर देखकर वह पत्र खोला और भीतरका पत्र निकालकर बांचा । उसमें लिखा था कि संधि विग्रहमें नियुक्त, विद्याधरोका स्वामी, अपने लोकका शिखामणि, अपनी प्रजाको प्रसन्न करनेवाला महाराज नभिके वंशरूपी आकाशका सूर्य श्रीमान् प्रसिद्ध राजा ज्वलनजटी रथनूर पुर नगरसे पोटनपुर नगरके स्वामी, भगवान् दृषभदेवके पुत्र बाहुवली के वंशमें उत्पन्न हुए महाराज प्रजापतिको शिरसे नमस्कार कर बड़े प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछता है तथा महाराज प्रजापति को बड़ी विनयके साथ यह निवेदन करता है कि इससमय आपको हमारे साथ वैवाहिक संबंध कर लेना चाहिये हमारा आपका यह संबंध परंपरासे चला आया है इसलिये इसमें आज बंशके गुण तथा दोनों की परीक्षा करनी भी आवश्यक नहीं है क्योंकि सूर्य चंद्रमाके समान हम दोनों वंशोंकी विशुद्धि जगत्प्रसिद्ध है । हे पूज्य ! मैं अपने भानजे त्रिपृष्ठके लिये



रामिष्टुतः । किं किं इव निर्भक्तो नमितामरमस्तकः ॥ १२६ ॥ बिला ज्योत्स्नां हृदिहानिमतां निरं । अतिरत्नाखिलं व्याप्य शशिनी देव-  
सः स्थिता ॥ १२७ ॥ उदकक्षेप्यां सगाभीशो, मयूरग्रीवनाममाक । नीलांजना प्रिया तस्यामृणयोरलकापुरे ॥ १२८ ॥ शिवाकानंद संसारे निरं अ-  
व्यतिष्ठु स्तितः । अश्वप्रीवासिधः सुलजनिष्ठापचारवात् ॥ १२९ ॥ ते सर्वे पुरोपासपुण्यपापविशेषिनः । अमीष्टकामभोगोपभोगोत्प्लुताः स्थिताः  
कुल ॥ १३० ॥ इतः क्षेत्रभूमर्तुदक्षिणश्रेण्यलङ्कति । रथपुरशब्दादिककवालपुरी परा ॥ १३१ ॥ उषलनादिजटी पति तां स वा पाकशासनः । कुल-  
साधितसंप्राप्तविद्या, त्रयविभूषित ॥ १३२ ॥ अतापोपनतालोपापाच्येणिसचरेणिनां । तिनमयैस्त्रिआलाभिरलंकृतपदावुजः ॥ १३३ ॥ वायुवेगा प्रिया तस्य  
चंद्रामस्तचरेणिनः । सुमद्रायाश्च तनया पुरे द्युतिलकाह्वये ॥ १३४ ॥ अर्ककीर्तिलयो मूलः अतापैनार्कजित् सुधी । कुला स्वयंप्रभाह्वयात् प्रभवेव महा-  
मणि ॥ १३५ ॥ क्षीलक्षणाणि सर्वणि शालान्यापादमस्तक । उदाहरणतामापन् व्याप्य व्यकानि तप्तनु ॥ १३६ ॥ संप्राप्य धैवनं तन्वी भूषणानां च  
वह सब संसारमें व्याप्त होकर फैल गई थी ॥ १२७ ॥ इधर विजयादे पर्वतकी उत्तर श्रेणीके अलकापुर नगरमें मयूर  
ग्रीव नामका विद्याधरोंका राजा रहता था उसकी रानीका नाम नीलांजना था उसके विशाल नंदका जीव बहुत दिन तक  
संसारमें परिभ्रमण कर तथा बहुत दुःखी होकर अनेक दुराचार करनेवाला अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ था ॥ १२८-१२९ ॥  
वे सब अपने अपने पुरय पाप कर्मोंके अनुसार इच्छानुसार कामभोग उपभोग आदिसे तप्त होकर सुखसे रहते थे ॥ १३० ॥  
इन्हींदिनों विजयादे पर्वतकी दक्षिण श्रेणीको अलंकृत करनेवाली रथपुरचक्रवाल नामकी उत्तम नगरी थी उसमें इन्द्रके  
समान ज्वलनजटी नामका विद्याधर राज्य करता था तथा कुलपरंपरासे चली आई सिद्धकी हुई तथा प्राप्त ऐसी तीनों  
विद्याओंसे वह विभूषित था ॥ १३१-१३२ ॥ उसने अपने प्रतापसे दक्षिण श्रेणीके सब विद्याधर नवा लिये थे और  
उनके नवे हुए सुकुटुमालासे उसके चरण कमल सदा सुशोभित रहते थे ॥ १३३ ॥ उसकी रानीका नाम वायुवेगा था  
जो कि द्युतिलक नगरके विद्याधर राजा चंद्रमाकी रानी सुभद्राकी पुत्री थी ॥ १३४ ॥ उस वायुवेगाके अर्ककीर्ति नामका  
पुत्र था जो कि प्रतापसे सूर्यको भी जीतता था और बुद्धिमान था तथा उसी वायुवेगाके कांतिके द्वारा महामणिके समान  
सुशोभित होनेवाली स्वयंभवा नामकी पुत्री थी ॥ १३५ ॥ उस स्वयंभवाके शरीरमें सिरसे पैर तक सब स्त्रियोंके प्रशं-  
सनीय सुलक्षण थे जो कि उसके शरीरमें व्याप्त होकर अत्यन्त उदाहरण बने थे ॥ १३६ ॥ आभूषणोंको भी सुशो-  
भित करनेवाले यौवनको पाकर, उस स्वयंभवाने स्त्रियोंको बनानेमें विद्याताको भी स्वयं कृतार्थ किया था ॥ १३७ ॥  
पूर्ण सुंदरी और कामावस्थाके समीप पहुंचनेवाली उस कन्याको देखकर उसका पिता ज्वलनजटी विचार



११७ ॥ नयप्रभूतसकुन्दगोचेषुप्रतिपातनात् । प्रस्फलत समीक्ष्यैतं भुनि कोपरपायण ॥ ११५ ॥ तत्राय तच्छिवास्तम्भंगदृष्टः पराक्रम । क यात इति दुश्चितः परिहारं व्याधादौ ॥ ११६ ॥ मुनिश्च तद्वक्ष्ये तस्यैवार्थं प्रकीर्णवान् । परिहासफल प्राप्नुसीति स्वातर्गतं वदन् ॥ ११७ ॥ सनिदानो भवप्राप्तो कृतसंयसनक्रिय- । स्वय विद्यास्वभूतिश्च महाशुक्लमुगाधिता ॥ ११८ ॥ तत्र षोडश आराधमानमेयायुधौ चिरं । भोगान् मुक्त्वा ततश्च्युत्वा शीपेस्मिन्नैव भारते ॥ ११९ ॥ सुरम्यविषये रम्ये पोदनाख्यपुरे नृप । प्रजापतिर्महाराजोऽजनि देवी जयावती ॥ १२० ॥ तस्यासीदनयोः सूनुः पितृव्यो विश्वमदिन । विजयाख्यस्ततोऽप्यैव विश्वनयनतरं ॥ १२१ ॥ युगावल्यामभूदुग्रः त्रिपृष्ठो भाविचक्रयत् । त्रिखंडाधिपतित्वस्य स पूर्वगणा गतः ॥ १२२ ॥ उद्वेगेनैव निर्वृत्तैरुचिकोऽयमक्रमात् । अर्कस्यैव प्रतापोऽस्य व्याप्य विश्वमनुस्थितः ॥ १२३ ॥ अनन्यगोचरा तस्मीरस्येयसमाः स्वय । इममेव प्रतीक्ष्यास्ता माडोत्सुक्यार्द्धचक्रिणां ॥ १२४ ॥ तस्मीजाछनमेवास्य चक्र विक्रमसाधिनं । मागषायाभरारक्ष्य ससमुद्र महोत्तल ॥ १२५ ॥ सिंहशैथेयमित्येव होमुर्वाकै-

था वह आज कहाँ चला गया इस तरह उसने खोटे परिणामोंसे मुनिकी हंसीकी । मुनि भी उसके बचनोंको चित्तमें धारण कर कुछ क्रोधित हुए और मनमें ही कहने लगे कि इस हंसी करनेका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा ॥ ११५-११७ ॥ अंतमें उसने निदान किया संन्यास धारण कर शरीर छोड़ा और महाशुक्ल नामके स्वर्गके विमानमें देव हुआ तथा विशालभूति भी वहीं देव हुआ ॥ ११८ ॥ वहां पर उन्होंने सोलह सागर तक देवोंके सुख भोगे फिर वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनपुर नगरमें महाराजाधिराज राजा प्रजापतिकी रानी जयावतीसे विश्वभूतिका जीव विजय नामका पुत्र हुआ उसके बाद इसी राजाकी दूसरी युगावती रानीसे विश्वनंदीका जीव त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ वह त्रिपृष्ठ होनहार चक्रवर्ती ( अर्द्धचक्री ) था और तीन खंडके अधिराजाओंमें अर्थात् अर्द्धचक्रवर्तियोंमें सबसे पहिला था ॥ ११९-१२० ॥ उसके उत्पन्न होते ही सब शत्रुओंको एक साथ नष्ट करनेवाला सूर्यके समान उ-सका प्रताप सब संसारमें व्याप्त होकर भर गया था ॥ १२१ ॥ अर्द्धचक्रवर्तियोंमें गढ़ उत्सुकता रखनेवाली और जो दूसरी जगह न रह सके ऐसी लक्ष्मी असंख्यात वर्षसे स्वयं इस त्रिपृष्ठकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥ १२४ ॥ पराक्रमसे सिद्ध हुआ तथा लक्ष्मीके चिन्हवाला उसका चक्र था मगध आदि देव उसकी रक्षा करते थे और समुद्र सहित सब पृथ्वी उसकी ही थी ॥ १२५ ॥ देवोंके मस्तकको भी नष्टी भूत करनेवाला वह त्रिपृष्ठ यद्यपि सिंहके समान पराक्रमी था बुद्धिमान लोग इसी तरह उसकी स्तुति करते थे तथापि वह सिंहके समान निर्भय था ॥ १२६ ॥ उसकी कीर्तिने परिमित क्षेत्रमें रहनेवाली और भी दीन वृद्धि सहित ऐसी चंद्रमाकी चांदनी भी जीत ली थी और ब्रह्माकी जातिके समान

न्यभजन । इति भवा निवृत्त्यासा हनुं सुवनहारिण ॥ १०५ ॥ प्राव्यावान् भयाहत्वा सा कपित्थमहीरुहं । कृत्वा श्रुति स्थित स्फीतं कुमारोपि महीरुहं ॥  
 १०६ ॥ समुन्मूल्य निहंतु त तेनाधानस्ततोप्यस्या । अपष्टय शिलास्तमस्मात्तर्धान यथा पुनः ॥ १०७ ॥ वली तलयद्वारेण स्तम्भ चापाल्य स हृत । पलाय-  
 मानमालोक्य तस्मादप्यपकारिण ॥ १०८ ॥ भामिरीरिति साहादकारुण्याभ्यां प्रचोदित । समाहूय वन तस्मै दत्त्वा संसारदुःस्थिति ॥ १०९ ॥ भावयित्वा  
 यथा वीक्षां संभृतपुरसन्निधौ । अपकारोपि नीचानामुपकार सता भवेत् ॥ ११० ॥ तदा विशाखभूतिश्च सजातानुशयो मया । कृतं पापमिति प्रायश्चित्तं वा  
 प्राप संयम ॥ १११ ॥ कुर्वन् घोरं तपो विश्वनदी देशान् परिस्रमन् । कृशीभूतः क्रमात्प्राप्य मथुरां स्वतनुस्थिते ॥ ११२ ॥ प्रविष्टवान् विनयशतमवलम्ब्य-  
 पदस्थितिः । तदा व्यसनसंयगो ब्रष्टाज्यो महीपतेः ॥ ११३ ॥ कस्यचिद् दूतभावेन मथुरां पुरमागत । विशाखनदो वेदयाया प्रापादतलमाश्रितः ॥

का उद्योग करने लगा । यह देव कर विशाखनंद भयसे भागा और एक कैथके वृक्षपर चढ़ गया । परंतु कुमार विश्वनंदी ने उसे मारनेके लिये वह वृक्ष ही उखाड़ डाला । तदनंतर वह विशाखनंद वहांसे भी भागा और दौड़कर एक पत्थरके खंभेके नीचे जाकर छिप गया । कुमार विश्वनंदीने वह खंभा भी हथेलियोंकी चोटसे बहुत शीघ्र तोड़ डाला जिससे वह विशाखनंद वहांसे भी निकल कर भागा उस अपकार करनेवाले विशाखनंदको भागता हुआ देखकर सौहार्द और कल-  
 शासे प्रेरित होकर विश्वनंदीने उसे धीरज दिया और कहा कि अब तू हरे मत यहां आ । उसने इसतरह डुलाकर वह वन उसे दे दिया और स्वयं संसारकी ऐसी ही दुःखमय अवस्थाका विचार कर संभृत नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है नीच लोगोंका किया हुआ अपकार भी सज्जनोंके लिये उपकार हो जाता है ॥ ५-  
 १० ॥ उस समय विशाखभूतिकोभी पश्चात्ताप हुआ वह सोचने लगा कि यह मैंने एक पाप किया है इसलिये इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये यही सोच कर उसने संयम धारण कर लिया ॥ १११ ॥ इधर विश्वनंदी घोर तपश्चरण करता और आहारके लिये शहरमें गया उन दिनों अपने आत्मवलको खोकर तथा अपने राज्य पदसे अष्ट होकर विशाखनंद पकानके संसर्गसे राज्य अष्ट हो गया था और किसी राजाका दूत बनकर मथुरा नगरमें पहुंचा वह मुनिराजको देख कर क्रोधित हुई और उसने उन विश्वनंदी मुनिको धक्का देकर गिरा दिया । उन्हें गिरते हुए देख कर क्रोध करता हुआ वह विशाखनंद ब्रह्मने लगा कि क्यों जो पत्थरके खंभेको तोड़ देनेवाला पराक्रम पहिले दिखाया

धो ॥ १३ ॥ महां मनोहरान् दयतां भवतामथा । कुर्वां देवपरिष्ठागमहसिन्धुषाक्षो ॥ १४ ॥ ब. ग. दत्त्वपि भोगेषु विरुद्धविषमप्रिय । भवे-  
 त्त्रावि भवे भूयो भविष्यद्गु सभारसाक् ॥ १५ ॥ शुक्ला तद्वचन मिते निषाद्य सेहर्षिभर । कियते प्रदशमीति संतोष्य तनुज निज ॥ १६ ॥ विभनश्चिन-  
 माहूय राज्यभारस्वगानुना । शुद्धतामहमाकम् प्रत्यतप्रतिभूयत ॥ १७ ॥ कृत्वा तन्मनितकौमप्रश्रान्ति मन्त्रितेर्दिते । प्रत्येध्यामीति सोबाच धृत्वा ततप्र-  
 सुवाच त ॥ १८ ॥ पूज्यपादस्त्वयात्रैव निश्चितमुपविदे तां । गगारयेव त श्रेय करोमीति सुतोषमः ॥ १९ ॥ राज्यमस्थीव मे सेहाङ्गादानीत्यतर्कयन् ।  
 बर्ताममिर्षिसिस्त्रभूत विपदुराशयं ॥ २० ॥ ततश्चानुयते तस्मिन् स्वबलेन सम रिपुः । निर्मैतु विहितोयोगे गते विक्रमशालि ॥ २०१ ॥ वन वि-  
 शासनदाय केडाद्वन्द्यामकाक्षिणे । विशाखभूतिरुद्धय क्रम गतगतिर्दौ ॥ २०२ ॥ विश्वनदी तदाकर्ण्य सद्य कोषामिदीपितः । परय मामिति संधाय प्र-  
 त्यतुष्टयतीत्यति ॥ २०३ ॥ प्रहय मदन दत्त पितृज्जेणात्मसूने । देहीति बचनाभाह किं दशमि क्षिप्रद्वनं ॥ २०४ ॥ निदधालस्य दुश्शत्रु मम साज-  
 तरमें भी होनहार दुःखोंका भार ही धारणा करनेवाला होता है ॥ २३-२४ ॥ पुत्रकी बात सुन कर तथा हृदयमें धा-  
 रणा कर बड़े स्नेहसे कहने लगा कि यह कितनी बड़ी बात है मैं तुम्हें वह उद्यान अवश्य दूंगा इस तरह पुत्रको संतुष्ट कर  
 उसने विश्वनंदीको बुलाया और उससे कहा कि इस समय यह राज्यका भार तुम स्वीकार करो मैं पर्वतोंके समीप रहने  
 वाले राजाओं पर चढ़ाई करूंगा और उन लोगोंने जो लोभ कर रक्खा है उसे शांत कर थोड़े ही दिनमें लौट आऊंगा  
 अपने काकाके इस प्रकारके बचन सुन कर वह विश्वनंदी कहने लगा कि हे पूज्यपाद ! आप निश्चित हों कर यहां ही  
 रहें मैं स्वयं जाकर उन लोगोंका आपके पास भेज देता हूँ । उस श्रेष्ठ पुत्रकी बात सुन कर उसने यह न विचार कि  
 वास्तवमें राज्य तो इसीका है परंतु भाईने स्नेहसे मुझे दिया था । केवल एक बनके लिये ही उसे टाकर बाहर भेजा  
 इस लिये ऐसे दुष्ट आशयको भी धिक्कार हो ॥ २६-१०० ॥ तदनंतर वह पराक्रमी विश्वनंदी काकाकी आज्ञा-  
 नुसार अपनी सब सेना लेकर शत्रुओंको जीतनेकी तैयारी करने लगा और नगरसे बाहर निकला ॥ १०१ ॥ उसके  
 बाहर निकल जाने पर निर्दुष्टि विशाखभूतिने क्रमका उल्लंघन कर अन्यायकी इच्छा करनेवाले विशाखनंदको यह वन केवल  
 स्नेहसे दे डाला ॥ १०२ ॥ विश्वनंदी इस बातको सुनकर शीघ्र ही क्रोधरूपी अग्निसे उदीपित हुआ और विचार करने  
 लगा कि देखो काकाके मुझे पर्वतीय राजाओंके समीप भेजकर तथा मेरा उद्यान मुझसे छुटाकर अपने पुत्रको दे दिया  
 क्या मांगने पर मैं नहीं देता ? उद्यान है कितनी बड़ी चीज ? ॥ १०३-१०४ ॥ वास्तवमें इसकी यह दुश्चेष्टा मेरी  
 सज्जनता नष्ट कर रही है यही सोचकर वह अपने वन लेने वालेको मारनेके लिये लौट पड़ा और विशाखनंदको पकड़ने

सुतोस्मिन् वेदवेदिनः ॥ ८२ ॥ शांतिव्याख्यस्य मुख्यस्य पाराशर्यां स्वसङ्घाया । स्वाधरो वेदवेदाङ्गपारगः पापभाजनः ॥ ८३ ॥ मतिं भुत तप शांतिः समान्तिस्वरवीक्षणं । सर्वं सम्यक्स्वरूपस्य मरीचेतिव निष्फलः ॥ ८४ ॥ परित्राजकरीक्षायाभासक्तिं पुनगदधत् । सप्ताब्ध्युपमितायुष्को माहेंद्रे समभूत् सत् ॥ ८५ ॥ ततोवतीर्य देहोस्मिन् मगधाख्ये पुरोत्तमे । जतो राजगृहे विश्वभूतिनाम्नो महीपते ॥ ८६ ॥ जैन्याश्च तनयो विश्वनरी विख्यातपारुषः । विश्वभूतिमहीभर्तुर्गजातो महोदयः ॥ ८७ ॥ विशालभूतिरेतस्य लक्षणायात्मयुद्धेयीः । पुत्रो विशालनन्दराहास्तौ सर्वे सुखमास्थिताः ॥ ८८ ॥ अन्येषु शरदशस्य विभूतिं वीक्ष्य शुद्धची । निर्विण्णो विश्वभूत्याख्यः स्वराज्यमनुजन्मति ॥ ८९ ॥ निधाय यैवराज्यं च स्वसूना महदप्रणीः । सात्त्विकैः किरातैः सार्धं राजस्मिन्नीतरूपतां ॥ ९० ॥ श्रीभराह्यपुरोः पार्श्वे समादाय समलभाक् । बाह्यमाभ्यन्तरं चोपमकरोत्स तपश्चिरं ॥ ९१ ॥ अथान्यथा कुमरोत्तो विश्वनरी मनोहरे । निजोद्याने समस्तमिदं वीभिः क्रीडया स्थितः ॥ ९२ ॥ विशालनन्दस्य दृष्ट्वा तदुद्यानं मनोहरं । स्वीकृतं मतिमाधाय गत्वा स पितृसन्नि

परगामी था तथा अनेक पापोंका पात्र था ॥ ८०-८३ ॥ उसका मतिज्ञान, भुतज्ञान, तप, शांति, समाधि और तत्त्वान्वेषण आदि सब सम्यक् रहित अर्थात् मिथ्या था और मरीचिके समान सब निष्फल था ॥ ८४ ॥ फिर भी वह परिव्राजक की दीक्षा में ही आसक्त हुआ और मरकर माहेंद्र स्वर्ग में सातसागर की आयु पाकर देव उत्पन्न हुआ ॥ ८५ ॥ वहां से आकर इसी मगध देशके राजगृह नगर में राजा विश्वभूतिकी जैनी नामकी रानीसे विश्वनंदी नामका प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र हुआ । इसी राजा विश्वभूति के छोटे भाई का नाम विशालभूति था जोकि बहुत ऐश्वर्यशाली था उसकी लक्ष्मणा नाम की स्त्रीसे विशालनन्द नामका बुद्धिहीन पुत्र उत्पन्न हुआ था ये सब लोग सुखसे निवास करते थे ॥ ८६-८८ ॥ किसी दूसरे दिन शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विश्वभूति शरदऋतुके बादलों को नष्ट होते देखकर विरक्त हुआ उस सबके नायक राजाने अपना राज्य तो अपने छोटे भाईको दिया और युवराज पद अपने पुत्रको दिया तथा सात्त्विक वृत्ति को धारण करने वाले तीनसौ राजाओंके साथ उसने श्रीधर नामके मुनिराजके समीप दिगम्बरी दीक्षा धारण की समता रूप परिणाम किये और बहुत दिनतक बाह्य आभ्यन्तर दोनों तरह का उग्र तपश्चरण किया ॥ ८९-९१ ॥ अथानंतर किसी एक दिन वह विश्वनंदीकुमार अपने मनोहर नामके उद्यान में अपनी सब स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा था ॥ ९२ ॥ विशालनन्द उसे इस तरह क्रीडा करते देख कर उस मनोहर बनको अपने आधीन करनेकी इच्छासे पिताके समीप गया और पितासे कहने लगा कि आप था तो मनोहर नामका उद्यान मुझे दीजिये नहीं तो मैं आपका देश छोड़ कर चला जाऊंगा । सो ठीक है समीचीन भोगोपभोग सामग्रीके रहते हुए भी जिसे विरुद्ध विषय ही अच्छे लगते हैं वह भवों-

वासं विरेजे श्रीश्रीवागता ॥ ५० ॥ प्रभाविकमयोर्लक्ष्मीविधयो वा पुरस्ता । मरुभूतस्तयोरारीन्मरीचिः सुतुप्रणी- ॥ ५१ ॥ स्वपितामहस्यलो ह्यय  
न शुलभकित । राजभिः सह कच्छाद्यै परित्यक्तपरिमह ॥ ५२ ॥ निर सोऽत्रा तप ह्येव धुच्छीतादिपरीषहान् । दीर्घसंसारवासित्वात्पश्चात्तोदुमशकु-  
वत् ॥ ५३ ॥ स्वयं गृहीतुमारुच्यफलप्रावरणादिक । हृष्टा तं देवता नायं क्रमो नैर्मप्यचारिणां ॥ ५४ ॥ गृहाण वेषमन्यत्वं यद्येष्टमि-  
ति चाबुञ्जन् । धृत्वा तद्वचनं सोऽपि गाढमिध्यातवचोदित ॥ ५५ ॥ परित्राजकरीक्षायां प्राणम्य प्रत्यपयत् । दीर्घाजवंजवानां तत्कर्म दु-  
र्भोगं देशान् ॥ ५६ ॥ तच्छब्दचन्द्रबुधाप्यस्य स्वयमेव किलाजनि । सतामिवावता च स्याद्बोध स्ववियये स्वयं ॥ ५७ ॥ धुत्वापि ती-  
र्थकृद्वाच सदस्यं नाग्रहीवत्सै । पुरुर्गथात्मनैर्वात्र सर्वसगवियोजनात् ॥ ५८ ॥ भुवनत्रयसक्षोभकरिसामर्थ्यम सवान् । मनुष्य तथा लोके व्यवस्था-  
समानं यी अथवा कमलके निवास स्थानको छोड़कर आई हुई लक्ष्मीके समान सुशोभित होती थी ॥ ५० ॥ जिसप्रकार  
बुद्धि और पराक्रमसे विशेष लक्ष्मी उत्पन्न होती है उसीप्रकार उन दोनोंके वह पुरुरवा भीलका जीवदेव बरीचि नामका  
मुख्य पुत्र हुआ ॥ ५१ ॥ जिससमय परीचिके बाबा वृषभदेवने दीक्षा धारण की थी उससमय स्वयं गुरु श्रीवृषभदेवकी  
भक्तिसे कच्छादिक राजाओंके साथ उस मरीचिने भी सब परिग्रहोंका त्यागकर दीक्षा धारण की थी ॥ ५२ ॥ उसने  
बहुत दिनतक तो तपश्चरणाका ह्येव धुच्छीतादिपरीषहान् भी सहन किया था लुभा शीत आदि परिग्रहोंको भी सहन किया था परंतु दीर्घ संसारी  
होनेके कारण पीछेसे वह उन्हें सहन नहीं कर सका था ॥ ५३ ॥ इसलिये उसने स्वानेकेलिये फल और ओढ़नेकेलिये  
वस्त्र आदि स्वयं ग्रहण करलिये थे यह देखकर वन देवताने आकर उससे कहा कि निग्रथ दीक्षा धारण करनेवालोंकेलिये  
यह क्रम नहीं है । यदि तुम्हें ऐसा ही करना है तो तुम अपनी इच्छानुसार कोई दूसरा वेष धारण करो । वन देवताकी  
यह बात सुनकर मिथ्यात्वकर्मके प्रवल उदयसे उसने सबसे पहिले परित्राजक दीक्षा धारण की सो ठीक ही है क्योंकि  
जिनका दीर्घ संसार परित्रागण वाकी है उनकेलिये मिथ्यात्वकर्म कुमार्गका ही उपदेश देता है ॥ ५४-५६ ॥ उसमय प-  
रित्राजकमतके शास्त्रोंका थोड़ा बहुत कथन भी उसे अपने आप प्रगट हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समान  
दुष्टोंको भी अपने विषयमें स्वयं ज्ञान हो जाता है ॥ ५७ ॥ उसने तीर्थकरकी वाणी सुनकर भी सदस्यको स्वीकार नहीं  
किया था वह अपने पनमें सोचता था कि जिसप्रकार श्रीवृषभदेवने अपने आप ही सब परिग्रहोंको छोड़कर तीनों लोकों  
के लोभित करनेवाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसीप्रकार मैं भी संसारमें अपने चलाये हुए अन्य मतकी व्यवस्था करूंगा  
और उसके निमित्तसे होनेवाले बड़े भारी प्रभावके कारण इंद्री प्रतीक्षा प्राप्त करूंगा ऐसी मेरी इच्छा है मुझे आज्ञा है

४० ॥ घुरा केत्र नराः के वा सर्वे रूपादिसि समा । इत्यायाता स्वगाधीशा मोमुंभंते विवेचने ॥ ४१ ॥ तत्र पण्यक्रियो वीक्ष्य वाढं घुरकुमारकाः । विस्मयन्ते न रज्ज्ते तामिजातिविशेषत ॥ ४२ ॥ करणानामरीष्टाय शिवयास्तत्र ते तत । न नोकेपि यतस्तत्र नाकिपूजासमुद्भव ॥ ४३ ॥ अष्टत्रिमाणि निर्जितु विमानानि स्वकांक्षलात् । सुरैः कृतगृहाण्यत्र चैकान्या तेषु वर्णना ॥ ४४ ॥ बभूवास्याः पतिः पके-स्वर्गस्मैवाभरेश्वर । भरताह्वयः पुरो सुदुरि-  
श्वाकुलुनंदन ॥ ४५ ॥ अकपनाया भूणाला नमिसुहृद्याब्ध खेचरा । मागधायाश्च देवेशास्त्यक्तमाना समुत्सुका ॥ ४६ ॥ यस्याश्वा मालतीमालासिव स्वाननमौलय । भूषाधिकैकमस्माकमिति सधारयति ते ॥ ४७ ॥ सत्कर्मभावित्तर्भावैः क्षात्रोपशमिकैश्च स । भव्यभावविशेषाच्च श्रेष्ठकाष्ठामाधिष्ठित ॥ ४८ ॥  
आदितीर्यकृतो ज्येष्ठपुत्रो राजसु वोदस । ज्यायांश्चक्री मुहूर्त्तेन मुक्तोय कैस्तुलं ब्रजेत् ॥ ४९ ॥ तस्यानंतमतिर्देवी प्रख्यातिरिव देहिनी । विमुच्य कयला-

थी, वस्त्राभूषण आदि उपकरणोंसे नहीं ॥ ३९ ॥ वहाँके उत्तम मनुष्य प्रायः स्वर्गसे आकर ही उत्पन्न होते थे इसलिये स्वर्गमें उत्पन्न हुई मित्रताके कारण बहुतसे देव स्वर्गसे आकर वड़ी प्रसन्नताके साथ उन लोगोंके साथ क्रीडा करते थे ॥ ४० ॥ इनमें देव कौन हैं और मनुष्य कौन हैं क्योंकि रूपादिकसे सभी समान हैं इस प्रकार बाहरसे आये हुए विद्या-धरोंके राजा उनको अलग पहचाननेमें मोहित हो जाते थे ॥ ४१ ॥ देवकुमार वहाँकी वेण्याओंको देख कर बहुत ही आश्चर्य करते थे परंतु पृथक् जाति होनेके कारण उनके साथ क्रीडा नहीं करते थे ॥ ४२ ॥ इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले जैसे विषय वहां थे वैसे स्वर्गमें भी नहीं थे इस लिये देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर भी वहाँ उत्पन्न होते थे ॥ ४३ ॥ देवोंने जो अपने कौशलसे वहाँके घर बनाये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों अष्टत्रिमा विमानोंको जीतनेके लिये ही बनाये हों फिर भला वहाँका वर्णन करना व्यर्थ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार स्वर्गकी पंक्ति का स्वामी इंद्र होता है उसी प्रकार उस नगरी का स्वामी राजा भरत था जो कि इत्वाकुलमें उत्पन्न हुआ था और वृषभदेवका पुत्र था ॥ ४५ ॥ अकंपन आदि राजा, नमि विनमि आदि विद्याधर और मागध आदि देव अपना अभिमान छोड़कर और उत्कंठित होकर मालती पुष्पोंकी मालाके समान अपना मस्तक मुकाकर जिसकी आज्ञाको धारण करते थे और उसे अपने लिये सबसे अधिक आभूषण मानते थे ॥ ४६-४७ ॥ अपने सत्कर्म्मों की भावनासे तथा कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे उत्पन्न हुए भावोंसे और भव्यत्वके विशेष भावसे वह सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता था ॥ ४८ ॥ वह भरत श्रीआदिनाथ तीर्थंकरका सबसे बड़ा पुत्र था सोलहवां मनु और राजाओंमें चक्रवर्ती था तथा दीक्षा लेनेके अंतर्मुखित वाद ही केवली होगया था इसलिये उसकी ब-रावरी अन्य कौन कर सकता था ॥ ४९ ॥ उसकी स्त्रीका नाम अनंतमति था जोकि शरीरको धारण करनेवाली कीर्तिके

न वामनाश्रोताथडालाश्र न दुष्टराः ॥ ३० ॥ नानिष्टुतालिकाभूमिर्न क्षमाष्टदनादन ॥ ३१ ॥ मध्ये तस्य विनीताख्या हृदयप्राहिणी पुरी । जनाना सा विनीतेव रमणी सत्सुखप्रदा ॥ ३२ ॥ प्रकाशसितुमारुगीयं पुरनिर्माणैकावाल । भक्ति तीर्थकृतस्यार्दा सा शक्रेणैव निर्मिता ॥ ३३ ॥ मुनेर्धर्मानेनेव स्वा-  
मिने वपताकिनी । काचीव मणिनामिच्छे सा शालेन ह्यमापत ॥ ३४ ॥ भूखण्डैव शालेयासा स्वादिकापरिवेष्टितः । शक. कर्ता पतिव्रत्तकी यदि कृतस्कृत भय ॥ ३५ ॥ वतते जिनपूजासां दिन प्रति गृहे गृहे । सर्वभंगलकार्योणां तत्पूर्वत्वाद गृहेष्विना ॥ ३६ ॥ विद्याभ्यासाद्दिना बाल्य विना भोगेन यावन । वादिक्य  
३५ ॥ वतते जिनपूजासां दिन प्रति गृहे गृहे । सर्वभंगलकार्योणां तत्पूर्वत्वाद गृहेष्विना ॥ ३६ ॥ विद्याभ्यासाद्दिना बाल्य विना भोगेन यावन । वादिक्य  
न विना बर्माद्विनातोपि समाधिना ॥ ३७ ॥ नावबोध. क्रियाशून्यो न क्रिया फलवर्जिता । अमुक न फलं भोगो नार्थधर्मद्वयन्युतः ॥ ३८ ॥ प्रधानप्रकृति. प्राय-  
स्व भित्तिवैव साधिका । जनेभ्यस्तद्विब सिन्धो न भूदादिपरिच्छेदः ॥ ३९ ॥ कुरास्तत्र समागल्य स्वर्गायातेनरोत्तमः । स्वर्गसंभूतसौदाहर्द्रदमते सतत मुदा ॥  
वा किवाड खोलनेकी सत्ताईमें ही थी २९ ॥ वहाँके गोपाल ( गजालिये ) भी मूर्ख नहीं थे तथा स्त्री बालक भी इरपोक  
नहीं थे वहाँके वामन ( छोटे कदके मनुष्य ) दुष्ट नहीं थे और चांडाल दुश्चरित्र नहीं थे ॥ ३० ॥ वहाँकी भूमि ईस्व  
और चावलसे रहित नहीं थी पर्वत विना चंदनवाले नहीं थे, सरोवर विना कमलोंके नहीं थे, और वन विना स्वादिष्ट-  
फलोंके नहीं थे ॥ ३१ ॥ उस देगके मध्य भागमें हृदयको मनोहर लगनेवाली विनीता ( अयोध्या ) नामकी नगरी थी  
जो कि विनीत स्त्रीके समान सुख देनेवाली थी ॥ ३२ ॥ वह नगरी ऐसी जान पड़ती थी मानों अपनी नगर रचनकी  
कुशलता दिखानेके लिये अथवा तीर्थकरकी भक्ति दिखलानेके लिये सबसे पहिले इंद्रने ही बनाई हो ॥ ३३ ॥ जिस-  
प्रकार विनयसे मुनिकी बुद्धि सुशोभित होती है, स्वार्थसे सेना शोभायमान होती है, मणिसे क्रूरधनी अच्छी लगती है  
उसी प्रकार मध्यभागमें बने हुए कोटसे वह नगरी शोभायमान थी ॥ ३४ ॥ खाईसे घिरा हुआ वह उस नगरीका कोट  
केवल शोभाके लिये था क्योंकि उसका बनानेवाला इंद्र था और उसका स्वामी चक्रवर्ती था फिर भला उस में भय  
किसका हो सकता था ॥ ३५ ॥ वहाँ पर प्रतिदिन प्रत्येक घरमें जिनपूजा होती थी क्योंकि गृहस्थियोंके सब मांग-  
लिक कार्य जिनपूजापूर्वक ही होते थे ॥ ३६ ॥ वहाँ पर विना धर्मके शुद्धापा व्यतीत नहीं होता था और विना समाधिके मरण नहीं  
विना भोगोंके जीवन व्यतीत नहीं होता था, विना धर्मके शुद्धापा व्यतीत नहीं होता था और विना समाधिके मरण नहीं होता  
होता था ॥ ३७ ॥ वहाँ पर किसीका भी ज्ञान क्रियारहित नहीं था, क्रिया विना फलके नहीं थी, फल विना भोगो-  
पभोगके नहीं थे और भोग अर्थ तथा धर्म दोनोंसे रहित नहीं थे ॥ ३८ ॥ शिरमें हिताहित ज्ञानकी शून्यता नहीं है ऐसा  
ज्ञान मुख्य प्रकृति कहलाती है वह :



शास्त्रभ्यसनशीलो वा ह्यात गुरुकुलं महत् । मन्वादित्रितय्यागलक्षणं व्रतमासदत् ॥ २१ ॥ जीर्णतावसिता सम्यक् पालयित्वादराद्भूतं । सागरोपमदिव्या-  
यु नैवाधर्मोऽन्तिमियो भवत् ॥ २२ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते देशः कैशलाख्योऽस्ति विभ्रुत । आर्यक्षेत्रस्य भग्नस्य सौस्थिल्यं सर्वदा भजन् ॥ २३ ॥ बाधाभावा-  
दरसात्र रक्षकभ्यो विना न सा । अदातारो न कैनास्मात्ते तुल्या ग्राहकैर्विना ॥ २४ ॥ काठिन्य कुचयोरेव नैव चेतसि कस्यचित् । केहि याहीति संप्रयो  
नाधिचैनं मयेन वा ॥ २५ ॥ कलंकक्षीणते राक्षि चण्डएव पश्व न । शिबतिरूपो वनेष्वेव विनाहारादरेषु न ॥ २६ ॥ पीडा तिलातसीक्षणां नान्यप्राणिषु  
केषुचित् । नान्यत्र शिरसस्फुल्लेद प्रवृद्धेष्वेव शास्त्रिषु ॥ २७ ॥ वधोमोक्षश्च राद्धाते भूयते नापराधिषु । विना विमुक्तारोगेभ्यो नान्यत्रेन्द्रियविप्रदः ॥ २८ ॥  
जाड्य जलेषु नान्येषु सुटादिष्वेव तीक्ष्णता । नान्यत्र रुचिकास्त्वेव कृत्ये नान्यत्र वक्रता ॥ २९ ॥ न विदग्धश्च गोपाला न स्त्रीवालाश्च मीरकाः । शठा

के दुःखोंके कारण रूप कभीसे दुखी हुआ मनुष्य इस हमारे जैनधर्ममें आकर तृप्त होता है ॥ २० ॥ जिस प्रकार शास्त्रों  
का अभ्यास करनेवाला शिष्य प्रसिद्ध गुरुकुलमें जाकर विद्याग्रहण करता है उसी प्रकार उस भीलने भी उन मुनिराज  
से मद्य मांस और मद्युके त्याग करने रूप व्रतको स्वीकार किया ॥ २१ ॥ उसने जीवन पर्यंत बड़े आदरसे उस व्रतको  
अच्छी तरह पालन किया और आयु पूर्ण होने पर सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥ २२ ॥ इसी  
जंबू द्वीपके भरतक्षेत्रमें आर्य क्षेत्रके मध्यभागमें सदा अच्छी स्थितिमें रहनेवाला अथवा सदा स्थित रहने वाला कौशल  
नामका एक प्रसिद्ध देश है ॥ २३ ॥ वहां पर किसीको किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी इसलिये वहां  
पर अरक्षा ( रक्षाका अभाव ) थी परंतु वह अरक्षा रक्षकोंके अभावसे नहीं थी । इसी तरह वहां पर कोई दातार नहीं  
थे दातारोंका अभाव कृपणातासे नहीं था किंतु संतुष्ट होनेसे ग्राहकोंके ( मांगनेवालोंके ) अभावसे दाताओंका अभाव था  
॥ २४ ॥ वहांपर कठिनता कुचोंमें ही थी किसीके हृदयमें नहीं थी इसीतरह हमें कुछ दो ये शब्द मांगनेकेलिये नहीं निकलते  
थे तथा जाओ ये शब्द भयसे नहीं निकलते थे ॥ २५ ॥ कलंक और क्षीणता ये दो शब्द चंद्रमामें ही थे किसी अन्य  
राजामें नहीं थे, निराहार रहना तपोवनके तपस्वियोंमें था किसी दूसरेमें नहीं ॥ २६ ॥ तथा पीडा ( कोल्हूमें पेलना )  
तिल अलसी और ईखमें ही थी किसी अन्य प्राणीमें नहीं थी । सिरका काटना बड़े हुए चावलमें ही था दूसरी जगह  
नहीं ॥ २७ ॥ बंध और मोक्ष ये दो शब्द सिद्धांत ग्रंथोंमें ही सुने जाते थे किसी अपराधीकेलिये नहीं, इन्द्रियोंका निग्रह  
विरागी लोगोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २८ ॥ जहता जलमें ही थी कोई मनुष्य मूर्ख नहीं था तीक्ष्णता सोंठ मिरच  
आदि पदार्थोंमें ही थी कोई मनुष्य तीक्ष्णस्वभावका नहीं था इसीतरह वक्रता किसी काममें नहीं थी यदि थी तो ताली

६ । नावेवाभौनिघेरस्य प्रासादं पारमेतया ॥ ५ ॥ कथाकथकयोस्तावद्वर्णनं प्राग्विधीयते । दोषं ताभ्यामदोगाभ्या पुराणं नोपढाकते ॥ १० ॥ सा क-  
था या समाकर्ण्य हेयोपादेयनिर्णय । कर्णकट्वीभिरन्याभि किं कथाभिर्हितायिनी ॥ ११ ॥ रागादिदोषनिर्मुक्तो निरपेक्षोपकारकृत् । भव्याना दिव्यया वा-  
चा कथक स हि कथ्यते ॥ १२ ॥ एतद् द्वितयमत्रैव पुराणे जिनभाषिते । नान्येषु दु पुराणेषु तस्म दुप्राण्यपिद दुर्धः ॥ १३ ॥ अय जवदुमालद्वे द्रीपाना मध्यवृत्ति-  
नि । द्वीपे विदेहे पूर्वस्मिन् सीतामरिदुदकृते ॥ १४ ॥ विषये पुष्कलावल्या नगरी पुढरीकिणी । मधुकाख्यावने तस्य नाम्ना व्यवाधिप भवत् ॥ १५ ॥ पुष्पावाः प्रि-  
यास्थायीत्व लिकाख्याचुरागिणी । अनुरूप विषये हि वेधा सगममगिना ॥ १६ ॥ कद चित्वा नने तस्मिन् दिग्विभागविमोहनत् । मुनि स गसेनह्यय  
पर्यटतमितस्तत् ॥ १७ ॥ विलोक्य त मृग मत्वा मृदुकाम स्वकातया । वनदेव शरतीये मावगीरिति वारित ॥ १८ ॥ तदेव मु स र त्मा ममुपेय पुरु  
रवाः । प्रणम्य तद्वचं श्रुत्वा स यात श्रद्धयाहित ॥ १९ ॥ शीतलंमस्तडाग वा निदाये वृषितो जनः । ससारतु खहेतोवा भीरुर्भैरवर् मत् ॥ २० ॥

से पहिले कथा और कथाके कहनेवाले वक्ताका वर्णन किया जाता है क्योंकि यदि ये दोनों ही निर्दोष हो तो फिर पुराणमें कोई दोष  
प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥ कथा वही कहलाती है जिसको सुनकर हेय और उपदेयका निर्णय किया जाय आत्माका  
कल्याण चाहने वाले लोगोंके कानोंको कड़वी लगनेवाली अन्य कथाओंसे क्या प्रयोजन है ॥ ११ ॥ जो रागादि दोषोंसे  
रहित है और दिव्य वाणीके द्वारा भव्यजीवोंको बिना किसी अपेक्षाके उपकार करनेवाला है वह कथक कहलाता  
है ॥ १२ ॥ ये दोनों ही बातें अर्थात् कथा और कथक श्रीजिनेन्द्र देवके कहे हुए इसी पुराणमें मिलते हैं इसको छांडकर  
अन्य खोटें पुराणोंमें नहीं मिल सकते इसलिये बुद्धिमानोंको इसी पुराणको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥ अथानंतर  
सर्वद्वीपोंके मध्यमें रहनेवाले इस जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारे पुष्कलावती देशमें एक पुढरीकि-  
णी नगरी है उसके मधुनामके वनमें पुरुरवा नामका भीलोंका स्वामी रहता था तथा उससे अनुराग रखनेवाली कालिका  
नामकी उसकी स्त्री थी सो ठीकही है-प्रायः कर्मरूपी विधाता जीवोंका समागम एकसा ही निर्माण करता है ॥ १४-१६ ॥ किसी एक  
दिन दिग्भ्रम हो जानेके कारण सागरसेन नामके मुनि उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे उन्हें देखकर पुरुरवा भील  
हिरण्य समझकर उन्हें पारनेके लिये तैयार हुआ परंतु उसकी स्त्री कालिकाने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि  
ये वनके देवता फिर रहे हैं इन्हें मत मारो ॥ १७-१८ ॥ इस प्रकार उसी समय प्रसन्नचित्त होकर वह भील उन मुनि-  
राजके पास पहुंचा तथा नमस्कार कर उनके कहे हुए वचन सुनने लगा सुनकर उसे श्रद्धा हुई और वह शांत हुआ ॥ १९ ॥  
जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें प्यासा मनुष्य शीतल जलसे भरे हुए सरोवरके पास जाकर वृत्त होता है उसी प्रकार संसार

## अथ चतुःसप्ततितमं पर्व ।

बर्द्धमानो विनः श्रीमाधामान्वर्धं समुद्रहन् । देवान्मे बुधिसुवर्धुषातिकर्मविमितां ॥ १ ॥ तत्पदार्थनिर्वयात्प्राप्य सन्मसित्वं । सुबोधराह् । पूर्यो देवागमाय भूत्वात्राकलको बभूविष ॥ २ ॥ वीरसेनो महावीरो वीरसेनैवैतां गतः । वीरसेनैववर्षाद्विर्वीरसेनेन भावितः ॥ ३ ॥ देवालोकरतवैको लोकालोकाबलोक्ते । किमस्ति व्यस्तमव्यस्मिन्ननेनानवलोकितं ॥ ४ ॥ रूपमेव तव ब्रूते नाथ कोपाद्योदहन । मणेर्मलस्य वैकल्पं महत केन कथ्यते ॥ ५ ॥ अतिक्लम्य कुतीर्यानि तव तीर्यं प्रवर्तते । संप्रत्यपीति नुत्वाजु पुराण तत्प्रचक्ष्यते ॥ ६ ॥ महापुराणवारादिपारावारप्रसिद्धया । विनसेनानुगामिबभूवस्माभिर्निबिबधुभिः ॥ ७ ॥ अगाधोयं पुराणाब्धिरपारध्व भतिर्मम । पश्योत्ताना सपारा च त सितीर्षुः क्लिप्तया ॥ ८ ॥ मतिरस्तु ममेवात्मा पुराण महदहसि-व-

## अथ चौहत्तरिवां पर्व ॥ ७४ ॥

अग्रानंतर-अन्वर्थ नामको धारण करनेवाले श्रीमान वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव घातिया कर्मके नाश होनेसे प्राप्त हुई वृद्धि मुझे दें ॥ १ ॥ तत्त्वार्थके निर्णय करनेसे आपका सन्मति नाम पडा है और देवोंके आगमनसे पूज्य होकर आप अकलंक हुए हैं ॥ २ ॥ आपका नाम वीरसेन है रुद्रके द्वारा आप महावीर कहलाये हैं । अशुद्धिधारी मुनियोंकी सेनाके नायक हैं । गणधर देव आपके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं तथा अनेक मुनिराज आपका ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥ हे देव ! लोक और अलोकके देखनेमें आपका ही केवल ज्ञानरूपी प्रकाश मुख्य गिना जाता है । जिसे आपका दर्शन देख नहीं सकता ऐसा क्या कोई फुटकर पदार्थ संसारमें है ? ॥ ४ ॥ हे नाथ आपका रूप ही क्रोधादिकके अभावको सूचित करता है सो ठीक ही है क्योंकि बहुमूल्य वडी मणियोंके मल कालिमा आदिके अभावको कौन कहने आता है भावार्थ-उनका स्वरूप उन्हींसे मालूम हो जाता है ॥ ५ ॥ हे देव अन्य अनेक कुतीर्योंका उल्लंघन कर वर्तमानमें भी आपका ही तीर्थ चल रहा है इसलिये आपको ही नमस्कार कर आपका ही पुराण कहा जाता है ॥ ६ ॥ यह महापुराण एक महासागरके समान है इसके पार जानेके लिये कुछ कहनेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंको महर्षि जिनसेनका अनुयायी होना चाहिये ॥ ७ ॥ यह पुराणरूपी महासागर अगाध और अपार है और मेरी बुद्धि थोडी और समयार्थ है इसी बुद्धिके अनुसार मैं इस महा सागरके पार होना चाहता हूं ॥ ८ ॥ यद्यपि मेरी बुद्धि छोटी है और यह पुराण बहुत बडा है तथापि जिस प्रकार नावसे ही समुद्रके पार हो जाते हैं उसी प्रकार मैं भी इस छोटीसी बुद्धिसे ही इसके पार हो जाऊंगा ॥ ९ ॥ सब

चासन्त्यम भर्तुं यस्य स सततात्कर्म्यं ह्यस्यवसाप्रणीः ॥ १६६ ॥ किं ध्यानात्कमिनः कर्णीद्रव्यते- . क्षातेर्महेश्वस्तत्तत्तत्प्रान्मप्रविजुभणद्गतं सिधोभते  
रयश्चोदयात् ॥ कालाद्वातिहृतेसिद्ध शममभूत्सिल्यवैहृते सुरैरावाक्योमरविष्णुवित्युतिरथ हव्यात्स वीराप्रणी ॥ १६७ ॥ श्रुत्वा यस्य बचोमृतं धृतिमुत्तं ह्य  
हितं हेतुमन्मिथ्यात्तां सिधिविजोवमीन्द्रपस्मिन् आविद्धदेवरोदधुर ॥ य नैतिस्य च तादृग्युपनतश्रेयः स पाशो विभुर्विप्राय इर्मिथुतामनश्चिन्माध्यास्य सिद्धो-  
हतात् ॥ १६८ ॥ जातः प्रायमरुभूतिरन्विभपसिद्धैर्देवः सहस्रारजो विदेशोच्युतकल्याजः क्षितिभृता श्रीवज्रनाभिः पतिः । देवो मध्यममन्थमे नृगुणैरानन्दनामनते  
देवैर्देवो द्रुतघातिसहतिरव्यवसान्स्व पाशैश्चर ॥ १६९ ॥ कमठः कुम्भकुट्टपर्वः पञ्चमभूतोहिरभमवदय नरकः । न्य भोधागः सिंहो नरकी नरपाण्डु शबरो दिविज ॥ १७० ॥

इत्यार्ये भगवद्गुणभद्राचार्यविरचिते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पार्श्वतीर्थकपुराण परिसमाप्त त्रिसप्ततितम पर्व ॥ ७३ ॥

नाश हुआ, सर्पिणीके छत्र धारण करनेसे घातिया कर्मोंका नाश हुआ घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और केवलज्ञानके प्राप्त होनेसे शरीरकी महिमा बढी इसतरह संवर देवका उपद्रव आपके संसारका नाश करनेवाला हुआ और आपके तीर्थकरका उदय समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला हुआ । हे प्रभो ऐसे उग्रवंशके अग्रगण्य आप सदा होनेवाला यमराजका भय दूर करो अर्थात् मोक्ष दो ॥ १६६ ॥ क्या यह शत्रुका किया हुआ उपद्रव भगवानके ध्यानसे शांत हुआ वा वरयोद्गसे शांत हुआ अथवा वरयोद्गणीसे शांत हुआ, अथवा भगवानकी जग्यसे शांत हुआ, किंवा इन्द्रसे शांत हुआ वा स्वयं शांत हो गया, अथवा किसी तंत्रसे शांत हुआ वा मंत्र पढ़नेसे शांत हुआ, अथवा पुण्यकर्मके उदयसे शांत हुआ वा समय पाकर शांत हुआ इसप्रकार अर्थलिये हुए देव लोक संवरदेवके द्वारा किये हुए जिनके विघ्नोंकी शांतिकी आशंका कर रहे हैं ऐसे शूरवीरोंमें अग्रगण्य भगवान पार्श्वनाथ हमलोगोंके सब पाप नष्ट कर ॥ १६७ ॥ कानोंको सुख देनेवाले, हृदयको मनोहर, हित करनेवाले और हेतुपूर्वक जिनके बचनरूपी अमृतको सुनकर संवरदेवने भी विपके समान मिथ्यात्वको छोड़ दिया और उत्कट वैरको नाश करनेवाले जिन पार्श्वनाथको आकर नमस्कार किया, इसप्रकार नमस्कार करनेवालोंका भी कल्याण करनेवाले स्वामी पार्श्वनाथ सिद्धभगवान् सिंहासनपर विराजमान होकर हम लोगोंके सब विघ्नोंको नष्ट करें ॥ १६८ ॥ पार्श्वनाथका जीव पहिले मरुभूति पंथी हुआ, फिर हाथी हुआ, फिर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर विद्याधर हुआ, फिर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ वहांसे मध्यम प्रैवेयकमें अहर्षिद्र हुआ, वहांसे आकर राजाओंके मुखोंसे सुशोभित आनंद नामका राजा हुआ फिर आनत स्वर्गमें इंद्र हुआ तदनंतर पार्श्वनाथ होकर घातिया कर्मोंका नाश किया ऐसे वे श्री पार्श्वनाथ भगवान् हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६९ ॥ कमठका जीव पहिले कमठ था फिर कुम्भकुट्ट सर्प हुआ, पांचवें नरकमें गया, फिर अजगर हुआ, नरक गया, फिर भील होकर नरकमें गया, फिर सिंह हुआ और नरक गया फिर महीपाल होकर संवर देव हुआ ॥ १७० ॥ इसप्रकार, श्रीभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषाउद्धारवें भगवान पार्श्वनाथका पुराण कहनेवाला यह सिंहात्मा पर्व समाप्त हुआ ।

सिद्धमोक्षं पाठीनो अकथेरेवेत्यसिमुत पाशोऽस्मिन् किं नः ॥ १६१ ॥ निष्कपं तत्र कुकृतानुपगतं बोधं पर्याधिर्महाबातो ब्रूतततुर्विनीकसलिलं प्राप्नोति इराजत । ध्यानं ते बत बाबकस्य भरतां वासालिदावपरात् क्षोभ कः कथमित्यभिष्टुतिपतिः पार्श्वप्रभु पातु न ॥ १६२ ॥ तीर्थेशा. सहस्रो गुण-  
रनुमि सर्वेसि वैभक्तिभिः, सत्यध्वेयधीशविधिविधिता ये ते गुणाः प्रीणनाः । तत्सर्वं कमठापथाहिं महतां मनो कृतापक्रियात् ह्यपातियो  
महती न आनुबिदशा मित्राकृतोपक्रियात् ॥ १६३ ॥ दूरस्थांमरविक्रियस्य भवतो बाधा न शांतात्मनो न क्रोधो न भयं च तेन न बुधैः सोढेति  
संस्मृत्यसे । माहात्म्यप्रसमौ तु विस्मयकरी तौ तेन तीर्थजिनः स्तोतव्यं किमिति स्तुतो भवतु न पाशोऽभ्योच्छिन्नये ॥ १६४ ॥ पर्यंता कृतवेदिना  
हि चरकौ धर्म्यविपीडागतौ तावेवोपकृतिर्न ते त्रिभुवनसैमैकभूमेस्ततः । भूतत्पातनिषेधनं ननु कृतं चेत्प्रकनोपद्रवाः कर्नासमिति सारमंस्तुतिकृतः पाशो  
जिनः पातु वः ॥ १६५ ॥ मेदेहे फलिमदप फलिबधून्त्र क्षतिर्थातिना कैबल्यात्तिरापातु देहमहिमा दानिर्भवत्सामरी । भीतिस्तीर्णकुदुद्रुमपगमनं सिद्धस्य-

ही नञ्जी भूत जान पड़ता है परंतु आपका ध्यान सुमेरु पर्वतके समान अवल है फिर भला भासोच्छ्वास की वायुके स-  
मान संवरदेवसे आपको क्या क्षोभ हो सकता है इस प्रकार की अनेक स्तुतियोंके स्वामी श्रीपार्श्वनाथ भगवान हम लोगोंकी  
रक्षा करें ॥ १६२ ॥ हे स्वामी ! यद्यपि धैर्य आदि बड़े २ गुणोंसे सब तीर्थकार समान हैं तथापि आपके वृत्त करनेवाले  
गुण सब संसारमें प्रसिद्ध हुए हैं और ये सब एक कमठके ही कारण प्रसिद्ध हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि अपकार कर-  
ने वाले शत्रुसे बड़े पुरुषोंकी जो सबसे बड़ी प्रसिद्ध होती है वह उपकार करनेवाले मित्रसे कभी नहीं हो सकती ॥ १६३ ॥

हे देव ! संवर देवने दूर रहकर आपपर विक्रिया की तथापि आपका आत्मा अत्यंत शांत बना रहा आपको किसी  
तरहकी बाधा नहीं हुई न क्रोध आया और न भय हुआ परंतु विद्वान लोग इन गुणोंसे भी “आप सहनशील हैं” ऐसी  
आपकी स्तुति नहीं करते किंतु आपका माहात्म्य और शांतता दोनों ही अत्यंत आश्चर्यजनक हैं इसलिये आपकी स्तुति  
भी किस तरह की जाय इसप्रकार जिनकी स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथस्वामी हम लोगोंके जन्ममरणरूप संसा-  
रका नाश करें ॥ १६४ ॥ देखो ये धरणेंद्र पद्मावती दोनों ही बड़े कुतज्ञ हैं और बड़े धर्मात्मा हैं इसप्रकार इन दोनोंकी  
संसारमें पूज्यता हुई है परंतु तीनों लोकोंके कल्याण उत्पन्न करनेकी एक भूमि ऐसे आपका ही यह उपकार समझना चा-  
हिये यदि ऐसा न माना जाय और उन दोनोंने ही पर्वतोंका पटना पत्थर बरसाना आदि वंद किया है ऐसा माना जाय  
तो फिर यह भी ढूंढना पड़ेगा कि पहिले उपद्रव किसके द्वारा नष्ट हुए थे ? इसप्रकार जिनकी सारभूत स्तुति की जाती  
है ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६५ ॥ हे प्रभो सर्पके फणाओंके मंदलसे आपके उपद्रवोंका

ज्ञानास्वाप्तो निष्क्रियद्विधाः । भूतानि सप्त पंचाशच्चतुर्योवगमाः स्मृताः ॥ १७१ ॥ आदिनः षट्शतान्येव ते सर्वेऽपि समुत्पिताः । अभ्यर्णोऽकृतनिर्वोणा  
स्युः सहस्राणि षोडश ॥ १७२ ॥ सुलोचनायाः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यायिका विभोः । श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणा श्रविकास्तत् ॥ १७३ ॥ देवी देव्योप्यसंख्याता  
संख्यातास्तित्यंगनि । एव द्वादशशिर्युक्तो गर्णधर्मोपदेशनं ॥ १७४ ॥ कुर्वोण पञ्चभिर्मसिर्विहीकृतसप्तति । संवत्सराणा मास स सहस्र विहृति क्रिया ॥ १७५ ॥  
षट्त्रिंशन्मुनिभिः सार्द्धं पतिमायोगमास्थित । धावणे मासि सप्तम्यां सितगङ्गे दिनादिमे ॥ १७६ ॥ मागे विशाखनक्षत्रे ध्यानद्वयसमाश्रयात् । गुणस्थानद्वये  
स्थित्वा सम्मेदाचलमस्तके ॥ १७७ ॥ तत्कालोचितकार्योणि वतमिता यथाक्रम । नि शेषकर्मनिनाशाद्विकोण निश्चलं स्थितः ॥ १७८ ॥ कृतनिर्वोणकल्या-  
णा सुदैवास्त बर्बद्विरे । बदामहे बय चैन नदिदु सुदैरुंगुणं ॥ १७९ ॥ आदिमध्यातंगभीरा सतोभोनिधिसन्निभा । उदाहरणमेतेषां पार्श्वे गण्यः क्षमा-  
बता ॥ १८० ॥ त्वन्म्यामिषिवोत्सवेऽमरगिरौ स्वोच्छ्वासनि श्वासजैः स्वर्गेशां युष्मानयस्त्वमतिरंशोऽलोलोला मुहुः । किं कुर्यात्तव तादृशोयमरस्तत्क्ष-  
णाय असंख्यात देव देवियां धी और तिर्यच ये । इस प्रकार बारह सभाओंसे सुशोभित होकर धर्मोपदेश देते हुए उन

भगवानने पांच महीने कम सत्तरि वर्ष तक विहार किया । अंतमें एक महीने तक सब योगोंका निरोध कर छत्तीस मुनि-  
योंके साथ सम्मेद शिखर पर्वत पर प्रतिपा योग धारण किया तथा श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन विशाखा नक्षत्रमें दिनके  
पहिले भागमें अर्थात् सवेरेके समय तीसरे और चौथे दो शुक्ल ध्यानोका आश्रय लिया ॥ १५४-१५७ ॥ उन्होंने अनुक्रम  
से उस समय करने योग्य सब काम किये और फिर समस्त ऋषीके नाश हो जानेसे वे भगवान अचल मोक्ष स्थानमें जा  
विराजमान हुए ॥ १५८ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणकी पूजा की और उनकी वंदना  
की इसीलिये सुंदर गुणोंके द्वारा इन्द्रको प्राप्त होनेके लिये हमलोग भी उनकी वंदना करते हैं ॥ १५९ ॥ जो सज्जन  
समुद्रके समान आदि मध्य और अंतमें भी गंभीर हैं ऐसे ज्ञानवानोंमें यदि अच्छा उदाहरण ढूंढा जाय तो श्रीपार्ष्णाथ  
स्वामी ही गिनने योग्य हैं ॥ १६० ॥ हे प्रभो ! जन्माधिकेके समय मेरु पर्वत पर अपने उच्छ्वास निच्छ्वासकी वायुसे  
आपने स्वर्गके इंद्रादि देवोंको भी अच्छी तरह बारबार झुला दिया था फिर भला यह संवर सरीखा छुद्र देव आपका  
क्या कर सकता उसे तो केवल आपकी ज्ञामासे ही अच्छा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ, और जिसप्रकार पछली समुद्रमें लोडनी  
हैं उसी प्रकार उसने आपके चरणोंमें आकर नमस्कार किया । हे देव पार्ष्णाथ जिनेंद्र ! ऐसे आप हमलोगोंकी रक्षा करें  
॥ १६१ ॥ हे नाथ ! अत्यंत निर्मल हुआ आपका ज्ञान अर्क्य है उसको समुद्रकी उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि समुद्र  
पहावायुके बलने पर चंचल हो जाता है और उसमें भरा हुआ पानी नीला है परंतु आपका ज्ञान निर्मल है समुद्र दूरसे

१३२ ॥ भर्तारसत्त्वादायस्य तत्त्वज्ञी च फणाते । उपयुक्तैः समुपयुक्त्य रिक्ता बजातपच्छदं ॥ १३० ॥ अयं कुर्य प्रकृतैव नौगो सस्मारतु कृतं । नोपकारं परे कस्माद्विस्तरेत्यादौ तस्यः ॥ १३१ ॥ ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्याभ्योहसंक्षये । विनाशमगमयद्विषो विकार कमठद्विषः ॥ १३२ ॥ द्वितीयशुद्ध्यानेन मुनिनिर्जित्य कर्मणा । त्रितयं चैत्रमासस्य कालपक्षे दिनाधिमे ॥ १३३ ॥ भागे विद्याखनक्षत्रे चतुर्दश्यां महोदय । संप्रापत्केवलज्ञान लोकालोकवभासनं ॥ १३४ ॥ तदा केवलपूजां च सुरैश्चा निरवर्तयन् । संवरोप्याप्तकालाखिलविन्ध शममुपागमत् ॥ १३५ ॥ प्रापत्सम्यक्त्वसंशुद्धिं दृष्ट्वा तद्वनवासिनः । तापसारस्यकसिध्यात्वाः भतानां सप्त संयमं ॥ १३६ ॥ गृहीत्वा शुद्धमन्यक्त्वाः पार्श्वनाथ कृतादरा । सर्वे प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमु पादयोर्द्वयोः ॥ १३७ ॥ क त-द्वैर वृथा वासिरीदृशी कास्य पापिनः । सख्यमास्ता विरोधव्य दृढये हि महात्मभिः ॥ १३८ ॥ गणीया दश तस्यासन् विधायानि स्वयंभुव । साक्षांनि त्रिशतान्मुक्तः सुनीद्राः पूर्वधारिणः ॥ १३९ ॥ यतयोर्युतपूर्वाणि शतानि नव शिक्षका । चतु शतानरं प्रोक्ता सहस्रमवधित्विषः ॥ १४० ॥ सहस्रमतिम-कमठ शत्रुका सब विकार नष्ट हो गया ॥ १४२ ॥ दूसरे शुकु ध्यानके बलसे उन्होंने ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों कर्मोंको नष्ट किया और चैत्र कृष्णा चतुर्दशीके दिन विशापा नक्षत्रमें सबरेके समय उन महा विभूतिको धारण करनेवाले भगवानने लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १४३-१४४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर केवल ज्ञानकी पूजा की और वह संवर नामका ज्योतिषी देव भी कालादि लब्धिके प्राप्त होनेसे अत्यंत शांत हो गया ॥ १४५ ॥ उसने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया तथा उसे देखकर उस वनमें रहनेवाले सातसैं तपस्वियोंने भि-ध्यातव्य छोटकर संयम धारण किया शुद्ध सम्यग्दर्शन स्वीकार किया और उन सबने बड़े आदरसे श्रीपार्श्वनाथकी प्रद-क्षिणा देकर उनके दोनों चरण कर्णालोंको प्रणाम किया ॥ १४६-१४७ ॥ देखो कहाँ तो उस पापीका ऐसा व्यर्थका बैर और कहाँ ऐसी शांति, परंतु यह भी ठीक ही है क्योंकि महात्माओंके साथ मित्रता करना अथवा विरोध करना दोनों ही दुष्टि करने वाले होते हैं ॥ १४८ ॥ भगवान पार्श्वनाथके समवसरणमें स्वयंभुवको आदि लेकर दश गणधर थे, ग्य-रह अंग और चौदह पूर्वको धारण करनेवालोंकी संख्या तीन सौ पचास थी । दशहजार नौ सौ शिष्यक मुनि थे और एक हजार चारसौ अवधिज्ञानी थे ॥ १४९-१५० ॥ इसी प्रकार एक हजार केवल ज्ञानी थे, एक ही हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, सातसौ पचास मनःपर्ययज्ञानी थे और छह सौ वादी थे । इसप्रकार शीघ्र ही मुक्त होने वाले सब मुनियोंकी संख्या सोलह हजार थी ॥ १५१-१५२ ॥ इसी प्रकार उन भगवानके समवसरणमें सुलोचनाको आदि लेकर छत्तीस हजार अर्जिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे और तीन-लाख श्राविकाएं थीं ॥ १५३ ॥ इनके सि-



स्थितः ॥ १०८ ॥ उत्तराभिमुखे वैष्णवे मासि स्थिते तरे । एकादश्या स पूर्वाह्ने समं त्रिसप्तभुजैः ॥ १२९ ॥ कृतसिद्धनमस्कारो वीर्यशक्त्या समाह्वये ।  
द्वौ वा मुक्तिप्रदाया आन्यां कृत्स्नप्रसाधिकां ॥ १३० ॥ केशान् विमोचितास्तस्म मुष्टिभिः पचभिः झरेत् । समन्यच्च्योदराभीवा व्यक्षिपत्सीरवारिधौ ॥  
१३१ ॥ नातसामाधिकः शुद्ध्या चतुर्थेऽनमस्कारः । शुल्लसेत्पुरं कायस्थित्यर्थं समुपेक्षितान् ॥ १३२ ॥ तत्र धन्यास्त्वभूणाल इवामर्गोष्ठमण्डलं । प्रति-  
गुणाशनं छुट्वा यत्तत्किमोषितं ॥ १३३ ॥ नदन् स चतुरो मासान् जाग्रत्येव सिद्धिदमाक् । वीर्यापदमेव देवदारुभूमिहरीरुद्रः ॥ १३४ ॥ अप-  
सावधमाहारस्वागादापविष्टुदिकः । प्रत्यासन्नमभ्यप्रतीतो योग्यं सप्तदिनाद्यपि ॥ १३५ ॥ गृहीत्वा सत्पसारोऽस्वादर्कस्थानं प्रवर्तयन् । संबरो चाबरे गच्छन्नग-  
च्छत् स्व सिमानकं ॥ १३६ ॥ लोकमानो विभगेन स्पष्टप्राग्वैरवधन । रोषात्कृतमहागोषो महाहृष्टिमपातयत् ॥ १३७ ॥ व्यघातयेन सप्ताहान्यन्याथ  
विनिधान् विधीः । महोपवर्गान् कैलेपनिपातात्तत्पिवातक ॥ १३८ ॥ तद्वात्वाविवोधेन धरणीशोऽविनिगंतः । वरण्या प्रसुरद्वजगामपमदितः ॥

इसके बाद अत्यंत विशुद्धि को धारण करनेवाले पार्थिनाथने छत्रस्थ अवस्था के चार महीने व्यतीत किये और फिर जहां दीक्षा ली थी उसी बरनें आकर एक देवदारु नामके सबसे बड़े वृक्षके नीचे विराजमान हुए । आठ दिनका उपवास धारण करनेसे उनकी विशुद्धि और भी बढ़ गई थी, उनके संसारका अंत अत्यंत समीप आ चुका था और उनका पराक्रम बहुत ही बढ़ गया था । सात दिन तक योग धारण करनेका नियम लेकर वे श्रेष्ठ धर्मध्यानमें लग रहे थे । इसी समय संवर नामका कमठका जीव ज्योतिषी देव आकाश मार्गसे जा रहा था परंतु भगवानके ऊपरसे आनके कारण उसका विमान रुक गया ॥ १३४-१३६ ॥ तब उसने विभंगावधिसे देखा । पार्थिनाथको देखते ही पहिले बैरका संस्कार होनेसे वह क्रोधित हुआ । उस निर्बुद्धिने बड़ा भारी शब्द किया और बड़ी भारी वर्षा बरसाई इसी तरह वह सात दिन तक महा गर्जना और महा वर्षा करता रहा । इसके सिवाय यमराजके समान उसने पत्थरोंकी वर्षाको आदि लेकर और भी अनेक तरहके महोपसर्ग किये ॥ १३७-१३८ ॥ अवधि भ्रानसे उस उपसर्गको जानकर उसी समय पद्मावतीके साथ धर-  
खेद्र आया और दैदीक्यमान रत्नोंके फलामंडपसे सुशोभित होकर उसने चारो ओरसे ढककर भगवानको ऊपर उठा लिया तथा उसकी देवी पद्मावती अपने फलामंडपके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत ऊंचा ऊपर उठा कर खड़ी रही ॥ १३९-१४० ॥ इस प्रकार स्वभावसे ही क्रूर ऐसे सर्प सर्पिणीने केवल किये हुए उपकारका स्मरण कर वह उपसर्ग दूर किया सो ठीक ही है क्योंकि दयालु पुरुष किये हुए उपकारको किस प्रकार भूल सकते हैं अर्थात् वे कभी नहीं भूलते ॥ १४१ ॥ तदनंतर भगवान् ध्यानमें तल्लीन हुए ध्यानके माहात्म्यसे उनका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया और मोहनीयके नाश होनेसे

न । नशल्या मृत्तिसायाय सवरो ज्योतिषामरः ॥ ११७ ॥ नाम्नाभवत्सकृत्पाता तपसाभीष्टशी गति । नगो नागी च संप्राप्तसमयं वा कुमारतः ॥ ११८ ॥  
 वभून्नुर्गद्विष्य तपन्नी च पृथुग्रिथा । तत दिग्भासमानकुमारे समये गते ॥ ११९ ॥ साहेतनगराधीशो जयसेनपट्टीपति । भगन्दीदेशराज तद्व्यादि  
 ग्राभृताग्नित ॥ १२० ॥ अन्धदासा निःसृष्टार्थे प्राहिणोत्यार्थसन्निधि । गृहीतोपायनं पूजयित्वा दूतोत्तमं मुदा ॥ १२१ ॥ माकेतस्य दिभूतं त कुमार प-  
 रिपृष्टवान् । सोपि भट्टारक पूर्व वर्णयित्वा पुनं परे ॥ १२२ ॥ पथाद्यावर्णयामास प्रज्ञा हि क्रमवेदिनः । श्रुत्वा तत्प्र किं जातः तीर्भक्तानाम बद्धवान् ॥  
 १२३ ॥ एष एव पुनर्मुक्तिप्राप्तित्युपयोगवान् । साक्षात्कृतविजानीनसर्वप्रभवसंततिः ॥ १२४ ॥ विजृम्भितमतिज्ञानक्षयोगशमवैभवात् । लब्धवोधि  
 पुनरोक्तातिक्रमप्रबोधितः ॥ १२५ ॥ तत्क्षणगतदेन्द्रप्रमुखामरनिमित्त । प्रसिद्धमध्यमस्थग्रेसवनादिमहोत्सव ॥ १२६ ॥ अत्येयभुक्तिमद्भागिभिः  
 कृतबधुविसर्जन । आश्रय सिविका रूढा विमलाभिधयः विभुः ॥ १२७ ॥ विधायार्धमहाहारत्यागमश्चरने महा । शिलातले मह सत्व पत्यकासनमा-  
 ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग अनुक्रमको भी अच्छी तरह जानते हैं । उसे सुनकर वे विचार करने लगे कि मैंने तीर्थकर  
 नाम कर्मका बंध किया इससे क्या लाभ हुआ । यह तीर्थकर नाम कर्मका बंध करना तबही उपयोगी हो सकता है जब  
 कि यह जीव मुक्त हो जाय । इस तरह विचार करते हुए उन्होंने अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष चर्योपशम होनेसे अपने  
 पहिलेके भव प्रत्यक्षके समान जान लिये तथा उन्हें स्वात्मज्ञान प्रगट हुआ और उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर स्तु-  
 तिकर समझाया ॥ १२०-१२५ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर प्रसिद्ध दीक्षा कल्याणका अभिषेक कर महोत्सव  
 मनाया ॥ १२६ ॥ तदनंतर पार्श्वनाथने विश्वास करने योग्य और युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे समझाकर सब भाई बंधु  
 ओंसे विदा मांगी और फिर वे भगवान विमला नामकी पालकी पर सवार होकर अश्ववनमें पहुंचे अनंत शक्तिको धारण  
 करनेवाले वे भगवान एक शिला पर उत्तरकी ओर मुखकर पर्यकासन विराजमान हुए । पौष कृष्ण एकादशीके दिन सवेरे  
 के समय तेलाका नियम लेकर तीनसैं राजाओंके साथ सिद्ध भगवानको नमस्कार किया और वस्त्राभूषण पहिने हुए तथा  
 अत्यंत मान्य ऐसी मुक्ति रूपी कन्याकी दूतीके समान दीक्षा लक्ष्मी स्वीकार की ॥ १२७-१३० ॥ भगवानने जो पांच  
 मुष्टिओंके द्वारा केशोंका लोंच किया था इंद्रने उन वालोंकी पूजा की और आदर पूर्वक ले जाकर क्षीर सागर  
 में उन्हें डाला ॥ १३१ ॥ भगवानने सामायिक धारण किया आत्माकी शुद्धि होनेसे उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञानरूपी सूर्य  
 उदय हुआ और फिर वे आहारके लिये गुल्मसेट्युर नगरमें पहुंचे ॥ १३२ ॥ वहां पर श्यामवर्णको धारण करनेवाले धन्य  
 नामके राजाने अष्टभंगल द्रव्योंके द्वारा उनका पटगाहन किया और उस समयकी उचित क्रिया कर शुद्ध आहार दिया ॥ १३३ ॥

१०५ ॥ अह प्रसुर्ममायं किं वा करोतीत्यवज्ञया । तपसो मम माहात्म्यमुल्लेख्य ब्रवीषि किं ॥ १०६ ॥ पंचाग्निमध्यवर्तित्वं पवनादहलीवनम् । ऊर्ध्वबाहु  
तथा पादौर्ध्वैर्नैव शिरस्थितिः ॥ १०७ ॥ स्वयं पतितपर्णैरेकपासेन पारणम् । इत्यादिकायसंतापि तापसानां सुदुर्दरे ॥ १०८ ॥ तपोनाधिकमस्त्यस्या-  
दिति तद्वचनदुते । सुआम सस्मितोवादीय भवंतमहं गुहं ॥ १०९ ॥ अवमन्ये पुनः किं तु संत्यज्यासामादिकं । सिध्यात्वादिचतुर्केण प्रयिव्यादिसु पद-  
स्वपि ॥ ११० ॥ वाचा कार्येन मनसा कृतकादिकेकेण च । बने प्रवर्तमानानामनासमतसश्रयात् ॥ १११ ॥ निर्गोणप्रार्थनां तेषां तदुल्लावासिवाच्छया ।  
दुपलब्धनलेदो वा घृतेच्छा जलमयनात् ॥ ११२ ॥ हेमोपलब्धिवुद्धिर्वा दाहादधामसहतेः । अश्वसेवाग्निसपातो देवभीत्या प्रधावत ॥ ११३ ॥ ब्रानहीने  
परीकृतो भाङ्गिः रास्य कारण । इति प्ररूप्यते शुभमत्स्नेहेन महता मुना ॥ ११४ ॥ इत्येतदुक्तमक्षेपि पूर्वैरेवानुबधनात् । निजपक्षासुरागिवाद्दुःसारादि-  
हागते ॥ ११५ ॥ प्रकृतैवातिदुष्टवादानादाय विरुद्धीः । सुआमको भवानत्र सस्ययोज कुमारक ॥ ११६ ॥ पराभवति मामेवमिति तस्मिन् मन्त्रोपवा-  
अथवा जल पंथनसें धीकी इच्छा करते हैं ॥ १०७-११२ ॥ अथवा अंधपापाणो जो जलाकर सुवर्ण प्राप्त करना चाहते  
हैं अथवा अंधोंके समान दावानल अग्निसे डरकर दौड़ते हुए अग्निमें ही पड़ते हैं ॥ १३ ॥ बिना सम्यग्ज्ञानके जो कुछ भी  
कायकेश किया जाता है वह आनेवाले दुःखोंका कारणही होता है और आपके स्नेहसे यही बात दन-कुमार महापुरुषने  
आपसे कही है ॥ ११४ ॥ इस प्रकार उस सुभौमकुमारने कहा तथापि उस विरुद्ध बुद्धिवाले मुख तपस्वीने पहिले जन्मके  
बैरका संस्कार होनेसे वा अपने पक्षका अनुरागी होनेसे अथवा स्वभाव ही से अत्यंत दुष्ट होनेसे उसके कहने पर कुछ  
भी ध्यान नहीं दिया । तदनंतर वह तपस्वी क्रोधित होकर कहने लगा कि इस संसारमें तू ही सुभौम है और यह कुंगार  
बड़ा ही अभिमानी है इसलिये इसने मेरा तिरस्कार किया है । इसप्रकार उस तपस्वीके हृदयमें शल्य बनी ही रही और  
आयुके अंतमें मरकर वह संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधसहित तपश्चरण करनेवालोंकी  
ऐसी ही गति होती है । इधर सर्व सर्पिणीने कुमारके समझाने पर समंता भाव धारण किया और परकर दोनोंही बड़ी  
विभूतिको धारण करनेवाले धरणींद्रि पद्मावती हुए । इसके बाद जब कुमारके जन्मसे तीस वर्ष गये अर्थात् जब उनकी  
तीस वर्षकी अवस्था हो गई ॥ २१५-११६ ॥ तब साकेत नगरके स्वामी राजा जयसेनने किसी एक दिन भगली देशमें  
उत्पन्न हुए घोड़े आदि अनेक तरहकी भेंट देनेके लिये पार्श्वनाथके समीप किसी दूतको भेजा । कुमार पार्श्वनाथने बड़ी  
प्रसन्नतासे वह भेंट ली, उस उत्तम दूतका आदर सत्कार किया और फिर उस दूतसे साकेत नगरकी विभूति पूछी ।  
इसके उत्तरमें दूतने पहिले ही श्रीशुभदेव आदि तीर्थक्षेत्रोंका वर्णन किया और फिर अपने नगरका हाल कहा सो ठीक



नेक्षणत् । स्वर्गलोकैव समान्य स्वर्गादयावतीर्णवान् ॥ ८४ ॥ अक्वताराद्विमानस्य भवनात्पवनानिनिः । त्रिवोधकीघिती रगराशिनालिंगितो गुणैः ॥ ८५ ॥ विधुधूमकेतुलक्षणाद्दहकोहसा । बध्नाभोजे गजेग्रस्य प्रवेशात्ते कुशोदसि ॥ ८६ ॥ अवस्थिति स सप्रापदुदरेऽमरपूजितः । इति शु वलुपद्वर्णी पयुरेणी-  
विलोचिता ॥ ८७ ॥ तदाखिलाभराधीशाः समागत्य व्यधुमुदा । स्वर्गावतरणं मित्रोः कल्याण भिषवोत्सव ॥ ८८ ॥ स्वर्गलोकं च तद्वदहमतिशेतेऽस्म संप-  
दा । किं करोति न कल्याण कृतपुण्यसमागम ॥ ८९ ॥ नवमे मासि संपूर्णे पौषे मास्यति शुत । पक्षे योगेनिले प्रादुरासीदेकादशीतिथौ ॥ ९० ॥ त-  
दा निजासनाकपाद् श्रुत्वा तीर्थकरोदय । साधर्मप्रमुखाः सर्वे मदराचलमस्तके ॥ ९१ ॥ जन्मभिषेककल्याणपूजादिभूत्यन्तरं । पार्श्वभिधानं कृतस्य  
पितृभ्या त समर्पयन् ॥ ९२ ॥ नेम्यन्तरे स्वपचरवरागन्धश्रुमितवत्सरे । श्रुते हता कृतातस्य तदन्तरजीवितः ॥ ९३ ॥ पार्श्वनाथं संसुप्तञ्चः शतसवत्स-

मनाया उस समय उनका राजभवन संपदाओंसे स्वर्गलोकको भी उल्लंघन कर रहा था सो टीक ही है क्योंकि किन्ने हुए  
पुण्य कर्मोंका उदय होनेसे कौनसा कल्याण प्राप्त नहीं होता है ॥ ८६ ॥ नौ महीने बीत जाने पर पौष कृष्ण एकादशी  
के दिन अनिलयोगमें वह पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ८७ ॥ उसी समय अपने आसनोंके कपायमान होनेसे सौधेन्द्र आदि  
देवोंने तीर्थकरका जन्म जाना और सबने आकर सुमेरु पर्वत पर उनका जन्माभिषेक कर पूजा की तथा पार्श्वनाथ नाम  
रत्न कर फिर माता पिताको सोंप दिया ॥ ८९-९० ॥ श्रीनेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद तिरासी हजार सातसौ पचास  
वर्ष बीत जाने पर सब कर्मोंको नाश करने वाले पार्श्वनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है । उनकी  
शरीरकी कीर्ति छोटै चावल्लोके पेड़ोंके समान थी, उनके शरीरमें सब लक्षणा सुशोभित थे,  
वस्त्रा प्राप्त हुई थी । किसी एक दिन वे लक्ष्मीवान् उग्रवंशमें उत्पन्न हुए थे । सोलह वर्ष बीत जाने पर उन्हें नवयौवन आ-  
जाकर वे आश्रय वनमें पहुंचे वहां पर महीपाल नगरका राजा था तथा अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुखी होकर तपसी  
हो गया था और पंचाभिके मध्यमें बैठा हुआ तपश्चरण कर रहा था उसे देखकर देवोंके द्वारा पूजित हुए कुमार पार्श्व-  
नाथ उसके समीप गये और उसे विना ही नमस्कार किये जाकर खड़े रहे । अपना इसतरहका अनादर होते देखकर मही-  
पालको क्रोध आया और वह विचार करने लगा कि मैं गुरु हूं, कुलीन हूं, तपोव्रत हूं अर्थात् तपस्वी होनेसे बड़ा हूं  
और इसकी माताका पिता हूं तो भी इस मुखे कुमारने मुझे नमस्कार नहीं किया है और मदनोन्मत्त होकर मेरे सामने खड़ा  
है । इसप्रकार क्रुन्ध होकर उस मुखे तपस्वीने शांत हुई अग्निमें डालनेकेलिये वहांपर पड़ी हुई लकड़ी काटनी चाही और

करः ॥ ७२ ॥ विश्वान् वैश्विकान् भोगान् शारवर्त्तप्राप्य निर्विशन् । तलोढो लीलया कालमालामैत्स्नयन् कलां ॥ ७३ ॥ षष्मासंरतिमैत्स्नियमगमिष्य-  
स्वम् मदी । द्वोपेस्मिन् भारते काशिविषये नगराधिप ॥ ७४ ॥ वाराणस्यामभूद्विभूतेनः कदयपगोत्रज । ब्रह्मास्य देवी संप्राप्तवसुधाराधिपूजना ॥ ७५ ॥  
वैशाखकृष्णपक्षस्य द्वितीयायां निशात्यये । विशखैर्च शुभरवप्राप्तिरीक्ष्य तदनंतरं ॥ ७६ ॥ स्वववत्राब्जप्रविष्टोरुगरूपविलोकनी । प्रभातपटहृद्धानसमु-  
न्मीलितलोचना ॥ ७७ ॥ मगलामिषवाविष्टनुष्टि पुण्यप्रसाधना । विभावीरव सज्ज्योत्सगा राजान समुपेत्य सा ॥ ७८ ॥ इतोपनवारा सविदय विष्टादं  
महीपते । स्वदृष्टसकलस्वप्न यथाक्रममभाषत ॥ ७९ ॥ श्रुत्वा तान् सावधिः सोपि फलान्येवं न्यवेदयत् । गर्जद्वीक्षणात्पुत्रो वृषभालोकनात्पति ॥ ८० ॥  
त्रिविष्टपस्य सिंहेन दृष्टवानतवीर्यक । मदराभिषवप्रापी पद्माभिषवदर्शनात् ॥ ८१ ॥ दामद्वयावलोकेन धर्मद्वितयतीर्यकृत । शशकर्मदललोकात् ब्रूलो-  
क्यकुमुदप्रिय ॥ ८२ ॥ तेजस्वी भास्वतो मत्स्ययुगलेन, मुखाखिलः । निर्धोनामधिपः कुभवीक्षणात्सर्वलक्षण ॥ ८३ ॥ सरसः सागरात्सर्वज्ञता सिंहास-

वजनेवाले नगाडे आदि वाजोंकी आवाज सुनकर वह उठी और मंगलाभिषेक कर तथा वस्त्राभरण पहिन कर राजाके समीप इस प्रकार पहुँची मानो चांदनी रात चंद्रमाके समीप पहुँची हो ॥ ७७-७८ ॥ आदरपूर्वक वह महाराजके आधे सिंहासन पर विराजमान हुई और उसने महाराजसे अपने देखे हुए सब स्नान अलुक्रमसे कह सुनाए ॥ ७९ ॥ उन स्वप्नों को सुन कर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले महाराज विश्वसेनभी उनका फल इसप्रकार कहने लगे कि हाथीके देखनेसे पुत्र होगा, बैलके देखनेसे वह तीनोंलोकोंका स्वामी होगा, सिंहके देखनेसे उसके अनंत वीर्य वा पराक्रमी होगा, और लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे सुमेरु पर्वत पर उसका अभिषेक होगा ॥ ८०-८१ ॥ दो मालाओंके देखनेसे दोनों धर्मरूप तीर्थोंकी प्रवृत्ति करने वाला होगा, चंद्रमाके देखनेसे तीनोंलोक रूपी कर्मादिनीका प्रिय होगा ॥ ८२ ॥ सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होगा, दो मछलियोंके देखनेसे सब तरहसे सुखी होगा, सरोवरके देखनेसे सब लक्ष्णोंसे सुशोभित होगा, समुद्र देखनेसे सर्वज्ञ होगा, सिंहासन देखनेसे स्वर्गलोकके इंद्रादि देवोंके द्वारा सबसे अधिक पूज्य होगा, नीचे आते हुए विमान के देखनेसे वह स्वर्गसे आकर अद्वतीर्ण होगा, धरगोद्वका भवन देखनेसे तीनों ज्ञानोंकी कांतिको धारण करने वाला होगा, रत्नोंकी राशि देखनेसे वह सर्व गुण संपन्न होगा और निरधूम अधिक देखनेसे वह सब पापोंका वा कर्मोंका नाश करनेवाला होगा हे कुशोदरि ! तेरे मुख कमलमें हाथीके प्रदेश करनेसे देवोंके द्वारा पूजित हुए उस पुत्रने तेरे उदरमें आकर अवस्थान किया है । इस प्रकार पतिके वचन सुनकर वह मृगनयनी बहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ८३-८७ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बड़ी प्रसन्नतासे भगवानके स्वर्गवितरणके समय माता पिताका कल्याणाभिषेक कर उत्सव

यत्ते समुद्रतप्त्य समीपे बहुभिः समं । राजसी राजस भाव परित्यज्य कुलेयया ॥ ६३ ॥ सारावनाचतुष्क सन् विदुर्धैकादशांगधृष्ट । प्रत्ययोस्ती-  
यैरुज्जानो भावयात्मास बोद्धव्यः ॥ ६४ ॥ यथोक्त भावविलेताशाम वधांतिमं शुभ । विरं चोरतप कृत्वा प्रांते शातांतरात्मक ॥ ६५ ॥ प्रायोगपम्न प्राप्य  
प्रतिमायोगमास्थित । धीर क्षीरवने धर्मव्यानाधीनो निराकुलं ॥ ६६ ॥ कथं प्राक्कन पापी प्रच्युतो नरकक्षितैः । कंठीरक्तव्यूसाद्य तन्मुनेः कठम-  
सार्द्धारक्षितयोन्मेषधारीः शुक्लेयया ॥ ६७ ॥ दशमासातनि शाली मनसाऽभ्युत्तमाहन् । सचतुष्कद्विवर्षते मनसा क्षीप्रचारवान् ॥ ७० ॥ आपचमक्षि-  
तिव्यासतृतीयावगमेक्षण । स्वावधिक्षेत्रमानाविक्रियाबलसंगत ॥ ७१ ॥ सामानिकादिसर्वविदुषाशनसमार्चितः । कानकामप्रदानकदेवीकृतसुखा-  
बन्धं क्रिया और फिर बहुत दिन तक घोर तपश्चरणकर तथा जिनका अंतरात्मा अत्यंत शांत है और जो धर्मध्यानके आ-  
धीन हो रहा है ऐसा धीर वीर वह मुनिराज प्रायोगप संन्यास लेकर प्रतिमायोग धारणकर निराकुल रीतिसे क्षीर वनमें  
विराजमान हुआ ॥ ६४-६६ ॥ पहिले जन्मके पापी कथका जीव नरकसे निकलकर वहीं सिंह हुआ था इसलिये  
धारकर उसने माण छोड़े और आनत स्वर्गके प्राणत विमानमें इंद्र हुआ ॥ ६७ ॥ इसतरह सिंहका उपसर्ग सहनकर और चारों आराधनारूपी धनको  
भी, साढ़े तीन हाथका शरीर था शुक्लेयया थी, वह दश महीने बाद भ्रांस लेता था, बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आयु  
मृताहार करता था और उसके मानसिक प्रवीचार था ॥ ६८-७० ॥ उसे पांचवें नरकतक अवधिज्ञान था और उतनी  
ही दूर तक शरीरकी कांति विक्रिया तथा बल था ॥ ७१ ॥ सब तरहकी सुखियोंको धारण करनेवाले अनेक सुंदर देवियोंके द्वारा वह सब  
देवोंके द्वारा वह पूजा जाता था और इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली अनेक सुंदर देवियोंके द्वारा वह सब  
तरहके सुखोंका अनुभव करता था ॥ ७२ ॥ इसप्रकार सब इंद्रियोंके विषयभोगोंको सदा सेवन करता हुआ  
तथा उनमें लवलीन हुआ वह इंद्र लगाभरके समान लीला पूर्वक लंबे समयको व्यतीत करने लगा ॥ ७३ ॥ जिस  
समय उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके सन्मुख हुआ उससमय इसी  
जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुए राजा विशसेनकी रानी ब्रह्मादेवी रत्नों  
की वर्षा आदिसे पूजित हुई थी । उसने दशास्व कृष्णा द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें रात्रिके अंत समयमें सोलह शुभ  
स्वप्न देखे और उन स्वप्नोंके देखनेके बाद उसने अपने सुखमें घुसता हुआ एक बड़ा हाथी देखा । तदनंतर सबैरके



समुद्रव । तस्मात्तत्साधुविशेषं पुण्यकारणकारणं ॥ ५३ ॥ तत्कथाबसरे लोकत्रयबलाढ्याकृतीः । सम्यग्दर्शनं विदुं वाञ्छन् प्रागादित्यविमानजे ॥ ५४ ॥  
खिन्नैर्भवने भूता विभूतिं सोन्ववर्णयत् । तामसाधारणीं श्रुत्वा नन्दः भद्रा नरे बहन् ॥ ५५ ॥ दिनादौ च विनतिं च कराभ्यां कृतकुम्भलः । स्तुवमान-  
प्रसुकुटो खिनेशान् मंडले रवेः ॥ ५६ ॥ कित्तिमि कारयित्वा विमान मणिकान्तेन । क्रोहीकृतजिनापीशभवन विततधुति ॥ ५७ ॥ शास्त्रोक्तविभिना  
भवत्या पूजामाष्टान्दिकीं व्याधात् । चतुर्मुख रथाभर्तु सर्वतोभद्रमूर्जितं ॥ ५८ ॥ कल्पवृक्ष च धीनेभ्यो ददद्दानमबाधित । तद्विलोक्य जनाः सर्वे तत्तमाप्या-  
त्स्वय च तं ॥ ५९ ॥ स्तोत्रमारेमिरे भक्त्या मडल चक्रोन्विष । तदाप्रधुति लोकेस्मिन् बभूवोऽपसेवनं ॥ ६० ॥ अथान्यदा किलानन्दमहीचिह्नरसि  
बुद्धवान् । पक्षितं दलयथौघनार्थिनां हृदयं द्विधा ॥ ६१ ॥ तन्निमित्तसमुद्रभूलनिर्वेगो ज्येष्ठसूनुवे । साभिषेकं निज राज्यं दत्त्वा दत्त स्पृह तप ॥ ६२ ॥

होते हैं और शुभ परिणामोंसे पुण्य कर्मोंका वंध होता है ॥ ५०-५३ ॥ इसी उपदेशके समय उन मुनिराजने तीनों लो-  
कोंके चैत्यालयोंका आकार अच्छी तरह निरूपण करना चाहा और सबसे पहिले सूर्यके विमानमें जिन चैत्यालयकी वि-  
भूति बहुत अच्छीतरहसे वर्णन की उस असाधारण विभूतिको सुनकर महाराज आनन्दको बड़ी ही श्रद्धा उत्पन्न हुई  
॥ ५४-५६ ॥ वह राजा आनन्द सुबह शाम दोनों समय हाथ जोड़कर और मुकुटसहित अपना मस्तक नवाकर सूर्यके  
विमानमें विराजमान जिनैन्द्रप्रतिमाओंकी स्तुति करने लगा ॥ ५६ ॥ उसने कारीगरोंके द्वारा सुवर्ण और मणियोंका सू-  
र्यका विमान बनवाया और उसके भीतर फैलती हुई कान्तिको धारण करनेवाला जिनभवन बनवाया ॥ ५७ ॥ तदनंतर  
उसने शास्त्रोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक अष्टान्हिकाओंकी पूजा की और चतुर्मुख पूजा रथावर्तपूजा सबसे बड़ी सर्वतोभद्र पूजा  
तथा दीनोंको अनिवार्य दान देते हुए कल्पवृक्ष पूजा की । इसप्रकार उस राजाको सूर्यमंडलकी पूजा करते हुए देखकर  
अन्य साधारण लोगोंने भी भक्तिपूर्वक सूर्यमंडलकी स्तुति करना प्रारंभ कर दिया और उसी समयसे लेकर इस संसार  
में सूर्यकी उपासना करना प्रारंभ हुआ है ॥ ५८-६० ॥ अथानंतर—किसी एक दिन राजा आनन्दने यौवन नाहनेवालोंके  
हृदयके दो टूंक करनेवाला सफेदबाल शिरमें देखा । उसे देखते ही राजा आनन्दको वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने बड़े पु-  
त्रको अभिषेक पूर्वक अपना सब राज्य दे दिया और स्वयं समुद्रदत्त मुनिराजके समीप जाकर अनेक राजाओंके  
साथ राजसीभाव छोड़कर निरीह ( इच्छारहित ) तपश्चरण धारण किया । तदनंतर शुभ लेश्याओंके द्वारा चारों  
आराधनाओंका आराधन किया, विशुद्ध होकर ग्यारह अंगोंका ज्ञान संपादन किया और तीर्थकर प्रकृतिकी कारण ऐसी  
सोलह भावनाओंका चिंतन किया ॥ ६१-६४ ॥ शास्त्रानुसार उन सोलह भावनाओंका चिंतनकर तीर्थकर नामकर्मका

प्राप्तमहामदलीकस्थानो महोदय ॥ ४३ ॥ स्वस्य स्वामिहिताख्यस्य मदतो मत्रिणोन्मथा । वाचा वसंतमासस्य नदीभरदिनाष्टके ॥ ४४ ॥ पूजा निर्वर्त-  
यन् दण्डकाम तत्र समागत । विपुलादिमति दृष्ट्वा गणेश प्रश्रयाश्रयः ॥ ४५ ॥ अमिवद्य समाकर्ण्य सद्धर्म सर्वशर्मद । भगवान् किमिदिच्छामि श्रोतु मे  
संशयास्यद ॥ ४६ ॥ अचेतने कथं पूजा सिप्रहानुग्रहच्युते । जिनदिवे कृता भक्तिः सता पुण्य फलस्यैव ॥ ४७ ॥ इत्यदृष्टदसौ चाह सत्यमिति वच-  
स्तदा । शृणु राजन् जिनैद्रस्य नैत्य चंयाल्यादि वा ॥ ४८ ॥ भवत्यचेतन किंतु भव्यानां पुण्यबंधने । परिणामसमुत्पत्तिहेतुवात्कारण भवेत् ॥ ४९ ॥  
रागादिबोहीनलदायुधभरणादिकात् । विमुख्यस्य प्रसंगेदुकातिहासिसुखश्रियः ॥ ५० ॥ अपर्तिताधसूत्रस्य लोकालोकाबलोकिनः । कृतार्थत्वापरित्यक्त-  
जटादे परमात्मनः ॥ ५१ ॥ जिनेन्द्रस्याख्यातस्य प्रतिसाध प्रपश्यतां । भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥ कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वकार्य-

राजा बज्रबाहुकी सती प्रभाकरीके आनंद नामका प्रिय पुत्र उत्पन्न हुआ । बड़ा होनेपर वह महामंडलेश्वर राजा हुआ था  
और उसे बड़ी भारी विभूति प्राप्त हुई थी ॥ ४०-४३ ॥ किसी एक दिन स्वामिहित नामके अपने सबसे बड़े मंत्रीके क-  
थनानुसार वसंतऋतुके नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें उस राजा आनंदने पूजा कराई । उसे देखनेकेलिये वहांपर विपुलमति ना-  
मके मुनिराज पधारे । उन्हें देखकर राजा आनंदने बड़ी विनयके साथ उनकी वंदना की तथा सबतरहके कल्याण करने-  
वाले सद्धर्मका स्वरूप सुना । तदनंतर उसने पूछा कि हे भगवान् मुझे कुछ संशय है वह मैं आपसे पूछना चाहता हूं  
॥ ४४-४५ ॥ हे प्रभो ! भगवानकी प्रतिमा अचेतन है उसमें निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति नहीं है फिर उसमें भक्ति  
करने वा पूजा करनेसे सज्जनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति कैसे होती है ? इसप्रकारके पूछनेपर वे मुनिराज कहने लगे कि हे  
राजन् ! सुन यद्यपि श्रीजिनराजकी प्रतिमा जिनालयके समान अचेतन है तथापि वह भव्य जीवों पुण्यबंधका कारण ही  
होती है । क्योंकि वह शुभ परिणामोंको उत्पन्न करानेका कारण है ॥ ४७-४९ ॥ इसका भी कारण यह है कि भगवान्  
जिनेन्द्रदेव राम द्वेप आदि दोपोंसे रहित हैं और इसीलिये वे आयुध आभरण आदिसे सर्वथा रहित हैं । इसके सिवाय उन-  
नके मुखकी शोभा निर्मल चंद्रमाकी कान्तिके समान सदा सुशोभित रहती है वे लोक अलोकके जानकार हैं इन्द्रियज्ञानसे  
रहित हैं अर्थात् उनका ज्ञान अतींद्रिय है कृत्य कृत्य होनेसे जटा आदि सब उपद्रवोंसे रहित हैं और परमात्मा हैं । इसलिये  
उन जिनेन्द्रदेवके मंदिर और उनकी प्रतिमोंके दर्शन करनेसे जैसी शुभ भावोंकी उत्कृष्टता होती है वैसी और किसीसे नहीं  
हो सकती क्योंकि अंतरंग बहिरंग दोनों कारणोंके मिलनेसे सब कार्य उत्पन्न होते हैं इसलिये यह बात अच्छीतरह समझ  
लेना चाहिये कि श्रीजिनेन्द्र देवके मंदिर अथवा उनकी प्रतिमा पुण्यबंधके कारणके कारण है अर्थात् उनसे शुभ परिणाम

पुराधीशो वज्रवीर्यस्य भूपतेः । विजयायाश्च तदेव्या वज्रनाभि मुतोमवत् ॥ ३२ ॥ स चक्रलक्षिता लक्ष्मीमक्षीणा पुण्यरक्षित । शुभवाप्यतुभम् भोवहं  
मोक्षलक्ष्मीं समुद्यत ॥ ३३ ॥ क्षेमकराख्यभट्टारकसुवर्कञ्चजनिर्गत । धर्माश्रुतरसं पीत्वा लक्ष्वाशेषपरमशुद्धा ॥ ३४ ॥ सुत स्वराज्यं सस्थाप्य राजसिर्निदु-  
भि सम । सयम समात्सम्यक् सर्वमस्वानुकंपक ॥ ३५ ॥ प्राक्फनोजगरं षष्ठनरके तनुमाश्रित । द्वाविंशत्यन्धसंख्यानजीवितेन तितुद्वित ॥ ३६ ॥  
चिरात्सत्साद्विनिर्गल्य कुरगाह्वो वनेचरः । कपयन् वनसमूतान् समुत सर्वदेहिन ॥ ३७ ॥ विवर्जितातैध्यानस्य विधृतातपनभिधृतेः । तस्य लयकशरी-  
रस्य शरीरबलशालिनः ॥ ३८ ॥ तपोधनस्य चक्रंसा घोरं कातन्दु स्सह । उपसर्गं स्फुरद्वरं स पापी बहुधा व्यभ्रात ॥ ३९ ॥ धर्मं ध्यानं श्रद्धयासां स-  
माराध्य सुरोत्तम । समुत्पन्न सुभद्राख्ये सहस्रमध्यममधमे ॥ ४० ॥ सप्तविंशतिवारान्निमेययुद्विद्वभोगभाह् । ततश्चयुतेरिभन् द्वीपेसा नृमुपहृद्भूतिं ॥  
४१ ॥ कौशले विषयेऽर्जोध्यानगरे काश्यपान्वये । इक्ष्वाकुवशजातरस्य वज्रबाहुमहीश्रुत ॥ ४२ ॥ सुतो देव्या प्रभाकर्तृमानन्दस्योजनि प्रिय । स सं-

पुरग्योंका साथ लेकर वह वहांसे च्युत हुआ और उसी जंबूद्वीपके पश्चिम दिदेहक्षेत्रमें पद्मनामके देशमें आश्वपुरनगरका राजा  
वज्रवीर्य रानी विजयाके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ ॥ ३१-३२ ॥ पुरग्यके द्वारा रत्ना किये उस वज्रनाभिने पूर्ण चक्र-  
वर्तीकी लक्ष्मी प्राप्तकी और उनका उपभोग करने पर भी तृप्त न होने पर वह मोक्ष लक्ष्मीके प्राप्त करनेके लिये तैयार  
हुआ ३३ ॥ वह भट्टारक जैंगमर मुनिराजके समीप गया और उनके मुखरूपी कमलसे निकले हुए धर्मश्रुत रूपी रस  
को पीकर उसने और सब रसोंकी इच्छा छोड़दी ॥ ३४ ॥ उसने अपने राज्यपर अपने पुत्रको विठाकर अनेक राजाओं  
के साथ समस्त जीवोंपर अच्छी तरह दया करनेवाला संयम धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ इधर पहिले क्षयटका जीव  
जो अजगर हुआ था वह मर कर छठे नरकमें जाकर नारकी हुआ, वहाकी वाईस सागरकी आयुतक अनेक तरहके  
दुःख भोगकर वहांसे निकला और वनमें उत्पन्न होनेवाले सब प्राणियोंको कंपाने वाला कुरंग नामका भील हुआ ॥ ३६-  
३७ ॥ किसी एक दिन शारीरिक बलको धारण करनेवाले शरीरसे समत्व छोड़े हुए वज्रनाभि मुनि आर्तिध्यानका परि-  
त्याग कर आतापन योग धारण कर विराजमान थे कि इतनेमें ही वह भील आ पहुंचा, उस पापीको पहिला बैर स्मरण  
हो आया और उसने उन मुनिराज पर जिसे कातर लोग सहन नहीं कर सकते ऐंसा अनेक तरहका घोर उपसर्ग किया  
॥ ३८-३९ ॥ उन मुनिराजका जीव धर्मव्याप्तमें लीन होकर सव्यगदर्शन सहित सुभद्र नामके मध्यमवैषयके विमानमें  
सत्ताईस सागरकी आयु पाकर उत्तम अर्हमिंद्र देव हुआ । वहां पर उसने अनेक दिव्य भोगोंका अनुभव किया तथा  
आयुके अंतमें वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके अयोध्या नगरमें काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशी

पानि कुष्काणि पत्राणि च भयादधात् ॥ २० ॥ उपलास्कात्मनापि द्विपसंभवात्तद्विहितं । विभक्त्यं निराहार पारणाया महाबलः ॥ २१ ॥ विरमेवं तप  
कुर्वन् क्षीणदेहपराक्रमः । कदाचित्प्राप्तुमायातो वेगबला हरेऽपतत् ॥ २२ ॥ पके पुनः समुत्थात् विहितेहोष्यशानुषम् । कर्मठेन कुर्वतेन कुक्कुटाहिलमे-  
युषा ॥ २३ ॥ पूर्ववाराजुब घेन हृष्टो निर्नेष्टवित । अमृतकल्पे सबहारे वेदशाब्दयुपमायुषा ॥ २४ ॥ तत्र भोगान्ययोग्यं भुक्त्वा प्राप्ते ततश्च्युत ।  
विशुन्माका- सर्वतोभद्रप्रभृत्युक्तो-  
विशुप्रतिविद्याधरेस्तस्य वक्त्रा ॥ २५ ॥ पुरे विशुप्रतिविद्याधरेस्तस्य वक्त्रा ॥ २६ ॥ गृहीत्वा सर्वतोभद्रप्रभृत्युक्तो-  
समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर, संयम धारण कर लिया और सर्वतोभद्र आदि अनेक उपवास धारण कर किये  
संसारमें परिभ्रमण करनेका समय बहुत थोड़ा है ऐसे उस बुद्धिमान अधिवेगने अपनी पूर्णयौवन अवस्था प्राप्त होने पर  
समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर, संयम धारण कर विराजमान हुआ । इतनेमें ही जिस  
॥ २५-२८ ॥ किसी एक दिन वह हरिनामके पर्वतकी गुफामें योग धारण कर विराजमान हुआ और इसी वनमें अजगर हुआ  
कुक्कुट सर्पने वज्रघोष हाथीको काटा था वही पापी धूम्रप्रभा नरकके दुःख भोगकर निकला और इसी वनमें अजगर हुआ  
था । उन मुनिराजको देखते ही अजगर क्रोधित हुआ और उन्हें निगल गया, जिससे उनका जीव शरीर छोड़कर सो-  
लहवें अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव हुआ ॥ २६-३० ॥ वाईस सागरकी उसे आयु मिली, आयु पूरी होने पर

अभूतायेतयो पुत्रौ विषामृतकृतोपमौ । कमठो मरुभूतिश्च पापघर्मीविषाणौ ॥ ९ ॥ वरुणा ख्यायसो भार्या द्वितीयस्य वसुंधरी । मंदिनां तो महीपस्य क  
कनीयान् नीतिवित्तयोः ॥ १० ॥ वसुंधरीनिमित्तेन सदाचारं सतीं मत । मरुभूतिं दुराचारी जघन कमठोपमः ॥ ११ ॥ मरुये कुम्भकाख्याने विपुले  
सङ्गकीवने । मरुभूतिरमृत्युला वज्रघोषो द्विपाधिप ॥ १२ ॥ वरुणा च मृता तस्य केशुरभवत्प्रिया । तयोस्तास्मिन्वने प्रीत्या काळे गच्छत्युज्ज्वले ॥ १३ ॥  
अरविदमहारजस्य मृता राज्य विरम्य सः । संप्राप्य सयमं सौर्येनामा सम्मेदनीक्षितुं ॥ १४ ॥ व्रजन् वने स्वकेयां प्रतिभावोपमागमत् । नोदधत्ते नियो-  
गं स्वं मनागपि मनस्विन ॥ १५ ॥ विलोक्य त महानागः त्रिप्रसूतमहोदत । द्रुमभ्युद्यतस्तस्य प्रतिमायोगवाभिणः ॥ १६ ॥ वीक्ष्य वक्षस्वटे साक्षा-  
न्मंशु श्रीवत्सकाञ्चनः स्वपूर्वभवसंबंधं प्रत्यक्षीकृत्यचेत सा ॥ १७ ॥ तस्मिन्प्राक्तनसाहर्दाप्रतोषी ओषमास्त सः । तिर्यन्वोपि सुहृद्भाव पाठयत्येव बहुषु ॥  
१८ ॥ वर्मेतत्त्व मुने सम्यग्ज्ञात्वा तस्मात्सहेतुक । सप्रोषधोपवासादिश्रावकव्रतमग्रहीत् ॥ १९ ॥ तदा प्रमृतिं नागोदो भग्ना शाक्वा परैर्द्विपै । खादत्त

वसुंधरी था । ये दोनों ही भाई राजाके मंत्री थे परंतु उन दोनोंमें छोटा मरुभूति नीतिका अच्छा जानकार था ॥ १० ॥  
नीच और दुराचारी कमठने वसुंधरीके निमित्तसे सज्जनोंका माना हुआ सदाचार नष्ट किया और मरुभूतिको भी मारा  
॥ ११ ॥ मरुभूति मरकर मलय पर्वतपर कुब्जक नामके सालकीके वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ ॥ १२ ॥ वस्त्रणा मरकर  
उसी वनमें हथिनी हुई और वह वज्रघोषके साथ क्रीडा करने लगी । इसप्रकार उन दोनोंका समय बड़े प्रेमसे व्यतीत हो  
रहा था ॥ १३ ॥ किसी एक समय राजा अरविदने विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया और संयम धारणकर सब संघके  
साथ सम्मेद शिखरकी यात्रा करनेको निकले । चलते चलते वे उसी सङ्गकी वनमें पहुंचे और वहां उन्होंने अपने सा-  
मायिकके समयपर प्रतिमायोग धारण किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य अपने कर्तव्योंके एक अंशको भी उ-  
ल्लंघन नहीं करते हैं ॥ १४-१५ ॥ उन्हें देखकर जिसके दोनों कपोल और ललाट ऐसे तीनों जगहसे मद वह रहा है  
ऐसा वह महा उद्धत हुआ हाथी प्रतिमा योग धारण करवाले उन मुनिराजको मारनेकेलिये तैयार हुआ, परंतु उनके व-  
त्तःस्थलपर श्रीवत्स चिन्ह देखकर उसके चित्तमें शीघ्र ही पहिले भक्ता संबंध साक्षात् दिखाई पढ़नेके समान स्मरण हो  
आया ॥ १६-१७ ॥ पहिली मित्रता होनेके कारण वह हाथी उन्हें देखते ही शांत हो गया सो ठीक ही है क्योंकि ति-  
र्थच भी अपने भाई वंशुओंमें मित्रताका पालन करते ही हैं ॥ १८ ॥ उस हाथीने उन मुनिराजसे हेतुपूर्वक धर्मका स्वरूप  
अच्छीतरह समझा और उसने प्रोषधोपवास पूर्वक श्रावकके व्रत धारण किये ॥ १९ ॥ उससमयसे लेकर वह दूसरे हाथि-  
योंके द्वारा तोड़ी हुई वृत्तोंकी डालियोंको खाता था अथवा पापके ढरसे सुखे वृक्ष वा पत्ते खाता था, इसीप्रकार वह प-

## अथ त्रिसप्ततितमं पर्व ।

स पातु पार्श्वनाथोस्मान् यन्महिम्नैव भूषार । न्ययेषि केवलं भक्तिर्भोनिनी छत्रधारण ॥ १ ॥ नर्मश्रेतातपत्र त्रे सूते विश्वविस्मिणी । छायां पापा-  
तपस्त्रिष्टस्रवापि क्षितिल केचन ॥ २ ॥ सर्वभाषा भवद्भाषा सत्यां सर्वोपाकारिणी । कृत शृण्वति सदुष्टाः सटास्ता नन नावुन्निव ॥ ३ ॥ अनसिञ्चकमदा-  
न्या देवतीर्थकरा परे । तमेव न्यकमाहात्म्यो वाच्यते साधुतकथा ॥ ४ ॥ कुमार्गोवाहिणी यस्यायस्यात्सन्मार्गोभारिणी । तप्त घर्मा कथा वदये भव्याना  
मोक्षमार्गिना ॥ ५ ॥ उबूक्षिभूयणे द्वीपे भरत दक्षिणे महाव । कुम्भो विषयस्तत्र विस्तीर्ण पोदन पुर ॥ ६ ॥ रक्षितास्मारविदाह्यो विद्वन्मो विद्वन्मो विद्वन्मो  
मिः । विप्रियुस्त समाश्रित्य प्रजापतिमिव प्रजा ॥ ७ ॥ तद्वेव विश्वभूताह्यो ब्राह्मणो युतिश्च ब्रवित । आक्रम्यनुधरा तस्य श्रीत्ये शुतिरिवापरा ॥ ८ ॥

## अथ तिहत्तरिवां पर्व ।

अथानंतर---जिनकी केवल महिमासे ही धरगोद और इदानीने भक्तिपूर्वक छत्र धारणकर जिनका उगसर्ग दूर किया  
देसे श्री पार्श्वनाथ स्वामी हमलोगोंकी भी रक्षा करें ॥ १ ॥

हे भगवान यद्यपि आपका धर्मरूपी श्वेत छत्र समस्त संसारमें फैलनेवाली छायाको प्रगट कर देता है तथापि त्रितने  
ही जीव पापरूपी घूँपसे दुःखी रहते हैं ॥ २ ॥ हे प्रभो ! आपकी भाषा सर्व भाषारूप है अर्थात् उसे सब अपनी अपनी  
भाषामें समझ सकते हैं, वह सत्यरूप है और सबका उपकार करनेवाली है उसे संतुष्ट हुए सज्जन लोग ही सुनते हैं दुष्ट  
लोग उसे कभी नहीं सुनते ॥ ३ ॥ हे देव ! अन्य तीर्थक्षेत्रोंकी महिमा इतनी प्रगट नहीं है परंतु आपकी महिमा सबसे  
अधिक प्रगट है इसलिये सुंदर कथा लिखी जाती है ॥ ४ ॥ जिससे कुमार्गका नाश होता है और सन्मार्गकी प्रवृत्ति  
होती है ऐसी आपकी धर्मरूप कथा मोक्ष जानेवाले भक्त्योंकेलिये कही जाती है ॥ ५ ॥ इसी जंबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें  
एक सुरम्प देश है और उसमें बहुत बड़ा पोदनपुर नगर है ॥ ६ ॥ उस नगरमें पराक्रम आदिसे प्रसिद्ध अरविंद नामका  
राजा राज्य करता था जिसप्रकार चंद्रमासे सब प्रसन्न रहते हैं उसीप्रकार सब प्रजा प्रसन्न रहती थी ॥ ७ ॥ उसी नगरमें  
वेदशास्त्रको जाननेवाला विश्वभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसको प्रसन्न करनेवाली दूसरी भक्तिके समान अनुंधरी ना-  
मकी ब्राह्मणी थी ॥ ८ ॥ उन दोनोंके कमठ और परशुति नामके दो पुत्र थे जो कि विप और अमृतके वनाये हुएके  
समान थे अथवा दूसरे पाप और धर्मके समान थे ॥ ९ ॥ कमठकी स्त्रीका नाम वरूणा था और परशुतिकी स्त्रीका नाम

वात्र न स्यात् अस्मिन् हि विविचकं चरनेति क्रमेण ॥ २८५ ॥ ब्रह्मायुगपद् दशमित्यर्थोऽयनामा वासाद्योगमदसौ भूतराज्यभार ।  
कुरुत यज्ञमखण्डमायुर्वंध प्रति प्रतिपदं शुक्लित्सर्वधेत ॥ २८६ ॥ अस्मैव तीर्थसताने ब्रह्मणो धरणीभिस्तु । चूलादेव्याश्च संजज्ञे ब्रह्मदत्तो नि-  
तदीभनाः ॥ २८७ ॥ द्विदशो नामत सप्तचाप सप्तशताब्दकै । परिच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥  
इत्यार्षे विश्विच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥  
इत्यार्षे विश्विच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥

इत्यार्षे विश्विच्छिन्नप्रमाणानुसृष्टताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥

क्यों न गिना जाय ॥ २८३ ॥ शूरवीरताके महासागर कृष्णने सिंहके समान हो कर बड़े प्रतापशाली हार्यके समान ही सब शत्रुओंको जीतकर गर्जना की वे सब संसारके विजेता कहलाए और हाथमें एकही दंड लेकर इन अखंड तीनों खंडोंको जीता तथा वे बालक अवस्थामें मायोंका पालन करनेसे आज तक भी वे गोप कहलाते हैं ॥ २८४ ॥ देखो कहां तक बड़े २ सब शत्रुओंको नाश करनेसे कृष्णको ऐसी अद्भुत राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई थी और कहां सब गहन वनमें जाकर उनका समूल नाश हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे किसको क्या नहीं होता है अर्थात् कर्मके उदयसे सब को सबकुछ होता है । यह कर्मोंका चक्र पहिचकी धुरीके समान अनुक्रमसे सदा घूमा ही करता है ॥ २८५ ॥ देखो कृष्णने पहिले नरकआयुका वंध किया था और फिर तीर्थकर नामकर्मकी प्रकृतिका वंध किया पहिले नरक आयुका वंध करलेनेसे ही उन्हें सब राज्य सुलका अनुभव कर भी नरक जाना पडा इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि सुखकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान लोगोंको प्रत्येक पद पर अर्थात् पेंड पेंड पर ( समय समय पर ) आयुबंध बांधनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८६ ॥ इन्ही नेनिनाथ तीर्थकरके समयमें ब्रह्मदत्त चारहवां चक्रवर्ती हुआ है वह ब्रह्मा नामके राजाका पुत्र था और उसकी माताका नाम चूलादेवी था । उसका शरीर सात धनुष ऊंचा था और सातसैवर्षकी उसकी आयु थी । वह चक्रवर्तियोंमें सबसे पिछला था (और गरकर सातवें नरक गया) था ॥ २८७-२८८ ॥ इस प्रकार श्रीमगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुगणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अगिष्टनेमितीर्थकर, पद्मनाभ बलदेव कृष्णनाभ अर्धचक्री, जरासंध प्रतिवासुदेव, और ब्रह्मदत्त सकल चक्रवर्तीके पुगणको कहनेवाला यह बहचरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥



केन न धर्मचक्रमभितो नेमीश्वरो नेमितां ॥ २७८ ॥ सुभापुरभवत्तत प्रथमकल्पयोसाच्छ्रुतः कृष्णमिषतिरन्वतोऽजनि वतुर्नृकपेभरः । वणीडजनि शलबागु सुरो मरुशुक्लस्तोपि नवमो बलेनुदिविजस्तत्तरीर्यद्वृत् ॥ २७९ ॥ प्रागासीदश्वतरसायनस्तृतीये श्वेभृशुलुभववसिधौ अमिला । भूयोभृशुहपतिरत्र यक्षनामा निर्नामा दृपतिश्रुतस्ततोऽमृतासी ॥ २८० ॥ तस्मादभ्यन्तरिषु कृतदुग्दिदानाचक्रैश्चरो इतविश्वदजरादिंसंघ । धर्मोद्भवाद्दुभयवत् बहुदुः- समस्कारिर्गन्ध तीर्थकृदनयविघातकृत्सः ॥ २८१ ॥ द्रोहाभ्युने पलपच स कुषीरयोगात्पदीजएवतपसाप्य च चकलक्ष्मी । धर्मोद्भवाद्दुभयवत् बहुदुः- तेजस्विना कयमिहास्तु न सोऽग्रगण्यः ॥ २८२ ॥ चाणूरमेणमिव यो इतवान् हरिर्वा कस च कसमिव बाशनिरन्वमेरीत । द्युत्युर्गयाहतकिशुं शिशुपालमौजो ददोऽप्रतिहतां यथापादाल्ये गा किल सल स गोमेन्वपि ततः ॥ २८३ ॥ सकन्दपुशुशुर्वंसनात्सादुतुतश्रीः क च सधुवनवाभोही हरेर्भूलनासः । सकृतवि- समान मानकर संयम धारण किया ऐसे श्रीनेमिनाथको धर्मचक्रकी धुरी वनानेके लिये भला कौन धारण नहीं करता अर्थात् सब ही धारण करते हैं ॥ २७८ ॥ बलदेवका जीव पहिले सुमानु हुआ था फिर पहिले स्वर्गमें देव हुआ, वहां से आकर विद्याधर हुआ, फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर शंख नामका वैश्य हुआ तदनंतर महाशुक्र विमानमें देव हुआ और वहांसे आकर नौवां बलदेव हुआ । तथा अभी स्वर्गमें देवोंके सुख भोग रहा है और वहांसे आकर तीर्थ- तक संसार रूपी सागरमें परिभ्रमण कर यत्न नामका गृहस्थ हुआ, फिर तीसरे नरकमें गया, फिर उसके बाद बहुत दिन हुआ और फिर वहांसे आकर अपने शत्रु जरासंध आदिको मारने वाला चक्रवर्ती कृष्ण हुआ, वहांसे स्वर्गमें देव कारण चक्रवर्तीकी पर्याय छोटकर और नरकमें पड़ कर अनेक दुखोंका अनुभव कर रहा है और आया पूर्ण होने पर वहां से निकल कर सब तरहके अनर्थोंको नाश करनेवाला तीर्थंकर होगा ॥ २८०-२८१ ॥ कृष्णके जीवने चांडाल अवस्था लक्ष्मी भी नष्ट हुई है । इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि परिग्रहोंका त्याग करने वाले मुनिराजोंका पाप रूप बुद्धिसे थोडा सा भी अपकार मत करो ॥ २८२ ॥ जिस प्रकार सिंह हिरण्यको मार डालता है उसी प्रकार जिसने चाणूरमल्लको मारा, वज्र जिस प्रकार कांसको फोड़ डालता है उसी प्रकार जिसने कंसका चूर्ण कर डाला और मृत्यु जिस प्रकार बबेको उठा ले जाती है उसी प्रकार युद्धमें जिसने शिशुपालको जीता ऐसा कृष्ण भला मताप शालियोंमें सबसे मुख्य

सिदिमानुवन् ॥ २७० ॥ नकुलः सहदेवश्च पञ्चमानुवन्तं ययुः । भट्टारकोपि संप्रापद्भयं तं भराघरं ॥ २७१ ॥ नवरेध्रुवेषु चतुर्दिवससंयुते । युतेषु नवभिर्महोदधिरसिभिस्त्र्युतौ ॥ २७२ ॥ पथात्पञ्चवर्तैः सार्द्धं संयतैः क्षिता त्रिभिः । मासं योगं निरुप्यासौ हताघातचित्तुककः ॥ २७३ ॥ आसाहमासे उग्रोत्थायाः पक्षे पित्रासमांगमे । क्षीतांशोः सप्तमीपूर्वरात्रे निवोणमासमान् ॥ २७४ ॥ तदा सुराधिपाः प्राप्य कन्याणं पञ्चम परं । विधाय विधिवद्भक्त्या स्व स्वमेकं पुनर्ययुः ॥ २७५ ॥ शकाद्या ब्योम्नि दुरादमरपशुदृढा वाहनेभ्योऽवतीर्णातरुणं मूर्ध्नावनम्राः स्तुतिमुखारमुखा कुड्मलीभूतदस्ता । ध्वस्तान्-र्वीताघ्नः प्रमिहितमनसो यस्य पादौ प्रणेषुः क्षेम श्रीमान्स्व नेमिर्भटिति षटययु प्रांत्वोघप्रसिद्धयै ॥ २७६ ॥ प्राक्क्षितागतिरावभावनुतत कल्पे चतुर्भे मरो जज्ञेसादपराहित क्षितिपतिर्जतोऽच्युतैरस्ततः । तस्मात्सोजनि सुप्रतिष्ठपतिर्देवो जयतेऽक्षभूदसीदत्र महोदयो हरिकुलज्योर्मासल्लेखुर्जिनः ॥ २७७ ॥ सा कस्मी सकलामराक्षितपदार्थोजो यथायं मिथुस्तत्कौमारसमेयरूपविभवं कन्या च साविस्तुतिः । धीमान् सर्वभिदं जरत्पुणसम मत्वाप्रहीतसंयम घनां

हुए ॥ २६८-२७१ ॥ उन्होंने छहसौ नित्यान्वे वर्ष नौ महीना और चार दिन विहार किया । फिर विहार छोड़ कर पांचसौ तीतीस मुनिराजोंके साथ साथ एक महीने तक योगोंका निरोध कर आपाढ शुक्ला सप्तमिके दिन चित्रा नक्षत्रमें रात्रिके प्रारंभमें ही चारों अघातिया कर्माका नाश कर वे मुक्त हुए ॥ २७२-२७४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बड़ी भक्तिके विधिपूर्वक उनका पांचवां निर्वाणकल्याणकका उत्सव मनाया और फिर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७५ ॥ जो अनेक देवोंसे धिरे हुए हैं, आकाशमें दूरसे ही अपनी अपनी सत्वारियोंसे उतर पड़े हैं, जिन्होंने बड़ी शीघ्रतासे अपने मस्तक नवा लिये हैं जिनके मुख स्तुतियोंके उच्चारण करनेसे मुखर हो रहे हैं दोनों हाथ संकुचित कमलोंके समान जुड़े हुए हैं जिनके हृदयका ग्रंथकार नष्ट हो गया है और जो मनमें बार बार नमस्कार कर रहे हैं ऐसे इंद्रादि देव भी जिनके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे वे श्रीनेमिनाथ भगवान् अतिप्र केवल ज्ञानको प्रगट करने के लिये शीघ्रही कल्याण करो ॥ २७६ ॥ श्रीनेमिनाथका जीव चिंतागति विद्याधर हुआ उसके बाद चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर अपराजित राजा हुआ, फिर सोलहें स्वर्गमें इंद्र हुआ, वहांसे चयकर सुप्रतिष्ठ राजा हुआ फिर ज-यंत विमानमें अहर्निद्र हुआ और फिर अंतमें इसी जंबू द्वीपमें बड़ी विभूतिको धारण करनेवाले और हरिवंश रूपी आ-काशमें निर्मल चंद्रमाके समान श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर हुआ ॥ २७७ ॥ श्रीनेमिनाथकी राज्यलक्ष्मी भी सबमें प्रसिद्ध थी उनके चरण कमलोंकी सेवा इंद्रादि सब देव आकर करते थे, उनकी कुमार अवस्था अत्यंत रूप रूपी ऐश्वर्यसे भरपूर थी और उनके लिये पांगी हुई राजमति कन्या अत्यंत प्रशंसनीय थी तथापि उन बुद्धिमानने इन सबको पुराने तिनकेके

प्रातरुत्पत्तिविवर्तनः ॥ २५१ ॥ उत्कृष्टजीवित तत्र गमयित्वा त्रयोपि से । सोदर्याः प्रच्युता यूय जाता रत्नत्रयोपमाः ॥ २६० ॥ धर्मजो भीमसेनश्च पा-  
थंश्च ह्ययातपूषयः । धनमित्राश्रिया चारिमन्नभूता सुतविक्रमा ॥ २६१ ॥ नकुलः सहदेवश्च चद्रादित्यसमप्रमा । सुकुमारी च कपिल्यापुरे द्रुपदभूपतेः ॥  
२६२ ॥ सुता दृढरयाश्च द्रैपद्याख्याजनिष्ठ सा । इति नेमीश्वरप्रोक्तामाकल्पं बहुमि सम ॥ २६३ ॥ पाण्डवाः सधम प्रापन्वसतामेषा हि बहुता । कुन्ती-  
सुभद्राद्रौपयाः दीक्षा ता परां ययु ॥ २६४ ॥ निकटे राक्षिमलाख्यगणिन्या शुभभूषणाः । तास्तिष्ठः पोडशे कल्पे भूला तस्मात्परिच्युता ॥ २६५ ॥  
विश्वकर्ममैतृङ्का मुक्तिमेष्यलसंशयं । पंचापि पाण्डवा नेमिस्त्रासिना माहितदंयः ॥ २६६ ॥ विह्वल भक्तिका काश्चित्समा रघुप्राप्य भूधर । शत्रुजय  
समादाय योगमातृपमाश्रिता ॥ २६७ ॥ तत्र कौरवनाथस्य भागिनियो निरीक्ष्य तान् । क्रूर कुर्वर स्थूला स्वमातुलवध कुधा ॥ २६८ ॥ आर्यसान्नामि-  
तप्तानि मुकुटादीनि पापभाक् । देया विभूषणानीति शरीरेषु निधाय स ॥ २६९ ॥ उपसर्ग व्यथातेषु कंतेयाः श्रेणिमाश्रित । शुक्रव्यानामिनिदम्बकर्मधाः

की उत्कृष्ट बर्दिस सागरकी आयुका उपभोग कर उन तीनों भाइयोंके जीव वहांसे च्युत होकर रत्नत्रयके समान अत्यंत  
प्रसिद्ध धर्मराज ( युधिष्ठिर ) भीम और अर्जुन ऐसे तुम तीनों भाई हुए हो । तथा धनश्री और मित्रश्रीका जीव सूर्य चं-  
द्रमाके समान प्रभावशाली और पराक्रमी नकुल और सहदेव ये दो भाई हुए हैं और सुकुमारीका जीव कपिला नगरके  
राजा द्रुपदकी रानी दृढरयासे यह द्रौपदी हुई है । इस प्रकार श्रीनेमिनाथके कहे हुए वचनोंको सुन कर पाण्डवोंने अनेक  
राजाओंके साथ दीक्षा धारण करली सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंका भाई वंशुपना भी ऐसा ही होता है । गुणरूपी  
आभूषणोंको धारण करनेवाली कुन्ती सुभद्रा और द्रौपदीने भी राजपती गण्णीकी समीप जाकर उत्तम दीक्षा धारण कर  
ली । कुन्ती सुभद्रा और द्रौपदीके जीव सोलहवें स्वर्गमें देव हुए और वहांसे च्युत होकर मनुष्य जन्म पाकर निःसंदेह सम-  
स्त कर्मरूपी मलसे रहित होकर मोक्षमें जा विराजमान होंगे । अत्यंत भक्तिको धारण करनेवाले पाचो पाण्डवोंको अनेक श्रु-  
द्धियां प्राप्त हुई थीं उन्होंने कितने ही वर्ष तक श्रीनेमिनाथ स्वामीके साथ विहार किया था और अंतमें शत्रुजय पर्वतपर  
आकर आतप योग धारणकर विराजमान हुए थे ॥ २६६-२६७ ॥ दैवयोगसे वहां पर दुर्योधनका भानजा आ निकला  
उन्हें देखते ही उनके द्वारा मामाके मारनेका स्मरण कर उस क्रूर पापी दुष्टने क्रोधमें आकर उनके शरीरमें अग्निमें तपाये  
हुए सुकुट आदि सब आभूषण पहिनाए और इस तरह उनको चोर उपसर्ग किया । उन पाचो भाइयोंमें युधिष्ठिर भीम  
अर्जुनने तपकश्रेणी चढ़कर शुक्रव्यान रूपी अग्निसे सब कर्मोंके समूहोंको नष्ट कर सिद्ध अवस्था प्राप्तकी और नकुल सहदेव  
अनुत्तरके पांचवें सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए इधर भट्टारक श्रीनेमिनाथ स्वामीभी गिरनार पर्वत पर जा विराजमान

निराकाशाग्निदीप्ती स्वां विपुण्यता ॥ २४८ ॥ गृहीतानमानान्येयुरार्थकाणि सहागतां । स्वगेहं सुवतां क्षांतिममिवय वदार्थिके ॥ २४९ ॥ इमे द्वे क्षीयने केन हेतुनेऽयन्वयुक्त तां । अथ साजवीदेव क्षांतिं कृत्याणनामिके ॥ २५० ॥ १४ वेते जन्मनि प्राप्ति सौधर्मधिपते; प्रिये । विमला सुप्रभा चेति देव्या सौधर्मसंयुतः ॥ २५१ ॥ गत्वा नदीश्वरद्वीपे जिनगेहार्चन विधेः । तत्र संविम चेतत्वात्संप्र प्यास्मान्मनुभ्यतां ॥ २५२ ॥ आवा तप करिष्याव इत्यन्योन्यव्यवस्थिते । अकुर्वतां ततश्च्युत्वा साकेतनगरेनिनः ॥ २५३ ॥ श्रीवेगाख्यामहाशस्य श्रीकातायाश्च ते सुते । हरिश्च्रीपर्वसेन, ह्यसभूय प्राप्त-यौवने ॥ २५४ ॥ स्वयंवरविवाहेरुनढपांरंतरस्थिते । निजपूर्वमेव स्मृत्वा सस्मां च प्राप्तीं कृतां ॥ २५५ ॥ विमज्जं वधुर्येण सम दृपकुमारकान् । इति दीक्षामिति क्षातिवचनाकर्णनेन सा ॥ २५६ ॥ सुकुमारी च निर्दोषा सम्मता निजवाध्वैः । तत्समीपेगमहीक्षामन्येयुर्वनमागतां ॥ २५७ ॥ वै द्यां वसंतसेनाख्यामाह्वय बहुभिर्विदुः । संप्रार्थ्यमानामालोक्य ममाप्येव भवेदिति ॥ २५८ ॥ निदानमकरोज्जीवितान्ते प्राकृतजनजन्मनः । सोमभूतेभ्युरेती

२४८ ॥ किसी दूसरे दिन अनेक अर्जिकाओंके साथ सुवता और ज्ञांति नामकी दो अर्जिकाएँ आहार लेनेके लिये सुकुमारी के घर आईं । सुकुमारीने बंदना कर उन्हें आहार दिया और फिर पूछा कि हे स्वामिनी कृपा कर कहिये कि इन दो अर्जिकाओंने किस कारणसे दीक्षा ली है । तब ज्ञांति कहने लगी कि हे कल्याणी सुन । ये पहिले जन्ममें सौधर्म स्वर्गके इंद्रकी विपला और सुप्रभा नामकी देवियां थीं । किसी एक दिन ये दोनों ही सौधर्म इंद्रके साथ नंदीश्वर द्वीपमें भगवान् अरहंतदेवके जिनालयोंकी पूजा करने गई थीं । पूजा करनेके बाद इनका चित्त कुछ उदास ( विरक्त ) हुआ था और इन दोनोंने परस्पर निश्चय किया था कि यदि इस देवपर्यायसे मनुष्य पर्याय मिलेगी तो हम दोनों ही तपश्चरणा करेंगी । आयुके अंतमें वहांसे च्युत हो कर दोनों ही साकेत नगरके राजा श्रीषेणकी रानी श्रीकांतके ये हरिश्च्री और पूर्वसेना नामकी दोनों पुत्रियें हुई हैं । यौवन अवस्था प्राप्त होने पर ये दोनों ही विवाहके लिये स्वयंवर मंडपमें खड़ी थी कि इतनेमें ही इन दोनोंको अपनी पहिली प्रतिज्ञा और अपने पहिले भवोंका स्मरण हो आया ॥ २४६-२४५ ॥ उसी समय इन्होंने सब भाई वंधुओंका तथा सब राजपुत्रोंका त्याग कर दिया और दीक्षा धारण कर ली । इस प्रकार ज्ञांतिके बचन सुनकर सुकुमारी विरक्त हुई और सब कुंडुवियोंकी सम्मति लेकर उसी अर्जिकाके समीप जाकर उसने दीक्षा लेली । किसी दूसरे दिन वनमें वसंतसेना नामकी वंश्या आई थी और बहुतसे व्यभिचारी आकर उससे प्रार्थना कर रहे थे यह देखकर उसने निदान किया कि मुझे भी ऐसा ही रूप मिले । आयुके अंतमें उसने प्राण छोड़े और पहिले जन्ममें जो सोमभूति ब्राह्मण हुआ था और तपश्चरणा कर आरण्य अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था उसीकी देवी हुई । वहां

नारणाश्रुतस्त्वय्ये । सामानिद्रापती द्विविशतिसागरजीविन ॥ २३७ ॥ अन्वभूधिरौगस्तत्र मप्रविचारका । नागश्रीरपि पापेन पचन्वा पृथिवी भगात् ॥ २३८ ॥ दुख तत्रानुभूयते स्वयुषोऽनु ततश्च्युता । अभूत्स्वयप्रमदीये सौगो दृष्टिविषयो मृत ॥ २३९ ॥ द्वितीयनरक गत्वा त्रिसमुद्रोपमयुगा । मुक्त्वा दुःख विलिङ्ग्य त्रसस्वावरणोनिषु ॥ २४० ॥ द्विसागरापम काल परिश्रम्य भवार्णवे । चपापुरे समुद्रं मातंगी मदपापतः ॥ २४१ ॥ समावि-  
गुप्तनामान मुनिमासाद्य सान्यदा । बद्धित्वा धर्ममाकर्ण्य मधुपर्वासनिवृत्तितः ॥ २४२ ॥ तस्मिन्नेव पुरे श्रुत्वा सुतेभ्यस्त्यागवन्मनी । सुयथोधनदेव्याश्च मुहु  
गंधगरीरिका ॥ २४३ ॥ सुकुमारीति सहाऽप्या विहिताशीनुयासिनी । पुरस्मिन्नेव वैदग्य धनदेयस्य पुत्रतां ॥ २४४ ॥ प्रासादशोकदाताया देवदत्ता जि-  
बादिकौ । मंत्रधार्थ्यं स्ववधूनामादानं स्वस्य वेदिता ॥ २४५ ॥ सुकुमार्था सुदैर्गध्य जिनदेवो जुगुप्सयन् । सुवताह्यमुनेरैतैर्वास्तिव समबाध सः ॥ २४६ ॥  
बनीयान् जिनदत्तोप प्रेरितो बंधुमिमंहु । आसवधुसुता नावमानयोगेति तद्वयात् ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा तामाशा कुक्षफणिनीमिव नागमन् । स्वमेवस्य

अनेक भोगोंका बहुत दिन तक अनुभव किया । इधर नागश्रीका जीव पापोंके कारण पांचवें नरकमें जाकर नारकी हुआ ॥ २३८ ॥ वहाँके आयु पर्यंत अनेक दुःखोंका अनुभव कर वहाँसे निकला और स्वयंभवा द्वीपमें दृष्टिविषय नामका सर्प हुआ । वहाँसे परकर दूसरे नरकमें पहुँचा वहाँ पर उसने तीन सागरकी आयु तक अपनेमें परिश्रमण किया । तदनंतर वह पापकर्मोंके मंदोदयसे चपापुर नगरमें चांडालिनी हुई ॥ २४१ ॥ किसी दूसरे दिन वह समाधिगुप्त नामके मुनिराजके समीप पहुँची । उनकी बेदना कर उसने धर्मका स्वरूप सुना और शब्द तथा मांसका त्याग किया ॥ २४२ ॥ इतना त्याग करनेसे ही वह आयु के अंतमें परकर उसी नगरके धनी शेट सुबंयूकी स्त्री धनदेवीसे सुकुमारी नामकी कन्या हुई । उसका शरीर अत्यंत ही दुर्गन्ध था परंतु तौ भी धन होनेके कारण माता पिताने उसका नाम सुकुमारी रखा था उसी नगरमें एक धनदेव वैश्य रहता था उसकी अशोकदत्ता स्त्रीसे जिनदेव और जिनदत्त नामके दो पुत्र हुएथे । जिनदेवके कुटुंबी लोग उसका विवाह सुकुमारीके साथ करना चाहते थे परंतु यह समाचार सुन कर और उसकी दुर्गन्धता जानकर वह विरक्त हुआ तथा सुद्वन्त नामके मुनिके समीप जाकर उनका शिष्य हो गया अर्थात् उसने दीक्षा ग्रहण करली ॥ २४३-२४६ ॥ तदनंतर जोड़े पाई जिन दत्तको कुटुंबियोंने बहुत प्रेरणा की और समझाया कि अपने बड़े लोगोंकी कन्याका अपमान करना ठीक नहीं है इस हरसे जिनदत्तने उसके साथ विवाह तो कर लिया परंतु क्रोधित हुई सर्पश्रीके समान उसके पास कभी नसर्ग भी नहीं जाता था । इस प्रकार पतिके विरक्त होनेसे वह सुकुमारी अपनी पुरयहीन्ताकी बड़ी निंदा करती थी ॥ २४७-

स्वपूर्वभवसबधमपृच्छन्ससुतेभयात् । अत्रोचद्भगवानित्यमप्रतर्कमहोदय ॥ २२६ ॥ जंबूद्वीपविते द्वीपे अतंगे पुरी परा । चपाह्वया कौरवस्तत्र महीशो मेघवाहनः ॥ २२७ ॥ सोमदेवो द्विजोऽथैव ब्राह्मणी तस्य सोमिला । तयो युताअथः सोमदत्तः सोमिलनामकः ॥ २२८ ॥ सोमभूतिश्च वेदांगपाराग प रमद्विजाः । असीया मातुलस्याभिभूतेस्तिष्ठोऽभवंयुता ॥ २२९ ॥ अमिलाया धनश्रीमित्रश्रीनागश्रियः प्रिया । तेभ्यो यथाकामाहतास्ताः सिन्धुभ्या सुलक्षणाः ॥ २३० ॥ सोमदेवः सुनिर्विष्य सुधी केनापि हेतुना । प्रात्राजीदन्यदा धर्मरुचिनाम तपोवन ॥ २३१ ॥ प्रविशत गृहं शिक्षाकाले वीक्ष्यानुकृ पया । सोमदत्त प्रतीक्ष्येनमाह पत्नी कनीयसः ॥ २३२ ॥ नागश्रीर्वितरास्मै त्वं शिक्षामिति कृतादर । मायेव सर्वदा सर्वमेव प्रेषयतीति सा ॥ २३३ ॥ कुपिला विषसंश्रित ददावन्नं तपोधृते । स सत्यस्य समाराध्य प्राप्तदल्यमनुत्तर ॥ २३४ ॥ नागश्रीविहिताकार्यं ब्राला ते आतरअयः । समीपे वरुणार्थं स रीक्षा मैक्षीं समाययुः ॥ २३५ ॥ गुणवत्यार्यकाभ्यासे ब्राह्मण्यवितरे तदा । ईश्वर संयम इतमोहं सदमतमिदं ॥ २३६ ॥ पंचाप्याराम्य तेऽभूव

लगे ॥ २२४-२२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रके चंपपुर नगरमें कौरव वंशी राजा मेघवाहन राज्य करता था । उसी नगरमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम सोमिला था, उनदोनोंके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति ये वेदके अंगोंके जानकार परम ब्राह्मण तीन पुत्र हुए थे । उन तीनों भाइयोंके मामाका नाम अग्निभूति था उस अग्निभूतके अशिला स्त्रीसे धनश्री मित्रश्री नागश्री नामकी तीन पुत्रियां हुई थीं । अग्निभूति और अशिलाने वे शुभ लक्षणवाली तीनों कन्याएं यथाक्रमसे अपने अपने भानजों को दे दी ॥ २२७-२३० ॥ तदनंतर बुद्धिमान सोमदेवने किसी कारणसे विरक्त होकर दीक्षा ले ली थी । किसी दूसरे दिन आहारके समय धर्मरुचि नामके तपस्वी सोमदेवके घर आए सोमदत्तने कल्याण कर उनका पडगाहन किया और छोटे भाईकी स्त्री नागश्रीसे आहार देनेके लिये आदर पूर्वक कहा । नागश्री यह सुन कर क्रोधित हो गई और मनमें कहने लगी कि यह सोमदत्त सदा सवकामके लिये मुझसे ही कहता है । इस तरह क्रोधित होकर उसने मुनिके लिये विप भिला अन्न दे दिया जिससे संन्यास धारण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर वे मुनिराज सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहर्भिद्र हुए ॥ २३१-२३४ ॥ नागश्रीके द्वारा किये हुए अकार्यको जानकर उन तीनोंही भाइयोंने वरुण नामके मुनिराजके समीप जाकर मोक्ष देनेवाली दीक्षा धारण करली ॥ २३५ ॥ उसी समय ब्राह्मणीने भी गुणवती नामकी अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली । सी ठीक ही है क्योंकि सज्जन और असज्जनोंका चरित्र ऐसा ही होता है इस प्रकार ये पांचो ही जीव तपश्चरण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर आरण तथा अच्युत स्वर्गमें वाईस सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुए और वहां पर उन्होंने प्रवीचारसहित

भवन्कमात् ॥ २१४ ॥ द्यूत युधिष्ठिरस्यात्र दुर्धनमहीभुजा । भुनक्तुं यथा यत्कीचकानां विनाशन ॥ २१५ ॥ विराट्प्रातर्दूरीगोमंडलनिवर्तनं । अ-  
नुगतैर्भूयस्व विराटस्य सुधर्मणः ॥ २१६ ॥ अल्पगोमंडलस्यार्जुनोत्तराभ्यां निवर्तनं । पुराणवेदिभिर्विच्यं विस्तरेण यथाश्रुतं ॥ २१७ ॥ अथ युद्ध-  
रंजयज्जन ॥ २१८ ॥ एव स्वकृतपुण्यस्य ते सर्वं परिगच्छ । सुखं निखिलमव्ययमन्यभूयश्चरन् ॥ २१९ ॥ तदा द्वारवतीदहः के शर्मावीगहनतरे ।  
युतिर्जित्कुमारैर्ण विष्णोर्जष्टस्य सयम ॥ २२० ॥ भविष्यतीति यन्त्रोक्तं द्वागवला जिनेषिना । निवृत्तं तत्र तत्सर्वं न सिध्यायदिनो जिना ॥ २२१ ॥  
तादृशं तादृशमासीद् विविधं दुष्कर्मणा गतिं । निर्मूल्यति कर्मणि तत एव हि यीधनाः ॥ २२२ ॥ तत्सर्वं पांडवाः श्रुत्वा तदयान्मधुगुधिपाः । स्वा-  
मिबधुवियोगेन निर्दिष्टं लक्ष्म्या ॥ २२३ ॥ महाप्रस्थानकर्मण प्राप्य नैमिषिनेश्वरं । ताकालोचितसत्कर्म सर्वं निर्माप्य भास्विकाः ॥ २२४ ॥  
कीचकको मारा और राजा विराटका गोमंडल शत्रुओंसे छुड़ाया । इस प्रकार उन्होंने राजा विराटको सुखी किया । तथा  
थोडासा गोमंडल ( नाग भैंस आदि पशु ) कोई और शत्रु ले गया था वह अर्जुनके छोटे भाइयोंने छुड़ाया । इन्मन्त्र  
उनका यह संचित चरित्र है विस्तारसे आगमानुसार पुराणके जानकारोंको जान लेना चाहिये ॥ २१४-२१६ ॥ तद-  
नंतर कुरुक्षेत्रमें कौरव और पांडवोंका युद्ध हुआ उसमें पांडवोंने दुर्धनको जीता । युधिष्ठिर सब देशका राजा हुआ  
और छोटे भाइयोंमें राजलक्ष्मीका विभाग कर तथा उसका उपयोग करता हुआ सबलोगोंको प्रसन्न करने लगा ॥ २१७-  
२१८ ॥ इस प्रकार वे सब पांडव अपने पुण्यकर्मके फल सुखको विना किसी व्याकुलताके रात दिन पूर्ण रीतिसे अनु-  
भव करने लगे ॥ २२० ॥ तदनंतर द्वारवती नगरी जली, कौरवांनी वनमें जरतुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु हुई और  
ज्यों का त्यों हुआ सो ठीक ही है क्यों कि जिनेंद्र देव कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहते हैं ॥ २२१-२२२ ॥ जिनके  
लिये जैसा कहा था उनको वैसाही हुआ अतएव इन अशुभ कर्मोंकी गतिको भी बार बार धिक्कार हो और इसलिये शुद्धिमान  
बंधुओंके वियोगसे विरक्त हुए, और मोक्षके लिये महाप्रस्थानकी तैयारी करने लगे । उन भक्त लोगोंने श्रीनेमिनाथ  
स्वामीके समीप जाकर उस समय करने योग्य प्रदक्षिणा नमस्कार आदि सब कर्म किए और संसारसे दूरकर अपने पहिले  
भवोंका संबंध पूछा । इनके उत्तरमें जिनके ऐश्वर्यकी कल्पना भी नहीं होसकती ऐसे भगवान नेमिनाथ इस प्रकार कहने



ताः । स्वसंववादिषु 'सूत्र्य रेदं वायव्य पांडवा' ॥ २०३ ॥ पौद्गनाह्यपुरे चंद्रसत्तनाममहीपतेः । देविस्त्रायाश्च पुत्राय कलागुणविशारद ॥ २०४ ॥ वि-  
धाय निहितस्फण्ड राज्य व्यतीरिषु । अथैवमने श्रीला तथा वार्ताशुलाचराद ॥ २०५ ॥ इहाप्यवश्यमेधंति विधेयस्तस्वपुत्र । न केनचिद्विरोधो  
यमिति तद्वचनश्रुतेः ॥ २०६ ॥ वसतेऽचौकराजा स स्वयमंडप । तेन सर्वमहीपालाः सप्रापन् पांडवेषु च ॥ २०७ ॥ भीमस्य भोजनार्हवगजस्य च-  
स्तर्जनेन । पार्थस्य मत्स्यनिर्मैदाच्चापरोपणसाहसात् ॥ २०८ ॥ नारदागमनाच्चापि लक्ष्यमाणेषु निश्चित । समागतेषु सत्स्वईन्महापूजापुस्तमर ॥ २०९ ॥  
प्रविश्य भूषिता रत्नै सा स्वयंवरमंडप । भूमिपान् जलरूपादिगुणै सिद्धार्थनामनि ॥ २१० ॥ पुरोधसि कर्मात्मके न कश्चलविलम्बताम् । कन्या सभाय  
यामास्य मालयेज्जल्यार्जुन ॥ २११ ॥ द्रुपदाद्युग्रवज्रोत्था महीशाः कुशवज्राः । अन्येपि चानुरूपोयमिति तुष्टि समागमन् ॥ २१२ ॥ एव सप्राप्तकल्या  
नाः प्रविश्य पु मात्मन । गमयन्ति स्म सौहृदेन काल दीर्घमिव क्षण ॥ २१३ ॥ ततः पार्थातुष्टुगद्गायामसिमन्युरभूत्तुतः । प्रोषयां पंच पञ्चालनामानोन्व-

में निपुण बना कर कंठकरहित राज्य समर्पण किया है इसलिये प्रेमपूर्वक उसे देना चाहिये । यह सुन कर अन्य मंत्रीने  
कहा कि इस बातको सुनकर भी लोग विरोध करेंगे इसलिये स्वयंवर करना ही ठीक है, क्योंकि स्वयंवर करने किंसीका  
विरोध नहीं होगा । मंत्रियोंकी ये सब बातें सुनकर राजाने वसंत ऋतुमें स्वयंवर मंडप बनवाया और उसमें सब राजा  
लोग आए । इधर पांडव लोग जो परदेश चले गये थे उनमेंसे भीम तो भोजनके बनाने और गंधगजको हाथसे ही ताड़न  
करनेसे प्रसिद्ध हुआ, अर्जुन मत्स्यभेद करने और धनुष चढ़ानेके साहससे प्रसिद्ध हुआ तथा नारदके आनेसे सभी प्रसिद्ध-  
हुए और सभी स्वयंवरमंडप में जा विराजमान हुए । तदनंतर भगवान् अरुहंतदेवकी पूजा कर तथा रत्नादिकोंके आभू-  
षण और वस्त्र आदिसे विभूषित होकर वह द्रौपदी स्वयंवरमंडपमें आई । सिद्धार्थ नामका पुरोहित अर्जुनसे सब रा-  
जाओंके कुल रूप आदि गुणवर्णन करने लगा परंतु उस कन्याने सबको छोड़कर उज्जल मालाके द्वारा अर्जुनको अपना  
पति बनाया ॥ २०१-२११ ॥ यह देख कर द्रुपद आदि उग्रवंशमें उत्पन्न हुए राजा कुरुवंशी तथा और भी अनेक राजा  
कहने लगे कि कन्यके योग्य ही वर मिला है इस तरह संतुष्ट होकर सब अपने अपने घरको चले गये ॥ ११२ ॥ इस  
प्रकार अनेक कल्याणोंको प्राप्त होकर वे पांडव अपने नगरमें गये और सुखपूर्वक बड़े लंबे समयको भी क्षणभरके समान  
व्यतीत करने लगे ॥ २१३ ॥ तदनंतर अर्जुनके सुभद्रासे अभिमन्यु नामका पुत्र हुआ और द्रौपदीसे अर्जुनसे पंचाल  
आदि पांच पुत्र हुए ॥ २१४ ॥ किसी एक दिन राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके साथ जूआ खेला जूआमें वे सब हार  
गये और नगर छोड़कर छिप कर विराटके राजाके यहां सेवक बन कर रह गये वहां पर भीमने युजंगशैल नगरमें

क्षत्रचक्रपुरस्सरः । पादयोः पुं पथासक्तौ च सप्तसि पृथक् ॥ १३२ ॥ कृतशोभो अगमार्थद्वयप्रतिहार्यकः । महन्मार्गगताशेषपुरलेचनसेवि-  
त ॥ १३३ ॥ पृथ्वीपथप्रवृत्तान्यविनेयैर्बनतानुगः । पवनमरतिर्भूतिधूलीकटकभूतलः ॥ १३४ ॥ मेघामरकुमारोपसिक्तगर्वांशुसत्सति । इत्या-  
द्याश्चैव संपन्नः सर्वप्राप्तिमनोहरः ॥ १३५ ॥ धर्ममृतमयी वृष्टिमभिर्विवन् जिन्मंश्वर । विश्वन् देशन् विह्वलयात्मदेव पञ्चभास्वरं ॥ १३६ ॥ अत्र प. ३  
तन्तुजानां प्रपचोत्थः सर्वप्राप्तिमनोहरः । अर्थाविस्तरसीरुणामायुर्नैधानुरोधतः ॥ १३७ ॥ कणित्वायां घरायीत्रो नगरे डडाह्वयः । देवी हठरथा तस्य द्रौपदी  
तनया तयोः ॥ १३८ ॥ स्त्रीगुणैः सकलैः शस्या भूय भुवनप्रिया । तत्पूर्णैवना वीक्ष्य पित्रा कस्यै मय्यर्पिता ॥ १३९ ॥ इय कन्येति सप्रष्टा मन्त्रिणो  
मन्त्रिचर्चया । प्रमाधत प्रचोदये पादवैभवं प्रतीयता ॥ २०० ॥ एतन् सहजशत्रुत्वाद् दुर्योधनमहीवति । पादुपुत्रानुपायेन लाक्षालयमवीविशत् ॥  
२०१ ॥ हेतुं त तेपि विज्ञाय स्वपुण्यपरिचोदितः । प्रवृत्ता पदसि क्षमाजस्र्याघत्तात्कल्पिय स्वय ॥ २०२ ॥ अपहृत्य सुरगोपातेन देशातरं ग-

पीछे अलग अलग सात सात कमलोंसे उन त्रिलोकीनाथकी निराली ही शोभा हो रही थी चमर छत्र आदि प्रातिहार्य  
अलग शोभा दे रहे थे, सब देव विद्यावर उनकी सेवा करते हुए आकाश मार्गसे जा रहे थे । उनके साथ साथ ही पृथ्वी-  
परके मार्गसे अन्य शिष्य लोग जा रहे थे, उस समय वायु कुमारके देवोंने भी धूली कंटक साफ कर पृथ्वी साफ कर  
दी थी और मेघकुमारके देवोंने पृथ्वी पर गंधोदक सींच दिया था । इस प्रकार अनेक आश्चर्योंसे भरपूर, सब प्राणियों  
को मनोहर और धर्मरूपी अमृतकी वर्षा बरसाते हुए वे भगवान नेमिनाथ सब देशोंमें बिहार कर पल्लवनामके देवों जा  
विराजमान हुए ॥ १६१-१६६ ॥ यहा पर समय पाकर ग्रंथके विस्तारसे इरनेवाले मनुष्योंकी आयु और बुद्धिके अनु-  
सार पांडुओंकी भी थोड़ी सी कथा लिख देते हैं ॥ १६७ ॥ कंपिला नगरीमें राजा द्रुपद राज्य करता था उसकी दृढ-  
रथा देवीसे द्रौपदी नामकी पुत्री हुई थी ॥ १६८ ॥ वह द्रौपदी स्त्रीमें होने वाले सबगुणोंसे प्रशंसनीय थी और सबको  
प्यारी थी । उसे पूर्ण यौवनांगी देखकर राजाने मंत्रचर्चिके द्वारा मंत्रियोंसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये ।  
सब एक मंत्री कहने लगा कि पांडव बड़े बलवान हैं उन्हें देनी चाहिये ॥ १६९-२०० ॥ यह सुन कर दूसरा मंत्री कह-  
ने लगा कि दुर्योधन पांडवोंका स्वाभाविक शत्रु है, उसने अपने उपायसे सब पांडवोंको लाक्षासहस्रमें घुसा दिया था  
परंतु पुत्रयवान् पांडव इसका हेतु जान गये थे और जलमें खड़े हुए एक वृत्तके नीचे रहने वाले किल्बिष नामके राजस  
को स्वयं मार कर सुरंगके रास्तेसे भागकर देशांतरको चले गये थे- इस प्रकार पांडवोंके कुटुंब परिवार आदिकोंका दुःख  
भी नष्ट नहीं हुआ है । इधर पौन्दनपुर नगरके राजा चंद्रदत्तके रानी देविलासे इन्द्रवर्मा नामका पुत्र है, उसे राजाने संकलगुणों

१८० ॥ विष्णोर्ज्ञातृत्कृप, रेण गन्धनरगतिर्भवेत् । म एष प्रथमा पृष्ठी प्रविश्यात्-गुणमायुष ॥ १८१ ॥ प्राते तस्माद्विनिर्गत्वा तीर्थं गोत्र भवेत्यति । त्वम  
प्येतद्विगोत्रेण वृणासकृन् शोचन ॥ १८२ ॥ सिद्धार्थं सुसोयन, पास्तान् विहृदु खकः । दीक्षायादाय माहं दक्षये देवो जनिष्यसे ॥ १८३ ॥ उक्तं तु  
रिथ तिस्त्रय मुक्तमोक्षं तीर्थं कृत । भूत्वा निर्दग्धार्थमिदं मुक्तो भविष्यसि ॥ १८४ ॥ इति तीर्थयात्रायां ग्रीष्म श्रुत्वा दीपायनाह्वयः । सयः संयममादाय  
प्रायाज्जनपदांतरे ॥ १८५ ॥ तथा जलकुमरश्च कैशाब्जपूर्यमाश्रयत् । प्रायश्चरकराद्युद्धो हरिश्च सदर्शनः ॥ १८६ ॥ भाव्यमानात्पनामासा नाह शक्नो  
मि कीदृशितु । शक्ताश्च प्रतिवध्वासीत्यालोवालमोपयत् ॥ १८७ ॥ प्रयुष्मादिसुना देवो हस्तिपथायाश्च चक्रिण । ब्रूथापृच्छथ तं मुक्ताः प्रत्यपयंत सयम ॥  
१८८ ॥ दीपायननिदानान्माने जाववतीसुत । अनिरुद्धश्च कामस्य सुनः सप्राप्य सयम ॥ १८९ ॥ प्रयुष्मसुनिना मार्दमूजयताचलाग्रिमे । कूटत्रय  
समावृष्ट प्रतिमायोगवारिण ॥ १९० ॥ शुक्लश्च न समापूर्य जयस्ते घातिघातिनः । कैवल्यनवंक प्राप्य प्राप्यमुक्तिमथान्वया ॥ १९१ ॥ पुण्यघोषणकुब-

आयु पाकर पहिले नरकमें नारकी होगा और आयु पूरी होने पर वहांसे निरुल कर इसी भरतजेव्रमें तीर्थकर होगा ।  
तू भी कृष्णके वियोगसे छड़ महीने तक शोक करेगा और फिर सिद्धार्थ देवके द्वारा समझाए जाने पर सब दुःखोंको  
दूर कर दीक्षा लेकर चौथे माहेंद्र स्वर्गमें देव होगा ॥ १८०-१८३ ॥ पहां पर सात सागरकी आयु पाकर भोगोंका  
अनुभव कर इसी भरतजेव्रमें तीर्थकर होगा और कर्मरूप शत्रुओंको नष्ट कर यहींसे मुक्त होगा ॥ १८४ ॥ श्रीतीर्थकरका  
यह उपदेश सुनकर दीपायन तो उसी समय दीक्षा लेकर दूसरे देशमें चला गया, तथा जलकुमार कौशांबी वनमें चला  
गया । जिन्होंने पहिलेही नरककी आयु बांध ली है और फिर सम्यग्दर्शन धारण किया है, ऐसे कृष्णने अंतिम तीर्थकर  
नाम कर्मकी कारण सोलह कारण भावनाओंका चितवन कर स्त्री वालक आदि सबके लिये यह घोषणा कर दी कि मैं  
तो दीक्षा ले नहीं सकता परंतु जो दीक्षा ले सकते हैं उन्हें मैं रोना भी नहीं जो चाहे सो दीक्षा ले ले ॥ १८५-१८८ ॥  
यह सुनकर प्रभुमन आदि राजपुत्रोंने तथा रुक्मिणी आदि देवियोंने दीक्षाके लिये कृष्ण और भाई वैशुओंसे पूछा, सब  
ने उन्हें आज्ञा देदी और इसप्रकार उन्होंने दीक्षा धारण कर ली ॥ ८८ ॥ दीपायनके निदान करते समय जाववतीके  
पुत्र शंभवने तथा कामदेवके पुत्र अनिरुद्धने भी दीक्षा धारण करली और प्रभुमन मुनिके साथ गिरनार पर्वतके ऊंचे तीनों  
कुओं पर क्रिजमान होकर प्रतिपा योग धारण किया ॥ १८९-१९० ॥ उन तीनोंने शुक्लध्यान धारण कर घातिया  
कर्म नष्ट किये और फिर नौ केवल लब्धियोंको पाकर वे मुक्त हुए । अथानंतर किसी दूसरे दिन भगवान् नेमिनाथने  
वहांसे विहार किया, उनके पुण्योदयसे यज्ञ धर्मवक्रको लेकर आगे चलता था, उनके पीर रखनेकी जगह तथा आगे



चितं विकारणामक्रोदाकरं पुनः । आगनाथ व्यधाद् भृत्यान् गोपुरेथ स्थिताननान् ॥ १६० ॥ वामुदेवस्य स्तोणातर्जयश्च विदुरात् । वीर्यं कृतस्वागा-  
देन जगत् ॥ १६१ ॥ मेघरूपेण सगाला पातयत्सपितामह । दृष्ट्वान् च हरिर्बुला निर्गीर्यत्वमद्वयता ॥ १६२ ॥ गलात्र मुपनास्य वेद्यभि-  
धाय स्वविधया । रुक्मिणीरूपायाद्य निर्विजयं मनोहरं ॥ १६३ ॥ विमाने स्थपयित्वाष्टु गच्छन् स सवलं हरिं । प्रामवन्त ममाद्भुत कालिक्रययोगोपम ॥  
१६४ ॥ जिला नरेन्द्र ल ह्यविद्याहितमायया । तस्यैति निःप्रतिपक्ष गन् वीक्षणाभीलविप्रहः ॥ १६५ ॥ नारदः स तदा गत्य तनूजस्यावधीभण । युन-  
योरीदृश लब्धविद्यस्यैव गन्धद्वयम् ॥ १६६ ॥ सोपि प्रकृतितात्पीयरूप पचयारावल । हरिं च स्वविरोन्यस्ततः कपाडनोत्थमानयत् ॥ १६७ ॥ ततश्चक्र  
धरोनग प्रेमालितदिप्रः । आरोप्य स्वगजस्कंधं प्रहृष्टः प्राविशानुरं ॥ १६८ ॥ सत्यभामायुत द्विष्टकन्यकाभि सह स्मरः । कलगाणामिषयं दिश्या मंत्रा  
पस्त्वैवममतः ॥ १६९ ॥ एव प्रयाति कालेस्य स्वर्गादागल कथन । तनूजः कामनोदयोः हरे प्राच्यो भविष्यति ॥ १७० ॥ इत्यादेश ममाकर्ण्य सत्यभा

जो सैवक आये थे उन्हें नगरके बड़े दरवाजेपर नीचेकी ओर मुख कर लटका दिया ॥ १६० ॥ फिर वामुदेवका रूप धारण कर उन सेवकों की अनेक तरहसे ताडना की । तदनंतर अत्यंत बृहत्ता रूप बनाकर गलीमें स्त्री रहा और चलभट्टके जगानेपर विद्यासे अपने पैर लंबे कर उनको ठगा । फिर भेषका ( भेडाका ) रूप बना कर वाया वमुदेवका घोंदू तोडा और सिंह बनकर चलभट्टको निगतकर अदृश्य कर दिया ॥ १६१-१६२ ॥ इसके बाद वह फिर माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि तू यहां ही सुखसे ठहरना । इसतरह कहकर उसने अपनी विद्यासे रुक्मिणीका वैसाही मनोहर रूप बनाया और उसे विमानमें बिठाकर शीघ्र ही कृष्णके समीप पहुंचा और कहने लगा कि मैं तेरी स्त्रीको हरले जाता हूं यदि सामर्थ्य हो तो छुडा । उसकी यह बात सुनकर समयानुसार यमके समान कृष्ण अपनी सब सेना लेकर आए परंतु भीलका रूप धारण करने वाला मद्युम्न मायामयी नरेंद्रजाल विद्यासे सबको जीत कर शत्रु रहित होकर अर्थात् सब शत्रुओं को नष्ट कर खडा रहा ॥ १६३-१६५ ॥ इतनेमेंही नारद कृष्णके समीप आकर बैठ गये और कहने लगे कि जिसने अनेक विद्याएं प्राप्त की हैं ऐसे पुत्रको तुम दोनों इसतरह देख रहे हो ॥ ६६ ॥ उसी समय मद्युम्नने भी अपना रूप प्रगट कर और पिताके चरण कमलोंको अपने मस्तक पर धारण कर उनका बहुत ही आदर सत्कार किया ॥ १६७ ॥ तदनंतर जिसका शरीर प्रेमसे आलिंगन हो रहा है ऐसे मद्युम्नको कृष्णने हाथी पर बिठाया और वडी प्रसन्नताके साथ नगरमें प्रवेश कराया ॥ १६८ ॥ फिर मद्युम्नने अपने पुण्योदयसे भालुकुमारके लिये जो कन्याएं आई थी उनके साथ सबकी सम्मतिसे विवाह किया ॥ १६९ ॥ इस प्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन

व्यवसयीक्य सा । कलात्मिकोक्तिरुक्ताकाण्यनान्तितनानतरे ॥ १४९ ॥ तदा विस्मयमापन्ना मुखा पप्रच्छ किं भवान् । भद्रोऽसौ मत्सुनो नारदोक्तकान्ते स  
मागतः ॥ १५० ॥ इति तस्या परिश्रेष्ठे स्वरूप सप्रकाशयन् । कृत्वा शिरसि तत्पादनलक्ष्मीवित्तमवती । १५१ ॥ अत्रिवाय स्वधृतातमशेष परिबोधय-  
न् । जननी सह मनुष्यतया तदभिवर्त्तिभूतैः ॥ १५२ ॥ बालक्रीडाविशेष्यता परा प्रीतिमवापयन् । प्रायजन्मोपाजितार्थपुण्ण देय इव स्थितः ॥ १५३ ॥  
तदा नापितकः कोपि रुक्मिणी समुपागतः । हरिप्रभारं वृत्तोत्पत्ति विहाय विनयभरात् ॥ १५४ ॥ मुनीश्वराद्योयस्या प्रायज्जन्मोपाजितार्थपुण्ण देय इव स्थितः ॥ १५५ ॥  
लन्यस्याः स इवेति युवाभ्यां विहितास्थिति ॥ १५५ ॥ तत्सारेव्यक्तकालीति श्रियतां तद्विषयन । स्युः वा भानुक्रमस्य क न य सलभ मया ॥ १५६ ॥  
प्रहितोऽहं विवाहेण वृत्तमित्यवधीदिद । किमेतदिति सपृष्टा कामेन तत्र जन्मना ॥ १५७ ॥ सम भानुब्रज संज तत्सदावाभ्यां युवां हरे । नीता दर्शयितुं  
मुने तस्मिन्स्व पादसन्निधौ ॥ १५८ ॥ स्थापितः स विरोभागे प्रभुष्य ता पुरो हरि । विदोष्य ज्येष्ठता तेऽदाहिनि माताभ्यभासत ॥ १५९ ॥ स ना-  
रहे ह ॥ १४९ ॥ उन्हें देखकर रुक्मिणीको बहुत आश्चर्य हुआ और वह प्रसन्न चित्त होकर पूछने लगी क्या आप  
मेरे पुत्र हैं और नारदके कहे अनुसार ठीक समय पर आए हैं । माता की यह बात सुन कर प्रद्युम्नने अपना रूप प्रगट  
किया और माताके चरणोंमें मस्तक नवाकर उसके चरणोंके नखोंकी कांति रूपी मंजरीको अपने मस्तक पर चढ़ाया  
॥ १५०-१५१ ॥ तदनंतर प्रद्युम्नने अपना सब हाल कहकर माताको समझाया और माताके साथ बहुत संतुष्ट हुआ ।  
फिर माताकी इच्छानुसार अनेक तरहकी बालक्रीडाएं कर माताको बहुत ही संतुष्ट किया और पहिले जन्ममें कमाए हुए  
अपूर्व पुरयकर्पके उदयके समान वह वहीं ठहरा रहा ॥ १५२-१५३ ॥ इतनेमें ही रुक्मिणीके समीप एक नई आया और  
इसप्रकार कहनेलगा कि श्रीकृष्णके प्रश्न करने पर श्री विनयंभर मुनिराजसे सत्यभाषा और तुम दोनोंने अपने पुत्रकी उत्पत्ति जान  
परस्पर शर्त बंदी थी कि जिसके पहिले पुत्र होगा वह पुत्र विवाहके समय दूसरीके शिरके बालोंपर बैठकर स्नान करेगा इसलिये हे  
देवी उस बातको स्मरणकर भानुक्रमारके स्नानके लिये आप अपने मस्तकके केश दें यही कहकर आज विवाहके दिन  
सत्यभामाने झुंके आपके समीप मेजा है । उस नार्दकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने मातासे पूछा कि यह क्या बात है । तब  
माता कहने लगी कि तेरे जन्मके साथही भानुक्रमारका जन्म हुआ था तब हम दोनोंने ( मैंने और सत्यभामाने ) कृष्ण  
को दिखानेके लिये तुम दोनोंको उनके समीप मेजा था । कृष्ण उस समय सो रहे थे इसलिये तू तो उनके पैरोंकी ओर  
सुला दिया था और भानुक्रमारको शिरकी ओर सुलाया था । कृष्णने उठतेही पहिले तू देखा इसलिये तुम्हें ही बड़ा  
माना था ॥ १५४-१५५ ॥ इसवरह माताकी बात सुनकर प्रद्युम्नने उस नार्दके अनेक विचार किये तथा उसके साथमें

कोदंडहस्तो व्याघ्राकृतिं दधत् । तेषां कदंबेन कृत्वा नागा द्वारवतीमिति ॥ १३८ ॥ विषाय विषया प्राणवधारदं स्थानस्थितं । एकाक्षी स्वयमागच्छ वि-  
द्याताः श्वाभृगाकृतिः ॥ १३९ ॥ बभञ्ज सत्यभामाया नन्दन बाबन बभ । तत्पाननापीनिःशेषअरुपूर्णकमण्डकः ॥ १४० ॥ ततो गत्वांतरं किंचित्स्थानोत्तरेषि रा-  
सभान् । विषयासं समाजोऽयं मयाकरुणपरः स्मर- ॥ १४१ ॥ पुरगोपुरतिथिपञ्चमेशनगतान् जनान् । सप्रहासान् समापण्य प्रविश्य नगरं पुन- ॥ १४२ ॥  
आलोक्य वैशवेकेण संप्रत्येयं स्वविषया । विच्छिन्नकर्णसंधानवेदित्वाहिं प्रचोषयन् ॥ १४३ ॥ प्राप्य भातुकुमाराय दातुमानीतकृत्यका । तत्राविर्भावितान-  
नेकधाहास्यशुद्धिजाकृतिः ॥ १४४ ॥ सत्यभामागृह गत्वा भोजनानसरे द्विजान् । विप्रकृत्य स्वधार्पेन भुक्त्वा स्वीकृतदक्षिण ॥ १४५ ॥ ततः शुभ्रकवे-  
केण समुपेत्य स्वमातरं । कुभुक्षितोऽहं सदृष्टे सम्भ्रमभोजय मामिति ॥ १४६ ॥ सप्राथ्यं विविधाहासान् भुक्त्वा दातुममन सव न् । कुह मे देवि सदासमि-  
ति व्याकुलतां नयन् ॥ १४७ ॥ तद्वितीर्णमहाभोदकोपयोगास्तुष्टुमवान् । ईषच्छातमनस्तत्र कुल समुपविष्टवान् ॥ १४८ ॥ अकाले चपकाशोकपुण्या-

विद्यासे नारदको तो रथमें ही रोक दिया और बंदरकारूप धारणकर अकेला ही नीचे आया ॥ १३९ ॥ आते ही सत्य-  
भामाका बावन नामका बहुत सुंदर बाग उजाड डाला और उसमेंकी बावडीका सब जल एक कमंडलुमें भरलिया ॥ १४० ॥  
तदनंतर थोड़ी दूर जाकर उसने अपने रथमें उलटे गये जोते इसतरह मायामयी रूप धारणकर वह पृथुयुन्न नगरके दरवा-  
जेपर पहुंचा वहांपर जाने लोगोंको सब हंसाया और फिर नगरके भीतर गया ॥ १४१-१४२ ॥ अपनी विद्यासे  
उसने वैद्यका रूप बनाया और घोषणा करने लगा कि मैं छिंदे हुए कानोंको जोड़ देता हूं तथा और भी ऐसे ही अनेक  
काम करना जानता हूं ॥ १४३ ॥ उसके बाद भातुकुमारके लिये जो कन्या लेकर आए थे उनके यहां पहुंचा और उ-  
नकी अनेक तरहसे हंसी की । फिर ब्राह्मणका रूप बनाकर सत्यभामाके घर पहुंचा वहां पर ब्राह्मणलोग भोजन करने  
के लिये तैयार थे इस लिये उसने उन्हें तो अपनी धृष्टतासे बाहर कर दिया और आप भोजन कर दक्षिणा लेकर चल-  
बना ॥ १४४-१४५ ॥ तदनंतर जुष्टकका रूप धारण कर अपनी माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि हे सम्यग्द-  
र्शनको पालन करनेवाली मैं भूत्वा हूं मुझे अच्छी तरह भोजन करा ॥ १४६ ॥ इस तरह प्रार्थना कर उसके दिए हुए  
अनेक तरहके भोजन खाये परंतु वह दृप्त नहीं हुआ । तब फिर कहने लगा कि हे देवी मेरा पेट<sup>ज</sup> भर मुझे संतुष्ट करो  
इस तरह कह कर कुछ देरके लिये उसे व्याकुल कर दिया और फिर उसका दिया हुआ एक महाभोदक स्वाकर संतुष्ट  
हुआ । इस तरह कुछ शांतचित होकर सुखपूर्वक वहां बैठ गया ॥ १४७-१४८ ॥ उसी समय रुक्मिणीने देखा कि अस-  
मयमें ही चंपा अशोक आदिके सब फूल गये हैं और अमर कोकिल आदि जानवर बागमें भीठे भीठे शब्द बोल



पराभव ॥ १२६ ॥ अथान्न नारद क्षामचारिण नमस्तस्मात् । आगच्छत निश्चयानं हरिमुज्ज्वलोकन ॥ १२७ ॥ यथाविधि प्रतीक्ष्यैनमभ्युत्थानपुरंदर । कृतपंथापणस्तेन प्रणीत तमप्रबंधः ॥ १२८ ॥ ममक श्रद्धया तस्मै प्रष्टोस्त्रिवलागम । इन्द्र स्वविस्मयस्तबद्धं तं मनरोधिषु ॥ १२९ ॥ सहस्रवैष्टेवार्कं आद्रुमोदजालक । कालसम्भवमुखं तत्स युध्वा भगमागयन् ॥ १३० ॥ तत्सूनुहुनयुनात बोधयित्वा क्षणाधिप । अपनीय शिला नागयात्राथिता न व्यगसयत् ॥ १३१ ॥ नारदागमहेतुं च क्षापयित्वा स चित्तरं । आपृच्छाद्यनुमत्तेन रथ युगभवात्मकं ॥ १३२ ॥ नारदेन समाहप प्रायश्च द्द रावती प्रति । स्वपूर्वभववयम श्रुवस्तेन निरूपित ॥ १३३ ॥ हस्तिन नगपुरं प्राप्य दुर्गोधनभहीधुनः । जन्मेय सुतां कन्या मान्यामुदधिमहाया ॥ १३४ ॥ दातुं भातुकुमाराय तां महाभिमणोत्सवा । विधीयमान वीक्ष्यत्वा रथे पत्न्यगमिष्या ॥ १३५ ॥ नारद शिलयाच्छाद्य तस्मादुत्सीय भूतल । बहुप्रकाशं ह्रासना तत्र कृत्वा ततो गतः ॥ १३६ ॥ मधुराया वह्निर्गमे पाटवान् स्वप्रिया सुता । प्रदत्तसूनु गच्छतो भक्तुमारगासिर्नक्षत्र मः ॥ १३७ ॥ समारोपिन

विधिपूर्वक उनका आदर सत्कार किया । उनके साथ बात चीत की और नारदने अपना तथा प्रदुयुज्जना मय हाल बतलाया ॥ १२८ ॥ उसे सुनकर और उसपर विश्वास कर प्रदुयुज्ज वहुत संतुष्ट हुआ और शत्रुकी सेनाके अनेकी प्रतीक्षा करता हुआ नारदके समीप बैठ गया । इतनेहीमें कालसंभव पिताधर की सेनाने अकस्मात् आकर डम्पकार धोर लिया मानों बर्षाश्रुके वाजलने मूर्यको ही दूक लिया हो । कालसंभव आदि मुख्य २ योद्धा लडने लगे परंतु प्रदुयुज्जसे सब हार गये ॥ १२९-१३० ॥ तदनंतर प्रदुयुज्जने कालसंभव पिताधरसे विदुयुदंज्र आदि सब भाइयोंके दुआरित्र गुनाह, शिलाको हटाकर सबको नागपासे छुड़ाया और नारदके अनेका सभ हाल सविस्तर समझाया । तदनंतर पिता कात्तान्भवकी आज्ञानुसार वह दारिकाको चलनेको तैयार हुआ और नारदके साथ दृगध नायके रथपर सवार होकर दारिकाको निकला । नारद उसके पहिले भव कह रहे थे उन्हें सुनता हुआ वह राजा दुर्योधनके हस्तिनापुर नगरमें जा पहुंचा । वहांपर दुर्योधनकी जलधि नापकी रानीसे उत्पन्न हुई उदधि नायकी सुंदर कन्याको भातुकुमारको देनेकेलिये महाभिमंक्र और उत्सव हो रहा था । उसे देखकर उसने पुनर विद्यसे नारदको तो एक शिलासे रथपर ही दूक दिया और वहासे पृथ्वीपर उतरा । वहापर उन लोगोंकी अनेक तरहसे हंसी की और फिर वहांसे भी आगे चला ॥ १३१-१३६ ॥ चलते चलते वह मधुरा नगरके बाहर पहुंचा, वहांपर पांडव लोग प्रिय कन्याको भातुकुमारको देनेकेलिये जा रहे थे उन्हें देखकर वह उनके समीप आया उसने दुर्योधनमें धनुष लेकर भीलका रूप धारण किया और फिर अच्छी तरह कई प्रकार से उनका तिरस्कार किया वहांसे चलकर वह दारिका पहुंचा ॥ १३७-१३८ ॥ वहांपर पहिलेके अनुसार उसीप्रकार

तौ सम तन्त्रे त्रितेजुः । कृपेन कृपित्याद्विपत्त्यास पादुकाद्वयः ॥ ११७ ॥ तेनानर्घ्यं नमोगामि देवतायास्तदाश्रितः । सुवर्णककुम्भे पंचफणहिपतिनर्पिताः ॥ ११८ ॥ तपनस्तापनो मोहनाभिधानो विलापन । मारणक्षेति पचैतान् शरान् सप्राप्य पुष्पभाक् ॥ ११९ ॥ मालिनीषादिमाला च छत्र चामरगुमक । दत्त क्षीरवने मर्कटेनास्मै परितोषिणा ॥ १२० ॥ कदवकमुखीवाप्या नागपाणमवाप्नुवान् । अस्य रुदेरसोढार सर्वे ते स्वगमनव ॥ १२१ ॥ यः पाताल-मुखीवाप्या पतेत्स सकलेश्वरः । भवेद्विलबदन्कमोष्यदगम्य तर्दिगित ॥ १२२ ॥ प्रक्षितिं निजरूपेण तस्या वाप्यामपीपतत् । स्वयं पार्श्वे शिराधाय स्वरूपं नयवित् स्थितः ॥ १२३ ॥ महाशिलामिस्तैः सर्वैर्विधेयं ब्रह्मवात्सन । निदित्वा कोपसतसो विधुर्दृष्ट्यादिविद्विष ॥ १२४ ॥ गाढ पाशेन बन्धाधोमुखं न प्रक्षिप्य तत्र स । कृत्वा शिलापिधानं च ग्रहिल नगरं प्रति ॥ १२५ ॥ ज्योतिः प्रभ कनीयांस तेष्वाम्य शिला स्थितः । पापिनो हि स्वपापेन प्राप्नुवति

नीचे पहुंचा और उसे खूब हिलाया । उसपर एक देव रहता था उसने तुरंत ही आकर आकाशमें लेजाने वाली बहुत मूल्य दो चरणपादुकाएं ( खडाजं ) दी । वहांसे चलकर एक अर्जुनद्वके नीचे आया और वहापर रहनेवाले पांच फणा वाले नागपति देवसे तपन तापन मोहन विलापन और मारण ये कामके पांच वाण उस पुरयवानको प्राप्त हुए ॥ ११२-११६ ॥ वहांसे चलकर वह प्रद्युम्न क्षीरवनमें गया वहांके मर्कट देवने संतुष्ट होकर मौलि, औषधियाला, छत्र और दो चमर दिये ॥ १२० ॥ तदनंतर वह कदंबकमुखी वावडीमें गया और वहांके देवसे एक नागपाश प्राप्त किया । इसतरह प्रद्युम्नकी वृद्धि देखकर विद्युर्दृष्ट आदि सब विद्याधर दुःखी हुए और कहने लगे कि जो कोई इस पातालमुखी नामकी वावडीमें कूद पड़ेगा वह सब संसारका स्वामी हो जायगा । प्रद्युम्नने उनकी यह बात सुनकर उनके सब अभिप्राय जान लिये और प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको अपना रूप बनाकर उस वावडीमें कूदा दिया तथा उनका सब अभिप्राय जाननेके लिये नयोंको जानने वाला वह प्रद्युम्न समीप ही जाकर छिप रहा ॥ १२१-१२३ ॥ प्रज्ञप्तिविद्याके कूद पड़ने पर प्रद्युम्नको मारनेके लिये उन विद्युर्दृष्ट आदि विद्याधरोंने बड़े बड़े पत्थर मारना प्रारंभ किया, उनके इस कामको देख कर प्रद्युम्नको क्रोध आया और उन सबको नागपाशसे जकड़कर बांध लिया, उन सबको नीचे को मुखकर उलटा ढांग दिया और ऊपरसे एक बड़ी शिला ढाकदी । उन विद्याधरोंमेंसे ज्योतिप्रभ नामका सबसे छोटा पुत्र था उसे उसने समाचार देनेके लिये नगरमें भेज दिया और आप उस शिला पर बैठ गया सो ठीक ही है क्योंकि पापी लोग अपने पाप कर्मसे तिरस्कार पातेही हैं ॥ १२४-१२६ ॥ अथानंतर थोड़ीही देर बाद प्रद्युम्नने देखा कि अपनी इच्छानुसार विहार करते हुए नारद आकाशसे उतर कर अपनी ओर आ रहे हैं ॥ १२७ ॥ उनको देखतेही वह खडा हो गया और

ततो निर्गतवान् भृगुस्तत्रिंशद्विक्रान् भिक्षु ॥ १०७ ॥ बराहारेखाकुम्भापतं बराहक । करैर्लेकेन रघूयां पृथान्नेनात्स मत्सकं ॥ १०८ ॥ प्रहस्य हे-  
त्वा तस्यां तस्यासाधु मेहित । समीप्य देवत तत्त्वा रक्षिणीप्रियमृते ॥ १०९ ॥ शंखं विजययोगाद्यं महाकात्ममपि ह्यं । दशसिंहं सुपुण्यानां क बा-  
र कोपि कीकृतः । तद्वदेव स कामस्य दृष्टिगोचरमापतत् ॥ ११० ॥ तथा आत्सगुहायां च महाकात्मा क्यराक्षसात् । ह्यभाक्ष्यथ रत्नकवचं प्राप निर्जितात् ॥ १११ ॥ विद्याधरेण केनपि बच-  
११२ ॥ खेटदत्त्वा समदाय समप्यय्य प्रियेवने । कुतो गता संप्रापतस्याद्रिबाज्यं महत् ॥ ११३ ॥ दुर्द्वेजालजातनरेवप्रसूतं च सः । पुन सहस्र  
बभ्रुविसवने बाधयु मात् ॥ ११४ ॥ निवात्रिधत्स नागश्च नागी च मकरपञ्च । चित्रवर्णं मनुर्नंदकाक्यासि कामरूपिणी ॥ ११५ ॥ सुविक्तां च प्रवृत्तां  
आप परंतु मृदयुम्न दोनोंको रोककर खडा हो गया, यह देख कर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे मग-  
रके आकारके दो दिव्य कुंडल दिये । तदनंतर वह वहांसे निकला और भाइयोंकी आज्ञानुसार बराह नामके विलमें गया ।  
वहां पर एक देव बराहका ( सूअरका ) उग्र रूप धारण कर सामने आया परंतु मृदयुम्नने एक हाथसे तो उसका दांत  
पकड़ लिया और दूसरे हाथसे उसका मस्तक ठोकता हुआ वह लीलापूर्वक खडा रहा । मृदयुम्नकी इस असाधारण  
चैष्टाको देखकर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और विजययोग नामका शंख तथा महाजाल ये दो वस्तुएं उसे दीं तो  
ठीक ही है क्योंकि पुरयवान मनुष्योंको कहां लाभ नहीं होता अर्थात् उन्हें सब जगह लाभ होता ही है ॥ १०६-११० ॥  
इसी तरह वह काल नायकी गुफामें गया वहां पर महाकाल नायके राजस देवकी जीता और उससे वृषभ नामका रथ  
और रत्नकवच ये वस्तुएं प्राप्त की ॥ १११ ॥ आगे चल कर दो हत्थोंके बीचमें किसी विद्याधरको किसी  
विद्याधरने किलित कर दिया था वह मृदयुम्नको दिखाई दिया वह कीलित हुआ विद्याधर असह्य वेदनासे  
दुःखी हो रहा था । यद्यपि उसके हाथमें वंध्यमोचनी अंगूठी थी परंतु वह कीलित था इसलिये कुछ कर न सका ।  
मृदयुम्न उसको देखते ही उसके समीप गया, उसके शरीरों को समझकर वह अंगूठी उसके हाथसे उतारी और उसके  
नेत्रोंमें फेरकर उसे खुदा दिया । इसतरह अपना उपकार करने वाले मृदयुम्नको उस विद्याधरने सुर्दजाल, नर्दजाल और  
प्रस्तर से तीन महा विद्याएं दीं । तदनंतर वह पृथुञ्ज सहस्रकवच नामके नागकुमारके भवनमें गया, वहांपर उसने शंख  
बजाया उसे सुनकर नाग नागिनी दोनोंही बिलके बाहर आए, मृदयुम्नको देखकर वे दोनोंही बहुत प्रसन्न हुए और उनमें  
ने उसे चित्रवर्ण नामका मनुष्य, नंदक नायकी तलवार और कामरूपिणी अंगूठी दी । वहांसे चलकर एक कैयके हस्ते

॥ १० ॥ किं प्रत्येयमिदं श्रेष्ठिः सत्येनार्थेन च भुवं । तर्कं वक्तुं परीक्ष्यं तत्र कमीक्यापुदैकतर्कितः ॥ १८ ॥ शिवा स्तोत्रेण कोमलं मातृवर्णेन दुष्टा शिवा ।  
 शिवोन्मोहनेन बोधेन परैर्वा प्रेत्येव वा ॥ १९ ॥ कर्मास्त्येव निमित्तानि परीक्षन्ति कुमेव वा । एवं प्रवर्तमानोऽपि विद्वान् विद्वत्तु वेत्त्यते ॥ २० ॥ वा जीवा-  
 भावबुद्ध्येत दुष्टा कष्टवयं च तत्र । इवविद्वानुल्लेखिवापि च संयोगीदृष्टिं वत् ॥ १०१ ॥ तदैव तं वक्तुं चापि सिद्धं ते वनं गताः । अमिदुःखं प्रवर्तयन् १०-  
 तं सत्यमिदमभीरवः ॥ २०२ ॥ इत्याहुः शोचि तच्छ्रुत्वा न्यतततत्र निषिद्धः । निवारयति भीमाब्धं न कार्यं देवतोक्तिः ॥ १०३ ॥ देवैर्बोत्रनिवासिन्या  
 प्रसिद्धाणि पूजितः । कनकोदाभूयसिदानेनाख्यादितिर्यगो ॥ २०४ ॥ तस्माद्विस्मयमापना गत्वा तेऽन्यत्र तं पुनः । श्रोत्वाद्यमेव भूभर्त्रोमिष्य आवेक्य-  
 न् कत्वा ॥ २०५ ॥ पर्वतौ मेघरूपेण पतंतौ भुजवालिनः । तत्रिकय रिक्तं दृष्ट्वा दुष्टा तद्रुतदेवता ॥ २०६ ॥ तस्मै शिष्ये ददौ रजकुंडके मकरांकिते ।

ज्ञानसे वक्ताकी परीक्षा करनी चाहिये । नयोंके जाननेवाले चतुर पुरुषको देखना चाहिये कि यह बात इसमें संभव हो  
 सकती है या नहीं, उसके आचरणोंसे उसकी परीक्षा करनी चाहिये तथा जिस उद्देश्यसे तथा जिसको उद्देश मानकर  
 जो वचन कहे गये हैं वे विभास करने योग्य हैं अथवा नहीं है इसकी शब्द और अर्थ दोनोंसे परीक्षा करनी चाहिये ।  
 तथा जो कुछ कहा जाय उसकी भी विचारवालोंको परीक्षा करनी चाहिये बुद्धिमानको यह भी देखना चाहिये कि  
 यह स्त्री भयसे कह रही है वा स्नेहसे, लोभसे कह रही है अथवा ईर्ष्यासे, भूखसे कह रही है अथवा लज्जासे, जानभूझ कर  
 कह रही है वा बिना जाने अथवा किसी दूसरेकी प्रेरणासे कह रही है इन सब कारणोंकी परीक्षा करनी चाहिये जो  
 बुद्धिमान इस प्रकार चलता है वह विद्वानोंमें भी विद्वान् गिना जाता है ॥ ६६-१०० ॥ दुःख है कि स्त्री स्वभाव होनेके  
 कारण दुष्ट स्त्रियां यह नहीं समझती कि इष्ट और शिष्टके संबंध होने पर इष्ट पुरुष ही मोहित होते हैं शिष्ट नहीं ॥ १०१ ॥  
 तदनंतर वे विद्वदुद्दंड आदि पांचसौ पुत्र प्रदुष्टको उत्साहित कर विहार करनेके लिये वनमें ले गये और एक अग्नि-  
 कुंडको दिखाकर कहने लगे कि जो कोई इसमें कूद पड़ेगा वह सबसे निर्भय गिना जायगा । भाइयोंकी यह बात सुनकर  
 वह प्रदुष्ट भी निर्भय होकर उसमें कूद पड़ा सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यसे प्रेरित हुए बुद्धिमान लोग किसी कामको  
 सोचते नहीं हैं ॥ १०२-१०३ ॥ उस कुंडमें कूदते ही वहांकी रहनेवाली देवीने उसका आदर सत्कार किया और सु-  
 वर्णके आभूषणा वस्त्र आदि देकर उसकी पूजा की इस तरह वह वहांसे निकला ॥ १०४ ॥ उसे देखकर विद्वदुद्दंड  
 आदिको बहुत आश्चर्य हुआ तथा वे दुष्ट फिर उसे उत्साहित कर दूसरी जगह ले गये और उसे विजयार्द्र पर्वतके किसी  
 विलेमें घुसा दिया ॥ १०५ ॥ वहां पर भुजाओंमें बल रखनेवाले प्रदुष्टमनके ऊपर भेडका रूप धारण कर दो पर्वत

सर्वतो बालमार्गस्वाद् दुःकलाद् ध्रुवं शति ॥ ८८ ॥ चालयति स्थिराश्रयं नवति विपरीततां । आश्रयति श्रुतिं वीतां क्रियो वा दोषविक्रिया ॥ ८९ ॥  
 सर्वतो रोषं पापिनीनां श्रियान् प्रति । न हेतुस्तत्र कोप्यन्तो लभालाभद्वयादिना ॥ ९० ॥ अकार्यमवशिष्टं यत्तत्रास्तीह कुतोपिता । मुक्त्वा पुत्रादि-  
 लाभिलभेन दप्येतवाकृत ॥ ९१ ॥ योषिषु व्रतशीलादिसत्क्रियाधाम्नुवति चेत् । न दुष्टिताः स्वपदं कथं नार्थात्मसत्क्रियाः ॥ ९२ ॥ आपो बांभोऽपत्रेषु  
 वित्ततामो न केषु चित् । स्यायु तिष्ठदपि स्पृष्टाभ्यस्तुष्टवदं दृष्टक ॥ ९३ ॥ सर्वदोषमयो भावो दुर्लभः सर्वयोपिता । इ साध्यं महाभोगावहोसा  
 संनिपातवत् ॥ ९४ ॥ क्व क्व किं किं केनेति विचार्य कार्यकारिणा । ऐहिकामुप्रकार्येषु ततोयं नेति वचनां ॥ ९५ ॥ प्रमणवचनं किं वा नेति वक्ता  
 परीक्ष्यता । विदुषा तस्य वृत्तन परिक्षानेन च स्फुटं ॥ ९६ ॥ एतस्मिन् सम्भवेदेतन्नवेति नयवेदिता । तदाचारः परीक्ष्य प्राक्यमुपदिशं वचं स च

उसे मारनेके लिये वहांसे निकले ॥ ८५-८७ ॥ देखो—जिसप्रकार हिंसाको प्रधान माननेवाले शास्त्र व आपससे हानि  
 पहुंचती है अथवा नीतिरहित राज्यसे हानि पहुंचती है और कुमारमें लगे हुए तपश्चरणसे हानि पहुंचती है उसी प्रकार  
 बुरी स्त्रियोसे अवश्य हानि पहुंचती है ॥ ८८ ॥ दोषोंके विकारोंसे भरी हुई स्त्रिया स्त्रिस्त्रको चला सकती हैं सीधेकी  
 उलट कर देती है और दंभीयमान बुद्धिको भी ढक देती है ॥ ८९ ॥ ये पापिनीएं अपने अपने पतियों पर उसी समय  
 तो संतुष्ट हो जाती हैं और फिर उसी समय क्रोध करने लग जाती हैं । उनके ऐसा करनेमें लाभ वा हानि इन दो के  
 सिवाय अन्य कुछ भी कारण नहीं है ॥ ९० ॥ संसारमें जो कुछ अकार्य वाकी है वह भी दुष्ट स्त्रियोंके लिये वाकी नहीं  
 है हा पुत्रके साथ कामसेवनकी इच्छा करना उनके लिये भी वाकी है अर्थात् दुष्टसे दुष्ट स्त्री भी पुत्रके साथ कामसेवनकी  
 इच्छा नहीं करती परंतु कंचनमालाने यह इच्छा भी कर डाली ॥ ९१ ॥ यदि स्त्रियां व्रतशील आदि सवक्रियाओंको  
 भी करने लगे तो भी ये शुद्ध नहीं होती इस लिये वे अधिकसे अधिक असत् क्रियाओंको किस तरह प्राप्त न हों ॥ ९२ ॥  
 जिस प्रकार जल कमलपत्रको स्पर्श करता हुआ भी उसपर निश्चल ठहरता नहीं उसी प्रकार स्त्रियोंका मन भी कहीं  
 पर निश्चल नहीं ठहरता, वह स्पर्श न किये हुएके समान सदा अलग ही रहता है ॥ ९३ ॥ सब स्त्रियोंके सब तरहके  
 दोषोंसे भरे हुए भाव सदा दुर्लभ्य ( छिपे हुए ) होते हैं अर्थात् ये किसीके देखनेमें नहीं आते और सन्निपातके समान  
 वे कष्टसाध्य होते हैं तथा महामोहसे सदा भरे रहते हैं ॥ ९४ ॥ यह किससे क्या कहती हैं और क्यों कहती हैं इसका  
 विचार कार्य करनेवालेको अवश्य करना चाहिये । जो ऐसा विचार करता है वह इसलोक और परलोकके किसी भी  
 काममें मग्न नहीं जाता ॥ ९५ ॥ यह वचन प्रमाण है अथवा नहीं है इसकेलिये विद्वान् पुरुषको 'उसके आचरण' और

प्रकाशयन्त्या स्वात्सर्ग्यं भाव पापपरीतया । कुमार दुग्ध मदेशा यदृण विधिपूर्वक ॥ ७७ ॥ प्रज्ञासिधिया मित्युक्तवन्ना मायामयेदृया । सो ये मातस्तथैवाहं करिष्यामीति पंमदत् ॥ ७८ ॥ आदय्य धीमास्ता विद्या सिद्धकृदयुगममत् । कृन्वा तत्र नमस्कारं चारणौ मुनिपुंगवौ ॥ ७९ ॥ श्रित्वा शुत्वा ततो धर्मं ज्ञात्वा प्रियाप्रसाधने । हेतु तदुपदेशेन सज्जयत् समाश्रय ॥ ८० ॥ आकर्ण्य तत्पुरुषाण च तदर्च्य पादशंभ्रभात् । विद्या संसाध्य संज तन्मद पुरम गमत् ८१ दृष्ट्वा द्विगुणिनाकारशोभत कामकातरा । प्रार्थयती बहू गयैरनिच्छन् महामति ॥ ८२ ॥ पुरुषवत्संपन्नमिति द्वेषादनुवृत्त । कुमार सहस्र सत्य योग्यो नाथ कुचेष्टित ॥ ८३ ॥ जानात्यनभिजात वमस्येति खचराधिपं । विचारविकल सोपि तदुक्त मप्रतीतवान् ॥ ८४ ॥ विदुं श्रुदिव न पंच शतानि तनुजान् मिष । अह्म देवदत्तस्य दोष्युगाशु बधोन्वित ॥ ८५ ॥ ततः केनाप्युगयेन भवद्वि क्रियता ऽयसु । इत्याह खच राध शलधवाज्ञास्तेपि बोधितः ॥ ८६ ॥ स्वयं प्रागपि त हंतुं कृतमंत्राः परस्परं । तथेति प्रतिपद्यातो निश्चयुस्तत्किरीर्षव ॥ ८७ ॥ हिंसाप्रधानशास्त्रास्त द्राज्य द्वा नयवर्जितात् ।

माला किसी एक दिन कामसे विकल होगई । जन्मांतरके स्नेहसे वह अनेक विकार करने लगी, पापोंसे घिरकर अपने हृदयके भाव प्रकाशित करने लगी और हृदयमें मायापयी इच्छा रखकर कहने लगी कि हे कुमार ! मैं तुम्हें विधिपूर्वक प्रश्न सि नामकी विद्यादेती हूं उसे तू स्वीकार कर । माताकी यह बात सुनकर कुमारने कह दिया कि हे माता जैसा आप कहेंगी वैसाही करूंगा । इस तरह आनंदित होकर उस बुद्धिमानने वह विद्या लेकी और विद्या लेकर सिद्धकृत चैत्यालेयपर गया । वहांपर भगवानको नमस्कारकर दो चारण मुनियोंकी बंदनाकी, उनसे धर्मका स्वरूप सुना, उनके उपदेशसे संजयन्त के आश्रयसे विद्या सिद्ध होगी यह बात भी जानी और उनका ( संजयंतका ) पुराण भी सुना तदनंतर श्रीसंजयंत मुनिकी प्रत्तिमाके चरणरूपलोक आश्रय लेकर विद्या सिद्धकी और फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ वह नगरमें आया ॥ ७५-८१ ॥ विद्या सिद्ध होनेसे कुमारकी शोभा दूनी होगई उसे देखकर कामसे कातर हुई कांचनमाला अनेक उपायोंसे मार्यना करने लगी परंतु उस महा बुद्धिमान प्रभुव्रत्ने उसकी कभी इच्छा न की । तब उसे मालूम हुआ कि इसके पुरुषव्रत अर्थात् स्वदार संतोष व्रत है तब वह द्वेषसे राजाने कहने लगी कि यह कुमार कुचेष्टी है इसलिये हमलोगोंके साथ रहने योग्य नहीं है मैं इसे किसी नीचकुलका समझती हूं । रानीकी यह बात सुनकर विचारशून्य राजाने भी उसकी बातपर विश्वास कर लिया ॥ ८२-८४ ॥ तथा विषुदंष्ट्र आदि अपने पांचसौ पुत्रोंको बुलाकर आज्ञा दी कि यह देवदत्त दुष्ट है इसलिये किसी एकांत जगहमें मारने योग्य है अतएव तुमलोग किसी भी उपायसे इसे मार डालो इसतरह राजाकी आज्ञा पाकर वे कुमार बहुतही क्रोधित हुए वे परस्पर उसके मारनेकी सलाह कर चुके थे इसलिये राजाकी आज्ञा पाकर

विद्योगादगाच्छुच । धृष्टं तद्वृत्तायोगेन ब्रह्मपरिताडन ॥ ६५ ॥ जलाशयस्तुपातस्य केकिनो जलदागमः । यथा तथास्य संतुष्टयं संनिधिर्नारदाभवत् ६६  
 स त स्वबालवृत्तात् हरिरुक्त्वभ्यधासिद् । त्वया केनाप्युपायेन क्वापि सोनिद्वय्यतामिति ॥ ६७ ॥ नारदस्तत्तमाकर्ण्य शृणु पूर्वसिद्धेहेजे । नगरे गुडरीकि-  
 र्णा मया तीर्थकृतो निरा ॥ ६८ ॥ स्वयप्रभस्य ज्ञातानि बातां बालस्य पृच्छता । अर्वातराणि तद्वृद्धिस्थानलाभो महानपि ॥ ६९ ॥ सद्य योगो युवाभ्या च  
 तस्य वोढव्यवर्त्तः । इत्यमी वामुदेव च हविमणी च यथाभूत ॥ ७० ॥ प्रबोधयतगोस्त्रस्मात्सुरसैन्यलोकगो । प्रादुर्भावाद्भित्त्येव प्रमोद परमोऽभवत्  
 ॥ ७१ ॥ क्रमेण इतपुण्योमा तत्र संपूर्णगोचन । कद्विदाद्वया राक्ष प्रधुम्नः सत्रलो बली ॥ ७२ ॥ गत्वा द्वियोगिनराजस्य विक्रमादुपरि स्वयं । नि.प्र-  
 ताप विचार्यैन युद्धे विलार्ययस्त्रिपु ॥ ७३ ॥ तदा दृष्टावदानस्य प्रधुम्नस्य खगाधिपः । परार्थवस्तुदानेन महती मननार्थं व्यस्यत् ॥ ७४ ॥ अवतीर्णसिद्ध  
 स्वर्गाद्यौर्बैकविभूणा । मुबं कदाचित्पुनमाहर्थातिमाभरं ॥ ७५ ॥ अवलोक्य स्मराकृतियुव्या काचनमालया । अन्यमातरगतस्नेहकृतोद्वेहिनिकारया ७६

सतापर ब्रह्म पढ़नेसे भस्म हो जाता है उसी प्रकार रुक्मिणीके साथ साथ कृष्णको भी पुत्रके वियोगसे बहुत गोक हुआ ॥  
 ६५ ॥ जिसप्रकार प्याससे दुखी मनुष्यको तालाब मिल जाता है अथवा चातकको वादल मिल जाते हैं उसीप्रकार कृष्ण  
 को संतुष्ट करनेके लिये उनके समीप नारद आ पहुंचे ॥ ६६ ॥ आते ही कृष्णने उनसे अपने पुत्रहरणका सब वृत्तांत  
 कहा और कहा कि आप किसी भी उपायसे कहीं भी उसे ढूंढें ॥ ६७ ॥ कृष्णकी यह बात सुनकर नारद कहने लगे  
 कि सुनो—पूर्व विदेहक्षेत्रकी पुंडरीकिणी नगरीमें स्वयंभू तीर्थकरसे मैंने उस बालककी सब बात पूछी थी और अपने  
 प्रश्नके उत्तरमें उनकी वाणीसे मैंने उसके पहिले भवभी जान लिये हैं वह अच्छी तरह बदेगा उसे बहुतसे लाभ होंगे  
 और सोलह वर्ष बाद तुम दोनोंसे आ मिलेगा । इस प्रकार नारदने जैसा सुना था वैसा ही कृष्ण और रुक्मिणीको क-  
 हकर समझाया । जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे देवोंकी सेना और मनुष्य लोक दोनोंमें परम आनंद होता है उसी प्र-  
 कार नारदकी बात सुननेसे कृष्ण और रुक्मिणीको बहुत ही आनंद हुआ ॥ ६८-७१ ॥ इधर प्रपुत्र ( देवदत्त ) अप-  
 ने पुरयोदयसे बढता हुआ पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त होगया । किसी एक दिन अधिराज नामका कालसंभवका शत्रु स्वयं  
 कासंभवपर चढ आया था इसलिये राजा कालसंभवकी आज्ञासे बलवान् देवदत्तने अपनी सेना लेकर उसे प्रतापरहित  
 किया और युद्धमें उसे जीतकर पिताको समर्पण किया ॥ ७२-७३ ॥ उससमय विद्याधर कालसंभवने बहुतसी बहुमूल्य  
 वस्तु देकर श्रवीरता दिखलानेवाले प्रपुत्रका बहुतही आदर सत्कार किया ॥ ७४ ॥ यौवनरूपी एक आश्रुपथको धारण  
 करनेवाले, योग्यतासे अत्यंत दैदीप्यमान और स्वर्गसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुएके समान प्रपुत्रके रूपको देखकर कांचन-



पस्तादमु गतः ॥ ५३ ॥ तदैव विजयार्द्रोदसिपथे निपुणैः । विषये युगबलाल्बे मेघदूटपुराधिपः ॥ ५४ ॥ कालस्यमवधिधारणः कान्वनमालया । सह जनेधरीरर्चा प्रियया प्रावर्तितं प्रयान् ॥ ५५ ॥ महाशिलाखिलांगासिचलनं बीधय विस्मयात् । संमतात् भीरुमानोत्तौ द्रष्टुं बालं उबलत्रयं ॥ ५६ ॥ प्रा-  
कृतोयं न केनापि कोपात्प्राञ्जन्मवैरिणा । निशिः पाणिनामुष्मिन् पश्य बालकभास्कर ॥ ५७ ॥ तस्मान्नवास्तु पुत्रोयं शुद्धानुं मनोरमे । इत्याहोबाज  
साव्यस्मै यौवराज्य ददासि चेत् ॥ ५८ ॥ शुद्धीष्यामीति तेनापि प्रतिपद्य तद्यः स्थिति । तत्कर्णगतसौवर्णपत्रेणारन्धि पहकः ॥ ५९ ॥ तां त बाल समा-  
दाय पुरमासिद्धतोत्सव । प्रविश्य देवदत्ताख्यं व्यथातां विधिपूर्वक ॥ ६० ॥ तद्दाललालनालीकाविलासैर्दृष्टचेतनोः । तयोर्यच्छति तिब्याज काले सुमुखभोगिनोः  
॥ ६१ ॥ इतः कुतवियोगेन रुक्मिणी शोकवन्दिना । दद्यामाना स्वलाभोजवल्लीव नववन्दिना ॥ ६२ ॥ संपत्तिर्वा चरित्रस्य दयाभावाविवर्जिता । कार्यका  
र्यविकारेषु मदमदेव शेषुषी ॥ ६३ ॥ मेघमालेव कालेन निर्गलजलसचया । नावभ से गतप्रणो सा भवेत् वा प्रभा तनो ॥ ६४ ॥ तथैव वासुदेवोपि त-

लगा । देखते देखते उसने शिलाके नीचे दँदीयमान कांतिवाले पुत्रको देखा ॥ ५४--५६ ॥ तब वह राजा उस पुत्रको  
उठा कर अपनी रानीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! यह बालक स्वाभाविक रीतिसे शिलाके नीचे नहीं आया है किंतु पहिले  
जन्मके किसी पापी शत्रुने यहां लाकर रख दिया है । हे प्रिये ! देख यह बालक उगते हुए सूर्यके समान दँदीयमान है ।  
इस लिये हे सुंदरी ! यह तेरा ही पुत्र हो तू ही इसे स्वीकार कर । इसके उत्तरमें रानीने कहा कि हे नाथ ! यदि आप इसे  
युवराज पद दें तो मैं स्वीकार कर सकती हूँ । यह सुनकर राजा कालसंभवेने भी यह बात स्वीकार करली और ऐसा  
ही हो इस्तरह कहकर रानीके कानमें पहने हुए सुवर्ण पत्र पर ही शिलालेख लिख दिया ॥ ५७--५९ ॥ तदनंतर  
वे दोनों राजा रानी उस बालकको लेकर बड़े उत्सवके साथ नगरमें पहुंचे और विधिपूर्वक उस बालकका नाम देवदत्त  
रखवा ॥ ६० ॥ उस बालकके लालन पालनकी लीलाके विलासोंसे जिनका चित्त प्रसन्न हो रहा है और जो सदा सु-  
खका अनुभव कर रहे हैं ऐसे उन दोनों राजा रानियोंका समय बिना किसी उपद्रवके बड़ी शांततासे व्यतीत होने लगा ॥  
६१ ॥ इधर जिसप्रकार दावानल अग्निसे स्थलकमलकी बेल जल जाती है उसीप्रकार रुक्मिणी पुत्रके वियोगके कारण  
शोकरूपी अग्निसे जलने लगी ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार चरित्रहीनकी संपत्ति दयाभावोंसे रहित होती है और अत्यंत मंद  
बुद्धि कार्य अकार्यके विचारमें कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार वह चेष्टा और विचाररहित होगई । समयानुसार जि-  
ससे सब जलका समूह निकलजाता है ऐसी मेघमालाके समान शोभाहीन होगई और प्राणोंके निकलजानेपर शरीरकी  
प्रभा जैसी सुशोभित नहीं होती उसी प्रकार वह भी प्रभाहीन होगई ॥ ६३--६४ ॥ जिसप्रकार लतासे भिन्न होनेपर भी वृक्ष

इवातकनकाद्य । पाँचें छिजटिसंहरय तापसन्नमावदे ॥ ४२ ॥ मधुकीढावयोरेवं काले गच्छत्यध्यावदा । सम्यगाकर्ण्य सदर्भं मधुर्विलवाहनात् ॥ ४३ ॥  
गर्हणं स्वदुराचारे कृत्वा कीढाव संयुत । संयम समवाप्याते संश्रित्याराधनाभिधि ॥ ४४ ॥ अन्वभूत्स महाशुक्रस्याधिपत्यं सहनुजः । स्वायुरते ततश्च्यु-  
त्वा स्वावेशेयशुभोदायात् ॥ ४५ ॥ सुखप्रपूर्वकं ज्येष्ठा रुक्मिण्यामभवत्पुनः । दुर्गाचारिजितं पापं सञ्चरित्रेण नश्यति ॥ ४६ ॥ द्वितीयेहति तद्द्वारसंनितां प्रा-  
प्त्यसन्निभं । देवो ज्योतिर्गणे जातो धूमकेतुममाहूय ॥ ४७ ॥ गच्छन् गच्छन् यच्छया ज्योतिर्गन् विहर्तुं वातरहसा । विमाने स्वे घृते वा न्यः प्रदमत्योपरि स्थिते  
॥ ४८ ॥ चरमागस्य केनेदं कृतमित्युपयुक्तवान् । विभागाद तमनः शत्रुं श्रुत्वा प्राक्कनजन्मनि ॥ ४९ ॥ रथांतकनकसाय दर्पाद्वारान् समाहरत् । तत्फल  
प्रापयाम्येवमिति वैरागिनुज्वलन् ॥ ५० ॥ विधाय स महानिद्रामृत-पुरनिवासिनां । तमुद्रुल्लाब्दमार्गेण दूरं नीत्वा यथा चिदं ॥ ५१ ॥ अंतुभूय मह  
ददुःखं कुंक्ष्मात्राणविमोचन । करिव्यामि तपेयस्य पुण्येनैव प्रचोदितः ॥ ५२ ॥ अवश्यं नभोभागाद्वने स्खदिरनामनि । दिलादास्तक्षकाख्याया सि त्वा

मधुका जीव शुभ स्वप्नपूर्वकं रुक्मिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि दुराचारसे उत्पन्न हुए पाप भी सूक्ष्म चा-  
रित्रसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३-४६ ॥ इधर कनकरथका जीव पिठियां तपश्चरण कर धूमकेतु नामका ज्योतिषी देव हुआ  
था और इच्छानुसार आकाश मार्गसे विहार करनेके लिये निकला था उसके विमानको दूसरे देव चला रहे थे अक-  
स्मात् चलते चलते वह विमान चरम शरीर प्रदुष्मके ऊपर पहुंच कर रुक गया उसे रुका जानकर उस बालकके इकठे  
हुए पापोंके समान वह देव विचार करने लगा कि यह मेरा विमान किसने रोका है ? सोचते ही विभंगावधिसे उसने  
जान लिया कि यह मेरे पहिले जन्मका शत्रु है । मैं पहिले जब कनकरथ था तब इसने अपने अपने अभिमानसे मेरी स्त्री हर  
ली थी इसलिये अब मैं इसे उसका फल चखाऊंगा इस तरह शत्रुत्वारूपी अधिसे वह जलने लगा ॥ ४७-५० ॥ उस  
ने अपनी शक्तिसे अंतःपुरके रहनेवाले सब लोगोंको महानिद्रासे निद्रित कर दिया और फिर उस बालकको उठा कर  
आकाश मार्गसे ले गया । फिर वह देव सोचने लगा कि कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे यह बालक बहुत देर  
तक दुःख भोगता हुआ प्राण छोड़े यही सोचता हुआ मानो उस बालकको रख कर अपने स्थानको चला गया ॥ ५१-  
५३ ॥ देवयोगसे उसी समय विजयादे पर्वतकी दक्षिण ओष्णिके गंगावती नामके सुंदर देशके मेघवट्ट नगरके विद्या-  
धरोका राजा कालसंभव अपनी रानी कांचनमालाके साथ भगवान् जिनेंद्रदेवकी पूजा करनेके लिये वही छोकर जा रहा  
था वहां पर वह उस सब शिलाको हिलती हुई देखकर आश्चर्य करने लगा और इधर उधर शिलाके चारो ओर देखने

मृतः ॥ ३० ॥ रत्नप्रभाविष्टे सर्ववर्तनान्नि ततो जनि । मतंग कोकजयाख्या सोमदेवोभवत्पिता ॥ ३१ ॥ मातागिन्या च तप्तैव जायतेऽस्य शुनी गृहे । इत्याकथं तत्रोक्त तेन तौ परिवोचिता ॥ ३२ ॥ संप्राप्योपशम भावं संन्यस्य विविना मृत । काकजयोऽभवत्सर्वभक्षीये निधीभर ॥ ३३ ॥ तदुरा-  
धीभरार्तिदमाख्यामृष्टवते कुंता । श्रीमत्याम्ब शुनी सुप्रसूद्व्याख्याजयत प्रिया ॥ ३४ ॥ संपूर्णैवना याती सा स्वयंवरमङ्गप । यक्षेण बोधिता वीक्षामि-  
ताप्य प्रियदर्शना ॥ ३५ ॥ जीवितातेऽभवत्देवी मणिबुलेति रुपिणी । सौधर्म विपत्ते पूर्णमद्वलदनुजोपि च ॥ ३६ ॥ ससंस्थानगता ख्याताभावकौ तौ  
हृदव्रता । प्राप्ते सामानिकी देवां जातौ सौधर्मनामनि ॥ ३७ ॥ द्विसागरो म तौतौ द्वीदेश कुरुजांगले । हस्तिनाख्यपुराधीशम्याहर्हसमहीपतेः ॥ ३८ ॥  
काश्यपायाश्च पुत्रौ तौ मधुकीडावनामकौ । समभूतां तौ राजा राजत बुभुजते ॥ ३९ ॥ विधाय विमलां प्रापद्विमलप्रभमिष्यतां । कठोतामलका-  
ख्यस्य पुरस्येशः कदाचन ॥ ४० ॥ रथोत्तवनकाख्यस्य समाधातस्य सेष्ठिदु । कांता वनकमाकाख्या समीक्ष्य मदनानुर ॥ ४१ ॥ स्वीचकार मनु शोका-

देव हुआ ॥ ३३ ॥ इसीतरह उस कुत्तीका जीव उसी सोकेत नगरके राजा अरिदमकी रानी श्रीमतीसि सुप्रसूद्व्या नाम-  
नामकी यारी पुत्री हुई ॥ ३४ ॥ पूर्ण यौवन अवस्था प्राप्त होने पर वह पति हूँनेके लिये स्वयंवर मंडपमें गई । परंतु  
वहां पर उसे उसके पहिले जन्मके पतिके जीव व्यंतर देवने आकर समझाया जिससे उसने प्रियदर्शना अर्जिकोके समीप  
जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३५ ॥ आयुके अंतमें वह सौधर्म इंद्रकी मणिचूला नामकी बड़ी रूपवती देवी हुई ।  
इधर पूर्णभद्र और मणिभद्र दोनों भाइयोंने बड़ी हठतासे श्रावकके व्रत पालन किये सातों धर्मचेत्रोंमें धन खर्च किया और  
अंतमें आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर सामानिक जातिके देव हुए । वहांकी आयु पूरीकर इसी  
जंबू द्वीपके कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगरके राजा अर्हदास रानी काश्यपाके मधु और क्रीडाव नामके दोनों पुत्र हुए  
किसी एक दिन राजा अर्हदास मधुको राज्य और क्रीडावको युवराज पद देकर विमलप्रभ मुनिका निर्मल ( शुद्ध वा उ-  
त्तम ) शिष्य हो गया । किसी एक दिन अमलकंड नगरका राजा कनकस्य अपनी कनकमाला नामकी रानीको सेवन  
करनेके लिये वनमें आया था । उस समय उस कनकमालाको देखकर राजा मधु कामसे विकल होगया और उसे अपने  
घर ले आया । इससे राजा कनकस्यको बहुत शोक हुआ और उसने द्विज्जी नामके तापसीके समीप जाकर तपसियोंके  
व्रत धारण कर लिये ॥ ३६-४२ ॥ इधर मधु और क्रीडाव इन दोनों भाइयोंका समय बड़े सुखसे व्यतीत होने लगा ।  
किसी एक दिन राजा मधुने विमलवाहन मुनिके समीप धर्मका स्वरूप सुना, अपने दुराचारकी निंदा की और अपने छोटे  
भाईके साथ महाशुक्र नागके स्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांकी आयु पूरी कर बाकी बचे हुए पुण्यकर्मके उदयसे वह

बंत. स्वीकरीयंति भवेन्मोक्षोन्नयोमिति ॥ १९ ॥ तेषि भीतास्तथा बाह करिष्याम इति हत । मुनीन् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य विधिपूर्वक ॥ २० ॥ सिध्या प्रत्यर्पयंत धर्म श्रावकपण्डित । ततस्तस्तभनापाये सति तैस्त क्षुदीरिता ॥ २१ ॥ विरतं त्यमितो धर्मदत्ता देतो दशसितात् । इति नात्याप्तसन्मार्गं वेत्तुः कालमन्वित ॥ २२ ॥ तेन संकुप्य ते ताभ्यां मृत्वा पापविपातः । अत्राभ्यस्तुगतीर्षितो न ब्रह्मणुपुत्रको ॥ २३ ॥ सप्ततौ जीवितसंयंतो कन्ये सौधर्मनामनि । पंचपत्नीपमायुषो जातौ पारिषदाग्रिमा ॥ २४ ॥ तत्राजुभूय सद्गोमान् द्वीपेरिसिन्धुकेषु पुरे । साकेतैरिजयो राजा सखीयोभूदरिजयन् ॥ २५ ॥ तत्राहं सबाक् श्रेष्ठी वप्रश्रीस्तन्मन प्रिया । अग्निभूतिस्तुलोः पूर्णभद्रोन्यो मणिसद्रकः ॥ २६ ॥ सुतां समुद्रभृता तावन्नेषु स महीपतिः । सिद्धार्थवनमध्यस्ममद्वदगुरुसन्निधि ॥ २७ ॥ बहुभिः सह सप्राप्य शुला धर्म विशुद्धीः । अरिदसे समारोप्य राज्यभारं भरक्षमे ॥ २८ ॥ अहं ह्यव सादिभिः सार्द्धं संयमं प्रत्यपद्यत । तत्रैव पूर्णभद्रेण प्राक्कल मदगुह्यय ॥ २९ ॥ कृत्य बतंत इत्येतत्परिपुष्टो मुनिर्जैग । जिनधर्मविक्रमलात् कृत्यागो भवन्-

इवर उन दोनों ब्राह्मण पुत्रोंने व्रत धारणकर आयु पूरी की और मरकर सौधर्म स्वर्गमें पांच पत्यकी आयु पाकर परिपद जातिके उत्तम देव हुए ॥ २०-२४ ॥ वहांपर उन्होंने अनेक उत्तम भोगोंका अनुभव किया तथा वहांकी आयु पूरीकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके साकेत नगरमें श्रेष्ठ अर्हदासकी स्त्री वप्रश्रीसे दोनों पुत्र उत्पन्न हुए । अग्निभूतिका जीव पूर्णभद्र हुआ और वायुभूतिका जीव मणिभद्र नामका छोटा पुत्र हुआ । उससमय उस साकेत नगरमें शत्रुओंको जीतनेवाला शूरवीर अरिजय नामका राजा राज्य करता था किसी एक दिन उसी साकेत नगरके सिद्धार्थ वनमें महेंद्र नामके मुनिराज पधार थे । यह समाचार सुनकर राजा अरिजय अनेक लोगोंके साथ उनके दर्शन करनेकेलिये गया । शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले उस राजाने वहांपर धर्मका स्वरूप सुना और राज्यके भारको धारण करनेमें समर्थ ऐसे अरिदस नामके अरने पुत्रोंको राज्यका भार सौंपकर अर्हदास आदि अनेक भव्य जीवोंके साथ संयम धारण कर लिया । उसीसमय अर्हदासके पुत्र पूर्णभद्रने उन मुनिराजसे पूछा कि मेरे पहिले जन्मके माता पिता आज कहां हैं ? तब मुनिराज कहने लगे कि तेरे पिता सोमदेवने जिनधर्मसे विरुद्ध होकर बहुतसा पाप किया इसलिये स्वप्नभा नामकी पहिली भूमिके ( पहिले नगरके ) सप्तवर्त नामके विलेय नारकी हुआ और फिर वहांसे निकल कर काकजंघ नामका इसी नगरमें चांडाल हुआ है ॥ २५-३१ ॥ इसी तरह तेरी माता अग्रिलाका जीव उसी चांडालके घर कुत्ती हुई है इस प्रकार मुनिराज की बात सुन कर पूर्णभद्रने उन दोनों माता पिताके जीवोंको जाकर सम्प्राप्त ॥ ३२ ॥ पूर्णभद्रके सम्प्राप्तिसे उन दोनोंके परिगाम शांत हो गये उन्होंने अंतमें संन्यासपूर्वक मरण किया और काकजंघका जीव नंदीश्वर द्वीपमें कुबेर नामका मंत्रार

रिचति । इतोपहासो एवं प्राप्य गच्छतां वसितुं गतः ॥ १ ॥ आभासतात्समायातं मुनिमालोक्य सत्यकं । तत्समीपमईहारेति तदुपगम्य तं ॥ १० ॥  
नाश्रयातो नागमो नैव पश्यामी नमः । किं किं भासि इवोन्मार्गमुदो दृष्ट्विनासिति ॥ ११ ॥ इत्यप्यस्त्रियतां सोपि जिनकचक्रविनिर्गतं । विनसितेतरानेकस्व-  
रुपातसमाभयः ॥ १२ ॥ इत्यतस्तं यथादृष्ट कचमंतं उद्वेष्टक । स्याद्वादमविन्दो यैः स्तारयेदु प्रमाणतां ॥ १३ ॥ प्रसाध्यादृष्टमार्गोसि तदुष्णमसुरिचति ।  
निरूप्य बादकं हस्तिमपनीय दुरात्मनोः ॥ १४ ॥ तयोर्जयध्वज प्राप्तद्विद्वज्जनसमर्पित । तौ मानभगवत्संभूतौ निशि सितायुधौ ॥ १५ ॥ परियु. पाप-  
कर्मिणो विजने इन्दुचेतसं । अस्तिमायोगमापन्न सत्यकं मुनिपुत्रव ॥ १६ ॥ शकेणादृष्टमुष्णान्व्यायोगमिति कुधा । द्वित्री सुवर्णयज्ञेण स्तम्भितौ कीकृता-  
दिव ॥ १७ ॥ तदा पारममायातास्तान्यातृषिर्तुर्वाधवाः । मुनीनामाकुलीभूय यक्षस्तवदत्सुभी ॥ १८ ॥ हिंसाधर्मं परित्यज्य यदि जैनेश्वरं मत । भ-

कथन करनेवाले स्याद्वादका आश्रय लेकर उन तत्त्वोंको कहनेवाले अथवा स्याद्वादको कहनेवाले आप्तको प्रमाण सिद्ध कि-  
या तथा परीक्षप्रमाणमें भी उन्हींके कहे हुए आगमको अच्छी तरह प्रमाण ठहराया और इससरह उन दुष्टोंकी बाद करने  
की खुजाती दूरकी ॥ १-१४ ॥ इसके सिवाय उन्होंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे अनेक विद्वानोंके द्वारा समर्पणकी हुई जय-  
ध्वजा प्राप्तकी । वे दोनों ही ब्राह्मण मानभग होनेसे बहुतही क्रोधित हुए और पापकर्म करनेवाले वे दोनोंही दूसरे ही  
दिन रातमें हतबार लेकर निकले । मार्गमें किसी निर्जनवनमें शुद्धचित्तवाले और प्रतिमा योगधारण किये हुए वे ही मु-  
निराज सत्यक विराजमान थे उन्हें शस्त्रसे पारनेके लिये वे दोनों ही ब्राह्मण तैयार होगये यह देखकर और यह अन्याय  
होता है ऐसा समझकर सुवर्ण यज्ञने क्रोधमें आकर उन दोनों ब्राह्मणोंको कीलित हुएके समान स्तम्भित कर दिया ॥  
१५-१७ ॥ यह देखकर उनके माता पिता भाई आदि लोग व्याकुल होकर मुनियोंके शरण गये तब बुद्धिमान यक्ष उ-  
नसे कहने लगा कि यदि तुमलोग अपने हिंसा धर्मको छोड़कर श्रीजिनराजके धर्मको स्वीकार करोगे तो ये दोनों भाई  
छूट सकते हैं ॥ १८-१९ ॥ यक्षकी ये बातें सुनकर वे सब कुटुंबी लोग डरकर कहने लगे कि अच्छा हमें स्वीकार है  
यह कहकर उन्होंने विधिपूर्वक मुनियोंकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया मूठही श्रावकोंके पालन करने योग्य धर्म-  
को धारण कर लिया । जब वे दोनों भाई छूट आए तब उनके माता पिता और कुटुंबियो ने उनसे कहा कि अब तुम  
इस जैन धर्मको छोड़ दो क्योंकि यह तो केवल तुम्हारे छुटानेकेलिये पालन किया गया था । इतना सब कुछ कहने सु-  
ननेपर भी काललब्धिके प्राप्त होनेसे उन दोनों भाइयोंने वह स्वीकार किया हुआ सन्मार्ग नहीं छोड़ा जिससे उनके  
माता पिता आदि बहुत ही क्रोधित हुए तथा परकर पाप कर्मके उदयसे उन्होंने बहुतसी कुगतियोंमें परिभ्रमण किया ।

## अथ दामसर्तितमं पर्व ।

अथ तज्ज्ञातपूर्वं च अगत्ययसमावर्तौ । प्रकाशवितुकायेन बलदेवेन भीमता ॥ १ ॥ प्रभुप्रसंभवोत्पत्तिसंबंधं पृच्छपते स्वः । वरदत्तगणेशो नु-  
रंभुर्ध्वेयमप्रवीत ॥ २ ॥ द्रियोस्मिन् मगधे देशे शालिग्रामनिवासिनः । द्विजस्य सोमदेवस्य भार्याभूदग्निव्याहृमया ॥ ३ ॥ अग्निभूतिभूतसूतवीर्युभ-  
पत्नौ दृष्ट्वा तौ मुनीश्वरीन्धुनीन् । विसंभृदिदुमायातावेतौ मिथ्याऽदृष्ट्वितौ ॥ ४ ॥ नंदाननंदियोषाख्ये बने मुनिमण्डप्यतां । नदिबर्द्धननामानं मुनिं संभविभूषणं ॥ ५ ॥ दुष्टदु-  
नुपसर्गो भविष्यति ॥ ७ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा गुह्यसासनकारिण । मौनव्रतेन सर्वेऽपि स्थिता सयसिनस्तदा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तावैत्य सर्वेषां प्रकीर्तय अव-

## अथ बहत्तरवां पर्व ।

अग्रानंतर—तीनों लोकोंके सभाभवनमें अर्थात् समवसरणमें अपने पहिले भव जानकर बुद्धिमान बलभद्रने सबको  
मगट करनेके लिये प्रभुभ्रके उत्पन्न होनेका संबंध पूछा तब वरदत्त गणाधर कृपाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ १-२ ॥ इसी  
जंघुदीपके मगधदेशमें शालि नामके गांवमें रहनेवाले सोमदेव ब्राह्मणकी स्त्रीका नाम अधिला था उसके अग्निभूति और  
वायुभूति नामके दो पुत्र थे । किसी एक दिन वे दोनों ही भाई नंदिवर्द्धन नामके सुशोभित नंदिवर्द्धन नामके सुनिराजकी देखा ॥ ३-४ ॥ सु-  
निराज नंदिवर्द्धनने उन दोनों दुष्टोंको आते हुये देखकर सब मुनिराजोंको आज्ञा दी कि ये दोनों मिथ्यादृष्टी तुम लोगों  
से विवाद करनेकेलिये आए हैं परंतु तुममेंसे कोई भी इनके साथ किसी तरहकी बात चीत नहीं करना, अन्यथा इनके  
संबंधसे भारी उपसर्ग होगा ॥ ६-७ ॥ शासन करनेवाले आचार्यके ये वचन सुनकर उसीसमय सब मुनि मौनव्रत लेकर  
जाने लगे । उन मुनियोंमेंसे एक सत्यक नामके मुनि आहार करनेके लिये दूसरे गांव गये थे और वे आहारकर लौट रहे  
थे, उन्हें देखकर वे दोनोंही ब्राह्मण अहंकारमें आकर उनके समीप पहुंचे और आक्षेप करने लगे कि इस संसारमें न तो  
कोई आपस है न आगम है और न कोई पदार्थ ही है, हे मूर्ख तू पुण्ययापको नाश करनेवाले इस मिथ्यामार्गमें व्यर्थ ही,  
क्यों हे श पा रहा है । ब्राह्मणोंकी ये बातें सुनकर उन मुनिराजने भगवान् अरहंतदेवके मुखसे निकले हुए, विवक्षित ऐसे  
अनेक स्वरूपरूप धर्मोंका आश्रय करनेवाले तथा द्रव्य और तत्त्वोंको सर्वत्रके देसे अनुसार अच्छे ब्रह्मे हेतुओंसे

भक्षण कृतेति दृढप्रता । वनेष्वर कदाचित्स ग्र मोक्षसुन्दरातिभिः ॥ ४४८ ॥ विलोपितस्तद पद्मेदेवी सिद्धयाद्भ्यात् । नीत्वा महट्टी सर्वे जन-  
 भुतपरिपीडिता ॥ ४४९ ॥ त्रिपञ्चलीकल न्य शु भञ्जयित्वा मृते ययु । व्रतभगवत्युत्ताति स विदु य हर्षविना ॥ ४५० ॥ मूल हैमवते भूत्वा जीविनाते  
 ततश्च्युता । द्वीपे स्वयं प्रमे जाता देवी सद्य स्वयंप्रभा ॥ ४५१ ॥ स्वयंप्रभास्तदेवस्य ततो निर्गम्य सा पुन । द्वीपेतिमन्मरुते क्षेत्रे जयतपरभूतः  
 श्रीधरस्य सुता भूत्वा श्रीमत्यां सुदराकृति । विमलश्रीरभूपत्नी भद्रिलाल्यपुरेशिन ॥ ४५२ ॥ वृषस्य मेघन दय्य समीप्तिमतमुज्जप्रदा । राक्षिभर्ममुने-  
 स्स्यक्त्वा राज्ञ्य प्रअग्र्य शुद्धीः ॥ ४५३ ॥ ज नो व्रतधरस्तस्मिन् महस्वारपत्ता सति । अष्ट दश ममुद्र युग्मोजि भासुरदीक्षितै ॥ ४५४ ॥ सापि  
 पद्मावती क्षाति संप्रप्यादाय संयमं । आचाम्लवर्द्धमान च समुगोष्ठायायुषोवधौ ॥ ४५५ ॥ तत्रैव कल्पे देवीत्व प्रतिपद्य निजयुष । प्रातिरेक्षपुराधीश-  
 श्रीमत्या तनयाजति ॥ ४५६ ॥ हिमवतवर्मण पद्म वनीत्येषा स्वप्रवरे । संभाव्य संसृतस्त्वेश भानं रत्नमालया ॥ ४५७ ॥ शीलावहा महादेवीपट्ट  
 प्रापदिति स्फुट । तास्तित्तोपि स्वजन्मानि भुत्वा मुदमयुररे ॥ ४५८ ॥ इत्युर्बेर्गणनायकौ गुणनिधि प्रसष्टमिश्रधरः साक्षात्कृत्य भवावलीविलसितं  
 व्यावर्णयभिर्ज्यं । सा त्वाकर्ण्य चिरं सुख सुखमयी स्वेष्टाष्टदेवीकथां संपुष्टिं स मुरारिरा सुतगं प्राते प्रवृत्तिप्रदा ॥ ४५९ ॥ देवोपि विव्यवचन  
 मुनिपुणवक्ष्य, भगवदं बहुभवातनिब्राह्मणं तद । कृत्वा हृदि प्रमुक्षिताः प्रयुधर्मसारे धर्महेतो हिततमे स्वमनि प्रतेजुः ॥ ४६० ॥ नहि हितमिह-  
 किंचिदस्यैक विहाय, व्यवसितममुपदूषो विवेकमुग्रभलमवृत्त । इति विहितवितर्का सर्वसम्पाद्य धर्म, समुपययुरपायाः स्वामिना नेमिनोक ॥ ४६१ ॥  
 इत्यार्षे भगवद्गुणमन्त्रार्थप्रणीते विषष्टिल्लग्नमहापुणसंमदे नेमिचरिते भर्वातव्यावर्णन नाम एकसप्ततितम पर्व ॥ ७१ ॥

आचाम्लवर्द्धमान व्रतके उपवास करने लगी आयुके अंतमें वह उसी सहस्रार स्वर्गमें देवी हुई । वहांकी आयु पूरी कर  
 अरिष्टपुर नगरके राजा त्रिगयवर्माकी रानी श्रीमतीसे यह पत्रावती पुत्री हुई है । इसने संसारके स्नेहसे स्वयंवरमें वरमाला  
 ढाल कर तुम्हें ही स्वीकार किया और फिर महाशीलको धारण करनेवाली इसने महादेवीका पद प्राप्त किया इस प्रकार  
 तीनों ही रानियां अपने पूर्वपव सुन कर प्रसन्न हुई और उन्होंने कृष्णको भी प्रसन्न किया ॥ ४६-४६ ॥ इस प्रकार  
 गुणोंके खजाने श्रीगणेशदेवने अत्यंत स्पष्ट और मीठे अन्तरोसे पूर्व भवोंका संबंध सब स्पष्ट कर दिखाया तथा सबका  
 निर्णय कह सुनाया । श्रीकृष्ण भी अपनी प्यासी आठों देवियोंकी सुख दुखमयी कथा सुनकर अपने आप अंतमें प्रश्रुति  
 करने वाला संतोष धारण करने लगे ॥ ४६० ॥ वे देवियां भी अनेक जन्मके कर्माएँ हुए अपने पापोंके नाश करनेवाले  
 उन गणेश देवके दिव्य वचनोंको हृदयमें धारण कर बहुत ही प्रसन्न हुई तथा उन्होंने महाकल्याण और अत्यंत हित  
 करने वाले भगवान् अरहत देवके धर्ममें अपनी बुद्धि लगाई ॥ ४६१ ॥ इस संसारमें एकधर्मको छोड़कर जीवोंका और  
 कुछ कल्याण करनेवाला नहीं है । धर्म रहित जो मूर्ख जीवोंका चरित्र है उसे बार बार धिक्कार हो । इस प्रकार तर्क वि-  
 तर्क करते हुए सब धर्मात्मा सभासदोंने श्रीनेमिनाथ स्वामीका कहा हुआ धर्म स्वीकार किया ।

इस प्रकार श्रीभगवद्गुणभद्रार्थविरचित श्रीभट्टापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नेमिनाथके चरित्रकथनमें  
 भवार्तोंका कहनेवाला यह इकहचरित्रां पर्व पूरा हुआ ॥ ७१ ॥



निर्माप्य महाशुकेऽभवत्सुरी ॥ ४३८ ॥ चिरात्ततो विनिर्गल्य वीतशोकपुरेक्षिनः । महीशो मेरुचन्द्रस्य चन्द्रवत्यामजायत ॥ ४३९ ॥ गौरीति रूपकावप्य-  
काल्यासीनामसौ स मे । विजयाख्यपुरार्धशो विभुविजयनन्दनः ॥ ४४० ॥ वत्सरस्तुभ्यस्मान्नीय ताम्रदत्त लयापि सा । पदेन योजितेत्याख्यस्ततो हरि-  
रगन्मुद ॥ ३४१ ॥ तत पद्मावतीजनमसम्बन्ध गणनायक । शुगानामाकरोऽवासीदित्य जनमनोहरं ॥ ४४२ ॥ अस्मिन्नेवोच्चैः प्रथमं नगरीनायको हरि-  
विभुसयोगीशो भूला हैमवते चिरं । भुक्त्वा भोगान् भवप्राप्ते जाता चन्द्रस्य रोहिणी ॥ ४४३ ॥ पत्योपमायुष साते विषये मगध सिधे । वसत-  
शाल्मलिप्राप्ते पद्मदेवी सुताजनि ॥ ४४४ ॥ सती विजयदेवस्य देविलायां कदाचन । वरधर्मयते संनिधाने सा व्रतप्रहीव ॥ ४४५ ॥ अविक्रातफला-  
देव लोगोके लिये मनोहर ऐसा पद्मावतीके पहिले भवका संवन्ध इस प्रकार कहने लगे ॥ ४४२ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत-  
चैत्रमें उज्जयनी नगरीके राजा विजयके विक्रांतिके समान अपराजिता नामकी देवी थी उसके विजयश्री नामकी पुत्री भी  
वह विजयश्री हस्तशीर्षपुर नगरके राजा हरिषेणको व्याही गई थी । उसने बड़ी प्रसन्नतासे समाधिगुप्त नामके सुनिराजको  
आहार दान दिया था इसलिये आयु पूरी कर हैमवत चैत्रकी भोगभूमिमें उत्सव हुई । बहुत दिन तक वहाँके सुखोंका  
अनुभव कर चंद्रमाके रोहिणी नामकी देवी हुई । वहाँ पर एक पत्न्यकी आयु पूरी कर मगधदेशके शाल्मलि ग्राममें विजय  
देवकी देविला स्त्रीसे पद्मदेवी नामकी सती पुत्री हुई । किसी एक समय उसने वरधर्म रही । किसी एक समय जाकर अज्ञानफलोंके  
खानेका त्याग रूप व्रत धारण किया । अपने व्रत पालन करनेमें वह दृढ़ बनी रही । किसी एक समय जाकर अज्ञानफलोंके  
आकर लूट लिया और नष्ट कर दिया इस लिये सिंहस्थके दशसे सब लोग पद्मदेवीको लेकर वनमें चले गये । सबलोगों  
को भूख लगी इस लिये सबलोग विषफल खा खा कर मर गये । परंतु पद्मदेवी उन्हें जानती नहीं थी इसलिये अज्ञान-  
फल समझ कर उसने छुए तक नहीं और विना ही भोजनके प्राण छोड़ कर हैमवतचैत्रकी भोगभूमिमें उत्सव हुई । वहाँ  
से चयकर स्वयंप्रभ द्वीपमें स्वयंप्रभ देवकी स्वयंप्रभा देवी हुई । वहाँसे चयकर वह इसी जंबूद्वीपके भरतचैत्रमें जयंतपुर नग-  
रके राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके सुंदर आकारवाली विगलश्री नामकी पुत्री हुई । वह भद्रिल नगरके राजा मेघनादको  
व्याही गई थी और उन्हें इच्छानुसार सुख देती थी । किसी एक समय शुद्ध बुद्धिवाले राजा मेघनादने अपना सब राज्य  
छोड़ कर बर्गमुनिके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली तथा तपश्चरण कर अंतमें सहस्रार स्वर्गमें अवतरण सागरकी आ-  
यु पाकर दैवीयमान इंद्र हुआ तथा उसके बाद ही वह विमलश्री रानी भी पद्मावती अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर

तदुक्तान्तरं प्रेमबंधः संनद्धमन्यकः ॥ ४२७ ॥ युद्धे भंगं व्यधायैवेति श्रान्त्यमहीभुजा । आदाय तां महाशैवीपदं त्वं त्वया हतः ॥ ४२८ ॥ अथ गौरी-  
भव चैव वदामि शृणु माधव । अस्मिन् दृष्टेन विख्यातं पुरं नागपुरं ५ ॥ ४२९ ॥ पालकस्तस्य हेमाभो देवी तस्य यशस्वती । सान्नेयुवागण दृष्ट्वा  
यगोघरमुनीश्वरं ॥ ४३० ॥ स्मृतपूर्वमज्ञा राजा पृष्टवं प्रत्यभाषत । स्वभवं दशहोदित्या आपयंती मनोरम ॥ ४३१ ॥ य तस्मींस्त्रयश्रमदरापरस्त्रविदे  
हृग । नात्रा शोकपुरं तत्र वास्तवगो वलिर्चावः ॥ ४३२ ॥ अ नंदस्तस्य भार्याया जाता नन्दयशः भुति । दत्वा षात्वमिताशुकिसागाय तनुस्थितिं  
॥ ४३३ ॥ आश्रयपत्रक प्राप्य तत्पुण्यान्नीवित वधौ । उदककुण्डेषु समूह भुक्त्वा तत्र कुर्वन् ततः ॥ ४३४ ॥ भुक्त्वा भवनवत्सीदभायः स्मीति समदात् ।  
ततः कदाचित्सद्वार्थवने सागरसङ्गं ॥ ४३५ ॥ सुरमधिरत्र संभावितोपव सा भवत्वावौ । देवी जातादिमे कल्पे तत्र निर्वर्तितस्थिति ॥ ४३६ ॥ द्वी-  
पेस्मिन्नेव काशाव्या सुमतिश्रितोभवत् । सुमदाया मृता धार्मिकी ते सशक्तिता जने ॥ ४३७ ॥ पुनर्जिनमतिष्ठातिवत्ता जिनगुणादिका । सपत्तिं म धु

नामका राजा राज्य करता था उसकी रानीका नाम यशस्वती था । किसी एक दिन यशोधर नामके चारण मुनिराजको देखकर उसे पहिले भवोंका स्मरण हो आया । राजाके पूछने पर वह अपने दातोंकी कान्तिसे अपने पतिको स्नान करा-  
ती हुई इस प्रकार अपने पूर्व भव कहने लगी ॥ ४२९-४३१ ॥ धातकी खंडमें पूर्व मंदराचल संबंधी पश्चिम विदेह क्षेत्र में अशोकपुर नामका एक नगर था उसमें आनंद नामका एक वैश्यपति ( उत्तम वैश्य ) रहता था उसकी स्त्रीसे उसके एक आनंदयशा नामकी पुत्री थी । किसी एक दिन उसके घर अभितसागर नामके मुनिराज पधारे उन्हें आनंदयशाने  
आहार दिया इसलिये पुण्यकर्मके उदयसे उसके घर पंचाशत्योकी वर्षा हुई । आयु पूरी होने पर वह उदक कुण्ड भोगभूमि में उत्पन्न हुई । वहाँके सुख भोग कर भवनवासी इंद्रकी इंद्राणी हुई और वहाँसे चयकर यहां आ उत्पन्न हुई हं । यह सब हाल सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ । तदनंतर किसी एक दिन उसने सागर नामके मुनिराजके समीप जाकर उपवास धारण किये । आयुके अंतमें वह पहिले स्वर्गमें देवी हुई । वहां की आयु पूरी कर इसी जंबूद्वीपकी कोशांची नगरीमें सुमति नामके शेटकी स्त्री सुमदासे धार्मिकी नामकी पुत्री हुई ॥ ४३३-४३७ ॥ वहां पर उसने जिनमति नामकी अजिकाके दिये हुए जिनगुण संपत्ति नामके व्रतका अच्छी तरह पालन किया और आयुके अंतमें महाशुक्र स्वर्गमें देवी हुई ॥ ४३८ ॥ बहुत दिन बाद वहाँसे निकल कर वीतशोक नगरके राजा मेरुचंद्रकी रानी चंद्रावतीके रूप लावण्य और कान्ति आदि गुणोंकी खानि यह गौरी हुई है । तुम पर प्रेम रखनेवाले विजयपुर नगरके राजा विजयनंदने लाकर तुम्हे दी और तेने भी इसे पहिरानी बनाया । यह सुनकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४४०-४४१ ॥ तदनंतर-गुणोंकी खानि ऐसे गणेश

इह जन्ममिति द्वीपे विपथोस्ति शुकोशलः । तत्राथोप्यापुरात्रीशो रुद्रनाम्नो मनोरमा ॥ ४१६ ॥ मिनयथ्रीसिति ह्यता सिद्धार्थं हगबनेन्यदा । बुद्धार्थमुने  
दत्तद ना स्वाधु परिशये ॥ ४१७ ॥ उदत्कुण्डु निर्बिम्बभोगा तस्मात्पर्यच्युता । इदोध्रुववनी देवी भूलाजोप्यायुयोवर्ज ॥ ४१८ ॥ द्वोपेन स्वगर्भमनु-  
रणाक्रेत्रेया स्वगेमिन । विद्युदेगस्य सहीति पुरे गगनवल्लभे ॥ ४१९ ॥ सुरूगह्वया सुता विद्युदेगयामजनिष्ट सा । नित्यालोक्पुरथीशे िय विक्रान-  
शालिने ॥ ४२० ॥ महेंद्रविक्रमाथैषा दत्त न्येयुर्मरुद्गिरि । तौ गतौ चलयगेहेषु जिनपूजार्थमुत्सुकी ॥ ४२१ ॥ विनीतचारणहोदुच्युतं चर्ममिव मृन । पी-  
त्वा श्रवणधुगेन पगं वृत्तिमथापनु ॥ ४२२ ॥ तयोर्नरपतिर्दीक्षामदात्तवर्णातिके । सुभशापादनाश्रया सापि सगममाददे ॥ ४२३ ॥ यौधर्मकल्पे  
देवीत्वमुगमगोपप्रवित । स्वायु पत्न्योरमयाते कान्दविष्कथ्य तरुते । गमगवियये पुष्कलावतीनगरेश्वितु । नृस्येन्द्रगिरिर्महमत्याथ तनयप्रवद ॥  
४२५ ॥ गांधारीत्व हयया ह्यता प्रदत्तुर्मिथुभय तां । पिनु पापमति भुला प्रारंभ नारदस्तदा ॥ ४२६ ॥ सद्यस्त्व मेय ततर्हमं न्यादज्ज हद्विप्र ॥

आहार दान दिया । अंतमें आयु पूरी होने पर उदक् कुरुकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई । वहां से चय कर चंद्रमाकी चंद्रवती  
देवी हुई । वहां की आयु पूरी कर इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके गगनवल्लभ नगरके विद्याधरके  
प्रभापी राजा विद्युदेगकी रानी विद्युदेगासे सुख्या नामकी पुत्री हुई । वह अत्यंत विद्यावान् और पराक्रमी ऐसे नित्या-  
लोक नगरके राजा महेंद्रविक्रमको व्याही गई । किसी एक दिन वे दोनोंही दंपती बड़े उत्कंठित होकर चैत्यलयोंमें जिन-  
पूजा करनेमेंलिये सुमेरु पर्वतपर गये ॥ ४१६-४२१ ॥ वहां पर भिरज्जमान किसी चरणामुनिलपी चंद्रमासे निकला  
हुआ धर्मरूपी अभूतका पान किया और उसे सुक्कर वे दोनोंही बहुत संतुष्ट हुये ॥ ४२२ ॥ उन दोनोंमेंसे राजा महेंद्र  
विक्रमने तो उन्हीं चारणामुनिसे दीक्षा धारण कर ली और रानी सुख्याने सुभदा नामकी अर्जिकाके समीप जाकर संयम  
धारण कर लिया ॥ ४२३ ॥ आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें एक पत्न्यकी आयु पाकर देवी हुई आयुके अंतमें वहांसे भी  
च्युत हो कर गंधार देशमें पुष्कलावती नगरके इंद्रगिरि की रानी मेरुपतीसे यह गांधारी नामकी पुत्री हुई है । राजा इंद्र-  
गिरि इसे अपने वृद्धाके लडकेको देना चाहता था परंतु यह बात संसारको अभिय और पाप बुद्धिवाले नारदने सुनी ।  
सुन कर शीघ्रही वह तेरे समीप आया और तुमसे सब बात कह सुनाई । सुनते ही तू भी प्रेमके वश होगया और सेना  
सजा कर इंद्रगिरिसे युद्ध किया । युद्धमें राजा चंद्रगिरि तथा अन्य अनेक राजाओंको जीतकर गांधारीको ले आया और  
फिर इसे पट्टरानीका पद दिया ॥ ४२४-४२८ ॥ यह कह कर गणेश देव फिर कहने लगे कि हे कृष्ण अब मैं गौरीके  
भय कहता हूं तू सुन ! इसी जंबूद्वीपमें नागपुर नामका एक प्रसिद्ध नगर है । उसमें पुस्वश्रियोंकी रक्षा करनेवाला हेमपथ

पुल्लिही संजाता सान्येपुनरिन्दनं । मुनि चारणमाश्रित्य गृहीतोपासकप्रता ॥ ४०३ ॥ सुखा जाताष्टमे कल्पे नर्तकीद्विष्य हृदिष्या । अवतीर्य ततो  
 द्वीपे भरतेस्मिन् रुगाचले ॥ ४०४ ॥ खगेशो दक्षिणप्रेष्या जाता चद्रुरेक्षित । महेन्द्रस्य प्रतानुध्याय नैत्रमनोहरा ॥ ४०५ ॥ मालांतकनका सिद्ध-  
 विद्याख्याते स्वयम्भवे । मालया स्वीचकारोत्तौ कुमारं हरिवाहनं ॥ ४०६ ॥ अन्यैश्च सिद्धकूटस्थगुरु यमधराह्वय । समुपेत्य समाकण्ठ्य स्वभवांतरसत-  
 ति ॥ ४०७ ॥ मुक्ताबलीमुपोष्यासीत् तृतीयैर्दमनःप्रिया । नवपरलोपमयुष्का कालातसा ततश्च्युता ॥ ४०८ ॥ सुप्रकारपुराधीशशश्वराह्वयमहीपते । द्वी-  
 मस्त्यश्च सुतासीत् त्व श्रीपद्मप्रवसेनयो ॥ ४०९ ॥ कनीयसी गुणैश्च लक्ष्मणा सर्वलक्षणा । ता त्वा पवनवेगाह्वयक्षेचरः कमलोदरं ॥ ४१० ॥ समुपेत्य  
 रथानेक्षकायुमार्गस्य निर्मला । लसती चद्रलेखेव तव योग्या वनेशिनः ॥ ४११ ॥ तनूजा लक्ष्मणा कामोद्दीपिनीति जगाद सः । तद्वयःश्रवणानतरं  
 त्वमेवान्वेषति तं ॥ ४१२ ॥ प्रेषयामास कसारि सोपि गन्धाविलिखित । तस्मिन्मोहमुमित्या त्वमर्पयामास चक्रिणे ॥ ४१३ ॥ तेनापि पटवधेन त्वमेवमस्ति  
 मानिता । इति श्रुत्वात्मजन्मातराबली सायममुद ॥ ४१४ ॥ गांधारंगं रीपद्मवतीना जन्मातरावलि । गणेशो बासुदेवेन प्रष्टुम्रावित्यभाषत ॥ ४१५ ॥

मोहद्वकी रानी अमुंधरीके नेत्रोंको प्यारी कनकमाला नामकी पुत्री हुई और सिद्धविद्य नामके स्वयम्भवे उसने प्रस्ताँ डाल-  
 कर कुमार हरिवाहनको अपना पति बनाया ॥ ४०४-४०६ ॥ किसी एक दिन वह सिद्धकूटपर विरजित यमधर नामके  
 गुरुके समीप गई और अपने पहिले भव सुनकर मुक्तावली व्रतका उपवास करने लगी आयु पूरी होनेपर तीसरे स्वर्गमें इं-  
 द्रकी इंद्रानी हुई नौ पत्न्यकी आयु पूरीकर वहांसे च्युत हुई और सुप्रकार नगरके राजा शंकर रानी हीमतीके तू-  
 पुत्री हुई है । तू श्रीपद्म और ध्रुवसेनकी छोटी बहिन है परंतु गुणोंमें सबसे बड़ी है । तू सब लक्ष्मणोंसे पूरी है इसीलिये  
 लक्ष्मणा तेरा नाम है । किसी एक दिन पवनवेग नामका विद्याधर कृष्णके समीप जाकर कहने लगा कि हे चक्रवर्ती !  
 शंकरके एक लक्ष्मणा नामकी पुत्री है जोकि आकाशमें चंद्रमाकी रेखाके समान सुशोभित है । वह कामको उदीपित करने-  
 वाली है और आपके ही योग्य है पवनवेगकी यह बात सुनकर कृष्णने उसे ही भेजा और कहा कि तू ही उसे ले आ ।  
 कृष्णकी यह आज्ञा पाकर पवनवेग शीघ्र ही गया और माता पितके साथ उसे लेआया तथा चक्रवर्तीकी समर्पण कर दी  
 ॥ ४०७-४१३ ॥ कृष्णने भी तुम्हें पट्टरानी बना कर तेरा सन्धान किया । इस तरह अपने भव सुनकर वह बहुत ही  
 प्रसन्न हुई ॥ ४१४ ॥ तदनंतर कृष्णने गांधारी गौरी और पद्मावतीके पहिले भव पूछे तब गणेशदेव भी इस प्रकार क-  
 हने लगे ॥ ४१५ ॥ इसी जंबूद्वीपके सुकोशल देशके अयोध्या नगरमें रुद्रनामका राजा राज्य करता था । उसकी विनय-  
 श्री नामकी मनोहर रानी थी । किसी एक दिन वह सिद्धार्थ बनमें गई । वहां पर उसने एक बुद्धार्थ नामके मुनिराजको

जाना सुता सुधीः ॥ ३९० ॥ कदाचिद्विदेहेनाख्य मुनिं संस्थित्य सद्रता । मासोपवासिने तस्मै दत्त्वा कायस्य संस्थिति ॥ ३९१ ॥ सा कदाचिद्वने रंतु मता वर्षभयाद् गुहां । प्रविष्टाजगराणीणां हरिवर्षतनु श्रिता ॥ ३९२ ॥ निर्विदग्ध तद्रतान् भोगान् नागी जाता ततश्च्युता । च्युता ततो विदेहेस्मिन् पुष्कलाबलुषीरिते ॥ ३९३ ॥ विषये पुढरीकिण्यामशोकख्यमहीरतेः । सोमश्रियश्च श्रीकाता सुता भूत्वा कदाचन ॥ ३९४ ॥ विनदत्ताधिकोपाते वी-क्षामादाय सुवता । तपस्यती चिरं घोरमुपोष्य कनकावली ॥ ३९५ ॥ माहेंद्रे दिविजी भूत्वा भोगान् दिव्यान् दिवाकसां । त्वयुरिते तनश्च्युत्वा सु-ज्येष्ठाया सुताऽभव ॥ ३९६ ॥ सुराष्ट्रवर्द्धनाख्यस्य वृपस्थ त्व सुलक्षणा । हरेर्देवी प्रमोदेनं वद्धसे वल्लभा सती ॥ ३९७ ॥ स्वभवांतरसंबधमाकण्डे-बाप समदं । को न गच्छति सतोयसुतरोत्तमृद्धित ॥ ३९८ ॥ लक्ष्मणापि मुनिं नत्वा शुद्धं स्वभवानभूत् । अंधाश्रितं वसेतस्याश्चिकीर्षु सोप्यनु-ब्रह्म ॥ ३९९ ॥ इह पूर्वविदेहेस्ति विषयः पुष्कलावती । तत्राश्रितपुरावीथो वासवस्य महीपतेः ॥ ४०० ॥ वसुभ्यामभूत्सुतः सुषेणाख्यो गुणाकरः । केनचिज्जातनिर्वेगो वासवो निकटेप्रहीत ॥ ४०१ ॥ दीक्षां सागरसेनस्य तदप्रिया सुतमोहिता । गेहवास परित्यक्तुमसमर्था कुचेष्टया ॥ ४०२ ॥ मृत्वा

देहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें पुंढरीकिणी नगरीके राजा अशोक रानी सोमश्रीके श्रीकांता नामकी पुत्री हुई । किसी एक दिन जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप उसने दीक्षा धारण की, अच्छे अच्छे व्रतोंका पालन किया, और कनकावली नामके व्रतके बहुत दिनतक घोर उपास किये ॥ ३९२-३९५ ॥ आयुके अंतमें चौथे पण्डेद्वर स्वर्गमें देवी हुई, वहाँके दिव्य भोगोंका अनुभवकर आयु पूरी होनेपर च्युत हुई और सुराष्ट्रवर्द्धन राजाकी रानी ज्येष्ठाके अच्छे लक्षणोंवाली तू-पुत्री हुई है । तथा कृष्णकी सती और प्यारी पटरानी होकर आनंदसे दिन बिता रही है ॥ ३९६-३९७ ॥ इसतरह सु-सीमा अपने भवोंका संबंध सुनकर बहुत प्रसन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होनेसे भला कोन सं-तुष्ट नहीं होता है ॥ ३९८ ॥ तदनंतर लक्ष्मणा भी मुनिको नमस्कारकर अपने भव सुननेकी इच्छा करने लगी । तब वे मुनिराज भी उपकार करनेकी इच्छासे इसप्रकार कहने लगे ॥ ३९९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके अश्रित नगरके राजा वासवकी रानी वसुमतीके सुषेण नामका एक गुणवान पुत्र हुआ था । किसी कारणसे राजा वासवसेनने तो मुनिराज सागरसेनके निकट दीक्षा धारण करली परंतु उसकी रानी वसुमती पुत्रके प्रेमसे घरका नि-वास छोड़ न सकी इसलिये कुचेष्टासे घरकर स्नेच्छिनी हुई । किसी एकदिन नंदिवर्द्धन नामके चारण मुनिराजके समीप जाकर उसने श्रावकके व्रत धारण किये ॥ ४००-४०१ ॥ आयु पूरी होनेपर वह आठवें स्वर्गमें इंद्रकी प्यारी नृत्यका-रिणी हुई । वहाँसे चयकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयाज्य पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें चंद्रपुर नगरके विद्याधरोंके राजा

दे साधवेति ते ॥ ३७९ ॥ दत्ता तत्साधनोपायमभिधाय गन्गे दिङ् । स ह्रीं स गङ्गा तत्र दिश्यते स्थितः ॥ ३८० ॥ साधयामास मासांस्तो ष-  
ट्पुगे विधिपूर्वक । सिंहादिर्विबाहिः द्वौ विधौ हलिहरी गतौ ॥ ३८१ ॥ आरभ्य जाववं युद्धे विजित्यादयः तत्पुता । महादेवीपदे प्रीत्या त्वामकर्मणि-  
तीडिति ॥ ३८२ ॥ श्रुत बन्धुविशेषेण यद्यप्यस्पष्टतर्कण । तत्पृष्टमिव विस्पष्ट सर्वं तस्यास्तदाभवत् ॥ ३८३ ॥ अथानतरमेवेन शुनीद्र गणनायकं ।  
सुसीमाः सत्रसंबन्धमात्मन पृच्छतिस्म सा ॥ ३८४ ॥ स्ववाकिरणजालेन बोधः स्तन्मनोबुज । इत्युवाच विनेयाना निनिर्मितकबाधव ॥ ३८५ ॥ धात-  
कीखड्गपूर्वांशान्निविदेतिश्रुतः । भोगागमनिर्मात्रौ विषयो मंगलावती ॥ ३८६ ॥ रत्नसन्ध्यानामात्र पुरं तत्परिपालक । विश्वदेवः प्रियास्यासी  
देवी श्रीमत्यनुधरी ॥ ३८७ ॥ तमगोप्यापतौ युद्धे हतबलतिगोक्तनः । सा मन्त्रिभिर्निपिद्धापि प्रविश्य हुतभोजन ॥ ३८८ ॥ विजयादं सुरी भूज्या  
व्यतरेष्वयुतायुषा । जीवित्वा तस्य तत्रांते भवे प्रात्वा यथोचित ॥ ३८९ ॥ द्वीपेस्मिन् मारते शालिग्रामे यक्षस्य मेहिनी । देवसेना तयोर्थक्षदेवी

वर्तने बडे प्रेमसे महादेवी पदपर विराजमान किया ॥ ३८२ ॥ यद्यपि पहिले जन्मका वृत्तांत सब छिपा हुआ था तथापि  
विशेष वक्ता गणेश्वर देवके कहनेसे वह उससमय उसे देखे हुएके सुमान स्पष्ट हो गया ॥ ३८३ ॥ अथानंतर—इन्हीं शुनि-  
राज गणेश्वर देवको सुसीमा नामकी पट्टरानी अपने पहिले भवोंका संबंध पूछने लगी ॥ ३८४ ॥ तव शिष्योकेलिये वि-  
नाही कारणके एक बंधु भगवान गणेश्वरदेव अपने वचनरूपी किरण समूहसे उसके मनरूपी कमलको प्रफुल्लित करते हुए  
इसप्रकार कहने लगे ॥ ३८५ ॥ धातकीखड्गके पूर्वकी ओर पूर्व विदेहक्षेत्रमें मंगलावती नामका एक प्रसिद्ध देश है जो  
कि जीवोंके भोगोपभोगकेलिये एक ही साधन है ॥ ३८६ ॥ उसमें एक रत्नसंघ नामका नगर है उसमें राजा विश्वदेव  
राज्य करता था और उसके बुद्धिमती अनुधरी नामकी रानी थी ॥ ३८७ ॥ किसी एक दिन अयोध्याके राजाने युद्धमें  
राजा विश्वदेवको मार दिया इसलिये अत्यंत शोकके कारण मंत्रियोंके निषेध करनेपर भी वह अग्निमें जलमरी ॥ ३८८ ॥  
मरकर वह विजयाद पर्वतपर दशहजार वर्षकी आयु पाकर व्यंतरी देवी हुई । वहांकी आयु पूरीकर उसने अपने कर्मोंके  
अनुसार संसारमें परिभ्रमण किया ॥ ३८९ ॥ फिर इसी जंबूद्वीपमें भरतदेवके शालिग्राममें धनकी स्त्री देवसेनाके यत्न-  
देवी नामकी बुद्धिमती पुत्री हुई ॥ ३९० ॥ किसी एक दिन वर्षसेन नामके मुनिराजके समीप जाकर उसने व्रत धारण  
किये और एक महीनका उपवास करनेवाले उन्हीं मुनिराजको उसने आहार दिया ॥ ३९१ ॥ किसी एकदिन वह क्रीडा  
करनेकेलिये बनमें गई, वहांपर वर्षा बहुत आनेसे वह किसी गुफामें छुस गई परंतु वहांपर उसे एक अजगरने खा लिया,  
इसलिये मरकर वह हरिवर्षदेवकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई, वहांके भोग भोगकर नागकुमारी देवी हुई । वहांसे चक्कर वि-

देः ॥ ३६८ ॥ अपस्तवं जुंवेणयां सती जांबवती कुता । सुतः पवनवेगस्य श्यामलायाश्च कामुक ॥ ३६९ ॥ भवत्या, स नर्मिनीप्रा मैथुनाक्षिपिणे-  
च्छया । ज्योतिर्वर्नेन्द्या स्थित्वा देया जांबवती न चेत् ॥ ३७० ॥ आच्छिद्यबाह प्रदीप्यामीत्यवोचज्जांबव कुथा । आदितुं प्रेषयामास विद्यामाक्षिकल-  
क्षिता ॥ ३७१ ॥ तदा नमिक्कुमारस्य किमरोह्यपुराधिपः । मादुलो यक्षमाली तामच्छीत्सीत्स्वचरेभर ॥ ३७२ ॥ सर्वविद्याच्छिदा भुत्वा तत् जांबवतनू  
मुवे । नरेनाकम्य संप्राप्ते कुमारै जुनुनामिति ॥ ३७३ ॥ पलायत निजस्थानानामभिभात्वा समादुलः । अनालोभितकार्यणां किं मुक्त्वान्यत्पराभव ॥  
३७४ ॥ नारदस्तद्वित्वाणु संप्राप्य कमलोदरं । वर्णयामास जम्बावतीरुपमतिदुंदरं ॥ ३७५ ॥ हठात्कृष्णस्तदाकर्ण्य हरिष्यामीति तां सती । संभ्रमदन्त  
संपत्या गत्वा सगवर्नासिके ॥ ३७६ ॥ निविष्टा मनसालोक्य भात्वा तत्कर्म दुष्करं । उपोष्याचितयद्वाश्रौ केनेद संस्थतीत्यसौ ॥ ३७७ ॥ प्रसाधितात्रि  
सहोपि तत्राभ्युत्पलवतायति । तद्विपक्षसङ्गोदस्य पुण्यं किमपि तादृश ॥ ३७८ ॥ यक्षिलाद्येनो जस्तस्य 'प्राक्कनस्तपसावसन् । महाशुक्तेतदस्येते तिवे

परंतु बहापर किमरपुर नगरका विद्याधरोंका राजा यक्षमाली नमिक्कुमारका मामा था उसने वह विद्या छेद डाली ॥ ३७२ ॥  
अपनी सब विद्याओंके छेदी जानेकी बात सुनकर राजा जांबवने सब सेनाके साथ अपना जंबूकुमार नामका पुत्र भेजा ।  
उसके आते ही वह नमिक्कुमार मामाको साथ लेकर अपने नगरको आगया सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य बिना विचार  
किया जाता है उसका फल अपमानके सिवाय और क्या हो सकता है ॥ ३७३-३७४ ॥ नारद ये सब बातें जानकर  
शीघ्र ही कृष्णपर गया और उसने उनसे जांबवतीके अत्यंत सुंदर रूपका वर्णन किया ॥ ३७५ ॥ यह सुनकर कृष्णने हठ  
पूर्वक उस सतीको हरनेका विचार किया और इसीलिये वे अपनी सब सेनारूपी संपत्ति लेकर विद्याधरोंके बनमें जाकर  
ठहर गये । मनमें सोचने लगे कि यह काम तो बहुत कठिन है यही समझ कर उन्होंने उपवास किया और रात्रिमें विचार  
करने लगे कि यह काम किसतरह सिद्ध होगा ॥ ३७६-३७७ ॥ देखो ! जिसने तीनों खंड अपने वश कर लिये हैं ऐसे  
कृष्णका भी प्रभाव खंडित हो गया परंतु विद्याधरके शत्रु कृष्णका पुराय ही कुछ ऐसा था जिससे पहिले जन्मका यज्ञित  
नामका छोटा भाई जो तपश्चरणकर महाशुक् विमानमें देव हुआ था वह आया और कहने लगा कि जो मैं देता हूं वे दो  
विद्याएं सिद्ध करो इसतरह कहकर उसने दो विद्याएं दी और उनके सिद्ध करनेका उपाय बतलाकर वह स्वर्गको चला  
गया । इधर कृष्ण एक लीरसागर बनाकर उसमें नागशय्यापर विराजमान हुए और विधिपूर्वक चार महीने तक विद्याएं  
सिद्ध कीं तदनंतर उन्हें सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याएं सिद्ध हुई । बलभद्रने सिंहवाहिनी ली और कृष्णने गरुडवा-  
हिनी ली ॥ ३७८-३७९ ॥ फिर राजा जांबवके साथ किया, उसे जीता और उसकी पुत्री तुम्हे लेकर उस चक्र-



देवमुवाच भगवानिति ॥ ३५९ ॥ द्वीपेरिमन् प्रागिवदेहेस्ति विषय पुष्कलावती । वीतशोकं पुरं तत्र दमको वैश्यवंशज ॥ ३६० ॥ पत्नी देवमतिस्तस्य सुतासीदेविला तयो । दत्तासौ वसुमित्राय विषवाभूदन्तरं ॥ ३६१ ॥ निर्दिष्टा जिनदेवाद्ययतिमेत्याह्वितव्रता । अगाढ व्यतरटेवीत्वं मंदारे नन्दने वने ॥ ३६२ ॥ ततश्चतुरशीत्युक्तसहस्रान्दधुषदच्युतौ । विषये पुष्कलावत्या पुरे विजयनामनि ॥ ३६३ ॥ मधुषेणान्यैवस्य यधुमत्याश्च बंधुरा । सुता बंधुयशा नाम भूताभ्युदयोन्मुखी ॥ ३६४ ॥ जिह्वैदेवमुवा सहया सहासौ जिनदत्तया । समुपोष्यादिसे कल्पे कुबेरस्याभवत् त्रिया ॥ ३६५ ॥ ततश्च्युत्वा ऽभवत्पुंडरीकिण्या वज्रनामभ्युत्-वैद्यस्य सुप्रभायाश्च सुमति सुतसत्तमा ॥ ३६६ ॥ सा तत्र सुव्रताख्याधिकारार्पणपूर्वकं । रत्नावलीमुपोष्याभूद् ब्रह्मलोकेप्सरोवरा ॥ ३६७ ॥ विरात्ततोपि निष्क्रम्य द्वीपेरिमन् खेचराचले । उदक्त्रेण्या पुरे जाववाह्ये जाववभूष-

धर देव इस प्रकार कहने लगे ॥ ३५९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतयोका नगरीमें दमक नामका एक वैश्य रहता था ॥ ३६० ॥ उसकी स्त्रीका नाम देवमति था और उन दोनोंके देविला नामकी पुत्री थी । वह देविला वसुमित्रको व्याही गई थी परंतु वह विधवा हो गई थी ॥ ३६१ ॥ इसलिये विरक्त होकर तुने जिन-देव नामके मुनिराजके समीप जाकर व्रत धारण किये थे और प्राण छोडकर तू मन्दराचल पर्वतके नंदन वनमें व्यंतीरी देवी हुई थी ॥ ३६२ ॥ वहांकी चौरासी हजार वर्षकी आयु भोग कर च्युत हुई और पुष्कलावती देशके विजयपुर नगरमें मधुषेण नामके वैश्यकी स्त्री बंधुमतीसे बंधुयशा नामकी बहुत सुंदर पुत्री हुई दिनों दिन उसका पुण्य बढ़ता ही जाता था वहींपर जिनदेवकी पुत्री जिनदत्ताके साथ उसकी मित्रता थी इसलिये उसीके साथ उपवास आदिकर वह मरकर पहिले स्वर्गमें कुबेरकी देवांगना हुई ॥ ३६३-३६४ ॥ वहांसे चयकर पुंडरीकिणी नगरीमें वज्र नामके वैश्यके घर उसकी सुप्रभा स्त्रीसे सुमति नामकी उत्तम पुत्री हुई ॥ ३६६ ॥ वहांपर उसने सुव्रता नामकी अजिज्ञाको आहार दिया और रत्नावली व्रतका उपवास किया जिससे आयु पूरी होनेपर वह ब्रह्म नामके पांचवें स्वर्गमें उत्तम अम्भरा हुई ॥ ३६७ ॥ बहुत दिन-तक वहांके सुखभोगकर च्युत हुई और इसी जंबूद्वीपके विजयाद् पर्वतकी उत्तर श्रेणीके जांवव नगरमें राजा जांवव रानी जंबुषेणाके तू सती जांववती पुत्री हुई है । उसी विजयार्थ पर्वतपर राजा पवनवर्ग रानी प्रयागलोके एक नाम नामका पुत्र था वह कामी था नातेमें तेरा पति होने योग्य था और तुझे चाहता था किसी एक दिन वह ज्योतिर्विनमें गया और वहां पर जाकर उसने साफ कह सुनाया कि यदि राजा जांवव मुझे अपनी पुत्री जांववती न देगा तो मैं हरकर उसे ले आऊंगा । तब राजा जांववको ब्रह्म आया और उसने उसे खानेकलिये आजिकलजिता नामकी विद्या भेजी ३६८-३७१

भूयस्मूलस्यपादक । शेषावे शिशुपालोभा मासतेस्तेव शास्त्रं ॥ ३५० ॥ हरि हरिनिवाकम्प्य विक्रमेगकर्मणिना । राजकं धीरराजेन सोवाच्य-  
दतिवु स्वय ॥ ३५१ ॥ दधिपणा यशसा विश्वमर्षिणा म्यायुरर्षिणा । दत्त तेनापराभानां व्यधावि मयुरिद्विगः ॥ ३५२ ॥ स्वमूर्द्धकरा मूर्द्धन्य- कृतारक्षो-  
पलक्षित- । अयोधजमधिविनिष्य लक्ष्मीनाक्षेपुमुखाया ॥ ३५३ ॥ संघ शान्तोपि शत्रूणा हर्षवैषागमनपयः । विविगीपुतायुक्षेपु लेपकृत्र मुमुक्षुयत् ॥  
३५४ ॥ एव प्रयाति काले त्वा शिशुपालाय ते पिता । दातु ममुद्यत श्रीत्वा तन्मुद्रवा युद्धकक्षिणा ॥ ३५५ ॥ नारदेन हरिः गर्ग नारकाधमयोरिन्द- ।  
इत्य दूतकमार्णव्यं कः करोति कुयुक्त्वं । मत्वाभजमयाशो चैवादि दुर्गमिनीभरात् ॥ ३५६ ॥ अप जगवती नत्वा मुनि लानवन्तति । दृच्छतिस्कारा-  
हे उसी प्रकार वह भी क्रूर और मतार्षा था तथा सूर्य जिस प्रकार दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूयुत अर्थात् पर्वतके  
पर्वतक पर अपनी किरणों फैलाता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूयुत अर्थात्  
राजाओंके पर्वतकपर अपने पैर रखता था ॥ ३५७-३५८ ॥ इधर कृष्ण अपने एक साथ होने वाले पराक्रमसे सुगोभित  
हो रहे थे उनको भी यह अपनी वीरतासे सिद्ध और अपनी आयुको समर्पण करनेवाले अभिमानी शिशुपालने कृष्णके सो  
दस तरह अपने यशसे सब संसारमें मसिद्ध और अपनी आयुको समर्पण करनेवाले अभिमानी शिशुपालने कृष्णके सो  
अपराध कर डाले ॥ ३५९ ॥ जो अपनेको बहुत बड़ा समझता है सिरके बल चलना है अर्थात् जो उन्मत्त वा पन्हाअधि-  
मानी है और जो कृष्णकी पक्षको काटनेके लिये तैयार हुआ है ऐसा वा शिशुपाल कृष्णको तिरस्कार कर लक्ष्मी  
पर अधिकार जमानेके लिये तैयार हुआ ॥ ३६० ॥ शांत हुआ भी गदुआँका समूह पापोंके समूहके समान  
कभी न कभी मारता है इस लिये पापोंकी जीतनेकी इच्छा करनेवाले मोक्षार्थीके ममान उसे उवाड कर फेलेमें कभी  
देर नहीं करनी चाहिये ॥ ३६१ ॥ इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर तेरा पिता बड़े प्रेमसे तुम्हें शिशुपालको देनेके  
लिये तैयार हुआ ॥ ३६२ ॥ इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर तेरा पिता बड़े प्रेमसे तुम्हें शिशुपालको देनेके  
कृष्ण अपनी छह तरहकी सब सेना लेकर वहाँ गये, उस प्रतापी शिशुपालको मार कर तुम्हें लाप और तेरे पर्वतक पर  
महादेवीका पङ्कव्य बांधा । गणधरकी ये सब बातें सुनकर रुक्मिणीको बहुत ही संतोष हुआ ॥ ३६३-३६४ ॥ इस  
कगानकको सुनकर दुर्बुद्धिको छोड़कर अन्य कौन ऐसा बुद्धिमान है जो मुनियोंको मलिन देखकर भी स्तानिकरो ॥ ३६५ ॥  
अयानंतर—रानी जांवकी भी भगवान गणधर देवको नमस्कार कर बड़े आदरसे अपने भव पृष्ठने लगी तब गण-

स्नान्मनैर्धीरत्वमतः परं । इति श्रोत्वाहिता सह्या सा संन्यस्य समाधिना ॥ ३३९ ॥ च्युतप्राणाच्युतैतस्य ब्रह्मभाभूदतिश्रिया । पत्यानां पचर्पचाशत त-  
त्राच्छिद्रमैसाह्यभाक् ॥ ३४० ॥ च्युत्वा ततो विदमोह्यविषये कुडलाह्वये । पुरे वासवभूभर्तुः श्रीमत्याश्च सुताभवः ॥ ३४१ ॥ रविमण्यथ पुरः कोशला-  
ह्याया भूपते सुत । भेषजस्याभवन्मद्रथा शिशुपालखिलोचनः ॥ ३४२ ॥ अभूतपूर्वमेतत्तु मनुष्येष्वस्य किं फल । इति भूपतिना पृष्टः स्पष्ट नैमित्तिको  
बदत् ॥ ३४३ ॥ तृतीय नयनं यस्य दर्शनादस्य नश्यति । अयं हविष्यते तेन सद्यो नेत्यदृष्टवित् ॥ ३४४ ॥ कदाचिद्भेपजो मद्रो शिशुपाल परेषि च ।  
गता द्वारावती दृष्टु बाहुदेव समुत्सुकाः ॥ ३४५ ॥ अदृश्यतामगानेत्र जरासंधाविधीक्षणात् । तृतीयं शिशुपालस्य विवित्रा द्रव्यक्षयः ॥ ३४६ ॥  
विज्ञातादेशया मद्रा तद्विलोक्य हरिं मिया । ददस्व पूज्य मे पुत्रमिक्षामित्यभ्याचत ॥ ३४७ ॥ शतापराधपर्यंतमंतरेणाव मङ्गयं । नास्यास्तीति हरे  
हन्धवरासा स्वा पुरीमगात् ॥ ३४८ ॥ विशुद्धमंडलो नित्यमुद्यद्यस्तद्विपत्तया । पद्माल्हादपरस्तीक्ष्णाकरः क्रूरः प्रतापवान् ॥ ३४९ ॥ प्रच्छाद्य परतेजाति-

राजा भेषज राज्य करता था उसकी मद्रो रानीसे शिशुपाल नामका एक पुत्र था और उसके तीन नेत्र थे ॥ ३४१-३४२ ॥  
तब राजाने किसी निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मनुष्योंमें तीन नेत्र होना कभी न देखा न सुना इसलिये शिशुपालके तीन  
नेत्र होनेका क्या फल है ? इसके उत्तरमें अष्टक को जानने वाले निमित्तज्ञानीने स्पष्ट कह सुनाया कि जिसके देखनेसे इसका  
तीसरा नेत्र न हो जायगा वही पुरुष ऐसे मारेगा इसमें विलकुल संदेह नहीं है ॥ ३४३-३४४ ॥ किसी एकदिन राजा  
भेषज रानी मद्रो, कुमार शिशुपाल तथा और भी कितने ही लोग बड़े उत्साहसे कृष्णाको देखनेकेलिये द्वारावती नगरीमें  
गये ॥ ३४५ ॥ वहां पर कृष्णाको देखते ही शिशुपालका तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया सो ठीक ही है क्योंकि द्रव्योंकी  
शक्तियां बड़ी ही विचित्र हैं ॥ ३४६ ॥ मद्रोने यह सब हाल जानकर कृष्णाकी आज्ञानुसार उनके दर्शन किये और बड़े  
डरसे याचना की कि हे पूज्य मुझे पुत्रकी भिन्ना दीजिये ॥ ३४७ ॥ तब कृष्णने कहा कि जब तक इसके सौ अपराध  
न हो जायगे तब तक इसे मेरा कुछ किसी तरहका भय नहीं होगा । इस तरह कृष्णासे बर पाकर वह मद्रो अपने घरको  
चली गई ॥ ३४८ ॥ इधर शिशुपाल वालक अवस्थामें ही सूर्यके समान दैदीप्यमान होने लगा क्योंकि जिस प्रकार सूर्य  
मंडल विशुद्ध है उसी प्रकार उसका मंडल अर्थात् मंत्री आदि सब विशुद्ध ( शुद्धतारहित ) थे, सूर्य जिस प्रकार सदा  
उदय होते ही शत्रु अंधकारको नष्ट करता है उसी प्रकार वह सदा उदय रूप होकर बड़े २ शत्रुओंको नष्ट करता था, सूर्य  
जिस प्रकार कमलोंको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी पद्मा अर्थात् लक्ष्मीको प्रसन्न करता था, जिस-  
प्रकार सूर्यकी किरणों तीक्ष्ण हैं उसी प्रकार उसका कर ( महसूल ) भी तीक्ष्ण था, सूर्य जिस प्रकार क्रूर और प्रतापी

रवर्तिनी स कदाचन । समाधियुक्तमालोक्य नदीतीरे पुरातन ॥ ३२८ ॥ काललब्ध्या समासाद्य प्रतिमायोगधारिणं । गृहीतोपशमां योगिदेहस्यमशरादि-  
क ॥ ३२९ ॥ अपास्यंती प्रयत्नेन निशाते योगनिष्ठिता । उपविष्टस्य पादाब्जमुपहृत्योदितं मुनेः ॥ ३३० ॥ श्रुत्वा धर्मधियादत्तपर्वोपवसतिं शुधी । प-  
उपविष्टा निजाचारं पालयंती वीक्ष्य सार्धिकां ॥ ३३१ ॥ आमातरं समं गत्वा तदानीतांधसा सदा । प्राणसधारणं कृत्वा कस्मिंश्चिद् भूयतोक्ते ॥ ३३२ ॥  
का दृष्टुं स्वा वास्तव्यादुपगतां ॥ ३३३ ॥ अभिधायाव पापिष्ठा मा त्वं पुण्यवती कुतः । पश्यसीति निजातीतसवान् ज्ञातान् यतींधरात् ॥ ३३४ ॥  
तस्या व्यावर्णयत्सापि वयस्यासाः पुरातनी । तथैतद्वदुत्थायान्मार्गं जैनमयक्षयात् ॥ ३३५ ॥ प्राणजन्मार्जितपापस्य परिपाकाद्विरूपता । रोगवत्त्व कुण-  
धत्वं निर्धनत्वादिकं च कैः ॥ ३३६ ॥ न ग्राण्यतेन ससारे तत्त्वं भूयं हितां शुभा । लयात् ज्ञातशीलोपवासादिपरजन्मने ॥ ३३७ ॥ पापेय दुर्लभं त-  
मका स्वरूपं मुना और धर्मबुद्धिसे पूर्वमें उपवास करना स्वीकार किया । दूसरे दिन एक अर्जिका जिनपूजा करनेकोलिये  
दूसरे गांव जाती थी उसे देखकर वह उसीके साथ हो ली उसीके साथ वह भोजन कर आती थी इसतरह वह अपना  
जीवन निर्वाह करतीथी और पापोंसे डरकर अपने आचारका पालन करती हुई किसी पर्वतपर रहती थी । किसी एकदिन  
पूजा करनेवाली अर्जिकाके दर्शन करनेकोलिये एक आर्विका आई थी उसके पहलेनेप अर्जिकाने कौतुक रूपसे सब समा-  
चार कहा और कहा कि नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी यह ऐसे व्रत उपवास करती है इसप्रकार आदरपूर्वक उसकी प्रशं-  
साकी । तब वह पूतका कहने लगी कि हे माता ! मुझ पापिनीको आप पुरायवती कैसे समझती हो । इसतरह कहकर उसने  
मुनिराजसे जो अपने पहिले भव मुने थे वे सब उस आर्विकासे कह सुनाये । वह आर्विका पहिले किसी भवकी इसकी  
सखी थी उसने यह सब सुनकर कहा अब पापकर्मोंके नष्ट होनेसे तुम्हें जैन धर्मकी प्राप्ति हुई है ॥ ३२९-३३६ ॥ पहिले  
जन्ममें कमाये हुए पापकर्मोंके उदयसे इस संसारमें बुरा रूप, रोगी शरीर, दुर्गंधपना और निर्धनता किसको प्राप्त नहीं  
होती इसलिये तू शोक मतकर । तूने जो व्रत शील उपवास आदि धारण किये हैं वे परजन्मके लिये अत्यंत दुर्लभ पापेय  
( रस्तेका खर्च ) हैं इसलिये अब तू आगेकेलिये कुछ द्रम्यत कर । इसतरह उस सखीने उसे उत्साह दिलाया । आयुके  
अंतमें उसने समाधिपूर्वक संन्यास धारण किया ॥ ३३७-३३९ ॥ प्राण छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गके इंद्रकी अ-  
त्यंत मिय बल्लभा हुई । वहांपर उसने पचपन पत्यतक निरंतर सुखोंका अनुभव किया ॥ ३४० ॥ वहासे च्युत होकर वि-  
दर्भ देशके कुंडलपुर नगरमें राजा वासवकी रानी श्रीमतीसे तू रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई है । अयानंतर-कोशल नगरमें

भारते क्षेत्रे मगधांतरवर्तिनि । शष्मीग्रामे द्विजः सोमोत्पाम्बुशष्मीमतिः प्रिया ॥ ३१७ ॥ प्रसाधितांगी सान्वेयुर्दण्डलोकोन्नोद्यता । समाधिगुप्तमालोक्य मुनिं शिक्षार्थमागत ॥ ३१८ ॥ प्रस्वेदमलदिग्भागो दुर्गन्धोयमिति कुषा । विविकित्सापरा साधिक्षेपोकोट्टारिणी तदा ॥ ३१९ ॥ सहस्रोदुवराट्वेन कुण्डेन व्यासदेहिना । शुनीव सर्वतस्तर्ज्यमाना परुषभाषितैः ॥ ३२० ॥ शून्यगेहेऽतिदुःखेन मृत्वा मेहाहिताशया । गेहस्यैव द्विजस्याभूद् दुर्गन्धश्चिकराबुक् ॥ ३२१ ॥ तस्योपरि मुहुर्थावस्तेन कोपवता वहिः । गृहीत्वा निष्ठुरं क्षिप्तो मृत्वा त्वहिरजायत ॥ ३२२ ॥ तत्रैवासा पुनर्मृत्वा गर्दभोभूस्त्वपापतः । मुहुर्मुहुर्गृहं गच्छस्तदैव कुपितैर्द्विजैः ॥ ३२३ ॥ इतो लकुटपाणौर्भग्नपाव कृमित्रणैः । आकुल पतित कृपे दुःखितो मृतिमागतः ॥ ३२४ ॥ ततो वहि सुपुत्रो मृत्वाधश्चाथ शक्रः । ग्रामे यो भक्षितो मृत्वा सोऽपि श्रमिरितस्ततः ॥ ३२५ ॥ मत्स्यस्य मन्दिरग्रामे नद्युत्तरणकारिणः । मंढूक्यश्च सुता जाता पूतकानाम् पापिनी ॥ ३२६ ॥ सोत्पल्यन्तर्दं लोकातरं यातः पिता ततः । माता च मोयिता मातामया सर्वोच्छ्रमादिह ॥ ३२७ ॥ विविकित्तस्या नदीती कुट्ट ( कोट ) रोगसे उसका शरीर भर गया और सब लोग कठोर वचन कहकर कुत्तोंके समान उसका ताडन करने लगे ॥ ३१८-३२० ॥ वह मृने मकानमें अकेली पड़ी रहती थी निदान हृदयमें पतिका प्रेम रखकर बड़े दुखसे वहीं मृने मकानमें मरी और उसी ब्राह्मणोंके घर छछूंदर हुई ॥ ३२१ ॥ प्रेमके कारण वह बार बार उस ब्राह्मणोंके ऊपर दौडती थी इस लिये क्रोधकर ब्राह्मणोंने उसे पकड़ा और बाहर जाकर बड़े जोरसे उसे दे पटका जिससे मरकर सांप हुई ॥ ३२२ ॥ फिर मरकर अपने पाप कर्मके उदयसे वहीं (ब्राह्मणोंके समीप ही) गया हुई । वह गया बार बार उस ब्राह्मणोंके यहां जाता था इसलिये ब्राह्मणने क्रोधित होकर सकड़ी पत्थरसे उसे मारा जिससे उसका एक पैर टूट गया, उसके धावमें कीड़े पङ्गवे व्याकुल होकर वह झूएँ पड गया और दुःखी होकर मरगया ॥ ३२३-३२४ ॥ मरकर उसी गांवके बाहर अंधा सञ्चार हुआ, गांवके कुत्तोंने इधर उधर फिरते हुए उसे काट खाया जिससे मरकर वह मंदिर नामके गांवमें नाव चलानेवाले मत्स्य नामके धीवरकी स्त्री मंझुकीसे पाणिनी पूतका नामकी पुत्री हुई ॥ ३२५-३२६ ॥ इसके उत्पन्न होते ही इसका पिता मरगया था और माता भी मर गई थी, दादीने उरो पाला था वह सञ्चरहसे अशुभ थी और सब लोग उसकी निन्दा करते थे । किसी एक दिन वह नदीके किनारे बैठी थी वहींपर नदीके किनारे उसने उन्हीं पहिले समाधिगुप्त मुनिके दर्शन किये ॥ ३२७-३२८ ॥ वे मुनि प्रतिमायोग धारण किये हुए शांतचित्त थे पूतकाकी काललब्धि समीप आगई थी इसलिये उसने मुनिराजके शरीरपर लगे हुए मच्छर आदि बड़े प्रयत्नसे दूर किये । सर्वेके समय जब उनका योग समाप्त हुआ तब मुनि विराजमान हुए वह पूतका भी उनके चरणकमलोंके समीप पहुंची, उस बुद्धिमतीने उनसे ध-

३.५ ॥ निर्धनेः परलोकार्यं स्वयं साहसवाल्लिप्ति । भूसुवर्णरिदानेन सुखमिष्टमवाप्यते ॥ ३.०६ ॥ इतीत्यादिदृष्टातकुद्रेतुनिपुर्णनृपं । कायक्रेशासह  
वाक्यैरमथार्थमवबुधत् ॥ ३.०७ ॥ तथापराश्व निर्बुद्धीन् बोधयन् जीवितान्धैषा । भूत्वा सप्तस्वधोभूमिष्वतस्तिर्यङ्मु च क्रमात् ॥ ३.०८ ॥ गंधमादनकूटो-  
त्थमहागंधावती नदी । समीपगतमल्लुकिनामपत्न्यां स्वपापतः ॥ ३.०९ ॥ जातो बनेचरः कालसह स तु कदाचन । बरधर्मयतिं प्राप्य मध्यादिनि  
निवृत्ति ॥ ३.१० ॥ विजयाईलकापुर्याः पत्यु पुत्रवत्स्य च । ज्योतिर्मात्राभिधायाश्च सुतो हरिवलोभवत् ॥ ३.११ ॥ अनंतवीर्ययत्यते गृहीत्वा द्रव्यसयम ।  
सौधर्मकल्ये संभूय कालाते प्रच्युतस्ततः ॥ ३.१२ ॥ सुकेतो विजयाईलकापुर्याः पत्यु पुत्रवत्स्य च । ज्योतिर्मात्राभिधायाश्च सुतो हरिवलोभवत् ॥ ३.१३ ॥  
मित्रा ते मेन्यदा कस्य सुता पत्नी भविष्यति । इत्युक्तौसौ निमित्तादिकुशलह्योद्वेचक्रिण ॥ ३.१४ ॥ भविष्यति महादेवीत्याख्यभैमिसितिकोत्तमः । इत्यु-  
चीरितमाकर्ण्य सत्यभामादुषत्सरा ॥ ३.१५ ॥ रुक्मिण्याश्च महादेव्या प्रणम्य स्वभवातर । परिपृष्ट पराव्हो व्याजहारेति तद्भवान् ॥ ३.१६ ॥ द्वीपेस्मिन्

तिर्यचपर्यायों तथा सातो नरकोंमें परिश्रमण करता रहा ॥ ३.०८ ॥ तदनंतर वह अपने पाप कर्मके उदयसे गंधमादन  
नामके पर्वतसे निकली हुई महागंधवती नदीके किनारे भल्लुंकी नामकी पट्टीमें काल नामका वनेचर वा भील हुआ ।  
किसी एक दिन वह वरधर्म मुनिके समीप गया उनके उपदेशसे उसने मधुमांसादिका त्याग किया जिससे मरनेके बाद  
वह विजयाई पर्वतकी झलका पुरी नगरके राजा पुरुवल रानी ज्योतिर्मालिके हरिवल नामका पुत्र हुआ ॥ ३.०९--३.११ ॥  
उस पर्यायमें उसने श्रीअनंतवीर्य मुनिराजके समीप द्रव्य संयम धारण किया जिससे आयुके अंतमें वह सौधर्म स्वर्गमें देव  
हुआ । वहांकी आयु पूरी कर वहांसे च्युते हुआ और विजयाई पर्वतके रथनपुर नगरके राजा सुकेतुके उसकी रानी स्व-  
यंप्रभासे तू सत्यभामा पुत्री हुई है ॥ ३.१२--३.१३ ॥ किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तकुशल नामके उत्तम निमित्त-  
ज्ञानीसे पूछा था कि मेरी यह पुत्री किसकी स्त्री होगी, तब उस निमित्तज्ञानीने कहा था कि यह अर्थ चक्रवर्तीकी पट-  
रानी होगी । ये सब बातें सुनकर सत्यभामा बहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ३.१४--३.१५ ॥ तदनंतर महादेवी रुक्मिणी नमस्कार  
कर अपने भव पृष्ठने लगी तब पूज्य बुद्धिको धारण करने वाले गणधर देव कहने लगे ॥ ३.१६ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके  
भरतक्षेत्रमें मगध देशके लक्ष्मी गांवमें एक सोम नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमति था ॥ ३.१७ ॥  
किसी एक दिन वह लक्ष्मीमती नहा धोकर आयुषण पहिन कर दर्पण देख रही थी कि इतनेमें ही समाधि गुप्ति मुनि  
आहारके लिये उसके घर पधारे । उन्हें देखकर “इसका शरीर पत्नीनिके मलसे भर रहा है और दुर्गंधित हो रहा है” इस  
तरह क्रोध करती हुई वह स्नानि करेन लगी और कुछ निंदोके वचन कहने लगी । उसी समय ब्रह्मस्मात् उदंबर नामके

नेदेशात्कथतो भयात् ॥ २९४ ॥ ते नैगमर्विणा नीताः श्रेष्ठिन्या स्वल्पाख्या । वर्दिता देवदत्ताय देवपात्रोपज्ञस्ततः ॥ २९५ ॥ अनीकदत्तधानीक-  
पाल शत्रुघ्नसङ्गः । जितशत्रुघ्न षण्मन्येवात्र निर्वृत्तिगामिनः ॥ २९६ ॥ नवे धयसि दीक्षित्वा मिश्रायैपुरमागता । त्वया दृष्टास्वतस्तेषु ब्रह्मो बन्मात-  
रागतः ॥ २९७ ॥ स्वयभूकेशवैश्वर्यं तपकाळे निरीक्ष्य सः । निर्नामकमुत्तरेऽयं कमशत्रुरजायत ॥ २९८ ॥ त्वं कुतस्ते कुतः कोयं संबन्धो निर्निबंधनः ।  
विधेर्विलसित चित्रमगम्य योनिनामपि ॥ २९९ ॥ इति नैसर्गिकाशेषमव्यानुप्रहभावकः । न्यागदङ्गवानेवं भक्त्यावंदत देवकी ॥ ३०० ॥ अथानतरमे-  
वैन सत्यभामापि भक्तिका । स्वपूर्वमवसयमप्राक्षीदक्षरावधिं ॥ ३०१ ॥ सोपि व्याख्ययामास तदभीष्टनिवेदने । न हेतुः कृतकृत्यानामस्त्यन्योन्यप्र-  
हाहिना ॥ ३०२ ॥ शीतलाख्यजिनाधीशतीर्थे धर्मे विनश्यति । भद्रिलाख्यपुराधीशो नाम्ना मेघरथो नृपः ॥ ३०३ ॥ प्रेगसी तस्य नदाख्या भूतिशर्मा  
द्विजप्रणीः । तस्यासीत्कमला पत्नी मुण्डशालायनस्तयो ॥ ३०४ ॥ तनूजो वेदेवेदागपारगो भोगसक्धीः । दृष्ट्वा तपःप्रसिद्धो मूढैरेष प्रकल्पितः ॥

है ॥ २९८ ॥ हे देवकी ! तू कहाँसे आई वे तेरे पुत्र कहाँसे आए और विना ही कारणके यह संबंध कैसा आ मिला ।  
इस लिए कहना पड़ता है कि कर्मोंका उदय बड़ा ही विचित्र है योगी लोग भी इसका पार नहीं पा सकते ॥ २९९ ॥  
इस प्रकार स्वाभाविक रीतिसे समस्त भव्य जीवोंका अनुग्रह करने वाले भगवान गणधर देवने यह सब क्या कही  
तब देवकीने वही भक्तिसे उनकी वंदना की ॥

अथानंतर-----अक्षरावधिको धारण करने वाले गणधरदेवसे भक्तिको धारण करनेवाली सत्यभामाने भी अपने  
पहिले भवोंका संबंध पूछा ॥ ३०१ ॥ तब गणधर देवभी सत्यभामाका अभीष्ट कहने लगे सी ठीक ही है क्योंकि कृत-  
कृत्य लोगोंको अनुग्रहके विना और किसी कारणकी आवश्यकता नहीं पड़ती ॥ ३०२ ॥ शीतलनाथ तीर्थकरके बाद  
जब धर्मका विच्छेद हुआ था तब भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ राज्य करता था ॥ ३०३ ॥ उसकी रानीका नाम नंदा  
था उसी राजाके भूतिशर्मा नामका एक मुख्य ब्राह्मण था उसकी कमला स्त्रीसे मुण्डशालायन नामका एक पुत्र हुआ था ।  
वह वेद वेदाङ्गका पारगामी था और उसकी बुद्धि भोगोंमें तल्लीन थी इसलिये उसने अनेक कुहट्टांत और कुहेतुओंको  
बतलाने वाले त्रात्यंत निपुण वाक्योंके द्वारा काय क्लेशको न सहन करनेवाले राजाको झूठ मूठ समझाया कि स्वयं  
साहस करनेवाले निर्धन मूर्ख लोगोंने परलोक सुधारनेकेलिये व्यर्थही तपश्चरणोंके द्वारा शरीरको क्लेश देनेकी कल्पना की  
है वास्तवमें पृथ्वी सुवर्ण आदिका दान देनेसे ही परलोकमें इष्ट सुखकी प्राप्ति हो जाती है । इसी तरह वह अपने जीवित  
रहने तक अनेक अन्य निर्बुद्धियोंको भी समझाता रहा । अंतमें वह मरकर नरक गया । वहांसे निकल कर सब तरहकी



महीपते । वसुधाया सुता नन्दयशा समुद्रपादयो ॥ पुनर्निर्बुद्धपथ आत्रा दुःस्वनिमित्तक । त्वयेदं न कर्तव्यमित्युक्त । शममागत ॥ २८३ ॥ स्वयुरते स-  
मुत्पन्नः सोय निर्नामसङ्गया । ततः पूर्वमवोपात्तापस्य परिपाकत ॥ २८५ ॥ जायते नन्दयशस योगो निर्नामक गति । इति तस्य वचः श्रुत्वा ते ति-  
र्थगपरायणा ॥ २८६ ॥ नरेन्द्र पदसुता शैला शत्रो निर्नामकौव्यशु । तथा नन्दयशा रेवती नामादित साम ॥ २८७ ॥ सुप्रतापार्थिकाभ्यासे पुत्रस्नेहा-  
हितेच्छया । अन्यजन्मनि चागीपामेव लोके न वर्दने ॥ २८८ ॥ ते निदान विमूढत्वादुमे चाकुन्ता सम । ततः सर्वे तपः कृत्वा समाराज्य योगोन्वित ।  
२८९ ॥ महाशुके समुत्पत्ता गते मामानिकाः सुरा । पौड्याच्छुपमाशुका दिव्यभोगीकृता ॥ २९० ॥ ततः प्रत्युल शस्त्रोभूद्भलेवो दुलायुव ।  
शृगावलाद्व्यधिपवै दशार्णपुरभूपतेः ॥ २९१ ॥ देवसेनस्य चोत्पत्ता धनदेव्याश्च देवकी । त सा नन्दयशा लीलमुपगम्य निदानतः ॥ २९२ ॥ भद्रिला  
त्यदुरे देवो मल्लगेडजति रंजती । सुदृष्टिरेष्ट्रिज श्रेष्ठा धेष्टिनी सालकात्यया ॥ २९३ ॥ प्राक्का. पट्टकुमाराश्च यमीभूतास्तत्र त्रयः । तरानीमेव शक्य

और निर्नामक सब विरक्त हुए और सर्वने दीक्षा धारण करली । तथा उनके साथ साथ पुत्रोंके स्नेह और अपनी इच्छासे  
नन्दयशा और रेवती बायेन भी सुत्रता नामकी अर्जिकके समीप दीक्षा धारण करली । एक दिन उन दोनों अर्जिकाओं  
ने अपनी मूर्ध्नितांस निदान किया नन्दयशाने तो यह निदान किया कि दूसरे जन्ममें भी ये मेरे पुत्र हों और रेवतीने यह  
निदान किया कि मैं इनका पालन करूँ । तदनंतर सब तपश्चरण कर और अपनी योग्यताके अनुसार आराधनाओंका  
आराधन कर आशुके अंतमें महाशुक विमानमें सामानिक जातिके देव हुए, सोलह सागरकी उनकी आयु थी और वे सदा  
दिव्य भोगोका अनुभव करते थे ॥ २८४-२९० ॥ वहांसे च्युत होकर शंखका जीव तो चलभद्र चलदेव हुआ है, नन्दयशा  
का जीव मृगावती देशमें दशार्णपुर नगरके राजा देवसेन रानी धनदेवीके तू देवकी हुई है, निदानके कारण तूने देव  
पर्यायेस स्त्री पर्याय पाई है । रेवतीका जीव मलयदेशके भद्रिलपुर नगरके श्रेष्ठ सुदृष्टिके अलिका नामकी श्रेष्ठ श्रेष्ठानी हुई  
है । छहो राज पुत्रोंके जीव तेरे दो दो कर तीन वारसे छह यमल पुत्र हुए । उसी समय कंसके डरसे और इंद्रकी आज्ञासे  
नेमगर्पी नामके देवने उन पुत्रोंको उठा कर अलका नामकी श्रेष्ठानीके घर रख दिया इसलिये अलकाने ही उन पुत्रोंका  
पालन किया । देवदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु ये उनके नाम हैं ये छहों भाई इसी जन्म  
से मुक्त हो जायेंगे ॥ २९१-२९६ ॥ ये छहों भाई नई अवस्थामें ही दीक्षा धारण कर आहारके लिये नगरमें आए  
थे इस लिये उन्हें देख कर उनमें तेरा पूर्व जन्मका चला आया लोह उत्पन्न हो आया है ॥ २९७ ॥ निर्नामकने तपश्चरण  
करते समय स्वयंभू नामके नारायणके ऐश्वर्यको देखकर निदान किया था इसलिये उसका जीव कंसका शत्रु कृष्ण हुआ

अस्मिन् द्वावशा ग्रामान् महीसो मांसखेच्छन् । स कदाचित्सुषुर्मांसव्यभ्यासे धृतागमः ॥ २७२ ॥ अद्भ्यन् वोस्मिमाद्याय राज्यं मेघरये द्युते । नियोज्य सबतो जातः द्युतेषु श्रावकोऽजनि ॥ २७३ ॥ तत सूषकरग्रामानेकशेषं समाहरत् । सोन्येयुर्बद्धैरः सन् सर्वसंभारसकृत् ॥ २७४ ॥ घोषातकी-  
फलं पक्वं मुनीन् तमभ्योजयत् । कर्जयन्तगिरी सोपि तन्निमित्त गतासुकः ॥ २७५ ॥ सम्यगाराध्य संभूतः कल्पातीते उपराजिते । अथन्यतद्गतायुः सप्त  
हर्मिद्रो महर्द्धिकः ॥ २७६ ॥ सूषकारोपि कालांते तृतीयनरकं गत । ततो निर्गत्य संसारे सुदुःखञ्चिरं अमन् ॥ २७७ ॥ द्वीपेस्मिन्भारते क्षेत्रे विषये  
मथयाद्वये । पलाशकूटग्रामस्य यक्षदत्तगृहेविनः ॥ २७८ ॥ सुतो यक्षादिदत्ताया यक्षनामा बभूव सः । तथोयंशिलसङ्घश्च सूनुन्योन्वजायत ॥ २७९ ॥  
तयोः स्वकर्मणा ज्येष्ठो नान्ता निरनुकंपक । सानुकंपो परोक्षायि जैर्ययानुसारिभि ॥ २८० ॥ कदाचिरसानुकंपेन वार्यमाणोपि सोपर । मार्गस्थितावस-  
पेस्य दयाकरो द्युथोपरि ॥ २८१ ॥ शकटं भाटसपूर्णं बलीवदैर्योजयत् । सर्पस्तन्मादितोऽकामनिर्जरो विगतासुक ॥ २८२ ॥ पुरश्चेतविकानाम्नि वासवस्य

पहुंचे और उस आहारके कारण वे वहींपर प्राणांत हो गये उन्होंने अंतमें आराधनाओंका अच्छीतरह आराधन किया या इसलिये वे पंचोत्तरके अपराजित विमानमें जघन्य आयुको पकर वडी ऋद्धिको धारण करनेवाले अर्हमिद्रहुए ॥ २७२-२७६ ॥ वह रसोइया भी आयुके अंतमें मरकर तीसरे नरक गया वहांसे निकलकर अनेक दुख भोगते हुए उसने बहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमण किया ॥ २७७ ॥ फिर इसी भरतक्षेत्रके मलय देशमें पलाशकूट गांवके एक यक्षदत्त नामके गृहस्थीके उसकी यक्षदत्ता नामकी स्त्रीसे यक्ष नामका पुत्र हुआ । उन्हीं यक्षदत्त और यक्षदत्ताके यक्षिल नामका दूसरा छोटा पुत्र हुआ ॥ २७८-२७९ ॥ उन दोनों भाइयोंमें अपने २ कर्मोंके उदयसे बड़ा भाई तो निर्दय या इसलिये लोग उसकी क्रियाओंके अनुसार उसे निरनुकंप ( दयारहित ) कहते थे और छोटा भाई दयावान था इसलिये लोग उसे सानुकंप क-  
हते थे ॥ २८० ॥ किसी एक दिन वह निरनुकंप वर्तनीसे भरी हुई गाडी बैलोंसे जोतकर ले जा रहा था और मार्गमें एक था सर्प बैठा था, निरनुकंपके हृदयमें दया तो थी ही नहीं इसलिये सानुकंपके चार बार मना करनेपर भी उसने वह गाडी उस सर्पके ऊपर होकर निकालदी । वह सर्प उसके वोभसे दबकर अकाम निर्जरा करता हुआ मर गया और मरकर भेतविका नाम नगरमें राजा वासवकी वंसुधरी रानीसे यह नंदयशा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई ॥ २८१-२८३ ॥ तदनं-  
तर उस निरनुकंपको सानुकंपने बहुत समझाया कि तुम्हे दुःख देनेवाले कार्य कभी नहीं करने चाहिये । ये सब बातें सुनकर निरनुकंप कुछ शांत हुआ और आयुके अंतमें मरकर यह निर्नामिक उत्पन्न हुआ है । इसलिये पूर्वभ्रममें कमाये हुए पापकर्मके उदयसे निर्नामिकपर यह नंदयशा क्रोध करती है । मुनिराज द्रुमसेनकी ये बातें सुन कर राजाके छहों पुत्र तथा शंख

सुभासुर्धनद स्वयं । तसुराधिपतेर्गतेवनामधरेबिन ॥ २६१ ॥ तदेव्या नदयशसः शेषास्ते यमलाक्षयः । गंगाह्यो नन्देवश्च खड्गमित्रश्च नन्दवत् ॥  
२६२ ॥ मुनयो नदियेषश्च जाता क्रिष्णा परस्परः । गर्भेभ्यस्मिन् महीनाशस्तस्यामासीद्विरुद्धकः ॥ २६३ ॥ तदैवासीन्सुगन्ध पुत्रहेतुकमिलसा ।  
न्यदिशश्चेवती धार्त्री तदपत्यनिराकृतौ ॥ २६४ ॥ त सा नदयशो ज्येष्ठबधुमलै समार्पयत् । निर्नामकाह्य तत्राप्यपरेषु नन्दने वने ॥ २६५ ॥ प्रपश्यन् सह  
भुजानान् पण्महोद्युतान् सम । त्वमप्यभीमिर्भुवेति शस्त्रेण समुदाहृतः ॥ २६६ ॥ स्थितो भोक्तुमसौ नन्दयशस्त वीक्ष्य कोपिनी । क-  
स्यायमिति पादेनाहस्तावन्वीयतु शुच ॥ २६७ ॥ शब्दनिर्नामका राजा कदाचित्सह वदितु । इमसेनमुनिं यातावधिविज्ञानलोचन ॥ २६८ ॥ अभिनन्द्य ततो  
धर्मभ्रवणानन्तर पुन । निर्नामकाय किं नदयशा कुप्यत्यकारणं ॥ २६९ ॥ इति शस्त्रेण मुनिरेवमभाषत । सुराष्ट्रवियये राजा  
निर्यादिनगराधिपः ॥ २७० ॥ अभूच्चित्ररथो नाम तस्यामृतरसायन । सूपकारः पल पक्वुं कुशलोरसे प्रतुष्टवान् ॥ २७१ ॥

नाम रक्त्वा । किसी दूसरे दिन ये सब लोग नन्दन वनमें गये, वहा पर राजाके छोहो पुत्र एक साथ बैठकर खा रहे थे ।  
यह देख कर शंखने निर्नामकसे कहा कि तू भी इनके साथ बैठकर खा ॥ ५६-६६ ॥ शंखकी आज्ञानुसार  
वह उनके साथ खानेको बैठ गया, यह देखकर नन्दयशकी बहुत क्रोध आया और “यह किसका लडका यहां आ-  
गया” इसतरह कहकर उसके एक लात मारी जिससे शंख और निर्नामक दोनोंको शोक हुआ ॥ २६७ ॥ फिर एकदिन  
शंख और निर्नामक दोनों ही राजाके साथ साथ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले इमसेन मुनिकी वंदना करनेकेलिये  
गये ॥ २६८ ॥ दोनोंने मुनिराजकी वंदना की, धर्मकी स्वरूप सुना, और फिर शंखने पूछा कि नन्दयश निर्नामक पर  
विना ही कारणके क्यों क्रोध करती है । तब मुनिराज कहने लगे कि मोरठ देशके गिरपुर नगरमें चित्ररथ नामका राजा  
राज्य करता था उसके यहां अमृतरसायन वा सुगन्धसायन नामका एक रसोइया था जो कि मांस पकानेमें बड़ा ही निपुण  
था उसने मांस खिलाकर राजाको संतुष्ट किया ॥ २६९-२७१ ॥ राजा मांसका लोलुपी था इसलिये उसने उस रसोइ-  
याको बारह गांव दे दले । किसी एक दिन राजा चित्ररथ सुयर्म नामके मुनिके समीप गया, वहापर उसने शास्त्रोंका र-  
हस्य सुना, रक्वत्रय प्राप्त किया, और अपने मेघरथ पुत्रको राज्य देकर वह स्वयं मुनि हो गया । उस तत्कालीन राजा मे-  
घरथने भी श्रावकके व्रत धारण कर लिये, इसलिये उसने एक गांवको छोडकर वाकी उस रसोइयासे सब गांव छीन लिये  
किसी दूसरे दिन वैही मुनिराज आहारकेलिये राजाके यहां पधारे, रसोइयाने ( उनके उपदेशसे गांव छिन्ननेके कारण )  
उन्से बैरकर सब मसालोंसे सुशोभितकर पकी कढी तूबीका आहार दिया । वे मुनिराज आहार लेकर गिरनार पर्वतपर

कृक ॥ २५१ ॥ पुष्पचूलाङ्कयो नन्दनचरौ गगनादिकौ । तत्रैव दक्षिणश्रेण्या नृपो मेघपुराधिप ॥ ५५२ ॥ धनंजयोस्य सर्वश्रीर्जाया तस्याः सुताम्बवत् । धनश्री श्रीरिकाचैषा नवैवाच्यो महीपति ॥ २५३ ॥ ख्यातो नंदपुराधीशो हरिवेणो हरिर्द्विषा । श्रीकातास्य प्रिया तस्यां सुतोभूदरिवाहन ॥ २५४ ॥ धनत्रियोयं बधेन मैथुनः प्रयितो गुणै । तत्रैव भरतेऽयोध्याया स्वयंवरकर्मणि ॥ २५५ ॥ भाला सत्राण्यत्रीत्या धनश्रीर्हरिवाहन । चक्रवास्त-  
दयोध्यायां पुष्पदंतमहीपतिः ॥ २५६ ॥ तस्य प्रीतिकरा देवी तत्सुतु पापपण्डित । धनत्रिय सुदत्तोऽलाविहृत्य हरिवाहन ॥ २५७ ॥ तन्निवेगेण चित्रा-  
गदायाः सप्तापि संयम । भूतानदाख्यतीर्थेषापदमूले समाश्रयन् ॥ २५८ ॥ ते कालातेऽभवन् कल्पे नुयै सामानिका सुरा । सप्तान्ध्यायु-स्थितिप्राप्ते  
ततः प्रच्युत्य भारते ॥ २५९ ॥ कुरुजंगलदेशेऽस्मिन् हस्तिनाख्यपुरेभवत् । वंशुमत्या सुतः धेतवाहनाख्यवर्णिकृपतेः ॥ २६० ॥ शंखो नाम धनद्वयोत्तौ

धनश्री नामकी पुत्री थी । उसी विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नंदपुर नगरमें शत्रुओंको सिंहेके समान हरिषेण नामका राजा राज्य करता था, उसकी रानीका नाम श्रीकांताया और उन दोनोंके हरिवाहन नामका पुत्र था ॥ २४८-२४९ ॥ वह गुणोंसे प्रसिद्ध हरिवाहन नातेमें भी धनश्रीका पति होने योग्य था । इसलिये उसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें धनश्री का स्वयंवर किया गया उसमें धनश्रीने बड़े प्रेमसे हरिवाहनके गलेमें वरमाला डाली । उसी अयोध्या नगरमें पुष्पदंत नामका चक्रवर्ती राजा था उसकी प्रीतिकरा रानीसे पापोंमें निपुण ऐसा सुदत्त नामका पुत्र था उसने उसी समय हरि-  
वाहनको मार कर धनश्री छीन ली ॥ २४५-४७ ॥ यह सब देखकर चित्रांगद आदि सातो भाई विरक्त हुए और उ-  
न्होंने भूतानंद नामके तीर्थकरके चरण कमलोंके समीप जाकर दीक्षा धारण करली ॥ २४८ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वे सातोही भाई सात सागरकी आयु पाकर चौथे स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए, वहांसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रके कुरु जंगल देशके हस्तनागपुर नगरमें शेट श्वेतवाहनके उसकी स्त्री बंधुमतीसे सुभानुका जीव शंख नामका पुत्र हुआ वह शंख धन संपदा, आदिसे स्वयं कुबेर के समान था । उसी नगरमें राजा गंगदेव राज्य करता था उसकी नंदयशा देवीसे बाकी छह भाइयोंके जीव दो दो कर तीन बारमें छह पुत्र हुए । गंग, नंददेव, खड्गमित्र, नंदकुमार, सुनंद और नंदिषेण ये उनके नाम थे, इन छहो भाइयोंमें परस्पर बहुतही प्रेम था । जब नंदयशाके सातवां गर्भ रहा तबसे ही राजा रानीसे बहुत उदास रहने लगा । रानीने समझा कि गर्भमें कोई ऐसा कुपुत्र है जिसके आतेही राजा मुझसे उदास हो गया है इसलिये उसने पुत्र होतेही उसे अलग रखनेके लिये रेवती नामकी धायको सोंप दिया और कहा कि इसे मेरी बड़ी बहिन बंधुमतीको सोंप आ । तदनुसार उसने वह पुत्र बंधुमतीको सोंप दिया, बंधुमतीने निर्नामिक उसका

तथा : नान्योऽन्यां कथं न सुखदुःखतुल्यविशेषिता ॥ २४२ ॥ ततो निर्दिष्ट संभारात्वाद्भवत् ॥  
तथापि काननेन्येभ्यश्चक्षुष्यमिमां प्रतिष्ठितान् ॥ २४३ ॥ असापि काननेन्येभ्यश्चक्षुष्यमिमां प्रतिष्ठितान् ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-  
२४३ ॥ अिनदरायिकायाश्चे तद्व्यास तपो ययुः । हेतुसाक्षमभ्यानां को वा न स्वातपोपदे ॥ २४६ ॥ आर्य-

रूप हैं इस लिये अत्यंत अदृश्यत चैष्टाओंका धारण करनेवाली इन स्त्रियोंको स्नेच्छ क्यों नहीं कहना चाहिये ॥ २४२ ॥  
इस प्रकार सुभातु अपने सब भाइयों सहित संसारसे विरक्त हुआ उसने सब कमाया हुआ वन वियोंको दे दिया और  
फिर सबने वरय्ये मुनिके समीप दीक्षा धारण करली ॥ २४३ ॥ यह देखकर उनकी स्त्रियोंने भी जिनदत्ता नामकी  
अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है क्योंकि निकट यव्योंको तपश्चरण ग्रहण करनेके लिये क्या कारण  
नहीं हो जाता है अर्थात् उनके लिये सब कुछ कारण हो जाता है ॥ २४४ ॥ किसी एक दिन वे सातों ही मुनि उज्जयिनी  
नगरीके वनमें विराजमान थे इतनेमें ही वज्रमुष्टि आया और विभिपूर्विक नमस्कार कर पूछने लगा कि हे स्वामी आपने  
किस कारणसे दीक्षा ली है । इसके उत्तरमें उन मुनिराजने भी दीक्षाका यथार्थ कारण बतला दिया ॥ २४५-४६ ॥  
इयर मीने भी उन अर्जिकाओंसे दीक्षा लेनेका कारण पूछा और कारण जानने पर उसे बोध हुआ तथा उसने उनकी  
अर्जिकाओंके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २४७ ॥ वज्रमुष्टिने भी वरय्ये मुनिका शिष्य बनकर दीक्षा धारण करली ।  
वे सातों भाई आयुके अंतमें संन्यास धारण कर पहिले स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर त्रायर्षिण जातिके देव हुए । वहां  
से चयकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे धातकी खंडके पूर्व भरतक्षेत्रमें विजयादे पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नित्यलोक नगरके  
राजा श्रीमान् चित्रचूल रानी मनोहरीके वडा सुभातुका जीव चित्रांगद नामका पुत्र हुआ । वाकी छह भाइयोंके जीवभी  
इन्हीं चित्रचूल और रानी मनोहरीके दो दो करके तीनवारमें छह पुत्र हुए । गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल, पुष्पचूल,  
गगनंदन ( नभोदंन ) और गगनचर ये उनके नाम थे । उसी धातकी दीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें विजयादे पर्वतकी दक्षिण  
श्रेणीके मेघपुर नगरमें राजा धनंजय राज्य करता था, उसकी रानीका नाम सर्वश्री था, उसके दूसरी लक्ष्मीके समान

दर्शयित्वा वदत्सर्वमात्ममंगीविचेष्टित । तत्सुभानुः समाकर्ण्य श्रीनिधामकरोदिति ॥ २३३ ॥ स्थानं ता एव निदायाः परत्रासकिमागताः । वर्णमात्रेण राजस्यो रंजयन्तो परान् भूषा ॥ २३४ ॥ आदाय कृत्रिमं रागं रागिणां नयनप्रियाः । विभ्रतीह शृङ्ग भूषारम्याश्चित्राकृतीः स्त्रियः ॥ २३५ ॥ सुखं विषयजं प्राप्तुं प्राप्तमाधुर्यमाश्रिता । किंवाकफलमाला वा काष्ठं हन्युर्मनोरमाः ॥ २३६ ॥ मातरः केवलं नन्ताः प्रजानामेव योषित । दोषाणामपि दुःसिद्धान् दुर्विद्या इव दुःखदा ॥ २३७ ॥ मृदवः शीतलाः शूलकाः प्रायः स्वर्गसुखप्रदाः । भुञ्ज्यो वागना प्राणद्वारिण्यः पापरूपिका ॥ २३८ ॥ हन्यादृक्कृतसंक्रातं विषं विषयता न वा । सर्वगं सहसा हार्यं कान्तानां हति सततं ॥ २३९ ॥ परेषां प्राणपर्यता पापिनामप्यपक्रिया । हिंसानामिव कान्तानामातीता दयाद्विषा ॥ २४० ॥ जातिमात्रेण सर्वोश्च योषितो विषमृतय । न शतमेतन्नीतिज्ञैः कुर्वन्निर्विषकन्यकाः ॥ २४१ ॥ कौटिल्यकोटयः कैर्यपर्यताः पचपा-

निंदा करने लगा ॥ २३१-२३३ ॥ कि वास्तवमें निंदाका स्थान स्त्रियां ही हैं निंदाके सिवाय स्त्रियां और किसी योग्य नहीं हैं ये केवल रूपसे ही अच्छी दिखती हैं और रूपसे ही दूसरे लोगोंको बहुत जल्दी मोहित कर लेती हैं ॥ २३४ ॥ बनावटी राग प्रगट करनेसे ही ये स्त्रियां रागी लोगोंके नेत्रोंको अच्छी लगती हैं और मनोहर आभूषण धारण कर चित्र विचित्रका वेश धारण करती हैं ॥ २३५ ॥ मधुरता मिले हुए विषयजन्य सुखको प्राप्त करनेके लिये आश्रयभूत ऐसी किंवाकफलकी मालाके समान मनोहर ये स्त्रियां भला किनको न मार सकेगी अर्थात् सबको मार सकेगी ॥ २३६ ॥ ये स्त्रियां केवल अपनी संतानोंकी ही माता नहीं हैं किंतु सब दोषोंकी माता हैं और जिस प्रकार बुरी शिन्दासे प्राप्त हुई बुरी विद्या दुःख देती है उसी प्रकार ये दुःख देनेवाली हैं ॥ २३७ ॥ जिस प्रकार सर्पिणी कोमल शीतल चिकनी तथा स्पर्श करते समय दुःख देनेवाली होकर प्राण हरण करनेवाली और पापरूप होती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी कोमल शीतल चिकनी और स्पर्श करते समय सुख देनेवाली होकर प्राण हरण करने वाली और पापरूप हैं ॥ २३८ ॥ सर्पोंका विष केवल सुखमें रहता है और वह किसीको मारता है किसीको नहीं भी मारता परंतु स्त्रियोंका विष सब शरीरमें भरा है वह अकस्मात् हट नहीं सकता और निरंतर मारता ही है ॥ २३९ ॥ जिस प्रकार दयारहित पापी हिंसकों की निंद्य क्रियायें अंतरहित अर्थात् सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं उसी प्रकार दयारहित पापिनी स्त्रियों की निंद्य क्रियाएं सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं ॥ २४० ॥ स्त्रियां सब उत्पन्न होनेके समयसे ही विष की मूर्तियां हैं परंतु विषकन्या बनानेवाले नीतिकारोंको यह बात मालूम नहीं है ( क्योंकि यदि मालूम होती तो वे विषकन्या बनाते ही क्यों ) ॥ २४१ ॥ इन स्त्रियोंमें करोड़ों कुटिलाएं भरी हैं अस्मि सीमा तक झुरता है और पांचों पाप-





तत्कालमुत्प्लविस्या । वप्रथी सह मालाभिः कालाहि कलशोक्षिपत् ॥ २१२ ॥ स्तुषाम्यसुमया कार्यं नाम नास्तीति योषिता । मगी चोद्यानयानार्थं माला-  
दानसमुपयता ॥ २१३ ॥ दद्या वसंतकालोपविषेण विषिभर्तृणा । विष्वक्साशरीरत्वादस्पदाभूदसौ तदा ॥ २१४ ॥ पलाळवत्या चावेष्टय स्तुषां प्रेतवनेऽल-  
बत् । वज्रमुष्टिर्वनक्रीडाविरामेभ्येत्य घृष्टवान् ॥ २१५ ॥ मगी क्वेत्याकुलो माताप्यसद्वाता न्यवेदयत् । सशोकं ससमुत्खातनिशातकरबालवृत् ॥ २१६ ॥  
तामन्वेष्टु ब्रजन् रात्रौ इमशाने योगमास्थित । वरधर्ममुनिं दृष्ट्वा नमन् भक्त्या कृताञ्जलिः ॥ २१७ ॥ यदि पूज्यं त्रियां प्रेक्षे सहस्रदलवारिजं । त्वा सम-  
भ्यर्चयिष्यामीत्याशास्य गतवात्सदा ॥ २१८ ॥ वीक्ष्यतेऽस त्रियाभीषेत्तना विषदुषिता । पलाळवतिं मुक्त्वाऽथ समानीयातिक मुनेः ॥ २१९ ॥ तेन त-  
त्यादसंसर्शमेषजेनाविषीकृता । सापि सद्यः ससुत्याय त्रियस्य प्रियमातनोत् ॥ २२० ॥ गुरुश्रीतमनस्यस्मिन्नभोजार्थं गते सति । सूरसेनस्तदा सर्वं तत्क-

और उसने माला लेनेके लिये घडेमें हाथ डाला परंतु उसकी सासु वप्रथीने उससे ईर्षाकर पहिलेसे ही उस घडेमें माला के साथ एक काला सर्प रख दिया था सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्रियोंसे न हो सके । हाथ डालते ही वह उस वसंतऋतुके उग्र विषको धारण करनेवाले नागराजने काट खाई । उसीसमय उसके सब शरीरमें विष फैल गया और वह चेष्टारहित हो गई ॥ २११-२१४ ॥ तदनंतर वह वप्रथी सासु अपनी पतोहू मंगीके शरीरको पलाल (एक तरहकी लंबी घास) से ढककर स्मशानमें छोड़ आई । इधर वनक्रीडाकर वज्रमुष्टि घर आया और मातासे पूछा कि मंगी कहाँ है । इसके उत्तरमें माताने इधर उधरकी झूठमूठकी बातें बना दीं । मंगीके न मिलनेसे वज्रमुष्टिको बहुत शोक हुआ, वह नंगी तलवार लेकर रातमें ही उसे ढूँढनेकेलिये निकला । स्मशानमें पहुंचनेपर उसे योग धारण किये हुए वरधर्म मुनिके दर्शन हुए, वज्रमुष्टिने वडी भक्तिसे हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और आशार्पूर्वक प्रतिज्ञा की कि हे पूज्य यदि मैं अपनी स्त्रीको देख पाऊं तो हजार दलवाले कमलसे आपकी पूजा करूं । इसतरह कहकर वह निकला देखते दे-  
खते आगे चलकर उसने देखा कि विषसे दूषित किंतु कुछ जीवित स्त्री पडी है उसने उसीसमय उसके चारों ओरका प-  
लाल हटाया और वह शीघ्र ही उसे उन मुनिराजके समीप ले आया ॥ २१५-२१९ ॥ वज्रमुष्टिने मुनिराजके चरणकम-  
लोंकी स्पर्शरूपी औषधिसे वह स्त्री विषरहित करली इसलिये वह शीघ्र ही उठी और उसने अपने पतिको प्रसन्न किया ॥ २२० ॥ तदनंतर जिसके मनमें मुनिराजके चरण कमलोंका बहुत बड़ा प्रेम है ऐसा वह वज्रमुष्टि तो कमल लेनेके लिये चला गया और सूरसेन वृक्षकी आडमें छिपा हुआ ये सब कर्म देख रहा था इसलिये वह उस मंगीकी परीक्षा करनेके लिये उसके समीप गया । वहां जाकर उसने अपना शरीर दिखाया, मीठी मीठी बातें बनाई, अच्छी २ चेष्टा दिखलाई

मिति जातवान् । इति सोमि कथासिन्धु बन्धु शारन्धवान् गुणी । जलपलाशिते द्वीपे क्षेत्रस्मिन्मथुरापुरे ॥२०१॥ सौर्यदेशाभिपः मुरसेनो नाम महीपतिः । तत्रैव भाग्यदाह्यश्रेष्ठिनः सप्त सूनवः ॥ २०२॥ मातृर्वा यमुनादाता सुभातुः सकलाभिपः । भाग्यकीर्तिस्ततो भाग्यबेणोभद्रासुरबाक् ॥ २०३॥ पञ्चमः सुरदेवाह्य सूरदत्तस्ततोव्यभूत । सप्तमः सूरसेनाह्यः पुत्रै स्वेस्तावकृता ॥ २०४॥ स्वपुण्यफलकारेण जगत्पुत्रगृहेनेषिता । धर्ममन्येयुरभ्यर्णदाता-र्थाभयनंदिन ॥ २०५॥ भुला वृषो वणिक्पुष्ट्योग्यग्रहीष्टास्तु सप्तम । विनदतार्यकाम्येर्णे श्रेष्ठिभार्या च कीर्तिता ॥ २०६॥ सप्तम्यवनसंयमा जाता सप्तमि तत्सुता । पापान्मूलहरा भूला रात्रा निर्वासिता पुरात ॥२०७॥ अवतिषिष्य गत्वा विशालाया स्मयानके । मुरसेनमवस्थाप्य सेवाशोचिषिष्ठं पुरं ॥ २०८॥ प्राविशप्रकृत तस्मिन्निदमन्यदुपस्थित । तत्पुराभिपतिर्भूतो बभूव वृषमन्वजः ॥२०९॥ धृत्यो दृढप्रदार्थाह्य स सहस्रभट-पट्ट । वप्रश्रीरत्न जा-यासीद्भ्रष्टमुष्टिस्तयोः सुत ॥ २१०॥ विमलायाः सुता मंगी विमलेंदुविहाःशसा । तद्विषया भूभुजा सादं वसते वनमन्यदा ॥ २११॥ विद्वत्सुयताः सर्वे

इसतरह पूछनेपर गणेश भी उस कथाको इसतरह कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके भरतनेत्रके पथुरा नगरमें शौर्य देशका स्वामी मुरसेन नामका राजा रहता था । उसी नगरमें भानुदत्त नामके शेटके उसकी यमुनादाता स्त्रीसे सात पुत्र हुए थे उनमेंसे सुभातु सर्वसे बड़ा था, दूसरा भाग्यकीर्ति, तीसरा भाग्यपेण, चौथा भाग्यसूर, पांचवां सूरदेव, छठा सूरदत्त, और सातवां मुरसेन था । इन सातों पुत्रोंसे वे दोनों ही मा बाप बड़े ही सुशोभित थे और अपने पुण्य कर्मके उदयसे गृहस्थ धर्मेका पालन करते थे । किसी दूसरे दिन श्रीअभयनंदी आचार्यके समीप राजाने दीक्षा लेली उसे सुनकर सेठ भानुदत्तने भी संयम धारण कर लिया और सेठकी स्त्री यमुनादाताने भी जिनदत्ता नामकी अर्थिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २०१-२०६॥ मा बापके दीक्षा ले जानेपर वे सातो ही शेटके पुत्र सातों व्यसनोमें तल्लीन हो गये और पाप कर्मके उदयसे उन्होंने अपने पिताका सब धन नष्ट कर दिया यह देखकर राजाने भी उन्हें अपने नगरसे निकाल दिया ॥२०७॥ वहांसे चलकर वे सब उज्जयनी नगरीमें पहुंचे वहां जाकर मुरसेनको तो वहांके शमसानमें छोड़ा और बाकी छह भाई जोरी कूनेकेलिये नगरमें गये । उन भाइयोंके चले जानेपर शमसानमें एक घटना और हो गई और वह इसतरहसे है-उ-ससमय उज्जयनी नगरीमें राजा वृषभध्वज राज्य करता था उसके एक दृढप्रहारी नामका एक सहस्रभट योद्धा था जो कि बहुत ही चतुर था उसकी कपथ्री नामकी स्त्रीसे वज्रमुष्टि नामका पुत्र था ॥ २०८-२१०॥ उसी नगरमें सेठ विमलचंद्रकी स्त्री विमलासे उत्पन्न हुई मंगी नामकी पुत्री थी वह वज्रमुष्टिको व्याही गई थी । किसी दिन कसन्त श्रुतमें उस समयका सुल बूटनेकेलिये सब लोग राजाके साथ वनमें विहार करनेके लिये तैयार हुए । मंगी भी वनमें जानेकेलिये तैयार हुई

तन्निष्ठाभ्याम्युक्तैः ॥ १८९ ॥ ब्रह्मदेवस्य संप्राप्य स्वर्गवर्षिस्त्वन्निर्वाता । भक्षित्वा भुतभूमौ गो प्रोक्षितौ सतो हरिः ॥ १९० ॥ प्रादुर्गोस्तीति यं केचिन्मत्स्यं क्षणस्थिति । केचिन्केचिदणु चाणोः केचित्स्वल्पामाकषमिति ॥ १९१ ॥ केचिदणुभूमातव्यं योषनानां समुत्पिक्तं । केचिच्छतानि पंचैव केचिन् द्रुगनवद्विभु ॥ १९२ ॥ केचिदेकं परे नाना परे इमपरेभ्यथा । तं जीवाख्यं प्रति प्राय संहोस्तीत्यधीश्वरं ॥ १९३ ॥ प्रपच्छ सोपि नैतेषु कोपि विद्वत्स्य लक्षण । ध्रैव्योत्पादव्यव्यासांसा मुणीं सूक्ष्मस्वकृत्यभुक् ॥ १९४ ॥ ज्ञातातदेहसम्मयेय स्वयंवेद्य सुखादिसिः । अनादिकर्मवर्षबंधः सरन् गतिचतुष्टये १९५ कालादिलिखिभमासाद्य भव्यो नष्टाष्टदुर्मद । सम्यक्कृत्वाष्टकं प्राप्य प्राग्वेदपरिमाणमृद ॥ १९६ ॥ ऊर्ध्वमव्यासबलत्वाद्बगमूर्द्धनि तिष्ठति । इति जीवस्य सद्भाव जमाद जगता गुरः ॥ १९७ ॥ तन्निष्ठाभ्यामितिका सर्वे तथेति प्रतिपेक्षिरे । अभव्या दूरभव्याश्च मिथ्याबोदयदूषिता ॥ १९८ ॥ नासुचकैचना- ननिष्ठासना भववर्द्धिनी । देवकी च तथाष्टच्छृद्धरदसगणेशिन ॥ १९९ ॥ भगवन् मदृष्टं द्वौ द्वौ भूत्वा मिक्षार्यमागता । बाधवेष्विव पट् स्वेतु स्नेहः कि- न्हे, कोई कोई योजन लंबा चौड़ा मानते हैं कोई पांचसौ योजन मानते हैं और कोई आकाशके समान व्यापक मानते हैं ॥ १८६-१८२ ॥ इसीतरह कोई एक मानते हैं कोई अनेक मानते हैं, कोई ज्ञानस्वरूप मानते हैं कोई अज्ञानस्वरूप ही मा- नते हैं इसतरह प्रायः जीवोंका स्वरूप अनेक तरहसे मानते हैं हे स्वामी इसलिये मुझे संदेह है आप कृपाकर इसका स्वरूप कहिये इसतरह कृष्णने पूछा तब तीनों लोकोंके गुरु भगवान् कहने लगे कि जीवका स्वरूप जो ऊपर कहा गया है उन- मेंसे एक भी ठीक नहीं है । जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप है जो गुणवाला है सूक्ष्म है अपने किये हुए कर्मोंका भोगने- वाला है, ज्ञाता है, अपने शरीरके परिमाणके बराबर है, और सुख दुःख आदिके द्वारा स्वयं वेद्य है अर्थात् मैं सुखी मैं दुखी आदि अनुभवके द्वारा अपने आप जाना जाता है वही जीव है । इस जीवके साथ अनादि कालसे कर्मोंका सं- बंध लग रहा है उसीसे यह चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है परंतु काल आदि लब्धियोंको पाकर भव्य जीवोंके आठों कर्म नष्ट हो जाते हैं सम्यक्त्व आदि आठों गुण प्रगट हो जाते हैं । उनका आकार अंतिम शरीरके समान ( कुछ कम ) रह जाता है, और ऊर्ध्वगमन स्वभाव ( ऊपरको जानेका स्वभाव ) होनेसे वे लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं । इसप्र- कार भगवानेने जीवकी सत्ताका निरूपण किया ॥ १८३-१८७ ॥ उसे सुनकर आस्तिक जीवोंने तो उसे उसी तरह मा- नलिया परंतु जो कोई अभव्य ये अथवा दूरभव्य ये उन्होंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दूषित होकर अनादिकालसे लगी हुई संसारको बढानेवासी वासना नहीं छोड़ी । तदनंतर देवकीने बरदण गच्छधरसे पूछा कि हे भगवान् मेरे घर दो दो करके छह मुनिराज आहारकेलिये पधारे उनमें अपने कुटुंबियोंके समान मुझे प्रेप क्यों उत्पन्न हुआ था ॥ १८८-२०० ॥

ताडितदुग्भिः । ध्वान् मनोहरं साधुदानबोधणपूर्वक ॥ १७८ ॥ एवं तपस्यस्तस्य पट्पंचाशद्विंशत्ये । छमस्यसमये याते गिरौ रैवतकामिनि ॥ १७९ ॥  
पष्ठोपवासयुक्तस्य महावेणोरधः स्थित । पूर्वन्ते ऋयुजे मासि शुक्लपक्षादिमे दिने ॥ १८० ॥ चित्रायां केवलज्ञानमुदपश्यत सर्वेण । पूजयंति स्म त देवाः  
केवलावगमोत्सवे ॥ १८१ ॥ वरदस्तादयोऽभुवनेकादश गणेशिनः । चतुःशतानि पूर्वज्ञा भुतज्ञानाब्धिपारगाः ॥ १८२ ॥ शून्यद्वितयवस्त्वेकमितास्तस्य  
केवलावगमोत्सवे ॥ १८३ ॥ तावत् पचमज्ञाना विक्रियर्दिसमन्विता । शताधिकसहस्रं तु मन पर्ययबोधनाः ॥ १८४ ॥  
शिक्षकाः । शून्यद्वितयपदैकमिताशिक्षानलोचनाः ॥ १८५ ॥ तावत् पचमज्ञाना विक्रियर्दिसमन्विता । चत्वारिंश-  
शतानि नव विज्ञेया वादिनोद्यताति च । अष्टादश सहस्राणि ते सर्वेऽपि समुच्चिता ॥ १८५ ॥ यक्षी राजमती कात्यायन्यायाद्यादिछायाः । चत्वारिंश-  
त्सहस्राणि श्रावका लक्ष्येयिता ॥ १८६ ॥ त्रिलक्षश्राविका देवा देव्याश्चल्ययोरदिताः । तिर्यचः सहस्रया शोका गणैर्द्विःपण्डितैरपि ॥ १८७ ॥ परीतो  
भव्यपद्माना विकाश जनयन्मुद । धर्मोपदानार्काशुप्रसारेणापनायिना ॥ १८८ ॥ विश्वान् देशान् विहृत्याते प्राप्य द्वारावतीं कृती । स्थितो रैवतकोयाने

वस्यथेके छप्पन दिन निकलगये तव वै रैवतक (गिरनार) पर्वतपर महावेणुके (वांसके) वृद्धके नीचे तेलाका नियम लेकर त्रिराजमान  
हुए और वहींपर उन्हें आसोज (कार) पडिवाके दिन सबेरेके समयः चित्रा नक्षत्रमें सब लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवल-  
ज्ञान प्रगट हुआ । उसीसमय ईद्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञानकल्याणका उत्सव मनाया और उनकी पूजा की ॥ १७९-१८१ ॥  
उनकी सभामें वरदत्तकी आदि लेकर ग्यारह गणधर थे, तथा चारसौ श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारगामी ग्यारह अंग चौदह पूर्वके  
ज्ञानकार थे ॥ १८२ ॥ इसीतरह ग्यारह हजार आठसौ शिक्षक थे, और पंद्रहसौ मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण  
करनेवाले थे, ॥ १८३ ॥ इसीप्रकार पंद्रहसौ केवलज्ञानी थे, ग्यारहसौ विक्रिया श्रुद्धिको धारण करनेवाले थे, नौ सौ  
मनःपर्यय ज्ञानी थे, और आठसौ वादी थे । इस तरह सबमिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे ॥ १८४-१८५ ॥ यक्षी  
राजमती कात्यायनी आदि चालीस हजार अर्जिकाएं थीं, एकलाब श्रावक थे तीनलाख श्राविकायें थीं असंख्यत देव  
देवियां थीं और संख्यात तिर्यच थे, इसप्रकारकी बारह सभाओंसे सुशोभित वै भगवान् भव्यरूपी कमलोंको बार बार प्र-  
फुल्लित करने लगे और धर्मोपदेश देनेकेलिये उन्होंने पापोंको नाश करनेवाला विहार किया ॥ १८६-१८८ ॥ वह वि-  
हार सब देशोंमें किया । अंतमें वै कृतकृत्य भगवान् द्वारावती नगरीमें आए और रैवतक नामके उद्यानमें आ घिराजमान  
हुए यह बात सुनकर कृष्ण और बलभद्र अपनी सब विभूतिसहित दर्शन करनेके लिये गये वहांपर जाकर भगवानकी  
बंदनाकी धर्मका स्वरूप सुना और दोनों भाई बड़े ही प्रसन्न हुए । तदनंतर कृष्ण कहने लगे कि हे भगवान् ! जीवको  
कोई तो मानते ही नहीं, कोई नित्य मानते हैं कोई क्षणिक मानते हैं कोई सरसोंके समानमानते हैं कोई अंगूठेके समान मानते

निर्बिद्य निवृत्य निजमन्दिर । प्रविश्याविश्वद्वोऽक्षिस्तत्कालोपगतामरैः ॥ १६७ ॥ बोधित समतीतामभवानुत्पत्तिवेपितः । तदैवागल्य देवंद्रा कृतनिष्कमणो-  
त्सव ॥ १६८ ॥ त्रिविक्रं देवकुर्वाह्यमाशुभारवेष्टितां । सहस्राभवणे यष्टानशन भ्रावणे सिते ॥ १६९ ॥ पक्षे चित्राख्यनक्षत्रे यष्टया सायाहमा  
श्रित । शतत्रयकुमारारब्धव्यतीतौ सह भृशुजा ॥ १७० ॥ सहस्रेण समाधाय संयम प्रत्यपद्यत । चतुर्थैश्चानधारी च बभूवासप्तकैवल ॥ १७१ ॥  
संयवे भानुमस्ताद्रावतु राजमसिद्ध त । यथैवाचापि दक्षानां न्यायोय कुन्ध्योषितां ॥ १७२ ॥ स्वतु खेनापि निर्विण्णः श्रयते न जनः पर । परदुःखे-  
न संतोमी लज्जयेवमहो श्रियं ॥ १७३ ॥ बलकेशवमुह्यवनीशाः संपूज्य संस्तवे । ससुरेस्तासमीशान् स्वं धाम समुपाश्रयन् ॥ १७४ ॥ पारणादि  
वसे तस्मै वरदसो महीपतिः । कनकाभः प्रविष्टाय पुरीं द्वावर्ती सते ॥ १७५ ॥ श्रद्धादिगुणसपन्नः प्रतीच्छादिनवक्रिय । आदिताम मुनिप्राप्तं  
पंचाक्षर्याणि चाप सः ॥ १७६ ॥ कोटिर्द्वादश रत्नाना सार्द्धाः सुरकरच्युता । श्रुतिं सौमनसीं वायु मायादित्रिगुणान्वितं ॥ १७७ ॥ घनतारितकायानामभि-

भगवान् देवोंके द्वारा उठाई हुई देवकुरु नामकी पालकीपर सवार होकर सहस्राश्र वनमें गये और उन्होंने श्रावण शुक्ला प-  
ष्टीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय तैलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की । अपने कुमार कालके तीनसौ वर्ष बीत  
जानेपर उन्होंने दीक्षा धारण की थी और उनके साथ एक हजार राजा दीक्षित हुए थे । उसीसमय उन्हें चौथा मनःपर्यय  
ज्ञान प्रगट हुआ था और केवलज्ञान भी थोड़े ही दिनमें होनेवाला था ॥ १६४-१७१ ॥ जिसप्रकार संन्या सूर्यके पीछे  
पीछे अस्ताचल पर्वतपर जाती है उसीप्रकार राजमति भी भगवान् नेमिनाथके पीछे ही तपश्चरण धारण करनेकेलिये गई  
सो ठीक ही है क्योंकि वचनसे दी हुई कुलस्त्रियोंका भी यही न्याय है ॥ १७२ ॥ दूसरे लोग अपने दुःखसे भी विरक्त  
होते नहीं सुने पंतु आश्चर्य है नेमिनाथ सरीखे सज्जन लोग दूसरेके दुःखसे भी ऐसी महा विभूतियोंका त्याग कर  
देते हैं ॥ १७३ ॥ कृष्ण बलभद्र आदि अनेक राजा तथा इंद्रादि सब देव उन भगवानकी पूजा और स्तुतिकर सब अपने  
अपने स्थानको चले गये ॥ १७४ ॥ पारणाके दिन सज्जनोत्तम श्रीनेमिनाथने द्वारावती नगरीमें प्रवेश किया, वहांपर सु-  
वर्णकी कांतिको धारण करनेवाले तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित राजा वरदत्तने नवधा भक्तिसे उनका पडगाहन  
किया और उन्हें मुनियोंके ग्रहण करने योग्य प्राप्तुक आहारदान दिया जिससे उसके घर पंचाश्रयोंकी वर्षा हुई ॥ १७५-  
१७६ ॥ उसके घर देवोंके हाथसे छूटे हुए साडे बारह करोड़ रत्न वरसे, फूलोंकी वर्षा हुई, शीतल मंद सुगंध इन तीनों गु-  
णोंसे भरी हुई हवा चलने लगी, आकाशमें देवोंके द्वारा वजाये हुए हुंदुभियोंके मनोहर शब्द होने लगे और आपने यह  
बहुत अच्छा दान दिया ऐसी घोषणा होने लगी ॥ १७७-१७८ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए जब उसके छत्रस्य अ-

यक्त महापापोपलिप्तक ॥ १५७ ॥ अथ नेमिकुमारोपि नानाभरणभारभाक् । सहस्रकुंतलो रक्तोत्पलमालाभ्यल्लहतः ॥ १५८ ॥ तुरंगमहरोरुभूत-  
धूतीक्षितदिगगननः । सवयोमिरिति प्रीतिर्वहाभ्रान्तसुनुभि ॥ १५९ ॥ परीत भिबिकां चित्रामारुह्य वयनप्रियः । शिबो विद्योक्तयितुं गच्छस्तत्राश्लोक्य  
यदृच्छया ॥ १६० ॥ शुभान्तिरुक्तो चोरं शशिला करुणाक्षन । भ्रमतस्तुषितान् दीनदृष्टीनतिभयाकुलान् ॥ १६१ ॥ किमयमिदमेकत्र निरुद्धं वृणु-  
यदृच्छया ॥ १६२ ॥ देवैतद्वत्सुदेवेन तद्विवाहमहोरसवे । व्ययीकर्तुमिहानीतमित्यभापत तेभि त ॥ १६३ ॥ वर्तब्ध-  
ककुल । इत्यन्वयुक्त तदक्षानियुक्ताननुकपया ॥ १६२ ॥ देवैतद्वत्सुदेवेन तद्विवाहमहोरसवे । व्ययीकर्तुमिहानीतमित्यभापत तेभि त ॥ १६३ ॥ वर्तब्ध-  
रम्ये स्वादति वृणान्यनपराधकाः । किलेताद्य स्वमोगार्थं पीडयंति पिगीदृश ॥ १६४ ॥ किं न कुर्वत्यमी मूढाः श्रौढमित्यालवचेतसः । प्राणिनः प्राणिनु  
प्राणिनिधृणाः स्वैर्विनस्वैरैः ॥ १६५ ॥ स्वराज्यग्रहणाशंकं विधाय मयि दुर्मतिः । व्यधात्कपटमीदृश कष्ट दुष्टविचेष्टित ॥ १६६ ॥ इति निधाय

के लिये कृष्णाने ये सब पशु इकठे किये हैं ॥ १५६-१५७ ॥ इसके बाद जो अनेक आभूषणोंके बोझसे सुशोभित हो रहे हैं रक्त कमलोंकी मालासे अलंकृत हो रहे हैं, जो साथमें चलते हुए अनेक घोड़ोंके खुरोंसे उठी धूलिसे सब दिशा-  
ओंके मुह भर रहे हैं जिनके चारों ओर उनकी उमरके तथा प्रसन्न चित्तवाले वडे वडे सामन्तोंके पुत्र चल रहे हैं एक ह-  
जार भालासवार जिनके साथ हैं और जो सबके ननोंको प्रिय हैं ऐसे श्रीनेमिकुमार भी चित्रा नामकी नालकीपर सवार हो-  
कर दिशाएं देखनेके लिये निकले वहींपर इच्छानुसार देखते हुए उन्होंने घोर करुणास्वरसे चिछा चिछाकर इधर उधर  
फिरते हुए, प्यासे, भयसे अत्यंत व्याकुल और दीन दृष्टिको धारण करनेवाले पशु देखे ॥ १५८-१६१ ॥ उन्हें देख-  
कर नेमिकुमारने वही दया बुद्धिसे उनके रक्तकोंसे पूछा कि यह पशुओंका समूह एक जगह किस लिये इकट्ठा किया  
गया है ॥ १६२ ॥ इसके उत्तरमें उन लोगोंने भी कहा कि हे देव ! आपके विवाहमहोत्सवमें मारनेके लिये कृष्णाने ये  
सब यहां इकट्ठे किये हैं ॥ १६३ ॥ यह सुनते ही वे विचार करने लगे कि ये पशु वनमें तो रहते हैं वृणु खाते हैं और  
किसीका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इस तरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर  
किस्सीका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इस तरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर  
धिकार है । अथवा जिनके चित्तमें मौढ मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे घृणारहित ये मूर्ख प्राणी अपने विनश्वर प्राणोंसे  
जीवित रहनेकेलिये क्या नहीं कर डालते हैं । इस दुर्बुद्धिको मेरे विषयमें अपना राज्य लेलेनेकी शंका उठी है इसीलिये इ-  
सने ऐसा कपट किया है इसीसे कहना पड़ता है कि दुष्टोंकी चेष्टाएं भी वही ही भयानक होती हैं । इस तरह सोचकर वे  
विरक्त हुए और लौटकर अपने मंदिरमें आए । रत्नत्रय प्रगट होनेसे उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उन्हें समझाया ।  
पहिलेके भवोंका स्मरणकर वे दुखी हुए और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव किया । वे

प्रिलोकस्वामिनो नेमेः प्रियास्त्ववेति सादर ॥ १४२ ॥ श्रिखड्बजातराजानां त्व पतिर्नो विशेषतः । देव त्वमेव नाबोसि प्रस्तुतार्थस्य के वयं ॥ १४३ ॥ इत्युप्रसेनवाचोवात्सल्यम्दो यादवाधिपः । शुमेहनि समारभ्य विभातु स तदुत्सवं ॥ १४४ ॥ पचरक्षमयं रम्य समानयदनुतरं । विवाहमण्डप तस्य मध्य-  
स्ये जगतीतले ॥ १४५ ॥ नवमुक्ताफलालोलरंगवल्लीविराजिति । मगलामोदपुष्पोपहारसारविलासिति ॥ १५० ॥ विस्तुतामिनवानर्च्यवन्त्रं सोभर्भपटके ।  
बध्वा सह समापार्श्वतदुलरोपण वरः ॥ १५१ ॥ परेद्यु समये पाणिजलसेकस्य माषव । गियासुर्दुर्गतिं लोभसुतीत्रानुभवोदयात् ॥ १५२ ॥ दुराशय  
सुराधीशपूज्यस्यापि महात्मनः । स्वराज्यादानमाशंक्य नेमेर्मयाविना वरः ॥ १५३ ॥ निर्वेदकारण किञ्चित् तिरीक्ष्यैष विरंस्यति । भोगेभ्य इति  
सार्धित्य तदुपायविधिस्तथा ॥ १५४ ॥ व्याधाधिपैर्वृत्तान्तीतं नानामृगकंदंवक । विषादैकत्र संकीर्णां वृत्तिं तत्परितो व्यधात् ॥ १५५ ॥ अशिक्षयत  
तद्रक्षाभ्यक्षान् यदि समीक्षितुं । धीवो नेमीश्वरोभ्येति भवद्भूमिं सोमिधीयता ॥ १५६ ॥ त्वद्विवाहे व्ययीकटुं चक्रिणैष मृगोत्करः । समानीत इति  
बड़े आदरसे मांगी ॥ १४५-१४६ ॥ कृष्णके इसतरह मांगनेपर राजा उग्रसेनेने कहा कि हे देव तीन खंडमें उत्पन्न हुए  
रत्नोंके स्वामी हैं इसमें कुछ विशेषता नहीं है । आपने अभी जो मांगा है उसके भी स्वामी आप ही हैं आपके सामने हम  
कौन हैं इस प्रकारके उग्रसेनके वचनोंसे कृष्णको बड़ी ही प्रसन्नता हुई और उन्होंने किसी शुभ दिनमें वह विवाहका उत्सव  
करना प्रारंभ कर दिया ॥ १४७-१४८ ॥ उन्होंने सबसे उत्तम और मनोहर पांचों रत्नोंका विवाह मंडप वनवाया, उ-  
सके मध्यभागमें एक वेदी बनवाई वह वेदी नये मोतियोंकी सुंदर रंगवलीसे सुशोभित हो रही थी, मांगलिक सुगंधित  
पुष्पोंकी भेंटसे वह बहुत सुंदर दिखती थी, और उसपर बहुत वा बड़े नये और बहुमूल्य रेशमी वस्त्र बिछे थे । उससमय  
वर श्री नेमिकुमारने बधू राजपतिके साथ भीने तंदुलोंका आरोपण किया था ॥ १४९-१५१ ॥ दूसरे दिन पाणिग्रहण  
वा कन्यादानका दिन था उस दिन मायाचारियोंमें श्रेष्ठ और दुर्गतिको जानकी इच्छा करनेवाले दुष्ट कृष्णको तीव्र  
लोभ कर्मके उदयसे इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे महात्मा नेमिकुमारके विषयमें यह शंका उत्पन्न हुई कि ये मेरा राज्य ले लेंगे  
तथा उन्होंने यह भी विचार किया कि ये वैराग्यका थोडासा ही कारण देखकर भोगोंसे विरक्त हो जायेंगे । यही सो-  
चकर उन्होंने नेमिकुमारको विरक्त करनेके लिये एक उपाय किया । उन्होंने अनेक अच्छे व्याधोंके द्वारा बहुतसे पशु  
पकडवाकर भगवाकर और उन सबको एक जगह इकट्ठाकर उनके चारों ओर एक छोटीसी वाढ ( घेरा ) लगवा दी ॥  
१५२-१५५ ॥ तदनंतर महापाषमें इबनेवाले कृष्णने उन पशुओंकी रक्षा करनेवालोंको समझा दिया कि यदि महाबुद्धि-  
मान श्रीनेमीश्वर कुमार उन्हें देखनेके लिये यहां आवें तो तुम सब उनसे इसतरह स्पष्ट कहना कि आपके विवाहमें मारने-





१२४ ॥ रत्नमाला गदा सीरी मुशलं च हलेधिनः । महारत्नानि चत्वारि स्फुरत्स्वीष्यमन्त्र प्रभो ॥ १२५ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च सती जाववतीति च । सुवीमा लक्ष्मणा गौरी गांधारी सप्तमी प्रिया ॥ १२६ ॥ पद्मावती च देव्योऽष्टौ पद्मसाधनाः । सर्वो देव्यः सहस्राणि चाणुरांतस्य योद्धा ॥ १२७ ॥ बलस्याष्टसहस्राणि देव्योभीष्टमुखप्रदा । तस्मिन्नावासरं सौख्यमाप्नोति ना ग्रीक्षिभीयतुः ॥ १२८ ॥ स्वपूर्वकृतपुण्यस्य परिणामेन पुष्कलान् । भोगान्प्राप्नुवतस्तस्य काले गच्छति शार्ङ्गिण ॥ १२९ ॥ अन्येयुर्वादिदार्तैः पुरेणामा सरोवरे । मनोहरास्मिन्नानेऽभूजलकेली मनोहरा ॥ १३० ॥ तत्र नेमीशितुः सत्यभामायाश्चावुसेचनात् । संलापोऽभवदित्युबैश्वतुरोक्तया मनोहरः ॥ १३१ ॥ त्वं प्रियावक्तुतो रंता मयि त्व किं मयाप्रिया । प्रिया चे तत्तव आता यातु का कामदायिनी ॥ १३२ ॥ कासौ किं ता न वेत्सि त्व सम्यक् सा वेदविष्यति । वदति लामृजु सर्वे कुटिलस्त्व लदप्यह ॥ १३३ ॥ पुनः ज्ञानविनोदावसाने तानेवमप्रवीत् । ज्ञानवन्न त्वया प्राणं नीलोत्पलविलोचने ॥ १३४ ॥ कस्य मे किं करोम्येतत्प्रसालय हरिर्भवान् । यो नागश-

ये सात रत्न कृष्णांके थे ॥ १२४ ॥ रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये दंडीप्यमान चार महारत्न बलदेव प्रभुके थे ॥ १२५ ॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, सती जांववती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गौरी, सातवीं गांधारी और पद्मावती ये आठ देवियां कृष्णाकी पट्टरानी थीं इनको लेकर कृष्णके सब सोलह हजार रानियां थी ॥ १२६-१२७ ॥ इसी तरह बलदेवके इच्छानुसार सुख देनेवाली आठ हजार रानियां थीं इन सब अपनी अपनी रानियोंसे देवोंके समान सुख भोगते हुए सदा प्रसन्न रहते थे ॥ १२८ ॥ इस तरह पूर्व जन्मके पुण्यकर्मके उदयसे जिन्हें अनेक भोग प्राप्त हुए हैं ऐसे कृष्णका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था ॥ १२९ ॥ किसी एक समय शरद ऋतुमें सब अंतःपुरके साथ मनोहर नामके सरोवर पर गये वहां पर सबने मनोहर जलक्रीडा की ॥ १३० ॥ वहीं पर परस्पर जल उछालते समय नेमिनाथ और सत्यभामाकी चतुराईसे भरी हुई कुछ मनोहर बात चीत हुई । सत्यभामाने कहा कि आप मेरे साथ अपनी प्यारीके समान जलक्रीडा क्यों करते हैं ? इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि तू क्या मेरी प्यारी नहीं है । इसके उत्तरमें सत्यभामाने फिर कहा कि यदि मैं आपकी प्यारी हूं तो आपके भाई फिर किस कामिनीके पास जाते हैं । यह सुन कर नेमिकुमारने कहा कि वह कौनसी कामिनी है क्या तू उसे नहीं जानती अच्छा वह अब अच्छी तरह जान लेगी । यह सुन कर सत्यभामाने फिर कहा कि आपको सबलोग सीधा बतलाते हैं परंतु आप तो बड़े ही कुटिल निकले । इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि क्या मैं तुमसे भी अधिक कुटिल हूं ॥ १३१-१३३ ॥ इस प्रकारके विनोद और स्नान करनेके बाद नेमिकुमारने सत्यभामासे फिर कहा कि हे नील कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तू यह गीली धोती पकड़ ॥ १३४ ॥ इसके उत्तरमें सत्यभामाने

॥ ११३ ॥ योतिताखिलदिक्चक्र चक्रमादाय विक्रमात् । त्रिविक्रम समुविश्य न्यक्षिप्ररुखीक्षण ॥ ११४ ॥ तप्त प्रदक्षिणीकृत्य स्थितवद्वक्षिणे भुजे । तदेवादाय कषारिर्मगधेदोछिनच्छिर ॥ ११५ ॥ षष्ठो बयानकान्तीक वदतिष्ठागलन दिवः । पुरद्वयप्रसृतानि सह गथांशुविदुभिः ॥ ११६ ॥ चक्रं चक पुरस्कृत्य विजिगीर्षुर्दिशो शृणु । प्रस्थानमकरोत्सार्द्धं बटेन स्वबलेन वा ॥ ११७ ॥ मगधादीन्धुरान् खित्वा विषेयीकृत्य सिधुताम् । गृहीत्वा सार-रत्नानि तद्दृष्टान्मूर्तिदौ ॥ ११८ ॥ सिधुसिधुखगाधंरालव्याधधराधिपान् । खपादनसभाभारमानमय्योदवाहयन् ॥ ११९ ॥ खेचराचलवाराशि गगामध्यगतान् पुनः । वशीकृत्य वशी चूर्णं म्लेच्छगजान् संखेचरान् ॥ १२० ॥ भरतार्धमहीनाथो दुरोच्छ्रितपताकिंका । उद्वदतोरणा द्वारवर्ती द्युग्न विवेश सः ॥ १२१ ॥ प्रविष्टवत् तं देवविद्याधरधराधिपः । त्रिखडाधिपतिधकीत्यभिर्विचक्रयामितं ॥ १२२ ॥ स सहस्रसमाशुष्को दगचापसमु-च्छ्रित । नीलाब्जवर्णो भाल्लोलस्रम्यालिंगितविग्रहः ॥ १२३ ॥ चक्रं शक्तिर्गदा शंखो धनुर्दंडः सनदकः । वभ्रुः सप्त रत्नानि रक्षाप्यस्याद्युवाटकैः ॥

के उदय होनेसे अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार कृष्णके आते ही जरासंध की सेना नष्ट होने लगी । अपनी सेना को नष्ट होते देखकर क्रोधका भरा जरासंध भी आया तथा रुखी दृष्टिको धारण करनेवाले उसने अपने पराक्रमसे सब दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला चक्र लेकर कृष्णकी ओर चलाया ॥ ११३-११४ ॥ परंतु वह चक्र कृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजा पर आकर ठहर गया इस लिये कृष्णने वही चक्र लेकर जरासंधका शिर काट डाला ॥ ११५ ॥ उसी समय कृष्णकी सेनामें जीतके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे सुगंधित जलकी बूंदोंके साथ साथ कल्यवृक्षोंके फूल बरसने लगे ॥ ११६ ॥ तदनंतर कृष्णने सब दिशाओंके जीतनेकी इच्छासे बलदेव और सब सेनाके साथ चक्रको आगे कर प्रस्थान किया ॥ ११७ ॥ जिनका पुण्योदय चमक रहा है ऐसे उन दोनों भाइयोंने मगध आदि प्रसिद्ध देवोंको जाकर जीता और उनके दिये हुए उत्तमोत्तम रत्न स्वीकार किये ॥ ११८ ॥ लवणोद समुद्र सिंधु नदी, और विजयादर्ध पर्वतके मध्यके म्लेच्छोंसे नमस्कार कराकर उनसे अपने पैरोंके नखोंकी कांतिका भार उठवाया ॥ ११९ ॥ तदनंतर विज-यादर्ध पर्वत, समुद्र, और गंगा नदीके बीच वालोंको वश किया और फिर उन जितेंद्रियने सीम्र ही विद्याधरों सहित म्लेच्छों-को वश किया ॥ १२० ॥ इसी तरह आधे भारतके स्वामी होकर उन्होंने जिसमें पलाकाएं बहुत ऊंची फहरा रही हैं और जगह जगह तोरख बंधे हुए हैं ऐसी दारावतीमें प्रवेश किया । जाते ही देव विद्याधर और भूमिगेचरी राजाओंने उन्हें वीन खंडके स्वामी चक्रवर्ती पानकर बिना कहे सुने कृष्णका अभिषेक किया ॥ १२२ ॥ कृष्णकी एक हजार वर्षकी आयु थी, दश धनुष ऊंचा शरीर था, नील कमलके समान वर्ण था और चंचल लक्ष्मीसे आलिंगन किया हुआ उनका शरीर बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥ १२३ ॥ देवोंके द्वारा सुरक्षित ऐसे चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और तलवार

विपुलबलीक्या ॥ १०२ ॥ पतितानां परैः स्तूयमानसाहसकर्मणां । प्रभाषन्ति यन्त्राणि स्वकपयन्त्रिं ययुः ॥ १०३ ॥ भटैः परस्व यन्त्राणि लंघि-  
तानि स्वकीयसाध । तत्त्वैस्तत्र पार्थस्या बहुवो व्यसवोमबन् ॥ १०४ ॥ न मत्सरेण न क्रोधात्तु रूपातेन फलेच्छया । भटाः केचिदयुधं न्यायोगमिति  
केवल ॥ १०५ ॥ सर्वबाहसमुद्भिन्निधारीरावीरयोधना । परिच्युता गजदध्याच्छुल्लिङ्गिगिताद्वय ॥ १०६ ॥ चिरं परित्तं स्थान परित्यक्तुमिवा-  
क्षमाः । प्रलवते स्म कर्णप्रबलव्यानतानना ॥ १०७ ॥ केचिदामकरोपातचित्रदंष्टरक्षणाः । दक्षिणाभ्युज्जेनाग्रन् भटाश्चटुक्षारिणः ॥ १०८ ॥  
तत्र वात्स्यो मनुष्याणा मूलोक्तकृष्टसन्वय । कदलीघातज्वातस्येत्युत्थितमत्तप्रणगण ॥ १०९ ॥ एवं तुमुलुगुदेन प्रपृष्टे सगरे विरं । सेनयोरंतकस्यापि संतुष्टिः  
समजायत ॥ ११० ॥ विलिखितं बल विष्णो बलेन द्विषता तदा । यथा क्षुद्रसरिद्धारिवाहाः सिंधुसर्वाधुना ॥ १११ ॥ तदालोक्य हरिः कुम्भा हरिवां  
करिणां कुलं । समस्तबलसदोहसहितोऽयमुद्यतः ॥ ११२ ॥ भास्करस्योदयाद्वाधकारं शत्रुबलं तदा । विलीनं तं निरीक्ष्यैत्य जरासयोचिन्तित कुम्भा ॥

शत्रु भी जिनके साहसके कामोंकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसे पड़े हुए योद्धाओंके प्रसन्न हुए मुख ठीक स्थलकमलोंकी शोभाको  
धारण करते थे ॥ १०३ ॥ कितनेही योद्धाओंने अपनी कुशलतासे दूसरोंके शस्त्र तोड़ डाले थे परंतु उनके तोड़नेसे समीपके  
बहुतसे लोग मर गये थे ॥ १०४ ॥ कितने ही योद्धा न किसी ईर्ष्यासे लड़ते थे, न क्रोधसे, न कीर्तिके लिये और न  
फलकी इच्छासे लड़ते थे किंतु लड़ना न्याय है यही समझकर लड़ते थे ॥ १०५ ॥ जिनका शरीर सब तरहके शस्त्रोंसे  
छिद्र गया भिद्र गया है ऐसे कितनेही योद्धा हाथीके कंधेसे गिर गये थे परंतु उनके पैर हाथीके कानोंसे लटक ही रहे  
थे इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों वे अपने बहुत दिनके परिचित स्थान छोड़ नहीं सकते इसलिये हाथीके कानोंका  
सहारा लेकर और नीचे मुंह लटका कर लटक रहे हों ॥ १०६-१०७ ॥ चंचल पैरोंको रखनेवाले कितने ही योद्धा  
अपनी रक्षाके लिये बायें हाथमें चित्र दंड लेकर शस्त्रोंवाली दाहिनी भुजासे शत्रुओंको मारकर डाल रहे थे ॥ १०८ ॥  
जिस प्रकार केलाओंकाघात जम्भामरमें हो जाता है उसी प्रकार उस युद्धके मैदानमें मृत्युके लिये मनुष्योंका उत्कृष्ट जमाव  
हो रहा था । भावार्थ—बड़ी शीघ्रतासे ढेरके ढेर लोग मर रहे थे ॥ १०९ ॥ इस प्रकार उस युद्धस्थलमें बहुत देर तक  
दोनों सेनाओंका घोर युद्ध हो रहा था जिससे यमराज भी खूब तृप्त हो गया था ॥ ११० ॥ तदनंतर जिसप्रकार स मुद्रके  
ज्वारके जलसे छोटी नदियोंका पानी बहने लगता है उसी प्रकार शत्रुओंकी सेनासे कृष्णाकी सेना कुछ पीछेकी ओर हटने  
लगी ॥ १११ ॥ अपनी सेनाको पीछेकी ओर हटती देखकर जिसप्रकार सिंह हाथियोंके मुँह पर दृढ़ता है उसी प्रकार  
कृष्ण क्रोध कर अपनी सब सेनाको साथ लेकर शत्रुकी सेना को मारनेके लिये तैयार हुए ॥ ११२ ॥ जिस प्रकार सूर्य

लक्षितः ॥ ९० ॥ सबानावर्जनिर्णिक्तसौवर्णैरुगलतिका—जलैराचम्य युद्धेच्छु क्षिप्तपूर्णजालि ॥ ९१ ॥ गंधपुष्पादिभिर्विभिन्नविनायकमनायक । भक्त्या जिनेन्द्रमन्यर्च्य भव्यकल्पमहीरह ॥ ९२ ॥ अमिषवाप्तसासैः समंतात्परिवारित । प्रतिपक्षमपक्षेषु पक्षेणासिमुख ययौ ॥ ९३ ॥ तत कृष्णेन निर्दिष्टाः प्रशाष्टपरिचारिणः । सैन्य यथोक्तविन्यास रचयति स्म रात्रिणि ॥ ९४ ॥ जरासंधोपि सग्नमरंगमध्यमधिष्ठित । स्वसैन्य निष्ठुरारातेरध्यक्षैरन्वयो-जयत् ॥ ९५ ॥ इति विन्यासितसेन्ये दृष्ट्वेने समरानकैः । शूरधातुचक्रनिर्मुक्तशरानाराचसकुल ॥ ९६ ॥ नभोन्यरुणदुष्णाशुप्रसरत्करसतति । वियोगमग-मन्योद्वात्तस्तामयशंकया ॥ ९७ ॥ कोकयुग्म विहगद्य ह्वतो नीढमाश्रयन् । नेक्षते स्म भटा योद्धुमन्योन्यं समरागणे ॥ ९८ ॥ संकुद्रमत्तमांतगत-सघट्टजन्मना । सप्तार्विषा विधूतैश्चकारे दिगबलोकनात् ॥ ९९ ॥ पुनः प्रहृतसंगमाः सर्वशस्त्रविवक्षणाः । नदीं रक्तमयीं चक्रुर्विक्रमैकरसा क्षण ॥ १०० ॥ क्लरालकरवालगूनिर्मुक्तचरणद्वयाः । तुरंगमा गतिं प्राप्नुवन्ते नष्टतपोधनाः ॥ १०१ ॥ विच्छिन्नचरणा पेटुर्दिपाः प्रातमहामहत । निर्मूलपातितानील-द्रोके नाश करनेवाले तथा भव्योंके लिये कल्पवृक्षोंके समान श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजाकी और फिर उन्हें नमस्कार किया । त-दन्तर गुरुजन और समंत लोगोंको अपने चारो ओर रखकर अपनी पक्षसे ही शत्रुओंको जीतनेके लिये उनके सामने हुए ॥ ९१-९३ ॥ तदनंतर कृष्णाकी आज्ञासे अनुराग रखनेवाले प्रशंसनीय परिचारक लोगोंने यथा योग्य रीतिसे सेनाकी रचनाकी ॥ ९४ ॥ जरासंध भी संग्रामरूपी रंगश्रुमिके मध्यमें आ विराजमान हुआ और निर्दिष्टी शत्रुओंके साथ अपनी से-नाकी योजना करने लगा ॥ ९५ ॥ इसप्रकार रचनाकी हुई दोनो सेनाएं युद्धके वाजोंसे शब्दायमान होने लगीं । शूरवीर धनुष धारियोंके छोड़े हुए बाणोंसे आकाश भरगया और सूर्यके फैले हुए किरणोंके समूह सब ढक गये । उस समय सूर्य-को अस्त हुआ समझ कर चक्रवाक् पक्षियोंका जोड़ा बिछुड़ गया, और पक्षी भी वहचहट करते हुए अपने घोंसलेमें घुस गये, तथा उस युद्धके मैदानमें योद्धा लोग युद्ध करनेके लिये परस्पर दिखाई भी नहीं पड़ते थे ॥ ९६-९८ ॥ उस समय क्रोधित हुए मदोन्मत्त हाथियोंके दातोंके संघटनसे जो अग्नि निकलती थी उससे कुछ अंधकार दूर होता था और सब तरहके शस्त्र चलानेमें निपुण योद्धा उसी अग्निके उजालेसे दिशाओंको देखकर फिर युद्ध करने लग जाते थे, पराक्रम रूपी एक रससे भरे हुए वे योद्धा क्षणभरके लिये नदीको भी रक्तमयी ( लोहसे भरी हुई ) बनारहे थे ॥ ९९-१०० ॥ कठिन तलवारकी धारसे जिनके दो पैर कट गये हैं ऐसे घोड़े उसी गतिको प्राप्त हो रहे थे जिसे कि वनमें रहनेवाले तप-स्वी अपने तपश्चरारूपी धनको नष्टकर प्राप्त होते हैं ॥ १०१ ॥ जिनके पैर कट गये हैं ऐसे हाथी इस तरह पट गये थे मानों प्रलय-कालकी महाबायुसे जटसे उसदकर पड़े हुए नीले चिल्लाचलकी शोभाको ही घोरण कर रहे हों ॥ १०२ ॥

दुर्योधनपरोक्षिना । दुःशासनेन दुर्योधनेन ॥ ७९ ॥ दुर्योधनेन कलिंगेणा भगवत्सेन यमुना । परैश्च भूरिभूषणैराजगाम स केसवं ॥ ८० ॥ तदा हरिर्बलैः युद्धदुग्धमिधिरुचरान् । शरत्वेतोरसौ बाध कौसुमो बान्धवजयत् ॥ ८१ ॥ तदाकर्ण्य द्रुपः केनिर्यज्यतिस्र देवताः । अर्घ्यादिप्रताप्यन्ते जगद्गु पुरुसन्निधौ ॥ ८२ ॥ परे तिस्तारकेष्वर्थान् वितरति स्म सादिबका । मुञ्चताश्च तनुत्राण शुद्धीतासिलतां सितां ॥ ८३ ॥ आरोपयत चोषधान् सन्ध्याता गजाश्रिता । हरयो बद्धपर्याणा क्रियतामधिकारिषु ॥ ८४ ॥ समर्प्यता कलत्रादि युज्यता बाजिभी रथाः । भोगोपभोगवस्तुनि भुज्यतामनिवा-  
रित ॥ ८५ ॥ बर्हिमागधवृन्देन वंयतां निजविक्रमाः । इति केनिजगुर्भृत्यान्द्रुपाः सगामसन्मुखाः ॥ ८६ ॥ पतिभक्त्या निसर्गैर्मयैरुहेष विरोधिना । मातसर्पेण यशोहेतो शूरलोकसमीप्सया ॥ ८७ ॥ निजान्वयाभिमानेन परैश्च रणकारणैः । समजायत राजान प्राणव्ययविधाबिन् ॥ ८८ ॥ वधुदेव-  
सुतोप्यासगर्भं सर्वविभूषण । कुङ्कुमाकितगात्रत्वादिब सिद्धैरितद्विप ॥ ८९ ॥ जय जीवेति वंदावृन्देन कृतमगल । नवोर्वाभोधरश्वाश्चातकच्चनि-

चित्तमै शूरवीरता का रस भरगया ॥ ८१ ॥ उन बाजोंको सुनकर कितने ही राजा लोग देवियोंकी पूजा करने लगे और अन्य कितने ही गुरुके समीप जाकर अर्घिसा आदि व्रतोंको धारण करने लगे ॥ ८२ ॥ अन्य कितने ही सात्विक राजा दीनोंको दान देने लगे । युद्धके लिये तैयार हुए कितने ही राजा लोग अपने २ सेवकोंसे कहने लगे कि “तुमलोग अ-  
पना वस्त्र शीघ्र पहिना, सफेद तलवार रखी लताको धारण करो, सब धनुषोंको चढाओ और हाथियोंके सवार सब तै-  
यार हो, अधिकारियोंके लिये घोड़े सब जीन कस कर तैयार करो, स्त्री आदिकों योग्य जगह पर पहुँचाओ घोड़े जोतकर  
रथ तैयार करो विना किसी रोक टोकके भोगोपभोगोंकी सब वस्तुओंका उपभोग करो और वंदीजन तथा स्तुति पढनेवाले  
लोग अपने पराक्रमका उच्चारण करें” ॥ ८३-८६ ॥ राजालोगोंमेंसे कितने ही यशके लिये कितने ही शूरलोक जानेकी इच्छासे कितने  
स्वाभाविक पौरुषसे, कितने ही विरोधियोंकी ईर्ष्यासे, कितने ही यशके लिये कितने ही शूरलोक जानेकी इच्छासे कितने  
ही अपने वंशके अभिमानसे और कितने ही युद्ध होनेके कारण प्राण देनेके लिये तैयार हो गये ॥ ८७-८८ ॥ उससमय  
कृष्ण बड़ा अभिमान कर रहे थे, वे सब आभूषण पहिने थे और शरीर पर कुंकुम लगा लेनेसे ऐसे जान पड़ते थे मानों  
सिंदूर लगा हुआ हाथी ही हो ॥ ८९ ॥ आपकी जय हो आप चिरंजीव रहे इस प्रकार वंदीजन लोग उनका मांगलिक  
पाठ पढ रहे थे, वे नये श्याम वादलके समान जान पड़ते थे और सुंदर चातकोंकी आवाजसे वे बहुत ही अच्छे मालूम  
होते थे ॥ ९० ॥ उससमय युद्धकी इच्छा करनेवाले उन्होंने सज्जनोंके द्वारा लाये हुए टोंटनीदार सुवर्णकी वनी हुई भा-  
रीसे निकलते हुए जलसे आचमन किया, पूर्ण जलांजलि दी, फिर बड़ी भक्तिके साथ गंध पुष्प आदि द्रव्योंसे सब वि-

मन्त्रेण तद्विकारं न्यवेदयत् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा शार्ङ्गधरः शंश्रुतमुत्थानसमाकुलः । कुमारं नैमिषमन्त्रेण प्रगाधि त्वमिदं पुरं ॥ ६८ ॥ विजिगीषु किंला-  
भाभ्यस्त्यस्मान्मगधाधिपः । भनन्ति तमहं जीर्णद्वम वा युगमक्षितं ॥ ६९ ॥ तूर्णं भवत्यभावेन गतेत्यवददुर्जितं । प्रसन्नचेतास्तच्छ्रुत्वा सस्मितो मधुरे-  
क्षणः ॥ ७० ॥ सावर्धिविजय तेन विनिश्चित्य विरोधिनां । स्फुरन्तश्चिद्विष्णुं नैमिरोमित्यभाषत ॥ ७१ ॥ स्मितैधिः स्वजय सोपि निधिकाय जग-  
त्प्रभोः । जैनो वादीव पक्षायैरेकलक्षणभूषणं ॥ ७२ ॥ अथ शत्रुं समं जेतुं जयेन विजयेन च । सारणेनागदाह्येन धमाहेनोद्धवेन च ॥ ७३ ॥ सुमु-  
खाधारपद्मैश्च जराह्येन सुदृष्टिना । पादवै पंचभिः सत्यकेनाथ कुपदेन च ॥ ७४ ॥ यादवै सविराट्पण्डितैरप्रमेयैर्महाबलैः । धृष्टार्जुनोप्रसेनाभ्यां चमरेण  
रणेषुना ॥ ७५ ॥ विदुरेण द्रुपदैरनैथान्वितौ बलकेनौवा । समद्वानुद्वितौ योद्धुं कुरुक्षेत्रमुपागतौ ॥ ७६ ॥ जरासथोपि युद्धेच्छुर्भुज्येणाविष्कृतोष्मणा ।  
सद्रौणेन सकर्णेन साश्वत्थान्न । च रुक्मिन्ना ॥ ७७ ॥ शल्येन द्रुपसेनेन कृपेण कृपवर्मणा । रुधिरैर्णद्रसेनेन जयद्रथमहीयता ॥ ७८ ॥ हेमप्रमेण भूमन्त्रा

तथा नैमिकुमारके समीप जाकर कहने लगे कि आप इस नगर की रक्षा कीजिये आज मगधदेशका राजा जरासंघ हम लो-  
गोंको जीतनेके लिये आ रहा है इसलिये आपके प्रभावसे शीघ्र ही जाकर घुनके खायें हुए पुराने दहनके समान उसे उ-  
खाड फेंकूंगा इसतरह कृष्णने प्रभावशाली वचन कहे । इन सब बातोंको सुनकर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले और प्रसन्न  
चित्त नैमिकुमार मधुर नेत्रोंसे कुछ हंसे परंतु उनकी उस थोड़ीसी हंसीसे अपने विरोधियोंके जीतनेका निश्चय कर लिया ।  
जिनके दांतोंकी क्रांति टैंडीप्यमान हो रही है ऐसे नैमिकुमारने कृष्णसे ओं अक्षर कहकर स्वीकारता दी । जिसप्रकार जि-  
नका अन्यथा अनुपपत्ति यह लक्षण ही आभूषण है ऐसे पत्त आदिकोंके द्वारा जैनवादी अपनी विजयका निश्चय कर लेता  
है उसीप्रकार तीनोंलोकोंके स्वामी नैमिकुमारके हंसनेसे ही कृष्णने अपनी विजयका निश्चय कर लिया ॥ ६८-७२ ॥ अ-  
नानंतर कृष्ण और बलदेव दोनों भाई शत्रुको जीतनेकेलिये जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, पद्म, जरा,  
सुदृष्टि, पांचों पांडव, सत्यक, अपद, सब यादव, विराट, अपार सेनासे वेष्टित धृष्ट अर्जुन, उग्रसेन, युद्धरा अभिलषी चमर,  
विदुर तथा अन्य अनेक राजाओंके साथ उद्वत होकर युद्धकेलिये तैयार हुए और वहांसे चलकर कुरुक्षेत्रमें जा पहुंचे  
॥ ७३-७६ ॥ उपर युद्धकी इच्छा करनेवाला जरासंघ भी अपनी ज्वालाको फंकते हुए भीष्म, कर्ण, द्रोण, अभ्युत्थामा,  
रुक्म, शल्य, द्रुपसेन कृप, कृपवर्मा, रुधिर इंद्रसेन, जयद्रथ, हेमप्रभ, पृथ्वीका नाथ दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मपण, दुर्धर्षण, दु-  
र्जय, राजा कर्लिग, भगदत्त, तथा और अनेक राजाओंके साथ कृष्णके समने आ पहुंचा ॥ ७७-८० ॥ उसीसमय कृष्णकी  
सेनामें युद्धके बाजे बजने लगे तथा जिसप्रकार कुसुंभ वस्त्रको रंग देता है उसी प्रकार उस बाजेकी आवाजसे शूरवीरोंके



रत्नान्याबाय सारभूतानि तत्पराय । गत्वा राजपृष्ठ प्राप्तचक्रलमहीपति ॥ ५८ ॥ रत्नान्युपायनीकृत्य पुरस्कर्य वणिक्पतिं । ददद्भुः कृतसन्मानस्तान-  
पृच्छत्यजेधरः ॥ ५५ ॥ भो भवद्भिः कृतो लब्धमिदं रत्नकंदवक् । उदंभुमिरिवोन्मीलतेक्षणं कैतुकाधिति ॥ ५६ ॥ शृणु देव महविभ्रमेतदसद्विलो-  
कित । पातालदेरय बाह्यदृष्ट्युभय्यमुपस्थितं ॥ ५७ ॥ सकंदीकृतसौख्योहमवनत्वादिबाहुयेः । फेनराशिस्तदाकारपरिणाममुपागतः ॥ ५८ ॥ अलघ्य-  
त्वात्परे पुण्य वापरं भरतेशिषु । नेस्त्वामिसमुत्पत्तिहेतुत्वाभगोत्तम ॥ ५९ ॥ अमहत्तदनस्येवमार्थमिर्वातगौरवं । शरदन्दकुल लिष्ट्युपैयंत-  
न्ममेति वा ॥ ६० ॥ सौधागुंदोलितालोपताकाबहुबाहुभिः । निराचिभिर्यत्सर्पयद्दुर्गमप्रपथोच्छ्रित ॥ ६१ ॥ परार्थभूमिरज्जलाकृष्णतेजोविराजनात् ।  
सदागंभीरशब्दत्वादंभोधिलसक्तिम ॥ ६२ ॥ नवयोजनविस्तारं दैर्घ्यं द्वादशयोजन । पुरं द्वारवती नाम यादवाना पयोनिधे ॥ ६३ ॥ मध्ये प्रवर्तते  
तस्मादेतद्भ्रमकंदवक् । लब्धमस्माभिरित्येवमनुवस्तेपि भूपति ॥ ६४ ॥ श्रुत्वा तद्वचन कोषादवीभूतो गव्रीक्षण । जरासंधो धियाप्यंधो दर्पदेवातिपथितः ॥  
६५ ॥ चंचालाकालकालांतचलितात्मबलावुधि । कर्तुं यादवलोकस्य विलयं बाविलवित ॥ ६६ ॥ नारदस्तत्तदा ब्रुत्वा निर्हेतुसमरप्रियः । हरि सत्वर-

किया गया हो अथवा समुद्रके फेनका समूह ही नगररूप बन गया हो । अन्य शत्रु लोग उसे कभी उल्लंघन नहीं कर सकते  
वह भरतक्षेत्रके स्वामी चक्रवर्तीके दूसरे पुराणके समान जान पड़ता है । अथवा स्वामी नेभिनाथके उत्पन्न होनेके कारण ही  
वह नगर सबसे उत्तम है ॥ ५७-५८ ॥ वह नगर विशद था यावक लोगोंके लिये सेवा करने योग्य था और गुरुता अ-  
र्थात् भारस्मिन वा जड़तासे रहित था । अथवा यह शरद ऋतुका वादल मेरे भी ऊपर रहना है यही सपरम्भकर वह बड़े बड़े  
राजभवनोके ऊपर फहराती हुई अनेक चंचल पताकाखूयी भुजाओंके संघट्टनसे आकाशमें दूर जाकर पड़े हुए उन वादलोंको  
निराकरण करता है ॥ ६०-६१ ॥ अथवा वह बहुमूल्य रत्नों की भूमि होनेसे वा कृष्णके तेजसे सुशोभित हो-  
नेसे और सदा गंभीर शब्द करनेसे वह नगर सदा समुद्रके जलके समान जान पड़ता है । वह द्वारवती नामका यादवोंका  
नगर नौ योजन चौड़ा है और बारह योजन लंबा है तथा समुद्रके मध्यमें सुशोभित है । उसी नगरसे ये रत्न हप्त लोगोंको  
मिले हैं इसतरह उन वैष्णवपुत्रोंने राजा जरासंधसे कहा ॥ ६२-६४ ॥ ये बातें सुनकर जरासंधने क्रोधसे अंधे होनेके स-  
मान ऊंची दृष्टि कर ली, उससमय वह बुद्धिसे भी अंधा बन गया और अभिमानसे सब नियमोंका उल्लंघन करने लगा  
॥ ६५ ॥ शीघ्र ही यादवोंका नाश करनेकेलिये वह असमयमें ही प्रलयकालके समुद्रके समान अपनी सब सेना लेकर चला  
॥ ६६ बिना कारण युद्धको पसंद करनेवाला नारद ये सब समाचार जानकर बड़ी शीघ्रतासे उसीसमय कृष्णके समीप  
पहुंचा और उसने जरासंधके आनेकी सब खबर कह सुनाई ॥ ६७ ॥ सुनते ही कृष्ण शत्रुको मारनेकेलिये व्याकुल हुए

वनेशनिर्मितत्रेयामणिस्तोपानमार्गम् ॥ ४२ ॥ नीला पयोदमार्गेण तिरिविशानदिगते । पाङ्कजाख्याशिलाप्रस्थमणिर्निर्दृतायने ॥ ४३ ॥ अनादिनिघने  
नालमारोप्यालकतेजस । क्षीरान्नोधिपय पूर्णसुदणकलशोत्तमैः ॥ ४४ ॥ अष्टाधिकसहस्रेण प्रमितैरभितप्रभैः । हस्तादस्त क्रमेणमराधिनाथसमर्पितैः ॥ ४५ ॥  
अभिविध्य यथाकाममलङ्कृत्य दयोचितं । नैर्मि सद्वर्त्मचक्रस्य नेमिनामानमभ्यधात ॥ ४६ ॥ तस्मादानीय मौलीप्रमाननीयं महोदय । मातापित्रो पुन-  
र्दत्ता विधायानन्दनाटक ॥ ४७ ॥ विदुस्य विविधान्वाङ्मन रसभावनिर्तरं । स्वावासमगमत्सर्वहर्षिद्वि सहास्रैः ॥ ४८ ॥ नभैर्भगवत्स्तरीयसतानसमये  
स्थितः । पचलक्षः समाः प्रातै तदंतर्गतजीवितः ॥ ४९ ॥ जिनो नेमि समुत्पन्नः सहस्राब्दादयुरदिवतः । दशचापसमुत्सेधः शस्तसंस्थानसहतिः ॥ ५० ॥  
त्रिलोकनायकाभ्यर्थ्यः स्वाम्यर्णीकृतनिर्वृति । तस्या सुखाति दिव्याति तस्मिन्मनुर्बन्धिरं ॥ ५१ ॥ गच्छत्येव क्षणेवात्य काले बहुतेत्यदा । आतवारि-  
पयोयोगा नष्टदिका बणिक्कुताः ॥ ५२ ॥ प्राप्य द्वारावतीं केचित्पुण्यानगधवासिनः । राज्यलीलां विलोक्यावबिभूतिं च सविस्मयाः ॥ ५३ ॥ बहुनि-

पूज्य और महापुरुषात्मा नेमिनाथको वहांसे लाकर मातापिताको सौंपा, विक्रिया श्रद्धिके द्वारा अनेक भुजाओंको बनाकर  
निरंतर रसभावसे भरा हुआ आनंद नाटक किया और फिर सब देवोंके साथ वह इंद्र अपने निवास स्थानको चला गया  
॥ ४७-४८ ॥ श्रीनेमिनाथ स्वामीके बाद पांच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमिनाथ हुए थे उनकी आयु भी इसी समय  
में अंतर्गत समझनी चाहिये । उनकी आयु एक हजार वर्षकी थी शरीरकी ऊंचाई दश धनुष थी उनके संस्थान आदि  
सब प्रशंसनीय थे तीनों लोकोंके इंद्र उनकी पूजा करते थे, मोक्ष उनके समीप थी, और उसी द्वारावतीमें बहुत दिन तक  
दिव्य सुखोंका अनुभव करते हुए निवास करने लगे ॥ ४९-५१ ॥ इस तरह उनका बहुत बड़ा समय भी क्षणभरके  
समान व्यतीत हो गया था । किसी एक दिन मगधदेशके रहने वाले कितने ही वैश्यपुत्र अपने पुण्यकर्मके उदयसे समुद्र-  
मार्गसे मार्ग भूलकर द्वारावतीमें आ पहुंचे वहांकी राजलीला और विभूति देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने वहां  
से बहुतसे अच्छे अच्छे रत्न साथ लिये और फिर वे वहांसे चल कर राजगृह नगरमें पहुंचे । वहां जाकर उन्होंने वे रत्न  
भेट कर चक्ररत्नके स्वामी महाराज जरासंधके दर्शन किये राजाने उन सबका आदर सत्कार किया और फिर  
बड़े कौतुकसे पूछा कि उठती हुई किरणोंसे खुले हुए नेत्रोंके समान यह रत्नोंका समूह तुम्हें कहाँसे मिला  
है ॥ ५२-५६ ॥ तब वे वैश्य पुत्र कहने लगे कि हे देव ! सुनिये हमने ये सब बड़ी आश्चर्य रखने-  
वाली चीजें देखी हैं । समुद्रके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर नगर है ऐसा नगर हम लोगोंके देखनेमें  
कभी नहीं आया मानों वह पातालसे निकल कर ही पृथ्वीपर आया हो अथवा उज्जलताका समुदाय ही एक जगह इकठा

सम्राजिका । आलोकताबुधप्रान्दं प्रविष्ट च गजविप ॥ ३२ ॥ तदा चरितचोयाबमेरीजनिबिबोषिता । कुतमंगलमुत्ताता भूतपुण्यप्रसाधना ॥ ३३ ॥  
उपचारबद्धेय्य त्रुपमर्दोसने स्थिता । सहृदयप्रतामार्जीमन्त्रयुक्तं शुभायमं ॥ ३४ ॥ संकल्प्य नरोदोपि फल तेषामभाषत । स्वद्वर्भे शिष्यलोकोषोवतीर्ण  
इति सूक्ष्मधीः ॥ ३५ ॥ शुलातदैव संलब्धवती बालुबदय्यसौ । जाला खनिन्दैर्वेदवाः सभूयागल्य सम्मदाः ॥ ३६ ॥ स्वर्गावतारकल्याणमहोत्सववि-  
धायिनः । त्वेषां च पुण्यं निर्वर्त्य स्वधाम समुपागमन् ॥ ३७ ॥ य पुनः श्रावणे शुक्लपक्षे षष्ठीदिने विनः । ज्ञानत्रितयधृत्वधृयोगे दुष्टयामभाषत ॥ ३८ ॥  
अथ खविष्टारकपसुत्तप्रावधीषणा । बुद्ध्या भगवदुत्पत्तिं सौधमैरपुरस्सरा ॥ ३९ ॥ संजातसमदाः प्राप्य परिवेष्य पुरं स्थिता । ऐरावतगजस्कन्धभा-  
रोप्य भुवनप्रभु ॥ ४० ॥ सौधमैरपतिभक्त्या नीलाभोजदलद्युति । ईशमीशानकल्पेशधृतातपनिवारण ॥ ४१ ॥ नमस्वरैर्वोचनोद्भूतचामरीरह ।

देखे हुए सब स्वम कह सुनाए सुन कर मूढम बुद्धि वाले महाराज समुद्रविजयने भी शुभके आगमनको सूचित करनेवाला  
उनका इकठा एक फल कहा कि तेरे गर्भमें तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकर परमदेवने अवतार लिया है ॥ ३३—३४ ॥  
पतिके वचन सुनकर तीर्थंकर पुत्र हुएके समान ही वह संतुष्ट हुई । उसी समय अपने अपने चिन्होंसे इंद्रोंको भी मालूम  
हुआ वे सब वडी प्रसन्नतासे मिलकर आए, उन्होंने स्वर्गावतरण कल्याणका महोत्सव किया तथा अपने पुण्यकर्मोंका वंश  
किया और फिर वे सब लोग अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३६—३७ ॥ तदनंतर श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन विवा नक्षत्रमें  
मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले भगवान उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उसी समय सौधर्म आदि सब इंद्रोंके  
सिंहासन कंपायमान हुए उन्होंने अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे भगवानका जन्म जान लिया । तदनंतर वे सब मिलकर वडी प्रस-  
न्नतासे आए, द्वारवती नगरीके चारोंओर आ उपस्थित हुए सौधर्म स्वर्गके इंद्रने वडी भक्तिसे तीनोंलोकोंके स्वामी और  
नील कमलके दलकी कांतिके समान भगवान पुत्रको ऐरावत हाथीके मस्तक पर विराजमान किया, ईशान स्वर्गके इंद्रने  
उनपर चत्र लगाया तथा चमर डुलाने लगे । कुबेरने तीन तरह मणियोंकी सीढियां बना कर मार्ग बनाया था उसी परसे  
आकाशमार्गमें होकर मेरु पर्वतपर पहुंचे । मेरु पर्वतकी ईशान दिशाकी ओर जो पांडुशिला है और उसपर जो अनादि  
अनिधन मणियोंका सिंहासन रक्खा है उस पर मूर्त्यके समान तेजको धारण करनेवाले पुत्रको विराजमान किया । फिर  
सब इंद्र अपार कांतिको धारण करनेवाले सुवर्णके बने हुए एकहजार आठ उत्तम कलशोंसे हाथों हाथ क्षीरसागरका जल  
लाए । उनसे इच्छानुसार भगवानका अभिषेक किया यथायोग्य रीतिसे वस्त्राभरण पहिनाकर अलंकृत किया और फिर  
उन्हें सद्धर्मरूपी चक्रकी धुरी समझकर उनका नेमि अथवा नेमिनाथ नाम रक्खा ॥ ३९—४० ॥ फिर सबके मुकुटमणि,



संप्राप्यापतदुप्रमेततनयो बन्धुपातद्वेषत । तं द्योमिन् अमयद् करेण बगणे संगृह्य बाल्याङ्ग भूतो नेतुसुपांतमंतकविभो कृष्ण समाह्वयन्मगत ॥ ४९४ ॥ आपेतुनभस्तदा मुमनसो देवानकैर्दध्ने, स्वारावो वसुदेवसन्ध्यालया प्रसोभणादुद्धन । सीरी वीरवरो विरुद्धगुणीनाक्रम्य रंगरिषतेः स्वीकृत्वा-  
प्रतिमल्लमाप्तविजयं नीर्योजितं स्वावुज ॥ ४९५ ॥ अतुलबलमलधारारतिमन्तभवात् त्कुपेतहरिसमान माननीयापदानं । सपदि समुपयाता वदिभेद्य-  
मान अनितसकलराग त हरि वीरलक्ष्मीः ॥ ४९६ ॥ दूरीव मे श्रिनयती वतीरलक्ष्मीरेतस्य दक्षिणभुज विजयैकरोह । प्रापदगतिं चित्तरादिने त क-

टाक्षरेक्षिष्ठ रागतर्लेभरतादेलक्ष्मी ॥ ४९५ ॥

इत्यादि भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे 'ने मे चरिते कृष्णविजयो नाम' सप्ततितम पर्व ॥ ७० ॥

उसीसमय आकाशसे पुरुषोंकी वर्षा हुई, देवोंके नगाड़े बजने लगे और वसुदेवकी सेनारूप समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न होने-  
से बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । उसी समय जिसके साथ लड़ने योग्य कोई मल्ल नहीं है जो शूरवीरतामें सबसे  
बड़े हैं और जिन्होंने विजय प्राप्त की है ऐसे अपने छोटे भाई कृष्ण को साथ लेकर शूरवीर बलभद्र विरुद्ध राजाओंपर  
आक्रमणकर रंगभूमिमें आखड़े हुए ॥ ४९३ ॥ जिनमें अतुल बल है जो किसीसे उलंघन न किये जा सकें ऐसे शत्रुरूप  
मत्त हाथियोंके घात करनेके लिये क्रोधित हुए सिंहके समान हैं, जिनका पदस्थ माननीय है और वदीजन सदा जि-  
न्हें नमस्कार करते हैं ऐसे कृष्णके समीप वीर लक्ष्मी अयना सत्र अत्रराग प्रगटकर वद्धत शीघ्र आ उपस्थित हुई थी ॥  
४९४ ॥ श्रीकृष्णके समीप श्रेष्ठगीर लक्ष्मी तो दूतीके समान आ ही गई थी परंतु आधे भरतक्षेत्रकी लक्ष्मी चिर-  
कालसे प्राप्त हुए पतिके समान विजयकी एक स्थान ऐसी कृष्णकी दाहिनी भुजाको प्रेमसे भरे तरल कटाक्षोंसे  
देखती थी ॥ ४९५ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीनेमिनाथके चरित्रमें  
श्रीकृष्णके विजयका वर्णन करनेवाला यह सत्चरित्रा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

मात्राधित्तवृत्तप्रवीणाः । सतत्कृतनिर्गोयद्रोगमलैरमलैरविकलज्वलम मर्षंभानिनीजाः ॥ ४८८ ॥ शिखरचरणनिवेगो बभ्रसारास्त्रिबन्धो गुञ्जगरीबन्धि-  
बाधी सुष्टिसमायिमध्य । कठिनप्रभुलक्षः स्थूलनीलाद्रिगुणश्चिगुणितनिजमूर्तिर्द्वैतसर्पादुदुरीक्ष्यः ॥ ४८९ ॥ उन्नतियलितनेत्रो निष्कुरावदमुष्टं परि  
णतक्राणो धो मधुसचारदधः । मृदाभशानिर्विभो नदसुनुः शितः सन् भयमवददसण प्रेतनाशय्य वौकः ॥ ४९० ॥ स्त्रीव शौर्यमविकल मिलिन बलं वा  
रेदुःसमस्तमपि सहतिमेथि वद्धा । मिहाकृतिः न महसाकृतसिंहनादो रंगादलघत नमोग्गमगण वा ॥ ४९१ ॥ आपल स्वादरातिवदूवदमादपादपा-  
तामिघातवलिताचलसधिवधः । वलगन् मुहुः परिगरन् प्रतिजुभमाणनिर्दूरजितगुर्जा बलयन्मुद्रां ॥ ४९२ ॥ क्रुद्ध कटीद्वितयपार्श्वविलम्बितवज्रो  
नियुद्धकुशल प्रतिमल्लमुग्र । चाणूर्यमद्रिखिलरोधतमापततमाह्वय मिहवदिय सहसा बगते ॥ ४९३ ॥ हृष्यन् रुधिरोद्धनोप्रनयनो योद्धुः स्वय मल्लतां  
पतली धी, तथा वक्षःस्थल बद्धन ही कठिन और बड़ा था । वे स्थूल नील पर्वतके समान ऊंचे थे, गजाओंके तीनों  
गुणोंरूप ही उनकी मूर्ति थी और वे अभिमानी मर्षसे भी दुरीक्ष्य ( जो देखे न जा सकें ) थे ॥ ४८७ ॥ उनके ज-  
लते हुए नेत्र चारों ओर फिर रहे थे, कठोर मुठी वधी हुई थी, उन्होंने अपनी इंद्रियोंको खूब पुष्ट किया था वे  
शीघ्रतासे पैतडा बदलनेमें चतुर थे, वज्रके समान अत्यंत उग्र थे और यमराजको भी अमह्य भय देनेवाले थे ऐसे वे  
नंदकुमार श्रीकृष्ण अखांडेमें खड़े थे ॥ ४८८ ॥ उममयय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शूरवीरताकी मूर्ति ही हों अ-  
थवा संसारका सब बल एक ही जगह इकट्ठा होकर आगया हो अथवा वेगका सब ममूह एक जगह आकर बंध गया  
हो । सिंहके आकारको धारण करनेवाले उन कृष्णने अरुस्मात् मिहनाद किया और फिर रंगभूमिसे उछलकर आं-  
गनके समान आकाशको उल्लंघन किया ॥ ८९ ॥ फिर आकाशमें वज्रके समान जमीनपर आये, उनके पैर पड़नेकी  
चीटसे निश्चल संयोगिके बंध भी हिल गये, वे बार २ गर्जने लगे, दौड़ने लगे और लंबी तथा फैली हुई सिंदूरसे  
रंगी हुई श्रुनाओंको इधर उधर चलाने लगे ॥ ९० ॥ उस समय वे क्रोधित होरहे थे, कमरके दोनों ओर पीला  
वस्त्र पीली लोपोटी पहिने थे, और लडनेमें अत्यंत निगुण, उग्र और पर्वतकी शिखरके समान ऊंचे ऐसे आये हुये  
हाथीके समान चाणूर नामके प्रतिमल्लको बड़ी शीघ्रतासे मारकर वे सिंहके समान सुशोभित होरहे थे ॥ ४९१ ॥  
इसमकार विजयी कृष्णको देखकर क्रोधके कारण रुधिर भरजनिसे ( लाल होजानेसे ) जिसके नेत्र विशाल हो रहे हैं  
ऐसा उग्रसेनका पुत्र कंस पूर्व जन्मके वैरके कारण मल्लवन कर आया परंतु कृष्णने उसके दोनों पैर पकड़कर छोटे  
अंडेके समान आकाशमें फिराया और यमराज महाराजके समीप ले जानेके लिये उसे जमीनपर दे पटका ॥ ४९२ ॥

यद्विचित्रं ॥ ४७९ ॥ स्वतेन्य समुदायेन सनौकैश्च तस्मिन् । सीरपाणि समुत्थाय कृतदो स्फालमन्थनिः ॥ ४८० ॥ कृष्णेन सह रंग वा समंतात् स  
परिभ्रमन् । कस नाशयितु कालस्तवेत्याख्याय निर्गतः ॥ ४८१ ॥ तदा कसाक्षया विष्णुविधेया गोपमूनुव । दर्विणो भुजमास्फाल्य धृतमल्लपरिच्छदा ॥  
४८२ ॥ भ्रवणाद्दिवादित्रचटुलचनिसगताः । क्रमेणैषेपविनिक्षेपाः प्रोत्रतासद्रोक्षधुराः ॥ ४८३ ॥ पर्यायनर्तितप्रक्षयभूमा भीषणाऽवा । निवर्तनीः  
शतावर्तनैः सभ्रमणवर्गनं ॥ ४८४ ॥ हर्जनैः समवस्थानर्ननैश्च करणैः स्फुटैः । रंगाभ्यर्णमलकृत्य तस्यैर्नमनोहराः ॥ ४८५ ॥ प्रावृत्ता कसमल्लाश्च चाणप्रमुखा-  
स्तथा । रंगाभ्यासं समाकम्य विक्रमैकसाः स्थिताः ॥ ४८६ ॥ मध्येरंगमुद्रात्तचित्तविसरो वीरोरुमल्लप्रणी प्रागेव प्रतिमल्लयुद्धविजय प्राप्येव सीप्रद्युति ।  
भास्वत च दियोवतीर्णमधुना योद्धु गत मल्लता जेष्यामीति विवृद्धविक्रमस संभावयन्स स्वय ॥ ४८७ ॥ घनधृतपरिगनो वदकेशोविकूर्च सहजमसृण  
मारनेका समय है ” ऐसा कृष्णसे कह कर बाहर निकल गये ॥ ४७५-८१ ॥ इसके बाद कंसकी आज्ञा से अभिमानी  
कृष्ण आदि गोपोंके पुत्र मल्लोंका भेप बनाए भुजाएं ठोंकते हुए आए ॥ ४८२ ॥ उस समय कानोंको प्रसन्न करनेवाले  
बाजे बज रहे थे और उनकी चंचल ध्वनिके साथ साथ वे मल्ल लोग अपने पैर उठाते रखते जाते थे अपने उठे हुए  
कंधों से वे कुछ गर्विष्ठ हो रहे थे ॥ ४८३ ॥ वे लोग लौट कर देखते हुए भोंहें नचाना, भीषण शब्द करना,  
सैकड़ोंबार इधरसे उधर और उधरसे इधर आना जाना मंभ्रमके साथ गर्जना, दौड़ना कूदना चुप चाप  
वैठना तथा और मी अनेक तरहके कामकर रंगभूमिको सुशोभित करते हुए लोगोंके नेत्रोंको मनोहर जान पड़ते  
थे ॥ ४८२-४८३ ॥ इतनेमें ही पराक्रम ही जिनका एक रस है ऐसे २ चाणूर आदि कंसके मल्ल मी उठे और रंग-  
भूमिके चारों ओर आकर बैठ गये ॥ ४८४ ॥ उससमय रंगभूमिमें खड़े हुए कृष्ण बड़े ही अच्छे जान पड़ते थे । उन-  
के चित्तका विस्तार बहुत बड़ा था, वे शूरवीर और बड़े बड़े मल्लोंमें मुख्य थे, प्रतिमल्लसे युद्धकी विजय पानेके म-  
मान उनकी कांति पहिले ही से देदीप्यमान हो रही थी उनका पराक्रमरूपी रस बहुत बढ़ रहा था और वे अपने  
लिये ऐसी संभावना कर रहे थे मानो युद्ध करनेके लिये मल्ल बनकर आकाश से उतरकर आए हुए सूर्यको मी में  
उससमय अवश्य नीतंगा ॥ ४८५ ॥ उससमय उनके वस्त्र बहुत कड़े बंधे थे, केश बंधे हुए थे, दाढ़ी मूंछ थी नहीं  
स्वभावसे ही चिकना शरीर था, वे चित्तकी वृत्तिमें बड़े प्रवीण थे, अमल्लोंके समान गोप मल्लोंसे वे सदा लड़ते  
रहते थे और वे सदा जीतते थे, इसतरह उनका पराक्रम सचपर प्रगट था ॥ ४८६ ॥ उनके पैरका टिकाव स्थिर था,  
हृदिदयोंका बंधन वज्रके समान था, झुजारूपी लोहेके डंडे अवाध थे, मध्यभाग अर्थात् कमर मुठीमें समाने लायक



स्त्विति ॥ ४६१ ॥ पीतांबरं समुद्रपुल जलांश्च मधुसूदनः । एकदमास्फलयामास पक्षिकेणैव पक्षिराट् ॥ ४७० ॥ वज्रपातयितासहस्रपातादिमीतवाह । पूर्वपुण्योद्यान्वासास्य फणीद्रोहदयतामगात् ॥ ४७१ ॥ हरिरेयेष्टयज्ज्वानि समादाय निजद्विष । समीपं प्रापयन्तानि दृष्ट्वा रिं दृष्टिवानिव ॥ ४७२ ॥ नदगोप-समीपेस्थान्मन्दब्रुषिति निश्चयात् । कदाचिदनदगोपाल मण्डयुद्ध निरीक्षितु ॥ ४७३ ॥ निजमल्लैः सहगच्छेदिति संदिशति स्म सः । सोपि कृष्णादिमिल्ले सह प्रादिक्षरक्षय ॥ ४७४ ॥ वन्निमगज वीतबधन यमसन्निभ । भद्रगधसमाकृष्टरुद्रद्रुमरसेवित ॥ ४७५ ॥ नियमच्युतभूषाकुमारं वा निरंकुश । रदनाघातनिर्भिक्षुधाभवनमिदित्कि ॥ ४७६ ॥ आघातत विलोक्यासौ प्रतीत्योत्पद्य मीपणः । रदमेक कुमारस्त तेनैव समताडयत् ॥ ४७७ ॥ सोपि मी-तो गतो दूरं ततश्चुष्टु हरिभृश । जयोनेन निमित्तेन कुटुम्बभक्तकृतः ॥ ४७८ ॥ इति गोपान् समुत्साह्य प्राविशत्कसससद । वसुदेवमहीनोपि कसाभिप्रा-

की शिला वनाता हं ऐसा विचार कर वे जलसे भीगा हुआ अपना पीतांबर उठा कर उस फणा पर धोने लगे तब वह नागराज वज्रपातके समान उस पीतांबरके गिरनेसे छोटे पक्षीके समान डर गया और कृष्णके पूर्व पुण्यकर्मके उद-से वह नागराज अहश्य हो गया ॥ ४६५-४७१ ॥ तदनंतर कृष्णने इच्छानुसार कमल तोड़े और अपने शत्रुके पास पहुंचा दिए, उन कमलोंको देखकर कंसने शत्रुको देखनेके समान ही मान लिया और निश्चय कर लिया कि मेरा शत्रु नंदगोपके समीप ही है । किसी एक दिन कंसने नंदगोपालको समाचार कहला भेजा कि तुम अपने मल्लोंके साथ मल्ल युद्ध देखनेके लिये आओ । इन समाचारोंको सुन कर नंदगोप भी कृष्ण आदि सब मल्लोंको लेकर निर्भय हो मथुराको चले ॥ ४७२-४७४ ॥ नगरमें घुसते ही कृष्णकी ओर एक हाथी दौड़ा, वह हाथी मदोन्मत्त था, यमके समान था, बंधन तोड़ कर आया था, उसके मदकी गंधसे गुजार करते हुए अनेक भ्रम आकर उसकी सेवा करने थे अपने नियमोंसे च्युत हुए राजकुमारके समान निरंकुश था और अपने दातोंकी चोटोंसे चूनासे सफेद हुई दीवालों को तोहता आ रहा था उसे अपनी ओर दौड़ा हुआ देखकर भयंकर कुमार कृष्णने खड़े होकर उसका एक दांत तोड़ दिया और फिर उसी दांतसे उसे मारने लगे जिससे वह हाथी डरकर दूर भाग गया । यह देखकर नंदगोप बहुत ही संतुष्ट हुए और कहने लगे कि हम लोगोंकी जीत यदि होगी तो इसीसे होगी इस तरह सब कुटुम्बमें प्रगट कर और दूसरे गोपोंको उत्साहित कर वे कंसकी सभामें पहुंचे । उस समय राजा वसुदेवने भी कंसके अभिप्राय जान लिये और अपनी सब सेना सजा कर एक जगह आ खड़े हुए । वलभद्र उठ कर अपनी भुजाओंके टोंकनेकी आवाज करते हुए कृष्णके साथ रंगभूमिमें पहुंचे और चारों ओर इधर उधर घूमने लगे । तदनंतर वे 'यह तुम्हारा कंसके

त ॥ ४६१ ॥ नंदगोपस्य पुत्रो मोगः यत्नतः प्रितयकर्मकृतः । इत्यन्वेष्टुं गतौ सम्यक् प्राणितेनाप्यनिधितः ॥ ४६२ ॥ सहस्रपत्रमभोजमन्यदहीद्विरहितः । प्रीयतामिति प्रोक्तो राजा जिज्ञासया रियो ॥ ४६३ ॥ युत्वा तद्रोपतिः शोकादकुलः किल भूयुजः । प्रजानां रक्षितारस्ते कष्टमय हि मारकाः ॥ ४६४ ॥ इति निर्बिण यागंगराज विष्टिर्मेदसी । त्वयैवावुरुहण्युप्रसर्गरक्षणि भूयुज ॥ ४६५ ॥ नयानीत्यब्रवीत्कृष्णः सोपि किं वात्र दुष्करं । नेष्यामीति महा-  
नागसरः क्षिप्रतरं ययौ ॥ ४६६ ॥ अविशच्च विनिःशक तद्वात्या कोपवैपितः । स्वनिश्वासमुद्भूतञ्चलद्ववालाकणान् फ्रित् ॥ ४६७ ॥ भूडामणिप्रभाभा  
सिस्फटाटोपभयकरः । जलज्जिह्वाद्वयः स्फूर्जद्दीक्षणात्युग्रवीक्षणः ॥ ४६८ ॥ प्रत्युत्थाय यमाकारो निगरीदुं तमुद्यतः । सोपि मद्भूतसन्त्येषा स्पटा बुद्धशिला-

तथा आश्चर्य करने लगे तथा अकस्मात् आकर उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण आदि देकर कृष्णका यथायोग्य आदर  
सत्कार किया ॥ ४६० ॥ तत्र कृष्णके पिता नंदगोपने समझ लिया कि इस कृष्णके प्रभावसे अब हमें किसी बातका  
डर नहीं है इसलिये वे अपने ब्रजके पहिले स्थानमें आ पहुँचे ॥ ४६१ ॥ इधर तीनों रत्नोंको सिद्ध करनेवालेको  
दूढ़नेके लिये जो लोग निकले थे उन्होंने तलाश कर कंससे जा निवेदन किया कि नंदगोपके पुत्रने ही ये तीनों काम  
एक साथ किये हैं । ऐसा निश्चय हो जाने पर कंसने शत्रुको जाननेकी इच्छासे नंदगोपको कहला भेजा कि नागराज  
जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा एक हजार दलवाला कमलका फूल लाकर दो ॥ ४६२-४६३ ॥ यह सुन कर नंदगोप  
शोकसे बहुत ही व्याकुल हुआ और कहने लगा कि राजा लोग प्रजाकी रक्षा करनेवाले होते हैं परंतु दुःखके साथ  
कहना पड़ता है कि वे ही राजा लोग आज प्रजाको मारनेवाले बनगये हैं ॥ ४६४ ॥ इस तरह उदास होकर कृष्णसे  
कहने लगे कि मेरी तो यह दशा है अब सर्प जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा कमल तूही लाकर राजा कंसको दे । इसके  
उत्तरमें कृष्णने कहा कि यह क्या कठिन काम है मैं अभी ले आऊंगा यह कह कर वे महानागोंसे सुरक्षित सरोवर  
पर शीघ्र ही गये और निशंक होकर उसमें कूद पड़े । उन्हें आता हुआ देखकर यमराजके आकारका एक नागराज  
खड़ा होकर उन्हें निगलनेके लिये तैयार हुआ । उस समय वह नाग क्रोधसे कंप रहा था, अपने निश्वाससे उत्पन्न  
हुई दैदीप्यमान अधिक कणाओंको फेंक रहा था मस्तक पर लगी हुई चूडामणि रत्नकी कांतिसे प्रकाशमान अपना  
फणा उठाये था और उससे वह बहुत ही भयंकर जान पड़ता था, उसकी दोनों जिह्वएँ चंचल हो रही थीं और  
प्रकाशमान नेत्रोंसे उसकी दृष्टि बड़ी ही उग्र हो रही थी । कृष्णने सोचा कि मैं इस फणाको अभी अपने कपड़े भोजे

नागनिवासरसस्तटे । विना कृष्णेन चासुसादानेनं सरसं परैः ॥ ४५९ ॥ अवाक्यमिति गोपालकुमारोक्त्या महीपति । तमाहूय बल तत्र यथास्थानं  
स्वीकृतम् ॥ ४५० ॥ क गम्यते त्वया राज्ञिति कृष्णेन भाषितः । स्वर्भानुर्गुरुरायानप्रयोजनमबुधत ॥ ४५१ ॥ श्रुत्वा तन्कर्म किं कर्तुं स्यात्तदम्बुद्वि-  
धैरपि । इति कृष्णपतिप्रदने वीक्ष्य पुण्याधिकं शिशु ॥ ४५२ ॥ न केवलोयमित्येहि शक्येति तस्य कर्मण । इत्यादाय स्वपुत्रं वा स्वर्भानुं तत्पुरीमगात् ॥  
४५३ ॥ कस्य यथा हेमालोक्य तत्कर्मकरकामं बहून् । भग्नमानाश्च सवीक्ष्य कृत्वा भानु भमीग ॥ ४५४ ॥ युगपत्त्रितयं कर्म समाप्तिमन्यद्वरि । तत-  
स्वर्भानुनादिष्टो दिष्ट्या कृष्णो गमद्वज ॥ ४५५ ॥ तच्छ्रुत्वा भानुनेवैति कैश्चित्कसो निव्रोधितः । कैश्चित् भानुं वान्यकुमारोति रक्षकैः ॥ ४५६ ॥ तच्छ्रुत्वा-  
न्विष्यतां सोम्यस्तस्मै कन्या प्रीयते । स कस्य किं कुल कस्मिन्निति राजाऽब्रवीदिदं ॥ ४५७ ॥ अवधार्य स्वपुत्रेण सम्यक्कर्मसमाधत्त । गोमडलेन भीत्वा-  
मा नदगोपं पलायितः ॥ ४५८ ॥ शैलस्तमं समुद्रं तत्र सर्वेऽन्यदा गता । नाशकुर्वन् समेत्येते कृष्णेनेव समुद्रगत ॥ ४५९ ॥ प्रहृष्य सहसा तस्मा-

पणको बुलवाया और फिर कृष्णकी सहायतासे अच्छीतरह निवास किया ॥ ४४८-४४९ ॥ तदनंतर कृष्णने पूछा कि  
ते राजन् आप कहाँ जा रहे हैं । इसके उत्तरमें राजा स्वर्भानुने मथुरा जानेका सब प्रयोजन समझाया ॥ ४६० ॥  
यह सुनकर कृष्णने फिर पूछा कि क्या इस कामको हम सरीखे भी कर सकते हैं ? कृष्णने इसमकार पूछनेपर तथा  
उसे पुण्याधिकारी बालक समझकर कहा कि यदि इस कामको कर सकते हो तो चलो हमप्रकार कहकर पुत्रके समान उस  
बालकको साथ ले कर राजा स्वर्भानु मथुरा नगरीमें पहुँचे ॥ ४६१-४६३ ॥ स्वर्भानुने यथा योग्य रीतिसे कंसके  
दर्शन किये फिर वे तीनों रत्न सिद्ध करनेके लिये निकले । वहाँ पर अनेक सिद्ध करनेवालोंका भग्न होते देखकर  
कृष्णने स्वर्भानुके पुत्र भानुको पास ही खड़ा रख कर तीनों काम एक साथ कर डाले । तदनंतर राजा सुभानुने  
आँखके ईशारेसे आज्ञा दी आज्ञा पाते ही कृष्ण वहाँसे चलकर व्रजमें आगये ॥ ४४-५५ ॥ इसके बाद कितने ही  
लोगोंने कंसको जाकर यह समझा दिया कि ये तीनों रत्न भानुने सिद्ध किये हैं परंतु कितने ही रक्षक लोगोंने यही  
कहा कि भानुने नहीं किंतु किसी दूसरे कुमारने सिद्ध किये हैं ॥ ४५६ ॥ यह सुन कर राजा कंसने कहा कि उस  
कुमारको ढूँढो उसे मैं अपनी कन्या दूँगा वह किसका पुत्र है किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और कहाँका रहनेवाला  
है ॥ ४५७ ॥ पुत्रने यह काम तो अच्छा किया यही सोच कर नदगोप अपनी सब गायोंके साथ कृष्णको लेकर  
हर कर भाग गये ॥ ४५८ ॥ किसी दूसरे दिन बहुतसे लोग एक खंभ उखाड़नेको गये थे परंतु वे उखाड़ न सके  
इसलिये यह देख कर कृष्णने आकर वह खंभ उखाड़ दिया ॥ ४५९ ॥ उसे देखकर वे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए

झिल जगत् । क्षारातिवर्द्धनाभोजरात्रिसंकोचकारिणी ॥ ४३७ ॥ तत्पुरुषाणामहेतुभूतजनालयातिके । शक्रदिशेवतागारे हरे पुण्यातिरेकतः ॥ ४३८ ॥  
 सर्पशय्या धनु शंखो रत्नत्रितममुष्यौ । देवतारक्षिता लक्ष्मीं भाविनीमस्यमूचयत् ॥ ४३९ ॥ समयस्ताति दृष्ट्वाह्यद्वरण मधुरापति । प्रादुर्भवेनमेतेषां  
 किं फल कथयेति त ॥ ४४० ॥ राजधेतानि शास्त्रोक्तविधिना साधयेत्स यः । राज्यं चक्रेण संरक्ष्यमाप्स्यनीत्यभ्यधात्से ॥ ४४१ ॥ कंसस्तद्वचन श्रुत्वा स-  
 तिसाधयिषुः स्वय । ताम्यशक्तो मनाक् खिन्नो विरतः साधनोद्यमात् ॥ ४४२ ॥ अधिरुह्य नागशय्या शलमेककरेण यः । पुरयिद्वयि यश्चाप चारोपयति  
 देहया ॥ ४४३ ॥ परेण तस्मै भूमता स्वधुता दास्यतीति । परिज्ञातु साशक्तो घोषणा पुर्यंकारयत् ॥ ४४४ ॥ तद्वर्नाश्रवणाद्विश्वमहीशाः सहस्रगमन् ।  
 तथा राजगृहत्कसैयधुनो भानुसत्तिभं ॥ ४४५ ॥ स्वर्गधुर्भुजनामान स्वसूनुं सर्वसंभवा । समादाय समागच्छन्निवेष्टुममिलाषवान् ॥ ४४६ ॥ गोदावनमहा-  
 समय जो जिनालय सबसे पहिले बनाया गया था उसके समीप जो पूर्वदिशाके अविष्ठाताके देवमंदिरमें कृष्णके पुण्य  
 कर्मके उदयसे मर्पशय्या ( नागशय्या ) धनुष और शंख ये तीन रत्न उत्पन्न हुए । उन तीनों रत्नोंकी देवलोग रक्षा  
 करते थे और वे तीनों ही रत्न कृष्णकी होनहार लक्ष्मीको सूचित करते थे ॥ ४३८-४३९ ॥ उन्हें देख कर मथुराका  
 राजा कंस कुछ डरने लगा और बरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछने लगा कि इनके प्रगट होनेका क्या फल है सो  
 कहो । इसके उत्तरमें वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जो कोई इन्हें सिद्ध करेगा  
 उसे चक्रके द्वाग सुरक्षित राज्य प्राप्त होगा ॥ ४४०-४४१ ॥ यह सुन कर कंस स्वयं उन्हें सिद्ध करनेकी इच्छा कर  
 ने लगा परंतु उन्हें सिद्ध कर न सका इसलिये कुछ खेद खिन्न होकर उस कामसे विरक्त हुआ उसने सिद्ध करना  
 छोड़ दिया ॥ ४४२ ॥ तब उसने संशुक्ति होकर सिद्ध करनेवालेको जाननेके लिये नगरमें यह घोषणा करादी कि  
 जो कोई अन्य मनुष्य इस नागशय्या पर चढ़ कर एक हाथसे इस शंखको पूरेगा ( बजावेगा ) और फिर लीलामात्रमें  
 ही इस धनुषको चढ़ा लेगा उसे राजा कंस अपनी पुत्री देगा ॥ ४४३-४४४ ॥ यह समाचार सुन कर संपारके सब  
 राजा लोग बड़ी शीघ्रतासे आए तथा राजगृह नगरसे कंसका साला स्वर्भानु सूर्यके समान अपने भानु नामके  
 सहित बड़ी विभूति लेकर मथुरा जाने के लिये आया उसने गोदावनमें महानागोंके निवास स्थान-  
 को देखकर सरोवरके किनारे डेरा दिये लोग जब सरोवरमेंसे जल लेने लगे और वहाँके सूर्य काटनेको  
 दौड़े तब उन्होंने गोपाल कुमारोंसे पूछा कि इसमेंसे जल किस तरह लेना चाहिये । इसके उत्तरमें  
 गोपाल कुमारोंने कहा कि कृष्णके बिना इसमेंसे और कोई जल नहीं ले सकता । यह सुनकर राजा स्वर्भानुने कृ-

माफलचेष्टितात् । पुत्रैवमाश्रित लेखांतरसंपादकादिति ॥ ४२६ ॥ भूयो विचारयामास तत्वात्येतन्मशेषधुरा । सोऽन्वतिअत्रिवार्यते नावदाने महोजसः ॥ ४२७ ॥ श्रुत्वा तत्सौख्यं ह्यात जनजल्यै समुत्सर्का । गोमुखीनामेषेयोपवासव्याजमुगागतौ ॥ ४२८ ॥ देवकी बहुदेव्य विभूला सह सौरिणा । व्रत गोदावन यांतां परिवारपरिकृतां ॥ ४२९ ॥ ततः कृष्णं समालम्ब्य स्थितवत महाबलं । दर्पिणीं शृणुमैश्वर्य ग्रीवा भक्त्या तदैव तौ ॥ ४३० ॥ विलोक्य गन्धमात्यादिमाननानतरं पुनः प्रीत्या भूयतः स्नातः कुर्वेला द्राक् प्रदक्षिण ॥ ४३१ ॥ देवक्याः स्तनयो शातकुम्भकुर्मामयोः पयः । निर्गलन्य पतन्मूर्ध्नि कृष्णस्यैवामिषेचन ॥ ४३२ ॥ वीरपाणिस्तदन्वीक्ष्य मन्त्रमेदमयान्वित । उमवासपरिश्रान्ता मूर्छितेत्यवदस्युवीः ॥ ४३३ ॥ कुम्भपूर्णं भोभिस्तामभ्यर्षित्व समतत । ततो ब्रजार्द्रिपादानामपि तथोभयपूजन ॥ ४३४ ॥ कृत्वा कृष्णं च गोपालकुमारैर्जातसंमदै । भोजयित्वा स्वयं चात्र भुङ्क्ता स्तामभ्यर्षित्व समतत । ततो ब्रजार्द्रिपादानामपि तथोभयपूजन ॥ ४३५ ॥ स कदम्बिन्महावर्षागते गोवर्द्धनाढ्य । हरिः पर्वतमुत्पुल्य चकार वरण गवा ॥ ४३६ ॥ तेन उद्योस्तेन तत्कीर्तिर्वाप्नोति स्म पुरमविशतां ॥ ४३७ ॥

उस कामको वे अवश्य करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महा प्रतापी लोग किये दूधे कामोंसे कभी नहीं रोके जा सकते ॥ ४२५-४२७ ॥ इस प्रकार लोगोंके मुखसे देवकी और वसुदेवने भी कृष्णका पौख सुना तब उन्हें कृष्णके देखनेकी इच्छा हुई और वे दोनों बलभद्र तथा सब यरिवारके साथ साथ गोमुखी नामके उपवासके बहानेसे बड़ी विभूति लेकर गोदावनमें आए ॥ ४२८-४२९ ॥ आते ही उन्होंने कृष्णको देखा उस समय कृष्ण एक बड़े भारी बलवान और उन्मत्त बलकी गर्दन पकड़ कर लटक रहे थे और उन्होंने उस बलकी गर्दन तोड़ दी थी । ऐसे कृष्णको देख कर देवकीने पहिले तो गव माला आदिसे उनकी मानता की, बड़े प्रेमसे आभूषण पहिनाए और फिर प्रदक्षिणा दी । उसी समय देवकीके सुवर्णके कलशोंके समान दोनों स्तनोंसे दूध निकलने लगा और अभिवेक करनेके समान कृष्णके मस्तक पर पड़ने लगा ॥ ४३०-४३२ ॥ बलभद्र उसे देख कर सोचने लगे कि इस तरह भेद खुलनेका डर है यही सोच कर वे बुद्धिमान् कहने लगे कि उपवास करनेके खेदसे यह मूर्छित हो गई है ॥ ४३३ ॥ तदनंतर जल से भरे दूध कलशोंसे सब ओरसे कृष्णका अभिषेक किया फिर कनके सब लोगोंका यथायोग्य आदर सत्कार किया, बड़ी प्रसन्नतासे गोपालकुमारोंके साथ कृष्णको भोजन कराया, आप भोजन किया और फिर वे सब अपने मथुरा नगरको चले गये ॥ ४३४-४३५ ॥ किसी एक दिन व्रजमें पानी बहुत बरसा तब कृष्णने गोवर्द्धन नामका पर्वत उठा कर उसके नीचे गार्योंकी रक्षा की ॥ ४३६ ॥ इस कामसे चांदनीके समान कृष्णकी कीर्ति सब संसारमें फैल गई और वह शत्रुओंके मुखरूपी कमलोंके समूहको संकुचित करने लगी ॥ ४३७ ॥ किसी एक दिन मथुरा नगर बसनेके

नोपायेन सलासग्रीः । तद्वाक्याल्लोपुष्पा काव्यस्वात्म्यं देवता ॥ ४१५ ॥ शनयोर्वैलरारीर्द्धं तत्पानसमये भवन्नाह । आपकायत साङ्ख्य तरङ्गीर्द्धं नो-  
 द्रुमक्षमा ॥ ४१६ ॥ शकटाकारमादाय पुनरप्यपि देवता । बालस्योपरिधापंती पादभङ्गां तेन सां हता ॥ ४१७ ॥ अन्येयुर्नंदगोपस बध्ना कञ्च मु-  
 खं । भगच्छेज्जलमानेतुमन्यगच्छत्तयाव्यसा ॥ ४१८ ॥ परिसीदयितुं बाल तदा ककुभपादयो । भूत्वा श्रितौ क्षुरीमेधै सम्कादुदगाटयत् ॥ ४१९ ॥  
 तच्चक्रमवेसायां तालद्वयं हृत्तिमिधता । एका फलानि तन्मूर्द्धं प्रपानयितुमुपाया ॥ ४२० ॥ राक्षसीरूपमापन्नं न दण्डपरागता । शरणे रासभी विष्णुर्द्धि-  
 र्हीवाद्भूत् स त द्रुम ॥ ४२१ ॥ अन्येयुर्देवकन्यापि विह्वल्य बुरगाकृति । तं हतुं प्रस्थिता तस्पाशापहन् वदनं दग्ध ॥ ४२२ ॥ आहतुं न समर्थः स्म  
 इत्युक्त्वा समं देवताः । कसाभ्यासं समागत्य विलीना इव विद्युत् ॥ ४२३ ॥ शक्यो देवतानां न निस्साराः पुण्यवज्जने । आयुयानामिदं विदास्य पर-  
 स्मिन् दृष्टकर्मणां ॥ ४२४ ॥ अरिष्टाख्यं क्षुरोन्नेयुर्विक्रिन्तु तत्पराक्रम । आयातकृष्णं दृग्कारस्तद्वृषीवामन्नोन्नत ॥ ४२५ ॥ तस्य मातामिनर्जनं विद-

इसीतरह दूसरी देवी गाडीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर आई परंतु कृष्णने वह लात मारकर तोड़ दी ॥ ४१७ ॥  
 किसी दूसरे दिन नंदगोपकी स्त्री कृष्णकी कमर एक ऊखलसे बांधकर स्वयं जल लेनेके लिये गई परंतु कृष्ण फिर  
 भी उसे तोड़कर उसके पीछे २ गये ॥ ४१८ ॥ उसी समय बालकको पीडा देनेके लिये दो देवियोंने आकाशमें उड़ने  
 वाले दो वृक्षोंका रूप बनाया परंतु कृष्णने उन दोनों वृक्षोंको जड़से ही उखाड़कर फेंक दिया ॥ ४१९ ॥ उन वृक्षोंके  
 फेकते समय एक देवीने तो तालका रूप बना लिया और दूसरी फल बनकर कृष्णके मस्तकपर पड़नेके लिये तैयार  
 हुई ॥ ४२० ॥ तीसरी देवीने गधीका रूप बनाया और कृष्णको काटनेके लिये आई परंतु कृष्णने उस गधीके दोनों  
 पैरोंपर उन दोनों वृक्षोंको दे पट्टा ॥ ४२१ ॥ किसी दूसरे दिन एक देवी घीडेका रूप बनाकर कृष्णको मारनेके लिये  
 आई परंतु कृष्णने क्रोधमें आकर उसका मुद्द खूब ही ठोका ॥ ४२२ ॥ अंतमें वे सातों देवियां कंसके पास गईं और  
 हम उसे मार नहीं सकतीं ऐसा कहकर विजलीके समान अदृश्य हो गईं ॥ ४२३ ॥ जिसप्रकार दूसरी जगह अपना काम  
 दिखावेवाले शस्त्र वज्र नामके इद्रके शस्त्रपर निष्फल हो जाते हैं उसीप्रकार पुण्यवान लोगोंपर देवोंकी शक्तियां  
 भी निस्सार हो जाती हैं ॥ ४२४ ॥ किसी दूसरे दिन अरिष्ट नामका एक देव कृष्णका पराक्रम देखनेके लिये  
 वैलका रूप धारणकर आया परंतु कृष्ण उसकी गर्दन तोड़नेके लिये ही तैयार हो गये यह देखकर माताने  
 ललकार कर उस वैलको छुड़ाया तब कहीं वे उस चेष्टा रहित बेलमें अलग हुए । इस तरह वह यक्षोदा ऐसे २ अनेक  
 बरेल्य उत्पन्न करनेवाले कायोंसे कृष्णको निवारण करने लगी परंतु कृष्ण भदोन्मेष थे जिस कामको वह रोकती थी

स्वप्रियायै श्रियं प्रति । कसोपि देवकीं क्रीत्स्वदपत्यममूयत ॥ ४०४ ॥ इति श्रुत्वा समागत्य तां व्यषाद्भ्रमनाविक्तां । भुविगेहे प्रयत्नेन मात्रा सारवभिन-  
 दिता ॥ ४०५ ॥ सा सुवतार्यिकाभ्यर्गो शोकात्स्वविकृतांकुतेः । गृहीतवीर्या विध्याद्रौ स्थानयोगमुपश्रिता ॥ ४०६ ॥ देवतेति समभ्यर्च्य गतेषु वनदति-  
 बु । व्याघ्रेण भक्षिता मधु स्वर्गलोकमुपागमत् ॥ ४०७ ॥ अपरस्मिन्दिने व्याघ्रैर्दृष्ट्वा हस्तांगुलित्रय । तस्या क्षीरागरागादिजित देशवासिन ॥ ४०८ ॥  
 मुहुःस्मानः स्वय चैतदायौतौ विध्यवासिनी । देवतेति समभ्यर्च्य तदारभ्या प्रमाणयन् ॥ ४०९ ॥ अथाकस्मात्सुरे तस्मिन्महोत्पाता विजृम्भिताः । वरु-  
 णाह्वय निमित्तिन्न द्राक्कम परिपृष्टवान् ॥ ४१० ॥ किमेतेषा फलं ब्रूहि यथार्थमिति सोब्रवीत् । तब शत्रु समुत्पन्नमन्विष्याहृत पापिन । इत्यसौ प्रेषया  
 द्वाकार्ये महीनाय वितयत चिरंतनाः । देवतास्तमवोचस्ता किं कतव्यमिति श्रिताः ॥ ४१२ ॥ शत्रु मम समुत्पन्नमन्विष्याहृत पापिन । इत्यसौ प्रेषया  
 मास ताः सप्तपि तथात्त्विति ॥ ४१३ ॥ आगमत्पूजना तासु बाधुदेव विमगः । विज्ञायादाय तन्मातृरूपं ह्युमुरागता ॥ ४१४ ॥ विषस्तनपयं पाय-  
 नीचे जलघरमें बड़े प्रयत्नसे घायके द्वारा उसे बड़ा किया ॥ ४०९ ॥ बड़ी होनेपर अपना विकृत शरीर देखकर  
 शोकसे उसने सुन्नता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण काली और फिर वह विंध्याचल पर्वतपर एक जमाह रहने  
 लगी ॥ ४०६ बनमें रहनेवाली दासियां उसे देवता ममझकर पूजने लगीं । किसी एक दिन वह किसी बाघने खाली  
 इसलिये वह तो मरकर स्वर्ग चली गई परंतु दूसरे ही दिन वहाँके मीलोंने उसकी केवल तीन उंगलियां देखी इसलिये  
 वहाँके रहनेवाले मूर्ख लोगोंने दूध शरीरका उबटन आदिसे उसकी पूजा की । उसी समयसे लेकर वे लोग विंध्यावा-  
 सिनी देवीके नामसे उसे पूजने और मानने लगे ॥ ४०७-४०९ ॥ अथानंतर-इधर मथुरा नगरमें अहममात् बहुतसे  
 उत्पात होने लगे तब कंसने वरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछा कि इनका फल क्या है सो यथार्थ कहो तब वह निमि-  
 त्तज्ञानी कहने लगा कि तेरा बड़ा भारी शत्रु उत्पन्न होचुका है ॥ ४१०-४११ ॥ इस बातको सुनकर कंसकी बड़ी  
 चिंता हुई तब पहिले जन्मके देवताओंने आकर कहा कि हे स्वामी कहिये हमारे लिये क्या काम है ॥ ४१२ ॥ तब  
 कंसने कहा कि मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है उस पापीको दूढ़कर तुम मार आओ । इस तरह उसने उन सातों देवताओं  
 को भेजा । अच्छा कहकर वे देवता भी गये । उनमेंसे पूतना नामकी देवीने विभगावधिसे बासुदेवको जान लिया ।  
 उस दुष्टिनीने माताका रूप धारणकर और स्तनोंमें विष मिलाकर उन विष भरे स्तनोंको पिलाकर कृष्णको मारनेका  
 विचार किया इसतरह वह बालकको पालन पोषण करने लगी परंतु बालक कृष्णके दूध पीते समय किसी दूसरी दे-  
 वीने आकर उन कृष्णोंको ऐसी पीटा पहुचाई जिसे वह सह न सकी और भागकर अपने घर गई ॥ ४१३-४१६ ॥



राक्षस्येष बधारास्वामिचिराभ्योचयिष्यति । दृष्ट्वापुनर्विद्वेष्युक्तो बलेन मधुराविपः ॥ ४९५ ॥ तत्रास्मिन्ति तमासीमिः प्रतोपादभ्यनंदयत् । तौ च तस्माद्वि-  
निर्गस्य यमुनां प्रापदुर्निधिः ॥ ३९६ ॥ भाविचक्रिप्रभावेन दत्तमार्गोद्विधाभवत् । सा सवर्गीश्रित कोबा नार्शत्वा वधुतां ब्रजेत् ॥ ३९७ ॥ सविस्मयो मि-  
सृज्येनां मधच्छता नंदगोपति । उष्षल्य बालिकां यजेनागच्छतमदर्शतां ॥ ३९८ ॥ दृष्ट्वा ताभ्यां कुनोभ्र रात्रा बागमन तत्र । नि मखस्येति संष्टु सप्रज-  
म्याभ्यभाबत् ॥ ३९९ ॥ मत्पिया पुत्रलाभार्थं भवतोः परिचारिका । गंधादिभिः समभ्यर्च्य श्रद्धानादभूतदेवताः ॥ ४०० ॥ आशास्य स्त्रीस्ववद्रात्रावशा-  
पत्यमवाप्य सा । सशोका रीयतामेतन्नाभ्य एवेति साव्रवीत् ॥ ४०१ ॥ तदर्पयितुमायासो ममायं स्वामिनिविति । तद्वच सम्यगाकर्ण्य सिद्धमश्मश्रयोजम ॥  
४०२ ॥ इति संतुष्य तत्सर्वमवबोध्य प्रवृत्तक । तदपत्य समादाय दृष्ट्वा तस्मै स्वगमक ॥ ४०३ ॥ भाविचक्रधरं विद्धि बलमिस्त्रमिवाय च । अनन्यविदि-  
तां गृहं तां तदद्विधाता दुरं ॥ ४०४ ॥ नंदगोपोपि त बलमादाय गृहमागतः । तुभ्य सुत महापुण्य प्रसन्ना देवता ददुः ॥ ४०५ ॥ इत्युदीर्यपयामास  
हुवे ॥ ३९६ ॥ होनहार चक्रवर्तीके प्रभावसे यमुनाने मी मार्गं दे दिया सो ठीक ही है क्योंकि समान वर्णवालेको  
देखकर ( यमुना मी काली है और कृष्ण मी काले थे ) किसके हृदयमें करुणा नहीं आती और कौन भाईचारा  
नहीं करता ॥ ३९७ ॥ उन दोनोंने आश्चर्यके साथ यमुना नदी पार की और फिर आगे चलकर बड़े यत्नसे एक बा-  
लिकाको गोदीमें लेकर आते हुये नंदगोपालको देखा ॥ ३९८ ॥ नंदगोपालको देखते ही उन दोनोंने पूछा कि हे  
भद्र आप गात्रिमें ही अकेले क्यों आ रहे हैं । इसके उत्तरमें नमस्कारकर नंदगोपाल कहने लगा कि आपकी सेवा करने-  
वाले मेरी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये एक भूत देवताकी बड़ी श्रद्धासे गंध आदि द्रव्योंके द्वारा पूजा की थी ॥ ३९९-  
४०० ॥ उस देवीने आश्वासन देकर आज रातमें ही एक कन्या लाकर दी और कहा कि इस कन्याको शोकके साथ  
उन्हें ( आपको ) दे आना ॥ ४०१ ॥ हे स्वामी उसी कन्याको रातमें ही आपके यहाँ पहुंचानेके लिये मैं जा रहा हूं-  
नंदगोपकी ये बातें सुनकर वे दोनों पिता पुत्र संतुष्ट हुए और सोचने लगे कि हमारा काम बन गया । तदनंतर उन  
दोनोंने नंदगोपालसे सब समाचार कहे उसकी पुत्रीको लेकर अपना पुत्र दे दिया और समझा दिया कि यह बालक  
होनहार चक्रवर्ती है । इसके बाद वे दोनों पिता पुत्र छिपकर बिना किसीको मालूम हुए मधुग नगरमें आये ॥  
४०३-४०४ ॥ नंदगोप मी उस बालकको लेकर अपने घर गया और स्त्रीसे कहने लगा कि उस देवताने प्रसन्न हो-  
कर तुझे बच्चा ही पुण्यवान् पुत्र दिया है । इसतरह कहकर अपनी स्त्रीको कृष्ण सोंप दिये । इधर कंसने सुना कि देव-  
कीके पुत्री हुई है । सुनते ही वह तुरंत दीहा आया आकर पहिले तो उसकी नाक काट डाली और फिर पृथ्वीके

त ॥ ३८३ ॥ देवकी च मुदा पथात्रि हृत्वा सक्ती यमान् । चरमांगानिमान् ज्ञानवता शक्रेण चोदितः ॥ ३८४ ॥ दिविजो नैगमर्षश्चो भद्रिलाख्यपुरे ल-  
का । वगिरुसुताया निक्षिप्य पुरस्तात्सुतान् सुतान् ॥ ३८५ ॥ तदा तदैव संभूतं गृहीत्वा त्रिमितानिमान् । तान् पुरस्तात्त्रिचक्षेप देवक्या गृहकृत्यवि-  
त् ॥ ३८६ ॥ यमान् सोपि गतप्राणान् क्रमात्कसं समीक्ष्य तान् । किमेसिमें गतप्राणैरभ्युत्तिसलवाक् ॥ ३८७ ॥ इति भवति साशंक शिलापे न्यपात-  
वर्दयिष्याव इति नदविशारदौ । पिता भ्राता च तद्देवकीं विहाय ततो बलः ॥ ३९० ॥ कसानवगमेनैव नंदगोपगृहे सुख ॥ ३८९ ॥ बालक  
न्ये मीकीपिका- ॥ ३९१ ॥ निगस्तस्मिरादोवो वृषभोऽभूत्तदगूत । तथा विकृतिमापन्नो तत्पुण्यामुद्वेगता ॥ ३९२ ॥ सयस्तदाप्य बालस्य चरणस्योसंगमा-  
त् । उद्व्यादितकपाट तद्वशं पुरगोपुरं ॥ ३९३ ॥ उग्रसेनस्तदलोकाय बचनस्य समव्रीत् । कवाटोदघटनं क्रोत्र करोतीत्यतिसध्रमात् ॥ ३९४ ॥ त-  
उसके उत्पन्न हुए मरे पुत्रोंको लाकर देवकीके आगे डाल दिया ॥ ३८४-३८६ ॥ कंसने उन सब मरे पुत्रोंको  
देखकर सोचा कि इन मरे हुए पुत्रोंसे मेरी क्या हानि हो सकती है अथवा मुनि के वचन मिथ्या भी हो सकते हैं ।  
ऐसा समझकर भी उसे शंका बही रही और उसने उन मरे हुए वच्चोंको भी शिलापर पटावाया । इसके बाद नि-  
नीमके नामके मुनिका जीव महाशुक्रसे च्युत होकर देवकीके गर्भमें आया और उस देवकीने अपने ही घर सातवें म-  
हीनेमें उस पुत्रको उत्पन्न किया । पुत्र होते ही वसुदेव और बलभद्रने विचार किया कि कंसको विना जताये इस  
और भाईने ( वसुदेव बलभद्रने ) यही बात देवकीको समझाई । तदनंतर बलभद्रने उस पुत्रको उठा लिया और पिता  
वसुदेवने उसपर छत्र लगाया । रात अंधेरी थी इसलिये कृष्णके पुण्य कर्मके उदयसे नगरके देवताने बैलका रूप धा-  
रण किया उसने अपने दोनों सींगोंपर दो दीदीपमान मणियां लगाई और इसतरह सब अंधेरेको दूर करता हुआ  
वह उन दोनोंके आगे २ चला ॥ ३८७-३९० ॥ उसीसमय उस बालकके चरणोंका स्पर्श होते ही नगरके बड़े दर-  
वाजेके किवाड खुल गये ॥ ३९३ ॥ रात्रिमें किवाड खुलते हुये देखकर बंधनमें पड़े हुए राजा उग्रसेनने बड़े आश्चर्यसे  
कहा कि इससमय किवाड किसने खोले ॥ ३९४ ॥ यह बात सुनकर बलभद्रने उग्रसेनसे कहा कि आप जूय चाप  
बैठे रहिये । यह किवाड खोलनेवाला इस बंधनसे आपको शीघ्र ही छुड़ावेगा ॥ ३९५ ॥ यह सुनते ही उग्रसेनको बड़ा  
संतोष हुआ और आशीर्वाद देकर उसे बहाया । फिर वहांसे चलकर वे दोनों पिता पुत्र रातमें ही यहना नदीपर प-

शुभिमित ॥ ३७२ ॥ सुतोयास्व भर्तार आद्यवश्यं हृदिष्यति । इत्येवोचततः कुरा सा तद्वत् द्विषा व्यधात् ॥ ३७३ ॥ नमिसेव न त्रैलोक्येन पितरं व  
हृदिष्यति । इत्युक्ता सा पुनः कुरा पादभ्यां तद्व्यदेदयत् ॥ ३७४ ॥ तद्विलोक्य मुनिदेवकीभुतः सगराबधि । पाळयिष्यति भूतारी नारी वैयाघ्रवीर्य-  
तां ॥ ३७५ ॥ जीवन्मृत्युं तत्सर्वमवधार्य बभूव । गत्वा बुद्धिमती कसं भिषस्त तदवधायत् ॥ ३७६ ॥ हातेनापि मुनिप्रोक्तमवध्यमिति मीतिमान् ।  
बभूवेवमहीना स कुराभेदमयान्त ॥ ३७७ ॥ प्रसूतिसमयेवाप्य देवकी मद्गुहांतरं । प्रसूनेविधिपर्याप्त विदग्धास्वन्मतादिति ॥ ३७८ ॥ सोपि तेनोप-  
रुद्धः संस्तथास्त्वेतदमस्तस । अवश्यं आचिन्तयेषु मुखालपि मुनीश्वरः ॥ ३७९ ॥ मिश्रार्थं देवकीगेहं स पुनश्च प्रविष्टवान् । प्रत्युत्थाय यथोक्तं विधिना  
प्रतिश्रुत्वा त ॥ ३८० ॥ देवकी वसुदेवश्च वीक्षन् स्यामवाक्योः । किमिति छमता भूतो ज्ञात्वा सोपि तदिगित ॥ ३८१ ॥ सप्त पुत्रा समाप्यंते भवद्भ्यां  
तेषु षट् भुताः । परस्मानेषु वदिंवा ग्रास्यंति परमा गतिं ॥ ३८२ ॥ सप्तमः सकला पृथ्वीं स्वच्छन्दायया चिरं । पाळयिष्यति निर्दोष्यं चकवर्तिल्यमाच-  
प्रकारं करते हुए देखकर मुनिने फिर कहा कि वह देवकीका पुत्र सती स्त्रीके समान समुद्रपर्यंत सब पृथ्वीका पालन  
करेगा ॥ ३७५ ॥ जीवद्यशा इन सब बातोंका विचार कर दुखी हुई और उस बुद्धिप्रतीने शीघ्रही जाकर-सब बातें  
कंसको समझा दीं ॥ ३७६ ॥ कंस ये सब बातें सुनकर डरा क्योंकि उसने समझ लिया कि मुनियोंके हसीमें कहे हुए  
बचन भी कभी मिथ्या नहीं होते हैं तब उसने राजा वसुदेवसे बड़े प्रेमसे यह याचना की कि आपकी आज्ञानुसार  
देवकी प्रसूतिके समय मेरे ही घरमें प्रसूतिकी सब विधि पूर्णकरे ॥ ३७७-३७८ ॥ वसुदेवने भी मुलाहिजेमें आकर  
कंसकी सब बात मान ली तो ठीक ही है क्योंकि अवश्य ही होनहार कार्योंमें मुनीश्वर लोग भी मोहित हो जाते हैं  
॥ ३७९ ॥ किसी दूसरे दिन वे ही अतिमुक्त मुनि आहारके लिये देवकीके घर गये । देवकीने उठकर विधिपूर्वक  
उनका पङ्कगहन किया आहार देनेके बाद देवकी और वसुदेव दोनोंने पूछा कि हम दोनों दीक्षा धारण करेंगे या  
नहीं । मुनिराजने उन दोनोंके इशारे समझ लिये और कहा कि तुम दोनों इस तरहके बहाने अथवा कपटसे क्यों पूछते  
हो । तुम्हारे सब सात पुत्र होंगे उनमेंसे छह पुत्र तो दूसरी जगह पाले जायेंगे और अंतमें मुक्त होंगे और सातवां  
पुत्र चक्रवर्ती होकर अपनी छत्रछायासे बहुत दिन तक इस सब पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३८०-३८३ ॥  
यह सुन देवकी बहुत प्रसन्न हुई । पीछे देवकीने तीनवारमें दो दो चरमशरीरी पुत्र उत्पन्न किये । जब  
जब इसके ये पुत्र हुए उसी समय ज्ञानी इंद्रकी प्रेरणासे देवकीके गूढ कार्योंको जाननेवाले नेगमर्षनामके  
देवने वे सब पुत्र उठाकर भद्रिलनगरमें अलका नामकी वैश्यपुत्रीके आगे ढाल दिये और उसीसमय

आगतः कंसं पापमग्निशायसर्मकः । जले कहिदेवत्याया मयादायामिवर्द्धितः ॥ ३६३ ॥ कंसनाशा समाहृतस्तएव परीकृतैः । निसर्गवैद्यदपिहः नै-  
 श्वेति निर्गलः ॥ ३६४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मंथ्यातस्थपन्नक । गृहीत्वा नाचयित्वा ब्रह्मसेनमहीपतेः ॥ ३६५ ॥ पद्मवत्याश्च पुत्रोयमिति श्लाघा मही-  
 पतिः । विततार सुतां तस्मै राज्यार्द्धं न प्रदृष्टवान् ॥ ३६६ ॥ कसोऽप्युत्पत्तिमात्रेण स्वस्य नद्यां विसर्जनात् । प्रदृष्टपूर्वमेव सन् कुपितो मथुरापुरी ॥  
 ३६७ ॥ स्वयमादाय वधस्थं गोपुरे पितरौ व्याधात् । विचारविकलाः पापा-कोपिताः किं न कुर्वते ॥ ३६८ ॥ अथ स्वपुत्रमानीय बहुदेवमहीपते । दे-  
 वसेनसुतामस्मै देवकीपुत्रजान् प्रददामि ॥ ३६९ ॥ विभूतिमद्वितीयेन काले कसस्य गच्छति । अन्येयुरतिमुक्ताख्यमुनिर्भिषायायममत् ॥ ३७० ॥ राजगोह-  
 र्मने लेकर इसे बड़ा किया है ॥ ३६२-३६३ ॥ यह कंसोकी संदूकमें आया था इसीलिये इसका नाम कंस रक्खा है ।  
 बालकपनमें ही यह शूरवीरताका अभिमानी था इसीलिये मैंने घरसे निकाल दिया था ॥ ३६४ ॥ मंदोदरीकी यह  
 बात सुनकर राजा जरासबने उस संदूकमेंसे पत्र लेकर बांचा और निश्चय किया कि यह कंस राजा उग्रसेन रानी  
 पद्ममावतीका पुत्र है । इसलिये संतुष्ट होकर उसने उस कंसको आधा राज्य और अपनी कन्या देदी ॥ ३६५-३६६ ॥  
 उसी समय कंसके पूर्वभवका वर प्रगट हुआ उसने सोचा कि मेरे माता पिताने मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ दिया था  
 इसलिये वह उसी समय मथुरापुरीको गया और माता पिताको पकड़ कर बांधकर नगरके बड़े दरवाजे पर रख  
 दिया सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधित हुए विचाररहित पापी लोग क्या क्या नहीं करते हैं ॥ ३६७-३६८ ॥ तदनं-  
 तर कंस राजा बहुदेवको भी अपने नगरमें ले आया और बड़ी विभूतिके साथ राजा देवसेनकी पुत्री अपनी छोटी  
 बहिन देवकी उन्हें ब्याह दी । इस प्रकार कंसका समय व्यतीत होने लगा । किसी दूसरे दिन अतिमुक्त नामके मुनि  
 आहारके लिये राजभवनमें ही आए उन्हें देखकर जीवघशा प्रसन्न होकर हंसीसे कहने लगी कि हे मुनि ! देखो ये  
 देवकीके कामदेवके आनदवस्त्र हैं यह आपकी बहिन आपकी ही अपनी चेष्टा दिखला रही है । जीवघशाकी ये बातें  
 सुन कर मुनिराजको क्रोध आया और उन्होंने अपनी वचनगुप्ति का भग कर कहा कि आगे इसका ( देवकीका ) पुत्र  
 यह देखकर मुनिराजने फिर कहा कि वह अकेले तेरे पतिको ही नहीं किंतु तेरे पिताको भी मारेगा यह सुनते ही  
 जीवघशाको फिर क्रोध आया और वह उस वस्त्रको अपने पैरसे मर्दन करने लगी ॥ ३६९-३७० ॥ जीवघशाको इस

रोभवत् ॥ ३५१ ॥ इतोन्मथकृत भूमे जरासंधमहीपतिः । निर्जिताशेषभूपादः कदाचित्कार्यशेषवान् ॥ ३५२ ॥ दुरन्त्यविषवातस्तपोदानाख्यपुरा-  
खिप । सिपु सिंहस्थ खिन्वा बलागुदे ममांसिक ॥ ३५३ ॥ बन्धा नीतवते देवस्यार्द्धे मापुत्रिकामपि । कलिदेवेनासंभूतां सती जीवबशोमिषां ॥ ३५४ ॥  
द्रास्यामीत्यपि भूगालान्त्राहिणोत्पन्नमालिकां । वसुदेवकुमारस्तरणिरुष्ण प्रतापवान् ॥ ३५५ ॥ बाजिनः सिंहशृङ्ग भाग्यविला रज स तैः । बाणमाश्रया  
समाप्ते जिह्वा सिंहस्थ पृथु ॥ ३५६ ॥ कसेन निजमृत्लेन बधयित्वा महीपते । स्वयं समर्पयामास सोपि दुष्ठा सुतां निजां ॥ ३५७ ॥ देवसादेन समं  
तस्मै प्रतिपत्तां प्रदत्तवान् । वसुदेवोपि तां दुष्टलक्षणा वीर्ययो मया ॥ ३५८ ॥ बद्धः सिंहस्थः कर्म कसेनानेन तरङ्कत । कन्या प्रवीयतायस्मै भवत्येषका-  
रिणे ॥ ३५९ ॥ इत्याह तद्वचः शुला जरासंधनरेधरः । कुलं कसस्य विहातुं इतं मयोदरीं प्रति ॥ ३६० ॥ प्रेषयामास तं दुष्ठा किं तत्राप्यपराधवान् ।  
मसुत्र इति मीलसां समज्ज्वागमतः स्वयं ॥ ३६१ ॥ आगल्य द्रुपतेरग्रे मातास्थेयमिति क्षिति । निक्षिप्य कंसमश्रुणां प्रमिपत्यैवमब्रवीत् ॥ ३६२ ॥

तथा रात दिन उनकी सेवा करने लगा ॥ ३५१ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और है और वह इस तरह है कि  
राजा जरासंध ने सब राजा जीत लिये थे परंतु किसी एक समय उत्तका भी एक काम वाकी रह गया था उसे पूरा  
करनेके लिये उसने सब राजाओंके पास पत्र लिखकर भेजे कि सुरम्भ देशके अंतर्गत पोदनपुर नगरके राजा सिंहस्थ  
शत्रुको युद्धमें जवर्द्धस्ती जीतकर और बांधकर जो कोई मेरे पास लावेगा उसे आधा देश और कलिदेवनासे उत्पन्न  
हुई जीवबशा नामकी पुत्री दूंगा । यह समाचार पाकर प्रतापी वसुदेवकुमार ने सिंहका मूत्र मंगाकर घोड़ोंके शरीरपर लगवा-  
या और उन्हें रथमें जोतकर तथा उम रथपर सवार होकर युद्धके लिये निकला युद्धमें उस भारी राजा सिंहस्थको जी-  
तकर और अपने सेवक कंसके द्वारा उसे बंधवाकर अपने हाथसे राजा जरासंधको सोंप दिया । राजा जरासंध भी संतु-  
ष्ट होकर आधे देशके साथ साथ सामने खड़ी हुई अपनी पुत्री देने लगा । वसुदेवने देखा कि उस पुत्रीके लक्षण अच्छे  
नहीं है तब उन्होंने कहा कि राजा सिंहस्थको मैंने नहीं बांधा है किंतु यह काम कंसने किया है इसलिये इस मेजने  
वाले कंसको ही अपनी कन्या दीजिये । वसुदेवकी यह बात सुनकर राजा जरासंधने कंसका कुल जाननेके लिये मंदो-  
दरीके पास एक दूत भेजा मंदोदरीने दूतको देखकर सोचा कि मेरे पुत्रने वहां भी कुछ अपराध किया जान पड-  
ता है यही सोचकर और डरकर वह स्वयं संदूकको ले आई ॥ ३५२-३६१ ॥ मंदोदरीने आकर राजा जरासंध  
के सामने वह कांसिकी संदूक जमीनपर रखदी और कहा कि इस कसकी यही माता है । तदनंतर राजा को नम-  
स्कार कर कहने लगी कि इस कांसिकी संदूकमें रखला हुआ यह बालक यमुना नदीके प्रवाहमें आरहा था ।

मिदं राज्यं गृह्यामिति बुभुक्षति ॥ ४० ॥ एतदुत्पत्तिरिति मुनिः प्राप्य परां श्रुतिं । जातः पद्मावतीर्गर्भं भूरिशैवानुसंवृतः ॥ ४१ ॥ सापि गर्भं भूकैर्कौ-  
न्मरीयुषुषुदयामिप । अथुदमिलपत्यात्ता तदुहात्वा मन्त्रिणत्तदा ॥ ३४२ ॥ प्रयोगविहितं भर्तृभ्यामिति दीहृद । स्वपुद्ग्या पूरयस्तस्या किञ्च कुञ्ति  
धीधनाः ॥ ३४३ ॥ निर्दोहदा क्रमेणस वलन्ध उतपातक । दष्टेष्ठ निष्ठुरालोकं कृतभ्रमंगमगम ॥ ३४४ ॥ दष्टा तं गितरौ नस्य नात्र विप्रभ्य पोषणे ।  
योगयोगमिति सस्त्य विधिं तस्य विसर्जने ॥ ३४५ ॥ मज्जुषाया विनिक्षिप्य कंसमय्यां सवृत्तक । कंसं कलिदुःकन्याया प्रवाहे सुवतः स तौ ॥ ३४६ ॥  
अस्ति मंदोदरी नाम कैशाव्या शाद्रुदरी । तथा प्रवाहे मज्जुषा मध्यस्थासौ व्यलोकत ॥ ३४७ ॥ अवीशुषुत गृहे त्वेनमिव सा स्वकुत हित । किं न कु-  
वंति पुण्यानि हीनान्यपि तपस्विनां ॥ ३४८ ॥ अहोभि कैश्विदासाय लभनादिसदं वय । आकीडमानो निर्हेतुः स मं सकलवल्कान् ॥ ३४९ ॥ चपेटा  
सुष्टिदबादिप्रहारैर्बाधते सदा । तददुराचारनिर्विण्णारयजन्मदोदरी पुन ॥ ३५० ॥ सोपि शौर्यपुरं गत्वा बहुदेवमहीपते । प्रतिपद्य पदातिव तत्वेवातर-

णामोसे वह मुनि मरा और पहिलेके बैरके संवधसे उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आया ॥ ३४१ ॥ उस रानी  
पद्मावतीको भी उस गर्भके बालककी क्रूरतासे राजा उग्रसेनके हृदयका मांस खानेकी इच्छा हुई और उसीसे वह दुःखी  
होने लगी । यह ज्ञानकर मन्त्रियोंने अपनी बुद्धिसे कोई बनावटी चीज देकर और यह तुमारे पतिके हृदयका मांस है  
ऐसा कहकर उसका दोहद वा इच्छा पूरी की । सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग क्या नहीं करते हैं ॥ ३४२ -  
३४३ ॥ दोहद रहित उस रानी ने अनुक्रमसे उस पापी पुत्रको जन्म दिया । माता पिता उसे देखकर विचार करने लगे कि इसका पालन पो-  
षण करना योग्य नहीं है यही समझ कर उन्होंने उसे छोड़ देना उचित समझा कंसोकी एक अच्छी संदूक बनाकर  
और मन्त्र समाचार लिखकर उसमें उस बालक कंसको रखकर वह संदूक यमुना नदीके प्रवाह में वहां दी ॥ ३४४-३४६ ॥  
कैशावी नगरकी शूद्र स्त्री मंदोदरीने पानीके प्रवाहमें बहती हुई वह संदूक देखी ॥ ३४७ ॥ उस पुत्रको  
घर लाकर अपने पुत्रके समान उसका पालन पोषण करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि तपस्वियोंके हीन पुत्र को  
क्या क्या काम नहीं करते हैं अर्थात् सभी करते हैं ॥ ३४८ ॥ कितने ही दिनोंमें वह आयु और सहारा पाकर अनेक  
बालकोंके साथ क्रीडा करने लगा परंतु वह विना ही कारणके थपड़ घूंसा दंडा आदिसे उन सब बालकोंको मारकर  
सदा दुख दिया करता था । उसके इस दुराचरणोंसे दुखी होकर मंदोदरीने उस बालकको अपने घरसे निकाल दिया ॥  
३४९-३५० ॥ वहांसे चलकर वह कंस खरीपुर पहुंचा और राजा बहुदेवके समीप जाकर उनका पियादा बन गया

मिष्टमिष्टान्नं स्विताः ॥ ३२९ ॥ इष्ट्या ताः स कुजेः प्राह भवतीमिः प्रयोजनं । नास्त्यत्र गच्छताम्यस्मिन् यूयं जन्मनि ममिति ॥ ३३० ॥ कमेवैष  
 तपः कुर्वन्मागमन्मुग्धपुं । तत्र मासोपवासी सभाताप योगमाचरन् ॥ ३३१ ॥ अथान्येष्टुर्विलोक्येयमुग्रसेनमदीपति । भक्त्या मद्गेहपदायं मिसां गृ-  
 ह्णतु नाम्यत ॥ ३३२ ॥ अकार भोषणां पुर्यामिति सर्वनिवेदिनी । स्वपारणादिने सोपि मिसार्यं प्राक्सिद्धुरी ॥ ३३३ ॥ उदतिष्ठतर्वासी राजगेहे  
 निरीक्ष्य त । मुनीभरो निबर्त्त्याभिराहारस्तपोवनं ॥ ३३४ ॥ ततः पुनर्गते मासे दुमुष्ठुः क्षीणदेहक । प्रविश्य नगरीं वीक्ष्य क्षोमेण यागहस्तिन ॥  
 ३३५ ॥ सद्यो निबर्त्ततेस्त्रास्त्रासमाजानान्नत । मासांते पुनरन्येष्टुः शरीरस्थितियोगतः ॥ ३३६ ॥ राजगेहं जरासपमहीदूयहितपत्रक । समाकर्ण्य  
 महीपाले व्याकुलीकृतचेतसि ॥ ३३७ ॥ ततो निवर्त्तमानो नौ क्षीणगो जनजम्पित । न ददाति स्वयमिसां निषिध्यति परानिति ॥ ३३८ ॥ कोमि-  
 प्रायो महीसस्य न विदुमो वयमिलरः । शुल्का पापोदयात्कुक्ष्या निदानमकरोन्मुनिः ॥ ३३९ ॥ पुत्रोभूत्वाद्य भूषस्य बहुप्रतपसः कलात् । निष्टुहैन-  
 तपश्चरण करता हुआ वह अनुक्रमसे मथुरापुरीमें आया और वहां पर एक महीनेके उपवास की प्रतिज्ञा कर आतापन  
 योग धारण कर विराजमान हुआ ॥ ३३१ ॥ किसी दूसरे दिन वहांका राजा उग्रसेन उसे देखकर भक्तिपूर्वक  
 सनमें सोचने लगा कि यह मुनि मेरे ही घरमें आहार ले दूसरी जगह न ले तो अच्छा ॥ ३३२ ॥  
 यही सोचकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि इन मुनिका पडगाहन कोई मत करना । इसके बाद  
 पारणाके दिन मुनिने नगरमें प्रवेश किया ॥ ३३३ ॥ दैवयोगसे उसी समय राजभवनमें आग लगी उसे देखकर वे  
 मुनि लौटकर निराहार ही तपोवनमें चले गये ॥ ३३४ ॥ एक महीनेका फिर उपवास कर अत्यंत क्षीण शरीरवाले उन  
 मुनिराजने पारणाके लिये फिर नगरमें प्रवेश किया परंतु उस दिन पट्ट हाथी विगड गया था इसलिये उसका शोभ  
 देखकर वे फिर लौट गये । उन्होंने फिर एक महीनेका उपवास किया और महीना बीत जानेपर पारणाके लिये वे  
 फिर नगरमें गये । दैवयोगसे उसदिन राजा जरामंत्र ने राजा उग्रसेनके लिये पत्र देकर कुछ समाचार भेजे थे उन्हें  
 सुनकर राजा उग्रसेनका चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा था ॥ ३३५-३३७ ॥ इसी कारण अत्यंत क्षीण शरीर सहित  
 मुनिराजको उस दिन मी लौटना पड़ा । उन्हें लौटते हुए देखकर लोग परस्पर कहने लगे कि राजा इन मुनिराजको न  
 तो स्वयं आहार देता है और न दूसरोंको देने देता है । इसमें राजाका क्या अभिप्राय है सो कुछ मी हमारी समझमें नहीं  
 आता । लोगोंकी ये बातें सुनकर और पापकर्मके उदयसे क्रोधित होकर उस दुर्बुद्धि मुनिने निदान किया कि मैं अप-  
 ने उग्र तपश्चरणके फलसे इसी राजाका पुत्र होकर इसे मारकर इसका राज्य लूंगा ॥ ३३८-३४० ॥ ऐसे ही घुरे परि-



भार्यासी वीरस्य निर्मला । शरदाप्राप्य सस्कारं धृत्या पद्मोद्भवमहा ॥ ३२० ॥ इत्येतो दुष्टरिप्यंसी निक्षिप्रप्रतिपालकः । तन्प्रणमः कर्म गौरमसि  
सारं न लभते ॥ ३२१ ॥ इत शक्रुमन्यन्तु इनकं तर्णिगयते । गगनवायसीनयो संगमे मफलदुभे ॥ ३२२ ॥ तपसातामसूपनो नात्रा अवरकसिद्ध ।  
ममेति सकोध कुनी स्थित्वा तयो पुर । अगोच यस्तुमुशुक चोति हितमपिण ॥ ३२३ ॥ अज्ञानकृमिपुष्पाकर्णगदृच्छदमता ॥ ३२४ ॥ कुने  
सलमजटातृत्मीनकान् ॥ ३२६ ॥ दणमाने ग्नातथ्यसुखीद्विविजोदमान् । उदरैर तवाज्ञानमिति तं ममोवात् ॥ ३२७ ॥ कालकर्मिं तमाथिन्य  
निक्षिप्रोपि निक्षिप्यती । सीक्षित्वातयोगस्य गोमार्गं ततो व्यपात् ॥ ३२८ ॥ इतीते संगंघ रघुतसे फले फूले वृक्षये । वदरार तप-  
उसका प्रताप सूर्यके माररूप प्रतापको भी किस तरह उल्लंघन न करता ॥ ३२८ ॥ इसीसे संगंघ रघुतसे फले फूले वृक्षये । वदरार तप-  
कथा और है आगे वही कही जाती है । गंगा और गंधवती नदीके संगम पर बहुतसे फले फूले वृक्षये । वदरार तप-  
तियोंका एक निवासस्थान था उसमें जठरकौशिक नामका तपसी यमका नायक था और पंचामि तपता हुआ  
बर्हा रहता था । ३२०-३२२ ॥ किसी एक दिन गुणभद्र और वीरभद्र नामके दो धारण मुनि वदा आए, उन्होंने  
उन तपसियोंको देख कर कहा कि ये सब अज्ञानपूर्वक तपश्चरण कर रहे हैं । पुनिराजके ऐसे वचन सुनकर वह नायक  
तपसी सूर्य उन दोनों पुनिराजोंके सामने खड़े होकर कांधसे कहने लगा कि आपने मेरी प्रसूता किम तरह नायक  
तब गुणभद्र मुनि कहनेके लिये तैयार हुए सो ठीक ही है क्योंकि सबजन लोग सदा हित रूप ही वचन कहते  
हैं ॥ २४-२५ ॥ ये कहने लगे कि जटाओंमें बहुतमं लीख और जूआं रहते हैं वे सब मरते ही हैं, दूसरे स्थान करते  
समय जटाकी चोटसे तथा शरीरकी रगडसे मछली आदि अनेक छोटे छोटे जीव मर जाते हैं और तीसरे पंचागिनके  
तपनेमें लकड़ीमें रहने वाले अनेक छोटे छोटे जीव मर जाते हैं । इन सब बातोंको देख कर कहना पड़ता है कि  
तुम्हारा यह सब अज्ञानतप है । इस तरह उन पुनिराजने उसे समझाया ॥ ३२६-३२७ ॥ काल लब्धिके प्राप्त होनेसे  
विशिष्ट बुद्धिवाला वह सबका नायक तपसी दीक्षा लेकर और आतापन योग धारण कर उपवास सहित तपश्चरण करने  
लगा ॥ ३२६ ॥ उसके तपश्चरणके साहाय्यसे सात अंतर देवता आए और सामने खड़े होकर कहने लगे कि हे मुनि-  
राज आपका जो इष्ट संदेशा हो वह कदिये हम करनेको तैयार हैं ॥ ३२९ ॥ उन्हें देख कर वह मुनि कहने लगा कि  
तुम्हारा यहां कुछ काम नहीं है तुम जाओ और दूसरे जन्ममें हमारी कुछ सहायता करना ॥ ३३० ॥ इस तरह

संहारे प्रक्षोभमुपगम्य तां मे ३१० ॥ 'बाहर्दुनयता सर्वं दृष्टीतान् दुष्टचेतसः । योद्धुं हिरण्यबन्धैषि स स्ववपुः' समुच्यते ॥ ३११ ॥ वसुदेवकुमारोपि निजनामाक्षरार्तिनः । प्रविशाय शरे सद्यः समुद्रविजयं प्रति ॥ ३१२ ॥ नामाक्षराणि तस्यासौ बाचयिष्या सविस्मयः । वसुदेवकुमारोत्र पुण्यासंभावितो मया ॥ ३१३ ॥ इति बुध्वाभिवाद्यैर्दानं संभ्रामः समुपागतान् । महाबुजः कनीयासमनुज जितयन्मय ॥ ३१४ ॥ समुद्रविजयाधीश वसुदेवः कृताञ्जलिः । प्रणम्य प्रीणयामास शेषानपि निजानुजान् ॥ ३१५ ॥ भूलेबाग कुमारेण तदा सर्वे निजद्वजाः । परिणीता पुरानीय समुद्रः समजीगमत् ॥ ३१६ ॥ कुमारेण सम गत्वा स्वपुरं विहितोत्सवः । दशार्हाः स्वेप्सितं सौख्यमन्यभूवसनारत ॥ ३१७ ॥ एवं काले प्रय होषा क्लृप्त्यैर्भोगैर्भोगैः । महाशुकारम मुत्तरीयं शस्त्राख्य प्राप्नो मुनि ॥ ३१८ ॥ रोहिण्या पुण्यभाक् पद्मनाभासौ समजायत । प्रतोष बहुवर्गेषु बद्धयश्वबभौ बल ॥ ३१९ ॥ सप्रतापः प्रमेवा-

ता है उसीप्रकार समुद्रविजय आदि अनेक राजा लोग अपनी मर्यादा छोड़कर क्षुब्ध होगये ॥ ३१० ॥ वे सब लोग कन्याको हर ले जानेके लिये तैयार होगये उनके दुष्ट चित्त देखकर हिरण्यवर्मा भी अपने सब भाइयोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ३११ ॥ उसीमय कुमार वसुदेवने समुद्रविजयके समीप अपना नाम सुना हुआ एक बाण भेजा ॥ ३१२ ॥ उस नामको बाँचकर समुद्रविजयको बड़ाही आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि पुण्यकर्मके उदयसे मुझे वसुदेव मिल गये ॥ ३१३ ॥ इसतरह उम युद्धमें आए हुए सब दुष्ट राजाओंको रोका और अपने सब छोटे भाइयोंके साथ कामदेवको भी जीतनेवाले कुमार वसुदेवसे मिलनेको चले ॥ ३१४ ॥ वसुदेवने समुद्रविजयको हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और फिर और भी बड़े भाइयोंको नमस्कारादि कर प्रसन्न किया ॥ ३१५ ॥ भूमि-गोचरी और विद्याधरोंकी जो कन्याएं कुमार वसुदेवने व्याहीं थी उनके माता पितासे उन्हें ले आए और इस तरह कुमारके साथ समुद्रविजय बड़े उत्सवके साथ अपने नगरमें पहुँचे सबलोग निरंतर इच्छानुसार दश तरहके भोगोंका अनुभव करने लगे ॥ ३१६-३१७ ॥ इस प्रकार उन सब लोगोंका समय बड़े सुखसे व्यतीत हो रहा था । उधर शंख नामके मुनिराज तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुए थे वहाँ पर कभी न नाश होनेवाले भोगोंका अनुभव कर तथा वहाँसे च्युत होकर रोहिणी रानीके पद्म नामका पुण्यवान पुत्र हुआ । वह नौवां बलभद्र सब कुटुंबको संतुष्ट करता हुआ अनुक्रमसे बढ़ने लगा ॥ ३१८-३१९ ॥ उस शूस्त्रीरकी प्रताप महित निर्मलकांति सूर्यकी प्रभाके समान थी और शास्त्रोंका संस्कार पाकर शरद ऋतुके समान कमल अथवा लक्ष्मीकी उत्पन्न करनेवाली थी । वह पद्म अर्थात् दुर्वीर (जिसे कोई न रोक सके) था, दुष्टोंका नाश करनेवाला और सज्जनोंका पालन करनेवाला था इसीलिये

प्रतिष्ठिष्य प्रसन्नात्मा सदैवं तमजिगृह्य ॥ २९३ ॥ एवं महाभूमिस्तत्र कृतान्तप्रभावन । पूज्यः पद्मोऽस्मात्सस्वधमगमन्मुषी ॥ ३०० ॥ तस्यु घो-  
षवती नाम वीणावंशेन सन्निधे । समागता भवद्भिरतन्माममानीयता शुभा ॥ ३०१ ॥ एवमुक्त्वा तस्मै तामेव नीच तै ददुः । तयामौ भीतवायान्यां  
श्रोत्रचेतोभिरजन ॥ ३०२ ॥ समापादयदाकर्ण्य तद्वीणां शलं महत् । श्रोता धर्षयत्तपि स्वा वा मातां समाधत्त ॥ ३०३ ॥ तस्य वटे कृच्छंठस्य  
कुण्डितस्तिरभूजः । ननु प्राकृतपुण्यानां स्वय संति महर्दयः ॥ ३०४ ॥ ततः सर्वे प्राप्स्यास्य कन्याणानि श्रवणं ॥ ३०५ ॥ एनं विद्याधरे श्रेष्ठो लभान्नात-  
शतान्यनैः ॥ ३०५ ॥ सम्राट्प्य जेनरेडोभगस्तत्कन्यादानमानितः । ततो निरुल्लभगमागत्य पद्मोदयः ॥ ३०६ ॥ शिरण्यवर्मजोऽश्वपुराधीशो मही-  
पते । पद्मावल्यामभूदुग्री रोहिणी रोहिणी सा ॥ ३०७ ॥ सात्याः स्वयगार्यल्य शिक्षकागून् कल्पगुणान् । वसुदेवमुपाप्यायनया बोधयितुं रिक्तं ॥  
३०८ ॥ एवं बाहुलस्यावर्नं रोहिणीं रत्नमासया । आरुष्ट वटमकरोदुल्लङ्घा रुच्येत्तथा ॥ ३०९ ॥ तदा विमिश्रमयोदाः ससुदनिजयादयः । ससुश इव

महा सुनिराज विष्णुकुमारने वहां पर धर्मकी प्रभावना की । तदनंतर पद्मरायके द्वारा पूज्य हो कर वे बुद्धिमान मुनि-  
राज अपने स्थानको चले गये । उन वीणाओंमें घोषवती नामकी वीणा इस वंशमें आई है इसलिये आप इसके साथ  
उस अच्छी वीणाको लाइये । वसुदेवके इस प्रकार कहनु करने पर उन लोगोंने वही वीणा लाकर वसुदेवको दी । वसु-  
देवकर बहुत ही प्रसन्न हुई और उसने अच्छे कंठवाले तथा सब राजाओंको कुण्डित कर देनेवाले  
कुमार वसुदेवके कंठमें अपना शरीर और बरमाला समर्पण की, सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभाविक  
पुण्यात्मा लोगोंके समीप वही बड़ी क्रादियां अपने आप आ जाती है ॥ ३००-३०४ ॥ इसके बाद  
समने प्रसन्न होकर वसुदेवका कन्याणाभिषेक किया इसी तरह विजयार्थ पर्वतपर जाकर वहांके विद्याधर राजा-  
ओंके द्वाग कन्यादान आदिसे सम्मानित होकर वसुदेवने सातसी कन्याएं प्राप्त कीं । तदनंतर वे महापुण्यवान् कु-  
मार भूमंडल पर आए ॥ ३०५-३०६ ॥ वहांपर अरिष्ट नगरके राजा शिरण्यवर्मा रानी पद्मावतीके रोहिणीके समान  
रोहिणी नामकी पुत्री भी उसके स्वयंवरके लिये अनेक कला गुणोंके धारण करनेवाले मुख्य ज्योतिषकोके समान बहुत  
से राजा लोग आए थे परंतु वसुदेव “इस सबके उपाध्याय हैं” लोगोंको वही समझानेके लिये सबसे अलग खड़े थे  
उस समय कन्या रोहिणी ने उत्कंठासे कुण्डित चित्र होकर अपनी पुत्रा लताओंके द्वारा बरमाला डालकर वसुदेवके  
कंठका स्पर्श किया ॥ ३०७-३०९ ॥ यह देखकर जिस प्रकार प्रलयकालके समय समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर सुख हो जा-

कारसागतः । संप्राप्य बलिनीभ्यर्णक्षरितबादुरस्वरं ॥ २८८ ॥ महाभागहयबा त्वां ददुमुष्टमुपागमं । देयं त्वयैगवाधीस्तोष्यमीष्टं प्रतिपन्नवान् ॥ २८९ ॥ अभाषत द्विजो राजन् देयं मे विक्रमैर्भिः । प्रमित क्षेत्रमिदम्यत्नं किमेतदस्मिन्नापितं ॥ २९० ॥ ग्रहाणेति बली पाणिजलसेकस्वमन्वितं । अ-  
दितास्ते मुनिश्च प्रविक्रियद्विजकर्म ॥ २९१ ॥ व्याघ्रदेकं प्रसायैर्बौमैर्गुणोत्तरमुदितं । द्वितीयमपि देवादि बलिकायां स्फुरत्पुति ॥ २९२ ॥ तदा विद्या-  
धरा भूमिगोचराधार्य संहर । चरणौ संयुतेर्हेतुं कोप मास्मकृथा दृष्टा ॥ २९३ ॥ इति संगीतवीणादिमुखाग मुनिसत्तम । सद्यः प्रसादयामासुः सोप्यही  
रवौ समाहरत् ॥ २९४ ॥ धृत्वा लक्षणवर्तेषां तदा गीत सुधासिनः । दुष्टा घोषासुघोषास्ये मरुघोषां च सुखरा ॥ २९५ ॥ वीणां घोषवती चास्या  
ददत्स्मि सुसंगताः । विद्याधरेभ्यो द्व द्वे च भूचरेभ्यो यथाकर्म ॥ २९६ ॥ दृष्टा त्व यान्वितो विप्रबरेणापि मयाधुना । नावकाशस्तृतीयस्य चरणस्येति  
सात्वरं ॥ २९७ ॥ वध्वा बलिनमुदुत्स बली विष्णुसुनीश्वर । दुःमह त निराकारावदुपसर्ग सुनीशिर्ना ॥ २९८ ॥ वद बलिनमाहवु समुधुक् महीपतिं ।

कहा कि यह इतना थोडा क्यों मार्गा अच्छा ले इस तरह कह कर बलिने हाथसे जल छोड कर तीन पेंड पृथ्वी उस  
ब्राह्मणको दे दी । मुनिराजने विक्रियाश्रुद्विके द्वारा अपना एक पैर तो फैलाकर मानुषोत्तर पर्वतके मस्तक पर रखवा  
और दूसरा जिसकी कान्ति दैदीप्यमान हो रही है ऐसी मेरु पर्वतकी चूलिका पर रखवा ॥ २८८-२९२ ॥ उस  
समय विद्याधर और भूमिगोचरी सभी उन मुनिराजसे प्रार्थना करने लगे कि हे आर्य ! अपने दोनों पैरोंको संकोच  
लीजिये और व्यर्थ ही संसारके कारण कीषको मत कीजिये ॥ २९३ ॥ इस तरह प्रार्थना कर संगीत और वीणा  
आदि बाजे बजाकर उनलोगोंने मुनिराजको शीघ्र ही प्रसन्न किया तथा उन मुनिराजने भी अपने दोनों पैर समेट  
लिये ॥ २९४ ॥ उस समय उन भूमिगोचरी विद्याधरोंके यथायोग्य लक्षण महित गीत सुनकर देव लोग बडे संतुष्ट  
हुए और उन्होंने अच्छे स्वरवाली और बहुत अच्छी घोषा सुघोषा और महासुघोषा घोषवती ये चार वीणाएं उनको  
लाभ्ये दी । उन वीणाओंमें से देवोंने अनुक्रमसे दो तो विद्याधरोंको दी और दो भूमिगोचरियोंको दीं ॥ २९५-२९६ ॥  
तदनंतर अत्यंत बलवान मुनिराज विष्णुकुमारने बलिसे कहा कि इस समय मुझ ब्राह्मणने व्यर्थ ही तुझसे याचना  
की क्योंकि जब तीसरा पैर रखनेके लिये कहीं जगह ही नहीं है इमतरफ कहकर उन मुनिराजने शीघ्रही उस दुराचारी  
बलिको बांधलिया और अकंपन आदि मुनिराजोंके उस असह्य उपमर्गको दूर किया ॥ २९७-२९८ ॥ बलिको बांधा  
हुआ देखकर राजा पट्टमरथ भी उसे मारनेके लिये तैयार हुआ परंतु विष्णुकुमारने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया ।  
तदनंतर बलिने प्रसन्नचित्त होकर अर्थात् सम्प्यदर्शन धारण कर श्रेष्ठ जिनधर्म स्वीकार किया ॥ २९९ ॥ इस प्रकार

२७६॥ राजा वृषभवादि स्वयेष्ट माध्यमात्मिनि । राज्य सप्तदिन कर्तुमिच्छामीत्यब्रवीद्वली ॥ २७७ ॥ दत्त अरतृणं मत्वाभगदस्मै तद्भुजित । कृतोपका-  
रिणे देय किं न तत्कृतवेदिभिः ॥ २७८ ॥ तत्राकपनयुर्व्याघमागत्य मुनिपटल । अप्रहीदातपे योग सर्वे सौम्यमहीभृति ॥ २७९ ॥ निजित- प्राप्तिमदुषि  
ध्यामकर्मनमुनीशिना । वादे सभायां तत्कोगात् जिघासुघात्मकः ॥ २८० ॥ यागव्याज समारभ्य स मन्त्री परितो गिरि । अर्धताहारदानार्थं देवसत्तप  
णाय च ॥ २८१ ॥ पाक प्रकल्पयामास धूमज्वालालिप्तत । क्षात्वा विष्णुकुमारस्तुमुसर्गं मुनीश्वर ॥ २८२ ॥ गत्वा पद्मरथारुण्य वीतरागासने स्थित ।  
राक्षसिन्धव संपूज्य किं कृत्यमिति भाषितः ॥ २८३ ॥ उपमर्गं व्यधान्मन्त्री तवाज्ञातपयोगिना । निवार्यतामसावाशु त्वदेयाह महीपतिः ॥ २८४ ॥  
प्रतिपन्नं मया तस्मै राज्यं सप्तदिनावधि । न निवारयितुं शक्यः सत्यमेदमयादृशा ॥ २८५ ॥ ततो भवदुर्भिरार्ण्यं निवार्यो दुर्जनोधुना । न विंदति क्षलाः  
स्वरायुक्तायुक्ताविचेष्टितं ॥ २८६ ॥ इत्यवोचदसौ चैतदवगम्य मुनीश्वर । प्रतिपिध्यामि पापिष्ठमहमेवाशु नश्वरे ॥ २८७ ॥ इति वामनरूपेण ब्राह्मणा

मुनिराज अकंपनने उस बलिको जीता था उसीके कोषमे उमने अकंपन आदि सब मुनियोंके मारनेकी इच्छा  
की ॥ २७९-२८० ॥ उस पापीने यज्ञका बहाना कर जहाँ पर वे मुनिराज विराजमान थे उस पर्वतके चारों ओर  
पाचक लोगोंको आहार दान देनेके लिये और देवोंको संतुष्ट करनेके लिये पाक अर्थात् रसोई बनाना प्रारंभ की ।  
बह पाक इस तरह बनवाया जिससे धूआँकी लपट घुमड घुमड कर उसी पर्वत पर पहुँचे । मुनिराज विष्णुकुमार उन  
मुनियोंके उस उपसर्गको जानकर राजा पद्मरथकं समीप आए और वीतराग आसन पर आ विराजमान हुए । राजा  
पद्मरथने आकर मुनिराजकी बंदना की, पूजा की और मार्यना की कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥ २८१-२८३ ॥  
तब मुनिराजने कहा कि तेरा मंत्री जो आतपयोगको धारण करनेवाले मुनियोंको उपसर्ग कर रहा है उसे तुम बहुत  
शीघ्र रोको । इसके उत्तरमें पद्मरथने कहा कि हे स्वामी मैंने उसे सात दिन तकके लिये राज्य दे दिया है इसलिये  
मैं अपने सत्य वचनोंके मंग न होनेके डरसे रोक नहीं सकता । अतएव हे आर्य ! अब उस दुष्टको आप ही रोकिये  
क्योंकि दुष्ट लोग योग्य अयोग्य किरायोंको स्वयं नहीं जान सकते हैं । पद्मरथकी ये बातें सुन कर और समझ कर  
मुनिराजने सोचा कि उस नाश होनेवाले पापीको मैं ही बहुत शीघ्र रोकता हूँ ॥ २८४-२८७ ॥ इसके बाद वे मुनि-  
राज वामन ब्राह्मणका रूप धारण कर बलिके समीप पहुँचे और आशीर्वाद देकर कहने लगे कि हे महाभाग्यशाली  
आज तु दाताओंमें मुख्य है इसलिये आज मैं तेरे समीप आया हूँ तुझे मी कुछ दे । इसके उत्तरमें बलिके कहा कि  
जो तुम्हें पसन्द हो सो माँग ले । ब्राह्मणने कहा कि हे महाराज ! मेरे पैरोंसे तीन पैद पृथ्वी मुझे दीजिये । राजाने

२६५ ॥ भर्ता गधर्वदत्तायास्त्वमेवेव विचक्षणः । गीतवायविजोयेषु सर्वानस्मान् जयैरिति ॥ २६६ ॥ पठ्यन्प्रशिनै तस्मिन् धरागगनगोचराः । प्रपुङ्ग-  
धर्वदत्तायाः स्वयंवराभ्युत्थकाः ॥ २६७ ॥ सा म्वयवरशालायां बहून् जितवती स्वयं । तदानीं गीतवायाभ्यां तरकरारूपधारिणी ॥ २६८ ॥ वाहता-  
दिभिः श्रोतृपदमध्यातितै स्तुता । कलाकौशलमेतस्याः विलक्षणमिति स्फुट ॥ २६९ ॥ स्वोपाध्यायं तदापृच्छथ कन्याभ्यर्णमुगगनः । वसुदेवोऽभयणीश्री-  
णा विदोषामानयद्विति ॥ २७० ॥ तेषि तिस्रश्चन्द्रश्च हस्ते वीणाः समर्पयत् । तासां तन्त्रीषु लौमस्यं शल्यं चालोक्य सस्मित ॥ २७१ ॥ तुवीकलेषु  
दंडेषु मल्लक पाषाणमप्यसौ । स्फुटीचक्रौ तद्दृष्ट्वा त्वदिष्टा कीदृशी भवेत् ॥ २७२ ॥ कीर्णति कन्यया प्रोक्तो मदिष्टायाः समागमा । ईदृग्विष इति प्राह-  
तत्रार्थाख्यानमीदृश ॥ २७३ ॥ हस्तिनाख्यपुगधीशो राज्ञो मेघरथयुते । पद्मांबल्याश्च सजातो विष्णुपद्मरथो मुते ॥ २७४ ॥ सहविष्णुकुमारैः गः भूपतो  
ब्रूमसि स्थिते । पश्चात्पद्मधैराज्यमलकुर्वत्यथान्यथा ॥ २७५ ॥ प्रत्यतबासिंशोभै संभ्राते सचिवाप्रगी । सामादिमिहगर्वैस्त प्रसाति समजीगमत् ॥

प्रकार जिसकी प्रशंसा हो रही है ऐसी गंधर्वदत्ता कन्याके समीप अपने उपाध्यायको पूछकर कुमार वसुदेव भी जा  
पहुंचे । वसुदेवने जाते ही कहा कि जिसमें कोई दोष न हो ऐसी वीणा लाओ ॥ २६९-२७० ॥ यह सुनकर वसुदेवके  
हाथमें तीन चार वीणा रख दी परंतु वसुदेवने आश्चर्यके साथ देख कर कहा कि इसकी तांतमें लोमश (बाल सरीखे)  
हैं तथा शल्य [ गांठ सरीखी ] है । इसी तरह तूनामें सलक और दंडमें पाषाण है । इस तरह उम वीणाके दोष प्रगट  
करने पर उस कन्याने कहा कि आप कैसी वीणा चाहते हैं हमारे यहां तो ऐसी ही है । इसके उत्तरमें कुमार वसुदेव  
एक कथा कहने लगे कि ॥ २७१-२७३ ॥ हस्तिनापुर नगरके राजा मेघरथ रानी पद्मावतीके विष्णुकुमार और पद्म-  
रथ ये दो पुत्र हुए थे ॥ २७४ ॥ महाराज मेघरथ बड़े पुत्र विष्णुकुमारके साथ दीक्षा ले गये थे और उनके बाद  
राजा पद्मरथ राज्य करने लगे थे । किसी एक दिन म्लेच्छदेशके लोगोंने आकर नगरमें बहुत सा उपद्रव मचाया  
तब मुख्य मंत्री बलिते साम दाम आदि उपायोंसे उस उपद्रवको शांत किया ॥ २७५-२७६ ॥ राजा पद्मरथने  
संतुष्ट होकर बलिसे कहा कि जो तुम्हें अच्छा लगे सो मांग ले । इसके उत्तरमें बलिते कहा कि मैं मात दिन तक  
राज्य करना चाहता हूं ॥ २७७ ॥ राजाने जीर्ण तुण समझ कर राज्य दे दिया और कहा कि उपकार जानने वाले  
कुतश्च लोग उपकार करनेवालेके लिये अपना कमाया हुआ क्या नहीं दे डालते हैं अर्थात् सब कुछ दे डालते  
हैं ॥ २७८ ॥ दैवयोगसे वहां अकंपन आदि अनेक मुनिगज आ विराजमान हुए थे और उन सबने आतापन योग  
धारण किया था । पहिले किसी समय सौम्य राजाके यहां यही बलि मंत्री था उस समय सभामें वाद करते समय

स्मिन्विं ॥ २५५ ॥ आर्तो पवनवेगायासादिषां परिणीतवान् । तथा सह स्मरस्यापि शुद्ध स्मरुंगोचरं ॥ २५५ ॥ भ्रमुर्यय दिनान्यत्र विभ्रातः कालिचि-  
तुन । तथोपसर्तुं काम तं समीप्यागारवेगकः ॥ २५६ ॥ उदल्याशनिवेगत्य दायोदयं नभस्तले । इत्या दर्शितास्मत्स्या संसुद्रीणीसिहस्तभा ॥ २५७ ॥  
मोन्वीतस्तद्गयानुस्त्वा त तदनाश्रपलावित । विषया पर्णलब्ध्यासौ प्रियं प्रियतपातया ॥ २५८ ॥ न्यापुरसमीपस्वसरोमये हाने हाने ॥ द्वीपे निपा-  
तितो ऽटुन्धरोहिन्स्तीरवर्तिन ॥ २५९ ॥ द्वीपादमुत्साभिर्गुं किं तीर्थं वदतेति तान् । भवदस्तेपि किं भद्रं पतितः खारवमिलसुं ॥ २६० ॥ सत्याम्भ  
वति विज्ञातमिति तेन सुभाषिताः । प्रहस्यानेन मार्गेण जलाग्निगम्यतामिति ॥ २६१ ॥ न्यदिशप्रतस्तस्मात्प्रविश्य नगरं शुभ । गार्धर्वकुशल प्राप्त मुनो-  
हरसमाह्वय ॥ २६२ ॥ उपविश्य तदभ्यासे वीणावादनशिक्षकान् । तत्र गार्धर्वदत्तायाः स्वयवरविधिं प्रति ॥ २६३ ॥ दध्ना निगूढनज्ज्वाणे वसुदेवो वि-  
मूढवत् । अहं चैभिः सहभ्यासे करोमीत्याप्तवल्गवी ॥ २६४ ॥ आदयेवाछिन्नन्त्री तुवाज वामितकलं । विगत्यं पदयुतास्थाल दध्ना त तेष हनत् मृगः ॥  
कर वे किनारेके लोगोंसे पूछने लगे कि इस द्वीपसे बाहर निकलनेका मार्ग कौन सा है कृपा कर बाला दीजिये । तब  
वे लोग कुमारसे पूछने लगे कि हे भद्र क्या आप आकाशसे पड़े हैं ? इसके उत्तरमें कुमारने कहा कि आपने बहुत  
अच्छा जाना अर्थात् मैं वास्तवमें आकाशसे ही गिरा हूं यह सुन कर वे सब लोग इस पड़े और इस पड़े और इस पड़े कर उन्होंने बत-  
लाविया कि इस मार्गसे आप इस सरोवरके बाहर निकल आइये । वसुदेव वहांसे निकल कर नगरमें गये और गार्धर्व  
विद्यामें ( गाने बजानेमें ) अत्यंत निपुण ऐसे मनोहर नामके गुरुके समीप जा पहुँचे ॥ २५३-२६२ ॥ गंधर्वदत्ताको  
स्वयंवरमें जीतनेके लिये उन गुरुके समीप अनेक शिष्य वीणा बजानेकी शिक्षा पा रहे थे उन्हें देखकर और अपने  
बजानेकी कलाको छिया कर वसुदेव एक मूर्खके समान उन गुरुके समीप बैठ गये, तथा उससे कहने लगे कि इन  
शिष्यादियोंके साथ मैं भी बजानेका अभ्यास करूँगा । यह कह कर उन्होंने एक वीणा ले ली पहिले तो उसकी सात  
तोड़ डाली और फिर उसका तुवा तोड़ डाला । इस उलटे तमाशेको देख कर वे सब लोग इसने लगे और कहने लगे  
कि तू गाने बजानेमें बहुत चतुर है इस विद्यामें हम सबकी जीत कर तू ही गंधर्वदत्ताका पति होगा ॥ २६३-२६६ ॥  
इस तरह यहाँ लोगोंका अभ्यास चल रहा था उपर गंधर्वदत्ताके स्वयंवरके लिये उत्कंठित हुए यमिगोचरी विद्या-  
वर आदि सबलोग आ इकट्ठे हुए ॥ २६७ ॥ गाने बजानेकी सब कलाओंको जाननेवाली उस गंधर्वदत्ताने माने ब-  
जानेके द्वारा उस स्वयंवरशालामें अनेक लोगोंको जीत लिया ॥ २६८ ॥ बादर आदि अनेक लोग उस गाने  
बजानेसे सुननेकेलिये बैठे थे और सब सब रहे थे कि इस गंधर्वदत्ताका कला कौशल अत्यंत ही विलक्षण है । इस



काई ताम्रवेष्टुमेष्वेत । अस्तीभूत सब ताम्रं आकर्मनं चं दुरर्मम ॥ १७६ ॥ तत्कण्ठपत्रमादावर् नीत्यां रात्रौ समर्पयन् । तत्पत्रार्द्रं ताम्रं कथं ससुदेवसि वषा-  
 दयः ॥ २४६ ॥ महीभुजः परे चातिसेकस्तत्सर्वेतमः । नैमित्तिकोक्तयोगकायज्ञाः कर्ममावृताः ॥ १७७ ॥ श्रुतयन्त्रक्षीयति स्वेदशक्तं तदैव समततं ।  
 तमावेकयितुं दक्षान् प्राहिणोत्संहितान् बहून् ॥ २४८ ॥ विजयाक्षय पुरे गम्भा सोप्यशोकमहीरुहः । कुत्रे विभीतये तस्मै तदस्कासायामर्दिता ॥ २४९ ॥  
 तमीष्यादसिक्कयोक्तमधूरविनय वचः । इत्युद्यानपतिर्गम्भा मगधेशमयवृथन् ॥ ५० ॥ राजापि श्यामलाहो तां कुला तस्मै समर्पयन् । शिनानि कानि-  
 चित्तत्र विध्रम्ब गतवर्तस्ततः ॥ २५१ ॥ देवदारुवने पुष्परम्याह्वये बनजाकरे । अ ॥ बाः केनासौ धीडितराकण त मुदा ॥ २५२ ॥ आप्यमान स्वयं केनचि-  
 त्स्वनेन गजाधिपात् । अपास्य सद्रसानीतः खेबराद्रि इती पुर ॥ २५३ ॥ पत्यु किन्नरगीतस्य द्वितीयां वा रतिं सती । सुतामशनिवेगस्य दत्ता शास्त्र-  
 स्नानीके द्वारा उसके फिर मिलनेकी बात सुनकर सबलोग आत हो गये ॥ २४६-२४७ ॥ राजा समुद्रविजयने प्रेमवश  
 कुमारको ढूँढनेके लिये बहुतसे चतुर लोगोंको चागे ओग मेजा ॥ २४८ ॥ इधर कुमार बसुदेव विजयपुर नगरमें  
 पहुंचे और विश्राम करनेके लिये अशोकवृक्ष के नीचे घनी छाया देखकर बैठ गये ॥ २४९ ॥ बागवानने उस वृक्षकी  
 छायाको स्थिर देखकर मोचा कि उस निमित्तज्ञानीके बचन सत्य निकले यही मोच कर उसने मगध देशके राजाको  
 उसकी खबर दी ॥ २५० ॥ मगधेयने अपनी श्यामला नामकी कन्या बसुदेवकी समर्पण की । कुमार कुछदिन तो  
 वहां रहे फिर वहांसे निकल कर देवदारु नामके बनमें पुष्परम्य नामके कमलसमूहोंमें जा पहुंचे । वहां पर किसी जंग-  
 ली हाथीसे क्रीडा कर बड़ी प्रसन्नतासे उस पर जा चढ़े ॥ २५१-२५२ ॥ उसी समय किसी विद्याधने उनको प्रशंसा  
 की और हाथीमे उठाकर अकस्मात् उन पुण्यवानको विजयार्द्ध पर्वत पर जा पहुंचाया । वहां पर किन्नरगीत नगरमें  
 राजा अशनिवेग राज्य करते थे उनकी रानी पवनवेगासे दूसरी रतिके समान सती शाल्मलिदत्ता नामकी पुत्री हुई थी  
 वह पुत्री राजा अशनिवेगने निमित्तज्ञानीकी आज्ञानुसार कुमार बसुदेवकी समर्पण की कुमार बसुदेव कुछ दिन तरु  
 वृत्ती रहे और उन्होंने उस शाल्मलिदत्ताके साथ कामदेवके स्मरण करनेके मी अगोचर ऐसे सुखों का अनुभव किया ।  
 कुछ दिन बाद कुमारकी जानेकी इच्छा हुई तब अशनिवेगका दायार ( बारिस वा उचराधिकारी ) अंगारवेग उन्हें  
 उठाकर आकाशमें ले चला । शाल्मलिदत्ता यह देख कर हाथमें तलवार उठा कर उमके पीछे दौड़ी । यह देख कर  
 अंगारवेग कुमारको वहीं छोड़कर भाग गया । जब कुमार बसुदेव उससे छूटकर नीचे गिरने लगे तब ध्यारी शाल्मलि-  
 दत्ताने पर्णलघी विद्यासे चंपापुर नगरके समीपवाले सरोवरके बीचके टोले पर घीरे घीरे उतार दिया । वहां पर आ-

विरकाश्चिर्मित्यं रक्षकान् । भर्तृनविरगण्डान्याः पुत्राभ्यान्वाथ पुत्रकान् ॥ २३३ ॥ मत्वा मर्कटकान् कश्चित्समुद्रिष्य समाकुलान् । कंठलं परिधयान्या  
विचित्रोत्प्लुङ्गवासी ॥ २३५ ॥ अंगरागं समालोच्य काचिदालिप्य कर्दम । लोचने स्वे समालोच्य ललटे न्यसनकज्जलाः ॥ २३६ ॥ स्वास्तास्तथाविधा  
सर्वो- सर्वद्विरनमानसैः । निरीक्ष्य पारैर्विक्रयेन क्वाणितोय नरेश्वरः ॥ २३७ ॥ तत्वेदशीमुगायेन भ्यवस्था पर्यंकलयत् । इति संशुल्य तेनोफ कुमारस्तत्प-  
रीक्षितु ॥ २३८ ॥ राजगेहद्विनिर्गतु कामो दौर्बालिकंस्तथा । तत्र प्रजस्य देवस्य नादेशोऽस्माकमीदृश ॥ २३९ ॥ बहिस्तस्या न गतव्यमिति रुद्ध स्थितो-  
न्यदा । समुद्रविजयादीनमनुकुवाऽऽशशोयात् ॥ २४० ॥ वसुदेवो युतो गत्वा विद्याससाधनछलात् ॥ स्मशानभूमावेकाकी महाज्वाले हुताशने ॥ २४१  
॥ निपन्याकीर्तिमीमानुरिति पत्र व्यलिख्यत् । कठे निवप्य बाहस्य मुक्त्वा तत्रैव तं स्वय ॥ २४२ ॥ बर्हिह प्रदक्षिणीकृत्य दशमानशवान्वित । अगादल-  
क्षमार्गः स रात्रावेव द्रुत ततः ॥ २४३ ॥ तत् सूर्योदये गेहे तद्रक्षणकराग्रणी । अनिरीक्ष्यातुत्र राज्ञो राजादेशादिस्तनतः ॥ २४४ ॥ पर्यटन्नुन्नि

लिये उन सब स्त्रियों की ऐसी दशा देख कर नगरके लोगोंके चित्त बड़े ही खेदखिन्न हुए थे, और उन्होंने महाराजसे  
आकर प्रार्थना की थी तब महाराज समुद्रविजयने ऐसा उपाय कर आपकी ऐसी व्यवस्था कर दी है । उस सेवककी  
ये सब बातें सुनकर कुमार वसुदेवने इस बातकी परीक्षा करनेके लिये घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा प्रगट की । तब  
द्वारपालने यह प्रार्थना कर उसे रोक दिया कि, “आपके बड़े भाई ने हमलोगोंको आपके बाहर जाने देनेकी आज्ञा  
नहीं दी है इसलिये आप बाहर न जाइये” यह सुनकर कुमार वसुदेव वहीं रह गये । परंतु दूसरे ही दिन समुद्रविजय  
आदि सब भाइयोंसे बिना कहे सुने ही अपयज्ञके ढरसे विद्या सिद्ध करनेके बहानेसे अकेले ही स्मशानमें गये और  
वहाँ पर जाकर माताके नाम पर एक पत्र लिखा कि “मैं अपकीर्तिके भयसे बड़ी भारी चिन्तामें जल कर मर जाता  
हूँ” । इस तरहका पत्र लिखकर घोंडेके गलेमें बांध दिया, उसे वहीं छोड़ दिया और आप जिसमें कोई सुरदा जल

रहा था ऐसी उस अग्निनी प्रदक्षिणा देकर रात्रिमें ही बड़ीशीघ्रतासे किसी छिये मार्गसे बाहर जा निकला ॥ २३७-  
२४३ ॥ सूर्य उदय होते ही वसुदेवके मुख पर रक्षक लोगोंने घर्मे कुमारको देखनेके लिये इधर उधर घूमने लगे । स्मशानमें जाकर  
राजाकी आज्ञासे वे लोग अनेक सामंतोंके साथ कुमारको देखनेके लिये इधर उधर घूमने लगे । स्मशानमें जाकर  
उन्होंने एक जले हुए मुरदेको देखा और उसके चारी ओर फिरते हुए घोंडेको देखा ॥ २४४-२४५ ॥ उस घोंडेके  
कंठमें बंधे हुए पत्रको खोल कर महाराज समुद्रविजयको समर्पण किया । उस पत्रके लिखे हुए समाचारोंको सुनकर  
समुद्रविजय आदि सब राजा तथा और भी कुछही आदि सब लोगोंका हृदय कीकसे संतप्त हो गया परंतु निमिष

प्रकाशप्रतिबेधेन कदापि द्विमुखो भवेत् ॥ २२४ ॥ कुमार इति सीधित्य तमाह्वय शिषोर्बहीत् । कुमार वपुरतेते पदयामि किमिदं न्यथा ॥ २२५ ॥  
 वृष टन परित्याज्य क्षीतबातादिषु त्वया । विहर्ष परिवांच्छा चेत्यरितो राजमदिरं ॥ २२६ ॥ धारागृहे बने रम्ये हर्म्ये विहितपर्वते । मन्त्रिर्मातयोधाग्रमहा-  
 मात्रात्मजः समं ॥ २२७ ॥ यथेष्ट विचरैत्येतत् श्रुत्वा सोपि तथावर्त्त । आददत्यमृत वासवचन शुद्धमुद्धय ॥ २२८ ॥ एवं विहरमाण त बाबा'ट्येष्टको परे ।  
 न ज्ञा निपुणमत्याख्यो यथेष्टाचरणोत्सुकः ॥ २२९ ॥ राज्ञा त्व प्रतिविद्दोसि सोपाय निर्गम प्रति । इत्यबाहीदमौ च ह किमर्थमिति चेत् २२३० ॥ सोम-  
 कीर्तवर्तियोजकात् रूपविलोकनत् । परे शिथिलचारित्र्या मन्यथेन कुलीकृताः ॥ २३१ ॥ वीतलज्वा विमर्थाद्या विपरीतविकेष्टता । पीतासवसमा- बन्धाः  
 सधवा द्विधाश्च ता ॥ २३२ ॥ काथिदप्रस्थसर्वपागाः काथिदद्व्यकलोचना । काथित्सत्यकसंयताः काथिदस्यकादभोजना ॥ २३३ ॥ अथमत्य गुरुन् का-  
 मुख्य अमात्योके पुत्रोंके साथ इच्छानुसार विहार किया करो । समुद्रविजय की यह बात सुन कर वसुदेव भी उसी  
 तरह विहार करने लगे सो ठीक है क्योंकि शुद्धबुद्धिवाले पुरुष बड़े लोगोंके वचन अमृतके समान ग्रहण करते हैं ॥ २४-  
 २८ ॥ वसुदेव इसी तरह प्रति दिन विहार करने लगे किसी एकदिन इच्छानुसार आचरणोंकी इच्छा करनेवाले एक  
 निपुणमती नामके बहुत बोलनेवाले सेवकने वसुदेवसे कहा कि महाराज समुद्रविजयने इस उपायसे आपको बाहरजाने  
 से रोक रक्खा है । इसके उत्तरमें वसुदेवने उस सेवकसे पूछा कि महाराजने बाहर जानसे मुझे क्यों रोका है ॥ २९-  
 ३० ॥ तब वह सेवक कहने लगा कि आपके बाहर निकलने समय आपका सुंदर रूप देखकर नगरकी स्त्रियोंके  
 चारित्र्यमें कुछ शिथिलता आ जाती है वे कामदेवसे व्याकुल हो जानी हैं लज्जा और मर्यादा मच छोड़ देती हैं और  
 उनकी सब चेष्टाएं विपरीत हो जाती हैं । कन्या सधवा विधवा आदि सब मद्यपी हुईके समान हो जाती हैं । कितनी  
 ही स्त्रियोंके शरीर सब पसीनेसे डूब जाते हैं कितनी ही स्त्रियां अपने आधे नेत्र खुले रखती हैं कितनी ही अपने पहि-  
 ननेके कपड़े ही भूल जाती हैं और कितनी ही अपना आधा भोजन छोड़ देती हैं ॥ २३१-२३३ ॥ कितनी ही साथ  
 समुर आदि गुरुजनोंका अपमान कर बैठती हैं कितनी ही रक्षा करनेवालोंका तिरस्कार कर डालती हैं, अन्य कित-  
 नी ही स्त्रियां अपने पतियोंको कुछ नहीं गिनती, कितनी ही दूसरे पुत्रोंको अपना ही मानकर ले चलती हैं और  
 अपने व्याकुल बच्चोंको बंदर समझ कर दूगसे ही ललकार देती हैं । कितनी ही स्त्रियां कंवल को ही उत्तम वस्त्र समझ  
 कर पहिन लेती हैं कितनी ही कीचड़को ही शरीर पर लगानेका उसम उवटन समझ कर शरीर पर लपेट लेती हैं  
 और कितनी ही स्त्रियां ललाटको नेत्र ही समझ कर वहीं काजल लगा लेती हैं ॥ २३४-२३६ ॥ आपके देखनेके

सहा-समुद्रमिज्ये पाति क्षिति वर्णीश्रमाः सुखं । शुधर्मकर्मैशु स्तरे प्रावर्तत योक्वितं ॥ २१८ ॥ राज्यं विभज्य दिक्पालैरिव प्रावृत्तिरिच्छति । सहा-  
२१८ समुद्रमिज्ये पाति क्षिति वर्णीश्रमाः सुखं । शुधर्मकर्मैशु स्तरे प्रावर्तत योक्वितं ॥ २१८ ॥ राज्यं विभज्य दिक्पालैरिव प्रावृत्तिरिच्छति । सहा-  
न्यभूत्स मृणतः सकल सर्वसीह्यद ॥ २१९ ॥ एव सुखेन सर्वेषां काले गच्छत्ययोदयात् । चतुरावलोपेता वसुदेवो युवागणी ॥ २१९ ॥ गंधवारण-  
मारुता संज्ञाचारमरुलि । बाह्यमानाखिलातोयच्यनिनिर्भिन्नदिवूतटः ॥ २२० ॥ बविमागधमूतादित्युयमानाकमालकः । नानाभरणभाभारभासमानस्व-  
विग्रह ॥ २२१ ॥ निगृहीतुमिबोगाद्युद्युतो निजतेजसा । अधोविधातु वात्येकभूषणागुह्यम ॥ २२२ ॥ अमराणां कुमारो वा कुमार प्रत्यहं बहिः ।  
तिरिच्छति पुरास्त्वं स्ववीलादर्जोच्छुक ॥ २२३ ॥ विसस्मर्द्धिलोक्त्रेन स्वव्यापारान् पुरश्चियः । निरादरा बभूवुश्च मातुल्यादिवारणैः ॥ २२४ ॥  
निर्गमेय कुमारस्य विष्णो नागरास्तदा । गत्वा विष्णापगामास्तदृष्टात महीपते ॥ २२५ ॥ भ्रुत्वावधार्य तद्राजा सहजस्नेहनिर्भरः ।

से उन सबका समय बड़े सुखसे व्यतीत हो रहा था । इन सबमें कुमार वसुदेव सबसे अधिक युवा थे इसलिये वे अपनी लीला देखनेकी इच्छासे चारों तरफकी सेना लेकर और गंधवारण नामके हाथी पर चढ़ कर प्रतिदिन अपनी नगरके बाहर जाते थे । उस समय अनेक चमर उनपर ढराये जाते थे, साथमें जो मव तरहके बाजे ब-  
झाजुसार नगरके बाहर जाते थे । उस समय अनेक चमर उनपर ढराये जाते थे, साथमें जो मव तरहके बाजे ब-  
जाये जाते थे उनकी आवाजसे सब दिशाओंके किनारे फटेसे जान पड़ते थे, मागध सत आदि वंदीजन उनका यश  
पढ़ते जाते थे अनेक आमरणोंकी कांतिके घोषसे उनका शरीर बड़ाही दैदीपमान दिखता था उम समय ने ऐसे जान  
पड़ते थे मानों अपने तेजसे सर्वके विवको मी लज्जित करनेके लिये उद्यत हुए हों अथवा एक भूषणांग जातिके कल्प  
वृक्षकी नीचा दिखानेके लिये ही तैयार हुए हों उम समय वे ठीक देवोंके कुमार सरीखे जान पड़ते थे इस लिये इनके  
बाहर जाते समय इन्हें देखकर नगरकी स्त्रियां अपना सब क्यापार भूल जाती थीं और अपने मामी ( सासु आदि )  
आदिके निवारण करने पर भी वे किसी की नहीं सुनती थीं ॥ २१७-२२२ ॥ इस तरह कुमार वसुदेवके बाहर निक-  
लनेसे नगर निवासी लोग बड़ेही दुखी होते थे, इसलिये सबने मिल कर ये सब समाचार महाराज समुद्रविजयसे  
निवेदन किये ॥ २२२ ॥ राजा समुद्रविजयने ये सब बातें सुनकर विचार किया और भाईके स्नेह से अनुरक्त  
होकर सोचा कि यदि वसुदेवसे प्रगटमें नियेष किया जायगा तो वह कदाचित् प्रतिकूल हो जाय । यही सोच कर उन्होंने  
वसुदेवको अकेलेमें बुलाया और समझा कर कहा कि तुम्हारा यह शरीर कैसा चदल सा गया जान पड़ता है इसलिये  
ठंडी हवामें स्पर्श ही इधर उधर घूमने फिरनेको आजसे तुम छोड़ दो । यदि तुम्हारी विहार करनेकी ही इच्छा हो  
तो राजमंदिरके चारों ओर, चारागृह मनोहर बन, राजभवन और कृत्रिम पर्वत आदि जगहोंमें यन्त्री-सामंभ योद्धा

पातोन्मुखो भयात्तुर्वर्त्तनं प्रवर्त्तनं निवर्त्तनं ॥ २०५ ॥ शंखनिगार्धिकाख्याभ्यां संयताश्वां वरातटे । कुस्थिताभ्यामियं छाया शुभः कस्येति सावर ॥ २०६ ॥ सुपुरुषो वेणाह्वयः सन्निको बोद्धव्यो विदुः । अने भावोऽतृतीयेस्माच्छायेयं युवयो पिता ॥ २०७ ॥ श्रुत्वा ततो न गतैनं नरिनं भासिनंदनौ । कुतस्ते मृत्तिनिर्दयो बधो विरस सिक्कतात् ॥ २०८ ॥ अयुष्मान्मरणान्नाग्यसौभाग्यादि स्वयैप्सितः । भविष्यति तपः सिद्धेरित्याप्राहयतां तपः ॥ २०९ ॥ निरसोपि तपः कृत्वा महाशुक्लमोजतिः । तत्र बोधवाच्योयुवतुभ्यामिवाच्छितं ॥ २१० ॥ प्रादुरासीत्तदप्युत्वा वगुदेवो वसुधरो । वशीकृत्ययं यस्माद्भासिनौ बलकेशवौ ॥ २११ ॥ इति सर्वमिदं श्रुत्वा संसर्गपरायणः । स प्रेक्षोषककृष्टधाह्वयः स्वीचिकीर्णं परंपदं ॥ २१२ ॥ समुद्रविजयाख्याय दत्त्वाभिषेकपूर्वकं । राज्यमुज्जितसंगः सत्रं शमसगस्तपोग्रहीत् ॥ २१३ ॥ सुप्रतिष्ठजिनाभ्यर्णे राजभिर्बहुभि समं । स संयमाते संन्यस्य विन्यासं निर्वृतेरगात् ॥

छाया किसकी है ? वे गुरु अवधिज्ञानी थे इसलिये कहने लगे कि यह छाया अर्थात् जिनकी यह छाया है वह जीव इस जन्मसे तीसरे भवमें तुम दोनोंका पिता होगा ॥ २०६-२०७ ॥ गुरुराजजी यह बात सुन कर उसके होनहार वे दोनों पुत्र अर्थात् वे दोनों शिष्य मुनि उस नंदीके पास गये और कहने लगे कि हे भाई आपने यह मरनेका विचार क्योंकर लिया अब आप इस निष्फल अपघात कर मरनेका विचार छोड़ दीजिये । आप इस तरह मरकर भाग्य सौभाग्य आदि चाहते हैं सो वह तपस्वरण धारण करनेसे अपने आप सिद्ध हो जायगा । इस तरह समझा कर उसे तपश्चरण धारण करा दिया ॥ २०८-२०९ ॥ वह नंदी भी बहुत दिन तक तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुआ । वहां पर सोलह सागर तक इच्छानुसार दिव्य सुखोंका अनुभव कर वहांसे च्युत होकर सब पृथ्वीको अपने वश करनेके लिये यह वसुदेव हुआ है और इसीसे होनहार नारायण और बलभद्र होंगे ॥ २१०-२११ ॥ महाराज मुनिराजकी ये बातें सुनकर अंधकदृष्टि बड़ी उत्कंठासे विरक्त हुए और उन्होंने मोक्षपद प्राप्त करना स्वीकार किया ॥ २१२ ॥ उन्होंने समुद्रविजयको अभियेक पूर्वक राज्य दिया तथा सब तरहके परिश्रमोंको छोड़कर और श्रान्तताको धारण कर अनेक राजाओंके साथ सुप्रतिष्ठ नामके मुनिराजके समीप दीक्षा धारण की । उन्होंने संग्रम धारणकर अंत में संन्यास धारण किया और कर्मोंको नष्टकर मोक्षपद प्राप्त किया ॥ २१३-२१४ ॥ इधर समुद्रविजय पृथ्वीका पालन करने लगे उनके राज्यमें सब वर्णाश्रमके लोग धर्मकार्यमें अपनी इच्छानुसार यथायोग्य रीतिसे सुखपूर्वक ग्रहण करने लगे ॥ २१५ ॥ महाराज समुद्रविजयने दिक्पालोंके समान आठों भाइयोंमें अपना राज्य बांट दिया था और वे स्वयं सबके साथ सब तरहके सुख देने वाले सब राज्यका अनभव करते थे ॥ २१६ ॥ इस तरह पुण्य कर्मके उदय



बणिक्पते ॥ १८४ ॥ धनादिदेवपात्नाहो देवराजो जिनादिकौ । अहंतो हतदासतौ त्रिनयस्य सप्तमः ॥ १८५ ॥ प्रियमित्रोद्यो धर्मरक्षितारोऽ  
भवत्सुत । प्रियदर्शना च उमेष्ठा च आते दुहितौ ततः ॥ १८६ ॥ दृष्टः सुदर्शनाने मरिस्त्वविरासिके । कदाचिद्विष्वकिणीक्ष्य पुत्रादिपरिवारितौ ॥  
१८७ ॥ सक्रियं धर्ममाकर्ष्य निर्बिण्य स महीपतिः । दत्त्वा दृढरथायामिषेकपूर्वं स्वकं पदं ॥ १८८ ॥ आदरे संयमं पथाच्छ्रेष्ठी च नवभिः सुतैः । ततो  
नदयथा पुत्रिकाद्वेनागमत्पयः ॥ १८९ ॥ सुदर्शनार्थिकाभ्यर्णे तूर्गेनिर्णीतसेच्यति । क्रमाद्वाराणसीयाण केवलशालिनोभवन् ॥ १९० ॥ बने प्रियंगु-  
खडाह्वये मनोहरतमद्वने । गुरुर्मेघयो प्यात्वा धनदत्तश्च ते त्रयः ॥ १९१ ॥ धर्मोद्युतमयीं दृष्टियुगिरेतो निरंतरं । जीवितानि तडे सिद्धशिलाया  
सिद्धिमव्रजन् ॥ १९२ ॥ पुरे राजगृहे पूज्याब्जिजगज्जननायकैः । धनदेवादिक्तास्त्रिमैवान्वेषुः शिलातके ॥ १९३ ॥ नवापि विधिना सम्यस्यंतो वीर्य  
और नौवां धर्मरक्षि ये नौ पुत्र हुए थे । इसीतरह प्रियदर्शना और ज्येष्ठा नामकी दो पुत्रियां हुई थी ॥ १८४-१८६ ॥  
किसी एक समय सुदर्शन नामके उद्यानमें मंदिरस्थविर नामके सुनिराज पवारें । राजा मेघरथ और धनदत्त वैश्य भी  
अपने पुत्रादि सब परिवारके साथ उनकी बंदना करनेके लिये गये ॥ १८ ॥ राजा मेघरथ कियापूर्वक धर्मका स्व-  
रूप सुनकर विरक्त हुआ और अभियेकपूर्वक दृढरथको राज्य देकर उमरं, स्वयं संयम धारण कर लिया । तदनंतर श्रेष्ठ  
धनदत्तने भी अपने नौ पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण की तथा नंदयशाने भी संसारका यथार्थ स्वरूप समझकर सुदर्शना  
अर्जिकाके समीप दोनों पुत्रियोंके साथ साथ तपश्चरण धारण किया ॥ १८८-१८९ ॥ अनुक्रमसे विहार करते हुए वे  
सब बनारस नगरके बाहर प्रियंगुखंड नामके वनमें मनोहर वृक्षोंके नीचे जा विराजमान हुए वहांपर गुरु मंदिरस्थ-  
विर मेघरथ और धनदत्तने शुक्लध्यान धारणकर केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १९०-१९१ ॥ तदनंतर वे निरंतर धर्मा-  
भ्युत्तकी बातें करने लगे और आयु पूर्ण होनेपर तीनों लोकोंके इष्टोंके द्वारा पूज्य होकर राजगृह नगरके समीप सिद्ध-  
शिलासे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए । किसी दूसरे दिन धनदेव आदि नौ भाई दोनों बहिनें और नंदयशाने उसी त्रि-  
लापर विधिपूर्वक संन्यास धारण किया । उन सबको देखकर नंदयशाने निदान किया कि जिसप्रकार ये सब हममभयमें  
मेरे पुत्र हुए हैं उसीप्रकार परमभवमें भी मेरे ये ही पुत्र हों । इसतरह निदानकर उसने संन्यास धारण किया । तदन-  
ंतर प्राण छोड़कर वे सब तेरहवें आनत स्वर्गके शांतकर विमानमें देव उत्पन्न हुए । वहांपर वीर सागरतक उन्हींने  
दिव्य सुखोंका अनुभव किया । फिर वहांसे च्युत होकर नंदयशका जीव तो तेरी सुभद्रा रानी हुई है तथा धन देव  
आदि नौ भाई प्रसिद्ध पौरुषको धारण करनेवाले समुद्रविजय आदि नौ पुत्र हुए हैं और प्रियदर्शना तथा ज्येष्ठा दोनों



त्वामिव मामपि । इत्यबादीदं वास्तु भव्योयमिति निष्पाद्य ॥ १७५ ॥ दिवसेः सहस्रासेन कैथिक्किततन्मनाः । भयाद्वयन्युनिस्तेन स्युमं शुभसाधनं ॥  
१७६ ॥ बुध्यादिकर्दयस्तस्य जाता सवत्सरादवः । श्रीगतमनानामा गुरुस्थानमवाप सः ॥ १७७ ॥ जीवितांते गुरुस्तस्य मय्यैवेयकोद्धरे । विमाने  
सुविशालाख्ये समुत्पन्नः सुरोत्तम ॥ १७८ ॥ स श्रीगौतमनामापि विहिताराधनाविधिः । सम्यक् संन्यस्य तत्रैव संप्रापदहर्निव्रतां ॥ १७९ ॥  
तत्र दिव्य सुलं भुक्त्वा तस्माद्विप्रचरो मुनिः । अर्वाविंशतिवार्यायुर्गतिकांतां च्युतो भवान् ॥ १८० ॥ अजन्मबद्धदृष्टाक्ष्य इति तद्भावयन् सुवी ।  
तत्रो मेघरथो सुलं भुक्त्वा तस्माद्विप्रचरो मुनिः । अर्वाविंशतिवार्यायुर्गतिकांतां च्युतो भवान् ॥ १८१ ॥ सर्वभावात्सत्त्वादेन ध्वनिना निजगाद स । जंबूद्वीपे मंगलाख्ये ॥ १८२ ॥ च्युतो मेघरथो  
स्वपुत्रमवधवध सोवयुष्क पुनर्जिन ॥ १८३ ॥ सर्वभावात्सत्त्वादेन ध्वनिना निजगाद स । जंबूद्वीपे मंगलाख्ये ॥ १८४ ॥ पदबंधं स्वपुण्येन यौवराज्यस्य सोविभ । तत्र नंदयशोनाम्न्यां धनदत्त  
नामा पुरे भद्रिलनामनि । सुमद्रायां सुतस्तस्य रत्नांतद्वदसङ्कटः ॥ १८५ ॥ पदबंधं स्वपुण्येन यौवराज्यस्य सोविभ । तत्र नंदयशोनाम्न्यां धनदत्त  
सुद्रसेन नामके महा मुनिराजके पीछे पीछे गया । वैश्रवण नामके शेटने उनका पहगाहन किया । शेटने उस ब्राह्मणको  
मी कंठतक भोजन कराया ॥ १७३-१७४ ॥ भोजनकर वह ब्राह्मण मुनिराजके पीछे पीछे उनके आश्रममें गया और  
उन मुनिराजसे कहने लगा कि हे स्वामी आप अपने समान मुझे मी चना लीजिये मुनिराजने पहिले तो यह निश्चय  
किया कि यह वास्तवमें भव्य है, फिर कुछ दिन तक साथ रखकर उसका मन देख्ना और फिर उसे शांत परिणामों-  
का कारण ऐसा संयम धारण कराया ॥ ७५-७६ ॥ एक वर्षके बाद ही बुद्धि आदि अनेक कदियां उसे प्राप्त होगई  
और श्री गौतम नामके साथ साथ ही वह अपने गुरुके स्थानपर जा पहुंचा अर्थात् उनके समान होगया ॥ ७७ ॥  
आयुके अंतमें उसके गुरु मध्यम ब्रैवेयकके सुविशाल नामके ऊपरके विमानमें अहर्निद्र उत्पन्न हुए और श्री गौतम  
मुनिराज मी विधि पूर्वक चारों आराधनाओंका आराधन कर और अच्छी तरह संन्यास धारण कर उसी मध्यम ब्रैवे-  
यकके सुविशाल नामके विमानमें अहर्निद्र हुए ॥ ७८-७९ ॥ अट्टाहस सागर तक वहांके दिव्य सुखोंका अनुभव कर  
वह ब्राह्मण मुनिका जीव वहांसे च्युत हुआ और अंधकदृष्टि नामका तू राजा हुआ है । इस तरह अपने भवोंका अनु-  
भव करता हुआ वह बुद्धिमान् अंधकदृष्टि फिर भगवानसे अपने पुत्रोंके भवोंका संबंध पूछने लगा ॥ ८०-८१ ॥ वे  
भगवान मी सब भाषाओं में परिणत होनेवाली अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके मंगला देशके  
भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ राक्ष्य करता था उसकी सुभद्रारानीसे ददरथ नामका पुत्र हुआ था ॥ ८२-८३ ॥  
अपने पुत्र कर्मके उदयसे ददरथके यौवराज्यका पद नांथा गया था । उसी नगरमें एक धनद्वय वैश्य रहता था उस  
की नंदयशो बहीसे धनपाल, देवपाल, जिनदेव, अर्हदक्ष, अर्हारास, सातवां जिनदक्ष, आठवां त्रियमित्र

मलपारी परिमष्टोषधियविजृम्भणः । जिह्वाविकृत्यैवेच्छन् दहचारीव भृषति ॥ १६९ ॥ तमस्तप्तप्रजतानां रसमीदमवेक्षति । वेपथुस्य स्फुटीकृतं  
मिहस्त्वानां विनिर्मित ॥ १६८ ॥ दधन्यासमसीदुर्णमर्कमीरया तमधयः । नररूपधरो वासि सुपुण्यः पापभाक्कचित् ॥ १६९ ॥ आकट्ठर्णहारोपि  
नयनाभ्यामवसृजान् । परिवीतकटीजीर्णछिद्रिताशुमर्कपटैः ॥ १७० ॥ प्रणवैगद्यसंसकर्मक्षिकोपैरितस्ततः । कुर्यात्कनकवदनेष्टयो मुक्तैरनपायिभिः ॥  
१७१ ॥ पौरवाल्क्यसंयातेरुध्यातेरुत्कर्षण । उगलादिप्रहारेण ताव्यमानः प्रकोपवान् ॥ १७२ ॥ अनुयाय्यसुतवैव दुल्लः कलमवीगमत् । कदाचि-  
न्मन्थकालादिरुज्यातो महायुनि ॥ १७३ ॥ मयुदसेननामान पर्यटतं तनुस्थिते । भणितवैश्वकर्षणागरे तेनाकट्टमसोऽयुत ॥ १७४ ॥ पुनर्मुन्याश्रमं गत्वा ऊव  
वाच्छित्त रसकं ससान 'दो दो' ऐसे बचनोंसे वह सदा लोलुपी रहता था और वह पापी सिधासे कमी तप्त नहीं हो-  
ता था जिसप्रकार पर्वके दिनोंमें बलि (श्राद्धके दिनोंमें काशोंके लिये ढाला हुआ अन्न) दूढ़वा हुआ कौआ इधर  
उधर फिरता है उसी तरह वह सब ओर मील मांगता हुआ फिरता था । मुनियोंके समान वह ठंडी गर्मीके दुल सहता  
था, उसका शरीर सदा मैला रहता था और उसकी सब इद्रियां सदा शिथिल रहती थीं । जिसप्रकार खानेकी इच्छा  
करनेवाला राजा अधिक दंड देता है उसीप्रकार वह खानेकी इच्छा करता हुआ वह सदा दंड लिये फिरता था ॥ १६५-  
१६७ ॥ सातवें नरकमें उत्पन्न हुए नारकियोंका ऐसा ही रूप होता है इसी बातको यहांके लोगोंपर प्रगट करनेके लिये  
मानों नाम कर्म रूपी ब्रह्माने उसका शरीर बनाया जान पड़ता था ॥ १६८ ॥ उसका वर्ण ( रंग ) काले उड़दके स-  
मान था और ऐसा जान पड़ता था मानों सूर्यके डरसे पापी और अतिशय निंदा करने योग्य अधकारके समूहने ही  
अपना मनुष्यका रूप धारण कर लिया है कंठतक पूर्ण भोजन कर लेनेपर भी वह नेत्रोंसे कमी तप्त नहीं दिखता था  
और उसकी कमरपर केवल फटी पुरानी तथा बहुत बुरी एक लंगोटी रहती थी ॥ १६९-१७० ॥ उसके शरीर पर  
बहुतसे घाव हो गये थे उनकी बड़ी दुर्गंध आती थी तथा मिनमिनाती हुई अनेक मक्खियां मुँदके समान उसे सदा  
घेरे रहती थीं और वे कमी वहासे हटती नहीं थीं इससे उसे बड़ा ही क्रोध आया करता था ॥ १७१ ॥ नगरके ल-  
डकोंका समूह सदा उसके पीछे लगा रहता था और ककर पत्थरोंकी वर्षाकर सदा उसकी ताड़ना किया करता था  
इससे भी उसे सदा क्रोध आया करता था ॥ १७२ ॥ इस तरह दौड़ता फिरता वह अनेक दुःखोंसे अपना समय व्य-  
तीत करता था । किसी एक समयकाल लब्धि प्राप्त हो जानेसे वह गौतम ब्राह्मण चर्योंके लिये विहार करते हुए स-

महा०

पुराण

४६१

तलवरो द्विज । श्येनकाश्यो भ्रमन् दृष्ट्वा रात्रौ स्वां हन्यह नहि ॥ ५४ ॥ द्विजाख्याचारिण याहि नगरादृश्यसे यदि पुनः । कृतातवक्त्रं त्वं नेष्यसे दुःखिगो मया ॥ १५५ ॥ इत्यतर्जयत्सोऽपि कालकाश्येन पापिता । सममुक्तामुखीव्याधनिवासपतिनिगमत् ॥ १५६ ॥ स कदाचिदयोध्यायां गोकुलापहृतौ द्विजः । श्येनैर्न हृतोऽयसीन्महापापादधोगति ॥ १५७ ॥ ततश्च्युत्वा महाभक्त्यो हरिर्दिविवोरगः । शार्दूलो पक्षिणमीशो व्यालव्याधश्च समवन् । प्रविश्याद्यो गती सर्वाः कृच्छ्रात्ताभ्यो विनिर्गत । त्रसस्थावस्यावेत् चिरं कालं परिभ्रमन् ॥ १५८ ॥ जवूलक्षिते द्वीपे, भरते कुरुजागले । हस्तिनाख्ये पुरं पाति धराधीशे धनजये ॥ १५९ ॥ युतो गौतमगोत्रस्य सबभूव द्विजात्मज । कापिष्ठ्य निःश्रीकः सोनुर्व्याध गोतमः ॥ १६० ॥ तत्समुत्पत्ति-मात्रेण तच्छेषमभवत्कुल । अलव्याध-कृशीभूतजठर प्रगटास्थिकः ॥ १६१ ॥ त्रसावनन्दुष्कायो यूक्ताचित्तशिरोरह । शयानश्चव सर्वैश्चाजितो यत्र तत्र वा ॥ १६२ ॥ कराग्रकर्परेणोपलक्ष्यमाणोऽनयायिना । सुमित्रैर्नव सर्वत्र शरीरस्थितिहेतुना ॥ १६३ ॥ वाञ्छितेन रसेनैव देहीति वचसा तदा । देवा तो फिर मैं तुझे मार ही दूंगा ॥ १५४-१५५ ॥ इसतरह तर्जना करनेपर वह पापी उस शहरसे निकल गया और उलकामुखी पर रहने वाले मीलोंके स्वामी कालिकसे जा मिला ॥ १५६ ॥ किसी एक समय उसी ब्राह्मणने अयोध्यामें आकर बहुतसी गायें जुगई थीं इसलिये वह श्येनक नामके कौतवालेके द्वारा मारा गया और महा पाप करनेके कारण नरकमें नारकी हुआ ॥ १५७ ॥ वहाँसे निकलकर महामत्स्य हुआ फिर नरकमें गया, वहाँसे आकर सिंह हुआ, मरकर नरक गया, वहाँसे आकर दृष्टिविष ( जिसकी आखोंमें ही विष हो ) नामका सर्प हुआ । फिर नरकके दुख भोग कर सिंह हुआ और फिर नरकमें पहुँचा । वहाँसे आकर गरुडपक्षी हुआ फिर नरक गया, वहाँसे निकलकर सर्प हुआ फिर नरकमें जाकर मील हुआ इसतरह परिभ्रमण कर उस रुद्रदत्तके जीवने त्रस और स्थावर योनियोंमें बहुत दिनतक परिभ्रमण किया ॥ १५७-१५८ ॥ अंतमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा धनजय राज्य करता था उसी नगरमें गौतम गोत्रका कपिष्ठ नामका ब्राह्मण रहता था उसी ब्राह्मणके उसकी अनुवरी ब्राह्मणीसे वह रुद्रदत्तका जीव गौतम नामका महा दरिद्र पुत्र हुआ ॥ १६०-१६१ ॥ उत्पन्न होते ही उसका सब कुल नष्ट होगया था, उसे कमी खानेकी नहीं मिलता था, पेट उसका सूख गया था, हडिडया निकल रही थीं, केवल न सोसे घिरा हुआ शरीर बहुत ही बुग दिखता था, उसके शिरके बाल जूँओंसे भरे थे और जहाँ कहीं वह जाता था वहींपर सब लोग उसे ललकार और फटकार बतलाते थे ॥ १६२-१६३ ॥ वह अपना शरीर रखनेके लिये अ-र्थात् पेट भरनेके लिये कमी अलग न होनेवाले श्रेष्ठ मित्रके समान हाथमें सदा खण्ड लिए फिरता था ॥ १६४ ॥

मिमयेऽसौ विधाय ज्योतिषा गणे । देवः सुदर्शनी नात्रा भूत्वा प्राजन्मवेरत ॥ १४३ ॥ मसायमकरोदीदिति तद्वाक्यमादरत् । भुत्वा सुरार्णो  
सुक्तेरः सद्धर्मप्रणीत् ॥ १४४ ॥ अथातोषकदृष्टिश्च भुत्वा सुकलयन्करो । स्वपूर्वभ्रमवधमनुच्छिन्नपुगव ॥ १४५ ॥ वीतरागोपि सोप्याह तत्पुष्ट-  
शिष्टागुण । निनिमित्तहिताख्यान नाम तेषु निसर्गज ॥ १४६ ॥ द्वीपेनैव विनोतायां नरैर्दोऽनतवीर्यवारु । सुरैर्दत्तस्तत्रैव वैश्यो वेश्रवणोपमः ॥  
पात्रदानेन सशील- सोपवासकः ॥ १४९ ॥ धर्मशील इति ह्यगति स समापापपापक । गन्तु वारिपथ वच्छिन्नन्येद्युर्वणिजावरः । सहितः  
समावज्यं धनमागतुक. परं । जिनपूजाव्यायार्थं द्वादशाब्दनिवधन ॥ १५१ ॥ मित्रस्य रुद्रतस्य ब्राह्मणस्य करे न्यधात् । अनेन जिनपूजादि कुर्वह  
वा त्वमित्यसौ ॥ १५२ ॥ तस्मिन् गते स विप्रोपि लीयूतव्यसनादिभि । घन कतिपर्यरेव दिनेष्वयमनीनयत् ॥ १५३ ॥ तत्तथायादिदुष्कर्मसक  
पहिले भवोंका संबंध पूछा ॥ १४५ ॥ शिष्ट वचन ही जिनका मुख्य गुण है ऐसे वे वीतराग भगवान मी उनके प्रश्न हे  
अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि विना किसी कारणके हितोपदेश देना उनका स्वाभाविक गुण है ॥ १४६ ॥  
वे कहनेलगे कि इसी जब्द्वीपके अयोध्या नगरमें राजा अनंतवीर्य राज्य करता था । उसी नगरमें कुबेरके समान  
धनवान् एक सुरेंद्रदत्त नामका श्रेष्ठ रहता था ॥ १४७ ॥ वह श्रेष्ठ प्रतिदिन दश दीनारसे भगवान अरहत देवकी पूजा  
करता था तथा अष्टमीके दिन वीम दीनारसे, अमावस्यके दिन चालीस दीनारसे, और चतुर्दशीके दिन अस्सी दीनारसे  
भगवानकी पूजा करता था । वह इस तरह खर्च करता था, मदा पात्रदान देता था, शील पालन करता था और  
अनेक उपवासादि करता था ॥ १४८-१४९ ॥ इन्हीं सब कारणोंसे उस पाप रहित श्रेष्ठने धर्मशीलकी उपाधि पाई  
थी । किसी एक दिन उस वैश्यवरने समुद्रमार्गमे जाकर घन कमानेकी इच्छा प्रगट की उसने बाह वर्प तक भगवानकी पूजा करके लौट आ-  
नेका विचार किया इसलिये उसने बारह वर्ष तक भगवानकी पूजा करनेके लिये अपने मित्र रुद्रदत्त ब्राह्मणके हाथ  
धन सौंप दिया और ममज्ञा दिया कि इस धनसे बाजार इस तरह भगवानकी पूजा करते रहना । क्योंकि मुझमें  
तुझमें कुछ अंतर नहीं है ॥ १५०-१५२ ॥ परंतु वैश्यके चले जानेपर उस ब्राह्मणने थोड़े ही दिनोंमें जूआ खेलना  
खी सेवन करना आदि व्यमर्शोंके द्वारा सब धन खर्च कर दिया ॥ १५३ ॥ तब फिर वह चोरी आदि बुरे कर्म करनेमें  
लग गया । किसी एक दिन अयेमक नामके कोतवालने घूमते हुए रात्रिमें उसे देख लिया और कहा कि तू ब्रा-  
ह्मण है इसलिये मैं तुझे मारना नहीं चाहता, तू मेरे सहरसे निकल जा यदि ऐसे नीच कर्म करनेवाला तू फिर दिखाई

उद्यमस्य ऋणिकुत्रै तत्रदेशे निजं धन । अनिरीक्ष्य स्रौत इत्वा श्रद्धधानो परस्परं ॥ १३२ ॥ बद्ध्यायुः क्रोधलोभाभ्यामायं नरकमीयतु । तत्र दुःख  
विदं भुक्त्वा ततो विध्याद्रिकदरे ॥ १३३ ॥ जातौ मेया पुनस्तत्राप्यन्यो यवकांरिणौ । गोकुले कृषभा जातौ गगातटनिवासिनि ॥ १३४ ॥ तत्र  
जन्मांतरद्वेष्टाकृत्युद्धां गतासुवै । सम्मेदपर्वते जातौ वानरौ वा नरौ धिया ॥ १३५ ॥ शिलासलिलहेतोस्तौ कलहं सक्तं चक्रतुः । मृतस्तयोः सपथेकः  
परं कंठगतासुकः ॥ १३६ ॥ सुरदेवदियुर्वतचारणाभ्यां समुत्सुकः । श्रुत्वा पञ्चनमस्कारं धर्मश्रुतिपुरःसरं ॥ १३७ ॥ सौधर्मकत्वे वित्रागदाह्यो  
देवोजनिष्ठः स । ततो निर्गल्य जन्वादिद्वीपे भरतमप्यगे ॥ ३८ ॥ सुरम्यविषये पोदनेशः कुस्थितभूतैः । सुलक्षणायां पुत्रोभूत्सुप्रतिष्ठो बरिष्ठधीः ॥  
१३९ ॥ कदाचित्प्राङ्मार्गे गिरावसितनामनि । युद्धं मर्दयौवीक्ष्य स्थृतप्रागजन्मचेष्टितं ॥ १४० ॥ सुधर्माचार्यमासाद्य दीक्षित्वाऽभववीक्ष्य । सूरदत्त  
वरः सोहृदस्तोयजुजो भवै ॥ १४१ ॥ आत्माते सिधुन्नीरस्यमृगायणतपस्विनः । विशालायाश्च तोकभद्रोत्तमाख्य कुदर्शनात् ॥ १४२ ॥ तपः पचा-

तक वहांसे दुःख भोग कर निकले और विध्याचल पर्वतकी गुफामें दोनों ही मेंढा हुए । वहां पर भी वे दोनों आप-  
समें लड कर मरे और गंगानदीके किनारे गाथोंके समूहमें दोनों ही सांड हुए ॥ १३२-१३४ ॥ जन्मांतरके द्वेषसे  
वहां भी वे परस्पर युद्ध कर मरे और सम्मेद पर्वत पर बुद्धिसे मनुष्योंके समान बंदर हुए ॥ १३५ ॥ वहां पर पत्थरसे  
निकलते हुए पानीके लिये दोनों ही लड़ने लगे । उनमेंसे एक तो मर गया और दूसरा कठगत प्राण होगया ॥ १३६ ॥  
उसी समय सुरगुरु और देवगुरु दो धारण मुनि वहां आ पहुंचे उनसे उसने बड़ी उत्कंठासे पंचनमस्कार मंत्र सुना  
और इसतरह धर्मश्रवणपूर्वक मरकर सौधर्म स्वर्गमें चित्रांगद नामका देव हुआ । वहांसे निकलकर जंबूद्वीपके भरत-  
क्षेत्रमें सुरम्भ देशके पोदनापुर नगरके राजा सुस्थित गनी सुलक्षणाके उत्तम बुद्धिवाला सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ ॥  
१३७-१३९ ॥ किसी एक समय वर्षा ऋतुके प्रारंभमें अवसित नामके पर्वतपर उसने दो बंदरोंका युद्ध देखा उसे दे-  
खकर उसे पूर्व जन्मका स्मरण हो आया और सुधर्माचार्यके निकट जाकर उसने दीक्षा धारण कर ली । वही सुरदत्तका  
जीव मैं हूं । मेरा छोटा भाई सुदत्त संसारमें परिभ्रमण कर सिंधु नदीके किनारे मृगायण नामके तपस्वीके उसकी वि-  
आला स्त्री से गौतम नामका पुत्र हुआ । मिथ्यादर्शनके प्रभावसे पंचादि तपश्चरण कर सुदर्शन नामका ज्योतिषी देव  
हुआ है । पूर्व जन्मके वैरसे ही इसने सुक्ष्मपर ऐसा उपसर्ग किया है । सुदर्शन नामके उस ज्योतिषी देवने उन सुप्रतिष्ठ  
सर्वज्ञदेवके वचन बड़े आदरसे सुने और अपना सब तरहका वैर विरोध छोड़कर उसने उत्तम जैन धर्म स्वीकार किया  
॥ १४०-१४४ ॥ अधानंतर-अंशकहठिने ये सब बाहें सुनकर और अपने दोनों हाथ जोड़कर उन भगवानसे अपने

स्वयमादाय तपोस्तुतैः सयाचन् । गतेषु द्वादशाब्देषु पर्वते गंगमादत्ते ॥ १२२ ॥ प्रतिमायोगमालम्ब्य उपतिष्ठन् सिद्धतः । देवः कुदशो नाम ककारोपकृतं  
 कृपा ॥ १२३ ॥ उपसर्गं विस्मयात् सोढ्वाशेषपरिवहन् । च्यानेनाहत्वा क्लीनि प्रादुरासीत् केवली ॥ १२४ ॥ देवैश्चकृदृष्टिः सह प्रणयमागतः । अपृच्छ-  
 देव देवाय देवस्ते केन हेतुना । महोपसर्गं पृथस्य कृतवानिति विस्मयात् । तदुक्त्यवसितौ व्यक्तं जिनेन्द्रोद्योवयववीत् ॥ १२६ ॥ द्विप्रेक्षित्वा भारते क्षेत्रे  
 कलिगविषये पुरे । काष्ठां बभिक्षुतः सूरदत्तोन्मथ सुदत्ताक् ॥ १२७ ॥ लकाद्वीपदिषु त्वैर समावर्त्य निज धनं । पुरो न्यक्षिपतां गृहं प्रवेशो  
 शुष्कमीलुका ॥ १२८ ॥ मूलधुपविशेषस्य सामिगानमधोम्यदा । कथिम्यप्रयोगार्थं हुने तपोमयभूलां ॥ १२९ ॥ मूलानुक्तस्य संयुक्तं विलोक्य  
 बहु तद्वनं । किमनेन मुपा मूलखननेनात्पहेतुना ॥ १३० ॥ सुप्रभूतमिदं तन्म धनं द्वापिपृच्छति । सिद्धवात्यामृतेभ्योस्त्रियादाय कृतस्ततः ॥ १३१ ॥  
 धारण कर विराजमान हुए । उस समय सुदर्शन नामके किसी देवने कोधमें आकर कुछ उपद्रव किया ॥ १२२-१२३ ॥  
 परंतु वे मुनिराज उस उपसर्गको जीत कर तथा सब परीषद्को सहनकर और शुक्लध्यानके द्वारा धातिया कर्मोंको  
 नाश कर केवलज्ञानी हुए ॥ १२४ ॥ उस समय सब देवोंके साथ पूछा कि हे देव इस देवने किस कारणसे आप ऐसे पूथ्य  
 आए और उन्होने उन्हीं भगवानसे बड़े आश्चर्यके साथ पूछा कि हे देव इस देवने किस कारणसे आप ऐसे पूथ्य  
 पुरुषोंको उपद्रव किया । उनके इस प्रकार कह चुकने पर श्रीजिनेन्द्र देव कहने लगे ॥ १२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके  
 भगवत्क्षेत्रमें कलिंग देशके कांचीपुर नगरमें दो वैश्यपुत्र रहते थे एकका नाम सुदत्त था और दूसरेका नाम सुदत्त  
 था ॥ २७ ॥ उन दोनोंने लंका आदि अनेक द्वीपोंमें जाकर धन कमाया था । जब लौट कर वे अपने नगरमें आए  
 तो उस धन पर कर लग जानेके डरसे उन्होंने वह धन शहरके बाहर ही किसी वृक्षके नीचे गाढ़ दिया था और  
 उसी वृक्षके नीचे पहिचाननेकेलिये कुछ चिन्ह कर दिया था । किसी दूसरे दिन कोई अन्य पुरुष मद्य बनानेके  
 लिये वृक्षोंकी जड़ोंको ढूँढता हुआ उसी वृक्षकी जड़ खोदने लगा और वहाँ पर बहुतसा धन देखकर विचार करने  
 लगा कि थोड़ेसे पैसे देनेवाली इन जड़ोंके उखाड़नेसे क्या लाभ है मुझे तो अब यह बहुतसा धन मिल गया है इससे  
 मेरा सब दारिद्र्य दूर हो जायगा और मैं अपनी उमर तक इस धनसे भोगोपभोगोंका सेवन करूँगा यही समझकर  
 वह उस धनको लेकर चला गया ॥ १२८-१३१ ॥ उसके बाद वे दोनों वैश्यपुत्र आए और उस जगह अपना धन न  
 देखकर परस्पर लड़ने लगे । उन दोनोंको एक दूसरे पर धन ले जानेका विश्वास हो गया था इसलिये परस्पर एक  
 दूसरेको मारते हुए दोनों ही मर गये और क्रोध लोभसे नरकागुह्यं चंद्र कर पहिले नरकमें जा पहुंचे । बहुत दिन

पत्रकेण सहार्भक । कुल्या परिजनः कालिषाः श्रवाहे सुगोच त ॥ १११ ॥ चपाए  
सविस्मय ॥ ११२ ॥ पश्यन् स्वसैन्ये राधायै तुक स्यादिति भाववित् । दत्ता सकृद्विलोक्यैव राधा कर्णपरिस्पृष्टा ॥ ११३ ॥ अस्तु कर्णाभिधानेने  
मिति सादरसम्बन्धित । पांडो कुल्या च मद्रुला च पाणिप्रदण्डैर्दक ॥ ११४ ॥ प्राजापत्येन सबधो विवाहेनाभवतुनः । कुल्यामजनि धर्मो धर्मपुत्रो  
धराधिप ॥ ११५ ॥ मीमसेनोऽनु पार्थश्च त्रयो वंशत्रयोपमाः । मद्रुला च नकुलो ज्येष्ठः सहदेवस्ततोन्वभूत ॥ ११६ ॥ धृतराष्ट्राय गाधारी दत्तः दुर्धो-  
धनोऽजनि । तयोर्दुःशासन पश्चादथ दुर्धर्षणस्ततः ॥ ११७ ॥ दुर्मपणाथाः सर्वेपि शतमेकं महेजस । एव सुखेन सर्वेषां कालो गच्छति लीलाया ॥  
११८ ॥ अन्येणः सुप्रतिष्ठाह्यो सुनीद्री गंधमादने । शिरौ सन्निहितः शूरवीराह्यो वदितु निजं ॥ ११९ ॥ पुत्रपौत्रादिभिः सार्द्धं गत्वाभ्यर्च्यमिनुत्य त ।  
श्रुत्वा धर्मं तदुद्दिष्टं स सर्वेपरायण ॥ १२० ॥ कृत्वास्मिन्नेव च दत्ता राज्यमथकदृष्टये । योगयोग्यमिति सगोऽयं यौवराज्य कनीयसे ॥ १२१ ॥ समय

उदय होते हुये सूर्यके समान बालक था उस बालकको देखकर उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ । अपनी सब सेनाके साथ  
उसे देखकर विचार किया कि रानी राधाके लिये यह पुत्र हुआ । यही सोचकर उसने वह पुत्र अपनी रानी राधाको  
दिया । राधाने देखा कि वह पुत्र अपना कान पकड़े हुए है इसलिये उसने बड़े आदर और प्रेमके साथ कर्ण उसका  
नाम रखवा । वह सब काम हो जानेके बाद कुंती और मन्त्रीके साथ पांडुका विवाह हुआ ॥ ११२-११४ ॥ तभीसे  
प्राच्यापत्य विवाहका संबंध प्रचलित हुआ है कुंतीके धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) नामका धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ था तथा  
उसके बाद मीमसेन और अर्जुन हुए । इस तरह उस कुंतीके तीनों बर्गके समान तीन पुत्र हुए । इसी तरह मन्त्रीके  
बड़ा पुत्र नकुल हुआ और फिर उसके बाद सहदेव हुआ ॥ ११५-११६ ॥ धृतराष्ट्रको गांधारी दी गई थी इसलिये उन  
दोनोंके दुर्योधन, दुःशासन, दुर्धर्षण और दुर्मर्षण आदि प्रतापशाली सौ पुत्र हुए । इस प्रकार उन सबका बड़े सुखसे  
लीला पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था ॥ ११७-११८ ॥ किसी दूसरे दिन गंधमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ नामके मुनि-  
राज आ विराजमान हुए थे इसलिये महाराज शूरवीर अपने पुत्र पौत्रादिके साथ उनकी बंदना करनेके लिये निकला ।  
वहाँ जाकर उनकी पूजा की नमस्कार किया उनका कहा हुआ धर्म भवण किया तथा संभारके दुःखोंसे भरकर और  
विरक्त होकर अवकदृष्टिका राक्षसामिषेक कर उसे राज्य समर्पण किया । इसी तरह छोटें नरवृद्धिको योग्य समझकर  
उसे यौवराज्यपद दिया ॥ ११९-१२१ ॥ वह सब काम कर उन्होंने स्वयं संस्रम धारण किया और वे जोर तपस्व-  
एव करने लगे । इसके बाद बारह वर्ष बीते थे ही सुप्रतिष्ठित मुनिराज फिर उसी गंधमादन पर्वत पर प्रतिमा योग



तनवाः । उभयदेवमहत्पुण्येनांतश्च गुणान्विताः ॥ १०० ॥ गांधारी न मुना ग्राहुरभवनं शुभदायिन । अपि कैरमगुह्यस्य दारिद्र्येन हन्यतुरे  
 शिनः ॥ १०१ ॥ शक्तिनाममहीशस्य मातृकयैश्च परास्त्र । तस्य मातृकुलोत्पन्नगजपुत्र्या सुतोभवत् ॥ १०२ ॥ सत्यवत्या सुधीर्व्यास पुनर्व्यास-  
 १०४ ॥ विलोम्य पांडुरंगलो गन्ते ततगमग्रहीत् । स्पृष्ट्वा खग विरूढस्य मुद्रिका तामितस्तत् ॥ १०५ ॥ अन्विच्छत विलोक्याह पांडुः किं सृज्यते  
 त्वया । इति तद्वचनं श्रुत्वा विद्याभूषणम मुद्रिका ॥ १०६ ॥ विनष्टेत्युदत्तस्य पांडुश्चतामदशयन् । पुन किमनया कृत्यमिति तस्यानुयोजनात् ॥ १०७ ॥  
 भद्रया कामरूपस्य सायनीत्यब्रवीत्खग । यथैव कानिचिद् भ्रातृदिनान्येपास्तु मत्करे ॥ १०८ ॥ प्रभवमस्या पद्माम्नीत्यर्थतस्तेन सोप्यदात् । पांडुश्च  
 तत्कृताव्ययनिरूपेण सगम ॥ १०९ ॥ कुला सहकृतोत्पन्नस्तत्र कर्णः सुतः । ततः परैरविरहितं मज्ज्यास्य सकुडल ॥ ११० ॥ स राजकन्य लेख्य-  
 व्यासकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था इसलिये व्यासके उस सुभद्रासे धृतराष्ट्र पांडु और विदुर ये तीन पुत्र हुए थे ॥  
 १००-१०३ ॥ अथानंतर किसी एक समय वज्रमाली नामका विद्याधर हस्तनापुरके वनमें क्रीडा करने आया था और  
 वह अपनी अंगूठी भूलकर चला गया था ॥ १०४ ॥ राजा पांडु भी उस समय क्रीडा करनेके लिये वनमें गये थे और  
 वह अंगूठी देखकर उन्हें उठाने लगा कि मेरी अंगूठी गिर गई है उसे ही ढूँढता फिरता हूँ इसके उत्तरमें पांडुने यह बात  
 सुनकर वह विद्याधर कहने लगा उसे ढूँढता हुआ देखकर पांडुने कहा कि आप क्या बूढ़ रहे हैं ? पांडुकी यह बात  
 गूठी उसे दिखला दी । इसके बाद पांडुने उस विद्याधरसे पूछा कि इससे क्या काम निकलना है ॥ १०५-१०७ ॥  
 इसके उत्तरमें उस विद्याधरने कहा कि हे भद्र ! यह इच्छानुसार रूप बना देनेवाली है । यह सुनकर पांडुने प्रार्थनाकी  
 कि हे भाई यदि ऐसा ही है तो थोड़े दिन तक इसे मेरे हाथमें रहने दो मैं इसका प्रभाव देखना चाहता हूँ । ऐसी  
 प्रार्थना करनेपर विद्याधाने भी वह अंगूठी उसे दे दी । पांडुने उसे पहिनकर अपना पुत्र हुआ । कुंतीके परिजनोंने दूसरोंको मालूम न होने-  
 पावे इसतरह छिपाकर उस बालकको एक सद्रूपमें रखवा उसे कुंडल पहिना दिये रत्नोंका कवच पहिना दिया तथा  
 उसका परिचायक एक लेख लिखकर रख दिया । इस तरह रखकर वह सद्रूप गणुना नदी के प्रवाहमें छोड दी ॥  
 १०८-१११ ॥ वह सद्रूप बहती बहती चंपापुरके राजा आदित्यके यहां पहुंची उसने उसे खोलकर देखा तो उसमें

मार्कण्डेयस्तु नाम्नैव इति ते तमुदाहरन् ॥ ९० ॥ एष देवोपनीत तद्राज्य सुचिरमन्ययुत । सताने तस्य निर्यतो हरिर्हिमगिरि पर ॥ ९१ ॥ वृत्तीनो वसुगिर्याख्य परेमि बहवो गता । तदा कुशार्थविषये तद्राजावरमास्वतः ॥ ९२ ॥ अर्वायनिजशौर्येण निजिंताशोषविक्षिय । ख्यातशौर्यपुगधीशसू-सेन-महीपते ॥ ९३ ॥ सुतस्य शूरवीरस्य धारिण्याश्च तनुद्वयौ । विख्यातौ चक्रकृष्ट्य पतिर्विजितं रादिशक्र ॥ ९४ ॥ धर्मो बाधककृष्टश्च सुमद्रायाश्च तुगवराः । समुद्रविजयोऽशोभ्यस्तस्तिमितसागर ॥ ९५ ॥ हिमवान् विजयो विद्वाननन्वलो धारणाढ्य । पूरणं पुरितार्थाच्छो नवमोप्यमिनदनः ॥ ९६ ॥ बगुदेवो-तिमर्धैव दशाभूवन् शशिप्रभाः । कुन्ती मदी च सोमेवा सुते प्रादुर्बभूवुः ॥ ९७ ॥ समुद्रविजयावीना नवानां सुरतप्रदाः । शिवदेव्यनु तस्य धृतीधरा स्वयंप्रभा ॥ ९८ ॥ सुनीताख्या च शीता च प्रियवाक् च प्रभावती । कालिगी सुप्रभा चेति बभूवुर्बुबनोत्तमाः ॥ ९९ ॥ पद्मावत्या द्वितीयस्य कृष्ट्य

किंसी देवने स्त्रीमहित लाकर मुखे यहां आ पटका है और अबतक मैं बनमें ही ठहरा हुआ था ॥ ८८-८९ ॥ राजाकी यह बात सुनकर उन लोगोंने उसे मृकंडका पुत्र समझकर उसका मार्कण्डेय नाम रक्खा और फिर इसी नामसे वे लोग पुकारने लगे ॥ ९० ॥ इस तरह वह मार्कण्डेय नाम धामी सिंहकेतु देवयोगसे प्राप्त हुये राज्यका बहुत दिन तक उपभोग करने लगा । उसीकी संतानमें हरिगिरि हेमगिरि और वसुगिरि आदि अनेक राजा हुए उन्हींमें कुशार्थ देशके शौर्यपुर नगरमें राजा मूरसेन हुआ था जो कि हरिवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान था और जिसने अपनी अनिवार्य शूरवीरतासे सब शत्रु जीत लिये थे उस मूरसेनके शूरवीर नामका एक पुत्र था और उसकी स्त्री का नाम धारिणी था उसके अंबककृष्टि और नरदृष्टि नामके दो पुत्र हुए थे ॥ ९१-९४ ॥ अंबक कृष्टिकी रानीका नाम सुमद्रा था उसके धर्मके समान क्षोभरहित समुद्रविजयी १ स्तिमितसागर २ हिमवान् ३ विजय ४ विद्वान् अबल ५ धारण ६ पूरण ७ पुरितार्थोच्छ ८ अभिनंदन ९ और वसुदेव १० ये चंद्रमाकी किरणोंके समान दश पुत्र हुए थे तथा इसीतरह चंद्रमाकी चारिनीके समान कुन्ती और मदी नामकी दो पुत्रियां हुई थीं ॥ ९५-९७ ॥ समुद्रविजय आदि पहिलेके नौ पुत्रोंके अनुक्रमसे शिवदेवी, धृतीधरा ( पृथ्वी ) स्वयंप्रभा, सुनीता, सीता, प्रियवाक्, प्रभावती, कालिगी और सुप्रभा ये संसारमें सबसे उत्तम स्त्रियां थीं ॥ ९८-९९ ॥ नरदृष्टिकी रानीका नाम पद्मावती था और उससे उनके उग्रसेन देवसेन और महासेन ये तीन गुणी पुत्र हुए थे तथा एक गांधारी नामकी पुत्री हुई थी, ये सब पुत्र पुत्री सुख देने वाले थे ॥ इधर हतिनापुर नगरमें कौरव वंशी राजा शक्ति गजय करता था उसकी शतकी रानीसे पारासर नामका पुत्र हुआ था उस पारासरके मत्स्य कुलमें उत्पन्न राजपुत्री रानी सत्यवतीसे बुद्धिमान् व्यास नामका पुत्र हुआ था ।

सत्ता त्रियः । अणुव्रतफलेनाश्रुत्यै सोधर्मनामनि ॥ ७९ ॥ बर्ध सूर्यप्रभो नाम वीक्ष्य चित्रांगदं तदा । शृणु मद्रवनं मद्र फलं किं तेऽजयोः सृताः ॥ ८० ॥ पापानुवचि कर्मदमयुक्त युक्तिकारिणा । संसारदुष्टदुःखामिधान दुःखफलप्रद ॥ ८१ ॥ ततो मिथुनमेतत्त्व विद्युज्वेत्यभ्यधात्सुदुः । शुक्वा तजान-  
चदकीर्तिनाममहीमुखि । विपुत्रे मरण प्राप्ते राज्यसंततिसंस्थितेः ॥ ८४ ॥ समुपयं योग्यमन्वेष्टु वारण शुभलक्षण । गंधादिभिः समभ्यर्च्यसुन्दर-  
नमत्रिमंडलं ॥ ८५ ॥ सोपि द्विगो गजो गत्वा वन पुण्यविपाकतः । तावुदृत्य निजसंक्षमागप्य पुरागामत ॥ ८६ ॥ सिंहकैतोर्विधायाभिषेक मंत्रया-  
दयस्तदा । राज्यासन समारोप्य बद्ध्वा पट स सम्मदा ॥ ८७ ॥ त्व कस्यात्रागतः कस्मादित्याहु सोमवीदिदं । प्रभजनः पिता माता मुकुटु मंडिता गुणैः  
॥ ८८ ॥ हरिवंशमलव्योमसोहमिह केनचित् । सुरेणनीय मुक्तः सन् सह पत्न्या वने स्थितः ॥ ८९ ॥ इति तद्वचनं शुक्वा मुकुटवास्तनयो यत ।  
उसे उठाकर ले चला ॥ ७८ ॥ पहिले जन्ममें अठ सुमुखका प्रिय मित्र राजा रघु अणुव्रतोके फलसे सौधर्मस्वर्गमें सूर्य-  
प्रभ नामका उचाम देव हुआ था वह उसी समय चित्रांगदको देखकर कहने लगा कि हे मद्र ! मेरी बात सुन इनके  
मरने पर तुझे क्या फल मिलेगा ॥ ७९-८० ॥ यह काम पापका वंश करनेवाला है युक्तिपूर्वक चलनेवालोंके लिये  
अयोग्य है और संसाररूप दुःखके दुःखरूप दुष्ट फलोंका देनेवाला है ॥ ८१ ॥ इसलिये तुझे यह जोडा छोड देना  
चाहिये इस प्रकार उसने बार बार कहा उसे सुन कर चित्रांगदको भी दया आगई और उसने वे दोनों छोड़ दिये ॥ ८२ ॥  
तदनंतर सूर्यप्रभ ने उन दोनोंको समझाया आश्वासन दिया और उनके होनहार सुखको जानकर उन्हें चंपापुरके वन  
में छोड़ दिया ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे चंपापुर नगरका राजा चद्रकीर्ति उन्हीं दिनों विना संतानके मर गया था इस-  
लिये मंत्रियोंने राज्यकी परंपरा बराबर उ्यों की त्यों चलानेके लिये किसी योग्य और पुण्यवान् पुरुषको ढूढनेके  
लिये किसी शुभ लक्षणवाले हाथीको चंदन गंध आदि से पूजा कर छोडा था ॥ ८४-८५ ॥ वह दिव्य हाथी भी वन-  
में गया और पुण्य कर्मके उदयसे उन दोनों स्त्री पुरुषोंकी ( सिंहकेतु और विद्युन्मालाको ) उठाकर मस्तक पर  
विराजमान कर नगरमें आगया ॥ ८६ ॥ मंत्री आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सिंहकेतु का  
राज्याभिषेक किया और राज्य सिंहासनपर विराजमानकर उसपर पट बांधा ॥ ८७ ॥ तदनंतर उन लो-  
गोंने पूछा कि आप किसके पुत्र हैं और यहां कहाँसे आये हैं ? उत्तरमें राजाने कहा कि हमारे पिताका नाम प्रभजन  
है और गुणोंसे सुशोभित माताका नाम मुकुटु है ॥ हरिवंशरूपी निर्मल आकाशका एक चंद्रमा है । किसी कारणसे

नामा व्याधप्रयादेल् भायया बनमालया ॥ ६६ ॥ कौशावी नगरं तत्र सुमुखाख्यं समाश्रयत् । बनमालां समालोक्य स श्रेष्ठी विहरन् बने ॥ ६७ ॥  
 विकायसायकैस्तीक्ष्णै कदाचिच्छर्यीकृत । भायावी वीरदत्त त पापी बाणिज्यहेतुना ॥ ६८ ॥ प्राहिणोद् द्वादशाब्दना दत्त्वा पुष्कलजीविकां । रीति-  
 कार सहाकीर्त्या बनमालां विलोभिता ॥ ६९ ॥ अतिबाह्यागतो वीरदत्तो द्वादश वत्सरान् । तद्विक्रिया समाकर्ण्य स्मरन् संसारादुत्तिष्ठति ॥ ७० ॥ शोभा-  
 कुल मुनिर्विष्णा, क्षीणपुण्यो निराश्रयः । वणिक् समग्रहीद्दीक्षा गोष्ठिलाख्यमुनिं श्रित ॥ ७१ ॥ जीवितांते स संन्यस्य कल्पे साधर्मनामनि । जातश्चित्रा-  
 गदो देव प्रवीचारमुखाकर ॥ ७२ ॥ स श्रेष्ठी बनमाला चर्चयसिंहतपोभृते । दत्त्वा प्रासुकमाहारं निदित्रा निजदुःकृत ॥ ७३ ॥ अन्येयुवसनेः पाता-  
 त्सप्राप्य मरणं सम । भारते हतिवर्षाख्ये देहो योगपुरेविन ॥ ७४ ॥ प्रमजनाख्यनृपतेर्मुकुन्दोवाख्या मनोरमा । हरिवहोऽजनि श्रेष्ठी सिंहकेतुस्तयोः सुतः ॥ ७५ ॥  
 अथ शीलपुतावीशो ब्रह्मभोषमहीरते । तत्रैवासा सुभायाश्च बनमालावुरुपि गी ॥ ७६ ॥ विद्युन्मालेति भूत्वा तुक् विद्युद्योतहासिनी । अपूर्णयौवनस्याग्नी-  
 त्सिंहकेतोः रतिप्रदा ॥ ७७ ॥ जातु तौ दंपती दृष्ट्वा देवे विहरणे बने । कित्रागदे समुद्रधृत्य हनिष्यामीति गच्छति ॥ ७८ ॥ रघुः पुरातनो भरः सुमुखाख्य  
 था और आकर सुमुख शेटके यहां रहता था किसी एकदिन बनमें घूमती हुई बनमालाको देखकर शेट सुमुख काम-  
 देवके तीक्ष्ण बाणोंसे बेवा गया था इसलिये उस पापी मायाचारीने वीरदत्तको तो बहुतमा धन देकर बारह वर्ष  
 तक ब्यापारके लिये भेज दिया और अपकीर्तिके साथ साथ लोभमें आई हुई बनमालाको स्वीकार किया ॥ ६६-६९ ॥  
 बारह वर्ष वीत जानेपर वीरदत्त आया और बनमालाके विकारको सुनकर संसारकी ऐसी नीच स्थितिका स्मरण करने  
 लगा ॥ ७० ॥ दुःखहीन और आश्रयरहित वह वैश्य शोकसे व्याकुल होकर विरक्त हुआ और मोक्षिल मुनिके समीप  
 जाकर उमने दीक्षा धारण करली ॥ ७१ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वह सौधर्म स्वर्गमें प्रवीचार सुखकी  
 खानि ऐसा चित्रांगद नामका देव हुआ ॥ ७२ ॥ किसी समय उस शेट सुमुख और बनमालाने धर्मसिंह नामके  
 मुनिराजको प्रासुक आहार दिया और अयने पापकी बहुत निंदा की ॥ ७३ ॥ किसी दूसरे दिन वज्रपातसे वे दोनों  
 साथ साथ मरे और शेटका जीव भरतक्षेत्रके हरिवर्ष नामके देशमें इरिवंशमें उत्पन्न हुए भोगपुर नगरके स्वामी  
 राजा प्रमज्जन रानी मृकंदके सिंहकेतु नामका पुत्र हुआ ॥ ७४-७५ ॥ इसी तरह उसी देशमें बनमालाका जीव शील-  
 पुर नगरके स्वामी राजा ब्रजवीर रानी सुभाके बिजलीकी कान्तिको लज्जित करनेवाली विद्युन्माला नामकी पुत्री हुई  
 जो कि सिंहकेतुकी पूर्वयौवन अवस्था होने पर उसकी स्त्री हुई थी ॥ ७६-७७ ॥ किसी एक समय चित्रांगद देव  
 बनमें बिहार कर रहा था इतनेमें ही वही पर उस दंपतिको (सिंहकेतु और विद्युन्मालाको) देख कर मारनेकी इच्छासे

अतःपुरादिवतोन्मेषु-शाखाककरनिर्गते । रम्ये हर्म्यतले तिष्ठता कुर्वन् दिग्बलोकनं ॥ ५५ ॥ उत्कापतनमालोक्य भगुरे भावयन् अगच्छ । कुदरेष्वेव  
 पुत्राय इत्यवाराख्यासि-वेचनं ॥ ५६ ॥ सुगंदरजिनाभ्यासे लज्जबोविरहीकृत । क्रमेणैकादशांगानां पारगो भावनापरः ॥ ५७ ॥ सम्यक्त्वादियु वध्यासौ  
 तीर्थहरकर्मनिर्मलं । स्वायुरंते समाधाय यासं संन्यासमास्थितः ॥ ५८ ॥ अनुत्तरे जयताह्ये संप्रापदहमिंद्रतां । त्रयाक्षिनासमुदोपमायुर्हस्ततनुच्छिष्टिः ॥  
 ५९ ॥ सादयोक्तासातानि श्लासोऽयुमिराकुल । त्रयाक्षिनासहस्राब्दव्यतीतौ भोगसंपदं ॥ ६० ॥ भुञ्जानो नि प्रवीचारे लोकनालीगतावधिः । बलही-  
 तिदिकरादिगुणैस्तत्कोत्रमात्रकः ॥ ६१ ॥ एवं देवगतां दिव्यसुखं सुखमहाबुधे । संप्राप जातसंतुष्टिं स्थितश्चिरसुखायुषा ॥ ६२ ॥ अतः परं तदुत्पले-  
 विदते वरावर्जनं । दीये जंबूमति केने भरते वत्सकेजाजे ॥ ६३ ॥ कौशाव्याह्ये सुविख्यातो नगरे मधवा द्रुप । तदेवी वीतशोकाभ्युत्थतः ख्यातो रघु-  
 रतयोः ॥ ६४ ॥ सुमुखो नाम तत्रैव जातः श्रेष्ठी महादिकः । इत कलिंगविषये पुरातपुराख्यात् ॥ ६५ ॥ सार्येन सममागच्छद्द्वारदत्तो वमिक्नुत ।  
 रहा या कि अकरमात् उसने एक उत्कापात देखा उसे देखते ही वह संसारकी क्षणभंगुर अवस्थाका विचार करने  
 लगा अपने सुदृष्टि नामके बड़े पुत्रका उसने राज्याभिषेक किया और रत्नत्रयको प्राप्त कर सुमंदर नामके तीर्थकरके  
 समीप जाकर दीक्षा धारण करली अनुक्रमसे उसने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और फिर दर्शनविशुद्धि आदि  
 सोलह कारण भावनाओंका चिंतन कर निर्मल तीर्थकर नामकर्मका बंध किया आयुके अंतमें समाधि धारण कर एक  
 महीनेका संन्यास धारण किया और शरीर छोड़ कर जयंत नामके अनुत्तर विमानमें अहमिंद्र हुआ और वहां पर उम-  
 की तेतीस सागरकी आयु थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ५५-५९ ॥ साठे सोलह महीने बाद वह निराकुल रीतिसे  
 यास लेता था तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था इस तरह वह प्रविचार रहित भोग संपदाओंका  
 उपभोग करता था । लोक नाही तक उसे अवधि ज्ञान था और उत्तरे ही क्षेत्रक उसका बल कांति और विक्रिया  
 ऋद्धि आदि गुण थे ॥ ६०-६१ ॥ इस प्रकार वह देव गतिमें दिव्य सुखोंका अनुभव करता था सुखरूपी महामागरसे  
 अत्यंत तप्त हो रहा था और सुखरूपी आयुका अनुभव करता हुआ बहुत दिन तक वहां विराजमान रहा था ॥ ६२ ॥  
 इसके आगे अब जिस वंशमें वह उत्पन्न होगा उसीका वर्णन करते हैं । इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्सदेशके प्रसिद्ध  
 कौशांबी नगरमें राजा मधवा राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम वीतशोका था और उन दोनोंके रघु नामका  
 पुत्र हुआ ॥ ६३-६४ ॥ उसी नगरमें एक सुमुख नामका बहुत धनी शेट रहता था किसी एक समय कलिंग देशके  
 दंतपुर नामके नगरसे वीरदत्त नामका वैश्यपुत्र व्याधोंके डरसे अपनी स्त्री वनमालाके साथ कौशांबी नगरमें आया

हंतो हितं ॥ ४३ ॥ तत्समीपे समादाय समयम् त्वां हिलोक्षितुं । त्वयि जन्मांतरनेहादिहागमनमावयो ॥ ४४ ॥ पुण्योदयोदितान् भोगान्स्वीकृत्य भूयो भु-  
क्त्वान् । मासप्रमाणजीवी त्व हितमय स्मराधिति ॥ ४५ ॥ भुत्वा तद्वचन राजा वदित्वा तौ मुनीश्वरौ । युवां जन्मांतरस्तेहाभि सगतव गतावपि ॥ ४६ ॥  
उपचारं मुहूर्तं मे दत्तवतौ हितैः पिणौ । इत्याह्वयन्स ततः प्रीतौ तौ निजस्थानमीयतुः ॥ ४७ ॥ तदैव स महीशोपि दत्त्वा राज्यं यथाविधि । प्रीतिकर-  
कुमाराय इत्वाष्टाहकपूजन ॥ ४८ ॥ बधून् द्विसर्ज्य प्रायोपगमसन्नासमुत्तम । विधाय घोडशे कल्पे द्वाविशत्यब्धिजीवितः ॥ ४९ ॥ पुष्पोत्तरे विमानेऽभू-  
दच्युतेन्द्रो महर्षिः । दिव्यभोगांस्त्रिंशं सुकृत्वा ततः प्रच्युत्य पुण्यभाक् ॥ ५० ॥ द्वीपेस्मिन् भारते क्षेत्रे विषये कुरुजंगले । हस्तिनाह्यपुराधीशः श्रीच-  
द्रस्य महीपतेः ॥ ५१ ॥ श्रीमत्या सुप्रतिष्ठाह्वयः सुप्रसिद्धः सुतोभवत् । आपूर्णयौवनस्यास्य सुनदासीस्तुक्षप्रदा ॥ ५२ ॥ सुत योग्यतम मत्वा श्रीचद्र-  
धरणीश्वरः । दत्तार्ज्योऽप्रहीदीक्षा सुमदरयति श्रित ॥ ५३ ॥ सुप्रतिष्ठोपि तद्वाज्ये नि कोये सुप्रतिष्ठित । यशोधरमुनेर्दानादवापाध्वर्यपंचक ॥ ५४ ॥

३८-४४ ॥ अब तक तुने पुण्यकर्मके उदयसे सब तरहके भोग भोगे हैं परंतु अब तेरी आयु केवल एक महीनेकी रह गई है इसलिये शीघ्र ही तू अब अपने हितका स्मरण कर ॥ ४५ ॥ राजाने यह बात सुनकर उन दोनों मुनिराजोंकी वंदनाकी और निवेदन किया कि यद्यपि आप परिश्रमरहित हैं तथापि आप सबका हित चाहनेवाले हैं इसीलिये जन्मांतरके स्नेहसे आपने यह मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । इसके बाद वे दोनों मुनिराज अपने स्थानको चले गये ॥ ४६-४७ ॥ उसीसमय राजा अपराजितने विधि पूर्वक प्रीतिकर कुमारको राज्य दिया अष्टान्हिक पूजनकी, सब माई बधुओंका त्याग किया और उत्तम मायोपगमन सन्यास धारणकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें वाईस सागरकी आयु पाकर बड़ी ऋद्धिका धारण करनेवाला अच्युतेन्द्र हुआ वह पुण्यवान् बहुत दिनतक वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरु जंगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा श्रीचंद्र रानी श्रीमतीके सुप्रतिष्ठित नामका बहुत प्रतिष्ठित पुत्र हुआ और पूर्ण यौवन अवस्था होनेपर उसे सुखदेनेवाली सुनंदा नामकी स्त्री मिली ॥ ४८-५२ ॥ किसी एक दिन राजा श्रीचद्रने अपने पुत्रको अत्यंत योग्य समझकर उसे राज्य दिया और आप सुमंदर नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ५३ ॥ इधर सुप्रतिष्ठ भी क्रीडादि सब तरहके दोषोंसे रहित ऐसे राज्यपर विराजमान हुआ और किसी एक समय उमने यशोधर नामके मुनि-राजको आहार दान दिया था जिससे उसे पंचाशत्तौकी प्राप्ति हुई थी ॥ ५४ ॥ किसी दूसरे दिन बह राजा अपने सब रथवासके साथ पंद्रमाकी किरणोंके समान निर्मल ऐसे सुंदर राजभवनके ऊपर बैठा हुआ दिशार्जोंको देख

चीत् । संभाव्युर्वनीयासं यम त्वं रक्षाम लया ॥ ३० ॥ श्रुतनद्वचा साह गाढ पितवतो परे । मालाभिर्मा क्षिपामीति क्षिपामीति सा तामित्यत्र वीत्युन ॥ ३३ ॥  
 गतिशुद्ध तथा पूर्वमनुजाभ्या कृते मम । अभिलाषा तनत्याज्या त्वं नया तद्वचःश्रुतेः ॥ ३४ ॥ निर्विणा मा निगृताग्निकाम्यासेऽगतपः परे । तद्वीक्ष्य  
 बहवस्तत्र निर्विद्य तपसि स्थिताः ॥ ३५ ॥ अनुजाभ्यां मम चितागतिधालोक्य माहस । वन्याया जातसन्नेगो गुरु दमवगभिषि ॥ ३६ ॥ संप्राप्य संयम  
 प्राप्य शुद्ध्यष्टकमधिष्ठितः । प्राप्ते सामानिकस्तुं कल्पेऽजायत सानुजः ॥ ३७ ॥ तत्र भोगान्वहून भुक्त्वा सप्ताब्धिपरमायुषा । ततस्त्नावनुजां जम्बूद्वीपपूर्व  
 विदेहमे ॥ ३८ ॥ दिषये पुष्कलावत्या विजयादेर्नरे तटे । राजा गगनचद्राख्यः पुरे गगनवल्लभे ॥ ३९ ॥ श्रुतो गगनसुन्दर्या तस्यामितमतिस्ततः । आ-  
 वाममिततेजाश्च जातौ विद्यात्रयान्विता ॥ ४० ॥ अन्येष्टु पुडरीण्यामावाभ्या जन्मपूर्वजः । आवयो परिपृष्टेन जन्मत्रितयश्रुतं ॥ ४१ ॥ सर्वं स्वयम्प्र-  
 भात्येन तीर्थनायेन भाषित । ततोऽस्मदप्रजः क्वाचोऽव्ययोरनुदो जने ॥ ४२ ॥ भूया सिंहपुरे जातो राजते सोपराजितः । नाम्ना राज्य समासाद्य स्वयमित्य-  
 मतीकहने लगी कि मैं दूसरेसे नहीं जीती हूं जो दूसरेके गलेमें माला डालूं । इसके उत्तरमें चिंतागतिने कहा कि  
 तुने पहिले वरनेकी अभिलाषासे ही मेरे छोटे भाइयोंके साथ गतिशुद्ध किया था इसीलिये तू मेरे लिये त्याज्य है ।  
 चिंतागतिकी यह बात सुनकर वह विरक्त हुई और निवृत्ता नामकी अर्जिकाके समीप जाकर उसने उत्कृष्ट तपश्चरण  
 धारण कर लिया । उसे दीक्षित होते देखकर वहांपर बहुतसे लोगोंने विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३३-३५ ॥  
 उस कन्याका माहस देखकर छोटे भाइयोंके साथ साथ चिंतागतिको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और दमवर नामके गुरु-  
 के समीप जाकर संयम धारण कर लिया आठों शुद्धियोंका पाकर अंतमें तीनों भाई चौथे स्वर्गमें जाकर सामानिक देव  
 हुए ॥ ३६-३७ ॥ वहां सात सागर तक अनेक भोगोंका अनुभवकर च्युत हुए और तीनों छोटे भाइयोंके जीव जंबू  
 द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयादे पर्वतके उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचंद्र रानी  
 गगन सुंदरीके हम अमितमति और अमिततेजा नामके पुत्र हुए उममय हम दोनों ही पुत्र तीनों विद्यायोंके ज्ञान-  
 कार थे । किसी दूसरे दिन हमारे पिता पुडरीकिणी नगरीको गये वहांपर उन्होंने हम दोनोंके अगिले पिछिले जन्म-  
 की बात पृछी और स्वयंप्रथ तीर्थंकर भगवान् ने वे सब बातें कहीं उसीसमय हम दोनोंके प्रकरणमें यह भी बात निक-  
 ली थी कि हमारे पहिले जन्मका बड़ा भाई कहा है इसके उत्तरमें तीर्थंकरने कहा था कि उसका जीव सिंहपुर नगर-  
 में राजा अपराजित हुआ है और वह स्वयं राज्यकर रहा है । इसप्रकार उन भगवान् के वचन सुनकर हम दोनोंने उन्हीं  
 के समीप संयम धारण कर लिया और फिर पहिले जन्मके स्नेहसे तुझे देखनेके लिये हम दोनों यहां आए हैं ॥



महाशुभः ॥ २० ॥ ॥ जनमे देव सूर्योऽयम् तं सोऽपि कृतवन्दनः । भुक्त्वा जेहशोकार्त्तचेतसां का विचारणा ॥ २१ ॥ वसतसमयेन्येयुर्नदीश्वरदिनेष्वसौ । जित-  
द्वैत्यानि संपूज्य तत्तत्संज्ञनपदैक ॥ २२ ॥ तत्र स्थितः स्वयं धर्मदेवान् न्याघदत्तसुधी । स्वाभिव्यञ्जना साधू प्रापस्तुतस्तु पद ॥ २३ ॥ प्रणिपत्य  
तयोर्देवतास्तवावर्तितां नृप । सोऽन्वा- समभ्येत्य श्रुत्वा धर्मभाषत ॥ २४ ॥ भगवताबह पूज्या बभूवित्प्रादृष्टवानिति । ज्येष्ठो मुनिस्त्वचैवं सत्यमावा-  
त्त्वयेक्षिता ॥ २५ ॥ स्वदर्शनप्रेक्ष्य न पश्यामि शृणु भूषते । पुष्करार्द्धपराद्रोदापरभागे महासरोत्त ॥ २६ ॥ तत्प्राधारयुत्तरे भागे गविलो विषयो महा-  
नृ । तत्सगद्गुणश्रेण्यां सूर्येन-पुगधिप ॥ २७ ॥ राजा सूर्यप्रभस्तस्य धारिणी प्राणवक्षसा । तथोद्धितागतिज्येष्ठस्तनुजोऽनुमनोगति ॥ २८ ॥ ततश्चपल-  
गवाह्यकिम्बितैस्तैस्तैः शुभं गता । तैः-यस्यैकैर्मां के न दुष्यति सख्यते ॥ २९ ॥ तस्यामेवोत्तरश्रेण्यामरिदमपुरेश्वरात् । अरिजयाख्यादवितसेनायामभवत्सु-  
ता ॥ ३० ॥ सती प्रीतिमती मेरुशिरेः सकलसेचरात् । त्रिस्तालासाज्जयचित्तागतिं मुक्त्वा खवियया ॥ ३१ ॥ जिता चित्तागतिर्वेगातां पथादिति चात्र-

शक्ति मी कैसे रह सकती है ॥ २१ ॥ किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुकी अष्टाह्निकाओंके दिनोंमें वह राजा अपरा-  
जित जिनमंदिरोंकी पूजाकर उनकी स्तुति करता हुआ वहां बैठा था और वह बुद्धिमान स्वयं धर्मोपदेश दे रहा था  
इतनेमें ही वहां चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दो चारण मुनिराज पधारें और वहीं आकर विराजमान होगये ।  
राजाने बड़ी विनयके साथ उठकर उन्हें नमस्कार किया स्तुतिकी पास बैठकर धर्म श्रवण किया और फिर वह क-  
हने लगा कि हे पूज्य हे भगवन् ! मैंने पहिले कमी आपको देखा है । इसके उत्तरमें बड़े मुनिराज कहने लगे कि ठीक  
है तुमने हमको देखा तो है ॥ २२-२५ ॥ परंतु कहां देखा है उस जगहको मैं कहता हूँ । हे राजन् तू मुन ! पुष्क-  
रार्द्ध द्वीपके पश्चिम मेरुकी ओर पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो महा नदी है उसके उत्तरकी ओर एक गंधिल नामका बड़ा  
देश है उसके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सूर्यप्रभ नगरका स्वामी राजा सूर्यप्रभ राज्य करता था उसकी महादेवी-  
का नाम धारणी था । उन दोनोंके बड़ा पुत्र चित्तागति मझिला मनोगति और छोटा चपलगति हुआ था धर्म अर्ध  
काम इन तीनों पुरुषार्थोंके समान इन तीनों पुत्रोंमें भी बाप सदा प्रसन्न रहते थे सो ठीक ही है क्योंकि सुपुत्रोंसे  
कौन संतुष्ट नहीं होता है ॥ २६-२९ ॥ उसी गंधिल देशकी उत्तर श्रेणीमें अरिदम नगरके राजा अरिजय रानी अजि-  
तसेनासे प्रीतिमती नामकी सती पुत्री हुई थी उमने अपनी विद्यासे चित्तागतिको छोडकर सब विद्याधरोंको मेरु पर्व-  
तकी प्रदक्षिणा देनेमें जीत लिया था ॥ ३०-३१ ॥ चित्तागति अपने वेगसे उसे जीतकर फिर कहने लगा कि तू इस  
सुरत्नमालाके ( वरमालाके ) द्वारा मेरे छोटे भाईको स्वीकारकर ॥ ३२ ॥ चित्तागतिकी यह बात सुनकर वह प्रीति-

प्रहुरभूकृती । नवभासावसानेसावसूत सुतमूर्जिते ॥ ९ ॥ तजन्मनः प्रसृत्यन्धैरज्यस्तपिताऽभवत् । ततोपराजिताख्यानमकुर्वस्तस्य बांधवा ॥ ७ ॥  
रूपादिपुणसपत्या सार्द्धं वृद्धिमसावगात् । आशैवन मनोहारी सुरेंद्रो वा दिवौकसा ॥ ११ ॥ तदा मनोहारोद्यानगत विमलवाहन । तीर्थकर्तारमाकर्ण्य  
वनपालमुखान्नुपः ॥ १२ ॥ स्वांत पुनरीवारपरीतो भक्तिचोदित । गत्वा प्रदक्षिणकृत्य मुहुर्मुकुलितजलिः ॥ १३ ॥ प्रप्रणम्य समभ्यर्च्य गधपुण्या-  
कुमारोपि गृहीताण्यतादिः शुद्धदर्शनं । प्राविशल्लसितो लक्ष्म्या साक्षादिव पुरं हरी ॥ १४ ॥ तुजे पराजिताख्याय दत्ता ससागसपद । तपोग्र्य समुपादत्त पंचभिर्मैत्रुजां शतैः ॥ १५ ॥  
कर्मार्णेण तदासौ धर्मकामयोः ॥ १७ ॥ कदाचिन्निजपित्रा मा जिनं विमलवाहन । सुकृत्या वशीकृत श्रुत्वा गधमादनपर्वते ॥ १८ ॥ शक्त शालो-  
भोक्ष्येऽहं जिन विमलवाहन । इति प्रतिज्ञयाद्योपवासास्यसीदपरजित ॥ १९ ॥ तदा शक्राज्ञया यक्षपतिर्विमलवाहन । तस्यै सदृश्यामास साधातुत्वा

हमलिये उसके भाइयोंने उसका नाम अपराजित रखवा था ॥ १० ॥ रूप आदि संपदाओंके साथ साथ वह यौवन  
अवस्थातक वरावर बढ़ने लगा और देवोंके इंद्रके समान मनोहर दिखने लगा ॥ ११ ॥ किसी एक दिन महाराजने  
वनपालके मुखसे यह सुना कि मनोहर नामके उद्यानमें विमलवाहन नामके तीर्थंकर आए हैं । यह सुनकर वह भक्ति  
से प्रेरित होकर अंतःपुर और परिवारके साथ साथ वहां गया, जाकर प्रदक्षिणा दी बार बार हाथ जोड़े नमस्कार  
किया, गंध पुष्प अक्षत आदिसे उनकी पूजा की और उनसे धर्ममुक्तका पान किया आग वह अंक्रुमात् भोगोंसे नि-  
स्पृह होकर विरक्त होगया ॥ १२-१४ ॥ उसने अपराजित नामके पुत्रको राज्य दिया और पांच सौ राजाओंके साथ  
ससांग संपदाओंसे सुशोभित उग्र तपश्चरण धारण किया ॥ १५ ॥ कुमार अपराजितने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारणकर  
अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ उसने राज्यकी सत्र चिंताका भार तो अपने मंत्रियोंपर सौंप दिया और शास्त्रोक्त  
रीतिसे धर्म और काम इन दो पदार्थोंके सेवन करनेमें वह लीन हो गया ॥ १७ ॥ किसी एक दिन उसने सुना कि  
पुण्य पिताके साथ साथ श्रीविमलवाहन तीर्थंकर गंधमादन पर्वतसे मुक्त होगये हैं यह सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि  
मैं श्रीविमलवाहन तीर्थंकरके विना दर्शन किये भोजन नहीं करूंगा इसतगह उम अपराजितके आठ उपवास होगये  
॥ १९ ॥ तदनंतर इंद्रकी आज्ञासे यक्षपतिने उस महापवित्र राजाको विमल वाहनका साक्षात् रूप बनाकर दिख-  
लाया ॥ २० ॥ अपराजितने समवसरणमें वंदनाकर उनकी पूजा की और फिर भोजन किया सो ठीक ही है क्योंकि

## अथ सप्ततितमं पर्व ।

शाल्यादिदशाराधर्मलवनं यमुदाहृत । सतः सद्वर्मेचक्रस्य स नेमि शकरोस्तु नः ॥ १ ॥ सवेगजनन पुण्यं पुराण जिनचक्रिणो । बलाना च  
श्रुतज्ञानमेतत् वन्दे त्रिशुद्धये ॥ २ ॥ पूर्वानुपूर्व्यां वन्द्येह कृतमगलसत्तत्क्रियः । पुराण हरिवशाह्य यथाश्रुत यथाश्रुत ॥ ३ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विदेहेपर-  
नामनि । सीतोदोदकूतटे देशे सुगन्धिलसमाह्वये ॥ ४ ॥ पुरे सिंहपुरे ख्यातो भूयोर्हंदाससङ्ग । देव्यस्य जिनदत्ताद्या तयोः पूर्वभवाजिताव ॥ ५ ॥  
पुण्योदयात्समुद्रभूलकामभोगे सन्तुष्यो । काले गच्छत्यथान्येद्युरहंता परमेश्वरिणां ॥ ६ ॥ आप्रादिकमहापूत्रां विधाय नृपतिप्रिया । कुलस्य तिलक पुत्र  
लक्ष्मीयाहमिति स्वयं ॥ ७ ॥ आशास्यासां सुख सुप्ता निशायां मुप्रसधधीः । सिंहभाक्कुदुपश्यामिषेकानैक्षिष्ट सुव्रता ॥ ८ ॥ स्वप्नान्तरमेवास्या गर्भे

## अथ सत्तरवां पर्व ।

अथान्तर-सज्जन लोग जिन्हें उत्तम क्षमा आदि दश धर्मरूपो ओरोंका आलंवन वतलाते हैं और जो सद्वर्मेचक्र-  
के धुरा हैं ऐसे श्री नेमिनाथ स्वामी हम लोगोंका कल्याण करें ॥ १ ॥ जिनेन्द्रदेव और चक्रवर्तियोंका पुराण वैराग्य  
उत्पन्न करनेवाला है और पुण्य बढ़ानेवाला है तथा बलभद्रका पुराण श्रुतज्ञानकी बढ़ानेवाला है इसलिये मन बचन  
काय तीनोंको शुद्ध करनेके लिये इस पुराणको नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ पहिले मगलरूप अच्छी क्रिया करके मैं  
हरिवंश पुराण कहूंगा और वह पुराण पूर्वाचार्योंके अनुसार जैसा सुना है वैसा ही ऊपरके छंदोंमें ही कहूंगा ॥ ३ ॥  
इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर सुगंधिला नामके देशमें सिंहपुर नगरमें अर्हदास  
नामका राजा गश्य करता था उसकी देवीका नाम जिनदत्ता था । पूर्व भवमें हकूटे किये हुए पुण्य कर्मोंके उदयसे  
उन दोनोंको काम भोगकी सब सामग्री मिली थी इससे वे खूब वृत्त थे । इसतरह उन दोनोंका समय व्यतीत हो  
रहा था । किसी एक दिन महारानीने अष्टह्निकाके दिनोंमें अरहंत परमेष्ठीकी पूजाकी और उससे आशाकी कि  
मेरे कुल तिलक पुत्र उत्पन्न हो ऐसी आशा कर वह प्रसन्नचित्त होकर रातको सुख पूर्वक सो गई । उस सुव्रताने  
( अच्छे व्रत धारण करने वालीने ) उसीरातको सिंह, हाथी, सूर्य चद्रमा और लक्ष्मीका अभिवेक ऐसे पांच स्वप्न देखे  
स्वप्न देखनेके बाद ही किसी पुण्यवानने उसके गर्भमें आकर अवतार लिया और नौ महीने वीत जानेपर उस रानीने  
पुण्यवान पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४-९ ॥ उसके जन्म लेनेके समयसे ही उसके पिताको अन्य कोई जीत नहीं सका था,

व्यवस्थितपिण्ड । प्रयाति गतिमेतस्य परोपन्न प्रमादवात् ॥ ८६ ॥ इत्याकलय्य कालादिलब्ध्या चक्रैश्चक्रवीः । त्यक्तुं चक्रादिभामाज्यं परिच्छिद्योच्छिद्यते-  
च्छया । दुष्ट राज्यमनिच्छत्सु महीयःसु कनीयसे । इत्वा पुत्राय साम्राज्यं वरदत्ताभिधाविन ॥ ८८ ॥ केवलवगमात्प्राप्य संयमं बहुभिः समं । धृत-  
जातो विमाने त्वत्सत्तम । पुण्योत्तमाभुभागत्यभ्यभूत्सुचिरं सुख ॥ ९१ ॥ वसुधैवकुटूबे स्वाराधनाविधिः ॥ ९० ॥ जयतेऽनुत्तरे  
इत्यार्ये भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसमूहे नमितीर्थकरजयसेनचक्रवर्तिपुराणं परिसमाप्तं एकोनसत्तितम पर्व ॥ ६९ ॥

करता हुआ और अपने अपने परलोक सिद्ध करनेमें मूर्ख ऐसा यह प्राणी अपने हितका आचरण नहीं करता ॥ ८५ ॥ जो  
विषय अनित्य है और जो कभी संतुष्ट करनेवाले नहीं है उनमें जो लीन रहता है वह प्रमादी पुरुष इसी उत्तकापातकी  
गतिको प्राप्त होता है, अर्थात् अधोगतिको जाता है ॥ ८६ ॥ यही समझकर सरलबुद्धिवाला वह चक्रवर्ती काल आदि लब्धियोंको  
पाकर चक्र आदि सब साम्राज्यको छोड़नेके लिये तैयार हुआ । वह अपने बड़े पुत्रको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ वरदत्तनामके केवली भ-  
झकर लेनेकी इच्छा नहीं की तब उसने छोटे पुत्रको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ वरदत्तनामके केवली भ-  
गवानसे संयम धारण किया । उसे श्रुतबुद्धि । उसे धृतबुद्धि तप, तिक्रिया आपधि आदि अनेक ऋद्धियां प्रगट हुई चारण ऋद्धि मी  
प्रगट हुई और अंतमें उसने प्रयोगमन संन्यास धारण किया । समेद शिखरपर चारण नामके ऊँचे शिखरपर संन्यास  
धारण कर वह जयंत नामके अनुत्तरके विमानमें उत्तम अहमिंद्र हुआ और वहांपर उत्तम पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए  
सुखोंको बहुत दिनतक अनुभव करता रहा । ८७-९१ ॥ जयसेनका जीव पहिले जन्ममें राजा वसुंधर हुआ था  
फिर उत्तम तपश्चरण कर सोलह सागरकी आयु पाकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ वहांसे चयकर बहुत उत्तम जय-  
सेन चक्रवर्ती हुआ और फिर जयंत विमानमें अनेक सुखोंका त्वजाना-स्वामी अहमिंद्र हुआ ॥ ९२ ॥

इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नमिनाथ तीर्थकर और जयसेन चक्रवर्तीके  
पुराणको कहनेवाला यह उनहत्तरवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

चसुंधरमहीपति ॥ ७५ ॥ पद्मावतीविद्येन युश निर्दिण्णमानम । बने मनोहरे रम्ये वरचर्मखिलेक्षिणः ॥ ७५ ॥ निर्णीय धर्मसद्भाव तनये विनय-  
धरे । निर्दिष्टितात्मभारः स बहुभिर्मुमुक्षुः सम ॥ ७६ ॥ सयम सन्यगादाय चारित्र दुधरं चरन् । स्वाराधनाविधानेन महाशुके सुरोभवत् ॥ ७७ ॥ पौड-  
शाब्धयुपमस्वायुर्दिव्यान् भोगान् सुमुज्य स । तत् प्रत्युत्तय तनीशं वत्साव्यविजयेऽजनि ॥ ७८ ॥ वृषस्वैचाकुशस्य कैशावीनगरेक्षिण । तन्जो विजया-  
ख्यस्य प्रभाकर्था प्रभाधिकः ॥ ७९ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णं जयसेनसमाह्वयः । त्रिगदहससज्जीवी पण्डितस्तसमुच्छ्रितः ॥ ८० ॥ तत्सचामीकरच्छाय स  
चतुर्दशरत्नम् । निधिमिर्नवभिः सेव्यो भोगैर्वशविधेः मुर्य ॥ ८१ ॥ विरमेकादशयशःपरः कालमजीगमत् । अन्येथुस्तुगसाधाम्रे सुसुप्तोत्त पुगद्वत् ॥  
८२ ॥ कुर्वन्वैशवाक्रामो दिगतरत्रिलोकन । उल्कासिपतन वीर्य सुनिर्वेगपरायणः ॥ ८३ ॥ उच्चैरस्थितसिद्ध पश्य भास्वरं पर्ययद्वयं । परित्यज्य सुसं-  
प्रापदयोगतिमपग्रम ॥ ८४ ॥ उत्तरयमूर्जित तेजो ममेति मदमावहन् । अनाचरन् हित मूढः पारलौकिकमात्मने ॥ ८५ ॥ विषयेषु विपक्व सन्धुवे-

अथानन्तर—इसी जंबूद्वीपके उत्तरकी ओर महा ऐरावतक्षेत्रमें श्रीपुंग नगरमें लक्ष्मीवान् राजा वसुंधर राज्य करता  
था ॥ ७४ ॥ किसी एक दिन पद्मावतीके वियोगसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ वह मनोहर नामके बनमें गया  
और वरचर्म नामके सर्वज्ञदेवसे धर्मके सद्भावका निर्णयकर विनयधर नामके पुत्रको राज्यका भार सौंपा और अनेक  
राजाओंके साथ समय धारणकर घोर तपश्चरण करने लगा । अंतमें समाधिभरण धारणकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ  
॥ ७५-७७ ॥ वहाँपर उसकी सोलह मागकी आयु थी वहाँके दिव्य मोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इन्हीं न-  
मीनाथ तीर्थरके समयमें वत्सविजय नामके देशमें कैशावी नगरीके स्वामी इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय रानी प्रभाकरी  
के जयसेन नामका पुत्र हुआ । उसकी कांति सबसे अधिक थी और वह सब लक्षणोंसे संपूर्ण था, उसकी तीन हजार  
वर्षकी आयु थी और साठ हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ७८-८० ॥ उसके शरीरकी कांति तपाये हुए सुवर्णके समान थी  
वह चौदह रत्नोंका स्वामी था नौ निधियाँ उसकी सेवा करती थी और दशों प्रकारके मोगोंका अनुभव कर वह सु-  
खी होरहा था ॥ ८१ ॥ इसप्रकार ग्यारहत्वाँ चक्रवर्ती वह सुख भोगता हुआ समय विता रहा था । किसी एक दिन  
ऊँचे राजभवनपर अंतःपुरके साथ लेट रहा था ॥ ८२ ॥ पौर्णमासीके चंद्रमाके समान वह सब दिशाओंको देख रहा  
था कि इतनेमें ही उसे एक उल्कापात दिखाई दिया और उसे देखकर वह विरक्त हुआ ॥ ८३ ॥ वह विचार करने  
लगा कि देखो यह प्रकाशमान वस्तु अभी तो ऊपर थी और फिर तुरंत ही अपनी दो पर्यायें छोड़कर तथा कांतिरहित  
होकर नीचे बली गई ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार मेरा तेज भी बहुत ऊंचा है और प्रकाशमान है इसतरहके मदको धारण

शाधिका मताः ॥ ६५ ॥ श्रावका लक्ष्यमेक तु त्रिगुणाः श्राविकास्ततः । देवा देवोप्यसंख्यातास्तिर्यचः संख्याया मिताः ॥ ६५ ॥ एवं द्वादशसंख्यान-  
गणनैर्ब्रह्मर्षीश्वर । सद्धर्मदेशन कुर्वन्नायक्षेत्राणि सर्वतः ॥ ६६ ॥ विहृत्य सिद्धिं लयत्वा मासं सम्प्रेदयन्ति । सहस्रमुनिमि साक्षं प्रतिमायोगमास्थितः ॥ ६७ ॥  
वेनालो मासि कृष्णया चतुर्दश्यां निशात्यये । मुक्तिमरुत्याह्वनक्षत्रे नमितोर्थकरो उगमत् ॥ ६८ ॥ अकुर्वन्पञ्चम देवाः कल्याण चाभिलेखिनः । स्व स्व-  
मोक्षं सप्तासप्तपुण्यपण्या प्रयेदरे ॥ ६९ ॥ कनकनकविग्रहे विहितविग्रहो घातिमि सहाहितजयो जयेति च तुलो नतैर्नाकिमिः । मियं भवभवां  
बहु नयतु नः क्षय नायको विनेयविदुषा स्वय, विहर्तविग्रहोऽन्ते नमिः ॥ ७० ॥ कौशाव्यां प्रयितस्तुतीयजनने सिद्धार्थनामा दृपः कृत्वा तत्र तपोतिथोर-  
पतञ्चामरो अमरवृक्षमभ्रम्रमितपुष्पवृक्षद्वारः । करोतु चरणारविंदमरुंदसपायिना विनेयमधुपायिनामवितोषं वृत्तिं जिनः ॥ ७१ ॥ जगत्त्रयज-  
योत्सिफमोहमाहात्म्यमर्दनात् । एकविंशो जिनो लब्धलक्ष्मीर्लक्ष्मीं ददातु न ॥ ७२ ॥ द्वीपेस्मिन्नुत्तरे भागे महत्थैरावताह्वये । लक्ष्मीवान् श्रीपुरावीशो  
हजार मुनियोंके साथ साथ उन्होंने प्रतिमा योग धारण किया था ॥ ६६-६७ ॥ वैसाखकृष्ण चतुर्दशीके दिन सवेरे  
के समय अश्विनी नक्षत्रमें वे नमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे थे ॥ ६८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उन सर्वज्ञ  
देवके मोक्ष कल्याणका उत्सव मनाया था और फिर अत्यंत पुण्यशाली वे देव अपने अपने स्थानको चले गये थे ॥ ६९ ॥  
को जीत लिया था जिन्हें नम्रभूत हुए देवलोग जय जय करते हुए नमस्कार करते थे तथा जो विद्वान शिष्योंके स्वामी  
हैं और जिन्होंने सब तरहके शरीर नष्ट कर दिये हैं ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी हम तुम लोगोंका संसार समुद्रका भय  
दूर करें ॥ ७० ॥ जो तीसरे भवमें कौशावी नगरीमें प्रसिद्ध राजा सिद्धार्थ थे वहां पर घोर तपश्चरण कर जो अतुल्यके  
चोथे अपराजित विमानमें अहर्भित्र हुए और वहांसे आकर जो मिथिला नगरीमें इंद्रोंके द्वारा वेदनीय केवल तीनों  
जगतके हितरूप वचनोंको प्रगट करनेके लिये नमिनाथ नामके इकईसवें तीर्थंकर हुए ॥ ७१ ॥ जिन्होंने देवों सहित  
सब इंद्रोंसे नमस्कार कराया था जिन पर चमर डुलते थे, और उडते हुए अमरोंके समान फिरते हुए पुष्पोंके समूह  
जिनपर वरसते थे ऐसे वे श्रीनमिनाथ भगवान चरणकमलके रसको पान करनेवाले शिष्य रूपी अमरोंको निरंतर ही  
संतुष्ट वा तुम करें ॥ ७२ ॥ तीनों जगतकी जीतनेसे अत्यंत उन्नत हुए मोहके माहात्म्यको मर्दन करनेसे-उसे नाश  
करनेसे जिन्हें मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हुई है ऐसे वे इकईसवें तीर्थंकर नमिनाथ भगवान् हम लोगोंको मोक्षलक्ष्मी दें ॥ ७३ ॥

मानयुत्तरकुर्वीत्यं समारम्भ मनोहर ॥ ५३ ॥ गत्वा चित्रवनोद्यानं यः शोपनस्यन श्रितः । आशङ्कालपक्षेयितुश्चैत्रे दशमीदिने ॥ ५४ ॥ अपराह्ने सह-  
लेग क्षत्रियाणां सहाप्रहीतः । समय समयमाप्यायं सञ्चानं च चतुर्थक ॥ ५५ ॥ भोक्तु वीरपुरं तस्मै दत्तो गतवते नृप । सुवर्णदण्डो दम्बासमवापाश्रय-  
पत्रक ॥ ५६ ॥ आश्रयेन ततः काले प्रयाते नववत्सरे । निजरीक्षावने रम्ये मूले नकुलभूह ॥ ५७ ॥ तत्स पशोपवासस्य नक्षत्रेभ्यश्चानके ।  
मार्गशीर्षशुचौ पक्षे दिनाते केवल विभोः ॥ ५८ ॥ दिने तृतीयनद्यासभूदखिलोचरं । नायनायकसचार्यतुर्गकल्याणभागिनः ॥ ५९ ॥ सुप्रभाया-  
दयः सप्तदशासन्नं गणनायका । चतुःशतानि पंचाशत्सर्वदूषणरा मता ॥ ६० ॥ शिक्षकाः षट्शतद्वयसहस्राणि सद्रताः । विज्ञानपारिणां सख्या  
सहस्र षट् शताधिक ॥ ६१ ॥ तावत् पञ्चमज्ञाना मुनयो विक्रियादिकाः । सर्वे सार्द्धसहस्र स्तुर्मन पर्ययबोधनाः ॥ ६२ ॥ शून्यपंचद्विकैकोकास्त्य-  
कसंगाः प्रकीर्तिता । सहस्र बादिना सख्या ते सर्वेणि समुचिता ॥ ६३ ॥ विद्वानि स्तुःसहस्राणि मंगिनीप्रभुजार्जिका । चत्वारिंशत्सहस्राणि तदष्टा-  
पालकीपर सवार होकर चित्रवन नामके उद्यानमें गये और वेलाका नियम लेकर आसाढ कृष्णा दशमीके दिन अश्वनी  
नक्षत्रमें शामके समय एकहजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने संयम धारण किया तथा उसी समय संयमसे प्राप्त होनेवाला बी-  
या मनःपर्ययज्ञान उन्हें मगट हुआ ॥ ५३-५५ ॥ पारणाके दिन वे वीरपुर नगरमें गये वहाँपर सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा  
दत्तने उन्हें आहार दान दिया और पंचाश्रय प्राप्त किये ॥ ५६ ॥ तदनंतर नौ वर्ष उनके छत्रस्य अवस्थाके वीतजानेपर वे अपने  
दीक्षावनमें मनोहर वकुल वृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुए वहीं पर उनके मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासीके दिन  
तीसरे पहर अश्वनी नक्षत्रमें समस्त संसारको दिखलानेवाला केवल ज्ञान हुआ उसी समय श्रद्धादि देवोंने आकर केवल  
ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया ॥ ५७-५९ ॥ सुप्रभायकी आदि लेकर उनके सत्रह गणधर थे, और चारसौ पचास  
रमारह अंग चौदह पूर्वोके ज्ञानकार थे ॥ ६० ॥ बारह हजार छहसौ अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाले शिक्षक थे और  
सोलहसौ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले मुनिराज थे ॥ ६१ ॥ सोलहसौ ही केवलज्ञानी थे, पंद्रहसौ विक्रिया श्रद्धिको  
धारण करनेवाले थे, बारहसौ पचास परिश्रमरहित मनःपर्ययज्ञानी जिने गये थे और एक हजार बादी थे, इस तरह  
सब मुनिराजोंकी संख्या बीसहजार थी । मंगिनीको आदि लेकर पैंतालीस हजार अर्जिकाएं थीं, एक लाख भावक थे  
तीन लाख भाविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे ॥ ६२-६५ ॥ इस प्रकार नम्र हुई बारह  
सभाओंसे सुशोभित उन नेमिनाथ भगवानने सद्धर्मका उपदेश देते हुए आर्यदेवमें सब ओर विहार किया था । जब  
उनकी एक महीनेकी आयु रह गई थी तब वे विहार छोड़कर सम्प्रेद स्थिर पर आ विराजमान हुए थे और एक



वैकुण्ठ ॥ ४३ ॥ इति सोमि समासश्रेयलावगमोदयः । निते विधाय तत्सर्वं महीशः प्राविशसुरं ॥ ४४ ॥ तत्र स्वभवंसंबंधं स्मृत्वा तीर्थकरं च तं ।  
 अयं कुजवसजातसद्भानं मानयन्मुहुः ॥ ४५ ॥ अनादिवधैर्गोढ वध्यात्मात्मानमात्मना । कायकारागुहे स्थित्वा पापी पक्षीव पंजरे ॥ ४६ ॥ कुज-  
 रक्षापितालानो कळजलमात्मनः । नानादुःखानि मुजानो भूयस्त्वेव रजितः ॥ ४७ ॥ इदियार्थेषु संसर्गो रतितीव्रतरोदयात् । अशुचिष्वेव संवृद्धपुण्यो  
 वस्त्रकीटवत् ॥ ४८ ॥ विभ्यन्त्योस्तमाधावन् वर्ज्यदुःखस्तदर्जयत् । विपर्यस्तमतिः कष्टमार्तैरीद्राहिताशया ॥ ४९ ॥ भवे आम्ययविश्राम्यन् प्रता-  
 म्यन् पापपाकतः । दृढा निष्कृष्टा धिगमूढमभीष्टार्थविधातिनी ॥ ५० ॥ इति निर्वेदसवेगाद्भोगरागातिदूगः । सारस्तदादिसर्वापरागमरसरमर्चितः ॥  
 ५१ ॥ अथोपशमसप्राप्तशस्तसंज्वलनोदयः । लब्धवोधि सुतं राज्ये निजे सयोज्य सुप्रभ ॥ ५२ ॥ साक्षिकं सुरै प्राप्य परीनि क्वातिपूजनं ।  
 और होनहार तीर्थकरपनेको स्मरणकर संसारमें होनेवाले भावोंका बार बार विचार करने लगे ॥ ४५ ॥ वे विचार  
 करने लगे कि इस आत्माने अपने आपही इस आत्माको अनादिकालसे चले आए बंधसे अच्छी तरह जकड़कर बंध  
 रक्खा है, जिसप्रकार पक्षी पिंजरेमें बंद हो जाता है उसीप्रकार यह आत्मा शरीररूपी जेलखानेमें बंद हो रहा है ॥  
 ४६ ॥ अथवा अपने बलको दिखलानेवाला हाथी अपने आप बड़ा खंभा लाकर देता है और उससे स्वयं बंध जाता  
 है उसी प्रकार यह आत्मा बंध रहा है यह अनेक दुःखोंको भोगता है और फिर उन्हींमें राग करने लग जाता  
 ४७ ॥ रति नामके मोहकर्मके अत्यंत तीव्र उदयसे यह आत्मा इन्द्रियोंके विषयोंमें तल्लीन रहता है और विद्याके की-  
 डके समान शरीर आदि अपवित्र पदार्थोंमें ही अपनी वृष्णा बढ़ाता रहता है ॥ ४८ ॥ जो छोड़ने योग्य दुःखोंमें ही  
 मग्न है ऐसा यह प्राणी मृत्युसे डरता है परंतु उसीकी ओर दौडता है और उसीका संचय करता है दुःख है कि आते  
 और रौद्रध्यानसे हृदय मीगनेके कारण इसकी बुद्धि ही विपरीत हो रही है ॥ ४९ ॥ संसारमें परिभ्रमण करता हुआ  
 यह कमी विश्राम नहीं लेता और पापकर्मके उदयसे सदा दुःखी रहता है । अमीष्ट अर्थका घात करनेवाली, दृढ और  
 अत्यंत प्रचलित ऐसी इस मूर्खताको मी धिक्कार हो ॥ ५० ॥ इसतद्वेके निर्वेद और संवेग उत्पन्न होनेसे वे भोगोंके  
 प्रेमसे बहुत दूर जा खड़े हुए और उसी समय सारस्वत आदि वीतरागी लौकांतिक देवोंने आकर उनकी पूजा की ॥  
 ५१ ॥ कर्मोंके क्षयोपशमसे उनके प्रशस्त संज्वलनका उदय हुआ अर्थात् प्रत्याख्यानवरण अप्रत्याख्यानावरणका उप-  
 शम होगया और रत्नत्रयको पाकर उन्होंने सुप्रभ नामके अपने पुत्रको राज्यका भार सौंपा ॥ ५२ ॥ इंद्रादि देवोंने  
 आकर उनका अभिषेक किया और दीक्षा कल्याणकी पूजन की तदनंतर वे भगवान मनोहर उषरकुरु नामकी

ताने वर्षमानत । गतेषु पथिलक्षेषु नमिनाथममुद्रवः ॥ ३२ ॥ आयुर्दशमहस्राणि वर्षाणां परम मत । उत्तेधो यनुयां पंच दश चास्यामिनीयते ॥ ३३ ॥  
जातरूपयुति सार्द्धद्विसहस्राब्दसमिति । गते कुमारकाले ऽभिषेकमापत्सराज्यक ॥ ३४ ॥ राज्ये पञ्चसहस्राणि वर्त्सराणामशुर्विभो । तदा प्रायुधुघनाटोप-  
संकटे गगनागणे ॥ ३५ ॥ एवं वनाविहाराय गतवत महोदय । गजस्कन्धममारुढ भानुमत्तमिवापरं ॥ ३६ ॥ नभस्तलगता देवकुमारो विहितानती । एवं  
विष्णायामासतुर्वदकरपङ्कजा ॥ ३७ ॥ द्रौपेस्मिन्प्राश्निदेहेति विषयो वन्यकावती । सुसीमा नगरी तत्र विमानादपराजितात् ॥ ३८ ॥ अवतीर्य समु-  
त्पन्नतीर्थनाथोपराजितः । तस्य केवलपूजायं देवेंद्राः समुपागता ॥ ३९ ॥ तत्समायामाभूत्प्रन किमस्ति मरतेदुना । कथितोर्ध्वरुदित्याह सोऽयं  
सकलार्थदहृक् ॥ ४० ॥ वगाख्यदेशे मिथिलानगरे नयिनामक । भवितीर्थकरः पुण्यादवतीर्णो ऽपराजितात् ॥ ४१ ॥ देवोपनीतभोगानां भोक्ता  
संप्रति साध्विति । तपः प्राग्धातकीखंडे कृत्वा सौषम्यनामनि ॥ ४२ ॥ सपूज्येता द्वितीयेन्द्र मत्वा तद्वचन धृते । भवतमीलितु पूज्यमाभामेवं स-  
की थी और शरीर पंद्रह घनुष ऊंचा था और शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी । कुमारकालके पच्चीससां वर्ष बी-  
त जानेपर उन्हें अभियेकपूर्वक राज्य प्राप्त हुआ था ॥ ३३-३४ ॥ उन भगवानने पांच हजार वर्षतक राज्य किया  
था किसी एक समय वर्षा ऋतुके घने बादलोंसे घिरे हुए आकाशमार्गसे वे महा उदयशाली भगवान किसी वनमें वि-  
हार करने गये थे और दूसरे सूर्यके समान वे हाथीके मस्तक पर विराजमान थे, उसीसमय आकाशमार्गसे दो देव कु-  
मार आए उन्होंने आकर भगवानको नमस्कार किया और करकमल जोड़कर इसप्रकार निवेदन करने लगे ॥ ३५-३७ ॥  
कि हे नाथ ! इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक वत्सकावती देश है उसमें सुसीमा नामकी नगरी है उसमें अपरा-  
जित विमानसे आकर अपराजित नामके तीर्थकर उत्पन्न हुए हैं । उनके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिये सब इन्द्रादि  
देव आए थे ॥ ३८-३९ ॥ उनकी सभामें यह प्रश्न हुआ था कि इस समय भारतक्षेत्रमें क्या कोई तीर्थकर है ? इस-  
के उत्तरमें उन सर्वदेवोंने कहा था कि वंगदेशके मिथिला नगरमें नमिनाथ नामके होनहार तीर्थकर अपने पुण्यकर्मके  
उदयसे अपराजित स्वर्गसेही आकर उत्पन्न हुए हैं ॥ ४०-४१ ॥ तथा इस समय वे देवोंके द्वारा प्राप्त हुए भोगोप-  
भोगोंका अच्छी तरह सेवन कर रहे हैं । हे प्रभो ! हम दोनों पहिले धातकीखंडमें थे तपश्चरण कर सौषम्य स्वर्गमें  
देव हुए दूसरे ही दिन अपराजित केवलीके दर्शन करनेके लिये गये और वहाँके बचन सुनकर कौतुकके साथ पूज्य  
आपके दर्शनके लिये आए हैं ॥ ४२-४३ ॥ जिन्हें केवलज्ञानका उदय समीप ही होनेवाला है ऐसे वे भगवान उन  
देवोंकी बातें सुनकर और चित्तमें सब धारणकर अपने नगरको लौट गये ॥ ४४ ॥ वहाँपर पहिले भवके सब संबंधको

जयार्थिषु ॥ २३ ॥ शरव्यापिः सरस्वेव ज्योति प्वेवानवस्थिति । कीर्य क्रूरमहेव देवेव्वेव पिशाचता ॥ २४ ॥ वणिग्ला तन्महादेवी वसुधाराविपुलिता । श्रीही  
श्लादिभिः सेव्या सुयसुप्तानिशावया ॥ २५ ॥ शरदादिद्वितीयाया नक्षत्रेष्वादिसे सति । स्वर्गावतरणे भर्तुर्दृष्ट्वा स्वप्नपुरोदितान् ॥ २६ ॥ स्वकाञ्चप्र-  
विष्टमप्यालोक्य विनिप्रिका । प्रभातपट्टहृच्चानश्रवणाविष्कृतोत्सवा ॥ २७ ॥ अष्टच्छफलमेतेषा नृपं देशवधीक्षणं । सोप्यवादीश्रवतूर्भं भावितीश्रु-  
दित्यद ॥ २८ ॥ तदैवागल्य देवैः स्वर्गावतरणोत्सव । विधाय स्वनियोगेन निजधामागमस्तम ॥ २९ ॥ आषाढे स्वातियोमे तं कृष्णपक्षे महीजसं । दश-  
का धन तुराया यह शब्द ही नहीं था अर्थात् उसके राज्यमें विना दी हुई कोई चीज किसीकी नहीं लेता था, इसीप्रकार  
बंधन केवल काव्यमें था दूसरी जगह नहीं, और विवाद केवल विजय चाहनेवाले विद्वानोंमें ही था, शर नामकी एक  
तरहकी रुखड़ीकी फैलावट केवल नदियोंमें थी दूसरी जगह शर अर्थात् बाणोंकी फैलावट नहीं थी, इसीतरह अस्थि-  
रता केवल ज्योतिषी जातिके देवोंके विमानोंमें ही थी दूसरी जगह नहीं, क्रूरता केवल क्रूर ग्रहोंमें ही थी और पिचा-  
चपन केवल व्यंतर जातिके एक तरहके देवोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २३-२४ ॥ उस राजाकी महादेवीका नाम  
वणिग्ला था रत्नोंकी वर्षा आदिसे वह पूजित हुई थी और श्री द्वी भी आदि अनेक देवियां उसकी सेवा करने लगी  
थीं, आश्विन ( क्वार ) कृष्णा द्वितियाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें वह सुखसे सो रही थी उसी दिन रात्रिके पिछड़े प-  
हर भगवानके गर्भावतरणके समय ( जिससमय उस अर्धमिदने महादेवीके गर्भमें अवतार लिया था ) उसने पहिले कहे  
हुए सोलह स्वप्न देखे ॥ २५-२६ ॥ अंतमें उसने अपने सुखकमलमें घुसता हुआ एक हाथी भी देखा और उसे  
देख कर सवेरेके वजते हुये नगाड़ोंको सुनती हुई अनक उत्सवोंके साथ वह लगी ॥ २७ ॥ देशवधिको धारण करने-  
वाले महाराजसे उन स्वप्नोंके फल पूछे और महाराजने भी “आपके गर्भमें होनहार तीर्थकर आए हैं” यह उन स्व-  
प्नोंका फल कहा ॥ २८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देव आये और अपने अपने नियोगके अनुसार स्वर्गावतरणका उत्सव  
मनाकर सब एक साथ अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २९ ॥ आषाढ कृष्णा दशमीके दिन स्वाति नक्षत्रमें उस  
महादेवीने तीनों लोकोंके स्वामी और तेजस्वी ऐसे उत्तम पुत्ररत्नको उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने  
आकर जन्म कल्याणका उत्सव मनाया और मोहनीयकर्मको नाश करनेवाले उन भगवानका नमिनाथ नाम रक्खा ॥  
३१ ॥ मुनिमुव्रत तीर्थकरके वाद साठ लाख वर्ष वीत जानेपर नमिनाथ हुये थे ॥ ३२ ॥ उनकी आयु दशहजार वर्ष-

स्वगुरोर्मुनेः । भुत्वा शरीरसंन्यासं विच्छिन्ननिषण्डह ॥ १२ ॥ श्रुत्वा मनोहरोक्तं पुनरुत्तरार्थविस्तृतिः । महाकलाभिरात्मा गतेरन्तात्मानमेव गत ॥  
१३ ॥ राज्यभारं समारोप्य श्रीदत्ते स्वकुले सति । लज्जश्रविष्णुम्यम्यक्त- दम्भी मयममादरे ॥ १४ ॥ स धृरेकदशो गतिं कृत्वा गोचराकारणः । अञ्ज-  
नामादिर्भीमि पुण्यानि पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥ स्वयुरते समाराध्य विमाने लब्धमस्तन । देवोपराजिते पुण्याहुस्तुलसीदेववत् ॥ १६ ॥ अगहिर्भरता गोल्या-  
युदेकार्त्तिसमुच्छ्रितः । निभामाहारैर्यथाविभवैस्तनोदितैर्युत ॥ १७ ॥ जीवितातेदृग्भिरेस्मिन् कामार्थगतस्मिन्गति । अक्षयलक्षिते द्रोणे रिपये वगनाम-  
नि ॥ १८ ॥ मिथिलाया महीपालः श्रीमान् गोत्रेण काश्यपः । विभ्रयादिमहाराजो विद्वान्गोतृषम नये ॥ १९ ॥ अनुरक्तं उपपातुन्मनुसिन्धु रक्षित-  
गत् । स्वविगगाद्विरक्त तत्सोऽस्तपस्तस्य तादृश ॥ २० ॥ अकृणीत् गुणानेव मरेन् मुक्तोदयात् । पुष्कलाभिस्त्रिणं तस्मिन् पुरुषार्थजनं ततः ॥ २१ ॥ तन्म-  
राज्ये रत्नावेव तापः कोपेति कामिषु । विमृष्टया तनुर्वेन मुग्धेवैव विरागता ॥ २२ ॥ परार्थमद्वयं नाम कुक्षिपेव यथं । काश्यपेवैव विवादय विद्वत्सर्व-  
ने भीदस्य नामके अपने उत्तम पूवको राज्यका भार सौम्या तथा क्षायिक सायगर्दनेन धारणकर और शान होकर संयम  
धारणकर लीया ॥ १४ ॥ उम पुरुषोत्तमने ग्यारह अंगोका अभ्यास किया और सोलहकाग्र भावनाओंका चिंतन-  
कर पुण्यस्वरूप तीर्थंकर/नाम कर्मका वच किया ॥ १५ ॥ आयुके अंतमें समाधिमग्न धारणकर बह बिलासोत्तम  
मुनिराज अपने पुण्योदयसे अपगजित नामके उत्तम अनुत्तर विमानमें देव हुआ ॥ १६ ॥ बहोपर उसकी तेतीस भा-  
गकी आयु थी, एक अरतिन ( हाथ ) ऊंवा शरीर था और निष्पात आहार लेश्या आदि भाव सब पहिले कहे अनु-  
सार थे ॥ १७ ॥ अब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतार लेनेके मन्त्रसु हुआ उम-  
समय इस बंबूद्रीपके भरतक्षेत्रमें बग देवकी मिथिला नगरीमें श्री रूपभेदके वंशमें उत्पन्न हुआ, काश्यप गोत्री महा-  
राधिराज श्रीविजय नामका प्रसिद्ध राजा राज्य करता था ॥ १८-१९ ॥ उदय होते हुंये सूर्यके समान उसने समस्त  
संसारको अपने आधीन कर लिया था तथा अपने वंगपसे बह उसे विराजतकर देवा था । इसतरह वह संसारको सुव  
ही संतप्त कर रहा था ॥ २० ॥ उसने अपने पुण्योदयसे सब गुण स्वीकार कर लिये थे और इसीलिये उसमें धर्म अर्ध  
काम तीनों पुरुषार्थ स्वयं अच्छी तरह प्रगट हो रहे थे ॥ २१ ॥ उसके राज्यमें ताप केवल सूर्यमें था दूसरी जगह नहीं  
क्रीच केवल कामियोंमें ही था, विप्रह केवल शरीरका ही नाम था दूसरी जगह विप्रह अर्थात् लड़ाई भगदा नहीं था  
और विरागता अर्थात् वैराग्य परिणाम केवल मुनियोंमें ही थे दूसरी जगह विरागता अर्थात् वेप बुद्धि नहीं थी ॥ २२ ॥  
इसीतरह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरेके अर्थको ग्रहण करना केवल कुक्षियोंमें था दूसरी जगह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरे-

नगरे राजा पार्थिवराजो विभुविश्वो ॥ २ ॥ चक्षुरिदं कुंशस्य लक्ष्मीं वक्ष्यतेऽदधत् । साक्षात्क्रीव दिक्चक्रमक्रम्याभात्स विक्रमी ॥ ३ ॥ तनूत्रस्तस्य सुदंया देव्या सिद्धार्थनामभाक् । मुनिं मनोहरोयाने परमावधिवीक्षण ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा मुनिवराख्यान कदाचिद्विनयानत । संपृच्छय धर्मसद्भाव यथावत्त-  
रुत्तरितं ॥ ५ ॥ समाकर्ण्य समुत्पन्नसर्ववेगः स भूमीगति । गृतेमूलधनेनाधमणों मृत्योरिहामुभय ॥ ६ ॥ वहन् दुखानि तदुद्धारं सर्वो जन्मनि दुर्गतः । श्रुतमाख्याय प्रजापालनशीलने । सिद्धार्थाय समर्थय दत्त्वा राज्यश्रिय मुधीः ॥ ७ ॥ प्राजातीत्युत्पन्नगदस्य मुनेर्मुनिवरमुते । पादमूलं समासाद्य सतां सा  
वृत्तिरीदृशी ॥ १० ॥ सिद्धार्थोऽव्याप्तसम्यक्त्वो गृहीताणुव्रतादिकः । भोगान् मुखेन भुंजान प्रचोऽपालयत्प्रजाः ॥ ११ ॥ काले गच्छति तस्यैवं कदाचि-  
राज्य करता था, वह इक्ष्वाकुवंशका नेत्र था अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको धारण करता था और वह पराक्रमी साक्षात्  
चक्रवर्तीके समान सब दिशाओंपर आक्रमणकर सुशोभित होता था ॥ २-३ ॥ उस राजाके सुंदरी नामकी महादेवीसे  
सिद्धार्थ नामका पुत्र था । किसी एक दिन वह राजा मनोहर नामके उद्यानमें गया था वहाँपर उसने मुनिवर नामके  
अवधिज्ञानी मुनिराजके दर्शन किये, बड़ी विनयसे नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा मुनिराजने धर्मका स्वरूप  
कहा उसे सुनकर राजा विरक्त हुआ और विचार करने लगा कि यह पाणी मरणरूप मूलधन लेकर मृत्युका कर्जदार  
हो रहा है ॥ ४-६ ॥ प्रत्येक जन्ममें अनेक दुर्खोंको भोगता हुआ और उस कृष्णकी वृद्धि करता हुआ सब तरहकी  
दुर्गतियां भोग रहा है । रत्नत्रयको छोड़कर जबतक व्याजसहित यह उससे न चुका दिया जायगा तबतक किसतरह  
स्वस्थ और सुखी हो सकता है ? यही निश्चयकर वह कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये उद्यम करने लगा ॥ ७-८ ॥  
उस बुद्धिमानने अनेक शास्त्रोंको सुननेवाले, प्रजाको अच्छीतरह पालन करनेवाले और सब तरह के अपने  
पुत्र सिद्धार्थके लिये तो राज्यलक्ष्मी समर्पणकी और पूज्यपाद श्रीमुनिवर नामके मुनिराजके चरण कमलोंके  
समीप ही दीक्षा धारणकी सो ठीक ही है क्योंकि मज्जनोंकी प्रवृत्ति ऐसी ही होती है ॥ ९-१० ॥ प्रतापी  
सिद्धार्थ भी सम्यग्दर्शनमें तमन्य हो तथा अनुव्रतादि व्रतोंको धारण कर सुखपूर्वक भोगोंका अनुभव  
करता हुआ प्रजाका पालन करने लगा ॥ ११ ॥ इसप्रकार उसका समय व्यतीत होने लगा । किसी एक समय अ-  
पने पिता मुनिराजके शरीरका समाधिपरण सुनकर वह विषयोंकी इच्छासे विरक्त हुआ, वह शीघ्र ही मनोहर नामके  
वनमें गया और महाबल नामके केवली भगवानके दर्शन कर उनसे सब तत्त्वोंका विस्तार समझा ॥ १२-१३ ॥ उस-

धरितः समाप्य । पञ्चाक्षोजनि सुरः स सनत्कुमारे तस्मादिदं सप्तभूद्विभुर्देवकी ॥ मणिमतिः ख गरी शुगभूणा कृतनिदानमृतेरपि कोपिनी । ततश्च  
सप्तभूद्विह सुव्रता परिस्ता जनकेशमुता सती ॥७३०॥ इह सन्निवृत्तन्मदचन्द्रचूलस्य मित्र विजयविदितनामाऽजायत खन्तुतीये । कायितकनकचूजे लालितो,  
दिव्यभोगैरमवदमितवीर्यं सूर्यवंशे स रामः ॥ ७३१ ॥ जनयतु वलदेवो देवदेवो दुर्तादुर्गतिदुर्दयो थादृष्टुं यदु खाद्वीयान् । अवनतमुवनेशो विश्वदृष्टा  
विरागी निखिलमुखनिवासः सोष्टमोभीष्टमस्मान् ॥ ७३२ ॥

इत्यार्षे भवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्ठिलक्षणमहापुराणमगूढे मुनिपुत्रतर्पिकरुद्विषेण चक्रवर्तोरामवलदेवलक्ष्मीधरकेशवसीतारावणपुराण

परिसमाप्तमष्टपद्यं पर्व ॥ ६८ ॥

## अथ एकोनसप्ततितमं पर्व ।

यस्य नामापि धर्तृणा मुक्त्यै हृदयपकजे । नमिर्गमयताम्रान् मोक्षलक्ष्मीं समधु न ॥ १ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते वर्षे विषये वत्सनामनि । कौशव्या  
सरे भवमें मन्त्रीका पुत्र और चंद्रचूलका मित्रविजय नामसे प्रसिद्ध हुआ था फिर दिव्य भोगोंसे लालित यालित ऐशा  
कनकचूल नामका देव हुआ और फिर सूर्यवंशमें अपार अक्तिको धारण करनेवाला रामचंद्र हुआ ॥ ७३१ ॥ जो बुरे  
से बुरे पापोंके अशुभोदयसे उत्पन्न हुए बुरे दुर्बोले कोसों दूर थे, जिन्होंने संसारके सब इंद्रोंसे नमस्कार करा लिया  
था जो वीतराग सर्वज्ञ और समस्त सुखोंके निवासस्थान थे ऐसे देवाधिदेव आठवें बलदेव रामचंद्र हमलोगोंकी  
इष्टसिद्धि करें ॥ ७३२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मुनिसुव्रततीर्थंकर हरिषेण चक्रवर्ती रामवलदेव लक्ष्मीधर  
( लक्ष्मण ) नारायण सीता और रावणका पुराण समाप्त करनेवाला यह अष्टसठवा पर्व पूर्ण हुआ ॥६८॥

## अथ उनहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर—हृदयकमलमें धारण किया हुआ जिनका नाम भी मोक्ष दे सकता है ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी नम्र  
हुए हम लोगोंको मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ १ ॥ इसी जम्बूद्वीपके भारतक्षेत्रमें वत्सदेशके कौशात्री नगरमें पार्थिव नामका राजा

सैन्यं रुक्मा रियोः पुरमगारमिवैकमलयं । निर्मूल्यं वैरिकुलमाश्रितं सत्समीपदृष्ट्या सह क्षितिपुतामपहृत्य शत्रोः ॥ ७२४ ॥ आनम्रागमभूतमथरशिरः  
पीठोद्धृताद्दिवा निष्कन्दीकृतदक्षिणाद्भरतामृण्डविमंढाधिना । साकेत समधिष्ठिता हतशुचिगोद्रासिभास्वप्नोद्दिभ्यातद्विपसर्पदंशमनव्यग्रोप्रवीरश्रिया ॥  
७२५ ॥ सीरादिप्रयुतिप्रसिद्धविलसदरत्नावलीरंजितश्रीसपादितभोग्योगमुग्गिना संवर्धयिततर्पका । चद्राकाविव तेजसा स्वयशसा विश्व प्रकाश्य स्फुटं श्री-  
द्विशेषान्मा तद्व्यथादुधवत्सुखयो निदान ॥ ७२६ ॥ एकस्त्रिचक्रोक्तशिविरं मुखमध्यगतिष्ठदन्त्यश्रुतर्धनरकावनिनायकोभूर । भोग्ये समेपि परिणामकता-  
ताखिलसंचरोज्ज्वलसिरोमालो विनम्यन्वये स्त्रीलो लो निजवशकैरुहनाचारागणी रावण ॥ ७२८ ॥ आसीद्विहैव मलये विषये महीशस्तु त्वचद्रचूल इति दु-  
हाथियोंके ( दिग्गजोंके ) बहते हुए मदको शान्त करनेके लिये जिनकी उग्र वीर लक्ष्मी मदा व्यग्र रहती थी हलको  
आदि लेकर दैदीप्यमान रत्नों की पंक्तियोंसे सुशोभित ऐसी लक्ष्मीके द्वारा इकट्ठे किये हुए भागोंके संयोगोंसे जो  
बड़े ही सुखी थे, जो समस्त याचकोंको संतुष्ट करनेवाले थे, प्रतापसे जो सूर्य चंद्रमाके मंडलके समान थे, यशसे जि-  
न्होंने समस्त संसारको खूब अच्छी तरह प्रकाशित कर दिया था ऐसे श्रीमान् वलभद्र नारायण वा रामचंद्र लक्ष्मणने  
साथ साथ बहुत दिनतक इस पृथ्वीका पालन किया था ॥ ७२४-७२६ ॥ उनमेंसे एक तो तीनों लोकोंके शिवरप-  
विराजमान होकर अनंत सुखोंका अनुभव करने लगा और दूसरा चौथे नरकका स्वामी हुआ अर्थात् चौथे नरकमें  
गया । यद्यपि उन दोनोंकी उपयोग करनेकी वस्तुएं मय समान थीं तथापि परिणामोंमें विशेषता होनेसे ऐसा हुआ  
इसलिये बुद्धिमानोंको सुखोंके समान कभी निदान नहीं करना चाहिये ॥ ७२७ ॥ रावणका जीव पहिले सारसमुञ्चय  
नामके देशमें नरदेव नामका राजा हुआ था और वहांमे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रमें राजा विनमिके वशमें समस्त  
विद्याधरोंको वश करनेवाला, स्त्रीलंपट, अपना वंशका केतु ( नाशक ) अहित करनेवालोंमें मुख्य और जिसके मस्त-  
कोकी माला दैदीप्यमान हो रही है ऐसा रावण हुआ था ॥ ७२८ ॥ लक्ष्मणका जीव पहिले इसी क्षेत्रके मलय देशमें  
चद्रचूल नामका राजपुत्र हुआ था जो कि अत्यंत दुराचारी था, फिर तपश्चरण धारणकर सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ  
और फिर वहांसे आकर इसी भरतक्षेत्रमें अर्द्धचक्री लक्ष्मण हुआ ॥ ७२९ ॥ सीताका जीव पहिले गुणोंसे सुशोभित  
मणिमति नामकी विद्याधरी थी वहां पर क्रोधित होकर मरते समय निदान किया था वहांसे आकर यशको रक्षाने  
वाली अच्छे व्रतोंको पालन करनेवाली महासती जानकी पुत्री सीता हुई थी ॥ ७३० ॥ रामचंद्रका जीव पहिले ती-



धाय यथावाक्कि यथाविधि । रामाणुमंतौ सजातौ श्रुतकेवलिनौ मुनी ॥ ७१४ ॥ जाता शेषाश्च युष्यादिसप्तवृष्याविष्कृतोदयाः । एव छत्रस्यकालस्य प-  
चाद्वेनचनु शते ॥ ७१५ ॥ न्यतीतवति सद्ग्यानविशेषाद्वत्तथातिनः । रामस्य केवलज्ञानमुदपार्यार्कविवत् ॥ ७१६ ॥ समुद्रनैकछत्रादिप्रातिहार्यविभू-  
षित । अर्षिचन्द्रव्यसस्याना दृष्टि धर्मभयीमसां ॥ ६१७ ॥ एव केवलबोधेन नीत्वा घट्टशतवत्तरान् । फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे शुक्लपक्षे चतुर्दशी-॥ ७१८ ॥  
क्षिने सम्मेदगिर्यगे तृतीय शुक्लमाश्रितः । ओगत्रितयमाह्वय समुन्मुखक्रियाश्रय ॥ ७१९ ॥ नि शेषा प्राकृताघातिकर्मोऽणुमदादिभिः । शरीरत्रितयापायाद-  
वापत्तमुश्रुत ॥ ७२० ॥ विभीषणादयः वे चित्प्रापन्ननुग्राहा पुनः । रामचवक्ष्यप्रवेद्यायाः काश्चिद्विगुरिचोच्युत ॥ ७२१ ॥ शेषाः कल्पेभवन्नादौ लक्ष्मणया-  
गत कमात् । नरकात्सयम प्राप्य मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति ॥ ७२२ ॥ विनेयात्स्य जतूना भवेद्वैचित्र्यभीहृत् ॥ ७२३ ॥ श्रोत्वैव गोपदमिन्वावुनिधिं स्व-

सूर्यके विवके समान उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ७१५-७१६ ॥ उसीसमय एक छत्र आदि प्रातिहार्य प्रगट हुए और उनसे सुशीमित होकर वे भव्यरूपी अनाजके पौधोंको धर्मकी वर्षाकर सींचने लगे ॥ ७१७ ॥ इसतरह केवलज्ञानसे विभूषित होकर उन्होंने छहसौ वर्ष व्यतीत किये तब फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीके दिन सबरेके समय स्वयं पर्वतके शिख-  
रपर विराजमान होकर तीसरे शुक्लध्यानके आश्रयसे तीनों योगोंका निरोध किया और समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे  
शुद्धध्यानके आश्रयसे समस्त वेचे हुए अघातिया कर्मोंका नाशकर तीनों शरीरोंके नाश हो जानेसे इनुमान आदिके  
साथ साथ सबसे उत्तम पद प्राप्त किया अर्थात् उस दिन वे मुक्त हुए ॥ ७१९-७२० ॥ विभीषण आदि कितने ही  
मुनिराज अनुदिश विमानमें अहर्निद्र हुए रामचंद्र लक्ष्मणकी पटरानी सीता और शृथिवीसुंदरी आदि कितनीही अर्जि-  
काएं अच्युत स्वर्गमें देव हुई ॥ ७२१ ॥ बाकी सब सोलह स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए । लक्ष्मण नरकसे निकलकर अनुक्रमसे  
संयम धारण करेगा और अंतमें मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होगा ॥ ७२२ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंको संयम धारण  
करनेसे ऐसा ही फल मिला करता है ॥ ७२३ ॥ जिन दोनों भार्योंने समुद्रको गोपदके ( कीचड़में बनेहुए गौंके  
खुरके ) समान उल्टवन किया जिन्होंने अपनी सेनासे एक छोटे घरके समान शत्रुके नगरको घेर लिया खेतके समान  
शत्रुका सब घर बहुत सीघ्र चौपट कर दिया और लक्ष्मीके साथ साथ सीता भी शत्रुसे छुड़ा ली, नमस्कार करते  
हुए देव विद्याधर और भूमिगोचरियोंके राजाओंके मस्तकोंसे लगे हुए सिंहासन पर जिनके चरण कमल रहते थे जि-  
न्होंने दक्षिण की ओरका आधा भरतक्षेत्र निर्फटक कर दिया था जो तीनों खंडोंके स्वामी थे, अयोध्यामें निवास  
करते थे, जेठ महीनेके वैदीप्यमान सूर्यको कालिको नी जिन्होंने विरस्कृत कर दिया था, दिशाओंके अंतमें रहनेवाले

राज्यं निधायोच्चैः सपट्टं वैशवात्मजे ॥ ७०४ ॥ अष्टौ विजयराभाया सीतायाः सात्विकाः सुताः । लक्ष्मीमनसिवांच्छु तेषां ज्येष्ठेषु सप्तसु ॥ ७०५ ॥  
 दत्वाजितजयाख्याय यौवराज्यं कनीयसे । मिथिलामर्पयित्वास्मै त्रिनिर्वंदपरायणैः ॥ ७०६ ॥ साकेतपुरमभ्येत्य दत्ते सिद्धार्थनामनि । शृणुमस्वामिनिकाति  
 तीर्थभूमौ महौजसः ॥ ७०७ ॥ शिवशुताभिधानस्य समीपे केवलेजिन । ससारमोक्षयोर्होतुफले सम्यक् प्रबुद्धवान् ॥ ७०८ ॥ निदानशल्यदोषेण चतुर्थी  
 नारकीं भुवं । केशव प्राप्त इत्येतद् बुद्ध्वा देवो विशुद्धधी ॥ ७०९ ॥ निरस्ततद्गतवैहविधिरामिनिवोधिकात् । वेदान्याहुर्भवद्वोधिः सुग्रीवाणुसदादिभिः ॥  
 ७१० ॥ विमिषणादिमिश्रामा भूमिपैः पंचभिः शतैः । अशीतिशतपुत्रैश्च सह संयममाप्तवान् ॥ ७११ ॥ तथा सीता महादेवी शुचिवीरुंदरीयुता । देव्य श्रुत-  
 वती सास्तिनिकटे तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥ तौ राजयुवराजौ च गृहीतश्रावकक्रतौ । जिनाद्दियुग्ममानस्य सम्यक्शुश्रूषिता पुरी ॥ ७१३ ॥ मोक्षमार्गमनु-  
 द्रिया और अपने ही हाथसे उसका पट्ट बंधा ॥ ७०४ ॥ सात्विक वृत्तिको धारण करनेवाले विजयराम आदिक  
 सीताके आठ पुत्र थे उनमेंसे बड़े २ सातोंने तो राज्यलक्ष्मीकी अनिच्छा प्रगटकी इसलिये रामचंद्रने अजितजय नाम-  
 के सबसे छोटे पुत्रको युवराज पद दिया और मिथिला देश उसके समर्पण किया तथा आप संसार शरीर और भोगों-  
 से अत्यंत विरक्त हुये ॥ ७०५-७०६ ॥ वे अयोध्या नगरके समीप सिद्धार्थ नामके बनमें गये जो कि श्रीहृषय देवके  
 तपकल्याणक धारण करनेसे तीर्थस्थान होगया था वहांपर महा पराक्रमी श्रीशिवगुप्त नामके केवली भगवान विराजमा-  
 नथे उनसे उन्होंने संसार तथा मोक्षका हेतु तथा फल अच्छी तरह जानकार उनकी बुद्धि और विशुद्ध होगई उन्होंने लक्ष्मण नामकी  
 शल्यके अपराधसे चौथे नरकमें गया है वह जानकार उनको बुद्धि और विशुद्ध होगई उन्होंने लक्ष्मण नामकी  
 दिया और आमिनिबोधक नामके ज्ञानसे अनुमानसे उन्हें रत्नत्रय प्राप्त हुआ । तदनंतर सुग्रीव हनुमान और विभीषण  
 आदि पाचसौ राजाओंके साथ तथा एक सौ अस्सी पुत्रोंके साथ सीता महादेवी ने भी श्रुतवती नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण  
 प्रकार शुचिवी सुंदरी आठ रानियोंके साथ साथ सीता महादेवी ने भी श्रुतवती नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण  
 करली ॥ ७१२ ॥ शुचिवीसुंदर और अजितजय दोनों राजा और युवराजाओंने श्रावकोंके व्रत धारण किये और श्री  
 जिनराजके चरणकमलोंको नमस्कारकर अच्छीतरह नगरीमें प्रवेश किया ॥ ७१३ ॥ रामचंद्र और हनुमान दोनों ही  
 सुनिराजोंने अपनी शक्तिके अनुसार और विधिपूर्वक मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकी और दोनों ही श्रुतकेवली हुए ॥ ७१४ ॥  
 शेष बचे हुए सुनिराज भी बुद्धि आदि सातों ऋद्धियोंसे विभूषित और प्रसिद्ध हुए । इसप्रकार छत्रस्य अवस्थाके ती-  
 नसौ पिचाने वर्ष व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यान नामके उत्तम ध्यानसे रामचंद्रने घातिया कर्मोंका नाश किया और

बवलिन्तुंगमासादैकाशविच्युति ॥ ६९३ ॥ स्वमे दृष्ट्वा समुत्थाय समासाद्य निजाग्रज । स्वप्नात् सप्रग्रयं सर्वान् यथादृष्टान् व्यवेदयत् ॥ ६९४ ॥ पुरोहि-  
तस्तादाकर्ष्ये फल तत्रैत्र्यमवव्रीत् । न्यमोघोन्मूलनाद् व्याधिमसाध्य कैशवा ब्रजेत् ॥ ६९५ ॥ राहुप्रस्तार्कसपाताद्वेग्यभोगयुषां क्षय । वृंगप्रासाद-  
भोगेन त्व प्रयाता तपोवनं ॥ ६९६ ॥ इत्येकाते वचस्तस्य ध्रुवा रामो यथार्थचित् । धीरोदात्ततया नायान्मनागपि मनःक्षति ॥ ६९७ ॥ लोकद्वयहितं  
मत्वा कारयामास घोषण । प्राणिनां नहि हतव्या कैश्चिदिति दयोद्यत ॥ ६९८ ॥ चकार शक्तिपूजा च सर्वज्ञसवनान्वधि । ददा दान च दीनेभ्यो येन  
यथादमीप्सितं ॥ ६९९ ॥ वभूव क्षीणपुण्यस्य ततः कतिपयैर्दिनैः । कैशवस्य महाव्याधिरसातोदयचोदित ॥ ७०० ॥ दुःसाध्येनामयेनासा मावे मास्य-  
सितंतिसे । दिने तेनागमचक्री पृथ्वी पक्वप्रभाभिर्धा ॥ ७०१ ॥ तद्विद्युगेन शोकामिसतसहयो बलः । कथं कथमपि ज्ञानात्सर्वाथ्यात्मानमाहमना ॥  
७०२ ॥ कृत्वा शरीरसस्कारमनुजस्य यथाविधि । सर्वातःपुरदुःखं च प्रथममप्य प्रसन्नवाक् ॥ ७०३ ॥ सर्वप्रकृतिसान्निध्ये पृथिवीसुंदरे सुते । ज्येष्ठे

६९२-६९४ ॥ पुरोहित सुनते ही उनका फल इसतरह कहने लगा कि स्वप्नमें जो चडका वृक्ष टूटता हुआ देखा है उसका फल यही है कि लक्ष्मणको कोई असाध्य रोग होगा, राहुसे ठका हुआ सूर्य जो रसातलमें चलागया देखा है उसका फल भोगोपभोग करने योग्य वस्तुओंकी आयुका नाश हो जाना है और ऊँचे राजमहलके गिर जानेका फल आपका ( रामचंद्रका ) तपोवन चले जाना है ॥ ६९५-६९६ ॥ इसप्रकार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले रामचंद्रने वे पुरोहितके बचन एकांत स्थानमें सुने और धीरवीर तथा गंभीर होनेसे उनके चित्तमें कुछ भी रंज नहीं हुआ ॥ ६९७ ॥ तदनंतर दयाशाली रामचंद्रने दोनों लोकोंका हित समझकर यह घोषणा कर दी कि हमारे राज्यमें कोई मनुष्य किसी जीवकी न मारने पावे ॥ ६९८ ॥ इसके सिवाय उन्होंने सर्वज्ञदेवके चरण कमलोंके समीप शान्ति पूजाकी और दीन लोगोंकी उनकी इच्छानुसार अर्थात् जो जो उन्हें चाहिये वही दान दिया ॥ ६९९ ॥ तदनंतर-पुण्य कर्मोंके नाश होजानेके कारण थोड़े ही दिनोंमें असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेसे लक्ष्मणको बड़ा भारी रोग हुआ ॥ ७०० ॥ वह चक्रवर्ती लक्ष्मण माघ कृष्णा अमावास्याके दिन उसी असाध्य रोगसे मरकर पंकप्रभा नामकी चौथी पृथ्वीमें ( चौथे नरकमें ) वा उत्पन्न हुआ ॥ ७०१ ॥ लक्ष्मणके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकरूपी अग्निसे जिनका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसे रामचंद्रने ज्ञान होनेसे किसी तरह अपने आप आत्माको संभाला ॥ ७०२ ॥ तदनंतर उन्होंने विविधपूर्वक अपने छोटे भाईका शरीर संस्कार किया और प्रसन्नतापूर्वक बचन कहकर रणवासकी सब रानि-योका दुःख शान्त किया ॥ ७०३ ॥ फिर उन्होंने सब प्रजाके सामने पृथ्वीसुंदर नामके लक्ष्मणके बड़े पुत्रको राज्य

मनुश्रीगोर्क्षानहेतुभि । गुणमुख्यनयादानविशेषफलभातः ॥ ६८२ ॥ स्थान्छब्दालिङ्गतास्तिवनास्तिस्वाद्यंतमुत्तं । जीवतीमा पदार्थानां तत्त्वगुणान्य-  
लक्षणं ॥ ६८३ ॥ मार्गणा गुणजीवाना समासं संसृतिरिषति । अत्यन्त धर्मसम्बद्ध न्यक्तं युक्तितमाम्बित ॥ ६८४ ॥ कर्ममेदान् फल तेषां सुखदुःखदि-  
भेदकं । बंधमोचनयोर्हेतु स्वरूप मुक्तिमुक्तयोः ॥ ६८५ ॥ इति धर्मविशेष तत् ततः श्रुत्वा मनीषिणः । सर्वे रामादयोभूवन् पृथ्वीतोपासकत्रता ॥ ६८६ ॥  
निदानशल्यदोषेण भोगासक्त स केशव । कृपापुनरक घोरं नापृथीदर्शनादिकं ॥ ६८७ ॥ एव सर्वस्वरात्रीत्वा माकेते कतिन्विमुख । तदधिपत्य भक्त्या-  
भुक्ताभ्यां प्रदाय तौ ॥ ६८८ ॥ स्वय स्वपरिवारेण गत्वा वाराणसीं पुरीं । प्राविशतामधिष्यिष्य शक्तीनां स्वसपदा ॥ ६८९ ॥ सुतो विजयरामान्द्रो  
रामस्वामरमस्मिन् । धृतिवीचरनामाभूच्छादागः केशवस्य च ॥ ६९० ॥ अन्यैश्च पुत्रपौत्राद्यै परीनां तौ धृतोदया । नयतःस्स सुख काल त्रिवर्गफला-  
लिनौ ॥ ६९१ ॥ कदाचिद्विष्णुभोगे नागवाहिनीशयने सुख । मुपेत्यग्नौघट्टस्य भजन मतदंतिना ॥ ६९२ ॥ संहिक्रयनिर्गणिकरसातलतिवेशनं । सुवा-

कह सुनाई तथा और मी युवितयोंसे सुसंगत धर्मका स्पष्ट स्वरूप कहा । कर्मके भेद कहे सुख दुःख आदि उनका  
फल कहा और मोक्षके कारण वतलाये तथा मुक्ति और मुक्त होनेवाले जीवोंका स्वरूप बतलाया ॥ ६८२---८५ ॥  
इसप्रकार मुनिगजने धर्मका विशेष स्वरूप बतलाया जिसे सुनकर रामचंद्र आदि सब बुद्धिमान लोगोंने श्रावकके व्रत  
धारण किये ॥ ८६ ॥ निदान नामकी शल्यके दोपसे लक्ष्मण भोगोंमें आसक्त था तथा उसने घोर नरकायुका बंध  
मी कर लिया था इसलिये सम्यग्दर्शन आदि कुछ मी धारण नहीं किया ॥ ८७ ॥ इसतरह उन दोनों भाइयोंके  
कुछ वर्ष तो सुख पूर्वक अयोध्यामें ही निकल गये तदनंतर उन दोनोंने वहांका राज्य तो भरत और शत्रुघ्नको दिया  
और आप अपने सब परिवारके साथ बनारसी नगरीमें आए तथा अपनी संपदाओंसे इंद्रजी लीलाको भी तिरस्कार  
करते हुए रहने लगे ॥ ८८---८९ ॥ रामचंद्रके देवके समान विजयराम नामका पुत्र हुआ था और लक्ष्मणके चंद्रमा  
के समान पृथ्वीचंद्र नामका पुत्र हुआ था ॥ ९० ॥ जिनका उदय प्रसिद्ध है और जो तीनों पुरुषार्थोंके फलोंसे  
सुशोभित हैं ऐसे वे दोनों भाई और मी अनेक पुत्र पौत्रों सहित सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे ॥ ९१ ॥  
किसी एक दिन लक्ष्मण नागवाहिनी शय्यापर सुखसे सोया हुआ था वहांपर उसने तीन स्वप्न देखे-पहिला भस्त  
हाथीके द्वारा बडका वृक्ष उखाड़ा जाना, दूसरा राट्टके द्वारा निगले हुए (ढंके हुए) सूर्यका रसातलमें चले जाना और  
तीसरा चूनेसे पोते हुए बड़े भारी राजभवनका एक अंग गिर जाना । इन सपनोंको देखकर वह उठा, अपने बडे  
भाई रामचंद्रके समीप पहुंचा और उनसे बड़ी विनयके साथ सब देखे हुए स्वप्न यथार्थ रीतिसे निवेदन कर दिये ॥

६७० ॥ इन्द्रपञ्चकपक्षविधिमितास्तुंगमतगजा । रथवर्थास्तु तावतो नवक्रोव्यस्तुरंगमा ॥ ६७१ ॥ स्वसप्तकद्विचार्युका युद्धशौढाः पदातय । देशा-  
द्यसहस्राणि गणवद्वासिधानकाः ॥ ६७२ ॥ हलायुधं महागजमपरवित्तनामकं । अमोघाह्वयाः खगास्तीक्ष्णाः स्रगया कौमुदी गदा ॥ ६७३ ॥ रत्नाव-  
तसिका माला रत्नान्येतानि सीरिणः । तानि यक्षमहेश्वरेण रक्षितानि पृथक् पृथक् ॥ ६७४ ॥ चक्र सुदर्शनाह्वयं कौमुदीयुदिता गदा । अक्षिः सौनन्दकोऽ-  
मोघमुखी शक्तिः शरासना ॥ ६७५ ॥ शार्ङ्ग पञ्चमुख पाञ्चजन्यः शखो महाध्वनिः । कौस्तुभ स्रग्भामारभासमान महामणिः ॥ ६७६ ॥ रत्नान्येतानि सप्तैव के-  
शवस्य पृथक् पृथक् । सदा यक्षसहस्रेण रक्षितान्यमितयुतेः ॥ ६७७ ॥ एव तयोर्महाभागधेययोगैर्भोगपदा । निमग्नयोः सुखाभोगा काले गच्छन्त्यन्यथा ॥  
६७८ ॥ जिन मनोहरोद्याने शिवगुप्तसमाह्वयं । विनयेन समामाद्य पूजयित्वामिवयता ॥ ६७९ ॥ श्रद्धालुधर्मप्रप्राप्तीक्षीमान् राम सकेशव । प्रत्यासम्भा-  
स्मनिष्ठवनिष्ठितार्यो निरंजनः ॥ ६८० ॥ भव्यानुग्रहमुह्यत्प्रद्युति सोप्यभाषत । स्ववक्त्रसज्ज्योत्तममाद्दक्षिततत्तमः ॥ ६८१ ॥ प्रमाणनयनिज्ञे-

६७३-७४ ॥ इसीतरह सुदर्शन नामका चक्र कौमुदी नामकी गदा, सौनन्दक नामकी तलवार, अमोघमुखी शक्ति,  
शार्ङ्ग नामका धनुष, बड़ी भारी आवाज करनेवाला और पाँच मुखका पाँचजन्य नामका शंख, और, अग्रनी क्तिके  
नीक्षसे दैदीप्यमान ऐसा कौस्तुभ नामका महामणि ये सात रत्न अनंत कांतिको धारण करनेवाले नारायण लक्ष्मणके  
थे और एक एक हजार यक्ष देव मन्वकी अलग अलग रक्षा करते थे ॥ ७५-७७ ॥ इसतरह सुखसागरमें तल्लीन  
रहनेवाले और महा आर्यशाली उन दोनों भाइयोंका समय भोग और संपदाओंके द्वारा व्यतीत होने लगा किसी  
एक दिन मनोहर नामके वनमें दोनों भाइयोंने शिवगुप्त नामके जिनराजेके दर्शन किये तथा बड़ी विनयसे पूजा और  
वदनाकी ॥ ७४-७९ ॥ तदनंतर श्रद्धालु और बुद्धिमान रामचंद्रने लक्ष्मणके साथ २ धर्मका स्वरूप पूछा आत्म-  
निष्ठा समीप होनेसे जिनके चारों पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके हैं जो मोहनीय आदि कर्मोंसे रहित हैं भव्योंका अनुग्रह करना  
ही जिनके आत्माकी मुख्य प्रवृत्ति है ऐसे वे जिनराज अपने वचनरूपी फैलती हुई चांदनीसे उस सभाको प्रसन्न  
करते हुए कहने लगे ॥ ८०-८१ ॥ कि इस संसारमें जीवादिक नौ पदार्थ हैं प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके  
कारण ऐसे अनुयोगोंसे उनका ज्ञान होता है तथा गौण और मुख्य नयोंके स्वीकार करनेरूप विशेष वलके मिलजाने-  
से अर्थात् गौण और मुख्य नयोंकी अपेक्षासे उनमें स्यात् अस्तित्व ( वे पदार्थ कथंचित हैं ) स्यात् नास्तित्व ( वे प-  
दार्थ कथंचित नहीं भी हैं ) आदि सात धर्म सदा विद्यमान रहते हैं श्रीशिवगुप्ति मुनिराजने इनके विशद स्वरूपके  
सिवाय आपका ( सच्चे देवका ) लक्षण कहा, मार्गेणा गुणस्थान और जीवोंका संक्षेप वर्णन किया, संसारकी स्थिति

नः । द्वाचत्वारिंशद्वंशते परिनिष्ठितद्विरजय ॥ ६५९ ॥ कृताञ्जलिभिरासेव्यो देवखेचरभूरैः । अग्नयसेसखकी सबक सर्वरूजित ॥ ६६० ॥ कृत-  
मंगलनेपथ्यां प्रार्थ्यमानसमागमा । कातामिन्न विनीता तां शकवद्याधिगन्तुरीं ॥ ६६१ ॥ लग्नोचरसंशुभवेलादिसभिधा । नरविद्याधरा व्यतराधि-  
पप्रमुखाः मम ॥ ६६२ ॥ सिंहासन समारोप्य श्रीमते रामलक्ष्मणे । तीर्थवृण्णसैवर्णसहस्राष्टमहाघटैः ॥ ६६३ ॥ अभिषिच्य त्रिबुंदाधिगज्ये सपूजितां  
युवा । प्रवर्द्धमानलक्ष्मीकायास्त्रास्त्रयशोऽर्जुना ॥ ६६४ ॥ इत्यारोपितरत्नोत्सुकुटौ मणिभूयणा । अंकुत्य महाशीर्षं पूजयामासुस्तुका ॥ ६६५ ॥ पृथिवी-  
सुदरीमुख्याः केशवस्य मनोरमा । द्विगुणाष्टसहस्राणि देव्य सत्योगवन्त्रश्रियः ॥ ६६६ ॥ सीतायष्टसहस्राणि रामस्य प्राणवल्लभाः । द्विगुणाष्टसहस्राणि दे-  
शास्तावन्महीभुज ॥ ६६७ ॥ शून्यं पचाष्टश्लोकद्विगता द्रोगमुक्ताः स्मृता । पत्नानि सहस्राणि पञ्चविंशतिसहस्रया ॥ ६६८ ॥ कर्वटा खत्रयद्वयेकप्रमिताः  
प्रार्थितार्यदाः । मटवास्तत्प्रमाणाः स्युः सहस्राण्यष्टखेटकाः ॥ ६६९ ॥ शून्यसप्तकवल्ग्विभिता ग्रामा महाफलाः । अष्टद्विसम्भिता द्वीपाः समुद्रावर्तेन ॥

गमकी प्रार्थना करनेवाली कांताके समान उस अयोध्या नगरीमें इद्रके ममान लक्ष्मणने प्रवेश किया ॥ ६५८-६१ ॥  
तदनंतर किसी शुद्ध लग्न और शुभ मुहूर्तमें मनुष्य विद्याधर और व्यंतरदेवोंके मुखिया लोगोंने इकट्ठे होकर श्रीमान्  
राम लक्ष्मणको सिंहासनपर विराजमान किया तथा तीर्थोंके जलसे भरे हुए सुवर्णके एकहजार आठ बड़े २ कलशोंसे  
उन दोनों भाइयोंका अभियेक किया । इमतरह उन्हें तीनों खंडोंके साम्राज्यपर विराजमानकर प्रार्थनाकी आपकी  
लक्ष्मी सदा बढ़ती रहे और आपका यश सब दिशाओंमें फैलकर व्याप्त हो जाय । इसतरह प्रार्थना कर रत्नोंके बड़े  
भारी मुकुट और मणियोंके आभूषण पहिनाकर उनका अलंकार किया और बड़ी उत्कंठासे अनेक आशीर्वाद देकर  
उनकी पूजाकी ॥ ६२-५५ ॥ लक्ष्मणके पृथ्वी सुंदरी आदि लक्ष्मीके समान सोलह हजार सुंदर सानियां थीं और  
रामचंद्रके सीता आदि आठ हजार प्राणप्यारी रानियां थीं इसीतरह सोलह हजार देश सोलह हजार आधीन राजा थे  
नौ हजार आठ सौ पचास द्रोगमुख थे और पच्चीस हजार पत्तन थे, ॥ ६६-६८ ॥ इच्छानुसार फल देनेवाले बारह  
हजार कर्वट थे, बारह हजार मटव थे और आठ हजार खेटक थे ॥ ६९ ॥ महाफल देनेवाले अडतालीस करोड  
गांव थे और समुद्रके भीतरके अट्टाईस द्वीप थे ॥ ७० ॥ इसीतरह ग्यालीस लाख बड़े २ हाथी थे, और नौ करोड  
घोडे थे ॥ ७१ ॥ तथा ग्यालीस करोड बड़ी शूरवीर पैदल सेना थी और आठ हजार गणपद नामके देव थे ॥  
७२ ॥ बलभद्र रामचंद्रके अग्रजित नामका हलायुध अमोघ नामके तीक्ष्ण बाण कौमुदी नामका गदा और रत्नावर्त-  
सिका नामकी माला ये चार महारत्न थे और उनकी सबकी अलग अलग एक एक हजार यक्षदेव रक्षा करते थे ॥

ण ॥ ६३९ ॥ रत्नहारिं तिरिंत च कुंडलं शरमण्यसु । तीर्थपुष्पकुभातर्गतमस्मै ददौ सुर ॥ ६४० ॥ ततोनुजलधिं गन्वा वैजयंताख्यगोपुरे । वशीकृत्य  
यथाप्राच्य तथा वरतनुं च त ॥ ६४१ ॥ कटकं सागद चूशमणि मौलिधिभूषण । गैवेयक ततश्चक्री कटीसूत्रं च लब्धवान् ॥ ६४२ ॥ तत प्रतीचीमा-  
गल्य सबलः सिंधुगोपुरे । प्रविश्यान्धि प्रभासं च विनतीकृत्य पूर्ववत् ॥ ६४३ ॥ मालां सतानकाख्याना मुक्ताजालप्रलंबक । श्वेतच्छत्र ततो भूयण न्यन्या-  
न्यपि चादहौ ॥ ६४४ ॥ तत सिंधोस्तटेगच्छन् प्रतीचीं वदवासिन । खत्रीया श्रावयित्वाज्ञां सारवस्तुनि चाददत् ॥ ६४५ ॥ ऐंद्रक्ष शभिमु नो भूत्वा  
विजयार्द्धनिवासिनः । विनिमय्य गजाश्वास्त्रविवाध-कुमारिभाः ॥ ६४६ ॥ रत्नानि चात्मसात्कृत्य पूर्वखंडनिवासिना । विधाय कारदान् म्लेच्छन् निजग्री  
र्णिगतस्ततः ॥ ६४७ ॥ द्विगुणशतसहस्राणि पटवध न् महीभुजः । दशोत्तरशतव्यातपुराधीशान् खगेक्षिनः ॥ ६४८ ॥ त्रिखण्डवासिदेवाश्च विषयाज्ञाभिधावि-

कलयमै रत्नोंका हार मुकुट कुंडल और वह चाण रत्नकर लक्ष्मणकी भेंट किया ॥ ६४० ॥ तदनंतर समुद्रके किनारे  
किनारे जाकर वैजयंत नामके बड़े दरवाजेपर पहुँचे और पहिले कहे अनुसार वहाँपर वरतनु नामके देवकी वश  
किया ॥ ४१ ॥ तथा उसदेवसे कटक, अंगद, चूड़ामणि सुंदर मौलिसे सुशोभित हार और एक करधनी लक्ष्मणको  
प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ तदनंतर वे दोनों ही भाई सेनामहित पश्चिमकी ओर बढे और सिंधु नदीके बडे दरवाजेसे  
समुद्रमें घुसकर पहिलेके समान प्रभास नामके देवको अपने वश किया ॥ ४३ ॥ उस प्रभास देवने संतानके  
फूलोंकी एक माला मोतियोंकी जाली लटकता हुआ एक सफेद छत्र तथा और भी अनेक आभूषण लक्ष्मणकी  
दिये ॥ ४४ ॥ इसके बाद सिंधु नदीके किनारे जाकर पश्चिमकी ओरके म्लेच्छ खंडके निवासि-  
योंको अपनी आज्ञा सुनाई और वहाँकी सब अच्छी चीजें अपने आधीन कीं ॥ ४५ ॥ फिर दोनों भाई  
पूर्वकी ओर मुड़कर निकले विजयार्द्ध पर्वतपर रहनेवाले विद्याधरोंको वश किया तथा हाथी घोड़े शस्त्र विद्या-  
धरोंकी कन्याएं और अनेक रत्न अपने आधीन कर उन दोनों विजयी कुमारोंने पूर्व खंडके म्लेच्छ देशके राजाओं-  
को करदेनेवाला बना दिया और इस तरह वहाँसे निकलकर चले ॥ ४६-४७ ॥ इसतरह चक्रवर्ती लक्ष्मणने मो-  
लह हजार पटबंध राजाओंको एक सौ दश प्रसिद्ध नगरियोंके स्वामी विद्याधरोंको तथा तीनों खंडमें रहनेवाले देवोंकी  
अपना आज्ञाकारी बनाया और इसतरह बगालीस वर्षों अपना सब दिग्विजय समाप्त किया । उसतमय देव विद्याधर  
और भूमिगोचरी सब लोग हाथ जोड़कर उसकी सेवा कर रहे थे बडे भाई रामचंद्र उसके आगे थे, चक्र उसके साथ  
था, सब लोग उसकी पूजा ( आदर सत्कार ) कर रहे थे इसतरह सबतरहके मांगलिक वस्त्राभरण पहिने हुए समा-



तस्मिन् ॥ ६३८ ॥ वहती जानकी दुःखमग्राणप्रियदर्शनात् । रामोपि तद्वियोगोत्थोक्कव्याकुलिताश्रय ॥ ६३९ ॥ तौ परस्परसदृशोत्परा प्रीतिमवाप्तु ।  
तृतीयप्रकृति प्राप्य त्रयो बा सापि वा त्रुपं ॥ ६४० ॥ आरभ्य विरहाद्वृत्त यथाततदृच्छतां । अन्योन्यसुखदुःखानि निवेद्य सुखिन प्रिया ॥ ६४१ ॥  
इतदोवो हत सीता निरोपेक्षि निरूप्य ता । स्वीकरोद्वाधव सतो विचारानुवराः भदा मे ६४२ ॥ ततोरेखपुगेगच्छत्स्फुरत्पीठिगिरी स्थित । तत्रैवामिषं  
प्राप्य सर्वतीर्थीबुधयुतैः ॥ ६४३ ॥ अष्टोत्तरसहस्रैरुत्सुवर्णकलशैर्मुदा । देवविश्वगधीशः स्वहस्तेन ममुदतैः ॥ ६४४ ॥ कोटिकाश्चशिला तस्मिन्-  
नुज्ज्वलै राघवानुजः । तन्महात्म्यग्रहणं सन् सिंहनाद व्यधाद्वलः ॥ ६४५ ॥ तन्निवसी सुनदाश्चो यथा संपूज्यं तौ मुदा । अति सौनन्द्य नाम्ना-  
समान चक्रिणेक्षित ॥ ६४६ ॥ अनुगम्य ततो गावा गगाद्वारसमीपगे । नने निवेद्य शिविरं रथमाश्रय चक्रवृत्त ॥ ६४७ ॥ गोपुरेण प्रविश्याच्च निजना-  
मार्क्षित शरं । मागधावासमुदितदय व्यमुच्युचितकम् ॥ ६४८ ॥ मागधोपि शरं वीक्ष्य मत्वा स्व स्वल्पपुण्यक । अभिष्टुवन्महापुण्यक्षकवतीति लक्ष्म-

था तथा रामचंद्रका मी हृदय सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकसे व्याकुल हो रहा था ॥ ६३९ ॥ इसलिये वे दोनों  
ही परस्पर एक दूसरेको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए । रामचंद्र तीसरी मित्र प्रकृति सीताको पाकर और सीता राम-  
चंद्रको पाकर विरहसे लेकर सब वृत्तांत एक दूसरेसे पूछने लगे तथा दोनोंने अपने अपने सुख दुःख कह सुनाये ॥  
६४०-६४१ ॥ रावण अपराधी था वह तो माग ही गया और यह सीता निर्दोष है यही समझकर रामचंद्रने सीता  
को स्वीकारकर लिया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग सदा विचारके अनुसार ही चलते हैं ॥ ६४२ ॥ तदनंतर  
वे दोनों ही भाई लंकासे निकलकर पीठ नामके सुंदर पर्वतपर ठहरे, वहाँपर देव और विद्याधरोंके राजाओंने अपने  
हाथसे उठा उठाकर सब तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक हजार आठ सुवर्णके कलशोंसे दोनों भाइयोंका अभिषेक किया ॥  
६४३-६४४ वहींपर लक्ष्मणने कोटिशिला उठाई और उसके महात्म्यसे संतुष्ट होकर रामचंद्रने सिंहनाद किया ॥ ६४५ ॥  
वहाँके रहनेवाले सुनंद नामके यक्षने बड़ी प्रसन्नतासे उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और चक्रके ही समान सानंद  
नामकी तलवार लक्ष्मणको दी ॥ ६४६ ॥ तदनंतर वे दोनों भाई गंगके किनारे गये और गंगाद्वारके ( जहाँ  
गंगा समुद्रमें मिलती है ) समीप ही बनमें डेरे डाल दिये । लक्ष्मण स्थपर सवार होकर गोपुरके ( बड़े दरवाजेके )  
गास्तें समुद्रमें गिरा और अपने दोनों पैर कुछ सकोडकर मागधदेवके निवासस्थानको निशाना बनाकर अपना नाम  
लिखा हुआ वाण छोड़ा ॥ ६४७-६४८ ॥ वाणको देखकर मागधने भी अपनेको थोड़ा पुण्यवान माना और यह  
महापुण्यवान् है चक्रवर्ती है यही समझकर लक्ष्मणकी स्तुतिकी ॥ ६४९ ॥ उस देवने तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक

६०८ ॥ चक्रेण विक्रमेणैव मूर्तीभूतेन चक्रिणा । तेन तेन क्षिरोमाहि त्रिलङ्घ वा खगेक्षितु ॥ ६२९ ॥ सोपि प्रागेव ब्रह्मायुर्दुर्गचरादधोगति । प्रापदापन्करी  
घोरा पापिना कापरागतिः ॥ ६३० ॥ विजयाब्ज समापूर्वं कैशवो विश्वविद्विषा । अभय घोपयामास स घमो जितभूषणां ॥ ६३१ ॥ तदानशिशु  
६३३ ॥ दशवठान्वयायातविश्वभुर्क विवेरतुः । आभूता च त्रिलङ्घैश्च प्रचडौ बलकैश्चवो ॥ ६३४ ॥ अथ शीलवती सीतामशोकवसमथ्यागा । सग्राम-  
विजयाकर्णनोषीर्णप्रमदान्विता ॥ ६३५ ॥ रावणलुजसुग्रीवपवमानात्मजादय । गत्वा ययोजितं हृष्ट्वा क्षामयित्वा जयोत्स्व ॥ ६३६ ॥ समयुजत  
रामेण सम् तदसीमिवापरा । महामणि वा हारेण कुण्डला कवयोथवा ॥ ६३७ ॥ वाच मनोहरार्थेन संतो घर्मेण वा धियं । मद्दुत्पत्त्यमित्रसवधाद्भवतीसि-  
लक्ष्मणने उसी चक्रसे तीन खड्गके समान रावणका सिर काटकर अपने आधीन कर लिया ॥ ६२८—२९ ॥ उस  
रावणने अपने दुराचरणोंसे पहिले नरकायुका बधकर रक्खा था इसलिये मरकर वह अनेक दुःख देनेवाली घोर नरक  
गतिको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंको और कौनसी गति मिल सकती है ॥ ३० ॥ तदनंतर लक्ष्मण  
ने विजयका शंख पूरा और सब शत्रुओंको अभय देनेकी घोषणाकी सो ठीक ही है क्योंकि जीतनेवाले राजाओंका  
यही धर्म है ॥ ३१ ॥ उसीसमय रावणके बचे हुए महामंत्री आदि लोगोंने अमरोंके समान मलिन होकर रामचंद्र और  
लक्ष्मणके चरण कमलोंका आश्रय लिया ॥ ३२ ॥ मंदोदरी आदि रानियां जो दुःखसे रो रही थी उन्हें समझा  
बुझाकर उनका दुःख दूर किया और फिर दोनों भाइयोंने विभीषण को लंकाका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ तथा राव-  
णकी सब विश्रुति उसे समर्पण कर दी । इसतरह रामचंद्र और लक्ष्मण दोनों भाई बलभद्र और नारायण होकर तीन  
खंडके स्वामी हुए ॥ ३४ ॥  
अथानंतर--शीलवती सीता अशोक वनमें बैठी थी और युद्धमें रामचंद्रकी विजय सुनकर वहीं ही प्रसन्न हो रही  
थी ॥ ३५ ॥ विभीषण हनुमान और सुग्रीव आदि मुख्य लोग उसके पास गये यथायोग्य रीतिसे उसके दर्शन  
किये और सबने विजयौत्सवकी खबर सुनाई ॥ ३६ ॥ जिसप्रकार महामणिको द्वारमें लगा देते हैं अथवा कुशल  
देते हैं उसीप्रकार दूसरी लक्ष्मीके समान सीता रामचंद्रसे मिलाई, सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे सेवक और मित्रोंके  
संबंधसे इष्ट सिद्धियां हो ही जाती हैं ॥ ३७—३८ ॥ प्राणप्रियके दर्शन न होनेसे जानकीको अगर दुःख हो रहा

सर्वान् गूढान् अयिषु तया । नि शक्तिर्वीतवानेति शकाविषयमिनः ॥ ६०६ ॥ इतस्ततो भटा व्यम्गाः सगरे अजर्गकाः । अनयं त्यतः कस्यापि  
वीर्यमानस्य भीरुसं ॥ ६०७ ॥ बालिनोत्र समुच्छिद्यप्रचरणाः मरुचशालिनः । अगेनेव समुत्थातुमुत्थातिर्मोर्जाजसः ॥ ६०८ ॥ अभातिभा भटोन्मुकशर-  
नाराचकीलिता । प्रक्षरद्वातुनिष्पन्ननिर्गमो बालपवेणवः ॥ ६०९ ॥ चक्राद्यवयवमैत्रेयिनिता सर्वतो रथा । भोतिस्म भिन्नपोता वा तत्संगामाद्विधमध्यगा ॥  
६१० ॥ विन्यान्त्येव बहुन्यासीत्संगमो बलयोगेन्द्रो । प्रायेण विमले दैत्रे स्व बल वीर्य भणुरे ॥ ६११ ॥ सतापो नायया सीताशिरश्च्छन्द दशाननः । विधा-  
न तव देवीय गृहानेति श्वाक्षिपत् ॥ ६१२ ॥ शिरस्तपयद्यतोर्भर्तुद्विदो भोहे कृतास्पदं । खेचरेभ्रमन्मग्नस्य रामोऽस्य समरोहमव ॥ ६१३ ॥ सीता शीलवती  
कश्चिदपि स्पृष्टुं त्वया विना । कणो नारित दशस्यस्य मायेय मांत्रगाः शुच ॥ ६१४ ॥ नायेति राघव तवमवव्रीदवणानुव्र । विभीषणस्य तद्वाक्य भ्र-  
ष्टाय वृणुदनः ॥ ६१५ ॥ गजार्निजयूथ वा भास्करो वा तमस्तति । बल विनेदयामास सद्यो विद्याधरेक्षिनः ॥ ६१६ ॥ प्रकाशशुद्धमुज्ज्वला मायायुद्ध-

ये ॥ ६०७ ॥ जिनके पंर कट गये हैं ऐसे कितने ही प्रतापी और बलवान घोड़े अपने शरीरसे ही उछाल मारनेकी  
कोशिस कर रहे थे ॥ ६०८ ॥ योद्धाओंके द्वारा छोड़े हुए वाण और नाराचों ( लोहेके वाण ) से कीलित हुए हाथी  
ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों जिसमें गेरूके शरने झग रहे हैं और जिनके ऊपर थोड़ेसे बत खड़े हैं  
ऐसे निखल पर्वत ही हों ॥ ६०९ ॥ टूटे हुए चक्र आदि शस्त्रोंके टुकड़ोंसे रथ चारों ओर भाग गये थे और वे ऐसे  
बान पड़ते थे मानों इस संभ्रामरूपी महासागरके मध्यमें अलग हुए जहाज ही हों ॥ ६१० ॥ इततरह उन  
दोनों सेनाओंका युद्ध होते हुए बहुत दिन हो गये तब अपना भाग्य प्रतिकूल होनेसे रावणने अपनी सेना नष्ट होती  
हुई देखी तब वह बहुत ही संतप्त हुआ और उसने मायासे सीताका सिर काटकर ( वह बनावटी कटा हुआ सिर था )  
क्रोधित होकर रामचंद्रके सामने फेंक दिया और कहने लगा कि 'लो यह रही तुम्हारी देवी सीता ॥ ६११-६१२ ॥  
उस कटे हुए सिरको देखकर रामचंद्रके हृदयमें मोहका वेग प्रगट हो आया । इधर विभीषणने रावणकी सेनामें युद्ध-  
का उद्भव होता हुआ देखा तब वह रामचंद्रसे यथार्थ बात कहने लगा कि हे नाथ ! सीता शीलवती है उसे आरके  
विना कोई दूसरा छ नहीं सकता यह केवल रावणकी माया है इससे आप कुछ शोक मत कीजिये । विभीषणकी इस  
बातपर विश्वास रखकर रामचंद्र बहुत ही ग्रीव रावणकी सेनाको इसप्रकार नष्ट करने लगे जैसे सिंह हाथियोंके  
समूहको नष्ट करता है अथवा सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट कर डालता है ॥ ६१३-६१६ ॥ तब रावणने प्रकाश  
युद्धको छोड़कर माया युद्ध करनेकी इच्छाकी और वह अपने पुत्रोंके साथ उड़कर आकाशरूपी आंगनमें आगया ॥  
६१७ ॥ उस युद्धमें उस रावणको दुरीक्ष्य ( जो देखा न जा सके ) देखकर बहुत चतुर रामचंद्र और लक्ष्मण सिंह

निहितस्या । स पुत्रैः सह पौररत्नो लंघते स्मनभोगेन ॥ ६१७ ॥ त वीक्ष्य तद्रेणे दक्षौ दुरीक्ष्य रामलक्ष्मणौ । गजारिचिन्तामूर्धुनिनीताभ्या समुद्यतौ ॥ ६१८ ॥ सुग्रीवाणुमदाद्यात्मविद्याधरवलाचितौ । रावणेन सम रामो लक्ष्मणोऽप्यप्रसुतना ॥ ६१९ ॥ सुमीचः कुम्भकर्णेन मरुतुम्रविकीर्तिना । खरेण वेतु रज्जादिरंगदधेन्द्रेतुना ॥ ६२० ॥ इंद्रवर्मभिधानेन कुसुदो युद्धविभूतः । खरदूषणनाम्नापि नीलो मायाविधारदः ॥ ६२१ ॥ एवमन्येपि तैरन्यै रामश्रुत्याः रणेद्धताः । दशास्यनायकैः सार्द्धं मायायुद्धं व्यकुर्वन्त ॥ ६२२ ॥ तदा रामेण सत्राग्रे परिभूतं दशाननं । अवलोक्येंद्रजिन्मध्य प्राविशद्वाहस्य जीवित ॥ ६२३ ॥ तं शक्याद्यत्तयद्रामस्त निरीक्ष्य खगाधिपः । कुपित्वाऽथावदुद्दिश्य ससन्न लक्ष्मणाग्रज ॥ ६२४ ॥ तन्मध्ये लक्ष्मणरतूर्णमभूतं दशकधरः । मायागज स- मादृष्ट्वा वदथाश्वाराचपञ्चरैः ॥ ६२५ ॥ प्रहारावरणेनापि प्रतापी गरुडचञ्चलः । सिंहगोत इवोद्गतो दुर्निवारोऽस्तिवारणैः ॥ ६२६ ॥ तत्पजरं विमियासौ निर्वयौ निजविधया । दृष्ट्वा तद्रावणः कुदृष्ट्वा प्रतीतं चक्रमादिशत् ॥ ६२७ ॥ सिंहनादं तदाकुर्वन् गगने नारदादयः । बाहौ प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणे स्वस्य तिष्ठता ॥

वाहिनी और गरुडवाहिनी विद्या लेकर अर्थात् उन विद्याओंके रथपर सवार होकर लड़नेको तैयार हुए ॥ ६१८ ॥ उनके साथ साथ सुग्रीव हनुमान आदि सब साथी विद्याधर तैयार हुए रावणके साथ रामचन्द्र, इंद्रजीतके साथ लक्ष्मण, कुम्भकर्णके साथ सुग्रीव, रविकीर्तिके साथ हनुमान्, खरके साथ कमलकेतु, इंद्रकेतुके साथ अंगद, इंद्रवर्मके साथ युद्धमें प्रसिद्ध कुसुद, खरदूषणके साथ माया करनेमें चतुर नील तथा और भी रावणके अनेक योद्धाओंके साथ उद्धत ऐसे रामचन्द्रके अनेक योद्धा रावणके मुखिया लोगोंके साथ माया युद्ध करने लगे ॥ १९-२२ ॥ उसीसमय इंद्रजीतने देखा कि रामचन्द्र रावणको दबाये जा रहे हैं उसका निरस्कार कर रहे हैं यह देखकर रावणके जीवनके समान वह वीचमें ही घुम पड़ा ॥ २३ ॥ परंतु रामचन्द्रने उसे शक्तिही भारी चोट दी यह देखकर रावण क्रोधित हुआ और शस्त्रोंसहित दौडकर रामचन्द्रके ऊपर आया ॥ २४ ॥ इसी वीचमें लक्ष्मण बड़ी शीघ्रतासे उन दोनोंके वीचमें आगया तब रावणने मामामयी हाथीपर सवार होकर लक्ष्मणको नाराच पंजरमें घेर लिया अर्थात् उसे बाणोंसे ढक लिया परंतु गरुडकी ध्वजा फहरानेवाला लक्ष्मण प्रहारावरण नामकी विद्यासे बड़ा ही प्रतापी था सिंहके बच्चेके समान उद्धत था और शत्रुरूप हाथियोंसे रोका नहीं जा सकता था, इसलिये वह अपनी विद्यासे ही, उस पंजरको तोड़कर बाहर निकल आया । यह देखकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने कोषित होकर विद्या-संपन्न चक्रको आज्ञा दी ॥ १६-१८ ॥ उससमय नारद आदि आकाशमें सिंहनाद करने लगे । वह चक्र प्रद-क्षिणा देकर साक्षात् मूर्तिको घागण करनेवाले पराक्रमके समान लक्ष्मणके दाहिने हाथपर आकर ठहर गया, तब

अमर्महान् विजिगीषवः । प्रधातमूर्च्छित कश्चिद्व्रवहल्लोहितो भटः ॥ ५९६ ॥ आगन् युद्धप्रक्षालिलो देवतोद्व्यूहन् पुनः । नीयमानमिवान्मानं वीक्षयान्यो देवकन्यया ॥ ५९७ ॥ सोन्तवः सहस्रोदय्यास्तस्योदरगुच्छिद्यतः । वाणाकिते रणतूर्यरणरे निरंतरं ॥ ५९८ ॥ नृयत्कन्यके सद्य शरच्छादितमनुये । वदन्त्रजालमालोन्नयो बहुलाद्यामवाचितः ॥ ५९९ ॥ राक्षसेन विवाहेन वीरलक्ष्मीं समाक्षिपत् । उक्रियथ्यदुलं नेदुःशङ्कन् भैरवं शिवा ॥ ६०० ॥ कर्णवधवमवद्वन्निहविस्फुल्लिगविभीषणः । उद्विग्नकर्तृकाजालगल्लोलकपालयुत् ॥ ६०१ ॥ अतिपातनिपीताक्षगन्गीदाशसीगण । निशातशरानशान्चक्रलुपन् निपातनात् । नि प्रभे निःप्रतापं च तदाभूदूर्कमंडलं । स्याद्विभिः समाक्रातुकुगदिकुञ्जवत्तदा ॥ ६०३ ॥ दशाननवजान्यापन् भग रायवसिनिः । इति प्रवृत्तं समामे सुचिरं तद्व्रणगण्ये ॥ ६०४ ॥ मृताः केचित्तुनः केचित्प्रहताः प्राणमोक्षणे । अक्षमाः पापकर्मण स्थिताः कठगतासवः ॥ ६०५ ॥ समवर्ती नरान्

को ऐसा मालूम हो रहा था कि देवकन्या मुझे उत्सवके साथ ले जा रही हैं इसीलिये वह हंसता हुआ एक साथ उठ खड़ा हुआ था और फिर नीचमें भी मूर्छित हो गया था अर्थात् मर गया था । वह युद्धस्थल वाणोंसे भर रहा था युद्धके वाजोंसे गूंज रहा था उसमें कटे हुए घड़ सदा नृत्य करते रहते थे और उसपर वाणोंका मंडप छाया हुआ था ऐसे युद्धस्थलमें जिसकी सब अंतर्दियोंका समूह वध रहा है और जो बहुतसे बहते हुए खूनसे पूजित हो रहा है ऐसा कोई योधा राक्षस नामका विवाहका (जवर्दस्ती) वीर लक्ष्मीको अपनी ओर खींच रहा था । वहाँपर डाकनियां खूब नाच रही थीं और ऊपरको सुहकर उगलते हुए अधिक फुल्लिगोंसे भयानक ऐसे सियार (गीदड) खूब रो रहे थे । जिनकी कैचियां ऊपरको उठी हुई हैं और जो लटकते हुए चंचल कपाल पहिने हुए हैं ऐसे राक्षसियोंके समूह बहुत पी जानीसे पिये हुए सब खूनको उगल रहे थे । बड़े तेज वाण और नाराचोंके समूह आदि अनेक शस्त्रोंके चलनेसे उससमय सूर्य मंडल भी कांति और प्रताप रहित हो गया था । जिसप्रकार स्याद्वादको माननेवाले लोग कुत्रादियोंके समूहोंपर आक्रमण करते हैं उसीप्रकार रामचंद्रकी सेनाने रावणकी सेनाको छितर छितर कर दिया था । हस्तरह उस युद्धस्थलमें संग्राम होते होते बहुत दिन हो गये ॥ ५५६-६०४ ॥ कितने ही लोग मर गये कितने ही घायल होगये और कितने ही पापी प्राण छोड़ न सके इसलिये कंठगत प्राण होकर पड़े थे ॥ ६०५ ॥ यमराज सब मनुष्योंको निगल तो गया था परंतु पचा नहीं सका था इसीलिये शंका करनेवाले लोग ऐसे जानने लगे थे मानों यमराजने पचानेमें अममर्थ होकर ही उन सबको उगल दिया हो ॥ ६०६ ॥ जिनके अंग छिन्न भिन्न होगये हैं ऐसे कितने ही योधा उस युद्धस्थलमें इधर उधर भाग रहे थे और देखनेवाले यमराजको भी भयानक रस उत्पन्न कर रहे

पुरषार्थं चैतवेत्येवमन्युच्यते । नास्मद्वले मृत्तिं वीक्षे कस्यपि स परामभव ॥५८८॥ ममेति मन्यमानोन्य प्राग्युष्वाभियत खयं । अयुंध्यतैवमुत्कोधा सर्वशक्ति-  
रनारत ॥५८९॥ सव्यापसव्यमुष्कार्थमुष्कासु कैरनाकुल । आनीतमार्गजैर्नैव मार्गणमार्गमात्मन ॥५९०॥ मध्ये विधाय गत्वा द्राक् परं प्रपतिताः परे । दुरे त्यक्त्वा  
गुणान्वागैस्तीक्ष्णैः शोभितपाम्भिः ॥५९१॥ ऋजुत्वाच्चहिरे प्राणान् गुणोपि न गुणः खले । न वैरं न फलं किञ्चित्पथ्यपन्नं शरा परान् ॥५९२॥ परशेरितवृ-  
त्तीना तीक्ष्णानामीदृशी गतिः । नाना खगाः खगान् अण्डवैद्वैराः खगा इव ॥५९३॥ वृणाय मन्यमानाः स्वान् प्राणान् गमा परस्परं । लक्ष्यवद्वात्म-  
दृष्टयन्वितासुपातिसितैः शरैः ॥५९४॥ घटिवनः पातयतिस्स गिरीन्वा करिणो बहून् । एकैकैः शरैर्गणमवधीमन्ममेदिना ॥५९५॥ स्वीकुर्वत्यतएवा-

और हम लोगोंके ये ही तीन पुरुषार्थ हैं यही समझकर कोई योधा किसी दूसरे योधासे लड़ रहा था । मैं अपनी  
सेनामें न तो किसीकी मृत्यु देखूंगा और न किसीका तिरस्कार देखूंगा ॥ ५८८ ॥ यही मानकर कोई योधा स्वयं  
सबसे पहिले लड़कर मरगया था, तीव्र क्रोध करते हुए सब योधा दायें बायें दोनों हाथोंसे बाण आदि  
छोड़ने योग्य वरछी आदि आधे छोड़ने योग्य और तलवार आदि न छोड़ने योग्य ऐसे सब तरहके झांझी-  
से बिना किसी न्याकुलता और अवकाशके खूब लड़ रहे थे । दोनों ओरसे बाण छोड़े जा रहे थे वे बाण  
बीचमें ही परस्पर एक दूसरेको छोटकर और इसतरह अपना रास्ता बनाकर झुञ्झोंकी सेनामें पड़ रहे थे । गुण अ-  
र्थात् धनुषकी डोरीको बहुत दूर छोटकर तीक्ष्ण और सून पीनेवाले बाण सीधे होकर मी प्राणोंका नाश कर रहे थे  
सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंके गुण गुण नहीं गिने जाते हैं । बाणोंकी न तो किसीके साथ झुटता थी और न उन्हें  
कुछ फल ही मिलता था तथापि वे झुञ्झोंका घात कर रहे थे ॥ ५८९-५९१ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि दूसरोंकी  
प्रेरणसे काम करनेवाले तीक्ष्ण पुरुषोंकी ऐसी ही गति होती है । जिनकी परस्पर एक दूसरेसे झुटता है ऐसे अनेक  
पापी विद्याधर पक्षियोंके समान अपने प्राणोंको वृणके समान मानकर परस्पर एक दूसरे विद्याधरोंको मार रहे थे ।  
बहुतसे धनुष धारण करनेवाले लोग निशानेपर लगाये हुए तथा जिनपर अपनी दृष्टि लगी हुई है ऐसे प्राणोंको नाश  
करनेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे पर्वतोंके समान बहुतसे हाथियोंको गिरा रहे थे । कितने ही लोगोंने अपने एकही, मर्म  
मेदी बाणसे हाथीको मार गिराया था सो ठीक ही है क्योंकि इसीलिये जीतनेकी इच्छा करनेवाले लोग दूसरे मर्मके  
जानकारोंको स्वीकार करते हैं । कोई योधा चोटसे मूर्छित होकर खूनसे तरवतर हो गया था ॥ ५८९-५९५ ॥  
तथा आए हुए गीध पक्षियोंकी सासोंकी वायुसे सचेत होकर फिर चहुँतोंको मारने लगा था । अन्य किसी योधा

शेषबोधविश्वसकारणे ॥ ५७९ ॥ महाभये वा संभ्राते रणविघ्नविचारिणि ! पुरानजितपुण्ये वा समस्तनयनाप्रिये ॥ ५८० ॥ रजस्यैव नमोभागलंपित्याहिः  
तर्हसि । मूर्च्छितं गमंगं कुब्जलिखितं चातिशय्य तत् ॥ ५८१ ॥ बलं कललं किंचिद्विचेष्टप्रभवतदा । विष्वस्तैर्वैरभूरालक्षितसोभोपमे शनैः ॥ ५८२ ॥  
दृष्टौ तस्मिन् रण क्षोभे प्रस्राते सति सकुधः । प्रस्पष्टदृष्टिर्बचारा सेनानायकचोदिताः ॥ ५८३ ॥ गतिप्रपातसंशुद्धा नवाब्ध्या वा धनुर्वराः । शरदृष्टि विमुं-  
चतो हृदयानि बिरोचिनां ॥ ५८४ ॥ कुर्वति स्मापरागाणि सद्भटानां रणागणे । युध्यतेसाहवोस्ताहातोपि तैरेव चोदिताः ॥ ५८५ ॥ द्विषतो वा न सत्वा-  
भिष्यकिः स्वास्तुहृद सतां । मया मञ्जीवितं दातुं शृण्वन्मीवितमाददे ॥ ५८६ ॥ तस्य कालेयमित्येको व्यतरत्तदण रणे । मृत्युकृत्यं यशः शूरगतिश्चात्र त्रयं फलं ॥ ५८७ ॥

युक्त होनेसे अर्थात् समयपर फहराई जानेसे मुनियोंके मार्गमें चल रही सी जान पड़ती थी ॥ ५७८ ॥ उससमय धूलि  
उड़कर चारों ओर फैल गई थी और वह ऐसी जान पड़ती थी मानों सेनाके चोझसे खिन्न होकर पृथ्वी सांस ही ले  
रही हो अथवा पूर्णज्ञानको नाश करनेका कारण ऐसा मिथ्याज्ञान ही फैल गया हो अथवा उस युद्धमें विघ्न करने-  
वाला कोई बड़ा भारी भय ही आ गया हो अथवा जिसने पहिले जन्ममें पुण्य संपादन नहीं किया है वह जिसप्रकार  
सबके नेत्रोंको बुरा लगता है उसीप्रकार सबके नेत्रोंको बुरी लग रही हो इसप्रकार वेगरहित अर्थात् स्थिर रहनेवाली  
धूलि आकाशमें चारों ओर फैल गई तब सब सेना मूर्छित हुईके समान अथवा गर्भमें रहनेवालेके समान वा दीवालपर  
लिखे हुए चित्रके समान थोड़ी देर तक चेष्टा रहित हो गई और उसका सब कलकल शब्द शांत हो गया । जिस-  
प्रकार शत्रुराजाको नष्टकर चिचका कुछ संचार होने लगा अर्थात् कुछ दिखाई देने लगा तब सेनापति लोग युद्ध करनेकेलिये  
शांत हो गई और दृष्टिका कुछ संचार होने लगा अर्थात् कुछ दिखाई देने लगा तब सेनापति लोग युद्ध करनेकेलिये  
प्रेरणा करने लगे । आज्ञा पाते ही गमन करनेसे शुद्ध हुए नये वादलोंके समान धनुष धारण करनेवाले लोग वाणों-  
की वर्षा करने लगे तथा उसी युद्धके मैदानमें शत्रुओंके अच्छे अच्छे योधाश्रोंके हृदयोंको क्रोध रहित करने लगे  
अथवा उनके हृदयोंको खूनसे तरावर करने लगे । उन सेनापतियोंके द्वारा प्रेरणा किये हुए वे योधा युद्धके उत्साहसे  
खुब ही शुद्ध कर रहे थे, सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंसे मित्रोंका बल प्रगट होता है परंतु सज्जनोंका बल प्रगट  
नहीं होता । मैंने अपना जीवन देनेके लिये महाराजसे बहुत कुछ जीविका पाई है ॥ ५७९-५८६ ॥ अब यह उसके  
लोटा देनेका वा जीवन देनेका समय है यही समझकर कोई योधा उम युद्धमें अपना ऋण चुका रहा था युद्ध करनेमें एक तो सेवक-  
का कर्तव्य पूरा होता है दूसरे यशकी प्राप्ति होती है और तीसरे शरवीरोंकी गति मिलती है ये तीन फल मिलते हैं ॥ ५८७ ॥



रिण ॥ ५६९ ॥ पश्चात्प्रसरिताग्रागुली विलम्ब्य स्वपेचका । अमोहद्वारावोद्यद्रफुककरोमिनः ॥ ५७० ॥ परप्रणेयवृत्तिहृदसंक्रान्तुविरागिन । ह्ये-  
वोत्पापयतोलीन् कर्णालै कदस्थितान् ॥ ५७१ ॥ यवलाका इवामोदाः समुद्यदुधवलच्चर्च । नेचित्परमदामोदमाघ्रायामोदवर्त्मनि ॥ ५७२ ॥ कौ-  
प्रविकसलुत्करैस्तेत्रैर्दधुं समुधताः । निशितोद्विड्कुशापातदलत्रियेयाणवारिता ॥ ५७३ ॥ मुहुर्विधूतमूर्धानः करेणुणसन्निधौ । प्रशातीभूतसुरभा महामात्रा-  
द्यधिष्ठाता ॥ ५७४ ॥ मातगास्तुग्देहत्वादाकामत इवाखिल । सर्वतो निर्ययुर्वैजैगमा धरणीधराः ॥ ५७५ ॥ केतवद्यानुकुललेरिता विद्विष प्रति ।  
चेछुर्द्वान् परिलज्य पुरो योद्धुमिवोयताः ॥ ५७६ ॥ नमनः शुद्धरुस्य मलं जलधराकृति । अथवापनयंतो वा सच्छादितरवित्पियः ॥ ५७७ ॥  
धृतदण्डयवृत्तिवाद् वयोवीतानुकारिणः । काले विमुक्तिमत्वाच्च मुनिमार्गानुसारिण ॥ ५७८ ॥ वलवष्टभखित्रावनिमेति श्रुतितसन्निभ । सिष्याब्रान इवा-  
किंवा जायगा क्यौंकि उनके दो दो चक्र होते हैं इसीतरह पर्वतके समान अगिले शरीरसे जो बहुत स्थूल हो रहे हैं ॥  
५६९-६९ पीछेकी ओर फैली हुई पृष्ठसे जिनकी पूंछका नीचला भाग कुछ खुल रहा है, कमलके ( कमलनालके )  
समान जिनकी सूंड है खिलते हुए लाल कमलके समान जिनका मुह है, दूसरोंपर प्रेम करनेका अभ्यास होनेसे जो  
बच्चोंके समान जान पड़ते हैं जो क्रोधमे ही मानों गंडस्थलपर बैठे हुए भ्रमरोंको अपने कानरूपी पखोंसे उड़ा रहे हैं,  
उड़ती हुई मफेद घ्वजाओंसे जो वगलाओंकी पंक्तियों सहित काले बादलोंके समान जान पड़ते हैं ऐसे कितने ही  
हाथी दूसरे हाथियोंके मदकी सुगंध सूचकर आकाशमें खिले हुए कमलके समान अपनी सूंडसे युद्ध करनेके लिये  
तैयार हुए थे । जिनकी नोक बहुत पैनी है ऐसे अंकुशोंकी चोटसे घायल होकर वे हाथी चलनेसे रोक जा रहे थे ॥  
५७०-५७३ ॥ और हथिनियोंके समुदायमें वे बार बार अपना मस्तक हिला रहे थे उनके सब आरंभ ज्ञात हो गये  
थे, मुख्य मुख्य सहायक राजा लोग उनपर बैठे हुए थे और स्थूल शरीर होनेसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों सब  
संसारपर ही आक्रमण करना चाहते हों इसप्रकारके वे ऊंचे हाथी चलते हुए पर्वतोंके समान चारों ओरसे निकलकर  
चल रहे थे ॥ ५७४-५७५ ॥ उससमय अनुकूल ( पीछेकी ) वायु होनेसे ध्वजाएं सब उस वायुसे उड़कर शत्रुओंकी  
ओर ( आगेकी ओर ) जा रही थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानों अपने दंडोंको छोड़कर युद्ध करनेके लिये सा-  
मने जानेको तैयार ही हुई हों ॥ ५७६ ॥ अथवा निर्मल आकाशमें जो बादलोंका मेल छाया हुआ है उसे दूर करने  
केलिये ही उड़ रही हों अथवा आच्छादित हुई फैली हुई सूर्यकी कान्तिको ही दूर करनेकेलिये उड़ रही हों ॥ ५७७ ॥  
अथवा वे ध्वजाएं दंड धारण कर रही थीं इसलिये घुबोंका अनुकरण कर रही थीं जान पड़ती थीं अथवा समयपर-

इव संप्राप्ता मधुरैः किंकिणीरवैः । विजयं वा स्वसैन्यस्य बोधयंतो निरतर ॥ ५६० ॥ सपक्षा इव संपन्नकटा गगनांतर । त्रिलंघयिष्यवो लोला जलफेन-  
प्रसूनकै ॥ ५६१ ॥ संपादनदृष्टार्थमर्चयंतो धरामिव । हया यवनकमीरबालीकासिद्धनाः ॥ ५६२ ॥ स्फुरदुखातलङ्गाश्विजलसत्साद्यधिष्ठिता । मह-  
सैन्यान्विधसंभूततरंगाभासिनिर्गता ॥ ५६३ ॥ द्वियो मीषयितुं वोचद्वैषाघोषैर्विभूषणैः । स्वातुङ्गलानिला शङ्खमांडा ओहंकेतवः ॥ ५६४ ॥ संप्रामाभोलिधेः  
पोताः प्रचेलुः प्रुयवो रथाः । नक्रैर्गैकेन चैवक्री विक्रमी नत्स्योद्वियं ॥ ५६५ ॥ मर्त्तवैति वा हुतं पेटुर्दिक्चक्राक्रमिणो रथाः । नायकाधिष्ठिता शङ्खैः संपूर्णा-  
स्तूर्णवाजिन ॥ ५६६ ॥ समद्धाः सतु नो युद्धे बद्धकक्षा कथं रथाः । धावतु पत्तो वाहा गजाश्चेभि किमातुरैः ॥ ५६७ ॥ जयोन्माश्विति वा मंदं  
सभगाः स्पृहना ययु । सन्मार्गगमिमि शङ्खधारिभिश्चक्रवर्तिभि ॥ ५६८ ॥ रथार्दिक्चक्रमाक्रम्य तैर्द्विकं किमुच्यते । महीधरतिर्भः पूर्वकायैरेदप्रया-

हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५९-६० ॥ पक्षोंके समान जो वे घोड़े क्वच पहिने हुए थे उनसे ऐसे ऐसे चंचल जान पड़ते थे मानों आकाशको उल्लंघन करना ही चाहते हों, अपने फेन रूपी फूलोंसे अपने पररूपी नटके नृत्य करने के लिये पृथ्वीका पूजन करते हुए के ही समान मालूम हो रहे थे । वे घोड़े अरब कदमीर और बाल्हीक देशोंमें उत्पन्न हुए थे, उनके सवारोंके हाथमें दंड़ीर्पमान और ऊंचेको उठी हुई तलवारोंकी किरणें सुशोभित हो रही थीं, महासेना रूपी महासागरमें उत्पन्न हुई लहरोंके समान वे घोड़े चल रहे थे और जोर जोरसे हीमनेके शब्दरूपी आश्रुओंसे शत्रुओंको भय उत्पन्न कर रहे थे । इनके सिवाय वायु जिनके अनुकूल चल रही है जिनमें शस्त्ररूपी वर्तन भरे हुए हैं ऊंचे ऊंचे ढंडोंमें ध्वजाएँ फहरा रही हैं और जो संग्राम रूपी महासागरके जहाजसे जान पड़ते हैं ऐसे बड़े बड़े रथ भी बहायर चल रहे थे चक्रवर्ती रावण यदि एक ही चक्रसे पराक्रमी गिना जाता है तो हम लोगोंके पाम ऐसे दो चक्र ( पहिये ) हैं यही समझकर मानों सब दिशाओंमें आक्रमण करनेवाले रथ बहुत शीघ्र आकर संग्राममें पड़ रहे थे अर्थात् चारों ओरसे आ रहे थे । जिनके स्वामी भीतर बैठे हुए हैं जो शस्त्रोंसे भर रहे हैं तेज चलनेवाले घोड़े जिनमें लग रहे हैं और युद्धके लिये जो कमर कसकर तैयार हैं ऐसे हमारे रथ किस तरह तैयार हो रहे हैं । वे सोच रहे थे कि पैदल चलनेवाली सेना चाहे आगे निकल जाओ और घोड़ा हाथी भी चाहे आगे भाग जाओ परंतु इन जलदवाजोंसे क्या काम निगलता है जीत तो हमसे ही होगी यही सोचते हुए मानों वोझसे भरे हुए वे धीरे धीरे जा रहे थे । सन्मार्गपर चलने वाले, शस्त्रोंको धारण करने वाले, चक्रवर्तीसे यह समस्त दिक्चक्र वा दिशाओंका समूह आक्रमण किया जाता है, फिर भला रथोंसे तो कहना ही क्या है अर्थात् रथोंसे तो अवश्य ही सब दिशाओंका आक्रमण

भवेत्प्रकृतिविभ्रमः ॥ ४३० ॥ इति गर्जन्समाक्रान्तनुगमातगसिंहवत् । रविकीर्तिं स्वसेनान्यं हरिणध्वजमादिशत् ॥ ४३१ ॥ युद्धायास्फाल्यता मेरी शत्रु-  
पक्षक्षयवन्दा । इत्यादिष्टस्तदैवासा तथा कृत्वाखिलं बल ॥ ४३२ ॥ कालातै कालदूतो वीं सहसैकीचकार तत् । अय निर्गत्य लंकाया विभक्तजिघा-  
षन् ॥ ४३३ ॥ सुकुमेन निकुमेन कुभकर्णेन चार्पर । सहजैरिदजिन्मुख्येनग्रास्येनैवकीर्तिना ॥ ४३४ ॥ इन्द्रवर्मसिंघानेन तनुजेरपरैरपि । महासुखाति-  
कायाह्यदुर्मुखाख्यैर्महाबलै ॥ ४३५ ॥ खरदूषणधूम्राह्यप्रमुखैश्च खगेभ्यै । इव क्रूरप्रहर्षास्वाग्निदापः परिवारितः ॥ ४३६ ॥ त्रिजगद्भूषसनालोल-  
काललीलां विडम्बयत् । न तौ मम पुरः स्थातु समर्थौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४३७ ॥ तिष्ठतः शुश्रोगोमायू किं पुन संहतौ हरेः । अरावणः भवेद्युजगदेतत्स-  
त्वोत्सवोः ॥ ४३८ ॥ सहावश्यमह ताभ्या पालयामि महीं न हि । इत्याद्य तर्कितयतिनिजागमलालपन् ॥ ४३९ ॥ कालमेघमहागघगजरूपमधि-

तम वह विचार करने लगा कि समयका विपरीतपना देखो हरिणों ने आकर सिंहको घेर लिखा है । अथवा जिनकी मृत्यु समीप है उनको स्वभावमें भी भ्रम हो जाता है ॥ ५३० ॥ जियप्रकार चडे भारी हाथीके आक्रमण करने पर भिंह गर्जना करता है उसीप्रकार उसने गर्जनाकी और हरिणोंकी ध्वजांको धारण करनेवाले रविकीर्ति नामके अपने सेनापतिको आज्ञा दी ॥ ५३१ ॥ कि युद्धके लिये शत्रुओंके पक्षके नाशको सूचित करनेवाली मेरी (नगाडा) जल्दी बजाओ । रावणकी आज्ञानुसार सेनापति ने उसीसमय युद्धके नगाडे बजाये और प्रलयकालके अंतमें कालके दूतोंके समान अपनी सब सेना उसने एक जगह इकट्ठी की । तदनंतर अपनी सेनाका अलग अलग विभागकर वह रावण लंकासे निकला ॥ ५३२-५३३ ॥ उसके साथ साथ सुकुभं निकुभं कुंभकर्ण तथा और भी सब माई ये सबसे मुख्य इन्द्रजीत, इंद्रकीर्ति, इंद्रवर्मा, आदि सब पुत्र थे महाबल, अतिकाय, दुर्मुख, महाबल, खरदूषण और घूम आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्याधर थे । इसतरह क्रूर ग्रहोंसे घिरे हुए जेट महीनेके सूर्यके समान वह रावण निकला ॥ ५३४-५३६ ॥ उससमय वह तीनों जगतको ग्रासकरनेके लोलुपी ऐसे काल की लीलाको भी तिरस्कार कर रहा था तथा तर्क वितर्क कर रहा था कि राम लक्ष्मण मेरे सामने कमी नहीं उठर सकते । क्या सिंहके सामने खरगोश और गीदड़ ठहर सकते हैं । आज उनके जीते जी यह संसार विना रावणके भले ही हो जाय परंतु उनके साथ साथ मैं पृथ्वीका पालन कमी नहीं कर सकता इसतरह अपने ही अमगलका तर्क वितर्क करता हुआ रावण आया ॥ ५३७-५३९ ॥ उससमय रावण कालके मेघके समान महागंध नामके हाथीके स्कंधपर बैठा था, प्रतिकूल चलती हुई वायुसे पीछेकी ओर उडती हुई राक्षसके चिन्ह वाली ध्वजाओंसे सुशोभित हो रहा था, उसके आगे आगे सूर्यकी कांतिको भी तिरस्कार करनेवाला चक्र और छत्र

संसाधन स्थित । राक्षसादिमहाविद्या सिद्धादुपपत्तिभवात् ॥ ५१९ ॥ तद्विघ्नपूर्वक लक्ष्मणसम्यक् निवेशनं । प्रयोजनमिति श्रद्धयत सीतापति प्रति ॥ ५२० ॥ नायकान्या तत् सुग्रीवाजुमतौ स्वसाधिता । द्रुवा गरुडसिंहदिवाद्या बधमोचनी ॥ ५२१ ॥ हननावरणी विद्याशक्त्यस्य पृथक् पृथक् । प्रसिद्धिवाविकृतविमानेन महाबल ॥ ५२२ ॥ लकापुरवर्हिर्भगे तापवेद्ययत स्म तौ । नभश्चरकुमारेषु तदारामाश्रया गिरि ॥ ५२३ ॥ संप्राप्य युष्मन्मानेषु रावणस्याग्रसूनुना । तंयुग्मद्विजिता यूयं युष्मच्चमिति सकुवा ॥ ५२४ ॥ प्रेषिता खवराधीशाः प्राच्याः सर्वोद्य देवता । दम्पतं कालमस्माभिर्भवत्युप्यवलोदयात् ॥ ५२५ ॥ स्वयाम्बिलजित कार्यं साधितं पुण्यसंश्रये । समर्थो नेत्यसायुक्तो व्यक्तं तामिदधाननः ॥ ५२६ ॥ भवतीभिर्वराक्षीभिर्यत किं मय साध्यते । इन्मयं पौरुषैव वृथुगान् सहलेचरान् ॥ ५२७ ॥ सहायैः साधितं कार्यं लज्जायै ननु मानिना । इति क्रुद्धः पुरीमागार्तदंशो सहैद्विजित ॥ ५२८ ॥ दुष्टेष्टस्याप्तपुण्यस्य भूत भावि च नदयति । परिवारमुखाद् आत्मा परैर्लोकपगोचन ॥ ५२९ ॥ हरिगैहरीराष्ट्रदः पश्य कालविपर्ययं । अथवासाभसृत्युना

५१९ ॥ हमलिये इसममय हम लोगोंका काम है कि उसमें विघ्न करें लंकाको घेर लें और उसमें घुम जाय । इसतरह विभीषणके कहे हुएको रामचंद्रने भी मान लिया ॥ ५२० ॥ तदनंतर सुग्रीव और हनुमानने अपनी सिद्धकी हुई गरुडवाहिनी सिंह वाहिनी, बंधमोचनी, और हननावरणी ये चार विद्याएं अलग अलग रामचंद्र तथा लक्ष्मण को दीं । इसके बाद दोनों माइयोंने प्रवृत्ति विद्यासे अनेक विमान बनाकर अपनी सब सेना लंका नगरके बाहर मेढानमें जा ठहराई । जब इधरके सब विद्यावर कुमार रामचंद्रकी आज्ञा पाकर पहाडपर जाकर युद्ध करने लगे तब रावणके बड़े पुत्र इंद्रजीतने क्रोधित होकर सब विद्याधर और पहिलेके सब देवताओंको मेजा और कहा कि तुम सब लोग मिलकर उनके साथ युद्ध करो । तब पहिलेके सिद्ध किये हुए अथवा वधमें हुए देवता कहने लगे कि आपके बलवान पुण्यकर्मके उदयसे हमने इतने दिनतक तो आपकी इच्छानुसार सब कार्य सिद्ध किये परंतु अब आपका पुण्य कर्म क्षय हो गया है इसलिये हम कुछ नहीं कर सकते इसतरह उन देवताओंने रावणसे स्पष्ट कह सुनाया ॥ ५२१-५२६ ॥ यह सुनकर रावण कहने लगा कि तुम नीच देवता भले ही चले जाओ तुमसे मेरा क्या काम निकलता है मैं अपने पुरुषार्थसे ही विद्याधरोंके साथ साथ सब मनुष्यरूपी हरिणोंको मार डालूंगा ॥ ५२७ ॥ अभियानी लोगोंके लिये दूसरेकी सहायतासे कार्य सिद्ध करना लज्जाकी बात है । इसतरह क्रोधित होकर वह रावण उसीसमय इंद्रजीतके साथ नगरमें आया । देखो दुश्चरित्र करनेवाले यदि पुण्यवान भी हों तो भी उनका पहिलेका और होनहार सब नष्ट हो जाता है । परिवारके लोगोंके मुखसे उसने शत्रुके द्वारा लंकाके गिर जानेकी बात सुनी ॥ ५२८-५२९ ॥

न्तु ॥ ५०७ ॥ सहायाद्यादिसत्तस्य विद्येशान् शौर्यशालिनः । लब्धाहः सोपि सतुष्य सद्यो वानरविद्यया ॥ ५०८ ॥ प्रादुर्भाषितदुःश्रेयनानवानर-  
सेनया । इत वारामिसुल्लंघ्य विक्रमाद्रनपालकान् ॥ ५०९ ॥ आक्रम्य निग्रह कृत्वा वनभगं व्यघ्राकुया । हृद्धीकृतकंगधोरं क्रोशतो बनपालका ॥ ५१० ॥  
प्राविवागरीं घोरों श्रावयंतोऽश्रुतश्रुतिं । तदा राक्षसविद्योयध्वजमालोपलक्षिताः ॥ ५११ ॥ अभियाता पुरारक्षा योद्धुं पवननदन । अयानिलमुतादिथा  
वानरानीकनायका ॥ ५१२ ॥ तानभजन समुद्वृण्व प्रहृत्य वनपादपैः । तत सुरुन्महाज्वालविद्ययासौ वहिःपुरं ॥ ५१३ ॥ निरधाक्षीदधिधिक्षिप्य रूक्षरक्षो  
बल बली । एव रावणदुर्वप्रतापप्रोथतड्डम ॥ ५१४ ॥ ग्रोन्यूव्यानरानीकनायको राममायैषा । सत्राहा तत्र तु स्थित्वा बल सग्रामसम्मुख ॥ ५१५ ॥  
नागतो रावण केन हेतुनेति विभीषण । अप्राक्षीदय सोप्याद्यल्लकार्या नास्ति रावणः ॥ ५१६ ॥ चालिलोकातरापत्तिं सुमीवाणुमतोरपि । विद्याबलाबले-  
पित्वमवगम्य स्वयं च सः ॥ ५१७ ॥ निवेदय निजरक्षाया सुनिर्मिदजिदाह्वयं । अद्योपवासमासाद्य सम्यग्नियमितेन्दिय ॥ ५१८ ॥ आदित्यपादशैलेर्विद्याः

मकी विद्यासे जो देखी न जा मके ऐसी बदरोंकी सेनाके रूपमें वनगया । उसने शीघ्रही समुद्रको उदलघन किया और  
अपने पराक्रमसे वनकी रक्षा करनेवालोंपर आक्रमणकर उनका निग्रह किया तथा क्रोधसे रावणके सब वनका नाशकर  
ढाला । तब वनके रक्षक लोग अपनी सुनाओंको ऊंचीकर तथा जोर जोरसे चिछाते हुए घोर ( लोगोंसे भरी हुई )  
नगरीमें गये और जो बात कमी नहीं सुनी थी उसे सुनाने लगे । तब राक्षस विद्यासे जिनकी ध्वजाओंके समूह फह-  
रा रहे हैं ऐसे नगरके रक्षक लोग हनुमानसे लड़नेके लिये उसके सामने आये । यह देखकर हनुमानने भी बदरोंकी  
सेनाके सेनापतियोंको आज्ञा दी और तदनुसार वे सेनापति लोग वनके दृक्षोंको उखाडकर उन्हींसे उनलोगोंको ताड-  
ना करते हुए मारने लगे । तदनंतर दैदीप्यमान महाज्वाल नामकी विद्यासे बलवान हनुमानने नगरके बाहर राक्षसों  
की रूखी सेनाको नायक बह हनुमान रामचद्रके समीप आगया । तदनंतर सब सेनाको सजाकर युद्ध करनेके लिये  
सबलोग वहीं ठहर गये ॥ ५०६-५१५ ॥ इसके बाद रामचंद्रने विभीषणसे पूछा कि रावण युद्ध करनेके लिये अभी नहीं  
आया इसका क्या कारण है ? इसके उत्तरमें विभीषणने कहा कि रावण लंकारमें नहीं है ॥ ५१६ ॥ चालिका  
परलोक गमन तथा सुग्रीव और हनुमानके विद्या बलका अभिमान सुनकर उसने अपनी रक्षाके लिये इंद्रजीत नामके  
पुत्रको नियुक्त किया है तथा आठ दिनका उपवास धारणकर सब इंद्रियोंको वध कर आदित्यपाद नामके पर्वतपर  
विद्याओंको सिद्ध करता हुआ बैठा है राक्षसादि महाविद्याएं जब सिद्ध हो जायंगी तब वह वहांसे उठेगा ॥ ५१७-

शोबदय भविष्यति । सङ्गनेन विनाशो मा कृष्यत्ययशस्कर ॥ ४९८ ॥ निर्वासितोहं निर्भर्त्त्य देशाद्विमुदाहरन् । इष्ट एव किलारण्ये कृष्टो देव इति श्रुतिः ॥ ४९९ ॥ पुण्यन्ममाद्य संपन्ना यामि रामकमन्वुजं । इत्यतर्गतमालोच्य विनिधित्य विभीषणः ॥ ५०० ॥ जलधेजलमुल्लंघ्य सौजन्यमिव सत्वरं । महानदीप्रवाहो वा वारिधिं राममासदत् ॥ ५०१ ॥ लक्ष्मणप्रमुखं न्मुह्यान्वेलालीलावहान् बहून् । प्रत्युद्गम्य विभ्रम्य तमानीय परीक्षया ॥ ५०२ ॥ सोऽपि शतामुभावत्वादेहीभावसुयागमत् । ततः कतिपयैरेव प्रयार्णगतवद्बलं ॥ ५०३ ॥ जलधेस्तटमाश्रित्य सनिविष्ट समततः । तदा तत्राणुमानित्य राम विज्ञापयन्मय ॥ ५०४ ॥ देवादेशोस्ति चेद्वत्वा लंका शौर्योज्जिहीर्षया । ब्रह्मर्मेन ते शत्रोर्भीनमग करोम्यह ॥ ५०५ ॥ लंकादाहेन दाह च देहस्य हि तत्कारिणः । तथा सति स मानित्वादसौ चेदागमिष्यति ॥ ५०६ ॥ स्थानभ्रंशं त्पुष्टोच्छेद्यो नागच्छेत्तेजसः क्षतिः । इति श्रुत्वा स्य विज्ञप्तिं तदस्तिवत्त्वद-

नाश होगा और अपयश करनेवाला यह नाश मुझे दूषित करेगा ॥ ४९८ ॥ इसके सिवाय इसने मेरा तिरस्कारकर मुझे देशसे निकाल दिया है सो तो मेरे लिये हित ही किया है क्योंकि यह मुझे इष्ट ही है “बादल जंगलमें ही जाकर वरसे” यह कहावत आज मुझे पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई है इसलिये आज मैं रामचंद्रके चरणकमलोंके समीप जाता हूँ इसप्रकार विभीषणने चित्तमें विचार किया और ऐसा ही निश्चय कर लिया ॥ ४९९-५०० ॥ उसने सुजनताके समान बहूत शीघ्र समुद्रका जल उल्लंघन किया और महानदीके प्रवाहके समान वह रामचंद्ररूपी समुद्रके समीप जा पहुंचा ॥ ५०१ ॥ तरंगोंकी लीलाको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदि अनेक बड़े बड़े योद्धा उसके आते ही खड़े होगये सब उससे मिले, आदरसे ले आए और परीक्षाकर उसे अपनेमें मिला लिया वह विभीषण भी सब बातोंका जानकार था इसलिये वह परीक्षामें पास होकर शीघ्र ही उनमें मिल गया । तदनंतर वह चलती हुई सेना कितने ही मुकामकर समुद्रके किनारे जा पहुंची और वहां उसने चारों ओर अपने डेरे डाल दिये । उसमय वहगंगर हनुमानने आकर रामचंद्रसे निवेदन किया कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो हमलोग अपनी शूरवीरताको प्रगट करनेकी इच्छासे लंकामें जायं और आपके शत्रु रावणके बनका नाश कर उसका मानभंग करें ॥ ५०२-५०५ ॥ इसके सिवाय लंकाको जलाकर अहित करनेवाले रावणका शरीर जलावें । ऐसा करनेसे अभिमानी होनेसे वह रावण यहांही आवेगा तथा यहां आनेपर स्थान भ्रष्ट होनेसे वह सुखपूर्वक नाश किया जा सकेगा । यदि वह यहां न आ सकेगा तो उसके प्रतापमें हानि पहुंचेगी । हनुमानका यह निवेदन सुनकर रामचंद्रने उसे जानेकी आज्ञा दी और बड़े बड़े शूरवीर विद्याधरोंको साथ देकर उसकी सहायता की । रामचंद्रकी आज्ञा पाकर और संतुष्ट होकर वह हनुमान् शीघ्रही वानर ना-

पोतभूत भवान्यि किं तत्तरीतुं विनाशयेः । प्राणैरपि यशः ज्ञेयं मता पाणैश्च तेन च ॥ ४८७ ॥ पाप कृपातस्मापि श्रीणास्त्वोऽव्यशश्चिह्नं । कस्येय दु-  
हिना सीता किं तत्र ज्ञायते त्वया ॥ ४८८ ॥ सुहृन्ममव्यविलोप्य कामव्यासुधमननमः । अलौकिक्यमनासेषु प्राप्तेषु परितोषण ॥ ४८९ ॥ भुजमानेषु वरस्य  
विषयेषु न वेदिसि किं । अयोग्यगत्यासनाथाया नाशहतौ वृथा रतिं ॥ ४९० ॥ माकृथाः पापदुःखाण्डेभ्यस्त्वरयोमिति । आदिशः कीदृशः सोपि स्मार्थो वा  
भाविवेदिता ॥ ४९१ ॥ चक्रस्य परियाक च प्रादुर्भूत च भावय । बलनामष्टम राम लक्ष्मण चाद्वैचक्रिणां ॥ ४९२ ॥ आननति पुराणज्ञाः प्राज्ञ तन  
वित्तितय । यादृमार्पण्यतो दोपस्तादृगप्यतस्तथा ॥ ४९३ ॥ सीता नेति विनिधित्व ता रामाय मर्पय । इति लक्ष्मीलतागृदिगाधनं धर्मशर्मद ॥ ४९४ ॥  
बचोऽनैचद्विचार्थैर्बैयेश कर्तुं शशिप्रभ । भागा विभीषणार्थं भयभाषणं भीषणः ॥ ४९५ ॥ रुपितो रावणो दूतेनैकत्वमुपगम्य मे । परामव समासच्ये  
प्राग्मुम्हमजीजन ॥ ४९६ ॥ संप्रत्यपि दुरुक्तोह त्वया ग्रहजतावलात । अमथ्यो याहि मद्देशादित्यभापयत निन्दुरे ॥ ४९७ ॥ मोपि दुश्चरितस्यास्य ना-

॥ ४८५-४८८ ॥ अथवा जिनका चित्त कामसे मोहित हो जाता है वे अपनी धारणा और प्रत्यभिज्ञानको अथवा  
अच्छे ज्ञानको भी भूल जाते हैं । क्या आप इनविषयोंकी दृष्टाको नहीं जानते हैं जबतक ये प्राप्त नहीं होते तबतक  
तो इनमें बड़ी भारी उत्सुकता बनी रहती है, प्राप्त होनेपर इनमें संतोष रहता है और इनका उपभोग करनेपर इनमें  
नीरसता आ जाती है इसलिये अयोग्य, अनाथ, विनाशकी कारण तथा पाप और दुस्वोंका संचय करनेवाली परस्त्रीमें  
व्यर्थका प्रेम मतकर । आगामी कालमें होनेवाली बातोंके जानकार लोगोंकी क्या आज्ञा है उसे भी कुछ स्मरण कर-  
ना चाहिये ॥ ४८९-४९१ ॥ तथा चक्रसे उत्पन्न होनेवाले फलका भी विचार कीजिये । पुराणोंके ज्ञानकार रामचं-  
द्रको आठवां बलप्रद और लक्ष्मणको आठवां नारायण मानते हैं । हे विद्वान् आप इस बातका भी तो विचार कीजिये ।  
सीताको समर्पण न करनेमें जितना दोष है उतना दोष उसको समर्पण करनेमें नहीं है इसलिये इन सब बातोंका नि-  
श्चयकर सीता रामचंद्रको समर्पण कर दीजिये । इसप्रकार विभीषणने बहुत अच्छी तरह विचारकर यशको चद्रमाके  
समान निर्मल करनेवाले, लक्ष्मीलपी लताको बढ़ानेवाले तथा धर्म और कल्याणको देनेवाले वचन कहे । इमतगृहके  
बचन कहनेवाले विभीषणके लिये वह कठोर रावण क्रोधित होकर कठोर बचन कहने लगा कि पहिले तो तुने दूतके  
साथ मिलकर सभामें ही मेरा असह्य तिरस्कार किया था और अब भी तू मुझसे दुरे वचन कहता है तू मेरा भाई  
होनेसे मारने योग्य नहीं है इसलियं तू मेरे देशसे निकल जा ॥ ४९२-४९७ ॥ रावणकी यह बात सुनकर विभी-  
षण बिसमें विचार करने लगा कि यह दुश्चरित्री है इसलिये इसका नाश अवश्य होनेवाला है इसके साथ मेरा भी



४७८ ॥ परस्त्रीग्रहण शौर्यं त्वदुपपन्नं भवेद् युधि । मिथ्योत्तरेण किं मार्गविघ्नोऽन्तर्मागवर्तिनः ॥ ४७९ ॥ दुर्द्धरं तव दुर्बुद्धेर्लोकद्वयभयावह । विषयाननिषि-  
द्वांश्च परित्यक्तुं वयस्तव ॥ ४८० ॥ परमृशत्रु किं युक्त निषिद्धविषयैषणं । विद्धि वेद्याधरीं लक्ष्मीमिमां तव गुणप्रियां ॥ ४८१ ॥ अनप्यत सीतां त्वां  
त्यजत्यर्थव निर्गुण । अकार्यकारिणामत्र गणनीय किमग्रिम ॥ ४८२ ॥ स्व करोष्यभिलाषात्मकार्येण परयोषिति । प्रसिद्धलोसि पुण्यस्य दुर्वृत्त्या पापसचया-  
त् ॥ ४८३ ॥ ततो ननु गुण देव विना देवात्कुल श्रिय । परस्त्रीहरणं नाम पापं पापेषु दुस्तरं ॥ ४८४ ॥ विस्तरेण किमुक्तेन नेष्यते तत्समस्तम् ।  
आस्तां तावददो भावि शायः शीलालयश्रियाः ॥ ४८५ ॥ अलमामूलतो दगुं कुल कोषविधायिनां । नानिच्छन्तीं प्रतीच्छामीत्येकमेव तव व्रत ॥ ४८६ ॥

मुख्य हैं इसलिये परस्त्रीके समर्पण करनेको दोष बतलाते हैं ॥ ४७७-४७८ ॥ अब संसारमें आपके कहे अनुसार परस्त्रीको ग्रहण करना ही शूरावीरता गिनी जायगी ! आप अपनी दुर्बुद्धिसे जो यह मिथ्या उत्तर दे रहे हैं उससे दोनों लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाला और दुर्द्धर उन्मार्गकी प्रवृत्ति होगी और सुमार्गका नाश हो जायगा । जो विषय निषिद्ध नहीं है उनके भी त्याग करनेकी यह आपकी अवस्था है फिर भला आप विचार तो कीजिये अब इस अवस्थामें निषिद्ध विषयोंकी इच्छा करना क्या आपके योग्य है आप यही समझिये कि यह विद्याधरोंकी लक्ष्मी आपके गुणोंकी प्रिया है यदि आप रामचंद्रको सीता समर्पण न कर देंगे तो यह आपके गुणहीन समझकर आज ही छोड़ जायगी । परस्त्रीकी अभिलाषा करनेरूप जो बहुत बुरा कार्य है उससे आप अपनेको अकार्य करनेवालोंमें मुख्य गि-  
नने योग्य क्यों बना रहे हैं । इससमय आप दुराचरण करने और पापोंका संचय करनेसे पुण्यके प्रतिकूल हो रहे हैं ॥ ४७९-४८३ ॥ विना गुणोंके पुण्य नहीं होता और विना पुण्यके लक्ष्मी नहीं मिल सकती तथा परस्त्रीका हरण क-  
रना पापोंमें भी सबसे बड़ा पाप है ॥ ४८४ ॥ अधिक कहनेसे क्या लाभ है पाप तुझे सातवें नरकमें ले जायगा । इसलिये क्रोध करनेवालोंके कुलको समूल नाश करनेके लिये जबतक शीलकी भंडार स्वरूप सती सीता लक्ष्मीका होनहार शाय नहीं निकलता है तबतक अर्थात् उसके पहिले ही आप सीता रामचंद्रको समर्पणकर दीजिये । आपने जो “ जो स्त्री मुझे न चाहेगी उसे मैं भी कभी नहीं चाहूंगा ” यह जो आपने एक व्रत लिखा था जो कि संसार-  
रूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाजके समान है उसे क्यों आप नष्ट करते हैं । सज्जनोंको प्राण देकर भी यश ख-  
रीदना चाहिये परंतु आप मूर्ख हैं क्योंकि आप प्राण और यश दोनों देकर पाप तथा दूसरे कल्पकाल तक टिकने-  
वाला अपयश खरीद रहे हैं इसलिये आपके धिक्कार है क्या आप नहीं जानते हैं कि यह सीता किसकी पुत्री है ?

वधोपाख्यानमोक्षस्थाने कृतार्चन ॥ ४६८ ॥ त्रिभिर्नि साधयामास भटाश्रयतरक्षितः । सुग्रीवोपि महाविद्या पूजयामास सुव्रतः ॥ ४६९ ॥ सेपवासो निग्री-  
समोदाहृत्ये निदसिलतले । तथान्येपि स्वविद्याना खगा- पूजामकुर्वत ॥ ४७० ॥ एवं भूखेचराधीश बल चलितकेतन । रामलक्ष्मणसुग्रीवमरुतदननायक ॥  
४७१ ॥ करिद्रिमकराकीर्णं तुरगमतरंगक । प्रलयामोधिसकाशं लका प्रति चचाल तत् ॥ ४७२ ॥ लकापुरेप्यणुमतो विनिवृत्ता दशाननः । कुम्भकर्णोदिभि-  
र्नासदुग्धप्रवशस्य भास्वतः ॥ ४७३ ॥ कर्मदमुचितं व्यातपौरुषस्य तव प्रभो । वीरभ्रमेतदुच्छिष्टं तदस्मादनुरोधत ॥ ४७४ ॥ विस्तृत्य तामिति प्रोचोप्यासकस्त्वक्तु-  
मक्षयः । भूयस्त्वणमनुष्यस्य रामनाम्नो बल मिला ॥ ४७५ ॥ सीतानेतुमतोस्माकमुपर्यागच्छतीति वाक् । श्रूयतेय कथं सीतामोक्ष कुलकलकृत् ॥ ४७६ ॥ इत्याह्वय-  
त्तद्वचं सेतुमक्षमो रावणाजुज । सूर्यवंशस्य शौर्यं किं रामस्त्वणमनुष्यकः ॥ ४७७ ॥ न शृणोसि वचं पथ्यं वधूना मदनायक । परदारार्पणं दोषं वदत्त दोषविदावर ॥

नामकी विद्या सिद्धकी उससमय एक सौ आठ योद्धाओंने उसकी रक्षाकी थी । इसीतरह सुग्रीवने भी अनेक व्रत और उपवास धारणकर सम्मेद पर्वतपर सिद्धशिलाके ऊपर अनेक महा विद्याओंकी पूजाकी थी । इसीतरह और भी सब विद्याधरोंने अपनी अपनी विद्याओंकी पूजाकी थी ॥ ४६८-४७० ॥ इसप्रकार जिसमें ध्वजाएं फहरा रही हैं, रामचंद्र लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान आदि मुख्य योद्धा हैं वड़े वड़े हाथी ही जिसमें मगर मच्छ हैं और बांड़े ही बड़ी बड़ी तरंगे वा लहरें हैं ऐसी प्रलयकालके समुद्रके समान वह भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंकी सेना लंकाके लिये रवाना हुई ॥ ४७१-४७२ ॥

अथानंतर-जब हनुमान लका नगरसे वापिस लौट आया था तब कुम्भकर्ण आदि भाइयोंने रावणसे प्रार्थनाकी थी कि हे देव ! आप हमारे बड़े भारी उच्च वंशमें सूर्यके समान हैं और आपका पैरुप भी संसारमें प्रसिद्ध है इसलिये आपवो यह काम करना उचित नहीं है यह स्त्री सब उच्छिष्ट है इसलिये आप हम लोगोंके अनुगीध करनेसे इसे छोड़ दीजिये ” इसतरह सबने प्रार्थनाकी परंतु रावण सीतामें आसक्त था इसलिये उसे छोड़ नहीं सकता था अतएव वह कहने लगा कि रामचंद्र तूण मनुष्य हैं अर्थात् अत्यंत तुच्छ हैं अथवा न कुछके समान हैं उनकी सेना सीताको लेनेकेलिये यहां हमारे उपर आ रही है ऐसा सुन रहे हैं फिर भला आज सीताको कैसे छोड़ दें यह बात तो कुलको लेनेकेलिये यहां हमारे उपर आ रही है ऐसा सुन रहे हैं क्या आपने सूर्यवंशकी शरवीरता नहीं सका और कहने लगा कि आप रामचंद्रको तूण मनुष्यके समान मानते हैं क्या आपने सूर्यवंशकी शरवीरता नहीं सुनी है आप इससमय कामांध हो रहे हैं इसीलिये भाइयोंके हितरूप वचन नहीं सुनते आप दोपोंके जानकारोंमें भी

पुष्पं बचः । बारणाशा त्यजत्वस्ति चेदाद्या नास्ति वा रणं ॥ ४५७ ॥ यातु मत्पादसेवा स भयोमा यातु वारण । तदा तस्याशुभो वाणीं तद्विनाशविधा-  
 विनी ॥ ४५८ ॥ श्रत्वा इतोऽप्युपैष्यद्वलिनैर्बलिनैर्तकं । प्राक्षिक्त्येन वाली बः कुत्रियः शत्रुशयित ॥ ४५९ ॥ पारिपयिकबन्धार्गे दुर्गस्तस्मिन्निरोचिनि ।  
 इत्यब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवप्रमुखं वलं ॥ ४६० ॥ लक्ष्मणं नायकं कृत्वा प्राहिणोत्स्वखिरं वनं । गत्वा वैद्याधरं सैन्यं वालिनोऽप्यागत बल ॥ ४६१ ॥ जवानेव  
 वनं वज्रं प्रज्वळच्छरसतसि । स्वयं सर्वबलेनामा योद्धुं वाली तदागमत् ॥ ४६२ ॥ पुनस्तयोरभूद्युद्धं बल्योः काललीलयोः । प्रलयेवातकस्तत्र प्रायस्तुमि-  
 मुयेयिबान् ॥ ४६३ ॥ आकूर्णकृष्टनिर्गुप्तविघातसितपत्रिणा । लक्ष्मणेन तिरोप्राहि ताळ वा वालिनः फलं ॥ ४६४ ॥ तदा स्वस्थानमापन्नौ सुग्रीवानिल्लनं  
 दनौ । सद्य फलति संसेवा प्रायेण प्रयुमाश्रिता ॥ ४६५ ॥ तत् सर्वगमन् रामस्त्वामिनं सोऽप्यनीयत । स्वस्थानं सबलो भक्त्या सुग्रीवेण सहजुव ॥  
 ४६६ ॥ विभोर्नोहरोर्याने किंकिचे शरदागमे । बलं चतुर्दंशाक्षौहिणीप्रमं भूदुतामभूत् ॥ ४६७ ॥ लक्ष्मणश्च जगत्पादमिरो निरशनस्तदा । सप्तह बि-

वालिके विनाशको सूचित करनेवाली उसकी अशुभ वाणीको सुनकर वह दूत उसीसमय वालिको मारनेवाले रामचंद्र  
 के पास आया और कहने लगा कि आपके प्रतिकूल हो कर वालि आपका कुत्रिम शत्रु प्रगट हुआ है ॥ ४५७-४५९ ॥  
 मार्ग अत्यंत कठिन है उसमें अच्छा किला है उसमें शत्रु रहता है इसतरह दूतने कहा । यह सुनकर रामचंद्रने लक्ष्मण  
 को नायक बनाकर सुग्रीव आदिकी सब सेना खदिरके वनमें भेज दी । वज्रके समान जिसके सब शस्त्रोंके समूह दै-  
 दीप्यमान हो रहे हैं ऐसी उस विद्याधरोंकी सेनाने वनके समान वालिकी आई हुई मय सेना काट डाली तब वालि  
 स्वयं सब सेनाको लेकर युद्ध करनेके लिये आया ॥ ४६०-४६२ ॥ तदनंतर कालके समान लीला करनेवाले उन दोनों  
 बलवानोंका ( वालि और लक्ष्मणका ) युद्ध होने लगा और काल उस युद्धमें प्रायः प्रलयके समान वृष से बाण छोड़ा  
 ४६३ ॥ अंतमें जिसप्रकार ताल वृक्षका फल तोड़ लेते हैं उसीप्रकार लक्ष्मणने कानतक खेंचकर धनुषसे बाण छोड़ा  
 और उससे वालिका शिर काट डाला ॥ ४६४ ॥ उसीसमय सुग्रीव और हनुमानको अपना अपना स्थान मिल गया  
 सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके आश्रय रहकर उनकी सेवा करनेसे उसका फल बहुत शीघ्र मिल जाता है ॥ ४६५ ॥  
 तदनंतर सब लोग रामचंद्रके समीप आए सुग्रीव रामचंद्रको लक्ष्मण और सब सेनाके साथ बड़ी भक्तिसे अपने नग-  
 रमें लाया और किंकिंधा नगरके मनोहर नामके उद्यानमें सबको ठहरा दिया उससमय शरद ऋतु आगई थी और  
 रामचंद्रके साथ राजाओंकी चौदह अक्षौहिणी सेना होगई थी ॥ ४६६-४६७ ॥ “ जहांसे शिवघोष नामके सुनिराज  
 मोक्ष पधारे थे ऐसे जगत्पाद नामके पर्वत पर जाकर लक्ष्मणने सात दिनका उपवास धारणकर पूजाकी और प्रव्रप्ति

तरुवि दुष्कर ॥ ४३७ ॥ ततो हठात्तवायात किष्किधेशविनाशिन । प्राक् पश्चाच्छक्तिपगत्या सुखोच्छेद्यो दशाननः ॥ ४३८ ॥ इत्यब्रवीत्तदादाय दूत-  
माहूय भूपति । महाधेयाभिधानं मे प्रदायानेकपायिमा ॥ ४३९ ॥ सहान्तेनु मया लक्षा चर्च्य पश्चात्तत्तीप्सित । इत्युक्त्वामामुनात्सीयमपि दूत व्यसर्जयत् ४५०  
गत्वा तौ रामसेदशासुग्रीवस्राजन्मन । कोपमानयतः स्मासाविल्वोच-भटोद्धत ॥ ४५१ ॥ एव प्रार्थयमानो मा रामो रामापहारिण । निर्मूल्यानीय  
सीता किं यशो विष्णु विकीर्णवान् ॥ ४५२ ॥ दशास्ये साममामोक्त्या समीप्यो सामवायिके । पशुपक्तिर्मयीत्यस्य वीशोऽयं पश्य कीदृशो ॥ ४५३ ॥ इमा  
तद्वर्चदुर्भाषा ध्रुवा राघवसेविना । चौर्येण परदारणां नेतुर्गमार्गगमिनः ॥ ४५४ ॥ दोषद्वयानुरूप त्व दृढ इत्यसि चाचिरात् । किं तेन तव चेत्यय्यमि-  
च्छेन्नृद्वय दुर्मद ॥ ४५५ ॥ दत्त्वा गजं कुरूपस स्वाभिनो वृद्धियेक्यसि । अवश्यमचिरेणेति दूतेनोद्दीपितं क्रुधा ॥ ४५६ ॥ बाली कालानुकारी तं प्रत्याह

४४८ ॥ इसतरह अंगदके वचन सुनकर रामचंद्रने बालिके दूतको बुलाया और कहा कि आपके यहां जो महामेघ  
नामका उचम हाथी है उसे मुझे समर्पण करो और मेरे साथ लंकामें चलनेकेलिये तैयार हो पीछे आपके कामकी  
चर्चाकी जायगी इसतरह कहकर और उस दूतके साथ एक अपना दूत देकर उसे विदा किया ॥ ४४९-४५० ॥ वे  
दोनों ही दूत जाकर बालिके पास पहुंचे और उन्होंने रामचंद्रका संदेशा कहकर सुग्रीवके बड़े भाई बालिको बहुत ही  
क्रोधित किया तब वह मदसे उद्वत हुआ बालि कहने लगा कि ॥ ४५१ ॥ रामचंद्रने मुझसे इसतरह प्रार्थना की है  
ब्रह्मा देखता हू क्या इसतरह सीताको हरण करनेवाले गवणको नाशकर तथा सीताको लाकर रामचंद्र सब दिशा-  
ओंमें अपना यज्ञ फैला दंगे ? ॥ ४५२ ॥ अपनी इष्टसिद्धिके लिये गवणसे तो ऐसे सतताके बचन कहला भेजे हैं  
और उसके निकट संबंधी मुझसे ऐसे कठोर वचन कहला भेजे हैं इनकी बुद्धि और दूरवीरता कैसी है सो तो देखो ॥  
४५३ ॥ नीच अभिमानसे भरी हुई ऐसी कठोर भाषाका सुनकर रामचंद्रका दूत कहने लगा कि उन्मार्गपर  
चलनेवाले रावणने जो चेचरी करके परस्त्री हरणकी है सो इन दोनों अपराधोंके अनुसार उसे दंड मिलेगा और तू  
स्त्रीघाती देखेगा अथवा इससे आपसे क्या संबंध है यदि आप अपना हित चाहते हैं तो इस मिथ्या अभिमानको  
छोड़कर हाथी दे दीजिये और स्वामीकी सेवा कीजिये इसतरह करनेसे आप बहुत शीघ्र और अवश्य वृद्धिको प्राप्त  
होगे ॥ इसतरह कहकर दूतने उसे क्रोधसे और उद्दीपित किया ॥ ४५४-४५६ ॥ तब कालका अनुचर ( शीघ्र मरने  
वाला ) बालि उस दूतसे कठोर वचन कहने लगा कि यदि जीनेकी आशा है तो हाथीकी आशा छोड़ दो यदि जी-  
नेकी आशा नहीं है तो सामने युद्धमें आओ अथवा मेरे चरणोंकी सेवा करते हुए बनारसको लौट जाओ । इसतरह

णमुपागत ॥ ४३६ ॥ नत्वा कि बहुलोक्तेन सीता तेन न भाक्ष्यते । अतस्तदनु रूप वा कार्यं माभून्नीतकाः ॥ ४३७ ॥ शसति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञा  
 क्षिप्रकारिता । इत्याहादाय तत्रोक्तमिदं कुलकैः नरी ॥ ४३८ ॥ चतुरंगवलेनामा चित्रकूटवनान्तरे । कालमेव बल मत्वानैषीद्वर्षद्विमिवरः ॥ ४३९ ॥  
 तत्रत्यं वालिनो दूत समीक्ष्य श्रुतदत्त । प्रणम्योपायन दत्तेयव्रवीदविमोहित ॥ ४४० ॥ विक्षपयति मत्स्वामी वालीति बलवानलं । पूज्यपादो यदि  
 प्रेष्यं मामिच्छति महीपतिः ॥ ४४१ ॥ मा प्रतीच्छतु शृत्यत्व सुग्रीवानिलपुत्रयोः । तावद्विचित्रकारवायो वेति वैतत्यराक्रमं ॥ ४४२ ॥ तिष्ठत्वत्रैव  
 देवोहं गत्वा लकां दसाननं । मानभगे नियोज्यार्योमानयेऽथैव जानकीं ॥ ४४३ ॥ इत्याकीर्णतद्वाक्यः सोप्राक्षीकृत्प्रमणाप्रजः । साममेदविदो वाज्य  
 किंकिथेस किमुत्तरं ॥ ४४४ ॥ इति मंदिगण सर्वसम्मतः संस्तुतौ गद । शत्रुभिन्नुदासीन इति भूपास्यो मता ॥ ४४५ ॥ रावणस्तेषु नः शत्रु-  
 वाली मित्रस्य विद्विषः । कुर्मो यदि तत्कार्यं संवन्नीयात्स शत्रुणा ॥ ४४६ ॥ तथा चोपचयः शत्रोर्दुरुच्छेदो हि तेन सः । अथ वालिवचनं कुर्मः कर्म-  
 रामचन्द्र अपनी चारों तरहकी सेना लेकर चित्रकूट वनमें जा पहुंचे । तथा समयको ही बलवान मानकर उन्हेंने वर्षा-  
 ऋतु वहीं बिताई ॥ ४३७-४३९ ॥ जब रामचंद्र चित्रकूट वनमें निवास कर रहे थे उसीसमय राजा वालिका दूत राम-  
 चंद्रके समीप आया तथा दर्शनकर प्रणामकर भेट समर्पणकर सावधान होकर इसप्रकार कहने लगा कि हे देव मेरे  
 स्वामी बहुत बलवान राजा वालि आपसे इसप्रकार निवेदन करते हैं कि पूज्यपाद राजा रामचंद्र यदि सुझे दूत बनाना  
 चाहते हैं तो हुनुमान और सुग्रीवको सेवक न रखें क्योंकि ये दोनों ही बहुत थोड़ा काम करनेवाले हैं यदि आर्य  
 आप मेरा पराक्रम देखना चाहें तो हे देव आप यहां ही ठहरिये मैं लंकामें जाकर रावणका मानभंगकर सती  
 जानकीको आज ही ले आऊंगा ॥ ४४०-४४३ ॥ दूतके उन वचनोंको सुनकर रामचंद्र साम नामके उपायके  
 भेदोंको जाननेवाले मंत्रियोंसे पूछने लगे कि किंकिथा नगरके स्वामी राजा वालिको क्या उचर देना चाहिये ॥  
 ४४४ ॥ तब सब मंत्रियोंकी सम्मतिसे प्रशंसीय अंगद कहने लगा कि राजा लोग तीन तरहके होते हैं एक शत्रु  
 दूसरे मित्र, और तीसरे उदासीन ॥ ४४५ ॥ इसमेंसे रावण तो हमारा शत्रु है और वालि मित्रका शत्रु है यदि हम  
 लोग उसका काम न करेंगे तो वह शत्रुसे मिल जायगा ॥ ४४६ ॥ तथा उसके शत्रुसे मिलजानेपर शत्रु बलवान हो  
 जायगा और फिर बड़ी कठिनतासे नाश किया जा सकेगा यदि वालिके कहे हुए कामको करें तो यह काम आपके  
 लिये बहुत कठिन है ॥ ४४७ ॥ इसलिये सबसे पहिले किंकिथा नगरके स्वामीके नाश करनेका काम आपके गलेमें  
 जवर्दस्ती आ पड़ा है । इसके बाद शक्ति और संगति चढजानेसे सुखपूर्वक ही रावणका नाश किया जा सकेगा ॥

किमेतेन भवच्छैर्य वदान प्रगटीमवेत् । किं द्योक्त्वा प्रियेणैव ॥ ४२७ ॥ इति तद्रहसोक्तिव-  
 न्निहसतपिताशयः । पुण्यकाथिपतिर्दृष्टिविषाहीदृष्टफणामणि॥४२८॥ आदगुमिच्छतो गंतुं गतिं रामोभियाच्छति । इतस्त्व यत्र वच्योसि याहि याहीत्यतर्जयत् ॥  
 ४२९॥ निजिल सिधुराति गजितेनो जितकुयां । ततः कुभनिकुभो भुंक्तुं कर्णदिभिर्नदः॥४३०॥ इद्रजित् संद्रचर्मातिकन्याकं सरद्रुकेः । खरेण दुमुपात्येन नहा-  
 सुवस्यनेभिना॥४३१॥ कुंदे कुमारैरन्यैश्च तर्ज्यमानो गिलात्मजः । गर्जितेन दृशनेन वनिताजनसमुत्पन्न ॥४३२॥ किं कृत्यमत्र तस्मै मदीयं शृणुते ततः । इत्य-  
 भाविनां को निवारक । इदुवाचाणुमाध्याय जानकी वज्रिताशना ॥ ४३५ ॥ मदोद्वेगकृष्यास्या दगद्व्या पारणाविधि । ततो वारादिमुत्पद्य रामाभ्य-  
 अग्निसंजिसका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसा पुष्पक विमानका स्वामी रावण हनुमानको ललकारता हुआ कहने लगा  
 कि जिसकी दृष्टि ही विष भरा हुआ है ऐसे बड़े भारी सर्पके फणके मणिकी ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवालेकी  
 जो गति होती है उसी गतिको रामचंद्र पहुंचना चाहता है अर्थात् मरना चाहता है हे दूत तू मारने योग्य नहीं है  
 इसलिये तू यहांसे निकल और जल्दी जा ॥ ४२८-४२९ ॥ इसतरह कहकर रावणने बड़े कोषमें आकर सिंहकी भी  
 जीतनेवाली गर्जना की, तदनंतर हाथीके मस्तकके समान उग्र ऐसे कुंभकर्ण आदि योद्धाओंने, इंद्रजीत इंद्रचर्म, अति  
 कार्यार्क, खरदूषण, खर, दुर्मुख, महामुख आदि विद्याधरोंने तथा और भी कोषित हुए कुमारोंने हनुमानको ललकारा  
 तब हनुमानने कहा कि खिगोंके सामने इसतरह व्यर्थ गरजनेसे कुछ लाभ नहीं है अब तू मर मेरा उचर सुखमें सुनना  
 यह सुनकर नयोंके जानकार विभीषणने सबको रोका और कहा ऐसे बुरे बचन कहना ठीक नहीं है, वह हनुमानसे  
 है सो ठीक ही है क्योंकि होनहार शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भला कौन रोक सकता है । इसतरह विभीषणने कहा  
 तब हनुमान आहार पानी छोड़े हुए सीताके पास आया ॥ ४३०-४३५ ॥ मंदोदरीके उपरोधसे सीताने कुछ थोड़ा-  
 सा खाया था उसे देखकर और समुद्रको उल्लंघनकर वह हनुमान शीघ्र ही रामचंद्रके पास आया ॥ ४३६ ॥ नम-  
 स्कार कर कहने लगा कि बहुत कहनेसे क्या लाभ है सबका सार यही है कि रावण सीताको छोड़ना नहीं चाहता,  
 इसलिये सीताके अनुकूल कार्य करनेमें देर करना नहीं चाहिये क्योंकि बुद्धिमान लोग निश्चय किये हुए कार्यमें  
 जल्दी करना ही मंजसनीय समझते हैं । हनुमानके कहे हुये इसतरहके बचनोंको सुनकर इस्वाकृ बंधुमें सिंहके समान

४२६ ॥ जित्वा मा विप्रहेणाशु गृह्णीयात्केन वार्यते । इति तत्प्राशस्त्यसूचिवचनं देवचोदितं ॥ ४१७ ॥ श्रुत्वा रामोदयागदिनिमित्तं शुभसूचक । इदमे-  
वान्नोभीष्टमिति चित्तेनिलात्मजः ॥ ४१८ ॥ व्याजहार दुरात्मान दुश्चरित्रदशानन । अन्यायस्य निषेधा त्व निषेधश्चिषेदरि ॥ ४१९ ॥ बाह्वामिनि-  
वामोयो केन वा स निषिध्यते । अमेयेयमहं ह्य्यातो राघव सिंहविक्रम ॥ ४२० ॥ अस्मीतिनिष्कला चद्रमिति स्मृतुं तवोचित । मया बहुत्वसनयासव  
पथ्यमुदाहृत ॥ ४२१ ॥ प्रभो गृहाण चैतन्न्य रोचते चेन्न मागृही । इति द्रुतवचः श्रुत्वा गोलस्त्य पुनरग्रवीत् ॥ ४२२ ॥ रत्न ममानिवेद जनकेन स-  
मर्पित । दण्डाशयो तस्मादाहतेय मया कथा ॥ ४२३ ॥ मद्योग्यवस्तुस्वीकागदकीर्तिश्चद्रवेनमम । चक्रत्त व मद्रस्तादादातु स राघव ॥ ४२४ ॥  
इत्यन्वर्तो जनासुरवोचदशकथर । वच प्रपन्नगभीर तदुक्त्यनुसरि यत् ॥ ४२५ ॥ सीता मया हतेत्येतद्वि वक्षि विदित ज्ञेयः । करे कस्य स्थिता सेति  
इतस्तह भाग्यकी प्रेरणासे रावणके नाश करनेको सूचित करनेवाले वचन सुनकर हनुमान चित्तमें विचार करने  
लगा कि गमचंद्रके उदयको प्रगट करनेवाले और शुभकी सूचना करनेवाले निमित्त हो रहे हैं और इस विषयमें हमें  
भी यही इष्ट है ॥ ४१५-४१८ ॥ तदनंतर वह हनुमान रामचंद्रकी ओरसे दुष्ट और दुश्चरित्र रावणसे फिर कहने लगा कि  
आप अन्यायको रोकनेवाले हैं यदि रोकनेवाले को ही रोकने का काम पड़े तो उसे कौन रोक सकता है जो बड़बानल  
अग्नि समुद्रमें प्रगट हुई है उसे भला कौन रोक सकता है । यह सीता अभेद्य है इसे कोई चलायमान नहीं कर स-  
कता और मैं भिन्नके समान पगक्रमी प्रसिद्ध गमचंद्र हूं इसमें सूर्य चंद्रमाके टिकने पर्यंत विना किसी प्रयोजनके अ-  
कीर्ति होगी इसका स्मरण करलेना भी आपको उचित है मैंने भाईपनेके नातेसे आपके हित करनेवाले वचन कहे हैं  
यदि आपको अच्छा लगे तो ग्रहण कीजिये नहीं तो मत कीजिये । इस तरह दूत हनुमानके वचन सुनकर रावण फिर  
कहने लगा ॥ ४१९-४२२ ॥ कि यह सीता रत्न मुझे विना खबर दिये ही जनकने अपने अभिमानसे रामचंद्रको  
दी थी इसीलिये क्रोधसे मैं इसे ले आया हूं ॥ ४२३ ॥ मेरे योग्य वस्तुको स्वीकार करनेमें यदि अपकीर्ति होती हो  
तो हो । वह गमचंद्र तो मेरे हाथसे चक्र रत्न भी लेना चाहता है । यह सुनकर हनुमान प्रसन्न गभीर और रावणके  
कहे अनुसार ही रावणसे कहने लगा ॥ ४२४-४२५ ॥ कि सीता मैंने हरी है ऐसे वचन आप क्या कहते हैं । यह  
तो संसार जानता है हे विभो जब आपने सीता हरी थी तब यह किसके हाथमें थी, इसके सिवाय आप यह तो क-  
हिये कि क्या इस कार्यसे आपकी शूर वीरता प्रगट होती है इसलिये व्यर्थके वचनोंसे क्या लाभ है आपको इन  
मीठे वचनोंसे ही वह रानी सीता समर्पण कर देनी चाहिये २६ २७ इस तरह जिसमें हंसी मिल रही है ऐसे गूढ़ वचनरूपी



त नीत्वा दशाननमज्झिष्यन् । वचोहरोय रामेण प्रहितो देवसन्निधिं ॥ ८०७ ॥ इत्यभावपि योग्येन क्रमेणालोक्य रावण । तदादिष्टासने स्थित्वा प्राप्तुर्तप-  
णपूर्वक ॥ ४०८ ॥ श्रव्यैर्हितमितालापः शृणु देवेति बोधयन् । प्राज्ञो विज्ञापयामास प्रसृष्टमधुरध्वनिं ॥ ४०९ ॥ अयोध्यामधुनाध्यास्य वरुदमानो निजेज-  
सा । आत्माभिमानीकप्रज्ञामाहसगुणभूषण- ॥ ४१० ॥ राघवे कुशली देव त्रिखंडाखंडनायक । कुशलोदतसप्तश्रृण्वैर्मित्यभभाषत ॥ ४११ ॥ सीताव्य-  
स्येति नीता सावस्वदीयेत्यजानता । किं जात नास्ति दोषो द्राक् प्रेपणीया मनीषिणा ॥ ४१२ ॥ न चेद्विनमिवैकभूषणस्य महात्मन । नानारूपभेद कर्म  
धर्मशर्मविधातुकृन् ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्रमिवाभोधेनं युक्त मलधारण । सीताविमोचनोत्तुंगतरंगैः क्षिप्यता वहि ॥ ४१४ ॥ इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य प्रयुक्त्वाच  
खगेश्वरः । सीतां नानवबुध्याहमनैप किंतु भूभुजः ॥ ४१५ ॥ मयैव सर्वस्वानि स्वीरुजं तु विशेषत । प्रपयत्विति किं वक्तुं युक्त मा ते महीपते ॥

जाननेवाला विभीषण उसीसमय हनुमानको रावणके समीप ले गया और रावणसे निवेदन करने लगा कि “ हे देव  
यह रामचंद्रका दूत हैं रामचंद्रने आपके समीप भेजा है ॥ ४०६-४०७ ॥ इसप्रकार हनुमानने यथायोग्य रीति और अनुक्रमसे  
रावणके दर्शन किये और लाई हुई भेट समर्पण कर रावणके बतलाये हुए आमनपर बैठ गया ॥ ४०८ ॥ पहिले तो सुनने योग्य  
हितरूप और फिर मधुर और थोड़ेसे बचनोंसे रावणकी प्रशंसाकी और स्पष्ट बचन कहनेवाला विद्वान् हनुमान निवेदन करने  
लगा कि हे देव सुनिये ॥ ४०९ ॥ अपने प्रतापमें ही रात दिन बढनेवाले, आत्माभिमान बुद्धिमानी और साहस आदि गुणोंसे  
सुशोभित तथा क्षेम कुशलमें रहनेवाले राजा रामचंद्रने अयोध्या नगरमें ही विराजमान होकर तीनों खंडके एक  
स्वामी ऐसे आपका पहिले तो कुशलप्रश्न पूछा है और फिर यह कहला भेजा है ॥ ४१०-४११ ॥ कि आप सीता-  
को किसी दूसरेकी सम्भार ले आए हैं परंतु वह मेरी स्त्री है आप विना जाने लाये हैं इसलिये कुछ विगड़ा नहीं  
है आप बुद्धिमान हैं इसलिये उसे शीघ्र भेज दीजिये इसमें कुछ दोष भी नहीं है ॥ ४१२ ॥ यदि आप सीताको नहीं  
भेजेंगे तो विनमि बशके एक रत्न और महात्मा ऐसे आपका विचित्ररूप यह कार्य धर्म कर्म और कल्याणको नाश  
करनेवाला होगा ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्ररूपी महासागरको मल धारण करना योग्य नहीं है इसलिये सीताको छोड़ने  
रूप बड़ी बड़ी तरंगोंके द्वारा इसे बाहर ही फेंक देना चाहिये ॥ ४१४ ॥ हनुमानके कहे हुए इन बचनोंके सुनकर  
रावण कहने लगा कि मैं सीताको विना जाने नहीं लाया हूं किंतु मैं राजा हूँ इसलिये संसारके सब रत्न मेरे हैं तथा  
स्वीरुज तो विशेष कर मेरा है । तुम्हारे स्वामी रामचंद्रने मेरे लिये जो यह कहला भेजा है कि सीताको भेज दो  
तो क्या उन्होंने योग्य किया है युद्धमें मुझे जीतकर वे सीताको शीघ्र ही ले जायें उन्हें कैान रोकता है ।

स्वीकृता द्वय ॥ गोमिथ्या सह सीतापि वेत्ति वृत्तोत्तमापरं । त्वमेव कृत्यं निर्णीय द्विदृष्टं श्रीघ्न मे हितं ॥ ३१६ ॥ इत्यमुं वत्साहाय्यैस्तैः स कुमारः प्रणम्य त । गत्वाऽपि सहसा लंकां ज्ञातो वीक्ष्य विभीषण ॥ ३१७ ॥ रामभद्रारकेणाहं प्रेषितो भवदतिक ॥ इति सप्रश्रय सर्वं तदुक्तं तमजीगमत् ॥ ३१८ ॥ इदं च स्वयमाहासो स्वामिदेशहरिणं । प्रापयन्त्वं स्वगोपीश मा तस्मै हितकारिण ॥ ३१९ ॥ रामाभिप्रेतकार्यस्य त्वया सिद्धिस्तथासति । कार्यमेतत्तु मधुद्वारा-विधातु भवतो भवेत् ॥ ४०० ॥ त्वय्योक्तोऽपि न चेत्सीता विमुचति स मंदधीः । नापरराष्ट्रस्तवापुण्य स्वयमेव विनश्यति ॥ ४०१ ॥ वर्द्धमानप्रिय दृष्ट्वा रामं तत्पुण्योद्धित । इतो द्वितयलोकैकहित यायामधीश्वरं ॥ ४०२ ॥ इति रक्त स्वयं भूयो धरणीगोचरं बल । पंचाशत्कोटिसंयुक्त लक्षा चतुरसीतिक ॥ ४०३ ॥ सार्द्धश्रितयमंरुगात् खेचरानीकमय्यदः । वल्लेनतेन सप्राप्य सट्टविह मलक्ष्मणः ॥ ४०४ ॥ हर्षमयं च सीतां वा सीता च खचैरशिन । समर्थः किंतु दक्षिणं विभोर्नैसर्गिक त्वयि ॥ ४०५ ॥ ततोह प्रेषितस्तेन त्वं च किं वेत्सि नेहलं । इति तद्वचनं धृत्वा कार्यविश्रावणानुजः ॥ ४०६ ॥ तदानीमेव इमतरह कहकर और ऊपर कहे राजाओंको साथ देकर रामचंद्रने हनुमानको विदा किया ; हनुमान भी रामचंद्रको प्रणामकर चला और शीघ्र ही लंकामें जा पहुंचा । वह वहांका जानकार था इसलिए वह सीधा विभीषणके यहां जा पहुंचा और कहने लगा कि स्वामी रामचंद्रने मुझे आपके पास भेजा है इमतरह कहकर हनुमानने बड़ी विनयके साथ रामचंद्रके कहे हुए सब समाचार विभीषणको कह सुनाये ॥ ३९७-३९८ ॥ तथा इतने समाचार उमने अपनी ओरसे कहे कि आप रावणका हित करनेवाले और स्वामी रामचंद्रका समाचार ले जानेवाले मुझे रावणके पास पहुंचा दीजिये ॥ ३९९ ॥ आपसे रामचंद्रके इष्ट कार्यकी सिद्धि अवश्य हो जायगी और ऐसा हो जानेपर यहकार्य मेरे द्वारा आपसे ही हुआ समझिये ॥ ४०० ॥ यदि वह मंदबुद्धि वाला रावण आपके कहनेसे भी सीताको न छोड़े तो फिर इसमें आपका कोई अपराध नहीं है वह पुण्यहीन अपने आप नष्ट हो जायगा ॥ ४०१ ॥ इससमय रामचंद्रकी लक्ष्मी बढ़ रही है यही देखकर उनके पुण्यकी प्रेरणासे ही मानों दोनों लोकोंके हित करनेवाले स्वामी रामचंद्रकी शरण जाना चाहिये यही समझकर पचास करोड़ चौरागी लाख भूमिगोचरियोंकी सेना और सांढे तीन करोड़ विद्याधरोंकी सेना स्वयं अनुरक्त होकर उनमें आ मिली है । वे रामचंद्र इतनी मर सेना और भाई लक्ष्मणके साथ स्वयं यहां आ पहुंचेंगे ॥ ४०२-४०४ ॥ यद्यपि वे गीताके साथ साथ विद्याधरोंके स्वामी रावणकी लक्ष्मीको भी आज ही हरण करनेको समर्थ हैं तथापि उनका आपमें स्वाभाविक प्रेम है ॥ ४०५ ॥ इसलिये उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है क्या आप इसतरहके सब समाचार नहीं जानते हैं ? हनुमानके इसतरहके कहे हुए बचनोंको सुनकर कार्यको

व्यौ तस्मिन्नातिवेदिमि । क्रमस्तथापि नोल्लभ्यः साम तावत्प्रयुज्यता ॥ ३८६ ॥ कः सामवित्प्रयोक्तव्य इत्यस्मिन् सप्रधारणे । दक्षतादिगुणोपेता बहव सति भूचराः ॥ ३८७ ॥ किं नु नाकाशगामित्वसामर्थ्यं तेषु विद्यते । तस्मात्तेनापति प्रेष्यस्त्वयाय नूतन कृत ॥ ३८८ ॥ दृष्टमार्गं पराश्रुष्य सिद्धकार्यं श्रुतागम । जात्यादिविद्यासम्पन्नः स्यादस्मात्कार्यनिर्णय ॥ ३८९ ॥ इत्येतदुपदेशेन मनोवेगाभिधानक । विजय कुमुदाख्यान ह्ययात रविगतिं हितं ॥ ३९० ॥ सहायिकृत्य सपुज्य कुमार भवतोऽपर । कार्यवित्कार्यकृचास्ति नात्रेति श्लाघयन्नुप ॥ पवमानाम्नाम वाच्यास्त्वयैव सविभीषण । अत्र त्वमेव धर्मज्ञः आह । कार्यविपाकविद् ॥ ३९१ ॥ हितो लोकेश्वरायास्मं सूर्यवशाधियाय च । सीताहरणमन्याय्यमाकल्पमयसत्करं ॥ ३९२ ॥ अपव्यमिति संश्राव्य रावण रस्मिहित । मोचनीया त्वया सीता तथा सति भवत्कुल ॥ ३९४ ॥ त्वयैव रक्षित पापादपायादपवादनः । इति सामोक्तिमिस्तस्मिन्स्वीकृते-

मेजा जाय तो इसका उत्तर यह है कि यद्यपि अनेक भूमिगोचरी चतुरता आदि गुणोंसे सुशोभित हैं परंतु उनमें आकाशमें चलनेकी सामर्थ्य नहीं है इसलिये आपने जो नया सेनापति बनाया है उसे ही भेजना चाहिये ॥ ३८७-३८८ इस नये सेनापति हनुमानने मार्ग भी देखा है इसे कोई हरा भी नहीं सकता, यह कार्योक्तो सिद्ध करनेवाला और सब शास्त्रोंका जानकार है । जाति आदि अनेक विद्याओंसे भी यह सुशोभित है इसलिये अवश्य ही इससे कार्य का निर्णय हो जायगा ॥ ३८९ ॥ इसतरहके उपदेशानुसार रामचंद्रने मनोवेग विजय कुमुद, और रविगति आदि राजाओंको साथ किया और हनुमानका सब आदर सत्कार कर प्रशंसा करने लगे कि आपके सिवाय ऐसा कार्योक्ता जाननेवाला और कार्योक्तो करनेवाला कोई दूसरा नहीं है ॥ ३९०-३९१ ॥ रामचंद्र फिर हनुमानसे कहने लगे कि आप विभीषणके पास जाकर इसतरह कहना कि “आप ही इससमय धर्मके जानकार हैं विद्वान हैं प्रत्येक कार्यके फलको जानते हैं और सूर्यवशको नाश करनेके लिये अश्विके समान इस रावणके हितैषी हैं । रावणने जो सीताका हरण किया है वह अन्याय है कल्पकाल तक अपयश करनेवाला है और अपथ्य वा अयोग्य है । आप रतिसे मोहित हुए रावणको समझाइये और उनसे सीताको छुड़वा दीजिये । इसतरह करनेसे पाप, अपाया ( नाश ) और अपवाद वा निंदासे अपने कुलकी रक्षा करनेका श्रेय आपको ही मिलेगा । इसतरह शांति भरे बचनोंसे कहना यदि विभीषणने यह बात स्वीकार करली तो फिर सब शत्रु अपने वश ही समझिये । हे दूतोत्तम ! इतना ही नहीं किंतु पृथ्वी के साथ साथ सीता भी अपने यहां आई हुई ही समझिये । इसके सिवाय शत्रुओंके करनेलिये जो कुछ काम हो या जो कुछ समाचार हो उन सबका निर्णय आप ही कर लेना और शीघ्र ही मेरा हित संपादन करना ॥ ३९२-३९६ ॥

सुता ॥ ३७४ ॥ कार्यस्थितिप्रसादानं चाभ्युपेत्य कृतत्वरं । तत्कालोचितकार्योक्तिशुश्रूषा तं व्यसर्जयत् ॥ ३७५ ॥ प्रणम्य सोपि तत्पदपङ्कजं भास्वरौ-  
दये । गत्वा ततो ह्यटित्याप रामं स्नागमनोन्मुख ॥ ३७६ ॥ बदनान्जप्रसादेन कार्यसिद्धिं न्यवेदयत् । प्रणम्य स्नामिना सम्यक्परिरम्योभित्तावनः ॥ ३७७ ॥  
उपविष्टो मुदा तेन पृष्ठो दृष्टो मत्प्रिया । सप्रपञ्चसुखीर्षोर्बर्चस्सट्प्रीतिहेतुकं ॥ ३७८ ॥ निसर्गाद्रावणो हसन्बकं चान्यत्समुद्ययौ । लंकार्यां दुर्निमित्तानि  
वास न ह्याश्रयेचराः ॥ ३७९ ॥ संति तत्सेवकाः सर्वमेतदालोच्य मंत्रिमि । जानक्याननयोपायो निश्चेतव्यो यथा तथा ॥ ३८० ॥ इतीदमुन्वित  
यमवदत्पवनान्मजः । तदुक्तं चेतसा सम्यगवधार्योर्जिताशय ॥ ३८१ ॥ सेनापतिं पट्टवधेनाकृतानिलनंदनं । कृत्वाभिराज्यपट्टं च सुग्रीवस्य महीपतिः ॥  
३८२ ॥ सह ताभ्यां समप्राक्षीन्मंत्रिणः कर्मनिर्णयं । तत्रैवयंगदोवोचदेव त्रेधा महीभुज ॥ ३८३ ॥ बोधधर्मासुराह्वादि विजयातामिधानका । प्रथमे दान-  
मन्यस्मिन् साम्राट्ये मेददंढन ॥ ३८४ ॥ नयज्ञं कार्यसिद्ध्यर्थमित्युपायं प्रयुज्यते । अंतिमो रावणरतेषु नीचत्वात्कर्मकृत् ॥ ३८५ ॥ मेदददौ प्रयोक्त-  
वैठ गया । तब रामचंद्रने बड़ी प्रसन्नतासे पूछा कि क्या तुमने मेरी प्यारी देखी थी तब हनुमानने रामचंद्रको प्रेम  
उत्पन्न करनेवाली सब बातें बड़े जोरसे और बड़े विस्तारसे कहीं ॥ ३७६-३७८ ॥ और कहा कि रावण स्वभावसे  
ही मदान्मत्त हो रहा है तथा उसके आयुधशालमें चक्र रत्न भी उत्पन्न हुआ है इसके सिवाय लंकारमें बहुतसे अप-  
कून हो रहे हैं और उसके विद्याधर सेवक सब बहुत निपुण हैं । यह सब समाचार कहकर हनुमान मंत्रियोंसे फिर  
यह एक उचित कार्य कहने लगा कि जिसतिस तरहसे सीताकी यहां लानेका उपाय निश्चय करना चाहिये । ऊंचे वि-  
चार करनेवाले रामचंद्रने हनुमानकी कही हुई बातोंका मनमें अच्छीतरह विचार किया, उसीसमय हनुमानको सेना-  
पतिका पट्ट बांधा और सुग्रीवको युवराजका पट्ट बांधा ॥ ३७९-३८३ ॥ तदनंतर वे उन दोनोंके साथ साथ मंत्रियों-  
से कार्य करनेका निर्णय करने लगे तब अंगद कहने लगा कि हे देव ! राजा लोग तीन तरहके होते हैं लोभविजयी  
धर्मविजयी और असुरविजयी नयोंके जाननेवाले नीतिकारोंने कार्य सिद्ध होनेकेलिये लोभ विजयीको दान देना  
धर्मविजयीको सांतवना देना और असुरविजयीको भेद और दंड देना यही सबसे अच्छा उपाय बतलाया है ॥  
३८४ ॥ इन तीनों तरहके राजाओंमेंसे रावण असुरविजयी है क्योंकि वह नीच है और क्रूरकर्म करनेवाला है ॥  
३८३-३८५ ॥ इसलिये नीतिके जानकारोंको उसके लिये भेद और दंडका ही प्रयोग करना चाहिये यद्यपि वह भेद  
और दंडकापात्र है तथापि क्रमका उल्लंघन करना ठीक नहीं है इसलिये पहिले सामका ही प्रयोग करना चाहिये ॥  
३८६ ॥ कदाचित् आप यह निश्चय करना चाहें कि हम लोगोंमें अच्छी तरह सामको जाननेवाला कौन है जिसे

संश्राव्यं वानर । रामस्याभिसिद्धिर्द्वेन लेखगर्भकं ॥ ३६५ ॥ मयानीतिदं देवीत्यग्रेत्याः स तदक्षिपत् । तद्वद्वृत्ता किमय मायाविप्रहो रावणोपम ॥ ३६६ ॥ शंकर्यानेति सा वीक्ष्य तत्र श्रीवत्सलाञ्छन । रत्नागुलीयक चातमपतिनामाक्षराकित ॥ ३६७ ॥ ममेदमपि भालेख मायेवास्य दुरान्मन । को जानाति तथाप्येतस्य तस्यैव वासवत् ॥ ३६८ ॥ मद्भ्रातृगदिति निर्भिद्य मुद्रा पत्रं त्वदाचरत् । वचनानतर वीतशोक्या त्रिगधवीक्षया ॥ ३६९ ॥ जीविताह त्वया स्थानमधिपतिप्रसि मे पितु । इत्युक्तः सीतया कृणौ पिधाय पवनात्मजः ॥ ३७० ॥ मत्स्वामिनो महादेवी मातनंद्वाङ्मन्यत्पना । त्वा नेतु मम मामर्थ्य-मर्धवास्ति पतिव्रते ॥ ३७१ ॥ नास्ति भट्टारकस्याज्ञा खयमेव महीपतिः । हर्षेण्य रावणं तस्य त्वा नेष्यति सह श्रिया ॥ ३७२ ॥ तत्साहसेन तत्कीर्तिव्या-प्यतां भुवनत्रय । तत शरीरसंघारणार्थमाहात्म्यम् ॥ ३७३ ॥ भगवत्यत्र को दोषो राज्ञा ते संगमोच्चिरात् । इत्याद्यत्मा ततस्त्यक्त्वा वैमनस्य मही-सुखे हुए हैं और श्रीवत्स चिन्ह बन रहा है ऐसी रत्नोंकी अंगूठी देखी ॥ ३६५-३६७ ॥ उसे देखकर भी वह सोचने लगी कि मुझे तो यह भी उसी नीचकी मायाके समान जान पड़ती है किंतु इस बातको कौन जानता है, तथापि मेरे मायोदयसे यह पत्र पत्र उन्हीका लिखा है, इसतरह सोचकर उसपरकी मुहर तोड़कर वह उस पत्रको बाँचने लगी । पत्र बाँचकर वह सब शोक भूल गई और स्नेहकी दृष्टिसे देखती हुई कहने लगी कि तेने मुझे जीवदान दिया है इसलिये तू मेरे पिताके समान है । सीताकी इस बातको सुनकर इन्द्रमान कानोंपर हाथ रखकर कहने लगा कि तू मेरे स्वामीकी महादेवी है इसलिये मेरी माताके समान है मैं तुझमें कोई और कल्पना नहीं कर सकता । हे पतिव्रते तुझे आवही ले चलनेकी मुझमें सामर्थ्य है परंतु मेरे स्वामीकी ऐसी आज्ञा नहीं है । मेरे स्वामी महाराज रामचंद्र स्वयं आकर और रावणको मारकर उसकी राजलक्ष्मीके साथ साथ तुझे ले जायेंगे ॥ ३६८-३७२ ॥ इसलिये इस साहससे उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैलेगी अतएव शरीरकी रक्षा करनेकेलिये तू भोजन ग्रहण कर ॥ ३७३ ॥ हे भगवती अब इसमें दोष ही क्या है क्योंकि शीघ्रही महाराज रामचंद्रके साथ तेरा समागम अवश्य होगा । इस-तरह इन्द्रमानने सीतासे कहा उसे सुनकर सीताने अपनी उदासीनता छोड़ दी, शरीर स्थिर रखनेके लिये बहुत शीघ्र भोजन करना स्वीकार कर लिया और उसीसमय उचित कार्योंके कहनेमें चतुर उस सीताने इन्द्रमानको विदा किया ॥ ३७४-३७५ ॥ इन्द्रमान भी उसके चरणकमलोंको नमस्कारकर सूर्योदय होते ही चला और बहुत शीघ्र रामके समीप जा पहुंचा । रामचंद्र उससमय उसके आनेकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे उन्हें पहिले तो इन्द्रमानने अपने मुख कमलकी प्रसन्नतासे कार्यकी सिद्धि निवेदनकी, स्वामीको प्रणाम किया, अच्छी तरहसे मिला और उनके बताये हुए आसनपर

३५५ ॥ तदभिप्रायमाश्लाय दशाननवधूसमा । यदि स्वकार्यमसिद्धिमभिप्रायसे वृश ॥ ३५६ ॥ कृताञ्जलिगृह्यान्ने गृह्याणाहारमन्त्रिके । सर्वस्य साधनो देहतराहार सुसाधन ॥ ३५७ ॥ वदंति निपुणाः क्षमाजे प्रसवादि कुतोऽमति । सिंगते वपुषि रामस्य स्वामिनस्त्वं वीक्षणं ॥ ३५८ ॥ न चेत्सर्वशेन गार्ध्यं वपुषेव महत्तपः । न चेन्मद्वचन प्राण स्वयादमपि भोजन ॥ ३५९ ॥ लज्जागीत्यवदत्सीताव्येतच्छ्रुत्वावधार्य च । ममामातापि मातैव मद्दुःखे दुःखिताजति ॥ ३६० ॥ इति चित्ते विनम्रैतत्करणे स्मिन्मयेक्षत । मञ्जवास्थापनाकाले मत्सुनाया उद्देक्षित ॥ ३६१ ॥ एतन्मा मधुरं सत्याः सतापयति सर्वतः । इति प्रलयमापन्ना तदा रावणवल्लभा ॥ ३६२ ॥ आसेदु मेन तद्दुःखं गद् विनीता प्राविशत्पुर । शिनिपास्थस्तोऽभ्येत्य द्रुत गविवया ॥ ३६३ ॥ परावृत्य कपेर्मुत्था स्वयं निर्दोल्याभिमुत्तान् । निधाय रक्षकान् देव्याः पुरस्तादसमवस्थिताः ॥ ३६४ ॥ प्रणम्य तां स्वहृतांतं सर्वं

मंदोदरी कहने लगी कि तू अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है तो मैं हाथजोड़कर यह मांगती हूँ कि हे मातृ आहार ग्रहणकर । क्योंकि सब का कारण शरीर है और शरीरका साधन आहार है ॥ ३५६-३५७ ॥ विद्वान् लोग सब यही कहते हैं कि यदि वृश्च न होगा तो फूल कहाँसे आवेंगे इसी तरह यदि शरीर रहेगा तो तू अपने स्वामी रामको देख सकेगी ॥ ३५८ ॥ यदि उनके दर्शन होनेकी संभावना न हो तो इस शरीरसे घोर तपश्चरण ही करना चाहिये । यदि तू मेरी बात नहीं मानेगी मैं भी भोजनका त्याग कर दूंगी । इसतरह मंदोदरीने कहा उसे सुझाव और विचारकर सीता सोचने लगी कि यद्यपि यह मेरी माना नहीं है तथापि माताके समान ही मेरे दुःखमें दुखी हुई इसतरह सोचकर और चित्तमें नमस्कार कर बड़े प्रेमसे उसके दोनों चरणोंको देखने लगी । उसे इसतरह देखकर मंदोदरी सोचने लगी कि जिस समय मैंने पुत्रीको संदूकमें रक्खा था उसीके समान यह सुझाव सब ओरसे दुःख दे रही है । इसप्रकार शोक करती हुई उस मंदोदरीने बड़ोंके दुःखसे दुःखी होनेके समान सीताके दुखमें दुखी होकर बड़ी नम्रतासे नगरमें प्रवेश किया ।

अथानंतर—वह हनूमन उसी सीसोंके वृक्षपर बैठा था उसने समय देखकर प्लवंग नामकी विद्यासे अपना रूप बदलकर बदरकासा बना लिया और अपनी विद्यासे उस वाणके रक्षकोंको निद्राके आधीनकर अर्थात् मोहितकर वा खुलाकर सीता देवीके सामने जा खड़ा हुआ ॥ ३५९-३६४ ॥ पहिले तो उस चंदरने उसे प्रणाम किया और फिर अपने आनेका सब समाचार सुनाया और कहा कि “रामचंद्र मेरे स्वामी हैं उनकी आज्ञासे मैं यह पत्र रक्खा हुआ पिटारा लाया हूँ” यह कहकर उसने वह पिटारा सीताके सामने रख दिया । उसे देखकर वह संदेह करने लगी कि क्या यह मायामयी शरीर बनाकर नीच रावण ही आया है परंतु पिटारेमें उसने जिसपर अपने पतिके नामके अक्षर

३३४ ॥ पराभव परिप्राप्तो माभूत्स्वमपि तादृशः । मा मस्था मा सपत्नीति मद्रवत्त्वं प्रमाणयन् ॥ ३३५ ॥ त्यज सीतागतं मोहमित्यसौ निजगाद त । तदुक्तेतरं वाक्यमभिधातुमशक्नुवन् ॥ ३३६ ॥ सम प्राणिरिय त्याज्येयगात्स कृपितः पुरे । मदीदरीपरित्यक्तनिजपुत्रीदुगाहिता ॥ ३३७ ॥ सीतां मिथिः-  
प्रिता भाविनिदा देगमयात् क्षितौ । या निक्षेपयति स्मेति मया कलहकारणात् ॥ ३३८ ॥ आगतायेव मत्पुत्रीं ता त्वा मे मन्यते मन । पापेन विधिना  
नीता भद्रे त्व दुःखकारिणा ॥ ३३९ ॥ अलंध्य केनयिन्नात्र प्रायेण विधिचेष्टित । इह जन्मनि किं वधुः किं वा त्व मेत्यजन्मनि ॥ ३४० ॥ न जाने त्वा  
विलोकयाद्य मम स्नेहः प्रवर्द्धते । यदि मज्जननीत्वं त्व पद्मनेत्रेवबुध्यसे ॥ ३४१ ॥ त्वा मे भावयिषुं वष्टि सपत्नीं खचराधिप । तेन बाले श्रुतिं वापि  
याहि मागांस्तवीप्सित ॥ ३४२ ॥ स्तनप्रसूतिमित्येव वदती प्रापदुस्तुका । तस्याः पयोधरद्वंद्वमभिषेकमुमिवापतत् ॥ ३४३ ॥ जल गद्गदकंठायाम्बुधुभ्यो  
स्नेहसूचन । शोकानलपरिम्लान वक्त्राब्ज चाभवत्तदा ॥ ३४४ ॥ तदीक्ष्य जानकी सर्व प्राप्ता स्वामिव मातरं । जायतेस्माद्रहदया बाष्पाविलविलेचना ॥

छोड़ दीजिये ” इसतरह मंदोदरीने रावणसे कहा । रावण हमका कुछ उचर न देसकां इसलिये “प्राणों के साथ ही इसे छोड़ूंगा ” इसतरह कहता हुआ वह क्रोधित होकर नगरको चला गया । उसीसमय मंदोदरीने जो अपनी पुत्री संदूकमें रखकर छोड़ दी थी उसका वह शोक करने लगी और कहने लगी कि जिस सीताको निमित्त छानियोंकी आवाजके डरसे मिथिला देशमें पृथ्वीके नीचे गढ़वा दिया था वही कलह करनेवाली मेरी पुत्री सीता आ गई है ऐसा मेरा मन स्वीकार करता है । हे भद्रे दुःख देनेवाला पापी विधाता ही तुझे यहां ले आया है ॥ ३४२-३४९ ॥ इस संसारमें कर्मोंके उदयको भला कौन उलंघन कर सकता है । न जाने तू मेरी इसी जन्मकी कोई सवधिनी है अथवा किसी अन्य जन्मकी संबंधिनी है न जाने क्यों आज तुझे देखकर मेरा स्नेह बढ रहा है । हे कमलनेत्रे ! तू मुझे मेरी पुत्री ही ऐसी जान पड़ती है ॥ ३५०-३५१ ॥ यह विद्यार्थीका स्वामी रावण तुझे मेरी सीत बनाना चाहता है इसलिये हे पुत्री चाहे तू मर जोग्या परंतु उसकी इच्छानुसार काम मत करना ॥ ३५२ ॥ इसतरह कहती हुई वह बड़ी ही उत्सुक हुई उसके स्तनोसे दूध निकलने लगा और उसके स्तन ऐसे जान पड़ने लगे मानों उसका अभिषेक करनेके लिये ही कुछ नीचेकी ओर झुक गये हों ॥ ३५३ ॥ उसका कंठ गदगद हो गया दोनों नेत्रोंसे स्नेहको सूचित करनेवाला जल गिरने लगा और उससमय उसका मुखकमल झोक रूपी अग्निसे मलिन हो गया सुरक्षा गया ॥ ३५४ ॥ उन सन कारणोंको देखकर सीताकी ऐसा मालूम होने लगा मानों उसे अपनी माता ही मिल गई हो उसका हृदय दुःखसे मीग गया और उसके नेत्रोंमें आंसू भर आए ॥ ३५५ ॥ उसके अभिप्रायको जानकर



नयत्वाद्यैव घटदासिन् । अतिथिर्वाभवत् प्रेतनाथावासनिवासिनां ॥ ३३५ ॥ इति ता मामिवापुण्य स्वीकृतुं व्यर्थमब्रवीत् । तदाकण्ठ्यापि भूयता समा-  
हितमनास्तादा ॥ ३३६ ॥ ध्यातिध्वर्थैव नैर्मल्यमादधानाभवत्तिथरा । खगेशवक्ष्यनिर्यातवाग्जालज्जलनावली ॥ ३३७ ॥ सीतार्थैर्ध्यावुषि प्राप्य सद्य शान्तिपया-  
स्तादा । विक्रमेण यथा पुंसः सर्वसाभग्यसपदा ॥ ३३८ ॥ स्त्रीष्टमपि जेतारं मायेया परिभवाका । किलेति कुच्यत' पत्युर्दासकोधदवानल ॥ ३३९ ॥  
सद्यः सीतालता दग्नु जुभमाण मनोरणे । मंदोदरीहितश्रव्यवचनामृतवारिभि ॥ ३४० ॥ प्रशमय किमस्थाने जनवत्कोपवान् भवे । विवितय किमेषा  
ते दडयोश्चावभासते ॥ ३४१ ॥ मंदारप्रसवारब्धमालाभिसेपमर्हति । मतीनां परिभूत्याशु रागमित्वाधिका ध्रुव ॥ ३४२ ॥ विद्या विनाशमायांति तस्याः  
विद्याविपक्षकः । पुग स्वयंप्रभ हेतोरश्रुप्रोवल्गवाधिप ॥ ३४३ ॥ पद्मावतीनिमित्तेन प्रसिद्धो मधुसूदनः । समासक्त सुताराया विधीरशनिघोषकः ॥

तो तुझे अभी पाली भरनेवाली दासी बनना पड़ेगा अथवा प्रेतनाथके घर निवास करनेवालोंका ( मृत्युका ) अभ्या-  
गत बनना पड़ेगा ॥ ३३५ ॥ जिसप्रकार पुण्यहीन पुरुष लक्ष्मीको वश करनेकेलिये व्यर्थ ही वक्ताद करता है उसी-  
प्रकार रावणने सीताको वश करनेके लिये ऊपर लिखे अनुसार व्यर्थ ही वक्ताद किया उसे सुनकर सीता चित्तमें  
समता धारणकर तथा धर्म्य ध्यानके समान निर्मलता धारणकर निश्चल हो गई, और उसीसमय रावणके मुखसे निकले  
हुए वचनसमूहरूपी अशिकी पंक्ति सीताके धैर्यरूपी समुद्रको पाकर शीघ्र ही शांत हो गई । तब रावणको क्रोध  
आया वह सोचने लगा कि जैसे मैं अपने पराक्रमसे पुरुषोंको जीतता हू उसीप्रकार सब तरहकी सौभाग्यरूपी संप-  
त्तियोंके द्वारा खियोंके समूहको भी जीतनेवाला हूं फिर भी यह सीता मेरा तिरस्कार कर रही है ” इसतरह सोचने  
हुए उसके मनरूपी युद्धस्थलमें बहुत शीघ्र सीतारूपी लताको जलानेके लिये क्रोधरूपी दावानल अग्नि भड़क उठी  
तब मंदोदरीने हितरूप और सुनने योग्य वचनमृत रूपी जलसे उसे शांत किया और कहने लगी कि आप विना  
ही कारणके क्रोध क्यों कर रहे हैं, आप विचार तो कीजिये क्या यह सीता आपको दंड देने योग्य प्रतीत होती है ॥  
३३६-३४१ ॥ मंदार वृक्षोंके फूलोंकी वनाई हुई माला क्या अग्निके डालनी चाहिये । सतियोंका तिरस्कार करनेसे  
आकाशगामिनी आदि विद्याएं अवश्य और बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं इसलिये आप भी पक्षरहित पक्षीके समान  
विद्याहीन हो जायेंगे । पहिले स्वयंप्रभाके लिये अश्वप्रीत विद्याधर, पद्मावतीके कारण प्रसिद्ध मधुसूदन, और सुता-  
रामें आयत्त हुआ बुद्धिहीन अशनिघोष तिरस्कार पा चुका है इसलिये आप भी उन्हीं ऐसे मत हो । आप यह भी  
मत समझिये कि मैं सपत्नी ( सौत ) होनेके डरसे ऐसा कह रही हूं नहीं आप मेरे वचनोंको प्रमाण मानकर सीताको

स्वामिनी भूवा महादेवी पदे स्थिता । त्रिलङ्कापितोर्भूया सश्रीर्वसुस्थले चिरं ॥ ३२४ ॥ विफल माकृष्या विमुञ्चयत् तव भोगिन । हस्तासुलस्तिपुत्रस्य रामस्त्वा नेष्यतीत्यद ॥ ३२५ ॥ वितर्कण कदवोस्वन वा विद्धि निष्फल । क्षुधार्तनेकपारातिक्वत्वातर्बन्तिनं मृग ॥ ३२६ ॥ परित्याजयितुं ब्रूहि क समर्थ-तमः पुमान् । इत्यभ्यधात्तदाकर्ण्य निश्चला बहुधासुता ॥ ३२७ ॥ वसुधैव स्थिता भेत्तुं के वा शक्ताः पतिव्रता । नददृष्ट्वा खेचराधीया स्वयमागत्य का-तरः ॥ ३२८ ॥ कुल चेद्रक्षितुं तिष्ठेर्न विचारक्षम हि तत् । लब्धा चेद्दीनसबधात्सा तस्याः प्रसवोन्न न ॥ ३२९ ॥ रामे चैतेषाम तद्विद्धि जन्मतारितमनि-म । चिरं परिचित कस्माद्विस्मराम्यर्जुनैव त ॥ ३३० ॥ इति चेत्ससर्गता जैता केन कस्य न सस्तवः । परिखा वारिधिरुगंघ्रिकूटाद्रिः खगेश्वराः ॥ ३३१ ॥ दुर्गपाला पुरं रक्षा मेघनादादयो भटा । नायकोह कथ तस्य तव भर्तुं प्रवेगिन ॥ ३३२ ॥ तस्मात्तदाशुजिह्वा मदाशा पूर्य प्रिये । अवश्यभा-विकार्यैस्मिन् किं कालहरणेन ते ॥ ३३३ ॥ हस्तयाश्च रुदत्याश्च तव प्राधूर्ण्यकोत्सर्गहं । मरकात्कातासताने काते चूलामणिर्भव ॥ ३३४ ॥ न चेदस्ति विभा-

निष्फल होता है । भला कह तो सही भूखसे व्याकुल हुए सिंहके मुंहमें पड़े हुए हरिणको छुड़ानेके लिये इस संसा-रमें भला कौन पुरुष समर्थ होता है । इसतरह उस दूतीने कहा उसे सुनकर वह सीता पृथ्वीके समान ही निश्चल बँधी रही सो ठीक ही है क्योंकि पतिव्रताओंको भेदन करनेकेलिये भला कौन समर्थ है सीताको चुपचाप देखकर रावण कातर होकर स्वयं आया ॥ ३२५-३२८ ॥ तथा कहने लगा कि यदि तू कुलकी रक्षा करनेकेलिये बँधी है तो यह बात कुछ विचार करने योग्य नहीं है कदाचित् तुझे लज्जा आती हो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि लज्जा तो नीच लोगोंके ( हीनके ) संबन्धसे होती है यहाँ तो हीनताकी गंध भी नहीं है ॥ ३२९ ॥ कदाचित् राममें तेरा प्रेम हो सो उसे अब तू एक जन्मका अंतर पड़नेके समान समझ कदाचित् यह विचार हो कि रामचंद्रके साथ बहुत दिनका परिचय था उसे मैं अभी कैसे भूल जाऊँ सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इससंसारमें जीवोंको किसके साथ संबध नहीं है । कदाचित् यह सोचती हो कि रामचंद्र मुझे आकर ले जायेंगे सो यह भी व्यर्थ है क्योंकि यहाँ की खाई तो समुद्र है त्रिकूटाचल पर्वत किला है, विद्याधर इसके रक्षक हैं यह नगर लंका है मेघनाद आदि यहाँके योद्धा हैं और इसका स्वामी मैं हूँ इसमें भला तेरे पतिका प्रवेश कैसे हो सकता है ॥ ३३०-३३२ ॥ इसलिये हे प्रिये तू अब उसकी तो आज्ञा छोड़ दे और मेरी आज्ञाको पूर्णकर । यह कार्य होनेवाला तो अवश्य है फिर इसमें तू व्यर्थ समय क्यों खो रही है ॥ ३३३ ॥ तू चाहे इस आर चाहे रो मैं तेरा अभ्यागत हो चुका हूँ सुंदरि ! मेरे सुंदर स्त्रियोंके समूहमें तू चूड़ामणि रत्नके समान हो ॥ ३३४ ॥ यदि तू अपने अभाग्यसे मेरा कहना नहीं मानेगी

पि नीतिमार्गविशारद ॥ ३१४ ॥ आरब्धकार्यसंनिद्धाबुधतस्य विवेकिनः । प्राहुर्नितिविदः कोपं व्यसनं कार्यविघ्नकृतं ॥ ३१५ ॥ तस्मादस्थानकोपेन कृत-  
मिल्लाहितक्षमः । निजागमनशुभातमवबोधयितुं सती ॥ ३१६ ॥ मनागवसरान्वेक्षी स्थितस्तावद्विशङ्करः । उदयश्यामयुद्धासि चूडामणिनिभो बभौ ॥  
२१७ ॥ दशाननोप्यतिक्वाते तत्र स्याद्विनससके । सीता कीदृगवस्थेति चिंतयन् दीपिकाश्रुतः ॥ ३१८ ॥ दीव्यकल्पद्रुमोपेतनीलाद्रिखि जगम । निरी-  
क्षितुं तदंबायात्कटांतःपुरान्वितः ॥ ३१९ ॥ मद्भर्तुः कुशलोदत सश्रोण्यामि कदन्विति । मत्वा तां स्तिमिताकारां चिरं वीक्ष्य सविस्मयः ॥ ३२० ॥  
न कंचिक्वदशी स्त्रीषु पतिं भक्तेति चिंतयन् । अपसृत्य स्थितः किंचिद् दूतीं मजरिकाभिधा ॥ ३२१ ॥ प्रहोत्तदस्मिन्प्रागपरिक्षातुं विवेकिनी । जानकीं  
विनयेनासौ प्रपथ शृणु मद्बच ॥ ३२२ ॥ भट्टारिके खगेंद्रस्य खेचरेंद्रप्रियात्मजाः । देव्यं पंच सहस्राणि त्वत्समाना मनोरमाः ॥ ३२३ ॥ तासां त्व

क्रोध उस कार्यमें अवश्य ही विघ्नकारक होता है ॥ ३१५ ॥ इसलिये असमयमें क्रोध करना ठीक नहीं है इसतरह  
क्षमा धारणकर सती सीताको अपने आनेका समाचार बतलानेके लिये थोड़ी देरतक समयकी प्रतिक्षा करता हुआ  
वहीं ठहर गया इतनेमें ही उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए चूडामणि रत्नके समान चंद्रमा उदय हुआ ॥ ३१६-  
३१७ ॥ उसी समय रावणने सोचा कि सीताको लाये आज सात दिन होगये उमकी अब क्या दशा है सो भी चल-  
कर देखना चाहिये यही सोचकर और अनेक दीपकोंके साथ साथ कल्पवृक्षों सहित चलते हुए नीलपर्वतके ममान दे-  
दीप्यमान होता हुआ अपने सब अंत पुरके ( रणवासके ) साथ साथ उत्तंठित होकर सीताके देखनेके लिये आया ॥  
३१८-३१९ ॥ उससमय सीता “मैं अपने पतिके राजीखुशीके समाचार कब सुनूंगी” यही सोचती हुई निश्चल बै-  
ठी थी उसे देखकर वह बहुत ही आश्चर्य करने लगा और सोचने लगा कि “संसारकी स्त्रियोंमें पतिकी भक्ति करने-  
वाली मैंने तो अन्य कोई ऐसी स्त्री नहीं देखी है” इसलिये वह कुछ हटकर ठहर गया । उसने सीताका  
अभिप्राय जाननेके लिये बड़ी बुद्धिमती मंजरिका नामकी दूती भेजी । वह दूती सीताके पास जाकर बड़ी  
विनयसे कहने लगी कि हे देवी तू मेरे वचन सुन ॥ ३२०-३२२ ॥ हे बुद्धिमती इस विद्याधरोंके  
राजा रावणके तेरे ही समान सुंदरी विद्याधर राजाओंकी पुत्रियें पांच हजार रानी हैं ॥ ३२३ ॥ तू उन सबकी  
स्वामिनी होकर महादेवी पदपर विराजमान हो और तीन खड्के स्वामीके श्रीलक्षण सहित वक्षःस्थलपर बहुत  
दिनतक क्रीडाकर ॥ ३२४ ॥ यह तेरा यौवन विजलीके समान चंचल है इसे तू व्यर्थ मत खो । “अब रामचंद्र  
रावणके हाथसे तुझे ले जायेंगे” इस वितर्कका तू ऐसा ही निष्फल समझ जैसा कि कदंबोंका बड़ा भारी बन

पद प्रायो मन्वानः सपदान्वा ॥ ३०४ ॥ उदयास्तमयो गित्य देहिनामिति रात्रि । रविर्दया निरूपेण मयस्तर्हि तिष्ठान् ॥ ३०५ ॥ इतो रामन् ग-  
त्वाति पुराधिमगोपुरं । आरुण्य लोकमानोयं अमरावराचितं ॥ ३०६ ॥ न नर्तकं नाम नन्दनं नन्दनोपम । फलप्रयुग्गारासनवक्रनादित् ॥ ३०७ ॥ अर्जुन-  
कः ॥ ३०९ ॥ तत्रैकस्मिन् समासयुक्ते विद्यापरीजने । गामादिभिर्नैकीकृत्युनिताकारैरितिभिः ॥ ३१० ॥ मन्त्रे हो रवेर्देवतं । गतिमगोपुरं । हृद्गन्ध मगान् धियात् सप्रनोदः गर्कितु  
३१२ अभिरुर्नन्देण, मम पुण्योदयादिति । तदर्थमसुगन्धराणो रायणपरिणा ॥ ३१३ ॥ कच्यन्तीग र्जनेन गणितेन, मगान् । शोचामितमनिलो-  
सब ओरसे चिंतवन करता हुआ वह रामचंद्रका दूत हनुमान अंतःपुरके पथिकी ओर के बड़े दरवाजेपर जा चढ़ा और  
जिमपर अनेक अमर गुंजार कर रहे हैं वहांसे देखने लगा जोफल और फूलोंके बोलसे नन्दन नामतावन देगा । वह नन्दन मंद और सुगं-  
धित बहते हुए वायुसे उड़ती हुई अनेक फूलोंकी झुल्लिमें, कृत्रिम बने हुए पर्वत सरोवर चावडी और लताओंके सुंदर  
मंडपोंसे, कामदेवकी उदीपन करनेवाले देवोंसे तथा और भी बहुतसी वस्तुओंसे बड़ागी मनोहर था, उसे देकरकर  
वह प्रसन्न होकर तथा कुछ कौतुक वा आश्चर्य करता हुआ थोड़ी देर तक ठहर गया ॥ ३०४-९ ॥ उसी वनमें किसी  
समीपके ही स्थानपर सीताके वृक्षके नीचे सीता बैठी थी, साम दाम दंड भेद आदि सब उपार्जने उसे वश करने  
के लिये इसारोंकी जाननेवाली अनेक विद्याधरियं उसके चारों ओर बैठी थीं, वह जोकसे व्याकुल हो रही थी तथा  
“कुलकी रक्षा करनेके लिये जीर्ण शीर्ण होकर तथा मरकर भी प्रयत्नके माध शीलरूप मालाकी खुर रक्षा करूंगी”  
इसी बातका वह ध्यान कर रही थी उस सीताकी देगुकर रामचंद्रके बताये हुए चिन्तोंमें उसे पट्टिचाना और विचार  
करने लगा कि यह वही सीता है जिसे रावण ले आया है मेरे पुण्यकर्मके उदयसे इसके दर्शन हुए हैं और इसे देख  
इसे दुःख दिया है इसप्रकार विचार करते हुए उसका चिन्तन शोकसे भर गया और जोप्रसे लाल हो गया तथापि वह  
नीतिमार्गकी जाननेमें पडित था ॥ ३१०-३१४ ॥ इसलिये फिर सोचने लगा कि प्रारंभ किये हुए कामको सिद्ध क-  
रनेके लिये जो विवेकी पुरुष तैयार होते हैं उन्हें कोष करना नीतिकारोंने एक तरहका व्यसन बतलाया है और वह

संशय ॥ २९२ ॥ इति मत्वा खनार्मांकमुद्रिका मतिप्रवेष्टसी । षण्णक्षितिरिति व्याफमुक्त्वा तस्मै देशे नम ॥ २९३ ॥ स रामचरणामोखं विनम्य नग-  
नार्तर । समुत्पत्य समुल्लङ्घ्य समुद्रं सत्रिकूटकं ॥ २९४ ॥ द्विषट्कयोजनायामं नवयोजनविस्तृतं । द्वात्रिंशद्भूषोरोपेत रत्नप्राकारवेष्टितं ॥ २९५ ॥ नानाम-  
वनसंकीर्ण मणितोरणभास्वरं । महामेरुसमुत्पुग रावणावासाभाजितं ॥ २९६ ॥ अस्मिन्सुकोकिजालार्पलसङ्कुसुमपङ्कजैः । सरागहासं गायद्भूमिचोर्णानैर्मनोहरं ॥  
२९७ ॥ लकानगरमासाय सीतान्वेषणतत्पर । युहीतभ्रमराकारो दक्षाननसमागृहे ॥ २९८ ॥ इद्रजिप्रमुखान् भूपङ्कुमारान् वीक्ष्य सावरं । मंदोदरी-  
प्रक्षुत्तद्वनिताश्च निरूपयन् ॥ २९९ ॥ नताखिलस्वगाधीशमौलिमाळाचिंतकम् । मध्येसिंहासन सिद्धधिक्रम शक्तसन्निभं ॥ ३०० ॥ नीलाद्रिमिव गंगोहतरं-  
गैश्चमरीवहैः । दध्नुयमानमालोक्य रावण रावितद्विप ॥ ३०१ ॥ अहो पापस्य कोट्येव विपाकोयमपीदृश । किल धिग्धर्ममुल्लङ्घ्य परदारामिलाधुकः ॥  
३०२ ॥ ध्रुव तन्नारयेनोक्तमकालमरणं ध्रुवं । भावीति भावयन् सीता तत्सभागामलक्षयन् ॥ ३०३ ॥ मंदमंदप्रमे भानौ दिने सति दिनालये । सहायस-

मकानोसे संकीर्ण थी, मणियोंके तोरणोंसे सुशोभित थी, महामेरुके समान ऊँचे ऊँचे रावणके मकानोंसे सुंदर थी, भ्रमर तथा नर कोइलोंकी मधुर आवाजसे गाते हुएके समान अनेक उद्यानोंसे वह मनोहर थी और दैदीप्यमान फूल तथा पत्तोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानों रागपूर्वक हंस रही ही हो । ऐसी लंकामें पहुचकर वह सीताके दृढ़नेमें लगगया, उसने भ्रमरका रूप धारण कर लिया और फिर रावणके सभामवनमें गया ॥ २९४-२९८ ॥ वहाँपर उसने बड़े आदरसे इंद्रजीत आदि अनेक राजकुमारोंको देखा और फिर मंदोदरी आदि रावणकी रानियोंको भी देखा ॥ २९९ ॥ तदनंतर नमस्कार करते हुए समस्त विद्याधरोंके राजाओंके मुकुटोंके समूहसे जिसके चरणरुमल पूजे जा रहे हैं, जो सिंहके समान पराक्रमी है, इंद्रके समान सुशोभित है, सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान है तथा नील पर्वतके समान जिसके शरीरपर गंगा नदीकी बड़ी बड़ी तरंगोंके समान अनेक चमर दुलारा जा रहे हैं और जो शत्रुओंका हलानेवाला है ऐसे रावणको देखा ॥ ३००-३०१ ॥ रावणको देखकर वह सोचने लगा कि हाय ! यह इस-तरहका किसी पाप कर्मका फल है, अवश्य ही इसे बार बार धिक्कार है क्योंकि इसने धर्मका उल्लंघनकर परस्त्रीकी इच्छा की है ॥ ३०२ ॥ नारदने जो कहा था कि इसका अकालमरण अवश्य होनेवाला है सो बात सर्वथा सत्य है इसतरह विचार करते हुए उस सभामें सीता नहीं देख पड़ी ॥ ३०३ ॥ जिससमय सूर्यका ताप मंद पड़गया वह दिन होगया दिन अस्त होनेका समय होगया उस समय जीवोंकी कारणरूप संपदाओं और वास्तविक संपदाओंको सदा उदय और अस्तरूप मानता हुआ सूर्य मानों रावणको यही उपदेश देता हुआ चला जा रहा है इसी विषयको

कदाचिदेतेन सह सम्बेदयन् । सिद्धकृत्यादिषु तीर्थेष्वेवंप्रसिद्धा यतः ॥ २८१ ॥ अथर्वं सरस्वा यत्तत्रा शिवतोयम् शुभभाजनः । ब्रह्मसुन्दरं कौरी  
शुभयज्ञोपवीतकः ॥ २८३ ॥ अथर्वकः ब्रह्मवर्चोपवीतकमण्डपः । ब्रह्मसुन्दरा यत्तत्रा नैष्ठिकब्रह्मण्डपः ॥ २८३ ॥ नरदीपि विष्णुभक्तो रंद्रयानरराजनः ।  
अवतीर्य नमोभागात्परीत्य जितमिदं ॥ २८४ ॥ सुसुपागच्छेत्तत्र जितमननरं । मयुरेल तमस्तु किं नुमे ध्यानभाजनः ॥ २८५ ॥ सुसुपागे न  
वेलेनद्वन्द्वनीदीपः । रामनक्षत्रावर्तसंस्तसामितागिरात् ॥ २८६ ॥ गतिगतिं ब्रह्मैवमस्य रामो रंजीवः । भक्तमते च मन्त्रेण विचिन्तन-  
नोरनो ॥ २८७ ॥ सिद्धर्तुं वने नीक्ष्य रामं गो मयवाभूत् । तद्वन्द्वनस्य गच्छामिगमोर्षितं ॥ २८८ ॥ भर्तृरिति गोपुत्रा विष्णुः भर्तृरिति न  
इति तद्वन्द्वनात्परोक्षि लो प्रतीतिर ॥ २८९ ॥ तौ च तद्वन्द्वनात्पुनरुत्तितां चन्द्रमुत्तरे । अथ निबन्धकम्य द्रव्यमनरद्वयः ॥ २९० ॥ यत्र  
देवोस्ति चेद्वेद्या मानमन्येयमागच्छ । प्रत्ययार्थमाथेयमभिज्ञानं मयिगते । इति तेनोक्तमाकर्ष्य विन्दन्मननरद्वयः । नयानि रंजितेन प्रमेयवत्सल

मुनि श्रेष्ठे अपनी जगह ( युवगजपद ) मिलेगी या नहीं । मेरे इन बचनोंको सुनकर उन्होंने कहा या कि रामचंद्र  
आर लक्ष्मणको बहुत शीघ्र ही आधे भरतका स्वामीपना ( बलमय नागयणपद ) मिलनेवाला है यदि तू उनका  
बाहर जानेका कुछ काम करेगा तो तेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे । तेरे मेवनेका क्या काम है सो भी मैं बतलाये  
देवा हूं । रामकी रानी सीता वनमें विहार कर रही थी उसे देखकर रावण मायाबासीसे हरण कर लेगया है इसलिये  
राम लक्ष्मण दोनों ही भाई बाज अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकेलिये लंकामें मेवने योग्य किसी पुरुषको ढूँढ रहे हैं  
उनके बचन सुनकर हम दोनोंको संतोष हुआ और हम दोनों ही वहाँ आपके समीप आए हैं ॥ २८१-२८९ ॥  
रामलक्ष्मण दोनोंने उनकी बातें सुनकर यथायोग्य रीतिसे उनका आदर बतकार किया । तदनंतर प्रबंधनका युव  
अभितवेग ( अणुमान् अर्धवा हनुमान ) निवेदन करने लगा कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सीता देवीका  
स्थान ढूँढूँ । हे महाराज आप उनके पहिचाननेकेलिये कुछ बिन्द बतला दीजिये ॥ २९०-२९१ ॥ इसतराह हनुमान-  
के बचन सुनकर राजा रामचंद्रने यह मानलिया कि बिनामिके वंजरूपी आकाशमें चद्रमाके समान इस हनुमानसे  
निसंदेह मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा फिर रूप आदिसे मेरी प्यारी सीता ऐसी है ऐसी है इसतराहके कुछ बिन्द  
बतलाकर अपने नामकी अंगुठी उसे दी ॥ २९२-२९३ ॥ वह हनुमान रामचंद्रके चरण कमलोंको नमस्कारकर आ-  
काश मार्गसे चलने लगा और समुद्र तथा त्रिशूलाचलको उल्लंघनकर लंका नगरमें जा पहुँचा । वह लंका शहर यो-  
जन लंबी थी, नौ योजन चौड़ी थी, उसमें गतीस बड़े बड़े दरवाजे थे, गतीके कोठा परकोठा थे, वह अनेक तराहके

स्तेनैव सम्यगवब्रवीत् । खगादिर्दक्षिणश्रेण्या पुर फिलकिलाह्वय ॥ २७१ ॥ तदधीशो वलीद्राहो विह्वयातः खंचेरैष्यमा । प्रियायुसुदरी तस्य प्रिया तस्यां तनुद्वयौ ॥ २७२ ॥ बालिमुग्रोवनामानावजायावहि-भूभुज । पितृपुषितेऽजायताग्रजस्याधिराजता ॥ २७३ ॥ ममापि युवराजत्वमजनिष्ठ क्रमगतं । एव गच्छति मत्स्थानमपहत्य मदग्रजः ॥ २७४ ॥ लोभक्रांताघयो देशात्स निर्वासयतिस्म मां । एषोपि दक्षिणश्रेण्या विद्युत्क्रांतापुरेशिनः ॥ २७५ ॥ प्रमज्जनखपाधीशस्तनुजोमितवेगावाक् । त्रिधाविद्योर्नानादेव्यामव्याहृतपराक्रमः ॥ २७६ ॥ नभश्चक्रुमारणा समुदाये परस्परं । कदाचिदात्मविद्यानामुभावरीक्षणे ॥ २७७ ॥ विजयाद्दिगिरेर्बुद्धिर्न क्रमं विन्यस्य दक्षिण । वामपादेन भास्वतमपहत्य पुनस्तदा ॥ २७८ ॥ नसरेणुप्रमाणं स्वं शरीरमकृताद्भुतं । ततः प्रसृति विद्येशैर्विस्मयाहितमानसैः ॥ २७९ ॥ अणुमानिति हर्षेण निश्चिलैरभ्यधात्ययं । पीतव्याकरणाभोधिः सखा प्राणाधिको मम ॥ २८० ॥ गत्वा राज्यका त्याग करदिया तब बड़े होनेसे वालिको राज्य मिला था और मुझे अनुक्रमसे प्राप्त होनेवाला युवराजपद मिला था । इसतरह कितना ही काल बीत जानेपर मेरे बड़े भाईने मेरा युवराज पद छीन लिया और लोभके वशीभूत होकर मुझे घरसे निकाल दिया । यह मेरे समीप बैठा हुआ भी दक्षिण श्रेणीके विद्युत्क्रांता नगरके राजा प्रमंजन विद्यावरका पुत्र है, अमितवेग इसका नाम है यह अंजनादेवीसे उत्पन्न हुआ है तीनों तरहकी विद्याएं जानता है और इसका पराक्रम अखंडनीय है ॥ २७०-२७६ ॥ किसी एक समय विद्याघर कुमारोंका समुदाय परस्पर अपनी अपनी विद्याओंके शक्तियोंकी परीक्षा करनेकेलिये विजयाब्द पर्वतके मस्तकपर गया था, वहाँपर इसने अपना दहिना पैर तो पर्वतपर ही रखवा और बायें पैरको बढाकर उससे सूर्यमंडलमें जाकर ठोकर लगाई फिर इसने अपना शरीर अद्भुत त्रसरेणुके समान बना लिया । उससमयसे लेकर चित्तमें अत्यंत आश्चर्य करते हुए सब विद्याधरोंने बड़ी प्रमत्नता से इसका नाम अणुमान् रखवा है । इसने व्याकरणरूपी समुद्र पी डाला है और मेरा प्राणोंसे भी अधिक प्यारा मित्र है ॥ २७७-२८० ॥ किसी एक दिन मैं इसके साथ सम्मेद शिखर पर्वतपर गया था वहाँपर सिद्धकूट नामके तीर्थ क्षेत्रपर बहुतसी प्रतिमाओंकी पूजा की थी. भक्तिपूर्वक बंदना की थी और वहाँपर बड़े शुभभावों सहित बैठ गया था । दैव योगसे उसीसमय वहाँ नारद आये वे जटाओंका मुकुट पहिने थे गलेमें यज्ञोपवीत था, उनके कपायले बस्त्र थे, बगलमें रत्नोंका कमंडलु था, हाथमें छतरी थी और वे नैष्ठिक ब्रह्मचारीके व्रत पालन करनेवाले थे । इसीतरह उनकी चोटी लटक रही थी और रौद्रध्यानमें वे तल्लीन हो गये थे । आकाशमें उतरकर उन्होंने जिनमंदिरकी प्रदक्षिणा दी और एक जगह भगवानका स्तोत्र करते हुए बैठ गये । उनके पास जाकर मैंने पूछा था कि हे



प्राहिणोषु कुमारोऽप्य दूतं त्वं धीर्यमिति ॥ २६१ ॥ पितृलेखार्थमाध्याय स्वदेशोक्त कुयोद्धतः । अतस्तस्याकमारोहं स लक्ष्यः किमिच्छति ॥ २६२ ॥ शशस्य  
सिंहयोतेन किं विरोधेति जीविका । सत्यमासन्नमृत्युता सद्यो विच्छसन मतेः ॥ २६३ ॥ इदमुद्धतोदितै कोपमाविद्येकेय लक्ष्मणः । जनको भरतः शत्रुमय  
तद्वद्वत्कथुत ॥ २६४ ॥ सप्राप्य रामव सोपचारमालोक्य युक्तिमतः । वाक्यै शोकं समनेतुं तदैव ते समनुवन् ॥ २६५ ॥ चैवैषेण रावणस्यैव परदार-  
पहारिणः । पराभवः परिदोषा दुर्गतामर्षवर्तनः ॥ २६६ ॥ सीताशयेन दाढ्योऽपि निर्विचारसकार्यकृत् । महापापकृतां पापमस्मिन्नेव फलिष्यति ॥  
२६७ ॥ उपायधिल्यता कोपि सीताप्रत्यायनं प्रति । इति तैर्विधितो राम सुतोऽस्थित इवामवत् ॥ २६८ ॥ तत्काले खेचरद्वंद्वैवार्तिकनिवेदितः । वृषा-  
दुगतमागत्य यथाभित्तमलोक्यते ॥ २६९ ॥ भविष्यद्वलदेवोऽपि कृतयोगसंस्मदः । एतदागमनं कस्मात्कौ भवतौ कुमारौ ॥ २७० ॥ इत्यन्ययुक्त सुग्रीव  
पिताके पत्रका अर्थ समझकर रामचंद्रका शोक तो रुक गया और वे क्रोधसे उद्धत होकर कहने लगे कि रावण मृत्यु-  
की गोदमें सोनेके लिये क्या चाहता है ॥ २६१ ॥ सिंहके वंशके साथ विरोध करनेसे क्या खरगोशकी जीविका चल  
सकती है ? अथवा ठीक है, क्योंकि जिनकी मृत्यु समीप है उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है ॥ २६३ ॥ इसतरह  
उद्धत वचन कहकर उन्होंने अपना क्रोध प्रगट किया । तदनंतर लक्ष्मण, जनक, भरत और शत्रुघ्न इस समाचारको  
सुनकर रामचंद्रके समीप आए, वही विनयसे उनसे मिले और युक्तियोंसे मरे हुए वचनोंसे उनका शोक दूर करनेके  
लिये वे सब उससमय इसप्रकार कहने लगे ॥ २६४-२६५ ॥ कि रावण ने जो इसतरह चोरीकर परस्वीका हारण  
किया है इससे उसका ही तिरस्कार हुआ है । वह सबका शत्रु है, दुष्ट है और अवर्मकी प्रवृत्ति करनेवाला है ॥ २६६ ॥  
वह सीताके आपसे जलने योग्य है और बिना विचारे ही अक्रियाका करनेवाला है । महापाप करनेवालोंका पाप इसी  
लोकमें अपना फल दे लेता है ॥ २६७ ॥ अब सीताकी वापिस लानेका कोई उपाय सोचना चाहिये ॥ इसतरह कह-  
कर उन लोगोंने रामचंद्रको बढाया तब रामचंद्र सोतेसे उठे हुएके समान सावधान हुए ॥ २६८ ॥ इसीसमय रामसे  
मिलनेके लिये दो विद्याधर आए, द्वारपालने आकर रामको खबर दी, रामकी आज्ञासे वे भीतर बुलाये गये और  
उन्होंने यथायोग्य रीतिसे रामके दर्शन किये ॥ २६९ ॥ होनहार बलभद्र राम उनसे मिलकर प्रसन्न हुए और पूछने  
लगे कि आप दोनों ही कुमार कौन हैं और कहाँसे आए हैं । इसके उत्तरमें सुग्रीव अच्छी रीतिसे कहने लगा कि  
विजयार्च पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक किलकिल नामका नगर है उसमें सब विद्याधरोंमें प्रसिद्ध बलींद्र नामका वि-  
द्याधर राज्य करता था । उसकी पियंगुसुंदरी नामकी रानीसे बालि और सुग्रीव नामके दो पुत्र हुए थे । ॥ २७० ॥ नीताने

२५० ॥ मंडु द्रुतसुखदेतत्पापणीयमिति स्फुटं । तत्राज्ञाज्ञागतोस्मीति लेखगर्मकरंडकं ॥ २५१ ॥ न्यघाच्चाम्रे तदादाय शिरसा रघुनंदन । विमोच्य पत्रमनस्यं स्वयमित्यमवाचयत् ॥ २५२ ॥ इतो विनीतनगरात् श्रीमतः श्रीमता पतिः । प्रेमप्रसारितात्मीयभुजाभ्यां स्वप्रियात्मजौ ॥ २५३ ॥ परिष्वज्यानुयुग्मागक्षेमवार्त्तां तत परं । इदमाज्ञापयत्यत्र दक्षिणाढ्यतरस्थिताः ॥ २५४ ॥ षट्पञ्चाशन्महाद्वीपाश्चक्रवर्त्यनुवृत्तैः । केशवाश्च समाहात्म्यास्तदूर्ध्वपरिरक्षिण ॥ २५५ ॥ द्वीगोस्ति तेषु लक्षाहयस्त्रिकूटादिविभूषित । तस्मिन् विनमिसतानविद्याधरेश्वरैश्चिनां ॥ २५६ ॥ चतुष्टये व्यतिक्रान्ते प्रजापालनलोलुप । रावणाख्य खलौ लोककटक स्रोपु लपट ॥ २५७ ॥ तनोभूदृग्दया तस्य नारदेन रणेच्छुना । रूपलावण्यकर्त्तव्यदिकथित क्षितिजाश्रितं ॥ २५८ ॥ तदव मदनामोघवाणनिर्भयमानस । पैलस्तनो च्वस्तभीर्धृशो मायावी न्यायदूग ॥ २५९ ॥ अनन्यवेषमागत्य सोपायं स्वा पुरीं सती । अनेषीथावदस्मकमुद्योगममयो भवेत् ॥ २६० ॥ तावत्स्वकायसरक्षा कर्तव्येति प्रियां प्रति ।

२४८-२५० ॥ यह सुनते ही महाराजने आज्ञा दी कि दूतके द्वारा यह समाचार शीघ्र ही रामचंद्रके पास भेज दो । हे देव ! उन्हींकी आज्ञासे मैं यहाँ आया हूँ यह कहकर उसने पत्रमहित पिटारा उनके सामने रख दिया । रामचंद्रने वह पिटारा लेकर शिरसे लगा लिया और उसमेंका पत्र निहालकर वे स्वयं वाचने लगे ॥ २५१-२५२ ॥ उसमें लिखा था कि इस श्रीमान् अयोध्या नगरसे सब श्रीमानोंके स्वामी राजा दशरथ प्रेमसे फैलाई हुई अपनी दोनों भुजाओंसे अपने अपने दोनों प्यारे पुत्रोंका आर्लगनकर तथा उन दोनोंके शरीरकी क्षेम कुशल पूछकर यह आज्ञा देते हैं कि यहाँसे दक्षिणकी ओर समुद्रके मध्यमें छपन महाद्वीप हैं वे सब चक्रवर्त्तीकी आज्ञामें रहते हैं तथा नारायण अपने प्रतापसे उनमेंसे आधेकी रक्षा करते हैं ॥ २५३-२५५ ॥ उन द्वीपोंमें एक लंका नामका द्वीप है जो कि त्रिकूटाचल पर्वतसे सुशोभित है । उसी लंका द्वीपमें राजा विनमिके वशमें जो सहस्रग्रीव आदि चार राजा हुए थे उनके बाद अब रावण नामका राजा राज्य करता है । वह रावण प्रजाके पालन करनेमें लोलुपी है, दुष्ट है, लोगोंके लिये कांटा है और स्त्रियोंमें बड़ा ही लंपटी है किसी एक दिन युद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले नारदने उससे सीताके रूप लावण्य कांति आदिकी प्रशंसाकी ॥ २५६-२५८ ॥ उसीसमय कामदेवके अमोघ वाणसे रावणका चित्त भिद गया, उसकी बुद्धि और धैर्य सब नष्ट हो गया, वह मायाचारी और न्यायसे कोसों दूर रहनेवाला तो है ही इसलिये वह रामका ही रूप धारण कर बड़े उपायसे सती सीताको ले गया और उसने अपने नगरमें लेजाकर उसे रक्खा है इसलिये जबतक उसके लानेके लिये उद्योग करनेका समय आवे तबतक वह अपने शरीरकी रक्षा करती रहे यह समाचार पहुचानेके लिये और उसे धीरज देनेके लिये अपना कोई कुमार वा दूत उसके पास भेजना चाहिये ॥ २५९-२६१ ॥

देवी छायेव ते तस्मात्त्वमेवैषीति सोभ्यधात् ॥ २४१ ॥ इति तद्वचनाल्लभ्यस्था राम समग्रहीत् । मूर्च्छा सीता सपत्नीव मोहयन्ती मनः क्षण ॥ २४२ ॥ तदा शीतक्रिया सीतासखीव सहसा द्रुप । व्यभ्रंश्यन्तत् सोपि क्व सीतेति गवुद्धवान् ॥ २४३ ॥ देवीं परिजनः सर्वं समंतात्प्रतिभूह । अन्वेयन् वि-  
लोक्योत्तरीयं वशविदारित ॥ २४४ ॥ तस्यास्तदा तदानीय राघवाय समर्पयत् । उत्तरीयायुक्त देव्या भवेत्येतदित कुत ॥ २४५ ॥ इति निष्कातयत्तत्वं  
शोकव्याकुलमानसः । सहजुजस्तत्तर्था कुर्वन्नुर्वीथरः स्थित ॥ २४६ ॥ तत्क्षणे सत्रमाकृतो द्रुतो दशरथात्किात् । त प्राप्य विनतो मूर्च्छा कार्येभि-  
त्यभाषयत् ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा रोहिणीं राहौ प्रयाते गगनतारं । एकाकिन तुयाराशु भ्राम्यन्तं समलोकयि ॥ २४८ ॥ खण्णि फलमेतत्स्येह्यन्वयुक्त मही-  
पति । पुरोहितमग्रा चाह सीतामय दधाननः ॥ २४९ ॥ गृहीत्वायात्स मायावी राम स्वामी च कानने । ता समन्वेयिषु शोकादकुलो भ्राम्यति स्वयं ॥

रामचंद्र स्वयं परिजनोंके साथ आसिले, और व्याकुल होकर उनसे पूछने लगे कि मेरी प्यारी जानकी कहाँ हैं ॥  
२३८-२४०॥ इसके उत्तरमें उनलोगोंने कहा कि हे देव ! हमलोगोंने न तो आपको देखा और न देवी सीताको देखा,  
सीता छायाके समान आपके ही पास थी इसलिये उनके विषयमें आपही जानते होंगे ॥ २४१ ॥ इतनी बात सुनते ही  
अवकाश पाकर क्षण भरके लिये मनको मोहित करती हुई सीताकी मयनीके ( सौतके ) ममान मूर्छाने आकर रामचंद्र  
को पकड़ लिया मावार्थ-रामचंद्रको मूर्छा आगई ॥ २४२ ॥ उसीसमय सीताकी मखीकेसमान शीतोपचार क्रियाने  
अकस्मात् आकर उस मूर्छासे रामचंद्रको अलग कर दिया रामचंद्र सावधान हुए और फिर पूछने लगे कि सीता  
कहाँ है ॥ २४३ ॥ परिजनके सब लोग चारों ओर प्रत्येक दृष्टके नीचे सीताको ढूँढने लगे, सीता तो नहीं मिली परंतु  
बांसमें फटा हुआ उसका एक ओढ़नेका कपड़ा मिला, उसे वे लोग ले आए और रामचंद्रको लाकर सोंप दिया ।  
रामचंद्र सोचने लगे कि यह देवीके ओढ़नेका कपड़ा यहाँ कैसे आगया, तब वे उसके वास्तविक समाचारको सम-  
झगये और व्याकुल चित्त होकर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ चिंता करते हुए वहीं बैठ गये ॥ २४४-२४६ ॥ उसी-  
समय राजा दशरथके समीपसे आश्वर्य करता हुआ एक दूत आया, मस्तक नवाकर रामचंद्रके पास गया और नीचे  
लिखे अनुसार अपना कार्य कहने लगा ॥ २४७ ॥ कि महाराज दशरथने आज स्वप्नमें देखा था कि राहु चंद्रमाकी  
रानी रोहिणीको लेकर आकाशमें चला गया है और अकेला चंद्रमा इधर उभर घूम रहा है, उसीसमय महाराजने  
पुरोहितको बुलाकर पूछा कि इन स्वप्नोंका फल क्या है तब पुरोहितने उत्तर दिया था कि आज मायाचारी रावण  
सीताको हर ले गया है, और स्वामी रामचंद्र वनमें उसे ढूँढते हुए शोकसे व्याकुल होकर इधर उधर भटक रहे हैं ॥

अभिभूति सशीलानामत्रैव फलदायिनी ॥ २३० ॥ उपायाद्य पुरेभूवन् बहवोऽशुभसूचका । लोकद्वयाहितं वाढमयवाश्च युगावधि ॥ २३१ ॥ मुच्यता मक्षिणं यावन्न चेदं रुढिमृच्छति । इति युक्तिमतीं वाणीमुक्तो मध्यादिमितादा ॥ २३२ ॥ प्रत्यभाषत लकेशो यूय युक्तिविरोधि किं । अस्थूला वदतव च प्रत्यक्षे का विचाणा ॥ २३३ ॥ चक्राक्ष ममुपन्न सीतापहरणेन मे । षट्चन्द्रस्याधिपत्यं च तेन वित्य करस्थित ॥ २३४ ॥ स्वयं गृहगतता लक्ष्मीं हन्यत्यर्धेन को विधी । इति तद्गणितं भुन्वा व्यरमन् हितवादिनः ॥ २३५ ॥ इतः परिजनों राम मायामणिपुण्ड्रानुग । विभिने नष्टदिग्भागं सूर्यस्ताच-लमेयुषि ॥ २३६ ॥ अष्टद्वन्द्विष्य सीतां च वंमनस्यमगात्तरां । सहा सूनोर्वियोगोपि स्वाभिनः केन सहाते ॥ २३७ ॥ भानावुदयमायाति मर्त्यलोकैक-चक्षुषि । ध्वाते स्मियेव त्रियाते दलतीः३३३जराशिशु ॥ २३८ ॥ घटामटति क्रोकाना युग्मे युग्मद्विषा मुदा । अर्थं शब्देन वा योगं साधुना जानकीप्रियः ॥ २३९ ॥ स्वयं परिजनेनापि भास्करो दिवसेन वा । दृष्ट्वा त मत्प्रिया क्वेति नृपः पटुच्छ साकुल ॥ २४० ॥ देव देवी च देवो वा नास्माभिरवलोकितः ।

में अशुभको सूचित करनेवाले बहुतसे उत्पाद हो रहे हैं । यह काम दोनों लोकोंमें अहित उत्पन्न करनेवाला है और युगपर्यंत बहुत भारी अपयश फलानेवाला है इसलिए आप इसे शीघ्र छोड़ दीजिये नहीं तो संसारमें यह एक रूढ़ि हो जायगी । हमतरह मंत्रियोंने बड़ी युक्तियोंसे भरे हुए वचन कहे रात्रण उनके प्रत्युत्तरमें कहने लगा कि आप लोग बिना कुछ सोचे विचारे ऐसे युक्तियोंके विरोधी वचन क्यों कहते हैं, प्रत्यक्ष फलमें विचार करनेकी क्या आवश्यकता है सीताके हरण करनेसे मेरे घरमें चक्राक्षकी उत्पत्ति हुई है और मुझे छहों खंडका स्वामीपना मिला है हाथ में रखे हुएके समान इस प्रत्यक्ष बात पर भी तो विचार करना चाहिये ॥ २२९-२३४ ॥ ऐसा कौन मूर्ख है जो घरमें आई हुई लक्ष्मीको पैरसे ठोकर दे इसतरह रावणके वचन सुनकर वे हितरूप वचन कहनेवाले मंत्री सब चुप होगये ॥ २३५ ॥

अथानतर—इधर रामचंद्र मायामयी मणियोंके बने हुए हिरणके पीछे चलेगये, जंगलमें दिशाओंका ज्ञान सब नष्ट होगया, सूर्य अस्ताचल पर्वतपर अस्त होगया, तब परिजन लोग सीता और रामचंद्रको न देखकर बड़ेही खेदखिन्न हुए सो ठीक ही है पुत्रका वियोग तो सहन किया भी जा सकता है परंतु स्वामीका वियोग मला कौन सह सकता है ॥ २३६-२३७ ॥ सवेरेके समय जब मर्त्यलोकके एक चक्षुके समान सूर्य उदय हुआ, डरकरही मानों अंधकार मच नष्ट होगया, कमल सब खिलगये, और जिसप्रकार साधु लोगोंके द्वाग अर्थ शब्दोंसे मिल जाता है उसी प्रकार परस्पर द्वेष रखनेवाले चक्रवर्तियोंके जोड़े परस्पर मिलगये तब जिस प्रकार सूर्य दिनके साथ मिल जाता है उसीप्रकार

श्रीलस्य सहन महनस्य मे । प्राणाः सता नहि प्राणा गुणाः प्राणाः त्रियास्तत ॥ २२१ ॥ तद्व्ययात्पात्याम्येतान् गुणप्राणान् जीविका । मूर्तिविन-  
शरी यातु विनाशमविनश्वरं ॥ २२२ ॥ विनश्यति न मे शील कुलशैलानुकारि तत् । इति प्रत्युत्तरं दत्वा गृहीत्वा सा व्रत तदा ॥ २२३ ॥ वंदिष्यामि न  
मोक्षे च यावन्न श्रयते मया । रामस्य क्षेमवार्तेति मनसालोच्य सुव्रता ॥ २२४ ॥ अवबोधितवैधव्यविरुद्धस्वल्पभूषण । यथार्थं चिंतयत्यास्त संतत  
सद्यते स्थितिं ॥ २२५ ॥ प्रादुरासत्तदोत्पाता लकाया किंकरा इव । तद्वर्चसिकालराजस्य समताङ्ग्यदायिनः ॥ २२६ ॥ उत्पन्नमायुधागारे चक्रं वा का-  
लचक्रवत् । यज्ञशालाप्रबद्धस्य वस्तकर्त्येव शाश्वल ॥ २२७ ॥ तदुत्पत्तिफलस्यादृशानवबोधः खगेक्षित्वा । ज्वलदारं महाचक्रं महातोयमजीजनत् ।  
२२८ ॥ रामो नाम बलो भावी लक्ष्मणोऽयुज्जातकायः । तस्य लब्धप्रतापी तौ द्वव्यमिमुखोदयौ ॥ २२९ ॥ सीता शीलवती नैय जीवती ते भविष्यति ।  
बया लाभ है सज्जनोंके प्राण प्राण नहीं हैं किंतु गुण ही प्राण हैं और इसलिये ही वे गुण अधिक प्रिय हैं । अतएव मैं  
उन प्राणोंका नाशकर इन गुण रूप प्राणोंकी रक्षा कस्सी गुणोंका नाशकर मैं अपनी जीविका (जीवन) की रक्षा  
नहीं कर सकती । यह मूर्ति वा शरीर तो विनश्वर है किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट होगा इसलिये इसका नाश  
भले ही हो जाओ परंतु कभी न नाश होनेवाला मेरा शील कभी नष्ट नहीं होसकता क्योंकि वह कुलपर्वतोंके समान  
अचल और अविनश्वर है । इसतरह उत्तर देकर उस सीताने उसी समय व्रत धारण कर लिया और अच्छी तरह व्रत  
पालन करनेवाली उसने मनमें यह भी प्रतिज्ञा करली कि जबतक रामचंद्रकी क्षेमकुशलकी बात न सुन लूंगी तबतक  
न तो मैं कुछ बोलूंगी और न कुछ खाऊंगी ॥ २१९-२२४ ॥ वह अपनको विधवा समझने लगी आभूषण आदि सब  
उतार दिये और निरंतर संसारकी दशाका यथार्थ स्वरूप चिंतवन करती हुई रहने लगी ॥ २२५ ॥ उसी समयसे लंका  
में उसे ही नाश करनेवाले मृत्युराजके भय देनेवाले किकरोंके समान चारों ओरसे उत्पन्न होने लगे ॥ २२६ ॥ जिस  
प्रकार यज्ञशालामें वंधे हुए वकरेलिये घासके छोटें छोटें अंकरे उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार रावणकी आयुधशालामें का-  
लचक्रके समान चक्र उत्पन्न हुआ ॥ २२७ ॥ उस चक्रके देखकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ २२८ ॥ तदनंतर मंत्रियोंने  
लिये जिसके अरे दीप्यमान हो रहे हैं ऐसे चक्रको देखकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ २२८ ॥ तदनंतर मंत्रियोंने  
उसे समझाया और कहा कि रामचंद्र होनहार बलभद्र हैं और लक्ष्मण उनका छोटा भाई नारायण है वे दोनों भाई  
बड़े ही प्रतापी हैं उनकी उन्नति और अभ्युदय मानने ही दिख रहा है सीता बड़ी शीलवती है और जीते जी आप-  
की कभी नहीं होसकती, शीलवती, स्त्रियोंका तिरस्कार करना इसी लोकमें बुरा फल दे देता है । इसके सिवाय नगर

सुखिरात्समर्पयत् ॥ २११ ॥ भयेन लब्धया रामविरहोपश्रुत्वा च सा । अगाद्राजसुता मृच्छामतिरुन्धप्रतिप्रिया ॥ २१२ ॥ सद्यः शीलवतीस्पर्शोद्दिवा गगन-  
गाभिनी । विनश्यतीति भीत्वासौ जानकीं स्वयमस्पर्शान् ॥ २१३ ॥ विद्याधरी समाहूय भीतांशुपवनदिभि । मूर्छामस्या निराकुंभमिति वक्ष्या न्ययोजयत् ॥  
उपायैस्तामिरुद्धूतमूर्च्छाबोचद्वारसुता । यूयं का कः प्रदेशीयमिति शंकाकुलाशया ॥ २१५ ॥ विद्याधर्या वयं लंकापुरमेतन्मतोदर । वनं रावणराजस्य  
त्रिखंडाभिपतेरिदं ॥ २१६ ॥ त्वादसी वनिता लोके न कार्ष्णिपुण्यभागिनी । महेशमिव गैलोमी सुभदेवादिभूषति ॥ २१७ ॥ श्रीमती वज्रजंघं वा त्वमेनं  
कुर्वते पति । स्वामिनी भव सौभाग्याद्रावणस्य महाश्रियः ॥ २१८ ॥ जानकी तामिरियुक्ता सुदृष्ट्वा रीनमानमा । किं गैलोम्यादयः शीलभंगेन ताः  
पतीन् स्वयं ॥ २१९ ॥ प्राग्भ्योव्यविकान् का वा विक्रीणंति गुणान् स्त्रिय । त्रिखंडस्याधिपोस्त्वस्तु षट्खंडस्याखिलस्य वा ॥ २२० ॥ किं तेन यदि

बहुत देरसे उस सीताको अपना इंद्रनील कांतिका शरीर दिखलाया ॥ २११ ॥ उसे देखतेही वह राजकन्या सीता  
भयसे लज्जासे और रामके विरहसे उत्पन्न हुए शोकसे ऐसी मूर्छित होगई कि जिसका उपाय करना भी बहुत कठिन  
होगया ॥ २१२ ॥ शीलवतीको, स्पर्श करनेसे आकाशगामिनी विद्या शीघ्र ही नष्ट होजायगी इसी डरसे रावणने स्वयं  
सीताका स्पर्श नहीं किया ॥ २१३ ॥ उसने अनेक चतुर विद्याधरियें बुलाई और आज्ञा दी कि शीतल वायु आदिसे  
शीघ्रही इसकी मूर्छाको दूर करो । इसतरह कहकर अनेक विद्याधरियोंको उसने नियुक्त किया ॥ २१४ ॥ अनेक उपायों  
कें करनेसे उसकी मूर्छा दूर हुई तब अनेक शंकाओंसे व्याकुल हुई वह सीता उन विद्याधरियोंसे पूछने लगी कि तुम  
कौन हो और यह जगह कौनसी है ॥ २१५ ॥ इसके उत्तरमें वे विद्याधरियें कहने लगीं कि हम विद्याधरियां हैं यह  
लंका नगर है और यह तीनखंडके स्वामी राजा रावणका मनोहर वन है ॥ २१६ ॥ इस संसारमें तेरे समान पुण्यशा-  
लिनी अन्य कोई स्त्री नहीं है, क्योंकि जिसप्रकार इंद्राणी इंद्रको पति बनाती है अथवा सुभद्राने प्रथम राजा भरत  
चक्रवर्तीको पति बनाया था अथवा श्रीमतीने वज्रजंघको पति बनाया था उसी प्रकार तू इस रावणको अपना पति  
बना तथा अपने सौभाग्यसे रावणकी महालक्ष्मीकी स्वामिनी हो ॥ २१७-२१८ ॥ उन विद्याधरियोंके ये वचन सुनकर  
सीता बहुत ही खेदस्त्रिप्त हुई उसका चित्त दीन होगया और वह कहने लगी कि क्या इंद्राणी सुभद्रा आदिने स्व-  
यं अपना शील भंगकर उनको पति बनाया था ? संसारमें ऐसी कौनसी स्त्रियां हैं जो अपने प्राणोंसे भी ध्यारे गुणों  
को बेच डालती हों । वह रावण चाहे तीन खंडका स्वामी हो, चाहे छह खंडका स्वामी हो और चाहे समस्त पृथ्वी-  
का स्वामी है यदि मेरे शोभास्वरूप वा मुझे विभूषित करनेवाले शीलव्रतका खंडन होता है तो उससे (रावणसे)

वैश्वदेवपुत्रः ॥ २०५ ॥ वदश्रित्यन्वगात्सोपि मृगोगादूगर्णागण । कुतः कृत्यपरामर्शः स्त्रीवशीकृतचेतसा ॥ २०२ ॥ लोकमानो नभो रामस्तुतामतिरूपय-  
न । तत्रैव तत्रैव विभ्रातो घटातनगतादिवत् ॥ २०३ ॥ अथातो रामरूपेण परिश्रुतो दशानन । सीतामिव पुरोधत्वा प्रहिनो हरिणो मया ॥ २०० ॥ वा-  
रुणीष्टिक् प्रिये पश्य विवसेपाश्रुमालिन । सिद्धतिलक न्यस्तं विप्रतीव विगृजते ॥ २०५ ॥ आरोह सिविका तस्मादंशु सुंदरी बंधुरां । पुरोगमनकालेय व-  
र्तते सुखगत्रये ॥ २०६ ॥ इत्यवादीसदाकर्ण सा मायाशिविकाकृति-विमान पुष्पक मोहादासरोह धरासुता ॥ २०७ ॥ राम वा तुंगारूढात्मान सप्रद-  
श्यन् । महर्गतमिव अंगं जनयन् उदितुर्महे ॥ २०८ ॥ ता भुजगीशिवानैर्गदुणयेन स्वयत्यवे । पतिव्रताग्रया पापी मायाचतुर्दशानन ॥ २०९ ॥ कमा-  
ह्वरामवाप्यनामवतार्य बनातरे । सद्यो माया निराकृत्य द्वापितानयनक्रम ॥ २१० ॥ इन्द्रीलच्छवि देह गूढार्थं शिष्यसत्ततेः । आचार्यो वा स तस्या स्व  
मायमृग ( कपटसे बना हुआ हरिण ) है बड़ी बड़ी कठिनतासे भले ही पकड़ा जा सके यह व्यर्थ ही खींचकर मुखे  
दूर ले जा रहा है ” इसतगह कहते हुए रामचंद्र उसके पीछे पीछे जाने लगे; थोड़ी देरके बादही वह उडकर  
आकाशमें चला गया । देखो जिनका चित्त खियोंके-वश होजाता है वे किसी कामका विचार नहीं कर सकते ॥  
२०१-२०२ ॥ जिस प्रकार घडेमें रखवा हुआ सर्प बड़ा दुखी होता है उसीप्रकार आकाशकी ओर देखते हुए  
और अपनी हीनता दिखलाते हुए रामचंद्र घबड़ाये हुएसे होकर वहींर ठहर गये ॥ २०३ ॥ इधर रावण रामका  
रूप धारणकर सीताके समीप आया तथा कहने लगा कि मैंने हिरण पकड़कर आगे भेज दिया है, हे प्रिये हम  
पश्चिम दिशाको देखो यह इस समय ऐसी सुशोभित हो रही है मानों इसने सूर्य मंडलको ही सिंदूरका तिलक बना-  
कर लगाया हो ॥ २०४-२०५ ॥ इसलिये हे सुंदरि अब तू इस सुंदर पालकीमें बैठ अब सुखकी रात वितानेकेलिये यह  
नगरमें जानेका समय आगया है ॥ २०६ ॥ रामका रूप धारण किये हुए रावणकी यह बात सुनकर सीता मोहनीय क-  
र्मके उदयसे जो पुष्पक विमान मायासे पालकीके आकार बन गया था उसीपर सवार हो गई ॥ २०७ ॥ रामचंद्रके  
मेवमें घोड़ेपर चढ़े हुए रावणने अपनी मायासे सीताको यह भी दिखला दिया कि घोड़ेपर चढ़े हुए राम पृथ्वीपर चल  
रहे हैं ॥ २०८ ॥ इसतरहके उपायसे वह पापी और मायाचारी रावण अपनी मृत्यु बुलानेके किये सर्पिणीके समान  
पतिव्रताओंमें शिरोमणि उस सीताको ले आया ॥ २०९ ॥ इसतगह अनुक्रमसे वह रावण लंकामें जा पहुंचा और उस-  
ने सीताको किसी बन्में उतार दिया । रावणने शीघ्र ही अपनी माया भी दूर कर दी और उसके लानेका सब हाल  
भी उसे बतला दिया ॥ २१० ॥ जिसप्रकार आचार्य अपने शिष्योंको गूढ अर्थ दिखलाता है उसी प्रकार उस रावण ने



तीक्ष्णित न शक्य मन्मथेन च ॥ १९० ॥ इत्याख्यामायाद पापादवकर्ण्य स गयणः । निर्मले, केतनैर्दूरावश्यता जगयद्भृगुं ॥ १९१ ॥ हंसावकीर्ति  
सेवेह नवनर्मिकहसिभिः । दिशो मुखयत्नेमघटाचटुलनिःखनैः ॥ १९२ ॥ ऊर्ध्वधनैर्धनाश्लेष विदिलक्ष्मिरीव बंधुभिः । ययौ पुण्यक्रमारुह्य गगने सह म-  
विणा ॥ १९३ ॥ ध्वजवटाग्रनिभशवारिच्युतवालैवः । मंदगंधवहर्नितोर्विनीताध्वपरिश्रमः ॥ १९४ ॥ सीतोद्भक्तस्था गच्छन् दृष्टो पुष्पकस्थितः ।  
अरद्वलाकातस्थो वासो नीलवलाहक ॥ १९४ ॥ सप्राप्य चित्रकूटाग्रनंदन नंदनस्थान । प्रविष्ट इव सीतायाश्चित्त तुष्टिमागदलं ॥ १९६ ॥ तदाज्ञायथ  
मारीचपरार्घ्यमणिनिर्मित । भूत्वा हरिणपोतोसो सीताया, स्वमदर्शयत् ॥ १९७ ॥ त मनोहारीण दृष्ट्वा पश्य नायातिकौतुक । हरिणश्चित्रवर्णोयं रंज-  
त्यंजना मन ॥ १९८ ॥ इति सीतावचः श्रुत्वा विभेत् तदुक्तद्वलं । तदा निनीषया गत्वा रामो वामे विधे विधीः ॥ १९९ ॥ ग्रीवामगेन वा पश्यन् कु-  
र्वन् दूरं पुनः प्लुतिं । वलान् धावन् क्षण खादन् विभयो वा तुणाकुर्न ॥ २०० ॥ हस्तप्राणमिवात्मानं कुलोद्गीयति दुराः । वृथा कर्षति मा मायाशृगो

शब्दोंसे सब दिशाओंको शब्दायमान कर रहा था और अलग अलग हुए माश्योंके समान अलग अलग बाद-  
लोंसे खूब मिल रहा था ॥ १९२-१९३ उस समय ध्वजा और घंटोंकी नोकोंसे जो बादल छिन्न भिन्न होगये थे  
और उनसे जो पानीकी बूंदें गिर रहीं थीं उनसे शीतल हुए तथा सुगंधित और मंदवायुसे रावणका सब  
परिश्रम दूर हो रहा था और सीताकेलिये वह उत्सुक हो रहा था सफेद पुष्पक विमानमें बैठकर जाता  
हुआ वह नीलवर्णका रावण ऐसा जान पड़ता था मानो शरद ऋतुके सफेद बादलोंके समीप कोई काला  
बादल ही हो ॥ १९४-१९५ ॥ धीरे-२ वह नंदन बनके समान चित्रकूट बनमें जा पहुंचा और सीताके  
हृदयमें घुसे हुएके समान वह वहां बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ १९६ ॥ रावणकी आज्ञासे मारीचने वहां  
जाकर बहुमूल्य मणियोंसे बने हुये हरिणके वच्चेका रूप बना लिया और सीताके सामने जाकर उसके दृष्टि गोचर  
हुआ ॥ १९७ ॥ उम मनोहर हरिणको देखकर सीता रामचंद्रसे कहने लगी कि हे नाथ देखिये यह कैसे आश्चर्यकी  
वस्तु है अनेक वर्णका यह हरिण चित्तको बहुत ग्रीष्म मोहित वा प्रमथ कर रहा है ॥ १९८ ॥ सीताकी यह बात सुन-  
कर उस आश्चर्य करनेवाली वस्तुको पकड़ने और उसे लेनेकी इच्छासे रामचंद्र निकले सो ठीक ही है देवके प्रतिकूल  
होनेपर बुद्धि मी नहीं रहती है ॥ १९९ ॥ वह हरिण कभी गर्दन झुकाकर पीछेकी ओर देखता था, कभी दूर हो जाता  
था, कभी जोरसे चिल्लाता था, कभी दौड़ता था, और कभी क्षणभर तक निर्भय होकर घासके अंशूकोंको चरता  
था ॥ २०० ॥ कभी हाथसे पकड़ने योग्य अत्यंत समीप आकर छलांग मारकर बहुत दूर चला जाता था । “यह

दृष्ट्वा त स्त्वोचित देव सीता शीलवती न सा । वज्रयष्टिरीवायेन मेतु केनापि शक्यते ॥ १८१ ॥ इति स्वगतवृत्तातमुक्त्वा तेभिर्मते मया ! नोक्तं शील-  
वतीक्रोपवन्दिहमीत्येति साववीत् ॥ १८२ ॥ श्रुत्वा तद्वचन सर्वमसत्यमवधारयत् । प्रकटीकृतकोपाग्निशिताकारवृत्तिभि ॥ १८३ ॥ सुग्रे फणीद्विधा-  
सगोमादोर्पाविलोकनात् । भीत्वा तद्व्यहणं को वा विषवाबी विसुचति ॥ १८४ ॥ वाह्यस्थैर्यवचः श्रुत्वा भीत्वा तस्यास्त्वमागता । गजकर्णचला व्रीणा वि-  
मनो यदि । तत्र यद्वस्तु नान्यत्र तत्स्वप्नेष्युपलभ्यते ॥ १८५ ॥ अथ शौर्यादिमीरामसदृशो न क्वचिस्सुम । ॥ १८६ ॥ भोगोपभोगद्वारेण रंजयेय  
१८८ ॥ सुग्रहं तल्लहस्तेन भूमिष्ठमनुमडल । पातालादपि शेषाहिः सुहरो डिभकेन च ॥ १८९ ॥ मनुत्तानयितु शक्ताः ससुद्धा वसुधरा । मेतु शीलव-  
सार नहीं कहा है ॥ १८२ ॥ उसकी ये बातें सुनकर रावणने सब झूठ समझी और अपने मुखकी आकृति  
बनाकर उसने अपनी क्रोधरूपी अग्नि प्रगटकी ॥ १८३ ॥ क्रोधमेंही वह कहने लगा कि हे सुग्रे ! ऐसा कौन  
विषवादी है जो सर्पके निश्वाससे उठे हुए भयकर फणको देखकर और उससे डरकर उसका पकड़ना छोड़ दे, ॥  
१८४ ॥ उसके बाहरके स्तिररूप वचन सुनकर और उससे डरकर तू वापिस लौट आई है ? क्या तू नहीं जानती  
कि स्त्रियोंके चित्तकी छत्ति हाथीके कानोंके समान चंचल होती है ॥ १८५ ॥ ममझमें नहीं आता कि किस कारणसे  
तू उसके चित्तको न मेद सकी जान पड़ता है तू उपायोंमें इतनी चतुर नहीं है जितनी कि बाहरसे दिखती है  
इसतरह कहकर रावणने उसे खूब डाट लगाई ॥ १८६ ॥ तब वह सर्पणखा फिर कहने लगी कि यदि भोगोप-  
भोगकी वस्तुओंसे उसका मन बन्ध किया जाय तो भोगोपभोगकी जो वस्तुएं वहां उपस्थित हैं वे  
नहीं बन सकता क्योंकि शूर वीरतामें भी रामके समान कोई दूसरा पुरुष नहीं है । यदि वीणा आदिगाने बजानेसे वंश  
किया जाय तो वह सब कला और सब गुणोंमें चतुर है । पृथ्वीपर खड़ा होकर हाथकी हथेलीसे ही सूर्यमंडलका पकड़लेना  
सहज है, किसी चालकके द्वारा शेपनागको पातालसे भी बाहर निकाल लेना सहज है और समुद्रसहित इस समस्त पृ-  
थ्वीको उठा लेना सहज है परंतु कामदेवके द्वारा भी शीलवतीके चित्तका मेदन करना निर्वात असंभव है । सर्पणखा  
की ये बातें सुनकर रावण पाप कर्मके उदयसे मारीच मंत्रीके साथ गुप्तक विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे चला उस  
पुष्पक विमानमें सर्पकी नई काचलीको भी लज्जित करनेवाली जो निर्मल ध्वजाएं फहरा रही थीं वे देखनेवाले लो  
गोंको बार २ हंसांकी पक्षितयोंका संदेह उत्पन्न करती थीं तथा वह विमान सुवर्णकी लटकती हुई सुंदर धंटियोंके



मा वीक्ष्य कारुण्याञ्जनकात्मजा । किमिल्याकांक्षसि स्त्रीत्वं त्वं हितानवबोधिनी ॥ १३ ॥ स्त्रीतामनुभवतीभिराग्नूमिरनीप्सित । प्राप्त प्राप्य च दुर्बुद्धे महापापफल  
शृणु ॥ १६४ ॥ अनिष्टलक्षणादन्यैरप्राप्तत्वाच्छुचा ग्रहे । स्वे वासो मृत्युपर्यन्तं कुलरक्षणकारणात् ॥ १६५ ॥ अपत्यजननाभावे प्रविष्टोत्पन्नगेहयोः । शोको-  
त्पादनव्याप्तत्वं निर्भाग्यत्वादगौरव ॥ १६६ ॥ दुर्भागत्वेन काताना परित्यागात्पराभवः । आस्थुर्यत्वं रजोदोषात्सङ्घनात्कलहविमिः ॥ १६७ ॥ दुःखदावा-  
मिसतापो वन्यानामिव भूरुहा । चक्रवर्तिमुत्ताना च परपादोपसेवना ॥ १६८ ॥ मानभंग सपत्नीपु ह्योत्कर्षेण केनचित् । स्वभाववक्रवाक्कायमनोभिः कु-  
टिलात्मता ॥ १६९ ॥ गर्भमूर्तिसमुत्पन्नरोगादिपरपीडन । शोचन स्त्रीसमुत्पत्तावपत्यभरणेऽसुखं ॥ १७० ॥ रहस्यकार्यबाधत्वं सर्वकार्येष्वन्तंत्रता । विधवा-

रूपासे सीता कहने लगी कि अरे क्या तू स्त्रीपना चाहती है जान पड़ता है तू अपने हितको मी नहीं  
जानती ॥ १६०-१६३ ॥ स्त्रीपनेका अनुभव करती हुई ये सब यहां ही अनिष्टताको प्राप्त हुई हैं । हे  
दुर्बुद्धे ! यह स्त्रीपना बड़े बड़े पापोंका फल है सुन ! यदि कन्यामें लक्षण अच्छे नहीं हुए तो उसे कोई  
ग्रहण नहीं करता इससे घरमें शोक ही शोक छाया रहता है । स्त्रियोंको मरने तक कुलकी रक्षा करनी  
पड़ती है इसलिये उन्हें सदा सेवामें ही लगा रहना पड़ता है ॥ १६४-१६५ ॥ यदि किसीके पुत्र उत्पन्न न हो तो  
दोनों घरोंमें शोक उत्पन्न करती रहती है यदि भाग्यहीनतासे कोई बध्या हुई तो वह कभी गौरवताको (बहपनका)  
प्राप्त नहीं होती है ॥ १६६ ॥ यदि कोई स्त्री कुरूपता हुई तो पति उसे छोड़ देता है और इसतरह उसे अपना  
तिरस्कार सहना पड़ता है रजो दोषसे उसे कोई छुना नहीं कदाचित् कलह करनेसे वह छोड़ दी जाय ( पति उसे  
छोड़ दे ) तो जिस प्रकार वनके वृक्ष दावानल अग्निसे जला करते हैं उसीप्रकार वह दुस्वरूपी दावानल अग्निसे  
जला करती है । चक्रवर्तीकी पुत्रियोंको भी दूसरेके चरणोंकी सेवा करनी पड़ती है ॥ १६७-१६८ ॥ और सपत्नियोंमें  
किसी कारणसे उत्कृष्टता हुई तो फिर मानभंग सहना पड़ता है । स्त्रियोंके मन वचन काय स्वभावसे ही सदा कुटिल  
रहनेसे वे मदा कुटिलरूप रहती हैं ॥ १६९ ॥ गर्भकी प्रसूति होते समय उत्पन्न हुए अनेक रोगादिकोंकी पीड़ा  
सहनी पड़ती है, स्त्रियोंके उत्पन्न होतेही शोक करना पड़ता है और संतानके मरने पर दुःख सहना पड़ता है ॥ १७० ॥  
विचार करने योग्य बातोंपर उनसे कोई सलाह लेता नहीं सब कार्योंमें पराधीनता रहती है और यदि विधवा हुई तो  
महादुखोंकी पात्र बनती है अर्थात् उसे अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं । दुष्ट चेष्टा होनेसे दान शील उपवास आदि पर-  
लोकके हित करनेवाली क्रियाओंके करनेमें प्रधानता नहीं रहती । यदि स्त्रीके संतान न हो तो कुलका नाश हो जाता

सलादेतरहते रूप न वेधसा ॥ १५३ ॥ गहनच्छिकं न चेदन्यत्किमकारीति नेहशं । शेषदेव्यो जराजीर्णां तां दृष्ट्वा यौवनोद्धता ॥ १५४ ॥ का त्वं बद्ध-  
कुतरत्या वेलवोच्चन्द्रासपूर्वक । उद्यानपालकस्याह मातात्रैवेति सा पुन ॥ १५५ ॥ तासां चित्तपरीक्षाधर्मिणां बाधमुदाहरत् । युष्मदपुण्यभानिन्यो मान्या-  
सत्यन्येषित ॥ १५६ ॥ स्नादाभ्यां कुमारभ्या सह भोगपरायणा । युष्माभिः प्राकृत किं वा पुण्यं तन्मम कथ्यता ॥ १५७ ॥ तत्करिष्यमि येनास्य-  
राक्षीभूत्या गृहीपते; । इमं विरामन्यासु विधारयामीति तद्वचः ॥ १५८ ॥ श्रुत्वा ताधिपतेस्तस्यास्तरुण स्मरविह्वल । वपुरेव जराप्रस्तमित्यल सहसाह-  
सन् ॥ १५९ ॥ माहासः कुर्यात्सूर्यकलागुणयुजामिह । समप्रेमहलिप्राप्तः किमन्यज्जन्मन फल ॥ १६० ॥ वदतेति वदतीं ता पुनर्भो अन्यन फल ।  
तवेदमेव चेदमद्रिभुना सिद्धिना वय ॥ १६१ ॥ त्वमय योजयिष्याम परिसुफविचारण । भद्रादेसी मवेलासा दामवाणशरव्यतां ॥ १६२ ॥ उपयांतीभि-

गई मानो सीताके विलासों के देखनेसे उत्पन्न हुई लज्जासे ही नव गई हो ॥ १५२ ॥ ब्रह्माने (नामकर्मरूपी ब्रह्माने) इसका यह-  
रूप अपनी बुद्धि की चतुरता से नहीं बनाया है किंतु अनायास ही ऐसा बन गया है यदि यह रूप अनायास न बन जाता वह-  
स्वयं बुद्धि की चतुरतासे बनाता तो फिर ऐसा रूप किसी दूसरी जगह क्यों नहीं बनाता इस तरह उसके रूपका वर्णन करती-  
हुई वह बहुत ही आश्चर्य करने लगी । सीताको छोड़कर बाकी की यौवनसे युद्धत हुई रानियोंने बुढापेसे जीर्ण हुई उस बुढियाको-  
देखकर हंसीपूर्वक पूछा कि बुढिया बता तो तू कौन है ? कहाँसे आई है ? इसके उत्तरमें वह बुढिया कहने लगी कि मैं इस-  
उद्यानकी रक्षा करनेवालेकी माता हूँ और यहाँ ही रहती हूँ । उन रानियोंके चित्तकी परीक्षा करनेके लिये वह फिर कहने-  
लगी कि आपलोग बड़ी पुण्यशालिनी हैं और अन्य सब स्त्रियोंसे मान्य हैं तभी तो इन ऐसे कुमारोंके साथ भोगोपभोग करनेमें-  
लीन हो रहीं हों । आपने पहिले जन्ममें कौनसा पुण्य किया है उसे मुझसे भी कह दीजिये मैं भी उस पुण्यको करूंगी-  
और इन्हीं महाराजकी रानी होकर इन्हें अन्य सब स्त्रियोंसे विरक्त कर दूंगी । उस बुढियाकी यह बात सुनकर वे सब-  
स्त्रियां एकसाथ हंस पड़ी और कहने लगीं कि केवल इसका शरीर ही बूढा होगया है चित्त तो इसका तरुण है और-  
अब भी कामदेवसे विह्वल है ॥ १५३-१५९ ॥ इस प्रकार उनको हंसते हुए देखकर वह बुढिया फिर कहने लगी कि-  
उत्तम कुल, सुंदरता भला और गुणोंको पाकर तुमलोग हंसी मत करो भला कहाँ तो यही बलभद्रका समान प्रेम प्राप्त-  
होनेपर फिर इस जन्मका और फल है ही क्या ? बुढियाकी ये बातें सुनकर वे फिर कहने लगीं कि ए बुढिया ! यदि-  
तेरे जन्म लेनेका यही फल है तो आज हम विधिपूर्वक अपने पतिसे तुझे मिला देंगे फिर तू विना किसी सोच वि-  
चारके पट्टरानी होजावगी । इस तरह उन स्त्रियोंकी हंसीरूपी बाणोंका निशाना बनती हुई उस बुढियाको देखकर क-

किंचिद्विस्मितामिवावक्ष्य ता जलाशयमासदत् । तत्र सिन्धुं पिशा शीतैर्यन्मुक्तपरमः क्रुणः ॥ १४४ ॥ ईषमिमीलितालोक्तयनैर्वीरोज्वलं । तद्वक्त्रकमलं  
पश्यन् सा बल्य तदाद्रुपत् ॥ १४५ ॥ वक्षोदध्नमसौ नरि प्राविशत्सस्मिता प्रिया । परिरेभोसुक्ता विद्वान्निगतिज्ञा हि नागराः ॥ १४६ ॥ अमराः कजकं  
सुखत्वा कान्तास्यान्नेऽपतस्तम । तं राकुलीकृतो दष्ट्रा खेदी ल्हकी च सोभवत् ॥ १४७ ॥ एव जल चिरं रत्वा तत्रापूर्वं मनोरथ । सात पुरो वने रम्यप्र-  
देक्षे स्थितिमात्रजत् ॥ १४८ ॥ तदा सूर्येणखागल्य तयोर्नृपतन्त्रयोः । वीक्ष्यमाणानुलो लक्ष्मीभुरक्षा सविस्मय ॥ १४९ ॥ प्रभूतप्रसवानध्रकआशोक-  
महीसह । अथस्था सुस्थिता सीता हरिन्मणिगिलातले ॥ १५० ॥ वनलक्ष्मीमिवालोक्थ्य भूष्यमाणा सखीजनै । युक्तमेव खगोदास्य प्रेमास्यामिति वादि  
नी ॥ १५१ ॥ नभूव स्थविरा रुच्यपरावर्तनवियया । सीताविलामसदर्शसम्भूतग्रीडयेव सा ॥ १५२ ॥ तद्रूप वर्णयतीत्य सकौतुकममन्वत । खलुद्विकी-  
रहे हैं ॥ १४२ ॥ जिसप्रकार इद्र शची देवीके माथ बनमें क्रीडा करता है उसीप्रकार मनोहर नृचनोंसे  
सीताको प्रसन्न करते हुये रामचंद्र उसके माथ वन क्रीडा करने लगे ॥ १४३ ॥ रामचंद्र सीताको कुछ खेद  
विशेष देखकर किसी जलाशयके (सरोवरके) पास पहुंचे और वहांपर सीताको यंत्रके द्राग (पिचकरेसे)  
छोड़ी हुई छोटी छोटी ठंडी बूंदोंसे सींचने लगे ॥ १४४ ॥ जिनके पलक कुछ कुछ सुंद रहे हैं ऐसे चंचल  
नेत्ररूपी कमलोंसे उज्ज्वल उस सीताके मुखरूपी कमलको देखते हुए रामचंद्र उस समय कुछ कम संतुष्ट  
नहीं हुए थे ॥ १४५ ॥ वे बुद्धिमान रामचंद्र आलिंगन करनेको उत्सुक हुई और कुछ कुछ हंसती हुई सीताके समी-  
प छातीतक पानीमें पहुंच गये थे सो ठीक ही है क्योंकि नागरपुरुष (चतुर पुरुष) इस्राको खूब अच्छी तरह  
समझ लेते हैं ॥ १४६ ॥ उस समय अमर सब कमलोंको छोड़कर एक साथ सीताके मुखरूपी कमलपर पड़ रहे थे  
उनसे व्याकुल हुई सीताको देखकर रामचंद्र कुछ खेद विश्व मी हुए थे और प्रसन्न मी हुए थे ॥ १४७ ॥ इसतरह  
बहुत देरतक जलक्रीडाकर तथा अपने मनोरथ पूर्णकर रामचंद्र अपने रणवासके साथ बनकी किसी सुंदर जगहपर जा  
बैठे ॥ १४८ ॥ उसीसमय वहां सूर्यणखा आई और दोनों राजपुत्रोंकी अनुपम शोभा देखकर बड़े आश्चर्यके साथ उ-  
नमें अनुत्तक होगई ॥ १४९ ॥ उससमय सीता बहुतसे फूलोंसे नवे हुए और सुशोभित अशोकवृक्षके नीचे हरिन्मणि-  
बोकी शिलापर आरामसे बैठी थी, अनेक सखियां उसकी शोभा बढ़ा रहीं थीं और वह ठीक वनलक्ष्मीके समान जान  
पड़ती थी उसे देखकर सूर्यणखाने कहा कि इस ऐसी सुंदरीमें विद्याधर रावणका प्रेम होना ठीक ही है ॥ १५०-  
१५१ ॥ परावर्तिनी (जिससे रूप बदला जाय) विद्यासे उसने अपना बुद्धियाका रूप बना लिया और वह ऐसी नव

भूतामालोक्य कामिनी । पुनर्द्वयममपिष्ट मृष्टवचनो नृप ॥ १३३ ॥ त्वद्वचनं दर्पणे वीक्ष्य चक्षुषी ते कृतार्थकं । अदात्त सारसैवेव तृप्ता ते नासि-  
का भृशं ॥ १३४ ॥ त्वच्छब्दयोग्यसल्लापः कर्णौ पूर्णरसौ तव । तव विवाभारस्वादावज्जिह्वाभ्यन्तरसासृष्टा ॥ १३५ ॥ परिभ्रम्य करो तृप्ता तव त्वत्कठि-  
नस्तनौ । मनोर्पीन्द्रियसदृश्या सतृप्तं नितरा प्रिये ॥ १३६ ॥ स्वस्यामेवं स्वयं तृप्ता सिद्धाकृतिरिवाधुना । कोपस्ते सुकण्ठेति सीतां च चतुरोक्तिमि ॥  
१३७ ॥ ततः प्रसन्नया सार्द्धं सुख सर्वद्विगुणं । सप्राप्य नूतनं भूयः कोनोपि सुखदः स्वचित् ॥ १३८ ॥ तत्रैव लक्ष्मणोऽप्येवं स्वप्रियाभिः सहारमत् ।  
ददौ तदा मुदा कामस्तेभ्योऽभ्यर्थयमदः सुखं ॥ १३९ ॥ एवं रामश्चिद्वरं रत्ना काते पश्य रविः करैः । मर्वान् दहति मूर्दस्थस्तीव्रः कस्यात्र शान्तये ॥  
४० ॥ लक्ष्मणाक्रमविक्रान्तिविजितारतिसिन्धुः । छायामात्मनि संलीना प्रकुर्वति महीरहः ॥ १४१ ॥ वैराज्यपरिवारो वा मृगरूपः सशावकः । क्वा-  
प्यलब्धनाश्रयस्तसौ भ्राम्यतीतस्ततोपि च ॥ १४२ ॥ इति चेतोहरः सीता मोदयन् स तथा सह । शचीदेव्येव देवेशः कृत्वा वनविनोदनं ॥ १४३ ॥

पित्त हुई सीता चुप ही रही उसे चुप देखकर रामचन्द्र मीठे और इष्ट वचन कहने लगे ॥ १३३ ॥ कि हे प्रिये !  
तेरे नेत्र दर्पणमें तेरा मुह देखकर कृतार्थ हो चुके हैं, तेरी नाक तेरे मुखकी सुगंधिसे ही खूब तृप्त हो चुकी है, तेरे  
कान सुनने योग्य तेरे गीत और वचनालापोंसे खूब रससे भर गये हैं तेरी जीभ भी विवाफलेके समान तेरे अपरोका  
( ओठोंका ) स्वाद लेकर आग किसी रसकी इच्छा नहीं करती तथा तेरे दोनों हाथ भी तेरे दोनों कठिन स्तनोंका  
स्पर्शकर तृप्त होगये हैं, इसीतरह हे प्रिये तेरी सच इन्द्रियोंके तृप्त हो जानेसे तेरा मन भी खूब तृप्त होगया है इसतरह  
तू स्वयं अपनेमें ही तृप्त हो रही है इसलिये इससमय तेरी आकृति ठीक सिद्धोंके समान है । हे प्यारी फिर भी क्या तूझे  
कोप करना योग्य है इसप्रकार चतुरताकी युक्तियोंसे रामने सीताको समझाया ॥ १३४-१३७ ॥ तदनंतर रामचन्द्र  
प्रसन्न हुई सीताके साथ सच इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए नये सुखको प्राप्त हुये सो ठीक ही है क्योंकि कहीं कहीं कोप भी  
सुख देनेवाला हो जाता है ॥ १३८ ॥ वहींपर लक्ष्मण भी इसीतरह अपनी रानियोंके साथ क्रीडा करते थे । उम-  
समय कामदेव उन सबको इच्छानुसार सुख दे रहा था ॥ १३९ ॥ इसतरह रामचन्द्र बहुत देर तक क्रीडा कर फिर  
सीतासे कहने लगे कि हे प्रिये देख यह सूर्य अपनी किरणोंसे सबको जला रहा है सो ठीक ही है क्योंकि मस्तकपर  
रहनेवाला कोई भी तीव्र पुरुष भला किसको शान्ति दे सकता है ॥ १४० ॥ लक्ष्मणके आक्रमणके पराक्रमसे  
हारे हुए शत्रुओंके समान ये वृक्ष अपनी छायाको भी अपनेमें मिला रहे हैं ॥ १४१ ॥ शत्रु राजाओंके परिवारके  
समान इन वंश सहित हिरणोंको कहीं भी आश्रय नहीं मिला है इसलिये ही ये इधरसे उधर और उधरसे इधर फिर





मन्त्राला प्रविश्यात्तमगन्तिन्यममन्यत । उग्रशस्यमनाद्दे कर्त्तुं नहि वलत्कृते ॥ ११३ ॥ महीयसोयुपायेन श्रीरयाक्षियते बुधे । स्वतो-  
मायमाहूय दत्ता दशरथात्मजे ॥ ११२ ॥ जिगीषू मन्पदं बुधायुच्छेदाहो क्रुतस्वर् । पत्नी सीताभिधानास्ति रामाहृषस्य दुरात्मनः ॥ ११३ ॥ त-  
माहरेष्ये तौ ददु तदुपाय विवितय । इत्यनोक्तस्य मारीचो विनयाकुञ्चिताजलि ॥ ११४ ॥ शृणु मष्टारक स्वामिन् हितकार्यानुवर्तत । अहितप्रतिपेक्षश्च  
मत्रिकुल्यभिर्दं द्वय ॥ ११५ ॥ भवविरूपितं कार्यमपथ्यमयशस्करं । पापावुबधि दुःसाध्यमयोगं सद्गिर्हितं ॥ ११६ ॥ अन्यदाराहतिनाम पातकेवति-  
पातकं । कोहि नाम कुले जातो जातुचिष्वितयेदिति ॥ ११७ ॥ अस्त्यन्योपि तदुच्छिस्त्यामुपाय किमनेन ते । भवदशविनागैकहेतुना धूमकेतुना ॥ ११८ ॥  
इत्याद्यस्माथकोपलब्धं तन्मारीच वचो विधी । नादादासमस्तृत्वाद्दृष्टरिड इवैषधं ॥ ११९ ॥ गृहीतयेव नेत्येतन्वावाहीच्चेति मत्रिणं । किमनेन वृषा  
मत्रिन् वचनेच्छयातिना ॥ १२० ॥ वैरिस चेत्तु हृदि सीतापहरणोपायमार्गं मे । एवं तेनोच्यमानोसौ तव चेष्टेप तिथयः ॥ १२१ ॥ परीक्ष्य स्वस्या

सोचो । यह सुनकर मारीच नामका मंत्री बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे मष्टारक हे स्वामी ! सुनिये  
हितरूप कामोंका उपदेश देना और अहितका नियम करना ये दोही काम मंत्रियोंके मुख्य काम हैं ॥ ११०-११५ ॥  
आपने जिस कामके लिये कहा है वह काम अपथ्य है अपथ्य करने वाला है पाप उत्पन्न करनेवाला दुसाध्य और  
अयोग्य है तथा सज्जनोंके द्वारा सदा निन्दनीय है ॥ ११६ ॥ दूरेकी स्त्रीको हर लेना पापोंमें भी बड़ा पाप है मङ्ग-  
लमें उत्पन्न हुआ ऐसा ऐमा कौन पुरुष है जो ऐसे कार्योंका विचार करे ॥ ११७ ॥ उनके नाश करनेके लिये और भी बहु-  
तसे उपाय हैं इस उपायसे आपका क्या काम है यह यह उपाय अग्निके समान आपके वंशके नाश करनेका एक ही  
कारण है ॥ ११८ ॥ इसप्रकार मारीच मंत्रीने कहा परंतु जिसप्रकार थोड़ी ही देरमें मरनेवाला मनुष्य अपनी मृत्यु  
जानकर औषधि नहीं लेता है उसीप्रकार उस बुद्धिहीन रावणने मारीचके कहे हुए सार्थक वचनोंको ग्रहण नहीं  
किया ॥ ११९ ॥ वह मारीचसे कहने लगा कि हे मारीच “यह तुम्हारी बात नहीं मानते” यही तुमने क्यों नहीं  
कहा अपने इष्टको घात करनेवाले इन व्यर्थके वचनोंसे मला क्या लाभ है ॥ १२० ॥ हे आर्य ! यदि तू सीताके  
हरण करनेका कोई उपाय जानता हो तो कह । रावणकी यह बात सुनकर मारीच फिर कहने लगा कि यदि आपने  
ऐसा करना निश्चय ही कर लिया है तो अपनी एक दूती भेजकर परीक्षा कर लीजिये कि वह आपमें अनुराग रखती  
है या नहीं । यदि अनुराग रखती हो तब तो किसी सुखकर सहज उपायसे ही ले आनी चाहिये ! यदि वह आपसे  
विरक्त हो तो फिर जवर्दस्ती ले आना । मारीच की यह बात सुनकर रावणने उसकी प्रशंसाकी और कहा कि

पश्यति नो चक्षुः कामिनामित्युदीरितं ॥ १०१ ॥ सत्यं प्रकुर्वता सद्यः शीतासंबंधाकृष्टते । अनगशरसपाताब्जनीकृतचेतसा ॥ १०२ ॥ धन्यान्यत्र न सा स्यात्तु योग्या भाग्यविहीनके । मंदकिन्याः स्थिति क्व स्यात्प्रविष्टाय महादुर्धि ॥ १०३ ॥ बलात्कारेण तस्मादपहृत्यासिदुर्बलात् । रत्नमाला-  
भिवालोलो करिष्यामि ममोरसि ॥ १०४ ॥ इति कामागिनतसेन तेन पापेन ससदि । स्वस्यामगार्थनार्थेण दुर्जनानामियं गतिः ॥ १०५ ॥ स नारदः पुन-  
स्तत्र प्रवीस कोपपावक । प्रज्ज्वालयितुमस्येदमाचक्षतेति पापवीः ॥ १०६ ॥ परिप्राप्तोदयो रामो महाराज्यपर्ये दिव्यतः । यौवराज्यपदे तस्य लक्ष्मणोऽस्या-  
स्तहोद्वजः ॥ १०७ ॥ वाराणसीं प्रविष्टान्ध्या ताभ्या विभृश्रुयेध्वरा । स्वक्षुतादानसमानिताभ्यां सवधमादधुः ॥ १०८ ॥ ततस्ते तेन रागेण लक्ष्मणाविक्षौभितौजसा ।  
न युद्धं युज्यते ऽस्मास्मिष्यज्यता विप्रहाग्रहः ॥ १०९ ॥ इत्येतदुक्तमाकर्ण्य कुपितस्मितमुदहन् । मत्प्रभावं मुने मंधु श्रोष्यसीति विस्मय्य तं ॥ ११० ॥

गह भाग्यहीनके घर ठहरने योग्य नहीं है भला महासागरको छोड़कर गंगाकी स्थिति कहाँ हो सकती है ॥ १०३ ॥  
वह राम अत्यंत दुर्बल है उससे मैं जबर्दस्ती सीताको लेआऊंगा और चंचल रत्नमालाके समान उसे अपने वशः स्थल  
पर धारण करूंगा ॥ १०४ ॥ इसतरह कामरूप अग्निसे जले हुए पापी और अनार्य उस रावणने अपनी सभामें ऐसे बचन कहे सो  
ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंकी ऐसीही गति हुआ करती है १०५ तदनंतर पापी नारद बढती हुई रावणकी क्रोधरूपी अग्निको और  
बढानेके लिये फिर कहने लगा कि हे राजन् ! राम इससमय सब उन्नत हो रहा है वह महाराजके पदपर विराजमान  
है, और युवराजके पदपर उसका छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ १०६-१०७ ॥ जबसे ये दोनों भाई पहुंचे हैं तबसे प्रायः सब  
राजा महाराजाओंने अपनी अपनी कन्या देकर उनका सम्भाव किया है और इसतरह सबने उनसे अपना संबंध जोड़  
लिया है ॥ १०८ ॥ इसलिये लक्ष्मणसे जिसका प्रताप बहुत बढगया है ऐसे रामसे कुछ करना तो ठीक नहीं है हम  
लोगोंको कुछका आग्रह छोड़ देना चाहिये ॥ १०९ ॥ रावण नारदकी बात सुनकर कुछ क्रोधित होता हुआ हंसा और  
कहने लगा कि हे मुनि ! आप मेरा प्रभाव शीघ्र ही मुनमें । यह कहकर उनको तो विदा किया और खुद मंत्रशालामें  
गया वहाँ जाकर वह सोचने लगा कि यह काम किसी उपायसे करना चाहिये जबर्दस्ती करना ठीक नहीं क्योंकि  
युद्धिमान लोग बड़े भारी लोगोंकी लक्ष्मी भी किसी उपायसे हरण कर लेते हैं । यही सोचकर उसने मंत्रियोंको बु-  
लाया और कहने लगा कि दशरथके दोनों पुत्र बड़े अगिमानी और मदोन्मत्त हो रहे हैं वे अब मेरे इस पदको जीतना  
चाहते हैं और दुष्ट हैं इसलिये शीघ्र ही दोनोंका नाश करना चाहिये । उनमेंसे रामचंद्र नामका जो दुष्ट पुत्र है उस-  
की सीमा नामकी स्त्री है, रामको मारनेकेलिये मैं उस सीताको हटना चाहता हूं तुम लोग उसका उपाय



पङ्कमपि । दानमानादिभिः मन्थक् सदा तोषयतोत्तमोः ॥ ८१ ॥ वृष्टिप्रहृष्टिष्टावुलनप्रविनमिन् । अविऽन्यतो पूर्वमश्रीदां नीतिवेदिनोः ॥ ८२ ॥  
प्रजापालनकार्यैकनिष्ठयोर्निष्ठितार्थयोः । काले गच्छति कल्याणैः कल्पैः नि शान्त्यसौहृदः ॥ ८३ ॥ इतो लंकाप्रविष्टाय त्रिखंडभरतावनेनः । अधीश्वरोह-  
मेवेति गर्ववर्तभास्करं ॥ ८४ ॥ समावयंतमात्मनं रावणं शत्रुरावणं । निजतेजः प्रतापापहस्तितोष्णाशुर्महलं ॥ ८५ ॥ इंडोपनतसामतविनम्रसुडुदा-  
ग्रम स्फुटस्मग्निम्यूखावुविकसम्बरणजुज ॥ ८६ ॥ निजासने समासीन कीर्यमाणप्रकीर्णक ॥ अवतीर्ण धराभागमिव नीलनवाबुदं ॥ ८७ ॥ आभायमाण-  
माभाष्य सधूम्रं भयकर । अनुजैरात्मजैर्मौलैर्मैत्रेय परित्राविन ॥ ८८ ॥ भिगोतुगजटाट्टप्रमपिंजरितावरः । इदानीलाक्षसूशोस्त्रलयालकृताशुलिः ॥  
८९ ॥ तीर्थशुभ्रतोद्भासिपमरागकमंडलः । सुवर्णसूत्रयज्ञोपवीतपूजाजिजाकृति ॥ ९० ॥ खादेत्य नारदोन्मथु सोपद्वारं समैक्षत । तदालोक्य विराड्-  
ये शिष्ट वा भले आदमियोंका पालन करते थे, पहिलेकी मर्यादाको कमी उल्लंघन नहीं करते थे, नीतिको अच्छी त-  
रह जानते थे, उनका प्रजा पालन करना ही एक मुख्य कार्य था और धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंको वे अच्छी  
तरह सेवन करते थे, इसतरह अत्यरहित सुख देनेवाले कल्याणरूप कार्योंसे उनका समय व्यतीत होने लगा ॥ ८२-  
८३ ॥ इधर रावण लंकामें रहकर भारतवर्षकी तीन खंड पृथ्वीका पालन करने लगा, मैं तीन खंडका स्वामी हूं ऐसे  
अभिमानरूपी पर्वतर सूर्यके समान अपनेको मानने लगा, वह सब शत्रुओंको हलाता था इसीलिये उसका नाम रा-  
वण पड़ गया था अपने तेजरूपी प्रतापसे सूर्यमंडलको भी नीचा दिखलाता था, दंड लिये हुए और नमीभूत हुए  
अनेक सामंतोंके नवे हुए मुकुटोंमें जो देदीप्यमान मणिवा लग रही थीं उनकी किरणें रूपी जलमें उमकें चरण-  
कमल सदा प्रफुल्लित रहते थे, किसी एक दिन वह अपने सिंहासनपर बैठा था; उस पर चमर डुलाये जा रहे थे, उम-  
समय ऐसा जान पड़ता था मानों नीले रंगका नया बादल पृथ्वीपर ही उतर आया हो, मोहें घटाकर भयकर रीतिसे  
वह सबसे बात चीत कर रहा था, उसके आस पास उसके छोटे भाई पुत्र मुकुटवद राजा और योद्धा लोग बैठे थे ॥  
८४-८८ ॥ उसी समय पीले रंगकी बड़ी बड़ी जटाओं की कांतिसे जिसके घरीरका रंग कुछ पीला होगया है, जो  
शुंघ्रील तथा अधश्चक्रके कटे और अंगूठियोंसे सुसोमित है, पद्मराग मणिवर्णका बना हुआ जिसका कमंडलु तीर्थोंके  
जलसे मरा हुआ शोभायमान है, जो सुवर्णका बना हुआ यज्ञोपवीत पहिने है और उल्टीसे जिसकी आकृति पूज्य हो  
रही है ऐसे नारदने आकाशसे उतरकर समीपके दरवाजेसे रावणको देखा । नारदको देखते ही रावण उठा और कहने  
लगा कि हे भद्र आपने बहुत दिनमें दर्शन दिये हैं आइये बैठिये, इस समय आप कहाँसे आए हैं और क्यों आए हैं ?

भाषा विना प्रति ॥ ७५ ॥ स्वाम्यमासो जनस्थानं कोणो दंडः सगुप्तिकः । मैनं भूमिपालस्य सप्त प्रकृतयः स्यूताः ॥ ७२ ॥ इमे राजवस्थितेः प्राद्वैः पदाभी हेतवो मत्वा । तेषुपायवती सन्ति । प्रधानव्यवसायिनी ॥ ७३ ॥ पानीयं खननाद्विन्दुमयनादुपकथ्यते । अदस्यमपि संप्राप्यं सत्कलं व्यवसायनः ॥ ७४ ॥ फलप्रसन्नहीनं वा सहकारं विहंगमा । विवेकवंतो नामोपदिष्टं वा कुटिसतागमं ॥ ७५ ॥ राजपुत्रमनुत्साहं त्यजति विपुलाः प्रियः । स्वकीय-नोचसामंतमहामासाद्योपि च ॥ ७६ ॥ पुत्रं पिताभ्युद्योगं मत्वा योग्यं विधीयति । इति विज्ञापनं भुत्वा तयोर्नरपतिस्तदा ॥ ७७ ॥ युवान्यामुक्ते मेवेदं प्रत्यपदि कुलोक्ति । इत्याविकृतहर्षमितिभिर्विरीरस्तः स्वयं ॥ ७८ ॥ विनस्य राज्ययोग्योऽयमुक्त लक्ष्मणस्य च । प्रबध्य धौबराज्याविपत्यपदं महौचस ॥ ७९ ॥ महाभ्युदयसंपादिसत्याशीभिः प्रबद्धेन । पुत्री प्रस्थापयामास पुत्रीं बाराजसीं प्रति ॥ ८० ॥ गत्वा प्रविश्य तामुच्छ्वः पौरान् जन-

संधि विग्रह करा देना ब्रवीमाव है ॥ ७१ ॥ इसीतरह स्वामी, मंत्री, कोश, दंड, गठ और मित्र ये सात राजा-ओंकी प्रकृतियां कहलाती हैं ॥ ७२ ॥ विद्वान लोगोंने ये ऊपर कहे हुए सब पदार्थ राज्यके स्थिर रखनेके कारण बतलाए हैं । परंतु इन सबमें उपायशाली आवित ही मुख्य रीतिसे काम करनेवाली है ॥ ७३ ॥ क्योंकि पानी खोदनेसे ही निकलता है और अग्नि परस्पर रगड़नेसे ही निकलती है ऊपर तो बया व्यवसाय ( उपाय वा परिश्रम ) करने से जो श्रेष्ठ फल अदृश्य है दिखाई नहीं पड़ता वह भी मास हो जाता है ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार पक्षीगण फूल और फलसे रहित आमके दृशको छोड़ देते हैं, विवेकी पुरुष नाममात्रके कहे हुए खोटे शान्तिको छोड़ देते हैं उसी तरह अनेक तरहकी लक्ष्मियां उत्साहरहित राजपुत्रको छोड़ देती हैं, इतना ही नहीं किंतु अपने मोट्टा-सामंत तथा बड़े मंत्री आदि भी उस राजपुत्रको छोड़ देते हैं ॥ ७५-७६ ॥ इसी तरह पिता उद्यमरहित पुत्रको अयोग्य समझकर दुखी होता है । इसतरह उन दोनों कुमारोंके कहे हुए निवेदन को सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगोंने जो कुछ कहा है वह कुल परंपराके योग्य और ठीक कहा है । इसप्रकार हर्ष प्रकटकर होनेवाले वलमद्रको अर्थात् रामचंद्रको तो राज्यके योग्य भारी शुकुट बांधा और प्रतापी लक्ष्मणको युवराजके आधिपत्यका पट बांधा ॥ ७७-७९ ॥ वडी विभूतियोंको प्रकट करनेवाले सच्चे सच्चे आशीर्वादोंसे वढाते हुए राजा दशरथने बनारस नगरके लिये दोनों भाइयोंको भेज दिया ॥ ८० ॥ दोनों भा-इयोंने जाकर नगरमें प्रवेश किया और वहाँके रहनेवाले नगरनिवासियोंको तथा उस देशके रहनेवालोंको दान स-न्मान आदि देकर दोनों भाई सदा अच्छी तरह संतुष्ट करने लगे ॥ ८१ ॥ वे दोनों भाई सदा दुष्टोंको निग्रह करते

पद्मा मेदं दंडं च नयकोविदाः । वदंतुपार्याश्वतरो यैरभैः साच्यते नृपैः ॥ ६२ ॥ प्रियं हितं बन्धु-कायपरिभंगदि सामं ततः । हस्त्यश्वदेशरक्षादि दत्ते-  
सोपप्रदा मता ॥ ६३ ॥ कृत्यगनामुपजापेन स्वीकृतिं मेदमादिशेत् । शष्पमुष्टिबध दाहलोपविध्वसनादिक ॥ ६४ ॥ शत्रुक्षयकरं कर्म दंडितैर्दंडमि-  
ष्यते । इन्द्रियाणां निजार्थेषु प्रवृत्तिरविरोधिनी ॥ ६५ ॥ कामादिबाहुविश्रासो वा जयो जयशालिनः । संक्षिप्तः स विप्रहो नेतुरासनं यानसप्रथया ॥ ६६ ॥  
द्वेधीभावश्च षट् प्रोक्ता गुणाः प्रगथिनः प्रियः । कृतविप्रहयोः पञ्चात्केन विदेतुना तयोः ॥ ६७ ॥ भैत्रीभावः स संधिः स्यात्सावधिर्विगतावधिः ।  
परस्परपक्षादोसिबिजिगीव्योः स विप्रहः ॥ ६८ ॥ मासिहान्योद्दम्यन्यमशक्तो हनुमिल्लसौ । तूष्णीं भावो भवेत्नेतुरासनं दृष्टिकारणं ॥ ६९ ॥ स्वयं द्वा-  
बाहुशूनौ वा द्वयोर्बाहुषु मं स्थत । अरिं प्रति विभोर्धानं तावन्मात्रफलप्रदं ॥ ७० ॥ अनन्यशरणस्नाहुः सप्रथय सत्यसप्रथय । सधिविप्रहयोर्बुद्धिद्विधी-

( खजाना ) तथा दंड ( सेना ) वाअधिक दंड देनेकी शक्तिको प्रशुशक्ति कहते हैं ॥ ६१ ॥ राजा लोग जिनसे अपना अभिप्राय सिद्ध करते हैं ऐसे साम उपप्रद ( दाम ) दंड और मेद ये चार उपाय नयोंके अच्छे जानकार लोग बतलाते हैं ॥ ६२ ॥ बचन और शरीरका आलिंगन आदि प्रिय और हितरूप करना साम है तथा हाथी घोड़ा देश रत्न आदि देना उपप्रद वा दाम अथवा दान कहलाता है ॥ ६३ ॥ कृत्य पुरुषोंको फूट डालकर ( परस्पर विरोधकर ) मिला लेना मेद कहलाता है और रस्सी मुष्टियोंसे मारना, जलाना, छिपादेना नाश कर देना आदि शत्रुओंको क्षय करनेवाले जितने काम हैं उन सबको पंडित लोग दंड कहते हैं । इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंमें जो परस्पर विरोध रहित प्रवृत्ति है जोकि काम आदि शत्रुओंको शान देनेवाली है उसे जयशाली लोग जय बतलाते हैं । इसीतरह लक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले लोगोंके संधि, विग्रह, लानेवालेकेलिये आसन देना, यान संभय और द्वेधीभाव ये छह गुण कहे हैं । पाहिले जिन दो ( या अनेक ) राजाओंमें युद्ध हुआ हो और फिर किसी कारणसे उनमें मित्रता हो जाय उसको संधि कहते हैं यह संधि किसी नियत समय तक भी होती है और समयकी सीमाके बिना सदाके लिये भी होती है । परस्पर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंका परस्पर अपकार वा हानि करना विग्रह कहलाता है ॥ ६५-८८ ॥ यह शत्रु इसे मार सकता है परंतु मैं इस शत्रुको नहीं मार सकता यही समझकर शत्रु रहना यह इति वा उभति करनेवाला नेताका आसन कहलाता है ॥ ६९ ॥ अपनी उभति और शत्रुकी हानि करनेके लिये जो उद्यम करना शत्रुपर चढ़कर जाना है वह यान कहलाता है उसका फलभी शत्रुकी हानि और अपनी उभति है ॥ ७० ॥ जिसका कोई शरण नहीं है उसे अपनी शरणमें रखकर आश्रय देना संभय है । तथा शत्रुओंमें



वृत्तं ॥ ५० ॥ काशिविशेषो कम्पायातमस्सत्पुत्रवरं पुरा । धाराणशी तदद्याभूदनभिष्टितनाभकं ॥ ५१ ॥ आह्ला यथारितं देवस्य तदा बासुदितोदितं । विषा-  
स्वाव इति धृत्वा नरैरक्षस्तुषीरितं ॥ ५२ ॥ वियोगमखमः सोढुमेतयोर्भरतायव । अस्मद्व्या महीनायाः स्थितान्नैव पुरे पुरा ॥ ५३ ॥ वट्खड्गमं-  
कितौ पृथ्वी बद्धवो पालयंश्चिरं । एकदेशस्थयोरेव सूर्याचंद्रमसोश्चिर ॥ ५४ ॥ विभासि भवतोस्तेजो व्याप्नोसि महिमंढलं । ततः किं तत्प्रयागेन मायात-  
मिति सोऽब्रवीत् ॥ ५५ ॥ निषिद्धावपि तां तेन पुनर्देवबभोचता । आद्योरेव देवस्य कोटो याननिषेधनं ॥ ५६ ॥ शौर्यस्य संभवो यावथावत्युष्यस्य  
च स्थिति । तान्बुत्साहर्षनाहं न मुंचत्युदयाग्निनः ॥ ५७ ॥ बुद्धिशक्तिमुपायं च जयं गुणविकल्पन । सम्यक्प्रकृतिमेदाद्य विधित्वा राजसूदना ॥  
५८ ॥ महोयोगो विघातव्यो विरुद्धान्विचित्रिणीपुष्पा । स्वभावविनयोद्भूता द्विधा बुद्धिनिगद्यते ॥ ५९ ॥ मंत्रोत्साहप्रभूका च विधा शक्तिरदाहना ।  
पंचांगमन्त्रनिर्णीतिर्गित्रशक्तिर्मतांगमे ॥ ६० ॥ शौर्योर्जितत्वादुत्साहशक्ति शक्तिरसंभता । प्रभुशक्तिर्महीभदुराधिक्य कोशदण्डयो ॥ ६१ ॥ सांन मो-

परंतु अब वह कुछ दिनसे विना स्वामीके पड़ा है । हे देव ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम दोनों भाई वहां रहकर  
उसे फिरसे धनजनसंपन्न और सुशोभित बना दें । दोनों भाइयोंकी यह बात सुनकर महाराज कहने लगे कि मैं  
तुम दोनों का वियोग सह नहीं सकूंगा । दूसरे भरत आदि हमारे ही वंशमें उत्पन्न हुये अनेक राजा महाराजाओंने  
पहिले इसी नगरमें रहकर छह खंडोंसे सुशोभित इस पृथ्वीका बहुत दिनतक पालन किया है । जिस  
प्रकार सूर्य और चंद्रमा एक ही जगह रहते हैं और उनका प्रकाश सब संसारमें फैल जाता है उसीप्रकार एक  
जगह रहते हुए भी तुम दोनोंका प्रताप समस्त पृथ्वीमंडलमें फैल जायगा इसलिये वहां जानेसे कुछ लाभ नहीं  
है तुमलोग मत जाओ ॥ ५१-५५ ॥ इस तरह यद्यपि महाराजने दोनोंको जानेका निषेध किया था तथापि वे दोनों  
भाई फिर कहने लगे कि हे देव आप जो हमको रोकते हैं सो इसमें आपका खेद ही कारण है ॥ ५६ ॥ इस संसारमें  
जबतक शूरवीरताकी संभावना रहती है जबतक पुण्यकी स्थिति रहती है जबतक अपनी उन्नति चाहनेवाले लोग कभी  
अपने उत्साहकी तैयारीकी नहीं छोड़ते हैं ॥ ५७ ॥ अपने विरोधी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजपुत्रोंको  
बुद्धि, शक्ति, उपाय, जय, गुणोंके भेद, और प्रकृतिबंधोंके भेदोंको अच्छीतरह जानकर बड़ा भारी उद्योग करना  
चाहिये । उनमेंसे बुद्धि दो प्रकारकी है एक स्वभावसे उत्पन्न हुई और दूसरी विनयसे उत्पन्न हुई ॥ ५८-५९ ॥  
शक्ति तीन तरहकी है मंत्र उत्साह और प्रभु उनमेंसे पांच तरहके मंत्रोंसे जो निर्णय हो वह शास्त्रोंमें मंत्रशक्ति कह  
लाती है ॥ ६० ॥ शक्तिके जाननेवाले शूरवीरतासे उत्पन्न हुए उत्साहको उत्साह शक्ति कहते हैं और राजाके कोश

नोपस्य कामस्य साममादिकता वरु ॥ ४१ ॥ कामिनी च उदयमान विपुलान् रंभयन् शृंगं । चंद्रपान् गिरिताम् कुम्भं प्रचण्डः पवित्राङ्गार ॥ ४२ ॥  
तदागमनमात्रेण सद्गनस्सस्तिजातव । काचिदंकुरिताः काचिन्नासुराणां सपत्न्ये ॥ ४३ ॥ काचिकोरमिताः काचिन्मदायाः कुम्भोकरे । स्वावगन्धान-  
विलोभा काता इव निरंतरं ॥ ४४ ॥ क्षियानीपटलेन्मुक्ता मुप्युक्ता चंद्रमंडलं । ग्रीष्मो प्रनालामास शिशु रंभीरिपिणिनी ॥ ४५ ॥ मारमामोदमा-  
दाय विक्रान्मुपल रज । सरोवरिकर्णः सार्धसपाञ्चपवनो बंधा ॥ ४६ ॥ तरुग्यानिश्च रानस्य रामान्ति । चतुर्भिर्नृपः । त्रेद्व्याभिर्द्वन्द्व-  
स्यापि प्रथिवीदेविकादिभि ॥ ४७ ॥ ग्रीत्या योऽशमानागिर्जिनप्रभापुरस्सरः । तन्मृगभिर्नंद्याणां विवाहप्रदोऽट्टली ॥ ४८ ॥ ततः तर्जुणुं प्रेम्णा वा-  
सिन्तो मुखमीयदुः । ताव तान्मामयो यसाद्वाग्देतोः मुकुप्रदः ॥ ४९ ॥ एव सपुण्याकाञ्चनुगुणवतापरो । ता उन्वायकाविग्न रुदन्तिवोच-  
के साथ अपना संबंध टूट करते हुये, तथा कामियों के अभिमानको चूर २ करते हुए, वियोगियोंको खूब दंड देते हुये  
और संयोगियोंको एकत्रित करते हुए प्रचंड वसंत ऋतुने इस संसारमें प्रवेश किया ॥ ४१-४२ ॥ उम वसंतऋतुके  
आते ही जो वनकी अच्छी वनस्पतियां थीं उनमेंसे कितनी ही वनस्पतियोंपर तो अंकुरे आगये और कितनी ही अपने  
आये हुए नये पत्तोंसे प्रेम प्रगट करने लगीं ॥ ४३ कितनी ही वनस्पतियोंपर कलियां आगई कितनी ही अपने आए  
हुये फूलोंके समूहोंसे ईंसने लगीं और कोई वनवाली स्त्रियोंके समान केवल अपना ही ध्यान करने लगीं ॥ ४४ ॥ उस-  
समय पाला अथवा बादलोंके पटलसे छूटे हुए और इसलिये ही अच्छीतरह दिखनेवाले चंद्रमंडलने सब दिशाओंमें  
झोमा फैला देनेवाली अपनी चांदनी फैला दी थी ॥ ४५ ॥ दक्षिण दिशाका वायु सब जगह फैले हुये पुष्पोंकी रज-  
की सारभूत सुगंधिकी लेकर तालावोंके जलकी छोटी २ बूंदोंके साथ २ बह रहा था । भार्वाच-उस समय दक्षिण-  
दिशासे झीतल और सुगंधित वायु चल रहा था ॥ ४६ ॥ उसी समय चतुर राजा दशरथ ने भीजिनेंद्रदेवकी पूजा  
आदि सब विधिपूर्वक अन्य राजाओंकी छुंदर सात और कन्याओंसे रामका विवाह किया था और प्रथिवी देवी  
ही भाई बड़े प्रेमके साथ उन स्त्रियोंसे मुख पाने लगे तथा वे स्त्रियां भी उन दोनों भार्योंसे मुख पाने लगीं सो  
ही भाई बड़े प्रेमके साथ उन स्त्रियोंसे बड़े प्रेमसे लक्ष्मणका विवाह किया था ॥ ४७-४८ ॥ इसतरह सब ऋतुओंमें वे दोनों  
झीक ही है क्योंकि पुण्य बाण कारणोंसे ही मुख दे सकता है ॥ ४९ ॥ इसतरह अपने पुण्यकर्मके उदयसे सुखोंके  
अनुभव करनेमें तत्पर वे दोनों ही भाई किसी एक दिन समय देखकर महाराज दशरथसे कहने लगे ॥ ५० ॥ किं  
काशी देखमें बनारस नामका उत्तम नगर हमारे पूर्वजोंकी परंपरासे ही हम लोगोंकी आधीनतामें चला आ रहा है

प्रेतत्वयिविति नैसिन्ति सोक्ति । राक्षारिखलेनामा प्रदिहौ रामलक्ष्मणा ॥ ३० ॥ प्रतयुवाता गभीरेण जनके-गानुराशिणा । प्रागजन्ममर्तमितायेन एतनु-  
व्यपरिपाकतः ॥ -१॥ रूपदिगुणसंपस्या मत्यमेता गतोपमा । उति पौगैः प्रशमयन्तिः प्रेक्षमाणं यमं तत ॥ ३२ ॥ पुरं नविश्य भूगोके ध्याने  
न्यवसतां सुख । दिनेः कतिपयैरेव नृपमउलसन्निधौ ॥ ३३ ॥ निर्वैद्योमिमर्तं यज्ञविधानं तद्वन्दर । महाभिपूतिभिः सीतां देवा रामाय भूषतिः ॥ ३४ ॥  
दिनानि कानिचित्तत्र सीतयैव प्रिया सयं । नयप्रेमसमुद्भूतं मय रामोन्मथूदृशा ॥ ३५ ॥ ततया दवारयाभ्याणीदागतमणिगोस्तभिः । जनकानुमतः द्युतिषा  
परिजानन्वितः ॥ ३६ ॥ अभ्ययोध्यां पुरीं सीतागमेतो जातसम्मदः । लक्ष्मणेन च गतवायु स्याजुज्ज्वला स्पर्शभूमिः ॥ ३७ ॥ गरिवारिधं ग प्रत्यगाम्यमानो  
निजा पुरीं । विभूत्या दिविजेंद्रो वा विनीता प्राधिदाज्यी ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा यथोचित प्रीत्या पितरं प्रीतचेतसा । गर्श्या प्रवर्द्धमानधीः मप्रियाः गानुभः शूरः ॥  
३९ ॥ तदा तदुत्सवं भूयो वर्द्धयमात्मना मधुः । कोमिच्छालिङ्गलापिदिमो मंडयन् दिशः ॥ ४० ॥ गंभिः तपोभर्तः मार्जं निमहं निधिक्रमताः । प्रक-

इनकी उपमा संसारमें कहीं नहीं है " इसतरह कहते हुए नगरनिवासी लोग जिन्हें देख रहे हैं ऐसे दोनों  
भार्यों ने नगरमें प्रवेश किया और वे महाराज जनकके बतलाए हुए स्थानमें सुखपूर्वक रहने लगे । थोड़े  
ही दिनोंमें अनेक राजाओंके सामने राजा जनककी दृष्टानुसार वह यज्ञकी विधि पूरी हुई और फिर राजा  
जनकने बड़ी विभूतिके साथ रामके लिये सीता न्याह दी ॥ ३१-३४ ॥ रामचंद्रने थोड़े दिन तक लक्ष्मीके  
समान सीताके साथ २ बहुत अच्छी तरह वहीं जनकपुरमें नये प्रेमसे उत्पन्न हुए सुखका अनुभव किया ॥  
३५ ॥ उसीसमय राजा दशरथके यहांसे रामको लेनेके लिये एक मंत्री आया, तदनुसार राजा जनकको  
आज्ञा लेकर किसी शुद्ध तिथिके दिन रामने बड़ी प्रसन्नतासे सीता लक्ष्मण और परिजनोके साथ अयोध्या नगरीको  
गमन किया । वहां पहुंचकर बड़ी औषतासे सामने आये हुए अपने दोनों छोटे भाई, बंधु और परिवारके लोगोंसे  
मिले और जिमप्रकार इंद्र अपनी नगरीमें प्रवेश करता है उसीप्रकार उन विजयी दोनों भाइयोंने बड़ी विभूतिके साथ  
अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया ॥ ३६-३८ ॥ माता पिताने संतुष्टचित्त होकर बैठ प्रेममें और यथा योग्य रीतिसं  
उन्हें देखा तथा इस तरह जिनकी लक्ष्मी वा जामा रात दिन बढ रही है ऐसे राम और सीता छोटे भाइयोंके साथ २  
सुखसे निवास करने लगे ॥ ३९ ॥ उसीसमय उस उत्सवकी अपने साथ बढाता दृष्टा वसंत ऋतु आया, क्रोधन और  
अमरोंकी भीठी आवाजें ही उसके नगाड़े थे और वह सब दिशाओंको सुजोमित कर रहा था ॥ ४० ॥ कामदेव जो  
तपस्वियोंके साथ संवि करना चाहता था और जिनके व्रत गिथिल हैं उनके साथ युद्ध करना चाहता था उस काम-

जेनामिति मारीचमाहायदसावभीः । सोपि मंदोदरीगेहं गत्वा देवस्य देवि मे ॥ १९ ॥ कर्मवर्णिर्धृणस्यासीदिति तस्मै न्यवेदयत् । सापि देवनिदि-  
 शस्य नाहमस्मि निवारिका ॥ २० ॥ इति प्रभृतद्वयेण मंजूषाया विधाय तां । तत्सन्निधानपठेण सहोक्तेव च त मुहुः ॥ २१ ॥ मारीचमान्यसे  
 स्निग्धप्रकृत्या बालिकामिमां । बाधाविरहिते देवे निक्षिपेति गलज्जले ॥ २२ ॥ विरज्य लोचने तस्मै स्वतनूजा समर्पयत् । स नीत्वा मियिलोयान-  
 निकटप्रकटे क्वचित् ॥ २३ ॥ घरांत कृतमज्जो विषण्णो न्यवृत्तबुधा । तस्मिन्नेव दिने दृष्ट्वा गेह निर्माण प्रति ॥ २४ ॥ भूमिसंशोधने लागलाप्र  
 लमाघ्रियोत्तिन । मंजूषामेतदाश्चर्यमिति भुपमवोधयत् ॥ २५ ॥ मुरुषा बालिकां वीक्ष्य तदभ्यन्तरवर्तिनी । वृपस्तदवतारार्थं पिलेखादबुध्य स ॥  
 २६ ॥ तत्पूर्वापरसवधमेया सीतामिधानिका । मुता भवैतवेत्येता यमुधायै ददा मुदा ॥ २७ ॥ वसुधा च मुद्रागेहे गुणयती कलागुणान् । अवर्दय-  
 दिमा गूढ लंकेषोपि न वैत्यम् ॥ २८ ॥ वार्ता जनकयागस्य तस्माद्भात्रागमिष्यति । दास्यत्यवश्य रामाय ता कन्या मिधिलेश्वरः ॥ २९ ॥ तत्कुमारी  
 गी हे मारीच तू स्वभावसे ही कोमल प्रकृतिवाला है तू इस कन्याको किसी उपद्रवरहित जगहमें रखना । उससमय उं-  
 सके नेत्रसे आंसू बह रहे थे उन्हें पोंछकर उसने वह कन्या मारीचको सुपुर्द की । वह मारीच उस कन्याको लेकर  
 मिथिला देशके निकट किसी बनमें गया और संदूकको पृथ्वीमें गाडकर शोक करता हुआ तथा खेदखिन्न होता हुआ  
 वहांसे लौट आया । दैवयोगसे उसी दिन बहुतसे लोग घर बनानेके लिये भूमि देख रहे थे उनके हलकी नोकसे वह  
 संदूक दिखपड़ी उन्होंने तुरंतही राजाको खबर दी और कहा कि यह आश्चर्य करनेवाली संदूक हमलोगोंको मिली  
 है ॥ २१-२५ ॥ महाराजने उस संदूकके भीतर सुंदर कन्याको देखा और उसीमें रखे हुए लेखसे उसके उत्पन्न हो-  
 नेका हाल तथा उसका अगिला पीछिला सब संबंध जान लिया उन्होंने उसका सीता नाम रक्खा बड़ी प्रसन्नतासे व-  
 सुधा रानीको उसे सौंपा और कहा कि इसे तुम कन्याके ममान पालो ॥ २६-२७ ॥ तदनंतर रानी वसुधा अपने सुधाधरमें  
 छिपे छिपे बढ़ाने के साथ उसके कला गुणोंको भी बढ़ाने लगी । यह बात रावणको भी मालूम नहीं है तथा जनक  
 कोई यज्ञ करता है यह बात भी उसे मालूम नहीं है इसलिये इस यज्ञमें रावण तो आवेगा नहीं और जनक अवश्य ही  
 रामके लिये वह कन्या समर्पण कर देंगे ॥ २८-२९ ॥ इसलिये दोनों कुमारोंको वहां अवश्य ही भेजना चाहिये ।  
 इसतरह नैमित्तिकके कहे अनुसार सब सेनाके साथ राम लक्ष्मणको वहां भेज दिया ॥ ३० ॥ राजा जनकने बड़े प्रेम  
 से सामने आकर उनका आदर सत्कार किया, वहांके नगरनिवासियों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा “पहिले  
 जन्मके संचित किये हुए अपने अनंत पुण्य कर्मोंके उदयसे ही इन्हें ऐसी रूप आदि गुणोंकी संपत्ति मिली है सब है

लंजतामिति ॥ ६११ ॥ हस्तावलम्बनेनैव निराकर्तुं समुद्यताः । 'युष्माभिः सम्पद्येवोक्तं लब्ध्वा स्त्रीविषयैव सा ॥ ६१२ ॥ न पुष्टु यदि तत्रास्ति लब्ध्वा सा-  
धारणी भवेत् । ततः स्त्रीभिः कथं पुंसा संगमोऽनगसंस्कृतः' ॥ ६१३ ॥ इति वृद्धोक्तिमाकर्ण्य ब्राह्मणोऽयं न केवल । कोऽपि रूपपरमावृत्तिविषया मामु-  
पागत ॥ ६१४ ॥ इत्योक्तलज्ज्य को दोषो विप्र प्रापूर्णको मम । तिष्ठलत्रेति तच्चेष्टिका निवारयति स्म सा ॥ ६१५ ॥ तन्निशावसितौ शुद्धदेशजस्वरमेव-  
वित । गीतवान्मधुरं वृद्धचिरं श्रोत्रमनोहरं ॥ ६१६ ॥ गन्धर्वदेवाकल्याणकाले सालक्रिय कल । जीवधरकुमारस्य गीतं वैतच्छ्रुते सुख ॥ ६१७ ॥ इति प्रातः  
समुद्गाय विनयेनोपसृत्य त । साप्राक्षीत्केषु शास्त्रेषु प्रबोधो भवतामिति ॥ ६१८ ॥ 'धर्मार्थकामशास्त्राणि भूयोऽभ्यस्तानि यततः । तेषु धर्मार्थयोः काम-  
शास्त्रात्फलविनिश्चय ॥ ६१९ ॥ कथं तदिति चेत्किंचिन्मया तत्र निरूप्यते । पंचेन्द्रियाणि तेषां च विषया पचया स्मृताः ॥ ६२० ॥ स्पृशादयोऽष्टधा  
स्पर्शा कर्कशाणां श्रुतोदिताः । रसोऽपि पचविषः श्रोत्रो मधुरादिर्मनीषिभिः ॥ ६२१ ॥ कृतकं सहजमेति गन्धोऽपि द्विविधो मतः । सर्वे, सुगन्धदुर्गन्धचे-

उस बूढेकें वचन सुनकर वह गुणमाला मनमें कहने लगी कि यह कोरा ब्राह्मण नहीं है किंतु रूप बदलनेवाली विद्यासे कोई अन्य ब्राह्मणका रूप बना कर मेरे पास आया है ऐसा विचार कर वह प्रत्यक्षमें कहने लगी कि इसमें कोई दोष नहीं है यह ब्राह्मण मेरा अतिथि है इस लिये इसे यहां बैठने दो' इसप्रकार कह कर उसने दासीको रोक दिया ॥ ६१४-६१५ ॥ इसप्रकार रात्रिके बीच जानेपर शुद्धज और देशज आदि स्वरोके भेदोंको जाननेवाले उसने मधुर गीत गाये गन्धर्वदेवताके स्वयंवरके समय जो जीवंचरने अलंकार सहित मधुर गीत गाये थे वैसे ही गीत उस ब्राह्मणने गाये जिसे सुनकर गुणमालाको बहुत ही सुख हुआ ॥ ६१६-६१७ ॥ सवेरे ही उठकर वह गुणमाला बड़ी विनयके साथ उस ब्राह्मणके पास पहुंची और उससे पूछने लगी किन किन शास्त्रोंमें आपका ज्ञान अच्छा है ॥ ६१८ ॥ इसके उत्तरमें जीवंचरने कहा कि मैंने धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र और कामशास्त्र बड़े यत्नसे अच्छी तरह अभ्यास किये हैं । इन शास्त्रोंमें कामशास्त्रसे ही धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्रके फलका निश्चय होता है भावार्थ-धर्मसे अर्थ और अर्थसे कामकी प्राप्ति होती है इसलिये कामकी प्राप्तिसे धर्म और अर्थका निश्चय हो जाता है ॥ ६१९ ॥ यह कैसे होता है सो भी मैं कुछ थोड़ासा कहता हूं । इंद्रियां पांच हैं और स्पर्शादिक उनके विषय भी पांच ही प्रकारके कहे गये हैं उनमेंसे शास्त्रोंमें कहे हुए कर्कश आदिके भेदसे स्पर्शके आठ भेद होते हैं और विद्वानोंने मधुर आदिके भेदसे रस भी छह प्रकारका बतलाया है ॥ ६२०-६२१ ॥ सुगंध और दुर्गन्धरूप चेतन अचेतन वस्तुओंमें उत्पन्न होनेवाला सब तरहका गंध भी कृतक और सहजके भेदसे दो तरहका माना गया है ॥ ६२२ ॥ इसीतरह सफेद काले आदिके भेदसे रूप पांच तरहका है और जीव तथा अजीवसे उत्पन्न हुए स्वर षड्ग आदिके भेदसे सात

तनेतरवरतुगः ॥ ६२२ ॥ रूपं पंचविधं श्वेतकृष्णादिप्रभिभागभाक् । यद्गुणदयः स्वरा सप्त जीवाजीवसमुद्भवाः ॥ ६२३ ॥ इत्याद्याविंशतिर्भूला द्वैगुण्य पुनरागता । इष्टानिष्टविकल्पान्यां षट्पञ्चाशाद्विकल्पना ॥ ६२४ ॥ तेष्विष्टाः कृतपुण्याना तानि पुण्यानि धर्मतः । निषिद्धविविधत्यागो धर्मः सङ्क्रियरीरित ॥ ६२५ ॥ निषिद्धविषय तस्मात्पविहृत्य विचक्षणः । शोयाननुभवतोऽत्र कामशास्त्रविदो मताः ॥ ६२६ ॥ लयाशुभयमानेषु दोषाः संतीह वेपु भित् । इति तेनोदित भूला तदोषक्षिनिवृत्तये ॥ ६२७ ॥ लयोपदेशः कर्तव्यो यास्यामि तव सिध्यतां । इत्युदीर्णवर्ती विप्रस्ता व्यनैवीत्यल्लादिषु ॥ ६२८ ॥ सर्वे तत्पुनरन्येषु विहर्तुं मनः प्रागमन् । स्थितस्तत्रायमेकांतप्रदेशे गुणमालया ॥ ६२९ ॥ सह स्वाभाविक रूपमात्मनः समदर्शयात् । कन्या दृष्ट्वा तं जातसद्यथा सत्रपा सती ॥ ६३० ॥ मौनेनावस्थितां वीक्ष्य तामेव प्राक्नोक्तिमि । कृष्णवासादिजाताभिः प्रत्यापयदतिदुतं ॥ ६३१ ॥ पुनः प्राक्नारूपस्थः पुष्पशय्यामधिष्ठितः । कुरु मया दलवाहमिति प्रेषयति स्म ता ॥ ६३२ ॥ तां च स्नेहेन तत्कर्म कुर्वती वीक्ष्य विस्मयात् ॥ ६३३ ॥ अथ तस्मा-

प्रकारके हैं ॥ ६२३ ॥ इसप्रकार पांचों इंद्रियोंके सब विषय अट्ठाईस होते हैं और फिर उनमें भी इष्ट और अनिष्टके भेदसे प्रत्येकके दो दो भेद हो जाते हैं इसप्रकार सब छप्पन भेद हो जाते हैं ॥ ६२४ ॥ इनमेंसे जो इष्ट विषय हैं वे पुण्यवानोंको प्राप्त होते हैं तथा वे पुण्य धर्मसे प्राप्त होते हैं और निषिद्ध विषयोंका त्याग करना ही सज्जनोंके द्वारा धर्म कहा जाता है ॥ ६२५ ॥ इसलिये जो चतुर पुरुष निषिद्ध विषयोंका त्यागकर शेष विषयोंका अनुभव करते हैं वे ही इस संसारमें कामशास्त्रके जानकार कहलाते हैं ॥ ६२६ ॥ हे गुणमाले ! तू जो विषयोंका अनुभव करती है उसमें कितने ही दोष हैं । ब्राह्मणकी यह बात सुनकर वह गुणमाला कहने लगी कि उन दोषोंकी दूर करनेकेलिये तू मुझे कुछ उपदेश दो । मैं आपकी शिष्या बन जाऊंगी । यह सुनकर उस ब्राह्मणने उसे बहुतसी कलाएं सिखलाई ॥ ६२७-६२८ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन सब लोग बनमें घूमने फिरनेकेलिये गये वहां जाकर जीवंधरने गुणमालाके साथ एकांतमें बैठकर उसे अपना स्वाभाविकरूप दिखलाया । उसे देखकर सती गुणमालाकी कुछ संदेह हो गया और वह लज्जित होकर मौन धारणकर बैठ गई । उसे मौनसे वैठी देखकर जीवंधरने सुगंधित चूर्णकी कथासे लेकर पहिलेकी सब बातें कहकर बहुत ही शीघ्र उसे विश्वास दिला दिया ॥ ६२९-६३१ ॥ तदनंतर फिर वह अपना पहिला ब्राह्मणकासा रूप बनाकर पुष्पशय्यापर बैठ गया और गुणमालासे कहने लगा तू मेरे पैर दाब ॥ ६३२ ॥ वह गुणमाला भी उसके स्नेहसे पैर दाबने लगी उसे पैर दाबते देखकर उन राजपुत्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और फिर वे सब उस ब्राह्मणके मंत्र आदिकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६३३ ॥ तदनंतर वह कुमार बनसे अपने घर आगया गुणमालाने भी घर आकर अपने माता पितासे जीवंधरके

द्वानाद्रेहमागतौ गुणमालया । मातुः पिबुध जीवंधरागतिः कथिता भिष ॥ ६३४ ॥ शिवाहविधिना तौ च तां तस्याकुसुता प्रिया । दिनानि कानिचित्तन-  
स्थित्वा जीवन्धरास्तया ॥ ६३५ ॥ दुष्कानि सह भुजानः सर्वन्धुसमन्वितः । जनप्रस्तुत्यमानोरुमाग्यो गधगजं गिरि ॥ ६३६ ॥ विजयादि समाराध्य न-  
रंगबलान्वृतः । गृहं गधोत्कटाख्यस्य प्राविशत्परमोदय ॥ ६३७ ॥ तदुत्सव समाकर्ण्य स काष्ठांगारिक कुषा । पश्य वैश्यात्मजो मतो मनाक् च न बिभेति  
मत् ॥ ६३८ ॥ इति प्रकाशकोणोऽभूत्पद्मीस्य सन्निवोत्तमाः । “जीवंधराकुमारोऽयं देवादाविष्कृतोदयः ॥ ६३९ ॥ गन्धर्वदत्तया साक्षात्कृत्यैव समुपाश्रित ।  
यक्षेण कृतसंवृद्धिभिन्नेणाव्यसिचरिणा ॥ ६४० ॥ मधुरादिसहायैश्च सहितो गन्ततो मशान् । अमेयविक्रमोऽनेन विप्रहो नैव गुज्यते ॥ ६४१ ॥ बलिना  
सह युद्धस्य हेतुः कोऽपि न विद्यते” । इत्यादियुक्तिमद्वागिभस्त्रमाशु समसीशमन् ॥ ६४२ ॥ इदमव्यदित किञ्चित्प्रस्तुत प्रतिपाद्यते । विदेदविवये ह्य्यात  
विदेदशस्त्रं पुं परं ॥ ६४३ ॥ गोपेन्द्रो भूषतिस्तस्य पाता पातितविद्विषः । दुक् पृथिव्यादिसुदर्या राश्यां रत्नवती सती ॥ ६४४ ॥ चन्द्रकव्याधने दसं

आनेके समाचार कह सुनायें और माता पिताने भी विधिपूर्वक विवाहकर वह गुणमाला जीवंधरको व्याह दी । इसके बाद  
वह जीवंधर कुछ दिनें तक तो वहींपर उसी गुणमालाके साथ रहा और सब भाई बंधुओंके साथ अनेक तरहके सुखोंका  
अनुभव करने लगा । संसारके लोग भी उसके बडेभारी भाग्यकी प्रशंसा करने लगे थे किसी एक दिन परम विभूतिको धारणा  
करनेवाले उस कुमारने चारोंप्रकारकी सेना लेकर और विजयगिरि नामके गंधगजपर सवार होकर गंधोत्कटके घर प्रवेश  
किया ॥ ६३४-६३७ ॥ उस उत्सवको सुनकर काष्ठांगार बहुत क्रोधित हुआ और कहने लगा कि देखो यह महा अ-  
भिषानी उन्मत्त हुआ वैश्यपुत्र मुझसे विष्कुल नहीं डरता है इसप्रकार कहकर वह प्रगटरीतिसे क्रोध करने लगा उसे क्रो-  
धित देखकर अच्छे अच्छे मंत्री कहने लगे कि “यह जीवंधर कुमार है भाग्यके उदयसे इसे बड़ी भाभी विभूति प्राप्त हुई  
है गंधर्वदत्ता भी साक्षात् लक्ष्मीके समान इसकी सेवा करती है, अभिन्न मित्र ऐसे यज्ञके द्वारा इसकी वृद्धि हुई है और  
मधुर आदि साधियोंके साथ यह बडे यत्नसे रहता है यह महान् पुरुष है इसके पराक्रमका कोई भेदन नहीं कर सकता  
इसलिये इसके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है क्योंकि बलवानके साथ युद्ध करनेसे कोई लाभ नहीं होता इसप्रकारके यु-  
क्तियोंके बचनोंसे मंत्रियोंने उसे शीघ्र ही शांत कर दिया ॥ ६३८-६४२ ॥ अब कथांतरके बाद प्रकृत विषयकी कथा  
कहते हैं विदेह देशमें एक विदेह नामका उत्तम नगर है उसमें शत्रुओंको नष्ट करनेवाला राजा गोपेन्द्र राज्य करता था उ-  
सकी पृथिवी सुंदरी नामकी रानीसे सती रत्नवती नामकी पुत्री हुई थी ॥ ६४३-६४४ ॥ उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो  
चंद्रक यंत्रपर निशाना मारकर चतुरता दिखलायेगा उसीको मैं वरमाला पहिनाकर अलंकृत करूंगी उसके सिवाय अन्य



माल्याल्लकरोम्यह । नेच्छाम्यन्य पतिं कश्चिदकरोदिति संगरं ॥ ६४५ ॥ तद्वात्मान्मा पिता चापवेदेवेदुहितोदित । जीवधरोऽत्र तत्कन्यामिमां तत्सन्निधि नये ॥ ६४६ ॥ इति राजपुरे गत्वा सकन्यः सहसाधन । घोषणा कारयामास स्वयंवरविधिं प्रति ॥ ६४७ ॥ तदघोषणा समाकल्प्ये सर्वे भूत्स्वरेधराः । कन्यापरिग्रहायान्मद्भु राजपुरे प्रति ॥ ६४८ ॥ स्वयंवरविधा तस्मिन्मद्भुव्यधने दृष्टान् । स्मृतितास्ताम्बह्वीक्ष्य जीवधरकुमारकः ॥ ६४९ ॥ कृत- सिद्धनमस्कारः स्वशुभोद्यार्थवर्मणः । विधाय विनय बालमानुवादेयशैलण ॥ ६५० ॥ स्थित्वा विमाखरस्तस्मिन्मद्भु स्खलनवर्जित । कृतवेधो व्यधात्सिहन द नदितदिफट ॥ ६५१ ॥ साधु विद्वन्मेनेति प्राशंसन् प्राशिकास्तदा ॥ ६५२ ॥ साधवस्तत्र शोभ्योऽयमन्योन्यं नु सगम । शरत्समयहृत्साल्योरिवेति प्रीतिमागत ॥ ६५३ ॥ सर्वत्र विजय पुण्यवता को वात्र विस्मय । इत्यादासीन्यापन्ना मध्यमाः हतलुङ्घय ॥ ६५४ ॥ काष्ठाङ्गारिकमुद्यथास्ते नीचाः प्राप्तपराभवा । प्राकस्यातदनुश्रुत्या दुःप्रकोपप्रचोदिताः ॥ ६५५ ॥ पापास्तुमुत्पुद्गेन कन्यामाहर्मुष्यता । बुद्ध्या जीव-

क्रिसीको अपना पति नहीं बनाऊंगी ॥ ६४५ ॥ उस कन्याकी ऐसी प्रतिज्ञा जानकर उसके पिताने सोचा कि दूस सारमें धनुषविद्याको जाननेवाला और अत्यंत ऐश्वर्यशाली जीवंधर ही है इसलिये उसीके समीप यह कन्या ले चलनी चाहिये । इसप्रकार विचारकर वह राजा उस कन्याको लेकर अपनी सब सेनाके साथ राजपुर नगरमें पहुंचा और वहां जाकर उसने स्वयंवरकी घोषणा कराई ॥ ६४६-६४७ ॥ इस घोषणाको सुनकर उस कन्याके साथ विवाह करनेकेलिये भूमिगोचरी और विद्याधरोंके राजा लोग चूक गये तब उन सबको स्वलित हुआ देखकर जीवंधर कुमार उठा उसने पहिले निशाना मारनेमें बहुतसे राजा लोग चूक गये तब उन सबको स्वलित हुआ देखकर जीवंधर कुमार उठा उसने पहिले ही सिद्धोंको नमस्कार किया फिर अपने गुरु आर्यवर्माकी विनय की और उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए बालसूर्यके समान दैदीप्यमान होकर खड़ा हुआ । तदनंतर उसने बिना किसी भूलके उस यंत्रमें निशाना मार दिया और फिर सब दिग्भाओंके किनारोंको शब्दायमान करता हुआ सिंहनाद किया ॥ ६४९-६५१ ॥ उसीसमय धनुर्विद्याके अच्छे जानकार लोग उसकी प्रशंसा करने लगे कि इसने अच्छा निशाना मारा तथा उस रत्नवती कन्याने भी प्रसन्न होकर कुमारके कंठमें बरमाला पहिनाई ॥ ६५२ ॥ सज्जन लोग कहने लगे कि इसने अच्छा निशाना मारा तथा उस रत्नवती कन्याने भी प्रसन्न होकर कुमारके होता है उसीप्रकार इन दोनोंका समागम बहुत ही ठीक हुआ है इसप्रकार उन दोनोंके समागमसे सज्जन लोगोंकी बहुत ही प्रेम हुआ था ॥ ६५३ ॥ इसीतरह बुद्धिमान् मध्यस्थ लोग उदासीनता धारण करने लगे थे और कहने लगे थे कि पुण्यवानोंका सब जगह विजय होता है इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ६५४ ॥ तिरस्कारको प्राप्त हुए जो काष्ठाङ्गारादि

धरस्तेषां वैषम्यं नयकोविद ॥ ६५६ ॥ सत्यधरमहाराजसाम्प्रतायातिकं तदा । प्राणिमोक्षितिं सन्निष्टान् कृतान् सोपायायनान्बहून् ॥ ६५७ ॥ “अहं सत्यधराधी-  
शाद्विजयाया सुतोऽभ्रं । मत्पूर्वकृतदैवेन ताभ्यामुत्पत्स्यन्तरे ॥ ६५८ ॥ विद्युकोऽस्मिन्वनिगव्यशरणे समर्थाभिषि । काष्ठाङ्गसिक्कापोऽयं काष्ठागाराद्वि-  
क्रियात् ॥ ६५९ ॥ प्राणसधारणं कुर्वन्नुष्मदुर्वीयतां कृत । द्वितीयप्रकृतिर्नीको लघ्वरैर्धो दुराख्य ॥ ६६० ॥ तमेवाहिरिवाहृत्य स्वयं राज्ये व्यवरिष्यत । उ-  
च्छेदेषु न समेवाश्च शत्रुत्वाद्भवतामपि ॥ ६६१ ॥ रसातलं गतोऽप्यथ मयावश्यं हनिष्यते । सत्यधरमहीशस्य सागतास्तस्य भास्विका ॥ ६६२ ॥ योधा  
पुष्टा महाभावास्तेनान्ये चानुजीविनः । कृतघ्नममुच्छेद्युमर्हति कृतवेदिनः ॥ ६६३ ॥ ते तत्सदेषामाकर्ष्यं कुमारोऽयं नृपात्मज । सत्यमेवेति सभाभ्य  
बहवस्तेन संगताः ॥ ६६४ ॥ ततः सज्जसन्त्यं संस्तस्य गत्वोपरि स्वयं । शुल्बा नानाप्रकारेण चिरं निर्जित्य तद्दल ॥ ६६५ ॥ गिर्यतविजयं गङ्गाज

नीच पुरुष थे वे जीवन्धरके पहिलेके पराभवका ( गंधर्वदत्ताके विवाहके समय होनेवाले पराभवका ), स्मरण करने लगे और नीच क्रोधसे प्रेरित होकर उन पापियोंने भारी युद्धकर कन्याको हरणकरनेका उद्यम किया । नर्थेकी जाननेवाले जीवन्धरने उनकी यह विषमता जान ली और उसीसमय उसने सत्यंशर महाराजके जो मांमंत थे उनके समीप भेट लेलेकर बहुतसे दूत भेजे उसने उन दूतोंके साथ यह समाचार कहला भेजा कि “मैं विजया महारानीसे उत्पन्न हुआ महाराज स-  
त्यंशरका पुत्र हूं मैं अपने पहिले किये हुए कर्मके उदयसे उत्पन्न होते ही माता पितासे अलग हो गया था और यहाँके उत्तम वैश्य गंधोत्कटकी शरणमें जाकर इतना बड़ा हुआ हूं यह पापी काष्ठांगार काष्ठांगारकी विक्रियासे अर्थात् लकड़ी लाकर बेचना आदि व्यापारसे प्राण धारण करता था परंतु आपके स्वामी महाराज सत्यंशरने इसे मंत्री बनाया यह रा-  
जसी प्रकृतिका नीच मनुष्य है इस दुष्टने छिद्र पाकर सर्पके समान उन्हीं सत्यंशर महाराजको मारा और आप स्वयं रा-  
जसिंहासनपर बैठ गया । इसलिये आज मुझे ही इसका नाश नहीं करना चाहिये किंतु यह आपका भी शत्रु है इसलिये आपको भी शीघ्र ही इसका नाश करना चाहिये । यदि आज यह रसातलमें भी पहुंच जाय तो भी मैं आज इसे अवश्य मा-  
रूंगा । आप लोग सत्यंशरके सांमत हैं उनके भक्त हैं उनके योद्धा हैं उनके द्वारा पुष्ट हुए हैं उनके महामंत्री हैं और कृ-  
तज्ञ अर्थात् अपने स्वामी महाराज सत्यंशरके उपकारको जानते हैं इसलिये आपको तथा और भी जो उनके अनुचर वा  
अनुयायी हैं उन सबको आज इस कृतघ्नका अवश्य ही नाश करना चाहिये” ॥ ६६५-६६३ ॥ इस समाचारको पाकर बहुत सांमत विचार करने लगे कि यह कुमार अवश्य ही राजपुत्र है इसमें कोई संदेह नहीं है यही विचारकर बहुतसे सा-  
मंत उसकीओर आ मिले ॥ ६६६ ॥ तदनंतर अपनी सब सेना तयारकर वह कुमार स्वयं उसके ऊपर गया और बहुत

समदमूर्जित । समारुढः प्ररुढाङ्गः काष्ठाट्ण्णारिकमुद्धत ॥ ६६६ ॥ उपर्यशनिवेगाद्यविद्ययातकरिण स्थित । हत्वा चकार चक्रेण तनुशेष रुषा द्रिय ॥ ६६७ ॥ विलोक्य तद्रूढे भग्न भयादुपगते सति । तदाकारितसमाश्रय विधायामयघोषणः ॥ ६६८ ॥ मधुनसर्वान् समाहूय विनयानवलेक्य तान् । तत्कालोचितसभाषणादिभिः हर्षमानयत् ॥ ६६९ ॥ जिनपूजां विनिर्घर्त्य कृतमगलसरिक्कयः । यक्षेण भूभुजं सर्वैश्वरासुराज्याभियेचनः ॥ ६७० ॥ रत्नवत्या च सप्राप्य स विवाहमहोत्सवः । कुन्दा गन्धर्वदाया महत्याः पट्टवधन । नदाब्बाविसरानीतमातृजायादिसिन्धुतः । सप्राप्य परशैश्वर्यमूर्जितो निजितद्विष ॥ ६७१ ॥ यथान्याय प्रजा सर्वैः पालयन् हेमलेपिताम् । लीलयाऽनुभवन् भोगान् स्वपुण्यफलितान् स्थित ॥ ६७२ ॥ सुराभिसलयोषाणे कदाचिद्विहरन् विभुः । वरधर्मयतिं दृष्ट्वा संप्राप्य विहितानसिः ॥ ६७३ ॥ ततस्तत्त्व विदित्वाऽवप्रतोऽप्युद्दर्शनमलं । नदाब्बायाश्च सम्यक्त्वव्रतशीलान्युपगमत् ॥ ६७४ ॥ एतैः सुखमंसा स्वाप्तैः साकं कालमजीगमत् ।

देरतक जनेक तरहसे युद्धकर उसने काष्ठांगारकी सेनां हराई ॥ ६६६ ॥ तब प्ररुढ आङ्गाको चलानेवाला उद्धत काष्ठांगार अशनिवेग नामके प्रसिद्ध हाथीके ऊपर सवार होकर आया और उसके सामने मदनपत्त और बड़े भारी ऐसे विजयगिरि नामके गंधजपर सवार होकर जीवंधर भी आया । जीवंधरन क्रोधमें आकर चक्कसे उस शत्रु काष्ठांगारको मार गिराया ६६७-६६८ राजा काष्ठांगारके मरनेसे भंगके भयसे उसकी सेनाको भागती हुई देखकर जीवंधरने अभय घोषणा दिलवाई और सब को आश्वासन दिया ॥ ६६९ ॥ तदनंतर कुमारने अपने सब भाई बंधुओंको बुलाया और सबको नम्र देखकर उस समय के योग्य बात चीतके द्वारा सबको प्रसन्न किया ॥ ६६९ ॥ इसके बाद सबसे पहिले श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा की गई फिर जनेक मांगलिक क्रियाएं हुई और फिर उस यक्ष और सब राजाओंके द्वारा जीवंधरका राज्याभिषेक किया गया ॥ ६७० ॥ तदनंतर रत्नवतीके साथ उसका विवाह महोत्सव हुआ और फिर गंधर्वदाताको महापट्ट बांधा गया अर्थात् वह महा पट्टरानी बनाई गई ॥ ६७१ ॥ नंदाढ्य जीवंधरकी माता विजयाको ले आया था और हेमाभा आदि सब जीवंधरकी रानियोंको ले आया था उन सबके साथ जीवंधरकुमार परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ बहुत ही दैदीप्यमान हुआ और उसने सब शत्रुओंको जीता ॥ ६७२ ॥ तदनंतर वह न्यायपूर्वक कौतुकसे ही सब प्रजाका पालन करने लगा और अपने पुण्य कर्मके फलसे प्राप्त हुए इष्ट भोगोंका लीलापूर्वक अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥ ६७३ ॥ किसी एक समय महाराज जीवंधर सुरमलय नामके उद्यानमें विहार करने गये थे वहां पर उन्होंने वरधर्म नामके मुनिराजके दर्शन किये उनके समीप जाकर नमस्कार किया उनसे तत्त्वोंका स्वरूप जाना और व्रत धारण कर सम्यग्दर्शनको निर्मल किया । नंदाढ्य आदि भार्योंने भी सम्यग्दर्शन व्रत और शील धारण किये ॥ ७७४-७७५ ॥ इसप्रकार वे जीवंधर महाराज इन प्राप्त स्वर्गोके

अथाशोकवनेऽन्येभ्युप्यमानं परस्परं ॥ ६७६ ॥ कपीना यूथमालोक्य ज्वलत्कोपधुताशनं । जातससारनिर्वेगस्तस्मिन्नेव बनतरे ॥ ६७७ ॥ प्ररास्तवक-  
नामान चारणं वीक्ष्य सादरं । पूर्वश्रुतानुसारेण धृतात्ममवसंतति ॥ ६७८ ॥ जिनपूजा विधायां नु वर्धमानविशुद्धिक । सुरादिमलयोयानायान वीरजिनेशिव  
॥ ६७९ ॥ श्रुत्वा विभूतिमद्रत्वा सपूज्य परमेश्वरं । महादेवीतनूजाय दत्त्वा राज्यं यथाविधि ॥ ६८० ॥ वसुधरकुमाराय वीतमोहो महामना । मातुलादि-  
महीपालैर्नंदाढ्यामधुरादिभिः ॥ ६८१ ॥ सर्वसगपरित्यागात्सत्यम प्रत्यपद्यत । भुक्तभोगा हि निष्काङ्क्षा भवति भुवनेश्वरः ॥ ६८२ ॥ सत्यधरमहादेव्या  
सहायै सुदृढा स्तुषा । सद्यो गधर्वदत्ताद्यास्तासामपि च मातर ॥ ६८३ ॥ समीपे चन्दनार्थीया जगद्गुरुः सयमं पर । महानेको भवेदेतुर्बहुनामर्थसिद्धये  
॥ ६८४ ॥ “भवता परिपृष्टोऽय जीवधरमुनीश्वरः । महीयान सुतपा राजन् सप्रति श्रुतकेवली ॥ ६८५ ॥ घातिकर्मणि विष्वस्य जनितागृहेकेवली सार्धं वि

साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे । अथानंतर किसी एक दिन वे महाराज अशोक वनमें गये थे वहांपर जिनकी क्रो-  
धरूपी अग्नि जल रही है ऐसे दो वंदरोंके भुंड परस्पर लड़ रहे थे उन्हें लड़ते हुए देखकर जीवंधरको संसारसे वैराग्य  
उत्पन्न हुआ । उसी वनमें प्रशस्तवंश नामके चारण मुनिराज विराजमान थे इसलिये जीवंधरने बड़े आदरसे उनके दर्शन  
किये और पहिले सुने अनुसार अपने पहिले भवोंकी परंपरा सुनी ॥ ६७६-६७८ ॥ तदनंतर उन्होंने भगवान जिनेंद्र-  
देवकी पूजाकर आत्माकी विशुद्धि बढ़ाई । फिर उन्होंने सुरमलय उद्यानमें भगवान वीरनाथके समवसरणके आनेकी बात  
सुनी उसे सुनते ही वे बड़ी विभूतिके साथ वहां पहुंचे परमेश्वर भगवान वीरनाथ की पूजा की और गंधर्वदत्ता महादेवीके  
पुत्र वसुंधर कुमारको विधिपूर्वक अपना राज्य दिया । जिनका मोहनीय कर्म शांत हो गया है और जिनका मन आत्माके  
विशुद्ध भावोंमें लगा हुआ है ऐसे उन महाराज जीवंधरने मामा आदि अनेक राजाओं और नंदाढ्य मधुर आदि भाइयोंके  
साथ सब तरहके परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारणकर लिया । सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग भोगोंका अनुभव कर  
फिर अंतमें आकांक्षाहित-विरक्त हो ही जाते हैं ॥ ६७९-६८२ ॥ गंधर्वदत्ता आदि सुंदर नेत्रोंको धारण करनेवाली  
जीवंधरकी आठों रानियोंने तथा उन रानियोंकी माताओंने महाराज सत्यंधरकी महादेवी विजयके साथ चंदना आर्याके  
समीप जाकर शीघ्र ही उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि एक भी बड़ा आदमी अनेक लोगोंका अर्थ-  
सिद्धिका कारण हो जाता है ॥ ६८३-६८४ ॥ हे श्रेष्ठिक ? तूने जिन मुनिराजकेलिये पूछा था वे ही जीवंधर हैं ये बड़े  
तपस्वी हैं और इससमय श्रुतकेवली हैं ॥ ६८५ ॥ घातिया कर्मोंको नागकर ये अगृहेकेवली होंगे महावीर तीर्थकरके  
साथ विहारकर महावीर स्वामीके ही मोक्ष जानेके समय ही विपुलाचल पर्वतपर समस्त कर्मोंको नाशकर मोक्षरूप उत्कृष्ट

इत्य तीर्थेणा तस्मिन्मुक्तिमसिद्धिरे ॥ ६८६ ॥ विपुलादौ हताशेषकर्मो शर्मोऽप्यमेव्यति ।  
भर्माख्यगणशुद्धचनामर्तः । मित्रिये श्रेमिकः कस्य न धर्मं ग्रीतये भवेत् ॥ ६८८ ॥ अन्यैर्धः समवाप पूर्वसुहृतात्कन्याष्टकं दुर्लभं यः शत्रुं पितृघातिन रण-  
मुक्ते लोकातरे प्रापयत् । यः प्रकृत्य विमिश्रकर्मसिद्धिरेऽप्रासिद्ध मुक्तिश्चिदा त वदे मुक्तीकृतात्कन्याष्टकं दुर्लभं यः शत्रुं पितृघातिन रण-  
नि स मदसान्नाय विहाय कर्णा विमतिः पितृन्या । सप्राप पोदश समाः स्वसनाभिमेदं जीवधर, कुल तदुदरित न भव्या ॥ ६९० ॥ क स पितृ-  
उपसृत्युः क इमयाने प्रसुतिर्वैणिगुपगमनं क क स्वयक्षोपकारः । क तदुदयविधानं शत्रुघातः क चित्र विभिविलसितेतत्पश्य जीवधरेऽस्मिन् ॥ ६९१ ॥  
इत्यार्ये त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसमूहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते चन्दनार्थिकाजीवधरचरितं परिसमाप्त पंचसप्ततितमं पर्व ॥ ७५ ॥

कल्याणको प्राप्त होंगे तथा उनका कुतकृत्य आत्मा इष्ट आठ गुणोंसे संपूर्ण होकर कर्मरूपी अंजनसे सर्वथा अलग हो जा-  
या ॥ ६८६-६८७ ॥ इसप्रकार सुशर्माचार्य गणाधरके वचनरूपी अमृतको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही प्रसन्न हुआ  
सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे किसको प्रसन्नता नहीं होती है ? ॥ ६८८ ॥ जिसने पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे अन्य लोगोंको  
दुर्लभ ऐसी आठ कन्याएं प्राप्त की, पिताको घात करनेवाले काष्ठंगार शत्रुको युद्धमें परलोक पठाया, जिसने दीक्षा ले-  
कर कर्मरूपी अधकारको नष्ट किया और जो मोक्षरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हुआ ऐसे जीवधर स्वामीको मैं हाथ जोड़कर  
नमस्कार करता हूं ॥ ६८९ ॥ जिसने ( नयद्वय अवस्थामें ) मुखतासे दयारहित होकर हंसके वन्चोंको सोलह दिनतक  
पिता पितासे अलग रखवा और इसीलिये जीवधरको सोलहवर्षतक अपने कुटुंबियोंसे अलग रहना पड़ा इसलिये भव्य  
जीवोंको पाप कार्य कभी नहीं करने लाहिये ॥ ६९० ॥ देखो कहां तो महाराज पिताकी मृत्यु, कहां शमशानमें जन्म लेना,  
कहां वैश्यके घर जाकर पलना, कहां यसका उपकार, कहां सुंदर कन्याएं और राज्य आदि विभूतियोंकी प्राप्ति  
और कहां काष्ठंगार ऐसे शत्रुका घात करना । इस जीवधरमें ही ऐसे विचित्र कर्मोंका उदय विद्यमान है ॥ ६९१ ॥  
इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित महापुराणके नवीन हिंदीभाषानुवादमें जीवधरके चरित्रको कहनेवाला यह पंचवहतरिंश पर्व समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

## अथ षट्पदसतितमं पर्व ॥ ७६ ॥

अयान्येयुर्महावीर सुरासुरपरिष्कृत । विहय विविधान् देशान् पुनस्तसुरमागत ॥ १ ॥ गणैर्द्वादशभिः पूज्यः स्थितः स विपुलाचले । गच्छस्त-  
श्रेणिकः स्तोतु इक्ष्मूले शिलातले ॥ २ ॥ मुनि धर्मसूचि नाम्ना निस्सरगमिवोदधि । प्रदीपमित्र निष्कंप सांयु बामोदमुन्नतं ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियसमाहारं पर्यङ्क-  
हितासनं । ईषभिरुद्गनिःश्रासं मन ग्मीलितलोचन ॥ ४ ॥ ध्यायत वीक्ष्य वदेत्वा साशक्तो विकृताननात् । ततो गत्वा जिन प्राप्य स्तुत्वा मुकुलिताञ्जलिः  
॥ ५ ॥ गौतम च समा दृष्टः कबिदेकललोचनः । ध्यायन् साक्षादिव ध्यातिस्तद्रूपेण आवस्थिता ॥ ६ ॥ स को मे कंतु क तस्मिन् ब्रूहि नायेत्यम वत ।  
अनुयुक्तो गणी तेन प्रोवाच वत्सापतिः ॥ ७ ॥ अत्यत्र विषयैर्गच्छयः संगतः सर्ववस्तुभिः । नगरी तत्र चपाह्वया तरुभिः । इवेतवाहनः ॥ ८ ॥ भुला

## अथ छिहत्तरिवां पर्व ।

अयानतर-जिनके चारोंओर सदा सुर असुर रहते हैं ऐसे श्रीमहावीर स्वामी अनेक देशोंमें विहार कर किसी दिन फिर उसी नगरमें आपहुंचे ॥ १ ॥ बारह सभाओंसे पूज्य वे भगवान विपुलाचल पर्वतपर विराजमान हुए राजा श्रेणिक उनकी स्तुति करनेके लिये जाने लगा । मार्गमें एक वृक्षके नीचे शिलाके ऊपर धर्मरुचि नामके मुनिराज विराजमान थे वे मुनिराज तरंगरहित समुद्रके समान निश्चल थे, दीपकके समान निष्कंप थे और जलसे भरे हुए बादलके समान उन्नत थे ॥ २-३ ॥ वे जितेंद्रियकी चरम सीमातक पहुंचे हुए थे पर्यंक आसनसे विराजमान थे थोडा थोडा श्वास रोके हुए थे और उनके नेत्र कुछ कुछ बंद थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार ध्यान करते हुए उन मुनिराजको देखकर श्रेणिकने उनकी वंदना की परंतु उन मुनिराजका कुछ विकृत मुह देखकर श्रेणिकको कुछ शंका उत्पन्न हो गई । तदनंतर वह भगवानके समवसरणमें पहुंचा और हाथ जोहकर भगवानकी स्तुति की ॥ ५ ॥ फिर उसने गौतम गणधरसे पूछा कि हे प्रभो मैंने मार्गमें एक मुनि देखे हैं वे ऐसा ध्यान कर रहे हैं मानों उनका रूप धारणकर साक्षात् ध्यान ही विराजमान हो । नाथ वे कौन हैं उनके जाननेकी मेरी बड़ी इच्छा है आप कृपाकर कहिये ? इसके उत्तरमें वे वचनोंके स्वामी गणधर देव इसप्रकार क-  
हने लगे ॥ ६-७ ॥ इसी भरतचक्रके अंग देशमें सब वस्तुओंसे सुशोभित ऐसी एक चंपा नगरी है उसमें राजा श्वेतवा-  
हन राज्य करता था ॥ ८ ॥ इन्हीं भगवान वीरनाथसे धर्मका स्वरूप सुनकर उसका चित्त तीनोंतरहके वैराग्यसे पूर्ण भ-  
राया और अपने पुत्र विमलवाहनको राज्य देकर अनेक लोगोंके साथ उसने दीक्षा धारण करली । अनेक मुनियोंके साथ

धर्म जिनादसाभिनिर्देगाहितासयः । राज्यभारे समारोप्य मुते विभलबाह्वे ॥ १ ॥ समयम बहुभिः सार्धमैव प्रतिष्ठापयान् । चिरे मुनिगणैः साक विह्वला-  
खंडसयमः ॥ १० ॥ धर्मेषु रुचिमातन्वन् दशखण्डनिशं ब्रनः । प्राप्तधर्मैरुचि स्याति सख्यं यत्सर्वजनुषु ॥ ११ ॥ अथ मासोपवासार्ति भिक्षार्थं प्राविश  
सुर । पुरुषा संहतास्त्र तत्समीपमितास्त्रयः ॥ १२ ॥ नरलक्षणशास्त्रज्ञस्तेज्वेको वीक्ष्य तन्मुनिं । लक्षणान्यस्य साम्राज्यपदवीप्राप्तिहेतव ॥ १३ ॥ अट-  
त्येष च भिक्षायै शास्त्रोक्त तन्मृद्वेख्यः । नद्वयभित्तिहोत्येन न यथा शास्त्रभाषित ॥ १४ ॥ लयकसाम्राज्यतत्रोद्युपि केनापि हेतुना । निर्दिष्टान्येनैवाति  
निधाय व्यावृत्ति निजा ॥ १५ ॥ एत तपः करोतीति श्रुत्वा तद्वचन पर । अवोचत्किमनेनास्य तपसा पापहेतुना ॥ १६ ॥ दुरात्मनः कृपा हिला वालं  
तमसमर्थक । लोकसव्यवहारार्थं स्थापयित्वा घरातले ॥ १७ ॥ खग सार्यं संसृष्टस्य तप कुंभिहागतः । मन्त्रिप्रभृतिभिः सवे कृत्वा त शृंगलावृत ॥ १८ ॥

बहुत दिनतक विहारकर आखंड संयमको धारण करते हुए वे मुनिराज यहां आ विराजमान हुए हैं ॥ २-१० ॥ वे दश  
धर्मोंमें सदा प्रेम रखते थे इसीलिये लोगोंके द्वारा धर्मरुचिके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं । सो ठीक ही है क्योंकि सब जीवोंमें  
मैत्रीभाव रखना ही धर्म प्रेम कहलाता है ॥ ११ ॥ आज एक महीनेके उपवासके बाद भिक्षाकेलिये नगरमें गये थे वहापर  
उनके समीप तीन मनुष्य मिलकर आये थे ॥ १२ ॥ उनमेंसे एक मनुष्य मनुष्योंके लक्षणशास्त्र जानता था उसने उन  
मुनिराजको देखकर कहा कि इनके लक्षण साम्राज्यपदवीके प्राप्त होनेके कारण हैं परंतु ये तो भिक्षा प्रांगते फिरते हैं इस-  
लिये शास्त्रोंमें कहा हुआ सब झूठ जान पड़ता है । उसकी कही हुई यह बात सुनकर दूसरा कहने लगा कि शास्त्रोंमें  
कहा हुआ झूठ नहीं है ॥ १३-१४ ॥ अपने साम्राज्य तंत्रका त्यागकर किसी कारणसे ये झुपि हो गये हैं और अ-  
पना सब राज्यका भार अपने बालक पुत्रपर रखकर इसप्रकारका तपश्चरण कर रहे हैं । दूसरे पुरुषकी यह बात सुनकर  
तीसरा पुरुष कहने लगा कि इसके इस पापके कारण तपश्चरणसे क्या लाभ है ? इस दुरात्माने दिया तो बिल्कुल छोट दी  
है जो बालक बिल्कुल असमर्थ है और जो लोक व्यवहारको समझा नहीं जानता उसे पृथ्वीतलपर ( राज्य पर ) स्थापन  
कर यह स्वयं अपने स्वार्थ साधनकी इच्छासे तपश्चरण करनेके लिये यहां आये हैं । परन्तु उसके मंत्री आदि सब पापी  
लोगोंने उस बालक को तो सांकलसे बांध दिया है और राज्यको बांट कर सब उसका अनुभव कर रहे हैं । उस तीसरे  
पुरुषकी यह बात सुनकर उन मुनिराजके हृदयमें स्नेह हो आया ॥ १५-१६ ॥ वे बिना आहारलिये ही नगरसे बाहर  
लौट आये और वनमें इसके नीचे आकर विराजमान हुए । बाह्य कारणके मिलनेसे उनके अंतरंगमें क्रोध रुपायके तीव्र स्प-  
न्दकोंका उदय हो आया है और संक्षेप परिणामोंके होनेसे कृष्ण नील कापोत इन तीनों लेश्याओंकी वृद्धि हो गई है



राज विभज्य तत्सर्वं पापैस्तैरनुभूयते । इति तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहमानप्रचोदितः ॥ १९ ॥ अमुं जान पुरादाद्यु निवृत्तैव बन्तरे । वृक्षमूलं समाश्रित्य वाक्षारणसन्धिः ॥ २० ॥ अतः क्रोधकपायोनुमागोप्रसङ्गोदयात् । सख्येष्टाभ्यवसायेन वर्द्धमानत्रिलेयकः ॥ २१ ॥ मय्यादिप्रतिच्छेदेषु हिंसायत्निलनि-  
मत्तात् । ध्यायन् संरक्षणानंदरौद्रध्यानं प्रविष्टवान् ॥ २२ ॥ अतः परं मुहूर्तं चेदेवमेव स्थितिं भजेत् । आयुषो नारकस्यापि प्रायोग्येभ्यो भविष्यति ॥ २३ ॥ ततस्त्वया स सर्वोद्यो ध्यानमेतत्स्थजाशुभ । समयकोधदुर्वर्हि मोहजाल निराकुरु ॥ २४ ॥ शुद्धाणं सयमं त्यक्तं पुनः स्तं मुक्तिसाधनं । दारदारकं वचादिस-  
वधनमवधुरं ॥ २५ ॥ संसारवर्द्धनं साधो जहीहीत्येवमादिभिः । युक्तिर्मद्भिर्वचोमि स प्रत्यवस्थानमाप्तवान् ॥ २६ ॥ शुक्लध्यानाभिनिर्दग्धघातिकर्मघना-  
दभिः । नव कैवल्यवर्द्धिदशुद्धभावं भविष्यति ॥ २७ ॥ इत्यसौ च गणाधीशवचनान्मगधाधिपः । गत्वा तदुक्तमार्गेण सब प्रासादयन्मुनिं ॥ २८ ॥ सोऽपि स-  
प्राप्य सामग्रीं कषायक्षयशालिना । द्वितीशुक्लध्यानेन वैबल्यमुदपादयत् ॥ २९ ॥ तदा पूजा समायत्तैः श्रेणिको वृत्रहादिभिः । सह घर्मरुचैः कृत्वा पुनर्वारं

॥ २०-२१ ॥ मंत्री आदिक जो लोग प्रतिकूल हो गये हैं उन सबमें हिंसा आदि सब पापोंके द्वारा निग्रह करनेका चिन्त-  
न कर रहे हैं और इस समय संरक्षणानंद अर्थात् सबको मारकर पुत्रकी रक्षा करनेरूप रौद्रध्यानमें प्रविष्ट हो रहे हैं ॥ २२ ॥  
यदि एक मुहूर्ततक उनकी यही स्थिति रही तो अवश्य ही उनके नरक आयुका बंध हो जायगा ॥ २३ ॥ इसलिये तू  
जाकर उन्हें समझा कि हे साधो ! आप इस अशुभ ध्यानको छोड़ दीजिये और समयके अनुसार उत्पन्न हुई क्रोधरूपी  
अधिको तथा मोह रूपी जालको दूर कर दीजिये ॥ २४ ॥ आपने जो अपना संयम छोड़ दिया है जो कि मो-  
क्षका साक्षात् साधन है उसे स्वीकार कीजिये क्योंकि स्त्री पुत्र भाई बंधु आदि लोगोंका जो दुःखदायी संबंध है वह केवल  
संसार बढानेवाला है इसलिये उसे आप छोड़ दीजिये । इस प्रकारके युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे वे अपने स्थानपर आ-  
जायेंगे अर्थात् क्रोधादि कषायके द्वारा उत्पन्न हुए रौद्रध्यानको छोड़कर शांत हो जायेंगे ॥ २५-२६ ॥ शुक्लध्यानरूपी  
अग्निसे घातिया कर्मरूपी घने जंगलको जलाकर तथा नौ केवल लक्षियोंको पाकर अत्यंत शुद्ध परिणामोंको धारण करेंगे  
॥ २७ ॥ गणेशदेवकी यह बात सुनकर वह राजा श्रेणिक बहां गया और गणेश देवके कहे अनुसार शीघ्र ही उन मुनिरा-  
जको प्रसन्न कर लिया तदनंतर उन मुनिराजने सब सामग्रीके मिलजानेसे कषायोंको नष्ट किया और द्वितीय शुक्लध्यानसे  
केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ २८-२९ ॥ उसी समय उनकी पूजा करनेकेलिये इंद्रादिक देव आये राजा श्रेणिकने भी उन  
सबके साथ केवली धर्मरुचिकी पूजा की और फिर वह भगवान् वीरनाथके समीप आया ॥ ३० ॥ आते ही उसने गणा-  
धरदेवसे पूछा कि हे प्रभो इस भरतक्षेत्रमें सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन केवलज्ञानी होगा । इसके उत्तरमें गणेश-

सर्माभित ॥ ३० ॥ भरते को भ्र पाभास स्तुत्यः केवलवीक्षणः । इसप्रालीनणी कैव विषयुरभक्तवा ॥ ३१ ॥ अक्षरकल्याधिपो अक्षरदयात्म्यविमानवः । विद्युन्माली उज्ज्वलमौलिः शिखरधुकिदर्शने ॥ ३२ ॥ विद्युद दिग्भक्तौ देव्योप्याय तद्व्रत । जिनमगल्य बंशिरा यथास्थानमुगविशत ॥ ३३ ॥ त नि रूप्य परिच्छेदोनेन स्यात्केवलद्युते । तत्कथं चेद्विष्यामि क्षिनेस्मात्समने दिनात् ॥ ३४ ॥ अक्षौघोय विनोम्येय पुरेस्मिमेव वारण । सरः शालिवन निदूर्यमानं प्रज्वलच्छिख ॥ ३५ ॥ युक्कुमारसमानीयमानजवूफलाति च । स्वप्ननेतानुरः कुर्वन्नेहैराकाभिवानकात् ॥ ३६ ॥ इत्याकृती सुतो भावी जिनदासा महावृत्तिः । जंघाहयोनादुतावादासपक्षोतिविश्रुतः ॥ ३७ ॥ विनीतो यौवनारसेप्यनामिष्कृतविक्रियः । वीर पावापुरे तस्मिन्काले प्राप्स्यति निवृत्ति ॥ ३८ ॥ तदैव ह्रमपि प्राप्य बोध केवलसंज्ञक । सुवर्माह्यगणेशेन सादं ससारबन्दिना ॥ ३९ ॥ करिष्यन्नतितमानां इदं धर्ममृताबुना । इदमेव पुर भूयः संप्राप्यात्रैव भूवरे ॥ ४० ॥ स्वास्थ्येतत्समाकृण्य कुजिक्करचेलिनीकुनः । तत्पुताधिपतिः सर्वगिरिवारपरिष्कृतः ॥ ४१ ॥ आगलाभ्यर्च्य वदित्वा श्रुत्वा धर्मं शु

देव कहने लगे कि अहम् स्वर्गके अक्षरहृदय विमानमें दैदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला विद्युन्माली नामका इंद्र है । यि- यदर्शना, सुदर्शना, विद्युत्प्रभा और विद्युद्वेगा ये चार उसकी देवियां हैं उन सबको लेकर वह देव भगवान वीरनायकी बंदना करनेकेलिये आया है और अपने योग्य स्थानपर बैठा है ॥ ३१-३३ ॥ उसकी ओर इशारा करके गणधरदेव क- हने लगे इसके केवलज्ञानरूपी प्रकाशके वाद फिर केवलियोंका विच्छेद हो जायगा । इस देवको केवलज्ञान कैसे होगा सो भी मैं कहता हूं । आजसे सातवें दिन यह इंद्र स्वर्गसे च्युत होगा और इसी नगरके धनी श्रेष्ठ अर्हदासकी स्त्री महा कां- तिको धारण करनेवाली जिनदासीके गर्भमें आवेगा गर्भमें आनेके पहिले जिनदासी पांच स्वप्न देखेगी हाथी, सरोवर, चांवल्लोका खेत, जिसकी शिखा ऊपरको जा रही है ऐसी धूम्रगर्हित अग्नि और दिक्कुमारोंके द्वारा किये हुए जामुनके फल । जन्म होनेके बाद जबकुमार इसका नाम रक्खा जायगा, अनादृत देव भी आकर इसकी पूजा करेगा और यह अ- त्यंत प्रसिद्ध तथा विनयवान होगा । यौवन अवस्था आजानेपर भी इसे कोई विकार नहीं होगा । जिससमय श्रीवीरनाथ भगवान पावापुरसे मोक्ष प्राप्त करेंगे उसीसमय बुद्धे भी केवलज्ञान प्राप्त होगा । तदनंतर सुधर्माचार्य गणधरके साथ संसा- ररूपी अभिसे तप्त हुए लोगोंको धर्माश्रुतरूपी जलसे आनंदित करता हुआ मैं फिर भी इसी नगरमें आकर इसी विपुला- चल्पवर्तपर विराजमान हूंगा । मेरे आनेके समाचार सुनकर इस नगरका राजा चेलिनीका पुत्र कुब्जिक सब परिवारके साथ आवेगा और पूजा बंदनाकर तथा कर्मका स्वरूप सुनकर स्वर्ग मोक्षके साधन ऐसे दान शील उपवास आदि व्रत धारण करेगा ॥ ३४-४२ ॥ उससमय जबकुमारको भी वैराग्य उत्पन्न होगा और वह दीक्षा धारण करनेकेलिये तत्पर होगा

हीप्सति । दानस्त्रीलोपकासादिसाधनं स्वर्गनोक्षयोः ॥ ४२ ॥ जडूनामापि निर्वेदतद्व्याख्याग्रहणोत्सुक । सदैवाल्पेण बर्षेणु स्मृतीषु वयं त्वया ॥ ४३ ॥ सर्वे वीशां प्रहीष्याम इति बंधुजनोद्दिन । मोक्षकन्दुद्विराकर्तुमायास्यति पुरं तदा ॥ ४४ ॥ मोह विविक्तुभिरस्य बधुभिः सुखवचनं । अस्म्यते विवाहस्तैः श्रेयो किञ्च न हि बाधकाः ॥ ४५ ॥ सुता सागरदत्तस्य पद्मावत्या सुलक्षणा । पद्मश्रीरपराधीर्वा कनकश्री सुमेक्षणा ॥ ४६ ॥ सुता कुवेरदत्तस्य जाता कनकमालया । वीक्ष्या विनयवत्याधया वैश्रवणदत्तया ॥ ४७ ॥ विनयश्रीः श्रीरदत्तस्य रूपश्रीश्च धनश्रियः । आभि सागरदत्तादिपुत्रिकास्मिन्थविधि ॥ ४८ ॥ साधागारे नि रस्ताधिकारे सन्मणिपीप्सुभि । विचित्ररत्नसङ्घारंगवर्णीविभूषिते ॥ ४९ ॥ नानासुराभिपुण्योपहारादये जगतीतले । स्थास्यत्यासविवाहोयं पाणिग्रहणपूर्वक ॥ ५० ॥ सुतो यमायं रागेण प्रेरितो विकृतिं भजन् । स्मितहासकटाक्षेक्षणादिना किं भवेत्तथा ॥ ५१ ॥ इत्यात्मानं तिरोधाय पश्यता स्वास्यति लिङ्गा । माता तस्य तदैवैक पापिष्ठ प्रथमाशक्त ॥ ५२ ॥ सुरम्यविषये ह्ययातपोदनाख्यपुरेभिन । विद्युद्राजस्य दुर्गिबुधुप्रभो नाम तदप्रणी ॥ ५३ ॥ तीक्ष्णो विमल-

परंतु उसीसमय भाई बंधु लोग उसे समझावेंगे और कहेंगे कि थोड़े ही वर्षोंके बाद हम सब तेरे साथ दीक्षा धारण करने । उन भाई बंधुओंके बचनोंको वह डाल नहीं सकेगा और वहांसे फिर अपने नगरमें आवेगा ॥ ४३-४४ ॥ तदनंतर वे सब भाई बंधु लोग उसे मोहमें फंसानेकेलिये उसका विवाह कर देंगे सो ठीक ही है क्योंकि भाई बंधु लोग कल्याण कार्योंमें विघ्न ही करते हैं ॥ ४५ ॥ उस जंबूकुमारको एक तो शेट सागरदत्तकी स्त्री पद्मावतीसे उत्पन्न हुई शुभ लक्षणोंवाली पद्मश्री नामकी कन्या व्याही जायगी दूसरी शेट कुवेरदत्तकी स्त्री कनकमालासे उत्पन्न हुई शुभ नेत्रोंवाली दूसरी लक्ष्मीके समान कनकश्री व्याही जायगी । तीसरी वैश्रवणदत्तकी स्त्री विनयवतीसे उत्पन्न हुई देखनेयोग्य सुंदर विनयश्री व्याही जायगी और चौथी शेट श्रीदत्तकी स्त्री धनश्रीसे उत्पन्न हुई रूपश्री व्याही जायगी । इसप्रकार इन सागरदत्त आदि शेटोंकी पुत्रियोंके साथ विधिपूर्वक उसका विवाह होगा ॥ ४६-४८ ॥ पाणिग्रहण पूर्वक विवाहकर वह कुमार ऐसे बड़े भवनमें ठहरेगा जिसमें श्रेष्ठ मणियोंकी कात्तिसे अंधकार कहीं न रहने पावेगा जो अनेक तरहके रत्नोंके चूर्णकी रंगवलीसे सुशोभित होगा जिसमें अनेक तरहके सुगंधित फूलोंके उपहार रखे रहेंगे और जो मध्यभागमें होगा ॥ ४९-५० ॥ तदनंतर उसकी माता स्नेहसे छिपकर देखेगी कि थोड़ा हंसना, कटाक्ष करना आदि काम विकारोंके द्वारा रागसे प्रेरित होकर यह मेरा पुत्र काम विकारको प्राप्त होगा या नहीं । जिससमय यह जंबूकुमारकी माता जिनदासी छिपकर खड़ी खड़ी देखेगी उसीसमय सुरम्य देशके प्रसिद्ध पोदनपुर नगरके विद्युद्राजकी रानी विमलपतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चोर आवेगा वह विद्युत्प्रभ महापापी मुख्य चोर होगा परंतु तीक्ष्ण भी होगा वह किसी कारणसे अपने बड़े भाईसे

वलाय कृत्वा केनापि हेतुना । निजाग्रजाय निर्गला तसात्पचनार्थेन ॥५४॥ विदुषोराह्य कृत्वा स्वस्य प्राप्य पुरीमिमां । जानवदस्यदेहात् क्वाटोद्धाट  
नादिक ॥ ५५ ॥ चौरशाब्दोपदेशेन यत्रतत्रविधानतः । अर्हदासदृष्टाभ्यन्तरस्य चोरयितुं घनं ॥ ५६ ॥ प्रविश्य नष्टनिद्रा तां जिनदासीं विलोक्य सः ।  
यदीम त्वं धारयस्याग्रहस्ततः । उपवैरया वे सर्वं धन दास्याम्यमीदृशत ॥५७॥ इति वकीभवेत्सापि सोऽपि सप्रतिपद्य ततः । एव संपन्नभोगोपि क्लिष्ट विरि-  
सति ॥ ६० ॥ धिर्मां घनमिहाहर्तुं प्रविष्टमिति निर्दन । स्वस्य कुर्नन्ताशुकः संगप्यानु तर्दतिक ॥ ६१ ॥ कन्यकानां कुमारं त तासां चाप्यमविष्टितं ।  
विजृम्भाणसद्वुद्धिं पजरस्यमिवाढज ॥ ६२ ॥ जालद्वयेणोत वा मद्र वा कुजराधिप । अपारकर्ममे मम सिंह वा लोहपजरे ॥ ६३ ॥ निरुद्धं लब्धनि-  
कोथितं होगा इसलिये यह पांचसौ योयात्राको साथ लेकर विदुषोरा नाम रत्नकर इसी नगरमें आयेगा और उसी अर्ह-  
दासके घर आवेगा वह अदृश्य होकर किवाड खोलना आदि चौरशास्त्रके उपदेशके अनुसार सब क्रियाओंका जानकार  
होगा और मंत्र तंत्रका भी अच्छा जानकार होगा । वह अर्हदासके घर धन चुरानेकेलिये आवेगा और जिनदासीको ज-  
गती हुई देखकर अपना सब पता बतलावेगा तथा जिनदासीसे जगनेका कारण पूछेगा ॥ ५१-५७ ॥ इसके उत्तरमें  
जिनदासी उत्तर देगी कि “मेरे एक ही पुत्र है वह भी संकल्पकर बैठा है कि मैं सबेरे ही दीक्षा लेनेकेलिये तपोवनमें  
जाऊंगा इसीलिये मुझे शोक हो रहा है ॥ ५८ ॥ यदि तू बुद्धिमान है और किसी भी उपायसे इसे घर रखवेगा दीक्षा  
न लेने देगा तो मैं तेरी इच्छानुसार सब धन देदूंगी ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहकर वह जिनदासी फिर छिप जायगी ।  
तदनंतर वह विदुषोर विचार करेगा कि देखो इसके भोगोपभोगकी सब सामग्री उपस्थित है तो भी यह उसे छोड़ना चा-  
हता है मुझे धिक्कार है जो मैं दूसरेका धन चुरानेकेलिये यहां आया हूं इसप्रकार वह अपनी निद्रा करता हुआ निःशंक हो-  
कर जंघुखमारके समीप जावेगा उससमय उस कुमारको वे सब कन्याएं प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगी परंतु उन सबके बीचमें  
बैठा हुआ वह सदबुद्धि कुमार ऐसा जान पड़ेगा मानों किसी पिंजरेमें बंद हुआ पत्नी ही हो अथवा लोहेके पिंजरेमें बंद हुआ सिंह  
हुआ हिरण्यका बन्धा ही हो अथवा अपार कीचड़में फंसा हुआ अष्ट हाथी ही हो अथवा लोहेके पिंजरेमें बंद हुआ फंसा  
ही हो । संसारका नाश करना जिसके अत्यंत निकट है ऐसा वह उससमय वैराग्यसे भरपूर होगा । उसको देखकर वह  
बुद्धिमान विदुषोरा उससे एक नंदकी कथा कहेगा ॥ ६०-६४ ॥ कि है कुमार सुनो एकसमय किसी पर्वतपर एक जंतु

गायदेशतः ॥ ६५ ॥ पतन्मयुरसोन्मिधमास्वाद्य सङ्घुसुखं । तादगेबाहुरिष्याभीत्येतत्पताभिवाच्छया ॥ ६६ ॥ तृणसरोपयोगतिपरान्मुखतया स्थितः । मृतस्तथैव त्व चैतान भोगान् भोक्तुमुपस्थितान् ॥ ६७ ॥ अविच्छन्नं स्वर्गभोगार्थं भविता रहितो बिया । इत्येकागारिकप्रोक्त तदाकार्यं वलिरवरः ॥ ६८ ॥ प्रतिबक्ता स तं चोरं स्पष्टदृष्टात्पूर्वकं । नरः कविन्महादाहज्वरेण परिपीडित ॥ ६९ ॥ नदीसरस्तडागादिपयः पीत्वा मुहुर्मुहुः । तथाप्यगततृष्ण किं तृ-  
णाप्रस्थाद्भिदुना ॥ ७० ॥ तृप्तिं प्राप्नोत्यसौ कार्यं जीवो दिव्यमुल्लं विरं । युक्तवायव्यतुतः स्वप्नेपि गजकर्णस्थिरात्मना ॥ ७१ ॥ मुखेनास्वाधुनानेन कथं तृ-  
प्तिमवाप्नुयात् । इति तद्वचनकार्ण्यं चोरोनुब्य हरिष्यति ॥ ७२ ॥ बने वनचरवट कृत्वाधारं महाद्वयं । गंडांताकृष्टकोदण्डकाडिनाखंध्य वारण ॥ ७३ ॥  
महीरुट्कोटरस्थेन संदष्टः कृपिना खंयं । स्व चार्हिं च गजं चाज्ञो गत्यंतरमजीगमत् ॥ ७४ ॥ अथ सर्वान् मृतान् दृष्ट्वा तान् कोष्टिकेतिष्ठुष्यक । ता-  
वदेतानाह नायि कथु मौर्वद्विष्यज ॥ ७५ ॥ खादामीति कृतोयोगस्तच्छेदमकरोद्विधी । सशस्त्राप्रानिर्भिन्नगल सोपि वृथा मृतः ॥ ७६ ॥ ततोतिष्ठ-

अपनी इच्छानुसार चर रहा था जिस घासको वह चर रहा था उसपर ऊंची जगहसे पक्खियोंके छत्तेसे शहत आकर गिर गया था और उसी मीठी घासको वह खा रहा था । उसे खाकर फिर एकबार उसकी यह इच्छा हुई कि जब शहत गिरेगा तब मैं वैसी ही मीठी घास खाऊंगा यही सोचकर शहत गिरनेकी प्रतीक्षा करने लगा । उस मीठी घासकी लालसामें उसने और घास भी नहीं खाई । परन्तु शहत गिरा नहीं इसलिये वह वहीं बैठा बैठा भूखों मर गया । इसी प्रकार तू भी इन उपस्थित भोगोंको छोड़कर स्वर्गके भोगोंकी इच्छा करना चाहता है सो तू भी ऊंटके समान बुद्धि रहित है । उस चोरकी यह बात सुनकर वह श्रेष्ठ वैश्य जंबूकुमार भी उस चोरको दृष्टान्त देकर इस प्रकार उसका उत्तर देगा कि एक मनुष्य महादाह करनेवाले ज्वरसे पीडित था उसने नदी, सरोवर तालाव आदिका जल बार बार पिया था तथापि उसकी प्यास मिटी नहीं थी तो क्या उस मनुष्यकी प्यास तुण्णके ऊपर लगी हुई एक पानीकी बूंदसे मिट जायगी ? वह उस एक बूंदसे तृप्त हो जायगा ? उसी प्रकार इस जीवने भी बहुत दिन तक दिव्य सुखोंका अनुभव किया है तथापि तृप्त नहीं हुआ फिर क्या जिसमें कुछ स्वाद नहीं है जो हाथीके कानोंके समान चंचल है ऐसे इस सुखसे स्वप्नमें यह जीव कैसे तृप्त हो जायगा । जंबूकुमारकी यह बात सुनकर वह फिर कहने लगा ॥ ६५-७२ ॥ किसी वनमें एक चंड भील था उसने किसी वृक्षपर बैठकर और कानतक धनुष खींचकर एक हाथीको मार गिराया इतनेमेंही उस वृक्षके कोटरमेंसे निकल कर एक सांपने उसे काटखाया काटतेही उस मूर्ख भीलने उस सांपको मार दिया ॥ ७३-७४ ॥ उन सबको मरा हुआ देखकर एक लोभी गीदड आया उसने सोचा कि मैं पहिले इनको न खाकर इस धनुष चापको

मुतालायेत्योक्तिरितौ कुधीः । कुमारः स्मृतिभाषार्थं सूक्तं प्रत्याभ्यास्यति ॥ ७७ ॥ चतुर्मासमायोगदेशमाये महाश्रुतिः । रत्नराशिं समभ्येत्य सुमहं पयिको सिधीः ॥ ७८ ॥ तदनादाय केनापि हेतुना गतवान् पुन । समादिष्टः समागत्य तद्देशं किं लभेत सः ॥ ७९ ॥ तथा दुष्प्रापमालोक्य गुणमाश्रित्य संवच्य । अस्वीकुर्वन् कथं पश्चात्प्राप्तुयाद्भवामिधौ ॥ ८० ॥ तदुदीरितमेतस्य कृत्वा चित्ते परस्वहं । वक्ष्यति तदाख्यानमन्यदन्यायसूचन ॥ ८१ ॥ शृगाल कथिदास्यस्य मांसं हि विस्मृतवान् । यकीरुमानमीनादनेच्छुर्निपतितो मसि ॥ ८२ ॥ तद्देवत्ववाहेण प्रेरमाणोगमन्मृतिं । ततोमीनोपि दीर्घायुर्जलमध्ये स्थित सुख ॥ ८३ ॥ एवं शृगालवन्दुवो मुषोन्नोपि विनश्यति । इति तत्कमुख्योक्तिमाकर्णयानाकुलात्मक ॥ ८४ ॥ प्रत्यासन्नविनयत्वाद्वचः प्रतिभविष्यति । निश्रुत्वा वणिक्त्रिभिर्दामुखविमोहितः ॥ ८५ ॥ सुप्तः परार्च्यमाणश्च्यवर्गमेकस्थपुटे निजे । चौरपहते तेन दुःखेनामृत दुर्मति ॥ ८६ ॥

खाऊं और फिर इनको खाऊंगा इस प्रकार सोचकर वह मूल्य उस चापको खानेका उपयोग करने लगा और उस चापको तोड़ने लगा उस चापके टूटते ही उसका गला भिद गया और वह व्यर्थही मर गया इसलिये अतिशय लोभ करना सर्वथा छोड़देना चाहिये इसप्रकार उस चौरके कह चुकनेपर वह बुद्धिमान कुमार विचारकर फिर अच्छी बात कहेगा ॥ ७५-७७ ॥ कि एक कोई मूल्य पथिक अपनी महादेवीयमान ग्रहण करने योग्य उत्तम रत्न राशिको चौरस्ते पर छोड़कर अपने घर चलागया था और फिर लेनेके लिये आया था नो क्या फिर उसे वह रत्नराशि मिल सकती है ? कभी नहीं ॥ ७८-७९ ॥ इसी प्रकार इस संसाररूपी महासागरमें अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य ऐसा यह गुणरूपी मणियोंका समूह है इसे स्वीकार नहीं करता उसे क्या फिर कभी मिल सकता है ? कभी नहीं ॥ ८० ॥ उस कुमारकी यह बात समझकर वह चोर अन्यायको सूचित करनेवाली एक कथा और कहेगा ॥ ८१ ॥ कि एक गीदड़ मांसका टुकड़ा लिये हुए पानीमें जा रहा था उसने उस पानीमें क्रीडा करती हुई मछलीको खानेकी इच्छासे वह मांस छोड़ दिया और मछलीके पकड़ने की इच्छासे वहते पानीकी ओर दौड़ा परन्तु पानीका वहाव तेज होनेसे वह पानीमें बह गया और मरगया । उस समान अधिक लोभी होता है वह अवश्यही नष्ट होता है इस प्रकार उस चोरकी कही हुई बातको सुनकर आसन्न भव्य होनेसे वह कुमार भी निराकुल होकर कहेगा कि किसी वैश्यको नींद लगी थी इसलिये नींदसे मोहित होकर वह सुखसे उसके सो जानेपर जो निराकुल होकर कहेगा कि किसी वैश्यको नींद लगी थी इसलिये नींदसे मोहित सोगया । और चोरीकी बात जानने पर वह मूल्य वैश्य उस दुःखसे मर गया ॥ ८४-८६ ॥ इसीप्रकार जोसे विषयोंके

विषयाख्यादुलेनैव संसक्तो रोगचौरकैः । ज्ञानदर्शनचात्रितलेष्वपहृतेष्वय ॥ ८७ ॥ बन्धी नश्यति निर्मूलमिल्यतः स गश्म्यति । स्वमातुलानीदुर्वाक्यको-  
पास्काब्धिसुमुपुङ्गा ॥ ८८ ॥ दृक्षमूले स्थितां वीक्ष्य सर्वाभरणप्रवितां । अद्भुतवन्दोपायामाकुलकुलचेतसं ॥ ८९ ॥ सुवर्णदारको नाम पापी मार्दङ्गिक-  
स्तदा । तदाभरणमाक्षिसुमुपुङ्गा ॥ ९० ॥ स्वापयिला समारुह्य स्वगलोद्वरज्जुक । उद्वधनकम तस्या दर्शयन्मृदुचोदित ॥ ९१ ॥ मृदगे प-  
तिते भूया सद्यः केनापि हेतुना । रज्जुपाशाविविभीभूतकंठं प्रोद्धतलोचन ॥ ९२ ॥ प्रापतेताधिपावास तद्वीक्ष्यसौ मृतेर्भयात् । आयाद्वहमतस्तद्वहोभो देवो  
मदोत्स्वया ॥ ९३ ॥ इत्यस्य सोपि वाग्जालममोढो व्याहरिष्यति । किल धूर्तबिट वीक्ष्य कलितागाभिधानक ॥ ९४ ॥ कस्यचित्सा महादेवी जाता मदनवि-  
ह्वला । तद्विद्वानयनोपायनिरंतरनियुक्तया ॥ ९५ ॥ तदाक्या गुप्तया नीतः पथिकातप्रदेविना । सा चैतेन महादेवी रममाणा यथेष्टित ॥ ९६ ॥ अहोमि-  
वैदुर्मिर्जाता ब्रह्मे शुद्धातरक्षिभिः । तन्मुखान्तद्वराचारे राक्षसि विक्षिते स्मृति ॥ ९७ ॥ जारापनयनोपायमाज्ञाताः परिचायका । अवस्करगृहं नी - १ सा तं

मुखोंमें आसक्त होकर यह जीव मोहित हो जाता है और रोगरूपी झोर इसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी रत्नोंको डुरा ले जाते हैं तब यह संसारी जीव विल्कुल नष्ट हो जाता है । इसके उत्तरमें वह चोर फिर कहेगा कि कोई स्त्री सासुके दुर्बचन सुनकर क्रोधित हुई और मरनेकी इच्छासे वृक्षके नीचे जा बैठी वह सब साधूषणोंसे सुशोभित थी पशु फांसी लगाना जानती नहीं थी इसलिये उसका चित्त बड़ा ही व्याकुल हो रहा था । देव योगसे उसी मार्गसे सुवर्णदारक नाम-  
का मृदंग बजानेवाला पापी आनिकला उसने उसकी मरनेकी इच्छा जानली और उसके आभरणोंके लेनेकी इच्छासे उसे फांसीकी क्रिया बताने लगा । उसने मृदंगको तो वृक्षके नीचे रख दिया और उसपर चढ़कर गलेमें रस्सी लटका ली । इसप्रकार वह फांसीकी क्रिया वतला रहा था कि उसकी मृत्यु समीप आ लगी । किसी कारणसे वह मृदंग बड़ी शीघ्रतासे पृथ्वीपर लुटक गया और उस रस्सीसे कंठ दबजानेके कारण वह मर गया । मरते समय उसकी दोनों आंखें नि-  
कल पड़ी थीं इसलिये उस भयानक दृश्यको देखकर वह स्त्री मरनेसे डर गई और अपने धर आ गई । आप महा पुरुष हैं इसलिये आपको ऐसा लोभ अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ८७-९३ ॥ इसप्रकार उस चोरका कहा हुआ वचनोंका जाल कुमारको सहन नहीं होगा और वह उत्तरमें दूसरी कथा कहेगा कि किसी ललितांग नामके धूर्त व्यभिचारीको देख-  
कर किसी राजाकी महारानी कामसे पीडित होगई थी उसने किसी भी उपायसे उसे लानेके लिये गुप्त रीतिसे एक धाय नियुक्त की थी । वह धाय उत्पथिकको किसी तरह ले आई और वह महादेवी इच्छानुसार उसके साथ क्रीडा करने लगी ॥ ९४-९६ ॥ कई दिनोंके बाद राणावासकी रक्षा करनेवाले खोजा लोगोंको यह बात मालूम होगई और



तत्राक्षिपस्वच्छ ॥ १८ ॥ झुहुगंधेन तन्मनुमिध दुःखमवानुबन्ध । अथैव नरकावासमाप्तवान् पापपाकत ॥ १९ ॥ तद्दल्पसुखस्यामिलाविणो नरकादिषु । भवंति दुस्तरापापघोरदुःखानि तेष्वपि ॥ १०० ॥ पुनः कुमार एवक प्रपञ्च गदिता सत् । येन संसार निर्वेगो जायते सहया स त ॥ १०१ ॥ अम्यन्संसार-कांतारे, मय्युमतद्विवेचिना । रषा त्रियायुना जंबुरयुयातोतिमीलुक् ॥ १०२ ॥ पलायमानो मानुष्यभूहातर्हितात्मकः । तन्मूले कुलगोत्रादिनानावल्लीस माकुले ॥ १०३ ॥ जन्मकूपे पतितार्युर्वर्हलग्नशरीरक । सिमासितदिनानेकमूयकोच्छिद्यतलतः ॥ १०४ ॥ नरकन्यासवक्त्रोदसर्पसप्तसन्निधि । तद्भूभूये-शार्थयुनेत्यसौख्यदोषरसोत्सुक ॥ १०५ ॥ तद्ग्रहोत्थापितात्युग्रव्यापवद्माक्षिकममयक । तत्संसेवां सुख भत्वा कष्ट संवापि जीवति ॥ १०६ ॥ विधीविंश-यसंसको धीमानपि कथं तथा । वर्तते लक्षसगः सन्नकुर्वन्नुर्वह तपः ॥ १०७ ॥ इत्याकर्ण्य वक्तव्ययाता कन्याश्च तत्कर । तनुससारभोगेषु यातारोति

उन्धोने राजासे कह दी । राजाने इस दुराचारकी बात जानकर किसी भी उपायसे उसजारको पकड़नेके लिये सेवकोंको आज्ञा दी । जब सेवक लोग पकड़नेके लिये गये तो उस रानीने उस दुष्टको दृष्टिमें छिपादिया । वहांकी दुर्गंध और कीर्त्तोंसे उसे बहुत दुःख हुआ और पाप कर्मके उदयसे उसी जन्ममें उसे नरकमें रहनेका स्वाद मिल गया ॥ १७-२१ ॥ इसीप्रकार थोड़े सुखकी इच्छा करनेवाले लोग नरकमें पड़ते हैं और वहांपर अत्यंत असह्य, अपार और घोर दुःखोंको सहते हैं ॥ १०० ॥ इसके बाद भी वह कुमार संसारसे वैगल्य उत्पन्न करनेवाली एक कथा उस चोरसे और कहगा ॥ १०१ ॥ कि एक जीव संसाररूपी बनमें घूम रहा था, एक मदनोन्मत्त मृत्तुरूपी हाथी क्रोधसे मारनेके लिये उसके पीछे पड़ा जिसे देखकर डरसे वह भागा और उसके पीछे पीछे वह हाथी दौड़ा । वह जीव भागता भागता मनुष्यरूपी दृक्षके आ-दमें छिपगया । उसी दृक्षकी जड़के नीचे कुल गोत्र आदि अनेक धूलोंसे व्याप्त ऐसा जन्म कूप था उसीमें वह जीव पड़गया परंतु आयुरूपी वेल उसके हाथ आगई और वह उसे ही पकड़कर लटकता रहा । कृष्णपत्त और शुक्ल-पत्तरूपी अनेक चूहे उस वेलकी जड़ काट रहे थे ॥ १०२-१०४ ॥ सातों नरकरूपी सर्प उसकी ओर मुंह फाड़े उसके गिरनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । उसी दृक्षपर पुत्रादिक इष्ट पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ सुखरूपी शहदका रस टपक रहा था उसके खानेकी उसे बहुत ही लालसा लग रही थी ॥ १०५ ॥ उस रसके चाटनेसे वे शहदकी मक्खियां उड़कर शरीर-से लग गई थी वह जीव उस रसकी बूदके लिये सेवा करनेको ही सुलभ मान रहा था । इसीप्रकार संसारके सब ही जीव बड़े कष्टसे जीवित रहते हैं ॥ १०६ ॥ जो मूर्ख है वे भले ही इसप्रकार विषयोंमें आसक्त हो जाय परंतु जो बुद्धिमान हैं वे इसप्रकार विषयोंमें आसक्त कैसे हो सकते हैं वे तो सब परिग्रहोंका त्याग कर दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए समय व्यतीत

विरागता ॥ १०८ ॥ तदा तपः समाधूय भ्रासमानो दिवाकर । योजयन् प्रियया कोक कुमारसिन्धु वीक्षया ॥ १०९ ॥ करैर्निजं कुमारस्य मनोवास्तव्य रंजयन् । उद्यमस्तपसी वीक्षं शिखरेदेहेष्यति ॥ ११० ॥ सर्वसत्तापकुत्सीक्षणकरः क्रूरनवस्थित । रक्षिः कुबलयश्चसी प्रजिता कुटुम्बोपमां ॥ १११ ॥ निलो-  
दयो बुधाभीशो विशुद्धास्त्रमण्डल । पद्मालासी प्रष्टुद्वेषमा सुगजानं स जेष्यति ॥ ११२ ॥ आत्मा संसारवमुल्य कुमारस्यास्य बांधवा । तदा कुणिम-  
हाराजः सेनयाष्टादशापिच ॥ ११३ ॥ सद्गानादृतदेवेन परेनिष्क्रमण प्रति । अभिवेक करिष्यति संगता मगलैर्नैः ॥ ११४ ॥ तत्कालोचितवेगसौ शिविका  
देवनिर्मिता । आरुण भूरिभूयोर्बाविपुलाचलमस्तके ॥ ११५ ॥ मा निविष्ट समभ्येल्य महामुनिनिर्बोवित । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य यथाविधि ॥ ११६ ॥  
वर्णत्रयसमुद्भूतैर्विनयैर्बहुभि सम । विष्णुचोरेण तत्पचशतमूलैश्च सयम् ॥ ११७ ॥ सुषर्मणस्तृत्यां समन्वितो ग्रहीष्यति । कैवल्याद्द्वारादशाब्दादते मध्यस्या

करते हैं ॥ १०७ ॥ जंबूकुमारकी यह बात सुनकर उसकी माता वे कन्याएं और वह चोर सब शरीर संसार और भो-  
गोंसे विरक्त होंगे ॥ १०८ ॥ तदनंतर चक्रवाको चक्रवीके समान कुमारको दीक्षासे संयोग कराता हुआ अपना किरणों-  
से कुमारके मनको स्पर्शकर प्रसन्न करता हुआ तपश्चरणके लिये श्रेष्ठ उद्यमके समान सब अधिकारको नष्टकर उदयाचल  
पर्वतकी शिखरपर सूर्य उदय होगा ॥ १०९-११० ॥ उससमय सबको संताप उत्पन्न करनेवाला तीक्ष्ण किरणोंको  
धारण करता हुआ ( राजा पक्षमें तीक्ष्णकर लगाता हुआ ) क्रूर, एक जगह न टिकनेवाला और कुबलय अर्थात् कम्बो-  
दिनियों ( राजा पक्षमें पृथ्वीमण्डलको ) नाश करता हुआ सूर्य अन्यायी राजाकी उपमाको धारण करेगा ॥ १११ ॥  
अथवा नित्य उदय होनेवाला बुध नक्षत्रका स्वामी ( राजापक्षमें विद्वानोंका स्वामी ) विशुद्ध अखंड मंडलको धारण क-  
रनेवाला, कमलोंको प्रसन्न करनेवाला और उष्णताको बढ़ानेवाला वह सूर्य किसी अच्छे राजाको भी जितेगा ॥ ११२ ॥  
जंबूकुमारको संसारसे विरक्त देखकर उसके सब भाई बंधु लोग तथा अठारह तरहकी सेनाके साथ महाराज कुशिक आ-  
वेगा सबके साथ यह अनादृत यक्ष भी आवेगा और ये सब लोग मांगलिक लोगोंके साथ २ दीक्षा लेनेकेलिये जंबूकुमा-  
रका अभिषेक करेंगे ॥ ११३-११४ ॥ उससमयके योग्य वस्त्राभूषण पहिनकर वह कुमार देवोंके द्वारा बनाई हुई पालकीपर  
सवार होकर बड़ी विभूतिके साथ विपुलाचल पर्वतपर आवेगा ॥ ११५ ॥ मुझे विराजमान देखकर वह मेरेही समीप आवेगा  
उस समय अनेक श्रुति मेरी सेवा बंदना कर रहे होंगे वह आकर बड़ी भक्तिसे प्रदक्षिणा देगा और विधिपूर्वक नमस्कारकरेगा ॥ ११६ ॥  
तदनंतर समता परिणामोंको धारण करनेवाला वह जंबूकुमार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके साथ तथा  
विष्णुचोर और उसके पांचसौ योद्धाओंके साथ सुधर्माचार्यके समीप दीक्षा धारण करेगा । मुझे केवल ज्ञानके बारह वर्ष बाद नि-

गौतमा गते ॥ ११८ ॥ सुधर्मकेवली जंबूनामा च श्रुतकेवली । भूला पुनस्ततो द्वावशाब्दाते निर्वृति गते ॥ ११९ ॥ सुधर्मव्यतिष्ठान जंबूनाम्नो भविष्यति ।  
स्तस्य भिष्यो भवो नाम चलाशितस्यमा महान् ॥ १२० ॥ इह धर्मोपदेशेन धरित्र्या विहरिष्यति । इत्यबाहीतदाकर्णस्थितस्तस्मिन्नामृतः ॥ १२१ ॥  
देवो महीपवशस्य माहात्म्यमिदमब्रुवत । अन्यआहृष्टसितुश्चरकृतानहताटक ॥ १२२ ॥ कस्मादनेन बहुत्वमत्येतिश्रेयिकोभ्यधात । गौतम विनयात्सोपि  
न्यागदत्तमिति स्फुट ॥ १२३ ॥ जंबूनाम्नोन्वये पूर्व धर्मप्रियवर्णिकृपते । गुणदेव्याम्बनासाहृष्टसुगुणजनिष्ट स ॥ १२४ ॥ धनयौवनदर्पेण शिक्षामगमय-  
त्पितु । निरंकुशो भवत्सत्स्यसनेषु विधेर्वशात् ॥ १२५ ॥ स दुर्देवद्विदोर्गत्यात्सत्रातानुशयो मया । न श्रुता मत्पितु शिक्षेयकाशशमभावन ॥ १२६ ॥  
किमित्युष्यं समावर्ज्य व्यंतरस्तमुपागत । आददेनावृताख्योय तत्र सम्यक्त्वसंपद ॥ १२७ ॥ इति तद्व्रुताश्रितः गौतमं मगधाधिपः । अन्वकुक्कगतः क-  
स्मादिक पुण्य कृतवानयं ॥ १२८ ॥ विष्णुमालीभवेतीते प्रभास्यातेष्यनाहना । इत्युग्रहसुखैव भगवानेवमब्रवीत् ॥ १२९ ॥ अस्मिन् विदेहे पूर्वस्मिन्

वीणा प्राप्त होगा उस समय सुधर्माचार्यको केवल होगा और जंबूकुमारभुतकेवली होंगे । उसके बारह वर्ष बाद सुधर्माचार्यको मोक्ष प्राप्त होगा और जंबूस्वामीको केवलज्ञान होगा । भव नामका एक जंबूस्वामीका शिष्य होगा और उसके साथ चालीस वर्ष तक धर्मो-  
पदेश देते हुए जंबूस्वामी इस पृथ्वीपर विहार करेंगे गौतमस्वामीकी कही हुई इस कथाको सुनकर वहांपर बैठा हुआ अना-  
दृत नामका यस बड़ा ही प्रसन्न हुआ और भेरे वंशका ऐसा अद्भुत माहात्म्य है जो कि दूसरी जगह कहीं देखनेमें नहीं  
आता इसप्रकार कहते हुए उसने आनंद नाटक किया ॥ ११७-१२२ ॥ यह देखकर राजा श्रेणिकने बड़ी विनयसे  
गौतम गणधरसे पूछा कि हे देव जंबूकुमारके साथ इसका भाईपना ( एक वंशपना ) कैसा ! इसके उत्तरमें गौतम गणधर  
कहने लगे ॥ १२३ ॥ जंबूकुमारके वंशमें पहिले एक धर्मप्रिय नामका वैश्य था । उसकी गुणादेवी नामकी स्त्रीसे अर्द्धरास  
नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १२४ ॥ धन और यौवनके अधिमानसे वह पिताकी शिक्षाको कुछ नहीं गिनता था और  
कर्मोंके उदयसे निरंकुश होकर सातों व्यसनोंमें आसक्त हो गया था ॥ १२५ ॥ अनेक दृष्ट चेष्टाओंके कारण जब उ-  
सकी दुर्गति होने लगी तब उसे पश्चात्ताप हुआ और “मैंने पिताकी शिक्षा नहीं सुनी” यही विचार करते हुए उसका  
चित्त कुछ शांत हुआ ॥ १२६ ॥ तदनंतर उसने कुछ पुण्यका उपार्जन किया जिससे यह अनादृत नामका व्यंतर देव  
हुआ है । इसी पर्यायमें इसने सम्यग्दर्शन धारण किया है ॥ २७ ॥ इसप्रकार इन दोनोंमें परस्पर भाईपनेका प्रेम है । इ-  
सके बाद श्रेणिकने गौतमगणधरसे फिर पूछा कि हे देव विद्वन्माली भवके पहिले भी इसने कौनसा पुण्य किया था क-  
हांसे यह आया है क्योंकि इसके अंतिस दिन है तब भी इसकी प्रथा कम नहीं हुई है । इसके उत्तरमें भगवान गौतमगण-

वीतशोकान्नयं पुरं विषये पुष्कलावती महापद्मोत्सव गलक ॥ १३० ॥ बनमालास्य दे व्यस्या स्मृतः शिवकुमारक । नवयौवनपुंषप नवयोमिः न तद्वन ॥ १३१ ॥ विह्वल पुनरागच्छन्सञ्जमेण समेतत । गवपुष्पादिमागह्यद्रव्यसद्विषया ॥ १३२ ॥ जनानाञ्जतो दृष्ट्वा किमेतदिति विस्मयात् । तन्त्रज, पृ-  
च्छसीत्सातो बुद्धिसागरमन्त्रिणः ॥ १३३ ॥ कुमार शृणु बध्यामि मुनीन्द्रः श्रुतकेवली । ह्ययात सागरदत्ताख्यस्तपसा भीतसङ्ख्या ॥ १३४ ॥ असा मायापवा-  
साते पारणायं प्रविष्टवान् । पुरं कामममुद्राह्वयः श्रेष्ठी तस्मै यथाविधि ॥ १३५ ॥ दत्त्वा विभ्राजन भक्त्या प्रापदाश्चर्यपुंषक । मुनिं मनोहरोद्यो नवसिन  
त सकौतुकात् ॥ १३६ ॥ सपूज्य वदितुं याति पौराः परमभक्ति । इत्याख्यत्सोपि तच्छ्रुत्वा पुनरप्यनुयुक्त स ॥ १३७ ॥ कथं सागरदत्ताख्यं विविषद्वा  
श्रगे श्रुती । प्रापदिल्लव्रीन्मन्त्रिदुतोप्यनुयथाश्रुत ॥ १३८ ॥ विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुष्करीकिणी । वज्रदंत पतिस्तस्याश्चकेणाक्रांतभूतल ॥ १३९ ॥  
देवी यशोधरा तस्य गर्भिणी जातैर्देहदा । महा विभूत्या गत्वासा सीतासागरसंगमे ॥ १४० ॥ महाद्वारेण संप्राप्य जलधिं जलजानना । जलकेलीविधौ पु

धर देव द्रुमप्रकार कहने लगे ॥ १२८-१२९ ॥ इसी जीवद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतशोक नामके न-  
गरमें महापद्म नामका राजा राज्य करता था ॥ १३० ॥ इसकी बनमाला देवीसे शिवकुमार नामका पुत्र हुआ था ।  
यौवन अवस्था आनेपर किसी दिन वहां अपने साथियोंके साथ क्रीडा करनेके लिये वनमें गया था । क्रीडा कर वनसे  
लौट रहा था कि मार्गमें उसे गंध पुष्प आदि मांगलिक चीजें लेकर चारों ओरसे सञ्चर्यके साथ आते हुए लोग मिले ।  
उन्हें देखकर उसने बड़े आश्चर्यसे बुद्धिसागरके मंत्रीसे पूछा कि यह क्या है ॥ १३१-१३३ ॥ इसके उत्तरमें वह मंत्रीका  
पुत्र कहने लगा कि हे कुमार मैं कहता हूं सुन दीप्त नामके तपश्चरणसे प्रसिद्ध ऐसे सागरदत्त नामके श्रुतकेवली मुनि हैं ॥ १३४  
वे एक महीनेका उपवासकर आहारकेलिये नगरमें आये थे । कामसमुद्र नामके शेटने उन्हें विधि पूर्वक बड़ी भक्तिसे आ-  
हार दिया था इसलिये उसके घर पंचाश्रयोंकी दर्पा हुई थी । वे ही मुनिराज आहार लेकर मनोहर नामके उद्यानमें वि-  
राजमान हुए हैं उनकी पूजा और वंदना करनेकेलिये ये सब नगरनिवासी लोग बड़ी भक्तिसे और बड़े कौतुकसे जारहे  
हैं । मंत्रीके पुत्रकी वह बात सुनकर वह राजकुमार फिर कहने लगा ॥ १३५-१३७ ॥ कि इन मुनिराजका नाम सागर-  
दत्त क्यों पडा और इन्हें श्रुतज्ञान और ऋद्धियां क्यों हुई हैं इसके उत्तरमें वह मंत्रीका पुत्र जैसा सुना था वैसा ही कहने  
लगा ॥ १३८ ॥ कि इसी पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत चक्रवर्ती चक्रवर्त्तसे सब पृथ्वीको जीतकर  
राज्य करता था । जब उसकी यशोधरा देवी गर्भिणी हुई थी तब उसे दौहद हुआ था और उसके अतुसार बड़ी विभू-  
तिके साथ वह कमलनयनी जहां सीता नदी जाकर मिलती है उसी महाद्वारसे जाकर समुद्रमें क्रीडा करनेकेलिये गई थी ।

शमलन्ध्याम्यर्णनिवृत्ति ॥ १४१ ॥ तस्मात्सागरदत्ताख्यामस्यां कुप्यन्तनामयः । वधयौवनसंप्राप्तौ स कदाचन नाटकं ॥ १४२ ॥ सार्द्धं स्वपरिवारेण पश्यन्  
हृदयंतले स्थित । चेटकेनानुकुलाह्वयनामधेयेन भाषित ॥ १४३ ॥ कुमार मदारकारितवृत्तयेप पयोधरः । पस्याध्वर्यमतिथीत्या प्रोन्मुखोलोचनप्रियं ॥ १४४  
योगभाक् समजायत ॥ १४५ ॥ स्वपित्रा सममन्येयुः संप्राप्यायुतसागरं । स्थित मनोद्वयोधाने धर्मतीर्थस्य नायकं ॥ १४६ ॥ श्रुत्वा धर्मं तदभ्यर्णं नि-  
र्गतसकलस्थिति । संयमं बहुभि सार्द्धं कृतवंधुविसर्जनः ॥ १४७ ॥ प्रतिश्रुणु मनःपर्यायादि प्राप्यदिसपद । देशान् विहृत्य सधर्मवेदोनेह समागतः ॥ १४८  
केन वक्त्रव्यमिलपृच्छन् मचाववीत् ॥ १४९ ॥ द्वीपेस्मिन् मरुतेक्षेत्रे क्षिप्ये मगधाह्वये । इदमामे झुता जातो रेवत्या वरजन्मन ॥ १५० ॥ भवतं भगवन् । दृष्ट्वा स्नेहो मे समभून्महान् । हेतुना  
वहीपर जलक्रीडां करते समय ही उसके शीघ्र ही मोक्ष जानेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १५१-१५२ ॥ इसीलिये उ-  
सके कुटुंबी लोगोंने उसका सागरदत्त नाम रक्खा था अनंतर-यौवन अवस्था प्राप्त होनेपर किसी एक दिन वह साग-  
रदत्त अपने परिवारके साथ राजभवनकी ऊपरकी गद्दीपर बैठा हुआ नाटक देख रहा था, उससमय अनुकूल नामके सेव-  
कने कहा कि हे कुमार देखो यह बादल कैसा मंदराचल पर्वतके आकारका बना हुआ है । इस आश्चर्यको सुनकर वह  
कुमार भी बड़े प्रेमसे ऊपरकी ओर देखने लगा परंतु नेत्रोंको सुंदर लगनेवाला वह बादल उसी समय नष्ट हो गया । उ-  
सके नष्ट होते ही वह विचार करने लगा कि जिसप्रकार यह बादल वायुसे नष्ट हो गया उसीप्रकार यह यौवन सरীর  
और विभूति सब नष्ट होनेवाली है । परिवर्तनशील संसारमें एकसे दूसरेका नाश होना अवश्यभावी है इसप्रकार विचार-  
कर वह संसारसे विरक्त हुआ ॥ १५३-१५४ ॥ दूसरे दिन ही वह पिताके साथ मनोहर नामके उद्यानमें विराजमान  
पेसे अमृतसागर नामके धर्मतीर्थके नायक अर्थात् तीर्थंकरके समीप पहुंचा । वहांपर जाकर उनसे धर्मका स्वरूप सुना सब  
पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय किया और अनेक लोगोंके समीप पहुंचा । वहांपर जाकर उनसे धर्मका स्वरूप सुना सब  
तदनंतर मनःपर्याय आदि अनेक श्रद्धियोंकी संपदाको पाकर धर्मोपदेश देते हुए सब देशोंमें विहारकर वे ही सागरदत्त  
मुनिराज यहां पधारे हैं ॥ १५५ ॥ मंत्रीके पुत्रकी यह बात सुनकर उस राजकुमारके चित्तमें मुनिराजके प्रति प्रेम उत्पन्न  
हुआ वह स्वयं उनके समीप पहुंचा उनकी स्तुतिकी, धर्मायुतका पान किया और फिर पूछा कि हे भगवान आपको । देख-  
कर मुझे भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है इसका क्या कारण है आप कृपाकर कहिये इसके उत्तर में मुनिराज कहने लगे कि

कृत्स्न भगवत्सत् परः । भवदेवस्तयोर्ज्यायान् संयम प्रत्यगयत ॥ १५३ ॥ सुस्थिताश्च गुणं प्राप्य तेनामा विनयान्वित । नानादेशान्विहत्यायास्वज-  
न्मप्राप्तमेव सः ॥ १५४ ॥ तदा तद्वाधवा सर्वे समागत्य सर्वमदा । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य संपूज्यान्तुमुद्यता ॥ १५५ ॥ ग्रामे दुर्मर्षणो नाम तस्मिन्नेव  
युद्धाधिप । तस्य नागवसुर्माया नागश्रीरनयो सुता ॥ १५६ ॥ ताभ्यां सा भवदेवाय प्रादायि विधिपूर्वक । अग्रजागमनं धृत्वा सद्यः सजातसमदः ॥ १५७  
भवदेवोप्युपागत्य भगवत्सुनीभर । विनयस्य प्रणम्यास्त तत्कृताशासिनाद्रितः ॥ १५८ ॥ आस्थाय धर्मयाथात्म्यं वैरुप्यमपि सद्यतेः । गृहीतपाणिरेकान्ते सं-  
जमो गृह्यता खया ॥ १५९ ॥ इत्याह त मुनि सोपि प्रत्यवाहीदिदं वच । नागश्रीं लेख्य कृत्वा कर्तास्मि भवतोदित ॥ १६० ॥ इति तन्मुनिराकर्ण्य ज-  
गाद जनने जनः । भार्यादियावात्सल्यं करोत्यात्महिनं कथं ॥ १६१ ॥ त्यज तन्मोहमित्येवं भवदेवोद्यनुत्तरः । मतिं ज्येष्ठानुरोधेन व्याघ्रादीक्षाविधां तदा

इसी जंबूद्वीपके भारतक्षेत्रमें मगधदेशके वर्द्धमान गांवमें एक राष्ट्रकूट नामका वैश्य रहता था उसकी रेवती नामकी स्त्रीसे दो पुत्र हुए थे एक भगदत्त और दूसरा भवदेव । उनमेंसे बड़े पुत्र भगदत्तने सुस्थित नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण करली थी । तदनंतर उन गुरुके साथ बड़ी विनयसे अनेक देशोंमें विहारकर वह अपनी जन्मभूमिमें आया था ॥ १४९-१५४ ॥ उससमय उसके सब भाई बंधु लोग बड़े हर्षसे उसके समीप आये थे और मुनिराजकी प्रदक्षिणा देकर पूजाकर नमस्कार करनेको तैयार हुए थे ॥ १५५ ॥ उसीगांवमें एक दुर्मर्षण नामका सदृष्टहृत्स्थ था उसके नागवसु नामकी स्त्री थी और उससे उत्पन्न हुई नागश्री नामकी कन्या थी ॥ १५६ ॥ उन दोनों माता पिताने वह नागश्री कन्या विधि पूर्वक भवदेवको व्याह दी थी । अपने बड़े भाई मुनिराज भगदत्तका आना सुनकर भवदेव भी बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही उनके समीप पहुंचा । बड़ी विनयसे उन्हें नमस्कार किया और मुनिराजके उपदेशसे उसका चित्त बहुत ही आर्द्र हुआ ॥ १५७-१५८ ॥ तदनंतर भगदत्त मुनिराजने अपने छोटे भाई भवदेवका हाथ पकड़कर और एकांतमें ले जाकर संसारसे विरक्तता उत्पन्न करनेवाला धर्मके यथार्थ स्वरूपका उपदेश दिया और कहा कि अब तू संयम धारण करले । उसके उत्तरमें भवदेवने कहा कि मैं घर जाकर नागश्रीसे पूछ आऊँ तब फिर आपका कहना कर लूंगा ॥ १५९-१६० ॥ भवदेवकी यह बात सुनकर मुनिराज कहने लगे कि इस संसारमें स्त्री आदिके जालमें फंसा हुआ यह जीव अपना कल्याण कैसे कर सकता है ? ॥ १६१ ॥ इसलिये तू अपना मोह छोड़ दे । इसप्रकार समझानेपर भवदेवने कुछ उत्तर नहीं दिया और बड़े भाईके अनुरोधसे दीक्षा लेनेमें अपना चित्त लगाया ॥ १६२ ॥ तदन्तर वे भगदत्तमुनि भवदेवको अपने गुरुके समीप लेगये और संसारको

॥ १६२ ॥ नीला स्वगुणसमीप्यं भगवतोः भवच्छेदे । दीक्षामप्राहयन्मौक्षीं सतां तोदयमीदृशः ॥ १६३ ॥ स त्रय्यसंयमी भूला विधीद्विदशवत्सरान् । विहृत्य  
गुहमिः सार्द्धमन्त्रैरुरसद्वायकः ॥ १६४ ॥ बुद्धमाम निजगत्वा सुप्रतापणिनीमभि । समीक्ष्यास्मिन् किमस्त्यस्य नागधीर्नाम कञ्चन ॥ १६५ ॥ इति संप्रजन-  
नकमप्रवीत ॥ १६७ ॥ वैश्य सर्वसमृद्धाख्यस्तद्वापीतनयः झुचि । दारुकाख्य सुमात्रास्त्रच्छेष्टशुचिष्ठामित त्वया ॥ १६८ ॥ भोजन्यमिति निर्वभाङ्गो-  
जित स जुगुप्सया । वतितोन् वसपात्रेण तत्तन्मात्राहित पुनः ॥ १६९ ॥ उज्जुर्गन्तरे भोक्तुं प्रार्थयामास दारुकः । तयापि कसपात्रस्य पुरस्तादुपवा-  
कितं ॥ १७० ॥ उज्जुषीद्वितोर्व्येय नाग्रदीक्षातमात्मनः । सोपि चेत्तादृशः साधु कथं सफकमीप्सति ॥ १७१ ॥ अर्थाख्यानमिदं कथं शृणु कृपापात्र-  
नाश करनेके लिये मोक्ष देनेवाली दीक्षा ग्रहण करा दी सो ठीक है क्योंकि सज्जनोंका भाईपना ऐसा ही होता है ॥ १६३ ॥  
उस मूर्खने द्रव्यसंयम धारणकर वारह वर्षतक गुरुके साथ विहार किया और फिर किसी एक दिन वह सकेला ही  
नामकी स्त्री रहती है ? । सुप्रताप गणिनीने उस झुनिके हृदयकी बात सुनकर कहा कि हे झुने ! उसकी बात में अच्छी  
तरह नहीं जानती । इस तरह कईकर और उदासीनता धारणकर उस गणिनीने उस झुनिको संयममें स्थिर करनेके  
लिये एक गुणवती नामकी अजिंकासे कथा कहना प्रारम्भ किया ॥ १६४-१६६ ॥ वह कहने लगी एक सर्वसमृद्ध नामका  
वैश्य था उसके शुद्ध हृदयवाला दारुक नामका दासीपुत्र था । किसी एकदिन उसकी माताने उससे कहा कि हमारे  
शेठका झूठा भोजन तू खायाकर इस तरह कहकर उसने जवर्दस्ती झूठा भोजन उसे खिला दिया परन्तु ग्लानि अनेसे  
उस पुत्रने वह सब वमन कर दिया । उसकी माताने वह सब वमन एक कांसेकी थालीमें ले लिया और जब फिर उस  
दारुककी भूल लगी तथा मातासे भोजन मांगा तब उस माताने वही कांसेकी थालीमें रखवा हुआ उसका वमन उसके  
सामने रख दिया ॥ १६६-१७० ॥ यद्यपि उस दारुकको बहुत भूल लगी थी तथापि उसने वह अपना वमन किया हुआ  
नहीं खाया । जब उस दासी पुत्रने ही अपना वमन किया हुआ भोजन बहुत भूल लगने पर भी नहीं खाया तब साधु  
होकर भी अपनी छोटी हुई चीजको किस तरह चाहते हैं ? ॥ १७१ ॥ इसके सिवाय भी मैं एक कथा और कहती हूं तू  
चिचको स्थिर रखकर सुन । एक नरपाल नामका राजा था उसने बड़े कौतुकसे एक कुत्ता पाला था । भीटे भोजन दे  
देकर उसे पाला था उसे सब तरहके सोनेके आभूषण पहिनाये थे वह मूर्ख राजा उसे पालकीमें बिठाकर सदा बजने



रिबर । नरेशो नरपलाय-मानमेक सकौतुक ॥ १०२ ॥ मिष्टशनेन सपोष्य स्वर्णोत्तरणभूषित । सदा वनविह्वलसिङ्गित कनककल्पित ॥ १०३ ॥ कारोष्य  
शिबिकाभेवं महशुदिरपाक्यात् । कदाचिच्छिविकाः सहो गच्छन्केल्येकाधम ॥ १०४ ॥ विद्यामालोक्य बालस्य लिप्पुरापततिस्म स । तद्वद्वृषपाकरोद्भूतो  
ककुटीतावनेन त ॥ १०५ ॥ तद्वन्मुनिष सर्वेषां पूजनीयः पुरा पुन । सत्तामिवाच्छया भूयः संप्राप्नोति पराभव ॥ १०६ ॥ इदमन्यक्तवित्कवित्पथिक-  
सहनार्तरे । शुग्धिफलपुष्पादिसेवयाश्रयं सुखं सत ॥ १०७ ॥ गत्वा विहाय सन्यार्ग महागहनसंकटे । दृष्ट्वा भुवितमस्युम सचमूरं जियाकुं ॥ १०८ ॥  
भीत्वा धावंसदैकस्मिन् भीमे कृपेपतस्समीः । तत्र श्रीतादिसिः पापाद् पत्रितयसभवे ॥ १०९ ॥ बगदृष्टिभ्रुतिगत्याहिहीनं सर्वविबाधन । तं त्रिर्गमनोपा-  
ययजानत यहच्छया ॥ ११० ॥ कश्चिद्भूषणवरो वीक्ष्य दययाहीकृताशय । भिर्गमय्य ततः केनाप्युपायेन महादरात् ॥ १११ ॥ मत्प्रौढप्रयोगेण कृतपा-  
दप्रसारण । सूक्ष्मरूपसमालोकनोन्मीलितविलोचन ॥ ११२ ॥ स्रष्टाकर्णनविज्ञातलक्षशक्तिश्रवणद्वय । व्यफावाक्प्रसरोयेतरसन च व्यादासु ॥ ११३ ॥ स स-

क्रीडा करनेके लिये ले जाता था । किसी एक दिन वह नीच कुत्ता पालकीमें बैठा हुआ जा रहा था कि एक बालककी  
विष्टा उसे दिख ई पधी और उसे चाटनेके लिये वह तुरन्त ही दूद पडा । यह देखकर उस राजाने भी लकड़ियोंकी मार  
उसे दूर भगा दिया ॥ १०२-१०५ ॥ इसी प्रकार जिन मुनियोंकी पहिले सब लोग पूजा करते हैं यदि वेही फिर त्याग  
किये हुए पदार्थोंकी इच्छा करने लगें तो उनका भी संसारमें तिरस्कार ही होता है ॥ १०६ ॥ इस कथाके बाद एक कथा और  
कहती हूं-किसी वनमें कोई पथिक सुगन्धित फल पुष्प लेनेके लिये सुखसे जा रहा था परन्तु वह अच्छा मार्ग छोड़कर  
बड़े संकीर्ण और गहन वनमें जा पडा । वहापर उसने एक भ्रूवा, बहुत बडा और मारनेके लिये अपनी ओर आता हुआ  
सिंह देखा ॥ १०७-१०८ ॥ उसके डरसे डरकर दौडता हुआ वह भयभीत पथिक एक भयानक कूपमें पडगया । पाप  
कर्मके उदयसे वात पिच कफ आदि तीनों दोष उत्पन्न हुए और वह वचन, दृष्टि, कान, गति इन सबसे हीन होगया-  
इसके सिवाय भी सांप आदिकी वाधा उसे अलग थी । सब इंद्रियां बन्द हो जानेसे वह वहांसे निकलनेका उपाय भी  
नहीं जानता था । दैवयोगसे इच्छानुसार चलकर एक वैद्य भी वहां जा पहुंचा उस पथिकको देखकर उसका हृदय  
दयासे भीग गया और किसी भी उपायसे उसने उसे बड़े आदरसे वाहर निकाला ॥ १०९-११० ॥ उस वैद्यने मंत्र और  
औषधियोंके प्रयोगसे उसके पैर भी सीधे कर दिये और सूक्ष्मरूपको देखनेयोग्य नेत्र भी खोल दिये ॥ ११२ ॥ उसके कानोंमें  
भी स्पष्ट सुननेयोग्य शक्ति उत्पन्न करदी और उसकी जीभमें भी व्यक्त वाक्योंके कहनेकी शक्ति उत्पन्न कर दी ॥ ११३ ॥  
इसके बाद उसे मार्ग दिखलाकर सर्वप्रथमीय नामके नगरमें पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि उदार हृदयवाले मनुष्य

नैरसनीयास्यं पुरं ते मार्गवर्सेनात् । प्रत्याण्यस्य कस्योपकुर्वन्ति विषदाशया ॥ १८४ ॥ पुन स विषयासक्तमसि पयिकुमुसिः । प्रकटीकृतदिग्भापमोहः  
 प्राक्तनरूपकं ॥ १८५ ॥ संप्राप्य पतितत्वास्मिस्ता काञ्चन सद्यतो । मिथ्यात्वादिकपचोपमाविधादीन्युपागतान् ॥ १८६ ॥ जन्मकृते क्षुधादाहाद्यातान्ध-  
 नीस्यं सन्मसिः । युक्तैवो दयादाशान्दीक्योपायपदितः ॥ १८७ ॥ निर्गमय्य ततो जैनभाषावसिनिषेवनात् । सम्यक्त्वनेत्रमुन्नीत्य सम्यग्ज्ञानमुतिद्वयं  
 ॥ १८८ ॥ समुद्धृत्य सदुद्धृतपादो इत्वा प्रसारितो । व्यक्तां दयामयी शिक्षा विधाय विधिपूर्वक ॥ १८९ ॥ पंचप्रकारस्वाध्यायवचनान्यमिधाय तान् ।  
 सुधीरागमन्यमार्गं साधुः स्वर्गोपवर्गयोः ॥ १९० ॥ निष्पन्नोदयादीपर्वस रास्तात्र केचन । उगंधिविधुरोद्धमिन्वंपकाभ्यासवर्तिन ॥ १९१ ॥ तत्सौरमाव-  
 वोभावमुक्ताः पट्टवरणा यथा । पार्श्वस्त्राख्या सुदृक् नचारित्र्योपागतवतनात् ॥ १९२ ॥ कषायविषयारभैकैकिकानानवेदैकैः । विहाय इमेव सर्वदाः कुली-  
 काख्या दुराशयाः ॥ १९३ ॥ संघक्ताश्च निविद्धेभु इत्यभावेषु लोढ्या । अवसानाङ्गया हीयमानज्ञानादिकल्पतः ॥ १९४ ॥ समाचारवर्हिषता मृगचार्य-  
 किसको उपकार नहीं करते हैं अर्थात् सबका उपकार करते ही हैं ॥ १८४ ॥ इसके बाद उस मूल्य पयिककी बुद्धि फिर  
 विषयोंमें आसक्त होगई और दिग्भ्रम प्रगट होनेके कारण वह फिर उसी कृपके समीप जाकर उसीमें जापडा । इसी  
 प्रकार ये जीव भी इस संसारमें मिथ्यात्व आदि आसक्तके कारण रूप पांचो बधिर आदि महारोगोंको प्राप्त हो रहे हैं और  
 जन्मरूपी कृपमें पडकर भूत्व प्यास आदिके दुःखोंसे महादुखी हो रहे हैं उन्हें देखकर धर्मोपदेश देनेके उपायोंमें अत्यन्त  
 चतुर और श्रेष्ठ बुद्धिको धारण करनेवाले गुरुरूपी वैद्य दयालु होनेके कारण उन्हें निकालते हैं और फिर जैनवचनरूपी  
 औषधियोंका सेवन कराकर सम्यग्दर्शनरूपी नेत्रोंको खोल देते हैं, सम्यग्ज्ञानरूपी कानोंको साफ प्रगट कर देते हैं, सम्यक्  
 चारित्र्यरूपी दोनों पैर फैलाकर सीधा कर देते हैं और जीभको विधिपूर्वक व्यक्त दयामयी बना देते हैं ॥ १८५-१८९ ॥  
 वे बुद्धिमान साधु पांच प्रकारके स्वध्यायरूपी वचन कहकर उन्हें स्वर्ग और मोक्षके मार्गपर लगा देते हैं ॥ १८५-१८९ ॥ उनमें  
 भी बहुतसे लोग पापरूपिके उदयसे दीर्घसंसारी होते हैं । जिस प्रकार अमरको सुगंधित और मिष्ट गन्धवाले चम्पकके  
 रत्नत्रयका ज्ञान नहीं होता वे पार्श्वस्य कहलाते हैं ॥ १९१-१९२ ॥ जो कषाय, विषय, आरंभ लौकिक ज्ञान आदिके  
 वश होकर जिह्वा इन्द्रियके छहों रसोंमें आसक्त हो रहते हैं वे दुष्ट कुशील कहलाते हैं ॥ १९२ ॥ जो कषाय, विषय, आरंभ लौकिक ज्ञान आदिके  
 करने योग्य द्रव्य भावोंमें लोलुपी रहते हैं वे संसक्त कहलाते हैं । जिनके ज्ञान चारित्र्य आदि घटते जाते हैं वे अवसान  
 कहे जाते हैं और जो सदाचार रहित स्वच्छाचारी हैं वे मृगचारी कहलाते हैं । ये सब मृग महामोहका त्याग नहीं करते

सिमानका । महाभोगानिबृत्त्याजवंबागाधकृत् ॥ १९५ ॥ पतस्तिष्ठा पुनश्चेति भवदेवोपि तच्छब्दे । संश्रासशातभाबोभूद् ज्ञात्वा तत्सार्थकाश्रणीः २९६ नागश्रिय च दौर्गत्यभाबोयामितदु स्थिति । अनादयादशोबस्तोपि तां दृष्ट्वा संसृतिस्थिति ॥ १९७ ॥ स्मृत्या विगति निदित्वा गृहीत्वा समयम पुन । आत्राः सहस्रुषः प्राते कुमारखाराधना श्रितः ॥ १९८ ॥ श्रुत्वा म हेंद्रकल्पेभूदलभद्रविमानके । सामानिकसुर सप्तसागरोयमजीवितः ॥ १९९ ॥ ज्यायानहम जायि त्व कनिष्ठोमूस्ततश्च्युतः । इति सोपि मुनिप्रोक्तश्रवणेन विरक्तवान् ॥ २०० ॥ वीक्षा गृहीदुमुद्युक्तो मात्रा पित्रा च वारित । प्रविश्य नगरं जातस विद्वद्वास्तुकाशन ॥ २०१ ॥ नाहमाहारयामीति कुमारोऽकृत निश्चय । तद्गताश्रवणाद्भूतो यः कश्चिद्भोजयत्यमु ॥ २०२ ॥ तस्मै सप्र र्थेन दास्यामीति सः सखबोधयत् । तज्ज्ञात्वा दृढधर्मस्थः सप्तस्थानममाश्रयः ॥ २०३ ॥ श्रावकः समुपेत्यैन कुमारं ज्ञातिशत्रवः । तंवते स्वपरध्वसकोविदाः पापहेतवः २०४ भावसंयमविच्यवस्तिमकृत्वा प्रास्तुकाशनं । कश्चित्प्रे भद्र पयुष्टिमवियुक्तस्य वंशुसि ॥ २०५ ॥ दुर्लभा समये दृष्टितिल्यवोचद्वित वच । सोपि मत्वा तदात्वा

इसलिये दीर्घ संसारीरूपी अगाध कूपमें फिर भी जाकर पड़ते ही हैं । अर्जिकाकी ये सब बातें सुनकर भवदेवका चित्त अत्यंत शान्त होगया उसका शान्त चित्त देखकर उस मुख्य आर्थिकाने भी दुर्गति वा दरिद्रतासे जिसकी स्थिति अत्यन्त शान्त होरही है ऐसी नागश्रीको लाकर उसे दिखला दिया । उसे देखकर भवदेवने और भी संसारकी साक्षात् स्थितिका स्मरण किया धिक्कार देते हुए अपनी निन्दाकी फिरसे संयम धारण किया और बड़े भारीके साथ आयुके अन्तमें अनुक्रमसे चारों आराधनाओंका आश्रय लिया । परकर अपने भारिकेही चौथे माहेन्द्र स्वर्गके बलभद्र विमानमें सात सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुआ ॥ २०४-२०५ ॥ वहांसे च्युत होकर बड़े भारी भगदत्तका जीव में हुआ हूं और छोटे भारी भवदेवका जीव तू हुआ है । इस प्रकार छुनिराजके वचन सुनकर वह शिवकुमार विरक्त हुआ ॥ २०० ॥ वह दीक्षा लेनेके लिये तैयार हुआ परन्तु माता पिताने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया । जिसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ है ऐसा वह कुमार यद्यपि नगरमें गया तथापि उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अपासुक आहार कभी नहीं करूंगा । कुमारकी यह प्रतिज्ञा सुनकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि जो कोई इस कुमारको भोजन करावेगा उसे मैं इच्छानुसार धन दूंगा । राजाकी यह घोषणा सुनकर धार्मिक सातों स्थानोंमें दान देनेवाला दृढधर्मा नामका श्रावक उस कुमारको समझाने लगा कि हे कुमार अपने और दूसरेके आत्माको नष्ट करनेमें परिहृत तथा पापके कारण ऐसे ये कुटुंबी लोग सब तेरे शत्रु हैं इसलिये हे भद्र ! भाए संयमका नाश न करते हुए मासुक भोजन लेकर पारखा कर । तू भारी बंधुओंसे रहित है इसलिये मैं तेरी वैयाहृत्य करूंगा । क्योंकि संयममें प्रवृत्ति रखना अत्यंत दुर्लभ है । इसप्रकार उस श्रावकने कुमारसे हितरूप वचन कहे । कुमारने

स्तेनिर्विह्वलसो धर्मः ॥ २०१ ॥ दिव्यबीजविधिं स्थित्वा खड्गविह्वलमेतदा । तुण्डं अन्यमानस्ता तपो द्वाकाजस्रान् ॥ २०७ ॥ वरप्रतिपातासिचा-  
र्यां संपूर्तकन । संग्रह्य जीवितप्रति कृत्यं प्रवृत्तनामनि ॥ २०८ ॥ विष्णुमालिन एवामुदेव्योऽन्येभ्यःपुत्रिकाः । ज्वलन्माल्येन देवोभूद्रेऽन्येभ्यःपुत्रिकाः । इत्यथ श्रेयिकप्रकाशितं बोध-भोतमा-  
॥ २०३ ॥ विष्णुमालिन एवामुदेव्योऽन्येभ्यःपुत्रिकाः । ज्वलन्माल्येन देवोभूद्रेऽन्येभ्यःपुत्रिकाः । इत्यथ श्रेयिकप्रकाशितं बोध-भोतमा-  
गत्वा सागरदमाख्यो विममत्रैल निर्वृति ॥ २११ ॥ ज्वलन्माल्येन देवोभूद्रेऽन्येभ्यःपुत्रिकाः । ज्वलन्माल्येन देवोभूद्रेऽन्येभ्यःपुत्रिकाः । इत्यथ श्रेयिकप्रकाशितं बोध-भोतमा-  
षाधीनो जिन तं चान्वदत । भोजयति न के संत श्रेयोमार्गोपदेविन् ॥ २१४ ॥ अथान्येषु पुन प्राप्य भगवंतं भवतक । प्रपूज्य प्रगतस्तले सरस्यु-  
दितवेजस ॥ २१४ ॥ दृष्ट्वा साराणै तारापति वा प्रीतिकेतनं । प्रीतिं चरुं पुराणेन किं कृत्वा रूपमिदं ॥ २१५ ॥ संप्राप्तमिति सोप्राक्षीद्वृणुष्ववेवमयीत् । एत-  
भी उसकी सब बातें मानलीं और निर्विकार आचासल रसका आहार किया ॥ २०१-२०६ ॥ यद्यपि वह दिव्य स्त्रियों के स-  
भीप भी जाता था तथापि उसके चित्तमें कभी विकार नहीं होता था वह सबको तुण्ड के समान मानता था इसप्रकार उस-  
ने बारह वर्ष तक असिधारा पर ( तलवारकी धारपर ) चलनेके समान अत्यंत कठिन तपश्चरण किया । आयु के अंतमें उस-  
ने सन्यास धारण किया और शरीर छोड़कर ब्रह्म स्वर्गमें यह विष्णुमाली देव हुआ है । इस कथाके कहनेके बाद श्रेयिकके पूछनेपर गौतम-  
कारण ही शरीरकी कांतिसे इतने सब द्रियाएं व्याप्त कर रक्खी हैं । इस कथाके कहनेके बाद श्रेयिकके पूछनेपर गौतम-  
और जंबुकमारके साथ दीक्षा धारणकर सोलहवें स्वर्गमें देव होगी तथा वहांसे आकर मुक्त होगी । सागरदसका जीव-  
भी स्वर्गसे आकर जंबुकमारकी दीक्षा के समय मुक्त होगा । गणेशों के नायक गौतमस्वामीकी कही हुई ये सब कथाएं  
सुनकर राजा श्रेयिक बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने श्री मोक्षमार्गका उपदेश देनेवालेको न मानें तथा उनका आदर स्तुकार  
क्योंकि ऐसे कौन सबजन पुरुष हैं जो कदापि किसी दूसरे दिन राजा श्रेयिक फिर संसारका नाश करनेवाले भगवान वीरनायक  
न करें ॥ २०७-२१३ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन राजा श्रेयिक फिर संसारका नाश करनेवाले भगवान वीरनायक  
समवसरणमें गया उनकी पूजाकी और उन्हें नमस्कार किया । जिसप्रकार साराओंमें चंद्रमा प्रकाश मान दिखता है उसी-  
प्रकार सब सभामें जिनका तेज प्रकाशमान हो रहा है और जो मेमकी ध्वजाके समान है ऐसे प्रीतिकर मुनिको देसकर  
श्रेयिकने पूछा कि पहिले जन्ममें इन्होंने कौनसा पुण्य किया था सिससे इन्हें ऐसा रूप प्राप्त हुआ है । इसके उत्तरमें  
गणेशदेव भी इसप्रकार कहने लगे कि इसी भगवद्दर्शमें एक सुमतिष्ठ नामका नगर है ॥ २१४-२१६ ॥ उसमें जयन्ते-

स्मिन् मंगवे सेसे सुप्रतिष्ठाप्यं पुरं ॥ २१६ ॥ जयसेनबहीपालः पाळकस्तस्य डीलया । तत्र सागरदत्ताध्याः श्रेष्ठी तस्य प्रभाकरी ॥ २१७ ॥ भार्या त  
योः भूषागदतो ज्येष्ठ सुतोदुजः । कुवेरदत्तो त्रिलोकसमस्तशृङ्खलिन ॥ २१८ ॥ नागदत्त विषयार्थान्ये सर्वभूतनुपासकाः । रत्नाकरेपि सद्रत्न नागोत्पल्लवत-  
प्यकः ॥ २१९ ॥ तेषां काले प्रजयेवं निरौ धरणिभूषणे । इने त्रियकरोधने रुद्राभित्समवस्थित ॥ २२० ॥ मुनि सागरसेनारुम् जयसेनदृषादयः । गम्भा  
सपुत्र्य वंदित्वा धर्म साध्वन्व्युजत ॥ २२१ ॥ सोप्येधमव्रीत्याससम्पदं नलोचन । दानपूजाव्रतापोषिताभिभिः प्राप्तपुत्रका ॥ २२२ ॥ प्राप्नुवन्ति  
शुल स्वर्गे चापवर्गे च सममाह । सिन्धुहृदशब्द दानादिपुण्येन स्वर्गज सुख ॥ २२३ ॥ सप्राप्नुवन्ति तंत्रके शममाहात्म्यतः पुनः । कालाहिलिखमाश्रित्य-  
स्वतो वा परतोपि वा ॥ २२४ ॥ सद्धर्मलाभयोग्याश्च भयद्वयभ्यर्णमोचनाः । अन्ये तु भोगसंस्का गाढमिष्यात्वचल्यकाः ॥ २२५ ॥ हिंसादृष्टान्यारामा-  
रत्नारंभपरिमहै । पाप संनित्य ससारदुष्कृते निपतसि ते ॥ २२६ ॥ इति तद्वचनं धृत्वा बहवो धर्ममाददु । अथ सागरदत्ताख्यश्रेष्ठिना स्वाधुबोधैषा

नामकां राजा लीलापूर्वक राज्य करता था । उसी नगरमें एक सागरदत्त नामका श्रेष्ठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम प्रभाकरी था । उन दोनोंके दो पुत्र थे बड़ेका नाम नागदत्त था और छोटेका नाम कुवेरदत्त था । उस श्रेष्ठके घर जितने लोग रहते थे उनमेंसे नागदत्तको छोड़कर बाकी सब श्रावक थे सो ठीक ही है क्योंकि जो पुरुषहीन है उसे रत्नाकरमें रत्नोकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २१७-२१९ ॥ इसप्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होरहा था किसी एक समय धरणि भूषण नामके पर्वतके प्रियंकरोद्यान नामके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज आ विराजमान हुये । राजा जयसेन आदि बहुतसे लोगोंने जाकर उनकी पूजा बंदनाकी और सबने उनसे धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २२०-२२१ ॥ वे मुनि-  
राज भी धर्मका स्वरूप इसप्रकार कहने लगे कि जिन्हें सम्यग्दर्शनरूपी नेत्र प्राप्त हो चुके हैं ऐसे पुरुष दान पूजा व्रत उपवास आदिके द्वारा पुराय सम्पादन करते हैं तथा संयम धारणकर स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं । मिथ्या दृष्टि लोग दानादिक पुरयोंके द्वारा स्वर्गके सुख प्राप्त करते हैं । मिथ्यादृष्टियोंमें भी शान्त परिणामोंके माहात्म्यसे कितने ही जीव तो काल आदि लब्धियोंको पाकर अपने आप अथवा दूसरोंके द्वारा श्रेष्ठ धर्मको प्राप्त होनेके योग्य हो जाते हैं तथा शीघ्रही मुक्त होने योग्य हो जाते हैं और कितने ही जीव ऐसे हैं जिनके गाढ मिथ्यात्वरूपी शल्य बनी रहती है जो भोगोंमें आसक्त रहते हैं और हिंसा मृदु चोरी कुशील अत्यन्त आरम्भ तथा अत्यन्त परिग्रहसे पापोंका उपार्जनकर संसाररूपी बुरे कृष्ण पद जाते हैं ॥ २२२-२२६ ॥ इस प्रकार उन मुनिराजके वचन सुनकर बहुतसे स्त्रीगोंने धर्मको धारण कर लिया । तदंतर श्रेष्ठ सागरदत्तने अपनी आयुके दिन पूछे मुनिराजने तीस दिनकी आयु बतलाई । यह सुनकर वह श्रेष्ठ अपने नगरमें

॥ २२७ ॥ परिशुष्टे सुनिराजः दिवसांश्चिद्विश्रितो । तच्छब्दा नगरं श्रेष्ठं प्रविश्याद्यादिहकीं मुदा ॥ २२८ ॥ पूजा विधाय दत्तात्मपद ज्येष्ठाय सूनवे । कुबेरदत्तात्मन्यै वाचवान् सर्वान् द्वाविंशतिदिनानि सः । संन्यस्य विधिवन्नोक्तमवापददृशतामिना ॥ २२९ ॥ कथ्येद्युर्नागदत्तौ सौ लोभेनायेन चोदितः ॥ २३० ॥ युरोः पृथक् ॥ २३२ ॥ संन्यस्य विधिना स्वर्गं गतत्वापरि दूषण । महत्यापमिदं वक्तुं आतृप्तं न युज्यते ॥ २३३ ॥ श्रोतुं ममापि चेत्याह सोऽप्यप्यास्य दुर्मतिः । विमज्ज्य सकलं वस्तु चैलचैलाख्यादिकं ॥ २३४ ॥ निर्माप्य जिनपूजाय विधाय विविधा सदा । दानं चतुर्विधं पात्रत्रये भक्त्या प्रवर्त्य तो ॥ २३५ ॥ कालं गमयतः स्मोद्यधीतीं प्रति परस्परं । दत्ता सागरसेनाय कदाचिन्मूर्तिपूर्वकं ॥ २३६ ॥ मिश्रां कुबेरदत्ताभ्याः सहितो धनमित्रया । अस्मि- गया उसने बड़े आनन्दसे आशान्दिकाकी पूजा की और फिर अपना पद अपने बड़े पुत्रको दिया । इसके बाद उसने सब भाई वन्धुओंसे पूछकर चाँस दिन तक विधि पूर्वक संन्यास धारण किया और शरीर छोड़कर स्वर्गलोक प्राप्त किया । किसी दूसरे दिन नागदत्तको अनन्ताशुवन्धी लोभने सताया इसलिये उसने दुष्टचित्तसे कुबेरदत्तको बुलाकर पूछा कि क्या पिताजी अपना सब कीमती धन तुमको बतला गये हैं ? ॥ २२७-२३१ ॥ कुबेरदत्तने सम्मत्तियां लगा कि आप न कहने योग्य ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं । स्वर्ग प्राप्त किया है उनके लिये ऐसा कहना उनपर दोष लगाना है और एक तरहका महापाप है । हे भाई आपको ऐसा कहना योग्य नहीं है और मुझे सुनना भी योग्य नहीं है । इस प्रकार कुबेरदत्तने सपने बड़े भाई की कुबुद्धि दूरकी, सब धनका बाँट किया, अनेक चैत्य चैत्यालय बनवाये, अनेक तरहसे जिन पूजा की और बड़ी भक्तिसे उच्चम मध्यम जगन्मयी तीनों तरहके पात्रोंको सदा चारों प्रकारका दान दिया । इस प्रकार दोनों भाईयोंमें परस्परका प्रेम बहुत ही बढ गया और दोनोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन कुबेरदत्तने अपनी स्त्री धनमित्राके साथ सागरसेन नामके सुनिराजको बड़ी भक्तिसे आहार दिया । आहार देनेके बाद उन दोनोंने वन्दनाकर पूछा कि हम दोनोंके कोई पुत्र होगा या नहीं यदि न हो तो हम दोनों ही दीक्षा धारण करलें इसके उत्तरमें सुनिराजने कहा कि तुम दोनोंके पराशुरूपवान् और चरमशरीरी पुत्र होगा । सुनिराजकी यह बात सुनकर दोनोंका हृदय बहुत ही मन्तुष्ट हुआ और उन

मिति तद्वाक्यप्रवणतोऽपि तांशैः । यथेनं पूज्यपादस्य भवतः क्षुल्लकोत्सवमौ ॥ २३९ ॥ तस्मिन्नुत्पन्नवत्येव दास्याव इति तौ क्षुल्ल । भुञ्जानौ कस्मिन्मि-  
सान् गममिला द्युतोत्तम ॥ २४० ॥ लब्ध्वा प्रीतिकराहानमेतस्याकुशला मुदा । करोषु स्वगुणस्तोष सर्वेषां जगतामिति ॥ २४१ ॥ पञ्चसदस्तरातीतौ तस्मि-  
न्धास्यपुरान्मुनौ । आगते सति गत्वेनमसिवद्य मुनीन् तौ ॥ २४२ ॥ क्षुल्लकोयं गृह्णाणेति तस्मै दत्तः स तं तदा । प्रतिगृह्य गुरुर्धन्यपुत्रमेवागत पुन ॥ २४३ ॥  
तत्र त सर्वशास्त्राणि दशवर्षाण्यशिक्षयत् । सोऽप्यासन्नविनेयत्वात्संयमग्रहणोत्सुक ॥ २४४ ॥ गुरुभिर्निर्यते बीक्षाकालोयमिति वारितः । तथैवास्त्विति तं  
भक्त्या बधित्वा पित्रौ प्रति ॥ २४५ ॥ प्रत्येलाभ्यस्तयास्त्राणि सिध्याणा समुपादिशत् । छात्रवेषधरो गत्वा सर्ववपुःकुदवक ॥ २४६ ॥ विलोकयानन्तरं राज्ञा  
सम्यग्विबहितसङ्कतिः । असाधारणमारमान भन्यमान कुलादिभि २४७ ॥ घनं बहुतरं सारं यावन्नावर्जयाम्यह । तावन्न संप्रहीक्यामि पत्नीमिति विवितयन्  
॥ २४८ ॥ अन्येषुर्नागरैः कैश्चिज्जलयात्रोन्मुखैः सह । गियासुर्वाघवान्सर्वानापृच्छयत्तद्योजन ॥ २४९ ॥ सम्मतस्तेर्नमस्कृत् गत्वा गुरुमुदात्तधी । पत्रमेकं

दोनोने कहा कि हे पूज्यपाद यदि ऐसाही है तो वह पुत्र आपका ही छुल्लक हो उत्पन्न होते ही हम उसे आपको दे देंगे ।  
इसके बाद वे फिर सुखसे रहने लगे कितने ही महीने बीत जानेपर उनके उत्तम पुत्र हुआ और 'यह पुत्र अपने गुणोंसे  
सब संसारको सन्तुष्ट करो' यही समझकर बड़ी प्रसन्नतासे उसका नाम प्रीतिकर रक्खा ॥ २३१-२४१ ॥ पुत्र जन्मके  
पाँच वर्ष बाद वे ही मुनिराज फिर धान्यपुर नगरमें आये कुवेरदत्त और धनमित्राने जाकर उनकी वन्दना की और कहा  
कि हे मुनिराज यह आपका छुल्लक है इसे लीजिये इसप्रकार कहकर वह बालक उन्हें दे दिया । मुनिराज भी उस  
बालकको लेकर फिर धान्यपुर नगरमें आगये ॥ २४२-२४३ ॥ वहाँपर उन मुनिराजने दश वर्ष तक उस बालकको  
समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा दी । आसन्न भव्य होनेके कारण शिक्षाके बादही वह संयम धारण करनेके लिये तैयार होगया ॥ २४४ ॥  
परन्तु गुरुराजने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया और समझा दिया कि तेरा अभी दीक्षा लेनेका समय नहीं है । प्रीतिकरने  
भी गुरुकी यह बात स्वीकार कर ली, भक्ति पूर्वक उनकी वन्दनाकर वह अपने माता पिताके पास चला गया और पढ़े  
हुए सब शास्त्र अनेक शिष्योंको पढ़ाने लगा । वह पहिले तो विद्यार्थियोंका ही वेप धारण कर गया था और फिर सब  
भाई बन्धुओंको देखकर प्रसन्न हुआ । राजाने भी उसे विद्वान् देखकर उसका खूब आदर सत्कार किया । तदनन्तर उसने  
विचार किया कि मेरा कुल कुल गाँव आदि बहुत बड़ा है मैं साधारण आदमी नहीं हूँ इसलिये जवतक बहुतसा धन न  
कमा लूँगा तबतक मैं अपना विवाह नहीं करूँगा ॥ २४५-२४७ ॥ किसी एक दिन कितने ही नगर निवासी जलयात्रा  
अर्थात् व्यापारके लिये समुद्रयात्रा करनेको तैयार हुए उनके साथ प्रीतिकर भी जानेको तैयार हुआ उसने जानेके लिये



निजामिप्रेतार्थकारसमर्पित ॥ २५० ॥ गुरुणागितमादाय कर्णे शुष्णाप्य सादरे । शकुनयानुकूल्येन ससखं पोतसाधन ॥ २५१ ॥ अवगाह्य पयोराशिं पुरं भूतलकाङ्क्ष्य । परित बलयाकारगिरिणा प्राप्य पुण्यवान् ॥ २५२ ॥ शबदूर्ध्वविमिस्तस्मिन् ध्वनदुग्धि समुखान् बनान् । निर्गच्छतः प्रपश्यद्विमिराशक्य वणिगा वरैः ॥ २५३ ॥ गर्वतत्पुरभन्विष्य प्रत्येतुमिह कः सहः । इत्युदीरितमकण्ठ्यं प्रीतिकुरामरक ॥ २५४ ॥ कर्मणोऽप्य समर्थोऽहमिति संगीर्णवास्तदा । नीचवक्त्रजनिष्पन्नरज्ज्वा तैरवतारित ॥ २५५ ॥ विस्मयात्परित पश्यन् प्रविश्य परित पुरा । निरीक्ष्य भवनं जैन परीत्य विहितस्तुतिः ॥ २५६ ॥ ततो गत्वा युष्मापातविगतास्तास्तिरूपयन् । समतात् कन्याको वाञ्छित गच्छतीं मरसो गृह ॥ २५७ ॥ केयमिलयुगातोऽसा त सलोक्य गृहगणे । भद्रगतः कुतो-ऽप्रेति पीठमस्मै समर्पयत् ॥ २५८ ॥ सोऽपि तस्योपरि स्थित्वा नैगरं केन हेतुना । संजातमीदृशं ब्रूहि इत्याह तामय साव्रवीत् ॥ २५९ ॥ एतद्वक्तुं नारित

सब भाई वन्धुओंसे पूछा सबके द्वारा सम्मति मिलजानेपर उदार बुद्धिवाला वह कुमार नमस्कार करनेके लिये गुरुके पास गया । गुरुने अपने अभिप्रायका एक पत्र लिख दिया जिसे लेकर कुमारने बड़े आदरसे कानमें रखलिया । तदनन्तर अन्धे शकुन आदि देखकर अपने मित्रोंके साथ जहाजपर बैठकर समुद्रमें चलने लगा और थोड़े ही दिनमें वह पुरयवान् कंकणके आकारके पर्वतसे धिरे हुए एक भूतिलक नामके नगरमें पहुंचा ॥ २४६-२४७ ॥ उस समय शंख तुरई आदि बाजे बजाते हुए लोग सामने ही नगरके बाहर निकल रहे थे उन्हें देखकर जहाजके सब वैश्य नगरमें जानेसे डर गये ॥ ४३ ॥ सबने कहा कि इस नगरमें जाकर और सब बातें तलाशकर फिर लौट आनेकी कौन सामर्थ्य रखता है इस बातको सुन कर प्रीतिकर कुमारने प्रतिज्ञाकर कहा कि इस कामको मैं कर सकता हू । इस बातको सुनकर दालचीनीकी छालसे बनाये हुए रस्सेसे उसको नीचे किनारे पर उतार दिया ॥ २४४-२४५ ॥ आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए उस कुमारने नगरमें प्रवेश किया और पहिलेही जिन भवन देखकर उसकी प्रदक्षिणा देकर स्तुति की ॥ २४६ ॥ वहांसे आगे चलकर उसने देखा कि बहुतसे लोग चारों ओर शस्त्रोंसे भरे पड़े हैं आगे चलकर एक कन्याको तालावसे घरको जाते हुए देखा । उस कन्याको जाननेकेलिये वह उसके पीछे पीछे चला घरके आंगनमें जाकर कन्याने कुमारको देखा और बैठनेकेलिये एक सिंहासन डालकर पूछा कि हे भद्र कहांसे आये हो ॥ २४७-२४८ ॥ कुमारने उस सिंहासनपर बैठकर पूछा कि कहो यह नगर किस कारणसे ऐसा उजाड होगया है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि यह सब बतलानेका यह समय नहीं है भद्र तू यहांसे जल्दी भाग जा नहीं तो तेरे लिये यहां बड़ा भारी भय उपस्थित होगा । कन्याकी यह बात सुनकर वह कुमार निर्भय होकर कहने लगा कि जो मुझे भय देगा उसके क्या हज़ार हाथ हैं । कुमारका ऐसा निर्भय और गंभीर उत्तर सुनकर कन्याका भय कुछ दूर हुआ

गंगीरविजृम्भणात् ॥ २६१ ॥ क्षिपिलीभूतमी कन्याप्यवोचद्विस्तरेण तत् । एतत्तद्वर्णयुगीव्यालकेभराः सहजाभयः ॥ २६२ ॥ ज्यायान् हरिवल-  
रास्य महासेनोनुजः । तस्य भूतिलकस्तेषु धरिण्यां ज्यायसोऽभबत् ॥ २६३ ॥ तन्जो भीमकस्तस्मादेव विधाधरेभिः । हिरण्यवर्मा श्रीमत्यामजायत  
सुतोपरः ॥ २६४ ॥ महासेनस्य सुदर्शमुग्रसेन सुतो जनि । वरसेनश्च तस्यानुजा जाताह वसुधरा ॥ २६५ ॥ कदाचिन्मपिता भीमविहारे क्षिपुलं पुरं ।  
निरीक्ष्येद विरचित्परीति स्वीप्सिर्गुरुक ॥ २६६ ॥ एतन्निवासिनीईला रणे भूतलकाह्वयेन सोदयेण समन्वित ॥ २६७ ॥ इह  
संबाक्षिभिर्भूये सेव्यमान सुखेन सः । काल गमयति स्मैव क्षिप्सिस्तन्वितपुण्यक ॥ २६८ ॥ इतः कनीयसे विद्या भीमकायालकश्चियं । दला संसारमीद-  
खाविर्गिय क्षिजितेन्द्रियः ॥ २६९ ॥ कर्मनिर्मुक्तं कर्तुं रीक्षा हरिवलाह्वयः । बिद्वान् विपुत्रमत्याह्यचारणस्याय सन्निधा ॥ २७० ॥ शुक्रप्यानानलालीढु-

और वह कन्या फिर विस्तारके साथ सब कथा कहने लगी । कि इस विद्याधर पर्वतके उत्तरकी ओर एक अलका नगर  
है उसमें राज्य करनेवाले तीन भाई थे ॥ २५९-२६२ ॥ सबसे बड़ा हरिवल, उससे छोटा महासेन और उससे छोटा  
भूतिलक । हरिवलकी रानी धारिणीसे भीमक नामका बड़ा पुत्र हुआ था और उसी विद्याधरकी श्रीमती नामकी दूसरी  
रानीसे हिरण्यवर्मा नामका छोटा पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ २६३-२६४ ॥ महासेनकी सुंदरी स्त्रीसे उग्रसेन और वर-  
सेन दो पुत्र हुए और वसुधरा नामकी मैं कन्या हुई ॥ २६५ ॥ किसी एक समय मेरे पिता क्रीडा करनेके लिये आये  
उन्होंने इस मनोहर और बड़े नगरको देखकर लेनेकी इच्छा की । पहिले यहां एक व्यंतरी देवी रहती थी युद्धमें उसे  
जीतकर अपने छोटे भाई भूतिलकके साथ यहां ही रहने लगे । यहांके रहनेवाले राजा लोग उनकी सेवा करने लगे इस-  
प्रकार उन पुरयवानका समय बड़े सुखसे व्यतीत होने लगा ॥ २६६-२६८ ॥ इधर जितेंद्रिय और बिद्वान् राजा हरि-  
वलको वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने अपने छोटे पुत्र हिरण्यवर्माको तो विद्याएं दी और बड़े पुत्र भीमकको अलकापुरीका  
राज्य दिया । संसारसे डरकर और विरक्त होकर समस्त कर्मोंको सर्वथा नाश करनेके लिये विपुलमति नामके चारण  
श्रुनिके समीप जाकर दीक्षा धारणकी और शुक्लऋष्यनरूपी अग्निसे समस्त पापरूपी आठों दुष्ट कर्मोंको जलाकर तथा  
आठों गुणोंसे सुशोभित होकर वह इष्ट आठवीं मोक्षरूपी पृथ्वीमें जा विराजमान हुआ ॥ २६९-२७१ ॥ इधर भीमक  
राज्य करने लगा उसने किसी कपटसे हिरण्यवर्माकी विद्या हर ली और फिर वह उसे मारनेका उद्यम करने लगा हिर-  
ण्यवर्माको भी यह बात मालूम होगई इसलिये वह भागकर सम्येदशिवरपर जा पहुंचा । भीमक भी क्रोधसे उसके पीछे

विताडकपुत्रको अङ्गीकार करके सहीप रहनेसे तथा तीर्थ होनेसे वह वहां तक पहुंच नहीं सका और लौटकर अपने नगरमें आ-  
 ॥ २७२ ॥ जाता हिरण्यवर्मा तत्सम्भवेदादिमन्त्रिभिर्यत् । भीमकस्तं कुचान्वित्य मिरि गन्धमशर्ककः ॥ २७३ ॥ तीर्थं गच्छामि नानेन तीर्थं लादागमसुर । ततो  
 तस्माद् बाला या तं सुपुरतया ॥ २७४ ॥ तच्छ्रुत्वा तं निराकर्तुं पुण्यपादोद्दीप्तवत् । महावेगमहागर्जं प्राहिणोत्यतिपक्वकः ॥ २७५ ॥ तस्याभ्यागच्छति  
 शुण् ममेति तं ॥ २७६ ॥ शुक्ला विनाय संधानं प्रणमय्य द्विगोचरि । हिरण्यवर्मणा सार्द्धं दत्त्वा राज्यं च पूर्ववत् ॥ २७८ ॥ विस्मयं तथाप्यशो नैत-  
 दनैर स भीमकः । हिरण्यवर्मोपि शोभो विद्या संसाध्य राक्षसी ॥ २७९ ॥ तथा हिरण्यवर्मण पापी महितरं पुरः । मद्रंध्रुत्वपि विष्वस्यं मासुदिरयागमि-  
 व्यति ॥ २८० ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य कुमारो विस्मयावह । माध्यातलस्यमालोक्य सद्गमैव शुद्धमणः ॥ २८१ ॥ यत्न इत्यगतो जंतु तं ककोपि न कश्चु-  
 पीछे दौड़ा परंतु तीर्थकरके समीप रहनेसे तथा तीर्थ होनेसे वह वहां तक पहुंच नहीं सका और लौटकर अपने नगरमें आ-  
 गया । तदनंतर हिरण्यवर्मा भी अपने काका महासेनके समीप आगया ॥ २७२-२७४ ॥ भीमकने यह बात सुनकर अपने  
 काका महाराज महासेनको एक पत्र लिखकर भेजा कि आप हमारे पूज्य हैं इसलिये हमारे शत्रु हिरण्यवर्माको वहांसे  
 निकाल दीजिये ॥ २७५ ॥ महासेन हिरण्यवर्माके मुखसे भीमकका अन्याय जानकर युद्ध करनेके लिये चला और यह  
 भीमक कूर है दुष्ट है यही समझकर मेरे पिताने युद्धमें उसे जीता और उसके दोनों पैर लोहेकी सांकलसे बांध दिये ।  
 जब मेरे पिता शान्त हुये तब उन्होंने सोचा कि मेरे लिये यह काम करना योग्य नहीं है यही समझकर भीमकको छोड़  
 दिया उसके साथ संधि की हितरूप वचनोंसे उसे समझाया और पहिलेके समान हिरण्यवर्माके साथ उसे राज्य दे दिया  
 ॥ २७६-२७८ ॥ इसके बाद दोनोंको विदाकर दिया यद्यपि भीमकको सब तरह समझा दिया था तथापि उस मुखने  
 वेर नहीं छोड़ा तथा हिरण्यवर्माका बैर भी शांत नहीं हुआ । पापी भीमकने राससी विद्या सिद्ध की उससे उसने हिरण्य-  
 वर्माको मारा मेरे पिताने इस तलवारसे भी किसीके साथ युद्ध किये हैं ? इसके उत्तरमें कन्याने भी कहा  
 लिये आवेगा ॥ २७९-२८० ॥ यह आश्चर्य करनेवाली सब घटना सुनकर कुमारने शन्यापर रक्खी हुई तलवार उठा-  
 कर देखी और यह तलवार बड़ी अच्छी है जिसके हाथमें यह तलवार होगी उसे इंद्र भी नहीं जीत सकता यही समझकर  
 उस कन्यासे पूछा कि क्या तारे पिताने इस तलवारसे भी किसीके साथ युद्ध किये हैं ? इसके उत्तरमें कन्याने भी कहा  
 कि नहीं मेरे पिताने स्वप्नमें भी इस तलवारसे अभी युद्ध नहीं किया । तदनंतर भीमकने जा तलवार पागमें ली

यात् । इति मत्वा पितानेन ते किं केनापि शुद्धवान् ॥ २८२ ॥ इत्यप्राक्षीत्स तां सापि न खजेपीलयाषत् । तदा प्रीतिको हस्वगतमस्त्रं विधाय तत् ॥ २८३ ॥ तं हतु निर्भयो भीमं गोपुराभ्यतरस्थित । निगूढतदुगबिभ्रुतोत्रतिर्बुध्नं दधत् ॥ २८४ ॥ तस्मिन् क्षणे समागल्य ममताद्रीस्व मीमक । खविद्या त्रेपयामास दृष्ट्वा दुष्ट जहीहि त ॥ २८५ ॥ सम्यग्दृष्टिरय सप्तविधभीतिविदूरगः । चरभागो महान् शूरो नाह ह्युमिम क्षमा ॥ २८६ ॥ इति भीत्या तदभ्यर्णं सचरतीमतिस्तत् । विलोक्य मीमको विद्या शक्तिहीनां व्यसर्जयत् ॥ २८७ ॥ निःसाराऽभ्रजैत्युक्त्वा साप्यगच्छददृशता । खगमेवासिसु-  
खाय मीमकस्त जिघांसुकः ॥ २८८ ॥ संप्राप्तवान् कुमारोपि तर्जयन्नतिमीषण । तद्वात वचयित्वाहंस्त प्राणेः मोप्यमुच्यत ॥ २८९ ॥ ततो विध्वंस्य  
दुष्टारिमायातममिवीक्ष्य सा । कुमारं कन्यकाभ्येत्य व्यवाप्तव भद्र साहस ॥ २९० ॥ इत्यारोप्यासन खर्णमय राजगृहागणे । अभिविच्य जलापूर्णे कलशे  
कालधौतकैः ॥ २९१ ॥ विन्यस्य मणिभासि मुकुट बाहुमस्तकैः । यथास्थानमशेषाणि विविष्टाभरणाभ्यपि ॥ २९२ ॥ विलासिनीकौदुघ्यमानचामरशो-

निर्भय होकर भीमको मारनेके लिये हाथमें तलवार लेकर उन्नत होकर तथा शरीरको छिपाकर निर्भय रीतिसे नगरके बड़े दरवाजेके बीचमें जा खड़ा हुआ ॥ २८१-२८४ ॥ उसीसमय भीमक आया उसने अपनी विद्या भेजी और कहा कि तू चारों ओर देखना जो कोई मेरा दुष्ट शत्रु मिले उसे मार डालना ॥ २८५ ॥ वह विद्या प्रीतिकरके समीप उसे देखकर “यह सम्यग्दृष्टी है” सातों प्रकारके भयसे दूर है चरम शरीरी है और बहुत ही शूरवीर है मैं इसे मार नहीं सकती यही समझकर और डरकर वह उसके पास इधर उधर फिरने लगी । भीमकने उसे शक्ति हीन देखकर विदा करदी और कह दिया कि तू अब निःस्सार होगई है इसलिये जा । भीमककी यह बात सुनकर वह विद्या भी अदृश्य हो गई । तदनंतर वह कुमार स्वयं तलवार लेकर कुमारको मारनेकेलिये उसके पास पहुंचा । कुमारने भी बड़ी भीषणताके साथ उसकी तर्जना की और उसका घात बचाकर उसको मारदिया तलवारकी चोटसे उसके भी प्राण छूट गये ॥ २८६-२८८ ॥ तदनंतर वह कुमार कन्यके पास गया, कुमार दुष्ट शत्रुको मारकर आया है यह देखकर वह कन्या उर-  
के सामने आई और कहने लगी कि हे भद्र ! आपने बड़ा ही साहस किया है ॥ २८९ ॥ यह कहकर राजघरके चौकमें उसे सोनेके सिंहासनपर बिठाया सोनेके जलसे भरे हुए पूर्ण कलशोंसे उसका अभिषेक किया, सुंदर मस्तक पर मणियोंकी कांतिसि रेदीप्यमान मुकुट पहनाया, यथायोग्य स्थान पर सब अच्छे आभूषण पहनाये वेश्याओंके द्वारा अनेक चपर दुराकर उसकी शोभा बढ़ाई । यह सब देखकर प्रीतिकर कुमारने पूछा कि यह सब क्या है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि मैं इस नगरकी स्वामिनी हूँ फलन्वच पूर्वक मैं अपना सब राज्य आपको देती हूँ और गलेमें

निर्णय । अकरोत्तन्निरीत्याह प्रीतिकरकुमारक ॥ २९३ ॥ किमेतदिति सावोचदस्यस्या स्वामिनी पुरः । दत्त्वा राज्यं सर्वीयं ते परमं सुखं ॥ २९४ ॥  
 रत्नमालां गळे कृत्वा स्वां प्रेम्णा समवीमव । इति तल्लोकमाकर्ण्य कुमारः प्रत्यभाषत ॥ २९५ ॥ विना मित्रोत्तुङ्गानां नैव स्वीक्रियते मया । कोपि प्रतोव  
 संकल्यो विहितोयमिति स्फुटः ॥ २९६ ॥ यद्वैष तत्समायोगकालेऽपि भविष्यति । इति तद्वचनं कन्या प्रतिपद्य धनं महत् ॥ २९७ ॥ वदुस्त्वावतरणायाम-  
 रत्नं ॥ २९९ ॥ पितृप्रस्थानकालेऽस्याः सारामरणसंहति । विस्तृतां स कुमारस्त्वामानेतुं गतवान् पुनः ॥ ३०० ॥ नागदत्तस्तदा रज्जुमाकुञ्च्य इव्यमे-  
 तया । सारं संप्राप्तमेतन्मे भोक्तुमामरणाद्भवेत् ॥ ३०१ ॥ कृतार्थोऽहं कुमारेण यद्वा तद्वानुभूयतां । इति प्रस्थितः सारं तैलवर्धो बणिज्जनैः ॥ ३०२ ॥  
 नागदत्तमिति ज्ञात्वा कन्यका मौनमग्रहीत् । प्रीतिकरादिनाञ्जनैर्न वदाम्यहमिलसा ॥ ३०३ ॥ नागदत्तोपि कन्यया मूर्छति प्रतिपादयन् । तां इव्यरक्षणे  
 रत्नमाला डालकर आपकी प्रेमभांगिनी वनकर रहूंगी । कन्याकी यह बात सुनकर कुमार कहने लगा कि मैं विना माता  
 पिताकी आज्ञाके इस बातको स्वीकार नहीं करूंगा मैंने पहिले ऐसी ही प्रतिज्ञा कर ली है ॥ २९१-२९६ ॥ यदि तू  
 ऐसा ही करना चाहती है तो मातापिताके मिलनेपर तेरा अभीष्ट सिद्ध हो सकेगा । कन्याने प्रीतिकरकी यह बात मान  
 ली और बहुतसा धन वांधकर उस लम्बी रस्सीके द्वारा जहाजपर चढ़नेके लिये कुमारके साथ किनारे पर आई । कुमारने  
 और उस कन्याको और उसको सब धनको जहाजमें लींचकर बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥ २९७-२९८ ॥ रस्सीके हिलानेको देखकर नागदत्त भी बाहिर आया  
 और तब वह कुमार उस कन्याके थूले हुए कितने ही आभरणोंको लेनेके लिये फिर उस नगरमें गया ॥ ३०० ॥  
 उसके चले जानेपर नागदत्तने वह रस्सी लींच ली और “इस कन्याके साथ मुझे बहुतसा अच्छा धन मिल गया है  
 यह मेरे मरनेतक भोग करनेके काममें आवेगा मैं तो कृतार्थ हो चुका अब कुमार चोहे जहां इधर उधर भटकता फिरो”  
 इधर कन्याने नागदत्तका अभिप्राय जानकर मौन धारण कर लिया और प्रतिज्ञा करली कि मैं प्रीतिकरके सिवाय और  
 किसीके साथ बातचीत नहीं करूंगी ॥ ३०३ ॥ नागदत्तने भी “यह कन्या गूंगी है” ऐसा सब लोगोंपर प्रगटकर दिया  
 और उसे उंगलीके इसारेसे बड़े प्रेम्से इव्यकी रसा करनेपर निधुक्त किया ॥ ३०४ ॥ वह नागदत्त अमुकमसे अपने  
 नगरमें पहुंचा । शेठने नागदत्तसे पूछा कि प्रीतिकर भी तुम लोगोंके साथ भूतिलक नगरको — या वह क्यों नहीं

शैलीसीत्या स्वागुलिसङ्ख्या ॥ ३०४ ॥ कर्माख्यानगरं प्राप श्रेष्ठी प्रीतिकरस्तथा । गतो भूतिलक्ष नायाङ्कृत इत्यबदत्य त ॥ ३०५ ॥ नागदत्तसप्तौ नाह  
जानामीयुत्तरं देवौ । भूषणानि समादाय समुद्रतटभागतः ॥ ३०६ ॥ नागदत्तेन पापेन स कुमारोतिसंभितः । अहङ्गा पोतमुद्दिमः पुरं प्रति निवृत्तवान्  
॥ ३०७ ॥ संचितस्तत्र जैनैर्द्रोहमेक विलोक्य त । पुण्यादिभि समम्यर्च्य विधाय विविधदत्ता ॥ ३०८ ॥ खिन त्वद्दृष्टिमात्रेण मत्पापं क्राव्यलीयत । की-  
पेन निदि वा ध्यात समुन्मीलितचक्षुषः ॥ ३०९ ॥ चेतन कर्मभिर्मेस्त सर्वोप्यन्यदचेतन । सर्ववित्कर्मनिर्मुक्तो जने केनोपमीयते ॥ ३१० ॥ सारुणादी-  
नलोकविद्ययातान् सर्वथा साधधारणान् । एको भवान् खिनजैषीबिन्त्र निरवधारणः ॥ ३११ ॥ अवोधतमसाक्रातप्रनायंतं जगत्प्रयं । कुत त्वमेव जागर्षि श-  
श्वदिस्व च पश्यति ॥ ३१२ ॥ वस्तुवोधे विनेयस्य जिनेन्द्र भवदागमः । निर्मलः शर्मदो हेतुरालोकावासचक्षुषः ॥ ३१३ ॥ इतिस्वकृतसतोयः शुद्धः श-  
द्धावबोधेन । सम्यक्संसारसङ्क्राव भावयन् कर्मनिर्मितं ॥ ३१४ ॥ अभिविचनशालायां शुप्तवान् किंविदाकुल । तदा नदमहानदाबागता गुहाकामरा ३१५

आया इसके उत्तरमें नागदत्तने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता । इधर आभूषण लेकर कुमार समुद्रके किनारे आया परन्तु  
पापी नागदत्त पहिलेसे ही धोखा देकर चला गया था । जहाजको न देखकर वह खेदखिन्न हुआ और फिर नगरको  
लौट आया ॥ ३०५-३०७ ॥ वह बड़ी चिन्ता करने लगा और वहींपर एक जिनालय देखकर उसमें गया पुष्पादिकसे  
भगवानकी पूजा की विधि पूर्वक वन्दना की और फिर वह स्तुति करने लगा ॥ ३०८ ॥ कि हे देव ! जिस प्रकार रात्रिमें  
दीपकसे खुले नेत्रवालेका 'अन्यकार' दूर हो जाता है उसी प्रकार आपके दर्शन करनेमात्रसे ही मेरे पाप न जाने कहां  
छिप जाते हैं ॥ ३०९ ॥ आप शुद्धजीव, कर्मोंसे मिला हुआ जीव और जीवोंसे भिन्न अचेतन इन सबको आप जानते हैं  
तथा आप सब कर्मोंसे रहित हैं फिर संसारमें आपकी उपमा किसके साथ दी जासके ॥ ३१० ॥ हे देव यद्यपि आप  
ऐन्द्रियक ज्ञान रहित हैं ( अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं ) तथापि ऐन्द्रियक ज्ञानको धारण करनेवाले जगत प्रसिद्ध सांख्य आदिको  
केवल आपने ही जीता है यह आश्चर्यकी बात है ॥ ३११ ॥ हे देव यह आदि अन्त रहित यह तीनोंलोक अज्ञानरूपी अन्यकारसे व्याप्त  
होकर सोरहा है उसमें केवल आपही जग रहे हैं और आपही इस संसारको देख रहे हैं ॥ ३१२ ॥ हे जिनेन्द्र सम्यग्दर्शनरूपी  
प्रकाशमें रहनेवाले और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले शिष्योंके पदार्थज्ञानमें आपका कहा हुआ आगमही निर्मल और  
कल्याण करनेवाला कारण है ॥ ३१३ ॥ इसप्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले उस कुमारने अपनी  
बनाई हुई स्तुति पढ़ी और फिर कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए संसारके स्वरूपको अच्छी तरह चिंतन करता हुआ कुछ व्याकुल होकर  
अभिविचनशाला में जाकर सो गया । उस समय नन्द और महानन्द नामके दो यक्ष उस जिन मंदिरकी बन्दना करनेकेलिये आए

वादिपुं मंदिर जैन वीक्ष्य तत्कर्णपत्रक । तो तवीय समादाय सधर्मोवा कुमारकः ॥ ३१६ ॥ इति आपयत देवैः द्रव्येण महता सह । सुप्रतिष्ठपुरं श्रुति-

करमेन प्रमोदिन ॥ ३१७ ॥ श्रेण युवयोरेतदस्माकमिति तद्वत । गुरोः सदेशमालोक्य झत्वा प्रारमभ्युत्तकं ॥ ३१८ ॥ वारोणस्या पुरे पूर्व घनतैत्र-

वणिकपतेः । भूव वा जिनदत्तया शातवो रमण सुतां ॥ ३१९ ॥ तत्र शास्त्राणि सर्वाणि विदित्वा प्रयतोर्थतः । चोरशास्त्रवलायां परार्थहरणे रतौ

॥ ३२० ॥ अपूता मधुगुहस्तस्माद्विवारयितुमक्षम । सर्वसंगपरित्यागमकरोदतिदुस्तरं ॥ ३२१ ॥ इतो धान्यपुराभ्युपे क्षितिभूषणममति । भूधरे मुनि-

माहारम्यादुष्टाः शार्दूलकादय ॥ ३२२ ॥ मृगाः काश्चिन्न वाधत इति श्रुत्वा जनोदितात् । कृततदभूषणवसौ तत्र मूरि तपोवन ॥ ३२३ ॥

दृष्ट्वा सागसेनाख्य तत्समीपे जिनोदित । श्रुत्वा धर्म परित्यज्य मधुमासदिभक्षणं ॥ ३२४ ॥ तस्मिन् गुरौ ततः सुप्रतिष्ठाद्वयनगर गते । शार्दूलोपध्वान्मुत्वा

देवभूयं गताविद ॥ ३२५ ॥ सर्वमेतद्वगुरोरेतं ज्ञातदित्यसिमन्यत । गत्वा संग्राह्य सङ्ख्य किमावाभ्या निदेवानं ॥ ३२६ ॥ कर्तव्यमिति सद्यो मुनिना-

उन्होंने प्रीतिकर कुमारके कानमें लगे हुए पत्रको लेकर वांचा उसमें लिखा हुआ था कि कुमार धर्मीत्मा है इसलिये तुम

दोनों प्रसन्न रहनेवाले इस प्रीतिकर कुमारको खूब धनके साथ स्वमतिष्ठ नगरमें पहुंचाना मेरा ही काम समझना । इसम-

कार उन दोनों देवोंने उस पत्रसे अपने गुरुकी आज्ञा समझी और उन्होंने नीचे लिखे अनुसार अपने पहिले भवके समा

चार भी जान लिये ॥ २१४-२१८ ॥ पहिले बनारस नगरमें धनदेव नामका वैश्य रहता था उसकी जिनदत्ता स्त्रीसे

आभ्यास किया परंतु चोर शास्त्रकी अधिकता होनेसे हम दोनों पापी दूसरेका धन चुरानेमें तत्पर होगये ॥ २२० ॥ हमारे

माता पिता वा गुरु लोग भी हमारे चोरीके कामको छुड़ा न सके इसलिये उन्होंने अत्यंत कठिन ऐसा सब तरहके परिश्र-

होंका परित्याग कर दिया अर्थात् दीक्षा धारण कर ली ॥ २२१ ॥ इधर धान्यपुर नगरके समीप शिखिधूर नामके

पर्वतपर रहनेवाले मुनियोंके माहात्म्यसे वहांपर रहनेवाले सिंह आदि दुष्ट जीव भी किसीको वाया नहीं पहुंचाते थे लोगों

के मुखसे हमने भी यह बात सुनी और सुनते ही उस पर्वतपर अपना निवास स्थान बनाया । वहींपर घोर तपश्चरण कर-

नेवाले सागरसेन नामके मुनिराज विराजमान थे उन्हें देखकर हम दोनों उनके समीप गये, उनसे भगवान जिनैन्द्रदेवके

कहे हुए धर्मका स्वरूप सुना और मध्य प्रांस आदिके भक्षणा करनेका त्याग किया ॥ २२२-२२४ ॥ गृहे दिनोंके वाद

वे मुनिराज सुमतिष्ठ नगरमें चले गये उनके चले जानेपर सिंहने हम दोनोंको मार डाला था और परकर हम दोनों देव

हूए हैं ॥ २२५ ॥ अविद्वानसे हम दोनोंने जान लिया कि हमने गुरुके समीप जो व्रत लिये थे उन्हेंके प्रसादसे हम



यो वीर्यसौ । अतः परं दिने कैश्चित्कर्तव्यं मङ्गविष्यति ॥ ३२७ ॥ भवद्भयासेव तज्ज्ञात्वा विधेयमिति सादरं । स एष तस्य संदेश इति पत्र प्रदर्शय त ॥ ३२८ ॥ इत्येव बहुना सार्द्धं विमानमधिरोष्य त । सुप्रतिष्ठुराभ्युग्रे निर्दिधरणिभूषण ॥ ३२९ ॥ सद्यः प्रापयत स्मैता किं न कुर्यादयोदय । तदागमनमाकार्णव्यं भूपतिस्तस्य वीर्यवाः ॥ ३३० ॥ नागराश्च विभूयै न सम्मदात्समुपागताः । तेभ्यः प्रीतिकरं दत्त्वा स्वावासं जग्मतु सुरा ॥ ३३१ ॥ पुरं प्रविश्य सदन्ते स महीशमपूजयत् । सोऽपि संभाव्य तं स्थानमानादिभिरितोषयत् ॥ ३३२ ॥ अथान्येषु कुमारस्य ज्ञायसीं प्रियमित्रिकां । मातरं स्वतनूजस्य प्राप्य परिण्योत्सवे ॥ ३३३ ॥ आत्मस्तुपांमलकर्तुं रत्नाभरणसहति । गृहीत्वा रथमारुह्य महादर्शनकर्मणि ॥ ३३४ ॥ यांतीं दृष्टुं समायाता रथ्याया मू किका स्वयं । वीर्यं स्वभूषासदोहं स्वष्टं मुल्लिखन्त्या ॥ ३३५ ॥ मदीयमेतदित्युक्त्वा जनान् सा ता रथरिचिता । रुक्मा स्थितवती सापि प्राहिया महिलेति

देव हुए हैं यही समझकर हम दोनों गुरुके समीप पहुंचे उनकी पूजा वंदना की और पूछा कि हमारे लिये क्या आज्ञा है कुछ काम बतलाइये । इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि थोड़े दिन बाद मेरा एक काम होगा उसे जानकर तुम आदरके साथ करना सो मुनिराजकी वह आज्ञा यही है यही कहकर वह पत्र खोलकर दिखाया ॥ ३२६-३२८ ॥ तदन्तर उन दोनों देवोंने साथमें बहुतसा धन लेकर उसे विमानमें बिठाया और सुप्रतिष्ठ नगरके समीपवाले धरणिभूषण नामके पर्वतपर शीघ्र ही उसे पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्योदय क्या नहीं करता है । प्रीतिकरका आना सुनकर राजा उसके भाई बन्धु कुटुम्बी लोग और नगर निवासी लोग बड़े हर्षसे अपनी अपनी विभूति लेकर उसके समीप आये । उन दोनों देवोंने भी उन सबको वह कुमार सौंपा और फिर वे अपने स्थानको चले गये ॥ ३२९-३३१ ॥ नगरमें जाकर प्रीतिकरने अच्छे अच्छे रत्न भेट देकर राजाके दर्शन किये । राजाने भी उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया और स्थान तथा मान देकर उसे सन्तुष्ट किया ॥ ३३२ ॥ अथानन्तर किसी दूसरे दिन प्रीतिकर कुमारकी बड़ी मा प्रियमित्रा अपने पुत्रके विवाहोत्सवमें अपनी पतोहूको पहनानेके लिये सब रत्नोंके आभूषण लेकर और रथमें बैठकर सबको दिखलाती हुई चली । उसे देखनेके लिये वह गंगी कन्या स्वयं मार्गमें आई और अपने आभूषण देखकर उसने उंगलीके इशारेसे सब लोगोंको समझा दिया कि ये सब आभूषण मेरे हैं तदन्तर वह कन्या रथमें बैठी हुई । प्रियमित्राको रोककर खड़ी होगई । इसके उत्तरमें प्रियमित्राने भी सबको समझाकर कहा कि यह कन्या पागल है ॥ ३३३-३३४ ॥ तब मंत्र तंत्रोंके जानकारोंने विधि पूर्वक मंत्र तंत्रोंका प्रयोग किया और परीक्षाकर स्पष्ट कह दिया कि न यह पागल है न इसे भूत लगा है ॥ ३३७ ॥ यह बात सुनकर कुमार प्रीतिकरने उस वसुन्धरा कन्याके पास छिपकर एक पत्र भेजा उसमें

तो ॥ ३३६ ॥ सज्जनांक मन्त्रतन्त्राक्षिविभिन्न सुप्रयोजिते । परीक्षेन न भूतोपश्लेष्टेति व्यक्तमवबूध ॥ ३३७ ॥ कुमारोपि तदाकर्णं न विमेलु कुमारिका । राजाभ्यास समभ्येष्टु तन्नाह चास्म्युपरिचर्यत ॥ ३३८ ॥ इत्यस्या ग्राहिणीत्यर्थं गूढ तदीक्ष्य ततया । श्रद्धयाज्ञानिता राक्षः समीपमगमन्मुदा ॥ ३३९ ॥ तदीमरणकृतातपरिच्छेदाय भूपतिः । यथाव्यशान् समाहूय विचाराय न्ययोजयत् ॥ ३४० ॥ वसुंधरा च तत्रैव श्रुत्वा सविहितो तदा । राजा कुमारमप्रापिना ॥ ३४१ ॥ अमिषाय स्वविज्ञात शेषं तृतीयमेव त । देवतां गृहमित्येव सोपि भूपमवोषयत् ॥ ३४२ ॥ गथाविभिः समभ्यर्च्यं सोऽन्यतस्तदा वृष्टा कुमारस्य निजात्सजां ॥ ३४३ ॥ सौ नगदसदुदरैश्च महीनायमवबुधत् ॥ ३४४ ॥ गथाविभिः समभ्यर्च्यं पितृ पुत्रवधः स्वामिश्रोद्धचेति महीपतिः । सर्वस्वहरण कृत्वा निगृहीतु तस्यतः ॥ ३४५ ॥ अतिविदः कुमारेण नैतद्युक्त तवेति सः । सोऽन्यतस्तदा वृष्टा कुमारस्य निजात्सजां ॥ ३४६ ॥ पृथिवीसुंदरी नाम्ना कन्यकां च वसुंधरा । दक्षिणैर्दक्षयुग्रीश्च कल्याणविधिना ददा ॥ ३४७ ॥ सह

लिख भेजा कि तू किसी तरह डरे मत तू यह सब समाचार लेकर राजाके पास जा मैं भी वहां उपस्थित रहूंगा । वसुंधराने पत्र देवकर विधास किया और वह प्रसन्नताके साथ राजाके समीप पहुंची ॥ ३१८-३१९ ॥ तब राजाने उसके उसके आभूषणोंके समाचार जाननेके लिये धर्माधिकारियोंको बुलाया और विचार करनेके लिये उन्हें नियुक्त किया ॥ ३४० ॥ राजाने वसुंधरा कन्याको समीप ही आडमें बिठलाकर कुमार प्रीतिकरसे पूछा कि क्या तुम इसका कुछ हाल जानते हो । इसके उत्तरमें कुमारने अपना जाना हुआ हाल तो कह दिया और फिर उस राजासे समझाकर कह दिया कि वाकीको हाल मैं नहीं जानता यह देवता जानती है ॥ ३४१-३४२ ॥ राजाने गन्यादिकसे कपड़ेकी आडमें बैठी हुई वसुंधराकी पूजा की और फिर कहा कि हे देवते जो तूने देखा है वह सब ज्योंकात्यों कह दे ॥ ३४३ ॥ वसुंधराने इसके उत्तरमें नागदत्तके सब दुराचार कह सुनाये । राजाने सुनकर उनपर विचार किया और फिर नागदत्तपर क्रोध किया कि इस पापीने पुत्रवध किया है और स्वामिश्रोद्ध किया है । इसीलिये राजाने उसका सब धन लुटवा लिया और वह उसे दंड देनेको तैयार हुआ ॥ ३४४-३४५ ॥ परन्तु कुमारने राजाको रोक दिया और समझा दिया कि आपको ऐसा करना योग्य नहीं है । राजा कुमारकी सज्जनता देख बहुत संतुष्ट हुआ और उसने पृथिवीसुंदरी नामकी अपनी कन्या वसुंधरा और वसीस अन्य वैश्योंकी कन्यायें उत्सवके साथ विधिपूर्वक कुमारको व्याहर् दी ॥ ३४६-३४७ ॥ इसके सिवाय उस श्रीमान् कुमारको पहिलेका स्थान और सब धन दिया तथा अपनी आथा राज्य दिया सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने पहिले पुराय किया है उनके लिये संपदाएं स्वयं आ जाती हैं ॥ ३४८ ॥ इस प्रकार प्रसन्न हुए उस प्रीतिकर कुमारने अपनी बहती हुई इच्छाओंके अनुसार बहुत दिनतक

पूर्ववत्त्वाममदराज्य च भावते । पुना विहितकुर्वानां स्वयमाजांति संपदः ॥ ३४८ ॥ श्रौत प्रीतिकरस्तत्र कामसोपाङ्गं संमीलितान् । त्वेच्छया बर्धमाने  
 पृथ्विरायाऽनुभव्य सः ॥ ३४९ ॥ मुनौ सागरसेनात्म्ये संभ्रमस्यान्येभ्युराङ्गि । लोकातरं तदागच्छ चारणौ बभ्रुपस्थिता ॥ ३५० ॥ ऋजुब विपुलाह्वय  
 मंत्यतौ मुनिभूषणा । रम्ये मनोहराद्याने गत्वा स्तुत्वा वणिग्वरः ३५१ धर्म समन्वेयुक्तैतावित्याहुर्जुमिस्त्वया । धर्मोहि द्विविधो ज्ञेय सदृशगृहभेदतः ३५२  
 एकदावधिवस्तत्र धर्मोऽगृहनिर्दिष्टिर्ना । भद्रानव्रतमेकादिशेषो ब्रह्मविधः स्मृतः ॥ ३५३ ॥ क्षांत्यादिः कर्मविध्वंसी तच्छ्रुत्वा तद्वत्तरः । स्वपूर्वमभवसंभव पप्र-  
 द्धैवं च सोब्रवीत् ॥ ३५४ ॥ शृणु सागरसेनाह्वयं मुनिमातरयोनिन । पुरेस्मिमेव भृपालप्रमुखा बधितु गताः ॥ ३५५ ॥ नानाविचार्वनइव्यैः संपृश्य पु-  
 रमागता । सा ब्रह्म गदिनिर्भातं भ्रुवैकस्मिह जजुक् ॥ ३५६ ॥ कश्चिन्नोकातरं यातः पुरेवैव जनो बहि । क्षिप्त्वायातु ततोमक्षविध्यामीत्यागत मुनिः ॥ ३५७ ॥  
 भद्रयोय व्रतमादाय मुक्तिमाशु गमिष्यति । इति गत्वा तमासन्नमसावेवमभाषत ॥ ३५८ ॥ प्राग्ब्रह्मकृतपापस्य पठेनाभूच्छृगालक । इदानीं च कुधी सा-

अच्छे लगनेवाले काम भोगोंका अनुभव किया ॥ ३४९ ॥ किसी एक दिन मुनिराज सागरसेनने आयुके अंतमें सैन्यास  
 धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया उसीदिन वहां दो चारण मुनि आ उपस्थित हुए ॥ ३५० ॥ मुनियोंके आभूषण ऐसे उन  
 दोनों मुनियोंके ऋजुमति और विपुलमति नाम थे और वे दोनों ही सुंदर मनोहर नामके उद्यानमें आ विराजमान हुए,  
 प्रीतिकर श्रेष्ठ भी उनके दर्शन करनेके लिये गया और स्तुतिकर उनसे धर्मका स्वरूप पूछा । इसके उत्तरमें ऋजुमति  
 नामके मुनिराज कहने लगे कि हे भद्र ! गृहस्थ और अनगरके भेदसे धर्म दो प्रकारका है ॥ ३५१-३५२ ॥ उनमें  
 गृहस्थोंका धर्म श्रद्धान व्रत आदिके भेदसे ग्यारह प्रकारका है और कर्मोंको नाश करनेवाला मुनियोंका धर्म उत्तम समा  
 आदिके भेदसे दश प्रकारका है । इसप्रकार धर्मका स्वरूप सुनकर प्रीतिकरने अपने पहिले भव पूछे तब  
 वे मुनिराज इसप्रकार कहने लगे ॥ ३५३-३५४ ॥ हे भव्य सुन किसी एक समय इसी नगरके बाहर सागरसेन मुनि-  
 राजने आपतप योग धारण किया था इसीलिये उनकी बंदना करनेके लिये राजा आदि बहुतसे लोग आये थे ॥ ३५५ ॥  
 अनेक तरहकी पूजाकी सामग्रीसे उनकी पूजाकर शंख तुरई आदि बाजोंके साथ नगरमें आये थे उन बाजोंकी आवाज  
 सुनकर एक गीदहने सोचा कि आज कोई नगरमें मर गया है उसे ही लोग नगरके बाहर रखकर आये हैं इसलिये उस-  
 के समीप जाकर उसे खाना चाहिये । यही सोच विचारकर वह मुनिराजके समीप पहुंचा । मुनिराजने उसे देखकर वि-  
 चार किया कि यह भव्य है और व्रत लेकर शीघ्र ही मुक्त होगा यही समझकर वे उसके समीपमें ही इसप्रकार कहने  
 लगे कि पहिले जन्मके किये हुए पाप कर्मके उदयसे तू गीदह हुआ है परंतु हे मूर्ख ! अब साधुओंका समागम मिलने-

पुसमायोगेऽपि भव्यसे ॥ ३५९ ॥ दुष्कर्म विरयैतस्माद् दुर्गतदुर्गतिबन्धात् । शुद्धाण प्रतमभ्येहि परिणाम सुभावं ॥ ३६० ॥ इति तद्वचनदेव मुनिर्मन्म-  
नश्चि रिपतं । आतामानिस्ति सजातसमद स शृगालक ॥ ३५९१ ॥ मुनिस्तद्विनिताभिः पुनरेव समप्रवीत् । त्वमन्यस्य न शक्नोषि व्रतस्याभिषालस्य  
॥ ३६२ ॥ शुद्धानेदं व्रतं श्रेष्ठ रात्रिभोजनवर्जन । परलोकास्य पायेयमिति धर्म्यं मुनेर्वच ॥ ३६३ ॥ शुत्वा भक्त्या परीत्येन प्रणम्य कृतसम्मदः । गृ-  
हीत्वा तद्व्रतं सयमासादीनि च सोलजत् ॥ ३६४ ॥ तदाप्रभृति शाल्यादि विशुद्धाशनमाहरन् अतिं कुर्वन् कनित्कालमजीगमत् ॥ ३६५ ॥ शु-  
ष्काहारमथात्यशुभं यत्वा तृष्णादिबाधित । अर्कास्तमनवेलायां पयःपानाभिलाषया ॥ ३६६ ॥ कूप सोपानमार्गेण प्रविद्यात् किमप्यसौ । तत्रालोकमनालोक्य  
क्षिणेकोस्तमुपागत ॥ ३६७ ॥ इति निर्गल्य दृष्ट्वा भां पुनः पातुं प्रविष्टवान् । गोमायुरेव हि त्रिवो कुर्वेत्तत्र गमागमां ॥ ३६८ ॥ दिनेषामस्तमानीय सोढ-  
तृष्णापरीषदः । विशुद्धपरिणामेन मृतिमित्वा दृढव्रत ॥ ३६९ ॥ एव कुर्वेदस्तस्य भूला श्रीतिरकर सुतः । व्रतेन धनमित्रायामिदं शैर्धर्म्यमाप्तवान् ॥ ३७० ॥

पर भी तू दुष्कर्म करना चाहता है अब तू अत्यंत घोर पाप करनेवाले इन दुष्कर्मों का त्यागकर व्रतोंको स्वीकार कर और  
शुद्ध परिणामोंको धारणकर ॥ ३६६-३६० ॥ मुनिराजके ये बचन सुनकर वह गीदड मनमें सोचने लगा कि इन्होंने  
मेरे मनकी बात जानली यह समझकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ । मुनिराजने उसकी चेष्टासे उसका अभिप्राय जानलिया  
और वे फिर उससे इसप्रकार कहने लगे कि तू मांस भक्षणका लोलुपी है इसलिये तूभसे और व्रत तो बन नहीं सकेगा  
इसलिये रात्रि भोजन त्याग करनेका व्रत ले यह व्रत सबमें श्रेष्ठ है, और परलोकके लिये पायेय ( रास्तेमें काम आने  
योग्य स्थाने पीने आदिकी चीजें ) हैं । इसप्रकार मुनिराजके कहे हुए धर्मके बचन सुनकर उस गीदडने बड़ी भक्तिसे  
उनकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया और बहुत ही आनंद मनाया । उसने रात्रि भक्षण त्यागका भी व्रत लिया और  
मध्य मांसादिकका भी त्याग किया ॥ ३६१-३६४ ॥ उससमयसे लेकर वह चावल आदि शुद्ध भोजन करने लगा इस-  
तरह कठिन तपश्चरणा करते हुए उसके कितने ही दिन व्यतीत हुए ॥ ३६५ ॥ किसी एक दिन उसने सूका भोजन  
किया और प्याससे दुखी होकर सूर्यके अस्त होनेके समय पानी पीनेकी इच्छासे रास्तेसे किसी कूपमें उतरा  
वहांपर प्रकाश न देखकर सूर्यको ढूँढा हुआ समझकर बाहर निकला और बाहर सूर्यका प्रकाश देखकर पानी पीनेके  
लिये वह गीदड फिर कूपमें भीतर गया । इसप्रकार उसने दो तीनवार किया, इतनेमें सूर्य अस्त होगया उस  
गीदडने व्रतोंमें दृढ़ रहकर प्यासकी परीषद सहन करते हुए शुद्ध परिणामोंसे शरीर छोड़ा ॥ ३६५-३६९ ॥  
वहांसे आकर कुर्वेदशकी स्त्री धनमित्राके यह प्रीतिकर नामका कुमार हुआ है और उसने ऐसा एवम्य प्राप्त किया है ॥ ३७० ॥

इति तद्वचनाज्जातसंवेगस्ते यतीश्वरं । शसन् प्रतस्य माहात्म्यमसिंघाययौ गृह ॥ ३७१ ॥ निर्व्रतः ससृता वीर्यमश्रुन् दुःखान्यनारत । अपारं खेदमा-  
याति दुर्भिक्षे दुर्विधा यथा ॥ ३७२ ॥ व्रतात्प्रत्ययमायाति निर्व्रत रुक्यते जने । व्रती सफलशुद्धो वा निर्व्रतो बध्यवृक्षवत् ॥ ३७३ ॥ अनीष्ट फलमा-  
प्नोति व्रतवान् परजन्मति । न व्रतादपरो बहुर्नव्रतादपरो रिपुः ॥ ३७४ ॥ सर्वे वीर्यव्रतिनो ग्राह्या निर्व्रतस्य न केनचित् । उग्रान्निर्देवतासिन्धु व्रतवाद्यासिभू-  
यते ॥ ३७५ ॥ जरतोपि नमस्येव व्रतवत नवयौवन । बयोद्युद्धो व्रत क्षीनस्तृणवद्गृधने जनैः ॥ ३७६ ॥ प्रवृत्त्या चीयते पाप निवृत्त्या तस्य संक्षय । व्रतं  
निवृत्तिमिलाहुस्तद्गृह्णात्युत्तमो व्रते ॥ ३७७ ॥ व्रतेन जायते संपन्नाव्रत संभेदः सवत् । तस्मात्संपदमाकांक्षन्निःकाक्षः सव्रतो भवेत् ॥ ३७८ ॥ स्वर्गापव-  
गं योर्वाज जतो, स्वल्पमपि व्रत । तत्र प्रीतिकरो व न्यो व्यक्त दृष्टातकाक्षिणां ॥ ३७९ ॥ पूर्वोपायप्रत्ययेष्टं फलमन्नानुभूयते । क्वचित्कदाचित्किंचित्किं

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने मुनिराजको नमस्कार किया और फिर व्रतोंके  
माहात्म्यकी प्रशंसा करता हुआ वह अपने घर आया ॥ ३७१ ॥ देखो जिस प्रकार दुष्काल यज्ञनेपर निर्धन अनेक प्रकारके  
दुःख पाता है उसी प्रकार व्रतरहित जीव भी इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ तथा सदा अनेक दुःखोंको भोगता  
हुआ अपार खेदको प्राप्त होता है ॥ ३७२ ॥ व्रत धारण करनेसे यह जीव सब लोगोंका विश्वासपात्र होता है और व्रत  
रहित होनेसे सदा लोगोंकी दृष्टि में सदा शंकित बना रहता है । व्रती फल सहित वृक्षके समान है और अव्रती फलरहित  
बाँक वृक्षके समान है ॥ ३७३ ॥ व्रती जीव परजन्ममें इच्छानुसार फल पाता है इस संसारमें व्रतके समान कोई वन्धु  
नहीं है और अव्रतके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ ३७४ ॥ व्रती पुरुषके वचन सब कोई ग्रहण करता है और अव्रतीके  
वचन कोई नहीं मानता बड़े बड़े देव लोग भी व्रती जीवका तिरस्कार नहीं कर सकते ॥ ३७५ ॥ व्रती पुरुष नवयौवन  
हो तो भी वृद्ध पुरुष भी आकर उसे नमस्कार करते हैं व्रतोंसे ही यह जीव वृद्ध गिना जाता है । व्रतोंसे रहित पुरुषको  
लोग तृणके समान भी नहीं गिनते हैं ॥ ३७६ ॥ इस संसारमें प्रवृत्तिसे पापोंका संचय होता है और निवृत्तिसे त्यागसे  
पापोंका क्षय होता है तथा निवृत्तिको ही व्रत कहते हैं इसलिये उत्तम पुरुष व्रतोंको ही ग्रहण करते हैं ॥ ३७७ ॥ व्रत  
धारण करनेसे सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है और अव्रतीपनासे कभी सम्पदा नहीं आती इसलिये जो सम्पदा चाहता है  
उसे आकांक्षा रहित व्रत धारण करना चाहिये ॥ ३७८ ॥ इस जीवके लिये थोडासा व्रत भी स्वर्ग और मोक्षका कारण  
है इसके लिये जो दृष्टान्त देखना चाहते हैं उन्हें प्रीतिकरका स्पष्ट दृष्टान्त देख लेना चाहिये ॥ ३७९ ॥ जिन्होंने पहिले  
अच्छी तरह व्रतोंका पालन किया है वे इस लोकमें इच्छानुसार फलोंका अनुभन करते हैं सो ठीक है क्योंकि बिना

जायते कारणादिना ॥ ३८० ॥ कारणादिच्छता कार्यं कार्ययोः सुसदुःस्योः । धर्मपाये विपर्यस्ते तदा नान्यतरीक्षतां ॥ ३८१ ॥ धर्मपाये निमुच्यन्  
 वे द्वितयं कारणं बहव । को विधीर्व्ययनी नोचेत्त्रिपुणो नास्तिकोऽप्य वा ॥ ३८२ ॥ धीमातुरीषावे पत्य अन्यतोस्य शिताद्विदे । भावितस्ते प्रपदतः स्तुनं  
 धीमताः कथ ॥ ३८३ ॥ इति यत्वा जिनगोक्तं मतमादाय शुद्धीः । स्वांगपर्वसिन्ध्याय यदोताक्षिणोऽयमः ॥ ३८४ ॥ अयं प्रियंस्त्रास्याय कामिः  
 वेकं लसपद । वसुंधराजुञ्जै श्रीतिष्ठो दत्वा विरक्तीः ॥ ३८५ ॥ एतत् राजगं मर्दं मुनिर्भूषणार्थवैः । भगवत्पार्थमाय संयमं प्राप्तवानय ३८६  
 निययव्यवहारात्मसारतिर्गणसायन । शिष्यमोक्षस्यमार्गमावत तद्वलोदयात् ॥ ३८७ ॥ निहृत्वा यानि कर्मणि प्राप्यार्ततत्तुष्टयं । अपातीति न विवश्य  
 परमात्मनं प्रयासति ॥ ३८८ ॥ इति श्रीनहणाश्विनिदेशानामधोऽध्यायः । सतिमानशित्तयान्मन्यानः सारुतार्थता ॥ ३८९ ॥ अयान्दश मसराजः श्रे-  
 कारणार्थं क्या कमी किसी जगह कुछ होता है ? अर्थात् सुवादिक तत्र किसी कारणसे ही प्राप्त होता है ॥ ३८० ॥  
 जो कारणसे कार्यकी उत्पत्ति मानते हैं उन्हें सुखका कारण धर्म और दुःखका कारण पाप मानना चाहिये ॥ ३८१ ॥ जो धर्म और पापको छोड़कर सुख  
 विपरीत मानते हैं उन्हें दूसरी जगह यह बात स्पष्ट देख लेनी चाहिये ॥ ३८२ ॥ जो धर्म और पापको छोड़कर सुख  
 दुःखका कारण और कुछ चलाते हैं वे या तो मूर्ख हैं या व्यसनी हैं या घृणारति हैं अथवा नास्तिक हैं ॥ ३८३ ॥  
 जो बुद्धिमान् इसी जन्मके हित अहितको देखते हैं वे किस तरह सबसे उत्तम बुद्धिमान नहीं हो सकते ? अर्थात् अवश्य होते हैं ॥ ३८४ ॥  
 जन्मके हित तथा अहितको देखते हैं वे किस तरह सबसे उत्तम बुद्धिमान नहीं हो सकते ? अर्थात् अवश्य होते हैं ॥ ३८५ ॥  
 यही समझकर जिनकी शुद्ध बुद्धि है और जो उद्यमी हैं वे श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए व्रतोंको धारणकर स्वर्ग और मोक्षके  
 लिये प्रयत्न करते हैं ॥ ३८६ ॥ अयान्तर विरक्त बुद्धिको धारण करनेवाले कुमार प्रति करने अपनी स्त्री वसुन्धराके  
 पुत्र प्रियंकरको अभिषेक पूर्वक सब सम्पदाएं समर्पण कीं और स्वयं अनेक सेवक भाई वसुन्धराके साथ राजगृह  
 नगरमें आकर भगवान् वीरनाथके समीप संयम धारण किया है ॥ ३८७-३८८ ॥ मोक्षका साधन नियम और  
 व्यवहाररूप जो सम्यग्दर्शनज्ञान वाविररूप मोक्षमार्गकी भावना है वह इन्होंने चित्तवन की है इसलिये उसके बलसे अब वे  
 मुनिराज यातियां कर्मोंको नष्टकर अनंत चतुष्टय प्राप्तकर और फिर अथातियां कर्मोंका नाश कर परमात्म पदको  
 प्राप्त होंगे ॥ ३८९-३९० ॥ अयान्तर किसी दूसरे दिन क्षायिकसम्यग्दर्शनको  
 और अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वह अपने घर आया ॥ ३९१ ॥ अयान्तर किसी दूसरे दिन क्षायिकसम्यग्दर्शनको  
 धारण करनेवाले राजा श्रेष्ठिकने हाथ जोड़कर गणेशदेवको नमस्कार किया और उनसे वाकी बची हुई अवसर्पिणी

शिकः क्षायिकी ह्यः । दम्बकला गणाधीश कुलमली कुतहलकः ॥ ३९० ॥ शेषावसापिणीकालस्थिति निरवशेषतः । आगाम्युत्सर्पिणीकालस्थितिमप्यनुशु-  
बान् ॥ ३९१ ॥ गम्भीरया व्यकुम्भानिति स क्कमात् ॥ ३९२ ॥ चतुर्थकालपर्वते स्थिते संवत्सरत्रये ।  
साष्टमासे सप्तमे स्यात्सिद्ध सिद्धार्थनदनः ॥ ३९३ ॥ दुष्कृमाया स्थितिर्वैद्यः सहस्राण्येकविंशति । शतवर्षायुष्मत्सन्मिन्कुष्टेन मता नरा ॥ ३९४ ॥ स-  
प्त रत्नप्रमाणं ग्राह्यं च्छाया विरूपका । त्रिकालाद्वारनिरताः सुरतासक्तमानसा ॥ ३९५ ॥ परेपि दोषा प्रायेण तेषां स्युः कालदोषतः । यतोस्या पापक-  
र्मणो अनिष्टं ते सहस्रवत् ॥ ३९६ ॥ यथोक्तभूजुजभाज्जाते वर्णदिसंकरे । दुःषमायां सहस्राब्दव्यतीता धर्महानित ॥ ३९७ ॥ पुरे पाटलिपुत्राह्वये  
विद्युपालमहीपतेः । पापी तनूजः पृथिवीसुन्दर्याः दुर्जेनादिमः ॥ ३९८ ॥ चतुर्मुखः कल्किराजो वेजितभूतल । उत्पत्स्यते मयासवत्सरयोगसमागमे

कालकी पूर्ण स्थिति तथा आगामी होनेवाली उत्सर्पिणी कालकी स्थिति पूछी ॥ ३८६-३९० ॥ इसके उत्तरमें अपने  
दातोंकी किरणोंके फैलावसे सब सभाको प्रसन्न करते हुए गणधर देव गंभीर वाणीके द्वारा अनुक्रमसे तथा व्यक्तीर्यसे  
नीचे लिखे अनुसार कहने लगे ॥ ३९२ ॥ जब चतुर्थकालकी स्थितिमें तीन वर्ष साडे आठ महीने बाम्नी रहेंगे तब भग-  
वान् वीर नाथ मुक्त होंगे ॥ ३९३ ॥ पांचवें दुष्कृमा कालकी स्थिति इकईस हजार वर्ष होगी । उसमें अधिकतर मनुष्यों-  
की आयु सौ वर्षकी होगी ॥ ३९४ ॥ इसी तरह उनके शरीरकी उंचाई सात अरत्ति होगी, उससमयके लोगोंकी कान्ति  
रूखी होगी उनका रूप अच्छा नहीं होगा वे तीनों समय भोजनमें लीन रहेंगे और उनके मन कामसेवनमें आसक्त रहेंगे  
॥ ३९५ ॥ काल दोषके अनुसार उनमें प्रायः और भी दोष होंगे क्योंकि उस समय प्राय हजारों पापी लोगों ही आकर  
उत्पन्न होंगे ॥ ४९६ शास्त्रोंमें कहे हुए लक्षणवाले राजाओंका अभाव होगा इसलिये राजा लोग वर्णसंकर होंगे । दुःष-  
माकालके एक हजार वर्ष व्यतीत होजानेपर धर्मकी हानि होनेसे पाटलीपुत्र नगरमें राजा शिशुपालकी गनी पृथिवी सु-  
दरीके चतुर्मुख नामका एक पापी पुत्र होगा जो कि सबसे अधिक दुष्ट होगा पृथ्वीको कंपायमान करेगा और कल्किराज  
नामसे प्रसिद्ध होगा । यह कल्की मया नामके संवत्सरमें होगा ॥ ४९७-४९९ ॥ उस आक्रमण कालवालेकी आयु वह-  
त्तरि वर्षकी होगी और चालीस वर्ष तक वह राज्य करेगा ॥ ४०० ॥ जो छयानवे पाखंड गिने जाते हैं उनकी आज्ञा-  
को जो मानेगा उसे ही वह अपने यहां सेवक रखेगा इसप्रकार वह सब पृथ्वीका उपभोग करेगा ॥ ४०१ ॥ तदनंतर  
किसी एक दिन जिसका हृदय मिथ्यात्व कर्मके उदयसे भर रहा है ऐसा वह पापी अपने मंत्रियोंसे पूछेगा कि कहा  
पाखण्डियोंमें अब भी क्या कोई हमारी आज्ञाके परानुसृत है । इसके उत्तरमें मंत्री कहेंगे कि हे देव निर्ग्रन्थश्रुति अब भी



॥ ३३९ ॥ समाना ससत्तित्तस्य परमायुः प्रकीर्तित । चत्वारिंशत्समारज्यारियतिथ्याक्रमकारिण ॥ ४०० ॥ यण्वत्युपपद्यिगत्वाद्वाविधायिन । निजमूलत्वमायाय महीं कृत्वा स भोक्ष्यति ॥ ४०१ ॥ अय न्येधु स्वमिथ्यालगकाविष्कृतचेतसा । पापटिपु किमस्माक सत्यमज्ञापराट्मुखा ॥ ४०२ ॥ कथ्यतामिति पापेन प्रष्टव्यास्तेन मयिण । निप्रथाः सति देवेति ते वदिष्यति सोमि नान् ॥ ४०३ ॥ आचारः क्रीदशस्तेयमिति पृच्छति भूगतिः । निज-पणिपुटामत्रा धनहीना गतपृहा ॥ ४०४ ॥ अहिंसाव्रतार्थार्थं लक्षकेला दिगवराः । साधन तपसो मत्वा देहस्थित्यर्थमाहति ॥ ४०५ ॥ एकद्वयुगोपि-तत्राते शिक्षाकालैरदयोनात् । निर्याचना स्वशाओपा गृहीतुमभिलाषिण ॥ ४०६ ॥ आत्मनो घातके वायके च ते समदर्शिनः । अल्पिपासास्तिवाधाया सह इति वक्ष्यति दृष्ट त्वैर्विशिष्टास्तेऽद्य मयिण ॥ ४०७ ॥ ध्रुत्वा तत्सहिषु नाह शक्नोम्यक्रमवर्तन । तेषां पाणिपुटे प्राच्यः पिब शुद्धो विधीयता ॥ ४०८ ॥

आपकी आज्ञासे परानुग्रह हैं । यह सुनकर वह राजा फिर मंत्रियोंसे पूछेगा कि उनका आचरण कैसा है ? इसके उत्तरमें मंत्री लोग कहेंगे कि वे अपने हाथमें ही भोजन करते हैं, धनहीन होते हैं, इच्छारहित होते हैं, अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिये सब वस्त्रोंका त्यागकर दिगम्बर रहते हैं, तपश्चरणका साधन मानकर केवल शरीरकी स्थितिकेलिये एक दो उपवासके बाद भिक्षाके समयपर केवल शरीर दिखलाकर बिना याचनाके अपने शास्त्रोंमें कहीं हुई विधिकेलिये एक दो उपवासके इच्छा करते हैं, वे लोग अपना घात करनेवाले तथा रक्षा करनेवालोंको एक दृष्टिसे देखते हैं, भूख प्यास आदिकी बाधाओंको सहन करते हैं, कारण मिलनेपर भी दूसरे पाखण्डियोंके समान दूसरेके द्वारा बिना दी हुई वस्तुकी कभी अभिलाषा नहीं करते, सर्पके समान उनके कहीं रहनेका स्थान नहीं, ज्ञान ध्यानमें सदा तल्लीन रहते हैं और जहां मनुष्योंका संचार तक नहीं ऐसे ऐसे निर्जन स्थानोंमें केवल हिरणादि पशुओंके साथ रहते हैं ऐसे अक्रमसे चलनेवालोंको सहन नहीं कर सकता इसलिये उनसे उनके हाथ पर रखवा हुआ पहिला आस करके रूपमें वमूल करो ॥ ४१० ॥ इस प्रकार राजाकी आज्ञानुसार उस कामपर नियुक्त हुए पुरुष उनसे पहिला आस मांगने लगे इसलिये वे मुनिराज भी पहिला आस खाये बिना अर्थात् निराहार ही रहेंगे ॥ ४११ ॥ यह देखकर वे निरुक्त हुए पुरुष राजाको तैयार नहीं है ॥ ४१२ ॥ यह सुनकर उस पापीके नेत्र क्रोधसे लाल होजायेंगे और क्रोधसे जिसका आज्ञा माननेको तैयार नहीं है ॥ ४१३ ॥ यह राजा उस आसको लेनेके लिये स्वयं उद्यमी होगा ॥ ४१३ ॥ उससमय शुद्ध, सम्यग्दृष्टी ओठ कंप रहा है ऐसा वह राजा उस आसको लेनेके लिये स्वयं उद्यमी होगा ॥ ४१३ ॥

इति राक्षोपदेसेन याचिष्यते नियोगिनः । अत्र पिबमभुञ्जानाः स्नास्यति मुनयोपि ते ॥ ४११ ॥ तपू दष्टा दर्पिणो नमा नाभा राक्षः प्रतीप्यवः । किं जात-  
मिति ते गत्वा ज्ञापयिष्यति तन्वृषं ॥ ४१२ ॥ सोपि पापः स्वय कोधादहर्णभूतवीक्षणः । उभयी पिबमाहर्तुं प्रस्तुररसनच्छदः ॥ ४१३ ॥ सोऽतु तदक्षमः  
कश्चिदसुरः शुद्धदहत्तदा । इतिष्यति तमन्याय शकः सन् सहते नहि ॥ ४१४ ॥ सोपि रत्नप्रभा गत्वा सागरोपमजीवितः । निरं चतुर्मुखो दुःखं लोभादनु-  
भविष्यति ॥ ४१५ ॥ धर्मनिर्दूलविध्वंसं सहते न प्रभावका । नास्ति सावशलेक्षेन विना धर्मप्रभावना ॥ ४१५ ॥ धर्मो माता पिता धर्मो धर्मस्थातासिध-  
रक्षकः । धर्ता मकथृता धर्मो निर्मले निश्चले पदे ॥ ४१७ ॥ धर्मध्वसे सता ध्वस्तस्तस्यादहर्दुःखोऽयमान् । निवारयति ये सतो रक्षित तै सता जगत् ॥ ४१८ ॥  
निर्निर्तरश्च प्रोक्तैस्तपोभिर्जनैर्जकैः । धर्मोपदेसनैरन्यवादिदप्यतिशः तर्ज ॥ ४१९ ॥ नृपचेतोर्द्वैः श्रव्यैः काव्यैः शब्दाभ्युद्वैः । सद्भिः दैव्येण वा कार्ये  
शासनस्य प्रकाशनं ॥ ४२० ॥ चिन्तामणिसमा केचित्त्राथितार्थप्रदायिनः । दुर्लभा धीमता पूज्या धन्या धर्मप्रकाशका ॥ ४२१ ॥ रुचिः प्रवर्तते यस्य जे-

कोई असुर ( व्यंतर ) उस अन्यायको सह नहीं सकेगा इसलिये वह उस अन्यायी राजाको मार देगा । सो ठीक ही है  
व्योंकि सस्य पुरुष अन्यायको कभी सहन नहीं करते हैं ॥ ४१४ ॥ वह चतुर्मुख मरकर पहिले नरकमें जायगा और  
एक सागरकी आयु पाकर लोभसे बहुत दिनतक दुःखोंका अनुभव करेगा ॥ ४१५ ॥ प्रभावशाली पुरुष धर्मका निर्मूल  
नाश कभी नहीं सह सकते और थोडासा सावधानकर्म ( पापरूपी क्रिया ) किये विना धर्मकी प्रभावना हो नहीं सकती  
॥ ४१६ ॥ इस संसारमें धर्म ही माता है, धर्म ही पिता है, धर्म ही रक्षक है धर्म ही बढ़ानेवाला है, और धर्म ही जीवोंका  
निर्मल और निश्चल मोक्षपदमें धारण करानेवाला है ॥ ४१७ ॥ धर्मका नाश होनेसे सज्जनोंका नाश होता है इसलिये  
जो सज्जन पुरुष हैं वे नीच धर्मदोषियोंका निवारण करते ही हैं और ऐसे ही पुरुषोंसे सज्जन संसारकी ( सज्जनोंके स-  
मूहकी ) रक्षा होती है ॥ ४१८ ॥ शास्त्रोंमें जैनशासनकी प्रभावनाके आठ अंग बतलाये हैं तपश्चरण करना, लोगोंको  
प्रसन्न करना, धर्मोपदेश देना, अन्य वादियोंके अभिमानको चूर करना, राजाके मनको वश करना, शब्द तथा अर्थसे सुं-  
दर ऐसे सुन्दरने योग्य काव्य बनाना, और शूरीरता दिखाना इन सब कारणोंसे सज्जन लोगोंको जैन शासनकी प्रभावना-  
करनी चाहिये ॥ ४१९-४२० ॥ चिन्तामणिस्तन्के समान भागनेवालोंकी इच्छानुसार धन देकर जो कोई धर्मकी  
प्रभावना करते हैं ऐसे धन्य और सज्जनोंके द्वारा पूज्य पुरुष इससंसारमें बहुत ही दुर्लभ हैं ॥ ४२१ ॥ सुत्रोंमें लिखा है  
कि जैनशासनकी प्रभावना करनेमें जिसके रुचि है मोक्ष उसके हाथमें ही रक्खी है ॥ ४२२ ॥ जो जैनशासनका प्रकाश  
करता है संसारमें वही वैयाकरण है वही नैयायिक है, वही सिद्धांती है और वही श्रेष्ठ तपस्वी है । यदि वह जैनशासनकी

नशासनभासने । हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते ॥ ४२२ ॥ स शाब्दः स हि तर्कः स सैद्धांतः स सत्तयाः । यः शासनसमुदासी न चोक्तिं तैर-  
नर्थकैः ॥ ४२३ ॥ भासते च जगद्येन भासते जिनशासन । तस्य पादबुजद्वयं धियता मूढि धार्मिकाः ॥ ४२४ ॥ उदन्वानिव रत्नस्य मलयश्चंदनस्य वा ।  
प्रमदप्रसवाकीर्णं मनोरो महानटः । नटतालैर्न सद्धर्मभासनाग्निनयोपमः ॥ ४२५ ॥ तमूज कल्किराजस्य बुद्धिमानजितजय । पत्न्या बालनया साद्वैत ॥  
४२६ ॥ डिपापिभिः । किंचित्काल जिन्दोक्तयैः वतिष्यतेतरा ॥ ४२७ ॥ एव प्रतिसद्धवाब्द तत्र विंशतिकल्किषु । गतेषु तेषु पापिष्ठ पक्षिणो जलमंथन  
॥ ४२८ ॥ राक्ष स भविता नाम्ना तदा मुनिषु पक्षिम । चन्द्राचार्यस्य शिष्य स्यान्मुनिर्वीरागजाह्वन ॥ ४२९ ॥ सर्वश्रीरायिकावर्णे पक्षिम भावको-  
प्रभावना नहीं करता तो फिर व्यर्थ ही व्याकरण न्याय सिद्धांत पढ़ने तथा तपश्चरण करनेसे क्या लाभ है ॥ ४२३ ॥  
मस्तकपर रक्वना चाहिये ॥ ४२४ ॥ जिसप्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है, मलयगिरि पर्वत चंदनकी उत्पत्तिका  
कारण है उसीप्रकार जो श्रीमान् पुरुष जिनशासनकी प्रभावना करता है वह धर्मकी उत्पत्तिका कारण है ॥ ४२५ ॥  
जो पुरुष राज्य कराटकोंके समान धर्मके कराटकोंको निकाल फेंकता है अथवा जो इसके उद्योगमें लगा रहता है वह अवश्य  
ही लक्ष्मीका स्वामी होता है ॥ ४२६ ॥ इसलिये श्रीजिनेन्द्रके कहे हुए सद्धर्मकी प्रभावनारूपी अभिनयको करनेवालों  
यह जीवरूपी महानट आनन्दरूपी फूलोंसे भरे हुए मनरूपी रंगभूमिमें सदा नृत्य करता रहे ॥ ४२७ ॥ अथान्तर उस  
कल्कीका अजितंजय नामका बुद्धिमान पुत्र होगा वह अपनी बालना स्त्रीके साथ उस व्यन्तरदेवकी शरण लेगा ॥ ४२८ ॥  
तथा बहुमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको स्वीकार करेगा उस देवके द्वारा किये हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मके माहात्म्यको  
देखकर उसी समयसे बहुतसे पापी पाखराही अपना अधिमान छोड़ देंगे और फिर गेहे दिन तक श्रीजिनेन्द्रदेवका धर्म  
प्रचलित होगा ॥ ४२९-४३० ॥ इस प्रकार एक एक हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की होगा सब वीस कल्की हो चुकने  
पर सबसे पिछला कल्की पापी जलमंथन होगा ॥ ४३१ ॥ वह सब राजाओंमें मुख्य होगा उस समय चन्द्राचार्यके शिष्य  
वीरगज नामके मुनि सबसे पिछले मुनि होंगे, सर्वश्री सबसे पिछली अर्जिका होगी अग्निल नामका सबसे उत्तम  
पिछिला भावक होगा और अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाली फल्युत्सेना नामकी सबसे पिछली श्राविका होगी ॥ ४३२-४३३ ॥

तमः । अग्निलः फाल्गुसेनाख्या श्राविकापि च सद्गुता ॥ ४३३ ॥ एते सर्वेपि साकेतवास्ताया दुःषमालयाः । सत्सु पंचमकालस्य त्रिषु वर्षेष्वप्यष्टसु ४३४ मासेष्वष्टसु मासार्द्धमितेषु च सुभावना । कार्तिकस्यादिपक्षाति पूर्वाङ्कं स्वातिसंगमे ॥ ४३५ ॥ वीरांगजोमिलः सर्वश्रीस्यक्त्वा श्राविकापि सा । देहमायुध सद्यमोद्गमिष्यत्यादिम दिव ॥ ४३६ ॥ मय्यान्द्रे भूयुजो ध्वसः साय हे पाकभोजनं । षट्कर्मकुलदेशार्थहेतुधर्मोक्ष मूकत ॥ ४३७ ॥ सार्द्धं स्वहेतुसंप्राप्तौ प्राप्स्यति विलय ध्रुव । ततोतिदुष्यभादौ स्युर्विशालद्वन्द्वपरायुषः ॥ ४३८ ॥ नरोक्षोभ्यधिकारनिग्रयमानशरीरकाः । सतताहारिणः पापा गतिद्वयसमागताः ४३९ ॥ पुनरतदेवं यास्यति तिर्यगरकनामक । कपोसवसनभावाद् गतेवन्देषु वेभुषित ॥ ४३९ ॥ पर्णोदिवसनाः कालस्यते नशा यथेप्सित । चरिष्यति फल वीनि रीना- शास्त्रामृगोपमा ॥ ४४० ॥ एकविंशतिरक्षणा सहस्राण्यष्टश्रय । जलदा कालदोषेण कालोहि दुरतिक्रम ॥ ४४१ ॥ क्रमाद्धि वलकायायुरादिहान्यो भविष्यति । प्राप्ते षोडशवर्षे युजोविनो हस्तमात्रका ॥ ४४२ ॥ अधिराद्यशुभान्येव प्रफलिष्यति नामसु । कृष्णरूक्षतनुच्छाया दु-

ये सब अयीष्टया नगरके रहनेवाले होंगे । पांचवें दुष्पमकालके अन्तिम धर्मात्मा होंगे । जब दुष्पमकालमें तीन वर्ष साढ़े आठ महीना बाकी रह जायेंगे तब कार्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन सर्वेके समय स्वाति नक्षत्रमें अच्छी भावनाओंको धारण करनेवाले, वीरांगज अग्निल सर्वथो और फाल्गुसेना श्राविका आयु और शरीर छोडकर सद्यर्मेके प्रभावसे पहिले स्वर्गमें जा उत्पन्न होंगे ॥ ४३६-४३६ ॥ दोपहरके समय राजाका नाश होगा और शामको अशिका नाश होगा तथा षट्कर्म कुल देश और अर्थका कारण ऐसे धर्मका मूलसे नाश हो जायथा । ये सब अपने अपने कारण सहित अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे तदन्तर अति दुष्पमकालके प्रारम्भमें बीस वर्षकी आयु होगी मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई साढ़े तीन अरत्निकी होगी वे सदा भोजन करते रहेंगे पापी होंगे नरक तिर्यच दोनों ही गतियोंसे आकर उत्पन्न होंगे और फिर मरकर इन्हीं दोनों गतियोंमें जायेंगे । कपास और वस्त्रोंके अभावसे कुछ दिन तक तो वस्त्रोंके छाल पत्ते आदि पहिनेंगे और फिर अन्तमें इच्छानुसार नगन रहेंगे तथा वन्दरोंके समान फलादिकोंका भोजन करेंगे ॥ ४३६-४३७ ॥ कालदोषके कारण उस कालके इकईस हजार वर्षतक वादलोंसे बहुत थोडा पानी वरसेगा सो ठीकही है क्योंकि कालका उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४४२ ॥ तदन्तर अनुक्रमसे बुद्धि बल काय आयुकी कमी होती जायगी । अन्तमें सोलह वर्षकी आयु रह जायगी, एक हाथका शरीर होगा, तथा नाम कर्मोंमें जो अस्थिर आदि अशुभ नाम कर्म हैं उन्हींका उदय होगा । उनका शरीर काला शरीरकी कांति रूखी, वे देखनेमें बुरे कर्कश स्वरवाले और दुष्ट होंगे ॥ ४४३-४४४ ॥ वे देखनेमें बुरे होंगे उनका आकार विकट होगा वे दुर्बल होंगे उनके दांत अलग अलग होंगे छाती गाल और आंसूकी जगह नीचेकी ओर

भेगा दुःखरा खलाः ॥ ४४४ ॥ दुरीक्ष्या विकटाकारा दुर्वला निरलाद्विजाः । निमग्नवक्षोगङ्गाक्षिप्रदेशाधिपुटनासिका ॥ ४४५ ॥ लक्षसर्वदाचारा  
श्रुत्यपासादिवाधिताः । सरोगा दुःप्रतीकारा दुःखसादकवेधिनः ॥ ४४६ ॥ एव गच्छति कालेस्मिन्नेतस्य परमावधौ । निःशेष शोषमेतानु शरीरमिव संक्षयं  
॥ ४४७ ॥ अतिरुक्षा धरा तत्र मायिनी स्फुटिता स्फुट । विनाशान्वितेनाग्निगात्र प्रमलानयष्टय ॥ ४४८ ॥ प्रलयः प्राणिनामेव प्राणैर्गोपजनिष्यते । सुरासे-  
नोश्च सिंघे, द्व खेचरादेश वेदिकाः ॥ ४४९ ॥ शिला नवीसमुद्रमुतभीनमद्भृक्कच्छणान् । कृत्वा कर्कटकदीब निजाहारान् मनुष्यकाः ॥ ४५० ॥ विष्टा भुद्रविला-  
दीनि द्वासप्तति कुलेद्भवा । हीना वीना दुराचारास्तदा स्थास्यति केचन ॥ ४५१ ॥ सरस विरस तीक्ष्ण रुक्षमुष्ण विषं विष । क्षारमेवा- क्षरीष्यति सप्त-  
सप्त दिनाभ्युत्थ ॥ ४५२ ॥ ततो घरण्या वैषम्यविगमे सति सर्वतः । भवेच्चित्रा समाभूमिः समासात्रावसर्पिणी ॥ ४५३ ॥ इतोऽसिदुःषमोत्सर्पिण्याः पूर्वोक्त-  
प्रमाणमाकृ । वर्तिष्यति प्रजावृद्धयं ततः क्षीरपयोधरा ॥ ४५४ ॥ तावद्विनिवधेन निर्विशाममहर्दिवः पयः पर्यासि दास्यति रुक्षता ॥ ४५५ ॥

बैठी हुई होगी तथा नाक चिपटी होगी ॥ ४४४ ॥ वे सब तरहके सदाचारोंसे रहित होंगे भूख प्यास आदि वायात्रोंसे  
पीड़ित होंगे रोगी होंगे ऐसे रोगी होंगे जिनका कुछ भी इलाज न हो सकेगा और महा दुःखोंका ही अनुभव करते रहेंगे ॥ ४४५ ॥  
इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर सबसे अन्त समयमें पानी सब सूख जायगा और शरीरके समान नष्ट हो जायगा ॥ ४४७ ॥  
उस समय पृथिवी सब अत्यन्त सूखी हो जायगी और अपने नाश होनेकी चिन्तासे ही क्या मानों वृक्ष सब मलिन होकर  
सूखकर लकड़ीके समान हो जायेंगे ॥ ४४८ ॥ इस प्रकार प्रायः सब प्राणियोंका प्रलय होगा गंगा सिंधु और विजयाद्वे  
पर्वतकी वेदिकापर घोंडेसे जीव विश्राम लेंगे वे मनुष्य नदियोंमें पैदा हुए मछली, मेढक, कछुआ, केकडा आदिको खा  
जायेंगे उनमेंसे वहूचरि कुलोंमें उत्पन्न हुए हीन दीन और दुराचारी जीव छोटे छोटे विलोमें घुस जांदगे ॥ ४४९-४५० ॥  
तदनन्तर सात दिन तक आगिकी वर्षा सात दिन तक शीत जलकी वर्षा होगी, सात दिन तक खारा पानी बरसेगा,  
सात दिन तक विषकी वर्षा होगी, सात दिन तक दुस्सह अग्नि वर्षा होगी, सात दिन तक धूलि बरसेगी और फिर  
सात दिन धूमकी वर्षा होगी इस प्रकार उनंचास दिन तक वर्षा होगी (?) ॥ ४५१ ॥ इसके बाद पृथिवीका विपपपना सब  
नष्ट हो जायगा और चित्रा पृथ्वी निकल आवेगी तथा यहां ही पर अवसर्पिणीकाल समाप्त हो जायगा ॥ ४५३ ॥ इससे  
आगे उत्सर्पिणीकालका अति दुःपमाकाल चलेगा वह भी इकईस हजार वर्षका होगा और इसमें प्रजाकी फिर वृद्धि होगी ।  
पहिले ही क्षीर जातिके मेघ सात सात दिन तक रात दिन विना विश्राम लिये जल और दूधकी वर्षा करेंगे जिससे पृथ्वीका  
रूखापन नष्ट होजायगा और उसीसे यह पृथिवी अनुक्रमसे वर्णादि गुणोंको प्राप्त होगी इसके बाद अमृत जातिके मेघ सात

तन्निधनवर्णदिगुणं चात्रास्य निष्कमात् । तथैवायुतमेवाथ तावद्विषसगोचराः ॥ ४५६ ॥ दृष्टिमापातमिष्यति निष्पत्त्यन्तेन पूर्ववत् । औषध्यस्तराधोगुणमदु-  
षादीन्यप्यनारत ॥ ४५७ ॥ ततो रसाधिकारोदवर्षणत्वाद्भ्रसोद्भवः । यस्यामादां विलासिभ्यो निर्गत्य मनुजास्तदा ॥ ४५८ ॥ तेषां रसोपयोगेन जीविष्यत्या-  
ससमदा । दृष्टिर्गलति कालेरिमन् क्रमात्प्राग् हासमात्मनां ॥ ४५९ ॥ तन्वादीनां पुनर्दुःखमासमायाः प्रवेक्षते । आयुर्विगतिवर्षाणि नराणां परम मत् ॥ ४६० ॥  
सादरं नित्रयोत्सेधदेहानां दृष्टिमीयुषा । प्राक्शृणीतप्रमाणेस्मिन् काले क्षिप्तबुद्धयः ॥ ४६१ ॥ षोडशविधविष्यति क्रमेण कुलधारिण । प्रथमस्य मनोगू-  
ना तनुश्चतुरङ्गिणः ॥ ४६२ ॥ अंशस्यापि तनुः सप्तारङ्गिभिः यन्मिता भवेत् । आदिम कनकस्तैषु द्वितीयः कनकप्रभः ॥ ४६३ ॥ तत् कनकराजाख्य-  
श्चतुर्थः कनकध्वजः । कनकपुगवातोस्मात्फलिनो नलिनप्रभः ॥ ४६४ ॥ ततो नलिनराजाख्यो नवमो नलिनध्वजः । पुणर्वर्तय नलिन पद्मप्रभप्रभङ्गः  
॥ ४६५ ॥ पद्मराजस्ततः पद्मध्वजः पद्मादिपुगवः । महापद्मश्च विज्ञेयाः प्रजा पारिवेयशालिनः ॥ ४६६ ॥ एतेषां क्रमशः काले शुभभावेन वर्द्धनः । महीसलि-

दिनः तत्र अमृतकी वर्षा करेंगे जिससे औषधि या द्रव्य पौधे और घास आदि पहिलेके समान निरन्तर होंगे ॥ ४६४-४६६ ॥  
तदनंतर रसाधिक जातिके बादल रसकी वर्षा करेंगे जिससे सब चीजोंमें रस उत्पन्न होगा । उत्सर्पिणी कालमें सबसे  
पहिले जो मनुष्य विलोमें घुस गये थे वे निकलेंगे और उस रसके संयोगसे प्रसन्न होकर जीवित रहेंगे । ज्यों ज्यों काल  
व्यतीत होता जायगा त्यों त्यों शरीरकी उंचाई आयु आदि जिन जिन चीजोंकी पहिले कधी होती जाती थी उन सबकी  
वृद्धि होती जायगी । इसीतरह अनुक्रमसे दुःख काल आवेगा उसमें मनुष्योंकी आयु बीस वर्षकी होगी और शरीरकी  
उंचाई साढ़े तीन अरति होगी । फिर वृद्धि होती होती पहिले कहे हुए इक्कईस हजार वर्ष निकल जानेपर अनुक्रमसे नि-  
र्भल बुद्धिको धारण करनेवाले सोलह कुलकर होमे उनमेंसे पहिले बुलकरके शरीरकी उंचाई कुछ कम चार अरति  
होगी ॥ ४६७-४६९ ॥ अंतिम कुलकरका शरीर सात अरति उंचा होगा । कुलकरोंमें सबसे पहिला कनक नामका  
कुलकर होगा, दूसरा कनकप्रभ, तीसरा कनकराज, चौथा कनकध्वज, पांचवां कनकपुंगव, छठा नलिन, सातवां नलिन-  
प्रभ, आठवां नलिनराज, नौवां नलिनध्वज, दशवां नलिनपुंगव, ग्यारहवां पद्म, बारहवां पद्मप्रभ, तेरहवां पद्मराज, चौदह-  
वां पद्मध्वज, पंद्रहवां पद्मपुंगव और सोलहवां महापद्म नामका कुलकर होगा वे सब बड़े पराक्रमी और पुरुषार्थी होंगे उनके  
समयमें पानी धान्य आदिकी सदा अच्छी तरह वृद्धि होती रहेगी ॥ ४६६-४६७ ॥ मनुष्य अनाचारका त्याग करेंगे  
परिमित समयपर योग्य अन्नका भोजन करेंगे, मैत्री, लज्जा, सत्य, दया, इन्द्रियदमन, संतोष, विनय, क्षमा, रागद्वेषका  
त्याग आदि सज्जनोके चारित्र प्रगट होंगे और लोग अग्निमें पकाकर भोजन करेंगे ॥ ४६८-४६९ ॥ इसप्रकार दूसरा

लकालानां धान्यादीनां च संततं ॥ ४६७ ॥ मनुष्याणां नानाचारत्यागो योग्यात्मोन्नतः । काले परिमिते मैत्री सखासत्य दया दम ॥ ४६८ ॥ सुदुष्टिर्विनय-  
 क्षांतीरागद्वेषाद्यतीव्रता । इत्यादिषां सुदुष्टा च बहिर्नयाकेन भोजन ॥ ४६९ ॥ द्वितीयकाले वृत्तं तृतीयस्य प्रवेशने । सप्तारविप्रमाणोगाः सद्योकाव्यायुषो  
 नराः ॥ ४७० ॥ तत्तत्तीर्थकरोत्यत्तिरतेषां नामाभिधीयते । आदिम श्रेणिकस्तस्मात्सुपाथैर्द्वयसङ्गक ॥ ४७१ ॥ ओष्ठिलाह्य कटप्रक्ष्व क्षत्रिय श्रेष्ठि-  
 भगवतिर्वागलिङ्गिपायनः क्षनकसङ्गकः । पदादौ नारदधारुपादः सत्यकिपुत्रकः ॥ ४७२ ॥ शयाक सेवक प्रेमकश्चातोरणसङ्गकः । रंक्तो वासुदेवाह्व्यो बलदेवस्ततः परः ॥ ४७३ ॥  
 त्रिविधतिसम्पत्ता ॥ ४७४ ॥ तत्राथः पोटशमातकताब्दाद्यु प्रमाणकः । सप्तारविप्रमाणस्य तीर्थनायकः ॥ ४७५ ॥ पूर्वकोटीमितायुक्कश्चापचक्रातो-  
 काल व्यतीत हो जानेपर तीसरा काल लगेगा उससमय लोगोंका शरीर सात अरति उंचा होगा और आयु एससौ वीस  
 वर्षकी होगी ॥ ४७० ॥ इस समय जो जीव तीर्थकर होंगे उनके नाम इस प्रकार पहिला श्रेणिक, दूसरा सुपाथैर्द्विक  
 मोष्ठिल, कटप्र, क्षत्रिय, श्रेष्ठि, शंख, नंदन, सुनन्द, शशांक, सेवक, प्रेमक, अतोरण, रंक्त, वासुदेव, भगलि, वागलि,  
 द्वैपायन, कनकपाद, नारद चारुपाद, सत्यकिपुत्र ये तेईस जीव आगे तीर्थकर होंगे ( ये इसी क्षेत्रके जीव हैं एक अन्यत्रसे  
 आकर तीर्थकर होगा ) सात अरति आदि इनके शरीरकी उंचाई होगी । आगे जो चौबीस तीर्थकर होंगे, उनमेंसे  
 पहिले तीर्थकर सोलहवें कुलकर होंगे सौवर्षकी उनकी आयु होगी और शरीर सात अरति उंचा होगा । अंतिम तीर्थकरकी  
 एक करोड़ पूर्वकी होगी और शरीर पांचसौ धनुष उंचा होगा । उनके नाम इस प्रकार होंगे । पहिले महापद्म, दूसरे सुरदेव  
 ग्यारहवें सुनिमुबल, बारहवें अरनाथ, तेरहवें अपाप (निष्पाप) चौदहवें निष्कपाय, पंद्रहवें विपुल, दशवें जयकीर्ति  
 चित्रगुप्त, अठारहवें समाधिगुप्त, उन्नीसवें स्वयम्बर, बीसवें अनिवर्ती, इकईसवें विपल, तेईसवें देवपाल, और चौबीसवें  
 अनन्तवीर्य, चौबीस तीर्थकर होंगे सब इंद इनके चरणकमलोंकी बंदना करेंगे । उसकालमें उल्लूख लक्ष्मीकी धारणकरने  
 वाले बारह चक्रवर्ती होंगे ॥ ४७१-४८० ॥ उनके नाम इसप्रकार होंगे पहला भरत, दूसरा दीर्घदत्त, तीसरा  
 सुक्तदत्त, चौथा गृहदत्त, पांचवां श्रीषेण, छठा श्रीभूत, सातवां श्रीकांत, आठवां पद्म, नौवां महापद्म, दशवां विचि-  
 त्रवाहन, ग्यारहवां विमलवाहन और बारहवां सबसे पिछला सब संपदाओंको धारण करनेवाला अरिष्टसेन ॥  
 ४८२-४८४ ॥ इस कालमें बलभद्र भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला चंद्र, दूसरा महाचंद्र तीसरा



चिह्नतिः । तेषामाद्यो महापद्म सुरदेव-सुपार्थवाक् ॥ ४७७ ॥ स्वयंप्रमथ सर्वोत्सृष्टाहो देवपुत्रवाक् । कुलपुत्रस्योदक प्रोष्ठिले जयकीर्तिवाक् ४७८  
मुनिमुब्रतनामारसभोपायमिधानक । निष्कषायः सविपुलो निर्मलधिशुसमाह्वयः । ( निष्कषायः सविपुलो निर्मलधिशुसमाह्वयः ) ॥ ४७९ ॥ समाधिमुससद्वत् स्वयं-  
रसमाह्वयकः । अनिवर्ती न मित्रयो विमलो देवपालवाक् ॥ ४८० ॥ अनंतवीथी शिवेवैवदित्ताप्रिसरोह । कालेतिभनेव चक्रेषा भाविनो द्वांदशोच्छ्रय  
॥ ४८१ ॥ भरतो दीर्घदन्तमुफकदतस्तृतीयक । गूढदतश्चतुर्थस्तु श्रीषेणः पंचमो मतः ॥ ४८२ ॥ षष्ठ श्रीभृतिषाद्व ह्य श्रीक तः सप्तम स्मृत । प-  
द्मोष्टमो महापद्मो विवित्रादिश्च वाहनः ॥ ४८३ ॥ दशमोत्सात्पर ह्यातबकी विमलवाहन । अरिहसेन 'सर्वात्यसंपन्न' सर्वसंपद ॥ ४८४ ॥ सीरि-  
णोपि नवैवात्र तत्राष्टद्वयनामकः । महाचदो द्वितीयो भूततत्त्वकथरोमवेत् ॥ ४८५ ॥ हरिः शमिधः सिंहचंद्रधरो वरादिकः । पूर्णचंद्रः सुचंद्रश्च श्रीचंद्र केश  
वार्चित ॥ ४८६ ॥ केशवाश्च नवैवात्र तेषाद्यो नदिनामकः । नदिमित्रो द्वितीयः स्यान्नक्षिषेणस्ततः परः ॥ ४८७ ॥ नदिभृतिश्चतुर्थस्तु प्रतीतः पंचमो

चक्रवर, चौथा हरिचंद्र, पांचवां सिंहचंद्र, छठा वरचंद्र, सातवां पूर्णचंद्र, आठवां सुचंद्र और नौवां नारायणके द्वारा पूज्य  
श्रीचंद्र ॥ ३८५-३८६ ॥ इसीप्रकार नारायण भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला नंदि, दूसरा नंदिमित्र  
तीसरा नंदिषेण, चौथा नंदिभृति, पांचवां सुमसिद्धवल, छठा महावल, सातवां अतिवल, आठवां त्रिपुट और नौवां विभू  
इन नारायणोंके शत्रु प्रति नारायण भी नौ ही होंगे ॥ ४८७-४८८ ॥ इस दुष्पमसुपम कालके बाद सुपमदुःपम काल  
आवेगा उसके प्रारंभमें मनुष्यकी उंचाई पांचसौ धनुष होगी और कुछ अधिक एक करोड पूर्वकी आयु होगी । उसके  
थोड़े ही वर्ष बाद वहां जघन्य भोग भूमिकी पूर्ण स्थिति हो जायगी ॥ ४९०-४९२ ॥ इसी तरह पांचवें सुपमकालमें  
मध्यम भोगभूमिकी स्थिति रहेगी और छठे सुपमसुपम कालमें उत्तम भोग भूमिकी स्थिति रहेगी ॥ ४९२ ॥ भरतक्षेत्रके  
सिवाय और जो वाकी की नौ कर्म भूमियां हैं उनकी प्रवृत्ति भी इसीप्रकार होती है इसप्रकार भूतकालकी अवसरपिणी  
और होनहार उत्सरपिणी ये दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ जो इस कल्पकालकी विधि है वही सब  
कल्प कालोंमें समझ लेनी चाहिये । ढाई द्वीपमें जितने विदेह क्षेत्र हैं उन सबमें मनुष्योंके शरीरकी उंचाई पांच सौ ध-  
नुष होती है और आशु एक करोड पूर्वकी होती है । वहांपर तीर्थकर चक्रवर्ती बलभद्र नारायण आदि सबकी अलग २  
संख्या अधिकसे अधिक एकसौ साठ होती है तथा कमसे कम संख्या भी बीस रहती है ॥ ४९४-४९५ ॥ इसतरह सब  
एकसौ सत्तर कर्मभूमियां हैं उनमें एकसौ सत्तर ही चक्रवर्ती राजा हो सकते हैं उनमें चारो गतिथोसे जीव आकर उत्पन्न  
होते हैं और अपने आचरणके वशीभूत होकर मोक्ष सहित पांचों गतियोंमें जाते हैं । भोगभूमियोंमें सब जीव कर्मभूमिमेंसे

बल । पछो महाबलन्तेषु सप्तमोतिबलाह्वयः ॥ ४८७ ॥ अष्टमोभूत्विपुष्टाख्यो द्विष्टयो नवमो विभु । तद्वैरिणोपि तावत् एव विदेयसङ्गकाः ॥ ४८९ ॥ तत्-  
स्तत्कालपर्यन्ते भवेत्सुपमदुःपमा । औदौ तस्या मनुष्याणा पचचापशतोच्छिद्रतिः ॥ ४९० ॥ साधिका पूर्वकोट्यायुःस्थितिर्चातेषु केमुचित् । वर्षेषु निर्वि-  
शेषोऽत्र जघन्यार्थजनस्थितिः ॥ ४९१ ॥ ततः पचमकालेपि मध्यभोगमुखः स्थितिः । पृष्ठकालेपि विद्वेया वरीयोगभोगभूमिस्थितिः ॥ ४९२ ॥ एव शेषनव-  
स्थानकर्मभूमिषु वर्तन । एव कल्पस्थितिः प्रोक्ता भूतेष्वपि च भाविषु ॥ ४९३ ॥ एष एव विविधैश्च कल्पेषु जिनमापित । विदेहेषु च सर्वेषु पचचाप-  
शतोच्छिद्रति ॥ ४९४ ॥ मनुष्याणा परं चायुः पूर्वकोटिमिति मत । तत्र तीर्थकराद्यकवर्तिनो रामकेशवा ॥ ४९५ ॥ पृथक्पृथग्ऋतुत्वेन शत पञ्चदश-  
वृत्ताः । अल्पवैवापि विज्ञातिर्भवति च पृथक् पृथक् ॥ ४९६ ॥ उच्छृण्वेन शत सप्ततिद्वयं स्युः सर्वभूमिजा । उत्पद्यते नरास्त्रय चतुर्गतिसमागता ॥ ४९७ ॥  
गतीरिच्छति पचापि निजाचारवनीकृताः । भोगभूमिषु सर्वसु कर्मभूमिषुद्रुवा ॥ ४९८ ॥ मनुष्या संज्ञिन तिर्यचद्वयं शान्त्युपपादन । आदिकल्पद्वये

ही आकर उत्पन्न होते हैं और मनुष्य तथा संज्ञी तिर्यच ही उत्पन्न होते हैं । भोग भूमिमें उत्पन्न हुए जीव मरकर पहिले और दूसरे स्वर्गमें अथवा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्कामें उत्पन्न होते हैं यह नियम है कि वे सब मरकर देव ही होते हैं । मनुष्योंमें भोगभूमिके मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए अपने आचरणोंकी विशेषतासे तीन प्रकारके कहे जाते हैं एक शालका पुरुष दूसरे साधारण और तीसरे विशाधर ॥ ४९७-४९९ ॥ उत्सर्पिणी अपसर्पिणीका चौथा पांचवा छद्मा ये छह काल कनिष्ठकाल ( जघन्य ) गिने जाते हैं । एक पैरवाले, भापारहित, शंक्कु सरीखे कानवाले, फैले हुए कानवाले, लम्बे कानवाले, खरगोसेकेसे कानवाले, अभ्यमुख, सिंहमुख, देखनेके अयोग्य, महिषमुख, कोलमुख, व्याघ्रमुख, उलूकमुख, वानरमुख, मत्स्यमुख, कालमुख, गोमुख, मेघमुख, विद्युन्मुख, आदर्शमुख, हस्तिमुख, पूंछवाले, सींगवाले, ये नीच कुभोगभूमिके मनुष्य होते हैं और अन्तरद्वीपोंमें रहते हैं । सब मलेच्छखण्डोंकी स्थिति और विजयादौ पर्वतकी स्थिति तीर्थकरोंके समयके समान रहती है और वृद्धि ह्रास सदा कर्मभूमिमें ही होता है । इस प्रकार श्रेणिके प्रश्नके अनुसार इन्द्रभूतिगणधरने वचनरूपी धिरणोंसे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट करते हुए यह सब हाल कहा । ये कहने लगे कि इसके बाद भगवान् महावीर भी बहुतसे देशोंमें विहार करेंगे ॥ ५०२-५०८ ॥ विहार करते करते अन्तमें वे पावापुर नगरमें पहुँचेंगे वहाँके मनोहर नामके वनके भीतर अनेक सरोवरोके मध्यमें महामणिर्णोंकी शिलापर विराजमान होंगे । विहार छोड़कर ( योगनिरोधकर ) निर्जराको बढाते हुए वे दो दिन तक वहा विराजमान रहेंगे और फिर कार्षिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम समयमें स्वाति नक्षत्रमें तीसरे शुक्लध्यानमें तत्पर होंगे ।

भावनदिदेवेषु च त्रिषु ॥४९९॥ जीविते नियोगेन सर्वे ते देवभाविन । भज्येषूत्तमा भोगभूमिजाः कर्मभूयुष ॥५००॥ निजश्रुतिविशेषेण त्रिविधास्ते प्रकृतिताः । शलाकापुरुषाः कामा कणाश्चान्ये सुरार्चिताः ॥५०१॥ वतो दिव्यमनुव्यासु षष्ठकालाः कनिष्ठका (२) एकोक्तास्तथा भावासिहीनाः शंक्रुर्णकाः ॥५०२॥ कर्णप्रावरणा लवशशकादवादिकर्णकाः । अश्वसिंहमुखाद्वान्ये दु प्रेक्ष्या महिमानना ॥५०३॥ कोलव्याप्रमुखाश्चैवमुल्लकमुल्लनामकाः । शास्त्रानुगुह्या मस्त्यमुखाः कालमुखास्तथा ॥५०४॥ गोमेयमेघवक्त्राश्च विषदादशैवकश्रकाः । हरितवक्त्रा कुमानुव्याजा लांगुलिविषाग्निः ॥५०५॥ एते च नीचका यस्मादतर-द्वीपवासिन । म्लेच्छस्वच्छेषु सर्वेषु विजयाद्देशु च स्थितिः ॥५०६॥ तीर्थशृङ्गालसवदृष्टिह्ना मयस्कर्मभूमिषु । इदं च श्रेणिकप्रश्नादिदभूतिर्गणाधिप ॥५०७॥ इत्याह बचनामीधुनिरस्तातमस्तातिः । इत्यल्यतीर्थनाभोपि विहल्य विषयान् बहून् ॥५०८॥ क्रमादपावापुरं प्राप्य मनोहरवनातरे । बहूना सरसा मध्ये महामभिबिलातले ॥५०९॥ स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जर । कृष्णकान्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशालये ॥५१०॥ स्वातियोगे तृतीयेद्व्युल्लङ्घ्या-नपरायण । कृतत्रियोगसरोवर्षमुच्छिन्नक्रियं प्रित ॥५११॥ हताघातिचतुष्क सनशरीरो गुणात्मकः । गता मुनिसदृशेण निर्वाणं सर्ववाञ्छित ॥५१२॥

तदन्तर तीनों योगोंका निरोधकर समुच्छिन्न क्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानका आश्रय लेंगे तथा चारों उपाधियां कर्मोंको नाशकर शरीररहित केवल गुणरूप होकर एकहजार मुनियोंके साथ सबके द्वारा वाञ्छनीय ऐसा मोक्ष पद प्राप्त करेंगे ५०६-५१२ उसी समय पुरुषार्थका अंतिम जो अनन्त सुख है वह उन्हें प्राप्त होगा । तदन्तर इन्द्रादि सब देव आर्वेगे मोहके नाश करनेवाले भगवानके शरीरकी विधि पूर्वक दिव्य गन्धमाला आदि द्रव्योंसे पूजा करेंगे और फिर अधिकुमार देवोंके इन्द्रके शुकुटसे प्रगट हुई आधिकी शिखामें उस शरीरको स्थापन करेंगे । फिर अर्थोंसे भरी हुई प्रशंसा वाचक स्तुतिसे संसारको नाश करनेवाले भगवानकी स्तुति करेंगे । जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष पथारेंगे उसी दिन मुझे भी प्राप्तिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानरूपी नेत्र प्रगट होगा । भव्य जीवोंका धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशोंमें विहार करूंगा और फिर विपुलाचल पर्वतपर जाकर मुक्त हूंगा । जिस दिन मैं मुक्त हूंगा उसी दिन सकल श्रुतज्ञानके पारगामी सुधर्मचार्यके लोक अलोक सबको एकसाथ देखनेवाला अंतिम केवलज्ञान प्रगट होगा सुधर्मचार्यके निर्वाण होनेके समय ही जंबूकुमारको केवल ज्ञान प्रगट होगा ॥ ५१२-५७८ ॥ यह जम्बूकुमार अंतिम केवल ज्ञानी होगा । जम्बूकुमारके बाद जो इस भरतक्षेत्रमें धर्मोपदेश देंगे । उनके नाम इस प्रकार होंगे । नंदिमुनि, श्रेष्ठ नंदिभिन्न, अपराजित, गोवर्द्धन और महातपस्वी भद्रबाहु ये सब अनेक नयोंके विचित्र अर्थोंसे भरे हुए पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी होंगे ॥ ५१९-५२० ॥ विशुद्धिको धारण करनेवाले ये पांचो ही अनुक्रमसे होंगे । इनके बाद विशाखाय, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल,

तदेव पुरुषार्थस्य पर्यन्तस्तौऽव्यक्तुः । अथ सर्वेऽपि देवेन्द्रा वहीन्द्रमुकुटस्फुरतः ॥ ५१३ ॥ हुताशनशिखान्यस्तत्तरेषा मोहविद्विष । अन्यैश्च गधमाल्यादिद्व्य-  
दिभ्यैर्यथाविधि ॥ ५१४ ॥ वंदिष्यते भवातीतमर्थ्यैर्विदारवस्तवै । वीरतिर्वृत्तिसंपासदिन एवास्तघातिकः ॥ ५१५ ॥ भविष्याम्यहमप्यय केलशानलोचनः ।  
भयाना धर्मदेशेन विहस्य विपयास्ततः ॥ ५१६ ॥ गला विपुलशब्दादिगिरौ प्रास्यामि निर्वृति । मन्त्रिभूतिदिने लब्ध्वा सुधमां श्रुतपारगः ॥ ५१७ ॥ लो-  
कालोकावलोकैकलोकमत्यावलोकन । तन्निर्वीणक्षणे, भ्रात्री जन्मनामात्तकैवलः ॥ ५१८ ॥ अल्य केवलानामस्मिन्भरते य प्ररुष्यते । नदी मुनिस्तत श्रेष्ठो  
नक्षिभिन्नोपराजितः ॥ ५१९ ॥ गोवद्वनश्चतुर्थोऽनु भद्रवाहुर्महातपाः । नानानयविचित्रार्थसमस्तश्रुतपूर्णता ॥ ५२० ॥ ऐते क्रमेण पचापि प्राप्यत्याः सविशु-  
द्वय । तता भावी विशाः सार्थः श्रोष्ठिल क्षत्रियाः फलः ॥ ५२१ ॥ जयनामानुनागाहः सिद्धार्थो घृतिपेणकः । विजयो बुद्धिलो गंगदेवश्च क्रमतो मता  
॥ ५२२ ॥ एकदश सहश्रीमद्वर्मसेनेन धीमता । द्वादशागाधैर्कुशला दशपूर्वधराद्वच ते ॥ ५२३ ॥ मयाना कल्पवृक्षाः स्फुरन्धर्मप्रकाशका । ततो न  
क्षत्रनामा च जयपालश्च पांडुना ॥ ५२४ ॥ सुवसेनोऽनु कर्मयोग विधिर्नैकादशागका । सुमद्वच यशोभद्रो यशोवाहु प्रकृष्टधी ॥ ५२५ ॥ लोहनामा चतुथ

गंगदेव, और बुद्धिमान धर्मसेन ने सब श्रीमान् अनुक्रमसे होंगे तथा ग्यारह अंग दश पूर्वके पाठी और द्वादशांगके अर्थ  
कहनेमें अन्यन्त कुशल होंगे ॥ ५२१-५२२ ॥ ये ग्यारह नुनि भव्योंको कल्पवृक्षके समान होंगे और जैन धर्मको प्रकाश  
करनेवाले होंगे । इनके बाद नक्षत्र, जयपाल, पांडु, धुवसेन, और कंसार्थ ये विधि पूर्वक ग्यारह अंगोंके जानकार होंगे ।  
इनके बाद सुभद्र, यशोभद्र प्रकृष्ट बुद्धिवाले यशोवाहु और चौथे लोहाचार्य ये चार आचारांग नामके पहिले अंगके जान-  
कार होंगे । इन सब तपस्वियोंकी परम्परा अर्थात् सब मुनि जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे प्रगट हुए पवित्र और पापोंका नाशकर  
नेवाले शास्त्रोंका प्ररूपण करेंगे । इनके बाद अनेक ऋद्धिोंको धारण करनेवाले वीरसेन जिनसेन आदि महातपस्वी शेष  
मुनि भी श्रुतज्ञानके एकादशको प्रगट करेंगे । तथा इसी तरह प्रायः दुःपमकालके समाप्त होने तक जिनधर्मका प्रकाश होता  
रहेगा ॥ ५२६-५२८ ॥ भरत, समर, जिनके द्वारा प्रशंननीय सत्यवीर्य, राजा मित्र मित्रवीर्य भाव, अच्छी कांतिको धारण  
करनेवाला धर्मवीर्य दानवीर्य, मधवा शुद्धवीर्य, सीमन्धर त्रिष्टुप स्वयम्भू पुरुषोत्तम पुरुषशुद्धरीक, प्रशंननीय सत्यदत्त, राजा  
कुनाल, सब पृथिवीका और मनुष्योंका स्वामी नारायण, सुभौम, सार्वभौम, अजितंजय, विजय, उग्रसेन, महासेन, और  
शुद्ध सम्यक्त्वी तू श्रेष्ठिक । ये सब बुद्धिमान ये धर्मसम्बन्धी प्रश्न करनेमें चतुर थे, और सदा चौबीसो तीर्थंकरोंके चरण  
कमलोंकी सेवा करनेवाले थे ॥ ५२९-५३३ ॥ भगवान् वर्द्धमानका जीव पहिले पुरुखा भील था, फिर पहिले स्वर्गमें  
देव हुआ, फिर भरतका पुत्र मरीचि हुआ, पंचवै स्वर्गमें देव हुआ फिर जटिल ब्राह्मण हुआ वहांसे सौधर्म स्वर्गमें देव

स्वादाचारंगविदस्त्वभी । जिर्नद्वचनोद्गीर्णं पावन पापलोपनं ॥ ५२६ ॥ श्रुत तपोयुतायेया प्रणेभ्यति परंपरा । शेषरपि श्रुतज्ञानस्यैकोदेशस्तपोधनेः ॥ ५२७ ॥ जिनसेनातुंगवीरसेनै प्राप्तमहर्द्धिभिः । समाप्ते दुष्कमाया प्राक् प्रायशो वर्तयिष्यति ॥ ५२८ ॥ भरत सगराह्योऽनु सत्यवीर्यो जिनस्तुत । महीशो मित्रभावाह्वो मित्रवीर्योऽमच्युति ॥ ५२९ ॥ धर्मदानादिवीर्यो च मघना शुद्धवीर्यकः । सीमधराश्रिष्टाह्वयः स्वयंभू पुरुषोत्तम ॥ ५३० ॥ पुडरी-कांतपुरुषो दत्त सत्यादिभिः स्तुत । कुनालपालक पृथ्व्या पतिनारायणो रुणा ॥ ५३१ ॥ सुभौमः सर्वभामोऽजितजयोविजयाभिध । उपसेनो महसेनो-जिनस्त्वं श्रेणिकेल्यभी ॥ ५३२ ॥ सर्वे क्रमेण धीमतो धर्मप्रभविदावरा । चतुर्दिशतितीर्थेया संतत पादसेविन ॥ ५३३ ॥ पुरुषा सुर प्रात्यकल्पेभू-ज्झरातमजः । मरीचिप्रद्वक्त्रोऽथस्ततोभुजटिलद्विजः ॥ ५३४ ॥ सुरः सौधर्मकल्पे तु पुण्यमित्रद्विजस्ततः । सौधर्मजोमरस्तस्माद्विजन्मामिसमाह्वयः ॥ ५३५ ॥ सनत्कुमारदेवोऽसादमित्राभिधो द्विजः । मरुमाहैदकल्पेभुद्गारद्वजो द्विजन्वये ॥ ५३६ ॥ जातो म हेदकल्पेभु मनुष्योऽनु ततश्च्युतः । नरकेषु त्रसस्था-वरेष्वसख्यातवत्सरान् ॥ ५३७ ॥ आत्मा ततो विनिर्गल्य स्थावराह्वो द्विजोऽमवत् । ततश्चतुर्थकल्पेभुद्वैध्वनकी ततश्च्युतः ॥ ५३८ ॥ मद्राक्षुके ततो टे-

हुआ, फिर अग्निविम नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे तीसरे सानत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ । फिर अग्निमित्र नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ । वहांसे आकर भारद्वाज नामका ब्राह्मण हुआ और फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ । वहांसे च्युत होकर फिर मनुष्य हुआ । और फिर असंख्यात वर्षोत्तक नरकोंमें तथा त्रस और स्थावर पर्यायोंमें उसने परिभ्रमण किया ॥ ५३४-५३७ ॥ वहांसे निकलकर फिर स्थावर नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ फिर राजा विध्वनन्दी हुआ, इसके बाद महाशुक नामके दशवें स्वर्गमें देव हुआ फिर तीन खण्डका स्वामी त्रिपृष्ठ नारायण हुआ, वहांसे सातवें नरक गया और फिर सिंह हुआ ॥ ५३८-५३९ ॥ वहांसे फिर पहिले नरकमें गया वहांसे आकर सिंह हुआ इसी सिंहकी पर्यायोंमें उसने निर्मल सद्धर्म धारण किया और उस पर्यायको छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेतु नामका उत्तम देव हुआ ॥ ५४० ॥ तदनन्तर कनकोज्वल नामका विद्याधरोका राजा हुआ, फिर सातवें स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर राजा हरिषेण हुआ, फिर महाशुक नामके दशवें स्वर्गमें देव हुआ, उसके बाद प्रियमित्र राजा हुआ फिर सहस्रार नामके वारहवें स्वर्गमें सूर्यभनारामका देव हुआ ॥ ५४१-५४२ ॥ वहांसे आकर नन्द नामका राजा हुआ, वहांसे सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुण्योत्तर विमानमें इन्द्र हुआ और वहांसे च्युत होकर भगवान् बद्धमान हुआ ॥ ५४३ ॥ जिन्हें पंचों कल्याणोंकी श्रुद्धियां प्राप्त हुई हैं और जिन्हें मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त हुई ऐसे वे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी गुण-भद्रके लिये अथवा गुणवानोंके लिये सब तरहके मंगल प्रदान करें ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार अच्छी कथाके रससे अत्यंत

वज्रसद्वेगप्रिपृष्टपाद् । सप्तमे नरके तस्मात्तस्मान् गजविद्विषः ॥ ५३९ ॥ आदिमे नरके तस्मात्सिंहः सद्भर्मनिर्मलः । ततः सौषर्भकस्येभृत्सिंहकेतुसुरो-  
त्तमः ॥ ५४० ॥ कनकोज्ज्वलनाम्नाभूस्ततो विषधराधिपः । देवः सप्तमकल्पे तु हरिवेणस्ततो द्रुपः ॥ ५४१ ॥ महाशुके ततो देवः प्रियसित्रस्ततो महीर् ।  
स सहस्रारकल्पेभूरेवः सूर्यप्रभाह्वयः ॥ ५४२ ॥ राजनंदाभिधस्तास्मात्पुण्योत्तरविमानजः । वायुतैरस्तस्तद्व्युत्पन्ना वर्द्धमानो जिनेश्वरः ॥ ५४३ ॥ प्राप्तापचमहो-  
क्यपाण्डिः प्रास्तुत सिद्धिभाक् । प्रदिश्यादुगुणभेदेभ्यः स विभुः सर्वमगलं ॥ ५४४ ॥ इत्य गौतमवक्त्रवारिजलपद्मावलम्बावाढमयैः पीयूषैः सुकथारसाति-  
मधुरैः मकरधोण्युक्तैश्चिरैः । सा संसन्मगधाधिपश्च महतीं दुष्टिं स्वम जग्मतुः शुष्टिं दृष्टिविवोद्योविंदधतीं सर्वार्थसंपत्करीं ॥ ५४५ ॥ श्रीवर्द्धमानमनिशं सि-  
नवर्द्धमानं त्व त नये स्तुतिपथं पथि संप्रधाते । गोलोपि तीर्थकरमग्रिममव्यजैषीत् काळे कलौ च पृथुलीकृतधर्मतीर्थः ॥ ५४६ ॥ स्तुत्या प्रसादयितुमर्थि-  
जनो विनैति न लप्यदस्ताव स मोहजयस्तबोय । तन्मार्थिनस्तुतिरिदेशं ममास्ति बाह स्तुत्यस्तुतिप्रणयिनीऽर्थपराद्भुतस्य ॥ ५४७ ॥ येषा प्रमेयविमुख दु-  
मुच्चप्रमाणं तेन स्तुतेर्हितजुषा विषयीमवेयु । त्व विषयभावविहितावगमाभ्यर्कोर्हन्तृ वक्ता हि तस्य ततएव हितैविवच्य ॥ ५४८ ॥ दातासि न स्तुतिकले

पथुर, भक्तिके द्वारा आस्थादित और अमृतपय ऐसे गौतम गणधरके मुखरूपी कमलसे सुशोभित हुई सरस्वतीके वचनोसे वह सब सथा तथा मगधेश्वर राजा श्रेणिक दोनों ही अर्थ और संपदाओंके देनेवाले तथा ज्ञान और दर्शनको पुष्ट करने-  
वाले ऐसे बड़ेभारी संतोषको प्राप्त हुए थे ॥ ५४५ ॥ जो श्रीवर्द्धमान सदा वर्द्धमान वा जयशील रहते हैं जो तुम्हें नि-  
र्घल मोक्षमार्गमें ले जाते हैं जिनका धर्म तीर्थ कलिकालमें भी बड़े विस्तारसे प्रचलित हुआ है और इसलिये ही तीर्थकरो-  
में अंतिम होकर भी जिन्होंने प्रथम तीर्थकर वृषभदेवको भी जीतलिया था ऐसे श्री वर्द्धमानकी मैं स्तुति करता हूं ॥  
५४६ ॥ हे देव ! अर्थी-कुछ इच्छा रखनेवाले, जन आपको प्रसन्न करनेके लिये नमस्कार वा स्तुति करते हैं परंतु आपका  
यह जय स्तोत्र ऐसे स्तोत्रोंके समान नहीं है । हे ईश ! हे स्तुति करने योग्य ! मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता हूं  
न मुझे कुछ स्तुति करनेके, फलकी अभिलाषा है मुझे तो केवल स्तुति करने योग्य पुरुषमें प्रेम है इसलिये मेरी यह स्तुति  
इससंसारमें खूब ही प्रसिद्ध हो ॥ ५४७ ॥ हे सुमुख जिनका प्रमाण प्रमेयसे रहित है वे पुरुष हित चाहनेवाले हम लोगों-  
के स्तुतिके गोचर नहीं हो सकते अर्थात् हम लोग उनकी स्तुति नहीं कर सकते हे अर्हन् ! आप तो समस्त पदार्थोंके  
कहे हुए ज्ञानरूप ही हैं और इसलिये ही आप उन पदार्थोंके स्वरूपके वक्ता वा कहनेवाले हैं अतएव आपही हितचाहने-  
वाले हम लोगोंके द्वारा बंदनीय हैं ॥ ५४८ ॥ हे जिनेंद्र यद्यपि आप स्तुतिका फल नहीं देते हैं तथापि स्तुति करनेवाला  
पुरुष याचना न करता हुआ भी सबसे अच्छे और सबसे अधिक फलको बहुत शीघ्र और अवश्य प्राप्त होता है फिर

समुपेत्यवश्यं स्तोता मह्यमिति शुभ्रमयाचितोऽथ । कुर्वता कुतस्तव न सस्तवन विनेश दैत्यातिभीरुद्रमयफलाभिलाषी ॥ ५४९ ॥ निष्कारणं तृणलवं च दद्विभी-को लोके जिन लयि ददासि निरर्थकृत्स्व । मुक्तिप्रदायिनि तथापि भवंतमेव प्रेक्षावता प्रथमगण्यमुंशति चित्र ॥ ५५० ॥ सर्वस्वमर्षिजनता समिह स्वीय चक्रु परे निह० क्षिप्रिधरसत्त्वसाराः । श्रोत्रं च तान् जिन वदति वदान्यवर्थं ह्यं वाग्मिरेव वितरतमहो विदग्धाः ॥ ५५१ ॥ धीं पौरुषं च विषयार्जनमेव येषां साह्यं च विश्वविषयाविरतोपयोग । तेषां कथं तदुभयप्रतिपक्षरूप लब्ध्वाशन भ्रवणमिज्जिनमाजनिष्ट ॥ ५५२ ॥ पुण्यं त्वया जिनविनेय-विधेयमिष्ट गत्यादिभिः परमनिर्वृत्तिसाधनलात् । नैवामनगरिगलसुरा प्रति तच्च यस्माद् बंधप्रद विषयनिष्ठममीष्टयाति ॥ ५५३ ॥ कायार्थिकः सदसि ते विफल किलाहुर्नैतद्वत्स्तव निशम्य निशाम्य साक्षात् । ह्यं याति निर्वृत्तिमिहैव विनेयमुख्या मुख्यं फलं ननु फलेषु परोपकार ॥ ५५६ ॥ यक्षक्षणक्षतिकृदात्मनि

भला मैं तो दीनतासे अत्यंत डरता हुआ भी सबसे अधिक फलकी इच्छा रखता हूं इसलिये आपका स्तोत्र क्यों न करूं ॥ ५४९ ॥ संसारमें जो कोई बिना कारणके एक तृणका टुकड़ा भी देता है वह बुद्धिहीन मूर्ख गिना जाता है । हे जिनेंद्र ! आप मोक्ष देनेवाले हैं तथापि लोग आपको देते हैं इसलिये आप अनर्थकारी अर्थात् अपना प्रयोजन सिद्धकर दूसरेका उपकार करनेवाले हैं तथापि आश्चर्य है कि लोग आपको ही बुद्धिमानोंमें सबसे उत्तम मानते हैं ॥ ५४० ॥ हे देव सत्त्वशाली लोग अपना सब धन याचकोंको देकर स्वयं विल्कुल परिग्रह रहित हो जाते हैं तथापि हे जिन उनको उलंघनकर कितने ही चतुर लोग केवल बचनोंसे ही देनेवाले आपको ही दान देनेवालोंमें सबसे उत्तम कहते हैं यह एक आश्चर्यकी बात है ॥ ५४१ ॥ हे देव ! जिनकी बुद्धि और जिनका पुरुषार्थ केवल विषय सेवन करनेकेलिये है और जिनका सुख विषयोंसे विरक्तचित्त न होना है उन लोगोंको विषयसेवन और विषय जन्य सुखसे प्रतिकूल ऐसा आपका शासन कानोंको फोड़ देनेवाला कैसे नहीं होसकता अर्थात् होता ही है ॥ ५४२ ॥ हे जिन आपने जो पुरुषका स्वरूप कहा है वह ज्ञानादिकके द्वारा भव्य जीवोंको सिद्ध करने योग्य है और सबको इष्ट है क्योंकि ज्ञानादिकके द्वारा उपार्जन किया हुआ पुण्य ही परम मोक्षका साधन है । जो देवादिकोंके पूर्ण सुखके लिये किया जाता है वह कुछ पुण्य नहीं है क्योंकि वह बंधका कारण है विषयोंमें लुभानेवाला है और मोक्ष रूप इष्टका विघात करनेवाला है ॥ ५४३ ॥ हे देव ! यद्यपि आपका शरीर आदि विद्यमान है तथापि लोग उसे निष्फल नहीं कहते हैं क्योंकि आपके वचन सुनकर तथा आपका साक्षात् रूप देखकर मुख्य २ शिष्य इसी भवमें मुक्त हो जाते हैं सो ठीक ही है क्योंकि फलोंमें परोपकार ही सबसे मुख्य फल है ॥ ५४४ ॥ जो आत्माके ज्ञान आदि लक्षणरूप गुणों को नष्ट कर देनेवाला है ऐसा नापादिक कर्म क्या आपके ज्ञान दर्शन रूप उपयोगको नष्ट कर सकता है ? कभी नहीं ।



तद्धि कर्म नामादिक किमु निहति तबोपयोग । तत्सत्तया जिन भवंतमसिद्धमिच्छभिच्छेदनूर्ध्वगमनादतनोरसिद्धि ॥ ५५५ ॥ साधंतहीनमनवयमनादिसांत  
साधयमादिरहितानवसानमाहु । त्व दु खित सुखिनमप्युभयव्यपेतं तेनैव दुर्गमतमोसि नयानसिद्धैः ॥ ५५६ ॥ संयोग स्वज इति द्विविधो हि भावो  
जीवस्य योगवियमाद्विगमी तदुत्थ । स्वोत्थे स्थिति परमनिवृत्तिरेषमोगो दुर्ग परस्य तव वाक्यवहि कृतस्य ॥ ५५७ ॥ आस्तामनादिनिगलच्छिद्यया  
ददासि यन्मुक्तिमंतरहितां तदिहालमेया । केशादिहेतुनिवृत्तसमस्तसत्त्वसंपादनप्रवणतैव तबासतायै ॥ ५५८ ॥ नोषस्तवाखिलविलोकनविभ्रमी किं किं  
चागिमता मितपदार्थनिरूपणाया । किं स्वार्थसंपदि परार्थपराड्मुखस्त्व किं नासि सत्सु जिन पूज्यतमस्त्वमेव ॥ ५५९ ॥ विश्वावलोकनवितन्वदनतवीर्यापा  
रपाशरण न कदापि ते स्यात् । चित्र तथापि सुखिना सुखित भवंत संतो वदति किमु भक्तिरुतावबोध ॥ ५६० ॥ भव्यात्मना परमनिर्वृत्तिसाधनार्थं त्वा-

हे जिन ! उन कर्मोंकी सत्तासे ही आपको असिद्ध होनेकी इच्छा करता हुआ ऊर्ध्वगमनके अभावसे शरीररहित न होनेकी  
इच्छा करता है । हे देव ! आपको आदि, अंत रहित, पाप रहित, अपादित, अनादि, पर अंतरहित, सावध, अगदि रहित, अंतरहित  
सुखी दुखी और सुख दुःख दोनोंसे रहित, कहते हैं इसलिये हे देव ! जो नयोंको नहीं जानते वे आपको जान भी नहीं  
सकते ॥ ५५६ ॥ हे नाथ ! जीवोंके भाव दो प्रकारके हैं एक-संयोगसे उत्पन्न होनेवाले और दूसरे स्वभाविक । जो सं-  
योगसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं वे संयोगके नाश होनेसे नष्ट होजाते हैं । उनके नष्ट होनेसे आत्माके ज्ञानादि स्वाभाविक  
भावोंमें जो आत्माकी स्थिति है वही परम निवृत्ति वा परम मोक्ष कहलाती है परंतु आपके वाक्योंको न माननेवाले जो  
अन्य दर्शनकार हैं उनको यह मार्ग अत्यंत कठिन है ॥ ५५७ ॥ हे देव अनादि कालसे लगे हुए कर्मोंके नष्ट होनेपर आप  
अंतरहित मोक्ष देते हैं यह बात तो दूर ही रही आप स्नेह आदि कारणोंसे रहित होकर भी समस्त प्राणियोंके पालन कर-  
नेमें अत्यंत चतुर हैं यही हेतु आपकी आपत्ता सिद्ध करनेके लिये बहुत है ॥ ५५८ ॥ हे स्वप्ति ! क्या आपका ज्ञान  
समस्त पदार्थोंके देखनेमें समर्थ नहीं है ? क्या आपकी वाणी प्रमाणभूत पदार्थोंके निरूपण करनेमें समर्थ नहीं है ? क्या  
आपकी परपदार्थोंसे परासुखता अपने आत्माके अनंतगुणरूप संपदाओंके लिये समर्थ नहीं है और इसीलिये हे जिन !  
क्या आप सज्जनोंमें सबसे अधिक पूज्य नहीं हैं ? ॥ ५५९ ॥ हे प्रभो ! समस्त संसारको देखनेके लिये फैले हुए आ-  
पके अनंतवीर्यके व्यापारका पार कभी प्राप्त किया जा सकता तथापि आश्चर्य है कि सज्जन लोग आपको ही सुखियोंमें  
सबसे अधिक सुखी बतलाते हैं परन्तु यह उनकी भक्ति है अथवा यथार्थ ज्ञान है सो जान नहीं पड़ता ॥ ५६० ॥ हे देव !  
आपकी जितनी चेष्टा है वे सब भव्य जीवोंको मोक्ष सिद्ध करनेके लिये हैं परन्तु आपको उसके किसी तरहके फलकी

बेधित तव न तत्र फलोपलप्सा । तस्यास्त्वमेव जिन वागमृताखुष्यथा संतर्पयन् जगदकारणवधुरेक ॥ ५६१ ॥ जीवोयमुद्युहयोगुणोपलक्ष्यस्तस्योपहृष्ट  
ननु धातिचतुष्कमेव । धातेन तस्य जिन पुष्कललक्षणस्त्व त्वां तादृश वद वदतु कथं न सिद्ध ॥ ५६२ ॥ साधारणास्तव न सत्तु गुणास्तदिष्ट दृश्यो न तेषु  
जिन सत्तु गुणेषु साक्षात् । दृष्टे भवेद्भवति भक्तिरसौ यथा यश्चेचीयते स्ववति पापमपि प्रभूतं ॥ ५६३ ॥ देवगाढमभवत्तव मोहयताच्छ्रयानमाधुतिद्वि-  
परमावगाढ । आदृत्ये चरित्रपरिपूर्तिरशोत्तरत्र विश्वाभवोवविभुतासि ततोमिवंघ ॥ ५६४ ॥ ध्वस्त त्वया प्रवलपापबल परं च प्रोद्भिन्नपालिजलवत्यवहल-  
जलम् । श्रद्धादिमिस्त्रिमिरभूद्वित्तयी च सिद्धिः सद्धर्मवक्तुभवदुभुवनैकनाथ ॥ ५६५ ॥ देहो विकाररहितस्तव वाग्यार्थदृक्प्रोत्रनेत्रविषयत्वमुपेत्य  
सद्यः । त्वाम्स्तरागमखिलावगम च कस्य न स्थापयेन्मनसि मन्मथमानमर्दिन् ॥ ५६६ ॥ किं वस्तिहाक्षणिक्मन्वयरूपमस्ति व्यस्तान्वयं वद हि किं क्ष-

इच्छा नहीं है इसलिये हे जिनराज । वचनामृतरूपी जलकी वर्षासे संसारभरको तृप्त करते हुए केवल आप एकही विना  
कारणके वन्द्यु हो ॥ ५६१ ॥ यह जीव प्रगट हुए ज्ञानगुणरूपी उपयोगसे जाना जाता है और उस ज्ञान गुणको नष्ट  
करनेवाले चार धातियां कर्म हैं उन धातिया कर्मोंको नष्ट करनेसे आपका ज्ञानगुण पूर्ण प्रगट हो गया है इसलिये हे जिन !  
आपही कहिये कि ऐसे आत्मस्वरूपवाले आपको सिद्ध कैसे न कहें ॥ ५६२ ॥ हे जिनराज ! आपमें साधारण गुण नहीं  
तो न सही परन्तु उन विशेष गुणोंके रहते हुए भी हम लोगोंको इष्ट ऐसे आप साक्षात् दिखाई नहीं देते । यदि कदाचित्  
आप दिखालाई पड जाय तो फिर आपमें वह भक्ति उत्पन्न होती है जिससे बड़े प्रभुओंको भी पुण्यका संचय होता है  
और पापका नाश होता है ॥ ५६३ ॥ हे देव ! मोहनीय कर्मके नाश होनेसे आपके अवगाढ श्रद्धान का तम्यक्त्व हुआ  
है और ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मोंके नाश होनेसे परमावगाढ सम्यक्त्व हुआ है पहिले अवगाढ सम्यक्त्वमें चारित्रकी परिपूर्णता  
होती है और परमावगाढमें पूर्णज्ञान समस्त आकाशमें फैल जाता है इसलिये हे नाथ आपही बंदना करने योग्य हैं ॥ ५६४ ॥  
हे देव ! आपने प्रवल धातिया कर्मोंको तो पहिले ही नष्ट कर दिया था और अब अधातिया कर्म किसी बांधके टूट जाने  
पर जलके समान सदा बहते रहते हैं । हे नाथ ! व्यवहार रत्नत्रयके द्वारा आपको विश्व रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई है और सद्धर्म  
चक्रकी प्राप्ति होनेसे आप तीनों सुन्नोके एक स्वामी हुए हैं ॥ ५६५ ॥ कामदेवके अभिमानको चूर्ण करनेवाले हे प्रभो !  
आपका शरीर विकाररहित है और आपकी वाणी पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको देखनेवाली वा कहनेवाली है यदि आपका  
विकाररहित वह शरीर नेत्रोंके विषयभूत हो जाय अर्थात् देखलिया जाय तथा आपकी वाणी कानोंके विषयभूत हो जाय  
अर्थात् सुनली जाय तो वे दोनोंही रागरहित और समस्त ज्ञानको धारण करनेवाले आपको फिर किसके हृदयमें स्थापन

निक च किंचित् । बुद्धादयो बुधपदगर्भगतार्मकाभा मेदोगमर्थविमुखोक्ताभा ॥ ५६७ ॥ तिष्ठत्वगोचरमनतत्तुष्टय ते स्वाभाविकेष्वातिशयेष्वपरोपि कथित । कस्यापि समवति किं कपिलदिकाना केनाप्तपक्षिमुपयाति तमस्विनोमी ॥ ५६८ ॥ त्यामासमनति मुनयः परम पुमास ध्वस्तद्विवेदमपि किं परमा- गसगात् । किं मोहवन्निद्रहनातिक्रमनतवीर्यात् किं सिद्धतापरिणतेर्गुणैरवाद्वा ॥ ५६९ ॥ देहत्रयापनयनेन विनादिसिद्धत्वं द्युदशकयत्तुल्यदुष्टदितोदितत्वात् । आशिष्यमस्त्यधिपते त्वदुर्वीरितोऽसन्मार्गग्रास्यसि यत्परमात्मभावं ॥ ५७० ॥ अस्त्यैव देव तव चादधिकोपि भावः किं त्वेष मोहुरहितस्य न बभूवतु । योगानुरोधसमवाप्तुभाणवैयबध निवधनशुशालविरोधकत्वात् ॥ ५७१ ॥ त्वत्पादपंकजपङ्कजध्रितयाप्तपुण्याद् गण्योभवत्सुरगणगणनातिगधी । आनन्दमालि- रत एव नखोन्मुखांशुशालन्मुख शतमख सुमुखस्तवाध्याः ॥ ५७२ ॥ प्रथमपरयकाष्ठाधिष्ठितोदात्तमूले क्रमकरणविहीनज्ञानधामैकधाम्न । द्वितयनय-

करदं अर्थात् आपका शरीर देखनेमात्रसे अथवा आपकी वाणी सुनने मात्रसे आप सबके हृदयमें स्थापित होजाते हैं ॥ ५६६ ॥ हे विद्वानों के परिपालक ! क्या वस्तुका स्वरूप अन्य रूपसे सदा नित्य है अथवा पृथक् पृथक् स्वरूप रूपसे कुछ क्षणिक है कैसा है सो कहिये इसका स्वरूप कहनेमें बुद्धादिक सब गर्भमें बैठे हुए बच्चेके समान हैं क्योंकि इनमें भेद है ॥ ५६७ ॥ हे प्रभो ! आपका अनंतचतुष्टय तो कपिलादिक अन्य लोगोंके विषयभूत नहीं है यह बात तो दूर रही परंतु जो आपके निःस्वेदता आदि स्वाभाविक अतिशय हैं उनमेंसे क्या कोई एक भी अतिशय कपिलादिकोंमेंसे किसीके भी संभव हो सकते हैं ? फिर भला मित्यायकारमें दूरे हुए ये कपिलादिक लोग किस कारणसे आपकी पंक्तिमें बैठ सकते हैं ! भा- वार्थ-कभी नहीं ॥ ५६८ ॥ हे देव ! यद्यपि आपके स्त्रीपुंनपुंसक ये तीनों वेद नष्ट होगये हैं तो भी सुनि लोग आपको परम पुरुष मानते हैं अथवा वेदोंके नष्ट होनेपर ही आपको परम पुरुष मानते हैं फिर आपको परम औदारिक शरीरके समागमसे क्या लाभ है अथवा मोहरूपी जेलको जला देनेसे क्या लाभ है तथा अन्ननवीर्य प्राप्त होनेसे क्या लाभ है वा सिद्ध अवस्था प्राप्त होनेसे क्या लाभ है और अनेक गुणोंकी गौरवता होनेसे भी क्या लाभ है ॥ ५६९ ॥ हे स्वामिन् ! तीनों शरीरोंके नष्ट होनेके विना ही निर्मलता, शक्ति, और अनुपम संतोषके अत्यधिक उदय होनेसे ही आप सिद्ध होगये हैं फिर भला आपके कहे हुए श्रेष्ठ सन्मार्गमें ( मोक्षमार्गमें ) चलनेवाले लोगोंको आप परमात्मस्वरूप करदेते हैं यह आप में और भी सबसे बड़ी अधिकता है ॥ ५७० ॥ हे देव आपके औदारिक भाव है सो वह भले ही बना रहे आप मोह रहित हैं इसलिये वह आपके कर्मबंधका कारण नहीं हो सकता परंतु मन वचन कायकी क्रियाओंका निरोध करनेसे आप- के थोड़ेसे शुभ वेदनीय कर्मोंका बंध होता है इसलिये विद्वान लोग आपको ही शुभ बंधका कारण बतलाते हैं क्योंकि

मयोबादीर शिख्यन्वेस्ते ननु जिन परमात्मप्राप्तं अस्ति भर्तुं ॥ ५७३ ॥ ज्ञानं सर्वगत स्वरूपनियतं ते स्याद्वेद्युः इत्येवंविच्छायातनाः स्वकृत्यपटवो वाचो निबाचामसि । प्रत्नानस्थितयोप्यनात्मविहिता नात्माव्यवाधप्रदा स त्व निर्मलबोधदर्पणतले ज्ञेयाकृतिं प्रस्तु मे ॥ ५७४ ॥ निषस्वास्त्वस्मित प्रकाशित तव वाग्याथास्त्वमात्मैशिनो यस्मादुद्विचिरोपरोधविहितारागाद्यभियान्छिद तत्साद्रीरं विकासयसायकशिलासौख्यवीर्यइहोमोहोहजयस्त्वैव न परैश्चन्यायभिन्यासिषु ॥ ५७५ ॥ देवो वीरखिनोयमस्तु जगतो वशः सदा मूर्च्छि मे देवस्त्व इदमे गणेश वचसा स्पष्टेन यैनालिरु । काहण्यात्प्रथमानुयोगमवद भद्राभिष्टुष्ट्यावहं

इसमें कोई विरोध नहीं आता । भावार्थ—आपके औदयिक भाव तो बन्धके कारण नहीं है परन्तु आप शुभवन्धके कारण हैं क्योंकि आपके शुभवेदनीयका बन्ध होता है शुभवन्धको करनेवाला शुभवन्धका कारण होताही है इसमें कोई विरोध नहीं ॥ ५७१ ॥ आपके चरण कमलोंके अमर बननेसे अर्थात् आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ था उसीसे यह देवताओंका समूह मान्य गिना गया है और उसीकारणसे उसकी लक्ष्मी संख्याके बाहर होगई अर्थात् वह देवताओंका समूह असंख्योत लक्ष्मीका स्वामी होगया है इसीलिये जो आपके चरणकमलोंमें अपना मुकुट भुका रहा है और आपके चरणनखोंके सामनेकी किरणोंसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है ऐसा इन्द्रमुख कहलाता है ॥ ५७२ ॥ हे जिनराज ! आपकी उत्कट मूर्ति उपशमभावकी चरमसीमासे परिपूर्ण है, आप इंद्रिय और अनुक्रमसे रहित ऐसे केवल ज्ञानरूपी तेजके एक मुख्य स्थान हैं आपकी गम्भीर दिव्यध्वनि व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंसे परिपूर्ण होकर उत्पन्न हुई है और आप सबके स्वामी हैं इसलिये हे नाथ ! आपके परमात्मपनेका प्रभाव बहुत ही सुशोभित हो रहा है ॥ ५७३ ॥ हे नाथ ! आपका ज्ञान सब जगह व्याप्त है तो भी आपने ही स्वरूपमें निश्चल है और किसी भी व्यापारका कारण नहीं है । इच्छा और आयतनरहित आपकी वाणी भी गूंगे लोगोंके कार्य करनेमें भी अत्यन्त चतुर है इसी तरह आपका आकाशगमन भी आपका किया नहीं है किन्तु देवोंके द्वारा किया हुआ है और आत्मापर किसीको भी बाधा देनेवाला नहीं है ऐसे हे देव ! आप मेरे निर्मलज्ञानरूपी दर्पणतलमें ज्ञेयका आकार धारण करो अर्थात् मेरे ज्ञानगोचर हो ॥ ५७४ ॥ हे देव ! आप आत्माके स्वामी हैं सम्यग्दर्शनको रोकनेवाले मिथ्यात्वकर्मको नाश करनेसे आपकी रागादि अविद्याओंका नाश हो चुका है और आप कामदेवके वाणोंकी शिखाकी मुखरता अथवा वाचालपनेके बलको नाश कर चुके हैं ऐसे आपकी वाणी विना किसी रुकावट वा थकावटके इस समस्त संसारके यथार्थ स्वरूपको प्रगट करती है इसलिये हे वीर ! मोहनीय कर्मको नाश करनेका जय आपको ही प्राप्त है अन्याय करनेवाले अन्य किसीको वह जय प्राप्त नहीं है ॥ ५७५ ॥ इसलिये

मङ्गायोदयतः सतां स सहजो भावो ह्यय तादृशां ॥५७६॥ इति कतिपयवार्गिभर्वर्द्धमानं जिनं मगधपतिरूपीभ्रष्टया सिद्धकृत्य । गणश्रुतमपि नुला गौ-  
तम धर्मधुर्य स्वदुरमविशदुष्टपुष्टिरागमिसिद्धि ॥ ५७७ ॥ अनुष्टुप्छन्दसा ज्ञेया प्रथमस्या ऽ उ विंशतिः । सहस्राणा पुराणसं व्याख्यातुश्रेष्ठलेखकै ॥५७८॥

इत्यार्षे त्रिवष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते श्रीवर्धमानस्वामिपुराण परिसमाप्त ।

## अथ प्रशस्तिः ।

यस्यानता पदनसैवविचित्रविष्टाभमिप्रकटसमुद्रताः सुरैराः । न्यक्कुर्वते स्म हरमर्द्धशाशकमौलिलीलोदत स जयताजिनवर्द्धमाने ॥ १ ॥ श्री-

जिनै समस्त संसार नमस्कार करता है ऐसे वर्द्धमान स्वामी सदा मेरे मस्तकपर विराजमान रहें और हे गणधर देव !  
आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहें क्योंकि मेरे भाग्यके उदयसे करुणाकर आपने ही स्पष्टवाणीसे श्रद्धाकी अभिष्टादिको  
धारण करनेवाले-श्रद्धाको बढ़ानेवाले प्रथमानुयोगका निरूपण किया है सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे सज्जनोंका ऐसा भाव  
होना स्वाभाविक ही है ॥ ५७६ ॥ जिसे बहुत भारी सन्तोष हुआ है जो आगामीकालमें सिद्ध होनेवाला है जिसने अपना  
कृत्यकर्म सब सिद्ध कर लिया है और जो धर्मधारण करनेमें सबसे मुख्य है ऐसे मगधेश्वर राजा श्रेयिकने उत्सव हुई  
श्रद्धासे ऊपर लिखे हुए कुछ वचनोंके द्वारा भगवान श्रीवर्द्धमानकी स्तुति की तदनन्तर उसने श्रीगौतमगणधरदेवको नमस्कार  
किया और फिर सन्तुष्ट होकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ५७७ ॥ व्याख्या करनेवाले, सुननेवाले, और लिखने-  
वालोंको अनुष्टुप् श्लोकोसे इस पुराणकी संख्या बीस हजार समझनी चाहिये ॥ ५७८ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणकी नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान स्वामीका पुराण समाप्त करनेवाला यह छिहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ७६

## अथ प्रशस्ति ।

जो श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कार कर रहे हैं और इसलिये श्रीवर्द्धमानस्वामीके चरणनखरूपी चन्द्रमाके विम्बको  
स्पर्श करनेवाले चूहापणि रत्नोंसे जिनके उत्तम मुकुट प्रगट हो रहे हैं ऐसे इन्द्र लोग भी मस्तकपर आये चन्द्रमाको धारण  
करनेकी लीलासे उद्वत हुए महादेवको तिरस्कार करते थे ऐसे श्रीवर्द्धमानस्वामी सदा जयशील हों ॥१॥ जिस प्रकार

( १ ) चतुर्विंशतितीर्थयात्रागुणितिनिरुत्तये । शृषभादिसहावीरपर्यतान् प्रणमाम्यहं ॥ १ ॥ अर्थ-चारों गतियोंसे छूटनेकेलिये शृषभदेवसे लेकर म  
हावीर पर्यंत सौबीस तीर्थयात्राको मैं नमस्कार करता हूँ । एक पुस्तकके हासियेपर यह श्लोक दूसरे नवरपर अधिक लिखा है ।

मूलसूच्यवाराणां प्रणीनामिष सार्वेषां । महापुरुषरत्नानां स्थानं सेनान्वयोऽजनि ॥ २ ॥ तत्र वित्रासिताशेषप्रबादिमद्वारण । वीरसेनाप्रणीर्वाहीरसेनभट्टारको बभौ ॥ ३ ॥ ज्ञानवादित्रयसमग्रहीदिव विग्रहं । विराजते विशतु यो विनेयानामनुग्रह ॥ ४ ॥ यत्कमानमराज्यमुक्ताब्जान्यदधु श्रियं । चित्रं विकास-मासाय नक्तचन्द्रमरीचिभिः ॥ ५ ॥ सिद्धिभूषणदितिर्यस्य टीका सवीक्ष्य मिथुभिः । टीकयते हेलयान्येषां विषमपि पदेपदे ॥ ६ ॥ यस्यास्याब्जजवाकृत्रिया धवलया कीर्लेव सप्राव्यया सप्रतीतिं सतत समस्तमुधिया सपादयन्त्या सता । विश्वव्यासिपरिश्रमादिव चिर लोके स्थितिं संधिता श्रीब्राह्मीनमलान्यनामुप-चितान्यस्ताति निःशेषत ॥ ७ ॥ अभवदिव हिमाद्रिदेवसिन्धुप्रबाहो ध्वनिव सकलबाहवशैलैकमूर्ति । उदयनितिटटाद्वा भास्वरो भासमानो मुनिः । सु-सेनो वीरसेनादमुष्मात ॥ ८ ॥ यस्य प्राञ्चनखान्दुजालविसर्गद्वारांतराभिर्भवत्यादाम्भोजरजःपिपागमुकुटप्रत्यप्रजद्युति । सस्मर्ता स्वमोघवर्षवृत्पति पूतोऽहम-

समुद्रमें बहुमूल्य मणियोंके स्थान होते हैं उसी प्रकार मूलसंघरूपी महासागरमें महापुरुषरूपी रत्नोंका स्थान ऐसा सेनवंश अथवा सेनसंघ हुआ था ॥ २ ॥ उसमें समस्तवादीरूपी मदोन्मत्त हाथियोंको त्रास देनेवाले वीरसेनसंघमें मुख्य ऐसे वीरसेन भट्टारक सुशोभित हुए थे ॥ ३ ॥ उन्होंने शरीरके समान ही ज्ञान और चारित्र्यकी सामग्रीको धारण किया था और वे शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये ही मानों सुशोभित हुए थे ॥ ४ ॥ यह एक आश्चर्यकी बात है कि उन वीरसेनके चरणोंमें नम्र हुए राजा लोगोंके मुखरूपी कमल उनके नखरूपी चन्द्रपाकी किरणोंसे मफुल्लित होकर अच्छी शोभाको धारण करते थे ॥ ५ ॥ यद्यपि मोक्षरूप पृथिवीकी पद्धति अर्थात् सीढी अथवा सिद्धिभूषणदति नामकी तत्त्वार्थकी टीका पद पदपर विषम है तथापि श्रीवीरसेनकी बनाई हुई जिसकी टीकाको देखकर भिन्नु अर्थात् मुनि लोग भी लीला पूर्वक दूसरोंके लिये उपदेश दिया करते हैं ॥ ६ ॥ जिस श्रीवीरसेनके मुखरूपी कमलसे प्रगट हुई वचनरूपी लक्ष्मी कीर्तिके समान धवल अच्छी तरह सुनने योग्य है समस्त बुद्धिमान सज्जनोंको सदा प्रेम उत्पन्न करती है और संसारभरमें फैलनेके परिश्रमसे ही क्या मानों इस लोकमें बहुत दिनसे ठहरी हुई है उसी वचनरूपी लक्ष्मीके द्वारा अनादिकालसे इकट्ठे हुए कानोंमें भरे हुए मैल पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार हिमवन पर्वतसे गंगा नदीका प्रवाह निकलता है अथवा सर्वदेवसे दिव्यध्वनि निकलती है अथवा उठयाचल पर्वतसे प्रकासमान सूर्य निकलता है उसीप्रकार इन्हीं वीरसेन भट्टारकके पीछे समस्त शास्त्रोंकी साक्षत मूर्तिके समान जिनसेनाचार्य हुए ॥ ८ ॥ जिन श्रीजिनसेनके देदीप्यमान नखोंके किरणसमूहसे जो फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके चरण कमलकी शोभाको धारण करते थे उनकी रजसे जब राजा अमोघवर्षके मुकुटके ऊपर लगे हुए रत्नोंकी कांति पीली पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपकी

बेचल स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगत्सवक ॥ ९ ॥ श्रावीण्य पदवाक्ययोः परिणति पक्षातराक्षेपणे सद्भावावगतिः कृततत्त्वविषया श्रेयः कयाको-  
शल । मयप्रयत्निभिः सदृशकलितैस्तन्मयो गुणानां गणो य संप्राप्य निरं कलंकविकल काले कलौ सुस्थितः ॥ १० ॥ ज्योत्स्नेव तारकावीथे सद्भावाविष-  
यभा । स्फटिके लखछतेवासीत्साहजास्मिन्सरस्वती ॥ ११ ॥ दशरथगुरुरासीत्स धीमान्सधर्मा शक्ति इव दिनेशो विभलोऽकैचकभुः । निखिलमिदमपी-  
व्यापि तद्वाङ्मयैः प्रकटितनिजभावं निर्मलैर्धर्मसारैः ॥ १२ ॥ सद्भानः सर्वशाखाणां तद्भास्वत्वाक्यविस्तरे । दर्पणापि तन्निर्भासो नालैरप्याश्रु बुध्यते ॥ १३ ॥  
प्रत्यक्षीकृतलक्ष्यलक्षणविधिविधोपविधातिग सिद्धांतान्यवसानयानजनितप्रागल्भ्यश्रुदेदधीः । नानानूनयप्रमाणनिपुणोऽगण्यैर्गुणैर्भूषितः शिष्य श्रीगुणभद्रसु-  
भिरनयोरासीजगद्भिःश्रुतः ॥ १४ ॥ पुण्याश्रितोऽयमजयस्तुभगत्वदर्पमिलाकल्यय परिक्षुद्धयतिस्त्वयःश्रीः । मुक्तिश्रिया पटुतमा प्रहितेव तृती प्रीत्या महागुण-

पवित्र मानता या और अपनी उसी अवस्थाका सदा स्मरण किया करता था ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्रीजिनसेना-  
चार्य सदा संसारका भंगल करते रहे ॥ ९ ॥ वे पद और वाक्योंकी रचना करनेमें बड़े प्रवीण थे, जिनकी परिणति सदा  
परमनके खगडनमें ही लगी रहती थी, जिन्हें श्रेष्ठ पदार्थोंका सिद्धान्त विषयक अच्छा ज्ञान था वे कथाकी कुशलतामें  
कल्याणकारी थे, श्रयोंके गूढ़ विषयको अच्छीतरह स्पष्ट करते थे, सन्मार्गको निरूपण करनेवाली उनकी कविता थी, वे गुण-  
वानोंमें सबसे अग्रसर थे, और कलिकालमें भी उनका आश्रय लेकर यह धुनियोंका समुद्राय कलंकरहित होकर बहुतदिनतक  
टिका रहा था ॥ १० ॥ जिसप्रकार चंद्रमामें चांदनी रहती है, सूर्यमें प्रभा रहती है और स्फटिकमें स्वच्छता रहती है उसीप्रकार  
जिन श्रीजिनसेनाचार्यमें सरस्वती निवास करती थी ॥ ११ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाका साधर्म्य सूर्य होता है उसीप्रकार जिन  
जिनसेनाचार्यके साथर्मी ( एक गुरुके शिष्य ) दशरथगुरु नामके आचार्य थे, वे दशरथ गुरु बड़े ही बुद्धिमान थे, संसार  
को दिखलानेवाले अद्वितीय नेत्र थे और उनकी निर्मल धर्मको कहनेवाली वचनरूपी किरणोंसे अंधकारसे व्याप्त हुआ  
यह समस्त संसार आज भी अपने यथार्थ भावको प्रगट करता है । भावार्थ-जिनकी वोगोंसे संसारके जीव अपना स्वरूप  
जान लेते हैं ॥ १२ ॥ उनके प्रकाशमान विस्तृत वाक्योंमें समस्त शास्त्रोंका श्रेष्ठ भाव दर्पणमें पड़े हुए प्रतिविकें समान  
मूर्त्त पुरुषोंको भी शीघ्र ही मालूम होजाता है ॥ १३ ॥ जिसे समस्त व्याकरण शास्त्र प्रत्यक्ष हो रहा है जो विद्या और  
उपविधाओंके पार पहुंच गया है सिद्धांतसागरके पारगामी होनेसे जिसकी प्रतिभा और पूज्य बुद्धि स्वयं बढ रही है, जो  
अनेक तरहके समस्त नय और प्रमाणोंके जाननेमें चतुर है और जो मुख्य २ समस्त गुणोंसे विभूषित है ऐसा जगतप्र-  
सिद्ध श्रीगुणभद्राचार्य इन्हीं दोनोंका अर्थत श्रीजिनसेन और दशरथगुरुका शिष्य था ॥ १४ ॥ यह गुणभद्र पुरस्करूपी



धिया समक्षिप्रिय ॥ १५ ॥ तस्य बचनाश्रुविसर सततहृदुस्तरतरंगतमाः । कुबलयपथाहारी जितक्षिप्रिबिभिररश्मिप्रसर ॥ १६ ॥ कविपरमेश्वरनिग-  
दितगणकासात्रक पुरोभरित । सकलच्छदोलकस्तिलक्य सूर्यार्णवपदरत्नं ॥ १७ ॥ व्यावर्णनानुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसङ्गावं । अपहस्तिताम्यकाव्य  
धन्य व्युत्पन्नमस्तिमिरादेय ॥ १८ ॥ जिनसेनभगवतोक्त मिथ्याकविदण्डनमतिललित । सिद्धांतोपनिबधनकथा भर्त्रा विरादिनायासात् ॥ १९ ॥ कस्तिविस्त-  
रभीरुवाद्बबिष्ठ संगृहीतमलधिया । गुणभद्रसूरियेव प्रदीणकालानुरोधेन ॥ २० ॥ व्यावर्णनानिरहित सुबोधमखिलं कुलेकमखिलहित । महित महापुराण  
पठंशु शृण्वतु भक्तिमन्मूढा ॥ २१ ॥ इदं भावयता पुसां तपो भवविभित्तया । भव्याना भाविसिद्धीना शुद्धदृग्मृतविद्वतां ॥ २२ ॥ शास्तिर्विद्विजंभ श्रेयः प्राप्य  
प्रेयःसमागमः । विगमो विप्रबव्याप्तेरतिरत्यर्थसंपदा ॥ २३ ॥ यथहेतुफलज्ञान स्याच्छुभाशुभकर्मणां । विज्ञेयो मुक्तिसङ्गातो मुक्तिहेतुश्च निश्चितः ॥ २४ ॥

लक्ष्मीकी सुंदरताके अभिमानको भी जीतता है यही समझकर मानो महा गुणवती और बुद्धिमती ऐसी मुक्तिरूपी लक्ष्मी-  
के द्वारा भेजी हुई अल- शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाली और अत्यंत चतुर ऐसी दूतीके समान तपश्चरखरूपी लक्ष्मीने  
बड़े प्रेमसे स्वयं आकर जिस गुणभद्राचार्यका आश्रय लिया था ॥ १४ ॥ जिस गुणभद्राचार्यके वचनरूपी किरणोंका  
फैलाव सूर्य और चंद्रमा दोनोंकी किरणोंके फैलावको जीतता है क्योंकि वह अत्यंत निविड ऐसे अंतरंगके अंधकारको  
भी सदा नष्ट करता रहता है और कुबलय पद्माह्लादी अर्थात् कपोदनी और कमल दोनोंको प्रफुल्लित करनेवाला अथवा  
कुबलय अर्थात् पृथ्वीमंडलरूपी कमलको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १६ ॥ यह पुरुदेव अर्थात् श्रीशृषभदेवका चरित्र कवि-  
परमेश्वरकी कही हुई गद्यकथाके आधारसे बनाया गया है इसमें सब छंद और अलंकारोंके उदाहरण है तथा इसकी  
रचना सूक्ष्म अर्थ और गूढ़पदोंसे भरी हुई है ॥ १७ ॥ इसका वर्णन बहुत ही अच्छा है इसके पढ़नेसे सब शास्त्रोंके  
उत्तम २ पदार्थ साक्षात् हो जाते हैं, यह अन्य काव्योंका तिरस्कार करता है अर्थात् सब काव्योंसे उत्तम है सुनने योग्य  
है और विद्वानोंके ग्रहण करने योग्य है ॥ १८ ॥ यह पुरुदेवका चरित्र मिथ्या कवियोंके अभिमानको नष्ट करदेता है  
और बहुत ही मनोहर है । इसे सिद्धांत ग्रंथकी टीका करनेवाले और बहुत दिन तक शिष्योंका शासन करनेवाले भगव-  
ज्जिनसेनाचार्यने बनाया था ॥ १९ ॥ इसका अवशिष्ट भाग बहुत विस्तारके भषसे और दीनकालके अनुरोधसे निर्मल  
बुद्धिको धारण करनेवाले गुणभद्राचार्यने थोड़ेमें संग्रह किया है ॥ २० ॥ यद्यपि यह महापुरुष विशेष रचना आदिसे  
रहित है तथापि पूज्य है, सबका हित करनेवाला है, पूर्ण है, सम्यग्ज्ञान वदानेवाला है, और सुंदर लेखोंसे भरपूर है इस-  
लिये भक्तिवाले भव्य पुरुषोंको सदा पढ़ना और सुनना चाहिये ॥ २१ ॥ जो पुरुष इस महापुरुषकी भावना करते हैं

निर्वेगप्रित्योद्भूतिर्भस्मश्रद्धावर्धन । असह्येयगुणश्रेण्या निर्जरा शुभकर्मणा ॥ २५ ॥ आकाशस्य च सरोध कृतकर्मविमोक्षण ! शुद्धिरात्यंतिकी शोका सेव  
संसिद्धिरामन ॥ २६ ॥ तदेतदेव व्याहृयेय धन्य भव्योर्निरंतर । स्विन्य पूज्य मुदा लेख्यं लेखनीय च भाषिकैः ॥ २७ ॥ विवितसकलशब्दो लोकसेनो मु-  
नीशः कश्चिरविकलवृत्तस्तस्य शिष्योऽमुह्य । सततमिदं पुराणे प्राप्य साहाय्यमुर्बुगविनयधर्मयोन्मान्यतां स्वस्य सद्धि ॥ २८ ॥ यस्त्योऽमुगमतगजा नि-  
कमदकोतस्विनीसगमाद्वाग वारि कलकित कट्ट मुहुः पीत्वा पगच्छतुष । कौमारं धनचंदनं वनमर्षां पयुस्करागतिर्येमन्द्योलितमस्तभास्करकर च्छाय समशिश्रि  
यन् ॥ २९ ॥ हुम्नाब्धौ शिरिणा ह्यै हृतसुखा गोपीकृचोद्भूतं पद्मे मातुस्त्रैर्भेदेऽलिमदले बासावसंकोचने । यस्त्योरःशरणे प्रबीचसि भुजस्तम्भातरोत्त-  
म्भितस्त्रये हारकलापतोरणुणे श्रीः साह्यमागन्धिर ॥ ३० ॥ अकाशवर्षभूषाले पात्यत्यखिलात्मिका । तस्मिन्निव्यस्तुति शेषद्विपि वीधयशोऽनु ॥ ३१ ॥

उन शुद्धसम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको धारण करनेवाले तथा होनहार सिद्धियोंको प्राप्त होनेवाले भव्य  
जीवोंको संसारसे वैराग्य उत्पन्न होकर तपश्चरणकी प्राप्ति होती है शांति, श्रद्धा, जय, और कल्याण होता है इष्ट वस्तुओंका  
समागम होता है, उपद्रवोंका समूह नष्ट होता है, धन संपदाओंकी प्राप्ति होती है, शुभ और अशुभ कर्मोंके बंधके कारण  
तथा फलोंका ज्ञान होता है । मोक्षकी प्राप्ति और निश्चयसे मोक्षके कारणोंका मिलाप होता है तीनों तरहके वैराग्यकी  
प्राप्ति होती है धर्मकी श्रद्धा बढ़ती है, अशुभ कर्मोंकी प्रसंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है, आसक्तका निरोध होता है  
समस्त कर्मोंका नाश होता है और आत्माकी अत्यंत शुद्धता प्राप्त होती है तथा यही आत्माकी सम्यक् सिद्धि वतलाई गई  
है इसलिये भक्त भव्य पुरुषोंको इसी महापुराणका व्याख्यान करना चाहिये इसीको सदा सुनना चाहिये इसीका चिंतन  
करना चाहिये इसीकी पूजा करनी चाहिये और प्रसन्नताके साथ इसीको लिखना लिखाना चाहिये ॥ २-२७ ॥ उन्नीं गुण-  
भद्रके शिष्योंमें मुख्य शिष्य मुनिराज लोकसेन थे जो कि समस्त शास्त्रोंके जानकार थे, कवि थे, पूर्ण चारित्रको पालन करते  
थे, और जो इस पुराणके बनानेमें गुरुकी विनयरूप अच्छी सहायता देकर सज्जनोके द्वारा मान्य हुए थे ॥ २८ ॥  
अपने मदके वहावसे बनी हुई नदीके समागमसे जिस गंगा नदीका जल कलंकित और कड़वा होगया था उसे चार  
बार पीनेपर जिसकी व्यास दूर नहीं होती थी ऐसे जिस राजाके ऊंचे २ हाथी बने चंदनके उस ताले वनमें आश्रय लेते  
थे कि जो महासागरकी तरंगरूप वायुके द्वारा धीरे २ हिलाया जाता था और जिसमें सूर्यकी किरणोंकी कांति भी अस्त  
हो जाती थी ॥ २९ ॥ जो लक्ष्मी क्षीरसागरमें मंदराचल पर्वतसे दुखी हुई थी श्रीकृष्णके वसः स्थलपर गोपियोंके  
कुचोंकी रगदसे दुःखी हुई थी और कमलमें सूर्यकी किरणोंके द्वारा स्वयं प्रफुल्लित होने तथा शामको संकुचित

पद्यालयमुकुलप्रविकासकसत्प्रतापततमहसि । श्रीमति लोकादित्ये प्रथमस्तप्रपितशत्रुसप्तमसे ॥३२॥ चेष्टपताके चैलध्वजानुजे चेष्टकेतनतनूजे । जैनैर्धर्म-  
वृद्धिविधामिति विधुवीथ्रयशसि ( १ ) ॥ ३३ ॥ वनवासदेशमखिलं भुंजति निष्कण्टक सुख सुखिरे । तत्पितृनिजनामकृते वकापुरे पुरेष्वधिके ॥ ३४ ॥ वा-  
कट्टपकालाभ्यन्तरविशालयधिकार्यकारिणि पिङ्गलनामति समस्तजनमुखदे ॥ ३५ ॥ श्रीपञ्चम्यां बुधार्द्रायुजि दिवसकरे मन्त्रिकारे  
बुधाशे पूर्व्यां सिंहलमे धनुषि भरणिजे वृद्धिकार्को तुलायां । सूर्ये शुके कुलीरे गवि च मुरगुरौ निष्ठित भव्यवर्ध पासेज्य सर्वसारं जगति विजयते पुण्यमे-  
तत्पुराण ॥ ३६ ॥ यावद्धरा जलनिविर्गमन हिमाशुस्तिग्मशुति-मुरगिभि ककुभा विभागा । तावत्सतां नचसि चेतसि पूलमेतद् द्योतदशुतिस्थितिसुपेदु म-  
हापुराण ॥ ३७ ॥ धर्मोत्र मुक्तिपदमन्त्रकवित्वमत्र तीर्थशिना चरितमत्र महापुराणे । यद्वा कर्वाद्रजिनसेनमुखारविन्दनिर्गन्धचासि न मनसि हरति केषा ॥ ३८ ॥

होनेपर दुःखी होती थी वही लक्ष्मी जिसमें अनेक हारोंके समूहके तोरण गुण विराजमान है जो दोनों भुजारूप  
स्वर्भोंके मध्यमें खड़े रहनेसे स्थिर है और जो बहुत बड़ा है ऐसे जिस राजाके वक्षःस्थलकी शरण आकर बहुत दिन तक  
सुखी रही थी ॥ ३० ॥ इसके सिवाय जिसने समस्त शत्रु नष्ट कर दिये थे और जिसका यश बहुत ही निर्मल था ऐसा  
राजा अकालवर्ष जिस समय समस्त पृथिवीका पालन करता था उसीसमय जिसके श्रेष्ठ प्रतापके समूहका तेज मुकुलित  
कमलोंके समूहको प्रफुल्लित करता था जिसने प्रसिद्ध २-शत्रु रूप अन्धकार नष्टकर दिया था जो श्रीमान् था जिसकी  
पताकाएं कपड़ेकी थी छोटी ध्वजाएं भी कपड़ेकी थी और भालोंपरकी ध्वजाएं भी कपड़ेकी थी (?) जो जिनयर्मकी सदा वृद्धि  
करता रहता था जिसका यश चन्द्रमाके समान निर्मल था ऐसा सामन्त लोकादित्य अपने पिता बंकरके द्वारा अपने नामके  
आधारपर वसाये हुए प्रसिद्ध और बड़े बंकापुर नगरमें समस्त वनवास देशको निष्कण्टक तथा सुखसे बहुत दिनतक उपभोग-  
करता था ॥ ३१-३४ ॥ उसी समय राजा शकके आठसौ बीसवर्ष बाद सबलोगोंको सुख देनेवाले तथा अनेक मंगल और  
अर्थ सिद्ध करनेवाले पिङ्गल नामके संवत्सरमें आश्विन शुक्ल पंचमी गुरुवारके दिन जिससमय कन्याका नौवां अंश था  
पूर्वाषाढ नक्षत्र था सिंहलग्न था, धनराशिपर मंगल था वरिचकपर सूर्य था तुलामें ६  
शुक्र और बुध था कर्कराशिपर गुरु और शनि थे उससमय अनेक भव्योंके द्वारा जिसको ५  
पूज्यता प्राप्त हुई है और जो निष्ठा करने योग्य सब शास्त्रोंका सारभूत है ऐसा यह पु- ७  
ण्यरूप पुराण संसारमें जयशील हो ॥ ३६ ॥ जबतक पृथ्वी है, समुद्र है, आकाश है, ८  
चंद्रमा है, सूर्य है, मेरु पर्वत है और दिशाओंके विभाग हैं तबतक पवित्र और अपनी ९  
कांतिको प्रकाशित करनेवाला यह महापुराण सज्जनोंके वचनोंमें और चित्तमें सदा १०  
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

महापुराणस्य पुराणपुस-पुरापुराणे तदकारि किञ्चित् । कवीशिनानेन यथा न काव्यवर्चसां चेतोविकलाः कवीन्द्रा ॥ ३९ ॥ कविबर्जिनसेनाचार्यार्थभासा मधुरिमणि न वाच्य-नाभिप्लूतोः पुराणे । तदनु च गुणभद्राचार्यबाचो विस्मित्राः सकलकविकरैर्द्वज्जातस्त्रिभ्यो जयन्ति ॥ ४० ॥ यदि सकलकवीन्द्रोऽद्विभोऽसकृदप्य-चारथवर्णसरसचेतास्तस्वमेव सखे स्यात् । कविबर्जिनसेनाचार्यवक्त्रारविदप्रणिगदितपुराणकर्णनाभ्यर्णकणः ॥ ४१ ॥ धर्मः कथिरिहास्ति धनदुञ्जितवर्ज्यं पुराणं महत् श्रव्यम् । किमु कथाक्षिण्णश्रुत्पराह्म्यानचरित्रार्णव । कोऽप्यरिभन् कवितागुणोरित कथयोर्येतद्वज्ज्वालय कोसावन्न कविः कवीन्द्रगुणभद्राचार्यैतयः स्वय ४२ इत्यर्थे त्रिवर्णक्षणमहापुराणप्रसङ्गे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते प्रसारितव्यावर्णेन नाम सप्तशततितम पर्वणे ।

स्थान प्राप्त करो ॥३७॥ इस महापुराणमें धर्मका स्वरूप है, मोक्षका मार्ग है, कविता है, और तीर्थंकरोंका चरित्र है अथवा कविराज श्रीजिनसेनके मुखारविंदसे निकले हुए वचन भला किमके मनको हरण नहीं कर सकते ॥३८॥ इन जिनसेनाचार्य कविराजने इस महापुराणके पूर्वभागमें अर्थात् आदिपुराणमें पुराणपुरुष अर्थात् श्रीटपभदेवका जीवनचरित्र संक्षेपसे इसप्रकार कहा है कि जिससे काव्य चर्चोंमें भी बड़े बड़े कविराजोंका चित्त विकल न हो जाय ॥ ३९ ॥ श्रीटपभदेवके पुराणरूपी वसंतचतुर्में कविराज श्रीजिनसेनाचार्य सूर्यके समान थे इसलिये उनके विषयमें तो कुछ कहना ही नहीं चाहिये परंतु उनके बादकी समस्त कविगणरूपी हाथियोंके समूहकेलिये सिंहीनके समान जो गुणभद्राचार्यकी विचित्र वाणी है वह जयश्रील हो ॥ ४० ॥ हे मित्र यदि तू समस्त उत्तम कवियोंके कहे हुए सुभाषितोंके प्रचारको सुनकर सरस चित्त होना चाहता है तो कविराज श्रीजिनसेनाचार्यके मुखारविंदसे कहे हुए पुराणके सुननेमें अपने कान लगा ॥ ४१ ॥ इसमें धर्मका स्वरूप है या नहीं यह कहना ही उचित नहीं है क्योंकि यह बढाभारी पुराण ही महा धर्म है । क्या इसमें कुछ सुनने योग्य कथा हैं ऐसा पूछना भी ठीक नहीं है क्योंकि ब्रह्मसठ शलाका पुरुषोंके चरित्र ही इसमें सुनने योग्य हैं क्योंकि उनके चरित्रोंका यह महासागर है । इसीतरह क्या इसमें कोई कविताके गुण हैं यह भी पूछना उचित नहीं है क्योंकि बड़े बड़े कविराज भी इसके बचनरूपी कमलोंके भ्रमर बने हुए हैं तो फिर इसका बनानेवाला कवि कौन है ? इसका उत्तर यही है कि कविराज आचार्यवर्य गुणभद्र स्वयं ही इसके कवि हैं ॥ ४२ ॥

इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित महापुराणकी यह प्रशस्ति समाप्त हुई ॥

इसप्रकार यह प्रश्न समाप्त हुआ ।

मंगलं भगवान् वीरि मंगलं गौतमो गंधी । मंगलं कुंदकुंदार्यो अनन्यमोस्तु मंगलं ।

